हिंदी शब्दसागर

हिंदी शब्दसागर

चतुर्थ भाग

['ज' से 'दस्तंदाजी' तक, शब्दसंख्या—१६०००]

मूल संपादक

श्यामसुंदरदास बी० ए०

मूल सहायक संपादक

बालकृष्ण भट्ट　　रामचंद्र शुक्ल
अमीरसिंह　　जगन्मोहन वर्मा
भगवानदीन　　रामचंद्र वर्मा

संपादकमंडल

संपूर्णानंद　　कमलापति त्रिपाठी
मंगलदेव शास्त्री　　धीरेंद्र वर्मा
कृष्णदेवप्रसाद गौड़　　नगेंद्र
हरवंशलाल शर्मा　　रामधन शर्मा
शिवप्रसाद मिश्र　　शिवनंदनलाल दर
गोपाल शर्मा　　सुधाकर पांडेय
भोलाशंकर व्यास (सह० संयो०)　　करुणापति त्रिपाठी (संयोजक संपादक)

सहायक संपादक

त्रिलोचन शास्त्री　　विश्वनाथ त्रिपाठी

काशी नागरी प्रचारिणी सभा

हिंदी शब्दसागर के संशोधन संपादन का संपूर्ण तथा प्रथम एवं द्वितीय भाग के प्रकाशन का साठ प्रतिशत व्ययभार भारत सरकार के शिक्षामंत्रालय ने वहन किया।

परिवर्धित, संशोधित, नवीन संस्करण

शकाब्द १८८६ सं० २०२४ वि० १९६८ ई०

मूल्य २१), संपूर्ण दस भागों का २००)
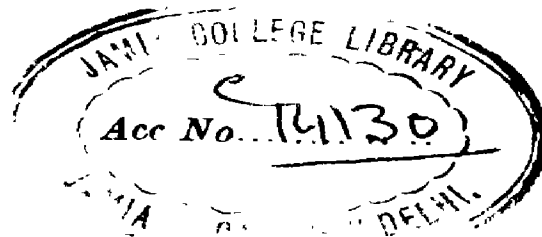
शंभुनाथ वाजपेयी द्वारा
नागरी मुद्रण, वाराणसी
में मुद्रित

प्रकाशिका

'हिंदी शब्दसागर' अपने प्रकाशनकाल से ही कोश के क्षेत्र में भारतीय भाषाओं के दिशानिर्देशक के रूप में प्रतिष्ठित है। तीन दशक तक हिंदी की मूर्धन्य प्रतिभाओं ने अपनी सतत तपस्या से इसे सन् १९२८ ई० में मूर्त रूप दिया था। तब से निरंतर यह ग्रंथ इस क्षेत्र में गंभीर कार्य करनेवाले विद्वत्समाज में प्रकाशस्तंभ के रूप में मर्यादित हो हिंदी की गौरवगरिमा का आख्यान करता रहा है। अपने प्रकाशन के कुछ समय बाद ही इसके खंड एक एक कर अनुपलब्ध होते गए और अप्राप्य ग्रंथ के रूप में इसका मूल्य लोगों को सहस्र मुद्राओं से भी अधिक देना पड़ा। ऐसी परिस्थिति में अभाव की स्थिति का लाभ उठाने की दृष्टि से अनेक कोशों का प्रकाशन हिंदी जगत् में हुआ, पर वे सारे प्रयत्न इसकी छाया के ही बल जीवित थे। इसलिये निरंतर इसकी पुनः अवतारणा का गंभीर अनुभव हिंदी जगत् और इसकी जननी नागरीप्रचारिणी सभा करती रही, किंतु साधन के अभाव में अपने इस कर्तव्य के प्रति सजग रहती हुई भी वह अपने इस उत्तरदायित्व का निर्वाह न कर सकने के कारण मर्मांतक पीड़ा का अनुभव कर रही थी। दिनोत्तर उसपर उत्तरदायित्व का ऋण चक्रवृद्धि सूद की दर से इसलिये और भी बढ़ता गया कि इस कोश के निर्माण के बाद हिंदी की श्री का विकास बड़े व्यापक पैमाने पर हुआ। साथ ही, हिंदी के राष्ट्रभाषा पद पर प्रतिष्ठित होने पर उसकी शब्दसंपदा का कोश भी दिनोत्तर गतिपूर्वक बढ़ते जाने के कारण सभा का यह दायित्व निरंतर गहन होता गया।

सभा की हीरक जयंती के अवसर पर, २२ फाल्गुन, २०१० वि० को, उसके स्वागताध्यक्ष के रूप में डा० संपूर्णानंद जी ने राष्ट्रपति राजेंद्रप्रसाद जी एवं हिंदीजगत् का ध्यान निम्नांकित शब्दों में इस ओर आकृष्ट किया—'हिंदी के राष्ट्रभाषा घोषित हो जाने से सभा का दायित्व बहुत बढ़ गया है।...हिंदी में एक अच्छे कोश और व्याकरण की कमी खटकती है। सभा ने आज से कई वर्ष पहले जो हिंदी शब्दसागर प्रकाशित किया था उसका बृहत् संस्करण निकालने की आवश्यकता है। ...आवश्यकता केवल इस बात की है कि इस काम के लिये पर्याप्त धन व्यय किया जाय और केंद्रीय तथा प्रादेशिक सरकारों का सहारा मिलता रहे।'

उसी अवसर पर सभा के विभिन्न कार्यों की प्रशंसा करते हुए राष्ट्रपति ने कहा—'वैज्ञानिक तथा पारिभाषिक शब्दकोश सभा का महत्वपूर्ण प्रकाशन है। दूसरा प्रकाशन हिंदी शब्दसागर है जिसके निर्माण में सभा ने लगभग एक लाख रुपया व्यय किया है। आपने शब्दसागर का नया संस्करण निकालने का निश्चय किया है। जब से पहला संस्करण छपा, हिंदी में बहुत बातों में और हिंदी के अलावा संसार में बहुत बातों में बड़ी प्रगति हुई है। हिंदी भाषा भी इस प्रगति से अपने को वंचित नहीं रख सकती। इसलिये शब्दसागर का रूप भी ऐसा होना चाहिए जो यह प्रगति प्रतिबिंबित कर सके और वैज्ञानिक युग के विद्यार्थियों के लिये भी साधारणतः पर्याप्त हो। मैं आपके निश्चयों का स्वागत करता हूँ। भारत सरकार की ओर से शब्दसागर का नया संस्करण तैयार करने के सहायतार्थ एक लाख रुपए, जो पाँच वर्षों में बीस बीस हजार करके दिए जाएँगे, देने का निश्चय हुआ है। मैं आशा करता हूँ कि इस निश्चय से आपका काम कुछ सुगम हो जाएगा और आप इस काम में अग्रसर होंगे।'

राष्ट्रपति डा० राजेंद्रप्रसाद जी की इस घोषणा ने शब्दसागर के पुनःसंपादन के लिये नवीन उत्साह तथा प्रेरणा दी। सभा द्वारा प्रेषित योजना पर केंद्रीय सरकार के शिक्षामंत्रालय ने अपने पत्र सं० एफ.४—३।५४ एच० दिनांक ११।५।५४ द्वारा एक लाख रुपया पाँच वर्षों में, प्रति वर्ष बीस हजार रुपए करके, देने की स्वीकृति दी।

इस कार्य की गरिमा को देखते हुए एक परामर्शमंडल का गठन किया गया, इस संबंध में देश के विभिन्न क्षेत्रों के अधिकारी विद्वानों की भी राय ली गई, किंतु परामर्शमंडल के अनेक सदस्यों का योगदान सभा को प्राप्त न हो सका और जिस विस्तृत पैमाने पर सभा विद्वानों की राय के अनुसार इस कार्य का संयोजन करना चाहती थी, वह भी नहीं उपलब्ध हुआ। फिर भी, देश के अनेक निष्णात अनुभवसिद्ध विद्वानों तथा परामर्शमंडल के सदस्यों ने गंभीरतापूर्वक सभा के अनुरोध पर अपने बहुमूल्य सुझाव प्रस्तुत किए। सभा ने उन सबको मनोयोगपूर्वक मथकर शब्दसागर के संपादन हेतु सिद्धांत स्थिर किए जिनसे भारत सरकार का शिक्षामंत्रालय भी सहमत हुआ।

उपर्युक्त एक लाख रुपए का अनुदान बीस बीस हजार रुपए प्रति वर्ष की दर से निरंतर पाँच वर्षों तक केंद्रीय शिक्षा मंत्रालय देता रहा और कोश के संशोधन, संवर्धन और पुनःसंपादन का कार्य लगातार होता रहा, परंतु इस अवधि में सारा कार्य निपटाया नहीं जा सका। मंत्रालय के प्रतिनिधि श्री डा० रामधन जी शर्मा ने बड़े मनोयोगपूर्वक यहाँ हुए कार्यों का निरीक्षण परीक्षण करके इसे पूरा करने के लिये आगे और ६५०००) अनुदान प्रदान करने की संस्तुति की जिसे सरकार ने कृपापूर्वक स्वीकार करके पुनः उक्त ६५०००) का अनुदान दिया। इस प्रकार संपूर्ण कोश का संशोधन संपादन दिसंबर, १९६५ में पूरा हो गया।

इस ग्रंथ के संपादन का संपूर्ण व्यय ही नहीं, इसके प्रकाशन के व्यभार का ६० प्रतिशत बोझ भी भारत सरकार ने वहन किया है इसी लिये यह ग्रंथ इतना सस्ता निकालना संभव हो सका है। उसके लिये शिक्षा मंत्रालय के अधिकारियों का प्रशंसनीय सहयोग हमें प्राप्त है और तदर्थ हम उनके अतिशय आभारी हैं।

जिस रूप में यह ग्रंथ हिंदीजगत् के संमुख उपस्थित किया जा रहा है उसमें अद्यतन विकसित कोशशिल्प का यथासामर्थ्य उपयोग और

प्रयोग किया गया है, किंतु हिंदी की ओर हमारी सीमा है। यद्यपि हम अर्थ और व्युत्पत्ति का ऐतिहासिक क्रमविकास भी प्रस्तुत करना चाहते थे, तथापि साधन की कमी तथा हिंदी ग्रंथों के कालक्रम के प्रामाणिक निर्धारण के अभाव में वैसा कर सकना संभव नहीं हुआ। फिर भी यह कहने में हमें संकोच नहीं कि अद्यतन प्रकाशित कोशों में शब्दसागर की गरिमा आधुनिक भारतीय भाषाओं के कोशों में अतुलनीय है, और इस क्षेत्र में काम करनेवाले प्रायः सभी क्षेत्रीय भाषाओं के विद्वान् इससे आधार ग्रहण करते रहेंगे। इस अवसर पर हम हिंदीजगत् को यह भी नम्रतापूर्वक सूचित करना चाहते हैं कि सभा ने शब्दसागर के लिये एक स्थायी विभाग का संकल्प किया है जो बराबर इसके प्रवर्धन और संशोधन के लिये कोशशिल्प संबंधी अद्यतन विधि से यत्नशील रहेगा।

शब्दसागर के इस संशोधित प्रवर्धित रूप में शब्दों की संख्या मूल शब्दसागर की अपेक्षा दुगुनी से भी अधिक हो गई है। नए शब्द हिंदी साहित्य के आदिकाल संत एवं सूफी साहित्य (पूर्व मध्यकाल), आधुनिक काल, काव्य, नाटक, आलोचना, उपन्यास आदि के ग्रंथ, इतिहास, राजनीति, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, वाणिज्य आदि और अभिनंदन एवं पुरस्कृत ग्रंथ, विज्ञान के सामान्य प्रचलित शब्द और राजस्थानी तथा डिंगल, दक्खिनी हिंदी और प्रचलित उर्दू शैली आदि से संकलित किए गए हैं। परिशिष्ट खंड में प्राविधिक एवं वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दों की व्यवस्था की गई है।

हिंदी शब्दसागर का यह संशोधित परिवर्धित संस्करण कुल दस खंडों में पूरा होगा। इसका पहला खंड पौष, संवत् २०२२ वि० में छपकर तैयार हो गया था। इसके उद्घाटन का समारोह भारत गणतंत्र के प्रधान मंत्री स्वर्गीय माननीय श्री लालबहादुर जी शास्त्री द्वारा प्रयाग में ३ पौष, सं० २०२२ वि० (१८ दिसंबर, १९६५) को भव्य रूप से सजे हुए पंडाल में काशी, प्रयाग एवं अन्यान्य स्थानों के वरिष्ठ और सुप्रसिद्ध साहित्यसेवियों, पत्रकारों तथा गण्यमान्य नागरिकों की उपस्थिति में संपन्न हुआ। समारोह में उपस्थित महानुभावों में विशेष उल्लेख्य माननीय श्री पं० कमलापति जी त्रिपाठी, हिंदी विश्वकोश के प्रधान संपादक श्री डा० रामप्रसाद जी त्रिपाठी, पद्मभूषण कविवर श्री पं० सुमित्रानंदन जी पंत, श्रीमती महादेवी जी वर्मा आदि हैं। इस संशोधित संवर्धित संस्करण की सफल पूर्ति के उपलक्ष्य में इसके समस्त संपादकों का एक एक फाउंटेन पेन, ताम्रपत्र और ग्रंथ की एक एक प्रति माननीय श्री शास्त्री जी के करकमलों द्वारा भेंट की गई। उन्होंने अपने संक्षिप्त सारगर्भित भाषण में इस सभा की विभिन्न प्रवृत्तियों की चर्चा की और कहा : 'सार्वजनिक क्षेत्र में कार्य करनेवाली यह सभा अपने ढंग की अकेली संस्था है। हिंदी भाषा और साहित्य की जैसी सेवा नागरीप्रचारिणी सभा ने की है वैसी सेवा अन्य किसी संस्था ने नहीं की। भिन्न भिन्न विषयों पर जो पुस्तकें इस संस्था ने प्रकाशित की हैं वे अपने ढंग के अनूठे ग्रंथ हैं और उनसे हमारी भाषा और साहित्य का मान अत्यधिक बढ़ा है। सभा ने समय की गति को देखकर तात्कालिक उपादेयता के वे सब कार्य हाथ में लिए हैं जिनकी इस समय नितांत आवश्यकता है। इस प्रकार यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि भाषा और साहित्य के क्षेत्र में यह सभा अप्रतिम है'।

प्रस्तुत चतुर्थ खंड में 'ज' से लेकर 'दस्तंदासी' तक के शब्दों का संचयन है। नए नए शब्द, उदाहरण, यौगिक शब्द, मुहावरे, पर्यायवाची शब्द और महत्वपूर्ण ज्ञातव्य सामग्री 'विशेष' से संवलित इस भाग की शब्दसंख्या लगभग १९००० है। अपने मूल रूप में यह अंश कुल ५२९ पृष्ठों में था जो अपने विस्तार के साथ इस परिवर्धित संशोधित संस्करण में ५७६ पृष्ठों में आ पाया है।

संपादकमंडल के प्रत्येक सदस्य ने यथासामर्थ्य निष्ठापूर्वक इसके निर्माण में योग दिया है। श्री कृष्णदेवप्रसाद गौड़ नियमित रूप से नित्य सभा में पधारकर इसकी प्रगति को विशेष गंभीरतापूर्वक गति देते रहे और पं० करुणापति त्रिपाठी ने इसके संपादन और संयोजन में प्रगाढ़ निष्ठा के साथ घर पर, यहाँ तक कि यात्रा पर रहने पर भी, पूरा कार्य किया है। यदि ऐसा न होता तो यह कार्य संपन्न होना संभव न था। हम अपनी सीमा जानते हैं। संभव है, हम सबके प्रयत्न में त्रुटियाँ हों, पर सदा हमारा परिनिष्ठित यत्न यह रहेगा कि हम इसको और अधिक पूर्ण करते रहें क्योंकि ऐसे ग्रंथ का कार्य अस्थायी नहीं सनातन है।

अंत में शब्दसागर के मूल संपादक तथा सभा के संस्थापक स्व० डा० श्यामसुंदरदास जी को अपना प्रणाम निवेदित करते हुए, यह संकल्प हम पुनः दुहराते हैं कि जब तक हिंदी रहेगी तब तक सभा रहेगी और उसका यह शब्दसागर अपने गौरव से कभी न गिरेगा। इस क्षेत्र में यह नित नूतन प्रेरणादायक रहकर हिंदी का मानवर्धन करता रहेगा और उसका प्रत्येक नया संस्करण और भी अधिक प्रभोज्वल होता रहेगा।

ना० प्र० सभा, काशी
विजया दशमी, २०२४ वि०

सुधाकर पांडेय
प्रधान मंत्री

संकेतिका

[उद्धरणों में प्रयुक्त संदर्भग्रंथों के इस विवरण में क्रमशः ग्रंथ का संकेताक्षर, ग्रंथनाम, लेखक या संपादक का नाम और प्रकाशन के विवरण दिए गए हैं ।]

संकेताक्षर	विवरण
अँधेरे०	अँधेरे की भूख, डा० रांगेय राघव, किताब महल, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण
अकबरी०	अकबरी दरबार के हिंदी कवि, डा० सरजूप्रसाद अग्रवाल, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, सं० २००७
अग्नि०	अग्निशस्य, नरेंद्र शर्मा, भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०
अजात०	अजातशत्रु, जयशंकर प्रसाद, १६वाँ सं०
अणिमा	अणिमा, पं० सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', युग मंदिर, उन्नाव
अतिमा	अतिमा, सुमित्रानंदन पंत, भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०
अनामिका	अनामिका, पं० सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', प्र० सं०
अनुराग०	अनुरागसागर, संपा० स्वामी युगलानंद बिहारी, वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, प्र० सं०
अनेक (शब्द०)	अनेकार्थ नाममाला (शब्दसागर)
अनेकार्थ०	अनेकार्थमंजरी और नाममाला, संपा० बलभद्रप्रसाद मिश्र, युनिवर्सिटी आफ इलाहाबाद स्टडीज, प्र० सं०
अपरा	अपरा, पं० सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग
अपलक	अपलक, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', राजकमल प्रकाशन, प्र० सं०, १९५३ ई०
अभिशप्त	अभिशप्त, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, १९४४ ई०
अतीत०	अतीत स्मृति, महावीरप्रसाद द्विवेदी, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, १९३० ई०
अमृतसागर (शब्द०)	अमृतसागर
अयोध्या (शब्द०)	अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'
अरस्तू०	अरस्तू का काव्यशास्त्र, डा० नगेंद्र, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०, २०१४ वि०
अर्चना	अर्चना, पं० सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', कलामंदिर, इलाहाबाद
अर्थ०	अर्थशास्त्र, कौटिल्य, [५ खंड] संपा० आर० शामशास्त्री, गवर्नमेंट ब्रांच प्रेस, मैसूर, प्र० सं०, १९१९ ई०
अर्ध०	अर्धकथानक, संपा० नाथूराम प्रेमी, हिंदी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, बंबई, प्र० सं०
अष्टांग (शब्द०)	अष्टांगयोगसंहिता
आँधी	आँधी, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, इलाहाबाद, पंचम सं०
आकाश०	आकाशदीप, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, इलाहाबाद, पंचम सं०
आचार्य०	आचार्य रामचंद्र शुक्ल, चंद्रशेखर शुक्ल, वाणी वितान, वाराणसी, प्र० सं०
आत्रेय अनुक्रमणिका (शब्द०)	आत्रेय अनुक्रमणिका
आदि०	आदिभारत, अर्जुन चौबे काश्यप, वाणी विहार, बनारस, प्र० सं० १९५३ ई०
आधुनिक०	आधुनिक कविता की भाषा
आनंदघन (शब्द०)	कवि आनंदघन
आराधना	आराधना, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', साहित्यकार संसद्, इलाहाबाद, प्र० सं०
आर्द्रा	आर्द्रा, सियारामशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी, प्र० सं०, १९८४ वि०
आर्य भा०	आर्यकालीन भारत
आर्यों०	आर्यों का आदिदेश, संपूर्णानंद, भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, १९९७ वि०, प्र० सं०
इंद्र०	इंद्रजाल, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०
इंद्रा०	इंद्रावती, संपा० श्यामसुंदरदास, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
इंशा०	इंशा, उनका काव्य तथा रानी केतकी की कहानी, संपा०, ब्रजरत्नदास, कमलमणि ग्रंथमाला, बुलानाला, काशी, प्र० सं०
इतिहास	हिंदी साहित्य का इतिहास, पं० रामचंद्र शुक्ल, ना० प्र० सभा, वाराणसी, नवाँ सं०
इत्यलम्	इत्यलम्, 'अज्ञेय,' प्रतीक प्रकाशन केंद्र, दिल्ली
इरा०	इरावती, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, इलाहाबाद, चतुर्थ सं०
उत्तर०	उत्तररामचरित नाटक, अनु० पं० सत्यनारायण कविरत्न, रत्नाश्रम, आगरा, पंचम सं०
एकांत०	एकांतवासी योगी, अनु० श्रीधर पाठक, इंडियन प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०, १८८६ वि०

कंकाल	कंकाल, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, सप्तम सं०
कठ० उप० (शब्द०)	कठवल्ली उपनिषद्
कढ़ी०	कढ़ी में कोयला, पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र', गऊघाट मिर्जापुर, प्र० सं०
कबीर ग्रं०	कबीर ग्रंथावली, संपा० श्यामसुंदरदास, ना० प्र० सभा, काशी
कबीर० बानी	कबीर साहब की बानी
कबीर बीजक	कबीर बीजक, कबीर ग्रंथ प्रकाशन समिति, बाराबंकी, २००७ वि०
कबीर बी०	कबीर बीजक, संपा० हंसदास, कबीर ग्रंथ प्रकाशन समिति, बाराबंकी २००७ वि०
कबीर मं०	कबीर मंसूर [२ भाग], वेंकटेश्वर स्टीम प्रिंटिंग प्रेस, बंबई, सन् १९०३ ई०
कबीर० रे०	कबीर साहब की ज्ञानगुदड़ी व रेख्ते, बेलवेडियर स्टीम प्रिंटिंग प्रेस, इलाहाबाद
कबीर० श०	कबीर साहब की शब्दावली [४ भाग] बेलवेडियर स्टीम प्रिंटिंग वर्क्स, इलाहाबाद, सन् १९०८
कबीर (शब्द०)	कबीरदास
कबीर सा०	कबीर सागर [४ भा०], संपा० स्वा० श्री युगलानंद बिहारी, वेंकटेश्वर स्टीम प्रिंटिंग प्रेस, बंबई
कबीर सा० सं०	कबीर साखी संग्रह, बेलवेडियर स्टीम प्रिंटिंग प्रेस, इलाहाबाद, १९११ ई०
कमलापति (शब्द०)	कवि कमलापति
करुणा०	करुणालय, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, तृ० सं०
कर्ण०	सेनापति कर्ण, लक्ष्मीनारायण मिश्र, किताब महल, इलाहाबाद, प्र० सं०
कविंद (शब्द०)	कविंद कवि
कविता कौ०	कविता कौमुदी [१–४ भा०], संपा० रामनरेश त्रिपाठी, हिंदी मंदिर, प्रयाग, तृ० सं०
कवित्त०	कवित्तरत्नाकर, संपा० उमाशंकर शुक्ल, हिंदी परिषद्, विश्वविद्यालय, प्रयाग
कानन०	काननकुसुम, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, पंचम सं०
कामायनी	कामायनी, जयशंकर प्रसाद, नवम सं०
काया०	कायाकल्प, प्रेमचंद, सरस्वती प्रेस, बनारस, ६वाँ सं०
काले०	काले कारनामे, 'निराला,' कल्याण साहित्य मंदिर, प्रयाग, २००७ वि०
काव्य० निबंध	काव्य और कला तथा अन्य निबंध, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद चतुर्थ सं०
काव्य० य० प्र०	काव्य, यथार्थ और प्रगति, डा० रांगेय राघव, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, प्र० सं०, २०१२ वि०
काश्मीर०	काश्मीर सुषमा, श्रीधर पाठक, इंडियन प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०
किन्नर०	किन्नर देश में, राहुल सांकृत्यायन, इंडिया पब्लिशर्स, प्रयाग, प्र० सं०
किशोर (शब्द०)	किशोर कवि
कीर्ति०	कीर्तिलता, सं० बाबूराम सक्सेना, ना० प्र० सभा, वाराणसी, तृ० सं०
कुकुर०	कुकुरमुत्ता, 'निराला', युगमंदिर, उन्नाव
कुणाल	कुणाल, सोहनलाल द्विवेदी
कृषि०	कृषिशास्त्र
केशव (शब्द०)	केशवदास
केशव ग्रं०	केशव ग्रंथावली, संपा० पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० सं०
केशव० अमी०	केशवदास की अमीघूंट
कोई कवि (शब्द०)	अज्ञातनाम कोई कवि
कुलार्णव तंत्र (शब्द०)	कुलार्णव तंत्र
कौटिल्य अ०	कौटिल्य का अर्थशास्त्र
क्वासि	क्वासि, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', राजकमल प्रकाशन, बंबई, १९५३ ई०
खानखाना (शब्द०)	अब्दुर्रहीम खानखाना
खालिक०	खालिकबारी, संपा० श्रीराम शर्मा, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०, २०२१ वि०
खिलौना	खिलौना (मासिक)
खुदाराम	खुदाराम और चंद हसीनों के खतूत, पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र', गऊघाट, मिर्जापुर, आठवाँ सं०
खेती की पहली पुस्तक (शब्द०)	खेती की पहली पुस्तक
गंग ग्रं०	गंग कवित्त [ग्रंथावली], संपा० बटेकृष्ण, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
गदाधर०	श्रीगदाधर भट्ट जी की बानी
गबन	गबन, प्रेमचंद, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, २६वाँ सं०
गालिब०	गालिब की कविता, सं० कृष्णदेवप्रसाद गौड़, वाराणसी, प्र० सं०
गि० दा०, गि० दास (शब्द०)	गिरिधरदास (बा० गोपालचंद्र)
गिरिधर (शब्द०)	गिरिधर राय (कुंडलियावाले)
गीतिका	गीतिका, 'निराला', भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०
गुंजन	गुंजन, सुमित्रानंदन पंत, भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०
गुंधर (शब्द०)	गुंधर कवि
गुमान (शब्द०)	गुमान मिश्र
गुलाब (शब्द०)	कवि गुलाब
गुलाल०	गुलाल बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९१० ई०
गोदान	गोदान, प्रेमचंद, सरस्वती प्रेस, बनारस, प्र० सं०

संक्षेप	ग्रंथ
गोपाल उपासनी (शब्द०)	गोपाल उपासनी
गोपाल० (शब्द०)	गिरिधर दास (गोपालचंद्र)
गोरख०	गोरखबानी, सं० डा० पीतांबरदत्त बड़थ्वाल, हिंदी साहित्य संमेलन, प्रयाग, द्वि० सं०
ग्राम०	ग्राम साहित्य, संपा० रामनरेश त्रिपाठी, हिंदी मंदिर, प्रयाग, प्र० सं०
ग्राम्या	ग्राम्या, सुमित्रानंदन पंत, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०
घट०	घट रामायण [२ भाग], सतगुरु तुलसी साहिब, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, तृ० सं०
घनानंद	घनानंद, संपा० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, प्रसाद परिषद्, वाणीवितान, ब्रह्मनाल, वाराणसी
घाघ०	घाघ और भड्डरी, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद
घासीराम (शब्द०)	घासीराम कवि
चंद	चंद हसीनों के खतूत, 'उग्र', हिंदी पुस्तक एजेंसी, कलकत्ता, प्र० सं०
चंद्र०	चंद्रगुप्त, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, प्रयाग, नवाँ सं०
चक्र०	चक्रवाल, रामधारी सिंह 'दिनकर', उदयाचल, पटना, प्र० सं०
चरण (शब्द०)	चरणदास
चरणचंद्रिका (शब्द०)	चरणचंद्रिका
चरण० बानी	चरणदास की बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०
चाँदनी०	चाँदनी रात और अजगर, उपेंद्रनाथ 'अश्क', नीलाभ प्रकाशन गृह, प्रयाग प्र० सं०
चाणक्य नीति (शब्द०)	चाणक्य नीति
चिता	चिता, अज्ञेय, सरस्वती प्रेस, प्र० सं०, सन् १९४० ई०
चिंतामणि	चिंतामणि [२ भाग], रामचंद्र शुक्ल, इंडियन प्रेस, लि०, प्रयाग
चिंतामणि (शब्द०)	कवि चिंतामणि त्रिपाठी
चित्रा०	चित्रावली, सं० जगन्मोहन वर्मा, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
चुभते०	चुभते चौपदे, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध,' खड्गविलास प्रेस, पटना, प्र० सं०
चोखे०	चोखे चौपदे, ,, ,, ,,
चोटी०	चोटी की पकड़, 'निराला,' किताब महल, इलाहाबाद, प्र० सं०
छंद०	छंद प्रभाकर, भानु कवि, भारतजीवन प्रेस, काशी, प्र० सं०
छत्र०	छत्रप्रकाश, सं० विलियम प्राइस, एजुकेशन प्रेस, कलकत्ता, १८२९ ई०
छिताई०	छिताई वार्ता, संपा० माताप्रसाद गुप्त, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
छीत०	छीत स्वामी, संपा० ब्रजभूषण शर्मा, विद्या विभाग, अष्टछाप स्मारक समिति, काँकरोली, प्र० सं०, संवत् २०१२
जग० बानी	जगजीवन साहब की बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९०६, प्र० सं०
जग० श०	जगजीवन साहब की शब्दावली
जनानी०	जनानी ड्योढ़ी, अनु० यशपाल, अशोक प्रकाशन, लखनऊ
जय० प्र०	जयशंकर प्रसाद, नंददुलारे वाजपेयी, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०, १९९५ वि०
जयसिंह (शब्द०)	जयसिंह कवि
जायसी ग्रं०	जायसी ग्रंथावली, संपा० रामचंद्र शुक्ल, ना० प्र० सभा, द्वि० सं०
जायसी ग्रं० (गुप्त)	जायसी ग्रंथावली, संपा० माताप्रसाद गुप्त, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९५१ ई०
जायसी (शब्द०)	मलिक मुहम्मद जायसी
जिप्सी	जिप्सी, इलाचंद्र जोशी, सेंट्रल बुक डिपो, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९५२ ई०
जुगलेश (शब्द०)	जुगलेश कवि
ज्ञानदान	ज्ञानदान, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ १९४२ ई०
ज्ञानरत्न	ज्ञानरत्न, दरिया साहब, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद
झरना	झरना, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, सातवा सं०
झाँसी०	झाँसी की रानी, वृंदावनलाल वर्मा, मयूर प्रकाशन, झाँसी, द्वि० सं०
टैगोर०	टैगोर का साहित्यदर्शन, अनु० राधेश्याम पुरोहित, साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, प्र० सं०
ठंडा०	ठंडा लोहा, धर्मवीर भारती, साहित्य भवन लि०, प्रयाग, प्र० सं०, १९५२ ई०
ठाकुर०	ठाकुर शतक, संपा० काशीप्रसाद, भारतजीवन प्रेस, काशी, प्र० सं०, संवत् १९६१
ठेठ०	ठेठ हिंदी का ठाठ, अयोध्यासिंह उपाध्याय, खड्गविलास प्रेस, पटना, प्र० सं०
ढोला०	ढोला मारू रा दूहा, संपा० रामसिंह, ना० प्र० सभा, काशी, द्वि० सं०
तितली	तितली, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, प्रयाग, सातवाँ सं०
तुलसी	तुलसीदास, 'निराला', भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, चतुर्थ सं०

तुलसी ग्रं०	तुलसी ग्रंथावली, संपा० रामचंद्र शुक्ल, ना० प्र० सभा, काशी, तृतीय सं०
तुरसी श०, तुलसी श०	तुलसी साहब की शब्दावली (हाथरसवाले) बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९०९,१९११
तेग० (शब्द०)	तेगबहादुर
तेज०	तेजबिंदूपनिषद्
तोष (शब्द०)	कवि तोष
त्याग०	त्यागपत्र, जैनेंद्रकुमार, हिंदी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, बंबई, प्र० सं०
द० सागर	दरिया सागर, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९१० ई०
दक्खिनी०	दक्खिनी का गद्य और पद्य, संपा० श्रीराम शर्मा, हिंदी प्रचार सभा, हैदराबाद, प्र० सं०
दयानिधि (शब्द०)	दयानिधि कवि
दरिया० बानी	दरिया साहब की बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, द्वि० सं०
दश०	दशरूपक, संपा० डा० भोलाशंकर व्यास, चौखंभा विद्याभवन, वाराणसी, प्र० सं०
दशम० (शब्द०)	भाषा दशम स्कंध
दहकते०	दहकते अंगारे, नरोत्तमप्रसाद नागर, अभ्युदय कार्यालय, इलाहाबाद
दादू०	श्री दादूदयाल की बानी, सं० सुधाकर द्विवेदी, ना० प्र० सभा, वाराणसी
दादूदयाल ग्रं०	दादूदयाल ग्रंथावली
दादू० (शब्द०)	दादूदयाल
दिनेश (शब्द०)	कवि दिनेश
दिल्ली	दिल्ली, रामधारी सिंह 'दिनकर,' उदयाचल, पटना, प्र० सं०
दिव्या	दिव्या, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, १९४५ ई०
दीन० ग्रं०	दीनदयाल गिरि ग्रंथावली, संपा० श्याम-सुंदरदास, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
दीनदयालु (शब्द०)	कवि दीनदयालु गिरि
दीप०	दीपशिखा, महादेवी वर्मा, किताबिस्तान, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९४२ ई०
दी० ज०, दीप ज०	दीप जलेगा, उपेंद्रनाथ 'अश्क,' नीलाभ प्रकाशन गृह, प्रयाग
दूलह (शब्द०)	कवि दूलह
देव० ग्रं०	देव ग्रंथावली, ना० प्र० सभा, काशी, प्र०सं०
देव (शब्द०)	देव कवि (मैनपुरीवाले)
देशी०	देशी नाममाला
दैनिकी	दैनिकी, सियारामशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी, प्र० सं०, १९९९ वि०
दो सौ बावन०	दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता [दो भाग], शुद्धाद्वैत एकेडमी, काँकरौली, प्रथम सं०

द्वंद्व०	द्वंद्वगीत, रामधारी सिंह 'दिनकर,' पुस्तक भंडार, लहेरियासराय, पटना, प्र० सं०
द्वि० अभि० ग्रं०	द्विवेदी अभिनंदन ग्रंथ, ना० प्र० सभा, वाराणसी
द्विवेदी (शब्द०)	महावीरप्रसाद द्विवेदी
धरनी० बा०	धरनी साहब की बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९११ ई०
धरम० शब्दा०, धरम०	धरमदास की शब्दावली
धूप०	धूप और धुआँ, रामधारीसिंह 'दिनकर,' अजंता प्रेस, लि०, पटना ४
नंद० ग्रं०, नंददास ग्रं०	नंददास ग्रंथावली, संपा० ब्रजरत्नदास, ना०प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
नई०	नई पौध, नागार्जुन, किताब महल, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९५३
नट०	नटनागर विनोद, संपा० कृष्णबिहारी मिश्र, इंडियन प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०
नदी०	नदी के द्वीप, 'अज्ञेय,' प्रगति प्रकाशन, दिल्ली, प्र० सं०, १९५१ ई०
नया०	नया साहित्य : नए प्रश्न, नंददुलारे वाजपेयी, विद्यामंदिर, वाराणसी, २०११ वि०
नरेश (शब्द०)	'नरेश' कवि
नागयज्ञ	जनमेजय का नागयज्ञ, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, प्रयाग, सप्तम सं०
नागरी (शब्द०)	नागरीदास कवि।
नाथ (शब्द०)	नाथ कवि
नाथसिद्ध०	नाथसिद्धों की बानियाँ, ना० प्र० सभा, वाराणसी प्र० सं०
नारायणदास (शब्द०)	नारायणदास
निबंधमालादर्श (शब्द०)	निबंधमालादर्श (म० प्र० द्विवेदी)
नील०	नीलकुसुम, रामधारीसिंह 'दिनकर', उदयाचल, पटना, प्र० सं०
नेपाल०	नेपाल का इतिहास, पं० बलदेवप्रसाद, वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, १९६१ वि०
पंचवटी	पंचवटी, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी, प्र० सं०
पजनेस०	पजनेस प्रकाश, संपा० रामकृष्ण वर्मा, भारत जीवन यंत्रालय, काशी, प्र० सं०
पदमावत	पदमावत, सं० वासुदेवशरण अग्रवाल, साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी, प्र० सं०
पदु०, पदुमा०	पदुमावती, संपा० सूर्यकांत शास्त्री, पंजाब विश्वविद्यालय, लाहौर, १९३४ ई०
पद्माकर ग्रं०	पद्माकर ग्रंथावली, संपा० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
पद्माकर (शब्द०)	पद्माकर भट्ट

प० रा०, प० रासो	परमाल रासो, संपा० श्यामसुंदरदास, ना०प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
परमानंद०	परमानंदसागर
परमेश (शब्द०)	परमेश कवि
परिमल	परिमल, 'निराला', गंगा ग्रंथागार, लखनऊ, प्र० सं०
पर्दे०	पर्दे की रानी, इलाचंद्र जोशी, भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९९९ वि०
पलटू०	पलटू साहब की बानी [१-३ भाग], बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९०७ ई०
पल्लव	पल्लव, सुमित्रानंदन पंत, इंडियन प्रेस लि०, प्रयाग, प्र० सं०
पाणिनि०	पाणिनिकालीन भारतवर्ष, वासुदेवशरण अग्रवाल, मोतीलाल बनारसीदास, प्र० सं०
पारिजात०	पारिजातहरण
पार्वती	पार्वती, रामानंद तिवारी शास्त्री, भारतीनंदन, मंगलभवन, नयापुरा, कोटा (राजस्थान), प्र० सं०, १९५५ ई०
पा० सा० सि०	पाश्चात्य साहित्यालोचन के सिद्धांत, लीलाधर गुप्त, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९५२ ई०
पिंजरे०	पिंजरे की उड़ान, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, १९४६ ई०
पू० म० भा०	पूर्वमध्यकालीन भारत, वासुदेव उपाध्याय भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०, २००९ वि०
पृ० रा०	पृथ्वीराज रासो [५ खंड], संपा० मोहनलाल विष्णुलाल पंडया, श्यामसुंदर दास, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
पृ० रा० (उ०)	पृथ्वीराज रासो [४ खंड], सं० कविराज मोहनसिंह, साहित्य संस्थान, राजस्थान विश्व विद्यापीठ, उदयपुर, प्र० सं०
पोद्दार अभि० ग्रं०	पोद्दार अभिनंदन ग्रं०, संपा० वासुदेवशरण अग्रवाल, अखिल भारतीय ब्रज साहित्यमंडल, मथुरा, सं० २०१० वि०
प्रताप ग्रं०	प्रतापनारायण मिश्र ग्रंथावली, संपा० विजयशंकर मल्ल, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
प्रताप (शब्द०)	प्रतापनारायण मिश्र
प्रबंध०	प्रबंधपद्म, 'निराला', गंगा पुस्तकमाला, लखनऊ, प्र० सं०
प्रभावती	प्रभावती, 'निराला,' सरस्वती भंडार, लखनऊ, प्र० सं०
प्राण०	प्राणसंगली, संपा० संत संपूरणसिंह, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०
प्रा० भा० प०	प्राचीन भारतीय परंपरा और इतिहास, डा० रांगेय राघव, आत्माराम ऐंड संस, दिल्ली, प्र० सं०, १०५३ ई०
प्रिय०	प्रियप्रवास, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', हिंदी साहित्य कुटीर, बनारस, षष्ठ सं०
प्रिया० (शब्द०)	प्रियादास
प्रेम०	प्रेमपथिक, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, तृ० सं०
प्रेम० और गोर्की	प्रेमचंद और गोर्की, संपा० शचीरानी गुर्टू, राजकमल प्रकाशन लि०, बंबई, १९५५ ई०
प्रेमघन०	प्रेमघन सर्वस्व, हिंदी साहित्य संमेलन, प्रयाग, प्र० सं०, १९९९ वि०
प्रे० सा० (शब्द०)	प्रेमसागर
प्रेमांजलि	प्रेमांजलि, ठा० गोपालशरण सिंह, इंडियन प्रेस लि०, प्रयाग, १९५३ ई०
फिसाना०	फिसाना ए आजाद [चार भाग], पं० रतननाथ 'सरशार,' नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, चतुर्थ सं०
फूलो०	फूलो का कुर्ता, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, प्र० सं०
बंगाल०	बंगाल का काल, हरिवंश राय 'बच्चन,' भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९४६ ई०
बाँकी० ग्रं०, बाँकीदास ग्रं०	बाँकीदास ग्रंथावली [तीन भाग], संपा० रामनारायण दूगड़, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
बंदन०	बंदनवार, देवेंद्र सत्यार्थी, प्रगति प्रकाशन, दिल्ली, १९४९ ई०
बद०	बदमाश दर्पण, तेगअली, भारतजीवन प्रेस, बनारस, प्र० सं०
बलबीर (शब्द०)	बलबीर कवि
बाँगेदरा	बाँगेदरा
बिल्ले०	बिल्लेसुर बकरिहा, निराला, युगमंदिर, उन्नाव, प्र० सं०
बिहारी र०	बिहारी रत्नाकर, संपा० जगन्नाथदास 'रत्नाकर', गंगा ग्रंथागार, लखनऊ, प्र० सं०
बिहारी (शब्द०)	कवि बिहारी
बी० रासो	बीसलदेव रासो, संपा० सत्यजीवन वर्मा, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
बीसल० रास	बीसलदेव रास, संपा० माताप्रसाद गुप्त, प्र० सं०
बी० श० महा०	बीसवीं शताब्दी के महाकाव्य, डा० प्रतिपालसिंह ओरिएंटल बुकडिपो, देहली, प्र० सं०
बुद्ध च०	बुद्धचरित, रामचंद्र शुक्ल, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
बृहत्०	बृहत्संहिता
बृहत्संहिता (शब्द०)	बृहत्संहिता
बेनी (शब्द०)	कवि बेनी प्रवीन
बेला	बेला, 'निराला,' हिंदुस्तानी पब्लिकेशंस, इलाहाबाद, प्र० सं०

बेलि०	बेलि किसन रुक्मिणी री, सं० ठाकुर रामसिंह, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९३१ ई०
बोधा (शब्द०)	कवि बोधा
ब्रज०	ब्रजविलास, संपा० श्रीकृष्णदास, लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, तृ० सं०
ब्रज० ग्रं०	ब्रजनिधि ग्रंथावली, संपा० पुरोहित हरिनारायण शर्मा, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
ब्रजमाधुरी०	ब्रजमाधुरी सार, संपा० वियोगी हरि, हिंदी साहित्य संमेलन, प्रयाग, तृ० सं०
भक्तमाल (प्रि०)	भक्तमाल, टीका० प्रियादास, वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, १९५३ वि०
भक्तमाल (श्री०)	भक्तमाल, श्रीभक्तिसुधाबिंदु स्वाद, टीका० सीतारामशरण, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, द्वि सं०, १९८३ वि०
भक्ति०	भक्तिसागरादि, स्वामीचरण, वेंकटेश्र प्रेस, बंबई, संवत् १९६० वि०
भक्ति प०	भक्ति पदार्थ वर्णन, स्वामी चरणदास, वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, संवत् १९६०
भगवतरसिक (शब्द०)	भगवत रसिक
भस्मावृत०	भस्मावृत चिनगारी, यशपाल, विप्लव कार्यालय लखनऊ, १९४६ ई०
भा० इ० रू०	भारतीय इतिहास की रूपरेखा, जयचंद्र विद्यालंकार, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९३३ वि०
भा० प्रा० लि०	भारतीय प्राचीन लिपिमाला, गौरीशंकर हीराचंद ओझा, इतिहास कार्यालय, राजमेवाड़, प्र० सं०, १९५१ वि०
भारत०	भारतभारती, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्यसदन, चिरगाँव, झाँसी, नवम सं० ।
भा० भू०, भारत० नि०	भारत भूमि और उसके निवासी, जयचंद्र विद्यालंकार, रत्नाश्रम, आगरा, द्वि० सं० १९८७ वि०
भारतीय०	भारतीय राज्य और शासनविधान
भारतेंदु ग्रं०	भारतेंदु ग्रंथावली [४ भाग], संपा० ब्रजरत्नदास, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
भा० शिक्षा	भारतीय शिक्षा, राजेंद्रप्रसाद, आत्माराम एंड संस, दिल्ली, १९५३ ई०
भाषा शि०	भाषा शिक्षण, पं० सीताराम चतुर्वेदी
भिखारी ग्रं०	भिखारीदास ग्रंथावली [दो भाग], संपा० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, ना० प्र० सभा, काशी
भीखा श०,	भीखा शब्दावली प्र० सं०
भुवनेश (शब्द०)	भुवनेश कवि
भूषण ग्रं०	भूषण ग्रंथावली, संपा० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, साहित्य सेवक कार्यालय, काशी, प्र० सं०
भूषण (शब्द०)	कवि भूषण त्रिपाठी
भोज० भा० सा०	भोजपुरी भाषा और साहित्य, डा० उदयनारायण तिवारी, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, प्र०सं०
मति० ग्रं०	मतिराम ग्रंथावली, संपा० कृष्णबिहारी मिश्र, गंगा पुस्तकमाला, लखनऊ, द्वि० सं०
मतिराम (शब्द०)	कवि मतिराम त्रिपाठी
मधु०	मधुकलश, हरिवंशराय 'बच्चन,' सुषमा निकुंज, इलाहाबाद, द्वि० सं०, १९३९ ई०
मधुज्वाल	मधुज्वाल, सुमित्रानंदन पंत, भारती भंडार, इलाहाबाद, द्वि० सं०, १९३९ ई०
मधु मा०	मधुमालती वार्ता, संपा० माताप्रसाद गुप्त, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
मधुशाला	मधुशाला, हरिवंश राय 'बच्चन,' सुषमा निकुंज, इलाहाबाद, प्र० सं०
मनविरक्त०	मनविरक्तकरन गुटका सार (चरणदास)
मनु०	मनुस्मृति
मन्नालाल (शब्द०)	कवि मन्नालाल
मलूक० बानी	मलूकदास की बानी, बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग
मलूक० (शब्द०)	मलूकदास
महा०	महाराणा का महत्व, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, इलाहाबाद, चतुर्थ सं०
महावीर प्रसाद (शब्द०)	पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी
महाभारत (शब्द०)	महाभारत
महाराणा प्रताप (शब्द०)	महाराणा प्रताप
माधव०	माधवनिदान, लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, चतुर्थ सं०
माधवानल०	माधवानल कामकंदला, बोधा कवि, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, प्र० सं०, १८९१ ई०
मान०	मानसरोवर, प्रेमचंद, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद
मानव	मानव, कवितासंकलन, भगवतीचरण वर्मा
मानव०	मानवसमाज, राहुल सांकृत्यायन, किताब महल, इलाहाबाद, द्वि० सं०
मानस	रामचरितमानस, संपा० शंभुनारायण चौबे, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
मिट्टी०	मिट्टी और फूल, नरेंद्र शर्मा, भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९९९ वि०
मिलन०	मिलनयामिनी, हरिवंश राय 'बच्चन,' भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, प्र० सं०, १९५० ई०
मुंशी अभि० ग्रं०	मुंशी अभिनंदन ग्रंथ, संपा० डा० विश्वनाथप्रसाद, हिंदी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ, आगरा विश्वविद्यालय, आगरा
मुबारक (शब्द०)	मुबारक कवि
मृग०	मृगनयनी, वृंदावनलाल वर्मा, मयूर प्रकाशन, झाँसी
मैला०	मैला आँचल, फणीश्वरनाथ 'रेणु,' समता प्रकाशन, पटना—४, प्र० सं०

मोहन०	मोहनविनोद, सं० कृष्णबिहारी मिश्र, इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस, प्र० सं०
यशो०	यशोधरा, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगांव, झाँसी, प्र० सं०
यामा	यामा, महादेवी वर्मा, किताबिस्तान, प्रयाग, प्र० सं०
युग०	युगवाणी, सुमित्रानंदन पंत, भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०
युगपथ	युगपथ ,, ,, ,,
युगांत	युगांत, सुमित्रानंदन पंत, इंद्र प्रिंटिंग प्रेस, अल्मोड़ा, प्र० सं०
योग०	योगवाशिष्ठ (वैराग्य मुमुक्षु प्रकरण), गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास, लक्ष्मी वेंकटेश्वर छापाखाना, कल्याण, बंबई सं० १९६७ वि०
रंगभूमि	रंगभूमि, प्रेमचंद, गंगा ग्रंथागार, लखनऊ प्र० सं०, १९८१ वि०
रघु० रू०	रघुनाथ रूपक गीतांरो, संपा० महताबचंद्र खारैड़, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
रघु० दा० (शब्द०)	रघुनाथदास
रघुनाथ (शब्द०)	रघुनाथ
रघुराज (शब्द०)	महाराज रघुराजसिंह, रीवाँनरेश
रजत०	रजतशिखर, सुमित्रानंदन पंत, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, २००८ वि०
रज्जब०	रज्जब जी की बानी, ज्ञानसागर प्रेस, बंबई, १९७५ वि०
रतन०	रतनहजारा, संपा० श्री जगन्नाथप्रसाद श्रीवास्तव, भारतजीवन प्रेस, काशी, प्र० सं०, १९८२ ई०
रति०	रतिनाथ की चाची, नागार्जुन, किताब महल, इलाहाबाद, द्वि० सं०, १९५३ ई०
रत्न० (शब्द०)	रत्नसार
रत्नपरीक्षा (शब्द०)	रत्नपरीक्षा
रत्नाकर	रत्नाकर [दो भाग], ना० प्र० सभा, काशी, चतुर्थ और द्वि० सं०
रस०	रसमीमांसा, संपा० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, ना० प्र० सभा, काशी, द्वि० सं०
रस क०	रसकलश, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध,' हिंदी साहित्य कुटीर, बनारस, तृतीय सं०
रसखान०	रसखान और घनानंद, संपा० अमीरसिंह, ना० प्र० सभा, द्वि० सं०
रसखान (शब्द०)	सैयद इब्राहिम रसखान
रस र०, रसरतन	रसरतन, संपा० शिवप्रसाद सिंह, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
रसनिधि (शब्द०)	राजा पृथ्वीसिंह
रहीम०	रहीम रत्नावली
रहीम (शब्द०)	अब्दुर्रहीम खानखाना
राज० इति०	राजपूताने का इतिहास, गौरीशंकर हीराचंद ओझा, अजमेर, १९६७ वि०, प्र० सं०
रा० रू०	राजरूपक, संपा० पं० रामकर्ण, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
रा० वि०	राजविलास, संपा० मोतीलाल मेनारिया, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
राज्यश्री	राज्यश्री, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, सातवाँ सं०
रामकवि (शब्द०)	राम कवि
राम० चं०	संक्षिप्त रामचंद्रिका, संपा० लाला भगवानदीन, ना० प्र० सभा, वाराणसी, षष्ठ सं०
राम० धर्म०	रामस्नेह धर्मप्रकाश, संपा० मालचंद्र जी शर्मा, चौकसराम जी (सिंहथल), बड़ा रामद्वारा, बीकानेर ।
राम० धर्म० सं०	रामस्नेह धर्म संग्रह, संपा० मालचंद्र जी शर्मा, चौकसराम जी (सिंहथल), बड़ा रामद्वारा, बीकानेर ।
रामरसिका०	रामरसिकावली [भक्तमाल]
रामानंद०	रामानंद की हिंदी रचनाएँ, संपा० पीतांबरदत्त बड़थ्वाल, ना० प्र० सभा, प्र० सं०
रामाश्व०	रामाश्वमेध, ग्रंथकार, मन्नालाल द्विज, त्रिपुरा भैरवी, वाराणसी, १९३९ वि०
रेणुका	रेणुका, रामधारी सिंह 'दिनकर,' पुस्तक भंडार, लहेरिया सराय. पटना, प्र० सं०
रै० बानी	रैदास बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद
लक्ष्मणसिंह (शब्द०)	राजा लक्ष्मणसिंह
लल्लु (शब्द०)	लल्लुलाल
लहर	लहर, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, इलाहाबाद, पंचम सं०
लाल (शब्द०)	लाल कवि (छत्रप्रकाशवाले)
वर्ण०, वर्णरत्नाकर	वर्णरत्नाकर
विद्यापति	विद्यापति, संपा० खगेंद्रनाथ मित्र, यूनाइटेड प्रेस, लि०, पटना
विनय०	विनयपत्रिका, टीका० पं० रामेश्वर भट्ट, इंडियन प्रेस लि०, प्रयाग, तृ० सं०
विशाख	विशाख, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, प्रयाग, तृ० सं०
विश्राम (शब्द०)	विश्रामसागर
वीणा	वीणा, सुमित्रानंदन पंत, इंडियन प्रेस, लि० प्रयाग, द्वि० सं०
वेनिस (शब्द०)	वेनिस का बाँका
वैशाली०, वै० न०	वैशाली की नगरवधू, चतुरसेन शास्त्री, गौतम बुकडिपो, दिल्ली, प्र० सं०
वो दुनिया	वो दुनिया, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, १९४१ ई०
व्यंग्यार्थ (शब्द०)	व्यंग्यार्थ कौमुदी

व्यास (शब्द०)	अंबिकादत्त व्यास
व्रज (शब्द०)	व्रज (शब्द०)
शं० दि० (शब्द०)	शंकरदिग्विजय
शंकर०	शंकरसर्वस्व, संपा० हरिशंकर शर्मा, गयाप्रसाद एंड संस, आगरा, प्र० सं०
शंभु (शब्द०)	शंभु कवि
शकुं०	शकुंतला, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी
शकुंतला	शकुंतला नाटक, अनु० राजा लक्ष्मणसिंह, हिंदी साहित्य संमेलन, प्रयाग, चतु० सं०
शाहजहाँनामा (शब्द०)	शाहजहाँनामा
शार्ङ्गधर सं०	शार्ङ्गधर संहिता, टी० सीताराम शास्त्री, मुंबई वैभव मुद्रणालय, संवत् १६७१
शिखर०	शिखर वंशोत्पत्ति, संपा० पुरोहित हरिनारायण शर्मा, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०, १६८५
शिवप्रसाद (शब्द०)	राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद
शिवराम (शब्द०)	शिवराम कवि
शुक्ल० अभि० ग्रं०	शुक्ल अभिनंदन ग्रंथ, मध्यप्रदेश हिंदी साहित्य संमेलन
शृं० सत० (शब्द०)	शृंगार सतसई
शृंगार सुधाकर (शब्द०)	शृंगार सुधाकर
शेर०	शेर ओ सुखन, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी
शैली	शैली, करुणापति त्रिपाठी
श्यामा०	श्यामास्वप्न, संपा० डा० कृष्णलाल, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
श्रद्धानंद (शब्द०)	स्वामी श्रद्धानंद
श्रीधर पाठक (शब्द०)	श्रीधर पाठक
श्रीनिवास ग्रं०	श्रीनिवास ग्रंथावली, संपा डा० कृष्णलाल, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
संतति०	चंद्रकांता संतति, देवकीनंदन खत्री, वाराणसी
संत तुरसी०	संत तुरसीदास की शब्दावली, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद।
सं० दरिया, संत दरिया	संत कवि दरिया, सं० धर्मेंद्र ब्रह्मचारी, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, प्र० सं०
संत र०	संत रविदास और उनका काव्य, स्वामी रामानंद शास्त्री, भारतीय रविदास सेवासंघ हरिद्वार, प्र० सं०
संतवाणी०, संत०सार०	संतवाणी सार संग्रह [२ भाग], बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद
संन्यासी,	संन्यासी, इलाचंद्र जोशी, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०
संपूर्णा० अभि० ग्रं०	संपूर्णानंद अभिनंदन ग्रंथ, संपा० आचार्य नरेंद्रदेव, ना० प्र० सभा, वाराणसी
स० दर्शन	समीक्षादर्शन, रामलाल सिंह, इंडियन प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०
सत्य०	कविरत्न सत्यनारायण जी की जीवनी, श्री बनारसीदास चतुर्वेदी, हिंदी साहित्य संमेलन, प्रयाग, द्वि० सं०
सत्यार्थप्रकाश (शब्द०)	सत्यार्थप्रकाश
सबल (शब्द०)	सबलसिंह चौहान [महाभारत]
सभा० वि० (शब्द०)	सभाविलास
स० शास्त्र	समीक्षाशास्त्र, पं० सीताराम चतुर्वेदी, अखिल भारतीय विक्रम परिषद्, काशी, प्र० सं०
स० सप्तक	सतसई सप्तक, संपा० श्यामसुंदरदास, हिंदुस्तानी एकेडमी, प्रयाग, प्र० सं०
सहजो०	सहजो बाई की बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १६०८ वि०
साकेत	साकेत, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्यसदन, चिरगाँव, झाँसी, प्र० सं०
सागरिका	सागरिका, ठा० गोपालशरण सिंह, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०
साम०	सामधेनी, रामधारी सिंह 'दिनकर,' उदयाचल पटना, द्वि० सं०
सा० दर्पण	साहित्यदर्पण, संपा० शालिग्राम शास्त्री, श्री मृत्युंजय औषधालय, लखनऊ, प्र० सं०
सा० लहरी	साहित्यलहरी, संपा० रामलोचनशरण बिहारी, पुस्तक भंडार, लहेरियासराय, पटना
सा० समीक्षा	साहित्य समीक्षा, कालिदास कपूर, इंडियन प्रेस, प्रयाग
साहित्य०	साहित्यालोचन
सुंदर० ग्रं०	सुंदरदास ग्रंथावली [दो भाग], संपा० हरिनारायण शर्मा, राजस्थान रिसर्च सोसायटी, कलकत्ता
सुंदरीसिंदूर (शब्द०)	सुंदरी सिंदूर
सुखदा	सुखदा, जैनेंद्रकुमार, पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली, प्र० सं०
सुधाकर (शब्द०)	महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदी
सुजान०	सुजानचरित (सूदनकृत), संपा० राधाकृष्ण, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, प्र० सं०
सुनीता	सुनीता, जैनेंद्रकुमार, साहित्यमंडल, बाजार सीताराम, दिल्ली, प्र० सं०
सुंदर (शब्द०)	सुंदर कवि
सूत०	सूत की माला, पंत और बच्चन, भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०
सूदन (शब्द०)	सूदन कवि (भरतपुरवाले)
सूर०	सूरसागर [दो भाग], ना० प्र० सभा, द्वितीय सं०
सूर० (शब्द०)	सूरदास
सूर० (राधा०)	सूरसागर संपा० राधाकृष्णदास, वेंकटेश्वर प्रेस, प्र० सं०
सेवक (शब्द०)	'सेवक' कवि
सेवक श्याम (शब्द०)	सेवक श्याम कवि
सेवासदन	सेवासदन, प्रेमचंद, हिंदी पुस्तक एजेंसी, कलकत्ता, द्वि० सं०

सैर कु०	सैर कुहसार, पं० रतननाथ 'सरशार,' नवल-किशोर प्रेस, लखनऊ, च० सं०, १९३४ ई०
सौ अजान० (शब्द०)	सौ अजान और एक सुजान, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'
स्कंद०	स्कंदगुप्त, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०
स्वर्ण०	स्वर्णकिरण, सुमित्रानंदन पंत, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०
स्वामी हरिदास (शब्द०)	स्वामी हरिदास
हंस०	हंसमाला, नरेंद्र शर्मा, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०
हकायके०	हकायके हिंदी, ले० मीर अब्दुल वाहिद, प्र० संपा० 'रुद्र' काशिकेय, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
हनुमान (शब्द०)	हनुमन्नाटक
हनुमान कवि (शब्द०)	हनुमान कवि (शब्द०)
हम्मीर०	हम्मीरहठ, संपा० जगन्नाथदास 'रत्नाकर,' इंडियन प्रेस, लि०, प्रयाग
ह० रासो०	हम्मीर रासो, संपा० डा० श्यामसुंदरदास, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
हरिजन (शब्द०)	कवि हरिजन
हरिदास (शब्द०)	स्वामी हरिदास
हरिश्चंद्र (शब्द०)	भारतेंदु हरिश्चंद्र
हरिसेवक (शब्द०)	हरिसेवक कवि
हरी घास०	हरी घास पर क्षण भर, अज्ञेय, प्रगति प्रकाशन, नई दिल्ली, १९४९ ई०
हर्ष०	हर्षचरित् : एक सांस्कृतिक अध्ययन, वासुदेवशरण अग्रवाल, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना. प्र० सं०, १९५३ ई०
हालाहल	हालाहल, हरिवंशराय बच्चन, भारती भंडार प्रयाग, १९४६ ई०
हिंदी आ०	हिंदी आलोचना
हिं० का० प्र०	हिंदी काव्य पर आंग्ल प्रभाव, रवींद्रसहाय वर्मा, पद्मजा प्रकाशन, कानपुर, प्र० सं०
हिं० क० का०	हिंदी कवि और काव्य, गणेशप्रसाद द्विवेदी हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० सं०
हिंदी प्रदीप (शब्द०)	हिंदी प्रदीप
हिंदी प्रेमगाथा	हिंदी प्रेमगाथा काव्यसंग्रह, गणेशप्रसाद द्विवेदी, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, १९३९ ई०
हिंदी प्रेमा०	हिंदी प्रेमाख्यानक काव्य, डा० कमल कुलश्रेष्ठ, चौधरी मानसिंह प्रकाशन, कचहरी रोड
हिं० प्र० चि०	हिंदी काव्य में प्रकृतिचित्रण, किरणकुमारी गुप्त, हिंदी साहित्य संमेलन, प्रयाग
हिं० सा० भू०	हिंदी साहित्य की भूमिका, हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिंदी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, बंबई, तृ० सं०, १९४८
हिंदु० सभ्यता	हिंदुस्तान की पुरानी सभ्यता, बेनीप्रसाद, हिंदुस्तानी एकेडमी, प्रयाग, प्र० सं०
हिम कि०	हिमकिरीटिनी, माखनलाल चतुर्वेदी, सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, तृ० सं०
हिम त०	हिमतरंगिणी, माखनलाल चतुर्वेदी, भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०
हिम्मत०	हिम्मतबहादुर विरुदावली, लाला भगवानदीन, ना० प्र० सभा, काशी, द्वि० सं०
हिल्लोल	हिल्लोल, शिवमंगल सिंह 'सुमन', सरस्वती प्रेस, बनारस, द्वि० सं०
हुमायूँ	हुमायूँनामा, अनु० ब्रजरत्नदास, ना० प्र० सभा, वाराणसी, द्वि० सं०
हृदय०	हृदयतरंग, सत्यनारायण कविरत्न

[व्याकरण, व्युत्पत्ति आदि के संकेताक्षरों का विवरण]

अं०	अंग्रेजी
अ०	अरबी
अक० रूप	अकर्मक रूप
अनु०	अनुकरण शब्द
अनुध्व०	अनुध्वन्यात्मक
अनु० मू०	अनुकरणार्थमूलक
अनुर०	अनुरणनात्मक रूप
अप०	अपभ्रंश
अर्ध मा०	अर्धमागधी
अल्पा०	अल्पार्थक
अव०	अवधी
अव्य०	अव्यय
इब०	इबरानी
उ०	उदाहरण
उच्चा०	उच्चारण सुविधार्थ
उड़ि०	उड़िया
उप०	उपसर्ग
उभय०	उभयलिंग
एकव०	एकवचन
कहावत	कहावत
काव्यशास्त्र	काव्यशास्त्र
[को०], (को०)	अन्य कोश

कोंक०	कोंकणी
क्रि०	क्रिया
क्रि० अ०	क्रिया अकर्मक
क्रि० प्र०	क्रिया प्रयोग
क्रि० वि०	क्रिया विशेषण
क्रि० स०	क्रिया सकर्मक
क्व०	क्वचित्
गीत	लोकगीत
गुज०	गुजराती
ची०	चीनी भाषा
छं०	छंद
जापा०	जापानी
जावा०	जावा द्वीप की भाषा
जी०, जीवन०	जीवनचरित्
ज्या०	ज्यामिति
ज्यो०	ज्योतिष
डिं०	डिंगल
त०	तमिल
तर्क०	तर्कशास्त्र
ति०	तिब्बती भाषा
तु०	तुर्की
दू०	दूहा या दूहला
दे०	देखिए
देश०	देशज
देशी	देशी
धर्म०	धर्मशास्त्र
नाम०	नामधातु
ना० धा०	नामधातुज क्रिया
नामिक धातु	नामिक धातु
ने०	नेपाली
न्याय०	न्याय या तर्कशास्त्र
पं०	पंजाबी
परि०	परिशिष्ट
पा०	पाली
पुं०	पुंलिंग
पुर्त०	पुर्तगाली
पु० हिं०	पुरानी हिंदी
पू० हिं०	पूर्वी हिंदी
पृ०	पृष्ठ
प्रत्य०	प्रत्यय
प्र०	प्रकाशकीय या प्रस्तावना
प्रा०	प्राकृत
प्रे०	प्रेरणार्थक रूप
फ०	फरांसीसी भाषा
फकीर०	फकीरों की बोली
फा०	फारसी
बँग०	बँगला भाषा
बरमी०	बरमी भाषा
बहुव०	बहुवचन
बुं० खं०	बुंदेलखंड की बोली
बोल०	बोलचाल
भाव०	भाववाचक संज्ञा
भू०	भूमिका
भू० कृ०	भूत कृदंत
मरा०	मराठी
मल०	मलयाली या मलयालम भाषा
मला०	मलायम भाषा
मि०	मिलाइए
मुसल०	मुसलमानों द्वारा प्रयुक्त
मुहा०	मुहावरा
यू०	यूनानी
यौ०	यौगिक
राज०	राजस्थानी
लश०	लशकरी
ला०	लाक्षणिक
लै०	लैटिन
व० कृ०	वर्तमान कृदंत
वि०	विशेषण
वि० द्वि० मू०	विषमद्विरुक्तिमूलक
वै०	वैदिक
व्या०	व्याकरण
(शब्द०)	शब्दसागर
सं०	संस्कृत
संयो०	संयोजक अव्यय
संयो० क्रि०	संयोजक क्रिया
स०	सकर्मक
सक० रूप	सकर्मक रूप
सधु०	सधुक्कड़ी भाषा
सर्व०	सर्वनाम
स्पे०	स्पेनी भाषा
स्त्रि०	स्त्रियों द्वारा प्रयुक्त
स्त्री०	स्त्रीलिंग
हिं०	हिंदी
(पु)	काव्यप्रयोग, पुरानी हिंदी
>	व्युत्पन्न
†	प्रांतीय प्रयोग
‡	ग्राम्य प्रयोग
√	धातुचिह्न
*	संभाव्य व्युत्पत्ति
?	अनिश्चित व्युत्पत्ति

हिंदी शब्दसागर

ज

ज—हिंदी वर्णमाला में चवर्ग के अंतर्गत एक व्यंजन वर्ण। यह स्पर्श वर्ण है और चवर्ग का तीसरा अक्षर है। इसका बाह्य प्रयत्न संवार और नाद घोष है। यह अल्पप्राण माना जाता है। 'झ' इस वर्ण का महाप्राण है। 'च' के समान ही इसका उच्चारण तालु से होता है।

जंकशन—संज्ञा पुं० [अं०] १. वह स्थान जहाँ दो या अधिक रेलवे लाइनें मिली हों। जैसे,—मुगलसराय जंकशन। २. वह स्थान जहाँ दो रास्ते मिले हों। संगम। जैसे,—कालेज स्ट्रीट और हैरिसन रोड के जंकशन पर गहरा दंगा हो गया।

जंग[1]—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०, सं० जङ्ग] [वि० जंगी] लड़ाई। युद्ध। समर। उ०—असदखान करि हुल्ल जंग दुहुँ ओर मचाइय। सनमुख अरि हट्टि सुभट बहु कट्टि हटाइय।—सूदन (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।—मचना।—मचाना।—होना।

यौ०—जंगआवर। जंगजू।

जंग[2]—संज्ञा स्त्री० [अं० जंक] एक प्रकार की बड़ी नाव जो बहुत चौड़ी होती है।

क्रि० प्र०—खोलना।

जंग[3]—संज्ञा पुं० [फ़ा० ज़ंग] १. लोहे का मुरचा। धातुजन्य मैल।

क्रि० प्र०—लगना।

२. घंटा। घड़ियाल (को०)। ३. हबशियों का देश (को०)।

जंगआवर—वि० [फ़ा०] लड़नेवाला योद्धा। लड़ाका।

जंगजू—वि० [फ़ा०] लड़ाका। वीर। योद्धा। उ०—और सुना है प्रताप बड़े जोश के साथ फौज मुहय्या कर रहा है और जंगजू राजपूत व भील बराबर आते जाते हैं।—महाराणा प्रताप (शब्द०)।

जंगम[1]—वि० [सं० जङ्गम] १. चलने फिरनेवाला। चलता फिरता। चर। उ०—पुष्पराशि समान उसकी देख पावन कांति। भूप को होने लगी जंगम लता की भ्रांति।—शकुं०, पृ० ७। २. जो एक स्थल से दूसरे स्थल पर लाया जा सके। जैसे, जंगम संपत्ति, जंगम विष। ३. गमनशील प्राणी से उत्पन्न या प्राणिजन्य।

जंगम[2]—संज्ञा पुं० दाक्षिणात्य लिंगायत शैव संप्रदाय के गुरु।

विशेष—ये दो प्रकार के होते हैं—विरक्त और गृहस्थ। विरक्त सिर पर जटा रखते हैं और कौपीन पहनते हैं। इन लोगों का लिंगायतों मे बड़ा मान है।

३. गमनशील यति। जोगी। उ०—कहँ जंगम सु कौन नर क्यों आगम ह्यां कीन।—पृ० रा०, ६। २२। ४. जाना। गमन। उ०—तिन रिषि पूछिय ताहि, कवन कारन इत अंगम। कवन थान, किहि नाम, कवन दिसि करिब सु जंगम।—पृ० रा०, १। ५६१।

जंगमकुटी—संज्ञा स्त्री० [सं० जङ्गमकुटी] छतरी [को०]।

जंगमगुल्म—संज्ञा पुं० [सं० जङ्गमगुल्म] पैदल सिपाहियों की सेना।

जंगम विष—संज्ञा पुं० [सं० जङ्गमविष] वह विष जो चर प्राणियों के दंश, आघात या विकार आदि से उत्पन्न हो।

विशेष—सुश्रुत ने सोलह प्रकार के जंगम विष माने हैं—दृष्टि, निःश्वास, दंष्ट्रा, नख, मूत्र, पुरीष, शुक्र, लाला, आर्तव, आल (आड़), मुखसंदेश, अस्थि, पित्त, विशर्धित, शूक और शव या मृत देह। उदाहरण के लिये जैसे, दिव्य सर्प के श्वास में विष; साधारण सर्प के दंशन में विष; कुत्ते, बिल्ली, बंदर, गोह आदि के नख और दाँत में विष; बिच्छू, भिड़, सकुची मछली आदि के आड़ में विष होता है।

जंगल—संज्ञा पुं० [सं० जङ्गल] [वि० जंगली] १. जलशून्य भूमि। रेगिस्तान। २. वन। कानन। अरण्य।

मुहा०—जंगल खँगालना = जंगल मँझाना। जंगल की जाँच पड़ताल करना या छानना। जंगल में मंगल = सुनसान स्थान में चहल पहल। जंगल जाना = टट्टी जाना। पाखाने जाना।

३. मांस। ४. एकांत या निर्जन स्थान (को०)। ५. बंजर भूमि। ऊसर (को०)।

जंगल जलेबी—संज्ञा पुं० [हिं० जंगल + जलेबी] १. गू। गलीज। गू का लेंड़। २. बरियारे की जाति का एक पौधा जिसके पीले रंग के फूल के अंदर कुंडलाकार लिपटे हुए बीज होते हैं। जलेबी।

जंगला[1]—संज्ञा पुं० [पुर्त० जेंगिला] १. खिड़की, दरवाजे, बरामदे आदि में लगी हुई लोहे की छड़ों की पंक्ति। कटहरा। बाड़। २. चौखट या खिड़की जिसमें जाली या छड़ लगी हों। जँगला।

क्रि० प्र०—लगाना।

३. दुपट्टे आदि के किनारे पर काढ़ा हुआ बेल बूटा।

जंगला[2]—संज्ञा पुं० [सं० जाङ्गल्य] १. संगीत के बारह मुकामों में से एक। २. एक राग का नाम। ३. एक मछली जो बारह इंच लंबी होती है और बंगाल की नदियों में बहुत मिलती है। ४. अन्न के वे पेड़ या डंठल जिनसे कूटकर अन्न निकाल लिया गया हो।

जंगली—वि० [हिं० जंगल] १. जंगल में मिलने या होनेवाला। जंगल संबंधी। जैसे, जंगली लकड़ी, जंगली कंडा। २. आपसे आप होनेवाला (वनस्पति)। बिना बोए या लगाए उगनेवाला। जैसे, जंगली आम, जंगली कपास। ३. जंगल में रहनेवाला। बनैला। जैसे, जंगली आदमी, जंगली जानवर, जंगली हाथी। ४. जो घरेलू या पालतू न हो। जैसे, जंगली कबूतर। ५. असभ्य। उजड्ड। बिना सलीके का। जैसे, जंगली आदमी।

जंगली बादाम—संज्ञा पुं० [हिं० जंगली+बादाम] १. कतीले की जाति का एक पेड़। पूल। पिनार।

विशेष—यह वृक्ष भारतवर्ष के पश्चिमी घाट के पहाड़ों तथा मर्तबान और टनासरिन के ऊपरी भागों में होता है। इसमें से एक प्रकार का गोंद निकलता है। यह पेड़ फागुन चैत में फूलता है और इसके फूलों से कड़ी दुर्गंध आती है। इसके फलों के बीज को उबालकर तेल निकाला जाता है। इन बीजों को महँगी के दिनों में लोग भूनकर भी खाते हैं। फूल और पत्तियाँ औषध के काम में आती हैं। इसे पून और पिनार भी कहते हैं।

२. हड़ की जाति का एक पेड़।

विशेष—यह अंडमन के टापू तथा भारतवर्ष और बर्मा में भी उत्पन्न होता है। इसकी छाल से एक प्रकार का गोंद निकलता है और इसके बीज से एक प्रकार का बहुमूल्य तेल निकलता है जो गंध और गुण में बादाम के तेल के समान ही होता है। इसकी पत्तियाँ कसैली होती हैं और चमड़ा सिझाने के काम में आती हैं। इसके बीज को लोग गजक की तरह खाते हैं और इसकी खली सुअरों को खिलाई जाती है। इसकी छाल, पत्ती, बीज, तेल आदि सब औषध के काम में आते हैं। लोग इसकी पत्तियाँ रेशम के कीड़ों को भी खिलाते हैं। इसे हिंदी बदाम और नट बदाम भी कहते हैं।

जंगली रेंड़—संज्ञा पुं० [हिं० जंगली+रेंड़] दे० 'बन रेंड'।

जंगा—संज्ञा पुं० [फ़ा० जंगूला] घुँघरू का दाना। बोर।

जंगार—संज्ञा पुं० [फ़ा० जंगार] [वि० जंगारी] १. ताँबे का कसाव। तूतिया। २. एक प्रकार का रंग। उ०—तस्वीर वही अंगरफो जगार में आया।—कबीर मं०, पृ० ३१०।

विशेष—यह ताँबे का कसाव है जिसे सिरकाकश लोग निकालते हैं। वे ताँबे के चूर्ण को सिरके के अर्क में डाल देते हैं। सिरके का बरतन रात भर मुँह बंद करके और दिन को मुँह खोल करके रखा रहता है। चौबीस घंटे के बाद सिरके को उस बरतन से निकालकर छिछले बरतन में सूखने के लिये रख देते हैं। जब पानी सूख जाता है तब उसके नीचे चमकीली नीले रंग की बुकनी निकलती है जो रँगाई के काम में आती है।

जंगारी—वि० [फ़ा० जंगार] नीले रंग का। नीला।

जंगाल[१]—संज्ञा पुं० [फा० जंगार] दे० 'जंगार'। उ०—और जगाल रंग तेहि माई। येहि बिधि पाँचो तत दरसाई।—घट०, पृ० २३८।

जंगाल[२]—संज्ञा पुं० [सं० जङ्गाल] पानी रोकने का बाँध।

जंगाली[१]—वि० [फ़ा० जंगार] दे० 'जंगारी'। उ०—स्याही सुरख सफेदी होई। जरद जाति जंगाली सोई।—घट०, पृ० ६७।

जंगाली[२]—संज्ञा पुं० एक प्रकार का रेशमी कपड़ा जो चमकीले नीले रंग का होता है।

जंगालीपट्टी—संज्ञा स्त्री० [हिं० जंगारी+पट्टी] गंधा बिरोजा की बनी नीले रंग की पट्टी जो फोड़े फुंसियों पर लगाई जाती है।

जंगी[१]—वि० [फ़ा०] १. लड़ाई से संबंध रखनेवाला। जैसे, जंगी जहाज, जंगी कानून। २. फौजी। सैनिक। सेना संबंधी। जैसे, जंगी लाट, जंगी अफसर।

यौ०—जंगी लाट = प्रधान सेनापति।

३. बड़ा। बहुत बड़ा। दीर्घकाय। जैसे, जंगी घोड़ा। ४. वीर। लड़ाका। बहादुर। जैसे, जंगी आदमी। ५. स्वस्थ। पुष्ट। जैसे, जंगी जवान।

जंगी[२]—संज्ञा पुं० [देश०] (कहारों की बोलचाल में) घोड़ा। जैसे,—दाहने जंगी, बचा के।

जंगी[३]—वि० [फ़ा०] जंगबार का। हबश देश का। जैसे, जंगी हड़।

जंगी[४]—संज्ञा सं० जंगबार देश का निवासी। हबशी।

जंगी जहाज—संज्ञा पुं० [फ़ा० जंगी+अ० जहाज] लड़ाई के काम का जहाज। युद्धपोत।

जंगी बेड़ा—संज्ञा पुं० [फ़ा० जंगी+हिं० बेड़ा] लड़ाकू जहाजों का समूह। युद्धपोतों का काफिला।

जंगी हड़—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जंगी+हिं० हड़] काली हड़। छोटी हड़।

जंगुल—संज्ञा पुं० [सं० जंगुल] जहर। विष।

जंगे जरगरी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जंगेजरगरी] केवल दिखावटी या झूठमूठ की लड़ाई। कूटयुद्ध [को०]।

जंगेला—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष जिसे धौरी, मामरी और रूही भी कहते हैं। वि० दे० 'रूही'।

जंगैं—संज्ञा स्त्री० [हिं० जंगी] बड़ी घुँघरू लगी कमरपट्टी जिसे अहीर या धोबी अपने जातीय नाच के समय कमर में बाँधते हैं।

जंगोजदल—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जंगो+अ० जदल] रक्तपात। मारकाट। लड़ाई झगड़ा। उ०—नई हमको हर्गिज है वह बल। ता उससे करें हम जंगोजदल।—दक्खिनी०, पृ० २२२।

जंगोजिदाल—संज्ञा पुं० [फ़ा० जंगो+अ० जिदाल] दे० 'जंगोजदल'।

जंघ[१]—संज्ञा स्त्री० [सं० जङ्घा] दे० 'जंघा'। उ०—जानु जंघ त्रिभंग सुंदर कलित कंचन दंड। काछनी कटि पीत पट दुति, कमल केसर खंड।—सूर०, १। ३०७।

जंघ[२]†—संज्ञा पुं० [सं० जङ्घा] जाँघ में पहनी जानेवाली जाँघिया।

जंघा—संज्ञा स्त्री० [सं० जङ्घा] १. पिंडली। २. जाँघ। रान। उरु। ३. कैंची का दस्ता जिसमें फल और दस्ताने लगे रहते हैं। यह प्रायः कैंची के फलों के साथ ढाला जाता है पर कभी कभी यह पीतल का भी होता है।

जंघाकर, जंघाकार—संज्ञा पुं० [सं० जङ्घाकर, जङ्घाकार] हरकारा। धावक [को०]।

जंघात्राण—संज्ञा पुं० [सं०] युद्ध में जाँघों की रक्षा के काम में उपयोगी कवच [को०]।

जंघापथ—संज्ञा पुं० [सं० जङ्घापथ] पैदल रास्ता [को०]।

जंघाफार—संज्ञा पुं० [हिं० जंघा+फारना] कहारों की बोली में

वह खाई जो पालकी के उठानेवाले कहारों के रास्ते में पड़ती है।

जंघाबंधु—संज्ञा पुं० [सं० जङ्घाबन्धु] एक ऋषि का नाम [को०]।

जंघाबल—संज्ञा पुं० [सं० जङ्घाबल] दौड़ने की शक्ति। जाँघ की ताकत [को०]।

जंघामथानी—संज्ञा स्त्री० [हिं० जंघा + मथानी] छिनाल स्त्री। पुंश्चली। कुलटा।

जंघार—संज्ञा स्त्री० [हिं० जंघा + आर] वह फोड़ा जो जाँघ में हो।

विशेष—यह आकृति में लंबा और कड़ा होता है और बहुत दिनों में पकता है। इसमें अधिक पीड़ा और जलन होती है।

जंघारथ—संज्ञा पुं० [सं० जङ्घारथ] १. एक ऋषि का नाम। २. जंघारथ नामक ऋषि के गोत्र में उत्पन्न पुरुष।

जंघारा—संज्ञा पुं० [देश० अथवा सं० जञ्ज (=लड़ना); या सं० जङ्ग (=युद्ध) + हिं० आर (प्रत्य०)] राजपूतों की एक जाति जो बड़ी झगड़ालू होती है। उ०—तव जंघारो बीर बर स्वामि सु आगे आइ।—पृ० रा०, ६१। २४००।

जंघारि—संज्ञा पुं० [सं० जङ्घारि] विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम।

जंघाल[1]—संज्ञा पुं० [सं० जङ्घाल] १. धावन। धावक। दूत। २. भावप्रकाश के अनुसार मृग की सामान्य जाति।

विशेष—इस जाति के अंतर्गत हरिण, एण, कुरंग, ऋष्य, पृषत, न्यंकु, शंवर, राजीव, मुंडी आदि हैं। तामड़े रंग के हिरन को हरिण, कृष्णवर्ण को एण, कुछ ताम्र वर्ण लिए काले को कुरग, नीलवर्ण को ऋष्य, हरिण से कुछ छोटे चंद्रबिंदुयुक्त को पृषत, बहुत से सींगोंवाले को मृग, न्यंकु इत्यादि कहते हैं।

जंघाल[2]—वि० वेग से दौड़नेवाला [को०]।

जंघिल—वि० [सं० जङ्घिल] शीघ्रगामी। फुर्तीला। प्रजवी। तेजी से दौड़नेवाला [को०]।

जंजपूक—संज्ञा पुं० [सं० जञ्जपूक] मंद स्वर से जप करनेवाला भक्त। उ०—जंजपूक गठरी सो बैठ्यो झुको कमर सन।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० १६।

जजबील—संज्ञा स्त्री० [अ० ज़ंजबील] सोंठ। सूखी अदरक। शुंठि [को०]।

जंजर[1]†(पु)—वि० [सं० जर्जर] दे० 'जंजल'।

जंजर[2](पु)—संज्ञा पुं० [फ़ा० जंजीर] शृंखला। जंजीर। उ०—तबई लगि दिढ़ जंजर जेरी। मोह लोह की पाइनि बेरी।—नंद० ग्रं०, पृ० २७३।

जंजरित(पु)—वि० [हिं० जं (= जनु) + सं० जटित, हिं० जरित] ग्रथित सा। जड़ा हुआ सा। उ०—नयन उदय पुंडरिक प्रसन भमरीय सु राजै। गुंजहार जंजरित तड़ित बहुरि सु बिराजै।—पृ० रा० २। ५१०

जंजल(पु)†—वि० [सं० जर्जर, प्रा० जज्जर] पुराना और कमजोर। बेकाम। जीर्ण शीर्ण।

जंजार(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० जग + जाल] दे० 'जंजाल'। उ०—कहा पढ़ावे बावरे और सकल जंजार।—संत र०, पृ० १४३।

जंजाल(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० जग + जाल] [वि० जंजालिया, जंजाली] १. प्रपंच। झंझट। बखेड़ा। उ०—अस प्रभु दीनबंधु हरि, कारन रहित दयाल। तुलसिदास सठ ताहि भजु छाड़ि कपट जंजाल।—तुलसी (शब्द०)। २. बंधन। फँसाव। उलझन। उ०—(क) आज्ञा लै के चल्यो नृपति वहँ उत्तर दिशा विशाल। करि तप विप्र जनम जब लीन्हों, मिट्यो जन्म जंजाल।—सूर० (शब्द०)। (ख) हृदय की कबहुँ न पीर घटी। दिन दिन हीन छीन भई काया, दुख जंजाल जटी।—सूर० (शब्द०)।

मुहा०—जंजाल तोड़ना = बंधन या फँसाव को दूर करना। उ०—भव जंजाल तोरि तरु बन के पल्लव हृदय बिदार्‌यो।—सूर० (शब्द०)। जंजाल में पड़ना या फँसना = कठिनता में पड़ना। संकट में पड़ना। उलझन में फँसना।

३. पानी का भँवर। ४. एक प्रकार की बड़ी पलीतेदार बंदूक जिसकी नाल बहुत लंबी होती है। यह बहुत भारी होती है और दूर तक मार करती है। उ०—सूरज के सूरज गहि लुट्टिय। तुपक तेग जंजालन छुट्टिय।—सूदन (शब्द०)। ५. एक बड़े मुँह की तोप। इसमें कंकड़ पत्थर आदि भरकर फेंके जाते थे। यह बहुधा किले का धुस तोड़ने के काम में आती थी। ६. बड़ा जाल।

जंजालिया—वि० [हिं० जंजाल + इया (प्रत्य०)] १. जंगजाल या जंजाल रचनेवाला। बखेड़ा करनेवाला। उ०—वाह रे ईश्वर! तेरे सरीखा जंजालिया कोई जालिया भी न निकलेगा।—श्यामा०, पृ० ५। २. झगड़ालू। उपद्रवी। फसादी।

जंजाली[1]—वि० [हिं० जंजाल] झगड़ालू। बखेड़िया। फसादी।

जंजाली[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० जंजाल] वह रस्सी और घिरनी जिससे पाल चढ़ाते या गिराते हैं।

जंजीर—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० ज़ंजीर] [वि० जंजीरी] १. साँकल। सिकड़ी। कड़ियों की लड़ी। जैसे, लोहे की जंजीर। उ०—तुम सु छुड़ावहु मंत कहु, बहुरि जरहु जंजीर।—पृ० रा०, ६। १६२। २. बेड़ी।

मुहा०—जंजीर डालना = पैर में बेड़ी डालना। बाँधना। बंदी करना। पैर में जंजीर पड़ना = (१) जंजीर में जकड़ा जाना। बंदी होना। (२) स्वच्छंदता का अपहरण होना। बाधा या विवशता। उ०—प्रीतम बसत पहार पर, हम जमुना के तीर। अब तो मिलना कठिन है, पाँव परी जंजीर।—(शब्द)।

३. किवाड़ की कुंडी या सिकड़ी।

मुहा०—जंजीर बजाना = कुंडी खटखटाना। जंजीर लगाना = कुंडी बंद करना।

जंजीरखाना—संज्ञा पुं० [फ़ा० ज़ंजीरख़ानह्] कारागृह। जेलखाना। कैदखाना [को०]।

जंजीरा—संज्ञा पुं० [हिं० जंजीर] एक प्रकार की सिलाई जो देखने में जंजीर की तरह मालूम पड़ती है। यह फाँस डाल-

कर सी जाती है और यह केवल कसीदे और सूईकारी में काम आती है। लहरिया।

क्रि० प्र०—डालना।

जंजीरि (पु)—वि० [हिं० जंजीर + ई] जंजीरदार। जिसमें जंजीर लगी हो।

जंजीरी—वि० [फ़ा० जंजीरी] १. जंजीरेदार। २. जंजीर में बँधा। बंदी (को०)।

मुहा०—जंजीरी गोला = तोप के वे गोले जो कई एक साथ जंजीर में लगे रहते हैं। ये साधारण गोलों की अपेक्षा अधिक भयानक होते हैं।

जंजीरेदार—वि० [हिं० जंजीरा + दार] जिसमें जंजीरा पड़ा हो। जंजीरा डाला हुआ। लहरियादार।

विशेष—यह केवल सिलाई के लिये प्रयुक्त होता है। जैसे, जंजीरेदार सिलाई।

जंट—संज्ञा पुं० [अं० ज्वाइंट] जिला मजिस्ट्रेट के नीचे का सिवीलियन मजिस्ट्रेट। जंट मजिस्टर।

जंटिलमैन—संज्ञा पुं० [अं०] १. भलामानुस। सभ्य पुरुष। २. अंगरेजी चाल ढाल से रहनेवाला आदमी। उ०—तुम लोग अभी जंटिलमैन से ट्रीट करना बिलकुल नहीं जानता।—प्रेमघन०, भा०२, पृ० ७६।

जंड—संज्ञा पुं० [देश०] एक जंगली पेड़ जिसे सांगर भी कहते हैं। इसकी फलियों का अचार बनाया जाता है। उ०—डेले, पीलू, आक और जंड के कुड़मुड़ाए वृक्ष।—ज्ञानदान, पृ० १०३।

जंडैल[1]—वि० [हिं० जंट + एल (प्रत्य०)] १. प्रधान। बड़ा। २. स्वस्थ। तंदुरुस्त। हट्टाकट्टा।

जंडैल[2]†—संज्ञा पुं० [अं० जनरल] सैनिक अफसर। नायक। उ०—झलकारी ने टोकने के उत्तर में कहा—हम तुम्हारे जंडैल के पास जाउता है।—झाँसी०, पृ० ४३५।

जंत[1] (पु)—संज्ञा पुं० [सं० जन्तु] प्राणी। जीव। जंतु। उ०—कर्मंहि करि उपजत ये जंत। कर्मंहि करि पुनि सबकों अंत।—नंद० ग्रं०, पृ० ३०६।

यौ०—जीवजंत = जीव जंतु। उ०—(क) जीवजंत घन विघन बन जीव जीव बल छीन।—पृ० रा०, ६। २२। (ख) जा दिन जीव जंत नहीं कोई।—रामानंद, पृ० १२।

जंत[2]—संज्ञा पुं० [सं० यन्त्र; प्रा० जंत] यंत्र। तांत्रिक यंत्र। जंतर।

यौ०—जंत मंत = जंतर मंतर

जंतर—संज्ञा पुं० [सं० यन्त्र, प्रा० जंत्र] १. कल। औजार। यंत्र। २. तांत्रिक यंत्र।

यौ०—जंतर मंतर।

३. चौकोर या लंबी ताबीज जिसमें तांत्रिक यंत्र या कोई टोटके की वस्तु रहती है। इसे लोग अपनी रक्षा या सिद्धि के लिये पहनते हैं। उ०—जंतर टोना मूड़ हिलावन ता कूं साँच न मानो।—चरण० बानी, पृ० १११। ४. गले में पहनने का एक गहना जिसमें चाँदी या सोने के चौकोर या लंबे टुकड़े पाट में गुँथे होते हैं। कठुला। ताबीज। ५. यंत्र जिससे वैद्य या रासायनिक तेल या आसव आदि तैयार करते हैं। ६. जंतर मंतर। मानमंदिर। आकाशलोचन। †७. पत्थर, मिट्टी आदि का बड़ा ढोंका। ८. वीणा। बीन नामक बाजा।

जंतर मंतर—संज्ञा पुं० [हिं० यन्त्र + मन्त्र] १. यंत्र मंत्र। टोना टोटका। जादू टोना। २. आकाशलोचन। मानमंदिर जहाँ ज्योतिषी नक्षत्रों की स्थिति, गति आदि का निरीक्षण करते हैं।

जंतरा—संज्ञा स्त्री० [सं० यन्त्री] एक रस्सी जो गाड़ी के ढाँचे पर कसी या तानी जाती है। जंत्रा।

जंतरी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० यन्त्र] १. छोटा जंता जिसमें सोनार तार बढ़ाते हैं। वि० दे० 'जंता'—२।

मुहा०—जंतरी में खींचना = (१) तारों को जंते में डालकर पतला और लंबा करना। (२) सीधा करना। दुरुस्त करना। कज निकालना। टेढ़ापन दूर करना।

२. पत्र। तिथिपत्र। एक तरह का पंचांग। उ०—मेरे यहाँ की संग्रह की जंतरियों आदि को देखकर ही यह बात लिखी है।—सुंदर० ग्रं०, भा० १ (जी०), पृ० १२१।

जंतरी[2]—संज्ञा पुं० १. जादूगर। भानमती। २. बाजा बजानेवाला। वाद्यकुशल व्यक्ति। उ०—बिना जंतरी यंत्र बाजता गगन में।—पलटू०, पृ० ६४।

जंता[1]—संज्ञा पुं० [सं० यन्त्र] [स्त्री० जंती, जंतरी] १. यंत्र। कल। जैसे, जंताघर। २ सोनारों और तारकसों का एक औजार जिसमें डालकर वे तार खींचते हैं।

विशेष—यह औजार लोहे की एक लंबी पटरी होती है जिसमें बहुत से ऐसे छेद कई पंक्तियों में होते हैं जो क्रमशः छोटे होते जाते हैं। सोनार सोने या चाँदी के तारों को पहले बड़े छेदों में, फिर उससे छोटे छेदों मे, फिर और छोटे छेदों में क्रमानुसार निकालकर खींचते हैं जिससे तार पतले होकर बढ़ते जाते हैं।

जंता[2]—वि० [सं० यन्त्रि (= यंता) यंत्रणा देनेवाला। दंड देनेवाला। शासन करनेवाला। उ०—साकिनी डाकिनी पूतना प्रेत बैताल भूत प्रमथ जूथ जंता।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४६७।

जंता[3]—संज्ञा पुं० [सं० यन्ता] अश्वरथ का वाहक। सारथी उ०—जाकों तू भयो जात है जंता। अठयों गर्भ सु तेरो हंता।—नंद० ग्रं०, पृ० २२१।

जंता[4] (पु)—संज्ञा पुं० [सं० जनितृ > जनिता] [स्त्री० जती] पिता। बाप।

जंती[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० जंता] छोटा जंता जिससे सोनार बारीक तार खींचते हैं। जंतरी।

जंती[2]†—संज्ञा स्त्री० [सं० जनितृ > जनिता, या हिं० जनना] माता। माँ।

जंतु—संज्ञा पुं० [सं०] १. जन्म लेनेवाला जीव। प्राणी। जानवर।

यौ०—जीवजंतु = प्राणी। जानवर।

२. महाभारत के अनुसार सोमक राजा का एक पुत्र जिसकी चरबी

से होम करने के पीछे सौ पुत्र हो गए। ३. आत्मा। जीवस्थ आत्मा (को०)। ४. क्षुद्र जीव। निम्न कोटि का जानवर। कीट पतंग आदि (को०)।

जंतुकंबु—संज्ञा पुं० [सं० जन्तुकम्बु] १. शंख का कीड़ा। २. शंख।

जंतुका—संज्ञा स्त्री० [सं० जन्तुका] लाख। जतुका। लाक्षा।

जंतुघ्न[1]—वि० [सं० जन्तुघ्न] प्राणिनाशक। कृमिघ्न।

जंतुघ्न[2]—संज्ञा पुं० १. विडंग। वायविडंग। २. हींग। ३. बिजौरा नीबू। ४. वह औषध जिसके संपर्क से कीड़े मर जाते हों।

जंतुघ्नी—संज्ञा स्त्री० [सं० जन्तुघ्नी] वायविडंग। विडंग।

जंतुनाशक—संज्ञा पुं० [सं० जन्तुनाशक] हींग।

जंतुपादप—संज्ञा पुं० [सं० जन्तुपादप] कोशाम्र या कोसम नाम का वृक्ष। वि० दे० 'कोसम' (को०)।

जंतुफल—संज्ञा पुं० [सं० जन्तुफल] उदुंवर। गूलर। ऊमर।

जंतुमति—संज्ञा स्त्री० [सं० जन्तुमती] पृथ्वी। धरती (को०)।

जंतुमारी—संज्ञा स्त्री० [सं० जन्तुमारी] नीबू।

जंतुला—संज्ञा स्त्री० [सं० जन्तुला] काँस नाम की घास।

जंतुशाला—संज्ञा पुं० [सं० जन्तुशाला] चिड़ियाघर।

जंतुहंत्री—संज्ञा स्त्री० [सं० जन्तुहन्त्री] वायविडंग। जंतुघ्नी।

जंत्र—संज्ञा पुं० [सं० यन्त्र] १. कल। औजार। २. तांत्रिक यंत्र।

यौ०—जंत्रमंत्र।

३. ताला। ४. तंत्र वाद्य। बाजा। वि० दे० 'यंत्र'। उ०—कबीर जंत्र न बाजही, टूटि गया सब तार।—कबीर सा० सं०, पृ० ७६।

जंत्रना[1]—क्रि० स० [हिं० जंत्र] ताला लगाना। ताले के भीतर बंद करना। जकड़बंद करना। उ०—सभा राउ गुरुमहिसुर मंत्री। भरत भगति सबके मति जंत्री।—तुलसी (शब्द०)।

जंत्रना[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० यन्त्रणा] दे० 'यंत्रणा'।

जंत्रमंत्र—संज्ञा पुं० [सं० यन्त्र मन्त्र] दे० 'जंतर मंतर', 'यंत्र मंत्र'। उ०—जयति पर जंत्र मंत्राभिचार ग्रसन, कारमनि कूट कृत्यादि हंता।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४६७।

जंत्रा—संज्ञा पुं० [हिं० जतरा] दे० 'जंतरा'।

जंत्रित—[सं० यन्त्रित] १. नियंत्रित। बंद। बँधा। उ०—जयति निरुपाधि भक्तिभाव जंत्रित हृदय बंधु हित चित्रकूटादि चारी।—तुलसी (शब्द०)। २. ताला लगा हुआ। ताले में बंद। उ०—नाम पाहरू राति दिन, ध्यान तुम्हार कपाट। लोचन निजपद जंत्रित जाहि प्रान केहि बाट।—मानस, ५। ३०।

जंत्री[1]—संज्ञा पुं० [सं० यन्त्रिक] वीणा आदि बजानेवाला। बाजा बजानेवाला।

जंत्री[2]—वि० यंत्रित करनेवाला। बद्ध करनेवाला। जकड़बंद करनेवाला।

जंत्री[3]—संज्ञा पुं० [सं० यन्त्रिन्] बाजा। उ०—बाजन दे बैजंतरा जग जंत्री मा छेड़। तुझे बिरानी क्या पड़ी अपनी आप निबेर।—कबीर (शब्द०)।

जंत्री[4]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] एक प्रकार का तिथिपत्र। पत्रा। जंतरी।

जंद[1]—संज्ञा पुं० [फ़ा० जंद; मि० सं० छन्दस्] १. पारसियों का अत्यंत प्राचीन धर्मग्रंथ।

विशेष—इसकी भाषा वैदिक भाषा से मिलती जुलती है। इसके श्लोक को 'गाथा' या मंथ्र (मि० सं० मंत्र) कहते हैं। इसके छंद और देवता वेदों के छंदों और देवताओं से मिलते हैं।

२. वह भाषा जिसमें पारसियों का जंद अवेस्ता नामक धर्मग्रंथ लिखा गया है।

यौ०—जंद अवेस्ता=जरथुस्त्र रचित पारसियों का धर्मग्रंथ।

जंदरा—संज्ञा पुं० [सं० यन्त्र > हिं० जंतर > जदरा] १. यंत्र। कल।

मुहा०—जंदरा ढीला होना=(१) कल पुर्जे बेकार होना। (२) हाथ पैर सुस्त होना। थकावट आना। नस ढीली होना।

२. जाँता। जैसे, कुछ गेहूँ गीले, कुछ जंदरे ढीले। † ३. ताला।

जंदा†—संज्ञा पुं० [सं० यन्त्र हिं० जन्त्र] ताला। उ०—जिस विषम कोठड़ी जंदे मारे। बिनु कुंजी क्यों खुलहि ताले।—प्राण०, पृ० ३२।

जंघाला—संज्ञा स्त्री० [सं० यन्त्राला] १२८ हाथ लंबी, १६ हाथ चौड़ी और १२४/५ हाथ ऊँची नाव।

जंपती—संज्ञा पुं० [सं० जम्पती] दंपती। पतिपत्नी।

जंपनाⓅ†—क्रि० अ० [सं० जल्प; प्रा० जप्प, जप; सं० जल्पना] कहना। कथन करना। उ० (क) इम जपै चंद बरद्दिया कहा निघट्ट इय प्रलौ।—पृ० रा० ५७। २३६। (ख) सम बनिता बर बदि चंद जंपिय कोमल कल।—पृ० रा०, १।१३। (ग) यों कवि भूषण जंपत है लखि संपति को अलकापति लाजै।—भूषण (शब्द०)।

जंब[1]—संज्ञा पुं० [सं० जम्ब] कर्दम। कीचड़। पंक।

जंब[2]—संज्ञा पुं० [अ० जंब] पाप। दोष। गुनाह। उ०—नफ्स तेरा जंब अती बोले है जान। लायक उस है बेजम्र पछान।—दक्खिनी०, पृ० ३८१।

जंबक[1]—संज्ञा पुं० [अ० जंबक; तुल० सं० चम्पक] चंपा का फूल (को०)।

जंबक[2]—संज्ञा पुं० [सं० जम्बुक] जंबुक। उ०—ऐसा एक अचंभा देखा। जंबक करै केहरि सूं खेला।—कबीर ग्रं०, पृ० १३५।

जंबाल—संज्ञा पुं० [सं० जम्बाल] १. कीचड़। काँदो। पंक। २. सेवार। शैवाल। ३. काई। ४. केवड़ा।

जंबाला—संज्ञा स्त्री० [सं० जम्बाला] केतकी का वृक्ष।

जंबालिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० जम्बालिनी] नदी। सरिता (को०)।

जंबीर—संज्ञा पुं० [सं० जम्बीर] १. जंबीरी नीबू। २. मरुवा। ३. सफेद या हल्के रंग की तुलसी। ४. बनतुलसी।

जंबीरी नीबू—संज्ञा पुं० [सं० जम्बीर] एक प्रकार का खट्टा नीबू।

विशेष—इसका फल कागजी नीबू से बड़ा होता है। इसके फल के ऊपर का छिलका मोटा और उभड़े महीन महीन दानों के कारण खुरदुरा होता है। कच्चा फल श्यामता लिए गहरा हरा होता है, पर पकने पर पीला हो जाता है। इसका पेड़ बड़ा और कँटीला होता है। बसंत ऋतु में इसमें फूल लगते हैं और बरसात में फल दिखाई पड़ते हैं जो कार्तिक के उपरांत खाने योग्य होते हैं। फल इसमें बहुत आते हैं और बहुत दिनों तक रहते हैं।

जंबील—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जम्बील] झोली। पिटारी। टोकरी।

जंबु—संज्ञा पुं० [सं० जम्बु] १. जंबू वृक्ष। जामुन। २. जामुन का फल। उ०—जुत जंबु फल चारि तकि सुख करौं हौं।—घनानंद०, पृ० ३५२। ⓟ३. जांबवान्। उ०—बंधि पाज सागरह हनुम अंगद सुग्रीवह। नील जंबु सु जटाल बली राहुन अप जीवह।—पृ० रा०, २।२७१।

जंबुक—संज्ञा पुं० [सं० जम्बुक] [स्त्री० जंबुकी] १. बड़ा जामुन। फरेंदा। २. श्योनाक वृक्ष। ३. सुवर्ण केतकी। केवड़ा। ४. शृगाल। गीदड़। ५. वरुण। ६. एक वृक्ष। ७. टेंटू का पेड़। सोना पाढ़ा। ८. स्कंद का एक अनुचर। ९. नीच व्यक्ति। निम्न कोटि का आदमी। [को०]।

जंबुकाⓟ—संज्ञा पुं० [सं० जम्बुक] शृगाल। गीदड़। जंबुक। उ०—धरनी यह मन जंबुका बहुत अभोजन खात।—संत-बानी०, भा० १, पृ० ११६।

जंबुखंड—संज्ञा पुं० [सं० जम्बुखण्ड] दे० 'जंबुद्वीप'।

जंबुद्वीप—संज्ञा पुं० [सं० जम्बुद्वीप] पुराणानुसार सात द्वीपों में से एक द्वीप।

विशेष—यह द्वीप पृथिवी के मध्य में माना गया है। पुराण का मत है कि यह गोल है और चारो ओर से खारे समुद्र से घिरा है। यह एक लाख योजन विस्तीर्ण है और इसके नौ खंड माने गए हैं जिनमें प्रत्येक खंड नौ नौ हजार योजन विस्तीर्ण हैं। इन नौ खंडों को वर्ष भी कहते हैं। इलावृत खंड इन खंडों के बीच में बतलाया गया है। इलावृत खंड के उत्तर में तीन खंड हैं—रम्यक, हिरण्मय, और कुरुवर्ष। नील, श्वेत और शृंगवान् नामक पर्वत क्रमशः इलावृत और रम्यक, रम्यक और हिरण्मय तथा हिरण्मय और कुरुवर्ष के मध्य में है। इसी प्रकार इलावृत के दक्षिण में भी तीन वर्ष हैं जिनके नाम हरिवर्ष, पुरुष और भारतवर्ष है; और दो दो वर्षों के बीच एक एक पर्वत है जिनके नाम निषध, हेमकूट और हिमालय हैं। इलावृत के पूर्व में भद्राश्व और पश्चिम में केतुमाल वर्ष है; तथा गंधमादन और माल्य नाम के दो पर्वत क्रमशः इलावृत खंड के पूर्व और पश्चिम सीमारूप हैं। पुराणों का कथन है कि इस द्वीप का नाम जंबुद्वीप इसलिये पड़ा है कि इसमें एक बहुत बड़ा जंबु का पेड़ है जिसमें हाथी के इतने बड़े फल लगते हैं। बौद्ध लोग जंबुद्वीप से केवल भारतवर्ष का ही ग्रहण करते हैं।

जंबुध्वज—संज्ञा पुं० [सं० जम्बुध्वज] जंबुद्वीप।

जंबुनदी—संज्ञा स्त्री० [सं० जम्बुनदी] दे० 'जंबू नदी'।

जंबुप्रस्थ—संज्ञा पुं० [सं० जम्बुप्रस्थ] एक प्राचीन नगर।

विशेष—इस नगर का उल्लेख वाल्मीकि रामायण में है। भरत जब अपने ननिहाल केकय देश से लौट रहे थे तब मार्ग में उन्हें यह नगर पड़ा था। कुछ लोग अनुमान करते हैं कि आजकल का जम्बू या जम्मू (काश्मीर) वही नगर है।

जंबुमत्—संज्ञा पुं० [सं० जम्बुमत्] १. एक नगर का नाम जिसे जांबवान् भी कहते हैं। २. पर्वत [को०]।

जंबुमति—संज्ञा स्त्री० [सं० जम्बुमति] एक अप्सरा का नाम।

जंबुमान—संज्ञा पुं० [सं० जम्बुमत्] दे० 'जंबुमत्' [को०]।

जंबुमाली—संज्ञा पुं० [सं० जम्बुमालिन्] एक राक्षस का नाम।

जंबुरⓟ†—संज्ञा पुं० [फ़ा० जंबूर] दे० 'जंबूर'। उ०—लाखन मीर बहादुर जंगी। जंबुर कमाने तीर खदंगी।—जायसी (शब्द०)।

जंबुल—संज्ञा पुं० [सं० जम्बुल] १. जंबू। जामुन। २. केतकी का पेड़। ३. कर्णपाली नामक रोग। इसमें कान की लौ पक जाती है। सुपकनवा।

जंबुवनज—संज्ञा पुं० [सं० जम्बुवनज] दे० 'जंबूवनज'।

जंबुस्वामी—संज्ञा पुं० [सं० जंबुस्वामिन्] एक जैन स्थविर का नाम जिनका जन्म राजा श्रेणिक के समय में ऋषभदत्त सेठ की स्त्री धारिणी के गर्भ से हुआ था।

जंबू[१]—संज्ञा पुं० [सं० जम्बू] १. जामुन। २. जामुन का फल। ३. नागदमनी। दौना। ४. काश्मीर का एक प्रसिद्ध नगर।

विशेष—संस्कृत में यह शब्द स्त्री० है पर जामुन फल के अर्थ में क्लीव भी है।

जंबू[२]†—वि० बहुत बड़ा। बहुत ऊँचा।

जंबूका—संज्ञा स्त्री० [सं० जम्बूका] किशमिश।

जंबूखंड—संज्ञा पुं० [सं० जम्बूखण्ड] दे० 'जंबुखंड'।

जंबूद्वीप—संज्ञा पुं० [सं० जम्बूद्वीप] दे० 'जंबुद्वीप'।

जंबूनदⓟ—संज्ञा पुं० [सं० जाम्बूनद] स्वर्ण। सोना। उ०—जंबूनद को मेरू बनायव। पंच वृक्ष सुर तहाँ गायव। दुतिय रजत गिरि जहाँ सुहायव। ताहि नाम कैलाश धरायव।—प० रासो, पृ० २२।

जंबूनदी—संज्ञा स्त्री० [सं० जम्बूनदी] १. पुराणानुसार जंबुद्वीप की एक नदी।

विशेष—यह नदी उस जामुन के वृक्ष के रस से निकली हुई मानी जाती है जिसके कारण द्वीप का नाम जंबुद्वीप पड़ा है और जिसके फल हाथी के बराबर होते हैं। महाभारत में इस नदी को सात प्रधान नदियों में गिनाया है और इसे ब्रह्मलोक से निकली हुई लिखा है।

जंबूर—संज्ञा पुं० [फ़ा० जंबूर] १. जंबूरा। २. तोप की चरख। ३. पुरानी छोटी तोप जो प्रायः ऊँटों पर लादी जाती थी। जंबूरक। ४. भिड़। बर्रे (को०)। ५. शहद की मक्खी (को०)। ६. एक औजार (को०)।

जंबूरक—संज्ञा स्त्री॰ [जम्बूरक] छोटी तोप जो प्रायः ऊँटों पर लादी जाती है । २. तोप की चर्ख । ३. भंवर कली ।

जंबूरची—संज्ञा पुं॰ [फ़ा॰ जंबूरची] १. जंबूर नामक छोटी तोप का चलानेवाला । तोपची । बर्कंदाज । सिपाही । तुपकची ।

जंबूरा—संज्ञा पुं॰ [फ़ा॰ जंबूरह्] १. चर्ख जिसपर तोप चढ़ाई जाती है । २. भँवर कड़ी । भँवर कली । ३. सोने लोहे आदि धातुओं के बारीक काम करनेवालों का एक औजार जिससे वे तार आदि को पकड़कर ऐंठते, रेतते या घुमाते हैं ।

विशेष—यह काम के अनुसार छोटा या बड़ा होता है और प्रायः लकड़ी के टुकड़े में जड़ा होता है । इसमें चिमटे की तरह चिपककर बैठ जानेवाले दो चिपटे पल्ले होते हैं । इन पल्लों की बगल में एक पेंच रहता है जिससे पल्ले खुलते और कसते हैं । कारीगर इसमें चीजों को दबाकर ऐंठते, रेतते, तथा और काम करते हैं ।

४. लकड़ी का एक बल्ला जो मस्तूल पर आड़ा लगा रहता है और जिसपर पाल का ढाँचा रहता है ।—(लश॰) ।

जंबूल—संज्ञा पुं॰ [सं॰ जम्बूल] १. जामुन का वृक्ष । २. केवड़े का पेड़ ।

जंबूवनज—संज्ञा पुं॰ [सं॰ जम्बूवनज] श्वेत जपा पुष्प । सफेद गुड़हल का फूल ।

जंभ—संज्ञा पुं॰ [सं॰ जम्भ] दाढ़ । चौभर । २. जबड़ा । ३. एक दैत्य का नाम जो महिषासुर का पिता था और जिसे इंद्र ने मारा था । उ॰—इंद्र ज्यों जंभ पर, बाड़ो सुअंभ पर रावण सदंभ पर रघुकुलराज है ।—भूषण (शब्द॰) ।

यौ॰—जंभद्विष । जंभभेदी । जंभरिपु = इंद्र का नाम ।

४. प्रह्लाद के तीन पुत्रों में से एक । ६. जंबीरी नीबू । ७. कंधा और हँसली । ८. भक्षण । ९. जम्हाई ।

जंभक[1]—संज्ञा पुं॰ [सं॰ जम्भक] १. जंबीरी नीबू । २. शिव । ३. एक राक्षा का नाम ।

जंभक[2]—वि॰ १. जम्हाई या नींद लानेवाला । २. हिंसक । भक्षक । ३. कामुक ।

जंभका—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ जम्भका] जम्हाई ।

जंभन—संज्ञा पुं॰ [सं॰ जम्भन] १. भक्षण । २. रति । संयोग । ३. जम्हाई ।

जंभा—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ जम्भा] जँभाई । जमुहाई ।

जंभाराति—संज्ञा पुं॰ [सं॰ जम्भाराति] जंभ असुर के शत्रु इंद्र [को॰] ।

जंभारि—संज्ञा पुं॰ [सं॰ जम्भारि] १. इंद्र । २. अग्नि । ३. वज्र । ४. विष्णु ।

जंभिका—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ जम्भिका] जम्हाई । जभा [को॰] ।

जंभी, जंभीर—संज्ञा पुं॰ [सं॰ जम्भिन्; जम्भीर] दे॰ 'जंबीरी नीबू' । उ॰—कहुँ दाख दाड़िम सेब कटहल तूत अरु जंभीर है ।—भूषण ग्रं॰, पृ॰ ४ ।

जंभीरी—संज्ञा पुं॰ [सं॰ जम्भीर] दे॰ 'जंबीरी नीबू' ।

जंभूरा†—संज्ञा पुं॰ [फ़ा॰ जबूरह् > जंबूरा] दे॰ 'जंबूरा' ।

जंवालिनी—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ जम्बालिनी] नदी ।

जँगरा—संज्ञा पुं॰ [देश॰] उर्द, मूंग इत्यादि के वे डंठल जो दाना निकाल लेने के बाद शेष रह जाते हैं । जेंगरा ।

जँगरैत—वि॰ [हिं॰ जाँगर + ऐत (प्रत्य॰)] [वि॰ स्त्री॰ जँगरैतिन] १. जाँगरवाला । २. परिश्रमी । मेहनती ।

जँगला—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ जंगला] १. दे॰ 'जंगला'[1] । २. दे॰ 'जंगला'[2] ।

जँचना—क्रि॰ अ॰ [हिं॰ जाँचना] १. जाँचा जाना । देख भाल करना । २. जाँच में पूरा उतरना । दृष्टि में ठीक या अच्छा ठहरना । उचित तथा अच्छा ठहरना । उचित या अच्छा प्रतीत होना । ठीक या अच्छा जान पड़ना । जैसे,—(क) हमें तो उसके सामने यह कपड़ा नहीं जँचता । (ख) मुझे उसकी बात जँच गई । ३. जान पड़ना । प्रतीत होना । निश्चय होना । मन में बैठना । जैसे,—मुझे तुम्हारी बात नहीं जँचती ।

जँचा—वि॰ [हिं॰ जँचना] १. जँचा हुआ । सुपरीक्षित । २. अव्यर्थ । अचूक । जैसे,—जाँचा हाथ ।

जँजाल(पु)—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ जंग + आल] एक प्रकार की प्राचीन बंदूक । जंजाल । उ॰—छुट्टी एक काले बिसाये जँजालें ।—हिम्मत॰, पृ॰ १२ ।

जँजीरनी(पु)—वि॰ [हिं॰ जंजीर] बाँधनेवाली । उ॰—कच मेचक जाल जंजीरनी तू ।—प्रेमघन॰, भाग १, पृ॰ २१॰ ।

जँतसर†—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ जाँत + सर (प्रत्य॰)] [स्त्री॰ जँतसरी, जँतसारी] वह गीत जिसे स्त्रियाँ चक्की पीसते समय गाती हैं । जाँते का गीत ।

जँतसार—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ यन्त्रशाला] जाँता गाड़ने का स्थान । वह स्थान जहाँ जाँता गाड़ा जाता है ।

जँताना—क्रि॰ अ॰ [हिं॰ जाँता] १. जाँते में पिस जाना । २. कुचल जाना । चूरचूर होना ।

जँबुर(पु)—संज्ञा पुं॰ [फ़ा॰ जंबूर] एक प्रकार की तोप जो प्रायः ऊँटों पर चलती थी । जंबूरक । उ॰—लाखन मार बहादुर जंगी । जँबुर, कमानें तीर खदंगी ।—जायसी ग्रं॰, पृ॰ २२२ ।

जँभाई—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ जृम्भा] मुँह के खुलने की एक स्वाभाविक क्रिया जो निद्रा या आलस्य मालूम पड़ने, शरीर से बहुत अधिक खून निकल जाने या दुर्बलता आदि के कारण होती है । उबासी ।

विशेष—इसमें मुँह के खुलते ही साँस के साथ बहुत सी हवा धीरे धीरे भीतर की ओर खिंच आती है और कुछ क्षण ठहरकर धीरे धीरे बाहर निकलती है । यद्यपि यह क्रिया स्वाभाविक और बिना प्रयत्न के आपसे आप होती है, तथापि बहुत अधिक प्रयत्न करने पर दबाई भी जा सकती है । प्रायः दूसरे को जँभाई लेते हुए देखकर भी जँभाई आने लगती है । हमारे यहाँ के प्राचीन ग्रंथों में लिखा है कि जिस वायु के कारण जँभाई आती है उसे 'देवदत्त' कहते हैं । वैद्यक के अनुसार जँभाई आने पर उत्तम सुगंधित पदार्थ खाना चाहिए ।

क्रि॰ प्र॰—आना ।—लेना ।

जँभाना—क्रि० अ० [सं० जृम्भण] जँभाई लेना।

जँवाई†—संज्ञा पुं० [सं० जामातृ, प्रा० जामाउ, हिं० जमाई] जामाता। दामाद।

जँवारा†—संज्ञा पुं० [सं० यवाग्र या हिं० जौ] १. दे० 'जवारा'। २. नवरात्र। उ०—नवरात को लोग जँवारा भी कहते हैं।—शुक्ल अभि० ग्रं० (सा०), पृ० १३२।

ज[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. मृत्युंजय। २. जन्म। ३. पिता। ४. विष्णु। ५. विष। ६. मुक्ति। ७. तेज। ८ पिशाच। ९. वेग। १. छंदशास्त्रानुसार एक गण जो तीन अक्षरों का होता है। जगण।

विशेष—इसके आदि और अंत के वर्ण लघु और मध्य का वर्ण गुरु होता है (।ऽ।)। जैसे, महेश, रमेश, सुरेश आदि। इस का देवता सूर्य और फल रोग माना गया है।

ज[2]—वि० १. वेगवान्। वेगित। तेज। २. जीतनेवाला। जेता।

ज[3]—प्रत्य० उत्पन्न। जात। जैसे,—देशज, पित्तज, वातज, आदि।

विशेष—यह प्रत्यय प्रायः तत्पुरुष समास के पदों के अंत में आता है। पंचमी तत्पुरुष आदि में पंचम्यंत पदों की विभक्ति लुप्त हो जाती है, जैसे, पादज, द्विज इत्यादि। पर सप्तमी तत्पुरुष में 'प्रावृट्', 'शरत्', 'काल' और 'द्यु' इन चार शब्दों के अतिरिक्त, जहाँ विभक्ति बनी रहती है (जैसे, प्रावृषिज, शरदिज, कालेज, दिविज) शेष स्थलों में विभक्ति का लोप विवक्षित होता है, जैसे, मनसिज, मनोज, सरसिज, सरोज इत्यादि।

ज(पु)[4]—अव्य० पादपूर्ति के लिये प्रयुक्त। उ०—चंद्र सूर्य का गम नहीं जहाँ ज दर्शन पावै दास।—रामानंद० पृ० १०।

जइँ(पु)—क्रि० वि० [सं० यत्र] दे० 'जहाँ'। उ०—बालूँ ढोला देसणउ, जइँ पाणी कूँवेण।—ढोला०, दू० ६५७।

जइ(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० जय, हिं० जै] दे० 'जय'। उ०—निय भासा जप्पई, साहस कंपइ, जइ सूरा जइ पाणीआ।—कीर्ति०, पृ० ४८।

जइस(पु)†—वि० [सं० यादृश] [अन्य रूप जइसन, जइसे] दे० 'जैसा'। उ०—(क) गए नृपति हंसन की पाँती। ता मध्ये उन जइस अजाती।—कबीर सा०, पृ० ६५। (ख) बेबि सरोरुह ऊपर देखल जइसन दूतिय चंदा।—विद्यापति०, पृ० २४। (ग) सुनइत रस कथा थापए चीत। जइसे कुरंगिनी सुनए संगीत।—विद्यापति०, पृ० ४०६।

जई[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० यव, प्रा० जव, हिं० जौ] १. जौ की जाति का एक अन्न।

विशेष—इसका पौधा जौ के पौधे से बहुत मिलता जुलता है और जौ के पौधे से अधिक बढ़ता है। जौ, गेहूँ आदि की तरह यह अन्न भी वर्षा के अंत में बोया जाता है। बोने के प्रायः एक महीने बाद इसके हरे डंठल काट लिए जाते हैं जो पशुओं के चारे के काम आते हैं। काटने के बाद डंठल फिर बढ़ते हैं और थोड़े ही दिनों में फिर काटने के योग्य हो जाते हैं। इस प्रकार जई की फसल तीन महीने में तीन बार हरी काटी जाती है और अंत में अन्न के लिये छोड़ दी जाती है। चौथी बार इसमें प्रायः हाथ भर या इससे कुछ कम लंबी बालें लगती हैं। इन्हीं बालों में जई के दाने लगते हैं। बोने के प्रायः साढ़े तीन या चार महीने बाद इसकी फसल तैयार हो जाती है। फसल पकने पर पीली हो जाती है और पूरी तरह पकने से कुछ पहले ही काट ली जाती है, क्योंकि अधिक पकने से इसके दाने झड़ जाते हैं और डंठल भी निकम्मे हो जाते हैं। एक बीघे में प्रायः बारह तेरह मन अन्न और अठारह मन डंठल होते हैं। इसके लिये दोमट भूमि अच्छी होती है और अधिक सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है। इस देश में जई बहुधा घोड़ों आदि को ही खिलाई जाती है, पर जिन देशों में गेहूँ, जौ आदि अच्छे अन्न नहीं होते वहाँ इसके आटे की रोटियाँ भी बनती हैं। इसके हरे डंठल गेहूँ और जौ के भूसे से अधिक पोषक होते हैं और गौएँ, भैंसें और घोड़े आदि उन्हें बड़े चाव से खाते हैं।

२. जौ का छोटा अंकुर।

विशेष—हिंदुओं के यहाँ नवरात्र में देवी की स्थापना के साथ थोड़े से जौ भी बोए जाते हैं। अष्टमी या नवमी के दिन वे अंकुर उखाड़ लिए जाते हैं और ब्राह्मण उन्हें लेकर मंगल-स्वरूप अपने यजमानों को भेंट करते हैं। उन्हीं अंकुरों को जई कहते हैं। इस अर्थ में इनके साथ 'देना' 'खोंसना' आदि क्रियाओं का भी प्रयोग होता है।

मुहा०—जई डालना = अंकुर निकालने लिये किसी अन्न को भिगोना या तर स्थान में रखना। जई लेना = किसी अन्न को इस बात की परीक्षा के लिये बोना कि वह अंकुरित होगा कि नहीं। जैसे,—धान की जई लेना, गेहूँ की जई लेना, आदि।

४. उन फलों की बतिया या फली जिनमें बतिया के साथ फूल भी लगा रहता है। जैसे, खीरे की जई, कुम्हड़े की जई। उ०—(क) सरुख बरजि तरजिए तरजनी कुम्हिलैहैं कुम्हड़े की जई है।—तुलसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—निकलना।—लगना। उ०—बचन सुपत्र मुकुल अवलोकनि, गुननिधि पहुप मई। परस परम अनुराग सींचि सुख, लगी प्रमोद जई।—सूर०, १०।१७६२।

जई[2]—वि० [सं० जयिन्, प्रा० जई] दे० 'जयी'।

जईफ—वि० [अ० जईफ़] [वि० स्त्री० जईफा] बुड्ढा। वृद्ध।

जईफी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जईफ़ी] बुढ़ापा। वृद्धावस्था। उ०—जवानी का कमाया जईफी में काम आयगा।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० ३४।

जउँन(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० यमुना] दे० 'जमुना'। उ०—सब पिरथमी असीसइ, जोरि जोरि कै हाथ। गांग जउँन जौ लहि जल, तौ लहि अम्मर माथ।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १३०।

जउवा†—संज्ञा पुं० [देश०] एक तरह का रोगकीट। उ०—जउवा नारू दुखित रोग।—दरिया० बानी, पृ० ५०।

जऊ(पु)†—क्रि० वि० [सं० यद्यपि] जो। अगर। यदपि। यद्यपि।

उ०—धन तन पानिप को जऊ, छकत रहै दिन राति। तऊ ललन लोयननि की, नैसुक प्यास न जाति।—स० सप्तक, पृ० २४७।

जकंद(पु)—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जग़ंद] छलाँग। उछाल। चौकड़ी।

जकंदना(पु)†—क्रि० अ० [हिं० जकंद +ना (प्रत्य०)] १. कूदना। उछलना। उ०—सजोम जकंदत जात तुरंग। चढ़े रन सूरनि रंग उमंग।—हम्मीर०, पृ० ५०। २. टूट पड़ना। उ०—जमन जोर करि धाइया तब भरत जकंदे। मानो राहु सपट्टिया भच्छन नू चंदे।—सूदन (शब्द०)।

जक[1]—संज्ञा पुं० [सं० यक्ष, प्रा० जक्ख] १. धनरक्षक भूत प्रेत। यक्ष। २. कंजूस आदमी।

जक[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० झक] [वि० झक्की] १. जिद्द। हठ। अड़। उ०—हुती जितीं जग मैं अधमाई सो मैं सबै करी। अधम समूह उधारन कारन तुम जिय जक पकरी।—सूर०, १।१३०।

क्रि० प्र०—पकड़ना।

२. धुन। रट। उ०—जदपि नाहिं नाहिं नहीं बदन लगी जक जाति। तदपि भौंह हाँसी भरिनु, हाँसी पै ठहराति।—बिहारी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—लगना।

मुहा०—जक बँधना = रट लगना। धुन लगना। उ०—तव पद चमक चकचाने चंद्रचूर चख चितवत एक टक जक बँध गई है।—चरण (शब्द०)।

जक[3]—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जक] १. हार। पराजय। उ०—यही हैं अकसर कजा के जिनसे फरिश्ते भी, जक उठा चुके हैं।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ८५७। २. हानि। घाटा। टोटा।

क्रि० प्र०—उठाना।—पाना।

३. पराभव। लज्जा। ४. डर। खौफ। भय।

जक[4]—संज्ञा स्त्री० [अ० जका] सुख। शांति। चैन। उ०—सुख चाहै अरु उद्यमी जक न परै दिन राति।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० १७४।

जकड़—संज्ञा स्त्री० [हिं० जकड़ना] जकड़ने का भाव। कसकर बाँधना।

मुहा०—जकड़बंद करना=(१) खूब कसकर बाँधना। (२) अच्छी तरह फँसा लेना। पूरी तरह अपने अधिकार में कर लेना।

जकड़ना[1]—क्रि० स० [सं० युक्त+करण या शृङ्खल (=सिकड़ी)] कसकर बाँधना। जैसे,—उसके हाथ पैर जकड़ दो।

संयो० क्रि०—देना।—डालना।

जकड़ना†[2]—क्रि० अ० अकड़ने आदि के कारण अंगों का हिलने डुलने के योग्य न रह जाना। जैसे, हाथ पैर जकड़ना।

संयो० क्रि०—जाना।—उठना।

जकन—संज्ञा पुं० [अ० ज़क़न] ठुड्डी। ठोढ़ी। उ०—जब से चाहा है तेरा चाहे जकन, अब चश्मों से मेरे जारी है।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० २१।

जकना(पु)—क्रि० अ० [हिं० छक या चकपकाना अथवा देश०] [वि० जकित] अचंभे में आना। भौंचक्का होना। चकपकाना। उ०—(क) तकि तकि चहूँ ओर जकि सी रही थकि, बकि बकि उठै छकि छैल की लगन में।—दीनदयालु (शब्द०)। (ख) तरु दोउ धरनि गिरे भहराइ।......कोउ रहे आकाश देखत, कोउ रहे सिर नाइ। घरिक लौं जकि रहे तहँ तहँ देह गति बिसराइ।—सूर०, १०।३८७। (ग) दूत दबकाने, चित्रगुप्त हू चकाने औ जकाने जमलाल पापपुंज लुंज स्वै गए।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २५६।

जकर—संज्ञा पुं० [अ० ज़कर] शिश्न। पुरुषेंद्रिय। २. नर। ३. फौलाद [को०]।

जकरना(पु)—क्रि० स० [हिं० जकड़ना] दे० 'जकड़ना'। उ०—श्यामा तेरे नेह की डोर जकरि जिय मोर।—श्यामा०, पृ० १७१।

जकरिया—संज्ञा पुं० [अ० ज़करिया] एक यहूदी पैगंबर या भविष्यवक्ता जो आरे से चीरे गए थे। उ०—योहन जकरिया भविष्यवक्ता का पुत्र था।—कबीर मं०, पृ० २६५।

जकात[1]—संज्ञा स्त्री० [अ० ज़कात] दान। खैरात।

क्रि० प्र०—देना।—करना।—पाना।

जकात[2]—[अ० ज़का(= वृद्धि ?)] कर। महसूल। उ०—(क) उस समय उड़ीसा में कौड़ियों के द्वारा क्रय विक्रय होता था। यहाँ की मुख्य आय जमींदारी और जकात से थी।—शुक्ल अभि० ग्रं० (इति०), पृ० ११५।

जकाती—संज्ञा पुं० [हिं० जकात] दे० 'जगाती'।

जकित(पु)—वि० [हिं० चकित] चकित। विस्मित। स्तंभित। उ०—हरिमुख किधौ मोहिनी माई।......सूरदास प्रभु बदन बिलोकत जकित थकित चित अगत न जाई।—सूर (शब्द०)।

जकुट—संज्ञा पुं० [सं०] १. मलयाचल। २. कुत्ता। ३. बैगन का फूल। ४. जोड़ा। युग्म (को०)।

जक्की[1]—संज्ञा स्त्री० [देश०] बुलबुल की एक जाति।

विशेष—इस जाति की बुलबुल आकार में छोटी होती है और जाड़े के दिनों में उत्तर या पश्चिम हिंदुस्तान के अतिरिक्त सारे भारतवर्ष मे पाई जाती है। गरमी के महीनों में यह हिमालय पर चली जाती है।

जक्की[2]—वि० [हिं० झक] दे० 'झक्की'।

जक्त(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० जगत्] दे० 'जगत'। उ०—ओर ते छोर ले एक रस रहत हैं, ऐसे जान जक्त में बिरले प्रानी।—कबीर० रे०, पृ० २७।

जक्ष(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० यक्ष] दे० 'यक्ष'।

जखण—संज्ञा पुं० [सं०] भक्षण। भोजन। खाना। उ०—सच्चु शब्द की सची जखण। नानक कहै उदासी लक्षण।—प्राण०, पृ० १६८।

जख्मा†—संज्ञा स्त्री० [सं० यक्ष्मा] दे० 'यक्ष्मा' या 'क्षयी'।

जखां†—संज्ञा स्त्री० [अ० आका, हिं० जक] सुख। चैन। उ०—उन संतन के साथ से जिवड़ा पावै जख। दरिया ऐसे साध के चित चरनों ही रख।—दरिया० बानी, पृ० २।

जखन‡—क्रि० वि० [हिं० जिस + सं० क्षण] जिस समय। जब। उ०—जखने चलिय सुरतान लेख परि सेष जान को।—कीर्ति०, पृ० ९६।

जखनी¹—संज्ञा स्त्री० [सं० यक्षिणी प्रा० जक्खिनी] दे० 'यक्षिणी'

जखनी²—संज्ञा स्त्री० [अ० यखनी] दे० 'अखनी'।

जखम—संज्ञा पुं० [फ़ा० ज़ख्म, मि० सं० यक्ष्म] १. वह क्षत जो शरीर में आघात या अस्त्र आदि के लगने के कारण हो जाय। घाव। २. मानसिक दुःख का आघात। सदमा।

क्रि० प्र०—करना।—खाना।—देना।—पूजना। भरना।—लगना।—होना।

मुहा०—जखम ताजा या हरा हो आना = बीते हुए कष्ट का फिर लौट आना। गई हुई विपत्ति का फिर आ जाना। जखम पर नमक छिड़कना = दुःख बढ़ाना।

जखमी—वि० [फा० ज़ख्मी] जिसे जखम लगा हो। घायल। चुटैला।

जखीर—संज्ञा पुं० [अ० ज़ख़ीरह्, हिं० जखीरा] खजाना। कोष। संग्रह। उ०—किल्ला में पाया और जेता जखीर। साबक ही खंडपुर नैं कीनां बहीर।—शिखर०, पृ० २३।

जखीरा—संज्ञा पुं० [अ० ज़ख़ीरह्] १. वह स्थान जहाँ एक ही प्रकार की बहुत सी चीजों का संग्रह हो। कोष। खजाना। २. संग्रह। ढेर। समूह। उ०—रहै जखीरा गढ़ कै जेता।—ह० रासो, पृ० ५६।

क्रि० प्र०—करना।—लगाना।

यौ०—जखीरा अंदोज = दे० 'जखीरेबाज'। जखीराअंदोजी दे० 'जखीरेबाजी'।

३. वह बाग का स्थान जहाँ बिक्री के लिये तरह तरह के पेड़ पौधे और बीज आदि मिलते हों।

जखीरेबाज—वि० पुं० [अ० ज़ख़ीरह् + फा० बाज (प्रत्य०)] जखीरेबाजी करनेवाला। अन्न आदि का अपसंचय करनेवाला।

जखीरेबाजी - संज्ञा स्त्री० [फ़ा० ज़ख़ीरेबाज + ई] अन्न आदि या उपयोग में आनेवाली और बिकनेवाली वस्तुओं का इस विचार से संचय करना कि जब महँगी होगी तब इसे बेचेंगे।

जखेड़ा—संज्ञा पुं० [फा० ज़ख़ीरह्, हिं० जखीरा] १. दे० 'जखीरा'। २ जमाव। यूथ। समूह। ३. दे० 'बखेड़ा'।

जखैया†—संज्ञा पुं० [सं० यक्ष, प्रा० जक्ख]। एक प्रकार का कल्पित भूत जिसके विषय में यह प्रसिद्ध है कि वह लोगों को अधिक कष्ट देता है।

जख्ख(पु)—संज्ञा पुं० [सं० यक्ष, प्रा० जक्ख] दे० 'यक्ष'।

जख्म—संज्ञा पुं० [फ़ा० ज़ख्म] दे० 'जखम'।

यौ०—जख्मखुर्दा = घायल। जख्मी। जख्मेजिगर = दिल की चोट। इश्क का घाव। प्रेम की पीड़ा।

जगंद—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जग़ंद] छलाँग। चौकड़ी। कुदान [को०]।

जग¹—संज्ञा पुं० [सं० जगत्] १. संसार। विश्व। दुनिया। उ०—तुलसी या जग आइ के सबसे मिलिए धाय। का जाने केहि भेष में नारायण मिलि जाय।—तुलसी (शब्द०)। २. संसार के लोग। जनसमुदाय। उ०—साँच कहौ तो मारन धावै, झूठे जग पतियाना।—कबीर (शब्द०)।

जग²(पु)—संज्ञा पुं० [सं० यज्ञ, प्रा० जण्ण, जग्ग] दे० 'यज्ञ'। उ०—सुन्यो इंद्र मेरो जग मेटा। यह मदमस्त नंद को बेटा।—नंद० ग्रं०, पृ० १८१।

जगकर—संज्ञा पुं० [हिं० जग + कर] दे० 'जगकर्ता'।

जगकर्ता(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० जग + कर्ता] संसार के निर्माता। ईश्वर। उ०—वे जगकर्ता सब कछु अहहीं। बेद शास्त्र सब तिन कहँ कहहीं।—कबीर सा०, पृ० ४८२।

जगकारन—संज्ञा पुं० [हिं० जग + कारन] जगत के कारणभूत। परमात्मा। उ०—जगकारन तारन भव भंजन धरनी भार।—मानस, ५।१।

जगचख(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० जग + सं० चक्षु] दे० 'जगच्चक्षु'। उ०—आदू ऊतन धाम अजोध्या जगचख वंस अंस हरि जोधा।—रा० रू०, पृ० ११।

जगचार(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० जग + चार (प्रत्य०)] लौकिक रस्म। नेग। उ०—किया ज्यों जो संमुख हो जगचार अमीर। न ले कुच की अब फिर चल्या वह फकीर।—दक्खिनी०, पृ० १३७।

जगच्चक्षु—संज्ञा पुं० [सं० जगत् + चक्षु] सूर्य।

जगजंत(पु)—संज्ञा पुं० [सं० जगत् + यन्त्र] जगतचक्र। उ०—कृपा घन आनंद अधार जगजंत है।—घनानंद, पृ० १६५।

जगजगा¹†—संज्ञा पुं० [जगमग से अनु०] पीतल आदि का बहुत पतला चमकीला तख्ता जिसके छोटे छोटे टुकड़े काटकर टिकुली और ताजिये आदि पर चिपकाए जाते हैं। पन्नी।

जगजगा²—वि० चमकीला। प्रकाशित। जो जगमगाता हो।

जगजगाना—क्रि० अ० [अनु०] चमकना। जगमगाना।

जगजननि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० जगत् + जननी] दे० 'जगज्जननी'। उ०—संग सती जगजननि भवानी।—मानस।

जगजामिनि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० जगत् + यामिनी] भवनिशा। संसाररूपी रात्रि। उ०—एहि जगजामिनी जागहि जोगी। मानस, २।९३।

जगजाहिर—वि० [हिं० जग + अ० जाहिर] व्यक्त। स्पष्ट। सर्वज्ञात। सर्वविदित। उ०—क्यों वह जगजाहिर हो।—सुनीता, पृ० ३१०।

जगजोनि(पु)—संज्ञा पुं० [सं० जगयोनि:] ब्रह्मा। उ०—सोक कनकलोचन मति छोनी। हरी विमल गुनगन जगजोनी।—मानस, २।२९६।

जगज्जननी—संज्ञा स्त्री० [सं०] जगदंबिका। जगद्धात्री। परमेश्वरी [को०]।

जगज्जयी—वि० [सं० जगत् + जयिन्] विश्वविजयी [को०]।

जगझंप—संज्ञा पुं० [सं०] चमड़े से मढ़ा हुआ एक प्रकार का बाजा जो प्राचीन काल में युद्ध में बजाया जाता था। आजकल भी कहीं कहीं विवाह तथा पूजा आदि के अवसरों पर इसका व्यवहार होता है।

जगड्वाल—संज्ञा पुं० [सं०] आडंबर। व्यर्थ का आयोजन।

जगण—संज्ञा पुं० [सं०] पिंगल शास्त्र के अनुसार तीन अक्षरों का एक गण जिसमें मध्य का अक्षर गुरु और आदि और अंत के अक्षर लघु होते हैं। जैसे,—महेश, रमेश, गणेश, हृमंत।

विशेष—दे० 'ज—१०'।

जगत्—संज्ञा पुं० [सं०] १ वायु। २. महादेव। ३. जंगम। ४. विश्व। संसार।

यौ०—जगत्कर्ता; जगत्कारण, जगत्तारण, जगत्पति, जगत्पिता, जगत्स्रष्टा = परमेश्वर। ईश्वर। जगत्परायण = विष्णु। जगत्प्रसिद्ध = विश्वप्रसिद्ध। लोक में ख्यात।

पर्या०—जगती। लोक। भुवन। विश्व।

५. गोपाचदन।

जगत[१]—संज्ञा स्त्री० [सं० जगति = घर की कुरसी] कुएँ के ऊपर चारों ओर बना हुआ चबूतरा जिसपर खड़े होकर पानी भरते हैं।

जगत[२]—संज्ञा पुं० [सं० जगत्] दे० 'जगत्'।

यौ०—जगतजनक = ईश्वर। जगतजननि = दे० 'जगज्जननी'। जगतारन = परमात्मा। जगतसेठ।

जगतसेठ—संज्ञा पुं० [सं० जगत् + श्रेष्ठ] बहुत बड़ा धनी महाजन, जिसकी साख सारे संसार मे मानी जाय।

जगती—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. संसार। भुवन। २. पृथिवी। भूमि।

यौ०—जगतीचर = मानव। मनुष्य। जगतीजानि = राजा। भूपति। जगतीपति, जगतीपाल, जगतीभर्ता = दे० 'जगतीजानि'।

३ एक वैदिक छंद जिसके प्रत्येक चरण में बारह बारह अक्षर होते हैं। ४. मनुष्य जाति। मानव जाति (को०)। ५. गऊ। गाय (को०)। ६. मकान की भूमि। गृह के निमित्त या घर से संबद्ध भूमि (को०)। ७. जामुन के वृक्ष से युक्त स्थान। वह जगह जहाँ जामुन लगा हो (को०)।

जगतीतल—संज्ञा पुं० [सं०] पृथिवी। भूमि।

जगतीधर—संज्ञा पुं० [सं०] १. बोधिसत्व। २. भूधर। पर्वत (को०)।

जगतीरुह—संज्ञा पुं० [सं०] वृक्ष। पेड़। पौधा [को०]।

जगत्कर्त्ता—संज्ञा पुं० [सं० जगत्कर्तृ] १. ईश्वर। परमेश्वर। २. धाता। विधाता। ब्रह्मा [को०]।

जगत्प्रभु—संज्ञा पुं० [सं०] १. पितामह ब्रह्मा। २. नारायण। विष्णु। ३. महेश। शंकर। शिव [को०]।

जगत्प्राण—संज्ञा पुं० [सं०] समीरण। वायु। हवा [को०]।

जगत्साक्षी—संज्ञा पुं० [सं० जगत्साक्षिन्] भानु। सूर्य।

जगत्सेतु—संज्ञा पुं० [सं०] परमेश्वर।

जगदंतक—संज्ञा पुं० [सं० जगत् + अन्तक] मृत्यु। काल।

जगदंबा जगदंबिका—संज्ञा स्त्री० [सं० जगत् + अम्बा; -अम्बिका] दुर्गा। भवानी। उ०—(क) जगदंबा जहँ अवतरी सो पुर बरनि कि जाय।—मानस, १। ४। (ख) जगदंबिका जानि भव भामा।—मानस, १। १००।

जगद—संज्ञा पुं० [सं०] पालक। रक्षक।

जगदातमा(पु)—संज्ञा पुं० [सं० जगदात्मन्] परमात्मा। परमेश्वर। उ०—जगदातमा महेस पुरारी।—मानस, १। ६४।

जगदात्मा—संज्ञा पुं० [सं० जगदात्मन्] १. परमात्मा। २. वायु [को०]।

जगदादि—संज्ञा पुं० [सं० जगदादि:] १. ब्रह्मा। २. परमेश्वर

जगदादिज—संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम [को०]।

जगदाधार—संज्ञा पुं० [सं० जगदाधार] १. परमेश्वर। २. वायु। हवा। ३. काल। समय (को०)। ४ शेषनाग। जगत् को धारण करनेवाले। उ०—(२) जय अनंत जय जगदाधारा।—मानस ६।.७६। (ख) जगदाधार शेष किमि उठई चले खिसियाइ।—मानस, ६। ५३।

जगदानंद—संज्ञा पुं० [सं० जगत् + आनन्द] परमेश्वर।

जगदायु—संज्ञा पुं० [सं० जगत् + आयु:] वायु। हवा।

जगदीश—संज्ञा पुं० [सं० जगत् + ईश] १. परमेश्वर। २. विष्णु। ३. जगन्नाथ।

जगदीश्वर—संज्ञा पुं० [सं० जगत् + ईश्वर] १. परमेश्वर। जगदीश। २. इंद्र। मघवा (को०)। ३. शिव का नाम (को०)। ४. राजा। भूपति (को०)।

जगदीश्वरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] भगवती।

जगद्गुरु—संज्ञा पुं० [सं०] १. परमेश्वर। २. शिव। ३. विष्णु (को०)। ४. ब्रह्मा (को०)। ५. नारद। ६. अत्यंत पूज्य या प्रतिष्ठित पुरुष जिसका सब लोग आदर करें। ७. शंकराचार्य की गद्दी पर के महंतों की उपाधि।

जगद्गौरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दुर्गा देवी। २. मनसा देवी का एक नाम।

विशेष—यह नागों की बहन और जरत्कारु ऋषि की पत्नी थी।

जगद्दीप—संज्ञा पुं० [सं०] १. ईश्वर। २. महादेव। शिव। ३. आदित्य। सूर्य (को०)।

जगद्धाता—संज्ञा पुं० [सं० जगद्धातृ] [स्त्री० जगद्धात्री] १. ब्रह्मा। २. विष्णु। ३. महादेव।

जगद्धात्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दुर्गा की एक मूर्ति। २. सरस्वती।

जगद्बल—संज्ञा पुं० [सं०] वायु। हवा।

जगद्बीज—संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम [को०]।

जगद्योनि[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिव। २. विष्णु। ३. ब्रह्मा। ४. परमेश्वर।

जगद्योनि[२]—संज्ञा स्त्री० पृथिवी। धरा।

जगद्बंध¹—संज्ञा पुं० [सं० जगत् + वन्द्य] श्रीकृष्ण का एक नाम [को०]।

जगद्बंध²—वि० संसार द्वारा पूजनीय या पूज्य।

जगद्रुहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथिवी।

जगद्विख्यात—वि० [सं० जगत् + विख्यात] लोकप्रसिद्ध। सर्वख्यात।

जगद्विनाश—संज्ञा पुं० [सं०] प्रलय काल।

जगन(५)—संज्ञा पुं० [सं० यजन] दे० 'यज्ञ'। उ०—जोवैजौ गृहि गृहि जगन जागवै, जगनि जगनि कीजै तप जाप।—बेलि, दू० ५०।

जगनक—संज्ञा पुं० [सं० यजनक, अथवा देश०] महोबा के राजा परमाल के दरबार का प्रसिद्ध कवि।

जगना—क्रि० अ० [सं० जागरण] १. नींद से उठना। निद्रा त्याग करना। सोने की अवस्था में न रहना।

क्रि० प्र०—उठना।—जाना।—पड़ना।

२. सचेत होना। सावधान होना। खबरदार होना। ३. देवी देवता या भूत प्रेत आदि का अधिक प्रभाव दिखाना। ४. उत्तेजित होना। उमड़ना या उभड़ना। वेग से प्रकट होना। जैसे, शरीर में काम जगना। ५. (आग का) जलना। बलना। दहकना। जैसे, आग जगना। उ०—करि उपचार थकी सबै चल उताल नंदनंद। चंदक चंदन चंद ते ज्वाल जगी चोचंद।—शृं० संत० (शब्द०)। ६. जगमगाना। चमकना। जैसे, ज्योति जगना।

जगनिवास—संज्ञा पुं० [सं० जगन्निवास] दे० 'जगन्निवास'। उ०—जगनिवास प्रभु प्रगटे अखिल लोक विश्राम।—मानस १। १९१।

जगनींदी‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० जग + नींदी] उनींदी। अर्धसुप्त। सोते जागते सी दशा। उ०—वह सोता तो रहा पर जग भी रहा था। सच पूछो, तो वह जगनींदी में पड़ा था।—सुनीता, पृ० ३०८।

जगनु—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जगन्नु' [को०]।

जगन्नाथ—संज्ञा पुं० [सं० जगत् + नाथ] जगत् का नाथ। ईश्वर। २. विष्णु। ३. विष्णु की एक प्रसिद्ध मूर्ति जो उड़ीसा के अंतर्गत पुरी नामक स्थान में स्थापित है।

विशेष—यह मूर्ति अकेली नहीं रहती, बल्कि इसके साथ सुभद्रा और बलभद्र की भी मूर्तियाँ रहती हैं। तीनों मूर्तियाँ चंदन की होती हैं। समय समय पर पुरानी मूर्तियों का विसर्जन किया जाता है और उनके स्थान पर नई मूर्तियाँ प्रतिष्ठित की जाती हैं। सर्वसाधारण इस मूर्ति बदलने को 'नवकलेवर' या 'कलेवर बदलना' कहते हैं। साधारणतः लोगों का विश्वास है कि प्रति बारहवें वर्ष जगन्नाथ जी का कलेवर बदलता है। पर पंडितों का मत है कि जब आषाढ़ में मलमास और दो पूर्णिमाएँ हों, तब कलेवर बदलता है। कूर्म, भविष्य, ब्रह्मवैवर्त, नृसिंह, अग्नि, ब्रह्म और पद्म आदि पुराणों में जगन्नाथ की मूर्ति और तीर्थ के संबंध में बहुत से कथानक और माहात्म्य दिए गए हैं। इतिहासों से पता चलता है कि सन् ३१८ ई० में जगन्नाथ जी की मूर्ति पहले पहल किसी जंगल में पाई गई थी। उसी मूर्ति को उड़ीसा के राजा ययाति-केसरी ने, जो सन् ४७४ में सिंहासन पर बैठा था, जंगल से ढूँढ़कर पुरी में स्थापित किया था। जगन्नाथ जी का वर्तमान भव्य और विशाल मंदिर गंगवंश के पाँचवें राजा भीमदेव ने सन् ११४८ से सन् ११६८ तक में बनवाया था। सन् १५६८ में प्रसिद्ध मुसलमान सेनापति काला पहाड़ ने उड़ीसा को जीतकर जगन्नाथ जी की मूर्ति आग में फेंक दी थी। जगन्नाथ और बलराम की आजकल की मूर्तियों में पैर बिलकुल नहीं होते और हाथ बिना पंजों के होते हैं। सुभद्रा की मूर्तियों में न हाथ होते हैं और न पैर। अनुमान किया जाता है कि या तो आरंभ में जंगल में ही ये मूर्तियाँ इसी रूप में मिली हों और या सन् १५६८ ई० में अग्नि में से निकाले जाने पर इस रूप में पाई गई हों। नए कलेवर में मूर्तियाँ पुराने आदर्श पर ही बनती हैं। इन मूर्तियों को अधिकांश भात और खिचड़ी का ही भोग लगता है जिसे महाप्रसाद कहते हैं। भोग लगा हुआ महाप्रसाद चारों वर्णों के लोग बिना स्पर्शास्पर्श का विचार किए ग्रहण करते हैं। महाप्रसाद का भात 'अटका' कहलाता है, जिसे यात्री लोग अपने साथ अपने निवासस्थान तक ले जाते और अपने संबंधियों में प्रासाद स्वरूप बाँटते हैं। जगन्नाथ को जगदीश भी कहते हैं।

यौ०—जगन्नाथ का अटका या भात = जगन्नाथ जी का महाप्रसाद।

४. बंगाल के दक्षिण उड़ीसा के अंतर्गत समुद्र के किनारे का प्रसिद्ध तीर्थ जो हिंदुओं के चारों धामों के अंतर्गत है।

विशेष—इसे पुरी, जगदीशपुरी, जगन्नाथपुरी, जगन्नाथ क्षेत्र और जगन्नाथ धाम भी कहते हैं। अधिकांश पुराणों में इस क्षेत्र को पुरुषोत्तम क्षेत्र कहा गया है। जगन्नाथ जी का प्रसिद्ध मंदिर यहीं है। इस क्षेत्र में जानेवाले यात्रियों में जातिभेद आदि बिलकुल नहीं रह जाता। पुरी में समय समय पर अनेक उत्सव होते हैं जिनमें से 'रथयात्रा' और 'नवकलेवर' के उत्सव बहुत प्रसिद्ध हैं। उन अवसरों पर यहाँ लाखों यात्री आते हैं। यहाँ और भी कई छोटे बड़े तीर्थ हैं।

जगन्नियंता—संज्ञा पुं० [सं० जगन्नियन्तृ] परमात्मा। ईश्वर।

जगन्निवास—संज्ञा पुं० [सं०] १. ईश्वर। परमेश्वर। २. विष्णु।

जगन्नु—संज्ञा पुं० [सं०] १. अग्नि। २. जंतु। कीट। ३. पशु। जानवर (को०)।

जगन्मय—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

जगन्मयी—संज्ञा पुं० [सं०] १. लक्ष्मी। २. समस्त संसार को चलानेवाली शक्ति।

जगन्माता—संज्ञा स्त्री० [सं० जगत् + मातृ] १. दुर्गा का एक नाम। २. लक्ष्मी [को०]।

जगन्मोहिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दुर्गा। २. महामाया।

जगपतिनीⓅ—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ यज्ञपत्नी] याज्ञिकों की वे स्त्रियाँ जो कृष्ण को भोजन देने गई थीं। उ॰—जगपतिनीन अनुग्रह दैन। बोले तब हरि करुना ऐन।—नंद॰ ग्रं॰, पृ॰ ३००।

जगप्रानⓅ—संज्ञा पुं॰ [जगत् + प्राण] वायु। समीरण। उ॰—आवत ही हेमंत तो कंपन लगो जहान। कोक कोकनद भे दुखी अहित भए जगप्रान।—दीन॰ ग्रं॰, १६५।

जगबंदⓅ—वि॰ [सं॰ जगत् + वन्द्य] जिसकी वंदना संसार करे। संसार द्वारा पूजित। जगद्वंद्य। उ॰—आपनपौ जु तज्यों जगबंद है।—केशव (शब्द॰)।

जगबीती—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ जग + बीती] जगत् की चर्चा। लौकिक वृत्त।

जगभिषकⓅ—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ जग + भिषक्] सोंठ।—अनेकार्थ॰; पृ॰ १०४।

जगमग[1]—वि॰ [अनु॰] १. प्रकाशित। जिसपर प्रकाश पड़ता हो। २. चमकीला। चमकदार। उ॰—हंसा जगमग जगमग होई।—कबीर श॰, भा॰ ३, पृ॰ ६।

जगमग[2]—संज्ञा स्त्री॰ दे॰ 'जगमगाहट'।

क्रि॰ प्र॰—करना।—होना।

जगमगनाⓅ—वि॰ [हिं॰ जगमग] जगमगानेवाला। जगमग करनेवाला। चमकनेवाला। उ॰—फूलन के खंभा दोऊ फूलन के डाड़ी चारु, फूलन की चौकी बनी हीरा जगमगना।—नंद ग्रं॰, पृ॰ ३७४।

जगमगा—वि॰ [हिं॰ जगमग] दे॰ 'जगमग'। उ॰—जगमगा चिकुर अतिहि सोहै राजै जैसे पुरसही।—कबीर सा॰, पृ॰ १०४।

जगमगाना—क्रि॰ अ॰ [अनु॰] किसी वस्तु का स्वयं अथवा किसी का प्रकाश पड़ने के कारण खूब चमकना। झलकना। दमकना। उ॰—तरनितनया तीर जगमगत ज्योतिमय पुहुमि पै प्रगट सब लोक सिरताजें।—घनानंद, पृ॰ ४६२।

जगमगाहट—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ जगमग] चमक। चमचमाहट। जगमगाने का भाव।

जगमोहन†[1]—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ जग + मोहन] मंदिर का बाहरी प्रांगण। उ॰—सो वह ब्राह्मन तो बाहिर जगमोहन में प्रभुन की आज्ञा पाय के बैठ्यो।—दो सौ बावन॰; भा॰ १, पृ॰ २६१।

जगमोहन[2]—वि॰ [सं॰ जगत् + मोहन] [वि॰ स्त्री॰ जगमोहिनी] विश्व को मुग्ध करनेवाला।

जगर—संज्ञा पुं॰ [सं॰] कवच। जिरहबकतर।

जगरनⓅ†—संज्ञा पुं॰ [सं॰ जागरण] दे॰ 'जागरण' उ॰—जगन्नाथ जगरन कै आई। पुनि दुवारिका जाइ नहाई।—जायसी (शब्द॰)।

जगरनाथ†—संज्ञा पुं॰ [सं॰ जगन्नाथ] दे॰ 'जगन्नाथ'।

जगरमगर—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] १. चकपकाहट। चकाचौंध। २. माया। दे॰ 'जगमग'। उ॰—जगरमगर को खेल कोऊ नर पावई। लोक वेद की फेर जो सबै नचावई।—गुलाल॰, पृ॰ ६६।

जगरा†—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ शर्करा] खजूर की खाँड़।

जगल—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. पिष्टी नामक सुरा। पीठी से बना हुआ मद्य। २. शराब की सीठी। कल्क। ३. मदन वृक्ष। मैनी। ४. कवच। ५. गोमय। गोबर।

जगल—वि॰ धूर्त। चालाक।

जगवाना—क्रि॰ स॰ [हिं॰ जगना] १. सोते से उठवाना। निद्रा भंग करवाना। २. किसी वस्तु को अभिमंत्रित करके उसमें कुछ प्रभाव लाना।

जगसूरⓅ—संज्ञा पुं॰ [सं॰ जगत् + सूर] राजा (क्व॰)। उ॰—बिनती कीन्ह घालि गिउ पागा। ए जगसूर! सीउ मोहिं लागा।—जायसी (शब्द॰)।

जगहँसाई†—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ जग + हँसाई] लोकनिंदा। बदनामी। कुख्याति। उ॰—बेवफाई न कर खुदा सूँ डर। जगहँसाई न कर खुदा सूँ डर।—कविता कौ॰, भा॰ ४, पृ॰ ५।

जगह—संज्ञा स्त्री॰ [फ़ा॰ जायगाह] १. वह अवकाश जिसमें कोई चीज रह सके। स्थान। स्थल। जैसे,—(क) उन्होंने मकान बनाने के लिये जगह ली है। (ख) यहाँ तिल धरने को जगह नहीं है।

क्रि॰ प्र॰—करना।—छोड़ना।—देना।—निकालना।—पाना।—बनाना।—मिलना, आदि।

मुहा॰—जगह जगह = सब स्थानों पर। सब जगह।

२. स्थिति। पद।

विशेष—कुछ लोग इस अर्थ मे 'जगह' को क्रियाविशेषण रूप में बिना विभक्ति के ही बोलते हैं। जैसे,—हम उन्हें भाई की जगह समझते हैं।

३. मौका। स्थल। अवसर। ४. पद। ओहदा। जैसे,—(क) दो महीने हुए उन्हें कलक्टरी मे जगह मिल गई। (ख) इस दफ्तर मे तुम्हारे लिये कोई जगह नहीं है।

जगहर—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ जगना] जगना। जगने की अवस्था। जगने का भाव।

जगाजोत†—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰] जगर मगर। जगमगाहट।

जगात†—संज्ञा पुं॰ [अ॰ जगात] १. वह धन आदि जो पुण्य के लिये दिया जाय। दान। खैरात। २. महसूल। कर।

जगाती†—संज्ञा पुं॰[हिं॰ जगात या फ़ा॰ जकाती] १. महसूल या कर लगानेवाला कर्मचारी। वह जो कर वसूल करे। उ॰—घर के लोग जगाती लागे छीन लेंय करधनिया।—कबीर श॰, भा॰ १, पृ॰ २२। २. कर उगाहने का काम या भाव।

जगाना—क्रि॰ स॰[हिं॰ जागना या जगना का प्रे॰ रूप] नींद त्यागने के लिये प्रेरणा करना। जैसे,—वे बहुत देर से सोए हैं, उन्हें जगाओ। २. चेत में लाना। होश दिलाना। उद्बोधन कराना। चैतन्य करना। ३. फिर से ठीक स्थिति में लाना। ४. बुझती या बहुत धीमी आग को तेज करना। सुलगाना। ५. गाँजा। आदि की अग्नि को तेज करना, जैसे, चिलम जगाना। ६.

यंत्र या सिद्धि आदि का साधन करना। जैसे,—मंत्र जगाना। भूत प्रेत जगाना।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।—रखना।—लेना।

जगामग—वि० [अनु०] दे० 'जगमग'। उ०—चमकत नूर जहूर जगामग ढाके सकल सरीर। —मीरा० श०, पृ० २४।

जगार—संज्ञा स्त्री० [हिं० जग+आर (प्रत्य०)] जागरण। जागृति। उ०—नैना ओछे चोर सखी री। श्याम रूप निधि नेके पाई देखन गए भरी री। कहा लेहि, कहु तजै, विवश भय तैसी करनि करी री। भोर भए मोरे सो ह्वं गयो घरे जगार परी री।—सूर (शब्द०)।

जगी—संज्ञा स्त्री० [देश०] मोर की जाति का एक पक्षी। जवाहिर नाम का पक्षी।

विशेष—यह शिमले के आसपास के पहाड़ों में मिलता है और प्राय: दो हाथ लंबा होता है। नर के सिर पर लाल कलगी होती है और मादा के सिर पर गुलाबी रंग की गाँठें होती हैं। नर का सिर काला, गला लाल और पीठ गुलाबी रंग की होती है और उसके पखों पर गुलाबी धारियाँ होती हैं। उसकी दुम लंबी और काली होती है और छाती तथा पेट के नीचे के पर भी काले होते हैं जिनपर ललाई की झलक होती है और एक छोटी सफेद बिंदी भी होती है। मादा का रंग कुछ मैला और पीलापन लिए होता है। यह पक्षी दस दस बारह बारह के झुंड में रहता है। जाड़े के दिनों में यह गरम देशों में आकर रहता है। इसकी बोली बकरी के बच्चे की तरह होती है और यह उड़ते समय चीत्कार करता है। इसका चीत्कार बहुत दूर तक सुनाई पड़ता है। अँगरेज लोग इसका शिकार करते हैं। इसे जवाहिर भी कहते हैं।

जगीर†—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जागीर] दे० 'जागीर'। उ०—फाका • जिकर किनात ये तीनों बात जगीर। —पलटू०, भा०१, पृ० १४।

जगीसⓅ—संज्ञा पुं० [हिं० जग+ईस] दे० 'जगदीश'। उ०—मिले सब पित्र सु दीन असीस। भए सुप्र निरभय पित्र जगीस। रासो, पृ० ८।

जगीला†—वि० [हिं० जागना] जागने के कारण अलसाया हुआ। उनींदा। उ०—दुरति दुराए ते न रति, बलि कुंकुम उर मैन। प्रगट कहै पति रतजगे जगी जगीले नैन।—शृं० सत० (शब्द०)।

जगुरि—संज्ञा पुं० [सं०] जंगम।

जगैया†—वि० [हिं० जागना] १. जगानेवाला। प्रबुद्ध करनेवाला। २. जागनेवाला।

जगोटा†—संज्ञा पुं० [हिं० जोग+बाट] योग का मार्ग। जोगियों का पंथ। उ०—कवन जगोटा कवन अधारी।—प्राण०, पृ० ७६।

जगौहाँⓅ†—वि० [हिं० जागना] दे० 'जगीला'।

जग्गⓅ†[1]—संज्ञा पुं० [सं० यज्ञ, प्रा० जग्ग] दे० 'यज्ञ'। उ०—आयो सु गंग तट काज जग्ग।—पृ० रा०,१। ५७५।

जग्ग[2]Ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० जगत्] संसार।

जग्ध[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. भोजन। आहार। खाना। २. वह स्थान जहाँ भोजन किया गया हो [को०]।

जग्ध[2]—वि० खाया हुआ। भुक्त। भक्षित [को०]।

जग्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. खाने की क्रिया। भोजन। २. कई आदमियों का साथ मिलकर खाना। सहभोजन।

जग्मि[1]—संज्ञा पुं० [सं०] वायु। हवा।

जग्मि[2]—वि० जो चलता हो। जो गति में हो।

जग्य[1]Ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० यज्ञ] दे० 'यज्ञ'। उ०—पिता जग्य सुनि कछु हरषानी। —मानस, १।६१।

यौ०—जग्यउपवीत = यज्ञोपवीत।

जग्योपवीतⓅ—संज्ञा पुं० [सं० यज्ञोपवीत] दे० 'यज्ञोपवीत। कमलासन आसनह मंहि जग्योपवीत जुरि।—पृ० रा०, १। २५५।

जघन—संज्ञा पुं० [सं०] १. कटि के नीचे आगे का भाग। पेड़ू। २. नितंब। चूतड़। उ०—सरस बिपुल मम जघनन पर कल किंकिनि कलश सजाबो।—हरिश्चंद्र (शब्द०)। ३. सेना का पिछला भाग। उपयोगार्थ संरक्षित सैन्यदल (को०)।

यौ०—जघनकूप = दे० 'जघनकूपक'। जघनगौरव। जघनचपला।

जघनकूपक—संज्ञा पुं० [सं०] चूतड़ पर का गड्ढा।

जघनगौरव—संज्ञा पुं० [सं०] नितंब की गुरुता। नितंबभार [को०]।

जघनचपला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कामुकी स्त्री। २. कुलटा। ३. आर्या छंद के सोलह भेदों में से एक। वह मात्रावृत्त जिसका प्रथमार्ध आर्या छंद के प्रथमार्ध का सा और द्वितीयार्ध चपला छंद के द्वितीयार्ध का सा हो।

जघनी—वि० [सं० जघनिन्] बड़े नितंबों से युक्त [को०]।

जघनेला—संज्ञा स्त्री० [सं०] कठूमर।

जघन्य[1]—वि० [सं०] १. अंतिम। चरम। २. गर्हित। त्याज्य। अत्यंत बुरा। ३. क्षुद्र। नीच। निकृष्ट। ४. निम्न कुलोत्पन्न। नीच कुल का (को०)।

जघन्य[2]—संज्ञा पुं० १. शूद्र। २. नीच जाति। हीन वर्ण। ३. पीठ का वह भाग जो पुट्ठे के पास होता है। ४. राजाओं के पाँच प्रकार के संकीर्ण अनुचरों में से एक।

विशेष—बृहत्संहिता के अनुसार ऐसा आदमी धनी, मोटी बुद्धि का, हँसोड़ और क्रूर होता है और उसमें कुछ कवित्व शक्ति भी होती है। ऐसे मनुष्य के कान अर्धचंद्राकार, शरीर के जोड़ अधिक दृढ़ और उँगलियाँ मोटी होती हैं। इसकी छाती, हाथों और पैरों में तलवार और खाँड़े आदि के से चिह्न होते हैं।

५. दे० जघन्यभ। ६. लिंग। शिश्न (को०)।

जघन्यज—संज्ञा पुं०[सं०]१. शूद्र। २. अंत्यज। ३. छोटा भाई (को०)।

जघन्यता—संज्ञा स्त्री० [सं० जघन्य+ता (प्रत्य०)] क्रूरता।

क्षुद्रता। नीचता। उ०—अपने कुरूप मंदबुद्धि बालक के स्थान और स्वत्व को दूसरे के बालक को दे देना कैसी कुछ विचित्र मूर्खता और जघन्यता है।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २६६।

जघन्यभ—संज्ञा पुं० [सं०] आर्द्रा, अश्लेषा, स्वाति, ज्येष्ठा, भरणी और शतभिषा ये छह नक्षत्र।

जघ्नि—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो वध करता हो। २. वह अस्त्र जिससे वध किया जाय।

जघ्नु—वि० [सं०] निहंता। प्रहारक। वधकारी (को०)।

जघ्रि—वि० [सं०] १. सूँघनेवाला। २. अनुमानयुक्त (को०)।

जचगी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जचगी] प्रसव की अवस्था। प्रसूतावस्था (को०)।

जचना—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'जँचना'।

जचा—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जच्चह्] दे० 'जच्चा'।

जच्चा—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जच्चह्] प्रसूता स्त्री। वह स्त्री जिसे तुरंत संतान हुई हो।

विशेष—प्रसव के बाद चालीस दिनों तक स्त्रियाँ जच्चा कहलाती हैं।

यौ०—जच्चाखाना = सूतिकागृह। सौरी। जच्चा बच्चा = प्रसूता और प्रसूत संतति। जच्चागरी, जच्चागीरी = धात्री कर्म। बच्चा पैदा कराने का काम। कौमारभृत्य।

जच्छ‡—संज्ञा पुं० [सं० यक्ष, प्रा० जक्ख, जच्छ] दे० 'यक्ष'। उ०—देखि बिकट भट बड़ि कटकाई। जच्छ जीव लै गए पराई।—मानस, १।१७६।

यौ०—जच्छपति। जच्छराज। जच्छेश।

जच्छपति(पु)—संज्ञा पुं० [सं० यक्षपति] यक्षों के स्वामी। कुबेर। उ०—अब तहँ रहहिं सक्र के प्रेरे। रच्छक कोटि जच्छपति केरे।—मानस, १।१७६।

जज[1]—संज्ञा पुं० [अं०] १. न्यायाधीश। विचारपति। न्याय करनेवाला। २. दीवानी और फौजदारी के मुकदमों का फैसला करनेवाला बड़ा हाकिम।

विशेष—भारतवर्ष में प्रायः एक या अधिक जिलों के लिये एक जज होता है, जो डिस्ट्रिक्ट जज (जिला जज) कहलाता है। जिले के अंदर अंतिम अपील जज के यहाँ ही होती है।

यौ०—दौरा या सेशंस (सेशन) जज = वह जज जो कई जिलों में घूम घूमकर कुछ विशेष बड़े मुकदमों का फैसला कुछ विशिष्ट अवसरों पर करें। सबजज = दे० 'सदराला'। सिविल जज = दीवानी की छोटी अदालत का हाकिम।

जज[2]—संज्ञा पुं० [सं०] योद्धा।

जजन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० यजन, प्रा० जजन] यज्ञ कार्य। यज्ञ करना। उ०—तीरथ व्रत आदि देवा पूजन जजन। सत नाम जाने बिना नर्क परन।—भीखा० श०, पृ० २२।

जजना(पु)—क्रि० स० [सं० यजन] सम्मान करना। आदर करना। पूजा करना। उ०—कलि पूजैं पाखंड कों जजैं न श्रुति आचार। मागध नट विट दान दें तथा न द्विज कर प्यार।—दीन० ग्रं०, पृ० ७६।

जजबात—संज्ञा पुं० [अं० जज्बह् का बहुव० जज्बात] भावनाएँ। विचार। उ०—लेकिन जब आप लोग अपने हकों के सामने हमारे जजबात की परवाह नहीं करते तो...।—काया०, पृ० ४२।

जजमनिका—संज्ञा स्त्री० [हिं० जजमान] पुरोहिती। उपरोहिती। यजमानी।

जजमान—संज्ञा पुं० [सं० यजमान] दे० 'यजमान'।

जजमानी—संज्ञा स्त्री० [हिं० जजमान + ई (प्रत्य०)] दे० 'यजमानी'।

जजमेंट—संज्ञा पुं० [अं०] फैसला। निर्णय। जैसे,—मामले की सुनवाई हो चुकी, अभी जजमेंट नहीं सुनाया गया।

जजा—संज्ञा स्त्री० [अ०] प्रतिकार। बदला। प्रतिफल। परिणाम उ०—किते दिन गुजर गए वले इस बजा। न पाया बुतों से उनें कुच जजा।—दक्खिनी०, पृ० २६५।

जजात(पु)—संज्ञा पुं० [सं० ययाति] दे० 'ययाति'। उ०—बलि वेणु अंबरीष मानधाता प्रहलाद कहिये कहाँ लौ कथा रावण जजात की।—राम० धर्म०, पृ० ६४।

जजाल(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० जजाल] एक प्रकार की बंदूक। दे० 'जंजाल'-४। उ०—कितेक लंबग्रीव चढ़ि लै जजाल दग्गई।—सुजान०, पृ० ३०।

जजिमान—संज्ञा पुं० [सं० यजमान] दे० 'यजमान'।

जजिया—संज्ञा पुं० [अ० जिज्यह्] १. दंड। २. एक प्रकार का कर जो मुसलमानी राज्यकाल में अन्य धर्मवालों पर लगता था।

जजी—संज्ञा स्त्री० [हिं० जज + ई (प्रत्य०)] १. जज की कचहरी। जज की अदालत। २. जज का काम। जज का पद या ओहदा।

जजीरा—संज्ञा पुं० [अ० जजीरह्] टापू। द्वीप।

यौ०—जजीरानुमा = जमीन का वह भाग जो तीन ओर पानी से घिरा हो।

जजु(पु)—संज्ञा पुं० [सं० यजुष्, प्रा० जउ, जजु] दे० 'यजुर्वेद'। उ०—चतुर बेद मति सब ओहि पाहाँ। रिग जजु साम अथर्बन माहाँ।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १६१।

जजुर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० यजुष] दे० 'यजुर्वेद'। उ० जजुर कहै सरगुन परमेसर, दस औतार धराया।—कबीर० श०, भा० १, पृ० ५४।

जज्ज†—संज्ञा पुं० [अं० जज] दे० 'जज'। उ०—फूलि न जो तू लै गयो राजा बाबू आमला जज्ज।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ५५१।

जज्ब—संज्ञा पुं० [अ० जज्ब] १. आकर्षण। खिंचाव। २. नेस्ती। ३. सोखना। आत्मसात् करना (को०)।

जज्बा—संज्ञा पुं० [अ० जज्बह्] भावना। भाव। मनोवृत्ति। उ०—उ०—जोश और जज्बा का झंझा, औ तूफान किसी ने फूँके।—बंगाल०, पृ० ४४।

यौ०—जज्बए इश्क = प्रेम का आकर्षण। जज्बए दिल = हृदय की भावना या आकर्षण।

जज्बाती—वि० [अ० जज्बाती] भावना में बहनेवाला। भावुक (को०)।

जझकनाⓅ—क्रि० अ० [अनु०] बिचकना। उझकना। चौंकना। उ०—जझकत झझकत लाल तरंगहि।—माधवानल०, पृ० १९४।

जझरा†—संज्ञा पुं० [हिं० झरना] लोहे की चद्दर का तिकोना टुकड़ा जो उसमें से तवे काटने के बाद बच रहता है।

जज्ञⓅ†—संज्ञा पुं० [सं० यज्ञ] दे० 'यज्ञ'। उ०—केन वारि समुझाने भँवर न काटे बेघ। कहँ मरो तै चितउर जज्ञ करो असुमेध।—जायसी (शब्द०)।

जज्ञासⓅ—वि० [सं० जिज्ञासु] दे० 'जिज्ञासु'। उ०—जो कोई जज्ञास है, सदगुरु सरणैं जाइ। सुंदर ताहि कृपा करै ज्ञान कहै समुझाइ।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ८१५।

जट[१]—संज्ञा पुं० [देश० या हिं० झाड] एक प्रकार का गोदना जो झाड़ी के आकार का होता है।

जट[२]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'जाट'।

जटⓅ[३]—संज्ञा स्त्री० [सं० जटा] दे० 'जटा'। उ०—मैं बड़ मैं बड़ मैं बड़ माँटी। मण दसना जट का दस गाँठी।—कबीर ग्रं०, पृ० १७६।

यौ०—जटजूट=जटाजूट। उ०—कोदंड कठिन चढाइ सिर जटजूट बाँधत सोह क्यों।—मानस, ३।१२।

जटना[१]—क्रि० स० [हिं० जाट] धोखा देकर कुछ लेना। ठगना।

संयो० क्रि०—जाना।—लेना।

जटनाⓅ[२]—क्रि० स० [सं० जटन] जड़ना। ठोंककर लगाना। उ०—पाट जटी अति श्वेत सो हीरन की अवली।—केशव (शब्द०)।

जटल—संज्ञा स्त्री० [सं० जटिल] व्यर्थ और झूठ मूठ की बात। गप। बकवाद। उ०—अपना बहुत समय······इधर उधर की जटल हाँकने में खो देते हैं।—शिक्षागुरु (शब्द०)।

क्रि० प्र०—मारना।—हाँकना।

यौ०—जटल काफिया=गपशप। बेतुकी बात। ऊटपटाँग बात। जटलबाज=बकवादी। गप हाँकनेवाला।

जटल्ली†—वि० [हिं० जटल] गप्पी। जटलबाज।

जटवाⓅ†—संज्ञा स्त्री० [सं० जटा] दे० 'जटा'। उ०—कनवा फड़ाय जोगी जटवा बढ़ौले।—कबीर० श०, भा० २, पृ० १५।

जटा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक में उलझे हुए सिर के बहुत बड़े बड़े बाल, जैसे प्रायः साधुओं के होते हैं।

पर्या०—जटा। जटि। जटी। जूट। शट। कोटीर। हस्त।

२. जड़ के पतले पतले सूत। झकरा। ३. एक में उलझे हुए बहुत से रेशे आदि। जैसे, नारियल की जटा, बरगद की जटा। ४. शाखा। ५. जटामाँसी। ६. जूट। पाट। ७. कौंछ। केवाँच। ८. शतावर। ९. रुद्रजटा। बालछड़। १०. वेदपाठ का एक भेद जिसमें मंत्र के दो या तीन पदों को क्रमानुसार पूर्व और उत्तरपद को पृथक् पृथक् फिर मिलाकर दो बार पढ़ते हैं।

जटाऊⓅ—संज्ञा पुं० [सं० जटायु] दे० 'जटायु'। उ०—आगे मारग रोक जटाऊ। मार गयो तिहि रावण राऊ।—कबीर सा०, पृ० ४०।

जटाचीर—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव। शिव।

जटाजिनी—संज्ञा पुं० [सं० जटाजिनिन्] जटा और मृगचर्म धारण करनेवाला।

जटाजूट—संज्ञा पुं० [सं०] १. जटा का समूह। बहुत से लंबे बढ़े हुए बालों का समूह। उ०—जटाजूट दृढ़ बाँधे माथे।—मानस, ६।८५। २. शिव की जटा।

जटाज्वाल—संज्ञा पुं० [सं०] दीप। चिराग (को०)।

जटाटंक—संज्ञा पुं० [सं० जटाटङ्क] शिव। महादेव।

जटाटीर—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव।

जटाधर—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिव। २. एक बुद्ध का नाम। ३. दक्षिण के एक देश का नाम जिसका वर्णन बृहत्संहिता में आया है। ४. जटाधारी। ५. संस्कृत के एक कोशकार का नाम (को०)।

जटाधारी[१]—वि० [सं० जटाधारिन्] जो जटा रखे हो। जिसके जटा हो। जटावाला।

जटाधारी[२]—संज्ञा पुं० १. शिव। महादेव। २. मरसे की जाति का एक पौधा जिसके ऊपर कलगी के आकार के लहरदार लाल फूल लगते हैं। मुर्गकेश। ३. साधु। बैरागी।

जटाना[१]—क्रि० स० [हिं० जटना] जटने का प्रेरणार्थक रूप।

जटाना[२]—क्रि० अ० [हिं० जटना] धोखे में आकर अपनी हानि कर बैठना। ठगा जाना।

जटापटल—संज्ञा पुं० [सं०] वेदपाठ करने का एक बहुत जटिल प्रकार या क्रम। कहते हैं, यह क्रम हयग्रीव ने निकाला था।

जटामंडल—संज्ञा पुं० [सं० जटामण्डल] जटाजूट। जूड़ा। जटापिंड (को०)।

जटामाली—संज्ञा पुं० [सं० जटामालिन्] महादेव। शिव।

जटामांसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'जटामासी'।

जटामासी—संज्ञा स्त्री० [सं० जटामांसी] एक सुगंधित पदार्थ जो एक वनस्पति की जड़ है। बालछड़। बालूचर।

विशेष—यह वनस्पति हिमालय में १७००० फुट तक की ऊँचाई पर होती है। इसकी डालियाँ एक हाथ से डेढ़ दो हाथ तक लंबी और सींके की तरह होती हैं जिनमें आमने सामने डेढ़ दो अंगुल लंबी और आधे से एक अंगुल तक चौड़ी पत्तियाँ होती हैं। इसके लिये पथरीली भूमि, जहाँ पानी पड़ा करता हो या सर्दी बनी रहती हो, अधिक उत्तम है। इसमें छोटी उँगली के बराबर मोटी काली भूरी पत्तियाँ होती हैं जिनपर तामड़े रंग के बाल या रेशे होते हैं। इसकी गंध तेज और मीठी तथा स्वाद कड़ुआ होता है। वैद्यक में जटामासी बलकारक, उत्तेजक, विषघ्न तथा उन्माद और कास, श्वास आदि को दूर करनेवाली मानी गई है। लोगों का कथन है कि इसे लगाने से बाल बढ़ते और काले होते हैं। खींचने से इसमें से एक प्रकार का तेल भी निकलता है जो औषध और

सुगंध के काम आता है। २८ सेर जटामासी में से डेढ़ छटाँक के लगभग तेल निकलता है। इसे बालछड़, बालूचर आदि भी कहते हैं।

जटायु—संज्ञा पुं० [सं०] रामायण का एक प्रसिद्ध गिद्ध।

विशेष—यह सूर्य के सारथी अरुण का पुत्र था जो उसकी श्येनी नाम्नी स्त्री से उत्पन्न हुआ था। यह दशरथ का मित्र था और रावण से, जब वह सीता को हरण कर लिए जाता था, लड़ा था। इस लड़ाई में यह घायल हो गया था। रामचंद्र के आने पर इसने रावण के सीता को हर ले जाने का समाचार उनसे कहा था। उसी समय इसके प्राण भी निकल गए थे। रामचंद्र ने स्वयं इसकी अंत्येष्टि क्रिया की थी। संपाति इसका भाई था।

२. गुग्गुल।

जटाल[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. बटवृक्ष। बरगद। २. कचूर। ३. मुष्कक। मोखा। ४. गुग्गुल।

जटाल[2]—वि० जटाधारी। जो जटा रखे हो।

जटाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] जटामासी।

जटाव[1]—संज्ञा स्त्री० [देश०] काली मिट्टी जिससे कुम्हार घड़े आदि बनाते हैं। कुम्हरौटी।

जटाव†[2]—संज्ञा पुं० [हिं० जटना] जट जाने या जटने की क्रिया।

जटावती—संज्ञा स्त्री० [सं०] जटामासी।

जटावल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. रुद्रजटा। शंकरजटा। २. एक प्रकार की जटामासी जिसे गंधमासी भी कहते हैं।

जटासुर—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रसिद्ध राक्षस।

विशेष—यह द्रौपदी के रूप पर मोहित होकर ब्राह्मण के वेश में पांडवों के साथ मिल गया था। एक बार इसने भीम की अनुपस्थिति में द्रौपदी, युधिष्ठिर, नकुल और सहदेव को हरण कर ले जाना चाहा था, पर मार्ग में ही भीम ने इसे मार डाला था।

२. बृहत्संहिता के अनुसार एक देश का नाम।

जटि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. प्लक्ष वृक्ष। पाकर का पेड़। २. बरगद का पेड़। ३. जटा। ४. समूह। ५. जटामासी।

जटित—वि० [सं०] जड़ा हुआ। जैसे, रत्नजटित।

जटियल—वि० [हिं० जटल] १. निकम्मा। रद्दी। २. नकली। दिखावटी। ३. जटनेवाला।

जटिल[1]—वि० [सं०] १. जटावाला। जटाधारी। २. अत्यंत कठिन। जटा के उलझे हुए बालों की तरह जिसका सुलझना बहुत कठिन हो। दुरूह। दुर्बोध। ३. क्रूर। दुष्ट। हिंसक।

जटिल[2]—संज्ञा पुं० १. सिंह। २. ब्रह्मचारी। ३. जटामासी। ४. शिव।

विशेष—जिस समय शिव के लिये पार्वती हिमालय पर तपस्या कर रही थीं, उस समय शिव जी जटिल वेश धारण करके उनके पास गए थे। उसी के कारण उनका यह नाम पड़ा।

५. बकरा (को०)। ६. साधु (को०)।

जटिलक—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्राचीन ऋषि का नाम। २. इस ऋषि के वंशज।

जटिलता—संज्ञा स्त्री० [सं० जटिल+ता (प्रत्य०)] कठिनाई। उलझन। पेचीदगी।

जटिला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. ब्रह्मचारिणी। २. जटामासी। ३. पिप्पली। पीपल। ४. वचा। बच। ५. दौना। दमनक। ६. महाभारत के अनुसार गौतम वंश की एक ऋषिकन्या का नाम जिसका विवाह सात ऋषिपुत्रों से हुआ था। यह बड़ी धर्मपरायण थी।

जटी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पाकर। २. जटामासी। दे० 'जटि'।

जटी[2]—संज्ञा पुं० [सं० जटिन्] १. शिव। २. प्लक्ष या वट का वृक्ष। ३. वह हाथी जो साठ वर्ष का हो [को०]।

जटी[3]—[सं० जटिन्] [वि० स्त्री० जटिनी] जटाधारी उ०—विमल जटी, तपसी भए मुनि मन गति भूली।—छीत०, पु० २०।

जटी(५)—वि० [सं० जटित] दे० 'जटित'।—उ०—जो पै नहिं होती ससिमुखी मृगनैनी केहरि कटी, छवि जटी छटा की सी छटी रस लपटी छूटी छटी—ब्रज० ग्रं०, पु० ६३।

जटुल—संज्ञा पुं० [सं०] शरीर के चमड़े पर का एक विशेष प्रकार का दाग या धब्बा जो जन्म से ही होता है। लोग इसे लच्छन या लक्षण कहते हैं।

जटुली†(५)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] बच्चों के केश। उ०—धूलि धूसर जटा जटुली हरि लियो हर भेष।—पोद्दार अभि० ग्रं० पु० २५२।

जट्टा†—संज्ञा पुं० [हिं० जाट] जाट जाति।

जट्टी—संज्ञा स्त्री० [देश०] जली तंबाकू। उ०—एक ही फूँक में चिलम की जट्टी तक चूस जाते।—प्रेमघन०, भा०२, पु० ८४।

जट्टू†—वि० [हिं० जटना] ठगनेवाला। गैरवाजिब मूल्य लेनेवाला।

जठर[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. पेट। कुक्षि।

यौ०—जठरगद। जठरज्वाल = भूख। जठरज्वाला। जठरयंत्रणा, जठरयातना = गर्भवास का कष्ट। जठराग्नि। जठरानल।

२. भागवत पुराणानुसार एक पर्वत का नाम।

विशेष—यह मेरु के पूर्व उन्नीस हजार योजन लंबा है और नील पर्वत से निषध गिरि तक चला गया है। यह दो हजार योजन चौड़ा और इतना ही ऊँचा है।

३. एक देश का नाम।

विशेष—बृहत्संहिता के मत से यह देश श्लेषा, मघा और पूर्वाफाल्गुनी के अधिकार में है। महाभारत में इसे कुक्कुर देश के पास लिखा है।

४. सुश्रुत के अनुसार एक उदर रोग।

विशेष—इस उदर रोग में पेट फूल जाता है। इसमें रोगी बलहीन और वर्णहीन हो जाता है तथा उसे भोजन से अरुचि हो जाती है।

५. शरीर। देह। ६. मरकत मणि का एक दोष।

विशेष—कहते हैं कि इस दोषयुक्त मरकत के रखने से मनुष्य दरिद्र हो जाता है।

जठर[३]—वि० १. वृद्ध। बूढ़ा। २. कठिन। ३. बँधा हुआ (को०)।

जठरगद—संज्ञा पुं० [सं०] आँत की व्याधि [को०]।

जठरज्वाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] क्षुधाग्नि। बुभुक्षा। भूख। २. उदर की पीड़ा। उदरशूल [को०]।

जठरनुत्—संज्ञा पुं० [सं०] अमलतास।

जठरा‡—वि० [हिं० जेठ या जठर][वि० स्त्री० जेठरी] जेठा। बड़ा।

जठरागि⑤—संज्ञा स्त्री० [सं० जठराग्नि] दे० 'जठराग्नि'।

जठराग्नि—संज्ञा स्त्री० [सं०] पेट की वह गरमी या अग्नि जिसमें अन्न पचता है।

विशेष—पित्त की कमी बेशी से जठराग्नि चार प्रकार की मानी गई है, मंदाग्नि, विषमाग्नि, तीक्ष्णाग्नि, और समाग्नि।

जठरानल—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'जठराग्नि'।

जठरामय—संज्ञा पुं० [सं०] १. अतिसार रोग। २. जलोदर रोग।

जठल—संज्ञा पुं० [सं०] वैदिक काल का एक प्रकार का जलपात्र जिसका आकार उदर का सा होता था।

जठाणी⑤—संज्ञा स्त्री० [हिं० जेठानी] दे० 'जेठानी'। उ०—देखि जठाणी, लागो छह जेठ।—बी० रासो, पृ० ६६।

जठागनि⑤—संज्ञा स्त्री० [सं० जठराग्नि] दे० 'जठराग्नि'। उ०—कह खाय सिराय पचाय जठागनि दाय सहाय सवाय मरै।—राम० धर्म०, पृ० १०५।

जठोड़ी—वि० [हिं० जूठा+ओड़ी (प्रत्य०)] जूठा कर देनेवाला। जूठा करनेवाले स्वभाव का। (भ्रमर)। उ०—चंचरीक चेटुवा को लागो है चरन, चुभि अग्रभाग तम्र मृदु मंजुल जठोड़ी को।—पजनेस०, पृ० २१।

जठेरा—वि० [हिं० जेठ या जठर] [स्त्री० जठेरी] जेठा। बड़ा। उ०—विप्रबधू कुलमान्य जठेरी।—मानस, २।४६।

जड—वि०, संज्ञा पुं० [सं०] दे० जड़ [को०]।

जडक्रिय—वि० [सं०] सुस्त। दीर्घसूत्री।

जडुल—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जडूल' [को०]।

जडूला†—संज्ञा पुं० [देश०] मारवाड़ में बच्चे के मुंडन संस्कार को जडूला कहते हैं।—उ०—दादू ही को सब शुभ और अशुभ कार्यों (विवाह, जन्म, जडूला) में मानते हैं और स्मरण करते हैं।— सुंदर ग्रं० (जी०), भा० १ पृ० ८।

जड्ड⑤—वि० [सं० जड] दे० 'जड़'। उ०—बाहर चेतन की रहन, भीतर जड्ड अचेत।—दरिया० बानी, पृ० ३४।

जड्डा⑤—संज्ञा स्त्री० [सं० जटा] दे० 'सटा'। उ०—न तिख्खा गिर बज्र कै पुंछन तिष्षारे। कंध सु जड्डा केहरी नेना ज्यों तारे।—पृ० रा०, २४। १४६।

जड़[१]—वि० [सं० जड] १. जिसमें चेतनता न हो। अचेतन। २. जिसकी इंद्रियों की शक्ति मारी गई हो। चेष्टाहीन। स्तब्ध ३. मंदबुद्धि। नासमझ। मूर्ख। ४. सरदी का मारा या ठिठुरा हुआ। ५. शीतल। ठंढा। ६. गूँगा। मूक। ७. जिसे सुनाई न दे। बहरा। ८. अनजान। अनभिज्ञ। ९. जिसके मन में मोह हो। जो वेद पढ़ने में असमर्थ हो (दायभाग)।

जड़[२]—संज्ञा पुं० [सं० जडम्] १. जल। पानी। २. बरफ। ३. सीसा नाम की धातु। ४. कोई भी अचेतन पदार्थ (को०)।

जड़[३]—संज्ञा स्त्री० [सं० जटा (=वृक्ष की जड़)] वृक्षों और पौधों आदि का वह भाग जो जमीन के अंदर दबा रहता है और जिसके द्वारा उनका पोषण होता है। मूल। सोर।

विशेष—जड़ के मुख्य दो भेद हैं। एक मूसल या डंडे के आकार की होती है और जमीन के अंदर सीधी नीचे की ओर जाती है; और दूसरी झकरा जिसके रेशे जमीन के अंदर बहुत नीचे नहीं जाते और थोड़ी ही गहराई में चारो तरफ फैलते हैं। सिंचाई का पानी और खाद आदि जड़ के द्वारा ही वृक्षों और पौधों तक पहुँचती है।

यौ०—जड़मूल।

वह जिसके ऊपर कोई चीज स्थित हो। नींव। बुनियाद।

मुहा०—जड़ उखाड़ना, काटना या खोदना = किसी प्रकार की हानि पहुँचाकर या बुराई करके समूल नाश करना। ऐसा नष्ट करना जिसमें वह फिर अपनी पूर्वस्थिति तक न पहुँच सके। जड़ जमना = दृढ़ या स्थायी होना। जड़ पकड़ना जमना। दृढ़ होना। मजबूत होना। जड़ पड़ना = नींव पड़ना बुनियाद पड़ना। शुरू होना। जड़ बुनियाद से, जड़मूल से = आमूलतः। समूल। जड़ में पानी देना या भरना = दे० 'जड़ उखाड़ना'। जड़ में मट्ठा डालना = सर्वनाश का प्रयोग करना। जड़ सींचना = आधार को पुष्ट करना।

३. हेतु। कारण। सबब। जैसे,—यही तो सारे झगड़ों की जड़ है। ४. वह जिसपर कोई चीज अवलंबित हो। आधार।

जड़आमला—संज्ञा पुं० [हिं० जड़+आमला] भुइँ आँवला।

जड़क्रिया—वि० [सं० जडक्रिय] जिसे कोई काम करने में बहुत देर लगे। सुस्त। दीर्घसूत्री।

जड़काला—संज्ञा पुं० [हिं० जाड़ा+सं० काल] सर्दी के दिन। जाड़े का समय। उ०—लागेउ माघ परै अब पाला। बिरहा काल भएउ जड़काला।—जायसी ग्रं०, पृ० १५४।

जड़जगत—संज्ञा पुं० [सं० जड़ + जगत्] अचेतन पदार्थ। जड़प्रकृति।

जड़ता—संज्ञा स्त्री० [सं० जड का भाव, जडता] १. अचेतनता। २. मूर्खता। बेवकूफी। ३. साहित्यदर्पण के अनुसार एक संचारी भाव।

विशेष—यह संचारी भाव किसी घटना के होने पर चित्त के विवेकशून्य होने की दशा में होता है। यह भाव प्रायः घबराहट, दुःख, भय या मोह आदि में उत्पन्न होता है।

४ स्तब्धता। अचलता। चेष्टा न करने का भाव। उ०—निज जड़ता लोगन पर डारी। होहु हरुअ रघुपतिहि निहारी।—तुलसी (शब्द०)

जड़ताई—संज्ञा स्त्री० [सं० जड़ + (वै०) ताति (प्रत्य०) अथवा हिं०] दे० 'जड़ता'। उ०—हरु बिधि बेगि जनक जड़ताई। —मानस, १।२४९।

जड़त्व—संज्ञा पुं० [सं० जडत्व] १. चेतनता का विपरीत भाव। अचेतन पदार्थों का वह गुण जिससे वे जहाँ के तहाँ पड़े रहते हैं और स्वयं हिल डोल या किसी प्रकार की चेष्टा आदि नहीं कर सकते। २. स्थिति और गति की इच्छा का अभाव। वैशेषिक के अनुसार परमाणुओं का एक गुण।

जड़ना—क्रि० स० [सं० जटन] [संज्ञा जड़िया, जड़ाई, वि० जड़ाऊ] १. एक चीज को दूसरी चीज में पच्ची करके बैठाना। पच्ची करना। जैसे, अँगूठी में नग जड़ना। २. एक चीज को दूसरी चीज में ठीक कर बैठाना। जैसे, कील जड़ना, नाल जड़ना।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।—रखना।

३. किसी वस्तु से प्रहार करना। जैसे, धौल जड़ना, थप्पड़ जड़ना। ४. चुगली या शिकायत के रूप में किसी के विरुद्ध किसी से कुछ कहना। कान भरना। जैसे,—किसी ने पहले ही उनसे जड़ दिया था, इसीलिये वे यहाँ नहीं आए।

संयो० क्रि०—देना। उ०—और बन्नो की सुनिए कि झट जा के बेगम साहब से जड़ दी कि हुजूर, अब जरी गफलत न करें। सैर कु०, पृ० २६।

जड़पदार्थ—संज्ञा पुं० [सं० जड + पदार्थ] भौतिक द्रव्य। अचेतन पदार्थ।

जड़प्रकृति—संज्ञा स्त्री० [सं० जड + प्रकृति] दे० 'जड़जगत'।

जड़भरत—संज्ञा पुं० [सं० जडभरत] अंगिरस गोत्री एक ब्राह्मण जो जड़वत् रहते थे।

विशेष—भागवत में लिखा है कि राजा भरत ने अपने वानप्रस्थ आश्रम में एक हिरन के बच्चे को पाला था और उसके साथ उनका इतना प्रेम था कि मरते दम तक उन्हें उसकी चिंता बनी रही। मरने पर वे हिरन की योनि में उत्पन्न हुए, पर उन्हें पुण्य के प्रभाव से पूर्व जन्म का ज्ञान बना रहा। उन्होंने हिरन का शरीर त्याग कर फिर ब्राह्मण के कुल में जन्म लिया। वह संसार की भावना से बचने के लिये जड़वत् रहते थे इसीलिये लोग उन्हें जड़भरत कहते थे।

जड़लग—संज्ञा स्त्री० [देश०] तलवार। उ०—सफ सारत समधा सब कोई। जड़लग वह गई संग जिनोई। —रा० रू०, पृ० २५५।

जड़वत—वि० [सं० जड+वत्] जड़ के समान। चेतनारहित। बेहोश। उ०—जड़वत देख दोउ के संगा। चेतन देख दोउ में रंगा।—घट०, पृ० २५७।

जड़वाद—संज्ञा पुं० [सं० जड+वाद] वह दार्शनिक मत या विचार-धारा जिसमें पुनर्जन्म और चेतन आत्मा का अस्तित्व मान्य नहीं। उ०—जड़वाद जर्जरित जग में तुम अवतरित हुए आत्मा महान।—युगांत, पृ० ५७।

जड़वादी—वि० [सं० जड़वादिन्] जड़वाद का अनुगामी।

जड़वाना—क्रि० स० [हिं० जड़ना] १. नग इत्यादि जड़ने के लिये प्रेरणा करना। जड़ने का काम कराना। २. कील इत्यादि गड़वाना।

जड़विज्ञान—संज्ञा पुं० [सं० जड+विज्ञान] भौतिक विज्ञान। जड़वाद।

जड़वी—संज्ञा स्त्री० [हिं० जड़] धान का छोटा पौधा जिसे जमे हुए अभी थोड़ा ही समय हुआ हो।

जड़हन—संज्ञा पुं० [हिं० जड़ + हनन (= गाड़ना)] धान का एक प्रधान भेद जिसके पौधे एक जगह से उखाड़कर दूसरी जगह बैठाए जाते हैं।

विशेष—यह धान असाढ़ में घना बोया जाता है। जब पौधे एक या दो फुट ऊँचे हो जाते हैं, तब किसान इन्हें उखाड़कर ताल के किनारे नीचे खेतों में बैठाते हैं। वह खेत, जिसमें इसके बीज पहले बोए जाते हैं, 'बियाड़' कहलाता है, और पौधे के बीज को 'बेहन' तथा बीज बोने को 'बेहन डालना' कहते हैं। बीज को बियाड़ से उखाड़कर दूसरे खेत में बैठाने को 'रोपना' या 'बैठाना' कहते हैं; और वह खेत जिसमें इसके पौधे रोपे जाते हैं, 'सोई', 'डाबर', आदि कहलाता है। जड़हन पौधों में कुआर के अंत में बाल फूटने लगती है, और अगहन में खेत पककर कटने योग्य हो जाता है। इस प्रकार के धान की अनेक जातियाँ होती हैं जिनमें से कुछ के चावल मोटे और कुछ के महीन होते हैं। यह कभी कभी तालों के किनारे या बीच में भी थोड़ा पानी रहने पर बोया जाता है; और ऐसी बोआई को 'बोआरी' कहते हैं। अगहनी के अतिरिक्त धान का एक और भेद होता है जिसे कुआरी कहते हैं। इस भेद के धान 'ओसहन' कहलाते हैं।

जड़ा—संज्ञा स्त्री० [सं० जडा] १. भुइँ आँवला। २. कौंछ। केवाँच।

जड़ाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० जड़ना] १. जड़ने का काम। पच्चीकारी। २. जड़ने का भाव। ३. जड़ने की मजदूरी।

जड़ाऊ—वि० [हिं० जड़ना] जिसपर नग या रत्न आदि जड़े हों। पच्चीकारी किया हुआ। जैसे, जड़ाऊ मंदिर।

जड़ान—संज्ञा स्त्री० [हिं० जड़ना] दे० 'जड़ाई'।

जड़ाना[1]—क्रि० स० [हिं० जड़ना] जड़ने का प्रेरणार्थक रूप। जड़ने का काम दूसरे से कराना।

जड़ाना[2]—क्रि० अ० [हिं० जाड़ा] १. जाड़ा सहना। ठंढ खाना। २. सरदी की बाधा होना। शीत लगना। उ०—पूस जाड़ थरथर तन काँपा। सुरुज जड़ाइ लंक दिसि तापा।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३५८।

जड़ाव—संज्ञा पुं० [हिं० जड़ना] जड़ने का काम या भाव। उ०—पुनि अभरन बहु काढ़ा, नाना भाँति जड़ाव। फेरि फेरि सब पहिरहिं, जैस जैस मन भाव।—जायसी (शब्द०)।

जड़ावट—संज्ञा स्त्री० [हिं० जड़ना] जड़ने का काम या भाव। जड़ाव।

जड़ावर—संज्ञा पुं० [(देशी जड्डा + सं० आ + $\sqrt{}$वृ > आ वर, अथवा हिं० जाड़ा] जाड़े में पहनने के कपड़े। गरम कपड़े।

क्रि० प्र०—देना = स्वल्प वेतनभोगी कर्मचारियों को जाड़े के कपड़े या उसके विनिमय में धन देना।—मिलना।

जड़ावल†—संज्ञा पुं० [हिं० जड़ावर] दे० 'जड़ावर'।

जड़ावल‡—वि० [हिं० जड़ना] जड़ाया हुआ। खचित।

जड़ितⓟ—वि० [हिं० जड़ना या सं० जटित] जो किसी चीज में जड़ा हुआ हो। २. जिसमें नग आदि जड़े हों।

जड़िमा—संज्ञा स्त्री० [सं० जडिमन्] १. जड़ता। जड़त्व। २. एक भाव जिसमें मनुष्य को इष्ट अनिष्ट का ज्ञान नहीं होता और वह जड़ हो जाता है। ३. मौर्ख्य। मूर्खता।

जड़िया—संज्ञा पुं० [हिं० जड़ना] १. नगों के जड़ने का काम करनेवाला पुरुष। वह जो नग जड़ने का काम करता हो। कुंदनसाज। उ०—हुकनाहुक पकरे सकल जड़िया कोठीवाल। अर्ध०, पृ० ४३। २. सोनारों की एक जाति या वर्ग जो गहने में नग जड़ने का काम करती है।

जड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० जड़] वह वनस्पति जिसकी जड़ औषध के काम में लाई जाय। बिरई।

यौ०—जड़ी बूटी = जंगली औषधि या वनस्पति।

जड़ीभूत—वि० [सं० जडीभूत] स्तब्ध। निश्चल। जड़भाव को प्राप्त। गतिहीन। उ०—गौतम ने जिस परिवर्तन के अमर सत्य को पहचाना था, क्या वही गतिशील होकर चल सका। लौटकर आया कहाँ जहाँ शाश्वत जड़ीभूत स्थिरता का पाषाण आकाश चूमने का प्रयत्न कर रहा था।—प्रा० भा० प०, पृ० ४७५।

जड़ीला¹—संज्ञा पुं० [हिं० जड़ + ईला (प्रत्य०)] १.वह वनस्पति जिसकी जड़ काम में आती हो। जैसे, मूली, गाजर। २. वह ऊँची उठी हुई जड़ जो रास्ते में मिले। —(कहार)।

जड़ीला†²—जड़दार। जिसमें जड़ हो।

जड़ुआ—संज्ञा पुं० [हिं० जड़ना] चाँदी का एक गहना जो छल्ले की तरह पैर के अँगूठे में पहना जाता है।

जडुल—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जटुल'।

जड़ैया†—संज्ञा स्त्री० [हिं० जाड़ा + ऐया (प्रत्य०)] वह बुखार जिसके आरंभ में जाड़ा लगता हो। जूड़ी।

जढ़†—वि० [सं० जड] दे० 'जड़'।

जढ़ता†—संज्ञा स्त्री० [सं० जडता] दे० 'जड़ता'।

जढ़ाना†—क्रि० अ० [हिं० जड़ या जढ़] जड़ हो जाना। २. हठ करना। जिद करना। अपनी बात पर अड़े रहना।

जत†ⓟ¹—वि० [सं० यत्] जितना। जिस मात्रा का।

जत²—संज्ञा पुं० [सं० यति] वाद्य के बारह प्रबंधों में से एक। होली का ठेका या ताल।

जतन†ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० यत्न] दे० 'यत्न'। उ०—बार बार मुनि जतन कराहीं। अंत राम कहि आवत नाहीं।—तुलसी (शब्द०)।

जतना†ⓟ—क्रि० स० [यत्न, हिं० जतन] यत्न करना। उ०—अब के ऐसी जतनन जतो। विछुरहि गर्भ बीच ही हतीं।—नंद० ग्रं०, पृ० २२२।

जतनी¹—संज्ञा पुं० [सं० यत्न] १. यत्न करनेवाला। २. सुचतुर। चालाक।

जतनी²—संज्ञा स्त्री० [सं० यत्न (= रक्षा)] वह रस्सी या डोरी जिसे चर्खे (रँहट) की पंखुरियों के किनारे पर माल के टिकाव के लिये बाँधते हैं।

जतनुⓟ†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'यत्न'। उ०—करेहु सो जतनु विबेकु विचारी। —मानस १।५२।

जतरा‡—संज्ञा स्त्री० [सं० यात्रा] दे० 'यात्रा'। उ०—माँ और स्त्री को साथ लेकर वह जगन्नाथ जी की जतरा कर आया था।—नई०, पृ० १०७।

जतलाना‡—क्रि० स० [हिं० जताना] दे० 'जताना'।

जतसर†—संज्ञा पुं० [हिं० जाँता] दे० 'जँतसर'।

जताⓟ†—वि०, अव्य० [सं० यत्] दे० 'जितना'। उ०—मेरे पास धन माल हैं होर मता। तुजे देऊंगी मैं सारा जता।—दक्खिनी०, पृ० ३७६।

जताना¹—क्रि० स० [सं० ज्ञात] १. जानने का प्रेरणार्थक रूप। ज्ञात कराना। बतलाना। २. पहले से सूचना देना। आगाह करना।

जताना²†—क्रि० अ० [हिं० जाँता] दे० 'जँताना'।

जतारा†—संज्ञा पुं० [हिं० जाति या सं० यूथ] वंश। खानदान। कुल। जाति। घराना।

जति¹ⓟ—क्रि० [सं० जेतृ] जेता। जीतनेवाला। उ०—चरन पीठ उन्नत नत पालक, गूढ़ गुलुफ जंघा कदली जति।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४१५।

जति²†—संज्ञा पुं० [सं० यति] दे० 'यति'। उ०—स्वान खग जति न्याउ देख्यो आपु बैठि प्रबीन। नीचु हति महिदेव बालक कियो मीचु बिहीन।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४२२।

जती¹—संज्ञा पुं० [सं० यतिन्] संन्यासी। दे० 'यति'। उ०—जती पुरुष कहूँ ना गहैं परनारी को हाथ।—शकुंतला०, पृ० ६७।

जती²ⓟ—संज्ञा स्त्री० [सं० यति] छंद में विराम। दे० 'यति²'।

जतु¹—संज्ञा पुं० [सं०] वृक्ष का निर्यास। गोंद। २. लाख। लाह। ३. शिलाजतु। शिलाजीत।

जतु²—संज्ञा स्त्री० गेदुर। चमगादड़ [को०]।

जतुक—संज्ञा पुं० [सं०] १. हींग। २. लाख। लाह। ३. शरीर के चमड़े पर का एक विशेष प्रकार का चिह्न जो जन्म से ही होता है। इसे लच्छन या लक्षण भी कहते हैं।

जतुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पहाड़ी नामक लता जिसकी पत्तियाँ औषध के काम में आती हैं। २. चमगादड़। ३. लाक्षा। लाख। लाह (को०)।

जतुकारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पपंटी या पपड़ी नाम की लता।

जतुकृत्—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'जतुकृष्णा' [को०]।

जतुकृष्णा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जतुका या पपड़ी नाम की लता।

जतुगृह—संज्ञा पुं० [सं०] घास फूस ऐसी चीजों का बना हुआ घर

जो जल्दी जल सके। २. लाख का बना घर जैसा वारणावत में दुर्योधन ने पांडवों को भस्म करने के लिये बनवाया था। लाक्षागृह (को०)।

जतुनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] चमगादड़।

जतुपुत्रक—संज्ञा पुं० [सं०] १. शतरंज का मोहरा। २. चौसर की गोटी। ३. लाख का बना हुआ रूप या आकार [को०]।

जतुमणि—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का क्षुद्र रोग जिसमें दाग पड़ जाता है। जटुल। जतुक।

जतुमुख—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का धान।

जतुरस—संज्ञा पुं० [सं०] लाख का बना हुआ रंग। अलक्तक। महावर।

जतू—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक पक्षी का नाम। चमगादड़। २. लाख का बना हुआ रंग।

जतूकर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम।

जतूका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'जतुका'।

जतेकⓅ—क्रि० वि० [सं० यत् या हिं० जितना+एक] जितना। जिस मात्रा का। जिस संख्या का।

जतैंⓅ—क्रि० वि० [सं० यत्र, प्रा० जत्थ] जहाँ। उ०—ब्रजमोहन मोहू की मूरति राम जतै घनि रोहिनि पुन्य फली।—घनानंद०, पृ० २००।

जत्था—संज्ञा पुं० [सं० यूथ] बहुत से जीवों का समूह। झुंड। गरोह।
क्रि० प्र०—बाँधना।

यौ०—जत्थावार, जत्थेदार=जत्था अर्थात् समूह का प्रधान या नायक।

जत्रⓅ—क्रि० वि० [सं० यत्र] जहाँ। जिस जगह। उ०—किते जीव संमूह देखंत भज्जे। मृगं व्याघ्र चीते रिछं जत्र गज्जें।—ह० रासो, पृ० ३६।

जत्रानी—संज्ञा स्त्री० [देश०] जाटों की एक जाति जो रुहेलखंड में बसती है।

जत्रु—संज्ञा पुं० [सं०] १. गले के सामने की दोनों ओर की वह हड्डी जो कंधे तक कमानी की तरह लगी रहती है। हँसली। हँसिया। उ०—यज्ञोपवीत पुनीत बिराजत गूढ़ जत्रु बनि पीन अंस तति।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४१५। २. कंधे और बाँह का जोड़।

जत्वश्मक—संज्ञा पुं० [सं०] शिलाजीत।

जथⓅ—संज्ञा पुं० [सं० यूथ] जत्था। जूथ। यूथ। उ०—झाँझ झनकत करत घोर घंटा घहरि घने। घुँघरू थिरत फिरत मिलि एक जथ।—भारतेंदु ग्रं०, भाग २, पृ० ४४७।

जथा[1]—क्रि० वि० [सं० यथा] १. दे० 'यथा'। उ०—जथा भूमि सब बीज मैं, नखत निवास अकास। रामनाम सब धरम मैं जानत तुलसीदास।—तुलसी ग्रं०, भाग २, पृ० ८८।

यौ०—जथाजोग। जथाथित। जथारुचि=अपने इच्छानुसार। उ०—बदु करि कोटि कुतर्क जथारुचि बोलइ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ३४। जथालाभ=जो भी मिल जाय उसमें। जोभी प्राप्त हो उससे। उ०—जथालाभ संतोष सदाई।—मानस, ७।४६।

जथा[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० यूथ] मंडली। गरोह। समूह। टोली।
क्रि० प्र०—बाँधना।

जथा[3]—संज्ञा स्त्री० [सं० ग्रथ] पूँजी। धन। संपत्ति।

यौ०—जमा जथा।

जथाजोगⓅ—क्रि० वि० [सं० यथायोग्य] दे० 'यथायोग्य'। उ०—जथाजोग भेटे पुरबासी गए सूल, सुखसिंधु नहाए।—सूर०, ६।१६८।

जथाथितⓅ—क्रि० वि० [सं० यथास्थित] जैसा था वैसा ही। ज्यों का त्यों। उ०—सिवहिं बिलोकि ससंकेउ मारू। भयउ जथाथित सबु संसारू।—मानस, १।८६।

जथारथⓅ—अव्य० [सं० यथार्थ] दे० 'यथार्थ'। उ०—जे जन निपुन जथारथवेदी। स्वारथ अरु परमारथ भेदी।—नंद ग्रं०, पृ० ३०२।

जथारथवेदीⓅ—वि० [सं० यथार्थ+वेदिन्] यथार्थवेत्ता। सच्चाई को जाननेवाला।

जथावकासⓅ—क्रि० वि० [सं० यथावकाश] अवकाश के अनुसार। उ०—जाके जठर मध्य जग जितौ। जथावकास रहत है तितौ।—नंद० ग्रं०, पृ० २२६।

जथासंखिⓅ—अव्य० [सं० यथासंख्य] क्रम के अनुसार। जैसा क्रम हो उसके अनुसार। उ०—वर्स वर्ग च्यार्‍यो जथासंखि वासं। बहू आश्रमं औ तजं लोभ आसं।—ह० रासो, पृ० १७।

जद†[1]—क्रि० वि० [सं० यदा] जब। जब कभी। उ०—(क) जब जागूँ तब एकली, जब सोऊँ तब बेल।—ढोला०, दू० ५११। (ख) ब्रजमोहन घनआनँद जानी जद चस्मों विच आया है।—घनानंद०, पृ० १८१।

जद†[2]—अव्य० [सं० यदि] अगर। यदि।

जद[3]—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जद] १. आघात। चोट। २. लक्ष्य। निशाना। ३. सामना (को०)।

जदनी—वि० [फ़ा० ज़दनी] मारने या बध करने योग्य।

जदपि—क्रि० वि० [सं० यद्यपि] दे० 'यद्यपि' उ०—जदपि अकाम तदपि भगवाना। भगत बिरह दुख दुखित सुजाना।—मानस, १।७६।

जदबद†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'जद्बद'।

जदल—संज्ञा पुं० [अ०] १. युद्ध। संघर्ष। २. झगड़ा। हुज्जत [को०]।

जदवर, जदवार—संज्ञा पुं० [अ०] जहर के असर को दूर करनेवाली एक घास। निर्विषी।

जदा—वि० [फ़ा० ज़दह्] पीड़ित। संत्रस्त। मारा हुआ। जैसे, गमजदा। मुसीबतजदा=विपत्ति का मारा।

जदिⓅ—अव्य० [सं० यदि] अगर। जो।

जदीद—वि० [अ०] नया। हाल का। नवीन।

जदुⓅ—संज्ञा पुं० [सं० यदु] दे० 'यदु'।

जदुईसⓅ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'जदुपति'।—अनेकार्थ०, पृ० ६१।

जदुकुलⓅ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'यदुवंश'।

जदुनाथ (पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'यदुनाथ' उ०—बिनु दीन्हें ही देत सूर प्रभु, ऐसे हैं जदुनाथ गुसाईं।—सूर०, १। ३।

जदुपति (पु)—संज्ञा पुं० [सं० यदुपति] श्रीकृष्ण। उ०—कोऊ कोरिक संग्रहौ कोऊ लाख हजार। मों संपति जदुपति सदा विपति बिदारनहार।—बिहारी (शब्द०)।

जदुपाल (पु)—संज्ञा पुं० [सं० यदुपाल] श्रीकृष्ण।

जदुपुरी (पु)—संज्ञा पुं० [सं० यदुपुरी] राजा यदु का नगर। यदुकुल की राजधानी, मथुरा अथवा यदुओं की पुरी द्वारका। उ०—दृष्टि पड़ी जदुपुरी सुहाई।—नंद० ग्रं०, पृ० २१३।

जदुबंशी (पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'यदुवंशी। उ०—कुंज कुटीरे जमुना तीरे तू बिलसता जदुबंशी।—हिम कि०, पृ० २४।

जदुराइ (पु)—संज्ञा पुं० [सं० यदुराज] यदुपति। श्रीकृष्णचंद।

जदुराज (पु)—संज्ञा पुं० [सं० यदुराज] श्रीकृष्णचंद।

जदुराम (पु)—संज्ञा पुं० [सं० यदुराम] यदुकुल के राम। बलदेव।

जदुराय (पु)—संज्ञा पुं० [सं० यदुराज] श्रीकृष्णचंद्र।

जदुबर (पु)—संज्ञा पुं० [सं० यदुवर] श्रीकृष्णचंद्र।

जदुबीर (पु)—संज्ञा पुं० [सं० यदुवीर] श्रीकृष्णचंद्र।

जद्द (पु)[1]—वि० [अ० ज्यादह्] अधिक। ज्यादा।

जद्द[2]—वि० [सं० योद्धा] प्रचंड। प्रबल। उ०—छागलि चलेउ समद्द भूप बलहद्द जद्द अति।—गोपाल (शब्द०)।

जद्द[3]—संज्ञा पुं० [अ०] दादा। पितामह। बाप का बाप।

जद्यपि (पु)—क्रि० वि० [सं० यद्यपि] दे० 'यद्यपि'।

जद्वद्द—संज्ञा पुं० [सं० यत्प्रवद्य अथवा हिं० अनु०] अकथनीय बात। वह बात जो न कहने योग्य हो। दुर्वचन।

जद्दो[1]—संज्ञा स्त्री० [अ०] चेष्टा। कोशिश। प्रयत्न। दौड़धूप [को०]।

जद्दी[2]—वि० [अ०] मौरूसी। बापदादे की [को०]।

जद्दोजहद—संज्ञा स्त्री० [अ०] दौड़धूप। चेष्टा। प्रयत्न। उ०—व्यक्ति विलीन दलों के दुर्मद, जद्दोजहद में रद्दोबदल मे।—मिलन०, पृ० १७३।

जद्यपि—क्रि० वि० [सं० यद्यपि] दे० 'यद्यपि'। उ०—सहज सरल रघुबर बचन, कुमति कुटिल करि जान। चलै जोंक जल बक्रगति, जद्यपि सलिल समान।—तुलसी ग्रं०, पृ० १०१।

जनंगम—संज्ञा पुं० [सं० जनङ्गम] चांडाल।

जन—संज्ञा पुं० [सं०] १. लोक। लोग।

यौ०—जनअपवाद = अफवाह। लोकापवाद। उ०—जन अपवाद गूँजता था, पर दूर।—अपरा, पृ० १३६। जन आंदोलन = उद्देश्यपूर्ति के लिये जनसमूह द्वारा किया हुआ सामूहिक प्रयत्न या हलचल। जनजीवन = लोकजीवन। जनप्रवाद। जनक्षय। जनश्रुति। जनवल्लभ। जनसमूह। जनसमाज। जनसमुदाय। जनसमुद्र = जनसमूह। जनसाधारण। जनसेवक। जनसेवा, आदि।

२. प्रजा। ३. गँवार। देहाती। ४. जाति। ५. वर्ग। गण। उ०—आर्य लोग इस समय अनेक जनों में विभक्त थे। प्रत्येक जन एक पृथक् राजनैतिक समूह मालूम होता है।—हिंदु० सभ्यता, पृ० ३३। ६. अनुयायी। अनुचर। दास। उ०—(क) हरिजन हंस दशा लिए डोलें। निर्मल नाम चुनी चुनि बोलें।—कबीर (शब्द०)। (ख) हरि अर्जुन को निज जन जान। लै गए तहँ जहाँ ससि भान।—सूर०, १०। ४३०६। (ग) जन मन मंजु मुकर मल हरनी। किए तिलक गुन गन बस करनी।—तुलसी (शब्द०)।

यौ०—हरिजन।

७. समूह। समुदाय। जैसे, गुणिजन। ८. भवन। ९. वह जिसकी जीविका शारीरिक परिश्रम करके दैनिक वेतन लेने से चलती हो। १०. सात महाव्याहृतियों में से पाँचवीं व्याहृति। ११. सात लोकों में से पाँचवाँ लोक। पुराणानुसार चौदह लोकों के अंतर्गत ऊपर के सात लोकों में से पाँचवाँ लोक जिसमें ब्रह्मा के मानसपुत्र और बड़े बड़े योगींद्र रहते हैं। १२. एक राक्षस का नाम। १३. मनुष्य। व्यक्ति।

जन[2]—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जन] १. महिला। नारी। २. स्त्री। पत्नी। भार्या। उ०—मुसल्ला बिछा उसका जन आनियाज।—दक्खिनी०, पृ० २१५

जन[3] (पु)—वि० [सं० जन्य] उत्पन्न। जनित। जात। उ०—सतसैया तुलसी सतर तम हरि पर पद देत। तुरत अबिद्या जन दुरित बर तुल सम करि सेत।—स० सप्तक, पृ० २५।

जनउ (पु)—संज्ञा पुं० [हिं० जनेउ] दे० 'जनेऊ'। उ०—फोट चाट जनउ तोड।—कीर्ति०, पृ० ४४।

जनक[1]—वि० [सं०] पैदा करनेवाला। जन्मदाता। उत्पादक।

जनक[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. पिता। बाप। २. मिथिला के एक राजवंश की उपाधि।

विशेष—ये लोग अपने पूर्वज निमि विदेह के नाम पर वैदेह भी कहलाते थे। सीता जी इस कुल में उत्पन्न सीरध्वज की पुत्री थीं। इस कुल में बड़े बड़े ब्रह्मज्ञानी उत्पन्न हुए हैं जिनकी कथाएँ ब्राह्मणों, उपनिषदों, महाभारत और पुराणों में भरी पड़ी हैं।

३. सीता जी के पिता सीरध्वज का नाम।

यौ०—जनकतनया = सीता। जनक की पुत्री। उ०—तात जनकतनया यह सोई।—मानस, १।२३१। जनकनंदिनी। जनकदुलारी। जनकपुर। जनकसुता = दे० जनकात्मजा। उ०—जनकसुता जगजननि जानकी।—मानस, १।१८।

४. संबरासुर का चौथा पुत्र। ५. एक वृक्ष का नाम।

जनकता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. उत्पन्न करने का भाव या काम। २. उत्पन्न करने की शक्ति।

जनकदुलारी (पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० जनक + हिं० दुलारी] सीता। जानकी।

जनकनंदिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० जनकनन्दिनी] सीता। जानकी। उ०—जनकनंदिनी जनकपुर जब ते प्रगटी आइ। तब ते सब सुख संपदा अधिक अधिक अधिकाइ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ८३।

जनकपुर—संज्ञा पुं० [सं०] मिथिला की प्राचीन राजधानी।

विशेष—इसका स्थान आजकल लोग नेपाल की तराई में बतलाते हैं। यह हिंदुओं का प्रधान तीर्थ है और हिंदू यात्री प्रति वर्ष वहाँ दर्शन के लिये जाते हैं।

जनकात्मजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सीता। जानकी [को०]।

जनकारी—संज्ञा पुं० [सं० जनकारिन्] लाख का बना हुआ रंग। आलक्तक।

जनकौर(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० जनक + औरा (प्रत्य०)] १. जनक का स्थान। जनक नगर। उ०—बाजहिं ढोल निसान सगुन सुभ पाइन्हि। सिय नैहर जनकौर नगर नियराइन्हि।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५६। २. जनक राजा के वंशज या संबंधी। उ०—कोसलपति गति सुनि जनकौरा। भे सब लोक सोक बस बौरा।—तुलसी (शब्द०)।

जनक्षय—संज्ञा पुं० [सं०] महामारी। लोकनाश [को०]।

जनखदाँ—संज्ञा पुं० [फा० जनख+दाँ] ठोढ़ी। चिबुक। उ०—जनखदाँ में तेरे मुझ चाहे ज़मज़म का असर दिसता।—कविता को०, भा० ४, पृ० ६।

जनखा—वि० [फा० ज़नकह् या ज़नानह्] १. जिसके हाव भाव आदि औरतों के से हों। २. हीजड़ा। नपुंसक।

जनगणना—संज्ञा स्त्री० [सं० जन + गणना] मर्दुमशुमारी। जनसंख्या की गिनती।

जनगो†—संज्ञा स्त्री० [देश०] मछली।

जनघर†—संज्ञा पुं० [सं० जन + गृह] मंडप। —(डिं०)।

जनचक्षु—संज्ञा पुं० [सं० जनचक्षुस्] सूर्य।

जनचर्चा—संज्ञा स्त्री० [सं०] लोकवाद। सर्वसाधारण में फैली हुई बात।

जनजल्पना—संज्ञा पुं० [सं० जनजल्पना] लोकचर्चा। अफवाह [को०]।

जनजागरण—संज्ञा पुं० [सं० जन+जागरण] जनसमुदाय में स्वहित की दृष्टि से चेतना उत्पन्न होना।

जनता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जनन का भाव। २. जनसमूह। सर्वसाधारण।

यौ०—जनता जनार्दन = जनसमूह रूपी ईश्वर। लोकरूपी ईश्वर।

जनतंत्र—संज्ञा पुं० [सं० जन + तन्त्र] जनता के निर्वाचित प्रतिनिधियों का शासन। लोकतंत्र। प्रजातंत्र।

यौ०—जनतंत्रवादी = लोकतंत्र को माननेवाला।

जनतांत्रिक—वि० [सं० जन + तान्त्रिक] जनतंत्र संबंधी। उ०—विजित हो रहा यांत्रिक मानव। निखर रहा जनतांत्रिक मानव।—अणिमा, पृ० १२०।

जनत्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] छाता या इसी प्रकार की और कोई चीज जिससे धूप और वृष्टि से रक्षा हो।

जनत्राता—संज्ञा पुं० [सं० जन + त्राता] सेवक की रक्षा करनेवाला। लोक का रक्षक। उ०—मइ बन गएउ भलन जनत्राता।—मानस, ७।११०।

जनधोरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] ककड़बेल। बँदाल।

जनजाति—संज्ञा स्त्री० [सं० जन + जाति] जंगलों और पर्वतीय क्षेत्रों में रहनेवाली जाति या वर्ग।

जनधन—संज्ञा पुं० [सं० जनधन] १. मनुष्य और संपत्ति। २. सार्वजनिक धन।

जनधा—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि। आग।

जनन—संज्ञा पुं० [सं०] १. उत्पत्ति। उद्भव। २. जन्म। ३. आविर्भाव। ४. तंत्र के अनुसार मंत्रों के दस संस्कारों में से पहला संस्कार जिसमें मंत्रों का मातृका वर्णों से उद्धार किया जाता है। ५. यज्ञ आदि में दीक्षित व्यक्ति का एक संस्कार जिसके उपरांत उसका दीक्षित रूप में फिर से जन्म ग्रहण करना माना जाता है। ६. वंश। कुल। ७. पिता। ८. परमेश्वर।

जनना—क्रि० स० [सं० जनन (= जन्म)] संतान को जन्म देना। प्रसव करना। उ०—(क) जनत पुत्र नभ बजे नगारा। तदपि जननि उर सोच अपारा।—कबीर (शब्द०)। (ख) रंभ खंभ जंघन दुति हेलत नशत जनन जग माँही।—रघुराज (शब्द०)

जननाशौच—संज्ञा पुं० [सं० जनन + अशौच] वह अशौच जो घर में किसी का जन्म होने के कारण लगता है। वृद्धि।

जननि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० जननि] दे० 'जननी'। समुझि महेस समाज सब, जननि जनक मुसुकाहिं।—तुलसी (शब्द०)। (ख) हौं इहाँ तेरे ही कारन आयो। तेरी सौं सुनि जननि जसोदा मोहिं गोपाल पठायो।—सूर०, १०।४७८।

जननी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. उत्पन्न करनेवाली। २. माता। माँ। उ०—(क) जननी जनकादि हितू भए भूरि बहोरि भई उर की जरनी।—तुलसी (शब्द०)। (ख) करनी करुनासिंधु की मुख कहत न आवै। कपट हेत परसे बकी जननी गति पावै।—सूर०, १।४। ३. जूही का पेड़। ४. कुटकी। ५. मजीठ। ६. जटामाँसी। ७. अलता। ८. पपड़ी। पपरिका। ९. चमगादड़। १०. दया। कृपा। ११. जनी नाम का गंधद्रव्य।

जननेंद्रिय—संज्ञा स्त्री० [सं० जनन + इन्द्रिय] १. वह इंद्रिय जिससे प्राणियों की उत्पत्ति होती है। भग। योनि। २. उपस्थ (को०)।

जनपद—संज्ञा पुं० [सं०] १. देश। २. सर्वसाधारण। निवासी। देशवासी। प्रजा। लोक। लोग। उ०—ज्यों हुलास रनिवास नरेशहिं त्यों जनपद रजधानी।—तुलसी (शब्द०)। ३. राज्य। ४. आंचलिक क्षेत्र। ५. मनुष्य जाति (को०)।

जनपदकल्याणी—संज्ञा स्त्री० [सं० जनपद + कल्याणी] गणतंत्र की सामान्य (जनभोग्या) विशिष्ट गणिका।

जनपदी—संज्ञा पुं० [सं० जनपदिन्] देश, समाज, क्षेत्र का शासक [को०]।

जनपदीय—वि० [सं०] जनपद का। जनपद संबंधी।

जनपाल, जनपालक—संज्ञा पुं० [सं०] १. मनुष्यों का पोषण करनेवाला। सेवक या अनुचर का पालन करनेवाला।

जनप्रवाद—संज्ञा पुं० [सं०] १. लोकप्रवाद। लोकनिंदा। २. जनरव। अफवाह। किंवदंती।

जनप्रिय[1]—वि० [सं०] सबसे प्रेम रखनेवाला। सर्वप्रिय। सबका प्यारा।

जनप्रिय[2]—संज्ञा पुं० १. धान्यक। धनिया। २. शोभांजन वृक्ष। सहिंजन का पेड़। ३. महादेव। शिव।

जनप्रियता—संज्ञा स्त्री० [सं०] सबके प्रिय होने का भाव। सर्वप्रियता। लोकप्रियता।

जनप्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] हुलहुल का साग।

जनबगुला—संज्ञा पुं० [हिं० जन+बगुला] एक प्रकार का बगुला।

जनम—संज्ञा पुं० [सं० जन्म] १. उत्पत्ति। जन्म। दे० 'जन्म'। उ०—बहु विधि राम शिवहिं समुझावा। पारबती कर जनम सुनावा।—तुलसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—धारना।—पाना।—लेना।—होना।

यौ०—जनमघूँटी। जनमपत्ती। जनमपत्री।

२. जीवन। जिंदगी। आयु। उ०—(क) होय न विषय बिराग, भवन बसत भा चौथपन। हृदय बहुत दुख लाग, जनम गयउ हरि भगति बिनु।—तुलसी (शब्द०)। (ख) तुलसीदास मोको बड़ो सोचु है तू जनम कवन विधि भरिहै।—तुलसी (शब्द०)।

मुहा०—जनम गँवाना=व्यर्थ जनम या समय नष्ट करना। जनम बिगड़ना=धर्म नष्ट होना। जनम करम के ओछे=जन्मना और कर्मणा उभय प्रकार से हीन। उ०—ऐसे जनम करम के ओछे, ओछन हूँ ब्योहारत।—सूर०, १।२२। जनम भरना=जीवन बिताना। उ०—नैहर जनमु भरब बरु जाई। जियत न करब सवति सेवकाई।—मानस, २।२१। जनम भर जलना=आजीवन दुःख भोगना। उ०—वह अनपढ़, गँवार, मुफट्ट, लोह लट्ठ के पाले पड़कर जनम भर जला करे।—ठेठ०, पृ० १०। जनम हारना=आजीवन किसी की सेवा के लिये संकल्प धारण करना। उ०—अब मैं जनम संभु सें हारा।—मानस, १।८१।

जनमघूँटी—संज्ञा स्त्री० [हिं० जनम+घूँटी] वह घूँटी जो बच्चों को जन्मते समय से दो तीन वर्ष तक दी जाती है।

मुहा०—(किसी बात का) जनमघूँटी में पड़ना=जन्म से ही (किसी बात की) आदत पड़ना। (किसी बात का) इतना अभ्यस्त हो जाना कि उससे पीछा न छूट सके। जैसे,—झूठ बोलना तो इनकी जनमघूँटी में पड़ा है।

जनमजला—वि० [हिं० जनम+जलना] [वि० स्त्री० जनमजली] दुर्भाग्यग्रस्त। भाग्यहीन। अभागा।

जनमत—संज्ञा पुं० [सं० जन+मत] सर्वसाधारण जनता की राय। लोकमत। उ०—जनमत राजा को निकाल सकता था।—प्रा० भा० प०, पृ० १८६।

यौ०—जनमत संग्रह=जनता की राय का संकलन। लोकमत का संकलन जिससे लोक की राय जानी जाय। उ०—जनमत संग्रह के पूर्व सब दलों को अपने अपने मत के प्रचार का अधिकार होगा।—भारतीय०, पृ० २२६।

जनमदिन—संज्ञा पुं० [हिं० जनम+दिन] दे० 'जन्मदिन'।

जनमधरती†—संज्ञा स्त्री० [हिं० जनम+धरती] दे० 'जन्मभूमि'।

जनमना[1]—क्रि० अ० [सं० जन्म] १. पैदा होना। उत्पन्न होना। जन्म लेना। उ०—(क) जे जनमे कलिकाल कराला।—मानस, १।१२। (ख) कै जनमत मरि गई एक दासी घरबारी।—हम्मीर०, पृ० ४५। २. चौसर आदि खेलों में किसी नई या मरी हुई गोटी का, उन खेलों के नियमानुसार खेले जाने के योग्य होना।

जनमना[2]—क्रि० स० [सं० जन्म या हिं० जनमाना] जन्म देना। उत्पन्न करना। उ०—कैकय सुता सुमित्रा दोऊ। सुंदर सुत जनमत भै ओऊ।—मानस, १।१९५।

जनमपत्ती—संज्ञा स्त्री० [हिं० जनम+पत्ती] चाय कुलियों की बोलचाल की भाषा में चाय की वह छोटी पत्ती या फुनगी जो पहले पहल निकलती है।

जनमपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं० जन्मपत्री] दे० 'जन्मपत्री'।

जनमरक—संज्ञा पुं० [सं०] वह बीमारी जिससे थोड़े समय में बहुत से लोग मर जायँ। महामारी।

जनमर्य्यादा—संज्ञा स्त्री० [सं०] लौकिक आचार या रीति।

जनमसंगी—वि० [हिं०] [वि० स्त्री० जनमसंगिनी] जिसका साथ जनम भर रहे (पति या पत्नी)।

जनमसँघाती(५)†—संज्ञा पुं० [हिं० जनम+संघाती] वह जिसका साथ जन्म से ही हो। बहुत दिनों से साथ रहनेवाला मित्र। २. वह जिसका साथ जन्म भर रहे।

जनमाना—क्रि० स० [हिं० जनम] १. जनमने का काम कराना। प्रसव कराना। २. दे० 'जनमना'।

जनमु(५)†—संज्ञा पुं० [सं० जन्म, हिं० जनम] दे० 'जन्म'। उ०—राम काज लगि जनमु जग, सुनि हरषे हनुमान।—तुलसी ग्रं०, पृ० ८६।

जनमुरीद—वि० [फा० जन+मुरीद] पत्नीपरायण। पत्नीभक्त। जोरू का गुलाम। उ०—पत्नी की सी कहता हूँ तो जनमुरीद की उपाधि मिलती है।—मान०, भा० १, पृ० १५४।

जनमेजय—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जन्मेजय'।

जनयिता[1]—वि० [सं० जनयितृ] वि० स्त्री० जनयित्री] जन्मदाता। पैदा करनेवाला।

जनयिता[2]—संज्ञा पुं० पिता। बाप।

जनयित्री[1]—वि० [सं०] जन्म देनेवाली। उ०—शीतलता, सरलता मइत्री। द्विजपद प्रीति धरम जनयित्री।—मानस, ७। ३८।

जनयित्री[2]—संज्ञा स्त्री० माता। माँ।

जनयिष्णु—वि० [सं०] जननकर्ता। उत्पादक (को०)।

जनरंजन—वि० [सं० जन+रञ्जन] मनुष्यों को या सेवकों को सुख पहुँचानेवाला (को०)।

जनरल[1]—संज्ञा पुं० [अं०] फौजों का एक बड़ा अफसर जिसके अधिकार में कई रेजिमेंट होती है। अंग्रेजी सेना का सेनापति या सेनानायक।

जनरल[2]—वि० साधारण। आम। जैसे, इंस्पेक्टर जनरल।

जनरव—संज्ञा पुं० [सं०] १. किंवदंती। जनश्रुति। अफवाह। २.

लोकनिंदा। बदनामी। ३. बहुत से लोगों का कोलाहल। हल्ला। शोरगुल।

जनलोक—संज्ञा पुं० [सं०] ऊपर के सप्तलोकों में से पाँचवाँ लोक। दे० 'जन' ११।

जनवरी—संज्ञा स्त्री० [ग्रं० जनुअरी] अंग्रेजी साल का पहिला महीना जो इकतीस दिनों का होता है।

जनवल्लभ—संज्ञा पुं० [सं०] १. श्वेत रोहित का पेड़। सफेद रोहिड़ा। २. जनप्रिय। लोकप्रिय।

जनवाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० जनाना] दे० 'जनाई'-२।

जनवाद—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जनरव'।

जनवाना[1]—क्रि० स० [हिं० जनना] जनने का प्रेरणार्थक रूप। प्रसव कराना। लड़का पैदा कराना।

जनवाना[2]—क्रि० स० [हिं० जानना] समाचार दिलवाना। किसी दूसरे के द्वारा सूचित कराना।

जनवास—संज्ञा पुं० [सं० जन्य+वास] १. सर्वसाधारण के ठहरने या टिकने का स्थान। लोगों के निवास का स्थान। २. बरातियों के ठहरने का स्थान। वह जगह जहाँ कन्या पक्ष की ओर से बरातियों के ठहरने का प्रबंध हो। उ०—(क) सकल सुपास जहाँ दीन्ह्यो जनवास तहाँ कीन्ह्यो सम्मान दे हुलास त्यों समाज को।—कबीर (शब्द०)। (ख) दीन्ह जाय जनवास सुपास किए सब। घर घर बालक बात कहन लागे सब।—तुलसी (शब्द०)। ३. सभा। समाज।

जनवासना—क्रि० स० [सं० जनवास+ना (प्रत्य०)] आगत जन को ठहरने या बैठने का स्थान देना। उ०—तोरन सुचारु आचार करि कै जनवासत मंडपहि।—पृ० रा०, ७।१७७।

जनवासा—संज्ञा पुं० [सं० जन्यवास] दे० 'जनवास'-२। उ०—अति सुंदर दीन्हेउ जनवासा। जहँ सब कहुँ सब भाँति सुपासा।—मानस, १।३०६।

जनव्यवहार—संज्ञा पुं० [सं०] लोकप्रसिद्ध या लोक में प्रचलित चलन या रीति रिवाज [को०]।

जनशून्य—वि० [सं०] जनहीन। निर्जन। सुनसान।

जनश्रुत—वि० [सं०] प्रसिद्ध। विख्यात। मशहूर।

जनश्रुति—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह खबर जो बहुत से लोगों में फैली हुई हो पर जिसके सच्चे या झूठे होने का कोई निर्णय न हुआ हो। अफवाह। किंवदंती।

क्रि० प्र०—उठना।—फैलना

जनसंख्या—संज्ञा स्त्री० [सं० जन+संख्या] किसी स्थानविशेष पर बसने या रहनेवाले लोगों की गिनती। आबादी। जैसे,—(क) काशी की जनसंख्या दो लाख के लगभग है। (ख) कलकत्ते की जनसंख्या में बंबई की अपेक्षा इस बार कम वृद्धि हुई है।

जनसंबाध—वि० [सं०] सघन बसा हुआ [को०]।

जनसमूह—संज्ञा पुं० [सं० जन+समूह] सर्वसाधारण मनुष्यों का समुदाय। आम जनता का मजमा।

जनसाधारण—संज्ञा पुं० [हिं०] सामान्य जन। आम जनता।

जनसेवक—वि० [सं० जन+सेवक] जनता की सेवा करनेवाला। जनता का हितू। जनसेवी।

जनसेवा—संज्ञा स्त्री० [सं० जन+सेवा] सर्वसाधारण जनता के हित का काम।

जनसेवी—वि० [सं० जन+सेविन्] दे० 'जनसेवक'।

जनस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] दंडकारण्य। दंडकवन।

जनहरण—संज्ञा पुं० [सं०] एक दंडक वृत्त का नाम।

विशेष—यह मुक्तक का दूसरा भेद है और इसके प्रत्येक चरण में तीस लघु और गुरु होता है। जैसे,—लघु सब गुरु इक तिसर न मन धर भजु नर प्रभु अघ जन हरण।

जनहित—संज्ञा पुं० [सं० जन+हित] लोकोपकारी कार्य। लोककल्याण। उ०—का न कियो जनहित जदुराई।—सूर०, १।१६।

जनहीन—वि० [सं० जन+हीन] निर्जन। विजन। जनशून्य।

जनांत—संज्ञा पुं० [सं० जनान्त] १. वह प्रदेश जिसकी सीमा निश्चित हो। २. यम। ३. वह स्थान जहाँ मनुष्य न रहते हों।

जनांत[2]—वि० मनुष्यों का नाश करनेवाला।

जनांतिक—संज्ञा पुं० [सं० जनान्तिक] १. दो आदमियों में परस्पर वह सांकेतिक बातचीत जिसे और उपस्थित लोग न समझ सकें।

विशेष—इसका व्यवहार बहुधा नाटकों में होता है।

२. व्यक्ति का सामीप्य।

जना[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. उत्पत्ति। पैदाइश। २. महिष्मती के राजा नीलध्वज की स्त्री का नाम। जैमिनी।

विशेष—भारत के अनुसार पांडवों के अश्वमेध यज्ञ के घोड़े को पकड़नेवाला प्रवीर इसी के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। उस घोड़े के लिये प्रवीर और पांडवों में जो युद्ध हुआ था उसमें इसने (जैमिनी ने) अपने पुत्र को बहुत सहायता और उत्तेजना दी थी। जब युद्ध में प्रवीर मारा गया तब यह स्वयं युद्ध करने लगी। श्रीकृष्ण को इससे पांडवों की रक्षा करने में बहुत कठिनता हुई थी।

जना[2]—संज्ञा पुं० [अ० जिना] दे० 'जिना'।

जना[3]—वि० [सं० जन्य] [वि० स्त्री० जनी] उत्पन्न किया हुआ। जन्माया हुआ।

जना(पु)[4]—संज्ञा पुं० [सं० जनी (=माता) का हिं०पुं० रूप] उत्पन्न करनेवाला पिता। उ०—एकै जनी जना संसारा। कौन ज्ञान से भयउ न्यारा।—कबीर बी०, पृ० १६।

जनाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० जनना] १. जनानेवाली। दाई। २. जनाने की उजरत। पैदा कराई का हक या नेग। दाई की मजदूरी।

जनाउ(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० जनाव] दे० 'जनाव'। उ०—अवध-नाथ चाहत चलन, भीतर करहु जनाउ। भए प्रेम बस सचिव सुनि, विप्र सभासद राउ।—तुलसी (शब्द०)।

जनाकर—वि० [सं० जन+आकर] मनुष्यों से भरा हुआ। जनाकीर्ण। उ०—ग्राम नहीं वे ग्राम आज औ नगर न नगर जनाकर। ग्राम्या, पृ० ११।

जनाकार—वि० [अ० जिनह् + फा० कार] बुरा काम करनेवाला। व्यभिचारी। उ०—कही मजमा है मर्दोजन जनाकार। —कबीर म०, पृ० ४७।

जनाकीर्ण—वि० [सं०] सघन आबादीवाला। आदमियों से भरा हुआ। जनाकर। उ०—हबड़ा के जनाकीर्ण स्थान में उन दोनों ने अपने को ऐसा छिपा लिया, जैसे मधुमक्खियों के छत्ते में कोई मक्खी।—तितली, पृ० २१६।

जनाचार—संज्ञा पुं० [सं०] देश या समाज आदि की प्रचलित रीति। लोकाचार।

जनाजा—संज्ञा पुं० [अ० जनाजह्] १. मृतक शरीर। मुर्दा। शव। लाश। उ०—खुदी खूब को खोइ जनाजा जियतै करना।—पलटू०, पृ० १४। २. अरथी या वह संदूक जिसमें लाश को रखकर गाड़ने, जलाने या और किसी प्रकार की अंतिम क्रिया करने के लिये ले जाते हैं। उ०—छुटेंगे जीस्त के फंदे से कौन दिन आतिश। जनाजा होगा कब अपना रवाँ नहीं मालूम।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ३८१।

क्रि० प्र०—उठना। निकलना।—रवाँ होना।

जनातिग—वि० [सं०] असाधारण। असामान्य। लोकोत्तर [को०]।

जनाधिनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] १. ईश्वर। २. राजा।

जनाधिप—संज्ञा पुं० [सं०] १. राजा। नरेश। २. विष्णु का एक नाम [को०]।

जनाती†—संज्ञा पुं० [अथवा हिं० जन (=यज्ञ = विवाह) + आती (= पत्ता के)] कन्या पक्ष के लोग। घराती।

जनानखाना—संज्ञा पुं० [अ० जनान + फा० खानह्] घर का वह भाग जिसमें स्त्रियाँ रहती हों। स्त्रियों के रहने का घर। अंतःपुर उ०—अब उन्हीं की संतान, जनानखानों में पतली छड़ी लिए अंग्रेजी जूता की एँड़ी खटखटाते कुत्तों से भुकवाते ऐंठे चले जा रहे हैं। —प्रेमघन०, पृ० ७६।

जनाना[1]—क्रि० स० [हिं० जानना का प्रे० रूप] मालूम कराना। जताना। उ०—सोइ जानइ जेहिदेहु जनाई। जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई। —मानस, २।१२७।

संयो० क्रि०—देना।—रखना।

जनाना[2]—क्रि० स० [हिं० जनना का प्रेरणार्थक रूप] उत्पन्न कराना। जनन का काम कराना।

संयो० क्रि०—देना।

जनाना[3]—वि० [फा० जनानह्] [वि० स्त्री० जनानी] १. स्त्रियों का स्त्री संबंधी। जैसे, जनाना काम, जनानी सूरत, जनानी बोली। २. नामर्द। नपुसक। हीजड़ा। ३ निर्बल। डरपोक। ४. औरत। स्त्री। पत्नी।

जनाना[4]—संज्ञा पुं० १. जनखा। मेहरा। २, अंतःपुर। जनानखाना।

मुहा०—जनाना करना = पर्दा करना। स्थान को पर्देवाली स्त्रियों के आने जाने योग्य करना।

जनानापन—संज्ञा पुं० [फा० जनानह् + पन (प्रत्य०)] मेहरापन। स्त्रीत्व।

जनानी—वि० स्त्री० [फ़ा जनानह] दे० 'जनाना'[3]।

जनाब—संज्ञा पुं० [अ०][स्त्री० जनाबा] १. बड़ों के लिये आदर सूचक शब्द। महाशय। महोदय। जैसे, जनाब मौलवी साहब। २. पार्श्व। पहलू (को०)। ३. आश्रम (को०)। ४. चौखट। देहली। ड्योढ़ी। ५. उपस्थिति। मौजूदगी (को०)।

जनाबआली—संज्ञा पुं० [अ०] मान्यवर। महोदय। प्रतिष्ठित पुरुषों के लिये आदरसूचक संबोधन।

जनार्दन[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. विष्णु। २. शालग्राम की बटिया का का एक भेद। ३. कृष्ण (को०)।

जनार्दन—वि० लोगों को कष्ट पहुँचानेवाला। दुःखदायी।

जनाव—संज्ञा पुं०[हिं० जनाना] जनाने की क्रिया। सूचना। इत्तिला। उ०—चलत न काहुहि कियो जनाव। हरि प्यारी सो बाढ्यो भाव। रास रसिक गुण गाइ हो। —सूर (शब्द०)।

जनावना†—क्रि० स० [हिं० जनाना] सूचित करना। विदित करना। जताना। ज्ञापित करना। उ०—तातें आप आगे कहा जनावनो ? जो कोई न जानतो होइ ताकों जनाइए। दो—सौ बावन०, भा० १, पृ० २३१।

जनावर†—संज्ञा पुं० [हिं० जानवर] दे० 'जानवर'। उ०—घास में कोई जनावर न रहन पावे। —दो सौ बावन०, भा० १, पृ० २१०।

जनाशन—संज्ञा पुं० [सं०] १. भेड़िया। २. मनुष्यभक्षक। वह जो आदमियों को खाता हो। ३. आदमियों को खाने का काम।

जनाश्रम—संज्ञा पुं० [सं०] ठहरने का स्थान। धर्मशाला। सराय [को०]।

जनाश्रय—संज्ञा पुं० [सं०] १. धर्मशाला या सराय आदि जहाँ यात्री ठहरते हों। २. वह मकान या मंडप आदि जो किसी विशेष कार्य या समय के लिये बनाया जाय। ३. साधारण घर। मकान।

जनि[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. उत्पत्ति। जन्म। पैदाइश। २. जिससे कोई उत्पन्न हो। नारी। स्त्री। ३. माता। ४. जनी नामक गंधद्रव्य। ५. पुत्रवधू। पतोहू। ६. भार्या। पत्नी। ७. जतुका। ८. जन्मभूमि।

जनि†[2]—क्रि० वि० [हिं० जानना] जनु। मानो। उ०—पीन पयोधर अपरुब सुंदर ऊपर मोतिन हार। जनि कनकाचल उपर विमल जल दुइ बह सुरसरि धार।—विद्यापति, पृ० ३६।

जनि[3]—अव्य० [हिं०] मत। नहीं। न (निषेधार्थक)। उ०—जनि लेहु मातु कलंक करुना परिहरहु अवसरु नहीं। —मानस, १।६७।

जनि[4]—सर्व० [हिं०] दे० 'जिस'। उ०—जनि का जन्म होइत हम गेलहुँ ऐलहुँ तनिकर अंते।—विद्यापति; पृ० २५२।

जनिक—वि० [सं०] उत्पन्न करनेवाला। जन्म देनेवाला [को०]।

जनिका[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० जनाना] पहेली। मुअम्मा। बुझौवल।

जनिका[2]—वि० [सं०] दे० 'जनि' [को०]।

जनित—वि० [सं०] १. उत्पन्न । जन्मा हुआ । उपजा हुआ । २. उत्पन्न किया हुआ ।

जनिता[1]—संज्ञा पुं० [सं० जनितृ] पैदा करनेवाला । उत्पन्न करनेवाला । पिता ।

जनिता[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० जनितृ] उत्पन्न करनेवाली । माता । प्रसूति । उ०—उद्दित प्रधान सुभ गातनह, जेम जलधि पुन्निम बढ़हि । हुलसंत होय जे प्रीय त्रिय, जिम सु जोति जनिता चढ़हि ।—पृ० रा०, १ । १८४ ।

जनित्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. जन्मस्थान । जन्मभूमि । २. मूल । आधार (को०) ।

जनित्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] उत्पन्न करनेवाली । माता । माँ ।

जनित्व—संज्ञा पुं० [सं०] पिता [को०] ।

जनित्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] माता [को०] ।

जनिमा—संज्ञा स्त्री० [सं० जनिमन्] १. उत्पत्ति । जन्म । २. संतान । संतति [को०] ।

जनिनीलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] नील का बड़ा पेड़ ।

जनियाँ(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० जानि] प्रियतमा । प्राणप्यारी । प्रिया । प्रेयसी ।

जनी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० जन] १. दासी । सेविका । अनुचरी । उ०—धाइ, जनी, नाइन, नटी प्रगट परोसिनि नारि ।—केशव ग्रं०, भा० १, पृ० ६८ । २. स्त्री । ३. उत्पन्न करनेवाली । माता । ४. जन्माई हुई । कन्या । लड़की । पुत्री । उ०—प्यारी छबि की रासि बनी । जाहि विलोकि निमेष न लागत श्री वृषभानु जनी ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ४५ ।

जनी[2]—वि० स्त्री० उत्पन्न की हुई । पैदा की हुई । जनमाई हुई ।

जनी[3]—संज्ञा स्त्री० [सं० जननी] एक प्रकार की ओषधि जिसे पर्पटी या पानड़ी भी कहते हैं ।

विशेष—यह शीतल, वर्णकारक, कसैली, कड़वी, हलकी, अग्निदीपक, रुचिकारक तथा रक्त, पित्त, कफ, रुधिरविकार, कोढ़, दाह, वमन, तृषा, विष, खुजली और व्रण का नाश करनेवाली कही गई है ।

जनीयर—संज्ञा पुं० [देश०] एक पेड़ का नाम ।

जनु[1]—क्रि० वि० [हिं० जानना] [अन्य रूप-जनि, जनुक, जनू, जानो आदि] मानो । उ०—(क) छुटत गिलोला हथ्थ तें पारत चोट पयल्ल । कमलनयन जनु कामिनी करत कटाछ छयल्ल ।—पृ० रा०, १।७२८ । (ख) कामकंदला भई वियोगिनि । दुर्बल जनू बर्ष की रोगिनि ।—माधवानल०, पृ० २०३ ।

जनु—संज्ञा स्त्री० [सं०] जन्म । उत्पत्ति ।

जनुक—क्रि० वि० [हिं० जनु + क (प्रत्य०)] जैसे । मानो ।

जनूँ(पु)—संज्ञा पुं० [जुनून] पागलपन । उन्माद । उ०—इतना एहसाँ और कर लिल्लाह ए दस्ते जनूँ ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० २४६ ।

जनू—संज्ञा स्त्री० [सं०] उत्पत्ति । जन्म [को०] ।

जनून—पुं० [अ० जुनून] [वि० जनूनी] पागलपन । सनक । उन्माद । खब्त [को०] ।

जनूनी—वि० [अ० जुनूनी] पागल । उन्मादी [को०] ।

जनूब—संज्ञा पुं० [अ०] [वि० जनूबी] दक्षिण । दक्खिन [को०] ।

जनूबी—वि० [अ०] दक्षिण संबंधी । दक्खिनी । दक्षिण का [को०] ।

जनेंद्र—संज्ञा पुं० [सं० जनेन्द्र] राजा ।

जने—संज्ञा पुं० [सं० जन्] व्यक्ति । आदमी । प्राणी । उ०—हममें दो जने का साझा तो निभता ही नहीं ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ८३ ।

यौ०—जने जने । जैसे, नाऊ की बरात में जने जने ठाकुर ।

जनेऊ—संज्ञा पुं० [सं० यज्ञोपवीत, प्रा० जन्नोवईय, अथवा सं० जन्म] यज्ञोपवीत । ब्रह्मसूत्र । उ०—बामन को जनम जनेऊ मेलि जानि बूझि, जीभ ही बिगारिबे को याच्यो जन जन में ।—अकबरी०, पृ० ११५ ।

मुहा०—जनेऊ का हाथ = पटेबाजी या तलवार का एक हाथ जिसमें प्रतिद्वंद्वी की छाती पर ऐसा आघात लगाया जाता है जैसे जनेऊ पड़ा रहता है । इसे जनेव या जनेवा का हाथ भी कहते हैं ।

२ यज्ञोपवीत संस्कार । उ०—छोन्ह जनेऊ गुरु पितु माता ।—मानस, १।२०४ ।

जनेत—संज्ञा स्त्री० [सं० जन + हिं० एत (प्रत्य०)] वरयात्रा । बरात । उ०—बीच बीच बर बास करि, मग लोगन सुख देत । अवध समीप पुनीत दिन, पहुँची आय जनेत ।—तुलसी (शब्द०) ।

जनेता—संज्ञा पुं० [सं० जनयिता या जनिता] पिता । बाप ।—(डिं०) ।

जनेरा—संज्ञा पुं० [हिं० जुआर] एक प्रकार का बाजरा जिसके पेड़ बहुत लंबे होते हैं । इसमें बाले भी बहुत लंबी आती हैं । जोन्हरी ।

जनेव—संज्ञा पुं० [हिं० जनेऊ] दे० 'जनेऊ' ।

जनेवा—संज्ञा पुं० [हिं० जनेऊ] १. लकड़ी आदि में बनाई या पड़ी हुई लकीर या धारी । २. एक प्रकार की ऊँची घास जिसे घोड़े बहुत प्रसन्नता से खाते हैं । ३. बाएँ कंधे से दाहिनी कमर तक शरीर का वह अंश जिसपर जनेऊ रहता है । ४. तलवार या खाँड़े का वह वार जो जनेऊ की तरह काट करे । दे० मुहा० 'जनेऊ का हाथ' ।

जनेश—संज्ञा पुं० [सं०] राजा । नरेश । भूपति ।

जनेष्ट—वि० [सं०] [वि० स्त्री० जनेष्टा] जनप्रिय । लोकप्रिय [को०] ।

जनेष्टा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. हल्दी । २. चमेली का पेड़ । ३. पपड़ी । पर्पटी । ४. वृद्धि नाम की ओषधि ।

जनेस(पु)—संज्ञा पुं० [सं० जनेश] दे० 'जनेश' । उ०—गौतम की तीय तारी मेटे अघ भूरि भारी, लोचन अतिथि भए जनक जनेस के ।—तुलसी ग्रं०, पृ० १६० ।

जनैया—वि० [हिं० जानना + ऐया (प्रत्य०)] जाननेवाला । जानकार । उ०—(क) बदले को बदलो लै जाहु । उनकी एक हमारी द्वै तुम बड़े जनैया आहु ।—सूर०, १०।४००१ ।

(ख) तृण के समान धनधाम राज त्याग करि पाल्यो पितु बचन जो जानत जनैया है।—पद्माकर (शब्द०) (ग) जो आयसु अब होइ स्वामिनी त्यावहुँ ढाहि बेवाई। योगी बाबा बड़ो जनैया यही कुँवर दुखदाई। —रघुराज (शब्द०)।

जनो‡¹—संज्ञा पुं० [हिं० जनेऊ] दे० 'जनेऊ'।

जनो‡²—क्रि० वि० [हिं० जानना] मानो। गोया। उ०—(क) तैही जनो पतिदेवत के गुन गौरि सबै गुनगोरि पढ़ाई।—मति० ग्रं०, पृ० २७५ (ख) कुंकुम मंडित प्रिया वदन जनो रंजित नायक। —नंद० ग्रं०, पृ० ३९।

जनोपयोगी—वि० [सं० जनोपयोगिन्] जनसाधारण के व्यवहार या उपयोग की।

जनौⓊ—क्रि० वि० [हिं० जानना] मानो। जनो। उ०—(क) अब भा चेत उठा बैरागा। बाउर जनौ सोइ उठि जागा।—जायसी (शब्द०)। (ख) नर तौ जनौं अनुत ही पगे।—नंद० ग्रं०, पृ० २३२। (ग) उनं तेग कढ्ढी। जनो बज्र टुट्टी।—पृ० रा०, १०।२०।

जनौघ—संज्ञा पुं० [सं० जन + ओघ] भीड़। जनसमूह [को०]।

जन्नत—संज्ञा पुं० [अ०] १. उद्यान। वाटिका। बाग। २. बिहिश्त। स्वर्ग। देवलोक। उत्तम लोक। उ०—हमको मालूम है जन्नत की हकीकत लेकिन। दिल के खुश रखने को गालिब ये खयाल अच्छा है। —कविता कौ०, भा० ४, पृ० ४७४। (ख) जन्नत से कढ़वा दिया शुरू में ही बेचारे आदम को।—धूप०, पृ० ७३।

जन्नती—वि० [अ०] १. स्वर्गवासी। स्वर्गीय। २. सदाचारी। पुण्यात्मा। स्वर्ग के योग्य [को०]।

जन्म—संज्ञा पुं० [सं० जन्मन्] १. गर्भ में से निकलकर जीवन धारण करने की क्रिया। उत्पत्ति। पैदाइश।

यौ०—जन्मांध। जन्माष्टमी। जन्मतिथि। जन्मभूमि। जन्मपंजी जन्मपत्री। जन्मरोगी। जन्मदिवस = जन्मदिन। जन्मकुंडली। जन्ममरण। जन्मदाता। जन्मदात्री। जन्मनाम। जन्मलग्न, आदि।

पर्या०—जनु। जन। जनि। उद्भव। जनी। प्रभव। भाव। भव। संभव। जनू। प्रजनन। जाति।

क्रि० प्र०—देना।—धारना।—लेना।

मुहा०—जन्म लेना = उत्पन्न होना। पैदा होना।

२. अस्तित्व प्राप्त करने का काम। आविर्भाव। जैसे,—इस वर्ष कई नए पत्रों ने जन्म लिया है। ३. जीवन। जिंदगी।

मुहा०—जन्म बिगड़ना = बेधर्म होना। धर्म नष्ट होना। जन्म बिगाड़ना = (१) अशोभन और अनुचित कार्यों में लगे रहना। (२) दे० 'जन्म हारना'। जन्म जन्म = सदा। नित्य। जन्म जन्मांतर = सदा। प्रत्येक जन्म में। जन्म में थूकना† = घृणापूर्वक धिक्कारना। जन्म हारना = (१) व्यर्थ जन्म खोना। (२) दूसरे का दास होकर रहना।

४. फलित ज्योतिष के अनुसार जन्मकुंडली का वह लग्न जिसमें कुंडलीवाले जातक का जन्म हुआ हो।

जन्मअष्टमी—संज्ञा स्त्री० [सं० जन्माष्टमी] दे० 'जन्माष्टमी'।

जन्मकील—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

विशेष—पुराणानुसार विष्णु की उपासना करने से मनुष्य का मोक्ष हो जाता है और उसे फिर जन्म नहीं लेना पड़ता। इसी से विष्णु को जन्मकील कहते हैं।

जन्मकुंडली—संज्ञा स्त्री० [सं० जन्मकुण्डली] ज्योतिष के अनुसार वह चक्र जिससे किसी के जन्म के समय में ग्रहों की स्थिति का पता चले।

जन्मकृत्—संज्ञा पुं० [सं०] पिता। जन्मदाता।

जन्मक्षेत्र—संज्ञा पुं० [सं०] जन्मभूमि। जन्मस्थान [को०]।

जन्मगत—वि० [सं० जन्म + गत] जन्म से ही प्राप्त। जन्मना प्राप्त [को०]।

जन्मग्रहण—संज्ञा पुं० [सं०] उत्पत्ति।

जन्मजात—वि० [सं०] जन्म से ही प्राप्त या उत्पन्न।

जन्मतिथि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जन्म की तिथि। जन्मदिन। २. वर्षगाँठ।

जन्मतुआ†—वि० [हिं० जन्म + तुआ (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० जन्मतुई] थोड़े दिनों का पैदा हुआ। नवोत्पन्न। दुधमुहाँ।

जन्मद—वि० [सं०] दे० 'जन्मदाता'।

जन्मदाता—संज्ञा पुं० [सं० जन्मदातृ] [स्त्री० जन्मदात्री] जन्म देनेवाला। पिता [को०]।

जन्मदात्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] जननी। माता [को०]

जन्मनक्षत्र—संज्ञा पुं० [सं०] जन्म समय का नक्षत्र।

विशेष—फलित ज्योतिष के अनुसार किसी को अपने जन्मनक्षत्र में यात्रा न करनी चाहिए और हजामत न बनवानी चाहिए, उस दिन उसे कुछ दान पुण्य आदि करना चाहिए।

जन्मना¹—क्रि० स० [सं० जन्म हिं० ना (प्रत्य०)] १. जन्म लेना। जन्म ग्रहण करना। पैदा होना। २. आविर्भूत होना। अस्तित्व में आना।

जन्मना²—क्रि० वि० [सं० जन्मन् का करण कारक] जन्म से। जन्म द्वारा।

जन्मनाम—संज्ञा पुं० [सं० जन्मनामन्] जन्म के १२ वें दिन रखा गया नाम [को०]।

जन्मप—संज्ञा पुं० [सं०] १. फलित ज्योतिष में जन्मलग्न का स्वामी। २. फलित ज्योतिष में जन्मराशि का स्वामी।

जन्मपति—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुंडली में जन्मराशि का मालिक। २. जन्मलग्न का स्वामी।

जन्मपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. जन्मपत्री। २. जन्म का विवरण। जीवनचरित्। ३. किसी चीज का आदि से अंत तक विस्तृत विवरण।

जन्मपत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] जन्मपत्री।

जन्मपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह पत्र या खर्रा जिसमें किसी की उत्पत्ति के समय के ग्रहों की स्थिति, उनकी दशा, अंतर्दशा, आदि और फलित ज्योतिष के अनुसार उनके फल आदि दिए हों।

जन्मपादप—संज्ञा पुं० [सं०] वंशवृक्ष [को०] ।

जन्मप्रतिष्ठा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. माता । माँ । २. जन्म होने का स्थान ।

जन्मभ—संज्ञा पुं० [सं०] १. जन्म समय का लग्न । २. जन्म समय का नक्षत्र । ३. जन्म की राशि । ४. जन्मनक्षत्र के सजातीय नक्षत्र आदि ।

जन्मभाषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जन्म की भाषा । मातृभाषा [को०] ।

जन्मभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जिस स्थान पर किसी का जन्म हुआ हो । जन्मस्थान । २. वह देश जहाँ किसी का जन्म हुआ हो ।

जन्मभृत्—संज्ञा पुं० [सं०] जीव । प्राणी ।

जन्मयोग—संज्ञा पुं० [सं०] जन्मपत्रिका । जन्मकुंडली [को०] ।

जन्मराशि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह लग्न जिसमें किसी के उत्पन्न होने के समय चंद्रमा उदय हो ।

जन्मरोगी—वि० [सं० जन्मरोगिन्] जन्म से रुग्ण । जन्म से ही रोगग्रस्त [को०] ।

जन्मलग्न—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जन्मराशि' [को०] ।

जन्मवर्त्म—संज्ञा पुं० [सं० जन्मवर्त्मन्] योनि । भग ।

जन्मविधवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जो बचपन में विवाह होने पर विधवा हो गई हो और अपने पति के साथ जिसका संपर्क न हुआ हो । अक्षतयोनि विधवा ।

जन्मवृत्तांत—संज्ञा पुं० [सं० जन्म + वृत्तांत] दे० 'जन्मपत्र' ।

जन्मशोधन—संज्ञा पुं० [सं०] जन्म से ही प्राप्त ऋणों या कर्तव्यों का परिशोधन [को०] ।

जन्मसिद्ध—वि० [सं० जन्म + सिद्ध] जिसकी प्राप्ति जन्म से ही सिद्ध या मान्य हो । जैसे,—स्वतंत्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है । उ०—बन जन्मसिद्ध गायिका, तन्वि, मेरे स्वर की रागिनी वह्नि ।—अपरा, पृ० १७७ ।

जन्मस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] १. जन्मभूमि । २. माता का गर्भ । ३. कुंडली में वह स्थान जिसमें जन्म समय के ग्रह रहते हैं ।

जन्मांतर—संज्ञा पुं० [सं० जन्मान्तर] दूसरा जन्म । अन्य जन्म । उ०—कारन ताको जानिए सुधि प्रगटी है आय । जन्मांतर के सखन की जो मन रही समाय ।—शकुंतला, पृ० ८२ ।

यौ०—जन्मांतरवाद = पुनर्जन्म संबंधी विचारधारा ।

जन्मांध—वि० [सं० जन्मान्ध] जन्म का अंधा । जन्म से अंधा ।

जन्मा[१]—संज्ञा पुं० [सं० जन्मन्] वह जिसका जन्म हो । जन्मवाला । जैसे,—द्विजन्मा, शूद्रजन्मा ।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का व्यवहार प्राय. समासांत में होता है ।

जन्मा[२]—वि० उत्पन्न । जो पैदा हुआ हो ।

जन्माधिप—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिव का एक नाम । २. जन्मराशि का स्वामी । ३. जन्मलग्न का स्वामी ।

जन्माना—क्रि० स० [हिं० जन्मना] जन्मने का सकर्मक रूप । उत्पन्न करना । जन्म देना ।

जन्माष्टमी—संज्ञा स्त्री० [सं०] भादों की कृष्णाष्टमी, जिस दिन आधी रात के समय भगवान श्रीकृष्णचंद्र का जन्म हुआ था । इस दिन हिंदू व्रत तथा श्रीकृष्ण के जन्म का उत्सव करते हैं ।

विशेष—विष्णुपुराण में लिखा है कि श्रीकृष्णचंद्र का जन्म श्रावण मास के कृष्ण पक्ष की अष्टमी को हुआ था । इसका कारण मुख्य चांद्रमास और गौण चांद्रमास का भेद मालूम होता है, क्योंकि जन्माष्टमी किसी वर्ष सौर श्रावण मास में होती है । और किसी वर्ष सौर भाद्रमास में होती है ।

जन्मास्पद—संज्ञा पुं० [सं०] जन्मभूमि । जन्मस्थान ।

जन्मी[१]—संज्ञा पुं० [सं० जन्मिन्] प्राणी । जीव ।

जन्मी[२]—वि० जो उत्पन्न हुआ हो ।

जन्मेजय—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुरुवंशी प्रसिद्ध राजा परीक्षित के पुत्र का नाम ।

विशेष—यह बड़ा प्रतापी राजा था । इसने तक्षक नाग से अपने पिता का बदला लिया था और एक अश्वमेध यज्ञ भी किया था । वैशंपायन ने इसे महाभारत सुनाया था । यह अर्जुन का प्रपौत्र और अभिमन्यु का पौत्र था ।

२. विष्णु । ३. एक प्रसिद्ध नाग का नाम ।

जन्मेश—संज्ञा पुं० [सं०] जन्मराशि का स्वामी ।

जन्मोत्सव—संज्ञा पुं० [सं०] किसी के जन्म के स्मरण का उत्सव तथा नवग्रह, अष्टचिरंजीवी और कुलदेवता आदि का पूजन । बरसगाँठ । २. जातक के छठे दिन या बारहवें दिन होनेवाला उत्सव या समारोह ।

जन्य[१]—संज्ञा पुं०[सं०] [स्त्री० जन्या] १. साधारण मनुष्य । जनसाधारण । २. किंवदंती । अफवाह । ३. राष्ट्र या किसी देश के वासी । ४. लड़ाई । युद्ध । ५. हाट । बाजार । ६. निंदा । परिवाद । ७. वर । दूलह । ८. वर के संबंधी जन । वर पक्ष के लोग । ९. बराती । १०. जामाता । दामाद । ११. पुत्र । बेटा । उ०—अतुल अंबुकुल सा अमल भला कौन है अन्य । अंबुज जिसका जन्य तू धन्य धन्य ध्रुव धन्य ।—साकेत, पृ० २९३ । १२. पिता । १३. महादेव । १४. देह । शरीर । १५. जन्म । १६ जाति । १७. जन्म के समय होनेवाला शकुन या अपशकुन (को०) ।

जन्य—वि० १. जन संबंधी । २. जो उत्पन्न हुआ हो । उद्भूत । ३. किसी जाति, देश, वंश या राष्ट्र से संबंध रखनेवाला । ४. देशिक । राष्ट्रीय । जातीय । ५. साधारण । सामान्य । गँवारू (को०) । ६. (समासांत में) किसी से या किसी के द्वारा उत्पन्न । जैसे, तज्जन्य, दुःखजन्य ।

जन्यता—संज्ञा स्त्री० [सं०] जन्म होने का भाव ।

जन्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वधू की सहेली । २. वधू । ३. माता की सखी । ४. प्रीति । स्नेह । ५. सुख । आनंद (को०) ।

जन्यु—संज्ञा पुं० [सं०] १. अग्नि । २. ब्रह्मा । विधाता । ३. प्राणी । जीव । ४. जन्म । उत्पत्ति । ५. हरिवंश के अनुसार चौथे मन्वंतर के सप्तर्षियों में से एक ऋषि का नाम ।

जप—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० जपतव्य, जपनीय, जपी, जप्य] १. किसी मंत्र या वाक्य का बार बार धीरे धीरे पाठ करना। २. पूजा या संध्या आदि में मंत्र का संख्यापूर्वक पाठ करना।

विशेष—पुराणों में जप तीन प्रकार का माना गया है—मानस, उपांशु और वाचिक। कोई कोई उपांशु और मानस जप के बीच 'जिह्वाजप' नाम का एक चौथा जप भी मानते हैं। ऐसे लोगों का कथन है कि वाचिक जप से दसगुना फल उपांशु में, शतगुना फल जिह्वा जप में और सहस्रगुना फल मानस जप में होता है। मन ही मन मंत्र का अर्थ मनन करके उसे धीरे धीरे इस प्रकार उच्चारण करना कि जिह्वा और ओठ में गति न हो, मानस जप कहलाता है। जिह्वा और ओठ को हिलाकर मंत्रों के अर्थ का विचार करते हुए इस प्रकार उच्चारण करना कि कुछ सुनाई पड़े, उपांशु जप कहलाता है। जिह्वाजप भी उपांशु के ही अंतर्गत माना जाता है. भेद केवल इतना ही है कि जिह्वा जप में जिह्वा हिलती है, पर ओठ में गति नहीं होती और न उच्चारण ही सुनाई पड़ सकता है। वर्णों का स्पष्ट उच्चारण करना वाचिक जप कहलाता है। जप करने में मंत्र की संख्या का ध्यान रखना पड़ता है, इसलिये जप में माला की भी आवश्यकता होती है।

यौ०—जपमाला। जपयज्ञ। जपस्थान।

३. जापक। जपनेवाला। जैसे, करोंजप।

जपजी—संज्ञा पुं० [हिं० जप] सिक्खों का एक पवित्र धर्मग्रंथ, जिसका नित्य पाठ करना वे अपना मुख्य धर्म समझते हैं।

जपतप—संज्ञा पुं० [हिं० जप+तप] संध्या, पूजा, जप और पाठ आदि। पूजा पाठ। उ०—जपतप कछु न होइ तेहि काला। हे विधि मिलइ कवन विधि बाला।—मानस, १।१३१।

जपतⓅ—संज्ञा पुं० [अ० जब्त] दे० 'जब्त'। उ०—अपत करी बन की लता, जपत करी द्रुम साज। बुध बसंत को कहत है कहा। जानि ऋतुराज।—स० सप्तक, पृ० ३८२।

जपतव्य—वि० [सं०] दे० 'जपनीय'।

जपता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जप करने का काम। २. जप करने का भाव।

जपन—संज्ञा पुं० [सं०] जपने का काम। जप।

जपना[1]—क्रि० स० [सं० जपन] १ किसी वाक्य या वाक्यांश को बराबर लगातार धीरे धीरे देर तक कहना या दोहराना उ०—राम राम के जपे ते जाय जिय की जरनि।—तुलसी (शब्द०)। २. किसी मंत्र का संध्या, यज्ञ या पूजा आदि के समय संख्यानुसार धीरे धीरे बार बार उच्चारण करना। ३. खा जाना। जल्दी निगल जाना (बाजारू)।

जपनाⓅ[2]—क्रि० स० [सं० यजन] यजन करना। यज्ञ करना। उ०—चहत महामुनि जाग जपो। नीच निसाचर देत दुसह दुख कृस तनु ताप तपो।—तुलसी (शब्द०)।

जपनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० जपना] १. माला। २. वह थैली जिसमें माला रखकर जप किया जाता है। गोमुखी। गुप्ती।

जपनीय—वि० [सं०] जप करने योग्य। जो जपने योग्य हो।

जपमाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह माला जिसे लेकर लोग जप करते हैं।

विशेष—यह माला संप्रदायानुसार, रुद्राक्ष, कमलाक्ष, पुत्रजीव, स्फटिक, तुलसी आदि के मनकों की होती है। इनमें प्रायः एक सौ आठ, चौवन या अट्ठाईस दाने होते हैं और बीच में जहाँ गाँठ होती है वहाँ एक सुमेरु होता है। हिंदुओं के अतिरिक्त बौद्ध, मुसलमान और ईसाई आदि भी माला से जप करते हैं।

जपयज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] जपात्मक यज्ञ। जप। इसके तीन भेद वाचिक, उपांशु और मानसिक है।

विशेष—दे० 'जप—२'।

जपहोम—संज्ञा पुं० [सं०] जप। मंत्र का होमात्मक रूप में जप।

जपा[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] जवा पुष्प। अड़हुल। उ०—को इनकी छबि कहि सके, को इनकी छबि लाल। रोचन तें रोचन कहा, जावक, जपा, गुलाल।—स० सप्तक, पृ० ३८७।

यौ०—जपाकुसुम=अड़हुल का फूल।—अनेकार्थ०, पृ० ४१। जपालक्त, जपालक्तक=जपाकुसुम सा गहरा लाल महावर।

जपाⓅ†[2]—संज्ञा पुं० [सं० जप] वह जो जप करता हो। जप करनेवाला व्यक्ति। उ०—मठ मंडप चहुँ पास सँवारे। तपा जपा सब आसन मारे।—जायसी ग्रं०, पृ० १२।

जपाना†—क्रि० स० [हिं० जप या जपना] जपने का प्रेरणार्थक रूप। जप कराना।

जपियाⓅ—वि० [हिं०] जप करनेवाला।

जपी—संज्ञा पुं० [सं० जपिन् हिं० जप+ई (प्रत्य०)] जप करनेवाला। वह जो जप करता हो।

जप्त—संज्ञा पुं० [अ० जब्त] दे० 'जब्त'।

जप्तव्य—वि० [सं०] जो जपने योग्य हो। जपनीय।

जप्ती—संज्ञा स्त्री० [अ० जब्ती] दे० 'जब्ती'।

जप्य[1]—वि० [सं०] जपने योग्य। जपनीय।

जप्य[2]—संज्ञा पुं० मंत्र का जप।

जफर[1]—संज्ञा स्त्री० [अ० ज़फ़र] जय। विजय। सफलता। उ०—दो तीन गरातिब वह लश्कर। जंग उससे किए नई पाए जफर।—दक्खिनी०, पृ० २२१।

जफर[2]—संज्ञा पुं० [अ० जफ्र] एक विद्या जिससे परोक्ष ज्ञान प्राप्त होता है (को०)।

जफा—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जफ़ा] अन्याय और अत्याचारपूर्ण व्यवहार। सख्ती। उ०—गया बहाना भूल जफा में मूर गँवाया।—पलटू०, पृ० २०।

यौ०—जफाकार, जफाकेश, जफाशिअार=अत्याचारी। अन्यायी। क्रूर। जालिम।

जफाकश—वि० [फ़ा० जफ़ाकश] १. सहिष्णु। सहनशील। २. मेहनती। परिश्रमी।

जफाकशी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जफ़ाकशी] सहिष्णु और परिश्रमी स्वभाव का होना (को०)।

जफीर—संज्ञा स्त्री० [अ० जफ़ीर] दे० 'जफील'।

जफीरी—संज्ञा स्त्री० [अ० जफ़ीर+फ़ा० ई (प्रत्य०)] १. एक प्रकार की कपास जो मिस्र देश में होती है। २. सीटी (को०)।

जफील—स्त्री० संज्ञा पुं० [अ० जफ़ीर] १. सीटी का शब्द, विशेषतः उस सीटी का शब्द जो कबूतरबाज कबूतर उड़ाने के समय मुँह में दो उँगलियाँ रखकर बजाते हैं। २. वह जिससे सीटी बजाई जाय। सीटी।

क्रि० प्र०—बजाना।—देना।

जफीलना—क्रि० अ० [हिं० जफील] सीटी बजाना। सीटी देना।

जब—क्रि० वि० [सं० यावत्, प्रा० याव, जाव] जिस समय। जिस वक्त। उ०—जबते राम ब्याहि घर आए। नित नव मंगल मोद बधाए।—तुलसी (शब्द०)।

मुहा०—जब कभी = जब जब। जिस किसी समय। जब कि = जब। जब जब = जब कभी। जिस जिस समय। उ०—जब जब होइ धरम की हानी। बाढ़ै असुर अधम अभिमानी। तब तब प्रभु धरि मनुज शरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा।—तुलसी (शब्द०)। जब तब = कभी कभी। जैसे,—जब तब वे यहाँ आ जाया करते हैं। जब होता है तब = प्रायः। अकसर। बराबर। जैसे,—जब होता है, तब तुम मार दिया करते हो। जब देखो तब = सदा। सर्वदा। हमेशा। जैसे,—जब देखो तब तुम यहीं खड़े रहते हो।

जबई†—क्रि० वि० [हिं० जब + ही] जिस किसी समय। उ०—जबई आनि परै तहाँ तबई ता सिर देहि।—नंद० ग्रं०, पृ० १३५।

जबड़ा—संज्ञा पुं० [सं० जम्भ] मुँह में दोनों ओर ऊपर और नीचे की वे हड्डियाँ जिनमें डाढ़े जड़ी रहती हैं। कल्ला।

मुहा०—जबड़ा फाड़ना = मुँह खोलना। मुँह फाड़ना। जबड़े की तान = गवैयों की एक तान जो उत्तम नहीं मानी जाती।

यौ०—जबड़ातोड़ = जबरदस्त। बलवान। मुँहतोड़।

जबदी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का धान जो रुहेलखंड में पैदा होता है।

जबर¹—वि० [फ़ा० जबर] १. बलवान। बली। ताकतवर। २. मजबूत। दृढ़। ३. ऊँचा। ऊपरी।

जबर²—क्रि० वि० ऊपर। उपरि।

जबर³—संज्ञा पुं० उर्दू में ह्रस्व अकार का बोधक चिह्न।

जबरई†—संज्ञा स्त्री० [हिं० जबर + ई (प्रत्य०)] अन्याययुक्त सख्ती। अत्याचार। ज्यादती।

जबरजंग†—वि० [हिं० जबर + जंग] दे० 'जबरदस्त'।

जबरजद, जबरजद्द—संज्ञा पुं० [अ० जबरजद] एक प्रकार का पन्ना जो पीलापन लिए हरे रंग का होता है। पुखराज।

जबरजस्त†—वि० [फ़ा० जबरदस्त] दे० 'जबरदस्त'।

जबरजस्ती‡—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जबरदस्ती] दे० 'जबरदस्ती'। उ०—किसी के कहने से नहीं छोड़ सकते. जबरजस्ती जो चाहे निकाल दे।—रंगभूमि, भा० २, पृ० ७६४।

जबरदस्त—वि० [फ़ा० जबरदस्त] [संज्ञा जबरदस्ती] १. बलवान बली। शक्तिवाला। २. दृढ़। मजबूत। पक्का।

जबरदस्ती¹—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जबरदस्ती] अत्याचार। सीनाजोरी। प्रबलता। जियादती। अन्याय।

जबरदस्ती²—क्रि० वि० बलपूर्वक। दबाव डालकर। इच्छा के विरुद्ध।

जबरन—क्रि० वि० [अ० जब्रन्] बलात्। जबरदस्ती। बलपूर्वक। उ०—एक तरह से जबरन ही उसे गाड़ी में बैठा लिया।—भस्मावृत०, पृ० ११।

जबरा¹—वि० [हिं० जबर] बलवान। बली। प्रबल। जबरदस्त। जैसे,—जबरा मारे रोने न दे।

जबरा²—संज्ञा पुं० [हिं० जबर (= दृढ़)] चौड़े मुँह का एक प्रकार का कुठला या अनाज रखने का मिट्टी का बड़ा बरतन।

जबरा³—संज्ञा पुं० [अ० जेबरा] घोड़े और गदहे के मध्य का एक बहुत सुंदर जंगली जानवर जो मटमैले सफेद रंग का होता है और जिसके सारे शरीर पर लंबी सुंदर और काली धारियाँ होती हैं।

विशेष—यह कंधे तक प्रायः तीन हाथ ऊँचा और छरहरे, पर मजबूत बदन का होता है। इसके कान बड़े, गरदन छोटी और दुम गुच्छेदार होती है। यह बहुत चौकन्ना, चपल, जंगली और तेज दौड़नेवाला होता है और बड़ी कठिनता से पकड़ा या पाला जाता है। यह कभी सवारी या लादने का काम नहीं देता। दक्षिण अफ्रिका के जंगलों और पहाड़ों में इसके झुंड के झुंड पाए जाते हैं। जहाँ तक हो सकता है, यह बहुत ही एकांत स्थान में रहता है और मनुष्यों आदि की आहट पाकर तुरंत भाग जाता है। इसका शिकार बहुत किया जाता है जिससे इसकी जाति के शीघ्र ही नष्ट हो जाने की आशंका है।

जबराइल—संज्ञा पुं० [अ० जिब्रील] एक फरिश्ता या देवदूत।

जबरूत—संज्ञा पुं० [अ०] प्रतिष्ठा। श्रेष्ठता। बुजुर्गी (को०)।

जबर्दस्त—वि० [हिं०] दे० 'जबरदस्त'।

जबर्दस्ती—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'जबरदस्ती'।

जबल—संज्ञा पुं० [अ०] पर्वत। पहाड़। उ०—तन दुख नीर तड़ाग, रोग बिहंगम रूखड़ो। बिमन सलीमुख बाग, जरा बरक ऊतर जबल।—बाँकी ग्रं०, भा० २, पृ० ४१।

जबह—संज्ञा पुं० [अ० जब्ह, जिब्ह] गला काटकर प्राण लेने की क्रिया। हिंसा। उ०—भोले भाले मुसलमानों को बगला कर जबह न कीजिए।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ८६।

मुहा०—जबह करना = बहुत कष्ट देना। अत्यंत दुःख देना।

जबहा¹—संज्ञा पुं० [हिं० जीव] जीवट। साहस। हिम्मत। जैसे,—उसने बड़े जबहे का काम किया।

जबहा²—संज्ञा पुं० [अ० जबहह्] १. दसवाँ नक्षत्र। मघा। २. ललाट। पेशानी। माथा।

यौ०—जबहासाई—माथा रगड़ना या घिसना। दैन्य प्रदर्शन।

जबाँ—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जबाँ] दे० 'जबान'। उ०—जबाँ सदके गाली ही भला आशिक को तुम दे दो।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ४२२।

यौ०—जबाँगीर। जबाँजद। जबाँदराज। जबाँदराजी। जबाँदाँ = भाषाविज्ञ। जबाँदानी। जबाँबंदी।

जबाँगीर—वि० [फ़ा० जबाँगीर] जासूस। गुप्तचर। भेदिया (को०)।

जबाँजद—वि० [फ़ा० जबाँजद] जो सबकी जबान पर हो। जनप्रसिद्ध। विख्यात (को०)।

जबाँदराज—वि० [फ़ा० जबाँदराज़] दे० 'जबानदराज'।

जबाँदराजी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० ज़बाँदराजी] दे० जबानदराजी'।

जबाँदानी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० ज़बाँदानी] किसी भाषा का पांडित्य या पूर्ण ज्ञान। उ०—लखनऊवालि, जिन्हें अपनी जबाँदानी का अभिमान है।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ४०६।

जबान—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० ज़बान][वि० जबानी]। १. जीभ। जिह्वा।

यौ०—जबानदराज। जबानबंदी।

मुहा०—जबान कतरनी की तरह चलना = धृष्टतापूर्वक अनुचित अनुचित बातें कहना। उ०—ऐसी ढिठाई से खुदा समझे कि दोनों की जबान कतरनी की तरह चल रही है।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ३९९। जबान को लगाम देना = अपना कथन समाप्त करना। चुप हो जाना। उ०—बस बस जरी जबान को लगाम दो।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ३। जबान आना = किसी चुप्पे आदमी का बढ़कर बातें करना। उत्तर प्रत्युत्तर करना। उ०—शान खुदा, बेजबानों को भी हमारे लिये जबान आई।—फिसाना०, भा० ३, पृ० २७४। जबान खींचना = बहुत अनुचित या धृष्टतापूर्ण बातें करने के लिये कठोर दंड देना। जबान खुलना = (१) मुँह से बात निकालना। (२) बच्चों का बोलने लगना। बोलने में समर्थ होना। जबान खुलवाना = टेढ़ी सीधी कुछ कहने को विवश करना। जबान खुश्क होना = पिपासित होना। प्यास से आकुल होना। जबान खोलना = मुंह से बात निकालना। बोलना। जबान घिस जाना या घिसना = कहते कहते हार जाना। बार बार कहना। जबान चलना = (१) मुँह से जल्दी जल्दी शब्द निकलना। (२) मुँह से अनुचित शब्द निकलना। (३) खाया जाना। मुँह चलाना। जबान चलाना = (१) बोलना, विशेषत: जल्दी जल्दी बोलना। (२) मुँह से अनुचित शब्द निकलना। जबान चलाए की रोटी खाना = खुशामद या चापलूसी द्वारा जीवनयापन करना। जबान चाटना = दे० 'ओंठ चाटना'। जबान टूटना = (बालक का) स्पष्ट उच्चारण आरंभ करना। † जबान डालना = (१) माँगना याचना करना। (२) पूछना। प्रश्न करना। जबान तक न हिलना = मौन रह जाना। कुछ न कहना। उ०—इतनी फ़िरंगिनें बैठी हैं किसी की जबान तक नहीं हिली और हम आपस में कटे मरते हैं।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ३। जबान थामना या पकड़ना = बोलने न देना। कहने से रोकना। जबान पर आना = कहा जाना। मुँह से निकलना। जबान पर या में ताला लगना = चुप रहने को विवश होना। जबान पर मुहर लगाना = बोलने या कहने पर रुकावट होना। जबान पर रखना = (१) किसी चीज को थोड़ी मात्रा में खाकर उसका स्वाद लेना। चखना। (२) स्मरण रखना। याद रखना। जबान पर लाना = मुँह से कहना। बोलना। उ०—मरहवा वगैरह जबान पर लाते थे और खुद ही झुक झुक कर सलाम करते थे।—फिसाना०, भा० १, पृ० १। जबान पलटना = कहकर बदल जाना। वचन भंग करना। जबान पर होना = हर दम याद रहना। स्मरण रहना। जबान बंद करना = (१) चुप होना। (२) बोलने से रोकना। (३) विवाद में हराना। जबान बंद होना = (१) मुँह से शब्द न निकलना। (२) विवाद में हार जाना। निग्रह स्थान में आना। जबान बिगड़ना = (१) मुँह से अपशब्द निकलने का अभ्यास होना। ३. मुँह का स्वाद इस प्रकार खराब होना कि खाने की कोई चीज अच्छी न लगे। (३) जबान चटोरी होना। जबान में काँटे पड़ना = (१) जबान फटना। निनावाँ होना। (२) किसी बात को रुककर रुक कहना। जबान में कीड़े पड़ना = अनुचित कथन या मिथ्या भाषण पर अशुभ कामना। जबान में खुजली होना = झगड़े की अभिलाषा होना। जबान में लगाम न होना = अनुचित बातें कहने का अभ्यास होना। सोच समझकर बोलने के अयोग्य होना। जबान रोंकना = (१) जबान पकड़ना। (२) चुप करना। जबान सँभालना मुँह से अनुचित शब्द न निकलने देना। सोच समझकर बोलना। जबान सीना। दे० 'मुँह सीना'। जबान निकालना = उच्चारण होना। बोला जाना। जबान से निकलना = उच्चारण करना। कहना। जबान हिलाना = बोलने का प्रयत्न करना। मुँह से शब्द निकालनना। दबी जबान से बोलना या कहना = कमजोर होकर बोलना। अस्पष्ट रूप से बोलना। इस प्रकार से बोलना जिससे सुननेवालों को उस बात के संबंध में संदेह रह जाय। बदजबानी = अनुचित और अशिष्ट बात। बरजबान = जो बहुत अच्छी तरह याद हो। कंठस्थ। उपस्थित। बेज़बान = जो अधिक न बोलता हो। बहुत सीधा।

२. जबान से निकला हुआ शब्द। बात। बोल। जैसे—मरद की एक जबान होती है।

मुहा०—जबान बदलना = कही हुई बात से फिर जाना। दे० 'जबान पलटना'।

३. प्रतिज्ञा। वादा। कौल। करार।

मुहा०—जबान देना या हारना = प्रतिज्ञा करना। वचन देना। वादा करना।

४. भाषा। बोलचाल। जैसे, उर्दू जबान।

जबानदराज—वि० [फा० ज़बानदराज़] [संज्ञा जबानदराजी] १. जो बहुत सी न कहने योग्य और अनुचित बातें कहे। बहुत धृष्टतापूर्वक अनुचित बातें करनेवाला। २. बढ़ बढ़कर बातें करनेवाला। शेखी या डींग हाँकनेवाला।

जबानदराजी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० ज़बानदराजी] बहुत धृष्टतापूर्वक अनुचित बातें करने की क्रिया या भाव। धृष्टता। ढिठाई। गुस्ताखी।

जबानबंद—संज्ञा पुं० [फ़ा० ज़बानबंद] १. तावीज या यंत्र। वह तावीज जो शत्रु की जबान को रोकने के लिये लिखा जाय। २. वह साक्षी या इजहार जो लिखा हुआ हो।

जबानबंदी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० ज़बानबंदी] १. किसी घटना आदि के संबंध में साक्षी स्वरूप वह कथन जो लिख लिया जाय। लिखा जानेवाला इजहार। २. मौन। चुप्पी।

जबानी—वि० [हिं० जबान] जो केवल जबान से कहा जाय, पर कार्य अथवा और किसी रूप में परिणत न किया जाय। मौखिक। जैसे, जबानी जमाखर्च, जबानी संदेसा।

जबाब—संज्ञा पुं० [अ० जबाब] दे० 'जवाब'

यौ०—जबाबदेह = उत्तरदाता। जिम्मेदार। उ०—इस नूतन कविता आंदोलन के साथ में आज अपनी रचनाओं के लिये आलोचक के सामने पहले से कहीं अधिक जबाबदेह हूँ। —बंदन०, पृ० २१।

जबार†—संज्ञा पुं० [अ० जवार] दे० 'जवार'। उ०—जबार में ही हाई स्कूल खुल गया था।—नई०, पृ० ८।

जबाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] सत्यकाम जाबाल ऋषि की माता का नाम जो एक दासी थी। इसकी कथा छांदोग्य उपनिषद् में है।

विशेष—दे० 'जाबाल'।

जबुर‡—वि० [अ० जब्र] बुरा। खराब। अनुचित।

जबून—वि० [तु० जबून] बुरा। खराब। निकम्मा। निकृष्ट। उ०—करत है राम जबून भला, हम बपुरा कौन सवारे।—जग० श०, पृ० ११४।

जबूर—संज्ञा पुं० [अ० ज़बूर] वह आसमानी किताब जो हजरत दाऊद पर उतरी थी। एक मुसलमानी धर्मग्रंथ। उ०—जैसे तौरीत ऋग्वेद है वैसा ही जबूर सामवेद है।—कबीर मं०, पृ० २८८।

जब्त—संज्ञा पुं० [अ० ज़ब्त] १. अधिकारी या राज्य द्वारा दंडस्वरूप किसी अपराधी की संपत्ति का हरण। किसी अपराधी को दंड देने के लिये सरकार का उसकी जायदाद छीन लेना। २. अपने अधिकार में आई हुई किसी दूसरे की चीज को अपना लेना। कोई वस्तु किसी के अधिकार से ले लेना। ३. धैर्य धारण करना। धीरतायुक्त होना। सहना (को०)। ४. प्रबंध। इंतजाम। व्यवस्था (को०)।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

जब्ती—संज्ञा स्त्री० [अ० ज़ब्त] जब्त होने की क्रिया। कुर्की।

मुहा०—जब्ती में आना = जब्त हो जाना।

जब्बर(पु)†—वि० [फ़ा० जब्बर] शक्तिशाली। भारी। उ०—आलम लोटहि पोट पोट जब्बर उर लागी। कियो हियो दुःसार पीर प्रानचि मैं पागी।—ब्रज० ग्रं०, पृ० १५।

जब्बार—वि० [अ०] जबरदस्ती करनेवाला। ताकतवर। शक्तिशाली। उ०—छुटकारा हुआ आब दस्ते जब्बार।—कबीर मं०, पृ० ४७।

जब्भा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'जबड़ा'।

जब्र—संज्ञा पुं० [अ०] १. कठोर व्यवहार। ज्यादती। सख्ती। २. लाचारी। मजबूरी (को०)।

जब्रन—क्रि० वि० [अ० जब्रन्] बलात्। बलपूर्वक। जबरदस्ती।

जब्री—वि० [अ०] जबरदस्ती, बलपूर्वक या अनिवार्यतः कराया जानेवाला [को०]।

जब्रीया[1]—क्रि० वि० [अ० जब्रीयह्] जबरदस्ती से।

जब्रीया[2]—संज्ञा पुं० वह जो ईश्वरेच्छा या नियति को सर्वोपरि मानता हो [को०]।

जब्रील—संज्ञा पुं० [अ०] दे० 'जिब्रील'।

जब्ह—संज्ञा पुं० [अ० ज़ब्ह] दे० 'जबह'।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

जभन—संज्ञा पुं० [सं० यभन] मैथुन। स्त्री-प्रसंग।

जम(पु)—संज्ञा पुं० [सं० यम] दे० 'यम'। उ०—दरसन ही ते लागै जम मुख मसी है।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० १८१।

यौ०—जम अनुजा = यमुना। जमकातर। जमघंट। जमघर। जमदिसा। जमपुर।

जमई—[फ़ा०] जो जमा हो। नगदी। जमा संबंधी।

विशेष—यह शब्द उस भूमि के लिये आता है जिसका लगान नगद लिया जाता है। जैसे, जमई खेत। अथवा इसका व्यवहार उस लगान के लिये होता है जो जिस के रूप में नहीं बल्कि नगद हो। जैसे, जमई लगान, जमई बंदोबस्त।

जमक[1](पु)—संज्ञा पुं० [सं० यमक] दे० 'यमक'।

जमक[2]—संज्ञा पुं० [हिं० चमक] दे० 'चमक'।

जमकना—क्रि० अ० [हिं० चमकना] दे० 'चमकना'।

जमकात(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'जमकातर' उ०—बिजुरी चक्र फिरै चहुँ फेरी। औ जमकात फिरै जम केरी।—जायसी (शब्द०)।

जमकातर(पु)[1]—संज्ञा पुं० [सं० यम + हिं० कातर] भँवर।

जमकातर[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० यम + कर्त्तरी] १. यम का छुरा या खाँड़ा। २ एक प्रकार की छोटी तलवार।

जमकाना—क्रि० सं० [हिं० जमकना] जमकना का सकर्मक रूप। चमकाना।

जमघंट—संज्ञा पुं० [सं० यम+घण्ट] दे० 'यमघंट'। उ०—सब कछु जरि गयो होरी में। तब धूरहि धूर बचो री, नाम जमघंट परो री।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ५०५।

जमघट—संज्ञा पुं० [हिं० जमना + घट (= समूह)] मनुष्यों की भीड़ जिसमें लोग ठसाठस भरे हों और जिसे कोई आदमी सुगमता से पार न कर सके। बहुत से मनुष्यों का भीड़। ठट्ठ। जमावड़ा। मजमा। उ०—और नर्तकियों का जमघट जमता था।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३३२।

क्रि० प्र०—जमना। —लगना।—लगाना।—होना।

जमघटा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'जमघट'।

जमघट्ट—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'जमघट'।

जमघर(पु)—संज्ञा पुं० [यम+गृह] यमालय। उ०—दुनिया में भरमो मति हीना। जमघर जावगे नाम विहोना।—कबीर सा०, पृ० ८१४।

जमज(पु)—वि० [सं० यमज] दे० 'यमज'।

जमजम—संज्ञा पुं० [अ० जमजम] मक्का का एक कुआँ जिसका पानी मुसलमान लोग बहुत पवित्र मानते हैं। उ०—जमजमी

में तेरे मुफ चाहे जमजम का असर दिसता ।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ६ ।

जमजोहरा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की छोटी चिड़िया जो ऋतुपरिवर्तन के समय रंग बदलती है ।

विशेष—यह चिड़िया जाड़े के दिनों में उत्तरपश्चिम भारत में दिखाई पड़ती है और गरमी में फारस और तुर्किस्तान को चली जाती है । यह प्रायः एक बालिश्त लंबी होती है और ऋतुपरिवर्तन के समय रंग बदलती रहती है ।

जमडाढ़—संज्ञा स्त्री० [सं० यम + दंष्ट्र, प्रा० दड्ढ, डड्ढ, हिं० डाढ़] कटारी की तरह का एक हथियार जिसकी नोक बहुत पैनी और आगे की ओर झुकी हुई होती है । इसे शत्रु के शरीर में भोंकते हैं । जमधर ।

जमदग्नि—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन गोत्रकार वैदिक ऋषि जिनकी गणना सप्तर्षियों में की जाती है । भृगुवंशी ऋचीक ऋषि के पुत्र ।

विशेष—वेदों में जमदग्नि के बहुत से मंत्र मिलते हैं । ऋग्वेद के अनेक मंत्रों से जाना जाता है कि विश्वामित्र के साथ ये भी वशिष्ठ के विपक्षी थे । ऐतरेय ब्राह्मण हरिश्चंद्रोपाख्यान में लिखा है कि हरिश्चंद्र के नरमेध यज्ञ में ये अध्वर्यु हुए थे । जमदग्नि का जिक्र महाभारत, हरिवंश और विष्णुपुराण में आया है । इनकी उत्पत्ति के संबंध में लिखा है कि ऋचीक ऋषि ने अपनी स्त्री सत्यवती, जो राजा गाधि की कन्या थी, तथा उनकी माता के लिये भिन्न गुणोंवाले दो चरु तैयार किए थे । दोनों चरु अपनी स्त्री सत्यवती को देकर उन्होंने बतला दिया था कि ऋतुस्नान के उपरांत यह चरु तुम खा लेना और दूसरा चरु अपनी माता को खिला देना । सत्यवती ने दोनों चरु अपनी माता को देकर उसके संबंध में सब बातें बतला दीं । उसकी माता ने यह समझकर कि ऋचीक ने अपनी स्त्री के लिये अधिक उत्तम गुणोंवाला पुत्र उत्पन्न करने के लिये चरु तैयार किया होगा, उसका चरु स्वयं खा लिया और अपना चरु उसे खिला दिया । जब दोनों गर्भवती हुईं, तब ऋचीक ने अपनी स्त्री के लक्षण देखकर समझ लिया कि चरु बदल गया है । ऋचीक ने उससे कहा कि मैंने तुम्हारे गर्भ से ब्रह्मनिष्ठ पुत्र और तुम्हारी माता के गर्भ से महाबली और क्षात्र गुणोंवाला पुत्र उत्पन्न करने के लिये चरु तैयार किया था; पर तुम लोगों ने चरु बदल लिया । इसपर सत्यवती ने दुःखी होकर अपने पति से कोई ऐसा प्रयत्न करने की प्रार्थना की जिससे उसके गर्भ से उग्र क्षत्रिय न उत्पन्न हो; और यदि उसका उत्पन्न होना अनिवार्य ही हो तो वह उसकी पुत्रवधू के गर्भ से उत्पन्न हो । तदनुसार सत्यवती के गर्भ से जमदग्नि और उसकी माता के गर्भ से विश्वामित्र का जन्म हुआ । इसीलिये जमदग्नि में भी बहुत से क्षत्रियोचित गुण थे । जमदग्नि ने राजा प्रसेनजित् की कन्या रेणुका से विवाह किया था और उसके गर्भ से उन्हें रुमण्वान्, सुषेण, वसु, विश्वावसु और परशुराम नाम के पाँच पुत्र उत्पन्न हुए थे । ऋचीक के चरु के प्रभाव से उनमें से परशुराम में सभी क्षत्रियोचित गुण थे । जमदग्नि की मृत्यु के संबंध में विष्णुपुराण में लिखा है कि एक बार हैहय के राजा कार्तवीर्य उनके आश्रम से उनकी कामधेनु ले गए थे । इस पर परशुराम ने उनका पीछा करके उनके हजार हाथ काट डाले । जब कार्तवीर्य के पुत्रों को यह बात मालूम हुई, तब लोगों ने जमदग्नि के आश्रम पर जाकर उन्हें मार डाला ।

जमदिसा(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० यम + दिशा] दक्षिण दिशा जिसमें यम का निवास माना जाता है । उ०—मेष सिंह धन पूरुब बसै । बिरिख मकर कन्या जम दिसै ।—जायसी (शब्द०) ।

जमधर—संज्ञा पुं० [हिं० जमडाढ़] १. जमडाढ़ नामक हथियार । उ०—गहि हथ्थ एकन को गिराए मारि जमधर कमर में ।—हिम्मत०, पृ० २१ । २. एक प्रकार का बदामी कागज ।

जमधार(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० जम + धार] यम की सेना । काल की सेना । उ०—जमधार सरिस निहारि सब नर नारि चलिहहिं भाजि कै ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ३४ ।

जमन¹—संज्ञा पुं० [सं० जमन] १. भोजन करना । भक्षण । २. भोजन । भोज्य वस्तु [को०] ।

जमन(पु)**²**—संज्ञा स्त्री० [सं० यमुना, तुल०, फ़ा० जमन] दे० 'यमुना' । उ०—सुर थान निगमबोधह सुरंग । जल जमन जाइ राषिस स्नमंग ।—पृ० रा०, १ । ६५८ ।

जमन³(पु)—संज्ञा पुं० [सं० यवन] म्लेच्छ । मुसलमान । यवन । उ०—(क) व्याघ सुरिच्छव मृग चरम, चरन दिए पहिराय । जमन सेन के भेद कहँ, बिदा किए नृपराय ।—प० रासो, पृ० १०४ । (ख) दोऊ नृप मिलि मंत्र करि जमन मिट्टवहु ग्रास ।—प० रासो, पृ० १०४ ।

जमन⁴—संज्ञा पुं० [अ० जमन] जमाना । काल । जगत् । संसार [को०] ।

जमना¹—क्रि० अ० [सं० यमन (= जकड़ना), मि० अ० जमा] १. किसी द्रव पदार्थ का ठंढक के कारण समय पाकर अथवा और किसी प्रकार गाढ़ा होना । किसी तरल पदार्थ का ठोस हो जाना । जैसे, पानी से बरफ जमना, दूध से दही जमना । २. किसी एक पदार्थ का दूसरे पदार्थ पर दृढ़तापूर्वक बैठना । अच्छी तरह स्थित होना । जैसे, जमीन पर पैर जमना, चौकी पर आसन जमना, बरतन पर मैल जमना, सिर पर पगड़ी या टोपी जमना ।

मुहा०—दृष्टि जमना = दृष्टि का स्थिर होकर किसी ओर लगना । नजर का बहुत देर तक किसी चीज पर ठहरना । निगाह जमना = दे० 'दृष्टि जमना' । मन में बात जमना = किसी बात का हृदय पर भली भाँति अंकित होना । किसी बात का मन पर पूरा पूरा प्रभाव पड़ना । रंग जमना = प्रभाव दृढ़ होना । पूरा अधिकार होना ।

३. एकत्र होना । इकट्ठा होना । जमा होना । जैसे, भीड़ जमना, तलछट जमना । ४. अच्छा प्रहार होना । खूब चोट पड़ना । जैसे, लाठी जमना, थप्पड़ जमना । ५. हाथ से होनेवाले काम का पूरा पूरा अभ्यास होना । जैसे,—लिखने में हाथ जमना । ६. बहुत से आदमियों के सामने होनेवाले किसी काम का बहुत उत्तमतापूर्वक होना । बहुत से

आदमियों के सामने किसी काम का इतनी उत्तमता से होना कि सबपर उसका प्रभाव पड़े। जैसे, व्याख्यान जमना, गाना जमना, खेल जमना। ७. सर्वसाधारण से संबंध रखनेवाले किसी काम का अच्छी तरह चलने योग्य हो जाना। जैसे, पाठशाला जमना, दुकान जमना। ८. घोड़े का बहुत ठुमक ठुमककर चलना। उ०—जमत उड़त ऐंड़त उछरत पैंजनी बजावत।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ११।

जमना²—क्रि० अ० [सं० जन्म, प्रा० जम्म > जम+हिं० ना (प्रत्य०)] उगना। उपजना। उत्पन्न होना। फूटना। जैसे, पौधा जमना, बाल जमना।

जमना³—संज्ञा पुं० [हिं० जमना (= उत्पन्न होना)] वह घास जो पहली वर्षा के उपरांत खेतों में उगती है।

जमना†⁴—संज्ञा स्त्री० [सं० यमुना] दे० 'यमुना'।

जमनिका(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० जवनिका] १. जवनिका। परदा। २. काई। उ०—हृदय जमनिका बहुबिधि लागी।—तुलसी (शब्द०)।

जमनोत्तरी—संज्ञा स्त्री० [सं० यमुना + अवतार] गढ़वाल के निकट हिमालय की वह चोटी जहाँ से यमुना निकलती है।

जमनौता—संज्ञा पुं० [अ० जमानत+हिं० औता (प्रत्य०)] वह रकम जो कोई मनुष्य अपनी जमानत करने के बदले में जमानत करनेवाले को दे।

विशेष—मुसलमानी राज्यकाल में इस प्रकार की रकम देने की प्रथा प्रचलित थी। यह रकम प्रायः ५ रुपए प्रति सैकड़े के हिसाब से दी जाती थी।

जमनौती†—संज्ञा स्त्री० [हिं० जमनौता] दे० 'जमनौता'।

जमपुर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० यमपुर] दे० 'यमपुर'। उ०—स्वामी को संकट परे, जो तजि भाजै क्रूर। लोक अजस, परलोक मैं जमपुर जात जरूर।—हम्मीर०, पृ० ४७।

जमरस्सी—संज्ञा स्त्री० [सं० यम + हिं० रस्सी] चोरी नाम का वृक्ष जिसकी जड़ साँप के काटने की बहुत अच्छी ओषधि समझी जाती है।

जमरा(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० यमराज] दे० 'यमराज'। उ०—विष्णु ते अधिक और कोउ नाही। जमरा विष्णु को चेरा आही।—कबीर सा०, पृ० ३६५।

जमराई†—संज्ञा पुं० [सं० यमराज] दे० 'यमराज'। उ०—जो कोई सत्त पुरुष गहे भाई। ता कहँ देख डरे जमराई।—कबीर सा०, पृ० ८१५।

जमराण(पु)—संज्ञा पुं० [सं० यमराज] दे० 'यमराज'। उ०—जमराणा सौंहो करां वानेइ लेज्यों मेल।—ढोला०, दू० ६१०।

जमरूद—संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का छोटा लंबोतरा फल।

जमल(पु)—वि० [सं० यमल, प्रा० जमल] दे० 'यमल'। उ०—अमल कमल कर पद बदन जमल कमल से नैन।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ७४८।

यौ०—जमलतरु = दे० 'यमलार्जुन'। उ०—मुनि सराप तै भए जमलतरु तिन्ह हित आपु बँधाए हो।—सूर०, १।७।

जमवट—संज्ञा स्त्री० [हिं० जमना] पहिए के आकार का लकड़ी का वह गोल चक्कर जो कुआँ बनाने में भगाड़ मे रखा जाता है और जिसके ऊपर कोठी की जोड़ाई होती है।

जमवार(पु)—संज्ञा पुं० [सं० यमद्वार] यम का द्वार। उ०—(क) सिंहल द्वीप भए औतारू। जंबूदीप जाइ जमवारू।—जायसी (शब्द०)। (ख) उ०—भरि जमवार चहै जहँ रहा। जाइ न मेटा ताकर कहा।—पदमावत, पृ० २६१।

जमशेद—संज्ञा पुं० [फ़ा०] ईरान का एक प्राचीन शासक।

विशेष—कहा जाता है, इसके पास एक ऐसा प्याला था जिससे उसे संसार भर का हाल ज्ञात होता था।

जमहूर—संज्ञा पुं० [अ० जुम्हूर] जनता। सर्वसाधारण [को०]।

जमहूरियत—संज्ञा स्त्री० [अ० जुम्हूरियत] जनतंत्र। प्रजातंत्र [को०]।

जमहूरी—वि० [अ० जुम्हूरी] सार्वजनिक [को०]।

जमाँ—संज्ञा पुं० [अ० जमा] जमाना। काल। समय। संसार। दुनिया [को०]।

जमा¹—वि० [अ०] १. जो एक स्थान पर संग्रह किया गया हो। एकत्र। इकट्ठा।

मुहा०—कुल जमा या जमा कुल = सब मिलाकर। कुल। सब। जैसे,—वह कुल जमा पाँच रुपए लेकर चले थे।

२. जो अमानत के तौर पर या किसी खाते मे रखा गया हो। जैसे,—(क) उनका सौ रुपया बैंक में जमा है। (ख) तुम्हारे चार थान हमारे यहाँ जमा हैं।

जमा²—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. मूल धन। पूँजी। २. धन। रुपया पैसा। जैसे,—उसके पास बहुत सी जमा है।

यौ०—जमाजथा। जमापूँजी।

मुहा०—जमा मारना = अनुचित रूप से किसी का धन ले लेना। बेइमानी से किसी का माल हजम करना। जमा हजम करना = दे० 'जमा मारना'। उ०—चूरन सभी महाजन खाते, जिससे जमा हजम कर जाते।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ६६२।

३. भूमिकर। मालगुजारी। लगान।

यौ०—जमाबंदी।

४. संकलन। जोड़ (गणित)। ५. बही आदि का वह भाग या कोष्ठक जिसमे आए हुए धन या माल आदि का विवरण दिया जाता है।

यौ०—जमाखर्च।

जमाअत—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. दे० 'जमात'–१। उ०—यह खबर हमको झूँझणु की नागा जमाअत के वयोवृद्ध भंडारी बालमुकुंद जी से मिली।—सुंदर ग्रं० (भू०), भा० १, पृ० ४।

जमाअती—वि० [अ०] जमात संबंधी। सामुदायिक [को०]।

जमाई¹—संज्ञा पुं० [सं० जामातृ] दामाद। जंवाई। जामाता।

जमाई²—संज्ञा स्त्री० [हिं० जमना] १. जमने की क्रिया। २. जमने का भाव।

जमाई³—संज्ञा स्त्री० [हिं० जमाना] १. जमाने की क्रिया। जमाने का भाव। ३. जमाने की मजदूरी।

जमाखर्च—संज्ञा पुं० [अ० जमम + फ़ा खर्च] आय और व्यय ।

जमाजथा—संज्ञा स्त्री० [हिं० जमा + गथ (=पूँजी)] धनसंपत्ति । नगदी और माल । जमापूँजी ।

जमात—संज्ञा स्त्री० [अ० जमाअत] १. बहुत से मनुष्यों का समूह । आदमियों का गिरोह या जत्था । जैसे, साधुओं की जमात । उ०—लालों की नहिं बोरियाँ साधु न चले जमात । संत-वाणी०, पृ० २८ । २. कक्षा । श्रेणी । दरजा । जैसे,—वह लड़का पाँचवीं जमात मे पढ़ता है । ३. पंक्ति । कतार । लाइन । जैसे, सिपाहियों की जमात ।

यौ०—जमातबंदी = गिरोहबंदी । दलबंदी । उ०—जिसके कारण समाज की जमातबंदी भी बदलती गई । —भा० इ० रू०, पृ० ४२२ ।

जमादार—संज्ञा पुं० [फा० या अ० जमाअत+दार] [संज्ञा जमादारी] १. कई सिपाहियों या पहरेदारों आदि का प्रधान । वह जिसकी अधीनता में कुछ सिपाही, पहरेदार या कुली आदि हों । २. पुलिस का वह बड़ा सिपाही जिसकी अधीनता में कई और साधारण सिपाही होते हैं । हेड कांस्टेबल । ३. कोई सिपाही या पहरेदार । ४. नगरपालिका का वह कर्मचारी जो भंगियों के काम का निरीक्षण करता है ।

जमादारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० जमादार + ई (प्रत्य०)] १. जमादार का पद । २. जमादार का काम ।

जमानत—संज्ञा स्त्री० [अ० जमानत] वह जिम्मेदारी जो कोई मनुष्य किसी अपराधी के ठीक समय पर न्यायालय में उपस्थित होने, किसी कर्जदार के कर्ज अदा करने अथवा इसी प्रकार के किसी और काम के लिये अपने ऊपर ले । वह जिम्मेदारी जो जबानी या कोई कागज लिखकर अथवा कुछ रुपया जमा करके ली जाती है । प्रतिभूति । जामिनी । जैसे,— (क) वे सौ रुपये की जमानत पर छूटे है । (ख) उन्होंने हमारी जमानत पर उनका सब माल छोड़ दिया है ।

क्रि० प्र०—करना ।—देना ।—होना ।

यौ०—जमानतदार=प्रतिभू । जामिनी । जिम्मेदार । जमानतनामा ।

जमानतनामा—संज्ञा पुं० [अ० जमानत + फा० नामह्] वह कागज जो जमानत करनेवाला जमानत के प्रमाणस्वरूप लिख देता है ।

जमानती—संज्ञा पुं०[अ० जमानत + फा० ई (प्रत्य०)] जमानत करनेवाला । वह जो जमानत करे । जामिन । जिम्मेदार (क्व०) ।

जमानवीस—संज्ञा पुं० [अ० जमअ + फ़ा० नवीस] कचहरी का एक अहलकार ।

जमाना[१]—क्रि० स० [हिं० 'जमना' का स० रूप] १. किसी द्रव पदार्थ को ठंढा करके अथवा किसी और प्रकार से गाढ़ा करना । किसी तरल पदार्थ को ठोस बनाना । जैसे, चाशनी से बरफी जमाना । २. किसी एक पदार्थ को दूसरे पर दृढ़तापूर्वक बैठाना । अच्छी तरह स्थित करना । जैसे, जमीन पर पैर जमाना ।

मुहा०—दृष्टि जमाना = दृष्टि को स्थिर करके किसी ओर लगाना । (मन में) बात जमाना = हृदय पर बात को भली भाँति अंकित करा देना । रंग जमाना = अधिकार दृढ़ करना । पूरा पूरा प्रभाव डालना ।

३. प्रहार करना । चोट लगाना । जैसे, हथौड़ा जमाना, थप्पड़ जमाना । ४. हाथ से होनेवाले काम का अभ्यास करना । जैसे,—अभी तो वे हाथ जमा रहे हैं । ५. बहुत से आदमियों के सामने होनेवाले किसी काम का बहुत उत्तमतापूर्वक करना । जैसे,—व्याख्यान जमाना । ६. सर्वसाधारण से संबंध रखनेवाले किसी काम को उत्तमतापूर्वक चलाने योग्य बनाना । जैसे, कारखाना जमाना, स्कूल जमाना । ७. घोड़े को इस प्रकार चलाना जिससे वह ठुमुक ठुमुककर पैर रखे । ८. उदरस्थ करना । खा जाना । जैसे, भंग का गोला जमाना । ९. मुँह में रखना । मुखस्थ करना । जैसे, पान का बीड़ा जमाना ।

जमाना[२]—क्रि० स० [हिं० जमना (= उत्पन्न होना)] उत्पन्न करना । उपजाना । जैसे, पौधा जमाना ।

जमाना[३]—संज्ञा पुं० [फ़ा० ज़मानह्] १. समय । काल । वक्त । २. बहुत अधिक समय । मुद्दत । जैसे,—उन्हें यहाँ आए जमाना हुआ । ३. प्रताप या सौभाग्य का समय । एकबाल के दिन । जैसे,—आजकल आपका जमाना है । ४. दुनिया । संसार । जगत् । जैसे,—सारा जमाना उसे गाली देता है । ५. राज्यकाल । राज्य करने की अवधि (को०) । ६. किसी पद पर या स्थान पर काम करने का समय । कार्यकाल (को०) । ७. विलंब । देर । अतिकाल (को०) ।

मुहा०—जमाना उलटना = समय का एकबारगी बदल जाना । जमाना छानना = बहुत खोजना । जमाना देखना = बहुत अनुभव प्राप्त करना । तजरबा हासिल करना । जैसे—आप बुजुर्ग हैं, जमाना देखे हुए हैं । जमाना पलटना या बदलना = परिवर्तन होना । अच्छे या बुरे दिन आना ।

यौ०—जमानासाज । जमानासाजी । जमाने की गर्दिश = समय का फेर ।

जमानासाज—वि० [फ़ा० ज़मानह् + साज] १. जो अपने स्वार्थ के लिये समय समय पर अपना व्यवहार बदलता रहता है । अपना मतलब साधने के लिये दूसरों को प्रसन्न रखनेवाला । २. मुतफन्नी । धूर्त । छली (को०) ।

जमानासाजी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० ज़मानह् साजी] अपना मतलब साधने के लिये दूसरों को प्रसन्न रखना । अपने स्वार्थ के लिये समयानुसार अनुचित रूप से अपना व्यवहार बदलना ।

जमापूँजी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'जमाजथा' ।

जमाबंदी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] पटवारी का एक कागज जिसमें असामियों के नाम और उनसे मिलनेवाले लगान की रकमें लिखी जाती हैं ।

जमामरद(५)†—संज्ञा पुं० [फ़ा० जवाँमर्द] दे० 'जवाँमर्द' । उ०—आए हैं जमामरद ग्यान कर करद लै, दरद न जान्यो अब जिन दिन पार रे । —ब्रज० ग्रं०, पृ० १३३ ।

जमामार—वि० [हिं० जमा + मारना] अनुचित रूप से दूसरों का धन दबा रखने या ले लेनेवाला ।

जमाल—संज्ञा पुं० [अ०] सौंदर्य । शोभा । छवि । रूप । उ०—कनक बिंदु सुरकी दकुम, चंदन मिलत जमाल । बंदन तिलक दिए भई, तिलक चौगुनी भाल ।—स० सप्तक, पृ० २५३ ।

जमालगोटा—संज्ञा पुं० [सं० जयमाल (= जमाल) + गोटा] एक पौधे का बीज जो अत्यंत रेचक है । जयपाल । दंतीफल ।

विशेष—यह पौधा करोटन की जाति का है और समुद्र से ३००० फुट की ऊँचाई तक परती भूमि में होता है । यह पौधा दूसरे वर्ष फलने लगता है । इसका फल छोटी इलायची के बराबर होता है जिसके भीतर सफेद गरी होती है । गरी में तेल का अंश बहुत अधिक होता है और उसे खाने से बहुत दस्त आते हैं । गरी से एक प्रकार का तेल निकलता है जो बहुत तीक्ष्ण होता है और जिसके लगाने से बदन पर फफोला पड़ जाता है । तेल गाढ़ा और साफ होता है और औषध के काम में आता है । इसकी खली चाहू के खेत की मिट्टी में मिलाने से पौधों में दीमक और दूसरे कीड़े नहीं लगते । इसके पेड़ कहवे के पेड़ के पास छाया के लिये भी लगाए जाते हैं ।

जमाली—वि० [अ०] सुंदर रूपवाला । स्वरूपवान् । सौंदर्ययुक्त [को०] ।

जमाव—संज्ञा पुं० [हिं० जमाना] १. जमने का भाव । २. जमाने का भाव । ३. भीड़ भाड़ । जमावड़ा ।

जमावट—संज्ञा स्त्री० [हिं० जमाना] जमने का भाव । दे० 'जमाव' ।

जमावड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० जमना (= एकत्र होना)] बहुत से लोगों का समूह । भीड़ । उ०—इन लोगों का भारी जमावड़ा वहीं हुआ करता है ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ७३० ।

जमीं—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जमीं] दे० 'जमीन' । उ०—गिरकर न उठे काफिरे बदकार जमीं से, ऐसे हुए गारत ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ५३० ।

जमींकंद—संज्ञा पुं० [फ़ा० जमीन + कंद] सूरन । ओल ।

जमींदार—संज्ञा पुं० [फ़ा० जमीनदार] जमीन का मालिक । भूमि का स्वामी ।

विशेष—मुसलमानों के राजत्वकाल में जो मनुष्य किसी छोटे प्रांत, जिले या कुछ गावों का भूमिकर लगाने और सरकारी खजाने में जमा करने के लिये नियुक्त होता था, वह जमींदार कहलाता था और उसे उगाहे हुए कर का दसवाँ भाग पुरस्कार स्वरूप दिया जाता था । पर, जब अंत में मुसलमान शासक कमजोर हो गए तब वे जमींदार अपने अपने प्रांतों के स्वतंत्र रूप से प्रायः मालिक बन गए । अंगरेजी राज्य में जमींदार लोग अपनी अपनी भूमि के पूरे पूरे मालिक समझे जाते थे और जमींदारी पैतृक होती थी । ये सरकार को कुछ निश्चित वार्षिक कर देते थे और अपनी जमींदारी का संपत्ति की भाँति जिस प्रकार चाहें, उपयोग कर सकते थे । काश्तकारों आदि को कुछ विशिष्ट नियमों के अनुसार वे अपनी जमीन स्वयं ही जोतने बोने आदि के लिये देते थे और उनसे लगान आदि लेते थे । भारत के स्वतंत्र हो जाने पर लोकतांत्रिक सरकार ने जमींदारी प्रथा का वैधानिक उन्मूलन कर दिया है ।

जमींदारा—संज्ञा पुं० [फ़ा० जमींदारी] दे० 'जमींदारी' ।

जमींदारी—संज्ञा स्त्री० [फा० जमीनदारी] जमींदार की वह जमीन जिसका वह मालिक हो । २. जमींदार होने की दशा या अवस्था । ३. जमींदार का हक या स्वत्व ।

जमींदोज—वि० [फ़ा० जमींदोज] १. जो गिरा, तोड़ा या उखाड़कर जमीन के बराबर कर दिया गया हो । २. दे० 'जमीनदोज' ।

जमी—वि० [सं० यमिन्] इंद्रियनिग्रही । उ०—देखि लोग सकुचात जमी से ।—मानस, २।२१४ ।

जमीन—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जमीन] १. पृथ्वी (ग्रह) । जैसे,—जमीन बराबर सूरज के चारों तरफ घूमती है । २. पृथ्वी का वह ऊपरी ठोस भाग जो मिट्टी का है और जिसपर हम लोग रहते हैं । भूमि । धरती ।

मुहा०—जमीन आसमान एक करना = किसी काम के लिये बहुत अधिक परिश्रम या उद्योग करना । बहुत बड़े बड़े उपाय करना । जमीन आसमान का फरक = बहुत अधिक अंतर । बहुत बड़ा फरक । आकाश पाताल का अंतर । उ०—मुकाबिला करते हैं तो जमीन आसमान का फर्क पाते हैं ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ४३६ । जमीन आसमान के कुलावे मिलाना = बहुत डींग हाँकना । बहुत शेखी मारना । उ०—चाहे इधर की दुनियाँ उधर हो जाय, जमीन आसमान के कुलावे मिल, जाँय, तूफान आए, भूचाल आए, मगर हम जरूर आएँगे ।—फिसाना०, भा०३, पृ० ५१ । जमीन का पैरों तले से निकल जाना = सन्नाटे में आ जाना । होश हवास जाता रहना । जमीन चूमने लगना = इस प्रकार गिर पड़ना कि जिसमें जमीन के साथ मुहँ लग जाय । जैसे,—जरा से धक्के से वह जमीन चूमने लगा । जमीन दिखाना = (१) गिराना । पटकना । जैसे, एक पहलवान का दूसरे पहलवान को जमीन दिखाना । (२) नीचा दिखाना । जमीन देखना = (१) गिर पड़ना । पटका जाना । (२) नीचा देखना । जमीन पकड़ना = जमकर बैठना । जमीन पर चढ़ना = (१) घोड़े का तेज दौड़ने का अभ्यास होना । (२) किसी कार्य का अभ्यस्त होना । जमीन पर पैर या कदम न रखना = बहुत इतराना । बहुत अभिमान करना । उ०—ठाकुर साहब ने बारह चौदह हजार रुपया नकद पाया तो जमीन पर कदम न रखा ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १९६ । जमीन पर पैर न पड़ना = बहुत अभिमान होना । जमीन में गड़ जाना = अत्यंत लज्जित होना ।

३. सतह, विशेषकर कपड़े, कागज या तख्ते आदि की वह सतह जिसपर किसी तरह के बेल बूटे आदि बने हों । जैसे,—काली जमीन पर हरी बूटी की कोई छींट मिले तो लेते आना । ४. वह सामग्री जिसका व्यवहार किसी द्रव्य के प्रस्तुत करने में आधार रूप से किया जाय । जैसे, अतर खींचने में चंदन की जमीन, फुलेल में मिट्टी के तेल की जमीन । ५. किसी कार्य के लिये पहले से निश्चय की हुई प्रणाली । पेशबंदी । भूमिका । आयोजन ।

मुहा०—जमीन बदलना = आधार का परिवर्तन होना। स्थिति का बदल जाना। जैसे,—अब जमीन ही बदल गई।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १४०। जमीन बाँधना = किसी कार्य के लिये पहले से प्रणाली निश्चित करना।

जमीनदोज—वि० [फ़ा० जमीनदोज] १. धरती के नीचे या भीतर। भूगर्भिक। उ०—और तब जमीनदोज किले बनने लगे।—भा० इ० रू०, पृ० १४१। २. दे० 'जमींदोज'।

जमीनी—वि० [फ़ा० जमीनी] जमीन संबंधी। जमीन का।

जमीमा—संज्ञा पुं० [अ० जमीमह्] १. क्रोड़पत्र। अतिरिक्त पत्र। २. पूरक। परिशिष्ट [को०]।

जमीयत—संज्ञा स्त्री० [अ० जम्ईयत] गोष्ठी। दल। परिषद्। जमाअत। समुदाय। उ०—प्रत्येक सरदार के अपनी जमीयत के साथ प्रतिवर्ष तीन महीने तक दरबार की सेवा में उपस्थित रहने की जो रीति चली आ रही है वह जारी रखी जायगी।—राज० इति०, पृ० १०४६।

जमीर—संज्ञा पुं० [अ० जमीर] १. अंतःकरण। हृदय। मन। २. विवेक। ३. (व्या०) सर्वनाम [को०]।

यौ०—जमीरफरोश = आत्मविक्रेता। अवसरवादी।

जमील—वि० [अ०] [वि०स्त्री० जमीला] रूपवान। सुंदर। हसीन [को०]।

जमुआ[1]‡—संज्ञा पुं० [स० जम्बूक] दे० 'जामुन'।

जमुआ[2]†—संज्ञा पुं० [सं० यम, हिं० जम+उआ (प्रत्य०), अथवा हिं० जमना (= पैदा होना)] एक प्रकार का घातक बालरोग।

जमुआर†—संज्ञा पुं० [हिं० जमुन+आर (प्रत्य०)] जामुन का जंगल।

जमुकना†—क्रि० अ० [?] पास पास होना। सटना। उ०—जब जमुक्यो कछु पृथु तनय, तब तरंग तहँ छोड़ि। भयो पुरंदर अलख उर, सक्यो न सन्मुख दौड़ि।—रघुराज (शब्द०)।

जमुन(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० जमुना] दे० 'यमुना'। उ०—(क) उतरि नहाए जमुन जल जो सरीर सम स्याम।—मानस, २। १०९ (ख) मनु मसि भरि अनुराग जमुन जल लोटत डोलै।—भारतेंदु ग्रं०, भा०१, पृ० ४५५

जमुना—संज्ञा स्त्री० [सं० यमुना, प्रा० जमुणा, जऊँणा] यमुना नदी। वि० दे० 'यमुना'।

जमुनिका—संज्ञा स्त्री० [सं० यवनिका] दे० 'यवनिका'। उ०—जाग्रत स्वप्न सु जमुनिका सुषुपति भई पिटार सुंदर। बाजीगर जुदो खेल दिखावन हार।—सुंदर० ग्रं०, भा०२, पृ० ७८५।

जमुनियाँ‡[1]—संज्ञा पुं० [हिं० जामुन+ईया (प्रत्य०)] १. जामुन का रंग। जामुनी। २. जामुन का वृक्ष। ३. यम का भय। यमपाश (लाक्ष०)। उ०—जमुनियाँ की डार मोरी तोड़ देव हो।—धरम० श०, पृ० २९।

जमुनियाँ[2]—वि० जामुन के रंग का। जामुनी रंग का।

जमुरका†—संज्ञा पुं० [फ़ा० जबूर] कुलाबा।

जमुरी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जबूर] १. चिमटी के आकार का नालबंदों का एक औजार जिससे वे घोड़ों के नाल काटते हैं। २. चिमटी। सँड़सी।

जमुर्दी—वि० [अ० जमुर्रदीन, हिं० जमुर्रदी] १. दे० 'जमुर्रदी'। उ०—जमुर्दी जरी के काम···।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २९।

जमुर्रद—संज्ञा पुं० [अ०] [अ०] पन्ना नामक रत्न।

जमुर्रदी[1]—वि० [अ० जमुर्रदीन] जमुर्रद के रंग का हरा। जो मोर की गर्दन की तरह नीलापन लिए हुए हरे रंग का हो।

जमुर्रदी[2]—संज्ञा पुं० जमुर्रद का रंग। नीलापन लिए हुए हरा रंग।

जमुवाँ†—संज्ञा पुं० [हिं० जमुआ] जामुनी। जामुन का रंग।

जमुहाना—क्रि० अ० [सं० जृम्भण] दे० 'जम्हाना'।

जमूरक(पु)—संज्ञा पुं० [फ़ा० जंबूरक] एक प्रकार की छोटी तोप जो घोड़े या ऊँट पर रहती है। उ०—सबके आगे सुतर सवार अपार सिंगार बनाए। धरे जमूरक तिन पीठन पर सहित निशान सुहाये।—रघुराज (शब्द०)।

जमूरा[1]—संज्ञा पुं० [फ़ा० जंबूरक, हिं० जमूरक] दे० 'जमूरक'।

जमूरा[2]—संज्ञा पुं० [अ० जह्र,+फा० मुह्रह्] दे० 'जहर-मोहरा'। उ०—जुगति जमूरा पाइ कै, सर पे लपटाना। बिष वा के बेधे नहीं, गुरु गम्म समाना।—कबीर० श०, भा० ३, पृ० १४।

जमैयत—संज्ञा स्त्री० [अ० जम्ईयत] १. दल। समुदाय। २. सभा। गोष्ठी। परिषद् [को०]।

यौ०—जमैयतुल उलेमा = विद्वानों की सभा या गोष्ठी।

जमोग[1]—संज्ञा पुं० [हिं० जमोगना] १. जमोगने अर्थात् स्वीकार कराने की क्रिया। सरेख। २. किसी दूसरे की बात का किसी तीसरे के द्वारा समर्थन। सामने का निश्चय। तसदीक। ३. देहाती लेनदेन की एक रीति जिसके अनुसार कोई जमींदार किसी महाजन से ऋण लेने के समय उसके चुकाने का भार उस महाजन के सामने अपने काश्तकारों पर छोड़ देता है और काश्तकारों से लगान के मद्धे उसका स्वीकार करा देता है।

यौ०—सही जमोग।

जमोगदार—संज्ञा पुं० [अ० जमा + सं० योग] वह व्यक्ति जो जमोग की रीति से जमींदार को रुपया देता है।

जमोगना† क्रि० स० [अ० जमा + सं० योग] १. हिसाब किताब की जाँच करना। २. ब्याज को मूल धन में जोड़ना। ३. स्वयं किसी उत्तरदायित्व से मुक्त होने के लिये किसी दूसरे को उसका भार सौंपना और उससे उस उत्तरदायित्व को स्वीकृत कराना। सरेखना। ४. किसी को किसी दूसरे के पास ले जाकर उससे अपनी बात का समर्थन कराना। तसदीक कराना।

जमोगवाना†—क्रि० स० [हिं० जमोगना] जमोगने का काम किसी दूसरे से कराना। सरेखवाना।

जमोगा†—संज्ञा पुं० [हिं० जमोगना] दे० 'जमोग'।

यौ०—सही जमोगा।

जमौआ—वि० [हिं० जमाना] जमाया हुआ। जमाकर बनाया हुआ।

जम्म¹(पु)—संज्ञा पुं० [सं० यम] दे० 'यम'।

यौ०—जम्मराजा = यमराज। उ०—मनो जीव पापीन को जम्मराजा दियो दंड सोई सबै धूम घोटै।—हम्मीर०, पृ० ५

जम्म²(पु)—संज्ञा पुं० [सं० जन्म, प्रा० जम्म] जन्म। उत्पत्ति।

जम्मण(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० जन्मन्, प्रा० जम्मण] उत्पत्ति। जन्म। पैदाइश। उ०—तन माहि मनूश्रा जो ठहिरावै। जम्मण मरण भिश्त अरु दोजख ताके निकट न आवै।—प्राण०, पृ० ६०।

जम्मना(पु)†—क्रि० अ० [हिं०] उत्पन्न होना। पैदा होना। जम्मै मरै न विनसै सोइ।—प्राण०, पृ० २।

जम्मभूमि(पु)‡—संज्ञा स्त्री० [सं० जन्म, प्रा० जम्म + सं० भूमि] दे० 'जन्मभूमि'। उ०—पन्नविय जम्मभूमि को मोह छोड़िय, धनि छोड़िय।—कीर्ति०, पृ० २२।

जम्मू—संज्ञा पुं० [सं० जम्बू] काश्मीर का एक प्रसिद्ध नगर। जंबू।

जम्हाई—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'जँभाई'।

जम्हाना—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'जँभाना'। उ०—बार बार झपि जात जम्हात, लगत, नीके ताकी चौपनि धुकन न पाए हौ। घनानंद०, पृ० ४८८।

जम्हूर—संज्ञा पुं० [अ०] जनता। जनसमूह। उ०—कर उसकी बुजुर्गी खड़े जम्हूर के आगे।—कबीर मं०, पृ० ४६६।

जयंत¹—वि० [सं० जयन्त] [वि० स्त्री० जयंती] १. विजयी। २. बहुरूपिया। अनेक रूप धारण करनेवाला।

जयंत²—संज्ञा पुं० १. एक रुद्र का नाम। २. इंद्र के पुत्र उपेंद्र का नाम। ३. संगीत में ध्रुवक जाति में एक ताल का नाम। ४. स्कंद। कार्तिकेय। ५. धर्म के एक पुत्र का नाम। ६. अक्रूर के पिता का नाम। ७. भीमसेन का उस समय का बनावटी नाम जब वे विराट नरेश के यहाँ अज्ञातवास करते थे। ८. दशरथ के एक मंत्री का नाम। ९. एक पर्वत का नाम। जयंतिका की पहाड़ी। १०. जैनों के अनुचर देवों का एक भेद। ११. फलित ज्योतिष में यात्रा का एक योग।

विशेष—यह योग उस समय पड़ता है जब चंद्रमा उच्च होकर यात्री की राशि से ग्यारहवें स्थान में पहुँच जाता है। इसका विचार बहुधा युद्धादि के लिये यात्रा करने के समय होता है, क्योंकि इस योग का फल शत्रुपक्ष का नाश है।

जयंतपुर—संज्ञा पुं० [सं० जयन्तपुर] एक प्राचीन नगर का नाम जिसे निमिराज ने स्थापित किया था और जो गौतम ऋषि के आश्रम के निकट था।

जयंतिका—संज्ञा स्त्री० [सं० जयन्तिका] दे० 'जयंती'।

जयंती—संज्ञा स्त्री० [सं० जयन्ती] १. विजय करनेवाली। विजयिनी। २. ध्वजा। पताका। ३. हलदी। ४. दुर्गा का एक नाम। ५. पार्वती का एक नाम। ६. किसी महात्मा की जन्मतिथि पर होनेवाला उत्सव। वर्षगाँठ का उत्सव। ७. एक बड़ा पेड़ जिसे जैंत या जैता कहते हैं।

विशेष—इस पेड़ की डालियाँ बहुत पतली और पत्तियाँ अगस्त की पत्तियों की तरह की, पर उनसे कुछ छोटी होती हैं। फूल अरहर की तरह पीले होते हैं। फूलों के झड़ जाने पर बित्ते सवा बित्ते लंबी पतली फलियाँ लगती हैं। फलियों के बीज उत्तेजक और संकोचक होते हैं और दस्त की बीमारियों में औषध के रूप में काम में आते हैं। खाज का मरहम भी इससे बनता है। इसकी पत्तियाँ फोड़े या सूजन पर बाँधी जाती हैं और गिलटियों को गलाने का काम करती हैं। इसकी जड़ पीसकर बिच्छू के काटने पर लगाई जाती है। यह जंगली भी होता है और लोग इसे लगाते भी हैं। इसका बीज जेठ असाढ़ में बोया जाता है। इसकी एक छोटी जाति होती है, जिसे 'चक्रभेद' कहते हैं। इसके रेशे से जाल बनता है। बंगाल में इसे लोग अप्रैल, मई में बोते हैं और सितंबर, अक्टूबर में काटते हैं। पौधा सन की तरह पानी में सड़ाया जाता है। पान के भीटों पर भी यह पेड़ लगाया जाता है।

८. बैजंती का पौधा। ९. ज्योतिष का एक योग। जब श्रावण मास के कृष्णपक्ष की अष्टमी की आधी रात के समय और शेष दंड में रोहिणी नक्षत्र पड़े, तब यह योग होता है। ११. जौ के छोटे पौधे जिन्हें विजयादशमी के दिन ब्राह्मण लोग यजमानों को मंगल द्रव्य के रूप में भेंट करते हैं। जई। जरई। १२. अरणी।

जय—संज्ञा पुं० [सं०] १. युद्ध, विवाद आदि में विपक्षियों का पराभव। विरोधियों को दमन करके स्वत्व या महत्व स्थापन। जीत।

विशेष—संस्कृत में जय शब्द पुंलिंग है किंतु 'जीत, विजय' अर्थ में हिंदी में इसका प्रयोग स्त्रीलिंग में ही मिलता है।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—जय मनाना = विजय की कामना करना। समृद्धि चाहना। जय हो = आशीर्वाद जो ब्राह्मण लोग प्रणाम के उत्तर में देते हैं।

विशेष—आशीर्वाद के अतिरिक्त इस शब्द का प्रयोग देवताओं की अभिवंदना सूचित करने के लिये भी होता है और जिसमें कुछ याचना का भाव मिला रहता है। जैसे, जय काली की, रामचंद्र जी की जय। उ०—जय जय जगजननि देवि, सुरनर मुनि असुर सेव्य, भुक्ति मुक्ति दायिनी जय हरणि कालिका।—तुलसी (शब्द०)।

यौ०—जय गोपाल। जय श्रीकृष्ण। जय राम, आदि (अभिवादन वचन)।

२. ज्योतिष के अनुसार बृहस्पति के प्रोष्ठपद नामक छठे युग का तीसरा वर्ष।

विशेष—फलित ज्योतिष के अनुसार इस वर्ष में बहुत पानी बरसता है और क्षत्रिय, वैश्य आदि को बहुत पीड़ा होती है।

३. विष्णु के एक पार्षद का नाम।

विशेष—पुराणों में लिखा है कि सनकादिक ने भगवान के पास आने से रोकने पर क्रोध करके इसे और इसके भाई

विजय को शाप दिया था। उसी से जय को संसार में तीन बार हिरण्याक्ष, रावण और शिशुपाल का अवतार तथा विजय को हिरण्यकशिपु, कुंभकर्ण और कंस का जन्म ग्रहण करना पड़ा था। ४. महाभारत या भारत ग्रंथ का नाम। ५. जयंती या जैत के पेड़ का नाम। ६. लाभ। ७. युधिष्ठिर का उस समय का बनावटी नाम जब वे विराट के यहाँ अज्ञातवास करते थे। ८. अयन। ९. वशीकरण। १०. एक नाग का नाम जिसका वर्णन महाभारत में आया है। ११. भागवत के अनुसार दसवें मन्वंतर के एक ऋषि का नाम। १२. विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम। १३. धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम। १४. राजा संजय के एक पुत्र का नाम। १५. उर्वशी के गर्भ से उत्पन्न परुवसु के एक पुत्र का नाम। १६. वह मकान जिसका दरवाजा दक्खिन की तरफ हो। १७. सूर्य। १८. अरणी या अग्निमंथ नाम का पेड़। १९. इंद्र। २०. इंद्र का पुत्र जयंत।

विशेष—पुराणों आदि में और भी बहुत से 'जय' नामक पुरुषों के वर्णन आए हैं।

जय²—वि० (समास में प्रयुक्त) विजयी। जीतनेवाला। जैसे, मृत्युंजय (= मृत्यु को जीतनेवाला)।

जयकंकण—संज्ञा पुं० [सं० जय + कङ्कण] वह कंकण जो प्राचीन काल में वीर पुरुषों को किसी युद्ध आदि के विजय करने की दशा में आदरार्थ प्रदान किया जाता था।

जयक—वि० [सं०] विजेता। जीतनेवाला [को०]।

जयकरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] चौपाई नामक एक छंद का नाम।

जयकार—संज्ञा पुं० [सं० जय + कार] जयघोष।

यौ०—जयजयकार।

जयकोलाहल—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का जूआ खेलने का एक प्रकार का पासा।

जयचंद—संज्ञा पुं० [हिं० जय + चंद] १. कान्यकुब्ज का एक प्रसिद्ध राजा। २. देशद्रोही व्यक्ति (लाक्ष०)।

विशेष—यह गहड़वालवंश का अंतिम नरेश था। इसका राज्यकाल सन् ११७० से ११९३ ई० तक रहा। अपने राज्यकाल के आखिरी वर्ष में यह शहाबुद्दीन गोरी से पराजित होकर मारा गया।

जयखाता—स्त्री० पुं० [हिं० जय (= लाभ) + खाता] बनियों की एक बही जिसमें वे नित्य अपना मुनाफा या लाभ आदि लिखा करते हैं।—(क्व०)।

जयघोष—संज्ञा पुं० [सं०] जय + घोष] जय जय की आवाज

उ०—पा गया जयघोष अगणित पंख।—साकेत, पृ० १९५

जयजयवंती—संज्ञा स्त्री० [हिं० जय + जयवंती] संपूर्ण जाति की एक संकर रागिनी जो धूलश्री, बिलावल और सोरठ के योग से बनती है।

विशेष—इसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं और यह रात को ६ दंड से १० दंड तक गाई जाती है; पर वर्षाऋतु में लोग इसे सभी समय गाते हैं। कुछ लोग इसे मेघ राग की भार्या मानते हैं और कुछ लोग मालकोश का सहचरी भी बताते हैं।

जयजीव(५)—संज्ञा पुं० [हिं० जय + जी] एक प्रकार का अभिवादन जिसका अर्थ है—जय हो और जियो। इसका प्रयोग प्रणाम आदि के समान होता था।—उ० कहि जयजीव सीस तिन्ह नाए। भूप सुमंगल बचन सुनाए।—तुलसी (शब्द०)।

जयढक्का—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का बड़ा ढोल। जीत का डंका।

जयत्—संज्ञा पुं० [सं० जयेत्] दे० 'जयति'।

जयतकल्याण—संज्ञा पुं० [सं०] संपूर्ण जाति का एक संकर राग जो कल्याण और जयतिश्री को मिलाकर बनता है। यह रात के पहले पहर में गाया जाता है।

जयताल—संज्ञा पुं० [सं०] ताल के साठ मुख्य भेदों में से एक।

विशेष—यह सातताला ताल है और इसमें क्रम से एक लघु, एक गुरु, दो लघु, दो द्रुत और एक प्लुत होता है। इसका बोल यह है—ताहं। तत्थरि थरियाऽ ताहं। ताहं। तत० था० तत्था ताथरि थरिथौंऽ।

जयति—संज्ञा पुं० [सं० जयेत्] एक संकर राग जो गौरी और ललित के मेल से बनता है। कोई कोई इसे पूरिया और कल्याण के योग से बना भी मानते हैं। वि० दे० 'जयेत्'।

जयतिश्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रागिनी जो दीपक राग की भार्या मानी जाती है।

जयती—संज्ञा स्त्री० [सं० जयेती] श्री राग की एक रागिनी।

विशेष—यह संपूर्ण जाति की रागिनी है और इसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं। कोई कोई इसे टोड़ी, विभास और शहाना के योग से बनी हुई बताते हैं। कितने लोग इसे पूरिया, सामंत और ललित के मेल से बनी मानते हैं। वि० दे० 'जयेती'।

जयतु—क्रि० वि० [सं०] जय हो (आशीर्वादसूचक)।

जयत्सेन—संज्ञा पुं० [सं०] अज्ञातवास के समय नकुल का नाम [को०]।

जयदुंदुभी—संज्ञा स्त्री० [सं० जय + दुन्दुभी] जीत का डंका। विजय की भेरी।

जयदुर्गा—संज्ञा स्त्री० [सं०] तंत्र के अनुसार दुर्गा की एक मूर्ति।

जयदेव—संज्ञा पुं० [सं०] संस्कृत के प्रसिद्ध काव्य 'गीतगोविंद' के रचयिता प्रसिद्ध वैष्णव भक्त एवं कवि।

विशेष—इनका जन्म आज से प्रायः आठ नौ सौ वर्ष पहले बंगाल के वर्तमान वीरभूम जिले के अंतर्गत केंदुबिल्व नामक ग्राम में हुआ था। ऐसा प्रसिद्ध है कि ये गौड़ के महाराज लक्ष्मणसेन की राजसभा में रहते थे। इनका वर्णन भक्तमाल में भी आया है।

जयद्रथ—संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार सिंधुसौवीर या सौराष्ट्र का राजा जो दुर्योधन का बहनोई था।

विशेष—इसने एक बार जंगल में द्रौपदी को अकेली पाकर हर ले जाने का प्रयत्न किया था। उस समय भीम और अर्जुन ने इसकी बहुत दुर्दशा की थी। यह महाभारत के युद्ध में लड़ा था और चक्रव्यूह के युद्ध में अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु का वध इसी ने किया था। दूसरे दिन भयंकर युद्ध के अनंतर सायंकाल यह अर्जुन के हाथों मारा गया।

जयद्वल—संज्ञा पुं० [सं०] अज्ञातवास के समय सहदेव का नाम [को०]।

जयध्वज—संज्ञा पुं० [सं०] १. तालजंघा के पिता का नाम जो अवंती के राजा कार्तवीर्यार्जुन का पुत्र था। २. जयपताका। जयंती।

जयध्वनि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'जयघोष'।

जयन—संज्ञा पुं० [सं० जयनम्] १. जय। जीत। २. हाथी, घोड़े आदि की सुरक्षा के लिये एक प्रकार का जिरहबक्तर (को०)।

जयनाⓅ—क्रि० अ० [सं० जयन] जीतना। उ०—(क) भरत धन्य तुम जग जस जयऊ। कहि अस प्रेम मगन मुनि भयऊ। —तुलसी (शब्द०)। (ख) लै जात यवन मोहि करिकै जयन। —भारतेंदु ग्रं०, भा०१, पृ० ५०२।

जयनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] इंद्र की कन्या।

जयपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह पत्र जो पराजित पुरुष अपने पराजय के प्रमाण में विजयी को लिख देता है। विजयपत्र। उ०—मम जयपत्र सकारि पुनि सुंदर मुहि अपनाय। —भारतेंदु ग्रं०, भा०, १, पृ० ६०८। २. वह राजाज्ञा जो अर्थी प्रत्यर्थी के बीच विवाद के निबटारे के लिये लिखी जाय। वह कागज जिसपर राजा की ओर से किसी विवाद का फैसला लिखा हो।

विशेष—प्राचीन काल में ऐसे पत्र पर वादी और प्रतिवादी के कथन, प्रमाण और धर्मशास्त्र तथा राजसभा के सभ्यों के मत लिखे हुए होते थे और उसपर राजा का हस्ताक्षर और मोहर होती थी।

जयपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] जावित्री।

जयपराजय—संज्ञा स्त्री० [सं० जय + पराजय] दे० 'जयाजय'।

जयपाल—संज्ञा पुं० [सं०] १. जमालगोटा। २. ब्रह्मा का एक नाम (को०)। ३. विष्णु। ४. राजा।

जयपुत्रक—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का जुआ खेलने का एक प्रकार का पासा।

जयप्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] १. राजा विराट के भाई का नाम। २. ताल के साठ मुख्य भेदों में से एक।

विशेष—इसमें एक लघु, एक गुरु और तब फिर एक लघु होता है। यह तिताला ताल है और इसका बोल यह है,—ताहं। धिधिकिट ताहं गन थों।

जयफर—संज्ञा पुं० [हिं० जायफल] दे० 'जायफल'। उ०—जयफर लौंग सुपारि छोहारा। मिरिच होइ जो सहै न झारा। —जायसी (शब्द०)।

जयभेरी—संज्ञा पुं० [सं०] विजय डंका। जीत का नगाड़ा (को०)।

जयमंगल—संज्ञा पुं० [सं० जयमङ्गल] १. वह हाथी जिसपर राजा विजय करने के उपरांत सवार होकर निकले। २. राजा के सवार होने योग्य हाथी। ३. ताल के साठ भेदों में एक।

विशेष—यह श्रृंगार और वीर रस में बजाया जाता है। यह चौताला ताल है और इसका बोल यह है—तकि तकि। दांतकि। धिमि धिमि। थों।

४. ज्वर की चिकित्सा में प्रयुक्त आयुर्वेदीय जयमंगल नामक रस (को०)। ५. विजय की खुशी। जय का आनंद (को०)।

जयमल्लार—संज्ञा पुं० [सं०] संपूर्ण जाति का एक राग जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं।

जयमारⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० जय + माल्य] दे० 'जयमाल'। उ०—का कहँ दैउ ऐस जिउ दीन्हा। जेइ जयमार जीति रन लीन्हा। —जायसी ग्रं०, पृ० १२२।

जयमाल—संज्ञा स्त्री० [सं० जयमाला] वह माला जो विजयी को विजय पाने पर पहनाई जाय। २. वह माला जिसे स्वयंवर के समय कन्या अपने बरे हुए पुरुष के गले में डालती है। उ०—उ०—गावहि छबि अवलोकि सहेली। सिय जयमाल राम उर मेली। —मानस, १। २६४।

जयमाला—संज्ञा स्त्री० [हिं० जयमाल] दे० 'जयमाल'। उ०—सोहत जनु जुग जलज सनाला। ससिहि सभीत देत जयमाला। —मानस, १। २६४।

जयमाल्य—संज्ञा पुं० [सं० जय + माल्य] दे० 'जयमाल'।

जययज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] अश्वमेध यज्ञ।

जयरात—संज्ञा पुं० [सं०] कलिंग देश के एक राजकुमार का नाम जो कौरवों की ओर से महाभारत के युद्ध में लड़ा था और भीम के हाथ से मारा गया था।

जयलक्ष्मी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'जयश्री'।

जयलेख—संज्ञा पुं० [सं० दे० 'जयपत्र'।

जयवाहिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. इंद्राणी। शची। २. विजय करनेवाली सेना (को०)।

जयशाली—संज्ञा पुं० [सं० जय + शाली] यादव वंश के प्रसिद्ध राजा जिन्होंने जैसलमेर नगर बसाया और वहाँ का किला बनवाया था।

विशेष—अपने पिता के सबसे बड़े पुत्र होने पर भी पहले इन्हें राजसिंहासन नहीं मिला था। पर अपने छोटे भाई के मर जाने पर इन्होंने शहाबुद्दीन गोरी से सहायता लेकर अपने भतीजे भोजदेव को मारा और राज्याधिकार प्राप्त किया था। सिंहासन पर बैठने के बाद संवत् १२१२ में इन्होंने जैसलमेर नगर बसाया और किला बनवाया था।

जयश्रृंग—संज्ञा पुं० [सं० जयश्रृङ्ग] विजय की घोषणा के निमित्त बजाया जानेवाला सींग का बाजा (को०)।

जयश्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. विजय की अधिष्ठातृ देवी। विजयलक्ष्मी २. विजय। जीत। ३. ताल के मुख्य साठ भेदों में से एक। ४ देशकार राग से मिलती जुलती संपूर्ण जाति की एक रागिनी जो संध्या के समय गाई जाती है। कुछ लोग इसे देशकार राग की रागिनी मानते हैं।

जयस्तंभ—संज्ञा पुं० [सं० जयस्तम्भ] वह स्तंभ जो विजयी राजा किसी देश का विजय करने के उपरांत अपनी विजय के स्मारक स्वरूप बनवाता है। विजयसूचक स्तभ।

जयस्वामी—संज्ञा पुं० [सं० जयस्वामिन्] १. शिव का एक नाम। २. छांदोग्य सूत्र तथा आश्वलायन ब्राह्मण के व्याख्याता (को०)।

जया¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दुर्गा का एक नाम। २. पार्वती का

एक नाम। ३. हरी दूब। ४. अरणी नामक वृक्ष। ५. जयंती या जत का पेड़। ६. हरीतकी। हड़। ७. दुर्गा की एक सहचरी का नाम। ८. पताका। ध्वजा। ९. ज्योतिष शास्त्र के अनुसार दोनों पक्षों की तृतीया, अष्टमी और त्रयोदशी तिथियाँ। १०. सोलह मातृकाओं में से एक। ११. माघ शुक्ल एकादशी। १२. एक प्राचीन बाजा जिसमें बजाने के लिये तार लगे होते थे। १३. जया पुष्प। गुड़हल का फूल। अड़हुल। १४. भाँग। १५. शमीवृक्ष। छोंकर।

जया²—वि० [सं०] जय दिलानेवाली। विजय करानेवाली। उ०—तीज अष्टमी तेरसि जया। चौथी चतुरदसि नोमी रखया।—जायसी (शब्द०)।

जयाजय—संज्ञा पुं० [सं०] जय और पराजय। जीत हार [को०]।

जयादित्य—संज्ञा पुं० [सं०] काश्मीर के एक प्राचीन राजा का नाम जो काशिकावृत्ति के कर्ता थे।

जयाद्वय—संज्ञा स्त्री० [सं०] जयंती और हड़।

जयानीक—संज्ञा पुं० [सं०] १. द्रुपद राजा के एक पुत्र का नाम। २. राजा विराट के एक भाई का नाम।

जयापीड़—संज्ञा पुं० [सं०] काश्मीर के एक प्रसिद्ध राजा जो ईसवी आठवीं शताब्दी में हुए थे।

विशेष—ये एक बार दिग्विजय करने के लिये निकले थे; पर रास्ते में सैनिक इन्हें छोड़कर भाग गए। इसपर ये प्रयाग चले गए थे जहाँ इन्होंने ९९९९९ घोड़े दान किए थे।

जयावती—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ कार्तिकेय की एक मातृका का नाम। २. एक संकर रागिनी जो धवलश्री, बिलावल और सरस्वती के योग से बनती है।

जयावह—वि० [सं० जय + आवह] जय प्राप्त करानेवाला [को०]।

जयावहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] भद्रदंती का वृक्ष।

जयाश्रया—संज्ञा स्त्री० [सं०] जरड़ी घास।

जयाश्व—संज्ञा पुं० [सं०] राजा विराट के एक भाई का नाम।

जयाह्वया, जयाह्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'जयावहा'।

जयिष्णु—वि० [सं०] जयशील। जो जीतता हो।

जयी¹—वि० [सं० जयिन्] [वि० स्त्री० जयिनी] विजयी। जयशील।

जयी²—संज्ञा स्त्री० [सं० यव] दे० 'जई'।

जयेंद्र—संज्ञा पुं० [सं० जयेन्द्र] काश्मीर के राजा विजय के पुत्र का नाम जो आजानुबाहु थे।

जयेत्—संज्ञा पुं० [सं०] षाड़व जाति के एक राग का नाम जो पूरिया और कल्याण के योग से बनता है। इसमें पंचम स्वर नहीं लगता।

जयेद्गौरी—संज्ञा स्त्री० [सं० सं० जयेत् + गौरी = जयेद्गौरी] एक संकर रागिनी जो जयेत् और गौरी के मेल से बनती है।

जयेती—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक संकर रागिनी जो गौरी और जयतश्री के मेल से उत्पन्न होती है। यह सामंत, ललित और पूरिया अथवा टोड़ी, सहाना और विभास राग के योग से भी बन सकती है।

जय्य—वि० [सं०] जय करने योग्य। जो जीतने योग्य हो।

जरंड—वि० [सं० जरठ] क्षीण। वृद्ध। पुराना [को०]।

जरंत—संज्ञा पुं० [सं० जरन्त] १. वृद्ध व्यक्ति। बूढ़ा आदमी। २. महिष। भैंसा [को०]।

जर¹(पु)—संज्ञा पुं० [सं० जरा] जरा। वृद्धावस्था।

जर²—वि० [सं०] १. क्षय होने या जीर्ण होनेवाला। २. क्षीण। वृद्ध। पुराना। ३. क्षय या जीर्ण करनेवाला [को०]।

जर³—संज्ञा पुं० [सं०] १. नाश या जीर्ण होने की क्रिया। २. जैन दर्शन के अनुसार वह कर्म जिससे पाप, पुण्य, कलुष, राग-द्वेषादि सब शुभाशुभ कर्मों का क्षय होता है।

जर⁴—संज्ञा पुं० [सं० ज्वर] दे० 'ज्वर'। उ०—खने संताप सीत जर जाड़। की उपचरब संदेह न छाँड़।—विद्यापति०, पृ० १३७

जर⁵—संज्ञा पुं० [देश०] एक तरह का समुद्री सवार। कचहरा।—(लश०)।

जर⁶—संज्ञा स्त्री० [हिं० जड़] दे० 'जड़'।

जर⁷—संज्ञा पुं० [फा० जर] १. सोना। स्वर्ण।

यौ०—जरकस = दे० 'जरकश'। जरकार = (१) स्वर्णकार। सुनार। (२) सोने का काम की हुई वस्तु। जरगर। जरदोजी। जरनिगार। जरनिगारी। जरबफ्त। जरबाफता। जरदोज।

२. धन। दौलत। रुपया। उ०—जर ही मेरा अल्लाह है जर राम हमारा।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ५१५।

यौ०—जरअस्ल = मूलधन। जरखरीद। जरगर। जरडिगरी = डिगरी की रकम। जरदार। जरनक्द = रोकड़। नकद। रुपया। जरनीलाम = नीलामी से प्राप्त धन। जरपेशगी = अग्रिम धन। बयाना।

जरई—संज्ञा स्त्री० [हिं० जड़] धान आदि के वे बीज जिनमें अंकुर निकले हों।

विशेष—धान को दो दिन तक दिन में दो बार पानी से भिगोते हैं, फिर तीसरे दिन उसे पयाल के नीचे ढककर ऊपर से पत्थरों से दबा देते हैं जिसे 'मारना' कहते हैं। फिर एक दिन तक उसे उसी तरह पड़ा रहने देते हैं, दूसरे या तीसरे दिन फिर खोलते हैं। उस समय तक बीजों में से सफेद सफेद अंकुर निकल आते हैं। फिर उन्हें फैला देते हैं और कभी कभी सुखाते भी हैं। ऐसे बीजों को जरई और इस क्रिया को 'जरई करना' कहते हैं। यह जरई खेत में बोने के काम आती है और शीघ्र जमती है। कभी कभी धान की मुजारी भी बंद पानी में डाल दी जाती है और वो तीन दिन तक वैसे ही पड़ी रहती है, चौथे दिन उसे खोलते हैं। उस समय वे बीज जरई हो जाते हैं। कभी कभी इस बात की परीक्षा के लिये कि बीज जम गया या नहीं, भिन्न भिन्न प्रांतों की भिन्न भिन्न रीति से जरई की जाती है।

२. दे० 'जई'।

जरकटी—संज्ञा पुं० [देश०] एक शिकारी पक्षी। उ०—जुर्रा बाज बाँसे कुही बहरी लगर लोने, टोने जरकटी त्यों शचान सान पार हैं।—रघुराज (शब्द०)।

जरकस, जरकसी—वि० [फ़ा० जरकश] १. जिसपर सोने आदि के तार लगे हों। उ०—(क) छोटिए धनुहियाँ पनहियाँ पगन छोटी, छोटिए कछोटी कटि छोटिए तरकसी। लसत झँगुली झीनी दामिनि की छबि छीनी सुंदर बदन सिर पगिया जरकसी।—तुलसी (शब्द०)। (ख) अब झाँकि झाँकि झमकि झुकी उझकि झरोखे पैन। कसे कंचुकी जरकसी लसी बंसी ही नैन।—शृं० सत० (शब्द)।

जरकसिⓅ—वि० [हिं०] दे० 'जरकसी'। उ०—पहिरै जरकसि पर आभूषण अँग अँग नैति रिझाय।—नंद० ग्रं०, पृ० ३४६।

जरखरीद—वि० [फ़ा० जरखरीद] नकद दाम देकर खरीदी हुई जमीन जायदाद जिसपर खरीददार का पूर्ण अधिकार हो। उ०—जब देखो तब तू तैं—चुप ! गोया बेटा नहीं जरखरीद गुलाम है।—शराबी; पृ० १७१।

जरखेज—वि० [फ़ा० जरखेज] उपजाऊ। जिसमें खूब अन्न पैदा होता है। उर्वरा (जमीन का विशेषण)।

जरखेजी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जरखेजी] उर्वरता। उपजाऊपन।

जरगर—संज्ञा पुं० [फ़ा० जरगर] स्वर्णकार। सुनार (को०)।

जरगह—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जर + जियाह] एक घास जिसे चौपाये बड़े स्वाद से खाते हैं।

विशेष—यह घास राजपूताने आदि में बहुत बोई जाती है। किसान इसे खेतों में कियारियाँ बनाकर बोते हैं और छठे सातवें दिन पानी देते हैं। पंद्रह बीस दिन में यह काटने लायक हो जाती है। एक बार बोने पर कई महीनों तक यह बराबर पंद्रहवें दिन काटी जा सकती है। यह दाने की तरह दी जाती है और बैल घोड़े इसके खाने से जल्दी तैयार हो जाते हैं।

जरगा—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जर + जियाह] दे० 'जरगह'।

जरज—संज्ञा पुं० [देश०] एक कंद जिसकी तरकारी बनाई जाती है।

विशेष—यह दो प्रकार का होता है। एक की जड़ गाजर या मूली की तरह होती है और दूसरे की जड़ शलजम की तरह होती है।

जरजरⓅ—वि० [सं० जर्जर] [वि० स्त्री० जरजरी] दे० 'जर्जर'। उ०—(क) सविषम खर शरे अँग भैल जरजर कहइते कि पतियाइ। —विद्यापति, पृ० ४८२। (ख) नाव जरजरी भार बहु खेवनहार गँवार।—दीन० ग्रं०, पृ० ११३।

जरजराना—क्रि० अ० [सं० जर्जर] जर्जरित होना। जीर्ण होना।

जरजरीⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं० जड़ + जड़ी] जड़ी बूटी। सुनहरी जड़ी। उ०—नाग दवनि जरजरी, राम सुमिरन बरी, भनत रैदास चेत निमैता।—रै० बानी, पृ० २०।

जरछार†—वि० [हिं० जरना + सं० क्षार] १. भस्मीभूत। २. नष्ट।

जरजाल—संज्ञा पुं० [अ० जर + फ़ा० जलुक(=गोली, छर्रा)] लोहे के तारों में बँधे हुए बहुत से फल छुरी इत्यादि जो तोप में भर के छोड़े जाते हैं। उ०—लिए तुपक जरजाल जमूरे। कै भरि बान बल पूरे।—हम्मीर०, पृ० ३०।

जरठ[1]—वि० [सं०] १. कर्कश। कठिन। २. वृद्ध। बुड्ढा। उ०—जरठ भयउँ अब कहै रिछेसा।—मानस, ४।२६। ३. जीर्ण। पुराना। ४. पांडु। पीलापन लिये सफेद रंग का।

जरठ[2]—संज्ञा पुं० बुढ़ापा।

जरठाईⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० जरठ] बुढ़ापा। वृद्धावस्था। जीर्ण अवस्था।

जरठी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक घास का नाम जिसे खाने से गाय भैंस अधिक दूध देती हैं।

विशेष—वैद्यक में इसे मधुर, शीतल, दाहनाशक, रक्तशोधक और रुचिर माना है।

पर्या०—गर्मोटिका। सुनाला। जयाश्रया।

जरण—संज्ञा पुं० [सं०] १ हींग। २. जीरा। ३. काला नमक। सोवर्चल। ४. कासमर्द। कसौंजा। ५. जरा। बुढ़ापा। ६. दस प्रकार के ग्रहणों में से एक जिसमें पश्चिम से मोक्ष होना प्रारंभ होता है। ७. सुफेद जीरा।

जरणद्रुम—संज्ञा पुं० [सं०] १. साखू का वृक्ष। सागौन का पेड़।

जरणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. काला जीरा। २. वृद्धावस्था। बुढ़ापा। ३. स्तुति। प्रशंसा। ४. मोक्ष। मुक्ति।

जरत्[1]—वि० [सं०] [वि० स्त्री० जरती] १. बुड्ढा। वृद्ध। २. बहुत दिनों का।

जरत्[2]—संज्ञा पुं० वृद्ध व्यक्ति। पुराना आदमी (को०)।

जरत—संज्ञा पुं० [सं०] १. वृद्ध व्यक्ति। पुराना आदमी। २ साँड़ (को०)।

जरता बलता†—संज्ञा पुं०[हिं०]दे० 'जलना' के अंतर्गत 'जलता बलता'।

जरतारⓅ—संज्ञा पुं० [फ़ा० जर + तार] सोने या चाँदी आदि का तार। जरी। उ०—बीच जरतारन की हीरन के हार की जगमगी ज्योतिन की मोतिन की झालरैं।—देव (शब्द०)।

जरतारा†—वि० [हिं० जरतार] [वि० स्त्री० जरतारी] जिसमें सुनहले या रुपहले तार लगे हों। जरी के काम का। उ०—जरतारी मुख पै सरस सारी सोहत सेत। सरद जलद मिद जलज पर सहज किरन छबि देत।—स० सप्तक, पृ० ३४५।

जरतुआ‡—वि० [हिं० जलना] जो दूसरों को देखकर बहुत जलता या बुरा मानता हो। ईर्ष्या करनेवाला।

जरतिका, जरती—संज्ञा स्त्री० [सं०] बूढ़ा स्त्री। बूढ़ी महिला।

जरतुश्त—संज्ञा पुं० [फ़ा० जरतुश्त] दे० 'जरदुश्त'।

जरत्करण—स्त्री० पुं० [सं०] एक वैदिक ऋषि का नाम।

जरत्कारु[1]—संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम जिन्होंने वासुकि नाग की कन्या से ब्याह किया था। आस्तिक मुनि इनके पुत्र थे।

जरत्कारु[2]—संज्ञा [सं०] जरत्कारु ऋषि की स्त्री जो वासुकि नाग की कन्या थी। इसका नाम मनसा भी था।

जरद—वि० [फ़ा० ज़र्द] पीला। जर्द। पीत। उ०—ओढ़े जरद दुसाला यारों केसर की सी क्यारी हैं।—घनानंद, पृ० १७६।

जरद अंछी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जर्द, हिं० जरद + अंछी] काली

पंछी की तरह की एक प्रकार की बड़ी झाड़ी जिसकी लंबी टहनियों के सिरों पर काँटे होते हैं।

विशेष—यह देहरादून से भूटान और खसिया की पहाड़ी तक ७००० फुट की ऊँचाई तक पाई जाती है। दक्षिण में कनाडा (कनारा, कन्नड़) और लंका तक भी होती है। इसमें फागुन चैत में फूल लगते हैं जो कच्चे भी खाए जाते हैं और अचार डालने के काम आते हैं।

जरदक—संज्ञा पुं० [फ़ा० ज़रदक] जरदा या पीलू नाम का पक्षी।

जरदष्टि[1]—वि० [सं०] १. वृद्ध। बुड्ढा। २. दीर्घजीवी। बहुत दिनों तक जीनेवाला।

जरदष्टि[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बुढ़ापा। वृद्धावस्था। २. दीर्घजीवन।

जरदा[1]—संज्ञा पुं० [फ़ा० ज़र्दह्] १. एक प्रकार का व्यंजन जिसे प्रायः मुसलमान लोग खाते हैं।

विशेष—इसके बनाने की विधि यह है कि चावल में पहले हल्दी डालकर उसे पानी में उबालते हैं। फिर उसमें से पानी पसा लेते हैं और उसे दूसरे बर्तन में घी डालकर शक्कर के शर्बत में पकाते हैं। पीछे से इसमें लौंग, इलायची आदि सुगंधित द्रव्य और मसाले छोड़ दिए जाते हैं।

२. एक विशेष क्रिया से बनाई हुई खाने की सुगंधित सुरती।

विशेष—यह प्राय: काले रंग की होती है और पान दोहरा, आदि के साथ खाई जाती है। यह पीले और लाल रंग की भी बनाई जाती है। वाराणसी इसका एक प्रमुख व्यापार-केंद्र है।

यौ०—जरदाफरोश = जरदा बेचनेवाला।

३. पीले रंग का का घोड़ा। उ०—जरदा जिरही जाँग सुनौची ऊदे खंजन।—सुजान०, पृ० ८। ४. पीली आँख का कबूतर। ५. पीले रंग की एक प्रकार की छींट।

जरदा[2]—संज्ञा पुं० [फ़ा० ज़रदक] एक प्रकार का पक्षी। पीलू।

विशेष—इसकी कनपटी पीली, पीठ खाली, पेट सफेद और चोंच तथा पैर पीले होते हैं। इसे पीलू भी कहते हैं।

जरदार—वि० [फ़ा० जर + दार] अमीर। धनवान। उ०—हुआ मालूम यह गुंचे से हमको। जो कोई जरदार है सो तंग दिल है।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ३०।

जरदालू—संज्ञा पुं० [फ़ा० ज़रदालू] खूबानी नाम का मेवा।

विशेष—दे० 'खूबानी'।

जरदी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० ज़रदी] पिलाई। पीलापन।

मुहा०—जरदी छाना = किसी मनुष्य के शरीर का रंग बहुत दुर्बलता, खून की कमी या किसी दुर्घटना आदि के कारण पीला हो जाना।

२ अंडे के भीतर का वह चेप जो पीले रंग का होता है।

जरदुश्त—संज्ञा पुं० [फ़ा० जरदुश्त; मि० सं० जरदष्टि (= दीर्घजीवी, वृद्ध); अथवा सं० जरत्त्वष्ट्र (= एक ऋषि)] फारस देश के प्राचीन पारसी धर्म के प्रतिष्ठाता एक आचार्य।

विशेष—ये ईसा से ६ सौ वर्ष पूर्व ईरान के शाह गुश्तास्प के समय में हुए थे। इन्होंने सूर्य और अग्नि की पूजा की प्रथा चलाई थी और पारसियों का प्रसिद्ध धर्मग्रंथ 'जंद अवस्था' (जंद अवेस्ता) बनाया था। ये 'मीदू चेहू' के वंशज और यूनान के प्रसिद्ध हकीम 'फीसा गोरस' के शिष्य थे। शाहनामे में लिखा है कि जरदुश्त तूरानियों के हाथ से मारे गए थे। इनको जरतुश्त और जरथुस्त्र भी कहते हैं।

जरदोज—संज्ञा पुं० [फ़ा० ज़रदोज] [संज्ञा जरदोजी] वह मनुष्य जो कपड़ों पर कलाबत्तू और सलमे सितारे आदि का काम करता हो। जरदोजी का काम करनेवाला।

जरदोजी—संज्ञा पुं० [फ़ा०] एक प्रकार की दस्तकारी जो कपड़ों पर सुनहले कलाबत्तू या सलमें सितारे आदि में की जाती है। उ०—सुबरन साज जीन जरदोजी। जगमगात तन अगनित ओजी।—हम्मीर०, पृ० ३।

जरद्गव[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. बुड्ढा बैल। २. बृहत्संहिता के अनुसार एक वीथी जिसमें विशाखा, अनुराधा और ज्येष्ठा नक्षत्र हैं। यह चंद्रमा की वीथी है।

जरद्गव—वि० जीर्ण। प्राचीन।

जरद्विष—संज्ञा पुं० [सं०] जल।

जरनⓅ†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'जलन'।

जरनल[1]—संज्ञा पुं० [अं०] वह सामयिक पत्र या पुस्तक जिसमें क्रम से किसी प्रकार की घटनाएँ आदि लिखी हों। सामयिक पत्र।

जरनल—संज्ञा पुं० [अं० जेनरल] दे० 'जनरल'।

जरनलिस्ट—संज्ञा पुं० [अं० जर्नलिस्ट] दे० 'पत्रकार'।

जरना[1]—क्रि० अ० [हिं० जलना] दे० 'जलना'। उ०—देखि जरनि जड़ नारि की रे जरति प्रेत के संग।—सूर०, १।३२५।

जरना[2]Ⓟ—क्रि० अ० [सं० जटन, हिं० जड़ना] दे० 'जड़ना'। उ०—नग कर मरम सो जरिया जाना। जरै जो अस नग हीर पखाना।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २४१।

जरनिⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं० जरना (= जलना)] १. जलने की पीड़ा जलन। उ०—पानी फिरै पुकारतो उपजी जरनि अपार। पावक आयो पूछनै सुंदर वाकी सार।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ७२८। २. व्यथा। पीड़ा। उ०—(क) तातै हौं देत न दूखन तोहूँ। राम बिरोधी उर कठोर ते प्रगट कियो है विधि मोहूँ। सुंदर सुखद सुसील सुधानिधि जरनि जाय जेहि जोए। बिष बारुणी बंधु कहियत विधु नातो मिटत न धोए।—तुलसी (शब्द०)। (ख) आपनि दारुन दीनता कहउँ सबहिं सिर नाइ। देखे बिन रघुनाथ पद जिय की जरनि न जाइ।—तुलसी (शब्द०)। (ग) देखि जरनि जड़ नारि की रे जरति प्रेत के संग। चिता न चित फीको भयो रे रची जु पिय के रंग।—सूर०, १।३२५।

जरनिगार—वि० [फ़ा० जरनिगार] सुनहरे कामवाला। सुनहरे रंग का।

जरनिगारी—संज्ञा [फ़ा० जरनिगारी] सुनहरा काम। सोने का पानी। मुलम्मा।

जरनीⓅ†—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्वलन] जलन। ताप। अग्नि। ज्वाला। उ०—बिछुरी मनौं संग तैं हिरनी। चितवत रहत चकित चारौं दिसि उपजि बिरह तन जरनी।—सूर०, ६।७३।

जरनैल[1]—संज्ञा पुं० [अं०] दे० 'जनरल'।

जरनैल[2]—संज्ञा पुं० [अं० जर्नल] दे० 'जर्नल'।

जरपरस्त—वि० [फ़ा० ज़रपरस्त] अर्थपिशाच। सूम। लोभी। कंजूस [को०]।

जरपोस—संज्ञा पुं० [फ़ा० ज़रपोश] जरी का कपड़ा। जरी की पोशाक। उ०—सबज पोस जरपोस करि लीनो लाल लुगाइ। भाइ भाइ फिर भाइ करि करति घाइ पर घाइ।—म० सप्तक, पृ० ३८३।

जरफ—वि० [अ० ज़रफ़] साफ। स्वच्छ। निर्मल उ०—सब सहर नारि शृंगार कीन। अप अप्प झुंड मिलि चलि नवीन। थपि कनक थार भरि द्रव्य दूब। पटकूल जरफ जरकसी ऊब।—पृ० रा०, १।७१३।

जरब—संज्ञा स्त्री० [अं० जरब] आघात। चोट।

यौ०—जरब खफीफ = हलकी चोट। जरब शदीद = भारी चोट।

मुहा०—जरब देना = चोट लगाना। आघात करना। पीटना। उ०—दगा देत दूतन चुनौती चित्रगुप्तै देत जम को जरब देत पापी लेत शिवलोक।—पद्माकर (शब्द०)।

२. तबले मृदंग आदि पर का आघात। थाप जो दो तरह की होती है, एक खुली और दूसरी बंद। ३. गुणा (गणित)। कपड़े पर छपी या काढ़ी हुई बेल।

जरबकस—वि० [फा० जर + बख्श] उदार। दाता। दानी। धन देनेवाला।

उ०—तुम जरबकस जराब मोती हो लाल जवाहिर नहिं गनता।—स० दरिया, पृ० ६४।

जरबफ्त—संज्ञा पुं० [फा० जरबफ्त] वह रेशमी कपड़ा जिसकी बुनावट में कलाबत्तू देकर कुल बेल बूटे बनाए जाते हैं।

जरबाफ—संज्ञा पुं० [फ़ा० ज़रबाफ़] सोने के तारों से कपड़े पर बेलबूटे बनानेवाला कारीगर। जरदोज।

जरबाफी[1]—वि० [फा० ज़रबाफ़ी] जरबाफ के काम का। जिसपर जरबाफ का काम बना हो।

जरबाफी[2]—संज्ञा स्त्री० दे० 'जरदोजी'।

जरबीलाⓅ†—वि० [फ़ा० जरब + हिं० ईला (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० जरबीली] जो देखने में बहुत भड़कीला और सुंदर हो।—उ०—श्रवण झुकै झुमका अति लोल कपोल जराइ जरे जरबीले।—गुमान (शब्द०)। (ख) आयो तहँ भावतो कहँ पायो सीर सोरह में पीठ पीछे चीन्हें चीन्हें पोति जरबीली को।—रघुराज (शब्द०)।

जरबुलंद—संज्ञा पुं० [फ़ा० ज़रबुलंद] कोफ्त का एक भेद जिसके गुलबूटे, जिनपर सोने या चाँदी की कलई होती है, बहुत उभड़े रहते हैं।

जरब्बीⓅ—वि० [अ० जरब] घाव करनेवाला। चोट पहुँचानेवाला उ०—लियं रुंड तेगं सुघल्लै जरब्बी। कटे सेन चहुवान मानहु करब्बी।—पृ० रासो, पृ० ८४।

जरबुलमसल—संज्ञा स्त्री० [अ० ज़रबुलमसल] कहावत। लोकोक्ति।

जरमन[1]—संज्ञा पुं० [अं०] १. जरमनी देश का निवासी। वह जो जरमनी देश का हो।

जरमन[2]—संज्ञा स्त्री० जरमनी देश की भाषा।

जरमन[3]—वि० जरमनी देश संबंधी। जरमनी का। जैसे, जरमन माल, जरमन सिलवर।

जरमन सिलवर—संज्ञा पुं० [अ०] एक सफेद और चमकीली यौगिक धातु जो जस्ते, ताँबे और निकल के संयोग से बनती है।

विशेष—इसमें आठ भाग ताँबा, दो भाग निकल और तीन से पाँच भाग तक जस्ता पड़ता है। निकल की मात्रा बढ़ा देने से इसका रंग अधिक सफेद और अच्छा हो जाता है। इस धातु के बरतन और गहने आदि बनाए जाते हैं।

जरमनी—संज्ञा पुं० [अं०] मध्य यूरोप का एक प्रसिद्ध देश।

जरमुआ†—वि० [हिं० जरना + मुअना [वि० स्त्री० जरमुई] जलमरनेवाला। बहुत ईर्ष्या करनेवाला।

जरर—संज्ञा पुं० [अ० ज़रर] १. हानि। नुकसान। क्षति। उ०—जब जुल्मों जरर मुल्क सुलेमान में देखा।—कबीर मं०, पृ० ३८८। २. आघात। चोट।

क्रि० प्र०—आना। पहुँचना। —पहुँचाना।

३. आफत। मुसीबत।

जरल—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक बारहमासी घास जो मध्य प्रदेश और बुंदेलखंड में बहुत होती है। इसे 'सेवाती' भी कहते हैं।

जरवानाⓅ—क्रि० स० [हिं० जलना] दे० 'जलवाना'। उ०—न जोगी जोग से ध्यावै। न तपसी देह जरवावै।—कबीर० श०, भा० ३, पृ० ७।

जरवाराⓅ—वि० [फ़ा० जर + हिं० वाला (प्रत्य०)] रुपए पैसेवाला। धनी। उ०—ते धन जिनकी ऊँची नजर है। कइक बनाय दिए जरवारे जिनकी कतहुँ नजर है।—देवस्वामी (शब्द०)।

जरस[1]—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] घंटा। घड़ियाल। उ०—जब जी पर टँगाती हूँ मैं एक जरस। फिर आए सफर कर तूँ जब हो सरस।—दक्खिनी० पृ०, १४६।

जरस[2]—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की समुद्र की घास।—(लश०)

जरहरिⓅ—संज्ञा स्त्री० [देश०] जल का खेल। जलक्रीड़ा। उ०—रुहिरि तरंगिणि तीर भूत गए जरहरि खेल्लइ।—कीर्ति०, पृ० १०८।

जरांकुश—संज्ञा पुं० [सं० यज्ञकुश] मूँज के प्रकार की एक सुगंधित घास जिसमें नीबू की सी सुगंध आती है।

विशेष—यह कई प्रकार की होती है। दक्षिण भारत में यह बहुत अधिकता से होती है। इससे एक प्रकार का तेल निकलता है जिसे नीबू का तेल कहते हैं और जो साबुन तथा सुगंधित तेल आदि बनाने मे काम आता है।

जरा¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बुढ़ापा । वृद्धावस्था ।

यौ०—जराग्रस्त । जरामरण ।

२. पुराणानुसार काल की कन्या का नाम । विस्रसा । ३. एक राक्षसी का नाम जो मगध देश की गृहदेवी थी । इसी को षष्ठी भी कहते हैं । जरा नाम की एक राक्षसी जिसने जरासंध को जोड़ा था । दे० 'जरासंध' । उ०—जरा जरासंध की संधि जोरयौ हुतो भीम ता संध को चीर डरयौ ।—सूर०, १०।४२१५ । ४. खिरनी का पेड़ । ५. प्रार्थना । प्रशंसा । श्लाघा ।

यौ०—जराबोध ।

६. पाचन शक्ति (को०) । ७. वृद्धावस्था की शिथिलता (को०) ।

जरा²—संज्ञा पुं० [सं०] एक व्याध का नाम ।

विशेष—इसी के बाण से भगवान् कृष्णचंद्र देवलोक सिधारे थे ।

जरा³—वि० [अ० ज़र्रह] थोड़ा । कम । जैसे,—जरा से काम में तुमने इतनी देर लगा दी ।

यौ०—जरा जरा = थोड़ा थोड़ा । जरामना = कमबेश । थोड़ा बहुत । जरा सा ।

जरा⁴—क्रि० वि० थोड़ा । कम । जैसे,—जरा दौड़ो तो सही ।

मुहा०—जरा चलेगी = जरा बात बढ़ेगी । तकरार होगी । उ०—मैं तो समझी थी कि जरा चलेगी ।—सैर० कु०, पृ० २४ ।

जराअत¹—संज्ञा स्त्री० [अ० ज़िराअत] दे० 'जिराअत' ।

जराअत—संज्ञा स्त्री० [अ० ज़राअत] १, रुदन । क्रंदन । २. विनती । मिन्नत (को०) ।

जराऊ(पु)—वि० [हिं०] दे० 'जड़ाऊ' । उ०—पाँवरि कवम जराऊ पाऊँ । दीन्हि असीस आइ तेहि ठाऊँ ।—जायसी (शब्द०) ।

जराकुमार—संज्ञा पुं० [पुं०] जरासंध ।

जराग्रस्त—वि० [सं०] बुड्ढा । वृद्ध ।

जराजीर्ण—वि० [सं० जरा + जीर्ण] बुढ़ापे के कारण दुर्बल । बुड्ढा वृद्ध । उ०—हो मलते कलेजा पड़े, जरा जीर्ण, निर्निमेष नयनों से । —अपरा, पृ० १५२ ।

जराति(पु)—संज्ञा स्त्री० [अ० ज़िराअत] खेती । फसल । समृद्धि । उ०—रैती बादशाहों की जराति उजड़ेगा । देवीसिंघ तेरा जोर देखना पड़ेगा । —शिखर०, पृ० ९४ ।

जराती—संज्ञा पुं० [हिं० जलना] वह डोरा जो चार बार उड़ाया गया हो ।

जरातुर—वि० [सं०] जरा से जर्जर । जराग्रस्त । वृद्ध । बूढ़ा (को०) ।

जराद—संज्ञा पुं० [अ०] टिड्डी ।

जराना(पु)—क्रि० सं० [हिं० जरना] दे० 'जलाना' । उ०—पवन को पूत महाबल जोधा पल मैं लंक जराई ।—सूर०, ९।१४० ।

जरापुष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] जरासंध का एक नाम ।

जराफत—संज्ञा स्त्री० [अ० ज़राफ़त] जरीफ होने का भाव । मसखरापन । परिहासप्रियता । उ०—उसके मिजाज में जराफत ···जियादा है ।—प्रेमघन०, भाग २, पृ० १०२ । २. हँसी-मजाक । परिहास ।

यौ०—जराफतपसंद = विनोदप्रिय । हँसोड़ । जराफत की पोट = हँसी की पोटली । हँसोड़ ।

जराफा—संज्ञा पुं० [अ० ज़राफ़] दे० 'जिराफा' ।

जराबोध—संज्ञा पुं० [सं०] वह अग्नि जो स्तुति करके प्रज्वलित की गई हो ।—(वैदिक) ।

जराबोधीय—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साम ।

जराभीत, जराभीरु—संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव (को०) ।

जराभीस—संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव ।

जरायणि—संज्ञा पुं० [सं०] जरासंध का एक नाम ।

जराय(पु)—वि० [हिं०] दे० 'जराव' ।

जरायम—संज्ञा पुं० [अ० 'जरीमह्' का बहु व०] पाप । दोष । गुनाह । अपराध (को०) ।

जरायमपेशा—वि० [फ़ा० जरायम पेशह्] जो अपराधी स्वभाव का हो । अपराधी । दोष या गुनाह करनेवाला । जुर्म करनेवाला ।

जरायु—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० जरायुज] १. वह झिल्ली जिसमें बच्चा बँधा हुआ उत्पन्न होता है । आँवल । खेड़ी । उल्व । २. गर्भाशय । ३. योनि । ४. जटायु । ५. अग्निजार या समुद्रफल नामक वृक्ष । ६. कार्तिकेय के एक अनुचर का नाम । ७. साँप की केंचुल (को०) ।

जरायुज—संज्ञा पुं० [सं०] वह प्राणी जो आँवल या खेड़ी में लिपटा हुआ अपनी माता के गर्भ से उत्पन्न हो । पिंडज ।

जरार—वि० [अ० ज़रर] क्रूर । हानि पहुँचानेवाला । उ०—बड़ा जरार आदमी है ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १२५ ।

जराव(पु)—वि० [हिं० जड़ना] जड़ाऊ । जिसमें नगीने आदि जड़े हों । जड़ा हुआ । उ०—(क) बंदी जराव लिलार दिए गहि डोरी दोऊ पटिया पहिराई । —सुंदरीसर्वस्व (शब्द०) । (ख) सुंदर सूधी सुगोल रची बिधि कोमलता अति ही सरसात है । त्यों हरिऔध जराव जरे खरे कंकन कंचन के दरसात है ।—अयोध्या० (शब्द०) ।

जराशोष—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का शोष रोग जो लोगों को वृद्धावस्था में हो जाता है ।

विशेष—इस शोष रोग में रोगी दुर्बल हो जाता है, उसे भोजन से अरुचि हो जाती है और बल, वीर्य तथा बुद्धि का क्षय हो जाता है ।

जरासंध—पुं० [सं० जरासन्ध] महाभारत के अनुसार मगध देश का एक राजा । यह बृहद्रथ का पुत्र और कंस का श्वसुर था ।

विशेष—पुराणों के अनुसार यह दो टुकड़ों में उत्पन्न हुआ और 'जरा' नाम की राक्षसी द्वारा दोनों टुकड़ों को जोड़कर सजीव किया गया । इसलिये इसका नाम जरासंध, जरासुत आदि पड़ा । कृष्ण द्वारा अपने श्वसुर कंस के मारे जाने पर इसने मथुरा पर अठारह बार आक्रमण किया था । युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में अर्जुन और भीम को साथ लेकर कृष्ण इसकी राजधानी गिरिव्रज में ब्राह्मण के वेश में गए और उन राजाओं को छोड़ देने के लिये कहा जिन्हें उसने परास्त कर कैद

कर लिया था, किंतु जरासंध ने नहीं माना। अंततः भीम के साथ युद्ध करने की माँग स्वीकार कर ली। कहते हैं कई दिनों तक मल्ल युद्ध होने के बाद भी जब यह पराजित नहीं हुआ तब एक दिन कृष्ण का संकेत पाकर भीम ने द्वंद्व युद्ध में जरा राक्षसी द्वारा जोड़े गए अंग के दोनों विभागों को चीरकर इसे मार डाला था।

जरासिंध(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'जरासंध'।

जरासुत—संज्ञा पुं० [सं०] जरासंध।

यौ०—जरासुतजित् = जरा राक्षसी के पुत्र जरासंध को जीतनेवाला। भीम।

जराह—संज्ञा पुं० [अ० जर्राह] दे० 'जर्राह'।

जरिणी—वि० स्त्री० [स्त्री० जरिन्] बुड्ढा। बूढ़ी [को०]

जरित¹—वि० [सं०] १. वृद्ध। जईफ। २. क्षीण। दुर्बल। कृश [को०]।

जरित²—वि० [हिं० जड़ना, प्र० हिं० जरना] दे० 'जड़ित'।— उ०—पहुँची करनि कंठ कठुला बन्यो, केहरि नख मनि जरित जराए।—तुलसी ग्रं०, पृ० २८६।

जरिमा—संज्ञा स्त्री० [सं० जरिमन्] बुढ़ापा। जरा। वृद्धावस्था।

जरिया¹(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० जड़िया] दे० 'जड़िया'। उ०—नग कर मरम सो जरिया जाना। जरै जो अस नग हीर पखाना।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २४१।

जरिया—वि० [हिं० जरना] जो जलाने से उत्पन्न हो। जलाकर बनाया या तैयार किया हुआ। जैसे, जरिया शोरा, जरिया नमक।

यौ०—जरिया शोरा=एक प्रकार का शोरा जो भाफ उड़ाकर बनाया जाता है। जरिया नमक=वह खारा नमक जो आँच से तैयार किया जाता है।

जरिया³—संज्ञा पुं० [अ० जरियह् या ज़रीअह्] १. संबंध। लगाव। द्वार। जैसे,—उनके यहाँ अगर आपका कोई जरिया हो तो बहुत जल्दी काम हो जायगा। २. हेतु। कारण। सबब। ३. उपाय। साधन। तदबीर। उ०—तौ पाई जरिया सिर पर धरिया, विष ऊर्धरिया तम तिरिया।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० २३१।

जरिश्क—संज्ञा पुं० [फ़ा० ज़रिश्क] दारुहलदी।

जरी¹—वि० पुं० [सं० जरिन्] [वि० स्त्री० जरिणी] बुड्ढा। वृद्ध।

जरी(पु)²—संज्ञा स्त्री० [सं० जड़ी] जड़ी। बूटी। उ०—तब सो जरी अमृत लेइ आवा। जो मरे हुत तिन्ह छिरिकि जियावा।— जायसी (शब्द०)।

जरी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० ज़री] १. ताश नामक कपड़ा जो बादले से बुना जाता है। २. सोने के तारों आदि से बना हुआ काम।

जरी⁴—वि० सोने का। स्वर्णिम। स्वर्णमय।

जरीद—संज्ञा पुं० [अ०] १. पत्रवाहक। कासिद। २. जासूस। गुप्तचर [को०]।

जरीदा—संज्ञा पुं० [अ० जरीदह्] १. एकाकी व्यक्ति। अकेला आदमी २. समाचारपत्र। अखबार [को०]।

जरीनाल—संज्ञा स्त्री० [हिं० जरी+नाल (=ठोकर)] कहारों की बोलचाल में वह स्थान जहाँ ईंटें और रोड़े पड़े हों।

जरीफ वि० [अ० ज़रीफ़] परिहास करनेवाला। मसखरा। ठट्ठेबाज। मखौलिया।

जरीब—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] माप जिससे भूमि नापी जाती है।

विशेष—हिंदुस्तानी जरीब ५५ गज की और अंग्रेजी जरीब ६० गज की होती है। एक जरीब में २० गट्ठे होते हैं।

यौ०—जरीबकश। जरीबकशी =(१) जरीब द्वारा खेतों की पैमाइश। (२) जरीब खींचने का काम।

मुहा०—जरीब डालना = भूमि को जरीब से नापना।

२. लाठी। छड़ी।

जरीबकश—संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह मनुष्य जो भूमि नापने के समय जरीब खींचने का काम करता है।

जरीबफ्त(पु)—संज्ञा पुं० [फ़ा० जरबफ्त] दे० 'जरबफ्त'। उ०— जरीबफ्त औ ओढ़े तासे, ताहि समुझि के धरना।—सं० दरिया०, पृ० १४५।

जरीबाना—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'जुरमाना'। उ०—आगे तो जरीबाना, फेर जहलखाना रे हरी।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३५६।

जरीबी—वि० [फा०] (भूमि) जो जरीब से नापी हुई हो।

जरीमाना†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'जुरमाना'।

जरीली—वि० स्त्री० [हिं० जड़ना + ईला (प्रत्य०)] सोने के तारों से निर्मित। जड़ावदार। जिसपर जड़ाव का काम हो। उ०— कहूँ प्रभा श्यामल इंद्रनीली। मोती छरी सुंदर ही जरीली।—श्यामा०, पृ० ३८।

जरुआ†—संज्ञा पुं० [सं० जरा] जरावस्था। वृद्धावस्था। बुढ़ापा। उ०—जोबन बाल वृद्ध अवस्ता। जोबन हारिआ जरुआ जिता।—प्राण०, पृ० २४२।

जरूथ¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. मांस। गोश्त।

जरूथ²—वि० कटुवादी। कटुभाषी।

जरूर¹—क्रि० वि० [अ० ज़रूर][वि० ज़रूरी। संज्ञा ज़रूरत] अवश्य। निःसंदेह। निश्चय करके।

यौ०—जरूर जरूर = अवश्यमेव।

जरूर²—संज्ञा पुं० [अ० ज़रूर] दवा की बुकनी जो जख्म या आँख में छोड़ी जाय [को०]।

जरूरत—संज्ञा स्त्री० [अ० ज़रूरत] आवश्यकता। प्रयोजन।

क्रि० प्र०—पड़ना।—होना।

यौ०—जरूरतमंद = (१) इच्छुक। आकांक्षी। (२) दीन। दरिद्र। मुँहताज। (३) भिक्षुक। भिखारी।

जरूरतन्—क्रि० वि० [अ० ज़रूरतन] आवश्यकतावश। कारणवश। जरूरत से।

जरूरियात—संज्ञा स्त्री० [अ० ज़रूरी का बहुव०] आवश्यक चीजें।

जरूरी—वि० [फ़ा० ज़रूरी] १. जिसकी जरूरत हो। जिसके बिना

काम न चले। प्रयोजनीय। २. जो अवश्य होना चाहिए। आवश्यक। सापेक्ष्य।

जरूलाⓟ†—वि० [सं० जटा + हिं० वाला (प्रत्य०); अथवा हिं० झड़ + ऊला (प्रत्य०)] १. गर्भकालीन केशोंवाला। गर्भोत्पन्न केश या जटा से युक्त। उ०—नित ही ब्रजजन हित अनुकूलो। जसुदा जीवन लला जरूलो।—घनानंद०, पृ० २३२। २. जटुल। जन्मजात लक्षण चिह्नों से युक्त।

जरोटन—संज्ञा स्त्री० [सं० जलाटनी] जोंक। उ०—कोर कजरारी कैधों फरकत फेर फेर, सूकत जरोटन की थिरक थकैसी सी।—पजनेस०, पृ० ६।

जरोल—संज्ञा पुं० [देश०] एक पेड़ जिसकी लकड़ी बहुत मजबूत होती है।

विशेष—यह इमारत, जहाज और तोपों के पहिए बनाने के काम आती है। यह बंगाल में, विशेषकर सिलहट के कछार मे, चटगाँव और उत्तरी नीलगिरि में बहुत होता है।

जरौटⓟ†—वि० [हिं० जड़ना] जड़ाऊ। उ०—कोऊ कजरौट जरौट लिए कर कोउ मुरछल कोऊ छाता।—रघुराज (शब्द०)।

जर्कबर्क—वि० [फा० जर्क बर्क] जिसमें खूब तड़क भड़क हो। भड़कीला। चमकीला। भड़कदार।

जर्जर[1]—वि० [सं०] १. जीर्ण। जो बहुत पुराना होने के कारण बेकाम हो गया हो। २. फूटा। टूटा। खंडित। ३. वृद्ध। बुड्ढा। ४. (ध्वनि) जो किसी पात्र के टूटने से हो (को०)।

जर्जर[2]—संज्ञा पुं० १. छरीला। बुढना। पत्थरफूल। २. इंद्र की पताका (को०)।

जर्जरानना—संज्ञा स्त्री० [सं० जर्जरानना] एक मातृका का नाम जो कार्तिकेय की अनुचरी हैं।

जर्जरता—संज्ञा स्त्री० [सं० जर्जर + हिं० ता (प्रत्य०)] पुरानापन। जीर्णता। उ०—स्मृति चिह्नों की जर्जरता में। निष्ठुर कर की बर्बरता मे।—लहर, पृ० ३४।

जर्जरित—वि० [सं० जर्जरित] १. जीर्ण। पुराना। २ टूटा। फूटा। खंडित। ३ पूर्णतः आक्रांत या अभिभूत।

जर्जरीक—वि० [सं०] १. बहुत वृद्ध। बुड्ढा। २. जिसमें बहुत से छेद हो गए हों। अनेक छिद्रवाला।

जर्ण[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १, (घटता हुआ या कृष्ण पक्ष का) चंद्रमा। २. वृक्ष। पेड़।

जर्ण[2]—वि० जीर्ण। पुराना। क्षीण।

जर्णो—संज्ञा, स्त्री० [हिं० जलना, पु० हिं० जरना] विरह। वियोग। जलन। जैसे, जर्णो को आग।

जर्त्त—संज्ञा पुं० [सं०] १. हाथी। २. योनि।

जर्तिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्राचीन वाहीक देश का एक नाम। २. उक्त देश का निवासी।

जर्तिल—संज्ञा पुं० [सं०] जंगली तिल। बनतिलवा।

जर्त्तु—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जर्त'।

जर्द—वि० [फा० जर्द] पीला। पीले रंग का। पीत।

यौ०—जर्दगोश = छली। धूर्त। मक्कार। जर्दचश्म = (१) श्येन जाति के शिकारी पक्षी। (२). पीली आँखोंवाला। जर्दचोब = हरिद्रा। हल्दी।

जर्दा—संज्ञा पुं० [फ़ा० जर्दह्] दे० 'जरदा'।

जर्दालू—संज्ञा पुं० [फ़ा० ज़र्दालू] एक मेवा। जरदालू। खुबानी।

विशेष—दे० 'खूबानी'।

जर्दी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] पीलापन। पीलाई। वि० दे० 'जरदी'।

जर्दोज—संज्ञा पुं० [फ़ा० ज़ारदोज़] दे० 'जरदोज'।

जर्दोजी—संज्ञा स्त्री० [जरदोजी] दे० 'जरदोजी'।

जर्नल—संज्ञा पुं० [अं०] दे० 'जरनल'।

जर्नलिस्ट—संज्ञा पुं० [अं०] दे० 'पत्रकार'।

जर्फ—संज्ञा पुं० [अं० ज़र्फ़] १. बरतन। भाजन। पात्र। २. योग्यता। पात्रता। ३. सहनशीलता। गंभीरता (को०)।

जर्रा[1]—संज्ञा पुं० [अ० जर्रह्] १. अणु। २. वे छोटे छोटे कण जो सूर्य के प्रकाश में उड़ते हुए दिखाई देते हैं। ३. जौ का सौवाँ भाग। ४. बहुत छोटा टुकड़ा या खंड।

जर्रा[2]—वि० दे० 'जरा'।

जर्रा[3]—संज्ञा स्त्री० सपत्नी। सौत। सौकन।

जर्राक—वि० [अं० जर्राक] धूर्त। मुहदेखी कहनेवाला। द्विजिह्व।

यौ०—जर्राकखाना = धूर्तावास। धूर्तों की बैठक।

जर्राद—वि० [अ० जर्राद] जिरहबख्तर बनानेवाला। शस्त्र निर्माता।

यौ०—जर्रादखाना = शस्त्रागार।

जर्राफ—वि० [अ० जर्राफ़] १. हँसोड़। दिल्लगीबाज। २. प्रतिभाशील (को०)।

जर्रार—वि० [अ०] [संज्ञा जर्रारी] १. बलिष्ठ। प्रबल। २. लड़ाका। बहादुर। वीर। ३. विशाल। भारी (सेना या भीड़)।

जर्रारा—संज्ञा पुं० [अ० जर्रारह्] १. बहुत विशाल सेना। २. एक भयकर विषैला बिच्छू जिसकी पूंछ जमीन पर घिसटती चलती है (को०)।

जर्रारी—संज्ञा स्त्री० [अ० जर्रार + ई (प्रत्य०)] बहादुरी। वीरता। सूरमापन।

जर्राह—संज्ञा पुं० [अ०] [संज्ञा जर्राही] चीर फाड़ का काम करनेवाला। फोड़ों आदि को चीरकर चिकित्सा करनेवाला। शस्त्रचिकित्सक। शल्यचिकित्सक।

जर्राही—संज्ञा स्त्री० [अ०] चीर फाड़ का काम। चीर फाड़ की सहायता से चिकित्सा करने का काम। शस्त्रचिकित्सा। शल्यचिकित्सा।

जर्वर—संज्ञा पुं० [सं०] नागों के एक पुरोहित का नाम जिसने एक बार यज्ञ करके साँपों की रक्षा की थी।

जर्हिल—संज्ञा पुं० [सं०] जंगली तिल। अतिल।

जलंग[1]—संज्ञा पुं० [सं० जलङ्ग] महाकाल नाम की एक लता।

जलंग[२]—वि० जलसंबंधी। जलीय। जल का।

जलंगम—संज्ञा पुं० [सं० जलङ्गम] चांडाल

जलंती(पु)†—वि० [हिं० जलना] जलनेवाली। जलती हुई। प्रज्वलित। उ०—तन भीतर मन मानिया बाहर कहूँ न लाग। ज्वाला ते फिर जल भया बुझी जलंती आग।—कबीर सा० सं०, पृ०, ४५।

जलंधर—संज्ञा पुं० [सं० जलन्धर] १. एक पौराणिक राक्षस का नाम जो शिव जी की कोपाग्नि से गंगा-समुद्र-संगम में उत्पन्न हुआ था।

विशेष—पद्म पुराण में लिखा है कि यह जनमते ही इतने जोर से रोने लगा कि सब देवता व्याकुल हो गए। उनकी ओर से जब ब्रह्मा ने जाकर समुद्र से पूछा कि यह किसका लड़का है तब उसने उत्तर दिया कि यह मेरा पुत्र है, आप इसे ले जाइए। जब ब्रह्मा ने उसे अपनी गोद में लिया तब उसने उनकी दाढ़ी इतने जोर से खींची कि उनकी आँखों से आँसू निकल पड़ा। इसी लिये ब्रह्मा ने इसका नाम 'जलंधर' रखा। बड़े होने पर इसने इंद्र की नगरी अमरावती पर अधिकार कर लिया। अंत में शिव जी इंद्र की ओर से उससे लड़ने गए। उसकी स्त्री वृंदा ने, जो कालनेमि की कन्या थी, अपने पति के प्राण बचाने के लिये ब्रह्मा की पूजा आरंभ की। जब देवताओं ने देखा कि जलंधर किसी प्रकार नहीं मर सकता तब अंत में जलंधर का रूप धारण करके विष्णु उसकी स्त्री वृंदा के पास गए। वृंदा ने उन्हें देखते ही पूजन छोड़ दिया। पूजन छोड़ते ही जलंधर के प्राण निकल गए। वृंदा क्रुद्ध होकर शाप देना चाहती थी पर ब्रह्मा के बहुत कुछ समझाने बुझाने पर वह सती हो गई।

२. एक प्राचीन ऋषि का नाम। ३. योग का एक बंध।

जलंधर[२]—संज्ञा पुं० [हिं० जलोदर] दे० 'जलोदर'।

जलंबल—संज्ञा पुं० [सं० जलम्बल] १. नदी। २. अंजन।

जल[१]—वि० [सं०] १. स्फूर्तिहीन। ठंढा। जड़। २. मूढ़। हतज्ञान (को०)।

जल—संज्ञा पुं० [सं०] १. पानी। २. उशीर। खस। ३. पूर्वाषाढा नक्षत्र। ४. ज्योतिष के अनुसार जन्मकुंडली में चौथा स्थान। ५. सुगंधवाला। नेत्रबाला। ६. धर्मशास्त्र के अनुसार एक प्रकार की परीक्षा या दिव्य। वि० दे० 'दिव्य'।

जलअलि—संज्ञा पुं० [सं०] १. पानी का भँवर। २. एक काला कीडा जो पानी पर तैरा करता है। पैरोवा। भौंतुआ। उ०—भरत दशा तेहि अवसर कैसी। जल प्रवाह जल अलि गति जैसी।—तुलसी (शब्द०)।

विशेष—इसकी बनावट खटमल की सी होती है, परंतु आकार में यह खटमल से बहुत बड़ा होता है। इसका स्वभाव है कि यह प्रायः एक ओर घूम घूमकर तैरता है। जलप्रवाह के विरुद्ध भी यह तेजी से तैर सकता है।

जलाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० जड़ना या जीजल] वह काँटा जिसके दोनों ओर दो अँकुड़े होते हैं और दो तख्तों के जोड़ पर जड़ा जाता है। यह प्रायः नाव के तख्तों को जड़ने में काम आता है।

जलकंटक—संज्ञा पुं० [सं० जलकण्टक] १. सिंघाड़ा। २. कुंभी।

जलकंडु—संज्ञा पुं० [सं० जलकण्डु] एक प्रकार की खुजली जो पानी में बहुत काल तक लगातार रहने से पैरों में उत्पन्न होती है।

जलकंद—संज्ञा पुं० [सं० जलकन्द] १. केला। कदली। २. कौंदा। जलकँवरा।

जलकँदरा—संज्ञा पुं० [सं० जल + कन्दली] कौंदा नामक गुल्म जो प्रायः तालों के किनारे होता है।

जलक—संज्ञा पुं० [सं०] १. शंख। २. कौड़ी।

जलकपि—संज्ञा पुं० [सं०] शिशुमार या सूँस नामक जलजंतु।

जलकपोत—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की चिड़िया जो पानी के किनारे होती है।

जलकना(पु)—क्रि० अ० [हिं० झलकना] चमकना। जगमगाना। देदीप्यमान होना। उ०—खिलवत से निकल जलकते दरबार मे आया।—कबीर मं०, पृ० ३६०।

जलकरंक—संज्ञा पुं० [सं० जलकरङ्क] १. नारियल। २. पद्म। कमल। ३. शंख। ४. लहर। तरंग। जललता।

जलकर—संज्ञा पुं० [हिं० जल + कर] १. वह पदार्थ जो जलाशयों आदि में हो और जिसपर जमींदार की ओर से कर लगाया जाय। जैसे, मछली, सिंघाड़ा, कवलगट्टा आदि। २. इस प्रकार के पदार्थों पर का कर। ३. वह द्रव्य या कर जो नगरों में पानी देने के बदले में नगरपालिकाएँ वसूल करती हैं। पानी का कर।

जलकल—संज्ञा पुं० [हिं०] पानी पहुँचाने की कल। पानी का नल।

यौ०—जलकल विभाग = दे० 'वाटर वर्क्स'।

जलकल्क—संज्ञा पुं० [सं०] १. सेवार। २. कीचड़। काई।

जलकल्मष—संज्ञा पुं० [सं०] समुद्रमंथन में निकला हुआ विष (को०)।

जलकष्ट—संज्ञा पुं० [सं० जल + कष्ट] जल का अभाव। पानी की कमी।

जलकांक्ष—संज्ञा पुं० [सं० जलकाङ्क्ष] [स्त्री० जलकांक्षी] हाथी।

जलकांत—संज्ञा पुं० [सं० जलकान्त] वायु। हवा। पवन।

जलकांतार—संज्ञा पुं० [सं० जलकान्तार] वरुण।

जलकाँदा—संज्ञा पुं० [हिं० जल + काँदा] दे० 'काँदा'।

जलकाक—संज्ञा पुं० [सं०] जलकौआ नामक पक्षी।

पर्य्या०—दात्यूह। कालकंटक।

जलकामुक—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्यमुखी। २. कुटुंबिनी नाम का गुल्म (को०)।

जलकाय—संज्ञा पुं० [सं०] जैन शास्त्रानुसार वह शरीरधारी जिसका जल ही शरीर है।

जलकिनार—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ जल + किनारा] एक प्रकार का रेशमी कपड़ा।

जलकिराट—संज्ञा पुं॰ [सं॰] ग्राह या नाक नामक जलजंतु।

जलकुंतल—संज्ञा पुं॰ [सं॰ जलकुन्तल] सेवार।

जलकुंभी—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ जल+कुम्भीर] कुंभी नाम की वनस्पति जो जलाशयों में पानी के ऊपर होती है।

विशेष—दे॰ 'कुंभी[२]'—८।

जलकुकुरी—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ जलकुक्कुट] एक जलपक्षी। मुर्गाबी। उ॰—जैसे जल महँ रहै जलकुकुरी, पंख लिप्त जल नाहिं।—जग॰ श॰, भा॰ २, पु॰ ८६।

जलकुक्कुट—संज्ञा पुं॰ [सं॰] मुरगाबी। उ॰—कहुँ कारंडव उड़त कहूँ जलकुक्कुट धावत।—भारतेंदु ग्रं॰, भा॰ १, पु॰ ४५६।

जलकुक्कुभ—संज्ञा पुं॰ [सं॰] एक प्रकार की जल की चिड़िया। कुकुही। बनमुर्गी।

पर्य्या॰—कोयष्टि। शिखरी।

जलकुब्जक—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. सेवार। २. काई।

जलकूपी—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] १. कूआँ। कूप। २. तालाब। सर। ३. जलावर्त। आवर्त। भँवर [को॰]।

जलकूर्म—संज्ञा पुं॰ [सं॰] शिशुमार या सूँस नामक जलजंतु।

जलकेतु—संज्ञा पुं॰ [सं॰] एक प्रकार का पुच्छल तारा जो पश्चिम में उदय होता है।

विशेष—इसकी चोटी या शिखा पश्चिम की ओर होती है और स्निग्ध तथा मूल में मोटी होती है। यह देखने में स्वच्छ होता है। फलित ज्योतिष के अनुसार इसके उदय से नौ मास तक सुभिक्ष रहता है।

जलकेलि—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] दे॰ 'जलक्रीड़ा'।

जलकेश—संज्ञा पुं॰ [सं॰] सेवार।

जलकौआ—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ जल+कौआ] एक प्रकार का जलपक्षी।

विशेष—इसकी गर्दन सफेद, चोंच भूरी और शेष सारा शरीर काला होता है। मादा के पैर नर से कुछ विशेष बड़े होते हैं। यह चिड़िया सारे यूरोप, एशिया, अफ्रिका और उत्तरी अमेरिका में पाई जाती है। इसकी लंबाई दो से तीन हाथ तक होती है और यह एक बार में चार से छह तक अंडे देती है। वैद्यक के अनुसार इसका मांस खाने में स्निग्ध, भारी, वातनाशक, शीतल और बलवर्धक होता है।

जलक्रिया—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] देव और पितृ आदि का तर्पण।

जलक्रीड़ा—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] वह क्रीड़ा जो जलाशयों आदि में की जाय। जलविहार। जैसे, तैरना, एक दूसरे पर पानी फेंकना।

जलखग—संज्ञा पुं॰ [सं॰] एक प्रकार का पक्षी जो पानी के किनारे रहता है।

जलखर—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ जाल + खर] दे॰ 'जलखरी'।

जलखरी—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ जाल + काढ़ना, या खारी] रस्सी या तागे की जाल की बनी हुई थैली या झोली जिसमें लोग फल आदि रखकर एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाते हैं।

जलखावा—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ जल + खाना] जलपान। कलेवा।

जलगर्द—संज्ञा पुं॰ [सं॰ जल + फा॰ गर्द] पानी में रहनेवाला साँप। डेड़हा।

जलगर्भ—संज्ञा पुं॰ [सं॰] बुद्ध के प्रधान शिष्य आनंद का पूर्वजन्म का नाम।

जलगुल्म—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. पानी में का भँवर। २. कछुआ। ३. वह देश जिसमें जल कम हो। ४. चौकोर तालाब (को॰)।

जलघड़ी—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ जल + घड़ी] एक यंत्र जिससे समय का ज्ञान होता है।

विशेष—इसमें पानी पर तैरता हुआ एक कटोरा होता है जिसके पेंदे में छेद होता है। यह कटोरा पानी के नाँद में पड़ा रहता है। पेंदी के छेद से धीरे धीरे कटोरे में पानी आता है और कटोरा एक घंटे में भरता और डूब जाता है। डूबने के बाद फिर कटोरे को पानी से निकालकर खाली करके पानी की नाँद में डाल देते हैं और उसमें फिर पहले की तरह पानी भरने लगता है। इस प्रकार एक एक घंटे पर वह कटोरा डूबता है और फिर खाली करके पानी के ऊपर छोड़ा जाता है।

जलघरा†—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ जल + घर] वह स्थान जहाँ जल आदि रखा जाता है। नहाने का स्थान। उ॰—ताकों श्रीनाथ जी के जलघरा में स्नान कराइये की सेवा सौंपी।—दो सौ बावन॰, भा॰ १, पु॰ २०६।

जलघुमर—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ जल + घूमना] पानी का भँवर। जलावर्त। चक्कर।

जलचत्वर—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १ वह देश जिसमें जल कम हो। २. चौकोर तालाब (को॰)।

जलचर—संज्ञा पुं॰ [सं॰] [स्त्री॰ जलचरी] पानी में रहनेवाले जंतु। जलजंतु। जैसे, मछली, कछुआ, मगर, आदि। उ॰—जलचर थलचर नभचर नाना। जे जड़ चेतन जीव जहाना।—मानस, १।३।

यौ॰—जलचरकेतु(पु) = मीनकेतु। कामदेव। उ॰—सहित सहाय जाहु मम हेतू। चलेउ हरषि हिय जलचर केतू।—मानस, १।१२५।

जलचरी—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] मछली। उ॰—मधुकर मो मन अधिक कठोर। बिगसि न गयो कुंभ काँचे लौं बिछुरत नंदकिसोर। हमतें भली जलचरी बपुरी अपनो नेह निबाह्यो। जल तें बिछुरि तुरत तन त्याग्यो पुनि जल ही कौ चाह्यो।—सूर॰, १०।३७२६।

जलचादर—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ जल + हिं॰ चादर] किसी ऊँचे स्थान से होनेवाला जल का झीना और विस्तृत प्रवाह। उ॰—सहज सेत पचतोरिया पहिरत अति छबि होति। जलचादर के दीप लौं जगमगाति तन जोति।—बिहारी र॰, दो॰ ३४०।

विशेष—प्राय: धनवानों और राजाओं आदि के स्थानों में शोभा के लिये इस प्रकार जल का प्रवाह कराया जाता है, जिसे जल-

चादर कहते हैं। कभी इसके पीछे आले बनाकर उनमें दीपक की पंक्ति भी जलाई जाती है जिससे रात के समय जलचादर के पीछे जगमगाती हुई दीपावली बहुत शोभा देती है।

जलचारी—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० जलचारिणी] जल में रहनेवाला जीव। जलचर।

जलचिह्न—संज्ञा पुं० [सं०] कुंभीर या नाक नामक जलजंतु।

जलचौलाई—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'चौलाई'।

जलजंतⓅ—संज्ञा पुं० [सं० जलयन्त्र, प्रा० जलजंत] फुहारा। दे० 'जलयंत्र'। उ०—जलजंत छुट्टि महाराज आय। रानीन जुक्त मन मोद पाय।—प० रासो, पृ० ४०।

जलजंतु—संज्ञा पुं० [सं० जलजन्तु] जल में रहनेवाले जीवजंतु। जलचर।

जलजंतुका—संज्ञा स्त्री० [सं० जलजन्तुका] जोंक।

जलजंत्रⓅ—संज्ञा पुं० [सं० जलयन्त्र; प्रा० जलजत्र, जलजत] झरना। फुहारा। उ०—चहुँ ओर सघन पर्वत सुगंध। जलजंत्र छुटै उच्चे सबंध।—ह० रासो, पृ० ६३।

जलजंबुका—संज्ञा स्त्री० [सं० जलजम्बुका] जलजामुन जो साधारण जामुन से छोटा होता है। दे० 'जलजामुन'।

जलजंबूका—संज्ञा स्त्री० [सं० जलजम्बूका] दे० 'जलजबुका'।

जलज¹—वि० [सं०] जल में उत्पन्न होनेवाला। जो जल में उत्पन्न हो।

जलज²—संज्ञा पुं० [सं०] १. कमल। २. शंख। ३. मछली। ४. पनीहाँ नाम का वृक्ष। ५. सेवार। ६. अंबुवेत। जलवेत। ७. जलजंतु। ८. सामुद्रिक या लोनार नमक। ९. मोती। १०. कुचले का पेड़। ११. चौलाई।

जलजन्म—संज्ञा पुं० [सं० जलजन्मन्] कमल [को०]।

जलजन्य—संज्ञा पुं० [सं०] कमल।

जलजला¹—वि० [सं० ज्वल + जल > अज्वल] क्रोधी। शीघ्र होनेवाला। बिगड़ैल।

जलजला²—संज्ञा पुं० [फ़ा० जलज़लह] भूकप। भूडोल।

जलजलाना—क्रि० अ० [सं० ज्वल, प्रा० जल, झाल, झल] झल् झल करना। चमकना। उ०—वे हिलकर रह जाते हैं, उजली धूप जलजलाती हुई नाचती निकल जाती है।—आकाश०, पृ० १३३।

जलजात¹—वि० [सं०] जो जल में उत्पन्न हो। जलज।

जलजात²—संज्ञा पुं० पद्म। कमल।

जलजानⓅ—संज्ञा पुं० [सं० जलयान] दे० 'जलयान'। उ०—उडुप, पोत, नतका, पलन, तरि, वहित्र, जलजान। नाम नाँव चढ़ि भव उदधि केते तरे अजान।—नंद० ग्रं०, पृ० ६१।

जलजामुन—संज्ञा पुं० [हिं० जल + जामुन] एक प्रकार का जामुन जिसके वृक्ष जंगलों में नदियों के किनारे आपसे आप उगते हैं। इसके फल बहुत छोटे और पत्ते कनेर के पत्तों के समान होते हैं।

जलजावलि—संज्ञा स्त्री० [सं० जलज + आवलि] मोतियों की माला। उ०—लट लोल कपोल कलोल करै, कल कंठ बनी जलजावलि है। अंग अंग तरंग उठै दुति की परिहै मनो रूप अबै धर च्वै।—घनानंद, पृ० ५८५।

जलजासन—संज्ञा पुं० [सं०] कमल पर बैठनेवाले, ब्रह्मा।

जलजिह्व—संज्ञा पुं० [सं०] नक्र। नाक। घड़ियाल [को०]।

जलजीवी—संज्ञा पुं० [सं० जलजीविन्] मल्लाह। मछुआ [को०]।

जलजोनिⓅ—संज्ञा पुं० [सं० जल (= कुपीट) + योनि, प्रा० जोणि] अग्नि। पावक। उ०—जातवेद जलजोनि हरि चित्रभान वृहमान।—अनेकार्थ०, पृ० ४।

जलडमरूमध्य—संज्ञा पुं० [सं०] भूगोल में जल की वह पतली प्रणाली जो दो बड़े समुद्रों या जलों के मध्य में हो और दोनों को मिलाती हो।

जलडिंब—संज्ञा पुं० [सं० जलडिम्ब] शंबूक। घोंघा।

जलतरंग—संज्ञा पुं० [सं० जलतरङ्ग] १. जल का हिलोर। जल की लहर। २. एक प्रकार का बाजा।

विशेष—यह बाजा धातु की बहुत सी छोटी बड़ी कटोरियों को एक क्रम से रखकर बनाया और बजाया जाता है। बजाने के समय सब कटोरियों में पानी भर दिया जाता है और उन कटोरियों पर किसी हलकी मुंगरी से आघात करके तरह तरह के ऊंचे नीचे स्वर उत्पन्न किए जाते हैं।

जलतरनⓅ†—संज्ञा पुं० [सं० जल + तरण, हिं० तरना] पानी में तैरने की विद्या। उ०—पसुभाषा अो जलतरन, धातु रसाइन जानु। रतन परख अो चातुरी, सकल अंग सग्यानु।—माधवानल०, पृ० २०८।

जलतरोई—संज्ञा स्त्री० [हिं० जल + तरोई] मछली। (हास्य)।

जलताडन—संज्ञा पुं० [सं०] पानी पीटना। जल को पीटने का काम। २. (लाक्ष०) निरर्थक कार्य। व्यर्थ का काम [को०]।

जलतापिक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मछली जिसे हिलसा, हेलसा कहते हैं।

जलतापी—संज्ञा पुं० [सं० जलतापिन्] दे० 'जलतापिक'।

जलताल—संज्ञा पुं० [सं०] सलई का पेड़ [को०]।

जलतिक्तिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] सलई का पेड़।

जलत्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. छाता। २. वह कुटी जो एक स्थान से हटाकर दूसरे स्थान तक पहुँचाई जा सके।

जलत्रास—संज्ञा पुं० [सं०] वह भय जो कुत्ते, शृगाल आदि जीवों के काटने पर मनुष्य को जल देखने अथवा उसका नाम सुनने से उत्पन्न होता है। अंग्रेजी में इसे 'हाइड्रोफोबिया' कहते हैं।

जलथंभ—संज्ञा पुं० [सं० जलस्तम्भ, जलस्तम्भन] मंत्रों आदि से जल का स्तंभन करने या उसे रोकने की क्रिया। जलस्तंभन। उ०—बिरह बिथा जल परस बिन बसियत मो मन ताल। कछु जानत जलथंभ विधि दुर्जोधन लौं लाल।—बिहारी र०, दो० ४१४।

जलद¹—वि० [सं०] जल देनेवाला। जो जल दे।

जलद²—संज्ञा पुं० [सं०] १. मेघ। बादल। २. मोथा। ३. कपूर। ४. पुराणानुसार शाकद्वीप के अंतर्गत एक वर्ष का नाम।

जलदकाल—संज्ञा पुं० [सं०] वर्षाऋतु । बरसात ।

जलदक्षय—संज्ञा पुं० [सं०] शरद ऋतु ।

जलदतिताला—संज्ञा पुं० [हिं० जल्दी + तिताला] वह साधारण तिताला ताल जिसकी गति साधारण से कुछ तेज हो । यह कौवाली से कुछ विलंबित होता है ।

जलदर्दुर—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वाद्य (को०)।

जलदस्यु—संज्ञा पुं० [सं०] समुद्री डाकू । समुद्री जहाजों पर डकैती करनेवाले व्यक्ति ।

जलदाता—संज्ञा पुं० [सं० जलदातृ] तर्पण करनेवाला । देव, ऋषि और पितृ गणों को पानी देनेवाला (को०) ।

जलदान—संज्ञा पुं० [सं०] तर्पण (को०) ।

जलदाशन—संज्ञा पुं० [सं०] साखू का पेड़ ।

विशेष—प्राचीन काल में प्रवाद था कि बादल साखू की पत्तियाँ खाते हैं, इसी से साखू का यह नाम पड़ा ।

जलदुर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] वह दुर्ग जो चारो ओर नदी, झील आदि से सुरक्षित हो ।

जलदेव—संज्ञा पुं० [सं०] १. पूर्वाषाढ़ा नाम का नक्षत्र । २. वरुण जो जल के देवता है ।

जलदेवता—संज्ञा पुं० [सं०] वरुण ।

जलदोदो—संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का पौधा जो काई की तरह पानी पर फैलता है । इसके शरीर में लगने से खुजली पैदा होती है ।

जलद्रव्य—संज्ञा पुं० [सं०] मुक्ता, शंख आदि द्रव्य जो जल से उत्पन्न होते हैं ।

जलद्रोणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दोन, जिससे खेत में पानी देते या नाव का पानी उलीचते हैं ।

जलद्विप—संज्ञा पुं० [सं०] एक स्तनपायी जलजंतु । वि० दे० 'जलहस्ती'

जलधर—संज्ञा पुं० [सं०] १. बादल । २. मुस्ता । ३. समुद्र । ४. तिनिश । तिनस का पेड़ । ५. जलाशय । तालाब । झील । उ०—बहता दिन बीजइ पछइ राति पडंती देखि । रोही मभि डेरा किया ऊजल जलधर देखि ।—ढोला०, दू० ५६८ ।

जलधर केदारा—संज्ञा पुं० [सं० जलधर+हिं० केदारा] एक संकर राग जो मेघ और केदारा के योग से बनता है ।

जलधरमाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बादलों की श्रेणी । २. बारह अक्षरों की एक वृत्ति जिसके प्रत्येक चरण में क्रमश. मगण, भगण, सगण और मगण (ऽऽऽ, ऽ।।, ।।ऽ, ऽऽऽ) होते हैं । जैसे—मो भासै मोहन हमको दै योगा । ठानो ऊधो उन कुबजा सों भोगा । साँचो ग्वालागन कर नेहा देखी । प्रेमाभक्ती जलधरमाला लेखी ।

जलधरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पत्थर का या धातु आदि का बना हुआ वह अर्घा जिसमे शिवलिंग स्थापित किया जाता है । जलहरी ।

जलधार[1]—संज्ञा पुं० [सं०] शाकद्वीप का एक पर्वत ।

जलधार[2] (पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० जलधारा] दे० 'जलधारा' ।

जलधारा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पानी का प्रवाह । पानी की धारा । २. एक प्रकार की तपस्या जिसमें तपस्या करनेवाले पर कोई मनुष्य बराबर धार बाँधकर पानी डालता रहता है ।

जलधारी[1]—वि० [सं० जलधारिन्] [वि० स्त्री० जलधारिणी] पानी को धारण करनेवाला । जलधारक ।

जलधारी[2] (पु)—संज्ञा पुं० बादल । मेघ । उ०—श्रवण न सुनत, चरण गति थाके नैन भये जलधारी ।—सूर ।

जलधि—संज्ञा पुं० [सं०] १. समुद्र । उ०—बाँध्यो बननिधि नीरनिधि जलधि सिंधु बारीस । सत्य तोयनिधि कंपति उदधि पयोधि नदीस ।—मानस, ६।५ । २. एक संख्या जो दस शंख की होती है और कुछ लोगों के मत से दस नील की । ३. चार की संख्या (को०) ।

जलधिगा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. लक्ष्मी । २. नदी । दरिया ।

जलधिज—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा ।

जलधिजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] लक्ष्मी (को०) ।

जलधिरशना—संज्ञा स्त्री० [सं०] समुद्र रूपी करधनीवाली अर्थात् पृथिवी (को०) ।

जलधेनु—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार दान के लिये एक प्रकार की कल्पित धेनु ।

विशेष—इस धेनु की कल्पना जल के घड़े में दान के लिये की जाती है । इस दान का विधान अनेक प्रकार के महापातकों से मुक्त होने के लिये है, और इस दान का लेनेवाला भी सब प्रकार के पातकों से मुक्त हो जाता है ।

जलन—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्वलन, हिं० जलना] १. जलने की पीड़ा या दुःख । मानसिक वेदना या ताप । दाह । २. बहुत अधिक ईर्ष्या या डाह ।

मुहा०—जलन निकालना = द्वेष या ईर्ष्या से उत्पन्न इच्छा पूरी करना ।

जलनकुल—संज्ञा पुं० [सं०] ऊदबिलाव ।

जलना—क्रि० अ० [सं० ज्वलन] १. किसी पदार्थ का अग्नि के संयोग से अंगारे या लपट के रूप में हो जाना । दग्ध होना । भस्म होना । बलना । जैसे, लकड़ी जलना, मशाल जलना, घर जलना, दीपक जलना ।

यौ०—जलता बलता = होलिकाष्टक या पितृपक्ष का कोई दिन जिसमें कोई शुभ कार्य नहीं किया जाता ।

मुहा०—जलती आग = भयानक विपत्ति । जलती आग में कूदना = जान बूझकर भारी विपत्ति मे फँसना ।

२. किसी पदार्थ का बहुत गरमी या आँच के कारण भाफ या कोयले आदि के रूप में हो जाना । जैसे, तवे पर रोटी जलना, कड़ाही में घी जलना, धूप मे घास या पौधे का जलना । ३. आँच लगने के कारण किसी अंग का पीड़ित और विकृत होना झुलसना । जैसे, हाथ जलना ।

मुहा०—जले पर नमक छिड़कना या लगाना = किसी दुःखी या व्यथित मनुष्य को और अधिक दुःख या व्यथा पहुँचाना ।

जले फफोले फोड़ना = दु:खी या व्यथित व्यक्ति को किसी प्रकार, विशेषकर अपना बदला चुकाने की इच्छा से, और अधिक दु:खी या व्यथित करना। जले पाँव की बिल्ली = जो स्त्री हरदम घूमती फिरती रहे और एक स्थान पर न ठहर सके।

४. बहुत अधिक डाह। ईर्ष्या या द्वेष आदि के कारण कुढ़ना। मन ही मन संतप्त होना।

यौ०—जलना भुनना = बहुत कुढ़ना।

मुहा०—जली कटी या जली भुनी बात = वह लगती हुई बात जो द्वेष, डाह या क्रोध आदि के कारण बहुत व्यथित होकर कही जाय। जल मरना = डाह या ईर्ष्या आदि के कारण बहुत कुढ़ना। द्वेष आदि के कारण बहुत व्यथित हो उठना। उ०—तुम्ह अपनायो तब जनिहौ जब मनु फिरि परिहैं। हरखिहै न अति आदरे निदरे न जरि मरिहै।—तुलसी (शब्द०)।

जलनाड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'जलनाली'।

जलनाली—संज्ञा स्त्री० [सं०] पानी बहने का मार्ग। प्रणाली। नाली। मोरी [को०]

जलनिधि—संज्ञा पुं० [सं०] १. समुद्र। २. चार की संख्या।

जलनिर्गम—संज्ञा पुं० [सं०] पानी का निकास।

जलनीम—संज्ञा स्त्री० [हिं० जल + नीम] एक प्रकार की कोनिया जो कड़ई होती है और प्रायः जलाशयों के निकट दलदली भूमि मे उत्पन्न होती है।

जलनीलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] सेवार। शैवाल।

जलनीली—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'जलनीलिका'।

जलपंडर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० जल + देश० पंडुर] जलसर्प। पानी का साँप। उ०—सहजाँ सोई सुमिरिये आलस ऊँघ न आन। जन हरिया तन पेखणों ज्यो जलपंडर जान।—राम० धर्म०, पृ० ५८।

जलपक(पु)—वि० [सं० जलपक्व] जल मे पकनेवाला। जल मे पका हुआ। उ०—घीपक जलपक जेते गने। कटुवा बटुवा ते सब बने।—चित्रा०, पृ० १०३।

जलपक्षी—संज्ञा पुं० [सं० जलपक्षिन्] वह पक्षी जो जल के आस पास रहता हो।

जलपटल—संज्ञा पुं० [सं०] बादल। मेघ [को०]।

जलपति—संज्ञा पुं० [सं०] १. वरुण। २. समुद्र। ३. पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र।

जलपथ—संज्ञा पुं० [सं०] नाली या नहर जिसमें से पानी बहता हो।

जलपना(पु)—क्रि० अ०, क्रि० स० [हिं०] दे० 'जल्पना'।

जलपद्धति—संज्ञा स्त्री० [सं०] नहर। नाला। जलपथ [को०]।

जलपाई—संज्ञा स्त्री० [देश०] रुद्राक्ष की जाति का एक पेड़।

विशेष—यह वृक्ष हिमालय के उत्तरपूर्वीय भाग मे तीन हजार फुट की ऊँचाई पर होता है और उत्तरी कनारा और ट्रावनकोर के जंगलों में भी मिलता है। यह रुद्राक्ष के पेड़ से छोटा होता है। इसका फल गूदेदार होता है और 'जंगली जैतून' कहलाता है। इसके कच्चे फलों की तरकारी और अचार बनाया जाता है और पक्के फल यों ही खाए जाते हैं।

जलपाटल—संज्ञा पुं० [हिं० जल + पटल] काजल। उ०—कज्जल जलपाटल मुखो नाम दीपसुत सोच। लोपाँजन दग सै चली ताहि न देखै कोय।—नंददास (शब्द०)।

जलपात्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. पानी का बर्तन। २. जल पीने का बर्तन [को०]

जलपान—संज्ञा पुं० [सं०] वह थोड़ा और हलका भोजन जो प्रातः-काल कार्य आरंभ करने से पहले अथवा संध्या को कार्य समाप्त करने के उपरात साधारण भोजन से पहले किया जाता है। कलेवा। नाश्ता।

यौ०—जलपानगृह = वह सार्वजनिक स्थान जहाँ जलपान की सामग्री मिलती हो तथा बैठकर खाने पीने की व्यवस्था हो।

जलपारावत—संज्ञा पुं० [सं०] जलकपोत नाम की चिड़िया जो जलाशयों के किनारे रहती है।

जलपिंड—संज्ञा पुं० [सं० जलपिंड] अग्नि। आग।

जलपित्त—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि।

जलपिप्पलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] जलपीपल।

जलपिप्पली—संज्ञा स्त्री० [सं०] जलपीपल नाम की औषधि।

जलपीपल—संज्ञा स्त्री० [सं० जलपिप्पली] पीपल के आकार की एक प्रकार की गंधहीन औषधि।

विशेष—इसका पेड़ खड़े पानी में उत्पन्न होता है। पत्तियाँ बेंत की पत्तियों से मिलती जुलती और कोमल होती हैं। इसके तने में पास पास बहुत सी गाँठें होती हैं और इसकी डालियाँ दो ढाई हाथ लबी होती हैं। इसके फल पीपल के फल की तरह होते हैं, पर उनमें गंध नही होती। यह खाने में तीखी, कड़ुई, कसैली और गुण मे मलशोधक, दीपक, पाचक और गरम होती है। इसे 'गंगतिरिया' भी कहते है।

पर्या०—महाराष्ट्री। शारदी। तोयवल्लरी। मत्स्यादिनी। मत्स्यगंधा। लागली। शकुलादनी। चित्रपत्री। प्राणदा। तृणशीता। बहुशिखा।

जलपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] १. लज्जावंती की तरह का एक पौधा जो दलदली भूमि मे उत्पन्न होता है। २. कमल आदि फूल जो जल मे उत्पन्न होते हैं।

जलपृष्ठजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सेवार।

जलपोत—संज्ञा पुं० [सं०] पानी का जहाज।

जलप्पना(पु)—क्रि० अ० [सं० जल्प] दे० 'जल्पना'। उ०—बोर भद्र अरु रुद्र जलप्पिय। कही सत संकर वन थप्पिय।—पृ० रा०, २५। ४८२।

जलप्रदान—संज्ञा पुं० [सं०] प्रेत या पितर आदि की उदकक्रिया। तर्पण।

जलप्रदानिक—संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत में स्त्रीपर्व के अंतर्गत एक उपपर्व का नाम।

जलप्रपा—संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ सर्वसाधारण को पानी पिलाया जाता हो। पौसरा। सबील। प्याऊ।

जलप्रपात—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी नदी आदि का ऊँचे पहाड़ पर से नीचे स्थान पर गिरना। २. वह स्थान जहाँ किसी ऊँचे पहाड़ पर से नदी नीचे गिरती हो। ३. वर्षाकाल। प्रावृट् ऋतु। जलदागम (को०)।

जलप्रलय—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जलप्लावन'।

जलप्रवाह—संज्ञा पुं० [सं०] १. पानी का बहाव। उ०—भरत दसा तेहि अवसर कैसी। जल प्रवाह जलअलि गति जैसी।—मानस, २।२३३। २. किसी के शव को नदी आदि में बहा देने की क्रिया या भाव। ३. किसी पदार्थ को बहते हुए जल में छोड़ देना।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

जलप्रांत—संज्ञा पुं० [सं०] नदी या जलाशय के आसपास का स्थान।

जलप्राय—संज्ञा पुं० [सं०] वह प्रदेश या स्थान जहाँ जल अधिकता से हो। अनूप देश।

जलप्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] १. मछली। २. चातक। पपीहा।

जलप्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चातकी। २. पार्वती। दुर्गा। दाक्षायणी। [को०]।

जलप्रेत—संज्ञा पुं० [सं०] वह व्यक्ति जो जल में डूबकर मरने से प्रेत योनि प्राप्त करे।

जलप्लव—संज्ञा पुं० [सं०] ऊदबिलाव।

जलप्लावन—संज्ञा पुं० [सं०] १. पानी की बाढ़ जिससे आस पास की भूमि जल में डूब जाय। २. पुराणानुसार एक प्रकार का प्रलय जिसमें सब देश डूब जाते हैं।

विशेष—इस प्रकार के प्लावन का वर्णन अनेक जातियों के धर्मग्रंथों में पाया जाता है। हमारे यहाँ के शतपथ ब्राह्मण, महाभारत तथा अनेक पुराणों में वर्णित, वैवस्वत मनु का प्लावन तथा मुसलमानों और ईसाइयों के हजरत नूह का तूफान इसी कोटि का है।

जलफल—संज्ञा पुं० [सं०] सिंघाड़ा।

जलबंध—संज्ञा पुं० [सं० जलबन्ध] मछली।

जलबंधक—संज्ञा पुं० [सं० जलबन्धक] पत्थर मिट्टी आदि का बाँध जो किसी जलाशय का जल रोक रखने के लिये बनाया जाता है।

जलबंधु—संज्ञा पुं० [सं० जलबन्धु] मछली।

जलबालक—संज्ञा पुं० [सं०] विंध्याचल पर्वत।

जलबालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] विद्युत्। बिजली।

जलबिंदुजा—संज्ञा स्त्री० [सं० जलबिन्दुजा] यावनाल शर्करा नाम की दस्तावर ओषधि जिसे फारसी में शीरखिश्त कहते हैं।

जलबिंब—संज्ञा पुं० [सं० जलबिम्ब] पानी का बुलबुला।

जलबिडाल—संज्ञा पुं० [सं०] ऊदबिलाव।

जलबिल्व—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह देश जहाँ जल कम हो। २. केकड़ा। ३. कच्छप। कछुआ (को०)। ४. चौकोर झील या तालाब (को०)।

जलबुद्बुद—संज्ञा पुं० [सं०] पानी का बुल्ला। बुलबुला।

जलबेत—संज्ञा पुं० [सं० जलवेतस् या जलवेत्र] जलाशयों के निकट की भूमि मे पैदा होनेवाला एक प्रकार का बेत।

विशेष—इस बेत का पेड लता के आकार का होता है। इसके पत्ते बाँस के पत्तो की तरह होते हैं और इसमें फल फूल आते ही नहीं। कुरसियाँ, बेंचें इत्यादि इसी बेत के छिलके से बुनी जाती है।

जालबेली—संज्ञा स्त्री० [सं० जलवल्ली] जल में या जल के कारण उत्पन्न होनेवाली लताएँ। उ०—भय दिवाह आहुठ दुति तपसरनी को कोप। जलबेली बिहु बागंब्रिष ते जिन भए अलोप।—पृ० रा०, १।४६५।

जलब्रह्मी—संज्ञा स्त्री० [सं०] हिलमोची या हुरहुर का साग।

जलब्राह्मी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'जलब्रह्मी'।

जलभँगरा—संज्ञा पुं० [हिं० जल+भँगरा] एक प्रकार का भँगरा जो पानी में या पानी के किनारे होता है।

जलभँवरा—संज्ञा पुं० [हिं० जल+भँवरा] काले रंग का एक कीड़ा जो पानी पर बड़ी शीघ्रता से दौड़ता है। इसे भँवरा भी कहते है।

जलभाजन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जलपात्र'।

जलभालू—संज्ञा पुं० [हिं० जल+भालू] सील की जाति का एक जंतु।

विशेष—यह आकार में आठ नौ हाथ लंबा होता है और इसके सारे शरीर मे बड़े बड़े बाल होते हैं। यह झुंडों में रहता है और इसकी सत्तर से अस्सी तक मादाओं के झुंड में एक ही नर रहता है। यह पूर्व तथा उत्तरपूर्व एशिया और प्रशांत महासागर के उत्तरी भागों मे अधिकता से पाया जाता है।

जलभीति—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जलत्रास'।

जलभू[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. मेघ। २. एक प्रकार का कपूर। ३. जलचौलाई। ४. वह स्थान जहाँ जल एकत्र कर रखा जाता है (को०)।

जलभू[2]—संज्ञा स्त्री० वह भूमि जहाँ जल अधिक हो। जलप्राय भूमि। कच्छ। अनूप।

जलभू—वि० जलीय। जल मे उत्पन्न [को०]।

जलभूषण—संज्ञा पुं० [सं०] वायु। हवा।

जलभृत्—संज्ञा पुं० [सं०] १ मेघ। बादल। २. एक प्रकार का कपूर। ३. जल रखने का पात्र या बरतन।

जलमंडल—संज्ञा पुं० [सं० जलमण्डल] एक प्रकार की बड़ी मकड़ी जिसके विष के संसर्ग से मनुष्य मर जा सकता है। धिरैया बुदकर।

जलमंडूक—संज्ञा पुं० [सं० जलमण्डूक] प्राचीन काल का एक प्रकार का बाजा। जलदर्दुर।

जलम‡—संज्ञा पुं० [सं० जन्म; पु० हिं० जनम] दे० 'जन्म'।

जलमक्षिका—संज्ञा पुं० [सं०] जलनिवासी एक कीट [को०]।

जलमग्न—वि० [सं०] जल में डूबा हुआ। जल मे निमग्न [को०]।

जलमद्गु—संज्ञा पुं० [सं०] एक जलपक्षी। मछरंग। कौडिल्ला।

जलमधूक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जलमहुआ'।

जलमय[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा। २. शिव की एक मूर्ति।

जलमय[2]—वि० जल से पूर्ण या जलनिर्मित [को०]।

जलमर्कट—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जलकपि'।

जलमल—संज्ञा पुं० [सं०] फेन। झाग।

जलमसि—संज्ञा पुं० [सं०] १. बादल। मेघ। २. एक प्रकार का कपूर।

जलमहुआ—संज्ञा पुं० [सं० जलमधूक] एक प्रकार का महुआ जो दक्षिण में कोंकण की ओर जलाशयों के निकट होता है।

विशेष—इसकी पत्तियाँ उत्तरी भारत के महुए की पत्तियों से बड़ी होती हैं और फूल छोटे होते हैं। वैद्यक में यह ठंढा, व्रणनाशक, बलवीर्यवर्धक तथा रसायन और वमन को दूर करनेवाला माना गया है।

पर्या०—दीर्घपत्रक। ह्रस्वपुष्पक। स्वादु। गोलिका। मधूलिका। क्षौद्रप्रिय। पतंग। कीरेष्ठ। गौरिकाक्ष। मांगल्य। मधुपुष्प।

जलमातंग—संज्ञा पुं० [सं० जलमातङ्ग] दे० जलहस्ती [को०]।

जलमातृका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की देवियाँ जो जल में रहनेवाली मानी गई हैं। ये गिनती में सात हैं। इनके नाम हैं—(१) मत्सी; (२) कूर्मी; (३) वाराही; (४) दुर्दुरी; (५) मकरी; (६) जलूका और (७) जंतुका।

जलमानुष—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० जलमानुषी] पनीरू नामक एक कल्पित जलजंतु जिसकी नाभि से ऊपर का भाग मनुष्य का सा और नीचे का मछली के ऐसा होता है। उ०—तुरत तुरंगम देव चढ़ाई। जलमानुष अगुमा सँग लाई।—

जलमार्ग—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जलपथ' [को०]।

जलमार्जार—संज्ञा स्त्री० [सं०] ऊदबिलाव।

जलमाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] मेघमाला। बादलों का समूह। उ०—बादल काला बरसिया अत जलमाला आँण। काम लगों वाला करण मतवाला रंग मौंण।—बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० ७।

जलमुक(पु)—संज्ञा पुं० [सं० जलमुक्, जलमुच्] मेघ। बादल। दे० 'जलमुच्'। उ०—नीरद छीरद अंबुवह बारिद जलमुक नाँव।—अनेकार्थ०, पृ० ८२।

जलमुच्—संज्ञा पुं० [सं०] १. बादल। मेघ। २. एक प्रकार का कपूर।

जलमुर्गा—संज्ञा पुं० [हिं०] जलकुक्कुट। मुर्गाबी।

जलमुलेठी—संज्ञा स्त्री० [सं० जलयष्टि] जलाशय के तट पर पैदा होनेवाली मुलेठी।

जलमूर्ति—संज्ञा पुं० [सं०] शिव।

जलमूर्तिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] करका। ओला।

जलमोद—संज्ञा पुं० [सं०] उशीर। खस।

जलयंत्र—संज्ञा पुं० [सं० जलयन्त्र] १. वह यंत्र (रहट, चरखी आदि) जिससे कुएँ आदि नीचे स्थानों से पानी ऊपर निकाला या उठाया जाता है। २. जलघड़ी। ३. फुहारा। फौवारा।

यौ०—जलयंत्रगृह = फुहारा घर। वह घर जिसमें फुहारे लगे हों। जलयंत्रमंदिर = दे० 'जलयंत्रगृह'।

जलयात्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वह यात्रा जो अभिषेक आदि के निमित्त पवित्र जल लाने के लिये की जाती है। २. राजपुताने में प्रचलित एक उत्सव।

विशेष—यह देवोत्थापिनी एकादशी के बाद चतुर्दशी को होता है। उस दिन उदयपुर के राणा अपने सरदारों के साथ सजकर बड़े समारोह से किसी ह्रद के पास जाकर जल की पूजा करते हैं।

३. वैष्णवों का एक उत्सव जो ज्येष्ठ की पूर्णिमा को होता है। इस दिन विष्णु की मूर्ति को खूब ठंढे जल से स्नान कराया जाता है।

जलयान—संज्ञा पुं० [सं०] सवारी जो जल में काम आती है। जैसे, नाव, जहाज आदि।

जलयुद्ध—संज्ञा पुं० [सं० जल + युद्ध] पानी में होनेवाली लड़ाई। जलपोतों द्वारा युद्ध।

जलरंक—संज्ञा पुं० [सं० जलरङ्क] बक। बगुला।

जलरंकु—संज्ञा पुं० जलरङ्कु] बनमुर्गी। जलकुक्कुट। मुर्गाबी।

जलरंज—संज्ञा पुं० [सं० जलरञ्ज] एक प्रकार का बगुला।

जलरंड—संज्ञा पुं० [सं० जलरण्ड] १. आवर्त। भँवर। २. पानी की बूँद। जलकण। ३. साँप। सर्प।

जलरख(पु)—संज्ञा पुं० [सं० जल+हिं० रख] यक्ष। जल के रखवारे। वरुण के सिपाही। उ०—तूझ तुरंगाँ दान रा हिमगिर तलहटियाँह। गाने गीत तुरंगमुख जलरख जल बटियाँह।—बाँकी० ग्रं०, भा० ३, पृ० ६।

जलरस—संज्ञा पुं० [सं०] १. समुद्री या साँभर नमक। २. नमक।

जलराक्षसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] जल में रहनेवाली राक्षसी जिसका नाम सिंहिका था और जो आकाशगामी जीवों की छाया से उन्हें अपनी ओर खींच लेती थी।

जलराशि—संज्ञा पुं० [सं०] १. ज्योतिष शास्त्र के अनुसार कर्क, मकर, कुंभ और मीन राशियाँ। २. समुद्र।

जलरास(पु)—संज्ञा पुं० [सं० जलराशि] समुद्र। जल का पुंजीभूत रूप। सागर। उ०—जैसे नदी समुद्र समावै द्वैत भाव तजि ह्वै जलरास।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० १५६।

जलरुंड—संज्ञा पुं० [सं० जलरुण्ड] दे० 'जलरंड'।

जलरुह—संज्ञा पुं० [सं०] कमल।

जलरूप—संज्ञा पुं० [सं०] १. मकर राशि। २. नक्र। मकर (को०)।

जललता—संज्ञा स्त्री० [सं०] पानी की लहर। तरंग।

जललोहित—संज्ञा पुं० [सं०] एक राक्षस का नाम।

जलबरंट—संज्ञा पुं० [सं० जलवरएट] जल के अधिक संसर्ग से होनेवाली एक प्रकार की पिटिका या व्रण [को०]।

जलवर्त—संज्ञा पुं० [सं०] १. मेघ का एक भेद। उ०—सुनत मेघवर्तक साजि सैन लै आये। जलवर्त, वारिवर्त पवनवर्त, बीजुवर्त, आगिवर्तक जलद संग ल्याये।—सूर (शब्द०)। २. दे० 'जलावर्त'।

जलवर्तिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का जलपक्षी [को०]।

जलवल्कल—संज्ञा पुं० [सं०] जलकुंभी।

जलवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] सिंघाड़ा।

जलवा—संज्ञा पुं० [अ० जल्वह्] १ शोभा। दीप्ति। तड़क भड़क। उ०—जहाँ देखो वहाँ मौजूद मेरा कृष्ण प्यारा है। उसी का सब है जलवा जो जहाँ मे आशाकारा है।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ८५१। २. प्रदर्शतन। नुमाइश। ३. दीदार। दर्शन (को०)।

यौ०—जलवागर = प्रकट। प्रत्यक्ष। उ०—हुआ जब आइने मे जलवागर मैं तब लिया बोसा। जो आया अपने काबू में तो फिर मुँह देखना क्या है।—कविता कौ०, भा०४, पृ० २६।

जलवाद्य—संज्ञा पुं० [सं०] एक बाजा। उ०—जलाघात, जलवाद, चित्रयोग्य मालाग्रंथन।—वर्ण०, पृ० २०।

जलवाना—क्रि० स० [हिं० जलाना] जलाने का प्रेरणार्थक रूप। जलाने का काम दूसरे से कराना।

जलवानीर—संज्ञा पुं० [सं०] जलबेत। अंबुबेतस्।

जलवायस—संज्ञा पुं० [सं०] कौड़िल्ला पक्षी।

जलवायु—संज्ञा पुं० [सं० जल + वायु] आबहवा। मौसम।

जलवालुक—संज्ञा पुं० [सं०] विंध्य पर्वत श्रेणी [को०]।

जलवास—संज्ञा पुं० [सं०] १. उशीर। खस। २. विष्णुकंद।

जलवाह—संज्ञा पुं० [सं०] १. मेघ। वारिवाह। २. वह व्यक्ति जो जल ढोता हो (को०)। ३. एक प्रकार का कपूर (को०)।

जलवाहक, जलवाहन—संज्ञा पुं० [सं०] जल ढोनेवाला व्यक्ति। पनभरा। जलघड़िया [को०]।

जलबिंदुजा—संज्ञा स्त्री० [सं० जलबिन्दुजा] दे० 'जलबिंदुजा'।

जलविषुव—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष के अनुसार एक योग जो सूर्य के कन्या राशि से मिलकर तुला राशि मे संक्रमित होने के समय होता है। तुला संक्रांति।

जलवीर्य—संज्ञा पुं० [सं०] भरत के एक पुत्र का नाम।

जलवृश्चिक—संज्ञा पुं० [सं०] झींगा मछली।

जलवेत—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जलबेत'।

जलबेतस्—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जलबेत'।

जलवैकृत—संज्ञा पुं० [सं०] एक अशुभ योग। पानी या जलाशय मे आकस्मिक विकार या अद्भुत बातों का दिखाई पड़ना।

विशेष—बृहत्संहिता के अनुसार नगर के पास से नदी का सरक जाना, तालाबों का अचानक एकबारगी सूख जाना, नदी के पानी में तेल, रक्त, मांस आदि बहना, जल का अकारण मैला हो जाना, कुएँ में धुआँ, ज्वाला आदि देख पड़ना, उसके पानी का खौलने लगना या उसमें से रोने, गाने, गर्जने आदि के शब्दों का सुनाई पड़ना, जल के गंध, रस आदि का अचानक बदल जाना, जलाशय के पानी का बिगड़ जाना, इत्यादि इस योग में होते हैं। यह अशुभ माना गया है और इसकी शांति का कुछ विधान भी उसमें दिया गया है।

जलव्यथ जलव्यध—स्त्री० पुं० [सं०] कंकमोट या कोआ नाम की मछली।

जलव्याघ्र—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० जलव्याघ्री] सील की जाति का एक जंतु जो बड़ा क्रूर और हिंसक होता हैं।

विशेष—डील डौल में यह जलभालू से कुछ ही बड़ा होता है पर इसके शरीर पर के बाल जलभालू के बालों की तरह बहुत बड़े नहीं होते। इसके शरीर पर चीते की तरह दाग या धारियाँ होती हैं। यह प्राय: दक्षिण सागर में सेटलैंड नामक टापू के पास होता है।

जलव्याल—संज्ञा पुं० [सं०] जलगर्द। पानी में का साँप।

जलशय—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

जलशयन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जलशय'।

जलशर्करा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वर्षोपल। करका। ओला [को०]।

जलशायी—संज्ञा पुं० [सं० जलशायिन्] विष्णु।

जलशुक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] घोंघा [को०]।

जलशुनक—संज्ञा पुं० [सं०] जल का नकुल। ऊदबिलाव [को०]।

जलशूक—संज्ञा पुं० [सं०] सेवार। काई

जलशूकर—संज्ञा पुं० [सं०] कुंभीर या नाक नामक जलजंतु।

जलशोष—संज्ञा पुं० [सं०] सूखा। अनावृष्टि [को०]।

जलसंघ—संज्ञा पुं० [सं०] धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।

विशेष—महाभारत मे लिखा है कि इसने सात्यकि के साथ भीषण युद्ध करके तोमर से उसका बायाँ हाथ तोड दिया था। अंत मे यह सात्यकि के हाथ से मारा गया था।

जलसंस्कार—संज्ञा पुं० [सं०] १. नहाना। स्नान करना। २. धोना। पखारना। ३. मुर्दे को जल मे बहा देना।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

जलसमाधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] योग के अनुसार जल में डूबकर प्राणत्याग।

क्रि० प्र०—लेना।

२. शव आदि को जल में डुबाना या तिरोहित करना।

क्रि० प्र०—देना।

जलसमुद्र—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार सात समुद्रों में से अंतिम समुद्र।

जलसर्पिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] जोंक।

जलसा—संज्ञा पुं० [अ० जलसह] १. आनंद या उत्सव मनाने के लिये बहुत से लोगों का एक स्थान पर एकत्र होना, विशेषत: लोगो का वह जमावड़ा जिसमें खाना पीना, गाना बजाना, नाच रंग और आमोद प्रमोद हो। जैसे,—कल रात को सभी लोग जलसे में गए थे। २. सभा,

समिति आदि का बड़ा अधिवेशन जिसमें सर्वसाधारण सम्मिलित हों। जैसे,—परसों आर्य समाज का सालाना जलसा होगा।

जलसाई⑤—संज्ञा पुं० [सं० जलशायी] भगवान् विष्णु। उ०—नींद, भूख अरु प्यास तजि करती हो तन राख। जलसाई बिन पूजिहैं क्यों मन के अभिलाख। —मति० ग्रं०, पृ० ४४५।

जलसिंह—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० जलसिंही] सील की जाति का एक जंतु।

विशेष—यह जंतु, पाँच सात गज लंबा होता है और इसके सारे शरीर में ललाई लिए पीले रंग के या काले भूरे बाल होते हैं। इसकी गर्दन पर सिंह की तरह लंबे लंबे बाल होते हैं। यह अत्यंत बली और शांत प्रकृति का होता है। यह अमेरिका और एशिया के बीच 'कमचटका' उपद्वीप तथा 'क्यूरायल' आदि द्वीपों के आस पास मिलता है। यह झुंड में रहता है। इसकी गरज बड़ी भयानक होती है और तंग किए जाने पर यह भयंकर रूप से आक्रमण करता है।

जलसिक्त—वि० [सं०] जल से सींचा हुआ। गीला। आर्द्र [को०]।

जलसिरस—संज्ञा पुं० [सं० जलशिरिष] जल में या जलाशय के अति निकट पैदा होनेवाला एक प्रकार का सिरस वृक्ष जो साधारण सिरस वृक्ष से बहुत छोटा होता है। इसे कहीं कहीं ढाढोन भी कहते हैं।

जलसीप—संज्ञा स्त्री० [सं० जलशुक्ति] वह सीप जिसमें मोती होता है।

जलसुत—संज्ञा पुं० [सं०] १. कमल। जलज। उ०—जलसुत प्रीतम जानि तास सम परम प्रकासा। अहिरिपु मध्य कियौ जिनि निश्चल बासा। —सुंदर ग्रं०, भा० १, (जी०), पृ० ११०।

यौ०—जलसुत प्रीतम = सूर्य।

२. मोती। मुक्ता। उ०—श्याम हृदय जलसुत की माला, अतिहिं अनूपम छाजै (री)। मनहुँ बलाक भाँति नव घन पर, यह उपमा कछु भ्राजै (री)। —सूर०, १०।१८०७।

जलसूँच—संज्ञा पुं० [सं०] सूँस। शिशुमार। २. बड़ा कछुआ। ३. जोंक। ४. एक प्रकार का पौधा जो जल में पैदा होता है। ५. कौआ। ६. कंकमोट या कौआ नाम की मछली। ७. सिंघाड़ा।

जलसूत—संज्ञा पुं० [सं०] नहरुआ रोग।

जलसूर्य, जलसूर्यक—संज्ञा पुं० [सं०] पानी में व्यक्त सूर्य का प्रतिबिंब [को०]।

जलसेक—संज्ञा पुं० [सं०] १. सींचना। पानी देना। जल का छिड़काव।

जलसेचन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जलसेक'।

जलसेना—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह सेना जो जहाजों पर चढ़कर समुद्र में युद्ध करती हो। जहाजी बेड़ों पर रहनेवाली फौज। नौसेना। समुद्री सेना।

जलसेनापति—संज्ञा पुं० [सं०] वह सेनापति जिसकी अधीनता में जलसेना हो। समुद्री सेना का प्रधान अधिकारी जिसकी अधीनता में बहुत से लड़ाई के जहाज और जलसैनिक हों। जल या नौसेना का प्रधान या अध्यक्ष। नौसेनापति।

जलसेनी—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मछली।

जलस्तंभ—संज्ञा पुं० [सं० जलस्तम्भ] एक दैवी घटना जिसमें जलाशयों या समुद्र में आकाश से बादल झुक पड़ते हैं और बादलों से जल तक एक मोटा स्तंभ सा बन जाता है। सूँड़ी।

विशेष—यह जलस्तंभ कभी कभी सौ सवा सौ गज तक व्यास का होता है। जब यह बनने लगता है, तब आकाश में बादल स्तंभ के समान नीचे झुकते हुए दिखाई पड़ते हैं और थोड़ी ही देर मे बढ़ते हुए जल तक पहुँचकर एक मोटे खंभे का रूप धारण कर लेते हैं। यह स्तंभ नीचे की ओर कुछ अधिक चौड़ा होता है। यह बीच में भूरे रंग का, पर किनारे की ओर काले रंग का होता है। इसमें एक केंद्ररेखा भी होती है जिसके आस पास भाप की एक मोटी तह होती है। इससे जलाशय का पानी ऊपर को खिंचने लगता है और बड़ा शोर होता है। यह स्तंभ प्रायः घंटों तक रहता है और बहुधा बढ़ता भी है। कभी कभी कई स्तंभ एक साथ ही दिखाई पड़ते हैं। स्थल में भी कभी कभी ऐसा स्तंभ बनता है जिसके कारण उस स्थान पर जहाँ वह बनता है, गहरा कुंड बन जाता है। जब यह नष्ट होने को होता है, तब ऊपर का भाग तो उठकर बादल में मिल जाता है और नीचे का पानी हो कर पानी बरस पड़ता है। लोग इसे प्रायः अशुभ और हानिकारक समझते हैं।

जलस्तंभन—संज्ञा पुं० [सं० जलस्तम्भन] मंत्रादि से जल की गति का अवरोध करना। पानी बाँधना।

विशेष—दुर्योधन को यह विद्या आती थी अतएव वह शल्य के मारे जाने के बाद द्वैपायन ह्रद मे जल का स्तंभन करके पड़ा था। इसका विशेष विवरण महाभारत में शल्य पर्व के २९वें अध्याय में द्रष्टव्य है।

जलस्थल—संज्ञा पुं० [सं०] जल थल। जल और जमीन।

जलस्था—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंडदूर्वा।

जलस्थान, जलस्थाय—संज्ञा पुं० [सं०] पानी का स्थान। जलाशय। तालाब [को०]।

जलस्राव—संज्ञा पुं० [सं०] एक नेत्ररोग [को०]।

जलस्रोत—संज्ञा पुं० [सं०] जल का सोता। चश्मा। जलप्रवाह [को०]।

जलह—संज्ञा पुं० [सं०] जल के फौवारोंवाला छोटा स्थान। वह स्थान जहाँ फुहारा लगा हो [को०]।

जलहड्डी—संज्ञा पुं० [हिं० जल + हड्डी] मोती। उ०—तै सौ लाख समापिया रावल लालच छड्ड। सौंसण सीचांणा जिसा, जेथ हुवै जलहड्ड।—बाँकी० ग्रं०, भा० १, पृ० ८०।

जलहर¹⑤—वि० [हिं० जल + हर] जलमय। जल से भरा हुआ।

उ०—दादू करता करत निमिष में जल माँहि थल थाप। थल माँ है जलहर करै, ऐसा समरथ आप।—दादू (शब्द०)।

जलहर[3]⑤—संज्ञा पुं० [सं० जलधर, प्रा० जलहर] १. मेघ। बादल। उ०—बिज्जुलियाँ नीलज्जियाँ जलहर तूँ ही लज्जि। सूनी सेज विदेस प्रिय मधुरइ मधुरइ गज्जि।—ढोला०, दू० ५०। २. तालाब। सरवर। जलाशय। उ०—(क) बिरह जलाई मैं जलूँ जलती जलहर जाउँ। मों देखे जलहर जलै संतों कहा बुझाउँ।—कबीर (शब्द०)। (ख) नैना भए अनाथ हमारे। मदन गोपाल वहाँ ते सजनी सुनियत दूर सिधारे। वे जलहर हम मीन बापुरी कैसे जियहिं निनारे।—सूर (शब्द०)। (ग) सुंदर सोल सिंगार सजि गई सरोवर पाल। चंद मुलक्यउ जल हँस्यउ जलहर कंपी पाल।—ढोला०, दू० ३६४।

जलहरण—संज्ञा पुं० [सं०] बत्तीस अक्षरों की एक वर्णवृत्ति या दंडक जिसके अंत में दो लघु पड़ते हैं। इसमें सोलहवें वर्ण पर यति होती है। जैसे,—भरत सदा ही पूजै पादुका उतै सनेम, इतै राम सिय बंधु सहित सिधारे बन। सूपनखा कै कुरूप मारे खल झुंड घने, हरी दससीस सीता राघव विकल मन।

जलहरी—संज्ञा स्त्री० [सं० जलधरी] १. पत्थर या धातु आदि का वह अर्घा जिसमें शिवलिंग स्थापित किया जाता है। उ०—लिंग जलहरी घर घर रोपा।—कबीर सा०, पृ० १५८१। २. एक बर्तन जिसमें नीचे पानी भरा रहता है। लोहार इसमें लोहा गरम करके बुझाते हैं। ३. मिट्टी का घड़ा जो गरमी के दिनों में शिवलिंग के ऊपर टाँगा जाता है। इसके नीचे एक बारीक छेद होता है जिसमें से दिन रात शिवलिंग पर पानी टपका करता है।

क्रि० प्र०—चढ़ना।—चढ़ाना।

जलहस्ती—संज्ञा पुं० [सं०] सील की जाति का एक जलजंतु जो स्तनपायी होता है।

विशेष—यह प्रायः छह से आठ गज तक लंबा होता है और इसके शरीर का चमड़ा बिना बालों का और काले रंग का होता है। इसके मुँह में ऊपर की ओर १६ और नीचे की ओर १४ दाँत होते हैं। यह प्रायः दक्षिण महासागर में पाया जाता है, पर जब वहाँ अधिक सरदी पड़ने लगती है, तब यह उत्तर की ओर बढ़ता है। नर की नाक कुछ लंबी और सूँड़ की तरह आगे को निकली हुई होती है और वह प्रायः १५-२० मादाओं के झुंड में रहता है। गरमी के दिनों में इसकी मादा एक या दो बच्चे देती है। इसका मांस काले रंग का और चरबी मिला होता है और बहुत गरिष्ठ होने के कारण खाने योग्य नहीं होता। इसकी चरबी के लिये, जिससे मोमबत्तियाँ आदि बनती हैं, इसका शिकार किया जाता है। प्रयत्न करने पर यह पाला भी जा सकता है।

जलहार—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० जलहरी] पानी भरनेवाला। पनिहारा।

जलहारक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जलहार'।

जलहारिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पानी भरनेवाली। पनिहारिन। २. नाली। जल के निकास की प्रणाली (को०)।

जलहारी—संज्ञा पुं० [सं० जलहारिन्] [स्त्री० जलहारिणी] पनिहारा। जलहारक।

जलहालम—संज्ञा पुं० [सं० जल + देश० हालम] एक प्रकार का हालम या चंसुर वृक्ष जो जलाशयों के निकट होता है। इसकी पत्तियाँ सलाद या मसाले की तरह काम में आती हैं और बीजों का उपयोग औषध में होता है।

जलहास—संज्ञा पुं० [सं०] १. झाग। फेन। २. समुद्र का फेन। समुद्रफेन।

जलहोम—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का होम जिसमें वैश्वदेवादि के उद्देश्य से जल में आहुति दी जाती है।

जलांचल—संज्ञा पुं० [सं० जलाञ्चल] १. पानी की नहर। पानी का सोता। २. झरना। निर्झर (को०)। ३. सेवार। काई (को०)।

जलांजल—संज्ञा पुं० [सं० जलाञ्जल] १. सेवार। २. सोता। स्रोत।

जलांजलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पानी भरी अंजुली। २. पितरों या प्रेतादिक के उद्देश्य से अंजुली में जल भरकर देना।

मुहा०—जलांजलि देना=त्याग देना। छोड़ देना। कोई संबंध न रखना।

जलांटक—संज्ञा पुं० [सं० जलाण्टक] मगर। नक्र। नाक (को०)।

जलांतक—संज्ञा पुं० [सं० जलान्तक] १. सात समुद्रों में से एक समुद्र २. हरिवंश के अनुसार कृष्णचंद्र का एक पुत्र जो सत्यभामा गर्भ से उत्पन्न हुआ था।

जलांबिका—संज्ञा स्त्री० [सं० जलाम्बिका] कूप। कुआँ।

जलाक—संज्ञा स्त्री० [हिं० जलना] १. पेट की जलन। २. तीक्ष्ण धूप की लपट। ३. लू।

जलाकर—संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र, नदी, कूप, स्रोत, जलाशय आदि जो जलयुक्त हों।

जलाकांक्ष—संज्ञा पुं० [सं० जलाकाङ्क्ष] हाथी।

जलाकांक्षी—संज्ञा पुं० [सं० जलाकाङ्क्षिन्] दे० 'जलाकांक्ष'।

जलाका—संज्ञा स्त्री० [सं०] जोंक।

जलाकाश—संज्ञा पुं० [सं०] १. जल में आकाश का प्रतिबिंब। २. जलगत आकाश या शून्य (को०)।

जलाक्षी—संज्ञा स्त्री० [सं०] जलपीपल। जलपिप्पली।

जलाखु—संज्ञा [सं०] ऊदबिलाव।

जलाजल⑤—संज्ञा पुं० [हिं० झलाझल] गोटे आदि की झालर। झलाझल। उ०—गति गयंद कुच कुंभ किंकिणी मनहुँ घंट झहनावै। मोतिन हार जलाजल मानो खुमीदंत झलकावै।—सूर (शब्द०)।

जलाटन—संज्ञा पुं० [सं०] कंक नामक पक्षी।

जलाटनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] जोंक।

जलाटीन—संज्ञा पुं० [अं० जेलाटीन] एक प्रकार की सरेस। दे० 'जेलाटीन'।

जलातंक—संज्ञा पुं० [सं० जलातङ्क] जलत्रास नामक रोग।

जलातन—वि० [हिं० जलना + तन] १. क्रोधी। बिगड़ैल। बदमिजाज। २. ईर्ष्यालु। डाही।

जलात्मिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जोंक। २. कुआँ। कूप।

जलात्यय—संज्ञा पुं० [सं०] वर्षा की समाप्ति का काल। शरत् काल।

जलाद(पु)—संज्ञा पुं० [अ० जल्लाद] दे० 'जल्लाद'। उ०—हो मन राम नाम को गाहक। चौरासी लख जिया जोनि लख भटकत फिरत अनाहक। करि हियाव सो सौ जलाद यह हरि के पुर लै जाहि। घाट बाट कहुँ अटक होय नहिं सब कोउ देहि निबाहि।—सूर० (शब्द०)।

जलाधार—संज्ञा पुं० [सं०] जल का आधारभूत स्थान। जलाशय [को०]।

जलाधिदैवत—संज्ञा पुं० [सं०] १. वरुण। २. पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र।

जलाधिप¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. वरुण। २. फलित ज्योतिष के अनुसार वह ग्रह जो संवत्सर में जल का अधिपति हो।

जलाना¹—क्रि० स० [हिं० 'जलना' का सक० रूप] १. किसी पदार्थ को अग्नि के संयोग से अंगारे या लपट के रूप में कर देना। प्रज्वलित करना। जैसे, आग जलाना, दीया जलाना। २. किसी पदार्थ को बहुत गरमी पहुँचाकर या आँच की सहायता से भाप या कोयले आदि के रूप में करना। जैसे, अंगारे पर रोटी जलाना, काढ़े का पानी जलाना। ३. आँच के द्वारा विकृत या पीड़ित करना। झुलसाना। जैसे—अंगारे से हाथ जलाना। ४. किसी के मन में डाह, ईर्ष्या या द्वेष आदि उत्पन्न करना। किसी के मन में संताप उत्पन्न करना।

मुहा०—जला जलाकर मारना = बहुत दुःख देना। खूब तंग करना।

जलाना(पु)²—क्रि० अ० [हिं० जल + आना (प्रत्य०) जलमग्न होना। जलमय होना। उ०—महा प्रलय जब होवे भाई। स्वर्ग मृत्यु पाताल जलाई।—कबीर सा०, पृ० २४३।

जलापा¹—संज्ञा पुं० [हिं० √जल + आपा (प्रत्य०)] डाह या ईर्ष्या आदि के कारण होनेवाली जलन।

क्रि० प्र०—सहना।—होना।

जलापा²—संज्ञा पुं० [अं० जेलप पाउडर] एक विलायती औषध जो रेचक होती है।

जलापात—संज्ञा पुं० [सं०] बहुत ऊँचे स्थान पर से नदी आदि के जल का गिरना। जलप्रपात।

जलामई(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० जलमय] जलमय। जल से परिपूर्ण। उ०—समुद्र मध्य डूबि कै उघारि नैन दीजिए। दशो दिशा जलामई प्रत्यक्ष ध्यान दीजिए।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० ५४।

जलायुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] जोंक।

जलार्णव—संज्ञा पुं० [सं०] १. वर्षाकाल। बरसात। २. समुद्र। सागर (को०)।

जलार्द्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. गीला वस्त्र। २. जलसिक्त पंखा। ३. जल से भीगा हुआ पदार्थ या स्थान [को०]।

जलाल—संज्ञा पुं० [अ०] १. तेज। प्रकाश। उ०—खुदावंद का जलाल दहकती आग के सदृश दिखलाई देता था।—कबीर मं०, पृ० २०१। २. महिमा के कारण उत्पन्न होनेवाला प्रभाव। आतंक।

जलालत—संज्ञा स्त्री० [अ० ज़लालत] तिरस्कार। अपमान। बेइज्जती। उ०—कुछ देर बाद मंसूबा पलटा। बंबई के कारनामे याद आए। जलालत से नसों में खून दौड़ने लगा, सोचा क्या बंबई में मुँह दिखाएँ।—काले०, पृ० ३७।

जलाली—वि० [अ०] प्रकाशित। दीप्त। आतंकयुक्त। उ०—किया उस उपर यक जलाली नजर, जो हैबत सूँ पानी हुआ सर बसर।—दक्खिनी०, पृ० ११७। २. ईश्वरीय। उ०—कहु जलाली करत हलाली, क्यों दोजख आगी जलता है।—कबीर श०, भा २, पृ० १७। ३. पराक्रमी। दुर्दम। अजेय। उ०—ऐसी सेन जलाली बर औरंगजेब।—नट०, पृ० १६७।

जलालुक—संज्ञा पुं० [सं०] कमल की जड़। भसींड़।

जलालुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] जोंक।

जलालोका—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जलालुका' [को०]।

जलावंत(पु)—वि० [सं० जलवन्त] पानीवाला। जल से परिपूर्ण। उ०—जलावत इक सिंध अगम है सुखमन सूरत लाया। उलट पलट के यह मन गरजै गगन मंडल घर पाया।—पलटू०, पृ० ८१।

जलाव—संज्ञा पुं० [हिं० जलना + आव (प्रत्य०)] १. खमीर या आटे आदि का उठना।

क्रि० प्र०—आना। पतला शीरा।

२. वह आटा जो उठाया हो। खमीर। ३. किवाम।

जलावतन—वि० [अ०] [संज्ञा स्त्री० जलावतनी] जिसे देश निकाले का दंड मिला हो। निर्वासित।

जलावतनी—संज्ञा स्त्री० [अ० जलावतन + ई] दंडस्वरूप किसी अपराधी का शासक द्वारा देश से निकाल दिया जाना। देश-निकाला। निर्वासन।

जलावतार—संज्ञा पुं० [सं०] नदी का वह स्थान जहाँ उतरने चढ़ने के लिये नाव आदि लगाई जाती है। घाट [को०]।

जलावन—संज्ञा पुं० [हिं० जलाना] १. लकड़ी, कंडे आदि जो जलाने के काम में आते हैं। ईंधन। २. किसी वस्तु का वह अंश जो आग में उसके तपाए, जलाए या गलाए जाने पर जल जाता है। जलता।

क्रि० प्र०—जाना।—निकलना।

३. मौसिम मे कोल्हू के पहले पहल चलने का उत्सव। मँडरव।

विशेष—इसमें वे सब काश्तकार जो उस कोल्हू मे अपनी ईख पेरना चाहते हैं, अपने अपने खेत से थोड़ी थोड़ी ईख लाकर वहाँ पेरते हैं और उसका रस ब्राह्मणों, भिखारियों आदि को पिलाते तथा उससे गुड़ बनाकर बाँटते हैं।

जलावर्त—संज्ञा पुं० [सं०] पानी का भँवर। नाल।

जलाशय¹—वि० [सं०] १. जल में रहने या शयन करनेवाला। २. मूर्ख। जड़ [को०]।

जलाशय[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह स्थान जहाँ पानी जमा हो। जैसे,—गड्ढा, तालाब, नदी, नाला, समुद्र आदि। २. उशीर। खस। ३. सिंघाड़ा। ४. लामज्जक नामक तृण। ५. मत्स्य। मछली (को०)।

जलाशया—संज्ञा स्त्री० [सं०] गुंदला। नागरमोथा।

जलाशयोत्सर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] नए बने कूप या तालाब आदि की प्रतिष्ठा। दे० 'जलोत्सर्ग'।

जलाश्रय—संज्ञा पुं० [सं०] १. वृत्तगुंड या दीर्घनाल नाम का तृण। २. जलाशय (को०)। ३. सारस। बक (को०)।

जलाश्रया—संज्ञा स्त्री० [सं०] शूली घास।

जलाष्ठीला—संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ा और चौकोर तालाब (को०)।

जलासुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] जोंक।

जलाहल[1]—वि० [हिं० जलाजल, या सं० जलस्थल] जलमय। उ०—प्रानप्रिया अँसुग्रान के नीर पनारे भए बहि के भए नारे। नारे भए ते भई नदियाँ नदियाँ नद ह्वै गए काटि किनारे। बेगि चलो जू चलो ब्रज को नँदनंदन चाहत चेत हमारे। वे नद चाहत सिंधु भए अब सिंधु ते ह्वै है जलाहल सारे।—(शब्द०)।

जलाहल[2]—वि० [हिं० झलाझल] झलझलाता हुआ। चमक दमक। वाला। देदीप्यमान। उ०—कंठसरी बहु क्रांति, मिली मुकताहलाँ।—बाँकी० ग्रं०, भा० ३, पृ० ३६।

जलाह्वय—संज्ञा पुं० [सं०] १. कमल। २. कुमुद। कुँई।

जलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] जोंक।

जली—वि० [अ०] प्रकट। व्यक्त। स्पष्ट। प्रकाशमान। उ०—जिन्ने जली नित ऐसा याद हर दम अल्ला नाँव। यू हर आजा बरतन पूरे नासूत पावे ठाँव।—दक्खिनी०, पृ० ५५।

जलील—वि० [अ० जलील] १. तुच्छ। बेकदर। २ जिसे नीचा दिखाया गया हो। अपमानित। तिरस्कृत।

जलुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] जोंक।

जलू, जलूक—संज्ञा स्त्री० [फा० जलू, जलूक] जलौका। जोंक (को०)।

जलूका—संज्ञा स्त्री० [सं०] जोंक।

जलूस—संज्ञा पुं० [अ० जुलूस] बहुत से लोगों का किसी उत्सव के उपलक्ष में सज धजकर, विशेषतः किसी सवारी के साथ किसी विशिष्ट स्थान पर जाने या नगर की परिक्रमा करने के लिये चलना।

क्रि० प्र०—निकलना।—निकालना।

२ जलसा। धूमधाम। उ०—जोबन जलुस फूस लाये लों नसाय कहा पाप समुदाय मान माती सान धरि कै। —दीन० ग्रं०, पृ० १३८।

जलेंद्र—संज्ञा पुं०[सं० जलेन्द्र] १. वरुण। २. महासागर। ३. शिव (को०)।

जलेंधन—संज्ञा पुं० [सं० जलेन्धन] १. बाड़वाग्नि। २. वह पदार्थ जिसकी गरमी से पानी सूखता है। जैसे, सूर्य, विद्युत् आदि।

जलेचर—वि०, संज्ञा पुं० [सं०] जलचर।

जलेच्छया—संज्ञा पुं० [सं०] हाथीसूँड़ नाम का पौधा जो पानी में उत्पन्न होता है।

जलेज—संज्ञा पुं० [सं०] कमल। जलज।

जलेतन—वि० [हिं० जलना + तन] १. जिसे बहुत जल्दी क्रोध आ जाता हो। जिसमें सहनशीलता बिलकुल न हो। २. जो डाह, ईर्ष्या आदि के कारण बहुत जलता हो।

जलेबा—संज्ञा पुं० [हिं० जलेबी] बड़ी जलेबी। वि० दे० 'जलेबी'।

जलेबी—संज्ञा स्त्री० [हिं० जलाब (= खमीर या शीरा)] १. एक प्रकार की मिठाई जो कुंडलाकार होती है और खमीर उठाए हुए पतले मैदे से बनाई जाती है।

विशेष—इसके बनाने की पद्धति यह है कि पतले उठे हुए मैदे को मिट्टी के किसी ऐसे बरतन में भर लेते हैं जिसके नीचे छेद होता है। तब उस बरतन को घी की कड़ाही के ऊपर रखकर इस प्रकार घुमाते हैं कि उसमें से मैदे की धार निकलकर कुंडलाकार होती जाती है। पक चुकने पर उसे घी में से निकालकर शीरे में थोड़ी देर तक डुबो देते हैं। मिट्टी के बरतन की जगह कभी कभी कपड़े की पोटली का भी व्यवहार किया जाता है।

२. बरियारे की जाति का एक प्रकार का पौधा।

विशेष—यह पौधा चार पाँच हाथ ऊँचा होता है और इसमें पीले रंग के फूल लगते हैं। इसके फूल के अंदर कुंडलाकार लिपटे हुए बहुत से छोटे छोटे बीज होते हैं।

३. गोल घेरा। कुंडली। लपेट। ४. एक प्रकार की आतिशबाजी जो मिट्टी के कसोरे में कुछ मसाले आदि रखकर और ऊपर कागज चिपका कर बनाई जाती है।

यौ०—जलेबीदार = जिसमें कई घेरे हों।

जलेभ—संज्ञा पुं० [सं०] जलहस्ती।

जलेरुहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सूरजमुखी नाम के फूल का पौधा। २. एक गुल्म। कुटुंबिनी (को०)।

जलेला—संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्तिकेय की अनुचरी एक मातृका का नाम।

जलेवाह—संज्ञा पुं० [सं०] पानी में गोता लगाकर चीजें निकालनेवाला मनुष्य। गोताखोर।

जलेश—संज्ञा पुं० [सं०] १. वरुण। २. समुद्र। जलाधिप।

जलेशय—संज्ञा पुं० [सं०] १. मछली। २. विष्णु का एक नाम।

विशेष—जिस समय सृष्टि का लय होता है, उस समय विष्णु जल में सोते हैं इसी से उनका यह नाम पड़ा है।

जलेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] १. समुद्र। २. वरुण।

जलोका—संज्ञा स्त्री० [सं०] जोंक।

जलोच्छ्वास—संज्ञा पुं० [सं०] १. जलाशयों में उठनेवाली लहरें जो उनकी सीमा का उल्लंघन करके बाहर गिरती हैं। जल का उमड़कर अपनी सीमा से बाहर गिरना या बहना। २. वह प्रयत्न जो किसी स्थान से जल को बाहर निकालने अथवा उसे किसी स्थान में प्रविष्ट करने के लिये किया जाय।

जलोत्सर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार ताल, कुआँ या बावली आदि का विवाह।

जलोदर—संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग जिसमें नाभि के पास पेट के चमड़े के नीचे की तह में पानी एकत्र हो जाता है।

विशेष—इस रोग में पानी इकट्ठा होने से पेट फूल जाता है और आगे की ओर निकल पड़ता है। वैद्यों का मत है कि घृतादि पान करने और वस्ति कर्म, रेचन और वमन के पश्चात् चटपट ठंडे जल से स्नान करने से शरीर की जलवाहिनी नसें दूषित हो जाती हैं और पानी उतर आता है। इसमें रोगी के पेट में शब्द होता है और उसका शरीर काँपने लगता है।

जलोद्धतगति—संज्ञा स्त्री० [सं०] बारह अक्षरों की एक वर्णवृत्ति जिसके प्रत्येक चरण में जगण सगण, जगण और सगण होता है (।ऽ।, ।।ऽ ।ऽ।, ।।ऽ)। जैसे—जु साजि सुपली हरी हि सिर मे। धमे जु बसुदेव रैन जल में। प्रभू चरण को छुआ जमुन मे। जलोद्धति गति हरी छिनक में। २. जल बढ़ने की स्थिति।

जलोद्भवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गुँदला। २. छोटी ब्राह्मी।

जलोद्भूता—संज्ञा स्त्री० [सं०] गुँदला नाम की घास।

जलोन्माद—संज्ञा पुं० [सं०] शिव के एक अनुचर का नाम।

जलोरगी—संज्ञा स्त्री० [सं०] जोंक।

जलौकस—संज्ञा पुं० [सं०] जलौका। जोंक।

जलौका—संज्ञा स्त्री० [सं० जलौकस्] जोंक।

जल्द—क्रि० वि० [अ०] [संज्ञा जल्दी] १. शीघ्र। चटपट। बिना विलंब। २. तेजी से।

जल्दबाज—वि० [फ़ा० जल्दबाज] [संज्ञा जल्दबाजी] जो किसी काम के करने में बहुत, विशेषतः आवश्यकता से अधिक, जल्दी करता हो। बहुत अधिक जल्दी करनेवाला।

जल्दबाजी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जल्दबाजी] उतावली। शीघ्रता।

जल्दी[१]—संज्ञा स्त्री० [अ०] शीघ्रता। फ़ुरती।

जल्दी[२]†—क्रि० वि० [अ० जल्द] दे० 'जल्द'।

जल्प—संज्ञा पुं० [सं०] १. कथन। कहना। २. बकवाद। व्यर्थ की बात। प्रलाप। ३. न्याय के अनुसार सोलह पदार्थों में से एक पदार्थ।

विशेष—यह एक प्रकार का वाद है जिसमें वादी छल, जाति और निग्रह स्थान को लेकर अपने पक्ष का मंडन और विपक्षी के पक्ष का खंडन करता है। इसमें वादी का उद्देश्य तत्त्व-निर्णय नहीं होता किंतु स्वपक्ष स्थापन और परपक्ष खंडन मात्र होता है। वाद के समान इसमे भी प्रतिज्ञा, हेतु आदि पाँच अवयव होते हैं।

जल्पक—वि० [सं०] बकवादी। वाचाल। बातूनी। उ०—तब सोनित की प्यास तृषित राम सायक निकर। तजौं तोहि तेहि त्रास कटु जल्पक निसिचर अधम।—मानस, ६। ३२।

जल्पन[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. बकवाद। प्रलाप। गपशप। व्यर्थ की बातें। २. बहुत बढ़कर कही हुई बात। डींग।

जल्पन[२]—वि० [सं०] बातूनी। जल्पक [को०]।

जल्पना—क्रि० अ० [सं० जल्पन] व्यर्थ बकवाद करना। बहुत बढ़ चढ़कर बातें करना। डींग मारना। सीटना। उ०—(क) कट जल्पसि जड़ कपि बल जाके। बल प्रताप बुधि तेज न ताके।—तुलसी (शब्द०)। (ख) जनि जल्पसि जड़ जंतु कपि सठ विलोकु मम बाहु। लोकपाल बल बिपुल ससिग्रसन हेतु सब राहु।—तुलसी (शब्द०)।

जल्पनाⓤ[२]—संज्ञा स्त्री० [सं०] जल्पन। बकवाद। डींग। उ०—भजि रघुपति कर हित आपना। छाड़हु नाथ तृथा जल्पना।—मानस, ६। ५५।

जल्पाक—वि० [सं०] व्यर्थ की बहुत सी बातें करनेवाला। जल्पक। बकवादी। वाचक।

जल्पित—वि० [सं०] १. जो (बात) वास्तव में ठीक न हो। मिथ्या। २. कथित। उक्त। कहा हुआ।

जल्ला†—संज्ञा पुं० [हिं० झील] १. झील।—(लश०)। २. ताल। ३. हौज। ह्रद।

जल्लाद[१]—संज्ञा पुं० [अ०] वह जिसका काम ऐसे पुरुषों के प्राण लेना हो, जिन्हें प्राणदंड की आज्ञा हो चुकी हो। घातक। बधुआ।

जल्लाद[२]—वि० क्रूर। निर्दय। बेरहम।

जल्हु—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि।

जल्वा—संज्ञा पुं० [अ० जल्वह्] दे० 'जलवा'। उ०—बिना उसके जल्वा के दिखती कोई परी या हूर नहीं। सिवा यार के दूसरे का इस दुनियाँ में नूर नहीं।—भारतेंदु ग्रं०, भा०२, पृ० १६४।

यौ०—जल्वागार = दे० 'जलवागर'। जल्वागाह = प्रदर्शनगृह। उ०—भौंरों सा रस लेता रहता गाता फिरता तू राहों में। रूप और रस राग भरी इन जीवन की जल्वागाहों में।—दीप ज०, पृ० १५३।

जल्वागायⓤ—[फ़ा० जल्वागाह] दे० 'जल्वागाह'। उ०—जब इस बज्म छब की उरूसी दिखाय। तो जौहर हो ज्यों दिप मने जल्वागाय।—दक्खिनी०, पृ० १३८।

जल्सा—संज्ञा पुं० [अ० जल्सह्] दे० 'जलसा' उ०—रेल में, जहाज में, खाने पीने के जल्सों मे, पास बैठने मे और बातचीत करने में जानपहचान नहीं समझी जाती।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० ३३०।

जव[१]—संज्ञा पुं० [सं०] वेग।

जव[२]—संज्ञा पुं० [सं० यव] जौ।

जवन[१]—वि० [सं०] [वि०स्त्री० जवनी] वेगवान्। वेगयुक्त। तेज।

जवन[२]—संज्ञा पुं० [सं०] १. वेग। २. स्कंद का एक सैनिक। ३. घोड़ा।

जवन[३]—संज्ञा पुं०[सं० यवन] दे० 'यवन'। उ०—पृथीराज जैचंद कलह करि जवन बुलायो।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ५०७।

जवन[४]ⓤ†—सर्व० [सं० यः पुनः; प्रा० जउण, या हिं०] दे०

'जौन' अथवा 'जिस'। उ०—जवन विधि मनुवा मरे सोई भाँति सम्हारो हो।—धरम०, पृ० ९।

जवनाल—संज्ञा पुं० [सं० यवनाल] जौ का डंठल। दे० 'यवनाल'।

जवनिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पर्दा। दे० 'यवनिका'। उ०—(क) मोहन काहैं न उगिलो माटी। बड़ी बार भई लोचन उघरे भरम जवनिका फाटी। सूर निरखि नँदरानि भ्रमित भई कहति न मीठी खाटी।—सूर०, १०।२५४ (ख) द्वार झरोखनि जवनिका रुचि लै छुटकाऊँ।—घनानंद, पृ० ३१३। २. कनात। घेरा (को०)। ३. नाव की पाल (को०)।

जवनिमा—संज्ञा स्त्री० [सं० जवनिमन्] गति। वेग। क्षिप्रता (को०)।

जवनी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जवाइन। अजवायन। २. तेजी। वेग।

जवनी[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'जवनिका' (को०)।

जवनी[3]—संज्ञा स्त्री० [सं० यवनी] यवनी। यवन स्त्री। मुसलमान स्त्री। उ०—भूषन यों भवनी जवनी कहैं।—कोऊ कहै सरजा सो हहारे। तू सबको प्रतिपालन हार बिचारे भतार न मारु हमारे।—भूषण ग्रं०, पृ० ५१।

जवस्—संज्ञा पुं० [सं०] वेग।

जवस—संज्ञा पुं० [सं०] घास।

जवाँ—संज्ञा पुं० [फ़ा० जवान का यौगिक रूप] युवक। युवा।

यौ०—जवाँमर्द। जवाँमर्दी। जवाँबख्त = भाग्यवान्। सौभाग्यशाली। जवाँसाल = युवक। नई उमर का।

जवाँमर्द—वि० [फ़ा०] [संज्ञा जवाँमर्दी] १. शूरवीर। बहादुर। २. स्वेच्छापूर्वक सेना में भरती होनेवाला सिपाही। वालेंटियर।

जवाँमर्दी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] वीरता। बहादुरी। मर्दानगी।

जवा[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'जपा'।

जवा[2]—संज्ञा पुं० [सं० यव] १. एक प्रकार की सिलाई जिसमें तीन बखिया लगाते हैं और इस प्रकार सिलाई करके दर्ज को चीरकर दोनों ओर तुरप देते हैं। २. लहसुन का एक दाना।

जवाइन—संज्ञा स्त्री० [सं० यवानिका, यवानी; हिं० अजवाइन] अजवाइन। जवाइन।

जवाई—संज्ञा स्त्री [हिं० जाना, पुंहि जावना] १. वह धन जो जाने के उपलक्ष में दिया जाय। २. जाने की क्रिया। गमन। ३. जाने का भाव।

यौ०—अवाई जवाई = आवागमन। आना जाना।

जवाखार—संज्ञा पुं० [सं० यवक्षार] एक प्रकार का नमक जो जौ के क्षार से बनता है। वैद्यक मे यह पाचक माना गया है।

जवाद[1]—संज्ञा पुं० [अ० ज़ुबाद] दे० 'जवादि'। उ०—मृग मद जवाद सब चरचि अंग। कसमीर अगर सुर रहिय अंग।—पृ० रा०, ६।११२।

जवाद[2]—वि० [अ०] मुक्तहस्त। दानी। यशस्वी। वदान्य। फैयाज। उ०—पुनि कूरम सौं बिरचियो छोड़ति देखि अजाद। बचन जीत तासों भयो सूरज आपु जवाद।—सुजान०, पृ० ३३।

जवादानी—संज्ञा स्त्री० [सं० यव>हिं० जवा + दाना] चंपाकली नामक गहना जो गले में पहना जाता है।

जवादि—संज्ञा पुं० [अ० ज़ब्बाद, जबाद; तुल० सं० जवादि] एक सुगंधित द्रव्य जो गंधमार्जार से निकाला जाता है। उ०—पहिले तजि आरस आरसी देखि घरीक घसे घनसारहि लै। पुनि पोंछि गुलाब तिलौंछि फुलेल अँगोछे में आछे अँगोछन कै। कहि केशव मेद जवादि सो माँजि इते पर आँजे में अंजन दै। बहुरे हरि देखो तौ देखो कहा सखि लाज ते लोचन लागे वहै।—केशव (शब्द०)।

विशेष—राजनिघंटु में इसके गुणों का वर्णन प्राप्त होता है। यह पीले रंग की एक चिकनी लसदार चीज है जो कस्तूरी की तरह महकती है। इसे गोरासार, मृगधर्मज आदि भी कहते हैं। वि० दे० 'गंधबिलाव'।

जवादि कस्तूरी—संज्ञा स्त्री० [अ० या सं०] दे० 'जवदि'।

जवाधिक—संज्ञा पुं० [सं०] बहुत तेज दौड़नेवाला घोड़ा।

जवान[1]—वि० [फ़ा०] १. युवा। तरुण।

यौ०—जवाँमर्द। जवाँमर्दी।

२. वीर। बहादुर। पराक्रमी।

जवान[2]†—संज्ञा पुं० १. मनुष्य। पुरुष २.। सिपाही। ३. वीर पुरुष।

जवानिल—संज्ञा पुं०। [सं०] तीव्रगामी वायु। तेज हवा। आँधी। तूफान (को०)।

जवानी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] जवाइन। अजवायन।

जवानी[2]—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. यौवन। तरुणाई। युवावस्था। २. मस्ती। मद।

मुहा०—जवानी उठना या जवानी उभड़ना = यौवन का प्रारंभ होना। तरुणाई का आरंभ होना। जवानी उतरना = उमर ढलना। बुढ़ापा आना। जवानी चढ़ना = (१) यौवन का आगमन होना। तरुणाई का प्रारंभ होना। (२) मद पर आना। मदमत्त होना। जवानी ढलना = उमर खसकना। जवानी उतरना। बुढ़ापा आना। जवानी पर आना = मस्ती में आना। यौवन के मद से मत्त होना। जवानी फटी पड़ना = जवानी का पूर्ण विकास पाना। उठती जवानी = यौवनारंभ। चढ़ती जवानी। उतरती जवानी = यौवनावसान। उमर खसकने की अवस्था। चढ़ती जवानी = यौवनारंभ। जवानी का प्रारंभ होना। उठती जवानी। चढ़ती जवानी माझा ढीला = भरी जवानी मे उत्साह की जगह अशक्तता या कमजोरी दिखाना।

जवाब—संज्ञा पुं० [अ०] १. किसी प्रश्न या बात को सुन अथवा पढ़कर उसके समाधान के लिये कही या लिखी हुई बात। उत्तर।

यौ०—जवाबदावा। जवाबदारी। जवाबदेही।

क्रि० प्र०—देना।—पाना।—माँगना।—मिलना।—लिखना।

मुहा०—जवाब तलब करना = किसी घटना का कारण पूछना। कैफियत माँगना। जवाब मिलना या कोरा जवाब मिलना = निषेधात्मक उत्तर मिलना।

२. वह जो कुछ किसी के परिणाम स्वरूप या बदले में किया जाय। कार्यरूप में दिया हुआ उत्तर। बदला। जैसे,—जब उधर से गोलियों की बौछार आरंभ हुई, तब इधर से भी

उसका जवाब दिया गया। ३. मुकाबले की चीज। जोड़। जैसे,—इस तस्वीर के जवाब में इसके सामने भी एक तस्वीर होनी चाहिए। ४. इनकार। अस्वीकार। नहीं करना। ५. नौकरी छूटने की आज्ञा। मोकूफी। जैसे,—कल उन्हें यहाँ से जवाब हो गया।

क्रि० प्र०—देना। —पाना। —मिलना। —होना।

जवाबतलब—वि० [अ०] जिसके संबंध में समाधानकारक उत्तर माँगा गया हो। उत्तर या जवाब माँगने लायक।

जवाबतलबी—संज्ञा स्त्री० [अ० जवाबतलब+फ़ा० ई (प्रत्य०)] जवाब माँगना। उत्तर माँगना [को०]।

जवाबदारी—संज्ञा स्त्री० [अ० जवाब+फ़ा० दारी (प्रत्य०)] जवाबदेही। उत्तरदायित्व। उ०—यदि आज भारत की किसी भाषा या साहित्य के सामने जवाबदारी का विराट् प्रश्न उपस्थित है तो वह हिंदीभाषा और हिंदी साहित्य के सामने है।—शुक्ल अभि० ग्रं० (जी०), पृ० १३।

जवाबदावा—संज्ञा पुं०[अ० जवाब+हिं० दावा]वह उत्तर जो वादी के निवेदन पत्र के उत्तर में प्रतिवादी लिखकर अदालत में देता है।

जवाबदिही—संज्ञा स्त्री० [अ० जवाब+फा० दिही] दे० 'जवाबदेही'। उ०—(क) उससे जवाबदिही करने के लिये भी रुपे चाहियेंगे। —श्रीनिवास ग्रं०, पृ० २४३। (ख) मदन मोहन की ओर से लाला ब्रजकिशोर जवाबदिही करते हैं। —श्रीनिवास ग्रं०, पृ० ३५७।

जवाबदेह—वि० [अ० जवाब+फ़ा दिह०] जिसपर किसी बात का उत्तरदायित्व हो। जिम्मेदार।

जवाबदेही—संज्ञा स्त्री० [अ० जवाब+फ़ा० दिही] १. उत्तर देने की क्रिया। २. उत्तरदायित्व। उत्तर देने का भाव। जिम्मेदारी। जैसे,—मैं अपने ऊपर इतनी बड़ी जवाबदेही नहीं लेता।

जवाबसवाल—संज्ञा पुं० [अ० जवाब+सवाल] १. प्रश्नोत्तर। २. वाद विवाद।

जवाबी—वि० [अ० जवाब+फ़ा० ई (प्रत्य०)] जवाब संबंधी। जवाब का। जिसका जवाब देना हो। जैसे, जवाबी तार, जवाबी कार्ड।

जवार[1]—संज्ञा पुं० [अ०] १. पड़ोस। २. आसपास का प्रदेश।

जवार[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० ज्वार] एक अन्न। वि० दे० 'जुआर'।

जवार[3]—संज्ञा पुं०[अ० जवाल] १. अवनति। बुरे दिन। २. जंजाल। झंझट। भार।

जवार[4]†—संज्ञा पुं० [हिं० जवाहर] दे० 'जवाहर'। उ०—सो सज्जन सूरे पूरे हैं। हीरे रतन जवार। तुलसी श०, पृ० २१०।

जवारा—संज्ञा पुं० [हिं० जौ] जौ के हरे हरे अंकुर जो दशहरे के दिन स्त्रियाँ अपने भाई के कानों पर खोंसती हैं या श्रावणी और विजया दशमी में ब्राह्मण अपने यजमानों के हाथों में देते हैं। जई।

जवारिश—संज्ञा स्त्री० [अ०] वह हकीमी या यूनानी औषध जो अवलेह या चटनी जैसी होती है [को०]।

जवारिस(पु)—संज्ञा स्त्री० [अ० जवारिश] दे० 'जवारिश'। उ०—संत जवारिस सो जन पावै, जा को ज्ञान प्रगासा। —धरम०, पृ० ५।

जवारी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० जव] एक प्रकार का हार जिसमें जौ, छुहारे, मोती आदि मिलाकर गुँथे हुए होते हैं और जिसे कुछ जातियों में विवाह के उपरांत ससुर अपनी बहू को पहनाता है।

जवारी[2]—संज्ञा स्त्री० १. सितार, तंबूरे, सारंगी आदि तारवाले बाजों में लकड़ी या हड्डी आदि का छोटा टुकड़ा जो उन बाजों में नीचे की ओर बिना जुड़ा हुआ रहता है और जिसपर होकर सब तार खूँटियों की ओर जाते हैं। यह टुकड़ा सब तारों को बाजे के तल से कुछ ऊपर उठाए रहता है। घोड़ी। २. तारवाले बाजों में षड्ज का तार।

क्रि० प्र०—खोलना। —चढ़ाना। — बाँधना। —लगाना।

जवाल—संज्ञा पुं० [अ० जवाल] १. अवनति। उतार। घटाव।

क्रि० प्र०—आना। —पहुँचना।

(पु) २. जंजाल। आफत। झंझट। बखेड़ा। उ०—छाँड़ि के जवाल जाल महि तू गोपाल लाल तातें कहि दीनदयाल फंद क्यों फँसातु है।—दीन० ग्रं०, पृ० १७०।

मुहा०—जवाल में पड़ना या फँसना=आफत में फँसना। झंझट या बखेड़े में फँसना। जवाल में डालना=आफत में फँसाना।

जवाशीर—संज्ञा पुं० [फ़ा० जावशीर] एक प्रकार का गंधाबिरोजा।

विशेष—यह कुछ पीले रंग का और कुछ पतला होता है। इसमें से तारपीन की गंध आती है। इसका व्यवहार प्रायः औषधों मे होता है। वि० दे० 'गंधाबिरोजा'।

जवास—संज्ञा पुं० [सं० यवासक प्रा०, यवासअ] एक कँटीला क्षुप जिसकी पत्तियाँ करौदे की पत्तियों के समान होती हैं। उ०—अर्क जवास पात बिनु भएऊ। जस सुराज खल उद्यम गएऊ।—मानस, ४।१५।

विशेष—यह क्षुप नदियों के किनारे बलुई भूमि में आपसे आप उगता है। बरसात के दिनों मे इसकी पत्तियाँ गिर जाती हैं। वर्षा के बीत जाने पर यह फलता फूलता है। वैद्यक में इसको कड़आ, कसैला, हलका और कफ, रक्त, पित्त, खाँसी, तृष्णा तथा ज्वर का नाशक और रक्तशोधक माना गया है। कहीं कहीं गरमी के दिनो मे खस की तरह इसकी टट्टियाँ भी लगाते हैं।

पर्या०—यास। यवासक। अनंता। बालपत्र। अधिककंटक। दूरमूल। समुद्रांत। दीर्घमूल। मरूद्भव। कटकी। वनदर्भ। सूक्ष्मपत्रा।

जवासा—संज्ञा पुं० [सं० यवासक, प्रा० जवासअ] दे० 'जवास'।

जवाहाँ†—संज्ञा पुं० [?] [वि० जवाही] १. आँख का एक रोग जिसमे पलक के भीतर की ओर किनारे पर बाल जम जाते हैं। प्रवाल। परवाल। २. बैलों की आँख का एक रोग जिसमें उनकी आँख के नीचे मांस बढ़ आता है।

जवाहद—संज्ञा स्त्री० [हिं० जवा(=दाना)+हद] बहुत छोटी हद।

जवाहर—संज्ञा पुं० [अ०] रत्न । मणि ।

जवाहरखाना—संज्ञा पुं० [अ० जवाहर+फ़ा० खानह्] वह स्थान जिसमें बहुत से रत्न और आभूषण आदि रहते हों । रत्नकोष । तोशाखाना ।

जवाहरात—संज्ञा पुं० [अ०, जवाहर का बहुवचन रूप] बहुत से या अनेक प्रकार के रत्न और मणि आदि । जैसे,—अब उन्होंने कपड़े का काम छोड़कर जवाहरात का काम शुरू किया है ।

जवाहिर—संज्ञा पुं० [अ०] दे० 'जवाहर' । उ०—जटिल जवाहिर आभरन छवि के उठत तरंग । लपट गहत कर लपट सी लपट लगी सब संग ।—स० सप्तक, पृ० ३७३ ।

यौ०—जवाहिरखाना = दे० 'जवाहरखाना' ।

जवाहिरात—संज्ञा पुं० [अ०] जवाहिर का बहुवचन । दे० 'जवाहरात' ।

जवाही—वि० [हिं० जवाह] १. जिसकी आँख में जवाह रोग हुआ हो । २. जवाह रोग युक्त । जैसे, जवाही आँख ।

जविन—वि० [सं०] वेगवान । गतिशील (को०) ।

जवी¹—वि० [सं० जविन्] वेगयुक्त । वेगवान् ।

जवी²—संज्ञा पुं० १. घोड़ा । ऊँट ।

जवीय—वि० [सं० जवीयस्] अत्यंत वेगवान् । बहुत तेज ।

जवैया†—वि० [हिं० जाना+ऐया (प्रत्य०)] जानेवाला । गमनशील ।

जशन—संज्ञा पुं० [फा० जश्न, मि० सं० यजन] १. धार्मिक उत्सव । २. किसी प्रकार का उत्सव । नाचगान । जलसा । ३. आनंद । हर्ष ।

क्रि० प्र०—करना । मनाना । होना ।

४. वह नाच और गाना जिसमें कई वेश्याएँ एक साथ संमिलित हों । यह बहुधा महफिल या जलसे की समाप्ति पर होता है । उ०—क्यों भाई अब आज जशन होगा न ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ५२५ ।

जश्न—संज्ञा पुं० [फा०] दे० 'जशन' । उ०—एक जश्न सा वहाँ जमेगा, मदिराओं के दौर चलेंगे । सेठ हमारे चुने गए हैं, अबकी कौंसिल के मेंबर । —मानव, पृ० ६८ ।

जसⓅ‡¹—क्रि० वि० [सं० यादृश > जइस > जस, प्रा० जह्] जैसा । उ०—जस जस सुरसा बदन बढ़ावा । तासु दुगुन कपि रूप देखावा । —तुलसी (शब्द०) ।

जसⓅ†²—संज्ञा पुं० [सं० यश] दे० 'यश' ।

जसद—संज्ञा पुं० [सं०] जस्ता ।

जसवानⓅ—वि० [सं० यशस्वान्] यशस्वी । जिसका यश चारों ओर फैला हो । उ०—चढ़े सूर सावंत सब, रूपवान जसवान । —हम्मीर०, पृ० ५० ।

जसामत—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. लंबाई, चौड़ाई और मोटाई, गहराई या ऊँचाई । २. मोटापा । स्थूलता (को०) ।

जसारत—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. शूरता । बहादुरी । २. धृष्टता । (को०) ।

जसी—वि० [सं० यशी] कीर्तिवाला । यशवाला । यशस्वी । उ०—जाति की जान देख जोखों में, जो जसी लोग जान पर खेलें । —चुभते०, पृ० ७ ।

जसीम—वि० [अ०] मोटा । स्थूल । पीवर । पीन (को०) ।

जसुⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० यशोदा] नद की पत्नी । यशोदा । उ०—घोरोई दूध पूत के हितही । राखति जसु जमाइ नित नित ही । —नंद० ग्रं०, पृ० २४८ ।

जसुरि—संज्ञा पुं० [सं०] वज्र ।

जसुदा, जसोदाⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० यशोदा ।

जसूँद—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष ।

विशेष—इस वृक्ष के रेशों से रस्से आदि बनते हैं । इसकी लकड़ी मुलायम होती है और मेज कुर्सी आदि बनाने के काम में आती है । इसे नताउल भी कहते हैं । वि० दे० 'नताउल' ।

जसोमतिⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'यशोदा' ।

जसोवा, जसोवैⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'यशोदा' । उ०—सो तुम मातु जसोवै, मोहि न जानहु बार । जहँ राजा बलि बाँधा छोरौ पैठि पतार ।—जायसी (शब्द०) ।

जस्टिफाई—संज्ञा पुं० [अं० जस्टिफ़ाई] कंपोज किए हुए मैटर को इस सहूलियत से बैठाना या कसना कि कोई लाइन या पंक्ति छोटी बड़ी या कोई अक्षर इधर उधर न होने पाए । जैसे,—इस पेज का जस्टिफाई ठीक नहीं हुआ है ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

जस्टिस¹—संज्ञा स्त्री० [अं०] न्याय । इन्साफ (को०) ।

जस्टिस²—संज्ञा पुं० वह जो न्याय करने के लिये नियुक्त हो । न्यायमूर्ति । विचारपति । न्यायाधीश । जैसे—जस्टिस सुंदरलाल ।

विशेष—हिंदुस्तान मे हाईकोर्ट के जज जस्टिस कहलाते हैं ।

जस्टिस आफ दि पीस—संज्ञा पुं० [अं०] [संक्षिप्त रूप जे० पी०'] स्थानीय छोटे मैजिस्ट्रेट जो शांतिरक्षा, छोटे मोटे मामलों आदि का विचार करने के लिये नियुक्त किए जाते है । शांतिरक्षक । जैसे, आनरेरी मजिस्ट्रेट ।

विशेष—बंबई में कितने ही प्रतिष्ठित भारतीय जस्टिस आफ दि पीस हैं । इन्हें आनरेरी मजिस्ट्रेट ही समझना चाहिए । जज, मजिस्ट्रेट आदि भी जस्टिस आफ दि पीस कहलाते हैं । अपने महल्ले या आस पास दगा फसाद होने पर वे जस्टिस आफ दि पीस या शांतिरक्षक की हैसियत से शांतिरक्षा की व्यवस्था करते हैं ।

जस्त—संज्ञा पुं० [सं० जसद] दे० 'जस्ता' ।

जस्त—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] छलाँग । कुलाँच । जैसे,—शिकार का आहट पाते ही वह जस्त मारने को तैयार हो जाती ।—संन्यासी, पृ० ५० ।

जस्तई—वि० [हिं० जस्ता] जस्ते के रंग का । खाकी ।

जस्ता—संज्ञा पुं० [सं० जसद] कालापन लिए सफेद या खाकी रंग की एक धातु ।

विशेष—इस धातु में गंधक का अंश बहुत होता है । इसका

व्यवहार अनेक प्रकार के कार्यों में, विशेषत: लोहे की चादरों पर, उन्हें मोरचे से बचाने के लिये कलई करने, बैटरी में बिजली उत्पन्न करने तथा बरतन बनाने आदि में होता है। भारत में इसकी सुराहियाँ बनती हैं जिनमें रखने से पानी बहुत जल्दी और खूब ठंढा हो जाता है। इसे ताँबे में मिलाने से पीतल बनता है। जर्मन सिलवर बनाने में भी इसका उपयोग होता है। विशेष रासायनिक प्रक्रिया से इसका क्षार भी बनाया जाता है, जिसे 'सफेदा' कहते हैं और जिसका व्यवहार औषधों तथा रंगों में होता है। पहले यह धातु भारत और चीन में ही मिलती थी पर बाद में बेलजियम तथा प्रूशिया में भी इसकी बहुत सी खानें मिलीं। यूरोपवालों को इसका पता बहुत हाल में लगा है।

जहंदमⓅ†—[अ० जहन्नम, हिं० जहन्नुम] दे० 'जहन्नुम'। उ०—जगत जहंदम राचिया, झूठे कुल की लाज। तन बिनसें कुल बिनसिहै, गह्यो न राम जिहाज। —कबीर ग्रं०, पृ० ४७।

जहँⓅ†—क्रि० वि० [सं० यत्र, प्रा० जत्थ, अप० जहँ] दे० 'जहाँ'। उ०—अग्ग गयो गिरि निकट विकट उद्यान भयंकर। जहँ न खबरि दिसि बिदसि बहुत जहँ जीव खयंकर।—पृ० रा०, ६।६४।

यौ०—जहँ जहँ = जहाँ जहाँ। जिस जिस जगह। उ०—जहँ जहँ चरण पड़े संतन के तहँ तहँ बंटाधार।—कहावत (शब्द०)। जहँ तहँ = जहाँ तहाँ। यत्र तत्र। उ०—जहँ तहँ लोगन्ह डेरा कीन्हा। भरत सोधु सबही कर लीन्हा।—मानस, २।१९८।

जहँगीरी—संज्ञा स्त्री० [फा० जहाँगीरी] कलाई का एक आभूषण। वि० दे० 'जहाँगीरी'।

जहँड़ना†—क्रि० अ० [सं० जहन, हिं० जहँड़ाना] १. घाटा उठाना। हानि उठाना। उ०—हिंदू गूँगा गुरु कहै, मुसलिम गोयमगोय। कहै कबीर जहँड़े दोऊ, मोह नींद में सोय।—कबीर० (शब्द०)। २. धोखे में आना। भ्रम में पड़ना। उ०—अब हम जाना हो हार बाजी को खेल। डंक बजाय देखाय तमाशा बहुरि सो लेत सकेल। हरि बाजी सुर नर मुनि जहँड़े माया चेटक लाया। घर में डारि सबन भरमाया हृदया ज्ञान न आया।—कबीर (शब्द०)।

जहड़ाना†—क्रि० अ० [सं० जहन] १. हानि उठाना। २. धोखे में पड़ना। उ०—सबै लोग जहँड़ा दयौ अंधा सबै भुलान। कहा कोई नहिं मानहिं सब एकै माहँ समान।—कबीर (शब्द०)।

जहक[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० झकना] १. कुढ़न। चिढ़। खीझ। २. आवेश। उत्तेजना।

जहक[2]—वि० [सं०] छोड़ने या त्याग करनेवाला। [को०]।

जहक[3]—संज्ञा पुं० १. समय। २. बालक। शिशु। ३. साँप की केंचुल [को०]।

जहकना[1]—क्रि० अ० [हिं० चहकना] १. मस्त होना। प्रसन्न होना। आनंद से सराबोर होना। उ०—आजु कुंज मंदिर में छके रंग दोऊ बैठे, केलि करैं लाज छोड़ि रंग सों जहकि जहकि। —भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ४५०। २. उन्मत्त होना। प्रमत्त होना। उ०—जहकन लागीं कूर कोइलैं अमंद चंद लखि चहुँ ओर सो चकोर लागे जहकन। —प्रेमघन०, भा० १, पृ० २२८।

जहकना†[2]—क्रि० स० [हिं० झकना] १. चिढ़ना। कुढ़ना।

जहका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक जंतु। कटास। कटार [को०]।

जहतिया†—संज्ञा पुं० [हिं० जगात (= कर)] जगात उगाहनेवाला। भूमिकर या लगान वसूल करनेवाला। उ०—साँचो सो लिखवार कहावै। काया ग्राम मसाहत करिकै जमा बाँधि ठहरावै। मन्मथ करै कैद अपनी मे जान जहतिया लावै। माँड़ि माँड़ि खरिहान क्रोध को फोता भजन भरावै।—सूर (शब्द०)।

जहत्स्वार्था—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की लक्षणा जिसमें पद या वाक्य अपने वाच्यार्थ को छोड़कर अभिप्रेत अर्थ को प्रकट करता है। जैसे, 'मम घर गंगा माहिं' यहाँ 'गंगा माँहि' से 'गंगा के बीच' अर्थ नहीं है, किंतु 'गंगा के किनारे' अर्थ है। इसे जहल्लक्षणा भी कहते हैं।

जहदजहल्लक्षणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की लक्षणा जिसमें एक या एक से अधिक देश का त्याग और केवल एक देश का ग्रहण किया जाय। वह लक्षणा जिसमें बोलनेवाले को शब्द के वाच्यार्थ से निकलनेवाले कई एक भावों में से कुछ का परित्याग कर केवल किसी एक का ग्रहण अभिप्रेत होता है। जैसे, यह वही देवदत्त है, इस वाक्य से बोलनेवाले का अभिप्राय केवल देवदत्त से है, न कि पहले के देवदत्त से या अब के देवदत्त से। इसी प्रकार छांदोग्य उपनिषद् में आए हुए 'तत्वमसि श्वेतकेतो' अर्थात् 'हे श्वेतकेतु! वह तू ही है', आया है। इस वाक्य से कहनेवाले का अभिप्राय ब्रह्म के सर्वज्ञत्व और श्वेतकेतु के अल्पज्ञत्व या ब्रह्म की सर्वव्यापिता और श्वेतकेतु की एकदेशिता को एक ठहराने का नहीं है किंतु दोनों की चेतनता ही की ओर लक्ष्य है।

जहदना—क्रि० अ० [हिं० जहदा] १. कीचड़ होना। दलदल हो जाना।

संयो० क्रि०—जाना।—उठाना।

२. शिथिल पड़ना। थक जाना। हाँफ जाना।

जहदा†—संज्ञा पुं० [?] दलदल। बहुत अधिक कीचड़। उ०—जग जहदा में राचिया झूठे कुल की लाज। तन दीजे कुल बिनसिहै रटै न नाम जहाज। —कबीर (शब्द०)।

जहंदमⓅ†—संज्ञा पुं० [अ० जहन्नुम] दे० 'जहन्नुम'।

जहन—पुं० [फा० जेहन, जेह्न] समझ। दिमाग। बुद्धि। धारणा। उ०—बादल नीचे हो और इनसान ऊँचे पर यह बात उनके जहन में नहीं आती थी।—सैर कु०, पृ० १२।

जहनाⓅ—क्रि० स० [सं० जहन] १. त्यागना। छोड़ना। परित्याग करना। २. नाश करना। नष्ट करना। उ०—जहि पर दोष अस्त भो कैसे। फिरिहै अब उलूक सुखमै से। (शब्द)।

जहन्नम—संज्ञा पुं० [अ०] दे० 'जहन्नुम'।

जहन्नुम—संज्ञा पुं० [अ०] १. नरक। दोजख।

मुहा०—जहन्नुम में जाना (१) नष्ट या बर्बाद होना, (२) आँखों से दूर होना। जहन्नुम में जाय। हमें कोई संबंध नहीं।

विशेष—इस मुहावरे का प्रयोग दुःखजनित उदासीनता प्रकट करने के लिये होता है। जैसे,—अब वह मानता ही नहीं, तब जहन्नुम में जाय।

२. वह स्थान जहाँ बहुत दुःख और कष्ट हो।

जहन्नुमरसीद—वि० [फ़ा०] नरक में गया हुआ। दोजखी।

मुहा०—जहन्नुमरसीद करना = नष्ट करना। नामनिशान मिटा देना। जहन्नुमरसीद होना = नष्ट या बरबाद होना।

जहन्नुमी—वि० [फ़ा०] जहन्नुम में जानेवाला। नारकिक। नरकगामी।

जहमत—संज्ञा स्त्री० [अ० जहमत] १. आपत्ति। मुसीबत। आफत।

मुहा०—जहमत उठाना = दुःख भोगना। मुसीबत सहना।

२. झंझट। बखेड़ा। तरद्दुद।

मुहा०—जहमत में पड़ना = झंझट में फँसना। बखेड़े में पड़ना।

जहर[१]—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जह्र] १. वह पदार्थ जो शरीर के अंदर पहुँचकर प्राण ले ले अथवा किसी अंग में पहुँचकर उसे रोगी कर दे। विष। गरल।

यौ०—जहरदार। जहरबाद। जहरमोहरा।

मुहा०—जहर उगलना = (१) मर्मभेदी बात कहना जिससे कोई बहुत दुःखी हो। (२) द्वेषपूर्ण बात कहना। जली कटी कहना। जहर करना या कर देना = बहुत अधिक नमक मिर्च आदि डालकर किसी खाद्यपदार्थ को इतना कड़ुआ कर देना कि उसका खाना कठिन हो जाय। जहर का घूँट = बहुत कड़ुआ। बेसवाद या कड़ुआ होने के कारण न खाने योग्य। जहर का घूँट पीना = किसी अनुचित बात को देखकर क्रोध को मन ही मन दबा रखना। क्रोध को प्रगट न होने देना। जहर का बुझाया हुआ = जो बहुत अधिक उपद्रव या अनिष्ट कर सकता हो। जहर की गाँठ = विष की गाँठ। किसी पर जहर खाना = किसी बात या आदमी के कारण ग्लानि, ईर्ष्या, लज्जा आदि से आत्महत्या पर उतारू होना। जैसे,—अपने इस काम पर तो उन्हें जहर खा लेना चाहिए। जहर देना = जहर पिलाना या खिलाना। जहर मार करना = अनिच्छा या अरुचि होने पर भी जबरदस्ती खाना। जैसे,—कचहरी जाने की जल्दी थी; किसी तरह दो रोटियाँ जहर मार करके चलते बने। जहर मारना = विष के प्रभाव या शक्ति को दबाना या शांत करना। जहर में बुझाना = तीर, छुरी, तलवार, कटार आदि हथियारों को विषाक्त करना।

विशेष—ऐसे हथियारों से जब वार किया जाता है, तब उससे घायल होनेवाले मनुष्य के शरीर में उनका विष प्रविष्ट हो जाता है जिसके प्रभाव से आदमी बहुत जल्दी मर जाता है।

२. अप्रिय बात या काम। वह बात या काम जो बहुत नागवार मालूम हो। जैसे,—हमारा यहाँ आना उन्हें जहर मालूम हुआ।

मुहा०—जहर करना या कर देना = बहुत अधिक अप्रिय या असह्य कर देना। बहुत नागवार बना देना। जैसे,—उन्होंने हमारा खाना पीना जहर कर दिया। जहर मिलाना = किसी बात को अप्रिय कर देना। जहर में बुझाना = किसी बात या काम को अप्रिय बनाना। जैसे,—आप जो बात कहते हैं, जहर में बुझाकर कहते हैं। जहर लगना = बहुत अप्रिय जान पड़ना। बहुत नागवार मालूम होना।

जहर[२]—वि० घातक। मार डालनेवाला। प्राण लेनेवाला।

२. बहुत अधिक हानि पहुँचाने वाला। जैसे,- ज्वर के रोगी के लिये घी जहर है।

जहर[३]Ⓟ—संज्ञा पुं० [हिं० जौहर] दे० 'जौहर'। उ०—ग्यारह पुत्र कटाइ बारहे अजय बचायो। साजि जहर ब्रत नारि धर्म धर्म कुल रखायो।—राधाकृष्ण दास (शब्द०)।

यौ०—जहर ब्रत = जौहर का ब्रत। जौहर का कार्य रूप में परिणयन।

जहरगत—संज्ञा स्त्री० [हिं० जहर + गति] नाच की एक गत जिसमें घूँघट काढ़कर नाचा जाता है।

जहरदार—वि० [फा० जहरदार] जहरीला। विषाक्त।

जहरबाद—संज्ञा पुं० [फ़ा० जहरबाद] रक्त के विकार के कारण उत्पन्न होनेवाला एक प्रकार का बहुत भयंकर और विषाक्त फोड़ा।

विशेष—इस फोड़े के आरंभ में शरीर के किसी अंग में सूजन और जलन होती है और तदुपरांत उस अंग में फोड़ा होकर बढ़ने लगता है। इसका विष शरीर के भीतर ही भीतर शीघ्रता से फैलने लगता है और फोड़ा बड़ी कठिनता से अच्छा होता है। यह रोग मनुष्यों आदि को भी होता है। कहते हैं, इस फोड़े के अच्छे हो जाने पर भी रोगी अधिक दिनों तक नहीं जीता।

जहरमोहरा—संज्ञा पुं० [फ़ा० जहरमोहरह्] १. काले रंग का एक प्रकार का पत्थर जिसमें साँप काटने के कारण शरीर में चढ़े विष को खींच लेने की शक्ति होती है।

विशेष—यह पत्थर शरीर में उस स्थान पर रखा जाता है जहाँ साँप ने काटा हो। कहते हैं, यह पत्थर उस स्थान पर आपसे आप चिपक जाता है, और जबतक सारा विष नहीं खींच लेता, तबतक वहाँ से नहीं छूटता। यह भी प्रवाद है कि यह पत्थर बड़े मेढक के सिर में से निकलता है।

२. हरे रंग का एक प्रकार का पत्थर जो कई तरह के विषों को खींच लेता है।

विशेष—यह बहुत ठंढा होता है, इसलिये गरमी के दिनों में लोग इसे घिसकर शरबत में मिलाकर पीते हैं। खुतन देश का यह पत्थर, जिसे 'जहरमोहरा खताई' कहते हैं, बहुत अच्छा होता है।

जहरी—वि० [हिं० जहर + ई (प्रत्य०)] १. जहरवाला। विषाक्त। उ०—कुछ अमृतमयी, कुछ कुछ जहरी, कुछ झिल-

मिलती, कुछ कुछ गहरी, वह आती ज्यों नभगंधार मेरी वीणा में एक तार। —क्वासि, पृ० ७४। २. अत्यधिक मादक या नशीली वस्तु पीनेवाला। ३. कसर रखनेवाला। डाही। ईर्ष्यालु।

जहरीला—वि० [हिं० जहर+ईला (प्रत्य०)] जिसके जहर हो। जहरदार। विषाक्त। जैसे, जहरीला फल, जहरीला जानवर।

जहल[1]—संज्ञा पुं० [अ० जह्ल] नासमझी। मूर्खता। बुद्धिहीनता। उ०—गैर उसकी हुकम सूँ करना अमल। नफा नईं नुकसान है जानो जहल। —दक्खिनी०, पृ० १६२।

जहल†[2]—संज्ञा पुं० [अं० जेल] कारागार। बंदीगृह।

यौ०—**जहलखाना**=जेहलखाना। बंदीगृह। उ०—फेर जहलखाना रे हरी। — प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३५९।

जहल्लक्षणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'जहत्स्वार्था'।

जहवाँ(पु)†— क्रि० वि० [सं० यत्र] दे० 'जहाँ[1]'।

जहाँ[1]—क्रि० वि० [सं० यत्र, पा० यत्थ, प्रा० जह] १. स्थानसूचक एक शब्द। जिस स्थान पर। जिस जगह। उ०—धन्य सो देस जहाँ सुरसरी। धन्य नारि पतिव्रत अनुसरी। —तुलसी (शब्द०)।

मुहा०—जहाँ का तहाँ=अपने पहले के स्थान पर। जिस जगह पर हो, उसी जगह पर। जहाँ का तहाँ रह जाना=(१) दब जाना। आगे न बढ़ना। (२) कुछ कारवाई न होना। जहाँ तहाँ=इतस्ततः। इधर उधर। उ०—जहँ तहँ गईं सकल तब सीता कर मन सोच। मास दिवस बीते मोहि मारिहि निसिचर पोच। —तुलसी (शब्द०)।

२. सब जगह। सब स्थानों पर। उ०—रहा एक दिन अवधि कर अति आरत पुर लोग। जहँ तहँ सोचहिं नारि नर कृश तनु राम वियोग। —तुलसी (शब्द०)।

जहाँ[2]—संज्ञा पुं० [फ़ा०] जहान। संसार। लोक।

विशेष—इस रूप में इस शब्द का व्यवहार केवल कविता या यौगिक शब्दों में होता है। जैसे,— (क) जहाँ में जहाँ तक जगह पाइए। इमारत बनाते चले जाइए। (ख) जहाँगीरी। जहाँपनाह।

यौ०—**जहाँआरा**। **जहाँगर्द**=संसार में घूमनेवाला। घुमक्कड़। **जहाँगर्दी**=विश्वभ्रमण। संसारपर्यटन। **जहाँगीर**=विश्वविजयी। विश्व का शासक। **जहाँदीद**। **जहाँदीदा**। **जहाँगीरी**। **जहाँपनाह**।

जहाँआरा—वि० [फ़ा०] संसार को शोभित करनेवाला [को०]।

जहाँगीर—संज्ञा पुं० [फ़ा०] मुगल सम्राट् अकबर का पुत्र।

जहाँगीरी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. हाथ में पहनने का एक प्रकार का जड़ाऊ गहना।

विशेष—यह कई प्रकार का होता है। साधारणतः हाथ में पहनने की सोने की वे पटरियाँ जहाँगीरी कहलाती हैं, जिनपर नग जड़े होते हैं। कहीं कहीं पटरियों में कोढ़े भी जड़े होते हैं जिनमें बहुत छोटे छोटे घुँघुरुओं के फूल के आकार के गुच्छे पिरो दिए जाते हैं। इन पटरियों को भी जहाँगीरी कहते हैं।

२. हाथ में पहनने की लाख की एक प्रकार की चूड़ी।

जहाँदीद—वि० [फ़ा०] जिसने दुनियाँ को देखकर बहुत कुछ तजरबा किया हो। अनुभवी।

जहाँदीदा—वि० [फ़ा० जहाँदीदह्] दे० 'जहाँदीद'।

जहाँपनाह—संज्ञा पुं० [फ़ा०] संसार का रक्षक।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग केवल बहुत बड़े राजा के लिये ही किया जाता है।

जहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गोरखमुंडी।

जहाज—संज्ञा पुं० [अ० जहाज] बहुत अधिक बड़ी नाव जो बहुत गहरे जल विशेषतः समुद्र में चलती है। पोत।

विशेष—आजकल के जहाजों का अधिकांश भाग लोहे का ही होता है और उनके चलाने के लिये भाप के बड़े बड़े इंजिनों से काम लिया जाता है। यात्रियों को ले जाने, माल ढोने, देशों की रक्षा करने, लड़ने भिड़ने आदि कामों के लिये साधारण जहाजों की लंबाई छह सौ फुट तक होती है।

यौ०—जहाज का कौवा या कागा। जहाज का पंछी=दे०; जहाजी कौआ। उ०— (क) सीतापति रघुनाथ जू तुम लग मेरी दौर। जैसे काग जहाज को सूझत और न ठौर। —तुलसी (शब्द०)। (ख) मेरो मन अनत कहाँ सुख पावै। जैसे उड़ि जहाज को पंछी फिरि जहाज पै आवै।—सूर० १। १६७८।

जहाजरान—संज्ञा पुं० [फ़ा० जहाज+फ़ा० रां (प्रत्य०)] जहाज चलानेवाला। पोत का चालक [को०]।

जहाजरानी—संज्ञा स्त्री० [अ० जहाज+फ़ा० रानी (प्रत्य०)] जहाज चलाने का कार्य या पेशा। जहाज चलाना।

जहाजी—वि० [अ० जहाज+फ़ा० ई (प्रत्य०)] जहाज से संबंध रखनेवाला। जैसे, जहाजी बेड़ा।

यौ०—जहाजी इत्र=एक प्रकार का निकृष्ट इत्र जो कन्नौज में बनता है। जहाजी कौआ=(१) वह कौआ या कोई पक्षी जो किसी जहाज के छूटने के समय उसपर बैठ जाता है। और जहाज के बहुत दूर समुद्र में निकल जाने पर जब वह उड़ता है, तब चारों ओर कहीं स्थल न देखकर फिर उसी जहाज पर आ बैठता है। साधारणतः इससे ऐसे मनुष्य का अभिप्राय लिया जाता है जिसे अपने ठहरने या कोई काम करने के लिये एक के सिवा और कोई दूसरा स्थान न मिलता हो। (२) बहुत बड़ा धूर्त। भारी चालाक। जहाजी डाकू= वे डाकू जो समुद्रों में अपना जहाज लेकर घूमते रहते हैं और साधारण जहाजों के यात्रियों को लूट लेते हैं। समुद्री डाकू। जहाजी सुपारी=एक प्रकार की सुपारी जो साधारण सुपारी से लगभग दूनी बड़ी होती है।

जहान—संज्ञा पुं० [फ़ा०] संसार। लोक। जगत्। जैसे,—जान है तो जहान है (कहावत)।

विशेष—कविता और यौगिक शब्दों में इस शब्द का रूप 'जहाँ' हो जाता है। वि० दे० 'जहाँ' (अक्ष)।

जहानक—संज्ञा पुं० [सं०] प्रलय।

जहालत—संज्ञा स्त्री० [अ०] अज्ञान। मूर्खता। मूढ़ता।

जहियाⓟ†—क्रि० वि० [सं० यद + हिया] जिस समय। जिस दिन। जब। उ०—(क) कह कबीर कुछ अछलो न जहिया। हरि बिरवा प्रतिपालेसि तहिया।—कबीर (शब्द०)। (ख) भुजबल विश्व जितब तुम जहिया। धरिहै विष्णु मनुज तनु तहिया।—तुलसी (शब्द०)।

यौ०—जहिया तहिया = जिस किसी समय।

जहींⓟ—क्रि० वि० [सं० यत्र, पा० यत्थ] १. जहाँ ही। जिस स्थान पर। उ०—सप्त खंड सात ही तरंगिनी बहै जहीं। सोहु रूप ईश को अशेष जंतु सेवहीं।—केशव (शब्द०)।

यौ०—जहीं जहीं तहीं तहीं। उ०—जहीं जहीं विराम लेत राम जू तहीं तहीं अनेक भाँति के अनेक भोग भाग सो बढ़े।—केशव (शब्द०)।

२. ज्यों ही। उ०—सीय जहीं पहिराई। रामहि माल सुहाई। दुंदुभि देव बजाए। फूल तहीं बरसाए।—केशव (शब्द०)।

जहीन—वि० [अ० ज़हीन] १. बुद्धिमान। समझदार। २. धारणा शक्तिवाला। मेधावी।

जहु—संज्ञा पुं० [सं०] संतान। संतति। औलाद।

जहूर—संज्ञा पुं० [अ० ज़हूर या ज़ुहूर] प्रकाश। दीप्ति। उ०—जदपि रहो है भावतो सकल जगत भरपूर। बल जैये वा ठौर की जहँ ह्वै करै जहूर।—स० सप्तक, पृ० १७८।

मुहा०—जहूर में आना = प्रकट होना। जहूर में लाना = प्रकट करना।

जहूराⓟ†—संज्ञा पुं० [अ० ज़हूर या ज़ुहूर] १. देखावा। दृश्य। उ०—ये सच यार प्यार लख पूरा। रूप न रेख जहूरा। २. ठाठ। ३. लड़का।—(बाजारू)।

जहेज—संज्ञा पुं० [अ० जहेज़ मि० स० दायज] वह धन संपत्ति जो कन्या के विवाह में पिता की ओर से वर को अथवा उसके घरवालों को दी जाती है। दहेज।

जह्नु—संज्ञा पुं० [सं०] १. विष्णु। २. एक राजर्षि का नाम।

विशेष—(१) पुराणों के अनुसार जब भगीरथ गंगा को लेकर आ रहे थे, तब जह्नु ऋषि मार्ग में यज्ञ कर रहे थे। गंगा के कारण यज्ञ में विघ्न होने के भय से इन्होंने उनको पी लिया था। भगीरथ जी के बहुत प्रार्थना करने पर इन्होंने फिर गंगा को कान से निकाल दिया था। तभी से गंगा का नाम जह्नुसुता, जाह्नवी आदि पड़ा। (२) इस शब्द के साथ कन्या, सुता, तनया आदि पुत्रीवाचक शब्द लगाने से गंगा का अर्थ होता है।

यौ०—जह्नुजा। जह्नुकन्या। जह्नुतनया। जह्नुसप्तमी। जह्नुसुता।

जह्नुकन्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा।

जह्नुजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा। उ०—जो पृथ्वी के विपुल सुख की माधुरी है विपाशा। प्राणी सेवा जनित सुख की प्राप्ति तो जह्नुजा है।—प्रिय०, पृ० २४४।

जह्नुतनया—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा।

जह्नुसप्तमी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वैशाख शुक्ला सप्तमी। कहते हैं, इसी दिन जह्नु ने गंगा को पान किया था।. गंगासप्तमी।

जह्नुसुता—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा।

जह्र—संज्ञा पुं० [अ० ज़ह्र] विष। जहर [को०]।

जांगल[1]—संज्ञा पुं० [सं० जाङ्गल] १. तीतर। २. मांस। ३. वह देश जहाँ जल बहुत कम बरसता हो, धूप और गरमी अधिक पड़ती हो, हरे वृक्षों या घास आदि का अभाव हो, करील मदार, बेल और शमी आदि के पेड़ हों और बारहसिंघे तथा हिरन आदि पशु रहते हों। ४. ऐसे प्रदेश में पाए जानेवाले हिरन और बारहसिंघे आदि जंतु जिनका मांस मधुर, रूखा, हलका, दीपन, रुचिकारक, शीतल और प्रमेह, कठमाला तथा श्लीपद आदि रोगों का नाशक कहा गया है।

जांगल[2]—वि० जंगल संबंधी। जंगली।

जांगलि—संज्ञा पुं० [सं० जाङ्गलि] १. सँपेरा। साँप पकड़नेवाला। मदारी। २. विषवैद्य। साँप का जहर उतारनेवाला।

जांगलिक—संज्ञा पुं० [सं० जाङ्गलिक] दे० 'जांगलि'।

जांगली—संज्ञा स्त्री० [सं० जाङ्गली] कौंछ। केंवाच।

जांगलू—वि० [फा० जंगल] गँवार। जंगली। उजड्ड।

जांगी—संज्ञा पुं० [फ़ा० जंग ?] नगाड़ा।—(डिं०)।

जांगुल—संज्ञा पुं० [सं० जाङ्गुल] १. तोरई। तरोई। २. विष। ३. दे० 'जंगुल'।

जांगुलि—संज्ञा पुं० [सं० जाङ्गुलि] साँप पकड़नेवाला। गारुड़ी। सँपेरा।

जांगुलिक—संज्ञा पुं० [सं० जाङ्गुलिक] दे० 'जांगुलि'।

जांगुली—संज्ञा स्त्री० [सं० जाङ्गुली] साँप का विष उतारने की विद्या।

जांघिक—संज्ञा पुं० [सं० जाङ्घिक] १. उष्ट्र। ऊँट। २. एक प्रकार का मृग जिसे शिकारी भी कहते हैं। ३. वह जिसकी जीविका बहुत दौड़ने आदि से ही चलती है। जैसे, हरकारा।

जांतव—वि० [सं० जान्तव] जंतु संबंधी। जतुजन्य।

जांबⓟ†—संज्ञा पुं० [सं० जाम्बव] जामुन का फल या वृक्ष।

जांबवंत—संज्ञा पुं० [सं० जाम्बवत् > जाम्बवन्त] दे० 'जांबवान्'। उ०—(क) महाधीर गंभीर वचन सुनि जांबवंत समझाए। बढ़ी परस्पर प्रीति रीति तब भूषण सिया दिखाए।—सूर (शब्द०)। (ख) जांबवंत सुतासुत कहौ मम सुता बुद्धि वंत पुरुष यह सब सँभारे।—सूर (शब्द०)।

जांबव—संज्ञा पुं० [सं० जाम्बव] १. जामुन का फल। जंबू फल। २. जामुन के फल से बनी हुई शराब। जामुन का बना मद्य। ३. जामुन का सिरका। ४. सोना। स्वर्ण।

जांबवक—संज्ञा पुं० [सं० जाम्बवक] दे० 'जांबव'।

जांबवत्—संज्ञा पुं० [पुं० जाम्बव] दे० 'जांबवान्'।

जांबवती—संज्ञा स्त्री० [सं० जाम्बवती] १. जाम्बवान् की कन्या जिसके साथ श्रीकृष्ण ने विवाह किया था। उ०—(क)

जांबवती भरपी कन्या भरि मणि राखी समुहाय। करि हरि ध्यान गए हरिपुर को जहाँ योगेश्वर जाय। —सूर (शब्द०)। (ख) रिच्छराज वह मनि तासों लै जांबवती कौं दीन्हीं। जब प्रसेन की बिलंब भई तब सत्राजित सुध लीन्हीं। —सूर०, १०। ४१६०।

विशेष—भागवत में लिखा है कि श्रीकृष्ण जब स्यमंतक मणि की खोज में जंगल में गए थे, तब वहीं उन्होंने जांबवान् को परास्त करके वह मणि पाई थी और उसकी कन्या जांबवती से विवाह किया था।

२. नागदमनी। नागदौन।

जांबवान्—संज्ञा पुं० [सं० जाम्बवान्] सुग्रीव के मंत्री का नाम जो ब्रह्मा का पुत्र माना जाता है।

विशेष—इनके विषय में यह प्रसिद्ध है कि यह रीछ थे। रावण के साथ युद्ध करने में त्रेता युग में इन्होंने रामचंद्र को बहुत सहायता दी थी। भागवत में लिखा है कि द्वापर युग में इसी की कन्या जांबवती के साथ श्रीकृष्ण ने विवाह किया था। यह भी कहा जाता है कि सतयुग में इन्होंने वामन भगवान् की परिक्रमा की थी। इस कथा का उल्लेख रामचरितमानस (किष्किंधा कांड, दोहा २८) में भी है; यथा—बलि बाँधत प्रभु बाढ़ेउ सो तनु बरनि न जाय। उभय घरी महँ दीन्हीं सात प्रदच्छिन धाय।

जांबवि—संज्ञा पुं० [सं० जाम्बवि] वज्र।

जांबवी—संज्ञा स्त्री० [सं० जाम्बवी] १. जांबवान् की पुत्री। जांबवती। २. नागदमनी।

जांबवोष्ठ—संज्ञा पुं० [सं० जाम्बवोष्ठ] जांबोवष्ठ नामक छोटा अस्त्र जिससे प्राचीन काल में फोड़े आदि जलाए जाते थे।

जांबीर—संज्ञा पुं० [सं० जाम्बीर] जंबीरी नीबू। जँभीरी नीबू।

जांबील—संज्ञा पुं० [सं० जाम्बील] १. पैर के घुटनेवाली गोल हड्डी। २. जंबीरी नीबू (को०)।

जांबुक—वि० [सं० जाम्बुक] जंबुक संबंधी। शृगाल संबंधी (को०)।

जांबुमाली—संज्ञा पुं० [सं० जाम्बुमालिन्] प्रहस्त नामक राक्षस के पुत्र का नाम जिसे अशोक वाटिका उजाड़ते समय हनुमान ने मार डाला था।

जांबुवत्—संज्ञा पुं० [सं० जाम्बुवत्] दे० 'जांबवान्'।

जांबुवान—संज्ञा पुं० [सं० जाम्बुवान्] दे०'जांबवान्'।

जांबू—संज्ञा पुं० [सं० जम्बू] दे० 'जंबू' (द्वीप)। उ०—जांबू और पलाक्ष है शालमली कुश चारि। क्रौंच संकला द्वीप षट पुष्कर सात विचारि —(शब्द०)।

जांबूनद—संज्ञा पुं० [सं० जाम्बूनद] १. धतूरा। २. सोना। ३. स्वर्णाभूषण (को०)।

जांबोष्ठ—संज्ञा पुं० [सं० जाम्बोष्ठ] प्राचीन काल का एक प्रकार का छोटा अस्त्र जिससे फोड़े आदि जलाए जाते थे।

जाँ[१]—वि०, संज्ञा स्त्री० [सं० जा] दे० 'जा'[१]।

जाँ[२]—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] प्राण। जान।

जाँ[३]—वि० [फ़ा० जा] दे० 'जा'[४]।

जाँउनि‡(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० जामुन] दे० 'जामुन'।

जाँग[१]—संज्ञा पुं० [देश०] घोड़ों की एक जाति। उ०—जरदा, जिरही, जाँग, सुनौची, ऊदे खंजन। कर रकवाहे कवल गिलमिली गुलगुल रंजन। —सूदन (शब्द)।

जाँग[२]—संज्ञा स्त्री० [हिं० जाँघ] दे० 'जाँघ'।

जाँगड़ा—संज्ञा पुं० [देश०] राजाओं का यश गानेवाला। भाट। बंदी।

जाँगड़िया—संज्ञा, पुं० [देश०] दे० 'जांगड़ा'। उ०—(क) जांगड़िया दूहा दिए सिंधू राग मल्हार। —बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० ६६। (ख) कुण पूछे ढोलाकणो जांगड़िया नूँ जाब। —बाँकी० ग्रं०, भा०२, पृ०१०।

जाँगर[१]—संज्ञा पुं० [हिं० जान या जाँघ > जाँग + फ़ा० गर (प्रत्य०)] १. शरीर। देह। २. हाथ पैर। ३. पौरुष। बल। शक्ति।

यौ०—जाँगरचोर = जो काम करने से जी चुराता हो। आलसी। ढीलहराम। जाँगरतोड़ = मेहनत करनेवाला। मेहनती। जैसे, जाँगरतोड़ आदमी, जाँगरतोड़ काम।

मुहा०—जाँगर टूटना, जाँगर थकना = शरीर शिथिल होना। पौरुष या श्रमशक्ति का जवाब देना।

जाँगर[२]—संज्ञा पुं० [देश०] खाली डंठल जिसमें से अन्न झाड़ लिया गया हो। उ०—तुलसी त्रिलोक की समृद्धि सौज संपदा अकेलि चाकि राखी रासि जाँगर जहान भो। —तुलसी (शब्द०)।

जाँगरा—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'जागड़ा'। उ०—करैं जाँगरे आलाप बिरद कलाप भूप प्रताप। अतिशय मिजाजी चढ़े बाजी करत अरि उर ताप—रघुराज (शब्द०)।

जाँगलू—वि० [हिं० जंगल] दे० 'जागलू'।

जाँगी—संज्ञा पुं० [फ़ा० जंग] नगाड़ा। —(डिं०)।

जाँघ—संज्ञा स्त्री० [सं० जङ्घ (=पिंडली)] घुटने और कमर के बीच का अंग। ऊरु।

जाँघा†—संज्ञा पुं० [देश०] १. हुक।—(पूरबी)। २. कुएँ के ऊपर गड़ारी रखने का खंभा। ३. लकड़ी या लोहे का वह धुरा जिसमें गड़ारी पहनाई हुई होती है।

जाँघिया—संज्ञा पुं० [हिं० जाँघ + इया (प्रत्य०)] १. लँगोट की तरह पहनावे का जाँघ को ढकने का एक प्रकार का सिला हुआ वस्त्र। काछा।

विशेष—यह पायजामे की तरह का कमर में पहनने का एक प्रकार का सिला हुआ पहनावा है जिसकी चुस्त मोहरियाँ घुटनों के ऊपर कमर और पैर के जोड़ तक ही रहती हैं। इसमें पूरी रान दिखाई पड़ती है। इसे प्रायः पहलवान और नट आदि लँगोटे के ऊपर पहनते हैं।

२. मालखंभ की एक प्रकार की कसरत।

विशेष—इसमे बेंत को पैर के अँगूठे और दूसरी उँगली से पकड़कर पिंडली में लपेटते हुए दूसरी पिंडली पर भी लपेटते

हैं और तब दूसरे पैर के अंगूठे से बेंत को पकड़कर नीचे की ओर सिर करके लटक जाते हैं।

जाँघिल†[1]—संज्ञा पुं० [हिं० जाँघ] वह बैल जिसका पिछला पैर चलने में लच खाता हो।

जाँघिल†[2]—वि० जिसका पैर चलने में लच खाता हो।

जाँघिल[3]—संज्ञा पुं० [देश०] १. खाकी रंग की एक चिड़िया।

विशेष—इसकी गरदन लंबी होती है। इसका मांस स्वादिष्ट होता है और उसी के लिये इसका शिकार किया जाता है।

२. प्रायः एक बालिश्त लंबी एक प्रकार की छोटी चिड़िया।

विशेष—इसकी छाती और पीठ सफेद, पर काले, चोंच और सिर पीला, पैर खाकी और दुम गुलाबी रंग की होती है।

जाँच—संज्ञा स्त्री० [हिं० जाँचना] १. जाँचने की क्रिया या भाव। परीक्षा। परख। इम्तहान। आजमाइश। २. गवेषणा। तहकीकात।

यौ०—जाँच पड़ताल=खोज के साथ किसी बात का पता लगाना। छानबीन।

जाँचक†Ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० याचक] दे० 'जाचक' या 'याचक'। उ०—जाँचक पैं जाँचक कहूं जाँचे ? जो जाँचे तो रसना हारी।—सूर, १।३४।

जाँचकता†Ⓟ—संज्ञा स्त्री० [सं० याचकता] दे० 'जाचकता' या 'याचकता'। उ०— (क) जेहि जाँचत जाँचकता जरि जाइ जो जारति जोर जहानहि रे। –तुलसी (शब्द०)। (ख) सुख दीनता दुखी इनके दुख जाँचकता अकुलानी।—तुलसी (शब्द०)।

जाँचकताईⓅ—संज्ञा स्त्री [हिं० जाँचक+ताई (प्रत्य०)] दे० 'जाचकता'।

जाँचना—क्रि० स० [सं० याचना] १. किसी विषय की सत्यता या असत्यता अथवा योग्यता या अयोग्यता का निर्णय करना। सत्यासत्य आदि का अनुसंधान करना। यह देखना कि कोई चीज ठीक है या नहीं। जैसे, हिसाब जाँचना, काम जाँचना।

संयो० क्रि०—देखना। —रखना। —डालना।

२. किसी बात के लिये प्रार्थना करना। माँगना। उ०—(क) जिन जाँच्यों जाइ रस नंदराय ठरे। मानो बरसत मास असाढ़ दादुर मोर ररे। — सूर (शब्द०)। (ख) रावन मरन मनुज कर जाँचा। प्रभु विधि बचन कीन्ह चह साँचा। —तुलसी (शब्द०)। (ग) यही उदर के कारने जग जाँच्यो निसि याम। स्वामिपनो सिर पर चढ्यो सरयो न एको काम। —कबीर (शब्द०)।

जाँजराⓅ†—वि० [सं० जर्जर, प्रा० जज्जर] [वि० स्त्री० जाजरी] जो बहुत ही जीर्ण हो। जर्जर। जीर्ण शीर्ण। उ०—लाग्यो यहै दोष जु में रोष हूं। धनुष तोरी जाँजरो, पुरानो हो मैं जानो गयो काम सो। —हनुमान (शब्द०)।

जाँझⓅ†—संज्ञा पुं० [सं० झञ्झा] वह वर्षा जिसके साथ तेज हवा भी हो।

जाँझाⓅ†—संज्ञा पुं० [सं० झञ्झा] दे० 'जाँझ'।

जाँट—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पेड़ जिसे रिया भी कहते हैं।

जाँत—संज्ञा पुं० [सं० यन्त्र] आटा पीसने की बड़ी चक्की। जाँता। उ०—धरती सरग जाँत पट दोऊ। जो तेहि बिच जिउ राख न कोऊ। —जायसी ग्रं०, पृ० ६३।

जाँता—संज्ञा पुं० [सं० यन्त्र] १. आटा पीसने की पत्थर की बड़ी चक्की जो प्रायः जमीन मे गड़ी रहती है।

क्रि० प्र०—चलाना। —पीसना।

२. सुनारों और तारकशों आदि का एक औजार।

विशेष—यह इस्पात या फौलाद लोहे की एक पटरी होती है जिसमें क्रमशः बड़े छोटे अनेक छेद होते हैं। उन्हीं में कोई धातु की बत्ती या मोटा तार आदि रखकर उसे खींचते खींचते लबा और महीन तार बना लेते हैं। इसे जंती भी कहते हैं।

जाँदू—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार के पेड़ का नाम।

जाँनⓅ[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्ञान] ज्ञान। जानकारी। उ०—सखे जीव जेते सु केते जिहांनं। भ्रमै जत्र तत्र सु पावै न जानं। —हृ० रासो, पृ० ३५।

जाँन[2]—संज्ञा पुं० [सं० यान] गमन। जाना।

यौ—आवाजाँन=आवागमन। उ०—त्रिवेणी कर असनानं। तेरा मेट जाय आवाजाँन। —रामानद०, पृ० ६।

जाँनⓅ†[3]—संज्ञा स्त्री० [सं० यान, यात्रा] बारात। उ०—ब्रदावन बैसाख पर सोहे जान ससोह। —रा०रू०, पृ० ३४७।

जाँपना—क्रि० सं० [अप० चंप, चप्प] दे० 'चाँपना'।

जाँपनाह†—संज्ञा पुं० [फ़ा० जहाँपनाह] दे० 'जहाँपनाह'।

जाँबⓅ†—संज्ञा पुं० [सं० जम्बा] जबू फल। जामुन। जाम। उ०—(क) काहू गही अब की डारा। कोई बिरछ जाँब अति छारा। —जायसी (शब्द०)। (ख) श्याम जाँब कस्तूरी चोवा। अब जो ऊँच हृदय तेहि रोवा।—जायसी (शब्द०)।

जाँबख्शी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] प्राणदान। जीवनदान। उ०—हुजूर यह गुलाम का लड़का है। हुजूर इसकी जाँबख्शी करें, हुजूर का पुराना गुलाम हूँ। —काया०, पृ० १६५।

जाँबाज—वि० [फ़ा० जाँबाज़] प्राण निछावर करनेवाला। जान की बाजी लगा देनेवाला। साहसी। उ०—जिसके लिये जाँबाज है परवानए बेखौफ। —कबीर म०, पृ० ४६७।

जाँबाजी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जाँबाजी] जान की बाजी। प्राणों का दाँव। साहस। उ०— पै एतो हूँ हम सून्यो, प्रेम अजूबो खेल। जाँबाजी बाजी जहाँ, दिल का दिल से मेल। —रसखान०, पृ० ११।

जाँमलⓅ†—वि० [सं० यमल] दो। दोनों। उ०—भूप द्वार असफ्फन भंडारी, हेमराज जाँमल हितकारी। —रा० रू०, पृ० ३१५।

जाँयँ†—वि० [फ़ा० जा] मुनासिब। वाजिब। उचित।

यौ०—बेजाँयँ। जाँयँ बेजाँयँ।

जाँवतⓅ—अव्य० [सं० यावत्, हिं०, जावत] दे० 'यावत्'। उ०—जाँवत जग साखा बन ढाँखा। जाँवत केस रोम पखि पाँखा।

—जायसी (शब्द०)। (ख) पुन रूपवंत बखानो काहा। जाँवत जगत सबै मुख चाहा। —जायसी (शब्द०)।

जाँवरⓅ†—संज्ञा पुं० [हिं० जाना] गमन। प्रस्थान। जाना। उ०—नव नव लाड़ लड़ाइ लड़िल नाहीं नाहीं कहूँ ब्रज जाँवरो। —स्वामी हरिदास (शब्द०)।

जा[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. माता। माँ। २. देवरानी। देवर की स्त्री।

जा[2]—वि० स्त्री० [सं० तुल० फ़ा० (प्रत्य) जा (= उत्पन्न करनेवाला)] उत्पन्न। संभूत। जैसे, गिरिजा, जनकजा।

जा[3]Ⓟ†—सर्व० [हिं० जो] जो। जिस। उ०—(क) जाकर जा-पर सत्य सनेहू। सो तेहि मिलहि न कछु संदेहू। —तुलसी (शब्द०)। (ख) इक समान जब ह्वै रहत लाज काम ये दोइ। जा तिय के तन में तबहि मध्या कहिए सोइ। —पद्माकर ग्रं०, पृ० ८७। (ग) मेरी भवबाधा हरौ राधा नागरि सोइ। जा तन की झाँई परें स्यामु हरितदुति होइ। —बिहारी र०, दो० १।

जा[4]—वि० [फ़ा०] मुनासिब। उचित। वाजिब। जैसे,—आपकी बात बहुत जा है

यौ०—बेजा = नामुनासिब। जो ठीक न हो।

जा[5]—संज्ञा पुं० स्थान। जगह। उ०—कुछ देर रहा हक्का बक्का भौचक्का सा आ गया कहाँ। क्या करूँ यहाँ जाऊँ किस जा। मिलन०, पृ० १६०।

जाइंट—संज्ञा पुं० [अं० ज्वाइंट] १. जोड़। पैबंद। २. गिरह। गाँठ। (मिस्तरी)। ३. दे० 'ज्वाइंट'।

जाइⓅ‡—वि० [हिं० जाना] व्यर्थ। वृथा। निष्प्रयोजन। बेफायदा। उ०—सुमन सुमन अरपन लिए उपवन ते घन ल्याइ। घरनी धरि हरि तकि कहो ह्वाइ भयो श्रम जाइ। —(शब्द०)।

जाइफर—संज्ञा पुं० [सं० जातीफल] दे० 'जायफल'।

जाइफल—संज्ञा पुं० [सं० जातीफल] दे० 'जायफल'।

जाइस—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'जायस'।

जाई[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० जा (= उत्पन्न)] कन्या। बेटी। पुत्री। उ०—खुशहाली हुई बाप होर माई कूँ। सुलक्खन हुआ पूत उस जाई कूँ। —दक्खिनी०, पृ० ३६०।

जाई[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० जाती] जाती। चमेली।

जाउँनि†Ⓟ—संज्ञा स्त्री० [हिं० जामुन] दे० 'जामुन'।

जाउर‡—संज्ञा पुं० [हिं० चाउर (= चावल)] मीठा और चावल डालकर पकाया हुआ दूध। खीर।

जाएल†—संज्ञा पुं० [देश०] दो बार जोता हुआ खेत।

जाएस—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'जायस'।

जाकⓅ†—संज्ञा पुं० [सं० यक्ष, प्रा० जक्ख, जक्ष] यक्ष।

जाकट—संज्ञा पुं० [अं० जैकेट] दे० 'जाकेट'।

जाकड़—संज्ञा पुं० [हिं० जाकर; अथवा हिं० जकड़ना (= बाँधना)] १. दुकानदार के यहाँ से कोई माल इस शर्त पर ले आना कि यदि वह पसंद न होगा, तो फेर दिया जायगा। पक्का का उलटा। २. इस प्रकार (शर्त पर) लाया हुआ माल।

यौ०—जाकड़ बही।

जाकड़बही—संज्ञा स्त्री० [हिं० जाकड़ + बही] वह बही जिसमें दुकानदार जाकड़ पर दिए हुए माल का नाम, किस्म और दाम आदि टाँक लेते हैं।

जाकिट†—संज्ञा स्त्री० [अं० जैकेट] दे० 'जाकेट'।

जाकेट—संज्ञा स्त्री० [अं० जैकेट] कुर्ती या सदरी की तरह का एक प्रकार का अंग्रेजी पहनावा।

जाखⓅ—संज्ञा पुं० [सं० यक्ष, प्रा० जक्ख] दे० 'यक्ष'। उ०—कोरी मटुकी दह्यो जमायो जाख न पूजन पायो। तिहि घर देव पितर काहे कों जा घर कान्हर आयो। —सूर०, १०।३४६।

जाखन†—संज्ञा स्त्री० [देश०] पहिए के आकार का गोल चक्कर जो कूओं की नींव में दिया जाता है। जमवट। नेवार।

जाखिनीⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० यक्षिणी, प्रा० जक्खिणी] दे० 'यक्षिणी'। उ०—राघव करै जाखिनी पूजा। चहै सो भाव देखावै दूजा। —जायसी (शब्द०)।

जाग[1]—संज्ञा पुं० [सं० यज्ञ] यज्ञ। मख। उ०—(क) तप कीन्हें सो बैठैं भाग। ता तैसी तुम कीजो जाग। जज्ञ कियें गंध्रबपुर जैहौ। तहाँ आइ मोकों तुम पैहौ। —सूर०, ६।१२। (ख) दच्छ लिए मुनि बोलि सब करन लगे बड़ जाग। नेवते सादर सकल सुर जे पावत मख भाग। —तुलसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना। —जागना। —जयना। उ०—बहुत महा मुनि जाग जयो। नीच निसाचर देत दुसह दुख कृस तनु ताप तयो। —तुलसी (शब्द०)।

जाग[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० जगह] १. जगह। स्थान। ठिकाना। उ०—(क) तुहिकौ न मुहिकौ कहीं लुहिकौ रही न जाग, भाग कुल और तोपखाना बाघ ब्यावा है। —सूदन (शब्द०)। (ख) कुदरत वाकी भर रही रसनिधि सबही जाग। ईंधन बिन बनियो रहै ज्यों पाहन में आग। —रसनिधि (शब्द०)। २. गृह। घर। मकान। —(डिं०)।

जाग[3]—संज्ञा स्त्री० [हिं० जागना] जागने की क्रिया या भाव। जागरण। उ०—घटती होइ जाहि ते अपनी ताको कीजै त्याग। धोखे कियो बास मन भीतर अब समझे भइ जाग। —सूर (शब्द०)।

जाग[4]—संज्ञा पुं० [देश०] वह कबूतर जो बिलकुल काले रंग का हो।

जाग[5]—संज्ञा पुं० [अं० जक] जहाज का भांडाररक्षक।

जागत—संज्ञा पुं० [सं०] जगती छंद।

जागता—वि० [सं० जाग्रत] [वि० स्त्री० जागती] १. सजग। सचेत। २. तेजस्वी। चमत्कारिक।

मुहा०—जागता = प्रत्यक्ष। साक्षात्। जैसे, जागती जोत, जागती कला। उ०—जाहिरै जागति सी जमुना जब बूड़ै बहै उमहै वह बेनी। —पद्माकर (शब्द०)।

जागतिक—वि० [सं०] जगत्संबंधी। सांसारिक [को०]।

जागती कला—संज्ञा स्त्री० [हिं० जागना + कला] दे० 'जागती जोत'।

जागती जोत—संज्ञा स्त्री० [हिं० जागना + सं० ज्योति] १. किसी देवता विशेषत: देवी की प्रत्यक्ष महिमा या चमत्कार। २. चिराग। दीपक।

जागना[1]—क्रि० अ० [सं० जागरण] १. सोकर उठना। नींद त्यागना। उ०—प्राइ जगावहिं चेला जागहु। आवा गुरु पाय उठि लागहु।—जायसी (शब्द०)।

संयो० क्रि०—उठना।—पड़ना।

२. निद्रारहित रहना। जाग्रत अवस्था में होना। ३. सजग होना। चैतन्य होना। सावधान होना। उ०—जरठाई दसा रवि काल उयो अजहूँ जड़ जीव न जागहि रे।—तुलसी (शब्द०)। ४. उदित होना। चमक उठना। उ०—(क) भागत अभाग अनुरागत विराग भाग जागत आलस तुलसी से निकाम के।—तुलसी (शब्द०)। (ख) निश्चय प्रेम पीर एहि जागा। कसे कसौटी कंचन लागा।—जायसी (शब्द०)। ५. समृद्ध होना। बढ़ चढ़कर होना। उ०—पद्माकर स्वादु सुधा तें सरै मधु तें महा माधुरी जागती है।—पद्माकर (शब्द०)। ६. जोर शोर से उठना। समुत्थित होना। जैसे, लोकमत का जागना। ७. प्रज्वलित होना। जलना। ८. प्रादुर्भूत होना। अस्तित्व प्राप्त करना। ९. प्रसिद्ध होना। मशहूर होना। उ०—आयो लोंचि माँगि मैं तेरो नाम लिया रे। तेरे बल बलि आजु लौं जग जागि जिया रे।—तुलसी (शब्द०)।

जागना[2]Ⓟ—क्रि० अ० [सं० यजन] यज्ञ करना। उ०—पयसि पयागे जाग सत जागइ सोइ पावए बहु भागी।—विद्यापति, पृ० ४१७।

जागनौल—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का हथियार।

जागबलिक—संज्ञा पुं० [सं० याज्ञवल्क्य] एक ऋषि। दे० 'याज्ञवल्क्य'। उ०—जागबलिक जो कथा सुहाई। भरद्वाज मुनिवरहिं सुनाई।—तुलसी (शब्द०)।

जागर—संज्ञा पुं० [सं०] १. जागरण। जाग। जागने की क्रिया। उ०—सुनि हरिदास यहै जिय जानौ सुपने को सो जागर। —हरिदास (शब्द०)। २ कवच। अंगत्राण। जिरह बख्तर। ३. अंतःकरण की वह अवस्था जिसमें उसकी सब वृत्तियाँ (मन, बुद्धि, अहंकार आदि) प्रकाशित या जाग्रत हों।

जागरक—वि० [सं०] जाग्रत। चैतन्य [को०]।

जागरण—संज्ञा पुं० [सं०] १. निद्रा का अभाव। जागना। २ किसी व्रत, पर्व या धार्मिक उत्सव के उपलक्ष में अथवा इसी प्रकार के किसी और अवसर पर भगवद्भजन करते हुए सारी रात जागना। उ०—बासर ध्यान करत सब बीत्यो। निशि जागरन करन मन भीत्यो।—सूर (शब्द०)।

जागरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'जागरण' [को०]।

जागरित[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. नींद का न होना। जागरण। २. सांख्य और वेदांत के मत से वह अवस्था जिसमें मनुष्य को इंद्रियों द्वारा सब प्रकार के व्यवहारों और कार्यों का अनुभव होता रहे।

जागरित[2]—वि० जागा हुआ। चैतन्य। सचेत।

जागरित स्थान—संज्ञा पुं० [सं०] वह आत्मा जो जागरित स्थिति में हो।

जागरितांत—संज्ञा पुं० [सं० जागरितान्त] वह आत्मा जो जागरित स्थिति में हो। जागरित स्थान।

जागरिता—वि० [सं० जागरित] [वि०स्त्री० जागरित्री] जागा हुआ। चैतन्य।

जागरी—वि० [सं० जागरिन्] दे० जागरिता[2]।

जागरू—संज्ञा पुं० [देश० जाँगर + हिं० ऊ (प्रत्य०)] १. भूसा आदि मिला हुआ वह खराब अन्न जो दँवाई के बाद अच्छा अन्न निकाल लेने पर बच रहता है। २. भूसा।

जागरूक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो जाग्रत अवस्था में हो। चैतन्य।

जागरूक[2]—वि० जागता हुआ। निद्रारहित। सावधान।

जागरूप—वि० [हिं० जागना + रूप] जो बहुत ही प्रत्यक्ष और स्पष्ट हो।

जागर्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जागरण। जाग्रति। २. चेतनता।

जागर्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'जागर्ति' [को०]।

जागा†—संज्ञा स्त्री० [हिं० जगह] दे० 'जगह'।

जागाह†Ⓟ—संज्ञा स्त्री० [फा० जायगाह, हिं० जगह] स्थान। जगह। उ०—कोई झगड़े अपनी जागाह पर, यह मेरी है यह तेरी है। —राम० धर्म० (सं०), पृ० ९२।

जागी†Ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० यज्ञ, अथवा देशज, जाँगड़ा, जाँगरा] भाट।

जागीर—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] ऐसी भूमि जो राजा, बादशाह, नवाब आदि किसी को प्रदान करते हैं। वह गाँव या जमीन आदि जो किसी राज्य या शासक आदि की ओर से किसी को उसकी सेवा के उपलक्ष में मिले। सेवा के पुरस्कार में मिली हुई भूमि। जमीन। मुआफी। तअल्लुका। परगना।

क्रि० प्र०—देना।—पाना।—मिलना।

यौ०—जागीर खिदमती = सेवा के बदले में मिली जागीर। जागीर मनसबी = वह जागीर जो किसी मनसब, किसी पद के कारण प्राप्त हो।

जागीरदार—संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह जिसे जागीर मिली हो। जागीर का मालिक।

जागीरदारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] दे० 'जागीरी'।

जागीरीⓅ†—संज्ञा स्त्री० [फा० जागीर + ई (प्रत्य०)] १. जागीरदार होने का भाव। २. अमीरी। रईसी। उ०—भागता सो फ़किया पीठ जो लागा धाय। जागीरी सब ऊतरी धनी न कहसी आव।—कबीर (शब्द०)। ३. जागीर के रूप में मिली मिलकियत।

जागुड—संज्ञा पुं० [सं० जागुड] १. केसर। २. एक प्राचीन देश का नाम। ३. इस देश का निवासी।

जागृति—संज्ञा स्त्री० [सं० जागर्ति] दे० 'जागरण'।

जागृवि—संज्ञा पुं० [सं०] १. राजा । २. आग । ३. जागरण (को०) ।

जाग्रत¹—वि० [सं० जाग्रत्] १. जो जागता हो । सजग । सावधान । २. व्यक्त । प्रकाशमान । स्पष्ट (को०) ।

जाग्रत²—संज्ञा पुं० वह अवस्था जिसमें शब्द, स्पर्श आदि सब बातों का परिज्ञान और ग्रहण हो ।

जाग्रति—संज्ञा स्त्री० [सं० जाग्रत] जागरण । जागने की क्रिया ।

जाघनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. ऊरु । जाँघ । जंघा । २. पुच्छ । पूँछ (को०) ।

जाचक(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० याचक] १. माँगनेवाला । वह जो माँगता हो । भिक्षुक । मंगन । भिखारी । उ०—(क) भर नाग सुरासुर जाचक जो तुम्ह सों मन भावत पायो न कै । —तुलसी (शब्द०) । (ख) नंद पौरि जे जाँचन आए । बहुरौ फिरि जाचक न कहाए । —१०।३२ । २. भीख माँगनेवाला । भिखमंगा । उ०—दोऊ चाह भरे कछू चाहत कह्यो कहै न । नहिं जाचक सुनि सूम लौं बाहर निकसत बैन । —बिहारी (शब्द०) ।

जाचकता(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० याचकता] १. माँगने का भाव । भीख माँगने की क्रिया । भिखमंगी । उ०—जेहि जाचे सो जाचकता बस फिरि बहु नाच न नाच्यो । —तुलसी (शब्द०) ।

जाचना(पु)†—क्रि० स० [सं० याचन] माँगना । उ०—जेहि जाचे सो जाचकता बस फिरि बहु नाच न नाच्यो ।—तुलसी (शब्द०) ।

जाजन(पु)—क्रि० स० [सं० याजन] यज्ञ कराना । उ०—जजन जाजन जाप रटन तीरथ दान ओषधी रसिक गदमूल देता । —रै० बानी, पु० २ ।

जाजना¹(पु)†—क्रि स० [हिं० जाना] जाना । जाने की क्रिया या भाव । उ०—आलंब न और जगदीसै कही जाजे कहाँ, आगि कै तो दाधे अंति आगि ही सिराहिंगे । —सुंदर० ग्रं०, (जी०), भा० १ पु० ६६ ।

जाजना²(पु)†—क्रि० स० [हिं० जाजन] पूजा करना । उपासना करना । उ०—स्यंभ देव की सेवा जाजे, तो देव दृष्टि है सकल पछाने । —दक्खिनी०, पु० ३४ ।

जाजम—संज्ञा स्त्री० [तु० जाजम] एक प्रकार की चादर जिसपर बेल बूटे आदि छपे होते हैं और जो फर्श पर बिछाने के काम में आती है ।

जाजमलार—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'जाजामलार' ।

जाजर(पु)†—वि० [सं० जर्जर] [वि०स्त्री० जाजरि, जाजरी] दुर्बल । कृश । जीर्ण । उ०— चरन गिरहिं कर कंपमान जाजर देह गिरंन । प्राण०, पु० २५२ ।

जाजरा(पु)†—वि० [सं० जर्जर,] जर्जर । जीर्ण । उ०—(क) ज्यों घुन लागई काठ को लोहइ लागई काँट । काम किया घट जाजरा दादू बारह बाट । —दादू (शब्द०) । (ख) आँधरो अधम जड़ जाजरो जरा जवन सूकर के सावक ढका ढकेल्यो मग मैं । —तुलसी (शब्द०) ।

जाजरी†—संज्ञा पुं० [देश०] बहेलिया । चिड़ीमार ।

जाजरू†—संज्ञा पुं० [फ़ा० जाजरूर] दे० 'जाजरूर' ।

जाजरूर—संज्ञा पुं० [फ़ा० जा + अ० जरूर] शौच क्रिया करने का स्थान । पाखाना । टट्टी ।

जाजल—संज्ञा पुं० [सं०] अथर्ववेद की एक शाखा का नाम ।

जाजलि—संज्ञा [सं०] एक प्रवरप्रवर्तक ऋषि का नाम ।

जाजा(पु)‡—वि० [अ० जियादह्, हिं० ज्यादा] बहुत । अधिक । उ०—जाय जोगण बंद बाजा, प्रजुण वम्ही करे प्राजा । बहण आवध होम वाजा, रूपि दराजा रोस । —रघु० रू०, पु० २०७ ।

जाजात‡—संज्ञा स्त्री० [फा० जायदाद] दे० 'जायदाद' ।

जाजामलार—संज्ञा पुं० [देश०] संपूर्ण जाति का एक राग जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं । इसे जाजमलार भी कहते हैं ।

जाजिम—संज्ञा स्त्री० [तु० जाजम] १. एक प्रकार की छपी हुई चादर जो बिछाने के काम में आती है । २. गलीचा । कालीन ।

जाजी—संज्ञा पुं० [सं० जाजिन्]] योद्धा । वीर (को०) ।

जाजुल(पु)†— वि० [सं० जाज्वल्य] दीप्तिमान । प्रकाशमान । प्रदीप्त । उ०—दसकंठ सेन सिंघार दारुण, मार अषयकुमार । तो जोधार जो जोधार जाजुल रामरो जोधार । —रघु० रू०, पु० १६४ ।

जाजुलित(पु)—वि० [हिं० जाजुल + इत (प्रत्य०)] दे० 'जाजुल' ।

जाज्वल्य—वि० [सं०] १. प्रज्वलित । प्रकाशयुक्त । २. तेजवान् ।

जाज्वल्यमान—वि० [सं०] १. प्रज्वलित । दीप्तिमान् । २. तेजस्वी । तेजवान् ।

जाट¹—संज्ञा पुं० [सं० यष्टि अथवा सं० यादव, >जादव >जाडव > जाडअ > जाटअ > जाट] १. भारतवर्ष की एक प्रसिद्ध जाति जो समस्त पंजाब, सिंध, राजपूताने और उत्तर प्रदेश के कुछ भागों में फैली हुई है ।

विशेष—इस जाति के लोग संख्या में बहुत अधिक हैं और भिन्न भिन्न प्रदेश में भिन्न भिन्न नामों से प्रसिद्ध हैं । इस जाति के अधिकांश आचार व्यवहार आदि राजपूतों से मिलते जुलते होते हैं । कहीं कहीं ये लोग अपने को राजपूतों के अंतर्गत भी बतलाते हैं । राजपूतों के ३६ वंशों में जाटों का भी नाम आया है । कुछ देशों में जाटों और राजपूतों का विवाह संबंध भी होता है । पर कहीं कहीं के जाटों में विधवा विवाह और सगाई की प्रथा भी प्रचलित है । जाटों की उत्पत्ति के संबंध में अनेक कथाएँ प्रसिद्ध हैं । कोई कहता है कि इनकी उत्पत्ति शिव की जटा से हुई; और कोई जाटों को यदुवंशी और जाट शब्द को यदु या यादव से संबंद्ध बतलाता है । अधिकांश जाट खेती बारी से ही अपना निर्वाह करते हैं । पंजाब, अफगानिस्तान और बलूचिस्तान में बहुत से मुसलमान जाट भी हैं ।

२. एक प्रकार का रंगीन या चलता गाना ।

जाट²—संज्ञा स्त्री० [सं० यष्टि, हिं० जाठ] दे० 'जाठ' ।

जाटलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] पलाश की जाति का एक पेड़। इसे मोरवा या भ्राटलि भी कहते हैं।

जाटलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्तिकेय की एक मातृका का नाम।

जाटिकायन—संज्ञा पुं० [सं०] अथर्ववेद में एक ऋषि का नाम।

जाटू—संज्ञा पुं० [हिं० जाट] हिसार, करनाल और रोहतक के जाटों की बोली जिसे बाँगड़ू या हरियानी भी कहते हैं।

जाठ—संज्ञा पुं० [सं० यष्टि] १ लकड़ी का वह मोटा और ऊँचा लट्ठा जो कोल्हू की कूँड़ी के बीच में लगा रहता है और जिसके घूमने और जिसका दाब पड़ने से कोल्हू में डाली हुई चीजें पेरी जाती हैं। २. किसी चीज, विशेषत: तालाब आदि के बीच में गड़ा हुआ लकड़ी का ऊँचा और मोटा लट्ठा। लाठ।

जाठर[१]—संज्ञा पुं० [सं० जठर] १. पेट। उदर। २. पेट की वह अग्नि जिसकी सहायता से खाया हुआ अन्न पचता है। जठराग्नि। ३. भूख। क्षुधा।

जाठर[२]—वि० १. जठर संबंधी। २. जो जठर से उत्पन्न हो (संतान)।

जाठराग्नि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'जठराग्नि'।

जाठरानल—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जठराग्नि'

जाठिⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० यष्टि] दे० 'जाठ'।

जाड[१]—संज्ञा पुं० [सं० जड, हिं० जाड़ा] दे० 'जाड़ा'। उ०—जड़ता जाड़ विषम उर लागा। गएहुँ न मज्जन पाव अभागा। —मानस, १।३६।

जाड़[२]—वि० [हिं० ज्यादा] अत्यंत। बहुत। अधिक।

जाड़Ⓟ†—संज्ञा पुं० [सं० जाड्य] जड़ता।

जाड़ा—संज्ञा पुं० [सं० जड] १. वह ऋतु जिसमें बहुत ठंढक पड़ती हो। शीतकाल। सरदी का मौसम।

विशेष—भारतवर्ष में जाड़ा प्रायः अगहन के मध्य से आरंभ होता है और फागुन के आरंभ तक रहता है।

२. सरदी। शीत। पाला। ठंढ।

क्रि० प्र०—पड़ना।—लगना।

जाड्य—संज्ञा पुं० [सं०] १ जड़ का भाव। दे० 'जड़ता'। २. जीभ का कुंठित, बेकार होना या स्वाद ग्रहण न करना।

जाड्यारि—संज्ञा पुं० [सं०] जंबीरी नीबू।

जाणराइⓅ—संज्ञा पुं० [सं० ज्ञान+हिं० राय] ईश्वर। ब्रह्म। उ०—दादू जुमा खेलै जाणराइ ताको लखै न कोय। सब जग बैठा जीति करि काहू लिप्त न होइ।—दादू० बानी, पृ० ४५६।

जाणविज्जाणⓅ—संज्ञा पुं० [सं० ज्ञान+विज्ञान] ज्ञान और विज्ञान। उ०—जाणविज्जाण की गम्म कैसे लहै शुद्ध बुधि आपणी सार चूका।—राम० धर्म०, पृ० १३१।

जात[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. जन्म। २. पुत्र। बेटा। ३. चार प्रकार के पारिभाषिक पुत्रों में से एक। वह पुत्र जिसमें उसकी माता के से गुण हों। ४. जीव। प्राणी। ५. वर्ग। श्रेणी। जाति (को०)। ६. समूह। यूथ (को०)।

जात[२]—वि० १. उत्पन्न। जन्मा हुआ। जैसे, जलजात। उ०—देखत उदधिजात देखि देखि निज गात चंपक के पात काहू लिख्यो है बनाइ के।—केशव (शब्द०)। २. व्यक्त। प्रकट। ३. प्रशस्त। अच्छा। ४. जिसने जन्म ग्रहण किया हो। जैसे, नवजात।

जात[३]—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्ञाति] दे० 'जाति'।

यौ०—जात पाँत।

जात[४]—संज्ञा स्त्री० [अ० ज़ात] १. शरीर। देह। काया। जैसे,—उसकी जात से तुम्हें बहुत फायदा होगा।

२. कुल। वंश। नस्ल (को०)। ३. व्यक्तित्व (को०)। ४. जाति। कौम। बिरादरी। ५. अस्तित्व। हस्ती (को०)।

जात[५]—संज्ञा स्त्री० [सं० यात्रा] तीर्थयात्रा। किसी देवस्थान, तीर्थ आदि के निमित्त की जानेवाली यात्रा। उ०—इहि बिधि बीते मास छ सात। चले समेत सिखर की जात।—अर्ध०, पृ० ६।

जातक[१]—वि० [सं०] उत्पन्न। पैदा हुआ। जात (को०)।

जातक[२]—संज्ञा पुं० [सं०] १. बच्चा। उ०—(क) तुलसी मन रंजन रंजित अंजन। नयन सु खंजन जातक से। सजनी ससि में समसील उभै नव नील सरोरुह से बिकसे। —तुलसी ग्रं०, पृ० १५६। (ख) जानै कहाँ बाँझ ब्यावर दुख जातक जनहि न पीर है कैसी।—सूर (शब्द०)। २. कारंडी। बत। ३. भिक्षु। ४. फलित ज्योतिष का एक भेद जिसके अनुसार कुंडली देखकर उसका फल कहते हैं। ५. एक प्रकार की बौद्ध कथाएँ जिनमें महात्मा बुद्धदेव के पूर्वजन्मों की बातें होती हैं। महात्मा बुद्ध के बोधिसत्व रूप पूर्व जन्मों की कथाएँ। ७. जातकर्म संस्कार। वि० दे० 'जातकर्म'। ८. एकजातीय वस्तुओं का समूह (को०)।

यौ०—जातकचक्र = नवजात संतति के शुभाशुभ ग्रहों की स्थिति का बोधक चक्र। जातकध्वनि = जलोका। जोंक।

जातक[३]—संज्ञा पुं० [हिं०] हींग का पेड़।

जातकरमⓅ—संज्ञा पुं० [सं० जातकर्म] दे० 'जातकर्म'। उ०—तब नंदीमुख श्राद्ध करि जातकरम सब कीन्ह।—तुलसी (शब्द०)।

जातकर्म—संज्ञा पुं० [सं०] हिंदुओं के दस संस्कारों में से चौथा संस्कार जो बालक के जन्म के समय होता है। उ०—जातकर्म करि पूजि पितर सुर दिए महिदेवन दान। तेहि औसर सुत तीनि प्रगट भए मंगल, मुद, कल्यान।—तुलसी ग्रं० पृ० २६४।

विशेष—इस संस्कार में बालक के जन्म का समाचार सुनते ही पिता मना कर देता है कि अभी बालक की नाल न काटी जाय। तदुपरांत वह पहने हुए कपड़ों सहित स्नान करके कुछ विशेष पूजन और वृद्ध श्राद्ध आदि करता है। इसके अनंतर ब्रह्मचारी, कुमारी, गर्भवती या विद्वान् ब्राह्मण द्वारा धोई हुई सिल पर लोहे से पीसे हुए चावल और जौ के चूर्ण को अँगूठे

और अनामिका से लेकर मंत्र पढ़ता हुआ बालक की जीभ पर मलता है। दूसरी बार वह सोने से घी लेकर मंत्र पढ़ता हुआ उसकी जीभ पर मलता है और तब नाल काटने और दूध पिलाने की आज्ञा देकर स्नान करता है। आजकल यह संस्कार बहुत कम लोग करते हैं।

जातकलाप—वि० [सं०] पूँछवाला। पूँछ से युक्त। जैसे, मोर।

जातकाम—वि० [सं०] आसक्त। अनुरक्त। [को०]

जातक्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'जातकर्म'।

जातज्ञातरोग—संज्ञा पुं० [सं०] वह रोग जो बच्चे को गर्भ ही से माता के कुपथ्य आदि के कारण हो।

जातना(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० यातना] दे० 'यातना'। उ०—गर्भ बास दुख रासि जातना तीव्र बिपति बिसरायो —तुलसी (शब्द०)।

जातमन्मथ—वि० [सं०] दे० 'जातकाम'।

जातदंत—वि० [सं० जातदन्त] (बालक) जिसके दाँत निकल चुके हो (को०)।

जातदोष—वि० [सं०] जिसमें दोष हो। दोष युक्त [को०]।

जातपक्ष—वि० [सं०] जिसके पख निकल आए हों [को०]।

जातपाँत—संज्ञा स्त्री० [सं० जाति + पङ्क्ति] जाति। बिरादरी। जैसे,—जात पाँत पूछे नहिं कोइ। हरि को भजे सो हरि का होइ।

जातपाश—वि० [सं०] जो बंधन मे हो। बंधनयुक्त। बद्ध [को०]।

जातपुत्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसने संतान को जन्म दिया हो। पुत्रवती स्त्री [को०]।

जातप्रत्यय—वि० [सं०] जिसके मन मे विश्वास उत्पन्न हो गया हो। प्रतीतियुक्त [को०]।

जातमात्र—वि० [सं०] जन्मतुआ। तुरंत का जन्मा [को०]।

जातमृत—वि० [सं०] जन्म लेते ही मर जानेवाला [को०]।

जातरा—संज्ञा स्त्री० [सं० यात्रा] दे० 'यात्रा'।

जातरूप[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. सुवर्ण। सोना। उ०—जातरूप मनि रचित अटारी। नाना रग रुचिर गच ढारी। —मानस, ७। २७। २. धतूरा। पीला धतूरा।

जातरूप[2]—वि० सुंदर। सौदर्ययुक्त [को०]।

जातविभ्रम—वि० [सं०] किकर्तव्यविमूढ। घबड़ाया हुआ [को०]।

जातवेद—संज्ञा पुं० [जातवेदस्] १. अग्नि। २. चित्रक वृक्ष। चीते का पेड़। ३. अंतर्यामी। परमेश्वर। ४. सूर्य।

जातवेदसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा [को०]।

जातवेदा—संज्ञा पुं० [सं० जातवेदस्] दे० 'जातवेद'।

जातवेश्म—संज्ञा पुं० [सं० जातवेश्मन्] वह घर जिसमें बालक का जन्म हो। सौरी। सूतिकागार।

जाता[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] कन्या। पुत्री।

जाता[2]—वि० स्त्री० उत्पन्न।

जाता[3]—संज्ञा पुं० [सं० यन्त्र] दे० 'जाँता'।

जाता[4]—वि० [सं० ज्ञाता] ज्ञाता। जानकार। निष्णात। उ०—किते पुरान प्रवीन किते जोतिस के जाता। किते वेदविधि निपुन किते सुमृतन के ज्ञाता। —सुजान०, पृ० २६।

जाति—संज्ञा स्त्री० [सं०] हिंदुओं मे मनुष्य समाज का वह विभाग जो पहले पहल कर्मानुसार किया गया था, पर पीछे से स्वभावत: जन्मानुसार हो गया। उ०—कामी क्रोधी लालची इनपै भक्ति न होय। भक्ति करै कोई सूरमा जाति बरन कुल खोय —कबीर (शब्द०)।

विशेष—यह जातिविभाग आरंभ में वर्णविभाग के रूप में ही था, पर पीछे से प्रत्येक वर्ण में भी कर्मानुसार कई शाखाएँ हो गई, जो आगे चलकर भिन्न भिन्न जातियों के नामों से प्रसिद्ध हुई। जैसे, ब्राह्मण, क्षत्रिय, सोनार, लोहार, कुम्हार आदि।

२. मनुष्य समाज का वह विभाग जो निवासस्थान या वंशपरपरा के विचार से किया गया हो। जैसे, अंग्रेजी जाति, मुगल जाति, पारसी जाति, आर्य जाति आदि। ३. वह विभाग जो गुण, धर्म, आकृति आदि की समानता के विचार से किया जाय। कोटि। वर्ग। जैसे,—मनुष्य जाति, पशु जाति, कीट जाति। वह अच्छी जाति का घोड़ा है। यह दोनों आम एक ही जाति के हैं। उ०—(क) सकल जाति के बँधे तुरंगम रूप अनूप विशाला। —रघुराज (शब्द०)।

विशेष—न्याय के अनुसार द्रव्यों मे परस्पर भेद रहते हुए भी जिससे उनके विषय में समान बुद्धि उत्पन्न हो, उसे जाति कहते हैं। जैसे, घटत्व, मनुष्यत्व, पशुत्व आदि। 'सामान्य' भी इसी का पर्याय है।

४. न्याय में किसी हेतु का वह अनुपयुक्त खंडन या उत्तर जो केवल साधर्म्य या वैधर्म्य के आधार पर हो। जैसे,—यदि वादी कहे कि आत्मा निष्क्रिय है, क्योंकि यह आकाश के समान विभु है और इसपर प्रतिवादी यह उत्तर दे कि विभु आकाश के समान धर्मवाला होने के कारण यदि आत्मा निष्क्रिय है, तो क्रियाहेतुगुणयुक्त लोष्ठ के समान होने के कारण वह क्रियावान् क्यों नहीं है, तो उसका यह उत्तर साधर्म्य के आधार पर होने के कारण अनुपयुक्त होगा और जाति के अंतर्गत आएगा। इसी प्रकार यदि वादी कहे कि शब्द अनित्य है क्योंकि वह उत्पत्ति धर्मवाला है और आकाश उत्पत्ति धर्मवाला नहीं है और इसके उत्तर मे प्रतिवादी कहे कि यदि शब्द उत्पत्ति धर्मवाला और आकाश के असमान होने के कारण अनित्य है, तो वह घट के असमान होने के कारण नित्य क्यों नहीं है, तो उसका यह उत्तर केवल वैधर्म्य के आधार पर होने के कारण अनुपयुक्त होगा और जाति के अंतर्गत आ जायगा।

विशेष—न्याय मे जाति सोलह पदार्थों के अंतर्गत मानी गई है। नैयायिकों ने इसके और भी सूक्ष्म २४ भेद किए हैं, जिनके नाम ये हैं—(१) साधर्म्य सम। (२) वैधर्म्य सम। (३) उत्कर्ष सम। (४) अपकर्ष सम। (५) वर्ण्य सम। (६) अवर्ण्य सम। (७) विकल्प सम। (८)

साध्य सम। (९) प्राप्ति सम। (१०) अप्राप्ति सम। (११) प्रसंग सम। (१२) प्रतिदृष्टांत सम। (१०) अनुत्पत्ति सम। (१४) संशय सम। (१५) प्रकरण सम। (१६) हेतु सम। (१७) अर्थापत्ति सम। (१८) अविशेष सम। (१९) उपपत्ति सम। (२०) उपलब्धि सम। (२१) अनुपलब्धि सम। (२२) नित्य सम। (२३) अनित्य सम, और (२४) कार्य सम।

५. वर्ण। ६. कुल। वंश। ७. गोत्र। ८. जन्म। ९. आमलकी। छोटा आँवला। १० सामान्य। साधारण। आम। ११. चमेली। १२. जावित्री। १३. जायफल। जातीफल। १४. वह पद्य जिसके चरणों में मात्राओं का नियम हो। मात्रिक छंद।

जातिकर्म—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जातकर्म'।

जातिकोश, जातिकोष—संज्ञा पुं० [सं०] जायफल।

जातिकोशी, जातिकोषी—संज्ञा स्त्री० [सं०] जावित्री।

जातिचरित्र—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार जातीय रहन सहन तथा प्रथा।

जातिच्युत—वि० [सं०] जाति से गिरा या निकाला हुआ। जो जाति से अलग या बाहर हो।

जातित्व—संज्ञा पुं० [सं०] जाति का भाव। जातीयता।

जातिधर्म—संज्ञा पुं० [सं०] १. जाति या वर्ण का धर्म। २. ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य आदि का अलग अलग कर्तव्य। जिस जाति में मनुष्य उत्पन्न हुआ हो, उसका विशेष आचार या कर्तव्य।

विशेष—प्राचीन काल में अभियोगों का निर्णय करते हुए जातिधर्म का आदर किया जाता था।

जातिपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० जातिपत्री] जावित्री।

जातिपर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] जावित्री।

जातिपाँति—संज्ञा स्त्री० [सं० जाति + हिं० पाँति > सं० पङ्क्ति] जाति या वर्ण आदि। उ०—जाति पाँति उन सम हम नाहीं। हम निर्गुण सब गुण उन पाहीं।—सूर (शब्द०)।

जातिफल—संज्ञा पुं० [सं०] जायफल।

जातिबैर—संज्ञा पुं० [सं० जातिवैर] स्वाभाविक शत्रुता। सहज वैर।

विशेष—महाभारत में जातिवैर पाँच प्रकार का माना गया है,—(१.) स्त्रीकृत। (२.) वास्तुज। (३.) वाग्ज। (४.) सापत्न और (५) अपराधज।

जातिब्राह्मण—संज्ञा पुं० [सं०] वह ब्राह्मण जिसका केवल जन्म किसी ब्राह्मण के घर में हुआ हो और जिसने तपस्या या वेद अध्ययन आदि न किया हो।

जातिभ्रंश—संज्ञा पुं० [सं०] जातिच्युत होने का भाव। जातिभ्रष्टता [को०]।

जातिभ्रंशकर—संज्ञा पुं० [सं०] मनु के अनुसार नौ प्रकार के पापों में से एक प्रकार का पाप जिसका करनेवाला जाति और आश्रम आदि से भ्रष्ट हो जाता है।

विशेष—इसके अंतर्गत ब्राह्मणों को पीड़ा देना, मदिरा पीना अथवा अखाद्य पदार्थ खाना, कपट व्यवहार करना और पुरुषमैथुन आदि कई निंदनीय काम हैं। यह पाप यदि अनजान में हो तो पापी को प्राजापत्य प्रायश्चित्त और यदि जानकारी में हो तो सांतपन प्रायश्चित्त करना चाहिए।

जातिभ्रष्ट—वि० [सं०] जातिच्युत। जातिबहिष्कृत [को०]।

जातिमान्—वि० [सं० जातिमत्] सत्कुलोत्पन्न। कुलीन [को०]।

जातिलक्षण—संज्ञा स्त्री० [सं०] जातिसूचक भेद। जातीय विशेषता [को०]।

जातिवाचक—संज्ञा पुं० [सं०] १. व्याकरण में संज्ञा का एक भेद। २. जाति को बतानेवाला शब्द [को०]।

जातिविद्वेष—संज्ञा पुं० [सं०] जातियों का पारस्परिक वैर। जातिगत वैर। [को०]

जातिवैर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जातिबैर'।

जातिवैरी—संज्ञा पुं० [सं०] स्वाभाविक शत्रु [को०]।

जातिव्यवसाय—संज्ञा पुं० [सं०] जातिगत पेशा। जातीय धंधा या काम। जैसे, सोनारी, लोहारी आदि।

जातिशस्य—संज्ञा पुं० [सं०] जायफल।

जातिसंकर—संज्ञा पुं० [सं० जातिसंकर] दो जातियों का मिश्रण। वर्णसंकरता। दोगलापन।

जातिसार—संज्ञा पुं० [सं०] जायफल।

जातिस्मर—वि० [सं०] जिसे अपने पूर्वजन्म का इतिवृत्त याद हो। जैसे,—जातिस्मर शिशु। जातिस्मर शुक। जातिस्मर मुनि।

जातिस्मृत—संज्ञा पुं० [सं०] जायफल। जातीफल।

जातिस्वभाव—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का अलंकार जिसमें आकृति और गुण का वर्णन किया जाता है। २. जातिगत स्वभाव, प्रकृति या लक्षण।

जातिहीन—वि० [सं०] १. नीची जाति का। निम्न जाति का। उ०—जातिहीन अघ जन्म महि मुक्त कीन्हि असि नारि। महामंद मन सुख चहसि ऐसे प्रभुहि बिसारि।—मानस, ३।३०। २. जातिभ्रष्ट। जातिच्युत (को०)।

जाती[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चमेली। २. आमलकी। छोटा आँवला। ३. मालती। ४. जायफल।

जाती[2](पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० जाति] दे० 'जाति'। उ०—(क) सादर बोले सकल बराती। बिष्णु बिरंचि देव सब जाती।—मानस, १।९९। (ख) दीन हीन मति जाती।—मानस, ६।११५।

जाती[3]—संज्ञा पुं० [देश०] हाथी। हस्ती (डिं०)।

जाती[4]—वि० [अ० जाती] १. व्यक्तिगत। २. अपना। निज का।

जातीकोश—संज्ञा पुं० [सं०] जायफल।

जातीकोष—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जातिकोश'।

जातीपत्री—संज्ञा पुं० [सं०] जावित्री। जायपत्री।

जातीपूग—संज्ञा पुं० (सं०) जायफल।

जातीफल—संज्ञा पुं० [सं०] जायफल।

जातीय—वि० [सं०] जातिसंबंधी । जाति का । जातिवाला ।

जातीयता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जाति का भाव । जातित्व । २. जाति की ममता । ३. जाति ।

जातीरस—संज्ञा पुं० [सं०] बोल नामक गंधद्रव्य ।

जातु—अव्य० [सं०] १ कदाचित् । कभी । २. संभवतः । शायद ।

जातुक—संज्ञा पुं० [सं०] हींग ।

जातुज—संज्ञा पुं० [सं०] गर्भवती स्त्री की इच्छा । दोहद ।

जातुधान—संज्ञा पुं० [सं०] राक्षस । निशाचर । असुर ।

जातुष—वि० [सं०] [वि० स्त्री० जातुषी] १.जतु या लाख का बना हुआ । २. चिपकनेवाला । चिपचिपा । लसदार (को०) ।

जातू—संज्ञा पुं० [सं०] वज्र ।

जातूकर्ण्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. उपस्मृति बनानेवाले एक ऋषि का नाम । हरिवंश के अनुसार इनका जन्म अट्ठाईसवें द्वापर में हुआ था । २. शिव का एक नाम (को०) ।

जातूकर्णी—संज्ञा पुं० [सं०] महाकवि भवभूति के पिता का नाम ।

जातेष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'जातकर्म' ।

जातोक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] वह बैल जो बहुत ही छोटी अवस्था में बधिया कर दिया गया हो ।

जात्यंध—वि० [सं० जात्यन्ध] जन्मांध (को०) ।

जात्य—वि० [सं०] १ उत्तम कुल में उत्पन्न । कुलीन । २. श्रेष्ठ । ३. जो देखने में बहुत अच्छा हो । सुंदर ।

जात्य त्रिभुज—संज्ञा पुं० [सं०] वह त्रिभुज क्षेत्र जिसमें एक समकोण हो । जैसे ◺ ।

जात्यासन—संज्ञा पुं० [सं०] तांत्रिकों का एक आसन ।

विशेष—इस आसन में हाथ और पैर जमीन पर रखकर चलते हैं । कहते हैं कि इस आसन के सिद्ध हो जाने से पूर्वजन्म की सब बातें याद हो आती हैं ।

जात्युत्तर—संज्ञा पुं० [सं०] न्याय में वह दूषित उत्तर जिसमें व्याप्ति स्थिर हो । यह अठारह प्रकार का माना गया है ।

जात्यारोह—संज्ञा पुं० [सं०] खगोल के अक्षांश की गिनती में वह दूरी जो मेष से पूर्व की ओर प्रथम अंश से ली जाती है ।

जात्र(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० यात्रा] तीर्थयात्रा । यात्रा । उ०—हुतो आउय तब कियो असद्व्यय करी न ब्रज बन जात्र । —सूर०, १।२१६ ।

जात्रा‡—संज्ञा स्त्री० [सं० यात्रा] दे० 'यात्रा' ।

जात्री‡—संज्ञा पुं० [सं० यात्री] दे० 'यात्री' ।

जाथका†(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० यूथिका] ढेरी । ढेर । राशि ।

जादुपति†(पु)—संज्ञा पुं० [सं० यादवपति] श्रीकृष्ण । विष्णु । उ०—कमला अहै जादपति बारी । ताको है मुकता रखवारी ।—इंद्रा०, पृ० १५६ ।

जादरसार(पु)†—संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का वस्त्र । उ०—पाटै बइठा दुई राजकुमार । पहिरी वस्त्र जादर सार । —बी० रासो, पृ० २२ ।

जादवा(पु)—संज्ञा पुं० [सं० यादव] यादव । यदुवंशी ।

जादवपति†(पु)—संज्ञा पुं० [सं० यादवपति] श्रीकृष्णचंद्र ।

जादसंपति†—संज्ञा पुं० [सं० यादसाम्पति] जलजंतुओं का स्वामी । वरुण ।

जादसपती(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० यादसाम्पति] दे० 'जादसंपति' ।

जादा(पु)†—वि० [अ० जियादह्, हिं० ज्यादा] दे० 'ज्यादा' ।

जादुई—वि० [फ़ा० जादू] इंद्रजाल संबंधी । जादू के प्रभाववाला । उ०—इन चित्रों में जादुई आकर्षण है जिसकी सुहानी दीप्ति हमारी चेतना पर छा जाती है । —प्रेम० और गोर्की पृ० १ ।

जादू[1]—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. वह अद्भुत और आश्चर्यजनक कृत्य जिसे लोग अलौकिक और अमानवी समझते हों । इंद्रजाल । तिलस्म ।

विशेष—प्राचीन काल में संसार की प्रायः सभी जातियों के लोग किसी न किसी रूप में जादू पर बहुत विश्वास करते थे । उन दिनों रोगों की चिकित्सा, बड़ी बड़ी कामनाओं की सिद्धि और इसी प्रकार की अनेक दूसरी बातों के लिये अच्छे अच्छे जादूगरों और सयानों से अनेक प्रकार के जादू ही कराए जाते थे । पर अब जादू पर से लोगों का विश्वास बहुत अंशों में उठ गया है ।

क्रि० प्र०—चलना । —करना ।

मुहा०—जादू उतरना = जादू का प्रभाव समाप्त होना । जादू चलना = जादू का प्रभाव होना । किसी बात का प्रभाव होना । जादू काम करना = प्रभाव होना । उ०—उसमें न किसी का जादू काम कर रहा है और न किसी का टोना ।—चुभते० (प्रा०) पृ० ३ । जादू जगाना = प्रयोग प्रारंभ करने से पहले जादू को चैतन्य करना ।

२. वह अद्भुत खेल या कृत्य जो दर्शकों की दृष्टि और बुद्धि को धोखा दे कर किया जाय । ताश, अंगूठी, घड़ी, छुरी और सिक्के आदि के तरह तरह के विलक्षण और बुद्धि को चकराने-वाले खेल इसी के अंतर्गत हैं । बाजीगरी का खेल । ३. टोना । टोटका । ४. दूसरे को मोहित करने की शक्ति । मोहिनी । जैसे,—उसकी आँखों में जादू है ।

क्रि० प्र०—करना । —डालना ।

जादू(पु)[2]—संज्ञा पुं० [सं० यादव] दे० 'जादो' । उ०—पूरब दिसि गढ़ गढ़नपति समुद्र सिखर अति दुग्ग । तहँ सु विजय सुर राजपति जादू कुलह अभग्ग ।—पृ० रा०, २० । १ ।

जादूगर—संज्ञा पुं० [फ़ा०] [स्त्री० जादूगरनी] वह जो जादू करता हो । तरह तरह के अद्भुत और आश्चर्यजनक कृत्य करने-वाला मनुष्य ।

जादूगरी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. जादू करने की क्रिया । जादूगर का काम । २. जादू करने का ज्ञान । जादू की विद्या ।

जादूनजर—संज्ञा पुं० [फ़ा० जादूनज़र] दृष्टि मात्र से मोहित कर लेनेवाला । देखते ही मन लुभानेवाला । जिसके नेत्रों में जादू हो ।

जादूनिगाह—वि० [फ़ा०] दे० 'जादूनजर' ।

जादूबयान—वि० [फ़ा०] जिसकी वाणी वशीभूत करनेवाली हो। जिसकी वाणी में जादू जैसी शक्ति हो [को०]।

जादूबयानी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] जादू जैसी शक्ति या प्रभाववाली वाणी। उ०—आपकी जादूबयानी तो इस दम अपना काम कर गई।—फिसाना०, भा० १, पृ० ५।

जादो(पु)—संज्ञा पुं० [सं० यादव] दे० 'जादौ'। उ०—दुरजोधन को गर्व घटायो जादो कुल नास करी।—कबीर श०, पृष्ठ ४०।

जादौ(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० यादव] १. यदुवंशी। यदुवंश में उत्पन्न। उ०—सुमति बिचारहिं परिहरहिं दल सुमनहु संग्राम। सकल गए तन बिनु भए साखी जादौ काम।—तुलसी (शब्द०)। २. नीच जाति। नीच कुलोत्पन्न।

जादौराइ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० यादवराज] श्रीकृष्णचंद्र। उ०—गई मारन पूतना कुच कालकूट लगाइ। मातु की गति दई ताहि कृपाल जादौराइ।—तुलसी (शब्द०)।

जान[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्ञान] १. ज्ञान। जानकारी। जैसे,—हमारी जान में तो कोई ऐसा आदमी नहीं है। २. समझ। अनुमान। खयाल। उ०—मेरे जान इन्हहिं बोलिबे कारन चतुर जनक ठयो ठाट इतोरी।—तुलसी (शब्द०)।

यौ०—जान पहचान = परिचय। एक दूसरे से जानकारी। जैसे,—(क) हमारी उनकी जान पहचान नहीं है। (ख) उनसे तुमसे जान पहचान होगी।

मुहा०—जान में = जानकारी में। जहाँ तक कोई जानता है वहाँ तक।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग समास में या 'में' विभक्ति के साथ ही होता है। इसके लिंग के विषय में भी मतभेद है। पुंलिंग और स्त्रीलिंग दोनों मे प्रयोग प्राप्त होते है।

जान[2]—वि० सुजान। जानकार। ज्ञानवान। चतुर। उ०—(क) जानकी जीवन जान न जान्यो तो जान कहावत जान्यो कहा है।—तुलसी ग्रं०, पृ० २०७। (ख) प्रेम समुद्र रूप रस गहिरे कैसे लागै घाट। बेकान्यो है जान कहावत जानपनो कि कहा परी बाट।—हरिदास (शब्द०)।

यौ०—जानपन। जानपनी। जानपनो(पु)। जानराय। जानसिरोमनि = ज्ञानवानों में श्रेष्ठ। उ०—(क) तुम्ह परिपूरन काम जान सिरोमनि भाव प्रिय। जनगुन गाहक राम दोषदलन करुनायतन।—मानस, २३२। (ख) प्रभु की देखो एक सुभाइ। अति गभीर उदार उदधि हरि जान सिरोमनि राइ।—सूर०, १।८।

जान[3]—संज्ञा पुं० [सं० जानु] दे० 'जानु'।

जान[4]—संज्ञा पुं० [सं० यान] दे० 'यान'।

जान[5]—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. प्राण। जीव। प्राणवायु। दम। जैसे,—जान है तो जहान है।

मुहा०—जान आना = जी ठिकाने होना। चित्त में धैर्य होना। चित्त स्थिर होना। शांति होना। जान का गाहक = (१) प्राण लेने की इच्छा रखनेवाला। मार डालने का यत्न करनेवाला। शत्रु (२) बहुत तंग करनेवाला पीछा। न छोड़नेवाला। जान का रोग = ऐसा दुःखदायी व्यक्ति या वस्तु जो पीछा न छोड़े। सब दिन कष्ट देनेवाला। जान का लागू = दे० 'जान का गाहक'। जान के लाले पड़ना = प्राण बचना कठिन दिखाई देना। जी पर आ बनना। (अपनी) जान को जान न समझना = प्राण जाने की परवाह न करना। अत्यंत अधिक कष्ट या परिश्रम सहना। (दूसरे की) जान को जान न समझना = किसी को अत्यंत कष्ट या दुःख देना। किसी के साथ निष्ठुर व्यवहार करना। (किसी की) जान को रोना = किसी के कारण कष्ट पाकर उसका स्मरण करते हुए दुःखी होना। किसी के द्वारा पहुँचाए हुए कष्ट को याद करके दुःखी होना। जैसे,—तुमने उसकी जीविका ली, वह अबतक तुम्हारी जान को रोता है। जान खाना = (१) तंग करना। बार बार घेरकर दिक करना। (२) किसी बात के लिये बार बार कहना। जैसे,—चलते हैं, क्यों जान खाते हो। जान खोना = प्राण देना। मरना। जान चुराना = दे० 'जी चुराना' जान छुड़ाना = (१) प्राण बचाना। (२) किसी झंझट से छुटकारा करना। किसी अप्रिय या कष्टदायक वस्तु को दूर करना। संकट टालना। छुटकारा करना। निस्तार करना। जैसे,—(क) जब काम करने का समय आता है तब लोग जान छुड़ाकर भागते हैं। (ख) इसे कुछ देकर अपनी जान छुड़ाओ। जान छूटना = किसी झंझट या आपत्ति से छुटकारा मिलना। किसी अप्रिय या कष्टदायक वस्तु का दूर होना। निस्तार होना। जैसे,—बिना कुछ दिए जान नहीं छूटेगी। जान जाना = प्राण निकलना। मृत्यु होना। (किसी पर) जान जाना = किसी पर अत्यंत अधिक प्रेम होना। जान जोखों = प्राण का भय। प्राणहानि की आशंका। जीवन का संकट। प्राण जाने का डर। जान डालना = शक्ति का संचार करना। उ०—हम बेजान में जान डाल देते थे।—चुभते० (दो दो०), पृ० २। जान तोड़कर = दे० 'जी तोड़कर'। जान दूभर होना = जीवन कटना कठिन जान पड़ना। भारी मालूम होना। दुःख पड़ने के कारण जीने की इच्छा न रह जाना। जान देना = प्राण त्याग करना। मरना (किसी पर) जान देना = (१) किसी के किसी कर्म के कारण प्राण त्याग करना। किसी के किसी काम से रुष्ट या दुःखी होकर मरना। (२) किसी पर प्राण न्योछावर करना। किसी को प्राण से बढ़कर चाहना। बहुत ही अधिक प्रेम करना। (किसी के लिये) जान देना = किसी को बहुत अधिक चाहना। (किसी वस्तु के लिये या पीछे) जान देना = किसी वस्तु के लिये अत्यंत अधिक व्यग्र होना। किसी वस्तु की प्राप्ति या रक्षा के लिये बेचैन होना। जैसे,—वह एक एक पैसे के लिये जान देता है; उसका कोई कुछ नही दबा सकता। जान निकलना = (१) प्राण निकलना। मरना। (२) भय के मारे प्राण सूखना। डर लगना। अत्यत कष्ट होना। घोर पीड़ा होना। जान पड़ना = दे० 'जान आना'। जान पर आ बनना = (१) प्राण का भय होना। प्राण बचना कठिन दिखाई देना। (२) आपत्ति आना। विश्व संकट में पड़ना। (३) हैरानी होना। नाक में दम होना। गहरी व्यग्रता होना। जान पर खेलना = प्राणों को भय में डालना। जान को जोखों में डालना।

अपने आपको ऐसी स्थिति में डालना जिसमें प्राण तक जाने का भय हो। जान पर नौबत आना = दे० 'जान पर आ बनना'। जान बचना = (१) प्राणरक्षा करना। (२) पीछा छुड़ाना। किसी कष्टदायक या अप्रिय वस्तु या व्यक्ति को दूर रखना। निस्तार करना। जैसे,—हम तो जान बचाते फिरते हैं, तुम बार बार हमें आकर घेरते हो। जान मारकर काम करना = जी तोड़कर काम करना। अत्यंत परिश्रम से काम करना। जान मारना = (१) प्राणहत्या करना। (२) सताना। दुःख देना। तंग करना। दिक करना। (३) अत्यंत परिश्रम कराना। कड़ी मेहनत लेना। जैसे,—उनके यहाँ कोई काम करने क्या जाय, दिन भर जान मार डालते हैं। जान में जान आना = धैर्य बँधना। ढारस होना। चित्त स्थिर होना। व्यग्रता, घबराहट या भय आदि का दूर होना। जान लेना = (१) मार डालना। प्राणघात करना। (२) तंग करना। दुःख देना। पीड़ित करना। जैसे,—क्यों धूप में दौड़ाकर उसकी जान लेते हो। जान सी निकलने लगना = कठिन पीड़ा होना। बहुत दुःख होना। जान सूखना = (१) प्राण सूखना। भय के मारे स्तब्ध होना। होश हवाश उड़ना। जैसे,—शेर को देखते ही उसकी तो जान सूख गई। (२) बहुत अधिक कष्ट होना। (३) बहुत बुरा लगना। खलना। जैसे,—किसी को कुछ देते देख तुम्हारी क्यों जान सूखती है। जान से जाना = प्राण खोना। मरना। जान से मारना = मार डालना। प्राण ले लेना। जान से जाना। जान हलाकान करना = सताना। तंग करना। दिक करना। हैरान करना। जान हलाकान होना = तंग होना। दिक होना। हैरान होना। जान होठों पर आना = (१) प्राण कंठगत होना। प्राण निकलने पर होना। (२) अत्यंत कष्ट होना। घोर पीड़ा होना।

२. बल। शक्ति। बूता। सामर्थ्य। जैसे,—अब किसी में कुछ जान नहीं है जो तुम्हारा सामना करने आवे। ३. सार। तत्व। सबसे उत्तम अंश। जैसे,—यही पद तो उस कविता की जान है। ४. अच्छा या सुंदर करनेवाली वस्तु। शोभा बढ़ानेवाली वस्तु। मजेदार करनेवाली चीज। चटकीला करनेवाली चीज। जैसे,—मसाला ही तो तरकारी की जान है।

मुहा०—जान आना = ओप चढ़ना। शोभा बढ़ना। जैसे,—रंग फेर देने से इस तसवीर में जान आ गई है।

जान[२]—संज्ञा पुं० [देश० या सं० यान] बारात। उ०—(क) कर जोड़े राजा कहइ, चालउ चउरासी राय की जान।—बी० रासो, पु० १०। (ख) जान पराई में अहमक बच्चे, कपड़े भी फट्टे देह भी टूट्टे। (कहावत)।

जानकार—वि० [हिं० जानना + कार (प्रत्य०)] १. जाननेवाला अभिज्ञ। २. विज्ञ। चतुर।

जानकारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० जानकार + ई (प्रत्य०)] १. अभिज्ञता। परिचय। वाकफियत। २. विज्ञता। निपुणता।

जानकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] जनक की पुत्री। सीता।

जानकीकंत—संज्ञा पुं० [सं० जानकीकान्त] राम। उ०—अबै जानकीकंत, तब छूटै संसारदुख।—तुलसी ग्रं०, पृ० ९६।

जानकीजानि—संज्ञा पुं० [सं०] (जिसकी स्त्री जानकी है) रामचंद्र। उ०—बाहुबल विपुल परिमित पराक्रम अतुल गूढ़ गति जानकीजानि जानी।—तुलसी (शब्द०)।

जानकीजीवन—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीरामचंद्र। उ०—जानकीजीवन को जन ह्वै जरि जाहु सो जीह जो जाँचत औरहि।—तुलसी (शब्द०)।

जानकीनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] जानकी के पति, श्रीराम। उ०—सो बातन की एकै बात। सब तजि भजो जानकीनाथ।—सूर (शब्द०)।

जानकीप्राण—संज्ञा पुं० [सं०] रामचंद्र। उ०—निज सहज रूप में संयत जानकीप्राण बोले।—अनामिका, पृ० १५६।

जानकीमंगल—संज्ञा पुं० [सं०] गोस्वामी तुलसीदास का बनाया हुआ एक ग्रंथ जिसमें श्रीराम जानकी के विवाह का वर्णन है।

जानकीरमण—संज्ञा पुं० [सं०] जानकी के पति—श्रीरामचंद्र।

जानकीरवन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० जानकीरमण] दे० 'जानकीरमण'।

जानकीवल्लभ—संज्ञा पुं० [सं०] रामचंद्र [को०]।

जानदार(पु)[१]—वि० [फ़ा०] १. जिसमें जान हो। सजीव। जीवधारी। २. उत्कृष्ट। ओपदार। जैसे, जानदार मोती। जानदार चीज या वस्तु।

जानदार[२]—संज्ञा पुं० जानवर। प्राणी।

जाननहार(पु)—वि० [हिं० जानना + हार (प्रत्य०)] जानने या समझनेवाला। जाननिहार। उ०—सुखसागर सुख नींद बस सपने सब करतार। माया मायानाथ की को जग जाननहार।—तुलसी ग्रं०, पृ० १२३।

जानना—क्रि० स० [सं० ज्ञान] १. किसी वस्तु की स्थिति, गुण, क्रिया या प्रणाली इत्यादि निर्दिष्ट करनेवाला भाव धारण करना। ज्ञान प्राप्त करना। बोध प्राप्त करना। अभिज्ञ होना। वाकिफ होना। परिचित होना। अनुभव करना। मालूम करना। जैसे,—(क) वह व्याकरण नहीं जानता। (ख) तुम तैरना नहीं जानते। (ग) मैं उसका घर नहीं जानता।

संयो० क्रि०—जाना।—पाना।—लेना।

यौ०—जानना बूझना = जानकारी रखना। ज्ञान रखना।

मुहा०—जान पड़ना = (१) मालूम पड़ना। प्रतीत होना। (२) अनुभव होना। संवेदना होना। जैसे—जिस समय मैं गिरा था, उस समय तो कुछ नहीं जान पड़ा; पर पीछे बड़ा दर्द उठा। जानकर अनजान = किसी बात के विषय में जानकारी रखते हुए भी किसी को चिढ़ाने, धोखा देने या अपना मतलब निकालने के लिये अपनी अनभिज्ञता प्रकट करना। जान बूझकर = भूले से नहीं। पूरे संकल्प के साथ। नीयत के साथ। अनजान में नहीं। जैसे,—तुमने जान बूझकर यह काम किया है। जान रखना = समझ रखना। ध्यान में रखना। मन में बैठाना। हृदयंगम करना। जैसे,—इस बात को जान रखो कि अब वह नहीं आएगा। किसी का कुछ जानना =

किसी का सहायतार्थ दिया हुआ धन या किया हुआ उपकार स्मरण रखना। किसी के किए हुए उपकार के लिये कृतज्ञ होना। किसी का एहसानमंद होना। जैसे,—क्यों मुझे कोई दो बात कहे, मैं किसी का कुछ जानता हूँ। (......) तो मैं जानूं = (१) (......) तो मैं समझूं कि बड़ा भारी काम किया या बड़ी अनहोनी बात हो गई। जैसे,—(क) यदि तुम इतना कूद जाओ तो मैं जानूं। (ख) यदि वह दो दिन में इसे कर लाए तो जानूं। (२) (......) तो मैं समझूं कि बात ठीक है। जैसे,—सुना तो है कि वे आनेवाले हैं; पर आ जायँ तो जानें।

विशेष—इस मुहावरे के प्रयोग द्वारा यह अर्थ सूचित किया जाता है कि कोई काम बहुत कठिन है या किसी बात के होने का निश्चय कम है। इसका प्रयोग 'मैं' और 'हम' दोनों के साथ होता है।

(......) तो मैं नहीं जानता = (......) तो मैं जिम्मेदार नहीं। तो मेरा दोष नहीं। जैसे,—उसपर चढ़ते तो हो; पर यदि गिर पड़ोगे तो मैं नहीं जानता। मैं क्या जानूं ? तुम क्या जानो ? वह क्या जाने ? = मैं नहीं जानता, तुम नहीं जानते, वह नहीं जानता। (बहुवचन में भी यह मुहावरा बोला जाता है)। जाने अनजाने = जान बूझकर या बिना जाने बूझे।

२. सूचना पाना। खबर पाना या रखना। अवगत होना। पता पाना या रखना। जैसे,—हमें यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि वे आनेवाले हैं। ३. अनुमान करना। सोचना। जैसे,—मैं जानता हूँ कि वे कल तक आ जाएँगे।

जाननिहारा(पु)—वि० [हिं० जानना + हार (प्रत्य०)] जाननेवाला। समझनेवाला। उ०—(क) और तुम्हहिं को जाननिहारा।—मानस, २।१२७। (ख) भूत भविष को जाननिहारा। कहहु है बन शुभ गवन की बारा।—नंद० ग्रं०, पृ० १५६।

जानपति(पु)—वि० [सं० ज्ञान + पति] ज्ञानियों में प्रधान। जानकारों में श्रेष्ठ। उ०—जानपति दानपति हाड़ा हिंदुवान पति दिल्लीपति दलपति बलाबंधपति है।—मति० ग्रं०, पृ० ३६।

जानपद—संज्ञा पुं० [सं०] १. जनपद संबंधी वस्तु। २. जनपद का निवासी। जन। लोक। मनुष्य। ३. देश। ४. कर। मालगुजारी। ५. मिताक्षरा के अनुसार लेख्य (दस्तावेज) के दो भेदों में से एक।

विशेष—इस लेख्य (दस्तावेज में) लेख प्रजावर्ग के परस्पर व्यवहार के संबंध में होता है। यह दो प्रकार का होता है—एक अपने हाथ से लिखा हुआ, दूसरा दूसरे के हाथ से लिखा हुआ। अपने हाथ से लिखे हुए में साक्षी की आवश्यकता नहीं होती थी।

जानपदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वृत्ति। २. एक अप्सरा।

विशेष—इस अप्सरा को इंद्र ने शरद्वान् ऋषि का तप भंग करने के लिये भेजा था। शरद्वान् ऋषि ने मोहित होकर जो शुक्रपात किया, उससे कृप और कृपी की उत्पत्ति हुई। महाभारत आदिपर्व में यह आख्यान वर्णित है।

जानपना(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० जान + पन (प्रत्य०)] जानकारी। अभिज्ञता। चतुराई। होशियारी। उ०—बेकाऱ्यो है जान कहावत जानपनो की कहा परी बाट।—हरिदास (शब्द०)।

जानपनी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० जान + पन (प्रत्य०)] बुद्धिमानी। जानकारी। चतुराई। होशियारी। उ०—(क) जानपनी को गुमान बड़ो तुलसी के विचार गँवार महा है।—तुलसी (शब्द०)। (ख) जानी है जानपनी हरि की अब बाँधिएगी कछु मोठ कला की।—तुलसी (शब्द०)। (ग) दम दान दया नहिं जानपनी। जड़ता पर वंचन ताति घनी।—तुलसी (शब्द०)।

जानबाज—संज्ञा पुं० [फ़ा० जान + बाज] बलंटियर। वालंटियर। जान पर खेल जानेवाला (लश०)।

जानमनि(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० जान + सं० मणि] ज्ञानियों में श्रेष्ठ। बड़ा ज्ञानी पुरुष। बहुत बुद्धिमान मनुष्य। उ०—रूप सील सिंधु गुन सिंधु बंधु दीन को, दयानिधान जानमनि बीर बाहु बोल को।—तुलसी ग्रं०, पृ० २००।

जानमाज—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जानमाज] एक पतला कालीन या आसन जिसपर मुसलमान नमाज पढ़ते हैं। नमाज पढ़ने का फर्श।

जानराय—संज्ञा पुं० [हिं० जान + राय] जानकारों में श्रेष्ठ। अत्यंत ज्ञानी पुरुष। बड़ा बुद्धिमान मनुष्य। सुजान। उ०—जागिए कृपानिधान जानराय रामचंद्र जननी कहै बार बार भोर भयो प्यारे।—तुलसी (शब्द०)।

जानवर[1]—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. प्राणी। जीव। जीवधारी। २. पशु। जंतु। हैवान।

मुहा०—जानवर लगना = जानवरों का आना जाना या दिखाई पड़ना। उ०—और वहाँ जंगलों में दरिंद जानवर लगते हैं और आदमियों को खा जाते हैं।—सैर कु०, पृ० १६।

जानवर[2]—वि० मूर्ख। अहमक। जड़।

जानशीन—संज्ञा पुं० [फ़ा० जानशीन] १. वह जो दूसरे की स्वीकृति के अनुसार उसके स्थान, पद या अधिकार पर हो। २. वह जो व्यवस्थानुसार दूसरे के पद या संपत्ति आदि का अधिकारी हो। उत्तराधिकारी।

जानहार(पु)†[1]—वि० [हिं० जाना + हार (प्रत्य०)] १. जानेवाला। २. खो जानेवाला। हाथ से निकल जानेवाला। ३. मरनेवाला। नष्ट होनेवाला।

जानहार(पु)[2]—संज्ञा पुं० [हिं० जानना + हार (प्रत्य०)। वह जो जाननेवाला हो। जाननेवाला या समझनेवाला व्यक्ति। दे० 'जाननिहार'।

जानहार[3]—वि० जाननेवाला।

जानहु(पु)†—अव्य [हिं० जानना] मानो। जैसे। उ०—धनि राजा अस सभा सँवारी। जानहु फूलि रही फुलवारी।—जायसी (शब्द०)।

जानाँ—संज्ञा पुं० [फ़ा०] प्रिय। माशूक। प्यारा। उ०—दिल का हुजरा साफ कर जानाँ के आने के लिये।—तुरसी० सा०, पृ० ४।

जाना[1]—क्रि० अ० [सं० √या (हिं० जा) + ना (=जाना)] १. एक स्थान से दूसरे स्थान पर प्राप्त होने के लिये गति में होना। गमन करना। किसी ओर बढ़ना। किसी ओर अग्रसर होना। स्थान परित्याग करना। जगह छोड़कर हटना। प्रस्थान करना। जैसे,—(क) वह घर की ओर जा रहा है। (ख) यहाँ से जाओ।

मुहा०— जाने दो = (१) क्षमा करो। माफ करो। (२) त्याग करो। छोड़ दो। (३) चर्चा छोड़ो। प्रसंग छोड़ो। जा पड़ना = किसी स्थान पर अकस्मात् पहुँचना। जा रहना = किसी स्थान पर जाकर वहाँ ठहरना। जैसे,—मुझे क्या, मैं किसी धर्मशाला में जा रहूँगा। किसी बात पर जाना = किसी बात के अनुसार कुछ अनुमान या निश्चय करना। किसी बात को ठीक मानकर उसपर चलना। किसी बात पर ध्यान देना। जैसे,—उसकी बातों पर मत जाओ अपना काम किए चलो।

विशेष—इस क्रिया का प्रयोग संयो० क्रि० के रूप में प्रायः सब क्रियाओं के साथ केवल पूर्णता आदि का बोध कराने के लिये होता है। जैसे, चले जाना, आ जाना, मिल जाना, खो जाना, डूब जाना, पहुँच जाना, हो जाना, दौड़ जाना, खा जाना इत्यादि। कहीं कहीं जाना का अर्थ भी बना रहता है। जैसे, कर जाना—इनके लिये भी कुछ कर जाओ। कर्मप्रधान क्रियाओं के बनाने में भी इस क्रिया का प्रयोग होता है। जैसे, किया जाना, खा जाना। जहाँ 'जाना' का संयोग किसी क्रिया के पहले होता है, वहाँ उसका अर्थ बना रहता है। जैसे, जा निकलना, जा डटना, जा भिड़ना।

२. अलग होना। दूर होना। जैसे,—(क) बीमारी यहाँ से न जाने कब जायगी। (ख) सिर जाय तो जाय, पीछे नहीं हटेंगे। ३. हाथ या अधिकार से निकलना। हानि होना।

मुहा०—क्या जाता है ? = क्या व्यय होता है ? क्या लगता है ? क्या हानि होती है ? जैसे,—उनका क्या जाता है, नुकसान तो होगा हमारा। किसी बात से भी गए ? = इतनी बात से भी वंचित रहे ? इतना करने के भी अधिकारी या पात्र न रहे ? इतने में भी चूकनेवाले हो गए। जैसे,—उसने हमारे साथ इतनी बुराई की तो हम कुछ कहने से भी गए ?

४. खोना। गायब होना। चोरी होना। गुम होना। जैसे,—(क) पुस्तक यहीं से गई है। (ख) जिसका माल जाता है, वही जानता है। ५. बीतना। व्यतीत होना। गुजरना (काल, समय)। उ०—(क) चार दिन इस महीने में भी गए और रुपया न आया। (ख) गया वक्त फिर हाथ आता नहीं। ६. नष्ट होना। बिगड़ना। सत्यानाश या बरबाद होना। जैसे,—यह घर भी अब गया।

मुहा०—गया घर = दुर्दशाप्राप्त घराना। वह कुल जिसकी समृद्धि नष्ट हो गई हो। गया बीता = (१) दुर्दशाप्राप्त। (२) निकृष्ट।

७. मरना। मृत्यु को प्राप्त होना (क्व०)। जैसे,—उसके दो बच्चे जा चुके हैं। ८. प्रवाह के रूप में कहीं से निकलना। बहना। जारी होना जैसे, आँख से पानी जाना, खून जाना, धातु जाना, इत्यादि।

जाना[2]†(पु)—क्रि० स० [सं० जनन] उत्पन्न करना। जन्म देना। पैदा करना। उ०—(क) मैया मोहिं दाऊ बहुत खिझायो। मोसों कहत मोल को, लीन्हो तू जसुमति कब जायो।—सूर०, १०।२१५। (ख) कोशलेश दशरथ के जाए। हम पितु बचन मानि बन आए।—तुलसी (शब्द०)।

जानि[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्त्री। भार्या। जैसे, जानकीजानि। उ०—सो मय दीन्ह रावनहिं आनी। होइहिं जातुधानपति जानी।—तुलसी (शब्द०)।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग समासांत में होता है और यह ह्रस्व इकारांत हो रहता है।

जानि[2](पु)—वि० [सं० ज्ञानी] जानकार। जाननेवाला। उ०—यह प्राकृत महिपाल सुभाऊ। जानि सिरोमनि कोसलराऊ।—तुलसी (शब्द०)।

जानिब—संज्ञा स्त्री० [अ०] तरफ। ओर। दिशा। उ०—फौज उश्शाक देख हर जानिब। नाजनी साहबे दिमाग हुआ।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ७।

जानिबदार—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] तरफदार। पक्षपाती। हिमायती।

जानिबदारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] पक्षपात। हिमायत। तरफदारी।

जानी[1]—संज्ञा पुं० [अ० जानी] विषयलंपट व्यभिचारी व्यक्ति [को०]।

जानी[2]—वि० [फ़ा०] १. जान से संबंध रखनेवाला। प्राणों का। २. घनिष्ठ। गहरा (को०)।

यौ०—जानी दुश्मन = जान लेने को तैयार दुश्मन। प्राणों का गाहक शत्रु। जानी दोस्त = दिली दोस्त। घनिष्ठ मित्र। प्रिय दोस्त। प्राणप्रिय मित्र।

जानी[3]—वि० स्त्री० [फ़ा० जान] प्राणप्यारी। प्राणेश्वरी। प्रिया।

जानीवासउ(पु)†—संज्ञा [हिं० जनवासा] जनवासा। बारात ठहरने का स्थान। उ०—चार नग्री आयो बीसल राव, जानीवासउ दीयो तिणि ठाव।—बी० रासो, पृ० १६।

जानु[1]—संज्ञा पुं० [सं०] जाँघ और पिंडली के मध्य का भाग। घुटना। उ०—(क) श्याम की सुंदरताई। बड़े विशाल जानु लौं पहुँचत यह उपमा मन आई।—तुलसी (शब्द०)। (ख) जानु टेकि कपि भूमि न गिरा। उठा सँभारि बहुत रिस भरा।—तुलसी (शब्द०)।

जानु[2]—संज्ञा पुं० [सं० जानु, तुल० फ़ा० जानू] जाँघ। रान। उ०—बान है फाबत आक के मान है कदली विपरीत उठानु है।··· का न करै यह सौतिन के पर प्रान से प्यारी सुजान की जानु है।—तोष (शब्द०)।

जानु[3](पु)—अव्य० [हिं० जानना] दे० 'जानो'। उ०—तरिवर फरे फरै फरहरी। फरे जानु इंद्रासन पुरी।—जायसी (शब्द०)।

जानुदघ्न—वि० [सं० जानु + दघ्न (दघ्नच् प्रत्य०)] घुटने तक गहरा या घुटनों तक ऊँचा [को०]।

जानुपाणि—क्रि वि० [सं०] घुटनों। पैयां पैयां। घुटनों और हाथों के बल (चलना. जैसे बच्चे चलते हैं)।

जानुपानि(पु)—क्रि० वि० [सं० जानुपाणि] दे० 'जानुपाणि'। उ०—(क) जानुपानि धाए मोहि धरना। श्यामल गात, अरुन कर चरना।—तुलसी (शब्द०) (ख) पीत झँगुलिया तनु पहिराई। जानुपानि बिचरन मोहि भाई।—तुलसी (शब्द०)। (ग) राजत सिंधु रूप राम सकल गुन निकाय धाम, कौतुकी कृपालु ब्रह्म जानुपानि चारी।—तुलसी (शब्द०)।

जानुप्रहृतिक—संज्ञा पुं० [सं०] मल्ल युद्ध या कुश्ती का एक ढंग जिसमें घुटनों का व्यवहार विशेष होता था।

जानुफलक—संज्ञा पुं० [सं०] घुटने की वह हड्डी जो जाँघ और पिंडली को जोड़ती है [को०]।

जानुमंडल—संज्ञा पुं० [सं० जानुमण्डल] दे० 'जानुफलक'।

जानुवाँ—संज्ञा पुं० [सं० जानु + हिं० वाँ (प्रत्य०)] एक रोग जो हाथी के अगले पिछले पैर के जोड़ों में होता है और जिसमें कभी कभी घुटने की हड्डी उभर आती है।

जानुविजानु—संज्ञा पुं० [सं०] तलवार के २२ हाथों में से एक।

जानू—संज्ञा पुं० [फ़ा० ज़ानू] जंघा। जाँघ।

जानो†—अव्य० [हिं० जानना] मानो। जैसे। ऐसा जान पड़ता है कि।

जान्य—संज्ञा पुं० [सं०] हरिवंश के अनुसार एक ऋषि का नाम।

जाप[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी मंत्र या स्तोत्र आदि का बार बार मन में उच्चारण। मंत्र की विधिपूर्वक आवृत्ति। उ०—अनमिल आखर अर्थ न जापू। प्रगट प्रभाव महेश प्रतापू।—तुलसी (शब्द०)। २. भगवान् के नाम का बार बार स्मरण और उच्चारण।

जाप[2]†—संज्ञा स्त्री० [सं० जप] मंत्र या नाम आदि जपने की माला। उ०—बिरह भभूत जटा बैरागी। छाला काँध जाप कंठ लागी।—जायसी (शब्द०)।

जापक—संज्ञा पुं० [सं०] जपकर्ता। जप करनेवाला। जपनेवाला। उ०—(क) राम नाम नरकेशरी कनककसिपु कलि कालु। जापक जन प्रह्लाद जिमि पालिहि दलि सुरसालु।—तुलसी (शब्द)। (ख) चित्रकूट सब दिन बसत प्रभु सिय लखन समेत। राम नाम जप जापकहि तुलसी अभिमत देत।—तुलसी (शब्द०)।

जापता(पु)†—संज्ञा पुं० [फ़ा० ज़ाबितह्] कायदा। नियम। पद्धति। जाब्ता। उ०—सादं या लिखावदि जापता सूं मेल दोनी। सारा कामलाम्यां नै बुलास्यां धाम लीनी।—शिखर०, पृ० ५६।

जापन—संज्ञा पुं० [सं०] १. जप। २. निवर्तन।

जापा—संज्ञा पुं० [सं० जनन] सौरी। प्रसूतिका गृह।

जापान—संज्ञा पुं० [जा० निप्पान्; अं० जापान] एक द्वीपसमूह जो चीन के पूरब है।

जापानी[1]—संज्ञा पुं० [अं० जापान + हिं० ई (प्रत्य०); या देश०] जापान द्वीपसमूह का निवासी। जापान का रहनेवाला।

जापानी[2]—वि० जापान का। जापान का बना। जैसे, जापानी दियासलाई, जापानी भाषा।

जापिनी(पु)—वि० [हिं०] जपनेवाली। उ०—बीरं बधू ही पापिनी बीर बधू हरि लहि। और पीर कहाँ जापिनी पीर पपीहा देहि।—स० सप्तक, पृ० २३४।

जापी—वि०, संज्ञा पुं० [सं० जापिन्] जापक। जप करनेवाला। उ०—माधव जू मोते और न पापी। लंपट धूत पूत दमरी को विषय जाप को जापी।—सूर० १।१४०।

जाप्य—वि० [सं०] (मंत्र या स्तुति) जप करने योग्य [को०]।

जाफा†—संज्ञा पुं० [अ० ज़ा'फ़, ज़ो'फ़] १. बेहोशी। २. घुमरी। मूर्च्छा। ३. थकावट। शिथिलता। निर्बलता।

क्रि० प्र०—आना।—होना।

जाफत—संज्ञा स्त्री० [अ० ज़ियाफ़त] भोज। दावत।

क्रि० प्र०—करना।—होना।—खाना।—खिलाना।—देना।

जाफरान—संज्ञा पुं० [अ० ज़ाफ़रान] १. केसर। २. अफगानिस्तान की एक तातारी जाति।

जाफरानी—वि० [अ० ज़ाफ़रानी] केसरिया। केसर के रंग का। केसर का सा पीला। जैसे, जाफरानी रंग, जाफरानी कपड़ा।

जाफरानी ताँबा—संज्ञा पुं० [अ० ज़ाफ़रानी + हिं० ताँबा] पीलापन लिए हुए उत्तम ताँबा जो जो चाँदी सोने में मेल देने के काम में आता है।

जाफा—संज्ञा पुं० [अ० इज़ाफ़ह्] वृद्धि। बढ़ती। उ०—एक किसान दूसरे के खेत पर न चढ़े तो कोई जाफा कैसे करे।—गोदान, पृ० २७।

जाब[1](पु)—संज्ञा पुं० [अ० जवाब] उत्तर। जवाब। उ०—दिए जाब उनकूं अलेकुल सलाम, ऐ जिब्रील, नेकदल नेक नाम।—दक्खिनी०, पृ० ३४५।

जाब[2]—संज्ञा पुं० [अं० जाब] १. धंधा। काम। २. द्रव्य के बदले में किया हुआ कार्य।

यौ०—जाब वर्क। जाब प्रेस।

जाब†[3]—संज्ञा पुं० [अ० जब्त, हिं० जाबा†] बैलों के मुह पर लगाने की जाली। उ०—बैलों की मुँह पर 'जाब' लगा दिया जाता है।—मैला०, पृ० ६७।

जाबजा—क्रि० वि० [फ़ा० जा + बजा] जगह जगह। इधर उधर।

जाबड़ा†—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'जबड़ा'।

जाबता—संज्ञा पुं० [फ़ा ज़ाबितह्] दे० 'जाब्ता'।

जाब प्रेस—संज्ञा पुं० [अ०] कार्ड, नोटिस आदि छोटी छोटी चीजों के छापने की कल।

जाबर[1]—संज्ञा पुं० [देश०] घीए के महीन टुकड़ों के साथ पका हुआ चावल।

जाबर†[2]—वि० [सं० जर्जर] वृद्ध। बुड्ढा। जईफ।—(डिं०)।

जाबर‡[3]—वि० [फ़ा० जबर] बलवान्। ताकतवर। अधिक बलवाला।

जाबाल—संज्ञा पुं० [सं०] एक मुनि जिनकी माता का नाम जाबाला था ।

विशेष—छांदोग्य उपनिषद् में इनके संबंध में यह आख्यान आया है कि जब ये ऋषियों के पास वेद की शिक्षा प्राप्त करने के लिये गए, तब उन्होंने इनका गोत्र तथा इनके पिता का नाम आदि पूछा । ये न बतला सके और अपनी माता के पास पूछने गए । माता ने कहा कि मैं जवानी में बहुतों के पास रही और उसी समय तू उत्पन्न हुआ । मैं नहीं जानती कि तू किसका पुत्र है । जा और कह दे कि मेरी माता का नाम जाबाला है और मेरा जाबाल है । जब आचार्य ने यह सुना तब उन्होंने कहा कि 'हे जाबाल ? समिधा लाओ, मैं तुम्हारा यज्ञोपवीत करूँ; क्योंकि ब्राह्मण के अतिरिक्त कोई ऐसा सत्य नहीं बोल सकता' । इनका एक नाम सत्यकाम भी है ।

जाबालि—संज्ञा पुं० [सं०] कश्यपवंशीय एक ऋषि जो राजा दशरथ के गुरु और मंत्रियो मे से थे ।

विशेष—इन्होने चित्रकूट में रामचंद्र को बन से लौट जाने और राज्य करने के लिये बहुत समझाया था, यहाँ तक कि अपने उपदेश मे इन्होने चार्वाक से मिलते जुलते मत का आभास देकर भी राम को बनगमन से विमुख करने का प्रयत्न किया था ।

जाबित—वि० [अ० ज़ाबित] १. जब्त करनेवाला । सहनशील । २. प्रबंधक ।

जाबिता—संज्ञा पुं० [अ० ज़ाबितह्] दे० 'जाब्ता' ।

जाबिर—वि० [फ़ा०] १. जब्र करनेवाला । अत्याचार करनेवाला । जबरदस्ती करनेवाला । २. जबरदस्त । प्रचंड ।

जाब्ता—संज्ञा पुं० [अ० ज़ाब्तह्] नियम । कायदा । व्यवस्था । कानून । जैसे, जाब्ते की कारंवाई, जाब्ते की पाबंदी ।

यौ०—जाब्ता आदालत = अदालत संबंधी कार्यविधि । अदालती व्यवहार । जाब्ता दीवानी = सर्वसाधारण के परस्पर अधिक व्यवहार से संबंध रखनेवाला कानून या व्यवस्था । जाब्ता फौजदारी = दंडनीय अपराधों से संबंध रखनेवाला कानून । जाब्ता माल = अदालत माल का व्यवहार या पद्धति ।

जाम[1]—संज्ञा पुं० [सं० याम] पहर । प्रहर । ७½ घड़ी या तीन घंटे का समय । उ०—(क) गए जाम जुग भूपति आवा । घर घर उत्सव बाज बधावा ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) दुतिय जाम संगीत उछव रस किक्ति काव्य जगि ।—पृ० रा०, ६ । ११ । (ग) उ०—जाम निसा रहि भोर की, अल्हन सुप्न सु होय ।—प० रासो, पृ० १७० ।

जाम[2]—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. प्याला । २. प्याले के आकार का बना हुआ कटोरा ।

जाम[3]—संज्ञा पुं० [अनु० झम (=जल्दी)] जहाज की दौड़ (लश०) ।

जाम[4]—संज्ञा पुं० [अं० जैम] १. जहाज का दो चट्टानों या और किसी वस्तु के बीच अटकाव । फँसाव (लश०) ।

क्रि० प्र०—आना ।—करना ।—होना ।

२. मुरब्बा । चाशनी में पागे हुए फल ।

जाम[5]—वि० रुका हुआ । अवरुद्ध । जैसे, दो गाड़ियों के लड़ जाने से रास्ता जाम हो गया ।

जाम[6]—संज्ञा पुं० [सं० जम्बू] जामुन ।

जामगिरी—संज्ञा पुं० [?] बंदूक का फलीता (लश०) ।

जामगी—संज्ञा पुं० [?] बंदूक या तोप का फलीता । उ०—जोत जामगिन में जगी लागे नषत दिखान । रन असमान समान भो रन समान असमान ।—लाल (शब्द०) ।

जामण†—संज्ञा पुं० [सं० जन्म] उत्पत्ति । जन्मना । जन्म होना । पैदाइश । उ०—हरि रस माते मगन भए सुमिरि सुमिरि भए मतवाले, जामण मरण सब भूलि गए ।—दादू०, पृ० ५६६ ।

यौ०—जामणमरण = जन्म और मृत्यु ।

जामदग्न्य—संज्ञा पुं० [सं०] जमदग्नि के पुत्र । परशुराम ।

जामदानी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जामह्दानी > जामादानी] १. कपड़ों की पेटी । चमड़े का संदूक जिसमें पहनने के कपड़े रखे जाते है । २. एक प्रकार का कढ़ा हुआ फूलदार कपड़ा । बूटीदार महीन कपड़ा । ३. शीशे या अबरक की बनी हुई छोटी सदूकची जिसमे बच्चे अपनी खेलने की चीजे रखते हैं ।

जामन[1]—संज्ञा पुं० [हिं० जमाना] वह थोड़ा सा दही या और कोई खट्टा पदार्थ जो दूध में उसे जमाकर दही बनाने के लिये डाला जाता है । उ०—फेरि कछू करि पौरि तें फिरि चितई मुसुकाय । आई जामन लेन कों नेहैं चली जमाय ।—बिहारी (शब्द०) ।

जामन[2]—संज्ञा पुं० [सं० जम्बू] १. जामुन । २. आलू बुखारे की जाति का एक पेड़ । पारस नाम का वृक्ष ।

विशेष—यह वृक्ष हिमालय पर पंजाब से लेकर सिकिम और भूटान तक होता है । इसमें से एक प्रकार का गोंद तथा जहरीला तेल निकलता है जो दवा के काम में आता है । इसके फल खाए जाते हैं और पत्तियाँ चौपायों को खिलाई जाती हैं । लकड़ी से खेती के सामान बनाए जाते हैं । इसे पारस भी कहते हैं ।

जामन(पु)†[3]—संज्ञा पुं० [सं० जन्म, पुं० हिं० जामण] जन्म । उ०—सुनिए धनुषधारी, अरजी हमारी यह मेट दीजै भय भारी जामन मरन को ।—रघु० रू०, पृ० २८५ ।

जामना(पु)†—क्रि० अ० [हिं० जमना] दे० 'जमना' । उ०—ऊपर बरसे तृण नहिं जामा ।—तुलसी (शब्द०) ।

जामनि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० यामिनी] रात्रि । यामिनी । निशा ।

जामनी—वि० [सं० यावनी] दे० 'यावनी' ।

जाम बेतुआ—संज्ञा पुं० [हिं० जाम + बेंत] एक प्रकार का बाँस ।

विशेष—यह बाँस प्रायः बरमा, आसाम और पूर्वी बंगाल में होता है । यह बाँस टट्टर बनाने, छत पाटने आदि के लिये बहुत अच्छा होता है ।

जामल—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का तंत्र । वि० दे० 'यामल' जैसे, रुद्र जामल ।

जामवंत—संज्ञा पुं० [सं० जाम्बवान्] दे० 'जांबवान्' । उ०—जामवंत के बचन सुहाए । सुनि हनुमंत हृदय अति भाए ।—मानस, ५ । १ ।

जामान(पु)—संज्ञा पुं० [सं० जाम्बवान्] दे० 'जांबवान्' । उ०—जामवान अंगद सुग्रीव तथा कोउ रावन । —प्रेमघन०, भा० १, पृ० ४३ ।

जामा—संज्ञा पुं० [फ़ा० जामह्] १. पहनावा । कपड़ा । वस्त्र । उ०—सत कै सेल्ही जुगत कै जामा छिमा ढाल ठनकाई । —कबीर ग्रं०, भा० २, पृ० १३२ । २. एक प्रकार का घुटने के नीचे बड़े घेरे का पुराना पहनावा । उ०—हिंदू घुटने तक जामा पहनते हैं और सिर और कंधों पर कपड़ा रखते हैं । —भारतेंदु ग्रं०, भा० १ पृ० २४६ ।

विशेष—इस पहनावे का नीचे का घेरा बहुत बड़ा और लहँगे की तरह चुननदार होता है । पेट के ऊपर इसकी काट बगलबंदी के ढंग की होती है । पुराने समय में लोग दरबार आदि में इसे पहनकर जाते थे । यह पहनावा प्राचीन कंचुक का रूपांतर जान पड़ता है जो मुसलमानों के आने पर हुआ होगा, क्योंकि यद्यपि यह शब्द फारसी है, तथापि प्राचीन पारसियों में इस प्रकार का पहनावा प्रचलित नहीं था । हिंदुओं मे अबतक विवाह के अवसर पर यह पहनावा दुलहे को पहनाया जाता है ।

मुहा०—जामे से बाहर होना = आपे से बाहर होना । अत्यंत क्रोध करना । जामे में फूला न समाना = अत्यंत आनंदित होना ।

यौ०—जामाजेब = वह जिसके शरीर पर वस्त्र शोभा पाता हो । जामादार = कपड़ों की देखभाल करनेवाला नौकर । जामापोश = वस्त्रयुक्त परिधानयुक्त ।

जामात—संज्ञा पुं० [सं० जामातृ] दे० 'जामाता' ।

जामाता—संज्ञा पुं० [सं० जामातृ] १. दामाद । कन्या का पति । उ०—सादर पुनि भेटे जामाता । रूपसील गुननिधि सब भ्राता । —तुलसी (शब्द०) । २. हुरहुर का पौधा । हुलहुल ।

जामातु(पु)—संज्ञा पुं० [सं० जामातृ] दे० 'जामाता' ।

जामातृक—संज्ञा पुं० [सं०] जामाता । दामाद (को०) ।

जामानी†—वि० [हिं०] दे० 'जामुनी' । उ०—कहीं बैंगनी जामानी तो कहीं कत्थई कहीं सुरमई । इन रंगों मे डूबो गई मन, संध्या पावस की । —मिट्टी०, पृ० ७६ ।

जामि[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बहिन । भगिनी । २. लड़की । कन्या । ३. पुत्रबधू । बहू । पतोहू । ४. अपने संबंध या गोत्र की स्त्री । ५. कुल स्त्री । घर की बहू बेटी ।

विशेष—मनुस्मृति में यह शब्द आया है जिसका अर्थ कुल्लूक ने भगिनी, सपिंड की स्त्री, पत्नी, कन्या, पुत्रबधू आदि किया है । मनु ने लिखा है कि जिस घर में जामि प्रतिपूजित होती है; उसमें सुख की वृद्धि होती है, और जिसमें अपमानित होती है, उस कुल का नाश हो जाता है ।

जामि[2]—संज्ञा पुं० [सं० याम] दे० 'याम' और 'जाम' उ०—प्रथम जामि निसि रज्ज कज्ज हैगै दिष्षत लगि । दुतिय जाम संगीत उछव रस किति काव्य जगि ।—पृ० रा०, ६ । ११ ।

जामिक(पु)—संज्ञा पुं० [सं० यामिक] पहरुआ । पहरा देनेवाला । रक्षक । उ०—चरन पीठ करुनानिधान के । जनु जुग जामिक प्रजा प्रान के ।—तुलसी (शब्द०) ।

जामित्र—संज्ञा पुं० [सं०] विवाहादि शुभ कर्म के काल के लग्न से सातवाँ स्थान ।

जामित्र वेध—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष का एक योग जिसमें विवाह आदि शुभ कर्म दूषित होते हैं ।

विशेष—शुभ कर्म का जो काल हो, उसके नक्षत्र की राशि से सातवीं राशि पर यदि सूर्य, शनि या मंगल हो, तब जामित्रवेध होता है । किसी किसी के मत से सप्तम स्थान में पापग्रह होने से ही जामित्रवेध होता है । किंतु यदि चंद्रमा अपने मूल त्रिकोण या क्षेत्र में हो, अथवा पूर्ण चंद्र हो या पूर्ण चंद्र अपने या शुभ ग्रह के क्षेत्र में हो तो जामित्रवेध का दोष नहीं रह जाता ।

जामिन[1]—संज्ञा पुं० [अ० ज़ामिन] १. जिम्मेदार । जमानत करनेवाला । इस बात का भार लेनेवाला कि यदि कोई विशेष मनुष्य कोई विशेष कार्य करेगा या न करेगा, तो मैं उस कार्य की पूर्ति करूँगा या दंड सहूँगा । प्रतिभू । उ०—तो मैं आपको उनका जामिन समझूँगी ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ६५१ ।

क्रि० प्र०—होना ।

२. दो अंगुल लंबी एक लकड़ी जो नैचे की दोनो नलियों को अलग रखने के लिये फिलमर्द और चूल के बीच मे बाँधी जाती है । ३. दूध जमाने की वस्तु । दे० 'जामन' ।

जामिन[2](पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० यामिनी] दे० 'यामिनी' । उ०—काम लुबध बोली सब कामिन । च्यार जाम गई जागत जामिन ।—पृ० रा०, १ । ४१० ।

जामिनदार—संज्ञा पुं० [फ़ा० जामिनदार] जमानत करनेवाला ।

जामिनि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० यामिनी] दे० 'जामिनी' । उ०—सुखद सुहाई सरद की कैसी जामिनि आत ।—अनेकार्थ०, पृ० ८३ ।

जामिनी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० यामिनी] दे० 'यामिनी' ।

जामिनी[2]—संज्ञा स्त्री० [फ़ा] जमानत । जिम्मेदारी ।

जामी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० यामी] १. दे० 'यामी' । २. दे० 'जामि'[1] ।

जामी[2](पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० जनमना या जमना] बाप । पिता (डिं०) ।

जामुन—संज्ञा पुं० [सं० जम्बु] गरम देशों में होनेवाला एक सदाबहार पेड़ । जाम । जंबू ।

विशेष—यह वृक्ष भारतवर्ष से लेकर बरमा तक होता है और दक्षिण अमेरिका आदि में भी पाया जाता है । यह नदियों के किनारे कहीं कहीं आपसे आप उगता है, पर प्रायः फलों के लिये बस्ती के पास लगाया जाता है । इसकी लकड़ी का छिलका सफेद होता है और पत्तियाँ आठ दस अंगुल लंबी और तीन चार अंगुल चौड़ी तथा बहुत चिकनी, मोटे दल की और चमकीली होती हैं । बैसाख जेठ में इसमें मंजरी लगती है जिसके झड़ जाने पर गुच्छों में सरसों के बराबर फल दिखाई

पड़ते हैं जो बढ़ने पर दो तीन अंगुल लंबे बेर के आकार के होते हैं। बरसात लगते ही ये फल पकने लगते हैं और पकने पर पहले बैंगनी रंग के और फिर खूब काले हो जाते हैं। ये फल कालेपन के लिये प्रसिद्ध हैं। लोग 'जामुन सा काला' प्राय: बोलते हैं। फलों का स्वाद कसैलापन लिए मीठा होता है। फल में एक कड़ी गुठली होती है। इसकी लकड़ी पानी में सड़ती नहीं और मकानों में लगाने तथा खेती के सामान बनाने के काम में आती है। इसका पका फल खाया जाता है। फलों के रस का सिरका भी बनता है जो तिल्ली, यकृत् रोग आदि की दवा है। गोआ में इससे एक प्रकार की शराब भी बनती है। इसकी गुठली बहुमूत्र के रोगी के लिये अत्यंत उपकारी है। बौद्ध लोग जामुन के पेड़ को पवित्र मानते हैं। वैद्यक मे जामुन का फल ग्राही, रूखा तथा कफ, पित्त और दाह को दूर करनेवाला माना जाता है।

पर्या०—जंबू। सुरभिप्रभा। नीलफला। श्यामला। महास्कधा। राजार्हा। राजफला। शुकप्रिया। मोदमादिनी। जबुल।

जामुनी—वि० [हिं० जामुन] जामुन के रंग का। जामुन की तरह बैंगनी या काला। जैसे, जामुनी रंग।

जामेय—संज्ञा पुं० [सं०] भागिनेय। भांजा। बहिन का लड़का।

जामेवार—संज्ञा पुं० [देश०] १. एक प्रकार का दुशाला जिसकी सारी जमीन पर बेलबूटे रहते हैं। २. एक प्रकार की छींट जिसकी बूटी दुशाले की चाल की होती है।

जायंट—वि० [अं०] साथ में काम करनेवाला। सहयोगी। संयुक्त। जैसे, जायंट सेक्रेटरी। जायंट एडीटर।

जायंट मैजिस्ट्रेट—संज्ञा पुं० [अं०] फौजदारी का वह मजिस्ट्रेट या हाकिम जिसका दर्जा जिला मजिस्ट्रेट के नीचे होता है और जो प्राय: नया सिवीलियन होता है। जंट।

जायँ[1]—क्रि० वि० [अ० ज़ायअ] व्यर्थ। वृथा। निष्फल।

जायँ†[2]—अव्य० [फ़ा जा (=ठीक)] वाजिब। मुनासिब। ठीक। उचित। जैसे,—तुम्हारा कहना जायँ है।

जाय(पु)[1]—अव्य० [अ० ज़ायअ (=वृथा)] वृथा। निष्फल। व्यर्थ। बेकार। उ०—(क) जाय जीव बिनु देह सुहाई। बादि मोर सब बिनु रघुराई। —तुलसी (शब्द०)। (ख) तात जाय जिन करहु गलानी। ईस अधीन जीव गति जानी। —तुलसी (शब्द०)। (ग) जेहि देह सनेह न रावरे सो ऐसी देह धराइ जो जाय जिए। —तुलसी (शब्द०)।

जाय†[2]—संज्ञा स्त्री० [देश०] चने और उड़द की भूनकर पकाई हुई दाल।

जाय[3]—संज्ञा स्त्री०[फ़ा० 'जा' का यौगिक रूप]जगह। स्थान। मौका।

यौ०—जायनमाज। जायपनाह, जायरहाइश=निवास स्थान।

जाय[4](पु)—वि० [सं० जात] जन्मा हुआ। पैदा। उत्पन्न। जैसे—चल जा दासीजाय तेरा उत्साह दिखाना निष्फल हुआ।

जायक—संज्ञा पुं० [सं०] पीला चंदन।

जायका—संज्ञा पुं० [अ० ज़ाइक़ह, ज़ायक़ह] खाने पीने की चीजों का मजा। स्वाद। लज्जत।

क्रि० प्र०—लेना।

जायकेदार—वि० [अ० ज़ायक़ह + फ़ा० दार] स्वादिष्ट। मजेदार। जो खाने या पीने में अच्छा जान पड़े।

जायचा—संज्ञा पुं० [फ़ा० ज़ायचह] जन्मकुंडली। जन्मपत्री।

जायज—वि० [अ० ज़ायज़] यथार्थ। उचित। मुनासिब। ठीक। वाजिब।

क्रि० प्र०—रखना।

जायजा—संज्ञा पुं० [अ० जायज़ह] १. जाँच। पड़ताल।

मुहा०—जायजा देना=हिसाब समझाना। जायजा लेना=पड़ताल करना। जाँचना।

२. हाजिरी। गिनती।

जायजरूर—संज्ञा पुं० [फ़ा० जा + अ० जरूर] टट्टी। पाखाना।

जायद—वि० [फ़ा० ज़ायद] १. ज्यादा। अधिक। २. फालतू। अतिरिक्त।

जायदाद—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] भूमि, धन या सामान आदि जिसपर किसी का अधिकार हो। संपत्ति।

विशेष—कानून के अनुसार जायदाद दो प्रकार की है, मनकूला और गैरमनकूला। मनकूला जायदाद उसे कहते हैं जो एक स्थान से दूसरे स्थान पर हटाई जा सके। जैसे, बरतन, कपड़ा, असबाब आदि। गैरमनकूला जायदाद उसे कहते हैं जो स्थानांतरित न की जा सके। जैसे, मकान, बाग, खेत, कुआँ आदि।

जायदाद गैरमनकूला—संज्ञा स्त्री० [फ़ा जायदाद + अ० ग़ैरमनक़ूलह] वह संपत्ति जो हटाई बढ़ाई न जा सके। स्थावर संपत्ति। दे० 'जायदाद' शब्द का विशेष।

जायदाद जौजियत—संज्ञा स्त्री० [फा० जायदाद + अ० जौजियत] वह संपत्ति जिसपर स्त्री का अधिकार हो। स्त्रीधन।

जायदाद मकफूला—संज्ञा स्त्री० [फा० जायदाद + अ० मक्फूलह] वह संपत्ति जो किसी प्रकार रेहन या बंधक हो।

जायदाद मनकूला—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जायदाद + अ० मनक़ूलह] चल संपत्ति। जंगम संपत्ति। दे० 'जायदाद' शब्द का विशेष।

जायदाद मुतनाजिआ—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जायदाद + अ० मुतनाज़िअह] वह संपत्ति जिसके अधिकार आदि के विषय में कोई झगड़ा हो। विवादग्रस्त संपत्ति।

जायदाद शौहरी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] वह संपत्ति जो स्त्री को उसके पति से मिले।

जायनमाज—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जायनमाज़] वह छोटी दरी, कालीन या इसी प्रकार का और कोई बिछौना जिसपर बैठकर मुसलमान नमाज पढ़ते हैं। बहुधा इसपर बना या छपा हुआ मसजिद का चित्र होता है। मुसल्ला।

जायपनाह—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] आश्रय या पनाह का स्थान। आश्रयगृह [को०]।

जायपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं० जातिपत्री] दे० 'जावित्री'।

जायफर—संज्ञा पुं० [सं० जातिफल, जातीफल] दे० 'जायफल'।

जायफल—संज्ञा पुं० [सं० जातीफल, प्रा० जाइफल] अखरोट की तरह का पर उससे छोटा, प्रायः जामुन के बराबर, एक प्रकार का सुगंधित फल जिसका व्यवहार औषध और मसाले आदि में होता है। जातीफल।

पर्या०—कोषक। सुमनफल। कोश। जातिशस्य। शालूक। मालतीफल। मज्जसार। जातिसार। पुट।

विशेष—जायफल का पेड़ प्रायः ३०, ३५ हाथ ऊँचा और सदाबहार होता है, तथा मलाका, जावा और बटेविया आदि द्वीपों में पाया जाता है। दक्षिण भारत के नीलगिरि पर्वत के कुछ भागों में भी इसके पेड़ उत्पन्न किए जाते हैं। ताजे बीज बोकर इसके पेड़ उत्पन्न किए जाते हैं। इसके छोटे पौधों की तेज धूप आदि से रक्षा की जाती है और गरमी के दिनों में उन्हें नित्य सींचने की आवश्यकता होती है। जब पौधे डेढ़ दो हाथ ऊँचे हो जाते हैं तब उन्हें १५-२० हाथ की दूरी पर अलग अलग रोप देते हैं। यदि उनकी जड़ों के पास पानी ठहरने दिया जाय अथवा व्यर्थ घासपात उगने दिया जाय तो ये पौधे बहुत जल्दी नष्ट हो जाते हैं। इसके नर और मादा पेड़ अलग अलग होते हैं। जब पेड़ फलने लगते हैं तब दोनों जातियों के पेड़ों को अलग अलग कर देते हैं और प्रति आठ दस मादा पेड़ों के पास उस ओर एक नर पेड़ लगा देते है जिधर से हवा अधिक आती है। इस प्रकार नर पौधों का पुंपराग उड़कर मादा पेड़ों के स्त्री रज तक पहुँचता है और पेड़ फलने लगते हैं। प्रायः सातवें वर्ष पेड़ फलने लगते हैं और पद्रहवें वर्ष तक उनका फलना बराबर बढ़ता जाता है। एक अच्छे पेड़ में प्रतिवर्ष प्रायः डेढ़ दो हजार फल लगते हैं। फल बहुधा रात के समय स्वयं पेड़ों से गिर पड़ते हैं और सवेरे चुन लिए जाते हैं। फल के ऊपर एक प्रकार का छिलका होता है जो उतारकर अलग सुखा लिया जाता है। इसी सूखे हुए ऊपरी छिलके को जावित्री कहते हैं। छिलका उतारने के बाद उसके अंदर एक और बहुत कड़ा छिलका निकलता है। इस छिलके को तोड़ने पर अंदर से जायफल निकलता है जो छाँह में सुखा लिया जाता है। सूखने पर फल उस रूप में हो जाते हैं जिस रूप मे वे बाजार में बिकने आते हैं। जायफल में से एक प्रकार का सुगधित तेल और अरक भी निकाला जाता है जिसका व्यवहार दूसरी चीजों की सुगंध बढ़ाने अथवा औषधों में मिलाने के लिये होता है। जायफल की बुकनी या छोटे छोटे टुकड़े पान के साथ भी खाए जाते है। भारतवर्ष में जायफल और जावित्री का व्यवहार बहुत प्राचीन काल से होता आया है। वैद्यक में इसे कड़ुआ, तीक्ष्ण, गरम, रेचक, हलका, चरपरा, अग्निदीपक, मलरोधक, बलवर्धक तथा त्रिदोष, मुख की विरसता, खाँसी, वमन, पीनस और हृद्रोग आदि को दूर करनेवाला माना है।

जायरी—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की छोटी झाड़ी जो बुंदेलखंड और राजपूताने की पथरीली भूमि मे नदियों के पास होती है।

जायल—वि० [फ़ा० या अ० जाइल] जिसका नाश हो चुका हो। विनष्ट। समाप्त। बरबाद।

जायस—संज्ञा पुं० रायबरेली जिले की एक तहसील तथा प्रसिद्ध प्राचीन और ऐतिहासिक नगर जहाँ बहुत दिनों से सूफी फकीरों की गद्दी है। उ०—जायस नगर धरम अस्थानू। तहाँ आइ कवि कीन्ह बखानू। —जायसी ग्रं०, पृ०६।

विशेष—यहाँ मुसलमान विद्वान् बहुत दिनों से होते आए हैं। बहुत सी जातियाँ अपना आदि स्थान इसी नगर को बताती हैं। पद्मावत या पद्मावती ग्रंथ के रचयिता प्रसिद्ध सूफी कवि मलिक मुहम्मद यहीं के निवासी थे और यहीं उन्होंने पद्मावत की रचना की थी। उनका प्रसिद्ध संक्षिप्त नाम 'जायसी' इसी शब्द से बना है।

जायसवाल—संज्ञा पुं० [हिं० जायस] १. जायस का रहनेवाला व्यक्ति। २. बनियों की एक शाखा।

जायसी[1]—वि० [हिं जायस] जायस का रहनेवाला। जायस संबंधी। जायस का।

जायसी[2]—संज्ञा पुं० १. जायस का व्यक्ति या पदार्थ। २. प्रसिद्ध कवि मलिक मुहम्मद जायसी का संक्षिप्त नाम।

जाया[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. विवाहिता स्त्री: पत्नी। जोरू। विशेषतः वह स्त्री जो किसी बालक को जन्म दे चुकी हो। उ०—जरा मरन ते रहित अमाया। मात पिता सुत बंधु न जाया।—सूर (शब्द०)। २. उपजाति वृत्त का सतवाँ भेद जिसके पहले तीन चरणों में (ज त ज ग ग) ISI, SSI, ISI, S, S और चौथे चरण में (त त ज ग ग) SSI, SSI, ISI, S, S होता है। ३. जन्मकुंडली में लग्न से सातवाँ स्थान जहाँ से पत्नी के संबंध की गणना की जाती है।

जाया[2]—वि० [अ० जाये या फ़ा० जायह्] खराब। नष्ट। व्यर्थ। खोया हुआ।

क्रि० प्र०—करना। —जाना। —होना।

जायाघ्न—संज्ञा पुं० [सं०] १. ज्योतिष में ग्रहों का एक योग।

विशेष—यह योग उस समय होता है जब जन्मकुंडली में लग्न से सातवें स्थान पर मंगल या राहु ग्रह रहता है। जिस मनुष्य की कुंडली में यह योग पड़ता है फलित ज्योतिष के अनुसार उस मनुष्य की स्त्री नहीं जीती।

२. वह मनुष्य जिसकी कुंडली में यह योग हो। ३. शरीर मे का तिल।

जायाजीव—संज्ञा पुं० [सं०] १. बगला पक्षी। २. अपनी जाया (स्त्री) के द्वारा जीविका उपार्जित करनेवाला। नट। वेश्या का पति।

जायानुजीवी—संज्ञा पुं० [सं० जायानुजीविन्] दे० 'जायाजीव'।

जायी—संज्ञा पुं० [सं० जायिन्] संगीत मे ध्रुपद की जाति का एक प्रकार का ताल।

जायु[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. औषध। दवा। २. वैद्य। भिषग।

जायु[2]—वि० जीतनेवाला। जेता।

जार[1]—संज्ञा पुं० [सं०] वह पुरुष जिसके साथ किसी दूसरे की विवाहिता स्त्री का प्रेम या अनुचित संबंध हो। उपपति। पराई स्त्री से प्रेम करनेवाला पुरुष। यार। आशना।

जार[2]—वि० मारनेवाला। नाश करनेवाला।

जार[3]—संज्ञा पुं० [लैं० सीजर] रूस के सम्राट् की उपाधि।

जार⁴(पु)—संज्ञा पुं० [सं० जाल] दे० 'जाल'। उ०—कहहिं कबीर पुकारि कै, सबका उहै विचार। कहा हमार मानै नहिं, किमि छूटै भ्रम जार।—कबीर बी०, पृ० १६५।

जार⁵—संज्ञा पुं० [फ़ा० ज़ार] स्थान। जगह [को०]।

जार⁶—संज्ञा पुं० [अं०] अँचार आदि रखने का मिट्टी, चीनी मिट्टी या शीशे का बर्तन।

जारक—वि०[सं०] १. जलानेवाला। क्षीण या नष्ट करनेवाला। २. पाचक [को०]।

जारकर्म—संज्ञा पुं० [सं०] व्यभिचार। छिनाला।

जारज—संज्ञा पुं० [सं०] किसी स्त्री की वह संतान जो उसके जार या उपपति से उत्पन्न हुई हो। दोगली संतति।

विशेष—धर्मशास्त्रों में जारज संतान दो प्रकार के माने गए हैं। जो संतान स्त्री के विवाहित पति के जीवनकाल में उसके उपपति से उत्पन्न हो वह 'कुंड' और जो विवाहित पति के मर जाने पर उत्पन्न हो वह 'गोलक' कहलाती है। हिंदू धर्मशास्त्रानुसार जारज पुत्र किसी प्रकार के धर्म कार्य या पिंडदान आदि का अधिकारी नहीं होता।

जारजन्मा—वि० [सं० जारजन्मन्] जार से उत्पन्न। जारज [को०]।

जारजयोग—संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में किसी बालक के जन्मकाल में पड़नेवाला एक प्रकार का योग जिससे यह सिद्धांत निकाला जाता है कि वह बालक अपने असली पिता के वीर्य से नहीं उत्पन्न हुआ है बल्कि अपनी माता के जार या उपपति के वीर्य से उत्पन्न है। उ०—चित पितमारन जोगु गनि भयो भएँ सुत सोगु। फिरि हुलस्यो जिय जोइसी समझैं जारज जोगु।—बिहारी र०, दो० ५७५।

विशेष—बालक की जन्मकुंडली मे यदि लग्न या चंद्रमा पर बृहस्पति की दृष्टि न हो अथवा सूर्य के साथ चंद्रमा युक्त न हो और पापयुक्त चद्रमा के साथ सूर्य युक्त हो तो यह योग माना जाता है। द्वितीया, सप्तमी और द्वादशी तिथि में रवि, शनि या मंगलवार के दिन यदि कृत्तिका, मृगशिरा, पुनर्वसु, उत्तराषाढ़ा, धनिष्ठा और पूर्वाभाद्रपद में से कोई एक नक्षत्र हो तो भी जारज योग होता है। इसके अतिरिक्त इन अवस्थाओं में कुछ अपवाद भी हैं जिनकी उपस्थिति मे जारज योग होने पर भी बालक जारज नहीं माना जाता।

जारजात—संज्ञा पुं० [सं०] जारज।

जारजेट—संज्ञा स्त्री० [अं० जार्जेट] एक प्रकार का महीन तथा बढ़िया कपड़ा।

जारण—संज्ञा पुं० [सं०] १. पारे का ग्यारहवाँ संस्कार। २. जलाना। भस्म करना। ३. धातुओं को फूँकना।

विशेष—वैद्यक में सोना, चाँदी, ताँबा, लोहा, पारा आदि धातुओं को औषध के काम के लिये कई बार कुछ विशेष क्रियाओं से फूँककर भस्म करने को 'जारण' कहते हैं।

जारणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ा जीरा। सफेद जीरा।

जारद्गवी—संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्योतिष में मध्यमार्ग की एक वीथी का नाम जिसमें वराहमिहिर के अनुसार श्रवण, धनिष्ठा और शतभिषा तथा विष्णुपुराण के अनुसार विशाखा, अनुराधा और ज्येष्ठा नक्षत्र हैं।

जारन—संज्ञा पुं० [सं० जारण या हिं० जलाना] १. जलाने की लकड़ी। ईंधन। २. जलाने की क्रिया या भाव।

जारना—क्रि० स० [सं० जारण, हिं० 'जलाना] दे० 'जलाना'।

जारभरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] उपपति रखनेवाली स्त्री। परपुरुष से संबंध रखनेवाली स्त्री [को०]।

जारा¹—संज्ञा पुं० [हिं० जलाना] सोनार आदि की भट्ठी का वह भाग जिसमें आग रहती है और जिसमें रखकर कोई चीज गलाई या तपाई जाती है। इसके नीचे एक एक छोटा छेद होता है जिसमें से होकर भाथी की हवा आती है।

जारा(पु)²—संज्ञा पुं० [हिं० जाला] दे० 'जाला'। उ०—रोमराजि अष्टादस भारा। अस्थि सैल सरिता नस जारा।—मानस, ६।१५।

जारिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसका किसी दूसरे पुरुष के साथ अनुचित सबंध हो। दुश्चरित्रा स्त्री।

जारित—वि० [सं०] १. गलाया हुआ। पचाया हुआ। २. (धातु) शोधी हुई। मारी हुई [को०]।

जारी¹—वि० [अ०] १. बहता हुआ। प्रवाहित। जैसे, खून का जारी होना। २. चलता हुआ। प्रचलित। जैसे,—वह अखबार जारी है या बंद हो गया ?

क्रि० प्र०—करना।—रखना।—होना।

जारी²—संज्ञा पुं० [फ़ा० ज़ारी (= रोना)] १. एक प्रकार का गाना जिसे मुहर्रम मे ताजियों के सामने स्त्रियाँ गाती हैं। २. रुदन। विलाप।

यौ०—गिरिया व ज़ारी = रोना पीटना। विलाप।

जारी³—संज्ञा पुं० [देश०] झरबेरी का पौधा।

जारी⁴—संज्ञा स्त्री० [सं० जार + ई (प्रत्य०)] परस्त्री गमन। जार की क्रिया या भाव।

जारी⁵—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'जाली'। उ०—जारी अटारी, झरोखन, मोखन झाँकत दुरि दुरि ठौर ठौर तें परत काँकरी। —नंद० ग्रं०, पृ० ३४३।

जारुथी—संज्ञा स्त्री० [सं०] हरिवंश के अनुसार एक प्राचीन नगरी का नाम।

जारुधि—संज्ञा पुं० [सं०] भागवत के अनुसार एक पर्वत का नाम जो सुमेरु पर्वत के छत्ते का केसर माना जाता है।

जारुत्थ—संज्ञा पुं० [सं० जारूथ्य] दे० 'जारूथ्य'।

जारूथ्य—संज्ञा पुं० [सं०] वह अश्वमेध यज्ञ जिसमें तिगुनी दक्षिणा दी जाय।

जारोब—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] झाड़। बोहारी। कूँचा।

जारोबकश¹—संज्ञा पुं० [फ़ा०] झाड़ू देनेवाला व्यक्ति।

जारोबकश²—वि० झाड़ू देनेवाला।

जारोबकशी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] झाड़ू देने का काम [को०]।

जार्यंक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का मृग।

जालंधर—संज्ञा पुं० [सं० जालन्धर] १. एक ऋषि का नाम। २. जलंधर नाम का दैत्य। ३. पंजाब प्रांत का एक नगर।

जालंधरी विद्या—संज्ञा स्त्री० [सं० जालन्धर (=एक दैत्य)] मायिक विद्या। माया। इंद्रजाल।

जाल[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी प्रकार के तार या सूत आदि का बहुत दूर दूर पर बुना हुआ पट जिसका व्यवहार मछलियों और चिड़ियों आदि को पकड़ने के लिये होता है।

विशेष—जाल में बहुत से सूतों, रस्सियों या तारों आदि को खड़े और आड़े फैलाकर इस प्रकार बुनते हैं कि बीच में बहुत से बड़े बड़े छेद छूट जाते हैं।

क्रि० प्र०—बनाना।—बुनना।

यौ०—जालकर्म = मछुए का धंधा या पेशा। जालग्रथित = जाल में फँसा हुआ। जालजीवी।

मुहा०—जाल डालना या फेंकना = मछलियाँ आदि पकड़ने, कोई वस्तु निकालने अथवा इसी प्रकार के किसी और काम के लिये जल में जाल छोड़ना। जाल फैलाना या बिछाना = चिड़ियों आदि को फँसाने के लिये जाल लगाना।

२. एक में ओतप्रोत बुने या गुथे हुए बहुत से तारों या रेशों का समूह। ३. वह युक्ति जो किसी को फँसाने या वश में करने के लिये की जाय। जैसे,—तुम उनके जाल से नहीं बच सकते।

मुहा०—जाल फैलाना या बिछाना = किसी को फँसाने के लिये युक्ति करना।

४. मकड़ी का जाला। ५. समूह। जैसे,—पद्मजाल। ६. इंद्रजाल। ७. गवाक्ष। झरोखा। ८. अहंकार। अभिमान। ९. वनस्पति आदि को जलाकर उसकी राख से तैयार किया हुआ नमक। क्षार। खार। १०. कदम का पेड़। ११. एक प्रकार की तोप। उ०—जाल जंजाल हथनाल गयनाल हूँ बान नीसान फहरान लागे।—सूदन (शब्द०)। १२. फूल की कली। १३. दे० 'जाली'। १४. वह झिल्ली जो जलपक्षियों के पंजे को युक्त करती है (को०)। १५. आँखों का एक रोग (को०)।

जाल[2]ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० ज्वाल] ज्वाला। लपट। उ०—अग्नि जाल छिन छन उठत छिन तन तन बरसै मेहु। चक्रपवन डंडूर के केतन कंकर खेहु।—पृ० रा०, ६।५६।

जाल[3]—संज्ञा पुं० [अ० जअ़्ल। मि० सं० जाल] वह उपाय या कृत्य जो किसी को धोखा देने या ठगने आदि के अभिप्राय से हो। फरेब। धोखा। झूठी कारंवाई।

क्रि० प्र०—करना।—बनाना।—रचना।

जाल[4]ⓟ—संज्ञा स्त्री० [देशी जाड़ (=गुल्म)] राजस्थान में होनेवाला एक वृक्षविशेष। उ०—थल मध्यइ जल बाहिरी, तूँ काँइ नीली जाल। कँई तूँ सींची सज्जणे, कँइ बूठउ अग्गालि।—ढोला०, दू० ३६।

जालक—संज्ञा पुं० [सं०] १. जाल। २. कली। ३. समूह। ४. गवाक्ष। झरोखा। ५. मोतियों का बना हुआ एक प्रकार का आभूषण। ६. केला। ७. चिड़ियों का घोंसला। ८. गर्व। अभिमान।

जालकारक—संज्ञा पुं० [सं०] मकड़ा।

जालकि—संज्ञा पुं० [सं०] १. जालों से अपनी जीविका निर्वाह करनेवाला मनुष्य।

जालकिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] भेड़ी।

जालकिरच—संज्ञा स्त्री० [हिं० जाल + किरच] परतला मिली हुई वह पेटी जिसके साथ तलवार भी लगी हो।

जालकी—संज्ञा पुं० [सं० जालकिन्] बादल [को०]।

जालकीट—संज्ञा पुं० [सं०] १. मकड़ा। २. वह कीड़ा जो मकड़ी के जाले में फँसा हो।

जालगर्दभ—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का क्षुद्र रोग।

विशेष—इसमें किसी स्थान पर कुछ सूजन हो जाती है और बिना पके ही इसमें जलन उत्पन्न होती है। इस रोग में रोगी को ज्वर भी हो जाता है।

जालगोणिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दही मथने की हाँडी [को०]।

जालजीवी—संज्ञा पुं० [सं० जालजीविन्] धीवर। मछुआ।

जालदार—वि० [सं० जाल + हिं० दार] जिसमें जाल की तरह पास पास छेद हो।। जालवाला। जालीदार। २. फंदेवाला। फंदेदार (को०)।

जालना†—क्रि० स० [हिं०] दे० 'जलाना'। उ०—दादू केइ जाले केइ जालिये, केई जालन जाँहि। केई जालन की करें, दादू जीवन नाँहि।—दादू० बानी, पृ० ३९७।

जालनी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'जालिनी' ४.। उ०—जालनी यह तीव्र दाह करके मंयुक्त और मांस के जाल से व्याप्त होती है।—माधव०, पृ० १८७।

जालपाद—संज्ञा पुं० [सं०] १. हंस। २. जाबालि ऋषि के एक शिष्य का नाम। ३. एक प्राचीन देश का नाम। ४. वह पशु या पक्षी जिसके पैर की उँगलियाँ जालदार झिल्ली से ढँकी हों।

जालप्राया—संज्ञा स्त्री० [सं०] कवच। जिरह बकतर। संजोया।

जालबंद—संज्ञा पुं० [हिं० जाल + फ़ा० बंद] एक प्रकार का गलीचा जिसमें जाल की तरह बेलें बनी होती हैं।

जालबर्बुरक—संज्ञा पुं० [सं०] बबूल की जाति का एक प्रकार का पेड़ जिसमें छोटी छोटी डालियाँ होती हैं।

जालमⓟ†—वि० [हिं०] दे० 'जालिम'। उ०—विघन करत है चपेट पकड़ फेट काल की। नामा दर्जी जालम बिट्ठू राजा का गुलाम।—दक्खिनी०, पृ० ४५।

जालरंध्र—संज्ञा पुं० [सं० जालरन्ध्र] घर में प्रकाश आने के लिये झरोखे में लगी हुई जाली या उसके छेद। उ०—जालरंध्र मग अँगनु

को कछु उजास सो पाइ। पीठि दिए जगत्यो रह्यो डीठि झरोखें लाइ।—बिहारी (शब्द०)।

जालव—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक दैत्य का नाम जो बलवल का पुत्र था और जिसका बलदेव जी ने बध किया था।

जालसाज—संज्ञा पुं० [अ० जअ्ल + फ़ा० साज] वह जो दूसरों को धोखा देने के लिये झूठी कार्रवाई करे।

जालसाजी—संज्ञा स्त्री० [जाल+साजीअ० जअ्ल + फ़ा० साजी] फरेब या जाल करने का काम। दगाबाजी।

जाला[१]—संज्ञा पुं० [सं० जाल] १. मकड़ी का बुना हुआ बहुत पतले तारों का वह जाल जिसमें वह अपने खाने के लिये मक्खियों और दूसरे कीड़ों मकोड़ों आदि को फँसाती है। वि० दे० 'मकड़ी'।

विशेष—इस प्रकार के जाले बहुधा गंदे मकानों की दीवारों और छतों आदि पर लगे रहते हैं।

२. आँख का रोग जिसमें पुतली के ऊपर एक सफेद परदा या झिल्ली सी पड़ जाती है और जिसके कारण कुछ कम दिखाई पड़ता है।

विशेष—यह रोग प्रायः कुछ विशेष प्रकार के मैल आदि के जमने के कारण होता है, और ज्यों ज्यों झिल्ली मोटी होती जाती है, त्यों त्यों रोगी की दृष्टि नष्ट होती जाती है। झिल्ली अधिक मोटी होने के कारण जब यह रोग बढ़ जाता है, तब इसे माड़ा कहते हैं।

३. सूत या सन आदि का बना हुआ वह जाल जिसमें घास भूसा आदि पदार्थ बाँधे जाते हैं। ४. एक प्रकार का सरपत जिससे चीनी साफ की जाती है। ५. पानी रखने का मिट्टी का बड़ा बरतन। ६. दे० 'जाल'।

जाला(पु)[२]—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्वाला] दे० 'ज्वाला'। उ०—इक मुक्ख अग्गि जाला उठंत, इक परहु देह बरिखा उठंत।—पृ० रा०, ६। ४५।

जालाक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] झरोखा। गवाक्ष।

जालाष—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की तरल ओषधि [को०]।

जालिक[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. कैवर्त। जाल बुननेवाला व्यक्ति। २. जाल से मृगादि जंतुओं को फँसानेवाला व्यक्ति। ककंठक। ३. इंद्रजालिक। मदारी। बाजीगर। ४. मकड़ी (हिं०)। ५. प्रदेश आदि का प्रधान शासक (को०)।

जालिक[२]—वि० जाल से जीविका अर्जित करनेवाला (को०)।

जालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पाश। फंदा। २. जाली। ३. विधवा स्त्री। ४. कवच। जिरह बकतर। संजोया। ५. मकड़ी। ६. लोहा। ७. समूह। उ०—प्रनतजन कुमुदबन इंदुकर जालिका। जालसि अभिमान माहिषेस बहु कालिका। —तुलसी (शब्द०)। ८. स्त्रियों के मुख पर डालनेवाला आवरण या परदा। मुख पर डाली जानेवाली जाली (को०)। ९ जोंक (को०)। १०. केला (को०)। ११. एक प्रकार का वस्त्र (को०)।

जालिनी[१]—संज्ञा स्त्री [सं०] १. तरोई। घिया। २. वह स्थान जहाँ चित्र बनते हों। चित्रशाला। ३. परवल की लता। ४. पिड़िका रोग का एक भेद।

विशेष—इसमें रोगी के शरीर के मांसल स्थानों में दाहयुक्त फुंसियाँ हो जाती हैं। यह केवल प्रमेह के रोगियों को होता है।

जालिनी(पु)[२]—वि० [हिं० जालना] जलानेवाली।

जालिनीफल—संज्ञा पुं० [सं०] १. तरोई। २. घिया।

जालिम—वि० [अ० ज़ालिम जो बहुत ही अन्यायपूर्ण या निर्दयता का व्यवहार करता हो। जुल्म करनेवाला। अत्याचारी।

जालिमाना—वि० [अ० ज़ालिम, फ़ा० ज़ालिमानह्] अत्याचार संबंधी [को०]। जालसाज। फरेब या धोखा देनेवाला।

जालिया[१]—वि० [हिं० जाल = (फरेब) + इया (प्रत्य०)] जाल फरेब करने या धोखा देनेवाला।

जालिया[२]—संज्ञा पुं० [हिं० जाल + इया (प्रत्य०)] जाल की सहायता से मछली पकड़नेवाला। धीवर।

जाली[१]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तरोड़ी। २. परवल।

जाली[२]—संज्ञा स्त्री० [हिं० जाल] १. किसी चीज, विशेषतः लकड़ी पत्थर या धातु आदि, में बना हुआ बहुत से छोटे छोटे छेदों का समूह।

क्रि० प्र०—काटना।—बनाना।

२. कसीदे का एक प्रकार का काम जिसमें किसी फूल या पत्ती आदि के बीच में बहुत से छोटे छोटे छेद बनाए जाते हैं।

क्रि० प्र०—काढ़ना। —निकालना। —डालना। —भरना। —बनाना।

३. एक प्रकार का कपड़ा जिसमें बहुत से छोटे छोटे छेद होते हैं। ४. वह लकड़ी जो चारा काटने के गड़ासे के दस्ते पर लगी रहती है। ५. कच्चे आम के अंदर गुठली के ऊपर का वह तंतुसमूह जो पकने से कुछ पहले उत्पन्न होता और पीछे से कड़ा हो जाता है। इसके उत्पन्न होने के उपरांत आम के फल का पकना आरंभ होता है।

क्रि० प्र०—पड़ना।

६. दे० 'जाला'।

जाली[३]—संज्ञा स्त्री० [अ०] एक प्रकार की छोटी नाव।

जाली[४]—वि० [अ० जअ्ल + हिं० ई (प्रत्य०)] नकली। बनावटी। झूठा। जैसे, जाली सिक्का, जाली दस्तावेज।

यौ०—जाली नोट = नकली नोट।

जालीदार—वि० [देश०] जिसमें जाली बनी या पड़ी हो।

जालीलेट—संज्ञा पुं० [हिं० जाली + लेट] एक प्रकार का कपड़ा जिसकी सारी बुनावट में बहुत से छोटे छोटे छेद होते हैं।

जालीलोट[१]—संज्ञा पुं० [हिं० जाली + लोट] दे० 'जालीलेट'।

जालीलोट[२]†—संज्ञा पुं० [हिं० जाली+अं० नोट] दे० 'जाली नोट।

जालोर(५)—संज्ञा पुं० [सं०] कश्मीर में विहार या मठहार का नाम [को०]।

जाल्म¹—वि० [सं०] १. पामर। नीच। २. मूर्ख। बेवकूफ। ३. क्रूर। कठोर। निष्ठुर (को०)।

जाल्म²—संज्ञा पुं० १. दुष्ट, धूर्त या कपटी व्यक्ति। २. निर्धन या पदभ्रष्ट व्यक्ति। ३. बुरा पाठ या वाचन करनेवाला व्यक्ति [को०]।

जाल्मक—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० जाल्मिका] १. वह जो अपने मित्र, गुरु या ब्राह्मण के साथ द्वेष करे। २. नीच या अधम या तुच्छ व्यक्ति।

जाल्य¹—संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।

जाल्य²—वि० जाल में फँसाए जाने योग्य [को०]।

जावक‡—संज्ञा पुं० [सं० यावक] लाह से बना हुआ पैरों में लगाने का लाल रंग। अलता। महावर।

जावँत—क्रि० सं० [हिं०] दे० 'जावत'। उ०—जावँत जगति हस्ति श्रौ चाँटा। सब कहँ भुगुति रात दिन बाँटा। —जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १२३।

जावत†—अव्य [सं० यावत्] दे० 'यावत्'।

जावन(५)†—संज्ञा पुं० [हिं० जावना] जाने की क्रिया या भाव। जाना। उ०—नंगे हि आवन नंगे हि जावन झूठी रचिया बाजी। या दुनिया में जीवन थोड़ा गर्व करे सो पाजी।—कबीर श०, भा० २, पृ० ४८।

जावन(५)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'जामन'। उ०—(क) नई दोहनी पोंछि पखारी धरि निर्धूम खीर पर तायौं। तामें मिलि मिश्रित मिश्री करि दै कपूर पुट जावन नायो ? —सूर (शब्द०)। (ख) तोष मरुत तब छमा जुड़ावइ। धृति सम जावन देइ जमावइ —तुलसी (शब्द०)।

जावना‡¹—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'जाना'। उ०—ऊंमर बीठा जावता, हुलहुल करइ कबर। एराकी श्रोलंभिया, जइसइ कैती दूर। —ढोला०, दू० ६४१।

जावना²—क्रि० अ० [हिं० जनमना] जन्म लेना। उत्पन्न होना। उ०—कहीं कि हमरे बालक जावे, बड़ो अमुबल होवै। —चरण० बानी, पृ० ७३।

जावन्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. वेग। तेजी। २. शीघ्रता [को०]।

जावर†—संज्ञा पुं० [देश०] १. ऊख के रस में पकाई गई खीर। बखीर। २ कद्दू के साथ पकाया हुआ चावल।

जावा¹—संज्ञा पुं० पूर्वी एशिया का एक द्वीप। यवद्वीप।

जावा²—संज्ञा पुं० [हिं० जामन या जमना] वह मसाला जिससे शराब चुग्राई जाती है। बेसवार। जाया।

जावित्री—संज्ञा स्त्री [सं० जातिपत्री] जायफल के ऊपर का छिलका जो बहुत सुगंधित होता है और औषध के काम में आता है। दे० 'जायफल'।

विशेष—वैद्यक में इसे हलका, चरपरा, स्वादिष्ट, गरम, रुचिकारक और कफ, खाँसी, वमन श्वास, तृषा, कृमि तथा विष का नाशक माना जाता है।

जावक—संज्ञा पुं० [सं०] पीला चंदन।

जाषनी(५)†—[हिं०] दे० 'यक्षिणी'। उ०—राघो करी जाषनी पूजा। चहे सुभाव दिखावै दूजा। —जायसी (शब्द०)।

जाषरी(५)—संज्ञा स्त्री० [हिं० जाषनी] नटिनी। उ०—गीति गरुवि जाषरी मत्त भए मतरुफ गावइ। —कीर्ति०, पृ० ४२।

जासु(५)†—वि० [सं० यस्य, प्रा० जस्स] जिसका।

जासू¹—संज्ञा पुं० [देश०] वे पान जो उस अफीम में मिलाने के लिये काटे जाते हैं जिससे मदक बनता है।

जासू²(५)—वि० [हिं० जासु] दे० 'जासु'।

जासूस—संज्ञा पुं० [अ०] गुप्त रूप से किसी बात विशेषतः अपराध आदि का पता लगानेवाला। भेदिया। मुखबिर। खुफिया।

जासूसी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] गुप्त रूप से किसी बात का पता लगाने की क्रिया। जासूस का काम।

जासों(५)—सर्व० [हिं०] जिससे। उ०—नंददास दृष्टि जासों तनु की तरुनि पर ता ऊपर चंद वारौं करति आरति नित।—नंद० ग्रं०, पृ० ३७७।

जास्ती¹—वि० [अ० ज्यादती से देश० रूप] अधिक। ज्यादा। उ०—गिरी ऐसी दमदार थी कि पाव भर तौलते तो छह से जास्ती सुपारी नहीं चढ़ा पाते तराजू पर। —नई०, पृ० ७८।

जास्ती²—संज्ञा स्त्री० ज्यादती।

जास्पति—संज्ञा पुं० [सं०] जामाता। जँवाई। दामाद।

जाह¹—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. पद। २. मान। प्रतिष्ठा। ३. गौरव [को०]।

जाह²—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्या] धनुष की डोरी। प्रत्यंचा। उ०—वाम हाथ लीध वाहु जीभरो कसीस जाह।—रघु०रू०, पृ० ७६।

जाहक—संज्ञा पुं० [सं०] १. गिरगिट। २. जोंक। ३. बिछौना। बिस्तर। ४. घोंघा।

जाहपरस्त—वि० [फ़ा०] १. प्रतिष्ठा का लोभी २. पदलोलुप। ३. बड़े लोगों या अमीरों की भक्ति करनेवाला [को०]।

जाहर†—वि० [अ० जाहिर] दे० 'जाहिर'।

जाहिद—संज्ञा पुं० [अ० जाहिद] धर्मनिष्ठ। उ०—नहीं है जाहिदों को मै सेंती काम। लिखा है उनकी पेशानी में सिरका। —कविता कौ०, भा० ४, पृ० १६।

जाहिर—वि० [अ० जाहिर] १. जो छिपा न हो। जो सबके सामने हो। प्रगट। प्रकाशित। खुला हुआ। २. विदित। जाना हुआ।

यौ०—जाहिर जहूर = जाहिर। जाहिरपरस्त = ऊपरी बातों पर दृष्टि रखनेवाला।

जाहि(५)—संज्ञा स्त्री० [सं० जाति] मालती लता तथा उसका फूल।

जाहिरा—क्रि० वि० [अ०] देखने में। प्रगट रूप में। प्रत्यक्ष में। जैसे,—जाहिरा तो यह बात नहीं मालूम होती आगे ईश्वर जाने।

जाहिल—वि० [अ०] १. मूर्ख। अनाड़ी। अज्ञान। नासमझ। २. अनपढ़। विद्याहीन। जो कुछ पढ़ा लिखा न हो।

जाही—संज्ञा स्त्री० [सं० जाती] १. चमेली की जाति का एक प्रकार का सुगंधित फूल। २. एक प्रकार की आतिशबाजी।

जाहुष—संज्ञा पुं० [सं०] एक व्यक्ति का नाम जिसकी रक्षा अश्विन् करते हैं (को०)।

जाह्नवी—संज्ञा स्त्री [सं०] जह्नु ऋषि से उत्पन्न, गंगा।

जिं—सर्व [हिं० जिन] जिसने। जो।

विशेष—'जिन' का यह रूप प्राचीन हिंदी काव्य में मिलता है।

जिंक—संज्ञा स्त्री० [अं० जिंक] जस्ते का क्षार।

विशेष—यह क्षार देखने में सफेद रंग का होता है और रंग रोगन और दवा के काम में आता है। यह क्लोराइड आफ जिंक, वा सलफेट आफ जिंक को सोडियम, बेरियम वा कैलसियम सलफाइड में घोलने या हल करने से बनता है। सलफाइड के नीचे तलछट बैठ जाती है जिसे निकालकर सुखाने के बाद लाल आँच में तपाकर ठंढे पानी में बुझा लेते हैं। इसके बाद वह खरल में पीसी जाती है और बाजारों में बिकती है। इसे सफेदा भी कहते हैं। गुलाबजल या पानी में घोलकर इसे आँखों में डालते हैं जिससे आँख की जलन और दर्द दूर हो जाता है।

यौ०—जिंक आक्साइड।

जिंगनी—संज्ञा स्त्री० [सं० जिङ्गनी] जिगिन का पेड़।

जिंगिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० जिङ्गिनी] दे० 'जिगनी'।

जिंगी—संज्ञा स्त्री० [सं० जिङ्गी] मजीठ (को०)।

जिंजर—संज्ञा पुं० [अं०] अदरख से बनी एक प्रकार की पेय। उ०—खन्ना ने जिंजर का ग्लास खाली करके सिगार सुलगाई।—गोदान, पृ० १२७।

जिंद[1]—संज्ञा पुं० [अ० जिन या जिन्न] भूत प्रेत। मुसलमान भूत। दे० 'जिन'।

जिंद[2]—संज्ञा पुं० [हिं० जंद] दे० 'जंद'।

जिंद[3]—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'जिंदगी'। उ०—दे गिरंद गिरंदा हुवा बे जिंद असाडी छीनी है।—घनानंद, पृ० १८०।

जिंदगानी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] जीवन। जिंदगी।

जिंदगी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. जीवन।

मुहा०—जिंदगी से हाथ धोना=जीने से निराश होना।

२. जीवनकाल। आयु।

मुहा०—जिंदगी का दिन पूरा करना वा भरना=(१) दिन काटना। जीवन बिताना। (२) मरने को होना। आसन्नमृत्यु होना। जिंदगी का दुश्मन होना=जिंदगी देना। मौत के मुँह में जाना। उ०—हाथी आया ही चाहता है क्यों जिंदगी के दुश्मन हो गए।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ८९।

जिंदा—वि० [फ़ा० ज़िंदह्] १. जीवित। जीता हुआ।

यौ०—जिंदादिल। जिंदाबाद=अमर हो।

२. सक्रिय। सचेष्ट (को०)। ३. हरामरा (को०)।

जिंदादिल—वि० [फ़ा० जिंदह्दिल] [संज्ञा जिंदादिली] खुशमिजाज। हँसोड़। दिल्लगीबाज। विनोदप्रिय।

जिंदादिली—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जिंदह्दिली] प्रसन्न रहने और मनोविनोद करने का भाव।

जिंदाबाद—अव्य० [फ़ा० ज़िंदह्बाद] चिरंजीवी हो। जीवित हो।

यौ०—इनकलाब जिंदाबाद=क्रांति चिरंजीवी हो।

जिंस—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. प्रकार। किस्म। भाँति। २. वस्तु। द्रव्य। ३. सामग्री। सामान। ४. अनाज। गल्ला। रसद।

यौ०—जिंसवार।

५. आभरण। गहना (को०)। ६. लिंग (को०)। ७. जाति (को०)। ८. परिवार (को०)। ९. वर्ग (को०)। १०. पण्य द्रव्य या व्यापारिक वस्तु (को०)। ११. असबाब (को०)। १२. व्यवहार गणित (अंकगणित)।

यौ०—जिंसखाना=भंडारगृह।

जिंसवार—संज्ञा पुं० [फ़ा०] पटवारियों का एक कागज जिसमें वे अपने हलके के प्रत्येक खेत में बोए हुए अन्न का नाम परताल करते समय लिखते हैं।

जिंवाना—क्रि० स० [हिं० जेवना का सक० रूप] दे० 'जिमाना'।

जि—संज्ञा पुं० [सं० जि:] पिशाच (को०)।

जिअ—संज्ञा पुं० [सं० जीव, प्रा० जिअ] दे० 'जी'। उ०—राम भगति भूषित जिअ जानी। सुनिहहिं सुजन सराहि सुबानी।—मानस, १।९।

जिअन—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'जीवन'। उ०—मरन जिअन एही पंथ एही आस निरास। परा सो गया पतारहि तिरा सो गया कविलास।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २२६।

जिंसीलगान—संज्ञा पुं० [हिं० जिंसी+लगान] जिंस के रूप में ली जानेवाली लगान। फसल के रूप में ली जानेवाली लगान।

जिअन—संज्ञा पुं०[सं० जीवन] जीवन। जीवन की पद्धति। उ०—जिअन मरन फलु दसरथ पावा। अंड अनेक अमल जसु छावा।—मानस, २।१५६।

जिअना†—संज्ञा पुं० [सं० जीवन] जीवन।

जिअना†—क्रि० अ० [हिं० जीना] दे० 'जीना'।

जिआना†—क्रि० स०[हिं०] दे० 'जिलाना'। उ०—तासों बैर कबहुँ नहिं कीजै। मारे मरिय जिआए जीजै।—तुलसी (शब्द०)।

जिउँ—अव्य० [सं० यथा; अप० जिवँ] दे० 'ज्यों' या 'जिमि'। उ०—ऊँची चढ़ि चातृंगि जिउँ, मागि निहालइ मुध्ध।—ढोला०, दू० १६।

जिउ†—संज्ञा पुं० [सं० जीव] दे० 'जीव'।

जिउका—संज्ञा स्त्री० [सं० जीविका] 'जीविका'।

जिउकिया—संज्ञा पुं० [हिं० जीविका वा जिउका] १. जीविका करनेवाला। रोजगारी। २. पहाड़ी लोग जो दुर्गम जंगलों और पर्वतों से अनेक प्रकार की व्यापार की वस्तुएँ, जैसे,—चँवर, कस्तूरी, शिलाजीत, शेर के बच्चे, तथा जड़ी बूटी आदि ले आकर नगरों में बेचते हैं।

जिउ तंत—संज्ञा पुं० [सं० जीव+तत्व] जी का तत्व। जी की बात। उ०—जेति नारि हँसि पूछहिं अमिय बचन जिउ तंत।—जायसी ग्रं०, पृ० १६४।

जिउतिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० जूतिया>सं० जीवितपुत्रिका] एक व्रत जो आश्विन कृष्णाष्टमी के दिन होता है। दे० 'जिताष्टमी'।

विशेष—इस व्रत को वे स्त्रियाँ जिनके पुत्र होते हैं, करती हैं। इसमे गले में एक धागा बाँधा जाता है जिसमें अनंत की तरह गाँठें होती हैं। कहीं कहीं यह व्रत आश्विन शुक्लाष्टमी के दिन किया जाता है।

जिउनार—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'जेवनार'। उ०—भोजन स्वपच कीन्ह जिउनारा। सात बार घंटा झनकारा।—कबीर मं०, पृ० ४६३।

जिउलेवा†—वि० [हिं० जीव + लेवा] दे० 'जिवलेवा'।

जिकड़ी—संज्ञा स्त्री० [देश०] ब्रज का एक लोकगीत, जिसमें दो दल बनाकर प्रश्नोत्तर होता है।

जिकर—संज्ञा पुं० [हिं० जिकिर] दे० 'जिकिर'। उ०—फिरे गैब का छत्र जिकर का मुस्क लगाई।—पलटू०, भा० १, पृ० १०६।

जिका(पु)†—सर्व० [हिं० जिसका या जिनका का संक्षिप्त रूप] दे० 'जिसका'। उ०—आवी सब रत आँमली, त्रिया करइ सिणगार। जिका हियाा न फाटही, दूर गया भरतार।—ढोला०, दू० ३०३।

जिक्र—संज्ञा पुं० [अं० जिक्र] १. चर्चा। बातचीत। प्रसंग।

क्रि० प्र०—आना।—करना।—चलना।—चलाना।—छिड़ना।—छेड़ना।

यौ०—जिक्र मजकूर = बातचीत। चर्चा। जिक्रे--खैर = कुशल-चर्चा। शुभ चर्चा उ०—अतः सबसे पहले क्यों न कविसम्मेलनों ही का जिक्रे खैर किया जाय।—कुंकुम। (भू०), पृ० २।

२. एक प्रकार का जप (को०)।

जिग(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'यज्ञ'। उ०—हण ताड़का निज ठहरां। जिग मांड आरंभ जाहरा।—रघु० रू०, पृ० ६७।

जिगत्नु¹—वि० [सं०] क्षिप्रगामी। तेज चलनेवाला [को०]।

जिगत्नु²—संज्ञा पुं० प्राणवायु। श्वास [को०]।

जिगन—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'जिगिन'।

जिगमिषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जाने की इच्छा [को०]।

जिगमिषु—वि० [सं०] जाने का इच्छुक [को०]।

जिगर—संज्ञा पुं० [फा० मि० सं० यकृत्][वि० जिगरी] १. कलेजा।

यौ०—जिगर कुल्फ = जिगर का ताला। हृदयरूपी ताला। उ०—मुसकानि औ लटकीली बानि आनि दिल में डोलैं। अलकें रल्कें हलकें जिगर कुल्फ को जु खोलें।—ब्रज० ग्रं०, पृ० ४१। जिगर खराश = (१) जिगर को छीलनेवाला। (२) अप्रिय। दुःखदायी। जिगर गोशा। जिगरबंद = पुत्र (ला०)। जिगर-सोज = (१) दिल जलानेवाला। (२) दिल का जला।

मुहा०—जिगर कबाब होना = (१) कलेजा पक जाना या जलना। (२) बुरी तरह कुढ़ना। जिगर के टुकड़े होना = कलेजे पर सदमा पहुँचना। भारी दुःख होना। जिगर थामकर बैठना = असह्य दुःख से पीड़ित होना।

२. चित्त। मन। जीव। ३. साहस। हिम्मत। ४. गूदा। सत्त। सार। ५. मध्य। सार भाग। जैसे, लकड़ी का जिगर। ६. पुत्र। लड़का (प्यार से)।

जिगरकीड़ा—संज्ञा पुं० [फा० जिगर + हिं० कीड़ा] भेड़ों का रोग जिसमें उनके कलेजें में कीड़े पड़ जाते हैं।

जिगरा—संज्ञा पुं० [हिं० जिगर] साहस। हिम्मत। जीवट।

जिगरी—वि० [फा०] १. दिली। भीतरी। २. अत्यंत घनिष्ठ। अभिन्नहृदय। जैसे, जिगरी दोस्त।

जिगिन—संज्ञा स्त्री० [सं० जिङ्गिनी] एक ऊँचा जगली पेड़।

विशेष—इसके पत्ते महुए या तुन के पत्तों के समान होते हैं और टहनी में जोड के रूप में इधर इधर लगते हैं। यह पहाड़ों और तराई के जंगलों मे होता है। इसके फूल सफेद और फल बेर के बराबर होते हैं। वैद्यक में इसका स्वाद चरपरा और कसैला लिखा है। इसकी प्रकृति गरम बतलाई गई है और वात, व्रण, अतीसार, और हृदय के रोगों में इसका प्रयोग लाभकारी कहा गया है। इसकी दतवन अच्छी होती है और मुख की दुर्गंध को दूर करती है।

पर्या०—जिंगिनी। झिंगिनी। झिंगी। सुनिर्यासा। प्रमोदिनी। पार्वती। कृष्णशाल्मली।

जिगीषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जय की इच्छा। विजय प्राप्त करने की कामना। २. उद्योग। धंधा। व्यवसाय। ३. लड़ने की इच्छा। युद्ध करने की इच्छा। (को०)। ४. प्रतिस्पर्धा। लाग डाँट (को०)। ५. प्रमुखता (को०)।

जिगीषु—वि० [सं०] १. युद्ध की इच्छा रखनेवाला। २. विजय का इच्छुक [को०]।

जिगुरन—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का चोटीदार चकोर जो हिमालय में गढ़वाल से हजारा तक मिलता है।

विशेष—इसे जकी, सिंग मोनाल, और जेवर भी कहते हैं। इसकी मादा बादेल कहलाती है।

जिघत्नु—वि० [सं०] बध की इच्छा रखनेवाला। शत्रु [को०]।

जिघत्सा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. भूख। खाने की इच्छा। २. प्रयास करना [को०]।

जिघत्सु—वि० [सं०] भूखा। भोजन की इच्छा रखनेवाला [को०]।

जिघांसक—वि० [सं०] मारनेवाला। वध करनेवाला [को०]।

जिघांसा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मारने की इच्छा। २. प्रतिहिंसा। उ०—जिघांसा की वृत्ति प्रबल हुई तो छोटी छोटी सी बातों पर अथवा खाली संदेह पर ही दूसरों का सत्यानाश करने की इच्छा होगी।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० १६०।

जिघांसु—वि० [सं०] दे० 'जिघासक'।

जिघृक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पकड़ने की इच्छा [को०]।

जिघृक्षु—वि० [सं०] पकड़ने की इच्छा रखनेवाला [को०]।

जिघ्र—वि० [सं०] १. संदेही। संदेह या शंका करनेवाला। २. सूंघनेवाला। ३. समझनेवाला [को०]।

जिच—संज्ञा स्त्री० वि० [?] दे० 'जिच्च'।

जिच्च¹—संज्ञा स्त्री० [?] १. बेबसी। तंगी। मजबूरी। २. शतरंज

में शाह की वह अवस्था जब उसे चलने का कोई घर न हो और न अदंब में देने को मोहरा हो। ३. शतरंज के खेल की वह अवस्था जिसमें किसी एक पक्ष का कोई मोहरा चलने की जगह न हो।

जिच्च[२]—वि० विवश। मजबूर। तंग।

जिजमान(प)†—संज्ञा पुं० [हिं० जजमान] दे० 'जजमान'। उ०—मनु लमगन लियो जोति चंद्रमा सोतिन मध्य बँध्यो है। कै कबि निज जिजमान जूथ में सुंदर आइ बस्यो है।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ४५।

जिजिया[१]†—संज्ञा स्त्री० [हिं० जीजी] बहन।

जिजिया[२]—संज्ञा पुं० [अ० जिज़्यह्] १. कर। महसूल। २. वह कर या महसूल जो मुसलमानी अमलदारी मे उन लोगों पर लगता था जो मुसलमान नहीं होते थे।

जिजीविषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जीने की इच्छा (को०)।

जिजीविषु—वि० [सं०] जीने की इच्छा रखनेवाला (को०)।

जिज्ञापयिषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जताने या ज्ञापन की इच्छा (को०)।

जिज्ञापयिषु—वि० [सं०] जनाने का इच्छुक (को०)।

जिज्ञासा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जानने की इच्छा। ज्ञान प्राप्त करने की कामना। २. पूछताछ। प्रश्न। परिप्रश्न। तहकीकात।

क्रि० प्र०—करना।

जिज्ञासित—वि० [सं०] जिसकी जिज्ञासा की गई हो। पूछा हुआ (को०)।

जिज्ञासितव्य—वि० [सं०] जिज्ञासा योग्य। पूछने योग्य (को०)।

जिज्ञासु—वि० [सं०] १. जानने की इच्छा रखनेवाला। ज्ञानप्राप्ति के लिये इच्छुक। खोजी। २. मुमुक्षु (को०)।

जिज्ञासू—वि० [सं० जिज्ञासु] दे० 'जिज्ञासु'।

जिज्ञास्य—वि० [सं०] जिसकी जिज्ञासा की जाय। जिसे जानना हो। जिसके संबंध में पूछताछ की जाय।

जिठाई†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'जेठाई'।

जिठानी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'जेठानी'।

जिणि(प)—सर्व० [हिं० जिन] दे० 'जिस'। उ०—जिणि देसे सज्जण वसइ, तिणि दिसि वज्जउ वाउ। उआँ लगे मो लग्गसी, ऊ ही लाख पसाउ।—ढोला०, दू० ७४।

जित्—वि० [सं०] जीतनेवाला। जेता।

विशेष—इस अर्थ में यह शब्द समासांत में आता है। जैसे, इंद्रजित्, शत्रुजित्, विश्वजित् इत्यादि।

जित[१]—वि० [सं०] जीता हुआ। पराजित। जिसे दूसरे ने जीता हो।

जित[२]†(प)—क्रि० वि० [सं० यत्र] जिधर। जिस ओर। उ०—जात है जित बाजि केशो जात हैं तित लोग।—केशव (शब्द०)।

यौ०—जित तित = जहाँ तहाँ। वि० दे० 'जहाँ' के मुहावरे। उ०—सम विषम बिहर वन सघन घन तहाँ सध्य जित तित हुअ। भूल्यो सुसंग कवियन वनह और नहीं जन संग दुअ।—पृ० रा०, ६।१३।

मुहा०—जित कित होकर जाना = अव्यवस्थित जाना। इधर उधर जाना। उ०—पसु अरु पसुप दवानल माहीं। चकित भए जित कित ह्वै जाहीं।—नंद० ग्रं०, पृ० ३१०।

जितक—वि० [हिं० जित] दे० 'जितना'। उ०—अवतारी अवतार धरत अरु जितक बिभूती। इस सब आश्रय के आधार जग जिहि की ऊती।—नंद० ग्रं०, पृ० ४४।

जितना—वि० [हिं० जिस + तना (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० जितनी] जिस मात्रा का। जिस परिमाण का। जैसे,—जितना मैं दौड़ता हूँ उतना तुम नहीं दौड़ सकते।

विशेष—संख्या सूचित करने के लिये बहुवचन रूप 'जितने' का प्रयोग होता है। 'जितना' के पीछे 'उतना' का प्रयोग संबंध पूरा करने के लिये किया जाता है। जैसे, जितना मीठा वह आम था उतना यह नहीं है।

जितकोप, जितक्रोध—वि० [सं०] जिसने क्रोध को जीत लिया हो।

जितनेमि—संज्ञा पुं० [सं०] पीपल का दंड या डंडा (को०)।

जितमन्यु—वि० [सं०] दे० 'जितकोप' (को०)।

जितरा†—संज्ञा पुं० [हिं० जिता] वह हलवाहा जिसे वेतन या मजदूरी नहीं दी जाती बल्कि खेत जोतने के लिये हल बैल दिए जाते हैं।

जितलोक—वि० [सं०] जिसने पुण्य कर्म से स्वर्गादि लोक प्राप्त किया हो।

जितवना(प)—क्रि० स० [सं० ज्ञात] जताना। प्रकट करना। उ०—चितवत जितवत हित हिए किए तिरीछे नैन। भीजे तन दोऊ कँपैं क्यों हू जप निबरे न।—बिहारी (शब्द०)।

जितवाना—क्रि० स० [हिं० जीतना का प्रे० रूप] जीतने देना। जीतने में समर्थ या उद्यत करना। जीतने मे सहायक होना।

जितवार(प)†—वि० [हिं० जीतना] जीतनेवाला। विजयी। उ०—जँह हो ब्रजेशकुमार। रनभूमि को जितवार।—सूदन (शब्द०)।

जितवैया†—वि० [हिं० जीतना + वैया (पु० प्रत्य०)] १. जीतनेवाला। २. जितानेवाला। किसी को विजयी बनानेवाला।

जितशत्रु—वि० [सं०] विजयी। जो शत्रु को पराजित कर चुका हो (को०)।

जितश्रम—वि० [सं०] जो श्रम या थकान का अनुभव न करता हो।

जितसंग—वि० [सं० जितसङ्ग] आसक्ति या आकर्षण से मुक्त (को०)।

जितस्वर्ग—वि० [सं०] पुण्य के प्रभाव से जो स्वर्ग जीत चुका हो (को०)।

जिता[१]†—संज्ञा पुं० [हिं० जोतना या जीतना] वह सहायता जो किसान लोग खेत की जोताई बोआई में एक दूसरे को देते हैं।

जिता[२]—वि० [हिं०] [वि० स्त्री० जिती] दे० 'जितना'।

जिताक्ष—वि० [सं०] जितेंद्रिय (को०)।

जिताक्षर—वि० [सं०] बढ़िया पढ़ने लिखनेवाला (को०)।

जितात्मा—वि० [सं० जितात्मन्] जितेंद्रिय।

जिताना—क्रि० स० [हिं० जीतना का प्रे० रूप] जीतने में समर्थ या उद्यत करना। उ०—ताही समै छैल छल कीन्हों है छबीली

संग, देव बिपरीत बसि बूझत पहेली बात। पूछे जो पियारी ताहि जानत भजान पिय, भापु पूछी प्यारी को जताइ कै जिताई जात।—देव (शब्द०)।

जितार†—वि० [सं० जित्वर] १. जीतनेवाला। विजयी। २. बली। जो जीत सके। ३. अधिक। भारी। वजनी।

विशेष—प्रायः पलड़े पर रखी हुई वस्तु के संबंध में बोलते हैं।

जितारि[1]—वि० [सं०] १. शत्रुजित्। २. कामादि शत्रुओं को जीतनेवाला।

जितारि[2]—संज्ञा पुं० बुद्धदेव का नाम।

जिताष्टमी—संज्ञा स्त्री० [सं०] हिंदुओं का एक व्रत जिसे पुत्रवती स्त्रियाँ करती हैं।

विशेष—यह व्रत आश्विन कृष्णाष्टमी के दिन पड़ता है। इस दिन स्त्रियाँ सायंकाल जलाशय में स्नान कर जीमूतवाहन की पूजा करती हैं और भोजन नहीं करती। इस व्रत के लिये उदयातिथि ली जाती है। इसको जिउतिया भी कहते हैं।

जिताहार—वि० [सं०] भूख पर विजय प्राप्त करनेवाला (को०)।

जिति—संज्ञा स्त्री० [सं०] जीत। विजय।

जितिकⓅ†—वि० [हिं०] दे० 'जेतिक'। उ०—जितिक हुतीं ब्रज गो, बछ, बाछी। तेल हरद करि आछी काछी।—नंद० ग्रं०, पृ० २३५।

जिती—वि० स्त्री० [हिं०] दे० 'जितिक'। उ०—ब्रह्मादिक बिभूति जग जिती। भंड भंड प्रति दिखियत तिती। —नंद० ग्रं०, पृ० २६७।

जितीक—वि० [हिं०] दे० 'जितिक'। उ०—पुनि जितीक गोपीजन भाई। ते रोहिनी सबहिं पहिराई।—नंद० ग्रं०, पृ० २३५।

जितुम—संज्ञा पुं० [यू० डिडुमाई] मिथुन राशि।

जितेंद्रिय—वि० [सं० जितेन्द्रिय] १. जिसने अपनी इंद्रियों को जीत लिया हो।

विशेष—मनुस्मृति में ऐसे पुरुष को जितेंद्रिय माना है जिसे सुनने, छूने, देखने, खाने और सूँघने से हर्ष या विषाद न हो।

२. शांत। समवृत्तिवाला।

जितेⓅ—वि० [हिं० जिस+ते] जितने (संख्यासूचक)। उ०—कंत बिदेस रहे हो जिते दिन देहु तिते मुकुतानि की माला।—पद्माकर (शब्द०)।

जितेकⓅ—वि० [हिं० जिते] जितना। उ०—नगनि मध्य नग हुते जितेक। लै लै ऊपर बैठे तितेक। —नंद० ग्रं०, पृ० ३१४।

जितैⓅ—क्रि० वि० [सं० यत्र, प्रा० यत्त] जिधर। जिस ओर। उ०—लाल जितै चितवै तिय पै, तिय त्यों त्यों चितोति सखीन की ओरी। —देव (शब्द०)।

जितैया—वि० [सं० जित्+ऐया (प्रत्य०)] जितवैया। जितवार। जेता। उ०—प्रबल प्रतीक सुप्रतीक के जितैया रैया राव भावसिंह तेरे दान के दुरद हैं।—मति० ग्रं०, पृ० ४२७।

जितैला—वि० [हिं० जीत+ऐला (प्रत्य०)] जीतनेवाला। विजेता। उ०—जमींदार ने कहा, तुम किसी जमींदार का राज यों नहीं दे सकते। यह राज जितैला है। अगर ऐसा ही करना है तो उस जमींदार को बुला लाओ।

जितो[1]Ⓟ†—वि० [हिं० जिस] जितना (परिमाणसूचक)। उ०—(क) बैठि सदा सतसंग ही में बिष मानि विषय रस कीर्ति सदाहीं। त्यों पद्माकर झूठ जितो जग जानि सुज्ञानहि के अवगाहीं।—पद्माकर (शब्द०)। (ख) नख सिख सुंदरता अवलोकत, कह्यो न परत सुख होत जितो री।—तुलसी (शब्द०)।

विशेष—संख्या सूचित करने के लिये बहुवचन रूप 'जिते' का प्रयोग होता है।

जितो[2]—क्रि० वि० जिस मात्रा से। जितना।

जित्तनाⓅ—क्रि० स० [हिं० जीतना] दे० 'जीतना'। उ०—(क) द्वादस हथ्थ मयद वर भिडपाल लिय मारि। जब बहु कर सिंघिनि गहे को जित्तै नृप नारि।—प० रासो, पृ० १४। (ख) रहत प्रचोंकी नित ही ध्यान सु रावरो। प्रब मन लीनो जित्त भयो प्रीति सों बावरो। —ब्रज० ग्रं०, पृ० ३८।

जित्तम—संज्ञा पुं० [यू० डिडुमाइ] मिथुन राशि।

जित्थूँ—अव्य० [पं०] जहाँ। उ०—अहो अहो घन आनंद जानी जित्थूँ तित्थूँ जाँदा है।— घनानंद, पृ० १८१।

जित्य—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० जित्या] १. बड़ा हल। २. हेगा। पटेला। सरावन (को०)।

जित्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. हीग। २. सरावन। पटेला (को०)।

जित्वर—वि० [सं०] [वि० स्त्री० जित्वरी] जेता। जीतनेवाला। विजयी।

जित्वरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] काशीपुरी का एक प्राचीन नाम (को०)।

जिथनीⓅ—सर्व० [?] जिससे। जिसका। उ०—तुका सज्जन तिन सूँ कहिये जिथनी प्रेम दुनाय।—दक्खिनी०, पृ० १०८।

जिद—संज्ञा स्त्री० [अ० जिद] [वि० जिद्दी] १. उलटी बात या वस्तु। विरुद्ध वस्तु या बात। २. वैर। शत्रुता। वैमनस्य।

क्रि० प्र०—करना। —बाँधना। —रखना।

३. हठ। अड़। दुराग्रह।

क्रि० प्र०—आना। —करना। —बाँधना। —रखना।

मुहा०—जिद पर आना = हठ करना। अड़ना। जिद चढ़ना = हठ धरना। जिद पकड़ना = हठ करना।

जिदियाना †— संज्ञा स्त्री० [अ० जिद से नामिक धातु] हठ करना। दुराग्रह करना। अड़ना। अड़ जाना।

जिद्द†—संज्ञा स्त्री० [अ० जिद्द] दे० 'जिद'।

जिद्दन—क्रि० वि० [अ०] जिद्द करते हुए। हठ करते हुए। जिद के कारण। (को०)।

जिद्दी—वि० [अ० जिद्द+ फ़ा० ई (प्रत्य०)] १. जिद करनेवाला। हठी। अड़नेवाला। जैसे, जिद्दी लड़का। २. दुराग्रही। दूसरे की बात न माननेवाला।

जिधर—क्रि० वि० [हिं० जिस+धर (प्रत्य०)] जिस ओर। जहाँ।

विशेष—समन्वय में इसके साथ 'उधर' का प्रयोग होता है। जैसे, जिधर देखता हूँ उधर तू ही तू है।

यौ०—जिधर तिधर = (१) जहाँ तहाँ। इधर उधर।

विशेष—अब इसका कम प्रयोग है।

(२) बेठिकाने। बिना ठौर ठिकाने।

मुहा०—जिधर चाँद उधर सलाम = अवसरवादिता। उ०—शर्मा जी डाँटते हैं, जिधर चाँद उधर सलाम।—मैला०, पृ० ३४४।

जिधाँ(पु)—अव्य [देश०] जहाँ। उ०—पिछे चलये ये दस मायाँ मिलाकर। जिधाँ पिछे वो जगल बीच यकसर।—दक्खिनी०, पृ० ३३८।

जिन[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. विष्णु। २. सूर्य। ३. बुद्ध। ४. जैनों के तीर्थंकर।

यौ०—जिन सदन = जिनसद्म। जैन मंदिर।

जिन[2]—वि० १. जीतनेवाला। जयी। २. राग द्वेष आदि जीतनेवाला। ३. बुद्ध (को०)।

जिन[3]—वि० [सं० यानि] 'जिस' का बहुवचन।

जिन[4]—सर्व० [हिं०] 'जिस' का बहुवचन।

जिन[5]—संज्ञा पुं० [अ०] भूत।

मुहा०—जिन का साया = जिन लगना। जिन चढ़ना, जिन सवार होना = क्रोध के आवेश में होना। क्रोधांध होना।

जिन[6]—अव्य० [हिं० जनि] मत। उ०—सोच करो जिन होहु सुखी मतिराम प्रवीन सबै नरनारी। मंजुल बंजुल कुंजन में घन, पुंज सखी ससुरारि तिहारी।—मति० ग्रं०, पृ० २६०।

जिन[7]—संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार की शराब। उ०—जिन का एक देग।—वो दुनिया, पृ० १४२।

जिनगानी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० जिंदगानी] दे० 'जिंदगानी'।

जिनगी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० जिंदगी। उ०—यकठोस दूल्हा के साथ किस तरह अपनी जिनगी काटेगी।—नई०, पृ० २६।

जिनस(पु)†—संज्ञा स्त्री० [अ० जिंस] १. प्रकार। जाति। किस्म। उ०—बहु जिनस प्रेत पिसाच जोगि जमात बरनत नहिं बनें।—मानस, १। ९३। २. दे० 'जिंस'।

जिना—संज्ञा पुं० [अ० ज़िना] व्यभिचार। छिनाला।

क्रि० प्र०—करना।

यौ०—जिनाकार। जिनाकारी। जिनाबिल्जब्र।

जिनाकार—वि० [अ० ज़िना + फ़ा० कार] [संज्ञा जिनाकारी] व्यभिचारी।

जिनाकारी—संज्ञा स्त्री० [अ० ज़िना + फ़ा० कारी] पर-स्त्री-गमन। व्यभिचार।

जिनाबिल्जब्र—संज्ञा पुं० [अ०] किसी स्त्री के साथ उसकी इच्छा और सम्मति के विरुद्ध बलात् संभोग करना।

जिनावर(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'जानवर'। उ०—कहै श्री हरिदास पिंजरा के जिनावर सों, तरफराइ रह्यो उड़िबे को कितोऊ करि।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ३६०।

जिनि[1]—अव्य० [हिं० जनि] मत। नहीं। दे० 'जनि'। उ०—(क) यह उज्जल रसमाल कोटि जतनन कै पोई। सावधान ह्वै पहिरो यहि तोरो जिनि कोई।—नंद० ग्रं०, पृ० २५। (ख) जिनि कटार गर लावसि समुझि देखु मन आप। सकति जीउ जो काटै महा दोष औ पाप। जायसी—(शब्द०)।

जिनि[2](पु)—सर्व० [हिं० जिन] जिन्होंने।

जिनिस†—संज्ञा स्त्री० [अ० जिंस] दे० 'जिंस'।

जिनिसवार†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'जिंसवार'।

जिनेंद्र—संज्ञा पुं० [सं० जिनेन्द्र] १. एक बुद्ध। २. एक जैन संत (को०)।

जिन्न—संज्ञा पुं० [अ०] दे० 'जिन' (को०)।

जिन्नात—संज्ञा पुं० [अ० जिन का बहु व०] भूत प्रेतादि।

जिन्नी[1]—वि० [अ०] जिन या भूत संबंधी (को०)।

जिन्नी[2]—संज्ञा पुं० वह व्यक्ति जिसके वश में भूत प्रेत हों (को०)।

जिन्ह[1](पु)—सर्व० [हिं० जिन] दे० 'जिन'।

जिन्ह[2](पु)†—संज्ञा पुं० [अ० जिन्न] दे० 'जिन' (भूत प्रेत)।

जिन्हार—अव्य० [फ़ा० ज़िनहार] हर्गिज। बिलकुल। उ०—कहे उस शर्त से ऐ नेक अतवार। खिलाफ इसमें न करना तुमें जिन्हार।—दक्खिनी, पृ० ३२५।

जिप्सी—संज्ञा पुं० [अं०] १. एक घुमती फिरती रहनेवाली जाति-विशेष। २. उक्त जाति का व्यक्ति।

जिबह—संज्ञा पुं० [अ० ज़ब्ह] दे० 'जबह'। उ०—मुरगी मुल्ला से कहै, जिबह करत है मोहि। साहिब लेखा माँगसी, संकट परिहै तोहि।—संतवाणी०, पृ० ६१।

जिब्भा(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० जिह्वा] दे० 'जिह्वा'।

जिब्हा†—संज्ञा पुं० [सं० जिह्वा] दे० 'जिह्वा'।

जिभला†—वि० [हिं० जीभ + ला (प्रत्य०)] चटोरा। चट्टू।

जिभ्या†(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० जिह्वा] दे० 'जिह्वा'।

जिम(पु)—अव्य० [हिं०] दे० 'जिमि'। उ०—ले घण एही संपजइ, तउ जिम ठल्लइ जाइ।—ढोला०, दू० ४५६।

जिमखाना—संज्ञा पुं० [अं० जिमनास्टिक का संक्षिप्त रूप जिम + हिं० खाना] वह सार्वजनिक स्थान जहाँ लोग एकत्र होकर व्यायामादि करते हैं। व्यायामशाला।

जिमनार—संज्ञा स्त्री० [हिं० जिमाना] भोज। समष्टिभोज। उ०—जहाँ गए ब्रह्मभोज, साधु जिमनार यथेच्छ करते।—सुंदर ग्रं० (जी०), भा० १, पृ० १४२।

जिमनास्टिक—संज्ञा पुं० [अं०] वे कसरतें जो काठ के दोहरे बल्लों या छड़ों आदि के ऊपर की जाती हैं। अंग्रेजी कसरत।

जिमाना—क्रि० स० [हिं० जीमना] खाना खिलाना। भोजन कराना।

जिमि(पु)—क्रि० वि० [हिं० जिस् + इमि] जिस प्रकार से। जैसे। यथा। ज्यों। उ०—कामिहि नारि पियारि जिमि, लोभिहि प्रिय जिमि दाम।—मानस, ७। १३०।

विशेष—समन्वय सूचित करने के लिये इस शब्द के आगे तिमि का प्रयोग होता है।

जिमित—संज्ञा पुं० [सं०] भोजन [को०]।

जिमींदार—संज्ञा पुं० [हिं० जमींदार] दे० 'जमींदार'।

जिम्मा—संज्ञा पुं० [अ० जिम्मह्] १. इस बात का भारग्रहण कि कोई बात या कोई काम अवश्य होगा और यदि न होगा तो उसका दोष भार ग्रहण करनेवाले के ऊपर होगा। किसी ऐसी बात के होने या न होने का दोष अपने ऊपर लेने की प्रतिज्ञा जिसका संबंध अपने से या दूसरे से हो। उत्तरदायित्वपूर्ण प्रतिज्ञा। जवाबदेही। जैसे,—(क) मैं इस बात का जिम्मा लेता हूँ कि कल आपको चीज मिल जाएगी। (ख) इस बात का जिम्मा मेरा है कि ये एक महीने के भीतर आपका रुपया चुका देंगे। (ग) क्या रोज रोज खिलाने का मैंने जिम्मा लिया है।

क्रि० प्र०—करना।—लेना।

मुहा०—कोई काम किसी के जिम्मे करना = किसी काम को करने का भार किसी के ऊपर होना। किसी के जिम्मे रुपया आना, निकलना या होना = किसी के ऊपर रुपया ऋणस्वरूप होना। देना। ठहराना। जैसे,—हिसाब करने पर ५) रु० तुम्हारे जिम्मे निकलते हैं। किसी के जिम्मे रुपया डालना = किसी के ऊपर ऋण या देना ठहराना।

विशेष—जिम्मा और वादा में यह अंतर है कि वादा अपने ही विषय में किया जाता है और जिम्मा दूसरे के विषय में भी होता है।

२. सुपुर्दगी। देखरेख। संरक्षा। जैसे,—ये सब चीजें मैं तुम्हारे जिम्मे छोड़ जाता हूँ, कहीं इधर उधर न होने पाएँ।

•जिम्मादार—संज्ञा पुं० [अ० जिम्मह्+फ़ा० दार (प्रत्य०)] दे० 'जिम्मावार'।

जिम्मादारी—संज्ञा स्त्री० [अ० जिम्मह्+दारी (प्रत्य०)] दे० 'जिम्मावारी'।

जिम्मावार—संज्ञा पुं० [अ० जिम्मह् फ़ा०+वार (प्रत्य०)] वह जो किसी बात के लिये प्रतिज्ञाबद्ध हो। जवाबदेह। उत्तरदाता।

जिम्मावारी—संज्ञा पुं० [हिं० जिम्मावार+ई (प्रत्य०)] १. किसी बात को करने या किए जाने का भार। उत्तरदायित्व। जवाबदेही। २. सुपुर्दगी। संरक्षा। उ०—हम इन चीजों को तुम्हारी जिम्मावारी पर छोड़ जाते हैं।

जिम्मी—संज्ञा पुं० [अ० जिम्मी] इसलामी राज्य का वह कर जिसे गैर मुसलमान होने के कारण देना पड़ता था [को०]।

जिम्मोजर—संज्ञा स्त्री० [फा० जमीं+जर] जर जमीन। उ०—पाखंड डंड रच्चै नहीं। जिम्मोजर ककर बरा। संभरिय काल कटक हनो ता पाछै गुज्जर धरा। —पृ० रा०, १२। १२८।

जिम्मेदार—संज्ञा पुं० [अ० जिम्मह्+फ़ा० दार (प्रत्य०)] दे० 'जिम्मावार'।

जिम्मेदारी—संज्ञा स्त्री० [अ० जिम्मह्+फ़ा० दारी (प्रत्य०)] दे० 'जिम्मावारी'।

जिम्मेवार—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'जिम्मावार'। उ०—जिस गाँव के ये हैं, वहाँ का जमींदार जिम्मेवार होगा।—काले०, पृ० ५।

जिम्मेवार—संज्ञा पुं० [अ० जिम्मह्+फ़ा० वार (प्रत्य०)] दे० 'जिम्मावार'।

जिम्मेवारी—संज्ञा स्त्री० [अ० जिम्मह्+फ़ा० वारी (प्रत्य०)] दे० 'जिम्मावारी'।

जिय†—संज्ञा पुं० [सं० जीव] मन। चित्त। जी। उ०—(क) अस जिय जानि सुनहु सिख भाई। करहु मातु पितु पद सेवकाई। —तुलसी (शब्द०)। (ख) प्रसन चंद सम जतिय दिन्न इक मंत्र इष्ट जिय। इह आराधत मद्द प्रगट पंचास बीर विय। —पृ० रा०, ६। २६।

यौ०—जियबधा=हत्या करनेवाला। जल्लाद।

जियन(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० जीवन] जीवन। जिंदगी।

जियनि†—संज्ञा स्त्री० [सं० जीवन] १. जीवन। २. जीवन का ढंग। रहन सहन। आचरण।

जियरा(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० जीव] १. जीव। मन। चित्त। उ०—मेरो स्वभाव चितैबे को माई री लाल निहारि कै बंसी बजाई। वा दिन तें मोहि लागी ठगोरी सी लोग कहैं कोउ बावरी आई। यों रसखानि घिरयो सिगरो ब्रज जानत वे कि मेरो जियरा ई। जो कोउ चाहै भलो अपनो तो सनेह न काहू सो कीजिए माई।—रसखान (शब्द०)। २. प्राण। उ०—जियरा जावगे हम जानी। पाँच तत्व को बनो है पिंजरा जिसमें वस्तु बिरानी। आवत जावत कोइ न देखा डूब गया बिन पानी। —कबीर श०, भा०, पृ०।

जियाँकार—वि० [फ़ा० जियाँकार] १. हानि पहुँचानेवाला। २. बदमाश। बुरा आचरण करनेवाला [को०]।

जिया[1]—संज्ञा स्त्री० [अ० जिया] १. सूर्य का प्रकाश। २. चमक। आभा। कांति [को०]।

जिया[2]†—संज्ञा स्त्री० [हिं० दाई या धाय] दूध पिलानेवाली दाई।

जिया[3]†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'जी' और 'मन'।

जिया[4]†—संज्ञा स्त्री० [हिं० जीजी या बीबी] बड़ी बहन।

जियाजंतु†—संज्ञा पुं० [हिं० जीवजंतु] दे० 'जीवजंतु'।

जियादत—संज्ञा स्त्री० [अ० जियादत] १. आधिक्य। अतिशयता। २. अत्याचार। जुल्म [को०]।

जियादती—संज्ञा स्त्री० [अ० जियादत+हिं० ई (प्रत्य०)] दे० 'ज्यादती'।

जियादा—वि० [अ० जियादह्] दे० 'ज्यादा'।

जियान—संज्ञा पुं० [फ़ा० जियान] घाटा। टोटा। नुकसान। हानि। क्षति।

क्रि० प्र०—उठाना।—होना।—करना।

जियाना(पु)†—क्रि० स० [हिं० जीना] १. जिलाना। उ०—अबहूँ करि माया जिव केरी। मोहिं जियाव देहु पिय मोरी। —जायसी (शब्द०)। २. पालना। पोसना। उ०—बाघ बछानि को गाय जियावत, बाघिनी पै सुरभी सुत चोषै। —गुमान (शब्द०)।

जियापोता—संज्ञा पुं० [हिं० जिलाना + पूत] पुत्रजीवा का पेड़। पतजिव।

जियाफत—संज्ञा स्त्री० [अ० जियाफ़त] १. आतिथ्य। मेहमानदारी। २. भोज। दावत।

मुहा०—जियाफत करना = (१) आदर सत्कार करना। (२) खाना खिलाना। भोज देना।

जियार१—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'जियरा'। उ०—जावै बीत जियार, जेहल पछतावै जिके।—बाँकी० ग्रं०, भा० ३, पृ० १६।

जियार२†—वि० [हिं०] साहसी। हिम्मती। जीवटवाला।

जियारत—संज्ञा स्त्री० [अ० जियारत] १. दर्शन। २. तीर्थदर्शन।

क्रि० प्र०—करना।

मुहा०—जियारत लगना = मेला लगना। दर्शन के लिये दर्शकों की भीड़ होना।

जियारतगाह—संज्ञा पुं० [अ० जियारत + फा० गाह] १. पवित्र स्थान। तीर्थ। २. दरबार। दरगाह। ३. दर्शकों की भीड़ या जमघट।

जियारती—वि० [अ० जियारत + फा० ई (प्रत्य०)] १. दर्शक। २. तीर्थयात्री।

जियारा†—संज्ञा पुं० [हिं०] १. जिलाना। जीवित रखना। पालना पोसना। २. आहार। चारा। ३. जीविका। ४. साहस। हियाव।

क्रि० प्र०—डालना।—देना।

जियारी†—संज्ञा स्त्री० [?] १. जीवन। जिंदगी। उ०—उनको लै मान जियो याही में प्रमान भयो दयो जो पै जाइ तौ ही तौं जियारी है।—प्रिया० (शब्द०)। २. जीविका। उ०—राका पति बाँका तिया बसै पुर पंडुर में उर में न चाह नेकु रीति कछु न्यारिये। करीन बीन करि जीविका नवीन करें, धरै हरि रूप हिये, ताही सो जियारिये।—प्रिया (शब्द०)। ३. जीवट। जिगरा। हृदय की दृढ़ता। साहस।

जियास—संज्ञा पुं० [हिं० जी] विश्वास। धैर्य। उ०—सांम कमंधा सांपनो उर अपनो जियास।—रा० रू०, पृ० २६७।

जिरगा—संज्ञा पुं० [फा० जिरगह्] १. झुंड। गरोह। २. मंडली। ३. पठानों की पंचायत (को०)।

जिरण—संज्ञा पुं० [सं०] जीरा (को०)।

जिरह१—संज्ञा पुं० [अ० जरह] १. हुज्जत। खुचुर। २. फेर फार के प्रश्न जिनसे उत्तरदाता घबडा जाय और सच्ची बात छिपा न सके। ऐसी पूछताछ जो किसी से उसकी कही हुई बातों की सत्यता की जाँच के लिये की जाय।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—जिरह काढ़ना या निकालना = खोद बिनोद करना। बहुत अधिक पूछताछ करना। बात में बात निकालना। खुचुर निकालना।

३. वह सूत की डोरी जो बैसर में ऊपर नीचे बय के गाँछने के लिये लगी रहती है (जुलाहे)। ४. चीरा। घाव (को०)।

जिरह२—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जिरह] लोहे की कड़ियों से बना हुआ कवच। वर्म। बकतर।

यौ०—जिरहपोश = जो बकतर पहने हो। कवची।

जिरही१—वि० [फ़ा० जिरही] जो जिरह पहने हो। कवचधारी।

जिरही२—संज्ञा पुं० सैनिक (को०)।

जिराअत—संज्ञा स्त्री० [अ० जिराअत] खेती। कृषि कर्म।

क्रि० प्र०—करना।

यौ०—जिराअत पेशा = खेतिहर। किसान। कृषक।

जिरात†—संज्ञा स्त्री० [अ० जिराअत] दे० 'जिराअत'।

जिराफ—संज्ञा पुं० [अ० जिराफ या जुराफ] घास के मैदानों का एक वन्य पशु।

विशेष—यह अफ्रीका तथा दक्षिण अमरीका के घास के मैदानों में झुंडों में फिरा करता है। इसके पैरों में खुर होते हैं और इसका अगला धड़ पिछले से भारी होता है। गरदन इसकी ऊँट की सी लंबी होती है। यह अठारह फुट ऊँचा होता है। इसमें सिर पर दो छोटे छोटे सींग होते हैं जो रोएँदार चमड़े से ढके रहते हैं। इसकी आँखें सुंदर और उभड़ी होती हैं, जिनसे यह बिना सिर मोड़े पीछे देख सकता है। इसकी नाक की बनावट कुछ ऐसी होती है कि यह जब चाहे उसे बंद कर सकता है। जीभ इसकी इतनी लंबी होती है कि यह उसे मुँह से सत्रह इंच बाहर निकाल सकता है। इसके शरीर पर हिरन के से रोएँ और बड़ी बड़ी चित्तियाँ होती हैं। यह ताड़ों और खजूरों की पत्तियाँ खाता है।

जिरायत†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'जिराअत'।

जिरिया—संज्ञा पुं० [हिं० जीरा] एक प्रकार का धान जो जीरे की तरह पतला और लंबा होता है।

जिलवा—वि० [अ० जल्वह्] आत्मप्रदर्शन। हावभाव। शोभा। उ०—नरेशों को संमान लालसा पग पग पर अपना जिलवा दिखाती थी।—काया०, पृ० १७०।

जिला१—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. चमक दमक। ओप। पानी।

मुहा०—जिला करना या देना = किसी वस्तु को माँजकर तथा रोगन आदि चढ़ाकर चमकाना। सिकली करना। जैसे,—हथियारों पर जिला देना, तलवार पर जिला देना।

यौ०—जिलाकार = सिकलीगर।

२. माँजकर तथा रोगन आदि चढ़ाकर चमकाने का कार्य। झलकाने की क्रिया। ओप देने का कार्य।

जिला२—संज्ञा पुं० [अ० जिलअ] १. प्रांत। प्रदेश। २. भारतवर्ष में किसी प्रांत का वह भाग जो एक कलक्टर या डिप्टी कमिश्नर के प्रबंध में हो। ३. किसी इलाके का छोटा विभाग या अंश।

यौ०—जिलादार।

४. किसी जमींदार के इलाके के बीच बना हुआ वह मकान जिसमें वह या उसके आदमी तहसील वसूल आदि के लिये ठहरते हों।

जिला जज—संज्ञा पुं० [अ० जिलअ् + अं० जज] जिले का प्रधान न्यायाधीश। जिलाधीश।

जिलाट—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक बाजा जिसपर चमड़ा मढ़ा होता था और जो थाप से बजाया जाता था।

जिलादार—संज्ञा पुं० [अ० जिलअ + फ़ा० दार (प्रत्य०)] १. सरबराहकार। मजावल। २. वह अफसर जिसे जमींदार अपने इलाके के किसी भाग में लगान वसूल करने के लिये नियत करता है। ३. वह छोटा अफसर जो नहर, अफीम आदि संबंधी किसी हलके में काम करने के लिये नियत हो।

जिलादारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० जिलादार + ई (प्रत्य०)] जिलेदार का काम या पद।

जिलाधीश—संज्ञा पुं० [अ० जिलअ + सं० अधीश] दे० 'जिला मैजिस्ट्रेट'।

जिलाना—क्रि० स० [हिं० जीना का सक रूप] १. जीवन देना। जी डालना। जिंदा करना। जीवित करना। जैसे, मुर्दा जिलाना। २. पालना। पोसना। जैसे, तोता जिलाना, कुत्ता जिलाना।

विशेष—इस क्रिया का प्रयोग प्रायः ऐसे ही पशुओं या जीवों के लिये होता है जिनसे मनुष्य कोई काम नहीं लेता, केवल मनोरंजन के लिये पालता है। जैसे,—कुत्ता, बिल्ली, तोता, शेर आदि। घोड़े, हाथी, ऊँट, गाय, बैल आदि के लिये इसका प्रयोग नहीं होता।

३. मरने से बचाना। मरने न देना। प्राणरक्षा करना। जैसे,—सरकार ने अकाल में लाखों आदमियों को जिला लिया। ४. धातु के भस्म को फिर धातु के रूप में लाना। मूर्छित धातु को पुनः जीवित करना।

जिला बोर्ड—संज्ञा पुं० [अ० जिला + अं० बोर्ड] किसी जिले के करदाताओं के प्रतिनिधियों की वह सभा जिसका काम अपने अधीनस्थ ग्रामबोर्डों की सहायता से गाँवों की सड़कों की मरम्मत कराना, स्कूल और चिकित्सालय चलाना, चेचक के टीके और स्वास्थ्योन्नति का प्रबंध आदि करना है।

विशेष—म्युनिसपैलिटी के समान ही जिलाबोर्ड के सदस्यों का भी हर तीसरे साल चुनाव होता है।

जिला मैजिस्ट्रेट—संज्ञा पुं० [अ० + अं०] जिले का बड़ा हाकिम जो फौजदारी मामलों का फैसला करता है। जिला हाकिम।

विशेष—हिंदुस्तान में जिले का कलक्टर और मैजिस्ट्रेट एक ही मनुष्य होता है जो अपने दो दो पदों के कारण दो नामों से पुकारा जाता है। मालगुजारी संबंधी कार्यों का अध्यक्ष (प्रधान) होने से कलक्टर और फौजदारी मामलों का फैसला करने के कारण वह मैजिस्ट्रेट कहलाता है।

जिलासाज—संज्ञा पुं० [अ० जिला + फ़ा० साज] सिकलीगर। हथियारों पर ओप चढ़ानेवाला।

जिलाह(पु)—संज्ञा पुं० [अ० जल्लाद ?] अत्याचारी। उ०—ज्वाला की जलूसन, जलाक जग जालन की, जोर की जमा है जोम जुलुम जिलाहे की।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २२८।

जिलिबदार—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'जिलेदार'। उ०—अर्जी लिखी फौजदार ले पौंचे जिलिबदार। जाके देव दरबार चोपदार के कहिने।—दक्खिनी०, पृ० ४६।

जिलेदार—संज्ञा पुं० [हिं० जिलादार] दे० 'जिलादार'।

जिलेबी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० जलेबी] दे० 'जलेबी'।

जिलो(पु)—संज्ञा पुं० ? अनुचर। उ०—अथा बादशाहओं बड़ा नामदार। जिलो में चले उसके कई ताजदार।—दक्खिनी०, पृ० १६८।

जिल्द—संज्ञा स्त्री० [अ०] [वि० जिल्दी] १. खाल। चमड़ा। खलड़ी। २. ऊपर का चमड़ा। त्वचा। जैसे, जिल्द की बीमारी। ३. वह पट्ठा या दफ्ती जो किसी किताब की सिलाई जुजबंदी आदि करके उसके ऊपर उसकी रक्षा के लिये लगाई जाती है।

क्रि० प्र०—बनाना।—बाँधना।

यौ०—जिल्दबंद। जिल्दसाज।

४. पुस्तक की एक प्रति।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग उस समय होता है जब पुस्तकों का ग्रहण संख्या के अनुसार होता है। जैसे,—दस जिल्द पद्मावत, एक जिल्द रामायण।

५. किसी पुस्तक का वह भाग जो पृथक् सिला हो। भाग। खंड। जैसे,—दादूदयाल की बानी दो जिल्दों में छपी है।

जिल्दगर—संज्ञा पुं० [अ० जिल्द + फ़ा० गर (प्रत्य०)] जिल्दबंद।

जिल्दबंद—संज्ञा पुं० [अ० जिल्द + फा० बंद (प्रत्य०)] वह जो किताबों की जिल्द बाँधता हो। जिल्द बाँधनेवाला।

जिल्दबंदी—संज्ञा स्त्री० [अ० जिल्द + फा० बंदी (प्रत्य०)] पुस्तकों की जिल्द बाँधने का काम। जिल्द साजी।

जिल्दसाज—संज्ञा पुं० [अ० जिल्द + फ़ा० साज (प्रत्य०)] संज्ञा जिल्दसाजी] जिल्दबंद। जिल्द बाँधनेवाला।

जिल्दसाजी—संज्ञा स्त्री० [अ० जिल्द + फ़ा० साजी (प्रत्य०)] जिल्दबंदी। किताबों पर जिल्द बाँधने का काम।

जिल्दी—वि० [अ० जिल्द + फ़ा० ई (प्रत्य०)] त्वक संबंधी। त्वचा या चमड़े से संबंध रखनेवाला। जैसे, जिल्दी बीमारी।

जिल्लत—संज्ञा स्त्री० [अ० जिल्लत] १. अनादर। अपमान। तिरस्कार। बेइज्जती।

मुहा०—जिल्लत उठाना = १. अपमानित होना। २. तुच्छ होना। हेठा ठहरना। जिल्लत देना = (१) अपमानित करना। (२) लज्जित करना। हतक करना। हेठा ठहराना। जिल्लत पाना = अपमानित होना।

२. दुर्गति। दुर्दशा। हीन दशा। जैसे, जिल्लत में पड़ना या फँसना।

जिल्ली—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बाँस।

विशेष—यह आसाम में होता है और घर की छाजन आदि में लगता है।

जिल्वा—संज्ञा पुं० [अ० जल्वह्] दे० 'जल्वा'। उ०-एक दिन ऐसा

आवेगा जब तमाम दुनिया में ईमान का जिलवा होगा।—भा० ग्रं०, भा० १, पृ० ५२६।

जिल्होर—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का धान जो अगहन में काटा जाता है।

जिव†—संज्ञा पुं० [सं० जीव] दे० 'जीव'।

जिवडाⓅ—संज्ञा पुं० [सं० जीव + डा (प्रत्य०)] दे० 'जीव'। उ०—ऐसा जिवडा न मिलाए जो फरक बिछोर।—कबीर मं०, पृ० ३२५।

जिवमारⓅ—वि० [हिं० जीव + मार] जान मारनेवाला। उ०—जल नहिं, थल नहिं, जीव और सृष्टि नहिं, काल जिवमार नहिं संसय सताया।—कबीर रे०, पृ० ३३।

जवरियाⓅ—संज्ञा स्त्री० दे० 'जेवरी'। उ०—आदि अंत जो कोउ न पावै। तनक जिवरिया कित फिरि आवै।—नंद० ग्रं०, पृ० २५०।

जिवाँना—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० १. 'जिमाना'। २. 'जिवाना'।

जिवाजिव—संज्ञा पुं० [सं०] चकोर पक्षी।

जिवानाⓅ†—क्रि० स० [हिं० जीव (= जीवन)] जीवित करना। जिलाना। उ०—इहिं काँटे मो पाइ गड़ि लीनी मरति जिवाइ। प्रीति जनावति भीति सों मीत जु काढ्यो आइ।—बिहारी र०, दो० ६०५।

जिवारीⓅ—वि० [हिं० जिव] जिलानेवाली। उ०—सोभा समूह मई घनआनंद मूरति अंग अनंग जिवारी।—घनानंद, पृ० १०६।

जिवालाⓅ—संज्ञा पुं० [मरा० जिवाला] जीवन। उ०—जिव का बी जो जिवाला रूपों में रूप आला। सबके ऊपर है बाला नित हसत रस तू मीरों'।—दक्खिनी, पृ० ११०।

जिवावना—क्रि० स० [जिवाना ?] जिलाना। जियाना। उ०—आनंदघन अघ ओघबहावन सुदृस्टि जिवावन बेद भरत है मामी।—घनानंद, पृ० ४१८।

जिवैया—वि०[हिं०]जीमनेवाला। खानेवाले। उ०—तुम्हारे सिवाय और कोई जिवैया नहीं बैठा है।—मान भा०, ५, पृ० २७।

जिष्टⓅ—वि० [सं० ज्येष्ठ] दे० 'ज्येष्ठ'। उ०—ब्रंन अभूत सु उन्नत जिष्टं। वंदन भर कि बद्ध मनु पिष्टं।—पृ० रा०, १। २५७।

जिष्णु[1]—वि०[सं०]जीतनेवाला। विजय प्राप्त करनेवाला। विजयी।

जिष्णु[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. विष्णु। २. इंद्र। ३. अर्जुन। ४. सूर्य। ५. वस्तु।

जिस[1]—वि० [सं० यस्य, प्रा० जस्स, हिं० जिस] 'जो' का वह रूप जो उसे विभक्तियुक्त विशेष्य के साथ आने से प्राप्त होता है। जैसे, जिस पुरुष ने, जिस लड़के को, जिस छड़ी से। जिस घोड़े पर, जिस घर में, इत्यादि।

जिस[2]—सर्व० 'जो' का वह अंगरूप, विकारीरूप जो उसे विभक्ति लगने के पहले प्राप्त होता है। जैसे, जिसने, जिसको, जिससे, जिसका, जिस पर, जिनमें।

विशेष—संबंध पूरा करने के लिये 'जिस' के पीछे 'उस' का प्रयोग होता है। जैसे,—जिसको देंगे उससे लेंगे। पहले 'उस' के स्थान पर 'तिस' का प्रयोग होता था।

जिसउⓅ—वि० [प्रा०] जैसा। उ०—साल्ह कुँवर सुंपति जिसउ, रूपे अधिक अनूप। लाखाँ बगसइ माँगिया, लाख भँगा सिर भूप।—ढोला०, दू० ६३।

जिसनूⓅ—संज्ञा पुं० [सं० जिष्णु] दे० 'जिष्णु'—३। उ०—भई भ्रिकुटी धनुक समानू। है बरुनी जिसनू के बानू।—इंद्रा०, पृ० ६०।

जिसाⓅ†—वि० [हिं०] दे० 'जैसा'। उ०—मोकु दोस न दीज्यो कोई, जिसा करम भुगताऊँ सोई।—रामानंद०, पृ० २६।

जिसिम—संज्ञा पुं० [अ० जिस्म] दे० जिस्म'।

जिसौहⓅ—क्रि० वि०, वि० [हिं० जिसउ] जैसा। उ०—नृसिंह विराजत सिंह जिसौह। विभीषन भा कयमास जिसौह।—पृ० रा०, ५। ३६।

जिस्का—वि० [हिं०] जिसका। दे० 'जिस'। उ०—उन्होने ऐसा प्रेम लगाया जिस्का पारावार नहीं।—श्यामा०, पृ० १२१।

विशेष—पुराने लेखक 'जिसका' को इसी प्रकार लिखते थे।

जिस्ता[1]—संज्ञा पुं० [हिं० जस्ता] दे० 'जस्ता'।

जिस्ता[2]—संज्ञा पुं० [हिं० दस्ता] दे० 'दस्ता'।

जिस्म—संज्ञा पुं० [अ०] शरीर। देह।

जिस्मानी—वि० [अ०] शरीर संबंधी। शारीरिक [को०]।

जिस्मी—वि० [अ० जिस्म + फ़ा० ई (प्रत्य०)] दे० 'जिस्मानी' [को०]।

जिह[1]—संज्ञा स्त्री० [फा० ज़ह, सं० ज्या] चिल्ला। रोदा। ज्या। धनुष की प्रत्यंचा। उ०—तिय कित कमनैती पढ़ी बिन जिह भौंह कमान। चित चल बेझे चुकति नहिं बंक बिलोकनि बान।—बिहारी (शब्द०)।

जिहⓅ[2]—सर्व० [हिं०] दे० 'जिस'।

जिहन—संज्ञा पुं० [अ० जिह्न] समझ। बुद्धि। धारणा।

मुहा०—जिहन खुलना = बुद्धि का विकास होना। जिहन लड़ना = बुद्धि का काम करना। बुद्धि पहुँचना। जिहन लड़ाना = सोचना। बुद्धि दौड़ाना। ऊहापोह करना।

जिहाजⓅ—संज्ञा पुं० [हिं० जहाज] मरुभूमि का जहाज अर्थात् ऊँट। उ०—ऊमर बिच छेनी घणी, घाते गयउ जिहाज। चारण ढोलइ साँमुहउ, आइ कियउ सुबराज।—ढोला०, दू० ६४३।

जिहाद—संज्ञा पुं० [अ०] [वि० जिहादी] १. धर्म के लिये युद्ध। मजहबी लड़ाई। धार्मिक युद्ध। २. वह लड़ाई जो मुसलमान लोग अन्य धर्मावलंबियों में अपने धर्म के प्रचार आदि के लिये करते थे।

मुहा०—जिहाद का झंडा = वह पताका जो मुसलमान लोग भिन्न धर्मवालों से युद्ध करने के लिये लेकर चलते थे। जिहाद का झंडा खड़ा करना = मजहब के नाम पर लड़ाई छेड़ना।

जिहान(पु)¹—संज्ञा पुं० [फा० जहान] संसार । जहान । उ०—मेक सयत संमपत्त मैं, पैंतीसे जसराज । मैं हुरिखाम जिहान तज, हिंदुसथान बिहान ।—रा० रू०, पृ० १७ ।

जिहान²—संज्ञा पुं० [सं०] १. जाना । गमन । २. पाना । प्राप्त करना (कौ०) ।

जिहानक—संज्ञा पुं० [सं०] प्रलय (कौ०) ।

जिहालत—संज्ञा स्त्री० [अ० जहालत] मूर्खता । अज्ञानता

जिहासा—संज्ञा स्त्री० [सं०] त्याग करने की इच्छा ।

जिहासु—वि० [सं०] त्याग करने की इच्छा करनेवाला ।

जिहीर्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] हरने की इच्छा । लेने की इच्छा । हरण करने की कामना ।

जिहीर्षु—वि० [सं०] हरण करने की इच्छा रखनेवाला ।

जिहेज—संज्ञा पुं० [अ० जिहेज] दे० 'जहेज' (कौ०)

जिह्म¹—वि० [सं०] १. वक्र । टेढ़ा । २ दुष्ट । क्रूर प्रकृतिवाला । ३. कुटिल । कपटी । ४. अप्रसन्न । खिन्न । ५. मंद । ६. पीला । पीतवर्ण का (कौ०) ।

जिह्म²—संज्ञा पुं० १ तगर का फूल । २ अधर्म । ३. कपट (कौ०) । ४. बेईमानी । मिथ्यात्व (कौ०) ।

जिह्मग¹—वि० [सं०] १. कुटिल गतिवाला । टेढ़ी चाल चलनेवाला । २. मंद गति । धीमा । ३. कुटिल । कपटी । चालबाज ।

जिह्मग²—संज्ञा पुं० साँप ।

जिह्मगति¹—वि० [सं०] टेढ़ा मेढ़ा चलनेवाला (कौ०) ।

जिह्मगति—संज्ञा पुं० साँप (कौ०) ।

जिह्मगामी—वि० [सं० जिह्मगामिन्] [वि०स्त्री० जिह्मगामिनी] १. टेढ़ा चलनेवाला । २. कुटिल । कपटी । चालबाज । ३. मंदगामी । सुस्त । धीमा ।

जिह्मता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. टेढ़ापन । वक्रता । २. मंदता । धीमापन । ३. कुटिलता । कपट । चालबाजी ।

जिह्ममेहन—संज्ञा पुं० [सं०] मेढक ।

जिह्मयोधी¹—वि० [सं० जिह्मयोधिन्]कपट युद्ध करनेवाला (कौ०) ।

जिह्मयोधी²—संज्ञा पुं० भीम (कौ०) ।

जिह्मशल्य—संज्ञा पुं० [सं०] खैर । खदिर । कत्था ।

जिह्माक्ष—वि० [सं०] ऐंचा ताना (कौ०) ।

जिह्मित—वि० [सं०] घूमा हुआ । फिरा हुआ । चकित । विस्मित ।

जिह्मीकृत—वि० [सं०] झुकाया हुआ । टेढ़ा किया हुआ ।

जिह्व—संज्ञा पुं० [सं०] १. जिह्वा ।

विशेष—इसका प्रयोग समस्त पदों मे मिलता है । जैसे, द्विजिह्व । २. तगरमूल (कौ०) ।

जिह्वक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का सन्निपात जिसमें जीभ में काँटे पड़ जाते हैं, रोगी से स्पष्ट बोला नहीं जाता, जीभ लड़खड़ाती है ।

विशेष—इसकी अवधि १६ दिन की है । इसमें श्वास कास आदि भी हो जाते हैं । इस रोग में रोगी प्रायः गूँगे या बहरे हो जाते हैं ।

जिह्वल—वि० [सं०] जिभला । चट्टू । चटोरा ।

जिह्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ जीभ । २. आग की लपट (कौ०) । ३. वाक्य (कौ०) ।

जिह्वाग्र¹—संज्ञा पुं० [सं०] जीभ की नोक । टूँड़ ।

मुहा०—जिह्वाग्र करना = कठस्थ करना । जबानी याद करना । किसी विषय को इस प्रकार रटना या घोखना कि उसे जब चाहे तब कह डाले । जिह्वाग्र होना = जबानी याद होना ।

जिह्वाग्र²—वि० याद रखनेवाला या वाली (चीज या ग्रंथ) ।

जिह्वाच्छेद—संज्ञा पुं० [सं०] जीभ काटने का दंड ।

विशेष—जो लोग माता, पिता, पुत्र, भाई, आचार्य या तपस्वियों आदि को गाली देते थे उनको यही दंड दिया जाता था ।

जिह्वाजप—संज्ञा पुं० [सं०] तंत्रानुसार एक प्रकार का जप जिसमें जिह्वा हिलने का विधान है ।

जिह्वानिर्लेखन—संज्ञा पुं० [सं०] जामी (कौ०) ।

जिह्वानिर्लेखनिक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जिह्वानिर्लेखन' ।

जिह्वाप—संज्ञा पुं० [सं०] वे पशु जो जीभ से पानी पिया करते हैं । जैसे, कुत्ते, बिल्ली, सिंह आदि ।

जिह्वामल—संज्ञा पुं० [सं०] जीभ पर बैठा हुआ मैल (कौ०) ।

जिह्वामूल—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० जिह्वामूलीय] जीभ की जड़ या पिछला स्थान ।

जिह्वामूलीय¹—वि० [सं०] जो जिह्वा के मूल से संबंध रखता हो ।

जिह्वामूलीय²—संज्ञा पुं० वह वर्ण जिसका उच्चारण जिह्वामूल से हो ।

विशेष—शिक्षा के अनुसार ऐसे वर्ण अयोगवाह होते हैं और वे संख्या मे दो हैं ᳵक और ᳵख । क और ख के पहले विसर्ग आने से जिह्वामूलीय हो जाते हैं । कोई कोई वैयाकरण कवर्ग मात्र को जिह्वामूलीय मानते हैं ।

जिह्वारद—संज्ञा पुं० [सं०] पक्षी ।

जिह्वारोग—संज्ञा पुं० [सं०] जीभ का रोग ।

विशेष—सुश्रुत के मत से यह पाँच प्रकार का होता है । तीन प्रकार के कंटक जो वात, पित्त और कफ के प्रकोप से जीभ पर पड़ जाते हैं, चौथा अलास जिसमे जिह्वा के नीचे सूजन हो जाती है और पाँचवाँ उपजिह्विका जिसमे जिह्वा के मूल मे सूजन हो जाती है और लार टपकती है । इन पाँचों में अलास असाध्य है । इसमें जीभ के तले की सूजन बढ़कर पक जाती है ।

जिह्वालिह्—संज्ञा पुं० [सं०] कुत्ता ।

जिह्वालौल्य—संज्ञा पुं० [सं०] चटोरापन । स्वादलोलुपता (कौ०) ।

जिह्वाशल्य—संज्ञा पुं० [सं०] खदिर । खैर का पेड़ । कत्था ।

जिह्वास्तंभ—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का जिह्वारोग जिसमें वायु स्वरवाहिनी नाड़ियों में प्रवेश करके उन्हें स्तंभित कर देता है । —माधव, पृ० १४२ ।

जिह्विका—संज्ञा स्त्री० [सं०] जीभी ।

जिह्वोल्लेखनिका, जिह्वोल्लेखनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] जीभी (को०)।

जींगन†—संज्ञा पुं० [सं० जृगण] खद्योत । जुगनू । उ०—बिरह जरी लखि जींगननि कह्यो सुबह कै बार । भरी भाउ उठि भीतरै बरसति आज अँगार ।—बिहारी (शब्द०) ।

जी—संज्ञा पुं० [सं० जीव] १. मन । दिल । तबीयत । चित्त । उ०—(क) कहत नसाइ होइ हिम्र नीकी । रीझत राम जानि जन जीकी । मानस, १।२८ । २. हिम्मत । दम । जीवट । ३. संकल्प । विचार । इच्छा । चाह ।

मुहा०—जी अच्छा होना = चित्त स्वस्थ होना । रोग आदि की पीड़ा या बेचैनी न रहना । नीरोग होना । जैसे,—दो तीन दिन तक बुखार रहा, आज जी अच्छा है । किसी पर जी आना = किसी से प्रेम होना । हृदय का किसी के प्रेम मे अनुरक्त होना । जी उकताना = चित्त का उचाट होना । चित्त न लगना । एक ही अवस्था मे बहुत काल तक रहते रहते परिवर्तन के लिये चित्त व्यग्र होना । तबीयत घबराना । जैसे,—तुम्हारी बाते सुनते सुनते तो जी उकता गया । जी उचटना = चित्त न लगना । चित्त का प्रवृत्त न होना । मन हटना । किसी कार्य, वस्तु या स्थान आदि से विरक्ति होना । जैसे,—अब तो इस काम से मेरा जो उचट गया । जी उठना = दे० 'जी उचटना' । जी उठाना = चित्त हटाना । मन फेर लेना । विरक्त होना । अनुरक्त न रहना । जी उड़ जाना = भय, आशंका आदि से चित्त सहसा व्यग्र हो जाना । चित्त चंचल हो जाना । धैर्य जाता रहना । जी में घबराहट होना । जैसे,—उसकी बीमारी का हाल सुनते ही मेरा तो जी उड़ गया । जी उदास होना = चित्त खिन्न होना । जी उलट जाना = (१) मन का वश मे न रहना । चित्त चंचल और अव्यवस्थित हो जाना । चित्त विक्षिप्त हो जाना । होश हवास जाता रहना । (२) मन फिर जाना चित्त विरक्त होना । जी करना = (१) हिम्मत करना । हौसला करना । साहस करना (२) जी चाहना । इच्छा होना । जैसे,—अब तो जी करता है कि यहाँ से चल दें । जी काँपना = भय आशंका आदि से कलेजा धक धक करना । हृदय थर्राना । डर लगना । जैसे,—वहाँ जाने का नाम सुनते ही जी काँपता है । जी का बुखार निकालना = हृदय का उद्वेग बाहर करना । क्रोध, शोक, दुःख आदि के वेग को रो कलपकर या बक झककर शांत करना । ऐसे क्रोध या दुःख को शब्दों द्वारा प्रकट करना जो बहुत दिनों से चित्त को संतप्त करता रहा हो । जी का बोझ या भार हलका होना = ऐसी बात का दूर होना जिसकी चिंता चित्त में बराबर रहती आई हो । खटका मिटना । चिंता दूर होना । जी का अमान माँगना = प्राण रक्षा की प्रतिज्ञा की प्रार्थना करना । किसी काम के करने या किसी बात के कहने के पहले उस मनुष्य से प्राणरक्षा करने या अपराध क्षमा करने की प्रार्थना करना जिसके विषय मे यह निश्चय हो कि उसे उस काम के होने या उस बात को सुनने से अवश्य दुःख पहुँचेगा । जैसे,—यदि किसी राजा से कोई अप्रिय बात करनी हुई तो लोग पहले यह कह लेते हैं कि 'जी का अमान पाऊँ तो कहूँ' । जी का आ लगना = प्राणों पर आ बनना । प्राण बचना कठिन हो जाना । ऐसे भारी झंझट या संकट में फँस जाना कि पीछा छुड़ाना कठिन हो जाय । जी की निकालना = (१) मन की उमंग पूरी करना । दिल की हवस निकालना । मनोरथ पूरा करना । (२) हृदय का उद्गार निकालना । क्रोध, दुःख, द्वेष आदि उद्वेग को बक झक कर शांत करना । बदला लेने की इच्छा पूरी करना । जी का जी में रहना = मनोरथों का पूरा न होना । मन में ठानी, सोची या चाही हुई बातों का न होना । जी की पड़ना = प्राण बचाने की चिंता होना । प्राण बचाना कठिन हो जाना । ऐसे भारी झंझट या संकट मे फँस जाना कि पीछा छुड़ाना कठिन हो जाय । उ०—सब असबाब दाढ़ो मैं न काढ़ो तै न काढ़ो जिय की परी सभारै सहन भंडार को ।—तुलसी (शब्द०) । जी का = जीवटवाला । जिगरेवाला । साहसी । हिम्मतवर । दमदार । उ०—धनी धरनी के नीके आपुनी अनी के सग आवै जुरि जी के मो नजीके गरजी के सों ।—गोपाल (शब्द०) । (किसी के) जी को समझना = किसी के विषय मे यह समझना कि वह भी जीव है, उसे भी कष्ट होगा । दूसरे के कष्ट को समझना । दूसरे को क्लेश न पहुँचाना । दूसरे पर दया करना । जी को मारना = (१) मन की इच्छाओं को रोकना । चित्त के उत्साहों को न पूरा करना । (२) सतोष धारण करना । जी को न लगना = (१) चित्त मे अनुभव होना । हृदय मे वेदना होना । सहानुभूति होना । जैसे—दूसरों की पीड़ा आदि किसी के जी को नहीं लगती । (२) प्रिय लगना । भाना । अच्छा लगना । जी खटकना = (१) चित्त में खटका या सदेह उत्पन्न होना । (२) हानि आदि की आशका से (किसी काम के करने से) जी हिचकना । (किसी से या किसी के ओर से) जी खट्टा करना = मन फेर देना । चित्त मे घृणा या विरक्ति उत्पन्न कर देना । चित्त विरक्त करना । हृदय मे दुर्भाव उत्पन्न करना । जैसे,—तुम्ही ने मेरी ओर से उनका जी खट्टा कर दिया है । (किसी से या किसी ओर से) जी खट्टा होना = चित्त हट जाना । मन फिर जाना या विरक्त होना । अनुराग न रहना । घृणा होना । जैसे,—उसी एक बात से उनकी ओर से मेरा जी खट्टा हो गया । जी खपाना = (१) चित्त तन्मय करना । (किसी काम में) जी लगाना । नितात दत्तचित्त होना । जी तोड़कर किसी काम में लग जाना । (२) प्राण देना । अत्यंत कष्ट उठाना । जी खुलना = संकोच छूट जाना । धड़क खुल जाना । किसी काम के करने में हिचक न रह जाना । जी खोलकर = (१) बिना किसी संकोच के । बिना किसी प्रकार के भय या लज्जा के । बिना हिचके । बेधड़क । जैसे,—जो कुछ तुम्हे कहना हो, जी खोलकर कहो । (२) जितना जी चाहे । बिना अपनी ओर से कोई कमी किए । मनमाना । यथेष्ट । जैसे,—तुम हमे जी खोलकर गालियाँ दो, चिंता नहीं । जी गँवाना = प्राण देना । जान खोना । जी गिरा जाना = जी बैठा जाना । तबीयत सुस्त होती जाना । शिथिलता आती जाना । जी घबराना = (१) चित्त व्याकुल होना । मन व्यग्र होना । (२) मन न लगना । जी ऊबना । जी चलना =

(१) जी चाहना । इच्छा होना । (२) जी माना । चित्त मोहित होना । जी चला = (१) वीर । दिलेर । बहादुर । शूर । शूरमा । (२) दानवीर । दाता । दानी । उदार । दानशूर । (३) रसिक । सहृदय । जी चलाना = (१) इच्छा करना । मन दौड़ाना । चाह करना । (२) हिम्मत बाँधना । साहस करना । हौसला बढ़ाना । जी चाहना = मनोभिलाष होना । मन चलना । इच्छा होना । जी चाहे = यदि इच्छा हो । यदि मन में आवे । जी चुराना = किसी काम या बात से बचने के लिये हीला हवाली करना या युक्ति रचना । किसी काम से भागना । जैसे,—यह नौकर काम से जी चुराता है । जी छुपाना = (१) दे० 'जी चुराना' । जी छूटना = (१) हृदय की दृढ़ता न रहना । साहस दूर होना । ना उम्मेदी होना । उत्साह जाता रहना । (२) थकावट माना । शिथिलता माना । जी छोटा करना = (१) हृदय का उत्साह कम करना । (२) हृदय संकुचित करना । मन उदास करना । दान देने का साहस कम करना । उदारता छोड़ना । कंजूसी करना । जी छोड़ना = (१) प्राण त्याग करना । (२) हृदय की दृढ़ता खोना । साहस गँवाना । हिम्मत हारना । जी छोड़कर भागना = हिम्मत हारकर बड़े वेग से भागना । एकदम भागना । ऐसा भागना कि दम लेने के लिये भी न ठहरना । जी जलना = (१) चित्त संतप्त होना । हृदय मे संताप होना । चित्त में कुढ़न और दुःख होना । क्रोध माना । गुस्सा लगना (१) ईर्ष्या होना । डाह होना । जी जलाना = (१) चित्त संतप्त करना । हृदय मे क्रोध उत्पन्न करना । कुढ़ाना । चिढ़ाना । (२) हृदय में दुःख उत्पन्न करना । रंज पहुँचाना । दुःखी करना । चित्त व्यथित करना । सताना (३) ईर्ष्या या डाह उत्पन्न करना । जी जानता है = हृदय ही अनुभव करता है, कहा नहीं जा सकता । सही हुई कठिनाई, दुःख या पीडा वर्णन के बाहर है । जैसे,—(क) मार्ग में जो जो कष्ट हुए कि उसे जी ही जानता होगा । ('जी जानता होगा' भी बोला जाता है ।) जी जान से लगना = हृदय से प्रवृत्त होना । सारा ध्यान लगा देना । एकाग्र चित्त होकर तत्पर होना । जैसे,—वह जी जान से इस काम मे लगा है । किसी को जी जान से लगी है = कोई हृदय से तत्पर है । किसी की घोर इच्छा या प्रयत्न है । कोई सारा ध्यान लगाकर उद्यत है । कोई बराबर इसी चिंता और उद्योग में है । जैसे,- उसे जी जान से लगी है कि मकान बन जाय । जी जान लड़ाना = मन लगाना । दत्त चित्त होना । जी जुगोना = (१) किसी तरह प्राणरक्षा करना । कठिनाई से दिन बिताना । जैसे तैसे दिन काटना । (२) बचना । अलग रहना । तटस्थ रहना या होना । जी जोड़ना = (१) हिम्मत बाँधना या करना । (२)तैयार होना । उद्यत होना । जी टँगा रहना या होना = चित्त मे ध्यान या चिंता रहना । जी मे खटका बना रहना । चित्त चिंतित रहना । जैसे,—(क) जब तक तुम नही आओगे, मेरा जी टँगा रहेगा । (ख) उसका कोई पत्र नही आया, जी टँगा है । जी टूट जाना = उत्साह भंग हो जाना । उमंग या हौसला न रह जाना । नैराश्य होना । उदासीनता होना । जैसे,—उनकी बातों से हमारा जी टूट गया, अब कुछ न करेंगे । जी ठंढा होना = (१) चित्त शांत और संतुष्ट होना । अभिलाषा पूरी होने से हृदय प्रफुल्लित होना । चित्त में संतोष और प्रसन्नता होना । जैसे,—वह यहाँ से निकाल दिया गया; अब तो तुम्हारा जी ठंढा हुआ ? जी ठुकना = (१) मन को संतोष होना । चित्त स्थिर होना । (२) चित्त मे दृढ़ता होना । साहस होना । हिम्मत बँधना । दे० 'छाती ठुकना' । जी डरना = शंका या आशंका होना । भय होना । जी डालना = (१) शरीर में प्राण डालना । जीवित करना (२) प्राणरक्षा करना । मरने से बचाना । (३) हृदय मिलाना । प्रेम करना (४) उत्साहित करना । बढ़ावा देना । जी डूबना = (१) बेहोशी होना । मूर्च्छा माना । चित्त विह्वल होना । (२) चित्त स्थिर न रहना । घबराहट और बेचैनी होना । चित्त व्याकुल होना । जी डोलना = (१) विचलित होना । चंचल होना । (२) लुब्ध होना । अनुरक्त होना । (३) मन न करना । न चाहना । जी ढहा जाना = दे० 'जी बैठा जाना' । जी तपना = चित्त क्रोध से संतप्त होना । जी जलना । क्रोध चढ़ना । उ०—मुनि गज जूह अधिक जिउ तपा । सिंह जात कहुँ रह नहिं छपा । —जायसी (शब्द०) । जी तरसना = किसी वस्तु या बात के अभाव से चित्त व्याकुल होना । किसी वस्तु की प्राप्ति के लिये चित्त अधीर या दुःखी होना । किसी बात की इच्छा पूरी न होने का कष्ट होना । जैसे,—(क) तुम्हारे दर्शन के लिये जी तरसता था । (ख) जब तक बंगाल में थे, रोटी के लिये जी तरस गया । जी तोड़ काम, परिश्रम या मिहनत करना = जान की बाजी लगाकर किसी काम को करना । जी तोड़ना = (१) दिल तोड़ना । निराश करना । हतोत्साह करना । (२) पूरी शक्ति से काम करना । काम करने में कुछ भी न उठा रखना । जी दहलना = भय या आशंका से चित्त डाँवाडोल होना । डर से हृदय काँपना । डर के मारे जी ठिकाने न रहना । अत्यंत भय लगना । जी-दान = प्राण दान । प्राणरक्षा । जी दार = जीवटवाला । दृढ़ हृदय का । साहसी । हिम्मतवर । बहादुर । कड़े दिल का । जी दुखना = चित्त को कष्ट पहुँचना । हृदय मे दुःख होना । जैसे,—ऐसी बात क्यों बोलते हो जिससे किसी का जी दुखे । जी दुखाना = चित्त व्यथित करना । हृदय को कष्ट पहुँचाना । दुःख देना । सताना । जैसे,—व्यर्थ किसी का जी दुखाने से क्या लाभ ? जी देना = (१) प्राण खोना । मरना । (२) दूसरे की प्रसन्नता या रक्षा के लिये प्राण देने को प्रस्तुत रहना । (३) प्राण से बढ़कर प्रिय समझना । अत्यंत प्रेम करना । जैसे,—वह तुम पर जी देता है और तुम उससे भागे फिरते हो । जी दौड़ना = मन चलना । इच्छा होना । लालसा होना । जी धँसा जाना = दे० 'जी बैठा जाना' । जी धड़कना = (१) भय या आशंका से चित्त स्थिर न रहना । कलेजा धक धक करना । डर के मारे हृदय में घबराहट होना । डर लगाना । (२) चित्त में दृढ़ता न होना । साहस न पड़ना । हिम्मत न पड़ना । जैसे,—चार पैसे पास से निकालते जी धड़-

कता है। जी धकधक करना = कलेजे का भय आदि के आवेग से जोर जोर से उछलना। जी धड़कना = डर लगना। जी धकधक होना = दे० 'जी धकधक करना'। जी निकलना = (१) प्राण छूटना। प्राण निकलना। मृत्यु होना। (२) चित्त व्याकुल होना। डर लगना। प्राण सूखना। जैसे,—अब तो उधर जाते इसका जी निकलता है। (३) प्राणांत कष्ट होना। कष्टबोध होना। जैसे,—तुम्हारा रुपया तो नहीं जाता है, तुम्हारा क्यों जी निकलता है? जी निढाल होना = चित्त का स्थिर न रहना। चित्त ठिकाने न रहना। चित्त विह्वल होना। हृदय व्याकुल होना। जी पक जाना = किसी अप्रिय बात को नित्य देखते देखते या सुनते सुनते चित्त दुखी हो जाना। किसी बार बार होनेवाली बात का चित्त को असह्य हो जाना। और अधिक सुनने का साहस चित्त में न रहना। जैसे,—नित्य तुम्हारी जली कटी बातें सुनते सुनते जी पक गया। जी पड़ना = (१) शरीर में प्राण का संचार होना। जैसे—गर्भ के बालक को जी पड़ना। (२) मृतक के शरीर में प्राण का संचार होगा। मरे हुए में जान आना। जी पकड़ लेना = कलेजा थामना। किसी असह्य दुःख के वेग को दबाने के लिये हृदय पर हाथ रख लेना। जी पकड़ा जाना = मन मे संदेह पड़ जाना। माथा ठनकना। कोई भारी खटका पैदा हो जाना। चित्त में कोई भारी आशंका उठना। (स्त्रि०)। जैसे,—तार आते ही मेरा तो जी पकड़ा गया। जी पर आ बनना = प्राणों पर आ बनना। प्राण बचाना कठिन हो जाना। ऐसे भारी संकट या झंझट मे फँस जाना कि पीछा छुड़ाना कठिन हो जाय। जी पर खेलना = प्राण को संकट में डालना। जान को आफत में डालना। जान पर जोखों उठाना। ऐसा काम करना जिसमें जान जाने का भय हो। जी पानी करना = (१) लहू पानी एक करना। प्राण देने और लेने की नौबत लाना। भारी आपत्ति खडी करना। (२) चित कोमल या दयार्द्र करना। जी पानी होना = चित्त कोमल या दयार्द्र होना। जी पिघलना = (१) दया से हृदय द्रवित होना। चित्त का दयार्द्र होना। (२) हृदय का प्रेमार्द्र होना। चित्त में स्नेह का संचार होना। जी पीछे पड़ना = दिल बहलना। चित्त बँटना। मन का किसी ओर बँट जाना जिसमें दुःख की बात कुछ भूल जाय। (स्त्री०) जी फट जाना = हृदय मिला न रहना। चित्त मे पहले का सा सद्भाव या प्रेमभाव न रह जाना। प्रीति भग होना। प्रेम मे अतर पड़ जाना। चित्त विरक्त होना। किसी की ओर से चित्त खिन्न हो जाना। जी फिर जाना = मन हट जाना। चित्त विरक्त हो जाना। चित्त अनुरक्त न रहना। हृदय में घृणा या अरुचि उत्पन्न हो जाना। जैसे,—जब किसी ओर से जी फिर जाता है तब फिर वह बात नही रह जाती। जी फिसलना = चित्त का किसी की ओर) आकर्षित होना। मन खिचना। हृदय अनुरक्त होना। मन मोहित होना। मन लुभाना। जी फीका होना = दे० 'जी खट्टा होना'। जी बँटना = (१) चित्त का किसी ओर इस प्रकार लग जाना कि किसी प्रकार को

दुःख या चिंता की बात भूल जाय। जी बहलाना। (२) चित्त का एकाग्र न रहना। चित्त का एक विषय मे पूर्ण रूप से न लगा रहना, दूसरी बातों की ओर भी चला जाना। ध्यान स्थिर न रहना। ध्यान भंग होना। मन उचटना। जैसे,—काम करते समय यदि कोई कुछ बोलने लगता है तो जी बँट जाता है। (३) एकात प्रेम न रहना। एक व्यक्ति के अतिरिक्त दूसरे व्यक्ति से भी प्रेम हो जाना। अनन्य प्रेम न रहना। जी बंद होना = दे० 'जी फिरना'। जी बढ़ना = (१) चित्त प्रसन्न या उत्साहित होना। हौसला बढ़ना। (२) साहस बढ़ना। हिम्मत आना। जी बढ़ाना = (१) उत्साह बढ़ाना। किसी विषय में प्रवृत्त करने के लिये उत्तेजित करना। प्रशंसा पुरस्कार आदि द्वारा किसी काम में रुचि उत्पन्न करना। हौसला बढ़ाना। जैसे,—लड़कों का जी बढ़ाने के लिये इनाम दिया जाता है। (२) किसी कार्य की सफलता की आशा बँधाकर अधिक उत्साह उत्पन्न करना। किसी कार्य में होनेवाली बाधा या कठिनाई के दूर होने का निश्चय दिलाकर उसकी ओर अधिक प्रवृत्ति उत्पन्न करना। साहस दिलाना। हिम्मत बँधाना। जी बहलना = (१) चित्त का किसी विषय में लगकर आनद अनुभव करना। चित्त का आनंदपूर्वक लीन होना। मनोरंजन होना। जैसे,—थोड़ी देर तक खेलने से जी बहल जाता है। (२) चित्त के किसी विषय में लग जाने से दुःख या चिता की बात भूल जाना। जैसे,—मित्रों के यहाँ आ जाने से कुछ जी बहल जाता है नही तो दिन रात उस बात का दुःख बना रहता है। जी बहलाना = (१) रुचि के अनुकूल किसी विषय मे लगकर आनद अनुभव करना। मनोरंजन करना। जैसे,—कभी कभी जी बहलाने के लिये ताश भी खेल लेते हैं। (२) चित्त को किसी ओर लगाकर दुःख या चिता की बात भूल जाना। जी बिखरना = (१) चित्त ठिकाने न रहना। मन विह्वल होना। (२) मूर्छा होना। बेहोशी होना। जी बिगड़ना = (१) जी मचलाना। मतली छूटना। कै करने की इच्छा होना। (२) घिटकना। घृणा करना। घिन मालूम होना। जी बुरा करना = कै करना। उलटी करना। वमन करना। (किसी की ओर से) जी बुरा करना = किसी के प्रति अच्छा भाव न रखना। किसी के प्रति बुरी धारणा रखना। किसी के प्रति घृणा या क्रोध करना। (किसी की ओर से दूसरे का) जी बुरा करना = (१) दूसरे का ख्याल खराब करना। बुरी धारणा उत्पन्न करना। (२) क्रोध, घृणा या दुर्भाव उत्पन्न करना। जी बुरा होना = (१) कै होना। उलटी होना। (२) ख्याल खराब होना। (३) चित्त मे दुर्भाव या घृणा उत्पन्न होना। जी बैठ जाना = (१) चित्त विह्वल होता जाना। चित्त ठिकाने न रहना। चैतन्य न रहना। मूर्च्छा सी आना। जैसे,—आज न जाने क्यों बड़ी कमजोरी जान पड़ती है और जी बैठा जाता है। (२) मन भरना। उदासी होना। जी भिटकना = चित्त में घृणा होना। घिन मालूम होना। जी भरना (क्रि० अ०) = (१) चित्त तुष्ट होना। तुष्टि होना। तृप्ति होना। मन अघाना। और अधिक

की इच्छा न रह जाना। जैसे,—(क) अब जी भर गया और न खाएँगे। (ख) तुम्हारी बातों से ही जी भर गया, अब जाते हैं। (व्यंग्य)। (२) मन की अभिलाषा पूरी होने से आनंद और संतोष होना। जैसे,—लो, मैं, आज यहाँ से चला जाता हूँ, अब तो तुम्हारा जी भरा। (३) रुचि के अनुकूल होना। मन मे घृणा न होना। जैसे,—ऐसे गंदे बरतन में पानी पीते हो, न जाने कैसे तुम्हारा जी भरता है। जी भरकर = जितना और जहाँ तक जी चाहे। मनमाना। यथेष्ट। जैसे,—तुम हमें जी भरकर गालियाँ दो, कोई परवाह नहीं। जी भरना (क्रि० स०) = चित्त विश्वासपूर्ण करना। चित्त से किसी बात की बुराई या धोखा आदि खाने की आशंका दूर करना। खटका मिटाना। इतमीनान करना। दिलजमई करना। जैसे,—यों तो घोड़े में कोई ऐब नहीं है पर आप दस आदमियों से पूछकर अपना जी भर लीजिए। जी भर आना = हृदय का करुणा या शोक के आवेग से पूर्ण होना। चित्त में दुःख या करुणा का उद्रेक होना। दुःख या दया उमड़ना। हृदय में इतने दुःख या दया का वेग उठना कि आँखों में आँसू आ जाय। हृदय का करुणा से विह्वल होना। जी भरभरा उठना = रोमांच होना। हृदय के किसी आकस्मिक आवेग से चित का विह्वल हो जाना। (अपना) जी भारी करना = चित्त खिन्न या दुखी करना। जी भारी होना = तबीयत अच्छी न होना। किसी रोग या पीड़ा आदि के कारण सुस्ती जान पड़ना। शरीर अच्छा न रहना। जी भुरभुराना = किसी की ओर चित्त आकर्षित होना। मन लुभाना। मन मोहित होना। जी मचलना = किसी वस्तु या या व्यक्ति की ओर आकृष्ट होना। जी मचलाना = दे० 'जी मतलाना'। जी मचलाना = चित्त में उलटी या कै करने की इच्छा होना। वमन करने को जी चाहना। जी मर जाना = मन मे उमंग न रह जाना। हृदय का उत्साह नष्ट होना। मन उदास हो जाना। जी मलमलाना = चित्त में दुःख या पछतावा होना। अफसोस होना। जैसे,—गाँठ के चार पैसे निकालते जी मलमलाता है। जी मारना (१) चित्त की उमंग को रोकना। हृदय का उत्साह नष्ट करना। (२) संतोष धारण करना। सब्र करना। जी मिचलाना = दे० 'जी मतलाना'। (किसी से) जी मिलना = चित्त के भाव का परस्पर समान होना। हृदय का भाव एक होना। समान प्रवृत्ति होना। एक मनुष्य के भावों का दूसरे मनुष्य के भावों के अनुकूल होना। चित्त पटना। जी में आना = (१) मन में भाव उठना। चित्त में विचार उत्पन्न होना। (२) मन में इच्छा होना। जी चाहना। इरादा होना। संकल्प होना। जैसे,—तुम्हारे जो जी में आवे, करो। जी में घर करना = (१) मन मे स्थान करना। हृदय में किसी का ध्यान बना रहना। (२) याद रहना। कोई बात या व्यवहार मन मे बराबर रहना। जी में गड़ना या खुभना = (१) चित्त मे जम जाना। हृदय में गहरा प्रभाव करना। मर्म भेदना। (२) हृदय मे अंकित हो जाना। चित्त में ध्यान बना रहना। उ०—माधव मूरति जी में खुभी।—सूर (शब्द०)। जी में जलना = (१) हृदय में क्रोध के कारण संताप होना। मन में कुढ़ना। मन ही मन ईर्ष्या करना। डाह करना। जी में जी आना = चित्त ठिकाने होना। चित्त की घबराहट दूर होना। चित्त शांत और स्थिर होना। चित्त की चिंता या व्यग्रता दूर होना। किसी बात की आशंका या भय मिट जाना। जैसे, जब वह उस स्थान से सकुशल लौट आया तब मेरे जी में जी आया। जी में जी डालना = (१) चित्त संतुष्ट और स्थिर करना। चित्त का खटका दूर कराना। चिंता मिटाना। (२) विश्वास दिलाना। इतमीनान करना। दिलजमई कराना। जी में डालना = मन में विचार लाना। सोचना। जैसे,—तुम्हारे साथ कोई बुराई करूँगा ऐसी बात कभी जी मे न डालना। जी में धरना = (१) मन में लाना। चित्त में किसी बात का इसलिये ध्यान बनाए रहना जिसमें आगे चलकर कोई उसके अनुसार कार्य करे। ख्याल करना। (२) मन मे बुरा मानना। नाराज होना। बैर रखना। जी मे पैठना = (१) चित्त में जम जाना। हृदय पर गहरा प्रभाव करना। मर्म भेदना। (२) ध्यान मे अंकित होना। बराबर ध्यान में बना रहना। चित्त से न हटना या भूलना। जी में बैठना = (१) मन में स्थिर होना। चित्त में निश्चय होना। चित्त में निश्चित धारणा होना। मन मे सत्य प्रतीत होना। जैसे,—उन्होने जो बातें कहीं वे मेरे जी में बैठ गईं। (२) हृदय पर गहरा प्रभाव करना। (३) हृदय पर अंकित हो जाना। ध्यान में बराबर बना रहना। जी मे रखना = (१) चित्त मे विचार धारण करना। ख्याल बनाए रखना जिसमे आगे चलकर उसके अनुसार कोई कार्य करे। (२) मन में बुरा मानना। बैर रखना। द्वेष रखना। कीना रखना। जैसे,—उसे चाहे जो कहो वह कोई बात जी में नहीं रखता। (३) हृदय मे गुप्त रखना। हृदय के भाव को बाहर न प्रकट करना। मन में लिए रहना। जैसे,—इस बात को जी मे रखो, किसी से कहो मत। (किसी का) जी रखना = (किसी का) मन रखना। किसी के मन की बात होने देना। मन की अभिलाषा पूरी करना। इच्छा पूरी करना। उत्साह भंग न करना। प्रसन्न करना। संतुष्ट करना। जैसे,—जब वह बार बार इसके लिये कहता है तो उसका जी रख दो। जी रुकना = (१) जी घबराना। (२) जी हिचकना। चित्त प्रवृत्त न होना। जी लगना = चित्त तत्पर होना। मन का किसी विषय में योग देना। चित्त प्रवृत्त होना। दत्तचित्त होना। जैसे,—पढ़ने में उसका जी नहीं लगता। (किसी से) जी लगाना = चित्त का प्रेमासक्त होना। किसी से प्रेम होना। जी लगाना = चित्त तत्पर करना। किसी काम मे दत्तचित्त बनना। जी लगा रहना या लगा होना = (१) चित्त में ध्यान बना रहना। (२) जी में खटका लगा रहना। चित्त चिंतित रहना या होना। जैसे,—बहुत दिनों से कोई पत्र नहीं आया, जी लगा है। (किसी से) जी लगाना = किसी से प्रेम करना। जी लटना = पस्त होना। हिम्मत टूटना। उ०—इस

जगत का जीव वह है ही नहीं। लुट गए धन जी लटा जिसका नहीं।—चोखे०, पृ० २२। जी लड़ाना = (१) प्राण जाने की भी परवाह न करके किसी विषय में तत्पर होना। (२) मन का पूर्ण रूप से योग देना। पूरा ध्यान देना। सारा ध्यान लगा देना। जी लरजना = दे० 'जी काँपना'। जी ललचना = (१) जी में लालच होना। चित्त में किसी बात के लिये प्रबल इच्छा होना। किसी वस्तु की प्राप्ति आदि की गहरी लालसा होना। (२) किसी चीज के पाने के लिये तरसना। जैसे,—वहाँ की सुंदर सुंदर वस्तुओं को देखकर जी ललच गया। (३) चित्त आकर्षित होना। मन लुभाना। मन मोहित होना। जी ललचाना = (१) (क्रि० अ०) दे० 'जी ललचना'। (२) (क्रि० स०) दूसरे के चित्त में लालच उत्पन्न करना। किसी बात के लिये प्रबल इच्छा उत्पन्न करना। किसी वस्तु के लिये जी तरसाना। जैसे,—दूर से दिखाकर क्यों उसका जी ललचाते हो, देना हो तो दे दो। (३) मन लुभाना। मन मोहित करना। जी लुटना = मन मोहित होना। मन मुग्ध होना। हृदय प्रेमासक्त होना। जी लुभाना = (१) (क्रि० स०) चित्त आकर्षित करना। मन मोहित करना। हृदय में प्रीति उपजाना। सौंदर्य आदि गुणों के द्वारा मन खींचना। (२) (क्रि० अ०) चित्त आकर्षित होना। मन मोहित होना जैसे,—उसे देखते ही जी लुभा जाता है। जी लूटना = मन मोहित करना। जी लेना = जी चाहना। जी करना। चित्त का इच्छुक होना। जैसे,— वहाँ जाने के लिये हमारा जी नहीं लेता। (दूसरे का) जी लेना = प्राण हरण करना। मार डालना। जी लोटना = जी छटपटाना। किसी वस्तु की प्राप्ति या और किसी बात के लिये चित्त व्याकुल होना। चित्त का अत्यंत इच्छुक होना। ऐसी इच्छा होना कि रहा न जाय। जी सन हो जाना = भय, आशंका आदि से चित्त स्तब्ध हो जाना। जी घबरा जाना। डर के मारे चित्त ठिकाने न रहना। होश उड़ जाना। जैसे,—उसे सामने देखते ही जी सन हो गया। जी सनसनाना = (१) चित्त स्तब्ध होना। भय, आशंका, क्षीणता आदि से अंगों की गति शिथिल हो जाना। (२) चित्त विह्वल होना। जी सौंय सौंय करना = दे० 'जी सनसनाना'। जी से = जी लगाकर। ध्यान देकर। पूर्ण रूप से। दत्तचित्त होकर। जैसे,—जी से जो काम किया जायगा वह क्यों न अच्छा होगा। (किसी वस्तु या व्यक्ति का) जी से उतर जाना = दृष्टि से गिर जाना। (किसी वस्तु या व्यक्ति की) इच्छा या चाह न रह जाना। किसी व्यक्ति पर स्नेह या श्रद्धा न रह जाना। (किसी वस्तु या व्यक्ति के प्रति) चित्त में विरक्त हो जाना। भला न जँचना। हेय या तुच्छ हो जाना। बेकदर हो जाना। जी से उतारना या जी से उतार देना = किसी वस्तु या व्यक्ति की उपेक्षा या अवहेलना करना कदर न करना। जी से जाना = प्राणविहीन होना। मरना। जान खो बैठना। जैसे,—बकरी अपने जी से गई, खानेवाले को स्वाद ही न मिला। जी से जी मिलना। (१) हृदय के भाव परस्पर एक होना = एक के चित्त का दूसरे के चित्त के अनुकूल होना। मैत्री का व्यवहार होना। (२) चित्त में एक दूसरे से प्रेम होना। परस्पर प्रीति होना। (किसी व्यक्ति या वस्तु से) जी हट जाना = चित्त प्रवृत्त या अनुरक्त न रह जाना। इच्छा या चाह न रह जाना। जैसे,—(क) ऐसे कामों से अब हमारा जी हट गया। (ख) उससे मेरा जी एकदम हट गया। जी हवा हो जाना = किसी भय, दुःख या शोक के सहसा उपस्थित होने पर चित्त स्तब्ध हो जाना। चित्त विह्वल हो जाना। जी घबरा जाना। चित्त व्याकुल हो जाना। (किसी का) जी हाथ में रखना = (१) किसी का भाव अपने प्रति अच्छा रखना। राजी रखना। मन मैला न होने देना। (२) जी में किसी प्रकार का खटका पैदा न होने देना। दिलासा दिए रहना। जी हाथ में लेना = दे० 'जी हाथ में रखना'। जी हारना = (१) किसी काम से घबराना या ऊब जाना। हैरान होना। पस्त होना। (२) हिम्मत हारना। साहस छोड़ना। जी हिलना = (१) भय से हृदय काँपना। जी दहलना। (२) करुणा से हृदय क्षुब्ध होना। दया से चित्त उद्विग्न होना।

जी²—अव्य० [सं० जित् प्रा० जिव (= विजयी) या सं० (श्री) युत प्रा० जुक, हिं० जू] एक संमानसूचक शब्द जो किसी नाम या अल्ल के आगे लगाया जाता है अथवा किसी बड़े के कथन, प्रश्न या संबोधन के उत्तर रूप में जो संक्षिप्त प्रतिसंबोधन होता है उसमें प्रयुक्त होता है। जैसे,—(क) श्री रामचंद्र जी, पंडितजी, त्रिपाठी जी, लाला जी इत्यादि। (ख) कथन—ये आम कैसे मीठे हैं। उत्तर—जी हाँ। बेशक। (ग) तुम वहाँ गए थे या नहीं? उत्तर—जी नहीं। (घ) किसी ने पुकारा—रामदास? उत्तर—जी हाँ? (या केवल) जी।

विशेष—प्रश्न या केवल संबोधन में जी का प्रयोग बड़ों के लिये नहीं होता। जैसे किसी बड़े के प्रति यह नहीं कहा जाता कि (क) क्यों जी! तुम कहाँ थे? अथवा (ख) देखो जी! यह जाने न पावे। स्वीकार करने या हामी भरने के अर्थ में 'जी हाँ' के स्थान पर केवल 'जी' बोलते हैं, जैसे, प्रश्न—तुम वहाँ गए थे? उत्तर—जी! (अर्थात् हाँ)। उच्चारण भेद के कारण जी से तात्पर्य पुन: कहने के लिये होता है। जैसे,—किसी ने पूछा—तुम कहाँ जा रहे हो? उत्तर मिला 'जी'? अर्थ से स्पष्ट है कि श्रोता पुन: सुनना चाहता है कि उससे क्या कहा गया है।

जी³—वि० [अ० जी] वाला। सहित। युक्त (को०)।

यौ०—जीशऊर = शऊरवाला। तमीजदार। (२) समझदार। जीशान = शानवाला।

जीअ (पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'जी', 'जीव'।

जीअन (पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'जीवन'।

जीउ (पु)†—संज्ञा पुं० [सं० जीव] दे० 'जीव'।

जीऊ (पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'जिउ'। उ०—बिनु जल मीन तपी तस जीऊ। चात्रिक भई कहत पिउ पीऊ।—जायसी ग्रं०, पृ० ३३४।

जीक़ाद—संज्ञा पुं० [अ० ज़ीक़ाद] हिजरी सन् के ग्यारहवें महीने का नाम [को०] ।

जीकोⓅ—सर्व० [हिं०] जिसका । उ०—ताहि जतावत मरम हिये को मिटत मन मिलो जीको ।—घनानंद, पृ०४६४ ।

जीगनⓅ—संज्ञा पुं० [सं० ज्योतिरिङ्गण, देशी जोइंगण, हिं० जींगन] दे० 'जुगनू' । उ०—बिरह जरी लखि जीगननु कह्यो न उहि कै बार । अरी आउ भजि भीतरी बरसतु आज अंगार ।—बिहारी (शब्द०) ।

जीगा—संज्ञा पुं० [फ़ा० जीगह्] १. तुर्रा । सिरपेच । कलँगी । २. पगड़ी में बाँधने का एक रत्नजटित आभूषण (को०) । ३. कोलाहल । शोर (को०) ।

जीजा—संज्ञा पुं० [हिं० जीजी] बड़ी बहिन का पति । बड़ा बहनोई ।

जीजी—संज्ञा स्त्री० [सं० देवी, हिं० देई, प्रा० दीदी अथवा देश० (=बड़ी बहिन)] उ०—कीजै कहा जीजी जू ! सुमित्रा परि पायँ कहै तुलसी सहावै विधि सोई सहियतु है ।—तुलसी (शब्द०) ।

जीजूराना—संज्ञा पुं० [देश०] एक चिड़िया का नाम ।

जीट†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] डींग । लंबी चौड़ी बात ।

मुहा०—जीट उड़ाना=डींग हाँकना उ०—अपनी तहसीलदारी की ऐसी जीट उड़ाई कि रानी जी मुग्ध हो गई ।—काया, पृ०५८ । जीट मारना=दे० 'गप मारना' ।

जीणⓅ—संज्ञा पुं० [सं० जीवन] जीवन । उ०—सरसति सामणी तूँ जग जीण । हंस चढ़ी लटकावै वीण । —बी०, रासो, पृ० ४ ।

जीत[१]—संज्ञा स्त्री० [सं० जिति, वैदिक जीति] १. युद्ध या लड़ाई में विपक्षी के विरुद्ध सफलता । जय । विजय । फतह ।

क्रि० प्र०—होना ।

२. किसी ऐसे कार्य में सफलता जिसमें दो या अधिक विरुद्ध पक्ष हों । जैसे, मुकदमे में जीत, खेल मे जीत, बाजी में जीत । ३. लाभ । फायदा । जैसे,—तुम्हारी तो हर तरह से जीत है, इधर से भी, उधर से भी ।

जीत[२]—संज्ञा स्त्री० [?] जहाज में पाल का बुताम ।—(लश०) ।

जीत[३]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'जीति' ।

जीतनहार—वि० [हिं० जीतना + हार (प्रत्य०)] जीतनेवाला । विजय करनेवाला । उ०—क्यों न फिरें सब जगत मे करत दिगिबिजै मार । जाके दृग सामंत हैं कुवलय जीतनहार ।—मति० ग्रं०, पृ० ३१६ ।

जीतना—क्रि० स० [हिं० जीत + ना (प्रत्य०)] १. युद्ध या लड़ाई में विपक्षी के विरुद्ध सफलता प्राप्त करना । शत्रु को हराना । विजय प्राप्त करना । जैसे, लड़ाई जीतना, शत्रु को जीतना । उ०—रिपु रन जीति सुजस सुर गावत । सीता अनुज सहित प्रभु आवत ।—मानस ७ । २ । २. किसी ऐसे कार्य मे सफलता प्राप्त करना जिसमें दो या दो से अधिक परस्पर विरुद्ध पक्ष हों । जैसे, मुकदमा जीतना, खेल मे जीतना, बाजी जीतना, जुए में रुपया जीतना ।

जीतबⓅ†—संज्ञा पुं० [सं० जीवितव्य] जीवन । जीवित रहना । उ०—ताते लोमस नाम है मोरा । करौ समाध जीतब है थोरा ।—कबीर सा०, पृ० ४३ ।

जीता—वि० [हिं० जीना] [वि० स्त्री० जीती] १. जीवित । जो मरा न हो । २. तौल या नाप में ठीक से कुछ बढ़ा हुआ । जैसे,—जरा जीता तौलो ।

जीतालू—संज्ञा पुं० [सं० आलु] आरारोट ।

जीता लोहा—संज्ञा पुं० [हिं० जीना + लोहा] चुंबक । मेकनातीस ।

जीति[१]—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक लता का नाम ।

विशेष—यह जमुना किनारे से नैपाल तक तथा अवध, बिहार और छोटा नागपुर मे होती है । इसके रेशे बहुत मजबूत होते हैं और रस्सी बनाने के काम आते हैं । इन रेशों को टोगुस कहते हैं । इन रेशों से धनुष की डोरी बनती है ।

जीति[२]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. विजय । उ०—जीति उठि जाइगी अजीत पंडु पूतनि की, भूप दुरजोधन की भीति उठि जाइगी ।—रत्नाकर, भा० २. पृ० १४२ । २. क्षय । हानि (को०) । ३. ह्रास की अवस्था । वृद्धावस्था (को०) ।

जीन[१]—संज्ञा पुं० [फा० जीन] १. घोड़े की पीठ पर रखने की गद्दी । चारजामा । काठी ।

यौ०—जीनपोश ।

२. पलान । कजावा । ३. एक प्रकार का बहुत मोटा सूती कपड़ा ।

जीन[२]—वि० [सं०] १. जीर्ण । पुराना । जर्जर । कटा फटा । २. वृद्ध । ३. क्षीण (को०) ।

जीन[३]—संज्ञा पुं० चमड़े का थैला (को०) ।

जीनत—संज्ञा स्त्री० [अ० ज़ीनत] १. शोभा । छवि । खूबसूरती । २. सजावट । शृंगार ।

क्रि० प्र०—देना=शोभा देना ।—बख्शना=शोभा या सौंदर्य बढ़ाना ।

जीनपोश—संज्ञा पुं० [फा० ज़ीनपोश] जीन के ऊपर ढकने का कपड़ा । काठी का ढँकना ।

जीनसवारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जीन + सवारी] घोड़े पर जीन रखकर चढ़ने का कार्य । जैसे,—यह घोड़ा जीनसवारी में रहता है ।

जीनसाज—संज्ञा पुं० [फ़ा० जीनसाज] जीन बनानेवाला कारीगर चारजामा बनानेवाला ।

जीना—क्रि० अ० [सं० जीवन] १ जीवित रहना । सजीव रहना । जिंदा रहना । न मरना । जैसे,—यह घोड़ा अभी मरा नहीं है जीता है । (ख) वह अभी बहुत दिन जीएगा । उ०—अरबिंद सो आनन रूप मरंद अनंदित लोचन भृंग पिए । मन मों न बस्यो ऐसो बालक जो तुलसी जग में फल कौन जिए ?—तुलसी (शब्द०) ।

संयो० क्रि०—उठना ।—जाना ।

२. जीवन के दिन बिताना । जिंदगी काटना । जैसे,—ऐसे जीने से तो मरना अच्छा ।

मुहा०—जीना भारी हो जाना=जीवन कष्टमय हो जाना । जीवन

का सुख और आनंद जाता रहना। जीता जागता = जीवित और सचेत। भला चंगा। जीता लहू = देह से ताजा निकला हुआ खून। जीती मक्खी निगलना = (१) जान बूझकर कोई अन्याय या अनुचित कर्म करना। सरासर बेईमानी करना। जैसे,—उससे रुपया पाकर मैं कैसे इनकार करूँ? इस तरह जीती मक्खी तो नहीं निगली जाती। (२) जान बूझकर बुराई में फँसना। जान बूझकर आपत्ति या संकट में पड़ना। जीते जी = (१) जीवित अवस्था में। जिंदगी रहते हुए। उपस्थिति में। बने रहते। आछत। जैसे,—(क) मेरे जीते जी तो कभी ऐसा न होने पाएगा। (ख) उसके जीते जी कोई एक पैसा नही पा सकता। (२) जबतक जीवन है। जिंदगी भर। जैसे,—मैं जीते जी आपका उपकार नहीं भूल सकता। जीते जी मर जाना = जीवन में ही मृत्यु से बढ़कर कष्ट भोगना। किसी भारी विपत्ति या मानसिक आघात से जीवन भारी होना। जीवन का सारा सुख और आनंद जाता रहना। जीवन नष्ट होना। जैसे,—(क) पोते के मरने से तो हम जीते जी मर गए। (ख) इस चोरी से जीते जी मर गए। जीते जी मर मिटना = (१) बुरी दशा को पहुँचना। (२) अत्यंत आसक्त होना। उ०—मैं तो जीते जी मर मिटा यारो कोई तदबीर ऐसी बताओ कि विसाल नसीब हो जाय। —फिसाना०, भा० १, पृ० ११। जीते रहो = एक आशीर्वाद जो बड़ों की ओर से छोटों को दिया जाता है। जब तक जीना तब तक सीना = जिंदगी भर किसी काम में लगे रहना। उ०—पेट के बेट बेगारहि में जब लौं जियना तब लौं सियना है।—पद्माकर (शब्द०)।

३. प्रसन्न होना। प्रफुल्लित होना। जैसे,—उसके नाम से तो वह जी उठता है।

संयो० क्रि०—उठना।

मुहा०—अपनी खुशी जीना = अपने ही सुख से आनंदित होना।

जीप—संज्ञा स्त्री० [अं०] एक प्रकार की छोटी मोटर जो कार से अधिक मजबूत होती है तथा उसके चारो पहिए इंजन द्वारा संचालित होते हैं। उ०—बहुत जल्द मैं चाहता हूँ जीप का रास्ता निकाल दिया जाय।—किन्नर०, पृ० ११।

जीपण㋓—वि० [हिं० जीपना] जीतनेवाले। उ०—उदर सुमित्र लक्षण जीपण अरि, धरे शेष अवतार धुरंधर।—रघु० रू०, पृ० ६०।

जीपना—क्रि० स० [हिं० जीतना] जीतना। उ०—अवसांण आए छत्री पोरस सरसावै। यह लोक जीप परलोक मोख पावै।—रा० रू०, पृ० ११४।

जीबना㋓†—क्रि० अ० [हिं० जीवना] जीवित रहना। जीवन धारण करना। उ०—मैं गही तेग पति साह सों धरि जाहु-जौन जीबो चहै। ह०, रासो, पृ० ८६।

जीबो㋓†—संज्ञा पुं० [हिं० जीवना] दे० 'जीवन'। उ०—साहिन में सरजा समत्थ सिवराज, कबि भूषन कहत जीबो तेरोई सफल हैं।—भूषन ग्रं०, पृ० ६३।

जीभ—संज्ञा स्त्री० [सं० जिह्वा, प्रा० जिब्भ] १. मुँह के भीतर रहनेवाली लंबे चिपटे मांसपिंड के आकार की वह इंद्रिय जिससे कटु, अम्ल, तिक्त इत्यादि रसों का अनुभव और शब्दों का उच्चारण होता है। जबान। जिह्वा। रसना।

विशेष—जीभ मांसपेशियों और स्नायुओं से निर्मित है। पीछे की ओर यह नाल के आकार की एक नरम हड्डी से जुड़ी है जिसे जिह्वास्थि कहते हैं। नीचे की ओर यह दाढ़ के मास से संयुक्त है और ऊपर के भाग की अपेक्षा अधिक पतली झिल्ली से ढकी है जिसमें से बराबर लार छूटती रहती है। नीचे के भाग की अपेक्षा ऊपर का भाग अधिक छिद्रयुक्त या कोशमय होता है और उसी पर वे उभार होते हैं जो काँटे कहलाते हैं। ये उभार या काँटे कई आकार के होते हैं, कोई अर्धचंद्राकार कोई चिपटे और कोई नोक या शिखा के रूप के होते हैं। जिन मांसपेशियों और स्नायुओं के द्वारा यह दाढ़ के मांस तथा शरीर के और भागों से जुड़ी है उन्हीं के बल से यह इधर उधर हिल डोल सकती है। स्नायुओं मे जो महीन महीन शाखा स्नायु होती हैं उनके द्वारा स्पर्श तथा शीत, उष्ण आदि का अनुभव होता है। इस प्रकार के सूक्ष्म स्नायुओं का जाल जिह्वा के अग्र भाग पर अधिक है इसी से वहाँ स्पर्श या रस आदि का अनुभव अधिक तीव्र होता है। इन स्नायुओं के उत्तेजित होने से ही स्वाद का बोध होता है। इसी से कोई अधिक मीठी या सुस्वादु वस्तु मुँह मे लेकर कभी लोग जीभ चटकारते या दबाते हैं। द्रव्यों के संयोग से उत्पन्न एक प्रकार की रासायनिक क्रिया से इन स्नायुओं में उत्तेजना उत्पन्न होती है। १२८ अंश गरम जल में एक मिनट तक जीभ डुबोकर यदि उसपर कोई वस्तु रखी जाय तो खट्टे मीठे आदि का कुछ भी ज्ञान नहीं होता। कई वृक्ष ऐसे हैं जिनकी पत्तियाँ चबा लेने से भी यह ज्ञान थोड़ी देर के लिये नष्ट हो जाता है। वस्तुओं का कुछ अंश काँटों में लगकर और घुलकर छिद्रों के मार्ग से जब सूक्ष्म स्नायुओं मे पहुँचता है तभी स्वाद का बोध होता है। अत. यदि कोई वस्तु सूखी, कड़ी है तो उसका स्वाद हमे जल्दी नही जान पड़ेगा। दूसरी बात ध्यान देने की यह है कि घ्राण का रसना के स्वाद से घनिष्ठ संबंध है। कोई वस्तु खाते समय हम उसकी गंध का भी अनुभव करते हैं। जिस स्थान पर जीभ लारयुक्त मांस आदि से जुड़ी रहती है वहाँ कई सूत्र या बंधन होते हैं जो जीभ की गति नियत या स्थिर रखते हैं। इन्हीं बंधनों के कारण जीभ की नोक पीछे की ओर बहुत दूर तक नहीं पहुँच सकती। बहुत से बच्चों की जीभ मे यह बंधन आगे तक बढ़ा रहता है जिससे वे बोल नही सकते। बंधनों को हटा देने से बच्चे बोलने लगते हैं। रसास्वादन के अतिरिक्त मनुष्य की जीभ का बड़ा भारी कार्य कंठ से निकले हुए स्वर में अनेक प्रकार के भेद डालना है। इन्ही विभेदों से वर्णों की उत्पत्ति होती है जिनसे भाषा का विकास होता है। इसी से जीभ को वाणी भी कहते हैं।

पर्या०—जिह्वा। रसना। रसज्ञा। रसाल। रसिका। लालुस्रवा। रसला। रसांका। ललना।

मुहा०—जीभ करना = बहुत बढ़कर बोलना। ढिठाई से उत्तर देना। जीभ खोलना = मुँह से कुछ बोलना। शब्द निकालना। जैसे,—अब जहाँ जीभ खोली कि पिटे। जीभ चलना = भिन्न-भिन्न वस्तुओं का स्वाद लेने के लिये जीभ का हिलना डोलना। स्वाद के अनुभव के लिये जिह्वा चंचल होना। चटोरेपन की इच्छा होना। उ० जीभ चलै बल ना चलै वहै जीभ जरि जाय।—(शब्द०)। जीभ थोड़ी करना = कम बोलना। बकवाद कम करना। अधिक न बोलना। उ०—मेरो गोपाल तनक सो कहा करि जानै दधि की चोरी। हाथ नचावति आवति ग्वालिन जीभ न करही थोरी।—सूर (शब्द०)। जीभ निकालना = (१) जीभ बाहर करना। (२) जीभ खींचना। जीभ उखाड़ लेना। जीभ पड़ना = बोलने न देना। बोलने से रोकना। जीभ बढ़ाना = चटोरपन की आदत होना। जीभ बंद होना = बोलना बंद करना। जबान न खोलना। चुप रहना। जीभ हिलाना = मुँह से कुछ न बोलना। छोटी जीभ = गलशुंडी। किसी की जीभ के नीचे जीभ होना = किसी का अपनी कही हुई बात को बदल जाना। एक बार कही हुई बात पर स्थिर न रहना।

२. जीभ के आकार की कोई वस्तु। जैसे,—निब।

मुहा०—कलम की जीभ = कलम का वह भाग जो छीलकर नुकीला किया रहता है।

जीभा—संज्ञा पुं० [हिं० जीभ] १. जीभ के आकार की कोई वस्तु जैसे, कोल्हू का पच्चर। २. चौपाया की एक बीमारी जिसमे उनकी जीभ के काँटे सूज या बढ़ जाते हैं और उनसे खाते नही बनता। बेरुखी। अवार। ३ बैलो की आँख की एक बीमारी जिसमे आँख का मास बढ़कर लटक आता है।

जीभी—संज्ञा स्त्री० [हिं० जीभ] धातु की बनी एक पतली लचीली और धनुषाकार वस्तु जिससे जीभ छीलकर साफ करते हैं। २. मैल साफ करने के लिये जीभ छीलने की क्रिया।

क्रि० प्र०—करना।

३. निब। ४. छोटी जीभ। गलशुंडी। ५. चौपायों का एक रोग। दे० 'जीभा'। ६ लगाम का एक भाग।

जीभो चाभा—संज्ञा पुं० [हिं० जीभ + चाभना] चौपायो का एक रोग। दे० 'जीभा'।

जीमट—संज्ञा पुं० [सं० जीमूत (= पोषण करनेवाला)] पेड़ों और पौधों के धड़, शाखा और टहनी आदि के भीतर का गूदा।

जीमना—क्रि० स० [सं० जेमन] भोजन करना। आहार करना। खाना। उ०—काबा फिर काशी भया राम जो भया रहीम मोटा चुन मैदा भया बैठि कबीरा जीम।—कबीर (शब्द०)।

जीमूत—संज्ञा पुं० [सं०] १ पर्वत। २ मेघ। बादल। ३. मुस्ता। मोथा। नागर मोथा। ४. देवताड़ वृक्ष। ५. इंद्र। ६. पोषण करनेवाला। रोजी या जीविका देनेवाला। ७ घोषा लता। ८. सूर्य। ९. एक ऋषि का नाम जिनका उल्लेख महाभारत में है। १०. एक मल्ल का नाम जो विराट की सभा में रहता था और भीम के द्वारा मारा गया था। ११. हरिवंश के अनुसार वशार्ह के पौत्र का नाम। १२. ब्रह्मांड पुराण में शाल्मली द्वीप के एक राजा जो वपुष्मत् के पुत्र थे। १३. शाल्मली द्वीप के एक वर्ष का नाम। १४. एक प्रकार का दंडक वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में दो नगण और ग्यारह रगण होते हैं। यह प्रचित के अंतर्गत है।

जीमूतमुक्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] मेघ से उत्पन्न मोती।

विशेष—रत्नपरीक्षा विषयक प्राचीन ग्रंथों में इस प्रकार के मोती का वर्णन है। बृहत्संहिता, अग्निपुराण, गरुडपुराण, युक्तिकल्पतरु आदि ग्रंथों मे भी इस मुक्ता का विवरण मिलता है, पर ऐसा मोती आजतक देखा नही गया। बृहत्संहिता मे लिखा है कि मेघ से जिस प्रकार ओले उत्पन्न होते हैं उसी प्रकार यह मोती भी उत्पन्न होता है। जिस प्रकार ओले बादल से गिरते हैं उसी प्रकार यह मोती भी गिरता है पर देवता लोग इसे बीच ही मे उड़ा लेते हैं। सारांश यह है कि यह मुक्ता मनुष्यों को अलभ्य है। न देखने पर भी प्राचीन आचार्य लक्षण बतलाने से नहीं चूके हैं और उन्होंने इसे मुरगी के अंडे की तरह गोल, ठोस और वजनी बतलाया है। इसकी कांति सूर्य की किरण के समान कही गई है। इसे यदि तुच्छ से तुच्छ मनुष्य कभी पा जाय तो सारी पृथ्वी का राजा हो जाय।

जीमूतवाहन—संज्ञा पुं० [सं०] १. इंद्र। २. शालिवाहन राजा का पुत्र।

विशेष—आश्विन कृष्ण ८ को पुत्रकामनावाली स्त्रियाँ इनका पूजन करती हैं।

३ जीमूतकेतु राजा का पुत्र जो प्रसिद्ध नाटक नागानंद का नायक है। ४. धर्मरत्न नामक स्मृतिसंग्रहकार।

जीमूतवाही—संज्ञा पुं० [सं० जीमूतवाहिन्] धूम। धुआँ।

जीय पु†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'जीव', 'जी'।

मुहा०—जीय धरना = दे० 'जी में धरना'। उ०—माधव जू जो जन तें बिगरै। तउ कृपालु करुणामय केशव प्रभु नहिं जीय धरै।—सूर (शब्द०)।

जीयट—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'जीवट'।

जीयति पु† —संज्ञा स्त्री० [हिं० जीना] जीवन। जिंदगी। उ०—तोहि सोहि आँखिनि सों आँखें मिली रहें जीयति को यहै लहा।—हरिदास (शब्द०)।

जीयदान—संज्ञा पुं० [सं० जीवदान] प्राणदान। जीवनदान। प्राणरक्षा। उ०—बालक काज धर्म जनि छाँड़ो राय न ऐसी कीजै हो। तुम मानो वसुदेव देवकी जीयदान इन दीजै हो।—सूर (शब्द०)।

जीये पु—वि० [प्रा० जेंव, जेम] दे० 'जिमि' या 'ज्यों'। उ०—जीये तेल तिलन्हि में जीये गंधि फुलिन्ह।—संतवाणी०, पृ० ८५।

जीर¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. जीरा। २. फूल का जीरा। केसर। उ०—रघुराज पंकज को जीर नहिं बेधै हरि धरौं किमि धीर पावै पीर मन मोर है।—रघुराज (शब्द०)। ३. खड्ग। तलवार। ४. अणु।

जीर[2]—वि० क्षिप्र। तेज। जल्दी चलनेवाला।

जीर[3]—संज्ञा पुं० [फ़ा० ज़िरह] जिरह। कवच। उ०—कुंडल के ऊपर कड़ाके उठै ठौर ठौर, जीरन के ऊपर खड़ाके खड़गान के।—भूषण (शब्द०)।

जीर[4](पु)—वि० [सं० जीर्ण] पुराना। जर्जर। उ०—मनहु मरी इक वर्ष की भयो तासु तन जीर। करषत कर महि पर गिरी गयो सुखाय शरीर।—रघुराज (शब्द०)।

जीरक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] जीरा।

जीरक[2]—वि० [फ़ा० ज़ीरक] १. प्रवीण। प्रतिभाशाली। २. होशियार। चालक।

जीरण[1]—संज्ञा पुं० [सं०] जीरा।

जीरण(पु)[2]—वि० [सं० जीर्ण] दे० 'जीर्ण'।

जीरह(पु)—संज्ञा पुं० [फ़ा० जिरह]। अंगत्राण। सन्नाह। उ०—जान तणी साजति करउ। जीरह रंगावली पहहरज्यो टोप।—बीसल० रास०, पृ० ११।

जीरा—संज्ञा पुं० [सं० जीरक, तुलनीय फा० ज़ीरह्] डेढ़ दो हाथ ऊँचा एक पौधा।

विशेष—इसमे सौंफ की तरह फूलों के गुच्छे लंबी सीकों मे लगते हैं। पत्तियाँ बहुत बारीक और दूब की तरह लंबी होती हैं। बंगाल और आसाम को छोड़ भारत में यह सर्वत्र अधिकता से बोया जाता है। लोगों का अनुमान है कि यह पश्चिम के देशों से लाया गया है। मिस्र देश तथा भूमध्य सागर के माल्टा आदि टापुओं मे यह जगली पाया जाता है। माल्टा का जीरा बहुत अच्छा और सुगंधित होता है। जीरा कई प्रकार का होता है पर इसके दो मुख्य भेद माने जाते हैं—सफेद और स्याह अथवा श्वेत और कृष्ण जीरक। सफेद या साधारण जीरा भारत में प्राय. सर्वत्र होता है, पर स्याह जीरा जो अधिक महीन और सुगंधित होता है। काश्मीर लद्दाख, बलूचिस्तान तथा गढ़वाल और कुमाऊँ से आता है। काश्मीर और अफगानिस्तान मे तो यह खेतों में और तृणों के साथ उगता है। माल्टा आदि पश्चिम के देशों से जो एक प्रकार का सफेद जीरा आता है वह स्याह जीरे की जाति का है और उसी की तरह छोटा और तीव्र गंध का होता है। वैद्यक मे यह कटु, उष्ण, दीपक तथा अतीसार, गृहणी, कृमि और कफ वात को दूर करनेवाला माना जाता है।

पर्या०—जरण। अजाजी। कणा। जीर्ण। जीर। दीप्य। जीरण। अजाजिका। वह्निशिख। मागध। दीपक।

मुहा०—ऊँट के मुँह मे जीरा = खाने की कोई चीज मात्रा मे बहुत कम होना।

२. जीरे के आकार के छोटे छोटे महीन और लंबे बीज। ३. फूलों का केसर। फूलों के बीज का महीन सूत।

जीरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] वंशपत्री नाम की घास।

जीरी—संज्ञा पुं० [हिं० जीरा] एक प्रकार का धान जो अगहन में तैयार होता है।

विशेष—इसका चावल बहुत दिनों तक रह सकता है। यह पंजाब के करनाल जिले में अधिक होता है। इसके दो भेद हैं—एक रमाली, दूसरा रामजमानी।

जीरीपटन—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का फूल।

जीर्ण—वि० [सं०] १. बहुत बुड्ढा। बुढ़ापे से जर्जर। २. पुराना। बहुत दिनों का। जैसे, जीर्ण ज्वर। ३. जो पुराना होने के कारण टूट फूट गया होगा। कमजोर हो गया हो। फटा पुराना। उ०—का क्षति लाभ जीर्ण धनु तोरे।—तुलसी (शब्द०)।

यौ०—जीर्ण शीर्ण = फटा पुराना। टूटा फूटा।

४. पेट में अच्छी तरह पचा हुआ। जठराग्नि मे जिसका परिपाक हुआ हो। परिपक्व। जैसे,—जीर्ण अन्न, अजीर्ण।

जीर्ण[2]—संज्ञा पुं० १. जीरा। २. बूढ़ा व्यक्ति (को०)। ३. वृक्ष (को०)। ४. शिलाजतु (को०)। ५. वृद्धावस्था। वार्धक्य (को०)।

जीर्णक—वि० [सं०] प्रायः शुष्क या कुम्हालाया हुआ (को०)।

जीर्णज्वर—संज्ञा पुं० [सं०] पुराना बुखार। वह ज्वर जिसे रहते बारह दिन से अधिक हो गए हों।

विशेष—किसी किसी के मत से प्रत्येक ज्वर अपने आरंभ के दिन से ७ दिन तक तरुण, १४ दिनों तक मध्यम और २१ दिनों के पीछे, जब रोगी का शरीर दुर्बल और रूखा हो जाय तथा उसे क्षुधा न लगे और उसका पेट सदा भारी रहे 'जीर्ण' कहलाता है।

जीर्णता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बुढ़ापा। बुढाई। २ पुरानापन।

जीर्णदारु—संज्ञा पुं० [सं०] वृद्धदारक वृक्ष। विधारा।

जीर्णपत्र—संज्ञा सं० [सं०] पट्टिका लोध्र। पठानी लोध।

जीर्णपर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] १ कदंब का पेड़। २. पुराना पत्ता (को०)।

जीर्णफंजी—संज्ञा स्त्री० [सं० जीर्णफञ्जी] विधारा (को०)।

जीर्णबुध्न—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जीर्णपर्ण'।

जीर्णवज्र—संज्ञा पुं० [सं०] वैक्रांत मणि।

जीर्णवस्त्र[1]—संज्ञा पुं० [सं०] फटा पुराना कपड़ा (को०)

जीर्णवस्त्र[2]—वि० जो फटे पुराने कपड़ों मे हो (को०)।

जीर्णवाटिका[1]—संज्ञा पुं० [सं०] खंडहर (को०)।

जीर्णा[1]—वि० [सं०] बूढ़ा। बुढ़िया।

जीर्णा[2]—संज्ञा स्त्री० काली जीरा।

जीर्णास्थिमृत्तिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] हड्डी को गला सड़ाकर बनाई हुई मिट्टी।

विशेष—ऐसी मिट्टी बनाने की विधि शब्दार्थ चिंतामणि नामक ग्रंथ में इस प्रकार लिखी है,—जहाँ शिलाजीत निकलता हो वहाँ एक गहरा गड्ढा खोदे और उसे जानवरों और मनुष्यों की हड्डियों से भर दे। ऊपर से सज्जीखार नमक, गंधक और गरम जल ६ महीने तक डालता जाय। इसके पीछे फिर पत्थर की मिट्टी दे। तीन वर्ष मे ये सब वस्तुएँ एक सिल के रूप में जम जायँगी। उस सिल को लेकर बुकनी कर डाले और उसका पात्र बनावे। ऐसे पात्र में भोजन करना बहुत अच्छा है।

भोजन यदि विष आदि द्वारा दूषित होगा तो ऐसे पात्र में पता चल जायगा। यदि साधारण होगा तो उसमें छींटे आदि पड़ जायँगे।

जीर्णोद्धार—संज्ञा पुं० [सं०] फटी पुरानी, टूटी फूटी वस्तुओं का फिर से सुधार। पुनःसंस्कार। मरम्मत।

विशेष—पूर्वस्थापित शिवलिंग या मंदिर आदि के जीर्णोद्धार की विधि आदि अग्निपुराण मे विस्तार से दी हुई है।

जीर्णोद्यान—संज्ञा पुं० [सं०] पुराना हो जाने से अथवा देखरेख के अभाव से शुष्कप्राय उजड़ा सा उद्यान [को०]।

जील—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० ज़ीर] १. धीमा शब्द। मध्यम स्वर। नीचा सुर। २. तबले या ढोल का बायाँ। उ०—जात कहूँ ते कहूँ को चलयो सुर टीप न लागत तान धरे की। आखर सो समुझै न परे मिलि ग्राम रहे जति जील परे की।—रघुनाथ (शब्द०)।

जीला[1]—वि० [सं० झिल्ली] [वि० स्त्री० जीली] १. झीना। पतला। २. महीन। उ०—झिलजी ते रसीली जीली राँटिहूँ की रटलीली स्यारि तें सवाई भूतभावनी ते आगरी।—केशव (शब्द०)

जीलानी[1]—संज्ञा पुं० [अ०] एक प्रकार का लाल रंग।

विशेष—यह बबूल, झरबेरी, मजीठ, पतंग, और लाह को बराबर लेकर और पानी मे उबालकर बनाया जाता है।

जीलानी[2]—वि० जीलान नामक स्थान संबंधी [को०]।

जीवंजीव—संज्ञा पुं० [जीवञ्जीव] १ चकोर पक्षी। २. एक वृक्ष का नाम।

जीवंत[1]—संज्ञा पुं० [सं० जीवन्त] १. प्राण। जीवन। २. ओषधि। ३. जीवशाक।

जीवंत[2]—वि० १ जीताजागता। सप्राण। प्राणवान्। २. दीर्घायु (को०)।

जीवंतक—संज्ञा पुं० [सं० जीवन्तक] जीवशाक [को०]।

जीवंतता—संज्ञा स्त्री० [सं० जीवन्त + ता (प्रत्य०) सप्राणता का भाव। तेजस्विता।

जीवंतिक—संज्ञा पुं० [सं० जीवन्तिक] १. चिड़ीमार। बहेलिया। २. जीवशाक [को०]।

जीवंतिका—संज्ञा स्त्री० [सं० जीवन्तिका] १. एक प्रकार की बनस्पति या पौधा जो दूसरे पेड़ के ऊपर उत्पन्न होता है और उसी के आहार से बढ़ता है। बाँदा। २. गुरुच। गुडूची ३. जीवशाक। ४. जीवंती लता। ५. एक प्रकार की हड़ जो पीले रंग की होती है। ६. शमी।

जीवंती—संज्ञा स्त्री० [सं० जीवन्ती] १. एक लता जिसकी पत्तियाँ ओषध के काम में आती हैं।

विशेष—इसकी टहनियों में दूध निकलता है। फल गुच्छों में लगते हैं। यह तीन प्रकार की होती है—बृहज्जीवंती, पीली जीवंती और तिक्त जीवंती। तिक्त जीवंती को डोड़ी कहते हैं।

२. एक ताल जिसके फूलों में मीठा मधु या मकरंद होता है। ३. एक प्रकार की हड़ जो पीली होती है।

विशेष—यह गुजरात काठियावाड़ की ओर से आती है। इसका गुण बहुत उत्तम माना जाता है।

४. बाँदा। ५. गुडूची। ६. शमी।

जीव—संज्ञा पुं० [सं०] प्राणियों का चेतन तत्व। जीवात्मा। आत्मा। २. प्राण। जीवन तत्व। जान। जैसे,—इस हिरन में अब जीव नहीं है। ३. प्राणी। जीवधारी। इंद्रियविशिष्ट। शरीरी। जानदार। जैसे, पशु, पक्षी, कीट, पतंग आदि। जैसे,—किसी जीव को सताना अच्छा नहीं। उ०—जे जड़ चेतन जीव जहाना।—तुलसी (शब्द०)।

यौ०—जीव जंतु = (१) जानवर। प्राणी। (२) कीड़ा मकोड़ा।

४. जीवन। ५. विष्णु। ६. बृहस्पति। उ०—पढ़ो विरंचि, मौन वेद जीव सोर छंडि रे। कुबेर, बेर कै कही न यच्छ भीर मंडि रे।—राम चं०, पृ० १११। ७ अश्लेषा नक्षत्र। ८. बकायन का पेड़। ९. जीविका। व्यवसाय (को०) १०. एक मरुत् (को०)। ११. कर्ण का एक नाम (को०)। १२. लिंगदेह (को०)। १३. पुष्य नक्षत्र (को०)।

जीवक—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्राण धारण करनेवाला। २. आयुर्वेद के एक प्रसिद्ध आचार्य जो बौद्ध परंपरा के अनुसार ईस्वी पूर्व चौथी या तीसरी शताब्दी में थे। ३. क्षपणक। ४. सँपेरा। ५. सेवक। ६. ब्याज लेकर जीविका करनेवाला। सूदखोर। ७. पीतसाल का वृक्ष। ८. एक जड़ी या पौधा।

विशेष—भावप्रकाश के अनुसार यह पौधा हिमालय के शिखरों पर होता है। इसका कंद लहसुन के कंद के समान और इसकी पत्तियाँ महीन और साररहीन होती हैं। इसकी टहनियो में बारीक काँटे होते हैं और दूध निकलता है। यह अष्टवर्ग ओषध के अंतर्गत है और इसका कंद मधुर, बलकारक और कामोद्दीपक होता है। ऋषभ और जीवक दोनों एक ही जाति के गुल्म हैं, भेद केवल इतना ही है कि ऋषभ की आकृति बैल की सींग की तरह होती है और जीवक की झाड़ू की सी।

पर्या०—कूर्चशीर्ष। मधुरक। शृंग। ह्रस्वांग। जीवन। दीर्घायु प्राणद। भृंगाह्व। चिरजीवी। मंगल्य। आयुष्मान्। बलद।

जीवकोश—संज्ञा पुं० [सं०] लिंग शरीर [को०]।

जीवगृह—संज्ञा पुं० [सं० जीवगृहम्] शरीर। काया। [को०]।

जीवग्राह—संज्ञा पुं० [सं०] वह बंदी जो जीवित गिरफ्तार किया गया हो [को०]।

जीवघन—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्म [को०]।

जीवघाती—वि० [सं० जीवघातिन्] हिंसक। प्राणहारी [को०]।

जीवज—वि० [सं०] जो सजीव या सप्राण पैदा हो [को०]।

जीवजगत्—संज्ञा पुं० [सं०] प्राणधारी समुदाय [को०]।

जीवजीव—संज्ञा पुं० [सं०] चकोर पक्षी।

जीवजीवक—संज्ञा पुं० [सं०] चकोर पक्षी [को०]।

जीवट—संज्ञा स्त्री० [सं० जीवथ] हृदय की दृढ़ता। जिगरा। साहस। हिम्मत। मरदानगी।

जीवत्—वि० [सं०] [वि० स्त्री० जीवती जीवित] जिंदा। जीता हुआ [को०]।

जीवतोका—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसके बच्चे जीवित हों [को०]।

जीवत्तोका—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसकी संतति जीती हो। जीवत्पुत्रिका।

जीवत्पति—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसका पति जीवित हो। सधवा स्त्री। सौभाग्यवती स्त्री।

जीवत्पत्नी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'जीवत्पति' (को०)।

जीवत्पितृक—संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसका पिता जीवित हो।

विशेष—ऐसे मनुष्य के लिये अमास्नान, गयाश्राद्ध, दक्षिणमुख भोजन तथा मूछें मुडाने आदि का निषेध है। ऐसा मनुष्य यदि निरग्नि ब्राह्मण है तो उसे वृद्धि छोड़ और कोई श्राद्ध करने का अधिकार नहीं है। साग्निक जीवत्पितृक सब श्राद्ध कर सकता है।

जीवत्पुत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वह स्त्री जिसका पुत्र जीवित हो। २. आश्विन कृष्णा अष्टमी का व्रत (को०)।

जीवत्पुत्रिका व्रत—संज्ञा पुं० [सं०] संतान की कल्याणकामना से स्त्रियों द्वारा आश्विन कृष्ण अष्टमी को रखा जाने वाला व्रत।

जीवथ[1]—संज्ञा [पुं० जीवथ] १. प्राण। २. सद्गुण। ३. मयूर। ४. मेघ। ५. कछुआ।

जीवथ[2]—वि० [सं० जीव+अथ] १. धार्मिक। २. दीर्घायु। चिरंजीवी।

जीवद—संज्ञा पुं० [सं०] १. जीवनदाता। २. वैद्य। ३. जीवक पौधा। ४. जीवंती। ५. शत्रु।

जीवदया—संज्ञा स्त्री० [सं०] जीवों के प्राणरक्षार्थ की जानेवाली दया (को०)।

जीवदशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] मर्त्य जीवन (को०)।

जीवदान—संज्ञा पुं० [सं०] अपने वश में आए हुए शत्रु को न मारने या छोड़ देने का कार्य। प्राणदान। प्राणरक्षा। उ०—संग लै ताहि भगवान मारन चले रुक्मिणी जोरि कर विनय कीयो। दोष इन कियो मोहिं क्षमा प्रभु कीजिए भद्र करि शीश जिवदान दीयो।—सूर (शब्द०)।

जीवद्भर्तृका—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसका पति जीवित हो।

जीवद्वत्सा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसका पुत्र जीवित हो (को०)।

जीवधन—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह संपत्ति जो जीवों या पशुओं के रूप में हो। जैसे, गाय, भैंस, भेड़, बकरी, ऊँट आदि। २. जीवनधन। प्राणप्रिय। प्यारा।

जीवधानी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सब जीवों की आधारस्वरूपा, पृथ्वी। धरती।

जीवधारी—संज्ञा पुं० [सं० जीवधारिन्] प्राणी। जानवर। चेतन जंतु।

जीवन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० जीवित] १. जीवित रहने की अवस्था। जन्म और मृत्यु के बीच का काल। वह दशा जिसमें प्राणी अपनी इंद्रियों द्वारा चेतन व्यापार करते हैं। जिंदगी। जैसे,—अपने जीवन में ऐसी घटना मैंने कभी नहीं देखी थी।

यौ०—जीवनचरित्। जीवनचर्या।

मुहा०—जीवन भरना = जीवन व्यतीत करना। जिंदगी के दिन काटना।

२. जीवित रहने का भाव। जीने का व्यापार या भाव। प्राणधारण। जैसे,—अन्न से ही तो मनुष्य का जीवन है।

यौ०—जीवनदाता। जीवनधन। जीवनमूरि।

३. जीवित रखनेवाली वस्तु जिसके कारण कोई जीता रहे। प्राण का अवलंब। जैसे,—जल ही मनुष्य का जीवन है। ४. प्राणाधार। परमप्रिय। प्यारा। ५. जल। पानी। उ०—जगत जीवन हेतु जीवन (जल) बिंदु की वर्षा होती।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३३४। ७. मज्जा। ८. वात। वायु। ९. ताजा घी या मक्खन। १०. जीवक नामक औषध। ११. पुत्र। १२. परमेश्वर। १३. गंगा। १४. क्षुद्र फल नाम का पौधा (को०)।

जीवनक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. आहार। खाद्य। २. अन्न (को०)।

जीवनक[2]—वि० जीवित करनेवाला या रखनेवाला (को०)।

जीवनक्रम—संज्ञा पुं० [सं० जीवन+क्रम] रहन सहन का ढंग। जीवनपद्धति। जीवनप्रणाली (को०)।

जीवनचरित्—संज्ञा पुं० [सं०] १ जीवन का वृत्तांत। जीवन में किए हुए कार्यों आदि का वर्णन। जिंदगी का हाल। २. वह पुस्तक जिसमें किसी के जीवन भर का वृत्तांत हो।

जीवनचरित्र—संज्ञा पुं० [सं० जीवन + चरित्र] दे० 'जीवनचरित्'।

जीवनचर्या—संज्ञा स्त्री० [सं० जीवन + चर्या] दे० 'जीवनक्रम'।

जीवनतत्व—संज्ञा पुं० [सं० जीवन + तत्व] जीवन का मर्म। जीवन का रहस्य।

जीवनतरु—संज्ञा पुं० [सं० जीवन+तरु] १. जीवन रूपी वृक्ष। २. वह वृक्ष जो प्राणधारण का कारण हो। उ०—राम सुना दुखु कान न काऊ। जीवनतरु जिमि जोगवइ राऊ।—मानस, २।२००।

जीवनतल—संज्ञा पुं० [सं० जीवन + तल] जीवननिर्वाह का स्तर या स्थिति। उ०—और यहाँ की खनिज संपत्ति को निकालकर जनता के जीवनतल को ऊँचा उठाना चाहती है।—किन्नर०, पृ० ६०।

जीवनद—वि० [सं०] जीवनदाता (को०)।

जीवनदर्शन—संज्ञा पुं० [सं० जीवन + दर्शन] जीवन विषयक सिद्धांत उ०—गांधी जी के जीवनदर्शन का मूलमंत्र असत्य पर सत्य, अंधकार पर प्रकाश तथा मृत्यु पर जीवन द्वारा विजय पाने का था।—भारतीय०, पृ० १७५।

जीवनदान—संज्ञा पुं० [सं० जीवन + दान] १. शत्रु या अपराधी के प्राण न हरण करना। प्राणदान। उ०—देना चाहते हो मोगलों को तुम जीवनदान।—अपरा, पृ० ८२। २. किसी ऊँचे उद्देश्य के लिये आजीवन कार्य करते रहने का व्रत पालन करना।

जीवनधन—संज्ञा पुं० [सं०] १. जीवन का सर्वस्व। जीवन में सबसे प्रिय वस्तु या व्यक्ति। २. प्राणाधार। प्यारा। प्राणप्रिय।

उ०—सुकबि सरद नभ मन उडुगन से। राम भगत जन जीवनधन से।—तुलसी (शब्द०)।

जीवनधर¹—वि० [सं० जीवन + धर] जीवनरक्षक। जीवनदायक जीवनप्रद [को०]।

जीवनधर²—संज्ञा पुं० जलधर। मेघ। बादल [को०]।

जीवनबूटी—संज्ञा स्त्री० [सं० जीवन + हिं० बूटी] १. एक पौधा या बूटी। संजीवनी।

विशेष—इसके विषय में प्रसिद्ध है कि यह मरे हुए आदमी को भी जिला सकती है।

२. अति प्रिय वस्तु या व्यक्ति।

जीवनमरण—संज्ञा पुं० [सं०] जीवन और मरण। जिंदगी और मौत।

जीवनमुक्त—वि० [सं०] जो जीवन में ही सर्वबंधनों से मुक्त हो चुका हो [को०]।

जीवनमुक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] जीवनकाल में ही प्राप्त निर्बंधता [को०]।

जीवनमूरि—संज्ञा स्त्री० [सं० जीवन + मूल] १. संजीवनी नाम की जड़ी। २. अत्यंत प्रिय वस्तु या व्यक्ति। प्यारी। प्राणप्रिया।

जीवनमूलि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० जीवनमूल] संजीवनी बूटी। उ०—जीवन कों जे का करौं, पायौ जीवनमूलि। भक्ति को सार यह।—नद० ग्र०, पृ० १८८।

जीवनयापन—संज्ञा पुं० [सं० जीवन + यापन] जीवननिर्वाह। जीवन व्यतीत करना।

जीवनवृत्त—संज्ञा पुं० [सं०] जीवनचरित्। जीवनवृत्तांत। जीवनी।

जीवनवृत्तांत—संज्ञा पुं० [सं० जीवनवृत्तात] जीवनचरित। जिंदगी भर का हाल। जीवनी।

जीवनवृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं० जीविका] जीवनोपाय। प्राणरक्षा के लिये उद्यम। रोजी।

जीवनसंग्राम—संज्ञा पुं० [सं० जीवन + संग्राम] जीवन की संघर्षमय परिस्थितियों का सामना। संघर्षों में जीवनयापन का प्रयत्न।

जीवनहेतु—संज्ञा पुं० [सं०] जीवनरक्षा का साधन। जीविका। रोजी।

विशेष—गरुड़पुराण में दस प्रकार की जीविका बतलाई गई है—विद्या, शिल्प, भृति, सेवा, गोरक्षा, विपणि कृषि, वृत्ति, भिक्षा और कुसीद।

जीवनांत—संज्ञा पुं० [सं० जीवनान्त] जीवन की समाप्ति। मरण। मृत्यु [को०]।

जीवना¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. महौषध। २. जीवंती लता। उ०—जीवन मिरतक होइ रहै, तजै खलक की आस।—संतबाणी०, पृ० ४८०।

जीवना²(पु)—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'जीना'।

जीवना³†—क्रि० स० दे० 'जीमना'।

जीवनाघात—संज्ञा पुं० [सं०] विष। प्राणघाती जहर [को०]।

जीवनाधार¹—संज्ञा पुं० [सं०] जीवन का अवलंब या सहारा [को०]।

जीवनाधार²—वि० परम प्रिय। प्राणाधार [को०]।

जीवनांतर—क्रि० वि० [सं० जीवनान्तर] जीवन के बाद।

जीवनावास¹—वि० [सं०] जल में रहनेवाला।

जीवनावास²—संज्ञा पुं० १. वरुण। २. देह। शरीर।

जीवनि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० जीवनी] १. संजीवनी बूटी। २. जिलानेवाली वस्तु। प्राणाधार। ३. अत्यंत प्रिय वस्तु। उ०—गहली गरब न कीजिए, समय सुहागिनि पाय। जिय की जीवनि जेठ सो, माह न छाँह सुहाय।—बिहारी (शब्द०)।

जीवनी¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. काकोली। २. तिक्त जीवंती। डोडी। ३. मेद। ४. महामेद। ५. जूही।

जीवनी²—संज्ञा स्त्री० [सं० जीवन + हिं० ई (प्रत्य०)] जीवन भर का वृत्तांत। जीवनचरित्। जिंदगी का हाल।

जीवनीय¹—वि० [सं०] १. जीवनप्रद। २. जीविका करने योग्य। बरतने योग्य।

जीवनीय²—संज्ञा पुं० १. जल। २. जयंती वृक्ष। ३. दूध (डिं०)।

जीवनीयगण—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में बलकारक ओषधियों का एक वर्ग।

विशेष—इसके अंतर्गत अष्टवर्ग पर्णिनी, जीवंती, मधुक और जीवन हैं। वाग्भट्ट के मत से जीवनीय गण ये हैं—जीवंती, काकोली, मेद, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, ऋषभक, जीवक और मधूक।

जीवनीया—संज्ञा स्त्री० [सं०] जीवंती लता।

जीवनेत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] सेंहली वृक्ष।

जीवनोत्तर—वि० [सं०] जीवन के बाद का।

जीवनोत्सर्ग—संज्ञा पुं० [सं० जीवन + उत्सर्ग] जीवन की बलि। जीवन का दान। उ०—यौवन की मांसल, स्वस्थ गंध नव युग्मों का जीवनोत्सर्ग।—युगांत, पृ० ४७।

जीवनोपाय—संज्ञा पुं० [सं०] जीवनरक्षा का उपाय। जीविका। वृत्ति। रोजी।

जीवनौषध—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह औषध जिससे मरता हुआ भी जी जाय।

जीवन्मुक्त—वि० [सं०] जो जीवित दशा में ही आत्मज्ञान द्वारा सांसारिक मायाबंधन से छूट गया हो।

विशेष—वेदांतसार में लिखा है कि जिसने अखंड चैतन्य स्वरूप ज्ञान द्वारा अज्ञान का नाश करके आत्मरूप अखंड ब्रह्म का साक्षात्कार किया हो और जो ज्ञान तथा अज्ञान के कार्य, पाप पुण्य एवं संशय, भ्रम आदि के बंधन से निवृत्त हो गया हो वही जीवन्मुक्त है। सांख्य और योग के मत से पुरुष और प्रकृति के बीच विवेक ज्ञान होने से जीवन्मुक्ति प्राप्त होती है अर्थात् जब मनुष्य को यह ज्ञान हो जाता है कि यह प्रकृति जड़, परिणामिनी और त्रिगुणमयी है और मैं नित्य और चैतन्यस्वरूप हूँ तब वह जीवन्मुक्त हो जाता है।

जीवन्मृत—वि० [सं०] जो जीते ही मरे के तुल्य हो। जिसका जीना और मरना दोनों बराबर हों। जिसका जीवन सार्थक और

सुखमय न हो। उ०—यहाँ अकेला मानव ही रे चिर विषण्ण जीवन्मृत।—ग्राम्या, पृ० १६।

विशेष—जो, अपने कर्तव्य से विमुख और अकर्मण्य हो, जो सदा ही कष्ट भोगता रहे, जो बड़ी कठिनता से अपना पोषण कर सकता हो, जो अतिथि आदि का सत्कार न करता हो, ऐसा मनुष्य धर्मशास्त्र में जीवन्मृत कहलाता है।

जीवन्यास—संज्ञा पुं० [सं०] मूर्तियों की प्राणप्रतिष्ठा का मंत्र।

जीवपति[1]—संज्ञा पुं० [सं०] धर्मराज।

जीवपति[2]—संज्ञा स्त्री० वह स्त्री जिसका पति जीवित हो। सधवा स्त्री। सौभाग्यवती स्त्री। सुहागिनी स्त्री।

जीवपत्नी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसका पति जीवित हो। सधवा स्त्री।

जीवपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] नया पत्ता [को०]।

जीवपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] जीवंती।

जीवपितृक—वि० [सं०] जिसका पिता जीवित हो [को०]।

जीवपुत्रक—संज्ञा पुं० [सं०] १. पुत्रजीव वृक्ष। जियापोता का पेड़। २. इंगुदी का वृक्ष।

जीवपुत्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसका पुत्र जीवित हो [को०]।

जीवपुष्पा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बृहज्जीवंती। बड़ी जीवंती।

जीवप्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] हरीतकी। हड़।

जीवबंद(पु)—संज्ञा पुं० [सं० जीवबन्धु] दे० 'जीवबंधु'।

जीवबंधु—संज्ञा पुं० [सं० जीवबन्धु] गुल दुपहरिया। बंधुजीव। बंधूक।

जीवबलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] पशु आदि की बलि [को०]।

जीवबुद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं० जीव + बुद्धि] सामान्य प्राणियों की समझ। लौकिक बुद्धि। उ०—परि छिन एक में जीवबुद्धि सों बिगरि गई।—दो सौ० बावन०, भा० १, पृ० १३५।

जीवभद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जीवंती लता।

जीवमंदिर—संज्ञा पुं० [सं० जीवमन्दिर] देह। शरीर [को०]।

जीवमातृका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुमारी, धनदा, नंदा, विमला, मंगला, बला और पद्मा नाम की सात देवियाँ जो जीवों का पालन और कल्याण करती हैं। (विधान पारिजात)।

जीवयाज—संज्ञा पुं० [सं०] पशुओं से किया जानेवाला यज्ञ।

जीवयोनि—संज्ञा स्त्री० [सं०] सजीव सृष्टि। जीवजंतु। जानवर।

जीवरक्त—संज्ञा पुं० [सं०] स्त्रियों का रज जो गर्भधारण के उपयुक्त हुआ हो।

विशेष—सुश्रुत के अनुसार यह पंचभौतिक होता है अर्थात् जिन पंचभूतों से जीवों की उत्पत्ति होती है वे इसमें होते हैं।

जीवरा(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] जीव। प्राण। उ०—साईं सेती चोरिया, चोरा सेती गुझ। तब जानेगा जीवरा मार परैगी तुझ।—कबीर (शब्द०)।

जीवरि‡—संज्ञा पुं० [सं० जीव या जीवन] जीवन। प्राणधारण की शक्ति। उ०—बी मन माली मदन धुर आलबाल बयो। प्रेम पय सींच्यो पहिल ही सुभग जीवरि दयो।—सूर (शब्द०)।

जीवल—वि० [सं०] १. जीवनमय। २. जीवनपूर्ण। ३. सजीव करनेवाला। सप्राण करनेवाला [को०]।

जीवला—संज्ञा स्त्री० [सं० १.] सेंहली। २. सिंहपिप्पली।

जीवलोक—संज्ञा पुं० [सं०] भूलोक। पृथ्वीतल। मर्त्यलोक।

जीववत्सा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसका बच्चा जीवित हो [को०]।

जीववल्ली—संज्ञा संज्ञा [सं०] क्षीरकाकोली।

जीवविज्ञान—संज्ञा पुं० [सं० जीव + विज्ञान] जीव जंतुओं विषयक शारीरिक विज्ञान [को०]।

जीवविषय—संज्ञा [सं०] जीवा या जीवन का विस्तार [को०]।

जीववृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] जीव का गुण या व्यापार। २. पशु पालने का व्यवसाय।

जीवशाक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का शाक जो मालवा देश में अधिक होता है। सुसना।

जीवशुक्ला—संज्ञा स्त्री [सं०] क्षीरकाकोली।

जीवशेष—वि० [सं०] जिसका केवल प्राण बचा हो। प्राणशेष। [को०]।

जीवशोणित—संज्ञा पुं० [सं०] सजीव या स्वस्थ रक्त [को०]।

जीवश्रेष्ठा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जीवभद्रा [को०]।

जीवसंक्रमण—संज्ञा पुं० [सं० जीवसङ्क्रमण] जीव का एक शरीर से दूसरे शरीर में गमन।

जीवसंज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] कामवृद्धि वृक्ष।

जीवसाधन—संज्ञा पुं० [सं०] धान्य। धान।

जीवसुत—संज्ञा पुं० [सं० जीव + सुत] वह जिसका पुत्र जीवित हो [को०]।

जीवसुता—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसका पुत्र जीता हो।

जीवसू—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसकी संतति जीती हो। जीवतोका।

जीवस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ जीव रहता है। मर्मस्थान। हृदय।

जीवहत्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. प्राणियों का वध। २. प्राणियों के वध का दोष।

जीवहिंसा—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राणियों की हत्या। जीवों का वध।

जीवहीन—वि० [सं०] १. मृत। जीवनरहित। २. प्राणहीन। जहाँ कोई जीव न हो [को०]।

जीवांतक—संज्ञा पुं० [सं० जीवान्तक] १. जीवों का वध करनेवाला। २. व्याध। बहेलिया।

जीवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वह सीधी रेखा जो किसी चाप के सिरे से दूसरे सिरे तक हो। ज्या। २. धनुष की डोरी।

३. जीवंती । ४. बालवच । बचा । ५. भूमि । ६. जीवन । ७. जीवनोपाय । जीविका । ८. जीवन (को०) । ९. आभरण की झनक या झनक (को०) ।

जीवाजून†—संज्ञा पुं० [सं० जीवयोनि] जीवजंतु । प्राणीमात्र । पशु, पक्षी, कीट, पतंग आदि । उ०—पो फाटी पगरा हुआ जागे जीवाजून । सब काहू को देत है चोंच समाना चून ।—कबीर (शब्द०) ।

जीवाणु—संज्ञा पुं० [सं० जीव + अणु] अति सूक्ष्म जीव । क्षुद्रतम जीव । उ०—ऐसा होता है कि जीवाणु कई पुश्तों तक बिना विकसित हुए प्रवाहित रहें । —पा० सा० सि०, पृ० ११२ ।

जीवातु—संज्ञा पुं० [सं०] १. खाद्य । आहार । २. जीवन । अस्तित्व । ३. पुनर्जीवन । ४. जीवनदायक औषध (को०) ।

जीवातुमत्—संज्ञा पुं० [सं०] आयुष्काम यज्ञ का एक देवता जिससे आयु की प्रार्थना की जाती है । (आश्वश्रौत सूत्र)

जीवात्मा—संज्ञा पुं० [जीवात्मन्] प्राणियों की चेतन वृत्ति का कारणस्वरूप पदार्थ । जीव । आत्मा । प्रत्यगात्मा ।

विशेष—अनेक धार्मिक और दार्शनिक मतों के अनुसार शरीर से भिन्न एक जीवात्मा है । इसके अनेक प्रमाण शास्त्रों में दिए गए हैं । सांख्य दर्शन में आत्मा को 'पुरुष' कहा है और उसे नित्य, त्रिगुणशून्य, चेतन स्वरूप, साक्षी, कूटस्थ, द्रष्टा, विवेकी, सुख-दु:ख-शून्य, मध्यस्थ और उदासीन माना है । आत्मा या पुरुष अकर्ता है, कोई कार्य नहीं करता, सब कार्य प्रकृति करती है । प्रकृति के कार्य को हम अपना (आत्मा का) कार्य समझते है । यह भ्रम है । न आत्मा कुछ कार्य करता है, न सुख दु:खादि फल भोगता है । सुख दु:ख आदि भोग करना बुद्धि का धर्म है । आत्मा न बद्ध होता है, न मुक्त होता है । कठोपनिषद् मे आत्मा का परिमाण अंगुष्ठमात्र लिखा है । इसपर सांख्य के भाष्यकार विज्ञानभिक्षु ने बतलाया है कि अंगुष्ठमात्र से अभिप्राय अत्यंत सूक्ष्म से है । योग और वेदांत दर्शन भी आत्मा को सुख दु:ख आदि का भोक्ता नहीं मानते । न्याय, वैशेषिक और मीमांसा दर्शन आत्मा को कर्मों का कर्ता और फलों का भोक्ता मानते हैं । न्याय वैशेषिक मतानुसार जीवात्मा नित्य, प्रति शरीरभिन्न और व्यापक है । शांकर वेदांत दर्शन में जीवात्मा और परमात्मा को एक ही माना गया है । उपाधियुक्त होने से ही जीवात्मा अपने को पृथक् समझता है, पूर्ण ज्ञान प्राप्त होने पर यह भ्रम मिट जाता है और जीवात्मा ब्रह्मस्वरूप हो जाता है । सांख्य, वेदांत योग आदि सभी जीवात्मा को नित्य मानते हैं । बौद्ध दर्शन के अनुसार जैसे सब पदार्थ क्षणिक है उसी प्रकार आत्मा भी । जीवात्मा एक क्षण मे उत्पन्न होता है और दूसरे क्षण में नष्ट हो जाता है । अत: क्षणिक ज्ञान का नाम ही आत्मा है । जिसकी धारा चलती रहती है और एक क्षण का ज्ञान या विज्ञान नष्ट होता है और दूसरा क्षणिक विज्ञान उत्पन्न होता है । इसे पूर्ववर्ती विज्ञानों के संस्कार और ज्ञान प्राप्त होते रहते हैं । इस क्षणिक ज्ञान के अतिरिक्त कोई नित्य या स्थिर आत्मा नहीं । माध्यमिक शाखा के बौद्ध तो इस क्षणिक विज्ञान रूप आत्मा को भी नहीं स्वीकार करते; सब कुछ शून्य मानते हैं । वे कहते हैं कि यदि कोई वस्तु सत्य होती तो सब अवस्थाओं में बनी रहती । योगाचार शाखा के बौद्ध आत्मा को क्षणिक विज्ञान स्वरूप मानते हैं और इस विज्ञान को दो प्रकार का कहते हैं—एक प्रवृत्ति विज्ञान और दूसरा आलय विज्ञान । जाग्रत और सुप्त अवस्था में जो ज्ञान होता है उसे प्रवृत्ति विज्ञान कहते हैं और सुषुप्ति अवस्था में जो ज्ञान होता है उसे आलय विज्ञान कहते हैं । यह ज्ञान आत्मा ही को होता है । जैन दर्शन भी आत्मा को चिर, स्थायी और प्रत्येक प्राणी में पृथक् मानता है । उपनिषदों में जीवात्मा का स्थान हृदय माना है पर आधुनिक परीक्षाओं से यह बात अच्छी तरह प्रगट हो चुकी है कि समस्त चेतन व्यापारों का स्थान मस्तिष्क है । मस्तिष्क को ब्रह्मांड भी कहते हैं । दे० 'आत्मा' ।

पर्या०—पुनर्भवी । जीव । असु—मान् । सत्व । देहभृत् । चेतन ।

जीवादान—संज्ञा पुं० [सं०] बेहोशी । मूर्छा । संज्ञाशून्यता (को०) ।

जीवाधार—संज्ञा पुं० [सं०] आत्मा का आश्रयस्थान । हृदय ।

विशेष—उपनिषदों में जीव का स्थान हृदय माना गया है ।

जीवाना†—क्रि० स० दे० 'जिलाना' । उ०—तातें या वैष्णव को मरत तें जीवायो ।—दो सौ बावन०, भा०१, पृ० ३२३ ।

जीवानुज—संज्ञा पुं० [सं०] गर्गाचार्य मुनि, जो बृहस्पति के वंश मे हुए हैं । किसी के मत से ये बृहस्पति के छोटे भाई भी कहे जाते हैं । उ०—भाषत हम जीवानुज बानी । जा महँ होइ सकल दुख हानी ।—गोपाल (शब्द०) ।

जीवास्तिकाय—संज्ञा पुं० [सं०] जैन दर्शन के अनुसार कर्म का करनेवाला, कर्म के फल को भोगनेवाला, किए हुए कर्म के अनुसार शुभाशुभ गति मे जानेवाला और सम्यक् ज्ञानादि के वश से कर्म के समूह को नाश करनेवाला जीव ।

विशेष—यह तीन प्रकार का माना गया है,—अनादिसिद्ध, मुक्त और बद्ध । अनादिसिद्ध अर्हत् हैं जो सब अवस्थाओं में अविद्या आदि के बंधन से मुक्त तथा अणिमादि सिद्धियों से संपन्न रहते हैं ।

जीविका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वह वस्तु या व्यापार जिससे जीवन का निर्वाह हो । भरण पोषण का साधन । जीवनोपाय । वृत्ति । उ०—जीविका विहीन लोग सीद्यमान, सोच बस कहैं एक एकन सों कहाँ जाई का करी ? —तुलसी ग्र० पृ०, २२१ ।

क्रि० प्र०—करना ।

यौ०—जीविकार्जन = जीवन निर्वाह के साधन का संग्रह । उ०—उसे अपने जीविकार्जन की एक मशीन बना रहा है । —स० दर्शन पृ० ८८ ।

मुहा०—जीविका लगना = भरण पोषण का उपाय होना । रोजी का ठिकाना होना । जीविका लगाना = भरण पोषण का उपाय करना । जीवन निर्वाह का उपाय करना । रोजी का ठिकाना करना ।

२. जीवनदायी तत्व अर्थात् जल (को०) । ३. जीवन (को०) ।

जीवित¹—वि० [सं०] १. जीता हुआ । जिंदा । सप्राण । उ०—उस समय सत्यगुरु का वेष जीवित साधु के समान था । —कबीर मं०, पृ० ८१ । २. जो जीव या प्राणयुक्त हो

गया हो (को०)। १३. सजीव या सप्राण किया हुआ (को०)। ४ वर्तमान। उपस्थित (को०)।

जीवित²— संज्ञा पुं० १. जीवन। प्राणधारण।

यौ०—जीवितेश।

२. जीवन अवधि। आयु (को०)। ३. जीविका। रोजी (को०)। ४. प्राणी (को०)।

जीवितकाल—संज्ञा पुं० [सं०] जीवनकाल। जीवित रहने का समय। आयु [को०]।

जीवितज्ञा—संज्ञा स्त्री० [सं०] धमनी [को०]।

जीवितनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] पति [को०]।

जीवितव्य¹—वि० [सं०] जीवित रहने या रखने योग्य [को०]।

जीवितव्य²—संज्ञा पुं० [सं०] १. जीवन। २. जीवित रहने की संभावना। ३. पुनर्जीवित होने की संभावना।

जीवितव्यय—संज्ञा पुं० [सं०] जीवनोत्सर्ग। जीवन की आहुति [को०]।

जीवितसंशय—संज्ञा पुं० [सं०] जान का खतरा [को०]।

जीवितांतक—संज्ञा पुं० [सं० जीवितान्तक] शिव। शंकर। महादेव [को०]।

जीवितेश—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्राणनाथ। प्यारा व्यक्ति। प्राणों से बढ़कर प्रिय व्यक्ति। २. यमराज। ३. इंद्र। ४. सूर्य। ५. देह मे स्थित इड़ा और पिंगला नाडी। ६. एक जीवनदायिनी ओषधि जो मृतक को जीवित करनेवाली कही गई है (को०)।

जीवितेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव [को०]।

जीवी—वि० [सं० जीविन्] १. जीनेवाला। प्राणधारक। २. जीविका करनेवाला। जैसे,—श्रमजीवी। शस्त्रजीवी।

विशेष—सामान्यतया इसका प्रयोग समस्त पदों के अंत में होता है। जैसे,—बुद्धिजीवी।

जीवेंधन—संज्ञा पुं० [सं० जीवेन्धन] जलती हुई लकड़ी या ईंधन [को०]।

जीवेश—संज्ञा पुं० [सं०] परमात्मा। ईश्वर।

जीवोपाधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वप्न, सुषुप्ति और जाग्रत इन तीनों अवस्थाओं को जीव की उपाधि कहते हैं।

जीव्य—संज्ञा पुं० [सं०] जीवन (को०)।

जीव्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] जीवनोपाय। जीविका [को०]।

जीस्त—संज्ञा स्त्री० [फा० ज़ीस्त] जिंदगी। जीवन। उ०—जीस्त नहीं है सरासर बस सरगरदानी वह है।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ५६६।

जीह(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० जीभ, सं० जिह्वा] जीभ। जबान। उ०—(क) जन मन मंजु कंजु मधुकर से। जीह जसोमति हर हलधर से।—तुलसी (शब्द०)। (ख) राम नाम मनि दीप धरु जीह देहरी द्वार। तुलसी भीतर बाहरौ जो चाहसि उजियार।—तुलसी (शब्द०)। (ग) नाम जीह जपि जागहिं जोगी। तुलसी (शब्द०)।

जीहि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० जीह] दे० 'जीह'।

जुंग—संज्ञा पुं० [सं० जुङ्ग] वृद्धदारक वृक्ष। विधारा।

जुंगित¹—संज्ञा पुं० [सं० जुङ्गित] परित्यक्त। बहिष्कृत [को०]।

जुंगित²—वि० नीच जाति का व्यक्ति। चांडाल [को०]।

जुंडी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'जुन्हरी', 'ज्वार'।

जुंदर—संज्ञा पुं० [?] बंदर का बच्चा (कलंदरों की बोली)।

जुंबाँ—वि० [फ़ा० जुंबाँ] कंपायमान। हिलता हुआ [को०]।

जुंबिश—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जुंबिश] चाल। गति। हरकत। हिलना डोलना।

मुहा०—जुंबिश खाना = हिलना डोलना।

जुँआँ†—संज्ञा पुं० [सं० यूका] दे० 'जूँ'।

जुँई—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'जुई'।

जुँबली—संज्ञा स्त्री० [हिं० दुंबा] एक प्रकार की पहाड़ी भेड़।

जु¹(पु)—वि० [हिं०] दे० 'जो'। उ०—करत लाल मनुहारि, पै तू न लखति इहि ओर। ऐसो उर जु कठोर तौ उचितहि उरज कठोर।—मति० ग्रं०, पृ० ४०८।

जु²(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० जू] दे० 'जू'।

जुअती(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० युवती] दे० 'युवती'।

जुअल(पु)—वि० [सं० युगल, प्रा० जुअल] दे० 'युगल'। उ०—अम कोप्पिअ सुनिअ सुरुतान, रोमञ्चिअ भुआ जुअल।—कीर्ति०, पृ० ६०।

जुआँ—संज्ञा पुं० [सं० यूका, प्रा० जूआ] [स्त्री० अल्पा० जुई] एक छोटा कीड़ा जो मैलेपन के कारण सिर के बालों मे पड़ जाता है। जूँ। ढील।

जुआँरी¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० जुआँ] जुआँ। छोटी जुआँ।

जुआँरी†²—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ज्वार'।

जुआ¹—संज्ञा पुं० [सं० द्यूत, पा० जूत] वह खेल जिसमें जीतनेवाले को हारनेवाले से कुछ धन मिलता है। रुपए पैसे की बाजी लगाकर खेला जानेवाला खेल। किसी घटना की संभावना पर हार जीत का खेल। द्यूत। उ०—आछो जनम अकारथ गाग्यो। करी न प्रीति कमललोचन सों जन्म जुआ ज्यों हारयो—सूर (शब्द०)।

विशेष—जुआ कौड़ी, पासे, ताश आदि कई वस्तुओं से खेला जाता है पर भारत में कौड़ियों से खेलने का प्रचार आजकल विशेष है। इसमें चित्ती कौडियों को लेकर फेंकते हैं और चित्त पड़ी हुई कौड़ियों की संख्या के अनुसार दाँवों की हार जीत मानते हैं। सोलह चित्ती कौड़ियों से जो जुआ खेला जाता है उसे सोरही कहते हैं।

क्रि० प्र०—खेलना।—जीतना।—हारना।—होना।

जुआ²—संज्ञा पुं० [सं० युज (= जोड़ना)] १. गाड़ी, छकड़े, हल आदि की वह लकड़ी जो बैलों के कंधे पर रहती है। २. जाँते की चक्की या मूँठ।

जुआ³—संज्ञा पुं० [हिं० जुवा] दे० 'युवा'। उ०—बाल वृद्ध जुआ नर नारिन की एक संग।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ८६।

जुआखाना—संज्ञा पुं० [हिं० जुआ + फ़ा० खाना] वह स्थान जहाँ जुआ खेला जाता हो। जुआ खेलने का अड्डा।

जुआचोर—संज्ञा पुं० [हिं० जुआ + चोर] १. वह जुआरी जो अपना

दाँव जीतकर खिसक जाय। २. धोखेबाज। धोखा देकर दूसरों का माल उड़ा लेनेवाला। ठग। वंचक।

जुआचोरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० जुआ + चोरी] ठगी। धोखेबाजी। वंचकता।

क्रि० प्र०—करना।

जुआठा†—संज्ञा पुं० [हिं० जुआ + काठ] दे० 'जुआठा'।

जुआठा—संज्ञा पुं० [सं० युग + काष्ठ] हल में लगनेवाला वह लकड़ी का ढाँचा जो बैलों के कंधों पर रहता है।

जुआड़ी—संज्ञा पुं० [हिं० जुआरी] दे० 'जुआरी'।

जुआन†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'जुवान'।

जुआनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० जुआन + ई (प्रत्य०)] दे० 'जवानी'।

जुआब(५)—संज्ञा पुं० [फा० जवाब] दे० 'जवाब'। उ०—आवे जाड़ जनावे तुषार, हिए बिरहानल जुआब भए की।—हिंदी प्रेमा, पृ० २७१।

जुआर[1]—संज्ञा पुं० [हिं० ज्वार] दे० 'ज्वार'। उ०—जाएखने दितहु आलिंगन गाढ़। जनि जुआर परसे खेलपाढ़।—विद्यापति, पृ० ३४३।

जुआर(५)[2]—संज्ञा पुं० [हिं० जुआ+आर (प्रत्य०)] जुआ खेलनेवाला व्यक्ति। जुआड़ी। उ०—संशय सावज शरीर महँ, संगहि खेल जुआर।—कबीर बी०, पृ० ८८।

जुआर[3]—संज्ञा स्त्री० [हिं० ज्वार] दे० 'ज्वार'।

जुआरदासी—संज्ञा स्त्री० [?] एक प्रकार का पौधा जो फूलों के लिये लगाया जाता है।

जुआर भाटा—संज्ञा [हिं० ज्वारभाटा] दे० 'ज्वार भाटा'।

जुआरा—संज्ञा पुं० [हिं० जोतार] उतनी धरती जितनी एक जोड़ी बैल एक दिन में जोत सकें।

जुआरी—संज्ञा पुं० [हिं० जुआ] जुआ खेलनेवाला।

जुइँना†—संज्ञा पुं० [सं० यूनि (=बंधन या जोड़)] घास या फूस की ऐंठकर बनाई हुई रस्सी जो बोझ बाँधने के काम में आती है।

जुई—संज्ञा स्त्री० [हिं० जूँ] १. छोटी जुआँ। २. एक छोटा कीड़ा जो मटर, सेम इत्यादि की फलियों में लगकर उन्हें नष्ट कर देता है।

जुई[1]—संज्ञा स्त्री० [?] बरछी के आकार का काठ का बना वह पात्र जिससे हवन में घी छोड़ा जाता है। स्रुवा।

जुई[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० यूथी, हिं० जुही] दे० 'जुही'।

जुकति(५)—संज्ञा स्त्री० [सं० युक्ति] दे० 'जुगत'। उ०—उकति जुकति रसभरी उठाऊँ। भागभरी को हरष बढ़ाऊँ।—घनानंद, पृ० २४२।

जुकाम—संज्ञा पुं० [हिं० जूड़ + घाम वा अ० जुकाम; तुलनीय सं० यक्ष्मन्, *जखम,>जुखाम] अस्वस्थता या बीमारी जो सरदी लगने से होती है और जिसमें शरीर में कफ उत्पन्न हो जाने के कारण नाक और मुंह से कफ निकलता है, ज्वरांश रहता है, सिर भारी रहता और दर्द करता है। सरदी।

क्रि० प्र०—होना।

मुहा०—जुकाम बिगड़ना = जुकाम का सूख जाना। मेढकी को जुकाम होना = किसी मनुष्य में कोई ऐसी बात होना जिसकी उसमें कोई संभावना न हो। किसी मनुष्य का कोई ऐसा काम करना जो उसने कभी न किया हो या जो उसके स्वभाव या अवस्था के विरुद्ध हो।

जुकुट—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुत्ता। २. मलय पर्वत [को०]।

जुक्ति(५)—संज्ञा स्त्री० [सं० युक्ति] १. मिलनयोग। उ०—तन चंपक कुंदन मनो कै केसर रंग जुक्ति।—पृ० रा०, ६। ५४। २. उपाय। यत्न। उ०—धृत मन बास पास मनि तेहि माँ, करि सो जुक्ति बिलगावा।—जग्बानी, पृ० ४७।

जुग—संज्ञा पुं० [सं० युग] १. युग।

मुहा०—जुग जुग = चिर काल तक। बहुत दिनों तक। जैसे,—जुग जुग जीओ।

२. दो। उभय। उ०—बाला के जुग कान मैं बाला सोभा देत।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ३८८। ३. जत्था। गुट्ट। दल। गोल।

मुहा०—जुग टूटना = (१) किसी समुदाय के मनुष्यों का परस्पर मिला न रहना। अलग अलग हो जाना। दल टूटना। मंडली तितर बितर होना। जैसे,—सामने शत्रु सेना के दल खड़े थे, पर आक्रमण होते ही वे इधर उधर भागने लगे और उनके जुग टूट गए। (२) किसी दल या मंडली में एकता या मेल न रहना। जुग फूटना = जोड़ा खंडित होना। साथ रहनेवाले दो मनुष्यों में से किसी एक का न रहना।

३. चौसर के खेल में दो गोटियों का एक ही कोठे में इकट्ठा होना। जैसे, जुग छूटा कि गोटी मरी। ४. वह डोरा जिसे जुलाहे तारों को अलग अलग रखने के लिये ताने में डाल देते हैं। ५. पुश्त। पीढ़ी।

जुगजुगाना—क्रि० अ० [हिं० जगना (= प्रज्वलित होना)] १. मंद मंद और रह रहकर प्रकाश करना। मंद ज्योति से चमकना। टिमटिमाना। जैसे, तारों का जुगजुगाना। उ०—कोठरी के कोने में एक दीया जुगजुगा रहा था। २. अवनत या हीन दशा से क्रमशः कुछ उन्नत दशा को प्राप्त होना। कुछ कुछ उभरना। कुछ कीर्ति या समृद्धि प्राप्त करना। कुछ बढ़ना या नाम करना। जैसे,—वे इधर कुछ जुगजुगा रहे थे कि चल बसे।

जुगजुगी—संज्ञा स्त्री० [हिं० जुगजुगाना] एक चिड़िया जिसे शकरखोरा भी कहते हैं।

जुगत[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० युक्ति] १. युक्ति। उपाय। तदबीर। ढंग। उ०—सब्द मस्कला करै ज्ञान का कुरंड लगावै। जोग जुगत से मलै दाग तब मन का जावै।—पलटू०, भा० १, पृ० २।

क्रि० प्र०—करना।

मुहा०—जुगत भिड़ाना या मिलाना या लगाना = जोड़ तोड़ बैठाना। ढंग रचना। उपाय करना। तदबीर करना।

२. व्यवहारकुशलता। चतुराई। हथकंडा। ३. चमत्कारपूर्ण उक्ति। चुटकुला।

जुगति(५)—संज्ञा स्त्री० [सं० युक्ति] उपाय। तदबीर। उ०—जोग-जुगति सिखए सबै मनो महामुनि मैन। चाहत पिय अद्वैतता कानतु सेवत नैन।—बिहारी र०, दो० १३।

जुगती¹—वि० [हिं० जुगत + ई (प्रत्य०)] उपायी । युक्ति-कुशल । जोड़ तोड़ बैठा लेने में कुशल

जुगती²—संज्ञा स्त्री० [सं० युक्ति] युक्ति । उपाय । उ०—कोई कहे जुगती सब जानूँ कोइ कहे मैं रहनी । आतम देव सों पारचो नाहीं यह सब झूठी कहनी ।—कबीर श०, भा० १, पृ० १०१

जुगनी¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० जीगना] दे० 'जुगनू' ।

जुगनी²—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का गाना जो पंजाब में गाया जाता है ।

जुगनी³—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का आभूषण । वि० दे० 'जुगन' २.' । उ०—गल में कटवा, कंठा, हँसली, उर मै हुमेल कल चंपकली, जुगनी चौकी, मूँगे नकली ।—ग्राम्या०, पृ० ४० ।

जुगनू—संज्ञा पुं० [सं० ज्योतिरिङ्गण, प्रा० जोइंगण अथवा हिं० जुग-जुगाना] १. गुबरैले की जाति का एक कीड़ा जिसका पिछला भाग आग की चिनगारी की तरह चमकता है । यह कीड़ा बरसात में बहुत दिखाई पड़ता है । खद्योत । पटबीजना ।

विशेष—तितली, गुबरैले, रेशम के कीड़े आदि की तरह यह कीड़ा भी ढोले के रूप में उत्पन्न होता है । ढोले की अवस्था में यह मिट्टी के घर मे रहता है और उसमें से दस दिन के उपरात रूपांतरित होकर गुबरैले के रूप में निकलता है । इसके पिछले भाग से फासफरस का प्रकाश निकलता है । सबसे चमकीले जुगनू दक्षिणी अमेरिका मे होते हैं जिनसे कहीं कहीं लोग दीपक का काम भी लेते हैं । इन्हें सामने रखकर लोग महीन से महीन अक्षरों की पुस्तकें भी पढ़ सकते हैं ।

२. स्त्रियों का एक गहना जो पान के आकार का होता है और गले में पहना जाता है । रामनामी ।

जुगम(पु)—वि० [सं० युग्म] दे० 'युग्म' । उ०—ररो ममु जुगम अै अंक बाकी रह्या ।—रघु० रू०, पृ० ५७ ।

जुगल—वि० [सं० युगल] दे० 'युगल' । उ०—लाल कंचुकी मैं उगे जोबन जुगल लखात ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ३८७ ।

जुगलस्वरूप(पु)—संज्ञा पुं० [सं० युगल + स्वरूप] १. नियामक प्रकृति पुरुष के रूप में मान्य युग्म विग्रह । २. राधाकृष्ण । उ०—तब युगल स्वरूप ने वा कोठी में ही दरसन दीनो ।—दो सौ बावन०, भा० २, पृ० ७८ ।

जुगलिया—संज्ञा पुं० [?] जैन कथाओं के अनुसार वह मनुष्य जिसके ४०९६ बाल मिलकर आजकल के मनुष्यों के एक बाल के बराबर हों ।

जुगवना—क्रि० स० [सं० योग + अवना (प्रत्य०)] १. संचित रखना । एकत्र करना । जोड़ जोड़कर रखना कि समय पर काम आए । २ हिफाजत से रखना । सुरक्षित रखना । यत्न और रक्षापूर्वक रखना ।

जुगाड़—संज्ञा पुं० [देश० अथवा सं० योग (= योजन) + हिं० आड़ (प्रत्य०)] १. व्यवस्था । कार्यसाधन का मार्ग ।२. युक्ति ।

क्रि० प्र०—करना । बैठाना ।

जुगादरी—वि० [सं० युगान्तरीय] बहुत पुराना । बहुत दिनों का ।

जुगाना†—क्रि० स० [हिं० जुगवना] दे० 'जुगवना' । उ०—जस भुवंगम मणि जुगावे अस शिष्य गुरु आज्ञा गहे ।—कबीर सा० पृ० २१२ ।

जुगार†—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'जुगाली' उ०—बैठे हिरन सुहावने जिन पै करत जुगार ।—शकुतला, पृ० ११६ ।

जुगालना—क्रि० अ०[सं० उद्गिलन(= उगलना)]सींगवाले चौपायों का निगले हुए चारे को थोड़ा थोड़ा करके गले से निकाल मुँह में लेकर फिर से धीरे धीरे चबाना । पागुर करना ।

जुगाली—संज्ञा स्त्री० [हिं० जुगालना] सींगवाले चौपायों की निगले हुए चारे को गले से थोड़ा थोड़ा निकाल निकाल फिर से चबाने की क्रिया । पागुर । रोमंथ ।

क्रि० प्र०—करना ।

जुगी¹(पु)—संज्ञा पुं० [सं० योगी] योग करनेवाला । जोगी । उ०—रिषि संत जनी जगम जुती रहहिं ध्यान आरंभ मह ।—पृ० रा०, १२।८९ ।

जुगी²(पु)—वि० [हिं० युगी] युग से संबंध रखनेवाला । युग का ।

विशेष—इसका प्रयोग समास मे ही मिलता है । जैसे सतयुगी, कलयुगी ।

जुगुत(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० युक्ति] दे० 'जुगत' ।

जुगुति—संज्ञा स्त्री० [सं० युक्ति] दे० 'जुगत' । उ० —हीत हमरू कर लौआ संख । जोग जुगुति गिम भरल माथ ।—विद्यापति, पृ० ३९७ ।

जुगुप्सक—वि० [सं०] व्यर्थ दूसरे की निंदा करनेवाला ।

जुगुप्सन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० जुगुप्स, जुगुप्सित] निंदा करना । दूसरे की बुराई करना ।

जुगुप्सा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. निंदा । गर्हणा । बुराई । २. अश्रद्धा । घृणा ।

विशेष—साहित्य मे यह बीभत्स रस का स्थायी भाव है और शांत रस का व्यभिचारी । पतंजलि के अनुसार शौच या शुद्धि लाभ कर लेने पर अपने अगो तक से जो घृणा हो जाती है और जिसके कारण सांसारिक प्राणियों तक का संसर्ग अच्छा नही लगता, उसका नाम 'जुगुप्सा' है ।

जुगुप्सित—वि० [सं०] निंदित । घृणित ।

जुगुप्सु—वि० [सं०] निंदक । बुराई करनेवाला ।

जुगुप्सू—वि० [सं०] दे० 'जुगुप्सु' ।

जुग्त—संज्ञा स्त्री० [सं० युक्ति] दे० 'युक्ति' । उ०—जोग जुग्त ते भरम न छूटे जब लग आपन सूझे । कहे कबीर सोइ सतगुरु पूरा जो कोइ समझै बूझै ।—कबीर श०, भा० १, पृ० ५२ ।

जुग्म—वि० [सं० युग्म] दे० 'युग्म' ।—अनेकार्थ०, पृ० ३३ ।

जुज¹—संज्ञा पुं० [अ० जुज, मि० सं० युज्] १. कागज के ८ पृष्ठों या १६ पृष्ठों का समूह । एक फारम ।

यौ०—जुजबंदी ।

२. अंश । टुकड़ा । उ०—जुज से कुल कतरे से दरिया बन जावे । अपने को खोवे तब अपने को पावे । —भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ५६७ ।

जुज़²—अव्य० [फ़ा० जुज़] ···को छोड़कर ।···के सिवा । बिना । बगैर [को०] ।

जुज़दान—संज्ञा पुं० [अ० जुज़ + फ़ा० दान] बस्ता । वह थैला जिसमें लड़के पुस्तकें आदि रखते हैं ।

जुज़बंदी—संज्ञा स्त्री० [अ० जुज़ + फ़ा० बंदी] किताब की सिलाई जिसमें आठ आठ वा सोलह सोलह पन्ने एक साथ सिए जाते हैं ।

क्रि० प्र०—करना ।

जुज़रस—वि० [अ० जुज़रस] १. सूक्ष्मदर्शी । तीव्र बुद्धिवाला । २. मितव्ययी । ३. कंजूस । कृपण [को०] ।

जुज़रसी—संज्ञा स्त्री० [अ० जुज़रसी] १. सूक्ष्मदर्शिता । २. मितव्ययिता [को०] ।

जुज़ व कुल—संज्ञा पुं० [अ० जुज़ व कुल] अंश और संपूर्ण । सपूर्ण । कुल [को०] ।

जुज़वी—वि० [अ० जुज़्वी] १. बहुत मे से कोई एक । बहुत कम । कुछ थोड़े से । २. बहुत छोटे अंश का । जैसे, जुज़वी हिस्सेदार ।

जुज़ाम—संज्ञा पुं० [अ० जुज़ाम] कुष्ठ रोग । कोढ़ । उ०—फिन फोर हुआ है उसको जुज़ाम । जीने मे किया उसको नाकाम ।—दक्खिनी०, पृ० २२६ ।

जुजीठल(पु)—संज्ञा पुं० [सं० युधिष्ठिर] राजा युधिष्ठिर । (डिं०) ।

जुज्झ(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० युद्ध, प्रा० जुज्झ] युद्ध । लड़ाई । उ०—छमा तरवार से जग को बसि करै, प्रेम की जुज्झ मैदान होई ।—पलटू०, भा०२, पृ० १५ ।

जुझवाना(पु)†—क्रि० स० [हिं० जुझाना] १. लड़ने के लिये प्रोत्साहित करना । लड़ा देना । २. लड़ाकर मरवा डालना ।

जुझाऊ—वि० [हिं० जुज्झ, जूझ + आऊ (प्रत्य०)] १. युद्ध का । युद्ध संबंधी । जिसका व्यवहार रणक्षेत्र मे हो । लड़ाई में काम आनेवाला । उ०—बाजे बिहद जुझाऊ बाजे । निरसे मग तुरग गज गाजे ।—हम्मीर०, पृ० ५१ । २. युद्ध के लिये उत्साहित करनेवाला । जैसे, जुझाऊ बाजा, जुझाऊ राग । उ०—बाजहिं ढोल निसान जुझाऊ । सुनि सुनि होय भटन मन चाऊ ।—तुलसी (शब्द०) ।

जुझाना—क्रि० स० [सं० युद्ध, प्रा० जुज्झ] १. लड़ा देना । युद्ध के लिये प्रेरित करना । २. युद्ध मे मरवा डालना ।

जुझार(पु)†—वि० [हिं० जुज्झ + आर (प्रत्य०)] लड़ाका । सूरमा । वीर । बाँकुरा । बहादुर । उ०—सकल सुरासुर जुरहिं जुझारा । रामहि समर को जीतनहारा ।—तुलसी (शब्द०) ।

जुझावर—वि० [हिं० जुज्झ + आवर (प्रत्य०)] जुझानेवाला । उ०—जहँ बजै जुझावर बाजा, सब कायर उठि उठि भागा ।—कबीर श०, भा०३, पृ० २० ।

जुट—संज्ञा स्त्री० [सं० युक्त, प्रा० जुत्त अथवा सं० √जुट् ?] १. दो परस्पर मिली हुई वस्तुएँ । एक साथ के दो आदमी या वस्तु । जोड़ी । जुग । २. एक साथ बँधी या लगी हुई वस्तुओं का समूह । लाट । थोक । ३. गुट । मंडली । जत्था । दल । ४. ऐसे दो मनुष्य जिनमे खूब मेल हो । जैसे,—उन दोनों की एक जुट है । ५. जोड़ का आदमी या वस्तु ।

जुटक—संज्ञा पुं० [सं०] १ जटा । २ गुंथी । चोटी । जूड़ा [को०] ।

जुटना—क्रि० अ० [सं० युक्त,प्रा० जुत्त + ना (प्रत्य०) या √सं० जुड्, बाँधना] १ दो या अधिक वस्तुओं का परस्पर इस प्रकार मिलना कि एक का कोई पार्श्व या अंग दूसरे के किसी पार्श्व या अग के साथ दृढ़तापूर्वक लगा रहे। एक वस्तु का दूसरी वस्तु के साथ इस प्रकार सटना कि बिना प्रयास या आघात के अलग न हो सके। दो वस्तुओं का बँधने, चिपकने, मिलने या जड़ने के कारण परस्पर मिलकर एक होना । संबद्ध होना । सश्लिष्ट होना । जुड़ना । जैसे,—इस खिलौने का टूटा सिर गोद से नहीं जुटता, गिर गिर पड़ता है ।

संयो० क्रि०—जाना ।

विशेष—मिलकर एक रूप हो जानेवाले द्रव या चूर्ण पदार्थों के संबध मे इस क्रिया का प्रयोग नही होता ।

२. एक वस्तु का दूसरी वस्तु के इतने पास होना कि दोनों के बीच अवकाश न रहे । दो वस्तुओं का परस्पर इतने निकट होना कि एक का कोई पार्श्व दूसरे के किसी पार्श्व से छू जाय । भिड़ना । सटना । लगा रहना । जैसे,—मेज इस प्रकार रखो कि चारपाई से जुटी न रहे । ३. लिपटना । चिमटना । गुथना । जैसे—दोनों एक दूसरे से जुटे हुए खूब लात घूंसे चला रहे है । ४. संभोग करना । प्रसंग करना । ५. एक ही स्थान पर कई वस्तुओं या व्यक्तियों का आना या होना । एकत्र होना । इकट्ठा होना । जमा होना । जैसे,—भीड़ जुटना, आदमियों का जुटना, सामान जुटना । ६. किसी कार्य मे योग देने के लिये उपस्थित होना । जैसे,—आप निश्चित रहे, हम मौके पर जुट जायँगे । ७. किसी कार्य में जी जान से लगना । प्रवृत्त होना । तत्पर होना । जैसे,—ये जिस काम के पीछे जुटते हैं उसे कर ही के छोड़ते हैं । ८. एकमत होना । अभिसंधि करना । जैसे,—दोनो ने जुटकर यह उपद्रव खड़ा किया है ।

जुटली—वि० [सं० जूट] जूड़ेवाला । जिसे लंबे लंबे बालों की लट हो । उ०—सखी री नदनंदनु देखु । धूरि धूसर जटा जुटली हरि किए हर भेषु ।—सूर (शब्द०) ।

जुटाना—क्रि० स० [हिं० जुटना] १. दो या अधिक वस्तुओं को परस्पर इस प्रकार मिलाना कि एक का कोई पार्श्व या अंग दूसरे के किसी पार्श्व या अंग के साथ दृढ़तापूर्वक लगा रहे । जोड़ना ।

संयो० क्रि०—देना ।

२. एक वस्तु को दूसरी के इतने पास करना कि एक का कोई

भाग दूसरे के किसी भाग से छू जाय। भिड़ाना। सटाना। ३. इकट्ठा करना। एकत्र करना। जमा करना।

जुटाव—संज्ञा पुं० [हिं० जुट+ग्राव (प्रत्य०)] जमाव। बटोर।

जुटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. शिखा। चुंदी। चुटिया। २. गुच्छा। लट। जुड़ी। जुट्टी। ३. एक प्रकार का कपूर।

जुट्टा[1]—संज्ञा पुं० [हिं० जुटना] १. घास, पत्तियों या टहनियों का एक में बँधा पूला। आँटी। २. एक समूह या जुट मे उगनेवाली घास जाति की कोई वनस्पति। जैसे, सरपत का जुट्टा, काँस का जुट्टा।

जुट्टा[2]—वि० परस्पर मिला या सटा हुआ।

जुट्टी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० जुटना] १ घास, पत्तियों या टहनियों का एक में बँधा हुआ छोटा पूला। अँटिया। जूरी। जैसे, तंबाकू की जुट्टी, पुदीने की जुट्टी। २. सूरन आदि के नए कल्ले जो बँधे हुए निकलते हैं। ३. तले ऊपर रखी हुई एक प्रकार की कई चिपटी (पत्तर या परत के आकार की) वस्तुओं का समूह। गड्डी। जैसे, रोटियों की जुट्टी, रुपयों की जुट्टी, पैसों की जुट्टी। †४. एक पकवान जो शाक या पत्तों को बेसन, पीठी आदि में लपेटकर तलने से बनता है।

जुट्टी[2]—वि० जुटी या मिली हुई। जैसे, जुट्टी भौं।

जुठारना—क्रि० स० [हिं० जूठा] १ खाने पीने की किसी वस्तु को कुछ खाकर छोड़ देना। खाने पीने की किसी वस्तु मे मुँह लगाकर उसे अपवित्र या दूसरे के व्यवहार के अयोग्य करना। उच्छिष्ट करना।

विशेष—हिंदू आचार के अनुसार जूठी वस्तु का खाना निषिद्ध समझा जाता है।

संयो० क्रि०—डालना। देना।

२. किसी वस्तु को भोग करके उसे किसी दूसरे के व्यवहार के अयोग्य कर देना।

जुठिहारा—संज्ञा पुं० [हिं० जूठा+हारा] [स्त्री० जुठिहारी] जूठा खानेवाला। उ०—सूरदास प्रभु नदनंदन कहँ हम ग्वालन जुठिहारे।—सूर (शब्द०)।

जुठैला—वि० [हिं० जूठा+ऐल (प्रत्य०)] उच्छिष्ट। जूठा।

जुठौला—संज्ञा स्त्री० [देश०] छोटे पैरोंवाली बादामी रंग की एक चिड़िया जो समूह में रहती है।

जुडँगी—संज्ञा स्त्री० [हिं० जुड़ना+अंग] अति निकट का संबंध। अंग और अंगी जैसी घनिष्ठता।

जुड़ना—क्रि० अ० [हिं० जुटना या सं० जुड़ (= बाँधना)] १. दो या अधिक वस्तुओं का परस्पर इस प्रकार मिलना कि एक का कोई पार्श्व या अंग दूसरे के किसी पार्श्व या अंग के साथ दृढ़तापूर्वक लगा रहे। दो वस्तुओं का बँधने, चिपकने, सिलने, या जड़े जाने के कारण परस्पर मिलकर एक होना। संबद्ध होना। संश्लिष्ट होना। संयुक्त होना।

क्रि० प्र०—जाना।

२. संयोग करना। संभोग करना। प्रसंग करना। † ३. इकट्ठा होना। एकत्र होना। ४. किसी काम में योग देने के लिये उपस्थित होना। ५. उपलब्ध होना। प्राप्त होना। मिलना। मयस्सर होना। जैसे, कपड़े लत्ते जुड़ना। उ०—उसे तो चने भी नहीं जुड़ते। ६. गाड़ी आदि मे बैल लगना। जुतना।

जुड़पित्ती—संज्ञा स्त्री० [हिं० जूड़+पित्त] शीत और पित्त से उत्पन्न एक रोग जिसमें शरीर में खुजली उठती है और बड़े बड़े चकत्ते पड़ जाते है।

जुड़वाँ[1]—वि० [हिं० जुड़ना] जुड़े हुए। यमल। गर्भकाल से ही एक मे सटे हुए। जैसे, जुड़वाँ बच्चे।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग गर्भजात बच्चों के लिये ही होता है।

जुड़वाँ[2]—संज्ञा पुं० एक ही साथ उत्पन्न दो या अधिक बच्चे।

जुड़वाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० जुड़वाना] दे० 'जोड़वाई'।

जुड़वाना[1]†—क्रि० स० [हिं० जूड़] १. ठंढा करना। सुखी करना। जैसे, छाती जुड़वाना।

जुड़वाना[2]†—क्रि० स० [हिं० जोड़वाना] दे० 'जोड़वाना'।

जुड़ाई[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० जोड़ाई] दे० 'जोड़ाई'।

जुड़ाई[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० जुड़ाना] ठंढक। शीतलता। जाड़ा। उ० जो करि कष्ट जाइ पुनि कोई। जातहिं नींद जुड़ाई होई।—मानस, १। ३९।

जुड़ाना[1]†—क्रि० अ० [हिं० जूड] १. ठंढा होना। शीतल होना। २. शांत होना। तृप्त होना। प्रसन्न होना। संतुष्ट होना।

संयो० क्रि०—जाना।

जुड़ाना[2]—क्रि० स० १. ठंढा करना। शीतल करना। २. शांत और संतुष्ट करना। तृप्त करना। प्रसन्न करना। उ०—खोजत रहेउ तोहि सुतघाती। आजु निपाति जुड़ावहुँ छाती।—तुलसी (शब्द०)।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।—लेना।

जुड़ाना[3]—क्रि० स० [हिं० जुड़ना का क्रि० स० रूप] जोड़ने का काम किसी और से कराना।

जुड़ावना†—क्रि० स० [हिं०] दे० 'जुड़ाना'।

जुड़ावाँ—वि०, संज्ञा पुं० [हिं० जुड़वाँ] दे० 'जुड़वाँ'।

जुडीशल—वि० [अं०] दीवानी या फौजदारी संबंधी। न्याय संबंधी।

जुत(५)—वि० [सं० युत] दे० 'युत'। उ०—(क) जानी जाति नारिन दवारि जुत बन मे।—मतिराम (शब्द०)। (ख) जननद जुत नरवर लई अरु उज्जैन अपार। दब्बोहा पारेछ लइ, रैयत करी पुकार।—प० रासो, पृ० ८८।

जुतना—क्रि० अ० [सं० युक्त, प्रा० जुत्त] १ बैल, घोड़े आदि का गाड़ी में लगना। नधना। २ किसी काम मे परिश्रमपूर्वक लगना। किसी परिश्रम के कार्य मे तत्पर या संलग्न होना। जैसे,—वह दिन भर काम मे जुता रहता है। ३. लड़ाई में लगना। गुथना। जुटना। ४. जोता जाना। हल चलने के कारण जमीन का खुदकर भुरभुरी हो जाना। जैसे,—यह खेत दिन भर में जुत जायगा।

जुतवाना—क्रि० स० [हिं० जोतना] १. दूसरे से जोतने का काम करवाना। दूसरे से हल चलवाना। जैसे, जमीन जुतवाना, खेत जुतवाना।

संयो० क्रि०—देना।

२. बैल, घोड़े आदि को गाड़ी, हल आदि में खींचने के लिये लगवाना। नधवाना।

विशेष—इस क्रिया का प्रयोग जो पशु जोते जाते हैं तथा जिस वस्तु मे जोते जाते हैं, दोनों के लिये होता है। जैसे, घोड़े जुतवाना, गाडी जुतवाना।

संयो० क्रि०—देना।

जुताई—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'जोताई,।

जुताना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'जोताना'।

जुतियाना—क्रि० स० [हिं० जूता से नामिक धातु] १. जूता मारना। जूतों से मारना। जूते लगाना। २. अत्यंत निरादर करना। अपमानित करना।

जुतियौअल—संज्ञा स्त्री० [हिं० जुतियाना + औवल (प्रत्य०)] परस्पर जूतों की मार।

क्रि० प्र०—होना।

जुत्थ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० यूथ] दे० 'यूथ'।

जुथौली—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक छोटी चिड़िया।

विशेष—इसकी छाती और गरदन का कुछ अंश सफेद और बाकी भूरा होता है।

जुदा—वि० [फा०] [स्त्री० जुदी] १. पृथक्। अलग।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—जुदा करना = नौकरी से छुड़ाना। काम से अलग करना २ भिन्न। निराला। ३. अन्य। दूसरा (को०)। ४. विरही। विरहग्रस्त (को०)।

जुदाई—संज्ञा स्त्री० [फा०] बिछोह। वियोग। दो व्यक्तियों का एक दूसरे से अलग होने का भाव। विरह।

क्रि० प्र०—होना।

जुदागाना—क्रि० वि० [फा० जुदागानह्] अलग अलग। पृथक् पृथक्। उ०—हर मुल्क की चाल चलन, लिबास, पोशाक और रस्मो रिवाज जुदागाना होता है।—प्रेमघन, भा०२, पृ० १५७।

जुदी—वि० स्त्री० [फ़ा० जुदी] दे० 'जुदा'।

जुद्ध—संज्ञा पुं० [सं० युद्ध] दे० 'युद्ध'। उ०—साहब दी सुरतनां आइ गज जुद्ध निरष्षिय।—पृ० रा०, १६। १०२।

जुध(पु)—संज्ञा पु० [सं० युद्ध] दे० 'युद्ध'। उ०—हौं ब्रह्म राय जुध करन जोग। जुध भाजि जाउ तौ परै सोग।—पृ० रा०, १।४४५।

जुधवान्(पु)—संज्ञा पुं० [सं० युद्ध + हिं० वान (प्रत्य०)] योद्धा। युद्ध करनेवाला व्यक्ति।

जुनब्बी(पु)†—संज्ञा स्त्री० [अ० जनब] जनब नगर की निर्मित तलवार। उ०—जंगि जोर जुनब्बैं फहरत फब्बै मुंडनि गब्बै फर पाटै।—पद्माकर ग्रं० पृ० २७।

जुना†—वि० [हिं० जूना] दे० 'जीर्ण'। उ०—जो जुने चिगले सिया है इस बजा। कुछ अजब तेरी कदर है भी कजा।—दक्खिनी०, पृ० १७५।

जुनारदार—वि० [अ० जुन्नार + फ़ा० दार] १. ब्राह्मण। २. जनेऊ धारण करनेवाला। उ०—केसोदास मारू मरि हुरम कमठ कटी जैन खाँ जुनारदार मारे इक नौर के।—अकबरी० पृ० ११६।

जुनिपर—संज्ञा पुं० [अ०] एक प्रकार का अंग्रेजी फूल जो कई रंगों का होता है।

जुनूँ—संज्ञा पुं० [अ०] दे० 'जुनून'। उ०—जंजीर जुनूँ कड़ी न पड़ियो। दीवाने का पाँव दरमियाँ है।—प्रेमघन, भा० २, पृ० ४०६।

जुनून—संज्ञा पुं० [अ०] पागलपन। सनक। झक। उन्माद।

जुनूनी—वि० [अ०] विक्षिप्त। सनकी। उन्मत्त (को०)।

जुनूब—संज्ञा पुं० [अ० जनूब] दक्षिण। दक्खिन (को०)।

जुन्नार—संज्ञा पुं० [अ०] यज्ञोपवीत। जनेऊ। उ०—बा तजरबये तसबीहो जुन्नार झुका।—कबीर मं०, पृ० ४६८।

जुन्हरी†—संज्ञा स्त्री० [सं० यवनाल] ज्वार नाम का अन्न।

जुन्हाई†—संज्ञा [सं० ज्योत्स्ना, प्रा० जोन्हा] १. चाँदनी। चंद्रिका। उ०—सुमन बास स्फुटत कुसुम निकर तैसी है शरद जैसी रैन जुन्हाई।—अकबरी०, पृ० ११२। २. चंद्रमा।

जुन्हार†—संज्ञा स्त्री० [सं० यवनाल] ज्वार नाम का अन्न।

जुन्हैया†—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्योत्स्ना, प्रा० जोन्हा, हिं० जोन्ही + ऐया (प्रत्य०)] १. चाँदनी। चंद्रिका। चंद्रमा का उजाला। २. चंद्रमा। उ०—अहित अनैसो ऐसो कौन उपहास याते सोचन खरी मैं परी जोवति जुन्हैया को।—पद्माकर (शब्द०)

जुफ्त—संज्ञा पुं० [फ़ा० जुफ्त] १. युग्म। जोड़ा। २. सम संख्या जो दो से बँट जाय। ३. जूता (को०)।

जुबक(पु)—संज्ञा पुं० [सं० युवक] दे० 'युवक'। उ०—प्रात समय नित न्हाय जुबक जोधा जित आए।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० २३।

जुबति(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'युवति'। उ०—अवलि निम्न जातीय जुबति जन जुरि जहँ जाहीं।—प्रेमघन०, पृ० ४८।

जुबन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० यौवन] दे० 'यौवन'। उ०—जुबन रूप सँग सोभा पावै। सोइ कुरूप संग बदन दुरावै।—नंद० ग्रं०, पृ० ११७।

जुबराज(पु)—संज्ञा पुं० [सं० युवराज] दे० 'युवराज'।

जुबली—संज्ञा स्त्री० [अं० या इबरानी योबल] किसी महत्वपूर्ण घटना का स्मारक महोत्सव। जश्न। बड़ा जलसा।

जुबा(पु)—संज्ञा पुं० [सं० युवन] युवावस्था। उ०—बालपना भोले गयो, और जुबा महमंत।—कबीर सा०, पृ० ७६।

जुबाद(पु)—संज्ञा पुं० [अ० ज़बाद] एक प्रकार का गंधद्रव्य जो गंध-मार्जार से निकाला जाता है (को०)।

जुबान—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० ज़बान] दे० 'जबान'।

जुवानी—वि० [फ़ा० जवानी] दे० 'जवानी'।

जुव्वनⓟ—संज्ञा पुं० [सं० यौवन, प्रा० जुव्वरा] दे० 'यौवन'। उ०—जुब्बन क्यों बसि होई छक्क मैमंत की। —सुंदर ग्रं०, भा०१, पृ० ३६३।

जुव्वा—संज्ञा पुं० [अ० जुब्बह्] फकीरों का एक प्रकार का लंबा पहनावा। झब्बा। लंबा अँगरखा। चोगा। उ०—जो एक सोजन कू लाग्रो होर तागा। सियो मेरे जुब्बे में अक दो टाँका। —दक्खिनी०, पृ० ११५।

जुमकना†—क्रि० अ० [हिं० जमना] १. जमकर खड़ा होना। अड़ना। २. एकत्र होना। जोम में आना। उ०—जीतत जुमकि पौन मग संगनि।—पद्माकर ग्रं०, पृ० ६।

जुमना¹—संज्ञा पुं० [देश०] खेत में पाँस या खाद देने का एक ढंग जिसके अनुसार कटी हुई झाड़ियों और पेड़ पौधों को खेत में बिछाकर जला देते हैं और बची हुई राख को मिट्टी में मिला देते हैं।

जुमनाⓟ²—क्रि० अ० [अ० जोम] जोश में आना। अड़ना। उ०—जवानी जुमी जमाल सूरति देखिए थिर नाहि वे।—रै० बानी, पृ० ३२।

जुमला¹—वि० [अ० जुम्लह्] सब। कुल। सबके सब।

जुमला²—संज्ञा पुं० १. वह पूरा वाक्य जिससे पूरा अर्थ निकलता हो। २. जोड़ (को०)।

जुमहूर—संज्ञा पुं० [अ० जुम्हूर] जनता। जनसाधारण। सर्वसाधारण [को०]।

जुमहूरियत—[अ० जुम्हूरियत] गणतंत्र। जनतंत्र। प्रजातंत्र [को०]।

जुमहूरी—वि० [अ० जुम्हूर+फ़ा०ई (प्रत्य०)] सार्वजनीन। लोकसंचालित [को०]

जुमहूरी सल्तनत—संज्ञा स्त्री० [अ० जुम्हूर+फ़ा०ई (प्रत्य०)+अ०] सल्तनत गणतंत्र राज्य। जनतंत्र शासन। प्रजातंत्र राष्ट्र [को०]।

जुमा—संज्ञा पुं० [अ० जुमअ] शुक्रवार।

यौ०—जुमा मसजिद।

जुमा मसजिद—संज्ञा स्त्री० [अ० जुमअ मस्जिद] वह मसजिद जिसमें जमा होकर मुसलमान लोग शुक्रवार के दिन दोपहर की नमाज पढ़ते है।

जुमिल—संज्ञा पुं० एक प्रकार का घोड़ा। उ०—गुर्रा गुंठ जुमिल दरियाई।—रघुनाथ (शब्द०)।

जुमिलाⓟ†—वि० [अ० जुम्लह्] सब। समस्त। संपूर्ण। उ०—श्री नयपाल जुमिला के छितिपाल। —भूषण ग्रं०, पृ० ८२।

जुमिल्ला—संज्ञा पुं० [?] वह खूँटा जो लपेटन की बाईं ओर गड़ा रहता है और जिसमें लपेठन लगी रहती है। (जुलाहों की बोली)।

जुमुकना—क्रि० अ० [सं० यमक] १. निकट आ जाना। पास आ जाना। २. जुड़ना। इकट्ठा होना।

जुमेरात—संज्ञा स्त्री०[अ० जुमअरात] बृहस्पतिवार। गुरुवार। बीफै।

जुमेराती—वि० [अ० जुमअरात+फ़ा० ई (प्रत्य०)] जो जमेरात को पैदा हुआ हो।

विशेष—मुसलमानों में इस प्रकार के नाम जुमेरात को पैदा बच्चों के रखे जाते हैं।

जुम्मा¹—संज्ञा पुं० [अ० जुमअ] दे० 'जुमा'।

जुम्मा²—संज्ञा पुं० [अ० ज़िम्मह] दे० 'जिम्मा'।

जुम्मा³—वि० [अ० जमअ] कुल। सब। संपूर्ण।

मुहा०—जुम्मा जुम्मा आठ दिन = (१) थोड़े दिन। कुछ दिन। चंदरोज। (२) कुल मिलाकर आठ दिन। कुल मिलाकर इने गिने दिन।

जुयांग—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की जंगली जाति।

विशेष—इस जाति के लोग सिंहभूमि के दक्षिण उड़ीसा में पाए जाते हैं और कोलों से मिलते जुलते होते हैं।

जुरⓟ†—संज्ञा दे० [सं० ज्वर] दे० 'ज्वर'। उ०—अपने कर जु बिरह जुर ताते। मति झुरि जाहि डरति तिय याते।—नंद० ग्रं०, पृ० १३२।

जुरअत—संज्ञा स्त्री० [अ० जुरअत] साहस। हिम्मत। हियाव। जबहा।

जुरझुरी†—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्वर या जूर्ति+हिं० झरझराना] १. हलकी गरमी जो ज्वर के आदि में जान पड़ती है। ज्वरांश। हरारत। २. ज्वर के आदि की कँपकँपी। शीत कंप।

जुरनाⓟ†—क्रि० स० [हिं० जुड़ना] दे० 'जुड़ना'। उ०—(क) पाँव रोपि रहै रण माहि रजपूत कोऊ हय गज गाजत जुरत जहाँ दल है। —सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ०१०८। (ख) दृग अरुझत टूटत कुटुम जुरत चतुर चित प्रीति। परति गाँठि दुरजन हिए दई नई यह रीति।—बिहारी (शब्द०)।

जुरमाना‡—संज्ञा पुं० [हिं० जुरमाना] दे० 'जुरमाना'।

जुरमाना—संज्ञा पुं० [अ० जुर्म, फ़ा० जुर्मानह्] अर्थदंड। धनदंड। वह दंड जिसके अनुसार अपराधी को कुछ धन देना पड़े।

क्रि० प्र०—करना।—देना।—लेना।—लगना।— होना।

जुररⓟ—संज्ञा पुं० [हिं० जुर्रा] दे० 'जुर्रा'। उ०—जुरर बाज बहु कुही कुहेल।—प० रासो, पृ०, पृ०१८।

जुरराⓟ—संज्ञा पुं० [हिं० जुर्रा] दे० 'जुर्रा। उ०—जुररा सिकार तीतर बटेर। पेलंत सरित तट घट अबेर।—पृ० रा०, ५।१६।

जुरानाⓟ†¹—क्रि अ० दे० 'जुड़ाना'। उ०—कंत चौक सीमंत की बैठी गाँठ जुराइ। पेखि परोसी कौं, पिया घूँघट में मुसिक्याइ। —मति० ग्रं०, पृ० ४४४।

जुरानाⓟ†²—क्रि० सं० [हिं०] दे० 'जुड़ाना'।

जुराफा—संज्ञा पुं० [अ० जिराफ़] अफरीका का एक जंगली पशु।

विशेष—इसके खुर बैल के से, टाँगें और गर्दन ऊँट की सी लंबी, सिर हिरन का सा, पर बहुत छोटे छोटे और पूँछ गाय की सी होती है। इसके चमड़े का रंग नारंगी का सा होता है जिसपर बड़े बड़े काले धब्बे होते हैं। संसार भर में सबसे ऊँचा पशु यही है। १५ या १६.

फुट तक की ऊँचाई तक के तो सब ही होते हैं पर कोई कोई १८ फुट तक की ऊँचाई के भी होते हैं। इसकी आँखें ऐसी बड़ी और उभरी हुई होती हैं कि बिना सिर फेरे हुए ही यह अपने चारों ओर देख सकता है। इसी से इसका पकड़ना या शिकार करना बहुत कठिन है। इसके नथुनों की बनावट ऐसी विलक्षण होती है कि जब यह चाहे उन्हें बंद कर ले सकता है। इसकी जीभ १७ इंच तक लंबी होती है। यह प्रायः वृक्षों की पत्तियाँ खाता है और मैदानों में झुंड बाँधकर रहता है। चरते समय झुंड के चारों ओर चार जुराफे पहरे पर रहते हैं जो शत्रु के आने की सूचना तुरंत झुंड को दे देते हैं। शिकारी लोग घोड़ों पर सवार होकर इसका शिकार करते हैं, परंतु बहुत निकट नहीं जाते, क्योंकि इसके लात की चोट बहुत कड़ी होती है। इसका चमड़ा इतना सख्त होता है कि उसपर गोली असर नहीं करती। इसका मांस खाया जाता है।

यह पशु झुंड बाँधकर पारिवारिक रीति से रहता है, इसी से हिंदी कवियों ने इसके जोड़े में अत्यंत प्रेम मानकर इसका काव्य में उल्लेख किया है परंतु समझने में कुछ भ्रम हुआ है और इसको पशु की जगह पक्षी समझा है। जैसे,—(क) मिलि बिहरत बिछुरत मरत दंपति अति रसलीन। नूतन विधि हेमंत की जगत जुराफा कीन।—बिहारी (शब्द०)। (ख) जगह जुराफा ह्वै जियत तज्यो तेज निज भानु। रूप रहे तुम पूस में यह धौ कौन सयानु।—पद्माकर (शब्द०)।

जुराब—संज्ञा स्त्री० [हिं० जुर्राब] दे० 'जुर्राब'। उ०—उसकी ऊनी जुराब में एक छेद हो जाय।—अभिशप्त, पृ० १३८।

जुरावना(पु)†—क्रि० स० [हिं० जुड़ावना] दे० 'जुड़ाना'।

जुरावरी(पु)—वि० फा० [ज़ोरावरी] दे० 'जोरावरी'। उ०—सुंदर काल जुरावरी ज्यौं जाएँ त्यौं लेइ। कोटि जतन जो तूं करै तोहूँ रहन न देइ।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ७०३।

जुरी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० जूर्ति (=ज्वर)] धीमा ज्वर। हरारत।

जुरी[2]—वि० [हिं० जुटना] १. जुटी। जुटाई हुई। २. प्राप्त। उ०—जो निबाहो नेह के नाते न तुम जो न रोटी बाँटकर खाओ जुरी।—चुभते०, पृ० ३५।

यौ०—जुरी कुरी = (१) अर्जित या प्राप्त संपूर्ण राशि। २. परिजन और कुल।

जुर्म—संज्ञा पुं० [अ०] अपराध। वह कार्य जिसके दंड का विधान राजनियम के अनुसार हो।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

यौ०—जुर्म खफीफ = छोटा या सामान्य अपराध। जुर्म शदीद = गंभीर अपराध। भारी अपराध।

जुर्माना—संज्ञा पुं० [फा० जुर्मानह्] अर्थदंड। वह रकम जो किसी अपराध के दंड में चुकानी पड़े।

जुर्रत—संज्ञा स्त्री० [अ० जुरअत] दे० 'जुरअत' (को०)।

जुर्रा—संज्ञा पुं० [फ़ा०] नर बाज। उ०—वृक्षों पर जुर्रे, बाज, बहरी इत्यादि।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २०।

जुर्राब—संज्ञा स्त्री० [अ०] मोजा। पायताबा।

जुर्री—संज्ञा स्त्री० [हिं० जुर्रा] बाज। मादा बाज।

जुल—संज्ञा पुं० [सं० छल ?] धोखा। दम। झाँसा। पट्टी। छल छंद। चकमा।

क्रि० प्र०—देना।—में आना।

यौ०—जुलबाज। जुलबाजी।

जुलकरन(पु)—संज्ञा पुं० [अ० जुल्क़र्नैन] सम्राट् सिकंदर की उपाधि जिसके दोनों कंधों पर बालों की लटें पड़ी रहती थीं। उ०—भये मुरीद जुलहा के भाई। तबही जुलकरन नाम धराई।—कबीर सा०, पृ० १५१।

जुलकरनैन—संज्ञा पुं० [अ० जुल्क़र्नैन] सुप्रसिद्ध यूनानी बादशाह सिकंदर की एक उपाधि जिसका अर्थ लोग भिन्न भिन्न प्रकार से करते हैं। कुछ लोगों के मत से इसका अर्थ दो सींगोंवाला है। वे कहते हैं कि सिकंदर अपने देश की प्रथा के अनुसार दो सींगोवाली टोपी पहनता था। इसी प्रकार कुछ लोग 'पूर्व और पश्चिम दोनों कोनों को जीतनेवाला', कुछ लोग '२० वर्ष राज्य करनेवाला' और कुछ लोग 'दो उच्च ग्रहों से युक्त' अर्थात् भाग्यवान् भी अर्थ करते हैं।

जुलना—क्रि० स० [हिं० जुड़ना] १. मिलना अर्थात् संमिलित होना। २. मिलना अर्थात् भेंट करना।

विशेष—यह क्रिया अब अकेली नहीं बोली जाती है। जैसे,—(क) मिल जुलकर रहो। (ख) जिससे मिलना हो, मिल जुल आओ।

जुलफ(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० जुल्फ] दे० 'जुल्फ'। उ०—जुलफ मैं कुलुफ करी है मति मेरी छलि, एरी अलि कहा करों कल ना परति हैं।—दीन० ग्रं०, पृ० १०।

जुलफिकार—संज्ञा पुं० [अ० जुल्फ़क़ार] मुसलमानों के चौथे खलीफा अली की तलवार का नाम [को०]।

जुलफी†—संज्ञा पुं० [हिं० जुल्फ] दे० 'जुल्फ'। उ०—दाढ़ी झारत कोऊ, कोउ जुलफीन सँवारत।—प्रेमघन० भा० १, पृ० २३।

जुलबाज—वि० [हिं० जुल + फ़ा० बाज] धोखेबाज। छली। धूर्त। चालाक।

जुलबाजी—संज्ञा स्त्री० [हिं० जुलबाज] धोखेबाजी छल। धूर्तता। चालाकी।

जुलमाना(पु)†—वि० [अ० जुल्म + फ़ा० आनह्] अत्याचारी। जुल्मी। क्रूर। उ०—जम का फौज बड़ा जुलमाना पकरि मरोरे काला।—सं० दरिया, पृ० १५२।

जुलम†—संज्ञा पुं० [हिं० जुल्म] दे० 'जुल्म'। उ०—जुलम के हेत हलकारे, मनी मगरूर मतवारे। पकड़ जम जूतियों मारे, बहुर बिलकुल नरक डारे।—संत तुरसी०, पृ० २६।

जुलहा†—संज्ञा पुं० [हिं० जुलाहा] दे० 'जुलाहा'। उ०—चार वेद

ब्रह्मा ने ठाना। जुलहा भूल गया अभिमाना।—कबीर सा०, पृ० ८१४

जुलाई—संज्ञा स्त्री० [अं०] एक अंगरेजी महीना जो जेठ या असाढ़ में पड़ता है। यह अंगरेजी का सातवाँ महीना है और ३१ दिनों का होता है। इस मास की १३वीं या १४वीं तारीख को कर्क की संक्रांति पड़ती है।

जुलाब—संज्ञा पुं० [अ० जुल्लाब, फ़ा० जुलाब] १. रेचन। दस्त।

क्रि० प्र०—लगना।

२. रेचक औषध। दस्त लानेवाली दवा।

क्रि० प्र०—देना। —लेना।

मुहा०—जुलाब पचना = किसी दस्त लानेवाली दवा का दस्त न लाना वरन् पच जाना जिससे अनेक दोष उत्पन्न होते हैं।

विशेष—विद्वानों का मत है कि यह शब्द वास्तव में फ़ा० गुलाब से अरबी साँचे में ढालकर बना लिया गया है। गुलाब दस्तावर दवाओं में से है।

जुलाल—वि० [अ०] मीठा पानी। स्वच्छ पानी। निथरा हुआ जल। उ०—के डोने में जू है औ फूलों की फाल। यों कसि में जू है आबे जुलाल।—दक्खिनी०, पृ० १५०।

जुलाहा—संज्ञा पुं० [फ़ा० जोलाह] १. कपड़ा बुननेवाला। तंतुवाय। तंतुकार।

विशेष—भारतवर्ष में जुलाहे कहलानेवाले मुसलमान हैं। हिंदू कपड़ा बुननेवाले कोली आदि भिन्न भिन्न नामों से पुकारे जाते हैं।

मुहा०—जुलाहे का तीर = झूठी बात। जुलाहे की सी दाढ़ी = छोटी या नोकदार दाढ़ी।

२. पानी पर तैरनेवाला एक कीड़ा। ३. एक बरसाती कीड़ा जिसका शरीर गावदुम और मुँह मटर की तरह गोल होता है।

जुलित⑤—वि० [सं० ज्वलित] जलता हुआ। उ०—जुलित पावकं तेज लोचंन भारी। सकै दिष्ट को देव दानं सहारी।—पृ० रा०, १०।१९८।

जुलुफ‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० जुल्फ] दे० 'जुल्फ'। उ०—जुलुफ निसैनी पै चढ़े दृग धर पलकै पाह।—स० सप्तक, पृ० १८५।

जुलुफी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० जुल्फ] दे० 'जुल्फ'।

जुलुम‡—संज्ञा पुं० [हिं० जुल्म] दे० 'जुल्म'। उ०—जोर जुलुम अकस आवै तोहि कहो को बचावे।—गुलाल०, पृ० ११७।

जुलुमी‡—वि० [हिं० जुल्मी] १. जुल्म करनेवाला। १. अत्यधिक प्रभावित या मोहित करनेवाला।

जुलूस—संज्ञा पुं० [अ०] १. सिंहासनारोहण।

क्रि० प्र०—करना। —फरमाना।

२. राजा या बादशाह की सवारी। ३. उत्सव और समारोह की यात्रा। धूमधाम की सवारी। ४. बहुत से लोगों का किसी विशेष उद्देश्य के लिये जत्था बनाकर निकलना।

क्रि० प्र०—निकलना। —निकालना।

जुलोक⑤—संज्ञा पुं० [सं० द्युलोक] बैकुंठ। स्वर्ग।

जुल्फ—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जुल्फ़] सिर के वे लंबे बाल जो पीछे की ओर लटकते हैं। पट्टा। कुल्ले।

जुल्फी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जुल्फ] जुल्फ। पट्टा।

जुल्म—संज्ञा पुं० [अ० जुल्म] [वि० जुल्मी] १. अत्याचार। अन्याय। अनीति। जबरदस्ती। अंधेर।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

यौ०—जुल्मदोस्त = अत्याचार पसंद करनेवाला। जुल्मपसंद = अत्याचारी। जुल्मरसीदा = अत्याचार पीडित। जुल्मोसितम = अत्याचार।

मुहा०—जुल्म टूटना = आफत आ पड़ना। जुल्म ढाना = (१) अत्याचार करना। (२) कोई अद्भुत काम करना। जुल्म-तोड़ना = अत्याचार करना।

३. आफत।

जुल्मत—संज्ञा स्त्री० [अ० जुल्मत] अंधकार की कालिमा। अँधेरा। अंधकार। उ०—इस हिंद से सब दूर हुई कुफ्र की जुल्मत।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ५३०।

जुल्मात—संज्ञा पुं० [अ० जुल्मात] [जुल्मत का बहुव०] १. गंभीर अँधेरा। उ०—डूब्या जाके मगरिब के जुल्मात में। लगे दीपने ज्यों दिवे रात में।—दक्खिनी०, पृ० ८३। २. वह घोर अंधकार जो सिकंदर को अमृतकुंड तक पहुँचने में पड़ा था (को०)।

जुल्मी—वि० [अ० जुल्म + फ़ा० ई (प्रत्य०)] अत्याचारी।

जुल्लाब—संज्ञा पुं० [अ० जुलाब] १. रेचन। दस्त।

क्रि० प्र०—लगना।

२. रेचक औषध। वि० दे० 'जुलाब'।

क्रि० प्र०—देना। —लेना।

जुव¹⑤—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'युवक'। उ०—बाहर से फगुहार जुरे जुव जन रस राते।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ३८३।

जुव⑤²—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'युवती'। उ०—परम मधुर मादक सुनाद जिहि ब्रज जुव मोही।—नंद०, ग्रं०, पृ० ४०।

जुवती—संज्ञा स्त्री०[सं० युवती] दे० 'युवती'।—अनेकार्थ०, पृ० १०४।

जुवराज⑤—संज्ञा पुं० [सं० युवराज] दे० 'युवराज'। उ०—जाइ पुकारे ते सब बन उजार युवराज। सुनि सुग्रीव हरष कपि करि आए प्रभु काज।—मानस, ५।२८।

जुवा¹†—संज्ञा पुं० [सं० द्यूत, हिं० जुआ] दे० 'जुआ'। उ०—जुवा खेल खेलन गई जोवित जोबन जोर। क्यो न गई तैं मति भई सुन मुरली के सोर।—स० सप्तक, पृ० ३६४।

जुवा⑤²—संज्ञा स्त्री० [सं० युवा] दे० 'युवती'। उ०—साजि साज कुंजन गई लख्यो न नंदकुमार। रही ठौर ठाढ़ी ठगी जुवा जुवा सी हार।—स० सप्तक, पृ० ३८८।

जुवा⑤³—वि० [हिं० जुदा] दे० 'जुदा'। उ०—मन मिलिमोड़ा तिको माढ़वी, जीम करे लिए मौह जुवा।—बाँकी० ग्रं०, भा० ३, पृ० १०३।

जुवा⁴—वि० [हिं०] दे० 'युवा'। उ०—गावति गीत सबै मिलि सुंदरि, बेद जुवा जुरि विप्र पढ़ाहीं।—तुलसी ग्रं०, पृ० १५६।

जुआड़ी—संज्ञा पुं० [हिं० जुआरी] दे० 'जुआरी'। उ०—चोर, डाकू, जुआड़ी या दुष्ट हो।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १८६।

जुआन†—संज्ञा पुं० [सं० युवन्, हिं० जवान] दे० 'जवान'।

जुआनी†—संज्ञा पुं० [हिं० जवानी] दे० 'जवानी'।

जुआन्—संज्ञा पुं० [सं० युवन्, हिं० जुवान] तरुण। जवान। उ०—लखि हिय हँसि कह कृपानिधान्। सरिस स्वान मघवान जुवान्।—मानस, २।३०१।

जुआब†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'जवाब'। उ०—ता पत्र का जुबाब श्री गुसाईं जी ने वा वैष्णव को कृपा करिकै यह लिख्यो।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० २६१।

जुआर†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ज्वार'। उ०—लह लह जोति जुवार की अरु गँवारि की होति।—मति० ग्रं०, पृ०, ४४४।

जुआरी—संज्ञा पुं० [हिं० जुआरी] दे० 'जुआरी'। उ०—गृंथ गँवाइ ज्यों चले जुवारी।—हिं० क० का०, पृ० २१४।

जुष—वि० [सं०] १. भोग करनेवाला। चाहनेवाला। २. जानेवाला। ग्रहण करनेवाला। पहुँचनेवाला।

विशेष—समस्त पदों के अंत में इसका प्रयोग मिलता है। जैसे, परलोकजुष, रजोजुष।

जुष्कक—संज्ञा पुं० [सं०] भात का रसा या जूस [को०]।

जुष्ट[1]—संज्ञा पुं० [सं०] उच्छिष्ट। जूठन [को०]।

जुष्ट[2]—वि० १. तृप्त। तुष्ट। २. सेवित। भुक्त। ३. समन्वित। युक्त। ४. इष्ट। वांछित। ५. पूजित। ६. अनुकूल [को०]।

जुष्य[1]—वि० [सं०] पूजनीय। सेवनीय [को०]।

जुष्य[2]—संज्ञा पुं० सेवा [को०]।

जुसाँदा—संज्ञा पुं० [हिं० जोशाँदा] दे० 'जोशाँदा'।

जुस्तजू—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] तलाश। खोज। उ०—गरचे आज तक तेरी जुस्तजू खासो आम सब किया किए।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० १६६।

जुहना†(पु)—क्रि० अ० [हिं० जूह (=यूथ) से नामिक धातु] दे० 'जुड़ना'। मिलना। उ०—कहो कहुँ कान्ह जुहे तुम संग।—पृ० रा०, २। ३५७।

जुहाना†—क्रि० स० [सं० यूथ, प्रा० जूह + हिं० आना (प्रत्य०)] १. एकत्र करना। २. संचित करना। जोड़ जोड़कर एक जगह रखना।

संयो० क्रि०—देना। लेना।

जुहार—संज्ञा स्त्री० [सं० अवहार (=युद्ध का रुकना या बंद होना ?] राजपूतों या क्षत्रियों में प्रचलित एक प्रकार का प्रणाम। अभिवादन। सलाम। बंदगी।

जुहारना—क्रि० स० [सं० अवहार (=पुकार या बुलावा)] १. किसी से कुछ सहायता माँगना। किसी का एहसान लेना। २. सलाम या बंदगी करना। उ०—यदि कोई मिले भी तो बुलाने पर भी मत बोलना। जुहारै तो सिर भर हिला देना।—श्यामा०, पृ० ९६।

जुहावना†—क्रि० स० [हिं०] दे० 'जुहाना'।

जुही—संज्ञा स्त्री० [सं० यूथी] एक छोटा झाड़ या पौधा जो बहुत घना होता है और जिसकी पत्तियाँ छोटी तथा ऊपर नीचे नुकीली होती हैं। दे० 'जूही'। उ०—खिलीं मिलि जूथन जूथ जुही।—घनानंद, पृ० १४६।

विशेष—यह अपने सफेद सुगंधित फूलों के लिये बगीचों में लगाया जाता है। ये फूल बरसात में लगते हैं। इनकी सुगंध चमेली से मिलती जुलती बहुत हलकी और मीठी होती है।

जुहुराण[1]—संज्ञा पुं० [सं० जुहुराणः] चंद्रमा [को०]।

जुहुराण[2]—वि० [सं०] वक्र बनानेवाला। वक्रतापूर्वक कार्य करनेवाला [को०]।

जुहुवान—संज्ञा पुं० [सं०] १. अग्नि। २. वृक्ष। ३. कठोर हृदयवाला व्यक्ति। क्रूर व्यक्ति [को०]।

जुहू—संज्ञा पुं० [सं०] १. पलाश की लकड़ी का बना हुआ एक अर्धचंद्राकार यज्ञपात्र जिससे घृत की आहुति दी जाती है। २. पूर्व दिशा। ३. अग्नि की जिह्वा। अग्निशिखा (को०)।

जुहूरा—संज्ञा पुं० [अ० जुहूर] प्रकट होना। जाहिर होना। आविर्भाव। उत्पत्ति। उ०—यह माहूद ठीका जो पूरा हुआ। तो यमजाल का फिर जुहूरा हुआ।—कबीर मं०, पृ० १३४।

जुहूराण—संज्ञा पुं० [सं०] १. अध्वर्यु। २. अग्नि। ३. चंद्रमा [को०]।

जुहूवाण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'जुहूराण' [को०]।

जुहूवान्—संज्ञा पुं० [सं० जुहूवत्] पावक। अग्नि [को०]।

जुहोता—संज्ञा पुं० [सं० जुहूवत्] यज्ञ में आहुति देनेवाला।

जूँ[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० यूका] एक छोटा स्वेदज कीड़ा जो दूसरे जीवों के शरीर के आश्रय से रहता है।

विशेष—ये कीड़े बालों में पड़ जाते हैं और काले रंग के होते हैं। आगे की ओर इनके छह पैर होते हैं और इनका पिछला भाग कई गंडों में विभक्त होता है। इनके मुँह में एक सूँड़ी होती है जो नोक पर झुकी होती है। ये कीड़े उसी सूँड़ी को जानवरों के शरीर में चुभोकर उनके शरीर से रक्त चूसकर अपना जीवन निर्वाह करते हैं। चीलर भी इसी की जाति का कीड़ा है पर वह सफेद रंग का होता है और कपड़ों में पड़ता है। जूँ बहुत अंडे देती है। ये अंडे बालों में चिपके रहते हैं और दो ही तीन दिन में पक जाते और छोटे छोटे कीड़े निकल पड़ते हैं। ये कीड़े बहुत सूक्ष्म होते हैं और थोड़े ही दिनों में रक्त चूसकर बड़े हो जाते हैं। भिन्न भिन्न आदमियों के शरीर पर की जूँ भिन्न भिन्न आकृति और रंग की होती हैं। लोगों का कथन है कि कोढ़ियों के शरीर पर जूँ नहीं पड़ती।

क्रि० प्र०—पड़ना।

यौ०—जूँमुहाँ।

मुहा०—कानों पर जूँ रेंगना = चेत होना। स्थिति का ज्ञान होना। सतर्कता होना। होश होना। कानों पर जूँ न रेंगना = होश न होना। बात ध्यान में न आना। जूँ की चाल = बहुत धीमी चाल। बहुत सुस्त चाल।

जूँ (पु)[2]—अव्य० [हिं०] दे० 'ज्यू'। उ०—भाक सायर लहर जूँ हिवड़े ग्रव काढ़त।—ढोला०, दू० ६१२।

जूँठ (पु)—वि०, संज्ञा पुं० [सं० जुष्ट, हिं० जूठ] दे० 'जूठा'।

जूँठन—संज्ञा स्त्री० [हिं० जूठन] दे० 'जूठन'। उ०—तब से रेडा सगरी श्री गुसाईं जी की टहल करे और महाप्रसाद श्री गुसाईं जी की जूँठन लेई।—दो सौ बावन०, भा० २, पृ० ६२।

जूँठा—वि०, संज्ञा पुं० [सं० जुष्ट, हिं० जूठा] दे० 'जूठा'।

जूँड़िहा—संज्ञा पुं० [हिं० झुंड] वह बैल जो बैलों के झुंड के आगे चलता है।

जूँदन—संज्ञा पुं० [देश०] [स्त्री० जूँदनी] बंदर। (मदारी)।

जूँमुँहाँ—वि० [हिं० जूँ + मुँह] वह जो देखने में सीधा सादा पर वास्तव से बड़ा धूर्त हो।

जू[1]—अव्य० [सं० (श्री) युक्त] १. एक आदरसूचक शब्द जो ब्रज, बुंदेलखंड, राजपूताना आदि में बड़े लोगों के नाम के साथ लगाया जाता है। जी। जैसे, कन्हैया जू। २. संबोधन का शब्द। दे० 'जी'।

जू[2]—अव्य० [देश०] एक निरर्थक शब्द जो बैलों या भैंसों को खड़ा करने के लिये बोला जाता है।

जू[3]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सरस्वती। २. वायुमंडल। वायु। ३. बैल या घोड़े के मस्तक पर का टीका।

जू[4]—वि० [वै० सं०] तेज। वेगवान् (को०)।

जूआ[1]—संज्ञा पुं० [सं० युग] १. रथ या गाड़ी के आगे हरस में बाँधी या जड़ी हुई वह लकड़ी जो बैलों के कंधे पर रहती है।

क्रि० प्र०—बाँधना।

†२. जुआठा। ३. चक्की में लगी हुई वह लकड़ी जिसे पकड़कर वह फिराई जाती है।

जूआ[2]—संज्ञा पुं० [सं० द्यूत, प्रा० जूअ] वह खेल जिससे जीतनेवाले को हारनेवाले से कुछ धन मिलता है। किसी घटना की संभावना पर हार जीत का खेल। द्यूत। वि० दे० 'जुआ'।

क्रि० प्र०—खेलना।—जीतना।—हारना।—होना।

जूआखाना—संज्ञा पुं० [हिं० जूआ + फ़ा० खानह्] वह अड्डा, घर या स्थान जहाँ लोग जुआ खेलते हैं।

जूआघर—संज्ञा पुं० [हिं० जूआ + घर] दे० 'जूआखाना'।

जूआचोर—संज्ञा पुं० [हिं० जूआ + चोर] दे० 'जुआचोर'।

जूक—संज्ञा पुं० [यूना० ज्यूक्स] तुला राशि।

जूग (पु)—संज्ञा पुं० [सं० युग] दे० 'युग'। उ०—तोहे जञो परे हीत उदासिन जूग पलटि न गेल।—विद्यापति, पृ० ३२४।

जूजी—संज्ञा स्त्री० [देश०] कर्णपाली। कान की ललरी या लौर। उ०—कोई अपनी जूजी छेदकर कड़ा पहन लेता और कोई उसको काटकर फेंक देता है।—कबीर मं०, पृ० ३६१।

जूजू—संज्ञा पुं० [अनु०] एक कल्पित भयंकर जीव जिसका नाम लोग लड़कों को डराने के लिये लेते हैं। हाऊ।

जूझ—संज्ञा स्त्री० [सं० युद्ध, प्रा० जुज्झ] युद्ध। लड़ाई। झगड़ा। उ०—(क) पाई नहीं जूझ हठ कीन्हे। जे पावा ते आपुहि चीन्हे।—जायसी (शब्द०)। (ख) कोने परा न छूटिहै सुन रे जीव अबूझ। कबिर माँड़ मैदान में करि इंद्रिन सों जूझ।—कबीर (शब्द०)।

जूझना† (पु)—क्रि० अ० [सं० युद्ध या हिं० जूझ] १. लड़ना। २. लड़कर मर जाना। युद्ध में प्राणत्याग करना। उ०—जूझे सकल सुभट करि करनी। बंधु समेत परयो नृप धरनी।—तुलसी (शब्द०)।

जूट[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. जटा की गाँठ। जूड़ा। २. लट। जटा। ३. शिव की जटा।

जूट[2]—संज्ञा पुं० [अं०] १. पटसन। २. पटसन का बना कपड़ा।

यौ०—जूट मिल = वह मिल जहाँ पटसन के रेशों या धागों से बोरे, टाट आदि बनते हैं। पटकल।

जूटना (पु)[1]—क्रि० स० [हिं० जुटना] मिलाना। जोड़ना। जुटाना।

जूटना (पु)[2]—क्रि० अ० [हिं० जुटना] १. प्रवृत्त होना। लग जाना। २. एकत्र होना। उ०—जवना हार थई रण जूटे। फिरियो सेल नगारे फूटे। रा० रू०, पृ० २५६।

जूटि (पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० जुड] १ मेल। २ संधि। ३. जोड़ी।

जूटी† वि० स्त्री० [सं० जुष्ट] दे० 'जूठी'। उ०—चाट रहे हैं जूठी पत्तल कभी सड़क पर पड़े हुए हैं।—अपरा, पृ० ६६।

जूठ†—वि० [सं० जुष्ट] १. दे० 'जूठन'। २. दे० 'जूठा'।

जूठन—संज्ञा स्त्री० [हिं० जूठ] १. वह खाने पीने की वस्तु जिसे किसी ने खाकर छोड़ दिया हो। वह भोजन जिसे किसी ने खाकर छोड़ दिया हो। वह भोजन जिसमे से कुछ अंश किसी ने मुँह लगाकर खाया हो। किसी के आगे का बचा हुआ भोजन। उच्छिष्ट भोजन।

क्रि० प्र०—खाना।

२. वह पदार्थ जिसका व्यवहार किसी ने एक दो बार कर लिया हो। भुक्त पदार्थ। दे० 'जूठा'।

जूठा[1]—वि० [सं० जुष्ट, प्रा० जुट्ठ] [वि० स्त्री० 'जूठी'। क्रि० जुठारना] १. (भोजन) जिसे किसी ने खाया हो। जिसमें किसी ने खाने के लिये मुँह लगाया हो। किसी के खाने से बचा हुआ। उच्छिष्ट। जैसे,—जूठा अन्न, जूठा भात, जूठी पत्तल। उ०—विनती राय प्रवीन की, सुनिए साह सुजान। जूठी पातरि भखत हैं बारी, बायस स्वान।—(शब्द०)।

विशेष—हिंदू आचार के अनुसार जूठा भोजन खाना निषिद्ध है।

२. जिसका स्पर्श मुँह अथवा किसी जूठे पदार्थ से हुआ हो। जैसे, जूठा हाथ, जूठा बरतन।

मुहा०—जूठे हाथ से कुत्ता न मारना = बहुत अधिक कंजूस होना।

३. जिसे किसी ने व्यवहार करके दूसरे के व्यवहार के अयोग्य कर दिया हो। जिसे किसी ने अपवित्र कर दिया हो। जैसे, जूठी स्त्री।

जूठा¹—संज्ञा पुं० खाने पीने की वह वस्तु जिसे किसी ने खाकर छोड़ दिया हो। वह भोजन जिसमें से कुछ किसी ने मुँह लगाकर खाया हो। किसी के आगे का बचा हुआ भोजन। जूठन। उच्छिष्ट भोजन।

क्रि० प्र०—खाना।—चाटना।

जूठियाना†—क्रि० स० [हिं० जूठ + इयाना (प्रत्य०)] १. जूठा कर देना। उ०—माखी काहू के हाथ न आवे। गंध सुगंध सबे जुठियावे।—सं० दरिया, पृ० ६।

जूठी—वि०, संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'जूठा'।

जूड़¹†—वि० [सं० जड] [क्रि० जुड़ाना, जुड़वाना] ठंढा। शीतल। उ०—ओझा डाइन उर से डरपै जहर जूड़ हो जाई। विषधर मन में कर पछितवा बहुरि निकट नहिं आई।—कबीर श०, भा० २, पृ० २८।

जूड़²†—संज्ञा पुं० [हिं० जूड़ा] दे० 'जूड़ा'।

जूड़ना†—संज्ञा पुं० [देश०] पहाड़ी बिच्छू जो आकार में बड़ा और काले भूरे रंग का होता है।

जूड़ा¹—संज्ञा पुं० [सं० जूट अथवा सं० चूडा] १. सिर के बालों की वह गाँठ जिसे स्त्रियाँ अपने बालों को एक साथ लपेटकर अपने सिर के ऊपर बाँधती हैं। उ०- काको मन बाँधत न यह जूड़ा बाँधनहार।—श्यामा०, पृ० २६।

विशेष—जटाधारी साधु लोग भी जिन्हें अपने बालों की सजावट का विशेष ध्यान नहीं रहता अपने सिर पर इस प्रकार बालों को लपेटकर गाँठ बनाते हैं।

क्रि० प्र०—बाँधना।—खोलना।

२. चोटी। कलँगी। जैसे, कबूतर या बुलबुल का जूड़ा। ३. पगड़ी का पिछला भाग। ४. मूँज आदि का पूला। गुँजारी। ५. पानी के घड़े के नीचे रखने की घास आदि की लपेटकर बनाई हुई गड़री।

जूड़ा²—संज्ञा पुं० [हिं० जूड़] [स्त्री० जूड़ी] बच्चों का एक रोग जिसमें सरदी के कारण साँस जल्दी जल्दी चलने लगती है और साँस लेते समय कोख में गड्ढा पड़ जाता है। कभी कभी पेट में पीड़ा भी होती है और बच्चा सुस्त पड़ा रहता है।

जूड़ी¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० जूड़] एक प्रकार का ज्वर जिसमें ज्वर आने के पहले रोगी को जाड़ा मालूम होने लगता है और उसका शरीर घंटों काँपा करता है। उ०—जो काहू की सुनहिं बड़ाई। स्वास लेहिं जनु जूड़ी आई।—तुलसी (शब्द०)।

विशेष—यह ज्वर कई प्रकार का होता है। कोई नित्य आता है, कोई दूसरे दिन, कोई तीसरे दिन और कोई चौथे दिन आता है। नित्य के इस प्रकार के ज्वर को जूड़ी, दूसरे दिन आनेवाले को अँतरा, तीसरे दिन आनेवाले को तिजरा और चौथे दिनवाले को चौथिया कहते हैं। यह रोग प्रायः मलेरिया से उत्पन्न होता है।

क्रि० प्र०—आना।

जूड़ी²—संज्ञा स्त्री० [हिं० जुड़ना] जुट्टी।

जूड़ी³—वि० [हिं० जूड़] ठंडी। शीतल। उ०—किंतु बँगले के कमरे में घुसते ही शीतल जूड़ी छाया ने अपना असर किया।—किन्नर०, पृ० ७।

जूण(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० योनि] दे० 'योनि'।

जूत¹—संज्ञा पुं० [हिं० जूता] १. जूता। २. बड़ा जूता।

जूत²—वि० [सं०] १. आग्रह किया हुआ। २. खींचा हुआ। ३. दिया हुआ। प्रदत्त। ४. गया हुआ। गत (को०)।

जूता—संज्ञा पुं० [सं० युक्त, प्रा० जुत्त] चमड़े आदि का बना हुआ थैली के आकार का वह ढाँचा जिसे दोनों पैरों में लोग काँटे आदि से बचने के लिये पहनते हैं। जोड़ा। पनही। पादत्राण। उपानह।

विशेष—जूता दो या दो से अधिक चमड़े के टुकड़ों को एक में सीकर बनाया जाता है। वह भाग जो तलवे के नीचे रहता है तला कहलाता है। ऊपर के भाग को उपल्ला कहते हैं। तले का पिछला भाग एंड़ी या एंड़ और अगला भाग नोक या ठोकर कहलाता हैं। उपल्ले के वे अंश जो पैर के दोनों ओर खड़े उठे रहते है, दीवार कहलाते हैं। वह चमड़े की पट्टी जो एंड़ी के ऊपर दोनों दीवारों के जोड़ पर लगी रहती है, लंगोट कहलाती है। देशी जूते कई प्रकार के होते हैं। जैसे,—पंजाबी, दिल्लीवाल, सलीमशाही, गुरगावी, घेतला, चट्टी इत्यादि। अंग्रेजी जूतों के भी कई भेद होते हैं। जैसे, बूट, स्लिपर, पंप इत्यादि।

महाभारत के अनुशासन पर्व मे छाते और जूते के आविष्कार के संबंध मे एक उपाख्यान है। युधिष्ठिर ने भीम से पूछा कि श्राद्ध आदि कर्मों मे छाता और जूता दान करने का जो विधान है उसे किसने निकाला। भीष्म जी ने कहा कि एक बार जमदग्नि ऋषि क्रीडावश धनुष पर बाण चढ़ा चढ़ाकर छोड़ते थे और उनकी पत्नी रेणुका फेंके हुए बाणों को ला लाकर उन्हे देती थी। धीरे धीरे दोपहर हो गई और कड़ी धूप पड़ने लगी। ऋषि उसी प्रकार बाण छोड़ते गए। पतिव्रता रेणुका जब बाण लाने गई तब धूप से उसका सिर चकराने लगा और पैर जलने लगे। वह शिथिल होकर कुछ देर तक एक वृक्ष की छाया के नीचे बैठ गई। इसके उपरांत वह बाणों को एकत्र करके ऋषि के पास लाई। ऋषि क्रुद्ध होकर देर होने का कारण बार बार पूछने लगे। रेणुका ने सब व्यवस्था ठीक ठीक कह सुनाई। तब तो जमदग्नि जी सूर्य पर अत्यंत क्रुद्ध हुए और धनुष पर बाण चढ़ाकर सूर्य को मार गिराने पर तैयार हुए। इसपर सूर्य ब्राह्मण के वेश में ऋषि के पास आए और कहने लगे सूर्य ने आपका क्या बिगाड़ा है जो आप उन्हे मार गिराने को प्रस्तुत हुए हैं। सूर्य से लोक का कितना उपकार होता है? जब इसपर भी ऋषि का क्रोध शांत न हुआ तो ब्राह्मण वेशधारी सूर्य ने कहा कि सूर्य तो सदा वेग के साथ चलते रहते है। आप का लक्ष्य ठीक कैसे बैठेगा? ऋषि ने कहा कि जब मध्याह्न में कुछ क्षण विश्राम के लिये वे ठहर जाते हैं तब मैं मारूँगा। इसपर सूर्य ऋषि की शरण में आए। तब ऋषि ने कहा कि 'अच्छा? अब कोई ऐसा उपाय बतलाओ जिसमें हमारी पत्नी को धूप का कष्ट न हो।' इस

पर सूर्य ने एक जोड़ा जूता और एक छाता देकर कहा कि मेरे ताप से सिर और पैर की रक्षा के लिये ये दोनों पदार्थ हैं, इन्हें आप ग्रहण करें। तब से छाते और जूते का दान बड़ा फलदायक माना जाने लगा।

यौ०—जूताखोर।

मुहा०—जूता उठाना = मारने के लिये जूता हाथ में लेना। जूता मारने के लिये तैयार होना। (किसी का) जूता उठाना = (१) किसी का दासत्व करना। किसी की हीन से हीन सेवा करना। (२) खुशामद करना। चापलूसी करना। जूता उछलना या चलना = (१) जूतों से मारपीट होना। (२) लड़ाई दंगा होना। झगड़ा होना। जूता खाना = (१) जूतों की मार खाना। जूतों का प्रहार सहना। २. बुरा भला सुनना। ऊँचा नीचा सुनना। तिरस्कृत होना। जूता गाँठना = (१) फटा हुआ जूता सीना। (२) चमार का काम करना। नीचा काम करना। जूता चाटना = अपनी प्रतिष्ठा का ध्यान न रखकर दूसरे की शुश्रूषा करना। खुशामद करना। चापलूसी करना। जूता जड़ना = जूता मारना। जूता देना = जूता मारना। जूता पड़ना = (१) जूतों की मार पड़ना। उपानह प्रहार होना। (२) मुँहतोड़ जवाब मिलना। किसी अनुचित बात का कड़ा और मर्मभेदी उत्तर मिलना। ऐसा उत्तर मिलना कि फिर कुछ कहते सुनते न बने। (३) घाटा होना। नुकसान होना। हानि होना। जैसे,—बैठे बैठाए १०) का जूता पड़ गया। जूता पहनना = (१) पैर में जूता डालना। (२) जूता मोल लेना। जूता पहनाना = (१) दूसरे के पैर में जूता डालना। (२) जूता मोल ले देना। जूता खरीद देना। जूता बरसना = दे० 'जूता पड़ना' (१)। जूता बैठना = जूते की मार पड़ना। दे० 'जूता पड़ना'। (२) जूता मारना = (१) किसी अनुचित बात का ऐसा कड़ा उत्तर देना कि दूसरे से फिर कुछ कहते सुनते न बने। मुँह तोड़ जवाब देना। (२) जूते से मारना। जूता लगना = (१) जूते की मार पड़ना। (२) मुँहतोड़ जवाब मिलना। (३) किसी अनुचित कार्य का बुरा फल प्राप्त होना। जैसा बुरा काम किया हो तत्काल वैसा ही बुरा फल मिलना। किसी अनुचित कार्य का तुरंत ऐसा परिणाम होना जिससे उसके करनेवाले को लज्जित होना पड़े। (४) अतिशय हानि उठाना। जूता लगाना = जूते से मारना। जूते का आदमी = ऐसा आदमी जो बिना जूता खाए ठीक काम न करे। बिना कठोर दंड या शासन के उचित व्यवहार न करनेवाला मनुष्य। जूते से खबर लेना = जूते से मारना। जूतों दाल बँटना = आपस में लड़ाई झगड़ा होना। परस्पर वैर विरोध होना। अनबन होना। जूतों से आना = जूते से मारना। जूते लगाना। जूते से मारने के लिये तैयार होना। जूतों से बात करना = जूते से मारना। जूता लगाना।

जूताखोर—वि० [हिं० जूता+फा० खोर] १. जो जूता खाया करे। २. जो निर्लज्जता के कारण मार या गाली की कुछ परवाह न करे। निर्लज्ज। बेहया।

जूति—संज्ञा पुं० [सं०] १. वेग। तेजी। २. अग्रसर होना। आगे बढ़ना (को०)। ३. अबाध गति या प्रवाह (को०)। ४. उत्तेजना। प्रेरणा (को०)। ५. प्रवृत्ति। झुकाव (को०)। ६. मन की एकाग्रता (को०)।

जूतिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक तरह का कपूर [को०]।

जूती—संज्ञा स्त्री० [हिं० जूता] १. स्त्रियों का जूता। २. जूता।

यौ०—जूतीकारी। जूतीखोर। जूतीछुपाई। जूतीपैजार। उ०—जूती पैजार और लाठी डंडों तक की नौबत आती है। —प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३४५।

मुहा०—जूतियाँ उठाना = नीच सेवा करना। दासत्व करना। जूती कीनोक पर मारना = कुछ न समझना। तुच्छ समझना। कुछ परवाह न करना। जैसे,—ऐसा रुपया मैं जूती की नोक पर मारता हूँ। जूती की नोक खफा होना = परवा न करना। फिक्र न करना। उ०—खफा काहे को होती हो बेगम ? हमारी जूती की नोक खफा हो।—सैर कु०, भा० १, पृ० २१। जूती की नोक से = बला से। कुछ परवाह नहीं। (स्त्री०)। उ०—वह यहाँ नहीं आती है तो मेरी जूती की नोक से। जूती के बराबर = अत्यंत तुच्छ। बहुत नाचीज। (किसी की) जूती के बराबर न होना = किसी की अपेक्षा अत्यंत तुच्छ होना। किसी के सामने बहुत नाचीज होना। (खुशामद या नम्रता से भी कभी कभी लोग इस वाक्य का प्रयोग करते हैं। जैसे,—मैं तो आपकी जूती के बराबर भी नहीं हूँ)। जूती चाटना = खुशामद करना। चापलूसी करना। जूती दाल बँटना = दे० 'जूतियों दाल बँटना'। उ०—छेड़खानी करती हैं, आओ पड़ोसन हम तुम लड़ें। दूसरी बोली लड़ें मेरी जूती। उसने कहा जूती लगे तेरे सर पर। वह बोली, तेरे होते सोतों पर। चलो बस जूती दाल बटने लगी।—सैर कु० भा० १, पृ० ३८। जूती देना = जूती से मारना। जूती पर जूती चढ़ना = यात्रा का आगम दिखाई पड़ना। (जब जूती पर जूती चढ़ने लगती है तब लोग यह समझते हैं कि जिसकी जूती है उसे कहीं यात्रा करनी होगी)। जूती पर मारना = दे० 'जूती की नोक पर मारना'। जूती पर रखकर रोटी देना = अपमान के साथ रोटी देना। निरादर के साथ रखना या पालना। जूती पहनना = (१) जूती में पैर डालना। (२) नया जूता मोल लेना। जूती पहनाना = (१) किसी के पैर में जूती डालना। (२) नया जूता मोल ले देना। जूती से = दे० 'जूती की नोक से'। जूतियाँ खाना = (१) जूतियों से पिटना। (२) ऊँचा नीचा सुनना। भला बुरा सुनना। कड़ी बातें सहना। (३) अपमान सहना। जूतियाँ गाँठना = (१) फटी हुई जूतियों को सीना। (२) चमार का काम करना। अत्यंत तुच्छ काम करना। निकृष्ट व्यवसाय करना। जूतियाँ चटकाते फिरना = (१) दीनतावश इधर-उधर मारा मारा फिरना। दुर्दशाग्रस्त होकर घूमना। (फटे पुराने जूते को घसीटने से चट चट शब्द होता है)। (२) व्यर्थ इधर उधर घूमना। जूतियों दाल बँटना = आपस में लड़ाई झगड़ा होना। वैर विरोध होना। फूट होना। जूतियाँ पड़ना = जूतियों की मार पड़ना। जूतियाँ बगल

में दबाना = जूतियाँ उतारकर भागना जिसमें पैर की आहट न सुनाई दे। चुपचाप भागना। धीरे से चलता बनना। खिसकना। जूतियाँ मारना = (१) जूतियों से मारना। (२) कड़ी बातें कहना। अपमानित करना। तिरस्कृत करना। (३) कड़ा उत्तर देना। मुँह तोड़ जवाब देना। जूतियाँ लगना = जूतियों से मारना। जूतियाँ सीधी करना = अत्यंत नीच सेवा करना। दासत्व करना। जूतियों का सदका = चरणों का प्रमेप (विनम्र कृतज्ञता ज्ञापन)।

जूतीकारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० जूती + कार] जूतों की मार।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

जूतीखोर—वि० [हिं० जूती + फ़ा० खोर] १. जो जूतों की मार खाया करे। २. जो निर्लज्जता से मार और गाली की परवाह न करे। निर्लज्ज। बेहया।

जूती छुपाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० जूती + छुपाना] १. विवाह में एक रस्म।

विशेष—स्त्रियाँ कोहबर से वर के चलते समय वर का जूता छिपा देती हैं और तबतक नहीं देती हैं जबतक वह जूते के लिये कुछ नेग न दे। यह काम प्रायः वे स्त्रियाँ करती हैं जो नाते में वधू की बहन होती हैं।

२. वह नेग जो वर स्त्रियों को जूती छुपाई में देता है।

जूती पैजार—संज्ञा स्त्री० [हिं० जूती + फ़ा० पैजार] १. जूतों की मार पीट। धौल धप्पड़। २. लड़ाई दंगा। कलह। झगड़ा।

क्रि० प्र०—करना।

जूथⓅ—संज्ञा पुं० [सं० यूथ] दे० 'यूथ'। उ०—भयो पंक अति रंग को तामैं गज को जूथ फँसोरी।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ५०४।

यौ०—जूथ जूथ = झुंड का झुंड। समूहबद्ध। उ०—जूथ जूथ मिलि चली सुआसिनि। निज छबि निदरहिं मदन बिलासिनी।—मानस, १।३४५।

जूथका†—संज्ञा स्त्री० [सं० यूथिका] दे० 'यूथिका'।

जूथिका†—संज्ञा स्त्री० [सं० यूथिका] दे० 'यूथिका'।

जूद[१]—वि० [फ़ा०] शीघ्र। त्वरित। तुरंत। जल्दी।

यौ०—जूदफ़हम = कोई बात तुरंत समझनेवाला। तीव्रबुद्धि।

जूद[२]—वि० [फ़ा०] तेज। द्रुत [को०]।

जून[१]†—संज्ञा पुं० [सं० द्युवन् = सूर्य अथवा देश०] समय। काल। बेला।

जून[२]—संज्ञा पुं० [सं० जूर्ण (= पुराना)] पुराना। उ०—का छति लाभ जून धनु तोरे। देखा राम नये के भोरे।—तुलसी (शब्द०)।

जून[३]—संज्ञा पुं० [सं० (जूर्ण = एक तृण)] तृण। घास। तिनका।

जून[४]—संज्ञा पुं० [अं०] अँगरेजी वर्ष का छठा महीना जो जेठ के लगभग पड़ता है।

जून[५]—संज्ञा पुं० [सं० यवन ?] एक जाति जो सिंधु और सतलज के बीच के प्रदेशों में रहती है और गाय बैल, ऊँट आदि पालती है।

जूना[१]—संज्ञा पुं० [सं० जूर्ण (= एक तृण)] १. घास या फूस को बटकर बनाई हुई रस्सी जो बोझ आदि बाँधने के काम में आती है। २. घास फूस का लच्छा या पूला जिससे बरतन माँजते या मलते हैं। उसकन। उबसन। उ०—रंग ज्यादा गोरा तो नहीं, साँवले से कुछ निखरा हुआ है। हाथ में जूना है और बरतन माँजते माँजते वह खीझ उठी।—वहकते०, पृ० ६३।

जूना[२]—वि० [सं० जीर्ण] [वि० स्त्री० जूनी] दे० 'जीर्ण'। उ०—जूना गीत दोहा चारणी भी के सुनाया।—शिखर०, पृ० ४७।

जूनि†—संज्ञा स्त्री० [सं० योनि] दे० 'योनि'। उ०—सतगुरु तें जोगी जोगु पाया। अस्थिर जोगी फिरि जूनि न आया।—प्राण०, पृ० १११।

जूनियर—वि० [अं०] काल क्रम से पिछला। जो पीछे का हो। छोटा।

यौ०—जूनियर हाई स्कूल = वह हाई स्कूल जिसमें कक्षा छह से आठ तक पढ़ाई होती है। पूर्व माध्यमिक विद्यालय।

जूनी[१]—संज्ञा स्त्री० [हिं० जूना] दे० 'जूना'। उ०—जूनी ले कनातां तेल सींची आगि जाली।—शिखर०, पृ० ५२।

जूनीⓅ†—संज्ञा स्त्री० [सं० योनि] दे० 'योनि'। उ०—फिर फिर जूनी संकट आवै। गर्भवास में बहु दुख पावै।—सहजो०, पृ० ८।

जूप[१]—संज्ञा पुं० [सं० द्यूत, प्रा० जूआ या जूव] १. जूआ। द्यूत। उ०—जैसे, अंध कूप, बिनु गाँठ धन जूप की ज्यों हीन गुण आश है न जप जल पान की।—हनुमान (शब्द०)। २. विवाह में एक रीति जिसमें वर और वधू परस्पर जूआ खेलते हैं। पासा। उ०—कर कंपै कंगन नहिं छूटै। खेलत जूप जुगल जुवतिन में हारे रघुपति जीति जनक की।—सूर (शब्द०)।

जूप[२]—संज्ञा पुं० [सं० यूप] दे० 'यूप'।

जूम‡—संज्ञा पुं० [देश०] थूक। पीक। उ०—सुरती का जूम पिच से जमीन पर गिरा।—नई०, पृ० ३०।

जूमना[१]Ⓟ—क्रि० अ० [अ० जमा] इकट्ठा होना। जुटना। एकत्र होना। उ०—(क) जागो हुतो हाट एक मदन धनी को जहाँ गोपिन को वृंद रह्यो जूमि चहुँधाई में।—देव (शब्द०)। (ख) गिरिधरदास भूमि जूमि आसु वदि, बाज लौं दराज लेहि परन दबाय कै।—गोपाल (शब्द०)।

जूमना[२]†—क्रि० अ० [हिं० झूमना] दे० 'झूमना'।

जूरⓅ—संज्ञा पुं० [हिं० जुरना] जोड़। संचय। उ०—दान लाभ होइ बाँचे मूरू।—जायसी (शब्द०)।

जूरना[१]Ⓟ—क्रि० स० [हिं० जोड़ना] जोड़ना। उ०—प्रबध में संतन रहु दूरि। बंधु सखा गुरु कहत राम को नाते बहुतेक जूरि।—देव स्वामी (शब्द०)।

जूरनाⓅ[२]—क्रि० अ० [हिं० जोड़ना] इकट्ठा होना। जुटना।

जूरर—संज्ञा पुं० [अं०] पंच। न्यायसभ्य। जूरी का सदस्य।

जूरा†—संज्ञा पुं० [हिं० जूड़ा] दे० 'जूड़ा'।

जूरिस्ट—संज्ञा पुं० [अं०] वह व्यक्ति जो कानून, विशेषकर दीवानी कानून में पारंगत हो। व्यवहार-शास्त्र-निपुण।

जूरिस्डिक्शन—संज्ञा पुं० [अं०] वह सीमा या विभाग जिसके अंदर शक्ति या अधिकार का उपयोग किया जा सके। जैसे, वह स्थान इस हाई कोर्ट के जूरिस्डिक्शन के बाहर है।

जूरी[१]—संज्ञा स्त्री० [हिं० जुरना] १. घास, पत्तों या टहनियों का एक बँधा हुआ छोटा पूला। जुट्टी। जैसे, तमाखू की जूरी। २. सूरन आदि के नए कल्ले जो बँधे हुए निकलते हैं। ३. एक पकवान जो पौधों के नए बँधे हुए कल्लों को गीले बेसन में लपेटकर तलने से बनता है। ४. एक प्रकार का पौधा या झाड़ जिससे क्षार बनता है।

विशेष—यह पौधा गुजरात, कराची आदि के खारे दलदलों में होता है।

जूरी[२]—संज्ञा स्त्री० [अं०] वे कुछ व्यक्ति जो अदालत में जज के साथ बैठकर खून, डाकाजनी, राजद्रोह, षड्यंत्र आदि के संगीन मामलों को सुनते और अंत में अभियुक्त या अभियुक्तों के अपराधी या निरपराध होने के संबंध में अपना मत देते हैं। पंच। सालिस। जैसे,—जूरी ने एकमत होकर उसे चोर बताया तदनुसार जज ने उसे छोड़ दिया।

विशेष—जूरी के लोग नागरिकों में से चुने जाते हैं। इन्हें वेतन नहीं मिलता। खर्च भर मिलता है। इन्हें निष्पक्ष रहकर न्याय करने की शपथ करनी पड़ती है। जब तक किसी मामले की सुनवाई नहीं हो लेती, इन्हें बराबर अदालत में उपस्थित होना पड़ता है। और देशों में जज इनका बहुमत मानने को बाध्य है और तदनुसार ही अपना फैसला देता है। पर हिंदुस्तान में यह बात नहीं है। हाई कोर्ट और चीफ कोर्ट को छोड़कर, जिले के दौरा जज जूरी का मत मानने के लिये बाध्य नहीं हैं। जूरी से मतैक्य न होने की अवस्था में वे मामले हाई कोर्ट या चीफ कोर्ट भेज सकते हैं।

जूरीमैन—संज्ञा पुं० [अं०] दे० 'जूरी'।

जूरू—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'जूर'।

जूर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का तृण।

पर्या०—उलूक। उलप।

जूर्णाख्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. तृणविशेष। २. कुश। दर्भ [को०]।

जूर्णाह्वय—संज्ञा पुं० [सं०] देवधान्य।

जूर्णि[१]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वेग। २. आदित्य। ३. देह। ४. ब्रह्मा। ५. क्रोध। ६. स्त्रियों का एक रोग। ७. आग्नेयास्त्र (को०)।

जूर्णि[२]—वि० १. वेगयुक्त। वेगवान। तेज। २. द्रवित। गला हुआ। ३.ताप देनेवाला। ४. स्तुति करने में कुशल।

जूर्ति—संज्ञा स्त्री [सं०] १. ज्वर। २. ताप। गरमी (को०)।

जूलाई—संज्ञा स्त्री० [अं० जुलाई] दे० 'जुलाई'।

जूवल†—संज्ञा पुं० [देश०] पैर। उ०—इम पतसाह मुणे अकुलायो। अहिजाणे जुबल तल आयो।—रा० रू०, पृ० ६४।

जूवा[१]—संज्ञा पुं० [हिं० जूआ] दे० 'जुआ'। उ०—टाँड़ा तुमने लादा भारी। बनिज किया पूरा बेपारी। जूवा खेला पूँजी हारी। अब चलने की भई तयारी।—कबीर श०, भा०१ पृ० ६।

जूवा[२]Ⓟ—वि० [हिं०] दे० 'जुदा'। उ०—नामरूप गुन जूवा जूवा पुनि व्यवहार भिन्न ही ठाट।—सुंदर ग्रं०, भा०१, पृ० ७३।

जूष—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी उबाली या पकाई हुई वस्तु का पानी। झोल। रसा। २. उबाली या पकाई हुई दाल का पानी।

जूषण—संज्ञा पुं० [सं०] धाय नामक पेड़ जो फूलों के लिये लगाया जाता है।

जूस[१]—संज्ञा पुं० [सं० जूष] १. मूँग अरहर आदि की पकी हुई दाल का पानी जो प्रायः रोगियों को पथ्य रूप में दिया जाता है।

मुहा०—जूस देना = उबली हुई दाल का पानी पिलाना। जूस लेना =(१) उबली हुई दाल का पानी पीना। (२) रोगी का सशक्त होकर खाने पीने लायक होना।

२. उबली हुई चीज का रस। रसा।

क्रि० प्र०—काढ़ना। निकालना।

जूस[२]—संज्ञा पुं० [फ़ा० जुफ्त, तुलनीय सं० युक्त] १. युग्म संख्या। सम संख्या। ताक का उलटा। जैसे,—२, ४, ६, ८।

यौ०—जूस ताक।

जूस ताक—संज्ञा पुं० [हिं० जूस + फ़ा० ताक] एक प्रकार का जुआ जिसे लड़के खेलते हैं।

विशेष—एक लड़का अपनी मुट्ठी में छिपाकर कुछ कौड़ियाँ ले लेता है और दूसरे से पूछता है—'जूस कि ताक ?' अर्थात् कौड़ियों की संख्या सम है या विषम ? यदि दूसरा लड़का ठीक बूझ लेता है तो जीत जाता है और यदि नहीं बूझता तो उसे हारकर उतनी ही कौड़ियाँ बुझानेवाले को देनी पड़ती हैं जितनी उसकी मुट्ठी में होती हैं।

जूस ताख†—संज्ञा पुं० [हिं० जूस + फ़ा० ताक] दे० 'जूस ताक'। उ०—बसन के दाग धोवै, नखछत एक टोवै, चूर लै चुरी को खेलै एक जूस ताख है।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० १६१।

जूसी—संज्ञा स्त्री० [हिं० जूस] वह गाढ़ा लसीला रस जो ईख के पकते रस को गुड़ के रूप मे ठोस होने के पहले उतारकर रख देने से उसमें से छूटता है। खाँड़ का पसेव। चोटा। छोवा।

जूहⓅ—संज्ञा पुं० [सं० यूथ, प्रा० जूह] झुंड। समूह। उ०—(क) डह डह डज्जे डमरु, जूह जुगिनि जुरि नाची।—हम्मीर०, पृ० ५८। (ख) एकहि बार तासु पर छाड़िन्हि गिरि तरु जूह।—मानस, ६।६५।

जूहर—संज्ञा पुं० [फा० जौहर या हिं० जीव + हर] राजपूतों की एक प्रथा जिसके अनुसार दुर्ग में शत्रु का प्रवेश निश्चित जान स्त्रियाँ चिता पर बैठकर जल जाती थी और पुरुष दुर्ग के बाहर लड़ने के लिये निकल पड़ते थे। वि० दे० 'जौहर'।

जूहारनाⓅ—क्रि० स० [हिं० जुहारना] दे० 'जुहारना'। उ०—सासू जूहारवा चाल्यो छइ राई।—बी० रासो, पृ० २६।

जूहिया—वि० [हिं० जूही + इया (प्रत्य०)] जूही जैसी । उ०—हेमंती ओस की जूहिया नमी भीतर पहुँच रही थी ।—नई०, पृ० ४२ ।

जूही[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० यूथी] १. फैलनेवाला एक झाड़ या पौधा जो बहुत घना होता है और जिसकी पत्तियाँ छोटी तथा ऊपर नीचे नुकीली होती हैं । उ०—जाही जूही बकुचन लावा । पुहुप सुदरसन लाग सुहावा ।—जायसी ग्रं०, पृ० १३ ।

विशेष—यह हिमालय के अंचल में आपसे आप उगता है । यह पौधा फूलों के लिये बगीचों में लगाया जाता है । इसके फूल सफेद चमेली से मिलते जुलते पर बहुत छोटे होते हैं । सुगंध इसकी चमेली ही की तरह हलकी मीठी और मनभावनी होती है । ये फूल बरसात में लगते हैं । जूही को कहीं कहीं पहाड़ी चमेली भी कहते हैं । पर जूही का पौधा देखने में चमेली से नहीं मिलता, कुंद से मिलता है । चमेली की पत्तियाँ सीकों के दोनों ओर पंक्तियों में लगती हैं पर इसकी नहीं । जूही के फूल का अतर बनता है ।

२. एक प्रकार की आतशबाजी जिसके छूटने पर छोटे छोटे फूल से झड़ते दिखाई पड़ते हैं ।

जूही[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० यूक] एक प्रकार का कीड़ा जो सेम, मटर आदि की फलियों में लगता है । जुई ।

जृंभ—संज्ञा पुं० [सं० जृम्भ] [स्त्री० जृंभा, वि० जृंभक] १. जँभाई । जमुहाई । २. आलस्य । ३. प्रस्फुटन । विकास । खिलना (को०) ४. विस्तार । फैलाव (को०) । ५. एक पक्षी (को०) ।

जृंभक[1]—वि० [सं० जृम्भक] जँभाई लेनेवाला ।

जृंभक[2]—संज्ञा पुं० १. रुद्र गणों में एक । २. एक अस्त्र जिसके चलाने से शत्रु निद्राग्रस्त होकर लड़ाई छोड़ जँभाई लेने लगते, सो जाते या शिथिल पड़ जाते थे ।

विशेष—जब राम ने ताड़का आदि को मारा था तब विश्वामित्र ने प्रसन्न होकर मंत्र सहित यह अस्त्र उन्हें दिया था । विश्वामित्र को यह अस्त्र घोर तपस्या के उपरांत अग्नि से प्राप्त हुआ था ।

जृंभकास्त्र—संज्ञा पुं० [सं० जृम्भकास्त्र] दे० 'जृंभक'[2] ।

जृंभण[1]—संज्ञा पुं० [सं० जृम्भण] १. जँभाई लेना । २. अंगों को फैलाना (को०) । ३. खिलना । विकास (को०) ।

जृंभण[2]—वि० १. जँभाई लेनेवाला (को०) ।

जृंभमान—वि० [सं० जृम्भमत्] १. जँभाई लेता हुआ या जँभाई लेनेवाला । २ प्रकाशमान । खिलता हुआ । विकासमान ।

जृंभा—संज्ञा स्त्री० [सं० जृम्भा] १. जँभाई । २. आलस्य या प्रमाद से उत्पन्न जड़ता । ३. एक शक्ति का नाम । ४. खिलना । विकास (को०) ५. विस्तार । फैलाव (को०) ।

जृंभिका—संज्ञा स्त्री० [सं० जृम्भिका] १. आलस्य । २. जृंभा । ३ एक रोग जिससे मनुष्य शिथिल पड़ जाता है और बार बार जँभाई लिया करता है ।

विशेष—यह रोग निद्रा का अवरोध करने से उत्पन्न होता है ।

जृंभिणी—संज्ञा स्त्री० [सं० जृम्भिणी] एलापर्णी लता (को०) ।

जृंभिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० जृम्भिणी] एलापर्णी लता ।

जृंभित[1]—वि० [सं० जृम्भित] १. चेष्टित । २. प्रवृद्ध । फैला या फैलाया हुआ । ४. जिसने जँभाई ली हो (को०) ।

जृंभित[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. रंभा । २. स्फोटन । ३. स्त्रियों की ईहा या इच्छा ।

जृंभी—वि० [सं० जृम्भिन्] १. जँभाई लेनेवाला । २. खिलनेवाला (को०) ।

जेंटिलमैन—संज्ञा पुं० [अं०] सभ्य पुरुष । भद्रजन । संभ्रांत व्यक्ति

जेंटू—संज्ञा पुं० [?] १. हिंदू । २. हिंदुओं की भाषा ।

विशेष—पहले पहल पुर्तगालियों ने भारत के मूर्तिपूजकों के लिये इस शब्द का प्रयोग किया था । बाद ईस्ट इंडिया कंपनी के समय अंगरेज लोग उक्त अर्थ में इस शब्द का प्रयोग करने लगे ।

जेंताक—संज्ञा पुं०[सं० जेन्ताक] रोगी के शरीर में पसीना लाकर दूषित अंश और विकार आदि निकालने की एक क्रिया । भफारा ।

जेंगना(पु)—संज्ञा पुं० [प्रा० जोइंगण] दे० 'जुगनू—१' । उ०—सुंदर कहत एक रवि के प्रकास बिनु जेंगना की ज्योति, कहा रजनी बिलात है ।—संत वाणी०, भा० २, पृ० १२३ ।

जेँगरा†—संज्ञा पुं० [देश०] उर्द, मूँग, मोथी, ज्वार, बाजरे आदि के डंठल जो दाना निकाल लेने के बाद शेष रह जाते हैं । जेंगरा ।

जेँण†—क्रि० वि०[हिं०]दे० 'जहाँ' । उ०—चाल सखी तिण मंदिरइं, सज्जण रहियउ जेंण । कोइक मीठउ बोलड़इ, लागो होसइ तेंण । ढोला०, दू० ३५६ ।

जेना—क्रि० स० [सं० जेमनम्] दे० 'जेँवना' ।

जेँवन†—संज्ञा पुं० [हिं० जेवना] भोजन । खाने की वस्तु ।

जेँवना[1]—क्रि० स० [सं० जेमन] भोजन करना । खाना । भक्षण करना । उ०—(क) जो प्रभु निगम अगम करि गाए । जेंवन मिस ते हम पै आए । —नंद० ग्रं०, पृ० ३०४ । (ख) आनंदघन ब्रज जीवन जेंवत हिलिमिलि ग्वार तोरि पतानि ढाक । —घनानंद, पृ० ४७३ ।

जेँवना[2]—संज्ञा पुं० भोजन । भोजन । खाने का पदार्थ । वह जो कुछ खाया जाय ।

जेँवनार—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'जेवनार' । उ०—चहुँ प्रकार जेंवनार भई बहु भाँतिन्ह ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ६० ।

जेँवाना†—क्रि० स० [हिं० जेंवना] भोजन कराना । खिलाना । जिमाना ।

जे†(पु)[1]—सर्व० [सं० ये] १. 'जो' का बहुवचन । २. दे० 'जो' । उ०—जलचर थलचर नभचर नाना । जे जड़चेतन जीव जहाना । —मानस, १।३ ।

जे(पु)[2]—सर्व० [सं० एतत्] यह का बहुवचन । उ०—माई, जे दोऊ, कौन गोप के ढोटा । इनकी बात कहा कहौं तोसौं, गुनन बड़े, देखन के छोटा ।—नंद ग्रं०, पृ० २४१ ।

जे[3](पु)—सर्व० [सं० इदम्] यह । उ०—आगामिनी जामिनी जुग ही । ब्रजभामिनीन सौं जे कही । —नंद० ग्रं०, पृ० ३१७ ।

जेईं(पु)‡—सर्व० [हिं०] दे० 'जो' । उ०—हनिवंत बीर लंक जेईं

जारी। परबत मोहिं रहा रखवारी।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २५१।

जेइ(पु)†—सर्व० [हिं०] दे० 'जो'।

जेउँ—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'ज्यों'। उ०—टपकै महुव आँसु तस परई। होइ महुवा बसंत जेउँ झरई।—जायसी ग्रं०, पृ० २५६।

जेउ, जेऊ(पु)†—सर्व० [हिं०] दे० 'जो'।

जेज(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० झेर] देर। विलंब। उ०—जन रामा अब जेज न कीजे सतगुर ज्ञान जगावै हो।—राम० धर्म०, पृ० २४८।

जेझ(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० झेर] विलंब। देरी। उ०—धरी बात धांखा जेझ बिसरी जिण सायत।—रा० रू०, पृ० ३३६।

जेट[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० यूथ] १. समूह। यूथ। ढेर। २. रोटियों की तही। ३. मिट्टी के बरतनों का वह समूह जिसमें वे एक दूसरे के ऊपर रखे हों। ४. गोद। कोरा।

जेट[2]—संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार का वायुयान।

जेटी—संज्ञा स्त्री० [अं०] नदी या समुद्र के किनारे पर बना हुआ वह बड़ा चबूतरा जिसपर से जहाजों का माल चढ़ाया और उतारा जाता है।

जेठंस†—संज्ञा पुं० [सं० ज्येष्ठ + अंश] पैतृक संपत्ति में बड़े भाई का बड़ा हिस्सा।

जेठंसो†—वि० [सं० ज्येष्ठांशिन्] पैतृक सपत्ति में बड़े भाई की हैसियत से बड़े हिस्से का अधिकारी।

जेठ—संज्ञा पुं० [सं० ज्येष्ठ] १. एक चांद्र मास जो बैसाख और असाढ़ के बीच में पड़ता है।

विशेष—जिस दिन इस मास की पूर्णिमा होती है उस दिन चंद्रमा ज्येष्ठा नक्षत्र में रहता है, इसी से इसे ज्येष्ठ या जेठ कहते हैं। यह ग्रीष्म ऋतु का पहला और संवत् का तीसरा मास है। सौर मास के हिसाब से जेठ वृष संक्रांति से आरंभ होकर मिथुन संक्रांति तक रहता है।

२. [स्त्री० जेठानी] पति का बड़ा भाई। भसुर।

जेठ[2]—वि० अग्रज। बड़ा। उ०—जेठ स्वामि सेवक लघु भाई। यह दिनकर कुल रीति सुहाई।—तुलसी (शब्द०)।

जेठउत—संज्ञा पुं० [हिं० जेठ + उत (प्रत्य०)] पति का बड़ा भाई।

जेठरा†—वि० [हिं० जेठ + रा (प्रत्य०)] दे० 'जेठ' (वि०)।

जेठरैत[1]—संज्ञा पुं० [हिं० जेठरा + ऐत (प्रत्य०)] गाँव का मुखिया।

जेठरैता†—वि० ज्येष्ठ। बड़ा।

जेठरैयत—संज्ञा पुं० [हिं० जेठ + अ० रैयत] गाँव का मुखिया, जिसकी संमति के अनुसार गाँव के सब लोग कार्य करते हों।

जेठवा—संज्ञा पुं० [हिं० जेठ] एक प्रकार की कपास जो जेठ में तैयार होती है। इसे झुलवा भी कहते हैं। वि० दे० 'झुलवा'।

जेठा—वि० [सं० ज्येष्ठ] [वि० स्त्री० जेठी] १. अग्रज। बड़ा। २. सबसे उत्तम। सबसे अच्छा।

मुहा०—जेठा रंग = वह रंग जो कई बार की रंगाई में सबसे अंतिम बार रँगा जाय।

जेठाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० जेठा] जेठ होने का भाव या दशा। बड़ाई। जेठापन।

जेठानी—संज्ञा स्त्री० [हिं० जेठ] जेठ की स्त्री। पति के बड़े भाई की स्त्री।

जेठी[1]—वि० [हिं० जेठ + ई (प्रत्य०)] १. जेठ संबंधी। जेठ का। जैसे, जेठी धान। जेठी कपास। २. बड़ी। पहली।

जेठी[2]—संज्ञा स्त्री० १. एक प्रकार की कपास जो जेठ में पकती और फूटती है।

विशेष—इसे बरार या विदर्भ में टिकड़ी या जुड़ी और काठियावाड़ में गंगरी कहते हैं।

२. जेठानी। उ०—जेठी पठाई गई दुलही हँसि हेरि हरै मतिराम बुलाई।—इतिहास, पृ० २५४।

जेठी[3]—संज्ञा पुं० बोरो नाम का धान जो चैत में नदियों के किनारे बोया और जेठ में काटा जाता है।

जेठी मधु—संज्ञा स्त्री० [सं० यष्टिमधु] मुलेठी।

जेठुआ†—वि० [हिं०] दे० 'जेठी'।

जेठौत—संज्ञा पुं० [सं० ज्येष्ठ + पुत्र] [स्त्री जेठौती] १. जेठ का लड़का। पति के बड़े भाई का पुत्र। जेठानी का पुत्र। २. पति का बड़ा भाई। भसुर।

जेठौता—संज्ञा पुं० [हिं० जेठौत] दे० 'जेठौत'।

जेत†—वि० [हिं०] दे० 'जितना'। उ०—जेत बरानी औ असवारा। आए मोर सब चाल निहारा।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३११।

जेतक(पु)—वि० [हिं०] दे० 'जितना'। उ०—जेतक नेम धरम किए री मैं बहु बिधि अंग अंग भई मैं तो लवन मई री।—नंद० ग्रं०, पृ० ३४५।

जेतना(पु)†—वि० [हिं० जितना] दे० 'जितना'। उ०—बिधु महि पूर मयूखन्हि रवि तप जेतनेहि काज। मागे बारिद देहि जल रामचंद्र के राज।—मानस, ७।२३।

जेतवार†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'जैतवार'।

जेता[1]—वि० [सं० जेतृ] १. जीतनेवाला। विजय करनेवाला। विजयी।

जेता[2]—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

जेता[3](पु)—क्रि० वि० [सं० यावत्] जितना।

जेता(पु)[4]—वि० [हिं० जिस + तना (प्रत्य०)] जिस मात्रा का। जिस परिमाण का। जितना। उ०—सकल दीप महँ जेती रानी। तिन्ह महँ दीपक बारह बानी।—जायसी (शब्द०)।

जेतार(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'जेता'।

जेति(पु)†—वि० [हिं० जितना] जितना। उ०—हहूँ रंग बहु जानति लहरैं जेति समुंद। पै पिय की चतुराई सकिउँ न एको बुंद। जायसी ग्रं०, (गुप्त), पृ० ३४१।

जेतिकⓅ†[1]—क्रि॰ वि॰ [हिं॰ जितना] जितना। जिस कदर। जिस मात्रा में। जिस परिमाण में।

जेतिक[2]—वि॰ दे॰ 'जितना'। उ॰—जेतिक भोजन ब्रज तें आयौ। गिरि रूपी हरि सिगरौ खायौ।—नंद॰ ग्रं॰, पृ॰ ३०७।

जेतीⓅ†—वि॰ स्त्री॰ [हिं॰ जेता] जितनी। उ॰—जेती लहर समुद्र की तेती मन की दौर। सहजै हीरा नीपजैं जो मन आवै ठौर।—कबीर सा॰, पृ॰ ५५।

जेतो[1]Ⓟ†—क्रि॰ वि॰ [हिं॰] जितना। जिस कदर। उ॰—धीरज ज्ञान सयान सबै, गँग जेतोई सारत तेतोई ढहै।—गंग॰, पृ॰ ७७।

जेतो[2]—वि॰ दे॰ 'जितना'।

जेतौ[1]—क्रि॰ वि॰ [हिं॰] दे॰ 'जेतो'।

जेतौ[2]‡—वि॰ दे॰ 'जितना'। उ॰—पर वह रूप अनूपम जेतौ। नैननि गह्यो गयो नहीं तेतौ।—नंद॰ ग्रं॰, पृ॰ १२८।

जेन केनⓅ—क्रि॰ वि॰ [सं॰ येन + केन] जैसे तैसे। उ॰—जेन केन परकार होइ अति कृष्ण मगन मन। अनाकर्ण चैतन्य कछु न चितवै साधन तन।—नंद॰ ग्रं॰, पृ॰ ४६।

जेनरल[1]—वि॰ [अं॰] १. आम। सामान्य।

यौ॰—जेनरल इलेक्शन = आम चुनाव। साधारण निर्वाचन। जेनरल मर्चेंट = सामान्य उपयोग के सामान का विक्रेता।

२. बड़ा। प्रधान।

यौ॰—जेनरल सेक्रेटरी = संस्था, संस्थान या विभाग का प्रधान मंत्री। जेनरल स्टाफ = सेनापति का सहकारी मंडल।

जेनरल[2]—संज्ञा पुं॰ [अं॰] फौजी अफसर का एक पद जो सेनापति के अधीन होता है (को॰)।

जेना†—क्रि॰ स॰ [सं॰ जेमन] दे॰ 'जीमना'।

जेन्य—वि॰ [सं॰] १. अभिजात। कुलीन। २. असली। सच्चा। ३. विजेता (को॰)।

जेन्यावसु—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. इंद्र। २. अग्नि।

जेपाल—संज्ञा पुं॰ [सं॰] एक औषधोपयोगी पौधा। जैपाल। जमाल-गोटा (को॰)।

जेप्लिन—संज्ञा पुं॰ [जर्मन] एक विशेष प्रकार का बहुत बड़ा हवाई जहाज।

विशेष—इसका आविष्कार जर्मनी के काउंट जेप्लिन साहब ने किया था। इसका ऊपरी भाग सिगार के आकार का लंबोतरा होता है जिसके खानों में गैस से भरी हुई बहुत बड़ी बड़ी थैलियाँ होती हैं। बड़े लंबोतरे चौखटे में नीचे की ओर एक या दो संदूक लटकते हुए लगे रहते हैं जिनमें आदमी बैठते हैं और तोपें रखी जाती हैं। सब प्रकार के आकाशयानों से इसका आकार बहुत बड़ा होता है।

जेब[1]—संज्ञा पुं॰ [अ॰] पहनने के कपड़ों (कोट, कुरते, कमीज, अंगे आदि) में बगल या सामने की ओर लगी वह छोटी थैली या चकती जिसमें रूमाल, कागज आदि चीजें रखते हैं। खीसा। खलीता। पाकेट।

क्रि॰ प्र॰—कतरना।—काटना।

यौ॰—जेबकट। जेबखर्च। जेबघड़ी।

मुहा॰—जेब कतरना = जेब काटकर रुपए पैसे का अपहरण। जेब खाली होना = पास में पैसा न होना। जेब भरी होना = पास में काफी रुपया होना।

जेब[2]—संज्ञा स्त्री॰ [फ़ा॰ जेब] शोभा। सौंदर्य। फबन।

मुहा॰—जेब तन बदलना = पहनना। धारण करना। जेब देना = शोभित होना।

यौ॰—जेबदार = तर्जदार। अच्छा। सुंदर।

जेबकट—संज्ञा पुं॰ [फ़ा॰ जेब + हिं॰ काटना] वह मनुष्य जो चोरी से दूसरों के जेब से रुपया पैसा लेने के लिये जेब काटता हो। जेबकतरा। गिरहकट।

जेबकतरा—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ जेब + कतरना] दे॰ 'जेबकट'।

जेबखर्च—संज्ञा पुं॰ [फ़ा॰ जेबखर्च] वह धन जो किसी को निज के खर्च के लिये मिलता हो और जिसका हिसाब लेने का किसी को अधिकार न हो। भोजन, वस्त्र आदि के व्यय से भिन्न, निज का और ऊपरी खर्च।

जेबखास—संज्ञा पुं॰ [फ़ा॰ जेब + अ॰ खास] राज्यकोष से राजा या बादशाह के निजी खर्च के लिये दिया जानेवाला धन।

जेबघड़ी—संज्ञा स्त्री॰ [फ़ा॰ जेब + हिं॰ घड़ी] वह छोटी घड़ी जो जेब में रखी जाती है। जेबी घड़ी। वाच।

जेबदार—वि॰ [फ़ा॰ जेबदार] सुंदर। शोभायुक्त।

जेबरा—संज्ञा पुं॰ [अं॰ जेबरा] जबरा नाम का जंगली जानवर। दे॰ 'जबरा'।

जेबा—वि॰ [फ़ा॰ जेबा] सुंदर। मनोरम। शोभनीय। ललित (को॰)।

मुहा॰—जेबा देना = शोभा देना। सुंदर लगना।

जेबी—वि॰ [फ़ा॰] १. जेब में रखने योग्य। जो जेब में रखा जा सके। जैसे, जेबी घड़ी।

२. बहुत छोटा।

जेबोजीनत—संज्ञा स्त्री॰ [फ़ा॰ जेब + अ॰ जीनत] बनाव सिंगार। वेश भूषा। ठाट बाट। शृंगार। सजावट (को॰)।

जेमन—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. भोजन करना। जीमना। २. आहार। खाद्य (को॰)।

जेय—वि॰ [सं॰] जीतने योग्य। जो जीता जा सके।

जेर[1]—संज्ञा स्त्री॰ [देश॰] आँवल। वह झिल्ली जिसमें गर्भगत बालक रहता और पुष्ट होता है।

जेर[2]—अव्य॰ [फ़ा॰ ज़ेर] नीचे। तले (को॰)।

जेर[3]—वि॰ [फ़ा॰ ज़ेर] [देश॰ जेरबरी] १. परास्त। पराजित। २. जो बहुत दिक किया जाय। जो बहुत तंग किया जाय।

क्रि॰ प्र॰—करना = हराना। पछाड़ना।

जेर[4]—संज्ञा स्त्री॰ [फ़ा॰ ज़ेर] अरबी और फारसी के अक्षरों के नीचे लगनेवाला एक संकेत चिह्न जो इ, ई, और ए की मात्राओं का सूचक होता है।

जेर[5]—संज्ञा पुं॰ [देश॰] एक पेड़।

विशेष—यह सुंदरबन में अधिकता से होता है। इसके हीर की लकड़ी लाली लिए सफेद होती है और मजबूत होने के कारण इसकी लकड़ी से मेज, कुरसी, आलमारी इत्यादि बनती हैं।

जेरजामा—संज्ञा पुं० [फ़ा० जे़रजामह्] १. अधोवस्त्र। कटिवस्त्र। २. घोड़े की जीन के नीचे पीठ पर डाला जानेवाला कपड़ा [को०]।

जेरतजवीज—वि० [फ़ा० जे़र+अ० तज्वीज] विचाराधीन [को०]।

जेरदस्त—वि० [फ़ा० जे़रदस्त] अधीन। वशीभूत। असहाय [को०]।

जेरनजर—क्रि० वि० [फ़ा० जे़र+अ० नजर] आँखों में। दृष्टि में।
क्रि० प्र०—पड़ना।—होना।

जेरना(पु)—क्रि० स० [हिं० जेर] तंग करना। सताना। उत्पीड़ित करना।

जेरपाई—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जेरपाई] १. स्त्रियों के पहनने की जूती। स्लीपर। २. साधारण जूता।

जेरपेच—संज्ञा पुं० [फ़ा० जेरपेच] पगड़ी के नीचे पहनी जानेवाली छोटी पगड़ी या टोपी [को०]।

जेरबंद—संज्ञा पुं० [फ़ा० जेरबार] घोड़े की मोहरी में लगा हुआ वह कपड़ा या चमड़े का तस्मा जो तंग में फँसाया जाता है।

जेरबार—वि० [फ़ा० जेरबार] १. जो किसी विशेष आपत्ति के कारण बहुत तंग और दुःखी हो। आपत्ति या दुःख की बोझ से लदा हुआ। २. क्षतिग्रस्त। जिसकी बहुत हानि हुई हो।

जेरबारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जेरबारी] १. आपत्ति या क्षति के कारण बहुत दुखी होने की क्रिया। तंगी। २. हैरानी। परेशानी।
क्रि० प्र०—होना।—सहना।

जेरिया—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'जेरी' २. और ३.।

जेरी—संज्ञा स्त्री० [?] १. दे० 'जेर[1]'। २. वह लाठी जो चरवाहे कँटीली झाड़ियाँ इत्यादि हटाने या दबाने के लिये सदा अपने पास रखते हैं। उ०—उतहि सखा कर जेरी लीन्हें गारी देहि सकुच तोरी की। इतहि सखा कर बाँस लिए बिच मारु मची भोरा भोरी की।—सूर (शब्द०)। ३. खेती का एक औजार जो फरुई के आकार का काठ का होता है। इसका व्यवहार अन्न दाँवने के समय पुआल हटाने में होता है। सिचाई के लिये दौरी चलाने में भी यह काम में आता है।

जेरेखाक—क्रि० वि० [फ़ा० जेरेखाक] १. मिट्टी के नीचे। २. कब्र में [को०]।
क्रि० प्र०—जाना।—होना।

जेरें नजर—क्रि० वि० [फ़ा० जे़र+अ० नजर] दे० 'जेरनजर'।

जेरेसाया—वि० [फ़ा० जेरेसायह्] किसी का आश्रित। किसी की छाया में [को०]।

जेरे हिरासत—वि० [फा० जे़रे+अ० हिरासत] गिरफ्तारी में पड़ा हुआ [को०]।
क्रि० प्र०—होना।

जेरे हुकूमत—वि० [फा० जे़र+अ० हुकूमत] शासन के अधीन। मातहत देश [को०]।

जेरोजबर—क्रि० वि० [फ़ा० जे़रोजबर] नीचे ऊपर उथल पुथल। अस्तव्यस्त (को०)।
क्रि० प्र०—करना।—होना।

जेल[1]—संज्ञा पुं० [अं०] वह स्थान जहाँ राज्य द्वारा दंडित अपराधी आदि कुछ निश्चित समय के लिये रखे जाते हैं। कारागार। बंदी गृह।
मुहा०—जेल काटना, जाना या भोगना = जेल में रहकर दंड भोगना।

जेल[2]—संज्ञा पुं० [फ़ा० जे़र] जंजाल। हैरानी या परेशानी का काम। उ०—खेलत खेल सहेलिन में पर खेल नवेली को जेल सौं लागे।—मतिराम (शब्द०)।

जेलखाना—संज्ञा पुं० [अं० जेल+फा० खानह्] कारागार। वि० दे० 'जेल'।

जेलर—संज्ञा पुं० [अं०] जेलखाने का अध्यक्ष। जेल का अफसर।

जेलाटीन—संज्ञा स्त्री० [अं०] जानवरों विशेषतः कई प्रकार की मछलियों के मांस, हड्डी खाल आदि को उबालकर तैयार की हुई एक बहुत साफ और बढ़िया सरेस जिसका व्यवहार फोटोग्राफी और चिट्ठियों आदि की नकल करने के लिये पैड बनाने में होता है।
विशेष—यह पशुओं को खिलाई भी जाती है। पर इसमें पोषक द्रव्य बहुत ही थोड़े होते हैं। खूब साफ की हुई जेलाटीन से औषधों की गोलियाँ भी बनाई जाती है।

जेली[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० जेरी] घास या भूसा इकट्ठा करने का औजार। पाँचा।

जेली[2]—संज्ञा स्त्री० [अं०] एक प्रकार की विदेशी मिठाई या गाढ़ी मीठी चटनी जो फलों आदि द्वारा चीनी के साथ उबालकर बनाई जाती है। इसे गाढ़ा या कड़ा कर देते है।

जेवड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'जेवरी'।

जेवना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'जीमना'।

जेवनार—संज्ञा स्त्री० [हिं० जेवना] १ बहुत से मनुष्यों का एक साथ बैठकर भोजन करना। भोज। २. रसोई। भोजन।

जेवर[1]—संज्ञा पुं० [फ़ा० जे़वर] धातु या रत्नों आदि की बनी हुई वह वस्तु जो शोभा के लिये अंगों में पहनी जाती है। गहना। आभूषण। अलंकार। आभरण।

जेवर[2]—पुं० [देश०] एक प्रकार का महोख पक्षी जिसे जबी या सिंघ मोनाल भी कहते है।
विशेष—यह शिमले में बहुत पाया जाता है।

जेवर[3]†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'जेवरी'।

जेवरा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ज्योरा'।

जेवरात—संज्ञा पुं० [फ़ा० जे़वरात] जेवर का बहुवचन।

जेवरी†—संज्ञा स्त्री० [सं० जीवा] रस्सी।

जेष्ठ[1]—संज्ञा पुं० [सं० ज्येष्ठ] १. जेठ मास। २. जेठ। पति का बड़ा भाई।

जेष्ठ[2]—वि० [सं० ज्येष्ठ] अग्रज। जेठा। बड़ा।

जेष्ठा—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्येष्ठा] दे० 'ज्येष्ठा'।

जेह—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जिह् (= चिल्ला), तुलनीय सं० ज्या] १. कमान की डोरी में वह स्थान जो आँख के पास लगाया जाता है और

जिसकी सीध में निशान रहता है। चिल्ला। उ०—तिय कत कमनैती पढ़ी बिन जेह भौंह कमान। चित चल बेधे चुकति नहिं, बंक बिलोकनि बान।—बिहारी (शब्द०) २. दीवार में नीचे की ओर दो तीन हाथ की ऊँचाई तक पलस्तर या मिट्टी आदि का वह लेप जो कुछ अधिक मोटा और उसके तल से अधिक उभरा हुआ होता है। उ०—गदा, पदम औ चक्र संख असि, पंचतत्व सूचक रामुझन। अरु, इन पाँचन की गति हरि के बस यही जगत को जेह। भस्म गग लोचन अहि डमरू पंचतत्व अरु भौरू, हर के बस पाँचहु यह पंवरू जिनसे पिंड डरेह।—देवस्वामी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—उतारना।—निकालना।

जेहड़—संज्ञा स्त्री० [हिं० जेट+घट] एक पर एक रखे हुए पानी से भरे हुए बहुत से घड़े।

जेहन—संज्ञा पुं० [अ० जेह्न] [वि० जहीन] बुद्धि। धारणाशक्ति।

जेहनदार—वि० [अ० जेह्न+फा० दार (प्रत्य०)] धारणा शक्तिवाला। बुद्धिमान [को०]।

जेहर†—संज्ञा स्त्री० [?] पैर में पहनने का घुँघरूदार पाजेब नाम का जेवर।

जेहरिⓅ†—संज्ञा स्त्री० [हिं० जेहर] दे० 'जेहर'। उ०—(क) पग जेहरि बिछियन की भमकनि चलत परस्पर बाजत।—सूर (शब्द०)। (ख) पग जेहरि जंजीरनि जकर्यो यह उपमा कछु पावै।—सूर (शब्द०)। (ग) अमिल सुमिल सीढ़ी मदन सदन की कि जगमगै पग युग जेहरि जराय की।—केशव (शब्द०)।

जेहल[1]†—संज्ञा स्त्री० [अ० जहल] [वि० जेहली] हठ। जिद।

जेहल[2]‡—संज्ञा पुं० [अं० जेल] दे० 'जेल'।

जेहलखाना—संज्ञा पुं० [हिं० जेलखाना] दे० 'जेलखाना' या 'जेल'।

जेहली—वि० [अ० जेहल] जो समझाने से भी किसी बात की भलाई बुराई न समझे और अपनी हठ न छोड़े। हठी। जिद्दी।

जेहिⓅ†—सर्व० [सं० यस्य, प्रा० जस्स, जिस, जेहि] जिसको। उ०—जेहि सुमिरत सिधि होय गणनायक करिबर बदन।—तुलसी (शब्द०)।

जेह्न—संज्ञा पुं० [अ० जेह्न] बुद्धि। धारणा शक्ति।

जैंता†—संज्ञा पुं० [सं० जयन्ती] जैत का पेड़।

जै[1]Ⓟ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'जय'।

जै[2]Ⓟ—वि० [सं० यावत्, प्रा० जाव] जितने। जिस संख्या में।

जैकरीⓅ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'जयकरी'।

जैकारⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'जयकार'।

जैकाराⓅ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'जयकार'।

जैगीषव्य—संज्ञा पुं० [सं०] योगशास्त्र के वेत्ता एक मुनि का नाम।

विशेष—महाभारत में इनकी कथा विस्तार से लिखी है। असित देवल नामक एक ऋषि आदित्य तीर्थ में निवास करते थे। एक दिन उनके यहाँ जैगीषव्य नामक एक ऋषि आए और उन्हीं के यहाँ निवास करने लगे। थोड़े ही दिनों में जैगीषव्य योग साधन द्वारा परम सिद्ध हो गए और असित देवल सिद्धिलाभ न कर सके। एक दिन जैगीषव्य कहीं से घूमते फिरते भिक्षुक के रूप में देवल के पास आकर बैठे। देवल यथाविधि उनकी पूजा करने लगे। जब बहुत दिन तक पूजा करते हो गए और जैगीषव्य अटल भाव से बैठे रहे, कुछ बोलेचाले नहीं तब देवल ऊबकर आकाश पथ से स्नान करने चले गए। समुद्र के किनारे उन्होंने जाकर देखा तो जैगीषव्य को स्नान करते पाया। आश्चर्य से चकित होकर देवल जल्दी से आश्रम को लौट गए। वहाँ पर उन्होंने जैगीषव्य को उसी प्रकार अटल भाव से बैठे पाया। इसपर देवल आकाश मार्ग में जाकर उनकी गति का निरीक्षण करने लगे। उन्होंने देखा कि आकाशचारी अनेक सिद्ध जैगीषव्य की सेवा कर रहे हैं, फिर देखा कि वे नाना मार्गों में स्वेच्छापूर्वक भ्रमण कर रहे हैं। ब्रह्मलोक, गोलोक, पतिव्रत लोक इत्यादि तक तो देवल पीछे गए पर इसके आगे वे न देख सके कि जैगीषव्य कहाँ गए। सिद्धों से पूछने पर मालूम हुआ कि वे सास्वत ब्रह्मलोक में गए हैं जहाँ कोई नहीं जा सकता। इस पर देवल घर लौट आए। वहाँ जैगीषव्य को ज्यों का त्यों बैठे देख उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। इसके बाद वे जैगीषव्य के शिष्य हुए और उनसे योगशास्त्र की शिक्षा ग्रहण करके सिद्ध हुए।

जैचंदⓅ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'जयचंद'।

जैजैकार—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'जयजयकार'।

जैजैवंती—संज्ञा स्त्री० [सं० जयजयवंती] भैरव राग की एक रागिनी जो सबेरे गाई जाती है।

जैढक—संज्ञा पुं० [सं० जय+ढक्का] एक प्रकार का बड़ा ढोल। विजय ढोल। जंगी ढोल।

जैत[1]Ⓟ†—संज्ञा स्त्री० [सं० जैत्र] विजय। जीत। फतह।

जैत[2]—संज्ञा पुं० [अ०] जैतून वृक्ष। २ जैतून की लकड़ी।

जैत[3]—संज्ञा पुं० [सं० जयन्ती] अगस्त की तरह का एक पेड़।

विशेष—इसमें पीले फूल और लंबी फलियाँ लगती हैं। इन फलियों की तरकारी होती है। पत्तियाँ और बीज दवा के काम में आते हैं।

जैतपत्रⓅ—संज्ञा पुं० [सं० जयति+पत्र] जयपत्र। जीत की सनद।

जैतवारⓅ†—वि० [हिं० जैत+वार (प्रत्य०)] जीतनेवाला। विजयी। विजेता। उ०—सत्ता को सपूत राव सगर को सिंह सोहै, जैतवार जगत करेरी किरवान को।—मति० ग्रं०, पृ० ३७७।

जैतश्री—संज्ञा स्त्री० [सं० जयन्तिश्री] एक रागिनी।

जैती—संज्ञा स्त्री० [सं० जयन्तिका] एक प्रकार की घास जो रबी की फसल में खेतों में आप से आप उगती है।

जैतून—संज्ञा पुं० [अ०] एक सदाबहार पेड़।

विशेष—यह अरब, शाम आदि से लेकर युरोप के दक्षिणी भागों तक सर्वत्र होता है। इसकी ऊँचाई अधिक से अधिक ४० फुट तक होती है। इसका आकार ऊपर गोलाई लिए होता है।

पत्तियाँ इसकी नरकट की पत्तियों से मिलती जुलती, पर उनसे छोटी होती हैं। ये ऊपर की ओर हरी और नीचे की ओर सफेदी लिए होती हैं। फूल छोटे-छोटे होते हैं और गुच्छों में लगते हैं। फल कचरी के से होते हैं। पश्चिम की प्राचीन जातियाँ इसे पवित्र मानती थी। रोमन और यूनानी विजेता इसकी पत्तियों की माला सिर पर धारण करते थे। अरबवाले भी इसे पवित्र मानते थे जिसमे मुसलमान लोग अबतक इसकी लकड़ी की तसबीह (माला) बनाते हैं। इस पेड़ के फल और बीज दोनों काम में आते हैं। फल पकने पर नीलापन लिए काले होते हैं। कच्चे फलों का मुरब्बा और अचार पड़ता है। बीजों से तेल निकलता है। लकड़ी सजावट के सामान बनाने के काम मे आती है। इसकी लकड़ी धूप से चिटकती नहीं।

जैत्र¹—वि० [सं०] [वि० स्त्री० जैत्री] १. विजेता। विजयी। उ०—चारु चल चक्र चित्रित विचित्रित परम जगत विजयी जयति कृष्ण को जैत्र रथ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ४४७।

यौ०—जैत्ररथ = विजयी।

२. सर्वोत्तम (को०)।

जैत्र²—संज्ञा पुं० १. पारा। २. औषध। ३. विजयी व्यक्ति। विजेता पुरुष (को०)। ४. विजय (को०)। ५ सर्वोच्चता (को०)।

जैत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] जयंती वृक्ष। जैत का पेड़।

जैन—संज्ञा पुं० [सं०] १. जिन का प्रवर्तित धर्म। भारत का एक धर्म संप्रदाय जिसमें अहिंसा को परम धर्म माना जाता है और कोई ईश्वर या सृष्टिकर्ता नही माना जाता।

विशेष—जैन धर्म कितना प्राचीन है ठीक ठीक नहीं कहा जा सकता। जैन ग्रंथों के अनुसार महावीर या वर्धमान ने ईसा से ५२७ वर्ष पूर्व निर्वाण प्राप्त किया था। इसी समय से पीछे कुछ लोग विशेषकर यूरोपियन विद्वान् जैन धर्म का प्रचलित होना मानते हैं। उनके अनुसार यह धर्म बौद्ध धर्म के पीछे उसी के कुछ तत्वों को लेकर और उनमें कुछ ब्राह्मण धर्म की शैली मिलाकर खड़ा किया गया। जिस प्रकार बौद्धों में २४ बुद्ध हैं उसी प्रकार जैनों में भी २४ तीर्थंकर हैं। हिंदू धर्म के अनुसार जैनों ने भी अपने ग्रंथों को आगम, पुराण आदि में विभक्त किया है पर प्रो० जेकोबी आदि के आधुनिक अन्वेषणों के अनुसार यह सिद्ध किया गया है कि जैन धर्म बौद्ध धर्म से पहले का है। उदयगिरि, जूनागढ़ आदि के शिलालेखों से भी जैनमत की प्राचीनता पाई जाती है। ऐसा जान पड़ता है कि यज्ञों की हिंसा आदि देख जो विरोध का सूत्रपात बहुत पहले से होता आ रहा था उसी ने आगे चलकर जैन धर्म का रूप प्राप्त किया। भारतीय ज्योतिष में यूनानियों की शैली का प्रचार विक्रमीय संवत् से तीन सौ वर्ष पीछे हुआ। पर जैनों के मूल ग्रंथ अंगों में यवन ज्योतिष का कुछ भी आभास नहीं है। जिस प्रकार ब्राह्मणों की वेद संहिता में पंचवर्षात्मक युग है और कृत्तिका से नक्षत्रों की गणना है उसी प्रकार जैनों के अग ग्रंथों में भी है। इससे उनकी प्राचीनता सिद्ध होती है। जैन लोग सृष्टिकर्ता ईश्वर को नहीं मानते, जिन या अर्हत् को ही ईश्वर मानते हैं। उन्हीं की प्रार्थना करते हैं और उन्हीं के निमित्त मंदिर आदि बनवाते हैं। जिन २४ हुए हैं, जिनके नाम ये हैं—ऋषभदेव, अजितनाथ, संभवनाथ, अभिनंदन, सुमतिनाथ, पद्मप्रभ, सुपार्श्व, चंद्रप्रभ, सुविधिनाथ, शीतलनाथ, श्रेयांसनाथ, वासुपूज्य स्वामी, विमलनाथ, अनंतनाथ, धर्मनाथ, शांतिनाथ, कुंथुनाथ, अरनाथ, मल्लिनाथ, मुनिसुव्रत स्वामी, नमिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ, महावीर स्वामी। इनमें से केवल महावीर स्वामी ऐतिहासिक पुरुष हैं जिनका ईसा से ५२७ वर्ष पहले होना ग्रंथों से पाया जाता है। शेष के विषय मे अनेक प्रकार की अलौकिक और प्रकृतिविरुद्ध कथाएँ हैं। ऋषभदेव की कथा भागवत आदि कई पुराणों में आई है और उनकी गणना हिंदुओं के २४ अवतारों में है। जिस प्रकार काल हिंदुओं में मन्वंतर कल्प आदि में विभक्त है उसी प्रकार जैन लोगो में काल दो प्रकार का है—उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी। प्रत्येक उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी में चौबीस चौबीस जिन या तीर्थंकर होते हैं। ऊपर जो २४ तीर्थंकर गिनाए गए हैं वे वर्तमान अवसर्पिणी के हैं। जो एक बार तीर्थंकर हो जाते हैं वे फिर दूसरी उत्सर्पिणी या अवसर्पिणी में जन्म नहीं लेते। प्रत्येक उत्सर्पिणी या अवसर्पिणी में नए नए जीव तीर्थंकर हुआ करते हैं। इन्हीं तीर्थंकरों के उपदेशों को लेकर गणधर लोग द्वादश अंगों की रचना करते हैं। ये ही द्वादशांग जैन धर्म के मूल ग्रंथ माने जाते हैं। इनके नाम ये हैं—आचारांग, सूत्रकृतांग, स्थानांग, समवायांग, भगवती सूत्र, ज्ञाताधर्मकथा, उपासक दशांग, अंतकृत् दशांग, अनुत्तरोपपातिक दशांग, प्रश्न व्याकरण, विपाकश्रुत, दृष्टिवाद। इनमें से ग्यारह अंश तो मिलते हैं पर बारहवाँ दृष्टिवाद नहीं मिलता। ये सब अंग अर्धमागधी प्राकृत मे है और अधिक से अधिक बीस बाईस सौ वर्ष पुराने हैं। इन आगमों या अंगों को श्वेतांबर जैन मानते हैं। पर दिगंबर पूरा पूरा नहीं मानते। उनके ग्रंथ संस्कृत मे अलग हैं जिनमें इन तीर्थंकरों की कथाएँ हैं और २४ पुराण के नाम से प्रसिद्ध हैं। यथार्थ में जैन धर्म के तत्वों को संग्रह करके प्रकट करनेवाले महावीर स्वामी ही हुए हैं। उनके प्रधान शिष्य इंद्रभूति या गौतम थे जिन्हें कुछ युरोपियन विद्वानों ने भ्रमवश शाक्य मुनि गौतम समझा था। जैन धर्म में दो संप्रदाय हैं—श्वेतांबर और दिगंबर। श्वेतांबर ग्यारह अंगों को मुख्य धर्म मानते हैं और दिगंबर अपने २४ पुराणों को। इसके अतिरिक्त श्वेतांबर लोग तीर्थंकरों की मूर्तियों को कच्छ या लँगोट पहनाते हैं और दिगंबर लोग नंगी रखते हैं। इन बातों के अतिरिक्त तत्व या सिद्धांतों में कोई भेद नहीं है। अर्हत् देव ने संसार को द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा से अनादि बताया है। जगत् का न तो कोई कर्ता हर्ता है और न जीवों को कोई सुख दुःख देनेवाला है। अपने अपने कर्मों के अनुसार जीव सुख दुःख पाते हैं। जीव या आत्मा का मूल स्वभाव शुद्ध, बुद्ध, सच्चिदानंदमय है, केवल पुद्गल या कर्म के आवरण से उसका मूल स्वरूप आच्छादित हो जाता है। जिस समय यह पौद्गलिक भार हट जाता है उस समय आत्मा परमात्मा की उच्च दशा को प्राप्त होता है। जैन मत स्याद्वाद

के नाम से भी प्रसिद्ध है। स्याद्वाद का अर्थ है अनेकांतवाद अर्थात् एक ही पदार्थ में नित्यत्व और अनित्यत्व, सादृश्य और विरूपत्व, सत्व और असत्व, अभिलाष्यत्व और अनभिलाष्यत्व आदि परस्पर भिन्न धर्मों का सापेक्ष स्वीकार। इस मत के अनुसार आकाश से लेकर दीपक पर्यंत समस्त पदार्थ नित्यत्व और अनित्यत्व आदि उभय धर्म युक्त हैं।

२. जैन धर्म का अनुयायी। जैनी।

जैनी—संज्ञा पुं० [हिं० जैन] जैन मतावलंबी।

जैनुⓅ†—संज्ञा पुं० [हिं० जेवना] भोजन। आहार। उ०—इहाँ रहौ जहँ जूठनि पावै ब्रजबासी के जैनु।—सूर (शब्द०)।

जैपत्रⓅ—संज्ञा पुं० [सं० जयपत्र] दे० 'जयपत्र'।

जैपाल—संज्ञा पुं० [सं०] जमालगोटा।

जैबो, जैबौ†—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'जाना'। उ०—बनत नहीं जमुना को पैबो। सुंदर स्याम घाट पर ठाढ़े, कहौ कौन बिध जैबो।—सूर०, १०। ७७६।

जैमंगल—संज्ञा पुं० [सं० जयमङ्गल] १. एक वृक्ष जिसकी लकड़ी मजबूत होती है।

विशेष—इसकी लकड़ी से मेज, कुरसी आदि सजावट की चीजें बनाई जाती है।

२. खास राजा की सवारी का हाथी। ३. संगीत में एक ताल (को०)। ४. जयकार (को०)।

जैमालⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० जयमाल] दे० 'जयमाल'।

जैमालाⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० जयमाला] दे० 'जयमाल'।

जैमिनि—संज्ञा पुं० [सं०] पूर्वमीमांसा के प्रवर्तक एक ऋषि जो व्यास जी के ४ मुख्य शिष्यों में से एक थे।

विशेष—कहते हैं, इनकी रची एक भारतसंहिता भी थी जिसका अब केवल अश्वमेघ पर्व ही मिलता है। यह अश्वमेध पर्व व्यास के अश्वमेघ पर्व से बड़ा है, पर कई नई बातो के समावेश के कारण इसकी प्रामाणिकता में संदेह है।

जैमिनीय[1]—वि० [सं०] १. जैमिनि संबंधी। २. जैमिनि प्रणीत। ३. जैमिनि का अनुयायी [को०]।

जैमिनीय[2]—संज्ञा पुं० १. जैमिनिकृत ग्रंथ।

जैयट—संज्ञा पुं० [देश०] महाभाष्य के तिलककार कैयट के पिता।

जैयद—वि० [अ०] १. बड़ा भारी। घोर। बहुत बड़ा। जैसे, जैयद बेवकूफ। जैयद आलिम। ३. बहुत धनी। भारी मालदार। जैसे, जैयद असामी।

जैल[1]—संज्ञा पुं० [अ० जैल] १. दामन। २ नीचे का स्थान। निम्न भाग। ३. पंक्ति। सफ। समूह। ४. इलाका। हलका।

यौ०—जेलदार।

जैल[2]—अव्य० नीचे।

जैलदार—संज्ञा पुं० [अ० जैल+फ़ा० दार (प्रत्य०)] वह सरकारी ओहदेदार जिसके अधिकार में कई गाँवों का प्रबंध हो।

जैव[1]—वि० [सं०] १. जीव संबंधी। २. बृहस्पति संबंधी।

जैव[2]—संज्ञा पुं० १. बृहस्पति के क्षेत्र में धनु राशि और मीन राशि। २. पुष्य नक्षत्र। ३. जीव अर्थात् बृहस्पति के पुत्र कच [को०]।

जैवातृक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. कपूर। २. चंद्रमा। ३. औषध। ४. किसान (को०)। ५. पुत्र (को०)।

जैवातृक[2]—वि० १. [वि०स्त्री० जैवातृकी] दीर्घायु। २. दुबला पतला।

जैवात्रिकⓅ—संज्ञा पुं० [सं० जैवातृक] दे० 'जैवातृक'।

जैविक—वि० [सं०] दे० 'जैव'।

जैवेय—संज्ञा पुं० [सं०] जीव अर्थात् बृहस्पति के पुत्र कच [को०]।

जैस†—वि० [हिं० जैसा] दे० 'जैसा'। उ०—(क) धरतिहि जैस गगन सों नेहा। पलहि आव बरषा ऋतु मेहा।—जायसी (शब्द०)। (ख) कोई भल जस धाव तुखारा। कोई जैस बैल गरिआरा।—जायसी ग्रं०, (गुप्त) पृ० २२६।

जैसनⓅ†—वि० [हिं० जैसा] दे० 'जैसा'। उ०—भय भाजु काज न राज ग्राम सों, बससि निजपुर जैसनं।—द० सागर, पृ० १७।

जैसवार—संज्ञा पुं० [हिं० जायस+वाला] कुरमियों और कलवारों का एक भेद।

जैसा[1]—वि०[सं० यादृश, प्रा० जारिस, पैशाची जइस्सो वि०स्त्री० जैसी] १. जिस प्रकार का। जिस रूप रंग, आकृति या गुण का। जैसे,—(क) जैसा देवता वैसी पूजा। (ख) जैसा राजा वैसी प्रजा। (ग) जैसा कपड़ा है वैसी ही सिलाई भी होनी चाहिए।

मुहा०—जैसा चाहिए = ठीक। उपयुक्त। जैसा उचित हो। जैसा तैसा = दे० 'जैसे तैसे'। जैसे,—काम जैसा तैसा चल रहा है। जैसे का तैसा = ज्यों का त्यों। जिसमे किसी प्रकार की घटती बढ़ती या फेरफार आदि न हुआ हो। जैसा पहले था, वैसा ही। जैसे—(क) दरजी के यहाँ अभी कपड़ा जैसे का तैसा रखा है, हाथ भी नही लगा है। (ख) खाना जैसे का तैसा पड़ा है, किसी ने नहीं खाया। (ग) वह साठ वर्ष का हुआ पर जैसे का तैसा बना हुआ हैं। जैसे को तैसा = (१) जो जैसा हो उसके साथ वैसा ही व्यवहार करनेवाला। (२) जो जैसा हो उसी प्रकृति का। एक ही स्वभाव और प्रकृति का। उ०—जैसे को तैसा मिलै, मिलै नीच को नीच। पानी में पानी मिलै, मिलै कीच में कीच।—(शब्द०)।

२. जितना। जिस परिमाण का या मात्रा का। जिस कदर। (इस अर्थ में केवल विशेषण के साथ प्रयुक्त होता है।)जैसे,—जैसा अच्छा यह कपड़ा है, वैसा वह नहीं है।

विशेष—संबंध पूरा करने के लिये जो दूसरा वाक्य आता है वह वैसा शब्द के साथ आता है।

३. समान। सदृश। तुल्य। बराबर। जैसे,—उस जैसा आदमी ढूँढे न मिलेगा।

जैसा[2]—क्रि० वि० [हिं०] जितना। जिस परिमाण या मात्रा में। जैसे,—जैसा इस लड़के को याद है वैसा उस लड़के को नहीं।

जैसी—वि० [हिं०] 'जैसा' का स्त्री०। दे० 'जैसा'।

जैसे—क्रि० वि० [हिं० जैसा] जिस प्रकार से। जिस ढंग से। जिस तरीके पर।

मुहा०—जैसे जैसे = जिस क्रम से। ज्यों ज्यों। उ०—जैसे जैसे रोग कम होता जायगा वैसे ही वैसे शरीर में शक्ति भी आता जायगी। जैसे तैसे = किसी प्रकार। बहुत यत्न करके। बड़ी कठिनता से। उ०—खैर जैसे तैसे उनको यहाँ ले आना। जैसे बने, जैसे हो = जिस प्रकार संभव हो। जिस तरह हो सके। उ०—जैसे बने वैसे कल शाम तक चले आओ। जैसे कंवा घर रहे वैसे रहे विदेश = जिसके रहने या न रहने से काम में कोई अंतर न पड़े। निरर्थक व्यक्ति। जैसे मियां काठ, वैसी सन की दाढ़ी = अनुपयुक्त व्यक्ति के लिये अनुपयुक्त वस्तु ही उपयुक्त होती है।

जैसो¹(पु)—वि० [हिं०] दे० 'जैसा'। उ०—अब कैसे पैयत सुख माँगे। जैसोइ बोइये तैसोइ लुनिए कर्मन भोग अभागे। —सूर०, १। ६१।

जैसो²—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'जैसा'।

जोंग—संज्ञा पुं० [सं० जोङ्ग] अगर। अगुरु।

जोंगक—संज्ञा पुं० [सं० जोङ्गक] दे० 'जोंग'।

जोंगट—संज्ञा पुं० [सं० जोङ्गट] दे० 'दोहद' [को०]।

जोंताला—संज्ञा स्त्री० [सं० जोन्ताला] देवधान्य। पुनेरा।

जों—क्रि० वि० [हिं० ज्यों] ज्यों। जैसे। जिस प्रकार से। जिस तरह से। जिस भाँति।

विशेष—दे० 'ज्यों'।

जोंक—संज्ञा स्त्री० [सं० जलौकस्] १. पानी में रहनेवाला एक प्रसिद्ध कीड़ा जो बिलकुल थैली के आकार का होता है और जीवों के शरीर में चिपककर उनका रक्त चूसता है।

विशेष—इसकी छोटी बड़ी अनेक जातियाँ हैं जिनमें से अधिकांश तालाबों और छोटी नदियों आदि में, कुछ तर घासों में और बहुत थोड़ी जातियाँ समुद्र में होती हैं। साधारण जोंक डेढ़ दो इंच लंबी होती है पर किसी किसी जाति की समुद्री जोंक ढाई फुट तक लंबी होती है। साधारणतः जोंक का शरीर कुछ चिपटा और कालापन मिले हुए रंग का या भूरा होता है जिनपर या तो धारियाँ या बुँदकियाँ होती हैं। आँखें इसे बहुत सी होती हैं, पर काटने और लहू चूसने की शक्ति केवल आगे, मुँह की ओर ही होती है। आकार के विचार से साधारण जोंक तीन प्रकार की मानी जाती है—कागजी, मझोली और भैंसिया। सुश्रुत ने बारह प्रकार की जोंकें गिनाई हैं—कृष्णा, अलगर्द्दा, इंद्रायुधा, गोचंदना, कर्बुरा और सामुद्रिक ये छह प्रकार की जोंकें जहरीली और कपिला, पिंगला, शंकुमुखी, मूषिका, पुंडरीकमुखी और सावरिका ये छह प्रकार की जोंकें बिना जहर की बतलाई गई हैं। जोंक शरीर के किसी स्थान में चिपककर खून चूसने लगती है और पेट में खून भर जाने के कारण खूब फूल उठती है। शरीर के किसी अंग में फोड़ा फुंसी या गिलटी आदि हो जाने पर वहाँ का दूषित रक्त निकाल देने के लिये लोग इसे चिपका देते हैं और जब वह खूब खून पी लेती है तब उसे उँगलियों से खूब कसकर दुह लेते हैं जिससे सारा खून उसकी गुदा के मार्ग से निकल जाता है। भारत में बहुत प्राचीन काल से इस कार्य के लिये इसका उपयोग होता आया है। कभी कभी पशुओं के जल पीने के समय जल के साथ जोंक भी उनके पेट में चली जाती है।

पर्या०—रक्तपा। जलुका। जलोरगी। तीक्ष्णा। वमनी। वेधनी। जलसर्पिणी। जलसूची। जलाटनी। जलाका। पट्टालुका। वेणीवेधनी। जलाशिमका।

क्रि० प्र०—लगाना।—लगवाना।

२. वह मनुष्य जो अपना काम निकालने के लिये बेतरह पीछे पड़ जाय। वह जो बिना अपना काम निकाले पिंड न छोड़े। ३. सेवार का बनाया हुआ एक प्रकार का छनना जिससे चीनी साफ की जाती है।

जोंकी—संज्ञा स्त्री० [हिं० जोंक] १. वह जलन जो पशुओं के पेट में पानी के साथ जोंक उतर जाने के कारण होती है। २. लोहे का एक प्रकार का काँटा जो दो तख्तों को मजबूती के साथ जोड़ने के काम में आता है। ३ एक प्रकार का लाल रंग का कीड़ा जो पानी मे होता है। ४. दे० 'जोंक'।

जोंजों—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'ज्यों ज्यों'।

जोंतों†—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'ज्यों त्यों'।

मुहा०—जों तों करके = बड़ी कठिनाई से। उ०—गरज जों तों करके दिन तो काटा।—लल्लू (शब्द०)।

जोंदरा†—संज्ञा पुं० [हिं०] 'जोंधरी'।

जोंदरी†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'जोंधरी'।

जोंधरा†—संज्ञा पुं० [सं० जूर्ण] १. बड़े दानों की ज्वार। २. जोंधरी का सूखा डंठल। करबी। लकठा।

जोंधरी†—संज्ञा स्त्री० [सं० जूर्ण] १. छोटी ज्वार। छोटे दानों की ज्वार। २. बाजरा (क्वचित्)।

जोंधैया—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्योत्स्ना, हिं० जोन्हैया] चाँदनी। चंद्रिका।

जो¹—सर्व० [सं० य.] एक संबंधवाचक सर्वनाम जिसके द्वारा कही हुई संज्ञा या सर्वनाम के वर्णन मे कुछ और वर्णन की योजना की जाती है। जैसे —(क) जो घोड़ा आपने भेजा था वह मर गया। (ख) जो लोग कल यहाँ आए थे, वे गए।

विशेष—पुरानी हिंदी में इसके साथ 'सो' का व्यवहार होता था। अब भी लोग प्रायः इसके साथ 'सो' बोलते हैं पर अब इसका व्यवहार कम होता जा रहा है। जैसे,—जो बोवेगा सो काटेगा। आजकल बहुधा इसके साथ 'वह' या 'वे' का प्रयोग होता है।

जो²(पु)—अव्य० [सं० यद्] १. यदि। अगर। उ०—(क) जो करनी समुझै प्रभु मोरी। नहिं निस्तार कल्प शत कोरी।—तुलसी (शब्द०)। (ख) जो बालक कछु अनुचित करहीं। गुरु, पितु मातु मोद मन भरहीं।—तुलसी (शब्द०)।

विशेष—इस अर्थ में इसके साथ 'तो' का व्यवहार होता है। जैसे,—इसमें पानी देना हो तो अभी दे दो।

२. यद्यपि। अगरचे। (क्व०)। उ०—पौरि पौरि कोतवार जो बैठा। पेमक लुबुध सुरंग होइ पैठा।—जायसी (शब्द०)।

जोअंडा—संज्ञा पुं० [सं० युवन्] जवान। युवा। उ०—जोअंडा धावहि तुरय लखावहि बोलहि गाढिम बोला।—कीर्ति० पृ० ६४।

जोअण—संज्ञा पुं० [सं० योजन, प्रा० जोअण] दे० 'योजन'। उ०—सिंधु परइ सत जोअणे, खिवियाँ बीजलियांह। सुरहउ लोद्र महकियाँ, भीनी ठोवड़ियांह।—ढोला०, दू० १६०।

जोअना†—क्रि० स० [हिं०] दे० 'जोवना'।

जोइ[1]†—संज्ञा स्त्री० [सं० जाया] जोरू। पत्नी। भार्या। स्त्री। उ०—विरध अरु विभाग हू को पतित जो पति होइ। जऊ मूरख होइ रोगी तजै नाहीं जोइ।—सूर (शब्द०)।

जोइ†[2]—सर्व० [हिं०] दे० 'जो'।

यौ०—जोइ सोइ = जो सो। जो जी में आए। उ०—जसोदा हरि पालने झुलावै। हलरावै दुलराइ मल्हावै जोइ सोइ कछु गावै।—सूर०, १०।६६१।

जोइ†[3]—वि० [सं० योग्य, प्रा० जो, जोग्ग, जोग] योग्य। उचित। उ०—राजा राणी नूं कहइ, बात विचारउ जोइ।—ढोला०, दू० ७।

जोइन†—संज्ञा स्त्री० [सं० योनि, हिं० जोनि] दे० 'योनि'। उ०—तीन लोक जोइन औतारा। आवागमन में फिरि फिरि पारा।—कबीर सा०, पृ० ८०६।

जोइसी†—संज्ञा पुं० [सं० ज्योतिषी] दे० 'ज्योतिषी'। उ०—चित पितु मारक जोग गनि भयो भये सुत सोगु। फिरि हुलस्यो जिय जोइसी समुझें जारज जोग।—बिहारी (शब्द०)।

*जोउ—सर्व [हिं०] दे० 'जो'।

जोक[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० जोंक] दे० 'जोंक'।

जोक[2]—संज्ञा पुं० [अ० जौक] उ०—मंगे जीव तो घर बुला भेज उसूं। करे जोक फूलां सूं, भर सेज कूं।—दक्खिनी०, पृ० ८७। २. रुझान। चस्का। उ०—खुशियां इशरतां जोक दायम सो नित नित शहा के मंदिर में टिमटिम्यां बजाय।—दक्खिनी०, पृ० ७३।

जोखा—संज्ञा स्त्री० [हिं०] जोखने का कार्य या भाव। तौल।

जोखता‡—संज्ञा स्त्री० [सं० योषिता] स्त्री। लुगाई।

जोखना[1]—क्रि० स० [सं० जुष (= जाँचना)] तौलना। वजन करना।

जोखना[2]†—क्रि० अ० [सं० जुष = जाँचना] विचार करना। सोचना। उ०—काहू साथ न तन गा, सकति मुए सब पोखि। ओछ पूर तेहि जानब जो थिर आवत जोखि।—जायसी (शब्द०)।

जोखम†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० जोखिम'।

जोखा†[1]—संज्ञा पुं० [हिं० जोखना] १. लेखा। हिसाब।

विशेष—इस अर्थ मे इसका व्यवहार बहुधा यौगिक मे ही होता है। जैसे, लेखा जोखा।

†२. तौलने का काम करनेवाला आदमी।

जोखा[2]‡—संज्ञा स्त्री० [सं० योषा] स्त्री। लुगाई।

जोखाई†—संज्ञा स्त्री० [हिं० जोखना] १. जोखने का काम। तौलाई। २. जोखने या तौलने का भाव। ३. तौलने की मजदूरी।

जोखिउँ—संज्ञा स्त्री० [हिं० जोखिम] दे० 'जोखिम'। उ०—तुम सुखिया अपने घर राजा। जोखिउँ एत सहहु केहि काजा।—जायसी (शब्द०)।

जोखिम—संज्ञा स्त्री० [?] १. भारी अनिष्ट या विपत्ति की आशंका अथवा संभावना। झोंकी। जैसे,—इस काम में बहुत जोखिम है।

मुहा०—जोखिम उठाना या सहना = ऐसा काम करना जिसमें भारी अनिष्ट की आशंका हो। जोखिम में पड़ना = जोखिम उठाना। जान जोखिम होना = प्राण जाने का भय होना।

२. वह पदार्थ जिसके कारण भारी विपत्ति आने की संभावना हो, जैसे, रुपया, पैसा, जेवर आदि। जैसे,—तुम्हारी यह जोखिम हम नहीं रख सकते।

जोखुआ†—संज्ञा पुं० [हिं० जोखना + उआ (प्रत्य०)] तौलनेवाला। बया।

जोखुवा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'जोखुआ'।

जोखों†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'जोखिम'।

मुहा०—जान जोखों होना = प्राण का संकट में होना।

जोगंधर—संज्ञा पुं० [सं० योगन्धर] एक युक्ति जिसके द्वारा शत्रु के चलाए हुए अस्त्र से अपना बचाव किया जाता है। यह युक्ति श्री रामचंद्र जी को विश्वामित्र ने सिखलाई थी। उ०—पद्मनाभ अरु महानाभ दोउ द्वंद्वहु सुनाभा। ज्योति निकृंत निराश विमल युग जोगंधर बड़ आभा।—रघुराज (शब्द०)।

जोग[1]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'योग'।

यौ०—जोगमुद्रा = योग की मुद्रा। जोग समाधि = योग की समाधि।

जोग[2]—अव्य० [सं० योग्य] १. के लिये। वास्ते। उ०—अपने जोग लागि अस खेला। गुरु भएउँ आपु कीन्ह तुम चेला।—जायसी (शब्द०)। २. को। के निकट। (पू० हिं०)।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग बहुधा पुरानी परिपाटी की चिट्ठियों के प्रारंभिक वाक्यों में होता है। जैसे,—'स्वस्ति श्री भाई परमानंद जी जोग लिखा काशी से सीताराम का राम राम बाँचना।' बहुधा यह द्वितीया और चतुर्थी विभक्ति के स्थान पर काम में आता है। जैसे,—इनमें से एक साड़ी भाई कृष्णचंद्र जी जोग देना।

जोगड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० जोग + ड़ा (प्रत्य०)] बना हुआ योगी। पाखंडी। जैसे,—घर का जोगी जोगड़ा आन गाँव का सिद्ध। (कहा०)।

जोगता‡—संज्ञा स्त्री० [सं० योग्यता] दे० 'योग्यता'।

जोगन‡—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'जोगिन'।

जोगनिया[1]†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'जोगिनी[1]'।

जोगनिया[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'जोगिनिया[2]'।

जोगमाया—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'योगमाया'।

जोगवना—क्रि० स० [सं० योग + अवना (प्रत्य०)] १. किसी वस्तु को यत्न से रखना जिसमें वह नष्ट भ्रष्ट न हो पाए। रक्षित रखना। उ०—जिवन मूरि जिमि जोगवत रहऊँ। दीप बाति नहिं टारन कहऊँ।—तुलसी (शब्द०)। २. संचित करना। बटोरना। ३. लिहाज रखना। आदर करना। उ०—ता कुमातु को मन जोगवत ज्यों निज तन मर्म कुघाउ।—तुलसी (शब्द०)। ४. दर गुजर करना। जाने देना। कुछ ख्याल न करना। उ०—खेलत संग अनुज बालक नित जोगवत अनट अपाउ।—तुलसी (शब्द०)। ५. पूरा करना। पूर्ण करना। उ०—काय न कलेस लेस लेत मानि मन की। सुमिरे सकुचि रुचि जोगवत जन की।—तुलसी (शब्द०)।

जोगसाधनⓅ—संज्ञा पुं० [सं० योगसाधन] तपस्या।

जोगा—संज्ञा पुं० [देश०] अफीम का खूदड़। वह मैल जो अफीम को छानने से बच रहती है।

जोगानलⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० योगानल] योग से उत्पन्न आग। उ०—हर विरह जाइ बहोरि पितु के जग्य जोगानल जरी—तुलसी (शब्द०)।

जोगिंदⓅ†—संज्ञा पुं० [सं० योगीन्द्र] १. योगिराज। योगिश्रेष्ठ। २. महादेव (डिं०)।

जोगिⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं० योगी] दे० 'योगी'।

जोगिन—संज्ञा स्त्री० [सं० योगिनी] १. जोगी की स्त्री। २. विरक्त स्त्री। साधुनी। ३. पिशाचिनी। ४. एक प्रकार की रणदेवी जो रण में कटे मरे मनुष्यों के रुंड मुंडों को देखकर आनंदित होती है और मुंडो को गेंद बनाकर खेलती है। ५. एक प्रकार का झाड़ीदार पौधा जिसमें नीले रंग के फूल लगते हैं। ६. दे० 'योगिनी'।

जोगिनिया—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. लाल रंग की एक प्रकार की ज्वार। २. एक प्रकार का आम। ३. एक प्रकार का धान जो अगहन में तैयार होता है।

विशेष—इसका चावल बर्षो ठहर सकता है।

जोगिनी[1]—संज्ञा [सं० जोगिनी] १. दे० 'योगिनी'। उ०—भूमि अति जगमगी जोगिनी सुनि जगी सहस फन शेष सो सीस काँधो।—सूर (शब्द०)। २. दे० 'जोगिन'।

जोगिनी[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्योतिरिङ्गण, प्रा० जोइंगण] जुगनूँ। खद्योत।

जोगिया[1]—वि० [हिं० जोगी + इया (प्रत्य०)] १. जोगी संबंधी। जोगी का। जैसे, जोगिया भेस। २. गेरू के रंग में रँगा हुआ। गैरिक। ३. गेरू के रंग का। मटमैलापन लिए लाल रंग का।

जोगिया[2]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० १. 'जोगड़ा'। दे० २. 'जोगी'। ३. एक रागिनी।

जोगींद्रⓅ†—संज्ञा पुं० [सं० योगीन्द्र] १. योगिराज। बड़ा योगी। योगिश्रेष्ठ। २. शिव। महादेव।

जोगी—संज्ञा पुं० [सं० योगिन्] १. वह जो योग करता हो। योगी। २. एक प्रकार के भिक्षुक जो सारंगी लेकर भर्तृहरि के गीत गाते और भीख माँगते हैं। इनके कपड़े गेरुए रंग के होते हैं।

जोगीड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० जोगी + ड़ा (प्रत्य०)] १. एक प्रकार का चलता गाना जो प्राय: बसंत ऋतु मे ढोलक पर गाया जाता है। २. गाने बजानेवालों का एक समाज।

विशेष—इस समाज में एक गानेवाला लड़का, एक ढोलक बजानेवाला और दो सारंगी बजानेवाले रहते हैं। इनमें गानेवाले लड़के का भेस प्राय. योगियों का सा होता है और वह कुछ अलंकार आदि भी पहने रहता है। इसका गाना देहातों में सुना जाता है।

३. इस समाज का कोई आदमी।

जोगीश्वर—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'योगीश्वर'।

जोगीस्वरⓅ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'योगीश्वर'। उ०—जोगीस्वरन के ईस्वर राम। बहुरचो जदपि आत्माराम।—नंद० ग्रं०, पृ० ३२१।

जोगेश्वर—संज्ञा पुं० [सं० योगेश्वर] १. श्रीकृष्ण। २. शिव। ३. देवहोत्र के पुत्र का नाम। ४. योग का अधिकारी। योग का ज्ञाता। सिद्ध योगी।

जोगेसरⓅ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'योगेश्वर'। उ०—यूं कँमधज्ज धरे धू अंबर। ज्यूं गंगा मेले जोगेसर।—रा० रू०, पृ० ७६।

जोगेस्वरⓅ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'योगेश्वर'। उ० – जोग मार्ग जोगेंद्र जोगि जोगेस्वर जानें।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ३८४।

जोगोटा[1]Ⓟ—वि० [हिं० जोगी] जोग या योग करनेवाला।

जोगोटा[2]Ⓟ—संज्ञा पुं० [हिं० जोगौटा] दे० 'जोगौटा'।

जोगौटाⓅ—संज्ञा पुं० [सं० योगपट्ट] १. योगी का वस्त्र। कौपीन। लँगोट। २. झोली। उ०—मेखल सिंगी चक्र धंधारी। जोगौटा रुद्राख अधारी। कंथा पहिरि डंड कर गहा। सिद्ध होइ कहँ गोरख कहा।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २०५।

जोग्यⓅ—वि० [हिं०] दे० 'योग्य'।

जोजन—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'योजन'। उ०—कह मुनि तात भएउ अँधियारा। जोजन सत्तरि नगरु तुम्हारा।—मानस, १।१५६।

जोजनगंधाⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'योजनगंधा'।

जोट[1]Ⓟ†—संज्ञा पुं० [सं० योटक] १. जोड़ा। जोड़ी। २. साथी। संघाती।

जोट[2]—वि० समान। बराबरी का। मेल का।

जोटाⓅ†—संज्ञा पुं० [सं० योटक] १. जोड़ा। युग। उ०—(क) ए दोऊ दशरथ के ढोटा। बाल मरननि के कल जोटा।—तुलसी (शब्द०)। (ख) सखा समेत मनोहर जोटा। लखेउ न लखन सघन बन ओटा।—तुलसी (शब्द०)। २. टाट का बना हुआ एक बड़ा दोहरा थैला जिसमे अनाज भरकर बैलों पर लादा जाता है। गोना। खुरजी।

जोटिंग—संज्ञा पुं० [सं० जोटिङ्ग] १. महादेव। शिव। २. अत्यंत कठिन तपस्या करनेवाला साधक (को०)।

जोटीⓅ†—संज्ञा स्त्री० [हिं० जोट] १. जोड़ी। युग्मक। उ०—काँचो दूध पियावत पचि पचि देत न माखन रोटी। सूरदास

चिरजीवहु दोऊ हरि हलधर की जोटी। —सूर (शब्द०)। २. बराबरी का। जोड़ का। समान। ३. जो गुण आदि में किसी दूसरे के समान हो। जिसका मेल दूसरे के साथ बैठ जाता हो।

जोड़—संज्ञा पुं० [सं०] बंधन [को०]।

जोड़—संज्ञा पुं० [सं० योग] १. गणित में कई संख्याओं का योग। जोड़ने की क्रिया। २ गणित में कई संख्याओं का योगफल। वह संख्या जो कई संख्याओं को जोड़ने से निकले। मीजान। ठीक। टोटल।

क्रि० प्र०—देना।—लगाना।

३. वह स्थान जहाँ दो या अधिक पदार्थ या टुकड़े जुड़े अथवा मिले हों। जैसे, कपड़े में सिलाई के कारण पड़नेवाला जोड़, लोटे या थाली आदि का जोड़।

मुहा०—जोड़ उखड़ना = जोड़ का ढीला पड़ जाना। संधि स्थान में कोई ऐसा विकार उत्पन्न होना जिसके कारण जुड़े हुए पदार्थ अलग हो जायँ।

४. वह टुकड़ा जो किसी चीज में जोड़ा जाय। जैसे,—यह चाँदनी कुछ छोटी है इसमें जोड़ लगा दो। ५. वह चिह्न जो दो चीजों के एक में मिलने के कारण संधि स्थान पर पड़ता है। ६. शरीर के दो अवयवों का संधि स्थान। गाँठ। जैसे, कंधा, घुटना, कलाई, पोर आदि।

मुहा०—जोड़ उखड़ना = किसी अवयव के मूल का अपने स्थान से हट जाना। जोड़ बैठना = अपने स्थान से हटे हुए अवयव के मूल का अपने स्थान पर आ जाना।

७. मेल। मिलान। ८ बराबरी। समानता। जैसे,—तुम्हारा और उनका कौन जोड़ है?

विशेष—प्राय. इस अर्थ में इस शब्द का रूप जोड़ का भी होता है। जैसे,—(क) यह गमला उसके जोड़ का है। (ख) इसके जोड़ का एक लप ले आओ।

९. एक ही तरह की अथवा साथ साथ काम में आनेवाली दो चीजें। जोड़ा। जैसे, पहलवानों का जोड़, कपड़ों (धोती और दुपट्टे) का जोड़।

मुहा०—जोड़ बाँधना = (१) कुश्ती के लिये बराबरी के दो पहलवानों को चुनना। (२) किसी काम पर अलग अलग दो दो आदमियों को नियत करना। (३) चौपड़ से दो गोटियाँ एक ही घर में रखना।

१०. वह जो बराबरी का हो। समान धर्म या गुण आदिवाला। जोड़। ११. पहनने के सब कपड़े। पूरी पोशाक। जैसे,— उनके पास चार जोड़ कपड़े है। १२. किसी वस्तु या कार्य में प्रयुक्त होनेवाली सब आवश्यक सामग्री। जैसे, पहनने के सब कपड़ों या अंग प्रत्यंग के आभूषणों का जोड़। १३. जोड़ने की क्रिया या भाव। १४. छल। दाँव।

यौ०—जोड़ तोड़ = (१) दाँव पेंच। छल कपट। (२) किसी कार्य विशेष युक्ति। ढंग।

विशेष—बहुधा इस अर्थ में इसके साथ 'लगाना'। 'भिड़ना' क्रियाओं का व्यवहार होता है।

१५. दे० 'जोड़ा'।

जोड़ती—संज्ञा स्त्री० [हिं० जोड़ + ती (प्रत्य०)] १. गणित में कई संख्याओं का योग। जोड़। २. गणना। गिनती। शुमार।

जोड़न—संज्ञा स्त्री० [हिं० जोड़] १. जोड़ने को क्रिया या भाव। २. वह पदार्थ जो दही जमाने के लिये दूध में डाला जाता है। जावन। जामन।

जोड़ना—क्रि० स० [सं० जुड़(=बाँधना) या सं० युक्त, प्रा० जुड़] १. दो वस्तुओं को सीकर, मिलाकर, चिपकाकर अथवा इसी प्रकार के किसी और उपाय से एक करना। दो चीजों को मजबूती से एक करना। जैसे, लंबाई बढ़ाने के लिये कागज या कपड़ा जोड़ना। २. किसी टूटी हुई चीज के टुकड़ों को मिला कर एक करना। ३. द्रव्य या सामग्री को क्रम से रखना, लगाना या स्थापित करना। जैसे, अक्षर जोड़ना, ईंट या पत्थर जोड़ना। ४. एकत्र करना। इकट्ठा करना। संग्रह करना। जैसे, रुपए जोड़ना। कुनबा जोड़ना, सामग्री जोड़ना। ५. कई संख्याओं का योगफल निकालना। मीजान लगाना। ६. वाक्यों या पदों आदि की योजना करना। वर्णन प्रस्तुत करना। जैसे, कहानी जोड़ना, कविता जोड़ना, बात जोड़ना, तूमार या तूफान जोड़ना (= झूठा दोषारोपण करना)। ७. प्रज्वलित करना। जलाना। जैसे, आग जोड़ना, दीआ जोड़ना। ८. संबंध स्थापित करना। ९. संबंध करना। संबंध उत्पन्न करना। जैसे, दोस्ती जोड़ना। † १०. जोतना।

संयो० क्रि०—देना।

जोड़ला‡—वि० [हिं० जोड़ा + ला (प्रत्य०)] एक ही गर्भ से एक ही समय में जन्मे हुए दो बच्चे। यमज।

जोड़वाँ—वि० [हिं० जोड़ा + वाँ (प्रत्य०)] वे दो बच्चे जो एक ही समय में और एक ही गर्भ से उत्पन्न हुए हों। यमज।

जोड़वाई—संज्ञा पुं० [हिं० जोड़वाना] १. जोड़वाने की क्रिया। २ जोड़वाने का भाव। ३. जोड़वाने की मजदूरी।

जोड़वाना—क्रि० स० [हिं० जोड़ना का प्रे० रूप] दूसरे को जोड़ने में प्रवृत्त करना। जोड़ने का काम दूसरे से कराना।

जोड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० जोड़ना] [स्त्री० जोड़ी] दो समान पदार्थ। एक ही सी दो चीजें। जैसे, धोतियों का जोड़ा, तस्वीरों का जोड़ा, गुलदानों का जोड़ा।

क्रि० प्र०—लगाना।

विशेष—जोड़े में का प्रत्येक पदार्थ भी एक दूसरे का जोड़ा कहलाता है। जैसे, किसी एक गुलदान को उसी तरह के दूसरे गुलदान का जोड़ा कहेंगे।

२ दोनों पैरों में पहनने के जूते। उपानह। ३. एक साथ या एक मेल में पहने जानेवाले दो कपड़े। जैसे, अंगे और पैजामे का जोड़ा, कोट और पतलून का जोड़ा, लहँगे और ओढ़नी का जोड़ा। ४. पहनने के सब कपड़े। पूरी पोशाक। जैसे,—(क) उनके पास चार जोड़े कपड़े हैं। (ख) हम तो घोड़े जोड़े से तैयार हैं, तुम्हारी ही देर थी।

यौ०—जोड़ा जामा = (१) वे सब कपड़े जो विवाह में वर पहनता है। (२) पहनने के सब कपड़े। पूरी पोशाक।

क्रि० प्र०—पहनना।—बढ़ाना।

५. स्त्री और पुरुष। जैसे, वर कन्या का जोड़ा। ६. नर और मादा (केवल पशु और पक्षियों आदि के लिये)। जैसे, सारस का जोड़ा कबूतर का जोड़ा, कुत्तों का जोड़ा।

विशेष—अंक ५ और ६ के अर्थों में स्त्री और पुरुष अथवा नर और मादा में से प्रत्येक को भी एक दूसरे का जोड़ा कहते हैं।

क्रि प्र०—मिलाना।—लगाना।

मुहा०—जोड़ा खाना = संभोग करना। मैथुन करना। जोड़ा खिलाना = संभोग में प्रवृत्त करना। मैथुन कराना। जोड़ा लगाना = नर और मादा को मैथुन में प्रवृत्त करना।

७. वह जो बराबरी का हो। जोड़ा। ८. दे० 'जोड़'।

जोड़ाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० जोड़ना+आई (प्रत्य०)] १ दो या अधिक वस्तुओं को जोड़ने की क्रिया या भाव। २. जोड़ने की मजदूरी। ३. दीवार आदि बनाने के लिये ईंटों या पत्थरों के टुकड़ों को एक दूसरे पर रखकर जोड़ने की क्रिया। ४. धातुओं, पीतल, तांबा, लोहा आदि जोड़ने का काम।

जोड़ासंदेश संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की बंगला मिठाई जो छेने से बनती है।

जोड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० जोड़ा] १ दो समान पदार्थ। एक ही सी दो चीजें। जोड़ा। जैसे, शाल की जोड़ी, तस्वीरों की जोड़ी, किवाड़ों की जोड़ी, घोड़ों या बैलों की जोड़ी।

क्रि० प्र०—मिलाना।—लगाना।

यौ०—जोड़ीदार = जोड़वाला। जो किसी के साथ में हो। (किसी काम पर एक साथ नियुक्त होनेवाले दो आदमी परस्पर एक दूसरे को अपना जोड़ीदार कहते हैं।)

विशेष—जोड़ी में प्रत्येक पदार्थ को भी परस्पर एक दूसरे की जोड़ी कहते हैं। जैसे,—किसी एक तसबीर को उसी तरह की दूसरी तसबीर की 'जोड़ी' कहेंगे।

२. एक साथ पहनने के सब कपड़े। पूरी पोशाक। जैसे,- उनके पास चार जोड़ी कपड़े हैं। ३. स्त्री और पुरुष। जैसे वर वधू की जोड़ी। ४. नर और मादा (केवल पशुओं और पक्षियों के लिये)। जैसे, घोड़ों की जोड़ी, सारस की जोड़ी, मोर की जोड़ी।

विशेष—अंक ३ और ४. के अर्थ में स्त्री और पुरुष अथवा नर और मादा में से प्रत्येक को एक दूसरे की जोड़ी कहते हैं।

५. दो घोड़ों या दो बैलों की गाड़ी। वह गाड़ी जिसे दो घोड़े या दो बैल खींचते हों। जैसे,—जब से ससुराल का माल आपको मिला है तबसे आप जोड़ी पर निकलते हैं। ६. दोनों मुगदर जिनसे कसरत करते हैं।

क्रि० प्र०—फेरना।—भाँजना।—हिलाना।

यौ०—जोड़ी की बैठक = वह बैठकी (कसरत) जो मुगदरों की जोड़ी पर हाथ टेककर की जाती है। मुगदरों के अभाव में दो लकड़ियों से भी काम लिया जाता है।

७. मजीरा। ताल।

यौ०—जोड़ीवाल = जो गाने बजानेवालों के साथ जोड़ी या मँजीरा बजाता हो।

८. वह जो बराबरी का हो। समान धर्म या गुण आदि वाला। जोड़।

जोड़ुआ†—संज्ञा पुं० [हिं० जोड़ा + उआ (प्रत्य०)] पैर में पहनने का चाँदी का एक प्रकार का गहना।

विशेष—इसमें एक सिकरी में छोटे बड़े दो छल्ले लगे रहते हैं। बड़ा छल्ला अँगूठे में और छोटा सबसे छोटी उँगली में पहना जाता है। सिकरी बीच की उँगलियों के ऊपर रहती है।

जोड़—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'जोड़'।

जोत[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० जोतना अथवा सं० योक्त्र, प्रा० जोत्त] १. वह चमड़े का तस्मा या रस्सी जिसका एक सिरा घोड़े, बैल आदि जोते जानेवाले जानवरों के गले में और दूसरा सिरा उस चीज में बँधा रहता है जिसमें जानवर जोते जाते हैं। जैसे, एक्के की जोत, गाड़ी की जोत, मोट या चरसे की जोत।

क्रि० प्र०—बाँधना।—लगाना।

२. वह रस्सी जिसमें तराजू की डंडी से बँधे हुए उसके पल्ले लटकते रहते हैं। ३. वह छोटी सी रस्सी या पगही जिसमें बैल बाँधे जाते हैं और जो उन्हें जोतते समय जुआठे में बाँध दी जाती है। ४. उतनी भूमि जितनी एक असामी को जोतने बोने के लिये मिली हो। ५. एक क्रम या पलटे में जितनी भूमि जोती जाय।

जोत†[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्योति] १. दे० 'ज्योति'। २. दे० 'जोति'।

जोत†[3]—संज्ञा स्त्री० [देश०] समतल पहाड़ी। उ०—यद्यपि वहाँ पहुँचने के लिये कुल्लू से दो जबर्दस्त जोतें पार करनी पड़ेगी।—किन्नर०, पृ० ६४।

जोत[4]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ज्योतिषी'। उ०—अनग पुहवै नरेस व्यास जग जोत बुलाइय। लगन लिद्धि अनुजा सुत नाम चिहु चक्क चलाइय।—पृ० रा०, १। ६८६।

जोतक—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ज्योतिषी'। उ०—माता पूछे पडिता जोतक पढ़हि अनेक। जो बिधि ने लिख पाया को बूझै न ज्ञान विवेक।—प्राण०, पृ० २११।

जोतखी†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ज्योतिषी'। उ०—जोतखी जी ठीक कहते हैं। गाँव के ग्रह अच्छे नहीं हैं।—मैला०, पृ०२६।

जोतगी—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ज्योतिषी'। उ०—तब बुलाय सब जोतगी, कही सुपनफल सत्य। दिवस पंच के अंतरं, होय सु दिल्लीपत्त।—पृ० रा०, ३। ११।

जोतड़िया—संज्ञा स्त्री० [हिं० जोत] दे० 'ज्योति'। उ०—ऊँची पउड़ी लै गगनंतरि चढ़ीआ। अनहद बीचारु चमकी जोतड़िया।—प्राण०, पृ० २२३।

जोतदार—संज्ञा पुं० [हिं० जोत+फ़ा० दार (प्रत्य०)] वह असामी जिसे जोतने बोने के लिये कुछ जमीन (जोत) मिली हो।

जोतना—क्रि० स० [सं० योजन, पा० युक्त, प्रा०, जुत्त + हिं० ना (प्रत्य०)] १. रथ, गाड़ी, कोल्हू, चरसे आदि को चलाने के लिये उसके आगे बैल, घोड़े आदि पशु बाँधना। जैसे,—घोड़ा जोतना। २. गाड़ी या रथ आदि को उनमें घोड़े बैल आदि को जोतकर चलने के लिये तैयार करना। जैसे, गाड़ी जोतना। ३. किसी को जबरदस्ती किसी काम में लगाना। ४. हल चलाकर

खेती के लिये जमीन की मिट्टी खोदना। हल चलाना जैसे, खेत जोतना।

जोतनी†—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ जोत या जोतना] १. वह छोटी रस्सी जो जुए में जुते हुए जानवर के गले के नीचे दोनों ओर बंधी होती है। २. जुताई। जोतने का काम।

जोतसी†—संज्ञा पुं॰ [सं॰ ज्योतिषी] दे॰ ज्योतिषी'

जोतौंत—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ जोतना] खेत की मिट्टी की ऊपरी तह। (कुम्हार)।

जोता—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ जोतना] १. जुआठे में बंधी हुई वह पतली रस्सी जिसमें बैलों की गरदन फँसाई जाती है। २. जुलाहों की परिभाषा में वे दोनों डोरियाँ जो करघे पर फैलाए हुए ताने के अंतिम सिरे पर उसके सूतों को ठीक रखनेवाली कमाँची या मंजनी के दोनों सिरों पर बँधी हुई होती हैं। इन दोनों डोरियों के दूसरे सिरे आपस में भी एक दूसरे से बँधे और पीछे की ओर तने होते हैं। ३. करघे में सूत की वह डोरी जो बरौंछी में बँधी रहती है। ४. वह बहुत बड़ी धरन या शहतीर जो एक ही पंक्ति में लगे हुए कई खंभों पर रखी जाती है और जिसके ऊपर दीवार उठाई जाती है। ५. वह जो हल जोतता हो। खेती करनेवाला। जैसे, हरजोता।

जोताई—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ जोतना + आई (प्रत्य॰)] १. जोतने का काम। २. जोतने का भाव। ३. जोतने की मजदूरी।

जोतास—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰] दे॰ जोतौंत'।

जोति[1]—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ ज्योति] १. घी का वह दिया जो किसी देवी या देवता आदि के आगे अथवा उसके उद्देश्य से जलाया जाता है।

क्रि॰ प्र॰—जलाना।—बारना।

यौ॰—जोतिभोग = किसी देवता के सामने जोति जलाने और भोग लगाने आदि की क्रिया।

२. दे॰ 'ज्योति'।

जोतिⓅ†[2]—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ जोतना] जोतने बोने योग्य भूमि। उ॰—एपै तजि देबो क्रिया देखि जग बुरो होन जोति बहु दई दाम राम मति सानिए।—प्रिया॰ (शब्द॰)।

जोतिकⓅ—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] दे॰ 'ज्योतिष'। उ॰—विद्या पढ़ेउं करन संगीता। सामुद्रिक जोतिक गुन गीता।—माधवानल॰, पृ॰ २०८।

जोतिखी‡—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] दे॰ 'ज्योतिषी'।

जोतिगⓅ—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] १. ज्योतिष शास्त्र। उ॰—न इह बात जोतिग घटं मनस पुष्प थिरताव। —पृ॰ रा॰, ३।१३। २. ज्योतिषी। उ॰—जोगनैर जोतिग कहै, प्रभु सु होय प्रथुराव। पृ॰ रा॰, ३।१३।

जोतिमयⓅ—वि॰ [हिं॰] दे॰ 'ज्योतिर्मय'। उ॰—रतनपुत्र नृपनाथ रतन जिमि ललित जोतिमय।—मति॰ ग्रं॰, पृ॰ ४१४।

जोतिलिंग—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] दे॰ 'ज्योतिर्लिंग'।

जोतिवंतⓅ—वि॰ [सं॰ ज्योतिवद्] ज्योतियुक्त। चमकदार। उ॰—पावक पवन मणि पन्नग पतंग पितृ जेते जोतिवंत जग ज्योतिषिन गाए हैं।—केशव (शब्द॰)।

जोतिष‡—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] दे॰ 'ज्योतिष'।

जोतिषटोम—संज्ञा पुं॰ [सं॰ ज्योतिष्टोम] दे॰ 'ज्योतिष्टोम'।

जोतिषी‡—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] दे॰ ज्योतिषी'।

जोतिसⓅ‡—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] दे॰ 'ज्योतिष'।

जोतिस्नाⓅ—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰] दे॰ 'ज्योत्स्ना'।—अनेक॰, पृ॰ १०१।

जोतिहा†—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ जोतना] जोतनेवाला किसान। जोता।

जोतीⓅ[1]—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰] १. दे॰ 'ज्योति'। उ॰—बदन पै सलिल कन जगमगात जोती। इंदु सुधा तामें मनों अमी मय मोती।—नंद॰ ग्रं॰ पृ॰ ३४७। २. दे॰ 'जोति[1]'।

जोती[2]—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ जोतना] १. तराजू के पल्लों की डोरी जो डाँड़ी से बँधी रहती है। जोत। २. घोड़े की रास। लगाम। ३. चक्की में की वह रस्सी जो बीच की कीली और हत्थे में बँधी रहती है। इसे कसने या ढीली करने से चक्की हलकी या भारी चलती है और चीज मोटी या महीन पिसती है। ४. वे रस्सियाँ जिनमें खेत में पानी खींचने की डोरी बँधी रहती है।

जोत्स्ना—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ ज्योत्स्ना] दे॰ 'ज्योत्स्ना'।

जोधⓅ—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] दे॰ 'योद्धा'। उ॰—कबि लक्खन अबला कहत, सबला जोध कहंत।—हम्मीर रा॰, पृ॰ २७।

जोधन—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ योग + धन] वह रस्सी जिससे बैल के जुए की ऊपर नीचे की लकड़ियाँ बँधी रहती हैं।

जोधा[1]Ⓟ†—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] दे॰ 'योद्धा'। उ॰—(क) प्रगट कपाट बड़े दीने हैं बहु जोधा रखवारे।—सूर (शब्द॰)। (ख) सूर प्रभु सिंह ध्वनि करत जोधा सकल जहाँ तहँ करन लागे लराई।—सूर (शब्द॰)।

जोधा[2]—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] जोता नाम की रस्सी जो जुआठे में बंधी रहती है और जिसमें बैलों के सिर फँसाए जाते हैं।

जोधारⓅ‡—संज्ञा पुं॰ [सं॰ योद्धा] योद्धा। शूर। उ॰—नर्क कुंड मे ना पड़ूं जीतूं मन जोधार। ऐसो मुझ उपदेश दो सतगुर कर उपकार।—राम॰ धर्म॰, पृ॰ ३१३।

जोन†—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ योनि] दे॰ 'योनि'।

जोनराज—संज्ञा पुं॰ [देश॰] राजतरंगिणी के द्वितीय लेखक जिन्होंने सं॰ १२०० के बाद का हाल लिखा है। इनका लिखा हुआ 'पृथ्वीराजविजय' नामक एक ग्रंथ और 'किरातार्जुनीय' की एक टीका भी है।

जोनरी†—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰] ज्वार नामक अन्न।

जोनाⓅ—क्रि॰ स॰ [हिं॰] देखना। उ॰—रहबारी ढोलउ कहइ करहउ पाछउ जोइ।—ढोला॰ दू॰ ३०६। (ख) प्रेम के पथ सु प्रीति की पैठ मे पैठत ही है दसा यह जो लै।—पद्माकर ग्रं॰, पृ॰ १७३।

जोनिⓅ†—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ योनि] दे॰ 'योनि'। उ॰—जेहि जेहि जोनि करम बस भ्रमहीं। तहँ तहँ ईसु देउ यह हमहीं।—मानस, २।२४।

जोनी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'योनि'। उ०—कवन पुरुष जोनी बिना कवन मौत बिना काल। —रामानंद०, पृ० ३३।

जोन्ह(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्योत्स्ना, प्रा० जोण्ह] १. जुन्हाई। चंद्रिका। चाँदनी। ज्योत्स्ना। २. चंद्रमा।

जोन्हरी†—संज्ञा स्त्री० [देशी जोएणलिया] ज्वार नामक अन्न।

जोन्हाई(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्योत्स्ना, प्रा० जोण्हा] १. चंद्रिका। चाँदनी। चंद्रज्योति। २. चंद्रमा।

जोन्हार†—संज्ञा पुं० [हिं०] ज्वार नामक अन्न।

जोप(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'यूप'।

जोपै(पु)—अव्य० [हिं० जो + पर अथवा सं० यद्यपि] १. यदि। अगर। २. यद्यपि। अगरचे।

जोफ—संज्ञा [अ० ज़ोफ़] १. बुढ़ापा। वृद्धावस्था। २. सुस्ती। निर्बलता। कमजोरी। नाताकती।

यौ०—जोफ जिगर = (१) जिगर का ठीक ठीक काम न करना। (२) जिगर या यकृत की कमजोरी। जोफ दिमाग = दिमाग की कमजोरी। जोफ मेदा = पाचन की कमजोरी। मंदाग्नि। अजीर्ण।

जोबन—संज्ञा पुं० [सं० यौवन] १. युवा होने का भाव। यौवन। उ०—धन जोबन अभिमान अल्प जल कहँ कूर आपुनी बोरी। सूर (शब्द०)।

मुहा०—जोबन लूटना = (किसी स्त्री की) युवावस्था का आनंद लेना।

२. सुंदरता, विशेषतः युवावस्था अथवा मध्यकाल की सुंदरता। रूप। खूबसूरती।

क्रि० प्र०—छाना।—पर आना।

मुहा०—जोबन उतरना = युवावस्था समाप्त होना। जोबन चढ़ना = युवावस्था का सौंदर्य आना। जोबन ढलना = दे० 'जोबन उतरना'।

३. रौनक। बहार। ४. कुच। स्तन। छाती। उ०—दूध दुहँ जोबन सों लागा।—जायसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—उठना।—उभरना —ढलना।

५. एक प्रकार का फूल।

जोबना(पु)†—क्रि० स० [हिं० जोवना] दे० 'जोवना'।

जोम—संज्ञा पुं० [अ० ज़ोम] १. उमंग। उत्साह। २. जोश। उद्वेग। आवेश। ३. अहंकार। अभिमान। घमंड।

क्रि० प्र०—दिखाना।

४. धारणा। खयाल (को०)। ५. प्रबलता (को०)। ६. समूह(को०)।

जोय†—संज्ञा स्त्री० [सं० जाया] जोरू। स्त्री। पत्नी।

जोय—सर्व० पु० [हिं०] जो। जिस।

जोयना(पु)†—क्रि० स० [हिं० जोड़ना (जैसे, दीया जोड़ना)] १. बालना। जलाना। उ०—चौसठ दीवा जोय कै चौदह चंदा माँहि। तिहि घर किसका चाँदना जिहि घर सतगुर नाँहि।—कबीर (शब्द०)। २. दे० 'जोवना'।

जोयसी(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० ज्योतिषी] दे० 'ज्योतिषी'।

जोर—संज्ञा पुं० [फा० ज़ोर] बल। शक्ति। ताकत।

क्रि० प्र०—आजमाना।—देखना।—दिखाना।—लगना।—लगाना।

मुहा०—जोर करना = (१) बल का प्रयोग करना। ताकत लगाना। (२) प्रयत्न करना। कोशिश करना। जोर टूटना = बल घटना या नष्ट होना। प्रभाव कम होना। शक्ति घटना। जोर डालना = बोझ डालना। दे० 'जोर देना'। जोर देना = (१) बल का प्रयोग करना। ताकत लगाना। (२) शरीर आदि का) बोझ डालना। भार देना। जैसे,—इस जँगले पर जोर मत दो नहीं तो वह टूट जाएगा। किसी बात पर जोर देना = किसी बात को बहुत ही आवश्यक या महत्वपूर्ण बतलाना। किसी बात को बहुत जरूरी बतलाना। जैसे,—उन्होंने इस बात पर बहुत जोर दिया कि सब लोग साथ चलें। किसी बात के लिये जोर देना = किसी बात के लिये आग्रह करना। किसी बात के लिये हठ करना। जोर देकर कहना = किसी बात को बहुत अधिक दृढ़ता या आग्रह से कहना। जैसे,—मैं जोर देकर कह सकता हूँ कि इस काम में आपको बहुत फायदा होगा। जोर मारना या लगाना = (१) बल का प्रयोग करना। ताकत लगाना। (२) बहुत प्रयत्न करना। खूब कोशिश करना। जैसे,—उन्होंने बहुतेरा जोर मारा पर कुछ भी नहीं हुआ।

यौ०—जोर जुल्म = अत्याचार। ज्यादती।

२. प्रबलता। तेजी। बढ़ती। जैसे, भाँग का जोर, बुखार का जोर।

विशेष—कभी कभी लोग इस अर्थ मे 'जोर' शब्द का प्रयोग 'से' विभक्ति उड़ाकर विशेषण की तरह और कभी कभी 'का' विभक्ति उड़ाकर क्रिया की तरह करते हैं।

मुहा०—जोर पकड़ना या बाँधना = (१) प्रबल होना। तेज होना। जैसे,—(क) अभी से इलाज करो नहीं तो यह बीमारी जोर पकड़ेगी। (ख) इस फोड़े ने बहुत जोर बाँधा है। (२) दे० 'जोर में आना'। जोर करना या मारना = प्रबलता दिखलाना। जैसे,—(क) रोग का जोर करना। काम का जोर करना। (ख) आज आपकी मुहब्बत ने जोर मारा, तभी आप यहाँ आए हैं। जोर में आना = ऐसी स्थिति मे पहुँचना जहाँ अनायास ही उन्नति या वृद्धि हो जाय। जोर या जोरों पर होना = (१) पूरे बल पर होना। बहुत तेज होना। जैसे—, (क) आजकल शहर में चेचक बहुत जोरों पर है। (ख) इस समय उन्हें बुखार जोरों पर है। (२) खूब उन्नत दशा मे होना।

३. वश। अधिकार। इख्तियार। काबू। जैसे,—हम क्या करें, हमारा उनपर कोई जोर नहीं है।

क्रि० प्र०—चलना।—चलाना।—जताना।—होना।

मुहा०—जोर डालना = किसी काम के लिये कुछ अधिकार जताते हुए विशेष आग्रह करना। दबाव डालना।

४. वेग। आवेश। झोंक।

मुहा० —जोरों पर = बड़े वेग से। बड़ी तेजी से। जैसे, गाड़ी का जोरों पर जाना, नदी का जोरों पर बहना।

५. भरोसा। आसरा। सहारा। जैसे,—आप किसके जोर पर कूदते हैं ?

मुहा० —शतरंज में किसी मोहरे पर जोर देना या पहुँचाना = किसी मोहरे की सहायता के लिये उसके पास कोई ऐसा मोहरा ला रखना जिसमें उस पहले मोहरे के मारे जाने की संभावना न रह जाय अथवा यदि उस पहले मोहरे को विपक्षी अपने किसी मोहरे से मारना चाहे तो उसका मोहरा भी तुरंत उस मोहरे से मार लिया जा सके जिससे पहले मोहरे को जोर पहुँचाया गया है। शतरंज के मोहरे का जोर पर होना = मोहरे का ऐसी स्थिति में होना जिसमें यदि उसे विपक्षी का कोई मोहरा मारना चाहे तो वह स्वयं भी मारा जा सके। किसी के जोर पर कूदना = किसी को अपनी सहायता पर देखकर अपना बल दिखाना। बेजोर = जिसकी सहायता पर कोई न हो।

६. परिश्रम। मेहनत। जैसे,—अँधेरे में पढ़ने से आँखों पर जोर पड़ता है।

क्रि० प्र०—पड़ना।

७. व्यायाम। कसरत।

जोरई—संज्ञा स्त्री० [हिं० जोड़] १. एक ही में बँधे हुए लंबे लंबे और मजबूत दो बाँस जिनके सिरों पर मोटी रस्सी का एक फंदा लगा रहता है और जिसका उपयोग कोल्हू चाने के समय जाठ को रोकने और उसे कोल्हू में से निकालकर अलग करने में होता है।

विशेष—जाठ का ऊपरी भाग इसके फंदे में फँसा दिया जाता है और तब जाठ का निचला भाग दोनों बाँसों की सहायता से उठाकर कोल्हू के ऊपरी भाग पर रख दिया जाता है।

२. एक प्रकार का हरे रंग का कीड़ा जो फसल की डालियाँ और पत्तियाँ खा जाता है।

विशेष—चने की फसल को यह अधिक हानि पहुँचाता है।

जोरदार—वि० [फा० जोरदार] जिसमें बहुत जोर हो। जोरवर।

जोरन†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'जोड़न'। उ०— जोरन दे तब दही जमाई। —सं० दरिया, पृ० ६।

जोरना†—क्रि० स० [हिं०] १ दे० 'जोड़ना'। उ०—रति रण जानि अनंग नृपति आप नृपति राजति बल जोरति। —सूर (शब्द०)। † २ जोतना। जानवर को जूए में नाधना। ३. किसी टूटी चीज के टुकड़ों को मिलाकर एक करना। उ०—जो अति प्रिय तो करिय उपाई। जोरिय कोउ बड़ गुनी बोलाई।—तुलसी (शब्द०)।

जोरशोर—संज्ञा पुं० [फा० जोरशोर] बहुत अधिक जोर। बहुत अधिक प्रबलता या प्रचंडता। जैसे,—कल शाम को जोर शोर से आँधी आई थी।

जोरा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'जोड़ा'।

जोराजोरी¹†(पु)—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जोर] जबरदस्ती। धींगा धींगी।

जोराजोरी²—क्रि० वि० जबरदस्ती। बलपूर्वक।

जोरावर—वि० [फ़ा० जोरावर] बलवान्। ताकतवर। जबरदस्त।

जोरावरी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जोरावरी] १. जोरावर होने का भाव। २. जबरदस्ती। धींगाधींगी।

जोरिल्ला†—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का गंधबिलाव।

जोरी¹(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] १. समानता। समता। दे० 'जोड़ी'। उ०—स्वर्ग सूर ससि करै अजोरी। तेहि ते अधिक देउ केहि जोरी।—जायसी (शब्द०)। २. सहेली। साथिन। दे० 'जोड़ी'। उ०—पूछत है रुक्मिणी इनमें को वृषभानु किशोरी। बारेक हमें दिखाओ अपने बालपने की जोरी। —सूर (शब्द०)। ३. दे० 'जोड़ी'।

जोरी²—संज्ञा स्त्री० [फा० जोर] जोरावरी। जबरदस्ती। उ०— जोरी मारि भजत उतही को जात यमुन के तीर। इक धावत पीछे उनही के पावत नही अधीर।—सूर (शब्द०)।

जोरू—संज्ञा स्त्री० [हिं० जोड़ा] स्त्री। पत्नी। भार्या। घरवाली।

मुहा० —जोरू का गुलाम = स्त्री का भक्त या उसके वश में रहनेवाला। स्त्रैण।

यौ०—जोरू जाँता = गृहस्थी। परिवार। घर बार।

जोल¹—संज्ञा पुं० [हिं०] मेल। मिलाप।

विशेष—इस शब्द का व्यवहार प्रायः मेल के साथ होता है। जैसे, मेल जोल।

जोल²—संज्ञा पुं० [हिं० जोड़] समूह। संघ। जमघट। उ०—कहा कहौं बारिज मुख ऊपर, बिथके षट्पद जोल। सूरस्याम करि ये उतकरषा, बस कीन्ही बिनु मोल।—सूर०, १०।१७६२।

जोलहटी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] जुलाहों की बस्ती।

जोलहा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'जुलाहा'।

जोलाहल†(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्वाला] ज्वाला। अग्नि। आग। उ०—रोम रोम पावक शिखा जगी जोलाहल जोर। —रघुराज (शब्द०)।

जोलाहा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'जुलाहा'।

जोलाही—संज्ञा स्त्री० [हिं०] १. जोलाहे की स्त्री। उ०—काशी में जोलाहा जोलाही हुए।—कबीर मं०, पृ० १०३। २. जोलाहे का काम या धंधा।

जोली¹†(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० जोड़ी] वह जो बराबरी का हो। जोड़। जोड़ी।

यौ०—हमजोली।

जोली²—संज्ञा स्त्री० [हिं०] जाली या किरमिच आदि का बना हुआ एक प्रकार का लटकौआ बिस्तर। —(लश०)।

विशेष—इसके दोनों सिरों पर अदवान की तरह कई रस्सियाँ होती हैं। दोनों ओर की ये रस्सियाँ दो कड़ियों में बँधी होती है और दोनों कड़ियाँ दो तरफ खूँटियों आदि में लटका दी जाती हैं। बीच का बिस्तरवाला हिस्सा लटकता रहता है जिसपर आदमी सोते है। इसका व्यवहार प्रायः जहाजी लोग जहाजों में करते हैं।

२. वह रस्सी जो तूफान के समय जहाजों में पाल चढ़ाने या उतारने के काम में आती है। —(लश०)। ३. एक प्रकार की गाँठ जो रस्से के एक सिरे पर उसकी लड़ों से बनाई जाती है।

जोवना(पु)—क्रि० स० [सं० जुषण (=सेवन), अथवा प्रा० जो (जोव=देखना)] १. जोहना। देखना। तकना। २. ढूँढ़ना। तलाश करना। ३. आसरा देखना। रास्ता देखना। उ०—रैण बिहाणी जोवताँ दिन भी बीतो जाय। रामदास बिरहिन झुरै पीव न पाया जाय। —राम० धर्म०, पृ० १६३।

जोवसी(पु)—संज्ञा पुं० [सं० ज्योतिषी] दे० 'ज्योतिषी'। उ०—सु दिन कहे रूड़ा जोवसी। चतुर नागर ईसउ भाण ज्यों चंद।—बी० रासो०, पृ० ६।

जोवारी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मैना जिसका रंग बहुत चमकीला होता है।

विशेष—यह बहुत अच्छी तरह कई प्रकार की बोलियाँ बोल सकती है, इसीलिये लोग इसे पालते और बोलना सिखाते हैं। यह ऋतुपरिवर्तन के अनुसार भिन्न भिन्न देशों में घूमा करती है। फूलों और अनाजों को बहुत हानि पहुँचाती है और टिड्डियों का खूब नाश करती है। इसके अंडे बिना चित्ती के और नीले रंग के होते हैं। इसका मांस खाने में बहुत स्वादिष्ट होता है।

जोश—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. किसी तरल पदार्थ का आँच या गरमी के कारण उबलना। उफान। उबाल।

मुहा०—जोश खाना = उबलना। उफनना। खौलना। जोश देना =पानी के साथ उबालना। जैसे,—इस दवा का जोश देकर पीओ। जोश मारना = उबलना। मथना।

यौ०—जोशाँदा = क्वाथ। काढ़ा।

२. चित्त की तीव्र वृत्ति। मनोवेग। आवेश। जैसे,—उन्होंने जोश में आकर बहुत ही उलटी सीधी बातें कह डालीं।

मुहा०—जोश खाना=आवेश में आना। जोश देना = आवेश में लाना या करना। जोश मारना=उमड़ना। जोश में आना = उत्तेजित हो उठना। आवेश में आना। खून का जोश= प्रेम का वह वेग जो अपने वंश या कुल के किसी मनुष्य के लिये उत्पन्न हो। जैसे,—खून के जोश ने उन्हें रहने न दिया, वे अपने भाई की मदद के लिये उठ दौड़े।

यौ०—जोश खरोश = अधिक आवेश। जोशे जवानी = जवानी का जोश। जोशे जुनून = पागलपन का दौर। उन्माद का जोर। सनक।

जोशन—स्त्री० पुं० [फ़ा०] १. भुजाओं पर पहनने का चाँदी या सोने का एक प्रकार का गहना।

विशेष—इसमें छह पहल या आठ पहलवाले लंबोतरे पोले दानों की पाँच, छह या सात जोड़ियाँ लंबाई में रेशम या सूत आदि के डोरे में पिरोई रहती हैं। दोनों बाँहों पर दो जोशन पहने जाते हैं।

२. जिरह बकतर। कवच। चार आईना।

जोशाँदा—संज्ञा पुं० [फ़ा० जोशाँदह्] दवा के काम के लिये पानी में उबाली हुई जड़ या पत्तियाँ आदि। क्वाथ। काढ़ा।

जोशिश—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] उत्साह। जोश [को०]।

जोशी—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'जोषी'।

जोशीला—वि० [फ़ा० जोश+हिं० ईला (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० जोशीली] जोश से भरा हुआ। जिसमें खूब जोश हो। आवेगपूर्ण। जैसे,—उन्होंने कल बड़ी जोशीली वक्तृता दी थी।

जोष[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रीति। प्रेम। २. सुख। आराम। ३. सेवा। ४. संतोष (को०)। ५. मौन (को०)।

जोष[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० योषा] स्त्री। नारी।

जोष[3]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'जोख'। उ०—चढ़े न चातिक चित कबहुँ प्रियपयोद के दोष। तुलसी प्रेम पयोधि की तातें माप न जोख।—तुलसी (शब्द०)।

जोषक—संज्ञा पुं० [सं०] सेवक।

जोषण—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रीति। प्रेम। २. सेवा। ३. दे० 'जोष' (को०)।

जोषणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'जोषण' [को०]।

जोषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] नारी। स्त्री।

जोषिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कलियों का स्तवक या गुच्छा। २. नारी। स्त्री [को०]।

जोषित—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्त्री [को०]।

जोषति—संज्ञा स्त्री० [सं० जोषित्] दे० 'जोषिता'। उ०—जुवा खेल खेलन गई जोषित जोबन जोर।—स० सप्तक, पृ० ३६४।

जोषिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्त्री। नारी। औरत। उ०—जदपि जोषिता अनधिकारी। दासी मन क्रम बचन तुम्हारी। —मानस, १। ११०।

जोषी—संज्ञा पुं० [सं० ज्योतिषी] १. गुजराती ब्राह्मणों की एक जाति। २. महाराष्ट्र ब्राह्मणों की एक जाति। ३. पहाड़ी ब्राह्मणों की एक जाति। ४. ज्योतिषी। गणक—(क्व०)।

जोष्य—वि० [सं०] कमनीय। प्रिय। प्यारा [को०]।

जोस†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'जोश'।

जोसना(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्योत्स्ना] दे० 'ज्योत्स्ना'। उ०—इह बरनी तुम जोंभ चंद जोसना वान भृत।—पृ० रा०, २५। १८६।

जोसी(पु)—संज्ञा पुं० [सं० ज्योतिष, ज्योतिषी, जोइसी, जोसी] ज्योतिषी। उ०—पांड्या तोहि बोलावहि हो राय। ले पतड़ो जोसी वेगो तुं आई। —बी० रासो, पृ० ६।

जोह(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० जोहना] १. खोज। तलाश।

क्रि० प्र०—लगाना।

२. इंतजार। प्रतीक्षा। ३. नजर। दृष्टि। विशेषतः कृपायुक्त दृष्टि।

क्रि० प्र०—रखना।

जोहड़(पु)—संज्ञा पुं० [देश०] कच्चा तालाब।

जोहन(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० जोहना] १. देखने या जोहने की क्रिया। उ०—सघन कला तरु तर मनमोहन। दक्षिण चरन चरन पर दीन्हें तनु त्रिभंग मृदु जोहन।—सूर (शब्द०)। २. तलाश। खोज। ढूँढ़। ३. प्रतीक्षा। इंतजार।

जोहना‡—क्रि० स० [सं० जुषण (=सेवन) अथवा प्रा० जोव (=देखना)] १. देखना। अवलोकन करना। ताकना। निहारना। उ०—(क) दर्पन साह भीत तहँ लावा। देखों जोहि झरोखे आवा।—जायसी (शब्द०)। (ख) जो सब ठौर खंभ हू होहि। कह्यो प्रह्लाद आहि तूँ जोहि।—सूर (शब्द०)। २. खोजना। ढूँढ़ना। पता लगाना। उ०—शकद्वीप तेहि आगे सोहा। बत्तिस लक्ष योजन कर जोहा।—विश्राम (शब्द०)। ३. राह देखना। इंतजार देखना। प्रतीक्षा करना। आसरा देखना। उ०—फूलन सेजरिया कोठरिया बिछौले बलबिरवा जोहेला तोरी बाट।—बलबीर (शब्द०)।

जोहर[1]†—संज्ञा स्त्री० [हिं० जोहड़] बावली। छोटा तालाब।

जोहर(पु)[2]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'जौहर'। उ०—जोहर करि देह त्यागी।—ह० रासो, पृ० १६०।

जोहार[1]—संज्ञा स्त्री० [देश०] अभिवादन। वंदन। प्रणाम। नमस्कार।

जोहार[2](पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'जौहर'।

जोहारना†—क्रि० अ० [हिं०] प्रणाम या नमस्कार आदि करना। अभिवादन करना।

जोहारी—संज्ञा स्त्री [हिं० जोहार] नमस्कार। प्रणाम। उ०—इक इक बाण भेज्यो सकल नृपति पै मानो सब साथ कीन्हें जोहारी।—सूर (शब्द०)।

जौं[1]†—अव्य० [हिं० ज्यों] यदि। जो।

जौं[2]—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'ज्यों'।

जौंकना(पु)—क्रि० स० [अनु०] डाँटना। डपटना। क्रुद्ध होकर ऊँचे स्वर से कुछ कहना।

जौंची†—संज्ञा स्त्री० [देश०] गेहूँ या जौ की फसल का एक रोग जिससे बाल काली हो जाती है और उसमें दाने नहीं पड़ते।

जौंड़ा†—संज्ञा पुं० [हिं० जौरा] दे० 'जौरा'।

जौंरा(पु)—संज्ञा पुं० [सं० ज्वर, प्रा०हिं० जौरा] १. ज्वर। जूड़ी। ताप। २. व्याध। उ०—जाप करत जौरा टल्या, सुंदर साधी लोक।—सत वाणी०, पृ० १०८।

जौंराभौंरा[1]—संज्ञा पुं० [देश०] किले या महलों के भीतर का वह गहरा तहखाना जिसमें गुप्त खजाना आदि रहता है।

जौंराभौंरा[2]—संज्ञा पुं० [हिं० जोड़ा+भौंरा] १ दो बालकों का जोड़ा।—(प्यार का शब्द)। २. दो घनिष्ठ मित्रों का जोड़ा।

जौंरे(पु)†—क्रि० वि० [फा० जवार] निकट। समीप। आसपास।

जौ[1]—संज्ञा पुं० [सं० यव] १. चार पाँच महीने रहनेवाला एक पौधा जिसके बीज या दाने की गिनती अनाजों में है।

विशेष—यह पौधा पृथ्वी के प्रायः समस्त उष्ण तथा समप्रकृतिस्थ स्थानों में होता है। भारत का यह एक प्राचीन धान्य और हविष्यान्न है। भारतवर्ष में यह मैदानों के अतिरिक्त प्रायः पहाड़ों पर भी १४००० फुट की ऊँचाई तक होता है। इसकी बोआई कातिक अगहन में होती है और कटाई फागुन चैत में होती है। इसका पौधा बहुत कुछ गेहूँ का सा होता है। अंतर इतना होता है कि इसमें जड़ के पास से बहुत से डंठल निकलते है जिन्हे कभी कभी छाँटकर अलग करना पड़ता है। इसमें टूँड़दार बाल लगती हे जिसमें कोश के साथ बिलकुल चिपके हुए दाने पंक्तियों में गुछे रहते हैं। दानों के ऊपर का नुकीला कोश कठिनाई से अलग होता है इसी से यह अनाज कोश सहित बिकता है, पर काश्मीर में एक प्रकार का जौ ग्रिम नाम का होता है जिसके दाने गेहूँ की तरह कोश से अलग रहते हैं। गेहूँ के समान जौ के या जौ की गुरी के भी आटे का व्यवहार होता है। भूसी रहित जौ या उसके मैदा का प्रयोग रोगियों के लिये पथ्य के काम आता है। सूखे हुए पौधे का भूसा होता है जो चौपायों को प्रिय, लाभकर है और उनके के खाने के काम मे आता है। यूरोप में और अब भारतवर्ष के भी कई स्थानों में जौ से एक प्रकार की शराब बनाई जाती है। जौ कई प्रकार के होते हैं। इस अन्न को मनुष्य जाति अत्यंत प्राचीन काल से जानती है। वेदों में इसका उल्लेख बराबर है। अब भी हवन आदि में इस अन्न का व्यवहार होता है। ईसा से २७०० वर्ष पहले चीन के बादशाह शिनंग ने जिन पाँच अन्नों को बोआया था उनमें एक जौ भी था। ईसा से १०१५ वर्ष पहले सुलेमान बादशाह के समय में भी जौ का प्रचार खूब था। मध्य एशिया के करहँग नामक स्थान के खँडहर के नीचे दबे हुए जो स्टीन साहब को मिले थे। इस खँड़हर के स्थान पर सातवीं शताब्दी मे एक अच्छा नगर था जो बालू में दब गया। वैद्यक में जौ तीन प्रकार के माने गए हैं—शूक, निःशूक और हरित वर्ण। शूक को यव, निःशूक को अतियव और हरे रंग के यव को स्तोक्य कहते हैं। जो शीतल, रूखा, वीर्यवर्धक, मलरोधक तथा पित्त और कफ को दूर करनेवाला माना जाता है। यव से अतियव और अतियव से स्तोक्य (थोड़आई मां) हीन गुणवाला माना जाता है।

पर्या०—यव। मेध्य। सितशूल। दिव्य। अक्षत। कंचुकि। धान्यराज। तीक्ष्णशूक। तुरगप्रिय। शक्तु। हयेष्ट। पवित्र धान्य।

मुहा०—जौ जौ बढ़ना=धीरे धीरे बिना लक्षित हुए बढ़ना या विकसित होना। तिल तिल बढ़ना। क्रमशः बढ़ना। जौ बराबर=जौ के दाने के बराबर लंबा। जौ भर=जौ के दाने के परिमाण का। खाए पिए सौ सौ हिसाब करे जौ जौ, या दे ले सौ सौ हिसाब करे जौ जौ—अधिक से अधिक सामूहिक व्यय करे पर हिसाब पाई पाई या पैसे पैसे का रखे।

२. एक पौधा जिसकी लचीली टहनियों से पंजाब में टोकरे झाड़ू आदि बनते हैं। मध्य एशिया के प्राचीन खँड़हरों में मकान के परदों के रूप में इसकी टट्टियाँ पाई गई हैं। ३. एक तौल जो ६ राई (खरदल) के बराबर मानी जाती है।

जौ[2]†—अव्य० [सं० यद्] यदि। अगर। उ०—जौ लरिका कछु

अनुचित करहीं। गुरु पितु मातु मोद मन भरहीं।—तुलसी (शब्द०)।

जौ³—क्रि० वि० [हिं०] जब।

यौ०—**जौ लौं, जौ लगि, जौ लहि**=जब तक।

जौक¹—संज्ञा पुं० [तु० जूक] १. सेना। २. कतार। ३. झुंड। गिरोह। उ०—तुजे देखना था बड़ा हम कूँ शौक। तुजे देख पाए हजारा सूँ जौक।—दक्खिनी०, पृ० ३४५।

जौक²—संज्ञा पुं० [अ० जौक़] स्वाद। मजा। शौक। आनंद (को०)।

जौकेराई—संज्ञा स्त्री० [हिं० जौ+केराव] मटर मिला हुआ जौ।

जौख(पु)—संज्ञा पुं० [तु० जूक] १. झुंड। जत्था। २. फौज। सेना। ३. पक्षियों की श्रेणी। उ०—बनी गोख वे जौख की मोख सोहै। पताकानु केकी पिकी ही अरोहै।—सूदन (शब्द०)। ४. आदमियों का गोल। समूह। भीड़।

जौगढ़वा—संज्ञा पुं० [हिं० जौगढ़ (=कोई स्थान)+वा (प्रत्य०)] एक प्रकार का धान।

विशेष—यह अगहन के महीने में तैयार होता है और इसका चावल सैकड़ों वर्ष तक रह सकता है।

जौचनी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] चना मिला हुआ जौ।

जौजा—संज्ञा स्त्री० [अ० जौजह्] जोरू। भार्या। पत्नी।

जौजीयत—संज्ञा स्त्री० [अ० जौजीयत] पत्नीत्व।

जौड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० जेवरी या जेवड़ी] मोटा रस्सा। उ०—फूस क जौड़ा दूरि करि, ज्यूँ बहुरि न लागै लाइ।—कबीर ग्रं०, पृ० ७१।

जौतुक—संज्ञा पुं० [सं० यौतुक] दे० 'यौतुक'।

जौधिक(पु)—संज्ञा पुं० [सं० यौद्धिक] तलवार या खड्ग के ३२ हाथों में से एक। उ०—पृष्ठत प्रथित जौधिक प्रथित ये हाथ जानो बत्तिसै।—रघुराज (शब्द०)।

जौन¹(पु)—सर्व० [सं० यः पुनः (कः पुनः>कौन के साम्य पर बना)] जो।

जौन²(पु)—वि० जो। उ०—जौन ठौर मोहि आज्ञा होई। ताहि ठौर रैहों मैं जोई।—सूर (शब्द०)।

जौन³(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'यवन'।

जौनाल—संज्ञा स्त्री [सं० यव+नाल] १. वह जमीन जिसपर जौ आदि रबी की फसल बोई जाय। रबी का खेत। २. जौ का डंठल।

जौन्ह(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'जोन्ह'।

जौपै(पु)†—अव्य० [हिं० जौ+पै] अगर। यदि।

जौबति(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० युवती] दे० 'युवती'।

जौबन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० यौवन] दे० 'यौवन'।

जौम—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'जोम'।

जौर—संज्ञा पुं० [अ०] अत्याचार। जुल्म। उ०—अब तलक खींच खींच जौरो जफा। हर तरह दोस्ती निबाही है।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० १७।

जौरा¹—संज्ञा पुं० [हिं० जूरा] वह अनाज जो गाँवों में नाऊ बारी आदि पौनियों को उनके काम के बदले में दिया जाता है।

जौरा²—संज्ञा पुं० [सं० ज्या+वर अथवा हिं० जेवरी] बड़ा रस्सा।

जौनावर(पु)—वि० [हिं०] दे० 'जोरावर'। उ०—जोरावर कोई ना बाँचे, रावण या दशकंधा।—कबीर सा०, पृ० ८८७।

जौलाई—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'जुलाई'।

जौलाऊ—संज्ञा पुं० [हिं० जौलाय (=बारह)] प्रति रुपया बारह पैसे। फी रुपया तीन आना। (दलाली)।

जौलानी(पु)—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. तेजी। फुरती। उ०—शराब मँगाओ तो अक्ल को और जौलानी हो।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ८८। २ घोड़ा (को०)। ३. शराब का प्याला (को०)। ४. मनोरंजन (को०)।

जौलाय—वि० [हिं० जौलाय] बारह। (दलाल)।

जौशन—संज्ञा पुं० [फा०] बाहु पर पहनने का एक आभूषण। दे० 'जोशन'।

जौहर¹—संज्ञा पुं० [फा० गौहर का अरबी रूप] १. रत्न। बहुमूल्य पत्थर। २. सार वस्तु। सारांश। तत्व।

क्रि० प्र०—निकालना।

३. तलवार या और किसी लोहे के धारदार हथियार पर वे सूक्ष्म चिह्न या धारियाँ जिनसे लोहे की उत्तमता प्रकट होती है। हथियार की ओप। ४. गुण। विशेषता। उत्तमता। खूबी। तारीफ की बात। जैसे,—(क) धुलने पर इस कपड़े का जौहर देखिएगा। (ख) मैदान में वे अपना जौहर दिखाएँगे।

क्रि० प्र०—खुलना।—दिखाना।

मुहा०—जौहर खुलना=(१) गुण का विकास होना। गुण प्रकट होना। खूबी जाहिर होना। (२) करतब प्रकट होना। भेद खुलना। गुप्त कार्रवाई जाहिर होना। जौहर खोलना=गुण प्रकट करना। उत्कर्ष दिखाना। खूबी जाहिर करना। करतब दिखाना।

३ आईने की चमक।

जौहर²—संज्ञा पुं० [हिं० जीव+हर] १. राजपूतों में युद्ध के समय की एक प्रथा जिसके अनुसार नगर या गढ़ में शत्रु के प्रवेश का निश्चय होने पर उनकी स्त्रियाँ और बच्चे दहकती हुई चिता में जल जाते थे।

विशेष—राजपूत लोग जब देखते थे कि वे गढ़ की रक्षा न कर सकेंगे और शत्रुओं का अवश्य अधिकार होगा तब वे अपनी स्त्रियों और बच्चों से विदा लेकर और उन्हें दहकती चिता में भस्म होने का आदेश देकर आप युद्ध के लिये सुसज्जित होकर निकल पड़ते थे। स्त्रियाँ भी शृंगार करके बड़े भारी दहकते कुंड में कूदकर प्राण विसर्जन करती थी। प्रसिद्ध है कि जब अलाउद्दीन ने चित्तौरगढ़ को घेरा था तब महारानी पद्मिनी सोलह हजार स्त्रियों को लेकर भस्म हुई थी। इसी प्रकार जब जैसलमेर का दुर्ग घिरा था तब नगर की समस्त स्त्रियाँ और बच्चे अर्थात् २४००० प्राणियों के लगभग क्षण भर में जल मरे थे।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—जौहर होना=चिता पर जल मरना। उ०—जौहर भई सब स्त्री पुरुष भए संग्राम।—जायसी (शब्द०)।

२. आत्महत्या। प्राणत्याग।

क्रि० प्र०—करना।

३. वह चिता जो दुर्ग में स्त्रियों के जलने के लिये बनाई जाती थी। उ०—(क) जौहर कर साजा रनिवासू। जेहि सत हिये कहाँ तेहि आँसू।—जायसी (शब्द०)। (ख) अजहूँ जौहर साज के कीन्ह चहौ उजियार। होरी खेलउ रन कठिन कोउ न समेटे छार।—जायसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—साजना।

जौहरी—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. हीरा, लाल आदि बहुमूल्य पत्थर बेचनेवाला। रत्नविक्रेता। २. रत्न परखनेवाला। जवाहिरात की पहचान रखनेवाला। पारखी। परखैया। जँचवैया। ३. किसी वस्तु के गुण दोष की पहचान रखनेवाला। ४. गुण का आदर करनेवाला। गुणग्राहक। कदरदान।

ज्ञंमन्य—वि० [सं० ज्ञमन्य] अपने आपको ज्ञानी माननेवाला [को०]।

ज्ञ[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. ज्ञान। बोध। २. ज्ञानी। जाननेवाला। जैसे, शास्त्रज्ञ, सर्वज्ञ, कार्यज्ञ, निमित्तज्ञ। ३. ब्रह्मा। ४. बुद्ध ग्रह। ५. सांख्य के अनुसार निष्क्रिय निर्विकार पुरुष जिसको जान लेने से बंधन कट जाते हैं। ६. मंगल ग्रह। ७. ज और ञ के संयोग से बना हुआ संयुक्त अक्षर।

ज्ञ[2]—वि० १ जाननेवाला। जैसे, शास्त्रज्ञ। २. बुद्धिमान्। जैसे, विज्ञ।

ज्ञपित—वि० [सं०] १. जाना हुआ। २. मारा हुआ ३. तुष्ट किया हुआ। ४. तेज किया हुआ। चोखा किया हुआ। ५. जिसकी स्तुति या प्रशंसा की गई हो।

ज्ञप्त—वि० [सं०] जाना हुआ।

ज्ञप्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जानकारी। २. बुद्धि। ३. मारण। ४. तोषण। तुष्टि। ५ स्तुति। ६. जताने की क्रिया।

ज्ञवार—संज्ञा पुं० [सं०] बुधवार। बुध का दिन।

ज्ञा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जानकारी।

ज्ञात[1]—वि० [सं०] विदित। जाना हुआ। अवगत। मालूम।

ज्ञात[2]—संज्ञा पुं० ज्ञान।

ज्ञातजौबना पु—[सं० ज्ञात + यौवना] दे० 'ज्ञातयौवना'। उ०—निज तनु जोबन आगमन जानि परत है जाहि। कबि कोविद सब कहत है ज्ञातजौबना ताहि।—मति० ग्रं०, पृ० २७६।

ज्ञातनंदन—संज्ञा पुं० [सं० ज्ञातनन्दन] जैनों के तीर्थंकर महावीर स्वामी का एक नाम।

ज्ञातयौवना—संज्ञा स्त्री० [सं०] मुग्धा नायिका का एक भेद। वह मुग्धा नायिका जिसे अपने यौवन का ज्ञान हो। इसके दो भेद हैं—नवोढ़ा और विश्रब्धनवोढ़ा।

ज्ञातव्य—वि० [सं०] जो जाना जा सके। जिसे जानना हो अथवा जिसे जानना उचित हो। ज्ञेय। वेद्य। बोधगम्य।

विशेष—श्रुति उपनिषद् आदि मे आत्मा को ही एक मात्र ज्ञातव्य माना है। उसे जान लेने पर फिर कुछ जानना बाकी नहीं रह जाता।

ज्ञाता—वि० [सं० ज्ञातृ] [वि० स्त्री० ज्ञात्री] जाननेवाला। ज्ञान रखने वाला। जानकार।

ज्ञाति—संज्ञा पुं० [सं०] एक ही गोत्र या वंश का मनुष्य। गोती। भाई। बंधु। बांधव। सपिंड समानोदक आदि। उ०—तै मोहि मिले ज्ञात घर अपने में बूझी तब बात। हँसि हँसि दौरि मिले अंकम भरि हम तुम एकै ज्ञाति।—सूर (शब्द०)। (ख) अहिर जाति ओछी मति कीन्ही। अपनी ज्ञाति प्रकट करि दीन्ही।—सूर (शब्द०)।

ज्ञातिपुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. गोतज का पुत्र। २. जैन तीर्थंकर महावीर स्वामी का नाम।

ज्ञातृत्व—संज्ञा पुं० [सं०] जानकारी। अभिज्ञता।

ज्ञान—संज्ञा पुं० [सं०] १. वस्तुओं और विषयों की वह भावना जो मन या आत्मा को हो। बोध। जानकारी। प्रतीति।

क्रि० प्र०—होना।

विशेष—न्याय आदि दर्शनों के अनुसार जब विषयों का इंद्रियों के साथ, इंद्रियों का मन के साथ और मन का आत्मा के साथ संबंध होता है तभी ज्ञान उत्पन्न होता है। मान लीजिए, कहीं पर एक घड़ा रखा है। इंद्रियों ने उस घड़े का साक्षात्कार किया, फिर उस साक्षात्कार की सूचना मन को दी। फिर मन ने आत्मा को सूचित किया और आत्मा ने निश्चित किया कि यह घड़ा है। ये सब व्यापार इतने शीघ्र होते हैं कि इनका अनुमान नहीं हो सकता। एक ही साथ दो विषयों का ज्ञान नहीं हो सकता। ज्ञान सदा अयुगपद् होता है। जैसे,—मन यदि एक ओर है और हमारी आँख किसी दूसरी ओर है तो इस दूसरी वस्तु का ज्ञान नहीं होगा। न्याय में जो प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द, ये चार प्रमाण माने गए हैं उन्हीं के द्वारा सब प्रकार का ज्ञान होता है। चक्षु, श्रवण आदि इंद्रियों द्वारा जो ज्ञान होता है वह प्रत्यक्ष कहलाता है। व्याप्य पदार्थ को देख व्यापक पदार्थ का जो ज्ञान होता है उसे अनुमान कहते हैं। कभी कभी एक वस्तु (व्याप्य) के होने से दूसरी वस्तु (व्यापक) का अभाव नहीं हो सकता, ऐसे अवसर पर अनुमान से काम लिया जाता है। जैसे, धुएँ को देखकर अग्नि का ज्ञान। अनुमान तीन प्रकार का होता है—पूर्ववत्, शेषवत् और सामान्यतो दृष्ट। कारण को देख कार्य के अनुमान को पूर्ववत् (कारणलिंगक) अनुमान कहते हैं। जैसे, बादलों का उमड़ना देख होनेवाली वृष्टि का ज्ञान। कार्य को देख कारण के अनुमान को शेषवत् (या कार्यलिंगक) अनुमान कहते हैं। जैसे, नदी का जल बढ़ता हुआ देख वृष्टि का ज्ञान। व्याप्य को देख व्यापक के ज्ञान को सामान्यतोदृष्ट अनुमान कहते हैं। जैसे, धुएँ को देख अग्नि का ज्ञान, पूर्ण चंद्रमा को देख शुक्ल पक्ष का ज्ञान इत्यादि। प्रसिद्ध या ज्ञात वस्तु के साधर्म्य द्वारा जो दूसरी वस्तु का ज्ञान कराया जाता है, उसे उपमान कहते हैं। जैसे,—गाय ही ऐसी नीलगाय होती है। दूसरों के कथन या शब्द के द्वारा जो ज्ञान होता है उसे शाब्द कहते हैं। जैसे गुरु का उपदेश आदि। सांख्य शास्त्र प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द ये तीन ही प्रमाण मानता है उपमान को इनके अंतर्गत मानता है। ज्ञान दो प्रकार का होता है—प्रमा

अर्थात् यथार्थ ज्ञान और अप्रमा या अयथार्थ ज्ञान। वेदांत में ब्रह्म को ही ज्ञानस्वरूप माना है अतः उसके अनुसार प्रत्येक का ज्ञान पृथक् नहीं हो सकता। एक वस्तु से दूसरी वस्तु में या एक के ज्ञान से दूसरे के ज्ञान में जो विभिन्नता दिखाई देती है, वह विषय रूप उपाधि के कारण है। वास्तविक ज्ञान एक ही है जिसके अनुसार सब विभिन्न दिखाई पड़नेवाले पदार्थों के बीच में केवल एक चित् स्वरूप सत्ता या ब्रह्म का ही बोध होता है।

पाश्चात्य दर्शन में भी विषयों के साथ इंद्रियों के संयोग रूप ज्ञान को ही ज्ञान का मूल अथवा प्रथम रूप माना है। किसी एक वस्तु के ज्ञान के लिये भी यह भावना आवश्यक है कि वह कुछ वस्तुओं के समान और कुछ वस्तुओं से भिन्न है अर्थात् बिना साधर्म्य और वैधर्म्य की भावना के किसी प्रकार का ज्ञान होना असंभव है। इस साक्षात्करण रूप ज्ञान से आगे चलकर सिद्धांत रूप ज्ञान के लिये संयोग, सहकालत्व आदि की भावना भी आवश्यक है। जैसे,—'वह पेड़ नदी के किनारे है' इस बात का ज्ञान केवल पेड़' 'नदी' और किनारा का साक्षात्कार मात्र नहीं है बल्कि इन तीन पृथक् भावों का समाहार है।

प्राणिविज्ञान के अनुसार खोपड़ी के भीतर जो मज्जा-तंतु-जाल (नाड़ियाँ) और कोश हैं, चेतन व्यापार उन्हीं की क्रिया से संबंध रखते हैं। इनमें क्रिया को ग्रहण करने और उत्पन्न करने दोनों की शक्ति है। इंद्रियों के साथ विषयों के संयोग द्वारा संचालन नाड़ियों के द्वारा भीतर की ओर जाता है और कोशों को प्रोत्साहित करके परमाणुओं में उत्तेजना उत्पन्न करता है। भूतवादियों के अनुसार इन्हीं नाड़ियों और कोशों की क्रिया का नाम चेतना है, पर अधिकांश लोग चेतना को एक स्वतंत्र शक्ति मानते हैं।

क्रि० प्र०—होना।

मुहा०—ज्ञान छाँटना = अपनी विद्या या जानकारी प्रकट करने के लिये लंबी चौड़ी बातें करना।

२. यथार्थ ज्ञान। सम्यक् ज्ञान। तत्वज्ञान। आत्मज्ञान। प्रमा। केवलज्ञान।

विशेष—मीमांसा को छोड़कर प्रायः सब दर्शनों ने ज्ञान से मोक्ष माना है। न्याय में ज्ञान द्वारा मिथ्या ज्ञान का नाश, मिथ्या ज्ञान के नाश से दोष का नाश, दोष न रहने पर प्रवृत्ति से निवृत्ति, प्रवृत्ति के नाश से जन्म से निवृत्ति और जन्म की निवृत्ति से दुःख का नाश, दुःख के नाश से मोक्ष माना जाता है। सांख्य ने पुरुष और प्रकृति के बीच विवेक ज्ञान प्राप्त होने से जब प्रकृति छूट जाती है तब मोक्ष का ज्ञान होना बतलाया है। वेदांत का मोक्ष ऊपर लिखा जा चुका है।

ज्ञानकांड—संज्ञा पुं० [सं० ज्ञानकाण्ड] वेद के तीन कांडों या विभागों में से एक जिसमें ब्रह्म आदि सूक्ष्म विषयों का विचार है। जैसे,— उपनिषद्।

ज्ञानकृत—वि० [सं०] जो पाप जान बूझकर किया गया हो, भूल से न हुआ हो।

विशेष—ज्ञानकृत पापों का प्रायश्चित्त दूना लिखा गया है।

ज्ञानगम्य—संज्ञा पुं० [सं०] ज्ञान की पहुँच के भीतर। जो जाना जा सके।

ज्ञानगर्भ—वि० [सं०] ज्ञान से पूर्ण या भरा हुआ [को०]।

ज्ञानगोचर—वि० [सं०] ज्ञानेंद्रियों से जानने योग्य। ज्ञानगम्य।

ज्ञानघन—संज्ञा पुं० [सं०] शुद्ध ज्ञान। केवल ज्ञान [को०]।

ज्ञानचक्षु[1]—संज्ञा पुं० [सं० ज्ञानचक्षुस्] ज्ञान के नेत्र। अंतर्दृष्टि [को०]।

ज्ञानचक्षु[2]—वि० ज्ञान की आँख से देखनेवाला। पंडित [को०]।

ज्ञानज्येष्ठ—वि० [सं०] जो ज्ञान में बढ़कर हो [को०]।

ज्ञानतः—क्रि० वि० [सं० ज्ञानतस्] जान बूझकर। जानकारी में। समझ बूझकर।

ज्ञानतत्व—संज्ञा पुं० [सं० ज्ञानतत्त्व] यथार्थ ज्ञान [को०]

ज्ञानतपा—वि० [सं० ज्ञानतपस्] शुद्ध ज्ञान के लिये तप करनेवाला [को०]।

ज्ञानद—संज्ञा पुं० [सं०] ज्ञान देनेवाला। गुरु [को०]।

ज्ञानदग्धदेह—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो चतुर्थ आश्रम में हो। संन्यासी।

विशेष—स्मृतियों में लिखा है कि संन्यासी जीवित अवस्था ही में देह अर्थात् सुख दुःख आदि को ज्ञान द्वारा दग्ध कर डालता है अतः मृत्यु हो जाने पर उसके दाह कर्म की आवश्यकता नहीं। उसके शरीर को एक गड्ढा खोदकर प्रणव मंत्र के उच्चारण के साथ गाड़ देना चाहिए।

ज्ञानदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सरस्वती। [को०]।

ज्ञानदाता—संज्ञा पुं० [सं० ज्ञानदातृ] ज्ञान देनेवाला मनुष्य। गुरु।

ज्ञानदात्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्ञान देनेवाली देवी। सरस्वती [को०]।

ज्ञानदुर्बल—वि० [सं०] ज्ञान में दुर्बल या असमर्थ [को०]।

ज्ञानधन—वि० [सं०] ज्ञानी। तत्वविद्। उ०—क्रिया समाहित चित्त ज्ञानधन तुम्हें जानकर।— अपरा, पृ० १६३।

ज्ञानधाम—वि० [सं० ज्ञानधामन्] परम ज्ञानी। उ०—खोजै सो कि अज्ञ इव नारी। ज्ञानधाम श्रीपति असुरारी।—मानस, १।५१।

ज्ञाननिष्ठ—वि० [सं०] १. श्रवण, मनन, निदिध्यासन, आदि ज्ञान साधनोंवाला। २. तत्वज्ञानी [को०]।

ज्ञानपिपासा—संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्ञान प्राप्त करने की प्रबल इच्छा। ज्ञान की प्यास [को०]।

ज्ञानपिपासु—वि० [सं०] ज्ञानप्राप्ति की इच्छावाला। जिज्ञासु [को०]।

ज्ञानप्रभ—संज्ञा पुं० [सं०] एक तथागत का नाम।

ज्ञानमद—संज्ञा पुं० [सं०] ज्ञान का अभिमान। ज्ञानी या जानकार होने का घमंड।

ज्ञानमुद्र—वि० [सं०] ज्ञानी। ज्ञानवाला [को०]।

ज्ञानमुद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] तंत्रसार के अनुसार राम की पूजा की एक मुद्रा।

विशेष—इसमें दाहिने हाथ की तर्जनी को अँगूठे से मिलाकर हाथ

में रखते हैं और बाएँ हाथ की उँगलियों को कमलसंपुट के आकार की करके उनसे सिर से लेकर बाएँ जंघे तक रक्षा करते हैं।

ज्ञानयज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] ज्ञान द्वारा अपनी आत्मा का परमात्मा में हवन अर्थात् आत्मा और परमात्मा का संयोग या अभेदज्ञान। ब्रह्मज्ञान।

ज्ञानयोग—संज्ञा पुं० [सं०] ज्ञान की प्राप्ति द्वारा मोक्ष का साधन। उ०—एक ज्ञानयोग विस्तरै। ब्रह्म जानि सबसों हित करै।—सूर (शब्द०)।

ज्ञानलक्षण—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. न्याय में अलौकिक प्रत्यक्ष का एक भेद।

विशेष—नैयायिकों ने प्रत्यक्ष के दो भेद माने हैं, लौकिक और अलौकिक। अलौकिक प्रत्यक्ष के तीन भेद हैं, सामान्यलक्षण, ज्ञानलक्षण और योगज। ज्ञानलक्षण वह है जिसमे विशेषण के ज्ञात होने पर विशेष्य का ज्ञान होता है। जैसे, घटत्व का ज्ञान होने पर घट शब्द से घड़े का ज्ञान।

२. ज्ञान का निर्देशक, संकेतक साधन या उपाय (को०)।

ज्ञानलक्षणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'ज्ञानलक्षण' (को०)।

ज्ञानवान—वि० [सं०] जिसे ज्ञान हो। ज्ञानी।

ज्ञानवापी—संज्ञा स्त्री० [सं०] काशीस्थित एक प्रसिद्ध तीर्थ।

ज्ञानविज्ञान—संज्ञा पुं० [सं०] १. विभिन्न प्रकार का या पवित्र ज्ञान। २. वेद, उपवेद सहित उसकी शाखाओं का ज्ञान (को०)।

ज्ञानवृद्ध—वि० [सं०] ज्ञान मे बड़ा। जिसकी जानकारी अधिक हो।

ज्ञानशास्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] भविष्य का विचार अथवा कथन करनेवाला शास्त्र (को०)।

ज्ञानसाधन—संज्ञा पुं० [सं०] १. इंद्रिय। २. ज्ञानप्राप्ति का प्रयत्न।

ज्ञानांजन—संज्ञा पुं० [सं० ज्ञानाञ्जन] तत्वज्ञान। ब्रह्मज्ञान (को०)।

ज्ञानाकर—संज्ञा पुं० [सं०] बुद्ध।

ज्ञानापोह—संज्ञा पुं० [सं०] भूल जाना। ज्ञान न रहना। विस्मरण (को०)।

ज्ञानावरण—संज्ञा पुं० [सं०] १. ज्ञान का परदा। ज्ञान का बाधक। २. वह पाप कर्म जिससे ज्ञान का यथार्थ लाभ जीव को नहीं होता है।

विशेष—यह पाँच प्रकार का है,—(१) मतिज्ञानावरण। (२) श्रुतिज्ञानावरण। (३) अवधिज्ञानावरण। (४) मनःपर्याय ज्ञानावरण और (५) केवलज्ञानावरण। (जैन)।

ज्ञानावरणीयकर्म—पुं० [सं०] दे० 'ज्ञानावरण'।

ज्ञानासन—संज्ञा पुं० [सं०] रुद्रयामल के अनुसार योग का एक आसन।

विशेष—इससे योगाभ्यास मे शीघ्र सिद्धि होती है। इसमें दाहिनी जाँघ पर बाएँ पैर के तलवे को रखना पड़ता है। इससे पैर की नसें ढीली हो जाती हैं।

ज्ञानी—वि० [सं० ज्ञानिन्] १. जिसे ज्ञान हो। ज्ञानवान्। जानकार। २. आत्मज्ञानी। ब्रह्मज्ञानी।

ज्ञानेंद्रिय—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्ञानेन्द्रिय] वे इंद्रियाँ जिनसे जीवों को विषयों का बोध या ज्ञान होता है। ज्ञानेंद्रियाँ पाँच हैं,—दर्शनेंद्रिय, श्रवणेंद्रिय, घ्राणेंद्रिय, रसना और स्पर्शेंद्रिय।

विशेष—इन इंद्रियों के गोलक या आधार क्रमशः आँख, कान, जीभ, नाक और त्वक् हैं। इन पाँचों के अतिरिक्त कोई कोई छठी इंद्रिय मन या अंतःकरण मानते हैं पर मन केवल ज्ञानेंद्रिय नहीं है कर्मेंद्रिय भी है अतः उसे दार्शनिकों ने उभयात्मक माना है।

ज्ञानोदय—संज्ञा पुं० [सं०] ज्ञान का उदय (को०)।

ज्ञापक[1]—वि० [सं०] १. जतानेवाला। जिससे किसी बात का बोध या पता चले। सूचक। व्यंजक (वस्तु)। २. बतानेवाला। सूचित करनेवाला (व्यक्ति)।

ज्ञापक[2]—संज्ञा पुं० १. गुरु। आचार्य। २. प्रभु। स्वामी (को०)।

ज्ञापन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० ज्ञापित, ज्ञाप्य] जताने या बताने का कार्य।

ज्ञापयिता—वि० [सं० ज्ञापयितृ] सूचक। बतानेवाला। ज्ञापक (को०)।

ज्ञापित—वि० [सं०] जताया हुआ। बताया हुआ। सूचित।

ज्ञाप्य—वि० [सं०] जताने या सूचित करने योग्य (को०)।

ज्ञीप्सा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जानने की इच्छा (को०)।

ज्ञेय—वि० [सं०] १. जिसका जानना योग्य या कर्तव्य हो। जानने योग्य।

विशेष—ब्रह्मज्ञानी लोग एकमात्र ब्रह्म को ही ज्ञेय मानते हैं, जिसको जाने बिना मोक्ष नहीं हो सकता।

२ जो जाना जा सके। जिसका जानना संभव हो।

ज्यौंना(पु)†—क्रि० स० [हिं० जिमाना, जेवाना] खिलाना। उ०—सुभग सुस्वाद सुविंजन भाँति। जननी ज्यांवै अपने पानि।—नंद० ग्रं०, पृ० २७८।

ज्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. धनुष की डोरी। २. वह रेखा जो किसी चाप के एक सिरे से दूसरे सिरे तक हो।
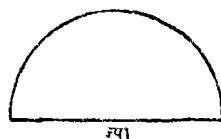
३. वह रेखा जो किसी चाप के एक सिरे से उस व्यास पर लंब रूप से गिरी हो जो चाप के दूसरे सिरे से होकर गया हो।
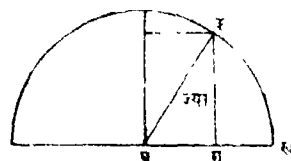
४. त्रिकोणमिति मे केंद्र पर के कोण के विचार से ऊपर बतलाई हुई रेखा (क ग) और त्रिज्या (क घ) की निष्पत्ति। ५. पृथ्वी। ६. माता। ७. किसी वृत्त का व्यास। ८. सर्वोच्च शक्ति (को०)। ९ अत्यधिक माँग (को०)। १०. एक प्रकार की छड़ी। शम्या (को०)। १०. सेना का पृष्ठ भाग (को०)।

ज्याग(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'याग'। उ०—जेहा केहा ज्याग हैवर राखोड़ा हुवै।—बाँकी० ग्रं०, भा० ३, पृ० १४।

ज्याघात—संज्ञा पुं० [सं०] धनुष की डोरी के स्पर्श या रगड़ से होनेवाला उँगलियों पर का निशान या चिह्न (को०)।

यौ०—ज्याघातवारण = धनुर्धरों द्वारा पहना जानेवाला अंगुलित्राण।

ज्याघोष—संज्ञा पुं० [सं०] धनुष की टंकार (को०)।

ज्यादती—संज्ञा स्त्री॰ [फ़ा॰ ज्यादती] १. अधिकता । बहुतायत । अधिकाई । २. जुल्म । अत्याचार ।

ज्यादा—क्रि॰ वि॰ [फ़ा॰ ज्यादह्] अधिक । बहुत ।

ज्यान(पु)†[1] संज्ञा पुं॰ [फा॰ जियान] नुकसान । हानि । घाटा । उ॰—ह्वैके अजान जु कान्ह सों कीनो सु मान भयो वह ज्यान है जी को ।—पद्माकर ग्रं॰, पृ॰ ११६ ।

ज्यान[2](पु) —संज्ञा स्त्री॰ [फा॰ जान] दे॰ 'जान' । उ॰ —(क) पातसाह की ज्यान बकसीस करो ।—ह॰ रासो, पृ॰ १२६ । (ख) अरे इस्क ऐसा बुरा, फिरि लेता है ज्यान ।—ब्रज॰ ग्रं॰, पृ॰ ४८ ।

ज्याना(पु)—क्रि॰ स॰ [हि॰] दे॰ 'जियाना' । उ॰—ज्याइए तो जानकी रमन जन जानि जिय, मारिए तो माँगी मीचु सूधिए कहतु हों ।—तुलसी ग्रं॰, पृ॰ २४० ।

ज्यानि—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] १. वृद्धावस्था । जरा । बुढ़ापा । २. क्षय । ३. त्याग । परित्याग । ४. नदी । ५. अत्याचार । उत्पीड़न । ६. हानि [को॰] ।

ज्यानी(पु)—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ ज्यानि, तुलनीय फ़ा॰ जियान] हानि । घाटा । उ॰—ता दिन तें ज्यानी सी बिकानी सी दिखानी बिलखानी सी बिलानी राजधानी जमराज की ।—पद्माकर ग्रं॰, पृ॰ २६३ ।

ज्याफत—संज्ञा स्त्री॰ [अ॰ जियाफ़त] १. दावत । भोज । २. मेहमानी । आतिथ्य ।

क्रि॰ प्र॰—खाना ।—देना ।

ज्यामिति—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] वह गणित विद्या जिससे भूमि के परिमाण, भिन्न भिन्न क्षेत्रों के अंगों आदि के परस्पर संबंध तथा रेखा, कोण, तल आदि का विचार किया जाता है । क्षेत्र गणित । रेखागणित ।

विशेष—इस विद्या में प्राचीन यूनानियों (यवनों) ने बहुत उन्नति की थी । यूनान देश के प्राचीन इतिहासवेत्ता हेरोडोटस के अनुसार ईसा से १३५७ वर्ष पूर्व सिसोस्ट्रिस के समय में मिस्र देश में इस विद्या का आविर्भाव हुआ । राजकर निर्धारित करने के लिये जब भूमि को नापने की आवश्यकता हुई तब इस विद्या का सूत्रपात हुआ । कुछ लोग कहते हैं कि नील नद के बढ़ाव उतार के कारण लोगों की जमीन की हद मिट जाया करती थी, इसी से यह विद्या निकाली गई । इउक्लिड के टीकाकार प्रोक्लस ने भी लिखा है कि थेल्स ने मिस्र में जाकर यह विद्या सीखी थी और यूनान में इसे प्रचलित की थी । धीरे धीरे यूनानियों ने इस विद्या मे बड़ी उन्नति की । पाइथागोरस ने सबसे पहले इसके संबंध मे सिद्धांत स्थिर किए और कई प्रतिज्ञाएँ निकाली । फिर तो प्लेटो आदि अनेक विद्वान् इस विद्या के अनुशीलन में लगे । प्लेटो के अनेक शिष्यों ने इस विद्या का विस्तार किया जिनमें मुख्य अरस्तू (एरिस्टाटिल) और इउडोक्सस थे । पर इस विद्या का प्रधान आचार्य इउक्लिड (उकलैदस) हुआ जिसका नाम रेखागणित का पर्याय स्वरूप हो गया । यह ईसा से २८४ वर्ष पूर्व जीवित था और इसकंदरिया (अलेग्जेंड्रिया, जो मिस्र में है) के विद्यालय में गणित की शिक्षा देता था । वास्तव में इउक्लिड ही यूरप में ज्यामिति विद्या का प्रतिष्ठापक हुआ है और इसकंदरिया ही इस विद्या का केंद्र या पीठ रहा है । जब अरबवालों ने इस नगर पर अधिकार किया तब भी वहाँ इस विद्या का बड़ा प्रचार था । प्राचीन हिंदू भी इस विद्या में बहुत पहले अग्रसर हुए थे । वैदिक काल में आर्यों को यज्ञ की वेदियों के परिमाण, आकृति आदि निर्धारित करने के लिये इस विद्या का प्रयोजन पड़ा था । ज्यामिति का आभास शुल्वसूत्र, कात्यायन श्रौतसूत्र, शतपथ ब्राह्मण आदि में वेदियों के निर्माण के प्रकरण में पाया जाता है । इस प्रकार यद्यपि इस विद्या का सूत्रपात भारत में ईसा से कई हजार वर्ष पहले हुआ पर इसमें यहाँ कुछ उन्नति नहीं की गई । यूनानियों के संसर्ग के पीछे ब्रह्मगुप्त और भास्कराचार्य के ग्रंथो में ही ज्यामिति विद्या का विशेष विवरण देखा जाता है । इस प्रकार जब हिंदुओं का ध्यान यवनों के संसर्ग से फिर इस विद्या की ओर हुआ तब उन्होंने उसमें बहुत से नए निरूपण किए । परिधि और व्यास का सूक्ष्म अनुपात ३·१४१६ : १ भास्कराचार्य को विदित था । इस अनुपात को अरबवालों ने हिंदुओं से सीखा, पीछे इसका प्रचार यूरप में (१२वीं शताब्दी के पीछे) हुआ ।

ज्यायस्—वि॰ [सं॰] [वि॰ स्त्री॰ ज्यायसी] १. ज्येष्ठ । बड़ा । २. सर्वश्रेष्ठ । ३. विशाल । महत् । ४. जो नाबालिग न हो । प्रौढ़ । ५. वयोवृद्ध । वृद्ध । ६. क्षीण । क्षयशील । ७. उत्तम । शक्तिशाली । वरेण्य [को॰] ।

ज्यायिष्ठ—वि॰ [सं॰] १. सर्वश्रेष्ठ । २. प्रथम । सर्वप्रथम [को॰] ।

ज्यारना†[1](पु)—क्रि॰ स॰ [हि॰] दे॰ 'जियाना', 'जिलाना' । उ॰—आयो फिरि विप्र नेह खोजहूँ न पायो कहूँ सरसायो बातैं लै दिखायो स्याम ज्यारियै ।—प्रिया॰ (शब्द॰) ।

ज्यारना[2](पु)—क्रि॰ स॰ [हि॰ जारना(=जलाना)] दे॰ 'जारना' । उ॰—चिता वारूँ ममता ज्यारूँ ।—दक्खिनी॰, पृ॰ १३४ ।

ज्यावना†(पु)—क्रि॰ स॰ [हि॰] दे॰ 'जिलाना' ।

ज्युति—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] ज्योति [को॰] ।

ज्यूँ†—अव्य॰ [हि॰] दे॰ 'ज्यों' ।

ज्येष्ठ[1]—वि॰ [सं॰] १. बड़ा । जेठा । जैसे, ज्येष्ठ भ्राता । २. वृद्ध । बड़ा । बूढ़ा ।

यौ॰—ज्येष्ठ तात = बाप का बड़ा भाई । ज्येष्ठ वर्ण = ब्राह्मण । ज्येष्ठ श्वश्रू = पत्नी की बड़ी बहन । बड़ी साली ।

ज्येष्ठ[2]—संज्ञा पुं॰ १. जेठ का महीना । वह महीना जिसमें ज्येष्ठा नक्षत्र में पूर्णिमा का चंद्रमा उदय हो । यह वर्ष का तीसरा और ग्रीष्म ऋतु का पहला महीना है । २. वह वर्ष जिसमें बृहस्पति का उदय ज्येष्ठा नक्षत्र में हो ।

विशेष—यह वर्ष कँगनी और सावाँ को छोड़ और अन्नों के लिये हानिकारक माना जाता है । इसमें राजा धर्मज्ञ होता है और श्रेष्ठता जाति, कुल और धन से होती है ।—(बृहत्संहिता)

३. सामगान का एक भेद । ४. परमेश्वर । ५. प्राण ।

ज्येष्ठता—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] १. ज्येष्ठ होने का भाव । बड़ाई । २. श्रेष्ठता ।

ज्येष्ठबला—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] सहदेई नाम की बड़ी जो औषध के काम में आती है।

ज्येष्ठसामग—संज्ञा पुं॰ [सं॰] अरण्यक साम का पढ़नेवाला।

ज्येष्ठसामा—संज्ञा पुं॰ [सं॰ ज्येष्ठसामन्] ज्येष्ठ सामवेद का पढ़नेवाला।

ज्येष्ठांबु—संज्ञा पुं॰ [सं॰ ज्येष्ठाम्बु] १. चावलों का धोवन। २. माँड़ (को॰)।

ज्येष्ठांश—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. बड़े भाई का हिस्सा या अंश। २. पैतृक संपत्ति में बड़े भाई को मिलनेवाला अधिक अंश। ३. उत्तम अंश या हिस्सा [को॰]।

ज्येष्ठा[१]—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] १. २७ नक्षत्रों में से अठारहवाँ नक्षत्र जो तीन तारों से बने कुंडल के आकार का है। इसके देवता चंद्रमा हैं। २. वह स्त्री जो औरों की अपेक्षा अपने पति को अधिक प्यारी हो। ३. छिपकली। ४. मध्यमा उँगली। ५. गंगा। ६-पद्मपुराण के अनुसार अलक्ष्मी देवी।

विशेष—ये समुद्र मथने पर लक्ष्मी के पहले निकली थीं। जब इन्होंने देवताओं से पूछा कि हम कहाँ निवास करें तब उन्होंने बतलाया कि जिसके घर में सदा कलह हो, जो नित्य गंदी या बुरी बातें बके, जो अशुचि रहे इत्यादि उसके यहाँ रहो। लिंगपुराण में लिखा है कि जब देवताओं में से किसी ने इन्हें ग्रहण नहीं किया तब दुःसह नामक तेजस्वी ब्राह्मण ने इन्हें पत्नी रूप से ग्रहण किया।

ज्येष्ठा[२]—वि॰ स्त्री॰ बड़ी।

ज्येष्ठाश्रम—संज्ञा पुं॰ [सं॰] उत्तमाश्रम। गृहस्थाश्रम।

ज्येष्ठाश्रमी—संज्ञा पुं॰ [सं॰ ज्येष्ठाश्रमिन्] गृहस्थ। गृही।

ज्येष्ठी—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] गृहगोधा। पल्ली। छिपकली। बिसतुइया।

ज्यों—क्रि॰ वि॰ [सं॰ यः+इव] १ जिस प्रकार। जैसे। जिस ढंग से। जिस रूप से। उ॰—(क) तुलसिदास जगदघ जवास ज्यों अनघ आगि लागे डाढ़न।—तुलसी (शब्द॰)। (ख) करी न प्रीति श्याम सुंदर सो जन्म जुआ ज्यों हार्‌यो।—सूर (शब्द॰)।

विशेष—अब गद्य में इस शब्द का प्रयोग अकेले नहीं होता केवल कविता में सादृश्य दिखलाने के लिये होता है।

मुहा॰—ज्यों त्यों=(१) किसी न किसी प्रकार। किसी ढंग से। झंझट और बखेड़े के साथ। (२) अरुचि के साथ। अच्छी तरह नहीं। ज्यों त्यों करके=(१) किसी न किसी प्रकार। किसी ढब से। किसी उपाय से। जिस प्रकार हो सके उस प्रकार। जैसे,—ज्यों त्यों करके उसे हमारे पास ले आओ। (२) झंझट और बखेड़े के साथ। दिक्कत के साथ। कठिनाई के साथ। जैसे,—रास्ते में बड़ी गहरी आँधी आई, ज्यों त्यों करके घर पहुँचे। ज्यों का त्यों=(१) जैसे का तैसा। उसी रूप रंग का। तद्रूप। सदृश। (२) जैसा पहले था वैसा ही। जिसमें कुछ फेर फार या घटती बढ़ती न हुई हो। जिसके साथ कुछ क्रिया न की गई हो। जैसे,—सब काम ज्यों का त्यों पड़ा है कुछ भी नहीं हुआ है।

विशेष—वाक्य का संबंध पूरा करने के लिये इस शब्द के साथ 'त्यों' का प्रयोग होता है पर गद्य में प्रायः नहीं होता।

२. जिस क्षण। जैसे ही। जैसे,—(क) ज्यों मैं आया कि पानी बरसने लगा। (ख) ज्यों ही मैं पहुँचा, वह उठकर चला गया।

विशेष—इस अर्थ में इसका प्रयोग 'ही' के साथ अधिक होता है।

मुहा॰—ज्यों ज्यों=जिस क्रम से। जिस मात्रा से। जितना। उ॰—जमुना ज्यों ज्यों लागी बाढ़न। त्यों त्यों सुकृत सुभट कलि भूपहि निदरि लगे बहि काढ़न।—तुलसी (शब्द॰)।

ज्योतिःपुंज—वि॰ [सं॰ ज्योतिःपुञ्ज] प्रखर या दिव्य प्रकाशवाला। जिसमें प्रकाश भरा हो। उ॰—खग को ज्योतिःपुंज प्राप्त हो।—आराधना, पृ॰ ८।

ज्योतिःशास्त्र—संज्ञा पुं॰ [सं॰] ज्योतिष।

ज्योतिःशिखा—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] लघु गुरु वर्णों की गणना के अनुसार विषम वर्णवृत्तों का एक भेद जिसके पहले दल में ३२ लघु और दूसरे दल में १६ गुरु होते हैं।

ज्योति—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ ज्योतिस्] १. प्रकाश। उजाला। द्युति। २. अग्निशिखा। लपट। लौ।

मुहा॰—ज्योति जगना=(१) प्रकाश फैलना। (२) किसी देवता के सामने दीपक जलाना।

३. अग्नि। ४. सूर्य। ५ नक्षत्र। ६. मेथी। ७ संगीत में अष्टताल का एक भेद। ८. आँख की पुतली के मध्य का वह बिंदु या स्थान जो दर्शन का प्रधान साधन है। ९. दृष्टि। १०. अग्निष्टोम यज्ञ की एक संस्था का नाम। ११. विष्णु। १२. वेदांत में परमात्मा का एक नाम।

यौ॰—ज्योतिर्मयी=प्रकाश से भरी हुई। ज्योतिमुख=ज्योति का मुख।

ज्योतिक(५)—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] दे॰ 'ज्योतिषी'। उ॰—बार बार ज्योतिक सो घरी बूझि आवै। पक जाइ पहुँचे नहिं और एक पठावै।—सूर (शब्द॰)।

ज्योतित—वि॰ [सं॰ ज्योति+हिं॰ त (प्रत्य॰)] प्रकाशित। उद्भासित। ज्योति से पूर्ण। उ॰—मा! तब तूने मुझे दिखाई अपनी ज्योतित छटा अपार।—वीणा, पृ॰ ५५।

ज्योतिरिंग—संज्ञा पुं॰ [सं॰ ज्योतिरिङ्ग] जुगनू।

ज्योतिरिंगण—संज्ञा पुं॰ [सं॰ ज्योतिरिङ्गण] जुगनू।

ज्योतिर्मय—वि॰ [सं॰] प्रकाशमय। द्युतिपूर्ण। जगमगाता हुआ।

ज्योतिर्लिंग—संज्ञा पुं॰ [सं॰ ज्योतिर्लिङ्ग] १. महादेव। शिव।

विशेष—शिवपुराण में लिखा है कि जब विष्णु की नाभि से ब्रह्मा उत्पन्न हुए तब वे घबड़ाकर कमलनाल पर इधर से उधर घूमने लगे। विष्णु ने कहा कि तुम सृष्टि बनाने के लिये उत्पन्न किए गए हो। इसपर ब्रह्मा बहुत क्रुद्ध हुए और कहने लगे कि तुम कौन हो, तुम्हारा भी तो कोई कर्ता है? जब दोनों

में घोर युद्ध होने लगा तब झगड़ा निपटाने के लिये एक कालाग्नि सदृश ज्योतिर्लिंग उत्पन्न हुआ जिसके चारों ओर भयंकर ज्वाला फैल रही थी। यह ज्योतिर्लिंग आदि, मध्य और अंत रहित था। इस कथा का अभिप्राय ब्रह्मा और विष्णु से शिव को श्रेष्ठ सिद्ध करना ही प्रतीत होता है।

२. भारतवर्ष में प्रतिष्ठित शिव के प्रधान लिंग जो बारह हैं। वैद्यनाथ माहात्म्य में इन बारह लिंगों के नाम इस प्रकार हैं। सोमनाथ सौराष्ट्र में, मल्लिकार्जुन श्रीशैल में, महाकाल उज्जयिनी में, ओंकार नर्मदा तट पर (अमरेश्वर में), केदार हिमालय में, भीमशंकर डाकिनी में, विश्वेश्वर काशी में, त्र्यंबक गोमती किनारे, वैद्यनाथ चिताभूमि में, नागेश्वर द्वारका में, रामेश्वर सेतुबंध में, घृष्णेश्वर शिवालय में।

ज्योतिर्लोक—संज्ञा पुं० [सं०] १. कालचक्र प्रवर्तक ध्रुव लोक। २. उस लोक के अधिपति परमेश्वर या विष्णु।

विशेष—भागवत में इस लोक को सप्तर्षि मंडल से १३ लाख योजन और दूर लिखा है। यहीं उत्तानपाद के पुत्र ध्रुव स्थित हैं जिनकी परिक्रमा इंद्र कश्यप प्रजापति तथा ग्रह नक्षत्र आदि बराबर करते रहते हैं।

ज्योतिर्विद्—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष जाननेवाला। ज्योतिषी।

ज्योतिर्विद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्योतिष विद्या।

ज्योतिर्हस्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा।

ज्योतिश्चक्र—संज्ञा पुं० [सं०] नक्षत्र और राशियों का मंडल।

ज्योतिष—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह विद्या जिससे अंतरिक्ष में स्थित ग्रहों नक्षत्रों आदि की परस्पर दूरी, गति, परिमाण आदि का निश्चय किया जाता है।

विशेष—भारतीय आर्यों में ज्योतिष विद्या का ज्ञान अत्यंत प्राचीन काल से था। यज्ञों की तिथि आदि निश्चित करने में इस विद्या का प्रयोजन पड़ता था। अयन चलन के क्रम का पता बराबर वैदिक ग्रंथों में मिलता है। जैसे, पुनर्वसु से मृगशिरा (ऋग्वेद), मृगशिरा से रोहिणी (ऐतरेय ब्रा०), रोहिणी से कृत्तिका (तैत्ति० सं०) कृत्तिका से भरणी (वेदांग ज्योतिष)। तैत्तरीय संहिता से पता चलता है कि प्राचीन काल में वासंत विषुवद्दिन कृत्तिका नक्षत्र में पड़ता था। इसी वासंत विषुवद्दिन से वैदिक वर्ष का आरंभ माना जाता था, पर अयन की गणना माघ मास से होती थी। इसके पीछे वर्ष की गणना शारद विषुवद्दिन से आरंभ हुई। ये दोनों प्रकार की गणनाएँ वैदिक ग्रंथों में पाई जाती हैं। वैदिक काल में कभी वासंत विषुवद्दिन मृगशिरा नक्षत्र में भी पड़ता था। इसे पंडित बाल गंगाधर तिलक ने ऋग्वेद से अनेक प्रमाण देकर सिद्ध किया है। कुछ लोगों ने निश्चित किया है कि वासंत विषुवद्दिन की यह स्थिति ईसा से ४००० वर्ष पहले थी। अतः इसमें कोई संदेह नहीं कि ईसा से पाँच छह हजार वर्ष पहले हिंदुओं को नक्षत्र अयन आदि का ज्ञान था और वे यज्ञों के लिये पत्रा बनाते थे। शारद वर्ष के प्रथम मास का नाम अग्रहायण था जिसकी पूर्णिमा मृगशिरा नक्षत्र में पड़ती थी। इसी से कृष्ण ने कहा है कि 'महीनों में मैं मार्गशीर्ष हूँ'। प्राचीन हिंदुओं ने ध्रुव का पता भी अत्यंत प्राचीन काल में लगाया था। अयन चलन का सिद्धांत भारतीय ज्योतिषियों ने किसी दूसरे देश से नहीं लिया; क्योंकि इसके संबंध में जब कि युरोप में विवाद था, उसके सात आठ सौ वर्ष पहले ही भारतवासियों ने इसकी गति आदि का निरूपण किया था। वराहमिहिर के समय में ज्योतिष के संबंध में पाँच प्रकार के सिद्धांत इस देश में प्रचलित थे—सौर, पैतामह, वासिष्ठ, पौलिश और रोमक। सौर सिद्धांत संबंधी सूर्य सिद्धांत नामक ग्रंथ किसी और प्राचीन ग्रंथ के आधार पर प्रणीत जान पड़ता है। वराहमिहिर और ब्रह्मगुप्त दोनों ने इस ग्रंथ से सहायता ली है। इन सिद्धांत ग्रंथों में ग्रहों के भुजांश, स्थान, युति, उदय, अस्त आदि जानने की क्रियाएँ सविस्तर दी गई हैं। अक्षांश और देशांतर का भी विचार है। पूर्व काल में देशांतर लंका या उज्जयिनी से लिया जाता था। भारतीय ज्योतिषी गणना के लिये पृथ्वी को ही केंद्र मानकर चलते थे और ग्रहों की स्पष्ट स्थिति या गति लेते थे। इससे ग्रहों की कक्षा आदि के संबंध में उनकी और आज की गणना में कुछ अंतर पड़ता है।

क्रांतिवृत्त पहले २८ नक्षत्रों में ही विभक्त किया गया था। राशियों का विभाग पीछे से हुआ है। वैदिक ग्रंथों में राशियों के नाम नहीं पाए जाते। इन राशियों का यज्ञों से भी कोई संबंध नहीं है। बहुत से विद्वानों का मत है कि राशियों और दिनों के नाम यवन (यूनानियों के) संपर्क के पीछे के हैं। अनेक पारिभाषिक शब्द भी यूनानियों से लिए हुए हैं, जैसे,—होरा, द्रुक्काण केंद्र, इत्यादि।

ज्योतिष के आजकल दो विभाग माने जाते हैं—एक सिद्धांत या गणित ज्योतिष, दूसरा फलित ज्योतिष। फलित में ग्रहों के शुभ अशुभ फल का निरूपण किया जाता है।

२. अस्त्रों का एक संहार या रोक जिससे चलाया हुआ अस्त्र निष्फल जाता है।

विशेष—इसका उल्लेख वाल्मीकि रामायण में है।

ज्योतिषिक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष शास्त्र का अध्ययन करनेवाला। ज्योतिषी।

ज्योतिषिक[2]—वि० ज्योतिष संबंधी।

ज्योतिषी[1]—संज्ञा पुं० [सं० ज्योतिषिन्] ज्योतिष शास्त्र का जाननेवाला मनुष्य। ज्योतिर्विद्। दैवज्ञ। गणक।

ज्योतिषी[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] तारा। ग्रह। नक्षत्र।

ज्योतिष्क—संज्ञा पुं० [सं०] १. ग्रह, तारा, नक्षत्र आदि का समूह। २. मेथी। ३. चित्रक वृक्ष। चीता। ४ मनियारी का पेड़। ५. मेरु पर्वत के एक शृंग का नाम। ६. जैन मतानुसार देवताओं का एक भेद जिसके अंतर्गत चंद्र, तारा, ग्रह, नक्षत्र और अर्क हैं।

ज्योतिष्का—संज्ञा स्त्री० [सं०] मालकँगनी।

ज्योतिष्टोम—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का यज्ञ जिसमें १६ ऋत्विक् होते थे। इस यज्ञ के समापनांत में १२०० गोदान का विधान था।

ज्योतिष्पथ—संज्ञा पुं० [सं०] आकाश।

ज्योतिष्पुंज—संज्ञा पुं० [सं०] नक्षत्रसमूह।

ज्योतिष्मती—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ मालकँगनी। २ रात्रि। ३ एक नदी का नाम। ४. एक प्रकार का वैदिक छंद। ५ सारंगी की तरह का एक प्राचीन बाजा। ६ सत्वगुणप्रधान मन की शांत अवस्था (को०)।

ज्योतिष्मान्[1]—वि० [सं० ज्योतिष्मत्] प्रकाशयुक्त। ज्योतिर्मय।

ज्योतिष्मान्[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १ सूर्य। २ प्लक्ष द्वीप के एक पर्वत का नाम। ३ ब्रह्मा का तृतीय पाद या चरण (को०)। ४. प्रलयकाल में उदित होनेवाले सात सूर्यों में से एक (को०)।

ज्योतिस्[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. द्युति। ज्युति। प्रकाश। २. परम ज्योति। ब्रह्म की ज्योति। ३. विद्युत्। बिजली। ४ दिव्य सत्ता। ५ नक्षत्र। तारा आदि। ६ आकाशीय प्रकाश (तमस् का विलोम)। ७. सूर्य चंद्र। ८. दिव्य प्रकाश या बुद्धि। ९. ग्रह नक्षत्र संबंधी शास्त्र या विज्ञान। वि० दे० 'ज्योतिष'। १०. देखने की शक्ति। ११. दिव्य जगत्। १२ गाय [को०]।

ज्योतिस्[2]—संज्ञा पुं० १ सूर्य। २ अग्नि। ३ विष्णु [को०]

ज्योतिसास्त्रⓅ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ज्योतिःशास्त्र'। उ०—ज्योतिसास्त्र अति इंद्री ज्ञान। ताके तुम ही बीज निदान।—नंद० ग्रं०, पृ० २४४।

ज्योतिस्नाⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ज्योत्स्ना'।—अनेकार्थ०, पृ० ३१।

ज्योतिस्नात—वि० [सं० ज्योतिः + स्नात] प्रकाशपूर्ण। उ०—ज्योतिस्नात जीवनपथ पर अब चरण चार गतव्य एक हो।—अग्नि०, पृ० ३५।

ज्योतिहीन—वि० [सं० ज्योतिः+हीन] प्रकाश से रहित। प्रभाहीन। उ०—उल्का वज्र व धूमादि से हत विपर्ण ज्योतिहीन होने पर।—बृहत्संहिता, पृ० ८२।

ज्योतीरथ—संज्ञा पुं० [सं०] ध्रुव (जिसके आश्रित ज्योतिश्चक्र है)।

ज्योतीरस—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का रत्न जिसका उल्लेख बाल्मीकीय रामायण और बृहत्संहिता में है।

ज्योत्स्ना—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ चंद्रमा का प्रकाश। चाँदनी। २. चाँदनी रात। ३ सफेद फूल की तोरई। ४ सौंफ। ५ दुर्गा का एक नाम (को०)। ६ प्रकाश। उजाला (को०)।

ज्योत्स्नाकाली—संज्ञा स्त्री० [सं०] महाभारत के अनुसार सोम की कन्या जो वरुण के पुत्र पुष्कर की पत्नी थी।

ज्योत्स्नाधौत—वि० [सं०] दे० 'ज्योत्स्नास्नात'।

ज्योत्स्नाप्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] चकोर।

ज्योत्स्नावृक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] दीपाधार। दीवट। फनीलसोज।

ज्योत्स्नास्नात—वि० [सं०] चाँदनी में नहाया हुआ। चाँदनी से पूर्ण।

ज्योत्स्निका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ चाँदनी रात। २ सफेद फूल की तोरई।

ज्योत्स्नी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'ज्योत्स्निका'।

ज्योत्स्नेश—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा [को०]।

ज्योनार—संज्ञा स्त्री० [सं० जेमन (= खाना).] १. पका हुआ भोजन। रसोई।

क्रि० प्र० —करना।— होना।

२. भोज। दावत। ज्याफत।

क्रि० प्र०—करना।—देना।—होना।

मुहा०—ज्योनार बैठना = अतिथियों का भोजन करने बैठना। ज्योनार लगाना = अतिथियों के सामने रखने के लिये व्यंजनों को क्रम से लगाना या रखना।

ज्योबनⓅ—संज्ञा पुं० [सं० यौवन] दे० 'जोबन'। उ०—तन धन ज्योबन कछु नहिं भावत हरि सुखदाई री।—दक्खिनी०, पृ० १३२।

ज्योरा†—संज्ञा पुं० [देश०] वह अनाज जो फसल तैयार होने पर गाँवों में नाइयों चमारों आदि को उनके कामों के बदले में दिया जाता है।

ज्योरी†—संज्ञा स्त्री० [सं० जीवा] रस्सी। रज्जु। डोरी।

ज्योरूⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'जोरू'। उ०—माँ बाप बेटे ज्योरू लड़के सब देखत लोकन सरीखे।—दक्खिनी, पृ० १२२।

ज्योहत†Ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० जीव + हत] आत्महत्या। जौहर। उ०—केश गहि करखि जमुना धार डारिहै, सुन्यो नृप नारि पनि कृष्ण मारयो। भई व्याकुल सबै हेतु रोवन लगीं मरन को तुरत ज्योहत विचारयो।—सूर (शब्द०)।

ज्योहर†—संज्ञा पुं० [सं० जीव + हर] राजपूतों की एक प्रथा जिसके अनुसार उनकी स्त्रियाँ गढ़ के शत्रुओं से घिर जाने पर चिता में जलकर भस्म हो जाती थीं। दे० 'जौहर'

ज्यौं—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'ज्यों'।

ज्यौ[1]—अव्य० [सं० यदि] जो। यदि। उ०—जो न जुगुति पिय मिलन की धूर मुकुति मोहि दीन। ज्यौ लहियै सँग सजन तौ धरक नरक हू की न।—बिहारी (शब्द०)।

ज्यौ[2]Ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० जीव, प्रा० जीअ, जीय] दे० 'जीव'। उ०—बूड़त ज्यौ घनआनंद सोचि, दई बिधि व्याधि असाधि नई है।—घनानंद, पृ० ५।

ज्यौ[3]—संज्ञा पुं० [सं०] बृहस्पति ग्रह [को०]।

ज्यौतिष—वि० [सं०] ज्योतिष संबंधी।

ज्यौतिषिक—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिषी।

ज्यौत्स्न[1]—वि० [सं०] चंद्रकिरणों से प्रकाशित [को०]।

ज्यौत्स्न[2]—संज्ञा पुं० शुक्ल पक्ष। उजाला पाख [को०]।

ज्यौत्स्निका, ज्यौत्स्नी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पूर्णिमा की रात [को०]।

ज्यौनार—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ज्योनार'।

ज्यौरा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ज्योरा'।

ज्वर—संज्ञा पुं० [सं०] १. शरीर की वह गरमी या ताप जो स्वाभाविक से अधिक हो और शरीर की अस्वस्थता प्रकट करे। ताप। बुखार।

विशेष—सुश्रुत, चरक आदि ग्रंथों में ज्वर सब रोगों का राजा और आठ प्रकार का माना गया है—वातज, पित्तज, कफज, वातपित्तज, वातकफज, पित्तकफज, सान्निपातिक और आगंतुज। आगंतुज ज्वर वह है जो चोट लगने, विष खाने आदि के कारण हो जाता है। इन सब ज्वरों के लक्षण और आचार भिन्न भिन्न हैं। ज्वर से उठे हुए, कृश या मिथ्या आहार विहार करनेवाले मनुष्य का शेष या रहा सहा दोष जब वायु के द्वारा वृद्धि को प्राप्त होकर आमाशय, हृदय, कंठ, सिर और संधि इन पाँच कफ स्थानों का आश्रय लेता है तब उससे अंतरा, तिजरा और चौथिया आदि विषम ज्वर उत्पन्न होते हैं। प्रलेपक ज्वर से शरीरस्थ धातु सूख जाती है। जब कई एक दोष कफ स्थान का आश्रय लेते हैं तब विपर्यय नाम का विषम ज्वर उत्पन्न होता है। विपर्यय ज्वर वह है जो एक दिन न आकर दो दिन बराबर आवे। इसी प्रकार आगंतुक ज्वर के भी कारणों के अनुसार कई भेद किए गए हैं। जैसे, कामज्वर, क्रोधज्वर, भयज्वर इत्यादि। ज्वर अपने आरंभ दिन से सात दिनों तक तरुण, १४ दिनों तक मध्यम २१ दिनों तक प्राचीन और २१ दिनों के उपरांत जीर्णज्वर कहलाता है। जिस ज्वर का वेग अत्यंत अधिक हो, जिससे शरीर की कांति बिगड़ जाय, शरीर शिथिल हो जाय, नाड़ी जल्दी न मिले उसे कालज्वर कहते हैं। वैद्यक में गुडच, चिरायता, पिप्पली, नीम आदि कटु वस्तुएँ ज्वर को दूर करने के लिये दी जाती हैं।

पाश्चात्य मत के अनुसार मनुष्य के शरीर में स्वाभाविक गरमी ९८° और ९९° के बीच होती है। शरीर में गरमी उत्पन्न होते रहने और निकलते रहने का ऐसा हिसाब है कि इस मात्रा की उष्णता शरीर मे बराबर बनी रहती है। ज्वर की अवस्था में शरीर मे इतनी गरमी उत्पन्न होती है जितनी निकलने नहीं पाती। यदि गरमी बहुत तेजी से बढ़ने लगती है तो रक्त त्वचा से हटने लगता है जिसके कारण जाड़ा लगता है और शरीर में कँपकँपी होती है। ज्वर मे यद्यपि स्वस्थ दशा की अपेक्षा गरमी अधिक उत्पन्न होती है पर उतनी ही गरमी यदि स्वस्थ शरीर में उत्पन्न हो तो वह बिना किसी प्रकार का अधिक ताप उत्पन्न किए उसे निकाल सकता है। अस्वस्थ शरीर में गरमी निकालने की शक्ति उतनी नहीं रह जाती, क्योंकि शरीर की धातुओं का जो क्षय होता है वह पूर्ति की अपेक्षा अधिक होता है। ज्वर में शरीर क्षीण होने लगता है, पेशाब अधिक आता है, नाड़ी और श्वास जल्दी जल्दी चलने लगता है, प्राय. कोष्ठबद्ध भी हो जाता है, प्यास अधिक लगती है, भूख कम हो जाती है, सिर में दर्द तथा अंगो में विलक्षण पीड़ा होती है। विषैले कीटाणुओं के शरीर में प्रवेश और वृद्धि, अंगों की सूजन,धूप आदि के ताप तथा कभी कभी नाड़ियों या स्नायुओं की अव्यवस्था से भी ज्वर उत्पन्न होता है।

ज्वर के संबंध में हरिवंश में एक कथा लिखी है। जब कृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध बाणासुर के यहाँ बंदी हो गए तब कृष्ण और बाणासुर मे घोर संग्राम हुआ था। उसी अवसर पर बाणासुर की सहायता के लिये शिव ने ज्वर उत्पन्न किया। जब ज्वर ने बलराम आदि को गिरा दिया और कृष्ण के शरीर में प्रवेश किया तब कृष्ण ने भी एक वैष्णव ज्वर उत्पन्न किया जिसने माहेश्वर ज्वर को निकालकर बाहर किया। माहेश्वर ज्वर के बहुत प्रार्थना करने पर कृष्ण ने वैष्णव ज्वर समेट लिया और माहेश्वर ज्वर को ही पृथ्वी पर रहने दिया। दूसरी कथा यह है कि दक्ष प्रजापति के अपमान से क्रुद्ध होकर महादेव जी ने अपने श्वास से ज्वर को उत्पन्न किया।

क्रि० प्र०—आना।—होना।

मुहा०—ज्वर उतरना = ज्वर का जाता रहना। बुखार दूर होना। (किसी को) ज्वर चढ़ना = ज्वर आना। ज्वर का प्रकोप होना।

२. मानसिक क्लेश। दुःख। शोक (को०)।

ज्वरकुटुंब—संज्ञा पु० [सं० (ज्वर कुटुम्ब)] ज्वर के साथ होनेवाले उपद्रव, जैसे, प्यास, श्वास, अरुचि, हिचकी इत्यादि।

ज्वरघ्न—संज्ञा पुं० [सं०] १. गुड़ूच। २. बथुआ।

ज्वरचिकित्सा—संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्वर का उपचार या इलाज [को०]।

ज्वरप्रतीकार—संज्ञा पुं० [सं०] ज्वर का उपचार [को०]।

ज्वरराज—संज्ञा पुं० [सं०] ज्वर की एक औषध जो पारे, माक्षिक, मैनसिल, हरताल, गंधक तथा भिलावें के योग से बनती है।

ज्वरहंत्री—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्वरहन्त्री] मंजीठ।

ज्वरहर[1]—वि० [सं०] ज्वर को दूर करनेवाला [को०]।

ज्वरहर[2]—संज्ञा पुं० ज्वर का चिकित्सक [को०]।

ज्वरांकुश—संज्ञा पुं० [सं० ज्वराङ्कुश] १. ज्वर की एक औषध जो पारे, गंधक, प्रत्येक विष और धतूरे के बीजों के योग से बनती है। २. कुश की तरह की एक सुगंधित घास।

विशेष—यह उत्तरी भारत मे कुमायूँ गढ़वाल से लेकर पेशावर तक होती है। इसकी जड़ मे से नीबू की सी सुगंध आती है। यह घास चारे के काम की उतनी नहीं होती। इसकी जड़ और डठलों से एक प्रकार का सुगंधित तेल निकाला जाता है जो शरबत आदि मे डाला जाता है।

ज्वरांगी—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्वराङ्गी] भद्रदंती नाम का पौधा।

ज्वरांतक—संज्ञा पुं० [सं० ज्वरान्तक] १. चिरायता। २. अमलतास।

ज्वरा[1]—संज्ञा पुं० [सं०] मृत्यु। मौत। उ०—लिये सब आधिन व्याधिन जरा जब आवै ज्वरा की सहेली।—केशव (शब्द०)।

ज्वरा[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्वर।

ज्वरापह—वि० [सं०] ज्वर को दूर करनेवाला।

ज्वरापहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बेलपत्री।

ज्वरार्त—संज्ञा [सं०] ज्वरपीड़ित।

ज्वरित—वि० [सं०] ज्वरयुक्त। जिसे ज्वर चढ़ा हो।

ज्वरी—वि० [सं० ज्वरिन्] [वि०स्त्री० ज्वरिणी] जिसे ज्वर हो।

ज्वर्री†—संज्ञा पुं० [हिं० जुर्रा] दे० 'जुर्रा'। उ०—ज्वर्रा बाज बाँसे कुही बहरी लगर लोने, टोने जरकटी त्यों शचाम सानवारे हैं।—रघुराज (शब्द०)।

ज्वलंत—वि० [सं० ज्वलन्त] १. जलता हुआ। प्रकाशमान्। दीप्त। देदीप्यमान्। २. प्रकाशित। अत्यंत स्पष्ट। जैसे, ज्वलंत दृष्टांत, ज्वलंत प्रमाण।

ज्वल—संज्ञा पुं० [सं०] १. ज्वाला। अग्नि। २. दीप्ति। प्रकाश।

ज्वलका—संज्ञा स्त्री० [सं०] अग्निशिखा। आग की लपट। लौर।

ज्वलन—संज्ञा पुं० [सं०] १. जलने का कार्य या भाव। जलन। दाह। उ०—(क) अधर रसन पर लाली मिसी मलूम। मदन ज्वलन पर सोहति, मानहु धूम।—(शब्द०)। (ख) सुदसा ज्वलन सनेहवा कागन तोर। अंजन सोइ उर प्रगटत लगि दृग कोर।—रहीम (शब्द०)। २. अग्नि। आग। ३. लपट। ज्वाला। ४. चित्रक वृक्ष। चीता।

ज्वलन—वि० १. प्रकाश करनेवाला। प्रकाशयुक्त। २. दाहक [को०]।

ज्वलनांत—संज्ञा पुं० [सं० ज्वलनान्त] बौद्ध ग्रंथों के अनुसार दस हजार देवपुत्रों का नायक जिसने बौद्ध मठ में प्रवेश करते ही बोधिज्ञान प्राप्त कर लिया था।

ज्वलित—वि० [सं०] १. जला हुआ। दग्ध। २. उज्वल। दीप्तियुक्त। चमकता या झलकता हुआ।

ज्वलिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] मूर्वा लता। मुर्रा। मरोड़फली।

ज्वलिनी सीमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दो गाँवों के बीच की सीमा जो ऊँचे पेड़ लगाकर बनाई गई हो।

विशेष—मनु ने लिखा है कि पीपल, बड़, साल, ताड़ तथा ढाक के वृक्ष गाँव की सीमा पर लगाए।

ज्वाइनि(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० अजवाइन] एक प्रकार का पौधा जिसके बीज औषध और मसाले के काम मे आते हैं। अजवाइन। उ०—बिसूचित तन नहिं सकै समारि। पीपल मूल ज्वाइनि सारि।—प्राण०, पृ० १५०।

यौ०—ज्वाइनिसारि = अजवाइन का सत्त।

ज्वान†—वि० [फ़ा० जवान] दे० 'जवान'।

ज्वानी†—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० जवानी] दे० 'जवानी'।

ज्वाब†—संज्ञा पुं० [अ० जवाब] दे० 'जवाब'। उ०—को रक्खे या भूमि पर, रक्खि करे को ज्वाब।—हृ० रासो, पृ० ४८।

ज्वार—संज्ञा स्त्री० [सं० यवनाल, यवाकार या जूर्ण] १. एक प्रकार की घास जिसकी बाल के दाने मोटे अनाजों में गिने जाते हैं।

विशेष—यह अनाज संसार के बहुत से भागों में होता है। भारत, चीन, अरब, अफ्रीका, अमेरिका आदि में इसकी खेती होती है। ज्वार सूखे स्थानों में अधिक होती है, सीड़ लिए हुए स्थानों मे उतनी नहीं हो सकती। भारत में राजपूताना, पंजाब आदि में इसका व्यवहार बहुत अधिक होता है। बंगाल, मद्रास, बरमा आदि में ज्वार बहुत कम बोई जाती है। यदि बोई भी जाती है तो दाने अच्छे नहीं पड़ते। इसका पौधा नरकट की तरह एक डंठल के रूप में सीधा ५-६ हाथ ऊँचा जाता है। डंठल में सात सात आठ आठ अंगुल पर गाँठें होती हैं जिनसे हाथ डेढ़ हाथ लंबे तलवार के आकार के पत्ते दोनों ओर निकलते हैं। इसके सिरे पर फूल के जीरे और सफेद दानों के गुच्छे लगते हैं। ये दाने छोटे छोटे होते हैं और गेहूँ की तरह खाने के काम में आते हैं। ज्वार कई प्रकार की होती है जिनके पौधों में कोई विशेष भेद नहीं दिखाई पड़ता। ज्वार की फसल दो प्रकार की होती है, एक रबी, दूसरी खरीफ। मक्का भी इसी का एक भेद है। इसी से कहीं कहीं मक्का भी ज्वार ही कहलाता है। ज्वार को जोन्हरी, जुंडी आदि भी कहते हैं। इसके डंठल और पौधे को चारे के काम मे लाते हैं और चरी कहते हैं। इस अन्न के उत्पत्तिस्थान के संबंध में मतभेद है। कोई कोई इसे अरब आदि पश्चिमी देशों से आया हुआ मानते हैं और 'ज्वार' शब्द को अरबी 'दूरा' से बना हुआ मानते हैं, पर यह मत ठीक नहीं जान पड़ता। ज्वार की खेती भारत मे बहुत प्राचीन काल से होती आई है। पर यह चारे के लिये बोई जाती थी, अन्न के लिये नही।

२. समुद्र के जल की तरंग का चढ़ाव। लहर की उठान। भाटा का उलटा।

विशेष—दे० 'ज्वारभाटा'।

ज्वारभाटा—संज्ञा पुं० [हिं० ज्वार + भाटा] समुद्र के जल का चढ़ाव उतार। लहर का बढ़ना और घटना।

विशेष—समुद्र का जल प्रतिदिन दो बार चढ़ता और दो बार उतरता है। इस चढ़ाव उतार का कारण चंद्रमा और सूर्य का आकर्षण है। चंद्रमा के आकर्षण में दूरत्व के वर्ग के हिसाब से कमी होती है। पृथ्वी जल के उस भाग के अणु जो चंद्रमा से निकट होगा, उस भाग के अणुओं की अपेक्षा जो दूर होगा, अधिक आकर्षित होंगे। चंद्रमा की अपेक्षा पृथ्वी से सूर्य की दूरी बहुत अधिक है; पर उसका पिंड चंद्रमा से बहुत ही बड़ा है। अतः सूर्य की ज्वार उत्पन्न करनेवाली शक्ति चंद्रमा से बहुत कम नहीं है $\frac{2}{5}$ के लगभग है। सूर्य की यह शक्ति कभी कभी चंद्रमा की शक्ति के प्रतिकूल होती है; पर अमावस्या और पूर्णिमा के दिन दोनों की शक्तियाँ परस्पर अनुकूल कार्य करती हैं; अर्थात् जिस अंश में एक ज्वार उत्पन्न करेगी, उसी अंश में दूसरी भी ज्वार उत्पन्न करेगी। इसी प्रकार जिस अंश में एक भाटा उत्पन्न करेगी दूसरी भी उसी में भाटा उत्पन्न करेगी। यही कारण है कि अमावस्या और पूर्णिमा को और दिनों की अपेक्षा ज्वार अधिक ऊँची उठती है। सप्तमी और अष्टमी के दिन चंद्रमा और सूर्य की आकर्षण शक्तियाँ प्रतिकूल रूप से कार्य करती हैं, अतः इन दोनों तिथियों को ज्वार सबसे कम उठती है।

ज्वारी(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'जुआरी'।

ज्वाल¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. अग्निशिखा। लो। लपट। आँच। उ०—चिता ज्वाल शरीर बन दावा लगि लगि जाय।—गिरिधर (शब्द०)। २. मशाल (को०)।

ज्वाल²—वि० जलता हुआ। प्रकाशयुक्त [को०]।

ज्वालमाली—संज्ञा पुं० [सं० ज्वालमालिन्] सूर्य।

ज्वाला—संज्ञा पुं० [सं०] १. अग्निशिखा। लपट। २. विष आदि की गरमी का ताप। ३. गरमी। ताप। जलन।

मुहा०—ज्वाला फूँकना = (१) गरमी उत्पन्न करना। शरीर में दाह उत्पन्न करना। (२) प्रचंड क्रोध आना।

४. दग्धान्न। भुना हुआ चावल। ५. महाभारत के अनुसार तक्षक की पुत्री ज्वाला जिससे ऋक्ष ने विवाह किया था।

ज्वालाजिह्व—संज्ञा पुं० [सं०] १. अग्नि। आग। २. एक प्रकार का चित्रक वृक्ष।

ज्वालादेवी—संज्ञा स्त्री० [सं०] शारदापीठ में स्थित एक देवी।

विशेष—इनका स्थान काँगड़ा जिले के अंतर्गत देरा तहसील में है। तंत्र के अनुसार जब सती के शव को लेकर शिव जी घूम रहे थे तब यहाँ पर सती की जिह्वा गिरी थी। यहाँ की देवी 'अंबिका' नाम की और भैरव 'उन्मत्त' नामक हैं। यहाँ पर्वत के एक दरार से भूगर्भस्थ अग्नि के कारण एक प्रकार की जलनेवाली भाप निकला करती है जो दीपक दिखलाने से जलने लगती है। इसी को देवी का ज्वलंत मुख कहते हैं।

ज्वालाध्वज—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि [को०]।

ज्वालामालिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] तंत्र के अनुसार एक देवी का नाम।

ज्वालामाली—संज्ञा पुं० [सं० ज्वालामालिन्] शिव। महादेव [को०]।

ज्वालामुखी पर्वत—संज्ञा पुं० [सं०] वह पर्वत जिसकी चोटी के पास गहरा गड्ढा या मुँह होता है जिसमें धूआँ, राख तथा पिघले या जले हुए पदार्थ बराबर अथवा समय समय पर बराबर निकला करते हैं।

विशेष—ये वेग से बाहर निकलनेवाले पदार्थ भूगर्भ में स्थित प्रचंड अग्नि के द्वारा जलते या पिघलते हैं और संचित भाप के वेग से ऊपर निकलते हैं। ज्वालामुखी पर्वतों से राख, ठोस और पिघली हुई चट्टानें, कीचड़, पानी, धुआँ आदि पदार्थ निकलते हैं। पर्वत के मुँह के चारों ओर इन वस्तुओं के जमने के कारण कँगूरेदार ऊँचा किनारा सा बन जाता है। कहीं कहीं प्रधान मुख के अतिरिक्त बहुत से छोटे छोटे मुख भी इधर उधर दूर तक फैले हुए होते हैं। ज्वालामुखी पर्वत प्रायः समुद्रों के निकट होते हैं। प्रशांत महासागर (पैसफिक समुद्र) में जापान से लेकर पूर्वीय द्वीप समूह तक अनेक छोटे बड़े ज्वालामुखी पर्वत हैं। अकेले जावा ऐसे छोटे द्वीप में ४६ टीले ज्वालामुखी के हैं। सन् १८८३ में क्रकटोआ टापू में ज्वालामुखी का जैसा भयंकर स्फोट हुआ था, वैसा कभी नहीं देखा गया था। टापू के आसपास प्रायः चालीस हजार आदमी समुद्र की घोर हलचल से डूबकर मर गए थे।

ज्वालावक्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] शिव [को०]।

ज्वालाहल्दी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] रँगने की एक हलदी।

ज्वेहर(पु)†—संज्ञा पुं० [अ० जवाहिर] बेशकीमत पत्थर। रत्न। जवाहर। उ०—हीरे रतन ज्वेहर लाल। सचु सूची साची टकसाल।—प्राण०, पृ० १६७।

झ

झ—हिंदी व्यंजन वर्णमाला का नवाँ और चवर्ग का चौथा वर्ण जिसका स्थान तालु है। यह स्पर्श वर्ण है और इसके उच्चारण में संवार, नाद और घोष प्रयत्न होते हैं। च, छ, ज, और ञ इसके सवर्ण हैं।

झं—संज्ञा पुं० [अनु०] १. वह शब्द जो धातुखंडों के परस्पर टकराने से निकलता है। २. हथियारों का शब्द।

झंकना—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'झीखना'।

झंकाड़—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'झंखाड़'।

झंकार—संज्ञा स्त्री० [सं० झङ्कार] १. झनझनाहट का शब्द जो किसी धातुखंड से निकलता है। झन् झन् शब्द। झनकार। जैसे, पाजेब की झंकार, झाँझ की झंकार। उ०—शुभे, धन्य झंकार है धाम में, रहे किंतु टंकार संग्राम में।—साकेत, पृ० ३०५। २. झींगुर आदि छोटे छोटे जानवरों के बोलने का शब्द जो प्रायः झन् झन् होता है। झनकार। जैसे, झिल्लियों की झंकार। ३. झन् झन् शब्द होने का भाव।

झंकारना¹—क्रि० स० [सं० झङ्कार] धातुखंड आदि में से झनझन शब्द उत्पन्न करना। जैसे, झाँझ झंकारना।

झंकारना²—क्रि० अ० झन झन शब्द होना। जैसे, झिल्लियों का झंकारना।

झंकारिणी—संज्ञा स्त्री० [सं० झङ्कारिणी] गंगा। भागीरथी [को०]।

झंकारित¹—संज्ञा पुं० [पुं० झङ्कारित] दे० 'झकार' [को०]।

झंकारित²—वि० झंकार करता हुआ। झंकृत [को०]।

झंकारी—वि० [सं० झङ्कारिन्] झंकार करनेवाला। झन् झन् करनेवाला। झंकार-गुण-युक्त [को०]।

झंकृत¹—वि० [सं० झङ्कृत] झंकार करता हुआ। झकारयुक्त [को०]।

झंकृत²—संज्ञा पुं० धीरे धीरे होनेवाली मधुर ध्वनि। झकार [को०]।

झंकृता—संज्ञा स्त्री० [सं० झङ्कृता] तंत्र के अनुसार दस महाविद्या में से एक। देवी तारा [को०]।

झंकृति—संज्ञा स्त्री० [सं० झङ्कृति] झंकार। मधुर ध्वनि [को०]।

झंखन—संज्ञा स्त्री० [देशी √झंख, हिं० झंखना] झीखना। रोना-धोना। दुःख का प्रकाशन। उ०—झंखन झुरवन सबही छोड़ो। झमकि करो गुरु सेव।—कबीर श०, भा० ४, पृ० २५।

झंखना—क्रि० अ० [हिं० खीजना] बहुत अधिक दुखी होकर पछताना और कुढ़ना। झीखना। उ०—(क) बरस दिवस

बन रोय के हार परी चित झंख ।—जायसी (शब्द०) । (ख) पाँच तत्व का बना पींजरा तामें मुनियाँ रहती । उड़ि मुनियाँ डारी पर बैठे झंखन लागे सारी दुनिया ।—कबीर (शब्द०) ।

झंखर†—संज्ञा पुं० [देशी झंखर] शुष्क वृक्ष । उ०—थल भुरा बन झंखरा नहीं सु चपउ जाइ । गुणे सुगंधी मारवी, महकी सहु बणराइ ।—ढोला०, दू० ४६८ ।

झंखाट—वि० [हिं० झंखाड़] दे० 'झंखाड़' ।

झंखाड़—संज्ञा पुं० [हिं० 'झाड़' का अनु०] १. घनी और काँटेदार झाड़ी का पौधा । २. ऐसे काँटेदार पौधों या झाड़ियों का घना समूह जिसके कारण भूमि या कोई स्थान ढंक जाय । उ०—ऊँचे झाड़, कँटीले झंखाड़ों ने वन मग छाया । —क्वासि, पृ० ७२ । ३. वह वृक्ष जिसके पत्ते झड़ गए हों । ४. व्यर्थ की और रद्दी, विशेषत: काठ की चीजों का समूह ।

झंगर†—संज्ञा स्त्री० [सं० कन्दरा या देश०] १. गुफा । कंदरा । उ०—मिले सिंघ गिर झंगरां, सो एकलो सदीव । रच टोलो फिरता रहै, जठै तठ बन जीव । --बाँकी० ग्रं०, पृ० २७ । २. घनी झाड़ी ।

झंजारⓅ†—संज्ञा पुं० [हिं० जंजाल] जंजाल । मायाजाल । दु:ख । उ०--इनके चरन सरन जे आए मिटे सकल झंजार । छीत स्वामी गिरिधरन श्री विट्ठल सकल वेद को सार । —छीत०, पृ० १४ ।

झंझकारⓅ—संज्ञा पुं० [सं० झङ्कार] झंकार । झन् झन् की मधुर ध्वनि । उ०—निगम चारि उतपति भयो चतुरानन मुख बैन । उचरेउ शब्द अनाहदा झंझकार मद ऐन । —संत० दरिया, पृ० ४० ।

झंझ¹—संज्ञा पुं० [झन् झन् से अनु०] दे० 'झाँझ' । उ०—कोउ वीणा मुरली पटह चंग मृदंग उपंग । झालरि झंझ बजाई कै गावहि तिनके संग ।—(शब्द०) ।

झंझ²†—वि० [देश०] खाली । रीता । शुष्क । रहित ।

झंझट—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. व्यर्थ का झगड़ा । टंटा । बखेड़ा । २. प्रपंच । परेशानी । कठिनाई ।

क्रि० प्र०—उठाना ।—में पड़ना । —मे फँसना ।

झंझटिया, झंझटिहा†—वि० [हिं० झंझट] दे० 'झंझटी' ।

झंझटी—वि० [हिं० झंझट] १. झंझट करनेवाला । २. झंझट से भरा हुआ (काम) ।

झंझन—संज्ञा पुं० [सं० झञ्झन] आभूषण की झंकार । झुन झुन की मधुर ध्वनि [को०] ।

झंझनाना¹—क्रि० स० [सं० झञ्झन] झन झुन का शब्द करना । झंकार करना । झंकारना ।

झंझनाना²—क्रि० अ० १. झंकार होना । †२. कोई बात इस ढंग से कहना जिसमें खीझ और झल्लाहट भरी हो । झल्लाना ।

झंझर¹—संज्ञा पुं० [सं० झञ्झर] दे० 'झज्झर' ।

झंझर²—संज्ञा स्त्री० [हिं० झँझरी] दे० 'झँझरी' ।

झंझा—संज्ञा स्त्री० [सं० झञ्झा] । १. वह तेज आँधी जिसके साथ वर्षा भी हो । उ०—मन को मसूसी मनभावन सों रूसि सखी दामिनि को दूषि रही रभा झुकि झंझा सी ।—देव (शब्द०) ।

यौ०—झंझानिल । झंझामरुत् । झंझामारुत = दे० 'झंझावात' ।

२. तेज आँधी । अंधड़ । ३. बड़ी बड़ी बूँदों की वर्षा । ४. झाँझ । ५. खोई हुई वस्तु । हिराई हुई चीज (को०) ।

झंझाⓅ—वि० प्रचंड । तीखा । तेज ।

झंझानिल—संज्ञा पुं० [सं० झञ्झानिल] १. प्रचंड वायु । आँधी । २. वह आँधी जिसके साथ वर्षा भी हो ।

झंझार—संज्ञा पुं० [सं० झञ्झा] आग की वह लपट जिसमें से कुछ अव्यक्त शब्द के साथ धुँआ और चिनगारियाँ निकलें । उ०—(क) अति अगिनि झार भभार, धुंधार करि, उचटि अंगार झंझार छायो ।—सूर०, १० । ५९६ । (ख) लाल तिहारे विरह की लागी अगिन अपार । सरसै बरसै नीरहू मिटै न झर झंझार । —भारतेंदु ग्रं०, भा०२, पृ० ४६५ ।

झंझावात—संज्ञा पुं० [सं० झञ्झावात] १. प्रचंड वायु । आँधी । २. वह आँधी जिसके साथ पानी भी बरसे ।

झंझी—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. फूटी कौड़ी । २. दलाली का धन । झज्झी । (दलालों की बोली) ।

झंझेरनाⓅ—क्रि० स० [हिं० झकझोरना] दे० 'झँझोड़ना' ।

झंझोटी, झँझौटी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] एक राग । दे० 'झिंझोटी' । उ०—तीसरे ने कहा वाह झंझोटी है । —श्रीनिवास ग्रं०, पृ० २०४ ।

झंझोरनाⓅ—क्रि० स० [हिं० झकझोरना] दे० 'झँझोड़ना' । उ०—विषम वाय जिम लता मोरि मारुत झंझोरै । (कै) चित्र लिखी पुत्तरी जोरि जोरंत निहोरै । —पृ० रा०, २।३४८ ।

झंटी—संज्ञा स्त्री० [देशी] छोटे और उठे हुए बाल । झोंटा ।

झंड—संज्ञा पुं० [सं० जट, या देशी] १. छोटे बालकों के मुंडन के पहले के केश । २. करील ।

झंडा—संज्ञा पुं० [सं० जयन्ता या देश०] १. तिकोने या चौकोर कपड़े का टुकड़ा जिसका एक सिरा लकड़ी आदि के डंडे में लगा रहता है और जिसका व्यवहार चिह्न प्रकट करने, संकेत करने, उत्सव आदि सूचित करने अथवा इसी प्रकार के अन्य कामों के लिये होता है । पताका । निशान । फरहरा । ध्वजा ।

मुहा०—झंडे तले की दोस्ती = बहुत ही साधारण या राह चलते की जान पहचान । झंडे पर चढ़ना = बदनाम होना । अपने सिर बहुत बदनामी लेना । झंडे पर चढ़ाना = बहुत बदनाम करना ।

२. ज्वार, बाजरे आदि पौधों के ऊपर का नर फूल । जीरा ।

झंडा कप्तान—संज्ञा पुं० [हिं० झंडा + अं० कैप्टेन] १. उस जहाज का प्रधान जिसपर प्रतीकात्मक ध्वजा रहती है (नौसैनिक) । २. वह व्यक्ति जिसपर संस्था के प्रतीकात्मक ध्वज की जिम्मेदारी हो ।

झंडा जहाज—संज्ञा पुं० [हिं० झंडा + अं० जहाज] बेड़े का प्रधान जहाज जिसपर बेड़े का नायक रहता है ।

झंडा दिवस—संज्ञा पुं० [हिं० झंडा+सं० दिवस] वह दिन जब

किसी कार्य से प्रेरित होकर लोगों से सहायता या चंदा लिया जाता है और चिह्न स्वरूप सहायता देनेवाले को झंडी दी जाती है (नौसैनिक)।

झंडाबरदार—संज्ञा पुं० [हिं० झंडा + बरदार] वह व्यक्ति जो किसी राज्य या संस्था का झंडा लेकर चलता है।

झंडी—संज्ञा स्त्री० [हिं० 'झंडा' का स्त्री० अल्पा०] छोटा झंडा जिसका व्यवहार प्रायः संकेत आदि करने और कभी कभी सजावट आदि के लिये होता है।

मुहा०—झंडी दिखाना = झंडी से संकेत करना।

झंडीदार—वि० [हिं० झंडी + फा० दार] जिसमें झंडी लगी हो। झंडीवाला।

झंडोत्तोलन—संज्ञा पुं० [हिं० झंडा + सं० उत्तोलन] झंडा फहराना ध्वज फहराने का कार्य।

क्रि० प्र०—करना।—कराना।—होना।

झंप—संज्ञा पुं० [सं० झम्प] १. उछाल। फलाँग। कुदान।

मुहा०—झंप देना = कूदना। उ०—करि अपनों कुल नास बनहि सो अगिन झंप दै आई।—सूर (शब्द०)।

(पु)† २. हाथियों और घोड़ों आदि के गले का एक आभूषण। गलझंप।

झंपण—संज्ञा पुं० [अप०] आँखों को आधा खुली रखना। नेत्रों का अर्धोन्मीलन।—महा पु०, भा० १, पृ० १२।

झंपणी—संज्ञा स्त्री० [देशी] बरुनी। बरौनी। पक्ष्म।

झंपन¹—संज्ञा पुं० [सं० झम्पन] १ उछलने की क्रिया। उछाल। २. झोंका। उ०—निराशा सिकता कुपथ में अग्रमरेखा सी सुअंकित। वायु झंपन से अचल से हिमशिखर सी तुम अकंपित।—क्वासि, पृ० ६६।

झंपन²(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आच्छादन; प्रा० झंपण, हिं० झाँपना] छिपाने की क्रिया। आवरित करने का कार्य। उ०—तिहि अवसर लालन आइ गए उपमा कवि ब्रह्म कही नहिं जाई। कंचन कुंभ के झंपन को भुकि झपत चंद झलक्कत झाई।—अकबरी०, पृ० ३४६।

झंपना(पु)—क्रि० स० [सं० आच्छादन, प्रा० झंपण] छिपाना। ढकना। आच्छादित करना। उ०—कंचन कुंभ के झंपन को झुकि झंपत चंद झलक्कत झाई।—अकबरी०, पृ० ३४६।

झंपाक—संज्ञा सं० [सं० झम्पाक] [स्त्री० झंपाकी] वानर। बंदर [को०]।

झंपान†—संज्ञा पुं० [सं० झाम्प या देश०] १ दे० 'झंपान'। २. कुदान। उछाल।

झंपापात(पु)—संज्ञा पुं० [सं० झम्प + पात] ऊँचाई से गहरे पानी में झम से कूद जाना। कूदकर प्राणत्याग करना। उ०—(क) जोग जज्ञ जपतप तीरथ अनादि और, झंपापात लेत जाइ हिवारैं गरत हैं।—सुंदर०, ग्रं०, भा० १, पृ० ४५५। (ख) कौ बूड़े झंपापाती, इंद्रिय बसि करि न जाती।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० १४७।

झंपापाती(पु)—वि० [हिं० झंपापात] बहुत ऊँचाई से नदी में गिरकर प्राणत्याग करनेवाला।

झंपावना(पु)—क्रि० स० [सं० झम्पन] १. हिलाना। कँपाना। उ०—झनझनात भिल्ली, झंपावत झरना झर झर झाड़ी।—श्यामा०, पृ० १२०। †२. उछालना। कुदाना। उ०—फागुण मासि बसंत रुत आयउ जइ न सुणेसि। चाचरिकइ मिस खेलती होली झंपावेसि।—ढोला०, दू० १४५।

झंपारु—संज्ञा पुं० [सं० झम्पारु] वानर। बंदर [को०]।

झंपित—वि० [सं० झम्प] ढंका हुआ। छिपा हुआ। आच्छादित। छाया हुआ।

झंपी—वि० [सं० झम्पिन्] कपि। झंपाक। बंदर [को०]।

झंब—संज्ञा पुं० [सं० स्तबक या हिं० झब्बा] झोंपा। गुच्छा। स्तबक [को०]।

झँकना(पु)—क्रि० स० [हिं०] दे० 'झाँकना'। उ०—ब्रज जुवतिन को दर्पन जोई। तामै मुँह झँकि आई सोई।—नंद० ग्रं०, पृ० १२६।

झँका(पु)—संज्ञा [हिं०] दे० 'झोंका'।

झँकिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० झाँकना] १. छोटी खिड़की। झरोखा। २. झँझरी। जाली।

झँकोरा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'झकोरा'।

झँकोरना†—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'झकोरना'।

झँकोलना†—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'झकोरना'।

झँकोला†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'झकोरा'।

झँखना(पु)—क्रि० अ० [हिं० झंखना] दे० 'झंखना'। उ०—(क) क्रीड़त प्रात समय दोउ बीर। माखन माँगत, बात न मानत, झँखत जसोदा जननी तीर।—सूर०, १०।१६१। (ख) सूरज प्रभु आवत हैं हलधर को नहिं लखत झँखति कहति तो होते संग दोऊ।—सूर (शब्द०)।

झँगरा†—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बाँस का जालदार गोल झाँपा जिसे बोरा भी कहते हैं।

झँगा—संज्ञा पुं० [हिं० झगा] दे० 'झगा'। उ०—(क) नव नील कलेवर पीत झँगा झलकै पुलकै नृप गोद लिए।—तुलसी (शब्द०)। (ख) आव लाल ऐसे मदु पीजै तेरी झँगा मेरी अंगिया मीर।—हरिदास (शब्द०)।

झँगिया†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'झँगुली'।

झँगुआ—संज्ञा पुं० [देश०] मठिया नामक गहने मे की, कुहनी की ओर से तीसरी चूड़ी। दे० 'मठिया'।

झँगुला†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'झगा'।

झँगुलिया†—संज्ञा स्त्री० [हिं० 'झगा' का अल्पा०] छोटे बालकों के पहनने का झगा या ढीला कुरता। उ०—(क) घुटुरन चलत कनक आँगन में कौशिल्या छबि देखत। नील नलिन तनु पीत झँगुलिया घन दामिनि द्युति पेखत।—सूर (शब्द०)।

झँगुली(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'झँगुलिया'। उ०—(क) उठि कह्यो भोर भयो झँगुली दै मुदित महरि लखि आतुरताई।—तुलसी (शब्द०)। (ख) कोउ झँगुली कोउ मृदुल बढनिया कोउ लावै रचि ताजा।—रघुराज (शब्द०)।

झँगुलीⓅ†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'झँगुलिया', 'झँगुली'। उ०—कुलही चित्र विचित्र झँगुली। निरखहि मातु मुदित मन फूली।—तुलसी ग्रं०, पृ० २८५।

झँझनना—क्रि० अ० [अनु०] झन झन शब्द होना। झनक झनक शब्द होना। झंकारना। उ०—नेकु रहो मति बोलो अबै मनि पायनि पैजनिया झँझनैगी।—(शब्द०)।

झँझरा[1]—संज्ञा पुं० [सं० जर्जर (= छिद्रयुक्त), प्रा० जज्जर, या हिं०] मिट्टी का जालीदार ढकना जो खौले हुए दूध के बर्तन पर रखा जाता है।

झँझरा[2]—वि०[स्त्री० झँझरी] जिसमें बहुत से छोटे छोटे छेद हों। झीना।

झँझरी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० जर्जर, हिं० झर झर से अनु०] १. किसी चीज में बहुत से छोटे छोटे छेदों का समूह। जाली। उ०—(क) झँझरी के झरोखनि ह्वै के झकोरति रावटी हूँ मैं न बात सही।—देव (शब्द०)। (ख) झँझरी फूट चूर होई जाई। तबहि काल उठि चला पराई।—कबीर मं०, पृ० ५६४। २. दीवारों आदि में बनी हुई छोटी जालीदार खिड़की। ३. लोहे का वह गोल जालीदार या छेददार टुकड़ा जो दमचूल्हे आदि में रहता है और जिसके ऊपर सुलगते हुए कोयले रहते हैं। जले हुए कोयले की राख इसी के छेदों में से नीचे गिरती है। दमचूल्हे की जाली या झरना। ४. लोहे आदि की कोई जालीदार चादर जो प्रायः खिड़कियों या बरामदों में लगाई जाती है। ५ आटा छानने की छलनी। ६. आग आदि उठाने का झरना। ७ दुपट्टे या धोती आदि के आँचल में उसके बाने के सूतों का, सुंदरता या शोभा के लिये बनाया हुआ छोटा जाल, जो कई प्रकार का होता है।

झँझरी[2]—वि० स्त्री० [हिं० झँझरा का अल्पा० स्त्री०] दे० 'झँझरा'।

झँझरीदार—वि० [हिं० झँझरी + फ़ा०दार] जालीदार। सूराखदार। जिसमें झँझरी या जाली हो।

झँझेरनाⓅ†—क्रि० स० [सं० झर्झन] दे० 'झँझोड़ना'। उ०—देख्यौ भक्त प्रधान जब राजा आग्यौ नाँहि। सुंदर संक करी नहीं पकरि झँझेरी बाँहि।—सुंदर० ग्रं०, भा०२,पृ० ७६१।

झँझोटी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'झिझोटी'।

झँझोड़ना—क्रि० स० [सं० झर्झन] १. किसी चीज को बहुत वेग और झटके के साथ हिलाना जिसमें वह टूट फूट जाय या नष्ट हो जाय। झकझोरना। जैसे,—वे सोए हुए थे, इन्होंने जाते ही उन्हें खूब झँझोड़ा। २. किसी जानवर का अपने से छोटे जानवर को मार डालने के लिये दाँतों से पकड़कर खूब झटका देना। झकझोरना। जैसे, कुत्ते या बिल्ली का चूहे को झँझोड़ना।

झँझोरा—संज्ञा पुं० [देश०] कचनार का पेड़।

झँझौटी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'झिझौटी'।

झँडूलना—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'झंडूला'।

झँडूला[1]—वि० [हिं० झंड + ऊला (प्रत्य०)] १. जिसके सिर पर गर्भ के बाल हों। जिसका मुंडन संस्कार न हुआ हो। गर्भ के बालोंवाला (बालक)। २. मुंडन संस्कार के पहले का। गर्भ का (बाल)। उ०—कर बघनहाँ कंठ कठुला झँडूले केस मेढ़ी लटकन मसिबिंदु मुनि मनहर।—तुलसी ग्रं०, पृ० २८६।

विशेष—इस अर्थ में यह शब्द प्राय: बहुवचन रूप में बोला जाता है। जैसे, झँडूले केश, झँडूले बार। उ०—उर बघनहाँ, कंठ कठुला, झँडूले बार, बेनी लटकन मसि बुंदा मुनि मनहर। सूर १०।१५१।

३. घनी पत्तियोंवाला। सघन।

झँडूला[2]—संज्ञा पुं० १. वह बालक जिसके सिर पर गर्भ के बाल हों। वह लड़का जिसके गर्भ के बाल अभी तक मुँड़े न हों। २. मुंडन संस्कार से पहले का बाल। गर्भ का बाल जो अभी तक मूँड़ा न गया हो। ३. घनी पत्तियोंवाला वृक्ष। सघन वृक्ष।

झँपकना—क्रि० अ० [हिं० झपकना [दे० 'झपकना'।

झँपकी—संज्ञा स्त्री [हिं० झपकी] दे० 'झपकी'।

झँपताल—संज्ञा पुं० [हिं० झपताल] दे० 'झपताल'।

झँपक—संज्ञा पुं० [सं० झम्पाक] बंदर।

झँपना[1]—क्रि० अ० [सं० झम्प] १. ढँकना। छिपना। आड़ में होना। २. उछलना। कूदना। लपकना। झपकना। उ०—(क) छकि रसाल सौरभ सने मधुर माधुरी गंध। ठौर ठौर झौरत झँपत झौंरें झौंर मधु अंध।—बिहारी (शब्द०)। (ख) जबहि झँपति तबहि कंपति विहँसि लगति उरोज।—सूर (शब्द०)। ३. टूट पड़ना। एक दम से आ पड़ना। उ०—जागत काल सोवत काल काल झँपै आई। काल चलत काल फिरत कबहूँ लै जाई।—दादू (शब्द०)। ४. झेंपना। लज्जित होना।

झँपना[2]Ⓟ—क्रि० स० पकड़कर दबा लेना। छोप लेना। ढाँक लेना। उ०—नीची मैं नीची निपट लौं दीठि कुही दौरि। उठि ऊँचै नीचो दियो मनु कुलिगु झँपि झौरि। —बिहारी (शब्द०)।

झँपरिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० झाँपना (= ढँकना)] पालकी को ढाँकने की खोली। गिलाफ। ओहार। उ०—आठ कोठरिया नौ दरवाजा दसयें लागि केवरिया। खिड़की खोलि पिया हम देखल ऊपर झाँप झँपरिया।—कबीर (शब्द०)।

झँपरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० झँपरिया] दे० 'झँपरिया'।

झँपाक—संज्ञा पुं० [सं० झम्पाक] बंदर। कपि।

झँपान—संज्ञा पुं० [सं० झम्प] सवारी के लिये एक प्रकार की खटोली जिसमें दोनों ओर दो लंबे बाँस बँधे होते हैं। झप्पान।

विशेष—इन बाँसों के दोनों ओर बीच में रस्सियाँ बँधी होती हैं, जिनमें छोटे छोटे दो और बाँस पिरोए रहते हैं। इन्हीं बाँसों को चार आदमी कंधों पर रखकर सवारी ले चलते हैं। यह सवारी बहुधा पहाड़ की चढ़ाई में काम आती है।

झँपोला—संज्ञा पुं० [हिं० झाँप + ओला (प्रत्य०)] [स्त्री० अल्पा० झँपोली, झँपोलिया] छोटा झाँपा या झाबा। छाबड़ा।

झँफाना†—संज्ञा पुं० [सं० झम्प] कांतिहीन होना। समाप्त या नष्ट होना। गलित होना। उ०—रूप रंग ज्यों फूलड़ा तन तरवर ज्यों पान। हरिया झोलो काल को झड़ि झड़ि हुए झंफान। —राम० धर्म०, पृ० ६७।

झँवकार(पु)†—[हिं० झाँवला + काला] कृष्ण वर्ण का। झाँवले रंग का। कुछ कुछ काला। उ०—गैड गयंद जरे भए कारे। औ बन मिरग रोझ झँवकारे।—जायसी (शब्द०)।

झँवराना—क्रि० अ० [हिं० झाँवर] १. कुछ काला पड़ना। २. कुम्हलाना। सूखना। फीका पड़ना।

झँवा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'झाँवाँ'। उ०—झकझकत हिये गुलाब के झवाँ झँवावति पाँय।—बिहारी (शब्द०)।

झँवाना[1]—क्रि० अ० [हिं० झाँवाँ] १. झाँवे के रंग का हो जाना। कुछ काला पड़ जाना। जैसे, धूप में रहने के कारण चेहरा झँवा जाना। २. अग्नि का मंद हो जाना। आग का कुछ ठंढा हो जाना। ३. किसी चीज का कम हो जाना। घट जाना। ४. कुम्हलाना। मुरझाना। ५. झाँवे से रगड़ा जाना।

संयो० क्रि०—जाना।

झँवाना[2]—क्रि० स० १. झाँवे के रंग का कर देना। कुछ काला कर देना; जैसे,—धूप ने उनका चेहरा झँवा दिया। २. अग्नि को मंद करना। आग ठंढी करना। ३. किसी चीज को कम करना। उ०—ज्ञान को अभिमान किए मोको हरि पठयो। मेरोई भजन चापि माया सुख झँवायो।—सूर (शब्द०)। ४. कुम्हला देना। मुरझा देना। ५. झाँवे से रगड़ना। ६. झाँवे से रगड़वाना।

झँवावना(पु)—क्रि० स० [हिं० झँवाना] झाँवे से रगड़ना या रगड़वाना। उ०—झकझकत हिये गुलाब के झँवा झँवावति पाँय।—बिहारी (शब्द०)।

झँसना—क्रि० स० [अनु०] १ सिर या तलुए आदि में में तेल या और कोई चिकना पदार्थ लगाकर हथेली से उसे बार बार रगड़ना जिसमें वह उस अंग के अंदर समा जाय। जैसे—सिर में कद्दू का तेल झँसने से तुम्हारा सिर दर्द दूर होगा।

संयो० क्रि०—देना।

२. किसी को बहकाकर या अनुचित रूप से उसका धन आदि ले लेना। जैसे—इस ओझा ने भूत के बहाने उससे दस रुपए झँस लिए।

संयो० क्रि०—लेना।

झ—संज्ञा पुं० [सं०] १. झंझावात। वर्षा मिली हुई तेज आँधी। २. सुरगुरु। बृहस्पति। ३. दैत्यराज। ४. ध्वनि। गुंजार शब्द। ५. तीव्र वायु। तेज हवा।

झई†(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'झाँई'। उ०—भरतहि देखि मातु उठि धाई। मुरछित अवनि परी झइँ आई।—तुलसी (शब्द०)।

झई†(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'झाँई'। उ०—को जानै काहू के जिय की छिन छिन होत नई। सूरदास स्वामी के बिछुरे लागै प्रेम झई।—सूर (शब्द०)।

झउआ[1]†—संज्ञा पुं० [हिं० झाबा] खाँचा। टोकरा। झाबा।

झउआ[2]†(पु)—संज्ञा पुं० [सं० झावुक,हिं० झाऊ] दे० 'झाऊ'। उ०—साधो एक बन भाकर झउआ। लावा लिलिर तेहि माह भुलाने सान बुझावत कोआ।—दरिया, पृ० १२५।

झउवा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'झउआ'।

झक[1]—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. कोई काम करने की ऐसी धुन जिसमें आगा पीछा या भला बुरा न सूझे। २. धुन। सनक। लहर। मौज।

क्रि० प्र०—चढ़ना।—लगना।—समाना।—सवार होना।

३. आँच। ताप। ज्वाला। उ०—माया के झक जग जरे, कनक कामिनी लागि। कहु कबीर कस बाचिहै, रुई लपेटी आगि।—संतबानी०, पृ० ५७। ४. झोंका। झभक। झाक।

क्रि० प्र०—आना।

झक[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० झष] दे० 'झख'।

झक[3]—वि० चमकीला। साफ। ओपदार। जैसे, सफेद झक।

झककेतु(पु)—संज्ञा पुं० [सं० झषकेतु] दे० 'झषकेतु'।

झकझक[1]—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. व्यर्थ की हुज्जत। फजूल झगड़ा या तकरार। किचकिच। २. व्यर्थ की बकवाद। निरर्थक वादविवाद। बकबक।

यौ०—बकबक झकझक।

झकझक[2]—वि० [अनु०] चमकीला। ओपदार। चमकदार। उ०—झकझक झलकती वह्नि वामा के दृग त्यों त्यों।—अपरा, पृ० ४७।

झकझका—वि० [अनु०] चमकीला। ओपदार। चमकदार।

झकझकाहट—संज्ञा स्त्री० [अनु०] ओप। चमक। जगमगाहट।

झकझेलना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'झकझोरना'।

झकझोर[1]—संज्ञा पुं० [अनु०] झोंका। झटका। उ०—तन जस पियर पात भा मोरा। तेहि पर बिरह देइ झकझोरा।—जायसी (शब्द०)।

झकझोर[2]—वि० झोंकेदार। तेज। जिसमें खूब झोंका हो। उ०—काम क्रोध समेत तृष्णा पवन अति झकझोर। नाहिं चितवन देति तिय सुत नाम नौका ओर।—सूर (शब्द०)।

झकझोरना—क्रि० स० [अनु०] किसी चीज को पकड़कर खूब हिलाना। झोंका देना। झटका देना। उ०—(क) सूरदास तिनको ब्रज युवती झकझोरति उर अंक भरे।—सूर (शब्द०)। (ख) अधिक सुगंधनि सेवक चारु मलिंदन को झकझोरति है। —सेवक (शब्द०)। (ग) बातन ते डरपैए कहा झकझोरत हूँ न भरी अरसात है।—(शब्द०)।

झकझोरा—संज्ञा पुं० [अनु०] झटका। धक्का। झोंका। उ०—मंद

विलंब अमेरा दलकनि पाइब दुख झकझोरा रे।—तुलसी (शब्द०)।

झकझोरी—संज्ञा स्त्री० [अनु०] छीनाझपटी। होड़ाहोड़ी। उ०—भारत में मची है होरी। इक ओर भाग अभाग एक दिसि होय रही झकझोरी।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ४०५।

झकझोलना[1]—क्रि० स० [हिं० झकझोला] दे० 'झकझोरना'।

झकझोलना(पु)[2]—क्रि० अ० काँपना। हिलना डुलना। झोंका खाना। उ०—पकरयो चीर दुष्ट दुस्सासन बिलख बदन भइ डोलै। जैसे राहु नीच ढिग आएँ चंद्रकिरन झकझोलै।—सूर०, १।२५६।

झकझोला—संज्ञा पुं० [अनु०] दे० 'झकझोरा'। उ०—मोर झोर लोर देत झकझोला, चलत पैक नहिं जोर।—तुरसी० श०, पृ० ७।

झकझोल†—संज्ञा पुं० [अनु०] आघात। धक्का। झकझोरा। उ०—रचना यह परब्रह्म की चौरासी झकझोल।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० ३१५।

झकड़—संज्ञा पुं० [हिं० झक] दे० 'झक्कड़'।

झकड़ा†—संज्ञा स्त्री० [देश०] सूत सी निकली हुई जड़। (अं० फाइबर्स।)

झकड़ी†—संज्ञा स्त्री० [देश०] दोहनी। दूध दुहने का बरतन।

झकना†—क्रि० अ० [अनु०] १. बकवाद करना। व्यर्थ की बातें करना। २. क्रोध में आकर अनुचित वचन कहना। उ०—बेगि चलो सब कहैं, झकै तिन सौं निज हठ तैं।—नंद० ग्रं०, पृ० २०६। ३. झुँझलाना। खीझना। उ०—हरि को नाम, दाम खोटे लौं झकि झकि डारि दयो।—सूर०, १।६४। ४ पछताना। कुढ़ना। उ०—कधो कुलिश भई यह छाती। मेरो मन रसिक लग्यो नँदलालहिं झकत रहत दिन राती।—सूर (शब्द०)।

झकरा†—संज्ञा पुं० [हिं० झकड़] दे० 'झक्कड़'।

झका†—वि० [हिं०] दे० 'झक'।

झकाझक(पु)†—वि० [अनु०] जो खूब साफ और चमकता हुआ हो। दकादक। चमकीला। झलाझल। उज्वल। जैसे,—सफेदी होने से यह कमरा झकाझक हो गया। उ०—झौंकि कै प्रीति सौं झीने झरोखनि झारि कै झाका झकाझक झाँकी।—रघुराज (शब्द०)।

झकाझक्क(पु)—वि० [अनु०] चमकीला। उज्वल। उ०—खँसी हैं कटारी कट्यो मे अन्यारी। झकाझक्क ववारी दई की सभारी।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २८२।

झकाझोर—संज्ञा पुं० [अनु०] दे० 'झकझोर'। उ०—चहुँ ओर तोपैं चलैं बान छूटैं। झकाझोर समसेर की मार बोलैं।—हम्मीर०, पृ० १६।

झकाझोरी—संज्ञा स्त्री० [अनु०] हिलाने या झकझोरने का क्रिया या स्थिति। उ०—थोरी हू किसोरी गोरी रोरी रंग बोरी तब, मची दुहुँ ओर···झकाझोरी है।—ब्रज० ग्रं०, पृ० २६।

झकुराना[1]†—क्रि० अ० [हिं० झकोरा] झकोरा लेना। झूमना। उ०—रुक्यो साँकरै कुंजमग करतु झाँकि झकुरातु। मंद मंद मारुत तुरँग खुँदतु आवतु जातु।—बिहारी (शब्द०)।

झकुराना[2]—क्रि० स० झकोरा देना। झूमने में प्रवृत्त करना।

झकोर(पु)—संज्ञा पुं० [अनु०] १. हवा का झोंका। पवन की हिलोर। हिलकोरा। उ०—(क) चारु लोचन हँसि विलोकनि देखिकै चितचोर। मोहनी मोहन लगावत लटकि मुकुट झकोर।—सूर (शब्द०)। (ख) पवि पाहन दामिनी गरज झरि चकोर खरि खीझि। रोष न प्रीतम दोष लखि तुलसी रागहिं रीझि।—तुलसी (शब्द०)। (ग) चारिहुँ ओर तें पौन झकोर झकोरन घोर घटा घहरानी।—पद्माकर (शब्द०)। २. झटका। झोंका। धक्का।

झकोरना—क्रि० अ० [अनु०] हवा का झोंका मारना। उ०—(क) चहुँ दिसि पवन झकोरत घोरत मेघ घटा गंभीर।—सूर (शब्द०)। (ख) भँभरी के झरोखनि ह्वै कै झकोरति रावटी हूँ मैं न जात सही।—देव (शब्द०)।

झकोरा—संज्ञा पुं० [अनु०] हवा का झोंका। वायु का वेग।

झकोल(पु)†—संज्ञा पुं० [अनु०] दे० 'झकोर' या 'झकोरा'। उ०—मृदु पदन्यास मद मलयानिल विलगत शीश निचोल। नील पीत सित अरुन ध्वजा चल सीर समीर झकोल।—सूर (शब्द०)।

झकोला—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'झकोरा'। उ०—(क) धन भई बारी पुरुष भए भोला सुरत झकोला खाय।—कबीर सा० सं०, पृ० ७५। (ख) उन्हें कभी कोई नौका उमड़े हुए सागर में झकोले खाती नजर आती।—रंगभूमि, पृ० ४७६।

झक्क[1]—वि० [प्रा० झगजग (= चमकना) अथवा अनु०] खूब साफ और चमकता हुआ। झकाझक। ओपदार।

झक्क[2]—संज्ञा स्त्री० [अनु०] दे० 'झक'।

क्रि० प्र०—चढ़ना।—उतरना।

झक्कड़[1]—संज्ञा पुं० [अनु०] तेज आँधी। तूफान। तीव्र वायु। अंधड़।

क्रि० प्र०—आना।—उठना।—चलना।

झक्कड़[2]—वि० [हिं० झक्क + ड़ (प्रत्य०)] दे० 'झक्की'।

झक्का—संज्ञा पुं० [अनु०] १. हवा का तेज झोंका। २. झक्कड़। आँधी (लश०)।

झक्का झुक्की—संज्ञा स्त्री० [हिं० झाँक झूँक] किसी बात को ध्यान से न सुनकर इधर उधर झाँकना। बात को गौर से न सुनना। मटियाना। उ०—घाव कहै तब अनते चितै झक्काझुक्की करते।—सं० दरिया, पृ० १३५।

झक्काझोरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० झकझोरना] दे० 'झकझोरी'। उ०—झक्काझोरी ऐंचातानी, जहँ तहँ गए बिलाई।—जग० बानी, पृ० ६८।

झक्की—वि० [अनु० या प्रा० झख] १. व्यर्थ की बकवाद करनेवाला। बहुत बक बक करनेवाला। २. जिसे झक सवार हो। जो आदमी अपनी धुन के आगे किसी की न सुने। सनकी।

झक्खना(पु)†—क्रि० अ० [प्रा० झखण, झक्खण] दे० 'झींखना'।

उ०—कहु गिरिधर कविराय मातु झक्खै वहि ठाहीं।—गिरधर (शब्द०)।

झक्खर(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० झक्कड़] झकोरा। उ०—घर अंबर बीच बेलड़ी, तहँ लाल सुगंधा बूल। झक्खर इक सौ आयो, नानक नहीं कबूल।—संतवाणी०, पृ० ७०।

झख¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० झीखना] झीखने का भाव या क्रिया।

मुहा०—झख मारना=(१) व्यर्थ समय नष्ट करना। वक्त खराब करना। जैसे,—आप सबेरे से यहाँ बैठे हुए झख मार रहे हैं। (२) अपनी मिट्टी खराब करना। (३) विवश होकर बुरी तरह झीखना। लाचार होकर खूब कुढ़ना। जैसे,—(क) तुम्हें झख मारकर यह काम करना होगा। (ख) झख मारो और वहीं जाओ। उ०—नीर पियावत का फिरै घर घर सायर बारि। तृषावंत जो होइगा पीवेगा झख मारि।—कबीर सा० सं०, भा० १, पृ० १५।

झख²(पु)—संज्ञा पुं० [सं० झष] मत्स्य। मछली। उ०—आँखिन तें आँसू उमड़ि परत कुचन पर आन। जनु गिरीस के सीस पर ढारत झख मुकतान।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १७०।

यौ०—झखकेतु। झखनिकेत। झखराज। झखलग्न।

झखकेतु—संज्ञा पुं० [सं० झषकेतु] दे० 'झषकेतु'। उ०—आँखों को नचा नचाकर झखकेतु ध्वजा फहरात।—हीं० शा० महा०, १८८।

झखना(पु)†—क्रि० अ० [प्रा० झक्खण] दे० 'झीखना'। उ०—(क) बाबा नंद झखत केहि कारण यह कहि मया मोह अरुझाय। सूरदास प्रभु मातु पिता को तुरतहि दुख डारयो बिसराय।—सूर (शब्द०)। (ख) पुनि थोइ परी हरि जू की सुजान तें छूटिबे को बहु भाँति झखी री।—केशव (शब्द०)। (ग) कवि हरिजन मेरे उर बनमाल तेरे बिन गुन माल रेख मेख देखि झखियाँ।—हरिजन (शब्द०)।

झखनिकेत(पु)—संज्ञा पुं० [सं० झषनिकेत] दे० 'झषनिकेत'।

झखराज(पु)—संज्ञा पुं० [सं० झषराज] मकर। नक्र। झषराज। उ०—झखराज ग्रस्यो गजराज कृपा ततकाल बिलंब कियो न तहाँ।—तुलसी ग्रं०, पृ० १६६।

झखलगन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० झषलग्न] दे० 'झषलग्न'।

झखिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० झख+इया (प्रत्य०)] दे० 'झखी'।

झखी†(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० झष] मीन। मछली। मत्स्य। उ०—(क) आवत बन ते साँझ देखो मैं गायन माँझ, काहू को ढोटारी एक सीष मोर पखियाँ। अतसी कुसुम जैसे चंचल दीरघ नैन मानो रस भरी जों लरत जुगल झखियाँ।—सूर (शब्द०)। (ख) गोकुल माहु मैं माम करै ते भई तिय बारि बिना झखियाँ है।—(शब्द०)।

झगड़ना—क्रि० अ० [देशी झगड (=झगड़ा, कलह)+हिं० ना (प्रत्य०) या झकझक से अनु०] दो आदमियों का आवेश में आकर परस्पर विवाद करना। झगड़ा करना। हुज्जत तकरार करना। लड़ना।

संयो० क्रि०—जाना।—पड़ना।

झगड़ा—संज्ञा पुं० [देशी झगड या हिं० झकझक से अनु०] दो मनुष्यों का परस्पर आवेशपूर्ण विवाद। लड़ाई। टंटा। बखेड़ा कलह। हुज्जत। तकरार।

क्रि० प्र०—करना।—उठाना।—समेटना।—डालना।—फैलाना।—तोड़ना।—खड़ा करना।—मचाना।—लगाना।

यौ०—झगड़ा बखेड़ा। झगड़ा झमेला।

मुहा०—झगड़ा खड़ा होना=झगड़ा पैदा होना। झगड़ा खरीदना=अकारण कोई ऐसी बात कह देना जिससे अनायास झगड़ा खड़ा हो जाय। उ०—शेख जी जहाँ बैठते हैं झगड़ा जरूर खरीदते हैं।—फिसाना०, भा० १, पृ० १०। झगड़ा मोल लेना=दे० 'झगड़ा खरीदना'।

झगड़ालू—वि० [हिं० झगड़ा+आलू (प्रत्य०)] लड़ाई करनेवाला। जो बात बात में झगड़ा करता हो।

झगड़ी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० झगड़ा] अपने नेग के लिये झगड़ा करनेवाली स्त्री।

झगर—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की चिड़िया। उ०—लूनी लाल कर करे सारस झगर तोते तीतर तुरमती बटेर गहियत है।—रघुनाथ (शब्द०)।

झगरना—क्रि० अ० [देशी झगड; हिं० झगड़ा] दे० 'झगड़ना'। उ०—अनुमति मम अभिलाख करे।...कब मेरो अंचरा गहि मोहन जोइ सोइ कहि मोसो झगरै।—सूर०, १०।७६।

झगरा(पु)†—संज्ञा पुं० [देशी झगड] दे० 'झगड़ा'।

झगराऊ(पु)†—वि० [हिं० झगड़ालू] दे० 'झगड़ालू' उ०—याहि कहा मैया मुँह लावति, गनति कि एक लँगरि झगराऊ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४३४।

झगरिनि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० झगड़ी] दे० 'झगड़ी'। उ०—(क) बहुत दिनन की आसा लागी झगरिनि झगरौ कीनो।—सूर०, १०।१५। (ख) झगरिनि तैं हौं बहुत खिझाई। कंचनहार दिए नहिं मानति तुहीं अनोखी दाई।—सूर०, १०।१३।

झगरो(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० झगड़ी] दे० 'झगड़ो'। उ०—यशोमति लटकति पाँय परे। तेरौ भलो मनइहौं झगरी तूँ मति मनहि डरै।—सूर (शब्द०)।

झगरो‡—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'झगड़ा'। उ०—(क) और जो वा समय प्रभुन को मुरारीदास वह वस्तु न देते तब भी श्री बालकृष्ण जी प्राकृतिक बालक की नाईं झगरो मुरारीदास सों करते।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० १००। (ख) तहँ तुम सुनहु बड़ा धन तुम्हरो। एक मोक्षता पर सब झगरो—नंद० ग्रं०, पृ० २७३।

झगला(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० झगा+ला (प्रत्य०)] दे० 'झगा'।

झगा—संज्ञा दे० [देश०] १. छोटे बच्चों के पहनने का कुछ ढीला कुरता। उ०—नंद उदै सुनि आयो हो वृषभानु को जगा। देव कौं बड़ो महर, देत ना लावै गहर लाल की बधाई पाऊँ लाल को झगा।—सूर० १०।१६। २. वस्त्र। शरीर पर पहनने का कपड़ा। उ०—(क) झगा पगा अरु पाग पिछौरी ढाढ़िन को पहिरायो। हरि दरियाई कंठ लगाई परदा सात उठायो।—सूर (शब्द०)। (ख) सीस पगा न झगा तन में प्रभु जाने

को आहि बसै किहि ग्रामा।—कविता कौ०, भा० १, पृ० १४६।

झगुलि, झगुलिया(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० झगा का अल्पा०] दे० 'झगा'। ऊ०—प्रफुलित ह्वै के आनि, दीनी है जसोदा रानी, झीनीयै झगुलि तामैं कंचन तगा।—सूर०, १०।२६।

झगुली(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'झगा'।

झगूला(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'झगा'। उ०—डार द्रुम पलना बिछौना नव पल्लव को, सुमन झगूला सोहै तन छवि भारी है।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० १५७।

झज्झर—संज्ञा पुं० [सं० आलिञ्जर] कुछ चौड़े मुँह का पानी रखने का मिट्टी का एक बरतन।

विशेष—इस बरतन की ऊपरी तह पर पानी को ठंढा करने के लिये थोड़ी सी बालू लगा दी जाती है। इसकी ऊपरी सतह पर सुंदरता के लिये तरह तरह की नकाशियाँ भी की जाती हैं। इसका व्यवहार प्राय. गरमी के दिनों मे जल को अधिक ठंढा करने के लिये होता है।

झझी—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. फूटी कौड़ी। २. दलाली का धन।—(दलालों की भाषा)।

झझक—संज्ञा स्त्री० [हिं० झझकना] १. झझकने की क्रिया का भाव। किसी प्रकार के भय की आशंका से रुकने की क्रिया। चमक। भड़क। जैसे,—अभी इनकी झझक नहीं गई है, इसी से खुलकर नहीं बोलते।

क्रि० प्र०—जाना।—मिटना।—होना।

मुहा०—झझक निकलना = झझक दूर होना। भय का नष्ट होना। झझक निकालना = झझक या भय दूर करना। जैसे,—हम चार दिन में इनकी झझक निकाल देंगे।

२. कुछ क्रोध से बोलने की क्रिया या भाव। झुँझलाहट। ३. किसी पदार्थ में से रह रहकर निकलनेवाली विशेषतः अप्रिय गंध।

क्रि० प्र०—आना।—निकलना।

४. रह रहकर होनेवाला पागलपन का हलका दौरा। कभी कभी होनेवाली सनक।

क्रि० प्र०—आना।—चढ़ना।—सवार होना।

झझकन(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० झझकना] झझकने या भड़कने का भाव। डरकर हटने या रुकने का भाव। भड़क।

झझकना—क्रि० अ० [अनु०] १. किसी प्रकार के भय की आशंका से अकस्मात् किसी काम से रुक जाना। अचानक डरकर ठिठकना। बिदकना। चमकना। भड़कना। उ०—(क) कबहुँ चुंबन देत आकर्षि जिय लेत करति बिन चेत सब हेत अपने। मिलति भुज कंठ दै रहति अंग लटकि कै जात दुख दूर ह्वै झझकि सपने।—सूर (शब्द०)। (ख) छाले परिबे के डरन सकै न हाथ छुवाइ। झझकति हियहिं गुलाब के झँवा झँवावति पाइ।—बिहारी (शब्द०)।

संयो० क्रि०—उठना।—जाना।—पड़ना।

२. झुँझलाना। खिजलाना। ३. चौंक पड़ना। उ०—असुमति मन मन यहै विचारति। झझकि उठयौ सोवत हरि अबहीं कछु पढ़ि पढ़ि तन दोष निवारति।—सूर०, १०।२००। ३. संकुचित होना। झिझकना। उ०—अति प्रतिपाल कियौ तुम हमरो सुनत नंद जिय झझकि रहे।—सूर०, १०।३११२।

झझकनि(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० झझकना] दे० 'झझकन'। उ०—वह रस की झझकनि वह महिमा, वह मुसुकनि वैसो संजोग।—सूर (शब्द०)।

झझकाना—क्रि० स० [हिं० झझकना का प्रे० रूप] १. अचानक किसी प्रकार के भय की आशंका कराके किसी काम से रोक देना। चमकाना। भड़काना। उ०—जुज्यों उझकि झाँपति बदन झुकति बिहँसि सतराइ। तुत्यों गुलाल मुठी झुठी झझकावत पिय जाइ।—बिहारी (शब्द०)। २. चौका देना।

झझकार—संज्ञा स्त्री० [हिं० झझकारना] झझकारने की क्रिया या भाव।

झझकारना—क्रि० स० [अनु०] १. डपटना। डाँटना। २. दुरदुराना। ३ अपने सामने कुछ न गिनना। किसी को अपने आगे मंद बना देना। उ०—नख मानो चंद्र बाण साजि कै झझकारत उर आग्यो। सूरदास मानिनि रण जीत्यो समर संग हरि रण भाग्यो।—सूर (शब्द०)।

झझकना(पु)—क्रि० अ० [अनु०] झाँझ बाजे का बजना। झाँझ की ध्वनि होना। उ०—झझ झझकत उठत तरंग रंग, अरि उच्चारहिं दंद दंद मिरदंग।—माधवानल०, पृ० १९४।

झझरी—संज्ञा स्त्री० [सं० जर्जर, हिं० झँझरी] जालीदार खिड़की। झँझरी। उ०—झझकि झझकि झझरिन जहाँ झाँकति झुकि झुकि भूमि।—ब्रज० ग्र०, पृ० ३।

झझिया(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'झिंझिया'।

झट—क्रि० वि० [सं० झटिति] तुरंत। उसी समय। तत्क्षण। फौरन। जैसे,—हमारे पहुँचते ही वे झट उठकर चले गए।

मुहा०—झट से = जल्दी से। शीघ्रतापूर्वक।

यौ०—झट पट।

झटक(पु)†—संज्ञा पुं० [अनु०] वायु का झोंका। आँधी। उ०—झटक झाटल छोड़ल ठाम, कएल महातरु तर विसराम।—विद्यापति, पृ० ३०३।

झटकनहार—वि० [हिं० झटकना + हार] झटकनेवाला। झटका देनेवाला। उ०—झटकनहार झटकबो। झटकनहार झटकबो।—प्राण०, पृ० ११८।

झटकना—क्रि० स० [हिं० झट] १. किसी चीज को इस प्रकार एकबारगी झोंके से हिलाना कि उसपर पड़ी हुई दूसरी चीज गिर पड़े या अलग हो जाय। झटके से हलका धक्का देना। झटका देना। उ०—नासिका ललित बेसरि बनी अधर तट सुभग तारक छबि कहि न आई। धरनि पद पटकि झटकि भौंहनि मटकि मटकि तहाँ रीझे कन्हाई।—सूर (शब्द०)।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग उस चीज के लिये भी होता है जो किसी दूसरी चीज पर चढ़ती या पड़ती है। और उस चीज के लिये भी होता है जिसपर कोई दूसरी चीज चढ़ती

या पड़ती है। जैसे,—यदि धोती पर कनखजूरा चढ़ने लगे तो कहेंगे कि 'धोती झटक दो' और यदि राम ने कृष्ण का हाथ पकड़ा और कृष्ण ने झटका देकर राम का हाथ अपने हाथ से अलग कर दिया तो कहेंगे कि 'कृष्ण ने राम का हाथ झटक दिया'।

संयो० क्रि०—देना।

२. किसी चीज को जोर से हिलाना। झोंका देना। झटका देना।

मुहा०—झटककर = झोंके से। झटके से। तेजी से। उ०—झटकि चढ़ति उतरति अटा नेक न थाकति देह। भई रहति नट को बटा अटकि नागरी नेह।—बिहारी (शब्द०)।

३. दबाव डालकर चालाकी से या जबरदस्ती किसी की चीज लेना। ऐंठना। जैसे,—(क) आज एक बदमाश ने रास्ते मे दस रुपए उनसे झटक लिए। (ख) पंडित जी आज उनसे एक धोती झटक लाए।

संयो० क्रि०—लेना।

मुहा०—झटके का माल = जबरदस्ती छीना या चुराया हुआ माल।

झटकना[२]—क्रि० अ० रोग या दुःख आदि के कारण बहुत दुर्बल या क्षीण हो जाना। जैसे,—चार ही दिन के बुखार में वे तो बिलकुल झटक गए।

संयो० क्रि०—जाना।

झटका—संज्ञा पुं० [अनु०] १. झटकने की क्रिया। झोंके से दिया हुआ हलका धक्का। झोंका।

उ०—पिउ मोतियन की माल है, पोई काचे धाग। जतन करो झटका घना, नहिं टूटै कहुँ लागि।—संतवाणी०, पृ० ४२।

क्रि० प्र०—खाना।—देना।—मारना।—लगना।—लगाना।

२. झटकने का भाव। ३. पशुबध का वह प्रकार जिसमें पशु एक ही आघात से काट डाला जाता है। उ०—मुसलमान के जिबह हिंदू के मारैं झटका।—पलटू०, पृ० १०६।

यौ०—झटके का मांस = उक्त प्रकार के मारे हुए पशु का मांस।

४. आपत्ति, रोग या शोक आदि का आघात।

क्रि० प्र०—उठाना।—खाना।—लगना।

५. कुश्ती का एक पेंच जिसमें विपक्षी की गरदन उस समय जोर से दोनों हाथों से दबा दी जाती है जब वह भीतरी दाँव करने के इरादे से पेट में घुस आता है।

झटकानाⓅ†—क्रि० स० [हिं० झटकना] झटके से स्थानच्युत कर देना। झटके से अस्तव्यस्त कर देना।—उ०—यहि लालच अँकवारि भरत ही, हार तोरि चोली झटकाई।—सूर (शब्द०)।

झटकार†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] १. झटकारने का भाव। झटकने का भाव या क्रिया। २. दे० 'फटकार'।

झटकारना—क्रि० स० [अनु०] किसी चीज को इस प्रकार हिलाना जिसमें उसपर पड़ी हुई दूसरी चीज गिर पड़े या अलग हो जाय। झटकना। जैसे, ऊपर पड़ी हुई गर्द साफ करने के लिये चादर झटकारना या किसी का हाथ झटकारना। दे० 'झटकना'।

झटक्कनाⓅ†—क्रि० स० [हिं० झटकना] झटका देना। झोंका देना। उ०—झटक्कत इक्कन को गहि इक्क।—प० रासो, पृ० ४१।

झटझारी—†क्रि० वि० [अनु०] जल्दी जल्दी। उ०—आजु आओत हरि गोकुल रे, पथ चलु झटझारी।—विद्यापति, पृ० ३६५।

झटपट—अव्य० [प्रा० झडप्पड या हिं० झट + अनु० पट] अति शीघ्र। तुरंत ही। तत्क्षण। फौरन। बहुत जल्दी। जैसे,—तुम झटपट जाकर बाजार से सौदा ले आओ उ०—राम युधिष्ठिर बिक्रम की तुम झटपट सुरत करो री।—भारतेंदु० ग्रं० भा० १, पृ० ५०३।

झटा—संज्ञा स्त्री० [सं०] भू आँवला।

झटाका—क्रि० वि० [अनु०] दे० 'झड़ाका'।

झटापटाⓅ—संज्ञा स्त्री० [प्रा० झडप्पड = छीना झपटी, (झडप्पिय = छीना हुआ)] हलचल। उत्पात। उपद्रव। उ०—तिहुँ लोक होत झटापटा, अब चार जुगन निवास हो —कबीर, सा०, पृ० ११।

झटास† —संज्ञा स्त्री० [हिं० झड़ी] बौछार।

झटि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. छोटा पेड़। २. झाड़ी। गुल्म [को०]।

झटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'झाटा'।

झटिति†Ⓟ—क्रि० वि० [सं०] १. झट। चटपट। फौरन। तत्काल। तुरंत। उ०—कटत झटिति पुनि नूतन भए। प्रभु बहु बार बाहु सिर हए।—तुलसी (शब्द०)। २. बिना समझे बूझे।

झटोला‡—संज्ञा पुं० [देश०] वह खाट जिसकी बुनावट टूट टूटकर ढीली हो गई हो। उ०—माटी के कुड़िल न्हवाओ, झटोले सुलाओ। फाटी गुदरिया बिछाओ, छोरा कहि कहि बोलो।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ९१७।

झट्ट‡—क्रि० वि० [अनु०] दे० 'झट'। उ०—दुयं तीन षानं हुयं-तीहि पानं। वहै षग्ग झट्टं सुदाहिम घट्टं।—पृ० रा०, २४। १७५।

झठ†—क्रि० वि० [हिं० झट] शीघ्र। दे० 'झट'। उ०—जद जावे रे जद जावे। झठ सेस गयो समझावे।—रघु० रू०, पृ० १५६।

झड़Ⓟ—संज्ञा स्त्री [हिं० झड़ना] १. दे० 'झड़ी'। २. ताले के भीतर का खटका जो चाभी के आघात से घटता बढ़ता है।

झड़कना—क्रि० स० [अनु०] दे० 'झिड़कना'।

झड़क्का†—संज्ञा पुं० [अनु०] दे० 'झड़ाका'।

झड़झड़ाना—क्रि० स० [अनु०] १. दे० 'झिड़कना'। दे० 'झँझोड़ना'।

झड़न—संज्ञा स्त्री० [हिं० झड़ना] १. जो कुछ झड़ के गिरे। झड़ी हुई चीज। २. झड़ने की क्रिया या भाव। ३. लगाए हुए धन का मुनाफा या सूद।—(क्व०)।

यौ०—झड़नझुड़न = दे० 'झरन'।

झड़ना—क्रि० अ० [सं० क्षरण या √शद्, अथवा सं० झर ('निर्झर' में प्रयुक्त), प्रा० झड] किसी चीज से उसके छोटे छोटे अंगो या अंशो का टूट टूटकर गिरना। जैसे, आकाश से तारे झड़ना, बदन की धूल झड़ना, पेड़ में से पत्तियाँ झड़ना, वर्षा की बूँदें झड़ना।

मुहा०—फूल झड़ना। दे० 'फूल' के मुहावरे।

२. अधिक मान या सख्या में गिरना।

संयो० क्रि०—जाना।—पड़ना।

३. वीर्य का पतन होना। (बाजारू)।

संयो० क्रि०—जाना।

४. झाड़ा जाना। साफ किया जाना। ५. वाद्य का बजना। जैसे, नौबत झड़ना।

झड़प[1]—संज्ञा स्त्री [अनु०] १. दो जीवो की परस्पर मुठभेड़। लड़ाई। २. क्रोध। गुस्सा। ३ आवेश। जोश। ४. आग की लौ। लपट।

झड़प[2]—क्रि० वि० [देशी झड़प्प या अनु०] दे० 'झड़ाका'।

झड़पना—क्रि० अ० [अनु०] १. आक्रमण करना। हमला करना। वेग से किसी पर गिरना। २. छोप लेना। ३. लड़ना। झगड़ना। उलझ पड़ना।

संयो० क्रि०—जाना।—पड़ना।

४. जबरदस्ती किसी से कुछ छीन लेना। झटकना।

संयो० क्रि०—लेना।

झड़पा—संज्ञा स्त्री० [अनु० या देशी झडप्प] हाथापाई। गुत्थमगुत्था।

यौ०—झड़पाझड़पी = हाथापाई। कहा सुनी।

झड़पाना—क्रि० स० [अनु०] दो जीवों विशेषतः पक्षियों को लड़ाना।—(क्व०)।

झड़पी—संज्ञा स्त्री० [अनु०] दे० 'झड़पा'।

झड़बेरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० झाड़ + बेर] १. जगली बेर। २. जंगली बेर का पौधा।

मुहा०—झड़बेरी का काँटा = लड़ने या उलझनेवाला मनुष्य। व्यर्थ झगड़ा करनेवाला मनुष्य।

झड़बैरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'झड़बेरी'।

झड़वाई(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० झड (= झड़ी) + सं० वायु, हिं० वाइ] वह वायु जो झड़ी लिए हो। वर्षा की झड़ी से भरी हुई वायु। वह वायु जिसमे वर्षा की फुहारे मिली हो। उ०—अति घण ऊनमि आवियउ झाझी रिठि झड़वाइ। बग ही भला त बप्पड़ा धरणि न मुक्कइ पाइ।—ढोला०, दू० २५७।

झड़वाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० झाड़ना] दे० 'झड़ाई'।

झड़वाना—क्रि० स० [हिं० झाड़ना का प्रे० रूप] झाड़ने का काम दूसरे से कराना। दूसरे को झाड़ने में प्रवृत्त करना।

झड़ाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० झाड़ना] झाड़ने का भाव। झाड़ने का काम या झाड़ने की मजदूरी।

झड़ाक—क्रि० वि० [अनु०] दे० 'झड़ाका'।

झड़ाका[1]—संज्ञा पुं० [अनु०] झड़प। दो जीवों की परस्पर मुठभेड़।

झड़ाका[2]—क्रि० वि० जल्दी से। शीघ्रतापूर्वक। चटपट।

झड़ाझड़—क्रि० वि० [अनु०] १. लगातार। बिना रुके। बराबर। एक के बाद एक। उ०—भर भर तोप झड़ाझड़ मारो।—कबीर० श०, पृ० ३८। २. जल्दी जल्दी।

झड़ाझड़ि(पु)—क्रि० वि० [अनु०] दे० 'झड़ाझड़'। उ०—रन में पैठि झड़ाझड़ि खेलै सन्मुख सस्तर खावै।—चरण० बानी०, पृ० ८७।

झड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० झड़ना अथवा सं० झर (= झरना) या देशी झडी (= निरंतर वर्षा)] १. लगातार झड़ने की क्रिया। बूँद या कण के रूप में बराबर गिरने का कार्य या भाव। २. छोटी बूँदो की वर्षा। ३. लगातार वर्षा। बराबर पानी बरसना। ४. बिना रुके हुए लगातार बहुत सी बातें कहते जाना या चीजे रखते, देते अथवा निकालते जाना। जैसे,—उन्होंने बातों (या गालियो) की झड़ी लगा दी।

क्रि० प्र०—बँधना।—बाँधना।—लगना।—लगाना।

५. ताले के भीतर का खटका जो चाभी के आघात से हटता बढ़ता है।

झणझण, झणझणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] झन् झन् की ध्वनि। झनझन का शब्द (को०)।

झणत्कार—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'झनकार' (को०)।

झन—संज्ञा स्त्री० [अनु०] वह शब्द जो किसी धातुखंड आदि पर आघात लगने से होता है। धातु के टुकड़े के बजने की ध्वनि।

यौ०—झन झन।

झनक—संज्ञा स्त्री० [अनु०] झनकार का शब्द। झन झन का शब्द जो बहुधा धातु आदि के परस्पर टकराने से होता है। जैसे, हथियारों की झनक, पाजेब की झनक, चूड़ियों की झनक। उ०—ढोल ढनक झाँझ झनक गोमुख सहनाई।—घनानंद, पृ० ४८६।

झनकना—क्रि० अ० [अनु०] १. झनकार का शब्द करना। २. क्रोध आदि में हाथ पैर पटकना। ३. चिड़चिड़ाना। क्रोध मे आकर जोर से बोल उठना। ४. दे० 'झीखना'।

झनकमनक—संज्ञा स्त्री० [अनु०] मंद मंद झनकार जो बहुधा आभूषणों आदि से उत्पन्न होती है। उ०—झनक मनक धुनि होत लगत कानन को प्यारी।—ब्रज० ग्रं०, पृ० ११९।

झनकवात—संज्ञा स्त्री० [अनु० झनक + सं० वात] घोड़ों का एक रोग जिसमे वे अपने पैर को कुछ झटका देकर रखते हैं।

झनकाना—क्रि० स० [अनु० झनकना का प्रे०रूप] झनकार उत्पन्न करना। बजाना।

झनकार—संज्ञा स्त्री० [सं० झणत्कार, प्रा० झणक्कार] दे० 'झंकार' उ०—घर घर गोपी दही बिलोवहि कर कंकन झनकार।—सूर (शब्द०)।

झनकारना[1]—क्रि० अ० [हिं० झनकार] दे० 'झंकारना'।

झनकारना[2]—क्रि० स० दे० 'झंकारना'।

झनकोर(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० झनकार या झकोर] दे० 'झनकार'। उ०—लोका लोकै बिजुली चमकै झिंगुर बोलै झनकोर कै।—कबीर० श०, भा० ३, पृ० ३०।

झनझन—संज्ञा स्त्री० [अनु०] झन झन शब्द। झनकार। झन-झनाहट।

झनझना[1]—संज्ञा पुं० [देश०] एक कीड़ा जो तमाखू की नसों में छेद कर देता है। इसे चनचना भी कहते हैं।

झनझना[2]—वि० [अनु०] जिसमें से झनझन शब्द उत्पन्न हो।

झनझनाना[1]—क्रि० अ० [अनु०] १. झन झन शब्द होना। २. (लाक्ष०) भय, सिहरन या हर्ष से रोमांचित होना। किसी अनुभूति से पुलकित होना। जैसे, न रोएँ झनझनाना।

झनझनाना—क्रि० स० झनझन शब्द उत्पन्न करना।

झनझनाहट—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. झनझन शब्द होने की क्रिया या भाव। झंकार। २. झुन झुनी।

झनझोरा†—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पेड़।

झनत्कृत—वि० [सं०] दे० 'झंकृत'। उ०—दूध धँतर का सरल, अम्लान, खिल रहा मुखदेश पर द्युतिमान। किंतु है अब भी झनत्कृत तार, बोलते हैं भूप बारंबार।—साम०, पृ० ४८।

झननन—संज्ञा पुं० [अनु०] झन झन शब्द। झंकार।

झननाना†—क्रि० अ० और स० [अनु०] दे० 'झंकारना'।

झनवाँ—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का धान।

झनस—संज्ञा पुं० [देश० ?] प्राचीन काल का एक प्रकार का बाजा जिसपर चमड़ा मढ़ा हुआ होता था।

झनाझन[1]—संज्ञा स्त्री० [अनु०] झंकार। झनझन शब्द।

झनाझन[2]—क्रि० वि० झनझन शब्द सहित। इस प्रकार जिसमें झन झन शब्द हो। जैसे,—झनाझन खाँड़े बजने लगे, झनाझन रुपए बरसने लगे।

झनिया—वि० [हिं० झीना] दे० 'झीना'। उ०—कनक रतन मनि जटित कटि किंकिन कलित पीत पट झनिया।—सूर (शब्द०)।

झन्नाना—क्रि० अ० [अनु०] दे० 'झनझनाना'। उ०—मुखर झन्नाते रहे या मूक हो सब शब्द, पोपले वाचाल ये थोथे निहोरे।—हरी घास०, पृ० २१।

झन्नाहट—संज्ञा स्त्री० [अनु०] झनकार का शब्द। झनझनाहट। उ०—टूटे तार सन्नाह झन्नाहटे सो। परे छूटि कै भूमि खन्नाहटे सौं।—सूदन (शब्द०)।

झप—क्रि० वि० [सं० झम्प (=जल्दी से गिरना, कूदना)] जल्दी से। तुरंत। झट। उ०—खेलत खेलत जाइ कदम चढ़ि झप यमुना जल लीनो। सोवत काला जाइ जगायो फिरि भारत हरि कीनो।—सूर (शब्द०)।

यौ०—झप झप। झपाझप।

मुहा०—झप खाना = (१) पतंग का जल्दी से पेंदी के बल गिर पड़ना। (२) झेंप खाना। झेंपना।

झपक—संज्ञा स्त्री [हिं० झपकना] १. उतना समय जितना पलक गिरने में लगता है। बहुत थोड़ा समय। २. पलकों का परस्पर मिलना। पलक का गिरना। ३. हलकी नींद। झपकी। ४. लज्जा। शर्म। हया। झेंप।

झपकना—क्रि० अ० [सं० झम्प (=जोर से पड़ना, कूदना)] १. २. पलक गिराना। पलकों का परस्पर मिलना। झपकी लेना। ऊँघना।—(क्व०)। ३. तेजी से आगे बढ़ना। झपटना। ४. ढकेलना। ५. झेंपना। शर्मिंदा होना। उ०—तभी, देवि, क्यों सहसा दीख, झपक, छिप जाता तेरा स्मित मुख, कविता की सजीव रेखा सी मानस पट पर घिर जाती है।—इत्यलम्, पृ० ६८। ६. डरना। सहम जाना। उ०—कहु देत झपकी झपकि झपकहु देत खाली दाऊँ।—रघुराज (शब्द०)।

झपका—संज्ञा पुं० [अनु०] हवा का झोंका।—(लश०)।

झपकाना—क्रि० स० [अनु०] पलकों को बार बार बंद करना। जैसे, आँख झपकाना।

झपकारी—वि० स्त्री० [हिं० झपक + आरी (प्रत्य०)] १. निंदियारी। झपकानेवाली। २. हयादार। लज्जा से झुकनेवाली। उ०—कारी झपकारी अनियारी बरुनी सघन सुहाई।—भारतेंदु ग्रं०, भा०२, पृ० ४१४।

झपकी—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. हलकी नींद। थोड़ी निद्रा। ऊँघाई। ऊँघ। जैसे,—जरा झपकी ले लें तो चलें।

क्रि० प्र०—आना।—लगना।—लेना।

२. आँख झपकने की क्रिया। ३. वह कपड़ा जिससे अनाज ओसाने या बरसाने में हवा देते हैं। बेंवरा। ४. धोखा। चकमा। बहकाना। उ०—कहुँ देत झपकी झपकि झपकहु देत खाली दाउँ। बढ़ि जात कहुँ द्रुत बगल ह्वै बलगात दक्षिण पाउँ।—रघुराज (शब्द०)।

झपकोⓟ—संज्ञा पुं० [हिं० झपका] हवा का झोंका। उ०—दीपक बरत विवेक को तौ लौं या चित माँहि। जौ लौं नारि कटाक्ष पट झपको लागत नाँहि।—ब्रज० ग्रं०, पृ० ८८।

झपकौहाँ, झपकौहाँⓟ†—वि० [हिं० झपना] [वि० स्त्री० झपकौहीं] १. नींद से भरा हुआ (नेत्र)। जिसमें झपकी आ रही हो (वह आँख)। झपकता हुआ। उ०—(क) झपकौहैं पलनि पिया के पीक लीक लखि झुकि झहराइ न नेकु अनुरागै त्यों।—पद्माकर (शब्द०)। (ख) झुकि झुकि झपकौहैं पलनु फिरि फिरि जुरि, जमुहाइ। बींद पिआगम नीद मिसि दी सब अली उठाय।—बिहारी र०, दो० ५८६। २ मस्त। नशे में चूर। मतवाला। नशे में भरा हुआ। उ०—मसि अंग लहुरी चहुँधा पूरी जोति समूरी भाल लगै। इगलुनि झपकौहीं भौंह बढ़ौहीं नाक चढ़ौही अधर हँसै।—सूदन (शब्द०)।

झपट—संज्ञा स्त्री० [सं० झम्प(=कूदना)] झपटने की क्रिया या भाव। उ०—(क) देखि महीप सकल सकुचाने। बाज झपट जनु लवा लुकाने।—तुलसी (शब्द०)। (ख) मन पंछी जब लग उड़े विषय वासना माँहि। ज्ञान बाज की झपट में तब लगि आया नाँहि।—कबीर (शब्द०)।

यौ०—लपट झपट = लपटने या झपटने की क्रिया या भाव। उ०—लपट झपट झहराने हहराने जात भहराने भट परयो प्रबल परावनो।—तुलसी (शब्द०)।

मुहा०—झपट लेना = बहुत तेजी से बढ़कर छीनना।

झपटना¹—क्रि० अ० [सं० झम्प (=कूदना)] १. किसी (वस्तु या व्यक्ति) की ओर झोंक के साथ बढ़ना। वेग से किसी की ओर चलना। २. पकड़ने या आक्रमण करने के लिये वेग से बढ़ना। टूटना। धावा करना।

मुहा०—किसी पर झपटना = किसी पर आक्रमण करना। जैसे, बिल्ली का चूहे पर झपटना।

झपटना²—क्रि० स० बहुत तेजी से बढ़कर कोई चीज ले लेना। झपटकर कोई चीज पकड़ या छीन लेना। —जैसे, तोते को बिल्ली झपट ले गई।

संयो० क्रि०—लेना।

झपटान†—संज्ञा स्त्री० [हिं० झपटना] झपटने का क्रिया।

झपटाना—क्रि० स० [हिं० झपटना का प्रे०रूप] धावा कराना। आक्रमण कराना। हमला कराना। इश्तियालक देना। वार कराना। लड़ने को उभारना। उसकाना। बढ़ावा देना। किसी को झपटने में प्रवृत्त करना।

झपट्टा†—संज्ञा स्त्री० [हिं० झपटना] दे० 'झपट'।

क्रि० प्र०—मारना।

यौ०—झपट्टामार = झपट्टा मारनेवाला। झपटनेवाला।

झपताल—संज्ञा पुं० [देश०] संगीत में एक ताल जो पाँच मात्राओं का होता है और जिसमें चार पूर्ण और दो अर्ध होती हैं। इसमें तीन आघात और एक खाली रहता है। इसका मृदंग का बोल यह है—

+ १ २ ० +

धाग, धागे,+ने, तटे, धागे, ने धा। और ०इसका तबले का बोल यह है—धिन धा, धिन धिन धा, देत, ता तिन तिन ता। धा+।

झपना¹ ⓟ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] झपने या मुदनेवाली वस्तु। पलक। उ०—अगमपुरी की सँकरी गलियाँ अड़बड़ है चलना। ठोकर लगी गुर ज्ञान शब्द की उघर गए झपना।—कबीर० श० भा०१, पृ० ६७।

झपना²—क्रि० अ० [अनु०] १. (पलकों का) गिरना। (पलकों का) बंद होना। २. (आँखें) झपकना या बंद होना। झुकना। ३ लज्जित होना। झेंपना। छिपना।

झपनी†—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. ढकना। वह जिससे कोई चीज ढकी जाय। २. पिटारी।

झपलैया†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'झपोला'। उ०—अस कहि झपलैया बिखरायो। झिलपिल्ले को दरस करायो।—रघुराज (शब्द०)।

झपवाना—क्रि० स० [अनु०] झपाना का प्रेरणार्थक रूप। किसी को झपाने मे प्रवृत्त करना।

झपस—संज्ञा स्त्री० [हिं० झपसना] १. गुंजान होने की क्रिया या भाव। २ कहारों की परिभाषा मे पेड़ की झुकी हुई डाल।

विशेष—इसका व्यवहार पिछले कहार को आगे पेड की डाल होने की सूचना देने के लिये पहला कहार करता है।

झपसट—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. धोखा। बबसट। कपट। ‡२. एक गाली।

झपसना—क्रि० अ० [हिं० झँपना (=ढँकना)] लता या पेड़ की डालियों का खूब घना होकर फैलना। पेड़ या लता आदि का गुंजान होना। जैसे,—यह लता खूब झपसी हुई है।

झपाक—क्रि० वि० [हिं० झप] पलक भाँजते। चटपट। उ०—झकोरि झपाक झपटि नर समय गँवाई। नहिं समुझत निज मूल ग्रंथ हूँ दृष्टि छिपाई।—भीखा श०, पृ० ८७।

झपाका¹—संज्ञा पुं० [हिं० झप] शीघ्रता। जल्दी।

झपाका²—क्रि० वि० जल्दी से। शीघ्रतापूर्वक।

झपाट†—क्रि० वि० [हिं० झप] झटपट। तुरंत। शीघ्र ही।

झपाटा¹—संज्ञा पुं० [हिं० झपट] चपेट। आक्रमण। दे० 'झपट'।

झपाटा²—क्रि० वि० [हिं० झपाट] शीघ्र। झटपट।

झपाना—क्रि० स० [हिं० झपना] १. झपने का सकर्मक रूप। मूँदना या बंद करना (विशेषतः आँखों या पलकों का)। २. झुकाना। ३ दे० 'झिपाना'।

झपाव—संज्ञा पुं० [देश०] घास काटने का एक प्रकार का औजार।

झपावना†—क्रि० स० [हिं० झपाना] छिपाना। गोपन करना। उ०—बदन झपावए अलकत भार, चाँदमडल जनि मिलए अंधार।—विद्यापति, पृ० ३४०।

झपित—वि० [हिं० झपना] १. झपा हुआ। मुँदा हुआ। २. जिसमें नींद भरी हो। झपकौहाँ या उनींदा (नेत्र)। ३. लज्जित। लज्जायुक्त। लजालु। उ०—कवि पद्माकर छकित झपित झपि रहत दृगंचल।—पद्माकर (शब्द०)।

झपिया—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. गले मे पहनने का एक प्रकार का गहना।

विशेष—यह गहना हँसुली की तरह का बना होता है और इसके सोने या चाँदी के बीच में एक अकीक जड़ा रहता है। यह गहना प्रायः डोम जाति की स्त्रियाँ पहनती हैं।

२. पेटारी। पच्छी।

झपेट—संज्ञा स्त्री० [हिं० झपट] दे० 'झपट'।

झपेटना—क्रि० स० [अनु०] आक्रमण करके दबा लेना। चपेटना। दबोचना। छोप लेना। उ०—सहमि सुखात बात जात की सुरति करि लवा ज्यों लुकात तुलसी झपेटे बाज के।—तुलसी ग्रं०, पृ० १८३।

झपेटा†—संज्ञा पुं० [अनु०] १. चपेट। झपट। आक्रमण। २. भूत-प्रेतादि कृत बाधा या आक्रमण। ३. हवा का झोंका। झकोरा।—(लश०)।

झपोला—संज्ञा पुं० [हिं०] [स्त्री० अल्पा० झपोली] दे० 'झँपोला'।

झपोली—संज्ञा स्त्री० [हिं०] झँपोला का अल्पार्थक। छोटा झपोला या झाबा। झँपोली।

झप्पड़—संज्ञा पुं० [अनु०] झापड़। थप्पड़।

झप्पर†—संज्ञा पुं० [अनु०] १. दे० 'झप्पड़'। २. मार। चोट। उ०—दीनो मुहीम को भार बहादुर छागो सहै क्यों गयंद को झप्पर।—भूषण ग्रं० पृ० ७१।

झप्पान—संज्ञा पुं० [हिं० झँपान] झँपान नाम की एक प्रकार की पहाड़ी सवारी जिसे चार आदमी उठाकर ले चलते हैं।

झप्पानी—संज्ञा पुं० [हिं० झंपान] झप्पान उठानेवाला कहार या मजदूर।

झबक—संज्ञा स्त्री० [हिं० झपक] दे० 'झपकी'।

झबकै(पु)—क्रि० वि० [हिं० झबक] झपकी में ही। उ०—सांभलि राजा बोल्या रे अवधू सुणौ अनोपम बाणी जी। निरगुण नारी सूं नेह करंता झबकै रैणि बिहाणी जी।—गोरख०, पृ० १५३।

झबकना†—क्रि० अ० [अनु०] झब झब करना। ज्योति सी उठना। दीप्त होना। चमकना। उ०—काया झबकइ कनक जिम, सुंदर केहें सुक्ख। वेह सुरंगा किम हुवइ, जिण वेहा बहु दुक्ख।—ढोला०, दू० ५४६।

झबझबी—संज्ञा स्त्री० [देश०] कान में पहनने का एक प्रकार का तिकोना पत्ते के आकार का गहना।

झबड़ा—वि० [अनु०] दे० 'झबरा'।

झबधरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की घास जो गेहूँ को हानि पहुँचाती है।

झबरक†(पु)—संज्ञा पुं० [अनु०] जलते हुए दीपक में मोटी बत्ती। उ०—कसतूरी मरदन कीयो झबरक दीप लै गहरी बाट।—बी० रासो, पृ० ९८।

झबरा¹—वि० [अनु०] [वि० स्त्री० झबरी] चारों तरफ बिखरे और घूमे हुए बड़े बड़े बालोंवाला। जिसके बहुत लंबे लंबे बिखरे हुए बाल हों। जैसे, झबरा कुत्ता। उ०—कलुआ कबरा मोतिया झबरा बुचवा मोंहि डेरवावै।—मलूक० बानी, पृ० २५।

झबरा²—संज्ञा पुं० कलंदरों की भाषा में नर भालू।

झबरीला—वि० [हिं० झबरा + ईला (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० झबरीली] कुछ बड़ा, चारो तरफ बिखरा और घूमा हुआ (बाल)।

झबरैरा†(पु)— [हिं० झबरा + ऐरा (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० झबरैरी] दे० 'झबरीला'। उ०—कुंतल कुटिल छबि राजत झबरैरी। लोचन चपल तारे रुचिर झबरैरी।—सूर (शब्द०)।

झबा—संज्ञा पुं० [अनु०] दे० 'झब्बा'। उ०—(क) सीस फूल धरि पाटी पोंछत फूँदनि झबा बिहारत। बदन बिंद जराइ की बेंदी तापर बनै सुधारत।—सूर (शब्द०)। (ख) छहरै सिर पै छबि मोर पखा उनकी नथ के मुकता थहरैं। फहरै पियरो पट बेनी इतै उनकी चुनरी के झबा झहरैं।—बेनी कवि (शब्द०)।

झबार†—संज्ञा स्त्री० [अनु०] टंटा। बखेड़ा। झगड़ा। उ०—धरि बचन सखहु रघुकुल कुमार। तजि देहु और जग की झबार।—रघुराज (शब्द०)।

झबारि†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'झबार'। उ०—(क) बड़े घर की बहू बेटी करति वृथा झबारि। सूर अपनों अंश पावै जाहि घर झख मारि।—सूर (शब्द०)। (ख) बहुत अचगरी जिन करो अजहूं तजो झबारि। पकरि कंस लै जाइगो कालिहि सूर सबारि।—सूर (शब्द०)। (ग) यह झगरो बगरो जग रोधत हरिपद अति अनुरागा। ताते सज्जन रसिक शिरोमणि यह झबारि सब त्यागा।—रघुराज (शब्द०)।

झबिया¹†—संज्ञा स्त्री० [हिं० झब्बा का स्त्री० अल्पा०] १. छोटा झब्बा छोटा फुँदना। २. सोने या चाँदी आदि की बनी हुई बहुत ही छोटी कटोरी जो बाजूबंद, जोशन, हुमेल आदि गहनों में सूत या रेशम में पिरोकर गूँथी जाती है। उ०—मदनातुर ती तिनऊ पर श्याम हुमेलन की झमकै झबिया।—बाल कवि (शब्द०)।

झबिया²—संज्ञा स्त्री० [हिं० झाबा का स्त्री० अल्पा०] वह झाबा जो आकार में छोटा हो।

झबी—संज्ञा स्त्री० [हिं० झबा का स्त्री० अल्पा०] दे० 'झबा'। उ०—झबी जराऊ जोरि, अमित गूँथननि सँवारी।—नंद० ग्रं०, पृ० ३८६।

झबुआ†—वि० [अनु०] दे० 'झबरा'।

झबूकड़ा(पु)†—संज्ञा स्त्री० [अनु०] [अन्य रूप-झबुक्कड़ा, झबूकड़इ] चमक। जगमगाहट। उ०—(क) ऊँचउ मंदिर अति घणउ आवि सुहावा कंत। वीजलि लियइ झबूकड़ा सिहरी अलि लागंत।—ढोला०, दू० २६८। (ख) बीज न देख चहड्डियाँ, प्री परदेश गयाँह। आपण लीय झबुक्कड़ा गलि लागी सहराँह।—ढोला०, दू० १५२।

झबूकना†—क्रि० अ० [अनु०] १. चमकना। जगमगाना। दीप्त होना। ज्योतित होना। उ०—(क) मंदिर माँहि झबूकती दीवा कैसी जोति। हंस बटाऊ चलि गया काढ़ो घर की छोति।—कबीर ग्रं०, पृ० ७३। (ख) भभूकैं उड़ैं यों झबूकै फुलंगा। मनो अग्नि बेताल नच्चैं खुलंगा।—सूदन (शब्द)। २. झझकना।

झब्बा—संज्ञा पुं० [अनु०] १. एक ही में बँधे हुए रेशम या सूत आदि के बहुत से तारों का गुच्छा जो कपड़ों या गहनों आदि में शोभा बढ़ाने के लिये लटकाया जाता है। जैसे, पगड़ी का झब्बा। २. एक में लगी गूँथी या बँधी हुई छोटी छोटी चीजों का समूह। गुच्छा। जैसे, तालियों का झब्बा घुँघुरुओं का झब्बा। उ०—झब्बा से बहु छोटे बटुए झूलत सुंदर।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० १२।

झमंकना(पु)—क्रि० स० [अनु०] झम् झम् की ध्वनि होना। झंकार होना। उ०—अवधू सहंस नाड़ी पवन चलैगा, कोटि झमंकै नादं। बहुतारि चंदा बाई सोष्या किरणि प्रगटी जब आदं।—गोरख०, पृ० १९।

झमंकार(पु)—संज्ञा स्त्री० [अनु०] झम झम की ध्वनि। झंकार। उ०—तमंते तमंते सर्म तेज मारे। झमंते झमंते झमंकार झारे।—पृ० रा०, १२। ८९।

झमक—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. चमक का अनुकरण। २. प्रकाश। उजेला। ३. झम झम शब्द। उ०—पग जेहरि बिछियन की झमकनि चलत परस्पर बाजत। सूर स्याम सुख जोरी

मणि कंचन छवि लाजत ।—सूर (शब्द०) ४. ठसक या नखरे की चाल ।

झमकड़ा[1]—संज्ञा पुं० [हिं० झमक+ड़ा (प्रत्य०)] दे० 'झमक'। उ०—मिरजा साहब—एक झमकड़ा नजर आया।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ८ ।

झमकड़ा[2]—वि० झनझनानेवाले । झमझम शब्द करनेवाले । उ०—बड़े बड़े कच छुटि पड़े उमड़े नैन बिसाल । कड़े झमकड़े ही गड़े अड़े खड़े नँदलाल ।—स० सप्तक, पृ० २५१ ।

झमकना—क्रि० अ० [हिं० झमक] १. प्रकाश की किरणें फेंकना। रह रहकर चमकना। दमकना। प्रकाश करना। प्रज्वलित होना। २. झपकना। छाना। छा जाना। उ०—आलस सों कर कौर उठावत नैननि नींद झमकि रहि भारी। दोउ माता निरखत आलस मुख छबि पर तन मन डारति वारी।—सूर०, १०।१२८। ३. झम झम शब्द होना। झनकार की ध्वनि होना। उ०—झूमि झूमि झुकि झुकि झमकि झमकि आली रिमझिम रिमझिम मसाढ़ बरसतु है।—ठाकुर, पृ० १६। ४. झम झम करते हुए उछलना कूदना। गहनों की झनकार के साथ हिलना डोलना। उ०—(क) कबहुँक निकट देखि बर्षा ऋतु झूलत सुरँग हिंडोरे। रमकत झमकत जनक सुता सँग हाव भाव चित चोरे।—सूर (शब्द०)। (ख) ज्यों ज्यों आवति निकट निसि त्यों त्यों खरी उताल। झमकि झमकि टहलैं करै लगी रहचटैं बाल।—बिहारी र०, दो० ५४३। ५. गहनो की झनकार करते हुए नाचना। ६. लड़ाई में हथियारों का चमकना और खनकना। उ०—मल्ल लगे चमकन खग लगे झमकन सूल लगे दमकन तेग लगे छहरान।—गोपाल (शब्द०)। ७ अकड़ दिखलाना। तेजी दिखाना। झोंक दिखाना। ८. झम झम शब्द करना। बजने का सा शब्द करना। उ०—तैसिये नन्हीं बूँदनि बरसतु झमकि झमकि झकोर।—सूर (शब्द०)।

झमकाना—क्रि० स० [हिं० झमकना का स० रूप] १. चमकाना। बार बार हिलाकर चमक पैदा करना। २. चलने मे आभूषण आदि बजाना और चमकाना। उ०—सहज सिंगार उठत जोबन तन बिधि निज हाथ बनाई। सूर स्याम आए ढिग आपुन घट भरि चलि झमकाई।—सूर०, १०।१४४७। ३. युद्ध में हथियारों आदि का चमकाना और खनखनाना।

झमकारा—वि० [हिं० झम झम][वि० स्त्री० झमकारी] झमाझम बरसनेवाला (बादल)। उ०—सोहे सिंधु सिंधुर से बंधुर ध्यों बिंध्य गंधमादन के बंधु गरज गुरवानि के। झमकारे झूमत गगन घने घूमत पुकारे मुख चूमत पपीहा मोरान के।—देव (शब्द०)।

झमझम[1]—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. झम झम शब्द जो बहुधा घुँघुरुओं आदि के बजने से उत्पन्न होता है। छम छम। २. पानी बरसने का शब्द। ३. चमक दमक।

झमझम[2]—वि० जिसमें से खूब चमक या आभा निकले। चमकता हुआ।

झमझम[3]—क्रि० वि० १. झम झम शब्द के साथ। जैसे, घुँघुरुओं का झमझम बोलना, पानी का झमझम बरसना। २. चमक दमक के साथ। झमाझम।

झमझमाना[1]—[क्रि० अ०] १. झम झम शब्द होना। २. चमचमाना। चमकना। ३. (लाक्ष०) झनझनाना। पुलकित होना। रोमांचित होना। उ०—एक विचित्र अनुभूति से मिस मेहता की त्वचा झमझमा उठी।—पिंजरे०, पृ० ५५।

क्रि० प्र०—उठना।

झमझमाना[2]—क्रि० स० १. झमझम शब्द उत्पन्न करना। २. चमकाना।

झमझमाहट—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. झमझम शब्द होने की क्रिया या भाव। २. चमकने की क्रिया या भाव।

झमना—क्रि० अ० [अनु०] नम्र होना। झुकना। दबना। उ०—मुरली श्याम के कर अधर बिबं रमी। लेति सरबस जुवतिजन को मदन विवित अमी। महा कठिन कठोर आली बाँस बंस जमी। सूर पूरन परसि श्रीमुख नैकु नाहिं झमी।—सूर०, १०।१२२८।

झमा(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० झामक] दे० 'झवाँ' या 'झाँवाँ'।

झमाका—संज्ञा पुं० [अनु०] १. झम झम शब्द। पानी बरसने या गहनों के बजने आदि का शब्द। २. ठसक। मटक। नखरा।

झमाझम—क्रि० वि० [अनु०] उज्वल कांति के सहित। दमक के साथ। जैसे, सलमे सितारे टँके हुए कपड़ों का झमाझम चमकना। २. झमझम शब्द सहित। जैसे, पाजेब का झमाझम बोलना, पानी का झमाझम बरसना।

झमाट—संज्ञा पुं० [अनु०] झुरमुट। उ०—पर्वत के सिर पर क्या देखता है कि बहुत से सूखे झाड़ों के झमाट से बड़ा घटाटोप धूम निकल रहा है।—व्यास (शब्द०)।

झमाना[1]—क्रि० अ० [अनु०] झपकना। छाना। घिरना। उ०—(क) खेलत तुम निसि अधिक गई सुत नैननि नींद झमाई। बदन जँभात अंग ऐंडावत जननि पलोटत पाई।—सूर (शब्द०)। (ख) त्यों पदमाकर भोरि झमाई सुदौरी सबै हुरि पै इक दाऊ।—पद्माकर (शब्द०)।

झमाना[2]—क्रि० अ० [हिं० झाँवाँ या झमा+ना (प्रत्य०)] दे० 'झँवाना'।

झमाना[3]—क्रि० स० [हिं० जमाना ? अथवा अनु० झमाट] इकट्ठा करना। एकत्र करना।

झमारना(पु)—क्रि० स०[हिं० झँवाना का प्रे० रूप]झाँवरा करना। झाँवाँ की तरह कर देना कुछ कुछ श्याम वर्ण का कर देना। उ०—दोहन करत ब्रजमोहन मनोरथनि, आनँद को घन रंग झलनि झमारई।—घनानद, पृ० २०४।

झमाल[1]—संज्ञा पुं० [देशी] इंद्रजाल। माया [को०]।

झमाल[2]—संज्ञा पुं० [डिं०] एक प्रकार का डिंगल गीत। उ०—दूहै पर चंद्रायणो, धरै झलालो धार। गीतां रूप झमाल गुण, वरणं मंछ विचार।—रघु० रू०, पृ० १२।

झमूरा—संज्ञा पुं० [हिं० झबरा या झमाट ?] १. घने बालोंवाला पशु। जैसे, रीछ, झबरा कुत्ता आदि। २. वह लड़का जो बाजीगर के साथ रहता है और बहुत से खेलों में बाजीगर

को सहायता देता है। ३. वह बच्चा जो ढीले ढाले कपड़े पहनता हो। ४. कोई प्यारा बच्चा।

झमेल—संज्ञा स्त्री० [हिं० झमेला] दे० 'झमेला'।

झमेला—संज्ञा पुं० [अनु० झाँव झाँव] १. बखेड़ा। झंझट। झगड़ा। टंटा। २. लोगों का झुंड। भीड़ भाड़। उ०—शत्रुन के झमेला बीर पाय शस्त्र ठेला प्रान त्यागि अलबेला तन लहै काम चेला सो।—गोपाल (शब्द०)।

झमेलिया—संज्ञा पुं० [हिं० झमेला + इया (प्रत्य०)] झमेला करनेवाला। झगड़ालू। बखेड़िया।

झर—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पानी गिरने का स्थान। निर्झर। २. झरना। सोता। चश्मा। पर्वत से निकलता हुआ जलप्रवाह। ३. समूह। झुंड। ४. तेजी। वेग। उ०—प्रात गई नीके उठि ते घर। मैं बरजी कहाँ जाति री प्यारी तब खीझी रिस झर ते।—सूर (शब्द०)। ५. झड़ी। लगातार वृष्टि। ६. किसी वस्तु की लगातार वर्षा। उ०—(क) वर्षत अस्त्र कवच धर फूटे। मघा मेघ मानो झर जुटे।—लाल (शब्द०)। (ख) पावक झर ते मेह झर दाहक दुसह बिसेखि। दहै देह वाके परस याहि दृगन की देखि।—बिहारी (शब्द०)। (ग) सूरदास तबही तम नासै ज्ञान अगिन झर फूटै।—सूर(शब्द०)। ७. आँच। ताप। लपट। ज्वाला। झाल। उ०—(क) श्याम अंकम भरि लीन्हीं विरह अगिन झर तुरत बुझानी।—सूर० (शब्द०) (ख) श्याम गुणराशि मानिनि मनाई। रह्यो रस परस्पर मिट्यो तनु बिरह झर भरी आनंद प्रिय उर न माई।—सूर (शब्द०)। (ग) सटपटाति सी ससिमुखी मुख घूँघट पट ढाँकि। पावक झर सी झमकि कै गई झरोखे झाँकि।—बिहारी (शब्द०)। (घ) नेकु न झुरसी बिरह झर नेह लता कुँभिलाति। नित नित होत हरी हरी खरी झालरति जाति।—बिहारी (शब्द०)। ८. ताले का खटका। ताले की भीतर की कल। ताले का कुत्ता।

झरक†Ⓟ—संज्ञा स्त्री० [हिं० झलक] दे० 'झलक'।

झरकनाⓅ—क्रि० अ० [हिं०] १. दे० 'झलकना'। उ०—सरल विसाल विराजहीं विद्रुम खंभ सुजोर। चारु पाटियनि पुरट की झरकत मरकत भोर।—तुलसी (शब्द०)। २. दे० झिड़कना। उ०—रोवति देखि जननि अकुलानी लियो तुरत नौवा को झरकी।—सूर (शब्द०)।

झरकनाⓅ[1]—क्रि० अ० [हिं० झलकना] दे० 'झलकना'। उ०—हँसत दसन अस चमके पाहन उठे झरक्कि। दारिउँ सरि जो न कै सका फाटेउ हिया दरक्कि।—जायसी ग्रं०, पृ० ७४।

झरकनाⓅ[2]—क्रि० अ० [सं० झर (=पानी का बहना)] धीरे धीरे बहना। झर झर शब्द करते चलना। उ०—पौन झरक्के हिय हरख लागै सियरि बतास।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३५०।

झरकाना†—क्रि० अ० [सं० झर(=समूह, झुंड)] एकत्र होना। झुंड में आ जाना। उ०—इस चौका महँ अस भो भाई। बहु चिउँटी चूल्है झरकाई।—कबीर सा०, पृ० ४०६।

झरझर—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. जल के बहने, बरसते या हवा के चलने आदि का शब्द। २. किसी प्रकार से उत्पन्न झर झर शब्द।

झरझराना[1]—क्रि० स० [अनु०] किसी बर्तन में से किसी वस्तु को इस प्रकार झाड़कर गिरा देना कि उस वस्तु के गिरने से झरझर शब्द हो।

झरझराना[2]—क्रि० अ० झहरा उठना। काँप उठना। कंपित होना। उ०—झरझराति झहराति लपट अति, देखियत नहीं उबार।—सूर०, १०।५९३।

झरन—संज्ञा स्त्री० [हिं० झरना] १. झरने की क्रिया। २. वह जो कुछ झरकर निकला हो। वह जो झरा हो। ३. दे० 'झड़न'।

झरना[1]Ⓟ—क्रि० अ० [सं० क्षरण] १. झड़ना। २. किसी ऊँचे स्थान से जल की धारा का गिरना। ऊँची जगह से सोते का गिरना। जैसे,—पहाड़ों में झरने झर रहे थे। उ०—नंद नंदन के बिछुरे अखियाँ उपमा जोग नहीं। झरना लौं ये झरत रैन दिन उपमा सकल नहीं। सूरदास आसा मिलिबे की अब घट साँस रही।—सूर (शब्द०)। ३. वीर्य का पतन होना। वीर्य स्खलित होना।—(बाजारू)। ४ बजना। झड़ना। जैसे, नौबत झरना।

विशेष—(१) दे० 'झड़ना'।

विशेष—(२) इन अर्थों में इस शब्द का प्रयोग उस पदार्थ के लिये भी होता है जिसमें से कोई चीज झरती है।

झरना[2]—संज्ञा पुं० [सं० झर] ऊँचे स्थान से गिरनेवाला जलप्रवाह। पानी का वह स्रोत जो ऊपर से गिरता हो। सोता। चश्मा। जैसे, उस पहाड़ पर कई झरने हैं।

झरना[3]—[सं० क्षरण] [स्त्री० अल्पा० झरनी] १. लोहे या पीतल आदि की बनी हुई एक प्रकार की छलनी जिसमें लंबे लंबे छेद होते हैं और जिसमें रखकर समूचा अनाज छाना जाता है। २. लंबी डाँड़ी की वह करछी या चम्मच जिसका अगला भाग छोटे तवे का सा होता है और जिसमें बहुत से छोटे छोटे छेद होते हैं। पौना।

विशेष—इससे खुले घी या तेल आदि में तली जानेवाली चीजों को उलटते पलटते, बाहर निकालते अथवा इसी प्रकार का कोई और काम लेते हैं। झरने पर जो चीज ले ली जाती है उसपर का फालतू घी या तेल उसके छेदों से नीचे गिर जाता है और तब वह चीज निकाल ली जाती है।

२. पशुओं के खाने की एक प्रकार की घास जो कई वर्षों तक रखी जा सकती है।

झरना[4]—वि० [वि० स्त्री० झरनी] १. झरनेवाला। जो झरता हो। जिसमें से कोई पदार्थ झरता हो।

झरनाहट—संज्ञा स्त्री० [अनु०] झनझनाहट। उ०—झाँझर झरनाहट पर जेहर का झनका था।—नट०, पृ० १११।

झरनि†Ⓟ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'झरन'। उ०—नूपुर बजत मानि मृग से अधीन होत मीन होत चरणामृत झरनि को।—चरण (शब्द०)।

झरनी†—वि० [हिं० झरना का स्त्री० अल्पा०] झरनेवाली। दे०

'झरना'। उ०—झरनी सुरस बिंदु धरनी मुकुंद जू की धरनी सुफल रूप जेत कर्म काल की। नरनी सुधरनी उधेरनी बर बानी बाट पात तम तरनी भगति नंदलाल की।—गोपाल (शब्द०)।

झरप†Ⓟ—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. झोंका। झकोर। उ०—बंधु कीए मधुप मबंध कीए पुरजन सुमोह्यो मन गंधी की सुगंध झरपन सो—देव (शब्द०)। २. वेग। तेजी। उ०—घेरि घेरि घहर घन आए घोर तापे महा मारुत झकोरत झरप सों।—कमलापति (शब्द०)। ३. किसी चीज को गिरने से बचाने के लिये लगाया हुआ सहारा। चाँड़। टेक। ४. चिक। चिलमन। चिलवन। परदा। उ०—(क) तासन की गिलमैं गलीचा मखतूलन के झरपैं झमाक रही झूमि रंग द्वारी में।—पद्माकर (शब्द०)। (ख) झाकै झुकी युवती ते झरोखन भुंडनि ते झरपैं कर टारी।—रघुराज (शब्द०)। ५. दे० 'झड़प'।

झरपना†Ⓟ—क्रि० अ० [अनु०] १. झोंका देना। बौछार मारना। उ०—वर्षत गिरि झरपत ब्रज ऊपर। सो जल जँह तँह पुरन भू पर।—सूर (शब्द०)। २. दे० 'झड़पना'—१। ३. दे० 'झड़पना—३। उ०—एते पर कबहू जब आवत झरपत लरत घनेरो।—सूर (शब्द०)।

झरपेटा†—संज्ञा पुं० [अनु०] दे० 'झपट'।

झरफ—संज्ञा स्त्री० [अनु०] चिलमन। परदा। झरप।

झरबेर†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'झड़बेरी'।

झरबेरी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'झड़बेरी'। उ०—महुके कटहल, मुकुलित जामुन, जंगल में झरबेरी झूली।—ग्राम्या, पृ० ३६।

झरबैरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'झड़बेरी'।

झरर—संज्ञा पुं० [सं०] झाड़ू देनेवाला। स्थान झाड़नेवाला।

विशेष—कौटिल्य ने लिखा है कि झाड़ू देनेवाले को जब कोई पड़ी हुई चीज मिलती थी तो उसका ⅓ भाग चंद्रगुप्त का राज्य लेता था और ⅔ भाग उसको मिलता था।

झरवाना†—क्रि० स० [हिं० झारना का प्रे० रूप] १. झारने का काम दूसरे से कराना। दूसरे को झारने मे प्रवृत्त करना। २. दे० 'झड़वाना'।

झरसना[1]Ⓟ†—क्रि० अ० [अनु०] १. दे० 'झुलसना'। २. सूखना। मुरझाना। कुम्हलाना।

झरसना[2]Ⓟ†—क्रि० स० १. दे० 'झुलसाना'। २. सुखाना। मुरझा देना। उ०—विषय विकार को जवास झरस्यो करै।—प्रेमघन०, भा० १ पृ० २०१।

झरहरना†—क्रि० अ० [अनु०] झर झर शब्द करना। उ०—अजहूँ चेति मूढ़ चहुँ दिसि तें उपजी काल अगिनि झर झरहरि। सूर काल बल ब्याल ग्रसत है श्रीपति सरन परति किन फरहरि।—सूर०, १।३१२।

झरहरा†—वि० [हिं० झँझरा] [वि० स्त्री० झरहरी] दे० 'झँझरा'। उ०—झुकि झुकि झूमि झूमि झिल झिल झेल झेल झरहरी झाँपन में झमकि झमकि उठै।—पद्माकर (शब्द०)।

झरहराना[1]†—क्रि० अ० [अनु०] पत्तों का वायु या वर्षा के कारण शब्द करना या शब्द करते हुए गिरना। हवा के झोंके से पत्तों का शब्द करना अथवा शब्द सहित गिरना। उ०—झरहरात बनपात, गिरत तरु, धरनि तराकि तराकि सुनाई। जल बरषत गिरिवर तर बाँचे अब कैसे गिरि होत सहाई।—सूर०, १०।५६४।

झरहराना[2]—क्रि० स० १. झरझर शब्द सहित किसी चीज को, विशेषत: पेड़ों के पत्तों को, गिराना। पेड़ की डाल हिलाना। २. झटकना। झाड़ना।

झरहिल—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की चिड़ियाँ।

झराँ†—संज्ञा पुं० [हिं० झरना] नष्ट होना। बेकार होना।

झरा[1]—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का धान, जो पानी भरे हुए खेतों में उत्पन्न होता है।

झरा[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] झरना। स्रोत। सोता [को०]।

झराझर—क्रि० वि० [अनु०] १. झरझर शब्द सहित। २. लगातार। बराबर। ३. वेग सहित। उ०—श्री हरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी दोउ मिलि लरत झराझरि।—हरिदास (शब्द०)।

झरापनाⓅ—क्रि० अ० [हिं० झपट] हमला करना। झपटना।

झराबोर—संज्ञा पुं० वि० [हिं०] दे० 'झलाबोर'।

झराहरⓅ—संज्ञा पुं० [सं० ज्वाला + धर] सूर्य।

झरिⓅ—संज्ञा स्त्री०[हिं० झर]दे० 'झड़ी'। उ०—दस दिसि रहे बान नभ छाई। मानहु मघा मेघ झरि लाई।—तुलसी (शब्द०)।

झरिफⓅ—संज्ञा पुं० [हिं० झरप] चिक। चिलमन। परदा।

झरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० झरना] १. पानी का झरना। स्रोत। चश्मा। २. वह धन जो किसी हाट, बाजार या सट्टी आदि में जाकर सौदा बेचनेवाले छोटे छोटे दुकानदारों विशेषत: खोनचेवालों और कुंजड़ों आदि से प्रतिदिन किराए के रूप में वहाँ के जमींदार या ठीकेदार आदि को मिलता है। ३. दे० 'झड़ी'। उ०—कुंकुम अगर अरगजा छिरकहिं भरहिं गुलाल अबीर। नभ प्रसून झरि पुरी कोलाहल भइ मनभावति भीर।—तुलसी (शब्द०)।

झरुआ—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की घास।

झरोखा—संज्ञा पुं०[सं० जाल + गवाक्ष अथवा अनु० झर झर (=वायु बहने का शब्द) + गोख अथवा सं० जालगवाक्ष] [स्त्री० झरोखी] दीवारों आदि में बनी हुई झँझरी। छोटी खिड़की या मोखा जिसे हवा और रोशनी आदि के लिये बनाते हैं। गवाक्ष। गोखा। उ०—होर राणीआँ झरोखियों पर बैठीआँ सो भी सुणकर सभ के मन पवन इस्थिर हो गए।—प्राण०, पृ० १८३।

झर्झर—संज्ञा पुं० [सं०] १. हुड़ुक नाम का लकड़ी का बाजा जिसपर चमड़ा मढ़ा होता है। २. कलियुग। ३. एक नद का नाम। ४. हिरण्याक्ष के एक पुत्र का नाम। ५. लोहे आदि का बना हुआ झरना जिससे कड़ाही में पकनेवाली चीज चलाते हैं। ६. झाँझ। ७. पैर में पहनने का झाँझ या झाँझर नाम का गहना।

झर्झरक—संज्ञा पुं० [सं०] कलियुग।

झर्झरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तारा देवी का नाम। २. वेश्या। रंडी।

झर्झरावती—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गंगा नदी। २. कटसरैया का पौधा।

झर्झरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] तारा देवी।

झर्झरी[1]—संज्ञा पुं० [सं० झर्झरिन्] शिव।

झर्झरी[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] झाँझ नामक बाजा।

झर्झरीक—संज्ञा पुं० [सं०] १. देश। २. शरीर। ३. चित्र।

झर्ना—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'झरना'। उ०—नदी, झर्ना, वृक्ष और आकाश में, मुझको आपके साथ अत्यंत सुख मिलता था।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० ३९८।

झर्पⓅ—संज्ञा स्त्री० [अनु०] दे० 'झड़प'।

झर्रा—संज्ञा पुं० [देश०] १. बया पक्षी। २. एक प्रकार की छोटी चिड़िया।

झर्रैया—संज्ञा पुं० [देश०] बया नाम की चिड़िया।

झल—संज्ञा पुं० [हिं० झार, सं० झल (= ताप, चिलचिलाती धूप)। अथवा सं० ज्वल्, प्रा० झल)] १. दाह। जलन। आँच। २. उग्र कामना। किसी विषय की उत्कट इच्छा। उ०—(क) जीव विलंबा जीव सो अलख लख्यो नहिं जाय। साहब मिलै न झल बुझै रहो बुझाय बुझाय।—कबीर (शब्द०)। (ख) झल बायें झल दाहिने झल ही में व्यवहार। आगे पीछे झल जले राखै सिरजनहार।—कबीर (शब्द०)। ३. काम की इच्छा। विषय या संभोग की कामना। ४. क्रोध। गुस्सा। रिस। ५. समूह। उ०—पुनि आए सरजू सरित तीर।···कछु आपु न अध अध गति चलंति। झल पतितन को ऊरध फलंति।—केशव (शब्द०)।

झलक—संज्ञा स्त्री० [सं० झल्लिका (= चमक)] १. चमक। दमक। प्रकाश। प्रभा। द्युति। आभा। उ०—मनि खंभन प्रतिबिंब झलक छबि छलकि रही भरी आँगनै।—तुलसी (शब्द०)। २. आकृति का आभास। प्रतिबिंब। जैसे,—वे खाली एक झलक दिखलाकर चले गए। उ०—मकराकृत कुंडल की झलकै इतहूँ भुज मूल में छाप परी री।—पद्माकर (शब्द०)।

झलकदार—वि० [हिं० झलक + फ़ा० दार] चमकीला। चमकनेवाला। उ०—छोटा छोटी अँगुली झलाझल झलकदार छोटी सी छुरी को लिए छोटे राज ढोटे हैं।—रघुराज (शब्द)।

झलकना—क्रि० अ० [सं० झल्लिका (= चमक)] १. चमकना। दमकना। उ०—झलका झलकत पायन्ह कैसे। पंकज कोस ओस कन जैसे।—तुलसी (शब्द०)। २. कुछ कुछ प्रकट होना। आभास होना। जैसे,—उनकी आज की बातों से झलकता था कि वे कुछ नाराज हैं। उ०—कुंडल लोल कपोलनि झलकत मनु दरपन मैं झाँई री।—सूर०, १०।१३७।

झलकनिⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'झलक'। उ०—(क) श्रवन कुंडल मकर मानो नैन मीन बिसाल। सलिल झलकनि रूप आभा देख री नँदलाल।—सूर (शब्द०)।(ख) मदन मोर के चंद की झलकनि निदरति तनजोति। नील कमल, मनि जलद की उपमा कहे लघु मति होति।—तुलसी ग्रं० पृ० २७८।

झलका—संज्ञा पुं० [सं० ज्वल (= जलना); प्रा० झल + हिं० का (प्रत्य०)] चलने या रगड़ लगने आदि के कारण शरीर में पड़ा हुआ छाला। उ०—झलका झलकत पायन्ह कैसे। पंकज कोस ओसकन जैसे।—तुलसी (शब्द०)।

झलकाना—क्रि० स० [हिं० झलकना का सक० रूप] १. चमकाना। दमकाना। लसकाना। २. दरसाना। दिखलाना। कुछ आभास देना।

झलकावनीⓅ—वि० [हिं० झलकना] चमकानेवाली। दीप्त करनेवाली। झलकानेवाली। उ०—सुरतरु लतान चारु फल है फलित किधौं, कामधेनु धारा सम नेह उपजावनी। कैधौं चितामनिन की माल उर सोभित, बिसाल कंठ में धरे हैं जोति झलकावनी।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ३०५।

झलकी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'झलक'।

झलक्कनाⓅ—क्रि० अ० [हिं० झलकना] दीप्त होना। झलकना। उ०—झलक्कत सूर चमक्कत सेल।—ह० रासो, पृ० ९२।

झलज्झला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बूँदों के गिरने का शब्द। वर्षा की झड़ी से उत्पन्न शब्द। २. हाथी के कान की फटफटाहट (को०)।

झलझल[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० झलकना] चमक दमक।

झलझल[2]—क्रि० वि० रह रहकर निकलनेवाली आभा के साथ। जैसे, झलझल चमकना।

झलझला—वि० [अनु०] झलझल करनेवाली। चमचमाती हुई। चमकनेवाली। उ०—तरवार बनी ज्यों झलझला।—पलटू०, पृ० ४५।

झलझलाना[1]—क्रि० अ० [अनु०] चमकना। चमचमाना। उ०—झलझलात रिस ज्वाल बदनसुत चहुँ दिसि चाहिय।—सूदन (शब्द०)। २. दे० 'झल्लाना'।

झलझलाना[2]—क्रि० स० चमकाना। चमचमाना।

झलझलाहट—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. चमक। दमक। २. झल्लाहट।

झलना[1]—क्रि० स० [हिं० झलझल (= हिलना) से अनु०] १. किसी चीज को हिलाकर किसी दूसरी चीज पर हवा लगाना या पहुँचाना। जैसे,—(क) जरा उन्हें पंखा झल दो। (ख) वे मक्खियाँ झल रहे हैं। २. हवा करने के लिये कोई चीज हिलाना। जैसे, पंखा झलना।

संयो० क्रि०—देना।

† ३. ढकेलना। ठेलना। धक्का देकर आगे बढ़ाना।

झलना[2]—क्रि० अ० १. किसी चीज के अगले भाग का इधर उधर हिलना। उ०—फूलि रहे, झूलि रहे, फैलि रहे, फबि रहे, झपि रहे, झलि रहे, झुकि रहे झूमि रहे।—पद्माकर (शब्द०)

† २. शेखी बघारना। डींग हाँकना।

झलना[3]—क्रि० अ० [हिं० झालना का अक० रूप] १. दे० 'झालना'। २. दे० 'झेलना'।

झलफला†—संज्ञा पुं० [प्रा० झलहल] उँजियाला। दे० 'झलमल[1]'।

झलमल[1]—संज्ञा पुं० [सं० ज्वल (=दीप्ति)] १. अँधेरे के बीच थोड़ा थोड़ा उजाला। हलका प्रकाश। २. अँधेरा (कहारों की परि०)। ३. चमक दमक।

झलमल[2]—क्रि० वि० दे० 'झलझल'।

झलमलताई(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० झलमल+ताई (प्रत्य०)] चमक। झलमलाहट। उ०—दुति तिय तन अस दीन्हि दिखाई। सरद चंद जल झलमलताई।—नंद० ग्रं०, पृ० १२४।

झलमला—वि० [हिं० झलमलाना] चमकीला। चमकता हुआ। उ०—मोर मुकुट अति सोहई श्रवणनि वर कुंडल। ललित कपोलनि झलमले सुंदर अति निर्मल।—सूर (शब्द०)।

झलमलाना[1]—क्रि० अ० [हिं० झलमल] १. रह रहकर चमकना। रह रहकर मंद और तीव्र प्रकाश होना। चमचमाना। २. ज्योति का अस्थिर होना। अस्थिर ज्योति निकलना। ठहरकर बराबर एक तरह न जलना या चमकना। निकलते हुए प्रकाश का हिलना डोलना। जैसे, हवा के झोंके से दीए का झलमलाना। उ०—(क) मैया री मैं चंद लहौंगो। कहा करौं जलपुट भीतर को बाहर ब्यौंकि गहौंगो। यह तो झलमलात झकझोरत कैसे कै जु लहौंगो।—सूर०, १०।१९४। (ख) श्याम अलक बिच मोती मंगा। मानहु झलमलति सीस गंगा।—सूर (शब्द०)। (ग) बालकेलि बातबस झलकि झलमलत सोभा की दीयटि मानो रूप दीप दियो है।—तुलसी ग्रं० पृ० २७३।

झलमलाना[2]—क्रि० स० किसी स्थिर ज्योति या लौ को हिलाना डुलाना। हवा के झोंके आदि से प्रकाश को अस्थिर या बुझने के निकट करना।

झलमलित(पु)—वि० [हिं० झलमलाना] झलमलाता हुआ। हवा में हिलता हुआ। उ०—धरनी जिव झलमलित दीप ज्यों होत अंधार करो अँधियारी।—धरनी० बा० पृ० २६।

झलरा[1]†—संज्ञा पुं० [हिं० झालर] १. एक प्रकार का पकवान जिसे 'झालर' भी कहते हैं।

झलरा[2](पु)†—संज्ञा स्त्री० दे० 'झालर[1]'।

झलराना(पु)†—क्रि० अ० [हिं० झालर] फैलकर छाना। बढ़ना। झालरना।

झलरिया(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० झालर] दे० 'झालर[1]'। उ०—चहुँ दिस लागी झलरिया, तो लोक असंख हो। धरम०, पृ० ४४।

झलरी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ हुडुक नाम का बाजा। २. बजाने की झाँझ।

झलरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० झलरा या झालर का अल्पा० स्त्री०] दे० 'झालर[1]'।

झलवाना[1]—क्रि० स० [हिं० झलना] झलना का प्रेरणार्थक रूप। झलने काम दूसरे से कराना।

झलवाना[2]—क्रि० स० झालना का प्रेरणार्थक रूप। झालने का काम दूसरे से कराना।

झलहल(पु)—संज्ञा स्त्री० [प्रा० झलहल] दे० 'झलझल[1]'। उ०—झलहल तीर तरवारि बरछी देखि कौंवरे कांपा। छूटैं तीर तुपक अरु गोला घाव सहै मुख साँचा।—सुंदर० ग्रं० भा० २, पृ० ८८५।

झलहलना(पु)—क्रि अ० [अनु०] चमकना। दमकना। उ०—तप तेज पुंज झलहलत तहँ, दरसन तैं पातक सुधर।—ह० रासो, पृ० १०।

झलहला†—संज्ञा स्त्री० [प्रा० झलहल] उजियाला। झलमल।

झलहाया—संज्ञा पुं० [हिं० झल+हाया (प्रत्य०)] [स्त्री० झलहाई] वह जो डाह करता हो। हसद करनेवाला आदमी। ईर्ष्यालु व्यक्ति।

झलहाला(पु)†—संज्ञा पुं० [अनु०] झलमलाहट। प्रकाश की मंद तेज चमक। उ०—नयन दामिनी होत झलहाला। पाछे नहीं अनिल उजियाला।—कबीर सा०, पृ० ९९।

झला[1](पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० झड] १. हलकी वर्षा। २. झालर, तोरण या बंदनवार आदि। ३. पंखा। बीजना। बेना। ४. समूह। उ०—झलकत आवैं झुंड झिलिम झलानि झप्यो, तमकत आवैं तेगवाही औ सिलाही हैं।—पद्माकर (शब्द०)। ५. तीव्र वर्षा। झड़ी लगना।

झला[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. आतप। धूप। चिलचिलाती धूप। चमका। २. पुत्री। कन्या। बेटी (को०)। ३. झिल्ली। झींगुर (को०)।

झला[3]†—संज्ञा पुं० [सं० ज्वाला अथवा झल] १. क्रोध। गुस्सा। २. जलन। दाह।

झलाई[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० झला+ई (प्रत्य०)] दे० 'झलाई'।

झलाई[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० √झल+आई (प्रत्य०)] पंखा झलने का काम या उसकी मजदूरी।

झलाझल—वि० [अनु०] खूब झलझलाता या चमचमाता हुआ। चमाचम। उ०—(क) छोटी छोटी अँगुली झलाझल झलकदार छोटी सी छुरी को लिये छोटे राज ढोटे हैं।—रघुराज (शब्द०)। (ख) कंचन के कलस भराए भूरि पन्नन के ताने तुग तोरन तहाँई झलाझल के।—पद्माकर (शब्द०)।

झलाझलि(पु)—वि० [हिं०] दे० 'झलाझली'। उ०—नख सिख ले सब भुखन बनाई। बसन झलाझलि पैंधे आई।—सं० दरिया, पृ० ३।

झलाझली(पु)[1]—वि० [अनु०] चमकीला। चमकदार। झलाझल। उ०—जिन्हैं लखे झलाझली हलाहली हिये लजे।—गोपाल (शब्द०)।

झलाझली[2]—संज्ञा स्त्री० झलाझल होने की क्रिया या भाव।

झलाना[1]—क्रि० अ० [अनु० झनझन] हड्डी, जोड़ या नस आदि पर एकबारगी चोट लगने के कारण एक विशेष प्रकार की संवेदना होना। सुन्न सा हो जाना। जैसे,—ऐसी ठोकर लगी कि पैर झला गया।

संयो० क्रि०—उठना।—जाना।

झलाना[2]—क्रि० स० [हिं० झालना] दूसरे से झालने का काम कराना। झालने में किसी को प्रवृत्त करना।

झलाना[3]†—क्रि० स० [हिं० झलना] दे० 'झलवाना[1]'।

झलाबोर[1]—संज्ञा पुं० [हिं० झल झल (=चमक)] १. कलाबत्तू

का बना हुआ साड़ी का चौड़ा अंचल। २. कारचोबी। उ०—झलाबोर का घाघरा घूम घुमाला तिस पर लच्चे मोती टके हुए।—लल्लू (शब्द०)। ३. एक प्रकार की आतिशबाजी।—४. काँटा। झाड़ी। ५. चमक। दमक।

झलाबोर[२]—वि० चमकीला। ओपदार।

झलामल[१]†—संज्ञा स्त्री० [हिं झलझल (=चमक)] चमक। दमक। उ०—चहुँ दिस लगी है बजार झलामल हो रही। भूमर ह्वोत अपार अधर डोरी लगी।—कबीर (शब्द०)।

झलामल[२]—वि० चमकीला। चमक दमकवाला। ओपदार।

झलारा†—वि० [सं० ज्वल, पुं० हिं० झल, हिं० झाल, झार] तीखा। तेज। मिर्च के स्वादवाला। झालवाला।

झलासी—संज्ञा स्त्री० [देशी] सूखी हुई पतली लकड़ी या पतली टहनी। उ०—सोच विचारकर मैं सूखी झलासियों से झोंपड़ी बनाने लगा। लतरों को काटकर उसपर छाजन हुई।—इंद्र०, पृ० ७२।

झलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] सुपारी। पूगी फल [को०]।

झलुसना†—क्रि० स० [देश० अथवा सं० ज्वल से विकसित हिं० नामिक धातु] दे० 'झुलसना'।

झलूस(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'जलूस'। उ०—सुए अतुल साज झलूस सारा मिले छक मिथलेस।—रघु० रू०, पृ०८३।

झल्ल[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. व्रात्य अर्थात् संस्कारहीन क्षत्रिय और सवर्ण स्त्री से उत्पन्न वर्णसंकर जाति। २. भाँड या विदूषक। ३. पटह या हुड़ुक नामक बाजा। ४. लपट। ज्वाला। उ०—बहिन को देखकर उसे अधिक क्रोध आता, क्योंकि उसकी आँखों में जैसे झल्ल सी उठने लगती, जिसे देखकर हम तीनों भयभीत हो जाते।—अँधेरे०, पृ० २६।

झल्ल[२]—संज्ञा स्त्री० [अनु०] झल्ला होने का भाव।

झल्लकंठ—संज्ञा पुं० [सं० झल्लकण्ठ] परेवा।

झल्लक—संज्ञा पुं० [सं०] १. काँसे का बना करताल। झाँझ। २. मंजीरा। जोड़ी।

झल्लकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'झल्लक'।

झल्लना†—क्रि० अ० [अनु०] बहुत झूठी झूठी बातें करना। बहुत डींग हाँकना या गप्प उड़ाना।

झल्लरा—संज्ञा स्त्री [सं०] दे० 'झल्लरी' [को०]।

झल्लरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. हुड़ुक नाम का बाजा। २. झाँझ। ३. पसीना। स्वेद। ४. पसेव। ५. शुद्धता। सुच्चापन (को०)। ६. घुँघुराले केश (को०)।

झल्ला[१]—संज्ञा पुं०[देश०]१. खाँचा। बड़ा टोकरा। २. वर्षा। वृष्टि। ३. बौछार। ४. वे दाने जो पके हुए तमाखू के पत्ते पर पड़ जाते हैं।

झल्ला[२]—वि०[हिं० जल] बहुत तरल या पतला। जिसमें अधिक पानी मिला हो। जो गाढ़ा न हो। जैसे, झल्ला रस, झल्ली भाँग।

झल्ला[३]†—वि० [हिं० झल्लाना] १. पागल। २. बहुत बड़ा बेवकूफ। ३. झल्लानेवाला।

झल्लाना[१]—क्रि० अ० [हिं० झल्ल] बहुत चिढ़ना। खिजलाना। किटकिटाना। झुँझलाना।

झल्लाना[२]—क्रि० स० ऐसा काम करना जिससे कोई बहुत चिढ़े। किसी को झल्लाने या चिढ़ने में प्रवृत्त करना।

झल्लानी—संज्ञा स्त्री० [देश०] झल्ला। पानी की फुही। उ०—झल्लानी झर फुट्टि, छुट्टि संका सामंता। ज्यौं लट्ठी पर नारि, बीग मिल्यौ धावंता।—पृ० रा०, १२। ३१६।

झल्लिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. देह पोंछने का कपड़ा। अँगोछा। २. शरीर का वह मैल जो उबटन आदि लगाने, किसी चीज से मलने या पोंछने से निकले। ३. दीप्ति। प्रकाश। ४. सूर्य की किरणों का तेज।

झल्ली[१]†—वि० [हिं० झखना] बातूनिया। गप्पी। बकवादी।

झल्ली[२]—संज्ञा स्त्री० [सं०] हुड़ुक की तरह का एक बाजा जिसपर चमड़ा मढ़ा होता है।

झल्ली[३]—संज्ञा स्त्री० [हिं० झल्ला] बड़ी टोकरी। झाबा। उ०—अहीर झल्ली ढोकर जो कुछ ला पाता, उसी में गुजारा चल रहा था।—अभिशप्त, पृ० १३।

झल्लीवाला—संज्ञा पुं० [हिं० झल्ला] झाबा या झल्ली ढोने का काम करनेवाला। उ०—वही एक झल्लीवाला रहता है, ग्वाला।—अभिशप्त, पृ० २३

झल्लीसक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का नृत्य।

झवकना—क्रि० अ० [देश०] झलकना। चमकना। उ०—काया झवकई कनक जिम सुंदर केहे सुक्ख। तेह सुरंगा जिम हुवई। जिण वेहा बहु दुक्ख।—ढोला०, दू० ५४६।

झवरा†—संज्ञा पुं० [हिं० झगड़ा] झगड़ा।

झवा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'झाँवाँ'। उ०—अलबेली सुजान के पायनि पानि पर्‌यो न टर्‌यो मन मेरो झवा।—घनानंद, पृ० ८।

झवारि(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'झबार'।

झष—संज्ञा पुं० [सं०] १. मत्स्य। मीन। मछली। उ०—संकुल मकर उरग झष जाती। अति अगाध दुस्तर सब भाँती।—तुलसी (शब्द०)। २. मकर। मगर। ३. ताप। गरमी। ४. वन। ५. मीन राशि। ६. मीन लग्न। ७. दे० 'झख'।

झषकेत—(पु)—संज्ञा पुं० [सं० झष+केत (=पताका)] दे० 'झष केतन'। उ०—हरिहि हेरि ही हरि गयौ बिसिख लगे झषकेत। बहुरि सघन तें हेत करि डहरि डहरि के खेत।—स० सप्तक, पृ० २६१।

झषकेतन—संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव जिसकी पताका में मीन का चिह्न है। झषकेतु [को०]।

झषकेतु—संज्ञा पुं० [सं० झषकेतु] कंदर्प। कामदेव।

झषध्वज—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'झषकेतु' [को०]।

झषना(पु)—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'झंखना' या, 'झीखना'।

झषनिकेत—संज्ञा पुं० [सं०] १. जलाशय। २. समुद्र।

झषराज—संज्ञा पुं० [सं०] मगर। मकर।

झषलग्न—संज्ञा पुं० [सं०] मीन लग्न।

झषांक—संज्ञा पुं० [सं० झषाङ्क] कामदेव।

झषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] नागबला। गुलसकरी।

झषाशन—संज्ञा पुं० [सं०] शिशुमार नामक जलजंतु । सूँस ।

झषोदरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] व्यास की माता । मत्स्यगंधा ।

झसना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'झँसना' ।

झहनना[1]Ⓟ—क्रि० अ० [अनु०] १. झन्नाना । झन्नाटे या सन्नाटे में आना । २. (रोएँ का) खड़ा होना । उ०—गहन गहन लागीं गावन मयूरमाला झहन झहन लागे रोम रोम छन में ।—श्रीपति (शब्द०) ३. झन झन शब्द करना ।

झहनना[2]—क्रि० स० दे० 'झहनाना' ।

झहनाना—क्रि० स० [अनु०] १. झहनना का सकर्मक रूप । २. झनकार शब्द करना । झनकारना । उ०—मति गयंद कुच कुंभ किंकिनी मनहु घंट झहनावै ।—सूर (शब्द०) ।

झहरनाⓅ[1]—क्रि० अ० [अनु०] १. झर झर शब्द करना । झड़ने का सा शब्द करना । उ०—झहरि झहरि झुकि झीनी झर लायो देव छहरि छहरि छोटी बूँदनि छहरिया ।—देव (शब्द०) २. (शरीर आदि का) बहुत शिथिल पड़ना । ढीला हो जाना । उ०—झहरि झहरि परे पाँसुरी लखाय देह बिरह बसाय हाय कैसे दूबरे भये ।—रघुनाथ (शब्द०) ।

झहरना[2]—क्रि० स० झिड़कना । झल्लाना । उ०—सुनि सजनी मैं रही अकेली बिरह बहेली इत गुरु जन झहरैं ।—सूर (शब्द०) ।

झहराना—क्रि० अ० [अनु०] १. शिथिल होकर झर झर शब्द के साथ या लड़खड़ाकर गिरना । उ०—(क) असुर लै तरु सों पछारयो गिरयो तरु झहराइ । ताल सों तरु ताल लाग्यो उठयो बन घहराइ । —सूर (शब्द०) । (ख) आपु गए जमलार्जुन तरु तर, परसत पात उठे झहराई ।—सूर०, १० । ३८३ । (ग) लपट झपट झहराने, हहराने बात फहराने भट परयो प्रबल परावनो । —तुलसी ग्रं०, पु० १७१ । २. झल्लाना । किट-किटाना । खिजलाना । उ०—(क) एक अभिमान हृदय करि बैठी एते पर झहरानी ।—सूर (शब्द०) । (ख) नागरि हँसति हँसी उर छाया तापर अति झहरानी । अधर कंप रिस भौंह मरोरी मन की मन गहरानी ।—सूर (शब्द०) । ३. हिलाना । उ०—बालधी फिरावै बार बार झहरावै, झरै बूँदियाँ सी, लंक पघिलाइ पागि पागिहै ।—तुलसी ग्रं०, पु० १७३ ।

झाँकृत—संज्ञा पुं० [सं० झाङ्कृत] १. झरने आदि के गिरने या नुपुर के बजने का शब्द । झंकार । २. पैर का एक गहना जिसमें घुँघरू लगे रहते हैं । नुपुर (को०) ।

झाँइँ, झाँईं—संज्ञा स्त्री० [सं० छाया] १. परछाईं । प्रतिबिंब । छाया । आभा । झलक । उ०—(क) झाँईं न मिलन पाई आए हरि आतुर ह्वै जब जान्यो ब्रज ग्राह बए जात जल में । —सूर (शब्द०) । (ख) बेसरि के मुकुता में झाँईं बरन बिराजत चारि । मानो सुर गुर शुक्र भौम शनि चमकत चंद्र मझारि । —सूर (शब्द०) । (ग) कह सुग्रीव सुनहु रघुराई । ससि महँ प्रकट भूमि की झाँईं । —तुलसी (शब्द०) । (घ) मेरी भव बाधा हरो राधा नागरि सोइ । जा तन की झाँईं परे स्याम हरित दुति होइ ।—बिहारी (शब्द०) । २. अंधकार । अँधेरा । उ०—रेशमी सतत लाल लाल पट लपिटे महल भीतरे न भीत रैनि की न झाँईं है ।—देव (शब्द०) । ३. धोखा । छल ।

मुहा०—झाँईं बताना = छल करना । धोखा देना ।

यौ०—झाँईं झप्पा = धोखा धड़ी ।

४. प्रतिशब्द । प्रतिध्वनि । उ०—कुहुकि उठे बन मोर कंदरा गरजति झाँईं । चित चकृत मृग बृंद बिथा मनमथ सरसाईं ।—नागरीदास (शब्द०)। ५. एक प्रकार के हलके काले धब्बे जो रक्तविकार से मनुष्यों के शरीर विशेषतः मुँह पर पड़ जाते हैं ।

झाँईं माँईं—संज्ञा स्त्री० [अनु०] बच्चों का एक खेल जिसमें वे 'झाँईं माँईं कौवों की बरात आई' कहते जाते और घूमते जाते हैं ।

मुहा०—झाँईं माईं होना = नजरों से गायब हो जाना । अदृश्य हो जाना ।

झाँक[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० झाँकना] झाँकने की क्रिया या भाव ।

यौ०—ताक झाँक = दे० 'ताक झाँक' ।

झाँक[2]—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'झाँख' ।

झाँकना—क्रि० अ० [सं० अक्ष (= अक्षण = देखना) या अधि + अक्ष, अध्यक्ष, प्रा० अज्झक्ख (= आँख के समाने)] १. ओट के बगल में से देखना । उ०—(क) जँह तँह उझकि झरोखा झाँकति जनक नगर की नारि । —सूर (शब्द०) । (ख) तुलसी मुदित मन जनक नगर जन झाँकति झरोखे लागी शोभा रानी पावती । —तुलसी (शब्द०) । २. इधर उधर झुककर देखना ।

झाँकनीⓅ†—संज्ञा स्त्री० [हिं० झाँकना] १. झाँकी । दर्शन । उ०—झाँकनी दै कर काँकनी की सुनै कानन बैन अनाकनी कीने ।—देव (शब्द०) । २. कुआँ (कहारों की परि०) ।

झाँकर—संज्ञा पुं० [प्रा० झंखर] दे० 'झंखाड़' ।

झाँकरीⓅ—वि० स्त्री० [प्रा० झंखर (= शुष्क तरु] झुलसी हुई । दुर्बल । सूखी हुई । उ०—उमड़ि उमड़ि दृग रोवत अधीर भए, मुख दुति पीरी परी बिरह महा भरी । 'हरिचंद' प्रेम माती मनहुँ गुलाबी छकीं, काम कर झाँकरी सी दुति तन की करी ।—भारतेंदु ग्रं०, भा०२, पु० १७३ ।

झाँका—संज्ञा पुं० [हिं० झाँकना] १. रहठे का खाँचा । जालीदार खाँचा । २. झरोखा । उ०—सभा माँझ द्रोपदि पति राखी पति पानिप कुल ताको । बसन ओट करि कोट बिसंभर परन न दीन्हो झाँको । —सूर०, १ । ११३ ।

झाँकी—संज्ञा स्त्री० [हिं० झाँकना] १. दर्शन । अवलोकन । झाँकने या देखने की क्रिया या भाव ।

क्रि० प्र०—करना ।—देना ।—मिलना ।—लेना ।—होना ।

२. दृश्य । वह जो कुछ देखा जाय । उ०—काँटे समेटती, फूल छींटती झाँकी ।—साकेत, पु० २१० ।

क्रि० प्र०—देखना ।

३. वह जिसमें से झाँका जाय । झरोखा ।

झाँख—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बड़ा जंगली हिरन । उ०—ठाढ़े ढिग बाघ बिग चीते चितवत झाँख मृग शाखामृग सब रीझि रीझि रहे हैं ।—देव (शब्द०) ।

झाँखनाⓅ†—क्रि० अ० [हिं० झंखना] दे० 'झीखना' । उ०—

(क) इंद्री बस भ्यारी परी सुख लूटति भाखि। सूरदास संग रहैं तेऊ भरैं झाँखि।—सूर (शब्द०)। (ख) एहि बिधि राउ मनहिं मन झाँखा। देखि कुभाँति कुमति मनु माँखा।—तुलसी (शब्द०)।

झाँखर—संज्ञा पुं० [प्रा० झंखर; हिं० झंखाड़] १. 'झंखाड़'। उ०—झाँखर जहाँ सुछाड़हु पंथा। हिलगि मकोय न फारहु कंथा।—जायसी (शब्द०)। २. अरहर की वे खूँटियाँ जो फसल काटने के बाद खेत में रह जाती हैं।

झाँगला—वि० [देश०] ढीला ढाला (कपड़ा)। उ०—पहिर झाँगले पटा पाग सिर टेढ़ी बाँधे। घर में तेल न लोन प्रीत चेरी सों साधे।—गिरधर (शब्द०)।

झाँगा(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'झागा'। उ०—पीत बसन पहिरे सुठि झाँगा। चक्षु चपल अलकैं जनु नागा।—विश्राम (शब्द०)।

झाँजन—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'झाँझन'।

झाँझ—संज्ञा स्त्री० [सं० झल्लक या झनझन से अनु०] १. मजीर की तरह के, पर उससे बहुत बड़े काँसे के ढले हुए तश्तरी के आकार के दो ऐसे गोलाकार टुकड़ों का जोड़ा जिसके बीच में कुछ उभार होता है। झाल। उ०—(क) घंटा घंटि पखाउज आउज झाँझ बेनु डफ ताल।—तुलसी ग्रं०, पृ० २६५। (ख) ताल मृदंग झाँझ इंद्रिनि मिलि बीना बेनु बजायो।—सूर०, १। २०५।

क्रि० प्र०—पीटना।—बजाना।

विशेष—इसकी उभार में एक छेद होता है जिसमें डोरी पिरोई रहती है। इसका व्यवहार एक टुकड़े से दूसरे टुकड़े पर आघात करके पूजन आदि के समय घड़ियालों और शंखों के साथ यों ही बजाने में, रामायण की चौपाइयों के गाने के समय रामलीला में अथवा ताशे और ढोल आदि के साथ ताल देने में होता है।

२. क्रोध। गुस्सा।

क्रि० प्र०—उतारना।—चढ़ाना।—निकालना।

३. पाजीपन। शरारत। उ०—रुक्यो साँकरे कुंज मग करत झाँझ झकरात। मंद मंद मारुत तुरँग खूँदन आवत जात।—बिहारी (शब्द०)। ४. किसी दुष्ट मनोविकार का आवेग। ५. सूखा हुआ कुआँ या तालाब। ६. भोग की इच्छा। विषय की कामना। ७. दे० 'झाँझन'।

झाँझ[२]†—वि० [सं० जर्जर] जो गाढ़ा या गहरा न हो। मामूली। हलका (भाँग आदि का नशा)।

झाँझड़ी(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० झाँझ + ड़ी (प्रत्य०)] १. दे० 'झाँझ'। २. दे० 'झाँझन'।

झाँझण‡—संज्ञा पुं० [देश०] मारवाड़ में खुशी का एक गीत। उ०—सुंदर बंधि विषै सुख कौ घर बूड़त हैं अस झाँझण गावै।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ४५६।

झाँझन—संज्ञा स्त्री० [अनु०] कड़े की तरह का पैर में पहनने का एक प्रकार का गहना। पैंजनी। पायल।

विशेष—यह गहना चाँदी का बनता है और इसमें नकाशी और जाली बनी होती है। यह भीतर से पोला होता है और इसके अंदर छर्रे पड़े होते हैं जिनके कारण पैरों के उठाने और रखने में 'झन झन' शब्द होता है। कभी कभी लोग घोड़ों और बैलों आदि को भी शोभा के लिये और झन् झन् शब्द होने के लिये पीतल या ताँबे की झाँझन पहनाते हैं।

झझरि[१](पु)†—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. झाँझन। पैंजनी। उ०—बाँहि सुंदरी बहरखा, जासू कुड़ स बखार। मनु हरि कटि पछ मेखला, पग झाँझर झणकार।—ढोला०, दू० ४८१। २. दे० 'छलनी'।

झाँझर[२]†(पु)—वि० १ पुराना। जर्जर। छिन्न भिन्न। फूटा टूटा। २. छेदवाला। छिद्रयुक्त। उ०—प्रान अनुरागे पिया आन देस गैला। पिया बिना पाँजर झाँझर भेला।—विद्यापति, पृ० १७६।

झाँझरा—वि० [सं० जर्जर] [वि० स्त्री० झाँझरी] पोला। जर्जर। खोखला। उ०—मलूक कोटा झाँझरा भीत परी भहराय।—मलूक०, पृ० ४०।

झाँझरि(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'झाँझन'। उ०—(क) सहस कमल सिंहासन राजैं। अनहद झाँझरि मिलही बाजैं।—चरण० बानी, पृ० २९८।

झाँझरी[१]†—संज्ञा स्त्री० [देश०] झाँझ नामक बाजा। झाल। उ०—बजै झाँझरी शंख नगारे। गए प्रेत सब देव अगारे।—रघुराज (शब्द०)। २. झाँझन नामक पैर का गहना। उ०—झाँझरियाँ झनकैगी खरी तरकैगी तनी तनी तन की तम तारे।—देव (शब्द०)।

झाँझरी[२]—वि० स्त्री० [सं० जर्जर] छिद्रों से भरी हुई। जिसमें बहुत से छेद हों। उ०—(क) कबिरा नाव त झाँझरी कूटा खेवनहार। हलका हलका तरि गया बूड़े जिन सिर भार।—कबीर (शब्द०)। (ख) गहिरी नदिया नाव झाँझरी, बोझा अधिक भई।—धरम० श०, पृ० २६।

झाँझा[१]—संज्ञा पुं० [हिं० झाँझरा] १. फसल में लगनेवाला एक प्रकार का कीड़ा।

विशेष—यह बढ़ी हुई फसल के पत्तों को बीच बीच में से खाकर बिल्कुल झँझरा कर देता है। यह छोटा बड़ा कई आकार और प्रकार का होता है और बहुधा तमाकू या मुकली (मुली ?) के पत्तों पर पाया जाता है।

२. घी और चीनी के साथ भुनी हुई भाँग की फंकी। † ३. तेल छानने का पौना।

झाँझा[२]—संज्ञा पुं० [अनु०] दे० 'झाँझ'। २. झंझट। बखेड़ा।

झाँझिया—संज्ञा पुं० [हिं० झाँझ + इया (प्रत्य०)] झाँझ बजानेवाला मनुष्य। बाजेवालों में से वह जो झाँझ बजाता हो।

झाँट—संज्ञा स्त्री० [सं० जट, हिं० झड़ (बाल)] १. पुरुष या स्त्री

का मूत्रेंद्रिय पर के बाल। उपस्थ पर के बाल। पशम। शष्प। उ०—आपकी मोंछ में एक गाँठ है। आप सब शायरों की झाँट हैं। —कविता कौ०, भा० ४, पृ० १०।

मुहा०—झाँट उखाड़ना = (१) बिलकुल व्यर्थ समय नष्ट करना। कुछ भी काम न करना। (२) कुछ भी हानि या कष्ट न पहुँचा सकना। इतनी हानि भी न पहुँचा सकना जितनी एक झाँट उखड़ जाने से हो सकती है। झाँट जल जाना या राख हो जाना = किसी को अभिमान आदि की बातें करते देखकर बहुत बुरा मालूम होना।

विशेष—इस मुहावरे का व्यवहार अभिमान करनेवाले के प्रति बहुत अधिक उपेक्षा दिखलाने के लिये किया जाता है।

२. बहुत तुच्छ वस्तु। बहुत छोटी या निकम्मी चीज।

मुहा०—झाँट बराबर = (१) बहुत छोटा। (२) अत्यंत तुच्छ। झाँट की झँडूल्ली = अत्यंत तुच्छ (पदार्थ या मनुष्य)।

झाँटा†—संज्ञा पुं० [देश०] १. झंझट। २. झाड़ू। ३. झापड़। थप्पड़।

झाँटि⑤†—संज्ञा स्त्री० [हिं० झाँट] दे० 'झाँट'। उ०—एकोहं आपुहि भयो द्वितीया दीन्हों काटि। एकोहं कासों कहै महापुरुष की झाँटि।—कबीर (शब्द०)।

झाँती⑤†—संज्ञा स्त्री० [देश०] देह। शरीर। उ०—दादू झाँती पाए पसु पिरी अंदरि सो आहे। होणी पाणे बिच में मिहर न लाहे।—दादू० बानी, पृ० १६३।

झाँप¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० झाँपना] १. वह जिससे कोई चीज ढाँकी जाय टोकरा, झाबा आदि। २. पड़ी हुई चीजें निकालने की एक प्रकार की कल। ३. नींद। झपकी। ४. पर्दा। चिक। उ०—झुकि झुकि झूमि झूमि झिल झिल झेल झेल झरहरी झाँपन मे झमकि झमकि उठै।—पद्माकर (शब्द०)। ५. निकासा। मस्तूल का झुकाव (लश०)। ६. मूँज का बना पिटारा। झाँपा।

झाँप²—संज्ञा पुं० [सं० झम्प] उछल कूद।

क्रि० प्र०—देना = दे० 'झंप' का मुहा० 'झंप देना'।

झाँपना¹—क्रि० स० [सं० उज्झम्पन, हिं० झाँपना] १. ढाँकना। आवरण डालना। ओट में करना। आड़ में करना। उ०—जथा गगन घन पटल निहारी। झाँपेउ भानु कहहिं कुबिचारी।—तुलसी (शब्द०)। २. पकड़कर दबा लेना। छोप लेना।

झाँपना²—क्रि० अ० लजाना। शरमाना। झेंपना।

झाँपा†—संज्ञा पुं० [हिं० झाँपना] १. ढाँकने का बाँस आदि का बना हुआ बड़ा टोकरा। २. मूँज का बना हुआ पिटारा।

झाँपो†—संज्ञा स्त्री० [हिं० झाँपना] १. ढकने की टोकरी। २. मूँज की बनी हुई पिटारी, जिसमें कभी कभी चमड़ा भी मढ़ा होता है। ३. झपकी। नींद। ऊँघ।

झाँपी—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. धोबिन चिड़िया। खंजन पक्षी। २. छिनाल स्त्री। पुंश्चली।

यौ०—झाँपी के‡ = एक गाली।

झाँमा†—वि० [देशी या सं० दग्ध] १. दीप्त। दग्ध। २. अनुज्वल।

झाँयँ⑤†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'झाँई'। उ०—चंद्रकांति मनि माझ जिमि, परति चंद की झाँय।—नंद० ग्रं०, पृ० १३१।

झायँ झायँ—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. किसी स्थान की वह स्थिति जो सन्नाटे या सुनेपन के कारण होती है। २. दे० 'झाँव झाँव'।

झाँव झाँव—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. शोर गुल। २. रंग ढंग। भाव ताव। उ०—बनियऊँ झाँव झाँव दिखलाने के लिये......। —प्रेमघन०, भा० २, पृ० ४३९।

क्रि० प्र०—करना। —दिखाना। —होना।

झाँवना—क्रि० सं० [हिं० झाँवा] झाँवे से रगड़कर (हाथ पैर आदि) धोना। उ०—हौं गई भेंट भई न सहेट में सातें उछाहुल मो मन छायगो। कालिंदी के तट झाँवत पाँय हौं आयो तहाँ लखि कखे सुभायगो।—प्रतापसिंह सवाई (शब्द०)।

झाँवर¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० डाबर] वह नीची भूमि जिसमें वर्षाकाल में जल भर जाता है और जिसमें मोटा अन्न जमता है। डाबर।

विशेष—ऐसी भूमि धान के लिये बहुत उपयुक्त होती है।

झाँवर²†—वि० [सं० श्यामल][वि० स्त्री० झाँवरी] १. झाँवे के रंग का। कुछ कुछ काले रंग का। २. मलिन। उ०—साँची कहौं रावरे सों झाँवरे लगैं तमाल।—(शब्द०)। ३. मुरझाया हुआ। कुम्हलाया हुआ। ४. शिथिल। मंद। सुस्त। उ०—निसि न नींद आवै दिवस न भोजन पावै चितवत मग भई दृष्टि झाँवरी।—सूर (शब्द०)।

झाँवरा⑤—वि० [हिं० झाँवर] कुछ कुछ काले रंग का। उ०—बलिहारी अब क्यो कियो सैन साँवरे संग। नहि कछु गोरे अंग ये भए झाँवरे रंग।—स० सप्तक, पृ० २४६।

झाँवली—संज्ञा स्त्री० [हिं० छाँव (= छाया)] १. झलक। २. आँख की कनखी। कनखी।

यौ०—झाँवलीबाज।

मुहा०—झाँवली देना = (१) आँख से इशारा करना। (२) बातों से फँसाना। भुलावा देना।

झाँवाँ—संज्ञा पुं० [सं० झामक] जली हुई ईंट। वह ईंट जो जलकर काली हो गई हो। इससे रगड़कर अस्त्र, शस्त्र आदि चीजों को, विशेषतः पैरों की मैल छुड़ाते हैं। उ०—झाँवाँ सेवै जोग तेग को मले बनाई।—पलटू०, पृ० २।

झाँसना—क्रि० स० [हिं० झाँसा] १. ठगना। धोखा देना। झाँसा देना। २. किसी स्त्री को व्यभिचार में प्रवृत्त करना। स्त्री को झाँसना।

झाँसा—संज्ञा पुं० [सं० अध्यास (= मिथ्या ज्ञान), प्रा० अज्झास] अपना काम साधने के लिये किसी को बहकाने की क्रिया। धोखा। दमबुत्ता। छल। उ०—अरे मन उसे क्या है दुनियाँ का झाँमा। लिया हात में भीक का जिसने काँसा।—दक्खिनी०, पृ० २५७।

क्रि० प्र०—देना। उ०—ब्रजवासी लल्ली पत्तो करके कहाँ ले गई

कैसा झाँसा दे गई।—फिसाना०, भा० ३, पु० ४१०।

—बताना। उ०—रुपया पैसा अपने पास रक्खड, पारन के दूर से झाँसा बताबड।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ३३५।

यौ०—झाँसा पट्टी = धोखा धड़ी।

मुहा०—झाँसे में आना = धोखे में आना। उ०—यहाँ बड़े बड़ों की आँखें देखी हैं। आपके झाँसे में कोई उनेला आए तो आए हमपर चकमा न चलेगा।—फिसाना०, भा० १, पृ० ५।

झाँसिया—संज्ञा पुं० [हिं० झाँसा+इया (प्रत्य०)] झाँसा देनेवाला। धोखेबाज।

झाँसी—संज्ञा पुं० [देश०] १. उत्तर प्रदेश का एक प्रसिद्ध नगर जहाँ की रानी लक्ष्मीबाई थे, जो झाँसी की रानी नाम से प्रसिद्ध हैं, सन् १८५७ में स्वतंत्रता संग्राम (गदर) के अवसर पर अंग्रेजों से जमकर लोहा लिया और युद्धक्षेत्र में लड़ती हुई मारी गई थीं। २. एक प्रकार का गुबरैला जो धान और तमाखू की फसल को हानि पहुँचाता है।

झाँसूँ—संज्ञा पुं० [हिं० झाँसा] झाँसा देनेवाला। धोखेबाज।

झा—संज्ञा पुं० [सं० उपाध्याय; पा० उपज्झाय प्रा० उवज्झय, उवज्झाय, उज्झ, उज्झाय, उज्झाओ, ओज्झाय, हिं० ओझा अथवा सं० ध्या (= ध्यान, चिंतन]; प्रा० झा] मैथिली या गुजराती ब्राह्मणों की एक उपाधि।

झाई[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'झाँई'। उ०—मनि दर्पन सम अवनि रमनि तापर छबि देही। बिथुरति कुंडल अलक तिलक झुकि झाई लेहीं।—नंद ग्रं०, पृ० ३२।

झाई[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'झाँई'।

झाऊ—संज्ञा पुं० [सं० झावुक] एक प्रकार का छोटा झाड़ जो दक्षिणी एशिया में नदियों के किनारे रेतीले मैदानों में अधिकता से होता है। पिचुल। अफल। बहुग्रंथि।

विशेष—यह झाड़ बहुत जल्दी जल्दी और खूब फैलता है। इसकी पत्तियाँ सरो की पत्तियों से मिलती जुलती होती हैं और गरमी के अंत में इसमें बहुत अधिकता से छोटे छोटे हलके गुलाबी फूल लगते हैं। बहुत कड़ी सरदी में यह झाड़ नहीं रह सकता। कुछ देशों में इससे एक प्रकार का रंग निकाला जाता है और इसकी पत्तियों आदि का व्यवहार ओषधों में किया जाता है। इसमें से एक प्रकार का क्षार भी निकलता है। इसकी टहनियों से टोकरियाँ और रस्सियाँ आदि बनती हैं और सूखी लकड़ी जलाने के काम में आती है। कहीं कहीं रेगिस्तानों में यह झाड़ बहुत बढ़कर पेड़ का रूप भी धारण कर लेता है।

झाक(पु)—संज्ञा पुं० [प्रा० झक] वज्रपात। घननिपात। उ०—(१) बहु बहु दकह के के हाक। बज्जी विषम आवध झाक।—पृ० रा०, ६।१६३।

झाकर—संज्ञा पुं० [देशी झंखर] कँटीली झाड़ियों और पौधों का समूह। झंखाड़। उ०—साधो एक बन झाकर झखया। आवा तितिर देहि माहु भुलाने सान बुझावत कौआ।—सं० दरिया, पृ० १२५।

झाग—संज्ञा पुं० [हिं० गाज] पानी आदि का फेन। गाज। फेन।

क्रि० प्र०—उठना। —छूटना। —छोड़ना। —निकलना।—फेंकना।

झागड़(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'झगड़ा'। उ०—सहज ही सहज पग धारा जब आगम को दसो परकार झागड़ बजाई।—चरण० बानी, पृ० ५५।

क्रि० प्र०—बजाना।

झागना[1]†—क्रि० अ० [हिं० झाग] झाग उत्पन्न होना। फेन निकलना।

झागना[2]—क्रि० स० झाग उत्पन्न करना। फेन निकालना।

झाज(पु)[1]—संज्ञा पुं० [अ० जहाज] दे० 'जहाज'। उ०—किया था खुदा यूँ उसे सरफराज, जो दे सातों दरिया उपर उसके झाज।—दक्खिनी०, पृ० ७७।

झाज[2]—संज्ञा पुं० [?] महीन कागज। बैलून। गुब्बारा। उ०—बम्बा गिरा गिरा को तोपाँ चला चला को। झाजाँ में भर को ग्यासाँ हव्वा में तू उड़ा को।—दक्खिनी०, पृ० २९६।

झाझ[1]†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'झाँझ'।

झाझ[2](पु)—संज्ञा पुं० [अ० जहाज; दक्खिनी; झाज] दे० 'जहाज'।

झाझन(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'झाँझन'। उ०—बाजे शंख बीन स्वर सोई। झाझन केरी बाजन होई।—कबीर सा०, पृ० ६८४।

झाझी(पु)‡—वि० [सं० दग्ध; प्रा० दज्झ, दाझ; राज० झाझ] १. दग्ध करनेवाली। जलानेवाली। इतनी अधिक शीतल जिससे जलने का भाव प्रतीत हो। उ०—अति घण ऊनमि आवियउ, झाझी रिठि झड़वाइ। बग ही भला त बप्पड़ा, धरणि न मुक्कइ पाइ।—ढोला०, दू० २५७।

झाट[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुंज। निकुंज। २. झाड़ी। ३. व्रण का प्रक्षालन। घाव को धोना।

झाट[2]—संज्ञा पुं० [देश०] शस्त्रों का प्रहार। उ०—पड़ झाट थाट छल राज पाट, दिल्लीस जले बल बले दाट।—रा० रू०, पृ० ७४।

झाटकपट—संज्ञा पुं० [सं० शाटक पट ?] एक प्रकार की ताजीम जो राजपूताने के राजदरबारों में अधिक प्रतिष्ठित सरदारों को मिला करती थी।

झाटल[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का लोध्र। गोलीढ। घंटा-पटलि। २. मोरवा नामक वृक्ष।

विशेष—यह सफेद और काला होने के कारण दो प्रकार का होता है। आक की भाँति इसमें से भी दूध निकलता है। इसके पत्ते बड़े बड़े होते हैं और फल घंटियों की भाँति लटकते हैं।

झाटल(पु)‡[2]—वि० [?] आहत। त्रस्त। उ०—झटक झाटल छोड़ल ठाम। कएल महातरु तर बिसराम।—विद्यापति, पृ० ३०३।

झाटा†—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जूही। २. भुइँ आँवला।

झाटाम्लक—संज्ञा पुं० [सं०] तरबूज । मतीरा [को०] ।

झाटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] भुई आँवला ।

पर्या०—झाटा । झाटीका । झाटी ।

झाड़[1]—संज्ञा पुं० [सं० झाट; देशी झाड (=लतागहन)] १. वह छोटा पेड़ या कुछ बड़ा पौधा जिसमें पेड़ी न हो और जिसकी डालियाँ जड़ या जमीन के बहुत पास से निकलकर चारों ओर खूब छितराई हुई हों । पौधे से इसमें अंतर यह है कि यह कटीला होता है । २. झाड़ के आकार का एक प्रकार का रोशनी करने का सामान जो छत में लटकाया या जमीन पर बैठकी की तरह रखा जाता है ।

विशेष—इसमें कई ऊपर नीचे वृत्तों में बहुत से शीशे के गिलास लगे हुए होते हैं, जिनमें मोमबत्ती, गैस या बिजली आदि का प्रकाश होता है । नीचे से ऊपर की ओर के गिलासों के वृत्त बराबर छोटे होते जाते हैं ।

यौ०—झाड़ फानूस = शीशे के झाड़, हाँड़ियाँ और गिलास आदि जिनका व्यवहार रोशनी और सजावट आदि के लिये होता है ।

३. एक प्रकार की आतिशबाजी जो छूटने पर झाड़ या बड़े पौधे के आकार की जान पड़ती है । ४. छीपियों का एक प्रकार का छापा, जो प्रायः दस अंगुल चौड़ा और बीस अंगुल लंबा होता है और जिसमें छोटे पेड़ या झाड़ की आकृति बनी रहती है । ५. समुद्र में उत्पन्न होनेवाली एक प्रकार की घास जिसे जरस या जार भी कहते हैं ।—(लश०) । ६. गुच्छा । लच्छा ।

झाड़[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० झाड़ना] १. झाड़ने की क्रिया । झटककर या झाड़ू आदि देकर साफ करने की क्रिया ।

यौ०—झाड़ पोंछ = झाड़ और पोंछकर साफ करने की क्रिया ।

क्रि० प्र०—करना । —रखना । —होना ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग यौगिक शब्दों ही में विशेषतः होता है । जैसे, झाड़पोंछ, झाड़बुहार, झाड़झूड़ ।

२. बहुत डाँट या फटकारकर कही हुई बात । फटकार । डाँटडपट ।

क्रि० प्र०—देना ।—बताना ।—सुनना ।—सुनाना ।

३. मंत्र से झाड़ने की क्रिया ।

यौ०—झाड़ फूँक = मंत्रोपचार ।

झाड़[3]—संज्ञा पुं० [हिं० झाड़ना] झटका (कुश्ती) ।

झाड़खंड—संज्ञा पुं० [हिं० झाड़ + खंड] १. कँटीदार जंगल । वन । ऐसा वनविभाग जिसमें अधिकतर झरबेरी आदि के कँटीले झाड़ हों । २. अत्यंत घना और भयंकर जंगल । ३. छत्तीसगढ़ और गोंडवाने का उत्तरी भाग । झारखंड ।

झाड़ झंखाड़—संज्ञा पुं० [हिं० झाड़ + झंखाड़] १. कँटीदार झाड़ियों का समूह । २. व्यर्थ की निकम्मी चीजों का समूह ।

झाड़दार[1]—वि० [हिं० झाड़ + फा० दार] १. सघन । घना । २. कँटीला । काँटेदार । ३. जिसपर झाड़ या बेलबूटे आदि बने हों । ४. जिसमें शीशे के झाड़ की सजावट हो । जैसे,—झाड़दार कमरा ।

झाड़दार[2]—संज्ञा पुं० १. एक प्रकार का कसीदा जिसमें बड़े बड़े बेल बूटे बने होते हैं । २. एक प्रकार का गलीचा जिसपर बड़े बड़े बेल बूटे बने होते हैं ।

झाड़न—संज्ञा स्त्री [हिं० झाड़ना] १. वह जो कुछ झाड़ने पर निकले । २. वह कपड़ा आदि जिससे कोई चीज गर्द आदि दूर करने के लिये झाड़ी जाय । झाड़ने का कपड़ा ।

झाड़ना[1]—क्रि० स० [सं० क्षरण] १. किसी चीज पर पड़ी हुई गर्द आदि साफ करने या और कोई चीज हटाने के लिये उस चीज को उठाकर झटका देना । झटकारना । फटकारना । जैसे,—जरा दरी और चाँदनी झाड़ दो । २. झटका देकर किसी एक चीज पर पड़ी हुई किसी दूसरी चीज को गिराना । जैसे,—इस अँगोछे पर बहुत से बीज चिपक गए हैं, जरा उन्हें झाड़ दो । ३. झाड़ू या कपड़े आदि की रगड़ या झटके से किसी चीज पर पड़ी या लगी हुई दूसरी चीज गिराना या हटाना । जैसे,—इन किताबों पर की गर्द झाड़ दो । ४. झाड़ू या कपड़े आदि के द्वारा अथवा और किसी प्रकार गर्द मैल, या और कोई चीज हटाकर कोई दूसरी चीज साफ करना । जैसे,—(क) सबेरे उठते ही उन्हें सारा घर झाड़ना पड़ता है । (ख) इस मेज को झाड़ दो ।

संयो० क्रि०—डालना ।—देना ।—लेना ।

५. बल या युक्तिपूर्वक किसी से धन ऐंठना । झटकना ।—(क्व०) ।

संयो० क्रि०—लेना ।

६. रोग या प्रेतबाधा आदि दूर करने के लिये किसी को मंत्र आदि से फूँकना । मंत्रोच्चार करना । जैसे, नजर झाड़ना ।

संयो० क्रि०—देना ।

७. बिगड़कर कड़ी कड़ी बातें कहना । फटकारना । डाँटना ।

संयो० क्रि०—देना ।

८. निकालना । दूर करना । हटाना । छुड़ाना । जैसे,—तुम्हारी सारी बदमाशी झाड़ देंगे । उ०—मोहूँ ते ये चतुर कहावति । ये मनही मन मोको नारति । ऐसे वचन कहूँगी इन तें चतुराई इनकी मैं झारति ।—सूर (शब्द०) । ९. अपनी योग्यता दिखलाने के लिये गढ़ गढ़कर बातें करना । जैसे,—वह आते ही अँगरेजी झाड़ने लगा । १०. त्यागना । छोड़ना । गिराना । जैसे, चिड़ियों का पंख झाड़ना ।

झाड़फूँक—संज्ञा स्त्री० [हिं० झाड़ना + फूँकना] मंत्र आदि से झाड़ने या फूँकने की वह क्रिया जो भूत प्रेत आदि की बाधाओं अथवा रोगों आदि को दूर करने के लिये की जाती है । मंत्र आदि पढ़कर झाड़ना या फूकना ।

क्रि० प्र०—करना ।—कराना ।—होना ।

झाड़बुहार—संज्ञा स्त्री० [हिं० झाड़ना + बुहारना] झाड़ने और बुहारने की क्रिया । सफाई ।

झाड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० झाड़ना] १. झाड़ फूँक । २. तलाशी । ३. सितार के सब तारों (विशेषतः बाजे का तार और चिकारी का तार) को एक साथ बजाना । झाला । ४. मल । गुह । मैला ।

मुहा०—झाड़ा फिरना = मलोत्सर्ग करना । हगना । झाड़ा फिराना = हगाना । छोटे बच्चों को मलत्याग कराना ।

५. मलोत्सर्ग का स्थान । पाखाना । टट्टी ।

क्रि० प्र०—जाना ।

झाड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० झाड़] १. छोटा झाड़ । पौधा । २. बहुत से छोटे छोटे पेड़ों का समूह या झुरमुट । ३. सुअर के बालों की कूँची । बलौछी ।

झाड़ीदार—वि० [हिं० झाड़ी + फा० दार] झाड़ी की तरह का । छोटे झाड़ का सा । २. कँटीला । काँटेदार ।

झाड़ू—संज्ञा स्त्री० [हिं० झाड़ना] १. बहुत सी लंबी सीकों आदि का समूह जिससे जमीन, फर्श आदि झाड़ते हैं । कूँचा । बोहारी । सोहनी । बढ़नी ।

मुहा०—झाड़ू देना = (१) झाड़ू की सहायता से कूड़ा करकट साफ करना । (२) दे० 'झाड़ फेरना' । झाड़ू फिरना = सफाया हो जाना । कुछ न रहना । झाड़ू फेरना = बिलकुल नष्ट कर देना । झाड़ू मारना = (१) घृणा करना । (२) निरादर करना । (स्त्रि०) ।

२. पुच्छल तारा । केतु । दुमदार सितारा ।

झाड़ूकश—संज्ञा पुं० [हिं० झाड़ू + फा० कश] १. झाड़ू देनेवाला । झाड़ू बरदार । २. भंगी । मेहतर । चमार ।

झाड़ूदुमा—संज्ञा पुं० [हिं० झाड़ू + दुम] वह हाथी जिसकी दुम झाड़ू की तरह फैली हो । ऐसा हाथी ऐबी गिना जाता है ।

झाड़ूबरदार—संज्ञा पुं० [हिं० झाड़ + फा० बरदार] १. वह जो झाड़ू देता हो । २. चमार । भंगी । मेहतर ।

झाड़ूवाला—संज्ञा पुं० [हिं० झाड़ू + वाला] १. वह जो झाड़ू देता हो । झाड़ू बरदार । २. भंगी, मेहतर या चमार ।

झाण—संज्ञा पुं० [सं० ध्यान, प्रा० झाण] १. अंतःकरण में उपस्थित करने की क्रिया या भाव । मानसिक प्रत्यक्ष । ध्यान । २. हठयोग के अनुसार वह साधना जिसमें शरीर के भीतरी पाँच तत्वों के साथ पंचमहाभूतों का ध्यान करके उन्हें ऊर्ध्व में स्थित किया जाता है ।

झाती(५)—संज्ञा स्त्री० [सं० ध्यातृ, प्रा० झाती या देश०] ध्यान करनेवाला । चिंतक । उ०—खंडित निद्रा अल्प अहारी । झाती पावै अनभै बारी ।—प्राण०, पृ० ८६ ।

झाप‡(५)—संज्ञा पुं० [हिं० झाँपना] गोपन । छिपाव । उ०—आतर दुतर नरि, से कइसे अएबहु तरि, आरति न करह झाप ।—विद्यापति, पृ० १५८ ।

क्रि० प्र०—करना ।

झापड़—संज्ञा पुं० [सं० चपेटा] थप्पड़ । चटाका । लप्पड़ । तमाचा ।

क्रि० प्र०—मारना ।—लगाना ।

मुहा०—झापड़ कसना । झापड़ देना । झापड़ झारना = थप्पड़ मारना । उ०—यदि कोई बोल दे तो बिना एकाध झापड़ झारे मानते भी नहीं ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ६७ ।

झापा†(५)—संज्ञा स्त्री० [प्रा० झंप, हिं० झाँपना] १. झपकी । तंद्रा । २. कमजोरी । शिथिलता । उ०—कहा होई जो भी दुख तापा । सूखे जीभ दाह भो झापा ।—इंद्रा०, पृ० १५१ ।

झाबर[1]—संज्ञा पुं० [?] दलदली भूमि ।

झाबर[2]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'झाबा' । उ०—पुनि झाबर पै झाबर आई । थिरित खाँड का कहों मिठाई ।—जायसी (शब्द०) ।

झाबा—संज्ञा पुं० [हिं० झाँपना (= ढाँकना)] १. टोकरा । खाँचा । हट्ठे का बड़ा दौरा ।—उ०—हम लोग दो रोटी के लिये सिर पर झाबा रखे तरकारी बेचते फिरें ।—फूलो०, पृ० ११ । २. घी, तेल आदि तरल पदार्थों के रखने का चमड़े का टोंटीदार बरतन । ३. चमड़े का बना हुआ गोल थाल जिसमें पंजाब में लोग आटा छानते हैं । इसे सफरा कहते हैं । ४. रोशनी का झाड़ जो लटकाया जाता है । ५. दे० 'झब्बा' ।

झाबी—संज्ञा स्त्री० [हिं० झाबा] छोटा झाबा । टोकरी ।

झाम(५)—संज्ञा पुं० [देश०] १. झब्बा । गुच्छा । उ०—सुंदर दसन चिबुक अति सुंदर हृदय विराजत दाम । सुंदर भुजा पीत पट सुंदर कनक मेखला झाम ।—सूर (शब्द०) । २. एक प्रकार की बड़ी कुदाल जिससे कुएँ की मिट्टी निकालते हैं । ३. घुड़की । डाट डपट । ४. धोखा । छल । कपट ।

झामक—संज्ञा पुं० [सं०] जली हुई ईंट । झावाँ ।

झामर[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. टेकुआ रगड़ने की सान । तर्कशाण । सिल्ली । २. स्त्रियों का पैर में पहनने का एक गहना जो पैजनी की तरह का होता है ।

झामर[2]—वि० [सं० श्यामल, प्रा० झामर] मलिन । साँवला । झाँवर । उ०—एव भेल विपरीत झामर देहा । दिवसे मलिन जनु चाँदक रेहा ।—विद्यापति, पृ० १३३ ।

झामरझूमर(५)—संज्ञा स्त्री० [अनुध्व०] चमक दमक । धूमधाम । झूठा प्रपंच । ढकोसला । उ०—दुनिया झामरझूमर अरुझी ।—कबीर० श०, पृ० ४१ ।

झामरि†(५)—वि० स्त्री० [सं० श्यामल, प्रा० झामर] दे० 'झामर' । उ०—सामरि हे झामरि तोर देह, की कह के सयँ लाएलि नेह ।—विद्यापति, भा० २, पृ० ५६ ।

झामा†—संज्ञा पुं० [सं० श्यामल, प्रा० झामल] 'झाँवा' । उ०—शरीर का पसीना शरीर पर सूख कैदियों की त्वचा कड़ी और झामे की तरह खुरदुरी हो गई ।—भस्मावृत०, पृ० २० ।

झामी†—वि० संज्ञा पुं० [हिं० झाम] धोखेबाज । चालाक । धूर्त । जिनके मंत्र न कोऊ झामी । झूठि न वादि न परतिय-गामी । —पद्माकर (शब्द०) ।

झायँ झायँ—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. झनकार । झन् झन् शब्द । २. सन्नाटे में हवा का शब्द । वह शब्द जो किसी सुनसान

स्थान में हवा के चलने तथा गूँज आदि के कारण सुनाई पड़ता है और जिससे कुछ भय सा होता है। जैसे, इतना बड़ा सूबा घर भायँ भायँ करता है।

झार(पु)†¹—वि० [सं० सर्व, प्रा० सारो, हिं० सारा] १. एकमात्र। निपट। केवल। उ०—दीयो दधि दान को सुकेते ताहि भावत है जाहि मन भायो झार झगरो गोपाल को।—पद्माकर (शब्द०)। २. संपूर्ण। कुल। सब। समस्त। उ०—कै नख तें सिख लौं पदमाकर जाहिरे झार सिंगार कियो है।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १६८। ३. समूह। झुंड।

यौ०—झारझार। झाराझार।

झार²—संज्ञा स्त्री० [सं० झाला (=ताप,)] १. दाह। डाह। जलन। ईर्ष्या। उ०—मोसों कहो बात बाबा यह बहुत करत तुम सोच बिचार। कहा कहौं तुम सों मैं प्यारे कंस करत तुमसों कछु झार।—सूर०, १०।५३०। २. ज्वाला। लपट। आँच। उ०—(क) जनहुँ छाँह महँ धूप दिखाई। तैसे झार लाग जो आई।—जायसी (शब्द०)। (ख) नाम लै चिलात बिललात अकुलात अति तात तात तौंसियत झौंसियत झारहीं।—तुलसी ग्रं०, पृ० १७४। (ग) गरज किलक आघात उठत मनु दामिनि पावक झार।—सूर (शब्द०)। ३. झाल। चरपरापन। उ०—छाँछ छबीली धरी धुँगारी। झरहै उठत झार की न्यारी।—सूर (शब्द०)। ४. वर्षा की बूँदे। झड़ी।

झार³—संज्ञा पुं० [हिं० झड़ना] झरना। पोना।

झार⁴—संज्ञा पुं० [सं० झाट, देशी झाड़ (=लता गहन) १. वृक्ष। पेड़। झाड़। २. एक पेड़ का नाम।

झारखंड—संज्ञा पुं० [हिं० झाड़+खंड] १. एक पहाड़ जो वैद्यनाथ होता हुआ जगन्नाथ पुरी तक चला गया है।

विशेष—मुसलमानों ने अपने इतिहास ग्रंथों में छत्तीसगढ़ और गोंडवाने के उत्तरी भाग को झारखंड के नाम से लिखा है।

२. दे० झाड़खंड।

झारन—क्रि० स० [हिं० झाड़ना] दे० 'झाड़न'।

झारना¹(पु)—क्रि० स० [सं० झर] १. बाल साफ करने के लिये कंघी करना। २. छाँटना। अलग करना। जुदा करना। ३. दे० 'झाड़ना'।

झारना²(पु)—क्रि० स० [हिं० झलना] दे० 'झलना'। उ०—सुरति चँवर लै सनमुख झारे।—कबीर श०, भा० ३, पृ० १७।

झारफूँक†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'झाड़फूँक'।

झारा¹—संज्ञा पुं० [हिं० झारना] १. पतली लंबी हुई भाँग। २. वह सूप जिससे अन्न को फटककर सरसों इत्यादि से पृथक् करते हैं। झरना। † ३. लाठी तेजी से चलाने का हुनर।

झारा²(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्वाला, हिं० झाल] झार। ज्वाला। उ०—और अगम का कहौं अपारा। सुनै सो जरै कठिन अधि झारा।—पद्मावत, पृ० २४१।

झारि¹(पु)†—वि० [हिं० झार] दे० 'झार¹'। उ०—कहहु सुमंत बिचारि केहि बालक घोटक गह्यो। बसैं इहाँ ऋषि झारि छत्रिन कर न निवास इत।—(शब्द०)।

झारि²(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० झड़ी, या सं० धार (=धारा)] अनवरत वर्षा की झड़ी। अखंड बूँदों की धारा। उ०—मेघनि चाह कही पुकारि। सात दिन भरि बरसि ब्रज पर गई नैकु न झारि।—सूर०, १०।८८२।

झारी¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० झरना] लुटिया की तरह एक प्रकार का लँबोतरा पात्र जिसमें जल गिराने के लिये एक ओर एक टोंटी लगी रहती है। इस टोंटी में से धार बँधकर जल निकलता है। इसका व्यवहार देवताओं पर जल चढ़ाने अथवा हाथ पैर आदि धुलाने में होता है। उ०—(क) आसन दे चौकी आगे धरि। जमुनाजल राख्यो झारी भरि।—सूर (शब्द०)। (ख) आपुन झारी माँगि विप्र के चरन पखारे। इती दूर श्रम कियो राज द्विज भए दुखारे।—सूर (शब्द०)।

झारी²—संज्ञा स्त्री० [सं० झारि] वह पानी जिसमें अमचूर, जीरा, नमक आदि घुला हुआ हो। इसका व्यवहार पश्चिम में अधिक होता है।

झारी(पु)³—संज्ञा स्त्री० [हिं० झाड़ी] दे० 'झाड़ी'। उ०—फूल झरैं सखीं फुलवारी। दिस्टि परी उकठी 'सब झारी'।—जायसी ग्रं०, पृ० २५४।

झारी⁴—वि० [हिं०] दे० 'झार'।

झारू—संज्ञा पुं० [हिं० झाड़ू] दे० 'झाड़ू'।

झारनेवाला†—वि० [सं० शद् प्रा० झड़, हिं० झारा+वाला (प्रत्य०)] पटा खेलनेवाला। पठा। बनेठी या लकड़ी चलानेवाला।

झार्झर—संज्ञा पुं० [सं०] ढोल या हुड़ुक बाजा बजानेवाला (को०)।

झाल¹—संज्ञा पुं० [सं० झल्लक] झाँझ। काँसे का बना हुआ ताल देने का वाद्य। उ०—सहस गुंजार में परमली झाल है, झिलमिली उलटि के पौन भरना।—पलटू०, पृ० ३०।

झाल²—संज्ञा पुं० [देश०] १. रहट्ठे का बड़ा खाँचा। २. झालने की क्रिया या भाव।

झाल³—संज्ञा स्त्री० [सं० झाला] १. चरपराहट। तीतापन। तीक्ष्णता। जैसे, राई की झाल, मिरचे की झाल। २. तरंग। मौज। लहर। ३. कामेच्छा। चुल। प्रसंग करने की कामना। झल।

झाल⁴—संज्ञा पुं० [हिं० झड़] दो तीन दिन की लगातार पानी की झड़ी जो प्रायः जाड़े में होती है। उ०—जिन जिन संबल नां किया असपुर पाटन पाय। झाल परे दिन आथए संबल किया न जाय।—कबीर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।

झाल⁵—वि० [हिं० झार] दे० 'झार¹'।

झाल⁶—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्वाल, प्रा० झाल] १. आँच। ज्वाला। उ०—अग्नि के झाल में सौंकडे पैसता बैठते ऊठते श्री राम रखा करें।—रामानंद०, पृ० ६। †२. ग्रीष्म ऋतु। उ०—आये भेल झाल कुसुम सब छुछ। बारि बिहुन सर केओ नहिं पुछ।—विद्यापति, पृ० ३१५।

झालड़—संज्ञा स्त्री० [सं० झल्लरी] १. घड़ियाल जो पूजा आदि के समय बजाया जाता है । २. दे० 'झालर' ।

झालना(पु)[१]—क्रि० स० [हिं०?] १. धातु की बनी हुई वस्तुओं में टाँका देकर जोड़ लगाना । २. पीने की चीजों को बोतल आदि में भरकर ठंढा करने के लिये बरफ या शोरे में रखना ।

संयो० क्रि०—देना ।

झालना[२]†(पु)—क्रि० स० [सं० क्ष्वेल; प्रा० झेल; हिं० झेलना] ग्रहण करना । धारण करना । उ०—जिणि दीहे तिल्लो त्रिहइ, हिरणी झालइ गाभ । तँहि दिहाँरी गोरड़ी पइलउ झालइ माथ ।—ढोला०, दू० २८२ । २. कबूल करना । स्वीकार । करना । उ०—केताँइ झाली चाकरी, ढूँण इजाका बीच ।—रा०, पृ० १२६ ।

झालर[१]—संज्ञा स्त्री० [सं० झल्लरी] १. किसी चीज के किनारे पर शोभा के लिये बनाया, लगाया या टाँका हुआ वह हाशिया जो लटकता रहता है ।

विशेष—इसकी चौड़ाई प्रायः कम हुआ करती है और उसमें सुंदरता के लिये कुछ बेल बूटे आदि बने रहते हैं । मुख्यतः झालर कपड़े में ही होती है, पर दूसरी चीजों में भी शोभा के लिये झालर के आकार की कोई चीज बना या लगा लेते हैं । जैसे, गद्दी या तकिये की झालर, पंखे की झालर । २. झालर के आकार की या किनारे पर लटकती हुई कोई चीज । ३. किनारा । छोर । —(क्व०) । ४. झाँझ । झाल । उ०—(क) सुन्न सिखर पर झालर झलकै बरसै अमी रस बुंद चुआ ।—कबीर श०, भा० ३, पृ० १० । (ख) सुरत निस्सान तहँ गैब की झालरा गैब के घंट का नाद आवै ।—कबीर श०, पृ० ८८ । ५. घड़ियाल जो पूजा आदि के समय बजाया जाता है । उ०—घटे क्रिया बाँभण, मिटे झालर परसादा । ईन प्रजा उपजे, निरख दुर रीत निसादा ।—रा० रू०, पृ० २०

झालर[२]†—संज्ञा पुं० [देश० १.] एक प्रकार का पकवान जिसे झलरा भी कहते हैं । उ०—झालर माँडे आए पोई । देखत उजर पाग जस धोई ।—जायसी (शब्द०) ।

झालरदार—वि० [हिं० झालर + दार प्रत्य०] जिसमें झालर लगी हो ।

झालरना—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'झलराना' । उ०—नेक न झुरसी बिरह झर नेह लता कुँभिलाति । निति निति होति हरी हरी खरी झालरति जाति ।—बिहारी (शब्द०) ।

झालरा[१]†—संज्ञा पुं० [हिं० झालर] एक प्रकार का रुपहला हार । हुमेल ।

झालरा[२]—संज्ञा पुं० [हिं० ताल] चौड़ा कुआँ । बावली । कुंड ।

झालरि(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० झालर] बंदनवार । लटकते हुए मोती आदि की पंक्ति । उ०—कनक कलस धरि मंगल गावो, मोतियन झालरि लाव हो ।—धरम०, पृ० ४६ ।

झालरी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० झल्लरी] दे० 'झाल' । उ०—घंटा ताल झालरी बाजै । जग मग जोति अवधि पुर छाजै ।—रामानंद०, पृ० ७ ।

झाला[१]—संज्ञा पुं० [देश०] १. राजपूतों की एक जाति जो गुजरात और मारवाड़ में पाई जाती है । २. सितार बजाने में गत के अंत में द्रुत गति से बाज और चिकारी के तारों का झाला बजाना । ३. बकझक । झाँझाँ ।

झाला[२](पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्वाला, प्रा० झाला] दाह । ताप । जलन । टीस । उ०—तपन तब, जिव उठत झाला, कठिन दुख अब को सहै ।—संतबानी०, भा० २, पृ० १६ ।

झालि[१]†—संज्ञा स्त्री० [हिं० झड़] पानी की झड़ी । झाल । उ०—झालि परे दिन आथए अंतर परि गइ साँझ । बहुत रसिक के लागते वेश्या रहिगै बाँझ ।—कबीर (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—छाना ।—पड़ना ।

झालि[२]—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की काँजी जो कच्चे आम को पीसकर उसमें राई, नमक और भुनी हींग मिलाकर बनाई जाती है । झारी ।

झावँ झावँ—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. बकवाद । बकबक । २. हुज्जत तकरार ।

क्रि० प्र०—करना ।—मचाना ।

झावरि(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० झूमर] दे० 'झूमर' उ०—कढ़त पोल की गोल खेल खेलन झावरि हित ।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ३३

झावना(पु)—क्रि० स० [हिं० झावाँ से नाम०] झाँवें से रगड़कर धोना । मैल साफ करना । उ०—नायन न्हवायकै गुसायनि के पाँय झावै, उझकि उझकि उठै वा कर लसन ते ।—नट०, पृ० ७४ ।

झावर—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'झाँवर' ।

झावु, झावुक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'झाऊ' ।

झिंगा†—संज्ञा स्त्री० [सं० झिङ्गाक] तरोई । तोरी । तुरई ।

झिंगनसंज्ञा पुं० [देश०] १. एक प्रकार का पेड़ जिसकी पत्ती से लाल रंग बनता है । २. सारस्वत ब्राह्मणों की एक जाति ।

झिंगरि(पु)—संज्ञा पुं० [दे० प्रा० झिंगिर] । उ०— झिंगरि चतुर पावस निनाद ।—पृ० रा०, १ । ४१४ ।

झिंगा(पु)†—वि० [देश० ? झिंगिर(पु) झिंगर] झींगुर के समान । झींगुर की ध्वनि सा । उ०—अनहद झिंगा शब्द सुनाओ ।—कबीर श०, भा० १, पृ० ५७ ।

झिंगाक—संज्ञा पुं० [सं० झिङ्गाक] तोरई । तरोई ।

झिंगिनी[१]—संज्ञा स्त्री० [सं० झिङ्गिनी] एक प्रकार का जंगली वृक्ष जो बहुत ऊँचा होता है । इसके पत्ते महुए के समान और शाखाओं में दोनों ओर लगते हैं । फूल सफेद और फल बेर के समान होते हैं ।

पर्या०—झिंगी । झिंगिनी । झिगिनी । प्रमोदिनी । सुनियास ।

२. प्रकाश । ज्योति । चमक । लुक (को०) ।

झिंगिनी[२](पु)—संज्ञा स्त्री० [देश०] क्षुद्र कीटविशेष । खद्योत । जुगनू । उ०—चमकत सार सनाह पर, हय गय नर भर

लगि । मनौं वृच्छ परि झिंगिनियाँ, करत केलि निसि जगि । —पृ० रा०, ८ । ४३ ।

झिंगी—संज्ञा स्त्री० [सं० झिङ्गी] दे० 'झिंगिनी' ।

झिंझा†—वि० [देशी] अत्यंत क्षीण । दुर्बल ।

झिंझिम—संज्ञा पुं० [सं० झिञ्झिम] जलता हुआ वन [को०] ।

झिंझिया—संज्ञा स्त्री० [अनु०] दे० 'झिंझिया'[2] ।

झिंझिरिस्टा—संज्ञा स्त्री० [सं० झिञ्झिरिष्टा] झिंझिरिटा नामक क्षुप ।

झिंझिरीटा—संज्ञा स्त्री० [सं० झिझिरिस्टा] एक प्रकार का क्षुप ।

झिंझी—संज्ञा स्त्री० [सं० झिञ्झी] झिल्ली । झींगुर ।

झिंझोटी—संज्ञा स्त्री० [देश०] संपूर्ण जाति की एक रागिनी जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं । यह दिन के चौथे पहर में गाई जाती है ।

झिंटी—संज्ञा स्त्री० [सं० झिण्टी] कठसरैया । पियाबासा ।

झिंकवा—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'झींका' । उ०—थोले चलु जंतवा, झमकि लेहु झिंकवा, देवस मुसल भैया पाहुन रे की ।—कबीर (शब्द०) ।

झिंगनी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] तरोई । तुरई ।

झिंगवा—संज्ञा स्त्री [सं० झिङ्कट, झिङ्गट] एक प्रकार की छोटी मछली जिसके मुँह और पूँछ के पास दोनो तरफ बाल होते हैं ।

झिंगारना(५)†—क्रि० अ० [हिं० झींगुर या झनकार] झींगुर का शब्द होना । झींगुर का शब्द करना ।

झिंगुली(५)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० झगा] छोटे बच्चों के पहनने का कुरता । झगा । उ०—पीत झीन झिंगुली तन सोही । किलकनि चितवनि भावति मोही ।—तुलसी (शब्द०) ।

झिंगोरना(५)†—क्रि० अ० [सं० झङ्करण] झंकार करना । कूकना आवाज करना । पिहकना । उ०—डूँगरिया हरिया हुआ वर्ण झिंगोरया मोर । इण रिति तीणइ नीसरइ, बाबक, चातक, चोर ।—ढोला०, दू० २५३ ।

झिंझि(५)—वि० स्त्री० [देशी] झीनी । अत्यंत क्षीण । उ०—कहहि कबीर किहि देवहु खोरी । जब चलिहहु झिंझि आसा तोरी । —कबीर बी०, पृ० २८२ ।

झिंझिया—संज्ञा स्त्री० [अनु०] छोटे छोटे छेदोंवाला वह घड़ा जिसमें दीया बाल कर कुमार के महीने में लड़कियाँ घुमाती हैं । उ०—जालरंध्र मग ह्वै कढ़ै तिय तन दीपति पुंज । झिंझिया कैसो घट भयो दिन ही में बनकुंज ।—मतिराम (शब्द०) ।

झिंझोटी, झिंझौटी—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'झिंझोटी' ।

झिकझोरना†—क्रि० स० [हिं० झकझोरना] दे० 'झकझोरना' । उ०—नहि महि करए नयन ढर नोर । काँच कमल भमरा झिकझोर ।—विद्यापति, पृ० २०४ ।

झिकना(५)—क्रि० अ० [हिं० झाँकना] देखना । ताकना । उ०—बरुनीन ह्वै नैन झिकै झिझिकै मनो खंजन मीन पै जाल परे । —ठाकुर (शब्द०) ।

झिखना†(५)[1]—क्रि० अ० [हिं०] टिमटिमाना । उ०—झलकंत बगत्तर टोप झिखै । रसचाह निसा प्रतिब्यंब रखै ।—रा० रू०, पृ० ३४ ।

झिखना(५)[2]—क्रि० अ० [हिं० झींखना] दे० 'झींखना' । उ०—भोर जगि प्यारी अध ऊरध इतै सी ओर भाखी खिझि झिरकि उघारि अध पलकै ।—पद्माकर (शब्द०) ।

झिगड़ा†—संज्ञा पुं० [अनु०] दे० 'झगड़ा' ।

झिगमिग†(५)—वि० [हिं० झिलमिल] दे० 'झिलमिल' । उ०—दीस रहुया दिल माँहि दर्शन साँई दा । साँई दा साँई दा झिगमिग झाँई दा ।—राम० धर्म०, पृ० ४६ ।

झिगरा, झिगरो(५)—संज्ञा पुं० [अनु०] झगड़ा । झंझट । उ०—समुझिय जग जनमें को फल मन में, हरि सुमिरन में दिन भरिए । झिगरो बहुतेरो धेरु घनेरो मेरो तेरो परिहरिए ।—भिखारी० ग्रं०, भा० १, पृ० २२६ ।

झिझक—संज्ञा स्त्री० [अनु०] दे० 'झझक' ।

झिझकना—क्रि० अ० [हिं० झझक, झिझक] दे० 'झझकना' । उ०—वहाँ साँचे चलैं तजि आपुनपौ झिझकै कपटी जो निसाँक नहीं ।—घनानंद (शब्द०) ।

झिझकार—संज्ञा स्त्री० [अनु०] दे० 'झझकार' ।

झिझकारना—क्रि० स० [अनु०] १. दे० 'झझकारना' । उ०—वोही ढंग तुम रहे कन्हाई सबै उठी झिझकारि । लेहु असीस सबन के मुख ते कर्ताहु दिखावत गारि ।—सूर (शब्द०) । २. दे० 'झटकना' । उ०—रसना मति इत नैना निज गुन लीन । कर तें पिय झिझकारे अजुगति कीन ।—रहीम (शब्द०) ।

झिझकी—संज्ञा स्त्री०[हिं०]दे० 'झझक' । उ०—झुकि झाँकत झिझकी करति, उझकि झरोखनि बाल ।—ब्रज० ग्रं०, पृ० २ ।

झिझिक(५)†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'झझक' ।

झिझिकना(५)†—क्रि० अ० [हिं० झिझक + ना (प्रत्य०)] उ०—बरुनीन है नैन झिकै झिझिकै मनो खंजन मीन पै जाले परे । —ठाकुर (शब्द०) ।

झिझिया—संज्ञा स्त्री० [अनु०] दे० 'झिंझिया' ।

झिझोड़ना—क्रि० स० [अनु०] दे० 'झकझोरना' । उ०—उसे झिझोड़कर उसने हिला दिया, क्योंकि मधुबन का वह रूप देखकर मैना को भी भय लगा ।—तितली, पृ० १८९ ।

झिटका—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'झटका' उ०—एक झिटका सा लगा सहर्ष । निरखने लगे लुटे से, कौन । गा रहा यह सुंदर संगीत ? कुतूहल रह न सका फिर मौन ।—कामायनी, पृ० ४५ ।

झिटकारना†—क्रि० स० [हिं० झिटका] दे० 'झटकारना' या 'झटकना' ।

झिड़का—संज्ञा स्त्री० [अनु०] दे० 'झिड़की' ।

झिड़कना—क्रि० स० [अनु०] १. अवज्ञा या तिरस्कारपूर्वक बिगड़कर कोई बात कहना । २. अलग फेंक देना । झटकना । —(क्व०) ।

झिड़की—संज्ञा स्त्री० [हिं० झिड़कना] १. वह बात जो झिड़ककर कही जाय । डाँट । फटकार ।

क्रि० प्र०—देना ।—मिलना ।—सुनना ।

२. झिड़कने की क्रिया या भाव ।

झिड़झिड़ाना—क्रि० अ० [अनु०] भला बुरा कहना । कटु वचन कहना । चिड़चिड़ाना ।

झिड़झिड़ाहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० झिड़झिड़ाना] झिड़झिड़ाने का भाव या क्रिया ।—(क्व०) ।

झिनझिन (पु)—संज्ञा स्त्री० [अनु०] दे० 'झन झन' । उ०—यहु झिन-झिन जंतर बाजै माला । पीवै प्रेम होय मतवाला ।—ह० सागर, पृ० ३८ ।

झिनवा¹—संज्ञा पुं० [देश०] महीन चावल का धान । उ०—राय-भोग औ काजररानी । झिनवा रुद औ दाउदखानी ।—जायसी (शब्द०) ।

झिनवा²—वि० [सं० क्षीण, प्रा० झीण] दे० 'झीना' ।

झिप् झिप्—क्रि० वि० [अनु०] रिमझिम शब्द के साथ । उ०—पहले नन्हीं नन्हीं बूँदे पड़ीं, पीछे बड़ी बड़ी बूँदों से झिप् झिप् पानी बरसने लगा ।—ठेठ०, पृ० ३२ ।

झिपना—क्रि० अ० [हिं० छिपना] दे० 'झेंपना' ।

झिपाना—क्रि० स० [हिं० झिपना का स० रूप] लज्जित करना । शरमिंदा करना ।

झिमकना†—क्रि० अ० [अनु०] दे० 'झमकना' ।

झिमझिमी—वि० [हिं० झीनी; या देशी झिमिझ (= अवयवों की जड़ता)] मंद ज्योतिवाली । उ०—उसकी झिमझिमी आँखों से उल्लास के आँसू झड़ने लगते ।—पिंजरे०, पृ० ७५ ।

झिमिटना—क्रि० अ० [हिं० सिमटना] इकट्ठा होना । एक जगह जुट जाना । उ०—झिमिट आते हैं जहाँ जो लोग, प्रकट कर कोई अकथ अभियोग । मौन रहते हैं खड़े बैठे, सिर झुका-कर फिर उठाते हैं न । —साकेत, पृ० १७३ ।

झिर—संज्ञा स्त्री० [हिं० झिरी] बूँद । फुहार । झिरी । उ०—झिर पिचकारी की मची आँधी उड़त गुलाल । यह धूँधरि धँसि लीजिए पकरि छबीले लाल ।—स० सप्तक, पृ० ३६० ।

झिरकनहारी—वि० स्त्री० [हिं० झिरकना + हारी (प्रत्य०)] झिड़कने-वाली । उ०—यातें तुमकौं ढीठि कही । स्यामहि तुम भई झिरकनहारी एते पर पुनि हारि नहीं ।—सूर०, १०।१५।३६ ।

झिरकना (पु)—क्रि० स० [हिं० झिड़कना] दे० 'झिड़कना' । उ०—(क) छरीदार बैराग बिनोदी झिरकि बाहिरैं कीन्हें ।—सूर०, १।४० । (ख) थोर जबि प्यारी अध ऊरध इतै की ओर भाखी खिझि झिरकि उघारि अध पलकै । —पद्माकर (शब्द०) । २. अलग फेंक देना । झटकना ।—(क्व०) । उ०—मुकुट शिर श्रीखंड सोहै निरखि रहिं ब्रजनारि । कोटि सुर कोदंड आभा झिरकि डारे वारि ।—सूर (शब्द०) ।

झिरझिर—क्रि० वि० [अनु०] १. मंद मंद । धीरे धीरे । उ०—झिर झिर बहै बयार प्रेम रस डोलै हो ।—धरम०, पृ० ४६ । २. झिर झिर शब्द के साथ ।

झिरझिरा—वि० [हिं० झरना] बहुत पतला या बारीक (कपड़ा आदि) । झँझरा । झीना ।

झिरझिराना—क्रि० अ० [अनु०] १. झिरझिर शब्द के साथ बहना (वायु, जल आदि) । २. दे० 'झिड़झिड़ाना' ।

झिरना¹—क्रि० अ० [सं० √क्षर, प्रा० झिर, हिं० √झरना] बहकना । गिरना । प्रवाहित होना । 'झरना' । उ०—जहाँ तहाँ झाड़ों में झिरती है झरनों की झड़ी यहाँ ।—पंचवटी, पृ० ९ ।

झिरना²—संज्ञा पुं० १. छेद । छिद्र । सूराख । २. दे० 'झरना' ।

झिरमिर (पु)—वि० [हिं०] दे० 'झिलमिल' । उ०—झिरमिर बरसै नूर । बिन कर बाजै ताल तूर ।—दरिया० बानी, पृ० ४८ ।

झिरहर, झिरहिर (पु)—वि० [हिं०] १. झीना । छिद्रित । छेदोंवाला । उ०—छिनहर घर अरु झिरहर टाटी । घन गरजत कंपै मेरा छाती ।—कबीर ग्रं०, पृ० १८१ । २. झिलमिल । झलकदार उ०—गंग जमुन के बीच मे एक झिरहिर नीरा हो ।—धरम०, पृ० ३७ ।

झिरा†—संज्ञा स्त्री० [हिं० झरना(= रस कर निकलना)] आमदनी । आय ।

झिराना—क्रि० अ० [हिं०] झुराना ।

झिरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] झींगुर [को०] ।

झिरिहिरी (पु)—वि० [अनु०] मंद मंद । धीरे धीरे । उ०—झिरि-हिरी बहै बयारि, अमी रस ढरकै हो ।—पलटू०, भा० ३, पृ० ७३ ।

झिरी¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० झरना] १. छोटा छेद जिससे कोई द्रव पदार्थ धीरे धीरे बह जाय । दरज । शिगाफ । २. वह गड्ढा जिसमें पानी झिर झिरकर इकट्ठा हो । ३. कुएँ के बगल में से निकला हुआ छोटा सोता । ४. तुषार । पाला । ५. वह फसल जिसे पाला मार गया हो ।

झिरी²—संज्ञा [सं०] झींगुर । झिल्ली [को०] ।

झिरीका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'झिरिका' [को०] ।

झिर्री—संज्ञा स्त्री० [हिं० झरना या झिरी] वह छोटा गड्ढा जो नाली आदि में पानी रोकने के लिये खोदा जाता है । घेरुआ ।

झिलँगा¹—संज्ञा पुं० [हिं० ढीला + अंग] १. टूटी हुई खाट का बाध । २. ऐसी खाट जिसकी बुनावट ढीली पड़ गई हो ।

झिलँगा²†—वि० १. ढीला ढाला । झोलदार । २. झीना ।

झिलँगा³—संज्ञा पुं० [हिं० झींगा] दे० 'झींगा' ।

झिलना¹—क्रि० अ० [?] १. बलपूर्वक प्रवेश करना । धँसना । घुसना । उ०—झिली फौज प्रतिभट गिरे खाइ घाव पर घाव । कुँवर चोरि परबत चढ्यो बढ्यो युद्ध को चाव ।—लाल (शब्द०) । २. तृप्त होना । अघा जाना । उ०—मिले राम कृष्ण, झिले पाइके मनोरथ को, हिले इम रूप किए चुरि

चूरि चूरि को।—प्रिया (शब्द)। ३. मग्न होना। तल्लीन होना। उ०—झल्यो फर पमे हूरि रंग माँझ झिले मानो जानी कछु चूक मेरी यहै उर धारिए।—प्रिया (शब्द०)। ४. (कष्ट आपत्ति आदि) झेला जाना। सहा जाना। सहन होना। उठाया जाना।

झिलना²—संज्ञा पुं० [दे० झिल्ली] झींगुर।

झिलम—संज्ञा स्त्री० [हिं० झिलमिला] लोहे का बना हुआ एक प्रकार का झीझरीदार पहरावा जो लड़ाई के समय सिर और मुँह पर पहना जाता था। एक प्रकार का लोहे का टोप या खोल। उ०—झलकत आन भइ झिलम झलानि झप्यो तमकत आवे तेगवाही की मिलाहीं कि।—पद्माकर (शब्द०)।

झिलमटोप—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'झिलम'।

झिलमलित(पु)†—वि० [हिं० झिलमिल + इत (प्रत्य०)] झिलमिलाता हुआ। काँपता हुआ।

झिलमा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का धान जो संयुक्त प्रांत में होता है।

झिलमिल¹—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १ काँपती हुई रोशनी। हिलता हुआ प्रकाश। झलमलाता हुआ उजाला। २ ज्योति की अस्थिरता। रह रहकर प्रकाश के घटने बढ़ने की क्रिया। उ०—(क) हेरि हेरि बिरा मैं न लीन्हों झिलमिल में रही हों हाथ मिन मे प्रभा को झिलमिल मे।—पद्माकर (शब्द०)। (ख) घूँघट के घूमि कै सु भूमके जवाहिर के झिलमिल झालर की भूमि झिल भकत आत।—पद्माकर (शब्द०)। ३. बढ़िया मलमल या तनजेब की तरह का एक प्रकार का बारीक और मुलायम कपड़ा। उ०—(क) चंदनौटा औ खारदुख भारी। बाँसपुर झिलमिल की सारी।—जायसी (शब्द०)। (ख) राम पास ही छोर लगी है, झलझल जगमग जोति जगी है। कंचन मदन पासा सिंहासन। मारान बाढे झिलमिल डासन। तापर राखत अबल प्रकासन। देखत छवि मति प्रेम पगी है।—मग्नलाल (शब्द०)। (पु) ४. युद्ध में पहनने का लोहे का कवच। उ०—करख पाम बीन्हैव कै छहू। झिलमिल धरि झिलमिल इहू।—जायसी (शब्द०)।

झिलमिल²—वि० रह रहकर चमकता हुआ। झलझलाता हुआ। उ०—नदी किनारे मैं खड़ी पानी झिलमिल होय। मैं मैली प्रिय ऊजरे मिलना किस विधि होय।—(शब्द०)।

झिलमिला—वि० [अनु०] [वि० स्त्री० झिलमिली] १. जो गफ या गाढ़ा न हो। २. जिसमें बहुत से छोटे छोटे छेद हों। झँझरा झीना। ३. जिसमें रह रहकर हिलता हुआ प्रकाश निकले। ४ झलझलाता हुआ। चमकता हुआ। ५. जो बहुत स्पष्ट न हो।

झिलमिलाना¹—क्रि० अ० [अनु०] १. रह रहकर चमकना। जुगजुगाना। उ०—गल नल कबर ग्रीव पुनि कंठ कपोटी कैन? पीक लीक जहँ झिलमिलत सो छवि कीने मैन।—अनेकार्थ०, पृ० २६। २. प्रकाश का हिलना। ज्योति का अस्थिर होना। ३. प्रकाश का टिमटिमाना।

झिलमिलाना²—क्रि० स० १. किसी चीज को इस प्रकार हिलाना कि जिसमें वह रह रहकर चमके। २. हिलाना। कँपाना।

झिलमिलाहट—संज्ञा स्त्री० [अनु०] झिलमिलाने की क्रिया या भाव।

झिलमिली—संज्ञा स्त्री० [हिं० झिलमिल] १. एक दूसरे पर तिरछी लगी हुई बहुत सी आड़ी पटरियों का ढाँचा जो किवाड़ों और खिड़कियों आदि में जड़ा रहता है। खड़खड़िया।

विशेष—ये सब पटरियाँ पीछे की ओर पतली लंबी लकड़ी या छड़ में जड़ी होती हैं जिनकी सहायता से झिलमिली खोली या बंद की जाती है। इसका व्यवहार बाहर से आनेवाला प्रकाश और गर्द आदि रोकने के लिये अथवा इसलिये होता है कि जिसमे बाहर से भीतर का दृश्य दिखलाई न पड़े। झिलमिली के पीछे लगी हुई लकड़ी या छड़ को जरा सा नीचे की ओर खींचने से एक दूसरे पर पड़ी पटरियाँ अलग अलग खड़ी हो जाती हैं और उन सबके बीच में इतना अवकाश निकल आता है जिसमें से प्रकाश या वायु आदि अच्छी तरह आ सके।

क्रि० प्र०—उठाना।—खोलना।—गिराना।—चढ़ाना।

२. चिक। चिलमन। ३. कान में पहनने का एक प्रकार का गहना। ४ देखने या शोभा के लिये मकानों में बनी जाली।

झिलवाना†—क्रि० स० [हिं० झेलना का प्रे० रूप] झेलने का काम कराना। सहन कराना।

झिलमिलि(पु)—वि० [अनु०] दे० 'झिलमिल'। उ०—छाँड़ो झिलमिलि नेहु, पुरुष गम राखि कै।—धरम०, पृ० ५२।

झिलिम्म(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० झिलम] दे० 'झिलम'। उ०—धरे टोप कुही कसे कोप अगं। झिलिम्मै घटाटोप पेटी अभंगं—हम्मीर०, पृ० २४।

झिल्ली†(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'झिल्ली'। उ०—बगबात पोलिन की धनक जनु धनि झुकार झिल्लीन की।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १२।

झिल्ल—संज्ञा स्त्री० [सं०] नीम की जाति का एक प्रकार का पौधा। इसकी छाल और फूल लाल होते हैं और पत्ते और फल बहुत छोटे होते हैं।

झिल्लड़—वि० [हिं० झिल्ला] (वह कपड़ा) जिसकी बुनावट दूर दूर पर हो। पतला और झंझरा (कपड़ा)। गफ का उलटा।

झिल्लन¹—संज्ञा स्त्री० [देश०] दरी बुनने की करघे की वह कड़ी लकड़ी जिसमे बै का बाँस लगा रहता है। गुरिया।

झिल्ला†—वि० [अनु०] [वि० स्त्री० झिल्ली] १. पतला। बारीक। २. झँझरा। जिसमे बहुत से छोटे छोटे छेद हों।

झिल्लि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक बाजे का नाम। २. झींगुर। झिल्ली। २. चिमड़ा कागज। चर्मपत्र [को०]।

झिल्लिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. झींगुर। झिल्ली। २. झिल्ली की झंकार (को०)। ३. सूर्य का प्रकाश (को०)। ३. चमक।

प्रकाश। दीप्ति (को०)। ५. उबटन, अंगराग आदि शरीर पर मलने से गिरनेवाली मैल (को०)। ६. रंग आदि लगाने में प्रयुक्त वस्त्र (को०)।

झिल्ली[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. झींगुर। २. चर्मपत्र (को०)। ३. एक वाद्य (को०)। ४. दीए की बत्ती (को०)। ५. दे० 'झिल्लिका'।

झिल्ली[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० चैल अथवा सं० झिल्लिका (=चमकदार पारदर्शी पतला आवरण) या अ० जिल्द (=आवरण) अथवा सं० क्षुद्र] १. किसी चीज की ऐसी पतली तह जिसके ऊपर की चीज दिखाई पड़े। जैसे, चमड़े की झिल्ली। २. बहुत बारीक छिलका। ३. आँख का जाला।

झिल्ली[3]—वि० स्त्री० बहुत पतला। बहुत बारीक।

झिल्लीक—संज्ञा पुं० [सं०] झींगुर।

झिल्लीका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. झींगुर। झिल्ली। २. सूर्य की दीप्ति या प्रकाश। ३. उबटन आदि का मैल। झिल्ली (को०)।

झिल्लीदार—वि० [हिं० झिल्ली + फा० दार] जिसके ऊपर किसी चीज की बहुत पतली तह लगी हो। जिसपर झिल्ली हो।

झींका—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'झोंका'।

क्रि० प्र०—लेना।—डालना।

झींकना[1]—क्रि० अ० [प्रा० झंख] दे० 'झीखना'। उ०—तुम्हें हर समय झींकते रहना पड़ता है।—सुखदा, पृ० ७८।

झींकना[2]†—क्रि० स० [देश०] फेंकना। पटकना।

झींका—संज्ञा पुं० [देश०] १. उतना अन्न जितना एक बार पीसने के लिये चक्की में डाला जाता है। २. सीका। छीका।

झींख†—संज्ञा स्त्री० [प्रा० झंख] झीखने की क्रिया या भाव। खीज।

झींखना[1]—क्रि० अ० [प्रा० झंख, हिं० खीजना] १. किसी अनिवार्य अनिष्ट के कारण दुःखी होकर बहुत पछताना और कुढ़ना। खीजना। २. दुखड़ा रोना। अपनी विपत्ति का हाल सुनाना। उ०—खाट पड़े नर झींखन लागे, निकसि प्रान गयो चोरी सी।—कबीर सा० सं०, भा० २, पृ० ५।

झींखना[2]—संज्ञा पुं० १. झीखने की क्रिया या भाव। २. दुःख का वर्णन। दुखड़ा।

झींगट—संज्ञा पुं० [देश०] पतवार थामनेवाला। मल्लाह। कर्णधार।—(लश०)।

झींगन—संज्ञा पुं० [देश०] मँझोले आकार का एक प्रकार का वृक्ष जिसका तना मोटा होता है और जिसमें डालियाँ अपेक्षाकृत बहुत कम होती हैं।

विशेष—यह सारे उत्तरी भारत, आसाम, बरमा और लंका में पाया जाता है। इसमें से पीलापन लिए सफेद रंग का एक प्रकार का गोंद निकलता है जिसका व्यवहार छींटों की छपाई और ओषधि के रूप में होता है। इसकी छाल से टसर रँगा जाता है और चमड़ा सिझाया जाता है। इसकी पत्तियाँ चारे के काम में आती हैं और हीर की लकड़ी से कई तरह के सामान बनते हैं।

झींगा—संज्ञा पुं० [सं० चिङ्गट] १. एक प्रकार की मछली जो प्रायः सारे भारत की नदियों और जलाशयों आदि में पाई जाती है। झिंगवा।

विशेष—इस मछली के अगले भाग में छाती के नीचे बहुत पतले पतले और लंबे आठ पैर होते हैं; इसीलिये प्राणिशास्त्रज्ञ इसे केकड़े आदि के अंतर्गत मानते हैं। आठ पैरों के अतिरिक्त इसके दो बहुत बड़े धारदार डंक भी होते हैं। इसकी छोटी बड़ी अनेक जातियाँ होती हैं और यह लंबाई में चार अंगुल से प्रायः एक हाथ तक होती है। इसका सिर और मुँह मोटा होता है और दुम की तरफ इसकी मोटाई बराबर कम होती जाती है। यह मछली अपना शरीर इस प्रकार झुका सकती है कि सिर के साथ इसकी दुम लग जाती है। इसके सिर पर उँगलियों के आकार के दो छोटे छोटे अंग होते हैं जिनके सिरों पर आँखें होती हैं। इन आँखों से बिना मुड़े यह चारों ओर देख सकती है। यह अपने अंडे सदा अपने पेट के अगले भाग में छाती पर ही रखती है। इसके शरीर के पिछले आधे भाग पर बहुत कड़े छिलके होते हैं जो समय समय पर आप-से आप साँप की केंचुली की तरह उतर जाते हैं। छिलके उतर जाने पर कुछ समय तक इसका शरीर बहुत कोमल रहता है पर फिर ज्यों का त्यों हो जाता है। इसका मांस खाने में बहुत स्वादिष्ठ होता है। बहुधा मांस के लिये यह सुखाकर भी रखी जाती है।

२. एक प्रकार का धान जो अगहन में तैयार होता है। इसका चावल बहुत दिनों तक रह सकता है। ३. एक प्रकार का कीड़ा जो कपास की फसल को हानि पहुँचाता है।

झींगुर—संज्ञा पुं० [अनु० झीं+कर] एक प्रसिद्ध छोटा कीड़ा। घुरघुरा। जंजीरा। झिल्ली।

विशेष—इसकी छोटी बड़ी अनेक जातियाँ होती हैं। यह सफेद, काला और भूरा कई रंगों का होता है। इसकी छह टाँगें और दो बहुत बड़ी मूँछें होती हैं। यह प्रायः अँधेरे घरों में पाया जाता है तथा खेतों और मैदानों में भी होता है। खेतों में यह कोमल पत्तों आदि को काट डालता है। इसकी आवाज बहुत तेज भी होती है और प्रायः बरसात में अधिकता से सुनाई देती है। नीच जाति के लोग इसका मांस भी खाते हैं।

झींझड़ा†—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'झिंझड़ा'। उ०—उड़ चील झींझड़े पर छापा मारे।—शराबी, पृ० ७३।

झींझना†—क्रि० अ० [अनु०] झुँझलाना। खिजलाना।

झींझी—संज्ञा पुं० [देश०] १. एक रस्म। झिंझिया।

विशेष—इस रस्म में आश्विन शुक्ल चतुर्दशी को मिट्टी की एक कच्ची हाँड़ी में बहुत से छेद करके उसके बीच में एक दीया बालकर रखते हैं। इसे कुमारी कन्याएँ हाथ में लेकर अपने संबंधियों के घर जाती हैं और उस दीपक का तेल उनके सिर में लगाती हैं और वे लोग उन्हें कुछ देते हैं। उसी द्रव्य से वे सामग्री मँगाकर पूर्णिमा के दिन पूजन करती हैं, और आपस में प्रसाद बाँटती हैं। लोगों का यह भी विश्वास है कि इसका तेल लगाने से सेंहुआ रोग नहीं होता अथवा अच्छा हो जाता है।

२. मिट्टी की वह कच्ची हाँड़ी जिसमें छेद करके इस काम के लिये दीया रखते हैं।

झींटना†—क्रि० अ० [देश०] दे० 'झोंकना'।

झींपना†—क्रि० अ० [देशी झंप] १. दे० 'झेंपना'। २. 'ढँपना'।

झींमना†—क्रि० अ० [हिं० झूमना] दे० 'झूमना'। उ०—मानों झींम रहे हैं तरु भी मंद पवन के झोंकों से।—पंचवटी, पृ० ५।

झींवर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० धीवर] दे० 'धीवर'। उ०—सज्जल उदक धुवाया धोयण, लंघे पार सरिता मृदु लोयण। प्रभु झीवर कीधो भवपार।—रघु० रू०, पृ० ११०।

झींसा†—संज्ञा पुं० [हिं० झीसी] दे० 'झींसी'।

झींसी—संज्ञा स्त्री० [अनु० या हिं० झीना (=बहुत महीन)] फुहार। छोटी छोटी बूँदों की वर्षा। वर्षा की बहुत महीन बूँदें।

क्रि० प्र०—पड़ना।

झीक¹—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'झोंका'। उ०—काम क्रोध मद लोभ चक्की के पीसनहारे। तिरगुन डारे झीक पकरि कै सबै निकारे।—पलटू०, पृ० ८४।

झीक²†—क्रि० वि० [हिं०] झटके से। शीघ्रता से। उ०—काबाड़ी नित काटता, झीक कुहाड़ा झाड़।—बाँकी० ग्रं०, भा० १, पृ० ३२।

झीका—संज्ञा पुं० [सं० शिक्य] रस्सी का लटकता हुआ जालदार फंदा जिसपर बिल्ली आदि के डर से दूध या खाने की दूसरी वस्तुएँ रखते हैं। छीका। सिकहर।

झीखना—क्रि० अ० [प्रा० झंख] दे० 'झीखना'।

झीझा†—वि० [सं० क्षीण] [वि० स्त्री० झीझी] झीना। झँझरा।

झीण(पु), **झीणा**(पु)†—वि० [सं० क्षीण, प्रा० झीण] दे० 'झीना'। उ०—(क) पाँणी ही तै पातला, धुवाँ ही तै झीण।—कबीर ग्रं०, पृ० २१ (ख) मनवाँ तो अधर बस्या बहुतक झीणा होइ।—कबीर ग्रं०, पृ० २०। (ग) मारू सेकइ हत्थड़ा, झीणे अंगारेह।—ढोला०, दू० २०६।

झीत—संज्ञा पुं० [लश०] जहाज के पाल का बटन।

झीन‡—वि० [सं० क्षीण; प्रा० झीण] दे० 'झीना'।

झीना—वि० [सं० क्षीण] [वि० स्त्री० झीनी] १. बहुत महीन। बारीक। पतला। उ०—प्रफुल्लित ह्वै के आनि दीन है जसोदा रानि झीनियै झँगुली तामें कंचन को तगा।—सूर (शब्द०)। २. जिसमें बहुत से छेद हों। झँझरा। ३. दुबला पतला। दुर्बल। ४. मंद। धीमा।

झीनासारी†—संज्ञा पुं० [हिं०] धान का एक प्रकार।

झीमना—क्रि० अ० [हिं० झूमना] दे० 'झूमना'। उ—नव नील कुंज हैं झीम रहे, कुसुमों की कथा न बंद हुई।—कामायनी, पृ० ६५।

झीमर—संज्ञा पुं० [सं० धीवर] दे० 'धीवर'।

झीर(पु)†—संज्ञा पुं० [देश०] मार्ग। रास्ता। उ०—हरिजन सहजे उतरि गए ज्यों सूखे ताल को झीर।—मीखा श०, पृ० २४।

झीरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] झींगुर [को०]।

झीरुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] झींगुर। झिल्ली [को०]।

झील—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षीर (=जल)] १. वह बहुत बड़ा प्राकृतिक जलाशय जो चारों ओर जमीन से घिरा हो।

विशेष—झीलें बहुत बड़े मैदानों में होती हैं और प्राय. इनकी लंबाई और चौड़ाई सैकड़ों मील तक पहुँच जाती है। बहुत सी झीलें ऐसी होती हैं जिनका सोता उन्हीं के तल में होता है और जिनमें न तो कहीं बाहर से पानी आता है और न किसी ओर से निकलता है। ऐसी झीलों के पानी का निकास बहुधा भाप के रूप में होता है। कुछ झीलें ऐसी भी होती हैं जिनमें नदियाँ आकर गिरती हैं और कुछ झीलों में से नदियाँ निकलती भी हैं। कभी कभी झील का संबंध नदी आदि के द्वारा समुद्र से भी होता है। अमेरिका के संयुक्त राज्यों में कई ऐसी झीलें हैं जो आपस में नदियों द्वारा सब एक दूसरे से संबद्ध हैं। झीलें खारे पानी की भी होतीं हैं और मीठे पानी की भी।

२. तालाबों आदि से बड़ा कोई प्राकृतिक या बनावटी जलाशय। बहुत बड़ा तालाब। ताल। सर।

झीलण(पु)†—क्रि० अ० [सं० स्ना, प्रा० झिल्ल] स्नान करना। नहाना। उ०—ढोला हूँ तुझ बाहिरी, झीलण गइय तलाइ। उजल काला नाग जिउँ लहिरी ले ले खाइ।—ढोला०, पृ० ३६३।

झीलम—संज्ञा स्त्री० [हिं० झिलम] दे० 'झिलम'। उ०—साँगि समाहि कियो सुर ऐसो, टूटि परा सिर झीलम जाई।—सं० दरिया, पृ० ६३।

झीलर(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० झील, अथवा छीलर] छोटी झील। छोटा तालाब। छीलर। उ०—हंस बसै सुख सागरे, झीलर नहि आवै।—कबीर श०, भा० ३, पृ० ४।

झीली†—संज्ञा स्त्री० [हिं० झिल्ली] १. मलाई। २. दे० 'झिल्ली'।

झीवर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० धीवर] माँझी। मल्लाह। मछुआ। दे० 'धीवर'।

झुंट—संज्ञा पुं० [सं० झुण्ट] १. पेड़। २. झाड़ी [को०]।

झुंड—संज्ञा पुं० [सं० यूथ] बहुत से मनुष्यों, पशुओं या पक्षियों आदि का समूह। प्राणियों का समुदाय। वृंद। गिरोह। जैसे, भेड़ियों का झुंड, कबूतरों का झुंड।

मुहा०—झुंड के झुंड=संख्या में बहुत अधिक (प्राणी)। झुंड में रहना=अपने ही वर्ग के दूसरे बहुत से जीवों मे रहना।

झुंडी—संज्ञा स्त्री० [देशी खुंट (=खूँटी) या सं० झुण्ड (=झाड़)] १. वह खूँटी जो पौधों को काट लेने के बाद खेतों में खड़ी रह जाती है। २. चिलमन या परदा लटकाने का कुलाबा जो प्राय: कुंदे में लगा रहता है।

झुँकवाई—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'झोंकवाई'।

झुँकवाना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'झोंकवाना'।

झुँकाई—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'झोंकाई'।

झुँगना†—संज्ञा पुं० [हिं० जिंगना, जुँगना] जुगनू।

झुँगरा†—संज्ञा पुं० [देश०] साँवाँ नामक अन्न।

झुँझना‡—संज्ञा पुं० [अनु०] बच्चों का एक खिलौना । झुनझुना ।

झुँझलाना—क्रि० अ० [अनु०] खिझलाना । किटकिटाना । बहुत दुःखी और क्रुद्ध होकर बात करना । चिड़चिड़ाना ।

झुँझलाहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० झुँझलाना] खीज । चिढ़ ।

झुँझाई†—संज्ञा स्त्री० [देश०] निंदा । चुगली । चुगलखोरी ।

झुँझायो⑨‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० ?] खीझ । झुँझलाहट । उ०—माखन चोर री मैं पायो । नितप्रति रीती देखि कमोरी मोहि अति लगत झुँझायो ।—सूर०, १०।१८८ ।

झुकझोरना—क्रि० स० [अनु०] दे० 'झकझोरना' ।

झुकना—क्रि० अ० [सं० युज, युक, हिं० जुक] १. किसी खड़ी चीज के ऊपर के भाग का नीचे की ओर टेढ़ा होकर लटक आना । ऊपरी भाग का नीचे की ओर लटकना । निहुरना । नवना । जैसे, आदमी का सिर या कमर झुकना ।

मुहा०—झुक झुक पड़ना=नशे या नींद आदि के कारण किसी मनुष्य का सीधा या अच्छी तरह खड़ा या बैठा न रह सकना । उ०—अमिय हलाहल मदभरे सेत स्याम रतनार । जियत मरत झुकि झुकि परत जेहि चितवत एक बार ।—(शब्द०) ।

२. किसी पदार्थ के एक या दोनों सिरों का किसी ओर प्रवृत्त होना । जैसे, छड़ी का झुकना । ३. किसी खड़े या सीधे पदार्थ का किसी ओर प्रवृत्त होना । जैसे, खंभे या तख्ते का झुकना । ४. प्रवृत्त होना । दत्तचित्त होना । रुजू होना । मुखातिब होना । ५. किसी चीज को लेने के लिये आगे बढ़ना । ६. नम्र होना । विनीत होना । अवसर पड़ने पर अभिमान या उग्रता न दिखलाना ।

संयो० क्रि०—जाना ।—पड़ना ।

७. क्रुद्ध होना । रिसाना । उ०—(क) सुनि प्रिय वचन मलिन मनु जानी । झुकी रानि अवरहु अरगानी ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) अब झूठो अभिमान करति सिय झुकति हमारे ताईं । सुख ही रहसि मिली रावण को अपने सहज सुभाई ।—सूर (शब्द०) । (ग) अनत बसे निसि की रिसनि उर बर रह्यो बिसेखि । तऊ लाज आई झुकत खरे लजौहैं देखि ।—बिहारी (शब्द०) । † ८. शरीरांत होना । मरना ।

झुकमुख—संज्ञा पुं० [हिं० झुकना+मुख] प्रातःकाल या संध्या का वह समय जब कि कोई व्यक्ति स्पष्ट नहीं पहचाना जाता । ऐसा अँधेरा समय जब कि किसी व्यक्ति या पदार्थ को पहचानने में कठिनता हो । झुटपुटा ।

झुकरना†—क्रि० अ० [अनु०] झुँझलाना । खिजलाना ।

झुकराना†—क्रि० अ० [हिं० झोंका] झोंका खाना । उ०—रुक्यों साँकरे कुंज मग करतु झाँझि झुकरात । मंद मंद मारुत तुरंग खूँदत आवत जात ।—बिहारी (शब्द०) ।

झुकवाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० झुकवाना] १. झुकवाने की क्रिया या भाव । २. झुकवाने की मजदूरी ।

झुकवाना—क्रि० स० [हिं० झुकना] झुकाने का काम दूसरे से कराना । किसी को झुकाने में प्रवृत्त करना ।

झुकाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० झुकना] १. झुकाने की क्रिया या भाव । २. झुकाने की मजदूरी ।

झुकाना—क्रि० स० [हिं० झुकना] १. किसी खड़ी चीज के ऊपरी भाग को टेढ़ा करके नीचे की ओर लाना । निहुराना । नवाना । जैसे, पेड़ की डाल झुकाना । २. किसी पदार्थ के एक या दोनों सिरों को किसी ओर प्रवृत्त करना । जैसे, बेंत झुकाना, छड़ झुकाना । ३. किसी खड़े या सीधे पदार्थ को किसी ओर प्रवृत्त करना । ४. प्रवृत्त करना । रुजू करना । ५. नम्र करना । विनीत बनाना । ६. अपने अनुकूल करना । अपने पक्ष में करना ।

झुकामुकी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'झुकामुखी' । उ०—सखि बिखर गई हैं कलियाँ । कहाँ गया प्रिय झुकामुकी में करके वे रंगरलियाँ ।—साकेत, पृ० २६७ ।

झुकामुखी⑨—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'झुकमुख' । उ०—आनि झुकामुखी भेष छपाय कै गागरी ले घर तें निकरी ती ।—ठाकुर (शब्द०) ।

झुकार†—संज्ञा पुं० [हिं० झकोरा] हवा का झोंका । झकोरा ।

झुकाव—संज्ञा पुं० [हिं० झुकना] १. किसी ओर लटकने, प्रवृत्त होने या झुकने की क्रिया । २ झुकने का भाव । ३. ढाल । उतार । ४. प्रवृत्ति । मन का किसी ओर लगना ।

झुकावट—संज्ञा स्त्री० [हिं० झुकना+आवट (प्रत्य०)] १. झुकने या नम्र होने की क्रिया या भाव । २. प्रवृत्ति । चाह । झुकाव ।

झुगिया⑨†—संज्ञा स्त्री० [? या देश०] झोपड़ी । कुटिया । उ०—हरि तुम क्यो न हमारे आए । ताके झुगिया मैं तुम बैठे, कौन बड़प्पन पायो । जाति पाँति कुलहू तें न्यारो, है दासी को जायो । —सूर०, १।२४४ ।

झुग्गी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० झुगिया] दे० 'झुगिया' ।

झुझकाना, झुझकावना⑨—क्रि० स० [सं० युद्ध, प्रा० जुज्झ; हिं० झुँझलाना] उत्तेजित करना । आगे बढ़ाना । भिड़ा देना । संघर्ष कराना ।

झुझाऊ⑨—वि० [जुझाऊ] दे० 'जुझाऊ' । उ०—बाजत झुझाऊ सहनाई सिंधु राग पुनि सुनत ही कादर की छूटि जात कल हैं । —सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० ४८४ ।

झुझार⑨†—वि० [हिं० झुझ+आर (प्रत्य०)] दे० 'जुझार' । उ०—गुजरात देश मित्तर हवार । बालुका राइ चालुक झुझार ।—पृ० रा०, १।४३० ।

झुट⑨‡—संज्ञा पुं० [हिं० झूठ] दे० 'झूठ' । उ०—देख सखि झुट कमान । कारन किछुओ बुझइ नाहि पारिए तब काहे रोखल कान । —विद्यापति, पृ० ४२६ ।

झुटपुट—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'झुटपुटा' । उ०—अरे, उस धूमिल विजन में ? स्वर मेरा था चिकना ही, अब घना हो चला झुटपुट ।—हरी घास०, पृ० ३२ ।

झुटपुटा—संज्ञा पुं० [अनु०] कुछ अँधेरा और कुछ उजेला समय । ऐसा समय जब कि कुछ अंधकार और कुछ प्रकाश हो । झुकमुख ।

झुटलाना—क्रि० स० [हिं० झूठ] दे० 'झुठलाना' ।

झुटालना—क्रि० स० [हिं० जूठा अथवा सं० अध्यस्त>अज्झट्ट> अज्झुट्ट>झूठ] जूठा करना । जुठारना ।

झुटुंग—वि० [हिं० झोंटा] जिसके खड़े खड़े और बिखरे हुए बाल

हों । झोंटेवाला । जटावाला । दे॰ 'झोटंग' । उ॰—जोगिनी झुट्टंग झुंड झुंड बनी तापसी सी तीर तीर बैठी सो समरसरि कोरि कै ।—तुलसी ग्रं॰, पृ॰ १६५ ।

झुट्ट(पु)†—संज्ञा पुं॰ [सं॰ यूथ, हिं॰ जुट्ट] गिरोह । झुंड । उ॰—छोड़ौं घरि छुट्टं कैसों जुट्टे झट्टक झुट्टे भूष लुट्टे ।—सूजान॰, पृ॰ ११ ।

झुट्ठा—वि॰ [हिं॰ झूठा] दे॰ 'झूठा' ।

झुठकाना—क्रि॰स॰ [हिं॰ झूठ] १. झूठी बात कहकर अथवा किसी प्रकार (विशेषतः बच्चों आदि को) धोखा देना । २. दे॰ 'झुठलाना' ।

झुठलाना—क्रि॰ स॰ [हिं॰ झूठ + लाना (प्रत्य॰)] १. झूठा ठहराना । झूठा प्रमाणित करना । झूठा बनाना । २. झूठ कहकर धोखा देना । झुठकाना ।

झुठाई(पु)—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ झूठ + आई (प्रत्य॰)] झूठापन । असत्यता । झूठ का भाव । उ॰—(क) जानि परत नहिं साँच झुठाई बैन बनावत है भुरैया । सूर (शब्द॰) । (ख) धामि मयत मन व्याधि बिकल तन बचन मलीन झुठाई ।—तुलसी (शब्द॰) ।

झुठाना—क्रि॰ स॰ [हिं॰ झूठ + आना (प्रत्य॰)] झूठा ठहराना । झूठा साबित करना । झुठलाना ।

झुठामुठी(पु)—क्रि॰ वि॰ [हिं॰ झूठ] दे॰ 'झूठामूठी' ।

झुठालना—क्रि॰ स॰ [हिं॰] १. दे॰ 'झुठलाना' । २. दे॰ 'जुठारना' ।

झुन—संज्ञा स्त्री॰ [देश॰] १. एक प्रकार की चिड़िया । २. दे॰ 'झुनझुना' ।

झुनक(पु)—संज्ञा पुं॰ [अनु॰] नूपुर का शब्द ।

झुनकना(पु)—क्रि॰ अ॰ [अनु॰] झुन झुन शब्द करना । झुन झुन बोलना या बजना ।

झुनकना(पु)—संज्ञा पुं॰ [अनु॰] दे॰ 'झुनझुना' ।

झुनका(पु)‡—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] १. धोखा । छल । २. दे॰ 'झुनझुना' उ॰—दुना मोर झुनका झुन झुन बाजे, ताहाँ दीपक ले बारी ।—सं॰ दरिया, पृ॰ १०६ ।

झुनकार[1](पु)‡—वि॰ [हिं॰ झीना] [स्त्री॰ झुनकारी] झिंझरा । पतला । झीना । महीन । बारीक । उ॰—अँगिया झुनकारी जरी सितआरी की सेदकनी कुच द्वै पर लौं ।—(शब्द॰) ।

झुनकार[2](पु)—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ झनकार] दे॰ 'झंकार' ।

झुनझुन—संज्ञा पुं॰ [अनु॰] झुन झुन शब्द जो नूपुर आदि के बजने से होता है । उ॰—अरुन तरनि नख ज्योति जगमगित झुन झुन करत पाय पैजनियाँ ।—सूर (शब्द॰) ।

झुनझुना—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ झुन झुन से अनु॰] [स्त्री॰ अल्पा॰ झुनझुनी] बच्चों के खेलने का एक प्रकार का खिलौना जो धातु, काठ, ताड़ के पत्तों या कागज आदि से बनाया जाता है । घुनघुना । उ॰—कबहुँक ले झुनझुना बजावति मीठी बतियन बोलै ।—भारतेंदु ग्रं॰, भा॰ २, पृ॰ ४६७ ।

विशेष—यह कई आकार और प्रकार का होता है, पर साधारणतः इसमें पकड़ने के लिये एक डंडी होती है जिसके एक या दोनों सिरों पर पोला गोल लट्टू होता है । इसी लट्टू में कंकड़ या किसी चीज के छोटे छोटे दाने भरे होते हैं जिनके कारण उसे हिलाने या बजाने से झुन झुन शब्द होता है ।

झुनझुनाना[1]—क्रि॰ अ॰ [अनु॰] झुन झुन शब्द होना । घुँघरू के जैसा बोलना ।

झुनझुनाना[2]—क्रि॰ स॰ झुन झुन शब्द उत्पन्न करना । झुन झुन शब्द निकालना ।

झुनझुनियाँ[1]†—संज्ञा स्त्री॰ [अनु॰] सनई का पौधा ।

झुनझुनियाँ[2]—संज्ञा स्त्री॰ [अनु॰] १. पैर में पहनने का कोई आभूषण जो झुन झुन शब्द करे । २. बेड़ी । निगड़ ।

क्रि॰ प्र॰—पहनना । —पहनाना ।

झुनझुनी—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ झुनझुनाना] हाथ या पैर के बहुत देर तक एक स्थिति में मुड़े रहने के कारण उसमें उत्पन्न एक प्रकार की सनसनाहट या शोथ । २ दे॰ 'झुनझुना' ।

झुनी—संज्ञा स्त्री॰ [देश॰] जलाने की पतली लकड़ी ।

झुनुक(पु)—संज्ञा पुं॰ [अनु॰] झुन झुन बजने की आवाज । उ॰—झुनुक झुनुक यह गवनि की चालनि । मधुर ते मधुर सुतुतरी बोलनि ।—नंद ग्रं॰, पृ॰ २४५ ।

झुन्नी†—संज्ञा स्त्री॰ [अनु॰] दे॰ 'झुनझुनी'—१ । उ॰—पावों में झुन्नी चढ़ गई ।—झाँसी, पृ॰ १३० ।

झुपझुपी—संज्ञा स्त्री॰ [अनु॰] दे॰ 'झुनझुनी' ।

झुंपरी†—संज्ञा स्त्री॰ [देशी झुंपा] दे॰ 'झोंपड़ी' । उ॰—साधुन की झुपरी भली ना साकट को गाँव । चंदन की कुटकी भली ना बबूल बनराव । कबीर (शब्द॰) ।

झुप्पा—संज्ञा पुं॰ [अनु॰] १. दे॰ 'गुच्छा' । २ दे॰ 'झुंड' ।

झुबझुबी—संज्ञा स्त्री॰ [देश॰] एक प्रकार का गहना जो देहाती स्त्रियाँ कान में पहनती हैं ।

झुमुक—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] दे॰ 'झूमर' । उ॰—पाँच रागिनी झुमक पचीसो, छठएँ परम नागरिया ।—धरम॰, पृ॰ ३४ ।

झुमका—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ झूमना] १. कान में पहनने का एक प्रकार का झूलनवाला गहना जो छोटी गोल कटोरी के आकार का होता है । उ॰—सिर पर है चंदवा शीश फूल, कानों में झुमके रहे झूल ।—ग्राम्या, पृ॰ ४० ।

विशेष—इस कटोरी का मुँह नीचे की ओर होता है और इसकी पेंदी में एक कुंदा लगा रहता है जिसके सहारे यह कान में नीचे की ओर लटकता रहता है । इसके किनारे पर सोने के तार में गुथे हुए मोतियों आदि की झालर बनी होती है । यह सोने, चाँदी या पत्थर आदि का और सादा तथा जड़ाऊ भी होता है । यह अकेला भी कान में पहना जाता है और करनफूल के नीचे लटकाकर भी ।

२. एक प्रकार का पौधा जिसमें झुमके के आकार के फूल लगते हैं । ३. इस पौधे का फूल ।

झुमड़ना(पु)—क्रि॰ अ॰ [हिं॰ झूमना] दे॰ 'घुमड़ना' । उ॰—रहे

झुमड़ि घन गगन घन भौं तम तोम बिसेख। निसि बासर समुझ न परत प्रफुलित पंकज पेख।—स० सप्तक, पृ० ३६३।

झुमना¹—वि० [हिं० झूमना] [वि० स्त्री० झुमनी] झूमनेवाला। हिलनेवाला।

झुमना²—संज्ञा पुं० [देश०] वह बैल जो अपने खूँटे पर बँधा हुआ अपने पिछले पैर उठा उठाकर झूमा करे। यह एक कुलक्षण है।

झुमरनⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं० झूमना] झूमने का भाव। लहराने का कार्य। उ०—बेनी सिथिल ललित कच झुमरन लुलित पीठ पर सोहै।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ५३२।

झुमरा—संज्ञा पुं० [देश०] लुहारों का एक प्रकार का घन या बहुत भारी हथौड़ा जिसका व्यवहार खान में से लोहा निकालने में होता है।

झुमरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. काठ की मुँगरी। २. गच पीटने का औजार। पिटना।

झुमाऊ—वि० [हिं० झूमना] झूमनेवाला। जो झूमता है।

झुमाना—क्रि० स० [हिं० झूमना का स० रूप] किसी को झूमने में प्रवृत्त करना। किसी चीज के ऊपरी भाग को चारों ओर धीरे धीरे हिलाना।

झुमिरनाⓅ—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'झूमना'।

झुरकुट—वि० [अनु०] १. मुरझाया हुआ। सूखा हुआ। २. दुबला। कृश।

झुरकुटिया¹—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पक्का लोहा जिसे खेड़ी कहते हैं।

विशेष—दे० 'खेड़ी'-१।

झुरकुटिया²—वि० [अनु०] दुबला पतला। कृश।

झुरकुन†—संज्ञा पुं० [हिं० झर + कण] किसी चीज के बहुत छोटे छोटे टुकड़े। चूर।

झुरझुरी—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. कँपकँपी जो जूड़ी के पहले आती है। २. कँपकँपी। कंपन।

झुरना—क्रि० अ० [हिं० धूप या चूर] १. सूखना। शुष्क होना। दे० 'झुराना'। उ०—झाड़ भई झुरि किंगड़ी भई सब ताँति। रोंव रोंव तन धुन उठै कहौं बिथा केहि भाँति।—जायसी (शब्द०)। २. बहुत अधिक दुःखी होना या शोक करना। उ०—(क) साँझ भई झुरि झुरि पथ हेरो। कौन सो घरी करौं पिय फेरो।—जायसी (शब्द०)। (ख) इनका बोझ आपके सिर है; आप इनकी खबर न लेंगे तो संसार में इनका कहीं पता न लगेगा। ये बेचारे यों ही झुर झुर कर मर जायँगे।—श्रीनिवासदास (शब्द०)। ३. बहुत अधिक चिंता, रोग या परिश्रम आदि के कारण दुर्बल होना। घुलना। उ०—(क) ये दोऊ मेरे गाइ चरैया। चाखि परत नहिं साँच भुठाई चारत धेनु झुरैया। सूरदास जसुदा मैं चेरी कहि कहि लेति बलैया।—सूर०, १०।५१३। (ख) सूनो के परम पद, ऊनो के अनंत मद नूनो के नदीस नद इंदिरा झुरै परी।—देव (शब्द०)।

संयो० क्रि०—जाना।—पड़ना (क्व०)।—Ⓟपरना। उ०—सिद्धिन की सिद्धि दिगपालन की रिद्धि वृद्धि बेधा की समृद्धि सुरसदन झुरै परीं।—रघुराज (शब्द०)।

झुरमुट—संज्ञा पुं० [सं० झुट (=झाड़ी)] १. कई झाड़ों या पत्रों आदि का ऐसा समूह जिससे कोई स्थान ढक जाय। एक ही में मिले हुए या पास पास कई झाड़ या क्षुप। उ०—आनँदघन बिनोदभरि झुरमुट नखें बनै न परत भाख्यो।—घनानंद, पृ० ४४५। २. बहुत से लोगों का समूह। गिरोह। उ०—बन इक मँह झुरमुट होइ बीता। दर मँह चहे रहैं सो जीता।—जायसी (शब्द०)। ३. चादर या ओढ़ने आदि से शरीर को चारों ओर से छिपाने या ढक लेने की क्रिया।

मुहा०—झुरमुट मारना = चादर या ओढ़ने आदि से सारा शरीर इस प्रकार ढक लेना कि जिसमें जल्दी कोई पहचान न सके।

झुरवन†—संज्ञा स्त्री० [हिं० झुरना + वन (प्रत्य०)] वह अंश जो किसी चीज के सूखने के कारण उसमें से निकल जाता है।

झुरवनाⓅ—क्रि० अ० [हिं० झुरना या झूरना] दुःखी होना। चिंता से क्षीण होना। दे० 'झुरना'। उ०—मन मन झुरवै दुलहिनि काहु कीन्ह करतार हो।—कबीर श०' पृ० २।

झुरवाना—क्रि० स० [हिं० झुरना] १. सुखाने का काम दूसरे से से कराना। दूसरे को सुखाने में प्रवृत्त करना। † २. झुराना। उ०—कोउ रंचक झुरवावहिं खोली झारहिं पोछहिं।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० २४।

झुरसना—क्रि० अ० क्रि० स० [हिं० झुलसना] दे० 'झुलसना'। उ०—आनंदघन सों उघरि मिलौंगी झुरसति बिरहा झर मैं।—घनानंद, पृ० ५३३।

झुरसाना—क्रि० स० [हिं० झुलसाना] दे० 'झुलसाना'।

झुरहुरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० झुरझुरी] दे० 'झुरझुरी'।

झुराना¹†—क्रि० स० [हिं० झुरना] सुखाना। शुष्क करना।

झुराना²†—क्रि० अ० १. सूखना। २ दुःख या भय से घबरा जाना। दुःख से स्तब्ध होना। उ०—यह बानी सुनि ग्वारि झुरानी। मीन भए मानों बिन पानी।—सूर (शब्द०)। ३. दुबला होना। क्षीण होना। दे० 'झुरना'।

संयो० क्रि०—जाना।

झुरावन—संज्ञा स्त्री० [हिं० झुरना + वन (प्रत्य०)] वह अंश जो किसी चीज को सुखाने के कारण उसमें से निकल जाता है। झुरवन।

झुरावनाⓅ—क्रि० स० [हिं० झुराना] दे० 'झुराना'। उ०—मंजन के बिन न्हायके अंग अंगोछि कै बार झुरावन लागी।—मति०, पृ० ३८३।

झुर्री—संज्ञा स्त्री० [हिं० झुरना] किसी चीज की सतह पर लंबी रेखा के रूप में उभरा या धँसा हुआ चिह्न जो उस चीज के सूखने, मुड़ने या पुरानी हो जाने आदि के कारण पड़ जाता है। सिकुड़न। सिलवट। शिकन। जैसे, आम पर की झुर्री, चेहरे पर की झुर्री।

क्रि० प्र०—पड़ना।

विशेष—बहुधा इसका प्रयोग बहुवचन में भी होता है। जैसे—अब वे बहुत बुड्ढे हो गए, उनके सारे शरीर मे झुर्रियाँ पड़ गई हैं।

झुलकनाⓅ†—क्रि० अ० [हिं० झुलना] दे० 'झूलना'। उ०—सुरह सुगंधी बास मोती कान झुलकते। मुती मंदिर खास जाणूं डोलह जागती।—ढोला०, दू० ५०७।

झुलका —संज्ञा पुं० [अनु०] दे० 'झुनझुना'।

झुलना†¹—संज्ञा पुं० [हिं० झूलना] स्त्रियों के पहनने का एक प्रकार का ढीला ढाला कुरता। झुल्ला। झूला।

झुलना²—वि० [हिं० झूलना] झूलनेवाला। जो झूलता हो।

झूलना³—संज्ञा पुं० [सं० दोलन या दोला] दे० 'झूला'।

झुलनिया†—संज्ञा स्त्री० [हिं० झुलनी + इया (प्रत्य०)] दे० 'झुलनी'। उ०—झुलनियावाली हँसि कै जियरा लै गैली हमार।—प्रेमघन०, भा०२, पृ० ३९३।

झुलनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० झूलना] १. सोने आदि के तार में गुथा हुआ छोटे छोटे मोतियों का गुच्छा जिसे स्त्रियाँ शोभा के लिये नाक की नथ में लटका लेती हैं अथवा बिना नथ के एक आभूषण की तरह पहनती हैं। २. दे० 'झूमर'।

झुलनीचोर—संज्ञा पुं० [देश०] धान का बोझ।—(कहारों की परि०)।

झुलमुला—वि० [अनु०] दे० 'झिलमिल'। उ०—कानन कनिक पत्र चक्र चमकत चारु ध्वजा झुपमुप झलकति अति सुखदाइ।—केशव (शब्द०)।

झुलमुला†—वि० [अनु०] [वि० स्त्री० झुलमुली] दे० 'झिलमिल'। उ०—झीन पट मे झुलमुली झलकति ओप अपार। सुरतरु की मनु सिंधु मैं लसति सपल्लव डार।—बिहारी (शब्द०)।

झुलवनाⓅ—क्रि० स० [हिं० झुलाना] दे० 'झुलाना'। उ०—निकट रहति जद्यपि श्री ललना। कब धौं कब झुलवै पलना।—नंद० ग्रं०, पृ० २५०।

झुलवा —संज्ञा पुं० [देश०] १. एक प्रकार की कपास जो बहराइच, बलिया, गाजीपुर और गोंडा आदि में उत्पन्न होती है। यह अच्छी जाति की है पर कम निकलती है। यह जेठ में तैयार होती है, इसलिये इसे जेठवा भी कहते हैं। २. दे० 'झूला'।

झुलवाना—क्रि० स० [हिं० झूलना] झुलाने का काम दूसरे से कराना। दूसरे को झुलाने मे प्रवृत्त करना।

झुलसना¹—क्रि० अ० [सं० ज्वल + अंश] १. किसी पदार्थ के ऊपरी भाग या तल का इस प्रकार अंशतः जल जाना कि उसका रंग काला पड़ जाय। किसी पदार्थ के ऊपरी भाग का अधजला होना। झौंसना। जैसे,—यह लड़का अंगीठी पर गिर पड़ा था इसी से इसका सारा हाथ झुलस गया। २. बहुत अधिक गर्मी पड़ने के कारण किसी चीज के ऊपरी भाग का सूखकर कुछ काला पड़ जाना। जैसे,—गरमी के दिनों मे कोमल पौधों की पत्तियाँ झुलस जाती हैं।

संयो० क्रि०—जाना।

झुलसना²—क्रि० स० १. किसी पदार्थ के ऊपरी भाग या तल को इस प्रकार अंशतः जलाना कि उसका रंग काला पड़ जाय और तल खराब हो जाय। झौंसना। जैसे—उन्होंने जानबूझ कर अपना हाथ झुलस लिया। २. अधिक गरमी से किसी पदार्थ के ऊपरी भाग को सुखाकर अधजला कर देना। जैसे,—आज दोपहर की धूप ने सारा शरीर झुलसा दिया।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।

मुहा०—मुँह झुलसना = देखो 'मुँह' के मुहावरे।

झुलसवाना—क्रि० स० [हिं० झुलसना का प्रे० रूप] झुलसने का काम दूसरे से कराना। दूसरे को झुलसने मे प्रवृत्त करना।

झुलसाना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'झुलसना'। २. दे० 'झुलसवाना'।

झुलाना—क्रि० स० [हिं० झूलना] हिंडोले या झूले में बैठाकर हिलाना। किसी को झूलने में प्रवृत्त करना। उ०—रहो रहो नाहीं नाहीं अब ना झुलाओ लाल बाबा की सौं मेरो ये जुगल जंघ थहरात।—तोष (शब्द०)। २. अधर मे लटकाकर या टाँगकर इधर उधर हिलाना। बार बार झोंका देकर हिलाना। ३. कोई चीज देने या कोई काम करने के लिये बहुत अधिक समय तक आसरे मे रखना। अनिश्चित या अनिर्णीत अवस्था में रखना। कुछ निष्पत्ति या निपटेरा न करना। जैसे—इस कारीगर को कोई चीज मत दो, यह महीनों झुलाता है।

झुलावनाⓅ†—क्रि० स० [हिं० झुलाना] दे० 'झुलाना' उ०—लेइ उछंग कबहुँक हलरावइ। कबहुँ पालने घालि झुलावइ।—तुलसी (शब्द०)।

झुलावनिⓅ†—संज्ञा स्त्री० [हिं० झुलाना] झुलाने का भाव या क्रिया।

झुलुआ‡—संज्ञा पुं० [हिं० झूला] दे० 'झूला'।

झुलौवाⓅ¹—संज्ञा पुं० [हिं० झूला (= कुरता)] जनाना कुरता।

झुलौवाⓅ†²—वि० [हिं० झूलना] जो झूलता या झुलाया जा सकता हो। झूलने या झूल सकनेवाला।

झुलौवा‡³—संज्ञा पुं० झूलना। पालना। झूला।

झुल्ला‡—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'झूला'।

झुहिरना†—क्रि० अ० [हिं० ?] लदना। लादा जाना। उ०—रतन पदारथ जग जो बखाने। घोरन मँह देखे झुहिराने।—जायसी (शब्द०)।

झुहिराना†—क्रि० स० [हिं० ?] लादना। बोझ रखना।

झूँकⓅ¹—संज्ञा पुं० [हिं० झोंक] दे० 'झोंका'। उ०—(क) मुहमद गुरु जो विधि लिखी का कोई तेहि फूँक। जेहि के भार जग थिर रहा उड़ै न पवन के झूँक।—जायसी (शब्द०)। (ख) त्यों पद्माकर पौन के झूँकन नवेलिया झूकन को सहि लैहैं।—पद्माकर (शब्द०)।

झूँकⓅ†²—संज्ञा स्त्री० दे० 'झोंक'। उ०—किंकिनी की झमकानि झुलावनि झूँकनि सों झुकि जाय कटी की।—देव (शब्द०)।

झूँकनाⓅ†—क्रि० स० [हिं०] १. दे० 'झोंकना'। २. दे० 'झखना'।

झूँका(पु)†—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] दे॰ 'झोंका'। उ॰—यह गढ़ छार होइ एक झूँके।—जायसी (शब्द॰)।

झूँखना(पु)†—क्रि॰ अ॰ [हिं॰] 'झोंखना'। उ॰—अवधि गनत इकटक मग जोवत तब इतनी नहीं झूँखी।—सूर (शब्द॰)।

झूँझल—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰] दे॰ 'झुँझलाहट'।

झूँझा†—वि॰ [देश॰] [वि॰ स्त्री॰ झूँझी] इधर की उधर लगानेवाला। चुगलखोर। निंदक।

झूँटा¹—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ झोंटा] पेंग। दे॰ 'झोंटा'।

झूँटा²—वि॰ [हिं॰ झूठा] दे॰ 'झूठा'।

झूँठा—वि॰, संज्ञा पुं॰ [हिं॰ झूठ] दे॰ 'झूठ'।

झूँठा(पु)†—वि॰ [हिं॰ झूँठ, झूठा झूठो] दे॰ 'झूठी'। उ॰—अंजन अधर धरें, पीक लीक सोहै आछी काहे को लजात झूँठी सौंह खात।—नंद॰ ग्रं॰, पृ॰ ३५७।

झूँठी—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ जुट्टी] वह डंठल जो नील के सड़ाने पर बच रहता है।

झूँपड़ा(पु)†—संज्ञा पुं॰ [देशी झुंपड़ा] दे॰ 'झोपड़ा'। उ॰—सुणि करहा ढोलउ कहइ साची आखे जोइ। अग्गर जेहा झूपड़ा तउ आसंगे मोइ।—ढोला॰, दू॰ ३१४।

झूँबणहार(पु)†—वि॰ स्त्री॰ [?] जानेवाली। उ॰—हिव सुंमर हेरा हुवइ, मारू झूबणहार। पिंगल बोलावा दिया, सोहड़ सो असवार।—ढोला॰, दू॰ २८७।

झूँबना(पु)†—क्रि॰ अ॰ [प्रा॰ झंप] दे॰ 'झूमना'। उ॰—ढोलउ हल्लाणउ करइ, धण हल्लिवा न देइ। झबझब झूँबइ पागड़इ, डबडब नयन भरेइ।—ढोला॰, दू॰ ३०४।

झूँमना(पु)—क्रि॰ अ॰ [हिं॰] दे॰ 'झूमना'। उ॰—झूँमत प्यारी सारी पहिरें, चलत सु कटि लटकाइ।—नंद ग्रं॰, पृ॰ ३८९।

झूँसना¹†—क्रि॰ अ॰, क्रि॰ स॰ [हिं॰ झोंसना] दे॰ 'झुलसना'।

झूँसना²—क्रि॰ स॰ [अनु॰] किसी को बहकाकर या दमपट्टी देकर उसका धन आदि लेना। झँसना।

झूँसा—संज्ञा पुं॰ [देश॰] एक प्रकार की घास।

झूकटी—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ झूट + काँटा] छोटी झाड़ी। उ॰—(क) वह झूकटी तिरस्कृत प्रकृती को अनुसरती है।—श्रीधर पाठक (शब्द॰)। (ख) जिमि बसंत नव फूल झूकटी तले लखाई।—श्रीधर पाठक (शब्द॰)।

झूकना(पु)†—क्रि॰ अ॰ [हिं॰ झूँखना] दे॰ 'झोंखना'। उ॰—(क) जाको दीनानाथ निवाजें। भवसागर में कबहुँ न झूकै अभय निसाने बाजे।—सूर॰, १।३६। (ख) पावस रितु बरसै जब मेहा। झुकति मरौं हौं सुमिरि सनेहा।—हिं॰ प्रेमगाथा॰, पृ॰ २२०।

झूखना(पु)†—क्रि॰ अ॰ [हिं॰] दे॰ 'झींखना'।

झूझ(पु)—संज्ञा पुं॰ [सं॰ युद्ध, प्रा॰ झुज्झ] दे॰ 'युद्ध'। उ॰—परे खंड खंडं निजं सामि अग्गं। न को हारि मन्नै न को झूझ भग्गं।—पृ॰ रा॰, ६।१५३।

झूझना—क्रि॰ अ॰ [हिं॰ झूझ] दे॰ 'जूझना'। उ॰—साहब को आवइ नहीं सो बाट न बूझी रे। साईं सो सनमुख रहे इस मन से झूझी रे।—दादू (शब्द॰)।

झूझाउ(पु)—वि॰ [सं॰ युद्ध, प्रा॰ झुज्झ + हिं॰ आउ (प्रत्य॰)] दे॰ 'जुझाऊ'। उ॰—बाजत झूझाउ सिंधू राग सहनाई पुनि सुनत ही कादर की छुटि जात कल है।—सुंदर॰ ग्रं॰ भा॰ १, पृ॰ ४८५।

झूझार—वि॰ [हिं॰ झूझ + आर (प्रत्य॰)] [वि॰ स्त्री॰ झूझारि(पु)] दे॰ 'जुझार'। उ—पंच महारिषि तहाँ कुटवाल। तिनकी तृया महा झूझारि।—प्राण॰, पृ॰ १६७।

झूट—संज्ञा पुं॰, वि॰ [देशी झुट्ठ] दे॰ 'झूठ'।

झूठ¹—संज्ञा पुं॰ [सं॰ अयुक्त, प्रा॰ अजुत्त अथवा देशी झुट्ठ] वह कथन जो वास्तविक स्थिति के विपरीत हो। वह बात जो यथार्थ न हो। सच का उलटा।

क्रि॰ प्र॰—कहना।—बोलना।

मुहा॰—झूठ सच कहना = निंदा करना। शिकायत करना। झूठ का पुल बाँधना = लगातार एक के बाद एक झूठ बोलते जाना। झूठ सच जोड़ना = दे॰ 'झूठ सच कहना'।

यौ॰—झूठ का पुतला = भारी झूठा। एकदम असत्य बातें कहनेवाला। झूठमूठ। झूठसच।

झूठ²—वि॰ [हिं॰] दे॰ 'झूठा'।—(ब्व॰)। उ॰—सुख संपति दारा सुत हय गय झूठ सबै समुदाइ। छन भंगुर यह सबै स्याम बिनु अंत नाहिं सँग जाइ।—सूर॰, १। ३१७।

झूठ³†—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ जूठ] दे॰ 'जूठन'।

झूठन—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ जूठन] दे॰ 'जूठन'।

झूठमूठ—क्रि॰ वि॰ [हिं॰ झूठ + अनु॰ मूठ] बिना किसी वास्तविक आधार के। झूठे ही। यों ही। व्यर्थ। जैसे,—उन्होंने झूठमूठ एक बात बनाकर कह दी।

झूठसच—वि॰ [हिं॰] ठीक बेठीक। जिसमें सत्य और असत्य का मिश्रण हो।

झूठा¹—वि॰ [हिं॰ झूठ] १. जो वास्तविक स्थिति के विपरीत हो। जो झूठ हो। जो सत्य न हो। मिथ्या। असत्य। जैसे, झूठी बात, झूठा अभियोग। २. जो झूठ बोलता हो। झूठ बोलनेवाला। मिथ्यावादी। जैसे,—ऐसे झूठे आदमियों का क्या विश्वास।

क्रि॰ प्र॰—ठहरना।—निकलना।—बनना।

३. जो सच्चा या असली न हो। जो केवल रूप और रंग आदि में असली चीज के समान हो पर गुण आदि में नहीं। जो केवल दिखौआ और बनावटी हो या किसी असली चीज के स्थान पर यों ही काम देने, सुबीता उत्पन्न करने अथवा किसी को धोखे में डालने के लिये बनाया गया हो। नकली। जैसे—झूठे जवाहिरात, झूठा गोटा पट्ठा, झूठी घड़ी, झूठा मसाला या काम (जरदोजी का), झूठा दस्तावेज, झूठा कागज।

विशेष—इस अर्थ में 'झूठा' शब्द का प्रयोग कुछ विशिष्ट शब्दों के साथ ही हो है ताजिनमें से कुछ ऊपर उदाहरण में दिए गए हैं।

४. जो (पुरजे या अंग आदि) बिगड़ जाने के कारण ठीक ठीक काम न दे सके। जैसे, ताले या खटके आदि का झूठा पड़ जाना। हाथ या पैर का झूठा पड़ना।

क्रि० प्र०—पड़ना।

झूठा²—वि० [हिं० जूठा] दे० 'जूठा'।

झूठामूठी—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'झूठमूठ'।

झूठों—क्रि० वि० [हिं० झूठा] १. झूठमूठ। यों ही। २. नाम मात्र के लिये। कहने भर को। जैसे,—वे झूठों भी हमें बुलाने के लिये न आए। उ०—झूठों हि दोस लगावें मोहि राजा।—गीत (शब्द०)।

झूणि—संज्ञा पुं० [सं०] १ एक प्रकार की सुपारी। २ एक प्रकार का असगुन।

झूना†—वि० [सं० जीर्ण, प्रा० जुण्ण, गुज० जून] दे० 'झीना'। उ०—(क) तब सों दया मनो दुसह दुख दारिद को सावरी को सोइबो ओढ़बो झूने गम को।—तुलसी (शब्द०)। (ख) तेहि बस ढहे झने सुमीकर परम शीतल तृण परे।—रघुराज (शब्द०)।

झूम—संज्ञा स्त्री० [हिं० झूमना, तुल० बंग० 'घूम'] १. झूमने की क्रिया या भाव। ३. ऊँघ। उँघाई। झपकी।—(क्व०)।

झूमक¹—संज्ञा पुं० [हिं० झूमना] १. एक प्रकार का गीत जिसे होली के दिनों में देहात की स्त्रियाँ झूम झूमकर एक घेरे में नाचती हुई गाती हैं। झूमर। झूमकरा। उ०—दिए छरी बेत गोंछ विभाग। झाँझरि झूमक कहे सरस राग।—तुलसी (शब्द०)। २ इस गीत के साथ होनेवाला नृत्य। ३. एक प्रकार का पूरबी गीत जो विशेषतः विवाह आदि मंगल अवसरों पर गाया जाता है। झूमर। उ०—करहि मनोरंग झूमक होई। फर औ फूल लिये सब कोई।—जायसी (शब्द०)। ४. गुच्छा। स्तबक। ५. चाँदी सोने आदि के छोटे छोटे झुमकों या मोतियों आदि के गुच्छों की वह कतार जो साड़ी या ओढ़नी आदि के उस भाग में लगी रहती है जो माथे के ठीक ऊपर पड़ता है। इसका व्यवहार पूरब में अधिक होता है। ६. दे० 'झुमका'।

झूमकसाड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० झूमक + साड़ी] १. वह साड़ी जिसके सिर पर रहनेवाले भाग में झूमके या सोने मोती आदि के गुच्छे टके हों। २. लहँगे पर की वह ओढ़नी जिसमें सिर के पल्ले पर सोने के पत्ते या मोती के गुच्छे टके हों।

झूमकसारी‡—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'झूमकसाड़ी'। उ०—(क) लाल टका अरु झूमकसारी देहु दाइ को नेग।—सूर (शब्द०)। (ख) सुनि उमगी नारी प्रफुलित मन पहिरे झूमकसारी।—छीत०, पृ० ६।

झूमका‡—संज्ञा पुं० [हिं०] १. दे० 'झुमका'। उ०—मरुआ मयारि फिरोज लाल लटकत सुंदर सुदर डरावनो। मोतिन झालरि झूमका राजत बिच नीरू मणि बहु भावनो।—सूर (शब्द०)। २. दे० 'झूमक'। उ०—पग पटकत लटकत लटवाहू। मटकत मोहन हसत उछाहू। चंचल चंचल झूमका।—सूर (शब्द०)।

झूमड़—संज्ञा पुं० [हिं० झूमड़] दे० 'झूमर'-६। उ०—घाट छोड़ नौकाओं के झूमड़ धारा में पड़ चले।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ११५।

झूमड़झामड़—संज्ञा पुं० [हिं० झूमड़] ढकोसला। झूठा प्रपंच। निरर्थक विषय। उ०—अपने हाथे करें थापना अजया का सिर काटी। मो पूजा पर लेगी माली मूरति कुत्तन चाटी। दुनियाँ झूमड़झामड़ि अटकी।—कबीर (शब्द०)।

झूमड़ा†—संज्ञा पुं० [हिं०] चौदह मात्रा का एक ताल। दे० 'झूमरा'।

झूमना¹—क्रि० अ० [सं० झम्प (= कूदना)] १. आधार पर स्थित किसी पदार्थ के ऊपरी भाग या सिरे का बार बार आगे पीछे, नीचे ऊपर या इधर उधर हिलना। बार बार झोंके खाना। जैसे, हवा के कारण पेड़ों की डालों का झूमना।

मुहा०—बादल झूमना = बादलों का एकत्र होकर झुकना।

२. किसी खड़े या बैठे हुए जीव का अपने सिर और धड़ को बार बार आगे पीछे और इधर उधर हिलाना। लहराना। जैसे, हाथी या रीछ का झूमना। नशे या नींद में झूमना। उ०—आई सुधि प्यारे की विचारे मति टारे तब, धारे पग मग झूमि द्वारावति आए हैं।—प्रिया (शब्द०)।

विशेष—यह क्रिया प्रायः मस्ती, बहुत अधिक प्रसन्नता, नींद या नशे आदि के कारण होती है।

मुहा०—दरवाजे पर हाथी झूमना = इतना अमीर होना कि दरवाजे पर हाथी बँधा हो। इतना संपन्न होना कि हाथी पाल सके। उ०—भूपत द्वार अनेक मतंग जँजीर जड़े मद अंबु चुचाते।—तुलसी (शब्द०)। झूम झूम कर = सिर और धड़ को आगे पीछे या इधर उधर खूब हिल हिलाकर। लहरा लहराकर। जैसे—झूम झूमकर पढ़ना, नाचना या (भूत प्रेत आदि बाधाओं के कारण) खेलना।

झूमना²—संज्ञा पुं० १. बैलों का एक रोग जिसमें वे खूँटे पर बँधे इधर उधर सिर हिलाया करते हैं। २. वह बैल जो झूमता हो।

झूमर—संज्ञा पुं० [हिं० झूमना या सं० युग्म, प्रा० जुम्म + र (प्रत्य०)] १. सिर में पहनने का एक प्रकार का गहना जिसमें प्रायः एक या डेढ़ अंगुल चौड़ी, चार पाँच अंगुल लंबी और भीतर से पोली सीधी अथवा धनुषाकार एक पटरी होती है।

विशेष—यह गहना प्रायः सोने का ही होता है और इसमें छोटी जंजीरों से बँधे हुए घुँघरू या झब्बे लटकते रहते हैं। किसी किसी झूमर में जंजीरों से लटकती हुई एक के बाद एक इस प्रकार दो पटरियाँ भी होती हैं। इसके पिछले भाग के कुंडे में चाँप के आकार के एक गोल टुकड़े में दूसरी जंजीर या डोरी लगी होती है जिसके दूसरे सिरे का कुंडा सिर की चोटी या माँग के पास के बालों में अटका दिया जाता है। यह गहना सिर के अगले बालों या माथे के ऊपरी भाग पर लटकता रहता है और इसके आगे के लच्छे बराबर हिलते रहते हैं। संयुक्त प्रदेश (उत्तर प्रदेश) में केवल एक ही झूमर पहना जाता है जो सिर पर दाहिनी ओर रहता है, और यहाँ इसका व्यवहार वेश्याएँ करती हैं, पर पंजाब में इसका व्यवहार गृहस्थ स्त्रियाँ भी करती हैं और वहाँ झूमरों की जोड़ी पहनी जाती है जो माथे पर आगे दोनों ओर लटकती रहती है।

२. कान में पहनने का झुमका नामक गहना। ३. झूमक नाम का गीत जो होली में गाया जाता है। ४. इस गीत के साथ

होनेवाला नाच । ५. एक प्रकार का गीत जो बिहार प्रांत में सब ऋतुओं में गाया जाता है । ६. एक ही तरह की बहुत सी चीजों का एक स्थान पर इस प्रकार एकत्र होना कि उनके कारण एक गोल घेरा सा बन जाय । जमघटा । जैसे, नावों का झूमर ।

क्रि० प्र०—डालना ।—पड़ना ।

७. बहुत सी स्त्रियों या पुरुषों का एक साथ मिलकर इस प्रकार घूम घूमकर नाचना कि उनके कारण एक गोल घेरा सा बन जाय । ८. भालू को खड़ा करने पर रस्सी लेकर भागना ।—(कलंदरों की भाषा) । ९. गाड़ीवानों की मोंगरी । १०. झूमरा नामक ताल । दे० 'झूमरा' । ११. एक प्रकार का काठ का खिलौना जिसमें एक गोल टुकड़े में चारो ओर छोटी छोटी गोलियाँ लटकती रहती हैं ।

झूमरा¹—संज्ञा पुं० [हिं० झूमर] एक प्रकार का ताल जो चौदह मात्राओं का होता है । इसमें तीन आघात और एक विराम होता है ।

धिं धिं तिरकिट, धिं धिं धा धा, तिता तिरकिट, धिं धिं धा धा ।

झूमरा(पु)²—वि० [हिं० झूमना] झूमनेवाला । उ०—बहुरि अनेक अगाध जु सरवर । रस झूमरे, धूमरे तरवर ।—नंद० ग्रं०, पृ० २८५ ।

झूमरि(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० झूमर] दे० 'झूमर' ।

झूमरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] शालक राग के पाँच भेदों में से एक ।

झूर(पु)†¹—वि० [हिं० धूर या चूर] सूखा । खुश्क । शुष्क ।

झूर(पु)†²—वि० [हिं० झूठ] १. खाली । रीता । । २. व्यर्थ ।

झूर(पु)†³—वि० [सं० जुष्ट] जूठा । उच्छिष्ट ।

झूर(पु)⁴—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्वल, हिं० झार] १. जलन । दाह । २. परिताप । दुःख । उ०—अजहुँ कहे सुनाइ कोई करैं कुबिजा दूरि । सूर दाहनि मरत गोपी कूबरी के झूरि ।—सूर (शब्द०)

झूरणा(पु)†—क्रि० अ० [हिं० झूर] दे० 'झुराना²' । उ०—मन ही माहै झूरणां, रोवै मनही माँहि । मन ही माँहै धाह दे, दादू बाहरि नाहि ।—दादू०, पृ० ७३ ।

झूरना(पु)—क्रि० स० [हिं० झूर] दे० 'झुराना' ।

झूरा(पु)†¹—वि० [हिं० झूर] १. शुष्क । सूखा । खुश्क । २. खाली । उ०—किंगरी गहै बजाए झूरी । भोंर साँझ सिंगी नित पूरी ।—जायसी (शब्द०) । ३. दे० 'झूर' ।

झूरा(पु)²—संज्ञा पुं० १. सूखा स्थान । वह स्थान जो पानी से भींगा न हो । २. जलवृष्टि का अभाव । अवर्षण । सूखा ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।

३. न्यूनता । कमी । उ०—करी कराहु साज सब पूरा । काढ़हु पूरी परी न झूरा ।—रघुराज (शब्द०) ।

झूरि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० झूर] दे० 'झूर⁴' ।

झूरै¹(पु)—क्रि० वि० [हिं० झूर] व्यर्थ । निष्प्रयोजन ।

झूरै²(पु)—वि० दे० 'झूर' । उ०—बाँधि पची डोरी नहिं पूरे । बार बार खोजत रिस झूरे ।—सूर (शब्द०) ।

झूल¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० झूलना] १. वह चौकोर कपड़ा जो प्रायः शोभा के लिये चौपायों की पीठ पर डाला जाता है । उ०—शेर के समान जब लीन्हे सावधान श्वान झूलन दरान जिन वेग बेप्रमान है ।—रघुराज (शब्द०) ।

विशेष—इस देश में हाथियों और घोड़ों आदि पर जो झूल डाली जाती है वह प्रायः मखमल की और अधिक दामों की होती है और उसपर कारचोबी आदि का काम किया होता है । बड़े बड़े राजाओं के हाथियों की झूलों में मोतियों की झालरें तक टँकी होती हैं । ऊँटों तथा रथों के बैलों पर भी इसी प्रकार की झूलें डाली जाती हैं । आजकल कुत्तों तक पर झूल डाली जाने लगी है ।

मुहा०—गधे पर झूल पड़ना = बहुत ही अयोग्य या कुरूप मनुष्य के शरीर पर बहुमूल्य और बढ़िया वस्त्र होना ।—(व्यंग्य) ।

२. वह कपड़ा जो पहना जाने पर भद्दा और बेढंगा जान पड़े ।—(व्यंग्य) । (पु) ३. दे० 'झूला' । उ०—मखतूल के झूल झुलावत केशव भानु मनो शनि अंक लिए ।—केशव (शब्द०) ।

झूल†²—संज्ञा पुं० [हिं०] झुंड । समूह । उ०—जो रखवाली जगत में, भाड़ी जबक झूल ।—बाँकी० ग्रं०, भा० १, पृ० १४ ।

झूल(पु)³—संज्ञा पुं० [हिं० झूलन] झूलते समय झूले को आगे और पीछे झोंका देना । पेंग । उ०—बिच झुरमुट झूला चलत, अल छवै लाँबी झूल ।—घनानंद, पृ० २१५ ।

झूलदंड—संज्ञा पुं० [हिं० झूलना + सं० दण्ड] एक प्रकार की कसरत जिसमें बारी बारी से बैठक और झूलते हुए दंड करते हैं ।

झूलन¹—संज्ञा पुं० [हिं० झूलना] १. एक उत्सव । हिंडोल ।

विशेष—इस उत्सव में देवमूर्ति, विशेषतः श्रीकृष्ण या रामचंद्र आदि की मूर्तियों को झूले पर बैठाकर झुलाते हैं और उनके सामने नृत्य गीत आदि करते हैं । यह साधारणतः वर्षा ऋतु में और विशेषतः श्रावण शुक्ला एकादशी से पूर्णिमा तक होता है ।

२. एक प्रकार का रंगीन या चलता गाना ।

झूलन†²—संज्ञा स्त्री० झूलने की क्रिया या भाव ।

झूलना—क्रि० अ० [सं० दोलन] १. किसी लटकी हुई वस्तु पर स्थित होकर अथवा किसी आधार के सहारे नीचे की ओर लटककर बार बार आगे पीछे या इधर उधर हटते बढ़ते रहना । लटक कर बार बार इधर उधर हिलना । जैसे, पंखे की रस्सी झूलना, झूले पर बैठकर झूलना । २ झूले पर बैठकर पेंग लेना । उ०—(क) प्रेम रंग बोरी भोरी नवल-किसोरी गोरी झूलति हिंडोरे यों सोहाई सखियान में । काम झूलै उर में, उरोजन में दाम झूलै स्याम झूलै प्यारी की अन्यारी अँखियान में ।—पद्माकर (शब्द०) । (ख) फूली फूली बेली सी नवेली अलबेली बधू झूलति अकेली काम केली सी बढ़ति हैं ।—पद्माकर (शब्द०) । ३ किसी कार्य के होने की आशा में अधिक समय तक पड़े रहना । आसरे में अथवा अनिर्णीत अवस्था में रहना । जैसे—जो लोग बरसों से झूल रहे हैं उनका काम होता ही नहीं और आप अभी से जल्दी मचाने लगे ।

झूलना[2]—वि० [वि० स्त्री० झूलनी] झूलनेवाला । जो झूलता हो । जैसे झूलना पुल ।

झूलना[3]—संज्ञा पुं० १. एक छंद जिसके प्रत्येक चरण में ७, ७, ७ और ५ के विराम से २६ मात्राएँ और अंत में गुरु लघु होते हैं । जैसे—हरि राम विभु पावन परम, गोकुल बसत मनमान । २. इसी छंद का दूसरा भेद जिसके प्रत्येक चरण में १०, १० १० और ७ के विराम से ३७ मात्राएँ और अंत में यगण होता है । जैसे,—जैति हिम बालिका असुर कुल घालिका कालिका मालिका सुरस हेतु । ३. हिंडोला । झूला । (क्व०) । उ०—अंबवा की डार्ली तले मालो झूलना डला दें ।—गीत (शब्द०) ।

झूलनि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० झूलना] झूलने का भाव या स्थिति । उ०—हत यह ललित लतन की फूलनि । फूलि फूलि जमुना जल झूलनि ।—नंद० ग्रं०, पृ० ३१६ ।

झूलनी बगली—संज्ञा स्त्री० [हिं० झूलना + बगली] मुगदर की एक प्रकार की कसरत जो बगली की तरह की होती है ।

विशेष—बगली की अपेक्षा इसमें यह विशेषता है कि पीठ पर से बगल में मुगदर छोड़ते समय पंजे को इस प्रकार उलटना पड़ता है कि मुगदर बराबर झूलता हुआ जाता है । इससे कलाई में बहुत जोर आता है ।

झूलनी बैठक—संज्ञा स्त्री० [हिं० झूलना + बैठक (= कसरत)] एक प्रकार की कसरत ।

विशेष—बैठक की इस कसरत में बैठक करके एक पैर को हाथी के सूँड़ की तरह झुलाकर और तब उसे समेटकर बैठना और फिर उठकर दूसरे पैर को उसी प्रकार झुलाना पड़ता है । इसमें शरीर को तौलने की विशेष साधना होती है ।

झूलर(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० झूल] झुंड । जमघट । उ०—बालूंबाबा देसड़उ जहाँ पाँणी सेवार । ना पाणिहारी झूलरउ ना कूवइ लेकार ।—ढोला०, दू० ६६४ ।

झूलरि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० झूलना] झूलता हुआ छोटा गुच्छा या झुमका । उ०—बर बितान बहु तने तनावन । मनि झालरि झूलरि लटकावन ।—गोपाल (शब्द०) ।

झूला—संज्ञा पुं० [सं० दोला] १. पेड़ की डाल, छत या और किसी ऊँचे स्थान में बाँधकर लटकाई हुई दोहरी या चौहरी रस्सियाँ जंजीर आदि से बँधी पटरी जिसपर बैठकर झूलते हैं । हिंडोला ।

विशेष—झूला कई प्रकार का होता है । इस प्रांत में लोग साधारणतः वर्षा ऋतु या पेड़ों की डालों में झूलते हुए रस्से बाँधकर उसके निचले भाग में तख्ता या पटरी आदि रखकर उसपर झूलते हैं । दक्षिण भारत में झूले का रवाज बहुत है । वहाँ प्रायः सभी घरों में छतों में तार या रस्सी या जंजीर लटका दी जाती है और बड़े तख्ते या चौकी के चारो कोने से उन रस्सियों को बाँधकर जंजीरों को जड़ देते हैं । झूले का निचला भाग जमीन से कुछ ऊँचा होना चाहिए जिसमें वह सरलता से बराबर झूल सके । झूले के आगे और पीछे जाने और आने को पेंग कहते हैं । झूले पर बैठकर पेंग देने के लिये या तो जमीन पर पैर को तिरछा करके आघात करते हैं या उसके एक सिरे पर खड़े होकर झोंके से नीचे की ओर झुकते हैं ।

क्रि० प्र०—झूलना ।—डोलना ।—पड़ना ।

२. बड़े बड़े रस्से, जंजीरों या तारों आदि का बना हुआ पुल जिसके दोनों सिरे नदी या नाले आदि के दोनों किनारों पर किसी बड़े खंभे, चट्टान या बुर्ज आदि में बँधे होते हैं और जिसके बीच का भाग अधर में लटकता और झूलता रहता है । झूलता हुआ पुल । जैसे, लछमन झूला ।

विशेष—प्राचीन काल में भारतवर्ष में पहाड़ी नदियों आदि पर इसी प्रकार के पुल होते थे । आजकल भी उत्तरी भारत तथा दक्षिणी अमेरिका की छोटी छोटी पहाड़ी नदियों और बड़ी बड़ी खाइयों पर कहीं कहीं जंगली जातियों के बनाए हुए इस प्रकार के पुराने चाल के पुल पाए जाते हैं । पुराने चाल के पुल दो तरह के होते हैं—(१) एक बहुत छोटे और मजबूत रस्से के दोनों सिरे नदी या खाई आदि के दोनों किनारों पर की दो बड़ी चट्टानों आदि में बाँध दिए जाते हैं और उनमें बहुत बड़ा बोरा या चौखटा आदि लटका दिया जाता है । ऊपरवाले रस्से को पकड़कर यात्री उसे कभी कभी स्वयं सरकाता चलता है । (२) मोटी मोटी मजबूत रस्सियों का जाल बुनकर अथवा छोटे छोटे डंडे बाँधकर नदी की चौड़ाई के बराबर लंबी और डेढ़ हाथ चौड़ी एक पटरी सी बना लेते हैं और उस रस्सा में लटकाकर दोनों ओर रस्सियों से इस प्रकार बाँध देते हैं कि नदी के ऊपर उन्हीं रस्सों और रस्सियों की लटकती हुई एक गली सी बन जाती है । इसी में से होकर आदमी चलते हैं । इसके दोनों सिरे भी नदी के दोनों किनारे पर चट्टानों से बंधे होते हैं । आजकल यूरोप, अमेरिका आदि की बड़ी बड़ी नदियों पर भी मोटे मोटे तारों और जंजीरों से इसी प्रकार के बहुत बड़े, बढ़िया और मजबूत पुल बनाए जाते हैं ।

३. वह बिस्तर जिसके दोनों सिरे रस्सियों में बाँधकर दोनों ओर दो ऊँची खूँटियों या खंभों आदि में बाँध दिए गए हों ।

विशेष—इस देश में साधारणतः देहाती लोग इस प्रकार के टाट के बिस्तर पेड़ों में बाँध देते हैं और उनपर सोते हैं । जहाजों में खलासी लोग भी इस प्रकार के कनवास के बिस्तरों का व्यवहार करते हैं ।

४. पशुओं की पीठ पर डालने की झूल । ५. देहाती स्त्रियों के पहनने का ढीला ढाला कुरता । ६. झोंका । झटका ।—(क्व०) । † ७. तरबूज । † ८. स्त्रियों का एक प्रकार का आभूषण । ९. दे० 'झुब्बा' ।

झूलाना(पु)†—क्रि० स० [हिं० झुलाना] दे० 'झुलाना' । उ०—तामें श्री ठाकुर जी को डोल झूलाए ।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० २१० ।

झूलो—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ झुलना] १. वह कपड़ा जिससे हवा करके अन्न ओसाया जाता है। परती। २. खलासियों आदि का जहाजी बिस्तर जिसके दोनों सिरे रस्सियों से बाँधकर दोनों ओर ऊँची खूँटियों या खंभों आदि में बाँध दिए जाते हैं। दे॰ 'झूला'-३।

झूसर(पु)†—संज्ञा पुं॰ [सं॰ युग, हिं॰ जुआ] वह लकड़ी जो बैलों को नाधने के लिये उनके कंधों पर रखी जाती है। जुआ। उ॰—झूसर भार न झल्लही गोधा गावड़ियाँह। हम जस भार न ऊपड़े मोला मावड़ियाँह।—बाँकी॰ ग्रं॰, भा॰ २, पृ॰ १५।

झूसा—संज्ञा पुं॰ [देश॰] एक प्रकार की बरसाती घास। मुलमुला। पलंजी। बड़ा मुरमुरा।

विशेष—यह घास उत्तरी भारत के मैदानों में अधिकता से होती है और इसे घोड़े तथा गाय बैल आदि बड़े चाव से खाते हैं।

झेँडा(पु)†—संज्ञा पुं॰ [सं॰ जयन्त, हिं॰ झंडा] झंडा। ध्वज। उ॰—कहे कासी पडत लाल झेंड़े बहुत। पाय दल जावे तहत क्या सरयत खबर।—दक्खिनी॰, पृ॰ ४६।

झेँप—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ झपना] लाज। शर्म। हया।

झेँपना—क्रि॰ अ॰ [हिं॰ छिपना] शरमाना। लजाना। लज्जित होना।

संयो॰ क्रि॰—जाना।

झेकना‡—क्रि॰स॰ [अनु॰] झुकाना। बैठना। उ॰—(क) ढोलइ मनह विमासियउ, साँच कहइ छइ एह। करह झेकि दोनूँ चढा कूट न संभालेह।—ढोला॰, दू॰ ६३७। (ख) घाली टापर वाग मुखि, झेक्यउ राजदुआरि।—ढोला॰, दू॰ ३४५।

विशेष—ऊँट के बैठने को राजस्थानी में झेकना कहते हैं। ऊँट को बैठाते समय झे झे किया जाता है। उसी के अनुकरण पर यह शब्द बना है।

झेपना—क्रि॰ अ॰ [हिं॰] दे॰ 'झेंपना'।

झेर(पु)१—संज्ञा स्त्री॰ [फ़ा॰ देर] बिलंब। देर। उ॰—(क) चलहु तुरत जिनि झेर लगावहु अबही आइ करो विश्राम।—सूर (शब्द॰)। (ख) काहे को तुम झेर लगावति। दान देहु घर जाहु बेचि दधि तुम ही को वह भावति।—सूर (शब्द॰)।

झेर(पु)२—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ छेड़ना] बखेड़ा। झगड़ा। उ॰—(क) सूरदास प्रभु रासबिहारी श्री बनबारी वृथा करत काहे झेरे।—(शब्द॰)। (ख) मधुकर समाना ऐसा बैरन।···नंदकुमार छाँड़ि को लैहै योग दुखन को टेरन। जहाँ न परम उदार नंद सुत मुक्त परो किन झेरन।—सूर (शब्द॰)।

झेरना(पु)१—क्रि॰ स॰ [हिं॰ झेलना] झेलना। सहना। उ॰—कहु नृप पद अब ते गहौ गहे रानि सुख झेरि। मन में भयो न मैल कछु लागे सेवन फेरि।—विश्राम (शब्द॰)।

झेरना२—क्रि॰ स॰ [हिं॰ छेड़ना] शुरू करना। आरंभ करना। उ॰—मेरी बड़ेरी बाहि झेरी मुरली बहुतेरी बनी।—गोपाल (शब्द॰)।

झेरा(पु)—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ झेर ?] १. झंझट। बखेड़ा। झेर। उ॰—(क) जीव का जनम का जीवक आप ही आपले झानि झेरा।—दादू (शब्द॰)। (ख) दीपक में धरयो वारि देखत भुज भए वारि हारी हौ धरति करत दिन दिन को झेरो।—सूर (शब्द॰)। (ग) सुंदर वाही बचन है जामहिं कछु बिबेक। नातरु झेरा में परयो बोलत मानो भेक।—सुंदर ग्रं॰, भा॰ २, पृ॰ ७२९। २. छोटा सोता। झिरी। थोड़े पानीवाला गढ़ा। † ३. समूह। झुंड।

झेल१—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ झेलना] १. पानी में तैरने आदि में हाथ पैर से पानी हटाने की क्रिया। २. हलका धक्का या हिलोरा। उ॰—सुरत समुद्र मगन दंपति सो झेलत अति सुख झेल।—सूर (शब्द॰)। ३. झेलने की क्रिया या भाव।

झेल२—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ झेल] बिलंब। देर। झेर। उ॰—(क) सब कहँ देखि भूप मणि बोले सुनहु सकल मम बैना। भये कुमार विवाहन लायक उचित झेल कछु है ना।—रघुराज (शब्द॰)। (ख) झाँकति है का झरोखा लगी लग लागिबे को इहाँ झेल नहीं फिर।—पद्माकर (शब्द॰)।

झेलना—क्रि॰ स॰ [ध्वेल (= हिलाना डुलाना)] १. ऊपर लेना। सहारना। सहना। बरदाश्त करना। जैसे, दुःख झेलना, कष्ट झेलना, मुसीबत झेलना। उ॰—टूटे परत अकास को कौन सकत है झेलि।—कबीर (शब्द॰)। २. पानी में तैरने या चलने में हाथ पैर से पानी हटाना। पानी को हाथ पैर से हिलाना। उ॰—(क) कर पग गहि अँगुठा मुख मेलत। प्रभु पौढ़े पालने अकेले हरखि हरखि अपने रंग खेलत। शिव सोचन विधि बुद्धि विचारत वट बाढ़यो सागर जल झेलत।—सूर (शब्द॰)। (ख) बालकेलि को विशद परम सुख सुख समुद्र नृप झेलत।—सूर (शब्द॰)। ३. पानी में हिलना। हेलना। जैसे, कमर तक पानी झेलकर नदी पार करना। ४. ठेलना। ढकेलना। आगे बढ़ाना। आगे चलाना। उ॰—दुहुन की सहज बिसात दुहूँ मिलि सतरँज खेलत। उर, रुख, नैन चपल अश्व चतुर बराबर झेलत।—हरिदास (शब्द॰)। † ५. पचाना। हजम करना। ६. सहना। ग्रहण करना। मानना। उ॰—पीपन आनि परे तो परे रहे केती करी मनुहारि न झेली।—मतिराम। (शब्द॰)।

झेलनी—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ झेलना] एक प्रकार की जंजीर जो कान के आभूषण का भार सँभालने के लिये बालों में अटकाई जाती है।

झेली—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ झेलना] बच्चा जनते समय स्त्री को विशेष प्रकार से हिलाने डुलाने की क्रिया।

क्रि॰ प्र॰—देना।

झेलुआ†—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] दे॰ 'झूला'।

झैर(पु)‡—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ जहर] दे॰ 'जहर' उ॰—जपुरनाथ जैसा धाम बेटा तीन पाया। प्याला झैर पाया एक बेटा नै मराया।—शिखर॰, पृ॰ ७४।

झोँक—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ युज, युक, युक्त, हिं॰ झुकना] १. झुकाव। प्रवृत्ति। २. तराजू के किसी पलड़े का किसी ओर अधिक नीचा होना।

मुहा०—झोंक मारना = डाँड़ी मारना। कम तौलना।

३. बोझ। भार। जैसे—इसकी झोंक सब उसी पर पड़ती है। ४. वेग। झटका। तेजी। प्रचंड गति। जैसे—(क) गाड़ी बड़ी झोंक से आ रही थी। (ख) साँड़ आ रहा है कहीं झोंक में पड़ जाओगे तो बड़ी चोट आवेगी। (ग) नशे की झोंक, क्रोध की झोंक, लिखने की झोंक, नींद की झोंक, ५. किसी काम का धूमधाम से उठाना। कार्य की गति। जैसे—पहली झोंक में उसने इतना काम कर डाला। ६. ठाट। सजावट। चाल। अंदाज।

यौ०—नोक झोंक = ठाट बाट। धूम धाम।

७. पानी का हिलोरा। ८. दे० 'झोंका'। ९. दो लट्ठे जो बैल-गाड़ी की मजबूती के लिये दोनों ओर लगे रहते हैं।

झोंकना—क्रि० स० [हिं० झोंक] १. झटके के साथ एकबारगी किसी वस्तु को आगे की ओर फेंकना। वेग से सामने की ओर डालना। फेंककर छोड़ना। जैसे, भाड़ मे पत्ते झोंकना। इंजन में कोयला झोंकना। आँख में धूल झोंकना।

संयो० क्रि०—देना।

मुहा०—भाड़ झोंकना = (१) भाड़ में सूखे पत्ते आदि फेंकना। २. तुच्छ व्यवसाय करना (व्यंग्य में)। जैसे—इतने दिन दिल्ली मे रहे, भाड़ झोंकते रहे।

२. ढकेलना। ठेलना। जबरदस्ती आगे की ओर बढ़ाना या करना। जैसे—उसने मुझे एकबारगी आगे की ओर झोंक दिया। ३. अंधाधुंध खर्च करना। बहुत अधिक व्यय करना। बहुत अधिक खर्च करना। बहुत अधिक किसी काम में लगाना। जैसे, ब्याह शादी में रुपया झोंकना।

संयो० क्रि०—देना।—डालना।

४. किसी आपत्ति या दुःख के स्थान में डालना। भय या कष्ट के स्थान में कर देना। बुरी जगह ठेलना। जैसे—(क) तुमने हमें कहाँ लाकर झोंक दिया, दिन रात आफत में जान पड़ी रहती है। (ख) उसने अपनी लड़की को बुरे घर झोंक दिया। ५ कार्य का बहुत अधिक भार देना। बहुत ज्यादा काम ऊपर डालना। बिना सोचे समझे काम लादना। जैसे—तुम जो काम होता है हमारे ही ऊपर झोंक देते हो। ६. बिना विचारे आरोपित करना। (दोष आदि) मढ़ना। (दोष) लगाना। जैसे—सारा कसूर उसी पर झोंकते हो।

झोंकरना†—क्रि० अ० [अनु०] १. झों झों करना। २. बहुत जोर से रोना। ३. झुलस जाना।

झोंकवा†—संज्ञा पुं० [देश०] भट्ठे या भाड़ में खड़पताई झोंकने-वाला मनुष्य।

झोंकवाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० झोंकना] १. झोंकने की क्रिया या भाव। २. झोंकवाने की क्रिया या भाव। ३. झोंकने के काम की उजरत। झोंकने की मजूरी।

झोंकवाना—क्रि० स० [हिं० झोंकना का प्रे० रूप] १. झोंकने का काम कराना। २. किसी को आगे की ओर जोर से डालना।

झोंका—संज्ञा पुं० [हिं० झोंक] १. वेग से आनेवाली किसी वस्तु के स्पर्श का आघात। तेजी से चलनेवाली किसी चीज के छू जाने से उत्पन्न झटका। धक्का। रेला। झपट्टा। २. वेग से चलनेवाली वायु का आघात। हवा का झटका या धक्का। वायु का प्रवाह। हवा का बहाव। झकोरा। जैसे—ठंढी हवा का झोंका आया। ४. पानी का हिलोरा। ५. बगल से लगने-वाला धक्का जिसके कारण कोई वस्तु गिर पड़े या अपने स्थान से हट जाय। रेला। ६ इधर से उधर झुकने या हिलने डोलने की क्रिया।

मुहा०—झोंके आना = नींद के कारण झुक झुक पड़ना। ऊँघ लगना। झोंका खाना = किसी आघात या वेग आदि के कारण किसी ओर झुकना। जैसे, झोंका खाकर गिरना, नींद से झोंका खाना।

७ ठाट। सजावट। चाल। अदाज। उ०—पहिरे राती चूनरी सिर उपरना सोहै। कटि लहँगा नीलो बन्यो झोको जो देखि मन मोहै।—सूर (शब्द०)। ८. कुश्ती का एक पेंच।

विशेष—यह पेंच (दाँव) उस समय किया जाता है जब दोनों पहलवानो के हाथ एक दूसरे की कमर पर होते हैं। इसमें एक हाथ विपक्षी के हाथ के बाहर निकालकर मोढ़े पर चढ़ाते और दूसरा बगल मे मोढ़े पर ले जाते है और फिर झोंका देकर गिराते हैं।

झोंकाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० झोंकना] १ झोंकने की क्रिया या भाव। २. झोंकने की मजदूरी।

झोंकारना†—क्रि० स० [हिं०] कुछ कुछ झुलसा देना। जला देना।

झोंकिया—संज्ञा पुं० [हिं० झोंकना] भाड़ मे पताई आदि झोंकने-वाला। झोंकवा।

झोंकी—संज्ञा स्त्री० [हिं० झोंक] १. भार। बोझ। जवाबदेही। जैसे—सब झोंकी मेरे ही सिर ? २. भारी अनिष्ट या हानि की आशंका। जोखों। जोखिम। जैसे—दूसरे का माल रख-कर झोंकी कौन सहे।

क्रि० प्र०—सहना।

झोंझ(पु)†—संज्ञा पुं० [देश०] १. खोता। घोसला। २. कुछ पक्षियों (जैसे, ढेक, गीध आदि) के गले की थैली या लटकता हुआ मांस। ३. खुजली। सुरसुराहट। चुल।

मुहा०—झोंझ मारना = खुजली होना। चुल होना।

झोंझल(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० झुँझलाना] झुँझलाहट। क्रोध। कुढ़न। गुस्सा।

क्रि० प्र०—आना।

झोंट—संज्ञा पुं० [सं० जूट (= झाड़ी)] १. झाड़ी। २. झाड़। झुर-मुट। ३ समूह। झुंड। जुट्टी। ४. दे० 'झोंटा'। ५. चाल। ठाट। झोंक। अदाज। उ०—लोचन बिलोच पोच ललिता की झोटन हाव, भाव भरी करत झोटन पै ललित बात।—नंद० ग्रं०, पृ० ३७६।

झोंटमझोंटा†—संज्ञा पुं० [हिं०] झोंटाझोंटी। उ०—अब झोंटम झोंटा की नौबत आनेवाली है और सारा कसूर मुगलानी का है।—फिसाना०, भा० ३, पृ० २१४।

झोंटा[1]—संज्ञा पुं० [सं० जुट] १. बड़े बड़े बालों का समूह। इधर उधर बिखरे बड़े बड़े बालों का जुट्टा। उ०—हमरे सबद बिबेक लगहि चूतर मे सोंटा। भ्रावहु लै भागु पकरि के कटिहों झोंटा।—पलटू०, भाग ३, पृ०८६।

मुहा०—झोंटे पकड़कर काटना, मारना, निकालना, घसीटना या इसी प्रकार का और कुव्यवहार करना = सिर के बाल खींचकर वे सब व्यवहार करना।—(स्त्रियों के लिये यह अपमान की बात है)। झोंटे खसोटना = सिर के बाल खींचना।

यौ०—झोंटा झोंटी = ऐसा लड़ाई झगड़ा या मारपीट जिसमें झोंटा पकड़ने की नौबत भ्रावे।

२. जुट्टा। पतली लबी वस्तुओं का इतना बड़ा समूह जो एक बार हाथ में आ सके।

झोंटा[2]—संज्ञा पुं० [हिं० झोंका] १. वह धक्का जो झूले को इधर हिलाने के लिये दिया जाता है। झोंका। पेंग। उ०—(क) ललिता बिशाखा देहि झोंटा रीझि अंग न समाति।—सूर (शब्द०)। (ख) एक समय एकात वन में डोल झूलत कुंजबिहारी। झोटा देत परस्पर अबीर उड़ावत डारी।—हरिदास (शब्द०)।

मुहा०—झोंटा देना = झूले को बढाने के लिये धक्का देना। पेंग मारना। झोटा मारना = दे० 'झोंटा देना'।

२. झटका। झोंक। चाल। अदाज।

झोंटा[3]—संज्ञा पुं० [हिं० ढोटा] १. भैंस का बच्चा। पड़वा। २. भैंसा। महिष।

झोंटी[1]ⓤ†—संज्ञा स्त्री० [हिं० झोटा] दे० 'झोंटा[1]'–१। उ०—सुनि रिपुहन लखि नख सिख खोटी। लगे घसीटन धरि धरि झोंटी।—तुलसी (शब्द०)।

यौ०—झोंटीझोंटा = लड़ाई झगड़ा। दे० 'झोंटाझोंटी'।

झोंट[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'झोंका[1]'–१।

झोंप—वि० [प्रा० झंप, हिं० झाँपना] ढक लेनेवाला। आच्छादित कर लेनेवाला। घना। निबिड। उ०—सो रहा है झोंप अँधियाला नदी की जाँघ पर।—हरी घास०, पृ० ४८।

झोंपड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० छोपना (= छाना) अथवा प्रा० झंप, हिं० झोप] [स्त्री० अल्पा० झोंपड़ी] वह बहुत छोटा सा घर या मनुष्यों के रहने का स्थान जो विशेषत: गाँवों या जगलों आदि मे कच्ची मिट्टी की छोटी छोटी दीवारों को उठाकर और घास फूस से छाकर बना लेते हैं। कुटी। पर्णशाला।

मुहा०—अधा झोंपड़ा = पेट। उदर (फकीर०)। अंधे झोपड़े में आग लगना = भूख लगना (फकीर०)।

झोंपड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० झोंपड़ा का स्त्री० अल्पा०] छोटा झोंपड़ा। कुटिया। पर्णशाला। मढ़ी। उ०—कंत बीस लोचन बिलोकिए कुमंत फल ख्याल लंका लाई कपि रांड़ की सी झोंपड़ी।—तुलसी (शब्द०)।

झोंपा—संज्ञा पुं० [हिं० झब्बा] झब्बा। गुच्छा। उ०—झूलहि रतन पाट के झोंपा। साज मदन नेहि का कहुँ कोपा।—जायसी (शब्द०)।

झोकⓤ†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'झोंक'। उ०—बाम अमल ते भो मतवाला, झोक में झोक सो आवै।—सं० दरिया, पृ० ११२।

झोखना†—क्रि० स० [हिं० झोंकना] डालना। छोड़ना। देना। उ०—धम झोखे आहुत भाल में जो।—रघु० रू०, पृ० २१३।

झोझ†—संज्ञा स्त्री० [हिं० झोंझ] १. किसी वस्तु का वह अनावश्यक लटकता हुआ अंश जो फूला फूला थैली जैसा दिखाई दे। उ०—नितम्ब गुरुत्व कपड़ों के झोझ लटकाकर लाना चाहा।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २६१।

झोझर—संज्ञा पुं० [प्रा० ओज्झर] पचौनी। ओझर।

झोझा—संज्ञा पुं० [प्रा० ओज्झर] दे० 'ओझर'।

झोटा[1]—संज्ञा पुं० [हिं०] पेंग। दे० 'झोंका[1]'। उ०—(क) गाजे घण सुए गावणो, प्याला भर मद पाव। झूले रेशम रंग झड, झोटा देर झुलाव।—बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० ८। (ख) कोउ अंचल छोरि कटि मै बाँधि कसिकै देत। कोउ किए लावन की कछोटी चढ़त झोटा देत।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ११८।

झोटिंग[1]—वि० [हिं० झोंटा] झोंटेवाला। जिसके सिर पर बहुत बड़े बड़े और खड़े बाल हों। उ०—मज्जहि भूत पिशाच बैताला। प्रथम महा झोटिंग कराला।—तुलसी (शब्द०)।

झोटिंग[2]—संज्ञा पुं० बहुत बड़े बड़े और खड़े बालोंवाला। भूत प्रेत या पिशाच आदि।

झोड़—संज्ञा सं० [सं० झोड] सुपारी का वृक्ष।

झोपड़ा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'झोंपड़ा'।

झोपड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'झोंपड़ी'।

झोपरियाⓤ†—संज्ञा स्त्री० [हिं० झोपड़ी + इया (प्रत्य०)] दे० 'झोपड़ी'। उ०—खिरकी बैठ गोरी चितवन लागी, उपरौं झाँप झोपरिया।—कबीर श०, भा० १, पृ० ५५।

झोबाझोब—क्रि० वि० [अनु०] दे० 'झम झम'-१। उ०—सहजो गुरु ऐसा मिलै सम दृष्टी निलेभि। सिष कूँ प्रेम समुद्र में कर दे झोबाझोब।—सहजो०, पृ० १२।

झोर†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'झोल'।

झोरई[1]†—वि० [हिं० झोल + ई (प्रत्य०)] जिसमें झोल हो। रसेदार। उ०—सूर करतरि सरस तोरई। सेमि सींगरी छमकि झोरई।—सूर (शब्द०)।

झोरई[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० झोल] रसेदार तरकारी।

झोरना†—क्रि० स० [सं० दोलन] १. झटका देकर हिलाना या कंपाना। उ०—कह्यो कहारनि हमै न झोरि। नयो कहार चलत पग झोरि।—सूर (शब्द०)। २. किसी चीज को इस प्रकार झटका देकर बार बार हिलाना जिसमें उसके साथ लगी हुई दूसरी चीजें गिर पड़े। जैसे पेड़ की डाल झोरना। आम झोरना। इमली झोरना, आदि। उ०—झोरि है कौन लए बन बाग ये कौन जु आमन को हरियाई।—रसकुसुमाकर (शब्द०)। † तृप्तिपूर्वक भोजन करना। छककर खाना।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।

३. इकट्ठा करना। एकत्र करना।—(क्व०)।

झोरा(पु)†¹—संज्ञा पुं० [हिं० झौंरा] गुच्छा। झब्बा।

झोरा(पु)†²—संज्ञा पुं० [हिं० झोला] दे० 'झोला'। उ०—लाल मखमली रुचिर पान को झोरा धारे।—प्रेमघन०, भा०१, पृ० १२।

झोरि(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'झोली'।

झोरी(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० झोली] १. झोली। उ०—(क) भाय करी मन की पद्माकर ऊपर नाय अबीर की झोरी।—पद्माकर (शब्द०)। (ख) हमारे कौन वेद विधि साधे। बटुआ झोरी दंड अधारी इतनेन को आराधे।—सूर (शब्द०)। २. पेट। झोझर। ओझर। उ०—जो आवै अनगनत करोरी। डारे खाइ भरे नहिं झोरी।—विश्राम (शब्द०)। ३. एक प्रकार की रोटी। उ०—रोटी बाटी पोरी झोरी। एक कोरी एक घीव चमोरी।—सूर (शब्द०)। (पु) ४. रस्सी आदि के जालों या फंदों से युक्त झोला के आकार का बड़ा जाल जिसमें आहत लोगों को उठाकर पहुँचाते थे। दे० 'झोली'–७। उ०—(क) बढ़ाइय दिल्ली नयर अबर सेन जुधमग्ग। घाय घुमत झोरिन घले, श्रवन सुनंतह अग्गि।—पृ० रा०, ६१। २४६८। (ख) बाजीद खांन झोरी घरिय, धाउ पंच रंचर नृपति।—पृ० रा० १०। ३४।

झोल¹—संज्ञा पुं० [हिं० झालि (=आम का पना)] तरकारी आदि का गाढ़ा रसा। शोरबा। २. किसी अन्न के आटे में मसाले देकर कढ़ी आदि की तरह पकाई हुई कोई पतली लेई। ३. माँड़। पीच। ४. मुलम्मा या गीलट जो धातुओं पर चढ़ाया जाता है।

क्रि० प्र०—करना।—चढ़ाना।—फेरना।

यौ०—झोलदार।

झोल²—संज्ञा पुं० [सं० दोल (दोलन), हिं० झूलना] १. पहनने या ताने हुए कपड़ों आदि में वह अंश जो ढीला होने के कारण झूल या लटककर झोले की तरह हो जाता है। जैसे, कुरते या कोट में का झोल, छत की चाँदनी में का झोल आदि। २. कपड़े आदि के ढीले होने के कारण उसके झूलने या लटकने का भाव या क्रिया। तनाव या कसाव का उलटा।

क्रि० प्र०—डालना।—निकलना।—निकालना।—पड़ना।

३. पल्ला। आँचल। उ०—फूली फिरत जसोदा घर घर उबटि कान्ह अन्हवाय अमोल। तनक बदन दोउ तनक तनक कर तनक चरन पोंछत पट झोल।—सूर (शब्द०)। ४. परदा। ओट। आड़। उ०—ऊधो सुनत तिहारो बोल। ल्याए हरि कुसलात धन्य तुम घर घर पारयो गोल। कहन देहु कहा करै हमगे बन उठि जैहैं झोल। आवत ही याको पहिचान्यो निपटहि आछो तोल।—सूर (शब्द०)। ५. हाथी की चाल का एक ऐब जिसके कारण वह बिल्कुल सीधा न चलकर बराबर झूलता हुआ चलता है।

झोल³—वि० १. ढीला। जो कसा या तना न हो।

यौ०—झोलझाल = ढीलाढाला।

२. निकम्मा। खराब। बुरा।

झोल⁴—संज्ञा पुं० भूल। गलती। जैसे—गदहे की गौने में नौ मन का झोल।—(कहा०)।

झोल⁵—संज्ञा पुं० [हिं० झिल्ली या झोली] १. वह झिल्ली या थैली जिसमें गर्भ से निकले हुए बच्चे या अंडे रहते हैं। जैसे, कुतिया का झोल, मुरगी का झोल, मछली का झोल आदि।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग केवल पशुओं और पक्षियों आदि के संबंध में ही होता है, मनुष्यों आदि के संबंध में नहीं।

क्रि० प्र०—निकलना।—निकालना।

मुहा०—झोल बैठाना = मुरगी के नीचे सेने के लिये अंडे रखना।

२. गर्भ। उ०—भक्ति बीज बिनसै नहीं आय परे जो झोल। जो कंचन बिष्ठा परे घटै न ताको मोल।—कबीर (शब्द०)।

झोल⁶—संज्ञा पुं० [सं० ज्वाल हिं० झाल] १. राख। भस्म। खाक। उ०—(क) तुम बिन कंता धन हरछै (हृदै या हर्दै) तृन तृन बरमा डोल। तेहि पर बिरह जराइ के चहै उड़ावा झोल।—जायसी (शब्द०) (ख) आगि जो लागी समुद्र में टुटि टुटि खसै जो झोल। रोवै कबिरा डिंभिया मोरा हीरा जरै अमोल।—कबीर (शब्द०)। २. दाह। जलन।

झोलदार—वि० [हिं० झोल + फा० दार] १. जिसमें रसा हो। रसेदार। २. जिसपर गिलट या मुलम्मा किया हो। ३. झोल संबंधी। ४. जिसमे झोल पड़ता हो। ढीलाढाला।

झोलना—क्रि० स० [सं० ज्वलन] जलाना। उ०—हमको तुझ बिन सबै सतावत।···पूछ पूछ सरदार सखन के इहि बिधि दई बड़ाई। तिन प्रति बोल झोलि तनु डारयो अनल भँवर की नाई।—सूर (शब्द०)।

झोला¹—संज्ञा पुं० [हिं० झूलना वा सं० चोल] [स्त्री० अल्पा० झोली] १. कपड़े की बड़ी झोली या थैली। २. ढीलाढाला गिलाफ। खोली। जैसे, बंदूक का झोला। ३. साधुओं का ढीला कुरता। चोला। ४ वात का एक रोग जिसमें कोई अंग (जैसे, हाथ पैर आदि) ढीला पड़कर बेकाम पड़ जाता है। एक प्रकार का लकवा या पक्षाघात।

मुहा०—किसी को झोला मारना = (१) वात रोग से किसी अंग का बेकाम हो जाना। पक्षाघात होना। (२) सुस्त पड़ जाना। बेकाम हो जाना।

५. पेड़ों के पाला लू आदि के कारण एकबारगी कुम्हला जाने या सूख जाने का रोग।

क्रि० प्र०—मारना।

६. झटका। आघात। धक्का। झोंका। बाधा। आपत्ति। उ०—पाकी खेती देखिके गरवै कहा किसान। अजहूँ झोला बहुत है घर आवै तब जान।—कबीर (शब्द०)। ७. हाथ का संकेत। इशारा। ८. पाल की गोन या रस्सी को झटका देने या ढीलने की क्रिया।

झोला²†—संज्ञा पुं० [हिं० झलना] झोंका । झकोरा । हिलोर । उ०—कोई खाहि पवन कर झोला । कोई करहि पात अस डोला ।—जायसी (शब्द०) ।

झोलाहल—संज्ञा पुं० [सं० ज्वाल, प्रा० झलहल] (युद्ध की) चमक । दीप्ति । प्रकाश । उ०—हय हिंसहि गज चिकरि मगर सम दिष्षि कुलाहल । बजि पंषिनि बेताल नंदि नंदिय झोलाहल । —पृ० रा०, ८।५४ ।

झोलिका—संज्ञा स्त्री० [हिं० झोली] दे० 'झोली' । उ०—ऊधम अति होत जात घुंघट मैं नहि लखात छूटत बहुरंग उड़त अबिर झोलिका ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ३६३ ।

झोलिहारा—संज्ञा पुं० [हिं० झोली + हारा (प्रत्य०)] १. झोली लटकानेवाला । २. कहार । (सोनारों की बोली) ।

झोली¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० झूलना] १. इस प्रकार मोड़कर हाथ में लिया या लटकाया हुआ कपड़ा कि उसके नीचे का भाग एक गोल बरतन के आकार का हो जाय और उसमें कोई वस्तु रखी जा सके । कपड़े को मोड़कर बनाई हुई थैली । घोकरी । जैसे, गुलाल की झोली, साधुओं की झोली ।

विशेष—यह किसी चौखूँटे कपड़े के चारों कोनों को लेकर इकट्ठा बाँधने से बन जाती है । कभी कभी इसके नीचे के खुले हुए चारों कोनों को कुछ दूर तक सी भी देते हैं ।

मुहा०—झोली छोड़ना = बुढ़ापे के कारण शरीर के चमड़े का झूल जाना । झोली डालना = भिक्षा माँगने के लिये झोली उठाना । साधु या भिक्षुक हो जाना । झोली भरना = साधु को भरपूर भिक्षा देना ।

२. घास बाँधने का जाल । ३. मोट । चरसा । पुर ४. वह कपड़ा जिससे खलिहान में अनाज में मिला हुआ भूसा उड़ाकर अलग किया जाता है । ५. बौरा । कुश्ती का एक पेंच ।

विशेष—यह पेंच उस समय किया जाता है । जब विपक्षी किसी प्रकार अपनी पीठ पर आ जाता है । इसमें एक हाथ उलटकर उसकी कमर पर देते हैं और दूसरे से उसकी टाँगों की संधि पकड़ कर उठाते हैं ।

६. सफरी बिस्तर जो चारों कोनों पर लगी हुई रस्सियों के द्वारा खंभे पेड़ आदि में बाँधकर फैलाया जाता है । ७. रस्सियों का एक प्रकार का फंदा जिसके द्वारा भारी चीजों को उठाते हैं ।

झोली²—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्वाल या झाला] राख । भस्म ।

मुहा०—झोली बुझाना = सब काम हो चुकने पर पीछे उसे करने चलना । कोई बात हो जाने पर व्यर्थ उसके संबंध में कुछ करना । जैसे,—पंचायत तो हो चुकी अब क्या झोली बुझाने आए हो ?

विशेष—यह मुहावरा घर जलने की घटना से लिया गया है अर्थात् जब घर जलकर राख हो गया तब पानी लेकर बुझाने के लिये पहुँचे ।

झौंझटⓅ†—संज्ञा पुं० [हिं० झंझट] दे० 'झंझट' ।

झौंझ—संज्ञा पुं० [हिं० झोंझ] पेट । उदर । उ०—कोई कर्ण विहीन या नासा बिन कोई । झौंद फूटे कोई पड़े स्वासा बिनु होई ।—सूदन (शब्द०) ।

झौंरⓅ¹—संज्ञा पुं० [सं० युग्म, प्रा० जुम्म, हिं० झूमर] १. झुंड । समूह । उ०—छकि रसाल सौरभ सने मधुर माधुरी गंध । ठौर ठौर झौंरत झपत झौंर झौंर मधु अंध ।—बिहारी (शब्द०) । २. फूलों, पत्तियों या छोटे छोटे फलों का गुच्छा । उ०—दाख कैसी झौंर झलकति जोति जोबन की चाटि जाते भौंर जो न होती रंग चंपा की । —(शब्द०) । ३. एक प्रकार का गहना जिसमें मोतियों या चाँदी सोने के दानों के गुच्छे लटकते रहते हैं । झब्बा । उ०—कलगी तुर्रा झौंर जग्ग सरपेच सुकुंडल ।—सूर (शब्द०) । ४. पेड़ों या झाड़ियों का घना समूह । झापस । कुंज । उ०—बंस झौंर गंभीर भीतिकर नहि सूझत दस आसा । —रघुराज (शब्द०) ५. दे० 'झौवर' ।

झौंरⓅ²—संज्ञा स्त्री० [अनु०] झंझट । उ०—तुम काहे को झौंर करो इतनी, नहि काज है लाज हिये मढ़िबे को ।—नट०, पृ० ५४ ।

झौंरना—क्रि० अ० [अनु०] १. गूँजना । गुंजारना । उ०—छकि रसाल सौरभ सने मधुर माधुरी गंध । ठौर ठौर झौरत झँपत झौर झौर मधु अंध ।—बिहारी (शब्द०) । २. दे० 'झौरना' ।

झौंरा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'झौंर' ।

झौंराना¹—क्रि० अ० [हिं० झौवाँ या झाँवरा] १. झाँवरे रंग का हो जाना । बदरंग हो जाना । काला पड़ जाना । २. मुरझाना । कुम्हलाना ।

झौंरानाⓅ²—क्रि० अ० [हिं० झुमना] इधर उधर हिलना । झूमना । उ०—सौंहिहि रंक चले झौंराई । निबँठ राव सब कह बौराई ।—जायसी (शब्द०) ।

झौंसना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'झुलसना' । उ०—नाम लै चिलात बिललात अकुलात अति तात तात तौंसियत झौंसियत झारहीं । —तुलसी (शब्द०) ।

झौनी†—संज्ञा स्त्री० [देश०] टोकरी । डोरी ।

झौर—संज्ञा पुं० [अनु० झाँव झाँव] १. झंझट । बखेड़ा । हुज्जत । तकरार । झगड़ा । विवाद । उ०—(क) नहीं ढीठ नैनन ते और । कितनौं मैं बरजति समझावति उलटि करत हैं झौर । —सूर (शब्द०) । (ख) महरि तुम ब्रज चाहति कछु और । बात एक मैं कहौ कि नाहीं आप लगावति झौर ।—सूर (शब्द०) । २. डाँट । फटकार । कहासुनी । ऊँचा नीचा । उ०—और को झौउ झौर सहै पै न बावरी रावरी आस मुचैहैं ।—द्विजदेव (शब्द०) ।

झौरना—क्रि० स० [हिं० झपटना] छोप लेना । दबा लेना । झपट कर पकड़ना ।—उ०—हती चापि कै कुंभ त्यों बीर झौरयो । मृगाधीस ज्यों मृग कै यूह झौरयो ।—सूदन (शब्द०) ।

झौरा—संज्ञा पुं० [अनु० झावँ झावँ] झंझट। बखेड़ा। हुज्जत। तकरार। झोरा। विवाद।

क्रि० प्र०—करना।—मचाना।

यौ०—झौरा झौरा।

झौरो(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० झोल] दे० 'झोले'। उ०—उमटा कुंभ भरे जल नाहीं बगुला खोजै झौरी।—सं० दरिया, पृ० १२७।

झौरे—क्रि० वि० [हिं० धौरे] १. समीप। पास। निकट। २. साथ। संग। उ०—घोरे अंग सुभत न पौरे खोलि धीरे राति अधिक लों राधिका के झौरे ह्वै लगे रहैं।—देव (शब्द०)।

झौल—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'झोल'। उ०—यह नर गरभ भुलइया देखि माया को झौल।—कबीर सा०, पृ० ५४३।

झौवा‡—संज्ञा पुं० [हिं० झावा] रहठे की बनी हुई वह छोटी थोरी जिसमे मजदूर लोग खोदी हुई मिट्टी भरकर फेंकने के लिये ले जाते हैं। खँचिया।

झौहाना—क्रि० अ० [अनु०] १. गुर्राना। २. जोर से चिड़चिड़ाना। क्रोध में झल्लाना।

झ्यूलना(पु)† —क्रि० अ० [हिं०] दे० 'झूलना'। उ०—पैंक पाए फिर वासुदेव बोले। ज्यों आनंद मद सुं झ्यूले।—दक्खिनी०, पृ० १२२।

ट

ट—संस्कृत या हिंदी वर्णमाला मे ग्यारहवाँ व्यंजन जो टवर्ग का पहला वर्ण है। इसका उच्चारण स्थान मूर्धा है। इसका उच्चारण करने में तालु से जीभ का अग्र भाग लगाना पड़ता है।

टंक[1]—संज्ञा पुं० [सं० टङ्क] १. एक तौल जो चार माशे की होती है।

विशेष—कोई कोई इसे तीन माशे या २४ रत्ती की भी मानते हैं।

२. वह नियत मान या बाट जिससे तौल तौलकर धातु टकसाल में सिक्के बनने के लिये दी जाती है। ३. सिक्का। ४. मोती की तौल जो २१ ३/४ रत्ती की मानी जाती है। ५. पत्थर काटने या गढ़ने का औजार। टाँकी। छेनी। ६ कुल्हाड़ी। परशु। फरसा। ७ कुदाल। ८. खड्ग। तलवार। ९. पत्थर का कटा हुआ टुकड़ा। १०. डाँग। ११. नील कपित्थ। नीला कैथ। खटाई। १२. कोप। क्रोध। १३. दर्प। अभिमान। १४. पर्वत का खड्ड। १५ सुहागा। १६. कोष। खजाना। १७. संपूर्ण जाति का एक राग जो श्री, भैरव और कान्हड़ा के योग से बना है।

विशेष—इसके गाने का समय रात १६ दंड से २० दंड तक है। इसमें कोमल ऋषभ लगता है और इसका सरगम इस प्रकार है—सा रे ग म प ध नि। हनुमत् के मत से इसका स्वरग्राम है—स ग म प ध नि सा सा।

१८. म्यान। १९. एक काँटेदार पेड़ जिसमे बेल या कैथ के बराबर फल लगते हैं। २०. सौंदर्य (को०)। २१ गुल्फ (को०)।

टंक[2]—संज्ञा पुं० [अं० टैंक] १ तालाब, पानी रखने का हौज।

टंक(पु)[3]—संज्ञा पुं० [?] अल्पांश। थोड़ा अंश। उ०—जाको जस टंक सातो दीप नव खंड महिमंडल की कहा ब्रह्मांड ना समात है।—भूषण० ग्रं०, पृ० २२२।

टंकक[1]—संज्ञा पुं० [सं० टङ्कक] १. चाँदी का सिक्का या रुपया। २. टाँकी। छेनी (को०)।

टंकक[2]—संज्ञा पुं० [हिं० टंकण] टंकण यंत्र पर टंकण कार्य करने-वाला व्यक्ति। (अं० टाइपिस्ट)।

टंककपति—संज्ञा पुं० [सं० टङ्ककपति] दे० 'टंकपति' [को०]।

टंककशाला—संज्ञा स्त्री० [सं० टङ्ककशाला] टकसाल घर।

टंकटीक—संज्ञा पुं० [सं० टङ्कटीक] शिव।

टंकण[1]—संज्ञा पुं० [सं० टङ्कण] १. सुहागा। २. धातु की चीज में टाँका मारकर जोड़ लगाने का कार्य। ३. घोड़े की एक जाति। ४ एक देश जिसका नाम जो बृहत्संहिता में कोंकण आदि के साथ आया है।

टंकण[2]—संज्ञा पुं० [अनु०ध्व०] टाइपराइटर पर टंकित करनेका कार्य। टाइप करना। उ०—छपाई और टंकण की कठिनाइयाँ कैसे दूर हों।—भा० शिक्षा, पृ० ५९।

टंकणक्षार—संज्ञा पुं० [सं० टङ्कणक्षार] सोहागा [को०]।

टंकन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'टंकण'। उ०—एक ओर को प्रेम, जोर करने बरजोरिए। ज्यों टंकन तें हेम, पिघरन प्रान अकोरिए।—ब्रज० ग्रं० १४१।

टंकणयंत्र—संज्ञा पुं० [हिं० टंकण + सं० यन्त्र] एक प्रकार का छापने का छोटा यंत्र जिसपर अक्षरों की पंक्तियाँ अलग अलग लगी होती हैं और जब छापना होता है तो उन्हीं पंक्तियों को उँग-लियों से दबाते जाते हैं और यंत्र के ऊपर लगे हुए कागज पर अक्षर छपते जाते हैं। टाइपराइटर।

विशेष—कार्बन पेपर की सहायता से इस यंत्र पर एकाधिक प्रतियाँ टंकित की जा सकती हैं।

टंकना[1]—क्रि० अ० दे० [हिं० टाँकना] दे० 'टँकना'।

टंकना(पु)[2]—क्रि० स० [?] टंकना। आवृत करना। उ०—बहुँ न सील कठि छीन ह्वै लज्ज मान टंकनि फिरै।—पृ० रा०, २५।६१।

टंकपति—संज्ञा पुं० [सं० टङ्कपति] टकसाल का अधिपति।

टंकवान्—संज्ञा पुं० [सं० टङ्कवत्] एक पहाड़ जिसका नाम वाल्मीकि रामायण में आया है।

टंकवाना†—क्रि० स० [हिं० टँकवाना] दे० 'टँकाना'।

टंकशाला—संज्ञा स्त्री० [सं० टङ्कशाला] टकसाल।

टंका[1]—संज्ञा पुं० [सं० टङ्क] १. पुराने समय में चाँदी की एक तौल

जो एक तोले के बराबर होती थी। २. ताँबे का एक पुराना सिक्का। टका। ३. सिक्का। मुद्रा। उ० पान कसए सोनाक टंका चादन क मूल ईंधन बिका।—कीर्ति०, पृ० ६८।

टंका[२]—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का गन्ना या ईख।

टंका[३]—संज्ञा स्त्री० [सं० टङ्का] १. जंघा। २. तारा देवी। ३. संपूर्ण जाति की एक रागिनी जो निषडज और आदि मूर्च्छना युक्त होती है। हनुमत् के अनुसार इसका स्वरग्राम यों है—स रे ग म प ध नि स।

टंकानक—संज्ञा पुं० [सं० टङ्कानक] श्लेष्मातक। शहतूत।

टंकार—संज्ञा स्त्री० [सं० टङ्कार] १. वह शब्द जो धनुष की कसी हुई डोरी पर बाण रखकर खींचने से होता है। धनुष की कसी हुई पतंचिका खींच या तानकर छोड़ने का शब्द। २. टनटन शब्द जो कसे हुए तार आदि पर उँगली मारने से होता है।

३. धातुखंड पर आघात लगने का शब्द। ठनाका। झनकार। ४. विस्मय। ५. कीर्ति। नाम। प्रसिद्धि। ६. कोलाहल। शोरगुल (को०)। ७. अपयश। कुख्याति (को०)।

टंकारना—क्रि० स० [सं० टङ्कार + ना (प्रत्य०)] धनुष की डोरी खींचकर शब्द करना। पतंचिका तानकर ध्वनि उत्पन्न करना। चिल्ला खींचकर बजाना।

टंकारी—संज्ञा स्त्री० [सं० टङ्कारी] एक पेड़ जिसकी पत्तियाँ लंबोतरी होती हैं।

विशेष—फूल के भेद से इसकी कई जातियाँ हैं। किसी में लाल फूल लगते हैं, किसी में गुलाबी और किसी में सफेद। फूल गुच्छों में लगते हैं जिनके झड़ने पर छोटे छोटे फलों के गुच्छे लगते हैं। यह क्षुप जंगलों में बहुत होता है। वैद्यक मे इसका स्वाद कटु और गुण वात कफ का नाशक और अग्निदीपक लिखा है। टंकारी उदर रोग और विसर्प रोग में भी दी जाती है।

टंकारी[२]—वि० [सं० टङ्कारिन्] [वि० स्त्री० टङ्कारिणी] टंकार करनेवाला (को०)।

टंकिका—संज्ञा स्त्री० [सं० टङ्किका] पत्थर काटने का औजार। टाँकी। छेनी। उ०—सुतरु सुजन बन ऊख सम खल टंकिका रुखान। परहित अनहित लागि सब साँसति सहत समान।—तुलसी (शब्द०)।

टंकी[१]—संज्ञा स्त्री० [सं० टङ्क] श्री राग की एक रागिनी।

टंकी—संज्ञा स्त्री [सं० टङ्क (= खड्ड या गड्ढा)] १. दीवार उठाकर बनाया हुआ पानी भरने का एक छोटा सा कुंड। चौबच्चा। टाँका। २. पानी भरने का बड़ा बर्तन। टब। ३. तेल भरने या संचित करने का पात्र।

टंकृत—संज्ञा पुं० [सं० टङ्कृत] टंकार की ध्वनि (को०)।

टंकोर—संज्ञा पुं० [सं० टङ्कार] दे० 'टंकार'। उ०—देखे राम पथिक नाचत मुदित मोर। मानत मनहु सतड़ित ललित घन, धनु सुरधनु, गरजनि टंकोर।—तुलसी ग्रं० पृ० ३६३।

टंकोरना—क्रि० स० [अनु०] १. धनुष की रस्सी को खींचकर उससे शब्द उत्पन्न करना। टंकारना। २. ठोकर लगाना। ठोकर मारकर शब्द उत्पन्न करना। ३. तर्जनी या मध्यमा उँगली की कुंडली बनाकर उसकी नोक को अँगूठे से दबाकर बलपूर्वक छोड़ना जिससे किसी वस्तु में जोर से टक्कर लगे।

टंग—संज्ञा पुं० [सं० टङ्ग] १. टाँग। टँगड़ी। २. कुल्हाड़ी। ३. कुदाल। परशु। फरसा। ४. सुहागा। ५. चार माशे की एक तोल। ६. एक प्रकार की तलवार (को०)।

टंगण—संज्ञा पुं० [सं० टङ्गण] टंकण। सोहागा।

टंगा—संज्ञा स्त्री० [सं० टङ्गा] टाँग। पैर (को०)।

टंगिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० टङ्गिनी] पाठा।

टंच‡[१]—वि० [सं० चण्ड, हिं० चंठ] १. सूमड़ा। कंजूस। कृपण। २. कठोरहृदय। निष्ठुर।

टंच[२]—वि० [हिं० टिचन] तैयार। मुस्तैद।

टंटघंट—संज्ञा पुं० [अनु० टन टन + घंटा] पूजा पाठ का भारी आडंबर। घड़ी घंटा आदि बजाकर पूजा करने का भारी प्रपंच। मिथ्या आडंबर।

क्रि० प्र०—करना।—फैलाना।

टंटा—संज्ञा पुं० [सं० तण्डा (= आक्रमण) अथवा अनु० टनटन] १. उपद्रव। हलचल। दंगा। फसाद।

क्रि० प्र०—मचाना।

मुहा०—टंटा खड़ा करना = उपद्रव करना। झगड़ा मचाना।

२. तकरार। लड़ाई। कलह।

यौ०—झगड़ा टंटा।

३. आडंबर। प्रपंच। बखेड़ा। खटराग। लंबी चौड़ी प्रक्रिया। जैसे,—इस दवा के बनाने में तो बड़ा टंटा है।

टंडर—संज्ञा पुं० [अं० टेंडर] १. वह कागज जिसके द्वारा कोई मनुष्य किसी दूसरे से कुछ काम करने या कोई माल किसी नियत दर पर बेचने खरीदने का इकरार करता है। निविदा। २. अदालत का वह आज्ञापत्र जिसके द्वारा कोई मनुष्य किसी के प्रति अपना देना अदालत में दाखिल करे। निविदा।

टंडल[१]—संज्ञा पुं० [अं० जेनरल, हिं० जंडेल] मजदूरों का मेठ या जमादार।

टंडल[२]—संज्ञा पुं० [अं० टेंडर] दे० 'टंडर'।

टंडस(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० टंटा] दिखावटी काम। झूठा काम। उ०—टंडस तें बाढ़े जंजाला।—धरनी०, पृ० ४१।

टंडेल—संज्ञा पुं० [अं० जेनरल, हिं० जंडेल] दे० 'टंडल'।

टंसरी—संज्ञा स्त्री० [?] एक प्रकार की बीणा।

टँकना—क्रि० अ० [हिं० टाँकना का अक० रूप] १. टाँका जाना। कील आदि जड़कर जोड़ा जाना। जैसे—एक छोटी सी चिप्पी टँक जायगी तो यह गगरा काम देने लायक हो जायगा।

संयो० क्रि०—जाना।

२. सिलाई के द्वारा जुड़ना। सिलना। सिया जाना। जैसे, फटा जूता टँकना, चकती टँकना, गोटा टँकना।

संयो० क्रि०—जाना।

३. सीकर अँटकाया जाना। सिलाई के द्वारा ऊपर से लगाया जाना। जैसे, झालर में मोती टँके हैं।

संयो० क्रि०—जाना।

४. रेती या सोहन के दाँतों का नुकीला होना। रेती का तेज होना।

संयो० क्रि० – जाना।

५. अंकित होना। लिखा जाना। दर्ज किया जाना। जैसे,—यह रुपया बही पर टँका है या नहीं?

संयो० क्रि०—जाना।

विशेष—इस अर्थ में इस क्रिया का प्रयोग ऐसी वस्तु रकम या नाम के लिये होता है जिसका लेखा रखना होता है।

६. सिल, चक्की आदि का टाँकी से गड्ढे करके खुरदरा किया जाना। छिनना। रेहा जाना। कुटना।

टँकवाना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'टँकाना'।

टँकसालि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'टकसाल'। उ०—घड़ी और अधिक रची टँकसालि।—प्राण०, पृ० १०२।

टँकाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० टाँकना] १ टाँकने की क्रिया या भाव। २. टाँकने की मजदूरी।

टँकाना—क्रि० स० [टाँकना का प्रे० रूप] १. टाँकों से जोड़वाना या सिलवाना। जैसे, जूता टँकाना। २. मिलाकर लगवाना। जैसे, बटन टँकाना। ३. (सिल, जाँता, चक्की आदि) खुरदुरा कराना। कुटाना। ४. लिखवाना। टँकवाना।

टँकाना[२]—क्रि० स० [सं० टङ्क (=सिक्का)] सिक्कों का परखवाना सिक्कों की जाँच कराना।

टँकारना—क्रि० स० [हिं० टंकारना] दे० 'टकारना'। उ०—सुफलक बहि निज धनुष टँकार्यो। बीस बाण बाहलीकहि मार्यो।—गोपाल (शब्द०)।

टँकावल(पु)—वि० [सं० टङ्क (=सिक्का)+आवल (=वाला)] टँकोंवाला। बहुमूल्य। उ०—काने कुंडल झलमलइ कंठ टँकावल हार।—ढोला०, दू० ४८०।

टँकोर(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० टँकोर] दे० 'टँकोर'। उ०—प्रभु कीन्ह धनुष टँकोर प्रथम कठोर घोर भयावहा।—तुलसी (शब्द०)।

टँकोरी—संज्ञा स्त्री० [सं० टङ्क] दे० 'टँकोरी'।

टँकौरी—संज्ञा स्त्री० [सं० टङ्क] सोना, चाँदी आदि तौलने का छोटा तराजू। छोटा काँटा।

टँगड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० टङ्ग] घुटने से लेकर एँड़ी तक का भाग। टाँग।

मुहा०—टँगड़ी पर उड़ाना = लंग मारकर गिराना। कुश्ती में पैर से पैर फँसाकर गिराना। अड़ंगा मारना।

टँगना[१]—क्रि० अ० [सं० टङ्गण या टङ्कण (=बँधा जाना)] १. किसी वस्तु का किसी ऊँचे आधार पर बहुत थोड़ा सा इस प्रकार अटकना या ठहरा रहना कि उसका प्रायः सब भाग उस आधार से नीचे की ओर गया हो। किसी वस्तु का दूसरी वस्तु से इस प्रकार बँधना या फँसना अथवा उसपर इस प्रकार टिकना या अटकना कि उसका (प्रथम वस्तु का) बहुत सा भाग नीचे की ओर लटकता रहे। लटकना। जैसे,(खूँटी पर) कपड़े टँगना, परदा टँगना, तसवीर टँगना।

विशेष—यदि किसी वस्तु का बहुत सा अंश आधार पर हो और थोड़ा सा अंश आधार के नीचे लटका हो तो उस वस्तु को टँगी हुई नहीं कहेंगे। 'टँगना' और 'लटकना' में यह अंतर है कि 'टँगना' क्रिया में वस्तु के फँसने या टिकने या अटकने का भाव प्रधान है, और 'लटकना' में उसके बहुत से अंश का नीचे की ओर अधर में दूर तक जाने का भाव।

संयो० क्रि०—उठना।—जाना।

२. फाँसी पर चढ़ना। फाँसी लटकना।

संयो० क्रि०—जाना।

टँगना[२]—संज्ञा पुं० १ वह आड़ी बँधी हुई रस्सी जिसपर कपड़े आदि टाँगे या रखे जाते हैं। अलगनी। अलगनी। २. जुलाहों की वह रस्सी जिसमें उठौनी टाँगी जाती है। ३. वह फंदा जिसे भेड़ी, लोटे आदि के गले में फँसाकर हाथ में लटकाए हुए ले चलने के लिये बनाते हैं।

टँगरी[+]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'टँगड़ी'।

टँगा—संज्ञा पुं० [देश०] मूँज।

टँगारी[+]—संज्ञा स्त्री० [सं० टङ्क] कुल्हाड़ी। कुठार।

टँड(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० टंटा] झगड़ा। प्रपंच। सांसारिक माया। उ०—टंड सकट में ग्रसित है सुत दारा रहमाई।—भीखा श० पृ० ८७।

टँड़िया—संज्ञा स्त्री० [सं० ताड़ अथवा देश०] बाँह में पहनने का एक गहना जो अनंत के आकार का, पर उससे भारी और बिना घुंडी का होता है। टाँड़। बहूँटा।

टँडुलिया—संज्ञा स्त्री० [देश०] बनचौलाई जो कुछ काँटेदार होती है। यह साग और दवा दोनों के काम आती है।

टँसहा[+]—संज्ञा पुं० [हिं० टाँस+हा (प्रत्य०)] वह बैल जो नसों के सिकुड़ जाने से लँगड़ा हो गया हो।

ट—संज्ञा पुं० [सं०] १ नारियल का खोपड़ा। २. वामन। ३. चौथाई भाग। ४. शब्द।

टई(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ठट्ठी'।

टक—संज्ञा स्त्री० [सं० टक (=बाँधना) या सं० त्राटक] १. ऐसा ताकना जिसमें बड़ी देर तक पलक न गिरे। किसी ओर लगी या बँधी हुई दृष्टि। गड़ी हुई नजर। स्थिर दृष्टि।

क्रि० प्र०—लगना।—लगाना।

मुहा०—टक बँधना=स्थिर दृष्टि होना। टक बाँधना=किसी की ओर स्थिर दृष्टि से देखना। टकटक देखना=बिना पलक गिराए लगातार कुछ काल तक देखते रहना। टक लगाना=आसरा देखते रहना। प्रतीक्षा में रहना।

२. लकड़ी आदि भारी बोझों को तौलनेवाले बड़े तराजू का चौखूँटा पलड़ा।

टकझक(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० टकटकी+झाँकना] ताकझाँक।

उ०—टकझक सों झुकि बदन निहारत प्रलक सँवारत पलक न मारत जान गई नँदरानी ।—नंद० ग्रं० पृ० ३३८ ।

टकटकⓅ—क्रि० वि० [हिं० टकटकाना] टकटकी लगाकर देखना । एक टक देखना । उ०—टकटक ताकि रही ठग मुरी आपा आप बिसारी हो ।—पलटू० भा० ३, पृ० ८४ ।

क्रि० प्र०—ताकना ।—देखना ।

टकटकाⓅ†[1]—संज्ञा पुं० [हिं० टक या सं० त्राटक] [स्त्री० टकटकी] स्थिर दृष्टि । टकटकी । उ०—सुनि सो बात राजा मन जागा । पलक न मार टकटका लागा ।—जायसी (शब्द०) ।

टकटका[2]—वि० स्थिर या बँधी हुई (दृष्टि) । उ०—रूपासक्त चकोर कवक करि पावक को खात कन । रामचद्र को रूप निहारत साधि टकाटक तकन ।—देवस्वामी (शब्द०) ।

टकटकाना†[1]—क्रि० स० [हिं० टक] १. एक टक ताकना । स्थिर दृष्टि से देखना । उ०—टकटकै मुख झुकी नैनही नागरी, उरहनों देत रुचि अधिक बाढ़ी ।—सूर (शब्द०) । २. टकटक शब्द उत्पन्न करना । ३. फल गिराने के लिये किसी पेड़ आदि को हिलाना ।

टकटकाना[2]—क्रि० स० [हिं० टका (= सिक्का)] १. रुपए लेना । चालाकी से रुपए लेना । २. धन कमाना । प्राय करना ।

टकटकी—संज्ञा स्त्री० [हिं० टक या सं० त्राटकी] ऐसी तकाई जिसमें बड़ी देर तक पलक न गिरे । अनिमेष दृष्टि । स्थिर दृष्टि । गड़ी हुई नजर । उ०—टकटकी चंद चकोर ज्यों रहत है । सुरत और निरत का तार बाँधै ।—कबीर श०, भा० १, पृ० ८८ ।

क्रि० प्र०—लगाना ।

मुहा०—टकटकी बँधना = स्थिर दृष्टि होना । टकटकी बाँधना = स्थिर दृष्टि से देखना । ऐसा ताकना जिसमें कुछ काल तक पलक न गिरे । उ०—ग्रोर की खोट देखती बेला । टकटकी लोग बाँध देते हैं ।—चोखे०, पृ० १५ ।

टकटोना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'टकटोलना' । उ०—पुनि पीवत ही कच टकटोवै झूठे जननि रठै ।—सूर (शब्द०) ।

टकटोरना†—क्रि० स० [सं० त्वक् (= चमड़ा) + तोलन (= अदाज करना)] हाथ से छूकर पता लगाना या जाँचना । स्पर्श द्वारा अनुसंधान या परीक्षा करना । टटोलना । उ०—(क) सूर एकहू अंग न काँचौं मैं देखी टकटोरि ।—सूर (शब्द०) । (ख) नहि सगुन पायउ एक मिसु करि एक धनु देखन गए । टकटोरि कपि ज्यों नारियरु सिर नाइ सब बैठत भए ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५३ । २. तलाश करना । ढूँढना । खोजना । उ०—मोहि न पत्याहु तौ टकटोरी देखो पन वै ।—स्वामी हरिदास (शब्द०) ।

टकटोलना—क्रि० स० [सं० त्वक् (= चमड़ा) + तोलन (= अंदाज करना)] हाथ से छूकर पता लगाना या जाँचना । टटोलना ।

टकटोहन—संज्ञा पुं० [हिं० टकटोना] टटोलकर देखने की क्रिया । स्पर्श । उ०—श्याम श्यामा मन रिझवत पीन कुचन टकटोहन । —सूर (शब्द०) ।

टकटोहनाⓅ—क्रि० स० [हिं० टकटोना] दे० 'टकटोलना' । उ०—या बानक उपमा दीवे को सुकवि कहा टकटोहै । देखत अंग थके मन में शशि कोटि मदन छबि मोहै ।—सूर (शब्द०) ।

टकतंत्री—संज्ञा स्त्री० [सं० हिं० टक + सं० तन्त्री] सितार के ढंग का एक प्राचीन बाजा ।

टकना[1]†—संज्ञा पुं० [सं० टङ्क (= टाँग)] घुटना ।

टकना[2]†—क्रि० प्र० [हिं०] दे० 'टकना' ।

टकबीड़ा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की भेंट जो किसानों की ओर से विवाहादि के अवसरों पर जमींदारों को दी जाती है । मथवच । शादियाना ।

टकराना[1]—क्रि० प्र० [हिं० टक्कर] १ एक वस्तु का दूसरी वस्तु से इस प्रकार वेग के साथ सहसा मिलना या छू जाना कि दोनों पर गहरा आघात पहुँचे । जोर से भिड़ना । धक्का या ठोकर लेना । जैसे,—(क) चट्टान से टकराकर नाव चूर चूर होना । (ख) अंधेरे में उसका सिर दीवार से टकरा गया ।

संयो० क्रि०—जाना ।

२. इधर से उधर मारा फिरना । डाँवाडोल घूमना । कार्य-सिद्धि की आशा से कई स्थानों पर कई बार आना जाना । घूमना । जैसे,—उसका घर मालूम नहीं मैं कहाँ टकराता फिरूँगा ? उ०—जँह तँह फिरत स्वान की नाई द्वार द्वार टकरात ।—सूर (शब्द०) ।

मुहा०—टकराते फिरना = मारे मारे फिरना । हैरान घूमना ।

३. लड़ाई या झगड़ा होना ।

टकराना[2]—क्रि० स० १. एक वस्तु को दूसरी वस्तु पर जोर से मारना । जोर से भिड़ाना । पटकना ।

मुहा०—माथा टकराना = (१) दूसरे के पैर के पास सिर पटक-कर विनय करना । अत्यंत अनुनय विनय करना । (२) घोर प्रयत्न करना । सिर मारना । हैरान होना ।

२. किसी को किसी से लड़ा देना ।

टकराव—संज्ञा पुं० [हिं० टकर + आव (प्रत्य०)] टक्कर । टकराहट

टकराहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० टकराना] १. टकराने का भाव या क्रिया । उ०—वह स्वर जिसकी तीखी सशक्त टकराहट से, नारी की आत्मा में भी कुछ जग जाता है ।—ठंडा०, पृ० ७१ । २. संघर्ष । लड़ाई ।

टकरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक पेड़ का नाम ।

टकसरा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बाँस जो आसाम, चटगाँव और बर्मा में होता है । इससे अनेक प्रकार के सजावट के सामान बनते हैं ।

टकसार†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] १. दे० 'टकसाल' । उ०—पारस रूपी जीव है लोहू रूप ससार । पारस तै पारस भया, परख भया टकसार ।—कबीर (शब्द०) ।

मुहा०—टकसार वाणी = प्रामाणिक बात । सच्ची वाणी । उ०—दूसरे कबीर साहब की जो टकसार वाणी है ।—कबीर मं०, पृ० १८ ।

२ जँची या प्रामाणिक वस्तु। उ०—नष्टे का यह राज है न फरक बरतै हेक। सार शब्द टकसार है हिरदय माँहि विवेक।—कबीर (शब्द०)।

टकसारी(पु)—वि० [हि० टकसार] दे० 'टकसाली'।

टकसाल—संज्ञा स्त्री० [सं० टङ्कशाला] १. वह स्थान जहाँ सिक्के बनाए या ढाले जाते हैं। रुपए पैसे आदि बनने का कार्यालय।

मुहा०—टकसाल का खोटा=नीच। दुष्ट। कमीना। कम असल अशिष्ट। टकसाल के चट्टे बट्टे=टकसाल में ढले हुए। विशिष्ट प्रकृति के। उ०—राज्य के अधिकारी तो वही पुरानी टकसाल के चट्टे बट्टे थे।—किन्नर०, पृ० २५। टकसाल चढ़ना=(१) टकसाल में परखा जाना। सिक्के या धातुखंड की परीक्षा होना। (२) किसी विद्या या कला कौशल में दक्ष माना जाना। पारगत माना जाना। (३) बुराई में अभ्यस्त होना। कुकर्म या दुष्टता में परिपक्व होना। बदमाशी में पक्का होना। निर्लज्ज होना। टकसाल बाहर=(१) (सिक्का) जो राज्य की टकसाल का न होने के कारण प्रामाणिक न माना जाय। जो प्रचार में न हो। (२) (वाक्य या शब्द) जो प्रामाणिक न माना जाय। जिसका प्रयोग शिष्ट न माना जाय।

२. जँची या प्रामाणिक वस्तु। असल चीज। निर्दोष वस्तु।

टकसाली[1]—वि० [हि० टकसाल+ई (प्रत्य०)] १. टकसाल का। टकसाल संबंधी। २. जो टकसाल का बना हो। खरा। चोखा। जैसे, टकसाली रुपया। ३. सर्वसंमत। अधिकारियों या विज्ञों द्वारा अनुमोदित। माना हुआ। जैसे, टकसाली भाषा। ४. जँचा हुआ। पक्का। प्रामाणिक। परीक्षित। जैसे, टकसाली बात।

मुहा०—टकसाली बात=पक्की बात। ठीक बात। ऐसी बात जो अन्यथा न हो। टकसाली बोली=सर्वसंमत भाषा। विज्ञों द्वारा अनुमोदित भाषा। शिष्ट भाषा। ऐसी भाषा जिसमें ग्राम्य आदि दोष न हों।

टकसाली[2]—संज्ञा पुं० टकसाल का अधिकारी। टकसाल का अध्यक्ष।

टकहाई—वि० स्त्री० [हि० टका] जो टके टके पर व्यभिचार करती हो। जो वेश्याओं में नीच हो। जैसे, टकहाई रंडी।

टका—संज्ञा पुं० [सं० टङ्क] १. चाँदी का एक पुराना सिक्का। रुपया। उ०— (क) रतन सेन हीरामन चीन्हा। लाख टका बाह्मन कहँ दीन्हा।—जायसी (शब्द०) (ख) लाख टका अरु झूमक सारी दे बाई को नेग।—सूर (शब्द०)। २. ताँबे का एक सिक्का जो दो पैसों के बराबर होता है। अधन्ना। दो पैसे। जैसे—अंधेर नगरी चौपट राजा। टके सेर भाजी टके सेर खाजा।

मुहा०—टका पास न होना=निर्धन होना। दरिद्र होना। टका सा जवाब देना=(१) झट से जवाब देना। तुरंत अस्वीकार करना। किसी की प्रार्थना, याचना, अनुरोध या आज्ञा को तुरंत अस्वीकार करना। साफ इनकार करना। कोरा जवाब देना। जैसे,—मैंने दो दिन के लिये उनसे घोड़ा माँगा तो उन्होंने टका सा जवाब दे दिया। (२) साफ जवाब देना कि मैंने इस काम को नहीं किया है या मैं इस बात को नहीं जानता। साफ निकल जाना। कानों पर हाथ रखना। टका सा मुँह लेकर रह जाना=छोटा सा मुँह लेकर रह जाना। लज्जित हो जाना। खिसिया जाना। टका सी जान=अकेला दम। एका ही जीव। (स्त्रि०)। टके ऐंठना=अनुचित रूप से या धूर्तता से रुपया प्राप्त करना। रुपया ऐंठना। उ०—क्यों टका स. जवाब उसको दे। जिस किसी से सदा टके ऐंठे।—चोखे०, पृ० २७। टके की औकात=(१) साधारण वित्त का आदमी। गरीब आदमी। (२) अस्तित्वहीनता। उ०—हम गरीब आदमी हैं, टके की हमारी औकात।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ८७। टके को न पूछना=लेशमात्र महत्व न देना। महत्वहीन समझना। उ०—मुर्दों मरते हैं कोई टके को भी नहीं पूछता। फिसाना०, भा० ३, पृ० ३६७। टके कोस का दौड़नेवाला=थोड़ी मजूरी पर अधिक परिश्रम करनेवाला। गरीब नौकर। उ०—टके कोस के दौड़नेवाले, हमको दौड़ने धूपने से काम है।—सैर कु०, भा० १, पृ० ३१। टके गज की चाल=मोटी चाल। किफायत से निर्वाह। †टके गिनना=हुक्के का गुड़ गुड़ बोलना।

३. धन। द्रव्य। रुपया पैसा। जैसे,—जब टका पास में रहेगा, तब सब सुनेंगे। ४. तीन तोले की तौल। दो बालाशाही पैसे भर की तौल। आधी छँटाक का मान। (वैद्यक)।

मुहा०—टका भर=(१) तीन तोले का परिमाण। (२) थोड़ा सा। जरा सा।

५. गढ़वाल की एक तौल जो सवा सेर के बराबर होती है।

टकाई[1]—वि० स्त्री० [हि०] दे० 'टकाही', 'टकहाई'।

टकाई[2]—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'टकासी'।

टकाउल(पु)—वि० [हि० टका (=सिक्का) उल (=वाला) (प्रत्य०)] टकावाला। टके का। उ०—मोतिग्रु कोहि टकाउल हार।—बी० रासो, पृ० ३९।

टकाटकी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'टकटकी'।

टकातोप—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की तोप जो जहाजों पर रहती है।—(लश०)।

टकाना—क्रि० स० [हि०] दे० 'टँकाना'।

टकानी†—संज्ञा स्त्री० [हि० टँकना] बैलगाड़ी का जुआ।

टकासी—संज्ञा स्त्री० [हि० टका] १. टके रुपए का ब्याज। दो पैसे रुपए का सूद। २. वह कर या चंदा जो प्रति मनुष्य से एक एक टके के हिसाब से लिया जाय।

टकाही[1]—वि० [हि० टका+ही (प्रत्य०)] दे० 'टकहाई'।

टकाही[2]—संज्ञा स्त्री० दे० 'टकासी'।

टकी[1]†—संज्ञा स्त्री० [हि० टक] दे० 'टकटकी'।

टकी[2]—वि० [हि० टकना] टँकी हुई।

टकुआ—संज्ञा पुं० [सं० तर्कुक, प्रा०, तक्कुअ] १. एक प्रकार का सूआ जो चरखे में लगा रहता है। तकला। २. बिनौला निकालने की चरखी में लगा हुआ लोहे का एक पुरजा। ३. छोटे तराजू या काँटे के पलड़ों में बँधा हुआ तागा।

टकुली[1]—संज्ञा स्त्री० [देश०] हिमालय की तराई में होनेवाला एक ऐसा पेड़ जिसकी पत्तियाँ झड़ जाया करती हैं। चपोट सिरीस।

टकुली[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० टङ्क] १. पत्थर काटने का औजार। २. पेचकश की तरह लोहे का एक औजार जो नक्काशी बनाने के काम में आता है।

टकुवाⓅ—संज्ञा पुं० [सं० तर्कुक, प्रा० तक्कुम] दे० 'टकुग्रा'। उ०—टिकुली सेंदुर टकुवा चरखा दासी ने फरमाया।—कबीर०, श०, भा० ४, पृ० २५।

टकूचना—क्रि० स० [हिं० टौंकना] खाना।—(दलाल)।

टकैट[1]—वि० [हिं०] दे० 'टकैत'।

टकैत[2]—वि० [हिं० टका + ऐत (प्रत्यय)] १. टकेवाला। रुपए पैसेवाला। धनी। २. कम हैसियत या थोड़ी पूँजीवाला।

टकैया—वि० [हिं० टका + इया (प्रत्यय)] १. टके का। टकेवाला २. तुच्छ। साधारण।

टकोर—संज्ञा स्त्री० [सं० टङ्कार] १. हलकी चोट। प्रहार। आघात। ठेस। थपेड़।

क्रि० प्र०—देना।

२. डंके की चोट। नगाड़े पर का आघात। ३. डंके का शब्द। नगाड़े की आवाज। ४. धनुष की डोरी खींचने का शब्द। टंकार। ५. दवा भरी हुई गरम पोटली को किसी अंग पर रखकर छुलाने की क्रिया। सेंक। ६. दाँतों की वह टीस जो किसी वस्तु के खाने से होती है। दाँतों के गुठले होने का भाव। चमक।

क्रि० प्र०—लगना।

७. झाल। चरपराहट। उ०—कबहूँ कौर खात मिरचन की लगी दसन टंकोर।—सूर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—लगना।

टकोरना—क्रि० स० [हिं० टकोर से नामिक धातु] १. ठोकर लगाना। हलका आघात पहुँचाना। ठेस या थपेड़ मारना। २. डंके आदि पर चोटें लगाना। बजाना। ३. दवा भरी हुई किसी गरम पोटली को किसी अंग पर रह रहकर छुलाना। सेंकना। सेंक करना।

टकोरा—संज्ञा पुं० [सं० टङ्कार] डंके की चोट। नौबत की आवाज।

टकौना‡—संज्ञा पुं० [हिं० टका + औना (प्रत्य०)] दे० 'टका'।

टकौरी—संज्ञा स्त्री० [सं० टङ्क] १. सोना आदि तौलने का छोटा तराजू। छोटा काँटा। २. दे० 'टकासी'।

टक्क—संज्ञा पुं० [सं०] १. कंजूस व्यक्ति। कृपण। २. वाह्लीक जातीय व्यक्ति [को०]।

टक्कदेश—संज्ञा पुं० [सं०] चनाब और व्यास के बीच के प्रदेश का प्राचीन नाम।

विशेष—राजतरंगिणी में टक्क देश को गुर्जर (गुजरात) राज्य के अंतर्गत लिखा है। टक्क जाति किसी समय में अत्यंत प्रतापशालिनी थी और सारे पंजाब में राज्य करती थी। चीनी यात्री हुएनसांग ने टक्क राज्य तथा उसके अधिपति मिहिरकुल का उल्लेख किया है। मिहिरकुल का हूण होना इतिहासों में प्रसिद्ध है। ये हूण पंजाब और राजपूताने में बस गए थे। यशोधर्मन् द्वारा मिहिरकुल के पराजित होने (५२८ ईसवी) के ७८ वर्ष पीछे हर्षवर्धन राजसिंहासन पर बैठे थे जिनके राजत्वकाल में हुएनसांग आया था। टक्क शायद हूण जाति की ही कोई शाखा रही हो।

टक्कदेशीय[1]—वि० [सं०] टक्कदेश का। टक्क देश में उत्पन्न।

टक्कदेशीय[2]—संज्ञा पुं० बथुआ नाम का साग।

टक्कबाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० टक + बाई] एक प्रकार का वातरोग जिसमें रोगी का शरीर सुन्न हो जाता है और वह टक बाँधकर ताकता रहता है।

टक्कर[1]—संज्ञा स्त्री० [अनु० ठक] १. वह आघात जो दो वस्तुओं के वेग के साथ मिलने या छू जाने से लगता है। दो वस्तुओं के भिड़ने का धक्का। ठोकर।

क्रि० प्र०—लगना।

मुहा०—टक्कर खाना = १. किसी कड़ी वस्तु के साथ इतने वेग से भिड़ना या छू जाना कि गहरा आघात पहुँचे। जैसे,—चट्टान से टक्कर खाकर नाव चूर चूर हो गई। २. मारा मारा फिरना। जैसे,—नौकरी छूट जाने से वह इधर उधर टक्करें खाता फिरता है।

२. मुकाबिला। मुठभेड़। भिड़ंत। लड़ाई। जैसे,—दिन भर में दोनों की एक टक्कर हो जाती है।

मुहा०—टक्कर का = जोड़ का। मुकाबिले का। बराबरी का। समान। तुल्य। जैसे,—उनकी टक्कर का विद्वान् यहाँ कोई नहीं है। टक्कर खाना = (१) मुकाबिला करना। संमुख होना। लड़ना। भिड़ना। (२) मुकाबिले का होना। समान होना। तुल्य होना। उ०—इस टोपी का काम सच्चे काम से टक्कर खाता है। टक्कर लड़ना = बराबरी होना। समानता होना। उ०—इस ठास से रहती है कि अच्छी अच्छी रईस जातियों से टक्कर लड़े।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १। टक्कर लेना = वार सहना। चोट सहारना। मुकाबिला करना। लड़ना। भिड़ना। पहाड़ से टक्कर लेना = बड़े भारी शत्रु से भिड़ना। अपने से अधिक सामर्थ्यवाले शत्रु से लड़ना।

३. जोर से सिर मारने का धक्का। किसी कड़ी वस्तु पर माथा मारने या पटकने का आघात।

क्रि० प्र०—लगाना।

मुहा०—टक्कर मारना = (१) आघात पहुँचाने के लिये जोर से सिर मारना या पटकना। सिर से धक्का लगाना। (२) माथा मारना। हैरान होना। घोर परिश्रम और उद्योग करना। ऐसा प्रयत्न करना जिसका फल शीघ्र न दिखाई दे। जैसे,—लाख टक्कर मारो अब वह तुम्हारे हाथ नहीं आता। टक्कर लड़ना = दूसरे के सिर पर सिर मारकर लड़ना। माथे से माथा भिड़ाना। जैसे,—दोनों मेढ़े खूब टक्कर लड़ रहे हैं। टक्कर लड़ाना = सिर से धक्का मारना।

४. घाटा। हानि। नुकसान। धक्का। जैसे,—१०) की टक्कर बैठे बैठाए लग गई।

क्रि० प्र०—लगना।

मुहा०—टक्कर झेलना = (१) हानि उठाना। नुकसान सहना। (२) संकट या आपत्ति सहना।

टक्कर²—संज्ञा पुं० [सं०] शिव (को०)।

टखना—संज्ञा पुं० [सं० टङ्क (=टाँग)] एड़ी के ऊपर निकली हुई हड्डी की गाँठ। पैर का गट्टा। गुल्फ। पादग्रंथि।

टग(पु)—संज्ञा स्त्री० [?] 'टकटकी'। उ०—दिपि बालुक भ्रत तेह टग कुलह बाजि जनु झारि।—पृ० रा०, ५।५५।

टगटग(पु)—क्रि० वि० [हिं० टकटकाना] टकटकी लगाकर। एकटक। उ०—कबीर टग टग चोघतां पल पल गई बिहाइ।—कबीर ग्रं०, पृ० ७२।

टगटगाना†—क्रि० स० [हिं०] दे० 'टकटकाना'।

टगटगी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'टकटकी'। उ०—पलु एक कबहुँ न होइ अंतर टगटगी लागी रहै।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० २८।

टगट्टग(पु)—क्रि० वि० [हिं० टगटगी] स्थिर दृष्टि से। टकटक। उ०—टट्टग चाहि रहे सब लोई। विप्यो पर तेज अदम्भुत सोई।—पृ० रा०, १२।१३६।

टगण—संज्ञा पुं० [सं०] मात्रिक गणों में से एक। यह छह मात्राओं का होता है और इसके १३ उपभेद हैं। जैसे,—ऽऽऽ, ।।ऽऽ, इत्यादि।

टगमग(पु)—क्रि० वि० [हिं० टकटकी] एकटक। स्थिर। उ०—टगमग नयन सु मग्ग मग विमग सु भुल्लिय भग।—पृ० रा०, २।४५७।

• **टगना**(पु)—क्रि० अ० [?] टलना। खिसकना। उ०—टगै न टेक टूटि नहि जाई। टलै काल औरहि को पाई।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० २२२।

टगर¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. टंकण। सोहागा। २. विलास। क्रीड़ा। ३. तगर का पेड़। ४. मेंड़ (को०)। ५ टोला (को०)।

टगर²—वि० तिरछी निगाह से देखनेवाला। ऐंचाताना (को०)।

क्रि० प्र०—देखना।

टगरगोड़ा—संज्ञा पुं० [?] लड़कों का एक खेल जिसमें कुछ कौड़ियाँ चित्त करके जमा कर देते हैं और फिर एक कौड़ी से उन्हें मारते हैं।

टगर टगर(पु)—क्रि० वि० [हिं०] आँखें खोले हुए। ध्यान लगाकर। टकटकी बाँधकर। उ०—सोभासदन बदन मोहन को देखि जो जिये टगर टगर।—घनानंद, पृ० ४५१।

टगरा†—वि० [सं० टेरक] ऐंचाताना। भेंगा।

टगाटगी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० टकटकी] समाधि की अवस्था। उ०—टगाटगी जीवन मरण, ब्रह्म बराबरि होइ।—दादू०, पृ० १४४।

टघरना†—क्रि० अ० [सं० तप (=गरम करना) + गरण (=पिघलना)] १. घी, चरबी, मोम आदि का आँच खाकर द्रव होना। पिघलना।

संयो० क्रि०—जाना।

२. हृदय का द्रवीभूत होना। चित्त में दया आदि उत्पन्न होना। हृदय पर किसी की प्रार्थना या कष्ट आदि का प्रभाव पड़ना।

संयो० क्रि०—जाना।

टघराना—क्रि० स० [हिं० टघरना] घी, मोम, चरबी आदि को आँच पर रखकर द्रव करना। पिघलाना।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।—लेना।

टचटच(पु)—क्रि० वि० [हिं० टचना(=जलना)] धाँय धाँय। धक धक (आग की लपट का शब्द)। उ०—टच टच तुम बिनु अागि मोंहि लागी। पाँचों दाघ बिरह मोंहि जागी।—जायसी (शब्द०)।

टचना—क्रि० अ० [हिं० टचटच] आग का जलना।

टचनी—संज्ञा स्त्री० [सं० टङ्क] लोहे का एक औजार जिससे कसेरे बरतनों पर नक्काशी करते हैं।

टट(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तट'। उ०—आएउ भागि समुंद टट तबहुँ न छाँड़ै पास।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३७०।

टटका†—वि० [सं० तत्काल] [वि० स्त्री० टटकी] १. तत्काल का। तुरंत का प्रस्तुत या उपस्थित। जिसको वर्तमान रूप से आए हुए बहुत देर न हुई हो। हाल का। ताजा। उ०—(क) मेटे क्यों हू न मिटति छाप परी टटकी।—सूर (शब्द०)। (ख) मनिहार गरे सुकुमार धरे नट भेस अरे पिय को टटको।—रसखान (शब्द०)। २ नया। कोरा।

टटड़ा†—संज्ञा पुं० [?] [स्त्री० टटड़ी] टट्टी। टटिया। टाटी।

टटड़ी†—संज्ञा स्त्री० [पंजाबी] १. खोपड़ी। २ दे० 'ठठरी'। ३. दे० 'टट्टी'।

टटपूँज्यौ(पु)—वि० [हिं०] दे० 'टुटपुँजिया'। उ०—कौड़ी फिरै उछालतौ जो टटपूँज्यौ होइ।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ७६७।

टटरा†—संज्ञा पुं० [हिं० टटड़ा] [स्त्री० टटरी] बड़ी टटिया या टाटी।

टटरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'टट्टी'।

टटलबटल†—वि० [अनु०] अटसट। अंड बंड। उटपटाँग। उ०—टटलबटल बोल पाटल कपोल देव दीपति पटल में अटल ह्वै कै अटकी।—देव (शब्द०)।

टटाना†—क्रि० अ० [ठाठ] सूख जाना।

टटांबरी(पु)—वि० [हिं० टाट + अंबर] टाट पहननेवाला। जिसका वस्त्र टाट हो। उ०—सुंदर एक टटांबरी बहुरि दिगंबर होइ।—सुंदर० ग्रं०, भा०२, पृ० ३५।

टटाबक(पु)—संज्ञा पुं० [?] टाबक। टामक। टामन। टोटका। टोना। उ० नंददास सखि मेरी कहा बस काम के आए टटाबक टोने।—नंद० ग्रं०, पृ० ३४३।

टटाक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'टल' (को०)।

टटावली—संज्ञा स्त्री० [सं० टिट्टिभावली] टिटिहरी नाम की चिड़िया। कुररी।

टटिया†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'टट्टी' उ०—देखत कछु कौतिगु इतै देखौ नैक निहारि। कब की इकटक डटि रही टटिया अँगुरिनु फारि।—बिहारी र०, दो० ६३४।

टटियाना†—क्रि० अ० [हिं० ठाँठ] सूख जाना। सूखकर अकड़ जाना।

टटीबा—संज्ञा पुं० [अनु०] घिरनी। चक्कर। उ०—खैंचूँ तो आवै नहीं जो छोड़ूँ तो जाय। कबीर मन पुछ रे प्रान टटीबा खाय।—कबीर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—खाना।

टटीरी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'टिटिहरी'। उ०—चीरती, ज्यों वेदना का तीर, लंबी टटीरी की आह।—इत्यलम् पृ० २१६।

टटुआ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'टट्टू'। उ०—ताके आगे आइके टटुआ फेरे बाल।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ७३७।

टटुई(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० टट्टू] मादा टट्टू।

टटुवा(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० टट्टू] दे० 'टट्टू'। उ०—काहे का टटुवा काहे क पाखर काहे क भरी गोनियाँ।—कबीर श०, भा० १, पृ० २८।

टटोना† —क्रि० स० [हिं०] दे० 'टटोलना'।

टटोरना†—क्रि० स० [हिं० टटोलना] दे० 'टटोलना'। उ०—कबहुँ कमला चपला पाइ के टेढे टेढे जात। कबहुँक मग मग धूरि टटोरत भोजन को बिलखात।—सूर (शब्द०)।

टटोल—संज्ञा स्त्री० [हिं० टटोलना] टटोलने का भाव। उँगलियों से छू या दबाकर मालूम करने का भाव या क्रिया। गूढ़ स्पर्श।

टटोलना—क्रि० स० [सं० त्वक् + तोलन (=अंदाज करना)] १. मालूम करने के लिये उँगलियों से छूना या दबाना। किसी वस्तु के तल की अवस्था अथवा उसकी कड़ाई आदि जानने के लिये उसपर उँगलियाँ फेरना या गड़ाना। गूढ़ संस्पर्श करना। जैसे,—ये आम पके हैं, टटोलकर देख लो।

संयो० क्रि०—लेना।—डालना।

२. किसी वस्तु को पाने के लिये इधर उधर हाथ फेरना। ढूँढने या पता लगाने के लिये इधर उधर हाथ रखना। जैसे,—(क) अँधेरे मे क्या टटोलते हो! रुपया गिरा होगा तो सबेरे मिल जायगा। (ख) वह अंधा टटोलता हुआ अपने घर तक पहुँच जायगा। (ग) घर के कोने टटोल डाले कहीं पुस्तक का पता न लगा।

संयो० क्रि०—डालना।

३. किसी से कुछ बातचीत करके उसके विचार या आशय का इस प्रकार पता लगाना कि उसे मालूम न हो। बातों में किसी के हृदय के भाव का अंदाज लेना। थाह लेना। थहाना। जैसे,—तुम भी उसे टटोलो कि वह कहाँ तक देने के लिये तैयार है।

मुहा०—मन टटोलना = हृदय के भाव का पता लगाना।

४. जाँच या परीक्षा करना। परखना। आजमाना। जैसे,—(क) हम उसे खूब टटोल चुके हैं, उसमें कुछ विशेष विद्या नहीं है। (ख) मैंने तो सिर्फ तुम्हें टटोलने के लिये रुपए माँगे थे, रुपए मेरे पास हैं।

टटोहना(पु)†—क्रि० स० [हिं० टोहना] दे० 'टटोलना'।

टट्टड़†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'टट्टर'।

टट्टनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] छिपकली।

टट्टर—संज्ञा पुं०[सं० तट(=ऊँचा किनारा)या सं० स्थात(=जो खड़ा हो)] बाँस की फट्टियों, सरकंडों आदि को परस्पर जोड़कर बनाया हुआ ढाँचा। जैसे,—(क) कुत्ता टट्टर खोलकर झोपड़े में घुस गया। (ख) टट्टर खोलो निखट्टू आए। (कहावत)।

मुहा०—टट्टर देना या लगाना = टट्टर बंद करना।

टट्टरी—संज्ञा स्त्री [सं०] १. ढोल का शब्द। नगाड़े आदि का शब्द। २. लंबी चौड़ी बात। ३. चुहलबाजी। ठट्ठा। ४. झूठ (को०)।

टट्टा—संज्ञा पुं० [सं० तट (=ऊँचा किनारा) या सं० स्थाता (=जो खड़ा हो)] [स्त्री० टट्टी] १. बाँस की फट्टियों का परदा या पल्ला। टट्टर। बड़ी टट्टी। २. लकड़ी का पल्ला। बिना पुश्तवान का तख्ता। ३. अंडकोश।—(पंजाबी)।

टट्टी—संज्ञा स्त्री० [सं० तटी (=ऊँचा किनारा) या सं० स्थात्री (=जो खड़ी हो)] १. बाँस की फट्टियों, सरकंडों आदि को परस्पर जोड़कर बनाया हुआ ढाँचा जो आड़, रोक या रक्षा के लिये दरवाजे, बरामदे अथवा और किसी खुले स्थान में लगाया जाता है। बाँस की फट्टियों आदि का बना पल्ला जो परदे, किवाड़ या छाजन आदि का काम दे। जैसे, खस की टट्टी।

क्रि० प्र०—लगाना।

मुहा०—टट्टी की आड़ (या ओट) से शिकार खेलना = (१) किसी के विरुद्ध छिपकर कोई चाल चलना। किसी के विरुद्ध गुप्त रूप से कोई काररवाई करना। (२) छिपाकर बुरा काम करना। लोगों की दृष्टि बचाकर कोई अनुचित कार्य करना। टट्टी का शीशा = पतले दल का शीशा। टट्टी में छेद करना = किसी की बुराई करने में किसी प्रकार का परदा न रखना। प्रकट रूप से कुकर्म करना। खुल खेलना। निर्लज्ज हो जाना। लोकलज्जा छोड़ देना। टट्टी लगाना = (१) आड़ करना। परदा खड़ा करना। (२) किसी के सामने भीड़ लगाना। किसी के आगे इस प्रकार पंक्ति में खड़ा होना कि उसका सामना रुक जाय। जैसे,—यहाँ क्या टट्टी लगा रखी है, क्या कोई तमाशा हो रहा है! धोखे की टट्टी = (१) वह टट्टी जिसकी आड़ में शिकारी शिकार पर वार करते हैं। (२) ऐसी वस्तु जिसे ऊपर से देखने से उससे होनेवाली बुराई का पता न चले। ऐसी वस्तु या बात जिसके कारण लोग धोखा खाकर हानि उठावें। जैसे,—उसकी दूकान वगैरह सब धोखे की टट्टी है; उसे भूलकर भी रुपया न देना। (३) ऐसी वस्तु जो ऊपर से देखने में सुंदर जान पड़े, पर काम देनेवाली न

हो। चटपट टूट या बिगड़ जानेवाली वस्तु। काजू भोजू चीज। २. चिक। चिलमन। ३. पतली दीवार जो परदे के लिये खड़ी की जाती है। ४. पाखाना।

क्रि० प्र०—जाना।

५. फुलवारी का तख्ता जो बरातों में निकलता है। ६. बाँस की फट्टियों आदि की बनी हुई वह दीवार और छाजन जिसपर अंगूर आदि की बेलें चढ़ाई जाती हैं।

टट्टी संप्रदाय—संज्ञा पुं० [हिं० टट्टी + संप्रदाय] एक धार्मिक वैष्णव संप्रदाय जिसके संस्थापक स्वामी हरिदास जी हैं।

टट्टर— संज्ञा पुं० [सं०] भेरी का शब्द।

टट्टू— संज्ञा पुं० [अनु०] [वि० टट्टुआनी, टट्टई] १. छोटे कद का घोड़ा। टाँगन।

मुहा०—टट्टू पार होना = बेड़ा पार होना। काम निकल जाना। प्रयोजन सिद्ध हो जाना। भाड़े का टट्टू = रुपया लेकर दूसरे की ओर से कोई काम करनेवाला। २. लिंगेंद्रिय।—(बाजारू)

मुहा०—टट्टू भड़कना = कामोद्दीपन होना।

टठिया[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'टाठी'।

टठिया[2]—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की माँग।

टड़िया—संज्ञा स्त्री० [सं० ताड] बाँह में पहनने का एक गहना जो अनंत के आकार का पर उससे मोटा और बिना घुंडी का होता है। टाँड़।

टण—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'टना'।

टन[1]—संज्ञा स्त्री० [अनु०] घंटा बजने का शब्द। किसी धातु खंड पर आघात पड़ने से उत्पन्न ध्वनि। टनकार। झनकार। जैसे,—टन से घंटा बोला।

विशेष—'खटपट' आदि शब्दों के समान इस शब्द का प्रयोग भी अधिकतर 'से' विभक्ति के साथ क्रि० वि० वत् ही होता है। अत: इसका लिंग उतना निश्चित नहीं है।

मुहा०—टन हो जाना = चटपट मर जाना।

टन[2]—संज्ञा पुं० [अं०] एक अंग्रेजी तौल जो अट्ठाईस मन के लगभग होती है।

टनकना—क्रि० अ० [अनु० टन] १. टनटन बजना। २. धूप या गरमी लगने के कारण सिर में दर्द होना। रह रहकर आघात पड़ने की सी पीड़ा देना। जैसे, माथा टनकना।

टनकार(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० टन] दे० 'टंकार'। उ०—कड़ी कमान जब ऐंठि के लैंचिया, तीन बेर टनकार सहज टका।—कबीर श०, भा० ४, पृ० ११।

टनटन—संज्ञा स्त्री० [अनु० टन] घंटा बजने का शब्द।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

टनटनाना[1]—क्रि० स० [हिं० टनटन से नामिक धातु] घंटा बजाना। किसी धातु खंड पर आघात करके उसमे से 'टनटन' शब्द निकालना।

टनटनाना[2]— क्रि० अ० टनटन बजना।

टनमन[1]—संज्ञा पुं० [सं० तन्त्र मन्त्र] तंत्र मंत्र। टोना। जादू।

टनमन[2]—वि० [हिं० टनमना] दे० 'टनमना'।

टनमना—वि० [सं० तन्मनस्] जो सुस्त न हो। जिसकी चेष्टा मंद न हो। जिसकी तबीयत हरी हो। जो शिथिल न हो। स्वस्थ। चंगा। 'अनमना' का उलटा।

टनमनाना—क्रि० अ० [हिं० टनमना+ना (प्रत्य०)] १. तबीयत हरी होना। स्वस्थ होना। २. कुलबुलाना। टलमनाना।

टना—संज्ञा पुं० [सं० तुण्ड] [स्त्री० अल्पा० टनी] १. स्त्रियों की योनि में निकला हुआ वह मांस का टुकड़ा जो दोनों किनारों के बीच मे होता है। २. योनि। भग।

टनाका[1]†—संज्ञा पुं० [अनु० टन] घंटा बजने का शब्द।

टनाका[2]—वि० बहुत कड़ी (धूप)। माथा टनकानेवाली (धूप)।

टनाटन[1]— संज्ञा स्त्री० [अनु०] लगातार घंटा बजने का शब्द।

टनाटन[2]—क्रि० वि० १. भला। चंगा। २. अच्छी हालत में। बढ़िया।

क्रि० प्र०—होना।

टनी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'टना'।

टनेल—संज्ञा पुं० [अं०] सुरंग खोदकर बनाया हुआ मार्ग। ऐसा रास्ता जो जमीन या किसी पहाड़ आदि के नीचे होकर गया हो।

टन्नाका[1]—संज्ञा पुं० [हिं० टनाका] दे० 'टनाका'।

टन्नाका[2]—वि० दे० 'टनाका'।

टन्नाना[1]—क्रि० अ० [हिं० टनटन] टनटन की आवाज करना। टनटन की ध्वनि उत्पन्न होना।

टन्नाना[2]—क्रि० अ० [हिं०] बिगड़ना। नाराज होना। बकझक करना।

टप[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० टोप, तोप (= आच्छादन, जैसे, घटाटोप)] १. जोड़ी, फिटन, टमटम या इसी प्रकार की और खुली गाड़ियों का ओहार या सायबान जो इच्छानुसार चढ़ाया या गिराया जा सकता है। कलंदरा। २. लटकानेवाले लंप के ऊपर की छतरी।

टप[2]—संज्ञा पुं० [अं० टब] नाँद के आकार का पानी रखने का खुला बरतन। टाँका।

टप[3]—संज्ञा पुं० [अं० ट्यूब] जहाजों की गति का पता लगाने का एक औजार।—(लश०)।

टप[4]—संज्ञा पुं० [हिं० ठप्पा] एक औजार जिससे डिबरी का पेच घुमावदार बनाया जाता है।

टप[5]—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. बूँद बूँद टपकने का शब्द। उ०—(क) परत श्रम बूँद टप टपकि आनन लाल भई बेहाल रति मोह भारी।—सूर (शब्द०)। (ख) प्यारी बिनु कटत न कारी रैन। टप टप टपकत दुख भरे नैन।—हरिश्चंद्र (शब्द०)।

यौ०—टप टप।

२. किसी वस्तु के एकबारगी ऊपर से गिर पड़ने का शब्द। जैसे—आम टप से टपक पड़ा।

यौ०—टप टप।

टप[१]—संज्ञा पुं० [श्रं० टौप] कानों में पहनने का स्त्रियों का एक आभूषण।

टप[२]—क्रि० वि० [अनु०] शीघ्र। तुरत। उ०—कैसें कहै कछु कोई सवाद मिलै बड़ी बेर सों याहि मिल्यो टप।—घनानंद, पृ० १५१।

मुहा०—टप से = चट से। झट से बड़ी जल्दी। जैसे,—(क) बिल्ली ने टप से चूहे को पकड़ लिया। (ख) टप से आओ।

विशेष—खट, पट आदि और अनुकरण शब्दों के समान इसका प्रयोग भी अधिकतर 'से' विभक्ति के साथ क्रि०वि०वत् ही होता है। अतः इसका लिंग उतना निश्चित नहीं है।

टपक—संज्ञा स्त्री० [हिं० टपकना] १. टपकने का भाव। २ बूँद बूँद गिरने का शब्द। ३. रुक रुककर होनेवाला दर्द। ठहर ठहरकर होनेवाली पीड़ा। जैसे, फोड़े की टपक।

टपकन—संज्ञा स्त्री० [हिं० टपकना] १. टपकने की क्रिया या भाव। २. लगातार बूँद बूँद गिरने की स्थिति। ३. रुक रुककर पीड़ा होना। टीसना। टकसना।

टपकना—क्रि० अ० [अनु० टपटप] १. बूँद बूँद गिरना। किसी द्रव पदार्थ का बिंदु के रूप में ऊपर से थोड़ा थोड़ा पड़ना। चूना। रसना। जैसे, घड़े से पानी टपकना, छत टपकना। उ०—टप टप टपकत दुख भरे नैन।—हरिश्चंद्र (शब्द०)।

विशेष—इस क्रिया का प्रयोग जो वस्तु गिरती है तथा जिस वस्तु में से कोई वस्तु गिरती है, दोनों के लिये होता है।

संयो० क्रि०—जाना।—पड़ना।

२. फल का पककर आपसे आप पेड़ से गिरना। जैसे, आम टपकना। महुआ टपकना।

संयो० क्रि०—पड़ना।

३. किसी वस्तु का ऊपर से एकबारगी सीध में गिरना। ऊपर से सहसा पतित होना। टूट पड़ना।

संयो० क्रि०—पड़ना।

मुहा०—टपक पड़ना = एकबारगी आ पहुँचना। अकस्मात् आकर उपस्थित होना। जैसे,—हैं! तुम बीच में कहाँ से टपक पड़े। आ टपकना = दे० 'टपक पड़ना'।

४. किसी बात का बहुत अधिक आभास पाया जाना। अधिकता से कोई भाव प्रगट होना। लक्षण, शब्द, चेष्टा या रूप रंग से कोई भाव व्यंजित होना। जाहिर होना। झलकना। जैसे,—(क) उसके चेहरे से उदासी टपक रही थी। (ख) मुहल्ले में चारों ओर उदासी टपकती है। (ग) उसकी बातों से बदमाशी टपकती है।

संयो० क्रि०—पड़ना। जैसे,—उसके अंग अंग से यौवन टपका पड़ता था।

५. (चित्त का) तुरंत प्रवृत्त होना। (हृदय का) झट आकर्षित होना। ढल पड़ना। फिसलना। लुभा जाना। मोहित हो जाना।

संयो० क्रि०—पड़ना।

६. स्त्री का संभोग की ओर प्रवृत्त होना। ढल पड़ना।—(बाजारू)।

संयो० क्रि०—पड़ना।

७. घाव, फोड़े आदि का मवाद आने के कारण रह रहकर दर्द करना। चिलकना। टीस मारना। टीसना। ८. फोड़े का पककर बहना।

संयो० क्रि०—पड़ना।

९. लड़ाई में घायल होकर गिरना।

संयो० क्रि०—पड़ना।

टपकवाना—क्रि० स० [हिं० टपकाना] किसी को टपकाने के कार्य में प्रवृत्त करना। टपकाने के लिये प्रेरित करना।

टपका—संज्ञा पुं० [हिं० टपकना] १. बूँद बूँद गिरने का भाव।

यौ०—टपका टपकी।

२. वह जो बूँद बूँद करके गिरा हो। टपकी हुई वस्तु। रसाव। ३. पककर आपसे आप गिरा हुआ फल। ४. रह रहकर उठनेवाला दर्द। टीस। ५. चौपायों के खुर का एक रोग। खुरपका। † ६. डाल में पका हुआ आम।

टपका टपकी[१]—संज्ञा स्त्री० [हिं० टपकाना] १. बूँदाबूँदी। (मेह की) हलकी झड़ी। फुहार। फुही। २. फलों का लगातार एक एक करके गिरना। ३. किसी वस्तु को लेने के लिये आदमियों का एक पर एक टूटना। ४. एक के पीछे दूसरे आदमी की मृत्यु। एक एक करके बहुत से आदमियों की मृत्यु (जैसे हैजे आदि में होती है)।

क्रि० प्र०—लगना।

टपका टपकी[२]—वि० इक्का दुक्का। भूला भटका। एक आध। बहुत कम। कोई कोई।

टपकाना—क्रि० स० [हिं० टपकाना] १. बूँद बूँद गिराना। चुआना। २. अरक उतारना। भबके से अरक खींचना। चुआना। जैसे, शराब टपकाना।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

टपकाव—संज्ञा पुं० [हिं० टपकना] टपकाने का भाव।

टपना[१]—क्रि० अ० [हिं० तपना] १. बिना कुछ खाए पीए पड़ा रहना। बिना दाना पानी के समय काटना। जैसे,—सबेरे से पड़े टप रहे हैं; कोई पानी पीने को भी नहीं पूछता। २. बिना किसी कार्यसिद्धि के बैठा रहना। व्यर्थ आसरे में बैठा रहना।—(दलाल)।

विशेष—दे० 'टापना'।

टपना[२]—क्रि० अ० [हिं० टापना] १. कूदना। उछलना। उचकना। फाँदना। २. छोड़ जाना। प्रसंग करना।

टपना[३]—क्रि० अ० [हिं० तोपना] ढाँकना। आच्छादित करना।

टपनामा—संज्ञा पुं० [हिं० टिप्पन] जहाज पर का वह रजिस्टर जिसमें समुद्रयात्रा के समय तूफान, गर्मी आदि का लेखा रहता है।—(लश०)।

टपमाल—संज्ञा पुं० [अं० टपमाल] एक बड़ा भारी लोहे का घन जो जहाजों पर काम आता है।

टपरा¹†—संज्ञा पुं० [हिं० तोपना] [स्त्री० टपरी, टपरिया] १. छप्पर। छाजन। २. झोपड़ा।

टपरा²—संज्ञा पुं० [हिं० टप्पा] छोटे छोटे खेतों का विभाग।

टपरियाⓅ†—संज्ञा स्त्री० [हिं० टपरा] झोपड़ी। मड़ैया। घास-फूस का मकान।

टपाकⓅ†—वि० [हिं० टप] टप से। शीघ्र। उ०—ऐसे तोहि काल खाइ लेइगो टपाकि दै।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ४१२।

टपाटप—क्रि० वि० [अनु० टपटप] १. लगातार टपटप शब्द के साथ (गिरना)। बराबर बूँद बूँद करके (गिरना)। जैसे,—छाते पर से टपाटप पानी गिर रहा। २. झट पट। जल्दी जल्दी। एक एक करके शीघ्रता से। जैसे,—बिल्ली चूहों को टपाटप ले रही है।

टपाना¹—क्रि० स० [हिं० तपाना] १. बिना दाना पानी के रखना। बिना खिलाए पिलाए पड़ा रहने देना। २. व्यर्थ आसरे में रखना। निष्प्रयोजन बैठाए रखना। व्यर्थ हैरान करना।

टपाना²—क्रि० स० [हिं० टाप] कुदाना। फँदाना।

टप्पर†—संज्ञा पुं० [हिं० तोपना] १. छप्पर। छाजन।

मुहा०—टप्पर उलटना = दे० 'टाट उलटना'।

२. दे० 'टापर'।

टप्पा—संज्ञा पुं० [सं० स्थापक, हिं० थाप, टाप] १. किसी सामने फेंकी हुई वस्तु का जाते हुए बीच बीच में भूमि का स्पर्श। उछल उछलकर जाती हुई वस्तु का बीच में टिकान। जैसे,—गेंद कई टप्पे खाती हुई गई है।

मुहा०—टप्पा खाना = किसी फेंकी हुई वस्तु का बीच में गिरकर जमीन से छू जाना और फिर उछलकर आगे बढ़ना।

२. उतनी दूरी जितनी दूरी पर पर कोई फेंकी हुई वस्तु जाकर पड़े। किसी फेंकी हुई चीज की पहुँच का फासला। जैसे, गोली का टप्पा। ३ उछाल। कूद। फाँद। फलाँग।

मुहा०—टप्पा देना = लंबे लंबे डग बढ़ाना। कूदना।

४ नियत दूरी। मुकर्रर फासला। ५ दो स्थानों के बीच पड़नेवाला मैदान। जैसे,—इन दोनों गाँवों के बीच में बालू का बड़ा भारी टप्पा पड़ता है। ६. छोटा भूविभाग जमीन का छोटा हिस्सा। परगने का हिस्सा। ७. अंतर। बीच। फर्क। उ०—पीपर सूना फूल बिन फल बिन सूना राय। एकाएकी मानुषा टप्पा दीया जाय। कबीर (शब्द०)।

मुहा०—टप्पा देना = अंतर डालना। फर्क डालना।

८. दूर दूर की भद्दी सिलाई। मोटी सीवन (स्त्रि०)।

मुहा०—टप्पे डालना, भरना, मारना = दूर दूर बखिया करना। मोटी और भद्दी सिलाई करना। लंगर डालना।

९. पालकी ले जानेवाले कहारों की टिकान जहाँ कहार बदले जाते हैं। पालकीवालों की चौकी या डाक। †१०. डाकखाना। पोस्ट आफिस। ११. पाल के जोर से चलनेवाला बेड़ा। १२. एक प्रकार का चलता गाना जो पंजाब से चला है। †१३ एक प्रकार का ठेका जो तिलवाड़ा ताल पर बजाया जाता है। १४. एक प्रकार का हुक या काँटा।

टब¹—संज्ञा पुं० [अं०] पानी रखने के लिये नाँद के आकार का खुला बरतन।

टब²—संज्ञा पुं० [अं०] जलाने का एक प्रकार का लप जो छत या किसी दूसरे ऊँचे स्थान पर लटकाया जाता है।

टबलनाⓅ‡—संज्ञा पुं० [?] चलाचली की स्थिति। महाप्रयाण की स्थिति होना। उ०—खबर जुदाई घबरा, अब तो इधर भी टबला। ब्रज० ग्रं०, पृ० ४३।

टबूकनाⓅ—क्रि० अ० [हिं० टपकना] टपकना। टप टप करके गिरना। उ०—हियडउ बादल छाइयउ, नयण टबूकई मेह। —ढोला०, दू० ३६०।

टब्बर†—संज्ञा पुं० [सं० कुटुंब] कुटुंब। परिवार। (पंजाब)।

टमकनाⓅ—क्रि० अ० [हिं० टमकना] बजना। शब्द करना। उ०—टमकत तबल टामक तिहद्द। ठमकंत टाम विनु भुव गरद्द।—सुजान०, पृ० ३८।

टमकी—संज्ञा स्त्री० [सं० टङ्कार] छोटा नगाड़ा जिसे बजाकर किसी प्रकार की घोषणा की जाती है। डगडुगिया।

टमटम—संज्ञा स्त्री० [अं० टैंडम] दो ऊँचे ऊँचे पहियों की एक खुली हलकी गाड़ी जिसमें एक घोड़ा लगता है और जिसे सवारी करनेवाला अपने हाथ से हाँकता है।

टमठी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का बरतन। उ०—अष्टा अरु आधार भर्त के बहुत खिलौना। परिया टमटी अतरदान घये के सोना।—सूदन (शब्द०)।

टमस—संज्ञा स्त्री० [सं० तमसा] टौंस नदी। तमसा।

टमाटर—संज्ञा पुं० [अं० टमैटो] एक प्रकार का फल जो गोलाई लिए हुए चिपटा तथा स्वाद में खट्टा होता है। विलायती भटा।

विशेष—यह कच्चा रहने पर हरा और पकने पर लाल हो जाता है तथा तरकारी, चटनी, जेली आदि के काम आता है।

टमुकी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'टमकी'।

टर—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १ कर्कश शब्द। कर्कश वाक्य। कर्णकटु वाक्य। अप्रिय शब्द। कड़ई बोली।

यौ०—टर टर।

मुहा०—टरटर करना = (१) ढिठाई से बोलते जाना। प्रतिवाद में बार बार कुछ कहते जाना। जबानदराजी करना। जैसे,—टर टर करता जायगा, न मानेगा। (२) बकवाद करना। टर टर लगाना = व्यर्थ बकवाद करना। झूठमूठ बक बक करना। इतना और इस प्रकार बोलना जो अच्छा न लगे।

२. मेढक की बोली।

यौ०—टर टर।

३. घमंड से भरी बात। अविनीत वचन और चेष्टा। ऐंठ।

अकड़। जैसे—शेखों की शेखी, पठानों की टर। ४. हठ। जिद। अड़। ५. तुच्छ बात। पोच बात। बेमेल बात। ६. ईद के बाद का मेला (मुसलमान)। उ०—ईद पीछे टर, बरात पीछे धौसा।

टरकना—क्रि० अ० [हिं० टरना] १. चला जाना। हट जाना। खिसक जाना। टल जाना।

संयो० क्रि०—जाना।

मुहा०—टरक देना = धीरे से चला जाना। चुपचाप हट जाना। जैसे,—जब काम का वक्त आता है तो वह कहीं टरक देता है। (प्)† (२) टर टर करना। कर्कश स्वर से बोलना। उ० टर्र टर्र टरकन लगे दसहू दिसा मंडूक।—गोपाल (शब्द०)।

टरकनी†—संज्ञा स्त्री० [देश०] ईख या गन्ने की दूसरी बार की सिंचाई।

टरकाना—क्रि० स० [हिं० टरकना] १. एक स्थान से दूसरे स्थान पर कर देना। हटाना। खिसकाना। जैसे,—(क) देखते रहो, ये चीजें इधर उधर टरकाने न पावें। (ख) जब कोई ढूँढने आवे तब इस लड़के को कहीं टरका दो। २. किसी काम के लिये आए हुए मनुष्य को बिना उसका काम पूरा किए कोई बहाना करके लौटा देना। टाल देना। चलता करना। धता बताना। जैसे,—जब हम अपना रुपया माँगने आते हैं तो तुम यों ही टरका देते हो।

टरकी—संज्ञा पुं० [तुरकी] १ एक प्रकार का मुर्गा जिसकी चोंच के नीचे गले में लाल झालर रहती है और जिसके काले परों पर छोटी छोटी सफेद बुँदकियाँ होती है।

विशेष—इसका माँस बहुत स्वादिष्ट माना जाता है। इसे पेरू भी कहते हैं।

२. एक देश। तुरकी।

टरकुल—वि० [हिं० टरकाना] १. बहुत साधारण। बिलकुल मामूली। घटिया। खराब।

टरगी—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की घास जो चारे के काम में आती है। इस भैंस बड़े चाव से खाती हैं।

विशेष—यह सुखाकर बारह तेरह बरस तक रखी जा सकती है और घोड़ों के लिये अत्यंत पुष्ट और लाभदायक होती है। हिंदुस्तान में वह घास हिसार, मांटगोमरी (पंजाब) आदि स्थानों में होती है, पर विलायती के ऐसी सुगंधित नहीं होती। इसे पलका या पलवन भी कहते हैं।

टरटराना—क्रि० स० [हिं० टर] १. बक बक करना। २. ढिठाई से बोलना। टर टर करना।

टरना[1]†—क्रि० स० [हिं० टलना] दे० 'टलना'। उ०—(क) तृण से कुलिस कुलिस तृण करई। तासु दूत पग कहु किमि टरई।—तुलसी (शब्द०)। (ख) अस विचारि सोचहि मति माता। सो न टरइ जो रचइ विधाता।—तुलसी (शब्द०)।

टरना[2]—संज्ञा पुं० [देश०] तेली के कोल्हू में ठेका और कतरी से बँधी हुई रस्सी।

टरनि†—संज्ञा स्त्री० [हिं० टरना] टरने का भाव।

टर्र टर्र—संज्ञा स्त्री० [हिं० टर्राना] १. मेंढक की आवाज। २. बे मतलब की बात। बकवाद। उ०—सत्य बंधु, सत्य; वहाँ नहीं अर्र बर्र; नहीं वहाँ भेक, वहाँ नहीं टर्र टर्र।—अनामिका, पृ० ११।

टर्रा—वि० [अनु० टर टर] १. टर्रानेवाला। ऐंठकर बात करनेवाला। अविनीत और कठोर स्वर से उत्तर देनेवाला। घमंड के साथ चिढ़ चिढ़कर बोलनेवाला। सीधे न बोलनेवाला। २. धृष्ट। कटुवादी।

टर्राना—क्रि० अ० [अनु० टर] ऐंठकर बातें करना। अविनीत और कठोर स्वर से उत्तर देना घमंड के साथ चिढ़ चिढ़कर बोलना। सीधे से न बोलना। घमंड लिए हुए कटु वचन कहना।

टर्रापन—संज्ञा पुं० [हिं० टर्रा] बातचीत में अविनीत भाव। कटुवादिता।

टर्रू—संज्ञा पुं० [हिं० टर टर] १. टर्रा आदमी। २. मेंढक। ३. चमड़े की झिल्ली मढ़ा हुआ एक खिलौना जो घोड़े की पूँछ के बाल से एक लकड़ी में बँधा होता है। इसे घुमाने से टर्र की आवाज निकलती है। मेढ़क। भौंरा। कौवा।

टल—संज्ञा पुं० [सं०] घबराहट। परेशानी (को०)।

टलन—संज्ञा पुं० [सं०] घबराहट। परेशानी (को०)।

टल्‌टल—क्रि० वि० [अनु०] कलकल ध्वनि के साथ। उ०—तेरे गीतों को वह जिसमें गाती हैं टल् टल् छल् छल्।—वीणा, पृ० २८।

टलना[1]—क्रि० अ० [सं० टल (= विचलित होना)] १. अपने स्थान से अलग होना। हटना। खिसकना। सरकना। जैसे,—वह पत्थर तुमसे नहीं टलेगा।

मुहा०—अपनी बात से टलना = प्रतिज्ञा पूरी न करना। मुकरना।

२. एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना। अनुपस्थित होना। किसी स्थान पर न रहना। जैसे,—(क) काम के समय तुम सदा टल जाते हो। (ख) जब इसके आने का समय हो, तब तुम कहीं टल जाना।

संयो० क्रि०—जाना।

३. दूर होना। मिटना। न रह जाना। जैसे, आपत्ति टलना, संकट टलना, बला टलना।

संयो० क्रि०—जाना।

४. (किसी कार्य के लिये) निश्चित समय से और आगे का समय स्थिर होना। (किसी काम के लिये) मुकर्रर वक्त से और आगे का वक्त ठहराया जाना। मुलतवी होना।

विशेष—इस क्रिया का प्रयोग समय और कार्य दोनों के लिये होता है। जैसे, तिथि टलना, तारीख टलना, विवाह की सायत टलना, दिन टलना, लग्न टलना, विवाह टलना, इम्तहान टलना।

संयो० क्रि०—जाना।

५. (किसी बात का) अन्यथा होना । और का और होना । ठीक न ठहरना । खंडित होना । जैसे,—हमारी कही हुई बात कभी नहीं टल सकती । ६. (किसी आदेश या अनुरोध का) न माना जाना । उल्लंघित होना । पूरा न किया जाना । जैसे,—बादशाह का हुक्म कहीं टल सकता है । ७ समय व्यतीत होना । बीतना ।

टलमल[1]—वि० [हिं० टलमलाना] हिलता हुआ । कंपित । उ०—छोटे युग दल राक्षस पद तल पृथ्वी टलमल ।—अपरा, पृ० ३८ ।

टलमल[2]—क्रि० वि० [अनु०] कलकल ध्वनि के साथ ।

टलमलाना—क्रि० अ० [अनु०] हिलना डुलना । टलमल होना ।

टलहा†—वि० [देश०] [वि०स्त्री० टलही] छोटा । खराब । दूषित । जैसे, टलहा रुपया, टलही चाँदी ।

टलाटली†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'टालटूल' । उ०—पति रति की बतियाँ कही, सखी लखी मुसकाइ । कै कै सबै टलाटली, अली चली सुखु पाइ ।—बिहारी र०, दो० २४ ।

टल्ला†—संज्ञा पुं० [अनु०] धक्का । आघात । ठोकर । उ०—तो बस उस एक टल्ले से ही हो जाए जीवन कल्याण ।—अपलक, पृ० २६ ।

मुहा०—टल्ले मारना = ठोकर खाते फिरना । मारा मारा फिरना । इधर से उधर निष्फल घूमना ।

टल्ली—संज्ञा पुं० [देश०] १. एक प्रकार का बाँस । दे० 'टोली' । (५)† २. आधार । उ०—चंद सूर्य दुइ टल्ली लावै । इहि बिधि लिया खिसनि न पावै ।—प्राण०, पृ० ८ ।

टल्लेनवीसी—संज्ञा स्त्री० [हिं० टल्ला + फ़ा० नवीसी] दे० 'टिल्ले-नवीसी' ।

टल्लो†—संज्ञा पुं० [सं० पल्लव ?] १. हरी टहनी । २. पल्लव ।

टवर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] ट ठ ड ढ ण—इन पाँच वर्णों का समूह ।

टवाई—संज्ञा स्त्री० [सं० अटन (= घूमना)] आवारगी । व्यर्थ घूमना । उ०—फेर रह्यो पुर करत टवाई । मान्यो नहिं जो जननि सिखाई ।—रघुराज (शब्द०) ।

टस—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. किसी भारी चीज के खिसकने का शब्द । टसकने का शब्द ।

मुहा०—टस से मस न होना = (१) किसी भारी चीज का जरा सी भी जगह न छोड़ना । कुछ भी न खिसकना । (२) किसी कड़ी वस्तु का (पकाने या गलाने आदि से) जरा सी भी न गलना ।

३. कहने सुनने का कुछ भी प्रभाव न पड़ना । किसी के अनुकूल कुछ भी प्रवृत्त न होना । ४. कपड़े आदि के फटने का शब्द । मसकने का शब्द ।

टसक—संज्ञा स्त्री० [हिं० टसकना] रह रहकर उठनेवाली पीड़ा । कसक । टीस । चसक ।

टसकना—क्रि० अ० [सं० तस (= क्षेपणा) + करण] १. किसी भारी चीज का जगह से हटना । जगह से हिलना । खिसकना । जैसे,—यह पत्थर जरा सा भी इधर उधर नहीं टसकता । २. रह रहकर दर्द करना । टीस मारना । कसकना । ३. प्रभावित होना । हृदय में प्रार्थना या कहने सुनने का प्रभाव अनुभव करना । किसी के अनुकूल कुछ प्रवृत्त होना । किसी की बात मानने को कुछ तैयार होना । जैसे,—उससे इतना कहा सुना पर वह ऐसा कठोर हृदय है कि जरा भी न टसका । ४. पककर गदराना । गुदार होना । † ५. रोना धोना । आँसू बहाना । ६. चसकना । चलना । जाना । उ०—किसी को भी आपके टसकने का पूर्ण विश्वास न था ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १३६ ।

टसकाना—क्रि० स० [हिं० टसकना का प्रे०रूप] किसी भारी चीज को जगह से हटाना । खिसकाना । सरकाना ।

टसना†—क्रि० अ० [अनु० टस] कपड़े आदि का फटना । मसक जाना । दरकना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

टसर—संज्ञा पुं० [सं० त्रसर] १. एक प्रकार का कड़ा और मोटा रेशम जो बंगाल के जंगलों में होता है ।

विशेष—छोटा नागपुर, मयूरभंज, बालेश्वर, बीरभूम, मेदिनीपुर आदि के जंगलों में साखू, बहेड़ा, पियार, कुसुम, बेर इत्यादि वृक्षों पर टसर के कीड़े पलते हैं । रेशम के कीड़ों की तरह इन कीड़ों की रक्षा के लिये अधिक यत्न नहीं करना पड़ता । पालनेवालों को जंगल में आप से आप होनेवाले कीड़ों को केवल चींटियों और चिड़ियों आदि से बचाना भर पड़ता है । पालनेवाले इनकी वृद्धि के लिये कोश से निकले हुए कीड़ों को जंगल में छोड़ आते हैं जहाँ अपने जोड़े ढूँढकर वे अपनी वृद्धि करते हैं । मादा कीड़े पेड़ की पत्तियों पर सरसों के ऐसे पर चिपटे चिपटे अंडे देते हैं जो पत्तियों में चिपक जाते हैं । एक कीड़ा तीन चार दिन के भीतर दो ढाई सौ तक अंडे देता है । अंडे देकर ये कीड़े मर जाते हैं । दस बारह दिनों में इन अंडों से सुँडी या ढोल के आकार के छोटे छोटे कीड़े निकल आते हैं और पत्तियाँ चाट चाटकर बहुत जल्दी बढ़ जाते हैं । इस बीच में ये तीन चार बार कलेवर या खोली बदलते हैं । अधिक से अधिक पंद्रह दिन में ये कीड़े अपनी पूरी बाढ़ को पहुँच जाते हैं । उस समय इनका आकार ८, १० अंगुल तक होता है । ये मटमैले, भूरे, नीले, पीले कई रंगों के होते हैं । पूरी बाढ़ को पहुँचने पर ये कीड़े कोश बनाने में लग जाते हैं और अपने मुँह से एक प्रकार की लार निकालते हैं जो सूखकर सूत के रूप में हो जाती है । सूत निकालते हुए घूम घूमकर ये अपने लिये एक कोश तैयार कर लेते हैं और उसी में बंद हो जाते हैं । ये कोश अंडाकार होते हैं । बड़ा कोश ६—६½ अंगुल तक लंबा होता है । कोश के भीतर तीन चार दिनों तक सूत निकालकर ये कीड़े मुरदे की तरह चुपचाप पड़ जाते हैं । पालनेवाले कोशों के पकने पर उन्हें इकट्ठा कर लेते हैं; क्योंकि उन्हें भय रहता है कि पर निकलने पर कीड़े सूत को कुतर कुतरकर निकल जायँगे; अतः उड़ने के पहले ही इन कोशों को क्षार के साथ गरम पानी में उबालकर वे कीड़ों को मार डालते हैं । जिन कोशों को उबालना नहीं पड़ता, उनका टसर सबसे अच्छा होता है ।

जो कोश पकने के पहले ही उबाले जाते हैं, उनका सूत कच्चा और निकम्मा होता है ।

२. टसर का बुना हुआ कपड़ा ।

टसुआ—संज्ञा पुं० [सं० अश्रु, हिं० आँसू, अँसुआ] आँसू । अश्रु । (पश्चिम)

क्रि० प्र०—बहाना ।

मुहा०—टसुए बहाना = झूठमूठ आँसू गिराना ।

टसूआ—संज्ञा पुं० [सं० अश्रु, हिं० आँसू, अँसुआ] दे० 'टसुआ' ।

मुहा०—टसुए बहाना = दे० 'टसुए बहाना' । उ०—बड़ी बेगम, अब टसुए पीछे बहाना । पहले हमारी बात का जवाब दो । —फिसाना०, भा० ३, पृ० २१५ ।

टहक†—संज्ञा स्त्री० [हिं० टसक] शरीर के जोड़ों की पीड़ा । रह रहकर उठनेवाली पीड़ा । चसक ।

टहकना†—क्रि० अ० [हिं० टसकना] १. रह रहकर दर्द करना । चसकना । टीस मारना । २. (घी, मोम, चरबी आदि का) आँच खाकर तरल होना या बहना । पिघलना ।

टहकाना†—क्रि० स० [हिं० टहकना] आँच से पिघलाना ।

टहटह(पु)—क्रि० वि० [देश०] स्पष्टतापूर्वक । उ०—टहटह सु बुल्लिय मोर ।—प० रा०, पृ० ८१ ।

मुहा०—टहटह चाँदनी = निर्मल चाँदनी । श्वेत चाँदनी ।

टहटहा†—वि० [हिं० टटका] टटका । ताजा ।

टहना¹—संज्ञा पुं० [सं० तनुः (=पतला या शरीर)] [स्त्री० टहनी] १. वृक्ष की पतली शाखा । पतली डाल ।

टहना²—संज्ञा पुं० [सं० अष्ठीवान्] घुटना । टेहुना । उ०—जल टहने तक पहुँच गया था ।—हुमायूँ०, पृ० ५४ ।

टहनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० टहना] वृक्ष की बहुत पतली शाखा । पेड़ की डाल के छोर पर की कोमल, पतली और लचीली उपशाखा जिसमें पत्तियाँ लगती हैं । जैसे, नीम की टहनी ।

टहरकट्टा—संज्ञा पुं० [हिं० ठहर + काठ] काठ का टुकड़ा जिसपर टकुए या तकले से उतारा हुआ सूत लपेटा जाता है ।

टहरना†—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'टहलना' ।

टहल—संज्ञा स्त्री० [हिं० टहलना] १. सेवा । शुश्रूषा । खिदमत ।

क्रि० प्र०—करना ।

यौ०—टहल टई = सेवा शुश्रूषा । उ०—कलि करनी बरनिए कहाँ लौं करत फिरत नित टहल टई है ।—तुलसी (शब्द०) । टहल टकोर = सेवा शुश्रूषा ।

मुहा०—टहल बजाना = सेवा करना ।

२. नौकरी चाकरी । काम धंधा ।

टहलना—क्रि० अ० [?] १. धीरे धीरे चलना । मंद गति से भ्रमण करना । धीरे धीरे कदम रखते हुए फिरना ।

मुहा०—टहल जाना = धीरे से खिसक जाना । चुपचाप अन्यत्र चला जाना । हट जाना । जान बूझकर उपस्थित न रहना ।

२. केवल जी बहलाने के लिये धीरे धीरे चलना । हवा खाना । सैर करना । जैसे,—वे संध्या को नित्य टहलने जाते हैं । ३. परलोक गमन करना । मर जाना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

टहलनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० टहल + नी (प्रत्य०)] १. टहल करनेवाली । सेवा करनेवाली । दासी । मजदूरनी । लौंडी । चाकरानी । उ०—म्हाँसी थाँके घड़ी टहलनी भँवर कमल फुल बास लुभावै ।—घनानंद, पृ० ३३४ । २. वह लकड़ी जो बत्ती उकसाने के लिये चिराग में पड़ी रहती है ।

टहलान—संज्ञा स्त्री० [हिं० टहलना] टहलने की क्रिया या भाव ।

टहलाना—क्रि० स० [हिं० टहलना] १. धीरे धीरे चलाना । घुमाना । फिराना । २. सैर कराना । हवा खिलाना । ३. हटा देना । दूर करना । ४. चिकनी चुपड़ी बातें करके किसी को अपने साथ ले जाना । ।

मुहा०—टहला ले जाना = उड़ा ले जाना । गायब करना । चोरी करना । उ०—पेशकार, हुजूर जूता कोई जात शरीफ टहला ले गए ।—फिसाना०, भा०३, पृ० ४६ ।

टहलि(पु)†—संज्ञा स्त्री०[हिं० टहलना]दे० 'टहल' । उ०—छोट सी भैंस सोहने सीगनि टहलि करनि को गोली जू ।—नंद० ग्रं०, पृ० ३३७ ।

टहलुआ—संज्ञा पुं० [हिं० टहल] [स्त्री० टहलुई, टहलनी] टहल करनेवाला । सेवक । नौकर । खिदमतगार ।

टहलुई—संज्ञा स्त्री० [हिं० टहल] १. दासी । किंकरी । लौंडी । चाकरानी । मजदूरनी । नौकरानी । २. वह लकड़ी जो बत्ती उकसाने के लिये चिराग में पड़ी रहती है ।

टहलुनी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० टहल] दे० 'टहलनी' । उ०—पहले गाँव में से एक लड़की आई, फिर एक टहलुनी आई, उसके पीछे एक और आई ।—ठेठ०, पृ० ३० ।

टहलुवा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'टहलुआ' । उ०—और सब व्रजवासी टहलुवान को महाप्रसाद लिवायो ।—दो सौ बावन०, भा०२ पृ० १४ ।

टहलू—संज्ञा पुं० [हिं० टहल] नौकर । चाकर । सेवक ।

टहाका†—वि० [देश०] दे० 'टहाटह' ।

यौ०—टहाका अजोरिया = निर्मल चाँदनी ।

टहाटह†—वि० [देश०] निर्मल । चटकीला ।

यौ०—टहाटह चाँदनी = निर्मल चाँदनी ।

टही†—संज्ञा स्त्री० [हिं० घात, घात] मतलब निकालने की घात प्रयोजनसिद्धि का ढंग । ताक । युक्ति । जोड़ तोड़ ।

मुहा०—टही लगाना = जोड़ तोड़ लगाना । टही में रहना = काम निकालने की ताक में रहना ।

टहुआटारी—संज्ञा स्त्री० [देश०] इधर की उधर लगाना । चुगलखोरी

टहूकड़ा(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० टहूकना] शब्द । ध्वनि । उ०—करहा किया टहूकड़ा, निद्रा जागी नारि ।—ढोला०, दू० ३४५ ।

टहूकना(पु)—क्रि० अ० [अनु०] बोलना । आवाज करना । उ०—मोर टहूकइ सीखर थी ।—बी० रासो०, पृ० ७० ।

टहूका¹—संज्ञा [हिं० ठक या ठहाका] १. पहेली । २. चमत्कारपूर्ण उक्ति । चुटकुला ।

टहूकाⓊ²—संज्ञा पुं० [हिं० टहूकना] आवाज । स्वर । उ०—टहूका मोर का साले । हिये में हूक सी घाले ।—राम० धर्म०, पृ० १८ ।

टहेलⓊ†—संज्ञा स्त्री० [हिं० टहल] दे० 'टहल' । उ०—सो वह चौरी नित्य अपने हाथ सों श्री ठाकुर जी की सेवा टहेल करती ।—दो सौ बावन०, भा०१, पृ० १२१ ।

टहोका—संज्ञा पुं० [हिं० ठोकर अथवा ठोका] हाथ या पैर से दिया हुआ धक्का । झटका ।

मुहा०—टहोका देना=हाथ या पैर से धक्का देना । झटकना । ढकेलना । ठेलना । टहोका खाना=धक्का खाना । ठोकर सहना । उ०—मैंने इनकी ठंडी साँस की फाँस का टहोका खाकर झुँझलाकर कहा ।—इंशा अल्ला खाँ (शब्द०) ।

टाँक—संज्ञा पुं० [सं० टाङ्क] एक प्रकार की शराब [को०] ।

टाँकर—संज्ञा पुं० [सं० टाङ्कर=] १. कामी । लंपट । २. कुटना चुगलखोर [को०] ।

टाँकार—संज्ञा पुं० [सं० टाङ्कार] दे० 'टकोर' [को०] ।

टाँक¹—संज्ञा स्त्री० [सं० टङ्क] १. एक प्रकार की तौल जो चार माशे की (किसी किसी के मत से तीन माशे की) होती है । इसका प्रचार जौहरियों में है । २. धनुष की शक्ति की परीक्षा के लिये एक तौल जो पचीस सेर की होती थी ।

विशेष—इस तौल के बटखरे को धनुष की डोरी में बाँधकर लटका देते थे । जितने बटखरे बाँधने से धनुष की डोरी अपने पूरे संधान या खिंचाव पर पहुँच जाती थी, उतनी टाँक का, वह धनुष समझा जाता था । जैसे,—कोई धनुष सवा टाँक का, कोई डेढ़ टाँक का, यहाँ तक कि कोई दो या तीन टाँक तक होता था जिसे अत्यंत बलवान पुरुष ही चढ़ा सकते थे ।

३. जाँच । कूत । अंदाज । आँक । ४. हिस्सेदारों का हिस्सा । बखरा । ५. एक प्रकार का छोटा कटोरा । उ०—घीउ टाँक महँ सोंध सेरावा । लौंग मिरिच तेहि ऊपर नावा ।—जायसी (शब्द०) ।

टाँक²—संज्ञा स्त्री० [हिं० टाँकना] १. लिखावट । लिखने का अंक या चिह्न । लिखन । उ०—छुटी नेह कागर हिये भई लखाय न टाँक । विरह तज्यो उघरयो सु अब सेंहुड़ को सो आँक ।—बिहारी (शब्द०) । २. कलम की नोक । लेखनी का डंक । उ०—छूटि जाय चेत चित भूलि स्याही भरि जाय, बरि जाय कागद कलम टाँक जरि जाय ।—रघुनाथ (शब्द०) ।

टाँकना—क्रि० स० [सं० टङ्कन] १. एक वस्तु के साथ दूसरी वस्तु को कील आदि जड़कर जोड़ना । कील काँटे ठोककर एक वस्तु (धातु की चद्दर आदि) की दूसरी वस्तु में मिलाना या एक वस्तु पर दूसरी को बैठाना । जैसे, फूटे हुए बरतन पर चिप्पी टाँकना ।

संयो० क्रि०—देना ।—लेना ।

२. सुई के सहारे एक ही तागे को दो वस्तुओं के नीचे ऊपर ले जाकर उन्हें एक दूसरे से मिलाना । सिलाई के द्वारा जोड़ना । सीना । जैसे, चकती टाँकना, गोटा टाँकना, फटा जूता टाँकना ।

संयो० क्रि०—देना ।—लेना ।

३. सीकर अटकाना । सुई तागे से एक वस्तु पर दूसरी इस प्रकार लगाना या ठहराना कि वह उसपर से न हटे या गिरे । जैसे, बटन टाँकना । मोती टाँकना ।

संयो० क्रि०—देना ।—लेना ।

४. सिल, चक्की आदि को टाँकी से गड्ढे करके खुरदरा करना । कूटना । रेहना । छीलना ।

संयो० क्रि०—देना ।—लेना ।

६. किसी कागज, बही या पुस्तक पर स्मरण रखने के लिये लिखना । दर्ज करना । चढ़ाना । जैसे,—ये दस रुपए भी बही पर टाँक लो ।

संयो० क्रि०—देना ।—लेना ।

मुहा०—मन में टाँक रखना=स्मरण रखना । याद रखना ।

† ७. लिखकर पेश करना । दाखिल करना । जैसे, अर्जी टाँकना ।
८. चट कर जाना । उड़ा जाना । खाना । (बाजारू) । जैसे—देखते देखते वह सब मिठाई टाँक गया ।

संयो० क्रि०—जाना ।

९. अनुचित रूप से रुपया पैसा आदि ले लेना । मार लेना । उड़ा लेना ।—(दलाल) ।

टाँकली¹—संज्ञा स्त्री० [?] ताल लपेटने की घिरनी या गड़ारी । (लश०) ।

टाकली²—संज्ञा स्त्री० [सं० टक्क] एक प्रकार का पुराना बाजा जिसपर चमड़ा मढ़ा होता था ।

टाँका—संज्ञा पुं० [हिं० टाँकना] १ वह जड़ी हुई कील जिससे दो वस्तुएँ (विशेषतः धातु की चद्दरें) एक दूसरे में जड़ी रहती हैं । जोड़ मिलानेवाली कील या काँटा ।

क्रि० प्र०—उखड़ना ।—निकालना ।—लगना ।—लगाना ।

सीवन का उतना अंश जितना सुई को एक बार ऊपर से नीचे और नीचे से ऊपर ले जाने में तैयार होता है । सिलाई का पृथक् पृथक् अंश । डोभ । जैसे,—दो टाँके लगा दो । ज्यादा काम नहीं है ।

क्रि० प्र०—उधड़ना ।—खुलना ।—टूटना ।—लगना ।—लगाना ।

मुहा०—टाँका चलाना=सीने के लिये कपड़े आदि में आर पार सुई डालना । टाँका भरना=सुई से छेदकर तागा फँसाना या अटकाना । सीना । सिलाई करना । टाँका मारना=दे० 'टाँका भरना' ।

३. सिलाई । सीवन । ४. टँकी हुई चकती । थिगली । चिप्पी । ५. शरीर पर के घाव या कटे हुए स्थान की सिलाई जो घाव मूँजने के लिये की जाती है । जोड़ ।

क्रि० प्र०—उखड़ना ।—खुलना ।—टूटना ।—लगना ।—लगाना ।

६ धातुओं के जोड़ने का मसाला जो उनको गलाकर बनाया जाता है ।

क्रि० प्र०—भरना ।

टाँका[2]—संज्ञा पुं० [सं० टङ्क] [स्त्री० अल्पा० टाँकी] लोहे की कील जो नीचे की ओर चौड़ी और धारदार होती है और पत्थर छीलने या काटने के काम में आती है। पत्थर काटने की चौड़ी छेनी।

टाँका[3]—संज्ञा पुं० [सं० टङ्क (= खड्ड या गड्ढा)] १. दीवार उठाकर बनाया हुआ पानी इकठ्ठा रखने का छोटा सा कुंड। हौज। चहबच्चा। २. पानी रखने का बड़ा बरतन। कंडाल।

टाँकाटूक—वि० [हिं० टीक + तौल] तौल में ठीक ठीक। वजन में पूरा पूरा। ठीक ठीक तुला हुआ। –(दूकानदार)।

टाँकी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० टङ्क] १. पत्थर गढ़ने का औजार। वह लोहे की कील जिससे पत्थर तोड़ते, काटते या छीलते हैं। छेनी। उ०—यह तेलिया पखान हुठी, कठिनाई याकी। टूटीं याके सीस बीस बहु बाँकी टाँकी।—दीनदयाल (शब्द०)।

क्रि० प्र०—चलना।—चलाना।—बैठना।—मारना।—लगना।—लगाना।

मुहा०—टाँकी बजना = (१) पत्थर पर टाँकी का आघात पड़ना। (२) पत्थर की गढ़ाई होना। इमारत का काम लगना।

२. तरबूज या खरबूजे के ऊपर छोटा सा चोखूँटा कटाव या छेद जिससे उसके भीतर का (कच्चे, पक्के, सड़े आदि होने का) हाल मालूम होता है।

विशेष—फल बेचनेवाले प्रायः इस प्रकार थोड़ा सा काटकर तरबूज रखते हैं।

३. काटकर बनाया हुआ छेद। ४. एक प्रकार का फोड़ा। डुबल। ५. गरमी या सूजाक का घाव। ६. आरी का दाँत। दाँता। दंदाना।

टाँकी[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० टङ्क = (खड्ड या गड्ढा)] १. पानी इकठा रखने का छोटा हौज। छोटा टाँका। छोटा चहबच्चा। २. पानी रखने का बड़ा बरतन। कंडाल।

टाँकीबंद—वि० [हिं० टाँकी + फ़ा० बंद] (इमारत, दीवार या जुड़ाई) जिसमें लगे हुए पत्थर पहुओं या दोनों ओर गढ़नेवाली कीलों के द्वारा एक दूसरे से खूब जुड़े हों। जैसे, टाँकीबंद जुड़ाई। टाँकीबंद इमारत।

विशेष—दो पत्थरों के जोड़ के दोनों ओर आमने सामने दो छेद किए जाते हैं। इन्हीं छेदों में दो ओर झुकी हुई कीलों को ठोककर छेदों में गला हुआ सीसा भर देते हैं जिससे पत्थर के दोनों टुकड़े एक दूसरे से जकड़कर मिल जाते हैं। किले की दीवारों, पुल के खंभों आदि में इस प्रकार की जुड़ाई प्रायः होती है।

टाँग—संज्ञा स्त्री० [सं० टङ्ग] १. शरीर का वह निचला भाग जिसपर धड़ ठहरा रहता है और जिससे प्राणी चलते या दौड़ते हैं। साधारणतः जाँघ की जड़ से लेकर एड़ी तक का अंग जो पतले खंभे या डंडे के रूप में होता है, विशेषतः घुटने से लेकर एड़ी तक का अंग। जीवों के चलने फिरने का अवयव। (जिसकी संख्या भिन्न भिन्न प्रकार के जीवों में भिन्न भिन्न होती है)।

मुहा०—टाँग अड़ाना = (१) बिना अधिकार के किसी काम में योग देना। किसी ऐसे काम में हाथ डालना जिसमें उसकी आवश्यकता न हो। फजूल दखल देना। (२) अड़ंगा लगाना। विघ्न डालना। बाधा उपस्थित करना। (३) ऐसे विषय पर कुछ कहना जिसकी कुछ जानकारी न हो। ऐसे विषय में कुछ विचार या मत प्रकट करना जिसका कुछ ज्ञान न हो। अनधिकार चर्चा करना। जैसे,—जिस बात को तुम नहीं जानते उसमें क्यों टाँग अड़ाते हो? टाँग उठाना = (१) स्त्रीसंभोग करना। स्त्री के साथ संभोग करने के लिये प्रस्तुत होना। आसन लेना। (२) जल्दी जल्दी पैर बढ़ाना। जल्दी जल्दी चलना। टाँग उठाकर मूतना = कुत्तों की तरह मूतना। टाँग की राह निकल जाना = दे० 'टाँग तले (या नीचे) से निकलना'। उ०—उस भंवर के भखाड़े से कोरे निकल जाओ तो टाँग की राह निकल जाऊँ।—फिसाना०, भा० १, पृ०७। टाँग टूटना = चलने फिरने से थकावट आना। उ०—हर रोज आप दौड़ते हैं। साहब हमपर अलग खफा होते हैं और टाँगें अलग टूटती हैं।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १५७। टाँग तले (या नीचे) से निकलना = हार मानना। परास्त होना। नीचा देखना। अधीन होना। टाँग तले (या नीचे) से निकालना = हराना। परास्त करना। नीचा दिखाना। अधीनता या हीनता स्वीकार कराना। टाँग तोड़ना = (१) अंगभंग करना। (२) बेकाम करना। निकम्मा करना। किसी काम का न रखना। (३) किसी भाषा को थोड़ा सा सीखकर उसके टूटे फूटे या अशुद्ध वाक्य बोलना। जैसे,—क्या अंग्रेजी की टाँग तोड़ते हो? (अपना) टाँग तोड़ना = चलते चलते पैर थकना। घूमते घूमते हैरान होना। टाँग पसारकर सोना = (१) निर्द्वंद होकर सोना। बिना किसी प्रकार के खटके के चैन से दिन बिताना। टाँगें रह जाना = (१) चलते चलते पैर दर्द करने लगना। चलते चलते पैरों का शिथिल हो जाना। (२) लकवा या गठिया से पैर का बेकाम हो जाना। टाँग लेना = (१) टाँग का पकड़ना (२) (कुत्ते आदि का) पैर पकड़कर काट खाना। (३) कुत्ते की तरह काटना। (४) पीछे पड़ जाना। सिर होना। पिंड न छोड़ना। टाँग बराबर = छोटा सा। जैसे,—टाँग बराबर लड़का, ऐसी ऐसी बातें कहता है। (किसी की) टाँग से टाँग बाँधकर बैठना = किसी के पास से न हटना। सदा किसी के पास बना रहना। एक घड़ी के लिये भी न छोड़ना। टाँग से टाँग बाँधकर बैठाना = अपने पास से हटने न देना। सदा अपने पास बैठाए रहना। एक घड़ी के लिये भी कहीं आने जाने न देना।

२. कुश्ती का एक पेंच जिसमें विपक्षी की टाँग में टाँग मारकर या अड़ाकर उसे चित कर देते हैं।

विशेष—यह कई प्रकार का होता है। जैसे,—(क) पिछली टाँग = जब विपक्षी पीछे या पीठ की ओर हो तब पीछे से उसके घुटने के पास टाँग मारने को पिछली

टाँग कहते हैं। (ख) बाहरी टाँग = जब दोनों पहलवान आमने सामने छाती से छाती मिलाकर भिड़े हों तब विपक्षी के घुटने के पिछले भाग में जोर से टाँग मारने को बाहरी टाँग कहते हैं। (ग) बगली टाँग = विपक्षी को बगल में पाकर बगल से उसके पैर में टाँग मारने को बगली टाँग कहते हैं। (घ) भीतरी टाँग = जब विपक्षी पीठ पर हो, तब मौका पाकर भीतर ही से उसके पैर में पैर फँसाकर झटका देने को भीतरी टाँग कहते हैं। (च) अड़ानी टाँग = विपक्षी की दोनों टाँगों के बीच में टाँग फँसाकर मारने अड़ानी टाँग कहते हैं।

(३) चतुर्थांश। चौथाई भाग। चहारुम। —(दलाल)।

टाँगन—संज्ञा पुं० [सं० तुरंगम या हिं० ठेंगना] छोटी जाति का घोड़ा। वह घोड़ा जो बहुत कम ऊँचा हो। पहाड़ी टट्टू।

विशेष—नैपाल और बरमा के टाँगन बहुत मजबूत और तेज होते हैं।

टाँगना—क्रि० स० [हिं० टँगना] १. किसी वस्तु को किसी ऊँचे आधार से बहुत थोड़ा सा लगाकर इस प्रकार अटकाना या ठहराना कि उसका प्रायः सब भाग उस आधार से नीचे की ओर हो। २. किसी वस्तु को दूसरी वस्तु से इस प्रकार से बाँधना या फँसाना अथवा उसपर इस प्रकार टिकाना या ठहराना कि उसका (प्रथम वस्तु का) सब (या बहुत सा) भाग नीचे की ओर लटकता रहे। किसी वस्तु को इस प्रकार ऊँचे पर ठहराना कि उसका आश्रय ऊपर की ओर हो। लटकाना। जैसे, (खूँटी पर) कपड़ा टाँगना, परदा टाँगना, झाड़ टाँगना।

विशेष—यदि किसी वस्तु का बहुत सा अंश आधार के नीचे लटकता हो, तो उसे 'टाँगना' नहीं कहेंगे। 'टाँगना' और 'लटकाना' में यह अंतर है कि 'टाँगना' क्रिया मे वस्तु के फँसाने, टिकाने या ठहराने का भाव प्रधान है और 'लटकाना' में उसके बहुत से अंश को नीचे की ओर दूर तक पहुँचाने का भाव है। जैसे,—कुएँ में रस्सी लटकाना कहेंगे रस्सी टाँगना नहीं कहेंगे। पर टाँगना के अर्थ में लटकाना का भी प्रयोग होता है।

संयो० क्रि०—देना।

२. फाँसी चढ़ाना। फाँसी लटकाना।

टाँगा[1]—संज्ञा पुं० [सं० टङ्क] बड़ी कुल्हाड़ी।

टाँगा[2]—संज्ञा पुं० [सं० टंगना] एक प्रकार की दो पहिए की गाड़ी जिसका ढाँचा इतना ढीला होता है कि वह पीछे की ओर कुछ झुका या लटका या आगे-पीछे टँगा भी रहता है। ताँगा।

विशेष—इसमें सवारी प्रायः पीछे की ओर ही मुँह करके बैठती है और जमीन से इतने पास रहती है कि घोड़े के भड़कने आदि पर झट से जमीन पर उतर सकती है। इस गाड़ी के इधर उधर उलटने का भय भी बहुत कम रहता है। यह प्रायः पहाड़ी रास्तों के लिये बहुत उपयुक्त होती है। इसमें घोड़े या बैल दोनों जोते जाते हैं।

टाँगानोचन—संज्ञा स्त्री० [हिं० टाँग + नोचना] नोचखसोट। खींचा-खींची। खींचातानी।

टाँगी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० टाँगा] कुल्हाड़ी।

टाँगुन—संज्ञा स्त्री० [देश० या हिं० ककुनी (वैसे ही जैसे किंशुक से टेसू)] बाजरे या कँगनी की तरह का एक अनाज जिसकी फसल सावन भादों में पककर तैयार हो जाती है।

विशेष—इसके दाने महीन और पीले रंग के होते हैं। गरीब लोग इसका भात खाते हैं।

टाँघन†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'टाँगन'।

टाँच[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० टाँकी] ऐसा वचन जिससे किसी का चित्त फिर जाय और वह जो कुछ दूसरे का कार्य करनेवाला हो, उसे न करे। दूसरे का काम बिगाड़नेवाली बात या वचन। भाँजी। उ०—मेरे व्यवहारों में टाँच मारी है, मेरे मित्रों को ठंढा और मेरे शत्रुओं को गर्म किया है।—भारतेंदु० ग्रं०, भाग० १, पृ० ५९९।

क्रि० प्र०—मारना।

टाँच[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० टाँका] १. टाँका। सिलाई। डोभ। २. टँकी हुई चकती। थिगली। उ०—देह जीव जोग के सखा मृषा टाँच न टाँचो।—तुलसी (शब्द०)। ३. छेद। सूराख।

टाँच†[3]—संज्ञा स्त्री० [देश०] हाथ पैर का सुन्न पड़ जाना या सो जाना। टाँस।

क्रि० प्र—धरना।—पकड़ना।—होना।

टाँचना[1]—क्रि० स० [हिं० टाँच] १. टाँकना। डोभ लगाना। सीना। उ०—देह जीव जोग के सखा मृषा टाँच न टाँचो।—तुलसी (शब्द०)। २. काटना। तराशना। छीलना। छाँटना।

टाँचना—क्रि० अ० फूला फूला फिरना। गुलछर्रे उड़ाते हुए घूमना।

टाँची[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० टङ्क (= रुपया)] रुपया भरने की लम्बी थैली जिसमें रुपए भरकर कमर में बाँध लेते हैं। न्यौजी। न्योली। मियानी। बसनी।

टाँची[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० टाँकी] भाँजी।

क्रि० प्र०—मारना।

टाँचु†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'टाँच'।

टाँट†—संज्ञा पुं० [हिं० टट्टा] खोपड़ी। कपाल।

मुहा०—टाँट के बाल उड़ना = (१) सिर के बाल उड़ना। (२) सर्वस्व निकल जाना। पास मे कुछ न रह जाना। (३) खूब मार पड़ना। भुरकुस निकलना। टाँट के बाल उड़ाना = सिर पर खूब जूते लगाना। मारते मारते सिर पर बाल न रहने देना। टाँट खुजाना = मार खाने को जी चाहना। कोई ऐसा काम करना जिससे मार खाने की नौबत आवे। दंड पाने का काम करना। टाँट गंजी कर देना = (१) मारते मारते सिर गंजा करना। (२) खूब खर्च करवाना। खूब रुपए गलवाना। खर्च के मारे हैरान कर देना। पास का धन निकलवा देना। टाँट गंजी होना = (१) मार खाते खाते सिर गंजा होना। खूब मार पड़ना। (२) खर्च के मारे धुर्रे निकलना। खर्च करते करते पास में धन न रह जाना।

टाँटर—संज्ञा पुं० [हिं० टट्टर] खोपड़ी । कपाल ।

टाँठ—वि० [अनु० ठन ठन या सं० स्थाणु] १. जो सूखकर कड़ा हो गया हो । करारा । कड़ा । कठोर । उ०—राम सों साम किए नित है हित कोमल काज न कीजिए टाँठे ।—तुलसी (शब्द०) ।

२. दृढ़ । बली । तगड़ा । मुस्टंडा ।

टाँठा—वि० [हिं० टाँठ] [वि० स्त्री० टाँठी] १. करारा । कड़ा कठोर । २. दृढ़ । हृष्ट पुष्ट । तगड़ा ।

टाँड़[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थाणु] १. लकड़ी के खंभों पर या दो दीवारों के बीच लकड़ी की पटरियाँ या बाँस के लट्ठे ठहरा कर बनाई हुई पाटन जिसपर चीज असबाब रखते हैं। परछत्ती । २. मचान जिसपर बैठकर खेत की रखवाली करते हैं । ३. गुल्ली डंडे के खेल मे गुल्ली पर डंडे का आघात । टोला ।

क्रि० प्र०—मारना ।—लगाना ।

टाँड़ा[2]—संज्ञा पुं० [दे० ताड] बाहु पर पहनने का स्त्रियों का एक गहना । टँड़िया ।

टाँड़ा[3]—संज्ञा पुं० [सं० अट्टाल, हिं० अटाला, टाल] १. ढेर । अटाला । टाल । राशि । २. समूह । पंक्ति । ३. घरों की पंक्ति । ४. दे० 'टाड' ।

टाँड़ा[4]—संज्ञा स्त्री० [देश०] कंकड़ मिली मिट्टी । कंकरीली मिट्टी ।

टाँड़ा[5]—संज्ञा पुं० [हिं० टाँड़ (= समूह)] १. अन्न आदि व्यापार की वस्तुओं से लदे हुए बैलों या पशुओं का झुंड जिसे व्यापारी लेकर चलते हैं । बरदी । बनजारों के बैलों आदि का झुंड । बनजारे के बैल ज्यों टाँड़ो उतरयौ आय ।—कबीर (शब्द०) । २. व्यापारियों के माल की चलान । बिक्री के माल का खेप । व्यापारी का माल जो लादकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाय । उ०—अति खीन मृनाल के तारहु ते तेहि ऊपर पाँव दै आवनो है । सुई बेह लौ बेह सकी न तहाँ परतीति को टाँड़ो लदावनों है ।—बोधा (शब्द०) ।

मुहा०—टाँड़ा लदना =(१) बिक्री का माल लदना । (२) कूच की तैयारी होना । (३) मरने की तैयारी होना ।

३. व्यापारियों का चलता समूह । बनजारों का झुंड जो एक स्थान से दूसरे स्थान को जाता हो । ४. नाव पर चढ़कर इस पार से उस पार जानेवाले पथिकों और व्यापारियों का समूह । उ०—लीजै बेगि निबेरि सुर प्रभु यह पतितन को टाँड़ो ।—सूर (शब्द०) । ५. कुटुंब । परिवार ।

टाँड़ा[6]—संज्ञा पुं० [सं० तुण्ड, हिं० टूँड़] एक प्रकार का हरा कीड़ा जो धन्ने आदि की जड़ों में लगकर फसल को हानि पहुँचाता है ।

क्रि० प्र०—लगना ।

टाँड़ी—संज्ञा स्त्री० [देश०] टिड्डी । उ०—उमड़ि रारि तुरकन त्यों माँड़ी । छूटे तीर उड़ति ज्यों टाँड़ी ।—लाल (शब्द०) ।

टाँए(पु)—संज्ञा पुं० [सं० ताड़] दे० 'टाड़ा' । उ०—बारी टाँए सलोनी टूटी ।—जायसी ग्रं०, पृ० १४१ ।

टाँयटाँय—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. कर्कश शब्द । अप्रिय शब्द । कड़ुई बोली । टें टें । २. बक बक । बकवाद । प्रलाप ।

मुहा०—टाँय टाँय करना = बकवाद करना । निरर्थक बोलना । बिना समझे बूझे बोलना । उ०—तुम कुछ समझते तो हो नहीं बेकार टाँय टाँय करते हो ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ११५ । टाँय टाँय फिस = (१) बकवाद, पर फल कुछ नहीं । किसी कार्य के संबंध मे बातचीत तो बहुत बढ़कर पर परिणाम कुछ नहीं । (२) किसी कार्य के प्रारंभ में तो बड़ी भारी तत्परता पर अंत में सिद्धि कुछ भी नहीं । कार्य का प्रारंभ तो बड़ी धूमधाम के साथ, पर अंत को होना जाना कुछ नहीं ।

टाँस—संज्ञा स्त्री० [हिं० टानना (= खींचना)] हाथ या पैर के बहुत देर तक मुड़े रहने के कारण नसों की सिकुड़न या तनाव जिससे फँसने की सी असह्य पीड़ा होने लगती है । यह पीड़ा प्राय: क्षणिक होती है ।

क्रि० प्र०—चढ़ना ।

टाँसना†—क्रि० प्र० [हिं०] दे० 'टाँचना', 'टाँकना' ।

टा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पृथ्वी । २ शपथ । कसम [को०] ।

टाइटिल पेज—संज्ञा पुं० [अं०] किसी पुस्तक के सबसे ऊपर का पृष्ठ जिसपर पुस्तक और ग्रंथकार का नाम आदि कुछ बड़े अक्षरों में रहता है । आवरण पृष्ठ ।

टाइप—संज्ञा पुं० [अं०] सीसे अथवा सीसे और ताँबे के मिश्रण से ढले हुए अक्षर जिनको मिलाकर पुस्तकें छापी जाती हैं । काँटे का अक्षर ।

टाइपकास्टिंग मशीन—संज्ञा स्त्री० [अं०] काँटे का अक्षर ढालने का कल ।

टाइपमोल्ड—संज्ञा पुं० [अं०] काँटे के अक्षर ढालने का साँचा ।

टाइपराइटर—संज्ञा पुं० [अं०] एक कल या यंत्र जिसमें कागज रखकर टाइप के से अक्षर छापे जाते हैं । यह दफ्तरों और कार्यालयों में चिट्ठी पत्री आदि छापने के काम में आता है । टंकण यंत्र ।

टाइफायड—संज्ञा पुं० [अं० टाइफ़ायड] एक प्रकार का विषैला ज्वर जिसमें सबेरे ताप घट जाता है और संध्या को बढ़ जाता है । मोतीझरा ।

टाइफोन—संज्ञा पुं० [अं० टाइफून, तुलनीय तूफ़ान] एक प्रकार का तूफान जो चीन के समुद्र मे और उसके आसपास बरसात के चार महीनों में आया करता है ।

टाइम—संज्ञा पुं० [अं०] समय । वक्त ।

यौ०—टाइमटेबुल । टाइमपीस ।

टाइमटेबुल—संज्ञा पुं० [अं०] वह विवरणपत्र या सारणी जिसमें भिन्न भिन्न कार्यों के लिये निश्चित समय लिखा रहता है । जैसे, स्कूल का टाइमटेबुल, दफ्तर का टाइमटेबुल, रेलवे टाइमटेबुल ।

टाइमपीस—संज्ञा स्त्री॰ [अं॰] कमरे में मेज, आलमारी अथवा डेस्क पर रहनेवाली वह छोटी घड़ी जो केवल समय बताती है, बजती नहीं। किसी किसी में जगाने की घंटी समय निर्धारित करने पर बजती है।

टाई—संज्ञा स्त्री॰ [अं॰] १. कपड़े की एक पट्टी जो. अंग्रेजी पहनावे में कालर के अंदर गाँठ देकर बाँधी जाती है। नेकटाई। २. जहाज के ऊपर के पाल की वह रस्सी जिसकी मुद्धी मस्तूल के सेदों में लगाई जाती है।

टाउन—संज्ञा पुं॰ [अं॰] शहर। कसबा।

टाउन ड्यूटी—संज्ञा स्त्री॰ [अं॰] चुंगी। चौंटुटी।

टाउनहाल—संज्ञा पुं॰ [अं॰] किसी नगर में वह सार्वजनिक भवन जिसमें नगर की सफाई, रोशनी आदि के प्रबंधकर्ताओं की तथा दूसरी सर्वसाधारण संबंधी सभाएँ होती है।

टाकरी लिपि—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ ठाकुरी, ठक्कुरी ?] एक प्रकार की लिपि जो शारदा लिपि का घसीट रूप है।

विशेष—इस लिपि में इ, ई, उ, ए, ग, घ, च, ञ, ड, ढ, त, थ, द, ध, प, भ, म, य, र, ल, और ह वर्ण वर्तमान शारदा लिपि से मिलते जुलते हैं। शेष वर्ण भिन्न हैं, जिसका कारण संभवतः शीघ्रता से लिखना और चलतू कलम है। इसमें 'ख' के स्थान पर 'ष' लिखा जाता है।

टाका(पु)—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] कंडाल। दे॰ 'टाँका'। उ॰—आगे सगुन सगुनियाँ ताका। दहिउ मच्छ रूपे कर टाका।—जायसी ग्रं॰ (गुप्त), पृ॰ २११।

टाकू—संज्ञा पुं॰ [सं॰ तर्कु] टकुआ। तकला। टेकुरी।

टाकोली‡—संज्ञा स्त्री॰ [देश॰] भेंट। नजराना। उ॰—उन्होंने उड़ीसा के समस्त जमींदारों से टाकोली या पेशकश वसूल किया।—शुक्ल अभि॰ ग्रं॰, पृ॰ ९१।

टाट¹—संज्ञा पुं॰ [सं॰ तन्तु] १. सन या पटुए की रस्सियों का बना हुआ मोटा खुरदुरा कपड़ा जो बिछाने, परदा डालने आदि के काम में आता है।

मुहा॰—टाट में मूँज का बखिया = जैसी भद्दी चीज, वैसी ही उसमें लगी हुई सामग्री या साज। टाट में पाट का बखिया = चीज तो भद्दी और सस्ती, पर उसमें लगी हुई सामग्री बढ़िया और बहुमूल्य। बेमेल का साज।

२. बिरादरी। कुल। जैसे,—वे दूसरे टाट के हैं।

मुहा॰—एक ही टाट के = (१) एक ही बिरादरी के। (२) एक साथ उठने बैठनेवाले। एक ही मंडली के। एक ही दल के। एक ही विचार के। टाट बाहर होना = बहिष्कृत होना। जाति पाँति से अलग होना।

३ साहूकार के बैठने का बिछावन। महाजन की गद्दी।

मुहा॰—टाट उलटना = दिवाला निकालना। दिवालिया होने की सूचना देना।

विशेष—पहले यह रीति थी कि जब कोई महाजन दिवाला बोलता था, तब वह अपनी कोठी या दुकान पर का टाट और गद्दी उलटकर रख देता था जिससे व्यवहार करनेवाले लौट जाते थे।

टाट²—वि॰ [अं॰ टाइट] कसा हुआ।—(लश॰)।

मुहा॰—टाट करना = मस्तूल खड़ा करना।

टाटक†¹—वि॰ [हिं॰] दे॰ 'टटका'। उ॰—(क) चिउ टाटक महँ सोंधि सेरावा।—पदमावत, पृ॰ ५८९। (ख) भीखा पावत मगन रैन दिन टाटक होत न बासी।—भीखा श॰, पृ॰ १२।

टाटक(पु)—संज्ञा पुं॰ [सं॰ त्राटक] दे॰ 'त्राटक'। उ॰—टाटक ध्यान जपै नोकारा। जब या जीव को होइ उबारा।—घट॰, पृ॰८५।

यौ॰—टाटक टोटक।

टाटबाफ—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ टाट + फ़ा॰ बाफ़] १. टाट बुननेवाला। २. कपड़ो पर कलाबत्तू का काम करनेवाला।

टाटबाफी—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ टाट + फ़ा॰ बाफ़ी] १. कलाबत्तू का काम। २. टाट बुनने का काम।

टाटबाफीजूता—संज्ञा पुं॰ [फ़ा॰ तारबाफी] वह जूता जिसपर कलाबत्तू का काम हो। कामदार जूता।

टाटर¹—संज्ञा पुं॰ [सं॰ स्थातृ (= जो खड़ा हो)] १. टट्टर। टट्टी। २. सिर की हड्डी या परदा। खोपड़ा। कपाल। उ॰—टाटर टूट, टूट सिर तासू।—जायसी (शब्द॰)।

टाटर²—संज्ञा पुं॰ [?] घोड़ों को सजाने की सामग्री। उ॰—टाटर पाषर सज्जित कियो राव।—बी॰ रासो॰, पृ॰ १६।

टार्टारिकएसिड—संज्ञा पुं॰ [अं॰] इमली का सत। इमली का चुक।

टाटिका(पु)—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ टाटी] टट्टी। उ॰—विरचि हरि भक्त को वेष बर टाटिका, कपट दल हरित पल्लवनि छावो। तुलसी (शब्द॰)।

टाटी†—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ स्थात्री ता तटी] छोटा टट्टर। टट्टी। उ॰—(क) आँधी आई ज्ञान की ढही भरम की भीति। माया टाटी उड़ि गई भई नाम सो प्रीति।—कबीर (शब्द॰)। (ख) सूरदास प्रभु कहा निहारौ मानत रंक त्रास टाटी को।—सूर (शब्द॰)।

टाठी†—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ स्थाली (= बटलोई), प्रा॰ ठाली, ठाढी] थाली।

टाड़—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ ताड] भुजा पर पहनने का एक गहना। टाँड़। टाँडिया। बहुँटा। उ॰—बाहु टाड़ कर ककन बाजुबंद एते पर हो तोको।—सूर (शब्द॰)।

टाडर—संज्ञा स्त्री॰ [देश॰] एक प्रकार की चिड़िया।

टाणौं(पु)—संज्ञा पुं॰ [?] (विवाहादि) उत्सव। उ॰—भदता टाणौं ऊपरे, बाणा खरचै नाहि।—बाँकी॰ ग्रं॰ भा॰ ३, पृ॰ ८२।

टान¹—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ तान (= फैलाव, खिचाव)] १. तनाव। खिचाव। फैलाव। २. खींचने की क्रिया। खींच। ३. सितार के परदे पर उँगली रखकर इस प्रकार खींचने की क्रिया जिससे बीच के सब स्वर निकल आवें। ४. साँप के दाँत

लगने का एक प्रकार जिसमें दाँत धँसता नहीं केवल छीलता या खरोंच डालता हुआ निकल जाता है।

टान[२]—संज्ञा पुं० [सं० स्थाणु (=थुन या लकड़ी का खंभा)] टाँड़। मचान।

टान[३]—संज्ञा स्त्री० [अं० टर्न] प्रेस में किसी कागज को एकाधिक बार छापने का भाव। एक टान प्रायः एक हजार प्रतियों का होता है।

टानना—क्रि० स० [हिं० टान+ना (प्रत्य०)] तानना। खींचना।

टानिक—संज्ञा पुं० [अं० टॉनिक] वह औषध जो शरीर का बल बढ़ाती हो। बलवीर्यवर्धक औषध। पुष्टिकारक औषध। ताकत की दवा। पुष्टई। जैसे,—डाक्टर ने उन्हें कोई टानिक दिया है।

टाप—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थापन, थाप] १. घोड़े के पैर का वह सबसे निचला भाग जो जमीन पर पड़ता है और जिसमें नाखून लगा रहता है। घोड़ों का अर्धचंद्राकार पादतल। सुम। उ०—जे जल चलहिं थलहिं की नाई। टाप न बूड़ वेग अधिकाई। तुलसी (शब्द०)। २. घोड़े के पैरों के जमीन पर पड़ने का शब्द। जैसे,—दूर पर घोड़ों की टाप सुनाई पड़ी। ३. पलंग के पास का तल भाग जो पृथ्वी से लगा रहता है और जिसका घेरा उभरा रहता है। ४. बेंत या और किसी पेड़ की लचीली टहनियों का बना हुआ मछली पकड़ने का झाबा जिसकी पेंदी में एक छेद होता है। मछली पकड़ने का ढाँचा। ५. मुरगियों के बंद करने का झाबा।

टापड़—संज्ञा पुं० [हिं० टप्पा] ऊसर मैदान।

टापदार—वि० [हिं० टाप+फा० दार (प्रत्य०)] जिसके सिरे या छोर पर के कुछ भाग का घेरा उभरा हुआ हो। जिसके ऊपर या नीचे का छोर कुछ फैला हुआ हो। जैसे, टापदार पाया।

टापना[१]—क्रि० अ० [हिं० टाप+ना (प्रत्य०)] १. घोड़ों का पैर पटकना।

विशेष—प्रायः जब दाना पाने का समय होता है, तब घोड़े टाप पटककर अपनी भूख की सूचना देते हैं। इससे 'टापने' का अर्थ कभी कभी 'दाना माँगना' भी लेते हैं।

२. टक्कर मारना। किसी वस्तु के लिये इधर उधर हैरान फिरना। ३. व्यर्थ इधर उधर फिरना। ४. उछलना। कूदना।

टापना[२]—क्रि० स० कूदना। फाँदना। उछलकर लाँघना। जैसे, दीवार टापना।

टापना[३]—क्रि० अ० [सं० तप] १. बिना कुछ खाए पिए पड़ा रहना। बिना दाना पानी के समय बिताना। जैसे,—सबेरे से बैठे टाप रहे हैं, कोई पानी पीने को भी नहीं पूछता। २. ऐसी बात के आसरे में रहना जो होती हुई न दिखाई दे। व्यर्थ प्रतीक्षा करना। आशा में पड़े पड़े उद्विग्न और व्यग्र होना। जैसे,—घंटों से बैठे टाप रहे हैं कोई आता जाता नहीं दिखाई देता। ३. किसी बात से निराश और दुखी होना। हाथ मलना। पछताना। जैसे,—वह चला गया, मैं टापता रह गया।

टापर†[१]—संज्ञा पुं० [देश०] १. ओढ़ने का मोटा कपड़ा। चद्दर। २. घोड़ों को शीत से बचाने के लिये ओढ़ाने का मोटा वस्त्र। तप्पड़। जीन के नीचे का मोटा कपड़ा। उ०—(क) जिणि दीहे पालउ पड़इ, टापर तुरी सहाइ।—ढोला०, दू० २७९। (ख) थाली टापर बाग मुखि, कैम्यउ राजकुमारि। करहइ किया टहूकड़ा निद्रा जागी नारि।—ढोला०, दू० ३४५। ३. तिरपाल। ४. झोपड़ा।

टापर[२]—संज्ञा पुं० [हिं० टाप] छोटी मोटी सवारी। टट्टू आदि की सवारी।

टापा—संज्ञा सं० [सं० स्थापन, हिं० थाप] १. टप्पा। मैदान। २. उजाड़ मैदान। ऊसर मैदान। ३. उछाल। कूद। छलाँग। फाँद।

मुहा०—टापा देना = लंबे डग भरना। उ०—कबिरा यह संसार मे घने मनुष मतिहिन। राम नाम जाना नही आए टापा दीन।—कबीर (शब्द०)।

४. किसी वस्तु को ढकने या बंद करने का टोकरा। झाबा।

टापू—संज्ञा पुं० [हिं० टापा या टप्पा] १. स्थल का वह भाग जिसके चारो ओर जल हो। वह भूखंड जो चारो ओर जल से घिरा हो। द्वीप। † २. टप्पा। टापा।

टाबर†—संज्ञा पुं० [प० टब्बर] १. बालक। लड़का। उ०—घर को सब टाबर मुवो सुंदर कही न जाइ।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ७५२। २. परिवार।

टाबू—संज्ञा पुं० [देश०] रस्सी की बुनी हुई कटोरे के आकार की जाली जिसे बैलों के मुँह पर इसलिये चढ़ा देते हैं जिसमें वे काम करते समय इधर उधर चर न सकें। जाबा।

टामक†—संज्ञा पुं० [अनु०] टिमटिमी। डिमडिमी। उ०—दुंदुभि पटह मृदंग ढोलकी डफला टामक। मदरा तबला सुमक खंजरी तबला धामक।—सूदन (शब्द०)।

टामकटोया†—संज्ञा पुं० [हिं०] टकटोहना। टटोलना।

क्रि० प्र०—मारना = अंधेरे में टटोलना या भटकना।

टामन—संज्ञा पुं० [सं० तन्त्र] तत्रविधि। टोटका। उ०—जावत हौं जु दई मुँदरी पढ़ि राम कछू जनु टामन कीन्हो।—हनुमान (शब्द०)।

यौ०—टामन टूमन = सर्वस्व। उ०—इतना कहत हाथ तब जोरे। टामन टूमन सब ही तोरे।—राम० धर्म०, पृ० ३४६।

टार[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. घोड़ा। २. टट्टू। लौंडा। लंग। ३. स्त्री पुरुष का संयोग करानेवाला व्यक्ति। कुटना। दलाल। भँडुआ।

टार[२]—संज्ञा पुं० [सं० अट्टाल, हिं० टाल] ढेर। राशि। टाल।

टार[३]—संज्ञा स्त्री० [हिं० टारना] टालटूल। वि० दे० 'टाल'।

टार[४]—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार हल जिसमें लगी हुई चोंगी से बीज गिरता रहता है।

टारन—संज्ञा पुं० [हिं० टारना] १. टालने या सरकाने की वस्तु।

२. कोल्हू में पड़ा हुआ वह लकड़ी का डंडा जिससे गँड़ेरियाँ चलाई या हिलाई जाती हैं।

टारना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'टालना'। उ०—(क) भूप सहस दस एकहि बारा। लगे उठावन टरै न टारा।—तुलसी (शब्द०)। (ख) जिमि मूरि जिमि जोगवत रहेउँ। दीप बाति नहिं टारन कहेउँ।—तुलसी (शब्द०)।

टारपीडो—संज्ञा पुं० [अं०] एक विध्वंसकारी यंत्र जिसमें भीषण विस्फोटक पदार्थ भरा रहता है और जो बड़े समुद्री मत्स्य के आकार का होता है। विस्फोटक बज्र।

विशेष—यह जल के अंदर छिपाया रहता है। युद्ध के समय शत्रु के जहाज पर इसे चलाते हैं। इसके लगने से जहाज में बड़ा सा छेद हो जाता है और वह वहीं डूब जाता है।

टारपीडो कैचर—संज्ञा पुं० [अनु०] तेज चलनेवाला एक शक्तिशाली रणपोत या जंगी जहाज जो टारपीडो बोट के प्रयत्न को विफल करने और उसे नष्ट करने के काम में लाया जाता है।

टारपीडो बोट—संज्ञा पुं० [अं०] तेज चलनेवाली एक छोटी स्टीम बोट जो युद्ध के समय शत्रु के जहाज को नष्ट करने के लिये उसपर टारपीडो या विस्फोटक बज्र चलाती है। नाशक जहाज।

टाल[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० अट्टाल, हिं० अटाला] १. नीचे ऊपर रखी हुई वस्तुओं का ढेर जो दूर तक ऊँचा उठा हो। ऊँचा ढेर। भारी राशि। अटाला। गंज। जैसे, लकड़ी की टाल, भुस की टाल, पयाल की टाल, घास की टाल। २. लकड़ी, भुस, पयाल आदि की बड़ी दुकान। ३. बैलगाड़ी के पहिए का किनारा।

मुहा०—टाल मारना = पहिए के किनारों का छीलना।

टाल[2]—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का घंटा जो गाय, बैल, हाथी आदि के गले में बाँधा जाता है।

टाल[3]—संज्ञा स्त्री० [हिं० टालना] १. टालने का भाव। २. किसी बात के लिये आजकल का झूठा वादा। ऐसा बहाना जिससे किसी समय किसी काम को करने से कोई बच जाय।

यौ०—टालटूल। टालबटाल। टालमटाल। टालमटूल। टालमटोल।

टाल[4]—संज्ञा पुं० [सं० टार] व्यभिचार के लिये स्त्री पुरुष का समागम करानेवाला। कुटना। भँड़ुआ।

टालटूल—संज्ञा स्त्री० [हिं० टाल + टूल] दे० 'टालमटूल'।

टालना—क्रि० स० [हिं० टलना] १. अपने स्थान से अलग करना। हटाना। खिसकाना। सरकाना।

संयो० क्रि०—देना।

२ दूसरे स्थान पर भेज देना। अनुपस्थित कर देना। दूर करना। भगा देना। जैसे,—जब काम का समय होता है तब तुम उसे कहीं टाल देते हो।

संयो० क्रि०—देना।

३. दूर करना। मिटाना। न रहने देना। निवारण करना। जैसे, आपत्ति टालना, संकट टालना, बला टालना। उ०—मुनि प्रसाद बल तात तुम्हारी। ईस अनेक करवरैं टारी।—तुलसी (शब्द०)।

संयो० क्रि०—देना।

४. किसी कार्य का निश्चित समय पर न करके उसके लिये दूसरा समय स्थिर करना। नियत समय से और आगे का समय ठहराना। मुलतवी करना।

विशेष—इस क्रिया का प्रयोग समय और कार्य दोनों के लिये होता है। जैसे, तिथि टालना, विवाह की सायत या लग्न टालना, विवाह टालना, इम्तहान टालना।

संयो० क्रि०—देना।

५. समय व्यतीत करना। समय बिताना। ६. किसी (आदेश या अनुरोध) को न मानना। न पालन करना। उल्लंघन करना। जैसे,—(क) हमारी बात वे कभी न टालेंगे। (ख) राजा की आज्ञा को कौन टाल सकता है? ७. किसी काम को तत्काल न करके दूसरे समय पर छोड़ना। मुलतवी करना। जैसे,—जो काम आवे, उसे तुरत कर डालो, कल पर मत टालो। ८. बहाना करके किसी काम से बचना। किसी कार्य के संबंध में इस प्रकार की बातें कहना जिससे वह न करना पड़े।

संयो० क्रि०—देना।

मुहा०—किसी पर टालना = स्वयं न करके किसी के करने के लिये छोड़ देना। किसी के सिर मढ़ना। जैसे,—जो काम उसके पास जाता है, वह दूसरों पर टाल देता है।

९. किसी बात के लिये आजकल का झूठा वादा करना। किसी काम को और आगे चलकर पूरा करने की मिथ्या आशा देना या प्रतिज्ञा करना। जैसे,—तुम इसी तरह महीनों से टालते आए हो, आज हम रुपया जरूर लेंगे। १०. किसी प्रयोजन से आए हुए मनुष्य को निष्फल लौटाना। किसी मनुष्य का कोई काम पूरा न करके उसे इधर उधर की बातें कहकर फेर देना। धता बताना। टरकाना। जैसे,—इस समय इसे कुछ कह सुनकर टाल दो, फिर माँगने आवेगा तब देखा जायगा। ११. पलटना। फेरना। और का और करना। १२. कोई अनुचित या अपने विरुद्ध बात देख सुनकर न बोलना। बचा जाना। तरह दे जाना।

संयो० क्रि०—जाना।

टालबटाल—संज्ञा स्त्री० [हिं० टाल + बटाल] दे० 'टालमटाल'।

टालमटाल[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० टाल + म (प्रत्य०) + टाल] दे० 'टालमटूल'।

टालमटाल[2]—क्रि० वि० [(दलाली) टाली (= अठन्नी)] आधे आध। निस्फा निस्फ।

टालमटूल—संज्ञा पुं० [हिं० टालना] बहाना।

टाला—वि० [(दलाली) टाली (= अठन्नी)] [स्त्री० टाली] आधा। अर्ध (दलाल)।

टालाटूलीⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं० टालना] टालटूल। उ०—टाला-टूली दिन गया, ब्याज बढ़ंता जाय।—कबीर सा०, पृ० ७५।

टालिमाⓅ—वि० [हिं० टालना ?] चुने हुए। चुनिंदा। उ०—तिणि मई लेस्याँ टालिमा, बाँकड़ मुहाँ विडंग।—ढोला०, दू० २२७।

टाली—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. गाय बैल आदि के गले में बाँधने की घंटी। २. जवान गाय या बछिया जो तीन वर्ष से कम की हो और बहुत चंचल हो। उ०—पाई पाई हे भैया कुंज वृंद में टाली। अब के अपनी घट ही चरावहु जैहैं हुटकी घाली।—सूर (शब्द०)। ३. एक प्रकार का बाजा। ४. अठन्नी। आधा रुपया। धेली। -(दलाल)।

टाल्ही—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का शीशम जिसके पेड़ पंजाब में बहुत होते हैं।

विशेष—इसके हीर की लकड़ी भूरी और बहुत मजबूत होती है। यह इमारतों में लगती है तथा गाड़ी, खेती के सामान आदि बनाने के काम में आती है।

टावर—संज्ञा पुं० [अं०] १. लाट। मीनार। बुर्ज। २. किला। कोट।

टाहली†—संज्ञा पुं० [हिं० टहल] टहल करनेवाला। टहलुआ। दास। सेवक। खिदमतगार। उ०—कादर को आदर काहू के नाहिं देखियत सबनि सोहात है सेवा सुजान टाहली।—तुलसी (शब्द०)।

टाहुलीⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं० टाहली] टहलुई। नौकरानी। उ०—थान समारो टाहुली, चोवा चदन अंग सुहाई।—बी० रासो, पृ० ४६।

टिंगा†—संज्ञा स्त्री० [देश०] स्त्री की योनि। भग।-(अशिष्ट)।

टिंचर—संज्ञा पुं० [अं० टिंक्चर] किसी औषध का सार जो स्पिरिट के योग से तरल रूप में बनाया जाता है।

टिंचर आयोडीन—संज्ञा पुं० [अं० टिंक्चर आयोडीन] सूजन आदि पर लगाने के लिये आयोडिन और स्पिरिट आदि का घोल।

टिंचर ओपियाई—संज्ञा पुं० [अं० टिंक्चर ओपियाई] अफीम और स्पिरिट आदि का घोल।

टिंचर कार्डिमम—संज्ञा पुं० [अं० टिंक्चर कार्डिमम] इलायची का अर्क।

टिंचर स्टील—संज्ञा पुं० [अं० टिंक्चर स्टील] फौलाद आदि का स्पिरिट में बनाया हुआ घोल।

टिंटिनिका—संज्ञा स्त्री० [सं० टिण्टिनिका] १. जल सिरीस का पेड़। अंबु शिरीषिका। दाढ़ौन। २. जोंक।

टिंड—संज्ञा पुं० [सं० टिण्डिश] १. ककड़ी की जाति की एक बेल जिसमें गोल गोल फल लगते हैं। इन फलों की तरकारी बनती है। ढेंड़सी। डेंड़सी। २. रहट में लगा हुआ बरतन जिसमें पानी भरकर आता है। डब्बू।

टिंडर—संज्ञा पुं० [सं० टिण्ड (= डेंडसी)] रहट में लगी हुई हँड़िया।

टिंडसी—संज्ञा स्त्री० [सं० टिण्डिश] टिंड नाम की तरकारी। डेंड़सी।

टिंडा—संज्ञा पुं० [सं० टिण्डिश] ककड़ी की जाति की एक बेल जिसमें छोटे खरबूजे के बराबर गोल फल लगते हैं। इन फलों की तरकारी बनती है। ढेंड़सी। डेंड़सी।

टिंडिश—संज्ञा पुं० [सं० टिण्डिश] टिंडा। डेंड़सी। ढेंड़सी।

टिंडी—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. हल को पकड़कर दबानेवाली मुठिया। २. जाँता घुमाने का खूँटा।

टिक—संज्ञा पुं० [?] टिक्कर। लिट। ठोकवा। पूआ।

टिकई—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. टीकेवाली गाय। वह गाय जिसके माथे पर सफेद टीका हो। †२. एक छोटी चिड़िया जो तालों में उतरती है और जाड़ा बीतने पर बाहर चली जाती है।

टिकट—संज्ञा पुं० [अं० टिकेट] १. वह कागज का टुकड़ा जो किसी प्रकार का महसूल, भाड़ा, कर या फीस चुकानेवाले को दिया जाय और जिसके द्वारा वह कहीं आ जा सके या कोई काम कर सके। जैसे, रेल का टिकट, डाक का टिकट, थिएटर का टिकट। २. कहीं आने जाने या कोई काम करने के लिये अधिकारपत्र। ३. संसद् या विधानसभा या नगरपालिका के चुनाव के लिये किसी प्रत्याशी को दलविशेष के प्रतिनिधि के रूप में चुनाव लड़ने के लिये दिया जानेवाला अधिकार या स्वीकृति। ४. वह कर, फीस या महसूल जो किसी काम के करनेवालों पर लगाया जाय। जैसे, स्नान का टिकट, मेले का टिकट।।

मुहा०—टिकट लगाना = महसूल लगाना। कर नियत करना।

टिकटघर—संज्ञा पुं० [अं० टिकट + हिं० घर] वह स्थान या कमरा जहाँ टिकट बिकता है।

टिकटिक—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. घोड़ों को हाँकने के लिये मुँह से किया हुआ शब्द। २. घड़ी के बोलने का शब्द।

टिकटिकी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० टिकठी] १. तीन तिरछी खड़ी की हुई लकड़ियों का एक ढाँचा जिससे अपराधियों के हाथ पैर बाँधकर उनके शरीर पर बेत या कोड़े लगाए जाते हैं। ऊँची तिपाई जिसपर अपराधियों को खड़ा करके उनके गले में फाँसी लगाते हैं। टिकठी। २. ऊँची तिपाई। टिकठी।

मुहा०—टिकटिकी पर खड़ा करना = लड़ाई में न हटनेवाले चोट खाकर मरे हुए मुरगे को तीन लकड़ियों पर खड़ा करना।

विशेष—मुरगों की लड़ाई में जब कोई बहादुर मुरगा लड़ते ही लड़ते चोट खाकर मर जाता है और मरते दम तक नहीं हटता है, तब उसके शरीर को तीन लकड़ियों पर खड़ा कर देते हैं। यदि दूसरा मुरगा लात मारकर उसे लकड़ी के नीचे गिरा देता है तो उसकी जीत समझी जाती है और यदि वह किसी और तरफ चला जाता है तो मरे हुए मुरगे की जीत समझी जाती है।

टिकटिकी[2]—संज्ञा स्त्री० [देश०] आठ नौ अंगुल लंबी एक चिड़िया जिसका रंग भूरा और पैर कुछ लाली लिए होते हैं।

विशेष—जाड़े में यह सारे भारतवर्ष में देखी जाती है और प्रायः जलाशयों के किनारे झाड़ियों में घोंसला बनाती है। यह एक बार में चार अंडे देती है।

टिकटिकी[3]—संज्ञा स्त्री [हिं०] दे० 'टकटकी'।

टिकठी—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रिकाष्ठ या हिं० तीन काठ] १. तीन तिरछी खड़ी की हुई लकड़ियों का एक ढाँचा जिससे अपराधियों के हाथ पैर बाँधकर उनके शरीर पर बेत या कोड़े लगाए जाते हैं। टिकटिकी। २. ऊँची तिपाई जिसपर अपराधियों को खड़ा करके उनके गले में फाँसी का फंदा लगाया जाता है। ३. काठ का आसन जिसमें तीन ऊँचे पाए लगे हों। तिपाई। ४. बुना हुआ कपड़ा फैलाने के लिये दो लकड़ियों का बना हुआ एक ढाँचा। यह कपड़े को चौड़ाई के बराबर फैल सकता है।—(जुलाहे)। ५. अरथी जिसपर शव को अंत्येष्टि क्रिया के लिए ले जाते हैं।

टिकड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० टिकिया] [स्त्री० अल्पा० टिकड़ी] १. चिपटा गोल टुकड़ा। धातु, पत्थर, कपड़े या और किसी कड़ी वस्तु का चक्राकार खंड। २. आँच पर सेंकी हुई छोटी मोटी रोटी। बाटी। अंगाकड़ी।

मुहा०—टिकड़ा लगाना = आग पर बाटी सेंकना या पकाना।

३. जड़ाऊ या ठप्पे के गहनों में कई नगों को जड़कर बनाया हुआ एक एक विभाग या अंश।

टिकड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० टिकड़ा] छोटा टिकड़ा।

टिकना—क्रि० अ० [सं० स्थित + √कृ या अ (= नहीं) + टिक (= चलना)] १. कुछ काल तक के लिये रहना। ठहरना। डेरा करना। मुकाम करना। उ०—टिकि लीजियो रात में काहू घटा जहाँ सोवत होंय परेवा परे।—लक्ष्मण (शब्द०)।

संयो० क्रि०—जाना।—रहना।—लेना।

२. किसी घुली हुई वस्तु का नीचे बैठना। तल में जमना। तलछट के रूप में नीचे पेंदे में इकट्ठा होना। ३. स्थायी रहना। कुछ दिनों तक चलना या बना रहना। कुछ दिनों तक काम देना। जैसे,—यह जूता तुम्हारे पैर में कितने दिन टिकेगा!

४. स्थित रहना। अड़ा रहना। इधर उधर न गिरना। ठहरना। सहारे पर रहना। जमना या बैठना। जैसे,—(क) यह गोला डंडे की नोक पर टिका हुआ है। (ख) इसपर तो पैर ही नहीं टिकता, कैसे खड़े हों। ५. युद्ध या लड़ाई में सामना करते हुए जमे रहना। ६. विश्राम के उद्देश्य से थोड़ी देर के लिये कहीं रुकना। ७. प्रतिकूल समय या मौसम में किसी पदार्थ का विकृत न होना। ८. ध्यान या निगाह का स्थिर होना।

टिकरी[1]†—संज्ञा स्त्री० [हिं० टिकिया] १. नमकीन पकवान जो बेसन और मैदे की दो मोयनदार लोइयों को एक में बेलकर और घी में तलकर बनाया जाता है। २. टिकिया। ३. लिट्टी।

टिकरी[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० टीका] सिर पर पहनने का एक गहना।

टिकली[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० टिकिया या टीका] १. छोटी टिकिया। २. पन्नी या काँच की बहुत छोटी बिंदी के आकार की टिकिया जिसे स्त्रियाँ शृंगार के लिये अपने माथे पर चिपकाती हैं। सितारा। चमकी। ३. छोटा टीका। माथे पर पहनने की छोटी बेंदी।

टिकली[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० तर्क, हिं० तकला] सूत बटने की फिरकी। सूत कातने का एक औजार।

विशेष—यह बाँस या लोहे की सलाई पर लगी हुई काठ की गोल टिकिया होती है जिसे नचाने या फिराने से उसमें लपेटा हुआ सूत ऐंठकर कड़ा होता जाता है।

टिकस—संज्ञा पुं० [अं० टैक्स] महसूल। कर। जैसे, पानी का टिकस, इनकम टिकस। उ०—सबके ऊपर टिकस लगाऊँ, धन है मुझको धन्न।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ४७३।

मुहा०—टिकस लगना = महसूल या कर नियत होना।

टिकसार†—वि० [हिं० टिकना + सार (प्रत्य०)] टिकाऊ। टिकनेवाला।

टिकाई†—संज्ञा पुं० [हिं० टीका] राजा का वह पुत्र जो राजा के पीछे राजतिलक का अधिकारी हो। युवराज। उत्तराधिकारी राजकुमार।

टिकाऊ—वि० [हिं० टिक + आऊ (प्रत्य०)] टिकनेवाला। कुछ दिनों तक काम देनेवाला। चलनेवाला। पायदार।

टिकान—संज्ञा स्त्री० [हिं० टिकना] १. टिकने या ठहरने का भाव। २. टिकने या ठहरने का स्थान। पड़ाव। चट्टी।

टिकाना—क्रि० स० [हिं० टिकन] १. रहने के लिये जगह देना। निवासस्थान देना। कुछ काल तक किसी के रहने के लिये स्थान ठीक करना। ठहराना। जैसे,—इन्हें तुम अपने यहाँ टिका लो।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

२. सहारे पर खड़ा करना या रोकना। अड़ाना। ठहराना। स्थित करना। जमाना। जैसे,—(क) एक पैर जमीन पर अच्छी तरह टिका लो, तब दूसरा पैर उठाओ। (ख) इसे दीवार से टिकाकर खड़ा कर दो। (ग) बोझ को चबूतरे पर टिकाकर थोड़ा दम ले लो।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

†३. किसी उठाए जाते हुए बोझ में सहारे के लिये हाथ लगाना। बोझ उठाने या ले जाने में सहायता देना। जैसे,—(क) अकेले उससे चारपाई न जायगी, तुम भी टिका लो। (ख) चार आदमी जब उसे टिकाते हैं, तब वह उठता है।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

४. देना। प्रस्तुत करना।

टिकानी—संज्ञा स्त्री० [हिं० टिकाना] छकड़ा गाड़ी की वे दोनों लकड़ियाँ जिनमें पैजनी डालकर रस्सी से बाँधते हैं।

टिकाव—संज्ञा पुं० [हिं० टिकना] १. स्थिति। ठहराव। २. स्थिरता। स्थायित्व। ३. वह स्थान जहाँ यात्री आदि ठहरते हों। पड़ाव।

टिकावली (पु)—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का आभूषण। उ०—टीका टीक टिकावली हीरा हार हुमेल।—छीत०, पृ० २५।

टिकिया[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० वटिका] १. गोल और चिपटा छोटा टुकड़ा। गोल और चिपटे आकार की छोटी वस्तु। चक्राकार छोटी मोटी वस्तु। जैसे, दवा की टिकिया, कुनैन की टिकिया।

विशेष—चकती और टिकिया में यह अंतर है कि टिकिया का प्रयोग प्राय: ठोस और उभरे हुए मोटे दल की वस्तुओं के लिये होता है, पर चकती का प्रयोग कपड़े, चमड़े आदि महीन परत की वस्तुओं के लिये होता है। जैसे, कपड़े या चमड़े की चकती, मैदे की टिकिया।

२. कोयले की बुकनी को किसी लसीली चीज में सानकर बनाया हुआ चिपटा गोल टुकड़ा जिससे चिलम पर आग सुलगाते हैं। ३. एक प्रकार की चिपटी गोल मिठाई जो मोयनदार मैदे की छोटी लोई को घी में तलने और चाशनी में डुबाने से बनती है। ४. बरतन के साँचे का ऊपरी भाग जिसका सिरा बाहर निकला रहता है। ५. छोटी मोटी रोटी। बाटी। लिट्टी।

टिकिया[२]—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ टीका] १. माथा। ललाट। २. माथे पर लगी हुई बिंदी। ३. ऊँगली में चूना, रंग या और कोई वस्तु पोतकर बनाई हुई खड़ी रेखा या चिह्न।

विशेष—अनपढ़ लोग नित्य प्रति के लेन देन की वस्तु का लेखा रखने के लिये इस प्रकार के चिह्न प्राय: दीवार पर बनाते हैं।

टिकरा†—संज्ञा पुं॰ [देश॰] टीला। भीटा।

टिकुरी[१]—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ तर्कु, हिं॰ टकुआ] सूत बटने या कातने की फिरकी। टिकली।

टिकुरी[२]—संज्ञा पुं॰ [देश॰] निसोथ। तुबुंद।

टिकुला—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] दे॰ 'ठिकोरा'।

टिकुली—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰] दे॰ 'टिकली'।

टिकुवा†—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] दे॰ 'टकुआ', 'टेकुआ'।

टिकैत—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ टीका + ऐत (प्रत्य॰)] १. राजा का वह पुत्र जो राजा के पीछे राजतिलक का अधिकारी हो। राजा का उत्तराधिकारी कुमार। युवराज। २. अधिष्ठाता। सरदार।

टिकोर—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰] दे॰ 'टकोर'।

टिकोरा†—संज्ञा पुं॰ [सं॰ वटिका, हिं॰ टिकिया] आम का छोटा और कच्चा फल। आम का वह फल जिसमें जाली न पड़ी हो। आम की बतिया।

टिकोला†—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] दे॰ 'टिकोरा'।

टिकोना, टिकौना—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ √टिक + औना (प्रत्य॰)] आधार। टेक। सहारा। उ॰—जिन टिकौनों से उसने अपने मन को सँभाला था, वे सब इस भूकंप में नीचे आ रहे और वह झोपड़ा नीचे गिर पड़ा।—गोदान, पृ॰ ११४।

टिक्कड़—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ टिकिया] १. बड़ी टिकिया। २. हाथ की बनी छोटी मोटी रोटी जो सेंकी गई हो। बाटी। लिट्टी। अंगाकड़ी। ३. मालपुवा। -(साधु)

टिक्कस(५)—संज्ञा पुं॰ [अं॰ टैक्स] कर। महसूल। उ॰—टिक्कस लगा रे कस कस के छोड़ो अपना रोजगार।—प्रेमघन॰, भा॰ २, पृ॰ ३६१।

टिक्का[१]—संज्ञा पुं॰ [देश॰] मूँगफली के पौधे का एक रोग।

टिक्का[२]†—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ टीका] [स्त्री॰ टिक्की] १. टीका। तिलक। बिंदी। २. उँगली में रंग आदि लगाकर बनाया हुआ खड़ा चिह्न।

विशेष—दे॰ 'टिक्की'।

३. सुध। स्मरण। याद।

टिक्का साहब—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ टीका (= तिलक) + अ॰ साहब] राजा का वह बड़ा लड़का जिसका यौवराज्याभिषेक होने को हो। युवराज। -(पंजाब)।

टिक्की[१]—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ टिकिया] १. गोल और चिपटा छोटा टुकड़ा। टिकिया।

मुहा॰—टिक्की जमना, बैठना या लगना = प्रयोजनसिद्धि का उपाय होना। युक्ति लड़ना। प्राप्ति आदि का डौल होना। गोटी जमना।

२. अंगाकड़ी। बाटी। लिट्टी।

टिक्की[२]—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ टीका] ऊँगली में रंग या और कोई वस्तु पोतकर बनाया हुआ गोल चिह्न। बिंदी। २. माथे पर की बिंदी। गोल टीका। ३. ताश की बूटी। ताश में बना हुआ पान आदि का चिह्न।

टिक्की[३]—संज्ञा स्त्री॰ [देश॰] काली सरसों।

टिकटिक—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰] दे॰ 'टिकटिक'।

टिखटी(५)—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ टिकठी] तख्ती। पटिया। उ॰—शिव तंत्र सटीक खुल्यो विलसत टिखटी पर।—का॰ सुषमा, पृ॰ ६।

टिघलना—क्रि॰ अ॰ [सं॰ तप + गलन] पिघलना। आँच से द्रवीभूत होना।

विशेष—दे॰ 'पिघलना'।

टिघलाना—क्रि॰ स॰ [हिं॰ टिघलना] पिघलाना।

टिचन—वि॰ [अं॰ अटेंशन] १. तैयार। ठीक। दुरुस्त।

क्रि॰ प्र॰—करना।—होना।

२. उद्यत। मुस्तैद।

क्रि॰ प्र॰—होना।

टिटकारना—क्रि॰ स॰ [अनु॰] टिक टिक शब्द करके किसी पशु को चलने के लिये उभारना। 'टिक टिक' करके हाँकना। जैसे, घोड़े को टिटकारना।

मुहा॰—टिटकारी पर लगना = (पशु का) इशारा पाकर काम करना। संकेत पाकर या बोली पहचानकर पास चला आना।

टिटकारी—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ टिटकारना] घोड़े या अन्य पशु को टिकटिक करके हाँकने की ध्वनि। उ॰—टमटमवालों ने अपनी टिटकारियाँ भरनी शुरू की।—मई॰, पृ॰ २०।

टिटिंबा†—संज्ञा पुं॰ [अ॰ ततिम्मह्] १. अनावश्यक झंझट। २. ढकोसला। प्रपंच। ३. आडंबर।

टिटिम्मा†—संज्ञा पुं० [अ० ततिम्मह्] दे० 'टिटिंबा'।

टिटिह—संज्ञा पुं० [सं० टिट्टिभ] टिटिहरी चिड़िया का नर। उ०—देखा टिटिह टिटिहरी आई। चोंचें भरि भरि पानी लाई।—नारायणदास (शब्द०)।

टिटिहरी—संज्ञा स्त्री० [सं० टिट्टिभ, हिं० टिटिह] पानी के किनारे रहनेवाली एक चिड़िया जिसका सिर लाल, गरदन सफेद, पर चितकबरे, पीठ खैरे रंग की, दुम मिलेजुले रंगों की और चोंच काली होती है। कुररी।

विशेष—इसकी बोली कड़ुई होती है और सुनने में 'टी टी' की ध्वनि के समान जान पड़ती है। स्मृतियों में द्विजातियों के लिये इसके मांसभक्षण का निषेध है। इस चिड़िया के संबंध में ऐसा प्रवाद है कि यह रात को इस भय से कि कहीं आकाश न टूट पड़े, उसे रोकने के लिये दोनों पैर ऊपर करके चित सोती है।

टिटिहा—संज्ञा पुं० [सं० टिट्टिभ] टिटिहरी चिड़िया का नर। उ०—टिटिहा कहौ जाऊँ लै कहाँ। यहि ते नीक और है वहाँ।—नारायणदास (शब्द०)।

टिटिहारोर—संज्ञा पुं० [हिं० टिटिहा + रोर] १. चिल्लाहट। शोर-गुल। २. रोना पीटना। क्रंदन।

टिटुआ—संज्ञा पुं० [हिं० टट्टू का अल्पा०] [स्त्री० टिटुई] छोटा टट्टू। उ०—टिटुई ऊँटन को बोझा वहि सकत नहीं जिमि।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ५७।

टिट्टिभ—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० टिट्टिभी] १. टिटिहा। नर टिटिहरी। दे० 'टिटिहरी'। उ०—उमा रावनहिं अस अभिमाना। जिमि टिट्टिभ खग सूत उताना।—तुलसी (शब्द०)। २. टिड्डी।

टिट्टिभा—संज्ञा स्त्री० [सं०] टिट्टिभ की मादा। टिटिहरी।

टिट्टिभी—संज्ञा स्त्री० [सं० टिट्टिभ] टिट्टिभ की मादा।

टिड्डीⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं० टिड्डी] दे० 'टिड्डी'। उ०—भेड़ औ टिड्डी को काज कीजै।—कबीर० रे०, पृ० २६।

टिड्डीबिड्डी†—वि० [देश०] दे० 'तिड़ीबिड़ी'।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

टिड्डा—संज्ञा पुं० [सं० टिट्टिभ] एक प्रकार का परदार कीड़ा जो खेतों में तथा छोटे पेड़ों या पौधों पर दिखाई पड़ता है।

विशेष—यह चार पाँच अंगुल लंबा और कई तरह का होता है, जैसे,—हरा, भूरा, चित्तीदार। यह नरम पत्ते खाकर रहता है। गुबरैले, तितली, रेशम के कीड़े आदि की तरह इसके जीवन में आकृतिपरिवर्तन की भिन्न भिन्न अवस्थाएँ नहीं होतीं। मक्खियों की तरह इसके मुँह में भी धँसाने के लिये डंक होते हैं।

टिड्डी—संज्ञा स्त्री० [सं० टिट्टिभ या सं० तत्+डीन (= उड़ना)] एक जाति का टिड्डा या उड़नेवाला कीड़ा जो भारी दल या समूह बाँधकर चलता है और मार्ग के पेड़ पौधे और फसल को बड़ी हानि पहुँचाता है। इसका आकार साधारण टिड्डे के ही समान, पैर और पेट का रंग लाल या नारंगी तथा शरीर भूरापन लिए और चित्तीदार होता है। जिस समय इसका दल बादल की घटा के समान उमड़कर चलता है, उस समय आकाश में अंधकार सा हो जाता है और मार्ग के पेड़ पौधों और खेतों में पत्तियाँ नहीं रह जातीं। टिड्डियाँ हजार दो हजार कोस तक की लंबी यात्रा करती हैं और जिन जिन प्रदेशों में होकर जाती हैं, उनकी फसल को नष्ट करती जाती हैं। ये पर्वत की कंदराओं और रेगिस्तानों में रहती हैं और बालू में अपने अंडे देती हैं। अफ्रिका के उत्तरी तथा एशिया के दक्षिणी भागों में इनका आक्रमण विशेष होता है।

मुहा०—टिड्डी दल = बहुत बड़ा झुंड। बहुत बड़ा समूह। बड़ी भारी भीड़ या सेना।

टिढ़बिंगा—वि० [हिं० टेढ़ा + बंक] जो सीधा और सुडौल न हो। टेढ़ामेढ़ा।

टिढ़बिढंगा—वि० [हिं० टेढ़ा + बेढंगा] टेढ़ामेढ़ा। बेढंगा।

टिन्नाना—क्रि० अ० [हिं०] १. क्रुद्ध होना। रुष्ट होना। २. (शिश्न का) उत्तेजित होना।

टिन्नाफिस्स—संज्ञा पुं० [हिं० टिन्नाना + फिस] आलोचना। निंदा। कहासुनी। उ०—तिस पर भी आपने जो इतना टिन्नाफिस्स किया तो बड़ा परिश्रम पड़ा।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २३।

टिप[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० टीपना] साँप के काटने का एक प्रकार। साँप का ऐसा दंश जिसमें दाँत चुभ गए हों और विष रक्त में मिल गया हो।

टिप[2]—संज्ञा स्त्री० [अं०] पुरस्कार के रूप में अल्प मात्रा में दिया जानेवाला द्रव्य। बख्शीश।

विशेष—भोजनालय और होटलों आदि में बैरों तथा मोटर ड्राइवरों को दिया जानेवाला पुरस्कार 'टिप' कहा जाता है।

टिपकना†—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'टपकना'।

टिपकाⓅ†—संज्ञा पुं० [हिं० टिपकना] बूँद। कतरा। बिंदु। उ०—नव मन दूध बटोरिया टिपका किया बिनास। दूध फाटि काँजी भया भया घीव का नास।—कबीर (शब्द०)।

टिपकारी—संज्ञा पुं० [हिं० टिप] दीवारों पर ईंटों की बीच की जोड़ाई पर सीमेंट अथवा चूने की लकीर।

टिपटाप—वि० [अं० टिप + टॉप] १ चुस्त। २. साफ सुथरी सुंदर वेशभूषा पहने हुए।

टिपटिप—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. बूँद बूँद गिरने का शब्द। टपकने का शब्द। वह शब्द जो किसी वस्तु पर बूँद के गिरने से होता है। २. बूँद बूँद के रूप में होनेवाली वर्षा। हलकी बूँदाबाँदी।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—टिप टिप करना = बूँद बूँद गिरना या बरसना।

टिपटिपाना†—क्रि० अ० [हिं० टिपटिप से नामिक धातु] हलकी वर्षा होना।

टिपरिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० तोपना] बाँस, बेंत या मूँज के छिलके से बना हुआ ढक्कनदार छोटा पिटारा। पिटारी।

टिपवाना—क्रि० स० [हिं० टीपना] १. दबवाना। चँपवाना।

मिसवाना। जैसे, पैर टिपवाना। २. पिटवाना। धीरे धीरे प्रहार करना। ३. लिखवाना। टँकवाना।

टिपाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० टीपना] टीपने की क्रिया। लेखन। अंकन। उ०—इतिहास में भूतकाल की घटनाओं का उल्लेख और अनुस्मरण रहता है। उसकी टिपाई सच्ची होनी चाहिए। —हिंदु० सभ्यता, पृ० १।

टिपारा—संज्ञा पुं० [हिं० तीन + फा० पारह् (= टुकड़ा)] मुकुट के आकार की एक टोपी जिसमें कलँगी की तरह तीन शाखाएँ निकली होती हैं, एक सिरे पर, दो बगल में। उ०—मोर फूल बीनिबे को गए फुलवाई हैं। सीसनि टिपारो, उपवीत पीन पट कटि, दोना बाम करनि सलोने भेसवाई हैं।—तुलसी (शब्द०)।

टिपिर टिपिर—क्रि० वि० [अनु०] टिपटिप की ध्वनि। हवा के साथ पानी की बूँदों के गिरने की ध्वनि। उ०—बूँदें टिपिर टिपिर टपकीं दल बादल से।—क्वासि, पृ० ४५।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

टिपुर—संज्ञा पुं० [देश०] १. गुमान। अभिमान। गुरूर। २. बहुत अधिक आचार विचार। पाखंड। आडंबर।

टिप्पणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. किसी वाक्य या प्रसंग का अर्थ सूचित करनेवाला विवरण। टीका। व्याख्या। २. किसी घटना के संबंध में समाचारपत्रों में संपादक की ओर से लिखा जानेवाला छोटा लेख।

टिप्पन—संज्ञा पुं० [सं०] १. टीका। व्याख्या। २. जन्मकुंडली। जन्मपत्री।

मुहा०—टिप्पन का मिलान = विवाहसंबंध स्थिर करने के लिये वर कन्या की जन्मपत्रियों का मिलान।

टिप्पनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी वाक्य या प्रसंग का अर्थ सूचित करनेवाला विवरण। टीका। व्याख्या। उ०—संपादक लोग अपनी अपनी टिप्पनियों में इसपर शोक सूचित करते......। —प्रेमघन०, भा० २, पृ० २९९।

टिप्पस†—संज्ञा स्त्री० [देश०] अभिप्रायसाधन का ढंग। युक्ति।

क्रि०प्र०—जमना।—जमाना।—बैठना।—भिड़ाना।—लगना।

विशेष—दे० 'टिक्की'।

टिप्पा(पु)[1]—संज्ञा पुं० [?] १. धावा। उ०—छुटे सब्ब सिप्पे करै दिग्घ टिप्पे, सबै सत्रु छिप्पे कहूँ हैं न दिप्पे।—पद्माकर ग्रं०, पृ० ११। २. टिप्पस। युक्ति।

टिप्पा†[2]—संज्ञा पुं० [देश०] पुरुषेंद्रिय। लिंग।—(अशिष्ट)।

टिप्पी—संज्ञा स्त्री० [हिं० टीका] १. उँगली में रंग आदि लगाकर बनाया हुआ चिह्न। २. ताश की बूटी।

विशेष—दे० 'टिक्की'।

टिफिन—संज्ञा स्त्री० [अं० टिफिन] अंगरेजों का दोपहर के बाद का जलपान।

टिबरी†—संज्ञा स्त्री० [देश०] पहाड़ों की छोटी चोटी।

टिबिल—संज्ञा पुं० [अं० टेबुल] मेज। उ०—नाक पर चश्मा देंगे, काँटा और चिमटे से टिबिल पर खाएँगे।—भारतेंदु ग्रं०, भा० ३, पृ० ८५६।

टिब्बा—संज्ञा पुं० [हिं० टीला] दे० 'टीबा'। उ०—जौनसार और गढ़वाल की नाग टिब्बा शृंखला......सब भीतरी शृंखला के पहाड़ों के नमूने हैं।—भा० भू०, पृ० १११।

टिमकना†—क्रि० अ० [देश०] १. रुकना। ठहरना। २. चमकना। प्रकाशयुक्त होना।

टिमकी—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. छोटा मोटा बरतन। २. बच्चों का पेट।

टिमटिम†—वि० [हिं० टिमटिमाना] मद्धिम या मंद (प्रकाश)। उ०—टिमटिम दीपक के प्रकाश में पढ़ते निज पोथी शिशुगण। —रेणुका, पृ० १०।

टिमटिमाना—क्रि० अ० [सं० तिम (= ठंढा होना)] १. (दीपक का) मंद मंद जलना। क्षीण प्रकाश देना। जैसे,—कोठरी में एक दीया टिमटिमा रहा था। २. समान बँधी हुई लौ के साथ न जलना। बुझने पर हो होकर जलना। झिलमिलाना। जैसे,—दीपक टिमटिमा रहा है, बुझा चाहता है।

मुहा०—आँख टिमटिमाना = आँख को थोड़ा थोड़ा खोलकर फिर बंद कर लेना।

२. मरने के निकट होना। कुछ ही घड़ी के लिये और जीना।

टिमटिम्याँ†—संज्ञा पुं० [देश०] ढोल की तरह का एक बाजा। उ०—शहा के मंदिर टिमटिम्याँ बाजाया।—दक्खिनी०, पृ० ७३।

टिमाक—संज्ञा स्त्री० [देश०] बनाव। सिंगार। ठसक। (स्त्रि०)।

टिमिला‡—संज्ञा स्त्री० [देश०] [स्त्री० टिमिली] लड़का। छोकरा।

टिमिली‡—संज्ञा स्त्री० [देश०] लड़की। छोकरी।

टिम्मा‡—वि० [देश०] छोटे डील डौल का। नाटा। ठेंगना। बौना।

टिर—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'टर'।

टिरफिस—संज्ञा स्त्री० [हिं० टिर + फिस] चींचपड़। प्रतिवाद। विरोध। बात न मानने की ढिठाई। जैसे,—सीधे से जो कहते हैं वह करो, जरा भी टिरफिस करोगे तो मार बैठेंगे।

क्रि० प्र०—करना।

टिरिकबाजी—संज्ञा स्त्री० [अं० ट्रिक + फा० बाजी] चालाकी। फरेब। उ०—तुम हमको टिरिकबाजी दिखाती हो।—मैला०, पृ० ३५६।

टिर्रा†—वि० [हिं० टर्रा] दे० 'टर्रा'।

टिर्राना†—क्रि० अ० [अनु०] दे० 'टर्राना'। उ०—माया को कस के एक थप्पड़ लगाया तो वह टिर्राने लगी।—सैर कु०, भा० १, पृ० १४।

टिलटिलाना†—क्रि० अ० [अनु०] पतला दस्त फिरना। दस्त आना।

टिलटिली†—संज्ञा स्त्री० [अनु०] पतला दस्त फिरने की क्रिया या भाव।

क्रि॰ प्र॰—पाना ।—छूटना ।

टिखिया—संज्ञा पुं॰ [देश॰] १. लकड़ी का वह टुकड़ा जो छोटा, गँठीला और टेढ़ा हो । गठीला और टेढ़ा मेढ़ा कुंदा । २. नाटा या ठिगना आदमी । ३. चापलूस आदमी ।

टिखिया†—संज्ञा स्त्री॰ [देश॰] १. छोटी मुर्गी । २ मुर्गी का बच्चा ।

टिलीलिली—संज्ञा स्त्री॰ [अनु॰] बीच की उंगली हिला हिलाकर चिढ़ाने का शब्द ।—(लड़के) ।

विशेष—जब एक लड़का कोई वस्तु नहीं पाता या किसी बात में अकृतकार्य होता है, तब दूसरे लड़के उसके सामने हथेली सीधी करके और बीच की उंगली हिलाकर 'टिलीलिली' कहकर चिढ़ाते हैं ।

टिलेहू—संज्ञा पुं॰ [देश॰] एक प्रकार का नेवला जिसके शरीर से दुर्गंध निकलती है ।

विशेष—इसका सिर सूग्रर के ऐसा और दुम बहुत छोटी होती है । यह तलवों के बल चलता है और अपने थूथन से जमीन की मिट्टी खोदता है । सुमात्रा, जावा आदि टापुओं में यह पाया जाता है ।

टिलोरिया†—संज्ञा स्त्री॰ [देश॰] मुर्गी का बच्चा ।

टिल्ला—संज्ञा पुं॰[हिं॰ ठेलना] धक्का । टक्कर । चोट ।—(बाजारू) ।

यौ॰—टिल्लेनवीसी ।

टिल्लेबाजी—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ टिल्ली + फा॰ नवीसी] १. निकृष्ट सेवा । नीच सेवा । २. व्यर्थ का काम । ऐसा काम जिससे कोई लाभ न हो । निठल्लापन । ३. हीलाहवाली । टालमटूल । बहाना ।

क्रि॰ प्र॰—करना ।

टिसुआ†—संज्ञा पुं॰ [सं॰ अश्रु] आँसू ।—(पंजाबी) ।

टिहुका—संज्ञा स्त्री॰ [देश॰] १. ठिठक । रुकाव । २. चौंकना । ३. चमक । ४. रूठना । ५. रोना । रुदन । ६. कोयल की कूक ।

टिहुकना—क्रि॰ अ॰ [देश॰] १. ठिठकना । २. चौंकना । ३. रूठना ४. चमकना । ५. रोना । ५. कोयल का कूकना ।

टिहुकार—संज्ञा स्त्री॰ [देश॰] कोयल की कूक ।

टिहुकारना(पु)†—क्रि॰ अ॰ [हिं॰ टिहुकार से नामिक धातु] कोयल का कूकना ।

टिहुनी†—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ घुण्ठ, हिं॰ घुटना] घुटना । २. कोहुनी ।

टिहूका—संज्ञा स्त्री॰ [देश॰] चौंकने की क्रिया या भाव । चौंक । झझक । उ॰—एक लाग बनवल, दूसर गैल टूटी । बिलरे काटल, उठलि टिहूकी ।—कबीर (शब्द॰) ।

टिहूकना†—क्रि॰ अ॰ [हिं॰] दे॰ 'टिहुकना' ।

टींगा†—संज्ञा पुं॰ [देश॰] भग । योनि ।

टींटीं—संज्ञा स्त्री॰ [अनु॰] एक विशेष प्रकार की ध्वनि । टीं टीं की ध्वनि । उ॰—तब एकाकी खग कोई तिनकों के बंदीघर में । कर टींटीं चुप हो बैठा अपने सूने पिंजर में ।—दीप॰, पृ॰ ६५ ।

टींड—संज्ञा पुं॰ [सं॰ टिण्डिश(=डेंड़सी)] रहट में बाँधने की हँड़िया ।

टींड़सी—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ टिण्डिश] ककड़ी की जाति की एक बेल जिसमें गोल गोल फल लगते हैं । इन फलों की तरकारी होती है ।

टींड़ा—संज्ञा पुं॰ [देश॰] १. जाँता घुमाने का खूँटा । २. दे॰ 'टिड्डा' ।

टींड़ी†—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰] दे॰ 'टिड्डी' । उ॰—जिमि टींड़ी दल गुहा समाई ।—तुलसी (शब्द॰) ।

टी†—संज्ञा स्त्री॰ [अं॰] चाय ।

टीक—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ तिलक] १. गले में पहनने का सोने का एक गहना जो ठप्पेदार या जड़ाऊ बनता है । २. माथे में पहनने का सोने का एक गहना ।

टी गार्डेन—[अं॰ टी(=चाय); + गार्डेन (=बाग)] वह जमीन जहाँ चाय होती है । चाय बगीचा । जैसे,—आसाम के टी गार्डेनों के कुलियों की दशा शोचनीय और करुणाजनक है ।

टीकठ†—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ टिकना] रीढ़ की हड्डी ।

टीकन—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ टेकना] थूनी । चाँड़ । वह खंभा या खड़ी लकड़ी जो किसी भार को सँभाले रहने या किसी वस्तु को एक स्थिति में रखने के लिये लगाई जाती है ।

मुहा॰—टीकन देना = बढ़ते पौधों को सीधा और सुडौल रखने के लिये थूनी लगाना ।

टीकना—क्रि॰ स॰ [हिं॰ टीका] १. टीका लगाना । तिलक देना । २. ऊँगली में रंग आदि पोतकर चिह्न या रेखा बनाना ।

टीका१—संज्ञा पुं॰ [सं॰ तिलक] १. वह चिह्न जो उँगली में गीला चंदन, रोली, केसर, मिट्टी आदि पोतकर मस्तक, बाहु आदि अंगों पर श्रृंगार आदि या सांप्रदायिक संकेत के लिये लगाया जाता है । तिलक ।

क्रि॰ प्र॰—लगाना ।

मुहा॰—टीका टाकना = बकरे को बलिदान करने के पहले टीका लगाना । उ॰—छेरी खाए भेड़ी खाए बकरी टीका टाके ।—कबीर श॰, भा॰ ३, पृ॰ ५२ । टीका देना = टीका लगाना । माथे पर घिसे हुए चंदन आदि से चिह्न बनाना ।

विशेष—टीका पूजन के समय तथा अनेक शुभ अवसरों पर लगाया जाता है । यात्रा के समय भी जानेवाले के शुभ के लिये उसके माथे पर टीका लगाते हैं ।

२. विवाह स्थिर होने की रीति जिसमें कन्यापक्ष के लोग वर के माथे में तिलक लगाते हैं और कुछ द्रव्य वरपक्ष के लोगों को देते हैं । इस रीति के हो चुकने पर विवाह का होना निश्चित समय माना जाता है । तिलक ।

क्रि॰ प्र॰—चढ़ना ।—चढ़ाना ।—भेजना ।

३. दोनों भौं के बीच माथे का मध्य भाग (जहाँ टीका लगाते हैं) । ४. किसी समुदाय का शिरोमणि । (किसी कुल, मंडली या जनसमूह में) श्रेष्ठ पुरुष । उ॰—समाधान करि सो सबही का । गयउ जहाँ दिनकर कुल टीका ।—तुलसी (शब्द॰) । ५. राजतिलक । राजसिंहासन या गद्दी पर बैठने का कृत्य ।

क्रि० प्र०—देना।—होना।

६.† वह राजकुमार जो राजा के पीछे राज्य का उत्तराधिकारी होनेवाला हो। युवराज। जैसे, टीका साहब। ७. आधिपत्य का चिह्न। प्रधानता की छाप। जैसे,—क्या तुम्हारे ही माथे पर टीका है और किसी को इसका अधिकार नहीं है?

मुहा०—टीके का = विशेषता रखनेवाला। अनोखा। जैसे,—क्या वही एक टीके का है जो सब कुछ रख लेगा? –(लि०)।

८. वह भेंट जो राजा या जमींदार को रैयत या असामी देते हैं। ९. सोने का एक गहना जिसे स्त्रियाँ माथे पर पहनती हैं। १०. घोड़े की दोनों आँखों के बीच माथे का मध्य भाग जहाँ भँवरी होती है। ११. धब्बा। दाग। चिह्न। १२. किसी रोग से बचाने के लिये उस रोग के चेप या रस से बनी ओषधि को लेकर किसी के शरीर में सुइयों से चुभाकर प्रविष्ट करने की क्रिया। जैसे, शीतला का टीका, प्लेग का टीका।

विशेष—टीके का व्यवहार विशेषत: शीतला रोग से बचाने के लिये ही इस देश में होता है। पहले इस देश में माली लोग किसी रोगी की शीतला का नीर लेकर रखते थे और स्वस्थ मनुष्यों के शरीर में सुई से गोदकर उसका संचार करते थे। संथाल लोग आग से शरीर मे फफोले डालकर उनके फूटने पर शीतला का नीर प्रविष्ट करते हैं। इस प्रकार मनुष्य को शीतला के नीर द्वारा जो टीका लगाया जाता है, उसमें ज्वर वेग से आता है, कभी कभी सारे शरीर में शीतला भी आती हैं और डर भी रहता है। सन् १७९८ में डा० जेनर नामक एक अँगरेज ने गोथन में उत्पन्न शीतला के दानों के नीर से टीका लगाने को युक्ति निकाली जिसमें ज्वर आदि का उतना प्रकोप नहीं होता और न किसी प्रकार का भय रहता है। इंग्लैंड में इस प्रकार के टीके से बड़ी सफलता हुई और धीरे धीरे इस टीके का व्यवहार सब देशों में फैल गया। भारतवर्ष में इस टीके का प्रचार अंग्रेजी शासनकाल में हुआ है। कुछ लोगों का मत है कि गोथन शीतला के द्वारा टीका लगाने की युक्ति प्राचीन भारतवासियों को ज्ञात थी। इस बात के प्रमाण में धन्वंतरि के नाम से प्रसिद्ध एक शाक्त ग्रंथ का एक श्लोक देते हैं—

धेनुस्तन्यमसूरिका नराणां च मसूरिका।
तज्जलं बाहुमूलाच्च शस्त्रांतेन गृहीतवान्॥
बाहुमूले च शस्त्राणि रक्तोत्पत्तिकराणि च।
तज्जलं रक्तमिलितं स्फोटकज्वर संभवम्॥

टीका[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी वाक्य, पद या ग्रंथ का अर्थ स्पष्ट करनेवाला वाक्य या ग्रंथ। व्याख्या। अर्थ का विवरण। विवृत्ति। जैसे, रामायण की टीका, सतसई की टीका।

टीकाई—वि० [हिं० टीका] टीका लेनेवाला। टीका किया हुआ। उ०—लालदास जी के बालकृष्ण जी टीकाई चेले गद्दी बैठे। —सुंदर ग्रं०, भा० १, (जी०), पृ० १४०।

टीकाकार—संज्ञा पुं० [सं०] व्याख्याकार। किसी ग्रंथ का अर्थ लिखनेवाला। वृत्तिकार।

टीका टिप्पणी—संज्ञा स्त्री० [सं० टीका + टिप्पणी] १. आलोचना। तर्क वितर्क। २. अप्रशंसा। निंदा।

टीकारो(पु)—वि० [हिं० टीका] टीकाई। प्रधान। सर्वोच्च। उ०—टीकारो मालक तिको श्रीकारो मुख खास।—बाँकी० ग्रं०, भा० ३, पृ० ७७।

टीकी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० टीका] १. टिकुली। २. टिकिया। टिक्की। ३. टीका। उ०—चंद्रमणा ले बीच लगावत पिय के टीकी।—नंद० ग्रं०, पृ० ३८६।

टीकुर†—संज्ञा पुं० [देश०] १. ऊँची पृथ्वी। नदी के बाहर की ऊँची और रेतीली भूमि। २. जंगल। वन।

टीटा—संज्ञा पुं० [देश०] स्त्रियों की योनि में वह मांस जो कुछ बाहर निकला रहता है। टना।

टीडरि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'टीड'। उ०—बाँधे ज्यूँ अरहट की टीडरि, आवत जात बिगूते।—कबीर ग्रं०, पृ० १५५।

टीड़ी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'टिड्डी'। उ०—(क) कोटि कोटि कपि धरि धरि खाई। जनु टीड़ी गिरि गुहा समाई।—मानस, ६।६६। (ख) मानो टीड़ी दल गिरत साँझ अरुण की बार। —शकुंतला, पृ० २५।

टीन—संज्ञा पुं० [अं० टिन] १. राँगा। २. राँगे की कलई की हुई लोहे की पतली चद्दर। ३. इस प्रकार की चद्दर का बना बरतन या डिब्बा।

टीप[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० टीपना] १. हाथ से दबाने की क्रिया या भाव। दबाव। दाब। २. हलका प्रहार। धीरे धीरे ठोंकने की क्रिया या भाव। ३. गच कूटने का काम। गच की पिटाई। ४. बिना पलस्तर की दीवार में ईंटों के जोड़ों मे मसाला देकर नहले से बनाई हुई लकीर। ५. टंकार। ध्वनि। घोर शब्द। ६. गाने में ऊँचा स्वर। जोर की तान।

क्रि० प्र०—लगाना।

७. हाथी के शरीर पर लेप करने की ओषधि। ८. दूध और पानी का शीरा जिससे चीनी का मैल छँटता है। ९. स्मरण के लिये किसी बात को झटपट लिख लेने की क्रिया। टाँक लेने का काम। नोट। १०. वह कागज जिसपर महाजन को मूल और ब्याज के बदले में फसल के समय अनाज आदि देने का इकरार लिखा रहता है। ११. दस्तावेज। १२. हुंडी। चेक। १३. सेना का एक भाग। कंपनी। १४. गंजीफे के खेल में विपक्षी के एक पत्ते को दो पत्तों से मारने की क्रिया। १५. लड़की या लड़के की जन्मपत्री। कुंडली। टिप्पन।

टीप[2]—वि० चोटी का। सबसे अच्छा। चुनिंदा। बढ़िया। –(स्त्रि०)।

टीपटाप—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. ठाटबाट। सजावट। तड़क भड़क। दिखावट। २. दरारों या संधियों में मसाला भरना।

टीपण(पु)—संज्ञा पुं०[सं० टिप्पणी]दे० 'टीपना[3]'। उ०—पोथी पुस्तक टीपणो जग पंडित को काम।—राम० धर्म०, पृ० ५७।

टीपदार—वि० [हिं० टीप + दार (प्रत्य०)] सुरीला। मधुर। उ०—बल्लाह क्या टीपदार आवाज है, बस यह मालूम पड़ता है कि कोई बीन बजा रहा है।—फिसाना०, भा० १, पृ० २।

टीपन¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० टीपना] शरीर में वह स्थान जहाँ काँटा या कंकड़ चुभने से मांस ऊँचा होकर कड़ा हो जाता है। गोठ। टाँका। घट्टा।

टीपन²—संज्ञा पुं० [सं० टिप्पणी] जन्मपत्री। टीपना।

टीपना¹—क्रि० स० [टेपन (= फेंकना)] १. हाथ या उँगली से दबाना। चापना। मसलना। जैसे, पैर टीपना। २. धीरे धीरे ठोंकना। हलका प्रहार करना। ३. ऊँचे स्वर में गाना। ४. गंजीफे के खेल में दो पत्तों से एक पत्ता जीतना। ५. दीवाल या फरश की दरारों को मसाले से भरना।

टीपना²—क्रि० स० [सं० टिप्पनी] लिख लेना। टाँक लेना। अंकित कर लेना। दर्ज कर लेना।

टीपना³—संज्ञा स्त्री० [सं० टिप्पणी] जन्मपत्री। उ०—श्रीमन गंगाधर राव की जन्मपत्री मिलाकर देखूँ शायद टक्कर खा जाय। टीपना प्राप्त हो गई। मिल गई।—झाँसी०, पृ० ४२।

टीबा—संज्ञा पुं० [हिं० टीला] टीला। दूह। भीटा।

टीम—संज्ञा स्त्री० [अं०] खेलनेवालों का दल। जैसे, क्रिकेट की टीम।

टीमटाम—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. बनाव सिंगार। सजावट। २. ठाटबाट। तड़क भड़क। उ०—टीमटाम बाहर बहुतेरे दिल दासी से बँधा।—कबीर श०, भा० ४, पृ० २५।

टीला—संज्ञा पुं० [सं० अष्ठीला (= भार)] १. पृथ्वी का वह उभरा हुआ भाग जो आसपास के तल से ऊँचा हो। दूह। भीटा। २. मिट्टी या बालू का ऊँचा ढेर। धुस। ३. छोटी पहाड़ी। ४. साधुओं का मठ।

टीशन—संज्ञा स्त्री० [अं० स्टेशन] रेलगाड़ी के ठहरने का स्थान। स्टेशन। उ०—पुरैनिया टीशन पर गाड़ी पहुँची भी नहीं थी।—मैला०, पृ० ७।

टीस¹—संज्ञा स्त्री० [देश०] चुभती हुई पीड़ा। रह रहकर उठनेवाला दर्द। कसक। चसक। हूल।

क्रि० प्र०—होना।

मुहा०—टीस उठना=दर्द शुरू होना। रह रहकर पीड़ा होना। (घाव आदि का) टीस मारना = रह रहकर दर्द करना।

टीस²—संज्ञा स्त्री० [अं० स्टिच] किताब की सिलाई। जुजबंदी।

टीसना—क्रि० अ० [हिं० टीस] १. चुभती पीड़ा होना। रह रहकर दर्द उठना। कसक होना। घाव फोड़े आदि का दर्द करना।

टुंगा—संज्ञा पुं० [सं० उत्तुङ्ग] पहाड़ की चोटी।

टुंच—वि० [सं० तुच्छ] क्षुद्र। तुच्छ। टुच्चा।

मुहा०—टुंच भिड़ाना = थोड़ी पूँजी से काम करना। टुंच लड़ाना = (१) थोड़ी पूँजी से काम प्रारंभ करना। (२) थोड़ी पूँजी से जुआ खेलना। धीरे धीरे जीतना।

टुंटा—वि० [सं० रुण्ड या हिं० टूटा] १. जिसका हाथ कटा हो। बिना हाथ का। लूला। २. ठूँठा।

टुंटुक¹—संज्ञा पुं० [सं० टुण्टुक] १. श्योनाक। सोना पाठा। अालू। टेंटू। २. काला खैर।

टुंटुक²—वि० १. छोटा। २. क्रूर। दुष्ट। ३. कठोर [को०]।

टुंटुका—संज्ञा स्त्री० [सं० टुण्टुका] पाठा।

टुंड—संज्ञा पुं० [सं० रुण्ड (= बिना सिर का धड़), या स्थाणु (= छिन्न वृक्ष)] १. वह पेड़ जिसकी डाल टहनी आदि कट गई हों। छिन्न वृक्ष। ठूँठ। २. वह पेड़ जिसमें पत्तियाँ न हों। ३. कटा हुआ हाथ। ४. एक प्रकार का प्रेत जिसके विषय में यह प्रसिद्ध है कि वह घोड़े पर सवार होकर और अपना कटा सिर आगे रखकर रात को निकलता है। ५. खंड। टुकड़ा। उ०—बहु मुंडन टुंडन टुंड किये। निरखें नभ नाइक अच्छरियें।—रसर०, पृ० २२७।

टुंडा¹—वि० [हिं० टुंड] [स्त्री० अल्पा० टुंडी] १. जिसकी डाल टहनी आदि कट गई हों। ठूँठा। २. जिसका हाथ कट गया हो। बिना हाथ का। लूला। लुंजा। ३. (बैल) जिसका सींग टूटा हो। एक सींग का बैल। डूँडा।

टुंडा²—संज्ञा पुं० १. हाथ कटा आदमी। लूला मनुष्य। २. एक सींग का बैल।

टुंडी¹‡—संज्ञा स्त्री० [सं० तुण्डि] नाभि। ढोंढ़ी।

टुंडी²—संज्ञा स्त्री० [सं० दण्ड] बाहुदंड। भुजा। मुश्क।

मुहा०—टुंडिया बाँधना या कसना = मुश्कें बाँधना। टुंडियाँ खिचना = मुश्कें बाँधना। हथकड़ी पहनना।

टुंडी³†—वि० स्त्री० [सं० स्थाणु, हिं० ठूँठ, टुंड, टुंडा, टुंडी] जिसे हाथ न हो। कटे हाथ की। लूली।

टुंड्रा—संज्ञा पुं० [अं०] साइबेरिया के उत्तर में स्थित एक हिमप्रदेश।

टुँगना—क्रि० स० [हिं० टुनगा] १. (चौपायों का) टहनी के सिरे की पत्तियों को दाँत से काटना। कुतरना। २. कुतर कर चबाना। थोड़ा सा काटकर खाना।

संयो० क्रि०—जाना। —लेना।

टुइयाँ¹—संज्ञा स्त्री० [देश०] छोटी जाति का सुआ या तोता। सुग्गी।

विशेष—इसकी चोंच पीली और गरदन बैंगनी रंग की होती है।

टुइयाँ²—वि० ठेंगना। नाटा। बौना।

टुइल—संज्ञा स्त्री० [अं० टिल] एक प्रकार का मोटा मुलायम सूती कपड़ा।

टुक¹—वि० [सं० स्तोक (= थोड़ा)] थोड़ा। जरा। किंचित्। तनिक।

मुहा०—टुक सा = जरा सा। थोड़ा सा।

टुक²—क्रि० वि० थोड़ा। जरा। तनिक। जैसे,—टुक इधर देखो। उ०—मात, कातर न हो, अहो, टुक धीरज धारो।—साकेत, पृ० ४०४।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग क्रि०वि०वत् ही अधिक होता है। कभी कभी यह यों ही बेपरवाई करने के लिये किसी क्रिया के साथ बोला जाता है। जैसे,—टुक जाकर देखो तो।

टुक टुक¹—क्रि० वि० [अनु०] दे० 'टुकुर टुकुर'।

टुक टुक²—क्रि० वि० [हिं० टुकड़ा] टूक टूक। टुकड़े टुकड़े। उ०—दरजी ने टुक टुक कीन्ह दरद नहिं जाना हो।—धरनी०, पृ० ३६।

क्रि० प्र०—करना।

टुकड़गदा[1]—संज्ञा पुं० [हिं० टुकड़ा + फ़ा० गदा] वह भिखमंगा जो घर घर रोटी का टुकड़ा माँगकर खाता हो। भिखारी। मँगता।

टुकड़गदा[2]—वि० १. तुच्छ। २. अत्यंत निर्धन। दरिद्र। कंगाल।

टुकड़गदाई[1]—संज्ञा पुं० [हिं० टुकड़ा + फ़ा० गदा + हिं० ई (प्रत्य०)] दे० 'टुकड़गदा'।

टुकड़गदाई[2]—संज्ञा स्त्री० टुकड़ा माँगने का काम।

टुकड़तोड़—संज्ञा पुं० [हिं० टुकड़ा + तोड़ना] दूसरे का दिया हुआ टुकड़ा खाकर रहनेवाला आदमी। दूसरे का आश्रित मनुष्य।

टुकड़ा—संज्ञा पुं० [सं० स्तोक (= थोड़ा), हिं० टुक, टूक + ड़ा (प्रत्य०)] [स्त्री० अल्पा० टुकड़ी] १. किसी वस्तु का वह भाग जो उससे टूट फूट या कट छँटकर अलग हो गया हो। खंड। छिन्न अंश। रेजा। जैसे, रोटी का टुकड़ा, कागज या कपड़े का टुकड़ा, पत्थर या ईंट का टुकड़ा।

मुहा०—टुकड़े उड़ाना = काटकर कई भाग करना। टुकड़े करना = काटकर या तोड़कर कई भाग करना। खंड करना। टुकड़े टुकड़े उड़ाना = काटकर खंड खंड करना। (किसी वस्तु को) टुकड़े टुकड़े करना = इस प्रकार तोड़ना कि कई खंड हो जायँ। चूर चूर करना। खंडित करना।

२. चिह्न आदि के द्वारा विभक्त अंश। भाग। जैसे, खेत का टुकड़ा। ३. रोटी का टुकड़ा। रोटी का तोड़ा हुआ अंश। ग्रास। कौर।

मुहा०—(दूसरे का) टुकड़ा तोड़ना = दूसरे की दी हुई रोटी खाना। दूसरे के दिए हुए भोजन पर निर्वाह करना। जैसे,—वह ससुराल का टुकड़ा तोड़ता है। टुकड़ा तोड़कर जवाब देना = दे० 'टुकड़ा सा जवाब देना'। टुकड़ा देना = भिखमंगे को रोटी या खाना देना। (दूसरे के) टुकड़ों पर पड़ना = दूसरे की दी हुई खाकर रहना। दूसरे के यहाँ के भोजन पर निर्वाह करना। पराई कमाई पर गुजर करना। जैसे,—वह ससुराल के टुकड़े पर पड़ा है। टुकड़ा माँगना = भीख माँगना। टुकड़ा सा जवाब देना = झट और स्पष्ट शब्दों में अस्वीकार करना। संकोच नहीं करना। साफ इनकार करना। लगी लिपटी न रखना। कोरा जवाब देना। टुकड़ा सा तोड़कर हाथ में देना = दे० 'टुकड़ा सा जवाब देना'। टुकड़े टुकड़े को मुहताज होना = अत्यंत दरिद्रावस्था को पहुँच जाना। उ०—मगर जूए की लत थी सब दौलत दाँव पर रख दी तो टुकड़े टुकड़े को मुहताज। करें तो क्या करें।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ६२।

टुकड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० टुकड़ा] १. छोटा टुकड़ा। खंड। जैसे, एक टुकड़ी नमक, काँच की टुकड़ी। २. थान। कपड़े का टुकड़ा। ३. समुदाय। मंडली। दल। जैसे, यारों की टुकड़ी। ४. पशु पक्षियों का दल। झुंड। गोल। जत्था। जैसे, कबूतरों की टुकड़ी। ५. सेना का एक अंश। हिस्सा। कंपनी। ६. स्त्रियों का लहँगा। ७. कातिक के स्नान का मेला।

टुकना[1]†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'टोकनी'।

टुकना[2]†—संज्ञा पुं० [हिं० टुकाना (प्रत्य०)] टुकड़ा। टूका।

टुकनी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'टोकनी'।

टुकनी[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० टूक + नी (प्रत्य०)] छोटा टुकड़ा।

टुकरिया(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० टुकड़ा] छोटा टुकड़ा। टुकड़ी। खंड। टूक। उ०—दरजी और न नाहिं, यहै बाँस की टुकरिया।—ब्रज० ग्रं०, पृ० ५१।

टुकरी[1]—संज्ञा स्त्री० [देश०] सलमे की तरह का एक टुकड़ा।

टुकरी(पु)[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'टुकड़ी'।

टुकुर टुकुर—क्रि० वि० [अनु०] निर्निमेष। बिना पलक गिराए हुए। उ०—उडुगण अपना रूप देखते टुकुर टुकुर थे।—साकेत, पृ० ४०६।

मुहा०—टुकुर टुकुर ताकना = दे० 'टुकुर टुकुर देखना'। उ०—चिड़ियाएँ सुख से घोंसलों में बैठी टुकुर टुकुर ताकतीं।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १६। टुकुर टुकुर देखना = ललचाई हुई दृष्टि से या विवशता के साथ किसी वस्तु या व्यक्ति की ओर देखना।

टुक्क†—संज्ञा पुं० [हिं० टुकड़ा] १. टुकड़ा। २. चौथाई भाग। उ०—दुइ टुक्क होइ भुमि अद्ध काय।—ह० रासो, पृ० ८२।

टुक्कड़†—संज्ञा पुं० [सं० स्तोक] 'टुकड़ा'।

टुक्करा†—संज्ञा पुं० [सं० स्तोक] दे० 'टुकड़ा'।

टुक्का—संज्ञा पुं० [हिं०] १. दे० 'टुकड़ा'।

मुहा०—टुक्का सा जवाब देना = दे० 'टुकड़ा सा जवाब देना'।

२. चौथाई भाग या अंश।

टुक्की†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] १. छोटा टुकड़ा। २. चौथाई अंश।

टुगर टुगर(पु)—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'टुकुर टुकुर'। उ०—टुगर टुगर बेस्या करै सुंदर बिरहा ऐन।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० ६८३।

टुघलाना—क्रि० अ० [देश०] १. चुभलाना। मुँह में रखकर धीरे धीरे कूँचना। २. जुगाली करना।

टुचकारा—संज्ञा पुं० [हिं० टुच्चा] निंदा। टुच्ची बात। अपशब्द। उ०—तब अपने मुहल्ले में लौटती समय कई मसखरियाँ, बोलीठोली और टुचकारे उसे सुनने पड़ते।—अभिशप्त, पृ० १२७।

टुच्चा—वि० [सं० तुच्छ, या देश०] १. तुच्छ। ओछा। नीच। नीचाशय। छिछोरा। क्षुद्र प्रकृति का। कमीना। शोहदा। जैसे, टुच्चा आदमी। २ छोटा या बेनाप का (कपड़ा)।

टुटका—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'टोटका'।

टुटुटुटु—संज्ञा स्त्री० [अनु०] चिड़ियों के बोलने की एक प्रकार की ध्वनि। उ०—हैं चहक रहीं चिड़ियाँ टी वी टी—टुटुटुटु।—युगांत, पृ० १६।

टुटना[1](पु)—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'टूटना'। उ०—फिरि फिरि चितु उत हीं रहतु टुटी लाज की लाव। अंग अंग छबि झौंर मैं भयो भौंर की नाव।—बिहारी र०, दो० १०।

टुटना[2]—वि० [हिं०] [वि० स्त्री० टुटनी] टूटनेवाला।

टुटनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० टोंटी] झारी या गडुवे की पतली नली। छोटी टोंटी।

टुटपुँजिया—वि० [हिं० टूटी + पूँजी] थोड़ी पूँजी का। जिसके पास किसी काम में लगाने के लिये बहुत थोड़ा धन हो।

टुटरूँ—संज्ञा पुं० [अनु०] छोटी पंडुकी। छोटी फाख्ता।

मुहा०—टुटरूँ सा = अकेला। एकाकी।

टुटरूँ टूँ[1]—संज्ञा स्त्री० [अनु०] पंडुकी के बोलने का शब्द। पेंडुकी या फाख्ता की बोली।

टुटरूँ टूँ[2]—वि० १ अकेला। एकाकी। जैसे,—सब लोग अपने अपने घर गए हैं, मैं ही टुटरूँ टूँ रह गया हूँ। २. दुबला पतला। कमजोर। जैसे,—बेचारे टुटरूँ टूँ आदमी कहाँ तक करे।

टुटहा†—वि० [हिं० टूटना] [वि० स्त्री० टुटही] १. टूटा हुआ। २. टूटे (हाथ आदि) वाला। ३. जातिबहिष्कृत।

टुटाना[1]—क्रि० स० [हिं० टूटना का प्रेरणा०] टूटने के लिये प्रेरित करना। तुड़वा देना। उ० बरनै को बारण के पथ से, काजे तारे को टूटा दिया।—अर्चना, पृ० १८।

टुटाना[2]—संज्ञा स्त्री० [देश०] चमड़ा मढ़ा हुआ एक बाजा।

टुटियल—वि० [हिं० टूट + इयल (प्रत्य०)] १. टूटा फूटा हुआ या टूटने फूटनेवाला। जीर्णशीर्ण। २. कमजोर। निर्बल।

टुटुहा—संज्ञा पुं० [देश०] एक चिड़िया का नाम।

टुटैला†—वि० [हिं० टूट + एला (प्रत्य०)] टूटा हुआ।–(लश०)।

टुट्टनाⓅ—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'टूटना'। उ०—पायो पहारे पुहवि कप्प गिरि सेहर टुट्टइ।—कीर्ति, पृ० १०२।

टुडी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० तुडि] १. नाभि। २. ठोढ़ी।

टुडी[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० टुकड़ी] टुकड़ी। डली।

टुनकी—संज्ञा पुं० [देश०] बार बार मूत्रस्राव होने और उसके साथ धातु गिरने का रोग।

टुनका†—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक परदार कीड़ा जो धान को हानि पहुँचाता है।

टुनगा†—संज्ञा पुं० [सं० तनु (= पतला) + अग्र(= अगला)- तन्वग्र] [स्त्री० टुनगी] डाल या टहनी के सिरे का भाग जिसकी पत्तियाँ छोटी और कोमल होती हैं। टहनी का अगला भाग।

टुनगी—संज्ञा स्त्री० [हिं० टुनगा] डाल या टहनी के सिरे पर का भाग जिसकी पत्तियाँ छोटी और कोमल होती हैं। टहनी का अगला भाग।

टुनटुना†—संज्ञा पुं० [देश०] मैदे का बना हुआ एक नमकीन पकवान जो मैदे की चिकनी लबी बत्तियों को घी में तलकर बनाया जाता है।

टुनटुनाना—क्रि० अ० [हिं० टुनटुन] घंटियों के बजने की आवाज। टुनटुन की ध्वनि। उ०—और ध्वनि ? कितनी न जाने घंटियाँ, टुनटुनाती थीं, न जाने शंख कितने।—हरी घास० पृ० २०।

टुनहाया†—संज्ञा पुं० [हिं०] [स्त्री० टुनहाई] दे० 'टोनहाया'।

टुनाका—संज्ञा स्त्री [सं०] तालमूली।

टुनियाँ†—संज्ञा स्त्री० [सं० तुण्ड] मिट्टी का टोंटीदार बरतन।

टुनिहाई†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'टोनहाई'। उ०—टुनिहाई सब टोल में रही जु सौति कहाय। सुतो ऐंचि पिय आप त्यों करी अदोखिल आइ।—बिहारी (शब्द०)।

टुनिहाया†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'टोनहाया'।

टुन्ना—संज्ञा पुं० [सं० तुण्ड] वह नाल जिसमें फल लगते हैं और लटकते हैं। जैसे, कद्दू का टुन्ना।

टुपकना†—क्रि० अ० [अनु०] १. धीरे से काटना या डंक मारना। २. किसी के विरुद्ध धीरे से कुछ कह देना। चुगली खाना। अवाछित रूप से बीच मे पड़ना।

संयो० क्रि०—देना।

टुबी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० डूबना] गोता। डुब्बी। उ०—टुबी देई पाणि में, बिठो हुंभेई।—दादू०, पृ० ६७।

टुमकना—क्रि० अ० [अनु०] दे० 'टपकना'।

टुम्मा—संज्ञा पुं० [देश०] रुपए पाने की एक गैरमामूली रसीद।

टुरनⓅ—क्रि० अ० [पं० टुर] चलना। उ०—शिव शांति सरोवरि संत समाने, फिरन टुरन के गवन मिटाने।—प्राण०, पृ० ६५।

टुर्रा—संज्ञा पुं० [?] १. टुकड़ा। डली। दाना। रवा। कण। २. मोटे अनाज का दाना। ज्वार, बाजरे आदि का दाना।

टुलकना†—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'ढुलकना'।

टुलड़ा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बाँस जो पूरबी बंगाल और आसाम में होता है।

टुसकना—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'टसकना'।

टूँ—संज्ञा स्त्री० [अनु०] पादने का शब्द।

टूँक‡—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'टूक'।

टूँगना—क्रि० स० [हिं० टूगना] १. (चौपायों का) टहनों के सिरे की कोमल पत्तियों को दाँत से काटना। कुतरना। २. थोड़ा सा काटकर खाना। कुतरकर चबाना।

संयो० क्रि०—जाना।—लेना।

टूँगाⓅ—वि० [सं० तुङ्ग] ऊँचा।

टूँटाⓅ—वि० [हिं०] जिसके हाथ टूटे हुए या खराब हों। उ०—टूँटा पकरि उठावै पर्वत पंगुल करै नृत्य अहलाद।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ५०८।

टूँड—संज्ञा पुं० [सं० तुण्ड] [स्त्री० अल्पा० टूँडी] १. मच्छड़, मक्खी, टिड्डे आदि कीड़ों के मुँह के आगे निकली हुई बाल की तरह दो पतली नलियाँ जिन्हें धँसाकर वे रक्त आदि चूसते हैं। २. जौ, गेहूँ आदि की बाल में दाने के कोश के सिरे पर निकला हुआ बाल की तरह का पतला नुकीला अवयव। सीग। सीगुर।

टूँडी—संज्ञा स्त्री० [सं० तुण्ड] १. जौ, गेहूँ, धान आदि की बाल में दानों के खोलों के ऊपर निकली हुई बाल की तरह पतली नोक। सीगा। २. ढोंढ़ी। नाभि। ३. गाजर, मूली आदि की नोक। ४. किसी वस्तु की दूर तक निकली हुई नोक।

टूअर†—वि० [देश०] वह असहाय बालक जिसकी माँ मर गई हो ।

टूक—संज्ञा पुं० [सं० स्तोक] टुकड़ा । खंड । उ०—तिहि मारि करउँ ततकाल टूक ।—ह० रासो, पृ० ४८ ।

यौ०—टूक टूक । उ०—मन को मारूँ पटकि के, टूक टूक होइ जाय ।—कबीर सा०, पृ० ५५ ।

मुहा०—दो टूक करना = स्पष्ट करना । किसी प्रकार का भेद न रहने देना । = दो टूक जवाब देना = स्पष्ट जवाब देना । साफ साफ नकार देना ।

टूकड़ा(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'टुकड़ा' । उ०—टूकड़ा टूकड़ा होई जावै ।—कबीर० रे०, पृ० २३ ।

टूकर†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'टुकड़ा' ।

टूका†—संज्ञा पुं० [हिं० टूक] १. टुकड़ा । २. रोटी का टुकड़ा । उ०—केचित् घर घर माँगहि टूका । बासी कुसी रूखा सूका ।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० ६१ । ३. रोटी का चौथाई भाग । ४. भिक्षा । भीख । उ०—बरु तन राख लगाय चाहु भर, खाय घरन के टूका ।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० ६४ ।

क्रि० प्र०—माँगना ।

टूकी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० टूक] १. टूक । खंड । टुकड़ा । २. अँगिया के मुलकट के ऊपर की चकती ।

टूक्यो(पु)—संज्ञा पुं० [(डिं०)] भालु ।

टूट[1]†—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रुटि, हिं० टूटना] १. वह अंश जो टूटकर अलग हो गया हो । खंड । टूटन ।

संयो० क्रि०—जाना ।

यौ०—टूटफूट ।

२. टूटने का भाव । ३. लिखावट में वह भूल से छूटा हुआ शब्द या वाक्य जो पीछे से किनारे पर लिख दिया जाता है । उ०—औ बिनती पँडितन मन भजा । टूट सँवारहु मेटवहु सजा ।—जायसी (शब्द०) ।

टूट[2]—संज्ञा पुं० टोटा । घाटा । कमी ।

मुहा०—टूट में पड़ना = घाटे में पड़ना । हानि उठाना । कमी होना । उ०—टूट में जाय पड़ नहीं कोई । टूटकर भी कमर न टूट सके ।—चुभते०, पृ० ४७ ।

टूटदार—वि० [हिं० टूटना] टूटनेवाला । जोड़ पर से खुलने बंद होनेवाला (कुर्सी, टेबुल आदि) ।

टूटना—क्रि० अ० [सं० त्रुट] १. किसी वस्तु का आघात, दबाव या झटके के द्वारा दो या कई भागों में एकबारगी विभक्त होना । टुकड़े टुकड़े होना । खंडित होना । भग्न होना । जैसे,—छड़ी टूटना, रस्सी टूटना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

यौ०—टूटना फूटना ।

विशेष—'टूटना' और 'फूटना' किया में यह अंतर है कि फूटना खरी वस्तुओं के लिये बोला जाता है, विशेषतः ऐसी जिनके भीतर अवकाश या खाली जगह रहती है । जैसे, घड़ा फूटना, बरतन फूटना, खपड़े फूटना, सिर फूटना । लकड़ी आदि चीमड़ वस्तुओं के लिये 'फूटना' का प्रयोग नहीं होता । पर फूटना के स्थान पर पश्चिमी हिंदी में 'टूटना' का प्रयोग होता है, जैसे, घड़ा टूटना ।

२. किसी अंग के जोड़ का उखड़ जाना । किसी अंग का चोट खाकर ढीला और बेकाम हो जाना । जैसे,—हाथ टूटना, पैर टूटना । ३. किसी लगातार चलनेवाली वस्तु का रुक जाना । चलते हुए क्रम का भंग होना । सिलसिला बंद होना । जारी न रहना । जैसे,—पानी इस प्रकार गिराओ कि धार न टूटे । ४. किसी ओर एकबारगी वेग से जाना । किसी वस्तु पर झपटना । झुकना । जैसे, चील का मांस पर टूटना, बच्चे का खिलौने पर टूटना ।

संयो० क्रि०—पड़ना ।

५. अधिक समूह में आना । एकबारगी बहुत सा आ पड़ना । पिल पड़ना । जैसे,—दूकान पर ग्राहकों का टूटना, विपत्ति या आपत्ति टूटना ।

संयो० क्रि०—पड़ना ।

मुहा०—टूट टूटकर बरसना = बहुत अधिक पानी बरसना । मूसलाधार बरसना ।

६. दल बाँधकर सहसा आक्रमण करना । एकबारगी धावा करना । जैसे, फौज का दुश्मन पर टूटना ।

संयो० क्रि०—पड़ना ।

७. अनायास कहीं से आ जाना । अकस्मात् प्राप्त होना । जैसे,—दो ही महीने में इतनी संपत्ति कहाँ से टूट पड़ी ? उ०—आयो हमारे मया करि मोहन मोकों तो मानो महानिधि टूटो ।—देव । (शब्द०) । ८. पृथक् होना । अलग होना । च्युत होना । मेल में न रहना । जैसे, पंक्ति से टूटना, गवाह का टूट जाना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

९. संबंध छूटना । लगाव न रह जाना । जैसे, नाता टूटना । मित्रता टूटना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

१०. दुर्बल होना । कृश होना । दुबला पड़ना । क्षीण होना । जैसे,—(क) वह खाने बिना टूट गया है । (ख) उसका सारा बल टूट गया ।

संयो० क्रि०—जाना ।

मुहा०—(कुएँ का) पानी टूटना = पानी कम होना ।

११. धनहीन होना । कंगाल होना । बिगड़ जाना । जैसे,—इस रोजगार में बहुत से महाजन टूट गए ।

संयो० क्रि०—जाना ।

१२. चलता न रहना । बंद हो जाना । किसी संस्था, कार्यालय आदि का न रह जाना । जैसे, स्कूल टूटना, बाजार टूटना, कोठी टूटना, मुकदमा टूटना

संयो० क्रि०—जाना ।

१३. किसी स्थान, जैसे गढ़ आदि का शत्रु के अधिकार में जाना। जैसे, किला टूटना। उ०—मेघनाद तहँ करइ लराई। टूट न द्वार परम कठिनाई।—तुलसी (शब्द०)।

संयो० क्रि०—जाना।

१४. रुपए का बाकी पड़ना। वसूल न होना। जैसे,—अभी हिसाब साफ नहीं हुआ, हमारे १०) टूटते हैं। १५. टोटा होना। घाटा होना। हानि होना। १६. शरीर में ऐंठन या तनाव लिए हुए पीड़ा होना। जैसे,—बुखार चढ़ने पर जोड़ जोड़ टूटता है।

मुहा०—बदन या अंग टूटना = अँगड़ाई आना।

१७. पेड़ों से फल का तोड़ा जाना। फलों का इकट्ठा किया जाना। फल उतरना। जैसे, आम टूटना।

टूटा[1]—वि० [हिं० टूटना] [वि०स्त्री० टूटी] १. टुकड़े किया हुआ। भग्न। खंडित।

यौ०—टूटा फूटा = जीर्ण। निकम्मा।

मुहा०—टूटी फूटी जबान, बात या बोली = (१) असंबद्ध वाक्य। ऐसे वाक्य जो व्याकरण से शुद्ध और संबद्ध न हों। जैसे, टूटी फूटी अंग्रेजी। उ०—क्या कहे हाले दिल गरीब जिगर। टूटी फूटी जबान है प्यारे।—कवि० भा०। २. अस्पष्ट वाक्य। उ०—सीत, पित्त कफ कंठ निरोधे रसना टूटी फूटी बात।—सूर (शब्द०)। टूटी बाँह गले पड़ना = अपाहिज के निर्वाह का भार अपने ऊपर पड़ना। किसी संबंधी का खर्च अपने जिम्मे होना।

२. दुबला। कमजोर। क्षीण। शिथिल। ३. निर्धन। दरिद्र। दीन।

टूटा[2]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'टोटा'। उ०—कह व्योपार सहज है सौदा, टूटा कबहुँ न परता।—कबीर श०, भा० ३, पृ० १०।

टूटा फूटा—वि० [हिं० टूटना + फूटना] बिगड़ा हुआ। जिसकी हालत बुरी हो गई हो। उ०—आप भी उन्हीं टूटे फूटे नवाबों में हैं।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १५१।

टूठना(पु)—क्रि० अ० [सं० तुष्ट, प्रा० तुट्ठ, हिं० टूट + ना (प्रत्य०)] तुष्ट होना। प्रसन्न होना। उ०—तुमसों मिलि वर्ष द्वादस दिन चारिक तुम सों टूठे। सूर आपने प्रानन खेलें ऊधव खेलें रूठे।—सूर (शब्द०)।

टूठनि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० टूठना] संतोष। तुष्टि। प्रसन्नता। उ०—ठुमुक ठुमुक पग धरनि नटनि लरखरनि सुहाई। भजनि मिलनि रूठनि टूठनि किलकनि अवलोकनि बोलनि बरनि न जाई।—तुलसी (शब्द०)।

टूनटोटी—संज्ञा स्त्री० [अं० टाउन ड्यूटी] चुंगी।

टूना†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'टोना'।

टूम—संज्ञा स्त्री० [अनु० टुन टुन] गहना पाता। आभूषण।

यौ०—टूमटाम = (१) गहना पाता। वस्त्राभूषण। (२) बनाव सिंगार। टूम छल्ला = छोटा मोटा गहना। साधारण गहना।

२. सुंदर स्त्री। ३. धनी स्त्री। मालदार स्त्री। ४. नोची। (बाजारू) ५. चालाक और चतुर आदमी। ६. उकसाने या खोदने की क्रिया। झटका। धक्का।

मुहा०—टूम देना = कबूतर को छतरी पर से उड़ाना।

७. ताना। व्यंग्य।

क्रि० प्र०—टूम मारना या तोड़ना = ताना मारना।

टूमना—क्रि० स० [अनु०] १. धक्का देना। झटका देना। खोदना। २. ताना मारना। व्यंग्य बोलना।

टूरनामेंट—संज्ञा पुं० [अं० टूर्नामेंट] खेल जिनमें जीतनेवालों को इनाम मिलता है।

टूल[1]—संज्ञा पुं० [अं०] औजार जिसकी सहायता से कोई काम किया जाय।

टूल[2]—संज्ञा पुं० [अं० स्टूल] ऊँचे पायों की छोटी चौकी जिसपर लड़के बैठते हैं या कोई चीज रखी जाती है। तिपाई।

टूसा[1]—संज्ञा पुं० [सं० तुष (= भूसी) ?] १. मंदार का फल। डोडा। २. रेशा। फुचड़ा। सूत। ३. पकड़ का फूल। पाकर का फूल। ४. पतझड़ के बाद टहनियों के सिरे पर पत्तियों का संश्लिष्ट नुकीला आकार जो नीम, पाकर आदि वृक्षों में मिलता है।

टूसा[2]—संज्ञा पुं० [देश०] टुकड़ा। खंड।

टूसी—संज्ञा स्त्री० [हिं० टूसा] कली। बिना खिला हुआ फूल।

टेंकिका—संज्ञा स्त्री० [सं० टेङ्किका] ताल के साठ मुख्य भेदों में से एक।

टेंकी—संज्ञा स्त्री० [सं० टेङ्की] १. शुद्ध राग का एक भेद। २. एक प्रकार का नृत्य।

टेंपरेचर—संज्ञा पुं० [अं०] शरीर या किसी स्थान की उष्णता या गर्मी का मान जो थर्मामीटर से जाना जाता है। तापमान। जैसे,—(क) सबेरे उसका टेंपरेचर लिया था; १०२ डिग्री बुखार था। (ख) इस बार इलाहाबाद में ११८ डिग्री टेंपरेचर हो गया था।

क्रि० प्र०—लेना।—होना।

टें—संज्ञा स्त्री० [अनु०] तोते की बोली। सुए की बोली।

यौ०—टें टें।

मुहा०—टें टें = व्यर्थ की बकवाद। हुज्जत। टें होना या बोलना = उसी तरह चटपट मर जाना जिस प्रकार बिल्ली के पकड़ने पर तोता एक बार टें शब्द निकालकर मर जाता है। झट प्राण छोड़ देना। मर जाना। न बचना।

टेंगड़—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'टेंगरा'।

टेंगड़ा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'टेंगरा'।

टेंगन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० तुण्ड] टेंगरा मछली। उ०—संध सुगंध धरे जल बाढ़े। टेंगन मुवे टोय सब काढ़े।—जायसी (शब्द०)।

टेंगना†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'टेंगरा'।

टेंगर—संज्ञा स्त्री० [सं० तुण्ड (= एक मछली)] एक प्रकार की मछली।

विशेष—यह टेंगरा ही के तरह की पर उससे बहुत बड़ी अर्थात् दो ढाई हाथ तक लंबी होती है। टेंगरा की तरह इसे भी काँटे होते हैं।

टेंगरा—संज्ञा स्त्री० [सं० तुण्ड (= एक प्रकार की मछली)] एक प्रकार की मछली।

विशेष—यह भारत के अनेक भागों में, विशेषकर अवध, बिहार और बंगाल के उत्तर के जलाशयों में पाई जाती है। यह डेढ़ बालिश्त लंबी तथा सफेद या कुछ कालापन लिए बादामी होती है। इसके शरीर में सेहरा नहीं होता और इसके मुँह के किनारे लंबी मूँछें होती हैं। इसके शरीर में तीन काँटे होते हैं, दो बगल बगल और एक पीठ में। क्रुद्ध होने पर यह इन काँटों से मारती है। सबसे बड़ी विलक्षणता इस मछली में यह है कि यह मुँह से गुनगुनाहट के ऐसा शब्द निकालती है।

टँघुना†—संज्ञा पुं० [सं० अष्ठीवान्] [स्त्री० टँघुनी] घुटना।

टँघुनी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'टँघुना'।

टँचना†—संज्ञा पुं० [हिं० टेक] खंभा। टेक। चाँड़

टँट[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० तट+ऐंठ] धोती की वह मंडलाकार ऐंठन जो कमर पर पड़ती है और जिसमें लोग कभी कभी रुपया पैसा भी रखते हैं। मुर्री।

मुहा०—टँट मे कुछ होना = पास में कुछ रुपया पैसा होना।

टँट[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० टोंट] १. कपास की ढोढ़। कपास का डोडा जिसमें से रुई निकलती है। २. करील का फल। ३. करील। ४. पशुओं के शरीर पर का ऐसा घाव जो ऊपर से देखने में सूखा जान पड़े पर जिसमें से समय समय पर रक्त बहा करे। ५. दे० 'टँटर'।

टँटड़—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'टँटर'।

टँटर—संज्ञा पुं० [देश०] रोग या चोट के कारण आँख के डेले पर का उभरा हुआ मांस। ढेंढर।

क्रि० प्र०—निकलना।

टँटा—संज्ञा पुं० [देश०] एक बड़ा पक्षी।

विशेष—इसकी चोंच बालिश्त भर की और पैर डेढ़ हाथ तक ऊँचे होते हैं। इसका बदन चितकबरा पर चोंच काली होती है।

टँटार—संज्ञा पुं० [हिं० टँट+आर (प्रत्य०)] दे० 'टँटा'।

टँटिहा[1]†—वि० [हिं०] दे० 'टेंटी'।

टँटिहा[2]—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार के क्षत्रिय जो प्रायः बिहार के शाहाबाद जिले में पाए जाते हैं।

टँटी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० टँट] १. करील। उ०—सूर कहो कैसे रुचि मानै टँटी के फल खारे।—सूर (शब्द०)। २. करील का फल। कचड़ा।

टँटी[2]—वि० [अनु० टँ टँ] बात बात में बिगड़नेवाला। व्यर्थ झगड़ा करनेवाला।

टँटु—संज्ञा पुं० [सं० टुण्टुक] श्योनाक। सोनापाठा।

टँटवा—संज्ञा पुं० [देश०] १. गला। घेंटू। घीची। २. अँगूठा।

टँ टँ—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. तोते की बोली। २. व्यर्थ की बकवाद। हुज्जत। धृष्टतापूर्ण बात। जैसे,—कहाँ राम राम कहाँ टँ टँ।

क्रि० प्र०—करना।—मचाना।—होना।

मुहा०—टँ टँ लगाना = बकवाद करना। अनावश्यक बोलना।

उ०—तुमको इन बातों में क्या दखल है। नाहक बिन नाहक की टँ टँ लगाई है।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ३७१।

टँड़—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'टिड्डी'।

टँव(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'टेव'। उ०—गुन गोपाल उचारत रसना, टेव एह परी।—संतवाणी०, पृ० ४८।

टेउ‡—संज्ञा स्त्री [हिं०] दे० 'टेव'।

टेउकन†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'टेकन'।

टेउका†—संज्ञा पुं० [हिं० टेक] [स्त्री० टेउकी] दे० 'टेकन'।

टेउकी—संज्ञा स्त्री० [हिं० टेक] १. किसी वस्तु को लुढ़कने या गिरने से बचाने के लिये उसके नीचे लगाई गई वस्तु। २. जुलाहों की वह लकड़ी जो ताने की डाँडी में इसलिये लगाई जाती है जिसमें ताना जमीन पर न गिरे, ऊपर उठा रहे। ३. साधुओं की अधारी।

टेक—संज्ञा स्त्री० [हिं० टिकना] १. वह लकड़ी या खंभा जो किसी भारी वस्तु को अड़ाए या टिकाए रखने के लिये नीचे या बगल से भिड़ाकर लगाया जाता है। चाँड़। थूनी। थम।

क्रि० प्र०—लगाना।

२. टिकने या भार देने की वस्तु। ओठंगने की चीज। ढासना। सहारा। ३. आश्रय। अवलंब। उ०—दै मुद्रिका टेक तेहि अवसर सुचि समीरसुत पैर गहे री।—तुलसी (शब्द०)। ४. बैठने के लिये बना हुआ ऊँचा चबूतरा या बेदी। बैठने का स्थान। जैसे, राम टेक। ५. ऊँचा टीला। छोटी पहाड़ी। ६. चित्त में टिका या बैठा हुआ संकल्प। मन मे ठानी हुई बात। दृढ़ संकल्प। अड़। हठ। जिद। उ०—सोइ गोसाइँ जो बिधि गति छेंकी। सकइ को टारि टेक जो टेकी।—तुलसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।

मुहा०—टेक गहना = दे० 'टेक पकड़ना'। टेक पकड़ना = जिद पकड़ना। हठ करना। टेक निभना = (१) जिस बात के लिये आग्रह या हठ हो उसका पूरा होना। (२) प्रतिज्ञा पूरी होना। टेक निबाहना = दे० 'टेक निभाना।' टेक निभाना = प्रतिज्ञा या आन का पूरा होना। टेक निभाना = प्रतिज्ञा पूरी करना। टेक रहना = दे० 'टेक निभाना'।

७. वह बात जो अभ्यास पड़ जाने के कारण मनुष्य अवश्य करे। बान। आदत। संस्कार।

क्रि० प्र०—पड़ना।

८. गीत का वह टुकड़ा जो बार बार गाया जाय। स्थायी। ९. पृथ्वी की नोक जो पानी मे कुछ दूर तक चली गई हो।—(लश०)।

टेकड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० टेक+ड़ी (प्रत्य०)] १. टीला। ऊँचा धुस्स। २. छोटी पहाड़ी। उ०—टेकड़ियों के पार, कहो कैसे चढ़कर आते हो?—हिम०, पृ० १०१।

टेकन—संज्ञा पुं० [हिं० टेकना] [स्त्री० टेकनी] वह वस्तु जो भारी या लुढ़कनेवाली वस्तु को टिकाए रखने के लिये उसके नीचे

या बगल में लगाई जाय। अड़ुकन। रोक। जैसे,—घड़े के नीचे टेकन लगा दो।

क्रि० प्र०—लगाना।

टेकना¹—क्रि० स० [हिं० टेक] १ खड़े खड़े या बैठे बैठे श्रम से बचने के लिये शरीर के बोझ को किसी वस्तु पर थोड़ा बहुत डालना। सहारे के लिये किसी वस्तु को शरीर के साथ भिड़ाना। सहारा लेना। ढासना लेना। आश्रय बनाना। जैसे, दीवार या खंभा टेककर खड़ा होना।

संयो० क्रि०—लेना।

२. किसी अंग को सहारे आदि के लिये कहीं टिकाना। ठहराना या रखना।

मुहा०—घुटने टेकना = पराजय स्वीकार करना। हार मानना। माथा टेकना = प्रणाम करना। दंडवत् करना।

३. चलने, चढ़ने, उठने बैठने आदि में शरीर का कुछ भार देने के लिये किसी वस्तु पर हाथ रखना या उसको हाथ से पकड़ना। सहारे के लिये थामना। जैसे, चारपाई टेककर उठना बैठना, लाठी टेककर चलना। उ०—(क) सूर प्रभु कर सेज टेकत कबहुँ टेकत ढहरि।—सूर (शब्द०)। (ख) नाचत गावत गुन की खानि। थकित भए टेकत पिय पानि।—सूर (शब्द०)। ४. चलने मे गिरने पड़ने से बचने के लिये किसी का हाथ पकड़ना। हाथ का सहारा लेना। उ०—गृह गृह गृहद्वार फिरयो तुमको प्रभु छाँड़े। अंध अंध टेकि चलै क्यों न परै गाढ़े।—सूर (शब्द०)। †(पु) ५. टेक करना। हठ करना। ठानना। उ०—गोइ गोसाइँ जेइ विधि गति छेंकी। सकइ को टारि टेक जो टेंकी।—तुलसी (शब्द०)। ६. किसी को कोई काम करते हुए बीच मे रोकना। पकड़ना। उ० (क) रोवहिं मातु पिता औ भाई। कोउ न टेक जो कंत चलाई।—जायसी (शब्द०)। (ख) जनहुँ औटि कै मिलि गए तस दूनौ भए एक। कंचन कसत कसौटी हाथ न कोऊ टेक।—जायसी (शब्द०)।

टेकना²—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का जंगली धान। चनाव।

टेकनी¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० टेकना] टेकने का आधार, छड़ी आदि। उ०—उन्हीं की टेकनी के सहारे वे चल सकते हैं।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३७३।

टेकनी²—संज्ञा स्त्री० [हिं० टेकन + ई (प्रत्य०)] दे० 'टेकन'।

टेकर—संज्ञा पुं० [हिं० टेक] [स्त्री० टेकरी] १. टीला। उठी हुई भूमि। २. छोटी पहाड़ी।

टेकरा—संज्ञा पुं० [हिं० टेक] दे० 'टेकर'।

टेकरी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'टेकर'। उ०—यमुना अपनी धोती लेकर बजरे से उतरी और बालू की एक ऊँची टेकरी के कोने में चली गई।—कंकाल, पृ० ८८।

टेकला†(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० टेक] धुन। रट। उ०—बन बन पुकारूँ एकला, डारूँ गले बिच मेखला। एक नाम की है टेकला, सोहबत की तई मैं क्या करूँ।—कबीर (शब्द०)।

टेकली—संज्ञा स्त्री० [हिं० टेक] किसी चीज को उठाने या गिराने का औजार।—(लश०)।

टेकान—संज्ञा पुं० [हिं० टेकना] १. टेक। वह लकड़ा जो किसी गिरनेवाली धरन या छत आदि को सँभालने के लिये उसके नीचे खड़ी कर दी जाती है। चाँड़। २. ऊँचा चबूतरा या खंभा जिसपर बोझवाले अपना बोझा अड़ाकर थोड़ी देर सुस्ता लेते हैं। धरम ढीहा।

टेकाना†—क्रि० स० [हिं० टेकना] १. किसी वस्तु को कहीं ले जाने मे सहायता देने के लिये पकड़ना। उठाकर ले जाने में सहारा देने के लिये थामना। जैसे,—चारपाई को टेका लो, भीतर कर दें।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

२. उठने बैठने या चलते फिरने में सहायता देने के लिये थामना। जैसे,—ये इतने कमजोर हो गए हैं कि दो आदमी टेकाकर उन्हें भीतर बाहर ले जाते हैं।

टेकानी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० टेकना] पहिए को रोकने की कील। किल्ली।

टेकी—संज्ञा पुं० [हिं० टेक] १. कही हुई बात पर जमा रहनेवाला। प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहनेवाला। २. अड़नेवाला। हठी। दुराग्रही। जिद्दी। ३. आधार। टेक। सहारा। उ०—कहिं बल्ली टेकी थूनी है, कहिं घास कड़ब की पूली है।—राम० धर्म०, पृ० ६२।

टेकुआ¹—संज्ञा पुं० [सं० तर्कुक, प्रा० टक्कुअ] चरखे का तकला जिसपर सूत कातकर लपेटा जाता है। तकुआ।

टेकुआ²—संज्ञा पुं० [हिं० टेक] १. टिकाने या अड़ाने की वस्तु। अड़ुकन। २ सहारे की वह लकड़ी जो एक पहिया निकाल लेने पर गाड़ी को ऊपर ठहराए रखने के लिये लगाई जाती है।

टेकुरा‡—संज्ञा पुं० [देश०] पान।

टेकुरी—संज्ञा स्त्री० [सं० तर्कु, हिं० टेकुआ] १. फिरकी लगा हुआ सूआ जिसके घूमने से फँसी हुई रुई का सूत कतकर लिपटता जाता है। सूत कातने का तकला। २. बाँस की डाँडी के एक छोर पर लाह लगाकर बनाई हुई जुलाहों की फिरकी जिसमें रेशम फँसाया रहता है। ३. रस्सी बटने का तकला या औजार। ४. चमारों का सूआ जिससे वे तागा खींचते और निकालते हैं। ५. गोप नाम का गहना बनाने के लिये सुनारों की सलाई जिससे तार खींचकर फंदा दिया जाता है। ६. मूर्ति बनानेवालों का चिपटी धार का एक औजार जिससे वे मूर्ति का तल साफ और चिकना करते हैं।

टेकुवा(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'टेकुआ'। उ०—टेकुवा साधत जो बनि आवै, मँहगे मोल बिकाय।—कबीर श०, भा० २, पृ० ४८।

टेघरना†—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'टिघलना'।

टेचिन—संज्ञा पुं० [अं० स्टिचिंग] एक प्रकार का काँटा जिसके एक ओर माथा होता है और दूसरी ओर ढिबरी होती है। यह

किसी चीज को अड़ाने या थामने के काम में आता है। —(शब्द०)।

टेटका†—संज्ञा पुं० [सं० ताटङ्क] कान में पहनने का एक गहना।

टेटुआ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'टेंटुवा'। उ०—अजी अब बनाने की बात तो और है पूरी दास्तान भी नहीं सुनी और टेटुए पर चढ़ बैठे।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १९६।

टेढ़ही‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० टेढ़ा] टेढ़ी लकड़ी की छड़ी। उ०—लिये हाथ में डाल टेढ़ही।—ग्राम्या, पृ० ४४।

टेढ़[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० टेढ़ा] १. टेढ़ापन। वक्रता। २. अकड़। ऐंठ। उजड्डपन। नटखटी। शरारत।

मुहा०—टेढ़ की लेना = नटखटी करना। शरारत करना। उजड्डपन करना।

टेढ़[2]—वि० दे० 'टेढ़ा'।

टेढ़बिड़ंगा—वि० [हिं० टेढ़ा + बेढंगा] टेढ़ामेढ़ा। टेढ़ा और बेढंगा। बेडौल।

टेढ़ा—वि० [सं० तिरस् (= टेढ़ा)] [वि० स्त्री० टेढ़ी] १. जो लगातार एक ही दिशा को न गया हो। इधर उधर झुका या घुमा हुआ। फेर खाकर गया हुआ। जो सीधा न हो। वक्र। कुटिल जैसे, टेढ़ी लकीर, टेढ़ी छड़ी, टेढ़ा रास्ता।

यौ०—टेढ़ा मेढ़ा = जो सीधा और सुडौल न हो। टेढ़ा बाँका = नोक झोंक का। बना ठना। छैल चिकनिया।

मुहा०—टेढ़ी चितवन = तिरछी चितवन। भावभरी दृष्टि।

२. जो अपने आधार पर समकोण बनाता हुआ न गया हो। जो समानांतर न गया हो। तिरछा। ३. जो सुगम न हो। कठिन। बेंड़ा। फेरफार का। मुश्किल। पेंचीला। जैसे, टेढ़ा काम, टेढ़ा प्रश्न, टेढ़ा मामला। उ०—मगर शेरों का मुकाबिला जरा टेढ़ी खीर है।—फिसाना०, भा० ३, पृ० २४।

मुहा०—टेढ़ी खीर = मुश्किल काम। कठिन कार्य। दुष्कर कार्य।

विशेष—इस मुहा० के संबंध में लोग एक कथा कहते हैं। एक आदमी ने एक अंधे से पूछा 'खीर खाओगे ?'। अंधे ने पूछा 'खीर कैसी होती है ?' उस आदमी ने कहा 'सफेद'। फिर अंधे ने पूछा 'सफेद कैसा ?'। उसने उत्तर दिया 'जैसा बगला होता है ?' इसपर उस आदमी ने हाथ टेढ़ा करके बताया। अंधे ने कहा—'यह तो टेढ़ी खीर है, न खाई जायगी'।

४. जो शिष्ट या नम्र न हो। उद्धत। उग्र। उजड्ड। दुःशील। कोपवान्। जैसे, टेढ़ा आदमी, टेढ़ी बात। उ०—टेढ़े आदमी से कोई नहीं बोलता।—(शब्द०)।

मुहा०—टेढ़ा पड़ना या होना = (१) उग्र रूप धारण करना। जैसे,—कुछ टेढ़े पड़ोगे तभी रुपया निकलेगा, सीधे से माँगने से नहीं। (२) अकड़ना। ऐंठना। टर्राना। जैसे,—वह जरा सी बात पर टेढ़ा हो जाता है। टेढ़ी आँख से देखना = क्रूर दृष्टि करना। शत्रुता की दृष्टि से देखना। अनिष्ट करने का विचार करना। बुरा व्यवहार करने का विचार करना। टेढ़ी आँखें करना = कुपित दृष्टि करना। क्रोध की आकृति बनाना। बिगड़ना। टेढ़ी सीधी सुनाना = ऊँची नीची सुनाना। खरी खोटी सुनाना। भला बुरा कहना। टेढ़ी सुनाना = दे० 'टेढ़ी सीधी सुनाना'।

टेढ़ाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० टेढ़ा] टेढ़ा होने का भाव। टेढ़ापन।

टेढ़ापन—संज्ञा पुं० [हिं० टेढ़ा + पन (प्रत्य०)] टेढ़ा होने का भाव।

टेढ़ामेढ़ा—वि० [हिं० टेढ़ा + अनु० मेढ़ा] जो सीधा न हो। टेढ़ा। वक्र।

टेढ़े—क्रि० वि० [हिं० टेढ़ा] सीधे नहीं। घुमाव फिराव के साथ। जैसे,—वह टेढ़े जा रहा है।

मुहा०—टेढ़े टेढ़े जाना = इतराना। घमंड करना। उ०—(क) कबहुँ कमला चपल पाय के टेढ़े टेढ़े जात। कबहुँक मग मग धूरि टटोरत, भोजन को बिललात।—सूर (शब्द०)। (ख) जो रहीम ओछो बढ़ै तो अति ही इतरात। प्यादा सों फरजी भयो टेढ़ो टेढ़ो जात।—रहीम (शब्द०)।

टेना[1]—क्रि० स० [हिं० टेव + ना (प्रत्य०)] १. किसी हथियार की धार को तेज करने के लिये पत्थर आदि पर रगड़ना। उ०—कुबरी करी कुबलि कैकेई। कपट छुरी उर पाहन टेई।—तुलसी (शब्द०)। २. मूँछ के बालों को खड़ा करने के लिये ऐंठना। जैसे, मूँछ टेना।

टेनाⓅ[2]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'टेनी'।

मुहा०—टेना मारना = दे० 'टेनी मारना'। उ०—करै बिबेक दुकान ज्ञान का लेना देना। गादी हैं संतोष नाम का मारै टेना।—पलटू०, भा० १, पृ० १००।

टेनियाⓅ†—संज्ञा स्त्री० [हिं० टेनी + इया (प्रत्य०) दे० 'टेनी'। उ०—काहे की डंडी काहे का पलरा काहे की मारो टेनिया।—कबीर श०, भा० २, पृ० १५।

टेनिस—संज्ञा पुं० [अं०] गेंद का एक प्रकार का अंगरेजी खेल।

टेनी†—संज्ञा स्त्री० [देश०] छोटी उँगली।

मुहा०—टेनी मारना = सौदा तौलने में उँगली को इस तरह घुमाना फिराना कि चीज कम चढ़े। (सौदा) कम तौलना।

टेनेंट—संज्ञा पुं० [अं०] १. किराएदार। २. असामी। पहरेदार। रैयत।

टेप—संज्ञा पुं० [अं०] फीता।

यौ०—टेप रिकार्डर = रिकार्ड करनेवाला वह यंत्र जो बैटरी से चालित होता है और प्रवचनों को फीते पर रिकार्ड करने के काम आता है।

टेपारा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'टिपारा'। उ०—अरुन अति ललित भाल जटिल लाल टेपारो।—नंद०, ग्रं० पृ० ३९५।

टेबलेट—संज्ञा पुं० [अं०] १. छोटी टिकिया। जैसे, क्विनाइन टेबलेट। २. पत्थर, काँसे आदि का फलक जिसपर किसी की स्मृति में कुछ लिखा या खुदा रहता है। जैसे,—किसान सभा ने उनके स्मारक स्वरूप एक टेबलेट लगाना निश्चित किया है।

टेबिल—संज्ञा पुं० [अं० टेबुल] मेज। उ०—अँगरेजों के साथ एक टेबिल पर खाना न खाएँगे।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ७८।

टेबुल¹—संज्ञा पुं० [अं०] १. मेज ।

यौ०—टेबुल क्लाथ=मेजपोश ।

२. नकशा । ३. वह जिसमें बहुत से खाने या कोष्ठक बने हों। नकशा । सारिणी ।

टेम¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० टिमटिमाना] दीपशिखा । दिए की लौ । दीपक की ज्योति । लाट । उ०—श्यामा की मूरति दीप की टेम में दिखाने लगी ।—श्यामा०, पृ० १५६ ।

टेम²—संज्ञा पुं० [अं० टाइम] समय । वक्त ।

टेमन—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का साँप ।

टेमा—संज्ञा पुं० [देश०] कटे हुए चारे की छोटी अँटिया ।

टेर¹—संज्ञा स्त्री० [सं० तार (=संगीत में ऊँचा स्वर)] १. गाने में ऊँचा स्वर । तान । टीप ।

क्रि० प्र०—लगाना ।

२. बुलाने का ऊँचा शब्द । पुकारने की आवाज । बुलाहट । पुकार । हाँक । उ०—(क) टेर लखन सुनि बिकल जानकी अति आतुर उठि धाई ।—सूर (शब्द०) । (ख) कुश के टेर सुनी जबै फूलि फिरे शत्रुघ्न ।—केशव (शब्द०) ।

टेर²—संज्ञा स्त्री० [सं० तार(=तै करना)] निर्वाह । गुजर ।

मुहा०—टेर करना=गुजारना । बिताना । काटना । जैसे,—जिंदगी टेर करना ।

टेर³—वि० [सं०] तिरछी निगाह का । ऐंचाताना (को०) ।

टेरक—वि० [सं०] ऐंचाताना (को०) ।

टेरना¹—क्रि० स० [हिं० टेर+ना (प्रत्य०)] १. ऊँचे स्वर से गाना । तान लगाना । २. बुलाना । पुकारना । हाँक लगाना । उ०—(क) भई साँझ जननी टेरत है कहाँ गए चारो भाई ।—सूर (शब्द०) । (ख) फिरि फिरि राम सीय तन हेरत । तृषित जानि जल लेन लखन गए, भुज उठाय ऊँचे चढ़ि टेरत ।—तुलसी ।—(शब्द०) ।

टेरना²—क्रि० स०[सं० तीरण(=तै करना)] १. तै करना । चलता करना । निबाहना । पूरा करना । जैसे,—थोड़ा सा काम और रह गया है किसी प्रकार टेर ले चलो । २. बिताना । गुजारना । काटना । जैसे,—वह इसी प्रकार जिंदगी टेर ले जायगा ।

संयो० क्रि०—ले चलना । —ले जाना ।

टेरनि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० टेरना] टेर । पुकार । उ०—हरि की सी गाइ निबेरनि टेरनि अंबर भेरनि ।—नंद० ग्रं०, पृ० २६ ।

टेरवा—संज्ञा पुं० [देश०] हुक्के की नली जिसपर चिलम रखी जाती है ।

टेरा¹—संज्ञा पुं० [?] १. डेरा । अंकोल का पेड़ । २. पेड़ों का धड़ । तना । वृक्षस्तंभ । जैसे, केले का टेरा । ३. शाखा । जैसे,—हाथी के लिये टेरा काटना है ।

टेरा²—वि० [सं० टेर] ऐंचाताना । टेपरा । भेंगा ।

टेरा(पु)³—संज्ञा पुं० [हिं० टेरना] बुलावा । उ०—पाछे टेरा आयो । तब यह सावधान ह्वै बिचार करने लाग्यो ।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० २३२ ।

टेराकोटा—संज्ञा पुं० [अं०] १. पकी हुई मिट्टी जिससे मूर्तियाँ, इमारतों में लगाने के लिये बेलबूटे, आदि बनते हैं । २. पकी हुई मिट्टी का रंग । ईंटकोहिया रंग ।

टेरिऊल—संज्ञा पुं० [अं०] टेरिलिन और ऊन के मिश्रित धागे या उनसे बना वस्त्र ।

टेरिकाट—संज्ञा पुं० [अं० टेरिकॉट] टेरिलिन और सूत के धागे या उनसे बना हुआ वस्त्र ।

टेरिटोरियल फोर्स—संज्ञा स्त्री० [अं०] वह सैन्यदल जिसका संबंध अपने स्थान से हो । नागरिक सेना । देशरक्षिणी सेना । देशरक्षक सेना ।

विशेष—इन्हें साधारणतः देश के बाहर लड़ने को नहीं जाना पड़ता ।

टेरिलिन—संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार का कृत्रिम रेशा या उन रेशों से बुना हुआ वस्त्र ।

टेरी¹—संज्ञा स्त्री० [देश०] टहनी । पतली शाखा । जैसे, नीम की टेरी ।

टेरी²—संज्ञा स्त्री० [हिं० टेकुरी] दरी बुनने का सूजा ।

टेरी³—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. एक पौधा जिसकी कलियाँ रँगने और चमड़ा सिझाने में काम आती हैं । इसे 'बखेरी' और 'कुंती' भी कहते हैं । २. बक्कम की फली ।

टेरो—संज्ञा स्त्री० [देश०] सरसों का एक भेद । उलटी ।

टेलपेल—संज्ञा स्त्री० [अनु०] ठेलठाल । धक्कामुक्की । उ०—हम लोग भी ठेल पेलकर रेल पर चढ़ बैठे ।—प्रेमघन०, भा०, २ पृ० ११२ ।

टेलर¹—वि० [?] नाम मात्र को । कहने भर के लिये । उ०—उन्हें टेलर हिंदू कहलाने की अपकीर्ति से बचाना ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २५७ ।

टेलर²—संज्ञा पुं० [अं०] दर्जी । सीने का काम करनेवाला ।

टेलिग्राफ—संज्ञा पुं० [अं०] तार जिसके द्वारा खबरें भेजी जाती हैं । दे० 'तार' ।

टेलिग्राम—संज्ञा पुं० [अं०] तार से भेजी हुई खबर । तार ।

टेलिपैथी—संज्ञा स्त्री० [अं०] वह मानसिक क्रिया जिसके द्वारा दूसरों की भावनाओं का ज्ञान होता है ।

टेलिप्रिंटर—संज्ञा पुं० [अं०] विद्युत् संचालित वह टाइपराइटर या टंकण यंत्र जिसमें तार द्वारा प्राप्त समाचार आदि अपने आप टंकित होते हैं ।

टेलिफोटोग्राफी—संज्ञा स्त्री० [अं०] दूरवीक्षण यंत्र द्वारा फोटो लेना ।

टेलिफोन—संज्ञा पुं० [अं०] वह यंत्र जिसके द्वारा एक स्थान पर कहा हुआ शब्द कितने ही कोस दूर के दूसरे स्थान पर सुनाई पड़ता है ।

विशेष—इसकी साधारण युक्ति यह है कि दो चोंगे लो जिनका मुँह एक ओर कागज, चमड़े आदि से मढ़ा हो तथा दूसरी ओर खुला हो । मढ़े हुए चमड़े के बीचोबीच से लोहे का एक लंबा तार ले जाकर दोनों चोंगों के बीच लगा दो ।

यदि एक चोंगे में कोई बात कही जायगी और दूसरे चोंगे में (जो दूर पर होगा) किसी का कान लगा होगा तो वह बात सुनाई पड़ेगी। पर यह युक्ति थोड़ी ही दूर के लिये काम दे सकती है। अधिक दूर के लिये बिजली के प्रवाह का सहारा लिया जाता है। चुंबक की एक छड़, जिसमें रेशम (या और कोई ऐसा पदार्थ जिससे होकर बिजली का प्रवाह न जा सके) से लिपटा हुआ ताँबे का तार कमानी की तरह घुमाकर जड़ा रहता है, एक नली के भीतर बैठाई रहती है। चुंबक के एक छोर के पास लोहे का एक पत्तर बँधा रहता है। यह पत्तर काठ की खोली में रहता है—जिसका मुँह एक ओर चोंगे की तरह खुला रहता है। इस प्रकार दो चोंगों की आवश्यकता टेलीफोन में होती है एक बोलने के लिये, दूसरा सुनने के लिये। इन दोनों चोंगों के बीच तार लगा रहता है। शब्द वायु में उत्पन्न तरंग या कंप मात्र है। मुँह से निकला हुआ शब्द चोंगे के भीतर की वायु को कंपित करता है जिसके कारण बँधे हुए लोहे के पत्तर में भी कंप होता है अर्थात् वह आगे पीछे जल्दी जल्दी हिलता है। इस हिलने से चुंबक की शक्ति एक बार घटती और एक बार बढ़ती रहती है। इस प्रकार तार की मंडलाकार कमानी के एक बार एक ओर दूसरी बार दूसरी ओर बिजली उत्पन्न होती रहती है। इसी बिजली के प्रवाह द्वारा बहुत दूर के स्थानों पर भी शब्द पहुँचाया जाता है। टेलिफोन के द्वारा स्थल पर हजारों कोस दूर तक की और समुद्र में सैकड़ों कोस तक की कही बातें सुनाई पड़ती हैं।

टेलिविजन—संज्ञा पुं० [अं०] किसी वस्तु, दृश्य या घटना के चित्र को बेतार के तार से या तार द्वारा संप्रेषित करने की वह प्रक्रिया जिससे दूरस्थ व्यक्ति भी उसे तत्काल ज्यों का त्यों देख सुन सके।

विशेष—टेलिविजन में प्रकाशतरंगों को किसी दृश्य पर से विद्युत् तरंगों में परिवर्तित कर दिया जाता है जो बेतार के तार या तार द्वारा संप्रेषित होती हैं और इसके बाद उनको पुन: प्रकाशतरंगों में परिवर्तित कर दिया जाता है जो टेलिविजन पट पर उस दृश्य को चित्रित करती हैं।

टेलिस्कोप—संज्ञा पुं० [अं०] वह यंत्र जो दूरस्थ वस्तुओं को निकटतर और विशालतर दिखाने का कार्य करता है।

टेली—संज्ञा पुं० [देश०] मझले आकार का एक पेड़ जिसकी लकड़ी लाल और मजबूत होती है तथा चारपाई, औजारों के दस्ते आदि बनाने के काम में आती है।

विशेष—यह पेड़ आसाम, कछार, सिलहट और चटगाँव में बहुत होता है।

टेव—संज्ञा स्त्री० [हिं० टेक] अभ्यास। आदत। बान। स्वभाव। प्रकृति। उ०—(क) सुनु मैया याकी टेव लरन की, सकुच बेंचि सी खाई।—तुलसी (शब्द०)। (ख) तुम तो टेव जानतिहि ह्वै हौ तऊ मोहि कहि आवै। प्रात उठत मेरे लाल लड़ैतहि माखन रोटी भावै।—सूर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—पड़ना।

टेवकी—संज्ञा स्त्री० [हिं० टेवकन, टेकन] १. दोनों छोरों पर कुछ दूर तक बाँस की एक चिरी लकड़ी जो जुलाहों की डाँड़ी में इसलिये लगी रहती है जिसमें तागा गिरने न पावे। २. नाव के पालों में से सबसे ऊपर का छोटा पाल।

टेवना†—क्रि० स० [हिं०] दे० 'टेना'।

टेवा—संज्ञा पुं० [सं० टिप्पन] १. जन्मपत्री। जन्मकुंडली। २. लग्नपत्र जिसमें विवाह की मिति, दिन, घड़ी आदि लिखी रहती है और जिसे लड़की के यहाँ से शकुन के साथ नाई ले जाकर लड़के के पिता को विवाह से १० या बारह दिन पहले देता है।

टेवैया†—संज्ञा पुं० [हिं० टेवना] १. टेनेवाला। सिल्ली पर धार तेज करनेवाला। २. चोखा करनेवाला। तीक्ष्ण या पैना करनेवाला। उ०—जहाँ जमजातन घोर नदी भट कोटि जलज्चर दंत टेवैया।—तुलसी (शब्द०)।

टेसुआ†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'टेसू'।

टेसू—संज्ञा पुं० [सं० किंशुक] १. पलाश का फूल। ढाक का फूल।

विशेष—इसे उबालने से इसमें से एक बहुत अच्छा पीला रंग निकलता है जिससे पहले कपड़े बहुत रँगे जाते थे। दे० 'पलाश'।

२. पलाश का पेड़। ३. लड़कों का एक उत्सव। उ०—जे कच कनक कचोरा भरि भरि मेलत तेल फुलेल। तिन केसन को भस्म चढ़ावत टेसू के से खेल।—सूर (शब्द०)।

विशेष—इसमें विजयादशमी के दिन बहुत से लड़के इकट्ठे होकर घास का एक पुतला सा लेकर निकलते हैं और कुछ गाते हुए घर घर घूमते हैं। प्रत्येक घर से उन्हें कुछ अन्न या पैसा मिलता है। इसी प्रकार पाँच दिन तक अर्थात् शरद् पूनो तक करते हैं और जो कुछ भिक्षा मिलती है उसे इकट्ठा करते जाते हैं। पूनों की रात को मिले हुए द्रव्य से लावा, मिठाई आदि लेकर वे बोए हुए खेतों पर जाते हैं जहाँ बहुत से लोग इकट्ठे होते हैं और बलाबल की परीक्षा संबंधी बहुत सी कसरतें और खेल होते हैं। सबके अंत में लावा, मिठाई लड़कों में बँटती है। टेसू के गीत इस प्रकार के होते हैं—इमली के जड़ से निकली पतंग। नौ सौ मोती नौ सौ रंग। रंग रंग की बनी कमान। टेसू आया घर के द्वार। खोलो रानी चंदन किवार।

टेहला†—संज्ञा पुं० [देश०] विवाह के व्यवहार। ब्याह की रीति रस्म।

टेहुना†—संज्ञा पुं० [हिं० घुटना] घुटना।

टेहुनी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'कोहनी'।

टैंक—संज्ञा पुं० [अं०] १. मोटर की तरह का एक युद्धयान जो मजबूत इस्पात का बना होता है और जिसमें तोपें लगी रहती हैं। २. तालाब।

टैंठीⓅ—वि० [?] चंचल। उ०—पैठत प्रान खरी अनखीली सु नाक चढ़ाएई डोलत टैंठी।—घनानंद, पृ० ३७।

टैयाँ¹—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की छोटी कौड़ी जिसकी पीठ साधारण कौड़ी से कुछ चिपटी होती है और उसपर दो चार उभरे हुए बड़े दाने से होते हैं।

विशेष—इसका रंग नीलापन लिए या बिलकुल सफेद होता है। फेंकने से यह चित अधिक पड़ती है इसी से इसका व्यवहार जुए में अधिक होता है। इसे चित्ती भी कहते हैं।

टैयाँ[२]—वि० नाटा और हृष्ट पुष्ट।

टैक्स—संज्ञा पुं० [अं०] कर या महसूल जो राज्य अथवा नगरपालिका अथवा जिला परिषद् या पंचायत की ओर से किसी वस्तु पर लगाया जाय। जैसे, इनकम टैक्स।

टैक्सी—संज्ञा स्त्री० [अं०] किराए पर चलनेवाली मोटर गाड़ी।

टैन—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की घास जो चमड़ा सिझाने के काम में आती है।

टैना†—संज्ञा पुं० [देश०] घास का पुतला या डंडे पर रखी हुई काली हाँडी आदि जिन्हें खेतों में पक्षियों को डराने के लिये रखते हैं।

टैनी†—संज्ञा स्त्री० [देश०] भेड़ों का झुंड।—(गड़ेरिए)।

टैरा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'टेरा'।

टैरी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'टेरी'।

टैबलेट—संज्ञा पुं० [अं०] दे० 'टेबलेट'।

टोंक[१]†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'टोंका'।

टोंक[२]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'टोक'। उ०—उलझन की मीठी रोक टोक, यह सब उसकी है नोक झोंक।—कामायनी, पृ० २१५।

टोंका‡—संज्ञा पुं० [सं० स्तोक (=थोड़ा)] १. छोर। सिरा। किनारा। २. नोक। कोना। ३. जमीन जो नदी में कुछ दूर तक गई हो।—(मल्लाह)।

टोंगा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तोंगा'।

टोंगू—संज्ञा पुं० [देश०] फैलनेवाली एक भाड़ी जिसकी छाल के रेशों से रस्सी बनाई जाती है। जिती। जक।

टोंच—संज्ञा स्त्री० [हिं० टोंचना] १ सीयन। सिलाई का टाँका। २. खोंचने की क्रिया।

टोंचना[१]—क्रि० स० [सं० टङ्कन] चुभाना। गड़ाना। धँसाना। खोंचना।

टोंचना[२]—संज्ञा पुं० [हिं० ताना] १. ताना। व्यंग्य। २. उपालंभ। उलाहना।

टोंट—संज्ञा स्त्री० [सं० तुण्ड] ठोर। चोंच। उ०—भारत टोंट भुजा उचिनावा।—जग० बानी, पृ० ८२।

टोंटरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'टोंटी'।

टोंटा—संज्ञा पुं० [सं० तुण्ड] १. चिड़िया की चोंच के आकार की निकली हुई कोई वस्तु। २. चोंच के आकार के गढ़े हुए काठ के डेढ़ दो हाथ लंबे टुकड़े जो घर की दीवार के बाहर की ओर पंक्ति में बढ़ी हुई छाजन को सहारा देने के लिये लगाए जाते हैं। घोड़िया। ३. पानी आदि डालने के लिये बरतन में लगी हुई नली।

टोंटी—संज्ञा स्त्री० [सं० तुण्ड] १. पानी आदि ढालने के लिये भारी। लोटे आदि में लगी हुई नली जो दूर तक निकली रहती है। तुलतुली। २. पशुओं का थूथन। जैसे, सूअर की टोंटी।

टोंस—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'टौंस'।

टोआ[१]—संज्ञा पुं० [सं० तोय (=पानी)] गड्ढा।—(पंजाबी)।

टोआ[२]—संज्ञा पुं० [सं० तोक्म] अंकुर [को०]।

टोआ[३]—संज्ञा पुं० [हिं० टोहना] जहाज या नाव के आगे के भाग पर पानी की थाह लेने के लिये बैठनेवाला मल्लाह।

टोआ[४]†—संज्ञा पुं० [हिं० टोह] दे० 'टोह'।

टोइयाँ—संज्ञा स्त्री० [देश० या *हिं० तोतिया] छोटी जाति का सुग्गा जिसकी चोंच तक सारा भाग बैंगनी होता है। तोती।

टोई†—संज्ञा स्त्री० [देश०] पोर। पर्व। एक गाँठ से दूसरी गाँठ तक का भाग।

टोक[१]—संज्ञा पुं० [सं० स्तोक] एक बार में मुँह से निकला हुआ शब्द। किसी पद या शब्द का टुकड़ा। उच्चारण किया हुआ अक्षर। जैसे,—एक टोक मुँह से न निकला।

टोक[२]—संज्ञा स्त्री० १. छोटा सा वाक्य जो किसी को कोई काम करते देख उसे टोकने या पूछताछ करने के लिये कहा जाय। पूछताछ। प्रश्न आदि द्वारा किसी कार्य में बाधा। जैसे,—'क्या करते हो?', 'कहाँ जाते हो?' इत्यादि।

यौ०—टोक टाक = पूछताछ। प्रश्न आदि द्वारा बाधा। जैसे,—बड़े जरूरी काम से जा रहे हैं, टोकटाक न करो। रोक टोक = मनाही। मुमानिअत। निषेध।

२. नजर। बुरी दृष्टि का प्रभाव।—(स्त्रि०)।

मुहा०—टोक में आना = नजर लगानेवाले आदमी के सामने पड़ जाना। जैसे—बच्चा टोक में पड़ गया।

टोक[३]पु—संज्ञा स्त्री० [हिं० टेक] टेक। प्रतिज्ञा। उ०—विप्र सूद्र जोगी तपी सुकवि कहत करि टोक।—ब्रज० ग्रं०, पृ० ११८।

टोकणीपु—संज्ञा स्त्री० [?] एक प्रकार का हंडा। उ०—कबीर तष्टा टोकणी लीए फिरै सुभाई।—कबीर ग्रं०, पृ० ३५।

टोकनहार—वि० [हिं० टोकना+हार (प्रत्य०)] टोकनेवाला। बाधा पहुँचानेवाला।—उ०—कोई न टोकनहार नफा घर बैठे पावो।—पलटू०, पृ० १४।

टोकना[१]—क्रि० स० [हिं० टोक] १. किसी को कोई काम करते देखकर उसे कुछ कहकर रोकना या पूछताछ करना। जैसे, 'क्या करते हो?' 'कहाँ जाते हो?' इत्यादि। बीच में बोल उठना। प्रश्न आदि करके किसी कार्य में बाधा डालना। उ०—गोपिन के यह ध्यान कन्हाई। नेकु न अंतर होय कन्हाई। घाट बाट जमुना तट रोके। मारग चलत जहाँ तहँ टोकै।—सूर (शब्द०)।

विशेष—यात्रा के समय यदि कोई टोककर कुछ पूछता है तो यात्री अपने कार्य की सिद्धि के लिये बुरा सगुन समझता है।

२. नजर लगाना। बुरी दृष्टि डालना। हूँसना। ३. एक पहलवान का दूसरे पहलवान से लड़ने के लिये कहना। ४. गलती बतलाना। अशुद्धि की ओर ध्यान दिलाना। ५. आपत्ति करना। एतराज करना।

टोकना[२]—संज्ञा पुं० [?] [स्त्री० टोकनी] १. टोकरा। डला। २.

पानी रखने का धातु का एक बड़ा बरतन। एक प्रकार का हंडा।

टोकनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० टोकना] १. टोकरी। डलिया। उ०—आज के दिन छोटी छोटी टोकनियों में अनाज बोया जाता है और देवी के गीत गाए जाते हैं।—शुक्ल० अभि० ग्रं०, पृ० १३८। २. पानी रखने का छोटा हंडा। ३. बटलोई। देगची।

टोकरा—संज्ञा पुं० [?] [स्त्री० टोकरी] बाँस की चिरी हुई फट्टियों, अरहर, झाऊ की पतली टहनियों आदि को गाँछकर बनाया हुआ गोल और गहरा बरतन जिसमें घास, तरकारी, फल आदि रखते हैं। छाबड़ा। डला। झाबा। खाँचा।

मुहा०—टोकरे पर हाथ रहना = इज्जत बनी रहना। परदा न खुलना। भरम बना रहना।

टोकरिया‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० टोकरी का अल्पा०] दे० 'टोकरी'।

टोकरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० टोकरा] १. छोटा टोकरा। छोटा डला या छाबड़ा। झाँपी। झपोली। २. देगची। बटलोई।

टोकवा†—संज्ञा पुं० [देश०] उत्पाती लड़का। नटखट लड़का।

टोकसी†—संज्ञा स्त्री० [देश०] नरियरी। नारियल की आधी खोपड़ी।

टोका[1]—संज्ञा सं० [देश०] एक कीड़ा जो उर्द की फसल को नुकसान पहुँचाता है।

टोका[2]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'टोंका'।

यो०—टोकाटोकी = बाधा। टोकटाक।

टोकानाⓅ†—क्रि० स० [हिं०] दे० 'टिकाना-४'। उ०—इहि बिधि चारि टकोर टोकावै।—कबीर सा०, पृ० १५८४।

टोकारा†—संज्ञा पुं० [हिं० टोक] वह संकेत का शब्द जो किसी को कोई बात चिताने या स्मरण दिलाने के लिये कहा जाय। इशारे के लिये मुँह से निकाला हुआ शब्द।

टोट—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'टोटा'। उ०—रोम रोम पूरि पीर, व्याकुल सरीर महा, घूमै मति गति आसैं, प्यास की न टोट है।—घनानंद, पृ० ६६।

टोटकⓅ†—संज्ञा पुं० [सं० त्रोटक] दे० 'टोटका'। उ०—स्वारथ के साथिन तज्यो तिजरा को सो टोटक, औचट उलटि न हेरो।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५६३।

टोटका—संज्ञा पुं० [सं० त्रोटक] १. किसी बाधा को दूर करने या किसी मनोरथ को सिद्ध करने के लिये कोई ऐसा प्रयोग जो किसी अलौकिक या दैवी शक्ति पर विश्वास करके किया जाय। टोना। यंत्र मंत्र। तांत्रिक प्रयोग। अटका। उ०—तन की सुधि रहि जात जाय मन अंतै अटका। बिसरी भूख पियास किया सतगुर ने टोटका।—पलटू०, भा० १, पृ० ३२।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—टोटका करने आना = आकर कुछ भी न ठहरना। थोड़ी देर भी न बैठना। तुरत चला जाना। जैसे,—थोड़ा बैठो, क्या टोटका करने आई थी? —(स्त्रि०)। टोटका होना = किसी बात का चटपट हो जाना। किसी बात का ऐसी जल्दी हो जाना कि देखकर आश्चर्य हो।

२. काली हाँड़ी जिसे खेतों में फसल को नजर से बचाने के लिये रखते हैं।

टोटकेहाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० टोटका + हाई (प्रत्य०)] टोटका करनेवाली। टोना या जादू करनेवाली।

टोटल—संज्ञा पुं० [अं०] जोड़। ठीक। मीजान।

मुहा०—टोटल मिलाना = जोड़ ठीक करना।

टोटा[1]—संज्ञा पुं० [सं० तुण्ड] १. बाँस आदि का कटा हुआ टुकड़ा। २. मोमबत्ती का जलने से बचा हुआ टुकड़ा। ३. कारतूस। ४. एक प्रकार की आतशबाजी।

टोटा[2]—संज्ञा पुं० [हिं० टूटना, टूटा] १. घाटा। हानि। उ०—लेन न देन दुकान न जागा। टोटा करज ताहि कस लागा।—घट०, पृ० २७५।

क्रि० प्र०—उठाना। सहना।

मुहा०—टोटा देना या भरना = नुकसान पूरा करना। घाटा पूरा करना। हरजाना देना।

२. कमी। अभाव। जैसे,—यहाँ कागज का क्या टोटा है!

क्रि० प्र०—पड़ना।

टोटिⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] त्रुटि। गलती। उ०—कोटि विनायक जो लिखैं, महि से कागर कोटि। ता परि तेरे पीय के गुन नहि आवै टोटि।—नंद० ग्रं०, पृ० ६१।

टोड़ा—संज्ञा पुं० [सं० तुण्ड] चोंच के आकार का गढ़ा हुआ काठ का डेढ़ हाथ लंबा टुकड़ा जो घर की दीवार के बाहर की ओर पंक्ति में बढ़ी हुई छाजन को सहारा देने के लिये लगाया जाता है। टोंटा।

टोड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रोटकी] १. एक रागिनी जिसके गाने का समय १० दंड से १६ दंड पर्यंत है।

विशेष—इसका स्वरग्राम इस प्रकार है—स रे ग म प ध नि स स नि ध प म ग ग रे स। रे सा नि स नि ध ध नि स ग रे स नि स नि ध। प ग ग म रे ग रे स रे नि स नि ध स रे ग म प ध ध प। म ग म ग रे स नि स रे रे स नि ध ध ध नि स। हनुमत मत से इसका स्वरग्राम यह है—म प ध नि स रे ग म अथवा स रे ग म प ध नि स। यह संपूर्ण जाति की रागिनी है। इसमें शुद्ध मध्यम और तीव्र मध्यम के अतिरिक्त बाकी सब स्वर कोमल होते हैं। यह भैरव राग की स्त्री मानी जाती है और इसका स्वरूप इस प्रकार कहा गया है—हाथ में वीणा लिए हुए, प्रिय के विरह में गाती हुई, श्वेत वस्त्र धारण किए और सुंदर नेत्रोंवाली।

२. चार मात्राओं का एक ताल जिसमें २ आघात और २ खाली
+ •
रहते हैं। इसका तबले का बोल यह है—धिन् धा, गेधिन,
३ • +
धिनता, गेधिन, धा। अथवा
+ • • • +
धेड़ा के टे, धेड़ा के टे। धा।

टोनहा†—वि० [हि० टोना + हा (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० टोनही] टोना करनेवाला। जादू मारनेवाला।

टोनहाई—संज्ञा स्त्री० [हि० टोना+हाई (प्रत्य०)] १. टोना करनेवाली। जादू मारनेवाली। २. टोना करने की क्रिया।

टोनहाया—संज्ञा पुं० [हि० टोना+हाया (प्रत्य०)] टोना करनेवाला मनुष्य। जादू करनेवाला मनुष्य।

टोना¹—संज्ञा पुं० [सं० तन्त्र] १. मंत्र तंत्र का प्रयोग। जादू।
क्रि० प्र०—करना।—चलाना।—मारना।
२. एक प्रकार का गीत जो विवाह में गाया जाता है और जिसमें 'टोना' शब्द कई बार आता है।

टोना²—संज्ञा पुं० [देश०] एक शिकारी चिड़िया। उ०—जुर्रा बाज बाँसे, कुही, बहरी, लगर लोम टोने जरकटी त्यों सचान सानवारे हैं।—रघुराज (शब्द०)।

टोना³†—क्रि० स० [सं० त्वक् (= स्पर्शेंद्रिय)+ना (प्रत्य०)] १. हाथ से टटोलना। छूना। छूकर मालूम करना। उ०—साँच सही अँधरे को हाथी और साँचे है सबरे। हाथ की टोई साचि कहत हैं हैं आँखिन के अँधरे।—कबीर श०, भा०१, पृ० ५४। २. अच्छी तरह समझना। अनुभव करना। उ०—जग में आपन कोई नहीं, देखा सब टोई।—संतबाणी०, पृ० ४१।

टोनाहाई—संज्ञा स्त्री० [हि० टोना + हाई (प्रत्य०)] दे० 'टोनहा'।

टोप¹—संज्ञा पुं० [हि० तोपना (= ढाँकना)] १. बड़ी टोपी। सिर का बड़ा पहनावा। उ०—कुँवर सीस सवाह करि टोप दियो सिर टोप।—सुजान० च०, भा० २, पृ० ७४०।
यौ०—कनटोप।
२. सिर की रक्षा के लिये लड़ाई में पहनने की लोहे की टोपी। शिरस्त्राण। खोद। कूँड़। ३. खोल। गिलाफ। ४. अंगुश्ताना।

टोप²†—संज्ञा पुं० [अनु० टप टप या सं० स्तोक] बूँद। कतरा।
यौ०—टोप टोप = बूँद बूँद।

टोपन—संज्ञा पुं० [देश०] टोकरा।

टोपरा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'टोकना'।

टोपरा†—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'टोकना'।

टोपरी¹†—संज्ञा स्त्री० [हि० टोपर] दे० 'टोकरी'।

टोपरी²—संज्ञा स्त्री० [हि० टोप] टोप। शिरस्त्राण विशेष। उ०—फुटंत यों सु टोपरी। कि जोग पत्र टोपरी।—पृ० रा० ५।७७।

टोपही†—संज्ञा स्त्री० [हि० टोप] बरतन के साँचे का सबसे ऊपरी भाग जो कटोरे के आकार का होता है।

टोपा¹—संज्ञा पुं० [हि० टोप] बड़ी टोपी।

टोपा²†—संज्ञा पुं० [हि० तोपना] टोकरा।

टोपा³—संज्ञा पुं० [सं० टङ्कन, हि० तोपना, तुरपना] टाँका। डोभ। सीवन।
मुहा०—टोपा भरना = तागा भरना। सीना।

टोपी—संज्ञा स्त्री० [हि० तोपना (= ढाकना)] १. सिर पर का पहनावा। सिर पर ढाँकने के लिये बना हुआ आच्छादन।
क्रि० प्र०—पहनना।—लगाना।
मुहा०—टोपी उछलना = निरादर होना। बेइज्जती होना। टोपी उछालना = निरादर करना। बेइज्जती करना। टोपी देना = टोपी पहनना। टोपी बदलना = भाई भाई का संबंध जोड़ना। भाईचारा करना। टोपी बदल भाई = वह जिससे टोपी बदलकर भाई का संबंध जोड़ा गया हो।
विशेष—लड़के खेल में जब किसी से मित्रता करते हैं तब अपनी टोपी उसे पहनाते और उसकी टोपी आप पहनते हैं।
२. राजमुकुट। ताज।
मुहा०—टोपी बदलना = राज्य बदलना। दूसरे राजा का राज्य होना।
३. टोपी के आकार की कोई गोल और गहरी वस्तु। कटोरी। ४. टोपी के आकार का धातु का गहरा ढक्कन जिसे बंदूक की निपुल पर चढ़ाकर घोड़ा गिराने से आग लगती है। बंदूक का पड़ाका। ५. वह थैली जो शिकारी जानवर के मुँह पर चढ़ाई रहती है। ६. लिंग का अग्र भाग। सुपारा। ७. मस्तूल का सिरा। –(लश०)।

टोपीदार—वि० [हि० टोपी + फ़ा० दार] जिसपर टोपी लगी हो। जो टोपी लगने पर काम दे। जैसे, टोपीदार बंदूक, टोपीदार तमंचा।

टोपीवाला—संज्ञा पुं० [हि० टोपी] १. वह आदमी जो टोपी पहने हो। २. अहमदशाह और नादिरशाह के सिपाही जो लाल टोपियाँ पहनकर आए थे। ये टोपीवाले कहलाते थे। ३. अंगरेज या यूरोपियन जो हैट पहनते हैं। ४. टोपी बेचनेवाला।

टोभ‡—संज्ञा पुं० [हि० डोभ] टाँका। टोपा। उ०—बैरिनि जीयही टोभ दे री मन बैरी को मुँजि के मौन धरौंगी।—देव (शब्द०)।

टोभा—संज्ञा पुं० [हि० टोभ] दे० 'टोभ'।

टोया†—संज्ञा पुं० [सं० तोय] गड्ढा। –(पंजाबी)।

टोर¹—संज्ञा स्त्री० [देश०] कटारी। कटार। उ०—तुम सों न ओर चोर भुवन के और रूप कौंकरी को चोर काऊ मारो है न टोर के।—हनुमान (शब्द०)।

टोर²—संज्ञा स्त्री० [देश०] शोरे की मिट्टी का वह पानी जो साधारण नमक की कलमों को छानकर निकाल लेने पर बच रहता है और जिसे फिर उबाल और छानकर शोरा निकाला जाता है।

टोर(पु)³—संज्ञा पुं० [हि० ठोर] ठोर। मुँह। उ०—लग्यो टोर तिरहुट्ट गरबं मिलायं।—पृ० रासो, पृ० १४१।

टोरना†—क्रि० स० [सं० त्रुट] तोड़ना। उ०—(क) रिझवार दृग देखि कै मनमोहन की ओर। मोहन मारत रीझि जनु डारत है तन टोर। —रसनिधि (शब्द०)। (ख) कोउ कहुँ टोरन देत न माखो। माँगिहु पर मुरके हम खाखो।—रघुराज (शब्द०)।

मुहा०—आँख टोरना = लज्जा आदि से दृष्टि हटाना या अलग करना। आँख मोड़ना। दृष्टि छिपाना। उ०—सूर प्रभु के चरित सखियन कहत लोचन टोरि।—सूर (शब्द०)।

टोरा[1]—संज्ञा पुं० [देश०] जुलाहों का सूत तौलने का तराजू।

टोरा[2]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'टोड़ा'।

टोरा†[3]—संज्ञा पुं० [सं० तोक] [स्त्री० टोरी] लड़का। छोकड़ा।

टोरी†[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'टोड़ी'।

टोरी[2]—संज्ञा स्त्री० [अं०] दे० 'कंसरवेटिव'।

टोरी[3]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'टोली'। उ०—दो दो पंजे तो कसा लें इधर या उधर देखिए तो मेरी टोरी कैसी बढ़ बढ़के लात देती है।—फिसाना०, भा० १, पृ० ३।

टोरी[4]—संज्ञा पुं० [सं० तुवर] अरहर का वह छिलके सहित खड़ा दाना जो बनाई हुई दाल में रह जाय।

टोरो†—संज्ञा पुं० [देश०] १. रोड़ा। कंकड़। ईंट का टुकड़ा। २. लड़का।

टोल[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० तोलिका (= गढ़ के चारों ओर का घेरा, बाड़ा)] १. मंडली। समूह। जत्था। झुंड। उ०—(क) अपने अपने टोल कहत ब्रजवासी आई। भाव भक्ति लै चलीं सुदंपति आसी आई।—सूर (शब्द०)। (ख) टुनिहाई सब टोल में रही जु सौत कहाय। सुतौ ऐंचि तिय आप त्यौं करी अदोखिल आय।—बिहारी (शब्द०)।

यौ०—टोल मटोल = झुंड के झुंड।

२. मुहल्ला। बस्ती। टोला। उ०—आजु भोर तमचुर के रोल। गोकुल में आनंद होत है, मंगल धुनि महराने टोल।—सूर०, १०।६४। ३. चटसार। पाठशाला।

टोल[2]—संज्ञा पुं० [देश०] संपूर्ण जाति का एक राग जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं। इसके गाने का समय २५ दंड से २८ दंड तक है।

टोल[3]—संज्ञा पुं० [अं० टाल] सड़क का महसूल। मार्ग का कर। चुंगी।

यौ०—टोल कलेक्टर = कर लेनेवाला। महसूल वसूल करनेवाला

टोलना(५)—क्रि० स० [हिं०] दे० 'टटोलना'। उ०—नौ ताली दे दसवीं खोलिया। तब इस गढ़ महि एको टोलिया।—प्राण०, पृ० २८।

टोला[1]—संज्ञा पुं० [सं० तोलिका (= किसी स्तंभ या गढ़ के चारों ओर का घेरा, बाड़ा)] १. आदमियों की बड़ी बस्ती का एक भाग। महल्ला। उ०—घर में छोटे बड़े और टोला परोसियों के उत्साह भंग हो गए।—श्यामा०, पृ० ४७। २. एक प्रकार का व्यवसाय करनेवाले या एक जातिवाले लोगों की बस्ती। जैसे, चमरटोला।

टोला[2]—संज्ञा पुं० [देश०] बड़ी कौड़ी। कौड़ा। टग्घा।

टोला[3]—संज्ञा पुं० [देश०] १. गुल्ली पर डंडे की चोट।

क्रि० प्र०—खाना।

२. उँगली को मोड़कर पीछे निकली हुई हड्डी से मारने की क्रिया। ठूँग। उ०—जो वैष्णव आवे तो ताके मूँड में टोला देतो।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० ३३१। ३. पत्थर या ईंट का टुकड़ा। रोड़ा। ४. बेंत आदि के आघात का पड़ा हुआ चिह्न जो कभी लाल और कभी कुछ नीलापन लिए होता है। साँट। नील।

क्रि० प्र०—पड़ना।

टोलिया—संज्ञा स्त्री० [सं० तोलिका (= घेरा, हाता)] टोली। छोटा महल्ला।

टोली—संज्ञा स्त्री० [सं० तोलिका (= हाता, बाड़ा)] १. छोटा महल्ला। बस्ती का छोटा भाग। उ०—नैन बचाय चवाइन के नहिं रैन में ह्वाँ निकसी यह टोली।—सेवक (शब्द०)। २. समूह। झुंड। जत्था। मंडली। उ०—इस टोली ते सतगुरु राखे।—प्राण०, ८८। ३. पत्थर की चौकोर पटिया। सिल। ४. एक जाति का बाँस जो पूर्वीय हिमालय, सिक्किम और आसाम की ओर होता है।

विशेष—इसकी आकृति कुछ कुछ पेड़ों की होती है और इसमें ऊपर जाकर टहनियाँ निकलती हैं। यह बाँस बहुत सीधा और सुडौल होता है। टोकरे बनाने के लिये यह बाँस सबसे अच्छा समझा जाता है। यह छप्परों में लगता है और चटाइयाँ बनाने के काम में भी आता है। इसे 'नाल' और 'पकोक' भी कहते हैं।

टोलीधनवा—संज्ञा पुं० [हिं० टोली + धान] धान की तरह की एक घास जिसके नरम पत्ते घोड़े और चौपाए बड़े चाव से खाते हैं। इसके दानों को भी कहीं कहीं गरीब लोग खाते हैं।

टोवना†—क्रि० स० [हिं०] दे० 'टोना'।

टोवा—संज्ञा पुं० [देश०] गलही पर बैठनेवाला वह माझी जो पानी की गहराई जाँचता है।

टोह—संज्ञा स्त्री० [हिं० टोली] १. टटोल। खोज। ढूँढ। तलाश। पता।

मुहा०—टोह मिलना = पता लगना। टोह में रहना = तलाश में रहना। ढूँढते रहना। टोह लगाना या लेना = पता लगाना। सुराग लगाना।

२. खबर। देखभाल।

मुहा०—टोह रखना = खबर रखना। देखभाल रखना।

टोहना—क्रि० स० [हिं० टोह] १. ढूँढना। खोजना। २. हाथ लगाना। छूना। टटोलना। उ०—अब तनको धीरज न लगत हाथ अपनो सो मैं बहुतै टोह्यो।—घनानंद, पृ० ३४०।

टोहाटाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० टोह] १. छानबीन। ढूँढ़। तलाश। २. देखभाल।

टोहाली(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० टोहना] टोह । देखभाल । उ०—करि टोहाली नाम की बिगड़न कूं कछु नाहिं ।—राम० धर्म०, पृ० ७१ ।

टोहिया—वि० [हिं० टोह] १. टोह लगानेवाला । ढूंढनेवाला । २. जासूस ।

टोहियाना† - क्रि० स० [हिं०] दे० 'टोहना' ।

टोही—संज्ञा स्त्री० [हिं० टोह] तलाश करनेवाला । पता लगानेवाला ।

टौना(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'टोना' । उ०—धुनि सुनि मोही राधिका औ ब्रज सिगरी नारि, मनो टौना कर्यो ।—नंद० ग्रं०, पृ० १६८ ।

टौंस—संज्ञा स्त्री० [सं० तमसा] १. एक छोटी नदी जो अयोध्या के पश्चिम से निकलकर बलिया के पास गंगा में मिलती है ।

विशेष- रामायण में लिखी हुई तमसा यही है जहाँ बन को जाते हुए रामचंद्र जी ने अपना डेरा किया था तथा जिससे आगे चलकर गोमती और गंगा पड़ी थीं । बालकांड के आदि में तमसा के तट पर वाल्मीकि के आश्रम का होना लिखा है । अयोध्याकांड में प्रयाग से चित्रकूट जाते हुए भी रामचंद्र को वाल्मीकि का आश्रम मिला था पर वहाँ तमसा का कोई उल्लेख नहीं है । इससे संभव है कि वाल्मीकि दो स्थानों पर रहे हों ।

२. एक नदी जो मैहर के पास कैमोर पहाड़ से निकलकर रीवाँ होती हुई मिर्जापुर और इलाहाबाद के बीच गंगा से मिलती है ।

विशेष—इस नदी के तट पर वाल्मीकि का एक आश्रम बतलाया जाता है जो संभवतः उस आश्रम को सूचित करता हो जिसका उल्लेख अयोध्याकांड में है ।

३. एक नदी जो जमुनोत्री पहाड़ से निकलकर टेहरी और देहरादून होती हुई जमुना में जा मिली है ।

टौहना(पु)—क्रि० स० [हिं० टोहना] दे० 'टोहना' । उ०—टौहन को पतिया लिखी भेजतु थोहन कौं सबही धन धामैं ।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० ६३ ।

टौडिक(पु)—वि० [?] पेटू । उ०—टौडिक ह्वै घनआनंद डाटत काटत क्यों नहीं दीनता सो दिन ।—घनानंद, पृ० २५३ ।

टौनहाल— संज्ञा पुं० [अं० टाउनहाल] दे० 'टाउनहाल' ।

टौना टामन(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० टोना + अनु० टामन] जादू टोना । तंत्र मंत्र । उ०—टौना टामन मंत्र यंत्र सब साधन साधे ।—ब्रज० ग्रं०, पृ० १४ ।

टौर(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० टोल] समूह । झुंड । यूथ । उ०—यह औसर फाग को नीको फब्यो गिरिधारी हिले कहूँ टौरनि सौं ।—घनानंद, पृ० ५६८ ।

टौरना†—क्रि० स० [हिं० टेरना ?] भली बुरी बात की जाँच करना । २. किसी व्यक्ति या बात की थाह लेना । पता लगाना ।

टौरिया—संज्ञा स्त्री० [देश०] ऊँचा टीला । छोटी पहाड़ी । उ०—बैरी अपनी तोपें ऊँची टौरिया पर चढ़ा ले आवेगा और वहाँ से फाटक और बुर्ज को ध्वस्त करने का उपाय करेगा ।—झाँसी०, पृ० ३२० ।

टौरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] टीला । धुस्स । पहाड़ी ।

ट्यौंझा—संज्ञा पुं० [देश०] झंझट । बखेड़ा ।

ट्रंक—संज्ञा पुं० [अं०] लोहे का सफरी संदूक ।

ट्रंप—संज्ञा पुं० [अं०] १. ताश के खेल में वह रंग जो और रंगों के बड़े से बड़े पत्ते को काटने के लिये नियत किया जाता है । हुक्म का रंग । तुरुप । २. ट्रंप का खेल ।

ट्रक—संज्ञा स्त्री० [अं०] बोझा ढोनेवाली खुली मोटर ।

ट्राम—संज्ञा स्त्री० [अं०] बड़े बड़े नगरों में एक प्रकार की लंबी गाड़ी जो लोहे की बिछी हुई पटरी पर चलती है । इसमें पहले घोड़े लगते थे पर अब यह बिजली से चलाई जाती है ।

ट्रेडमार्क—संज्ञा पुं० [अं०] वह चिह्न जो व्यापारी लोग पहचानने के लिये अपने यहाँ के बने या भेजे हुए माल पर लगाते हैं । छाप ।

ट्रस्ट—संज्ञा पुं० [अं०] संपत्ति या दान । संपत्ति को इस विचार या विश्वास से दूसरे व्यक्ति के सुपुर्द करना कि वे संपत्ति का प्रबंध या उपयोग उसके स्वामी या अधिकारी की लिखापढ़ी या दानपत्र के अनुसार करेंगे ।

ट्रस्टी—संज्ञा पुं० [अं०] वह व्यक्ति जिसके सुपुर्द कोई संपत्ति इस विचार और विश्वास से की गई हो कि वह उस संपत्ति का प्रबंध या उपभोग उसके स्वामी या अधिकारी की लिखापढ़ी या दानपत्र के अनुसार करेगा । अभिभावक ।

ट्रांसपोर्ट—संज्ञा पुं० [अं०] १. माल असबाब एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाना । बारबरदारी । २. वह जहाज जिसपर सैनिक या युद्ध का सामान आदि एक स्थान से दूसरे स्थान को भेजा जाता है । ३. सवारी । गाड़ी ।

ट्रांसलेटर—संज्ञा पुं० [अं०] वह जो एक भाषा का दूसरी भाषा में उल्था करता है । भाषांतरकार । अनुवादक । जैसे, गवर्नमेंट ट्रांसलेटर ।

ट्रांसलेशन—संज्ञा पुं० [अं०] एक भाषा में प्रदर्शित भावों या विचारों को दूसरी भाषा के शब्दों में प्रगट करना । एक भाषा को दूसरी में उल्था करना । भाषांतर । अनुवाद । उल्था । तर्जुमा ।

ट्रूप—संज्ञा स्त्री० [अं० ट्रूप] १. पलटन । सैन्यदल । जैसे, ब्रिटिश ट्रूप । २. घुड़सवारों का एक दल जिसमें एक कप्तान की अधीनता में प्रायः साठ जवान होते हैं ।

ट्रूस—संज्ञा स्त्री० [अं०] दो लड़नेवाली सेनाओं के नायकों की स्वीकृति से लड़ाई का स्थगित होना । कुछ काल के लिये लड़ाई बंद होना । क्षणिक संधि ।

ट्रेक्टर—संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार का मशीनी हल ।

ट्रेजरर—संज्ञा पुं० [अं० ट्रेजरर] खजानची । कोषाध्यक्ष ।

ट्रेडिल—संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार का छापने का छोटा यंत्र ।

ट्रेडिल मशीन—संज्ञा स्त्री॰ [ग्रं॰] एक प्रकार का छापने का छोटा यंत्र जिसे एक आदमी पैर या बिजली आदि से चलाता तथा हाथ से उसमें कागज रखता जाता है। स्याही इसमें आपसे आप लग जाती है। इसमें (हाफटोन ब्लाक) फोटो की तसवीरें बहुत साफ छपती हैं और कार्य बहुत शीघ्रता से होता है।

ट्रेन—संज्ञा स्त्री॰ [ग्रं॰] १. रेलगाड़ी में लगी हुई गाड़ियों की पंक्ति। २. रेलगाड़ी।

मुहा॰—ट्रेन छूटना = रेलगाड़ी का स्टेशन पर से चल देना।

ट्रैजेडियन—संज्ञा पुं॰ [ग्रं॰] १. वह अभिनेता जो विषाद, शोक और गंभीर भावव्यंजक अभिनय करता हो। २. वियोगांत नाटक लिखनेवाला। वियोगांत नाटककलेखक।

ट्रैजेडी—संज्ञा स्त्री॰ [ग्रं॰] नाटक का एक भेद जिसमें किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के जीवन की महत्वपूर्ण घटना का वर्णन हो, मनोविकारों का खूब संघर्ष और द्वंद्व दिखाया गया हो और जिसका अंत शोक जनक या दुःखमय हो। वह नाटक जिसका अंत करुणोत्पादक और विषादमय हो। दुःखांत नाटक। वियोगांत नाटक।

ठ

ठ—व्यंजनों में बारहवाँ व्यंजन जिसके उच्चारण का स्थान भारत के प्राचीन वैयाकरणों ने मूर्धा कहा है। इसका उच्चारण करने मे बहुधा जीभ का अग्रभाग और कभी कभी मध्य भाग तालु के किसी हिस्से में लगाना पड़ता है। यह अघोष महाप्राण वर्ण है।

ठंकनाⓅ†—क्रि॰ स॰ [हिं॰ ढाँकना, ढँकना] छुपाना। ढाँकना। उ॰—(क) मावड़िया मुख ठंकिया, वैसे फाड़े बाक।—बाँकी॰ ग्रं॰, भा॰ २, पृ॰ १६। (ख) गोरख के गुरु महा मछींद्रा तिन्है पकरि सिर ठंका।—सं॰ दरिया, पृ॰ १३१।

ठंखा†—संज्ञा पुं॰ [देश॰] वृक्ष। पेड़ पौधा। उ॰—बरुनि बान सब ओपहुँ वेधे रन बन ठख।—जायसी ग्रं॰ (गुप्त), पृ॰ १८६।

ठंठ—वि॰ [सं॰ स्थाणु] १. जिसकी डाल और पत्तियाँ सूखकर या कटकर गिर गई हों। ठूँठा। सूखा (पेड़)। २. दूध न देने वाली (गाय)। ३. धनहीन। निर्धन।

ठंठनाना[1]—क्रि॰ अ॰ [ठंठं से नाम॰] ठंठं शब्द की ध्वनि होना।

ठंठनाना[2]—क्रि॰ स॰ ठठ की ध्वनि करना।

ठंठस†—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ डिण्डिश] ढेंढस। ढेंढसी।

ठंठारⓅ—वि॰ [हिं॰ ठंठ + आर (प्रत्य॰)] खाली। रीता। छूँछा। उ॰—जसु कछु दीजे धरन कहँ आपन लेहु सँभार। तस सिंगार सब लीन्हेंसि कीन्हेसि मोंहि ठंठार।—जायसी (शब्द॰)।

ठंठी[1]—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ ठंठ + ई (प्रत्य॰)] ज्वार, मूँग आदि का वह अन्न जो दाना पीटने के बाद बाल मे लगा रहता है।

ठंठी[2]—वि॰ स्त्री॰ (बूढ़ी गाय या भैंस) जिसके बच्चा और दूध देने की संभावना न हो। जैसे, ठंठी गाय।

ठंठोकना†—क्रि॰ स॰ [हिं॰] ठोकना। पीटना। उ॰—तन कूँ जमरो लूटसी लूटें धन कूँ लोक। नान्हों करि करि बालसी हरिया हाड़ ठंठोक।—रम॰ धर्म॰, पृ॰ ७०।

ठंड—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰] दे॰ 'ठंढ'।

ठंडई—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰] दे॰ 'ठंढाई'।

ठंडक—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰] दे॰ 'ठंढक'।

ठंडा—वि॰ [हिं॰] दे॰ 'ठंढा'।

ठंडाई—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰] दे॰ 'ठंढाई'।

ठंढ—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ ठंढा] शीत। सरदी। जाड़ा।

मुहा॰—ठंढ पड़ना = शीत का संचार होना। सरदी फैलना। ठंढ लगना = शीत का अनुभव होना।

ठंढई—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰] दे॰ 'ठंढाई'।

ठंढक—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ ठंढा + क (प्रत्य॰)] १. शीत। सरदी। उष्णता या गरमी का ऐसा अभाव जिसका विशेष रूप से अनुभव हो।

मुहा॰—ठंढक पड़ना = शीत का संचार होना। सरदी फैलना। ठंढक लगना = शीत का अनुभव होना। शीत का प्रभाव पड़ना।

२. ताप या जलन की कमी। ताप की शांति। तरी।

क्रि॰ प्र॰—आना।

३. प्रिय वस्तु की प्राप्ति या इच्छा की पूर्ति से उत्पन्न संतोष। तृप्ति। प्रसन्नता। तसल्ली।

क्रि॰ प्र॰—पड़ना।

४. किसी उपद्रव या फैले हुए रोग आदि की शांति। किसी हलचल या फैली हुई बीमारी आदि की कमी या अभाव। जैसे,—इधर शहर में हैजे का बड़ा जोर था पर अब ठंढक पड़ गई है।

क्रि॰ प्र॰—पड़ना।

ठंढा—वि॰ [सं॰ स्तब्ध, प्र॰ तद्ध, थड्ढ, ठड्ढ] [वि॰ स्त्री॰ ठंढी] १. जिसमें उष्णता या गरमी का इतना अभाव हो कि उसका अनुभव शरीर को विशेष रूप से हो। सर्द। शीतल। गरम का उलटा।

क्रि॰ प्र॰—करना।—होना।

मुहा॰—ठंढे ठंढे = ठंढ के वक्त में। धूप निकलने के पहले। तड़के। सबेरे। उ॰—रात भर सोओ, सबेरे उठकर ठंढे ठंढे चले जाना।

यौ॰—ठंढी आग = (१) हिम। बरफ। (२) पाला। तुषार। ठंढी कड़ाही, ठंढी कढ़ाई = हलवाइयों और बनियों में सब पकवान बना चुकने के पीछे हलुआ बनाकर बाँटने की रीति। ठंढी मार = भीतरी मार। ऐसी मार जिसमें ऊपर देखने में कोई टूटा फूटा न हो पर भीतर बहुत चोट आई

हो। मुसी मार। (जैसे, लात घूसों आदि की)। ठंढी मिट्टी = (१) ऐसा शरीर जो जल्दी न बढ़े। ऐसी देह जिसमें जवानी के चिह्न जल्दी न मालूम हों। (२) ऐसा शरीर जिसमें कामोद्दीपन न हो। ठंढी साँस = ऐसी साँस जो दुःख या शोक के आवेग के कारण बहुत खींचकर ली जाती है। दुःख से भरी साँस। शोकोच्छ्वास। आह।

मुहा०—ठंढी साँस लेना या भरना = दुःख की साँस लेना।

२. जो जलता हुआ या दहकता हुआ न हो। बुझा हुआ। बुता हुआ। जैसे, ठंढा दीया।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

३. जो उद्दीप्त न हो। जो उद्विग्न न हो। जो भड़का न हो। उद्गाररहित। जिसमें आवेश न हो। शांत। जैसे, क्रोध ठंढा होना, जोश ठंढा होना।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग आवेश और आवेश धारण करनेवाले व्यक्ति दोनों के लिये होता है। जैसे, क्रोध ठंढा पड़ना, उत्साह ठंढा पड़ना, क्रुद्ध मनुष्य का ठंढा पड़ना, उत्साह में आए हुए मनुष्य का ठंढा पड़ना, आदि।

क्रि० प्र०—करना।—पड़ना।—होना।

मुहा०—ठंढा करना = (१) क्रोध शांत करना। (२) ढाढ़स देकर शोक कम करना। ढाढ़स बँधाना। तसल्ली देना। माता या शीतला ठंढी करना = शीतला या चेचक के अच्छे होने पर शीतला की अंतिम पूजा करना।

४. जिसे कामोद्दीपन न होता हो। नामर्द। नपुंसक। ५. जो उद्वेगशील या चंचल न हो। जिसे जल्दी क्रोध आदि न आता हो। धीर। शांत। गंभीर। ६. जिसमें उत्साह या उमंग न हो। जिसमें तेजी या फुरती न हो। बिना जोश का। धीमा। सुस्त। मंद। उदासीन।

यौ०—ठंढी गरमी = (१) ऊपर की प्रीति। बनावटी स्नेह का आवेश। (२) बातों का जोश। उ०—बस बस यह ठंढी गरमियाँ हमें न दिखाया करो।—सैर०, पृ० १४। ठंढा युद्ध, ठंढी लड़ाई = आधुनिक राजनीति में दाँव पेंच की लड़ाई। इसे शीत युद्ध भी कहते हैं। यह अंग्रेजी शब्द कोल्ड वार का अनुवाद है।

७. जो हाथ पैर न हिलाए। जो इच्छा के प्रतिकूल कोई बात होते देखकर कुछ न बोले। चुपचाप रहनेवाला। विरोध न करनेवाला। जैसे,—वे बहुत इधर उधर करते थे पर जब खरी खरी सुनाई तब ठंढे पड़ गए।

क्रि० प्र०—पड़ना।—रहना।

मुहा०—ठंढे ठंढे = चुपचाप। बिना चूँ किए। बिना विरोध या प्रतिवाद किए।

८. जो प्रिय वस्तु की प्राप्ति या इच्छा की पूर्ति से संतुष्ट हो। तृप्त। प्रसन्न। खुश। जैसे,—लो, आज वह चला जायगा, अब तो ठंढे हुए।

क्रि० प्र०—होना।

मुहा०—ठंढे ठंढे = हँसी खुशी से। कुशल आनंद से। ठंढे ठंढे घर आना = बहुत तृप्त होकर लौटना (अर्थात् असंतुष्ट होकर या निराश होकर लौटना (व्यंग्य)। ठंढे पेटों = हँसी खुशी से। प्रसन्नता से। बिना मनमोटाव या लड़ाई झगड़े के। सीधे से। ठंढा रखना = आराम चैन से रखना। किसी बात की तकलीफ न होने देना। संतुष्ट रखना। ठंढे रहो = प्रसन्न रहो। खुश रहो। (स्त्रियों द्वारा प्रयुक्त एवं आशीर्वादात्मक)।

९. निश्चेष्ट। जड़। मृत। मरा हुआ।

मुहा०—ठंढा होना = मर जाना। ताजिया ठंढा करना = ताजिया दफन करना। (मूर्ति या पूजा की सामग्री आदि को) ठंढा करना = जल में विसर्जन करना। डुबाना। (किसी पवित्र या प्रिय वस्तु को) ठंढा करना = (१) जल मे विसर्जन करना। डुबाना। (२) किसी पवित्र या प्रिय वस्तु को फेंकना या तोड़ना फोड़ना। जैसे, चूड़ियाँ ठंढी करना।

१०. जिसमे चहल पहल न हो। जो गुलजार न हो। बेरौनक।

मुहा०—बाजार ठंढा होना = बाजार का चलता न होना। बाजार मे लेनदेन खूब न होना।

ठंढाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठंढा + ई (प्रत्य०)] १. वह दवा या मसाला जिससे शरीर की गरमी शांत होती है और ठंढक आती है।

विशेष—सौंफ, इलायची, कासनी, ककड़ी, कद्दू, खरबूजे आदि के बीज, गुलाब की पँखड़ी, गोल मिर्च आदि को एक में पीसकर प्रायः ठंढाई बनाई जाती है।

२. ऊपर लिखे मसालों से युक्त भाँग या शर्बत।

क्रि० प्र०—पीना।—लेना।

ठंढा मुलम्मा—संज्ञा पुं० [हिं० ठंढा + अ० मुलम्मा] बिना आँच के सोना चाँदी चढ़ाने की रीति। सोने चाँदी का पानी जो बैटरी के द्वारा या तेजाब की लाग से चढ़ाया जाता है।

ठंढी¹—वि० स्त्री० [हिं०] दे० 'ठंढा' और उसके मुहा०।

ठंढी²—संज्ञा स्त्री० शीतला। चेचक (स्त्रि०)।

मुहा०—ठंढी लगना = शीतला के दानों का मुरझाना। चेचक का जोर कम होना। ठंढी निकलना = शीतला के दाने शरीर पर होना। शीतला या चेचक का रोग होना।

ठंभनां—संज्ञा पुं० [सं० स्तम्भन, प्रा० ठंभन] रुकने की स्थिति। रुकावट। उ०—बिन यो ठंभन जग माहीं, एक हरि बिन दूजा नाहीं।—राम० धर्म०, पृ० २५३।

ठंसरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का तंत्रवाद्य [को०]।

ठः—संज्ञा पुं० [सं० अनुध्व०] एक ध्वनि जो किसी धातुपात्र के कड़ी जमीन या सीढ़ियों पर गिरने से अंत में होती है [को०]।

ठ—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिव। २. महाध्वनि। ३. चंद्रमंडल या सूर्यमंडल। ४. मंडल। घेरा। ५. शून्य। ६. गोचर। इंद्रियग्राह्य वस्तु।

ठई—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठइ > ठही] स्थिति। थाह। अवस्था।

ठउर†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ठौर'। उ०—उहाँ सर्व सुख निधि प्रति बिलास है प्रमंत थानसम ठउरा।—प्राण०, पृ० ६५।

ठउवाँ†Ⓟ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ठाँव'। उ०—जंगम जोग बिचारै जहूवाँ, जीव सीव करि एकै ठउवाँ।—कबीर ग्रं०, पृ० २२३।

ठक¹—संज्ञा स्त्री० [अनुध्व० ठक] एक वस्तु पर दूसरी वस्तु को जोर से मारने का शब्द। ठोंकने का शब्द।

ठक²—वि० [सं० स्तब्ध, प्रा० ट्ठ] स्तब्ध। भौचक्का। आश्चर्य या घबराहट से निश्चेष्ट। सन्नाटे में आया हुआ।

मुहा०—ठक से होना = स्तब्ध होना। आश्चर्य में होना। उ०—उनकी सौम्य मूर्ति पर लोचन ठक से बँध जाते।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३८।

क्रि० प्र०—रह जाना।—हो जाना।

ठक³—संज्ञा पुं० [देश०] चंडूबाजों की सलाई या सूजा जिसमें अफीम का किवाम लगाकर सेंकते हैं।

ठक‡⁴—संज्ञा पुं० [हिं० ठग] दे० 'ठग'। जैसे, ठकमूरी (=ठगमूरी)। उ०—ठाकुर ठक भए गेल चोरें चप्परि घर लिज्झिअ।—कीर्ति०, पृ० १६।

ठकठक—संज्ञा स्त्री० [अनुध्व० ठक्ठक्] १. लगातार होनेवाली ठक्ठक् की ध्वनि या आवाज। २. झगड़ा। बखेड़ा। टंटा। झंझट। उ०—ठकठक जन्म मरन का मेटैं जम के हाथ न आवै।—कबीर० श०, पृ० २६। (ख) उठि ठकठक एती कहा, पावस के अभिसार। जानि परैगी देखि यों दामिनि घन अँधियार।—बिहारी (शब्द०)।

ठकठकाना¹—क्रि० स० [अनुध्व० ठकठक] १. एक वस्तु पर दूसरी वस्तु पटककर शब्द करना। खटखटाना। २. ठोंकना। पीटना।

ठकठकाना‡²—क्रि० अ० स्तब्ध होना। ठक से होना।

ठकठकिया—वि० [अनुध्व० ठकठक+हिं० इया (प्रत्य०)] १. हुज्जती। थोड़ी सी बात के लिये बहुत दलील करनेवाला। तकरार करनेवाला। बखेड़िया।

ठकठौआ—संज्ञा पुं० [अनुध्व०] १. एक प्रकार की करताल। २. करताल बजाकर भीख माँगनेवाला। ३. एक प्रकार की छोटी नाव।

ठकमूरीⓅ†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] स्तब्ध या निश्चेष्ट करनेवाली बूटी। दे० 'ठगमूरी'। उ०—जा दिन का डर मानता सोइ बेला आई। चित्त न कीन्ही राम की ठकमूरी खाई।—मलूक०, बानी, पृ० ११।

ठकाⓅ†—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठक (=आघात या धक्का)] धक्का। चोट। आघात। उ०—करै मार पग्गं ठका देत जावै।—प० रासो, पृ० १४४।

ठकार—संज्ञा पुं० [सं०] 'ठ' अक्षर।

ठकुआ†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ठोंकवा'।

ठकुरई†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ठकुराई'।

ठकुरसुहातीⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठाकुर (=मालिक)+सुहाना] ऐसी बात जो केवल दूसरे को प्रसन्न करने के लिये कही जाय। लल्लोचप्पो। खुशामद। तोषमोद। उ०—हमहु कहब अब ठकुरसुहाती।—तुलसी (शब्द०)।

ठकुर सोहाती—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ठकुरसुहाती'। उ०—ठकुर-सोहाती कर रहे हो कि एकाध पसल मिल जाय।—मान०, भा० ५, पृ० ३०।

ठकुराइतⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ठकुरायत'। उ०—जो कही क्यों गई दासी हमारी। तजि तजि गृह ठकुराइत भारी।—नंद० ग्रं०, पृ० ३२१।

ठकुराइति, ठकुराइती†—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठकुरायत+ई (प्रत्य०)] स्वामित्व। प्रभुत्व। आधिपत्य। उ०—रमा उमा सी दासी जाकी। ठकुराइति का कहिये ताकी।—नंद० ग्रं०, पृ० १३०।

ठकुराइन†—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठाकुर] १. ठाकुर की स्त्री। स्वामिनी। मालकिन। उ०—नहिं दासी ठकुराइन कोई। जहँ देखो तहँ ब्रह्म है सोई।—सूर(शब्द०)। २. क्षत्रिय की स्त्री। क्षत्राणी। ३. नाइन। नाउन। नाई की स्त्री। उ०—देव स्वरूप की रासि निहारति पाँय ते सीस लौं सीस ते पाइन। ह्वै रही ठौर ही ठाढ़ी ठगी सी हँसे कर ठोढ़ी दिए ठकुराइन।—देव (शब्द०)।

ठकुराइस†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ठकुरायत'।

ठकुराई—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठाकुर] १. आधिपत्य। प्रभुत्व। सरदारी। प्रधानता। उ०—अब तुलसी गिरधर बिनु गोकुल को करिहै ठकुराई।—तुलसी (शब्द०)। २. ठाकुर का अधिकार। स्वामी होने के अधिकार का उपयोग। जैसे,—खेल में कैसी ठकुराई? उ०—न्याव न किय कीनी ठकुराई। बिना किए लिखि दीनि बुराई।—जायसी (शब्द०)। ३. वह प्रदेश जो किसी ठाकुर या सरदार के अधिकार में हो। राज्य। रियासत। ४. उच्चता। बड़प्पन। महत्व। बड़ाई। उ०—हरि के जन की अति ठकुराई। महाराज ऋषिराज राजहूँ देखत रहे लजाई।—सूर (शब्द०)।

ठकुरानी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठाकुर] १. ठाकुर या सरदार की स्त्री। जमींदार की स्त्री। २. रानी। उ०—निज मंदिर लै गई रुक्मिनी पहुनाई बिधि ठानी। सूरदास प्रभु तहँ पग धारे जहँ दोऊ ठकुरानी।—सूर (शब्द०)। ३. मालकिन। स्वामिनी। अधीश्वरी। ४. क्षत्रिय की स्त्री। क्षत्राणी।

ठकुरानी तीज†—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठकुरानी+तीज] श्रावण शुक्ल तृतीया को मनाया जानेवाला एक व्रत। हरियाली तीज।

ठकुरायⓅ—संज्ञा पुं० [हिं० ठाकुर] क्षत्रियों का एक भेद। उ०—बहुरवार परहार सकूरे। कलहंस औ ठकुराय जूरे।—जायसी (शब्द०)।

ठकुरायत—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठाकुर] आधिपत्य। स्वामित्व। प्रभुत्व। उ०—ठकुरायत गिरधर की साँची। कौरव जीति जुधिष्ठिर राजा कीरति तिहूँ लोक में माँची।—सूर०, १।१७। २. वह प्रदेश जो किसी ठाकुर या सरदार के अधिकार में हो। रियासत।

ठकुराल[1]—संज्ञा पुं० [हिं० ठाकुर + आल (प्रत्य०)] दे० 'ठाकुर'। उ०—बस्या ठकुराल्या न लावीय वार। भोज तणी मिलिया असवार।—बी० रासो०, पृ० १६।

ठकुरास—संज्ञा स्त्री० [हिं०] ठकुराइस। अधिकारक्षेत्र। रियासत। उ०—तुम्हें मिली है मानव हिय की यह चंचल ठकुरास। पर, हमको तो मिली अचंचल मस्ती की जागीर।—अपलक, पृ० ७३।

ठकोरा—संज्ञा पुं० [हिं० ठक + ओरा (प्रत्य०)] टकोर। आघात। चोट। उ०—कजर के पहुर गजर ठकोरा बगे।—रघु० रू०, पृ० २३८।

ठकोरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० टेकना, ठेकना + ओरी (प्रत्य०)] १. सहारा लेने की लकड़ी। उ०—(क) भक्त भरोसे राम के निधरक ऊँची दीठ। तिनको करम न लागई राम ठकोरी पीठ।—कबीर (शब्द०)। (ख) देखादेखी पकरिया गई छिनक में छूटि। कोई बिरला जन ठाहरै जासु ठकोरी पूठि।—कबीर (शब्द०)।

विशेष—यह लकड़ी अड्डे के आकार की होती है। पहाड़ी लोग जब बोझ लेकर चलते चलते थक जाते हैं तब इस लकड़ी को पीठ या कमर से भिड़ाकर उसी के बल पर थोड़ी देर खड़े हो जाते हैं। साधु लोग भी इसी प्रकार की लकड़ी सहारा लेने के लिये रखते हैं और कभी कभी इसी के सहारे बैठते हैं। इसे वे बैरागिन या जोगिनी भी कहते है।

ठक्क—संज्ञा पुं० [सं०] व्यापारी [को०]।

ठक्कर[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'टक्कर'।

ठक्कर[2]—संज्ञा पुं० [सं० ठक्कुर] गुजरातियों की एक जातीय उपाधि या अल्ल।

ठक्कुर—संज्ञा पुं० [सं०] १. देवता। ठाकुर। पूज्य प्रतिमा। २. मिथिला के ब्राह्मणों की एक उपाधि।

ठग—संज्ञा पुं० [सं० स्थग] [स्त्री० ठगनी, ठगिन ठगिनी] १. धोखा देकर लोगों का धन हरण करनेवाला व्यक्ति। वह लुटेरा जो छल और धूर्तता से माल लूटता है। भुलावा देकर लोगों का माल छीननेवाला। उ०—जग हटवारा स्वाद ठग, माया वेश्या लाय। राम नाम गाढ़ा गहो जनि कहुँ जाहु ठगाय।—कबीर (शब्द०)।

विशेष—डाकू और ठग में यह अंतर है कि डाकू प्रायः जबरदस्ती बल दिखाकर माल छीनते हैं पर ठग अनेक प्रकार की धूर्तता करते हैं। भारत में इनका एक अलग संप्रदाय सा हो गया था।

मुहा०—ठग लगना = ठगों का आक्रमण करना या पीछे पड़ना। जैसे,—उस रास्ते मे बहुत ठग लगते हैं। ठग के लाड़ू = दे० 'ठगलाड़ू'।

यौ०—ठगमूरी। ठगमोदक। ठगलाड़ू। ठगविद्या।

२. छली। धूर्त। धोखेबाज। वंचक। प्रतारक।

ठगई—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठग + ई (प्रत्य०)] १. ठगपना। ठग का काम। २. धोखा। छल। फरेब।

ठगण—संज्ञा पुं० [सं०] मात्रिक छंदों के गणों में से एक। यह पाँच मात्राओं का होता है और इसके ८ उपभेद हैं।

ठगना[1]—क्रि० स० [हिं० ठग + ना (प्रत्य०)] धोखा देकर माल लूटना। छल और धूर्तता से धन हरण करना। २. धोखा देना। छल करना। धूर्तता करना। भुलावे में डालना।

मुहा०—ठगा सा, ठगी सी = धोखा खाया हुआ। भूला हुआ। चकित। भौचक्का। आश्चर्य से स्तब्ध। दंग। उ०—(क) करत कछु नाही आजु बनी। हरि आए हौं रही ठगी सी जैसे चित्र धनी।—सूर (शब्द०)। (ख) चित्र में काढ़ी सी ठाढ़ी ठगी सी रही कछु देख्यो सुन्यो न सुहात है।—सुंदरीसर्वस्व (शब्द०)।

३. उचित से अधिक मूल्य लेना। वाजिब से बहुत ज्यादा दाम लेना। सौदा बेचने में बेईमानी करना। जैसे,—यह दूकानदार लोगों को बहुत ठगता है।

संयो० क्रि०—लेना।

ठगना[2]—क्रि० अ० १. ठगा जाना। धोखा खाकर लुटना। २. धोखे मे आना। चकित होना। आश्चर्य से स्तब्ध होना। ठक रह जाना। दंग रहना। उ०—(क) तेउ यह चरित देखि ठगि रहहीं।—तुलसी (शब्द०)। (ख) बिनु देखे बिन ही सुने ठगत न कोउ बाँच्यो।—सूर (शब्द०)।

ठगनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठग] १. ठग की स्त्री। २. ठगनेवाली स्त्री। ३. धूर्त स्त्री। छलनेवाली स्त्री। ४. कुटनी।

ठगपन—संज्ञा पुं० [हिं० ठग + पन (प्रत्य०)] दे० 'ठगपना'।

ठगपना—संज्ञा पुं० [हिं० ठग + पन + आ (प्रत्य०)] १. ठगने का काम या भाव। २. धूर्तता। छल। चालाकी।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

ठगमूरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठग+मूरि] वह नशीली जड़ी बूटी जिसे ठग लोग पथिकों को बेहोश करके उनका धन लूटने के लिये खिलाते थे।

मुहा०—ठगमूरी खाना = मतवाला होना। होशहवाश में न रहना। उ०—(क) काहू तोहि ठगोरी लाई। बूझति सखी सुनति नहि नेकहु तुही किधौ ठगमूरी खाई।—सूर (शब्द०)। (ख) ज्यौं ठगमूरी खाइके मुखहि न बोलै बैन। टुगर टुगर देख्या करै सुंदर बिरहा ऐन।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० ६८३।

ठगमूरी[2]—वि० स्त्री० ठगमूरी से प्रभावित। उ०—टक टक ताकि रही ठगमूरी आपा आप बिसारी हो।—पलटू०, भा० ३, पृ० ८४।

ठगमोदक—संज्ञा पुं० [हिं० ठग + सं० मोदक] दे० 'ठगलाड़ू'। उ०—चलत चितै मुसकाय के मृदु बचन सुनाए। तेही ठगमोदक भए, मन धीर न, हरि तन छूछो छिटकाए।—सूर (शब्द०)।

ठगलाड़ू—संज्ञा पुं० [हिं० ठग + लाडू (= लड्डू)] ठगों का लड्डू जिसमे नशीली या बेहोशी करनेवाली चीज मिली रहती थी।

विशेष—ऐसा प्रसिद्ध है कि ठग लोग पथिकों से रास्ते में मिलकर उन्हें किसी बहाने से अपना लड्डू खिला देते थे जिसमें विष

या कोई नशीली चीज मिली रहती थी। जब लड्डू खाकर पथिक मूर्छित या बेहोश हो जाते थे तब वे उनके पास जो कुछ होता था सब ले लेते थे।

मुहा०—ठगलाड़ू खाना = मतवाला होना। होशहवास में न रहना। बेसुध होना। उ०—सूर कहा ठगलाड़ू खायो। इत उत फिरत मोह को मातो कबहुँ न सुधि करि हरि चित लायो।—सूर (शब्द०)। ठगलाड़ू देना = बेसुध करनेवाली वस्तु देना। उ०—मनहु दीन ठगलाड़ू देख आय तस मीच।—जायसी (शब्द०)।

ठगलीला—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठग + लीला] ठगों का मायाजाल। वंचना। धोखाधड़ी। उ०—छूटेगी जग की ठगलीला होंगी आँखें अंतःशीला।—बेला, पृ० ७६।

ठगवा⑤†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ठग'। उ०—कौनो ठगवा नगरिया लूटल हो।—कबीर० श०, भा० १, पृ० २।

ठगवाना—क्रि० स० [हिं० ठगना का प्रे० रूप] दूसरे से किसी को धोखा दिलवाना।

ठगविद्या—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठग+सं० विद्या] ठगों की कला। धूर्तता। धोखेबाजी। छल। वंचकता।

ठगहाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठग + हाई (प्रत्य०)] ठगपना।

ठगहारी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठग + हारी (प्रत्य०)] ठगपना।

ठगाइनि⑤—संज्ञा स्त्री० [हिं०] ठगनेवाली स्त्री। ठगिनी। उ०—बदि परे नर काल के बुद्धि ठगाइनि जानि।—कबीर० श०, भा० ४, पृ० ८८।

ठगाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठग+आई (प्रत्य०)] दे० 'ठगपना'।

ठगाठगी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठग] धोखेबाजी। वंचकता। धोखाधड़ी।

ठगाना†—क्रि० अ० [हिं० ठगना] १. ठगा जाना। धोखे में आकर हानि सहना। २. किसी वस्तु का अधिक मूल्य दे देना। दूकानदार की बातों में आकर ज्यादा दाम दे देना। जैसे,—इस सौदे में तुम ठगा गए। ३. (किसी पर) आसक्त होना। मुग्ध होना।

संयो० क्रि०—जाना।

ठगाही†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ठगाई', 'ठगहाई'। उ०—नाहक नर सूली धरि दीन्हों। जिन बन माँहि ठगाही कीन्हों।—विश्राम (शब्द०)।

ठगिन—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठग + इन (प्रत्य०)] १. धोखा देकर लूटनेवाली स्त्री। लुटेरिन। २. ठग की स्त्री। ३. धूर्त स्त्री। चालबाज औरत।

ठगिनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठग + इनी (प्रत्य०)] १. लुटेरिन। धोखा देकर लूटनेवाली स्त्री। उ०—ठगति फिरति ठगिनी तुम नारी। जोइ आवति सोइ सोइ कहि डारति जाति जनावति दै दै गारी।—सूर (शब्द०)। २. ठग की स्त्री। ३. धूर्त स्त्री। चालबाज स्त्री।

ठगिया¹—संज्ञा पुं० [हिं० ठग + इया (प्रत्य०)] दे० 'ठग'। उ०—जुरे सिद्ध साधक ठगिया से बड़ो जाल फैलायो।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ४४६।

ठगिया²—वि० ठगनेवाला। छलनेवाला। उ०—ठगिया तेरे नैन ये छल बल भरे कितेब।—स० सप्तक, पृ० १६३।

ठगी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठग + ई (प्रत्य०)] १ ठग का काम। धोखा देकर माल लूटने का काम। २ ठगने का भाव। ३. धूर्तता। धोखेबाजी। चालबाजी।

ठगोरी⑤—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठग + बौरी] ठगों की सी माया। मोहित करने का प्रयोग। मोहिनी। सुधबुध भुलानेवाली शक्ति। टोना। जादू। उ०—(क) जानहु लाई काहु ठगोरी। खन पुकार खन बाँधै बौरी।—जायसी (शब्द०)। (ख) दसन चमक अधरन अरुनाई देखत परी ठगोरी।—सूर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—डालना।—पड़ना।—लगना।—लगाना।

ठगौरी⑤—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठगोरी] दे० 'ठगोरी'। उ०—रूप ठगौरी डार मन मोहन लैगो साथ। तब तें सौंसें भरत हैं नारी नारी हाथ।—स० सप्तक, पृ० १८५।

ठट—संज्ञा पुं० [सं० स्थाता (= जो खड़ा हो), या देश०] १. एक स्थान पर स्थित बहुत सी वस्तुओं का समूह। एक स्थान पर खड़े बहुत से लोगों की पंक्ति।

मुहा०—ठट के ठट = झुंड के झुंड। बहुत से। उ०—रात का वक्त था मगर ठट के ठट लगे हुए थे।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १०४। ठट लगना = (१) भीड़ जमना। भीड़ खड़ी होना। (२) ढेर लगना। राशि इकट्ठी होना।

२. समूह। झुंड। पंक्ति। उ०—अंबर अमर हरखत बरखत फूल सनेह सिथिल गोप गाहन के ठट हैं।—तुलसी (शब्द०)। ३. बनाव। रचना। सजावट। उ०—परखत प्रीति प्रतीति पैज पन रहे काज ठट ठानि हैं।—तुलसी (शब्द०)।

यौ०—ठटवारी = सजाववाली। बनाव वाली।

ठटकीला—वि० [हिं० ठाट] [वि० स्त्री० ठटकीली] सजा हुआ। ठाटदार। सजीला। तड़क भड़कवाला। उ०—आछी चरननि कंचन लकुट ठटकील बनमाल कर टेके द्रुमडार टेढ़े ठाढ़े नंदलाल छबि छाई घट घट।—सूर० (शब्द०)।

ठटना¹—क्रि० स० [सं० स्थाता (= जो खड़ा या ठहरा हो)। हिं० ठाट, ठाढ़] १. ठहराना। निश्चित करना। स्थिर करना। उ०—होत सु जो रघुनाथ ठटी। पचि पचि रहे सिद्ध, साधक, मुनि तऊ बढ़ी न घटी।—सूर (शब्द०)। २. सजाना। सुसज्जित करना। तैयार करना। उ०—(क) नृप बन्यो विकट रन ठाट ठटि मारु मारु धरु मारु रटि।—गोपाल (शब्द०)। (ख) कोऊ करि जलपान मुरैठा ठटि ठटि बान्हत।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० २४०।

मुहा०—ठटकर बातें करना = बना बनाकर बातें करना। एक एक शब्द पर जोर देते हुए बातें करना।

३. (राग) छेड़ना। आरंभ करना। उ०—नव निकुंज गृह नवल आगे नवल बीना मधि राग गौरी ठटी।—हरिदास (शब्द०)।

ठटना[२]—क्रि० अ० १. खड़ा रहना। अड़ना। डटना। उ०—खैंचत स्वाद स्वाम पातर ज्यौं चातक रटत ठटी।—सूर (शब्द०)। २. विरोध में जमना। विरोध में डटा रहना। ३. सजना। सुसज्जित होना। तैयार होना। उ०—अबहीं आइ चढ़ै दल ठटा। देखत जैस गगन घन घटा।—जायसी (शब्द०)। ४. एकत्र होना। जमाव होना। पुंजीभूत होना। उ०—छत्तीस राग रागनि रसनि तंत ताल कंठन ठटहि।—पृ० रा०, ८।२। ५. स्थित होना। धरना। करना। साधना। उ०—कोई नाँव रटैं कोई ध्यान ठटैं कोई खोजत ही थक जावता है।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० २९८।

ठटनिⓅ, **ठटनी**—संज्ञा स्त्री० [हि० ठटना] बनाव। रचना। सजावट। उ०—नाभि भँवर त्रिवली तरंग गति पुलिन पुलिन ठटनी।—सूर (शब्द०)।

ठटया—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का जंगली जानवर।

ठटरी—संज्ञा स्त्री० [हि० ठाट] १. हड्डियों का ढाँचा। अस्थिपंजर।

मुहा०—ठटरी होना = दुबला होना। कृशांग होना।

२. घास भूसा आदि बाँधने का जाल। खरिया। खड़िया। ३. किसी वस्तु का ढाँचा। ४. मुरदा उठाने की रथी। अरथी।

ठट्ठा—संज्ञा पुं० [हि० ठाठ] बनाव। रचना। सजावट।

ठट्ट—संज्ञा पुं० [सं० तट, हि० टट्टी या सं० स्थाता] १. एक स्थान पर स्थित बहुत सी वस्तुओं का समूह। एक स्थान पर खड़े बहुत से लोगों की पंक्ति। २. समूह। झुंड। समुदाय। पंक्ति। उ०—(क) इम रहहि गणंता बिरुद भणंता, भट्टा ठट्टा पेक्खीआ।—कीर्ति०, पृ० ४८। (ख) देखि न जाय कपिन कै ठट्टा। अति बिशाल तनु भालु सुभट्टा।—तुलसी (शब्द०)। (ग) पियत भट्ट कै ठट्ट अरु गुजरातिन के वृंद।—हरिश्चंद्र (शब्द०)।

• **ठट्टना**Ⓟ—क्रि० अ० [हि० गठना] आयोजन करना। ठाटना। उ०—सु रोमराइ राजई उपंम कब्बि साजई। सुमेर शृंग कंद कै, चढ़ै पपील चंद कै। उमंग कब्बि ठट्टई घनक्क मुट्ठि चट्टई।—पृ० रा०, २५। १३९।

ठट्टी—संज्ञा स्त्री० [हि० ठाट] ठटरी। पंजर। हड्डी का ढाँचा। उ०—उर अंतर घुँघुआइ जरै जस काँच की भट्टी। रक्त मांस जरि जाय रहै पाँजर की ठट्टी।—गिरधर (शब्द०)।

ठट्ठा—संज्ञा पुं० [हि० ठट्ट] दे० 'ठट' और 'ठट्ट'।

ठट्ठई—संज्ञा स्त्री० [हि० ठट्ठा] ठट्ठा। दिल्लगी। हँसी।

ठट्ठा[१]—संज्ञा पुं० [सं० अट्टहास या सं० टट्टरी (= उपहास)] हँसी। उपहास। दिल्लगी। मसखरापन। खिल्ली। उ०—तब मीरू ने कहा कि लोग मुझको हँसेंगे और ठट्ठा में उड़ावेंगे।—कबीर मं०, पृ० १०४।

क्रि० प्र०—करना।

यौ०—ठट्ठाबाज, ठट्ठेबाज = दिल्लगीबाज। ठट्ठेबाजी = दिल्लगी।

मुहा०—ठट्ठा उड़ाना = उपहास करना। दिल्लगी करना। उ०—और लोग तरह तरह की नकलें करके उसका ठट्ठा उड़ाने लगे।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० १७६। ठट्ठा मारना = खिलखिलाना। अट्टहास करना। ठट्ठा में उड़ाना = किसी की चर्चा या कथन को मजाक समझना। खिल्ली उड़ाना। ठट्ठा लगाना = खिलखिलाकर हँसना। ठठाकर हँसना। अट्टहास करना।

ठठ—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ठट'। २. 'ठाठ'। उ०— करि पान गंधा जल बिमल फिर ठठे ठठ घमसान कै।—हिम्मत०, पृ० २२।

ठठईⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० टट्टरी] हँसी। ठट्ठा। मसखरापन। उ०—हुतो न साँचो सनेह मिटयो मन को, हरि परे उघरि, संदेसहु ठठई।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४४३।

ठठकनाⓅ†—क्रि० अ० [सं० स्थेय + करण] १. एकबारगी रुक या ठहर जाना। ठिठकना। उ०—(क) ठठकति चलै मटकि मुँह मोरै बंकट भौंह चलावै।—सूर (शब्द०)। (ख) डग कुडगति सी चलि ठठकि चितई चली निहारि। लिये जाति चित चोरटी वहै गोरटी नारि।—बिहारी (शब्द०)। २. स्तंभित हो जाना। क्रियाशून्य हो जाना। ठक रह जाना। उ०—मन में कछु कहन चहै देखत ही ठठकि रहै सूर श्याम निरखत दुरी तन सुधि बिसराय।—सूर (शब्द०)।

ठठकान†—संज्ञा स्त्री० [हि० ठठकना] ठठकने का भाव।

ठठना†—क्रि० स० क्रि० अ० [हि०] दे० 'ठटना'। उ०—चौकि चलै, ठठि छैल छलै, सु छबीली छराय लौं छाँह न छुवावै।—घनानंद, पृ० २१२।

ठठरी†—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ठटरी'।

ठठवा†—संज्ञा पुं० [हि० ठाट] एक प्रकार का रूखा और मोटा कपड़ा। इकतारा। लमगजा।

ठठा†—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ठट्ठा'।

ठठाना[१]—क्रि० स० [अनु० ठक् ठक्] ठोकना। आघात लगाना। पीटना। जोर जोर से मारना। उ०—फलै फूलै फैलै खल, सीदै साधु पल पल, बाती दीपमालिका ठठाइयत सूप हैं।—तुलसी (शब्द०)। (ख) दंत ठठाइ ठोठरे कीने। रहे पठान सकल भय भीने।—लाल (शब्द०)।

ठठाना[२]—क्रि० अ० [सं० अट्टहास] खिलखिलाना। अट्टहास करना। कहकहा लगाना। जोर से हँसना। उ०—दुइ कि होइ इक संग भुआलू। हँसब ठठाइ फुलाउब गालू।—तुलसी (शब्द०)।

ठठिया†Ⓟ—संज्ञा स्त्री० [हि० ठट्ठर (= ढाँचा या ठठरी)] हड्डियों का ढाँचा। काया। शरीर। उ०—काहू भए ठठिया के भेटै। जीव दरस बिनु भरम न मेटै।—कबीर सा०, पृ० ४१२।

ठठियार[१]—संज्ञा स्त्री० [हि० ठठरी (= ढाँचा)] ढाँचा। टट्टर। अस्थिशेष। उ०—तस सिंगार सब लीन्हेसि मोहि कीन्हेसि ठठियारि।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३४१।

ठठियार[२]—संज्ञा पुं० [देश०] जंगली चौपायों को चरानेवाला। चरवाहा। —(नैपाल तराई)।

ठठिरिन†—संज्ञा स्त्री० [हि० ठठेरा] ठठेरिन। ठठेरे की स्त्री। उ०—ठठिरिन बहुतइ ठाठर कीन्ही। चली अहीरिन काजर दीन्ही।—जायसी (शब्द०)।

ठठुकना†—क्रि॰ अ॰ [हिं॰] दे॰ 'ठठकना', 'ठिठकना' । उ॰—दूर ही से मुझे घाट में नहाते देख ठठुके ।—श्यामा॰, पृ॰ ६७ ।

ठठेर मंजारिका—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ ठठेरा + सं॰ मार्जारिका] ठठेरे की बिल्ली । उ॰—अहे बजंबी हरिन भ्रम कहा बजावै बीन । या ठठेर मंजारिका सुर सुनि मोहैगी न ।—दीनदयाल (शब्द॰) ।

विशेष—ठठेरों की बिल्ली के सामने रात दिन बरतन पीटे जाने से न तो वह थोड़ी खड़खड़ाहट से डरती है न किसी अच्छे शब्द पर मोहित होती है ।

ठठेरा[1]—संज्ञा पुं॰ [अनु॰ ठन ठन अथवा हिं॰ टाठी+एरा (प्रत्य॰)] [स्त्री॰ ठठेरिन, ठठेरी] धातु को पीट पीटकर बरतन बनानेवाला । बरतन बनानेवाला । कसेरा ।

मुहा॰—ठठेरे ठठेरे बदलाई=जैसे का तैसा व्यवहार । एक ही प्रकार के दो मनुष्यों का परस्पर व्यवहार । ऐसे दो आदमियों के बीच व्यवहार जो चालाकी, धूर्तता, बल आदि में एक दूसरे से कम न हों । ठठेरे की बिल्ली=ऐसा मनुष्य जो कोई अरुचिकर काम देखते देखते या सुनते सुनते अभ्यस्त हो गया हो । ऐसा मनुष्य जो कोई खटके की बात देखकर न चौंके या न घबराय ।

विशेष—ठठेरे की बिल्ली दिन रात बरतन का पीटना सुना करती है । इससे वह किसी प्रकार की आहट या खटका सुनकर नहीं डरती ।

ठठेरा[2]—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ ठाँठ] ज्वार बाजरे का डंठल ।

ठठेरी—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ ठठेरा] १. ठठेरा की स्त्री । २. ठठेरा जाति की स्त्री । ३. ठठेरा का काम । बरतन बनाने का काम ।

यौ॰—ठठेरी बाजार ।

ठठैरी‡—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ टट्टर (=रोक)] अवरोध । रोक । आड़ । उ॰—बीसां तीस गोलांसू ठठैरी तोड़ नाखी । साले तोप राजा की अचंका फोड़ नांखी ।—शिखर॰, पृ॰ ७५ ।

ठठोल—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ ठट्ठा] [स्त्री॰ ठठोलिन] १. ठट्ठेबाज । विनोद प्रिय । दिल्लगीबाज । मसखरा । उ॰—मूँछ मरोरत डोलई ऐठ्यौ फिरत ठठोल ।—सुंदर॰ ग्रं॰, भा॰ १, पृ॰ ३१६ । २. ठठोली । हँसी । दिल्लगी । उ॰—याद परी सब रस की बातें बढ़ि गयो विरह ठठोलन सों ।—भारतेंदु ग्रं॰, भा॰ २, पृ॰ ३८५ ।

ठठोली—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ ठट्ठा] हँसी । दिल्लगी । मसखरापन । मजाक । वह बात जो केवल विनोद के लिये की जाय । उ॰—ऐसी भी रही ठठोली ।—अर्चना, पृ॰ ३४ ।

क्रि॰ प्र॰—करना ।—होना ।

ठड़कना†—क्रि॰ अ॰ [हिं॰] दे॰ 'ठठकना', 'ठिठकना' ।

ठढ़ा†—वि॰ [सं॰ स्थातृ] खड़ा । दंडायमान ।

यौ॰—ठढ़िया ब्योहार=वह सामाजिक व्यवहार जिसमें रुपयों का लेन देन न होता हो ।

क्रि॰ प्र॰—करना ।—होना ।

ठढ़िया—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ ठाढ़] वह नैचा जिसकी निगाली बिलकुल खड़ी होती है ।

विशेष—ऐसा नैचा लखनऊ में बनता है और मिट्टी की फरशी में लगाया जाता है । मुसलमान इसका व्यवहार अधिक करते हैं ।

ठड्ढा—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ ठड़ा] १. पीठ की खड़ी हड्डी । रीढ़ ।

यौ॰—ठड्डाटूटी=जिसकी कमर झुकी हो । कुबड़ी ।—(स्त्रि॰) ।

२. पतंग में लगी हुई खड़ी कमाची । काँप का उलटा । ३. ढाँचा । टट्टर । उ॰—दुर्बीन और केलों के ठड्डे खड़ा कर देते ।—प्रेमघन॰, भा॰ २, पृ॰ ६ ।

ठढ़ा†—वि॰ [सं॰ स्थातृ] खड़ा । दंडायमान । उ॰—तरकि तरकि अति बज्र से डारे । मदमत इंद्र ठढ़ो फलकारे ।—नंद॰ ग्रं॰, पृ॰ १६२ ।

क्रि॰ प्र॰—करना ।—होना ।

ठढ़िया—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ ठाढ़ (=खड़ा)] १. काठ की वह ऊँची ओखली जिसमें पड़े हुए धान को स्त्रियाँ खड़ी होकर कूटती हैं । २. मरसा नाम का शाक । ३ पशुओं का एक रोग ।

ठढ़ियाना†—क्रि॰ स॰ [हिं॰ ठढ़ा (=खड़ा)] खड़ा करना ।

ठढुई†—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰] दे॰ 'ठढ़िया' ।

ठन—संज्ञा स्त्री॰ [अनुध्व॰] धातुखंड पर आघात पड़ने का शब्द । किसी धातु के बजने का शब्द ।

यौ॰—ठन ठन=चमड़े से मढ़े हुए बाजे का शब्द ।

ठनक—संज्ञा स्त्री॰ [अनुध्व॰ ठन ठन] १. मृदंगादि की ध्वनि । चमड़े से मढ़े बाजे पर आघात पड़ने का शब्द । उ॰—खनक चुरीन की त्यों ठनक मृदंगन की रुनुक झुनुक सुर नूपुर के जाल को ।—पद्माकर (शब्द॰) । २. रह रहकर आघात पड़ने की सी पीड़ा । टीस । चसक । ३. धातुखंड पर आघात होने से उत्पन्न शब्द । ठन ।

मुहा॰—ठनककर बोलना=कड़ी आवाज में कुछ कहना । उ॰—सिंह ठवनि होए बोले ठनकि के, रन जीते फिरि आवै ।—सं॰ दरिया, पृ॰ ११५ ।

ठनकना—क्रि॰ अ॰ [अनुध्व॰ ठन ठन] १. ठन ठन शब्द करना । धातुखंड अथवा चमड़े से मढ़े बाजे आदि का आघात पाकर बजना । जैसे, तबला ठनकना । २. रह रहकर आघात पड़ने की सी पीड़ा होना । जैसे, माथा ठनकना ।

मुहा॰—तबला ठनकना=नृत्य गीत आदि होना । उ॰—हम ओ रस्ते रात के आवत रहे तो तबला ठनकत रहा ।—भारतेंदु ग्रं॰, भा॰ १, पृ॰ ३२६ । माथा ठनकना=किसी बुरे लक्षण को देखकर चित्त में घोर आशंका उत्पन्न होना । जैसे, तार पाते ही माथा ठनका ।

ठनका—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ ठनक] १. धातुखंड आदि पर आघात पड़ने का शब्द । २. आघात । ठोकर । ३. रह रहकर आघात पड़ने की सी पीड़ा ।

ठनकाना—क्रि० स० [हिं० ठनकना] किसी धातुखंड या चमड़े से मढ़े बाजे पर आघात करके शब्द निकालना। बजाना। जैसे, तबला ठनकाना, रुपया ठनकाना।

मुहा०—रुपया ठनका लेना = रुपया बजाकर ले लेना। रुपया वसूल कर लेना। उ०—जैसे, तुमने रुपए तो ठनका लिए मेरा काम हो या न हो।

ठनकार—संज्ञा पुं० [अनुध्व० ठन ठन] धातुखंड के बजने का शब्द।

ठनकारना†—क्रि० अ० [हिं० ठनकार] फुफकारना। क्रुद्ध सर्प का फन काढ़कर फुफकारना। उ०—सन सन करके रात सनकती झींगुर झनकारैं। कभी कभी दादुर रट कर जिय व्याकुल कर डारैं। साँप खँडहर पर ठनकारैं।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ४८६।

ठनगन[1]—संज्ञा पुं० [हिं० ठनना] विवाह आदि मंगल अवसरों पर नेगियों या पुरस्कार पानेवालों का अधिक पाने के लिये हठ या अड़। उ०—ठनगन लै सब बाम बसनन सजि सजि कै गई।—नंद० ग्रं०, पृ० ३३३।

क्रि० प्र०—करना।—ठानना।—होना।

२. हठ। अड़। मान। उ०—बनि आगें ठनगन ठानति है सर्वोपर राधे तोहि लहौं।—घनानंद, पृ० ४५६।

ठनठन—क्रि० वि० [अनुध्व०] धातुखंड के बजने का शब्द।

ठनठन गोपाल—संज्ञा पुं० [अनुध्व० ठनठन + गोपाल (= कोई व्यक्ति)] १. छूँछी और निःसार वस्तु। वह वस्तु जिसके भीतर कुछ भी न हो। २. खुक्ख आदमी। निर्धन मनुष्य। वह व्यक्ति जिसके पास कुछ भी न हो।

ठनठनाना[1]—क्रि० स० [अनुध्व] किसी धातुखंड या चमड़े से मढ़े बाजे पर आघात करके शब्द निकालना। बजाना।

ठनठनाना[2]—क्रि० अ० ठन ठन बजना या आवाज होना। ठनठन की ध्वनि होना।

ठनना—क्रि० अ० [हिं० ठानना] १. (किसी कार्य का) तत्परता के साथ आरंभ होना। दृढ़ संकल्पपूर्वक आरंभ किया जाना। अनुष्ठित होना। समारंभ होना। छिड़ना। जैसे, काम ठनना, झगड़ा ठनना, बैर ठनना, युद्ध ठनना, लड़ाई ठनना। २. (मन में) स्थिर होना। ठहरना। निश्चित होना। पक्का होना। दृढ़ होना। चित्त में दृढ़तापूर्वक धारण किया जाना। दृढ़ संकल्प होना। जैसे, मन में कोई बात ठनना, हठ ठनना। उ०—हरिचंद जू बात ठनी तो ठनी नित की कलकानि ते छूटनो है।—हरिश्चंद्र (शब्द०)। ३. ठहरना। लगना। जमना। धारण किया जाना। प्रयुक्त होना। उ०—दुलरी कल कोकिल कंठ बनी मृग खंजन अंजन भाँति ठनी।—केशव (शब्द०)। ४. उद्यत होना। मुस्तैद होना। सन्नद्ध होना। उ०—रन जीतन काजै भटन निवाजै आनद छाजै युद्ध ठने।—गोपाल (शब्द०)।

मुहा०—किसी बात पर ठनना = किसी बात या काम को करने के लिये उद्यत होना।

ठनमनाना—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'ठनमनाना'।

ठनाका—संज्ञा पुं० [अनुध्व० ठन] ठन ठन शब्द। ठनकार।

ठनाठन—क्रि० वि० [अनुध्व० ठन ठन] ठन ठन शब्द के साथ। झनकार के साथ। जैसे, ठनाठन बजना।

ठप—संज्ञा पुं० [अनुध्व०] १. खुले हुए ग्रंथ को एकाएक बंद करने से उत्पन्न शब्द या ध्वनि। २. किसी कार्य या व्यापार का पूरी तरह बंद रहना या रुक जाना।

क्रि० प्र०—करना।—रहना।—होना।

ठपका†—संज्ञा पुं० [देश०] धक्का। ठोकर। ठेस। उ०—यह तन काचा कुंभ है लिया फिरै था साथ। ठपका लाग्या फूटि ग्या कछू न आया हाथ।—कबीर (शब्द०)।

ठपाक†—संज्ञा पुं० [फ़ा० तपाक] जोश। आवेश। वेग। तेजी। उ०—रामसिंह नशे में थे ही ठपाक से आल्हा की लड़ियाँ गाने लगे।—काले०, पृ० २४।

ठपोरना—क्रि० स० [हिं० ठप ठप अनुध्व०] थपथपाना। ठोकना। उ०—जन दरिया बानक बना गुरू ठपोरी पूठ।—दरिया० बानी, पृ० १६।

ठप्पा—संज्ञा पुं० [सं० स्थापन, हिं० थापन, थाप, अथवा अनुध्व० ठप] १. लकड़ी, धातु, मिट्टी आदि का खंड जिसपर किसी प्रकार की आकृति, बेलबूटे या अक्षर आदि इस प्रकार खुदे हों कि उसे किसी दूसरी वस्तु पर रखकर दबाने से या दूसरी वस्तु को उसपर रखकर दबाने से उस दूसरी वस्तु पर वे आकृतियाँ, बेलबूटे या अक्षर उभर आवें अथवा बन जायँ। साँचा।

क्रि० प्र०—लगाना।

२. लकड़ी का टुकड़ा जिसपर उभरे हुए बेलबूटे बने रहते हैं और जिसपर रंग, स्याही आदि पोतकर उन बेलबूटों को कपड़े आदि पर छापते है। छापा। ३. गोटे पट्टे पर बेलबूटे उभारने का साँचा। ४. साँचे के द्वारा बनाया हुआ चिह्न, बेलबूटा आदि। छाप। नकश। ५. एक प्रकार का चौड़ा नक्काशीदार गोटा।

ठबका†—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठपका] आघात। ठोकर। ठेस। उ०—या तनु को कह गर्व करत है ओला ज्यों गल जावै रे। जैसे बर्तन बनो काँच को ठबक लगे बिगसावै रे।—राम० धर्म०, पृ० ३६०।

ठबकना—क्रि० अ० [हिं० ठमक] ठेस या ठोकर देते हुए चलना। ठसक के साथ चलना। उ०—हबकि न बोलिबा, ठबकि न चालिबा धीरे धरिबा पावं। गरब न करिबा, सहजैं रहिबा भणंत गोरख रावं।—गोरख०, पृ० ११

ठभोली†—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठठोली वा देश०] दे० 'ठठोली'।

ठमंकना(प)—क्रि० स० [अनु०] ठम् की ध्वनि के साथ गिरना, ठहरना या रुकना उ०—उरं फुट्ट सन्नाह धरनी ठमंकै।—प० रासो, पृ० ४५।

ठमक—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठमकना] १. चलते चलते ठहर जाने का भाव। रुकावट। २. चलने की ठसक। चलने में हावभाव। लचक।

ठमकना—क्रि० अ० [सं० स्तम्भन] १. चलते चलते ठहर जाना। ठिठकना। रुकना। जैसे,—तुम चलते चलते ठमक क्यों जाते हो। २. ठसक के साथ रुक रुककर चलना। हाव भाव दिखाते हुए चलना। अंग मरोड़ते या मटकाते हुए चलना। लचक के साथ चलना। उ०—ठमकि ठमकि सरकौंही चालन आउ सामुहें मेरे।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ३८६।

ठमका[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० अनुध्व०] ठम् ठम् की स्थिति या क्रिया। ठक ठक। झंझट बखेड़ा। उ०—धमण धमंती रह गई सीला पड्या अंगार। अहरण का ठमका मिट्या री लाद चले लोहार।—राम० धर्म०, पृ० १६।

ठमका[2]—संज्ञा स्त्री० [देश०] झोंका। उ०—इसलिये कांग सेठानी नींद का ठमका ले रही थी। —जनानी०, पृ० ३८।

ठमकाना—क्रि० स० [हिं० ठमकना] ठहराना। चलते चलते रोकना।

ठमकारना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'ठमकाना'।

ठमठमाना†—क्रि० अ० [सं० स्तम्भन] ठमकना। ठिठकना। उ०—दुल्हा जू जरा जरा ठमठमाया।—झाँसी०, पृ० ३१९।

ठमिकना(पु)†—क्रि० अ० [देश०] दे० 'ठमकना'। उ०—चोथा को लेहुंगो झूना को ताव। ठमिक ठमिक धन देखइ पाव।—बी० रासो, पृ० ११४।

ठमुकड़ा(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठमुक (=ठमक)+ड़ा (प्रत्य०)] ठक ठक की आवाज। टपका। ठमका। उ०—धवणि धवंती रहि गई, बुझि गए अंगार। अहरणि रह्या ठमुकड़ा जब उठि चले लुहार।—कबीर ग्रं०, पृ० ७५।

ठयना—क्रि० स० [सं० अनुष्ठान] १. ठानना। दृढ संकल्प के साथ आरंभ करना। छेड़ना। उ०—(क) दासी सहस प्रगट तेंह भई। इंद्रलोक रचना ऋषि ठई।—सूर (शब्द०)। (ख) जब नैननि प्रीति ठई ठग श्याम सो, स्यानी सखी हठि हौं बरजी।—तुलसी (शब्द०)। २. कर चुकना। पूरी तरह से करना। (इसका प्रयोग संयो० क्रि० के रूप में हुआ है)। उ०—देवता निहोरे महामारिन सों कर जोरे भोरानाथ भोरे आपनी सी कहि ठई है।—तुलसी (शब्द०)। ३. मन में ठहराना। निश्चित करना। उ०—तुलसिदास कौन आस मिलन की? कहि गए सो तो एकौ चित न ठई।—तुलसी (शब्द०)। (ख) एहि बिधि हित तुम्हार मै ठयऊ।—मानस, पृ० ७१।

ठयना[2]—क्रि० अ० १. ठनना। दृढ़ संकल्प के साथ आरंभ होना। २. मन में दृढ़ होना। ३. प्रयोग में आना। कार्य में प्रयुक्त होना।

ठयना[3]—क्रि० स० [सं० स्थापन, प्रा० ठावन] १. स्थापित करना। बैठाना। ठहराना। २. लगाना। प्रयुक्त करना। नियोजित करना। उ०—बिधिना अति ही पोच कियो री। ...रोम रोम लोचन इक टक करि युवतिन प्रति काहे न ठयो री।—सूर (शब्द०)।

ठयना[4]—क्रि० अ० १. ठहरना। स्थित होना। बैठना। जमना। उ०—राज लखि गुरु भूसुर सुआसनन्हि समय समाज की ठवनि भली ठई है। —तुलसी (शब्द०)। २. प्रयुक्त होना। लगना। नियोजित होना।

ठरना—क्रि० अ० [सं० स्तब्ध, प्रा० ठड्ढ, हिं० ठार+ना (प्रत्य०)] १. अत्यंत शीत से ठिठुरना। सरदी से अकड़ना या सुन्न होना। जैसे, हाथ पाँव ठरना।

संयो० क्रि०—जाना।

२. अत्यंत सरदी पड़ना। बहुत अधिक ठंढ पड़ना।

ठरकना—क्रि० अ० [हिं० ठरूका (=ठोकर, टक्कर)] टकराना। उ०—चकमक ठरकै अगनि झरै यूं दध मथि घृत करि लीया। —गोरख०, पृ० २०८।

ठरमरुआ†—वि० [हिं० ठार+मारना [वि० स्त्री० ठरमरुई] वह फसल जिसे पाला मार गया हो।

ठराना—क्रि० अ० [हिं० ठहरना] टिक जाना। स्थिर होना। ठहरना। उ०—हरि कर विपका निरखि तियन के नैना छबिहि ठराइं।—नंद० ग्रं०, पृ० ३८१।

ठराना(पु)—क्रि० स० [हिं० ठढा=(खड़ा)+ना (प्रत्य०), या ठहराना] खड़ा करना। तैयार करना। बनाना। ठहराना। उ०—जमी के तले यक ठरा कर मकान।—दक्खिनी०, पृ० ३३६।

ठरारा—वि० [हिं० ठार] सर्द। ठंढा। उ०—कबहुं मनहि मन सोचत, मोचत स्वास ठरारे।—नंद० ग्रं०, पृ० २०१।

ठरुआ†—वि० [हिं० ठार] [वि० स्त्री० ठरुई] फसल जिसे पाला मारा गया हो।

ठरूका†(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठोकर] ठोकर। आघात। उ०—जिनसौं प्रीति करत है गाढ़ी सो मुख लावै लूको रे, जारि बारि तन खेह करैगे दे दे मूंड ठरूको रे।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ६१०।

ठर्रा—संज्ञा पुं० [हिं० ठड़ा (=खड़ा)] १. इतना कड़ा बटा हुआ मोटा सूत जो हाथ में लेने से कुछ तना रहे। मोटा सूत। २. बड़ी अधपकी ईंट। ३. महुवे की निकृष्ट कड़ी शराब। फूल का उलटा। ४. अंगिया का बंद। तनी। ५. एक प्रकार का भद्दा जूता। ६ भद्दा और बेडौल मोती।

ठर्री—संज्ञा स्त्री० [देश०] १ बिना अंकुर उठा हुआ धान का बीज जो छितराकर बोया जाता है। २. बिना अंकुर उठे हुए धान की बोआई।

ठलवारि(पु)†—वि० पुं० [हिं० टिल्ला, टल्ल>टल्लेनवीसी (= बहाना, निठल्लापन] बहाना करनेवाला। किसी बात को हँसी में उड़ा देनेवाला। ठट्ठेबाज। उ०—कहा तेरेई आयो राज लाज तजि औरत औरे काज, कहा तोहि ठलवारि घरबसे न जानत बात बिरानी।—घनानंद, पृ० ४२९।

ठलाना[1]—क्रि० स० [प्रा० ठिल्ल]ठेलना। रखना। उ०—(क) ता पाछे रीति अनुसार सामग्री ठलाइ प्रभुन को पलना झुलाइ... भाँति करि अनोसर करते।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० १०१। (ख) पाछें वह सब अन्न तुमकों तुम्हारे बासनन में ठलाइ देहुंगी।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० २५५।

ठलाना[2]—क्रि॰ स॰ [हिं॰ ढालना] गिराना। निकालना।

ठलुआ—वि॰ [अप॰ ठल्ल (= रिक्त) या हिं॰ ठाला + उ आ (प्रत्य॰)] निठल्ला। खाली। उ॰—मधुवन की बातों ही से मालूम हुआ कि उस घर में रहनेवाले सब ठलुए बेकार हैं।—तितली, पृ॰ २२७।

ठलुवा—वि॰ [अप॰ ठल्ल या हिं॰ ठाला + उक (प्रत्य॰)] दे॰ 'ठलुआ'।

ठल्ल†Ⓟ—वि॰ [अप॰ ठल्लिय ठल्ल] १. निर्धन। धनरहित। दरिद्र। २. खाली। शून्य। रिक्त। उ॰—नमणी खमणी बहु गुणी सगुणी अनइ सियाई। जे धण एही सपजइ, तउ जिम ठल्लउ जाइ।—ढोला॰, दू॰ ४५६।

ठवँकाⓅ†—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ ठमक] दे॰ 'ठमक', 'ठसक'। उ॰—चंदेलिनि ठवँकन्हु पगु ढारा। चली चौहानी होइ झनकारा।—जायसी ग्रं॰, पृ॰ २४६।

ठवक‡—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ ठोंक] आघात। थपकी। ठोका। उ॰—पवन ठवक लगि ताहि जगावै। तब ऊरध को शीश उठावै।—चरण॰ बानी, पृ॰ ८०।

ठवन—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ स्थापण, प्रा॰ ठावण] दे॰ 'ठवनि'।

ठवना†Ⓟ[1]—क्रि॰ स॰ [सं॰ स्थापन] १. स्थापित करना। रखना। उ॰—वासग बीजउ नाम, ते आगलि लल्लउ ठवइ। जइ तूं हुई सुजांण तउ तूं वहिलउ मोकलइ।—ढोला॰, दू॰ १४२। २. योजना करना। ठानना। उ॰—आठम प्रहर संझा समै धण ठव्वै सिणगार।—ढोला॰, दू॰ ५८६।

ठवना[2]—क्रि॰ अ॰ [हिं॰] दे॰ 'ठयना'।

ठवनिⓅ—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ स्थापन, हिं॰ ठवना (=बैठना) वा सं॰ स्थान] १. बैठक। स्थिति। उ॰—राज रुख लखि गुरु सुसुर सुआसनन्हि समय समाज की ठवनि भली ठई है।—तुलसी (शब्द॰)। २. बैठने या खड़े होने का ढंग। आसन। मुद्रा। अंग की स्थिति या संचालन का ढब। अदाज। उ॰—(क) कुंजर मनि कंठा कलित उर तुलसी की माल। बृषभ कंध केहरि ठवनि बलनिधि बाहु बिसाल।—तुलसी (शब्द॰)। (ख) ठाढ़ भए उठि सहज सुभाए। ठवनि जुवा मृगराज लजाए।—तुलसी (शब्द॰)।

ठवर†—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] दे॰ 'ठौर'। उ॰—कथनी कथि कथि बहु चतुराई। चोर चतुर कहि ठवर ना पाई।—सं॰ दरिया, पृ॰ ८।

ठस—वि॰ [सं॰ स्थास्नु (= दृढ़ता से जमा हुआ, दृढ़)] १. जिसके कण परस्पर इतने मिले हों कि उसमें उँगली आदि न धँस सके। जिसके बीच में कहीं रंध्र या अवकाश न हो। जो भुरभुरा, गीला या मुलायम न हो। ठोस। कड़ा। जैसे, बरफी का सूखकर ठस होना, गीले आटे का ठस होना। २. जो भीतर से पोला या खाली न हो। भीतर से भरा हुआ। ३. जिसके सूत परस्पर खूब मिले हों। जिसकी बुनावट घनी हो। गफ। जैसे, ठस बुनावट, ठस कपड़ा। उ॰—इस टोपी का काम खूब ठस है।—(शब्द॰)। ४. दृढ़। मजबूत। ५. भारी। वजनी। गुरु। ६. जो अपने स्थान से जल्दी न उठसके। जो हिले डोले नहीं। निष्क्रिय। सुस्त। मट्ठर। आलसी। ७. (रुपया) जिसकी झनकार ठीक न हो। जो खरे सिक्के के ऐसा न हो। जो कुछ खोटा होने के कारण ठीक आवाज न दे। जैसे, ठस रुपया। ८. भरा पूरा। संपन्न। धनाढ्य। जैसे, ठस असामी। ९. कृपण। कंजूस। १०. हठी। जिद्दी। अड़ करनेवाला।

ठसक—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ ठस] १. अभिमानपूर्ण हाव भाव। गर्वीली चेष्टा। नखरा। जैसे,—वह बड़ी ठसक से चलती है। २. अभिमान। दर्प। शान। उ॰—कढ़ि गई रैयत के जिय की कसक सब मिटि गई ठसक तमाम तुरकाने की।—भूषण (शब्द॰)।

ठसकदार—वि॰ [हिं॰ ठसक + फ़ा॰ दार] १. घमंडी। अभिमानी। २. शानदार। तड़क भड़कवाला। उ॰—ठौर ठकुराई को जू ठाकुर ठसकदार नद के कन्हाई सो सु नंद को कन्हाई है।—पद्माकर (शब्द॰)।

ठसका—संज्ञा पुं॰ [अनुध्व॰] १. वह खाँसी जिसमें कफ न निकले और गले से ठन ठन शब्द निकले। सूखी खाँसी। २. ठोकर। धक्का।

क्रि॰ प्र॰—खाना।—मारना।—लगना।

ठसाठस—क्रि॰ वि॰ [हिं॰ ठस] ऐसा दबाकर भरा हुआ कि और भरने की जगह न रहे। ठूँसकर भरा हुआ। खूब कसकर भरा हुआ। खचाखच। जैसे,—(क) वह संदूक कपड़ों से ठसाठस भरा हुआ है। (ख) इस कुप्पे में ठसाठस चीनी भरी हुई है।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग केवल चूर्ण या ठोस वस्तुओं के लिये ही होता है, पानी आदि तरल पदार्थों के लिये नहीं। जो वस्तु भरी जाती है और जिस वस्तु मे भरी जाती है दोनों के संबंध मे इस शब्द का व्यवहार होता है। जैसे, संदूक ठसाठस भरा है, कपड़े ठसाठस भरे हैं।

ठसा—संज्ञा पुं॰ [देश॰] १. नक्काशी बनाने की एक छोटी रुखानी। २. गर्वपूर्ण चेष्टा। अभिमानपूर्ण हाव भाव। ठसक। ३. घमंड। अहंकार। ४. ठाट बाट। शान। ५. ठवनि। मुद्रा। अदाज।

मुहा॰—ठस्से के साथ बैठना = घमंड के साथ बैठना। गर्व भरी मुद्रा में शान के साथ बैठना। उ॰—कोचवान भी ठस्से के साथ बैठा है।—फिसाना॰, भा॰३, पृ॰ ३६। ठस्से से रहना=ठाट बाट से रहना या जीवन बिताना। उ॰—इस ठस्से से रहती है कि अच्छी अच्छी रईसजादियों से टक्कर लड़ें।—फिसाना॰, भा॰१, पृ॰ १।

ठह—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] ठाँव। ठाँही। स्थान।

ठहक—संज्ञा स्त्री॰ [अनुध्व॰] नगारे का शब्द।

ठहकना—क्रि॰ अ॰ [देश॰] ध्वनि करना। बोलना। आवाज करना। उ॰—पिक ठहकै झरणां पड़ै हरिए डूँगर हाल।—बाँकी ग्रं॰, भा॰ २, पृ॰ ८।

ठहकानाⓅ—क्रि॰ स॰ [हिं॰ ठह (= स्थान)] किसी वस्तु को उसके ठीक स्थान पर बैठाना या जमाना। उ॰—तन बंदूक सुमति के सिंगरा, ज्ञान के गज ठहकाई। सुरति पलीता हरदम

सुलगै, कसपर राख चढ़ाई।—पलटू०, भा० ३, पृ० ४०। (क) हम को दाक सहज को सीसा ज्ञान के गज ठहकाई।—कबीर० श०, भाग २, पृ० १३२।

ठहना¹—क्रि० स० [अनुध्व०] १. हिनहिनाना। घोड़े का बोलना। २. घनघनाना। घंटे का बजाना।

ठहना²—क्रि० अ० [सं० स्था, प्रा० ठा] किसी काम को करते हुए सोच विचार करने या बनाने सँवारने के लिये बीच बीच में ठहरना। धीरे धीरे धैर्य के साथ करना। बनाना। सँवारना। किसी काम को करने में खूब जमना।

मुहा०—ठह ठहकर बोलना = हाव भाव के साथ रुक रुककर बोलना। एक एक शब्द पर जोर दे देकर बोलना। मठार मठारकर बोलना। ठहकर = अच्छी तरह जमकर।

ठहनाना—क्रि० अ० [अनुध्व०] १. घोड़ों का बोलना। हिनहिनाना। उ०—गज अरुह कुरुपति छबि छाई। चहुँदिशि तुरग रहे ठहनाई।—सबल (शब्द०)। घंटे का बजना। घनघनाना। ठनठनाना उ०—द्वंद्व घंट ध्वनि अति ठहनाई। मारु राग सहित सहनाई।—सबल (शब्द०)। ३. दे० 'ठहना²'।

ठहर—संज्ञा पुं० [सं० स्थल या स्थिर] १. स्थान। जगह। उ०—ठाकुर महेस ठकुराइनि उमा सी जहाँ लोक बेद हूँ विदित महिमा ठहर की।—तुलसी (शब्द०)। २. रसोई के लिये मिट्टी से लिपा हुआ स्थान। चौका। ३. रसोईघर आदि में मिट्टी की लिपाई। पोताई। चौका। उ०—नेम अचार षटकर्म नहीं नाँही पाँति को पान। चौका चंदन ठहर नहीं मीठा देव निदान।—सं० दरिया०, पृ० ३८।

क्रि० प्र०—लगाना।

मुहा०—ठहर देना = रसोईघर वा भोजन के स्थान को लीप पोतकर स्वच्छ करना। चौका लगाना।

ठहरना—क्रि० अ० [सं० स्थिर + हिं० ना (प्रत्य०), अथवा सं० स्थल, हिं० ठहर + ना (प्रत्य०)] १. चलना बंद करना। गति में न होना। रुकना। थमना। जैसे,—(क) थोड़ा ठहर जाओ पीछे के लोगों को भी आ लेने दो। (ख) रास्ते में कहीं न ठहरना।

संयो० क्रि०—जाना।

२. विश्राम करना। डेरा डालना। टिकना। कुछ काल तक के लिये रहना। जैसे,—आप काशी में किसके यहाँ ठहरेंगे?

संयो० क्रि०—जाना।

३. स्थित रहना। एक स्थान पर बना रहना। इधर उधर न होना। स्थिर रहना। जैसे,—यह नौकर चार दिन भी किसी के यहाँ नहीं ठहरता।

संयो० क्रि०—जाना।

मुहा०—मन ठहरना = चित्त स्थिर और शांत होना। चित्त की आकुलता दूर होना।

४. नीचे न फिसलना या गिरना। अड़ा रहना। टिका रहना। बहने या गिरने से रुकना। स्थित रहना। जैसे, (क) यह गोला डंडे की नोक पर ठहरा हुआ है। (ख) यह घड़ा फूटा हुआ है इसमें पानी नहीं ठहरेगा। (ग) बहुत से योगी देर तक अधर में ठहरे रहते हैं।

संयो० क्रि०—जाना।

५. दूर न होना। बना रहना। न मिटना या न नष्ट होना। जैसे,—यह रंग ठहरेगा नहीं, उड़ जायगा। ६. जल्दी न टूटना फूटना। नियत समय के पहले नष्ट न होना। कुछ दिन काम देने लायक रहना। चलना। जैसे,—यह जूता तुम्हारे पैर मे दो महीने भी नही ठहरेगा। ७. किसी घुली हुई वस्तु के नीचे बैठ जाने पर पानी या अर्क का स्थिर और साफ होकर ऊपर रहना। थिराना। ८. प्रतीक्षा करना। धैर्य धारण करना। धीरज रखना। स्थिर भाव से रहना। चंचल या आकुल न होना। जैसे,—ठहर जाओ, देते हैं, आफत क्यों मचाए हो। ९. कार्य आरंभ करने में देर करना। प्रतीक्षा करना। आसरा देखना। जैसे,—अब ठहरने का वक्त नही है झटपट काम में हाथ लगा दो। १०. किसी लगातार होनेवाली क्रिया का बंद होना। लगातार होनेवाली बात या काम का रुकना। थमना। जैसे, मेह ठहरना, पानी ठहरना।

संयो० क्रि०—जाना।

११. निश्चित होना। पक्का होना। स्थिर होना। तै पाना। करार होना। जैसे, दाम या कीमत ठहरना, भाव ठहरना। बात ठहरना, ब्याह ठहरना।

मुहा०—किसी बात का ठहरना = किसी बात का संकल्प होना। विचार स्थिर होना। ठनना। जैसे,—(क) क्या अब चलने ही की ठहरी? (ख) गप बहुत हुई, अब खाने की ठहरे। ठहरा = है। जैसे,—(क) वह तुम्हारा भाई हो ठहरा कहाँ तक खबर न लेगा? (ख) तुम घर के आदमी ठहरे तुमसे क्या छिपाना? (ग) अपने संबंधी ठहरे उन्हे क्या कहे।

विशेष—इस मुहा० का प्रयोग ऐसे स्थलों पर ही होता है जहाँ किसी व्यक्ति या वस्तु के अन्यथा होने पर विरुद्ध घटना या व्यवहार की संभावना होती है।

† ११. (पशुओं के लिये) गर्भ धारण करना।

ठहराई—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठहराना] १. ठहराने की क्रिया। २. ठहराने की मजदूरी। कब्जा। अधिकार।

ठहराउ†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ठहराव'।

ठहराऊ—वि० [हिं० ठहरना] १. ठहरनेवाला। कुछ दिन बना रहनेवाला। जल्दी नष्ट न होनेवाला। २. टिकाऊ। चलनेवाला। दृढ़। मजबूत। † ३. ठहरानेवाला। टिकानेवाला। किसी कार्य को निश्चित करानेवाला। किसी व्यक्ति को कहीं टिकानेवाला।

ठहराना¹—क्रि० स० [हिं० ठहरना का प्रे०रूप] १. चलने से रोकना। गति बंद करना। स्थिति कराना। जैसे,—(क) वह चला जा रहा है उसे ठहराओ। (ख) यह चलता हुआ पहिया ठहरा दो।

संयो० क्रि०—देना ।—लेना ।

२. टिकाना । विश्राम कराना । डेरा देना । कुछ काल तक के लिये निवास देना । जैसे,—इन्हें अपने यहाँ ठहराओ । ३. इस प्रकार रखना कि नीचे न खिसके या गिरे । अड़ाना । टिकाना । स्थित रखना । जैसे, डंडे की नोक पर गोला ठहराना ।

संयो० क्रि०—देना ।

४. स्थिर रखना । इधर उधर न जाने देना । एक स्थान पर बनाए रखना । ५. किसी लगातार होनेवाली क्रिया को बंद करना । किसी होते हुए काम को रोकना ।

संयो० क्रि०—देना ।

६. निश्चित करना । पक्का करना । स्थिर करना । तै करना । जैसे, बात ठहराना, भाव ठहराना, कीमत ठहराना, ब्याह ठहराना ।

ठहराना(पु)†²—क्रि० अ० [हिं० ठहरना] रुकना । टिकना । स्थिर होना । उ०—(क) रूप दुपहरी छाँह कब ठहरानो इक ठौर ।—स० सप्तक, पृ० १८३ । (ख) जबै आऊँ साधु संगति कछुक मन ठहराइ ।—सूर (शब्द०) ।

ठहराव—संज्ञा पुं० [हिं० ठहरना] ठहरने का भाव । स्थिरता । २. निश्चय । निर्धारण । नियति । मुकर्ररी । ३. दे० 'ठहरौनी' ।

ठहरू†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ठहर' ।

ठहरौनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठहराना, पुं०हिं० ठहरावनी] १. विवाह में लेन देन का करार । २. किसी भी प्रकार का पारस्परिक करार या निश्चय ।

ठहाका¹†—संज्ञा पुं० [अनुध्व०] अट्टहास । जोर की हँसी । कहकहा ।

क्रि० प्र०—मारना ।—लगाना ।

ठहाका†²—वि० चटपट । तुरत । तड़ से ।

ठहियाँ‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठह, ठाँव] ठाँह । जगह । ठिकाना । स्थान ।

ठहो†—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठह] स्थान । ठाँव । ठाँह ।

ठहोर(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठहर] ठहरने योग्य स्थान । विश्राम योग्य स्थल । उ०—कतए भवन कत आगन बाप कतए कत माय । कतहु ठहोर नहि ठेहर ककर एहन जमाय ।—विद्यापति, पृ० ३६८ ।

ठाँ¹—संज्ञा स्त्री० पुं० [सं० स्थान, प्रा० ठाण] दे० 'ठाँव' । उ०—यौं सब ठाँ दरसी बरसी घनआनंद भीजि अराधि कृपाई ।—घनानंद, पृ० १५० ।

यौ०—ठाँ ठाँ = स्थान स्थान पर । उ०—ठाँ ठाँ मधुर मथानी बजै । जनु नव आनंद बुंद अगजै ।—नंद० ग्रं०, पृ० २४८ ।

ठाँ²—संज्ञा पुं० [अनुध्व०] बंदूक की आवाज ।

ठाँई†—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठाँव] स्थान । जगह । उ०—मीन रूप जो कीन बड़ाई । तीन छोड़ रहु चौथे ठाँई ।—कबीर सा०, पृ० १७ । २. तईं । प्रति । उ०—पान भखे मुख नैन रची रुचि आरसी देखि कहै हम ठाँई ।—केशव (शब्द०) । ३. समीप । पास । निकट ।

ठाँउँ, ठाँऊँ†—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थान] १. ठौर । ठाँव । स्थान । जगह । ठिकाना । उ०—रंक सुदामा कियौ अजाची, दियौ अभयपद ठाँउँ ।—सूर०, १।१६४ । २. पास । समीप । उ०—चार मीत जो मुहमद ठाऊँ । जिन्हहि दीन्हि जग निरमल नाऊँ ।—जायसी (शब्द०) ।

ठाँठ—वि० [सं० स्थाणु (= ठूँठा पेड़) या अनु० ठन ठन] १. जो सूखकर बिना रस का हो गया हो । नीरस । २. (गाय या भैंस) जो दूध न देती हो । दूध न देनेवाला (चौपाया) । जैसे, ठाँठ गाय । दे० 'ठठ' ।

ठाँठर†¹—संज्ञा पुं० [हिं०] ठठरी । ढाँचा ।

ठाँठर²—वि० [हिं० ठाँठ] दे० 'ठाँठ' ।

ठाँण†—संज्ञा पुं० [सं० स्थान, प्रा० ठाण] थान । जगह । उ०—खूँटइ जीण न मोजड़ी कड़याँ नही फेकाँण । साजनिया सालइ नही, सालइ आही ठाँण ।—ढोला०, दू० ३७५ ।

ठाँम†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] ठाँव । स्थान । उ०—ठगिया रूप निहारि, ठाँम ठाँमि ठाढ़ो खरो ।—ब्रज० ग्रं०, पृ० २ ।

ठाँयँ¹—संज्ञा पुं० स्त्री०, [सं० स्थान, प्रा० ठाण] १. स्थान । जगह । ठिकाना ।

विशेष—दे० 'ठाँव' ।

२. समीप । निकट । पास । उ०—जिन लगि निज परलोक बिगार्यो ते लजात होत ठाढ़े ठाँय ।—तुलसी (शब्द०) ।

ठाँयँ²—संज्ञा पुं० [अनुध्व०] बंदूक छूटने का शब्द । जैसे,—ठाँयँ से गोली मार दी ।

ठाँयँ ठाँयँ—संज्ञा स्त्री० [अनुध्व०] १. लगातार बंदूक छूटने का शब्द । २. रगड़ा । झगड़ा । उ०—खैर अब इस ठाँयँ ठाँयँ से क्या मतलब ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ७७ ।

ठाँव—संज्ञा स्त्री०, पुं० [सं० स्थान, प्रा० ठाव] स्थान । जगह । ठिकाना । उ०—(क) निडर, नीच, निर्गुन निर्धन कहँ जग दूसरो न ठाकुर ठाँव ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) नाहिन मेरे और कोउ बलि चरन कमल बिनु ठाँव ।—सूर (शब्द०) ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग प्रायः सब कवियों ने पुं० किया है और अधिक स्थानों में पुं० ही बोला जाता है पर दिल्ली मेरठ आदि पश्चिमी जिलों में इसे स्त्री० बोलते हैं ।

२. अवसर । मौका । उ०—इहै ठाँव हौं बारति रही ।—जायसी ग्रं०, पृ० ८४ । ३. रुकने या टिकने का स्थान । ठहराव । उ०—चार कोस लै गाँव, ठाँव एको नहीं ।—धरनी० श०, पृ० ४५ ।

ठाँसना¹—क्रि० स० [सं० स्थास्नु (= दृढ़ता से बैठाया हुआ)] १. जोर से घुमाना । कसकर घुसेड़ना । दबाकर प्रविष्ट करना । २. कसकर भरना । दबा दबाकर भरना । † ३. रोकना । अवरोध करना । मना करना ।

ठाँसना²—क्रि० अ० ठन ठन शब्द के साथ खाँसना। बिना कफ निकाले हुए खाँसना। ढाँसना।

ठाँहीं†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ठाँईं'। उ०—मन माया काल गति नाहीं। जीव सहाय बसे तेहि ठाँहीं।—कबीर सा०, पृ० ८२३

ठाउर†—संज्ञा पुं० [हिं० ठावँ + र (प्रत्य०)] ठौर। आश्रयस्थान। ठिकाना। उ०—मनुवाँ मोर भइल रंग बाउर। सहज नगरिया लागल ठाउर।—गुलाल० बानी, पृ० १०४।

ठाक†—संज्ञा स्त्री० [सं० स्ताघ अथवा स्तम्भन अथवा हिं० थाक (=थकना) अथवा सं० स्था + क(प्रत्य०)] बाधा। रोक। रुकावट। उ०—(क) जब मन गाहि लेत खलवारा। छूटी ठाक मूए सिकदारा।—प्राण०, पृ० ५०। (ख) जाके मन गुरु का उपदेश। तौ को ठाक नहीं उह देश।—प्राण०, पृ० ११।

ठाकना(पु)†—क्रि० स० [हिं० ठाक + ना (प्रत्य०)] ठीक करना। रोकना। स्थिर करना। उ०—दृष्टि को ठाकि मन को समझावे। काम को साधि जाय महलि समावे।—प्राण०, पृ० २६।

ठाकर†—संज्ञा पुं० [हिं० ठाकुर, गुज० ठक्कर] प्रदेश का स्वामी। सरदार। नायक। उ०—इसलिये कहा गया कि पहले यहाँ कोई राजा या ठाकर रहता था।—किन्नर०, पृ० ४६।

ठाकुर—संज्ञा पुं० [सं० टक्कुर] [स्त्री० ठकुराइन, ठकुरानी] १. देवता, विशेषकर विष्णु या विष्णु के अवतारों की प्रतिमा। देवमूर्ति।

यौ०—ठाकुरद्वारा। ठाकुरबाड़ी।

२. ईश्वर। परमेश्वर। भगवान्। ३. पूज्य व्यक्ति। ४. किसी प्रदेश का अधिपति। नायक। सरदार। अधिष्ठाता। उ०—सब कुँवरन्ह फिर खैंचा हाथू। ठाकुर जेंव तो जेंवै साथू।—जायसी (शब्द०)। ५. जमींदार। गाँव का मालिक। ६. क्षत्रियों की उपाधि। ७. मालिक। स्वामी। उ०—(क) ठाकुर ठक भए गेल चोरें चप्परि घर लिज्झिअ।—कीर्ति०, पृ० १६। (ख) निदर, नीच, निर्गुन, निर्धन कहँ जग दूसरो न ठाकुर ठाँव।—तुलसी (शब्द०)। ८. नाइयों की उपाधि। नापित।

ठाकुरद्वारा—संज्ञा पुं० [हिं० ठाकुर + सं० द्वार] १. किसी देवता विशेषत: विष्णु का मंदिर। देवालय। देवस्थान। २. जगन्नाथ जी का मंदिर जो पुरी में है। पुरुषोत्तम धाम। ३. मुरादाबाद जिले में हिंदुओं का एक तीर्थस्थान।

ठाकुरप्रसाद—संज्ञा पुं० [हिं०] १. देवता की निवेदित वस्तु। नैवेद्य। २. एक प्रकार का धान जो भादों महीने के अंत और क्वार के आरंभ में हो जाया करता है।

ठाकुरबाड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठाकुर + बाड़ा या बं० बाड़ी (=घर)] देवालय। मंदिर।

ठाकुरसेवा—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठाकुर + सेवा] १. देवता का पूजन। २. वह संपत्ति जो किसी मंदिर के नाम उत्सर्ग की गई हो।

ठाकुरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठाकुर + ई (प्रत्य०)] ठकुराई। स्वामित्व। आधिपत्य। शासन। उ०—बिस्नु की ठाकुरी दीख आई।—कबीर० श०, भा० ४, पृ० १५। (ख) जम के जसूस बिनय जस सों हमेशा करे तेरी ठाकुरी को ठीक नेकु न निहारो है।—पद्माकर (शब्द०)।

ठाट¹—संज्ञा पुं० [सं० स्थातृ (=खड़ा होनेवाला)] १. फूस और बाँस की फट्टियों को एक में बाँधकर बनाया हुआ ढाँचा जो आड़ करने या छाने के काम में आता है। लकड़ी या बाँस की फट्टियों का बना हुआ परदा। जैसे,—इस खपरैल का ठाट उजड़ गया है।

यौ०—ठाटबंदी। ठाटबाट। नवठट = छाने के काम में आनेवाले पुराने ठाट को पूरी तौर से नया करना।

२. ढाँचा। ढड्ढा। पंजर। किसी वस्तु के मूल अंगों की योजना जिसके आधार पर शेष रचना की जाती है।

मुहा०—ठाट खड़ा करना = ढाँचा तैयार करना। ठाट खड़ा होना = ढाँचा तैयार होना।

३. रचना। बनावट। सजावट। वेशविन्यास। शृंगार। उ०—(क) ब्रज बनवारि ग्वाल बालक कहँ कौने ठाट रच्यो।—सूर (शब्द०)। (ख) पहिरि पितंबर, करि आडंबर बहु तन ठाट सिंगार्‌यो।—सूर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।—ठटना।—बनाना।

मुहा०—ठाट बदलना = (१) वेश बदलना। नया रूप रंग दिखाना। (२) और का और भाव प्रकट करना। प्रयोजन निकालने या श्रेष्ठता प्रकट करने के लिये झूठे लक्षण दिखाना। (३) श्रेष्ठता प्रकट करना। झूठमूठ अधिकार या बड़प्पन जताना। रंग बाँधना। ठाट माँजना = दे० 'ठाट बदलना'।

४. आडंबर। तड़क भड़क। तैयारी। शान शौकत। दिखावट। धूमधाम। जैसे,—राजा की सवारी बड़े ठाट से निकली।

यौ०—ठाट बाट।

५. चैनचान। मजा। आराम।

मुहा०—ठाट मारना = मौज उड़ाना। मजे उड़ाना। चैन करना। ठाट से काटना = चैन से दिन बिताना।

६. ढंग। शैली। प्रकार। ढब। तर्ज। अंदाज। जैसे,—(क) उसके चलने का ठाट ही निराला है। (ख) वह घोड़ा बड़े ठाट से चलता है। ७. आयोजन। सामान। तैयारी। अनुष्ठान। समारंभ। प्रबंध। बंदोबस्त। उ०—(क) पालव बैठि पेड़ एइ काटा। सुख महँ सोक ठाट धरि ठाटा।—तुलसी (शब्द०)। (ख) कासों कहौं, कहो, कैसी करौं अब क्यों मिलहि यह ठाट जो ठायो।—सुंदरीसर्वस्व (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना। उ०—रघुबर कहेउ लखन भल घाटू। करहु कतहुँ अब ठाहर ठाटू।—मानस, २।१३३।

८. सामान। माल असबाब। सामग्री। उ०—सब ठाट पड़ा रह जावेगा जब लाद चलेगा बनजारा।—नजीर (शब्द०)।

९. युक्ति। ढब। ढंग। उपाय। डौल। जैसे—(क) किसी ठाट से

अपना रुपया वहाँ से निकालो। (ख) वह ऐसे ठाट से माँगता है कि कुछ न कुछ देना ही पड़ता है। उ०—राज करत बिनु काज ही ठटहिं जे कूर कु ठाट। तुलसी ते कुरुराज ज्यों जैहैं बारह बाट।—तुलसी (शब्द०)। १०. कुश्ती या पटेबाजी में खड़े होने या वार करने का ढंग। पैतरा।

मुहा०—ठाट बदलना = दूसरी मुद्रा से खड़ा होना। पैतरा बदलना। ठाट बाँधना = वार करने की मुद्रा से खड़ा होना।

११. कबूतर या मुरगे का प्रसन्नता से पर फड़फड़ाने या झाड़ने का ढंग।

मुहा०—ठाट मारना = पर फड़फड़ाना। पंख झाड़ना।

१२. सितार का तार। १३. संगीत में ऐसे स्वरों का समूह जो किसी विशेष राग में ही प्रयुक्त होते हों। जैसे, ईमन का ठाट, भैरवी का ठाट।

मुहा०—ठाट बाँधना = तंत्र वाद्य में किसी राग में प्रयुक्त होनेवाले स्वरों को उस स्थान पर नियोजित करना जिससे अभीप्सित राग में प्रयुक्त स्वरों की ध्वनि प्राप्त हो। उ०—बाँधकर फिर ठाट, अपने अंक पर झंकार दो।—अपरा, पृ० ७३।

ठाट[2]—संज्ञा पुं० [हिं० ठट्ट, ठाट] [स्त्री० ठाटी] १. समूह। झुंड। उ०—(क) दिने रजनी हेरए बाट, जनि हरिनी बिछुरल ठाट।—विद्यापति, पृ० १६८। (ख) गज के ठाट पचास हजारा। अस सहस रही असवारा।—रघुराज (शब्द०)। † २. बहुतायत। अधिकता। प्रचुरता। ३. बैल या साँड़ की गरदन के ऊपर का डिल्ला। कूबड़।

ठाटना—क्रि० स० [हिं० ठाठ + ना (प्रत्य०)] १. रचना। बनाना। निर्मित करना। संयोजित करना। उ०—बालक को तन ठाटिया निकट सरोवर तीर। सुर नर मुनि सब देखहिं साहेब धरेउ शरीर।—कबीर (शब्द०)। २. अनुष्ठान करना। ठानना। करना। आयोजन करना। उ०—(क) महतारी को कह्यो न मानत कपट चतुरई ठाटी।—सूर (शब्द०)। (ख) पावन बैठि पेड़ एक ठाटा। सुख मँह सोक ठाठ धरि ठाटा।—तुलसी (शब्द०) ३. सुसज्जित करना। सजाना। सँवारना।

ठाठबंदी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठाठ + फा० बंदी] छाजन या परदे आदि के लिये फूस और बाँस की फट्टियों आदि को परस्पर जोड़कर ढाँचा बनाने का काम। २. इस प्रकार का ढाँचा। ठाट। टट्टर।

ठाटबाट—संज्ञा पुं० [हिं० ठाट + बाट (= राह, तरीका)] १. सजावट। बनावट। सजधज। २. तड़क भड़क। आडंबर। शान शौकत। जैसे,—आज बड़े ठाट बाट से राजा की सवारी निकली।

ठाटर—संज्ञा पुं० [हिं० ठाट] १. बाँस की फट्टियों और फूस आदि को जोड़कर बनाया हुआ ढाँचा जो छाजन या परदे के काम में आता है। ठाट। टट्टर। टट्टी। २. ठठरी। पंजर। ३. ढाँचा। ४. कबूतर आदि के बैठने की छतरी जो टट्टर के रूप में होती है। ५. ठाटबाट। बनाव। सिंगार। सजावट। उ०—ठठरिन बहुतय ठाटर कीन्ही। चली अहीरिन काजर दीन्हीं।—जायसी (शब्द०)।

ठाटी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठाट] ठट। समूह। श्रेणी। उ०—अस रथ रेंगि चलइ गज ठाटी। बोहित चले समुद्र गे पाटी।—जायसी (शब्द०)।

ठाट्टु†—संज्ञा पुं० [हिं० ठाट] दे० 'ठाट'।

ठाठ†—संज्ञा पुं० [हिं० ठाट] दे० 'ठाट'।

ठाठना†—क्रि० स० [हिं०] दे० 'ठाटना'।

ठाठर[1]—संज्ञा पुं० [हिं०] [स्त्री० ठाठरी] ढाँचा। ठठरी। उ०—पाए बीरा जीव चलावा। निकसा जिव ठाठरी पड़ावा।—कबीर सा०, पृ० ५६३। दे० 'ठाटर'।

ठाठर[2]—संज्ञा पुं० [देश०] नदी में वह स्थान जहाँ अधिक गहराई के कारण बाँस या लग्गी न लगे।—(मल्लाह)।

ठाड़ा[1]—संज्ञा पुं० [हिं० ठाढ़] खेत की वह जोताई जिसमें एक बार जोतकर फिर दूसरे बार जोतते हैं।

ठाड़ा[2]—वि० [वि० स्त्री० ठाड़ी] दे० 'ठाढ़ा'। उ०—नंददास प्रभु जहीं जहीं ठाड़े होत, तहीं तहीं अटक लटक काहू सों हाँ करी औ ना करी।—नंद०, ग्रं०, पृ० १४३।

ठाढ़†—क्रि० [हिं०] दे० 'ठाढ़ा'। उ०—ठाढ़ रहा अति कंपित गाता।—मानस, ६।१४।

ठाढ़ा†(५)—वि० [सं० स्थातृ (= जो खड़ा हो)] १. खड़ा। दंडायमान।

क्रि० प्र०—करना।—होना।—रहना।

२. जो पिसा या कूटा न हो। समूचा। साबित। उ०—भूँजि समोसा घिउ मँह काढ़े। लौंग मिर्च तेहि भीतर ठाढ़े।—जायसी (शब्द०)। ३. उपस्थित। उत्पन्न। पैदा। उ०—कौन बहुत लीला हरि जबहीं। ठाढ़ करत हैं कारन तबहीं।—विश्राम (शब्द०)।

मुहा०—ठाढ़ा देना = स्थिर रखना। ठहराना। रखना। टिकाना। उ०—बारह वर्ष दयो हम ठाढ़ो यह प्रताप बिनु जाने। अब प्रगटे वसुदेव सुवन तुम गर्ग वचन परिमाने।—सूर (शब्द०)।

ठाढ़ा[2]—वि० हट्टा कट्टा। हृष्ट पुष्ट। बली। दृढ़ांग। मजबूत।

ठाढ़ेश्वरी—संज्ञा पुं० [हिं० ठाढ़ सं० ईश्वर + ई (प्रत्य०)] एक प्रकार के साधु जो दिन रात खड़े रहते हैं। वे खड़े ही खड़े खाते पीते तथा दीवार आदि का सहारा लेकर सोते हैं।

ठावर‡—संज्ञा पुं० [देश०] रार। झगड़ा। मुठभेड़। उ०—देव आपनों नहीं सँभारत करत इंद्र सो ठावर।—सूर (शब्द०)।

ठान[1]—संज्ञा पुं० [सं० स्थान, प्रा० ठाण, ठाणु] स्थान। ठौर। जगह। उ०—सब तबीब तसबीम करि, ले धरि आइ सुहाम। नव दीहे सिर भल्लयो, ढँढोलन गय ठान।—पृ० रा०, ४।६। (ख) राजे लोक सब कहे तू आपना। जब काम नहिं पाया ठाना।—दक्खिनी०, पृ० १०४।

ठान[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० अनुष्ठान] १. अनुष्ठान। कार्य का आयोजन। शुभारंभ। काम का छिड़ना। २. छेड़ा हुआ काम।

कार्य। उ०—जानती इतेक तो न ठानती पठान ठान भूलि पथ प्रेम के न एक पग डारती।—हनुमान (शब्द०)। ३. चेष्टा। मुद्रा। अंगस्थिति या संचालन का ढब। अंदाज। उ०—पाछे बंक चितै मधुरे हँसि घात किए उलटे सुठान सों।—सूर (शब्द०)। ४. दृढ़ निश्चय। दृढ़ संकल्प। पक्का इरादा। उ०—क्यों निर्दोषियों को हलाकान करने की ठान ठानते हो?—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ४६७।

मुहा०—ठान ठानना = दृढ़ निश्चय करना। पक्का इरादा करना।

ठानना†—क्रि० स० [सं० अनुष्ठान, हिं० ठान अथवा सं० स्थापन> प्रा० ठावन,>ठान+ना (प्रत्य०)] १. किसी कार्य को तत्परता के साथ प्रारंभ करना। दृढ़ संकल्प के साथ प्रारंभ करना। अनुष्ठित करना। छेड़ना। जैसे; काम ठानना, झगड़ा ठानना, बैर ठानना, युद्ध ठानना, यज्ञ ठानना। उ०—(क) तब हरि और खेल इक ठान्यौ।—नंद० ग्रं०, पृ० २८५। (ख) तिन सो कह्यो पुत्र हित हय मख हम बीनो हैं ठानी।—रघुराज (शब्द०)। २. (मन में) स्थिर करना। (मन में) ठहराना। निश्चित या ठीक करना। पक्का करना। चित्त में दृढ़तापूर्वक धारण करना। दृढ़ संकल्प करना। जैसे, मन में कोई बात ठानना, हठ ठानना। उ०—(क) सदा राम एहि प्रान समाना। कारन कौन कुटिल पन ठाना।—तुलसी (शब्द०)। (ख) मैंने मन में कुछ ठान उनका हाथ पकड़ बोली।—श्यामा०, पृ० ९८।

ठाना†(पु)—क्रि० स० [हिं० ठान] १. ठानना। दृढ़ संकल्प के साथ प्रारंभ करना। छेड़ना। करना। उ०—काहे को सोहैं हजार करो तुम तो कबहूँ अपराध न ठायो।—मतिराम (शब्द०)। २. मन में ठहराना। निश्चित करना। दृढ़तापूर्वक चित्त में धारण करना। पक्का विचार करना। उ०—विश्वामित्र दुःखी ह्वै तँह पुनि करन महा तप ठायो।—रघुराज (शब्द०)। वि० दे० 'ठयना'। ३. स्थापित करना। रखना। धरना। उ०—मुरली तऊ गोपालहि भावति। अति आधीन सुजान कनौड़े गिरिधर नार नवावति। आपुन पौढ़ि अधर सज्या पर करपल्लव पदपल्लव ठावति।—सूर (शब्द०)।

ठाना²†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'थाना'।

ठाम†(पु)—संज्ञा पुं०, स्त्री० [सं० स्थान] १. स्थान। जगह। उ०—(क) इथर बपुरा को करओ वीररसगु निज ठाम।—कीर्ति०, पृ० ६०। (ख) जो चाहत जित जान उतै ही यह पहुँचावत। बचे बीच के गाम ठाम को नाम भुलावत।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ७।

विशेष—दे० 'ठाँव'।

२. अंगस्थिति या अंगसंचालन का ढंग। ठवनि। मुद्रा। अंदाज। ३. अँगेट। अँगलेट।

ठायँ¹—संज्ञा पुं०, स्त्री० [सं० स्थान] दे० 'ठाँव', ठाँयँ¹'।

ठायँ²—संज्ञा पुं० [अनु०] दे० 'ठाँयँ'²।

ठार—संज्ञा पुं० [सं० स्तब्ध, प्रा० ठड्ड, ठड या देश०] १. गहरा जाड़ा। अत्यंत शीत। गहरी सरदी। २. पाला। हिम।

क्रि० प्र०—पड़ना।

ठार†(पु)—[सं० स्थान, प्रा० ठाण; अप० ठाम, ठाव, ठाय] १. स्थान। ठौर। जगह। उ०—(क) राति दिवस करि चालीयउ, पुनरमइ दिवस पहुँतो तिणि ठार।—बी० रासो, पृ० १०४। (ख) आओ, तू' सालिक राह दिवाने चलते न लाए बार। मुकाम राहे मंजिल बूझें उलझा है किस ठार।—दक्खिनी०, पृ० ५४। २. खेत या खलिहान का वह स्थान जहाँ किसान अपने सामान आदि रखता है और देखरेख करता है।

ठार‡—वि० [हिं०] [वि० स्त्री० ठारि] दे० 'ठाढ़', 'ठाढ़ा'। उ०—(क) तन वाहुत कर धीचहि तुरत, ठार रहत है सोई। आसन मारि बिबौरी होवे, तबहूँ भक्ति न होई।—जग० श०, भा० २, पृ० ३३। (ख) ठारि भेलिहि थवि आँगे न डोले।—विद्यापति, पृ० ४६।

ठारै†—संज्ञा पुं०, वि० [सं० अष्टादश, प्रा० अट्ठार, अट्ठारस, अट्ठारह] दे० 'अट्ठारह'। उ०—ठारै सेरु दुहोतरा अगहन मास सुजान।—सुजान०, पृ० ७।

ठाला¹—संज्ञा स्त्री० [देशी ठलिय (=रिक्त); अथवा हिं० निठल्ला] १. व्यवसाय या काम धंधे का अभाव। जीविका का अभाव। बेकारी। बेरोजगारी। २. खाली वक्त। फुरसत। अवकाश।

ठाला²—वि० जिसे कुछ काम धंधा न हो। खाली। निठल्ला।

ठाला—संज्ञा पुं० [देशी ठल्ल (= निर्धन); वा हिं० निठल्ला] १. व्यवसाय या काम धंधे का अभाव। बेकारी। रोजगार का न रहना। २. रोजी या जीविका का अभाव। आमदनी का न होना। वह दशा जिसमें कुछ प्राप्ति न हो। रुपए पैसे की कमी। जैसे,—आजकल बड़ा ठाला है, कुछ नहीं दे सकते।

मुहा०—ठाले पड़ना = शून्यता, रिक्तता या खालीपन का अनुभव होना। ठाला बताना = बिना कुछ दिए चलता करना। धता बताना (दलाल)। बैठे ठाले = खाली बैठे हुए। कुछ काम धधा न रहते हुए। जैसे,—बैठे ठाले यही किया करो, अच्छा है।

यौ०—ठाला ठुलिया = खाली। रीता। छूँछा। उ०—नैन नचावत वधि मटुकिन को करिकै ठाला ठुलिया।—भारतेंदु ग्रं०, भा०२, पृ० १९४।

ठाली†(पु)¹—वि० [देशी० ठलिय (= रिक्त); वा हिं० निठल्ला] १. खाली। जिसे कुछ काम धंधा न हो। निठल्ला। बेकाम। उ०—(क) ऐसी को ठाली बैठी है तोसों मूड़ चरावै। झूठी बात तुसी सी बिनु कन फरकत हाथ न आवै।—सूर (शब्द०)। (ख) ठाली ग्वालि जानि पठए अलि कह्यो पछोरन छूछो।—तुलसी (शब्द०)। (ग) प्लेटफार्म पर ठाली बैठे समय की बरबादी अनुभव करने लगे।—भस्मा०, पृ० ४३।

ठाली†(पु)—संज्ञा स्त्री० [?] ढारस। भरोसा। आश्वासन। उ०—कहा कहौं आली खाली देत सब ठाली, पर मेरे बनमाली कौं न काली ते छुड़ावहीं।—रसखान०, पृ० ३०।

ठावँ—संज्ञा स्त्री०, पुं० [हिं०] दे० 'ठाँव'।

ठाव—संज्ञा पुं० [हिं०] ठाँव। स्थान। उ०—होरी सब ठावन कै राखी पूजत लै लै रोरी। घर के काठ डारि सब दीने गावत गीत व गोरी।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ४०७।

ठाबना—क्रि० स० [हिं० ठाना] दे० 'ठाना'।

ठासा—संज्ञा पुं० [हिं० ठाँसना] लोहारों का एक औजार जिससे तंग जगह में लोहे की कोर निकालते और उभारते हैं। उ०—देवै ठासा बेहद परै सनबातौ सीका। चारि खूँट में चलै थियत एक होय रती का।—पलटू० बानी, पृ० ११५।

यौ०—गोल ठासा = गोल सिरे का ठासा जिससे लोहे की चद्दर को गढ़कर गोला बनाते हैं।

ठाह[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थान या हिं० ठहरना] धीरे धीरे और अपेक्षाकृत कुछ अधिक समय लगाकर गाने या बजाने की क्रिया।

विशेष—जब गाने या बजानेवाले लोग कोई चीज गाना या बजाना आरंभ करते हैं, तब पहले धीरे धीरे और अधिक समय लगाकर गाते या बजाते हैं। इसी को 'ठार' या 'ठाह' में गाना बजाना कहते हैं। आगे चलकर वह चीज क्रमश: जल्दी जल्दी गाने या बजाने लगते हैं। जिसे दून, तिगून या चौगून कहते है। वि० दे० 'चौगून'।

२. स्थान। ठाँव। उ०—चल्यो जहाँ सब हथिनी ठाहीं। गज मकरंद देखि तेहि माहीं।—घट०, पृ० २४१।

ठाह[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० स्ताघ (= छिछला)] दे० 'थाह'।

ठाहर†—संज्ञा पुं० [सं० स्थल, हिं० ठहर] १. स्थान। जगह। उ०—मुकसुता जब आई बाहर। पाए बसन परे तेहि ठाहर।—सूर (शब्द०)। २. निवास स्थान। रहने या टिकने का स्थान। डेरा। उ०—रघुबर कह्यो लखन भल घाटू। करहु कतहुँ अब ठाहर ठाटू।—तुलसी (शब्द०)।

ठाहरना†—क्रि० अ० [हिं० ठाहर] दे० 'ठहरना'। उ०—घर में सब कोइ बंकुड़ा मारहिं गाल अनेक। सुंदर रण मैं ठाहरै सूर बीर को एक।—सुंदर ग्रं०, भा०२, पृ० ७३८।

ठाहरू†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ठाहर'।

ठाहरूपक—संज्ञा पुं० [सं० स्था+रूपक या देश०] मृदंग का एक ताल जो सात मात्राओं का होता है। इसमें और आड़ा चौताल में बहुत थोड़ा भेद है।

ठाहीं†—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठाह] दे० 'ठाँहीं'।

ठिंगना—वि० [हिं० हेठ+अंग] [वि० स्त्री० ठिगनी] जो ऊँचाई में कम हो। छोटे कद का। छोटे डील का। नाटा। (जीवधारियों विशेषत: मनुष्य के लिये)।

ठिक[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० टिकिया] धातु की चद्दर का कटा हुआ छोटा टुकड़ा जो जोड़ लगाने के काम में आवे। थिगली। चकती।

ठिक[2](पु)—वि० [हिं०] दे० 'ठीक'। उ०—यातें यह ठिक जान्यो परै। अपनो बिभो आप बिस्तरै।—घनानद, पृ० २७५।

ठिक[3](पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थितिक] ठहराव। स्थिरता। उ०—जासों नही ठहरै ठिक मान को, क्यों हठ कै सठ कठनो ठानति।—घनानद, पृ० १२४।

ठिकठान(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० ठीक] दे० 'ठिकठैन'। उ०—एतेहू ठिकठान पै देखति हौं उत सान। यह न सयानी देति हौं पाती माँगत पान।—स० सप्तक, पृ० २४५।

ठिकठेक(पु)†—वि० [हिं०] ठीक ठीक। ढंग से। उ०—एक शरीर मैं अंग भए बहु एक, धरा पर धाम अनेका। एक शिला महिं कोरि किए सब चित्र बनाइ धरे ठिकठेका।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ६४६।

ठिकठैन(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० ठीक+ठयना] ठीक ठाक प्रबंध। आयोजन। उ०—आज कछू औरै भए ठए नए ठिकठैन। चित के हित के चुगल ये नित के होय न नैन।—बिहारी (शब्द०)।

ठिकठौर†—संज्ञा पुं० [हिं० टिकना या ठीक+ठौर] टिकने लायक स्थान। ऐसा स्थान जहाँ आश्रय लिया जा सके।

ठिकड़ा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ठीकरा'।

ठिकना‡—क्रि० अ० [सं० स्थिति+√कृ>करण] ठिठकना। ठहरना। रुकना। अड़ना। उ०—रस भिजए दोऊ दुहुनि तउ ठिक रहैं टरैं न। छबि सों छिरकत प्रेम रँग भरि पिचकारी नैन।—बिहारी (शब्द०)।

संयो० क्रि०—जाना।—रहना।

ठिकरा†—संज्ञा पुं० [देशी ठिक्करिया] दे० 'ठीकरा'।

ठिकरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठिकरा] दे० 'ठीकरी'।

ठिकरौर—संज्ञा स्त्री० [देश०] वह भूमि जहाँ खपड़े, ठोकरे आदि बहुत पड़े हो।

ठिकाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठीक] पाल के जमकर ठीक ठीक बैठने का भाव।—(लश०)।

ठिकान†—संज्ञा पुं० [हिं० टिकान] दे० 'ठिकाना'।

ठिकाना—संज्ञा पुं० [हिं० टिकान] १. स्थान। जगह। ठौर। २. रहने की जगह। निवासस्थान। ठहरने की जगह।

यौ०—पता ठिकाना।

३ आश्रय। स्थान। निर्वाह करने का स्थान। जीविका का अवलंब।

मुहा०—ठिकाना करना = (१) जगह करना। स्थान निश्चित करना। स्थान नियत करना। जैसे,—अपने लिये कहीं बैठने का ठिकाना करो। (२) टिकना। डेरा करना। ठहरना। (३) आश्रय ढूँढना। जीविका लगाना। नौकरी या काम धंधा ठीक करना। जैसे,—इनके लिये भी कहीं ठिकाना करो, खाली बैठे हैं। (४) ब्याह के लिये घर ढूँढना। ब्याह ठीक करना। जैसे,—इनका भी कहीं ठिकाना करो, घर बसे। ठिकाना ढूँढना = (१) स्थान ढूँढना। जगह तलाश करना। (२) रहने या ठहरने के लिये स्थान ढूँढना। निवास स्थान ठहराना। (३) नौकरी या काम धंधा ढूँढना। जीविका खोजना। आश्रय ढूँढना। (४) कन्या के ब्याह के लिये घर ढूँढना। वर खोजना। (किसी का) ठिकाना लगना = (१) आश्रयस्थान मिलना। ठहरने या रहने की जगह मिलना। उ०—सिपाही जो भागे तो बीच में कहीं ठिकाना न लगा।—(शब्द०)। (२) जीविका का प्रबंध होना। नौकरी

या काम धंधा मिलना। निर्वाह का प्रबंध होना। जैसे,—इस चाल से तुम्हारा कहीं ठिकाना न लगेगा। ठिकाना लगाना=(१) पता चलाना। ढूँढना। (२) आश्रय देना। नौकरी या काम धंधा ठीक करना। जीविका का प्रबंध करना। ठिकाने आना=(१) अपने स्थान पर पहुँचना। नियत या वांछित स्थान पर प्राप्त होना। उ०—जो कोउ ताको निकट बतावै। धीरज धरि सो ठिकाने आवै।—सूर (शब्द०)। (२) ठीक विचार पर पहुँचना। बहुत सोच-विचार या बातचीत के उपरांत यथार्थ बात करना या समझना। जैसे, बुद्धि ठिकाने आना। उ०—हाँ इतनी देर के बाद अब ठिकाने आए।—(शब्द०)। (३) मूल तत्व तक पहुँचना। असली बात छेड़ना या कहना। प्रयोजन की बात पर आना। मतलब की बात उठाना। ठिकाने की बात=(१) ठीक बात। सच्ची बात। यथार्थ बात। प्रामाणिक बात। असली बात। (२) समझदारी की बात। युक्तियुक्त बात। (३) पते की बात। ऐसी बात जिससे किसी विषय में जानकारी हो जाय। ठिकाने न रहना=चंचल हो जाना। जैसे, बुद्धि ठिकाने न रहना, होश ठिकाने न रहना। ठिकाने पहुँचाना=(१) यथास्थान पहुँचाना। ठीक जगह पहुँचाना। (२) किसी वस्तु को लुप्त या नष्ट कर देना। किसी वस्तु को न रहने देना। (३) मार डालना। ठिकाने लगना=(१) ठीक स्थान पर पहुँचना। वांछित स्थान पर पहुँचना। (२) काम में आना। उपयोग में आना। अच्छी जगह खर्च होना। उ०—चलो अच्छा हुआ, बहुत दिनों से यह चीज पड़ी थी, ठिकाने लग गई।—(शब्द०)। (३) सफल होना। फलीभूत होना। जैसे, मिहनत ठिकाने लगना। (४) परम धाम सिधारना। मर जाना। मारा जाना। ठिकाने लगाना=(१) ठीक जगह पहुँचाना। उपयुक्त या वांछित स्थान पर ले जाना। (२) काम में लाना। उपयोग में अच्छी जगह खर्च करना। (३) सार्थक करना। सफल करना। निष्फल न जाने देना। जैसे, मिहनत ठिकाने लगाना। (४) इधर उधर कर देना। खो देना। लुप्त कर देना। गायब कर देना। नष्ट कर देना। न रहने देना। (५) खर्च कर डालना। (६) आश्रय देना। जीविका का प्रबंध करना। काम धधों में लगाना। (७) कार्य को समाप्ति तक पहुँचाना। पूरा कराना। (८) काम तमाम करना। मार डालना।

४. निश्चित अस्तित्व। यथार्थता की संभावना। ठीक प्रमाण। जैसे,—उसकी बात का क्या ठिकाना? कभी कुछ कहता है कभी कुछ। ५. दृढ़ स्थिति। स्थायित्व। स्थिरता। ठहराव। जैसे,—इस टूटी मेज का क्या ठिकाना, दूसरी बनाओ।

विशेष—इन अर्थों में इस शब्द का प्रयोग प्रायः निषेधात्मक या संदेहात्मक वाक्यों ही में होता है। जैसे,—रुपया तो तब लगावें जब उनकी बात का कुछ ठिकाना हो।

५. प्रबंध। आयोजन। बंदोबस्त। डौल। प्राप्ति का द्वार या ढंग। जैसे,—(क) पहले खाने पीने का ठिकाना करो, और बातें पीछे करेंगे। (ख) उसे तो खाने का ठिकाना नहीं है। उ०—दो करोड़ रुपए साल की आमदनी का ठिकाना हुआ।—शिवप्रसाद (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—ठिकाना लगना=प्रबंध होना। आयोजन होना। प्राप्ति का डौल होना। ठिकाना लगाना=प्रबंध करना। डौल लगाना।

६. पारावार। अंत। हृद। जैसे,—(क) वह इतना झूठ बोलता है जिसका ठिकाना नहीं। (ख) उसकी दौलत का कहीं ठिकाना है?

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग प्रायः निषेधार्थक वाक्यों ही में होता है।

ठिकाना[2]—क्रि० स० [हिं० ठिकना] १. ठहराना। अड़ाना। स्थित करना। २. किसी अन्य की वस्तु को गुप्त रूप से अपने पास रख लेना या छिपा लेना।

ठिकानेदार—संज्ञा पुं० [हिं० ठिकाना+दार (प्रत्य०)] १. किसी छोटे सुभाग का अधिपति। जागीरदार। २. स्वामी। मालिक।

ठिगना—वि० [हिं० ठिगना] नाटा। छोटे कद का। दे० 'ठिगना'। उ०—इंस्पेक्टर अधेड़, साँवला, लंबा आदमी था, कौड़ी की सी आँखें, फूले हुए गाल और ठिगना कद।—गबन, पृ० २८३।

ठिठकना—क्रि० अ० [सं० स्थित+करण या देश०] १. चलते चलते एकबारगी रुक जाना। एकदम ठहर जाना। उ०—तनिक ठिठक, कुछ मुड़कर दाएँ, देख अजिर मे उनकी ओर।—साकेत, पृ० १६८। २. अंगों की गति बंद करना। स्तंभित होना। न हिलना न डोलना। ठक रह जाना।

ठिठरना—क्रि० अ० [सं० स्थित या हिं० ठार अथवा सं० शीत+स्तृ>सरण] अधिक शीत से संकुचित होना। सरदी से ऐंठना या सिकुड़ना। जाड़े से अकड़ना। बहुत अधिक ठंढ खाना। जैसे, हाथ पाँव ठिठरना।

ठिठुरन—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठिठरना] ठिठरने या ठरने का भाव। जाड़े की अधिकता से अंगों की सिकुड़न। ठरन। उ०—दर व दीवार सब बरफ ही बरफ और ठिठुरन इस कयामत की।—सैर०, पृ० १२।

ठिठुरना—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'ठिठरना'।

ठिठोली—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठठोली] दे० 'ठठोली'। उ०—वाह का बोली है कि रोने में भी ठिठोली है।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २४।

ठिन[1]—संज्ञा पुं० [सं० स्थिति (=स्थान)] स्थान। स्थल। उ०—पाँच पचीस एक ठिन आहीं, जुगुति ते दृढ़ समुझाव।—घट० श०, भा० २, पृ० २०।

ठिन[2]—संज्ञा पुं० [अनुध्व०] छोटे बच्चों के द्वारा रह रहकर रोने की ध्वनि की तरह उत्पन्न आवाज।

मुहा०—ठिन ठिन करना=रोने की सी ध्वनि करना। रह रहकर धीरे धीरे रुदन का प्रयास करना। (स्त्रि०)।

ठिनकना—क्रि॰ अ॰ [अनुध्व॰] १. बच्चों का रहकर रोने का सा शब्द निकालना। २. ठसक से रोना। रोने का नखरा करना। (स्त्रि॰)।

ठिया†—संज्ञा पुं॰ [सं॰ स्थित] १. गाँव की सीमा का चिह्न। हद का पत्थर या लट्ठा। २. चाँड़। थूनी। ३. दे॰ 'ठीहा'।

ठिर—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ स्थिर या स्तब्ध] १. गहरी सरदी। कठिन शीत। गहरी ठंढ। पाला।

क्रि॰ प्र॰—पड़ना।

२. शीत से ठिठुरने की स्थिति या भाव।

क्रि॰ प्र॰—जाना।

ठिरना—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ ठिर] दे॰ 'ठरन', 'ठिठरन'।

ठिरना¹—क्रि॰ स॰ [हिं॰ ठिर] सरदी से ठिठुरना। जाड़े से अकड़ना।

ठिरना²—क्रि॰ अ॰ गहरा जाड़ा पड़ना। अत्यंत ठंढ पड़ना।

ठिलना—क्रि॰ अ॰ [हिं॰ ठेलना] १. ठेला जाना। ढकेला जाना। बलपूर्वक किसी ओर खिसकाया या बढ़ाया जाना। उ॰—फिरे घर बज्जिय भार करार। ठिलें न ठिलाइ न मन्निय हार।—पृ॰ रा॰, १६।२२१। २. बलपूर्वक बढ़ना। वेग से किसी ओर झुक पड़ना। घुसना। धँसना। उ॰—दक्खिन ते उमड़े दोउ भाई। ठिले दीह बल पुहिम हिलाई।—लाल (शब्द॰)। † ३. बैठना। जमना। स्थिर होना।

ठिलाठिल†—क्रि॰ वि॰ [हिं॰ ठिलना] एक पर एक गिरते हुए। धक्कमधक्का करते हुए। घने समूह और बड़े वेग के साथ। उ॰—झिलझिल फौज ठिलाठिल धावै। चहुँ दिस छोर छुवन नहिं पावै।—लाल (शब्द॰)।

ठिलाना—क्रि॰ अ॰ [हिं॰ ठिलना] ठेला जाना। हटाया जाना। उ॰—फिरें घर बज्जिय भार करार। ठिले न ठिलाइ न मन्निय हार।—पृ॰ रा॰, १६।२२१।

ठिलिया—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ स्थाली, प्रा॰ ठाली (= हँड़िया)] छोटा घड़ा। पानी भरने का मिट्टी का छोटा बरतन। गगरी।

ठिलुआ—वि॰ [हिं॰ निठल्ला] निठल्ला। निकम्मा। बेकाम। जिसे कुछ काम धंधा न हो। उ॰—बहुत ठिलुए अपना मन बहलाने के लिये औरों की पंचायत ले बैठते हैं।—श्रीनिवास दास (शब्द॰)।

ठिल्ला†—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ ठिलिया] [स्त्री॰ ठिलिया, ठिल्ली] घड़ा। पानी भरने या रखने का मिट्टी का बड़ा बरतन। बड़ा गगरा।

ठिल्ली†—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰] दे॰ 'ठिलिया'।

ठिल्ही†—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰] दे॰ 'ठिल्ली'।

ठिवना(पु)†—क्रि॰ स॰ [सं॰ स्थापय, प्रा॰ ठव्व] ठोंकना। उ॰—सिवराज बंस हुओ सिघर उरस ठिवंतो आवियो।—शिखर॰, पु॰ ७७।

ठिहार†—वि॰ [सं॰ स्थिर अथवा हिं॰ ठीहा] १. विश्वास करने योग्य। एतबार के लायक। २. निवास योग्य। स्थिर होने योग्य।

ठिहारी—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ ठहरना] ठहराव। निश्चय। इकरार। उ॰—जैसी हुती हमते तुमते अब होयगी वैसियै प्रीति बिहारी। चाहत जो चित में हित तो जनि बोलिय कूंजन कुंजबिहारी।—सुंदरीसर्वस्व (शब्द॰)।

ठींगा†—वि॰ [हिं॰ धींगा] जबर्दस्त। बलवान्। उ॰—सीह थयौ बब साहिबो, ठींगारी सँकरांत।—बाँकी॰ ग्रं॰, भा॰ १, पृ॰ १६।

ठीक—वि॰ [सं॰ स्थितिक या देश॰] १. जैसा हो वैसा। यथार्थ। सच। प्रामाणिक। जैसे,—तुम्हारी बात ठीक निकली। २. जैसा होना चाहिए वैसा। उपयुक्त। अच्छा। भला। उचित। मुनासिब। योग्य। जैसे,—(क) उनका बर्ताव ठीक नहीं होता। (ख) तुम्हारे लिये कहना ठीक नहीं है।

मुहा॰—ठीक लगना = भला जान पड़ना।

३. जिसमें भूल या अशुद्धि न हो। शुद्ध। सही। जैसे,—पाठ में से तुम्हारे कितने सवाल ठीक हैं? ४. जो बिगड़ा न हो। जो अच्छी दशा में हो। जिसमें कुछ त्रुटि या कसर न हो। दुरुस्त। अच्छा। जैसे,—(क) यह घड़ी ठीक करने के लिये भेज दो। (ख) हमारी तबीयत ठीक नहीं है।

यौ॰—ठीक ठाक।

५. जो किसी स्थान पर अच्छी तरह बैठे या जमे। जो ढीला या कसा न हो। जैसे,—यह जूता पैर में ठीक नहीं होता।

मुहा॰—ठीक आना = ढीला या कसा न होना।

६. जो प्रतिकूल आचरण न करे। सीधा। सुष्ठु। नम्र। जैसे,—(क) वह बिना मार खाए ठीक न होगा। (ख) हम अभी तुम्हें आकर ठीक करते हैं।

मुहा॰—ठीक बनाना = (१) दंड देकर सीधा करना। राह पर लाना। दुरुस्त करना। (२) तंग करना। दुर्गति करना। दुर्दशा करना।

७. जो कुछ आगे पीछे, इधर उधर या घटा बढ़ा न हो। जिसकी आकृति, स्थिति या मात्रा आदि में कुछ अंतर न हो। किसी निर्दिष्ट आकार, परिमाण या स्थिति का। जिसमें कुछ फर्क न पड़े। निर्दिष्ट। जैसे,—(क) हम ठीक ग्यारह बजे आवेंगे। (ख) चिड़िया ठीक तुम्हारे सिर के ऊपर है। (ग) यह चीज ठीक वैसी ही है।

मुहा॰—ठीक उतरना = जितना चाहिए उतना ही ठहरना। जाँच करने पर न घटना न बढ़ना। जैसे,—अनाज तौलने पर ठीक उतरा।

८. ठहराया हुआ। नियत। निश्चित। स्थिर। पक्का। तै। जैसे, काम करने के लिये आदमी ठीक करना, गाड़ी ठीक करना, भाड़ा ठीक करना, विवाह ठीक करना।

क्रि॰ प्र॰—करना।—होना।

यौ॰—ठीक ठाक।

ठीक²—क्रि॰ वि॰ जैसे चाहिए वैसे। उपयुक्त प्रणाली से। जैसे, ठीक चलना, ठीक पोड़ना। उ॰—(क) यह घोड़ा ठीक नहीं चलता। (ख) यह बनिया ठीक नहीं तौलता।

यौ०—ठीकमठाकां, ठीकमठीक=एकदम ठीक। पूर्णतः ठीक। बिलकुल दुरुस्त।

ठीक[3]—संज्ञा पुं० १. निश्चय। ठिकाना। स्थिर और असंदिग्ध बात। पक्की बात। दृढ़ बात। जैसे,—उनके आने का कुछ ठीक नहीं, आवें या न आवें।

यौ०—ठीक ठिकाना।

मुहा०—ठीक देना=मन में पक्का करना। दृढ़ निश्चय करना। उ०—(क) नीके ठीक दई तुलसी अवलंब बड़ी उर आखर दू को।—तुलसी (शब्द०)। (ख) कर विचार मन दीन्हीं ठीका। राम रजायसु आपन नीका।—तुलसी (शब्द०)।

विशेष—इस मुहावरे में 'ठीक' शब्द के आगे 'बात' शब्द लुप्त मानकर उसका प्रयोग स्त्रीलिंग में होता है।

२. नियति। ठहराव। स्थिर प्रबंध। पक्का आयोजन। बंदोबस्त। जैसे,—खाने पीने का ठीक कर लो, तब कहीं जाओ।

यौ०—ठीक ठाक।

३. जोड़। मीजान। योग। टोटल।

मुहा०—ठीक देना, ठीक लगाना=जोड़ निकालना। योगफल निश्चित करना।

ठीकठाक[1]—संज्ञा पुं० [हिं० ठीक] १. निश्चित प्रबंध। बंदोबस्त। आयोजन। जैसे,—इनके रहने का कहीं ठीक ठाक करो।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

२. जीविका का प्रबंध। काम धंधे का बंदोबस्त। आश्रय। ठौर ठिकाना। जैसे,—इनका भी कहीं ठीक ठाक लगाओ।

क्रि० प्र०—करना।—लगाना।

३. निश्चय। ठहराव। पक्की बात। जैसे,—विवाह का ठीक ठाक हो गया ?

ठीकठाक[2] वि०—अच्छी तरह दुरुस्त। बनकर तैयार। प्रस्तुत। काम देने योग्य।

ठीकड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० ठीकरा] दे० 'ठीकरा'।

ठीकरा—संज्ञा पुं० [देशी ठिक्करिया] [स्त्री० अल्पा० ठीकरी] १. मिट्टी के बरतन का फूटा टुकड़ा। खपरैल आदि का टुकड़ा। सिटकी।

मुहा०—(किसी के माथे या सिर पर) ठीकरा फोड़ना=दोष लगाना। कलंक लगाना। (जैसे किसी वस्तु या रुपए आदि को) ठीकरा समझना=कुछ न समझना। कुछ भी मूल्यवान् न समझना। अपने किसी काम का न समझना। जैसे,—पराए माल को ठीकरा समझना चाहिए। (किसी वस्तु का) ठीकरा होना=अंधाधुंध खर्च होना। पानी की तरह बहाया जाना। ठीकरे की तरह बेमोल एवं तुच्छ होना।

२. बहुत पुराना बरतन। टूटा फूटा बरतन। ३. भीख माँगने का बरतन। भिक्षापात्र। ४. सिक्का। रुपया (लघु०)।

ठीकरी[1]—संज्ञा स्त्री० [देशी ठिक्करिया] १. मिट्टी के बरतन का छोटा फूटा टुकड़ा। २. तुच्छ। निकम्मी चीज। ३. मिट्टी का तवा जो चिलम पर रखते हैं।

ठीकरी[2]—संज्ञा स्त्री० [देशी ठिक्क (=पुरुषेंद्रिय)] उपस्थ। स्त्रियों की योनि का उभरा हुआ तल।

ठीका—संज्ञा पुं० [हिं० ठीक] १. कुछ धन आदि के बदले में किसी के किसी काम को पूरा करने का जिम्मा। जैसे, मकान बनवाने का ठीका, सड़क तैयार करने का ठीका। २. समय समय पर आमदनी देनेवाली वस्तु को कुछ काल तक के लिये इस शर्त पर दूसरे को सुपुर्द करना कि वह आमदनी वसूल करके और उसमें से कुछ अपना मुनाफा काटकर बराबर मालिक को देता जायगा। इजारा।

क्रि० प्र०—देना।—लेना।—पर लेना।

ठीकेदार—संज्ञा पुं० [हिं०] १. ठीके पर दूसरों से काम लेनेवाला व्यक्ति। ठीका देनेवाला। २. किसी काम को कुछ निश्चित नियमों के अनुसार पूरा करा देने का जिम्मा लेनेवाला व्यक्ति।

ठीटा—संज्ञा पुं० [हिं० ठेंठा] दे० 'ठेंठा'।

ठीठी—संज्ञा स्त्री० [अनुध्व०] हँसी का शब्द।

यौ०—हाहा ठीठी।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

ठीढ़ी ठाढ़ी(पु)—वि० [सं० स्थिति+स्थ] जिस हालत में हो उसी में स्थित। स्पंदनहीन। निश्चेष्ट। उ०—सजि सिंगार कुंजन गई लह्यो नहीं बलबीर। ठीढ़ी ठाढ़ी सी तरुन बाढ़ी गाढ़ी पीर।—स० सप्तक, पृ० १८६।

ठीलना†—क्रि० स० [हिं०] दे० 'ठेलना'। उ०—मैं तो भुलि ज्ञान को आयो गयउ तुम्हारे ठीले।—सूर (शब्द०)।

ठीवन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० ष्ठीवन] थूक। खखार। कफ। श्लेष्मा। उ०—आमिष अस्थिन चाम को आनन, ठीवन तामें भरो अधिकाई।—रघुराज (शब्द०)।

ठीस†—संज्ञा स्त्री० [हिं० टीस] रह रहकर होनेवाली पीड़ा। टीस। उ०—मृतक होय गुरु पद गहै ठीस करै सब दूर।—कबीर श०, भा० ४, पृ० २६।

ठीहँ—संज्ञा स्त्री० [अनु०] घोड़ों की हींस। हिनहिनाहट का शब्द। उ०—दुहूँ दल ठीहँ तुरंगनि दीनी। दुहूँ दल बुद्धि जुद्ध रस भीनी।—लाल (शब्द०)।

ठीह—संज्ञा पुं० [सं० स्था] दे० 'ठीहा'।

ठीहा—संज्ञा पुं० [सं० स्था] १. जमीन में गड़ा हुआ लकड़ी का कुंदा जिसका थोड़ा सा भाग जमीन के ऊपर रहता है।

विशेष—इस कुंदे पर वस्तुओं को रखकर लोहार, बढ़ई आदि उन्हें पीटते, छीलते या गढ़ते हैं। लोहार, कसेरे आदि धातु का काम करनेवाले इसी ठीहे में अपनी 'निहाई' गाड़ते हैं। पशुओं को खिलाने का चारा भी ठीहे पर रखकर काटा जाता है।

२. बढ़इयों का लकड़ी गढ़ने का कुंदा जिसमें एक मोटी लकड़ी में ढालुआँ गड्ढा बना रहता है। ३. बढ़इयों का लकड़ी चीरने का कुंदा जिसमें लकड़ी को कसकर खड़ा कर देते और चीरते हैं। ४. बैठने के लिये कुछ किया हुआ स्थान। बेदी। गद्दी। ५. दूकानदार के बैठने की जगह। ६. हद। सीमा। ७. चौड़। थूनी। ८. उपयुक्त स्थान।

ठूंठ—संज्ञा पुं० [देश० ठुंठ या सं० स्थाणु] १. सूखा हुआ पेड़।

२. ऐसे पेड़ की बड़ी लकड़ी जिसकी डाल पत्तियाँ आदि कट या गिर गई हों। ३. कटा हुआ हाथ। ४. वह मनुष्य जिसका हाथ कटा हो। लूला।

ठुंठ—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठूंठ] दे० 'ठूंठ'।

ठुँकनाⓅ—क्रि० स० [हिं० ठोंकना] धीरे धीरे हथेली पटककर आघात पहुँचाना। हाथ मारना। उ०—दिन दिन देत उरहनो आवै ठुँकि ठुँकि करत लरैया।—सूर (शब्द०)।

ठुक—संज्ञा स्त्री० [अनुध्व०] किसी चीज पर कड़ी वस्तु से आघात करने का शब्द या ध्वनि।

ठुकठुक—संज्ञा स्त्री० किसी वस्तु को ठोंकने से लगातार होनेवाली ध्वनि।

क्रि० प्र०—करना।—लगाना।

ठुकना—क्रि० अ० [अनुध्व०] १. ताड़ित होना। ठोंका जाना। पिटना। आघात सहना। २. आघात पाकर धँसना। गड़ना। जैसे, खूँटा ठुकना।

संयो० क्रि०—जाना।

३. मार खाना। मारा जाना। जैसे,—घर पर खूब ठुकोगे। ४. कुश्ती आदि में हारना। ध्वस्त होना। पस्त होना। ५. हानि होना। नुकसान होना। चपत बैठना। जैसे,—घर से निकलते ही २०) की ठुकी। ६. काठ में ठोंका जाना। कैद होना। पैर में बेड़ी पहनना। ७. दाखिल होना। जैसे, नालिश ठुकना। ८. बजना। ध्वनित होना। उ०—कहुँ तिमत धर धुकत, लुकत कहुँ सुभट छात छल। ठुकत काल कहुँ पत्र, फुकत कहुँ फेन पाइ जल।—पृ० रा०, ८।४२।

ठुकराना—क्रि० स० [हिं० ठोकर] १. ठोकर मारना। ठोकर लगाना। लात मारना। २. पैर से मारकर किनारे करना। तुच्छ समझकर पैर से हटाना। ३. तिरस्कार या उपेक्षा करना। न मानना। अनादर करना। जैसे, बात ठुकराना, सलाह ठुकराना।

ठुकराला—संज्ञा पुं० [सं० ठक्कुर] १. दे० 'ठाकुर'। उ०—मनमानी जे पखाणजह। हिव चालो ठुकराला सामिहा जानि।—बी० रासो, पृ० १६। २. नेपाल के एक वर्ग की उपाधि।

ठुकवाना—क्रि० स० [हिं० ठोंकना का प्रे० रूप] १. ठोंकने का काम कराना। पिटवाना। २. गड़वाना। धँसवाना। ३. संभोग कराना (अशिष्ट)।

ठुकाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठुकना] ठोंके जाने या मार खाने की स्थिति, भाव या क्रिया। जैसे,—सुना आज बड़ी ठुकाई हुई।

ठुठंकनाⓅ—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'ठिठकना'। उ०—ठुठंकिय चक्किय कायर पाय। रनंकत रुंड बनंकत जाय।—पृ० रासो, पृ० ४१।

ठुड्डी—संज्ञा स्त्री० [सं० तुण्ड] चेहरे में होठ के नीचे का भाग। चिबुक। ठोढ़ी। हनु।

ठुड्डी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठड्ढा (= खड़ा)] वह भुना हुआ दाना जो फूटकर खिला न हो। ठोर्रा। जैसे, मक्के की ठुड्डी।

ठुनक ठुनक—संज्ञा स्त्री० [अनुध्व०] ठिठककर चलने के कारण आभूषण से निकलनेवाली ध्वनि। उ०—ठुमक चाल ठठि ठाठ सो, ठेल्यो मदन कटक्क। ठुनक ठुनक ठुनकार सुनि ठठके लाल भटक्क।—ब्रजनिधि ग्रं०, पृ० ३।

ठुनकना[1]—क्रि० अ० [हिं०] १. दे० 'ठिनकना'। २. प्यार या दुलार के कारण नखरा करना। उ०—सबको है आपको नहीं है? उसने ठुनकते हुए कहा।—आँधी, पृ० १२।

ठुनकना[2]—क्रि० स० [हिं० ठोंकना] धीरे से उँगली से ठोंक या मार देना।

ठुनकाना†—क्रि० स० [हिं० ठोंकना] धीरे से ठोंकना। उँगली से धीरे से चोट पहुँचाना।

ठुनकार—संज्ञा स्त्री० [अनुध्व०] ठुनक की आवाज। उ०—ठुनक ठुनक ठुनकार सुनि ठठके लाल भटक्क।—ब्रज० ग्रं०, पृ० ३।

ठुनठुन—संज्ञा पुं० [अनुध्व०] १. धातु के टुकड़ों या बरतनों के बजने का शब्द। २. बच्चों के रुक रुककर रोने का शब्द।

मुहा०—ठुन ठुन लगाए रहना = बराबर रोया करना।

ठुनुकना†—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'ठुनकना'। उ०—वह बालिका के सदृश ठुनुककर बोली।—कंकाल, पृ० २१७।

ठुमक—वि० [अनुध्व०] १. (चाल) जिसमें उमंग के कारण जल्दी जल्दी थोड़ी थोड़ी दूर पर पैर पटकते हुए चलते हैं। बच्चों की तरह कुछ कुछ उछल कूद या ठिठक लिए हुए (चाल)। २ ठसकभरी (चाल)। जैसे, ठुमक चाल।

ठुमक, ठुमक, ठुमुक, ठुमक—क्रि० वि० [अनुध्व०] जल्दी जल्दी थोड़ी थोड़ी दूर पर पैर पटकते हुए (बच्चों का चलना)। फुदकते या रह रहकर कूदते हुए (चलना)। जैसे, बच्चों का ठुमक ठुमक चलना। उ०—(क) कौशल्या जब बोलन जाई। ठुमकि ठुमकि प्रभु चलहिं पराई।—तुलसी (शब्द०)। (ख) चलत देखि जसुमति सुख पावै। ठुमुक ठुमुक धरनी पर रेंगत जननी देखि दिखावै।—सूर (शब्द०)।

ठुमकना, ठुमुकना—क्रि० अ० [अनुध्व०] १. बच्चों का उमंग में जल्दी जल्दी थोड़ी थोड़ी दूर पर पैर पटकते हुए चलना। उ०—ठुमुकि चलत रामचंद्र बाजत पैजनियाँ।—तुलसी (शब्द०)। २. नाचने मे पैर पटककर चलना जिसमें घुँघुरू बजें।

ठुमका[1]—वि० [देश०] [वि० स्त्री० ठुमकी] छोटे डील का। नाटा। ठिंगना। उ०—जाति चली ब्रज ठाकुर पै ठुमका ठुमकी ठुमकी ठकुराइन।—पद्माकर (शब्द०)।

ठुमका[2]—संज्ञा पुं० [अनुध्व०] [स्त्री० ठुमकी] झटका। चपका। —(पतंग)।

ठुमकारना—क्रि० स० [देश०] उँगली से डोरी खींचकर झटका देना। चपका देना।—(पतंग)।

ठुमकी[1]—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. हाथ या उँगली से खींचकर दिया हुआ झटका। चपका।—(पतंग)।

क्रि० प्र०—देना।—लगाना।

२. ठिठक। रुकावट। ३. छोटी और खरी पूरी।

ठुमकी[2]—वि० स्त्री० नाटी। छोटे डील की। छोटी काठी की। उ०—जाति चली ब्रज ठाकुर पै ठुमका ठुमकी ठुमकी ठकुराइन। —पद्माकर (शब्द०)।

ठुमठुम—वि० क्रि० वि० [हिं०] दे० 'ठुमक ठुमक'। उ०—भाई बंद सकल परिवारा। ठुमठुम पाव चले तेहि लारा।—घट०, पृ० ३७।

ठुमरी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] १. एक प्रकार का छोटा सा गीत। दो बोलों का गीत जो केवल एक स्थान और एक ही अंतरे में समाप्त हो।

यौ०—सिरपरदा ठुमरी = एक प्रकार की ठुमरी जो 'अद्धा' ताल पर बजाई जाती है।

२. उड़ती खबर। गप। अफवाह।

क्रि० प्र०—उड़ना।

ठुरियाना[1]—क्रि० अ० [हिं० ठार (=शीत)] ठिठुर जाना। सिकुड़ जाना। शीत से अकड़ जाना।

ठुरियाना†[2]—क्रि० अ० [हिं० ठुर्री] ठुर्री होना। भूने हुए दाने का न खिलना।

ठुर्री—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठड़ा (=खड़ा) या देश०] वह भुना हुआ दाना जो भुनने पर न खिले।

ठुसकना—क्रि० अ० [अनुध्व०] १. दे० 'ठिनकना'। २. ठुस शब्द करके पादना। ठुसकी मारना।

ठुसकी—संज्ञा स्त्री० [अनुध्व०] धीरे से पादने की क्रिया।

ठुसना—क्रि० अ० [हिं० ठूसना] १. कसकर भरा जाना। इस प्रकार समाना या अँटना कि कहीं खाली जगह न रह जाय। जैसे,—इस संदूक में कपड़े ठुसे हुए हैं। २. कठिनता से घुसना। ३. मर जाना। समाप्त हो जाना। न रहना। उ०—हिंदीपन भी न निकले, भाखापन भी ठुस जाय जैसे भले लोग अच्छों से अच्छे आपस में बोलते चालते हैं, ज्यों का त्यों वही सब डौल रहे और छाँह किसी की न पड़े।—ठेठ०, (उपो०), पृ० २।

ठुसवाना—क्रि० स० [हिं० ठूसना का प्रे०रूप] १. कसकर भरवाना। २. जोर से घुसवाना। ३. संभोग कराना। ठुकवाना (अशिष्ट०)।

ठुसाना—क्रि० स० [हिं० ठूसना] १. कसकर भरवाना। २. जोर से घुसवाना। ३. खूब पेट भर खिलाना (अशिष्ट०)।

ठूँग—संज्ञा स्त्री० [सं० तुण्ड] १. चोंच। ठोर। २. चोंच से मारने की क्रिया। चोंच का प्रहार। ३. उँगली को मोड़कर पीछे निकली हुई जोड़ की हड्डी की नोक से मारने की क्रिया। टोला।

क्रि० प्र०—लगाना।—मारना।

ठूँगनाⓅ†—क्रि० स० [हिं० ठूँग+ना (प्रत्य०)] ठूँगना। चुगना। उ०—चौदह तीन्यू लोक सब ठूँगे सासै सास। दादू साधू सब जरै, सतगुरु के बेसास।—दादू० बानी, पृ० १५६।

ठूँगा—संज्ञा पुं० [हिं० ठूँग] दे० 'ठूँग'।

ठूँठ—संज्ञा पुं० [हिं० टूटना, या सं० स्थाणु, या देशी ठुंठ (= स्थाणु)] १. ऐसे पेड़ की खड़ी लकड़ी जिसकी डाल, पत्तियाँ आदि कट गई हों। सूखा पेड़। २. कटा हुआ हाथ। ठुंडा। उ०—विद्या बिना हरण हित पढ़त होत जम ठूँठ। काष्ठो निकारो मीन को घुसि आयो गृह ऊँट।—विश्राम (शब्द०)। ३. एक प्रकार का कीड़ा जो ज्वार, बाजरे, ईख आदि की फसल में लगता है।

ठूँठा—वि० [हिं० ठूँठ या सं० स्थाणु] [वि०स्त्री० ठूँठी] १. बिना पत्तियों और टहनियों का (पेड़)। सूखा (पेड़)। जैसे, ठूँठा पेड़। २. बिना हाथ का। जिसका हाथ कटा हो। लूला।

ठूँठिया†—वि० [हिं० ठूँठ+इया (प्रत्य०)] १. लूला। लँगड़ा। २. हिजड़ा। नपुंसक।

ठूँठि—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठूँठ] ज्वार, बाजरे, अरहर आदि की जड़ के पास का डंठल जो खेत काटने पर पड़ा रह जाता है। खूँटी।

ठूँसना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'ठूसना'।

ठूँसा—संज्ञा पुं० [हिं०] १ दे० 'ठोसा'। २. मुक्का। घूँसा।

ठूठ—वि० [देशी ठुंठ, हिं० ठूँठ, ठूठ] दे० 'ठूँठ'। उ०—दसा सुने निज बाग की लाल मानिहो झूठ। पावस रितु हूँ में लखे ठाढ़े ठाढ़े ठूठ।—मति० ग्रं०, पृ० ४४६।

ठूठी†—संज्ञा स्त्री० [देश०] राजजामुन नाम का वृक्ष। वि० दे० 'राजजामुन'।

ठूनू—संज्ञा पुं० [देश०] पटवों की वह टेढ़ी कील जिसपर वे गहने अँटकाकर उन्हें गूँथते हैं।

विशेष—यह कील पत्थर में बैठाए हुए खूँटे के सिरे पर लगी होती है।

ठूसना—क्रि० स० [हिं० ठस] १. कसकर भरना। इतना अधिक भरना कि इधर उधर जगह न रहे। २. घुसेड़ना। जोर से घुसाना। ३. खूब पेट भरकर खाना। कसकर खाना।

ठेंगना—वि० [हिं० हेठ+अंग] [वि० स्त्री० ठेंगनी] छोटे डील का। जो ऊँचाई में पूरा न हो। नाटा।—(जीवधारियों, विशेषत: मनुष्य के लिये)।

ठेंगा—संज्ञा पुं० [हिं० हेठ+अंग या अँगूठा या देश०] १. अँगूठा। ठोसा।

मुहा०—ठेंगा दिखाना = (१) अँगूठा दिखाना। ठोसा दिखाना। धृष्टता के साथ अस्वीकार करना। बुरी तरह से नहीं करना। (२) चिढ़ाना। ठेंगे से = बला से। कुछ परवाह नहीं।

विशेष—जब कोई किसी से किसी बात की धमकी या कुछ करने या होने की सूचना देता है तब दूसरा अपनी बेपरवाही या निर्भीकता प्रकट करने के लिये ऐसा कहता है।

२. लिंगेंद्रिय। (अशिष्ट)। ३. सोंटा। डंडा। गदका। जैसे,—जबरदस्त का ठेंगा सिर पर।

मुहा०—ठेंगा बजाना = (१) मारपीट होना। लड़ाई दंगा होना। (२) व्यर्थ की खटखट होना। प्रयत्न निष्फल होना। कुछ

काम न निकलना। उ०—जिसका काम उसी को साजे। और करें तो ठेंगा बाजे।—(शब्द०)।

४. वह कर जो बिक्री के माल पर लिया जाता है। चुंगी का महसूल।

ठेंगुर—संज्ञा पुं० [हिं० ठेंगा (=सोटा)] काठ का लंबा कुंदा जो नटखट चौपायों के गले में इसलिये बाँध दिया जाता है जिसमें वे बहुत दौड़ और उछल कूद न सकें।

ठेंघा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ठेघा'।

ठेंठ[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'टेंठी'।

ठेंठ[2]—वि० [हिं०] दे० 'ठेठ'।

ठेंठा†—संज्ञा पुं० [हिं०] सूखा हुआ डंठल। उ०—रानी एक मजूर से बैलों के लिये जोन्हरी का ठेंठा कटवा रही थी।—तितली, पृ० २३८।

ठेंठी—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. कान की मैल का लच्छा। कान की मैल। २. कान के छेद में लगाई हुई रुई, कपड़े आदि की डाट। कान का छेद मूँदने की वस्तु।

मुहा०—कान में ठेंठी लगाना=न सुनना।

३. शीशी बोतल आदि का मुँह बंद करने की वस्तु। डाट। काग।

ठेंपी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० ठेंठी।

ठेक—संज्ञा स्त्री० [हिं० टिकना] १. सहारा। बल देकर टिकाने की वस्तु। ओठंगाने की चीज। २. वह वस्तु जो किसी भारी चीज को ऊपर ठहराए रखने के लिये नीचे से लगाई जाय। टेक। चाँड़। ३. वह वस्तु जिसे बीच में देने या ठोंकने से कोई ढीली वस्तु कस जाय, इधर उधर न हिले। पच्चड़। ४. किसी वस्तु के नीचे का भाग जो जमीन पर टिका रहे। पेंदा। तला। ५. टट्टियों आदि से घिरा हुआ वह स्थान जिसमें अनाज भरकर रखा जाता है। ६. घोड़ों की एक चाल। ७. छड़ी या लाठी की सामी। ८. धातु के बरतन में लगी हुई चकती। ९. एक प्रकार की मोटा महताबी।

ठेकना—क्रि० स० [हिं० टिकना, टेक] १. सहारा लेना। आश्रय लेना। चलने या उठने बैठने में अपना बल किसी वस्तु पर देना। टेकना। २. आश्रय लेना। टिकना। ठहरना। रहना। उ०—नौ, तेरह, चौबीस औ एका। पूरब दखिन कोन तेइ ठेका।—जायसी (शब्द०)। वि० दे० 'टेकना'।

ठेकवा बाँस—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बाँस।

विशेष—यह बंगाल और आसाम में होता है और छाजन तथा चटाई आदि के काम में आता है। इसे देवबाँस भी कहते हैं।

ठेका[1]—संज्ञा पुं० [हिं० टिकना, टेक] १. ठेक। सहारे की वस्तु। २. ठहरने या रुकने की जगह। बैठक। अड्डा। ३. तबला या ढोल बजाने की वह क्रिया जिसमें पूरे बोल न निकाले जायँ, केवल ताल दिया जाय। यह बाएँ पर बजाया जाता है।

क्रि० प्र०—बजाना।—देना।

मुहा०—ठेका भरना=घोड़े का उछल कूद करना।

४. तबले का बायाँ। डुग्गी। ५. कौवाली ताल। ६. ठोकर। धक्का। थपेड़ा। उ०—तरल तरंग गंग की राजहि उछलत छज लगि ठेका।—रघुराज (शब्द०)।

ठेका[2]—संज्ञा पुं० [हिं० ठीक] १. कुछ धन आदि के बदले में किसी के किसी काम को पूरा करने का जिम्मा। ठीका। जैसे, मकान बनवाने का ठेका। सड़क तैयार करने का ठेका। २. समय समय पर आमदनी देनेवाली वस्तु को कुछ काल तक के लिये इस शर्त पर दूसरे को सुपुर्द करना कि वह आमदनी वसूल करके और कुछ अपना निश्चित मुनाफा काटकर बराबर मालिक को देता जायगा। इजारा। पट्टा।

क्रि० प्र०—देना।—लेना।—पर लेना।

यौ०—ठेका पट्टा।

मुहा०—ठेका भेंट=वह नजर जो किसी वस्तु को ठेके पर लेनेवाला मालिक को देता है।

ठेकाई—संज्ञा स्त्री० [देश०] कपड़ों की छपाई में काले हाशियों की छपाई।

ठेकाना[1]—क्रि० स० [हिं० ठेकना का प्रे० रूप] ओठंघाना। किसी वस्तु को किसी वस्तु के सहारे करना। सहारा देना।

ठेकाना†[2]—संज्ञा पुं० [हिं० ठिकाना] दे० 'ठिकाना'।

ठेकुरी(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ढेंकली'। उ०—कहू ठेकुरी ढारि कै वारि ढारै।—प० रासो, पृ० ५५।

ठेकेदार—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ठीकेदार'।

ठेको—संज्ञा स्त्री० [हिं० टेक] १. टेक। सहारा। २. चाँड़। ३. विश्राम करने के लिये ऊपर लिए हुए बोझ को कुछ देर कहीं टिकाने या ठहराने की क्रिया।

क्रि० प्र०—लगाना।—लेना।

ठेगड़ी(पु)—संज्ञा पुं० [देश०] कुत्ता।—(डिं०)।

ठेगना(पु)—क्रि० स० [हिं० टेकना] १. टेकना। सहारा लेना। उ०—पाणि ठेगि मंजूषा काही। रघुनायक चितयो गुरु पाही।—रघुराज (शब्द०)। २. रोकना। बरजना। मना करना। उ०—भँवर भुजग कहा सो पीया। हम ठेगा तुम कान न कीया।—जायसी (शब्द०)।

ठेगनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठेगना] टेकने की लकड़ी।

ठेघना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'ठेगना'।

ठेघनी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठेघना] टेकने की लकड़ी।

ठेघा†—संज्ञा पुं० [हिं० टेक] टेक। चाँड़। वह खंभा या लकड़ी जो सहारे के लिये लगाई जाय। ठहराव। टिकान। उ०—(क) बरतहि बरन गगन जस मेघा। उठहि गगन बैठे जनु ठेघा।—जायसी (शब्द०)। (ख) बिरह बजागि बीज को ठेघा।—जायसी ग्रं०, पृ० १६१।

ठेघुना†—संज्ञा पुं० [सं० अष्ठीव, हिं० ठेहुना] दे० 'ठेहुना'।

ठेठ[1]—वि० [देश०] १. निपट। निरा। बिलकुल। जैसे, ठेठ गँवार। २. खालिस। जिसमें कुछ मेलजोल न हो। जैसे, ठेठ बोली, ठेठ हिंदी। ३. शुद्ध। निर्मल। निर्लिप्त। उ०—मैं उपकारी ठेठ का सतगुरु दिया सोहाग। दिल दरपन दिखलाय के दूर

किया सब ताग।—कबीर (शब्द०)। ४. आरंभ। शुरू। उ०—मैं ठेठ से देखता आता हूँ कि आप मुझको देखकर जलते हैं।—श्रीनिवास दास (शब्द०)।

ठेठ[२]—संज्ञा स्त्री० सीधी सादी बोली। वह बोली जिसमें साहित्य अर्थात् लिखने पढ़ने की भाषा के शब्दों का मेल न हो।

ठेठर†—संज्ञा पुं० [अं० थियटर] दे० 'थियटर'।

ठेना†—क्रि० अ० [?] १. ठहरना। रुकना। २. अकड़ना। ऐंठना। उ०—नाहक का झगड़ा मोल लेना है, सेतमेत का ठेना है।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ५४।

ठेप[१]—संज्ञा स्त्री० [देश०] सोने चाँदी का इतना बड़ा टुकड़ा जो घंटी में आ सके।—(सुनार)।

विशेष—सुनार सोना या चाँदी गायब करने के लिये उसे इस प्रकार घटी में लेते हैं।

क्रि० प्र०—चढ़ाना।—लगाना।

ठेप[२]—संज्ञा पुं० [सं० दीप] दीपक। चिराग।

ठेपी—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. डाट। काग जिससे बोतल या किसी बरतन का मुँह बंद किया जाता है। २. छोटा ढकना।

ठेर†—संज्ञा पुं० [हिं० ठहर] ठहराव। रुकाव का स्थान। टेक। उ०—पद नवकल रो ठेर पुणीजे, गीत सतखणो मंछ गुणी जे।—रघु० रू०, पृ० १३७।

ठेलना—क्रि० स० [हिं० टलना या अप० √ठिल्ल] १. ढकेलना। धक्का देकर आगे बढ़ाना। रेलना।

संयो० क्रि०—देना।

यौ०—ठेलठाल, ठेलमठेल=धक्कम धक्का। ठेलाठेल। ठेलमेल= एक पर एक आगे बढ़ते हुए। ठेलाठेली=धक्कम धक्का।

२. जबर्दस्ती करना। बलात् किसी को धकियाते हुए आगे बढ़ना।

ठेला—संज्ञा पुं० [हिं० ठेलना] १. बगल से लगा हुआ धक्का जिसके कारण कोई वस्तु खिसककर आगे बढ़े। पार्श्व का आघात। टक्कर। २. छिछली नदियों में चलनेवाली नाव जो लग्गी के सहारे चलाई जाती है। ३. बहुत से आदमियों का एक के ऊपर एक गिरना पड़ना। धक्कम धक्का। ऐसी भीड़ जिसमें देह से देह रगड़ खाय। रेला। ४. एक प्रकार की गाड़ी जिसे आदमी ठेल या ढकेलकर चलाते हैं।

यौ०—ठेलागाड़ी।

ठेलाठेल—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठेलना] बहुत से आदमियों का एक के ऊपर एक गिरना पड़ना। रेला पेल। धक्कम धक्का। उ०—ठानि ब्रह्म ठाकुर ठगोरिन की ठेलाठेलि मेला के मझार हित हेला कै भलो गयो।—पद्माकर (शब्द०)।

ठेवका†—संज्ञा पुं० [सं० स्थापक] वह स्थान जहाँ खेत सींचने के लिये पुरवट का पानी गिराया जाता है।

ठेवकी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठेवका] किसी लुढ़कनेवाली वस्तु को अड़ाने या टिकाने की जगह या वस्तु।

ठेस—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. आघात। चोट। धक्का। ठोकर। उ०—बीवी के दिल पर संगेफिराक की ऐसी ठेस लगी कि चकनाचूर हो गया।—फिसाना०, भा० १, पृ० १२।

क्रि० प्र०—देना।—लगना।—लगाना।

२. सहारा। टेक।

ठेसना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'ठूसना'।

ठेसमठेस—क्रि० वि० [हिं० ठेस] सब पालों को एकबारगी खोले हुए (जहाज का चलना)।—(लश०)।

ठेहरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] वह छोटी सी लकड़ी जो पुरानी चाल के दरवाजों के पल्लों की चूल के नीचे गड़ी रहती है और जिसपर चूल घूमती है।

ठेही—संज्ञा स्त्री० [देश०] मारी हुई ईख।

ठेहुका†—संज्ञा पुं० [हिं० ठेक] वह जानवर जिसके पिछले घुटने चलते समय आपस में रगड़ खाते हों।

ठेहुना†—संज्ञा पुं० [सं० अष्ठीवान्] [स्त्री० ठेहुनी] घुटना।

ठेहुनी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठेहुना] हाथ की कुहनी।

ठैकर—संज्ञा पुं० [देश०] नीबू का सा एक खट्टा फल जिसे हलदी के साथ उबालकर हलका पीला रंग बनाते हैं।

ठैन(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थान, हिं० ठाँय] जगह। स्थान। बैठने का ठाँव। उ०—क्रीड़त सघन कुंज बृंदावन बंसीबट जमुना की ठैन।—सूर (शब्द०)।

ठैयाँ‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठाँय] दे० 'ठाईं'।

ठैरना‡—क्रि० अ० [हिं० ठहरना] दे० 'ठहरना'। उ०—उनकी कोई बात हिकमत से खाली नहीं ठैरती।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० १८४।

ठैराई‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठहराना] दे० 'ठहराई'।

ठैराना†—क्रि० स० [हिं०] दे० 'ठहराना'। उ०—(क) मैं बीजक दिखाकर इसी कीमत ठैरा लूँगा।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० १६०। (ख) हे सारथी, तपोवनवासियों के काम में कुछ विघ्न न पड़े इससे रथ यहीं ठैरा दो हम उतर लें।—शकुंतला, पृ० १२।

ठैलपैल—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठेलना] दे० 'ठेलपेल'।

ठैहरना†—क्रि० अ० [हिं० ठहरना] रुकना। ठहरना। उ०—(कछु ठैहरि कें) प्यारे, जो येंही गति करनी ही तो अपनायो क्यों?—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ४९५।

ठोंक—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठोकना] ठोंकने की क्रिया या भाव। प्रहार। आघात। २. वह लकड़ी जिससे दरी बुननेवाले सूत ठोंककर ठस करते हैं।

ठोंकना—क्रि० स० [अनुध्व० ठक ठक] १. जोर से चोट मारना। आघात पहुँचाना। प्रहार करना। पीटना। जैसे,—इसे हथौड़े से ठोंको।

संयो० क्रि०—देना।

२. मारना। पीटना। लात, घूँसे डंडे आदि से मारना। जैसे,—घर पर जाओ खूब ठोंके जाओगे।

संयो० क्रि०—देना।

३. ऊपर से चोट लगाकर धँसाना। गाड़ना। जैसे, कील ठोंकना, पत्थर ठोंकना। ४. (नालिश, अरजी आदि) दाखिल करना। दायर करना। जैसे, नालिश ठोंकना, दावा ठोंकना।

संयो० क्रि०—देना।

५. काठ में डालना। बेड़ियों से जकड़ना। ६. धीरे धीरे हथेली पटककर आघात पहुँचाना। हाथ मारना। जैसे, पीठ ठोंकना, ताल ठोंकना, बच्चे को ठोंककर सुलाना।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

मुहा०—ठोक ठोंककर लड़ना = ताल ठोंककर लड़ना। डटकर लड़ना। जबरदस्ती झगड़ा करना। ठोंकना बजाना = हाथ से टटोलकर परीक्षा करना। जाँचना। परखना। जैसे,—लोग दमड़ी की हाँड़ी भी ठोंक बजाकर लेते हैं। उ०—(क) तन सराय मन पाहरू, मनसा उतरी आय। कोउ काहू का है नहीं (सब) देखा ठोक बजाय।—कबीर सा० सं०, पृ० ६१। (ख) ठोंकि बजाय लखे गजराज कहाँ लौं कहौं केहि सों रद काढ़े।—तुलसी (शब्द०)। (ग) नंद ब्रज लीजै ठोंकि बजाय। देहु बिदा मिलि जाँहि मधुपुरी जँह गोकुल के राय।—सूर (शब्द०)। पीठ ठोंकना = दे० 'पीठ' का मुहा०। रोटी या बाटी ठोंकना = आटे की लोई को हाथ से ठोंकते हुए बढ़ाकर रोटी बनाना।

७. हाथ से मारकर बजाना। जैसे, तबला ठोंकना। ८. कसकर अटकाना। लगाना। जड़ना। जैसे, ताला ठोंकना। ९. हाथ या लकड़ी से मारकर 'खट खट' शब्द करना। खटखटाना।

ठोंकवा†—संज्ञा पुं० [हिं० ठोंकना] मीठा मिले हुए आटे की मोटी पूरी। गुना।

ठोंग—संज्ञा स्त्री० [सं० तुण्ड] १. चंचु। चोंच। २. चोंच की मार। ३. उँगली झुकाकर पीछे की ओर निकली हुई नोक से मारने की क्रिया। उँगली की ठोकर। खुदका।

ठोंगना—क्रि० स० [हिं० ठोंग] १. चोंच मारना। २. उँगली से ठोकर मारना। खुदका मारना।

ठोंगा†—संज्ञा पुं० [हिं० ठोंग] पतले कागज का नोकदार या गोला एक पात्र जिसमें दुकानदार सौदा देते हैं।

ठोंघना†—क्रि० स० [हिं० ठोंग] दे० 'ठोंगना'।

ठोंठ—संज्ञा स्त्री० [सं० तुण्ड] चोंच का अगला सिरा। ठोर। उ०—चाटुकारी का रोचक जाल फैलाकर उनकी रणकुशल कठफोरे की सी ठोंठ को बाँध दूँ।—वीणा, (विज्ञापन)।

ठोंठा—संज्ञा पुं० [देश०] एक कीड़ा जो ज्वार, बाजरा और ईख को हानि पहुँचाता है।

ठोंठी†—संज्ञा स्त्री० [सं० तुण्ड] १. चने के दाने का कोश। २. पोस्ते की ढोंढ़ी।

ठो—अव्य० [देश० या हिं० ठौर] एक शब्द जो पूरबी हिंदी में संख्यावाचक शब्दों के आगे लगाया जाता है। संख्या। अदद। जैसे, एक ठो, दो ठो। इस अर्थ के बोधक अन्य शब्द गो, ठे आदि भी चलते हैं। जैसे, एक ठे, दु गो आदि।

ठोकवा—संज्ञा पुं० [देश०] आम की गुठली के ऊपर का कड़ा छिलका या आवरण।

ठोक(५)—[हिं०] दे० 'ठोंक'। उ०—सुंदर मसकतिदार सो गुरु मधि काढ़ै आगि। सदगुरु चकमक ठोकतें तुरत उठै कफ जागि।—सुंदर० ग्रं०, भा०, २, पृ० ६७१।

ठोकना—क्रि० स० [हिं० ठोंकना] दे० 'ठोंकना'।

यौ०—ठोक पीट करना = ठोकना पीटना। बारबार ठोकना। ठोक पीटकर गढ़ना = ठोंक पीटकर दुरुस्त करना। तैयार करना। उ०—जब हम सोने को ठोक पीट गढ़ते हैं, तब मान मूल्य, सौदर्य सभी बढ़ते हैं।—साकेत, पृ० २१३।

ठोकर—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठोकना] १. वह चोट जो किसी अंग विशेषत: पैर में किसी कड़ी वस्तु के जोर से टकराने से लगे। आघात जो चलने में कंकड़, पत्थर आदि के धक्के से पैर में लगे। ठेस।

क्रि० प्र०—लगना।

मुहा०—ठोकर उठाना = आघात या दुःख सहना। हानि उठाना। ठोकर या ठोकरें खाना = (१) चलने में एकबारगी किसी पड़ी हुई वस्तु की रुकावट के कारण पैर का चोट खाना और लड़खड़ाना। अढुकना। अढुककर गिरना। जैसे,—जो सँभलकर नहीं चलेगा वह ठोकर खाकर गिरेगा (२) किसी भूल के कारण दुःख या हानि सहना। असावधानी या चूक के कारण कष्ट या क्षति उठाना। जैसे,—ठोकर खावे, बुद्धि पावे (३) धोखे में आना। भूलचूक करना। चूक जाना। (४) प्रयोजन सिद्धि या जीविका आदि के लिये चारो ओर घूमना। हीन दशा में भटकना। इधर उधर मारा मारा फिरना। दुर्दशाग्रस्त हो कर घूमना। दुर्गति सहना। कष्ट सहना। जैसे,—यदि वह कुछ काम धंधा नहीं सीखेगा तो आप ही ठोकर खायगा। ठोकर खाता फिरना = इधर उधर मारा मारा फिरना। ठोकर लगना = किसी भूल या चूक के कारण दुःख या हानि पहुँचना। ठोकर लेना = ठोकर खाना। अढुकना। चलने में पैर का कंकड़ पत्थर आदि किसी कड़ी वस्तु से जोर से टकराना। ठेस खाना। जैसे, घोड़े का ठोकर लेना।

२. रास्ते में पड़ा हुआ उभरा पत्थर या कंकड़ जिसमें पैर रुककर चोट खाता है।

मुहा०—ठोकर जड़ाऊ कदम में = ठोकर बचाते हुए। रास्ते का कंकड़ पत्थर बचाते हुए। ठोकर पहाड़िया कदम में = धंसा हुआ पत्थर या कंकड़ बचाते हुए।

विशेष—इन दोनों मुहावरों का प्रयोग पालकी ढोते समय पालकी ढोनेवाले कहार करते हैं।

३. वह कड़ा आघात जो पैर या जूते के पंजे से किया जाय। जोर का धक्का जो पैर के अगले भाग से मारा जाय। जैसे,—एक ठोकर देंगे होश ठीक हो जायँगे।

क्रि० प्र०—मारना।—लगाना।

मुहा०—ठोकर देना या जड़ना = ठोकर मारना। ठोकर खाना = पैर का आघात सहना। लात सहना। पैर के आघात से इधर उधर लुढ़कना। ठोकरों पर पड़ा रहना = किसी की सेवा करके और मार गाली खाकर निर्वाह करना। अपमानित होकर रहना।

४. कड़ा आघात। धक्का। ५. जूते का अगला भाग। ६. कुश्ती का एक पेंच जो उस समय किया जाता है जब विपक्षी (जोड़) लड़ते लड़ते भीतर घुसता है।

विशेष—इसमें विपक्षी का हाथ बगल में दबाकर दूसरे हाथ की तरफ से उसकी गरदन पर थपेड़ा देते हैं। और जिधर का हाथ बगल में दबाया रहता है उधर ही की टाँग से धक्का देते हैं।

ठोकरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] वह गाय जिसे बच्चा दिए कई महीने हो चुके हों। इसका दूध गाढ़ा और मीठा होता है। बकेना गाय।

ठोकवा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ठोंकवा'।

ठोका†—संज्ञा पुं० [देश०] स्त्रियों के हाथ का एक गहना जो चूड़ियों के साथ पहना जाता है। एक प्रकार की पछेली।

ठोठ[1]—वि० [हिं० ठूंठ] १. जिसमें कुछ तत्व न हो। २. जड़। मूर्ख। गावदी।

ठोठ[2]—वि० [हिं० ठोट] मूर्ख। जड़। व्यवहारशून्य। उ०—(क) दादू आदर भाव का मीठा लागै मोठ। बिन आदर व्यंजन बुरा जीमण वाला ठोठ।—राम० धर्म०, पृ० २७१। (ख) ठग कामेती ठोठ गुरु चुगल न कीजे सेण।—बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० ४८।

ठोठरा—वि० [हिं० ठूंठ] [वि० स्त्री० ठोठरी] किसी जमी या लगी हुई वस्तु के निकल जाने से खाली पड़ा हुआ। खाली। पोपला। उ०—सात द्यौस एहि बिधि लरे बान बाँधि बलवंत। रातिहु दिनहु ठटाइ कै करे ठोठरे दंत।—लाल (शब्द०)।

ठोड†—संज्ञा पुं० [हिं० ठौर] स्थान। जगह। उ०—(क) आप ठोड जे उमंग न आया फिरता ठोड अनेक फिरे।—रघु० रू०, पृ० २५१। (ख) दोनूँ ठोड जैपुर जोधपुर नै जोर दीनूँ।—शिखर०, पृ० ८२।

ठोड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० तुण्ड] चेहरे में ओठ के नीचे का भाग जो कुछ गोलाई लिये उभरा होता है। ठुड्डी। चिबुक। दाढ़ी।

मुहा०—ठोड़ी पर हाथ धरकर बैठना = चिंता में मग्न होकर बैठना। ठोड़ी पकड़ना, ठोड़ी में हाथ देना = (१) प्यार करना। (२) किसी चिढ़े हुए आदमी को स्नेह का भाव दिखाकर मनाना। मीठी बातों से क्रोध शांत करना। ठोड़ी तारा = सुंदरी स्त्री की ठुड्डी पर का तिल या गोदना।

ठोढ़ी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ठोड़ी'। उ०—है मुख प्रति छबि आगरो, कहा सरद को चंद। पै हित मान समान किय तुव ठोढ़ी को बुंद।—स० सप्तक, पृ० ३४८।

ठोप†—संज्ञा पुं० [अनु० टप् टप्] बूँद। बिंदु।

यौ०—ठोप ठोप, ठोपैठोप = बूँद बूँद। उ०—त्यों त्यों गरई होइ सुने संतन की बानी। ठोपै ठोप अघाय ज्ञान के सागर पानी।—पलटू०, पृ० ६१।

ठोर[1]—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार मिठाई या पकवान जो मैदे को मोयनदार बढ़ाई हुई लोई को घी में तलने और चाशनी में पागने से बनता है। वल्लभ संप्रदाय के मंदिरों में इसका भोग प्राय: लगता है।

ठोर[2]—संज्ञा पुं० [सं० तुण्ड] चोंच। चंचु। उ०—कौटिया दूध देवे नहिं कबहीं ठोर चलावै गोंछी।—सं० दरिया, पृ० १२७।

ठोरी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठोर] कोल्हू का वह स्थान जहाँ से रस अथवा तेल टपककर गिरता है। टोंटी। उ०—उकडूँ झुक जाती, भरा टाड़ा हटाकर अलग रख लेती और खाली टाड़ा कोल्हू की ठोरी से लगा देती।—नई०, पृ० ८१।

ठोलना†—क्रि० स० [हिं० डुलाना] डुलाना। चलाना। उ०—दासी होई करि निरवहुँ, पाय पखारसुँ ठोलसुँ बाई।—बी० रासो, पृ० ४२।

ठोला[1]—संज्ञा पुं० [देश०] रेशम फेरनेवालों का एक औजार जो लकड़ी की चौकोर छोटी पटरी (एक बित्ता लंबी एक बित्ता चौड़ी) के रूप में होता है। इसमें लकड़ी का एक खूँटा लगा रहता है जिसमें सूआ डालने के लिये दो छेद होते हैं।

ठोला[2]—संज्ञा पुं० [देश०] [स्त्री० ढोली] मनुष्य। आदमी।—(सधरदाई)। उ०—हम ठोली सायर रस जाना।—घट०, पृ० ३६२।

ठोवड़ी†—संज्ञा पुं० [सं० स्थान, प्रा० ठाण; अप० ठाव; राज० ठावड़, ठोवड़ी] दे० 'ठौर'। उ०—सिंधु परइ सत जोअणे खिवियाँ बीजलियाँह। सुरहउ लोइ महक्कियाँ, भीनी ठोवड़ियाँह।—ढोला०, पृ० १९०।

ठोस—वि० [हिं० ठस] जिसके भीतर खाली स्थान न हो। जो भीतर से खाली न हो। जो पोला या खोखला न हो। जो भीतर से भरापूरा हो। जैसे, ठोस कड़ा। उ०—यह मूर्ति ठोस सोने की है।—(शब्द०)।

विशेष—'ठस' और 'ठोस' में अंतर यह है कि 'ठस' का प्रयोग या तो चद्दर के रूप की बिना मोटाई की वस्तुओं का घनत्व सूचित करने के लिये अथवा गीले या मुलायम के विरुद्ध कड़ेपन का भाव प्रकट करने के लिये होता है। जैसे, ठस बुनावट, ठस कपड़ा, गीली मिट्टी का सूखकर ठस होना। और, 'ठोस' शब्द का प्रयोग 'पोले' या 'खोखले' के विरुद्ध भाव प्रकट करने के लिये अत: लंबाई, चौड़ाई, मोटाईवाली (घनात्मक) वस्तुओं के संबंध में होता है।

२. दृढ़। मजबूत।

ठोस[2]—संज्ञा पुं० [देश०] घसक। कुढ़न। डाह। उ०—इक हरि के दरसन बिनु मरियत अरु कुबजा के ठोसनि।—सूर (शब्द०)।

ठोसा—संज्ञा पुं० [देश०] अँगूठा। (हाथ का) ठेंगा।

मुहा०—ठोसा दिखाना = अँगूठा दिखाना। इनकार करना। ठोसे में = बला से। ठेंगे से। कुछ परवाह नहीं।

ठोहना†—क्रि० स० [हिं० टोहना, ढूंढ़ना] ठिकाना ढूंढ़ना। पता लगाना। खोजना। उ०—आयो कहाँ अब हो कहि को हो। ज्यों अपनो पद पाउँ सो ठोहो।—केशव (शब्द०)।

ठोहर†—संज्ञा पुं० [हिं० निठोहर] अकाल। गिरानी। महँगी।

ठौका—संज्ञा पुं० [सं० स्थानक, हिं० ठाँव + क (प्रत्य०)] वह स्थान जहाँ सिंचाई के लिये तालाब, गड्ढे आदि का पानी दौरी से ऊपर उलीचकर गिराते हैं। ठेवका।

ठौड़†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ठौर'। उ०—दिल्ली गयो कुष,

मन दीधो। किण ही ठोड़ मुकाम न कीधो।—रा० रू०, पृ० २६।

ठौनिⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ठवनि'।

ठौरⓅ—संज्ञा पुं० [सं० स्थान, प्रा० ठान, हिं० ठाँव + र (प्रत्य०)] १. जगह। स्थान। ठिकाना।

यौ०—ठौर ठिकाना = (१) रहने का स्थान। (२) पता ठिकाना।

मुहा०—ठौर कुठौर = (१) अच्छी जगह, बुरी जगह। बुरे ठिकाने। अनुपयुक्त स्थान पर। जैसे—(क) हम प्रकार ठौर कुठौर की चीज न उठा लिया करो। (ख) तुम पत्थर फेंकते हो किसी को ठौर कुठौर लग जाय तो? (२) बेमौका। बिना अवसर। ठौर न आना = समीप न आना। पास न फटकना। उ०—हरि को भजै सो हरिपद पावै। जन्म मरन तेहि ठौर न आवै।—सूर (शब्द)। ठौर न रहना = स्थान या जगह न मिलना। निराश्रय होना। उ०—कबीर ते नर अंध हैं, गुरु को कहते और। हरि रूठे गुरु ठौर हैं, गुरु रूठे नहिं ठौर।—कबीर सा० सं०, भा० १, पृ० ४। ठौर मारना = तुरंत वध कर देना। उ०—तब मनुष्यन ने वाकों ठौर मारयो। ता पाछें वाको सीस गाम के द्वार पै बाँध्यो।—दो सौ बावन०, भा० २, पृ० ६६। ठौर रखना = उसी जगह मारकर गिरा देना। मार डालना। ठौर रहना = (१) जहाँ का तहाँ रह जाना। पड़ रहना। (२) मर जाना। किसी के ठौर = किसी के स्थानापन्न। किसी के तुल्य। उ०—किबले के ठौर बाप बादशाह साहजहाँ ताको कैद कियो मानो मक्के आगि लाई है।—भूषण (शब्द०)।

२. मौका। घात। अवसर। उ०—ठौर पाय पवनपुत्र डारि मुद्रिका दई।—केशव (शब्द०)।

ठौहर—संज्ञा पुं० [हिं० ठौर] स्थान। ठाँव। ठौर। उ०—सुंदर भटक्यो बहुत दिन अब तू ठौहर आव फेरि न कबहूँ आइहैं यह औसर यह डाव।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ७००।

ठ्यापा†—वि० [देश०] उपद्रवी। शरारती। उतपाती।

ड

ड—व्यंजनों में तेरहवाँ व्यंजन और टवर्ग का तीसरा वर्ण। इसका उच्चारण आभ्यंतर प्रयत्न द्वारा तथा जिह्वामध्य को मूर्धा में स्पर्श करने से होता है।

डंक—संज्ञा पुं० [सं० दंश या दंशी] १. भिड़, बिच्छू, मधुमक्खी आदि कीड़ों के पीछे का जहरीला काँटा जिसे व क्रोध में या अपने बचाव के लिये जीवों के शरीर मे धँसाते हैं। उ०—उलटिया सूर ग्रह डंक छेदन किया, पोखिया चंद्र तहाँ कला सारी।—राम० धर्म०, पृ० ३१६।

विशेष—भिड़, मधुमक्खी आदि उड़नेवाले कीड़ों के पीछे जो काँटा होता है, वह एक नली के रूप में होता है जिससे होकर जहर की गाँठ से जहर निकलकर चुभे हुए स्थान में प्रवेश करता है। यह काँटा केवल मादा कीड़ों को होता है।

क्रि० प्र०—मारना।

२. कलम की जीभ। निब। ३. डंक मारा हुआ स्थान। डंक का घाव।

डंकⓅ²—संज्ञा पुं० [सं०, प्रा० डक्क (= वाद्यविशेष) अथवा अनु०] डमरू। डिगडिगी। उ०—बाजीगर ने डंक बजाया। सब लोग तमाशे आया।—कबीर मं०, पृ० ३३८।

डंकदार—वि० [हिं० डंक + फ़ा० दार] डंकवाला। काँटेदार।

डंकना†—क्रि० अ० [अनु०] शब्द करना। गरजना। भयानक शब्द करना। उ०—हथनाल हंकिय तोप डंकिय धुनि धमंकिय चंड।—सूदन (शब्द०)।

डंका¹—संज्ञा पुं० [सं० ढक्का (= दुंदुभि का शब्द)] एक प्रकार का बाजा जो नाँद के आकार के ताँबे या लोहे के बरतनों पर चमड़ा मढ़कर बनाया जाता है। पहले लड़ाई में डंके का जोड़ा ऊँटों और हाथियों पर चलता था और उसके साथ झंडा भी रहता था।

क्रि० प्र०—बजना।—बजाना।—पिटना।—पीटना।

मुहा०—डंके की चोट कहना = खुल्लम खुल्ला कहना। सबको सुनाकर कहना। बेधड़क कहना। डंका डालना = (१) मुरगे से मुरगे को लड़ाना। (२) मुरगे का चोंच मारना। डंका देना या पीटना = (१) दे० 'डंका बजाना'। (२) मुनादी करना। डुग्गी फेरना। ढोंढो फेरना। डंका बजाना = हल्ला करके सबको सुनाना। सबपर प्रकट करना। प्रसिद्ध करना। घोषित करना। किसी का डंका बजना = किसी का शासन या अधिकार होना। किसी की चलती होना। उ०—सजे अभी साकेत, बजे हाँ, जय का डंका। रह न जाय अब कहीं किसी रावण की लंका।—साकेत, पृ० ४०२।

यौ०—डंका निशान = राजाओं की सवारी में आगे बजनेवाला डंका और ध्वजा।

डंका²—संज्ञा पुं० [अं० डाक] जहाजों के ठहरने का पक्का घाट।

डंकिनि—संज्ञा स्त्री० [सं० डाकिनी] दे० 'डाकिनी'।

डंकिनी बंदोबस्त—संज्ञा पुं० [अ० दवामी + फ़ा० बंदोबस्त] स्थायी व्यवस्था। दे० 'दवामी बंदोबस्त'।

डंको¹—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. कुश्ती का एक पेंच। २. मालखंभ की एक कसरत।

डंको²—वि० [हिं० डंक] डंकवाला।

डंकुर—संज्ञा पुं० [हिं० डंका] एक प्रकार का पुराना बाजा जिससे ताल दिया जाता था।

डंख¹—संज्ञा पुं० [देश०] पलाश। ढाक।

डंख(पु)²—संज्ञा पुं० [हिं० डंक] विष का दाँत। उ०—ये देखो ममता नागन भाई रे भाई भाई। तिनें तो डंख मारा रे मारा। —दक्खिनी०, पृ० ५८।

डंग—संज्ञा पुं० [देश०] अधपका छुहारा।

डंगम—संज्ञा पुं० [देश०] वृक्ष विशेष। एक पेड़ का नाम।

विशेष—यह पेड़ बहुत बड़ा होता है। हर साल जाड़े के दिनों में इसके पत्ते झड़ जाते हैं। इसकी लकड़ी भीतर से भूरी, बहुत कड़ी और मजबूत निकलती है। दार्जिलिंग के आसपास तथा खसिया की पहाड़ियों में यह अधिक मिलता है।

डंगर¹—संज्ञा पुं० [देश०] चौपाया (जैसे, गाय, भैंस)। उ०—मानुष ह्वै कोइ मुवा नहिं, मुवा सो डंगर ढूर।—कबीर मं०, पृ० ३६४।

डंगर²—वि० दे० 'डाँगर'।

डंगूज्वर—संज्ञा पुं० [अं० डेंगू+सं० ज्वर] एक प्रकार का ज्वर जिसमें शरीर जकड़ उठता है और उसपर चकत्ते पड़ जाते हैं। इसे लँगड़ा ज्वर भी कहते हैं।

डंगोरी†—संज्ञा पुं० [देशी डंगा (= यष्टि) + हिं० ओरी (प्रत्य०)] छड़ीकी। यष्टि। छड़ी। उ०—हथ डंगोरी पग खिसहि डोली देहि नीमाणु।—प्राण०, पृ० २५०।

डंटा†—संज्ञा पुं० [हिं० डंडा] दे० 'डंडा'। उ०—साले नगाड़ची ने ठीक सामने कपाल पर ही डंटा चलाया था।—मैला०, पृ० ७५।

डंठल—संज्ञा पुं० [सं० दण्ड] छोटे पौधों की पेड़ी और शाखा। नरम छाल के झाड़ों और पौधों का धड़ और टहनी। जैसे, ज्वार का डंठल, मूली का डंठल।

डंठी†—संज्ञा स्त्री० [सं० दण्ड] डंठल।

डंड—संज्ञा पुं० [सं० दण्ड, प्रा० डंड] १. डंडा। सोटा। उ०—कथा पहिरि डंड कर गहा। सिद्ध होइ कहँ गोरख कहा।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २०५। २. बाहुदंड। बाहँ। ३. मेरुदंड। रीढ़। उ०—दरिया चढ़िया गगन को, मेरु उलँघ्या डंड। सुख उपजा साँई मिला, भेंटा ब्रह्म अखंड। —दरिया० बानी, पृ० १५। ४. एक प्रकार का व्यायाम जो हाथ पैर के पंजों के बल पृथ्वी पर पट और सीधा पड़कर किया जाता है। हाथ पैर के पंजों के बल पर पड़कर की जानेवाली कसरत।

क्रि० प्र०—करना।

यौ०—डंडपेल। डंड बैठक = डंड और बैठक नाम की कसरत।

मुहा०—डंड पेलना = खूब डंड करना।

५. दंड। सजा। ६. अर्थदंड। जुरमाना। वह रुपया जो किसी अपराध या हानि के बदले में लिया जाय।

क्रि० प्र०—देना।—लगना।—लगाना।

मुहा०—डंड डालना = अर्थदंड नियत करना। जुरमाना करना। डंड भरना = हानि के बदले में धन देना। जुरमाना या हरजाना देना। उ०—भूमि आस जो करहि भरहि तो डंड सेव करि।—पृ० रा०, ८।३।

७. घाटा। हानि। नुकसान।

मुहा०—डंड पड़ना = नुकसान होना। व्यर्थ व्यय होना। जैसे,—कुछ काम भी नहीं हुआ, इतना रुपया डंड पड़ा। ८. घड़ी। दंड। दे० 'दंड'। उ०—डंड एक माया करु मोरें। जोगिनि होउँ चलौं सँग तोरें।—पदमावत, पृ० ६५८।

डंडक(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० दण्डक] दे० 'दंडक'। उ०—परे आइ अब बनखँड माहीं। डंडक आरन बीझ बनाहीं।—पदमावत, पृ० १३२।

डंडकारन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० दण्डकारण्य] दे० 'दंडकारण्य'।

डंडण(पु)—वि० [सं० दण्डन] दंड देनेवाला। उ०—अरि डंडण नव खंड अबीहो।—रा० रू०, पृ० १२।

डंडताल—संज्ञा पुं० [सं० दण्ड+ताल] एक प्रकार का बाजा जिसमें लंबे चिमटे में मंजीर जड़े रहते हैं। उ०—झाँझ मजीरा डंडताल करताल बजावत।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० २४।

डंडधारी—संज्ञा पुं० [सं० दण्ड+हिं० धारी] दंडी। संन्यासी। उ०—स्वामी कि तुम्हे ब्रह्मा कि ब्रह्मचारी। कि तुम्हें बांभण पुस्तक कि डंडधारी।—गोरख०, पृ० २२७।

डंडन(पु)—वि० [सं० दण्डन, प्रा० डंडण] दंड देनेवाला। वह जो दंड दे। उ०—पुनि गुज्जर बलिबंड लोह घनडंडनि डंडन।—पृ० रा०, १३।३०।

डंडना(पु)—क्रि० स० [सं० दण्डन, प्रा० डंडण] दंड देना। जुरमाना लगाना। दंडित करना। उ०—डंड्यौ (डंड्यूं) साह साहाबदी अट्ठ सहस हैवर सुवर।—पृ० रा०, २०।६१।

डंडपेल—संज्ञा पुं० [हिं० डंड+पेलना] १. खूब डंड करनेवाला। कसरती पहलवान। २. बलवान या तगड़ा आदमी।

डंडल—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मछली।

विशेष—यह बंगाल और बरमा में पाई जाती है। यह मछली पानी के ऊपर अपनी आँखें निकालकर तैरती है। इसकी लंबाई १८ इंच होती है।

डंडवत(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० दण्डवत्] दे० 'दंडवत्'। उ०—(क) सोऊँ तब करुँ डंडवत पूजूँ और न देवा।—कबीर श०, भाग १, पृ० ७२। (ख) डँडवो डौंड दीन्ह जँह ताईं। आप डंडवत कीन्ह सबाई।—जायसी (शब्द०)।

डंडा¹—संज्ञा पुं० [सं० दण्ड] १. लकड़ी या बाँस का सीधा लंबा टुकड़ा। लंबी सीधी लकड़ी या बाँस जिसे हाथ में ले सकें। सोटा। मोटी छड़ी। लाठी।

मुहा०—डंडा खाना = डंडे की मार सहना। डंडा चलाना = डंडे से प्रहार करना। डंडे खेलना = डंडों की लड़ाई का खेल खेलना। (भादों बदी चौथ को पाठशालाओं के लड़के यह खेल खेलने निकलते हैं)। डंडा चलाना = डंडे से प्रहार करना। डंडे देना = विवाह संबंध होने के पीछे भादों बदी चौथ को बेटीवाले का बेटेवाले के यहाँ चाँदी के पत्तर चढ़े हुए कलम, दवात आदि भेजने की रीति करना। डंडा बजाते फिरना = मारा मारा फिरना।

२. डौंड़। डँड़वारा। वह कम ऊँची दीवार जो किसी स्थान को घेरने के लिये उठाई जाय। चारदीवारी।

क्रि० प्र०—उठाना ।

मुहा०—डंडा खींचना = चारदीवारी उठाना ।

डंडा⑤†[3]—संज्ञा पुं० [देशी डंडय (= रथ्या)] मार्ग । लीक राह । उ०—बाग वृच्छ बेनी पर मंडा । सतगुरु सुरति बतावै डंडा ।—घट०, पृ० २४७ ।

डंडाकरन⑤—संज्ञा पुं० [सं० दण्डकारण्य] दंडक वन । उ०—परेउ आइ सब बन खंड माहाँ । डंडाकरन बीझ बन जाहाँ ।—जायसी (शब्द०) ।

डंडाकुंडा—संज्ञा पुं० [हिं० डंडा + कुंडा] बल वैभव । सत्ता । प्रभाव । उ०—उनके आँख मूँदते साल भी नहीं बीतेगा कि अंगरेजों का डंडाकुंडा उठ जाएगा ।—किन्नर०, पृ० २३ ।

डंडाडोली—संज्ञा स्त्री० [हिं० डंडा+डोली] लड़कों का एक खेल जिसमें वे किसी लड़के को दो आड़े डंडों पर बैठाकर इधर उधर फिराते हैं ।

क्रि० प्र०—करना ।—खेलना ।

डंडाधारी⑤†—संज्ञा पुं० [सं० दण्ड + हिं० धारी] दंडी । संन्यासी । उ०—मोनी उदासी डंडाधारी । —प्राण०, पृ० ६२ ।

डंडानाच—संज्ञा पुं० [हिं० डंडा + नाच] वह नृत्य जिसमें डंडा लड़ाते हुए लोग नाचते हैं । उ०—डंडा नाच कुछ अंशों में गुजरात देश के 'गरबा नृत्य' के सदृश होता है । मुख्य अंतर यही है कि डंडा नाच पुरुषों का है और गरबा स्त्रियों का ।——शुक्ल अभि० ग्रं० (साहि०), पृ० १३९ ।

डंडाबेड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] बेड़ी और उसके साथ लगा लोहे का डंडा जिससे कैदी न भाग सके ।

डंडारन⑤†—संज्ञा पुं०[सं० दण्डकारण्य, प्रा० डंडारण्ण]दंडकारण्य' ।

डंडाल—संज्ञा पुं० [हिं० डंडा] नगाड़ा । दुंदुभि । डंका ।

डंडिया†—संज्ञा स्त्री० [हिं० डंडी] १. दे० 'डाँडी-१६' । २. दे० 'डंडी' ।

डंडी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० डंडा] १. छोटी लंबी पतली लकड़ी । २. हाथ में लेकर व्यवहार की जानेवाली वस्तु का वह लंबा पतला भाग जो मुट्ठी में लिया या पकड़ा जाता है । दस्ता । हत्था । मुठिया । जैसे, छाते की डंडी । ३ तराजू का वह सीधी लकड़ी जिसमें रस्सियाँ लटका लटकाकर पलड़े बाँधे जाते हैं । डाँड़ी । उ०—काहे की डंडी काहे का पलरा काहे की मारो टेनिया ।—कबीर श०, भा० २, पृ० १५ ।

मुहा०—डंडी मारना = सौदा देने में चालाकी से कम तौलना ।

४. वह लंबा डंठल जिसमें पत्ता, फूल या फल लगा होता है । नाल । जैसे, कमल की डंडी । पान की डंडी । उ०—कमलों के पत्ते जीर्ण होकर झड़ गए हैं, फूलों की कर्णिका और केसर भी गिर गई है, पाले के कारण उसमें डंडी मात्र शेष रह गई है ।—हिं० प्र० चि०, पृ० १४ । ५. फूल के नीचे का लंबा पतला भाग । जैसे, हरसिंगार की डंडी । ६. हरसिंगार का फूल । ७. आरसी नाम के गहने का वह छल्ला जो उँगली में पड़ा रहता है । ८. डंडे में बँधी हुई झोली के आकार की एक सवारी जो ऊँचे पहाड़ों पर चलती है । झप्पान । ९. लिंगेंद्रिय । १०. दंड धारण करनेवाला संन्यासी ।

डंडी[2]—वि० [सं० द्वन्द्व] झगड़ा लगानेवाला । चुगलखोर ।

डंडीमार—वि० [हिं०] टेनी मारनेवाला । सौदा कम तौलनेवाला ।

डंडूर—संज्ञा पुं० [प्रा० डुंडुल्ल] दे० 'डंडूल' । उ०—अग्नि ज्वाल किन तन उठत, किन तन बरसै मेह । चक्र पवन डंडूर के कैतन कंकर खेह ।—पृ० रा०, ६।५५ ।

डंडूल—संज्ञा पुं० [प्रा० डुंडुल्ल (= घूमना, चक्कर लगाना)] वात्या-चक्र । बवंडर । उ०—कर सेती माला जपैं, हिरदै बहै डंडूल । पग तो पाला मैं गिल्या, भाजण लागी सूल ।—कबीर ग्रं०, पृ० ४५ ।

डंडौत—संज्ञा पुं० [सं० दण्ड, प्रा० डण्ड + सं० वत्, हिं० औत] दे० 'दंडवत्' । उ०—पलटू उन्हें डंडौत करो, वोही साहब मेरा है जी ।—पलटू०, पृ० ५० ।

डंबर—संज्ञा पुं० [सं०] १. आयोजन । आडंबर । ढकोसला । धूम-धाम । २. विस्तार । उ०—उड़ि रेन डंबर अमर, दिष्यौ सेन चहुआन । —पृ० रा०, ६।१३० । ३. समूह । उ०—कुवा बावड़ियूँ के डंबर, बाड़ी बागू के आडंबर । —रघु० रू०, पृ० २३७ । ४. विलास । ५. एक प्रकार का चँदोवा । चदरछत ।

यौ०—मेघडंबर = बड़ा शामियाना । दलबादल । अंबर डंबर = वह लाली जो संध्या के समय आकाश में दिखाई पड़ती है । उ०—विनसत बार न लागई, ओछे जन की प्रीति । अंबर डंबर साँझ के ज्यों बारू की भीति ।—स० सप्तक, पृ० ३१२ ।

डंबल—संज्ञा पुं० [अं० डंबेल] दे० 'डंबेल' ।

डंबेल—संज्ञा पुं० [अं०] १. हाथ में लेकर कसरत करने की लोहे या लकड़ी की गुल्ली जिसके दोनों सिरे लट्टू की तरह गोल होते हैं । इसे हाथ मे लेकर तानते हैं । यह आवश्यकतानुसार भारी और हलकी होती है । कुछ डंबेलों में स्प्रिंगें भी लगी रहती हैं । २. वह कसरत जो इस प्रकार के लट्टू से की जाती है ।

क्रि० प्र०—करना ।

डंभ⑤—संज्ञा पुं० [सं० दम्भ, प्रा० डंभ] दे० 'डिम[2]' । उ०—डंभ मने मत मानियो सत्त कहो परमारथ जानी ।—कबीर श०, भा० ४, पृ० २४ ।

डंस—संज्ञा पुं० [सं० दंश, प्रा० डंस] एक प्रकार का बड़ा मच्छर जो बहुत काटता है और जिसका आकार बड़ी मक्खी से मिलता जुलता होता है । डँस । वनमशक । जंगली मच्छर । उ०—देव विषय सुख लालसा डंस मसकादि खलु झिल्ली रूपादि सब सर्प स्वामी ।—तुलसी (शब्द०) २. वह स्थान जहाँ डंक चुभा हो या साँप आदि विषले कीड़ों का दाँत चुभा हो ।

डँकरना†—क्रि० अ० [हिं० डकार] दे० 'डकारना' ।

डँकारना†—क्रि० अ० [हिं० डकारना] डकार लेना । डकार आना ।

डँकियाना†—क्रि० स० [हिं० डंक + आना (प्रत्य०)] डंक मारना ।

डँकीला†—वि० [हिं० डंक + ईला (प्रत्य०)] डंकवाला ।

डँकौरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० डंक + औरी (प्रत्य०)] भिड़ । बर्रे । ततैया । हड्डा ।

डँगरा†—संज्ञा पुं० [सं० दशाङ्गुल] खरबूजा ।

डँगरी¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० डँगरा] लंबी ककड़ी । डाँगरी ।

डँगरी²—संज्ञा स्त्री० [हिं० डाँवर (=दुबला)] एक प्रकार की चुरैल । डाइन । उ०—डाइन डँगरी बरन बखानत । मनन चुवाइ मकान पठावत ।—गोपाल (शब्द०) ।

डँगरी³—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का मोटा बेंत ।

विशेष—यह बेंत पूर्वी हिमालय, सिक्किम, भूटान से लेकर चटगाँव तक होता है । यह सबसे मजबूत होता है और इसमें से बहुत अच्छी छड़ियाँ और डंडे निकलते हैं । टोकरे बनाने के काम में भी यह आता है ।

डँगवारा—संज्ञा पुं० [हिं० डंगर (=बैल, चौपाया)] हल बैल आदि की वह सहायता जिसे किसान एक दूसरे को देते हैं । जिता ।

डँगौरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक पेड़ जिसकी लकड़ी मजबूत और चमकदार होती है ।

विशेष—इस पेड़ की लकड़ी से सजावट के सामान बहुत अच्छे बनते हैं । यह पेड़ आसाम और कछार में बहुतायत से होता है ।

डँटैया(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० डाँटना] डाँटनेवाला ; डाँट बतानेवाला । घुड़कनेवाला । धमकानेवाला । उ०—साँसति घोर पुकारत आरत कौन सुनै चहुँ ओर डँटैया ।—तुलसी (शब्द०) ।

डँठरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० डंठल] दे० 'डंठल' ।

डँड़—संज्ञा पुं० [सं० दण्ड; प्रा० डंड] एक प्रकार का व्यायाम । दे० 'डंड-४' ।

यौ०—डँड़बैठक । डँड़पेल ।

डँड़का†—संज्ञा पुं० [हिं० डंडा] सीढ़ी का डंडा ।

डँड़वारा¹—संज्ञा पुं० [हिं० डाँड़ + वार (= किनारा)] [स्त्री० अल्पा० डँड़वारी] वह कम ऊँची दीवार जो रोक के लिये या किसी स्थान को घेरने के लिये उठाई जाय । दूर तक गई हुई लंबी दीवार ।

क्रि० प्र०—उठाना ।

मुहा०—डँड़वारा खींचना = डँड़वारा उठाना ।

डँड़वारा²—संज्ञा पुं० [हिं० दक्खिन + वार (प्रत्य०)] दक्षिण का वायु । दखनहुरा । दखिनैया ।

क्रि० प्र०—चलना ।

डँड़वारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० डाँड़ + वार (=किनारा)] कम ऊँची दीवार जो रोक के लिये या किसी स्थान को घेरने के लिये उठाई जाती है ।

मुहा०—डँड़वारी खींचना=डँड़वारी या चारदीवारी उठाना ।

डँड़वी(पु)†—संज्ञा पुं० [देश०] दंड या राजकर देनेवाला । करद । उ०—डँड़वी होइ सीस्न जेहि ठाइँ । आप डंडवत कीन्ह बनाई ।—जायसी (शब्द०) ।

डँड़हरा†—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. एक प्रकार की मछली जो बंगाल, मध्यभारत और बर्मा में पाई जाती है । यह तीन इंच लंबी होती है । २. लकड़ी या लोहे का लंबा डंडा जो दरवाजे का खुलना रोकने के लिये किवाड़ के पीछे लगाया जाता है ।

डँड़हरी¹—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक छोटी मछली जो आसाम, बंगाल, उड़ीसा और दक्षिण भारत की नदियों में पाई जाती है ।

डँड़हरी²†—संज्ञा स्त्री० [सं० दण्ड + हिं० हरी (प्रत्य०)] टहनी ।

डँड़हिया—संज्ञा पुं० [हिं० डंडा] वह डंडा जिससे बैलों की पीठ पर बंधे हुए बोरे फँसाए रहते हैं ।

डँड़िया¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० डाँड़ी (=रेखा)] १. वह साड़ी जिसके बीच में लंबाई के बल गोटे टाँककर लकीरें बनी हों । लकीरदार साड़ी । उ०—(क) लाल चोली नील डँड़िया संग युवतिन भीर । सूर प्रभु छबि निरखि रीझे मगन भो मन कीर ।—सूर (शब्द०) । (ख) नख सिख सजि सिंगार युवती तन डँड़िया कुसुमे चोरी की ।—सूर (शब्द०) ।

विशेष—इसे प्रायः कुँआरी लड़कियाँ पहनती हैं । कभी कभी यह रंग बिरंगे कई पाट जोड़कर बनाई जाती है ।

२. गेहूँ के पौधे में वह लंबी सींक जिसमें बाल लगी रहती है ।

डँड़िया²—संज्ञा पुं० [हिं० डाँड़ (=अर्थदंड; सीमा)] १. महसूल वसूल करनेवाला । कर उगाहनेवाला । २. सीमा या हद पर कर उगाहनेवाला ।

डँड़िया³—संज्ञा स्त्री० [कुमा० डाँडी, नेपा० डाँडी(=डोली)] उ०—(क) आजहिं बाँस कटाइव डँड़िया फँदाइव हो आयो ।—पलटू०, पृ० ६४ । (ख) छोटि मोटि डँड़िया चंदन कै हो, छोटे चार कहार ।—कबीर श०, भा० ३, पृ० ६२ । २. दे० 'डाँड़ी' ।

डँड़ियाना—क्रि० स० [हिं० डाँड़ी] किसी कपड़े के दो या अधिक पाटों को सीकर जोड़ना । दो कपड़ों की लंबाई के किनारों को एक में सीना ।

डँड़ियारा गोला—संज्ञा पुं० [हिं० डंडा + गोला] दोहरे सिरे का लंबा (तोप का) गोला । बठिया ।—(लश०) ।

डँड़ोर—संज्ञा स्त्री० [हिं० डाँड़ी] सीधी लकीर ।

डँडूर डँडूल—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'डंडूर,' 'डंडूल' ।

डँडोरना—क्रि० स० [अनु०] ढूँढ़ना । हिलोरकर ढूँढ़ना । उलट पलटकर खोजना । उ०—अबकै जब हम दरस पावैं देहिं लाख करोर । हरि सो हीरा छाँड़ि कै हम रहीं समुद डँडोर ।—सूर (शब्द०) ।

डँभाना(पु)†—क्रि० स० [देश०] दगवाना । दाग दिलाना । उ०—करहउ कूबड़ मति बकइ पग राखीयउ बाड़ि । ऊकरडी डोका चुणइ अपणउ डँभावउ भाड़ि । — ढोला०, दू० ३१६ ।

डँव†—संज्ञा पुं० [देश०] या हिं० दाँव] दाँव । मौका । युक्ति । जैसे, कोई डँव बैठ जाय तो काम होते क्या देर ।

डँवरुआ—संज्ञा पुं० [सं० डमरुक] वात का एक रोग जिसमें शरीर के जोड़ जकड़ जाते हैं और उनमें दर्द होता है । गठिया । उ०—अहंकार अति दुखद डँवरुआ । दंभ कपट मद मान नहरुआ ।—तुलसी (शब्द०) ।

डँवरुआ साल—संज्ञा पुं० [सं० डमरु (= वाद्य) + हिं० सालना] धातु या लकड़ी के दो टुकड़ों को मिलाने के लिये डमरु के समान एक प्रकार का जोड़ ।

विशेष—इसमें एक टुकड़े को एक ओर से चौड़ा और दूसरी ओर से पतला काटते हैं और दूसरे टुकड़े मे उसी काट की नाप से गड्ढा करते हैं और उस कटे हुए अंश को उसी गड्ढे में बैठा देते हैं । यह जोड़ बहुत दृढ़ होता है और खींचने से नहीं उखड़ता ।

डँवरू(पु)—संज्ञा पुं० [सं० डमरु] दे० 'डमरु' । उ०—चँवर घंट औ डँवरू हाथा । गौरा पारबती धनि साथा । —जायसी ग्रं०, पृ० ६० ।

डँवाडोल—[हिं० डाँव डाँव + डोलना] अस्थिर । चंचल । विचलित । घबराया हुआ । जैसे, चित्त डँवाडोल होना । उ०—पावक पवन पानी भानु हिमवान जम काल लोकपाल मेरे डर डँवाडोल हैं ।—तुलसी (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—होना ।

डँसना—क्रि० स० [सं० दंशन, प्रा० डंसण] दे० 'डसना' ।

ड—संज्ञा पुं० [सं०] १ ध्वनि । शब्द । २. नगाड़ा । ३. बड़वाग्नि । ४. भय । ५. शिव (को०) ।

डउल†—संज्ञा पुं० [हिं० डौल] दे० 'डौल' ।

डऊ†—वि० [हिं० डोल] डील डौलवाला । वयस्क । बड़ा । जैसे,—इतने बड़े डऊ हुए, अकल नहीं आई ।

डक¹—संज्ञा पुं० [अं० डॉक] १. एक प्रकार का पतला सफेद टाट (कनवास) जिससे छोटे दल के जहाजों के पाल बनाते हैं । २ एक प्रकार का मोटा कपड़ा ।

डक²—संज्ञा पुं० [अं०] १. किसी बंदरगाह या नदी के किनारे एक घिरा हुआ स्थान, जहाँ जहाज आकर ठहरते हैं और जिसका फाटक पानी में बना होता है । २ अदालत में वह स्थान जहाँ अभियुक्त खड़े किए जाते हैं । कटघरा ।

डकइत†—संज्ञा पुं० [हिं० डाका + इत (प्रत्य०)] दे० 'डकैत' ।

डकई—संज्ञा पुं० [हिं० ढाका (= एक नगर)] केले की एक जाति जो ढाका में होती है ।

डकना(पु)—क्रि० स० [हिं०] 'डाँकना' । लाँघना । उ०—कोउक तर्जन गुनमय सरीर तन सहित चली डकि । मात पिता पति बंधु रहे झुकि न रहीं डकि । —नंद ग्रं०, पृ० २६ ।

डकरना—क्रि० अ० [हिं० डकार] १. दे० 'डकारना' । २. दे० 'डकराना' ।

डकरा—संज्ञा पुं० [देश०] काली मिट्टी जो ताल की पेंदिया में पानी सूख जाने पर निकलती है और जिसमें दरार फटे होते हैं ।

डकराना—क्रि० अ० [अनु०] बैल या भैंस का बोलना ।

डकवाहा†—संज्ञा पुं० [हिं० डाक] डाक का चपरासी । डाकिया ।

डकार—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. पेट की वायु का एकबारगी ऊपर की ओर छूटकर कंठ से शब्द के साथ निकल पड़ने का शारीरिक व्यापार । मुँह से निकला हुआ वायु का उद्गार ।

क्रि० प्र०—आना ।—लेना ।

विशेष—योग आदि के अनुसार डकार नाग वायु की प्रेरणा से आती है ।

मुहा०—डकार न लेना = (१) किसी का धन या कोई वस्तु उड़ाकर पता न देना । चुपचाप हजम कर जाना । (२) कोई काम करके उसका पता न देना ।

२. बाघ सिंह आदि की गरज । दहाड़ । गुर्राहट ।

क्रि० प्र०—लेना ।

डकारना—क्रि० अ० [हिं० डकार + ना (प्रत्य०)] १. पेट की वायु को मुँह से निकालना । डकार लेना । २. किसी का माल उड़ाकर ले लेना । किसी की वस्तु चुपचाप मार लेना । हजम करना । पचा जाना । जैसे,—वह सब माल डकार जायगा ।

संयो० क्रि०—जाना ।

३. बाघ सिंह आदि का गरजना । दहाड़ना ।

डकूरा†—संज्ञा पुं० [देश०] चक्र की तरह घूमती हुई वायु । बवंडर । चक्रवात । बगूला ।

डकैत—संज्ञा पुं० [हिं० डाका + ऐत (प्रत्य०)] डाका मारनेवाला । जबरदस्ती माल छीननेवाला । लुटेरा ।

डकैती—संज्ञा स्त्री० [हिं० डकैत] डकैत का काम । डाका मारने का काम । जबरदस्ती माल छीनने का काम । लूटमार । छापा ।

डकौत—संज्ञा पुं० [देश०] भड्डर । भड्डरी । सामुद्रिक । ज्योतिष आदि का ढोंग रचनेवाला ।

विशेष—इनकी एक पृथक् जाति है जो अपने को ब्राह्मण कहती है, पर नीच समझी जाती है ।

डक्क(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० डाकिनी] दे० 'डाकिन' । उ०—सीत तुट्टे तुरी डक्क नह करी ।—पृ० रा०, २४ । २११ ।

डक्करना(पु)† क्रि० अ० [अनु०] हुंकरना । ध्वनि करना । शब्द करना । उ० —बुभुक्खा बहू डाकिनी डक्करतो ।—कीर्ति०, पृ० १०६ ।

डक्कारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] चांडाल वीणा (को०) ।

डखना†—संज्ञा पुं० [अनु०] पखना । पंख ।

डग—संज्ञा पुं० [हिं० डाँकना या सं० दक्ष] १. चलने में एक स्थान से पैर उठाकर दूसरे स्थान पर रखने की क्रिया की समाप्ति । कदम । उ०—मुरि मुरि चितवति नंदगली । डग न परत ब्रजनाथ साथ बिनु, बिरह व्यथा मचली ।—सूर (शब्द०) । (ख) ज्यों कोउ दूरि चलन को करै । क्रम क्रम करि डग डग पग धरै ।—सूर०, ३१३ ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।

मुहा०—डग देना = चलने में आगे की ओर पैर रखना । उ०—पुर ते निकसी रघुबीर बधू धरि धीर दियो मग ज्यों डग द्वै । —तुलसी (शब्द०) । डग भरना = चलने में आगे पैर रखना ।

कदम बढ़ाना। उ०—क्यों नहीं बेडिगे भरें डग हम। पाँव क्यों जाय डगमगा मेरा।—चुभते०, पृ० १०। डग मारना = कदम रखना। लंबे पैर बढ़ाना। उ०—मारि डगै जब फिरि चली सुंदर बेनि दुरे सब अंग। मनहुँ चंद के बदन सुधा को उड़ि उड़ि लगत भुअंग।—सूर (शब्द०)।

२. चलने में जहाँ से पैर उठाया जाय और जहाँ रखा जाय उन दोनों स्थानों के बीच की दूरी। उतनी दूरी जितनी पर एक जगह से दूसरी जगह कदम पड़े। पेंड़।

डगकु(५)—क्रि० वि० [हिं० डग + एक] एक दो पग। एकाध कदम। उ०—डगकु डगति सी चलि, ठठुकि चितई, चली निहारि। लिए जाति चितु चोरटी, वहै गोरटी नारि।—बिहारी र०, दो० १३९।

डगचाली†—संज्ञा स्त्री० [सं० डाकिनी] डाकनी। उ०—भूतप्रेत डगचाली मानूँ करत बत।—नट०, पृ० १७०।

डगडगाना—क्रि० अ० [अनु०] हिलना। इधर से उधर हिलना। काँपना।

मुहा०—डगडगाकर पानी पीना तेजी के साथ = एक दम में बहुत सा पानी पीना।

डगड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० डगर] मार्ग। रास्ता। राह। उ०—बिगड़ी बनती, बन जाय सही। डगड़ी गढ़ती, गढ़ जाय मही।—अर्चना, पृ० ६।

डगडोलना†—क्रि० अ० [हिं० डग + डोलना] डगमगाना। हिलना। काँपना। उ०—भीषम द्रोण करण सुनै कोउ मुखहू न बोलै। ए पांडव क्यों काढ़िए धरना डगडोलै।—सूर (शब्द०)।

डगडोर—वि० [हिं० डग + डोलना] डाँवाडोल। हिलनेवाला। चलायमान। उ०—श्याम को एक तुही जान्यो दुराचरनी और। जैसे घट पूरन न डोलै अधभरो डगडोर।—सूर (शब्द०)।

डगण—संज्ञा पुं० [सं०] पिंगल में चार मात्राओं का एक गण।

डगना(५)†—क्रि० अ० [सं० दक्ष (= चलना), हिं० डिगना या डग + ना (प्रत्य०)] १. हिलना। टसकना। खसकना। जगह छोड़ना। उ०—डगइ न संभु सरासन कैसे। कामी बचन सती मन जैसे।—तुलसी (शब्द०)। २. चूकना। भूल करना। उ०—तुरँग नचावहि कुँवर बर अकनि मृदंग निसान। नागर नट चितवहि चकित, डगहि न ताल बँधान।—तुलसी (शब्द०)। ३. डगमगाना। लड़खड़ाना। उ०—डगकु डगति सी चलि ठठुकि चितई चली निहारि। लिए जाति चितु चोरटी वहै गोरटी नारि।—बिहारी र०, दो० १३९।

मुहा०—डग मारना = हिलना। झटका खाना। जैसे,—उठाने पर आलमारी डग मारती है।

डगबेड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० डग+बेड़ी] पैर की बेड़ी। उ०—बंध्यो ठाम मैं आप पाय, डगबेड़ी पाय्यो।—ब्रज० ग्रं०, पृ० १६।

डगमग—वि० [हिं० डग+मग] हिलता डुलता। डगमगाता या लड़खड़ाता हुआ। उ०—विहरत विविध बालक संग। डगनि डगमग पगनि डोलत, धूरि, धूसर अंग।—सूर०, १०।१८४। २. विचलित। निश्चयहीन।

डगमगना(५)—क्रि० अ० [हिं० डगमग] दे० 'डगमगाना'।

डगमगाना—क्रि० अ० [हिं० डग + मग] १. इधर उधर हिलना डोलना। कभी इस बल कभी उस बल झुकना। स्थिर न रहना। थरथराना। लड़खड़ाना। जैसे, पैर डगमगाना, नाव डगमगाना। २. विचलित होना। किसी बात पर दृढ़ न रहना।

डगमगाना†[२]—क्रि० स० १. हिलाना डुलाना। कंपित करना। २. विचलित करना। दृढ़ न रहने देना।

डगमगी(५)—संज्ञा स्त्री० [हिं० डगमग] डाँवाँडोल वृत्ति। विचलन। अस्थिरता। उ०—छूटि डगमगी नाहि संत को बचन न मानै।—पलटू०, भा० १, पृ० ३।

डगर—संज्ञा [हिं० डग] मार्ग। रास्ता। पथ। पैंडा। उ०—नगरक धेनु डगर के संजर। कुमुदिनि वसु मकरन्दा।—विद्यापति, पृ० ३३२।

मुहा०—डगर बताना = (१) रास्ता बताना। (२) उपाय बताना। उपदेश देना। डगर पाना = निकास पाना। स्थान पाना। उ०—प्रथमहि गए डगर तिन पायो। पाछे के लोगनि पछितायो।—सूर०, १०।९१६।

डगरना(५)†—क्रि० अ० [हिं० डगर] १. चलना। रास्ता लेना। धीरे धीरे चलना। उ०—तातैं इतै डगरी द्विजदेव न जानतो कान्ह अजौ मग सूटै। —द्विजदेव (शब्द०)। २. लुढ़कना। गिरते पड़ते आगे बढ़ना। जे फूलन तुलतीं सुखिन अतुल तौं अति ही खुलतीं ते डगरीं।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २८६।

डगरबगर—संज्ञा स्त्री० [हिं० डगर + अनु० बगर] राह कुराह। उ०—जगर मगर महि, डगर बगर नहि, रवि ससि, निसु दिन, भाव नहीं। —केशव अमी०, पृ० १०।

डगरा†[१]—संज्ञा पुं० [हिं० डगर] रास्ता। मार्ग। उ०—गुरु कह्यो राम नाम नीको मोहि लागत राम राज डगरो सो।—तुलसी (शब्द०)।

डगरा†[२]—संज्ञा पुं० [देश०] बाँस की पतली फट्टियों का बना हुआ छिछला डला। डलर। छाबड़ा।

डगराना†—क्रि० स० [हिं० डगरना] १. रास्ते पर ले जाना। ले चलना। चलाना। २. हाँकना। ३. लुढ़काना।

डगरिया‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० डगर] दे० 'डगर'।

डगरी‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० डगर] दे० 'डगर'। उ०—(क) जमुन भरन जल हम गई तहँ रोकत डगरी।—सूर०, १०।१४२०। (ख) तू चला चले पकड़ी डगरी।—आराधना, पृ० १८।

डगा†—संज्ञा पुं० [हिं० डागा] डागा। डुग्गी बजाने की लकड़ी। नगाड़ा बजाने की लकड़ी। चोब। उ०—हुउँ सब कबितन्ह कर पछलगा। किछु कहि चला तबल देइ डगा।—जायसी (शब्द०)।

डगाना—क्रि० स० [हिं० डग] दे० 'डिगाना'।

डगाल†—संज्ञा पुं० [देश०] टहनी। छोटी शाख। पतली शाखा। उ०—जहाँ झाड़ियाँ अधिक घनी होती हैं वहाँ वृक्षों की डगालों को काटकर वे जलाते हैं और फिर पानी बरस जाने के बाद बीज बोते हैं।—कुमा० प्रथि० पं० (विधि०), पृ० ४०।

डगावना (पु)—क्रि० स० [हिं० डिगाना] दे० 'डिगाना'। उ०—कवि बोधा मनी घनी नेबहु ते चढ़ि तापै न चित्त डगावनो है।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ११८।

डग्गर—संज्ञा पुं० [सं० तरक्षु] १. कुत्ते या भेड़िये की तरह का एक मांसाहारी पशु।

विशेष—यह पशु रात को शिकार की खोज में निकलता है और कभी कभी बस्ती से कुत्तों, बकरी के बच्चों आदि को उठा ले जाता है। यह कई प्रकार का होता है; पर मुख्य भेद दो हैं—चित्तीवाला और धारीवाला। यह एशिया और अफ्रीका के बहुत से भागों में पाया जाता है। यह देखने में बड़ा डरावना जान पड़ता है। इसका पिछला धड़ छोटा और अगला भारी होता है। गरदन लंबी और मोटी होती है, कंधे पर बड़े बड़े बाल होते हैं। इसके दाँत बहुत पैने और तेज होते हैं। यह जानवर डरपोक भी बड़ा होता है। यह मुरदे खाकर भी रहता है। इसका कब्र में से गड़े मुरदे ले जाना प्रसिद्ध है।

२. लंबी टाँगों का दुबला घोड़ा।

डग्गा—संज्ञा पुं० [हिं० डग] लंबी टाँगों का दुबला घोड़ा।

डच[1]—संज्ञा पुं० [अं०] हालैंड संबंधी। हालैंड का निवासी।

डट—संज्ञा पुं० [देश०] निशाना।

डटना[1]—क्रि० अ० [सं० स्थातृ, हिं० ठाट या ठाढ़] १. जमकर खड़ा होना। अड़ना। ठहरा रहना। जैसे,—वे सबेरे से मेले में डटे हुए हैं।

संयो० क्रि०—जाना। —या डटना।

मुहा०—डटा रहना = सामना करने या कठिनाई झेलने के लिये खड़ा रहना। न हटना। मुँह न मोड़ना। डटकर खाना = खूब पेट भर खाना।

२. भिड़ना। लग जाना। छू जाना। ३. अच्छा लगना। फबना।

डटना (पु)†[2]—क्रि० स० [सं० दृष्टि, हिं० डीठ] ताकना। देखना। उ०—(क) उर मानिक की उरबसी डटत घटत दग दाग। झलकत बाहर कढ़ि मनो पिय हिय को अनुराग। (ख) लटकि लटकि लटकत चलत डटत मुकुट की छाहैं। चटक भरयो नट मिलि गयो, अटक भटक बन माँह।—बिहारी (शब्द०)।

डटाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० डटाना] १. डटाने का काम। २. डटाने की मजदूरी।

डटाना—क्रि० स० [हिं० डटना] १. एक वस्तु को दूसरी वस्तु से सटाना। सटाना। भिड़ाना। २. एक वस्तु को दूसरी वस्तु से लगाकर आगे की ओर ठेलना। जोर से भिड़ाना। ३. जमाना। खड़ा करना।

डट्टा—संज्ञा पुं० [हिं० डाटना] १. हुक्के का नैचा। टेकुआ। २. डाट। काग। गट्टा। ३. बड़ी मेख। ४. छींट छापने का ठप्पा। साँचा।

डड़कना†[1]—क्रि० अ० [अनु०] जोर से बजना या शब्द उत्पन्न होना। उ०—डडक्कंत डौरू वहूँ फेर सद्दं।—प० रासो, पृ० ८२।

डड़कना†[2]—क्रि० स० [अनु०] जोर से बजाना।

डड़हा†—संज्ञा पुं० [सं० डुण्डुभ] एक सर्प। डेड़हा।

डड़ही—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मछली।

डड़ियाना†—क्रि० स० [हिं० डाँड़ा] बनाना। डाँड़े के समान करना।

डड़ीच†—संज्ञा स्त्री० [देश०, या हिं० डाँड़ी] पंक्ति। उ०—मन में आवे तो दो डड़ीच लिख भेजना।—श्यामा०, पृ० ९२।

डड्ढ—वि० [सं० दग्ध, प्रा० डड्ढ, डड्ढ] दग्ध। जला हुआ। तप्त। संतप्त [को०]।

डड्ढार[1]—संज्ञा पुं० [सं० दंष्ट्राल, प्रा० डड्ढाल] दे० 'डड्ढाल'। उ०—डिढ न रहे डड्ढार बाघ बनचर बन हुल्लिय।—सूदन (शब्द०)।

डड्ढार[2]—वि० [सं० दंष्ट्रा, हिं० डाढ़, डाढ़ी] बड़ी डाढ़ी रखनेवाला।

विशेष—मध्य काल में और आज भी बड़ी डाढ़ी रखना वीरों का वेश समझा जाता है।

डड्ढाल†—संज्ञा पुं० [सं० दंष्ट्राल, प्रा० डड्ढाल] वाराह। शूकर। उ०—हुड्डन डढाल डड्ढाल त्रिय भुक्कारन बहु भुक्करहिं।—पृ० रा०, ६।१०२। पृ० (उ०), पृ० १२२।

डड्ढार—वि० [सं० दृढ़, प्रा० डिढ़; हिं० डिढ़] दृढ़ हृदय का। साहसी।

डढ़न (पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० दग्ध, प्रा० डड्ढ, या सं० दहन] जलन। ताप। उ०—भक्ति लता फैलन लगी दिन दिन होत पाप की डढ़न।—देवस्वामी (शब्द०)।

डढ़ना (पु)—क्रि० अ० [सं० दग्ध, प्रा० डड्ढ + ना (प्रत्य०)] जलना। सुलगना। बलना। उ०—डढ़े मनु रूप लसै इह रूप। गढ़े जिमि कैयक हैं मढ़ि भूप।—सूदन (शब्द०)। २. जलना। ताप से पीड़ा होना। जलन होना। उ०—अँचवत पय तातो जब लाग्यो रोवत जीभि डढ़े।—सूर०, १०।१७४।

डढ़ार[1]—संज्ञा पुं० [सं० दंष्ट्राल] दे० 'डड्ढार'[1]।

डढ़ार†[2]—वि० [हिं० डाढ़] १. डाढ़वाला। जिसे डाढ़ हो। २. डाढ़ीवाला।

डढ़ारा—वि० [हिं० डाढ़] १. डाढ़वाला। वह जिसके डाढ़ें हों। दाँतवाला। २. वह जिसे डाढ़ी हो।

डढ़ाल (पु)—संज्ञा पुं० [सं० दंष्ट्राल, प्रा० डड्ढाल] दे० 'डड्ढार'। उ०—सोमेस सुतन आखेट डर हम डढ़ाल उस सह्य बसहिं।—पृ० रा०, ६।१०१। पृ० रा० (उ०), पृ० १२३।

डढ़ियल—वि० [हिं० डाढ़ी] डाढ़ीवाला। जिसके बड़ी डाढ़ी हो।

डढ़ुआ†—संज्ञा पुं० [सं० दृढ़] बरें, गेहूँ, चने का तेल जो मोट में मजबूती के लिये लगाया जाता है।

डढ़ना—क्रि० स० [सं० दग्ध, प्रा० डड्ढ + हिं० ना (प्रत्य०)] जलाना।

डढ़ियोराⓅ—वि० [हिं० दाढ़ी] दाढ़ीवाला। उ०—सित असित डढ़ियोरे वीहु तन चलि सवेहु रोसन चवे।—सूदन (शब्द०)।

डपट¹—संज्ञा स्त्री० [सं० दर्प] डाँट। झिड़की। घुड़की।

डपट²—संज्ञा स्त्री० [हिं० रपट] दौड़। घोड़े की तेज चाल। सरपट चाल।

डपटना¹—क्रि० स० [हिं० डपट + ना (प्रत्य०)] डाँटना। क्रोध में जोर से बोलना। कड़े स्वर से बोलना।

डपटना²—क्रि० अ० [हिं० रपटना] तेज दौड़ना। वेग से जाना।

डपोरसंख—संज्ञा पुं० [अनु० डपोर (= बड़ा) + सं० शङ्ख, प्रा० संख] १. जो कहे बहुत, पर कर कुछ न सके। डींग मारनेवाला।

विशेष—इस शब्द के संबंध में एक कहानी प्रचलित है। एक ब्राह्मण ने दरिद्रता से दुखी हो समुद्र की आराधना की। समुद्र ने प्रसन्न होकर उसे एक बहुत छोटा सा शंख दिया। और कहा कि यह ५००) रोज तुम्हें दिया करेगा। जब उस ब्राह्मण ने उस शंख से बहुत सा धन इकट्ठा कर लिया तब एक दिन अपने गुरु जी को बुलाया और बड़ी धूम धाम से उनका सत्कार किया। गुरु जी ने उस शंख का हाल जान लिया और वे धीरे से उसे उड़ा ले गए। ब्राह्मण फिर दरिद्र हो गया और समुद्र के पास गया। समुद्र ने सब हाल सुनकर एक बहुत बड़ा सा शंख दिया और कहा कि 'इससे भी गुरु जी के सामने रुपया माँगना, यह खूब बढ़ बढ़कर बातें करेगा, पर देगा कुछ नहीं। जब गुरु जी इसे माँगें तो दे देना और पहलेवाला छोटा शंख माँग लेना'। ब्राह्मण ने ऐसा ही किया। जब ब्राह्मण ने गुरु जी के सामने उस शंख से ५००) माँगा तब उसने कहा—'५००) क्या माँगते हो, दस बीस पचास हजार माँगो'। गुरु जी को यह सुनकर लालच हुआ और उन्होंने वह शंख लेकर छोटा शंख ब्राह्मण को लौटा दिया। गुरु जी एक दिन उस बड़े शंख से माँगने बैठे। पर वह उसी प्रकार और माँगने के लिये कहता जाता, पर देता कुछ नहीं था। जब गुरु जी बहुत व्यग्र हुए, तब उस बड़े शंख ने कहा—'पता सा शंखिनी, विप्र ! या ते कामान् प्रपूरयेत्। अहं डपोरशंखाख्यो वदामि न ददामि ते'।

२. बड़े डीलडौल का पर मूर्ख। देखने में सयाना पर बच्चों की सी समझवाला।

डप्पू—वि० [देश०] बहुत बड़ा। बहुत मोटा।

डफ—संज्ञा पुं० [अ० दफ़] १. चमड़ा मढ़ा हुआ एक प्रकार का बड़ा बाजा जो लकड़ी से बजाया जाता है। डफला। उ०—(क) किन डफ ताल मृदंग बजावत गात भरत परस्पर छिन छिन होरी।—स्वामी हरिदास (शब्द०)। (ख) कहै पदमाकर ग्वालन के डफ बाजि उठे गनगावत गाढ़े।—पद्माकर (शब्द०)। २. लावनीबाजों का बाजा। चंग।

विशेष—यह लकड़ी के गोल बड़े मेंड़रे पर चमड़ा मढ़कर बनाया जाता है। होली में इसे बजाते हुए निकलते हैं।

डफनी—संज्ञा स्त्री० [अ० दफ़] दे० 'डफली'। उ०—मढ़ि मढ़ि मृदंग डफनी डफ दुंदुभि ढोल सु पीट बजाया है।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २९७।

डफर—संज्ञा पुं० [अं० ड्राफर] जहाज के एक तरफ का पाल।

डफला—संज्ञा पुं० [अ० दफ़] डफ नाम का बाजा।

डफली—संज्ञा स्त्री० [अ० दफ़] छोटा डफ। खँजरी।

मुहा०—अपनी अपनी डफली अपना अपना राग = जितने लोग उतने राग।

डफाणⓅ—संज्ञा पुं० [सं० दम्भन, दम्भना; फा० डंभणा, कुमा० डंफाण, पु० हिं० डंभान] पाखंड। आडंबर। दंभ। उ०—काहे रे नर करहु डफाण, अंतिकालि घर गोर मसाण।—दादू०, पृ० ४८४।

डफार†—संज्ञा स्त्री० [अनु०] चिग्घाड़। जोर से रोने या चिल्ला उठने का शब्द। उ०—ततखन रतनसेन मति बवरा। छाँड़ि डफार पाँय लै परा।—जायसी (शब्द०)।

डफारना†—क्रि० अ० [अनु०] चिल्लाना। दहाड़ मारना। जोर से रोना या चिल्लाना। उ०—जाग बिहंगम समुद डफारा। जरे मच्छ, पानी भा खारा।—जायसी (शब्द०)।

डफालची—संज्ञा पुं० [हिं० डफला] दे० 'डफाली'।

डफाली—संज्ञा पुं० [हिं० डफला] डफला बजानेवाला। एक मुसलमान जाति।

विशेष—यह जाति डफला बजाती तथा डफ, ताशे ढोल आदि चमड़े के बाजों की मरम्मत करती है। अवध में डफाली डफला बजाकर गाजी मियाँ के गीत गाते और भीख माँगते फिरते हैं।

डफोरना†—क्रि० अ० [अनु०] हाँक देना। चिल्लाना। ललकारना। गरजना। उ०—बचन विनीत कहि सीता को प्रबोध करि तुलसी त्रिकूट चढ़ि कहत डफोरि कै।—तुलसी (शब्द०)।

डफोल†—संज्ञा पुं० [हिं० डपोर] बकवास। निरर्थक बात। उ०—मोटे मीर कहावते, करते बहुत डफोल।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० ११७।

डफ्फⓅ—संज्ञा पुं० [अ० दफ़, हिं० डफ] दे० 'डफ'। उ०—बीती जात बहार संवत अपने पर आया। लीजै डफ्फ बजाय सुमग मानुष तनपा या।—पलटू०, भा० १, पृ० २०।

डब¹—संज्ञा पुं० [सं० द्रव] तरल। जैसे, आँखों का डब डब होना।

विशेष—इस शब्द का स्वतंत्र प्रयोग नहीं मिलता। डबक, डबकना, डबकौंहाँ आदि प्रचलित शब्दों में इसका रूप मिलता है।

डब²—संज्ञा पुं० [हिं० डब्बा] १. जेब। थैला।

मुहा०—डब पकड़कर कुछ कराना = गरदन पकड़कर कुछ काम कराना। दबा दबाकर काम कराना। जैसे,—रुपया देगा कैसे नहीं, डब पकड़कर लूँगा। डब में आना = वश में होना। काबू में आना।

२. कुप्पा बनाने का चमड़ा।

डबकना¹—क्रि० स० [हिं० डब] किसी धातु की चद्दर को कटोरी के आकार का गठन करना ।

डबकना²—क्रि० अ० [अनु०] १. पीड़ा करना । टपकना । दर्द देना । टीस मारना । २. लँगड़ाकर चलना ।

डबकनाⓅ³—क्रि० अ० [सं० द्रव या द्रवक] तरलित होना । अश्रुपूर्ण होना । (नेत्रों मे) आँसू भर आना ।

डबकौहाँ—वि० [अनु० या हिं० डबकना] [वि० स्त्री० डबकौहीं] आँसू भरा हुआ । डबडबाया हुआ । अश्रुपूरित । गीला । उ०—बिछुरी डबकौहैं चलन, तिय लखि गमन बराय । पिय गहबर आयो गरो राखी गरे लगाय । -बिहारी (शब्द०) ।

डबडबाना—क्रि० अ० [अनु०, या हिं० डब डब] आँसू से आँखें भर आना । आँसू से (आँखों का) गीला होना । अश्रुपूर्ण होना । जैसे, आँखें डबडबाना । उ०—(क) जब जब सुरति करत तब तब डबडबाइ दोउ लोचन उमगि भरत ।—सूर (शब्द०) । (ख) उ०—डबडबाय आँखन में पानी । बूढ़े तन की यही निसानी ।—सहजो०, पृ० ३० ।

संयो० क्रि०—आना ।—जाना ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग 'आँख' के साथ तो होता ही है, 'आँसू' के साथ भी होता है ।

डबर†—संज्ञा पुं० [सं० डम्बर] आडंबर । उ०—डेराथी साबै डबर, यह हम कीध पयाण । करवा सुरां सहायकज असुरां सुं आराण ।—रघु० रू०, पृ० १७३ ।

डबरा—संज्ञा पुं० [सं० दभ्र (=समुद्र या झील)] [स्त्री० अल्पा० डबरी] १. छिछला लंबा गड्ढा जिसमें पानी जमा रहे । कुंड । हौज । २. वह नीची भूमि का टुकड़ा जिसमें पानी लगता हो । ३. खेत का कोना जो जोतने में छूट जाता है । †४. कटोरा । पात्र ।

डबरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० डबरा] छोटा गड्ढा या ताल ।

डबल¹—वि० [अं०] दोहरा । दूना । दोगुना । उ०—डबल जीन और गर्मी में भी फलालीन ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २५६ ।

डबल²—संज्ञा पुं० [सं० द्रम्य ?] पैसा । अंग्रेजी राज्य का पैसा ।

डबलरोटी—संज्ञा स्त्री० [अं० डबल + हिं० रोटी] पावरोटी ।

डबलविक—वि० [अं०] दोहरी बत्ती ।

डबला—संज्ञा पुं० [देश०, तुल० हिं० डबरा] मिट्टी का पुरवा । कुल्हड़ । चुक्कड़ ।

डबा†—संज्ञा पुं० [हिं० डब्बा] दे० 'डब्बा', 'डिब्बा' ।

डबारीⓅ†—संज्ञा स्त्री० [हिं० डबरा] गड़ही । उ०—को है कूप, गंगाजल को है, को है सलिल डबारी ।—गुलाल०, पृ० ५२ ।

डबिया†—संज्ञा स्त्री० [हिं० डब्बा] छोटा डिब्बा । डिबिया ।

डबिरना†—क्रि० स० [देश०] खेत में से भेड़ों को निकाल लाना । (गड़ेरियों की बोली) ।

डबीⓅ†—संज्ञा स्त्री० [हिं० डबा] दे० 'डब्बी', 'डिब्बी' । उ०—कंचन की झलक उप डबीन मैं खोल धरी मनो नील मणी है ।—सुंदरी सर्वस्व (शब्द०) ।

डबुआ†—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'डबुलिया' । उ०—मिट्टी का कुल्हड़ या डबुआ बुरा नहीं मालूम होता ।—आधुनिक०, पृ० १६५ ।

डबुलिया†—संज्ञा स्त्री० [देश०] कुलिहया । छोटा पुरवा ।

डबोना—क्रि० स० [अनु० डब डब, या सं० द्रवण] १. डुबाना । गोता देना । बोरना । मग्न करना । २. बिगाड़ना । नष्ट करना । चौपट करना ।

मुहा०—नाम डबोना = नाम में धब्बा लगाना । ख्याति नष्ट करना । वंश डबोना = वंश की मर्यादा नष्ट करना । कुल में कलंक लगाना । लुटिया डबोना = महत्व नष्ट करना । प्रतिष्ठा खोना ।

डब्बल‡—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'डबल' ।

डब्बा—संज्ञा पुं० [तैलंग । वा सं० डिम्ब (=गोल)] १. ढक्कनदार छोटा गहरा बरतन जिसमें ठोस या भुरभुरी चीजें रखी जाती हैं । संपुट । २. रेलगाड़ी की एक गाड़ी जो अलग हो सकती हो ।

डब्बू—संज्ञा पुं० [हिं० डब्बा तुल० देशी डोअ, गुज० डोयो] डाँडी लगा हुआ एक प्रकार का कटोरा जिससे परोसने का काम लिया जाता है ।

डभक—वि० [सं० स्तवक, या देश०] ताजा । पेड़ या पौधे से तत्काल तोड़ा हुआ । उ०—एक पीला सा डभक अमरूद उसने हाथ बढ़ाकर उठा लिया ।—नई०, पृ० १२६ ।

डभकना†—क्रि० अ० [अनु० डभ डभ या सं० द्रव] १. पानी में डूबना, उतराना । डुभकी लेना । २ (आँखों का) डबडबाना । (नेत्रों मे) जल भर आना । उ०—बदन पियर जल डभकहिं नैना । परगट दुखो पेम के बैना ।—जायसी (शब्द०) ।

डभका¹—संज्ञा पुं० [हिं० डभकना] कुएँ से ताजा निकाला हुआ (पानी) । ताजा । † २. अश्रु । नेत्रजल ।

डभका†²—संज्ञा पुं० [देश०] १. भूना हुआ मटर या चना जो फूटा न हो । कोहरा ।

डभकौरीⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं० डभकना] उरद की पीठी की बरी जो बिना तले हुए कढ़ी में डाल दी जाती है । डुभकी । उ०—पानौरा राइता पकौरी । डभकौरी मुगछी सुठि सौरी ।—सूर (शब्द०) ।

डभकौहाँ—वि० [हिं०] दे० 'डबकौहाँ' ।

डम—संज्ञा पुं० [सं०] एक नीच या वर्णसंकर जाति जिसे ब्रह्मवैवर्त पुराण ने लेट और चांडाली से उत्पन्न माना है । डोम ।

डमकना¹—क्रि० अ० [अनु०] ध्वनि या शब्द करना (ढोल आदि का) ।

डमकनाⓅ²—क्रि० अ० [हिं० दमकना] चमकना । द्योतित होना । उ०—चोपग चिंतामणि चग्गक, वे डमक्या बरबार ।—बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० ७५ ।

डमडम—संज्ञा स्त्री० [अनु०] डमरू बजाने से होनेवाली आवाज । उ०—एक नाद का यही अंत हो, डम डम डमरू बजे फिर शांत ।—वीणा, पृ० ४८ ।

डमर—संज्ञा पुं० [सं०] १. भय से पलायन। भगेड़। भगदड़। २. हलचल। उपद्रव। ३. गाँवों के साधारण संघर्ष (को०)।

डमरु—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'डमरू'। उ०—खुनखुनाकर हँसत हरि, हर हँसत डमरु बजाइ।—सूर०, १०।१६०।

डमरुआ—संज्ञा पुं० [सं० डमरू] वात का एक रोग जिससे जोड़ों में दर्द होता है। गठिया।

यौ०—डमरुआ साल = दे० 'डँवरुआ साल'।

डमरुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] हाथों की एक तांत्रिक मुद्रा (को०)।

डमरू—संज्ञा पुं० [सं० डमरु] १. एक बाजा जिसका आकार बीच में पतला और दोनों सिरों की ओर बराबर चौड़ा होता जाता है।

विशेष—इस वाद्य के दोनों सिरों पर चमड़ा मढ़ा होता है। इसके बीच में दो तरफ बराबर बढ़ी हुई डोरी बँधी होती है जिसके दोनों छोरों पर एक एक कौड़ी या गोली बँधी होती है। बीच में पकड़कर जब बाजा हिलाया जाता है तब दोनों कौड़ियाँ चमड़े पर पड़ती हैं

और शब्द होता है। यह बाजा शिव जी को बहुत प्रिय है। बंदर नचानेवाले भी इस प्रकार का एक बाजा अपने साथ रखते हैं।
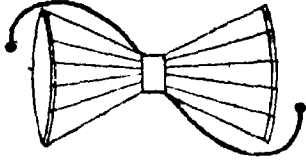
२. डमरू के आकार की कोई वस्तु। ऐसी वस्तु जो बीच में पतली हो और दोनों ओर बराबर चौड़ी (उलटी गावदुम) होती गई हो।

यौ०—डमरूमध्य।

३. एक प्रकार का दंडक वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में ३२ लघु वर्ण होते हैं। जैसे,—रहत रजत नग नगर न गज तट गज खल कलगर गरल तरल धर। भिखारीदास ने इसी का नाम जलहरण लिखा है।

डमरूमध्य—संज्ञा पुं० [सं० डमरू + मध्य] धरती का वह तंग पतला भाग जो दो बड़े बड़े भूखंडों को मिलाता हो।

यौ०—जलडमरूमध्य = जल का वह तंग पतला भाग जो जल के दो बड़े भागों को मिलाता हो।

डमरूयंत्र—संज्ञा पुं० [सं० डमरू + यन्त्र] एक प्रकार का यंत्र या पात्र जिसमें अर्क खींचे जाते तथा सिंगरफ का पारा, कपूर, नौसादर आदि उड़ाए जाते हैं।

विशेष—यह दो घड़ों का मुँह मिलाकर और कपड़मिट्टी से जोड़कर बनाया जाता है। जिस वस्तु का अर्क खींचना होता है उसे घड़ों का मुँह जोड़ने के पहले पानी के साथ एक घड़े में रख देते हैं और फिर सारे यंत्र को (अर्थात् दोनों जुड़े घड़ों को) इस प्रकार आड़ा रखते हैं कि एक घड़ा आँच पर रहता है और दूसरा ठंढी जगह पर। आँच लगने से वस्तु मिले हुए पानी की भाप उड़कर दूसरे घड़े में जाकर टपकती है। यही टपका हुआ जल उस वस्तु का अर्क होता है। सिंगरफ से पारा उड़ाने के लिये घड़ों को खड़े बल नीचे ऊपर रखते हैं। नीचे के घड़े के पेंदे में आँच लगती है और ऊपर के घड़े के पेंदे को गीला कपड़ा आदि रखकर ठंढा रखते हैं। आँच लगने पर सिंगरफ से पारा उड़कर ऊपरवाले घड़े के पेंदे में जम जाता है।

डयन—संज्ञा पुं० [सं०] १. उड़ान। उड़ने की क्रिया। २. पालकी (को०)।

डर—संज्ञा पुं० [सं० दर] १. दुःखपूर्ण मनोवेग जो किसी अनिष्ट या हानि की आशंका से उत्पन्न होता और उस (अनिष्ट या हानि) से बचने के लिये आकुलता उत्पन्न करता है। भय। भीति। खौफ। त्रास। उ०—नाथ लखनु पुरु देखन चहहीं। प्रभु सँकोच डर प्रकट न कहहीं।—मानस, १।२१८।

क्रि० प्र०—लगना।—खाना। उ०—पैग पैग भुँइ चाँपत आवा। पंखिन्ह देखि सबन्हि डर खावा।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १६५।

मुहा०—डर के मारे = भय के कारण।

२. अनिष्ट की संभावना का अनुमान। आशंका। जैसे,—हमें डर है कि वह कहीं भटक न जाय।

डरना—क्रि० अ० [हिं० डर + ना (प्रत्य०)] १. किसी अनिष्ट या हानि की आशंका से आकुल होना। भयभीत होना। खौफ करना। सशंक होना।

संयो० क्रि०—उठना।—जाना।

२. आशंका करना। अंदेशा करना।

डरपक—वि० [हिं० डार + सं० पक्व] डार में ही पका हुआ (फल)। उ०—किधौं सु डरपक आम मे मनि ह्वै मिल्यो मलिंद। किधौं तनक ह्वै तम रह्यो कै ठोढ़ी को बिंद।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २००।

डरपना†—क्रि० अ० [हिं० डर] डरना। भयभीत होना। उ०—(क) इंद्रहु को कछु दूषन नाहीं। राजहेतु डरपत मन माहीं।—सूर (शब्द०)। (ख) एकहि डर डरपत मन मोरा। प्रभु मोहि देब साप अति घोरा।—तुलसी (शब्द०)।

डरपाना†—क्रि० स० [हिं० डरपना] डराना। भयभीत करना।

डरपुकना—वि० [हिं० डरपोकना] दे० 'डरपोक'। उ०—सिपारसी डरपुकने सिट्टू बोलें बात अकासी।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ३३३।

डरपोक—वि० [हिं० डरना + पोंकना] बहुत डरनेवाला। भीरु। कायर।

डरपोकना†—वि० [हिं० डरना + पोंकना] दे० 'डरपोक'।

डरवाना¹—क्रि० स० [हिं० डर] दे० 'डराना'।

डरवाना†²—क्रि० स० [हिं० डालना] दे० 'डलवाना'।

डरा†—संज्ञा पुं० [हिं० डला] [स्त्री० डरी] ढोका। डला। टुकड़ा।

डराकू†—वि० [हिं० डरना]। १. बहुत डरनेवाला। भीरु। २. डराने या भय उत्पन्न करनेवाला।

डराडरि—संज्ञा स्त्री० [हिं० डर] दे० 'डराडरी'। उ०—जब आनि

घेरत कटक काम को तब थिय होत डराउरि ।—स्वामी हरिदास (शब्द०) ।

डरावरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० डर] डर । भय । आशंका ।

डरान—वि० [हिं० डरावना] भयदायक । भयावना । भयंकर । उ०—हहुकंत वज डाइन डरान । बहुकंत बिडि पिउविय थान ।—पृ० रा०, १ । ६६१ ।

डराना—क्रि० स० [हिं० डरना] डर दिखाना । भयभीत करना । खौफ दिलाना ।

संयो० क्रि०—देना

डरानी—वि० [हिं० डरना] १. खौफ पैदा करनेवाली । भयावनी । २. डरी हुई । भयभीत । उ०—बोले यों डरानी वार्षिक हू के डर मैं ।—मति० ग्रं०, पृ० ४१८ ।

डरापना—क्रि० स० [हिं० डर] किसी को डरा देना । भयभीत करना ।

डराराⓅ†—वि० [हिं० डोरा + आर (प्रत्य०)] (आँख) जिसमें डोरे या हलकी रक्ताभ रेखा हो । मस्त (आँख) । उ०—मीन मधुर पंकज मृग हारे । निरखत लोचन सुभग डरारे ।—माधवानल०, पृ० १८० ।

डरावना—वि० [हिं० डर + आवना (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० डरावनी] जिससे डर लगे । जिससे भय उत्पन्न हो । भयानक । भयंकर । उ०—कारी घटा डरावनी आई । पापिनि साँपिनि सी घनि छाई ।—नंद० ग्रं०, पृ० १६१ ।

डरावा—संज्ञा पुं० [हिं० डराना] १. वह लकड़ी जो फलदार पेड़ों में चिड़ियाँ उड़ाने के लिये बंधी रहती है । इसमें एक लंबी रस्सी बंधी होती है जिसे खींचने से खट खट शब्द होता है । खटखटा । धड़का । † २. डराने की दृष्टि से कही बात ।

• **डराहुक**†—वि० [हिं० डरना] डरपोक ।

डरिया[1]†—संज्ञा स्त्री० [हिं० डार + इया (प्रत्य०)] दे० 'डार' या 'डाल' । उ०—अबकै राखि लेहु भगवान । हुम अनाथ बैठे द्रुम डरिया पारधि साधे बान ।—सूर (शब्द०) ।

डरिया[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० डलिया] दे० 'डलिया' । उ०—सीसनि धरे छाक की डरियनि । तकति गुपाल भूख की भरियनि ।—घनानंद, पृ० ११७ ।

डरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० डली] दे० 'डली' । उ०—परतीति दै कीनी अनीति महा, विष दीनो दिखाय मिठास डरी ।—घनानंद, पृ० ८१ ।

डरीला[1]†—वि० [हिं० डार] डारवाला । शाखायुक्त । टहनीदार । उ०—जोबन छबीले तरु दूलह डरीले, छैल होत हैं फबीले देख धन चमकीले हैं ।—रघुराज (शब्द०) ।

डरीला[2]†—वि० [हिं० डर + ईला (प्रत्य०)] दे० 'डरैला' ।

डरेरना†—क्रि० स० [हिं० ढरेरना] दे० 'ढरेरना' । उ०—भुजा जोरि के तोय हुल्ली डरेरै ।—पृ० रासो, पृ० ४५ ।

डरैला‡—वि० [हिं० डर] डरावना । भयानक । खौफनाक । उ०—बिटरन घंडा चरत नाव उच्चरत डरैला ।—श्रीधर पाठक (शब्द०) ।

डल[1]—संज्ञा पुं० [हिं० डला (= टुकड़ा)] टुकड़ा । खंड ।

मुहा०—डल का डल = ढेर का ढेर । बहुत सा ।

डल[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० तल्ल] १. झील । २. काश्मीर की एक झील । उ०—बनि सागर सम तुल्य, विमल विस्तृत डल सुंदर ।—काश्मीर०, पृ० १ ।

डलई—संज्ञा स्त्री० [हिं० डला] दे० 'डलिया' ।

डलक—संज्ञा पुं० [सं०] दौरा । डला । बाँस आदि की बनी बड़ी डलिया (को०) ।

डलना—क्रि० अ० [हिं० डालना] डाला जाना । पड़ना । जैसे, झूला डलना ।

डलरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० डलिया] छोटी डलिया । मूँज की बनी हुई छोटी पिटारी । उ०—नए बसन आभूषन सजि डलरी गुड़िया लै ।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० २९ ।

डलवा—संज्ञा पुं० [हिं० डला] 'डला[2]' ।

डलवाना—क्रि० स० [हिं० डालना का प्रे० रूप] डालने का काम कराना । डालने देना ।

डला[1]—संज्ञा पुं० [सं० दल] [स्त्री० अल्पा० डली] १. टुकड़ा । ढोंका । खंड । उ०—रीठ पड़े घाव घणी, पर घड़ डला सधेह ।—रा० रू०, पृ० २६० ।

विशेष—साधारणतः इसका प्रयोग नमक, मिस्री आदि के लिये अधिक होता है । जैसे, नमक का डला, मिस्री की डली ।

१. लिंगेंद्रिय ।—(बाजारू) ।

डला[2]—संज्ञा पुं० [सं० डलक] [स्त्री० अल्पा० डलिया] बाँस, बेंत आदि की पतली फट्ठियों या कमचियों को गाँथकर बनाया हुआ बरतन । टोकरा । दौरा । उ०—डला भरि हौ लाल । कैसे कै उठाऊँ । पठयौ ग्वाल छाक लै आवै ।—नंद० ग्रं०, पृ० १९० ।

यौ०—डला खुलवाई = क्षत्रियों के यहाँ विवाह की एक रीति जिसमें दूल्हा दुलहिन के यहाँ एक टोकरा जाता है ।

डलिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० डला] छोटा डला । छोटा टोकरा । दौरी । उ०—प्रेम के पत्थर धरो डलिया में, आदि की आदो लाई । ज्ञान के गजरा दृढ़ करि राखो गगन में हाट लगाई ।—कबीर श०, भा० ३, पृ० ४८ ।

डली[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० डला] १. छोटा टुकड़ा । छोटा ढेला । खंड । जैसे, मिस्री की डली, नमक की डली । २. सुपारी ।

डली[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० डला] दे० 'डलिया' । उ०—चुने डली में सुघरे, बड़े बड़े भरे भरे ।—बेला, पृ० १६ ।

डल्लक—संज्ञा पुं० [सं०] डला । दौरा ।

डल्ला†—संज्ञा पुं० [सं० डल्लक] दौरा ।

डवँरुआ—संज्ञा पुं० [सं० डमरु] दे० 'डँवरुआ' ।

डवँरू—संज्ञा पुं० [सं० डमरु] दे० 'डमरू' ।

डवँरुवा—संज्ञा पुं० [सं० डमरु] दे० 'डमरू' ।

डवाⓅ†—संज्ञा पुं० [हिं० डब्बा] दे० 'डिब्बा' । उ०—विष को डवा है कै उदेग को अँवा है, कल पलको न चाहै अथवा है चक्र बात को ।—घनानंद, पृ० ८० ।

डवित्थ—संज्ञा पुं० [सं०] काठ का बना हुआ मृग ।

डस—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. एक प्रकार की शराब । रम । २. तराजू की डोरी जिसमें पलड़े बँधे रहते हैं । जोती । ३. कपड़े की थान का छोर जिसमें ताने और बाने के पूरे तागे नहीं बुने रहते । छोर ।

डसण†—संज्ञा पुं० [सं० दशन; प्रा० डसण] दाँत । दशन । उ०—हीर डसण बिद्रम अधर, मारू भृकुटि मयंक ।—ढोला०, दू० ४५४ ।

डसन—संज्ञा स्त्री० [सं० दंशन] १. डसने की क्रिया या भाव । २. डसने या काटने का ढंग । उ०—यह अपराध बड़ो उन कीनो । तक्षक डसन साप मैं दीनो ।—सूर (शब्द०) ।

डसना[1]—क्रि० स० [सं० दंशन] १. किसी ऐसे कीड़े का दाँत से काटना जिसके दाँत में विष हो । साँप आदि जहरीले कीड़ों का काटना । उ०—अरे अरे कान्हु कि रभसि बोरि । मदन भुजंग डसु बालहि तोरि ।—विद्यापति, पृ० ३६६ । २. डंक मारना ।

संयो० क्रि०—लेना ।

डसना[2]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'डासन', 'दसना' । उ०—सुंदर सुमनन सेज बिछाई । अरगज मरगजि डसनि डसाई ।—नंद ग्रं०, पृ० १४१ ।

डसनी—वि० [सं० दंश, प्रा० डंस] काटनेवाली । उ०—सिसुघातिनी परम पापिनी । संतनि की डसनी जु साँपिनी ।—नंद० ग्रं०, पृ० २३१ ।

डसवाना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'डसाना' ।

डसा†—संज्ञा पुं० [सं० दंष्ट्र] डाढ़ । चौभड़ ।

डसाना[1]—क्रि० स० [हिं० डासना] बिछाना । उ०–'हे राम' कथित यह वही चौतरा भाई । जिसपर बापू ने अंतिम सेज डसाई ।—सूत०, पृ० १३७ ।

डसी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० दसी] दे० 'दसी' ।

डसी[2]—संज्ञा स्त्री० पहचान या परिचय की वस्तु । पहचान के लिये दिया हुआ चिह्न । चिन्हानी । निशानी । सहदानी ।

डस्टर—संज्ञा पुं० [श्रं०] गर्द झाड़ने का कपड़ा । झाड़न ।

डहँकना—क्रि० स० [हिं० डहकना] दे० 'डहकना' । उ०—कहु दरिया मन डहँकत फिरै ।—दरिया० बानी, पृ० ३५ ।

डहक—वि० [?] संख्या में छह । ६ ।—(दलाल) ।

डहकना[1]—क्रि० स० [हिं० डाका] १. छल करना । धोखा देना । ठगना । जटना । उ०—डहकि डहकि परचेहु सब काहू । अति असंक मन सदा उछाहू ।—तुलसी (शब्द०) । २. किसी वस्तु को देने के लिये दिखाकर न देना । ललचाकर न देना । उ०—खेलत खात, परस्पर डहकत, छीनत कहत करत रगदैया ।—तुलसी (शब्द०) ।

डहकना[2]—क्रि० अ० [हिं० दहाड़, धाड़] १. रोने में रह रहकर शब्द निकालना । बिलखना । विलाप करना । उ०—काल बदन ते राखि लीन्हो इंद्र गर्व जे खोइ । गोपिनी सब ऊधो आगे डहकि दीनो रोइ ।—सूर (शब्द०) । २. हुंकारना । डकार लेना । दहाड़ मारना । गरजना । उ०—इक दिन कंस असुर इक प्रेरा । आवा घटि वपु बिरवभ केरा । डहकत फिरत उड़ावत छारा । पकरि सींग तुरतै प्रभु मारा ।—विश्राम (शब्द०) ।

डहकना⑤[3]—क्रि० अ० [देश०] छितराना । छिटकना । फैलना । उ०—चंदन कपूर जल धौत कलधौत धाम उज्जल जुन्हाई डहडही डहकत है ।—देव (शब्द०) ।

डहकलाय—वि० [?] सोलह । १६ ।—(दलाल) ।

डहकाना[1]—क्रि० स० [सं० दह (= खोना), हिं० डाका] खोना गँवाना । नष्ट करना । उ०—वाद विवाद यज्ञ व्रत साधे । कतहूँ जाय जन्म डहकावै ।—सूर (शब्द०) ।

डहकाना[2]—क्रि० अ० किसी के धोखे में आकर अपने पास का कुछ खोना । किसी के छल के कारण हानि सहना । धोखे में आना वंचित या प्रतारित होना । ठगा जाना । जैसे, इस सौदे में तुम डहका गए । उ०—(क) इनके कहे कौन डहकावै, ऐसी कौन अजानी ?—सूर (शब्द०) । (ख) डहके ते डहकाइबो भलो जो करिय बिचार ।—तुलसी (शब्द०) ।

संयो० क्रि०—जाना ।

डहकाना[3]—क्रि० स० १. ठगना । धोखे से किसी की कोई वस्तु ले लेना । धोखा देना । जटना । २. किसी को कोई वस्तु देने के लिये दिखाकर न देना । ललचाकर न देना ।

डहकावनि⑤—संज्ञा पुं० [हिं० डहकाना] [स्त्री० डहकावनि] ललचाना या धोखा देने का कार्य या स्थिति । उ०—लै लै व्यंजन चखनि चखावनि । हँसनि, हँसावनि, पुनि डहकावनि ।—नंद ग्रं०, पृ० २६४ ।

डहडह—वि० [अनु०] दे० 'डहडहा' ।

डहडहा—वि० [अनु०] [वि० स्त्री० डहडही] १. हरा भरा । ताजा । लहलहाता हुआ । जो सूखा या मुरझाया न हो । (पेड़, पौधे, फूल, पत्ते आदि) । उ०—(क) जो काटै तो डहडही, सींचै तो कुम्हिलाय । यहि गुनवंती बेल का कुछ गुन कहा न जाय ।—कबीर (शब्द०) । २. प्रफुल्लित । प्रसन्न । आनंदित । उ०—तुम सौतिन देखत दई अपने हिय ते लाल । फिरति सबनि में डहडही वहै मरगजी माल ।—बिहारी (शब्द०) । (ख) देवती चरन चारु सेवती हमारे जान, है रही डहडही लहि आनँद कंद को ।—देव (शब्द०) । (ग) डहडहे इनके नैन अर्बाहि कतहूँ चितए हरि ।—नंद० ग्रं०, पृ० १५ । ३. तुरंत का । ताजा । उ०—लहलही इंदीवर श्यामता शरीर सोही डहडही चंदन की रेखा राजी भाल में ।—रघुराज (शब्द०) ।

डहडहाट⑤†—संज्ञा स्त्री० [हिं० डहडहा] हरापन । ताजगी ।

डहडहाना—क्रि० अ० [हिं० डहडहा] १. हरा भरा होना । ताजा होना । (पेड़, पौधे, आदि का) । उ०—दूर दमकत श्रवन शोभा जलज युग डहडहत ।—सूर (शब्द०) । २. प्रफुल्लित होना । आनंदित होना ।

डहडहाव—संज्ञा पुं० [हिं० डहडहा] हराभरा होने का भाव। ताजगी। प्रफुल्लता।

डहन¹—संज्ञा पुं० [सं० डयन (= उड़ना)] डैना। पर। पंख। उ०—बिधबाना कित देइ अँगूरा। जिहि भा मरन डहन धरि चूरा।—जायसी (शब्द०)।

डहन²—संज्ञा स्त्री० [सं० दहन] जलन। दाह।

डहना¹—संज्ञा पुं० [सं० डयन] दे० 'डैना'। उ०—जौं पंखी कहवाँ थिर रहना। ताकै जहाँ जाइ जौं डहना।—पदमावत, पृ० २५८।

डहना²—क्रि० अ० [सं० दहन] १. जलना। भस्म होना। २. कुढ़ना। चिढ़ना। द्वेष करना। बुरा मानना।

डहना³—क्रि० स० १. जलाना। भस्म करना। उ०—रावन लंका हौ डही वेह मोहिं डाढ़न आइ।—जायसी (शब्द०)। २. संतप्त करना। दुःख पहुँचाना। उ०—डहुर चंद अउ चंदन चीरू। दगध करइ तन बिरह गभीरू।—जायसी (शब्द०)। ३. ताड़ना। बजाना। उ०—डहरु संकर डहैं करै जोगगण किलकारी।—रघु० रू०, पृ० ४७।

डहर†—संज्ञा स्त्री० [हिं० डगर] १. रास्ता। मार्ग। पथ। उ०—जिहि डहरत डहर करत कहरो। चित चख चोरत चेटक चेहरो।—रघुराज (शब्द०)। २. आकाशगंगा। ३. पगडंडी।

डहरना—क्रि० अ० [हिं० डहर] चलना। फिरना। टहलना। उ०—जिहि डहरत डहर करत कहरो। चित चख चोरत चेटक चेहरो।—रघुराज (शब्द०)।

डहरा†—संज्ञा पुं० [हिं० डहर] मार्ग। डगर। उ०—सखी री आज अब धरती धन देसा। घन डहरा मेवात मँझारे हुरि आए जन भेसा।—सहजो०, पृ० ५७।

डहराना†—क्रि० स० [हिं० डहरना] चलाना। दौड़ाना। फिराना। उ०—कोऊ बिरखि रही भाल चखन एक चित लाई। कोऊ बिरखि बिथुरी भृकुटि पर नैन डहराई।—सूर (शब्द०)।

डहरि(पु)†¹—संज्ञा स्त्री० [सं० दधि, हिं० दहेंड़ी] दही जमाने के काम में प्रयुक्त मिट्टी की हँड़िया। उ०—सुत को बरजि राखहु महरि। डहर चलन न देत काहूहि फोरि डारत डहरि।—सूर०, १०।१४२१।

डहरि(पु)²—संज्ञा स्त्री० [हिं० डहर] राह। उ०—जल भरन कोउ नाहिं पावत रोकि राखत डहरि।—सूर०, १०।१४२२।

डहरिया†—संज्ञा पुं० [हिं० डहर] गाय बैल का घूमकर व्यापार करनेवाला व्यक्ति।

डहरी†—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'कुठिला'।

डहरू†—संज्ञा पुं० [सं० डमरु] दे० डमरु। उ०—डहरु संकर डहैं, करैं जोगगण किलकारी।—रघु० रू०, पृ० ४७।

डहार†—वि० [हिं० डाहना] डाहनेवाला। तंग करनेवाला। कष्ट पहुँचानेवाला। उ०—फोरहिं सिल लोढ़ा सदन लागे अढ़ुक पहार। कायर कूर कपूत कलि घर घर सहस डहार।—तुलसी (शब्द०)।

डहोली—वि० स्त्री० [हिं० डाह + ली(प्रत्य०)] डाह पैदा करनेवाली। उ०—पग द्वै चलति ठठकि रहै ठाढ़ी मौन धरैं हरि के रस गोली। धरनी नख चरननि कुरवारति, सौतिनि भाग सुहाग डहोली।—सूर० १०।१७७२।

डहु, डहू—संज्ञा पुं० [सं०] १. वृक्षविशेष। लकुच। २. बड़हर।

डहोला†—संज्ञा पुं० [देश०] हलचल। उपद्रव। भय। उ०—महा डहोलो मेदनी बिसतरियो तिण वार। साह तपस्या मुगलो अकबर सेण अपार।—रा० रू०, पृ० ६६।

डांकृति—संज्ञा स्त्री० [सं० डाङ्कृति] घंटी आदि बजने की ध्वनि [को०]।

डाँ—संज्ञा स्त्री० [सं० डा] डाकिनी। डाइन।

डाँक¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० दमक, दवँक अथवा देश०] ताँबे या चाँदी का बहुत पतला कागज की तरह का पत्तर।

विशेष—देशी डाँक चाँदी की होती है जिसे घोटकर नगीनों के नीचे बैठाते हैं। अब ताँबे के पत्तर की विदेशी डाँक भी बहुत आती है जिसके गोल और चमकीले टुकड़े काटकर स्त्रियों की टिकली, कपड़ों पर टाँकने की चमकी आदि बनती हैं। डाँक घोंटने की सान ८-९ अंगुल लंबी और ३-४ अंगुल चौड़ी पटरी होती है जिसपर डाँक रखकर चमकाने के लिये घोटते हैं।

डाँक²—संज्ञा स्त्री० [हिं० डाँकना] कै। वमन। उलटी।

क्रि० प्र०—होना।

डाँक†—संज्ञा पुं० [हिं० डंका] नगाड़ा। दे० 'डंका'। उ०—दान डाँक बाजै दरबारा। कीरति गई समुंदर पारा।—जायसी (शब्द०)।

डाँक⁴—संज्ञा पुं० [हिं० डंक] विषैले जंतुओं के काटने का डंक। मार। उ०—जे तव होत दिखादिखी भई अमी इक आँक। दगै तीरछी डीठि अब ह्वै बीछी को डाँक।—बिहारी (शब्द०)।

डाँकना†—क्रि० स० [सं० तक (= चलना)] १. कूदकर पार करना। लाँघना। फाँदना। २. पार कर जाना। लाँघ जाना। उ०—अजगर उड़ा सिखर को डाँका, गरुड़ थकित होय बैठा।—दरिया० बानी पृ० ५९। ३. वमन करना। उलटी करना। ३. जोर से पुकारना। आवाज देना।

डाँकिनी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० डाकिनी] दे० 'डाकिनी'। उ०—परहु नरक, फलचारि सिसु, मीच डाँकिनी खाउ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ११०।

डाँग†¹—संज्ञा पुं० [सं० टङ्क (= पहाड़ का किनारा और चोटी)] १. पहाड़ी। जंगल। बन। २. पहाड़ की ऊँची चोटी।

डाँग²—संज्ञा पुं० [सं० दण्ड, हिं० डाँगा] मोटे बाँस का डंडा। लट्ठ।

डाँग†³—संज्ञा पुं० [हिं० डाँकना] कूद। फलाँग।

डाँग(पु)⁴—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'डंका'।

डाँगर¹—संज्ञा पुं० [देश०] १. चौपाया। ढोर। गाय, भैंस आदि पशु। † २. मरा हुआ चौपाया। (गाय, बैल आदि) चौपाए की लाश (पूरब)।

मुहा०—डाँगर घसीटना = चमारों की तरह मरा हुआ चौपाया खींचकर ले जाना। अशुचि कर्म करना।

३. एक नीच जाति का नाम।

डाँगर[2]—वि० १. दुबला पतला। जिसकी हड्डी हड्डी निकली हो। २. मूर्ख। जड़। गावदी।

डाँगा—संज्ञा पुं० [सं० दण्डक] १. जहाज के मस्तूल में रस्सियों को फैलाने के लिये आड़ी लगी हुई धरन। २. लंगड़ के बीच का मोटा डंडा। (लश०)।

डाँट—संज्ञा स्त्री० [सं० दान्ति (= दमन, वश) या सं० दण्ड] १. शासन। वश। दाब। दबाव। जैसे,—(क) इस लड़के को डाँट में रखो। (ख) इस लड़के पर किसी की डाँट नहीं है।

क्रि० प्र०—पड़ना।—मानना।—रखना।

मुहा०—डाँट में रखना = शासन में रखना। वश में रखना। किसी पर डाँट रखना = किसी पर शासन या दबाव रखना। डाँट पर = पालकी के कहारों की एक बोली। (जब तंग और ऊँचा नीचा रास्ता आगे होता है तब अगला कहार कुछ बचकर चलने के लिये कहता है 'डाँट पर')।

२. डराने के लिये क्रोधपूर्वक कर्कश स्वर से कहा हुआ शब्द। घुड़की। डपट।

क्रि० प्र०—बताना।

डाँटना[1]—क्रि० स० [हिं० डाँट + ना (प्रत्य०) अथवा सं० दण्डन] १. डराने के लिये क्रोधपूर्वक कड़े स्वर में बोलना। घुड़कना। डपटना। उ०—(क) जैसे मीन किलकिला दरसत, ऐसे रहौ प्रभु डाँटत। पुनि पाछे अघसिंधु बढ़त है सूर खाल किन पाटत।—सूर०, १। १०७। (ख) जानै ब्रह्म सो विप्रवर आँखि दिखावहि डाँटि।—तुलसी (शब्द०)। (ग) सोई दहाँ जेंवरी बाँधे, जननि साँटि लै डाँटे।—सूर०, १०। ३४६।

संयो० क्रि०—देना।

२. ठाठ से वस्त्र आदि पहनना। दे० 'डाटना'-६। उ०—चाकर भी वर्दी डाँटे है।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ३६।

डाँठा—संज्ञा पुं० [सं० दण्ड] डंठल।

डाँड़—संज्ञा पुं० [सं० दण्ड, प्रा० डंड] १. सीधी लकड़ी। डंडा। २. गदका। उ०—सीखत चटकी डाँड़ विविध लकड़ी के दाँवन।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० २८।

यौ०—डाँड़ पटा = (१) फरी गतका। (२) गतके का खेल।

३. नाव खेने का लंबा बल्ला या डंडा। चप्पू।

क्रि० प्र०—खेना।—चलाना।—मारना।—भरना।—(लश०)।

४. अंकुश का हत्था। ५. जुलाहों की वह पोली लकड़ी जिसमें ढरी फँसाई रहती है।† ६. सीधी लकीर। ७. रीढ़ की हड्डी। ८. ऊँची उठी हुई तंग जमीन जो दूर तक लकीर की तरह चली गई हो। ऊँची मेंड़।

मुहा०—डाँड़ मारना = मेंड़ उठाना।

९. रोक, आड़ आदि के लिये उठाई हुई कम ऊँची दीवार। १०. ऊँचा स्थान। छोटा भीटा या टीला। उ०—धो कर ब्रै पंडा छिति गाड़े। उपज्यो द्रुत द्रुम इक तेहि डाँड़े।—रघुराज (शब्द०)। ११. दो खेतों के बीच की सीमा पर की कुछ ऊँची जमीन जो कुछ दूर तक लकीर की तरह गई हो और जिसपर लोग आते जाते हों। मेंड़।

क्रि० प्र०—डाँड़ मारना = मेंड़ बनाना। सीमा या हदबंदी करना।

यौ०—डाँड़ मेंड़ = दे० 'डाँड़ामेड़'।

१२. समुद्र का ढालुआँ रेतीला किनारा। १३. सीमा। हद। जैसे, गावँ का डाँड़ा। १४. वह मैदान जिसमें का जंगल कट गया हो। १५. अर्थदंड। किसी अपराध के कारण अपराधी से लिया जानेवाला धन। जुरमाना।

क्रि० प्र०—लगाना।

१६. वह वस्तु या धन जिसे कोई मनुष्य दूसरे से अपनी किसी वस्तु के नष्ट हो जाने या खो जाने पर ले। नुकसान का बदला। हरजाना।

क्रि० प्र०—देना।—लेना।

१७. लंबाई नापने का मान। कट्ठा। बाँस।

डाँड़ना—क्रि० स० [हिं० डाँड़ + ना (प्रत्य०); या सं० दण्डन] अर्थदंड देना। जुरमाना करना। उ०—(क) उदधि अपार उतरतहूँ न लागी बार केसरीकुमार सो अदंड ऐसो डाँड़िगो।—तुलसी (शब्द०)। (ख) पड़ा जो डाँड़ जगत सब डाँड़ा। का निचित माटी के भाँड़ा ?–जायसी (शब्द०)।

डाँड़र—संज्ञा पुं० [हिं० डाँठ] बाजरे के डंठल का गड़ा हुआ भाग जो फसल कट जाने पर भी खेतों में पड़ा रहता है। बाजरे की खूँटी।

डाँड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० डाँड़] १. छड़। डंडा। २. गतका। उ०—बज्र की साँग बज्र का डाँड़ा। उठी आगि तस बाजे खाँड़ा।—जायसी (शब्द०)। ३. नाव खेने का डाँड़। ४. समुद्र का ढालुआँ रेतीला किनारा (लश०)। ५. हद। सीमा। मेंड़।

यौ०—डाँड़ा मेंड़ा। डाँड़ा मेड़ी।

मुहा०—होली का डाँड़ा = लकड़ी, घास फूस आदि का ढेर जो वसंत पंचमी के दिन से होली जलाने के लिये इकट्ठा किया जाने लगता है।

डाँड़ामेंड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० डाँड़ + मेंड़] १ एक ही डाँड़ या सीमा का अंतर। परस्पर अत्यंत सामीप्य। लगाव। २. अनबन। झगड़ा।

क्रि० प्र०—रहना।

डाँड़ामेंड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'डाँड़ामेंड़ा'।

डाँड़ाशहेल—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का साँप जो बंगाल में होता है।

डाँड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० डाँड़ा] १. लंबी पतली लकड़ी। २. हाथ में लेकर व्यवहार की जानेवाली वस्तु का वह लंबा पतला भाग जो हाथ में लिया या पकड़ा जाता है। लंबा हत्था या दस्ता। जैसे, करछी की डाँड़ी। उ०—हरि जू की आरती बनी। अति विचित्र रचना रचि राखी परति न गिरा गनी।

कच्छप अच आसन अनूप अति, डाँड़ी शेष फनी।—सूर (शब्द०)। ३. तराजू की वह सीधी लकड़ी जिसमें रस्सियाँ लटकाकर पलड़े बाँधे जाते हैं। डंडी। उ०—साँई मेरा बानिया सहज करै व्यवहार। बिन डाँड़ी बिन पालड़े तौलै सब संसार।—कबीर (शब्द०)।

मुहा०—डाँडी मारना = सौदा देने में कम तौलना। डाँड़ी सुभीते से रहना = बाजारभाव अनुकूल होना। उ०—भगवान कहीं गौं से बरखा कर दे और डाँडी भी सुभीते से रहे तो एक गाय जरूर लेगा।—गोदान, पृ० ३०।

४. टहनी। पतली शाखा। ५. वह लंबा डंठल जिसमें फूल या फल लगा होता है। नाल। उ०—तेहि डाँड़ो सह कमलहि तोरी। एक कमल की दूनो जोरी।—जायसी (शब्द०)। ६, हिंडोले में लगी हुई वे चार सीधी लकड़ियाँ या डोरी की लड़ें जिनसे लगी हुई बैठने की पटरी लटकती रहती है। उ०—पटुली लगे नग नाग बहुरँग बनी डाँड़ी चारि। भौरा भँवै भजि केलि भूले नवल नागर नारि।—सूर (शब्द०)। ७. जुलाहों की वह लकड़ी जो चरखी की थवनी में डाली जाती है। ८. शहनाई की लकड़ी जिसके नीचे पीतल का घेरा होता है। ९. अनवट नामक गहने का वह भाग जो दूसरी और तीसरी उँगली के नीचे इसलिये निकाला रहता है जिसमें अनवट घूम न सके। १०. डाँड़ खेनेवाला आदमी (लश०)। ११. मट्ठर या सुस्त आदमी (लश०)। † १२. सीधी लकीर। लकीर। रेखा।

क्रि० प्र०—खींचना।

१३. लीक। मर्यादा। १४. सीमा। हद। उ०—डरे लाग वन डाँड़ियाँ, सूते ही सादूल। जे सूते ही जागता, सबलाँ माथा सूल।—बाँकी० ग्रं०, भा० १, पृ० २४। १५. चिड़ियों के बैठने का अड्डा। १६. फूल के नीचे का लंबा पतला भाग। १७. पालकी के दोनों ओर निकले हुए लंबे डंडे जिन्हें कहार कंधे पर रखते हैं। १७. पालकी। १९. डंडे में बँधी हुई झोली के आकार की एक सवारी जो ऊँचे पहाड़ों पर चलती है। झप्पान।

डाँड़री†—संज्ञा स्त्री० [सं० दग्ध, प्रा० डड्ढ, हिं० डाढ़ा + री (प्रत्य०)] भुनी हुई मटर की फली।

डाँबू—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का नरकट जो दलदल में उत्पन्न होता है।

डाँभ†—संज्ञा पुं० [सं० दाह प्रा० डाह, या सं० दग्ध, प्रा० डड्ढ, या हिं० दागना] १. जलने का दाग। दाग। २. जलने से उत्पन्न पीड़ा या कष्ट। उ०—बाँधउँ बकरी छाहड़ी, नीरूँ नागर बेल। डाँभ संभालूँ करहला, चोपड़िसूँ चंपेल।—ढोला०, दू० ३२०।

डाँवरा†—संज्ञा पुं० [सं० डिम्ब] [स्त्री० डाँवरी] लड़का। बेटा। पुत्र।

डाँवरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० डाँवरा] लड़की। बेटी। उ०—(क) कचन मन रतन जड़ित रामचंद्र पाँवरी। चाहिन सो राम धाम जनक राय डाँवरी।—देवस्वामी (शब्द०)। (ख) बाहिर पौरि न दीजिए पाँवरी बाउरी होय सो डाँवरी डोलै।—देव (शब्द०)। दे० 'डावरी'।

डाँवरू†—संज्ञा पुं० [सं० डिम्ब] बाघ का बच्चा।

डाँवाडोल—वि० [हिं० डोलना] इधर उधर हिलता डोलता हुआ। एक स्थिति पर न रहनेवाला। चंचल। विचलित। अस्थिर। जैसे, चित्त डाँवाडोल होना।

डाँवो†—क्रि० वि० [प्रा० डाव, गुज० डाबो] बाई ओर। बाईं तरफ। उ०—डाँवो साँड़ तड़ूकतो आई।—बी० रासो, पृ० ६०।

डाँशपाहिड़—संज्ञा पुं० [देश०] संगीत में रुद्रताल के ग्यारह भेदों में से एक जिसमें पाँच आघात के पश्चात् एक शून्य (खाली) होता है।

डाँस—संज्ञा पुं० [सं० दंश] १. बड़ा मच्छड़। दंश। २. एक प्रकार की मक्खी जो पशुओं को बहुत दुःख देती है। उ०—जरा बछड़े को देखता हूँ···बेचारे को डाँस परेशान कर रहे हैं।—नई०, पृ० ३०। ३. कुकरौंधी।

डाँसरा†—संज्ञा पुं० [देश०] इमली का बीज। चिआँ।

डा¹—संज्ञा पुं० [अनु०] सितार की गत का एक बोल। जैसे—डा डिड़ डा ड़ा डा डा ड़ा।

डा²—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. डाकिनी। २. टोकरी जो ढोकर ले जाई जाय [को०]।

डाइचा†—संज्ञा पुं० [सं० दाय] दे० 'दायजा'। उ०—डाइचो दिद्ध दाहिन दुहम, भुज भुजय कीरति करे।—पृ० रा०, १६,१५।

डाइन—संज्ञा स्त्री० [सं० डाकनी] १. भूतनी। चुड़ैल। राक्षसी। उ०—ओझा डाइन डर से डरपै।—कबीर श०, भा० २, पृ० २८। २. टोनहाई। वह स्त्री जिसकी दृष्टि आदि के प्रभाव से बच्चे मर जाते हैं। ३. कुरूपा और डरावनी स्त्री।

डाइनामाइट—संज्ञा पुं० [सं०] एक विस्फोटक पदार्थ का नाम।

डाइनिंग रूम—संज्ञा पुं० [अं०] भोजन कक्ष। उ०—भाभी ने हम लोगों को डाइनिंग रूम में बुलाया।—जिप्सी, पृ० ४२३।

डाइबोटी—संज्ञा पुं० [अं० डाइबिटीज] बहुमूत्र रोग। मधुमेह।

डाइरेक्टर—संज्ञा पुं० [अं०] १. प्रबंध चलानेवाला। कार्यसंचालक। निर्देशक। निदेशक। मुंतजिम। इंतजाम करनेवाला। २. मशीन में वह पुरजा जिसकी क्रिया से गति उत्पन्न होती है।

डाइरेक्टरी—संज्ञा स्त्री० [अं०] वह पुस्तक जिसमें किसी नगर या देश के मुख्य निवासियों या व्यापारियों आदि की सूची अक्षर क्रम से हो।

डाइवोर्स—संज्ञा पुं० [अं०] तलाक। पति पत्नी का संबंधविच्छेद।

डाई—संज्ञा पुं० [अं०] १. पासा। २. ठप्पा। साँचा। ३. रंग।

डाईप्रेस—संज्ञा पुं० [अं०] ठप्पा उठाने की कल। उभरे हुए अक्षर उठाने की कल जिससे मोनोग्राम आदि छपते हैं।

डाक¹—संज्ञा पुं० [हिं० उडाक या उलाक या डाकना (=फाँदना)] १. सवारी का ऐसा प्रबंध जिसमें एक एक टिकाव पर बराबर जानवर आदि बदले जाते हों। घोड़े गाड़ी आदि का जगह जगह इंतजाम।

मुहा०—डाक बैठाना = शीघ्र यात्रा के लिये स्थान स्थान पर सवारी बदलने की चौकी नियत करना। डाक लगाना = शीघ्र संवाद पहुँचाने या यात्रा करने के लिये मार्ग में स्थान स्थान पर आदमियों या सवारियों का प्रबंध रहना। डाक लगाना = दे० 'डाक बैठाना'।

यौ०—डाक चौकी = मार्ग में वह स्थान जहाँ यात्रा के घोड़े बदले जायँ या एक हरकारा दूसरे हरकारे को चिट्ठियों का थैला दे। उ०—पाछे राजा ने द्वारिका सों मेरता सों डाक चौकी बेठारि दीनी।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० २४६।

२. राज्य की ओर से चिट्ठियों के आने जाने की व्यवस्था। वह सरकारी इंतजाम जिसके मुताबिक खत एक जगह से दूसरी जगह बराबर आते जाते हैं। जैसे, डाक का मुहकमा। उ०—यह चिट्ठी डाक में भेजेंगे, नौकर के हाथ नहीं।

यौ०—डाकखाना। डाकगाड़ी।

३. चिट्ठी पत्री। कागज पत्र आदि जो डाक से आवे। डाक से आनेवाली वस्तु। जैसे,—तुम्हारी डाक रखी है, ले लेना।

डाक²—संज्ञा स्त्री० [अनु०] वमन। उलटी। कै।

क्रि० प्र०—होना।

डाक³—संज्ञा पुं० [अं० डॉक] समुद्र के किनारे जहाज ठहरने का वह स्थान जहाँ मुसाफिर या माल चढ़ाने उतारने के लिये बाँध या चबूतरे आदि बने होते हैं।

डाक⁴—संज्ञा पुं० [बंग० डाकना (= चिल्लाना)] नीलाम की बोली। नीलाम की वस्तु लेनेवालों की पुकार जिसके द्वारा वे दाम लगाते हैं।

डाकखाना—संज्ञा पुं० [हिं० डाक + फ़ा० खाना] वह स्थान या सरकारी दफ्तर जहाँ लोग भिन्न भिन्न स्थानों पर भेजने के लिये चिट्ठी पत्री आदि छोड़ते हैं और जहाँ से आई हुई चिट्ठियाँ लोगों को बाँटी जाती हैं।

डाकगाड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० डाक + गाड़ी] वह रेलगाड़ी जिसपर चिट्ठी पत्री आदि भेजने का सरकार की तरफ से इंतजाम हो। डाक ले जानेवाली रेलगाड़ी जो और गाड़ियों से तेज चलती है।

डाकघर—संज्ञा पुं० [हिं० डाक+घर] दे० 'डाकखाना'।

डाकनवारो—संज्ञा पुं० [हिं० डाकना + वाला (प्रत्य०)] पुकारनेवाला। बुलानेवाला। प्रियतम। उ०—जब डाकनवारो चढ़्यो सिर पै तब, लाज कहा डर के चढ़िबे की।—नट०, पृ० ५४।

डाकना¹—क्रि० अ० [हिं० डाक] कै करना। वमन करना।

डाकना²—क्रि० स० [हिं० उड़ाक, डाक + ना (प्रत्य०)] फाँदना। लाँघना। कूदकर पार करना। उ०—(क) गुन हाथ बीस दस डाकै। तृण हाथि उठै तब ताकै।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० १४१। (ख) सुंदर सूर न गासणा डाकि पड़े रण माँहि। घाव सहै मुख साँमहीं पीठि फिरावै नाँहि।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ७३८।

संयो०क्रि०—जाना।

डाकबँगला—संज्ञा पुं० [हिं० डाक + बँगला] वह बँगला या मकान जो सरकार की ओर से परदेसियों के लिये बना हो।

विशेष—ईस्ट इंडिया कंपनी के समय में इस प्रकार के बँगले स्थान स्थान पर बने थे। पहले जब रेल नहीं थी तब इन्हीं स्थानों पर डाक ली जाती और बदली जाती थी। अतः सवारियों का भी यहीं अड्डा रहता था जिससे मुसाफिरों को ठहरने आदि का सुबीता रहता था।

डाकमहसूल—संज्ञा पुं० [हिं० डाक + अ० महसूल] वह खर्च जो चीज को डाक द्वारा भेजने या मँगाने में लगे। डाकव्यय।

डाकमुंशी—संज्ञा पुं० [हिं० डाक + फ़ा० मुंशी] डाकघर का अफसर। पोस्टमास्टर।

डाकर—संज्ञा पुं० [देश०] तालों की वह मिट्टी जो पानी सूख जाने पर चिटखकर कड़ी हो जाती है।

डाकव्यय—संज्ञा स्त्री० [हिं० डाक+सं० व्यय] डाक का खर्च। डाक महसूल।

डाका—संज्ञा पुं० [हिं० डाकना (= कूदना) या सं० दस्यु अथवा देश०] वह आक्रमण जो धन हरण करने के लिये सहसा किया जाता है। माल असबाब जबरदस्ती छीनने के लिये कई आदमियों का दल बाँधकर धावा। बटमारी।

मुहा०—डाका डालना = लूटने के लिये धावा करना। जबरदस्ती माल छीनने के लिये चढ़ दौड़ना। डाका पड़ना = लूट के लिये आक्रमण होना। जैसे,—उस गाँव पर आज डाका पड़ा। डाका मारना = जबरदस्ती माल लूटना। बलपूर्वक धन हरण करना।

डाकाजनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० डाका + फ़ा० जनी] डाका मारने का काम। बटमारी।

डाकिन—संज्ञा स्त्री० [सं० डाकिनी] दे० 'डाकिनी'।

डाकिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक पिशाची या देवी जो काली के गणों में समझी जाती है। २. डाइन। चुड़ैल।

डाकिया—संज्ञा पुं० [हिं० डाक + इया (प्रत्य०)] डाक से आई चिट्ठियाँ आदि लोगों के पास पहुँचानेवाला कर्मचारी।

डाकी¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० डाक] वमन। कै।

डाकी²—संज्ञा पुं० १. बहुत खानेवाला। पेटू। २. डाकू। उ०—सुंदर तृष्णा डाकनी डाकी लोभ प्रचंड। दोऊ काहू भाँति जब, कंपि उठै ब्रह्मांड।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ७१४।

डाकी³—वि० सबल। प्रचंड (डिं०)।

डाकू—संज्ञा पुं० [हिं० डाका + ऊ (प्रत्य०), या सं० दस्यु] १. डाका डालनेवाला। जबरदस्ती लोगों का माल लूटनेवाला। लुटेरा। बटमार। २. अधिक खानेवाला। पेटू।

डाकेट—संज्ञा पुं० [अं०] किसी बड़ी चिट्ठी या आज्ञापत्र आदि का सारांश। चिट्ठी का खुलासा।

डाकोर—संज्ञा पुं० [सं० ठक्कुर, हिं० ठाकुर] ठाकुर। विष्णु भगवान् (गुजरात)।

डाक्टर—संज्ञा पुं० [अं०] १. आचार्य। अध्यापक। विद्वान्। २. वैद्य। चिकित्सक। हकीम।

डाक्टरी—संज्ञा स्त्री० [अं० डाक्टर + ई (प्रत्य०)] १. चिकित्साशास्त्र । २. योरप का चिकित्साशास्त्र । पाश्चात्य आयुर्वेद । ३. डाक्टर का पेशा या काम । ४. वह परीक्षा जिसे पास करने पर आदमी डाक्टर होता है ।

डाक्टर—संज्ञा पुं० [अं० डाक्टर] दे० 'डाक्टर' ।

डाखा†—संज्ञा पुं० [हिं० ढाख] ढाक । पलाश । उ०—तरवर झरहिं झरहिं बन ढाखा । भई उपत फूल कर साखा ।—जायसी (शब्द०) ।

डाखिपी(पु)†—संज्ञा पुं० [?] भूखा सिंह (डिं०) ।

डागरि—संज्ञा स्त्री० [हिं० डगर] दे० 'डगर' ।

डागल†—संज्ञा पुं० [देशी डुगर] शैल । पर्वत । उ०—जन दरिया इस झूठ की, डागल ऊपर दौड़ ।—दरिया० बानी, पृ० ३१

डागा(पु)—संज्ञा पुं० [सं० दण्डक] नगाड़ा बजाने का डंडा । चोब ।

डागुर—संज्ञा पुं० [देश०] जाटों की एक जाति । उ०—डागुर पच्छी- वरे धरि मरोर । बहु जट्ठ ठट्ठ बट्टे सजोर ।—सूदन (शब्द०) ।

डागुल†—संज्ञा पुं० [देशी डुगर, हिं० डागल] शैल । पर्वत । उ०—काहे को फिरत नर भटकत ठौर ठौर । डागुल की दौर देखी देख सब आनिए ।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ४७६ ।

डाच†—संज्ञा पुं० [सं० दंष्ट्र, प्रा० डड्ड, या देश०] मुख । उ०—(क) लोह घणी ऊथल छरा, केहर फाड़ै डाच ।—बाँकी ग्रं०, भा० १, पृ० ११ । (ख) खलकाया रत खात भरे, डाचा पल भक्खे ।—रघु० रू०, पृ० ४० ।

डाट¹—संज्ञा स्त्री० [सं० दान्ति] १. वह वस्तु जो किसी बोझ को ठहराए रखने या किसी वस्तु को खड़ी रखने के लिये लगाई जाती है । टेक । चाँड़ ।

क्रि० प्र०—लगाना ।

२. वह कील या खूँटा जिसे ठोंककर कोई छेद बंद किया जाय । छेद रोकने या बंद करने की वस्तु ।

क्रि० प्र०—लगाना ।

३. बोतल, शीशी आदि का मुँह बंद करने की वस्तु । ठेंठी । काग । गट्टा ।

क्रि० प्र०—कसना ।—लगाना ।

४. मेहराब को रोके रखने के लिये ईंटों आदि की भरती । लदाव की रोक । लदाव का ढोला ।

डाट²—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'डाँट' ।

डाट³—संज्ञा पुं० [अं०] नुकता । बिंदु । उ०—हम कसबियों पर डाट लगाकर ।—प्रेमघन, भा० २, पृ० ४५५ ।

डाटना—क्रि० स० [हिं० डाट] १. किसी वस्तु को किसी वस्तु पर रखकर जोर से ढकेलना । एक वस्तु को दूसरी वस्तु पर कसकर दबाना । भिड़ाकर ठेलना । जैसे,—(क) इसे इस डंडे से डाटो तब पीछे खिसकेगा । (ख) इस डंडे को डाटे रहो तब पत्थर इधर न लुढ़केगा ।

संयो० क्रि०—देना ।

२. किसी खंभे, डंडे आदि को, किसी बोझ या भारी वस्तु को ठहराए रखने के लिये उससे भिड़ाकर लगाना । टेकना । चाँड़ लगाना । ३. छेद या मुँह बंद करना । मुँह कसना । मुँह बंद करना । ठेंठी लगाना । ४. कसकर भरना । ठसकर भरना । कसकर घुसेड़ना । उ०—ज्ञान गोली वहाँ खूब डाटी ।—कबीर श०, भा० १, पृ० ६८ । ५. खूब पेट भर खाना । कस कर खाना । उ०—अगनित तरु फल सुगंध मधुर मिष्ट खाटे । मनसा करि प्रभुहि अर्पि भोजन को डाटे ।—सूर (शब्द०) । ६. ठाट से कपड़ा, गहना आदि पहनना । जैसे, कोट डाटना, अँगरखा डाटना । ७. भिड़ाना । डाटना । मिलाना । उ०—रंच न साध सुधै सुख की बिन राधिके आधिक लोचन डाटे ।—केशव (शब्द०) ।

डाठी(पु)†—संज्ञा स्त्री० [देश०] दुर्वासना । बुरी आदत । उ०— अगुआ भयो करम की डाठी । जस कोइ गहे अंध की लाठी । —चित्रा०, पृ० २७ ।

डाड़ना¹—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'डाढ़ना,' 'धाड़ना' ।

डाड़ना²—क्रि० स० [हिं० डाँड़ना] डाँड़ना' ।

डाढ़—संज्ञा स्त्री० [सं० द्रंष्ट्रा, प्रा० डड्ढ] १. चबाने के चौड़े दाँत । चौभड़ । दाढ़ । उ०—हम वो दो रुपए नहीं बदते । मिठाई खाए तो डाढ़ तक गर्म न हो । इतने मे होता ही क्या है !— फिसाना०, भा० ३, पृ० २७४ । २. वट आदि वृक्षों की शाखाओं से नीचे की ओर लटकी हुई जटाएँ । बरोह ।

डाढ़ना(पु)†—क्रि० स० [सं० दग्ध, प्रा० डट्ठ + हिं० ना (प्रत्य०)] जलाना । भस्म करना । उ०—तुलसिदास जगदघ जवास ज्यों अनघ आगि लागे डाढ़न ।—तुलसी (शब्द०) ।

डाढ़ा—संज्ञा स्त्री० [सं० दग्ध, प्रा० डड्ढ] १. दावानल । बन की आग । २. अग्नि । आग । उ०—रामकृपा कपि दल बल बाढ़ा । जिमि तृन पाइ लागि अति डाढ़ा ।—तुलसी (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—लगना ।

३. ताप । दाह । जलन ।

क्रि० प्र०—फूँकना ।

डाढार(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० डाढ] फण । फन उ०—सेस सीस लखि भार दिढय डाढार करांकव ।—रसर०, पृ० १०४ ।

डाढ़ी(पु)¹—वि० [सं० दग्ध] दग्ध । पीड़ित । उ०—सखी संग की निरखति यह छबि भई व्याकुल मन्मथ को डाढ़ी ।— सूर०, १० । ७३६ ।

डाढ़ी²—संज्ञा स्त्री० [प्रा० डड्ढ, हिं० डाढ़ + ई (प्रत्य०)] १. चेहरे पर ओठ के नीचे का गोल उभरा हुआ भाग । ठोढ़ी । ठुड्ढी । चिबुक । २. ठुड्ढी और कनपटी पर के बाल । चिबुक और गंडस्थल पर के लोम । दाढ़ी । उ०—दाढ़ी के रखैयन की डाढ़ी सी रहति छाती बाढ़ी मरजाद जस हद्द हिंदुवान की ।—भूषण (शब्द०) ।

मुहा०—डाढ़ी छोड़ना = डाढ़ी न मुँड़वाना । डाढ़ी बढ़ाना । डाढ़ी का एक एक बाल करना = डाढ़ी उखाड़ लेना । अपमानित करना । दुर्दशा करना । डाढ़ी को कलप लगाना = बूढ़े आदमी को कलंक लगाना । श्रेष्ठ और वृद्ध को दोष लगाना । पेट में डाढ़ी होना = छोटी ही अवस्था में बड़ों की सी जानकारी प्रकट करना या बातें करना । पेशाब से डाढ़ी मुड़वाना = अत्यंत

अपमान करना। अप्रतिष्ठा करना। दुर्गति करना। डाढ़ी फटकारना = (१) हाथ से डाढ़ी के बालों को झटकारना। (२) संतोष और उत्साह प्रकट करना। डाढ़ी रखना = डाढ़ी के बाल न मुँड़वाना। डाढ़ी बढ़ने देना।

डाढ़ीजार†—संज्ञा पुं० [हिं०] दाढ़ीजार। उ०—ग्रमिरती देवी ने पूछा—कौन है डाढ़ीजार, इतनी रात को जगावत है?—मान०, भा०५, पृ० २३।

डाब—संज्ञा स्त्री० [सं० दर्भ] १. डाभ नाम की घास। २. कच्चा नारियल। ३. परतला।

डाबक—वि० [अनु०] दे० 'डामक'।

डाबर¹—संज्ञा पुं० [सं० दभ्र (= समुद्र या झील)] १. नीची जमीन। गहरी भूमि जहाँ पानी ठहरा रहे। २. गड्ढा। पोखरी। तलैया। गड्ढा जिसमें बरसाती पानी जमा रहता है। उ०—(क) सुरसर सुभग बनज बनचारी। डाबर जोग कि हंसकुमारी।—तुलसी (शब्द०)। (ख) घो मैं बरनि कहौं विधि केहीं। डाबर कमठ की मंदर लेहीं।—तुलसी (शब्द०)। ३. हाथ धोने का पात्र। चिलमची। ४. मैला पानी।

डाबर²—वि० मटमैला। गदला। कीचड़ मिला। उ०—भूमि परत भा डाबर पानी।—तुलसी (शब्द०)।

डाबा—संज्ञा पुं० [हिं० डब्बा] दे० 'डब्बा'। उ०—संग सहित धूमन के डाबा। ग्रमल ग्ररघ भाजन छबि छावा।—पद्माकर (शब्द०)।

डाबी—संज्ञा स्त्री० [सं० दर्भ] कटी हुई घास या फसल का पूला।

डाभ—संज्ञा पुं० [सं० दर्भ] १. कुश की जाति की एक घास जो प्राय. रेह मिली हुई ऊसर जमीन में अधिक होती है। एक प्रकार का कुश। २. कुश। उ०—ग्रलक डाभ, तिल पाल यों अँसुवन को परवाह। वीदहि देत तिलांजली, नैना तुम बिनु नाह।—मुबारक (शब्द०)। ३. ग्राम का मौर। ग्राम की मंजरी। उ०—जउ लहि ग्रामहि डाभ न होई। तउ लहि सुगंध बसाय न सोई।—जायसी (शब्द०)। ४. कच्चा नारियल।

डाभक—वि० [अनु० डभक डभक] कुएँ से तुरंत का निकला हुआ। ताजा (पानी)। जैसे, डाभक पानी।

डाभर(प्र)†—संज्ञा पुं० [सं० दभ्र] दे० 'डाबर'।

डामचा—संज्ञा पुं० [देश०] खेत में खड़ा किया हुआ वह मचान जिसपर से खेत की रखवाली करते हैं। मैड़ा। माचा।

डामर—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिवकथित माना जानेवाला एक तंत्र जिसके छह भेद किए गए हैं—योग डामर, शिव डामर, दुर्गा डामर, सारस्वत डामर, ब्रह्म डामर और गंधर्व डामर। २. हलचल। धूम। ३. ग्राडंबर। ठाटबाट। ४. चमत्कार। ५. दुर्ग के शुभाशुभ जानने के लिये बनाए जानेवाले चक्रों में से एक। ६. क्षेत्रपाल। ४६ भैरवों में से एक। ७. एक मिश्रित या संकर जाति।

डामर²—संज्ञा पुं० [देश०] १. साल वृक्ष का गोंद। राल। २. एक प्रकार का गोंद या कहरुग्रा जो दक्षिण में पश्चिमी घाट के पहाड़ों पर होनेवाले एक पेड़ से निकलता है और सफेद डामर कहलाता है। दे० 'कहरुग्रा'। ३. कहरुग्रा की तरह का एक प्रकार का लसीला राल या गोंद जो छोटी मधुमक्खियों के छत्ते से निकलता है। ४. वह छोटी मधुमक्खी जो इस प्रकार का राल बनाती है। ५. दे० 'डामल'³।

डामरी†—संज्ञा स्त्री० [सं० डिम्ब] दे० 'डाँवरी'। उ०—उन पामि गह्यो हुतो मेरो जबै सबै गाय उठीं ब्रज डामरियाँ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १८८।

डामल¹—संज्ञा स्त्री० [अ० दायमुल्हब्स] १. जनम कैद। उम्र भर के लिये कैद। २. देशनिकाला का दंड।

विशेष—भारतवर्ष में अँगरेजी सरकार भारी भारी अपराधियों को अंडमन टापू में भेजा करती थी। उसी को डामल कहते थे।

डामल²—संज्ञा पुं० [अं० डायमंड] दे० 'डायमंड कट'।

यौ०—डामल कट। डामल काट।

क्रि० प्र०—छीलना।

डामल†³—संज्ञा पुं० [देश०] अलकतरा। तारकोल। उ०—इस हंडे के पीछे इंच भर मोटा डामल का पलस्तर था जो भाल या सील को रोकता था।—हिंदु० सभ्यता, पृ० १७।

डामाडोल—वि० [हिं०] दे० 'डावाँडोल'।

डामिल(प्र)‡—संज्ञा पुं० [हिं० डामल] दे० 'डामल'। उ०—कितने गुंडे डामिल गएन, केतने पाएन फँसिया।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३४३।

डायँ डायँ—क्रि० वि० [अनु०] व्यर्थ इधर से उधर (घूमना)। व्यर्थ धूल छानते हुए। जैसे,—वह यों ही दिन भर डायँ डायँ फिरा करता है।

डायट—संज्ञा स्त्री० [अं] १. व्यवस्थापिका सभा। राज्यसभा। जैसे, जापान की इंपीरियल डायट। २ पथ्य। ३. भोजन। खाद्य पदार्थ।

डायन—संज्ञा स्त्री० [सं० डाकिनी, प्रा० डाइणी] १. डाकिनी। पिशाचिनी। चुड़ैल। भूतिन। २. कुरूपा स्त्री।

डायनामो—संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार का छोटा एंजिन जिससे बिजली पैदा की जाती है।

डायरिया—संज्ञा पुं० [अं०] दस्त की बीमारी। अतिसार।

डायल—संज्ञा पुं० [अं०] १. घड़ी के सामने का वह गोल भाग जिसके ऊपर अंक बने होते हैं और सुइयाँ घूमती हैं। घड़ी का चेहरा। २. पहिए का टेढ़ा हो जाना (विशेषत: साइकिल आदि का)। अपनी जगह पर ठीक न बैठना।

डायलाग—संज्ञा पुं० [अं० डायलॉग] संवाद। कथोपकथन। वार्तालाप। उ०—अबकी दफे अपना डायलाग अच्छी तरह याद कर लो।—आकाश०, पृ० १५२।

डायस—संज्ञा पुं० [अं०] वह ऊँचा स्थान या चबूतरा जिसपर किसी सभा के सभापति का आसन रखा जाता है। मंच।

डायमंड कट—संज्ञा पुं० [अं०] गहनों की धातु को इस प्रकार छीलना

जिसमें हीरे की सी चमक पैदा हो जाय। हीरे की सी काट। डायमन काट।

डायार्की—संज्ञा स्त्री॰ [अं॰] वह शासनप्रणाली या सरकार जिसमें शासन अधिकार दो व्यक्तियों के हाथों में हो। द्वैध शासन। दुहरा शासन।

विशेष—भारत में सन् १९१९ ई॰ के गवर्नमेंट आफ इंडिया ऐक्ट के अनुसार प्रादेशिक शासनप्रणाली इसी प्रकार की कर दी गई थी। शासन के सुभीते के लिये प्रदेशों से संबंध रखनेवाले विषय दो भागों में बाँट दिए गए थे। एक रिजर्व्ड या रक्षित विषय जो गवर्नर और उनकी शासन-सभा के अधिकार में था, और दूसरा ट्रांसफर्ड या हस्तांतरित विषय, जो मिनिस्टरों या मंत्रियों के अधिकार में (जो निर्वाचित सदस्यों में से चुने जाते हैं) था। 'रक्षित विषयों' की सुव्यवस्था के लिये गवर्नर और उनकी शासन-सभा भारत सरकार और भारत सचिव द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से पार्लमेंट अथवा ब्रिटिश मतदाताओं के सामने उत्तरदाता थी और हस्तांतरित विषयों के लिये गवर्नर के मंत्री अप्रत्यक्ष रूप से भारतीय मतदाताओं के सामने उत्तरदायी थे। यद्यपि विशेष अवस्थाओं में इनके मत के विरुद्ध कार्य करने का गवर्नर को अधिकार था, परंतु शासनसभा के बहुमत के विरुद्ध गवर्नर आचरण नहीं कर सकता था। शासनसभा के सदस्यों और मंत्रियों में एक अंतर यह भी था कि वे सम्राट् के आज्ञापत्र द्वारा नियुक्त होते थे, परंतु मंत्री को नियुक्त करने और हटाने का अधिकार गवर्नर को ही था। मंत्री का वेतन निर्दिष्ट करने का अधिकार व्यवस्थापिका सभा को था।—भारतीय शासनपद्धति।

डारⓅ[1]—संज्ञा संज्ञा [सं॰ दारु(=लकड़ी)] १. डाल। शाखा। उ॰—(क) रत्नजटित कंकन बाजूबंद नगन मुद्रिका सोहै। डार डार मनु मदन विटप तरु विकच देखि मन मोहै।—सूर (शब्द॰)। (ख) जिन दिन देखे वे कुसुम गई सो बीत बहार। अब अलि रही गुलाब में अपत कँटीली डार।—बिहारी (शब्द॰)। फानूस जलाने के लिये दीवार में लगाने की खूँटी।

डारⓅ[2]—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ डलक] डलिया। चँगेर। डाली। उ॰—चली पाउन सब गोहने फूल डार लेइ हाथ। बिस्सुनाथ कइ पूजा पदुमावति के साथ।—जायसी (शब्द॰)।

डार[3]—संज्ञा स्त्री॰ [पं॰ डार(=झुंड)] समूह। झुंड।

डारनाⓅ—क्रि॰ स॰ [हिं॰ डालना] दे॰ 'डालना'। उ॰—(क) जिन्ने जन्म डारा है तुज कूँ। बिसर गया उसका ध्यान तूं।—दक्खिनी॰, पृ॰ १४। (ख) बूँद डारी धरनि परन अब पूरि डारे चूर करि डारे दुख बिरही तियान के।—ठाकुर॰, पृ॰ ११।

डारा—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ डालना (=फैलना)] कपड़ा सुखाने के लिये बँधी रस्सी या बाँस। अरगनी।

डारियास—संज्ञा पुं॰ [देश॰] बाबून बंदर की एक जाति।

डारी—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ डार] दे॰ 'डार', 'डाल'।

डाल[1]—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ दारु (=लकड़ी), हिं॰ डार] १. पेड़ के धड़ से इधर उधर निकली हुई वह लंबी लकड़ी जिसमें पत्तियाँ और कल्ले होते हैं। शाख। शाखा।

मुहा॰—डाल का टूटा = (१) डाल से पककर गिरा हुआ ताजा (फल)। (२) बढ़िया। अनोखा। चोखा। जैसे,—तुम्हीं एक डाल के टूटे हो जो सब कुछ तुम्हीं को दिया जाय। (३) नया आया हुआ। नवागंतुक। डाल का पका = पेड़ ही में पका हुआ। डालवाला = बंदर। शाखामृग।

२. फानूस जलाने के लिये दीवार में लगी हुई एक प्रकार की खूँटी। ३. तलवार का फल। तलवार के मूठ के ऊपर का मुख्य भाग। ४. एक प्रकार का गहना जो मध्यभारत और मारवाड़ में पहना जाता है।

डाल—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ डलक, हिं॰ डला] १. डलिया। चँगेरी। २. फूल, फल या खाने पीने की वस्तु जो डलिया में सजाकर किसी के यहाँ भेजी जाय। ३. कपड़ा और गहना जो एक डलिया में रखकर विवाह के समय वर की ओर से वधू को दिया जाता है।

डालना—क्रि॰ स॰ [सं॰ तलन (=नीचे रखना)] १. पकड़ी या ठहरी हुई वस्तु को इस प्रकार छोड़ देना कि वह नीचे गिर पड़े। नीचे गिराना। छोड़ना। फेंकना। गेरना। जैसे,—ऐसी चीज क्यों हाथ में लिए हो? उधर डाल दो।

संयो॰ क्रि॰—देना।

मुहा॰—डाल रखना = (१) किसी वस्तु को रख छोड़ना। (२) किसी काम को लेकर उसमें हाथ न लगाना। रोक रखना। देर लगाना। झुलाना।

२. एक वस्तु को दूसरी वस्तु पर कुछ दूर से गिराना। छोड़ना। जैसे, हाथ पर पानी डालना, थूक पर राख डालना।

संयो॰ क्रि॰—देना।

३. किसी वस्तु को दूसरी वस्तु में रखने, ठहराने या मिलाने के लिये उसमें गिराना। किसी वस्तु को दूसरी वस्तु में इस प्रकार छोड़ना जिसमें वह उसमें ठहर या मिल जाय। स्थित या मिश्रित करना। रखना या मिलाना। जैसे, घड़े में पानी डालना, दूध में चीनी डालना, दाल में घी डालना, चूर्ण में नमक डालना।

संयो॰ क्रि॰—देना।

४. घुसाना। घुसेड़ना। प्रविष्ट करना। भीतर कर देना या ले जाना। जैसे, पानी मे हाथ डालना, कुएँ में डोल डालना, बिल या मुँह में हाथ डालना।

संयो॰ क्रि॰—देना।

५. परित्याग करना। छोड़ना। खोज खबर न लेना। भुला देना। उ॰—केहि अघ औगुन आपनो करि डारि दिया रे।—तुलसी (शब्द॰)। ६. अंकित करना। लगाना। चिह्नित करना। जैसे, लकीर डालना, चिह्न डालना।

संयो॰ क्रि॰—देना।

७. एक वस्तु के ऊपर दूसरी वस्तु इस प्रकार फैलाना जिसमें

वह कुछ ढक जाय। फैलाकर रखना। जैसे, मुँह पर चादर डालना, मेज पर कपड़ा डालना, सूखने के लिये गीली धोती डालना।

संयो० क्रि०—देना।

९. शरीर पर धारण करना। पहनना। जैसे, अँगरखा डालना।

संयो० क्रि०—लेना।

१०. किसी के मत्थे छोड़ना। जिम्मे करना। मार देना। जैसे,—(क) तुम सब काम मेरे ही ऊपर डाल देते हो। (ख) उसका सारा खर्च मेरे ऊपर डाल दिया गया है।

संयो०— क्रि०—देना।

११. गर्भपात करना। पेट गिराना। (चौपायों के लिये)।

संयो० क्रि०—देना।

१२. (किसी स्त्री को) रख लेना। पत्नी की तरह रखना।

संयो० क्रि०—लेना।

१३. लगाना। उपयोग करना। जैसे, किसी व्यापार में रुपया डालना। १४. किसी के अंतर्गत करना। किसी विषय या वस्तु के भीतर लेना। जैसे,—यह रुपया ब्याह के खर्च में डाल दो। १५. अव्यवस्था आदि उपस्थित करना। बुरी बात घटित करना। मचाना। जैसे,—गड़बड़ डालना, आपत्ति डालना, विपत्ति डालना। १६. बिछाना। जैसे, खटिया डालना, पलंग डालना, चारा डालना।

विशेष—इस क्रिया का प्रयोग संयो० क्रि० के रूप में भी, समाप्ति की ध्वनि व्यंजित करने के लिये, सकर्मक क्रियाओं के साथ होता है, जैसे, मार डालना, कर डालना, काट डालना, जला डालना, दे डालना, आदि।

डालफिन—संज्ञा स्त्री० [अं०] ह्वेल मछली का एक भेद।

डालर—संज्ञा पुं० [अं०] अमेरिका का सिक्का। यह १०० सेंट या टके का होता है। रुपयों में इसका मूल्य विनिमय दर के आधार पर सदा बदलता रहता है। कभी एक डालर तीन रुपए दो आने के बराबर था। संप्रति उसकी दर भारतीय रुपयों में लगभग ४.८७ न. पैसे है।

डाला†—संज्ञा पुं० [सं० डलक] दे० 'डला', 'डाल'।

डालिम—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दाड़िम' [को०]।

डाली[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० डाला] १. डलिया। चंगेरी। २. फल फूल, मेवे तथा खाने पीने की वस्तुएँ जो डलिया में सजाकर किसी के पास सम्मानार्थ भेजी जाती हैं। जैसे,—बड़े दिन में साहब लोगों के पास बहुत सी डालियाँ आती हैं।

क्रि० प्र०—भेजना।

मुहा०—डाली लगाना = डलिया में मेवे आदि सजाकर भेजना।

डाली[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० डाल] दे० 'डाल[1]'

डाव(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'दाँव'।—उ०—पाका काचा ह्वै गया, जीत्या हारै डाव। अंत काल गाफिल भया, दादू फिसले पाव।—दादू०, पृ० २१२।

डावड़ा[1]—संज्ञा पुं० [देश०] पिठवन।

डावड़ा[2]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'डावरा'।

डावड़ी(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'डावरी'।

डावरा—संज्ञा पुं० [सं० डिम्भ ?] [स्त्री० डावरी] लड़का। बेटा। उ०—दशरथ को डावरो साँवरो ब्याहे जनककुमारी।—रघुराज (शब्द०)।

डावरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० डावरा] लड़की। बेटी। कन्या। उ०—(क) ठाढ़े भए रघुवंशमणि तिमि जनक भूपति डावरी।—रघुराज (शब्द०)। (ख) जिन पानि गह्यो हुतो मेरी तबै सब गाय उठीं ब्रज डावरियाँ।—सुंदरीसर्वस्व (शब्द०)।

डास—संज्ञा पुं० [देश०] चमारों का एक औजार जिससे चमड़े के भीतर का रुख साफ करते हैं।

डासन—संज्ञा पुं० [सं० दर्भासन, हिं० डाभ + आसन] बिछाने की चटाई, वस्त्र आदि। बिछावन। बिछौना। बिस्तर। उ०—ओढ़इ ओढ़व लोभइ डासन। सिस्नोदर पर जमपुर त्रास न।—तुलसी (शब्द०)।

डासना[1]—क्रि० स० [हिं० डासन] बिछाना। डालना। फैलाना। उ०—(क) निज कर डासि नागरिपु छाला। बैठे सहजहि संभु कृपाला।—तुलसी (शब्द०)। (ख) डासत ही गइ बीति निसा सब कबहुँ न नाथ नींद भरि सोयो।—तुलसी (शब्द०)

डासना(पु)‡—क्रि० स० [हिं० डसना] डसना। काटना। उ०—डासी वा बिसासी विषमेषु विषधर उठै आठहू पहर विषै विष की लहर सी।—देव (शब्द०)।

डासनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० डासन] १. खाट। पलंग। चारपाई। २. बिछौना।

डाह—संज्ञा स्त्री० [सं० दाह] १. जलन। ईर्ष्या। द्वेष। द्रोह। उ०—इनके मन में औरों की डाह बड़ी प्रबल थी।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० २१२।

क्रि० प्र०—करना। रखना।

२. ताप। जलन। उ०—पूहकर डाह वियोग, प्रान विरह बस होहि अब। का समझावहिं लोग, अग्नि न थिर पारो रहै।—रसरतन, पृ० ९४।

डाहना—क्रि० स० [सं० दाहन] जलाना। सताना। दिक करना। तंग करना। उ०—काहें को मोहि डाहन आए रैनि देत सुख वाको ?—सूर (शब्द०)।

डाहल, डाहाल—संज्ञा पुं० [सं०] एक देश। त्रिपुर देस [को०]।

डाही—वि० [हिं० डाह] डाह करनेवाला। ईर्ष्या करनेवाला। ईर्ष्यालु। जैसे,—वह बड़ा डाही है,

डाहुक—संज्ञा पुं० [सं० दाहुक ? या देश०] १. एक पक्षी जो टिटिहरी के आकार का होता है और जलाशयों के निकट रहता है। २. चातक। पपीहा।

डिंगर[1]—संज्ञा पुं०[सं० डिङ्गर] १. मोटा आदमी। मोटाता। २. दुष्ट।

बदमाश। ठग। ३. दास। गुलाम। ४. नीच मनुष्य। निम्न कोटि का व्यक्ति। ५. फेंकना। क्षेपण (को०)। ६. तिरस्कार (को०)।

डिंगर[2]—संज्ञा पुं० [देश०] वह काठ जो नटखट चौपायों के गले में बाँध दिया जाता है। ठिगुरा। उ०—कबिरा माला काठ की पहिरी मुगद डुलाय। सुमिरन की सुध है नहीं ज्यों डिंगर बाँधी गाय।—कबीर (शब्द०)।

डिंगल[1]—वि० [सं० डिङ्गर] नीच। दूषित।

डिंगल[2]—संज्ञा स्त्री० [देश०] राजपूताने की वह भाषा जिसमें भाट और चारण काव्य और वंशावली आदि लिखते चले आते हैं।

डिंगसा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का चीड़।

विशेष—इसके पेड़ खासिया पर्वत तथा चटगाँव और बर्मा की पहाड़ियों में बहुत होते हैं। इससे बहुत बढ़िया गोंद या राल निकलती है। तारपीन का तेल भी इससे निकलता है।

डिंडस—संज्ञा पुं० [सं० टिण्डिश] डिंड या टिंडसी नाम की तरकारी।

डिंडिक—संज्ञा पुं० [सं० डिण्डिक] हुँसोड़ भिखारी (को०)।

डिंडिभ—संज्ञा पुं० [सं० डिण्डिभ] जलसर्प। डेड़हा (को०)।

डिंडिम—संज्ञा पुं० [सं० डिण्डिम] १. प्राचीन काल का एक बाजा जिसपर चमड़ा मढ़ा होता था। डिमडिमी। डुगडुगिया। २. करौंदा। कृष्णपाक फल।

यौ०—डिंडिमघोष। डिंडिमनाद।

डिंडिमी—संज्ञा स्त्री० [हिं० डिमडिमी] दे० 'डिंडिम'।

डिंडिर—संज्ञा पुं० [सं० डिण्डिर] १. समुद्रफेन। २. पानी का झाग।

डिंडिर मोदक—संज्ञा पुं० [सं० डिण्डिरमोदक] १. गृंजन। गाजर। २. लहसुन।

डिंडिश—संज्ञा पुं० [सं० डिण्डिश] टिंड या टिंडसी नाम की तरकारी। डेंड़सी।

डिंडी†—संज्ञा स्त्री० [देश०] मछली फँसाने का चारा। (विशेषतः) छोटी मछली।

डिंडीर—संज्ञा पुं० [सं० डिण्डीर] दे० 'डिंडिर'।

डिंब—संज्ञा पुं० [सं० डिम्ब] १. हलचल। पुकार। वावैला। २. भयध्वनि। ३. दंगा। लड़ाई। ४. अंडा। ५. फेफड़ा। फुप्फुस। ६. प्लीहा। तिलही। ७. कीड़े का छोटा बच्चा। ८. प्रारंभिक अवस्था का भ्रूण। ९. गर्भाशय (को०)। १०. कंदुक। गेंद (को०)। ११. भय। डर। भीति (को०)। १२. शरीर (को०)। १३ सद्योजात शिशु या प्राणी (को०)। १४. मूर्ख (को०)।

डिंबयुद्ध—संज्ञा पुं० [सं० डिम्बयुद्ध] दे० 'डिंबाहव' (को०)।

डिंबाशय—संज्ञा पुं० [सं० डिम्ब + आशय] गर्भाशय।

डिंबाहव—संज्ञा पुं० [सं० डिम्ब + आहव] सामान्य युद्ध। ऐसी लड़ाई जिसमें राजा आदि सम्मिलित न हों।

डिंबिका—संज्ञा स्त्री० [सं० डिम्बिका] १. मदमाती स्त्री। २. सोनापाठा। श्योनाक। ३. फेन। बुलबुला। बुल्ला (को०)।

डिंभ[1]—संज्ञा पुं० [सं० डिम्भ] १. बच्चा। छोटा बच्चा। उ०—अंब तू, हौं डिंभ, सो न बूझिए बिलंब अब अवलंब नाहीं आन राखत हौं तेरिये।—तुलसी (शब्द०)। २. पशु का छोटा बच्चा (को०)। ३. मूर्ख या जड़ मनुष्य। ४. एक प्रकार का उदर रोग जो धीरे धीरे बढ़ता हुआ अंत में बहुत भयानक हो जाता है।

डिंभ†[2]—संज्ञा पुं० [सं० दम्भ] १. आडंबर। पाखंड। २. अभिमान। घमंड। उ०—करै नहिं कछु डिंभ कबहूँ, हारि मैं तै खोइ।—जग० बानी, पृ० ३५।

डिंभक—संज्ञा पुं० [सं० डिम्भक] १. [स्त्री० डिंभिका] बच्चा। छोटा बच्चा। २. पशु का छोटा बच्चा (को०)।

डिंभचक्र—संज्ञा पुं० [सं० डिम्भचक्र] स्वरोदय में वर्णित मनुष्यों के शुभाशुभ फल का सूचक एक तांत्रिक चक्र (को०)।

डिंभा—संज्ञा स्त्री० [सं० डिम्भा] छोटी बालिका। नन्हीं बच्ची (को०)।

डिंभिया—वि० [सं० दंभ, हिं० डिंभ] आडंबर रखनेवाला। पाखंडी। २. अभिमानी। घमंडी।

डिँड़सी—संज्ञा स्त्री० [सं० टिण्डिश] टिंड या टिंडसी नाम की तरकारी।

डिकामाली—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक पेड़ जो मध्य भारत तथा दक्षिण में होता है।

विशेष—इसमें एक प्रकार की गोंद या राल निकलती है जो हींग की तरह मृगी रोग में दी जाती है। इसके लगाने से घाव जल्दी सूखता है और उसपर मक्खियाँ नहीं बैठतीं।

डिक्करी—संज्ञा स्त्री० [सं०] युवा औरत। युवती (को०)।

डिक्की—संज्ञा स्त्री० [हिं० धक्का] १. सींगों का धक्का। (जैसे मेढे देते हैं)। २. झपट। वार। आक्रमण।

डिक्टेटर—संज्ञा पुं० [अं०] १. वह मनुष्य जिसे कोई काम करने का पूरा अधिकार प्राप्त हो। प्रधान नेता या पथप्रदर्शक। शास्ता। २. वह मनुष्य जिसे शासन की अबाधित सत्ता प्राप्त हो। निरंकुश शासक। उ०—देवता रूप वे डिक्टेटर, लोहू से जिनके हाथ सने।—मानव०, पृ० ५६।

विशेष—डिक्टेटर दो प्रकार के होते हैं—(१) राष्ट्रपक्ष का और (२)राज्य या शासनपक्ष का। जब देश में संकट उपस्थित होता है तब देश या राष्ट्र उस मनुष्य को, जिसपर उसका पूरा विश्वास होता है, पूर्ण अधिकार दे देता है कि वह जो चाहे सो करे। यह व्यवस्था संकट काल के लिये है। जैसे, सं० १९८०–८१ में महात्मा गांधी राष्ट्र के डिक्टेटर या शास्ता थे। पर राज्य या शासनपक्ष का डिक्टेटर वही होता है जो बड़ा जबरदस्त होता है। जिसका सब लोगों पर बड़ा आतंक छाया रहता है। जैसे, किसी समय इटली का डिक्टेटर मुसोलिनी था।

यौ०—डिक्टेटरशिप = निरंकुश शासन। अधिनायकवाद।

डिक्टेशन—संज्ञा पुं० [अं०] वह वाक्य जो लिखने के लिये बोला जाय। इमला।

डिक्री—संज्ञा स्त्री० [अं०] १. आज्ञा। हुक्म। फरमान। २. न्यायालय की वह आज्ञा जिसके द्वारा लड़नेवाले पक्षों में से किसी पक्ष

को किसी संपत्ति का अधिकार दिया जाय। उ०—अदालत डिक्री न दे।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३७३। वि० दे० 'डिगरी'।

डिक्लरेशन—संज्ञा पुं० [अं०] वह लिखा हुआ कागज जिसमें किसी मजिस्ट्रेट के सामने कोई प्रेस खोलने, रखने या कोई समाचार-पत्र या पत्रिका छापने और निकालने की जिम्मेवारी ली या घोषित की जाती है। जैसे,—(क) उन्होंने अपने नाम से प्रेस खोलने का डिक्लरेशन दिया है। (ख) वे अप्रस्तुत के मुद्रक और प्रकाशक होने का डिक्लरेशन देनेवाले हैं।

डिक्शनरी—संज्ञा स्त्री० [अं०] शब्दकोश। अभिधान।

डिगंबरⓅ—वि० [सं० दिगम्बर] वस्त्ररहित। नग्न। दिगंबर। उ०—अंबर छाँड़ डिगंबर होई। उहि अगमन मग निवहै सोई।—रसरतन, पृ० २४६।

डिगना—क्रि० अ० [सं० टिक (=हिलना। डोलना)] १. हिलना। टलना। खिसकना। हटना। सरकना। जगह छोड़ना। जैसे,—उस भारी पत्थर को कई आदमी उठाने गए पर वह जरा भी न डिगा। उ०—असवार डिगत बाहन फिरैं, भिरैं भूत भैरव विकट।—हम्मीर०, पृ० ५८।

संयो० क्रि०—जाना।

२. किसी बात पर स्थिर न रहना। प्रतिज्ञा छोड़ना। संकल्प या सिद्धांत पर दृढ़ न रहना। बात पर जमा न रहना। विचलित होना।

संयो० क्रि०—जाना।

डिगमिगाना[१]—क्रि० अ० [हिं० डगमगाना] दे० 'डगमगाना'। उ०—रणधीर के आने से ये सभा ऐसी डिगमिगाने लगी थी जैसे हाथी के चढ़ने से नाव डिगमिगाती है।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० ८६। (ख) डिगमिगात पग चलन दुखारो। यही लकुट अब देति सहारो।—शकुंतला, पृ० ८२।

डिगमिगाना[२]—क्रि० स० १. हिलाना। डिगाना। २. विचलित करना।

डिगरी—संज्ञा स्त्री० [अं० डिग्री] १. विश्वविद्यालय की परीक्षा में उत्तीर्ण होने की पदवी।

क्रि० प्र०—मिलना।—लेना।

२. अंश। कला। समकोण का $\frac{1}{90}$ भाग।

डिगरी[२]—संज्ञा स्त्री० [अं० डिक्री] अदालत का वह फैसला जिसके जरिए से किसी फरीक को कोई हक मिलता है। न्यायालय की वह आज्ञा जिसके द्वारा लड़नेवाले पक्षों में से किसी को कोई स्वत्व या अधिकार प्राप्त होता है। जैसे,—उस मुकदमे में उसकी डिगरी हो गई।

यौ०—डिगरीदार।

मुहा०—डिगरी जारी कराना=फैसले के मुताबिक किसी जायदाद पर कब्जा वगैरह करने की कार्रवाई कराना। न्यायालय के निर्णय के अनुसार किसी संपत्ति पर अधिकार करने का उपाय करना। डिगरी देना=अभियोग में किसी के पक्ष में निर्णय करना। फैसले के जरिए से हक कायम करना। डिगरी पाना=अपने पक्ष में न्यायालय की आज्ञा प्राप्त करना। जर डिगरी=वह रुपया जो अदालत एक फरीक से दूसरे फरीक को दिलावे।

डिगरीदार—संज्ञा पुं० [अं० डिक्री+फ़ा० दार] वह जिसके पक्ष में डिगरी हुई हो।

डिगलाना[१]Ⓟ—क्रि० अ० [हिं० डग, डिगना] डगमगाना। हिलना डोलना। लड़खड़ाना।

डिगलाना[२]—क्रि० स० [हिं० डिगना] डिगाना। चालित करना।

डिगवा—संज्ञा पुं० [देश०] एक चिड़िया का नाम।

डिगाना—क्रि० स० [हिं० डिगना] १. हटाना। खसकाना। जगह से टालना। सरकाना। हिलाना।

संयो० क्रि०—देना।

२. बात पर जमा न रहना। किसी संकल्प या सिद्धांत पर स्थिर न रखना। विचलित करना। उ०—सुर नर मुनि वेय डिगाय करे यह सबकी हाँसी।—पलटू०, पृ० २५।

संयो० क्रि०—देना।

डिगुलानाⓅ—क्रि० अ० [हिं० डग] दे० 'डिगलाना[१]'। उ०—टिगत पानि डिगुलात गिरि लखि सब ब्रज बेहाल। कंपि किसोरी दरसि कै खरै लजाने लाल।—बिहारी (शब्द०)।

डिग्गी[१]—संज्ञा स्त्री० [सं० दीर्घिका, बँग० दीघी (=बावली या तालाब)] पोखरा। बावली। जैसे, लालडिग्गी।

डिग्गी[२]†—संज्ञा स्त्री० [देश०] हिम्मत। साहस। जिगरा।

डिजाइन—संज्ञा स्त्री० [अं०] १. तर्ज। बनावट। खाका।

डिटेक्टिव—संज्ञा पुं० [अं०] जासूस। मुखबिर। गुप्तचर। भेदिया।

यौ०—डिटेक्टिव पुलिस=वह पुलिस जो छिपकर मामलों का पता लगावे। खुफिया पुलिस।

डिठार†—वि० [हिं० डीठ+आर (प्रत्य०)] [वि० डिठारी] दृष्टिवाला। देखनेवाला। आँखवाला। जिसको आँख से सूझे।

डिठि†—संज्ञा स्त्री० [सं० दृष्टि] दे० 'दृष्टि'। उ०—अधर सुधा मिठी, दुखे भवरि डिठि, मधुसम मधुरे बानि रे।—विद्यापति, पृ० १०३।

डिठियार, डिठियारा†—वि० [हिं०] दे० 'डिठार'। उ०—(क) तुलसी स्वारथ साधुहो परमारथ तन पीठि। अंध कहे दुख पाइहै डिठियारो केहि डीठि।—तुलसी (शब्द०)। (ख) भटकर सेती अंध डिठियारे राह बतावै।—पलटू०, पृ० ७४।

डिठौँना—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'डिठौना'। उ०—सब बचाती हैं सुतों के गात्र। किंतु देती हैं डिठौना मात्र।—साकेत, पृ० १८०।

डिठोहरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० डीठि+हरना अथवा देश०] एक जंगली पेड़ के फल का बीज जिसे तागे में पिरोकर बच्चों के गले में उन्हें नजर से बचाने के लिये पहनाते हैं।

विशेष—दे० 'नजरबट्टू' या 'नजरबट्टू'।

डिठौना—संज्ञा पुं० [हिं० डीठ] काजल का टीका जिसे लड़कों के मस्तक पर नजर से बचाने को स्त्रियाँ लगा देती हैं। उ०—(क) पहिरायो पुनि बसन रँगीला। दीन्हों भाल डिठौना

मीला।—रघुराज (शब्द०)। (ख) सखि कंजन को परम सलोना माल डिठौना देहीं। मनु पंकज कोना पर बैठो अलि-छौना मधु लेहीं।—रघुराज (शब्द०)।

डिढ†—वि० [सं० दृढ़] दे० 'दृढ़'। उ०—नहिं बाल वृद्ध किसोर तुम्म धुम्म समान पै डिढ लरौ।—पृ० रा०, २।५१०।

डिडिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] मुहाँसा।

डिडकार†, डिडकारी—संज्ञा स्त्री० [अनु०] पशुओं का गुर्राना।

डिडई—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का धान जो अगहन में तैयार होता है।

डिडवा—संज्ञा पुं० [देश०] डिडई नाम का धान जो अगहन में तैयार होता है।

डिडिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रोग जिसमें युवावस्था में ही बाल पकने लगते हैं।

डिडियाना†—क्रि० अ० [अनु०] शोक के आवेग में गाय का रँभाना। उ०—परी धरनि धुकि यों बिललाइ। ज्यों मृतबच्छ गाइ डिडियाइ।—नंद० ग्रं०, पृ० २४२।

डिढ†—वि० [सं० दृढ़, प्रा० डिढ] दृढ़। पक्का। मजबूत। उ०—सुनि दुंदुभि धुंकार धराधर धरधर धुल्लिय। डिढ न रहे डहढार, बाघ बनचर बन झुल्लिय।—सुजान०, पृ० २६।

डिढय(पु)—वि० [सं० दृढ़] दे० 'डिढ'। उ०—सेस सीस लषि भार डिढय डाढार करविकय।—रसरतन, पृ० १०४।

डिढाना(पु)†—क्रि० स० [हिं० डिढ़] १. पक्का करना। मजबूत करना। २. ठानना। निश्चित करना। मन मे दृढ़ विचार करना।

डिढ्या†—संज्ञा स्त्री० [देश०] अत्यंत लालच। लालसा। कामना। तृष्णा। उ०—संग्रह करने की लालसा प्रबल हुई तो चोरी से, चोरी से, छल से, खुशामद से, कमाने की डिढ्या पड़ेगी और खाने खर्चने के नाम से जान निकल जायगी।—श्रीनिवास दास (शब्द०)।

डित्थ—संज्ञा पुं० [सं०] १. काठ का बना हाथी। २. विशेष लक्षणों-वाला पुरुष।

विशेष—साँवले, सुंदर, युवा और सर्वशास्त्रवेत्ता विद्वान् पुरुष को डित्थ कहते हैं।

डिनर—संज्ञा पुं० [अं०] रात का भोजन। उ०—कहो, सुना तुमने भी है कुछ, सेठ हमारे रामचंद्र ने, आज दिया हम सब लोगों को, है करपो में एक डिनर।—मानव, पृ० ६८।

डिपटी—संज्ञा पुं० [अं० डेपुटी] नायब। सहायक। सहकारी। जैसे, डिपटी कलक्टर, डिपटी पोस्टमास्टर, डिपटी इंसपेक्टर।

डिपाजिट—संज्ञा पुं० [अं०] धरोहर। अमानत। तहवील।

डिपार्टमेंट—संज्ञा पुं० [अं०] मुहकमा। सरिश्ता। विभाग। गुदाम। अमानतखाना। जखीरा। भांडार। जैसे, बुकडिपो।

डिप्टी—संज्ञा पुं० [अं० डिपटी] दे० 'डिपटी'। जैसे, डिपटी कंट्रोलर।

डिप्थीरिया—संज्ञा पुं० [अं०] छोटे बच्चों का एक संक्रामक रोग जिसे कंठरोहिणी कहते हैं। उ०—कीर्ति का छोटा भाई अकस्मात् एक विचित्र रोग का शिकार बन गया है। डाक्टरों ने कहा डिप्थीरिया हो गया है। औरतों ने कहा हुब्बा डब्बा।—संन्यासी, पृ० १६०।

डिप्लोमा—संज्ञा पुं० [अं०] विद्यासंबंधिनी योग्यता का प्रमाणपत्र। सनद।

डिप्लोमेसी—संज्ञा स्त्री० [अं०] १. वह चातुरी या कौशल जो कार्यसाधन के लिये, विशेषकर राजनीतिक कार्यसाधन के लिये किया जाय। कूटनीति। २. स्वतंत्र राष्ट्रों मे आपस का व्यवहार संबंध। राजनीतिक संबंध।

डिप्लोमैट—संज्ञा पुं० [अं०] वह जो डिप्लोमेसी या कूटनीति में निपुण हो। कूटनीतिज्ञ।

डिफेंस—संज्ञा पुं० [अं०] आत्मरक्षा। बचाव। सुरक्षा। २. सफाई (पक्ष संबंधी)।

डिफेमेशन—संज्ञा पुं० [अं०] किसी की अप्रतिष्ठा या अपमान करने के लिये गर्हित शब्दों का प्रयोग। ऐसे गंदे शब्दों का प्रयोग जिससे किसी की मानहानि या बेइज्जती होती हो। हतक इज्जत। जैसे,—इधर महीनों से उनपर डिफेमेशन केस चल रहा है।

डिबिया[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० डिब्बा + इया (लघ्वर्थक प्रत्य०)] वह छोटा ढक्कनदार बरतन जिसके ऊपर ढक्कन अच्छी तरह जमकर बैठ जाय और जिसमें रखी हुई चीज हिलाने डुलाने से न गिरे। छोटा डिब्बा। छोटा संपुट। जैसे, सुरती की डिबिया।

डिबिया†[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० जिह्वा] दे० 'जिह्वा'। उ०—राँम, राँम राँम, रतँन लागी डिबिया।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ६६७।

डिबिया टँगड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] कुश्ती का एक पेच।

विशेष—यह पेच उस समय किया जाता है जब जोड़ (विपक्षी) कमर पर होता है और उसका दाहिना हाथ कमर में लिपटा होता है। इसमें विपक्षी को दाहिने हाथ से जोड का बायाँ हाथ कमर के पास से दाहिने जाँघ तक खींचते हुए और बाँए हाथ से लंगोट पकड़ते हुए बाँए पैर से भीतरी टाँग मारकर गिराते हैं।

डिबेंचर—संज्ञा पुं० [अं०] १. वह कागज या दस्तावेज जिसमें कोई अफसर किसी कंपनी या म्युनिसिपैलिटी आदि के लिए हुए ऋण को स्वीकार करता है। ऋण स्वीकारपत्र। २. माल की रपतनी के महसूल का रवन्ना। परमट का वसीका। बहती।

डिब्बा—संज्ञा पुं० [तैलंग या सं० डिम्ब (= गोला)] १. वह छोटा ढक्कनदार बरतन जिसके ऊपर ढक्कन अच्छी तरह जमकर बैठ जाय और जिसमें रखी हुई चीज हिलाने डुलाने से न गिरे। संपुट। २. रेलगाड़ी की एक गाड़ी। ३. पसली के दर्द की बीमारी जो प्रायः बच्चों को हुआ करती है। पसली चलने की बीमारी।

डिब्बी—संज्ञा स्त्री० [हिं० डिब्बा] दे० 'डिबिया'।

डिभगना(पु)—क्रि० स० [देश०] मोहित करना। मोहना। छलना।

डहकना। उ०—दुरयोधन अभिमानहिं गयऊ। पंडव केर मरम नहिं भयऊ। माया के डिमगे सब राजा। उत्तम मध्यम बाजन बाजा।—कबीर (शब्द०)।

डिम—संज्ञा पुं० [सं०] नाटक या दृश्य काव्य का एक भेद।

विशेष—इसमें माया, इंद्रजाल, लड़ाई और क्रोध आदि का समावेश विशेष रूप से होता है। यह रौद्र रस प्रधान होता है और इसमें चार अंक होते हैं। इसके नायक देवता, गंधर्व, यक्ष आदि होते हैं। भूतों और पिशाचों की लीला इसमें दिखाई जाती है। इसमें शांत, शृंगार और हास्य ये तीनों रस न आने चाहिए।

डिमडिम—संज्ञा स्त्री० [अनु०] डमरू से निकलनेवाली आवाज। उ०—डिम डिम डमरु बजा निज कर में नाचो नयन तृतीय तरेरे।—रेणुका, पृ० १।

डिमडिमी—संज्ञा स्त्री० [सं० डिण्डिम] चमड़ा मढ़ा हुआ एक बाजा जो लकड़ी से बजाया जाता है। डुगडुगिया। डुग्गी। उ०—डिमडिमी पटह ढोल डफ बीणा मृदंग उमंग चंगतार।—सूर (शब्द०)।

डिमरेज—संज्ञा पुं० [अं०] १. बंदरगाह में जहाज के ज्यादा ठहरने का हर्जाना। २. स्टेशन पर आए हुए माल के अधिक दिन पड़े रहने का हर्जा, जो पानेवाले को देना पड़ता है।

क्रि० प्र०—लगना।

डिमाई—संज्ञा स्त्री० [अं०] कागज या छापने के कल की एक नाप जो १८"×२२" इंच होती है।

डिमाक(प)—संज्ञा पुं० [अ० दिमाग] मस्तिष्क। दिमाग। सिर। उ०—डिमाक नाक चुन कै कि नाक नाक सों हरे।—पद्माकर ग्रं० पृ० २८४।

डिमोक्रेसी—संज्ञा स्त्री० [अं०] जनतांत्रिक शासन।

डिला[1]—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की घास जो गीली भूमि में उत्पन्न होती है। मोथा।

डिला[2]—संज्ञा पुं० [सं० दल] ऊन का लच्छा।

डिलार†—वि० [फ़ा० दिलावर या दिलेर] जवाँमर्द। शूर। वीर।

डिलारा—वि० [हिं० डील] बड़े कद का। डीलडौल वाला। उ०—बलकैं झलकैं ललकैं उमंडे। बुखारेहु के हैं डिलारे घुमंडे।—पद्माकर ग्रं० पृ० २८०।

डिलिवरी, डिलेवरी—संज्ञा स्त्री० [अं०] १. डाकखानों में आई हुई चिट्ठियों, पारसलों, मनीआर्डरों की बँटाई जो नियत समय पर होती है। २. किसी चीज का बाँटा या दिया जाना। ३. प्रसव होना।

डिल्ला[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक छंद जिसके प्रत्येक चरण में १६ मात्राएँ और अंत में भगण होता है। जैसे,—राम नाम निशि बासर गावहु। जन्म लेन कर फल जग पावहु। सीख हमारी जो हिय लावहु। जन्म मरण के फंद नसावहु। २. एक वर्णवृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में दो सगण (।।ऽ) होते हैं। इसके अन्य नाम तिलका, तिल्ला और तिल्लाना भी हैं। जैसे,—सखि बाल घरो। शिव भाल धरो। भ्रमरा हरषे। तिलका निरखे।

डिल्ला[2]—संज्ञा पुं० [हिं० ढोला] बैलों के कंधों पर उठा हुआ कूबड़। कुब्बा। ककुत्थ।

डिविजनल—वि० [अं०] डिवीजन का। उस भूभाग, कमिश्नरी या किस्मत का जिसके अंतर्गत कई जिले हों। जैसे, डिवीजनल कमिश्नर।

डिविडेंड—संज्ञा पुं० [अं०] वह लाभ या मुनाफा जो जायंट स्टाक कंपनी या संमिलित पूँजी से चलनेवाली कंपनी को होता है, और जो हिस्सेदारों में, उनके हिस्से के मुताबिक बँट जाता है। जैसे,—कृष्ण काटन मिल ने इस बार अपने हिस्सेदारों को पाँच सैकड़े डिविडेंड बाँटा।

डिवीजन—संज्ञा पुं० [अं०] १. वह भूभाग जिसके अंतर्गत कई जिले हों। कमिश्नरी। जैसे, बनारस डिविजन। २. विभाग। श्रेणी। जैसे,—वह मैट्रिकुलेशन परीक्षा में फर्स्ट डिवीजन पास हुआ।

डिसकाउंट—संज्ञा पुं० [अं०] वह कमी जो व्यवहार या लेनदेन में किसी वस्तु के मूल्य में की जाती है। बट्टा। दस्तूरी। कमीशन।

डिसमिस—वि० [अं०] १. बरखास्त। २. खारिज। जैसे, अपील डिसमिस करना।

डिसलायल—वि० [अं०] अराजभक्त। राजद्रोही। उ०—डिसलायल हिंदुन कहत कहाँ मूढ़ ते लोग।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ७६५।

डिसीप्लिन—संज्ञा पुं० [अं०] १. नियम या कायदे के अनुसार चलने की शिक्षा या भाव। अनुशासन। २. आज्ञानुवर्तित्व। नियमानुवर्तित्व। फरमाबरदारी। ३. व्यवस्था। पद्धति। ४. शिक्षा। तालीम। ५. दंड। सजा।

डिस्ट्रायर—संज्ञा पुं० [अं०] नाशक जहाज। वि० दे० 'टारपीडो बोट'।

डिस्ट्रिक—संज्ञा पुं० [अं० डिस्ट्रिक्ट] दे० 'डिस्ट्रिक्ट'।

डिस्ट्रिक्ट—संज्ञा पुं० [अं०] किसी प्रदेश या सूबे का वह भाग जो एक कलेक्टर या डिप्टी कमिश्नर के प्रबंधाधीन हो। जिला।

यौ०—डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट। डिस्ट्रिक्ट बोर्ड।

डिस्ट्रिक्ट बोर्ड—संज्ञा पुं० [अं०] दे० 'जिला बोर्ड'।

डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट—संज्ञा पुं० [अं०] दे० 'जिला मजिस्ट्रेट'।

डिस्पेंसरी—संज्ञा स्त्री० [अं०] दवाखाना। औषधालय। उ०—पोस्ट आफिस से पहले यहाँ एक डिस्पेंसरी खुलवाना जरूरी था।—मैला०, पृ० ७।

डिस्पेप्सिया—संज्ञा पुं० [अं०] मंदाग्नि। अग्निमांद्य। पाचन शक्ति की कमी।

डिस्ट्रिब्यूट (करना)—क्रि० स० [अं०] छापेखाने में कंपोज किए हुए टाइपों (अक्षरों) को केसों (खानों) में अपने स्थान पर रखना।

डिस्ट्रिब्यूटर—संज्ञा पुं० [अं०] १. कंपोज टाइपों को अपने स्थान पर रखनेवाला। २. वितरक। वितरण करनेवाला।

डिहरी¹—संज्ञा स्त्री० [देश०] ६००० गाँठों का एक मान जिसके अनुसार कालीनों (गलीचों) का दाम लगाया जाता है।

डिहरी²—संज्ञा स्त्री० [सं० दीर्घ, हिं० डीह, डीहु] कच्ची मिट्टी का ऊँचा बरतन जिसमें अनाज भरा जाता है।

डींग—संज्ञा स्त्री० [सं० डीङ् (= उड़ान)] लंबी चौड़ी बात। खूब बढ़ बढ़कर कही हुई बात। अपनी बड़ाई की झूठी बात। अभिमान की बात। शेखी। सिट्टू।

क्रि० प्र०—उड़ाना। उ०—मारूँ घुटना फूटे आँख। मुई डींग उड़ा रही है जमाने भर की।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १५१।—मारना।—हाँकना।

मुहा०—डींग की लेना = शेखी बघारना।

डीक—संज्ञा स्त्री० [देश०] झिल्ली या फाँफी जो आँख पर पड़ जाती है। जाला। मोतियाबिंद।

डीकरा⑤†—संज्ञा पुं० [सं० डिम्बक] पुत्र। बेटा।

डीकरी⑤†—संज्ञा स्त्री० [सं० डिम्बक] बेटी। कन्या (डिं०)।

डीगंबर‡—वि० [हिं०] दे० 'दिगंबर'। उ०—डीगंबर के गाँव में धोबी का क्या काम।—मलूक०, पृ० ३३।

डीठ—संज्ञा स्त्री० [सं० दृष्टि, प्रा० दिट्ठि, डिट्ठि] १. दृष्टि। नजर। निगाह। उ०—गुरु शब्दन कूँ ग्रहन करि विषयन कूँ दे पीठ। गोविंद रूपी गदा गहि मारो करमन डीठ।—दया० बानी, पृ० ६।

क्रि० प्र०—डालना।—पसारना।

मुहा०—डीठ चुराना = नजर छिपाना। सामने न ताकना। डीठ छिपाना = दे० 'डीठ चुराना'। डीठ जोड़ना = चार आँखें करना। सामने ताकना। डीठ बाँधना = नजरबंद करना। ऐसी माया या जादू करना जिसमें सामने की वस्तु ठीक ठीक न सूझे। डीठ मारना = नजर डालना। चितवन से चित्त मोहित करना। डीठ रखना = नजर रखना। निरीक्षण करना। डीठ लगाना = नजर लगाना। किसी अच्छी वस्तु पर अपनी दृष्टि का बुरा प्रभाव डालना।

यौ०—डीठबंध।

२. देखने की शक्ति। ३. ज्ञान। सूझ। उ०—दई पीठि बिनु डीठि हौं, तू विश्व विलोचन।—तुलसी (शब्द०)।

डीठना†⑤¹—क्रि० अ० [हिं० डीठ + ना (प्रत्य०)] दिखाई देना। दृष्टि में आना।

डीठना⑤†²—क्रि० स० [हिं० डीठ + ना (प्रत्य०)] १. देखना। दृष्टि डालना। उ०—रूप गुरू कर चेलै डीठा। चित समाइ होइ चित्र पईठा।—जायसी (शब्द०)। २. बुरी दृष्टि लगाना। नजर लगाना। जैसे,—कल से बच्चे को बुखार आ गया, किसी ने डीठ दिया है।

डीठबंध—संज्ञा पुं० [सं० दृष्टिबन्ध] १. ऐसी माया या जादू जिससे सामने की वस्तु ठीक ठीक न सुझाई दे। नजरबंदी। इंद्रजाल। २. कुछ का कुछ कर दिखानेवाला। इंद्रजाल करनेवाला। जादूगर।

डीठि†—संज्ञा स्त्री० [सं० दृष्टि] दे० 'डीठ'। उ०—कोउ प्रिय रूप नयन भरि उर मैं धरि धरि ध्यावति। मधुमाखी लौं डीठि दुहूँ दिसि प्रति छबि पावति।—नंद० ग्रं०, पृ० ३०।

डीठिमूठि⑤†—संज्ञा स्त्री० [हिं० डीठि + मूठ] नजर। टोना। जादू। उ०—रोवनि धोवनि अनखनि अनरनि डिठिमुठि निठुर नसाइहौ।—तुलसी (शब्द०)।

डीड़ू†—संज्ञा पुं० [हिं० डेड़हा] दे० 'डेड़हा'। उ०—डीड़ समान का सेष गनीजै।—नट०, पृ० १५५।

डीन—संज्ञा स्त्री० [सं०] उड़ान। पक्षियों की गति।

विशेष—ऊपर नीचे आदि इसके २६ भेद किए गए हैं।

डीनडीनक—संज्ञा पुं० [सं०] उड़ान के २६ भेदों में से एक। बीच में रुक रुककर उड़ना [को०]।

डीपो†—संज्ञा पुं० [अं० डिपो]। उ०—पहचानोगे क्या खाकी वर्दी वालों में। हर एक जगह पर इनके डीपो डेरे हैं।—मिलन०, पृ० १८८।

डीबुआ†—संज्ञा पुं० [देश०] पैसा। उ०—बबुआ न आवा, मोर भैयन न पावा, याक तुपक को न लावा, गाँठि डीबुआ न छावा है।—सूदन (शब्द०)।

डीमडाम—संज्ञा पुं० [सं० डिम्ब (= धूमधाम)] १. ठाट। ऐंठ। तपाक। ठसक। अहंकार। उ०—पाग पेंच खेंच दे लपेट फट फेंट बाँध ऐंड़े ऐंड़े आव, पैने टूटे डीमडाम के।—हृदयराम (शब्द०)। २. धूमधाम। ठाटबाट। आडंबर। उ०—दुंदुभी बजाई ढोल ताल करनाई बड़ो ऊधम मचाई छल कीने डीमडाम को।—हृदयराम (शब्द०)।

डील—संज्ञा पुं० [हिं० टीला] १. प्राणियों के शरीर की ऊँचाई। शरीर का विस्तार। कद। उठान। जैसे,—वह छोटे डील का आदमी है। उ०—भई यदपि नैसुक दुबराई। बड़े डील नहिं देत दिखाई।—शकुंतला, पृ० ३१।

यौ०—डील डौल = (१) देह की लंबाई चौड़ाई। शरीरविस्तार। (२) शरीर का ढाँचा। आकार। आकृति। काठी। डील पील = दे० 'डीलडौल'। उ०—दोउ बंस सुद्ध प्रकासु। बढ़ि डील पील सु जासु।—हु० रासो, पृ० १२५।

२. शरीर। जिस्म। देह। जैसे,—(क) अपने डील से उसने इतने रुपए पैदा किए। (ख) उनके डील से किसी की बुराई नहीं हो सकती। ३. व्यक्ति। प्राणी। मनुष्य। जैसे,—सौ डील के लिये भोजन चाहिए। उ०—जेते डील लेते हाथी, तेतेई खवास साथी, कंचन के कुंडल किरीट पुंज छायो है।—हृदयराम (शब्द०)।

डीला—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का नरकट जो प्रायः पश्चिमोत्तर भारत में पाया जाता है।

डीवट†—संज्ञा स्त्री० [हिं० दीवट] दे० 'दीवट'। उ०—हुजूर यह पुराने फैशन की डीवट तो हटाइए। लैंप मँगवाइए।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १५६।

डीह—संज्ञा पुं० [फ़ा० देह] १. गाँव। आबादी। बस्ती। २. उजड़े हुए गाँव का टीला। उ०—शक्तिहीन पशु सा पड़ा पड़ा ढहकर

जैसे बन रहा डीह ।—कामायनी, पृ० १४५ । ३. ग्राम देवता ।

डीहदारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० डीह+फा० दारी] एक तरह का हक जो उन जमींदारों को मिलता है जो अपनी जमीन बेच डालते हैं । खरीददार उनको गाँव का कोई अंश दे देता है जिससे उनका निर्वाह हो ।

डुंग†—संज्ञा पुं० [सं० तुङ्ग (=ऊँचा)] १. ढेर । अटाला । उ०—धर्ती स्वर्ग असूझ भा तबहुँ न आग बुझाय । उठहिं बज्र जरि डुंग वे धूम रहो जग छाय ।—जायसी (शब्द०) २. टीला । भीटा । पहाड़ी ।

डुंड†—संज्ञा पुं० [सं० या स्कन्ध (=तना)] १. ठूंठ । पेड़ों की सूखी डाल जिसमें पत्ते आदि न हों । उ०—देव जू अनंग अंग होमि कै भसम संग अंग अंग उमह्यो अखेबर ज्यों डुंड मैं ।—देव (शब्द०) । २. शिररहित अंग । धड़ । उ०—उड़ि मुंड परत कहुं हय सु तुंड । कहुं हृदय चरन कहुं परिय डुंड । —सुजान०, पृ० २२ ।

डुंडु—संज्ञा पुं० [सं० डुण्डुभ] दे० 'डुंडुभ' ।

डुंडुभ—संज्ञा पुं० [सं० डुण्डुभ] पानी में रहनेवाला साँप जिसमें बहुत कम विष होता है । डेड़हा साँप । डयोढ़ा साँप ।

डुंडुम—संज्ञा पुं० [सं० डुण्डुम] दे० 'डुंडुभ' ।

डुंडुल—संज्ञा पुं० [सं० डुण्डुल] छोटा उल्लू ।

डुंडुक—संज्ञा पुं० [सं० डुन्डुक] दे० 'डाहुक' [को०] ।

डुंब—संज्ञा पुं० [सं० डुम्ब, देशी] डोम [को०] ।

डुंबर—संज्ञा पुं० [सं० डुम्बर] डंबर । आडंबर ।

डुंक—संज्ञा पुं० [अनु०] घूँसा । मुक्का ।

डुकड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० टुकड़ी] दो घोड़ों की बग्घी । उ०—खुद डुकड़ी पर चढ़ के निकलती थी ।—सैर कु०, पृ० १४ ।

डुकाडुकी—संज्ञा स्त्री० [हिं० डुकना] १. आँखमिचौनी । ढुकौवल । ढुकाढुकी । उ०—अति गह्वर तहँ ब्रज के बाल । डुकाडुकी खेलें बहुकाल ।—नंद० ग्रं०, २६२ ।

डुकिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० डोका] दे० 'डोकिया' ।

डुकियाना—क्रि० स० [हिं० डुक] घूँसों से मारना । घूँसा लगाना ।

डुक्का डुक्की(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] घूसेबाजी । आपस में घूंसों की मार । उ०—डुक्का डुक्की होन लगी ।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २७ ।

डुगडुगाना—क्रि० स० [अनु०] किसी चमड़ा मढ़े बाजे को लकड़ी से बजाना ।

डुगडुगी—संज्ञा स्त्री० [अनु०] चमड़ा मढ़ा हुआ एक छोटा बाजा । डौंगी । डुग्गी । उ०—डुगडुगी सहर में बाजी हो । —कबीर श० भा० २, पृ० १४१ ।

क्रि० प्र०—बजाना ।—फेरना ।

मुहा०—डुगडुगी पीटना=डौंड़ी बजाकर घोषित करना । मुनादी करना । चारों ओर प्रकट करना । डुगडुगी फेरना=दे० 'डुगडुगी पीटना' । उ०—आपने पत्रावलंबन ग्रंथ करके विश्वेश्वर के द्वार पर भी डुगडुगी फेर दी थी जिसको हमसे शास्त्रार्थ करना हो पहले आकर वह पत्र देख ले ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० ३, पृ० ५७४ ।

डुग्गी—संज्ञा स्त्री० [अनु०] दे० 'डुगडुगी' ।

डुचना†—क्रि० अ० [हिं० डूबना] दबना । चुकता न होना । उ०—नाचता है सूदखोर जहाँ कहीं ब्याज डुचता ।—कुकुर०, पृ० १० ।

डुडला—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष जिसे दूदला भी कहते हैं ।

डुडु†—संज्ञा पुं० [सं० दादुर] मेंढक ।

डुडका—संज्ञा पुं० [देश०] धान के पौधों का एक रोग ।

डुडुहा†—संज्ञा पुं० [हिं० डाँड़] खेत में दो नालियों (बरहों) के बीच की मेंड़ ।

डुपटना†—क्रि० स० [हिं० दो+पट] चुनना । चुनियाना । उ०—अन्हवाइ तन पहिराइ भूषन बसन सुंदर डुपटि कै ।—विश्राम (शब्द०) ।

डुपटा†—संज्ञा पुं० [हिं० डुपट्टा] दे० 'दुपट्टा' । उ०—डुपटा है रँग किरमची मनु मनके दई कमची ।—ब्रज ग्रं०, पृ० ५८ ।

डुपट्टा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'दुपट्टा' ।

डुप्लीकेट—वि० [अं०] द्वितीय । दूसरी । उ०—कमरा बंद करके, चाबी अपने परिचित किसी एक मेस महाराज को दे दी, डुप्लीकेट उमादत्त के पास थी ।—संन्यासी, पृ० १२१ ।

डुबकना—क्रि० अ० [हिं० डुबकी] १. डूबना उतराना । २. चिंताकुल होना । घबराना । उ०—इनही ते सब डुबकत डोलें मुकद्दम और दीवान । खान पान सब न्यारा राखें, मन में उनके मान । —कबीर श०, भा० २, पृ० ६४ ।

डुबकी—संज्ञा स्त्री० [हिं० डूबना] १. पानी में डूबने की क्रिया । डुब्बी । गोता । बुड़की । उ०—डुबकी खाइ न काहुए पावा । डूब समुद्र में जीउ गँवावा ।—इंद्रा०, पृ० १५६ ।

क्रि० प्र०—खाना ।—देना ।—मारना ।—लगाना ।—लेना ।

मुहा०—डुबकी मारना या लगाना=गायब हो जाना ।

२. पीठी की बनी हुई बिना तली बरी जो पीठी ही की कढ़ी में डुबाकर रखी जाती है । ३. एक प्रकार का बटेर ।

डुबडुभी†—संज्ञा स्त्री० [सं० दुन्दुभि] दे० 'दुंदुभि' । उ०—बाजा बाजइ डुबडुभी, परणवा चाल्यो बीसलराव ।—बी० रासो, पृ० ३७ ।

डुबवाना—क्रि० स० [हिं० डुबाना का प्रे०रूप] डुबाने का काम कराना ।

डुबाना—क्रि० स० [हिं० डूबना] १. पानी या और किसी द्रव पदार्थ के भीतर डालना । मग्न करना । गोता देना । बोरना । २. चौपट करना । नष्ट करना । सत्यानाश करना । बरबाद करना । ३. मर्यादा कलंकित करना । यश में दाग लगाना ।

मुहा०—नाम डुबाना=नाम को कलंकित करना । यश को बिगाड़ना । किसी कर्म या त्रुटि के द्वारा प्रतिष्ठा नष्ट करना । मर्यादा खोना । लुटिया डुबाना=महत्व खोना । बड़ाई न

रखना। प्रतिष्ठा नष्ट करना। वंश डुबाना = वंश की मर्यादा नष्ट करना। कुल की प्रतिष्ठा खोना।

डुबाव—संज्ञा पुं० [हिं० डूबना] पानी की उतनी गहराई जितनी में एक मनुष्य डूब जाय। डूबने भर की गहराई। जैसे,—यहाँ हाथी का डुबाव है।

डुबुकी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० डूबना] दे० 'डुबकी'। उ०—परन जलज काढ़ि कहूँ खाऊँ। डुबुकी खाऊँ सुमिरि वह नाऊँ।—इंद्रा०, पृ० ८१।

डुबोना†—क्रि० स० [हिं०] दे० 'डुबोना'।

डुब्बा—संज्ञा पुं० [हिं० डूबना] दे० 'पनडुब्बा'।

डुब्बी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'डुबकी'। उ०—व्यर्थ लगाने को डुब्बी हूँ! होगा कौन भला राखी।—झरना, पृ० १०।

डुबकौरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० डुबकी + बरी] दे० 'डुभकौरी'। उ०—चौराई तोराई मुरई मुरब्बा भारी स्त्री। डुबकौरी मुँगछौरी रिकवछ ईंदहर छीर छुँछौरी जो।—रघुनाथ (शब्द०)।

डुभकौरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० डूबना, डुबकी + बरी] पीठी की बिना तली बरी जो पीठी ही के झोल में पकाई और डुबाकर रखी जाती है। उ०—कँहरा बचका जायसी और डुभकौरी। ग्रं०, पृ० १२४।

डुमई—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का चावल जो कछार में होता है।

डुरी†—संज्ञा स्त्री [हिं० डोरी] दे० 'डोरी'। उ०—काम की घुरी नेह में जुरी मानो किसी ने उसी की डुरी से बाँध दिया हो। श्यामा०, पृ० ११।

डुलनाⓅ†—क्रि० अ० [सं० दोलन] दे० 'डोलना'। उ०—मंद मंद मैगल मतंग लौं चलेई भले भुजन समेत भुज भूषन डुलत जात।—पद्माकर (शब्द०)।

डुलाना—क्रि० स० [हिं० डोलना] १. हिलाना। चलाना। गति में लाना। चलायमान करना। जैसे, पंखा डुलाना। २. हटाना। भगाना। उ०—कारे भए फरि कृष्ण को ध्यान डुलाएँ ते काहू के डोलत ना।—सुंदरीसर्वस्व (शब्द०)। ३. चलाना। फिराना। ४. घुमाना। टहलाना।

डुलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] कमठी। कछुई। कच्छपी।

डुलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] खंजन के आकार की एक चिड़िया [को०]।

डुली—संज्ञा स्त्री० [सं०] चिल्ला साग। लाल पत्ती का बथुआ।

डूँगर—संज्ञा पुं० [सं० तुङ्ग (= पहाड़ी)] १. टीला। भीटा। दूह। उ०—सूरदास प्रभु रसिक शिरोमणि कैसे दुरत दुराय कहीं धौं डूँगरन की ओट सुमेर।—सूर (शब्द०)। २. छोटी पहाड़ी। उ०—छिनही में ब्रज धोइ बहावै। डूँगर को कहूँ नावँ न पावै।—सूर (शब्द०)।

डूँगर फल—संज्ञा पुं० [हिं० डूँगर + फल] बंदाल का फल। देवदाली का फल जो बहुत कड़ुवा होता है और सरदी में घोड़ों को खिलाया जाता है।

डूँगरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० डूँगर] छोटी पहाड़ी।

डूँगा[१]—संज्ञा पुं० [सं० द्रोण] १. चम्मच। चमचा। २. एक लकड़ी की नाव। डोंगा (लश०)। ३. रस्से का गोल लपेटा हुआ लच्छा (लश०)।

डूँगा†[२]—संज्ञा पुं० [सं० तुङ्ग] छोटी पहाड़ी। टीला। उ०—विविध संसार कौन बिधि तिरबो, जे दृढ़ नाव न गहे रे। नाव छाड़ि दे डूँगे बसे तो दूना दुःख सहे रे।—रै० बानी, पृ० ३८।

डूँगा[३]—संज्ञा पुं० [देश०] संगीत की २४ शोभाओं में से एक।

डूँज†—संज्ञा स्त्री० [देश०] आँधी। तेज हवा (डिं०)।

डूँड़ा[१]—वि० [सं० त्रुटि, हिं० टूटना] एक सींग का (बैल)। (बैल) जिसका एक सींग टूट गया हो। २. जिसके हाथ कटे हों। लूला। बिना हाथ पावँ का। ३. शिरविहीन (धड़)।

डूँम—संज्ञा पुं० [देशी डुंब या डोंब] दे० 'डोम'। उ०—डूँम न जाँणे देवजस सूँम न जाँणे मोज। मुगल न जाँणे थोवया चुगल न जाँणे चोज।—बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० ४८।

डूँमणी—संज्ञा स्त्री० [हिं० डूँम] दे० 'डोमनी—३'। उ०—पीहर संदी डूँमणी, ऊँमर हुंवइ सध्य।—ढोला०, दू० ६३०।

डूक—संज्ञा स्त्री० [देश०] पशुओं के फेफड़ों की एक बीमारी।

डूकना†—क्रि० स० [सं० त्रुटिकरण, या हिं० चूकना] त्रुटि करना। भूल करना। गलती करना। मौका खोना। चूकना।

डूबना—क्रि० अ० [अनु० डुब डुब] १. पानी या और किसी द्रव पदार्थ के भीतर समाना। एकबारगी पानी के भीतर चला जाना। मग्न होना। गोता खाना। बूड़ना। जैसे, नाव डूबना, आदमी डूबना।

संयो० क्रि०—जाना।

मुहा०—डूबकर पानी पीना = धोखाधड़ी करना। औरों से छिपकर बुरा काम करना। उ०—हमी में डूबकर पानी पीनेवाले हैं।—चुभते० (दो दो०), पृ० ४। डूब मरना = लज्जा के मारे मर जाना। शरम के मारे मुँह न दिखाना। उ०—उन्हें डूब मरने को संसार में चुल्लू भर पानी मिलना मुश्किल हो जाता।—प्रेमघन०, भा० २ पृ० ३४१।

विशेष—इस मुहा० का प्रयोग विधि और आदेश के रूप में ही प्रायः होता है। जैसे, तू डूब मर? तुम डूब क्यों नहीं मरते?

चुल्लू भर पानी में डूब मरना = दे० 'डूब मरना'। डूबते को तिनके का सहारा होना = निराश्रय व्यक्ति के लिये थोड़ा सा आश्रय भी बहुत होना। संकट में पड़े हुए निस्सहाय मनुष्य के लिये थोड़ी सी सहायता भी बहुत होना। डूबा नाम उछालना = (१) फिर से प्रतिष्ठा प्राप्त करना। गई हुई मर्यादा को फिर से स्थापित करना। (२) अप्रसिद्धि से प्रसिद्धि प्राप्त करना। डूबना उतराना = (१) चिंता में मग्न होना। सोच में पड़ जाना। (२) चिंताकुल होना। घबराना। जी डूबना = (१) चित्त विह्वल होना। चित्त व्याकुल होना। जी घबराना। (२) बेहोशी होना। मूर्छा आना।

विशेष—पद्माकर ने 'प्राण' शब्द के साथ भी इस मुहा० का प्रयोग किया है, जैसे, ऊबत हो, डूबत हो, डगत हो, डोलत हो, बोलत न काहे प्रीति रीतिन रितै चले।···एरे मेरे प्राण!

कान्ह प्यारे की चलाचल में तब लौं चले न, आब चाहत किती चले ।

२. सूर्य, ग्रह, नक्षत्र आदि का अस्त होना । सूर्य या किसी तारे का अदृश्य होना । जैसे, सूर्य डूबना, शुक्र डूबना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

३. चौपट होना । सत्यानाश जाना । बरबाद होना । बिगड़ना । नष्ट होना । जैसे, वंश डूबना । उ०—डूबा वंश कबीर का, उपजे पूत कमाल ।–(शब्द०) ।

संयो० क्रि०—जाना । उ०—आवत जावत कोई न देखा डूब गया बिन पानी ।—कबीर श०, पृ० ३१ ।

मुहा०—नाम डूबना = मर्यादा बिगड़ना । प्रतिष्ठा नष्ट होना । कुख्याति होना ।

४. किसी व्यवसाय में लगाया हुआ धन नष्ट होना या किसी को दिया हुआ रुपया न वसूल होना । मारा जाना । जैसे,—(क) उसने जितना रुपया इधर उधर कर्ज दिया था सब डूब गया । (ख) जिसने जिसने हिस्सा खरीदा उनका रुपया डूब गया ।

संयो० क्रि०—जाना ।

५. बेटी का बुरे घर ब्याहा जाना । कन्या का ऐसे घर पड़ना जहाँ बहुत कष्ट हो ।

संयो० क्रि०—जाना ।

६. चिंतन में मग्न होना । विचार में लीन होना । अच्छी तरह ध्यान लगाना । जैसे, डूबकर सोचना । ७ लीन होना । तन्मय होना । लिप्त होना । अच्छी तरह लगना । जैसे, विषय वासना में डूबना, ध्यान में डूबना ।

डूम†—संज्ञा पुं० [सं० डुम्ब] दे० 'डोम' । उ०—सुंदर यह मन डूम है, मांगत करै न संक । दीन भयो जाचत फिरै, राजा होइ कि रंक ।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ७२६ ।

डूमा—संज्ञा पुं० [रूसी] रूस की पार्लमेंट या राजसभा का नाम ।

डूमना†—क्रि० अ० [हिं० डुलना] दे० 'डोलना' । उ०—पहिले पोहरे रैण के, दिवला भंवर डूम । धण कस्तूरी हुइ रही, प्रिय चंपारी फूल ।—ढोला०, पृ० ५८२ ।

डेंटिस्ट—संज्ञा पुं० [अं० डेंटिस्ट] दंतचिकित्सक । दाँत का डाक्टर । दाँत बनानेवाला ।

डेंड़सी—संज्ञा स्त्री० [सं० टिण्डिश] ककड़ी की तरह की एक तरकारी जिसके फल कुम्हड़े की तरह गोल पर छोटे होते हैं ।

डेउढ़ा†—वि०, संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'डेवढ़ा', 'ड्योढ़ा' ।

डेउढ़ी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ड्योढ़ी' ।

डेक¹—संज्ञा पुं० [देश०] महानिंब । बकायन ।

डेक²—संज्ञा पुं० [अं०] जहाज पर लकड़ी से पटा हुआ फर्श या छत ।

डेक्करना(पु)†—क्रि० अ० [अनु०] ध्वनि करना । दे० 'डकरना' । उ०—सब दिसे डाकिनि डेक्करइ ।—कीर्ति०, पृ० १०८ ।

डेक्कार†—संज्ञा पुं० [अनु०] डमरू ध्वनि । उ०—डमलि डमरु डेक्कार वर ।—कीर्ति०, पृ० १०८ ।

डेग¹—संज्ञा पुं० [हिं० डग] दे० 'डग' । उ०—बात बात में गाली और डेग डेग पर डाली ।—मैला०, पृ० २१ ।

डेग²—संज्ञा पुं० [हिं० देग] दे० 'देग' ।

डेगची—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'देगची' ।

डेट—संज्ञा स्त्री० [अं०] तिथि । तारीख ।

डेडरा†—संज्ञा पुं० [सं० दादुर] दे० 'दादुर' । उ०—डेडरा से डरै, सींगी मच्छ को मरोड़ डारै । कानन के बीच जाय कुंजर को पकरै ।—राम० धर्म०, पृ० ८१ ।

डेडरिया†—संज्ञा पुं० [हिं० डेडरा] दे० 'डेडरा' । उ०—डेडरिया लिग्रा मइ हुवइ घण बूढइ सरजित ।—ढोला०, पृ० ५४८ ।

डेड़हा†—संज्ञा पुं० [सं० डुण्डुभ] पानी का साँप जिसमें बहुत कम विष होता है ।

डेढ़—वि० [सं० अध्यर्द्ध, प्रा० डिवड्ढ] एक और आधा । सार्द्धैक । जो गिनती में १½ हो । जैसे, डेढ़ रुपया, डेढ़ पाव, डेढ़ सेर, डेढ़ बजे ।

मुहा०—डेढ़ ईंट की जुदा मसजिद बनाना = खरेपन या अक्खड़पन के कारण सबसे अलग काम करना । मिलकर काम न करना । डेढ़ गाँठ = एक पूरी और उसके ऊपर दूसरी आधी गाँठ । रस्सी तागे आदि की वह गाँठ जिसमे एक पूरी गाँठ लगाकर दूसरी गाँठ इस प्रकार लगाते हैं कि तागे का एक छोर दूसरे छोर की दूसरी ओर बाहर नहीं खींचते, तागे को थोड़ी दूर ले जाकर बीच ही में कस देते हैं । इसमें दोनों छोर एक ही ओर रहते हैं और दूसरे छोर को खींचने से गाँठ खुल जाती है । मुद्धी । डेढ़ चावल की खिचड़ी पकाना = अपनी राय सबसे अलग रखना । बहुमत से भिन्न मत प्रकट करना । डेढ़ चुल्लू = थोड़ा सा । डेढ़ चुल्लू लहू पीना = मार डालना । खूब दंड देना । (क्रोधोक्ति, स्त्रि०) ।

विशेष—जब किसी निर्दिष्ट संख्या के पहले इस शब्द का प्रयोग होता है तब उस संख्या को इकाई मानकर उसके आधे को जोड़ने का अभिप्राय होता है । जैसे, डेढ़ सौ = सौ और उसका आधा पचास अर्थात् १५०, डेढ़ हजार = हजार और उसका आधा पाँच सौ, अर्थात् १५०० । पर, इस शब्द का प्रयोग दहाई के आगे के स्थानों को निर्दिष्ट करनेवाली संख्याओं के साथ ही होता है । जैसे, सौ, हजार, लाख, करोड़, अरब इत्यादि । पर अनपढ़ और गँवार, जो पूरी गिनती नहीं जानते, और संख्याओं के साथ भी इस शब्द का प्रयोग कर देते हैं । जैसे, डेढ़ बीस अर्थात् तीस ।

डेढ़खम्मन—संज्ञा स्त्री० [हिं० डेढ़ + फ़ा० खम] एक प्रकार का बिरका या गोल रुखानी ।

डेढ़खम्मा—संज्ञा पुं० [हिं० डेढ़ + फ़ा० खम (= टेढ़ा)] तंबाकू पीने का वह सस्ता नैचा जिसमें कुलफी नहीं होती । इसके घुमाव पर केवल एक लोहे की टेढ़ी सलाई रखकर उसे पयाल और चिथड़े आदि से लपेट देते हैं ।

डेढ़गोशी—संज्ञा पुं० [हिं० डेढ़ + फ़ा० गोशह (= कोना)] एक बहुत छोटा और मजबूत बना हुआ जहाज ।

डेढ़ा¹—वि० [हिं० डेढ़] डेढ़ गुना। किसी वस्तु से उसका आधा और अधिक। डेवढ़ा।

डेढ़ा²—संज्ञा पुं० एक प्रकार का पहाड़ा जिसमें प्रत्येक संख्या की डेढ़गुनी संख्या बतलाई जाती है।

डेढ़िया¹—संज्ञा पुं० [देश०] धुपाले की जाति का एक बहुत ऊँचा पेड़ जिसके पत्ते सुगंधित होते हैं।

विशेष—यह वृक्ष दार्जिलिंग, सिक्किम और भूटान आदि में पाया जाता है। इसके पत्तों से एक प्रकार की सुगंध निकलती है। इसकी लकड़ी मकानों में लगाने तथा चाय के संदूक और खेती के सामान (हल, पाटा आदि) बनाने के काम में आती है। यह पेड़ धुपाले की जाति का है।

डेढ़िया†²—संज्ञा स्त्री० [हिं० डेढ़] दे० 'डेढ़ी'।

डेढ़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० डेढ़] किसानों को बोआई के समय इस शर्त पर अनाज उधार देने की रीति कि वे फसल कटने पर लिए हुए अनाज का ड्योढ़ा देंगे।

डेनाⓅ†—क्रि० स० [पं०] देना। प्रदान करना। उ०—तन भी डेवाँ, मन भी डेवाँ डेवाँ पिंड पराण वे।—दादू०, पृ० ५१३।

डेपूटेशन—संज्ञा पुं० [अं०] चुने हुए प्रधान प्रधान लोगों की वह मंडली जो जनसाधारण या किसी सभा संस्था की ओर से सरकार, राजा महाराजा अथवा किसी अधिकारी या शासक के पास किसी विषय में प्रार्थना करने के लिये भेजी जाय। प्रतिनिधि मंडल। विशिष्ट मंडल।

डेबरा†—वि० [देश०] बेहत्था। बाएँ हाथ से काम करनेवाला।

डेबरी†¹—संज्ञा स्त्री० [देश०] खेत का वह कोना जो जोतने से छूट जाता है। कोंवर।

डेबरी²—संज्ञा स्त्री० [हिं० डिब्बी] डिब्बी के आकार का टीन, शीशे आदि का एक बरतन जिसमें तेल भरकर रोशनी के लिये बत्ती जलाते हैं। डिब्बी।

डेमोक्रेसी—संज्ञा स्त्री० [अं०] १. वह सरकार या शासनप्रणाली जिसमें राजसत्ता जनसाधारण के हाथ में हो और उस सत्ता या शक्ति का प्रयोग वे स्वयं या उनके निर्वाचित प्रतिनिधि करें। वह सरकार जो जनसाधारण के अधीन हो। सर्वसाधारण द्वारा परिचालित सरकार। लोकसत्ताक राज्य। लोकसत्तात्मक राज्य। प्रजासत्तात्मक राज्य। २. वह राष्ट्र जिसमें समस्त राजसत्ता जनसाधारण के हाथ में हो और वह सामूहिक रूप से या अपने निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा शासन और न्याय का विधान करते हों। प्रजातंत्र। ३. राजनीतिक और सामाजिक समानता। समाज की वह अवस्था जिसमें कुलीन अकुलीन, धनी दरिद्र, ऊँच नीच या इसी प्रकार का और भेद नहीं माना जाता।

डेमोक्रेट—संज्ञा पुं० [अं०] १. वह जो डेमोक्रेसी या प्रजासत्ता या लोकसत्ता के सिद्धांत का पक्षपाती हो। वह जो सरकार को प्रजासत्ताक या लोकसत्ताक बनाने के सिद्धांत का पक्षपाती हो। २. वह जो राजनीतिक और प्राकृतिक समानता का पक्षपाती हो। वह जो कुलीनता अकुलीनता या ऊँच नीच का भेद न मानता हो।

डेर¹—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'डर'।

डेर²—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'डेरा'। उ०—रहै खेत पर ठाढ़ भक्ति की डेर मैहै।—पलटू० पृ० ८७।

डेरा¹—संज्ञा पुं० [हिं० ठैरना, ठैराव या हिं० दर (=स्थान)] १. टिकान। ठहराव। थोड़े काल के लिये निवास। थोड़े दिन के लिये रहना। पड़ाव। जैसे,—आज रात को यहीं डेरा करो, सबेरे उठकर चलेंगे।

क्रि० प्र०—होना।—लेना = स्थान तजवीजकर टिक जाना या निवास करना। उ०—साल्ह महल हूँ ढूकड़ा, ठाढ़ी डेरउ लीध।—ढोला०, दू० १८७।

२. टिकने का आयोजन। टिकान का सामान। ठहरने या रहने के लिये फैलाया हुआ सामान। जैसे, बिस्तर, बरतन, मोढ़ा, छप्पर, तंबू इत्यादि। छावनी। जैसे—यहाँ से चटपट डेरा उठाओ।

यौ०—डेरा डंडा = टिकने का सामान। बोरिया बँधना। निवास का सामान। उ०—तसल्ली से असबाब वगैरह रखा गया और डेराडंडा ठीक हुआ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १५६।

मुहा०—डेरा डालना = सामान फैलाकर टिकना। ठहरना। रहना। डेरा पड़ना = ठिकान होना। छावनी पड़ना। उ०—(क) भरि चौरासी कोस परे गोपन के डेरा।—सूर (शब्द०)। (ख) पास मेरे इधर उधर आगे। है दुखों का पड़ा हुआ डेरा।—चुभते०, पृ० ४। डेरा डंडा उखाड़ना = टिकने का सामान हटाकर चला जाना।

३. टिकने के लिये साफ किया हुआ और छाया बनाया हुआ स्थान। ठहरने का स्थान। छावनी। कैंप। उ०—नौबत झरहि बहु नृपति डेरन दुंदुभी धुनि ह्वै रही।—रघुराज (शब्द०)। ४. खेमा। तंबू। छोलदारी। शामियाना।

क्रि० प्र०—खड़ा करना।

५. नाचने गानेवालों का दल। मंडली। गोल। ६. मकान। घर। निवासस्थान। जैसे,—तुम्हारा डेरा कितनी दूर है ?

डेराⓅ²—वि० [सं० डहर (=छोटा) ?] [स्त्री० डेरी] बायाँ। सव्य। जैसे, डेरा हाथ। उ०—(क) कहुँमैं आगे कहुँमैं पाछे, कहुँमैं दहिने डेरे।—कबीर (शब्द०) (ख) सूर स्याम सम्मुख रति मानत गए मग बिसरि दाहिने डेरे।—सूर (शब्द०)।

डेरा³—संज्ञा पुं० [देश०] एक छोटा जंगली पेड़ जिसकी सफेद और मजबूत लकड़ी सजावट के सामान बनाने के काम में आती है।

विशेष—यह पेड़ पंजाब, अवध, बंगाल तथा मध्य प्रदेश और मदरास में भी होता है। इसे 'बरोली' भी कहते हैं। इसकी छाल और जड़ और काटने पर पिसाई जाती है।

डेराना†—क्रि० अ० [हिं० डर] दे० 'डरना'। उ०—जहाँ पुहुप देखत चलि संगू। जिउ डेराइ काँपत सब अंगू।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३४०।

डेरावाली—संज्ञा स्त्री० [हिं० डेरा + वाली] रखैल। उ०—खेलावन

की डेरावाली खुद आकर बालदेव की बुढ़िया मौसी से कह गई थी।—मैला० पृ० १२।

डेरी—संज्ञा स्त्री० [अं० डेयरी] वह स्थान जहाँ गौएँ, भैंसें रखी और दूध मक्खन आदि बेचा जाता है।

यौ०—डेरीफार्म।

डेरीफार्म—संज्ञा पुं० [अं०] दे० 'डेरी'।

डेरु(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० डर] दे० 'डर'। उ०—जग को देखि मोंहि डेरु लाग्यो।—जग०, बानी०, पृ० २८।

डेरूँ‡—संज्ञा पुं० [सं० डमरु] दे० 'डमरु'। उ०—सिव सखी भेख साजिकै, आए मीरा की तजिकै। नाचै है डेरुँ लैकै, अजबास देखि भिभिकै।—ब्रज ग्रं०, पृ० ६१।

डेल[1]—संज्ञा स्त्री० [देश०] वह भूमि जो रबी की फसल के लिये जोतकर छोड़ दी जाय। परेल।

डेल[2]—संज्ञा पुं० [देश०] कटहल की तरह का एक बड़ा ऊँचा पेड़ जो लंका में होता है।

विशेष—इसके हीर की लकड़ी चमकदार और मजबूत होती है, इसलिये वह मेज कुरसी तथा सजावट के अन्य सामान बनाने के काम में आती है। नावें भी इसकी अच्छी बनती हैं। इस पेड़ में कटहल के बराबर बड़े फल लगते हैं जो खाए जाते हैं। बीज भी खाने के काम में आते हैं। इन बीजों में से तेल निकलता है जो दवा और जलाने के काम में आता है।

डेल[3]—संज्ञा पुं० [सं० डुण्डुल] उल्लू पक्षी। उ०—धनवाद. जोबन, राजमद ज्यों पंछिन मंह डेल।—स्वामी हरिदास (शब्द०)।

डेल[4]—संज्ञा पुं० [सं० दल, हिं० डला] ढेला। पत्थर, मिट्टी या ईंट का टुकड़ा। रोड़ा। उ०—(क) नाहिं न रास रसिक रस चाख्यो तातें डेल सो डारो।—सूर (शब्द०)। (ख) डेल सो बनाय आय मेलत सभा के बीच लोगन कवित्त कीबो खेल करि जानो है।—इतिहास, पृ० ३८४।

क्रि० प्र०—डेल करना = नष्ट करना। ढेला या रोड़ा कर देना। समाप्त करना। उ०—औरो खर आप रिस भीने। तेऊ सबै डेल से कीने।—नंद० ग्रं०, पृ० २७७।

डेला[1]—संज्ञा पुं० [हिं० डला] वह डला जिसमें बहेलिए पक्षी आदि बंद करके रखते हैं। उ०—कित नैहर पुनि आउब, कित ससुरे यह खेल। आपु आपु कहँ होइहि, परब पंखि जस डेल।—जायसी (शब्द०)।

डेलआयरियन—संज्ञा स्त्री० [आयरिश] (स्वतंत्र) आयरलैंड की पार्लमेंट या व्यवस्थापिका परिषद् जिसमें उस देश के लिये कानून कायदे आदि बनते हैं।

डेलटा—संज्ञा पुं० [यू०, अं०] नदियों के मुहाने या संगमस्थान पर उनके द्वारा लाए हुए कीचड़ और बालू के जमने से बनी हुई वह भूमि जो धारा के कई शाखाओं में विभक्त होने के कारण तिकोनी होती है।

डेला[1]—संज्ञा पुं० [सं० दल] १. ढेला। रोड़ा। २. आँख का सफेद उभरा हुआ भाग जिसमें पुतली होती है। आँख का कोया। ३. एक जंगली वृक्ष। दे० 'करेरा'। उ०—डेले, पीलु, आक और जंड के कुम्हलाए वृक्ष।—ज्ञानदान, पृ० १०३।

डेला—संज्ञा पुं० [हिं० ठेलना] वह काठ जो नटखट चौपायों के गले में बाँध दिया जाता है। ठेंगुर।

डेलिगेट—संज्ञा पुं० [अं०] वह प्रतिनिधि जो किसी सभा में किसी स्थान के निवासियों की ओर से मत देने के लिये भेजा जाय।

डेलिया—संज्ञा पुं० [देश०] एक पौधा जो फूलों के लिये लगाया जाता है। इसका फूल लाल या पीला होता है।

डेली[1]—संज्ञा स्त्री०[हिं० डला]डलिया। बाँस की झाँपी। दे० 'डेल[4]'। उ०—बँधिगा सुआ करत सुख केली। चूरि पाँख मेलेसि धरि डेली।—जायसी (शब्द०)।

डेली[2]—वि० [अं०] दैनिक (अखबार आदि)।

डेवढ़ा[1]—वि० [हिं० डेवढ़ा] डेढ़ गुना। डेवढ़ा। उ०—सुर सेनप उर बहुत उछाहू। विधि तें डेवढ़ सुलोचन लाहू।—तुलसी (शब्द०)।

डेवढ़ा[2]—संज्ञा स्त्री० तार। सिलसिला। क्रम।

क्रि० प्र०—लगना।

डेवढ़ना[1]—क्रि० अ० [हिं० डेवढ़ा] आँच पर रखी हुई रोटी का फूलना।

डेवढ़ना[2]—क्रि० स० १. कपड़े को मोड़ना। कपड़ों की तह लगाना। किसी वस्तु में उसका आधा और मिलाना। डेवढ़ा करना। ३. आँच पर रखी हुई रोटी को फुलाना।

डेवढ़ा—वि० [हिं० डेढ़] आधा और अधिक। किसी पदार्थ से उसका आधा और ज्यादा। डेढ़गुना।

डेवढ़ा—संज्ञा पुं० १. ऐसा तंग रास्ता जिसके एक किनारे ढाल या गड्ढा हो (पालकी के कहार)। २. गाने मे वह स्वर जो साधारण से कुछ अधिक ऊँचा हो। ३. एक प्रकार का पहाड़ा जिसमें क्रम से अंकों की डेढ़गुनी संख्या बतलाई जाती है।

डेवढ़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० देहली] दे० 'ड्योढ़ी'। उ०—पल पाँवड़े डारि रहोगी डटी डेवढ़ी डर छोड़ि अधीरतियाँ।—श्यामा०, पृ० १६६।

डेवलप करना—क्रि० अ० [अं० डेवलप + हिं० करना] फोटोग्राफी में प्लेट को मसाले मिले हुए जल से धोना जिसमें अंकित चित्र का आकार स्पष्ट हो जाय।

डेसिमल—संज्ञा पुं० [अं०] दशमलव। उ०—अपना आप हिसाब लगाया। पाया महा दीन से दीन। डेसिमल पर दस शून्य जमाकर, लिखे जहाँ तीन पर तीन।—हिम त०, पृ० ७०।

डेस्क—संज्ञा पुं० [अं०] लिखने के लिये छोटी ढालुआँ मेज।

डेहरी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० देहली] दरवाजे के नीचे की उठी हुई जमीन जिसपर चौखट के नीचे की लकड़ी रहती है। दहलीज। सतमर्दा।

डेहरी[२]—संज्ञा स्त्री० [हि० वह] ग्रन्न रखने के लिये कच्ची मिट्टी का ऊँचा बरतन।

डेहुल—संज्ञा पुं० [सं० देहली] देहली। बहलीज।

डेंगू फीवर—संज्ञा पुं० [ग्रं० डेंगे फीवर] दे० 'डंगू ज्वर'। उ०—वै० १६२६ का डेंगू फीवर।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३४३।

डेंगना—संज्ञा पुं० [हि० डेंग] काठ का लंबा टुकड़ा जो नटखट चौपायों के गले में इसलिये बाँध दिया जाता है जिसमें वे अधिक भाग न सकें। ठेंगुर। लंगर।

डैन(५)—संज्ञा पुं० [सं० डयन (=उड़ना)] दे० 'डैना'। उ०—गरजै गगन पखि जब बोला। डोल समुद्र डैन जब डोला।—जायसी ग्रं०, पृ० ६३।

डैना—संज्ञा पुं० [सं० डयन (=उड़ना)] चिड़ियों का वह फैलने और सिमटनेवाला अंग जिससे वे हवा में उड़ती हैं। पंख। पक्ष। पर। बाजू।

डैमफूल—संज्ञा पुं० [ग्रं०] एक ग्रंगरेजी गाली। ग्रभागा मूर्ख। नारकी। सत्यानाशी। उ०—और इसपर बदमाशों की डैमफूल। तहजीब के साथ बात करना जानते ही नहीं।—झाँसी०, पृ० २५१।

डैरूँ†—संज्ञा पुं० [सं० डमरु] दे० 'डमरु'। उ०—सरप मरै बाँबी उठि नाचै कर बिनु डैरूँ बाजै।—गोरख०, पृ० २०८।

डैश—संज्ञा पुं० [ग्रं०] एक प्रकार का अंग्रेजी विरामचिह्न जिसका प्रयोग कई उद्देश्यों से किया जाता है।

विशेष—यदि किसी वाक्य के बीच डैश देकर कोई वाक्य लिखा जाता है तो उस वाक्य का व्याकरणसंबंध मुख्य वाक्य से नहीं होता। जैसे,—जो शब्द बोलचाल में आते हैं—चाहे वे फारसी के हों, चाहे अरबी के, चाहे ग्रंगरेजी के—उनका प्रयोग बुरा नहीं कहा जा सकता। डैश का चिह्न इस प्रकार का—होता है।

डोंगर—संज्ञा पुं० [सं० तुङ्ग (=पहाड़ी) या देशी डुंगर] [स्त्री० ग्रल्पा० डोंगरी] पहाड़ी। टीला। भीटा। उ०—(क) एक फूक बिष ज्वाल के अन डोंगर जरि जाहि।—सूर (शब्द०)। (ख) डोंगर को बल उनहिं बताऊँ। ता पाछे ब्रज खोजि बहाऊँ।—सूर (शब्द०)। (ग) चित्र विचित्र विविध मृग डोलत डोंगर डाँग। जनु पुर बीथिनि बिहरत छैल सँवारे स्वाँग।—तुलसी (शब्द०)।

डोंगा—संज्ञा पुं० [सं० द्रोण] [स्त्री० ग्रल्पा० डोंगी] १. बिना पाल की नाव। २. बड़ी नाव।

मुहा०—डोंगा पार होना या लगाना=काम निबटना। छुटकारा होना।

डोंगी—संज्ञा स्त्री० [हि० डोंगा] १. बिना पाल की छोटी नाव। २. छोटी नाव। ३. वह बरतन जिसमें लोहार लोहा लाल करके बुझाते हैं।

डोंड़हा—संज्ञा पुं० [हि] दे० 'डोड़हा'।

डोंड़ा—संज्ञा पुं० [सं० तुण्ड] १. बड़ी इलायची। २. टोंटा। कारतूस। उ०—चंद्रबाण सरएँ बिराजे। धनु हुने छोड़ बचे जू भागे। अरि बंदूक ग्रठारह छोड़े। इतने उचित होय तब डोंड़े।—हनुमान (शब्द०)।

डोंड़ी[१]—संज्ञा स्त्री० [सं० तुण्ड] १. पोस्ते का फल जिसमें से अफीम निकलती है। कपास की कली। उ०—सोबा, मणिपुर राजकुमार। ज्यों कपास की डोंड़ी में सोता है पैर पसार। एक कीट नन्हा सा श्वेत, मृदुल सुकुमार।—बंदन०, पृ० ९५। २. उभरा मुँह। टोंटी।

डोंड़ी[२]—संज्ञा स्त्री० [सं० द्रोणी] डोंगी। छोटी नाव।

डोंड़ो[१]—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'डोड़ी'।

डोंब—संज्ञा पुं० [देशी] दे० 'डोम'।

डोई—संज्ञा स्त्री० [देशी डोग्रा; हि० डोकी] काठ की डाँड़ी की बड़ी करछी जिससे कड़ाह में दूध, घी चाशनी आदि चलाते हैं।

विशेष—यह वास्तव में लोहे या पीतल का एक कटोरा होता है जिसमे काठ की लंबी डाँड़ी खड़े बल लगी रहती है।

डोक—संज्ञा पुं० [देश०] छुहारा जो पककर पीला हो जाय। पकी हुई खजूर।

डोकनी‡—संज्ञा स्त्री० [देश०] कठौती। उ०—बाँस का ठोंगा, काठ की डोकनी तथा बेंत की डलिया।—नेपाल०, पृ० ३१।

डोकर—संज्ञा पुं० [हि०] [स्त्री० डोकरी] दे० 'डोकरा'।

डोकरड़ो†—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'डोकरा'।

डोकरा—संज्ञा पुं० [सं० दुष्कर, प्रा० डुक्कर ?] [स्त्री० डोकरी] १. बूढ़ा आदमी। अशक्त और वृद्ध मनुष्य। †२. पिता।

डोकरिया‡—संज्ञा स्त्री० [हि०डोकरी+इया (प्रत्य०)] दे० 'डोकरी'।

डोकरी—संज्ञा स्त्री० [हि० डोकरा] बुड्ढी स्त्री। उ०—तहाँ मार्ग मे एक डोकरी को घर मिल्यो।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० ३२०।

डोकरो†—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'डोकरा'।

डोका[१]—संज्ञा पुं० [सं० द्रोणक] काठ का छोटा बरतन या कटोरा जिसमें तेल, बटना आदि रखते हैं।

डोका‡[२]—संज्ञा पुं० [देश०] डंठल। उ०—उकरड़ी डोका चुगइ, अपस हँमायउ प्राण।—ढोला०, दू० ३३६।

डोकिया—संज्ञा स्त्री० [हि० डोका] काठ या छोटा कटोरा या बरतन जिसमे तेल, उबटन आदि रखते हैं।

डोकी—संज्ञा स्त्री० [हि० डोका] काठ का छोटा बरतन या कटोरा जिसमें तेल, बटना आदि रखते हैं।

डोगर—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'डोंगर'।

डोगरा—संज्ञा पुं० [हि० डोंगर] जम्मू, कश्मीर, काँगड़ा आदि में बसी एक प्रसिद्ध जाति या उस जाति के व्यक्ति।

डोगरी[१]—संज्ञा स्त्री० [हि०] १. डोगरा जाति के लोगों की बोली जो पंजाबी की एक शाखा है। २. छोटे छोटे घर। उ०—काम करने के लिये मीलों दूर साधारण से छोटे छोटे घर बना लिए हैं, जिन्हें डोगरी कहते हैं।—किन्नर०, पृ० ६६।

डोज—संज्ञा स्त्री० [ग्रं० डोज] मात्रा। खुराक। मोताद।

डोबहथी—संज्ञा स्त्री० [हिं० डाँडा + हाथ] तलवार (डिं०)।

डोबहा—संज्ञा पुं० [सं० डुण्डुभ] पानी में रहनेवाला साँप।

डोबी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक लता जो औषध के काम में आती है।
विशेष—वैद्यक के अनुसार यह मधुर, शीतल, नेत्रों को हितकारी, त्रिदोषनाशक और वीर्यवर्धक मानी जाती है। इसे जीवंती भी कहते हैं।

डोडो—संज्ञा पुं० [अं०] एक चिड़िया जो अब नहीं मिलती।
विशेष—यह चिड़िया मारिशस (मिरिच के) टापू में जुलाई १६८१ तक देखी गई थी। इसके चित्र यूरोप के भिन्न भिन्न स्थानों में रखे मिलते हैं। सन् १८६६ में इसकी बहुत सी हड्डियाँ पाई गई थीं। डोडो भारी और बेढंगे शरीर की चिड़िया थी। डीलडौल में बत्तख के बराबर होती थी, न अधिक उड़ सकती थी, न और किसी प्रकार अपना बचाव कर सकती थी। मारिशस में यूरोपियनों के बसने पर इस दीन पक्षी का समूल नाश हो गया।

डोढ़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० देहली] दे० 'ड्योढ़ी'। उ०—(क) इनके मिलने में डोढ़ी पहरा नहीं लगता।—श्रीनिवास ग्रं० (नि०), पृ० ५। (ख) देसोतारी डोढ़ियाँ गोला करे गलार।—बाँकी ग्रं०, भा० २, पृ० ८७।

डोब—संज्ञा पुं० [हिं० डूबना] डुबाने का भाव। गोता। डुबकी।
मुहा०—डोब देना = गोता देना। डुबाना। जैसे, कपड़े को रंग में दो तीन डोब देना। कलम को स्याही में डोब देना।

डोबना—क्रि० स० [हिं० डुबाना] डुबकी देना। डुबाना। गोता देना। उ०—आगल डोबै पाछल तारे।—प्राण०, पृ० ४६।

डोबा—संज्ञा पुं० [हिं० डुबाना] गोता। डुबकी।
मुहा०—डोब देना या भरना = डुबाना। गोता देना। जैसे, कपड़े को रंग में डोबा देना, कलम को स्याही में डोबा देना।

डोभरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] ताजा महुआ।

डोम—संज्ञा पुं० [सं० डम, देशी डुंब, डोंब] [स्त्री० डोमिनी, डोमनी] १. अस्पृश्य नीच जाति जो पंजाब से लेकर बंगाल तक सारे उत्तरी भारत में पाई जाती है। उ०—यह देखो डोम लोगों ने सूखे गले सड़े फूलों की माला गंगा में से पकड़ पकड़कर देवी को पहिना दी है और कफन की ध्वजा लगा दी है।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० २६७।
विशेष—स्मृतियों में इस जाति का उल्लेख नहीं मिलता। केवल मत्स्यसूक्त तंत्र में डोमों को अस्पृश्य लिखा है। कुछ लोगों का मत है कि ये डोम बौद्ध हो गए थे और इस धर्म का संस्कार इनमें अब तक बाकी है। इसमें कोई संदेह नहीं कि किसी समय यह जाति प्रबल हो गई थी, और कई स्थान डोमों के अधिकार में आ गए थे। गोरखपुर के पास डोमनगढ़ का किला डोम राजाओं का बनवाया हुआ था। पर अब यह जाति प्रायः निकृष्ट कर्मों ही के द्वारा अपना निर्वाह करती है। श्मशान पर शव जलाने के लिये आग देना, शव के ऊपर का कफन लेना, सूप, डले आदि बेचना आजकल डोमों का काम है। पंजाब के डोम कुछ इनसे भिन्न होते हैं और जंगलों से फल और जड़ी बूटी लाकर बेचते हैं।
२. एक नीच जाति जो मंगल के अवसरों पर लोगों के यहाँ गाती बजाती है। ढाढी। मीरासी।

डोमकौआ—संज्ञा पुं० [हिं० डोम + कौआ] बड़ी जाति का कौआ जिसका सारा शरीर काला होता है। डोम काक या डोम काग नाम भी इसके हैं।

डोमड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० डोम + ड़ा (प्रत्य०)] दे० 'डोम'। उ०—श्मशान के डोमड़ों तक की नोकाएँ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ११३।

डोमतमौटा—संज्ञा पुं० [देश०] एक पहाड़ी जाति जो पीतल ताँबे आदि का काम करती है।

डोमनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० डोम] १. डोम जाति की स्त्री। २. डोम की स्त्री। ३. उस नीच जाति की स्त्री जो उत्सवों पर गाने बजाने का काम करती है। ये स्त्रियाँ गाने बजाने के अतिरिक्त कहीं कहीं वेश्यावृत्ति भी करती हैं।

डोमसाल—संज्ञा पुं० [हिं० डोम + साल] मँझोले आकार का एक प्रकार का वृक्ष जिसे गीदड़ रूख भी कहते हैं। वि० दे० 'गीदड़ रूख'।

डोमा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का साँप।

डोमाकाग(पु)—संज्ञा पुं० [सं० द्रोण + काक] दे० 'डोमकौआ'। उ०—भँवर पतंग जरैं औ नागा। कोइल, भुजइल, डोमाकागा।—जायसी ग्रं०, पृ० १६३।

डोमिन—संज्ञा स्त्री० [हिं० डोम] १. डोम जाति की स्त्री। २. मीरासियों की स्त्री। दे० 'डोमनी'[२]। उ०—नटिनी डोमिन ढाढ़िनी सहनायन परकार। निरतत नाद विनोद सों विहँसत खेलत नार।—जायसी (शब्द०)।

डोमीनियन—संज्ञा स्त्री० [अं०] १. स्वतंत्र शासन या सरकार। २. स्वतंत्र शासनवाला देश या साम्राज्य। जैसे, ब्रिटिश डोमीनियन। ३. उपनिवेश। अधिराज्य। उ०—पर भारत को सन् १६३५ के अधिनियम द्वारा डोमीनियन का दर्जा नहीं मिला था।—भारतीय०, पृ० २६।
यौ०—डोमीनियन स्टेट = अधिराज्य का दरजा। औपनिवेशिक राज्य का पद।

डोर—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. डोरा। तागा। धागा। रस्सी। सूत। उ०—डीठि डोर नैना दही, छिरकि रूप रस तोय। मथि मो घट प्रीतम लियो मन नवनीत बिलोय।—रसनिधि (शब्द०)। २. पतंग या गुड्डी उड़ाने का माँझेदार तागा। ३. सिलसिला। कतार। ४. अवलंब। सहारा। लगाव।
मुहा०—डोर पर लगाना = रास्ते पर लाना। प्रयोजनसिद्धि के अनुकूल करना। ढब पर लाना। प्रवृत्त करना। परचाना। डोर भरना = कपड़े के किनारे को कुछ मोड़कर उसके भीतर तागा भरकर सीना। फलीता लगाना। डोर मजबूत होना = जीवन का सूत्र दृढ़ होना। जिंदगी बाकी रहना। डोर होना = मुग्ध होना। मोहित होना। लट्टू होना। वि० दे० 'डोरी'।

डोरक—संज्ञा पुं० [सं०] डोरा। तागा। सूत्र। धागा।

डोरका‡—संज्ञा पुं० [देश०] धागे का कंकन, जो ब्याह में बँधता है और जिसे खोलकर वर वधू को जुधा खेलाने की रीति चलती है। उ०—खेले जुवा डोरका खोले. यह सुभ कारज सारिया। —रघु० रू०, पृ० ८७।

डोरना†—संज्ञा पुं० [हिं० डोर] दे० 'डोरा'। उ०—हरीचंद यह प्रेम डोरना को कैसे करि छूटै।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ४६२।

डोरही—संज्ञा स्त्री० [देश०] बड़ी कटाई। बड़ी भटकटैया।

डोरा[1]—संज्ञा पुं० [सं० डोरक] १. रूई, सन, रेशम आदि को बटकर बनाया हुआ ऐसा खंड जो चौड़ा या मोटा न हो, पर लंबाई में लकीर के समान दूर तक चला गया हो। सूत्र। सूत। तागा। धागा। जैसे, कपड़ा सीने का डोरा, माला गूँथने का डोरा। २. धारी। लकीर। जैसे,—कपड़ा हरा है, बीच बीच में लाल डोरे हैं।

क्रि० प्र०—पड़ना।—होना।

३. आँखों की बहुत महीन लाल नसें जो साधारण मनुष्यों की आँख में उस समय दिखाई पड़ती हैं जब वे नशे की उमंग में होते हैं या सोकर उठते हैं। जैसे,—आँखों में लाल डोरे कानों में बालियाँ। ४. तलवार की धार। उ०—डोरन में बाढ़े चीनी आछे आगे पाछे अति भारी।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २८७। ५. तपे घी की धार, जो दाल आदि में ऊपर से डालते समय बँध जाती है।

मुहा०—डोरा देना = तपा हुआ घी ऊपर से डालना।

६. एक प्रकार की करछी जिसकी डाँड़ी खड़े बल लगी रहती है और जिससे घी निकालते हैं या दूध आदि कड़ाह में चलाते हैं। परी। ७. स्नेहसूत्र। प्रेम का बंधन। लगन।

मुहा०—डोरा डालना = प्रेमसूत्र में बद्ध करना। प्रेम में फँसाना। अपनी ओर प्रवृत्त करना। परचाना। उ०—यह डोरे कहीं और डालिए, समझे आप।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १२५। डोरा लगना = स्नेह का बंधन होना। प्रीति संबंध होना।

८. वह वस्तु जिसका अनुसरण करने से किसी वस्तु का पता लगे। अनुसंधान सूत्र। सुराग। उ०—जुबति जोन्ह में मिलि गई नेकु न देत लखाय। सोंधे के डोरे लगी, अली चली सँग जाय।—बिहारी (शब्द०)। †९. काजल या सुरमे की रेखा। १०. नृत्य में कंठ की गति। नाचने में गरदन हिलाने का भाव।

डोरा[2]—संज्ञा पुं० [हिं० डौंड़] पोस्ते का डोड़। डोडा।

डोरिⓟ—संज्ञा स्त्री० [हिं० डोर] दे० 'डोरी'। उ०—ज्यौं कपि डोरि बाँधि बाजीगर कन कन कौं चौहटे नचायौ।—सूर०, १।३२६।

डोरिया[1]—संज्ञा पुं० [हिं० डोरा] १. एक प्रकार का सूती कपड़ा जिसमें कुछ मोटे सूत की लंबी धारियाँ बनी हों। २. एक प्रकार का बगला जिसके पैर हरे होते हैं। यह ऋतु के अनुसार रंग बदलता है। ३. जुलाहों के यहाँ तागा उठानेवाला लड़का। ४. एक नीच जाति जो राजाओं के यहाँ शिकारी कुत्तों की रक्षा पर नियुक्त रहती थी। ये लोग कुत्तों को शिकार पर सधाते थे।

डोरिया†ⓟ[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'डोरी'। उ०—सुरत सुहागिनि जल भरि लावै बिन रसरी बिन डोरिया।—धरम०, पृ० ३५।

डोरियाना‡—क्रि० स० [हिं० डोरी+आना (प्रत्य०)] पशुओं को रस्सी से बाँधकर ले चलना। बागडोर लगाकर घोड़ों को ले जाना। उ०—यवने भरत पयादेहि पाये। कोतल संग जाहि डोरियाये।—तुलसी (शब्द०)। २. परचाना। हिलगाना।

डोरिहारⓟ—संज्ञा पुं० [हिं० डोरी+हारा] [स्त्री० डोरिहारिन] पटवा।

डोरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० डोरा] १. कई डोरों या तागों को बटकर बनाया हुआ खंड जो लंबाई में दूर तक लकीर के रूप में चला गया हो। रस्सी। रज्जु। जैसे, पानी भरने की डोरी, पंखा खींचने की डोरी।

मुहा०—डोरी खींचना = सुध करके दूर से अपने पास बुलाना। पास बुलाने के लिये स्मरण करना। जैसे,—जब भगवती डोरी खींचेंगी तब जायेंगी (स्त्रि०)। डोरी लगना = (१) किसी के पास पहुँचने या उसे उपस्थित करने के लिये लगातार ध्यान बना रहना। जैसे,—अब तो घर की डोरी लगी हुई है। उ०—आरति अरज लेहु सुनि मोरी। चरनन लागि रहे दृढ़ डोरी।—जग० श०, पृ० ५८।

२. वह तागा जिसे कपड़े के किनारे को कुछ मोड़कर उसके भीतर डालकर सीते हैं।

क्रि० प्र०—भरना।

३. वह रस्सी जिसे राजा महाराजाओं या बादशाहों की सवारी के आगे आगे हद बाँधने के लिये सिपाही लेकर चलते हैं।

विशेष—यह रास्ता साफ रखने के लिये होता है जिसमें डोरी की हद के भीतर कोई आ न सके।

क्रि० प्र०—आना।—चलना।

४. बाँधने की डोरी। पाश। बंधन। उ०—मैं मेरी करि जनम गँवावत जब लगि परत न जम की डोरी।—सूर (शब्द०)।

मुहा०—डोरी टूटना = संबंध टूटना। उ०—का तकसीर भई प्रभु मोरी। काहे टूटि जाति है डोरी।—जग० श०, पृ० ९४। डोरी ढीली छोड़ना = देखरेख कम करना। चौकसी कम करना। जैसे,—जहाँ डोरी ढीली छोड़ी कि बच्चा बिगड़ा।

५. डाँड़ीदार कटोरा जिससे कड़ाह में दूध, चाशनी आदि चलाते हैं।

डोरेⓟ—क्रि० वि० [हिं० डोर] साथ पकड़े हुए। साथ साथ। संग संग। उ०—(क) मधुर निचोरे कल बोलत निहोरे नैक, सखिन के डोरे 'देव' डोले चित तित कों।—देव (शब्द)। (ख) बानर फिरत डोरे डोरे अंध तापसनि, शिव को समाज कैधौं ऋषि को सदन है।—केशव (शब्द०)।

डोल[1]—संज्ञा पुं० [सं० दोल (= झूलना, लटकाना)] १. लोहे का एक गोल बरतन जिसे कुएँ में लटकाकर पानी खींचते हैं।

२. हिंडोला। झूला। पालना। उ०—(क) सघन कुंज में डोल बनायो झूलत है पिय प्यारी।—सूर (शब्द०)। (ख) प्रभुहि चितै पुनि चितै महि, राजत लोचन लोल। खेलत मनसिज मीन जुग, जनु बिधि मंडल डोल।—तुलसी (शब्द०)।

यौ०—डोल उत्सव = दे० 'दोलोत्सव'। उ०—सो इतने ही उनको सुधि आई जो आजु तो डोल उत्सव को दिन है।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० २२९।

३. डोली। पालकी। शिविका। उ०—महा डोल दुलहिन के चारी। देहु बताय होहु उपकारी।—रघुराज (शब्द०)। † ४. धार्मिक उत्सवों में निकलनेवाली चौकियाँ या विमान। ५. जहाज का मस्तूल (लश०)।

क्रि० प्र०—खड़ा करना।

७. कंप। खलबली। हलचल। उ०—बादसाहु कहँ ऐस न बोलु। चढ़ै तो परै जगत महँ डोलु।—जायसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—पड़ना।

डोल²—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की काली मिट्टी जो बहुत उपजाऊ होती है।

डोल†³—वि० [हिं० डोलना] डोलनेवाला। चंचल। उ०—तुम बिनु काँपै धनि हिया, तन तिनउर भा डोल। तेहि पर बिरह जराइ कै, चहै उड़ावा झोल।—जायसी (शब्द०)।

डोलक—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का ताल देने का एक प्रकार का बाजा।

डोलची—संज्ञा स्त्री० [हिं० डोल + ची (प्रत्य०)] १. छोटा डोल। २. फूल या फल आदि रखकर हाथ में लटकाकर ले चलने योग्य बाँस, बेंत आदि का पात्र।

डोलडाल—संज्ञा पुं० [देश०] १. चलना फिरना। २. दिशा के लिये जाना। पाखाने जाना।

क्रि० प्र०—करना।

डोलढाक—संज्ञा पुं० [हिं० ढाक ?] पँगरा नाम का वृक्ष जिसकी लकड़ी के तख्ते बनते हैं। वि० दे० 'पँगरा'।

डोलदहल—संज्ञा पुं० [हिं०] हलचल। उ०—डोलदहल क्षणभंगुर है, मत व्यर्थ डरो। सौ बार उजड़ने पर भी है दुनिया बसती।—सुत०, पृ० ४८।

डोलना¹—क्रि० अ० [सं० दोलन (= लटकना, हिलना)] १. हिलना। चलायमान होना। गति में होना। २. चलना। फिरना। टहलना। जैसे,—चौपाए चारों ओर डोल रहे हैं। उ०—(क) भक्तविरह कातर करुनामय, डोलत पाछें लागे।—सूर०, १।८। (ख) जाहि बन कैसो न डोल रे। ताहि बन पिया हुदि बोल रे।—विद्यापति०, पृ० ३१९।

यौ०—डोलना फिरना = चलना घूमना।

३. चला जाना। हटना। दूर होना। जैसे,—वह ऐसा अकड़कर माँगता है कि डुलाने से नहीं डोलता। ४. (चित्त) विचलित होना। (चित्त का) दृढ़ न रह जाना। (चित्त का) किसी बात पर) जमा न रहना। डिगना। उ०—(क) मर्म बचन जब सीता बोला। हरि प्रेरित लछिमन मन डोला।—तुलसी (शब्द)। (ख) बटु करि कोटि कुतर्क जथारुचि बोलइ। अचल सुता मनु अचल बयारि कि डोलइ?—तुलसी (शब्द०)।

डोलना²—संज्ञा पुं० [सं० दोलन] दे० 'डोला'।

डोलनिⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं० डोलना] डोलने की स्थिति या कार्य। उ०—वैसिऐ हँसनि, चहनि पुनि बोलनि। वैसिऐ लटकनि, मटकनि, डोलनि।—नंद० ग्रं०, २६५।

डोलरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० डोल + री (प्रत्य०)] पलँग। खाट। झोली।

डोला—संज्ञा पुं० [सं० दोल] [स्त्री० अल्पा० डोली] १. स्त्रियों के बैठने की वह बंद सवारी जिसे कहार कंधों पर लेकर चलते हैं। पालकी। मियाना। शिविका।

मुहा०—(किसी का) डोला भेजना = दे० 'डोला देना' उ०—डोला भेजि दीबे कौन माँगत दिल्ली को पति, मोलहून कहत सीस मेरी सीस जब रे।—हम्मीर०, पृ० २०। डोला माँगना = ब्याह के लिये कन्या माँगना। उ०—मुसलमानों द्वारा डोला की माँग को अस्वीकार करने पर उनपर आक्रमण किया गया तथा उनका किला जीत लिया गया।—सं० दरिया (भू०), पृ० १०। (किसी का) डोला (किसी के) सिर पर या चौड़े पर उछलना = किसी दूसरी स्त्री का संबंध या प्रेम किसी स्त्री के पति के साथ होना। डोला देना = (१) किसी राजा या सरदार को भेंट की तरह पर अपनी बेटी देना। (२) शूद्रों और नीची जातियों में प्रचलित एक प्रथा। अपनी बेटी को वर के घर पर ले जाकर ब्याहना। डोला निकालना = दुलहिन को बिदा करना। डोला लेना = भेंट में कन्या लेना।

२. वह झोंका जो झूले में दिया जाता है। पेंग।

डोलाना—क्रि० स० [हिं० डोलना] १. हिलाना। चलाना। गति में रखना। जैसे, पंखा डोलना।

संयो० क्रि०—देना।

२. हटाना। दूर करना। भगाना।

डोलायंत्र—संज्ञा पुं० [सं० दोलायंत्र] दे० 'दोलायंत्र'।

डोलियाⓅ†—संज्ञा स्त्री० [हिं० डोली] डोली। पालकी। उ०—छोट मोट डोलिया चंदन के, छोटे चार कहार हो।—धरम०, पृ० ६२।

डोलियाना—क्रि० स० [हिं० डोलना] १. किसी वस्तु को चुपके से हटा देना। किसी चीज को गायब कर देना। २. दे० 'डोली करना'।

डोली—संज्ञा स्त्री० [हिं० डोला] स्त्रियों के बैठने की एक सवारी जिसे कहार कंधों पर उठाकर ले चलते हैं। पालकी। शिविका। उ०—पाँच चाँपासर की डोली के बाबत जो हाल महकमे बंदोबस्त से मिला उसकी नकल आपकी सेवा में भेजता हूँ।—सुंदर ग्रं० (भू०), भा० १, पृ० ७५।

डोली करना—क्रि० स० [हिं० डोलना] चलता बनाना। हटाना। टालना।—(दलाल)।

डोली डंडा—संज्ञा पुं० [हिं०] बालकों का एक खेल।

डोडू—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. रेवंद चीनी ।

विशेष—इसका पेड़ हिमालय के काँगड़ा, नेपाल, सिक्किम आदि प्रदेशों के जंगल में होता है। वहाँ से इसकी जड़, जो पीली पीली होती है, नीचे की ओर भेजी जाती है और बाजारों में बिकती है। पर, गुण में यह चीन की रेवंद (रेवंद चीनी), खुतन की रेवंद (रेवंद खताई) या विलायती रेवंद के समान नहीं होती। इसे पदमचल और चुकरी भी कहते हैं।

२. एक प्रकार का बाँस ।

विशेष—यह बाँस पूर्वी बंगाल, आसाम और भूटान से लेकर बरमा तक होता है। इसकी दो जातियाँ होती हैं—एक छोटी, दूसरी बड़ी। यह चोंगे और छाते बनाने के काम में अधिकतर आती है। टोकरे और पान रखने के डब्बे भी इससे बनते हैं।

डोलोत्सव—संज्ञा पुं० [सं० दोलोत्सव] दे० 'दोलोत्सव'। उ०—तब श्री गुसाईं जी या वैष्णव सों कहे, जो अब श्री तुम डोलोत्सव कौन ठौर कौन प्रकार करयो ?—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० २११ ।

डोसा†—संज्ञा पुं० [देश०] उड़द या चावल को पीसकर खमीर उठने पर बनाया जानेवाला चिलड़ा या उलटा।

डोहरा†—संज्ञा पुं० [देश०] काठ का एक प्रकार का बरतन जिससे कोल्हू से गिरा हुआ रस निकाला जाता है।

डोहली—संज्ञा स्त्री० [हिं० डोली, मध्यगम डोहली (जैसे, भंवहर = भंवर] दे० 'डोली'। उ०—मीराँ गयी डोहली माँहे। ठाकुर पर्या तणो बल साहे।—रा० रू०, पृ० ३३५।

डोहि(पु), **डोही**—संज्ञा स्त्री० [हिं० डोई] दे० 'डोई'। उ०—छलनी चलनी डोहि और करछी बहु करछा।—सूदन (शब्द०)।

डोहोलना(पु)‡—क्रि० स० [देश०, तुल० हिं० टोहना] अन्वेषण करना। ढूंढ़ना। खोजना। उ०—मन सींचाणउ जइ हुवइ पाँखाँ हुवइ त आय। आइ मिलीजइ साजणाँ डोहोजइ महिराण।—ढोला०, पृ० २११।

डौंगा(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] डोंगा। नाव। उ०—बसके पहार भार प्रगट्यौ पहार जल डोंगरनि डौंगा चले समय सुझाने हैं। रसरतन, पृ० १०।

डौंडाना†—क्रि० अ० [हिं० डाँवाडोल] डाँवाडोल रहना। विचलित होना। घबराना।

डौंड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० डिण्डिम] १. एक प्रकार का ढोल जिसे बजाकर किसी बात की घोषणा की जाती है। ढिंढोरा। डुगडुगिया। उ०—चित डौंड़ी दुधि फेरी आवै। मन दुनो के भीड़ उठावै।—हिंदी प्रेम०, पृ० २७४।

क्रि० प्र०—पीटना। —बजना। —बजाना।

मुहा०—डौंड़ी देना = (१) ढोल बजाकर सर्वसाधारण को सूचित करना। मुनादी करना। (२) सब किसी से कहते फिरना। डौंड़ी बजना = (१) घोषणा होना। (२) दुहाई फिरना। जय जयकार होना। चलती होना। उ०—लौंड़ी के घर डौंड़ी बाजी मोको निपट अजानो।—सूर (शब्द०)।

२. वह सूचना जो सर्वसाधारण को ढोल बजाकर दी जाय। घोषणा। मुनादी।

क्रि० प्र०—फिरना।—फेरना। उ०—तब ब्रज के गामन डौंड़ी फेरी।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० १००।

डौंरा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की घास जो खेतों में पैदा हो जाती है। इसमें साँवाँ की तरह दाने पड़ते हैं जो खाने में कड़ुए होते हैं।

डौंरु(पु), **डौंरू**—संज्ञा पुं० [सं० डमरु] दे० 'डमरू'। उ०—नील पाट परोइ मणिगण फणिग धोखे जाइ। खुनखुनाकरि हँसत मोहन नचत डौंरु बजाइ।—सूर (शब्द०)।

डौआ—संज्ञा पुं० [देश०] काठ का चमचा। काठ की डाँड़ी की बड़ी करछी। उ०—लकड़ी डौआ करछुली सरस काजु अनुहारि। सुप्रभु संग्रहंहि परिहरहिं सेवक सखा बिचारि।—तुलसी (शब्द०)।

डौका, डौकी†—संज्ञा स्त्री० [देश०] पंडुक पक्षी। पंडुकी। उ०—अभिसारिकाओं की नौका ऐसी प्रगल्भ मानो डौका।—श्यामा० पृ० ३१।

डौर¹—संज्ञा पुं० [हिं० डौल] डौल। ढंग। प्रकार। उ०—(क) औरै डौर औरन पै औरन के वै गए।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १६१। (ख) पदमाकर चाँदनी चंदहु के कछु और ही डौरन वै गए हैं।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २०६।

डौर(पु)²—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'डोर' उ०—गुडनी डौर सुरति के धोरे मेरा मुभ्भ मिलाही।—राम० धर्म०, पृ० ३७५।

डौरु, डौरू(पु)—संज्ञा पुं० [सं० डमरु] दे० 'डमरू'। उ०—(क) कहु नज्जियं डौरु रुद्रं समारी।—प० रासो पृ० १७७। (ख) बजी डक्क डौरू डमंक तडक्के। धकै मेरु धुज्जै हके गेन हुक्के।—पृ० रा० १।३६०।

डौल¹—संज्ञा पुं० [हिं० डौल ?] किसी रचना का प्रारंभिक रूप। ढाँचा। आकार। ढड्ढा। ठाट। ठट्टर।

क्रि० प्र०—खड़ा करना।

मुहा०—डौल डालना = ढाँचा खड़ा करना। रचना का प्रारंभ करना। बनाने में हाथ लगाना। लग्गा लगाना। डौल पर लाना = काट छाँटकर सुडौल बनाना। दुरुस्त करना।

२. बनावट का ढंग। रचना। प्रकार। ढब। जैसे,—इसी डौल का एक गिलास मेरे लिये भी बना दो।

मुहा०—डौल से लगाना = ठीक क्रम से रखना। इस प्रकार रखना जिससे देखने में अच्छा लगे।

३. तरह। प्रकार। भाँति। किस्म। तौर। तरीका। ४. अभिप्राय के साधन की युक्ति। उपाय। तदबीर। ब्योंत। आयोजन। सामान। उ०—कबीर राम सुमिरिए क्यों फिरे और की डौल।—कबीर मं०, पृ० ३६५।

यौ०—डौलडाल।

मुहा०—डौल पर लाना = अभिप्रायसाधन के अनुकूल करना। ऐसा करना जिससे कोई मतलब निकल सके। इस प्रकार

प्रवृत्त करना जिससे कुछ प्रयोजन सिद्ध हो सके। डौल बाँधना = दे० 'डौल लगाना'। डौल लगाना = उपाय करना। युक्ति बैठाना। जैसे,—कहीं से सौ रुपए १००) का डौल लगाओ।

५. रंग ढंग। लक्षण। आयोजन। सामान। जैसे,—पानी बरसने का कुछ डौल नहीं दिखाई देता। ६. बंदोबस्त में जमा का तखमीना। तखमीना।

डौल²—संज्ञा स्त्री० खेतों की मेड़। डाँड़।

डौलडाल—संज्ञा पुं० [हिं० डौल] उपाय। प्रयत्न। युक्ति। व्योंत।

डौलदार—वि० [हिं० डौल + फ़ा० दार (प्रत्य०)] सुडौल। सुंदर। खूबसूरत।

डौलना†—क्रि० स० [हिं० डौल] गढ़ना। किसी वस्तु को काट छाँट या पीट पाटकर किसी ढाँचे पर लाना। दुरुस्त करना।

डौला†—संज्ञा पुं० [देश०] हाथ का गट्टा। उ०—(क) नब्बन की बाँह के डौले में गोली लगी थी। —फूलो०, पृ० ११। (ख) करि हिकमत रहकला बनाई। डौले तले से धरी कलाई।—प्राण०, पृ० २२।

डौलियाना†—क्रि० स० [हिं० डौल] १. ढंग पर लाना। कह सुनकर अपनी प्रयोजन सिद्धि के अनुकूल करना। काट छाँट-कर किसी ठीक आकार का बनाना। गढ़कर दुरुस्त करना।

डौवर—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की चिड़िया जिसके पर, छाती और पीठ सफेद, दुम काली और चोंच लाल होती है।

डौवा—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'डोआ'।

ड्यंभकⓅ†—संज्ञा पुं० [सं० डिम्भक] दे० 'डिंभक'। उ०—मेष बिबर्जित भीख बिबर्जित, बिबर्जित ड्यंभक रूप। कहै कबीर तिहूँ लोक बिबर्जित, ऐसा तत्त अनूप।—कबीर ग्रं०, पृ० १६३।

ड्यूक—संज्ञा पुं० [अं०] [स्त्री० डचेज] १. इंगलैंड, फ्रांस, इटली आदि देशों के सामंतों और भूम्यधिकारियों की वंशपरंपरागत उपाधि। इंगलैंड के सामंतों और भूम्यधिकारियों को दी जानेवाली सर्वोच्च उपाधि जिसका दर्जा प्रिंस के नीचे है। जैसे, कनाट के ड्यूक, विंडसर के ड्यूक।

विशेष—जैसे हमारे देश में सामंत राजाओं तथा बड़े बड़े जमीदारों को सरकार से महाराजाधिराज, महाराजा, राजाबहादुर, राजा आदि उपाधियाँ मिलती हैं, उसी प्रकार इंगलैंड में सामंतों तथा बड़े बड़े जमीदारों को ड्यूक, मार्क्विस, अर्ल, वाइकौंट, बैरन आदि की उपाधियाँ मिलती हैं। ये उपाधियाँ वंशपरंपरा के लिये होती हैं। उपाधि पानेवाले के मरने पर उसका ज्येष्ठ पुत्र या उत्तराधिकारी उपाधि का भी अधिकारी होता है। इस प्रकार अधिकारी क्रम से उस वंश में उपाधि बनी रहती है। अब यह भी नियम हो गया है कि जिसे सरकार चाहे केवल जीवन भर के लिये यह उपाधि प्रदान करे। मार्क्विस, अर्ल, वाइकौंट और बैरन उपाधिधारी लार्ड कहलाते हैं। मार्क्विस, बैरन आदि उपाधियाँ जापान में भी प्रचलित हो गई हैं।

२. सामंत। सरदार। राजा।

ड्यूटी—संज्ञा स्त्री० [अं०] १. करने योग्य कार्य। कर्तव्य। धर्म। फर्ज। जैसे,—स्वयंसेवकों ने बड़ी तत्परता से अपनी ड्यूटी पूरी की। २. वह काम जो सुपुर्द किया गया हो। सेवा। खिदमत। पहरा। जैसे,—(क) स्वयंसेवक अपनी ड्यूटी पर थे। (ख) कल सबेरे वहाँ उसकी ड्यूटी थी। ३. नौकरी का काम। जैसे,—वह अपनी ड्यूटी पर चला गया। ४. कर। चुंगी। महसूल। जैसे,—सरकार ने नमक पर ड्यूटी कम नहीं की।

ड्योढ़ा¹—वि० [हिं० डेढ़] [स्त्री० ड्योढ़ी] आधा और अधिक। किसी पदार्थ से उसका आधा और ज्यादा। डेढ़गुना।

यौ०—ड्योढ़ी गाँठ = एक पूरी और उसके ऊपर दूसरी आधी गाँठ। डेढ़गाँठ। मुद्दी।

ड्योढ़ा²—संज्ञा पुं० १. ऐसा तंग रास्ता जिसके एक किनारे पर ढाल या गड्ढा हो।—(पालकी के कहार)। २. गाने में वह स्वर जो साधारण से कुछ ऊँचा हो। ३. एक प्रकार का पहाड़ा जिसमें क्रम से अंकों की डेढ़गुनी संख्या बतलाई जाती है।

ड्योढ़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० देहली] १. द्वार के पास की भूमि। वह स्थान जहाँ से होकर किसी घर के भीतर प्रवेश करते हैं। चौखट। दरवाजा। फाटक। २. वह स्थान जो पटे हुए फाटक के नीचे पड़ता है या वह बाहरी कोठरी जो किसी बड़े मकान में घुसने के पहले ही पड़ती है। उ०—महरी ने दरोगा साहब को ड्योढ़ी पर जगाया। —फिसाना०, भा० ३, पृ० २४। ३. दरवाजे में घुसते ही पड़नेवाला बाहरी कमरा। पौरी। पँवरी।

यौ०—ड्योढ़ीदार। ड्योढ़ीवान।

मुहा०—(किसी की) ड्योढ़ी खुलना = दरबार में आने की इजाजत मिलना। आने जाने की आज्ञा मिलना। (किसी की) ड्योढ़ी बंद होना = किसी राजा या रईस के यहाँ आने जाने की मनाही होना। आने जाने का निषेध होना। ड्योढ़ी लगना = द्वार पर द्वारपाल बैठना जो बिना आज्ञा पाए लोगों को भीतर नहीं जाने देता। ड्योढ़ी पर होना = दरवाजे पर या अधीनता में होना। नौकरी में होना। उ०—बन्नो : हुजूर, हमने यह बात किसी रईस के घर में आजतक देखी ही नहीं। यहाँ चाहे बढ़ बढ़ के जो बातें बनाएँ, किसी और की ड्योढ़ी पर होती तो बड़े बड़े निकलवा दी जाती। —सैर कु०, पृ० १२।

ड्योढ़ी—[हिं० डेढ़] डेढ़गुनी। दे० ड्योढ़ा।

ड्योढ़ीदार—संज्ञा पुं० [हिं० ड्योढ़ी + फ़ा० दार] दे० 'ड्योढ़ीवान'।

ड्योढ़ीवान—संज्ञा पुं० [हिं० ड्योढ़ी] ड्योढ़ी पर रहनेवाला सिपाही या पहरेदार। द्वारपाल। दरबान उ०—जहाँ न ड्योढ़ीवान पायजामा तन धारे।—श्रीधर पाठक (शब्द०)।

ड्योढ़, ड्योढ़ा—संज्ञा पुं० [हिं० डेढ़] [वि० स्त्री० ड्योढ़ी] १. एक और आधा अधिक। उ०—वह जिसके न, दून ड्योढ़, पौन। जो वेदों में है सत्य, साम।—आराधना, पृ० २०।

ड्योढ़ी†—संज्ञा पुं० [हिं० ड्योढ़िया] द्वारपाल। ड्योढ़ीदार। दरबान। उ०—मोमा ड्योढ़ी प्रीत सवाई।—रा० रू०, पृ० ३१५।

ड्रम—संज्ञा पुं० [अं०] १. एक प्रकार का अँगरेजी बाजा। ढोल। नगाड़ा। २. ढोल जैसे आकार का बड़ा पात्र या पीपा।

ड्राइंग—संज्ञा स्त्री० [अं०] रेखाओं के द्वारा अनेक प्रकार की आकृति बनाने की कला। लकीरों से चित्र या आकृति बनाने की विद्या।

ड्राइंगरूम—संज्ञा पुं० [अं०] बैठने का कमरा। जिस कमरे में आनेवालों को बैठाया जाय। उ०—उनके लिये ड्राइंगरूम बनाकर सजाना पड़ता है।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ७७।

ड्राइवर—संज्ञा पुं० [अं०] गाड़ी हाँकने या चलानेवाला। जैसे, रेल का ड्राइवर।

ड्राई प्रिंटिंग—संज्ञा स्त्री० [अं०] सूखी छपाई। छापेखाने में वह छपाई जो भिगोए हुए सूखे कागज पर की जाती है।

विशेष—इस प्रकार की छपाई से कागज की चमक नहीं जाती है और छपाई साफ होती है।

ड्रान—वि० [अं०] बराबर। हारजीतशून्य। उ०—बाजी ड्रान रही।—गोदान, पृ० १३२।

ड्राप—संज्ञा पुं० [अं०] १. बूँद। बिंदु। २. दे० 'ड्राप सीन'।

ड्राप सीन—संज्ञा पुं० [अं०] १. नाट्यशाला या थिएटर के रंगमंच के आगे का परदा जो नाटक का एक अंक पूरा होने पर गिराया जाता है। यवनिका।

ड्राफ्ट—संज्ञा पुं० [अं०] १. मसविदा। मसौदा। खर्रा। जैसे,—अपील का ड्राफ्ट तैयार कर कमिटी में भेज दिया गया। २. चेक। हुंडी।

ड्राफ्ट्समैन—संज्ञा पुं० [अं०] नक्शा बनानेवाला। स्थूल मानचित्र प्रस्तुत करनेवाला। जैसे,—ड्राफ्ट्समैन ने मकान का नक्शा इंजीनियर के पास भेजा।

ड्राम—संज्ञा पुं० [अं०] पानी आदि द्रव पदार्थों को नापने का एक अंग्रेजी मान जो तीन माशे के बराबर होता है।

ड्रामा—संज्ञा पुं० [अं०] १. रंगमंच पर पात्रों या नटों का आकृति, हाव भाव, वचन आदि द्वारा किसी घटना या दृश्य का प्रदर्शन। रंगमंच पर किसी घटना या घटनाओं का प्रदर्शन। अभिनय। २. वह रचना जिसमें मानव जीवन का चित्र अंकों और गर्भांकों आदि में चित्रित हो। नाटक।

ड्रिंक—संज्ञा पुं० [अं०] मद्यपान। उ०—कैलाश ने कहा पहले ड्रिंक चले, फिर खाना मँगाया जायगा।—संन्यासी, पृ० १४०।

ड्रिल—संज्ञा स्त्री० [अं०] बहुत से सिपाहियों या लड़कों को कई प्रकार के क्रम से खड़े होने, चलने, अंग हिलाने आदि की नियमित शिक्षा। कवायद। जैसे,—स्कूल में ड्रिल नहीं होती।

यौ०—ड्रिल मास्टर = कवायद सिखानेवाला शिक्षक।

ड्रेटनाट—संज्ञा पुं० [अं०] जंगी जहाज का एक भेद जो साधारण जंगी जहाजों से बहुत अधिक बड़ा, शक्तिशाली और भीषण होता है।

ड्रेन—संज्ञा पुं० [अं०] नगर के गंदे पानी के निकास का परनाला। मोरी। गंदगी के बहाववाली नाली।

ड्रेस—संज्ञा पुं० [अं०] पोशाक। वेशभूषा।

ड्रेस करना—क्रि० स० [अं० ड्रेस + हिं० करना] घाव में दवा आदि भरकर बाँधना। मरहम पट्टी करना। पत्थर आदि को चिकना और सुडौल करना। ३. बाल छाँटना।

ड्रैगून—संज्ञा पुं० [अं०] १. सवार। सिपाही।

विशेष—पहले ड्रैगून पैदल और सवार दोनों का काम देते थे। पर अब वे सवार ही होते हैं।

२. रिसाले का नौकर। ३. क्रूर या उद्दंड व्यक्ति। जंगली आदमी। ४. पंखदार साँप। सपक्ष नाग।

ढ

ढ—हिंदी वर्णमाला का चौदहवाँ व्यंजन और टवर्ग का चौथा अक्षर। इसका उच्चारण स्थान मूर्धा है।

ढंक—संज्ञा पुं० [सं० आषाढक, हिं० ढाक] पलाश या छिउल की एक किस्म। उ०—जरी जो धरती ठाँवहि ठाँवाँ। ढंक परास जरे तेहि ठाँवाँ।—पदमावत, पृ० १७।

ढंकनी—संज्ञा पुं० [प्रा० ढंकण, हिं० ढकना] दे० 'ढक्कन'।

ढंकनाⓅ—क्रि० स० [सं० छादय, प्रा० धा० ढक्क, ढंक] दे० 'ढकना'। उ०—(क) विपरत केस पुरुष नहिं अंकिय। प्रथीराज देखत सिर ढंकिय।—पृ० रा०, ६१। ७१४। (ख) समझि दासि सिर वर तिन ढंक्यो।—पृ० रा०, ६१। ७१६।

ढंकीⓅ†—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढंकना] ढकना। आच्छादन। उ०—बेद कतेब न खाँणी बाँणी। सब ढंकी तलि आणी।—गोरख०, पृ० २।

ढंखⓅ†—संज्ञा पुं० [हिं० ढाक] पलाश। ढाक। उ०—बरुनी बान अस ओपी बेधी रन बन ढंख। सउजहि तन सब रोवाँ पंखिहि तन सब पंख।—जायसी (शब्द०)।

ढंग—संज्ञा पुं० [सं० तङ्ग, तङ्गन (= चाल, गति ?)] १. क्रिया। प्रणाली। शैली। ढब। रीति। तौर। तरीका। जैसे,—(क) बोलने चालने का ढंग, बैठने उठने का ढंग। (ख) जिस ढंग से तुम काम करते हो वह बहुत अच्छा है। २. प्रकार। भाँति। तरह। किस्म। ३. रचना। प्रकार। बनावट। गढ़न। ढाँचा। जैसे,—वह गिलास और ही ढंग का है। ४.

अभिप्रायसाधन का मार्ग। युक्ति। उपाय। तदबीर। डौल। जैसे,—कोई ढंग ऐसा निकालो जिसमें रुपया मिल जाय।

क्रि० प्र०—करना।—निकालना।—बताना।

मुहा०—ढंग पर चढ़ना = अभिप्रायसाधन के अनुकूल होना। किसी का इस प्रकार प्रवृत्त होना जिससे (दूसरे का) कुछ अर्थ सिद्ध हो। जैसे,—उससे भी कुछ रुपया लेना चाहता हूँ, पर वह ढंग पर नहीं चढ़ता है। ढंग पर लाना = अभिप्राय साधन के अनुकूल करना। किसी को इस प्रकार प्रवृत्त करना जिससे कुछ मतलब निकले। ढंग का = कार्यकुशल। व्यवहार-दक्ष। चतुर। जैसे,—वह बड़े ढंग का आदमी है।

५. चाल ढाल। आचरण। व्यवहार। जैसे,—यह मार खाने का ढंग है।

मुहा०—ढंग बरतना = शिष्टाचार दिखाना। दिखाऊ व्यवहार करना।

६. धोखा देने की युक्ति। बहाना। हीला। पाखंड। जैसे,—यह तुम्हारा ढंग है।

क्रि० प्र०—रचना।

७. ऐसी बात जिससे किसी होनेवाली बात का अनुमान हो। लक्षण। आसार। जैसे,—रंग ढंग अच्छा नहीं दिखाई देता। ८. दशा। अवस्था। स्थिति। उ०—नैनन को ढंग सों अनंग पिचकारिन ते, गातन को रंग पीरे पातन तें जानबी।—पद्माकर (शब्द०)।

ढंगउजाड़—संज्ञा पुं० [हिं० ढंग + उजाड़] घोड़ों के दुम के नीचे की एक भौरी जो ऐबों में समझी जाती है।

ढंगी—वि० [हिं० ढंग] चालबाज। चतुर। चालाक।

ढंडस—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ढँढरच'। उ०—ढंडस कर मन ते दूर, सिर पर साहब सदा हुजूर।—गुलाल०, पृ० १३७।

ढंढार—वि० [देश०] बड़ा ढड्ढा। बहुत बड़ा और बेढंग।

ढंढेरा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ढिंढोरा'। उ०—ता पाछे राजा जेमलजी ने सगरे ग्राम में ढंढेरा पिटाइ दियो।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० २५७।

ढंढोलना(पु)—क्रि० स० [प्रा० ढंढुल्ल, ढंढोल(= खोजना)] दे० 'ढँढोरना'। उ०—प्रह फूटी दिसि पुंडरी हुणहुणिया हय थट्ट। ढोलइ धण ढंढोलियउ, शीतल सुंदर घट्ट।—ढोला०, दू० ६०२।

ढँकन‡—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ढकना', 'ढक्कन'।

ढँकना¹—क्रि० स० [हिं०] दे० 'ढकना'।

ढँकना²—संज्ञा पुं० [हिं०] [स्त्री० ढँकनी] दे० 'ढकना'।

ढँकुली†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ढँकली'।

ढँग(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० ढंग] अभिप्राय साधने का उपाय। डौल। दे० 'ढंग'। उ०—वाही के जैए बलाय लौं, बालम! हैं तुम्हे नीकी बतावति ही ढँग।—देव (शब्द०)।

ढँगलाना†—क्रि० स० [हिं० ढाल] लुढ़काना।

ढँगियाना‡—वि० [हिं० ढंग + इया (प्रत्य०)] दे० 'ढंगी'।

ढँढरच—संज्ञा पुं० [हिं० ढंग + रचना] धोखा देने का आयोजन। पाखंड। बहाना। हीला।

ढँढोर—संज्ञा पुं० [अनु० धायँ धायँ] १. आग की लपट। ज्वाला। लौ। उ०—(क) रहै प्रेम मन उरझा लटा। बिरह ढँढोर परहि सिर जटा।—जायसी (शब्द०)।(ख) कंथा जरै अगिनि जनु लाए। बिरह ढँढोर जरत न जराए।—जायसी (शब्द०) २. काले मुँह का बंदर। लंगूर।

ढँढोरची—संज्ञा पुं० [हिं० ढँढोर + फ़ा० ची (प्रत्य०)] ढंढोरा फेरनेवाला। मुनादी फेरनेवाला। उ०—लेकिन ब्रूस्की और मोरावियन धर्मप्रचारकों से ढँढोरची मुक्ति सैनिकों की तुलना नहीं की जा सकती।—किन्नर०, पृ० ६४।

ढँढोरना†—क्रि० स० [हिं० ढूँढना] टटोलकर ढूँढना। हाथ डालकर इधर उधर खोजना। उ०—(क) तेरे लाल मेरो माखन खायो। दुपहर दिवस जानि घर सूनो ढूँढ़ि ढँढोरि आपही आयो।—सूर (शब्द०)। (ख) बेद पुरान भागवत गीता चारों बरन ढँढोरी—कबीर० श०, भा० १, पृ० ८५।

ढँढोरा—संज्ञा पुं० [अनु० ढम+ढोल] १. घोषणा करने का ढोल। डुगडुगी। डौंडी।

मुहा०—ढँढोरा पीटना = ढोल बजाकर चारों ओर जताना। मुनादी करना।

२. वह घोषणा जो ढोल बजाकर की जाय। मुनादी।

मुहा०—ढँढोरा फेरना = दे० 'ढंढोरा पीटना'।

ढँढोरिया—संज्ञा पुं० [हिं० ढँढोरा] ढंढोरा पीटनेवाला। डुगडुगी बजाकर घोषणा करनेवाला। मुनादी करनेवाला।

ढँढोलना†—क्रि० स० [हिं०] दे० 'ढंढोरना' उ०—रतन निराला पाइया, जगत ढंढोला बादि।—कबीर ग्रं०, पृ० १५।

ढँपना¹—क्रि० अ० [हिं० ढकना] किसी वस्तु के नीचे पड़कर दिखाई न देना। किसी वस्तु के ऊपर से छेंक लेने के कारण उसकी ओट में छिप जाना।

संयो० क्रि०—जाना।

ढँपना²—संज्ञा पुं० ढाकने की वस्तु। ढक्कन।

ढ—संज्ञा पुं० [सं०] १. बड़ा ढोल। २. कुत्ता। ३. कुत्ते की पूँछ। ४. ध्वनि। नाद। ५. साँप।

ढई देना—क्रि० अ० [हिं० धरना ?] किसी के यहाँ किसी काम से पहुँचना और जबतक काम न हो जाय तबतक न हटना। धरना देना।

ढकई¹—वि० [हिं० ढाका] ढाके का।

ढकई²—संज्ञा पुं० एक प्रकार का केला जो ढाके की ओर होता है।

ढकना¹—संज्ञा पुं० [सं० ढक् (=छिपाना)] [स्त्री० अल्पा० ढकनी] वह वस्तु जिसे ऊपर डाल देने या बैठा देने से नीचे की वस्तु छिप जाय या बंद हो जाय। ढक्कन। चपनी।

ढकना²—क्रि० अ० किसी वस्तु के नीचे पड़कर दिखाई न देना। छिपना। जैसे—मिठाई कपड़े से ढकी है।

संयो० क्रि०—जाना।

ढकना[2]—क्रि० स० दे० 'ढाँकना'।

ढकनियाँ‡—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ढकनी'। उ०—सुभग ढकनिया ढाँकि पट जतन राखि छींके समदायो।—सूर (शब्द०)।

ढकनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढकना] १ ढाँकने की वस्तु। ढक्कन। २. फूल के आकार का एक प्रकार का गोदना जो हथेली के पीछे की ओर गोदा जाता है।

ढकपन्ना—संज्ञा पुं० [हिं० ढाक+पन्ना (=पत्ता)] पलास पापड़ा।

ढकपेहरु—संज्ञा पुं० [देश०] एक चिड़िया का नाम।

ढकसा—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. सूखी खाँसी में गले से होनेवाला ढन ढन शब्द। २. सूखी खाँसी।

ढका[1]—संज्ञा पुं० [सं० आढक] तीन सेर की एक तौल या बाट।

ढका[2]—संज्ञा पुं० [अं० डाक] घाट। जहाज ठहरने का स्थान। (लश०)।

ढका(पु)[3]—संज्ञा पुं० [सं० ढक्का] बड़ा ढोल। उ०—नदति दुंदुभि ढका बदन मारु हका, चलत लागत धका कहत आगे।—सूदन (शब्द०)।

ढका[4]—संज्ञा पुं० [अनु०] धक्का। टक्कर। उ०—(क) ढकनि ढकेलि पेलि सचिव चले लै ठेलि नाथ न चलैगो बल अनल भयावनो।—तुलसी (शब्द०)। (ख) चढ़ि गढ मढ दृढ कोट के कंगूरे कोपि नेकु ढका देहैं ढेलन की ढेरी सी।—तुलसी (शब्द०)।

ढकिल(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढकेलना] एक दूसरे को ढकेलते हुए वेग के साथ धावा। चढ़ाई। आक्रमण। उ०—ढकिल करी सब ने अधिकाई। ओड़ी गुरु लोगन की धाई।—लाल कवि (शब्द०)।

ढकेलना—क्रि० स० [हिं० धक्का] १. धक्के से गिराना। ठेलकर आगे की ओर गिराना।

संयो० क्रि०—देना।

२. धक्के से हटाना। ठेलकर सरकाना। जैसे,—भीड़ को पीछे ढकेलो।

ढकेला ढकेली—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढकेलना] ठेलमठेला। आपस में धक्का धुक्की।

क्रि० प्र०—करना।

ढकोरना‡—क्रि० स० [अनु०] पी जाना। दे० 'ढकोसना'।

ढकोसना—क्रि० स० [अनु० ढक ढक] एकबारगी पीना। बहुत खानापीना। जैसे,—इतना दूध मत ढकोस लो कि कै हो जाय।

संयो० क्रि०—जाना। —लेना।

ढकोसला—संज्ञा पुं० [हिं० ढग+सं० कौशल] ऐसा आयोजन जिससे लोगों को धोखा हो। धोखा देने का या मतलब साधने का ढंग। आडंबर। मिथ्या जाल। कपट व्यवहार। पाखंड। उ०—इन ढकोसलों में क्या तथ्य है।—कंकाल, पृ० १०४। (ख) मगर यह इश्क सब ढकोसला ही ढकोसला है।—किसाना०, भा० १, पृ० ११।

क्रि० प्र०—करना। —फैलाना।

ढक्क—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक देश का नाम। (कदाचित् 'ढाका')। २. विशाल आराधना मंदिर। बड़ा मंदिर (को०)।

ढक्कन—संज्ञा पुं० [सं०] १. ढाँकने की वस्तु। वह वस्तु जिसे ऊपर से डाल देने या बैठा लेने से कोई वस्तु छिप जाय या बंद हो जाय। जैसे, डिबिया का ढक्कन, बरतन का ढक्कन। २. (दरवाजा आदि) बंद करना या ढक देना (को०)।

ढक्का[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक बड़ा ढोल। २. नगाड़ा। डंका। उ०—शंख भेरी पणव मुरज ढक्का बाद धनित। घंटा नाद विप विष गुंजरत।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ६०५। २. डमरू। ३. छिपाव। दुराव (को०)। ४. प्रदर्शन। लोप (को०)।

ढक्का(पु)†[2]—संज्ञा पुं० [अनु०] दे० 'ढका[4]'।

ढक्कारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] तांत्रिकों की उपासना में तारा देवी का एक नाम (को०)।

ढक्को—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढाल] पहाड़ की ढाल जिसमें होकर लोग चढ़ते उतरते हैं। —(पंजाब)।

ढगण—संज्ञा पुं० [सं०] पिंगल में एक मात्रिक गण जो तीन मात्राओं का होता है। इसके तीन भेद हो सकते हैं; यथा—ISI, SI, III इनमें से पहले की संज्ञा रस,... और ध्वजा, दूसरे की पवन, नंद, ग्वाल, ताल और तीसरे की वलय है।

ढचर—संज्ञा पुं० [हिं० ढाँचा] १. किसी वस्तु को बनाने या ठीक करने का सामान या ढाँचा। आयोजन और सामान।

क्रि० प्र०—फैलाना। बाँधना।

२. टंटा। बखेड़ा। जंजाल। धंधा। कारबार। ३. आडंबर। झूठा आयोजन। ढकोसला।

क्रि० प्र०—फैलाना।

४. बहुत दुबला पतला और बूढ़ा।

ढटींगड़—संज्ञा पुं० [सं० दिङ्गर (=मोटा आदमी), हिं० धींग, धींगड़ा] १. बड़े डीलडौल का। ढींग। जैसे,—इतने बड़े ढटींगड़ हुए पर कुछ शऊर न हुआ। २. हृष्ट पुष्ट। मुस्टंडा। मोटा ताजा।

ढटींगड़ा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ढटींगड़'।

ढटींगर—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ढटींगड़'।

ढट्टा[1]—संज्ञा पुं० [हिं० ढाढ़ या देश०] वह साफी साफा या मुरेठा जो सिर के अतिरिक्त डाढ़ी और कानों को भी ढाँके हो।

ढट्टा[2]—संज्ञा पुं० [हिं० डाट] छेद या मुँह कसकर बंद करने की वस्तु। डाट। ठेपी। काग।

ढट्टी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० डाढ़] डाढ़ी बाँधने की पट्टी।

ढट्टी[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० डाट] किसी छेद को बंद करने की वस्तु। डाट। ठेंपी।

ढढ़काना(पु)—क्रि० स० [हिं०] आगे बढ़ाना। जोर लगाकर ठेलना। ढकेलना। उ०—गाड़ी थाकी माग में, बछड़न करी न पेश। अब गाड़ी ढढ़काय दे, धवल धंग हिरदेश।—शुक्ल अभि० ग्रं० (इति०), पृ० ८८।

ढड्ढा[1]—वि० [देश०] बहुत बड़ा। आवश्यकता से अधिक बड़ा। बड़ा और बेढंगा।

ढड्ढा²—संज्ञा पुं० [हिं० ठाट] १. ढाँचा । अंगों की वह स्थूल योजना जो किसी वस्तु की रचना के प्रारंभ में की जाती है ।

क्रि० प्र०—खड़ा करना ।

२. आडंबर । दिखावट का सामान । झूठा ठाट बाट ।

क्रि० प्र०—खड़ा करना ।

ढड्ढो—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढड्ढा] १. बुड्ढी स्त्री । वह बूढ़ी स्त्री जिसके शरीर में हड्डी का ढाँचा ही रह गया हो । २. बकवादिन स्त्री । ३. मटमैले रंग की एक चिड़िया जिसकी चोंच पीली होती है । यह बहुत लड़ती और चिल्लाती है । चरखी ।

मुहा०—ढड्ढो का ढड्ढोवाला = मूर्ख । बेवकूफ ।

ढढेसुरी†—संज्ञा पुं० [हिं० ठाढ + सं० ईश्वर] दे० 'ठाढेश्वरी' । उ०—कोउ बाँह को उठाय ढढेसुरी कहाइ, जाइ कोउ तो मथन कोउ नगन बिचार है ।—भीखा श०, पृ० ५५ ।

ढढ्ढर—संज्ञा पुं०[हिं०]शरीर । देह । टट्टर । उ०—चहुआन तुच्छ ढढ्ढर बहिय तुरिग मीर बिय सिर ढरयौ ।—पृ० रा०, १०।२७ ।

ढनढन—संज्ञा स्त्री० [अनु०] ढन ढन का शब्द ।

क्रि० प्र०—करना ।

ढनक†—संज्ञा स्त्री० [अनु०] ढोल, नगाड़ा, आदि बाजों की ध्वनि । उ०—पैंज रुपनि दुहुँ ओर चोप चुहुल चाचरि सोर ढोल ढनक घोष मंगल सुनत सफल होत कान ।—घनानंद, पृ० ४०४ ।

ढनमनाना†—क्रि० अ० [अनु०] लुढ़कना । ढुलकना । उ०—मुठिका एक महाकपि हनी । रुधिर बमत धरनी ढनमनी ।—तुलसी (शब्द०) ।

ढप†—संज्ञा पुं० [अ० दफ़, हिं० डफ] दे० 'डफ' ।

ढपना¹—संज्ञा पुं० [हिं० ढाँपना] ढाकने की वस्तु । ढक्कन ।

ढपना²—क्रि० अ० [हिं० ढकना] ढका होना । उ०—लसतु सेत सारी ढप्यो, तरल तरौना कान । परयौ मनौ सुरसरि सलिल रवि प्रतिबिंबु बिहान ।—बिहारी (शब्द०) ।

ढपना³—क्रि० स० [हिं० ढापना] ढाकना । ऊपर से ओढ़ाना । छिपाना ।

ढपरिया†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'दुपहरिया' । उ०—चार पहर पैंडा मों रगड़ो खरी ढपरिया पैहो ।—कबीर श०, भा० पृ० २२ ।

ढपरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढाँपना] चूड़ीवालों की अँगीठी का ढकना ।

ढपला‡—संज्ञा पुं० [अ० दफ़, हिं० डफ, ढप] दे० 'डफला' ।

ढपली†—संज्ञा स्त्री० [हिं० डफला] दे० 'डफली' ।

ढपील†—वि० [हिं० ढाँपना] आच्छादित करनेवाली । ढापनेवाली । उ०—यौवन के वर्णन स्मृति की उपमा भैंडे की काली, बोझिल, ढपील, ढाल से देना अनुचित प्रतीत होता है । —आधुनिक०, पृ० २३ ।

ढप्पू—वि० [देश०] बहुत बड़ा । ढड्ढा ।

ढफ‡—संज्ञा पुं० [हिं० डफ] दे० 'डफ' । उ०—रुंज मुरज ढफ ताल बाँसुरी, झालर की झंकार ।—सूर (शब्द०) ।

ढफला†—संज्ञा पुं० [हिं० डफला] [स्त्री० ढफली] दे० 'डफला' । उ०—ढमकंत ढोल ढफला अगार । धमकंत धरनि धौंसा फुंकार ।—सुजान०, पृ० ३८ ।

ढफार†—संज्ञा पुं० [अनु०] चिग्घाड़ । जोर से रोने या चिल्लाने का शब्द । डकार । उ०—तब याकूब मु छाड़ि ढफारा । कहि लाग का तोर बिगारा ।—हिंदी प्रेम०, पृ० २४५ ।

ढब—संज्ञा पुं०[सं० धव (= चलना, गति)या देश०] १. क्रियाप्रणाली । ढंग । रीति । तौर तरीका । जैसे, काम करने का ढब । उ०—ताकन को ढब नाहिं तकन की गति है न्यारी ।—पलटू०, पृ० ४४ । २. प्रकार । भाँति । तरह । किस्म । जैसे,—वह न जाने किस ढब का आदमी है । ३. रचना-प्रकार । बनावट । गढ़न । ढाँचा । जैसे,—वह गिलास और ही ढब का है । ४ अभिप्रायसाधन का मार्ग । युक्ति । उपाय । तदबीर । जैसे,—किसी ढब से रुपया निकालना चाहिए ।

मुहा० —ढब पर चढ़ना = अभिप्रायसाधन के अनुकूल होना । किसी का इस प्रकार प्रवृत्त होना जिससे (दूसरे का) कुछ अर्थ सिद्ध हो । किसी का ऐसी अवस्था में होना जिससे कुछ मतलब निकले । जैसे,—कहीं वह ढब पर चढ़ गया तो बहुत काम होगा । ढब पर लगाना या लाना = अभिप्रायसाधन के अनुकूल करना । किसी को इस प्रकार प्रवृत्त करना कि उससे कुछ अर्थ सिद्ध हो । अपने मतलब का बनाना ।

५. गुण और स्वभाव । प्रकृति । आदत । बान । टेव ।

मुहा०—ढब डालना = (१) आदत डालना । अभ्यस्त करना । (२) अच्छी आदत डालना । आचार व्यवहार की शिक्षा देना । शऊर सिखाना । ढब पड़ना = आदत होना । बान या टेव पड़ना ।

ढबका(ा)†—संज्ञा पुं० [हिं०] उपाय । युक्ति । उ०—चेतनि असवार ग्यांन गुरु करि और तजौ सब ढबका ।—गोरख०, पृ० १०३ ।

ढबरा†—वि० [हिं० डाबर] दे० 'ढाबर' ।

ढबरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढिबरी] मिट्टी का तेल जलाने की गुच्छी-दार डिबिया । ढिबरी । उ०—धुँआ अधिक देती है, टिन की ढबरी, कम करती उजियाला ।—ग्राम्या, पृ० ६५ ।

ढबीला†—वि० [हिं० ढब + ईला (प्रत्य०)] ढब का । ढबवाला । चालाक । चतुर ।

ढबुआ†¹—संज्ञा पुं० [देश०] खेतों के मचान के ऊपर का छप्पर ।

ढबुआ²—संज्ञा पुं० [देश०] १ एक प्रकार का ताँबे का अप्रचलित देसी सिक्का जिसकी चलन बंद कर दी गई है । २. पैसा ।

ढबैला—वि० [हिं० डाबर + एला (प्रत्य०)] मिट्टी और कीचड़ मिला हुआ (पानी) । मटमैला । गँदला ।

ढमक—संज्ञा स्त्री० [अनु०] ढम ढम शब्द ।

ढमकना—क्रि० अ० [अनु०] ढम ढम शब्द होना । ढम ढम की आवाज होना ।

ढमकाना—क्रि० स० [हिं० ढमकना] १. ढोल, नगाड़ा आदि वाद्य बजाना । २. ढम ढम शब्द उत्पन्न करना ।

ढमढम—संज्ञा पुं० [अनु०] ढोल का अथवा नगारे का शब्द ।

ढमलाना†¹—क्रि० अ० [देश०] लुढ़कना ।

ढमलाना²—क्रि० स० लुढ़काना ।

ढयना—क्रि० अ० [सं० ध्वंसन, हिं० ढहना] १. किसी दीवार, मकान आदि का गिरना। ध्वस्त होना। २. पस्त होना। शिथिल होना। उ०—ढीले से ढए से फिरत ऐसे कौन पै ढहे हो।—नंद० ग्रं०, पृ० ३२६।

प्रयो० क्रि०—जाना।—पड़ना।

मुहा०—ढय पड़ना = उतर पड़ना। सहसा आकर टिक जाना। एकबारगी आकर डेरा डाल देना (व्यंग्य)।

ढरकना†—क्रि० अ० [हिं० ढार या ढाल] १. पानी या और किसी द्रव पदार्थ का आधार से नीचे गिर पड़ना। ढलना। गिरकर बह जाना। उ०—वाके पानी पत्र न लागै ढरकि चलै जस पारा हो।—कबीर श०, भा० १, पृ० २७।

संयो० क्रि०—जाना।—पड़ना।

२. नीचे की ओर जाना। उ०—(क) सकल सनेह शिथिल रघुबर के। गए कोस दुइ दिनकर ढरके।—तुलसी (शब्द०)। (ख) परसत भोजन प्रातहि ते सब। रवि माथे ते ढरकि गयो अब।—सूर (शब्द०)।

मुहा०—दिन ढरकना = सूर्यास्त होना। दिन डूबना।

३. आराम करना। शय्या पर शयन करना। लेटना।

ढरका—संज्ञा पुं० [हिं० ढरकना] १. आँख का एक रोग जिसमें आँख से आँसू बहा करता है। २. आँख से अश्रु बहना।

क्रि० प्र०—लगना।

२. सिरे पर कलम की तरह छीली हुई बाँस की नली जिससे चौपायों के गले में दवा उतारते है। बाँस की नली से चौपायों के गले में दवा उतारने की क्रिया।

क्रि० प्र०—देना।

ढरकाना†—क्रि० स० [हिं० ढरकना] पानी या और किसी द्रव पदार्थ को आधार से नीचे गिराना। गिराकर बहाना। जैसे, पानी ढरकाना।

संयो० क्रि०—देना।

ढरकी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढरकना] जुलाहों का एक औजार जिससे वे लोग बाने का सूत फेंकते हैं। उ०—सबद ढरकी चलै नाहिं छीनै।—पलटू०, पृ० २५।

विशेष—ढरकी की आकृति करताल की सी होती है और यह भीतर से पोली रहती है। खाली स्थान में एक काँटे पर लपेटा हुआ सूत रक्खा रहता है। जब ढरकी को इधर से उधर फेंकते हैं तब उसमें से सूत खुलकर बाने में भरता जाता है। इसे भरनी भी कहते हैं।

यौ०—जुलाहे की ढरकी = अस्थिरमति आदमी। कभी इधर कभी उधर होनेवाला व्यक्ति।

ढरकीला—वि० [हिं० ढरकना + ईला (प्रत्य०)] बह जानेवाला। ढरक जानेवाला। उ०—रजनी के श्याम कपोलों पर ढरकीले श्रम के कन।—यामा, पृ० १६।

ढरनाⓅ—क्रि० अ० [हिं० ढलना] १. दे० 'ढलना'। २. बहना। प्रवाहित होना। उ०—(क) मलिन कुसुम तनु चीरे, करतल कमल नयन ढर नीरे।—विद्यापति, पृ० ५५४। (ख) ऊपर तैं दधि दूध, सीसन गागरि गन ढरै।—नंद० ग्रं०, पृ० ३३४।

ढरनिⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढरना] १. गिरने या पड़ने की क्रिया। पतन। उ०—सखी बचन सुनि कौसिला लखि सुंदर पासे ढरनि।—तुलसी (शब्द०)। २. हिलने डोलने की क्रिया। गति। स्पंदन। उ०—कठसिरी दुलरी हीरन की नासा मुक्ता ढरनि।—स्वामी हरिदास (शब्द०)। ३. चित्त की प्रवृत्ति। झुकाव। उ०—रिस औ रुचि हौं समुझि देखिहौं वाके मन की ढरनि, वाको भावती बात चलाय हौं।—सूर (शब्द०)। ४. किसी की दशा पर हृदय द्रवीभूत होने की क्रिया। दीन दशा दूर करने की स्वाभाविक प्रवृत्ति। स्वाभाविक करुणा। दयाशीलता। सहज कृपालुता। उ०—(क) राम नाम सो प्रतीत प्रीति राखे कबहुँक तुलसी ढरैंगे राम अपनी ढरनि।—तुलसी (शब्द०)। (ख) कृपासिंधु कोसल धनी सरनागत पालक ढरनि अपनी ढरिए।—तुलसी (शब्द०)।

ढरहरनाⓅ†—क्रि० अ० [हिं० ढरना] खसकना। सरकना। ढलना। झुकना। उ०—दीनदयाल गोपाल गोपपति गावत गुण आवत ढिग ढरहरि।—सूर (शब्द०)।

ढरहरा†—वि० [हिं० ढार + हार (प्रत्य०)] [स्त्री० ढरहरी] ढालुवाँ। ढालु।

ढरहरी[1]—संज्ञा स्त्री० [देश०] पकौड़ी। उ०—रायभोग लियो भात पसाई। मूँग ढरहरी हींग लगाई।—सूर (शब्द०)।

ढरहरी†[2]—वि० स्त्री० [हिं० ढरहरा] ढालु। ढालुवाँ।

ढराई†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ढलाई'।

ढराना†—क्रि० स० [हिं०] १. दे० 'ढलाना'। उ०—खैंचि खराद चढ़ाए नहीं न सुढार के ढारनि मध्य ढराए।—सरदार (शब्द०)। २. दे० 'ढरकाना'।

ढरारा—वि० [हिं० ढार] [वि०स्त्री० ढरारी] १. ढलनेवाला। ढरकनेवाला। गिरकर बह जानेवाला। २. लुढ़कनेवाला। थोड़े आघात से पृथ्वी पर आपसे आप सरकनेवाला। जैसे, गोली।

यौ०—ढरारा रवा = गहना बनाने में सोने चाँदी का वह गोल दाना जो जमीन पर रखने से लुढ़क जाय।

३. शीघ्र प्रवृत्त होनेवाला। झुक पड़नेवाला। आकर्षित होनेवाला। चलायमान होनेवाला। उ०—जोबन रग रँगीली, सोने से ढरारे नैना, कठपात मखतूली।—स्वामी हरिदास (शब्द०)।

ढरैया†—संज्ञा पुं० [हिं० ढारना] १. ढालनेवाला। २. ढलनेवाला। किसी ओर प्रवृत्त होनेवाला।

ढर्रा—संज्ञा पुं० [हिं० या देश०] १. मार्ग। रास्ता। पथ। २. किसी कार्य के निर्वाह की प्रणाली। शैली। ढंग। तरीका। ३. युक्ति। उपाय। तदबीर। जैसे,—कोई ढर्रा ऐसा निकालो जिसमें इन्हें भी कुछ लाभ हो जाय।

क्रि० प्र०—निकालना।

४. आचरणपद्धति। चाल चलन। जैसे,—यह लड़का बिगड़ रहा है, इसे अच्छे ढर्रे पर लगाओ।

ढलकना—क्रि० अ० [हिं० ढाल] १. पानी या और किसी द्रव पदार्थ का आधार से नीचे गिर पड़ना। ढलना।

संयो० क्रि०—जाना।

२. लुढ़कना। नीचे ऊपर चक्कर खाते हुए सरकना। ३. हिलना। उ०—कुंडल झलक ढलक सीसनि की।—पोद्दार अभि० ग्रं० पृ० ३८३।

ढलका—संज्ञा पुं० [हिं० ढलकना] आँख का एक रोग जिसमें आँख से बराबर पानी बहा करता है। ढरका।

ढलकाना—क्रि० स० [हिं० ढलकना] १. पानी या और किसी द्रव पदार्थ को आधार से नीचे गिराना। लुढ़काना।

संयो० क्रि०—देना।

ढलकी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ढरकी'।

ढलना—क्रि० अ० [हिं० ढाल] १. पानी या और किसी द्रव पदार्थ का नीचे की ओर सरक जाना। ढरकना। गिरकर बहना। जैसे, पत्ते पर की बूँद का ढलना। उ०—अधरन सुधा लेउँ सिगरो रस तनिको न जान देउँ इत उत ढरि।—स्वामी हरिदास (शब्द०)।

संयो० क्रि०—जाना।

मुहा०—जवानी ढलना = युवावस्था का जाता रहना। छाती ढलना = स्तनों का लटक जाना। जोबन ढलना = युवावस्था के चिह्नों का जाता रहना। जवानी का उतार होना। दिन ढलना = सूर्यास्त होना। संध्या होना। दिन ढले = संध्या को। शाम को। सूरज वा चाँद ढलना = सूर्य या चंद्रमा का अस्त होना।

२. बीतना। गुजरना। निकल जाना। उ०—काहे न प्रगट करो जदुपति सों दुसह दोष की अवधि गई ढरि।—सूर (शब्द०)। ३. पानी या और किसी द्रव पदार्थ का आधार से गिरना। पानी, रस आदि का एक बरतन से दूसरे बरतन में डाला जाना। उड़ेला जाना।

मुहा०—बोतल ढलना = खूब शराब पिया जाना। मद्य पिया जाना। शराब ढलना = मद्य पिया जाना।

४. लुढ़कना। ५. झुकना। अनुकूल होना। मान जाना। उ०—मुसलमान इसपर ढल भो गए।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २४५। ६. किसी सूत या डोरी के रूप की वस्तु का इधर से उधर हिलना। लहर खाकर इधर उधर डोलना। लहराना। जैसे, चँवर ढलना। ७. किसी ओर आकर्षित होना। प्रवृत्त होना।

संयो० क्रि०—पड़ना।

८. अनुकूल होना। प्रसन्न होना। रीझना। उ०—देत न अघात, रीझि जात पात आक ही के, भोलानाथ जोगी जब औढर ढरत है।—तुलसी (शब्द०)।

संयो० क्रि०—जाना।

९. पिघली या गली हुई सामग्री से साँचे के द्वारा बनना। साँचे में ढालकर बनाया जाना। ढाला जाना। जैसे, खिलौने ढलना, बरतन ढलना।

मुहा०—साँचे में ढला हुआ = बहुत सुंदर और सुडौल।

ढलमल—वि० [अनु०] १. श्रांत। शिथिल। २. अस्थिर। चंचल। कभी इधर कभी उधर होना।

ढलवाँ—वि० [हिं० ढालना] जो पिघली हुई धातु आदि को साँचे में ढालकर बनाया गया हो। जैसे, ढलवाँ बरतन।

ढलवाइक†—संज्ञा पुं० [सं० ढाल + वाहक] ढालवाले सिपाही। ढाल धारण करनेवाले सैनिक। ढलैत। उ०—कोटि धनुद्धर आवथि पायक। लक्ख संख चलिअउँ ढलवाइक।—कीर्ति०, पृ० ८८।

ढलवाना—क्रि० स० [हिं० ढालना का प्रे० रूप] ढालने का काम कराना।

ढलाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढालना] १. साँचे में ढालकर बरतन आदि बनाने का काम। ढालने का काम। २. ढालने की मजदूरी।

ढलान¹—वि० [हिं० ढाल] दे० 'ढालवाँ'

ढलान²—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढालना] ढालने का काम। ढलाई।

ढलाना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'ढलवाना'। उ०—नाम अगर पूछे कोई तो कहना बस पीनेवाला। काम, ढालना और ढलाना, सबको मदिरा का प्याला।—मधुबाला, पृ० ८४।

ढलुवाँ—वि० [हिं०] १. दे० 'ढलवाँ'। २, दे० 'ढालवाँ'।

ढलैत—संज्ञा पुं० [हिं० ढाल] ढाल बाँधनेवाला। सिपाही।

ढलैया†—संज्ञा पुं० [हिं० ढालना] धातु आदि को ढालनेवाला कारीगर।

ढवका†—संज्ञा पुं० [देश० ?] धोखा। उ०—हूँढे चौपड़ि दुख मिलि जाई। ढवका तब काहे को खाई।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० २२२।

ढवरी(पु)—[देश०] धुन। ढोरी। लौ। लगन। रट। दे० 'ढोरी'। उ०—सूरदास गोपी बड़ भागी। हरि दरसन की ढवरी लागी।—सूर (शब्द०)।

ढसक—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. ठन ठन शब्द जो सूखी खाँसी में गले से निकलता है। २. सूखी खाँसी जिसमें गले से ठन ठन शब्द निकलता है।

ढहना—क्रि० अ० [सं० ध्वंसन या वह] १. दीवार, मकान आदि का गिर पड़ना। ध्वस्त होना।

संयो० क्रि०—जाना।

२. नष्ट होना। मिट जाना। उ०—तुलसी रसातल को निकसि सलिल आयो, कोल कलमल्यो ढहि कमठ को बल गो।—तुलसी (शब्द०)।

ढहरना†—क्रि० अ० [हिं० ढार] १. लुढ़कना। गिरना। २. (किसी की ओर) गिरना झुकना या अनुकूल होना। उ०—ढोले से ढए से फिरत ऐसे कौन पै ढहे हो।—नंद० ग्रं०, पृ० ३५६।

ढहराना†—क्रि० स० [हिं० ढार] १. लुढ़काना। २. सूप के द्वारा में से गोल दाने की कंकड़ी, मिट्टी आदि को लुढ़काकर अलग करना। पछोरना। फटकना।

ढहरी†¹—संज्ञा स्त्री० [सं० देहली] डेहरी। देहली। दहलीज। उ०—सूर प्रभु कर सेज टेकत कबहु टेकत ढहरि।—सूर (शब्द०)।

ढहरी†²—संज्ञा स्त्री० [सं०] मिट्टी का बरतन। मटका। उ०—डगर न देत काहुहि फोरि डारत ढहरि।—सूर (शब्द०)।

ढहवाना—क्रि० स० [हिं० ढहाना का प्रे०रूप] ढहाने का काम करना । गिरवाना ।

ढहाना—क्रि० स० [सं० ध्वंसन या दह्] दीवार मकान आदि गिराना। ध्वस्त करना । उ० एक ही बान कों, पाषान को कोट सब हुतो चहुं ओर, सो दियो ढहाई । —सूर (शब्द०) ।

ढहावना(पु)†—क्रि० स० [हिं०] दे० 'ढहाना' । उ० —तोपै लई फेरि घालि मारी । मंदर मेरु ढहावन हारी ।—हम्मीर०, पृ० ३० ।

ढाँक—संज्ञा पुं० [देश०] १ कुश्ती के एक पेंच का नाम । २. पलाश । ढाक ।

ढाँकना—क्रि० स० [सं० ढक (= छिपाना)] १. किसी वस्तु को दूसरी वस्तु के इस प्रकार नीचे करना जिसमें वह दिखाई न दे या उसपर गर्द आदि न पड़े । ऊपर से कोई वस्तु फैला या डालकर (किसी वस्तु को) ओट में करना । कोई वस्तु ऊपर से डालकर छिपाना । जैसे,—(क) पानी का बरतन खुला मत छोड़ो, ढाँक दो । (ख) मिठाई को कपड़े से ढाँक दो ।

संयो० क्रि०—देना ।

२. इस प्रकार ऊपर तानना या फैलाना जिसमें कोई वस्तु नीचे छिप जाय । जैसे,—इसपर कपड़ा ढाँक दो ।

संयो० क्रि०—देना ।

ढाँखा†—संज्ञा पुं० [हिं० ढाक] दे० 'ढाक' । उ०—तरिवर झरहिं झरहिं बन ढाँखा । भई अनपत्त फूलि कर साखा ।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३५६ ।

ढाँगा†—वि० [देश०] दे० 'ढालुआँ' ।

ढाँच—संज्ञा पुं० [हिं० ढाँचा] दे० 'ढाँचा' ।

ढाँचा—संज्ञा पुं० [सं० देश० या हिं० ठाट] १. किसी वस्तु की रचना की प्रारंभिक अवस्था में स्थूल रूप से संयोजित अंगों की समष्टि । किसी चीज को बनाने के पहले परस्पर जोड़ जाड़कर बैठाए हुए उसके भिन्न भिन्न भाग जिनसे उस वस्तु का कुछ आकार खड़ा हो जाता है । ठाट । टट्टर । ढोल । जैसे,—अभी तो इस पालकी का ढाँचा खड़ा हुआ है, तख्ते आदि नहीं जड़े गए हैं ।

क्रि० प्र०—खड़ा करना । —बनाना ।

२. भिन्न भिन्न रूपों से परस्पर इस प्रकार जोड़े हुए लकड़ी आदि के बल्ले या छड़ कि उनके बीच में कोई वस्तु जमाई या जड़ी जा सके । जैसे, चौखटा, बिना बुनी चारपाई, कुरसी आदि । ३. पंजर । ठठरी । ४. चार लकड़ियों का बना हुआ वह खड़ा चौखटा जिसमें जुलाहे 'नचनी' लटकाते हैं । ५. रचनाप्रकार । गढ़न । बनावट । जैसे,—इस गिलास का ढाँचा बहुत अच्छा है । ६. प्रकार । भाँति । तरह । जैसे,—वह न जाने किस ढाँचे का आदमी है ।

ढाँढा†—वि० [देशी ढंढ (= निकम्मा । कपटी)] कपटी । तुच्छ । पशु । नीच । उ० रे ढाँटा बरि छोहड़ी मरइ करहारी काणि ।—ढोला० (परि०२), पृ० २६६ ।

ढाँपना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'ढाँकना' । उ०—श्यामा हू तन पुलकित पल्लव अगुरिन मुख निज ढाँपि ।—श्यामा०, पृ० १०७ ।

ढाँस—संज्ञा स्त्री० [अनु०] वह 'ठन ठन' शब्द जो सूखी खाँसी आने पर गले से निकलता है । ठसक ।

ढाँसना—क्रि० अ० [हिं० ढाँस] सूखी खाँसी खाँसना ।

ढाँसी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढाँस] सूखी खाँसी ।

ढाई[१]—वि० [सं० अर्द्धद्वितीय, प्रा० अड्ढाइय, हिं० अढ़ाई] दो और आधा । जो गिनती में दो से आधा अधिक हो । उ०—रूसी उनकी गुफ्तगू क्या समझते । वह अपनी कहते थे, यह अपने ढाई चावल गलाते थे ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० २४२ ।

मुहा०—ढाई घड़ी की आना = चटपट मौत आना । (स्त्रियों का कोसना) जैसे,—तुझे ढाई घड़ी की आवे । ढाई चुल्लू लहू पीना = मार डालना । कठिन दंड देना (क्रोधवाक्य) । जैसे,—तेरा ढाई चुल्लू लहू पीऊँ तब मुझे कल होगी । ढाई दिन की बादशाहत करना = (१) थोड़े दिनों के लिये खूब ऐश्वर्य भोगना । (२) दूल्हा बनना ।

ढाई[२]—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढाना] १. लड़कों का एक खेल जिसे वे कौड़ियों से खेलते हैं । इसमें कौड़ियों का समूह एक घेरे में रखकर उसे गोलियों से मारते हैं । २. वह कौड़ी जो इस खेल में रखी जाती है ।

ढाक[१]—संज्ञा पुं० [सं० आषाढक (= पलाश)] १. पलाश का पेड़ । छिउला । छीउल । उ०—आनंदघन ब्रजजीवन जेंवत हिलमिलि स्वार नोरि पात्नि ढाक ।—घनानंद, पृ० ४७३ ।

मुहा०—ढाक के तीन पात = सदा एक सा निर्धन । कभी भरा पूरा नहीं ।—(निर्धन मनुष्य के संबंध में बोलते हैं) । ढाक तले की फूहड़, महुए तले की सुघड़ = जिसके पास धन नहीं रहता वह निर्गुणी, और धनवाला सर्वगुणसंपन्न समझा जाता है ।

२. कुश्ती का एक पेंच । दे० 'ढाँक' । उ०—उस्ताद सम्हले रहते हैं । मगर जोर वे मनोहर के ऐसे दो तीन को करा सकते हैं । दस्ती, उतार, खोकान, पट, ढाक, कलाजंग, बिस्सो आदि दाँव चले और कटे ।—काले०, पृ० ४ ।

ढाक[२]—संज्ञा पुं० [सं० ढक्का] लड़ाई का बड़ा ढोल । उ०—गोमुख, ढाक, ढोल पणवानक । बाजत रव अति होत भयानक ।—सबल (शब्द०) ।

ढाकनी—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ढक्कन' ।

ढाकना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'ढाँकना' ।

ढाका—संज्ञा पुं० [सं० ढक्क] पुराने समय में महीन सूती कपड़ों के लिये प्रसिद्ध पूर्वी बंगाल का एक नगर । जैसे, ढाके की चद्दर, ढाके की मलमल ।

ढाकापाटन—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का फूलदार महीन कपड़ा ।

ढाकेवाल पटेल—संज्ञा पुं० [हिं० ढाक + पटेल (= पटी नाव)] एक प्रकार की पूरबी नाव जिसके ऊपर बराबर छप्पर छाया रहता है । छप्पर के नीचे बैठकर माँझी नाव खेते हैं ।

ढाटा—संज्ञा पुं० [हिं० डाढ़ी] १. कपड़े की वह पट्टी जिससे डाढ़ी बाँधी जाती है ।

क्रि० प्र०—बाँधना।

२. वह बड़ा साफा जिसका एक फेंट डाढ़ी और गाल से होता हुआ जाता है। ३. वह कपड़ा जिससे मुरदे का मुँह इसलिये बाँध देते हैं जिससे कफन सरकने से मुँह खुल न जाय।

ढाठा—संज्ञा पुं० [हिं० डाढ़ी] दे० 'ढाटा'। उ०—चारों ने खाना खाया और ढाठे बाँधा, बाँधकर तलवारें लटकाकर चले।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ४४।

ढाड़—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. चिग्घाड़। चीख। गरज (बाघ, सिंह आदि की)। दे० 'दहाड़'। २. चिल्लाहट।

मुहा०—ढाड़ मारना = चिल्लाकर रोना।

विशेष—दे० 'धाड़'।

ढाड़स†—संज्ञा पुं० [सं० दृढ] दे० 'ढाढ़स'।

ढाढी†—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'ढाढ़ी'। उ०—धुन किसी ढाढ़ी बच्चे से पूछिए। मैं धुन उन नहीं जानता।—फिसाना०, भा० १, पृ० २।

ढाढ़[1]—संज्ञा स्त्री० [देश० या हिं० धाड़] चिल्लाहट। उ०—क्यों भला काम लें न ढाढ़स से। क्यों लगे ढाढ़ मारकर रोने।—चुभते०, पृ० ५२।

ढाढ़(पु)†[2]—संज्ञा पुं० [अनु०] एक प्रकार का बाजा जिसे ढाढ़ी बजाते हैं। उ०—ढाढ़िनि मेरी नाचै गावै हौ हूँ ढाढ़ बजाऊँ।—सूर०, १०।३७।

ढाढ़ना†—क्रि० स० [हिं० डाढ़ना] दे० 'डाढना'। उ०—एक परे गाढ़े एक ढाढ़त ही काढ़े, एक देखत हैं ठाढ़े, कहैं पावक भयावनो।—तुलसी (शब्द०)।

ढाढ़स—संज्ञा पुं० [सं० दृढ़, प्रा० ढिढ] १. संकट, कठिनाई या विपत्ति के समय चित्त की स्थिरता। धैर्य। धीरज। शांति। आश्वासन। सांत्वना। तसल्ली। उ०—क्यों भला काम लें न ढाढ़स से। क्यों लगे ढाढ़ मारकर रोने।—चुभते०, पृ० ५२।

क्रि० प्र०—होना।

मुहा०—ढाढ़स देना या बाँधना = वचनों से दुखी चित्त को शांत करना। तसल्ली देना।

२. दृढ़ साहस। हिम्मत।

क्रि० प्र०—होना।

मुहा०—ढाढ़स बाँधना = साहस उत्पन्न करना। उत्साहित करना।

ढाढ़िन—संज्ञा संज्ञा [हिं० ढाढ़ी] ढाढ़ी की स्त्री। उ०—कृष्ण जनम सुनि अपने पति सों हँसि ढाढ़िन यों बोली जु।—नंद० ग्रं०, पृ० ३३६।

ढाढ़ी—संज्ञा पुं० [देश०] [स्त्री० ढाढ़िन] एक प्रकार के नीच गवैए जो जन्मोत्सव के अवसर पर लोगों के यहाँ जाकर बधाई आदि के गीत गाते हैं। उ०—ढाढ़ी और ढाढ़िनि गावैं हरि के ठाढ़े बजावैं हरषि असीस देत मस्तक नवाई कै।—सूर (शब्द०)।

ढाढ़ौन—संज्ञा पुं० [सं० डिण्डिमी] जल सिरिस का पेड़।

विशेष—यह पेड़ पानी के किनारे होता है और जंगली सिरिस से कुछ छोटा होता है। वैद्यक के अनुसार यह त्रिदोष, कफ, कुष्ट और बवासीर को दूर करता है।

ढाण†—संज्ञा स्त्री० [देश०] ऊँट की तेज चाल। गति। उ०—क्रम क्रम, ढोला पंथ कर, ढाण म चूके ढाल। आ मारू बीजी महल, आखइ झूठ एवाल।—ढोला०, दू० ४४०।

मुहा०—ढाण घालना = तेज चलाना। उ०—ऊँट ने चढ़ता ही ढाण नहीं घालणो।—ढोला० (परि० १), पृ० २५४।

ढाना—क्रि० स० [हिं० ढहना] १. दीवार, मकान आदि को गिराना। ऊँची उठी हुई वस्तु को तोड़ फोड़कर गिराना। ध्वस्त करना। उ०—जब मैं बनाकर प्रस्तुत करता हूँ तब वह आकर ढा जाता है।—कबीर मं०, पृ० ७६।

संयो० क्रि०—जाना।—देना।

२. गिराना। गिराकर जमीन पर डालना। जैसे, किसी को मारकर ढाना।

संयो० क्रि०—देना।

ढापना—क्रि० स० [देश०] दे० 'ढाँपना'।

ढाबर†—वि० [हिं० डाबर (= गड्ढा)] मिट्टी और कीचड़ मिला हुआ (पानी)। मटमैला। गँदला। उ०—भूमि परत भा ढाबर पानी। जनु जीवहि माया लपटानी।—तुलसी (शब्द०)।

ढाबा—संज्ञा पुं० [देश०] १. ओलती। २. जाल। ३. परछत्ती। ४. रोटी आदि की दुकान। वह दूकान जहाँ लोग दाम देकर भोजन करते हैं।

ढामक—संज्ञा पुं० [अनु०] ढोल नगारे आदि का शब्द। उ०—ढमकंत ढोल ढमाक ढकला तबल ढामक जोर।—सूदन (शब्द०)। ५. बाँस, मिट्टी आदि से बनी कच्ची छत।

ढामना—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का साँप।

ढामरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] हंसिनी। हंसी। मादा हंस [को०]।

ढार[1]—संज्ञा पु० [सं० धार या सं० अवधार, *प्रा० ओढार > ढार] १. वह स्थान जो बराबर क्रमशः नीचा होता गया हो और जिसपर से होकर कोई वस्तु नीचे फिसल या बह सके। उतार। उ०—सकुच सुरत आरंभ ही बिछुरी लाज लजाय। ढरकि ढार ढुरि ढिग भई ढीठ ढिठाई आय।—बिहारी (शब्द०)। २. पथ। मार्ग। प्रणाली। उ०—(क) सब हूँ पावें अपने ढार। मीत मिलन दुर्लभ संसार।—नंद० ग्रं०, पृ० २१६। (ख) ढेर ढार तेही ढरत, दूजे ढार ढरै न। क्यों हूँ आनन आन सों नैना लागत नैन।—बिहारी (शब्द०)। ३. प्रकार। ढाँचा। ढंग। रचना। बनावट। उ०—(क) दृग घरकौहैं अधखुले, देह थकौहैं ढार। सुरति सुखी सी देखियत, दुखित गरभ के भार।—बिहारी (शब्द०)। (ख) तिय को मुख सुंदर बन्यो, बिधि फेर्यो परगार। तिलन बीच को बिंदु है, गाल गोल इक ढार।—मुबारक (शब्द०)।

ढार²—संज्ञा स्त्री॰ १. ढाल के आकार का कान में पहनने का एक गहना। बिरिया। २. पछेली नामक गहना।

ढार³—संज्ञा स्त्री॰ [अनु॰] रोने का घोर शब्द। आर्तनाद। चिल्लाकर रोने की ध्वनि।

मुहा॰ ढार मारना या ढार मारकर रोना = आर्तनाद करना। चिल्ला चिल्लाकर रोना।

ढारना†—क्रि॰ स॰ [सं॰ धार, हिं॰ ढार+ना (प्रत्य॰)] १. पानी या और किसी द्रव पदार्थ को आधार से नीचे गिराना। गिराकर बहाना। उ॰—(क) ऊतरु देइ न, लेइ उसासू। नारि चरित करि ढारइ आँसू।—तुलसी (शब्द॰)। (ख) उरग नारि आई मई ठाढ़ी नैननि ढारति नीर।—सूर॰, १०।५७५। २. गिराना। ऊपर से छोड़ना। डालना। जैसे, पासा ढारना।

विशेष—दे॰ 'ढालना'।

३. चारो ओर घुमाना। डुलाना (चँवर के लिये) उ॰—रचि बिवान सो साजि सँवारा। चहुँ दिसि चँवर करहिं सब ढारा।—जायसी (शब्द॰)। ४ धातु आदि को गला कर साँचे के द्वारा तैयार करना। दे॰ 'ढालना'—६।

ढारस—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] दे॰ 'ढाढ़स'। उ॰—हुजूर दिल को जरा ढारस दीजिए। फिसाना॰, भा॰ ३, पृ॰ २७।

ढाल—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] तलवार, भाले आदि का वार रोकने का अस्त्र जो चमड़े, धातु आदि का बना हुआ थाली के आकार का गोल होता है। फरी। चर्म। आड। फलक।

विशेष—ढाल गैंड़े के पुट्ठे, कछुए की पीठ, धातु आदि कई चीजों की बनती है। जिस ओर इसे हाथ से पकड़ते हैं उधर यह गहरी और आगे की ओर उभरी हुई होती है। आगे की ओर इसमें ४-५ काँटे या मोटी फुलियाँ जड़ी होती हैं।

मुहा॰—ढाल बाँधना = ढाल हाथ मे लेना।

२. एक प्रकार बड़ा भंडा जो राजाओं की सवारी के साथ चलता है। उ॰—बैरख ढाल गगन गा छाई। चला कटक धरती न समाई।—जायसी ग्रं॰, पृ॰ २२४।

ढाल²—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ अवधार] १. वह स्थान जो आगे की ओर क्रमशः इस प्रकार बराबर नीचा होता गया हो कि उसपर पड़ी हुई वस्तु नीचे की ओर खिसक या लुढ़क या बह सके। उतार। जैसे,—(क) पानी ढाल की ओर बहेगा। (ख) वह पहाड़ की ढाल पर से फिसल गया। २. ढंग। प्रकार। तौर तरीका। उ॰—(क) सदा मति ज्ञान मे सु ऐसो एक ढाल है।—हनुमान (शब्द॰)। (ख) ढाल धरो सतसंग उबारा।—धरनी॰, पृ॰ ४१। † ३ उगाही। चंदा। बेहरी।—(पंजाब)।

ढालना—क्रि॰ स॰ [सं॰ धार] १. पानी या और किसी द्रव पदार्थ को गिराना। उँड़ेलना। जैसे,—(क) हाथ पर पानी ढाल दो। (ख) घड़े का पानी इस बरतन में ढाल दो। (ग) बोतल की शराब गिलास मे ढाल दो।

संयो॰ क्रि॰—देना।—लेना।

मुहा॰—बोतल ढालना = शराब पीना। मद्यपान करना।

२. शराब पीना। मद्यपान करना। मदिरा पीना। जैसे,—आजकल तो खूब ढालते हो। ३. बेचना। बिक्री करना (दलाल)। ४. थोड़े दाम पर माल निकालना। सस्ता बेंचना। लुटाना। ५. ताना छोड़ना। व्यंग्य बोलना। † ६. चंदा उतारना। उगाही करना।—(पंजाब)। ७. पिघली हुई धातु आदि को साँचे में ढालकर बनाना। पिघली हुई सामग्री से साँचे के द्वारा निर्मित करना। जैसे, लोटा ढालना, खिलौने ढालना। उ॰—कोउ ढालत गोली कोउ बुंदवन बैठि बनावत।—प्रेमघन॰, भा॰ १, पृ॰ २४।

संयो॰ क्रि॰—देना।—लेना।

ढालवाँ—वि॰ [हिं॰ ढाल] [वि॰ स्त्री॰ ढालवी] जो आगे की ओर क्रमशः इस प्रकार बराबर नीचा होता गया हो कि उसपर पड़ी हुई वस्तु जल्दी से लुढ़क, फिसल या बह सके। जिसमें ढाल हो। ढालदार। ढालू। जैसे,—यह रास्ता ढालवाँ है, सँभलकर चलना। उ॰—हाँ इसी ढालवे को जब, बस सहज उतर जावें हम। फिर संमुख तीर्थ मिलेगा, वह अति उज्वल पावनतम।—कामायनी, पृ॰ २७६। २. ढाला हुआ। साँचे के अनुरूप तैयार किया हुआ।

ढालिया—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ ढालना] फूल, पीतल, ताँबा, जस्ता इत्यादि पिघली धातुओं को साँचे मे ढालकर बरतन, गहने आदि बनानेवाला। भरिया। खुनिया। साँचिया।

ढाली—संज्ञा पुं॰ [सं॰ ढालिन्] ढाल से सुसज्ज योद्धा (को॰)।

ढालुआँ—वि॰ [हिं॰ ढालना] दे॰ 'ढालवाँ'।

ढालुवाँ—वि॰ [हिं॰ ढालना] दे॰ 'ढालवाँ'।

ढालू—वि॰ [हिं॰ ढाल] दे॰ 'ढालवाँ'।

ढावना†—क्रि॰ स॰ [देश॰] गिराना। ढाहना।

ढासा†—संज्ञा पुं॰ [सं॰ दस्यु] ठग। लुटेरा। डाकू। उ॰—बासर ढासनि के ढका, रजनी चहुँ दिसि चोर। संकर निज पुर राखिए, चितै सुलोचन कोर।—तुलसी ग्रं॰, पृ॰ १२२।

ढासना—संज्ञा पुं॰ [सं॰ √धा (= धारण करना) + आसन] १. वह ऊँची वस्तु जिसपर बैठने में पीठ या शरीर का ऊपरी भाग टिक सके। सहारा। टेक। उठँगन। उ॰—वह अलिंद की एक स्तंभ का ढासना लगाकर सो गया।—वै॰ न॰, पृ॰ २५४।

२. तकिया। शिरोपधान।

ढाहना†—क्रि॰ स॰ [सं॰ ध्वंसन] दीवार, मकान आदि को गिराना। ध्वस्त करना। ढाना। उ॰—(क) ढाहत भूपरूप तरु मूला। चली बिपति बारिधि अनुकूला।—तुलसी (शब्द॰)। (ख) वृक्ष वन काटि महलात ढाहन लग्यो नगर के द्वार दोनो गिराई।—सूर (शब्द॰)।

विशेष—दे॰ 'ढाना'।

ढाहा†—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ ढाहना] नदी का ऊँचा करारा।

ढिंगⓅ—अव्य॰ [हिं॰ ढिग] दे॰ 'ढिग'। उ॰—भरना भरै दसो दिस द्वारे, कस ढिग आवों साहेब तुम्हारे।—धरम॰ श॰, पृ॰ १६।

ढँगलाना[1]—क्रि० अ० [देश०] लुढ़कना। गिरना।

ढिगलाना‡[2]—क्रि० स० [पूर्वी रूप ढँगिलाना] ढहाना। लुढ़काना। गिराना। उ०—केहर हाथल घाव कर, कुंजर ढिगलो कीध।—बाँकी० ग्रं०, भा० १, पृ० १८।

ढिँढ†—संज्ञा पुं० [हिं० ढोंढी (=नाभि)] पेट। उदर। उ०—भरि ढिढ खाइन जनम गवाइन, काहु न आपु सँभार।—गुलाल०, पृ० १५।

ढिँढोरना—क्रि० स० [अनु०] १ मंथन करना। मथना। बिलोड़न करना। २ हाथ डालकर ढूँढ़ना। खोजना। तलाश करना। उ०—(क) क्यों बचिए भजिहूँ घनआनंद, बैठी रहैं घर पैठि ढिढोरत।—घनानंद (शब्द०)। (ख) भूलि गई माखन की चोरी खात रहे घर सकल ढिढोरी।—विश्राम (शब्द०)।

ढिँढोरा—संज्ञा पुं० [अनु० ढम+ओरा] १. वह ढोल जिसे बजाकर सर्वसाधारण को किसी बात की सूचना दी जाती है। घोषणा करने की भेरी। डुगडुगिया।

मुहा०—ढिंढोरा पीटना या बजाना=ढोल बजाकर किसी बात की सूचना सर्वसाधारण को देना। चारो ओर घोषित करना। मुनादी करना। उ०—खुदा जाने इन्सान क्या बातें करता है। तुम जाकर ढिंढोरा पिटवा दो।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १२७।

२. वह सूचना जो ढोल बजाकर सर्वसाधारण को दी जाय। घोषणा। मुनादी। उ०—जो मैं ऐसा जानती प्रीति किए दुख होय। नगर ढिंढोरा फेरती, प्रीति करो जनि कोय।—(प्रचलित)।

क्रि० प्र०—फेरना।

ढिए†—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'ढिग'। उ०—एकै हँसै हँसावै एकै। सहित प्रदाव जाति ढिए एकै।—हम्मीर०, पृ० ६।

ढिकचन—संज्ञा पुं० [देश०] गन्ने का एक भेद।

ढिकलना†—क्रि० अ० [हिं० ढकेलना] धक्के से आगे जाना। आगे होना। उ०—बिना बढ़े ही मैं आगे को जाने किस बल से ढिकला।—आर्द्रा, पृ० ५४।

ढिकुली—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ढेकुली'।

ढिग[1]—क्रि० वि० [सं० दिक् (=ओर)] पास। समीप। निकट। नजदीक। उ०—मुरली धुनि सुनि सबै ग्वालिनी हरि के ढिग चलि आई।—सूर (शब्द०)।

विशेष—यद्यपि यह संज्ञा शब्द है, तथापि, इसका प्रयोग सप्तमी विभक्ति का लोप करके प्राय: क्रि०वि० वत् ही होता है।

ढिग[2]—संज्ञा स्त्री० १. पास। सामीप्य। २. तट। किनारा। छोर। उ०—सेतुबंध ढिग चढि रघुराई। चितव कृपालु, सिंधु बहुताई।—तुलसी (शब्द०)। ३. कपड़े का किनारा। पाड़। कोर। हाशिया। उ०—(क) लाल ढिगन की सारी ताको पीत ओढ़निया कीनी।—सूर (शब्द०)। (ख) पट की ढिग कत ढाँपियत सोभित सुभग सुदेस। हद रद छद छबि देखियत सद रदछद की देख।—बिहारी (शब्द०)।

ढिटौना†—संज्ञा पुं० [हिं० ढोटा] दे० 'ढोटा'। उ०—रूपमती मन होत बिरागो, बाजबहादुर के नंद ढिटौना।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ३५६।

ढिठपन†—संज्ञा पुं० [हिं० ढीठ+पन (प्रत्य०)] धृष्टता। ढिठाई। उ०—न घर केस न कर ढिठपन। अलपे अलापे करहु तिथुबन।—विद्यापति, पृ० ४५३।

ढिठाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढीठ+आई (प्रत्य०)] गुरुजनों के समक्ष व्यवहार की अनुचित स्वच्छंदता। संकोच का अनुचित अभाव। धृष्टता। चपलता। गुस्ताखी। उ०—छमिहहिं सज्जन मोरि ढिठाई।—तुलसी (शब्द०)। २. लोकलज्जा का अभाव। निर्लज्जता। उ०—गोने की चूनरी वैसिय है, दुलही अबही से ढिठाई बगारी।—मति० ग्रं०, पृ० २६६।

क्रि० प्र०—बगारना=(१) धृष्टता करना। (२) निर्लज्जता करना।

३. अनुचित साहस।

ढिठोना‡—संज्ञा पुं० [हिं० ढोटा] पुत्र। उ०—डगर डगमगे डोलने, परी कौठि डहुकाय। निडर ढिठोना नंद के, डरे उठे बरराय।—ब्रज० ग्रं०, पृ० ५।

ढिपुनी†—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. फल या पत्ते के साथ लगा हुआ टहनी का पतला नरम भाग। २ किसी वस्तु के सिरे पर दाने की तरह उभरा हुआ भाग। ठोठी। ३. कुच का अग्रभाग। ढोंढ़ी। चूचुक।

ढिबरी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० डिब्बा] १. टीन, शीशे, या पकी मिट्टी की डिबिया या कुप्पी जिसके मुँह पर बत्ती लगाकर मिट्टी का तेल जलाते हैं। मिट्टी का तेल जलाने की गुच्छीदार डिबिया। २. बरतन के साँचे के पल्ले के तीन भागों में से सबसे नीचे का भाग। साँचे की पेंदी का भाग।

ढिबरी[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढपना] १. किसी कसे जानेवाले पेच के सिरे पर लगा हुआ लोहे का चौड़ा टुकड़ा जिससे पेच बाहर नहीं निकलता। २. चमड़े या मूँज की वह चकती जो चरखे में इसलिये लगाई जाती है जिसमें तकला न घिसे।

ढिबुआ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ढेबुआ'। उ०—गछत गछत जब आगे आवा। बित उनमान ढिबुवा इक पावा।—कबीर ग्रं०, पृ० २३७।

ढिमका, ढिमाका—सर्व० [हिं० अमका का अनु०] [स्त्री० ढिमकी] अमुक। अमका। फलाँ। फलाना।

यौ०—फलाना ढिमका=अमुक अमुक मनुष्य। ऐसा ऐसा आदमी।

ढिलड़‡—वि० [हिं० ढीला] दे० 'ढीला'। उ०—जन रैदास कहै बनजरिया तेरे ढिलड़े परे परान बे।—रै० बानी, पृ० २७।

ढिलढिल—वि० [हिं० ढीला] दे० 'ढिलढिला'।

ढिलढिला—वि० [हिं० ढीला] १. ढीला ढाला। २. (रस आदि) जो गाढ़ा न हो। पानी की तरह पतला।

ढिलाई[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढीला] १. ढीला होने का भाव। कसा न रहने का भाव। २. शिथिलता। सुस्ती। आलस्य। किसी

कार्य के करने में अनुचित विलंब। जैसे,—तुम्हारी ही ढिलाई से यह काम पिछड़ा है।

ढिलाई[२]—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ ढीलना] ढीलने की क्रिया या भाव। ढीला करने का काम।

ढिलाना[१]—क्रि॰ स॰ [हिं॰ ढीलना का प्रे॰रूप] १. ढीलने का काम कराना। २. ढीला कराना।

ढिलानापु†[२]—क्रि॰ स॰ १. ढीला करना। २. कसी या बँधी हुई वस्तु को खोलना। उ॰—असु स्वामी जब उठे प्रभाता। बैलन बँधे लखे सुखदाता। खेती हित लै गए ढिलाई। भेद न जान्यो गए चोराई।—रघुराज (शब्द॰)।

ढिल्लड़—वि॰ [हिं॰ ढीला] १. ढील करनेवाला। मट्ठर। सुस्त।

ढिल्लीपु—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ ढीला] दिल्ली का एक पुराना नाम।

ढिल्लीवैपु—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ ढिल्ली + वै = (पति)] दिल्ली का नरेश। दिल्लीपति।

ढिल्लेसपु—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ ढिल्ली + ईस] दिल्ली का राजा।

ढिसरनापु†—क्रि॰ अ॰ [सं॰ ध्वंसन] १. फिसल पड़ना। सरक पड़ना। २. प्रवृत्त होना। झुकना। उ॰—उक्ति युक्ति सब तबहीं बिसरै। जब पंडित पढ़ि तिय पै ढिसरै।—निश्चल (शब्द॰)। ३. फलों का कुछ कुछ पकना।

ढीँकू†—संज्ञा स्त्री॰ [देश॰] दे॰ 'ढेंकुली'। उ॰—ल्यौ की लेज, पवन का ढींकू, मन मटका ज बनाया। सत की पाटि, सुरत का चाठा, सहजि नीर मुकलाया।—कबीर ग्रं॰, पृ॰ १६१।

ढीँगर†—संज्ञा पुं॰ [सं॰ डिङ्गर] १. बड़े डील डौल का आदमी। मोटा मुस्टंडा आदमी। २. पति या उपपति। उ॰—कह कबीर ये हरि के काज। जोइया के ढींगर कौन है लाज।—कबीर (शब्द॰)।

•**ढीँढ़**—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] दे॰ 'ढींढ़ा'।

ढीँढस—संज्ञा पुं॰ [सं॰ टिण्डिश] डिंडसी नाम की तरकारी। टिंडा।

ढीँढा†—संज्ञा पुं॰ [सं॰ ढुण्ढि (= लंबोदर, गणेश)] १. बड़ा पेट। निकला हुआ पेट।

मुहा॰—ढीँढा फूलना = पेट में बच्चा होने के कारण पेट निकलना २. गर्भ। हमल।

मुहा॰—ढींढा गिराना = गर्भपात करना।

ढीगेपु†—क्रि॰ वि॰ [हिं॰] दे॰ 'ढिग'।

ढीकुलीपु†—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰] दे॰ 'ढेंकली'। उ॰—सुरति ढीकुली ले जल्यो, मन नित ढोलनहार। कँवल कुवाँ मैं प्रेम रस पीवै बारंबार।—कबीर ग्रं॰, पृ॰ १८।

ढीट—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ डीह या ढीह] दे॰ 'ढीह'।

ढीच† संज्ञा पुं॰ [देश॰] १. कूबड़। २. सफेद चील।

ढीट†—संज्ञा स्त्री॰ [देश॰] रेखा। लकीर। डँडीर। उ॰—रेख छाँड़ि जाऊँ तो डराऊँ लछिमन जी तें भीख बिनु दिए भीख मीच हौं न पावती। कोऊ मंदभागी यह राम के न आगे आयो, बरसन पावत हौं देत न सकावती। ढीट मेट देऊँ फिर ढीट ही मिलाय लेऊँ ह्वै है बात सोई भगवंत जू को भावती।—हनुमान (शब्द॰)।

ढीठ—वि॰ [सं॰ धृष्ट, प्रा॰ ढिट्ठ] १. वह जो गुरुजनों के सामने ऐसा काम करे जो अनुचित हो। बड़ों का संकोच या डर न रखनेवाला। बड़ों के सामने अनुचित स्वच्छंदता प्रकट करनेवाला। बेअदब। शोख। उ॰—बिनु पूछे कछु कहउँ गोसाईं। सेवक समय न ढीठ ढिठाई।—तुलसी (शब्द॰) २. किसी काम को करने में उसके परिणाम का भय न करनेवाला। ऐसे कामों में आगा पीछा न करनेवाला जिनसे लोगों का विरोध हो। अनुचित साहस करनेवाला। बिना डर का। उ॰—ऐसे ढीठ भए हैं कान्हा दधि गिराय मटकी सब फोरी।—सूर (शब्द॰)। ३. साहसी। हिम्मतवर। हियाववाला। किसी बात से जल्दी न डर जानेवाला।

ढीठतापु—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ धृष्टता] ढिठाई।

ढीठा†[१]—वि॰ [हिं॰ ढीठ] दे॰ 'ढीठ'।

ढीठा†[२]—संज्ञा पुं॰ [सं॰ धृष्ट] ढिठाई। धृष्टता।

ढीठ्योपु—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] दे॰ 'ढीठा'।

ढीड़‡—संज्ञा पुं॰ [देश॰] आँख का कीचड़। उ॰—मोहे मुख लार बहै आँखिन में ढीड़, राधि कान में, सिनक रेट भीतन में डार देति।—पोद्दार अभि॰ ग्रं॰, पृ॰ १६३।

ढीठिपन—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ ढीठ + पन (प्रत्य॰)] धृष्टता। ढिठाई। उ॰—तखनक ढीठिपन कहइ न जाय लाजे विमुखी धनि रहलि लजाय।—विद्यापति, पृ॰ ५२।

ढीम†—संज्ञा पुं॰ [देश॰] १. पत्थर का बड़ा टुकड़ा। पत्थर का ढोका। उ॰—सिला ढीम ढाहै, हला वीर वाहै। धड़ा धड्ढ सद्दं, भड़ा भड्ढ ह्वै हैं।—सूदन (शब्द॰)।

ढीमड़ोपु†—संज्ञा पुं॰ [देश॰] कूप। कुआँ।—(डिंगल)।

ढीमरपु—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ धीवर, या देश॰] १. धीमर या धीवर जाति की स्त्री। २. वह स्त्री जो जल आदि भरती है। उ॰—ढीमर वह छीमर पहिरि लूमर मदन मरेर। चितहि चुरावत पाहिकै बेंचत बेर सुरेर।—स॰ सप्तक, पृ॰ ३८१।

ढीमा—संज्ञा पुं॰ [देश॰] ढेला। ईंट पत्थर आदि का टुकड़ा। ढोंका।

ढील—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ ढीला] १. कार्य में उत्साह का अभाव। शिथिलता। अतत्परता। नामुस्तैदी। सुस्ती। अनुचित विलंब। जैसे,—इस काम में ढील करोगे तो ठीक न होगा। उ॰—ब्याह जोग रंभावती, बरस त्रयोदस माहिं। तातै वेगि बिवाहिजै कामु ढील को नाहिं।—रसरतन, पृ॰ ८७।

क्रि॰ प्र॰—करना।

मुहा॰—ढील देना = ध्यान न देना। दत्तचित्त न होना। बेपरवाही करना। उ॰—हुजूर तो गजब करते हैं, अब फरमाइए ढील किसकी है।—फिसाना॰, भा॰ ३, पृ॰ १२३।

२. बंधन को ढीला करने का भाव। डोरी को कड़ा या तना न रखने का भाव।

मुहा॰—ढील देना = (१) पतंग की डोर बढ़ाना जिससे वह

आगे बढ़ सके। (२) स्वच्छंदता देना। मनमाना करने का अवसर देना। वश में न रखना।

ढील†²—वि० दे० 'ढीला'।

ढील†³—संज्ञा पुं० [देश०] बालों का कीड़ा। जूँ।

ढीलना—क्रि० स० [हिं० ढीला] १. ढीला करना। कसा या तना हुआ न रखना। बंधन आदि की लंबाई बढ़ाना जिससे बँधी हुई वस्तु और आगे या इधर उधर बढ़ सके। जैसे, पतग की डोरी ढीलना, रास ढीलना।

संयो० क्रि०—देना।

२. बंधनमुक्त करना। छोड़ देना। उ०—तापै सुर बछरुवन ढीलत बन बन फिरत बहे।—सूर (शब्द०)। ३. (पकड़ी हुई रस्सी आदि को) इस प्रकार छोड़ना जिसमे वह आगे या नीचे की ओर बढ़ती जाय। डोरी आदि को बढ़ाना या डालना। जैसे, कुएँ में रस्सी ढीलना। ४. किसी गाढ़ी वस्तु को पतला करने के लिये उसमें पानी आदि डालना। ५. संभोग करना। प्रसंग करना। (बाजारू)। † ६. धारण करना। जैसे,—आज वे धोती ढीलकर निकले हैं।

ढीलम ढाला—वि० [हिं० ढीला + ढाला] जो ठोस न हो। शिथिल। उ०—ढीलमढाला फूला हुआ घास का गट्ठर।—आधुनिक०, पृ० १।

ढीला—वि० [सं० शिथिल, प्रा० सिठिल] १. जो कसा या तना हुआ न हो। जो सब ओर से खूब खिंचा न हो। (डोरी, रस्सी तागा आदि) जिसके ठहरे या बंधे हुए छोरों के बीच झोल हो। जैसे, लगाम ढीली करना, डोरी ढीली करना, चारपाई (की बुनावट) ढीली होना।

मुहा०—ढीली छोड़ना या देना = बंधन ढीला करना। अंकुश न रखना। मनमाना इधर उधर करने के लिये स्वच्छंद करना।

२. जो खूब कसकर पकड़ा हुआ न हो। जो अच्छी तरह जमा या बैठा न हो। जो दृढ़ता से बंधा या लगा हुआ न हो। जैसे, पेंच ढीला होना, जंगले की छड़ ढीली होना। ३. जो खूब कसकर पकड़े हुए न हो। जैसे, मुट्ठी ढीली करना, गाँठ ढीली होना, बंधन ढीला होना। ४. जिसमे किसी वस्तु को डालने से बहुत सा स्थान इधर उधर छूटा हो। जो किसी सामनेवाली चीज के हिसाब से बड़ा या चौड़ा हो। फर्राख। कुशादा। जैसे, ढीला जूता, ढीला अंगा, ढीला पायजामा। ५. जो कड़ा न हो। बहुत गीला। जिसमें जल का भाग अधिक हो गया हो। पनीला। जैसे, रसा ढीला करना, चाशनी ढीली करना। ६. जो अपने हठ पर अड़ा न रहे। प्रयत्न या संकल्प में शिथिल। जैसे,—ढीले मत पड़ना, बराबर अपने रुपए का तकाजा करते रहना।

क्रि० प्र०—पड़ना।

७. जिसके क्रोध आदि का वेग मंद पड़ गया हो। धीमा। शांत। नरम। जैसे,—जरा भी ढीले पड़े कि वह सिर पर चढ़ जायगा।

क्रि० प्र०—पड़ना।

८. मंद। सुस्त। धीमा। शिथिल। जैसे, उत्साह ढीला पड़ना।

मुहा०—ढीली आँख = मंद मंद दृष्टि। अधखुली आँख। रसपूर्ण या मदभरी चितवन। उ०—देहु लग्यो ढिग गेहपति तऊ नेहु निरबाहि। ढीली अँखियन ही इतै गई कनखियन चाहि।—बिहारी (शब्द०)।

९. मट्ठर। सुस्त। आलसी। काहिल। १०. जिसमें काम का वेग कम हो। नपुंसक।

ढीलापन—संज्ञा पुं० [हिं० ढीला + पन (प्रत्य०)] ढीला होने का भाव। शिथिलता।

ढीली¹—वि० स्त्री० [हिं० ढीला] दे० 'ढीला'।

ढीली†²—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढीला] दे० 'दिल्ली'। उ०—ढीली महल पुणि जोईयउ। जउमो छई मथुरी मंडण राय। बी० रासो, पृ० ८।

ढीह—संज्ञा पुं० [सं० दीर्घ, हिं० दीह] ऊँचा टीला। ढूह।

ढीहा—संज्ञा पुं० [हिं० ढीह] ढूह। ढीह। ढीला। उ०—सो नाग जी के वंश को तो उहाँ कोऊ हुतो नाहीं। और बरहू गिरयो परयो ढीहा होइ रह्यो।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० २६।

ढुंढा†—संज्ञा पुं० [हिं० ढूँढ़ना] धाई। उचक्का। ठग। लुटेरा। उ०—चोर ढुंढ बटपार अन्याई अपभारगी कहावै जे।—सूर (शब्द०)।

ढुंढन—संज्ञा पुं० [सं० ढुण्ढनम्] तलाश। खोज। पता लगाना [को०]।

ढुढपाणि(पु)—संज्ञा पुं० [सं० दण्डपाणि] १. शिव के एक गण का नाम। २. दण्डपाणि भैरव। उ०—पुनि काल भैरव ढुंढपाणिहि और सिगरे देव को।—कबीर (शब्द०)।

ढुंडपानि(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० ढुंढपाणि] दे० 'ढुंढपाणि'।

ढुंढा¹—संज्ञा स्त्री० [सं० ढुण्ढा] १. पुराण के अनुसार एक राक्षसी का नाम जो हिरण्यकशिपु की बहिन थी।

विशेष—इसको शिव से यह वर प्राप्त था कि अग्नि में न जलेगी। जब प्रह्लाद को मारने के अनेक उपाय करके हिरण्यकशिपु हार गया तब उसने ढुंढा को बुलाया। वह प्रह्लाद को लेकर आग मे बैठी। विष्णु भगवान् की कृपा से प्रह्लाद तो न जले, ढुंढा जलकर भस्म हो गई।

† २. भुने अन्न लाई आदि का चाशनी के साथ बना लड्डू।

ढुंढा†²—संज्ञा पुं० [सं० ढुण्ढन (= अन्वेषण, खोजना)] पृथ्वीराज रासो में वर्णित एक राक्षस। उ०—ढूँढ़ि ढूँढ़ि खाए नरनि तातैं ढुंढा नाम।—पृ० रा०, १। ५१७।

ढुंढाहर(पु)†—संज्ञा पुं० [देश०] जयपुर राज्य का एक पुराना नाम। उ०—आयो पत्र उताल सौं ताहि बाँचि ब्रजपस। सुत सूरज सौं तब कह्यौ थंभि ढुंढाहर देस।—सुजान०, पृ० २५।

विशेष—इस राज्य की भाषा जो जयपुर, अलवर, हाड़ोती आदि में बोली जाती है, आज भी 'ढूँढाणी' या 'जयपुरी' कही जाती है। राजस्थानी गद्य साहित्य का अधिकांश इसी भाषा में प्राप्त होता है, राठौर पृथ्वीराज की 'बेलि क्रिसन रुकमणी री' की

टीका जो १६७३ में लिखी गई थी, इसी भाषा के गद्य में प्राप्त होती है।

ढुंढि—संज्ञा पुं० [सं० ढुण्ढि] गणेश का एक नाम। ये ५६ विनायकों में से हैं।

विशेष—काशीखंड में लिखा है कि सारे विषय इनके ढूँढे हुए या अन्वेषित हैं। इसी से इनका नाम ढुंढि या ढुंढिराज है।

ढुंढित—वि० [सं० ढुण्ढित] अन्वेषित। १. ढूंढा हुआ। (को०)।

ढुंढिराज—संज्ञा पुं० [सं० ढुण्ढिराज] दे० 'ढुंढि'।

ढुंढो[1]—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. बाँह। बाहु। मुसुक।

ढुंढो[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढोढ़] दे० 'ढोढ़ी'।

मुहा०—ढुंढिया चढ़ाना = मुसक बाँधना। उ०—उसने झट उसकी पगड़ी उतार ढुंढिया चढ़ाय मूछ, डाढ़ी और सिर मूँड़ रथ के पीछे बाँध लिया।—लल्लू (शब्द०)।

ढुँढवाना—क्रि० स० [हिं० ढूंढना का प्रे० रूप] ढूंढने का काम कराना। खोजवाना। तलाश कराना। पता लगवाना।

ढुँढ़ाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढूंढना] ढूंढने का काम।

ढुँढाहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढूंढना] खोज। तलाश।

ढुकना—क्रि० अ० [देश०] १ घुसना। प्रवेश करना।

संयो० क्रि०—जाना।

२ झुक पड़ना। टूट पड़ना। पिल पड़ना। एकबारगी किसी ओर धावा करना।

संयो० क्रि०—पड़ना।

३. किसी बात को सुनने या देखने के लिये आड़ में छिपना। लुकना। घात में छिपना। जैसे ढुककर कोई बात सुनना। किसी को पकड़ने के लिये ढुकना। उ० (क) ढुकी रही जहँ तहँ सब गोरी। (ख) जउ न होत चारा कइ आसा। कित चिरिहार ढुकत लेइ लासा। जायसी (शब्द०)।

ढुकास—संज्ञा स्त्री० [अनु० ढुक ढुक] पानी पीने की बहुत अधिक इच्छा। अधिक प्यास।

क्रि० प्र०—लगना।

ढुक्का—संज्ञा पुं० [हिं० ढूका] दे० 'ढूका'।

ढुच्चा—संज्ञा पुं० [देश०] घूँसा। मुक्का।

ढुटौना—संज्ञा पुं० दे० 'ढोटा'।

ढुनमुनिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढनमनाना] १. लुढ़कने की क्रिया या भाव। २. सावन में कजली गाने का एक ढंग। जिसमें स्त्रियाँ एक मंडल में घूमती हुई गोल बाँधकर हाथ से तालियाँ बजाती हुई गाती हैं और बीच बीच में झुकती और खड़ी होती हैं।

क्रि० प्र०—खेलना। उ०—रात को कजली गाती कुछ ढुनमुनिया भी खेलती हैं।—प्रेमघन०; भा० २, पृ० ३२६।

ढुरकना(पु)—क्रि० अ० [हिं० ढार] १. लुढ़कना। फिसलकर सरकना या गिरना। उ०—लोग चढ़ी प्रीति मोहन की गति मोह महा गिरि तें ढुरकी।—देव (शब्द०)। २. झुकना। उ०—संग में सईस तें रईस तें नफीस बेस सीस उमनीस बना बाम ओर ढुरकी।—गोपाल (शब्द०)। ३. ढरकना। टपकना। बहना।

ढुरकी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढुरकना] लेटकर किया जानेवाला विश्राम। लेटने या शयन करने की स्थिति। झपकी।

ढुरना[1]—संज्ञा पुं० [हिं० ढार] दे० 'ढुनमुनिया—२'।

ढुरना[2]—क्रि० अ० [हिं० ढार] १. गिरकर बहना। ढरकना। ढलना। टपकना। नैनन ढुरहिं मोति और मूँगा। कस गुड़ खाय रहा ह्वै गूँगा।—जायसी (शब्द०)।

संयो० क्रि०—पड़ना।

२. कभी इधर कभी उधर होना। इधर उधर डोलना। डगमगाना। ३. सूत या रस्सी के रूप की वस्तु का इधर उधर हिलना। लहर खाकर डोलना। लहराना। जैसे, चँवर ढुरना। उ०—जोबन मदमाती इतराती बेनी ढुरत कटि पै छबि बाढ़ी।—सूर (शब्द०)। ४ लुढ़कना। फिसल पड़ना। ५ प्रवृत्त होना। ६. झुकना। उ०—कभी ढुर ढुर कर स्त्रियों की भाँति ढुनमुनिया भी खेलते हैं।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३४४।

संयो० क्रि०—पड़ना।

६. अनुकूल होना। प्रसन्न होना। कृपालु होना। उ०—बिन करनी मोपै ढुरौ कान्ह गरीब निवाज।—रसनिधि (शब्द०)।

ढुरढुरिया—वि० [हिं० ढुरना] ढलवाँ। चढ़ाव उतारवाला। उ०—अग अंग ओके पातर मुँह ढुरढुरिया, चूहे, मेछन के रेख।—शुक्ल० अभि० ग्रं० (सा०), पृ० १६०।

ढुरहुरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढुरना] १ लुढ़कने की क्रिया का भाव। नीचे ऊपर होते हुए फिसलने या बढ़ने की क्रिया। उ०—लूटि सी करति कलहंस जुग देत कहे, तुटि मोतिसिरि छिति खुटि ढुरहुरी लेति।—देव (शब्द०)।

क्रि० प्र०—लेना।

२. पगडंडी। पतला रास्ता। नथ में लगी हुई सोने के गोल दानों की पंक्ति।

ढुराना—क्रि० स० [हिं० ढुरना] १. गिराकर बहाना। ढरकाना। ढुलकाना। टपकाना। २. इधर उधर हिलाना। लहराना। उ—ध्वजा फहराइ छत्र चौर सो ढुराय आगे बीरन बताय यों चलाइ बाम धाम के।—हनुमान (शब्द०)। ३. लुढ़काना। फिसलकर गिरना।

ढुरावना(पु)—क्रि० स० [हिं० ढुराना] दे० 'ढुराना—१'। उ०—पलक न लावति, रहत ध्यान धरि, बारंबार ढुरावति पानी।—सूर (शब्द०)।

ढुरुआ—संज्ञा पुं० [हिं० ढुरना] गोल मटर। केराव मटर।

ढुरुकना(पु)—क्रि० अ० [हिं० ढुलकना] दे० 'ढुलकना'।

ढुर्री—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढुरना] वह पतला रास्ता जो लोगों के चलते चलते बन जाय। पगडंडी।

ढुलकना—क्रि० अ० [हिं० ढाल + कना (प्रत्य०), या सं० लुण्ठन,

हिं० लुढ़कना] १. नीचे ऊपर होते हुए फिसलना या सरकना। ऊपर नीचे चक्कर खाते हुए बढ़ना या चल पड़ना। लुढ़कना। ढँगलाना। २. दे० 'ढुरना[२]'।

संयो० क्रि०—जाना।

ढुलकाना—क्रि० स० [हिं० ढुलकना] टपकाना। गिराना। बहाना। लुढ़काना। ढँगलाना। उ०—जिसे ओस जल ने ढुलकाया। धवल धूलि ने नहलाया।—बीणा पृ० १२।

ढुलढुल—वि० [हिं० ढुलना] एक ओर स्थिर न रहनेवाला। लुढ़कनेवाला। अस्थिर। कभी इधर कभी उधर होनेवाला।

ढुलना[१]—क्रि० अ० [हिं० ढाल] १. गिरकर बहना। ढरकना।

संयो० क्रि०—जाना।

२. लुढ़कना। फिसल पड़ना।

संयो० क्रि०—जाना।

३. प्रवृत्त होना। झुकना।

संयो० क्रि०—आना।—पड़ना।

४. अनुकूल होना। प्रसन्न होना। कृपालु होना।

संयो० क्रि०—जाना।—पड़ना।

५. कभी इधर कभी उधर होना। इधर उधर डोलना। इधर से उधर हिलना। उ०—दुलहि ग्रीव, लटकति नकबेसरि, मंद मंद गति आवै।—सूर (शब्द०)। ६. सूत या रस्सी के रूप की वस्तु का इधर उधर हिलना। लहर खाकर डोलना। लहराना। जैसे, चँवर ढुलना।

ढुलना[२]†—संज्ञा पुं० [सं० ढोल] एक वाद्य। दे० 'ढोल'। उ०—ढुलना सुनो धघकारी। महलो उठै झनकारी।—घट०, पृ० ३७१।

ढुलमुल—वि० [हिं० ढुलना, या अनु०] दे० 'ढुलढुल'। उ०—गा गया फिर भक्त ढुलमुल चाटुता से वासना को झलमलाकर।—हत्यलम्, पृ० १६७।

ढुलमुलाना क्रि० अ० [हिं० ढुलना] कंपित होना। हिलना। उ०—पत्तियों की चुनकियाँ झट दी बजा, डालियाँ कुछ ढुलमुलाने सी लगीं। किस परम आनंदनिधि के चरण पर, विश्व साँसें गीत पाने सी लगीं।—हिमत०, पृ० ४०।

ढुलवाई[१]—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढोना] १. ढोने का काम। २. ढोने की मजदूरी।

ढुलवाई[२]—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढुलना] १. ढुलाने की क्रिया। २. ढुलाने की मजदूरी।

ढुलवाना[१]—क्रि० स० [हिं० ढोना का प्रे० रूप] ढोने का काम कराना। बोझ लेकर जाने का काम कराना।

ढुलवाना[२]—क्रि० स० [हिं० ढुलाना का प्रे० रूप] ढुलाने का काम कराना।

ढुलाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढुलाना] १. ढुलने की क्रिया। २. ढोए जाने की क्रिया। जैसे,—आजकल सामान की ढुलाई हो रही है। ३. ढोने की मजदूरी।

ढुलाना[१]—क्रि० स० [हिं० ढाल] १. गिराकर बहाना। ढरकाना। ढालना।

संयो० क्रि०—देना।

२. नीचे ढालना। ठहरा न रहने देना। गिराना। उ०—स्यंदन खंडि, महारथ खंडौ कपिध्वज सहित ढुलाऊँ।—सूर (शब्द०)। ३ लुढ़काना। ढँगलाना। ४. पीड़ित करना। जलाना। जलन या दाह उत्पन्न करना। उ०—रमैया बिन नींद न आवे। नींद न आवे बिरह सतावे, प्रेम की आँच ढुलावै।—संतवाणी० भा० २, पृ० ७३।

संयो० क्रि०—देना।

५. प्रवृत्त करना। झुकाना।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

६. अनुकूल करना। प्रसन्न करना। कृपालु करना।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

७. कभी इधर, कभी उधर करना। इधर उधर डुलाना। इधर से उधर हिलाना। जैसे, चँवर ढुलाना। ८. चलाना। फिराना। उ०—सूर स्याम स्यामा बस कीनो ज्यों संग छाँह ढुलावै हो।—सूर (शब्द०)। (पु)† ९. फेरना। पोतना। उ०—ऊँचा महल चिनाइया चूना कली ढुलाय।—कबीर (शब्द०)।

ढुलाना[२]—क्रि० स० [हिं० ढोना] ढोने का काम कराना।

ढुलिया[१]†—संज्ञा पुं० [हिं० ढोल + इया (प्रत्य०)] दे० 'ढोलकिया'। उ०—जैसे नटवा चढ़त बाँस पर, ढुलिया ढोल बजावै।—कबीर० श०, भा० १, पृ० १०२।

ढुलिया[२]†—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढुलना] १. छोटी ढोलक। २. छोटा पालना या डोली। सउजा सहित इक ढुलिया लैयो औ पानन की डोली जू।—नंद० ग्रं०, पृ० ३३१।

ढुलुआ†—संज्ञा स्त्री० [देश०] खजूर या ताड़ की बनी शकर।

ढुवारा†—संज्ञा पुं० [देश०] घुन नाम का कीड़ा।

ढूँकना—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'ढुकना'।

ढूँका संज्ञा पुं० [हिं० ढुँकना] किसी बात या वस्तु को गुप्त रूप से देखने के लिये आड़ में छिपने का कार्य। बिना अपनी आहट दिए कुछ देखने की घात में छिपने का काम।

क्रि० प्र०—लगना।

ढूँढ़—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढूँढ़ना] खोज। तलाश। अन्वेषण।

मुहा०—ढूँढ़ ढाँढ़ = खोज। तलाश।

ढूँढ़ना—क्रि० स० [सं० ढुण्ढन] खोजना। तलाश करना। अन्वेषण करना। पता लगाना।

संयो० क्रि०—डालना।—देना (दूसरे के लिये)।—लेना (अपने लिये)।

यौ०—ढूँढ़ना ढाँढ़ना = खोजना। तलाश करना।

ढूँढला†—संज्ञा स्त्री० [सं० ढुण्ढा] ढुंढा नाम की राक्षसी।

ढूँढी†—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. किसी चीज का गोल पिंड या लोंदा। २. भुने हुए आटे आदि का बड़ा गोल लड्डू जिसमें गुड़ और तिल आदि मिले रहते हैं। अधिकतर यह देहातों में बनती है।

दूकड़ा†—अव्य० [सं० √ढौक, प्रा० दुक्क] पास। निकट। समीप। उ०—बानरबाब बिचारियऊ, ए मति उत्तिम कोष। सल्हु महलहुँ दूकड़ा, ढाढ़ी डेरउ लीष।—ढोला०, दू० १८७।

दूकना—क्रि० अ० [सं० √ढौक, प्रा० ढुक्क, हिं० ढुकना] १. पास आना। समीप आना। उ०—बहूर रंग रत्तउ हुवइ, मुख काजल मसि बन्न। चातिग्गउ गु आहुल प्रघइ, तेण न ढूकउ मन्न।—ढोला०, दू० ५७२।

दूका¹—संज्ञा पुं० [देश०] डंठल, घास आदि के बोझ का एक मान जो दस पूले का होता है।

दूका²—संज्ञा पुं० [हिं० ढूकना] दे० 'ढूँका'।

दूढ़िया—संज्ञा पुं० [देश०] श्वेतांबर जैनों का एक भेद।

विशेष—इस संप्रदाय के लोग मूर्ति नहीं पूजते और भोजन स्नान के समय को छोड़ सदा मुँह पर पट्टी बाँधे रहते हैं।

दूसर—संज्ञा पुं० [देश०] बनियों की एक जाति।

दूसा—संज्ञा पुं० [देश०] कुश्ती का एक पेच जिसमें ऊपर आया हुआ पहलवान नीचेवाले की गरदन पर हाथ मारकर उसे चित करता है।

दूहा†—संज्ञा पुं० [सं० स्तूप] १. ढेर। अटाला। २ टीला। भीटा। उ० नहिं रकबा को नाम, धाम गिरि ढूह भयो बनि।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ११। ३. मिट्टी का छोटा टीला जो सीमा या हद सूचित करने के लिये खड़ा किया जाता है।

दूहा†—संज्ञा पुं० [सं० स्तूप] दे० 'ढूह'।

ढेंक—संज्ञा स्त्री० [सं० ढेङ्क] दे० 'ढेंक'।

ढेंकिका—संज्ञा स्त्री० [सं० ढेङ्किका] एक प्रकार का नृत्य।

ढेंक¹—संज्ञा स्त्री० [सं० ढेङ्क, प्रा० ढेंक] पानी के किनारे रहनेवाली एक चिड़िया जिसकी चोंच और गरदन लंबी होती है। उ०—(क) केवा सोन ढेंक बक लेदी। रहे अपूरि मीन जल भेदी।—जायसी (शब्द०)। (ख) कूजन पिक मानहुँ गजमाते। ढेंक महोख ऊँट बिसराते।—तुलसी (शब्द०)।

ढेंक²—संज्ञा पुं० [देशी] धान कूटने का लकड़ी का एक यंत्र। ढेकली।

ढेंकली—संज्ञा स्त्री० [देशी। अथवा हिं० ढेंक (=चिड़िया, जिसकी गरदन लंबी होती है)] १. सिंचाई के लिये कुएँ से पानी निकालने का एक यंत्र।

विशेष—इसमें एक ऊँची खड़ी लकड़ी के ऊपर एक आड़ी लकड़ी बीचोबीच से इस प्रकार ठहराई रहती है कि उसके दोनों छोर बारी बारी से नीचे ऊपर हो सकते हैं। इसके एक छोर में, मिट्टी थोपी रहती है। या पत्थर बँधा रहता है और दूसरे छोर में जो कुएँ के मुँह की ओर होता है, डोल की रस्सी बँधी होती है। मिट्टी या पत्थर के बोझ से डोल कुएँ में से ऊपर आती है।

क्रि० प्र०—चलाना।

२. एक प्रकार की सिलाई जो जोड़ की लकीर के समानांतर नहीं होती, आड़ी होती है। आड़े डोभ की सिलाई।

क्रि० प्र०—मारना।

३. धान कूटने का लकड़ी का यंत्र जिसका आकार खींचने में ढेंकली ही से मिलता जुलता पर बहुत छोटा और जमीन में लगा हुआ होता है। धनकुट्टी। ढेंकी। ४. भभके से अ उतारने का यंत्र। बकतुंड यंत्र। ५. सिर नीचे और पैर ऊप करके उलट जाने की क्रिया। कलाबाजी। कलैया।

क्रि० प्र०—खाना।

ढेंका—संज्ञा पुं० [हिं० ढेंक (=पक्षी)] १. कोल्हू में वह बाँस जाट के सिरे से कतरी तक लगा रहता है। २. बड़ी ढेंकी।

ढेंकिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढेंकी] ढेढपटी चद्दर बनाने में कपड़े एक प्रकार की काट और सिलाई जिससे कपड़े की लंबाई ए तिहाई घट जाती है और चौड़ाई एक तिहाई बढ़ जाती है।

विशेष—इस काट की विशेषता यह है कि इसमें आड़ा जो किनारे तक नहीं आता, बीच ही तक रह जाता है। इस कपड़े की लंबाई को तीन बराबर भागों में तह करके आ निशान डाल देते हैं। फिर एक आड़ी लकीर पर आधी दू तक एक किनारे की ओर से फाड़ते हैं। इसी प्रकार दूस किनारे की ओर दूसरी आड़ी लकीर पर भी आधी दूर त फाड़ते हैं। इसके उपरांत बीच में पड़नेवाले भाग को खड़े ब आधेआध काट देते हैं। इस तरह जो दो टुकड़े निकलते उन्हें खाली स्थान को पूरा करते हुए जोड़ देते हैं।

पूरा कपड़ा — कटा हुआ कपड़ा

दोनों जुड़े हुए कपड़े
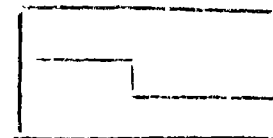
ढेंकी¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढेंक (=एक पक्षी)] अनाज कूटने क लकड़ी का एक यंत्र। ढेंकली।

ढेंकी²—संज्ञा स्त्री० [सं० ढेङ्किका, ढेङ्की] दे० 'ढेंकिका'।

ढेंकुर†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ढेंकली'।

ढेंकुली—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ढेंकली'।

ढेंटी†—संज्ञा स्त्री० [देश०] धव का पेड़।

ढेंढ†¹—संज्ञा पुं० [देश०] १. कौवा। २. एक नीच जाति जो मरे जान वरों का मांस खाती है। उ०—मांस खाय ते ढेंढ़ सब मद पीवै सो नीच।—कबीर (शब्द०)। ३. मूर्ख। मूढ़। जड़।

ढेंढ²—संज्ञा पुं० [सं० तुण्ड, हिं० ढोंढ़] कपास आदि का डोडा। ढोंढ़। उ०—सेमर सुवना सेइए दुइ ढेंढे की आस।—कबीर (शब्द०)।

ढेंढर—संज्ञा पुं० [हिं० ढेंट] आँख के ढेले का निकला हुआ विकृत मांस। टेटर।

ढेंढवा—संज्ञा पुं० [देश०] काले मुँह का बंदर। लंगूर।

ढूँढा—संज्ञा पुं० [सं० तुण्ड] दे० 'ढेँढ़'।

ढेँढी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढेढ़ा] १. कपास का डोडा। २. पोस्ते का डोडा। ३. कान का एक गहना। तरकी। उ०—सीस फूल जड़ाव जूड़ा अंजन ज्ञान लगावनं। मानसी नथुनी ढेंढ़ी शब्द माँग भरावनं।—पलटू०, भा० ३, पृ० ६४।

ढेँप—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. फल या पत्ते के छोर पर का वह भाग जो टहनी से लगा रहता है। २. कुचाग्र। बोंड़ी।

ढेँपी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ढेंप'।

ढेउआ†—संज्ञा पुं० [देश०] पैसा।

ढेऊ†—संज्ञा पुं० [देश०] पानी की लहर। तरंग। हिलोरा।

ढेकुला—संज्ञा पुं० [देशी] दे० 'ढेंकली'।

ढेढ़†—संज्ञा स्त्री० [सं० दृष्टि] दृष्टि। नजर। आँख। उ०—रात दिवस घनी पहरीयो। तोही मूँसारो मूँसी गयो ढेढ़।—बी० रासो, पृ० ९७।

ढेड़स—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'डेंड़सी'।

ढेपनी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ढेंपनी'।

ढेपुनी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढेंप] १. पत्ते या फल का वह भाग जो टहनी से लगा रहता है। ढेंप। २. किसी वस्तु की दाने की तरह उभरी हुई नोक। ठोंठ। ३ कुचाग्र। चूचुक।

ढेबरी[१]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'डिबरी'।

ढेबरी[२]—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष जिसे घोरी, मामरो और रुही भी कहते हैं। वि० दे० 'रुही'।

ढेबुआ†—संज्ञा पुं० [सं० ढेब्बुका; या देश०] दे० 'ढेबुक'

ढेबुक†—संज्ञा पुं० [सं० ढेब्बुका या देश०] ढेउआ। पैसा। उ०—यथा ढेबुक मुद्रा जग माहीं। है सब एक पथिक सम नाहीं।—विश्राम (मैं०द०)।

ढेवुवा†—संज्ञा पुं० [सं० ढेब्बुका, देश०] पैसा। ढेउआ। ताम्रमुद्रा।

ढेममौज—संज्ञा स्त्री० [देश० ढेऊ+फ़ा० मौज] बड़ी लहर। समुद्र की ऊँची लहर (लश०)।

ढेर[१]—संज्ञा पुं० [हिं० धरना] नीचे ऊपर रखी हुई बहुत सी वस्तुओं का समूह जो कुछ ऊपर उठा हुआ हो। राशि। अटाला। अंबार। गंज। टाल।

क्रि० प्र०—करना।—लगाना।

मुहा०—ढेर करना=मारकर गिरा देना। मार डालना। उ०—होश की दवा करो। ढेर कर दूँगा।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १३७। ढेर रखना=मारकर रख देना। जीता न छोड़ना। ढेर रहना=(१) गिरकर मर जाना। (२) थककर चूर हो जाना। अत्यंत शिथिल हो जाना। ढेर हो जाना=(१) गिरकर मर जाना। मर जाना। (२) ध्वस्त होना। गिर पड़ जाना। जैसे, मकान का ढेर होना। (३) शिथिल हो जाना।

ढेर†[२]—वि० बहुत। अधिक। ज़्यादा।

ढेरना—संज्ञा पुं० [देश० या हिं० ढुरना (=घूमना)] सूत या रस्सी बटने की फिरकी।

ढेरा[१]—संज्ञा पुं० [देश०] १. सुतली बटने की फिरकी जो परस्पर काटती हुई दो आड़ी लकड़ियों के बीच में एक खड़ा डंडा जड़कर बनाई जाती है। २. मोट के मुँह पर का लकड़ी या लोहे का घेरा जो मोट का मुँह खुला रखने के लिये लगा रहता है। ३. अंकोल का पेड़ (वैद्यक)।

ढेरा[२]—वि० [देश०] जिसकी आँखों की पुतलियाँ देखने में बराबर न रहती हों। भेंगा। अंबर तक्कू।

ढेराढोंक—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मछली। दे० 'ढोंक'।

ढेरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढेर] ढेर। समूह। अटाला। राशि।

ढेरु(५)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ढेर'। उ०—कंचन को ढेरु जो सुमेरु सो लखात है।—भूषण ग्रं०, पृ० ४६।

ढेल—संज्ञा पुं० [हिं० डला] दे० 'ढेला'।

ढेलवाँस—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढेला+सं० पाश] रस्सी का एक फंदा जिससे ढेला फेंकते हैं। गोफना। उ०—इस सभ्यता के लोगों के अस्त्र शस्त्र, भाले, कटार, परशु, गदा, तीर, धनुष, ढेलवाँस आदि थे।—आदि० भा०, पृ० ४८।

ढेला—संज्ञा पुं० [सं० दल, हिं० डला] १. ईंट, मिट्टी, कंकड़, पत्थर आदि का टुकड़ा। चक्का। जैसे, ढेला फेंककर मारना।

यौ०—ढेला चौथ।

२. टुकड़ा। खंड। जैसे, नमक का ढेला। ३. एक प्रकार का धान। उ०—कपूर काट कजरी रतनारी। मधुकर ढेला जीरा सारी।—जायसी (शब्द०)।

ढेलाचौथ—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढेला+चौथ] भादों सुदी चौथ। भाद्र शुक्ल चतुर्थी।

विशेष—ऐसा प्रवाद है कि इस दिन चंद्रमा देखने से कलंक लगता है। यदि कोई चंद्रमा देख ले तो उसे लोगों की कुछ गालियाँ सुन लेनी चाहिए। गालियाँ सुनने की सीधी युक्ति दूसरों के घरों पर ढेला फेंकना है। अतः लोग इस दिन ढेला फेंकते हैं। यह प्रायः एक प्रकार का विनोद या खेलवाड़ सा हो गया है।

ढेव्वुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक पैसे का सिक्का [को०]।

ढैंकली—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ढेकली'।

ढैंकुरी(५)†—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का युद्धयंत्र। ढेलवाँस। गोफन। उ०—भार ढैंकुरी जंत्र निवान। गढ पर पंछि न पावै जान।—छिताई०, पृ० ५६।

ढैंचा—संज्ञा पुं० [देश०] चकवेंड़ की तरह का एक पेड़ जिसकी छाल से रस्सियाँ बनाई जाती हैं। हरी खाद के रूप में भी इसका प्रयोग होता है। जयंती। २. पान के भीटे पर छाजन के लिये सन या पटवे का डठल।

ढैक(५)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढेंक] दे० 'ढेंक'[१]। उ०—ढैकि पंखि मटामरे घनै। जलकुकरी आरि मनगनै।—छिताई०, पृ० ६३।

ढैया—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ ढाई] १. ढाई सेर की बाट। ढाई सेर तौलने का बटखरा। २. ढाई गुने का पहाड़ा। ३. शनैश्चर के एक राशि पर स्थिर रहने का ढाई वर्ष का काल।

ढोंक†—संज्ञा स्त्री॰ [देश॰] दे॰ 'ढोक'।

ढोंकना—क्रि॰ स॰ [अनु॰] पीना। पी जाना। (अशिष्ट या विनोद)।

ढोंका—संज्ञा पुं॰ [देश॰] १. पत्थर या और किसी कड़ी वस्तु का बड़ा अनगढ़ टुकड़ा। २. वह बाँस जो कोल्हू में जाट के सिरे से लेकर कोल्हू तक बँधा रहता है। ३. दो ढोली पान। चार सौ पान (तमोली)।

ढोंग—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ ढंग] ढकोसला। पाखंड। झूठा आडंबर।

क्रि॰ प्र॰—करना।—रचना।

ढोंगधतूरा—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ ढोंग + सं॰ धूर्त] धूर्त विद्या। धूर्तता। पाखंड।

ढोंगबाज—वि॰ [हिं॰ ढोंग + फा॰ बाज] दे॰ 'ढोंगी'।

ढोंगबाजी—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ ढोंग + फा॰ बाजी] पाखंड। आडंबर। ढोंग।

ढोंगा†—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ ढोंगा] नाप। तौल। मान। चोंगा। उ॰—बाँस का ढोंगा, काठ की डोकनी तथा बेंत की डलिया द्वारा नाप जोख का प्रचलन उठाकर उनके स्थान पर ताँबे का माना (आध सेर), पाथी (चार सेर)......इत्यादि को प्रमाणित पैमाना माना जायगा।—नेपाल॰, पृ॰ ३१।

ढोंगी—वि॰ [हिं॰ ढोंग] पाखंडी। ढकोसलेबाज। झूठा आडंबर करनेवाला।

ढोंटा—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] दे॰ 'ढोटा'।

ढोंढ़—संज्ञा पुं॰ [सं॰ तुण्ड] कपास, पोस्ते आदि का ढोंढा। २. कली।

ढोंढी—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ ढोंढ़] १. नाभि। धुन्नी। २. कली। डोंडी।

ढोक—संज्ञा स्त्री॰ [देश॰] एक प्रकार की मछली जो १२ इंच लंबी होती है। ढेरी। ढोका।

ढोकना†—क्रि॰ अ॰ [हिं॰ ढुकना] झुकना। नम्र रहना। उ॰—दया सबन पै राखि गुरन के चरनन ढोकत।—ब्रज॰ ग्रं॰ पृ॰ ११६।

ढोका—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] १. दे॰ 'ढोंका'। २. पर्दा। खोल। उ॰—भाँति भाँति के चश्मे (ऐनक) के ढोके लगाए।—प्रेमघन॰, भा॰ २, पृ॰ २५८।

ढोटा—संज्ञा पुं॰ [सं॰ दुहितृ (= लड़की), हिं॰ ढोटी] [स्त्री॰ ढोटी] १. पुत्र। बेटा। उ॰—देखत छोट खोट नृपढोटा।—तुलसी (शब्द॰)। २.लड़का। बालक। उ॰—गोकुल के ग्वैड एक साँवरो सो ढोटा माई अँखियन के पैड़े पैठि जी के पैंड़े परयो है।—सूर (शब्द॰)।

ढोटी—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ दुहितृ] लड़की। पुत्री। बालिका।

ढोटौना, ढोटौना㈤—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ ढोटा] दे॰ 'ढोटा'। उ॰—श्याम बरन एक मिल्यो ढोटौना तेहि मोकों मोहिनी लगाई।—सूर (शब्द॰)।

ढोढ़†—संज्ञा पुं॰ [देश॰] ऊँट। (डिं॰)।

ढोढ़ी†—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ दुहितृ] दे॰ 'ढोटी'। उ॰—दुब्बी बुब्बी ढोड़ियाँ लँदूरी पर खोंसे झुलसे पाखी सी, खिसियाए मुँह बाए।—इत्यलम्, पृ॰ २१०।

ढोना—क्रि॰ स॰ [सं॰ वोढ (=वहन करना, ले जाना), आद्यंत वर्णविपर्यय > ढोव] १. बोझ लादकर ले जाना। भार ले चलना। भारी वस्तु को ऊपर लेकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचाना।

संयो॰ क्रि॰—देना।—ले जाना।

२. उठा ले जाना। जैसे,—चोर सारा माल ढो ले गए।

ढोर—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ ढुरना] गाय, बैल, भैंस आदि पशु। चौपाया। मवेशी। उ॰—जब हरि मधुबन को जु सिधारे धीरज धरत न ढोर।—सूर (शब्द॰)।

ढोरना㈤†—क्रि॰ स॰ [हिं॰ ढारना] १. पानी या और कोई द्रव पदार्थ गिराकर बहाना। ढरकाना। ढालना उ॰—(क) रीते भरै, भरे पुनि ढोरै, चाहै फेरि भरै। कबहुँक तृण बूड़ै पानी मैं कबहूँ सिला तरै।—सूर (शब्द॰)। (ख) जननी अति रिस जानि बधायो चितै वदन लोचन जल ढोरै।—सूर (शब्द॰)। (ग) वे अक्रूर क्रूर कृत जिनके रीते भरे भरे गहि ढोरे।—सूर (शब्द॰)। २. लुढ़काना। ३. फेरना। डालना। उ॰—यमुनाप्रसाद ने आँखें ढोरी। कहा, 'पहलवान, मामला हमारा नहीं और अब बिलकुल वक्त नहीं रहा'।—काले॰, पृ॰ ४१। ४. डुलाना। हिलाना। उ॰—(क) चँवर चारु ढोरत ह्वै ठाढ़ी।—नंद॰ ग्रं॰, पृ॰ २१३। (ख) लैकर बाउ बिजन कर ढोरीं।—रसरतन, पृ॰ २१५। (ग) पान खवावत चरन पलोटत ढोरत बिजन चौर।—भारतेंदु ग्रं॰, भा॰ २, पृ॰ ५६६। ५. नम्र करना। नमाना। नीचा करना। उ॰—ऐसो बचनु सुन्यो सुलितान। सीसु ढोरि कै मूँदे कान।—छिताई॰, पृ॰ ६१।

ढोरा—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] दे॰ 'ढोर'।

ढोरी¹—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ ढोरना] १. ढालने का भाव। ढरकाने की क्रिया या भाव। उ॰—कनक कलस केसरि भरि ल्याई डारि दियो हरि पर ढोरी की। अति आनंद भरी ब्रज युवती गावति गीत सबै होरी की।—सूर (शब्द॰)। २. रट। धुन। बान। लौ। लगन। उ॰—सूरदास गोपी बड़भागी। हरि दरसन की ढोरी लागी। (ख) ढोरी लाई सुनन की, कहि गोरी मुस्कात। थोरी थोरी सकुच सों भोरी भोरी बात।—बिहारी (शब्द॰)।

क्रि॰ प्र॰—लगना।

ढोरी²—वि॰ [हिं॰ ढोरना] १. ढुरी हुई। ढली हुई। २. हिलती डुलती। मस्त। उ॰—ब्रज बनिता बौरी भईं ढोरी खेलत फाग। रस ढोरी दौरी फिरत भिजवत हैं ब्रजराज।—ब्रज॰ ग्रं॰, पृ॰ ३१।

ढोल¹—संज्ञा पुं॰ [सं॰] एक प्रकार का बाजा जिसके दोनों ओर चमड़ा मढ़ा होता है।

विशेष—लकड़ी के गोल कटे हुए लंबोतरे कुंदे को भीतर से खोखला करते हैं और दोनों ओर मुँह पर चमड़ा मढ़ते हैं। छोटा ढोल हाथ से और बड़ा ढोल लकड़ी से बजाया जाता है। दोनों ओर के चमड़ों पर दो भिन्न भिन्न प्रकार का शब्द होता है। एक ओर तो 'ढब ढब' की तरह गंभीर ध्वनि निकलती है और दूसरी ओर टनकार का शब्द होता है।

यौ०—ढोल ढमक्का = बाजा गाजा। धूम धाम।

मुहा०—ढोल पीटना या बजाना = घोषणा करना। प्रसिद्ध करना। प्रकट करना। प्रकाशित करना। चारों ओर कहते या जताते फिरना। उ०—(क) नाचौ घूँघट खोलि, ज्ञान की ढोल बजाओ।—पलटू०, पृ० ६१। (ख) ब्रजमंडल में बदनामी के ढोल, निसंक ह्वै आज बजै तो बजै।—नट०, पृ० ५८।

२. कान का परदा। कान की वह झिल्ली जिसपर वायु का आघात पड़ने से शब्द का ज्ञान होता है।

ढोल(पु)²—संज्ञा स्त्री० [सं० ढोल] एक वाद्य। दे० 'ढोल'–१। उ०—नाचौ घूँघट खोलि ज्ञान की ढोल बजाओ।—पलटू०, पृ० ६१

ढोलक—संज्ञा स्त्री० [सं० ढोल] छोटा ढोल। ढोलकी।

ढोलकिया—संज्ञा पुं० [हिं० ढोलक] ढोल बजानेवाला।

ढोलकिहा†—संज्ञा पुं० [हिं० ढोलक] दे० 'ढोलकिया'। उ०—फटत ढोल बहु ढोलकिहन की अँगुरिन तर तर।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ३६।

ढोलकी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढोलक] दे० 'ढोलक'।

ढोलढमक्का—संज्ञा पुं० [हिं० ढोल + अनु० ढमक्का] दे० 'ढोल' का यौ०।

ढोलन¹—संज्ञा पुं० [सं० ढोलन] दे० 'ढोलना'²।

ढोलन†²—संज्ञा पुं० [अप०] दुल्हा। प्रिय। प्रियतम। उ०—ढोलन मेरा भावता बेगि मिलहु मुझ आइ। सुंदर व्याकुल विरहनी तलफि तलफि जिय जाय।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ६८६।

ढोलनहार—वि० [हिं० ढोलना] ढालने या ढलकानेवाला। उ०—मन नित ढोलनहार।—कबीर ग्रं०, पृ० १८।

ढोलना¹—संज्ञा पुं० [हिं० ढोल] १. ढोलक के आकार का छोटा जंतर जो तागे में पिरोकर गले में पहना जाता है। उ०—आनै गढ़ि सोना ढोलना पहिराए चतुर सुनार।—सूर (शब्द०)। २. ढोल के आकार का बड़ा बेलन जिसे पहिए की तरह लुढ़का कर सड़क का कंकड़ पीटते या खेत के ढेले फोड़कर जमीन चौरस करते हैं।

ढोलना²—संज्ञा पुं० [सं० दोलन] बच्चों का छोटा झूला। पालना।

ढोलना³†—क्रि० स० [सं० दोलन] १. ढरकाना। ढालना। उ०—(क) रे घटवासी, मैंने वे घट तेरे ही चरणों पर ढोले; कौन तुम्हारी बातें खोले।—हिमत०, पृ० २६। (ख) चोवा फेरे कूँपले ढोली साहिब सीस।—ढोला०, दू० ५६२। २. इधर उधर हिलाना। डुलाना। झलना। जैसे, चँवर ढोलना।

ढोलनी—संज्ञा स्त्री० [सं० दोलन] बच्चों का झूला। पालना। उ०—अगर चंदन को पालनो गढ़ई गुर ढार सुढार। लै आयो गढ़ि ढोलनी बिसकर्मा सो सुतधार।—सूर (शब्द०)।

विशेष—यह झूला रस्सी से लटका हुआ एक छोटा घेरेदार खटोला सा होता है।

ढोलवाई†—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढुलना] दे० 'ढुलवाई'।

ढोला—संज्ञा पुं० [हिं० ढोल] १. बिना पैर का रेंगनेवाला एक प्रकार का छोटा सुफेद कीड़ा जो आध अंगुल से दो अंगुल तक लंबा होता है और सड़ी हुई वस्तुओं (फल आदि) तथा पौधों के हरे डंठलों में पड़ जाता है। २. वह डुह या छोटा चबूतरा जो गाँवों की सीमा सूचित करने के लिये बना रहता है। हद का निशान।

यौ०—ढोलाबंदी।

३. गोल मेहराब बनाने का डाट। लदाव। ४. पिंड। शरीर। देह। उ०—जौ लगि ढोला तौ लगि बोला तौ लगि धनव्यवहार।—कबीर (शब्द०)। ५. डंका या दमामा। उ०—वामसैनि राजा तब बोला। चहुँ दिसि देहु जुद्ध कहँ ढोला।—हिंदी प्रेम०, पृ० २२३।

ढोला²—संज्ञा पुं० [सं० दुर्लभ, दुल्लह, राज०, प्रा० ढोला] १. पति। प्यारा। प्रियतम। २. एक प्रकार का गीत। ३. मूर्ख मनुष्य। जड़।

ढोलिअरा‡—संज्ञा पुं० [हिं० ढोल] ढोल बजानेवाला व्यक्ति। उ०—ढेलिअरा के होलें—होलें ढोलु बजाइ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ६१८।

ढोलिका—संज्ञा स्त्री० [सं० ढोल] दे० 'ढोल'। उ०—संग राधिका सुजान गावत सारंग तान, बजत बाँसुरी मृदंग बीन ढोलिका।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ३६३।

ढोलिनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढोलिया] ढोल बजानेवाली। डफालिन। उ०—नटिनि डोमिनी ढोलिनी सहनाइनि भेरिकारि। निर्तत तंत विनोद सकें विहँसत खेलत नारि।—जायसी (शब्द०)।

ढोलिया¹—संज्ञा पुं० [हिं० ढोल] [स्त्री० ढोलिनी] ढोल बजानेवाला व्यक्ति। उ०—मीर बड़े बड़े जात बहे तहँ ढोलियै पार लगावत को है।—ठाकुर (शब्द०)।

ढोलिया(पु)²—[हिं० ढुलकना या ढुलना] एक जगह स्थिर न रहनेवाला। गतिशील। रमता। उ०—ढोलिया साधु सदा संसारा।—धरनी०, पृ० ४१।

ढोली¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढोल] २०० पानों की गड्डी। उ०—ढोलिन ढोलिन पान बिकाना मीटन के मैदाना।—कबीर (शब्द०)।

ढोली²—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठठोली, ठोली] हँसी। दिल्लगी। ठठोली। ठट्ठा। उ०—सूर प्रभु की नारि राधिका नागरी चरचि लीनो मोहि करति ढोली।—सूर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

ढोव—संज्ञा पुं० [हिं० ढोवना] वह पदार्थ जो किसी मंगल के अवसर पर लोग सरदार या राजा को भेंट ले जाते हैं। डाली। नजर उ०—लै लै ढोव प्रजा प्रमुदित चले भाँति भाँति भरि भार।—तुलसी (शब्द०)।

ढोवना†—क्रि० स० [हिं० ढोवा] दे० 'ढोना'।

ढोबा†¹—संज्ञा पुं० [?] धावा । आक्रमण । हमला । उ०—पंच पंच मन की हाथनि गुरज । ढोबा टारि ढहावै बुरज ।—छिताई०, पृ० ३४ । (ख) निमि वासर ढोबा करै सोणित बहै प्रवाह ।—छिताई०, पृ० ४२ ।

ढोबा†²—संज्ञा पुं० [हिं० ढोना] १. ढोए जाने की क्रिया । ढोवाई । २. लूट । उ०—सूनहि सून संवरि गढ़ रोवा । कस होइहि जो होइहि ढोवा ।—जायसी (शब्द०) ।

ढोबाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढुलाई] दे० 'ढुलाई' ।

ढोहना—क्रि० स० [हिं० टोह] टोह लेना । खोजना ।

ढौंचा—संज्ञा पुं० [सं० अर्द्ध प्रा० अड्ढ + हिं० चार] वह पहाड़ा जिसमें क्रम से एक एक अंक का साढ़े चार गुना अंक बतलाया जाता है । साढ़े चार का पहाड़ा ।

ढौंसना—क्रि० अ० [अनु०, हिं० धौंस] आनंदध्वनि करना । उ०—तियनि को तल्ला पिय तियन पियल्ला त्यागे ढौसत प्रबल्ला मल्ला धाए राजद्वार को ।—रघुराज (शब्द०) ।

ढौकन—संज्ञा पुं० [सं०] घूस । रिश्वत ।

ढौकना—क्रि० स० [देश०] पीना ।—(अशिष्ट) ।

ढौकित—वि० [सं०] समीप या निकट लाया हुआ (को०) ।

ढौरी(पु)†¹—संज्ञा स्त्री० [हिं०] रट । धुन । लौ । लगन । उ०—(क) रसिक सिर मौर ढोरि लगावत गावत राधा राधा नाम ।—सूर (शब्द०) । (ख) रूखिए खात नहीं अनखात भखे दिन राति रही परि ढौरी ।—देव (शब्द०) ।

ढौरी²—संज्ञा स्त्री० [हिं० ढुरना] दे० 'ढुर्री' ।

ण

ण—हिंदी या संस्कृत वर्णमाला का पंद्रहवाँ व्यंजन । इसका उच्चारण-स्थान मूर्धा है । इसके उच्चारण में आभ्यंतर प्रयत्न स्पृष्ट और सानुनासिक है । बाह्य प्रयत्न संवार नाद घोष और अल्पप्राण है । इसका संयोग मूर्धन्य वर्ण, अंतस्थ तथा म और ह के साथ होता है ।

ण¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. बिंदुदेव । एक बुद्ध का नाम । २. आभूषण । ३. निर्णय । ४. ज्ञान । ५. शिव का एक नाम । ६. पानी का घर । ७. दान । ८. पिंगल में एक गण का नाम । वि० दे० 'जगण' । ९. बुरा व्यक्ति । खराब आदमी (को०) । १०. अस्वीकारसूचक शब्द । न । नहीं (को०) ।

ण²—वि० गुणरहित । गुणशून्य ।

णगण—संज्ञा पुं० [सं०] दो मात्राओं का एक मात्रिक गण । इसके दो रूप हो सकते हैं—जैसे, 'श्री (ऽ) और हरि' (।।) ।

ण्य—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मलोक का एक समुद्र (को०) ।

त

त—संस्कृत या हिंदी वर्णमाला का १६वाँ और तवर्ग का पहला अक्षर जिसका उच्चारणस्थान दंत है । इसके उच्चारण में विवार, श्वास और अघोष प्रयत्न लगते हैं । इसके उच्चारण में आधी मात्रा का समय लगता है ।

त—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नाव । नौका । २ पुण्य । पवित्रता ।

तंक—संज्ञा पुं० [सं० तङ्क] १. भय । डर । वह दुःख जो किसी प्रिय के वियोग से हो । ३. पत्थर काटने की टाँकी । ४. पहनने का कपड़ा । ५. कष्टपूर्ण जीवन । विपत्तिमय जीवन (को०) ।

तंकन—संज्ञा पुं० [सं० तङ्कन] कष्टमय जीवन । दुःख के साथ जीवन व्यतीत करना (को०) ।

तंका(पु)—वि० [हिं० तंक] भयकारी । आतंक उत्पन्न करनेवाला । उ०—नरवल औ चित्तौड़ सु तंका । —ह० रासो, पृ० ५६ ।

तंग¹—संज्ञा पुं० [फ़ा०] घोड़ों की जीन कसने का तस्मा । घोड़ों की पेटी । कसन ।

तंग²—वि० १ कसा । दृढ़ । २. आजिज । दुखी । दिक । विकल । हैरान ।

मुहा०—तंग आना, तंग होना = घबरा जाना । थक जाना । तंग करना = सताना । दुःख देना । हाथ तंग होना = पल्ले पैसा न होना । धनहीन होना ।

३. संकरा । संकुचित । पतला । चुस्त । संकीर्ण । ओछा । छोटा । सिकुड़ा हुआ । सकेत । उ०—कहै पदमाकर त्यों उन्नत उरोजन पै तंग अँगिया है तनी तनिन तनाइकै ।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १२६ ।

तंगदस्त—वि० [फ़ा०] १. कृपण । कंजूस । २. दरिद्री । धनहीन । गरीब ।

तंगदस्ती—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. कृपणता । कंजूसी । २. दरिद्रता । धनहीनता । गरीबी ।

तंगदिल—वि० [फ़ा] कंजूस । उ०—हुआ मालुम यह गुंचे से हमको । जो कोइ जरदार है सो तंगदिल है ।—कविता कौ०, भाग० ४, पृ० ३० ।

तंगनजर—वि० [फ़ा० तंग + अ० नजर] १. तुच्छ दृष्टि का । सीमित दृष्टिवाला । बहुत कम देखनेवाला । उ०—उसने उनकी तुलना उन तंगनजर चीटियों से की, जो किसी प्रतिमा के सौंदर्य को इसलिये नहीं देख पातीं क्योंकि उसपर रेंगते समय वे केवल उसके छोटे मोटे उतार चढ़ावों पर ही दृष्टि केंद्रित रखती हैं ।—प्रेम० और गोर्की, पृ० 'च' । २. अनुदार । दकियानूस ।

तंगनजरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तंगनजर + ई (प्रत्य०)] १. दृष्टि की संकीर्णता । दृष्टि की अल्पता । २. अनुदारता । दकियानूसी ।

तंगहाल—वि० [फ़ा०] १. निर्धन । गरीब । २. विपद्ग्रस्त । कष्ट में पड़ा हुआ । ३. बीमार । रोगग्रस्त । मरणासन्न ।

तंगहाली—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० तंग + अ० हाल + फ़ा० ई (प्रत्य०)] १. तंग होने की स्थिति । कठिनाई । २. अभाव । ३. परेशानी । दिक्कत । ४. अर्थाभाव की स्थिति [को०] ।

तंगा—संज्ञा पुं० [देश०] १. एक प्रकार का पेड़ । २. अधन्ना । डबल पैसा ।

तंगिश—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तंगी' ।

तंगी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. तंग या सँकरे होने का भाव । संकीर्णता । संकोच । २ दुःख । तकलीफ । क्लेश । ३. निर्धनता । गरीबी । ४. कमी । उ०—बंध ते निर्बंध कीन्हा तोड़ सब तंगी । कहैं कबीर अगम गम कीया नाम रंग रंगी ।—कबीर श०, भा० १, पृ० ७७ ।

तंजन—संज्ञा पुं० [फ़ा० ताजियाना] दे० 'ताजन' । उ० जल बिनु पदुम घ्रानि बिनु चंपा विद्या चतुर घोड़ बिनु तंजन ।—सं० दरिया, पृ० ६० ।

तंजेब—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० तनज़ेब] एक प्रकार का महीन और बढ़िया मलमल ।

तंड१—संज्ञा पुं० [सं० ताण्डव] नृत्य । नाच । उ०—बहुत गुलाब के सुगंध के समीर सने परत फुही है जल जंत्रन के तंड की । —रसकुसुमाकर (शब्द०) ।

तंड२—संज्ञा पुं० [सं० तण्ड] एक ऋषि का नाम ।

तंड३(पु)—संज्ञा पुं० [सं० तण्डा] १. वध । संहार । २. आक्रमण । प्रहार । उ०—जिन बीरन बसि करन दुंद आशावत तंडहि ।—पृ० रा० ६।५६ ।

तंडक—संज्ञा पुं० [सं० तण्डक] १. खंजन पक्षी । २ फेन । ३. पेड़ का तना । ४. वह वाक्य जिसमें बहुत से समास हों । ५. बहुरूपिया । ६. सज्जा । सजावट (को०) । ७. ऐंद्रजालिक । बाजीगर (को०) । ८. पूर्वाभ्यास अथवा पूर्व अभिनय (को०) ।

तंडना(पु) क्रि० स० [सं० तण्ड] नष्ट करना । समाप्त करना । उ०—तोप नगारो तडियो, असुरां देव अमाप ।—शिखर०, पृ० ६५ ।

तंडव(पु)—संज्ञा पुं० [सं० ताण्डव] नृत्यविशेष । एक प्रकार का नाच । जैसे,—दोऊ रति पंडित अलंडित करत काम तंडव सो मंडित कला कहूँ पूरन की ।—देव (शब्द०) ।

तंडा—संज्ञा स्त्री० [सं० तण्डा] १. मार डालना । वध । २. आक्रमण । प्रहार [को०] ।

तंडि—संज्ञा पुं० [सं० तण्डि] एक बहुत प्राचीन ऋषि का नाम जिनका वर्णन महाभारत में आया है । इनके पुत्र के बनाए हुए मंत्र यजुर्वेद में हैं ।

तंडीर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० तूणीर] तूणीर । तरकस । उ०—तीन पनच धुनहीं करन बड़े कटन तंडीर ।—पृ० रा०, ७।७६ ।

तंडु—संज्ञा पुं० [सं० तण्डु] महादेव जी के नंदिकेश्वर । नंदी ।

तंडुरण—संज्ञा पुं० [सं० तण्डुरण] १. चावल का पानी । २. कीड़ा मकोड़ा ।

तंडुरीण—संज्ञा पुं० [सं० तण्डुरीण] १. वह पानी जिसमें चावल धोया गया हो । चावल का धोवन । २. माँड़ । ३. वज्र मूर्ख । बर्बर व्यक्ति । ४. कीड़ा मकोड़ा [को०] ।

तंडुल—संज्ञा पुं० [सं० तण्डुल] १ चावल । २. वायबिडंग । ३. तंडुली शाक । चौलाई का साग । ४. प्राचीन काल की हीरे की एक तौल जो आठ सरसों के बराबर होती थी ।

तंडुलजल—संज्ञा पुं० [सं० तण्डुलजल] चावल का पानी जो वैद्यक में बहुत हितकर बतलाया गया है । यह दो प्रकार से तैयार किया जाता है—(१) चावल को कूटकर अठगुने पानी में पकाकर छान लेते हैं, यह उत्तम तंडुलजल है । (२) चावल को थोड़ी देर तक भिगोकर छान लेते हैं । यह तंडुलजल साधारण है ।

तंडुलांबु—संज्ञा पुं० [सं० तण्डुलाम्बु] १. तंडुलजल । २. माँड़ । पीच ।

तंडुला—संज्ञा स्त्री० [सं० तण्डुला] १. वायबिडंग । ककड़ी का पौधा । २. चौलाई का साग ।

तंडुलिया—संज्ञा स्त्री० [सं० तण्डुल] चौलाई । चौराई ।

तंडुली—संज्ञा स्त्री० [सं० तण्डुली] १. एक प्रकार की ककड़ी । २. चौलाई का साग । ३. यवतिक्ता नाम की लता ।

तंडुलीक—संज्ञा पुं० [सं० तण्डुलीक] चौलाई का साग ।

तंडुलीय—संज्ञा पुं० [सं० तण्डुलीय] चौलाई का साग ।

तंडुलीयक—संज्ञा पुं० [सं० तण्डुलीयक] १. वायबिडंग । २. चौलाई का साग ।

तंडुलीयिका—संज्ञा स्त्री० [सं० तण्डुलीयिका] वायविडंग ।

तंडुलू—संज्ञा स्त्री० [सं० तण्डल] वायविडंग । बिडग ।

तंडुलेर—संज्ञा पुं० [सं० तण्डुलेर] चौलाई का साग ।

तंडुलेरक—संज्ञा पुं० [सं० तण्डुलेरक] चौलाई का साग ।

तंडुलोत्थ—संज्ञा पुं० [सं० तण्डुलोत्थ] चावल का पानी । दे० 'तंडुलजल' ।

तंडुलोत्थक—संज्ञा पुं० [सं० तण्डुलोत्थक] दे० 'तंडुलोत्थ' [को०] ।

तंडुलोदक—संज्ञा पुं० [सं० तण्डुलोदक] चावल का पानी । दे० 'तंडुलजल' ।

तंडुलौघ—संज्ञा पुं० [सं० तण्डुलौघ] १. एक प्रकार का बाँस । कटवाँसी । २. अनाज का ढेर (को०) ।

तंत१(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० तन्तु] 'तन्तु' । उ०—किंगरी हाथ गहे बैरागी । पाँच तंत धुनि यह एक लागी ।—जायसी (शब्द०)।

तंत२—संज्ञा स्त्री० [हिं० तुरंत] किसी बात के लिये जल्दी । आतुरता । उतावली । उ०—ध्यान की मूरति आँखि ते आगे जानि परत रघुनाथ ऐसे कहति हैं तंत सों ।—रघुनाथ (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—लगाना ।

तंत३—संज्ञा पुं० [सं० तत्व] दे० 'तत्व' । उ०—योगिहि कोहु न चाही तब न मोहि रिस लाग । योग तंत ज्यों पानी काहि करे तेहि आग ।—जायसी (शब्द०) ।

तंत४—संज्ञा पुं० [सं० तन्त्र] १. वह बाजा जिसमें बजाने के लिये तार लगे हों । जैसे,—सितार, बीन, सारंगी । उ०—(क) बटिनी

डोमिनि ढोलिनी सहनाइनि भेरिकार। निरतत तंत विनोद सउँ बिहँसत खेलति नारि।—जायसी (शब्द०)। (ख) तंतन की झनकार बजत झीनी झीनी।—संतवाणी०, पृ० २३। २. क्रिया : उ०—जनु उन योग तंत अब खेला।—जायसी (शब्द०)। ३. तंत्रशास्त्र। उ०—कहइ जीउ तंत मंत सउं हेरा। गएउ हेराय सो वह भा मेरा।—जायसी (शब्द०) ४. इच्छा। प्रबल कामना। उ०—(क) दिसि परजंत अनंत स्यात जय बिजय तंत जिय।—गोपाल (शब्द०)। (ख) बुद्धिमंत दुतिमंत तंत जय मय निरधारत।—गोपाल (शब्द०)। ५ वश। अधीनता। उ०—त्यों पदमाकर आइगो कंत इकंत जबै निज तंत मैं जानी। पद्माकर (शब्द०)।

विशेष—दे० 'तंत्र'।

तंत[६]—वि० जो तौल में ठीक हो। जो वजन में बराबर हो।

तंतमंत(पु)—संज्ञा पुं० [सं० तन्त्रमन्त्र] दे० 'तंत्र मंत्र'। उ०—कहइ जिउ तंत मंत सों हेरा। गएउ हिराय जो वह भा मेरा—जायसी (शब्द०)।

तंतरी(पु)—संज्ञा पुं० [सं० तंत्री] वह जो तारवाले बाजे बजाता हो। उ०—आयो दुसह बसंत री कंत न आए बीर। जन मन बेधत तंतरी मदन सुमन के तीर।—शृं० सत० (शब्द०)।

तंताल(पु)—संज्ञा पुं० [?] पाताल। उ०—नभ नाल तताल धराल मिले त्रयलोक सुरप्पति बिद्धि सही।—राम० धर्म०, पृ० १००।

तंति—संज्ञा स्त्री० [सं० तन्ति] १. गो। गाय। २. रस्सी (को०)। ३. पंक्ति (को०)। ४. शृंखला (को०)। ५. फैलाव। प्रसार (को०)।

तंति[२]—संज्ञा पुं० जुलाहा।

तंति(पु)[३]—संज्ञा स्त्री० [सं० तन्त्री] १ तंत्री। वीणा। उ०—नृत्तंत एक संगीत भति। नारद रिझझ कर धरत तंति।—पृ० रा०, ६।४१। २ ताँत। प्रत्यंचा। डोरी। गुण। उ०—नव पुहुपन के धनुष बनावे। मधुप पाँति तिनि तंति चढ़ावे।—नंद० ग्रं०, पृ० १६४।

तंतिपाल—संज्ञा पुं० [तन्तिपाल] १. सहदेव का वह नाम जिससे वह अज्ञातवास के समय विराट के यहाँ प्रसिद्ध थे। २. वह जो गो की रक्षा या पालन करता हो।

तंती(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तंत्री'। उ०—तंतिनाद। तँबोल रस सुरहि सुगंधउ जाँह।—ढोला०, दू० २२३।

तंतु[१]—संज्ञा पुं० [सं० तन्तु] १. सूत। डोरा। तागा।

यौ०—तंतुकीट।

२. ग्राह। ३. संतति। संतान। बाल बच्चे। ४. विस्तार। फैलाव। ५. यज्ञ की परंपरा। ६. वंशपरंपरा। ७. ताँत। ८. मकड़ी का जाला।

तंतु[२](पु)—संज्ञा पुं० [सं० तन्त्र] तंत्र। उ०—जिहि मूरि औषद लगै, जाहि तंतु नहिं मंतु। पिय पऊष पावै नही, व्याधि कहत इमि जंतु।—रस र०, पृ० ५०।

तंतुक[१]—संज्ञा पुं० [सं० तन्तुक] १. सरसों। २. (केवल समासांत में) सूत्र। रस्सा (को०)। ३. सर्प (को०)।

तंतुक[२]—संज्ञा स्त्री० [सं०] नाड़ी।

तंतुकाष्ठ—संज्ञा पुं० [सं० तन्तुकाष्ठ] जुलाहों की एक लकड़ी जिसे तूली कहते हैं।

तंतुकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] नाड़ी।

तंतुकीट—संज्ञा पुं० [सं० तन्तुकीट] १. मकड़ी। २. रेशम का कीड़ा।

तंतुजाल—संज्ञा पुं० [सं० तन्तुजाल] नसों का समूह (वैद्यक)।

तंतुण—संज्ञा पुं० [सं० तन्तुण] १. एक बड़ी मछली। २. मगर (को०)।

तंतुन—संज्ञा पुं० [सं० तन्तुन] दे० 'तंतुण' (को०)।

तंतुनाग—संज्ञा पुं० [सं० तन्तुनाग] मगर।

तंतुनाभ—संज्ञा पुं० [सं० तन्तुनाभ] मकड़ी।

तंतुनिर्यास—संज्ञा पुं० [सं० तन्तुनिर्यास] ताड़ का पेड़।

तंतुपर्व—संज्ञा पुं० [सं० तंतुपर्व्वन्] श्रावण की पूर्णिमा जिस दिन राखी बाँधी जाती है। रक्षाबंधन।

तंतुभ—संज्ञा पुं० [सं० तन्तुभ] १. सरसों। २. बछड़ा।

तंतुमत्—संज्ञा पुं० [सं० तन्तुमत्] आग।

तंतुमान्—संज्ञा पुं० [सं० तन्तुमत्] आग (को०)।

तंतुर—संज्ञा पुं० [सं० तन्तुर] मृणाल। भसीड़। मुरार। कमल की जड़। कमलनाल।

तंतुल—संज्ञा स्त्री० [सं० तन्तुल] दे० 'तंतुर'।

तंतुवर्धन[१]—वि० [सं० तन्तुवर्धन] जाति को बढ़ानेवाला (को०)।

तंतुवर्धन[२]—संज्ञा पुं० १. विष्णु। २. शिव (को०)।

तंतुवादक—संज्ञा पुं० [सं० तन्तुवादक] तंत्री। बीन आदि तार के बाजे बजानेवाला। उ०—बहुरि तंतुवादक रघुराई। गान करम मे निपुन बनाई।—रामाश्वमेध (शब्द०)।

तंतुवाद्य—संज्ञा पुं० [सं० तन्तुवाद्य] १. तारवाला बाजा (को०)।

तंतुवाप—संज्ञा पुं० [सं० तन्तुवाप] १ ताँत। २. ताँती। दे० 'तंतुवाय'।

तंतुवाय—संज्ञा पुं० [सं०] १. कपड़े बुननेवाला। ताँती।

विशेष—भिन्न भिन्न स्मृतियों मे इनकी उत्पत्ति भिन्न भिन्न प्रकार से बतलाई गई है। किसी में इन्हें मणिबंध पुरुष और मणिकार स्त्री से और किसी में वैश्य पिता और क्षत्रियाणी माता के गर्भ से उत्पन्न बतलाया गया है। इनकी उत्पत्ति के संबंध में अनेक प्रकार की कथाएँ भी हैं।

२. मकड़ी। उ०—आकाश जाल सब ओर तना, रवि तंतुवाय है आज बना। करता है पदप्रहार वही, मक्खी सी भिन्ना रही मही।—साकेत, पृ० २६७।

तंतुवायदंड—संज्ञा पुं० [सं० तन्तुवायदण्ड] करघा (को०)।

तंतुविग्रह—संज्ञा पुं० [सं० तन्तुविग्रह] केले का पेड़।

तंतुविग्रहा—संज्ञा स्त्री० [सं० तन्तुविग्रहा] केले का पेड़ (को०)।

तंतुशाला—संज्ञा स्त्री० [सं० तन्तुशाला] जुलाहे का कपड़ा बुनने का स्थान (को०)।

तंतुसंतत—वि० [सं० तन्तुसन्तत] बुना हुआ [को०]।

तंतुसंतति—संज्ञा स्त्री [सं० तन्तुसन्तति] बुनाई [को०]।

तंतुसंतान—संज्ञा पुं० [सं० तन्तुसन्तान] बुनाई [को०]।

तंतुसार—संज्ञा पुं० [सं० तन्तुसार] सुपारी का पेड़।

तंत्र—संज्ञा पुं० [सं० तन्त्र] १. तंतु। तांत। २. सूत। ३. जुलाहा। ४. कपड़ा बुनने की सामग्री। ५. कपड़ा। वस्त्र। ६. कुटुंब के भरण और पोषण आदि का कार्य। ७. निश्चित सिद्धांत। ८. प्रमाण। ९. औषध। दवा। १०. झाड़ने फूँकने का मंत्र। ११. कार्य। १२. कारण। १३. उपाय। १४. राजकर्मचारी। १५. राज्य। १६. राज का प्रबंध। १७. सेना। फौज। १८. अधिकार। १९. कार्य का स्थान। पद। २०. समूह। २१. प्रसन्नता। आनंद। २२. घर। मकान। २३. धन। संपत्ति। २४. अधीनता। परवश्यता। २५. श्रेणी। वर्ग। कोटि। २६. दल। २७. उद्देश्य। २८. कुल। खानदान। २९. शपथ। कसम। ३० हिंदुओं का उपासना संबंधी एक शास्त्र।

विशेष—लोगों का विश्वास है कि यह शास्त्र शिवप्रणीत है। यह शास्त्र तीन भागों में विभक्त है—आगम, यामल और मुख्य तंत्र। वाराही तंत्र के अनुसार जिसमें सृष्टि, प्रलय, देवताओं की पूजा, सब कार्यों के साधन, पुरश्चरण, षट्कर्मसाधन और चार प्रकार के ध्यानयोग का वर्णन हो, उसे आगम और जिसमे सृष्टितत्व, ज्योतिष, नित्य कृत्य, क्रम, सूत्र, वर्णभेद और युगधर्म का वर्णन हो उसे यामल कहते हैं; और जिसमें सृष्टि, लय, मंत्रनिर्णय, देवताओं के संस्थान, यंत्रनिर्णय, तीर्थ, आश्रम, धर्म, कल्प, ज्योतिष संस्थान, व्रतकथा, शौच और अशौच, स्त्री-पुरुष-लक्षण, राजधर्म, दानधर्म, युगधर्म, व्यवहार तथा आध्यात्मिक विषयों का वर्णन हो, वह तंत्र कहलाता है। इस शास्त्र का सिद्धांत है कि कलियुग में वैदिक मंत्रों, जपों और यज्ञों आदि का कोई फल नहीं होता। इस युग में सब प्रकार के कार्यों की सिद्धि के लिये तंत्रशास्त्र में वर्णित मंत्रों और उपायों आदि से ही सहायता मिलती है। इस शास्त्र के सिद्धांत बहुत गुप्त रखे जाते हैं और इसकी शिक्षा लेने के लिये मनुष्य को पहले दीक्षित होना पड़ता है। आजकल प्रायः मारण, उच्चाटन, वशीकरण आदि के लिये तथा अनेक प्रकार की सिद्धियों आदि के साधन के लिये ही तंत्रोक्त मंत्रों और क्रियाओं का प्रयोग किया जाता है। यह शास्त्र प्रधानतः शाक्तों का ही है और इसके मंत्र प्रायः अर्थहीन और एकाक्षरी हुआ करते हैं। जैसे,—ह्रीं, क्लीं, श्रीं, स्पीं, शूं, क्रूं आदि। तांत्रिकों का पंचमकार—मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा और मैथुन—और चक्रपूजा प्रसिद्ध है। तांत्रिक सब देवताओं का पूजन करते हैं पर उनकी पूजा का विधान सबसे भिन्न और स्वतंत्र होता है। चक्रपूजा तथा अन्य अनेक पूजाओं मे तांत्रिक लोग मद्य, मांस और मत्स्य का बहुत अधिकता से व्यवहार करते हैं और धोबिन, तेलिन आदि स्त्रियों को नंगी करके उनका पूजन करते हैं। यद्यपि अथर्ववेद संहिता में मारण, मोहन, उच्चाटन और वशीकरण आदि का वर्णन और विधान है तथापि आधुनिक तंत्र का उसके साथ कोई संबंध नहीं है। कुछ लोगों का विश्वास है कि कनिष्क के समय में और उसके उपरांत भारत में आधुनिक तंत्र का प्रचार हुआ है। चीनी यात्री फाहियान और हुएनसांग ने अपने लेखों में इस शास्त्र का कोई उल्लेख नहीं किया है। यद्यपि निश्चित रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि तंत्र का प्रचार कब से हुआ पर तो भी इसमें संदेह नहीं कि यह ईसवी चौथी या पाँचवीं शताब्दी से अधिक पुराना नहीं है। हिंदुओं की देखादेखी बौद्धों में भी तंत्र का प्रचार हुआ और तत्संबंधी अनेक ग्रंथ बने। हिंदू तांत्रिक उन्हें उपतंत्र कहते हैं। उनका प्रचार तिब्बत तथा चीन मे है। वाराही तंत्र मे यह भी लिखा है कि जैमिनि, कपिल, नारद, गर्ग, पुलस्त्य, भृगु, शुक्र, बृहस्पति आदि ऋषियों ने भी कई उपतंत्रों की रचना की है।

तंत्रक—संज्ञा पुं० [सं० तन्त्रक] नया कपड़ा।

तंत्रकाष्ठ—संज्ञा पुं० [सं० तन्त्रकाष्ठ] दे० 'तंतुकाष्ठ' [को०]।

तंत्रण—संज्ञा पुं० [सं० तन्त्रण] शासन या प्रबंध आदि करने का काम।

तंत्रता—संज्ञा स्त्री० [सं० तन्त्रता] कई कार्यों के उद्देश्य से कोई एक कार्य करना। कोई ऐसा कार्य करना जिससे अनेक उद्देश्य सिद्ध हों। जैसे, यदि किसी ने अनेक प्रकार के पाप किए हों तो उनमें प्रत्येक पाप के लिये प्रायश्चित्त न करके एक ऐसा प्रायश्चित्त करना जिससे सब पाप नष्ट हो जायँ अथवा बार बार अस्पृश्य होने की दशा में प्रत्येक बार स्नान न करके सबके अंत में एक ही बार स्नान कर लेना। (धर्मशास्त्र)।

तंत्रधारक—संज्ञा पुं० [सं० तन्त्रधारक] यज्ञ आदि कार्यों में वह मनुष्य जो कर्मकांड आदि की पुस्तक लेकर याज्ञिक आदि के साथ बैठता हो।

विशेष—स्मृतियों के अनुसार यज्ञ आदि मे ऐसे मनुष्य का होना आवश्यक है।

तंत्रमंत्र—संज्ञा पुं० [सं० तन्त्र + मन्त्र] जादूगरी। जादू टोना। २. उपाय। युक्ति। ढब। ३. साधक द्वारा साधना में प्रयुक्त तंत्रादि।

तंत्रयुक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं० तन्त्रयुक्ति] वह युक्ति जिसकी सहायता से किसी वाक्य का अर्थ आदि निकालने या समझने में सहायता ली जाय।

विशेष—सुश्रुत संहिता मे तंत्रयुक्तियाँ इस प्रकार की बताई गई हैं—अधिकरण, योग, पदार्थ, हेत्वर्थ, प्रदेश, अतिदेश, अपवर्ग, वाक्यशेष, अर्थापत्ति, विपर्यय, प्रसंग, एकांत, अनेकांत, पूर्वपक्ष, निर्णय, अनुमत, विधान, अनागतवेक्षण, अतिक्रांतावेक्षण, संशय, व्याख्यान, स्वसंज्ञा, निर्वचन, निदर्शन, नियोग, विकल्प, समुच्चय और ऊह्य।

तंत्रवाद्य—संज्ञा पुं० [सं० तन्त्रवाद्य] तारवाले वाद्य यंत्र। जैसे, वीणा, सारंगी आदि।

तंत्रवाप—संज्ञा पुं० [सं० तन्त्रवाप] १. तंतुवाय। तांती। २. मकड़ी।

तंत्रवाय—संज्ञा पुं० [सं० तन्त्रवाय] १. तंतुवाय। तांती। २. मकड़ी। ३. तांत।

तंत्रसंस्था—संज्ञा पुं० [सं० तन्त्रसंस्था] वह संस्था जो राज्य का शासन या प्रबंध करे। गवर्नमेंट। सरकार।

तंत्रस्कंद—संज्ञा पुं० [सं० तन्त्रस्कन्द] ज्योतिष शास्त्र का वह अंग जिसमें गणित के द्वारा ग्रहों की गति आदि का निरूपण होता है। गणित ज्योतिष।

तंत्रस्थिति—संज्ञा स्त्री० [सं० तन्त्रस्थिति] राज्य के शासन की प्रणाली।

तंत्रहोम—संज्ञा पुं० [सं० तन्त्रहोम] वह होम जो तंत्रशास्त्र के मत से हो।

तंत्रा—संज्ञा स्त्री० [सं० तन्त्रा] दे० 'तंद्रा'।

तंत्रायी—संज्ञा पुं० [सं० तंत्रायिन्] सूर्य (को०)।

तंत्रि—संज्ञा स्त्री० [सं० तन्त्रि] १. तंत्री। २. तंद्रा। ३. तार। तंत्र (को०)। ४. वीणा का तार (को०)। ५. नस। शिरा (को०)। ६. पूँछ। दुम (को०)। ७. विचित्र गुणों से युक्त स्त्री (को०)। ८. वीणा (को०)। ९. अमृता। गुड़ची (को०)।

तंत्रिपाल—संज्ञा पुं० [सं० तन्त्रिपाल] दे० 'तंतिपाल'।

तंत्रिपालक—संज्ञा पुं० [सं० तन्त्रिपालक] जयद्रथ का एक नाम।

तंत्रिमुख—संज्ञा पुं० [सं० तन्त्रिमुख] हाथ की एक मुद्रा या स्थिति (को०)।

तंत्रिल—वि० [सं० तन्त्रिल] राजकार्य में लग्न (को०)।

तंत्री[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० तन्त्री] १. बीन, सितार आदि बाजों मे लगा हुआ तार। २. गुड़ची। गुरुच। ३. शरीर की नस। ४. एक नदी का नाम। ५. रज्जु। रस्सी। ६. वह बाजा जिसमें बजाने के लिये तार लगे हों। तंत्र। जैसे, सितार, बीन, सारंगी आदि। ७ वीणा।

तंत्री[2]—संज्ञा पुं० [सं० तन्त्रिन्] १. वह जो बाजा बजाता हो। २. वह जो गाता हो। गवैया। उ०—तंत्री काम क्रोध निज दोऊ अपनी अपनी रीति। दुविधा दुंदुभि है निसिबासर उपजावति विपरीत।—सूर (शब्द०)। ३ सैनिक (को०)।

तंत्री[3]—वि० १. जिसमें तार लगे हों। तार का बना हुआ। २. जो तारवाला हो (जैसे, वीणा)। ३. तंत्र का अनुसरण करनेवाला (को०)।

तंत्री[4]—वि० [सं० तन्त्रिन्] १. आलसी। २. अधीन।

तंत्रीभांड—संज्ञा पुं० [सं० तन्त्रीभाण्ड] वीणा (को०)।

तंत्रीमुख—संज्ञा पुं० [सं० तन्त्रीमुख] हाथ की एक मुद्रा या अवस्थान।

तंदरा(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० तन्द्रा] दे० 'तंद्रा'। उ०—तारकैसे तरणि जुन्हाई ज्यों तरुण तम तरुणी तपी ज्यों तरुण ज्वर तंदरा।—देव (शब्द०)।

तंदान—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बढ़िया अंगूर जो क्वेटा के आसपास होता है और जिसको सुखाकर किशमिश बनाते हैं।

तंदिही—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० तनदिही] दे० 'तंदेही'। उ०—मगर कोशिश व तंदिही करने से वह सब आसानी रफा हो सकती है।—श्रीनिवास० ग्रं०, पृ० ३२।

तंदुआ—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की बारहमासी घास जो जमीन में ही जमती है और चारे के काम में आती है ऊसर जमीन में खाद का भी काम देती है।

तंदुरुस्त—वि० [फा०] जिसका स्वास्थ्य अच्छा हो। जिसे को या बीमारी न हो। निरोग। स्वस्थ।

तंदुरुस्ती—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. शरीर की आरोग्यता। निरोग की अवस्था या भाव। २. स्वास्थ्य।

तंदुल(पु)[1]—संज्ञा पुं० [सं० तण्डुल] १. दे० 'तंडुल'। उ०—(तंदुल माँगि दो चिलाई सो दीन्हों उपहार। फाटे बसन कै द्विजवर अति दुर्बल तनहार।—सूर (शब्द०)। (ख) तंदुल के न्याय सों है संगृष्टि बखान। छीर नीर के न्या संकर कहत सुजान।—पद्माकर ग्रं०, पृ० ७४। २. दे० 'तं उ०—आठ श्वेत सरसों को तंदुल जानिये। दश तंदुल माण सुगुंजा मानिये।—रत्नपरीक्षा (शब्द०)।

तंदुल(पु)[2]—संज्ञा पुं० [फा० तंदूर] गर्जन। आवाज। ध्वनि। उ गज चिक्कार फिकार सबद्दं। तंदुल तबल मृदंग रबद्दं।—रा०, ६।१२७।

तंदुलीयक—संज्ञा पुं० [सं० तंदुलीयक] चौलाई का शाक। का साग।

तंदूर—संज्ञा पुं० [फ़ा० तनूर] अंगीठी, चूल्हे या भट्ठी आदि की का बना हुआ एक प्रकार का मिट्टी का बहुत बड़ा, गोल ऊँचा पात्र जिसके नीचे का भाग कुछ अधिक चौड़ा होत उ०—आज तंदूर से गरम रोटी लपककर भूखे की झो आ गिरी।—बंदनवार, पृ० ५६।

विशेष—इसमे पहले लकड़ी आदि की खूब तेज आँच सुलग हैं और जब वह खूब तप जाता है तब उसकी दीवार भीतर की ओर मोटी रोटियाँ चिपका देते हैं जो थोड़ मे सिककर लाल हो जाती हैं। कभी कभी जमीन में खोदकर भी तंदूर बनाया जाता है।

क्रि० प्र०—लगाना।

मुहा०—तंदूर झोंकना = भाड़ झोंकना। निकृष्ट काम करन

तंदूरी[1]—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का रेशम जो माल आता है।

विशेष—इसका रंग पीला होता है और यह अत्यंत बारीक मुलायम होता है। यह किरची से कुछ घटिया होता है।

तंदूरी[2]—वि० [हिं० तंदूर + ई (प्रत्य०)] तंदूर संबंधी। तंदूरी रोटी।

तंदेही—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० तनदिही] १. परिश्रम। मेहनत प्रयत्न। कोशिश। ३. किसी काम को करने के लिये बार चेतावनी। ताकीद।

क्रि० प्र०—करना। रखना।

तंद्र—वि० [सं० तंद्र] १. थकित। क्लांत। २. सुस्त। आलसी (को

तंद्रवाप, तंद्रवाय—संज्ञा पुं० [सं० तन्द्रवाप, तन्द्रवाय] दे० 'तंतुवा

तंद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं० तन्द्रा] १. वह अवस्था जिसमें बहुत अधिक मालूम पड़ने के कारण मनुष्य कुछ कुछ सो जाय। ऊँघ

ऊँघ। २. वह हलकी बेहोशी जो चिंता, भय, शोक या दुर्बलता आदि के कारण हो।

विशेष—वैद्यक के अनुसार इसमें मनुष्य को व्याकुलता बहुत होती है, इंद्रियों का ज्ञान नहीं रह जाता, जँभाई आती है, उसका शरीर भारी जान पड़ता है, उससे बोला नहीं जाता तथा इसी प्रकार की दूसरी बातें होती हैं। तंद्रा कटुतिक्त या कफनाशक वस्तु खाने और व्यायाम करने से दूर होती है।

क्रि० प्र०—आना।

तंद्रालस—वि० [सं० तन्द्रा + अलस] १. तंद्रालीन। आलस्ययुक्त। सुस्त। २. क्लांत। थकित। ३. निद्रित। उ०—भीतर नंदराम और प्रेमा का स्नेहालाप बंद हो चुका था। दोनों तंद्रालस हो रहे थे।—इंद्र०, पृ० २२।

तंद्रालु—वि० [सं० तन्द्रालु] जिसे तंद्रा आती हो।

तंद्रि—संज्ञा स्त्री० [सं० तन्द्रि] दे० 'तंद्रा'।

तंद्रिक—संज्ञा पुं० [सं० तन्द्रिक] एक प्रकार का ज्वर [को०]।

तंद्रिक सन्निपात—संज्ञा पुं० [सं०] ऐसा सन्निपात ज्वर जिसमें उँघाई विशेष आए, ज्वर वेग से चढ़े, प्यास विशेष लगे, जीभ काली होकर खुरखुरी हो जाय, दम फूले, दस्त विशेष हों, जलन न हो और कान में दर्द रहे। इसकी अवधि २५ दिन है।

तंद्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं० तन्द्रिका] दे० 'तंद्रा'।

तंद्रित—वि० [सं० तन्द्रित] तंद्रा युक्त। अलसाया हुआ। उ०—थक तंद्रित राग रोग है, अब जो जाग्रत है वियोग है।—साकेत, पृ० ३२१।

तंद्रिता—संज्ञा स्त्री० [सं० तन्द्रिता] तंद्रा में होने का भाव।

तंद्रिल—वि० [सं० तन्द्रिल] १. जिसे तंद्रा आती हो। आलसी। २. तंद्रा या आलस्य से युक्त। ३. अलसाया हुआ। तंद्रित। सुस्त। उ०—तंद्रिल तरुतल, छाया शीतल, स्वप्निल मर्मर। हो साधारण खाद्य उपकरण, सुरा पात्र भर।—मधुज्वाल, पृ० ६०।

तंद्री[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० तन्द्री] १. तंद्रा। २. भृकुटी। भौंह।

तंद्री[2]—वि० [सं० तंद्रिन्] १. थका हुआ। क्लांत। २. आलसी [को०]।

तंपा—संज्ञा स्त्री० [सं० तम्पा] गौ। गाय।

तंफना—क्रि० अ० [सं० स्तम्भन] स्तमना। स्तंभित होना। उ०—धरि ध्यान ध्यान तिन अगनि ईस। पडे सु जगिग तंफै जगीस।—पृ० रा० ११४८८।

तंबा[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० तम्बा] गौ। गाय।

तंबा[2]—संज्ञा पुं० [फ़ा० तबान] बहुत चौड़ी मोहरी का एक प्रकार का पायजामा। उ०—तंबा सूथन सरो जाँघिया तनियाँ धवला। पगरी चीरा ताजगोस बदा सिर अगला।—सूदन (शब्द०)।

तंबाकू—संज्ञा पुं० [अं० टोबैको] दे० 'तमाकू'।

तंबाकूगर—संज्ञा पुं० [हिं० तंबाकू + फ़ा० गर] तमाकू बनानेवाला।

तंबालू†—संज्ञा पुं० [देश०] एक पौधा। उ०—निकल आया मुँ तंबालू के सार।—दक्खिनी०, पृ० ६०।

तंबिका—संज्ञा स्त्री० [सं० तम्बिका] गौ। गाय।

तंबिया—संज्ञा पुं० [हिं० ताँबा + इया (प्रत्य०)] १. ताँबे का बना हुआ छोटा तसला या इसी प्रकार का और कोई गोल बरतन। २. किसी प्रकार का तसला।

तंबीर—संज्ञा पुं० [सं० तम्बीर] ज्योतिष का एक योग। उ०—होय तंबीर जब कठिन कुंदी करै चामदल कष्ट तहाँ परै गाढ़ी।—राम० धर्म०, पृ० ३८१।

तंबीह—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. ऐसी सूचना या क्रिया आदि जिसके कारण कोई मनुष्य आगे के लिये सावधान रहे। नसीहत। शिक्षा। २. दंड। सजा। (लश०)।

तंबू—संज्ञा पुं० [हिं० तनना] १. कपड़े, टाट, कनवास, आदि का बना हुआ वह बड़ा घर जो खंभों और खूँटों पर तना रहता है और जिसे एक स्थान से उठाकर दूसरे स्थान तक ले जा सकते हैं। खेमा। डेरा। शिविर। शामियाना।

विशेष—साधारणतः तंबू का व्यवहार जंगलों में शिकार आदि के समय रहने अथवा नगरों में सार्वजनिक सभाएँ, खेल, तमाशे और नाच आदि करने के लिये होता है।

क्रि० प्र०—खड़ा करना।—तानना।

२. एक प्रकार की मछली जो बाँब की तरह होती है।

तंबुआ†—संज्ञा पुं० [हिं० तम्बू] दे० 'तंबू'। उ०—हाथी घोड़ा तंबुआ आवै केहि कामा। फूलन सेज बिछावते फिर गोर मुकामा।—पलटू०, भा० ३, पृ० १७।

तंबूर[1]—संज्ञा पुं० [फ़ा०] एक प्रकार का छोटा ढोल।

तंबूर[2]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तंबूरा'।

तंबूरची—संज्ञा पुं० [फ़ा० तम्बूर + ची (प्रत्य०)] तंबूर बजानेवाला।

तंबूरा—संज्ञा पुं० [हिं० तानपूरा या तुम्बुरु (गंधर्व)] बीन या सितार की तरह का एक बहुत पुराना बाजा जो अलापचारी में केवल सुर का सहारा देने के लिये बजाया जाता है। तानपूरा। उ०—अजब तरह का बना तंबूरा, तार लगे सो साठ रे। खूँटी टूटी तार बिलगाना कोई न पूछे बात रे।—कबीर श०, पृ० ४७।

विशेष—इससे राग के बोल नहीं निकाले जाते। इसमें बीच में लोहे के दो तार होते हैं जिनके दोनों ओर दो और तार पीतल के होते हैं। कुछ लोग कहते हैं कि इसे तुंबुरु गंधर्व ने बनाया था, इसी से इसका नाम तंबूरा पड़ा। इसकी जवारी पर तारों के नीचे सूत रख देते हैं जिसके कारण उनसे निकलनेवाले स्वर में कुछ झनझनाहट आ जाती है।

तंबूरा तोप—संज्ञा स्त्री० [हिं० तंबूरा + तोप] एक प्रकार की बड़ी तोप।

तंबूल†—संज्ञा पुं० [सं० ताम्बूल] पान। तांबूल।

तंबेरम—संज्ञा पुं० [सं० स्तम्बेरम] हाथी (डिं०)।

तंबेरम(पु)—संज्ञा पुं० [सं० स्तम्बेरम] हाथी। उ०—पानहु दीन्ह समुद्र हलोरा, लहट मनुज तंबेरम घोरा।—इंद्रा०, पृ० ६६।

तंबोल—संज्ञा पुं० [सं० ताम्बूल] १. दे० 'तांबूल' और 'तमोल'। उ०—अगु सरूप सजि भगरहि ऐकु तंबोल अरु तेल्लु।—अकबरी०, पृ० ३१२। २. एक प्रकार का पेड़ जिसके पत्ते लिसोड़े के पत्तों से मिलते जुलते होते हैं। ३. वह धन जो बरात के समय वर को दिया जाता है। (पंजाब)। ४. वह धन जो विवाह या बरात के न्योते के साथ मार्गव्यय के लिये भेजा जाता है। (बुंदेलखंड)। ५. वह खून जो लगाम की रगड़ के कारण घोड़े के मुँह से निकलता है। (साईस)।

क्रि० प्र०—आना।

तंबोलिन—संज्ञा स्त्री० [हिं० तम्बोली का स्त्री०] पान बेचनेवाली स्त्री। बरइन।

तंबोलिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० तम्बूल + इया (प्रत्य०)] पान के आकार की एक प्रकार की मछली जो प्रायः गंगा और जमुना में पाई जाती है।

तंबोली—संज्ञा पुं० [हिं० तम्बोल + ई (प्रत्य०)] वह जो पान बेचता हो। पान बेचनेवाला। बरई।

तंभ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० स्तम्भ] शृंगार रस के १० भावों में से एक। स्तंभ। उ०—मोहति मुरति आँसू स्वेत तंभ पुलक विवर्न कंप सुरभंग मूरछि परति है।—देव (शब्द०)।

तंभन—संज्ञा पुं० [सं० स्तम्भन] शृंगार रस के १० सात्विक भावों में से एक। स्तभन। उ०—आरंभन तंभन सदंभ परिरंभन कचगृह सरभस चुंबन घनेरे ई।—देव (शब्द०)।

तंभावती—संज्ञा स्त्री० [सं० तम्भावती या हिं०] संपूर्ण जाति की एक रागिनी जो रात के दूसरे पहर में गाई जाती है।

तंमोल(पु)—संज्ञा पुं० [सं० ताम्बूल] दे० 'तमोल'। उ०—(क) अधरान रागु तंमोल जीभ।—पृ० रासो०, पृ० १६५। (ख) दुति दसन हीर तंमोल रंग। दाड़िमी बीज मानो तुरंग।—रसरतन०, पृ० २४८।

तँई—प्रत्य० [हिं०] दे० 'तई'।

तँकारी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'टकारी'।

तँगिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० तनना] दे० 'तनी'।

तंडलना(पु)—क्रि० स० [सं० तण्ड] तोड़ना। उ०—सेल्ह झोक सायक्क, तेग साबल कार तँडला।—रा० रू०, पृ० ८५।

तँबरा(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तबला'। उ०—डीग ऊपर तँबरा बाजा, देखो फिरंगी का।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ४३१।

तँबियाना—क्रि० अ० [हिं० ताँबा] १. ताँबे के रंग का होना। २. ताँबे के बरतन में रहने के कारण किसी पदार्थ में ताँबे का स्वाद या गंध आ जाना।

तँबुआ(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० तंबू] दे० 'तंबू'।

तँबूरची—संज्ञा पुं० [फ़ा० तंबूर + ची (प्रत्य०)] दे० 'तंबूरची'। उ०—कहै पदमाकर तिलंगी मीर भृंगन को मेजर तँबूरची मयूर गुन गायो है।—पद्माकर ग्रं०, पृ०, ३२०।

तँबोर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० ताम्बूल] दे० 'तमोर'। उ०—दग अनुरागे पागे रंग तँबोर।—घनानंद, पृ० ३३४।

तँबोल(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तांबूल'। उ०—मुख तँबोल रँग धारहि रासा।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १९०।

तँबोलिन†—संज्ञा स्त्री० [हिं० तम्बोली] दे० 'तंबोलिन'।

तँबोलिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० तंबोल + इया (प्रत्य०)] दे० 'तंबोलिया'।

तँबोली—संज्ञा पुं० [हिं० तम्बोल + ई (प्रत्य०)] दे० 'तंबोली'।

तँमोर(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तमोर'। उ०—मंगल बरसाने दग राजत अधर मंगल रुचि रच्यो तँमोर।—घनानंद, पृ० ३२६।

तँवकना(पु)—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'तौंकना'। उ०—तँवकि निखंड खंड ह्वै गयऊ।—माधवानल०, पृ० २०२।

तँवचुर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० ताम्रचूड] दे० 'ताम्रचूड़'। उ०—गिध मंजूर तँवचुर जो हारा।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १६४।

तँवर(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तोमर' ५। उ०—कमध्वज कूरम गोड़ तँवर परिहार प्रमानो।—ह० रासो०, पृ० १२२।

तँवाना(पु)†—क्रि० अ० [हिं० तमकना] आवेश में आना। क्रुद्ध होना। उ०—रावति भौजिया और जेठनिया ठाढ़ी रहलि तँवाई।—गुलाल०, पृ० ५७।

तँवार—संज्ञा स्त्री० [हिं० ताव] १. सिर में आनेवाला चक्कर। घुमटा। घुमेर। २. हरारत। ज्वरांश।

क्रि० प्र०—आना।—खाना।

तँवारा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तँवार'।

तँवारी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तँवार'।

तँवाना(पु)—क्रि० स० [?] १. स्तुति करना। २. प्रतीक्षा करना। उ०—राउत राना ठाढ़ तँवाहीं।—चित्रा०, पृ० १७६।

तँह(पु)—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'तहाँ'। उ०—ललित लसै सिर पागु तकै, तक तँह तँह मुरझै।—नंद० ग्रं०, पृ० २०७।

त[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. नौका। नाव। २. पुण्य। ३. चोर। ४. झूठ। ५. पूँछ। दुम। ६. गोद। ७. म्लेच्छ। ८. गर्भ। ९. शठ। १०. रत्न। ११. बुद्ध। १२. अमृत। १३. योद्धा (को०)। १४. रत्न (को०)। १५. एक पिंगल (को०)।

त†(पु)[2]—क्रि० वि० [सं० तद्, हिं० तो] तो। उ०—(क) अउ पाएउँ मानुस कइ भाखा। नाहिं त पंखि मूठि भर पाँखा।—जायसी (शब्द०)। (ख) हमहूँ कहब अब ठकुर सोहाती। नाहिं त मौन रहब दिन राती।—तुलसी (शब्द०) (ग) करतेहु राज त तुमहिं न दोसू। रामहि होत सुनत संतोसू।—तुलसी (शब्द०)।

तअज्जुब—संज्ञा पुं० [अ० तअज्जुब] आश्चर्य। विस्मय। अचंभा।

क्रि० प्र०—करना।—में आना।—होना।

तअम्मुल—संज्ञा पुं० [अ० तअम्मुल] १. सोच। फिक्र। विचार।

उ०—लिहाजा बिला तअमुल हँसी और मजाक की बातें कर चलते।—प्रेमघन०, भाग० २, पृ० ९३।

२. देर। अरसा। ३. सब्र। धैर्य।

तअमुलⓅ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तअम्मुल'।

तअल्लुकः—संज्ञा पुं० [अ० तअल्लुक़ह्] बहुत से मौजों की जमींदारी। बड़ा इलाका।

यौ०—तअल्लुकःदार।

तअल्लुकःदार—संज्ञा पुं० [अ० तअल्लुक़ह् + फ़ा० दार (प्रत्य०)] इलाकेदार। तअल्लुके का मालिक।

तअल्लुकःदारी—संज्ञा स्त्री० [अ० तअल्लुक़ह् + फ़ा० दारी (प्रत्य०)] तअल्लुकःदार का पद।

तअल्लुक—संज्ञा पुं० [अ० तअल्लुक़] १. इलाका। २. संबंध। लगाव।

तअल्लुका—संज्ञा पुं० [अ० तअल्लुका] दे० 'तअल्लुकः'।

तअल्लुकादार—संज्ञा पुं० [अ० अल्लुकह् + फ़ा० दार (प्रत्य०)] दे० 'तअल्लुकःदार'।

तअल्लुकेदार—संज्ञा पुं० [अ० तअल्लुक़ह् + फ़ा० दार (प्रत्य०)] दे० 'तअल्लुकादार'।

तअल्लुकेदारी—संज्ञा स्त्री० [अ० तअल्लुकह् + फ़ा० दारी (प्रत्य०)] तअल्लुकःदारी'।

तअस्सुब—संज्ञा पुं० [अ०] पक्षपात, विशेषतः धर्म या जाति संबंधी पक्षपात। उ०—तअस्सुब में हुए हैवान बिलआदा।—कबीर ग्रं०, पृ० २०८।

तइँⓅ[1]—प्रत्य० [हिं० तें अथवा सं० तस् (तसिल्), तः, तह्, तइ, तइँ] से। उ०—कीन्हेसि कोइ भिखारी कीन्हेसि कोइ बरियार। छारहि तइँ सब कीन्हेसि पुनि कीन्हेसि सब छार।—जायसी (शब्द०)।

तइँ[2]—प्रत्य० [प्रा०] प्रति। को। से। (क्व०)। जैसे,—मैने आपके तइँ कह रखा था।

तइँⓅ[3]—सर्व [सं० त्वया; प्रा० तइँ] दे० 'तुम'। उ०—तइँ अणदिट्ठा सज्जणा, किउँ करि लग्गा पेम।—ढोला०, पृ० ६।

तइⓅ—सर्व० [सं० तत्] वह। उस। उ०—तइ हुँती चन्दउ कियइ, लइ रचियउ आकाश।—ढोला०, दू० ४३७।

तइक—संज्ञा पुं० [देश०] चमार। (सोनारों की बोली)।

तइनात—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तैनात'।

तइसⓅ†—वि० [सं० तादृश, अप० तइस] दे० 'तैसा'।

तइसनⓅ—वि० [हिं०] दे० 'तइसा'। उ०—तनु पसेव पसाहनि भासलि, पुलग तइसन जागु।—विद्यापति, पृ० ३१।

तइसा†—वि० [सं० तादृश] दे० 'तैसा' या 'वैसा'। उ०—जस हीछा मन जेहि कइ सो तइसन फल पाउ।—जायसी (शब्द०)।

तईँ[1]—अव्य० [सं० तावत्] लिये। वास्ते।

तईँ†[2]—क्रि० वि० [हिं०] तभी। तब। उ०—हम जरा सँडल पर पालिस करके तईं भीतर गयेन।—अभिशप्त, पृ० ८८।

तई[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० तवा या तया का स्त्री०] इसका आकार थाली का सा होता है और इसमें कड़े लगे होते हैं। इसमें प्रायः जलेबी या मालपुआ ही बनाया जाता है।

तईⓅ[2]—प्रत्य० [हिं०] प्रति। को। से। उ०—कोऊ कहै हरि रीति सब तई। और मिलन का सब सुख दई।—सूर (शब्द०)।

तउⓅ†—अव्य० [हिं० या सं० तह्यपि (तर्हि+अपि) या तदपि अथवा तदपि (तद् + अपि)] १. दे० 'तब'। २. दे० 'त्यों'। उ०—भा परलउ नियराना जउ हीं। मरइ सो ता कहु पालउ तउ ही।—जायसी (शब्द०)।

तऊⓅ†—अव्य० [हिं० तउ] तो भी। तिस पर भी। तब भी। तथापि।

तए—वि० [हिं० तया का बहुव०] गरम किए हुए। गरमाए हुए।

तक[1]—अव्य० [सं० तावत्क, तामक्क, तक्क, तक] एक विभक्ति जो किसी वस्तु या व्यापार की सीमा अथवा अवधि सूचित करती है। पर्यंत। जैसे,—वे दिल्ली तक गए हैं। परसों तक ठहरो। दस रुपए तक दे देंगे। उ०—जो पल तकिया छोड़ि उठ सकै न सुख तक आइ। दरस भीख उनको कहा दीजत नाहि पहुँचाइ।—रसनिधि (शब्द०)।

तक[2]—संज्ञा स्त्री० [पं० तकड़ी] १. तराजू। २. तराजू का पल्ला।

तक[3]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'टक'। उ०—अति बल जल बरसत दोउ लोचन दिन अरु रैन रहत एकहि तक।—तुलसी (शब्द०)।

तकड़ा—वि० [हिं०] दे० 'तगड़ा'।

तकड़ी[1]—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की घास जो रेतीली जमीन में बारह महीने खूब पैदा होती है। चरमरा। हैग।

विशेष—इसे घोड़े बहुत चाव से खाते हैं। इसकी फसल साल में ६ या ७ बार हुआ करती है।

तकड़ी†[2]—संज्ञा स्त्री० [देश०] तराजू (पंजाब)। उ०—तकड़ी के एक पलड़े में तो उसके सब पाप रखे और एक पलड़े में भगवन्नाम रखा, तो पापवाला पलड़ा हलका हो गया।—राम० धर्म०, पृ० २९५।

तकतⓅ—संज्ञा पुं० [फ़ा० तख्त] दे० 'तख्त'। उ०—बाट संतरि तिरहुत पइट्ठ। तकत चड्ढि सुरुतान बइट्ठ।—कीर्ति०, पृ० ६५।

तकथⓅ—संज्ञा पुं० [फा० तख्त] दे० 'तख्त'। उ०—हाजीर हजूर बैठे तकथ ताही कौं क्यों न जाचिये रे।—सं० दरिया, पृ० ६८।

तकदमा—संज्ञा पुं० [अ० तक़दमह्] किसी चीज की तैयारी का वह हिसाब जो पहले से तैयार किया जाय। तखमीना।

तकदीर—संज्ञा स्त्री० [अ० तक़दीर] १. अंदाजा। मिकदार। २. भाग्य। प्रारब्ध। किस्मत। नसीब।

यौ०—तकदीरवर।

विशेष—'तकदीर' के मुहाविरों के लिये देखो 'किस्मत' के मुहाविरे।

तकदीरवर—वि० [अ० तकदीर + फा० वर] जिसका भाग्य बहुत हो। भाग्यवान्।

तकन—संज्ञा स्त्री० [हिं० तकना] ताकने की क्रिया या भाव। देखना। दृष्टि।

तकना†(पु)—क्रि० स० [हिं० ताकना (सं० तर्कण)] १. देखना। निहारना। अवलोकन करना। उ०—(क) देखि लागि मधु कुटिल किराती। जिमि गँव तकइ लेउँ केहि भाँती।—तुलसी (शब्द०) (ख) कहि हरिदास जानि ठाकुरी बिहारी तकत न भोर पाट।—स्वामी हरिदास (शब्द०)। (ग) तेरे लिये तजि ताकि रहे तकि हेत किए बलबीर बिहारी।—सुंदरीसर्वस्व (शब्द०)। २. शरण लेना। पनाह लेना। आश्रय लेना। उ०—देवन तके मेरु गिरि खोहा।—तुलसी (शब्द०)।

तकबर(पु)—वि० [अ० तकब्बुर] मानी। अभिमानी। उ०—शाह हुमायूँ को नंदन चंदन एक तेग एक जोधा तकबर।—अकबरी०, पृ० १०६।

तकबीर—संज्ञा स्त्री० [अ०] १ किसी को बड़ा मानना या कहना। २. ईश्वर की प्रशंसा। उ०—ऊँ लोहा पीर। ताँबा तकबीर। गोरख०, पृ० ४१।

तकब्बरी(पु)—संज्ञा स्त्री० [?] एक तरह की तलवार। उ०—रिपु-भलन भकोरें मुख नहिं मोरें बखतर तोरें तकब्बरी।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २८।

तकब्बुर—संज्ञा पुं० [अ०] १ घमंड। अभिमान। २. अकड़। ३ ३. शोखी (को०)।

तकमा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तमगा'। २. दे० 'तुकमा'।

तकमील—संज्ञा स्त्री० [अ०] पूरा होने की क्रिया या भाव। पूर्णता।

तकरमल्ही—संज्ञा स्त्री० [देश०] भेड़ों के ऊपर से ऊन काटने का हँसिया। (गढ़वाल)।

तकरार—संज्ञा स्त्री० [अ०] किसी बात को बार बार कहना। २ हुज्जत। विवाद। ३ झगड़ा। टंटा। लड़ाई। ४. कविता में किसी वर्णन को दोहराना। ४. चावल का वह खेत जो फसल काटने के बाद फिर खाद दे के जोता गया हो। ५. वह खेत जिसमे जौ, चना, गेहूँ इत्यादि एक साथ बोया गया हो।

तकरारी—वि० [अ० तकरार + हिं० ई (प्रत्य०)] तकरार करनेवाला। झगड़ालू। लड़ाका।

तकरीब—संज्ञा स्त्री० [अ० तक्रीब] वह शुभ कार्य जिसमें कुछ लोग संमिलित हों। उत्सव। जलसा।

तकरीर—संज्ञा स्त्री० [अ० तकरीर] १. बातचीत। गुफ्तगू। उ०—दमे तकरीर गोया बाग मे बुलबुल चहकते हैं।—भारतेंदु ग्रं०, भाग १, पृ० ८४७। २. वक्तृता। भाषण।

तकर्रुरी—संज्ञा स्त्री० [अ० तकर्रुरी] मुकर्रर होने की क्रिया या भाव। नियुक्ति।

तकला—संज्ञा पुं० [सं० तर्कु] १. लोहे की वह सलाई जो सूत कातने के चरखे मे लगी होती है और जिसपर सूत लिपटता जाता है। टेकुआ। २. बिटैयों की टेकुरी की सलाई जिसपर कला-बत्तू बटकर चढ़ाते जाते हैं। ३. सुनारों की सिकरी बनाने की सलाई। ४ रस्सा या रस्सी बनाने की टिकुरी।

मुहा०—किसी के तकले से बल निकालना = सारी शेखी या पाजीपन दूर करना। अच्छी तरह दुरुस्त या ठीक करना।

तकली—संज्ञा स्त्री० [हिं० तकला] छोटा तकला या टेकुरी।

तकलीद—संज्ञा स्त्री० [अ० तक्लीद] अनुसरण। अनुकरण। देखा देखी कोई काम करना। नकल। उ० क्यों अंग्रेजियत की तकलीद की जाय। प्रेमघन०, भा० २, पृ० ६१।

तकलीफ—संज्ञा स्त्री० [अ० तक्लीफ] १. कष्ट। क्लेश। दुःख। आपत्ति। मुसीबत। जैसे,—(क) आजकल वह बड़ी तकलीफ से अपने दिन बिताते है। (ख) इस तोते को पिंजड़े में बड़ी तकलीफ है। २ विपत्ति। मुसीबत।

क्रि० प्र०—उठाना।—करना।—देना।—पाना।—भोगना। —मिलना।—सहना।

२ खेद। शोक (को०)। ३ आमय। रोग। मर्ज (को०)। ४. मनोव्यथा (को०)। ५ निर्धनता। मुफलिसी (को०)।

तकल्लुफ—संज्ञा पुं० [अ० तकल्लुफ] १ शिष्टाचार। दिखावा। दिखाने के लिये कष्ट उठाकर कोई काम करना। २ टीमटाम। बाहरी सजावट।

मुहा०—तकल्लुफ का = बहुत अच्छा। बढ़िया या सजा हुआ।

३ संकोच। पसोपेश (को०)। ४ शील संकोच। लिहाज (को०)। ५ लज्जा। शर्म (को०)। ६. बेगानगी। परायापन (को०)। ७. कष्ट सहन करना। तकलीफ उठाना (को०)।

तकवा—संज्ञा पुं० [अ० तक्वह] संयम। इंद्रियनिग्रह। परहेजगारी। शुद्ध रहना। उ० तूँ तो तकस मँ तकवा राखे शरअ मुहम्मदी आवे।—दक्खिनी०, पृ० ५५।

तकवाना—क्रि० स० [हिं० तकना का प्रे० रूप] ताकने का काम दूसरे से कराना। दूसरे को ताकने में प्रवृत्त करना।

तकवाहा(पु)—संज्ञा पुं० [हिं ताकना] खेतों या बागों का रखवाला। देखभाल करनेवाला। निगरानी करनेवाला व्यक्ति। उ०—बड़ी चारपाई जिसपर बैठा तकवाहा।—अपरा, पृ० १६८।

तकवाही†—संज्ञा स्त्री० [हिं० तकवाह + ई (प्रत्य०)] १ देखभाल। रखवाली। किसी चीज की रक्षा के लिये उसपर बराबर नजर रखना। २. दे० 'तकाई'।

तकसी†—संज्ञा स्त्री० [?] नाश। दुर्दशा।

तकसीम—संज्ञा स्त्री० [अ० तकसीम] बाँटने की क्रिया या भाव। बँटवारा। विभाजन। बँटाई। २. गणित में वह क्रिया जिससे कोई संख्या कई भागों में बाँटी जाय। बड़ी संख्या का छोटी संख्या से विभाजन। भाग।

क्रि० प्र०—देना।

यौ०—तकसीमेकार = हर एक को अलग अलग काम का बाँटना। तकसीमे मुल्क, तकसीमे वतन = देश का विभाजन या बँटवारा।

तकसीर[1]—संज्ञा स्त्री० [अ० तक़सीर] १. अपराध। दोष। कसूर। २. भूल। चूक। त्रुटि। उ०—सच तो यों है कि हमें इश्क सजावार नहीं। तेरी तकसीर है क्या।—श्यामा०, पृ० १०२। ३. कर्तव्य में कमी (कौ०)। ४. न्यूनता। कमी (कौ०)।

तकसीर[2]—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. प्रचुरता। अधिकता। २. वृद्धि करना। आधिक्य करना (कौ०)।

तकाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० ताकना + ई (प्रत्य०)] ताकने की क्रिया या भाव। २. वह धन जो ताकने के बदले में दिया जाय।

तकाजा—संज्ञा पुं० [अ० तक़ाज़ा] १. ऐसी चीज माँगना जिसके पाने का अधिकार हो। तगादा। जैसे,—जाओ, उनसे रुपयों का तकाजा करो। २. कोई ऐसा काम करने के लिये कहना जिसके लिये वचन मिल चुका हो। जैसे,—बहुत दिनों से उनका तकाजा है। चलो आज उनके यहाँ हो आएँ। ३ किसी प्रकार की उत्तेजना या प्रेरणा। जैसे, उम्र या वक्त का तकाजा। ४. आवश्यकता। जरूरत (कौ०)। ५. किसी काम के लिये किसी से बराबर कहना (कौ०)।

यौ०—तकाजाए उम्र=(१) उम्र की माँग। (२) उम्र के लिहाज से कोई काम करना या न करना। तकाजाए वक्त= समय की माँग। किसी समय क्या करना है यह माँग।

तकातक—क्रि० वि० [हिं० तकना] देखते हुए। देखकर निशान लेते हुए। उ०—धनुष बान ले चढ़ा पारधी घनुआ के परच नही है रे। सरसर बान तकातक मारे मिरगा के घाव नहीं है रे।—कबीर श०, भा० २, पृ० ६६।

तकान—संज्ञा स्त्री० [हिं० थकान] दे० 'थकान' या 'थकावट'।

तकाना[1]—क्रि० स० [हिं० ताकना का प्रे० रूप] १. ताकने का काम दूसरे से कराना। दूसरे को ताकने में प्रवृत्त करना। दिखाना। २. प्रतीक्षा करना। किसी को आशा में रखना।

तकाना[2]—क्रि० अ० किसी ओर को रुख करना। किसी ओर को भागना या जाना। जैसे, उसने घने जंगल का रास्ता तकाया।

तकावी—संज्ञा स्त्री० [अ० तकावी] वह धन जो जमींदार, राजा या सरकार की ओर से गरीब खेतिहरों को खेती के औजार बनवाने, बीज खरीदने या कुआँ आदि बनवाने के लिये ऋण स्वरूप दिया जाय।

क्रि० प्र०—बाँटना।—देना।

२. इस प्रकार का ऋण देने की क्रिया।

तकित(पु)—वि० [हिं०] १. थकित। थका। २. ताकता हुआ। देखता हुआ। उ०—हिय धरक्क धुधरह बदन लोइन जल निभ्भर। तकित थकित संभीत समग संकरिय दुष्षभर।—पृ० रा०, ६।१००।

तकिया—संज्ञा पुं० [फ़ा० तकियह्] १. कपड़े का बना हुआ लंबोतरा, गोल या चौकोर थैला जिसमें रूई, पर आदि भरते हैं और जिसे सोने लेटने आदि के समय सिर के नीचे रखते हैं। बालिश। उपधान। २. पत्थर की वह पटिया आदि जो छज्जे, रोक या सहारे के लिये लगाई जाती है। मुतक्का। ३. विश्राम करने या आश्रय लेने का स्थान। ४. आश्रय। सहारा। आसरा। भरोसा। उ०—तहूँ तुलसी के कौल को काको तकिया रे।—तुलसी (शब्द०)।

यौ०—तकियाकलाम।

५. वह स्थान विशेषत. शहर के बाहर या कब्रिस्तान के पास का स्थान जहाँ कोई मुसलमान फकीर रहता हो। कब्रिस्तान का स्थान। ६. चारजामा। (लश०)।

तकिया कलाम—संज्ञा पुं० [फ़ा० तकियह् + अ० कलाम] दे० 'सखुनतकिया'।

तकियागाह—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० तकियह् + गाह] फकीर का निवास। पीर या फकीर का स्थान (कौ०)।

तकियादार—संज्ञा पुं० [फ़ा०] मजार पर रहनेवाला मुसलमान फकीर।

तकिल—संज्ञा पुं० [सं०] १ धूर्त। २ औषध।

तकिला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. औषध। दवा। २. एक जड़ी (कौ०)।

तकी—वि० [अ० तकी] संयमी। इंद्रियनिग्रही।

तकुआ[1]—संज्ञा पुं० [सं० तर्कुक] दे० 'तकला'।

तकुआ[2]—संज्ञा पुं० [हिं० ताकना + उआ (प्रत्य०)] ताकनेवाला। देखनेवाला।

तकैया†—संज्ञा पुं० [हिं० ताकना + ऐया (प्रत्य०)] ताकने या देखनेवाला।

तकोली†—संज्ञा पुं० [देश०] शीशम की जाति का एक प्रकार का बड़ा वृक्ष, जिसे पस्सी भी कहते हैं। वि० दे० 'पस्सी'।

तक्कर(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तर्क'। उ०—के गए मुक्कि पाइल अगय वीर छुडि तक्कर परत। दिष्षयौ लग लंगावली बियौ न कोई धीरज धरत। पृ० रा०, १७।५।

तक्कह(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तर्क'। उ०—सय सुपंच वर विप्र, वेद मंत्रं अधिकारिय। उभय सहस कोविद, छंद तक्कह अनुसारिय। पृ० रा०, १२। ६३।

तक्की†—संज्ञा स्त्री० [हिं० ताकना] ताकते रहने की क्रिया या भाव। दे० 'टकटकी'।

तक्कोल—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पेड़।

तक्मा[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० तक्मन्] १. वसंत नामक चर्मरोग। २. शीतला देवी।

तक्मा†[2]—संज्ञा पुं० [हिं० तमगा] दे० 'तमगा'।

तक्मा†[3]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तुकमा'।

तक्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. मट्ठा। छाछ। मठा। उ०—छलकत तक्र उफनि अँग आवत नहिं जानति तेहि कालहि सों।—सूर (शब्द०)। २. शहतूत के पेड़ का एक रोग।

तक्रकूर्चिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] फटा हुआ दूध। छेना।

तक्रपिंड—संज्ञा पुं० [सं० तक्रपिण्ड] फटा हुआ दूध। छेना।

तक्रप्रमेह—संज्ञा पुं० [सं०] पुरुषों का एक रोग जिसमें छाछ का सा श्वेत मूत्र होता है, और मट्ठे की सी गंध आती है।

तक्रभिदु—संज्ञा पुं० [सं०] कैथ। कपित्थ।

तक्रमांस—संज्ञा पुं० [सं०] माम का रसा । यखनी ।

तक्रवामन—संज्ञा पुं० [सं०] नागरंग ।

तक्रसंधान—संज्ञा पुं० [सं० तक्रसन्धान] वैद्यक के अनुसार एक प्रकार की काँजी ।

विशेष—इसे सौ टके भर छाछ में एक एक टके भर साँभर नमक, राई और हल्दी का चूर्ण डालकर बनाते हैं। यह काँजी पहले पंद्रह दिन पड़ी रहने दी जाती है, तब तैयार होती है। ऐसा कहते हैं कि यदि २१ दिनों तक यह नित्य दो दो टंक पी जाय तो तापतिल्ली अच्छी हो जाती है।

तक्रसार—संज्ञा पुं० [सं०] मक्खन ।

तक्राट—संज्ञा पुं० [सं०] मथानी ।

तक्रार—संज्ञा स्त्री० [अ० तकरार] दे० 'तकरार' ।

तक्रारिष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार का अरिष्ट जो मट्ठे में हड़ और आँवले आदि का चूर्ण मिलाकर बनाया जाता है।

विशेष—यह संग्रहणी रोग का नाशक और अग्निदीपक माना जाता है।

तक्राह्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का क्षुप ।

तक्वा—संज्ञा पुं० [सं० तक्वन्] १ चोर । २. शिकारी चिड़िया [को०] ।

तक्वीम—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. सीधा करना । २ मूल्य निश्चित करना । ३. पत्रांग । जंतरी । उ०—मुनज्जिम अक्ल का देखा ताजा तक्वीम। किया है बात सूँ उस वक्त तरकीम। —दक्खिनी०, पृ० २७६ ।

तक्ष[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. रामचंद्र के भाई भरत का बड़ा पुत्र । २. वृक के पुत्र का नाम । ३. पतला करने की क्रिया ।

तक्ष[2]—वि० काटनेवाला (केवल समासांत में प्राप्त) ।

तक्षक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] पाताल के आठ नागों में से एक नाग जो कश्यप का पुत्र था और कद्रू के गर्भ से उत्पन्न हुआ था।

विशेष—शृंगी ऋषि का शाप पूरा करने के लिये राजा परीक्षित को इसी ने काटा था। इसी कारण राजा जनमेजय इससे बहुत बिगड़े और उन्होंने संसार भर के साँपों का नाश करने के लिये सर्पयज्ञ आरंभ किया। तक्षक इससे डरकर इंद्र की शरण में चला गया। इसपर जनमेजय ने अपने ऋषियों को आज्ञा दी कि इंद्र यदि तक्षक को न छोड़े, तो उसे भी तक्षक के साथ खींच मँगाओ और भस्म कर दो। ऋत्विकों के मंत्र पढ़ने पर तक्षक के साथ इंद्र भी खिंचने लगे। तब इंद्र ने डरकर तक्षक को छोड़ दिया। जब तक्षक खिंचकर अग्निकुंड के समीप पहुँचा, तब आस्तीक ने आकर जनमेजय से प्रार्थना की और तक्षक के प्राण बच गए।

आजकल के विद्वानों का विश्वास है कि प्राचीन काल में भारत में तक्षक नाम की एक जाति ही निवास करती थी। नाग जाति के लोग अपने आपको तक्षक की संतान ही बतलाते हैं। प्राचीन काल में ये लोग सर्प का पूजन करते थे। कुछ पाश्चात्य विद्वानों का मत है कि प्राचीन काल में कुछ विशिष्ट अनार्यों को हिंदू लोग तक्षक या नाग कहा करते थे। और ये लोग संभवतः शक थे। तिब्बत, मंगोलिया और चीन के निवासी अबतक अपने आपको तक्षक या नाग के वंशधर बतलाते हैं। महाभारत के युद्ध के उपरांत धीरे धीरे तक्षकों का अधिकार बढ़ने लगा और उत्तरपश्चिम भारत में तक्षक लोगों का बहुत दिनों तक, यहाँ तक कि सिकंदर के भारत आने के समय तक राज्य रहा। इनका जातीय चिह्न सर्प था। ऊपर परीक्षित और जनमेजय की जो कथा दी गई है, उसके संबंध में कुछ पाश्चात्य विद्वानों का मत है कि तक्षकों के साथ एक बार पांडवों का बड़ा भारी युद्ध हुआ था जिसमें तक्षकों की जीत हुई थी और राजा परीक्षित मारे गए थे, और अंत से जनमेजय ने फिर तक्षशिला में युद्ध करके तक्षकों का नाश किया था और यही घटना जनमेजय के सर्पयज्ञ के नाम से प्रसिद्ध हुई है।

२. साँप। सर्प। ३. विश्वकर्मा। ४. सूत्रधार। ५. दस वायुओं में से एक। नागवायु। उ०—प्रान, अपान, व्यान, उदान और कहियत प्राण समान। तक्षक, धनंजय पुनि देवदत्त और पौंड्रक शंख द्युमान।—सूर (शब्द०)। ६. एक प्रकार का पेड़। ७. प्रसेनजित् के पुत्र का नाम जिसका वर्णन भागवत में आया है। ८. एक संकर जाति जिसकी उत्पत्ति सूचिक पिता और ब्राह्मणी माता से मानी गई है।

तक्षक[2]—वि० छेदनेवाला। छेदक।

तक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] १. लकड़ी को साफ करने का काम। रंदा करने का काम। २. बढ़ई। ३. लकड़ी पत्थर आदि में खोदकर मूर्तियाँ और बेल बूटे बनाने का काम। लकड़ी पत्थर आदि गढ़कर मूर्तियाँ बनाना।

तक्षणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] बढ़इयों का वह औजार जिससे वे लकड़ी छीलकर साफ करते हैं। रंदा।

तक्षशिल[1]—संज्ञा पुं० [सं०] तक्षशिला का निवासी [को०]।

तक्षशिल[2]—वि० तक्षशिला संबंधी [को०]।

तक्षशिला—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक बहुत प्राचीन नगरी का नाम जो भरत के पुत्र तक्ष की राजधानी थी।

विशेष—विद्वानों का मत है कि प्राचीन काल में इसके आसपास के प्रदेश में तक्षक लोगों का राज्य था, इसलिये इस नगरी का नाम भी तक्षशिला पड़ा था। महाभारत में लिखा है कि यह स्थान गांधार में है। अभी हाल में यह नगर रावलपिंडी के पास जमीन खोदकर निकाला गया है। वहाँपर बहुत से बौद्ध मंदिर और स्तूप भी पाए गए हैं। महाभारत में लिखा है कि जनमेजय ने यहीं सर्पयज्ञ किया था। सिकंदर जिस समय भारत में आया था, उस समय यहाँ के राजा ने उसे अपने यहाँ ठहराया था और उसका बहुत आदर सत्कार किया था। कुछ समय तक इसके आस पास का प्रदेश अशोक के शासन में था। अनेक यूनानी और चीनी यात्रियों ने तक्षशिला के वैभव और विस्तार आदि का बहुत अच्छा वर्णन किया है। बहुत दिनों तक यह नगरी पश्चिम भारत का प्रधान विद्यापीठ थी। दूर दूर से यहाँ विद्यार्थी आते थे। चाणक्य यहीं का था।

तक्षा—संज्ञा पुं० [सं० तक्षन्] बढ़ई।

तखड़ी—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ तकड़ी] तराजू ।

तखत—संज्ञा पुं॰ [फ़ा॰ तख्त] दे॰ 'तख्त' । उ॰—दीबै मेजि हुरम हजूर मरहट्टी बेगि, चाहियै जो कुसल तखत सिरताजी कौं ।—हम्मीर॰, पृ॰ २१ ।

मुहा॰—तखत पलटना = तख्ता उलटना । उ॰—जब निबल हो बने सबल संगी । तब पलटते न किस तरह तखने । तो चले क्यों बराबरी करने । बल बराबर अगर नहीं रखते ।—चुभते॰ पृ॰ ६८ ।

तखतनसीन—वि॰ [फ़ा॰ तख्तनशीन] दे॰ 'तख्तनशीन' । उ॰—जो है दिल्ली तखतनसीन । पातसाह प्रालाउद्दीन ।—हम्मीर॰, पृ॰ १७ ।

तखफीफ—संज्ञा स्त्री॰ [अ॰ तखफ़ीफ़] कमी । न्यूनता ।

तखमीनन्—क्रि॰ वि॰ [अ॰ तखमीनन्] अंदाज से । अटकल से । अनुमान से ।

तखमीना—संज्ञा पुं॰ [अ॰ तखमीनह्] अंदाज । अनुमान । अटकल ।

क्रि॰ प्र॰—करना ।—लगाना ।

तखय्यल—संज्ञा पुं॰ [अ॰ तखय्युल] १. विचारना । २. कल्पना । ३. काव्यविषय ।

तखरी—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰] दे॰ 'तकड़ी' ।

तखलिया—संज्ञा पुं॰ [अ॰ तख्लियह्] एकांत स्थान । निर्जन स्थान ।

तखल्लुस—संज्ञा पुं॰ [अ॰ तखल्लुस] कवि या शायर का वह नाम जो वह अपनी कविता में लिखता है । उपनाम ।

तखान†—संज्ञा पुं॰ [सं॰ तक्षण] बढ़ई ।

तखिया—संज्ञा स्त्री॰ [फ़ा॰ ताक़ी] लंबी टोपी, जो संत लोग लगाते थे । उ॰—बिनु हरि भजन को भेष लिए कहा दिए तिलक सिर तखिया ।—भीखा॰ श॰, पृ॰ ७१ ।

तखिहा—वि॰ [अ॰ ताक] वह बैल जिसकी दोनों आँखें दो रंग की हों ।

तखीत—संज्ञा स्त्री॰ [अ॰ तहकीक़] १. तलाशी । २. तहकीकात । (लश॰) ।

तख्त—संज्ञा पुं॰ [फा॰ तख्त] १. राजा के बैठने का आसन । सिंहासन । २. तख्तों की बनी हुई बडी चौकी ।

यौ॰—तख्त की रात = सोहागरात । (मुसल॰)

३. राज्य । शासन । हुकूमत (को॰) । ४. पलंग । चारपाई (को॰) । ५. जीन (को॰) ।

तख्तगाह—संज्ञा स्त्री॰ [फा॰ तख्तगाह] राजधानी [को॰] ।

तख्त ताऊस—संज्ञा पुं॰ [फ़ा॰ तख्त + अ॰ ताऊस] एक प्रसिद्ध राजसिंहासन जिसे शाहजहाँ ने ६ करोड़ रुपया लगवाकर बनवाया था । इसके ऊपर एक जड़ाऊ मोर पंख फैलाए हुए खड़ा था । इस तख्त को सन् १७३९ ई॰ में नादिरशाह लूटकर ले गया ।

तख्तनशीन—वि॰ [फ़ा॰ तख्तनशीन] जो राजसिंहासन पर बैठा हो । सिंहासनारूढ़ ।

तख्तनशीनी—संज्ञा स्त्री॰ [फ़ा॰ तख्तनशीन + ई (प्रत्य॰)] राज्याभिषेक । उ॰—और तख्तनशीनी के दरबार का तो फिर कहना ही क्या है ।—प्रेमघन॰, भा॰ २, पृ॰ १५४ ।

तख्तपोश—संज्ञा पुं॰ [फ़ा॰ तख्तपोश] १. तख्त या चौकी पर बिछाने की चादर । २. चौकी । तख्त ।

तख्तबंद—संज्ञा पुं॰ [फ़ा॰ तख्तबंद] १. बंदी । कैदी । २. कारावास । कैद । ३ लकड़ी की वह खपची जो टूटी हड्डी को जोड़ने के लिये बाँधी जाती है [को॰] ।

तख्तबंदी—संज्ञा स्त्री॰ [फ़ा॰ तख्तबंदी] १. तख्तों की बनी हुई दीवार । २. तख्तों की दीवार बनाने की क्रिया । ३. बाग की क्यारियों आदि को ढंग से सजाना (को॰) ।

तख्तरवाँ—संज्ञा पुं॰ [फा॰ तख्तरवाँ] १. वह तख्त जिसपर बादशाह सवार होकर निकलता हो । हवादार । २. वह तख्त या बड़ी चौकी जिसपर शादियों में बरात के आगे रंडियाँ, नाचनेवाले या लौंडे नाचते हुए चलते हैं । ३. उड़नखटोला ।

तख्ता—संज्ञा पुं॰ [फा॰ तख्तह्] १. लकड़ी का वह चीरा हुआ लंबा चौड़ा और चौकोर टुकड़ा जिसकी मोटाई अधिक न हो । बड़ा पटरा । पल्ला ।

मुहा॰—तख्ता उलटना = (१) किसी प्रबंध का नष्ट भ्रष्ट हो जाना । किसी बने बनाए काम का बिगड़ जाना । (२) किसी प्रबंध को नष्ट भ्रष्ट करना । बना बनाया काम बिगाड़ना । तख्ता हो जाना = ऐंठ या अकड़ जाना । तख्ते की तरह जड़ हो जाना ।

२ लकड़ी की बड़ी चौकी । तख्त । ३. अरथी । टिकटी । ४. कागज का ताव । ५. खेतों या बागों में जमीन का वह अलग टुकड़ा जिसमें बीज बोए या पौधे लगाए जाते हैं । कियारी ।

यौ॰—तख्तए कागज = कागज का ताव । तख्तए तावूत = वह संदूक या पलग जिसमें शव ले जाते हैं । तख्तए तालीम = वह काला पटरा जिसपर बच्चों को अक्षर, गिनती आदि सिखाते हैं । शिक्षापटल । ब्लैक बोर्ड । तख्तए नर्द = चौसर खेलने का तख्ता । तख्तए मय्यत = मुर्दे को नहलाने का तख्ता । तख्तए मश्क = (१) बच्चों की तख्ती । (२) वह चीज जो बहुत प्रयुक्त हो । तख्तए मीना = आकाश । आसमान ।

तख्तापुल—संज्ञा पुं॰ [फ़ा॰ तख्तह् + पुल] पटरों का पुल जो किले की खदक पर बनाया जाता है । यह पुल इच्छानुसार हटा भी लिया जा सकता है ।

तख्ती—संज्ञा स्त्री॰ [फा॰ तख्ती] १. छोटा तख्ता । २. काठ की वह पटरी जिसपर लड़के अक्षर लिखने का अभ्यास करते हैं । पटिया । ३. किसी चीज की छोटी पटरी ।

तख्तोताज—संज्ञा पुं॰ [फ़ा॰] शासनसूत्र । राज्यभार । शासनप्रबंध [को॰] ।

तख्मीना—संज्ञा पुं॰ [अ॰ तखमीनह्] दे॰ 'तखमीना' ।

तग—अव्य॰ [हिं॰] दे॰ 'तक' । उ॰—राजा के हौन हयात तग बादशाह के ताबे नहीं हुआ ।—दक्खिनी॰, पृ॰ ४४३ ।

तगड़ा—वि॰ [हिं॰ तन + कड़ा] [वि॰ स्त्री॰ तगड़ी] १. जिसमें ताकत ज्यादा हो । सबल । बलवान् । मजबूत । २. अच्छा और बड़ा ।

तगड़ी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तागड़ी'।

तगड़ी[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तखड़ी'।

तगण—संज्ञा पुं० [सं०] छंदःशास्त्र में तीन वर्णों का वह समूह जिसमें पहले दो गुरु और तब एक लघु (ऽऽ।) वर्ण होता है।

तगदमा, तगदम्मा—संज्ञा पुं० [अ० तरद्दुम] १. व्यय आदि का किया हुआ अनुमान। तखमीना। २. दे० 'तकदमा'।

तगना—क्रि० अ० [हिं० तागना] तागा जाना।

तगनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तागना] तागने का भाव। तगाई।

तगपहनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तागा + पहनना] जुलाहों का एक औजार जो टूटा हुआ सूत जोड़ने में काम आता है।

तगमा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तमगा'।

तगर[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का पेड़ जो अफगानिस्तान, कश्मीर, भूटान और कोंकण देश में नदियों के किनारे पाया जाता है।

विशेष—भारत के बाहर यह मडागास्कर और जंजीबार में भी होता है। इसकी लकड़ी बहुत सुगंधित होती है और उसमें से बहुत अधिक मात्रा में एक प्रकार का तेल निकलता है। यह लकड़ी अगर की लकड़ी के स्थान पर तथा औषध के काम में आती है। लकड़ी काले रंग की और सुगंधित होती है और उसका बुरादा जलाने के काम में आता है। भावप्रकाश के अनुसार तगर दो प्रकार का होता है, एक में सफेद रंग के और दूसरे में नीले रंग के फूल लगते हैं। इसकी पत्तियों के रस से आँख के अनेक रोग दूर होते हैं। वैद्यक में इसे उष्ण, वीर्यवर्धक, शीतल, मधुर, स्निग्ध, लघु और विष अपस्मार, शूल, दृष्टिदोष, विषदोष भूतोन्माद और त्रिदोष आदि का नाशक माना है।

पर्या०—वक्र। कुटिल। शठ। महोरग। नत। दीपन। विनम्र। कुंचित। धट। नहुष। पार्थिव। राजहर्षण। दाम। दीन। कालानुसारिवा। कालानुसारक।

२. इस वृक्ष की जड़ जिसकी गिनती गंधद्रव्यों में होती है। इसके चबाने से दाँतों का दर्द अच्छा हो जाता है। ३. मदनवृक्ष। मैनफल।

तगर[2]—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की शहद की मक्खी।

तगला—संज्ञा पुं० [हिं० तकला] १. तकला। २. दो हाथ लंबा सरकंडे का एक छड़ जिससे जोलाहे साँधी मिलाते हैं।

तगसा—संज्ञा पुं० [देश०] वह लकड़ी जिससे पहाड़ी प्रांतों में ऊन को कातने से पहले साफ करने के लिये पीटते हैं।

तगा[1]Ⓟ†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तागा'। उ०—प्रफुल्लित ह्वै के आन दीन है यशोदा रानी झीनी ए झगुली तामें कंचन को तगा।—सूर (शब्द०)।

तगा[2]—संज्ञा पुं० [देश०] एक जाति जो रुहेलखंड में बसती है। इस जाति के लोग जनेऊ पहनते और अपने आपको ब्राह्मण मानते हैं।

तगाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० तागना] १. तागने का काम। २. तागने का भाव। ३. तागने की मजदूरी।

तगाड़—संज्ञा पुं० [हिं०] १. दे० 'तगार'। २. वह चौकोर ईंटों का घेरा जिसमें गारा या सुरखी चूना सानते हैं।

तगाड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० गारा] [स्त्री० तगाड़ी] वह तसला या लोहे का छिछला बरतन जिसमें मसाला या चूना गारा रखकर जोड़ाई करनेवालों के पास ले जाते हैं। घड़िया।

तगादा—संज्ञा पुं० [अ० तकाजा] दे० 'तकाजा'।

क्रि० प्र०—करना।

तगाना—क्रि० स० [हिं० तागना का प्रे० रूप] तागने का काम कराना। दूसरे को तागने में प्रवृत्त करना।

तगाफुल—संज्ञा पुं० [अ० तगाफुल] १. गफलत। उपेक्षा। ध्यान न देना। असावधानी। उ०—हमने माना कि तगाफुल न करोगे लेकिन खाक हो जायँगे हम तुमको खबर होने तक।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ४६६।

तगार—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'तगारी'।

तगारा—संज्ञा पुं० [हिं० तगार] १. हलवाइयों का नाद। २. तरकारी बेचनेवाले का नाद।

तगारी—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. चक्की गाड़ने का गड्ढा। २. हलवाइयों का मिठाई बनाने का मिट्टी का बड़ा बरतन या नाँद। ३. चूना गारा इत्यादि ढोने का तसला।

तगियाना—क्रि० स० [हिं० तागा से नामिक धातु] दे० 'तागना'।

तगीरⓅ—संज्ञा पुं० [अ० तगीर, तगईर] बदलने की क्रिया या भाव। परिवर्तन। बदलना। कुछ का कुछ कर देना। तब्दीली। उ०—(क) अहदी न, गोप अनतो। जागीर तगीर करंता।—प्रताप (शब्द०)। (ख) जोबन आमिल आइ के सूबन कर तदबीर। घट बढ़ रकम बनाइ कै मिसुला करी तगीर।—रसनिधि (शब्द०)।

तगीरीⓅ—संज्ञा स्त्री० [अ० तगय्युर, हिं० तगीर] बदली। परिवर्तन। उ०—गैरहाजिरी लिखिहै कोई। मनसब घटै तगीरी होई।—लाल कवि (शब्द०)।

तगैय्युर—संज्ञा स्त्री० [अ० तगैयुर] बहुत बड़ा परिवर्तन। उ०—मुझको मारा है मेरे हाल तगैय्युर ने कि है, कुछ गुमाँ और ही धड़के से दिले मुनिस के।—श्यामनिवास० ग्रं०, पृ० ८५।

तग्गनाⓅ—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'तगना'।

तघार, तघारी—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'तगार'।

तचना—क्रि० अ० [हिं० तपना] तपना। तप्त होना। उ०—(क) तापन सो तचती बिरमैं चित काज वृथा मन माँहि बिदूषती।—प्रताप (शब्द०)। (ख) मानौं विधि अब उलटि रची री। जानत नहीं सखी काहे ते वहो न तेज तची री।—सूर (शब्द०)।

तचा†—संज्ञा स्त्री० [सं० त्वचा] चमड़ा। खाल। त्वचा। उ०—तुम बिन नाह रहै पै तचा। अब नहिं बिरह गरुड़ पै बचा।—जायसी (शब्द०)।

तचाना—क्रि० स० [हिं० तपाना] तपाना। जलाना। तप्त करना। संतप्त करना। उ०—अनल उचाट रूप लाउ मैं तचाई भारी कारीगर काम ने सुधारी अभिराम सान।—दीनदयालु (शब्द०)।

तच्छ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० तक्ष] दे० 'तक्ष'।

तच्छक(पु)—संज्ञा पुं० [सं० तक्षक] दे० 'तक्षक'।

तच्छना(पु)—क्रि० स० [सं० तक्षण] १. फाड़ना। २. नष्ट करना। काटकर टुकड़े करना।

तच्छप(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तक्षक'।

तच्छिन(पु)—क्रि० वि० [सं० तत्क्षण] उसी समय। तत्काल।

तछन(पु)†—क्रि० वि०[हिं०]दे० 'तत्क्षण'। उ०—कैसे राखि आपने लये। अगिनिहि तछन भच्छन करि गये।—नंद० ग्रं०, पृ० ३१०।

तछिन(पु)†—अव्य० [सं० तत्क्षण] दे० 'तच्छिन'। उ०—जाके डर वहँ जात न कोई। तछिन भच्छन करि डारै सोई।—नंद० ग्रं०, पृ० २७७।

तज—संज्ञा पुं० [सं० त्वच्] १. तमाल और दारचीनी की जाति का मझोले कद का एक सदाबहार पेड़ जो कोचीन, मलाबार, पूर्व बंगाल, खासिया की पहाड़ियों और बरमा में अधिकता से होता है।

विशेष—भारत के अतिरिक्त यह चीन, सुमात्रा और जावा आदि स्थानों में भी होता है। खासिया और जयंतिया की पहाड़ियों में यह पेड़ अधिकता से लगाया जाता है। जिन स्थानों पर समय समय पर गहरी वर्षा के उपरांत कड़ी धूप पड़ती है, वहाँ यह बहुत जल्दी बढ़ता है। इसके पेड़ प्रायः पाँच पाँच हाथ की दूरी पर बीज से लगाए जाते हैं और जब पेड़ पाँच वर्ष के हो जाते हैं, तब वहाँ से हटाकर दूसरे स्थान पर रोपे जाते हैं। छोटे पौधे प्रायः बड़े पेड़ों या झाड़ियों आदि की छाया में ही रखे जाते हैं। बाजारों में मिलनेवाला तेजपात या तेजपत्ता इस पेड़ का पत्ता और तज (लकड़ी) इसकी छाल है। कुछ लोग इसे और दारचीनी के पेड़ को एक ही मानते हैं, पर वास्तव में यह उससे भिन्न है। इस वृक्ष की डालियों की फुनगियों पर सफेद फूल लगते हैं जिनमें गुलाब की सी सुगंध होती है। इसके फल करौंदे के से होते हैं जिनमें से तेल निकाला जाता है और इत्र तथा अर्क बनाया जाता है। यह वृक्ष प्रायः दो वर्ष तक रहता है।

२. इस पेड़ की छाल जो बहुत सुगंधित होती है और औषध के काम में आती है। वैद्यक में इसे चरपरा, शीतल, हलका, स्वादिष्ट, कफ, खाँसी, आम, कंडु, अरुचि, कृमि, पीनस आदि को दूर करनेवाला, पित्त तथा धातुवर्धक और बलकारक माना जाता है।

पर्या०—भृंग। वराँग। रामेष्ट। विज्जुल। त्वच। उत्कट। चोल। सुरभिवल्कल। सुतकट। मुखशोधन। सिंहल। सुरस। कामवल्लभ। बहुगंध। वनप्रिय। लटपर्ण। गंधवल्कल। वर। शीत। रामवल्लभ।

तजकिरा—संज्ञा पुं० [अ० तज़किरह्] १. चर्चा। जिक्र।

क्रि० प्र०—करना।—चलना।—छिड़ना।—होना।

२. वार्तालाप। बातचीत (को०)। ३. ख्याति। प्रसिद्धि (को०)। ४. प्रसंग। सिलसिला (को०)।

तजगरी—संज्ञा स्त्री० [फा० तेजगरी] सिकलीगरों की दो अंगुल चौड़ी और अनुमानतः डेढ़ बालिश्त लंबी लोहे की पटरी जिसपर तेल गिराकर रंदा तेज करते हैं।

तजदीद—संज्ञा स्त्री० [अ० तज्दीद] १. नया करना। नवीनीकरण। २. नवीनता। नयापन (को०)।

तजन(पु)†[1]—संज्ञा पुं० [सं० त्यजन] तजने की क्रिया या भाव। त्याग। परित्याग।

तजन[2]—संज्ञा पुं० [सं० तर्जन] कोड़ा या चाबुक।

तजना—क्रि० स० [सं० त्यजन] त्यागना। छोड़ना। उ०—(क) सब तज। हर भज।—(शब्द०)। (ख) तजहु आस निज निज गृह जाहु।—मानस, १।२५२।

तजरबा—संज्ञा पुं० [अ० तजरबह्, तज्रिबह्, तजुर्बह्] १. वह ज्ञान जो परीक्षा द्वारा प्राप्त किया जाय। अनुभव। जैसे,—मैंने सब बातें अपने तजरबे से कही हैं।

यौ०—तजरबेकार = जिसने परीक्षा द्वारा अनुभव प्राप्त किया हो। अनुभवी।

२. वह परीक्षा जो ज्ञान प्राप्त करने के लिये की जाय। जैसे,—आप पहले तजरबा कर लीजिए, तब लीजिए।

तजरबाकार—संज्ञा पुं० [अ० तजुर्बह् + फ़ा० कार] जिसने तजरबा किया हो। अनुभवी।

तजरबाकारी—संज्ञा स्त्री०[अ० तजुर्बह् + फ़ा कारी (प्रत्य०)]अनुभव।

तजरीद—वि० [अ० तज्रीद] १. उद्घाटित कर किसी चीज को असली दशा में कर देना। नंगा कर देना। २. (काट छाँटकर) सजाना या सँवारना। ३. सुधार करना। ४. एकाकी जीवन। ब्रह्मचर्य। उ०—कोई तजरीद तफरीद बोलते हैं कोई नफी।—दक्खिनी०, पृ० ४३३।

तजरुबा—संज्ञा पुं० [अ० तज्रुबह्] दे० 'तजरबा'।

तजरुबाकार—संज्ञा पुं० [अ० तजुर्बह् + फा० कार] दे० 'तजरबाकार'।

तजरुबाकारी—संज्ञा स्त्री० [अ० तजुर्बह् + फा० कारी] दे० 'तजरबाकारी'।

तजल्ली—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. प्रकाश। रोशनी। नूर। २. प्रताप। जलाल। ३. अध्यात्म ज्योति। उ०—फीजे फहम फना को ले के, नूर तजल्ली अपना।—पलटू०, भा० ३, पृ० ९२।

तजवीज—संज्ञा स्त्री० [अ० तज्वीज] १. सम्मति। राय। २. फैसला। निर्णय। ३. बंदोबस्त। इंतिजाम। प्रबंध।

तजवीजसानी—संज्ञा स्त्री० [अ० तज्वीज + सानी] किसी अदालत में उसी अदालत के किए हुए किसी फैसले पर फिर से होनेवाला विचार। एक ही हाकिम के सामने होनेवाला पुनर्विचार।

तजावुज—संज्ञा पुं० [अ० तजावुज़] १. सीमा का उल्लंघन। २. अपने इख्तियार से बाहर कोई काम करना। ३. अवज्ञा। हुक्मउदूली। उ०—शरीअत के माने तुकर्मा और हदाँ है जो इस हद से तजावुज न करे।—दक्खिनी०, पृ० ४२९। ४. धृष्टता। गुस्ताखी (को०)।

तजुब(पु)—अव्य० [अ० तअज्जुब] आश्चर्य । विस्मय । अचंभा । उ०—तजुब नहीं कि खोपरी टूट जाय ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १५५ ।

तज्जनित—वि० [सं०] उससे उत्पन्न ।

तज्जन्य—वि० [सं०] उससे उत्पन्न । उ०—कविता हमारे मन पर पड़े हुए सामाजिक प्रतिबंधों और तज्जन्य विचारों की प्रतिक्रिया है ।—नया०, पृ० ३ ।

तज्जातपुरुष—संज्ञा पुं० [सं०] का निपुण श्रमी । होशियार कारीगर ।

तज्जी—संज्ञा स्त्री० [सं०] हिंगुपत्री ।

तज्ञ—वि० [सं० तज् + ज्ञ (तत् + ज्ञ)] १. तत्व का जाननेवाला । तत्वज्ञ । उ०—देवतज्ञ सर्वज्ञ जज्ञेश अच्युत विभो विस्व भवदंश संभव पुरारी ।—तुलसी (शब्द०) । २. ज्ञानी ।

तटंक(पु)—संज्ञा पुं० [सं० ताटङ्क] कर्णफूल नामक कान का आभूषण । कर्णफूल । उ०—चलि चलि आवत श्रवण निकट अति सकुचि तटंक फँदा ते । —सूर (शब्द०) ।

तट[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. क्षेत्र । खेत । २. प्रदेश । ३. तीर । किनारा । कूल । ४. शिव । महादेव । ५. जमीन या पर्वत का ढाल (को०) । ६. आकाश (को०) ।

तट[2]—क्रि० वि० समीप । पास । नजदीक । निकट ।

तटक—संज्ञा पुं० [सं०] नदी, तालाब आदि का किनारा [को०] ।

तटका—वि० [हिं०] [वि० स्त्री० तटकी] दे० 'टटका' । उ०—निसि के उनींदे नैना तैसे रहे टरि टरि । किधौं कहूँ प्यारी को तटकी लागी नजरि ।—सूर (शब्द०) ।

तटक्कना—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'तड़कना' । उ०—तटक्कं दुहू छोह लोहं चलावै ।—प० रासो, पृ० ८३ ।

तटग—संज्ञा पुं० [सं०] तड़ाग ।

तटनी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० तटिनी] (तटवाली) नदी । सरिता । दरिया । उ०—(क) मदाकिनि तटनि तीर मंजु मृग बिहग भीर धीर मुनि गिरा गँभीर साम गान की ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) कदम बिटप के निकट तटनी के आय अटा चढ़ि चाहि पीतपट फहरानी सो ।—रसखान (शब्द०) ।

तटवर्ती—वि० [सं०] तट से संबंध रखनेवाला या होनेवाला [को०] ।

तटस्थ[1]—वि० [सं०] १. तीर पर रहनेवाला । किनारे पर रहनेवाला । २. समीप रहनेवाला । निकट रहनेवाला । ३. किनारे रहनेवाला । अलग रहनेवाला । ४. जो किसी का पक्ष न ग्रहण करे । उदासीन । निरपेक्ष ।

यौ०—तटस्थ वृत्ति ।

तटस्थ[2]—संज्ञा पुं० किसी वस्तु का वह लक्षण जो उसके स्वरूप को लेकर नहीं बल्कि उसके गुण और धर्म आदि को लेकर बतलाया जाय । दे० 'लक्षण' ।

यौ०—तटस्थ लक्षण ।

तटस्थित—वि० [सं०] दे० 'तटस्थ' ।

तटाक—संज्ञा पुं० [सं०] तड़ाग । तालाब ।

तटाकिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ा तालाब [को०] ।

तटाघात—संज्ञा पुं० [सं०] पशुओं का अपने सींगों या दाँतों से जमीन खोदना ।

तटिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] नदी । सरिता । दरिया ।

तटी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तीर । कूल । किनारा । तट । २. न[दी ।] सरिता । उ०—ताहि समै पर नाभि तटी को गयो उड़ि से[...] पौन प्रसंग में ।—सेवक (शब्द०) । ३ तराई । घाटी ।

तटी[2]—संज्ञा स्त्री० समाधि ।

तठ†—अव्य० [सं० तत्र] वहाँ । उस जगह पर ।

तठना—क्रि० वि० [सं० तत्र, प्रा० तथ्य] वहाँ । उ०—जुध खगे रिण छोड़ जठे । तन पाघ जिसो रघनाथ तठे ।—रा० रू०, पृ० ३५ ।

तड़[1]—संज्ञा पुं० [सं० तट] १. समाज में हो जानेवाला विभाग । प[क्ष ।]

यौ०—तड़बंदी ।

२. स्थल । खुश्की । जमीन ।—(लश०) ।

तड़[2]—संज्ञा पुं० [अनु०] १. थप्पड़ आदि मारने या कोई चीज पट[कने] से उत्पन्न होनेवाला शब्द ।

यौ०—तड़ातड़ ।

२. थप्पड़ ।—(दलाल) ।

क्रि० प्र०—जमाना ।—देना ।—लगाना ।

३. लाभ का आयोजन । आमदनी की सूरत ।—(दलाल)

क्रि० प्र०—जमाना ।—बैठाना ।

तड़क[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० तड़कना] १. तड़कने की क्रिया या भा[व ।] २. तड़कने के कारण किसी चीज पर पड़ा हुआ चिह्न । [३.] भोजन के साथ खाए जानेवाले अचार, चटनी आदि च[टपटे] पदार्थ । चाट ।

तड़क[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० तरण्डक = (धरन)] वह बड़ी लकड़ी जो दी[वार] से बँडेर तक लगाई जाती है और जिसपर दासे रखकर छ[प्पर] छाया जाता है ।

तड़कना[1]—क्रि० अ० [अनु० तड़] १. 'तड़' शब्द के साथ फ[टना ।] फूटना या टूटना । कुछ आवाज के साथ टूटना । चटक[ना ।] कड़कना । जैसे, शीशा तड़कना; लकड़ी तड़कना । २. [कि]सी चीज का सूखने आदि के कारण फट जाना । जैसे, छि[लका] तड़कना, जखम तड़कना । ३. जोर का शब्द करना । उ[०—...] कहि योगिनि निशि हित अति तड़की । विंध्याचल के [...] लड़की ।—गोपाल (शब्द०) । ४. क्रोध से बिगड़ना । [...] लाना । बिगड़ना । ५. जोर से उछलना या कूदना । तड़प[ना ।]

संयो० क्रि०—जाना ।

तड़कना†[2]—क्रि० स० तड़का देना । छौंकना । बघारना ।

तड़क भड़क—संज्ञा स्त्री० [अनु०] वैभव, शान आदि की दिखावट [।]

तड़कली—संज्ञा स्त्री० [देश०] ताटंक । तरौना । कर्णभूषण । तर[...] उ०—नाग फण का तड़कली, छोटि कसण पयोहर खीर्च[...] बी० रासो०, पृ० ७२ ।

तड़का—संज्ञा पुं० [हिं० तड़कना] १. सबेरा । सुबह । प्रातःका[ल ।] प्रभात । २. छौंक । बघार ।

क्रि० प्र०—देना ।

तड़काना—क्रि० स० [हिं० तड़कना का सक० रूप] १. किसी [...] को इस तरह से तोड़ना जिससे 'तड़' शब्द हो । २. कि[सी] पदार्थ को सुखाकर या और किसी प्रकार बीच में से फाड़ना

३. जोर का शब्द उत्पन्न करना । ४. किसी को क्रोध दिलाना या खिझाना ।

तड़कीला†—वि० [हिं० तड़कना + ईला (प्रत्य०)] १. चमकीला । भड़कीला । २. तड़कनेवाला । फट जानेवाला । ३. फुर्तीला ।

तड़क्का[1]—संज्ञा पुं० [अनु० तड़] तड़ का शब्द ।

तड़क्का†[2]—क्रि० वि० [हिं० तड़ाका] जल्दी । झटपट । उ०—चेतहु काहे न सबेर यमन सों रारिहै । काल के हाथ कमान तड़क्का मारिहै ।—कबीर (शब्द०)।

तड़ग—संज्ञा पुं० [सं० तडग] तालाब । तड़ाग [को०] ।

तड़तड़ाना[1]—क्रि० अ० [अनु०] तड़ तड़ शब्द होना ।

तड़तड़ाना[2]—क्रि० स० तड़ तड़ शब्द उत्पन्न करना ।

तड़तड़ाहट—संज्ञा स्त्री० [अनु०] तड़तड़ाने की क्रिया या भाव ।

तड़ताⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० तडित] बिजली । विद्युत ।—(डिं०) ।

तड़प—संज्ञा स्त्री० [हिं० तड़पना] १ तड़पने की क्रिया या भाव । २. चमक । भड़क ।

तड़प भड़प—संज्ञा स्त्री० [अनु०] दे० 'तड़क भड़क' । उ०—केवल ऊपरी तड़पभड़प रखनेवाली पश्चिमीय सभ्यता ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २१५ ।

तड़पदार—वि० [हिं० तड़प + फ़ा० दार] चमकीला । भड़कदार । भड़कीला ।

तड़पन—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तड़प' ।

तड़पना—क्रि० अ० [अनु०] १. बहुत अधिक शारीरिक या मानसिक वेदना के कारण व्याकुल होना । छटपटाना । तड़फड़ाना । तलमलाना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

२. घोर शब्द करना । भयंकर ध्वनि के साथ गरजना । जैसे, किसी से तड़पकर बोलना, शेर का तड़पकर झाड़ी में से निकलना ।

तड़पवाना—क्रि० स० [हिं० तड़पाना का प्रे०रूप] किसी को तड़पाने का काम दूसरे से कराना ।

तड़पाना—क्रि० स० [हिं० तड़पना का स०रूप] १. शारीरिक या मानसिक वेदना पहुँचाकर व्याकुल करना । २. किसी को गरजने के लिये बाध्य करना ।

संयो० क्रि०—देना ।

तड़फड़—संज्ञा स्त्री० [हिं० तड़फड़ाना] तड़पने की क्रिया ।

तड़फड़ाना—क्रि० अ० [हिं०] तड़पना । छटपटाना । तलमलाना ।

तड़फड़ाहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० तड़फड़ + आहट (प्रत्य०)] १. छटपटाहट । तलमलाहट । बेचैनी । २. मारे जाने या जलकर मरने के समय की बेचैनी या तड़पन ।

तड़फना—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'तड़पना' ।

तड़भड़—संज्ञा स्त्री० [अनु०] हड़बड़ । जल्दी जल्दी । उ०—पातसाह अजमेर परस्से । कूच कियौ तड़भड़ भड़ कस्से ।—रा० रू०, पृ० २५ ।

तड़बंदी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तड़ + फ़ा० बंदी] समाज, बिरादरी या गोल में अलग अलग तड़ बनाना ।

तड़ाक[1]—संज्ञा पुं० [सं० तडाक] तड़ाग । तालाब । सरोवर ।

तड़ाक[2]—संज्ञा स्त्री० [अनु०] तड़ाके का शब्द । किसी चीज के टूटने का शब्द ।

तड़ाक[3]—क्रि० वि० १. 'तड़' या 'तड़ाक' शब्द के सहित । २. जल्दी से । चटपट । तुरंत ।

यौ०—तड़ाक पड़ाक = चटपट । तुरंत ।

तड़ाका[1]—संज्ञा पुं० [अनु०] १. 'तड़' शब्द । जैसे,—न जाने कहाँ कल रात को बड़े जोर का तड़ाका हुआ । २. कमख्वाब बुननेवालों का एक डंडा जो प्राय: सवा गज लंबा होता है और लफे में बँधा रहता है । इसके नीचे तीन और डंडे बँधे होते हैं । ३. पेड़ । वृक्ष । —(कहारों की परि०) ।

तड़ाका[2]—क्रि० वि० [हिं० तड़ाक] चटपट । जल्दी से । तुरंत । जैसे,—तड़ाका जाकर बाजार से सौदा ले आओ (बोलचाल) ।

तड़ाग—संज्ञा पुं० [सं० तडाग] १. तालाब । सरोवर । ताल । पुष्कर । पोखरा । पद्मादियुक्त सर । उ०—(क) भरतु हंस रबि बंस तड़ागा । जनमि कीन्ह गुन दोष बिभागा ।—मानस, २।२३१ । (ख) अनुराग तड़ाग में भानु उदै बिगसीं मनो मंजुल कंजकली । तुलसी ग्रं०, पृ० १६७ ।

विशेष—प्राचीनों के अनुसार तड़ाग पाँच सौ धनुष लंबा, चौड़ा और खूब गहरा होना चाहिए । उसमें कमल आदि भी होने चाहिए ।

तड़ागना—क्रि० अ० [अनु०] १. गर्जन तर्जन करना । तड़फड़ाना । २ डींग मारना । ३. प्रयास करना । उ०—पहुँचेंगे तब कहेंगे वही देश की सीख । अबहीं कहा तड़ागिए बेड़ी पायन बीख ।—संतवाणी०, पृ० ३५ ।

तड़ागी—संज्ञा स्त्री० [सं० तडाग] १. करधनी । २. कमर ।

तड़ाघात—संज्ञा पुं० [सं० तडघात] दे० 'तटाघात' [को०] ।

तड़ातड़—क्रि० वि० [अनु०] १ तड़तड़ शब्द के साथ । इस प्रकार जिसमें तड़तड़ शब्द हो । जैसे, तड़ातड़ चपत जमाना । उ०—आगे रघुबीर के समीर के तनय के संग तारी दे तड़ाक तड़ातड़ के तमंका मे ।—पद्माकर (शब्द०) । २ जल्दी से ।

तड़ातड़ी—क्रि० वि० [अनु० मि० बँगला ताड़ाताड़ी] जल्दी में । शीघ्रता में । उ०—जो कुछ सुना नेई और बड़ा तड़ातड़ी में भाग ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १४५ ।

तड़ाना[1]—क्रि० स० [हिं० ताड़ना का प्रे०रूप] किसी दूसरे को ताड़ने में प्रवृत्त करना । भँपाना ।

तड़ाना[2]—क्रि० स० [हिं०] जल्दी मचना ।

तड़ावा—संज्ञा स्त्री० [हिं० तड़ाना (= दिखाना)] १ ऊपरी तड़क भड़क । वह चमक दमक जो केवल दिखाने के लिये हो । २. धोखा छल ।—(क्व०) ।

क्रि० प्र०—देना ।

तड़ि[1]—संज्ञा [सं० तडि] आघात [को०] ।

तड़ि[2]—वि० आघात करनेवाला [को०] ।

तड़ि[3]—संज्ञा स्त्री० [सं० तडित्] बिजली । उ०—मेघनि बिवैं अलप जल परै । तड़ि भई अलुप नेहु परिहरै ।—नंद० ग्रं०, पृ० २६० ।

तड़ित—संज्ञा स्त्री० [सं० तड़ित्] बिजली । विद्युत् । उ०—उपमा एक अभूत भई तब जब जननी पट पीत उढ़ाए । नील जलद पर उडुगन निरखत तजि सुभाव मनो तड़ित छिपाए । —तुलसी (शब्द०) ।

तड़िता—संज्ञा स्त्री० [सं० तड़ित्] दे० 'तड़ित्' । उ०—तड़पै तड़िता चहुं ओरन तें छिति छाई समीरन की लहरै । मदमाते महा गिरि शृंगनि पै गन मंजु मयूरन के कहरै ।—इतिहास, पृ० ३१८ ।

तड़ित्कुमार—संज्ञा पुं० [सं० तड़ित्कुमार] जैनों के एक देवता जो भुवनपति देवगण में से हैं ।

तड़ित्पति—संज्ञा पुं० [सं० तड़ित्पति] बादल । मेघ ।

तड़ित्प्रभा—संज्ञा स्त्री० [सं० तड़ित्प्रभा] कार्तिकेय की एक मातृका का नाम ।

तड़ित्वान्—संज्ञा पुं० [सं० तड़ित्वान्] १. नागरमोथा । २. बादल ।

तड़िद्गर्भ—संज्ञा पुं० [सं० तड़िद्गर्भ] बादल ।

तड़िद्दाम—संज्ञा पुं० [सं० तड़िद्दामन्] बिज्जुलता । विद्युल्लता । बिजली चमकते समय दीखनेवाली रेखा [को०] ।

तड़िन्मय—वि० [सं० तड़िन्मय] बिजली की तरह चमकनेवाला [को०] ।

तड़िया—संज्ञा स्त्री० [देश०] समुद्र के किनारे की हवा ।–(लश०) ।

तड़ियाना[1]—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'तड़पना' ।

तड़ियाना[2]—क्रि० स० [हिं०] दे० 'तड़पाना' ।

तड़ियाना[3]—क्रि० अ० [हिं०] जल्दी करना । जल्दी मचाना ।

तड़िल्लता—संज्ञा स्त्री० [सं० तड़िल्लता] विद्युल्लता [को०] ।

तड़िल्लेखा—संज्ञा स्त्री० [सं० तड़िल्लेखा] बिजली की रेखा [को०] ।

तड़ी[1]—संज्ञा स्त्री० [तड़ से अनु०] १. चपत । धौल ।
क्रि० प्र०—जड़ना ।–जमाना ।–देना ।–लगाना ।
२. धोखा । छल ।–(दलाल) ३. बहाना । हीला ।
क्रि० प्र०—देना ।–बताना ।

तड़ी[2]—संज्ञा स्त्री [देश०] जल्दी । शीघ्रता ।

तड़ीत(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तड़ित' ।

तणु(पु)—अव्य० [हिं० तनु] की तरफ । ओर का ।

तणाई(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० तनया] कन्या । पुत्री ।

तणमीट(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] मुसलमान ।

तणी[1]—अव्य० [हिं०] दे० 'तइ' ।

तणी[2]—अव्य० [हिं० तनिक] थोड़ा । अल्प ।

तणु(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तनु' ।

तणौ(पु)—अव्य० [हिं० तनु] के लिये । की तरफ ।

तत्[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. ब्रह्म या परमात्मा का एक नाम । जैसे,—ओं तत् सत् । २. वायु । हवा ।

तत्[2]—सर्व० उस ।
विशेष—इसका प्रयोग केवल संस्कृत के समस्त शब्दों के साथ उनके आरंभ में होता है । जैसे,—तत्काल, तत्क्षण, तत्पुरुष, तत्पश्चात्, तदनंतर, तदाकार, तद्द्वारा, तत्पूर्व, तत्प्रथम ।

तत[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. वायु । २. विस्तार । ३. पिता । ४. पुत्र । संतान । ५. वह बाजा जिसमें बजाने के लिये तार लगे हों । जैसे, सारंगी, सितार, बीन, एकतारा, बेहला आदि ।
विशेष—तत बाजे दो प्रकार के होते हैं—एक तो वे जो खाली उँगली या मिजराब आदि से बजाए जाते हैं; जैसे, सितार बीन, एकतारा आदि । ऐसे बाजों को अंगुलित्र यंत्र कहते हैं और जो कमानी की सहायता से बजाए जाते हैं, जैसे, सारंगी, बेला आदि. वे धनु यंत्र कहलाते हैं ।

तत[2]—वि० १. विस्तृत । फैला हुआ । २. विस्तारित । ३. ढका हुआ । छिपा हुआ । ४. झुका हुआ । ५. अंतररहित । लगातार [को०] ।

तत(पु)†[3]—वि० [सं० तप्त] तपा हुआ । गरम । उ०—नखत अकासहिं चढ़इ दिपाई । तत तत लुका परहिं बुझाई ।—जायसी (शब्द०) ।

तत(पु)[4]—संज्ञा पुं० [सं० तत्त्व] दे० 'तत्व' ।

तत(पु)[5]—सर्व० [सं० तत्] उस । जैसे,—ततखन = तत्क्षण ।

ततकरा—क्रि० वि० [सं० तत्काल] तुरंत । उ०—ततकरा अपवित्र कर मानिए जैसे कागदगर करत विचार ।—रैदास०, पृ० ३७ ।

ततकार†—अव्य० [हिं०] दे० 'तत्काल' ।

ततकाल(पु)†—अव्य० [हिं०] दे० 'तत्काल' ।

ततखण—क्रि० वि० [सं० तत्क्षण; प्रा० तक्खण] दे० 'तत्क्षण' । उ०—ततखण मालवणी कहइ साँभलि कंत सुरंग ।—ढोला०, दू० ६५४ ।

ततखन(पु)—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'तत्क्षण' । उ०—ततखन आइ बिवाँन पहूँचा । मन तें अधिक गगन ते ऊँचा ।—जायसी (शब्द०) ।

ततच्छन—क्रि० वि० [सं० तत्क्षण] दे० 'तत्क्षण' । उ०—(क) राज काज आलय विद्यालय बोध ततच्छन ।—प्रेमघन०, पृ० ४१५ । (ख) अरज गरज सुनि देत उचित आदेश ततच्छन ।—प्रेमघन०, भा० २ पृ० १५ ।

ततछन(पु)—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'तत्क्षण' ।

ततछिन(पु)—क्रि० वि० [सं० तत्क्षण, हिं० ततछन] दे० 'तत्क्षण' । उ०—सिंघ पौरि वृषभानु की, ततछिन पहुँचे जाइ ।—नंद० ग्रं०, पृ० १९८ ।

ततताथेई—संज्ञा स्त्री० [अनु०] नृत्य का शब्द । नाच के बोल ।

ततत्व—संज्ञा पुं० [सं०] १. विलंबित काल । मंद काल ।—(संगीत) । २. नैरंतर्य । निरंतरता [को०] ।

ततपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] केले का वृक्ष ।

ततपर—वि० [सं० तत्पर] दे० 'तत्पर' ।

ततबाउ(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० तन्तुवाय] दे० 'तंतुवाय' ।

ततबीर(पु)†—संज्ञा स्त्री० [अ० तदबीर] दे० 'तदबीर' । उ०—कोउ गई जल पैठि तरुनी और ठाढ़ी तीर । तिनहिं लई बोलाइ राधा करत सुख ततबीर ।—सूर (शब्द०) ।

ततबेता—वि० [सं० तत्ववेत्ता] ज्ञानी । उ०—जैसा ढूंढत मैं फिरौ, तैसा मिला न कोय । ततबेता निरगुन रहित, निरगुन से रत होय ।—कबीर सा० सं०, पृ० १८ ।

ततरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का फलदार पेड़ ।

ततबर—वि० [सं० तत्ववर] तत्वज्ञानी। तत्व की बात जाननेवाला। उ०—ततबर मित्र कृष्ण तेहि आगे। ऊधो रोइ बाप तप को लागे।—घट०, पृ० २६२।

ततसार(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० तप्तशाला] तापने का स्थान। आँच देने या तपाने की जगह। उ०—सतगुर तो ऐसा मिला ताते लोहू लुहार। कसनी दे कंचन किया ताय लिया ततसार।—कबीर (शब्द०)।

ततहड़ा—संज्ञा पुं० [सं० तप्त+हिं० हाँड़ी] [स्त्री० अल्पा० ततहड़ी] वह बरतन विशेषतः मिट्टी का बरतन जिसमें देहातवाले नहाने का पानी गरम करते हैं।

तताई†(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० तत्ता] तप्त होने की क्रिया या भाव गरमी। उ०—बरनि बताई छिति व्योम की तताई, जेठ आयो आततताई पुटपाक सी करत है।—कवित्त०, पृ० ५६।

ततामह—संज्ञा पुं० [सं०] पितामह। दादा।

ततारना—क्रि० स० [हिं० तत्ता (=गरम)] १. गरम जल से धोना। २. तरेरा देकर धोना। धार देकर धोना। उ०—मनहु बिरह के सद्य घाय हिये लखि तकि तकि धरि धीर ततारति।—तुलसी (शब्द०)।

तति[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. श्रेणी। पंक्ति। ताँता। २. समूह। सेना। भीड़। ३. विस्तार ४. यज्ञ का समारोह। उत्सव (को०)।

तति[2]—वि० [सं०] लंबा चौड़ा। विस्तृत। उ०—यज्ञोपवीत पुनीत विराजत गूढ़ जत्रु बनि पीन अंस तति।—तुलसी (शब्द०)।

ततुबाऊ(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० तन्तुवाय] दे० 'तंतुवाय'।

ततुरि[1]—वि० [सं०] १. हिंसा करनेवाला। २. तारनेवाला। ३. जीतनेवाला (को०)। ४. रक्षण या पालन करनेवाला (को०)।

ततुरि[2]—संज्ञा पुं० १. अग्नि। २. इंद्र [को०]।

ततैया[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० तिक्त या तप्त (=तत)+हिं० ऐया (प्रत्य०)] २. बर्रे। भिड़। हड्डा। २. ज्वाला मिर्च जो बहुत कड़ई होती है।

ततैया[2]—वि० [हिं० तीता अथवा तत्ता] १. तेज। फुरतीला। २. चालाक। बुद्धिमान।

ततोधिक—वि० [सं० ततोऽधिक] उससे अधिक [को०]।

ततौ(पु)—अव्य० [हिं०] तो। उ०—जो हम सो हित हानि कियो। ततौ भूलिबो वा हुरि कौन सौं साहु यो।—नट०, पृ० ३४।

तत्काल—क्रि० वि० [सं०] तुरंत। फौरन। उसी समय। इसी वक्त।

तत्कालीन—वि० [सं०] उसी समय का।

तत्क्षण—क्रि० वि० [सं०] उसी समय। तत्काल। फौरन। उसी दम।

तत्त(पु)†[1]—संज्ञा पुं० [सं० तत्व, हिं०] दे० 'तत्व'।

तत्त(पु)[2]—वि० [सं० तप्त, हिं०] दे० 'तप्त'। उ०—कुरंगी सु तत्तं, वरं सिंघ उत्तं। मिल्यो बध्य भ्रान, दुभं मल्ल जानं।—पृ० रा०, १। ६४५।

तत्तद्[1]—वि० [सं०] भिन्न भिन्न [को०]।

तत्तद्[2]—सर्व० वह वह। उन उन [को०]।

तत्तमत्त(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तंत्रमंत्र'। उ०—हृथ्य जोर अल्हन सो बुल्लिव। तत्तमत्त अंतर कव खुल्लिव।—प० रासो, पृ० १७२।

तत्ता(पु)—वि० [सं० तप्त] जलता या तपता हुआ। गरम। उष्ण।

मुहा०—तत्ता तवा = जो बात बात पर लड़े। लड़ाका। झगड़ालू।

तत्ताथेई—संज्ञा स्त्री० [अनु०] नाच का बोल।

तत्ती—वि० स्त्री० [हिं० तत्ता] तीक्ष्ण। तप्त। उ०—जगपत्ती उग्र जोस मै, रत्ती आप समाण। वनसपती लल आलवा, कर तत्ती केवाण।—रा० रू०, पृ० १२६।

तत्तोथंबो—संज्ञा पुं० [हिं० तत्ता (=गरम)+थामना] १. दम दिलासा। बहलावा २. दो लड़ते हुए आदमियों को समझा बुझाकर शांत करना। बीच बचाव।

तत्व—संज्ञा पुं० [सं० तत्व] १. वास्तविक स्थिति। यथार्थता। वास्तविकता। असलियत। २ जगत् का मूल कारण।

विशेष—सांख्य मे २५ तत्व माने गए हैं—पुरुष, प्रकृति, महत्तत्व (बुद्धि), अहंकार, चक्षु, कर्ण, नासिका, जिह्वा, त्वक्, वाक्, पाणि, पायु, पाद, उपस्थ, मन, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश। मूल प्रकृति से शेष तत्वों की उत्पत्ति का क्रम इस प्रकार है—प्रकृति से महत्तत्व (बुद्धि), महत्तत्व से अहंकार, अहंकार से ग्यारह इंद्रियाँ (पाँच ज्ञानेंद्रियाँ, पाँच कर्मेंद्रियाँ और मन) और पाँच तन्मात्र, पाँच तन्मात्रों से पाँच महाभूत (पृथ्वी, जल, आदि)। प्रलय काल मे ये सब तत्व फिर प्रकृति मे क्रमशः विलीन हो जाते हैं। योग में ईश्वर को और मिलाकर कुल २६ तत्व माने गए हैं। सांख्य के पुरुष से योग के ईश्वर में विशेषता यह है कि योग का ईश्वर क्लेश, कर्मविपाक आदि से पृथक् माना गया है। वेदांतियों के मत से ब्रह्म ही एकमात्र परमार्थ तत्व है। शून्यवादी बौद्धों के मत से शून्य या अभाव ही परम तत्व है, क्योंकि जो वस्तु है, वह पहले नहीं थी और आगे भी न रहेगी। कुछ जैन तो जीव और अजीव ये ही दो तत्व मानते हैं और कुछ पाँच तत्व मानते हैं—जीव, आकाश, धर्म, अधर्म, पुद्गल और अस्तिकाय। चार्वाक् के मत मे पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु ये ही तत्व माने गए हैं और इन्हीं से जगत् की उत्पत्ति कही गई है। न्याय में १६, वैशेषिक में ६, शैवदर्शन में ३६; इसी प्रकार अनेक दर्शनों की भिन्न भिन्न मान्यताएँ तत्व के संबंध में हैं।

यूरोप में १६वीं शती मे रसायन के क्षेत्र का विस्तार हुआ। पैरासेल्सस ने तीन या चार तत्व माने, जिनके मूलाधार लवण गंधक और पारद माने गए। १७वीं शती में फ्रांस एवं इंगलैंड में भी इसी प्रकार के विचारों को प्रश्रय मिलता रहा। तत्व के संबंध में सबसे अधिक स्पष्ट विचार राबर्ट बायल (१६२७-१६९१ ई०) ने १६६१ ई० मे रखा। उसने परिभाषा की कि तत्व उन्हें कहेंगे जो किसी यांत्रिक या रासायनिक क्रिया से अपने से भिन्न दो पदार्थों में विभाजित न किए जा सकें। १७७४ ई० में प्रीस्टली ने आक्सिजन गैस तैयार की। कैवेंडिश ने १७८१ ई० में आक्सिजन और हाइड्रोजन के योग से पानी तैयार करके दिखा दिया और तब पानी तत्व न रहकर यौगिकों की श्रेणी मे आ गया। लाव्वाज्ये ने १७८९ ई० में यौगिक और तत्व के प्रमुख अंतरों को बताया। उसके

समय तक तत्वों की संख्या २३ तक पहुंच चुकी थी। १९वीं शती में सर हंफ्री डेवी ने नमक के मूल तत्व सोडियम को भी पृथक् किया और कैल्सियम तथा पोटासियम को भी यौगिकों में से अलग करके दिखा दिया। २०वीं शती में मोजली नामक वैज्ञानिक ने परमाणु संख्या की कल्पना रखी जिससे स्पष्ट हो गया कि सबसे हलके तत्व हाइड्रोजन से लेकर प्रकृति में प्राप्त सबसे भारी तत्व यूरेनियम तक तत्वों की संख्या लगभग १०० हो सकती है। प्रयोगों ने यह भी संभव करके दिखा दिया है कि हम अपनी प्रयोगशालाओं में तत्वों का विभाजन और नए तत्वों का निर्माण भी कर सकते हैं।

३. पंचभूत (पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश)। ४. परमात्मा। ब्रह्म। ५. सार वस्तु। साराश। जैसे,—उनके लेख में कुछ तत्व नहीं है।

यौ०—तत्वमसि=यह उपनिषद् का एक वाक्य है जिसका तात्पर्य है हर व्यक्ति ब्रह्म है।

तत्वज्ञ—संज्ञा पुं० [सं० तत्वज्ञ] १. वह जो ईश्वर या ब्रह्म को जानता हो। तत्वज्ञानी। ब्रह्मज्ञानी। २. दार्शनिक। दर्शन शास्त्र का ज्ञाता।

तत्वज्ञान—संज्ञा पुं० [सं० तत्वज्ञान] ब्रह्म, आत्मा और सृष्टि आदि के संबंध का यथार्थ ज्ञान। ऐसा ज्ञान जिससे मनुष्य को मोक्ष हो जाय। ब्रह्मज्ञान।

विशेष—सांख्य और पातंजल के मत से प्रकृति और पुरुष का भेद जानना और वेदांत के मत से अविद्या का नाश और वस्तु का वास्तविक स्वरूप पहचानना ही तत्वज्ञान है।

यौ०—तत्वज्ञानार्थ दर्शन = तत्वज्ञान का विमर्श या आलोचना।

तत्वज्ञानी—संज्ञा पुं० [सं० तत्वज्ञानिन्] १. जिसे ब्रह्म, सृष्टि और आत्मा आदि के संबंध का ज्ञान हो। तत्वज्ञ। दार्शनिक।

तत्वतः—अव्य० [सं० तत्वत] वस्तुतः। यथार्थतः। वास्तव में (को०)।

तत्वता—संज्ञा स्त्री० [सं० तत्वता] १. तत्व होने का भाव या गुण। २. यथार्थता। वास्तविकता।

तत्वदर्श—संज्ञा पुं० [सं० तत्वदर्श] १. तत्वज्ञानी। २. सावर्णि मन्वंतर के एक ऋषि का नाम।

तत्वदर्शी—संज्ञा पुं० [सं० तत्वदर्शिन्] १. जो तत्व को जानता हो। तत्वज्ञानी। रैवत मनु के एक पुत्र का नाम।

तत्वदृष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं० तत्वदृष्टि] वह दृष्टि जो तत्व का ज्ञान प्राप्त करने में सहायक हो। ज्ञानचक्षु। दिव्य दृष्टि।

तत्वनिष्ठ—वि० [सं० तत्वनिष्ठ] तत्व में निष्ठा रखनेवाला (को०)।

तत्वन्यास—संज्ञा पुं० [सं० तत्वन्यास] तंत्र के अनुसार विष्णुपूजा में एक अंगन्यास जो सिद्धि प्राप्त करने के लिये किया जाता है।

तत्वभाव—संज्ञा पुं० [सं० तत्वभाव] प्रकृति। स्वभाव।

तत्वभाषी—संज्ञा पुं० [सं० तत्वभाषिन्] वह जो स्पष्ट रूप से यथार्थ बात कहता हो।

तत्वभूत—वि० [सं० तत्वभूत] तत्व या सार रूप (को०)।

तत्वरश्मि—संज्ञा पुं० [सं०] तंत्र के अनुसार स्त्री देवता का बीज। वधुबीज।

तत्ववाद—संज्ञा पुं० [सं० तत्ववाद] दर्शनशास्त्र संबंधी विचार।

तत्ववादी—संज्ञा पुं० [सं० तत्ववादिन्] १. जो तत्ववाद का ज्ञाता और समर्थक हो। २. जो यथार्थ और स्पष्ट बात कहता हो।

तत्वविद्—संज्ञा पुं० [तत्वविद्] १. तत्ववेत्ता। २. परमेश्वर।

तत्वविद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] दर्शनशास्त्र।

तत्ववेत्ता—संज्ञा पुं० [तत्ववेत्तृ] १. जिसे तत्व का ज्ञान हो। तत्वज्ञ। २. दर्शनशास्त्र का ज्ञाता। फिलासफर। दार्शनिक।

तत्वशास्त्र—संज्ञा पुं० [सं० तत्वशास्त्र] १. दर्शनशास्त्र। २. वैशेषिक दर्शनशास्त्र।

तत्वावधान—संज्ञा पुं० [तत्वावधान] निरीक्षण। जाँच पड़ताल। देख रेख।

तत्वावधानक—संज्ञा पुं० [सं० तत्वावधानक] देखरेख करनेवाला। निरीक्षक।

तत्थ[1]—वि० [सं० तत्व] मुख्य। प्रधान।

तत्थ[2]—संज्ञा पुं० शक्ति। बल। ताकत।

तत्पत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. केले का पेड़। २. वंशपत्री नाम की घास।

तत्पद—संज्ञा पुं० [सं०] परम पद। निर्वाण।

तत्पदार्थ—संज्ञा पुं० [सं०] सृष्टिकर्ता। परमात्मा।

तत्पर[1]—वि० [सं०] [संज्ञा तत्परता] १. जो कोई काम करने के लिये तैयार हो। उद्यत। मुस्तैद। सन्नद्ध। २. निपुण। ३. चतुर। होशियार। ४. उसके बाद का (को०)।

तत्पर[2]—संज्ञा पुं० समय का एक बहुत छोटा मान। एक निमेष का तीसवाँ भाग।

तत्परता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तत्पर होने की क्रिया या भाव। सन्नद्धता। मुस्तैदी। २. दक्षता। निपुणता। ३. होशियारी।

तत्परायण—वि० [सं०] किसी वस्तु या ध्येय में पूरी तरह से लगन या दत्तचित्त (को०)।

तत्पश्चात्—अव्य० [सं०] उसके बाद। अनंतर (को०)।

तत्पुरुष—संज्ञा पुं० [सं०] १. ईश्वर। परमेश्वर। २. एक रुद्र का नाम। ३. मत्स्य पुराण के अनुसार एक कल्प (काल विभाग) का नाम। ४. व्याकरण में एक प्रकार का समास जिसमें पहले पद में कर्ता कारक की विभक्ति को छोड़कर कर्म आदि दूसरे कारकों की विभक्ति लुप्त हो और जिसमें पिछले पद का अर्थ प्रधान हो। इसका लिंग और वचन आदि पिछले या उत्तर पद के अनुसार होता है। जैसे,—जलचर, नरेश, हिमालय, यज्ञशाला।

तत्प्रतिरूपक व्यवहार—संज्ञा पुं० [सं०] जैनियों के मत से एक अतिचार जो बेचने के खरे पदार्थों में खोटे पदार्थ की मिलावट करने से होता है।

तत्फल—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुट नामक ओषधि। २. बेर का फल। ३. कुवलय। नील कमल। ४. चोर नामक गंधद्रव्य। ५. श्वेत कमल (को०)।

तत्र—क्रि० वि० [सं०] उस स्थान पर। उस जगह। वहाँ।

तत्रक—संज्ञा पुं० [देश०] एक पेड़ जो योरप, अरब, फारस से लेकर पूर्व में अफगानिस्तान तक होता है।

विशेष—यह अनार के पेड़ के बराबर या उससे कुछ बड़ा होता है। इसकी पत्तियाँ नीम की पत्ती की तरह कटावदार और कुछ ललाई लिए होती हैं। इसमें फलियाँ लगती हैं जिनमें मसूर के से बीज पड़ते हैं। ये बीज बाजार में अत्तारों के यहाँ समाक के नाम से बिकते हैं और हकीमी दवा में काम आते हैं। बीज के छिलके का स्वाद कुछ खट्टा और रुचिकर होता है। इसकी पत्तियों से एक प्रकार का रंग निकलता है। डंठल और पत्तियों से चमड़ा बहुत अच्छा सिझाया जाता है। हिंदुस्तान में चमड़े के बड़े बड़े कारखानों में ये पत्तियाँ सिसली से मँगाई जाती हैं।

तत्रत्य—वि० [सं०] वहाँ रहनेवाला (को०)।

तत्रभवान्—संज्ञा पुं० [सं०] माननीय। पूज्य। श्रेष्ठ।

विशेष—अत्रभवान् की तरह इस शब्द का प्रयोग भी प्रायः संस्कृत नाटकों में अधिकता से होता है।

तत्रस्थ—वि० [सं०] वहाँ स्थित। वहाँ का निवासी।

तत्रापि—अव्य० [सं०] तथापि। तो भी।

तत्संबंधी—वि० [सं० तत्संबंधिन्] उससे संबंध रखनेवाला (को०)।

तत्सम—संज्ञा पुं० [सं०] भाषा में व्यवहृत होनेवाला संस्कृत का वह शब्द जो अपने शुद्ध रूप में हो। संस्कृत का वह शब्द जिसका व्यवहार भाषा में उसके शुद्ध रूप में हो। जैसे,—दया, प्रत्यक्ष, स्वरूप, सृष्टि आदि।

तत्सामयिक—वि० [सं०] उस समय से संबंधित। उस समय का (को०)।

तथ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तत्व'। उ०—उह मनु कैसा जो कथै अकथु। उह मनु कैसा जो उलटै चुनि तथु।—प्राण०, पृ० ३४

तथता—संज्ञा पुं० [सं० तथ+ता] १. सत्यता। वस्तु का वास्तविक स्वरूप में निरूपण। २. तथा का भाव। उ०—यदि आप चाहें तो असंस्कृतों की धर्मता, तथता का प्रज्ञप्तिसत् मान सकते हैं।—संपूर्णा० अभि० ग्रं०, पृ० ३३५।

तथा¹—अव्य० [सं०] १. और। व। २. इसी तरह। ऐसे ही। जैसे—यथा नाम तथा गुण।

यौ०—तथारूप। तथारूपी। तथावादी। तथाविध। तथाविधान। तथावृत। तथाविधेय। तथास्तु = ऐसा ही हो। इसी प्रकार हो। एवमस्तु।

विशेष—इस पद का प्रयोग किसी प्रार्थना को स्वीकार करने अथवा माँगा हुआ वर देने के समय होता है।

तथा²—संज्ञा पुं० १. सत्य। २. सीमा। हद। ३. निश्चय। ४. समानता।

तथा³—संज्ञा स्त्री० [सं० तथ्य] दे० 'तथ्य'।

तथाकथित—वि० [सं०] जो मूलतः न हो परंतु उस नाम से प्रचलित हो। नामधारी।

तथाकथ्य—वि० [सं०] दे० 'तथाकथित' (को०)।

तथाकृत—वि० [सं०] इसी या उसी प्रकार किया हुआ या निर्मित (को०)।

तथागत—संज्ञा पुं० [सं०] १. बुद्ध का एक नाम। २. जिन (को०)।

तथागुण—संज्ञा पुं० [सं०] १. वैसा ही गुण। २. सत्य। वस्तुस्थिति (को०)।

तथाता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'तथता' (को०)।

तथानुरूप—वि० [सं०] दे० 'तदनुरूप'। उ०—सत्य में जो संगति होती है वह तत्वों का समवर्गीय होना और उनका और उनसे निकाले हुए नियमों का तथानुरूप होता है।—पा० सा० सि०, पृ० ५।

तथापि—अव्य० [सं०] तो भी। तिस पर भी। तब भी। उ०—प्रभुहि तथापि प्रसन्न बिलोकी। माँगि अगम बरु होउँ असोकी।—मानस, १। १६४।

विशेष—इसका प्रयोग यद्यपि के साथ होता है। जैसे,—यद्यपि हम वहाँ नहीं गए, तथापि उनका काम हो गया।

तथाभाव—संज्ञा पुं० [सं०] १. वैसा भाव या स्थिति। २. सत्यता (को०)।

तथाभूत—वि० [सं०] १. उस प्रकार के गुण या प्रकृति का। २. उस स्थिति का (को०)।

तथाराज—संज्ञा पुं० [सं०] गौतम बुद्ध।

तथेई ताथेइ ताथे—संज्ञा पुं० [अनु०] दे० 'ताताथेई'। उ०—लख्यौ कान्ह के आनि, तथेई ताथेइ ताथे। ब्रजनिधि को चित चूर चूर करि डारयौ राधे।—ब्रज० ग्रं०, पृ० १६।

तथैव—अव्य [सं०] वैसा ही। उसी प्रकार।

तथोक्त—वि० [सं०] वैसा वर्णित। जैसा कहा गया है। २. तथाकथित। उ०—भारत की तथोक्त ऊँची जातियाँ चाहे कितना ही अभिमान करें पर उनकी आकृतियाँ और इतिहास पुकार पुकार कर कहते हैं कि वह सांकर्य दोष से बची नहीं हैं।—आर्यो०, पृ० १३।

तथ्य¹—वि० [सं०] १. सत्य। सचाई। यथार्थता। २. रहस्य (को०)।

तथ्य†²—अव्य० [सं० तत्र] उस जगह। वहाँ (को०)।

तथ्यतः—क्रि० वि० [सं०] सत्य या सचाई के अनुसार (को०)।

तथ्यभाषी—वि० [सं० तथ्यभाषिन्] साफ और सच्ची बात कहनेवाला।

तथ्यवादी—वि० [सं० तथ्यवादिन्] दे० 'तथ्यभाषी'।

तद्—वि० [सं०] वह।

विशेष—इसका प्रयोग यौगिक शब्दों के आरंभ में होता है। जैसे,—तदनंतर, तदनुसार।

तद†—क्रि० वि० [सं० तदा] उस समय। तब।

तदंतर—क्रि० वि० [सं० तदन्तर] इसके बाद। इसके उपरांत।

तदनंतर—क्रि० वि० [सं० तदनन्तर] उसके पीछे। उसके बाद। उसके उपरांत।

तदनन्यत्व—संज्ञा पुं० [सं०] कार्य और कारण में अभेद। कार्य और कारण की एकता। (वेदांत)।

तदनु—क्रि० वि० [सं०] १. उसके पीछे। तदनंतर। उसके अनुसार २. उसी तरह। उसी प्रकार।

तदनुकूल—वि० [सं०] उसके अनुसार। तदनुसार।

तदनुरूप—वि० [सं०] उसी के जैसा। उसी के रूप का। उसी के समान।

तदनुसार—वि॰ [सं॰] उसके मुताबिक। उसके अनुकूल।

तदन्यबाधितार्थ—संज्ञा पुं॰ [सं॰] नव्य न्याय में, तर्क के पाँच प्रकारों में से एक।

तदपि—अव्य॰ [सं॰] तो भी। तिसपर भी। तथापि।

तदबीर—संज्ञा स्त्री॰ [अ॰] अभीष्ट सिद्धि करने का साधन। युक्ति। तरकीब। यत्न।

तदर्थ—अव्य॰ [सं॰] उसके लिये। उसके वास्ते [को॰]।

तदर्थी—वि॰ [सं॰ तदर्थिन्] दे॰ 'तदर्थीय'।

तदर्थीय—वि॰ [सं॰] उसके अर्थ की तरह अर्थ रखनेवाला। समानार्थक [को॰]।

तदा—क्रि॰ वि॰ [सं॰] उस समय। तब। तिस समय।

तदाकार—वि॰ [सं॰] १. वैसा ही। उसी आकार का। उसी आकृतिवाला। तद्रूप। २. तन्मय।

तदारक—संज्ञा पुं॰ [अ॰] १. खोई हुई चीज या भागे हुए अपराधी आदि की खोज या किसी दुर्घटना आदि के संबंध में जाँच। २. किसी दुर्घटना को रोकने के लिये पहले से किया हुआ प्रबंध। पेसबंदी। बंदोबस्त। ३. सजा। दंड।

तदि(पु)—क्रि॰ [हिं॰] तदा। तब। उस समय। उ॰—तदि करयौ बोध बहु बिधि सुताहि।—हु॰ रासो, पृ॰ ४६।

तदीय—सर्व॰ [सं॰] उससे संबंध रखनेवाला। उसका।

यौ॰—तदीय समाज। तदीय सर्वस्व।

तदुत्तर—वि॰ [सं॰] उसके बाद। उसके अतिरिक्त। उ॰—कठिन है अपना तर्क तुम्हें समझाना। वह मेरा है पूर्ण, तदुत्तर परलोकों का कौन ठिकाना।—इत्यलम्, पृ॰ २१८।

तदुपरांत—क्रि॰ वि॰ [सं॰ तद्+उपरान्त] उसके पीछे। उसके बाद।

तदुपरि—वि॰ [सं॰] उसके ऊपर। उसके बाद। उ॰—कष्टों में अल्प उपशम भी क्लेश को है घटाना। जो होती है तदुपरि व्यथा सो महादुर्गमा है।—प्रिय॰, पृ॰ १२२।

तदुगत—वि॰ [सं॰] १ उससे संबंध रखनेवाला। उसके संबंध का। २ उसके अंतर्गत। उसमें व्याप्त।

तद्गुण—संज्ञा पुं॰ [सं॰] एक अर्थालंकार जिसमें किसी एक वस्तु का अपना गुण त्याग करके समीपवर्ती किसी दूसरे उत्तम पदार्थ का गुण ग्रहण कर लेना वर्णित होता है। जैसे,—(क) अधर धरत हरि के परत ओंठ डीठ पट जोति। हरित बाँस की बाँसुरी इंद्रधनुष सी होती।—बिहारी (शब्द॰)। इसमें बाँस की बाँसुरी का अपना गुण छोड़कर इंद्रधनुष का गुण ग्रहण करना वर्णित है। (ख) बाहिरै बागत सी जमुना जब बूड़ें बही उमहैं वह बेनी। त्यों पदमाकर हीर के हारन गंग तरंगन को सुख देनी। पायन के रँग सों रँगि जात सुभाँतिहि भाँति सरस्वति सेनी। पैरे जहाँ ही जहाँ वह बाल तहाँ तहँ ताल में होत त्रिबेनी।—पद्माकर (शब्द॰)। यहाँ ताल के जल का बालों, हीरे, मोती के हारों और तलवों के संसर्ग के कारण त्रिवेणी का रूप धारण करना कहा गया है।

तदपि(पु)—अव्य॰ [हिं॰] दे॰ 'तदपि'। उ॰—अब उद्ध अम्भो बहु कमलि नाल। नहिं पार लह्यौ तदपि मुहाल।—हु॰ रासो, पृ॰ ४।

तद्दन—संज्ञा पुं॰ [सं॰] कृपण। कंजूस।

तद्धर्म—वि॰ [सं॰ तद्धर्मन्] जिनका वह धर्म हो। उस धर्मवाला। उ॰—किंतु आप कहेंगे कि यद्यपि जाति का तद्धर्मत्व नहीं है तथापि तीक्ष्णत्व और कपिलत्व का अग्निजाति से अविनाभाव है।—संपूर्णा॰ अभि॰ ग्रं॰, पृ॰ ३३७।

तद्धित[1]—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. व्याकरण में एक प्रकार का प्रत्यय जिसे संज्ञा के अंत में लगाकर शब्द बनाते हैं।

विशेष—यह प्रत्यय पाँच प्रकार के शब्द बनाने के काम में आता है—(१) अपत्यवाचक, जिससे अपत्यता या अनुयायित्व आदि का बोध होता है। इसमें या तो संज्ञा के पहले स्वर की वृद्धि कर दी जाती है अथवा उसके अंत में 'ई' प्रत्यय जोड़ दिया जाता है। जैसे, शिव से शैव, विष्णु से वैष्णव, रामानंद से रामानंदी आदि। (२) कर्तृवाचक—जिससे किसी क्रिया के कर्ता होने का बोध होता है। इसमें 'वाला' या 'हारा' अथवा इन्हीं का समानार्थक और कोई प्रत्यय लगाया जाता है। जैसे, कपड़ा से कपड़ेवाला, गाड़ी से गाड़ीवाला, लकड़ी से लकड़ीवाला या लकड़हारा। (३) भाववाचक—जिससे भाव का बोध होता है। इसमें 'आई', 'ई', 'त्व', 'ता', 'पन', 'पा', 'वट', 'हट', आदि प्रत्यय लगाते हैं। जैसे, ढीठ से ढिठाई, ऊँचा से ऊँचाई, मनुष्य से मनुष्यत्व, मित्र से मित्रता, लड़का से लड़कपन, बूढ़ा से बुढ़ापा, मिलान से मिलावट, चिकना से चिकनाहट आदि। (४) ऊनवाचक—जिससे किसी प्रकार की न्यूनता या लघुता आदि का बोध होता है। इसमें संज्ञा के अंत में 'क', 'इया' आदि लगा देते हैं और 'आ' को 'ई' से बदल देते हैं। जैसे,—वृक्ष से वृक्षक, फोड़ा से फोड़िया, ढोला से ढोली। (५) गुणवाचक—जिससे गुण का बोध होता है। इसके संज्ञा के अंत में 'आ', 'इक', 'इत', 'ई', 'ईला,' 'एला', 'लु', 'वंत', 'वान', 'दायक', 'कारक', आदि प्रत्यय लगाए जाते हैं। जैसे, ठंढ से ठंढा, मैल से मैला, शरीर से शारीरिक, आनंद से आनंदित, गुण से गुणी, रँग से रँगीला, घर से घरेलू, दया से दयावान्, सुख से सुखदायक, गुण से गुणकारक आदि।

२ वह शब्द जो इस प्रकार प्रत्यय लगाकर बनाया जाय।

तद्धित[2]—वि॰ उसके लिये उपयुक्त [को॰]

तद्बल—संज्ञा पुं॰ [सं॰] एक प्रकार का बाण।

तद्भव—संज्ञा पुं॰ [सं॰] भाषा में प्रयुक्त होनेवाला संस्कृत का वह शब्द जिसका रूप कुछ विकृत या परिवर्तित हो गया हो। संस्कृत के शब्द का अपभ्रंश रूप। जैसे, हस्त का हाथ, अश्रु का आँसू, अर्ध का आधा, काष्ठ का काठ, कर्पूर का कपूर, घृत का घी।

तद्यपि—अव्य॰ [सं॰] तथापि। तो भी।

तद्रूप—वि॰ [सं॰] समान। सदृश। वैसा ही। उसी प्रकार का।

तद्रूपता—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] सादृश्य। समानता। उ॰—जानि जुग जूप मैं भूप तद्रूपता बहुरि करिहै कलुष भूमि भारी।—सूर (शब्द॰)।

तद्वत्—वि० [सं०] उसी के जैसा । उसके समान । ज्यों का त्यों ।
यौ०—तद्वता=तद्वत् होने का भाव या स्थिति ।

तधी†—क्रि० वि० [सं० तदा] तभी (ब्रज०) ।

तन¹—संज्ञा पुं० [सं० तनु । तुल० फ़ा० तन] १. शरीर । देह । गात । जिस्म ।
यौ०—तनताप=(१) शारीरिक कष्ट । (२) भूख । क्षुधा ।
मुहा०—तन को लगाना=(१) हृदय पर प्रभाव पड़ना । जी में बैठना । जैसे,—चाहे कोई काम हो, जब तन को न लगे तब तक वह पूरा नहीं होता । (१) (खाद्य पदार्थ का) शरीर को पुष्ट करना । जैसे,—जब चिंता छूटे, तब खाना पीना भी तन को लगे । तन तोड़ना=अँगड़ाई लेना । तन देना=ध्यान देना । मन लगाना । जैसे,—तन देकर काम किया करो । तन मन मारना=इंद्रियों को वश में रखना । इच्छाओं पर अधिकार रखना ।
२. स्त्री की मूत्रेंद्रिय । भग ।
मुहा०—तन दिखाना=(स्त्री का) संभोग करना । प्रसंग कराना ।

तन²—क्रि० वि० तरफ ओर । उ०—बिहँसे करुना अयन चितइ जानकी लखन तन ।—मानस, २ । १०० ।

तन³—संज्ञा पुं० [सं० स्तन; प्रा० थण; हिं० थन; राज० तन;] दे० 'स्तन' । उ०—तिया मारू रा तन खिस्या पंडर हुवा ज केस ।—ढोला०, दू० ४४२

तनक¹—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक रागिनी का नाम जिसे कोई कोई मेघ राग की रागिनी मानते है ।

तनक²—वि०[हिं०] दे० 'तनिक' । उ०—अबही देखे नवल किशोर । घर आवत ही तनक भसे हैं ऐसे तन के थोर—सूर (शब्द०) ।

तनकना(पु)†—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'तिनकना' ।

तनकीद—संज्ञा स्त्री०[अ० तनक़ीद] १. आलोचना । २. परख । [को०] ।

तनकीह—संज्ञा स्त्री० [अ० तन्क़ीह] १. जाँच । खोज । तहकीकात । २. न्यायालय में किसी उपस्थित अभियोग के संबंध में विचारणीय और विवादास्पद विषयों को ढूँढ़ निकालना । अदालत का किसी मुकदमे की उन बातों का पता लगाना जिनके लिये वह मुकदमा चलाया गया हो और जिनका फैसला होना जरूरी हो ।
विशेष—भारत में दीवानी अदालतों में जब कोई मुकदमा दायर होता है, तब पहले उसमें अदालत की ओर से एक तारीख पड़ती है । उस तारीख को दोनों पक्षों के वकील बहस करते हैं जिससे हाकिम को विवादास्पद और विचारणीय बातों को जानने में सहायता मिलती है । उस समय हाकिम ऐसी सब बातों की एक सूची बना लेता है । उन्हीं बातों को ढूँढ़ निकालना और उनकी सूची बनाना तनकीह कहलाता है ।

तनक्कना(पु)—क्रि० वि० [हिं० तनक]दे० 'तनिक' । उ०—रहे तनक्क पौरि जाय फेरि अग्गि हल्लियं ।—ह० रासो, पृ० ३१ ।

तनख्वाह—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० तनख्वाह] वह धन जो प्रति सप्ताह, प्रति मास या प्रति वर्ष किसी को नौकरी करने के उपलक्ष्य में मिलता है । वेतन । तलब ।

तनख्वाहदार—संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह जो तनख्वाह पर काम करता हो । तनख्वाह पानेवाला नौकर । वेतनभोगी ।

तनख्वाह—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० तनख़्वाह] दे० 'तनखाह' ।

तनख्वाहदार—संज्ञा पुं० [फ़ा० तनख्वाहदार] दे० 'तनखाहदार' ।

तनगना(पु)†—क्रि० अ०[हिं०]दे० 'तिनकना' । उ०—अनतहि बसत अनत ही डोलत आवत किरिन प्रकास । सुनहु सूर पुनि तौ कहि आवे तनगि गए ता पास ।—सूर (शब्द०) ।

तनगरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] शरीर ढँकने का मामूली वस्त्र । उ०—लई तनगरी तोरि कै सु हरि बोलौ हरि बोल ।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० ३१७ ।

तनज—संज्ञा पुं० [अ० तंज़] १. ताना । २ मजाक ।

तनजीम—संज्ञा स्त्री० [अ० तन्ज़ीम] अपने वर्ग को संघटित करना । संघटन [को०] ।

तनजील—संज्ञा स्त्री० [अ० तनजील] १. आतिथ्य करना । २. उतारना [को०] ।

तनजेब—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० तनज़ेब] एक प्रकार का बहुत ही महीन बढ़िया सूती कपड़ा । महीन चिकनी मलमल ।

तनज्जुल—संज्ञा पुं० [अ० तनज्जुल] तरक्की का उलटा । अवनति । उतार । घटाव ।

तनज्जुली—संज्ञा स्त्री० [अ० तनज्जुल + फ़ा० ई (प्रत्य०)] अवनति । उतार । तरक्की का उलटा ।

तनतनहा—क्रि० वि० [हिं० तन + फ़ा० तनहा] बिलकुल अकेला । जिसके साथ और कोई न हो । जैसे,—वह तनतनहा दुश्मन की छावनी से चला गया ।

तनतना—संज्ञा पुं० [हिं० तनतनाना या अ० तनतनह्] १. रोबदाब । दबदबा । २. क्रोध । गुस्सा । (क्व०) ।
क्रि० प्र०—दिखाना ।

तनतनाना—क्रि० अ० [अनु० या अ० तन्तनह्] १. दबदबा दिखलाना । शान दिखाना । २ क्रोध करना । गुस्सा दिखलाना ।

तनत्राण—संज्ञा पुं० [सं० तनुत्राण] १. वह चीज जिससे शरीर की रक्षा हो । २. कवच । बखतर ।

तनदिही—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] दे० 'तंदेही' ।

तनधर—संज्ञा पुं० [सं० तनु + धर] दे० 'तनुधारी' ।

तनधारी(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तनुधारी' ।

तनना¹—क्रि० अ० [सं० तन या तनु] १. किसी पदार्थ के एक या दोनों सिरों का इस प्रकार आगे की ओर बढ़ना जिसमें उसके मध्य भाग का झोल निकल जाय और उसका विस्तार कुछ बढ़ जाय । झटके, खिंचाव या खुश्की आदि के कारण किसी पदार्थ का विस्तार बढ़ना । जैसे, चादर या चाँदनी तनना, घाव पर की पपड़ी तनना । २. किसी चीज का जोर से किसी

ओर खिंचना। आकर्षित या प्रवृत्त होना। ३. किसी चीज का अकड़कर सीधा खड़ा होना। जैसे,—यह पेड़ कल झुक गया था, पर आज पानी पाते ही फिर तन गया। ४. कुछ अभिमानपूर्वक रुष्ट या उदासीन होना। ऐंठना। जैसे,—इधर कई दिनों से वे हमसे कुछ तने रहते हैं।

संयो० क्रि०—जाना।

तनना[२]—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'तानना'। उ०—ग्रहपथ के आलोकवृत्त से कालजाल तनता अपना।—कामायनी, पृ० ३४।

तनना[३]—संज्ञा पुं० [हिं० ताना] वह रस्सी जिससे तानने का कार्य किया जाता है।

तनपातⓟ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तनुपात'।

तनपोषक—वि० [सं० तन+पोषक] जो केवल अपने ही शरीर या लाभ का ध्यान रखे। स्वार्थी।

तनपाल—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्राचीन देश जिसका नाम महाभारत में आया है।

तनमय—वि० [सं० तन्मय] दे० 'तन्मय'। उ०—अपनो अपनो भाग सखी री तुम तनमय मैं कहूँ न नेरे।—सूर (शब्द०)।

तनमात्राⓟ—संज्ञा स्त्री० [सं० तन्मात्रा] दे० 'तन्मात्रा'।

तनमानसा—संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्ञान की सात भूमिकाओं में तीसरी भूमिका।

तनय—संज्ञा पुं० [सं०] १. पुत्र। बेटा। लड़का। २. जन्मलग्न से पाँचवाँ स्थान जिससे पुत्र भाव देखा जाता है।

तनया—संज्ञा स्त्री०[सं०]१. लड़की। बेटी। पुत्री। २. पिठवन लता।

तनराग—संज्ञा पुं० [सं० तनु+राग] दे० 'तनुराग'।

तनरुहⓟ—संज्ञा पुं० [सं० तनूरुह] दे० 'तनूरुह'। उ०—हरषवंत चर अचर भूमिसुर तनरुह पुलकि जनाई।—तुलसी (शब्द०)।

तनवाद—संज्ञा पुं० [सं०] भौतिकवाद। शरीर को मुख्य माननेवाला सिद्धांत। उ०—वह ठेठ तनवाद और कर्मवाद है।—सुखदा, पृ० १६१।

तनवाना—क्रि० स० [हिं० तानना का प्रे०रूप] तानने का काम दूसरे से कराना। दूसरे को तानने में प्रवृत्त करना। तनाना।

तनवाल—संज्ञा पुं० [देश०] वैश्यों की एक जाति।

तनसल—संज्ञा पुं० [देश०] स्फटिक। बिल्लौर।

तनसिज—संज्ञा पुं० [सं०] उरोज। उ०—सब गनना चित ओर सों, बनी सुनत यह बोल। भरके तनसिज तरुनि के, फरके गोल कपोल।—स० सप्तक, पृ० २४२।

तनसीख—संज्ञा स्त्री० [अ० तनसीख] रद्द करना। बातिल करना। नाजायज करना। मंसूखी।

तनसुख—संज्ञा पुं० [हिं० तन+सुख] तंजेब या मलमल की तरह का एक प्रकार का बढ़िया फूलदार कपड़ा। उ०—(क) तनसुख सारी लही अँगिया अतलस अतरौटा छबि धारि धारि चूरी पहुँचीनि पहुँची छमकी बनी नकफूल जेब मुख बीरा चौके कौधे संभ्रम भूली।—हरिदास (शब्द०)। (ख) कोमलता पर रसाल तनसुख की सेज लाल मनहुँ सोम सूरज पर सुधाबिंदु बरसै।—

तनहा[१]—वि० [फ़ा०] १. जिसके संग कोई न हो। बिना साथी का। अकेला। एकाकी। २. रिक्त। खाली (को०)।

तनहा[२]—क्रि० वि० बिना किसी संगी साथी का। अकेले

तनहाई—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. तनहा होने की दशा या भाव। २. वह स्थान जहाँ और कोई न हो। एकांत।

यौ०—तनहाई कैद।

तना[१]—संज्ञा पुं० [फ़ा० तनह्] वृक्ष का जमीन से ऊपर निकला हुआ वहाँ तक का भाग जहाँ तक डालियाँ न निकली हों। पेड़ का धड़। मंदल।

तना[२]—क्रि० वि० [हिं० तन] ओर। तरफ। दे० 'तन'। उ०—नील पट झपटि लपेटि छिगुनी पै घरि टेरि टेरि कहूँ हँसि हेरि हरिजू तना।—देव (शब्द०)।

तना[३]—संज्ञा पुं० [हिं० तन] शरीर। जिस्म। उ०—तना सुख में पड़ा तब से गुरू का शुक्र क्यों भूला।—कबीर मं०, पृ० ५४३।

तनाइ‡—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तनाव'।

तनाई—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तनाव'।

तनाउ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तनाव'। उ०—फटिक छरी सी किरन कुंजरंध्रनि जब आई। मानो बितनु बितान सुदेस तनाउ तनाई।—नंद० ग्रं०, पृ० ७।

तनाउल—संज्ञा पुं० [अ० तनावुल] भोजन करना। उ०—हुजूर को खासा तनाउल फर्माने को नावक्त हुआ जाता है।—प्रेमघन०, पृ० ८५।

तनाऊ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तनाव'।

तनाक—वि० [हिं०] दे० 'तनिक'। उ०—दर, स्तोक, ईखत, अलप, रंचक, मंद, मनाक। तब प्रिय सहचरि तन चितै, मुसकी कुँअरि तनाक।—नंद० ग्रं० पृ० १००।

तनाकुⓟ†—वि० [हिं०] दे० 'तनिक'।

तनाजा—संज्ञा पुं० [अ० तनाजअ्] १. बखेड़ा। झगड़ा। टंटा। दंगा। संघर्ष। फसाद। २. अदावत। कशाकश। शत्रुता। वैर। वैमनस्य।

तनाना—क्रि० स० [हिं० तानना का प्रे०रूप] तानने का काम दूसरे से कराना। दूसरे को तानने में प्रवृत्त करना। उ०—कलस चरन तोरन ध्वजा सुवितान तनाए।—तुलसी (शब्द०)।

तनाब†—संज्ञा स्त्री० [अ० तिनाब] १. खेमे की रस्सी। २. बाजीगरों का रस्सा जिसपर वे चलते तथा दूसरे खेल करते हैं।

यौ०—तनाबे अमल = (१) आशा रूपी डोर। (२) आशा। तनाबे उम्र = आयुसूत्र। आयु। जीवनकाल।

तनायⓟ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तनाव'।

तनाव—संज्ञा पुं० [हिं० तनना] १. तनने का भाव या क्रिया। २. वह रस्सी जिसपर धोबी कपड़े सुखाते हैं। ३. रस्सी। डोरी। जेवरी। रज्जु।

तनासुख—संज्ञा पुं० [अ० तनासुख] आवागमन (को०)।

तनि¹—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'तनिक'। उ०—तनि सुख तौ चहियत हुतो हर विध विधिहि मनाय। भली भई जो सखि भयो मोहन मधुरे चाय।—रसनिधि (शब्द०)।

तनि²—अव्य० तरफ। ओर।

तनि³—संज्ञा पुं० [सं० तनु] शरीर। देह।

तनिक¹—वि० [सं० तनु (=अल्प)] १. थोड़ा। कम। २. छोटा। उ०—इहाँ हुती मेरी तनिक मड़ैया को नृप आइ छयो।—सूर (शब्द०)।

तनिक²—क्रि० वि० जरा। टुक।

तनिका¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह रस्सी जिससे कोई चीज बाँधी जाय।

तनिका²—सर्व० [हिं० तिनका] उसका। उ०—भनइ विद्यापति कवि कंठहार। तनिका दोसर काम प्रहार। —विद्यापति०, पृ० २८।

तनिमा—संज्ञा स्त्री० [सं० तनिमन्] १. कृशता। २. नजाकत। उ०—तनिमा ने हर लिया तिमिर, अंगों में लहरी फिर फिर, तनु में तनु आरति सी स्थिर, प्राणों की पावनता बन।—गीतिका, पृ० ९९।

तनिया†—संज्ञा स्त्री० [हिं० तनी] १. लँगोट। लँगोटी। कौपीन। २. कछनी। जाँघिया। उ०—तनिया ललित कटि विचित्र टिपारो सीस मुनि मन हरत बचन कहै तोतरात।—तुलसी (शब्द०)। ३. चोली। उ०—तनियाँ न तिलक सुथनियाँ पगनियाँ न घामैं घुमरात छोड़ि सेजियाँ सुखन की।—भूषन (शब्द०)।

तनिष्ठ—वि० [सं०] जो बहुत ही दुबला पतला, छोटा या कमजोर हो।

तनिसा†—संज्ञा पुं० [देश०] पुआल।

तनी¹—संज्ञा स्त्री० [सं० तनिका, हिं० तानना] १. डोरी की तरह बटा या लपेटा हुआ वह कपड़ा जो अँगरखे, चोली आदि में उनका पल्ला तानकर बाँधने के लिये लगाया जाता है। बंद। बंधन। उ०—कंचुकि ते कुचकलस प्रगट ह्वै टूटि न तरक तनी।—सूर (शब्द०)। २. दे० 'तनिया'।

तनो‡²—क्रि० वि० [सं० तनु] दे० 'तनिक'।

तनी†³—वि० दे० 'तनिक'।

तनीदार—वि० [हिं० तनी + फ़ा० दार] तनी या बंदवाला।

तनु¹—वि० [सं०] १. कृश। दुबला पतला। २. अल्प। थोड़ा। कम। ३. कोमल। नाजुक। ४. सुंदर। बढ़िया। ५. तुच्छ (को०)। ६. छिछला (को०)।

तनु²—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. शरीर। देह। बदन। २. चमड़ा। खाल। त्वक्। ३. स्त्री। औरत। ४. केंचुली। ५. ज्योतिष में लग्न-स्थान। जन्मकुंडली में पहला स्थान। ६. योग में अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश इन चारों क्लेशों का एक भेद जिसमें चित्त में क्लेश की अवस्थिति तो होती है, पर साधन या सामग्री आदि के कारण उस क्लेश की सिद्धि नहीं होती।

तनुक(ए)†¹—वि० [सं० तनु + क (प्रत्य०)] दे० 'तनिक'।

तनुक²—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'तनिक'।

तनुक³—संज्ञा पुं० [सं० तनु] दे० 'तनु'।

तनुक⁴—वि० [सं०] १. पतला। क्षीण। कृश। २. छोटा [को०]।

तनुकूप—संज्ञा पुं० [सं०] रोमछिद्र [को०]।

तनुकेशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सुंदर बालोंवाली स्त्री [को०]।

तनुक्षय—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य अर्थशास्त्र के अनुसार वह लाभ जो मंत्र मात्र से साध्य हो।

तनुक्षीर—संज्ञा पुं० [सं०] आमड़े का पेड़।

तनुगृह—संज्ञा पुं० [सं०] अश्विनी नक्षत्र [को०]।

तनुच्छद—संज्ञा पुं० [सं०] कवच। बखतर।

तनुच्छाय¹—संज्ञा पुं० [सं०] लाल बबूल का पेड़।

तनुच्छाय²—वि० अल्प या कम छायावाला [को०]।

तनुज—संज्ञा पुं० [सं०] १. पुत्र। बेटा। लड़का। २. जन्मकुंडली में लग्न से पाँचवाँ स्थान जहाँ से पुत्रभाव देखा जाता है।

तनुजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कन्या। लड़की। पुत्री। बेटी।

तनुता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. लघुता। छोटाई। २. दुर्बलता। दुबलापन। कृशता।

तनुत्याग—वि० [सं०] कम खर्च करनेवाला। कृपण [को०]।

तनुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तनुत्राण'।

तनुत्राण—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह चीज जिससे शरीर की रक्षा हो। २. कवच। बखतर।

तनुत्रान(ए)—संज्ञा पुं० [सं० तनुत्राण] दे० 'तनुत्राण'।

तनुत्वचा¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटी अरणी।

तनुत्वचा²—संज्ञा स्त्री० जिसकी छाल पतली हो।

तनुदान—संज्ञा स्त्री० [सं०] अंगदान। शरीरदान (संभोग के लिये)।

तनुधारी—वि० [सं०] शरीरधारी। देहधारी। शरीर धारण करनेवाला। उ०—कहहु सखी अस को तनुधारी। जो न मोह येहु रूपु निहारी।—मानस, १।२२१।

तनुधी—वि० [सं०] क्षीणमति। अल्पबुद्धि [को०]।

तनुपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] गोंदनी या गोंदी का पेड़। इंगुआ वृक्ष।

तनुपात—संज्ञा पुं० [सं०] शरीर से प्राण निकलना। मृत्यु। मौत।

तनुपोषक—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो अपने ही शरीर या परिवार का पोषण करता हो। स्वार्थी। उ०—तनुपोषक नारि नरा सगरे। परनिंदक जे जग मों बगरे।—मानस, ७।१०२।

तनुप्रकाश—वि० [सं०] धुँधले या मंद प्रकाशवाला [को०]।

तनुबीज¹—संज्ञा पुं० [सं०] राजबेर।

तनुबीज²—वि० जिसके बीज छोटे हों।

तनुभव—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० तनुभवा] पुत्र। बेटा। लड़का।

तनुभस्त्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] नासिका। नाक [को०]।

तनुभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] बौद्ध श्रावकों के जीवन की एक अवस्था।

तनुभृत्—वि० [सं०] देहधारी, विशेषत: मनुष्य [को०]।

तनुमत्—वि० [सं०] १. समाहित। सन्निहित। २. शरीर युक्त। शरीरवाला।

तनुमध्य—संज्ञा पुं० [सं०] कमर या कटि [को०]।

तनुमध्य—वि० क्षीण कटि या कमरवाला [को०]।

तनुमध्यमा—वि० [सं०] पतली कमरवाली [को०]।

तनुमध्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वर्णवृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में एक तगण और यगण (ऽऽ।—।ऽऽ) होता है। इसको चौरस भी कहते हैं। जैसे,—तू यों किमि आली, घूमै मतवाली।—(शब्द०)।

तनुरस—संज्ञा पुं० [सं०] पसीना। स्वेद।

तनुराग—संज्ञा पुं० [सं०] १. केसर, कस्तूरी, चंदन, कपूर, अगर आदि को मिलाकर बनाया हुआ उबटन। २. वे सुगंधित द्रव्य जिनसे उक्त उबटन बनाया जाता है।

तनुरुह—संज्ञा पुं० [सं०] रोआँ। रोम।

तनुल—वि० [सं०] विस्तृत। फैला हुआ [को०]।

तनुलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] लता सदृश सुकुमार पतला शरीर [को०]।

तनुवात—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह स्थान जहाँ हवा बहुत ही कम हो। २. एक नरक का नाम।

तनुवार—संज्ञा पुं० [सं०] कवच। बखतर।

तनुबीज[1]—संज्ञा पुं० [सं०] राजबेर।

तनुबीज[2]—वि० जिसके बीज छोटे हों।

तनुव्रण—संज्ञा पुं० [सं०] वल्मीक रोग। फीलपाँव।

तनुशिरा[1]—संज्ञा पुं० [सं० तनुशिरस] एक वैदिक छंद।

तनुशिरा[2]—वि० छोटे सिरवाला [को०]।

तनुसर—संज्ञा पुं० [सं०] पसीना। स्वेद।

तनू—संज्ञा पुं० [सं०] १ पुत्र। बेटा। लड़का। २. शरीर। ३. प्रजापति। ४ गौ। गाय। ५ अंग। अवयव (को०)।

तनूज—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तनुज'।

तनूजा(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'तनुजा'।

तनूजानि—संज्ञा पुं० [सं०] पुत्र। बेटा [को०]।

तनूजन्मा—संज्ञा पुं० [सं० तनूजन्मन्] पुत्र [को०]।

तनूतल—संज्ञा पुं० [सं०] लंबाई की एक माप जो एक हाथ के बराबर थी [को०]।

तनूताप—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तनुताप' [को०]।

तनूनप—संज्ञा पुं० [सं०] घृत। घी।

तनूनपात्, तनूनपाद्—संज्ञा पुं० [सं०] १ अग्नि। आग। २ चीते का वृक्ष। चीता। चीतावर। चित्रक। ३. प्रजापति के पोते का नाम। ४ घी। घृत। ५. मक्खन।

तनूनप्ता—संज्ञा पुं० [सं० तनूनप्तृ] वायु [को०]।

तनूपा—संज्ञा पुं० [सं०] वह अग्नि जिससे खाया हुआ अन्न पचता है। जठराग्नि।

तनूपान—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो शरीर की रक्षा करता है। अंगरक्षक।

तनूपृष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का सोमयाग।

तनूर—संज्ञा पुं० [फ़ा०] खमीरी रोटी पकाने की गहरी ड्रमनुमा भट्ठी। तंदूर।

तनूरुह—संज्ञा पुं० [सं०] १. रोम। लोम। रोआँ। २. पक्षियों का पर। पंख। ३. पुत्र। लड़का। बेटा।

तनें—अव्य० [हिं० तनै] की ओर। की तरफ।

तनेनना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'तानना'। उ०—तू इत बैठी भौंह तनेनत नहिं सोहात मोहिं यह रूखो कलि।—भा० ग्रं०, भा० १, पृ० ४८३।

तनेना—वि० [हिं० तनना + एना (प्रत्य०)] [वि०स्त्री० तनेनी] १. खिंचा हुआ। टेढ़ा। तिरछा। उ०—बात के बूझत ही मतिराम कहा करती अब भौंह तनेनी।—मतिराम (शब्द०)। २. क्रुद्ध। जो नाराज हो। उ०—आली हौं गई हौं आजु भूमि बरसाने कहूँ तापै तू परै है पद्माकर तनेनी क्यों।—पद्माकर (शब्द०)।

तनै(पु)[1]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तनय'।

तनै[2]—वि० [हिं० तन(=ओर, तरफ)] लई। लिये। उ०—दोउ जंघ रंभ कंचन दिपत, थरी कमल हाटक तनौ।—पृ० रासो, पृ० २५।

तनैना(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] [वि०स्त्री० तनैनी] दे० 'तनेना'। तना हुआ। खिंचा हुआ।

तनैया(पु)†[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० तनया] पुत्री। बेटी। कन्या। लड़की।

तनैया(पु)†[2]—वि० [हिं० तानना + ऐया (प्रत्य०)] ताननेवाला।

तनैला—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का छोटा पेड़ जिसके फूल खुशबूदार और सफेद होते हैं।

तनौं—वि० [हिं० तन (=तरफ)] तईं। के लिये। वास्ते। उ०—नहिं तजूँ सेल को प्रण करिव, सरन चरम छत्रिय तनौं।—पृ० रासो, पृ० ५७।

तनोआ†—संज्ञा पुं० [हिं० तानना] १. वह वस्त्र जिसे तानकर छाया की जाती है। २. चंदोवा।

तनोजा†—संज्ञा पुं० [सं० तनूज] १. रोम। लोम। रोआँ। उ०—अंग थरहरे क्यों भरे खरे तनोज पसेव।—शृं० सत० (शब्द०)। २. लड़का। बेटा।

तनोरुह(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तनूरुह'।

तनोवा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तनोआ'।

तन्ना—संज्ञा पुं० [हिं० तानना] १. बुनाई में ताने का सूत जो लंबाई में ताना जाता है। २. वह जिसपर कोई चीज तानी जाय।

तन्नाना†—क्रि० अ० [हिं० तनना] अकड़ना। ऐंठना। अकड़ दिखाना। बिगड़ना। क्रुद्ध होना।

तन्नि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पिठवन। २. काश्मीर की चंद्रतुल्या नदी का नाम।

तन्नी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० तनिका, हिं० तानना या तनी] १. तराजू में जोती की रस्सी। वह रस्सी जिसमें तराजू के पल्ले लटकते हैं। जोती। २. एक प्रकार की अंकुसी जिससे घोड़े की मैल खुरचते हैं। ३. जहाज के मस्तूल की जड़ में बँधा हुआ एक प्रकार का रस्सा जिसकी सहायता से पाल आदि चढ़ाते हैं (लश०)।

तन्नी[२]—संज्ञा पुं० [हिं० तरनी] किसी व्यापारी जहाज का वह अफसर जो यात्राकाल में उसके व्यापार संबंधी कार्यों का प्रबंध करता हो।

तन्नी[3]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तरनी'।

तन्मनस्क—वि० [सं०] तन्मय। तल्लीन [को०]।

तन्मय—वि० [सं०] जो किसी काम में बहुत ही मग्न हो। लवलीन। लीन। लगा हुआ। दत्तचित्त। उ०—कबहूँ कहति कौन हरि को मैं यों तन्मय ह्वै जाहीं।—सूर (शब्द०)।

तन्मयता—संज्ञा स्त्री० [सं०] लिप्तता। एकाग्रता। लीनता। तदाकारता। लगन।

तन्मयासक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] भगवान् में तन्मय हो जाना। भक्ति में अपने आपको भूल जाना और अपने को भगवान् ही समझना।

तन्मात्र—संज्ञा पुं० [सं०] सांख्य के अनुसार पंचभूतों का अविशेष मूल। पंचभूतों का आदि, अमिश्र और सूक्ष्म रूप। ये संख्या में पाँच हैं—शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध।

विशेष—सांख्य में सृष्टि की उत्पत्ति का जो क्रम दिया है, उसके अनुसार पहले प्रकृति से महत्तत्व की उत्पत्ति होती है। महत्तत्व से अहंकार और अहंकार से सोलह पदार्थों की उत्पत्ति होती है। ये सोलह पदार्थ पाँच ज्ञानेंद्रियाँ, पाँच कर्मेंद्रियाँ, एक मन और पाँच तन्मात्र हैं। इनमें भी पाँच तन्मात्रों से पाँच महाभूत उत्पन्न होते हैं। अर्थात् शब्द तन्मात्र से आकाश उत्पन्न होता है और आकाश का गुण शब्द है। शब्द और स्पर्श दो तन्मात्राओं से वायु उत्पन्न होती है और शब्द तथा स्पर्श दोनों ही उसके गुण हैं। शब्द, स्पर्श, रूप और रस तन्मात्र के संयोग से जल उत्पन्न होता है और जिसमें ये चारों गुण होते हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध इन पाँचों तन्मात्रों के संयोग से पृथ्वी की उत्पत्ति होती है जिसमें ये पाँचों गुण रहते हैं।

तन्मात्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'तन्मात्र'।

तन्मात्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'तन्मात्रा'। वेदांत शास्त्र की एक संज्ञा। पाँच विषयों की पाँच तन्मात्राएँ। उ०—इनि तन्मात्रिका सहेता। ये पंच विषय को होता।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० ६७।

तन्मूलक—वि० [सं०] उससे निकला हुआ [को०]।

तन्य—वि० [हिं० तनना] तानने या खींचने योग्य।

तन्युत—संज्ञा पुं० [सं०] १. वायु। हवा। २. रात्रि। रात। ३. गर्जन। गरजना। ४. प्राचीन काल का एक प्रकार का बाजा।

तन्वंग—वि० [सं० तन्वङ्ग] सुकुमार या क्षीण शरीरवाला [को०]।

तन्वंगिनी—वि० स्त्री० [सं०] तन्वंगी। उ०—विवसना लता सी, तन्वंगिनि, निर्जन में क्षणभर की संगिनि।—युगांत, पृ० ३७।

तन्वंगी—वि० [सं० तन्वंगी] कृशांगी। दुबली पतली।

तन्वि—संज्ञा स्त्री० [सं०] काश्मीर की चंद्रकुल्या नदी का एक नाम।

तन्विनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'तन्वी'।

तन्वी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में क्रम से भगण, तगण, नगण, सगण, भगण, भगण नगण और यगण (SII–SSI–III–IIS–SII–SII–III–ISS) होते हैं। इसमें ५ वें, १२ वें और २४ वें अक्षर पर यति होती है। २. कोमलांगी। कृशांगी (को०)।

तन्वी[2]—वि० दुबले पतले और कोमल अंगोंवाली। जिसके अंग कृश और कोमल हों।

तपःकर—संज्ञा पुं० [सं०] १. तपस्वी। २. तपसी मछली।

तपःकृश—वि० [सं०] तप से क्षीण।

तपःपूत—वि० [सं०] तपस्या करके जो शरीर एवं मन से पवित्र हो गया हो [को०]।

तपःप्रभाव—संज्ञा पुं० [सं०] तप द्वारा की हुई शक्ति [(को०)]।

तपःभूत—वि० [सं०] तपस्या द्वारा आत्मशुद्धि प्राप्त करनेवाला [को०]।

तपःसाध्य—वि० [सं०] जो तप द्वारा सिद्ध हो [को०]।

तपःसुत—संज्ञा पुं० [सं०] युधिष्ठिर [को०]।

तपःस्थल—संज्ञा पुं० [सं०] तप करने का स्थान। तपोभूमि [को०]।

तपःस्थली—संज्ञा स्त्री० [सं०] काशी [को०]।

तप—संज्ञा पुं० [सं० तपस्] १. शरीर को कष्ट देने वाले वे व्रत और नियम आदि जो चित्त को शुद्ध और विषयों से निवृत्त करने के लिये किए जायँ। तपस्या।

क्रि० प्र०—करना।—साधना।

विशेष—प्राचीन काल में हिंदुओं, बौद्धों, यहूदियों और ईसाइयों आदि में बहुत से ऐसे लोग हुआ करते थे जो अपनी इंद्रियों को वश में रखने तथा दुष्कर्मों से बचने के लिये अपने धार्मिक विश्वास के अनुसार बस्ती छोड़कर जंगलों और पहाड़ों में जा रहते थे। वहाँ वे अपने रहने के लिये घास फूस की छोटी मोटी कुटी बना लेते थे और कंद मूल आदि खाकर और तरह तरह के कठिन व्रत आदि करते रहते थे। कभी वे लोग मौन रहते, कभी गरमी सरदी सहते और उपवास करते थे। उनके इन्हीं सब आचरणों को तप कहते हैं। पुराणों आदि में इस प्रकार के तपों और तपस्वियों आदि की अनेक कथाएँ हैं। कभी किसी अभीष्ट की सिद्धि या किसी देवता से वर की प्राप्ति आदि के लिये भी तप किया जाता था। जैसे, गंगा को लाने के लिये भगीरथ का तप, शिव जी से विवाह करने के लिये पार्वती का तप। पातंजल दर्शन में इसी तप को क्रियायोग कहा है। गीता के अनुसार तप तीन प्रकार का होता है—शारीरिक, वाचिक और मानसिक। देवताओं का पूजन, बड़ों का आदर सत्कार, ब्रह्मचर्य, अहिंसा आदि शारीरिक तप के अंतर्गत हैं; सत्य और प्रिय बोलना, वेदशास्त्र का पढ़ना आदि वाचिक तप हैं और मौनावलंबन, आत्मनिग्रह आदि की गणना मानसिक तप में है।

२. शरीर या इंद्रिय को वश में रखने का धर्म। ३. नियम। ४. माघ का महीना। ५. ज्योतिष में लग्न से नवाँ स्थान।

६. अग्नि। ७. एक कल्प का नाम। ८. एक लोक का नाम। वि० दे० 'तपोलोक'।

तप[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. ताप। गरमी। २. ग्रीष्म ऋतु। ३. बुखार। ज्वर।

तपकना(पु)—क्रि० अ० [हिं० टपकना या तमकना] १. धड़कना उछलना। उ०—रतिया अँधेरी धीर न तिया धरति मुख बतिया कढ़ति उठै छतिया तपकि तपकि।—देव (शब्द०) २. दे० 'टपकना'।

तपचाक—संज्ञा पुं० [देश०] एक तरह का तुर्की घोड़ा।

तपच्छद—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तपनच्छद'।

तपड़ी—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. डूह। छोटा टीला। २. एक प्रकार का फल जो पकने पर पीलापन लिए लाल रंग का हो जाता है। यह जाड़े के अंत में बाजारों में मिलता है।

तपत†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तपन[2]'।

तपति—वि० [देश०] बूढ़ी। वृद्ध। उ०—भोग रहे भरपूरि आयु यह बीति गई सब। तप्यौ नाहिं तप मूढ़ अवस्था तपति भई अब।—ब्रज० ग्रं०, पृ० १०६।

तपती—संज्ञा स्त्री० [सं०] महाभारत के अनुसार सूर्य की कन्या का नाम।

विशेष—यह छाया के गर्भ से उत्पन्न हुई थी। सूर्य ने कुरुवंशी संवरण की सेवा आदि से प्रसन्न होकर तपती का विवाह उन्हीं के साथ कर दिया था।

तपतोदक(पु)—संज्ञा पुं० [सं० तप्त+उदक] गरम पानी। उ०—यह तीनों रसजर के नेती। पीस पिए तपतोदक सेती।—इंद्रा०, पृ० १५२।

तपन[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. तपने की क्रिया या भाव। ताप। जलन। आँच। दाह। २. सूर्य। आदित्य। रवि। ३. सूर्यकांत मणि। सूरजमुखी। ४ ग्रीष्म। गरमी। ५. एक प्रकार की अग्नि। ६. पुराणानुसार एक नरक जिसमें जाते ही शरीर जलता है। ७ धूप। ८. भिलावे का पेड़। ९. मदार। आक। १०. अरनी का पेड़। ११. वह क्रिया या हाव भाव आदि जो नायक के वियोग में नायिका करे या दिखलावे। इसकी गणना अलंकार में की जाती है।

यौ०—तपनयौवन = सूर्य का यौवन। सूर्य की प्रखरता। उ०—प्रखर से प्रखरतर हुआ तपनयौवन सहसा।—अपरा, पृ० ६१।

तपन[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० तपना] तपने की क्रिया या भाव। ताप। जलन। गरमी।

मुहा०—तपन का महीना = वह महीना जिसमें गरमी खूब पड़ती हो। गरमी।

तपनकर—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य की किरण। रश्मि।

तपनच्छद—संज्ञा पुं० [सं०] मदार का पेड़।

तपनतनय—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य के पुत्र—यम, कर्ण, शनि, सुग्रीव आदि।

तपनतनया—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. शमी वृक्ष। २. यमुना नदी।

तपनमणि—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्यकांत मणि।

तपनांशु—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य की किरण। रश्मि।

तपना[1]—क्रि० अ० [सं० तपन] १. बहुत अधिक गर्मी, आँच या धूप आदि के कारण खूब गरम होना। तप्त होना। उ०—निज अघ समुझि न कुछ कहि जाई। तपइ अवाँ इव उर अधिकाई।—तुलसी (शब्द०)।

संयो० क्रि०—जाना।

मुहा०—रसोई तपना = दे० 'रसोई' के मुहाविरे।

२. संतप्त होना। कष्ट सहना। मुसीबत झेलना। जैसे,—हम घंटों से यहाँ आपके आसरे तप रहे हैं। उ०—सीप सेवाति कहँ तपइ समुद मँझ नीर।—जायसी (शब्द०)। ३. तेज या ताप धारण करना। गरमी या ताप फैलाना। उ०—जइस भानु जग ऊपर तापा।—जायसी (शब्द०)। ४. प्रबलता, प्रभुत्व या प्रताप दिखलाना। आतंक फैलाना। जैसे,—आजकल यहाँ के कोतवाल खूब तप रहे हैं। उ०—(क) सेरसाहि दिल्ली सुलतानू। चारिउ खंड तपइ जस भानू।—जायसी (शब्द०)। (ख) कर्मकाल, गुन, सुभाउ सबके सीस तपत।—तुलसी (शब्द०)।

तपना[2]—क्रि० अ० [सं० तप्] तपस्या करना। तप करना।

तपनाराधना—संज्ञा पुं० [सं०] तपस्या [को०]।

तपनि(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तपन'।

तपनी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० तपना] १. वह स्थान जहाँ बैठकर लोग आग तापते हों। कौड़ा। अलाव।

क्रि० प्र०—तापना।

२. तपस्या। तप। ३. तपन (को०)।

तपनी[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गोदावरी नदी। २. पाठा लता (को०)।

तपनीय[1]—संज्ञा पुं० [सं०] सोना।

तपनीय[2]—वि० तपने या तापने योग्य [को०]।

तपनीयक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तपनीय'।

तपनेष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] ताँबा।

तपनोपल—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्यकांत मणि।

तपभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं० तपस्+हिं० भूमि] दे० 'तपोभूमि'।

तपराशि—संज्ञा पुं० [सं० तपोराशि] दे० 'तपोराशि'।

तपरासी(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तपोराशि'। उ०—ब्रह्म के उपासी तपरासी बनबासी वर विपुल मुनीगन के आश्रम सिधायो मैं।—राम० धर्म०, पृ० २६०।

तपलोक—संज्ञा पुं० [सं० तपोलोक, हिं०] दे० 'तपोलोक'।

तपवाना—क्रि० स० [हिं० तपाना का प्रे० रूप] १. गरम करवाना। तपाने का काम दूसरे से कराना। २. किसी से व्यर्थ व्यय कराना। अनावश्यक व्यय कराना।

तपवृद्ध(पु)—वि० [सं० तपोवृद्ध, हिं०] दे० 'तपोवृद्ध'।

तपशील—वि० [सं० तपःशील] तपस्या करनेवाला [को०]।

तपश्चरण—संज्ञा पुं० [सं०] तप। तपस्या।

तपश्चर्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] तपस्या। तपश्चरण।

तपस¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा। २. सूर्य। ३. पक्षी।

तपस²—संज्ञा स्त्री० [सं० तपस्] तप। तपस्या। उ०—न्याय, तपस, ऐश्वर्य में पगे, ये प्राणी चमकीले लगते। इस निदाघ मरु में सूखे से, स्रोतों के तट जैसे जगते।—कामायनी, पृ० २७०।

तपसा†³—संज्ञा पुं० तपस्वी।

तपसनी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तपस्विनी'। उ०—काम कुमत्ती उप्पनौ दीय तपसनी स्राप। कौसल दे बुधि चल विचल प्रगटि पुब्ब को पाप।—पृ० रा०, १।४६५।

तपसरनी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तपस्विनी'। उ०—भय विवाह चाहुट्ठ दुति तपसरनी को कोप। जल बेली बिहु बाग बिष। ते जिन भए अलोप।—पृ० रा०, १।५०७।

तपसा—संज्ञा स्त्री० [सं० तपस्या] १. तपस्या। तप। २. तापती नदी का दूसरा नाम जो बैतूल के पहाड़ से निकालकर खंभात की खाड़ी में गिरती है।

तपसालि(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० तप + साली] दे० 'तपसाली'।

तपसाली—संज्ञा पुं० [सं० तपःशालिन्] वह जिसने बहुत तपस्या की हो। तपस्वी। उ०—आए मुनिवर निकर तब कौशिकादि तपसालि।—तुलसी (शब्द०)।

तपसी—संज्ञा पुं० [सं० तपस्वी] तपस्या करनेवाला। तपस्वी। उ०—तपसी तुमको तप करि पावें। सुनि भागवत गृही गुन गावें।—सूर (शब्द०)।

तपसी मछली—संज्ञा स्त्री० [सं० तपस्या मत्स्य] एक बालिश्त लंबी एक प्रकार की मछली।

विशेष—यह बंगाल की खाड़ी में होती है। बैसाख या जेठ के महीने में अंडे देने के लिये यह नदियों में चली जाती है।

तपसोमूर्ति—संज्ञा पुं० [सं०] हरिवंश के अनुसार बारहवें मन्वंतर के चौथे सावर्णि के सप्तर्षियों में से एक।

तपस्तक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र।

तपस्तति—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

तपस्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुंद पुष्प। २. तपस्या। तप। ३. हरिवंश के अनुसार तामस मनु के दस पुत्रों में से एक पुत्र का नाम। ४. फागुन का महीना। ५. अर्जुन।

विशेष—अर्जुन का एक नाम फाल्गुन भी था, इसीलिये तपस्य भी अर्जुन का एक नाम हो गया।

तपस्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तप। व्रतचर्या। २. फागुन मास। ३ दे० 'तपसी मछली'।

तपस्वत्—संज्ञा पुं० [सं०] तपस्वी।

तपस्विता—संज्ञा स्त्री० [सं०] तपस्वी होने की अवस्था या भाव।

तपस्विनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तपस्या करनेवाली स्त्री। २. तपस्वी की स्त्री। ३. पतिव्रता या सती स्त्री। ४. जटामासी। ५. वह स्त्री जो अपने पति के मरने पर केवल अपनी संतान का पालन करने के लिये सती न हो और कष्टपूर्वक अपना जीवन बितावे। ६. दीन और दुखिया स्त्री। ७. बड़ी गोरखमुंडी। ८. कुटकी। कटुरोहिणी।

तपस्विपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] दमनक वृक्ष। दौने का पेड़।

तपस्वी¹—संज्ञा पुं० [सं० तपस्विन्] [स्त्री० तपस्विनी] १. वह जो तप करता हो। तपस्या करनेवाला। २. दीन। ३. दया करने योग्य। ४ घीकुआर। ५. तपसी मछली। ६. तपसोमूर्ति का एक नाम।

तपस्स(पु)—संज्ञा पुं० [सं० तपस] दे० 'तपस्वी'। उ०— धमंकी धरा धंम धंमै धरक्की। कठं पिट्ठ कंमट्ठ कट्टं करक्की। डिगै अट्ठिगं सो दिगंपाल दस्सं। तरक्के थके मुंनि जंनं तपस्सं।—पृ० रा०, ६।१११।

तपा†¹—संज्ञा पुं० [हिं० तप] तपस्वी। उ०—मठ मंडप चहुँपास सँवारे। तपा जपा सब आसन मारे।—जायसी (शब्द०)।

तपा²—वि० तप में मग्न। जो तपस्या में लीन हो। उ०—फेरे भेख रहै भा तपा। धूरि लपेटा मानिक छपा।—जायसी (शब्द०)।

तपाक—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. आवेश। जोश। जैसे,—आते ही यह बड़े तपाक से बोला।

मुहा०—तपाक बदलना = नाराज होना। बिगड़ जाना। तेवर बदलना।

२. वेग। तेजी।

तपात्यय—संज्ञा पुं० [सं०] ग्रीष्म का अंत या वर्षाकाल। बरसात।

तपानल—संज्ञा पुं० [सं०] तप से उत्पन्न तेज। वह तेज जो तप करने के कारण उत्पन्न हो।

तपाना—क्रि० स० [हिं० तपना] १. बहुत अधिक गर्मी, आग, धूप आदि की सहायता से गरम करना। तप्त करना। २. संतप्त करना। दुःख देना। क्लेश देना। ३. तप करके शरीर को कष्ट देना। तप करने में शरीर को प्रवृत्त करना।

तपायमान—वि० [सं० तप] तप्त। दुखी। उ०—एक काल में भृगु की स्त्री जात रही थी, तिसके वियोग कर वह ऋषि तपायमान हुआ।—योग०, पृ० ७।

तपारी—संज्ञा पुं० [हिं०] तपस्वी [को०]।

तपावंत—संज्ञा पुं० [हिं० तप + वंत (प्रत्य०)] तपस्वी। तपसी। वह जो तपस्या करता हो। उ०—तपावंत छाला लिखि दीन्हा। वेग चलाव चहूँ सिधि कीन्हा।—जायसी (शब्द०)।

तपाव—संज्ञा पुं० [हिं० तपना + आव (प्रत्य०)] तपने की क्रिया या भाव। गरमाहट। ताप।

तपावस(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तपस्या'। उ०—करै तपावस अबली आवै। उग्मन कालु कउ मारै खावै।—प्राण०, पृ० २२७।

तपित(पु)†—वि० [सं०] तपा हुआ। गरम। तप्त।

तपिय—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तपी'। उ०—सुनत बखान कलिंजर ईसु। तपिय चरन पर डारेउ सीसु।—इंद्रा०, पृ० १६।

तपिया—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष जो मध्यभारत, बंगाल तथा आसाम में होता है।

विशेष—इसकी छाल तथा पत्तियाँ औषध के काम में आती हैं। इसे भिरमी भी कहते हैं।

तपिश—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] गरमी। तपन। आँच। ताव।

तपी—संज्ञा पुं० [हिं० तप+ई (प्रत्य०)] १. तप करनेवाला। तपस्वी। तापस। ऋषि। उ०—बनवंत कुलीन मलीन अपी। द्विज चीन्ह जनेउ उघार तपी।—मानस, ७।१०१। २. सूर्य (डिं०)।

तपीसर(पु)—वि० [सं० तपीश्वर] तपस्या करनेवाला। उ०—न सोहागनि महापवीत। तपे तपीसर डाले चीत।—कबीर ग्रं०, पृ० २८४।

तपु[1]—संज्ञा पुं० [सं० तपुस्] १. अग्नि। आग। २. सूर्य। रवि ३. शत्रु।

तपु[2]—वि० १. तप्त। उष्ण। गरम। २. तापने या गरम करनेवाला।

तपुराग्र—वि० [सं०] जिसका अगला भाग तपा या तपाया हुआ हो [को०]।

तपुराग्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बरछी या भाला [को०]।

तपेदिक—संज्ञा पुं० [फ़ा० तप+अ० दिक] राजयक्ष्मा। क्षयी रोग।

तपेस्सा(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तपस्या'।

तपोज—वि० [सं०] १ जो तपस्या से उत्पन्न हुआ हो। २. जो अग्नि से उत्पन्न हुआ हो।

तपोजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जल। पानी।

विशेष—प्राचीन आर्यों का विश्वास था कि यज्ञ आदि की अग्नि की सहायता से ही मेघ बनता है, इसीलिये जल का एक नाम 'तपोज' पड़ा।

तपोड़ी—संज्ञा स्त्री० [देश०] काठ का एक प्रकार का बरतन। —(लश०)।

तपोदान—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन पुण्यतीर्थ जिसका वर्णन महाभारत में आया है।

तपोद्युति—संज्ञा पुं० [सं०] बारहवें मन्वंतर के एक ऋषि [को०]।

तपोधन—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो तपस्या के अतिरिक्त और कुछ भी न करता हो। तपस्वी। उ०—सिद्ध तपोधन जोगि जन सुर किन्नर मुनि वृंद।—मानस, १।१०५। २ दौने का पेड़।

तपोधना—संज्ञा स्त्री० [सं०] गोरखमुंडी।

तपोधनी—वि० [सं० तपोधनिन्] दे० 'तपोधन'। उ०—तपोधनी में जात कहायो। तै नहिं जान्यो सन्मुख आयो।—शकुंतला, पृ० ९२।

तपोधर्म—संज्ञा पुं० [सं०] तपस्वी।

तपोधाम—संज्ञा पुं० [सं० तपोधामन्] १ तप करने का स्थान। २. एक प्राचीन तीर्थ [को०]।

तपोधृति—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार बारहवें मन्वंतर के चौथे सावर्णि के सप्तर्षियों में से एक ऋषि।

तपोनिधि—संज्ञा पुं० [सं०] तपोनिष्ठ। तपस्वी।

तपोनिष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] तपस्वी।

तपोबन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० तपोवन] दे० 'तपोवन'।

तपोबल—संज्ञा पुं० [सं०] तपस्या से प्राप्त बल, तेज या शक्ति [को०]।

तपोभंग—संज्ञा पुं० [सं० तपोभङ्ग] विघ्नादि के कारण तप का भंग होना [को०]।

तपोभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] तप करने का स्थान। तपोवन।

तपोमय—संज्ञा पुं० [सं०] परमेश्वर।

तपोमूर्ति—संज्ञा पुं० [सं०] १. परमेश्वर। २. तपस्वी। ३. पुराणानुसार बारहवें मन्वंतर के चौथे सावर्णि के समय के सप्तर्षियों में से एक ऋषि का नाम।

तपोराज—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा [को०]।

तपोराशि—संज्ञा पुं० [सं०] बहुत बड़ा तपस्वी।

तपोलोक—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार चौदह लोकों में से ऊपर के सात लोकों में से छठा लोक जो जनलोक और सत्य लोक के बीच में है।

विशेष—पद्मपुराण में लिखा है कि यह लोक तेजोमय है; और जो लोग अनेक प्रकार की कठिन तपस्याएँ करके भी कृष्ण भगवान् को संतुष्ट करते हैं; वे इस लोक में भेजे जाते हैं।

तपोवट—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मावर्त देश।

तपोवन—संज्ञा पुं० [सं०] वह एकांत स्थान या वन जहाँ तप बहुत अच्छी तरह हो सकता हो। तपस्वियों के रहने या तपस्या करने के योग्य वन।

तपोवरण—वि० [देशी०] तप से च्युत कर देनेवाली। उ०—एक तेरी तपोवरण।—अर्चना, पृ० ३।

तपोबल—संज्ञा पुं० [सं०] तप का प्रभाव या शक्ति।

तपोवृद्ध[1]—वि० [सं०] जो तपस्या द्वारा श्रेष्ठ हो।

तपोवृद्ध[2]—संज्ञा पुं० बहुत बड़ा तपस्वी [को०]।

तपोव्रत—संज्ञा पुं० [सं०] १. तपस्या संबंधी व्रत। २. वह जिसने तपस्या का व्रत धारण कर लिया हो [को०]।

तपोशहन संज्ञा पुं० [सं०] १ तामस मनु के पुत्र तपस्य का एक नाम २ तपसोमूर्ति का एक नाम।

तपौनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तापना] १. ठगों की एक रसम जो मुसाफिरों के गिरोह को लूट मार चुकने और उनका माल ले लेने पर होती है। इसमें सब ठग मिलकर देवी की पूजा करते हैं और गुड़ चढ़ाकर उसी का प्रसाद आपस में बाँटते हैं।

मुहा०—तपौनी का गुड़=(१) तपौनी की पूजा के प्रसाद का गुड़ जो किसी नए आदमी को पहले पहल अपनी मंडली में मिलाने के समय ठग लोग खिलाते हैं। (२) किसी नए आदमी को अपनी मंडली में मिलाने के समय किया जानेवाला काम या दिया जानेवाला पदार्थ।

२. दे० 'तपनी'।

तप्त—वि० [सं०] १. तपाया या तपा हुआ। जलता हुआ। तापित। गरम। उष्ण। २. दुःखित। क्लेशित। पीड़ित।

यौ०—तप्त शरीर=जलती हुई देह। उ०—कभी यहाँ देखे थे जिनके, श्याम बिरह से तप्त शरीर।—अपरा, पृ० १०२।

तप्तक—संज्ञा पुं० [सं०] कड़ाही [को०]।

तप्तकुंड—संज्ञा पुं० [सं० तप्तकुण्ड] वह प्राकृतिक जलधारा जिसका पानी गरम हो। गरम पानी का सोता या कुंड।

विशेष—पहाड़ों तथा मैदानों आदि में कहीं कहीं ऐसे सोते मिलते हैं जिनका पानी गरम होता है। भिन्न भिन्न स्थानों में ऐसे सोतों का पानी साधारण गरम से लेकर खौलता हुआ तक होता है। पानी के गरम होने का मुख्य कारण यह है कि यह पानी या तो बहुत अधिक गहराई से, या भूगर्भ के अंदर की अग्नि से तपी हुई चट्टानों पर से होता हुआ आता है। ऐसे सोतों के जल में बहुधा अनेक प्रकार के खनिज द्रव्य (जैसे, गंधक, लोहा, अनेक प्रकार के क्षार) भी मिले होते हैं जिनके कारण उन जलों में बहुत से रोगों को दूर करने का गुण आ जाता है। भारतवर्ष में तो ऐसे सोते कम हैं, पर यूरोप और अमेरिका में ऐसे सोते बहुत पाए जाते हैं, जिन्हें देखने तथा उनका जल पीने के लिये बहुत दूर दूर से लोग आते हैं। बहुत से लोग अनेक प्रकार के रोगों से मुक्त होने के लिये महीनों उनके किनारे रहते भी हैं। प्रायः जल जितना अधिक गरम होता है, उसमें गुण भी उतना ही अधिक होता है। ऐसे सोतों के जल में दस्त लाने, बल बढ़ाने या रक्तविकार आदि दूर करनेवाले खनिज द्रव्य मिले हुए होते हैं।

तप्तकुंभ—संज्ञा पुं० [सं० तप्तकुम्भ] पुराणानुसार एक बहुत भयानक नरक जिसके विषय में यह माना जाता है कि वहाँ खौलते हुए तेल के कड़ाहे रहते हैं। उन्हीं कड़ाहों में दुराचारियों को यम के दूत फेंक दिया करते हैं।

तप्तकृच्छ्र—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का व्रत जो बारह दिनों में समाप्त होता और प्रायश्चित्तस्वरूप किया जाता है।

विशेष—इसमें व्रत करनेवालों को पहले तीन दिन तक प्रतिदिन तीन पल गरम दूध, तब तीन दिन तक नित्य एक पल घी, फिर तीन दिन तक रोज छह पल गरम जल और अंत में तीन दिन तक गरम वायु सेवन करना होता है। गरम वायु से तात्पर्य गरम दूध से निकलनेवाली भाप का है। यह व्रत करने से द्विजों के सब प्रकार के पाप नष्ट हो जाते हैं। किसी किसी के मत से यह व्रत केवल चार दिनों में किया जा सकता है। इसमें पहले दिन तीन पल गरम दूध, दूसरे दिन एक पल गरम घी और तीसरे दिन छह पल गरम जल पीना चाहिए और चौथे दिन उपवास करना चाहिए।

तप्तपाषाण—संज्ञा पुं० [सं०] एक नरक का नाम।

तप्तबालुक—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक नरक का नाम।

तप्तमाष—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल की एक प्रकार की परीक्षा जिससे व्यवहार या अपराध आदि के संबंध में किसी मनुष्य के कथन की सत्यता मानी जाती थी।

विशेष—इसमें लोहे या ताँबे के बरतन में घी या तेल खौलाया जाता था और परीक्षार्थी उस खौलते हुए घी या तेल में अपनी उँगली डालता था। यदि उसकी उँगली में छाले आदि न पड़ते तो वह सच्चा समझा जाता था।

तप्तमुद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] द्वारका के शंख चक्रादि के छापे जो तपाकर वैष्णव लोग अपनी भुजा तथा दूसरे अंगों पर दाग लेते हैं। चक्रमुद्रा।

विशेष—यह धार्मिक चिह्न माना जाता है और वैष्णव लोग इसे मुक्तिदायक मानते हैं।

तप्तरूपक—संज्ञा पुं० [सं०] तपाई हुई और साफ चाँदी।

तप्तशुर्मी—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक नरक का नाम जिसमें अगम्या स्त्री के साथ संभोग करनेवाले पुरुष और अगम्य पुरुषों के साथ संभोग करनेवाली स्त्रियाँ भेजी जाती हैं।

विशेष—इसमें उन पुरुषों और स्त्रियों को जलते हुए लोहे के खंभे आलिंगन करने पड़ते हैं।

तप्तसुराकुंड—संज्ञा पुं० [सं० तप्तसुराकुण्ड] पुराणानुसार एक नरक का नाम।

तप्ता[1]—संज्ञा पुं० [सं० तप्त] १. तवा। २. भट्ठी। उ०—निदान कई पहरे और एक भारी तप्ता जलाकर आवश्यक कृत्य आरंभ हो चला।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १४२।

तप्ता[2]—वि० तप्त करनेवाला।

तप्ताभरण—संज्ञा पुं० [सं०] शुद्ध सोने का गहना [को०]।

तप्तायन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तप्तायनी' [को०]।

तप्तायनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह भूमि जो दीन दुखियों को बहुत सताकर प्राप्त की जाय।

तप्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] तप्त होने की अवस्था या भाव। गरमी। ताप [को०]।

तप्प(पु)†—पुं० [हिं० तप] दे० 'तप' उ०—साधक सिद्धि न पाय जौ लहि साधि न तप्प। सोई जानहिं बापुरो सीस जो करहिं कलप्प।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १२१।

तप्य[1]—संज्ञा पुं० [सं०] शिव।

तप्य[2]—वि० [सं०] जो तपने या तपाने योग्य हो।

तफक्कुर—संज्ञा पुं० [अ० तफ़क्कुर] १. चिंता। फिक्र। २. भयाशंका। उ०—मेरी खुराक आगे से इस तफक्कुर में आधी हो गई।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ५२२।

तफज्जुल—संज्ञा पुं० [अ० तफ़ज्जुल] बड़ाई। बड़प्पन [को०]।

तफतीश—संज्ञा स्त्री० [अ० तफ़्तीश] छानबीन। खोज। गवेषणा। उ०—मैं दौड़ा हुआ पिता जी के पास गया। वह कहीं तफतीश पर जाने को तैयार खड़े थे। मान०, पृ० ३८।

तफरका—संज्ञा पुं० [अ० तफर्रुक़] विरोध। वैमनस्य।

क्रि० प्र०—डालना।—पड़ना।

तफराक†—संज्ञा पुं० [हिं०] तमचा। उ०—होर मुसल्मनों के मूँ पर तफराक मारना गुनाह कबीरा है।—दक्खिनी०, पृ० ४०१।

तफरीक—संज्ञा स्त्री० [अ० तफ़रीक़] १. जुदाई। भिन्नता। अलहदगी। २. बाकी निकालना। घटाना (गणित)।

क्रि० प्र०—निकालना।

३. फरक। अंतर। ४. बँटवारा। बाँट। बँटाई (कानून)।

तफरीह—संज्ञा स्त्री० [अ० तफ़रीह] १. खुशी । प्रसन्नता । फरहत । २ दिलबहलाव । दिल्लगी । हँसी । ठट्ठा । ३ हवाखोरी । सैर । तमाशा । तावगी ।

तफरीहन—क्रि० वि० [अ० तफ़्रीहन्] १ मनबहलाव के लिये । २. हँसी खेल के लिये [को०] ।

तफर्का—संज्ञा पुं० [अ० अफ़र्क़ह या तफ़िर्क़ह्] १. फूट । परस्पर विरोध । २. शत्रुता । दुश्मनी । ३ पृथकता । अलगाव । उ०- अगर इन बातों में जिस कदर तफर्का पड़ता जायगा, सुननेवाले के दिल का असर बदलता चला जायगा । वं०, पृ० ११ ।

यौ०- तफर्का अंगेज, तफर्का अंगेज, तफर्का परदाज, तफर्का पर्दाज=फूट डालनेवाला । तफर्का अंगेजी, तफर्का अंदाजी, तफर्का परदाजी, तफर्का पर्दाजी=फूट या विरोध डालना ।

तफर्रुज—संज्ञा स्त्री० [अ० तफ़र्रुज] १. दरिद्रता और हीनता से समृद्धि और उन्नति की ओर जाना । २. सैर । आनंद विहार । क्रीड़ा । कौतुक । तमाशा । उ०—तफर्रुज सते शाहजादा निकल । चल्या कामराजी का घर दिल पकल ।—दक्खिनी०, पृ० २७० ।

यौ०—तफर्रुज गाह=सैर तमाशे का स्थान । क्रीड़ास्थल विनोदस्थल ।

तफसील—संज्ञा स्त्री० [अ० तफ़सील] १ विस्तृत वर्णन । २. टीका । तशरीह । ३. सूची । फेहरिस्त । फर्द । ४. कैफियत । ब्योरा । विवरण ।

तफसीर—संज्ञा स्त्री० [अ० तफ़सीर] कुरान शरीफ की टीका । उ०- मो अलिम तफसीर सूरत नजम मे यह लिखता है । -कबीर मं०, पृ० ८७ ।

तफाउत—संज्ञा पुं० [अ० तफ़ावुत] दे० 'तफावत' । उ०—पिदर पर देखकर अपना मुझे अब, अमानत मे तफाउत में करो सब । —दक्खिनी०, पृ० ११६ ।

तफावज—संज्ञा पुं० [अ० तफ़ावत] फर्क । तफावत । उ०— उ०—सुकवि सुमि राम चाहिए, नहीं तफावज रेह ।—बाँकी० ग्रं०, भा० ३, पृ० ८७ ।

तफावत—संज्ञा पुं० [अ० तफ़ावत] १ अंतर । फर्क । २. दूरी । फासिला ।

तफसीर—संज्ञा पुं० [अ० तफ़सीर] १ व्याख्या । तशरीह । २. किसी धर्मग्रंथ की व्याख्या या भाष्य । उ०—है तारीख व तफसीर बहुत, कि अजहा थाती एक था खर ।—दक्खिनी०, पृ० २१० ।

तब—अव्य० [सं० तदा] १ उस समय । उस वक्त ।

विशेष इस क्रि० वि० का प्रयोग प्रायः जब के साथ होता है । जैसे,—जब तुम आओगे, तब मैं चलूँगा ।

२. इस कारण । इस वजह से । जैसे,—मेरा उधर काम था तब मैं गया, नहीं तो क्यों जाता ?

तब[2]—संज्ञा स्त्री० [फा०] १. ताप । तपन । गर्मी । २. ज्वर । बुखार [को०] ।

तबई(पु)†—क्रि० वि० [सं० तदैव] तभी । उ०—जबई आनि परै तहाँ, तबई ता सिर देहि ।—नंद० ग्रं०, पृ० १३५ ।

तबक—संज्ञा पुं० [अ० तबक़] १ आकाश के वे कल्पित खंड जो पृथ्वी के ऊपर और नीचे माने जाते हैं । लोक । तल । २. परत । तह । ३. चाँदी, सोने आदि धातुओं के पत्तरों को पीटकर कागज की तरह बनाया हुआ पतला वरक जो बहुधा मिठाइयों आदि पर चपकाया और दवाओं में डाला जाता है । ४. चौड़ी और छिछली थाली । ५ वह पूजा या उपचार जो मुसलमान स्त्रियाँ परियों की बाधा से बचने के लिये करती हैं । परियों की नमाज ।

क्रि० प्र०—छोड़ना ।

६. घोड़ों का एक रोग जिसमे उनके शरीर पर सूजन हो जाती है । ७. रक्तविकार के कारण शरीर पर पड़ा हुआ दाग । चकत्ता ।

तबकगर—संज्ञा पुं० [अ० तबक़+फ़ा० गर] वह जो सोने चाँदी आदि के तबक का पत्तर बनाता हो । तबकिया ।

तबकड़ी†—संज्ञा स्त्री० [अ० तबक़+ड़ी (प्रत्य०)] छोटी रिकाबी ।

तबकचा—संज्ञा पुं० [अ० तबक़ + फ़ा० चह्] छोटी रिकाबी [को०] ।

तबकफाड़—संज्ञा पुं० [अ० तबक़ + हिं० फाड़] कुश्ती का एक पेंच ।

विशेष—जब शत्रु पेट म घुस जाता है, तब पहलवान अपनी दाहिनी टाँग से उसके बाएँ पाँव को भीतर से बाँधते हैं और दोनों हाथों से उसकी दाहिनी टाँग को जाँघ की जगह पकड़कर उसके दोनों पाँव फाड़ते हैं और मौका पाकर उसे चित कर देते हैं ।

तबका—संज्ञा पुं० [अ० तबकह्] १. खंड । विभाग । २. तह । परत । ३. लोक । तल । ४ आदमियों का गरोह । ५. पद । रुतबा ।

तबकिया[1]—संज्ञा पुं० [अ० तबक़+इया (प्रत्य०)] वह जो सोने चाँदी आदि के तबक या पत्तर बनाता हो । तबकगर ।

तबकिया[2]—वि० तबक संबंधी । जिसमें तबक या परत हों । जैसे तबकिया हरताल ।

तबकिया हरताल—संज्ञा पुं० [हिं० तबकिया+हरताल] एक प्रकार की हरताल जिसके टुकड़ों में तबक या परत होते हैं । इसके टुकड़े में से अलग अलग पपड़ियाँ सी उतरती हैं ।

तबदील—वि० [अ० तब्दील] जो बदला गया हो । परिवर्तित ।

यौ०—तबदील आबोहवा=जलवायु का बदलना । एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना । तबदीले सूरत=(१) रूप या शक्ल बदल जाना । (२) हुलिया बदलना । बहुरूपिया बनना ।

तबदीली—संज्ञा स्त्री० [अ० तब्दील+फ़ा० ई (प्रत्य०)] १. बदले जाने या परिवर्तित होने की क्रिया । बदली । परि- वर्तन । २. स्थानांतरण (को०) । ३. उथल पुथल । क्रांति ।

इनकिलाब (को०)। ५. किसी चीज के बदले में कोई दूसरी चीज लेना (को०)।

तबद्दुल—संज्ञा पुं० [अ०] १. बदल जाना। बदलना। २. क्रांति। इनकिलाब।

तबर¹—संज्ञा पुं० [फा०] १. कुल्हाड़ी। टाँगी। २. कुल्हाड़ी की तरह का लड़ाई का एक हथियार।

तबर²—संज्ञा पुं० [देश०] मस्तूल के सबसे ऊपरी भाग में लगाई जानेवाली पाल जिसका व्यवहार बहुत हलकी हवा चलने के समय होता है।

तबरदार—संज्ञा पुं० [फ़ा०] कुल्हाड़ी या तबर चलानेवाला।

तबरदारी—संज्ञा स्त्री० [फा०] तबर, कुल्हाड़ी या फरसा चलाने का काम।

तबर्रुक—संज्ञा पुं० [अ०] प्रसाद। आशीर्वाद रूप में प्राप्त हुई वस्तु (को०)।

तबर्रा—[अ०] १. घृणा प्रकट करना। नफरत। २. वे दुर्वचन जो शिया लोग सुन्नियों के पैगंबरों को कहते हैं। ३. मजहब विरोधियों के लिये गाया जानेवाला गीत (को०)।

तबल—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. बड़ा ढोल। २. नगाड़ा। डंका।

तबलची—संज्ञा पुं० [अ० तबलह् + ची (प्रत्य०)] वह जो तबला बजाता हो। तबलिया।

तबला—संज्ञा पुं० [अ० तबलह्] १. ताल देने का एक प्रसिद्ध बाजा जिसमें काठ के लंबोतरे और खोखले कूँड़ पर गोल चमड़ा मढ़ा रहता है।

विशेष—यह चमड़ा 'पूरी' कहलाता है और इसपर लोहचून, भात, लोई, सरेस, मँगरैले और तेल को मिलाकर बनाई हुई स्याही की गोल टिकिया अच्छी तरह जमाकर चिकने पत्थर से घोटी हुई होती है। इसी स्याही पर आघात पड़ने से तबले में से आवाज निकलती है। कूँड़ पर रखकर यह पूरी चारों ओर चमड़े के फीते से, जिसे 'बद्धी' कहते हैं, कसकर बाँध दी जाती है। इस बद्धी और कूँड़ के बीच में काठ की गुल्लियाँ भी रख दी जाती हैं जिनकी सहायता से तबले का स्वर आवश्यकतानुसार चढ़ाते या उतारते हैं। वातावरण अधिक ठंढा हो जाने के कारण भी तबला आपसे आप उतर जाता और अधिक गर्मी के कारण आपसे आप चढ़ जाता है। यह बाजा अकेला नहीं बजाया जाता, इसी तरह के और दूसरे बाजे के साथ बजाया जाता है जिसे 'बायाँ', 'ठेका' या 'डुग्गी' कहते हैं। साधारणतः बोलचाल में लोग तबले और बाएँ को एक साथ मिलाकर भी केवल तबला ही कहते हैं। तबला दाहिने हाथ से और बायाँ बाएँ हाथ से बजाया जाता है।

क्रि० प्र०—बजना।—बजाना।

मुहा०—तबला उतरना = तबले की बद्धी का ढीला पड़ जाना जिसके कारण तबले में से धीमा या मंद स्वर निकलने लगे। तबला उतारना = तबले की बद्धी को ढीला करके या और किसी प्रकार पूरी पर का तनाव कम कर देना जिससे तबले में से धीमा या मंद स्वर निकलने लगे। तबला खनकना= दे० 'तबला ठनकना'। तबला चढ़ना = तबले की बद्धी का कस जाना जिससे पूरी पर तनाव अधिक पड़ता है और स्वर ऊँचा निकलने लगता है। तबला चढ़ाना = तबले की बद्धी को कसकर पूरी पर का तनाव अधिक करना जिसमें तबले में से स्वर निकलने लगे। तबला ठनकना = (१) तबला बजना। (२) नाच रंग होना। तबला मिलाना = तबले की गुल्लियों को ऊपर नीचे हटा बढ़ाकर ऐसी स्थिति में लाना जिसमें पूरी पर चारों ओर से समान तनाव पड़े और तबले में से चारों ओर से कोई एक ही विशिष्ट स्वर निकले।

⑤२. एक तरह का बर्तन। ताँबे या पीतल का एक पात्र। उ०—पुनि चरवा चरई तष्टी तबला भारी लोटा गारहिं।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० ७४।

तबलिया—संज्ञा पुं० [हिं० तबला + इया (प्रत्य०)] वह जो तबला बजाता हो। तबलची।

तबलीग—संज्ञा पुं० [अ० तब्लीग] प्रचार। प्रसार। उ०—क्या यही वह इस्लाम है जिसकी तबलीग का तूने बीड़ा उठाया है?—मान०, भा० १, पृ० १८४।

तबल्ल—संज्ञा पुं० [अ० तबलह्] दे० 'तबला'। उ०—किते बीर तोरा तबल्लं बनाए।—ह० रासो, पृ० १४६।

तबस्ता⑤—संज्ञा पुं० [देश०] एक फूल का नाम। उ०—बन उनये हरियर होय फूला। केतक भिरंग तबस्ता फूला।—हिंदी प्रेम०, पृ० २७७।

तबस्सुम—संज्ञा पुं० [अ०] मुस्कुराहट (को०)।

तबह—वि० [फा० तबाह का लघु रूप] दे० 'तबाह' (को०)।

यौ०—तबहकार = तबाहकार। तबहहाल = तबाह हाल।

तबा—संज्ञा पुं० [अ० तिबाअ] १. प्रकृति। २. प्रतिभा। उ०—मिसाल हूर के तन यो अमृत है जान, तबा यार की दौड़कर कर पछान।—दक्खिनी०, पृ० २४३।

तबाअत—संज्ञा स्त्री० [अ०] मुद्रण। छपाई। उ०—'प्रेम बत्तीसी' की तबाअत अभी शुरू नहीं हुई।—प्रेम० गो०, पृ० ५२।

तबाक—संज्ञा पुं० [अ० तबाक़] बड़ा थाल। परात।

यौ०—तबाकी कुत्ता = केवल खाने पीने का साथी। वह जो केवल अच्छी दशा में साथ दे और आपत्ति के समय अलग हो जाय।

तबाख—संज्ञा पुं० [अ० तबाक, हिं०] दे० 'तबाक'।

तबाखी—संज्ञा पुं० [हिं० तबाख] वह जो परात में रखकर सौदा बेचता है।

यौ०—तबाखी कुत्ता = स्वार्थी मित्र।

तबादला—संज्ञा पुं० [अ० तबादुल या तबादलह्] १. बदली स्थानांतरण। २. परिवर्तन। उ०—मामले को सच समझा हो या झूठ, मुन्शी का बहरहाल तबादला हो गया। बरखास्त होते होते बचे, यह उन्होंने अपना सौभाग्य समझा।—काले०, पृ० ९७।

तबाबत—संज्ञा स्त्री० [अ०] चिकित्सा। वैद्यक।

तबाशीर—संज्ञा पुं० [सं० तवक्षीर] बंसलोचन।

तबाह—वि० [फ़ा०] १. जो नष्टभ्रष्ट या बिलकुल खराब हो गया हो। नष्ट। बरबाद। चौपट। २. जनशून्य। निर्जन (को०)। ३. निकृष्ट। खराब (को०)। ४. दुर्दशाग्रस्त। बदहाल (को०)।

यौ०—तबाहकार = (१) तबाही मचानेवाला। विनाशकारी। अत्याचारी। (२) कदाचारी। बदचलन। तबाह रोजगार = कालचक्रग्रस्त। दुर्दशापीड़ित। तबाह हाल = (१) दुर्दशाग्रस्त (२) निर्धन। दरिद्र।

तबाही—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] नाश। बरबादी। अधःपतन।

क्रि० प्र०—आना।

मुहा०—तबाही खाना = जहाज का टूट फूटकर रद्दी होना।—(लश०)। तबाही पड़ना = जहाज का काम के लिये मुहताज रहना। जहाज को काम न मिलना।—(लश०)।

तबिअत—संज्ञा स्त्री० [अ० तबीअत] दे० 'तबीअत'।

तबी—अव्य० [हिं०] तभी। तब ही उ०—'''तो तबी कि जब उनपर'''''।—प्रेमघन०, भाग २, पृ० २५३।

तबीअत—संज्ञा स्त्री० [अ० तबीयत] १. चित्त। मन। जी।

मुहा०—(किसी पर) तबीअत आना = (किसी पर) प्रेम होना। आशिक होना। (किसी चीज पर) तबीअत आना = (किसी चीज को) लेने की इच्छा होना। तबीअत उलझना = जी घबराना। तबीअत खराब होना = (१) बीमारी होना। स्वास्थ्य बिगड़ना। (२) जी मिचलाना। तबीअत फड़क उठना = चित्त का उत्साहपूर्ण और प्रसन्न हो जाना। उमंग के कारण बहुत प्रसन्न होना। तबीअत फड़क जाना = दे० 'तबीअत फड़क उठना'। तबीअत फिरना = जी हटना। अनुराग न रहना। तबीअत बिगड़ना = दे० 'तबीअत खराब होना'। तबीअत भरना = (१) संतोष होना। तसल्ली होना। (२) संतोष करना। तसल्ली करना। जैसे,—हमने अच्छी तरह उनकी तबीअत भर दी, तब उन्होने रुपए लिए। (३) मन भरना। अनुराग या इच्छा न रहना। जैसे,—अब इन कामों से हमारी तबीअत भर गई। तबीअत लगना = (१) मन में अनुराग उत्पन्न होना। (२) ख्याल लगा रहना। ध्यान लगा रहना। जैसे,—इधर कई दिनों से उनकी चिट्ठी नहीं आई, इससे तबीअत लगी हुई है। तबीअत लगाना = (१) चित्त को किसी काम में प्रवृत्त करना। जैसे,—तबीअत लगाकर काम किया करो। (२) प्रेम करना। मुहब्बत में फँसना। तबीअत होना = अनुराग या प्रवृत्ति होना। जी चाहना।

२. बुद्धि। समझ। भाव।

मुहा०—तबीअत पर जोर डालना = विशेष ध्यान देना। तवज्जह करना। जैसे,—जरा तबीअत पर जोर डाला करो, अच्छी कविता करने लगोगे। तबीअत लड़ाना = दे० 'तबीअत पर जोर डालना'।

यौ०—तबीअतदार। तबीअतदारी।

तबीअतदार—वि० [अ० तबीअत + फ़ा० दार (प्रत्य०)] १. जो भावों को चट ग्रहण करता हो। समझदार। २. भावुक। रसिक। रसज्ञ।

तबीअतदारी—संज्ञा स्त्री० [अ० तबीअत + फ़ा० दारी (प्रत्य०)] १. होशियारी। समझदारी। २. भावुकता। रसज्ञता।

तबीब—संज्ञा पुं० [अ०] वैद्य। चिकित्सक। हकीम। उ०—तब तबीब तसलीम करि लै घरि।

तबीन—संज्ञा पुं० [अ० ताबअ] ताबेदार। सेवक। उ०—पलटू ऐसी साहिबी साहब रहे तबीन। दुइ पासाही फकर की इक दुनियाँ इक दीन।—पलटू०, भा० १, पृ० ६३।

तबेला[१]—संज्ञा पुं० [अ० तवेलह्] वह स्थान जहाँ घोड़े बाँधे जाते और गाड़ी, एक्के आदि सवारियाँ रखी जाती हों। अस्तबल। घुड़साल।

मुहा०—तबेले में लत्ती चलाना = विशिष्ट कार्य करने में अड़चन उपस्थित होना।

तबेला†[२]—संज्ञा पुं० [हिं० ताँबा] ताँबे का एक पात्र।

तबेली(पु)—क्रि० अ० [फ़ा० ताब (= ताप) + हिं० एली (प्रत्य०)] छटपटाना। तालाबेली। उ०—कहा करौं कैसें मन समझाऊँ व्याकुल जियरा धीर न धरत लागियै रहति तबेली।—घनानंद, पृ० ४८०।

तबोताब—संज्ञा पुं० [सं० तप + फ़ा० ताब] रंजोगम। गरमी। उ०—माल से उसको बस है वह तबोताब। के होय महशर में उसको तुले हिसाब।—दक्खिनी०, पृ० २१६।

तबोरी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० ताम्बोल] पान। लगाया हुआ पान। उ०—अधर अधर सों भीज तबोरी। अलका उरि मुरि मुरि गो मोरी।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३४२।

तबौ(पु)—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'तऊ'। उ०—सहस अठासी मुनि जो जेंवें तबौ न घटा बाजै। कहँहि कबीर सुपच के जेंए, घंट मगन ह्वै गाजै।—कबीर (शब्द०)।

तब्ब—अव्य० [हिं०] दे० 'तब'। उ०—गही क्यों न अब्बं। कहै बैन तब्बं।—ह० रासो, पृ० १३६।

तब्बर(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तबर'।

तभी—अव्य० [हिं० तब+ही] १. उस समय। २. उसी वक्त। उसी घड़ी। जैसे,—जब तुम नहीं आए, तभी मैंने समझ लिया कि दाल में कुछ काला है। २. इसी कारण। इसी वजह से। जैसे,—तुम्हारा उधर काम था, तभी तुम गए।

तमंग—संज्ञा पुं० [सं० तमङ्ग] १. रंगमंच। २. मंच (को०)।

तमंगक—संज्ञा पुं० [सं० तमङ्गक] छत या छाजन का आगे निकला हुआ भाग (को०)।

तमंचा—संज्ञा पुं० [फ़ा० तमंचह्] १. छोटी बंदूक। पिस्तौल।

क्रि० प्र०—चलाना।—दागना।—मारना।—छोड़ना।

यौ०—तमंचे की टाँग = कुश्ती का एक पेंच जिसमें शत्रु के पेट में घुस आने पर बाँएँ हाथ से कमर पर से उसका लँगोट पकड़ लेते हैं और उसकी दाहिनी बगल से अपना बायाँ पाँव चढ़ाकर पीठ पर से उसकी बाईं जाँघ फँसाते और उसे चित कर देते हैं

२. एक लंबा पत्थर जो दरवाजों की मजबूती के लिये बगल में लगाया जाता है।

तमः—संज्ञा पुं० [सं०] तमस् का समस्तपदों में प्रयुक्त रूप।

यौ०—तम:प्रभ, तम:प्रभा=एक नरक। तम:प्रवेश=(१) अँधेरे में टटोलना। (२) विषाद।

तम[1]—संज्ञा पुं० [सं० तमः, तमस्] १. अंधकार। अँधेरा। २. पैर का अगला भाग। ३. तमाल वृक्ष। ४. राहु। ५. वराह। सुअर। ६. पाप। ७. क्रोध। ८. अज्ञान। ९. कालिख। कालिमा। श्यामता। १०. नरक। ११. मोह। १२. सांख्य के अनुसार अविद्या। १३. सांख्य के अनुसार प्रकृति का तीसरा गुण जो भारी और रोकनेवाला माना गया है।

विशेष—जब मनुष्य में इस गुण की अधिकता होती है, तब उसकी प्रवृत्ति काम, क्रोध, हिंसा आदि नीच और बुरी बातों की ओर होने लगती है।

तम[2]—वि० १. काला। दूषित। बुरा [को०]।

तम[3]—वि० [सं० तमप्] एक प्रकार का प्रत्यय, जो विशेषण शब्दों में लगने पर अतिशय या सबसे अधिक का अर्थ प्रकट करता है जैसे, क्रूरतम, कठिनतम।

तम(पु)[4]—सर्व० [सं० त्वाम्, हिं० तुम, गुज० तम] दे० 'तुम'। उ०—हाहुलि राय हमीर सलष पांमार जैत सम। कह्यौ राज हम मात तात अप्पी बिल्ली तम।—पृ० रा०, १८।६।

तमअ—संज्ञा स्त्री० [अ० तमअ] १. लालच। लोभ। हिर्स। २. चाह। इच्छा। ख्वाहिश।

तमक[1]—संज्ञा पुं० [हिं० तमकना] १. जोश। उद्वेग। २. तेजी। तीव्रता। ३. क्रोध। गुस्सा।

तमक[2]—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार श्वास रोग का एक भेद।

विशेष—इसमें दम फूलने के साथ साथ बहुत प्यास लगती है, पसीना आता है, जी मिचलाता है और गले में घरघराहट होती है। जिस समय आकाश में बादल छाए हों, उस समय इसका प्रकोप अधिक होता है।

तमकनत—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. इज्जत। प्रतिष्ठा। २. गौरव। ३. गौरव का अनुचित प्रदर्शन। ४. आडंबर। ५. घमंड। गरूर [को०]।

तमकना—क्रि० अ० [अनु०] १. क्रोध का आवेश दिखलाना। क्रोध के कारण उछल पड़ना। उ०—अंजन त्रास तजत तमकत तकि तानत दरसन डीठि। हारेहु नहिं हटत अमित बल बदन पयोधि पईठ।—सूर (शब्द०) २. दे० 'तमतमाना'।

तमकश्वास—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का दमा जिसमें कंठ रुक जाता है और घरघराहट होती है।

विशेष—इसके उत्पन्न होने से प्रायः रोगी के मर जाने का भी भय होता है।

तमका—संज्ञा स्त्री० [सं०] भुम्यामलकी। भुईं आँवला [को०]।

तमकाना—क्रि० स० [हिं० तमकना का प्रे०रूप] तमकने में प्रवृत्त कराना।

तमकि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० तमक] दे० 'तमक'[1]। उ०—सतगुर मिलिमें तमकि मिटि आई। नानक तपसी को मिली बड़ाई।—प्राण०, पृ० ६०।

तमगा—संज्ञा पुं० [तु० तमगह्] पदक। तगमा। मेडल।

तमगुन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० तमोगुण] दे० 'तमोगुण'।

तमगेही[1]—वि० [सं० तमगेहिन्] अंधकार में घर बनानेवाला। अंधकार में रहनेवाला [को०]।

तमगेही[2]—संज्ञा पुं० पतंगा।

तमचर—संज्ञा पुं० [सं० तमीचर] १. राक्षस। निशाचर। २. उलूक। उल्लू।

तमचुर(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० ताम्रचूड़] मुरगा। कुक्कुट। उ०—(क) सुनि तमचुर को सोर घोस की बागरी। नवसत साजि सिंगार चलीं ब्रज नागरी।—सूर (शब्द०)। (ख) ससि कर हीन छीन दुति तारे। तमचुर मुखर सुनहु मोरे प्यारे।—तुलसी (शब्द०)।

तमचूर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० ताम्रचूड, हिं० तमचुर] दे० 'तमचुर'। उ०—(क) बोले लागे ठौर ठौर तमचूर। हुहि बोली री पिक बैनी।—नंद० ग्रं०, पृ० ३६७। (ख) बिस राखे नहिं होत अँगूरू। सबद न देइ बिरह तमचूरू।—जायसी (शब्द०)।

तमचोर(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० ताम्रचूड] दे० 'तमचुर'।

तमच्छन्न—वि० [सं० तमस् (श्) + छन्न] तम से आच्छादित। अंधकारमय। उ०—धन्य मार्क्स! चिर तमच्छन्न। पृथ्वी के उदय शिखर पर, तुम त्रिनेत्र के ज्ञान चक्षु से प्रकट हुए प्रलयंकर।—युगवाणी, पृ० ३८।

तमजित्—वि० [सं०] अंधकार को जीतनेवाला। उ०—बाँधो, बाँधो किरणें चेतन, तेजस्वी, हे तमजिज्जीवन।—अपरा, पृ० २०६।

तमत—वि० [सं०] १. इच्छुक। अभिलाषी। २. वांछित। चाहा हुआ [को०]।

तमतमाना—क्रि० अ० [सं० ताम्र] १. धूप या क्रोध आदि के कारण चेहरा लाल हो जाना। २. चमकना। दमकना। (क्व०)।

तमतमाहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० तमतमाना] तमतमाने का भाव।

तमता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तम का भाव। २. अँधेरा। अंधकार।

तमद्दुन—संज्ञा पुं० [सं०] १. शहर में एक स्थान पर मिल जुलकर रहना और वहाँ की व्यवस्था करना। नागरिकता। २. किसी की वेशभूषा, रहन सहन का ढंग और आचार व्यवहार। सभ्यता [को०]।

तमन—संज्ञा पुं० [सं०] दम घुटने की अवस्था [को०]।

तमना(पु)—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'तमकना'।

तमन्ना—संज्ञा स्त्री० [अ०] आकांक्षा। इच्छा। ख्वाहिश। कामना। अभिलाषा। उ०—दिल लाखों तमन्ना उस पै और ज्यादा हवस। फिर ठिकाना है कहाँ उसके टिकाने के लिये।—तुरसी० श०, पृ० ४।

तमप्रभ—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक नरक का नाम।

तमयी—संज्ञा स्त्री० [सं० तमी अथवा तममयी] रात।

तमरंग—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का नीबू जिसे 'तुरंज' कहते हैं।
विशेष—दे० 'तुरंज'।

तमर¹—संज्ञा पुं० [सं०] बंग।

तमर²—संज्ञा पुं० [सं० तम] अंधकार। अँधेरा।

तमराज—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की खाँड़ जो वैद्यक में ज्वर, दाह तथा पित्तनाशक मानी गई है।

तमलुक—संज्ञा पुं० [हिं० तामलुक] दे० 'तामलुक'।

तमलेट—संज्ञा पुं० [अं० टम्बलर] १. लुक फेरा हुआ टीन या लोहे का बरतन। २. फौजी सिपाहियों का लोटा।

तमस्—संज्ञा पुं० [सं०] १. अंधकार। २. अज्ञान का अंधकार। ३. प्रकृति का एक गुण। तमोगुण। वि० दे० 'गुण'।

तमस¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. अंधकार। २. अज्ञान का अंधकार। ३. पाप। ४. नगर। ५. कूप। कुआँ।

तमस²—वि० काले रंग का। श्याम वर्ण का (को०)।

तमस(पु)³—संज्ञा स्त्री० [सं० तमसा] १. तमसा नदी। टौंस। उ०—आयो तमस नदी के तीरा। तब लागिन परिहार सुबीरा।—रघुराज (शब्द०)।

तमसना(पु)—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'तमकना'। उ०—तमसि तमंति सामंत जाइ पर वीर सुबध्यो। उभय पुत्त इक बधु मोम भगीरथ बल बंध्यो।—पृ० रा०, १२।१५३।

तमसा—संज्ञा स्त्री० [सं०] टौंस नाम की नदी। दे० 'टौंस'।
विशेष—इस नाम की तीन नदियाँ हैं।

तमसाच्छन्न—वि० [सं०] अंधकार से ढका हुआ। उ०—उसे अपनी माता के तत्काल न मर जाने पर झुँझलाहट सी हो रही थी। समीर अधिक शीतल हो चला। प्राची का आकाश स्पष्ट होने लगा, पर जगीया का अदृष्ट तमसाच्छन्न था।—इंद्र०, पृ० ११०।

तमसावृत—वि० [सं०] अंधकार से घिरा हुआ। उ०—मानव उर का मंदिर, कब से भीतर से तमसावृत्त!—युगपथ, पृ० १०३।

तमसील—संज्ञा स्त्री० [अ० तम्सील] १. उपमा। तुलना। २ समानता। बराबरी। ३. दृष्टांत। उदाहरण। मिसाल। उ०—याने इसका तमसील यूँ है।—दक्खिनी०, पृ० ३६५।

तमस्क—संज्ञा पुं० [सं०] १. अँधेरा। २. विषाद। म्लानता (को०)।

तमस्कांड—संज्ञा पुं० [सं० तमस्काण्ड] घना अँधेरा। भारी अँधेरा (को०)।

तमस्खुर—संज्ञा पुं० [अ० तमस्खुर] मसखरापन। उ०—उसके मिजाज में लताफत और तमस्खुर जियादा है''—प्रेमघन०, भाग २, पृ० १०२।

तमस्तति—संज्ञा स्त्री० [सं०] अंधकार की अधिकता। अंधकार का बाहुल्य। (को०)।

तमस्तरण—वि० [सं०] अंधकार को तरने या पार करनेवाला। उ०—मग डगमग पग, तमस्तरण जागे जग।—अर्चना, पृ० १४।

तमस्वती—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'तमस्विनी'।

तमस्विनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. रात्रि। रात। रजनी। २. हल्दी।

तमस्वी—वि० [सं० तमस्विन्] अंधकारयुक्त। अंधकारपूर्ण (को०)।

तमस्सुक—संज्ञा पुं० [अ०] वह कागज जो ऋण लेनेवाला ऋण के प्रमाणस्वरूप लिखकर महाजन को देता है। दस्तावेज। ऋणपत्र। लेख।

तमहेंड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ताँबा + हाँड़ी] हाँड़ी के आकार का ताँबे का एक प्रकार का छोटा बरतन।

तमहर—संज्ञा पुं० [हिं० तम + हर] दे० 'तमोहर'।

तमहाया—वि० [सं० तम + हिं० हाया] १. अंधकारवाला। २. तमोगुणी।

तमहीद—संज्ञा स्त्री० [अ० तम्हीद] वह जो कुछ किसी विषय को प्रारंभ करने से पहले किया जाय। भूमिका। दीबाचा।
क्रि० प्र०—बाँधना।

तमाँचा—संज्ञा पुं० [फा० तमाचह्] दे० 'तमाचा'।

तमा¹—संज्ञा पुं० [सं० तमाः, तमस्] राहु।

तमा²—संज्ञा स्त्री० रात। रात्रि। रजनी।

तमा³—संज्ञा स्त्री० [अ० तमअ] दे० 'तमअ'।

तमा⁴—संज्ञा स्त्री० [फा० तमाम] दे० तमाम। उ०—तमा दुनिया को जर पर कर वह बदजात। उठाया दीन से इकबारगी हात।—दक्खिनी०, पृ० १६०

तमाइ(पु)—संज्ञा स्त्री० [अ० तमअ] दे० 'तमअ'। उ०—(क) लोक परलोक बिलोक न तिलोक ताहि तुलसी तमाइ कहा काहू वीर आन की।—तुलसी (शब्द०)। (ख) आप कीन तप खप कियो न तमाइ जोग जाग न बिराग त्याग तीरथ न तन को।—तुलसी (शब्द०)।

तमाई¹—संज्ञा स्त्री० [हिं०] खेत जोतने से पूर्व उसमें की घास आदि साफ करना।

तमाई²—संज्ञा स्त्री० [सं० तम + हिं० आई (प्रत्य०)] १. अँधेरा। श्यामता। ताम्रता। २. अज्ञान। उ०—साहब मिल साहब भए कछु रही न तमाई। कहैं मलूक तिस घर गए जँह पवन न जाई।—मलूक० पृ० ७।

तमाकू—संज्ञा पुं० [पुर्त० टवैको] १. तीन से छह फुट तक ऊँचा एक प्रसिद्ध पौधा जो एशिया, अमेरिका तथा उत्तर युरोप में अधिकता से होता है। तंबाकू।
विशेष—इसकी अनेक जातियाँ हैं, पर खाने या पीने के काम में केवल ५-६ तरह के पत्ते ही आते हैं। इसके पत्ते २-३ फुट तक लंबे, चिपचिपे और नशीले होते हैं। भारत के भिन्न भिन्न प्रांतों में इसके बोने का समय एक दूसरे से अलग है, पर बहुधा यह कुआर, कातिक में लेकर पूस तक बोया जाता है। इसके लिये वह जमीन उपयुक्त होती है जिसमें खार अधिक हो। इसमें खाद की बहुत अधिक आवश्यकता होती है। जिस जमीन में यह बोया जाता है, उसमें साल में बहुधा केवल इसी की एक फसल होती है। पहले इसका बीज बोया जाता है और जब इसके अंकुर ५-६ इंच के ऊँचे हो जाते हैं, तब इसे दूसरी जमीन में, जो पहले से कई बार बहुत

अच्छी तरह जोती हुई होती है, तीन तीन फुट की दूरी पर रोपते हैं। आरंभ से इसमें सिचाई की भी बहुत अधिक आवश्यकता होती है। इसके फूलने से पहले ही इसकी कलियाँ और नीचे के पत्ते छाँट दिए जाते हैं। जब पत्ते कुछ पीले रंग के हो जाते हैं और उसपर चित्तियाँ पड़ जाती हैं, तब या तो ये पत्ते काट लिए जाते हैं या पूरे पौधे ही काट लिए जाते हैं। इसके बाद वे पत्ते धूप में सुखाए जाते हैं और अनेक रूपों में काम में लाए जाते हैं। इसके पत्तों में अनेक प्रकार के कीड़े लगते हैं और रोग होते हैं।

सोलहवीं शताब्दी से पहले तमाकू का व्यवहार केवल अमेरिका के कुछ प्रांतों के आदिम निवासियों में ही होता था। सन् १४९२ में जब कोलंबस पहले पहल अमेरिका पहुँचा, तब उसने वहाँ के लोगों को इसके पत्ते चबाते और इसका धूआँ पीते हुए देखा था। सन् १५३६ में स्पेनवाले इसे पहले पहल यूरोप ले गए थे। भारत में इसे पहले पहल पुर्तगाली पादरी लाए थे। सन् १६०५ में इसे असदबेग ने बीजापुर (दक्षिण भारत) में देखा था और वहाँ से वह अपने साथ दिल्ली ले गया था। वहाँ उसने हुक्के और चिलम पर रखकर इसे अकबर को पिलाना चाहा था, पर हकीमों ने मना कर दिया। पर आगे चलकर धीरे धीरे इसका प्रचार बहुत बढ़ गया। आरंभ में इंगलैंड, फ्रांस तथा भारत आदि सभी देशों में राज्य की ओर से इसका प्रचार रोकने के अनेक प्रयत्न किए गए थे, धर्माधिकारियों और चिकित्सकों ने भी इसका प्रचार रोकने के अनेक उद्योग किए थे, पर वे सब निष्फल हुए। अब समस्त संसार में इसका इतना अधिक प्रचार हो गया है कि स्त्रियाँ, पुरुष, बच्चे और बुड्ढे प्रायः सभी किसी न किसी रूप में इसका व्यवहार करते हैं। भारत की गलियों में छोटे छोटे बच्चे तक इसे खाते या पीते हुए देखे जाते हैं।

२. इस पेड़ का पत्ता। सुरती।

विशेष—इसका व्यवहार लोग अनेक प्रकार से करते हैं। चूर करके खाते हैं, सूँघते हैं, धूआँ खींचने के लिये नली में या चिलम पर जलाते हैं। इसमें नशा होता है। भारत में धूआँ पीने के लिये एक विशेष प्रकार से तमाकू तैयार किया जाता है (दे० तीसरा अर्थ)। इसका बहुत महीन चूर्ण सुँघनी कहलाता है जिसे लोग सूँघते हैं। भारत के लोग इसके पत्तों को सुखाकर पान के साथ अथवा यों ही खाने के लिये कई तरह का चूरा बनाते हैं, जैसे, सुरती, जरदा आदि। पान के साथ खाने के लिये इसकी गीली गोली बनाई जाती है और एक प्रकार का अवलेह भी बनाया जाता है जिसे 'किवाम' कहते हैं। इस देश में लोग इसके सूखे पत्तों को चूने के साथ मलकर मुँह में रखते हैं। चूना मिलाने से यह बहुत तेज हो जाता है। इस रूप में इसे 'खैनी' या 'सुरती' कहते हैं। युरोप, अमेरिका आदि देशों में इसके चूरे को कागज या पत्तों आदि में लपेटकर सिगार या सिगरेट बनाते हैं। इसका व्यवहार नशे के लिये किया जाता है और इससे स्वास्थ्य और विशेषतः आँखों को बहुत हानि पहुँचती है। वैद्यक में यह तीक्ष्ण, गरम, कड़ुआ, मद और वमनकारक तथा दृष्टि को हानि पहुँचानेवाला माना जाता है।

३. इन पत्तों से तैयार की हुई एक प्रकार की गीली पिंडी जिसे चिलम पर जलाकर मुँह से धूँआ खींचते हैं।

विशेष—पत्तियों के साथ रेह मिलाकर जो तमाकू तैयार होता है, वह 'कड़ुआ' कहलाता है, गुड़ मिलाकर बनाया हुआ 'मीठा' कहलाता है, और कटहल, बेर आदि की खमीर मिलाकर बनाया हुआ 'खमीरा' कहलाता है। इसे चिलम पर रखकर उसके ऊपर कोयले की आग या सुलगती हुई टिकिया रखते हैं और खाली हाथ गोरिए अथवा हुक्के पर रखकर नली से धूआँ खींचते हैं।

मुहा०—तमाकू चढ़ाना = तमाकू को चिलम पर रखकर और उसपर आग या टिकिया रखकर उसे पीने के लिये तैयार करना। तमाकू पीना = तमाकू का धूँआँ खींचना। तमाकू भरना = दे० 'तमाकू चढ़ाना'।

तमाखू†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तमाकू'।

तमाचा—संज्ञा पुं० [फ़ा० तमंचह] हथेली और उँगलियों से गाल पर किया हुआ प्रहार। थप्पड़। झापड़।

क्रि० प्र०—जड़ना।—देना।—मारना।—लगाना।

तमाचारी—संज्ञा पुं० [सं० तमाचारिन्] राक्षस। दैत्य। निशिचर।

तमादी—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. अवधि बीत जाना। मुद्दत या मियाद गुजर जाना। २. उस अवधि का बीत जाना जिसके अंदर लेन देन संबंधी कोई कानूनी कारवाई हो सकती हो। उस मुद्दत का गुजर जाना जिसके अंदर अदालत में किसी दावे की सुनवाई हो सकती हो।

क्रि० प्र०—होना।

तमान—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का घेरदार पाजामा जिसकी मोहरी नीचे से तंग होती है।

तमाना†—क्रि० अ० [सं० तम से नामिक धातु] ताव में आना। आवेश में आना।

तमाम—वि० [अ०] १. पूरा। संपूर्ण। कुल। सारा। बिलकुल। जैसे,—(क) दो ही बरस में तमाम रुपए फूँक दिए। (ख) तमाम शहर में बीमारी फैली है। २. समाप्त। खतम।

मुहा०—तमाम होना = (१) पूरा होना। समाप्त होना। (२) मर जाना।

तमामी—संज्ञा स्त्री० [अ० तमाम + फ़ा० ई (प्रत्य०)] एक प्रकार का देशी रेशमी कपड़ा।

विशेष—इसपर कलाबत्तू की धारियाँ होती हैं। यह प्रायः गोट लगाने के काम में आता है।

तमारा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तँवार'।

तमारि¹—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य। दिनकर। रवि।

तमारि²—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तँवार'। उ०—पल में पख रूप बीतिया लोगन लगी तमारि।—कबीर (शब्द०)।

तमारी¹—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तमारि'। उ०—संत उदय संतत सुखकारी। बिस्व सुखद जिमि इंदु तमारी।—मानस, ७।१२१।

तमारी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तांवरा'।

तमाल—संज्ञा पुं० [सं०] १. बीस पचीस फुट ऊँचा एक बहुत सुंदर सदाबहार वृक्ष जो पहाड़ों पर और जमुना के किनारे भी कहीं कहीं होता है।

विशेष—यह दो प्रकार का होता है, एक साधारण और दूसरा श्याम तमाल। श्याम तमाल कम मिलता है। उसके फूल लाल रंग के और उसकी लकड़ी आबनूस की तरह काली होती है। तमाल के पत्ते गहरे हरे रंग के होते हैं और शरीफे के पत्तों से मिलते जुलते होते हैं। वैसाख के महीने में इसमें सफेद रंग के बड़े फूल लगते हैं। इसमें एक प्रकार के छोटे फल भी लगते हैं जो बहुत अधिक खट्टे होने पर भी कुछ स्वादिष्ट होते हैं। ये फल सावन भादों में पकते हैं और इन्हें गीदड़ बड़े चाव से खाते हैं। श्याम तमाल को वैद्यक में कसैला, मधुर, बलवीर्यवर्धक, भारी, शीतल, श्रम, शोष और दाह को दूर करनेवाला तथा कफ और पित्तनाशक माना है।

पर्या०—कालस्कंध। तापिच्छ। अमितद्रुम। लोकस्कंध। नीलध्वज। नीलताल। तापिंज। तम। तथा। कालताल। महाबल।

२. तेजपत्ता। ३. काले खैर का वृक्ष। ४. बाँस की छाल। ५. वरुण वृक्ष। ६. एक प्रकार की तलवार। ७. तिलक का पेड़। ८. हिमालय तथा दक्षिण भारत में होनेवाला एक प्रकार का सदाबहार पेड़।

विशेष—इसमें से एक प्रकार का गोंद निकलता है जो घटिया रेवंद चीनी की तरह का होता है। इसकी छाल से एक प्रकार का बढ़िया पीला रंग निकता है। पूस, माघ में इसमें फल लगता है जिसे लोग यों ही खाते अथवा इमली की तरह दाल तरकारियों में डालते हैं। इसका व्यवहार औषध में भी होता है। लोग इसे सुखाकर रखते और इसका सिरका भी बनाते हैं। इसे मन्होला और उमवेल भी कहते हैं।

९. सुरती (को०)। १०. तमाल के बीज के रस और चंदन का तिलक (को०)।

तमालक—संज्ञा पुं० [सं०] १. तेजपत्ता २. तमाल वृक्ष। ३. बाँस की छाल। ४ चौपतिया साग। सुसना साग।

तमालपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. तमाल का पत्ता। २ सुरती का पत्ता। ३. साप्रदायिक तिलक (को०)।

तमाला†—संज्ञा पुं० [हिं० तमारा] आँखों में अँधियारी छा जाना। चकाचौंध। उ०—होस उड़े फाटे हियो, पड़े तमाला आय। देखे जुध तसवीर इग, मारवड़िया मुरझाय।—बाँकी ग्रं०, भा० २, पृ० १७।

तमालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. भुइँ आँवला। भूम्यामलकी। २. ताम्रवल्ली नाम की लता।

तमालिनी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. ताम्रलिप्त देश का एक नाम। २. भूम्यामलकी। भुइँ आँवला। ३. काले खैर का वृक्ष। कृष्ण खदिर। ४. वह भूमि जहाँ तमाल के वृक्ष अधिक हों (को०)।

तमाली—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वरुण वृक्ष। २. ताम्रवल्ली नाम की लता जो चित्रकूट में बहुत होती है।

तमाशगीर—संज्ञा पुं० [फ़ा० तमाश+गीर] दे० 'तमाशबीन'।

तमाशबीन—संज्ञा पुं० [अ० तमाशा+फ़ा० बीन] १. तमाशा देखनेवाला। सैलानी। २. रंडीबाज। वेश्यागामी। ऐयाश।

तमाशबीनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तमाशबीन+ई (प्रत्य०)] रंडीबाजी। ऐयाशी। बदकारी। उ०—फारसी पढ़ने से इश्कबाजी तमाशबीनी और अय्याशी।—प्रेमघन०, भाग २, पृ० ८२।

तमाशा—संज्ञा पुं० [अ०] १. वह दृश्य जिसे देखने से मनोरंजन हो। चित्त को प्रसन्न करनेवाला दृश्य। जैसे, मेला, थिएटर, नाच, आतिशबाजी आदि। उ०—मद मोलक जब खुलत हैं तेरे दृग गजराज। आइ तमासे जुरत हैं नेही नैन समाज।—रसनिधि (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।—कराना।—देखना।—दिखाना।—होना।

२. अद्भुत व्यापार। विलक्षण व्यापार। अनोखी बात।

मुहा०—तमाशे की बात = आश्चर्य भरी और अनोखी बात।

यौ०—तमाशागर = तमाशा करनेवाला। तमाशागाह = क्रीड़ास्थल। कौतुकागार। तमाशबीन = तमाशा देखनेवाला।

तमाशाई—संज्ञा पुं० [अ० तमाशा + फ़ा० ई (प्रत्य०)] तमाशा देखनेवाला। वह जो तमाशा देखता हो।

तमास(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तमाशा'। उ०—काहू संग मोह नहि ममता देखहि निरंध भये तमास।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० १५५।

तमासा(पु)—संज्ञा पुं० [अ० तमाशा]। उ०—मेहर की आसा तमासा भी मेहर का, मेहर का आब दिल को पिलाइए।—कबीर रे०, पृ० ३४।

तमाह्वय—संज्ञा पुं० [सं०] तालीशपत्र (को०)।

तमि—संज्ञा पुं० [सं०] १. रात। २. मोह।

तमिनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

तमिल[1]—संज्ञा पुं० [देश०] तमिल भाषा का प्रदेश। २. तमिल भाषाभाषी।

तमिल[2]—संज्ञा स्त्री० १. तमिल जाति। २. तमिल जाति की भाषा।
वि० दे० 'तामिल'।

तमिस्र[1]—वि० रात्रि में विचरण करनेवाला (को०)।

तमिसरा(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तमिस्रा'। उ०—रवि परभात झरोखे उवा। गयउ तमिसरा बासर हुआ।—इंद्रा०, पृ० ८०

तमिस्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. अंधकार। अँधेरा। २. क्रोध। गुस्सा। ३. पुराणानुसार एक नरक का नाम। ४. अज्ञान। मोह (को०) ५. कृष्ण पक्ष (को०)।

तमिस्रपक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] किसी मास का कृष्ण पक्ष। अँधेरा पक्ष।

तमिस्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अँधेरी रात। २. गहरा अँधेरा या अंधकार (को०)।

तमी—संज्ञा स्त्री [सं०] १. रात। रात्रि। निशा। २. हरिद्रा। हलदी।

तमीचर[1]—संज्ञा पुं० [सं०] निशाचर। राक्षस। दैत्य। दनुज।

तमीचर[2]—वि० रात्रि में विचरण करनेवाला (को०)।

तमीज—संज्ञा स्त्री० [अ० तमीज] १. भले और बुरे को पहचानने की शक्ति। विवेक। २. पहचान। ३. ज्ञान। बुद्धि। ४. अदब। कायदा।

यौ०—तमीजदार=(१) बुद्धिमान। समझदार (२) शिष्ट। सभ्य।

तमीपति—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा। निशाकर। क्षपाकर।

तमीश—संज्ञा पुं० [सं० तमी + ईश] चंद्रमा। क्षपाकर। उ०—सो लौं तम राखै तमी जौ लौं नहिं रजनीश। केशव ऊगे तरणि के तमु न तमी न तमीश।—केशव (शब्द०)।

तमुⓅ†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तम'।

तमूरा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तंबूरा'।

तमूल†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तांबूल'।

तमेⓅ†—सर्व० [गुज० तमे (=तुम)] तुम।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० २१८।

तमोंत्य—वि० [सं० तमोऽन्त्य] सूर्य और चंद्रमा के दस प्रकार के ग्रासों में से एक।

विशेष—इसमें चंद्रमंडल की पिछली सीमा में राहु की छाया बहुत अधिक और बीच के भाग में बहुत थोड़ी सी जान पड़ती है। फलित ज्योतिष के अनुसार ऐसे ग्रहण से फसल को हानि पहुँचती है और चोरों का भय होता है।

तमोंध—वि० [सं० तमोऽन्ध] १. अज्ञानी। २. क्रोधी।

तमोगुण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तमस्'—३।

तमोगुणी—वि० [सं०] जिसकी वृत्ति में तमोगुण हो। अधम वृत्तिवाला। उ०—तमोगुणी चाहे या भाई। मम बैरी क्यों ही मर जाई।—सूर (शब्द०)

तमोघ्न—संज्ञा पुं० [सं०] १. अग्नि। २. चंद्रमा। ३. सूर्य। ४. बुद्ध। ५. बौद्ध मत के नियम आदि। ६. विष्णु। ७. शिव। ८. ज्ञान। ९ दीपक। दीया। चिराग।

तमोघ्न[२]—वि० जिससे अँधेरा दूर हो।

तमोज्योति—संज्ञा पुं० [सं० तमोज्योतिस्] जुगनू [को०]।

तमोदर्शन—संज्ञा पुं० [सं०] वह ज्वर जो पित्त के प्रकोप से उत्पन्न हो।

तमोनुद—संज्ञा पुं० [सं०] १. ईश्वर। २. चंद्रमा। ३. अग्नि। आग।

तमोभिद्[१]—संज्ञा पुं० [सं०] जुगनू।

तमोभिद्[२]—वि० अंधकार दूर करनेवाला।

तमोमणि—संज्ञा पुं० [सं०] १. जुगनू। २. गोमेदक मणि।

तमोमय[१]—वि० [सं०] १. तमोगुणयुक्त २. अज्ञानी। ३. क्रोधी।

तमोमय[२]—संज्ञा पुं० [सं०] राहु।

तमोरⓅ†—संज्ञा पुं० [सं० ताम्बूल] तांबूल। पान। उ०—(क) थार तमोर दूध दधि रोचन हरषि यशोदा लाई।—सूर (शब्द०)। (ख) सुरँग अधर औ लीन तमोरा। सोहै पान फूल कर जोरा।—जायसी ग्रं०, पृ० १४३।

तमोरि—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य।

तमोरीⓅ†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तंबोली'।

तमोलⓅ†—संज्ञा पुं० [सं० ताम्बूल] १. पान का बीड़ा। उ०—बंदी भाल तमोल मुख सीस सिलसिले बार। दृग आँजि राजे खरी ये ही सहज सिंगार।—बिहारी (शब्द०)। २. दे० 'तंबोल'।

तमोलिन—संज्ञा स्त्री० [हिं० तमोली का स्त्री०] दे० 'तंबोलिन'।

तमोलिप्ती—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'ताम्रलिप्त'।

तमोली—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तंबोली'।

तमोविकार—संज्ञा पुं० [सं०] तमोगुण के कारण उत्पन्न होनेवाला विकार। जैसे, नींद, आलस्य आदि।

तमोहंत—संज्ञा पुं० [सं० तमोहन्त] दस प्रकार के ग्रहणों में से एक।

विशेष—दे० 'तमोंत्य'।

तमोहपह[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य। २. चंद्रमा। ३. अग्नि। ४. दीपक। दीआ।

तमोहपह[२]—वि० १. मोहनाशक। २. अंधकार दूर करनेवाला।

तमोहर[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १ चंद्रमा। २. सूर्य। ३. अग्नि। आग। ४ ज्ञान।

तमोहर[२]—वि० [सं०] अंधकार दूर करनेवाला। २. अज्ञान दूर करनेवाला।

तमोहरिⓅ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तमोहर'।

तम्मनाⓅ—क्रि० अ० [हिं० तमकना] तप्त होना। क्रुद्ध होना। उ०—परि लर परै उट्ठै एक। तम्मी उकसि झारैं नेक (तेक)।—पृ० रा०, ६।१६४।

तय[१]—वि० [अ०] १ पूरा किया हुआ। निबटाया हुआ। समाप्त। जैसे, रास्ता तय करना। काम तय करना। २. निश्चित। स्थिर। ठहराया हुआ। मुकर्रर। जैसे,—सोमवार को चलना तय हुआ है।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—तय पाना - निश्चित होना। ठहराना।

तयⓅ[२]—अव्य० [हिं० तहँ] तहाँ। वहाँ। उ०—बुल्लाय दास सुंदर विचित्र। पठ्यौ प्रसि चहुआन तय।—पृ० रा०, ९९।

तय[३]—संज्ञा पुं० [सं०] १ रक्षा। २. रक्षक [को०]।

तयनाⓅ†[१]—क्रि० अ० [सं० तपन] १ बहुत गरम होना। तपना। उ०—निसि बासर तया तिहूँ ताय।—तुलसी (शब्द०)। २. संतप्त होना। दुखी होना। पीड़ित होना।

विशेष—दे० 'तपना'।

तयनाⓅ†[२]—क्रि० स० [हिं०] दे० 'तपाना'।

तयनात†—वि० [हिं०] दे० 'तैनात'।

तया†—संज्ञा पुं० [हिं०] 'तवा'।

तयारⓅ—वि० [हिं०] दे० 'तैयार'।

तयारीⓤ‡—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तैयारी'।

तय्यार—वि० [हिं०] दे० 'तैयार'। उ०—कोर्मा ऐसा अजीज तैयार हुआ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ८४।

तरंग—संज्ञा स्त्री० [सं० तरङ्ग] १. पानी की वह उछाल जो हवा लगने के कारण होती है। लहर। हिलोर। २. मौज।

क्रि० प्र०—उठना।

पर्या०—भंग। ऊर्मि। उर्मी। विचि। बीची। हली। लहरी। भृंगि। उत्कलिका। जललता।

२ संगीत में स्वरों का चढ़ाव उतार। स्वरलहरी। उ०—बहु भाँति तान तरंग सुनि गंधर्व किन्नर लाजहीं।—तुलसी (शब्द०)। ३. चित्त की उमंग। मन की मौज। उत्साह या आनंद की अवस्था में सहसा उठनेवाला विचार। जैसे,—(क) मन की तरंग उठी कि नदी के किनारे चलना चाहिए। ४. वस्त्र। कपड़ा। ५. घोड़े आदि की फलाँग या उछाल। ६. हाथ में पहनने की एक प्रकार की चूड़ी जो सोने का तार उमेठकर बनाई जाती है। ७. हिलना डुलना। इधर उधर घूमना (को०)। (८) किसी ग्रंथ का विभाग या अध्याय जैसे—कथासरित्सागर में।

तरंगक—संज्ञा पुं० [सं० तरङ्गक] [स्त्री० तरंगिका] १. पानी की लहर। हिलोर। २. स्वरलहरी।

तरंगभीरु—संज्ञा पुं० [सं० तरङ्गभीरु] चौदहवें मनु के एक पुत्र का नाम।

तरंगवती—संज्ञा पुं० [सं० तरङ्गवती] नदी। तरंगिणी।

तरंगायित—वि० [सं० तरङ्गायित] दे० 'तरंगित'। उ०—सुंदर बने तरङ्गायित ये सिंधु से, लहराते जब वे मारुतवश झूम के।—करुणा०, पृ० २।

•**तरंगालि**—संज्ञा स्त्री० [सं० तरङ्गालि] नदी।

तरंगिका—संज्ञा स्त्री० [सं० तरङ्गिका] १. लहर। हिलोर। २. स्वरलहरी। उ०—स्वर मंद बाजत बाँसुरी गति मिलत उठत तरंगिका।—राधाकृष्ण दास (शब्द०)।

तरंगिणी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० तरङ्गिणी] नदी। सरिता।

यौ०—तरंगिणीनाथ, तरंगिणीभर्ता=समुद्र।

तरंगिणी[2]—वि० तरंगवाली।

तरंगित—वि० [सं० तरङ्गित] हिलोर मारता हुआ। लहराता हुआ। नीचे ऊपर उठता हुआ।

तरंगिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० तरङ्गिणी] नदी।

तरंगी—वि० [सं० तरङ्गिन्] [स्त्री० तरंगिणि] १. तरंगयुक्त। जिसमें लहर हो। २ जैसा मन में आवे, वैसा करनेवाला। मनमौजी। आनंदी। लहरी। बेपरवाह। उ०—नाचहिं गावहिं गीत परम तरंगी भूत सब।—मानस, १। ९३।

तरंड—संज्ञा पुं० [सं० तरण्ड] १. नाव। नौका। २. मछली मारने की डोरी में बँधी हुई लकड़ी जो पानी के ऊपर तैरती रहती है। ३. नाव खेने का डाँड़ा। ४. बेड़ा (को०)।

यौ०—तरंडपादा=एक प्रकार की नाव।

तरंडा, तरंडी—संज्ञा स्त्री० [सं० तरण्डा, तरण्डी] १. नौका। नाव। २. बेड़ा (को०)।

तरंत—संज्ञा पुं० [सं० तरन्त] १. समुद्र। २. मेढक। ३. राक्षस। ४. जोर की वर्षा (को०)। ५. भक्त (को०)।

तरंती—संज्ञा स्त्री० [सं० तरन्ती] नाव। किश्ती।

तरंतुक—संज्ञा पुं० [सं० तरन्तुक] कुरुक्षेत्र के अंतर्गत एक स्थान का नाम।

तरंबुज—संज्ञा पुं० [सं० तरम्बुज] तरबूज।

तरँहुत[1]—क्रि० वि० [हिं० तर + हुँत (प्रत्य०)] १. नीचे। २. नीचे की तरफ।

तरँहुत[2]—वि० १. नीचेवाला। नीचे की तरफ का। २. नीचा।

तर[1]—वि० [फा०] १. भीगा हुआ। आर्द्र। गीला। जैसे, पानी से तर करना, तेल से तर करना।

यौ०—तर बतर=भीगा हुआ।

२. शीतल। ठंढा। जैसे,—(क) तर पानी, तर माल। (ख) तरबूज खालो, तबीयत तर हो जाय। ३. जो सूखा न हो। हरा।

यौ०—तर व ताजा=टटका। तुरंत का।

४. भरा पूरा। मालदार। जैसे, तर असामी।

तर[2]—संज्ञा पुं० [सं०] पार करने की क्रिया। २. अग्नि। ३. वृक्ष। ४ पथ। ५. गति। ६. नाव की उतराई। ७. घाट की नाव (को०)। ८. बढ़ जाना (को०)। ९. पराजित करना। परास्त करना (को०)।

तर[3]—क्रि० वि० [सं० तल] तले। नीचे। उ०—कौन बिरिछ तर भीजत ह्वैहैं राम लखन दूनो भाई।—गीत (शब्द०)।

तर[4]—प्रत्य० [सं०] एक प्रत्यय जो गुणवाचक शब्दों में लगकर दूसरे की अपेक्षा आधिक्य (गुण में) सूचित करता है। जैसे, गुरुतर, अधिकतर, श्रेष्ठतर।

तरई‡—संज्ञा स्त्री० [सं० तारा] नक्षत्र।

तरक[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० तडक] दे० 'तड़क'।

तरक[2]—संज्ञा स्त्री [हिं० तड़कना] दे० 'तड़क'।

तरक[3]—संज्ञा पुं० [सं० तर्क] १. विचार। सोच विचार। उधेड़बुन। ऊहापोह। उ०—होइहि सोई जो राम रचि राखा। को करि तरक बढ़ावहि साखा।—तुलसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।

२. उक्ति। तर्क। चतुराई का वचन। चोज की बात। उ०—(क) सुनत हँसि चले हरि सकुचि भारी। यह कह्यो आज हम आइहैं गेह तुव तरक जिनि कहो हम समुझि डारी।—सूर (शब्द०)।(ख) प्यारी को मुख धोई कै पट पोंछि सँवारयो तरक बात बहुतै कही कछु सुधि न सँभारयो।—सूर(शब्द०)।

तरक[4]—संज्ञा स्त्री० [सं० तर (= पथ ?)] वह अक्षर या शब्द जो पृष्ठ या पत्रा समाप्त होने पर उसके नीचे किनारे की ओर आगे के पृष्ठ के आरंभ का अक्षर या शब्द सूचित करने के लिये लिखा जाता है।

विशेष—हाथ की लिखी पुरानी पोथियों में इस प्रकार अक्षर या शब्द लिख देने की प्रथा थी जिससे पत्र लगाए जा सकें। पृष्ठों पर अंक देने की प्रथा नहीं थी।

तरक†[5]—संज्ञा पुं० [सं० तर्क (=सोच विचार)] १. अड़चन। बाधा। २. व्यतिक्रम। भूल चूक।

क्रि० प्र०—पड़ना।

तरक[6]—संज्ञा पुं० [अ० तर्क] १. त्याग। परित्याग। २. छूटना।

क्रि० प्र०—करना।

तरकना(पु)†[1]—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'तड़कना'।

तरकना[2]—वि० तड़कना। भड़कनेवाला।

तरकना[3]—क्रि० अ० [सं० तर्क] १. तर्क करना। सोच विचार करना। २. अनुमान करना। उ०—तरकि न सकहि बुद्धि मन बानी। तुलसी (शब्द०)।

तरकना[4]—क्रि० अ० [अनु०] उछलना। कूदना। झपटना। उ०—बार बार रघुबीर सँभारी। तरकेउ पवनतनय बल भारी। —तुलसी (शब्द०)।

तरकश—संज्ञा पुं० [फ़ा० तर्कश] तीर रखने का चोंगा। भाथा। तूणीर।

तरकशबंद—संज्ञा पुं० [फ़ा० तर्कशबंद] तरकश रखनेवाला व्यक्ति।

तरकस—संज्ञा पुं० [फ़ा० तर्कश] दे० 'तरकश'।

तरकसी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० तर्कश] छोटा तरकश। छोटा तूणीर। उ०—धरे धनु सर कर कसे कटि तरकसी पीरे पट ओढ़े चलैं चारु चालु। अंग अंग भूषन जराय के जगमगत हरत जन के जी को तिमिर जालु।—तुलसी (शब्द०)।

तरका(पु)[1]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तड़का'।

तरका[2]—संज्ञा पुं० [अ०] मरे हुए मनुष्य की जायदाद। वह जायदाद जो किसी मरे हुए आदमी के वारिस को मिले।

तरका(पु)†[3]—संज्ञा पुं० [हिं० ताड़] बड़ी तरकी।

तरकारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० तरह (=सब्जी, शाक)+कारी] १. वह पौधा जिसकी पत्ती, जड़, डंठल, फल फूल आदि पकाकर खाने के काम में आते हैं। जैसे, पालक, गोभी, आलू, कुम्हड़ा इत्यादि। शाक। सागपात भाजी। सब्जी। २. खाने के लिये पकाया हुआ फल फूल, कंद मूल, पत्ता आदि। शाक भाजी। ३. खाने योग्य मांस। —(पंजाब)।

क्रि० प्र०—बनाना।

तरकी—संज्ञा स्त्री० [सं० ताडङ्की] कान में पहनने का फूल के आकार का एक गहना।

विशेष—इस गहने का वह भाग जो कान के अंदर रहता है, ताड़ के पत्ते को गोल लपेटकर बनाया जाता है। इससे यह शब्द 'ताड़' से निकला हुआ जान पड़ता है। सं० शब्द 'ताडङ्क' से भी यही सूचित होता है। इसके अतिरिक्त इस गहने को तालपत्र भी कहते हैं। इसे आजकल छोटी जाति की स्त्रियाँ अधिक पहनती हैं। पर सोने के कर्णफूल आदि के लिये भी इस शब्द का प्रयोग होता है।

तरकीब—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. संयोग। मिलान। मेल। २. बनावट। रचना। ३. युक्ति। उपाय। ढंग। ढब। जैसे,—उन्हें यहाँ लाने की कोई तरकीब सोचो। ४. रचना प्रणाली। शैली। तौर। तरीका। जैसे,—इनके बनाने की तरकीब मैं जानता हूँ।

तरकुल†—संज्ञा पुं० [सं० ताल+कुल] ताड़ का पेड़।

तरकुला†—संज्ञा पुं० [हिं० तरकुल] कान में पहनने का एक गहना। तरकी।

तरकुली—संज्ञा स्त्री० [हिं० तरकुल] कान का एक गहना। तरकी। उ०—लछिमन संग बूझै कमल कदंब कहूँ देखी सिय कामिनी तरकुली कनक की।—हनुमान (शब्द०)।

तरक्कना—क्रि० अ० [हिं०] तरकना। उछलना। चमकना। उ०—नवं नह नयफेरि मेरी समालं। तरक्कंत तेगं मनो बिज्जु लालं।—पृ० रा०, १२।८०।

तरक्की—संज्ञा स्त्री० [अ० तरक्क़ी] वृद्धि। बढ़ती। उन्नति। (शरीर, पद एवं वस्तु आदि में)।

क्रि० प्र०—करना।—देना।—पाना।—होना।

तरक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १. लकड़बग्घा। २. चीता [को०]।

तरक्षु—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का बाघ। लकड़बग्घा। चरग। २. चीता (को०)।

तरखा†—संज्ञा पुं० [सं० तरंग] जल का तेज बहाव। तीव्र प्रवाह।

तरखान—संज्ञा पुं० [सं० तक्षण] लकड़ी का काम करनेवाला। बढ़ई।

तरगुलिया—संज्ञा स्त्री० [देश०] अक्षत रखने का एक प्रकार का छिछला बरतन।

तरच्छी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का पौधा जो सजावट के लिये बगीचों में लगाया जाता है।

तरच्छी—वि० स्त्री० [हिं०] तिरछी। टेढ़ी। उ०—संजम जप तप सौं परत, व्रत जुत जोग बिनाए। आँख तरच्छी ईक तौ जीता समझा जाए।—बाँकी० ग्रं०, भा० ३, पृ० ३४।

तरछत(पु)[1]—क्रि० वि० [हिं० तर] नीचे। नीचे की ओर।

तरछत[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तलछट'।

तरछन—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तलछट'।

तरछा—संज्ञा पुं० [हिं० तर (=नीचे)] वह स्थान जहाँ तेली गोबर इकट्ठा करते हैं।

तरछाना(पु)—क्रि० अ० [हिं० तिरछा] तिरछी आँख से इशारा करना। इंगित करना। उ०—अरध जाम जामिनि गए सखिन सकुचि तरछाय। देति बिदा तिय इतहि पिय चितवत चित ललचाय।—देव (शब्द०)।

तरछी—वि० [हिं०] तिरछी। उ—झलकत बरछी तरछी तरवारि बहै। मार मार करत परत पलभन्न है।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० ४८५।

तरज—संज्ञा पुं० [अ० तर्ज] दे० 'तर्ज'।

तरजना—क्रि० अ० [सं० तर्जन] १. ताड़न करना। डाँटना।

डपटना। उ०—गरजति तरजनि सिंह तरजत बरजत सयन नयन के कोए।—तुलसी (शब्द०)। २. भला बुरा कहना। बिगड़ना। ३. गरजना। उ०—सिंह व्याघ्रों का तरजना जिसे सुन विचारी कोमल बालाओं के हृदय का लरजना—इस दुर्ग के बुर्जों ही से बैठे बैठे सुन लो।—श्यामा०, पृ० ७८।

तरजनी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० तर्जनी] अँगूठे के पास की उँगली। उ०—(क) इहाँ कुम्हड़ बतिया कोउ नाहीं। जे तरजनी देखि मरि जाहीं।—तुलसी (शब्द०)। (ख) मत्सय बरजि गर्जिय तरजनी कुम्हिलैहै कुम्हड़े की जई है।—तुलसी (शब्द०)।

तरजनी[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० तर्जन] भय। डर। उ०—अहो रे विहंगम बनवासी। तेरे बोल तरजनी बाढ़ति श्रवनन सुनत नींदऊ नासी।—सूर (शब्द०)।

तरजीला—वि० [सं० तर्जन + हिं० ईला (प्रत्य०)] १. तर्जन करनेवाला। २. क्रोध में भरा हुआ। ३. प्रचंड। तेज। उग्र।

तरजीह—संज्ञा स्त्री० [अ० तर्जीह] वरीयता। प्रधानता। श्रेष्ठता। उ०—वे व्यापकता के ऊपर गहराई को तरजीह देते हैं।—इति० और आलो०, पृ० ८।

तरजुई—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० तराज़ू] छोटी तराजू।

तरजुमा—संज्ञा पुं० [अ० तर्जुमह्] अनुवाद। भाषांतर। उल्था।

तरजुमान—संज्ञा पुं० [अ० तर्जुमान] वह जो अनुवाद करता है [को०]।

तरजौंहा(प)—वि० [हिं०] दे० 'तरजीला'।

तरण—संज्ञा पुं० [सं०] १. नदी आदि को पार करने का काम। पार करना। २. पानी पर तैरनेवाला तख्ता। बेड़ा। ३. निस्तार। उद्धार। ४. स्वर्ग। ५. नौका (को०)। ६. पराजित करना। (को०)।

तरणतारण—वि० [सं०] १. संसार सागर से पार करनेवाला। उ०—शोक धारण करण कारण, तरण तारण विष्णु शंकर।—अर्चना, पृ० ८८। २. नदी या जलाशय से पार करनेवाला।

तरणातप—संज्ञा पुं० [हिं० तरण + सं० आतप] सूर्य की धूप। उ०—तरणातप टोप वगत्तरयं। प्रतबंब चमक्कत पक्खरियं।—रा० रू०, पृ० ८१।

तरणापउ—संज्ञा पुं० [सं० तरुण; राज० तरण + अपउ, हिं० तरणा प्रा० पउ] दे० 'तारुण्य'। उ०—जिम जिम मन अमले कियइ तार चढ़ती जाइ। तिम तिम मारवणी तणइ, तन तरणापउ थाइ।—ढोला०, दू० १२।

तरणि[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य। २. मदार। ३. किरन।

तरणि[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'तरणी'।

तरणिकुमार—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तरणिसुत'।

तरणिजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सूर्य की कन्या, यमुना। २. एक वर्णवृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में एक नगण और एक गुरु होता है। इसका दूसरा नाम 'सती' है। जैसे,—नगपती। बरसती।

तरणितनय—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तरणिसुत'।

तरणितनूजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सूर्य की पुत्री, यमुना।

तरणिधन्य—संज्ञा पुं० [सं०] शिव [को०]।

तरणिपेटक—संज्ञा पुं० [सं०] वह पात्र या कठौता जिससे नाव का पानी उलीचा जाता है [को०]।

तरणिरत्न—संज्ञा पुं० [सं०] माणिक्य [को०]।

तरणिसुत—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य का पुत्र। २. यम। ३. शनि। ४. कर्ण।

तरणिसुता—संज्ञा स्त्री० [सं०] सूर्य की पुत्री। यमुना [को०]।

तरणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नौका। नाव। २. घीकुआर। ३. स्थल कमलिनी।

तरतर—संज्ञा पुं० [अनु०] दे० 'तड़तड़'। उ०—बरखै प्रलय को पानी, न जात काहू पै बखानी, ब्रज हू तें भारी टूटत है तरतर।—नंद० ग्रं०, पृ० ३६२।

तरतराता—वि० [हिं० तर] घी में अच्छी तरह डूबा हुआ (पकवान)। जिसमें से घी निकलता या बहता हो (खाद्यपदार्थ)।

तरतराना(प)[1]—संज्ञा स्त्री० [अनु०] तड़तड़ाना। उ०—फहरान धुजा मनु अंसभानु, कै तड़ित चहूँ दिस तरतरान।—सुजान०, पृ० १७।

तरतराना(प)[2]—क्रि० अ० [अनु०] तड़तड़ शब्द करना। तोड़ने का सा शब्द करना। तड़तड़ाना। उ०—घहरात तरतरात गररात हहरात पररात झहरात माथ नाये।—सूर (शब्द०)।

तरतीब—संज्ञा स्त्री० [अ०] वस्तुओं की अपने ठीक ठीक स्थानों पर स्थिति। यथास्थान रखा या लगाया जाना। क्रम। सिलसिला। जैसे,—किताबें तरतीब से लगा दें।

क्रि० प्र०—करना।—लगाना।—सजाना।

मुहा०—तरतीब देना = क्रम से रखना या लगाना। सजाना।

तरत्समंदीय—संज्ञा स्त्री० [सं० तरत्समन्दीय] वेद के पवमान सूक्त के अंतर्गत एक सूक्त।

विशेष—मनु ने लिखा है कि अप्रतिग्राह्य धन ग्रहण करने या निषिद्ध अन्न भक्षण करने पर इस सूक्त का जप करने से दोष मिट जाता है।

तरदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का कँटीला पेड़।

तरदीद—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. काटने या रद करने की क्रिया। मंसूखी। २. खंडन। प्रत्युत्तर।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

तरद्दुद—संज्ञा पुं० [अ०] सोच। फिक्र। अंदेशा। चिंता। खटका। उ०—एक कमरे तक सीमित रहने पर भी आने जानेवाले यात्रियों और मुझे भी तरद्दुद रहता।—किन्नर०, पृ० ५६।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—तरद्दुद में पड़ना = चिंता में पड़ना।

तरद्दुती—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का पकवान जो घी और दही के साथ माड़े हुए आटे की गोलियों को पकाने से बनता है।

तरन(प)[1]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तरण'।

तरन[2]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तरौना'।

तरनतार—संज्ञा पुं० [सं० तरण] निस्तार । मोक्ष । मुक्ति ।
क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

तरनतारन—संज्ञा पुं० [सं० तरण, हिं० तरना] १. उद्धार । निस्तार । मोक्ष । २. उद्धार करनेवाला । वह जो भवसागर से पार करे ।

तरना[1]—क्रि० स० [सं० तरण] पार करना ।

तरना[2]—क्रि० अ० १. भवसागर से पार होना । मुक्त होना । सद्गति प्राप्त करना । जैसे,—तुम्हारे पुरखे तर जायँगे । २. तैरना न डूबना ।

तरना[3]—क्रि० स० [हिं०] दे० 'तलना' ।

तरना[4]—संज्ञा पुं० [देश०] व्यापारी जहाज का वह अफसर जो यात्रा में व्यापार संबंधी कार्यों का निरीक्षण करता है ।

तरनाग—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की चिड़िया ।

तरनाल—संज्ञा पुं० [देश०] वह रस्सा जिसकी सहायता से पाल को लोहे की धरन में बाँधते हैं । —(लश०) ।

तरनि[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तरणी' ।

तरनि[2]—संज्ञा पुं० दे० 'तरणि' । उ०—तरनि तेज तुलाधार परताप गहिओरे ।—विद्यापति, पृ० ६ ।
यौ०—तरनितनया = सूर्य की पुत्री । यमुना । उ०—तरनितनया तीर जगमगत ज्योतिमय पुहुमि पै प्रगट सब लोक सिरताजै । —घनानंद, पृ० ४६३ ।

तरनिजा—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तरणिजा' ।

तरन्नि—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तरणि' । उ०—भूषन तीखन तेज तरन्नि सों बैरिन को कियो पानिप हीनो ।—भूषण ग्रं०, पृ० ४८ ।

तरनी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० तरणी] १. नाव । नौका । उ०—रातिहि घाट घाट की तरनी । आई अगनित जाहि न बरनी ।—मानस, २।२२० । २. वह छोटा मोढ़ा जिसपर मिठाई का थाल या खोंचा रखते हैं । दे० 'तन्नी' ।

तरनी[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] डमरू के आकार की बनी हुई चीज जिसपर खोमचेवाले अपनी थाली रखते हैं ।

तरन्नुम—संज्ञा पुं० [अ०] आलाप ।

तरप—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तड़प' ।

तरपट[1]—वि० [हिं० तिरपट] (चारपाई) जो टेढ़ी हो । जिसमें तीन ही पाटी सीधी हो ।

तरपट[2]—संज्ञा पुं० टेढ़ापन । भेद ।

तरपत—संज्ञा पुं० [सं० तृप्ति] १. सुपास । सुबीता । २. आराम । चैन । उ०—बूँदी सम सर तजत खंड मंडत पर तरपत ।—गोपाल (शब्द०) ।

तरपटी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'त्रिकुटी' । उ०—जुग पानि नाभि ताली बनाय । रमि दिष्ट सिष्ट गिरबान राय । तरपटी साख सिख कमल मूर । इष्टि मंति भाव तप तपनि जूर ।—पृ० रा०, १ । ५०४ ।

तरपन(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तर्पण' । उ०—तरपन होम करहिं बिधि नाना ।—मानस, २ । १२६ ।

तरपना(पु)†—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'तड़पना' उ०—तरपै जिमि बिज्जुल सी पिय पै झरपै झननाय सबै घर में ।—सुंदरी-सर्वस्व (शब्द०) ।

तरपर—क्रि० वि० [हिं० तर + पर] १. नीचे ऊपर । २. एक के पीछे दूसरा ।

तरपरिया—वि० [हिं०] १. नीचे ऊपर का । २. पहला और दूसरा (संतान) । क्रम से पहला और बाद का (बच्चा) ।

तरपीला(पु)—वि० [हिं० तड़प + ईला प्रत्य०] तड़पवाला । चमकदार ।

तरपू—संज्ञा पुं० [देश०] एक बड़ा पेड़ ।
विशेष—इसकी लकड़ी मजबूत और भूरे रंग की होती है और मकानों में लगती है । यह पेड़ मलाबार और पच्छिमी घाट के पहाड़ों में पाया जाता है ।

तरफ—संज्ञा स्त्री० [अ० तरफ़] १. ओर । दिशा । अलंग । जैसे, पूरब तरफ । पश्चिम तरफ । २. किनारा । पार्श्व । बगल । जैसे, दाहिनी तरफ । बाईं तरफ । ३. पक्ष । पासदारी । जैसे,—(क) लड़ाई में तुम किसकी तरफ रहोगे ? (ख) हम तुम्हारी तरफ से बहुत कुछ कहेंगे ।
यौ०—तरफदार ।

तरफदार—वि० [अ० तरफ + फ़ा० दार (प्रत्य०)] पक्ष में रहनेवाला । साथी या सहायता देनेवाला । पक्षपाती । हिमायती । समर्थक ।

तरफदारी—संज्ञा स्त्री० [अ० तरफ + फ़ा० दारी (प्रत्य०)] पक्षपात ।
क्रि० प्र०—करना ।

तरफना—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'तड़फना' । उ०—यातें धनि मीलनि की तिया । हुलनि कछु तरफति है हिया । —नंद० ग्रं०, पृ० २९६ ।

तरफराना—क्रि० अ० [अनु०] दे० 'तड़फड़ाना' ।

तरब—संज्ञा पुं० [हिं० तरपना, तड़पना] सारंगी में वे तार जो तांत के नीचे एक विशेष क्रम से लगे रहते हैं और सब स्वरों के साथ गूँजते हैं ।

तर बतर—वि० [फ़ा०] भीगा हुआ । आर्द्र । शराबोर ।

तरबन[1]—संज्ञा पुं० [सं० ताल + हिं० बन] ताड़ का बन ।

तरबन्ना[2]—संज्ञा पुं० [सं० ताडपर्ण] दे० 'तरवन' ।

तरबहना—संज्ञा पुं० [हिं० तर + बहना] थाली के आकार का ताँबे या पीतल का एक बरतन जो प्राय: ठाकुरजी को स्नान कराने के काम में लाया जाता है ।

तरबियत—संज्ञा स्त्री० [अ० तर्बियत] १. पालन पोषण करना । देखरेख या परवरिश करना । २ शिक्षा । ३. सभ्यता और शिष्टाचार की शिक्षा (को०) ।

तरबूज—संज्ञा पुं० [फ़ा० तरबुज, तरबुजह्] एक प्रकार की बेल जो

जमीन पर फैलती है और जिसमें बहुत बड़े बड़े गोल फल लगते हैं। कलींदा। कालिंद। कलिंग।

विशेष—ये फल खाने के काम में आते हैं। पके फलों को काटने पर इनके भीतर झिल्लीदार लाल या सफेद गूदा तथा मीठा रस निकलता है। बीजों का रंग लाल या काला होता है। गरमी के दिनों में तरबूज तरावट के लिये खाया जाता है। पकने पर भी तरबूज के छिलके का रंग गहरा हरा होता है। यह बलुए खेतों में, विशेषतः नदी के किनारे के रेतीले मैदानों में जाड़े के अंत में बोया जाता है। संसार के प्रायः सब गरम देशों में तरबूज होता है। यह दो तरह का होता है—एक फसली या वार्षिक, दूसरा स्थायी। स्थायी पौधे केवल अमेरिका के मेक्सिको प्रदेश में होते हैं जो कई साल तक फलते फूलते रहते हैं।

तरबूजई—वि०संज्ञा पुं० [फ़ा० तरबुज़ह्+ई (प्रत्य०)] दे० 'तरबूजिया'।

तरबूजा—संज्ञा पुं० [फ़ा० तरबूज़ह्] १. दे० 'तरबूज'। २. ताजा फल।

तरबूजिया¹—वि० [हिं० तरबूज] तरबूज के छिलके के रंग का। गहरा हरा। काही।

तरबूजिया²—संज्ञा पुं० गहरा हरा रंग।

तरबोना¹—क्रि० स० [हिं० तर+बोरना] तर करना। अच्छी तरह भिगोना।

तरबोना²—क्रि० अ० तर होना। भीगना।

तरबोर—वि० [हिं०] दे० 'सराबोर'। उ०—बूड़े गए तरबोर को कहुँ खोज न पाया।—मलूक० पृ० १८।

तरभर†—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. तड़भड़ की आवाज। २. खलबली।

तरमाची—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तरवाँची'।

तरमाना†¹—क्रि० अ० [देश०] बिगड़ना। नाखुश होना।

तरमाना²—क्रि० स० किसी को नाराज या नाखुश करना।

तरमाना³—क्रि० अ० [हिं० तर+माना (प्रत्य०)] तर होना।

तरमाना⁴—क्रि० स० तर करना।

तरमानी—संज्ञा स्त्री० [देश०] वह तरी जो जोती हुई भूमि में आती है।

क्रि० प्र०—आना।

तरमिरा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पौधा जो प्रायः डेढ़ दो हाथ ऊँचा होता है और पश्चिमी भारत में जौ या चने के साथ बोया जाता है। तिरा। तिउरा।

विशेष—इसके बीजों से तेल निकलता है जो प्रायः जलाने के काम में आता है।

तरमीम†—संज्ञा स्त्री० [अ०] संशोधन। दुरुस्ती।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

तरय्या—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तरई'। उ०—जो विशाखा की तरय्याँ चंद्रकला को बड़ाई करें तो क्या अचंभा है।—शकुंतला, पृ० ५१।

तरराना†—क्रि० अ० [अनु०] ऐंठना। एड़ाना।

तरलंग—वि० [सं० तरलङ्ग] चपल, चंचल। उ०—मैं जेहल कीना अमर, तैं दीना तरलंग।—बाकी० ग्रं०, भा० ३, पृ० ७।

तरल¹—वि० [सं०] १. हिलता डोलता। चलायमान। चंचल। चल। उ०—लसत सेत सारी ढक्यो तरल तरौना कान।—बिहारी (शब्द०)। २. अस्थिर। क्षणभंगुर। ३. (पानी की तरह) बहनेवाला। द्रव। ४. चमकीला। भास्वर। कांतिवान्। ५. खोखला। पोला। ६. विस्तृत (को०)। ७. लंपट (को०)।

तरल²—संज्ञा पुं० १. हार के बीच की मणि। २. हार। ३. हीरा। ४. लोहा। ५. एक देश तथा वहाँ के निवासियों का नाम (महाभारत)। ६. तल। पेंदा। ७. घोड़ा।

तरलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चंचलता। २. द्रवत्व।

तरलनयन—संज्ञा पुं० [सं०] एक वर्णवृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में चार नगण होते हैं। उ०—नचत सुघर सखिन सहित। थिरकि थिरकि फिरत मुदित।

तरलभाव—संज्ञा पुं० [सं०] १. पतलापन। २. चंचलता। चपलता।

तरला¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. यवागू। जौ की माँड़। २. मदिरा। ३. मधुमक्षिका। शहद की मक्खी।

तरला²—संज्ञा पुं० [हिं० तर] छाजन के नीचे का बाँस।

तरलाई(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० तरल+हिं० आई (प्रत्य०)] १. चंचलता। चपलता। २. द्रवत्व।

तरलायित¹—वि० [सं०] हिलाया हुआ। कँपाया हुआ। [को०]।

तरलायित²—संज्ञा स्त्री० लहर। तरंग। हिलोर [को०]।

तरलित—वि० [सं०] १. तरल किया हुआ। उ०—कहो कैसे मन को समझा लूँ, झंझा के द्रुत आघातों सा द्युति के तरलित उत्पातों सा, था वह प्रणय तुम्हारा प्रियतम।—इत्यलम्, पृ० २७।

तरवँछ†—संज्ञा स्त्री० [हिं० तर+वँछ (प्रत्य०)] जुए के नीचे की लकड़ी जो बैलों के गले के नीचे रहती है। तरवाँची।

तरवट—संज्ञा पुं० [सं०] एक क्षुप। आहुल्य। दंतकाष्ठक [को०]।

तरवड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० तुला+ड़ी (प्रत्य०)] छोटी तराजू का पलड़ा।

तरवन—संज्ञा पुं० [सं० तालपर्ण] १. कान में पहनने का एक गहना। तरकी। २. कर्णफूल।

तरवर¹—संज्ञा पुं० [सं० तरुवर] बड़ा पेड़। वृक्ष।

तरवर²—संज्ञा पुं० [सं० तरुवर] एक प्रकार का लंबा पेड़ जिसकी छाल से चमड़ा सिझाया जाता है।

विशेष—यह मध्यभारत और दक्षिण में बहुत पाया जाता है। इसे तरोता भी कहते हैं।

तरवरा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तिरमिला'।

तरवरिया†—संज्ञा पुं० [हिं० तरवार] तलवार चलानेवाला।

तरवरिहा†—संज्ञा पुं० [हिं० तरवार] दे० 'तरवरिया'।

तरवाँची—संज्ञा स्त्री० [हिं० तर+माथा] जुए के नीचे की लकड़ी। मचेरी।

तरवाँसी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तरवाँची'।

तरवा†—संज्ञा पुं० [हिं० तलवा] दे० 'तलवा'। उ०—अंगुरीन लौं जाय भुलाय तहीं फिरि आय लुभाय रहै तरवा। चपि चायनि चूर ह्वै एड़िनि छ्वै चपि धाय छकै छबि छाय छवा। —घनानंद, पृ० ८।

तरवाई, सिरवाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० तर+सिर] ऊँची जमीन और नीची जमीन। पहाड़ और घाटी।

तरवाना¹—क्रि० अ० [हिं० तरवा+आना] १. बैलों के तलवों का चलते चलते घिस जाना जिससे वे लँगड़ाते हैं। २. बैलों का लँगड़ाना।

संयो० क्रि०—जाना।

तरवाना²—क्रि० स० [हिं० तारना का प्रे०रूप] तारने की प्रेरणा करना।

तरवार¹—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तलवार'।

तरवार⑤²—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तरवर'।

तरवार³—वि० [हिं० तर (=नीचा, तले)+वार (प्रत्य०)] निचली। खलार (भूमि)।

तरवारि—संज्ञा पुं० [सं०] खड्ग का एक भेद। तलवार। उ०—रोष न रसना खनि खोलिए बरु खोलिए तरवारि।—तुलसी (शब्द०)

तरवारी†—संज्ञा पुं० [हिं० तरवार] तलवार चलानेवाला।

तरस्—संज्ञा पुं० [सं०] १. बल। २. वेग। ३. बानर। ४. रोग। ५. तीर। तट।

तरस¹—संज्ञा पुं० [सं० त्रस(=डरना) अथवा फ़ा० तर्स (=भय, डर, खौफ)] दया। करुणा। रहम।

क्रि० प्र०—आना।

मुहा०—(किसी पर) तरस खाना = दयार्द्र होना। दया करना। रहम करना।

विशेष—इस शब्द का यह अर्थ विपर्यय द्वारा आया हुआ जान पड़ता है। जो मनुष्य भय प्रकाशित करता है, उसपर दया प्रायः की जाती है।

तरस²—संज्ञा पुं० [सं०] मांस [को०]।

तरसना¹—क्रि० अ० [सं० तर्षण(=अभिलाषा)] किसी वस्तु के अभाव में उसके लिये इच्छुक और आकुल रहना। अभाव का दुःख सहना। (किसी वस्तु को) न पाकर बेचैन रहना। जैसे,—(क) वहाँ लोग दाने दाने को तरस रहे हैं। (ख) कुछ दिनों में तुम उन्हें देखने के लिये तरसोगे। उ०—दरसन बिनु अँखियाँ तरस रहीं। —(गीत)।

संयो० क्रि०—जाना।

तरसना²—क्रि० अ० [सं०√त्रस्] त्रस्त होना।

तरसना³—क्रि० स० त्रस्त करना। त्रास देना।

तरसा—क्रि० वि० [सं० तरस्] शीघ्र। उ०—कमललोचन क्या कल आ गए, पलट क्या कुकपाल क्रिया गई। मुरलिका फिर क्यों वन में बजी। बन रसा तरसा बरसा सुधा।—प्रिय०, पृ० २२८।

तरसान—संज्ञा पुं० [सं०] नौका [को०]।

तरसाना—क्रि० स० [हिं० तरसना] १. अभाव का दुःख होना। किसी वस्तु को न देकर या न प्राप्त कराकर उसके लिये बेचैन करना। २. किसी वस्तु की इच्छा और आशा उत्पन्न करके उससे वंचित रखना। व्यर्थ ललचाना।

संयो० क्रि०—डालना।—मारना।

तरसि—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'तरसा'। उ०—तरसि पधार हुआ तय्यारी। वीर तणी आयो व्रतधारी।—रा० रू०, पृ० १८।

तरसौहाँ⑤—वि० [हिं० तरसना+औहाँ (प्रत्य०)] तरसनेवाला। उ०—तिय तरसौंहैं मुनि किए करि सरसौंहैं नेह। धर परसौंहैं ह्वै रहे झर बरसौंहैं मेह।—बिहारी (शब्द०)।

तरस्वान्—वि०[सं० तरस्वत्]१. तेज गतिवाला। वेगवान्। २. वीर। ३. बीमार तरुण [को०]।

तरस्वान्²—संज्ञा पुं० १ शिव। २. गरुड़। ३. वायु [को०]।

तरस्वी¹—वि० [सं० तरस्विन्] [वि० स्त्री० तरस्विनी] १. दृढ़। बली। उ०—बली, मनस्वी, तेजस्वी, सूर, तरस्वी जानि। ऊर्ज, प्रवणि, भास्वरि, सुभट, राधे जिन करि मान।—नंद० ग्रं०, पृ० ११३। २. वेगवान्। फुर्तीला।

तरस्वी²—संज्ञा पुं० १. धावक। दूत। २. नायक। वीर। ३. पवन। वायु। ४. गरुड़ [को०]।

तरह—संज्ञा स्त्री० [अ०] प्रकार। भाँति। किस्म। जैसे,—यहाँ तरह तरह की चीजें मिलती हैं।

मुहा०—किसी की तरह=किसी के सदृश। किसी के समान। जैसे,—उसकी तरह काम करनेवाला यहाँ कोई नहीं है।

२. रचना प्रकार। ढाँचा। शैली। डौल। पद्धति। बनावट। रूपरंग। जैसे,—इस छींट की तरह अच्छी नहीं है। ३. ढब। तर्ज। प्रणाली। रीति। ढंग। जैसे,—वह बहुत बुरी तरह से पढ़ता है।

मुहा०—तरह उड़ाना = ढंग की नकल करना।

४. युक्ति। ढंग। उपाय। जैसे,—किसी तरह से उनसे रुपया निकालो।

मुहा०—तरह देना=(१) खयाल न करना। बचा जाना। विरोध या प्रतिकार न करना। क्षमा करना। जाने देना। उ०—इन तेरह तें तरह दिए बनि आवै साईं।—गिरिधर (शब्द०)। (२) टालटूल करना। ध्यान न देना।

५. हाल। दशा। अवस्था। जैसे,—आजकल उनकी क्या तरह है?

६. समस्या। पद्य का एक चरण।

मुहा०—तरह देना = पूर्ति के लिये समस्या देना।

७. न्यास। नीव। बुनियाद। ८. घटाना। बाकी। व्यवकलन। तफरीक। ९. वेशभूषा। पहनावा।

तरहटी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तर (=नीचे)+हट (प्रत्य०)] १. नीची भूमि। २. पहाड़ की तराई।

तरहदार—वि० [अ० तरह+फा० दार (प्रत्य०)] १. सुंदर बनावट का। अच्छी चाल या ढाँचे का। जिसकी रचना मनोहर हो। जैसे, तरहदार छींट। २. सजधजवाला। शौकीन। वजादार। जैसे, तरहदार आदमी।

तरहदारी—संज्ञा स्त्री० [फा०] वजादारी। सजधज का ढंग।

तरहर[1]—क्रि० वि० [हिं० तर+हर (प्रत्य०)] तले। नीचे। उ०—जम करि मुँह तरहर परयो इहि धर हरि चित लाइ। विषय त्रिषा परिहरि अजौं नर हरि के गुन गाइ।—बिहारी (शब्द०)।

तरहर[2]—वि० १. नीचा। तले का। नीचे का। २. निकृष्ट। बुरा।

तरहरिⓅ—क्रि० वि० [हिं० तर+हरि (प्रत्य०)] नीचे।

तरहा—संज्ञा पुं० [हिं० तर + हा (प्रत्य०)] १. कुआँ खोदने में एक माप जो प्राय. एक हाथ की होती है। २. वह कपड़ा जिसपर मिट्टी फैलाकर कड़ा ढालने का साँचा बनाते हैं।

तरहारिⓅ—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'तरहर'।

तरहेलⓅ†—वि० [हिं० तर + हर, हल (प्रत्य०)] १. अधीन। निम्नस्थ। २ वश में आया हुआ। पराजित। उ०—तौ चौपड़ खेलौं करि हीया। जो तरहेल होय सो तीया।—जायसी (शब्द०)।

तरांधु—संज्ञा पुं० [सं० तरान्धु] चौड़े पेंदे की नाव [को०]।

तराँ[1]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तराना'।

तराँ[2]—अव्य [सं० तदा] तब। उ०—मन्नो जरा विवाह रो, तरां विचारी होल।—रा० रू०, पृ० ८२।

तरा†[1]—संज्ञा पुं० [देश०] पटुआ। पटसन।

तरा[2]—संज्ञा पुं० [हिं० तला] १. दे० 'तला'। २. दे० 'तलवा'।

तराई[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० तर (= नीचे)+आई (प्रत्य०)] १. पहाड़ के नीचे की भूमि। पहाड़ के नीचे का वह मैदान जहाँ सीड़ या तरी रहती है। जैसे, नैपाल की तराई। २. पहाड़ों की घाटी। ३ मूँज के मुट्ठे जो छाजन में खपड़ों के नीचे दिए जाते हैं।

तराई†[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० तारा] तारा। नक्षत्र।

तराई[3]—संज्ञा स्त्री० [हिं० तलाई] छोटा ताल। तलैया।

तराशⓅ—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० तराश (= काट छाँट)] दे० 'तराश'। उ०—अंचर फारि कागज करूँ, एजी कोई ऊँगली तराश कलम।—पोद्दार० अभि० ग्रं०, पृ० ९४५।

तराजू—संज्ञा स्त्री०, पुं० [फ़ा० तराजू] रस्सियों के द्वारा एक सीधी डाँड़ी के छोरों से बँधे हुए दो पलड़ों का एक यंत्र जिससे वस्तुओं की तौल मालूम करते हैं। तौलने का यंत्र। तुला। तकड़ी।

मुहा०—तराजू हो जाना = (१) तीर का निशाने के इस प्रकार आरपार घुसना कि उसका आधा भाग एक ओर, और आधा दूसरी ओर निकला रहे। (२) दो सैनिक दलों का इस प्रकार ठीक ठीक बराबर होना कि एक दूसरे को परास्त कर सके।

तराटकⓅ—संज्ञा पुं० [सं० त्राटक] दे० 'त्राटक'। उ०—त्रि संग भ्रूभंग तराटक नैन नैन लगि लागे।—पोद्दार० अभि० ग्रं०, पृ० ११८।

तरातरⓅ†—वि० [फ़ा० तर (= गीला)] अत्यंत गीला। उ०—चलत पिचुका अरु पिचकारी करत तरातर।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ३४।

तरात्यय—संज्ञा पुं० [सं०] बिना आज्ञा लिए नदी पार करने का जुरमाना [को०]।

तराना[1]—संज्ञा पुं० [फ़ा० तरानह्] १. एक प्रकार का चलता गाना जिसका बोल इस प्रकार का होता है—दिर दिर ता दिर ना रे दे दी मृ ता दी मृ ता ना ना दे रे ता दा रे दा नि ना ना दे रे ना ता ना ना दे रे ना ता ना ना ता ना ता दे रता रे दा नी।

विशेष—तराना हर एक राग का हो सकता है। इसमें कभी कभी सरगम और तबले के बोल भी मिला दिए जाते हैं।

२. कोई अच्छा गाना। बढ़िया गीत।—(क्व०)।

तराना[2]—क्रि० स० [हिं०] दे० 'तैराना'।

तराना†[3]—क्रि०अ० [हिं० तर से नामिक धातु] दे० 'तरियाना'।

तरापⓅ†—संज्ञा स्त्री० [अनु०] तड़ाक शब्द। बंदूक, तोप आदि का शब्द। उ०—सैन अफमान सैन सगर सुनन लागी कीं तराप की तराप तोपखाने की।—भूषण (शब्द०)।

तरापा†[1] संज्ञा पुं० [अनु०] हाहाकार। कुहराम। त्राहि त्राहि। उ०—परी धर्मसुत शिविर तरापा। गजपुर सकल शोक कौंपा।—सबलसिंह (शब्द०)।

तरापा[2]—संज्ञा पुं० [हिं० तरना] पानी में तैरता हुआ शहतीरों का बेड़ा।—(लश०)।

तराबोर—वि० [फ़ा० तर+हिं० बोरना, शुद्ध रूप फ़ा० शराबोर] खूब भीगा हुआ। खूब डूबा हुआ। सराबोर।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

तरामल—संज्ञा पुं० [हिं० तर (= नीचे)] १. मूँज के वे मुट्ठे जो छाजन में खपरैल के नीचे दिए जाते हैं। २. जुए के नीचे की लकड़ी।

तरामीरा—संज्ञा पुं० [देश०] सरसों की तरह का एक पौधा जिसके बीजों से तेल निकलता है।

विशेष—उत्तरीय भारत में जाड़े की फसल के साथ इसके बीज बोए जाते हैं। रबी की फसल के साथ इसके दाने भी पक जाते हैं। पत्तियाँ चारे के काम में आती हैं। तेल निकाले हुए बीजों की खली भी चौपायों को खिलाई जाती है। इसे दुआँ भी कहते हैं।

तरायल†—वि० [देश०] तेज। वेगवान्। फुर्तीला। त्वरावान्। शीघ्रग। उ०—आगे आगे तरुन तरायले चलत चले।—भूषण ग्रं०, पृ० ७३।

तरारा[1]—संज्ञा पुं० [देश० या अनु० ?] १. उछाल। छलाँग। कुलाँच।

क्रि० प्र०—भरना।—मारना।

मुहा०—तरारा भरना = जल्दी जल्दी काम करना। फर्राटे के साथ काम करना। तरारा मारना = डींग हाँकना। बढ़ बढ़कर बातें करना।

२. पानी की धार जो बराबर किसी वस्तु पर गिरे।

तरारा(पु)[2]—वि० [फ़ा० तर + हिं० आरा (प्रत्य०)] गीला। सजल। आर्द्र। उ०—आइ जब मोहन रंग भरे। क्यों मो नैन तरारे करे।—नंद० ग्रं०, पृ० १५२।

तरालु—संज्ञा पुं० [सं०] छिछले पेंदे की एक बड़ी नाव (को०)।

तरावट—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० तर + हिं० आवट (प्रत्य०)] १. गीलापन। नमी। २. ठंढक। शीतलता। जैसे,—सिर पर पानी पड़ने से तरावट आ गई।

क्रि० प्र०—आना।

३. स्वांत चित्त को स्वस्थ करनेवाला शीतल पदार्थ। शरीर की गरमी शांत करनेवाला आहार आदि। ४. स्निग्ध भोजन। जैसे, घी, दूध आदि।

तराश—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. काटने का ढंग। काट। २. काट-छाँट। बनावट। रचनाप्रकार।

यौ०—तराश खराश।

३. ढंग। तर्ज। ४ ताश या गंजीफे का वह पत्ता जो काटने के बाद हाथ में आवे।

तराश खराश—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] काटछाँट। कतरब्योंत। बनावट।

तराशना—क्रि० स० [फा०] काटना। कतरना। कलम करना।

तरास‡[1]—संज्ञा पुं० [सं० त्रास] दे० 'त्रास'।

तरास[2]—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० तराश] दे० 'तराश'।

तरासना(पु)†—क्रि० स० [सं० त्रास + ना (प्रत्य०)] भय दिखलाना डराना। त्रस्त करना। उ०—चमक बीजु घन गरजि तरासा। बिरह काल होइ जीव गरासा।—जायसी (शब्द०)।

तरासा†[1]—वि० [सं० तृषित] प्यासा।

तरासा‡[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० तृषा] प्यास।

तराहि‡—अव्य० [सं० त्राहि] दे० 'त्राहि'।

तराहीं† —क्रि० वि० [हिं०] दे० 'तरे'।

तरिंदा—संज्ञा पुं० [हिं० तरना + इंदा (प्रत्य०)] वह पीपा जो समुद्र में किसी स्थान पर लंगर के द्वारा बाँध दिया जाता है और लहरों के ऊपर उतराया रहता है।—(लश०)।

विशेष—ये पीपे चट्टान आदि की सूचना के लिये बाँधे जाते हैं और कई आकार प्रकार के होते हैं। इनमें से किसी किसी में घंटा, सीढ़ी आदि भी लगी रहती है।

तरि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नौका। नाव। २. कपड़ों का पिटारा। ३. कपड़े का छोर। दामन।

तरिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. जल में तैरनेवाली लकड़ी। बेड़ा। २. नाव का महसूल लेनेवाला। उतराई लेनेवाला। ३. मल्लाह। केवट। माँझी।

तरिका[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नाव। नौका। २. मक्खन (को०)।

तरिका[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० तडित्] बिजली। विद्युत।

तरिकी—संज्ञा पुं० [सं० तरिकिन्] माँझी। मल्लाह (को०)।

तरिको†—संज्ञा पुं० [सं० ताडङ्क] कान का एक गहना। तरकी। तरौना। उ०—सै बल तोरयो हार नोसरि को मोती बगरि रहे सब बन में गयो कान को तरिको।—सूर (शब्द०)।

तरिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] तरणी (को०)।

तरिता[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तर्जनी उँगली। २. भाँग। ३. गाँजा।

तरिता(पु)[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० तड़ित्] बिजली। उ०—झरपै झपै काँपै कहूँ तरिता तरपै पुनि लाल छटा में घिरी।—पद्माकर (शब्द०)।

तरित्र—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० तरित्री] बड़ी नाव। नौका। पोत। (को०)।

तरित्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] नाव। नौका (को०)।

तरिया†—[हिं० तरना] तैरनेवाला।

तरियाना†—क्रि० स० [हिं० तरे (= नीचे)] १. नीचे कर देना। नीचे डाल देना। तह में बैठा देना। २ ढाँकना। छिपाना। ३. बटुए के पेंदे में मिट्टी राख आदि पोतना जिससे आँच पर चढ़ाने में उसमें कालिख न जमे। लेवा लगाना।

तरियाना[2] क्रि० अ० तले बैठ जाना। तह में जमना।

तरियाना[3] क्रि० स० [फा० तर से नामिक धातु] तर करना। गीला करना।

तरिवन संज्ञा पुं० [हिं० तरि] १ कान का एक गहना। जो फूल के आकार का होता है। तरकी।

विशेष—इसका वह भाग जो कान के छेद में रहता है, ताड़ के पत्ते को लपेटकर बनाया जाता है।

२ कर्णफूल।

तरिवर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० तरु + वर] दे० 'तरुवर'।

तरिहँत†—क्रि० वि० [हिं० तर + अंत, हंत (प्रत्य०)] नीचे। तले। उ० बृषि जो गई दै हिय बौराई। गर्व गयो तरिहँत सिर नाई।—जायसी (शब्द०)।

तरी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ नाव। नौका। २. गदा। ३. कपड़ा रखने का पिटारा। पेटी। ४. धूम्र। धूम। ५. कपड़े का छोर। दामन।

तरी[2] संज्ञा स्त्री० [फा०] १ गीलापन। आर्द्रता। २. ठंढक। शीतलता। ३. वह नीची भूमि जहाँ बरसात का पानी बहुत दिनों तक इकट्ठा रहता हो। कछार। ४. तराई। तरहटी। ५. समृद्धि। धनाढ्यता। मालदारी।

तरी[3]—संज्ञा स्त्री० [हिं० तर (= नीचे)] १. जूते का तला। २. तलछट। तलौंछ।

तरी(पु)४—संज्ञा स्त्री० [हिं० ताड़] कान का एक गहना। तरिवन। कर्णफूल। उ०—काने कनक तरी बर बेसरि सोहहि।—तुलसी (शब्द०)।

तरी५—संज्ञा स्त्री० [हिं०] चाल। मृणाल। उ०—जैसे सुंदर कमल को हंस ग्रहण करे तैसे पिता का चरण ग्रहण किया। जैसे कमल के तरे कोमल तरियाँ होती हैं, तिन तरियों सहित कमल को हंस पकड़ता है, तैसे दशरथ जी की अंगुरीन को राम जी ने ग्रहण किया।—योग०, पृ० १३।

तरीक१—क्रि० वि० [देश० तड़का, तड़के] प्रात:काल। तड़का। सबेरा। उ०—कहै साहि गोरी गवन यहो थान तत्तार। कल्हि तरीक सुउंच बिन चढि अरि सद्यो सार।—पृ० रा०, ६।६३।

तरीक२—संज्ञा पुं० [अ० तरीक़] १. मार्ग। रास्ता। शैली। रविश। उ०—बाद चंदे हुजरते शेखे शफ़ीक़, आक़िफ़े असरारे हक़ हादी तरीक।—दक्खिनी०, पृ० २०३। २. परंपरा। रिवाज। ३. धर्म। मजहब। ४. युक्ति। तरकीब। ५. नियम। दस्तूर।

तरीकत—संज्ञा स्त्री० [अ० तरीक़त] १. आत्मशुद्धि। अंत:शुद्धि। दिल की पवित्रता। २. ब्रह्मज्ञान। अध्यात्म। तसव्वुफ़। उ०—यूँ ले निद्रा सुख सपने का जागा कन बैठे, राहु तरीकत मारग उनके मुस्तैद होकर उठे।—दक्खिनी०, पृ० ५५।

तरीका—संज्ञा पुं० [अ० तरीक़ह्] १. ढंग। विधि। रीति। प्रकार। ढब। २. चाल। व्यवहार। ३. युक्ति। उपाय। तदबीर। तरकीब।

तरीष—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूखा गोबर। २. नौका। नाव। ३. पानी में बहनेवाला तख्ता। बेड़ा। ४. समुद्र। ५. व्यवसाय। ६. स्वर्ग। ७. कुशल व्यक्ति (को०)। ८. सजावट (को०)। ९. सुंदर आकार या आकृति (को०)।

तरीषी—संज्ञा स्त्री० [सं०] इंद्र की कन्या।

तरु१—संज्ञा पुं० [सं०] १. वृक्ष। पेड़। २. गति। वेग (को०)। ३. काठ का एक पात्र जिसमें सोम लिया जाता था (को०)। ४. एक प्रकार का चीड़ जिसके पेड़ खसिया की पहाड़ी, चटगाँव और बरमा में होते हैं।

विशेष—इसमें से जो बिरोजा या गोंद निकलता है, वह सबसे अच्छा होता है। तारपीन का तेल भी इससे बहुत अच्छा निकलता है।

तरु२—वि० रक्षक। रक्षा करनेवाला।

तरुआ१—संज्ञा पुं० [देश०] उबाले हुए धान का चावल। भुजिया चावल।

तरुआ२—संज्ञा पुं० [हिं० तलवा] दे० 'तलवा'।

तरुटी‡—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'त्रुटि'। उ०—भंडारा समाप्त हो गया। कोई तरुटी नहीं हुई।—मैला०, पृ० ४८।

तरुण१—वि० [सं०] [वि० स्त्री० तरुणी] १. युवा। जवान। २. नया। नूतन।

तरुण२—संज्ञा पुं० १. बड़ा जीरा। स्थूल जीरक। २. एरंड। रेंड़। ३. कूजा का फूल। मोतिया।

तरुणक—संज्ञा पुं० [सं०] अंकुर [को०]।

तरुणज्वर—संज्ञा पुं० [सं०] वह ज्वर जो सात दिन का हो गया हो।

तरुणतरणि—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तरुण सूर्य'।

तरुणदधि—संज्ञा पुं० [सं०] पाँच दिन का दही।

विशेष—वैद्यक के अनुसार ऐसा दही खाना हानिकारक है।

तरुणपीतिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] मैनसिल।

तरुणसूर्य—संज्ञा पुं० [सं०] मध्याह्न का सूर्य।

तरुणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] युवती। उ०—भव अर्णव की तरणी तरुणा। बरसीं तुम नयनों से करुणा।—अर्चना०, पृ० १।

तरुणाई(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० तरुण + आई (प्रत्य०)] युवावस्था। जवानी।

तरुणाना(पु)—क्रि० अ० [सं० तरुण + आना (प्रत्य०)] जवानी पर आना। युवावस्था में प्रवेश करना।

तरुणास्थि—संज्ञा स्त्री० [सं०] पतली लचीली हड्डी।

तरुणिमा—संज्ञा स्त्री० [सं० तरुणिमन्] जवानी [को०]।

तरुणी१—वि० स्त्री० [सं०] युवती। जवान स्त्री।

तरुणी२—संज्ञा स्त्री० १. युवती। जवान स्त्री।

विशेष—भावप्रकाश के अनुसार १६ वर्ष से लेकर ३२ वर्ष तक की स्त्री को तरुणी कहना चाहिए।

२. घीकुआर। ग्वारपाठा। ३. दंती। जमालगोटा। ४. चीड़ा नामक गंधद्रव्य। ५. कूजा का फूल। मोतिया। ६. मेघ राग की एक रागिनी।

तरुणीकटाक्षमाल—संज्ञा स्त्री० [सं०] तिलक वृक्ष।

विशेष—कवि समय के अनुसार तिलक का वृक्ष तरुणियों की कटाक्ष दृष्टि से पुष्पित होता है। अतः इसका एक नाम 'तरुणीकटाक्षमाल' है।

तरुतूलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] चमगादड़।

तरुन(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० तरुण] दे० 'तरुण'।

तरुनई(पु)‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० तरुन+ई (प्रत्य०)] दे० 'तरुनाई'।

तरुना(पु)—वि० स्त्री० [हिं०] दे० 'तरुण'। उ०—ऐसे बिरह बिकल कल बैन। सुनि कै तरुना करुना ऐन।—नंद ग्रं०, पृ० ३२१।

तरुनाई(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० तरुण + हिं० आई (प्रत्य०)] तरुणावस्था। जवानी।

तरुनापा(पु)—संज्ञा पुं० [सं० तरुण + हिं० आपा (प्रत्य०)] युवावस्था। जवानी। उ०—बालापन खेलत में खोयो तरुनापै गरबानो।—सूर (शब्द०)।

तरुनी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० तरुणी] दे० 'तरुणी'। उ०—ब्रज तरुनि रमन आनंदघन चालकी निसद अद्भुत अखंडित जगत जानी।—घनानंद, पृ० ३८६।

तरुबाँही(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० तरु + हिं० बाँह] पेड़ की भुजा। शाखा। डाल। उ०—इक संशय फल है तरु माहीं। पाँच कोटि दल हैं तरुबाँही।—सदल मिश्र (शब्द०)।

तरुभुक्—संज्ञा पुं० [सं० तरुभुक्] बंदाक। बाँदा।

तरुभुज—संज्ञा पुं० [सं० तरुभुक्] दे० 'तरुभुक्'।

तरुराग—संज्ञा पुं० [सं०] नया कोमल पत्ता। किसलय।

तरुराज—संज्ञा पुं० [सं०] १. कल्पवृक्ष। २. ताड़ का वृक्ष।

तरुरुहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बाँदा।

तरुरोहिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] बाँदा। बंदाक।

तरुवर—संज्ञा पुं० [सं०] वृक्ष।

तरुवरिया†—संज्ञा स्त्री० [हिं० तरवारि] तलवार।

तरुवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] जतुका लता। पानड़ी।

तरुवासिनी—वि० [सं० तरु + वासिनी] पेड़ पर रहनेवाली। उ०—कूक उठी सहसा तरुवासिनी ! गा तू स्वागत का गाना। किसने तुझको अंतर्यामिनि ! बतलाया उसका आना ?—वीणा, पृ० ५८।

तरुसार—संज्ञा पुं० [सं०] कपूर।

तरुस्था—संज्ञा स्त्री० [सं०] बाँदा।

तरुट, तरूट—संज्ञा पुं० [सं०] कमल की जड़। भसींड़। मुरार।

तरेंदा—संज्ञा पुं० [सं० तरण्ड] १. पानी में तैरता हुआ काठ। बेड़ा। २. वह तैरनेवाली वस्तु जिसका सहारा लेकर पार हो सकें। उ०—सिंह तरेंदा जेइ गहा पार भयो तिहि साथ। ते पय बूड़े वारि ही भेंड़ पूँछ जिन हाथ।—जायसी (शब्द०)।

तरे†¹—क्रि० वि० [सं० तल] नीचे। तले।

मुहा०—(किसी के) तरे बैठना = (किसी को) पति बनाना।

तरेⓅ†—वि० [हिं०] दे० 'तरह'। उ०—बाने की लाज राख्यो तुमसे है सब इलाखो। गलबाहियाँ आनि नाखो रस उस तरे ही चाखो।—ब्रज ग्रं०, पृ० ४४।

तरेट†—संज्ञा पुं० [हिं० तर + एट (प्रत्य०)] नाभि के नीचे का हिस्सा। पेड़ू।

तरेटी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तर] पर्वत के नीचे की भूमि। तराई। तरहटी। तलहटी। घाटी।

तरेड़ा—संज्ञा पुं० [अनु०] दे० 'तरेरा', 'तरारा'।

तरेरना—क्रि० स० [सं० तर्ज (= डाटना) + हिं० हेरना (= देखना)] आँखों को इस प्रकार करना जिससे क्रोध या अप्रसन्नता प्रकट हो। दृष्टि कुपित करना। आँख के इशारे से डाँट बताना। दृष्टि से असम्मति या असंतोष प्रकट करना। उ०—सुनि लछिमन बिहँसे बहुरि नयन तरेरे राम।—मानस, १।२७८।

विशेष—कर्म के रूप में इस शब्द के साथ आँख या उसके पर्यायवाची शब्द आते हैं।

तरेरा†¹—संज्ञा [अ० तरारह्] लहरों का थपेड़ा।

तरेरा†²—संज्ञा पुं० [हिं० तरेरना] क्रुद्ध दृष्टि।

तरेस†—संज्ञा पुं० [सं० तरु + ईश, या देश०] कल्प वृक्ष। उ०—दंड-काल करंगा तरेस सी नरेस देत।—रघु० रू०, पृ० २४६।

तरेनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तर (= नीचे) + ऐनी (प्रत्य०)] वह पत्थर जो हरिस और हल को मिलाने के लिये दिया जाता है।

तरैयाई—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तरई'।

तरैला—संज्ञा पुं० [हिं० तरे] किसी स्त्री के दूसरे पति का पुत्र।

तरैली—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तरैनी'।

तरोंच†—संज्ञा स्त्री० [हिं० तर = नीचे + ओंच (प्रत्य०), या देश०] १. कंधी के नीचे की लकड़ी। २. दे० 'तरोंछ'।

तरोंचा†—संज्ञा पुं० [हिं० तर (= नीचे)] [स्त्री० तरोंची] जुए के नीचे की लकड़ी।

तरोंडा—संज्ञा पुं० [देश०] फसल का उतना अनाज जितना हलवाहे आदि मजदूरों को देने के लिये निकाल दिया जाता है।

तरोई—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तुरई'।

तरोता—संज्ञा पुं० [सं० तरवट] एक लंबा पेड़ जो मध्यभारत और दक्षिण भारत में पाया जाता है। इसकी छाल चमड़ा सिझाने के काम में आती है। इसे 'तखर' भी कहते हैं।

तरोनाⓅ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तरौना'। उ०—प्रभा तरोना लाल की परी कपोलन आनि। कहा छपावत चतुर तिय कंत दंत छत जानि।—नंद० ग्रं०, पृ० ३३५।

तरोवर, तरोवरⓅ—संज्ञा पुं० [सं० तरुवर] दे० 'तरुवर'। उ०—रोम रोम प्रति गोपिका ह्वै गई साँवरे गात। काम तरोवर साँवरी, ब्रज बनिता ही पात।—नंद० ग्रं०, पृ० १८६।

तरौंछ—संज्ञा स्त्री० [हिं० तर + औंछ (प्रत्य०)] तलछट।

तरौंछी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तर + औछी (प्रत्य०)] १. वह लकड़ी जो हत्थे में नीचे की तरफ लगी रहती है।—(जुलाहे)। २. बैलगाड़ी में लगी हुई वह लकड़ी जो जुआवा के नीचे रहती है।

तरौंटा—संज्ञा पुं० [हिं० तर + पाट] आटा पीसने की चक्की का नीचेवाला पाट। जाँते के नीचे का पत्थर।

तरौंता—संज्ञा पुं० [हिं० तर + औता (प्रत्य०)] छाजन में वे लकड़ियाँ जो ठाठ के नीचे दी जाती हैं।

तरौंसⓅ†—संज्ञा पुं० [हिं० तर + औंस (प्रत्य०)] तट। तीर। किनारा। उ०—स्याम सुरति करि राधिका तकति तरनिजा तीर। अँसुवनि करति तरौंस को छिनक खरौंहो नीर।—बिहारी (शब्द०)।

तरौना¹—संज्ञा पुं० [हिं० ताड़ + बना] १. कान में पहनने का एक गहना जो फूल के आकार का गोल होता है। तरकी। (इसका वह अंश जो कान के छेद में रहता है, ताड़ के पत्ते को गोल लपेटकर बनाया जाता है)।

विशेष—दे० 'तरकी', 'ताडंक'।

२. कर्णफूल नाम का आभूषण। उ०—लसत सेत सारी ढक्यो तरल तरौना कान।—बिहारी (शब्द०)।

तरौना²—संज्ञा पुं० [हिं० तर (= नीचे)] वह मोढ़ा जिसपर मिठाई का खोंचा रखा जाता है।

तर्क¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी वस्तु के विषय में अज्ञात तत्व को कारणोपपत्ति द्वारा निश्चित करनेवाली उक्ति या विचार। हेतुपूर्ण युक्ति। विवेचना। दलील।

विशेष—तर्क न्याय के सोलह पदार्थों (विषयों) में से एक है। जब किसी वस्तु के संबंध में वास्तविक तत्व ज्ञात नहीं होता, तब उस तत्व के ज्ञानार्थ (किसी सिद्धांत के पक्ष में) कुछ हेतुपूर्ण युक्ति की जाती है जिसमें विरुद्ध सिद्धांत की अनुपपत्ति भी दिखाई जाती है। ऐसी युक्ति को तर्क कहते हैं। तर्क में शंका का होना भी आवश्यक है, क्योंकि जब यह शंका होगी कि बात ऐसी है या वैसी, तभी वह हेतुपूर्ण युक्ति की जायगी जिसमें यह निरूपित किया जायगा कि बात का ऐसा होना ही ठीक है वैसा नहीं। जैसे, शंका यह है कि आत्मा नित्य है या अनित्य। यहाँ आत्मा का यथार्थ रूप ज्ञात नहीं है। उसका यथार्थ रूप निश्चित करने के लिये हम इस प्रकार विवेचना करते हैं,— यदि आत्मा अनित्य होती तो अपने कर्म का फल न प्राप्त कर सकती और उसका आवागमन या मोक्ष न हो सकता। पर इन सब बातों का होना प्रसिद्ध ही है। अतः आत्मा नित्य है, ऐसा मानना ही पड़ता है।

२. चमत्कारपूर्ण उक्ति। चुहल की बात। चोज की बात। चतुराई से भरी बात। उ० —प्यारी को मुख धोइके पट पोंछि सँवारयो। तरक बात बहुतै कही कुछ सुधि न सँभारयो। —सूर (शब्द०)। ३. व्यंग्य। ताना। उ०—ते सब तर्क बोलहि मोको तामैं बहुत डेराऊँ। —सूर (शब्द०) ४ कारण। अनुमान (को०)। ५. निश्चय। विचारणा। ऊहा। वितर्क (को०)। ६ शुद्ध या स्वतंत्र चिंतन के आधार पर स्थापित विचार व्यवस्था (को०)। ७ छह की संख्या (को०)। ८. कारण (को०)। ९ इच्छा। आकांक्षा (को०)। १० न्यायशास्त्र (को०)। ११ ज्ञान (को०)। १२ अर्थवाद (को०)।

यौ०—तर्कशील = तर्क में प्रवीण। तार्किक। तर्क करनेवाला। उ०—प्राचीन हिंदू बड़े तर्कशील थे। —हिंदु० सभ्यता पृ० ६२।

• **तर्क[2]**—संज्ञा पुं० [अ०] १ त्याग। छोड़ना। २. छूटना।

क्रि० प्र०—करना।

यौ०—तर्कअदब = अशिष्टता। अशालीनता। तर्कदुनिया = साधु या फकीर हो जाना।

तर्कक—संज्ञा पुं० [सं०] १. तर्क करनेवाला। तर्कशास्त्री। तार्किक। २. याचक। मँगता।

तर्कण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० तर्कणीय, तर्क्य] तर्क करने की क्रिया। बहस करने का काम।

तर्कणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ विचार। विवेचना। ऊहा। २. युक्ति। दलील।

तर्कना[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० तर्कणा] दे० 'तर्कणा'।

तर्कना†(पु)[2]—क्रि० अ० [सं० तर्क + ना (प्रत्य०)] तर्क करना।

तर्कना(पु)[3]—क्रि० अ० [हिं०] उछलना। कूदना।

तर्कमुद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] तंत्र की एक मुद्रा।

तर्कवितर्क—संज्ञा पुं० [सं०] १. ऊहापोह। विवेचना। सोच विचार। २. वाद विवाद। बहस।

क्रि० प्र०—करना।

तर्कविद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] तर्कशास्त्र। [को०]।

तर्कश—संज्ञा पुं० [फ़ा०] तीर रखने का चोंगा। भाथा। तूणीर।

तर्कशास्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह शास्त्र जिसमें ठीक तर्क या विवेचना करने के नियम आदि निरूपित हों। सिद्धांतों के खंडन मंडन की शैली बतानेवाली विद्या। २. न्याय शास्त्र।

तर्कस—संज्ञा पुं० [फा० तरकश] दे० 'तर्कश'।

तर्कसी—संज्ञा स्त्री० [फा० तरकश] छोटा तरकश।

तर्का—संज्ञा स्त्री० [सं०] तर्क [को०]।

तर्काट—संज्ञा पुं० [सं०] भिक्षुक। याचक [को०]।

तर्कातीत—वि० [सं०] तर्क से परे। उ०—तर्कातीत श्रद्धा से हटकर एक बुद्धिसंगत, लौकिक, मानववादी नैतिक बोध का रूप लिया। —वदी०, पृ० १०१।

तर्काभास—संज्ञा पुं० [सं०] ऐसा तर्क जो ठीक न हो। कुतर्क।

तर्कारी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अँगेथू का वृक्ष। अरणी वृक्ष। २. बेत का पेड़।

तर्कारी[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तरकारी'।

तर्किण—संज्ञा पुं० [सं०] चकवँड़। पँवार।

तर्किल—संज्ञा पुं० [सं०] चकवँड़। पँवार।

तर्की—संज्ञा पुं० [सं० तर्किन्] [स्त्री० तर्किनी] तर्क करनेवाला।

तर्की[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] टरकी। पक्षी।

तर्की[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तरकी'।

तर्कीब—संज्ञा स्त्री० [हिं० तरकीब] दे० 'तरकीब'।

तर्कु—संज्ञा पुं० [सं०] तकला। टेकुआ।

यौ०—तर्कुशाण = सान धरने का पत्थर।

तर्कुक—वि० [सं०] निवेदन करनेवाला। प्रार्थी [को०]।

तर्कुट—संज्ञा पुं० [सं०] कातना [को०]।

तर्कुटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तकला। टेकुआ। २. कातना (को०)।

तर्कुपिंड, तर्कुपीठ, तर्कुपीठी—संज्ञा पुं० [सं० तर्कुपिण्ड] तकले की फिरकी।

तर्कुल—संज्ञा पुं० [सं० ताड़ + कुल] १. ताड़ का पेड़। २. ताड़ का फल।

तर्क्य—वि० [सं०] जिसपर कुछ सोच विचार करना आवश्यक हो। विचार्य। चिंत्य।

तर्क्षु—संज्ञा पुं० [सं०] तेंदुआ या चीता नामक जंतु।

तर्क्ष्य—संज्ञा पुं० [सं०] जवाखार नमक।

तर्गश—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तर्कश'। उ०—ना तर्गश न धन खड़ो नीं सिपर तलवारि। —प्राण०, पृ० २८६।

तर्ज—संज्ञा पुं०, स्त्री० [अ० तर्ज़] १. प्रकार। किस्म। तरह। २. रीति। शैली। ढंग। ढब। जैसे, बातचीत करने का तर्ज। जैसे,—इस छींट का तर्ज अच्छा नहीं है।

तर्जन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० तर्जित] १. धमकाने का कार्य। भयप्रदर्शन। २. क्रोध। ३. तिरस्कार। फटकार। डाँट डपट।

यौ०—तर्जन गर्जन = डाँट फटकार। क्रोधप्रदर्शन।

तर्जना¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'तर्जन' [को०]।

तर्जना²—क्रि० स० [सं० तर्जन] डाँटना। धमकाना। डपटना।

तर्जनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] अँगूठे के पास की उँगली। अँगूठे और मध्यमा के बीच की उँगली। प्रदेशिनी। उ०—इहाँ कुम्हड़ बतिया कोउ नाहीं। जे तर्जनी देखि मरि जाहीं।—तुलसी (शब्द०)।

विशेष—इसी उँगली से किसी वस्तु की ओर दिखाते या इशारा करते हैं।

तर्जनीमुद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] तंत्र की एक मुद्रा जिसमें बाएँ हाथ की मुट्ठी बाँधकर तर्जनी और मध्यमा को फैलाते हैं।

तर्जिक—संज्ञा पुं० [सं०] एक देश का प्राचीन नाम। ताजिक देश।

तर्जित—वि० [सं०] १. डाँटा या फटकारा हुआ। धमकाया हुआ। २. अपमानित। तिरस्कृत [को०]

तर्जुमा—संज्ञा पुं० [अ०] भाषांतर। उल्था। अनुवाद।

तर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] गाय का बछड़ा। बछवा।

तर्णक—संज्ञा पुं० [सं०] १. तुरंत जन्मा हुआ गाय का बछड़ा। २. शिशु। बच्चा।

तर्णि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'तरणि'।

तर्तरीक¹—संज्ञा पुं० [सं०] नाव।

तर्तरीक²—वि० १. पार जानेवाला। २. पार ले जानेवाला (को०)।

तर्दू—संज्ञा स्त्री० [सं०] डोई [को०]।

तर्पण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० तर्पणीय, तर्पित, तर्पी] १. तृप्त करने की क्रिया। संतुष्ट करने का कार्य। २. कर्मकांड की एक क्रिया जिसमें देव, ऋषि और पितरों को तुष्ट करने के लिये हाथ या अरघे से पानी देते हैं।

विशेष—मध्याह्न स्नान के पीछे तर्पण करने का विधान है।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

३. यज्ञ की अग्नि का ईंधन (को०)। ४. भोजन। आहार (को०)। ५. आँख में तेल डालना (को०)।

तर्पणी¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. खिरनी का वृक्ष। २. गंगा नदी।

तर्पणी²—वि० तृप्ति देनेवाली।

तर्पणीय—वि० [सं०] तृप्ति के योग्य।

तर्पिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पद्मचारिणी लता। स्थल कमलिनी। स्थलपद्म।

तर्पणेच्छु¹—वि० [सं०] १. तर्पण करने की इच्छा। २. तर्पण कराने की इच्छा [को०]।

तर्पणेच्छु²—संज्ञा पुं० भीष्म (को०)।

तर्पित—वि० [सं०] तृप्त किया हुआ। संतुष्ट किया हुआ।

तर्पी—वि० [सं० तर्पिन्] [वि० स्त्री० तर्पिणी] १. तृप्त करनेवाला। संतुष्ट करनेवाला। २. तर्पण करनेवाला।

तर्फ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तरफ'। उ०—क्या हुआ यार छिप गया किस तर्फ। इक झलक ही मुझे दिखा करके।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० २२०।

तर्बट—संज्ञा पुं० [सं०] १. चकवँड़। पँवार। २. चांद्र वत्सर। वर्ष।

तर्बियत—संज्ञा स्त्री० [अ०] शिक्षा दीक्षा। उ०—आप ही की तालीम और तर्बियत का यह असर है।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ९१।

तर्बूज—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तरबूज'।

तर्यौना(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तरौना'।

तर्यौना(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० तरौना] दे० 'तरौना'। उ०—अजौं तर्यौना ही रह्यौ श्रुति सेवत इक रंग। नाक बास बेसरि लह्यौ बसि मुकुतनि के संग।—बिहारी र०, दो० २०।

तर्रा—संज्ञा पुं० [देश०] चाबुक का फीता या डोरी जो छड़ी में बँधी रहती है।

तर्राना¹—संज्ञा पुं० [फ़ा० तराना] एक प्रकार का गाना। दे० 'तराना'

तर्राना†²—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'थर्राना'।

तर्री—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की घास जिसे भैंसें बड़े प्रेम से खाती हैं।

तर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १. अभिलाषा। २. तृष्णा। असंतोष। उ०—देव शोक संदेह भय हर्ष तम तर्ष गन साधु सद्युक्ति विच्छेदकारी।—तुलसी (शब्द०)। ३. बेड़ा। ४. समुद्र। ५. सूर्य।

तर्षक—संज्ञा पुं० [सं०] कफ का एक भेद।—माधव०, पृ० ५८।

तर्षण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० तर्षित] १. पिपासा। प्यास। २. अभिलाषा। इच्छा।

तर्षित—वि० [सं०] १. प्यासा। २. जो लालसा किए हो। इच्छुक।

तर्षुल—वि० [सं०] दे० 'तर्षित' [को०]।

तर्स—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तरस'। उ०—तर्स है यह देर से, आँखें बड़ी शृंगार में।—बेला, पृ० ६७।

तर्ह—संज्ञा स्त्री० [अ०] दे० 'तरह'।

यौ०—तर्ह अंदाज = तर्ह अफगन = नींव डालनेवाला। बुनियाद रखनेवाला।

तर्हदारी—संज्ञा स्त्री० [अ० तरह + फा० दारी (प्रत्य०)] १. बाँकापन। छबीलापन। साजसज्जा। २. हाव भाव। नाज नखरा। ३. हुस्न। सौंदर्य। उ०—है नई सजावट नई तर्हदारी है। सच कहो किससे आजकल नई यारी है।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १६४।

तर्हे(पु)—संज्ञा स्त्री० [अ० तर्ह] दे० 'तरह'। उ०—काशी पंडत धरो पाय बहोत तर्हे से मनाय।—दक्खिनी०, पृ० ४६।

तल—संज्ञा पुं० [सं०] १. नीचे का भाग। २. पेंदा। तला। ३. जल के नीचे की भूमि। ४. वह स्थान जो किसी वस्तु के नीचे पड़ता हो। जैसे, तहतल।

मुहा०—तल करना = नीचे दबा लेना। छिपा लेना।—(जुआरी)।

५. पैर का तलवा। ६. हथेली। ७. थपड़। थप्पड़। ८. किसी वस्तु का बाहरी फैलाव। बाह्य विस्तार। पृष्ठदेश। सतह। जैसे,—भूतल, धरातल, समतल। ९. स्वरूप। स्वभाव। १०.

कानन। जंगल। ११. गड्ढा। गड़हा। १२. चमड़े का बल्ला जो धनुष की डोरी की रगड़ बचाने के लिये बाईं बाँह में पहना जाता है। १३. घर की छत। पाटन। जैसे, चार तला मकान। १४. ताड़ का पेड़। १५. मूठिया। मूठ। दस्ता। १६. बाएँ हाथ से वीणा बजाने की क्रिया। १७. गोधा। गोह। १८. कलाई। पहुँचा। १९. बालिश्त। बित्ता। २०. आधार। सहारा। २१. महादेव। २२. सप्त पातालों में से पहला। २३. एक नरक का नाम। २४. उद्देश्य (को०)। २५. मूल। कारण (को०)। २६. ताल। तलाब (को०)।

तलक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. ताल। पोखरा। २. एक फल का नाम ३. सिगड़ी। अँगीठी (को०)।

तलक[2]—अव्य० [हिं० तक] तक। पर्यंत।

तलकर—संज्ञा पुं० [सं०] वह कर या लगान जो जमींदार ताल की वस्तुओं (जैसे, सिंघाड़ा, मछली आदि) पर लगाता है।

तलकी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक पेड़।

विशेष—यह पंजाब, अवध, बंगाल, मध्यप्रदेश और मद्रास में होता है। इसकी लकड़ी ललाई लिए भूरी होती है और खेती के सामान बनाने तथा मकानों में लगाने के काम में आती है।

तलकीन—संज्ञा स्त्री० [अ० तल्क़ीन] १. शिक्षा। उपदेश। २. दीक्षा देना। गुरुमंत्र देना। पीर का मुरीद को अमल आदि पढ़ाना [को०]।

तलख—वि० [फ़ा० तल्ख़] १. कड़ुआ। अप्रिय। २. अरुचिकर। नागवार। उ०—तेरी जैसी राक्षसिन के हाथ में पड़कर जिंदगी तलख हो गई।—गोदान, पृ० ५७।

तलखी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० तल्ख़ी] कड़वाहट। कटुता। कड़ुवापन। उ०—हिज्र की तलखी नहीं है जिसमें तलख जिंदगानी वह है।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ५६६।

तलग(पु)—अव्य० [हिं०] दे० 'तलक', 'तक'। उ०—तूँ आये तलग अव्वल ते कर इलाज। चलाउँगी मैं सब तेरा मुल्को राज।—दक्खिनी०, पृ० १४५।

तलगू—संज्ञा स्त्री० [सं० तैलंग] तैलंग देश की भाषा। तेलगू भाषा।

तलघरा—संज्ञा पुं० [सं० तल + हिं० घर] तहखाना।

तलछट—संज्ञा स्त्री० [हिं० तल + छँटना] पानी या और किसी द्रव पदार्थ के नीचे बैठी हुई मैल। तलौंछ। गाद।

तलछत(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तलछट'। उ०—तिमि उड़त कोठ पक्षी सहित बल पक्षी तलछत परे।—हम्मीर०, पृ० ४३।

तलछी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तलछट'। उ०—तिल तिल झार कबीर लए तलछी झारै लोग।—कबीर० मं०, पृ० ३२५।

तलत्र, तलत्राण—संज्ञा पुं० [सं०] धनुर्धर का दस्ताना [को०]।

तलना—क्रि० स० [सं० तरण (= तिराना)] कड़कड़ाते हुए घी या तेल में डालकर पकाना। जैसे, पापड़ तलना, घुँघनी तलना।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

विशेष—भावप्रकाश में 'घी में भुना हुआ' के अर्थ में 'तलित' शब्द आया है, पर वह संस्कृत नहीं जान पड़ता।

तलप(पु)—संज्ञा पुं० [सं० तल्प] दे० 'तल्प'। उ०—तुम जानकी, जनकपुर जाहु। कहा आनि हम संग भरमिहौ, गह्वर बन दुख-सिंधु अथाहु। तजि वह जनक राज भोजन सुख, कत तृन-तलप, बिपिन फल खाहु।—सूर०, ९। ३४।

तलपट[1]—वि० [देश०] नाश। बरबाद। चौपट।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

तलपट[2]—संज्ञा पुं० [सं०] कोठा। आयव्यय फलक।

तलपत्त(पु)—संज्ञा स्त्री० [देश०] बिछौने की चादर। उ०—हरि मग्गहि हुरनच्छुछ करहि तलपत्त पत्त धर।—पृ० रा०, २। ३०८।

तलपना—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'तलफना'। उ०—तलपन लागै प्रान तगल ते छिनहु होहु जो न्यारे।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० १३३।

तलफ—वि० [अ० तलफ़] नष्ट। बर्बाद।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

यौ०—मुहर्रिर तलफ।

तलफना—क्रि० अ० [हिं० तड़पना अथवा अनु०] १. कष्ट या पीड़ा से अंग टपकना। छटपटाना। २. व्याकुल होना। बेचैन होना। विकल होना।

तलफाना—क्रि० स० [अनु०] तड़पाना।

तलफी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० तलफ़ी] १. खराबी। बरबादी। नाश। २. हानि।

यौ०—हक तलफी = स्वत्व का मारा जाना।

तलफ्फुज—संज्ञा पुं० [अ० तलफ़्फ़ुज़] उच्चारण [को०]।

तलब—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. खोज। तलाश। २. चाह। पाने की इच्छा। ३. आवश्यकता। माँग।

मुहा०—तलब करना = माँगना या मँगाना।

४. बुलावा। बुलाहट।

मुहा०—तलब करना = बुला भेजना। पास बुलाना।

५. तनखाह। वेतन।

क्रि० प्र०—खाना।—चुकाना।—देना।—पाना। मिलना। —देना।—माँगना।—चाहना।

तलबगार—वि० [फ़ा०] चाहनेवाला। माँगनेवाला।

तलबदार—वि० [फ़ा०] चाहनेवाला।

तलबदास्त—संज्ञा पुं० [अ० तलब + फ़ा० दास्त] समन।

तलबनामा—संज्ञा पुं० [अ० तलब + फ़ा० नामह्] समन। अदालत में उपस्थित होने का लिखित आज्ञापत्र।

तलबाना—संज्ञा पुं० [फ़ा० तलबानह्] १. वह खर्च जो गवाहों को तलब करने के लिये टिकट के रूप में अदालत में दाखिल किया जाता है। २. वह खर्च जो मालगुजारी समय पर न जमा करने पर जमींदार से दंड के रूप में लिया जाता है।

विशेष—अपराधियों को खाने पीने आदि के लिये जो भेंट या खर्च जमींदार देते हैं, उसको भी तलबाना कहते हैं।

तलबी—संज्ञा स्त्री० [अ० तलब + फ़ा० ई (प्रत्य०)] १. बुलाहट। २. माँग।

क्रि० प्र०—होना।

तलबेली—संज्ञा स्त्री० [हिं० तलफना] किसी वस्तु के लिये आतुरता या बेचैनी। छटपटी। घोर उत्कंठा। उ०—कान्हु उठे प्रति प्रात ही तलबेली लागी। प्रिया प्रेम के रस भरे रति अंतर लागी।—सूर (शब्द०)

तलमल—संज्ञा पुं० [सं०] तलछट। तरौंछ। गाद।

तलमलाना[1]—क्रि० अ० [देश०] तड़फड़ाना। तड़पना। बेचैन होना।

तलमलाना[2]—क्रि० अ० दे० 'तिलमिलाना'।

तलमलाहट[1]—संज्ञा स्त्री० [देश०] व्याकुलता। तड़पने का भाव। बेचैनी।

तलमलाहट[2]—संज्ञा स्त्री० दे० 'तिलमिलाहट'।

तलमाना—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'तलमलाना'।—(क्व०)। उ०—लगे दिवस कई बेग पाया न ध्यान, थी जान उसकी और लगी तलमान।—दक्खिनी०, पृ० ८७

तलव—संज्ञा पुं० [सं०] गानेवाला।

तलवकार—संज्ञा पुं० [सं०] १. सामवेद की एक शाखा। २. एक उपनिषद् का नाम।

तलवा—संज्ञा पुं० [सं० तल] पैर के नीचे का भाग जो चलने या खड़े होने में जमीन पर पड़ता है। पैर के नीचे की ओर का वह भाग जो एँड़ी और पंजों के बीच में होता है। पादतल।

मुहा०—तलवा खुजलाना = तलवे में खुजली होना जिससे यात्रा का शकुन समझा जाता है। तलवे चाटना = बहुत खुशामद करना। अत्यंत सेवा शुश्रूषा में लगा रहना। तलवे छलनी होना = चलते चलते पैर घिस जाना। चलते चलते शिथिल हो जाना। बहुत दौड़ धूप की नौबत आना। तलवे तले आँखें मलना = दे० 'तलवों से आँखें मलना'। तलवों तले मेटना = कुचलकर नष्ट करना। रौंद डालना।—(स्त्रि०)। तलवे धो धोकर पीना = अत्यंत सेवा शुश्रूषा करना। अत्यंत श्रद्धा भक्ति प्रकट करना। अत्यंत प्रेम प्रकट करना। तलवा न टिकना = पैर न टिकना। जमकर बैठा न रहा जाना। आसन न जमाना। एक जगह कुछ देर बैठे न रहा जाना। तलवा न भरना = दे० 'तलवा न टिकना'।—(स्त्रि०)। तलवों से आँखें मलना = (१) अत्यंत दीनता प्रकट करना। बहुत अधिक अधीनता दिखाना। (२) अत्यंत प्रेम प्रकट करना। (३) दे० 'तलवों तले मेटना'। तलवों से आग लगना = क्रोध से शरीर भस्म होना। अत्यंत क्रोध चढ़ना। तलवों से मलना = पैर से कुचलना। रौंदना। कुचलकर नष्ट करना। तलवों से लगना = (१) क्रोध चढ़ना। (२) बुरा लगना। अत्यंत अप्रिय लगना। कुढ़न होना। चिढ़ होना। तलवों से लगना, सिर में जाकर बुझना = सिर से पैर तक क्रोध चढ़ना। क्रोध से शरीर भस्म होना। तलवे सहलाना = (१) अत्यंत सेवा शुश्रूषा करना। (२) बहुत खुशामद करना।

तलवार—संज्ञा स्त्री० [सं० तरवारि] लोहे का एक लंबा धारदार हथियार जिसके आघात से वस्तुएँ कट जाती हैं। खड्ग। असि। कृपाण।

पर्या०—असि। विशसन। खड्ग। तीक्ष्णवर्मा। दुरासद। श्रीगर्भ। विजय। धर्मपाल। धर्ममाल। निस्त्रिंश। चंद्रहास। रिष्टि। करवाल। कौक्षेयक। कृपाण।

क्रि० प्र०—चलना। —चलाना। —मारना। —लगना। —लगाना। —करना।

मुहा०—तलवार करना = तलवार चलाना। तलवार का वार करना। तलवार कसाना = तलवार झुकाना। तलवार का खेत = लड़ाई का मैदान। युद्धक्षेत्र। तलवार का घाट = तलवार में वह स्थान जहाँ से उसका टेढ़ापन आरंभ होता है। तलवार का छाला = तलवार के फल में उभरा हुआ दाग। तलवार का डोरा = तलवार की धार जो पतले सूत की तरह दिखाई देती है। तलवार का पट्टा = तलवार की चौड़ी धार। तलवार का पानी = तलवार की आभा या चमक। तलवार का फल = मूठ के अतिरिक्त तलवार का सारा भाग। तलवार का बल = तलवार का टेढ़ापन। तलवार का मुँह = तलवार की धार। तलवार का हाथ = (१) तलवार चलाने का ढंग। (२) तलवार का वार। खड्ग का आघात। तलवार की आँच = तलवार की चोट का सामना। तलवार की माला = तलवार का वह जोड़ जो दुवाले से कुछ दूर पर होता है। तलवारों की छाँह में = ऐसे स्थान में जहाँ अपने ऊपर चारों ओर तलवार ही तलवार दिखाई देती हो। रणक्षेत्र में। तलवार के घाट उतरना = लड़ते लड़ते मर जाना। तलवार के घाट उतारा जाना = मारा जाना। वीरगति पाना। उ०—ल्हासा में बहुत से लामा और विद्वान् तलवार के घाट उतारे गए हैं।—किन्नर०, पृ० ६१। तलवार खींचना = म्यान से तलवार बाहर करना। तलवार जड़ना = तलवार मारना। तलवार से आघात करना। तलवार तौलना = तलवार को हाथ में लेकर अंदाज करना जिससे वार भरपूर बैठे। तलवार सँभालना। तलवार पर हाथ रखना = (१) तलवार निकालने के लिये तैयार होना। (२) तलवार की शपथ होना। तलवार बाँधना = तलवार को कमर में लटकाना। तलवार साथ में रखना। तलवार सौंतना = तलवार म्यान से निकालना। वार करने के लिये तलवार खींचना।

विशेष—तलवार का व्यवहार सब देशों में अत्यंत प्राचीन काल से होता आया है। धनुर्वेद आदि ग्रंथों को देखने से जाना जाता है कि भारतवर्ष में पहले बहुत अच्छी तलवारें बनती थीं जिनसे पत्थर तक कट सकता था। प्राचीन काल में खट्टर देश, अंग, बंग, मध्यग्राम, सहग्राम, कालिंजर इत्यादि स्थान खड्ग के लिये प्रसिद्ध थे। ग्रंथों में लोहे की उपयुक्तता, खड्गों के विविध परिमाण तथा उनके बनाने का विधान भी

दिया हुआ है। पानी देने के लिये लिखा है कि धार पर नमक या क्षार मिली चीकी मिट्टी का लेप करके तलवार को आग में तपावे और फिर पानी में बुझा दे। उशना और शुक्राचार्य ने पानी के अतिरिक्त रक्त, घृत, ऊँट के दूध आदि में बुझाने का भी विधान बतलाया है। तलवार की झनकार (ध्वनि) तथा फल पर आपसे आप पड़े हुए चिह्नों के अनुसार तलवार के शुभ, अशुभ या अच्छे बुरे होने का निर्णय किया गया है। ऐसे निर्णय के लिये जो परीक्षा की जाती है, उसे अंगपरीक्षा कहते हैं। तलवार चलाने के हाथ ३२ गिनाए गए हैं। जिनके नाम ये हैं—भ्रांत, उद्भ्रांत, आविद्ध, आप्लुत, विप्लुत, सृत, संपात, समुदीर्ण, निग्रह, प्रग्रह, पदाकर्षण, संधान, मस्तक भ्रामण, भुज भ्रामण, पाश, पाद, विबंध, भूमि, उद्भ्रमण, गति, प्रत्यागति, आक्षेप, पातन, उत्थान, प्लुति, लघुता, सौष्ठव, शोभा, स्थैर्य, दृढ़मुष्टिता, तिर्यक् प्रचार और ऊर्ध्व प्रचार। इसी प्रकार पट्टिक, मौष्टिक, महिषाक्ष आदि तलवार के १७ भेद भी बतलाए गए हैं। आजकल भी तलवारों के कई भेद होते हैं; जैसे खाँड़ा, जो सीधा और छोर पर चौड़ा होता है, सैफ, जो लंबी पतली और सीधी होती है, दुधारा, जिसके दोनों ओर धार होती है। इसके अतिरिक्त स्थानभेद से भी तलवारों के कई नाम हैं। जैसे, सिरोही, बँदरी, जुनुबी इत्यादि। एक प्रकार की बहुत पतली और लचीली तलवार जना कहलाती है जिसे लोग तकिए में रख सकते या कमर में लपेट सकते हैं। तलवार दुर्गा का प्रधान अस्त्र है; इसी से कभी कभी तलवार को दुर्गा भी कहते हैं।

तलवारण्य—[सं०] तलवार। खंग [को०]।

तलवारिया†—संज्ञा पुं० [हिं०] तलवार चलाने में निपुण व्यक्ति।

तलवारी—वि० [हिं० तलवार] तलवार संबंधी।

तलहटी—संज्ञा स्त्री० [सं० तल, + घट्ट] पहाड़ के नीचे की भूमि। पहाड़ की तराई।

तलहट्टी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तलहटी'। उ०—तलहट्टी सुरताण, रहे ओघाण महल्ले। अमल धाण तन धक्क।

तलहा†—वि० [हिं० ताल] १. ताल संबंधी। ताल का या ताल में होनेवाला।

तलही—संज्ञा स्त्री० [हिं० ताल + ही (प्रत्य०)] ताल में रहनेवाली चिड़िया। उ०—कोउ तलही, मुर्गाबी कोऊ कराकुल मारे।—प्रेमघन०, पृ० २६।

तलांगुलि—संज्ञा स्त्री० [सं० तल + अंगुलि] पैर का अँगूठा [को०]।

तला¹—संज्ञा पुं० [सं० तल] १. किसी वस्तु के नीचे की सतह। पेंदा। २. जूते के नीचे का चमड़ा जो जमीन पर रहता है।

तला²—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'तलत्राण' [को०]।

तला³—वि० [सं० तल] दे० 'तलवा'।

तलाई¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० ताल] छोटा ताल। तलैया। बावली।

तलाई²—संज्ञा स्त्री० [हिं० √ तल + आई (प्रत्य०)] तलने की क्रिया या भाव।

तलाई³—संज्ञा स्त्री० [हिं० तलाना] १. तलाने का भाव। २. तलाने की मजदूरी।

तलाउ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तलाव'।

तलाक—संज्ञा पुं० [अ० तलाक़] पति पत्नी का विधानपूर्वक संबंधत्याग।

क्रि० प्र०—देना।

तलाची—संज्ञा स्त्री० [सं०] चटाई।

तलातल—संज्ञा पुं० [सं०] सात पातालों में से एक पाताल का नाम।

तलाफी—संज्ञा स्त्री० [अ० तलाफी] क्षतिपूर्ति। हानि की पूर्ति। नुकसान का बदला। तदारुक [को०]।

तलाब†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तालाब'।

तलाबेली(५)†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तलबेली'।

तलामली¹—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तलाबेली'।

तलामली²—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तलमल'। उ०—दिल पहाड़ सा मालूम होने लगा खासकर डाक की बड़ी तलामली लग रही थी।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० १८१।

तलाया—संज्ञा स्त्री० [हिं० ताल] तलैया। तलाई। उ०—यहाँ तलायाँ पोठ जुरे जहँ चक्कवे। परची दिन है आज जाय हैं चक्कवे।—राम० धर्म०, पृ० २५२।

तलार(५)—वि० [सं० तल + हिं० आर (प्रत्य०)] दे० 'तल्लार'। उ०—वे पानी में धुंआँ जो निकले भार। रखे हैं जो पत्थर हूपी तल तलार।—दक्खिनी०, पृ० ३१७।

तलार(५)—संज्ञा पुं० [सं० स्थल (= तल) + रक्षक] नगररक्षक। कोतवाल।

तलारक्ष—संज्ञा पुं० [हिं०] नगररक्षक अधिकारी या कोतवाल। उ०—प्राचीन शिलालेखों तथा पुस्तकों में तलारक्ष और तलार शब्द नगररक्षक अधिकारी (कोतवाल) के अर्थ में प्रयुक्त किए जाते थे। सोड्ढल रचित 'उदयसुंदरी कथा' में एक राक्षस का वर्णन करते हुए लिखा है कि घृणा उत्पन्न करनेवाले उसके रूप के कारण वह नरक नगर के तलार के समान था।—राज० इति०, पृ० ४५६।

तलाव¹—संज्ञा पुं० [सं० तड़ाग > प्रा० तलाग > तलाव, या सं० तल्ल] वह लंबा चौड़ा गड्ढा जिसमें सामान्यतः बरसात का पानी जमा रहता है। ताल। तालाब। पोखरा। उ०—सिमिटि सिमिटि जल भरइ तलावा। जिमि सद्गुण सज्जन पहँ आवा।—तुलसी (शब्द०)।

मुहा०—तलाव जाना = शौच जाना। पाखाने जाना।

तलाव²—वि० [हिं० तलना] तला हुआ। जैसे, तलाव हींग।

तलाव³—संज्ञा पुं० तलने की क्रिया या भाव।

तलावड़ी(५)†—संज्ञा स्त्री० [सं० तड़ाग, तड़ागिका, प्रा० तलाग, तलाइया, तलाय, तलाई, तलाव + ड़ी (प्रत्य०)] दे० 'तलैया'। उ०—जोबण फट्टि तलावड़ी, पालि न बंधइ कोइ।—ढोला०, दू० १२२।

तलावरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तलाव + री (= 'ड़ी' प्रत्य०)] तलाई। छोटा ताल। उ०—ताल तलावरि बरनि न जाहीं। सूझइ वारपार तेन्ह नाहीं।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १४१।

तलाश—संज्ञा स्त्री० [तु०] १. खोज। ढूँढ़ढाँढ़। अन्वेषण। अनुसंधान।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

२. आवश्यकता। चाह।

क्रि० प्र०—होना।

तलाशना‡—क्रि० स० [फा० तलाश+हिं० ना (प्रत्य०)] ढूँढ़ना। खोजना।

तलाशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का वृक्ष।

तलाशी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] गुम की हुई या छिपाई हुई वस्तु को पाने के लिये घर बार, चीज, वस्तु आदि की देखभाल। जैसे—पुलिस ने घर की तलाशी ली, तब बहुत सी चोरी की चीजें निकलीं।

मुहा०—तलाशी देना=गुम या छिपाई हुई वस्तु को निकालने के लिये संदेह करनेवाले को अपना घर बार, कपड़ा लत्ता आदि ढूँढ़ने देना। तलाशी लेना=गुम या छिपाई वस्तु को निकालने के लिये ऐसे मनुष्य के घर बार आदि की देखभाल करना जिस पर उस वस्तु को छिपाने या गुम करने का संदेह हो।

तलास†—संज्ञा स्त्री० [फा० तलाश] दे० 'तलाश'। उ०—तुलसी बिना तलास आस पंथ ना संगी। हिंदू तुरक पै जबर लाग जम की जो जंगी।—तुरसी श०, पृ० १४३।

तलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तोबड़ा। २. तंग [को०]।

तलित्—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'तडित्' [को०]।

तलित¹—संज्ञा पुं० [सं०] भुना हुआ मांस [को०]।

तलित²—वि० घी या चिकने के साथ भुना हुआ। तला हुआ।

विशेष—यह शब्द संस्कृत नहीं जान पड़ता; संस्कृत ग्रंथों में इसका उल्लेख नहीं मिलता। केवल भावप्रकाश में भुने हुए मांस के लिये आया है।

तलित³—वि० तल युक्त [को०]।

तलिन—वि० [सं०] १. दुबला। क्षीण। दुर्बल।

यौ०—तलिनोदरी=क्षीण कटिवाली स्त्री।

२. विरल। छितराया हुआ। अलग अलग। ३. थोड़ा। कम। ४. साफ। स्वच्छ। शुद्ध। ५. नीचे या तल में स्थित (को०)। ६. आच्छादित। ढका हुआ (को०)।

तलिन²—संज्ञा स्त्री० [सं०] शय्या। सेज। पलंग।

तलिम—संज्ञा पुं०[सं०] १. छत। पाटन। २. शय्या। पलंग। ३. खड्ग। ४. चंदवा। ५. बड़ी छुरी या छुरा (को०)। ६. जमीन का पक्का फर्श (को०)।

तलिया¹—संज्ञा स्त्री० [सं० तल] समुद्र की थाह। -(डिं०)।

तलिया²—संज्ञा स्त्री० [हिं० ताल] छोटा तालाब। उ०—मानसरोवर की कथा बकुला का जानै। उनके चित तलिया बसै, कहो कैसे मानै।—कबीर श०, भा० ३, पृ० ४।

तलियारⓅ—संज्ञा पुं० [देशी] कोतवाल। नगररक्षक।

तली—संज्ञा स्त्री० [सं० तल] १. किसी वस्तु के नीचे की सतह। पेंदी। २. तलछट। तलौंछ। †३. पैर की एड़ी। †४. विवाह में वर वधू के आसन के नीचे रखा हुआ रुपया पैसा।

तलीचरैया—संज्ञा स्त्री० [हिं० ताल+चरैया (=चरनेवाला)] एक पक्षीविशेष। उ०—धोबइन, तलीचरैया, कोइेनी, चंबा इत्यादि।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३०।

तलुआ¹‡—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तलवा'।

तलुआ²—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तालू'।

तलुन¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. वायु। २. युवा पुरुष।

तलुन²—वि० [वि०स्त्री० तलुनी] युवा। तरुण [को०]।

तलुनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] युवती। तरुणी [को०]।

तले—क्रि० वि०[सं० तल]नीचे। ऊपर का उलटा। जैसे, पेड़ के तले।

मुहा०—तले ऊपर=(१) एक के ऊपर दूसरा। जैसे,—किताबों को तले ऊपर रख दो। (२) नीचे की वस्तु ऊपर और ऊपर की वस्तु नीचे। उलट पलट किया हुआ। गड्ड मड्ड। जैसे,—सब कागज लगाकर रखे हुए थे; तुमने तले ऊपर कर दिए। तले ऊपर के=आगे पीछे के। ऐसे दो जिनमें से एक दूसरे के उपरांत हुआ हो। जैसे,—ये तले ऊपर के लड़के हैं। इसी से लड़ा करते हैं। -(स्त्रियों का विश्वास है कि ऐसे लड़कों में नहीं बनती।)। तले ऊपर होना=(१) उलट पुलट हो जाना। (२) संभोग में प्रवृत्त होना। जी तले ऊपर होना=(१) जी मचलाना। (२) जी ऊबना। चित्त घबराना। तले की साँस तले और ऊपर की साँस ऊपर रह जाना=(१) ठक रह जाना। स्तब्ध रह जाना। कुछ कहते सुनते या करते धरते न बन पड़ना। (२) भौचक रह जाना। हक्का बक्का रह जाना। चकित रह जाना। तले की दुनिया ऊपर होना=(१) भारी उलट फेर हो जाना। (२) जो चाहे सो हो जाना। असंभव से असंभव बात हो जाना। जैसे,—चाहे तले की दुनिया ऊपर हो जाय, हम अब वहाँ न जायँगे। (मादा चौपाए के) तले बच्चा होना=साथ में थोड़े दिनों का बच्चा होना। जैसे,—इस गाय के तले एक बछड़ा है।

तलेक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] शूकर। सूअर।

तलेटी—संज्ञा स्त्री० [सं० तल+हिं० एटी (प्रत्य०)] १. पेंदी। २. पहाड़ के नीचे की भूमि। तलहटी।

तलैंछ—वि० [सं०] १. नीचे रहनेवाला। २. हीन। तुच्छ। गया गुजरा। ३. किसी द्वारा शासित।

तलैचा—संज्ञा पुं० [हिं० तले] इमारत में मेहराब से ऊपर का और छत से नीचे का भाग।

तलैटी—संज्ञा स्त्री०[हिं० तलहटी]दे० 'तलेटी'। उ०—एक गाँव पहाड़ की तलेटी में तो दूसरा उसकी ढलवान पर।—फूलो०, पृ० ७।

तलैया—संज्ञा स्त्री० [हिं० ताल] छोटा ताल।

तलोदर—वि० [सं०] [वि० स्त्री० तलोदरी] तोंदवाला [को०]।

तलोदरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्त्री। भार्या।

तलोदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दरिया । नदी ।

तलौंछ—संज्ञा स्त्री० [सं० तल (= नीचे) + हिं० औछ (प्रत्य०)] नीचे जमी हुई मैल आदि । तलछट ।

तलौवन—संज्ञा पुं० [अ०] १. वह परिवर्तन जो मत, सिद्धांत एवं विचार में हो जाता है । २. रंग बदलना । ३. छिछोरापन [को०] ।

तल्क—संज्ञा पुं० [सं०] वन ।

तल्ख—वि० [फा० तल्ख] १. कड़ुआ । कटु । २. बदमजा । बुरे स्वाद का ।

तल्खी—संज्ञा स्त्री० [फा० तल्खी] कड़ुवाहट । कड़ुआपन ।

तल्प—संज्ञा पुं० [सं०] १. शय्या । पलंग । सेज । २ अट्टालिका । अटारी । ३. (लाक्ष०) पत्नी । भार्या । जैसे, गुरुतल्पग (को०) ।

तल्पक—संज्ञा पुं० [सं०] १. पलंग । २. वह सेवक जो पलंग पर बिस्तर आदि लगाता है [को०] ।

तल्पकीट—संज्ञा पुं० [सं०] मत्कुण । खटमल ।

तल्पज—संज्ञा पुं० [सं०] क्षेत्रज पुत्र ।

तल्पन—संज्ञा पुं० [सं०] १. हाथी की पीठ पर की मांसपेशियाँ । २. हाथी की पीठ या उसका मांस [को०] ।

तल्बाना—संज्ञा पुं० [फा० तल्बानह्] गवाहों को तलब कराने का खर्च । दे० 'तलबाना' । उ०—स्टांप, तल्बाने वगैरे के हिसाब में लोगों को धोका दे दिया करता था ।—श्रीनिवास० ग्रं०, पृ० २१० ।

तल्पल—संज्ञा पुं० [सं०] हाथी का मेरुदंड, रीढ़ या पृष्ठवंश [को०] ।

तल्ल—संज्ञा पुं० [सं०] १. बिल । गड्ढा । २. ताल । पोखरा ।

तल्लज—संज्ञा पुं० [सं०] श्रेष्ठ ।

तल्ला[१]—संज्ञा पुं० [सं० तल] १. तले की परत । अस्तर । भितल्ला । २. ढिग । पास । सामीप्य । उ०—तियन को तल्ला पिय, तियन पियतल्ला त्यागे दौलत अतल्ला भल्ला आए राजद्वार को ।—रघुराज (शब्द०) ।

तल्ला[२]—संज्ञा पुं० [सं० तल्प] मकान का मंजिल । जैसे, तीन तल्ला मकान ।

तल्लास†—संज्ञा स्त्री० [फा० तलाश] दे० 'तलाश' । उ०—फौज तल्लास कर हारी । आए जहाँ भूप बेजारी ।—तुरसी श०, पृ० ६५ ।

तल्लिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] ताली । कुंजी

तल्ली[१]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जूते का तला । २ नीचे की तलछट जो नीचे में बैठ जाती है ।

तल्ली[२]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तरुणी । युवती । २ नौका । नाव । ३ वरुण की पत्नी ।

तल्लीन—वि० [सं०] उसमें लीन । उसमें लग्न । दत्तचित [को०] ।

तल्लुआ—संज्ञा पुं० [देश०] गाढ़े की तरह का एक कपड़ा । महमूदी । तुकरी । सल्लम ।

तल्लो—संज्ञा पुं० [सं० तल] जाँते के नीचे की पाट ।

तल्वकार†—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तलवकार' ।

तल्हार—संज्ञा स्त्री० [हिं०] तला । नीचे । उ०—जिता गंज है यो जमीं के तल्हार । तो यक बोल पर ते सदूँ उसकूँ वार ।—दक्खिनी०, पृ० १५२ ।

तवँचुर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० ताम्रचूर्ण, हिं० तमचुर] मुर्गा ।

तव—सर्व० [सं०] तुम्हारा ।

तवक—संज्ञा पुं० [सं०] धोखा । वंचना । प्रतारणा [को०] ।

तवक्का(पु)—संज्ञा स्त्री [अ० तवक्कुअ] १. विश्वास । २. आशा । ३. प्रार्थना । उ०—नहिं तूँ मेरा संगी भया । तुलसी तवक्का ना किया ।—तुरसी श०, पृ० २४ ।

तवक्कुफ—संज्ञा पुं० [अ० तवक्कुफ] १. विलंब । देर । २. ढीलापन [को०] ।

तवक्षीर—संज्ञा पुं० [सं० फा० तबाशीर] तबाशीर । तीखुर ।

तवक्षीरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कनकचूर जिसकी जड़ से एक प्रकार का तीखुर बनता है । अबीर इसी तीखुर का बनता है ।

तवज्जह—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. ध्यान । रुख ।

क्रि० प्र० —करना ।—देना ।

२ कृपादृष्टि ।

तवन(पु)[१]—संज्ञा स्त्री० [सं० तपन] १ गर्मी । तपन । २. आग ।

तवन(पु)†[२]—सर्व० [हिं० तौन] वह ।

तवन(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'स्तवन' उ०—चित अनेकहु विधि विवर बिल नदिनी निकास । मंत्र रूप गंगा तवन लगे करन रिष तास ।—पृ० रा०, १ । १५४

तवना(पु)†[१]—क्रि० अ० [सं० तपन] १ तपना । गरम होना । २. ताप से पीडित होना । दु:ख से पीड़ित होना । उ०—(क) काल के प्रताप कासी तिहूँ ताप तई है ।—तुलसी ग्रं०, पृ० २४२ । (ख) जबते न्हान गईं तई ताप भई बेहाल । भली करी या नारि की नारी देखी लाल ।—शृं० सत० (शब्द०) । ३. प्रताप फैलाना । तेज पसारना । उ०—छतर गगन लग ताकर सूर तवइ जस आप ।—जायसी (शब्द०) । ४. क्रोध से जलना । गुस्से से लाल होना । कुढ़ जाना । उ०—(क) भरत प्रसंग ज्यों कालिका सहृ देखि तन मे तई ।—नाभादास (शब्द०) । (ख) महादेव बैठे रहि गए । दक्ष देखि के तेहि दुख तए ।—सूर (शब्द०) ।

तवना(पु)[२]—क्रि० स० [सं० तापन] दे० 'तपाना' ।

तवना(पु)[३]—क्रि० अ० [स्तवन] स्तुति करना ।

तवना†—संज्ञा पुं० [हिं० तवा] हलका तवा ।

तवना(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० ताना (= ढकना, मूंदना)] ढक्कन । मूंदने का साधन जो छेद या किसी वस्तु के मुँह को बंद करे ।

तवर(पु)[१]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तल' । उ०—अवनी के तवरे अगनिज अवरे मंजा कंवरे विष मवरे । सिरियादे सिवरे हरि हित हिवरे ज्याँहां निवरे जो जिवरे ।—राम० धर्म०, पृ० १७६ ।

तवर[२]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तोमर' ।

तबरक—संज्ञा पुं० [सं० तुबर] एक पेड़ जो समुद्र और नदियों के तट पर होता है ।

विशेष—इसमें इमली के ऐसे फल लगते हैं जिन्हें खाने से चौपायों का दूध बढ़ता है ।

तबरना—क्रि० स० [?] कहना । उ०—बदन एक सहस दुय सहस रसना बणो । तिको फणपती गुण थकै तबरी ।—रघु० रू०, पृ० ५७ ।

तबराज—संज्ञा पुं० [सं०] तुरंजबीन । यवास शर्करा ।

तवर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] त और न के मध्य के समस्त अक्षर समूह ।

तवल—संज्ञा पुं० [अ० तब्ल] तबल । उ०—तवल शत बाज कत भेरि भरे फुक्किया ।—कीर्ति०, पृ० ६६ ।

तवलची(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तबलची' ।—कीर्ति०, पृ० ६६ ।

तवल्ल(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तबला' ।

तवल्लह—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तवल' । उ०—घरे इक एक अनेक सुथान । झलक्कत मुंड तवल्लह मान ।—पृ० रा०, ६ । ६६ ।

तवस्सल—संज्ञा पुं० [अ० तवस्सुल] सहायता । उ०—सोलह वंश के हुक्म जारी करें । जो सतगुरु तवस्सल तयारी करें ।—कबीर मं०, पृ० १३१ ।

तवस्सुत—संज्ञा पुं० [अ०] मध्यस्थता । बीच में पड़ने का कार्य । उ०—आपके तवस्सुत की मार्फत मेरी ५०० जिल्दों में से भी कुछ निकल जाय तो क्या कहना ।—प्रेम० और गोर्की, पृ० ५८ ।

तवा—संज्ञा पुं० [हिं० तवना (=जलना)] १. लोहे का एक छिछला गोल बरतन जिसपर रोटी सेंकते हैं ।

क्रि० प्र०—चढ़ाना ।

मुहा०—तवा सा मुँह=कालिख लगे हुए तवे की तरह काला मुँह । तवा सिर से बाँधना=सिर पर प्रहार सहने के लिये तैयार होना । अपने को खूब दृढ़ और सुरक्षित करना । तवे का हँसना=तवे के नीचे जमी हुई कालिख का बहुत जलते जलते लाल हो जाना जिससे घर में विवाद होने का कुशकुन समझा जाता है । तवे की बूँद=(१) क्षणस्थायी । देर तक न टिकनेवाला । नश्वर । (२) जो कुछ भी न मालूम हो । जिससे कुछ भी तृप्ति न हो । जैसे,—इतने से उसका क्या होता है, इसे तवे की बूँद समझो ।

२. मिट्टी या खपड़े का गोल ठिकरा जिसे चिलम पर रखकर तमाखू पीते हैं । ३. एक प्रकार की लाल मिट्टी जो हींग में मेल देने के काम में आती है । ३. तवे के आकार का साधन जो युद्ध में बचाने के विचार से छाती पर रहता था ।

तवाई(पु)[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तबाही' । उ०—दुश्मन देख के तवाई धरना । खुदा मिल के बाद खाना ।—दक्खिनी०, पृ० ६५ ।

तवाई(पु)†[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० ताप] ताप ।

तवाखीर—संज्ञा पुं० [सं० त्वक्क्षीर] वंशरोचन । बंसलोचन ।

तवाजा—संज्ञा स्त्री० [अ० तवाज़ह] १. आदर । मान । आवभगत । २. मेहमानदारी । दावत । ज्याफत ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

तवाना[1]—वि० [फ़ा०] बली । मोटा ताजा । मुस्टंडा ।

तवाना[2]—क्रि० स०[सं० तापन, हिं० ताना]तप्त करना । गरम कराना ।

तवाना†[3]—क्रि० स० [हिं० ताना] ढक्कन को चिपकाकर बरतन का मुँह बंद कराना ।

तवाना†[4]—क्रि० अ० [हिं० ताव से नामिक धातु] ताव या आवेश में आना ।

तवायफ—संज्ञा स्त्री० [अ० तवायफ़] वेश्या । रंडी ।

विशेष—यद्यपि यह शब्द तायफ़ह का बहु० है, पर हिंदी में एकवचन बोला जाता है । कहीं कहीं तायफा भी बोला जाता है ।

तवारा—संज्ञा पुं० [सं० ताप, हिं० ताव + रा (प्रत्य०)]जलन । दाह । ताप । उ०—तबते इन सबहिन सचुपायो । जबतें हरि संदेश तुम्हारो सुनत तवारो आयो ।—सूर (शब्द०) ।

तवारीख—संज्ञा स्त्री० [अ० तवारीख] इतिहास ।

विशेष—यह 'तारीख' शब्द का बहुवचन है ।

तवारीखी वि० [अ० तवारीख + फ़ा० ई (प्रत्य०)] ऐतिहासिक [को०] ।

तवालत—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. लंबाई । दीर्घत्व । २. आधिक्य । अधिकता । अधिकाई । ज्यादती । ३. बखेड़ा । तूल तवील । झंझट ।

तविष[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. स्वर्ग । २. समुद्र । ३. व्यवसाय । ४. शक्ति ।

तविष[2]—वि० १. वृद्ध । महत् । २. बलवान । दृढ़ । बली । ३. पूज्य (को०) ।

तविषी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पृथ्वी । २. नदी । ३. शक्ति । ४. इंद्र की एक कन्या का नाम [को०] ।

तविष्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] शक्ति । बल । तेज [को०] ।

तवी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तवा] १. छोटा तवा । २. पतले किनारेवाली लोहे की थाली । ३. कश्मीर की एक नदी ।

तवीयन(पु)—संज्ञा पुं० [अ० तबीब] वैद्य । चिकित्सक ।

तवीष—संज्ञा पुं० [सं०] १. स्वर्ग । २. समुद्र । ३. सोना [को०] ।

तवेला—संज्ञा पुं० [हिं० तबेला] दे० 'तबेला' ।

तवै(पु)—अव्य० [हिं०] दे० 'तब' । उ०—तवै बाजि तैं सेख सू पै जु आयो । कछू वस्त्र ही अंग ताको उढ़ायो ।—हम्मीर०, पृ० ३८ ।

तशखीश—संज्ञा स्त्री० [अ० तश्ख़ीस] १. ठहराव । निश्चय । २. मर्ज की पहचान । रोग का निदान । ३. लगान निर्धारित करने की क्रिया या स्थिति (को०) ।

तशद्दुद—संज्ञा पुं० [अ०] १. आक्रमण । २. कठोर व्यवहार । ज्यादती । सख्ती [को०] ।

तशफ्फी—संज्ञा स्त्री० [अ० तशफ़्फ़ी] १. ढाढस । सांत्वना । उ०—

ऐसे कठकों को प्रेमचंद से पूरी तशफ्फी हासिल होती है।—प्रेम० और गोर्की, पृ० २१७। २. रोगमुक्ति (को०)।

तशरीफ—संज्ञा स्त्री० [अ० तशरीफ़] बुजुर्गी। इज्जत। महत्व। बड़प्पन।

मुहा०—तशरीफ रखना = बिराजना। बैठना (आदरार्थक)। तशरीफ लाना = पदार्पण करना। आना (आदरार्थक)। तशरीफ ले जाना = प्रस्थान करना। चला जाना।

तश्त—संज्ञा पुं० [फा०] १. थाली के आकार का हलका छिछला बरतन। २. परात। लगन। ३. ताँबे का वह बड़ा बरतन जो पाखानों में रखा जाता है। गमला।

तश्तरी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] थाली के आकार का हलका छिछला बरतन। रिकाबी।

तश्वीश—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. चिंता। फिक्र। २. भय। डर। त्रास। उ०—किसी किस्म के तरद्दुद और तश्वीश की गुंजाइश नहीं है।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १३५।

तषतिⓊ संज्ञा पुं० [फा० तख्त] दे० 'तख्त'। उ०—तषति निवास की आ मनि भाई।—प्राण०, पृ० ५३।

तषते—संज्ञा पुं० [अ० तख्त] दे० किवाड़'। उ०—सुरति बारी के तषते खोले। तब नानक बिनसे सगले ओले।—प्राण०, पृ० ३७।

तष्ट—वि० [सं०] १. छीला हुआ। २. कुटा हुआ। पीसकर दो दलों में किया हुआ। ३. पीटा हुआ।

तष्टा[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. छीलनेवाला। २. छील छालकर गढ़नेवाला। ३. विश्वकर्मा। ४. एक आदित्य का नाम।

तष्टा[2]—संज्ञा पुं० [फा० तश्त] ताँबे की एक प्रकार की छोटी तश्तरी जिसका व्यवहार ठाकुर पूजन के समय मूर्तियों को नहलाने के लिये होता है।

तष्टी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तष्टा'[2]। एक प्रकार का बरतन। धातुपात्र। उ० पुनि चरया चरई तष्टी तबला झारी लोटा गावहि। सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० ७४।

तष्षनाⓊ—क्रि० स० [हिं० ताकना] ताकना। देखना। उ०—प्रथिराज राज राजग गुर तष्षि तरक्कस तष्षियौ।—पृ० रा०, १२। ५४।

तष्षिणिⓊ—संज्ञा स्त्री० [सं० तक्षिणी] नागिन। सर्पिणी। उ०—नयन सुकज्जल रेष, तष्षि निष्पन छबि कारिय। श्रवनन सहज कटाछ, चित्त कर्षन नर नारिय।—पृ० रा०, १४, १५६।

तसⓊ†[1]—वि० [सं० तादृश, प्रा० तारिस, पुहि० तइस] तैसा। वैसा। उ०—किएँ जाहि छाया जलद सुखद बहइ बर बात। तस मगु भयेउ न राम कहँ जस भा भरतहि जात।—मानस, २। २१५।

तसⓊ†[2]—क्रि० वि० तैसा। वैसा। उ०—तस मति फिरी रही जस भावी।—तुलसी (शब्द०)।

तसⓊ[3]—सर्व [सं० तत, तस्य] उसका। तत् शब्द का संबंधकारक एकवचन। उ०—इंद्री वाहण नासिका, तासु तणइ डणिहार। तस भख हुवइ प्राहुणउ, तिणि सिणगार उतार।—ढोला०, दू० ५८०।

तसकर—संज्ञा पुं० [सं० तस्कर] दे० 'तस्कर'। उ०—संग तेरि बहुरंग तसकर, बड़ा प्रजुगुति कीन्ह।—जग० बानी, पृ० ४५

तसकीन—संज्ञा स्त्री० [अ० तस्कीन] तसल्ली। ढारस। दिलासा

तसगर—संज्ञा पुं० [देश०] जुलाहों के ताने में नौलक्खी के पास की दो लकड़ियों में से एक।

तसगीर—संज्ञा स्त्री० [अ० तस्गीर] १. संक्षेप करना। २. संक्षेप करने की क्रिया या भाव [को०]।

तसदीक—संज्ञा स्त्री० [अ० तस्दीक] १. सचाई। २. सचाई की परीक्षा या निश्चय। समर्थन। प्रमाणों के द्वारा पुष्टि। ३ साक्ष्य। गवाही।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

तसदीहⓊ†—संज्ञा स्त्री० [अ० तस्दीअ] १. दर्दे सर। २. तकलीफ दुःख। क्लेश। उ०—नहिं चून घीव सबील ही तसदीह स ही की सही।—सूदन (शब्द०)। ३. परेशानी। झंझट (को०)।

तसद्दुक—संज्ञा पुं० [अ० तसद्दुक] १. निछावर। सदका। २ बलिप्रदान। कुरबानी।

तसनीफ—संज्ञा स्त्री० [अ० तस्नीफ़] ग्रंथ की रचना।

तसबी—सं० स्त्री० [अ० तस्बीर] दे० 'तसबीह'। उ०—फेरे न तसबी जपै न माला।—पलटू०, पृ० ६१।

तसबीर—संज्ञा स्त्री० [अ० तस्वीह] दे० 'तसवीर'। उ०—लिखे चितेरे चित्र मैं पिय विचित्र तसबीर। दरसत दृग परसत हिं परसत तिय घर धीर।—स० सप्तक, पृ० ३६७।

तसबीरगर—संज्ञा पुं० [अ० तस्वीर + फा० गर (प्रत्य०)] चित्रकार। उ०—डीठि मिचि जात मिचि इचत ना ऐंचे खैंची खिंचत न तसबीर तसबीरगर पै।—पजनेस०, पृ० ७।

तसबीह—संज्ञा स्त्री० [अ० तस्बीह] सुमिरिनी। माला। जपमाला (मुसल०)। उ०—मन मनि के तहँ तसबी फेरइ। तब साहब के वह मन भेवइ।—दादू (शब्द०)।

मुहा०—तसबीह फेरना = ईश्वर का नामस्मरण या उच्चारण करते हुए माला फेरना।

तसमा—संज्ञा पुं० [फा० तस्मह्] १. चमड़े की कुछ चौड़ी डोरी के आकार की लंबी धज्जी जो किसी वस्तु को बाँधने या कसने के काम मे आवे। चमड़े का चौड़ा फीता।

मुहा०—तसमा खींचना = एक विशेष रूप से गले में फंदा डालकर मारना। गला घोटना। तसमा लगा न रखना = गरदन साफ उड़ा देना। साफ दो टुकड़े करना।

२. जूते का फीता (को०)। ३. चमड़े का कोड़ा या दुर्रा (को०)।

तसर—संज्ञा पुं० [सं०] १. जुलाहों की ढरकी। २. एक प्रकार का घटिया रेशम। वि० दे० 'टसर'।

तसरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] बुनाई [को०]।

तसला—संज्ञा पुं० [फ़ा० तश्त + ला (प्रत्य०)] कटोरे के आकार

का वह उससे बड़ा गहरा बरतन जो लोहे, पीतल, ताँबे आदि का बनता है ।

तसली—संज्ञा स्त्री० [हिं० तसला] छोटा तसला ।

तसलीम—संज्ञा स्त्री० [अ० तस्लीम] १. सलाम । प्रणाम । २. किसी बात की स्वीकृति । हामी । जैसे,—गलती तसलीम करना ।

क्रि० प्र०—करना ।—देना ।—पाना ।—होना ।

तसल्ली—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. ढारस । सांत्वना । आश्वासन । २. व्यग्रता की निवृत्ति । व्याकुलता की शांति । धैर्य । धीरज । ३. संतोष । सब्र ।

क्रि० प्र० -करना ।—देना ।—पाना ।—होना ।

मुहा०—तसल्ली दिलाना = धीरज या संतोष देना । धैर्य धारण कराना ।

तसवीर[1]—संज्ञा स्त्री० [अ० तस्वीर] १. वस्तुओं की आकृति जो रंग आदि के द्वारा कागज, पटरी आदि पर बनी हो । चित्र ।

क्रि० प्र०—खींचना ।—बनाना ।—लिखना ।

मुहा०—तसवीर उतारना = चित्र बनाना । तसवीर निकालना = चित्र बनाना ।

२. किसी घटना का यथातथ्य विवरण ।

तसवीर[2]—वि० चित्र सा सुंदर । मनोहर ।

तसवीस—संज्ञा स्त्री० [अ० तश्वीश] १. चिंता । सोच । फिक्र । २. भय । डर । त्रास । ३. व्याकुलता । घबराहट । उ०—ना तसवीस खिराज न माल खौफ न खता न तरस जवाल । —संत रै०, पृ० ११० ।

तसव्वुर—संज्ञा पुं० [अ०] कल्पना । उ०—तसव्वुर से तेरे रुख के गई है नींद आँखों से । मुकाबिल जिसके हो खुरशीद क्यों कर उसको ख्वाब आवे ।—कविता कौ०, भाग ४, पृ० २९ ।

तसाना—क्रि० स० [हिं० त्रासना] त्रस्त करना । डराना । उ०—हाय दई घनआनँद ह्वै करि कौ लौ वियोग के ताप तसायहौ । —घनानंद, पृ० ९६ ।

तसि†[1]—वि० [हिं० तस] वैसी । उस प्रकार की ।

तसि†[2]—क्रि० वि० [हिं० तस] तैसी । वैसी । उ०—(क) जनु चाँदों निसि चामिनी दीसी । चमकि उठी तसि बीनि बतीसी । —जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १९१ । (ख) तसि मति फिरी अहइ जसि भाबी । रहसी चेरि घात जनु फाबी ।—मानस, २।१७ ।

तसिल्दार†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तहसीलदार' । उ०—बड़ी बड़ी मूली पठवायो तसिल्दार तब ।—प्रेमघन०, भाग २, पृ० ४१६ ।

तसी†—संज्ञा स्त्री० [देश०] तीन बार जोता हुआ खेत ।

तसील†—संज्ञा स्त्री० [अ० तहसील] १. तहसील । २. वसूली । प्राप्ति ।

तसीलना—क्रि० स० [अ० तहसील, हिं० तसील से नामिक धातु] वसूल करना । पाना । उ०—बंक तसीलत किती, महाजन किते कोइ अब ।—प्रेमघन०, भाग १, पृ० ५४ ।

तसू—संज्ञा पुं० [सं० त्रि + शूक = जौ की तरह का एक कदन्न] लंबाई की एक माप । इमारती गज का २४ वाँ अंश जो १⅛ इंच के लगभग होता है ।

तस्कर—संज्ञा पुं० [सं०] १. चोर । २. श्रवण । कान । ३. मैनफल । मदन वृक्ष । ४. बृहत्संहिता के अनुसार एक प्रकार के केतु जो लंबे और सफेद होते हैं । ये ५१ हैं और बुध के पुत्र माने जाते हैं । ५. चोर नामक गंधद्रव्य । ६. कान (को०) ।

तस्करता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चोर का काम । चोरी । २. श्रवण । सुनना (को०) ।

तस्करवृत्ति—संज्ञा पुं० [सं०] चोर । पाकेटमार (को०) ।

तस्करस्नायु—संज्ञा पुं० [सं०] काकनासा लता । कौवा ठोंठी ।

तस्करी—संज्ञा स्त्री० [सं० तस्कर] १. चोर का काम । चोरी । २. चोर की स्त्री । ३. वह स्त्री जो चोर हो । ४. उग्र स्वभाव की स्त्री (को०) ।

तस्कीन—संज्ञा स्त्री० [अ०] दे० 'तसकीन' । उ०—फिराके यार में होने से क्या तस्कीन होती है ।—प्रेमघन०, भाग १, पृ० १६७

तस्थु—वि० [सं०] एक ही स्थान पर रहनेवाला । स्थावर । अचल ।

तस्नीफ—संज्ञा स्त्री० [अ० तस्नीफ] १. पुस्तक लेखन । किताब बनाना । २. लिखित पुस्तक । बनाई हुई कविता । ३. मनगढ़ंत या कपोलकल्पित बात (को०) ।

तस्फिया—संज्ञा पुं० [अ० तस्फ़ियह्] १. आपस का निपटारा या समझौता । २. निर्णय । फैसला । ३. शुद्ध करना । साफ करना । शुद्धि । सफाई । ४. दिलों की सफाई । मेल (को०) ।

यौ०—तस्फिया तलब = वे बातें जिनकी सफाई होनी आवश्यक हैं । तस्फियानामा = वह कागज जिसमे आपस के तस्फिए की लिखापढ़ी हो ।

तस्मा—संज्ञा पुं० [फ़ा० तस्मह्] १. चमड़े की कम चौड़ी और लंबी पट्टी । २. जूते का फीता । ३. चमड़े का कोड़ा या दुर्रा (को०) ।

यौ०—तस्मापा = जिसका पाँव तस्मे से बँधा हो । तस्माबाज = (१) धूर्त । वंचक । मक्कार । छली । (२) द्यूतकार । जुआरी । तस्माबाजी = (१) छल । कपट । (२) एक प्रकार का जुआ ।

तस्मात्—अव्य० [सं०] इसलिये ।

तस्य—सर्व० [सं०] उसका ।

तस्लीम—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. सलाम करना । प्रणाम करना । २. स्वीकार करना । कबूल करना । ३. सौंपना । सिपुर्द करना । ४. आज्ञा का पालन करना । (को०) ।

तस्वीर—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. चित्र । प्रतिकृति । २. चित्र बनाना । मूर्ति बनाना । ३. बहुत ही सुंदर शक्ल । ४. प्रतिमा । मूर्ति ।

यौ०—तस्वीरकशी = चित्रण । चित्रकर्म । तस्वीरखाना = (१) वह स्थान जो चित्रों के लिये हो या जहाँ चित्र बनाए गए हों । चित्रशाला । (२) वह स्थान जहाँ बहुत सी सुंदर स्त्रियाँ हों । परीखाना । तस्वीरे अक्सी = छायाचित्र । फोटो ।

तस्वीरे खयाली=चित्त या खयाल में आई हुई आकृति। काल्पनिक चित्र। तस्वीरे गिली=मिट्टी की मूर्ति। तस्वीरे नीम रुख=एक तरफ से लिखा हुआ चित्र जिसमे मुख का एक ही रुख आए।

तस्सवीरⓅ—संज्ञा स्त्री० [अ० तस्वीह] दे० 'तसबीह'। उ०—बंधे साहि गोरी बही तस्सबीर। दई राज चौहांन न्योंते सरीरं।—पृ० रा०, २१।११८।

तस्सू—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तसू'।

तहँ†—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'तहाँ'।

यौ०—तहँ तहँ=वहाँ वहाँ। उस उस स्थान पर। उ०—जँह जहँ आवत बसे बराती। तहँ तहँ सिद्ध चला बहु भाँती।—मानस, १।३३३।

तहँवाँ†—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'तहाँ'।

तह—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. किसी वस्तु की मोटाई का फैलाव जो किसी दूसरी वस्तु के ऊपर हो। परत। जैसे, कपड़े की तह, मलाई की तह, मिट्टी की तह, चट्टान की तह। उ०—(क) इसपर अभी मिट्टी की कई तहें चढ़ेंगी (शब्द०)। (ख) इस कपड़े को चार पाँच तहो में लपेटकर रख दो (शब्द०)।

क्रि० प्र०—चढ़ना।—चढ़ाना।—जमना।—जमाना।—लगाना।

यौ०—तहदार=जिसमे कई परत हों। तह ब तह=एक के नीचे एक। परत पर परत।

मुहा०—तह करना=किसी फैली हुई (चद्दर आदि के आकार की) वस्तु के भागों को कई ओर से मोड़ और एक दूसरे के ऊपर फैलाकर उस वस्तु को समेटना। चौपरत करना। तह कर रखो=लिए रहो। मत निकालो या दो। नहीं चाहिए। तह जमाना या बैठाना=(१) परत के ऊपर परत दबाना। (२) भोजन पर भोजन किए जाना। तह तोड़ना=(१) झगड़ा निबटाना। समाप्ति को पहुँचाना। कुछ बाकी न रखना। निबटना। (२) कुएँ का सब पानी निकाल देना जिससे जमीन दिखाई देने लगे। (किसी चीज की) तह देना=(१) हलकी परत चढ़ाना। थोड़ी मोटाई में फैलाना या बिछाना। (२) हलका रंग चढ़ाना। (३) अतर बनाने म जमीन देना। आधार देना। जैसे,—चंदन की तह देना। तह मिलाना=जोड़ा लगाना। नर और मादा एक साथ करना। तह लगाना=चौपरत करके समेटना।

२. किसी वस्तु के नीचे का विस्तार। तल। पेंदा। जैसे, इस गिलास में घुली दवा तह में जाकर जम गई है।

मुहा०—तह का सच्चा=वह कबूतर जो बराबर अपने छत्ते पर चला आवे, अपना स्थान न भूले। तह की बात=छिपी हुई बात। गुप्त रहस्य। गहरी बात। (किसी बात की) तह को पहुँचना=दे० 'तह तक पहुँचना'। (किसी बात की) तह तक पहुँचना=किसी बात के गुप्त अभिप्राय का पता पाना। यथार्थ रहस्य जान लेना। असली बात समझ जाना।

३. पानी के नीचे की जमीन। तल। थाह। ४. महीन पटल। वरक। झिल्ली।

क्रि० प्र०—उचड़ना।

तहकीक—संज्ञा स्त्री० [अ० तहक़ीक़] १. सत्य। यथार्थता। २. सत्य की जाँच। यथार्थ बात का अन्वेषण। खोज। अनुसंधान २. जिज्ञासा। पूछताछ।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

तहकीकात—संज्ञा स्त्री० [अ० तहक़ीक़ात, तहक़ीक़ का बहु व० किसी विषय या घटना को ठीक ठीक बातों की खोज। अनु संधान। अन्वेषण। जाँच। जैसे, किसी मामले की तहकीका किसी इल्म की तहकीकात।

मुहा०—तहकीकात आना=किसी घटना या मामले के संबंध पुलिस के अफसर का पता लगाने के लिये आना।

तहखाना—संज्ञा पुं० [फ़ा० तहखानह्] वह कोठरी या घर जमीन के नीचे बना हो। भुइँहरा। तलगृह।

विशेष—ऐसे घरों या कोठरियों में लोग धूप की गरमी से बच के लिये जा रहते या धन रखते हैं।

तहजर्द—वि० [फ़ा० तहज़र्द] दे० 'तहदरज' [को०]।

तहजीब—संज्ञा स्त्री० [अ० तहज़ीब] शिष्ट व्यवहार। शिष्टता सभ्यता।

तहदरज—वि० [फ़ा० तहबर्ज] (कपड़ा आदि) जिसकी तह त न खोली गई हो। बिलकुल नया। ज्यों का त्यों नया र हुआ।

तहनशीं—वि० [फ़ा०] तरल पदार्थ मे नीचे बैठनेवाली (वस्तु)

तहनिशाँ—संज्ञा पुं० [फ़ा०] लोहे पर सोने चाँदी की पच्चीकारी।

तहपेच—संज्ञा पुं० [फ़ा०] पगड़ी के नीचे का कपड़ा।

तहपोशी—संज्ञा स्त्री [फ़ा०] साड़ी के नीचे पहनने का पाजामा [को

तहबंद—संज्ञा पुं० [फ़ा०] लुंगी [को०]।

तहबाजारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० तहबाजारी] वह महसूल जो स में सौदा बेचनेवालों से जमींदार लेता है। झरी।

तहमत—संज्ञा पुं० [फ़ा० तहबंद या तहमद] कमर मे लपेटा हु कपड़ा। अँगोछा। लुंगी। अँचला।

क्रि० प्र०—बाँधना।—लगाना।

तहम्मुल—संज्ञा पुं० [अ०] १. सहिष्णुता। सहनशीलता। २. गंभी रता। संजीदगी। ३. धैर्य। सब्र। ४. नम्रता। नर्मी [को०]।

तहरा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ततहँड़ा'।

तहरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. पेठे की बरी और चावल की खिचड़ी २. मटर की खिचड़ी। ३. कालीन बुननेवालों की ढरकी।

तहरीर—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. लिखावट। लेख। २. लेखशैली। जैसे, उनकी तहरीर बड़ी जबरदस्त होती है। ३. लिखी हुई बात लिखा हुआ मजमून। ४. लिखा हुआ प्रमाणपत्र। लेखब प्रमाण। ५. लिखने की उजरत। लिखाई। लिखने का मिहन ताना। जैसे,—इसमें १) तहरीर लगेगी। ६. गेरू की कच्च छपाई जो कपड़ों पर होती है। कट्टर की डटाई। (छीपी)।

तहरीरी—वि० [फ़ा०] लिखा हुआ। लिखित। लेखबद्ध। जैसे, तहरीरी सबूत, तहरीरी बयान।

तहलका—संज्ञा पुं० [अ० तह्लकह्] १. मौत। मृत्यु। २. बरबादी। ३. खलबली। धूम। हलचल। विप्लव।

क्रि० प्र०—पड़ना।—मचना।

४. कोलाहुल। कोहराम (को०)।

तहलील—संज्ञा स्त्री० [अ० तह्लील] १. पचना। हजम होना। २. घुलना। मिलना (को०)। उ०—जो खाना तहलील करने और हरारत मिटाने को लेटे।—प्रेमघन०, भाग २, पृ० १५६

यौ०—तहवाँ जहवाँ।

तहवाँ—अव्य० [हिं० तहँ+वाँ (प्रत्य०)] वहाँ। उ०—(क) बंधु समेत गए प्रभु तहवाँ।—मानस, ३। २४। (ख) जाएस नगर धरम अस्थानू। तहवाँ यह कबि कीन्ह बखानू।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १३४।

तहवील—संज्ञा स्त्री० [अ० तहवील] १. सुपुर्दगी। २. अमानत। धरोहर। ३. किसी मद की आमदनी का रुपया जो किसी के पास जमा हो। खजाना। जमा। रोकड़। ४. फिरना (को०)। ५. फिराना (को०)। ६. प्रवेश करना। दाखिल होना (को०)। ७. किसी ग्रह का किसी राशि में प्रवेश (को०)।

यौ०—तहवीलदार। तहवीले आफताब=सूर्य का एक राशि से दूसरी राशि में प्रवेश। संक्रांति।

तहवीलदार—संज्ञा पुं० [अ० तह्वील+फ़ा० दार (प्रत्य०)] वह आदमी जिसके पास किसी मद की आमदनी का रुपया जमा होता हो। खजानची। रोकड़िया।

तहशिया—संज्ञा पुं० [अ० तह्शियह] किसी पुस्तक आदि पर पार्श्व में टिप्पणी लिखना [को०]।

तहस नहस—वि० [देश०] विनष्ट। बरबाद। नष्ट भ्रष्ट। ध्वस्त।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

तहसीन—संज्ञा स्त्री० [अ० तह्सीन] प्रशंसा। तारीफ। श्लाघा। उ०—वहाँ कदरदानी और तहसीन, इससे मेरा काम न चला।—प्रेम० और गोर्की, पृ० ५६।

तहसील—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. बहुत से आदमियों से रुपया पैसा वसूल करके इकट्ठा करने की क्रिया। वसूली। उगाही। जैसे,—पोत तहसील करना।

क्रि० प्र०—करना—होना।

२. वह आमदनी जो लगान वसूल करने से इकट्ठी हो। जमीन की सालाना आमदनी। जैसे,—इनकी पचास हजार की तहसील है। ३. वह दफ्तर या कचहरी जहाँ जमींदार सरकारी मालगुजारी जमा करते हैं। तहसीलदार की कचहरी। माल की छोटी कचहरी।

तहसीलदार—संज्ञा पुं० [अ० तहसील+फ़ा० दार (प्रत्य०)] १. कर वसूल करनेवाला। २. वह अफसर जो किसानों से सरकारी मालगुजारी वसूल करता है और माल के छोटे मुकदमों का फैसला करता है।

तहसीलदारी—संज्ञा स्त्री० [अ० तहसील+फ़ा० दार+ई] १. कर या महसूल वसूल करने का काम। मालगुजारी वसूल करने का काम। तहसीलदार का काम। २. तहसीलदार का पद।

क्रि० प्र०—करना।

तहसीलना—क्रि० स० [अ० तहसील से नामिक धातु] उगाहना। वसूल करना (कर, लगान, मालगुजारी, चंदा आदि)।

तहाँ—क्रि० वि० [सं० तत्+स्थान, प्रा० थाण, थान] वहाँ। उस स्थान पर। उ०—तहाँ जाइ देखी बन सोभा।—तुलसी (शब्द०)।

विशेष—लेख में अब इसका प्रयोग उठ गया है; केवल 'जहाँ का तहाँ' ऐसे दो एक वाक्यों में रह गया है।

तहाना—क्रि० स० [फ़ा० तह से नामिक धातु] तह करना। घरी करना। लपेटना।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।

तहिआ—क्रि० वि० [हिं०] तब। उस समय। उ०—भुज बल बिस्व जितब तुम्ह जहिआ। धरिहहिं बिष्णु मनुज तनु तहिआ।—मानस, १।१३६।

तहियाँ†—क्रि० वि० [सं० तदाहि] तब। उस समय। उ०—कहु कबीर कछु अछिलो न जहियाँ। हरि बिरवा प्रतिपालेसि तहियाँ।—कबीर (शब्द०)।

तहियाना—क्रि० स० [फा० तह] तह लगाकर लपेटना।

तहीं†—क्रि० वि० [हिं० तहाँ] वहीं। उसी जगह। उसी स्थान पर। उ०—दुखु सुखु जो लिखा लिलार हमरे जाब जहँ पाउब तहीं।—मानस, १।९७।

तहू(पु)—क्रि० वि० [सं० तदपि] तब भी। उ०—खंड ब्रह्मंड सूखा पड़ै, तहू न निष्फल जाए।—कबीर सा०, पृ० ७।

तहोबाला—वि० [फा०] नीचे ऊपर। ऊपर का नीचे, नीचे का ऊपर। उलट पलट। क्रमभग्न।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

तहौं(पु)**†**—क्रि० वि० [हिं० तहाँ+औं (प्रत्य०)] तहाँ भी। उ०—तहौं प्रतीपहि कहत है कबि कोबिद सब कोय।—मति० ग्रं०, पृ० ३७२।

तांडव—संज्ञा पुं० [सं० ताण्डव] १. पुरुषों का नृत्य।

विशेष—पुरुषों के नृत्य को तांडव और स्त्रियों के नृत्य को लास्य कहते हैं। तांडव नृत्य शिव को अत्यंत प्रिय है। इसी से कोई तंडु अर्थात् नंदी को इस नृत्य का प्रवर्तक मानते हैं। किसी किसी के अनुसार तांडव नामक ऋषि ने पहले पहल इसकी शिक्षा दी, इसी से इसका नाम तांडव हुआ।

२. वह नाच जिसमें बहुत उछल कूद हो। उद्धत नृत्य। ३. शिव का नाम। ४. एक तृण का नाम।

तांडवतालिक—संज्ञा पुं० [सं० ताण्डवतालिक] नंदीश्वर [को०]।

तांडवप्रिय—संज्ञा पुं० [सं० ताण्डवप्रिय] शंकर [को०]।

तांडवित—वि० [सं० ताण्डवित] १. नृत्यशील। २. तांडव नृत्य में गोलाई में घूमता हुआ। ३. चक्कर खाता हुआ। ४. कुद्ध [को०]।

तांबवी—संज्ञा पुं० [सं० ताम्बवी] संगीत के चौदह तालों में से एक।

तांडि—संज्ञा पुं० [सं० तण्डि] तंडि मुनि का निकला हुआ नृत्य शास्त्र।

तांडी—संज्ञा पुं० [सं० ताण्डिन्] १. सामवेद की तांड्य शाखा का अध्ययन करनेवाला। २. यजुर्वेद का एक कल्पसूत्रकार।

तांड्य—संज्ञा पुं० [सं० ताण्ड्य] १. तंडि मुनि के वंशज। २. सामवेद के एक ब्राह्मण का नाम।

तांत—वि० [सं० तान्त] १. श्रांत। थका हुआ। २. जिसके अंत में त हो। ३. मुरझाया हुआ। (को०)। ४. कष्टमय (को०)।

तांतव[1]—वि० [सं० तान्तव] [वि० स्त्री० तांतवी] जिसमें तंतु या तार हों। जिसमें से तार निकल सके।

तांतव[2]—संज्ञा पुं० १. बुनना। २. बुना हुआ कपड़ा। ३. जाल। ४. सूत कातना। (को०)।

तांतुवायि, तांतुवाय्य—संज्ञा पुं० [सं० तान्तुवायि, तान्तुवाय्य] तंतुवाय या बुनकर का पुत्र (को०)।

तांत्रिक[1]—वि० [सं० तान्त्रिक] [स्त्री० तान्त्रिकी] तंत्र संबंधी।

तांत्रिक[2]—संज्ञा पुं० १. तंत्र शास्त्र का जाननेवाला। यंत्र मंत्र आदि करनेवाला। मारण, मोहन, उच्चाटन आदि के प्रयोग करनेवाला। २. एक प्रकार का सन्निपात।

तांबूल—संज्ञा पुं० [सं० ताम्बूल] १. पान। नागवल्ली दल। २. पान का बीड़ा। ३ किसी प्रकार का सुगंधित द्रव्य जो भोजनोत्तर खाया जाय (जैन)। ४. सुपारी।

तांबूलकरंक—संज्ञा पुं० [सं० ताम्बूलकरङ्क] १. पान रखने का बरतन। बट्टा। बिलहरा। २. पान के बीड़े रखने का डिब्बा। पनडिब्बा।

तांबूलद—संज्ञा पुं० [सं० ताम्बूलद] पान रखने और तैयार करके देनेवाला नौकर (को०)।

तांबूलधर—संज्ञा पुं० [सं० ताम्बूलधर] तांबूलद (को०)।

तांबूलनियम—संज्ञा पुं० [सं० ताम्बूलनियम] पान, सुपारी, लवंग, इलायची आदि खाने का नियम। (जैन)।

तांबूलपत्र—संज्ञा पुं० [सं० ताम्बूलपत्र] १ पान का पत्ता। २. पत्रमा नाम की लता जिसके पत्ते पान के से होते हैं। पिडालु।

तांबूलवीटिका—संज्ञा स्त्री० [सं० ताम्बूलवीटिका] पान का बीड़ा। बीड़ी।

तांबूलराग—संज्ञा पुं० [सं० ताम्बूलराग] १. पान की पीक। २. मसूर।

तांबूलवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं० ताम्बूलवल्ली] पान की बेल। नागवल्ली।

तांबूलवाहक—संज्ञा पुं० [सं० ताम्बूलवाहक] पान खिलानेवाला सेवक। पान का बीड़ा लेकर चलनेवाला सेवक।

तांबूलवीटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] पान का बीड़ा (को०)।

तांबूलिक—संज्ञा पुं० [सं०] पान बेचनेवाला। तमोली।

तांबूली[1]—संज्ञा पुं० [सं० ताम्बूलिन्] पान बेचनेवाला। तमोली

तांबूली[2]—वि० तांबूल संबंधी (को०)

तांबूली[3](पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० ताम्बूल] पान की बेल। उ०—तांबू प्राहिवल्लरी, द्विजा, पान की बेलि।—नंद० ग्रं०, पृ० १०

तांबेल—संज्ञा पुं० [?] कछुवा। कच्छप।

तांमुल(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तांबूल'। उ०—घृत बिन भो ज्यों चून बिन तांमुल जटा बिन जोगी जैसे पुंछ बिन लोचर —अकबरी०, पृ० ५३।

तां(पु)[1]—अव्य० [?] तब तक। उ०—जां जसराज प्रतप्पियो सुरपूज अकाल।—रा० रू०, पृ० १६।

तां(पु)[2]—अव्य० [सं० तदा, प्रा० तई, तया; राज० तां] वह उ०—सज्जण चलणा तो लगई, जां लग लगणे विट्ठ। ढोला०, दू० ४२०।

तांई—अव्य० [सं० तावत् या फ़ा० ता] १. तक। पर्यंत। पास। तक। समीप। निकट। ३. (किसी के) प्रति समक्ष। लक्ष्य करके। जैसे, किसी के तांई कुछ कहना उ०—कह गिरिधर कविराय बात चतुरन के तांई। तेरह तें तरह दिए बनि आवै सांई।—गिरिधर (शब्द०) ४. विषय में। संबंध में। लिये। वास्ते। निमित्त। उ० दीन्ह रूप औ जोति गोसाई। कीन्ह खंभ दुहुँ जग के तांई —जायसी (शब्द०)।

मुहा०—अपने तांई = अपने को।

विशेष—दे० 'तई''।

तांगा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'टांगा'।

तांडा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'टांडा[2]'। उ०—राम नाम सो किया दूजा दाम चुकाय। जन हरिया गुरुज्ञान का तां देह लदाय।—राम० धर्म०, पृ० ५३।

तांण(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तान'। उ०—जहां सुपक त वारि अरु सेल टकटूक ह्वै बीण की तांण चहुं फेर हुई।· सुंदर० ग्रं०, भाग २, पृ० ८८१।

तांत—संज्ञा स्त्री० [सं० तन्तु] १. भेड़ बकरी की अँतड़ी, या चौपा के पुट्ठों को बटकर बनाया हुआ सूत। चमड़े या नसों की ब हुई डोरी। इससे धनुष की डोरी, सारंगी आदि के त बनाए जाते हैं।

मुहा०—तांत सा = बहुत दुबला पतला। तांत बाजी और राग बूझा जरा सी बात पाकर खूब पहचान लेना। उदा०—घर। टपकी बाजी साग। हम तुम्हारी जात बुनियाद से वाकिफ हैं तांत बाजी और राग बूझा।—सैर कु०, पृ० ४४।

२. धनुष की डोरी। ३. डोरी। सूत। ४. सारंगी आदि त तार। जैसे,तांत बाजी राग बूझा। उ०—(क) सो कुमति कहउं केहि भांती। बाज सुराग कि गांडर तांती —तुलसी (शब्द०)। (ख) सेइ साधु गुरु सुनि पुरान श्रुति बूझ्यो राग बाजी तांति।—तुलसी (शब्द०) ५. जुलाहों का राछ।

ताँतड़ी—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ ताँत का अल्पा॰] ताँत।

मुहा॰—ताँतड़ी सा = ताँत की तरह दुबला पतला।

ताँतवा—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ आँत] आँत उतरने का रोग।

ताँता—संज्ञा पुं॰ [सं॰ तति (= श्रेणी) अथवा सं॰ तांति (= क्रम)] श्रेणी। पंक्ति। कतार।

मुहा॰—ताँता बाँधना = पंक्ति में खड़ा होना। ताँता लगना = तार न टूटना। एक पर एक बराबर चला चलना।

ताँति†—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ ताँत] दे॰ 'ताँत'।

ताँतिया¹—वि॰ [हिं॰ ताँत] ताँत की तरह दुबला पतला।

ताँतिया²—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] ताँत बजानेवाला। तंतुवादक। उ॰—कहै कबीर मस्तान माता रहै, बिना कर ताँतिया नाद गावै।—कबीर श॰, भा॰ १, पृ॰ ६५।

ताँती¹—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ ताँता] १. पंक्ति। कतार। २. बाल बच्चे। औलाद।

ताँती²—संज्ञा पुं॰ जुलाहा। कपड़ा बुननेवाला।

ताँती(पु)³ संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰] दे॰ 'ताँत'। उ॰—उनमनी ताँती बाजन लागी, यही बिधि तृष्णाँ षाँडी।—गोरख॰, पृ॰ १०६।

ताँन(पु)—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰] दे॰ 'तान²'। उ॰—गोपी रीझि रही रस ताँनन सो सुध बुध सब बिसराई।—पोद्दार अभि॰ ग्रं॰, पृ॰ १५१।

ताँबा संज्ञा पुं॰ [सं॰ ताम्र] लाल रंग की एक धातु जो खानों में गंधक, लोहे तथा और द्रव्यों के साथ मिली हुई मिलती है।

विशेष—यह पीटने से बढ़ सकती है और इसका तार भी खींचा जा सकता है। ताप और विद्युत् के प्रवाह का संचार ताँबे पर बहुत अधिक होता है, इससे उसके तारों का व्यवहार टेलिग्राफ आदि में होता है। ताँबे में और दूसरी धातुओं को निर्दिष्ट मात्रा में मिलाने से कई प्रकार की मिश्रित धातुएँ बनती हैं, जैसे, राँगा मिलाने से काँसा, जस्ता मिलाने से पीतल। कई प्रकार के विलायती सोने भी ताँबे से बनते हैं। खूब ठंढी जगह में ताँबा और जस्ता बराबर बराबर लेकर गला डाले। फिर गली हुई धातु को खूब घोंटे और थोड़ा सा जस्ता और मिला दे। घोंटते घोंटते कुछ देर में सोने की तरह पीला हो जायगा। ताँबे की खानें संसार में बहुत स्थानों में हैं जिनमें भिन्न भिन्न यौगिक द्रव्यों के अनुसार भिन्न भिन्न प्रकार का ताँबा निकलता है। कहीं धूमले रंग का, कहीं बैंगनी रंग का, कहीं पीले रंग का। भारतवर्ष में सिंहभूमि, हजारीबाग, जयपुर, अजमेर, कच्छ, नागपुर, नेल्लोर इत्यादि अनेक स्थानों में ताँबा निकलता है। जापान से बहुत अच्छे ताँबे के पत्तर बाहर जाते हैं।

हिंदुओं के यहाँ ताँबा बहुत पवित्र धातु माना जाता है, अतः उसके अरघे, पंचपात्र, कलश, झारी आदि पूजा के बरतन बहुत बनते हैं। डाक्टरी, हकीमी और वैद्यक तीनों मत की चिकित्साओं में ताँबे का व्यवहार अनेक रूपों में होता है। आयुर्वेद में ताँबा शोधने की विधि इस प्रकार है। ताँबे का बहुत पतला पत्तर करके आग में तपाकर लाल कर डाले। फिर उसे क्रमशः तेल, मट्ठे, काँजी, गोमूत्र और कुलथी की पीठी में तीन तीन बार बुझावे। बिना शोधा हुआ ताँबा विष से अधिक हानिकारक होता है।

पर्या॰—ताम्रक। शुल्व। म्लेच्छमुख। द्व्यष्ट। वरिष्ठ। उदुंबर। द्विष्ट। अंबक। तपनेष्ट। अरविंद। रविलोह। रविप्रिय। रक्त। नैपालिक। मुनिपित्तल। अर्क। लोहितायस।

ताँबा²—संज्ञा पुं॰ [अ॰ तअमह्] मांस का वह टुकड़ा जो बाज आदि शिकारी पक्षियों के आगे खाने के लिये डाला जाता है।

ताँबिया—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰] दे॰ 'ताँबी'।

ताँबी—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ ताँबा] १. चौड़े मुँह का ताँबे का एक छोटा बरतन। २. ताँबे की करछी।

ताँबेकारी—संज्ञा स्त्री॰ [देश॰] एक प्रकार का लाल रंग।

ताँम(पु)—क्रि॰ वि॰ [?] तब। उ॰—बज्जिय निसाँन गज्जिय सु ताँम।—हु॰ रासो, पृ॰ ५०।

ताँवत(पु)—क्रि॰ वि॰ [सं॰ तावत्] दे॰ 'तावत्'। उ॰—जैत फूल फल पत्रिय चाही। ताँवत आगमपुर मों आही।—इंद्रा॰, पृ॰ १४।

ताँवर—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ ताप, हिं॰ ताव] १. ताप। ज्वर। हरारत। २. जाड़ा देकर आनेवाला बुखार। जूड़ी। ३. मूर्छा। पछाड़। घुमटा। चक्कर।

क्रि॰ प्र॰—आना।

ताँवरि(पु)—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰] दे॰ 'ताँवर'। उ॰—फिरत सीस चखु आ अँधियारा। ताँवरि आइ परी बिकरारा।—चित्रा॰, पृ॰ १२३।

ताँवरी—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰] दे॰ 'ताँवर'।

ताँवरो†—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] दे॰ 'ताँवर'। उ॰—ज्यों सुक सेव आस लगि, निसि बासर हठि चित्त लगायो। रीतो परयो जबै फल चाख्यो, उड़ि गयो तूल ताँवरो आयो।—सूर॰, १। ३२६।

ताँसना†—क्रि॰ स॰ [सं॰ त्रास] १. डाँटना। त्रास देना। धमकाना। आँख दिखाना। २. कुव्यवहार करना। सताना। जैसे, सास का बहू को ताँसना।

ताँसा†—संज्ञा पुं॰ [देश॰] एक प्रकार का बाजा। झाँझ।

ताँह(पु)—सर्व॰—[सं॰ तद्] वो। सो (वह) सर्वनाम के कर्मकारक का बहुवचन। उ॰—आड़ा डूँगर वन घणा, ताँह मिलिज्जइ केम।—ढोला॰, दू॰, २१२।

ताँहीं(पु)—क्रि॰ वि॰ [हिं॰] दे॰ 'ताईं'। उ॰—जो अंतरजामी ढिग आहीं। का करि सकै इंद्र इन ताँहीं।—नंद॰ ग्रं॰, पृ॰ १६२।

ता¹—प्रत्य॰ [सं॰] एक भाववाचक प्रत्यय जो विशेषण और संज्ञा शब्दों के आगे लगता है। जैसे,—उत्तम, उत्तमता; शत्रु, शत्रुता; मनुष्य, मनुष्यता।

ता²—प्रत्य॰ [फ़ा॰] तक। पर्यंत। उ॰—(क) केस मेघावरि सिर ता पाईं। चमकहिं दसन बीजु की नाईं।—जायसी

(शब्द०)। (ख)। रूठता हूँ इस सबब हर बार मैं। ता पसे तेरे लगूँ ऐ यार मैं। कविता कौ०, भाग ४, पृ० २६।

ता(पु)³—सर्व० [सं० तद्] उस।

विशेष—इस रूप में यह शब्द विभक्ति के साथ ही आता है। जैसे,—ताकों, तासों, तापै इत्यादि।

ता(पु)†⁴—वि० उस। उ०—सब शिव उमा गए ता ठौर।—सूर (शब्द०)

विशेष—इसका प्रयोग विभक्तियुक्त विशेष्य के साथ ही होता है।

ता⁵—क्रि० वि० [फ़ा०] जब तक। उ०—करे ता ओ अल्लाह का नायब करम। हमारा सभी जाय ये दर्दो गम।—दक्खिनी०, पृ० २१४।

ता⁶—संज्ञा पुं० [अनु०] नृत्य का बोल। उ०—राम में रसिक दोऊ आनँद भरि नाचत, ततादिम दि ता ततथेइ ततथेइ गति बोले।—नंद० ग्रं०, पृ० १६६।

ताई(पु)—प्रत्य० [सं० तावत् या फ़ा० ता] दे० 'ताईं'-३। उ०—अमृत छोड़ विषय रस पीवै, भृग तृग तिनके ताईं।—कबीर श०, भा० १, पृ० ४५।

ताई¹—संज्ञा स्त्री० [सं० ताप, हिं० ताप+ई (प्रत्य०)] १. ताप। हरारत। हलका ज्वर। २ जाड़ा देकर आनेवाला बुखार। जूड़ी।

क्रि० प्र०—आना।

३. एक प्रकार की छिछली कड़ाही जिसमें मालपूआ, जलेबी आदि बनाते हैं।

ताई²—संज्ञा स्त्री० [हिं० ताऊ का स्त्रीलिंग] बाप के बड़े भाई की स्त्री। जेठी चाची।

ताई(पु)³—प्रत्य० [सं० तावत् या फ़ा० ता] दे० 'ताईं'-३। उ०—भूत खानि में रहो समाई। सब जग जाने तेरे ताई।—कबीर सा०, पृ० १५१८।

ताई(पु)⁴—वि० [सं० तावत्] नहीं। उ०—साजे सार छत्तीस सिपाई। त्यार हुआ रण मंडण ताई।—रा० रू०, पृ० ६५।

ताईज़‡—संज्ञा पुं० [फ़ा० ताबीज] ताबीज। जंतर। यंत्र।

ताईद¹—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. पक्षपात। तरफदारी। २. अनुमोदन। समर्थन। पुष्टि। उ०—आखिर मिरजा साहब झूठ क्यों बोलते और मुंशी अख्तर साहब इनकी ताईद क्यों करते?—सैर०, पृ० १२।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

ताईदी¹—संज्ञा पुं० १. सहायक कर्मचारी। नायब। २. किसी कर्मचारी के साथ काम सीखने के लिये उम्मेदवार की तरह काम करनेवाला व्यक्ति।

ताउ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ताव'।

ताउल¹—वि० [हिं० उतावला] उतावला। अधीर।

ताऊ—संज्ञा पुं० [सं० तातगु] बाप का बड़ा भाई। बड़ा चाचा। ताया।

मुहा०—बछिया के ताऊ = बैल। मूर्ख। जड़।

ताऊन—संज्ञा पुं० [अ०] एक घातक संक्रामक रोग जिसमें गिलटी निकलती और बुखार आता है। प्लेग।

ताऊस—संज्ञा पुं० [अ०] १. मोर। मयूर।

यौ०—तख्त ताऊस = शाहजहाँ के बहुमूल्य रत्नजटित राजसिंहासन का नाम जो कई करोड़ की लागत से मोर के आकार का बनाया गया था।

२. सारंगी और सितार से मिलता जुलता एक बाजा जिसपर मोर का आकार बना होता है।

विशेष—इसमें सितार के से तरब और परदे होते हैं और यह सारंगी की कमानी से रेतकर बजाया जाता है।

ताऊसी—वि० [अ०] १ मोर का सा। मोर की तरह का। २. गहरा ऊदा। गहरा बैंगनी।

ताक¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० ताकना] १. ताकने की क्रिया। अवलोकन।

यौ०—ताक झाँक।

मुहा०—ताक रखना = निगाह रखना। निरीक्षण करते रहना।

२. स्थिर दृष्टि। टकटकी।

मुहा०—ताक बाँधना = दृष्टि स्थिर करना। टकटकी लगाना।

३. किसी अवसर की प्रतीक्षा। मौका देखते रहने का काम। घात। जैसे,—बंदर आम लेने की ताक में बैठा है।

मुहा०—(किसी की) ताक में बैठना = (किसी का) अहित चेतना। उ०—जो रहे ताकते हमारा मुँह। हम उन्हीं की न ताक में बैठें।—चोखे०, पृ० २७। ताक में रहना = उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा करते रहना। मौका देखते रहना। ताक रखना = घात में रहना। मौका देखते रहना। ताक लगाना = घात जमाना। मौका देखने रहना।

४. खोज। तलाश। फिराक। जैसे,—(क) किस ताक में बैठे हो? (ख) उसी की ताक में जाते हैं।

ताक²—संज्ञा पुं० [अ० ताक़] दीवार में बना हुआ गड्ढा या खाली स्थान जो चीज वस्तु रखने के लिये होता है। आला। ताखा।

मुहा०—ताक पर धरना या रखना = पड़ा रहने देना। काम में न लाना। उपयोग न करना। जैसे,—(क) किताब ताक पर रख दी और खेलने के लिये निकल गया। (ख) तुम अपनी किताब ताक पर रखो; मुझे उसकी जरूरत नहीं। ताक पर रहना या होना = पड़ा रहना। काम में न आना। अलग पड़ा रहना। व्यर्थ जाना। जैसे, यह दस्तावेज ताक पर रह जायगा; और उसकी डिगरी हो जायगी। ताक भरना = किसी देवस्थान पर मनौती की पूजा चढ़ाना।—(मुसल०)।

ताक³—वि० १. जो संख्या में सम न हो। जो बिना खंडित हुए दो बराबर भागों में न बँट सके। विषम। जैसे, एक, तीन, पाँच, सात, नौ, ग्यारह आदि।

यौ०—जुफ्त ताक या जुस ताक।

२. जिसके जोड़ का दूसरा न हो। अद्वितीय। एक या अनुपम। जैसे, किसी फन में ताक होना। उ०—जो था अपने फन में ताक था।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ४९।

ताकजुफ्त—संज्ञा पुं० [अ० ताक़+फ़ा० जुफ़्त] एक प्रकार का जूआ जिसमें मुट्ठी के भीतर कुछ कौड़ियाँ या और वस्तुएँ लेकर बुझाते हैं कि वस्तुओं की संख्या सम है या विषम। यदि बूझनेवाला ठीक बतला देता है तो वह जीत जाता है।

ताकझाँक—संज्ञा स्त्री० [हिं० ताकना+झाँकना] १. रह रहकर बार बार देखने की क्रिया। कुछ प्रयत्नपूर्वक दृष्टिपात। जैसे,—क्या ताक झाँक लगाए हो; अभी वे यहाँ नहीं आए हैं। २. छिपकर देखने की क्रिया। ३. निरीक्षण। देखभाल। निगरानी। ४. अन्वेषण। खोज।

ताकत—संज्ञा स्त्री० [अ० ताक़त] १. जोर। बल। शक्ति। २. सामर्थ्य। जैसे,—किसी की क्या ताकत जो तुम्हारे सामने आवे।

ताकतवर—वि० [अ० ताक़त+फ़ा० वर (प्रत्य०)] १. बलवान्। बलिष्ठ। २. शक्तिमान्। सामर्थ्यवान्।

ताकना—क्रि० स० [सं० तर्कण (=विचारना)] १. सोचना। विचारना। चाहना। उ०—जो राउर अति अनभल ताका। सो पाइहि यह फल परिपाका।—तुलसी (शब्द०)। २. अवलोकन करना। दृष्टि जमाकर देखना। टकटकी लगाना। ३. ताड़ना। समझ जाना। लखना। ४. पहले से देख रखना। (किसी वस्तु को किसी कार्य के लिये) देखकर स्थिर करना। तजवीज करना। जैसे,—(क) यह जगह मैंने पहले से तुम्हारे लिये ताक रखी है, यहीं बैठो। (ख) कोई अच्छा आदमी ताककर यहाँ लाओ। ५. दृष्टि रखना। रखवाली करना। जैसे,—मैं अपना असबाब यहीं छोड़े जाता हूँ, जरा ताकते रहना।

ताकरी—संज्ञा स्त्री० [सं० टक्क (=एक देश या एक जाति)] एक लिपि का नाम जो नागरी से मिलती जुलती होती है।

विशेष—अटक के उस पार से लेकर सतलज और जमुना नदी के किनारे तक यह लिपि प्रचलित है। काश्मीर और काँगड़े के ब्राह्मणों में इसका प्रचार अब तक है। इसके अक्षरों को खुंडे या मुंडे भी कहते हैं।

ताकवना(पु)—क्रि० स० [हिं०] दे० 'ताकना'। उ०—कायर बैरी ताकवै, सुरा माँड़ै पाँव।—कबीर० सा०, सं०, पृ० २६।

ताकि—अव्य० [फ़ा०] जिसमें। इसलिये कि। जिससे। जैसे,—यहाँ से हट जाता हूँ ताकि वह मुझे देखने न पावे।

ताकीद—संज्ञा स्त्री० [अ०] जोर के साथ किसी बात की आज्ञा या अनुरोध। किसी को सावधान करके दी हुई आज्ञा। खूब चेताकर कही हुई बात। ऐसा अनुरोध या आदेश जिसके पालन के लिये बार बार कहा गया हो। जैसे,—मुहर्रिरों से ताकीद कर दो कि कल ठीक समय पर आवें। उ०—क्या तूने सब लोगों से ताकीद करके नहीं कहा था कि उत्सव हो?—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० १७६।

क्रि० प्र०—करना।

ताकीद कामिल—संज्ञा स्त्री० [अ० ताकीद+कामिल] पूर्ण चेतावनी। सावधानी। उ०—जरा इसकी ताकीद कामिल रहे कि कहीं वह बूढ़ा चर्खा मौल्वी न घुस आए।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ८८।

ताकोली—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक पौधे का नाम।

ताक्षण्य, ताक्ष्ण्य—संज्ञा पुं० [सं०] बढ़ई का लड़का [को०]।

ताख‡—संज्ञा पुं० [अ० ताक] दे० 'ताक'[२]। उ०—पढ़ सुगना सत नाम, बैठ तन ताख में।—धरम०, पृ० ४३।

ताखड़ा[१]—वि० [देश०] दे० 'तगड़ा'।

ताखड़ा[२]—वि० [?] उत्साहित। उ०—ताखड़ा, नत्रीठा घोड़िया तायलाँ। घणा घायल किया आप घण घायलाँ।—रघु० रू०, पृ० १८३।

ताखड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रि+हिं० कड़ी] तराजू। काँटा।

ताखन(पु)—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'तत्क्षण'। उ०—ताखन उठलिहुँ जागि रे।—धरनी०, पृ० २८।

ताखा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ताक'।

ताखो—वि० [अ० ताक़] १. जिसकी दोनों आँखें एक तरह की न हों। जिसकी एक आँख एक रंग या ढंग की हो और दूसरी आँख दूसरे रंग ढंग की हो। (घोड़ों, बैलों आदि के लिये। ऐसे जानवर ऐबी समझे जाते हैं)। २. साधुओं के पहनने की नोकदार एक टोपी। उ०—गुरू का सबद बोद कान में मुद्रिका, उनमुनी तिलक सिर तत्त ताखी।—पलटू०, भा० २, पृ० २५।

ताखीर—संज्ञा स्त्री० [अ० ताख़ीर] विलंब। देर। उ०—देख नाचार कर न कुछ ताखीर।—कबीर ग्रं०, पृ० ३७४।

ताग—संज्ञा पुं० [हिं० तागा] दे० 'तागा'। उ०—सत रज तम तीनों ताग तोरि डारिए।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ६११।

तागड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ताग+कड़ी] १. तागे में पिरोए हुए सोने चाँदी के घुँघुरुओं का बना हुआ कमर मे पहनने का एक गहना। करधनी। काँची। किंकिणी। क्षुद्रघंटिका।

विशेष—तागड़ी सीकड़ या जंजीर के आकार की भी बनती है।

२. कमर में पहनने का रंगीन डोरा। कटिसूत्र। करगता।

तागत(पु)—संज्ञा स्त्री० [अ० ताकत] दे० 'ताकत'। उ०—तागत बिना हवास होस तुलसी मैं मरूँ।—संत० तुरसी, पृ० १४३।

तागना—क्रि० स० [हिं० तागा+ना (प्रत्य०)] सुई से तागा डालकर फँसाना। स्थान स्थान पर डोभ या लंगर डालना। दूर दूर की मोटी सिलाई करना। जैसे, दुलाई या रजाई तागना। उ०—ज्ञान गूदरी मुक्ति मेखला सहज सुई लै तागो।—कबीर श०, भा० १, पृ० ५२।

तागपहनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तागा+पहनाना] एक पतली लकड़ी जिसका एक सिरा नोकदार और दूसरा चिपटा होता है। चिपटा सिरा बीच से फटा रहता है जिसमें तागा रखकर बय में पहनाया जाता है। (जुलाहे)।

तागपाट—संज्ञा पुं० [हिं० तागा+पाट (=रेशम)] एक प्रकार का गहना।

विशेष—यह रेशम के तागे में सोने के तीन ठासे या जंतर डालकर बनाया जाता है। यह विवाह में काम आता है।

मुहा०—तागपाट डालना=विवाह की रीति के अनुसार गलेम

पूजन आदि के पीछे वर के बड़े भाई (दुलहिन के जेठ) का वधू को तागपाट पहनाना ।

तागरी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० तागड़ी] दे० 'तागड़ी'-२ । उ०—खिरगट फारि चटरा ले गयो तरी तागरी छूटी ।—कबीर ग्रं०, पृ० २७७ ।

तागा—संज्ञा पुं० [सं० तार्कव, प्रा० ताग्गो, पु०हिं० तागो] १. रूई, रेशम आदि का वह अंश जो तकले आदि पर बटने से लंबी रेखा के रूप में निकलता है । सूत । डोरा । धागा ।

क्रि० प्र०—डालना ।—पिरोना ।

मुहा०—तागा डालना = सिलाई के द्वारा तागा फँसाना । दूर दूर पर सिलाई करना । तागना ।

२. वह कर या महसूल जो प्रति मनुष्य के हिसाब से लगे ।

विशेष—मनुष्य करधनी, जनेऊ आदि पहनते हैं; इसी से यह अर्थ लिया गया है ।

तागीर(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तगीर' । उ०—तब देसाधिपति ने उन सों परगना तागीर करि उनको अपने पास बुलाए ।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० २०१ ।

तागड़दि(पु)—संज्ञा पुं० [अनु०] तड़तड़ शब्द । उ०—दुहु ओडी दल गाजे, तागड़दि तबल बाजे रिणतूर ।—रघु०, रू०, पृ० २१६ ।

ताचना(पु)—क्रि० स० [हिं० तचाना] जलाना । तपाना । उ०—विस्फुलिंग से जग दुख तजि तब विरह अगिन तन ताचौं ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ३३६ ।

ताज[1]—संज्ञा पुं० [अ०] १. बादशाह की टोपी । राजमुकुट ।

यौ०—ताजपोशी ।

२. कलगी । तुर्रा । ३ मोर, मुर्गे आदि पक्षियों के सिर पर की चोटी । शिखा । ४ दीवार की कँगनी या छज्जा । ५. वह बुर्जी जिसे मकान के सिरे पर शोभा के लिये बना देते हैं । ६. गंजीफे के एक रंग का नाम । ७ आगरे का ताजमहल ।

ताज(पु)[2]—संज्ञा पुं० [फ़ा० ताजियाना] घोड़े को मारने का चाबुक । उ०—तीख तुखार चाँड औ बाँके । संचरहिं पौरि ताज बिनु हाँके ।—जायसी (शब्द०) ।

ताजक—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. एक ईरानी जाति जो तुर्किस्तान के बुखारा प्रदेश से लेकर बदख्शाँ, काबुल, बिलोचिस्तान, फारस आदि तक पाई जाती है ।

विशेष—बुखारा में यह जाति सर्त, अफगानिस्तान में देहान और बिलोचिस्तान में देहवार कहलाती है । फारस में ताजक एक साधारण शब्द ग्रामीण के लिये हो गया है ।

२. ज्योतिष का एक ग्रंथ जो यावनाचार्य कृत प्रसिद्ध है ।

विशेष—यह पहले अरबी और फारसी में था; राजा समरसिंह, नीलकंठ आदि ने इसे संस्कृत में किया । इसमें बारह राशियों के अनेक विभाग करके फलाफल निश्चित करने की रीतियाँ बतलाई गई हैं । जैसे, मेष, सिंह और धनु का पित्त स्वभाव और क्षत्रिय वर्ण; मकर, वृष और कन्या का वायु स्वभाव और वैश्य वर्ण; मिथुन, तुला और कुंभ का सम स्वभाव और शूद्र वर्ण; कर्कट, वृश्चिक और मीन का कफ स्वभाव और ब्राह्मण वर्ण । इस ग्रंथ में जो संज्ञाएँ आई हैं, वे अधिकांश अरबी और फारसी की हैं, जैसे, इक्कबाल योग, इंतिहा योग इत्थसाल योग, इशराक योग, गैरकबूल योग इत्यादि ।

ताजकुला—संज्ञा पुं० [अ० ताज + फ़ा० कुलाह] रत्नजटित मुकुट । उ०—बादशाह बाबर लिखता है कि जिस समय सुलतान महमूद राणा साँगा के हाथ कैद हुआ, उस समय प्रसिद्ध 'ताजकुला' (रत्नजटित मुकुट) और सोने की कमर पेटी उसके पास थी ।—राज० इति०, पृ० ६६७ ।

ताजगी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० ताजगी] १. शुष्कता या कुम्हलाहट का अभाव । ताजापन । हरापन । २. प्रफुल्लता । स्वस्थता । शिथिलता या श्रांति का अभाव । ३ सद्यः प्रस्तुत होने का भाव । नयापन ।

ताजदार[1]—वि० [फ़ा०] १ ताज के ढंग का । २. ताजवाला ।

ताजदार[2]—संज्ञा पुं० ताज पहननेवाला बादशाह । उ०—सत्ताईस वंश हैं उनके ताजदार ।—कबीर मं०, पृ० १३१ ।

ताजन—संज्ञा पुं० [फ़ा० ताजियाना] १. कोड़ा । चाबुक । उ०—लाज न आवति मोर समाजन लागें अलोक के ताजन ताहू ।—केशव ग्रं०, पृ० ७२ । २. दंड । सजा (को०) । ३. उत्तेजना प्रदान करनेवाली वस्तु (को०) ।

ताजना—संज्ञा पुं० [हिं० ताजन] दे० 'ताजन' । उ०—तनक ताजना लगत हो, छाड़ देत भुव अंग ।—प० रासो, पृ० ११७ ।

ताजपोशी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] राजमुकुट धारण करने या राजसिंहासन पर बैठने की रीति या उत्सव ।

ताजबख्श—संज्ञा पुं० [अ० ताज + फा० बख्श] बादशाह बनानेवाला या हारे हुए बादशाह को बादशाह बनानेवाला सम्राट् [को०] ।

ताजबीबी—संज्ञा स्त्री० [अ० ताज + फा० बीबी] शाहजहाँ की अत्यंत प्रिय और प्रसिद्ध बेगम मुमताज महल जिसके लिये आगरे में ताजमहल नाम का मकबरा बनाया गया था ।

ताजमहल—संज्ञा पुं० [अ०] आगरे का प्रसिद्ध मकबरा जिसे शाहजहाँ बादशाह ने अपनी प्रिय बेगम मुमताज महल की स्मृति में बनवाया था ।

विशेष—ऐसा कहा जाता है कि बेगम ने एक रात को स्वप्न देखा कि उसका गर्भस्थ शिशु इस प्रकार रो रहा है जैसा कभी सुना नहीं गया था । बेगम ने बादशाह से कहा—'मेरा अंतिम काल निकट जान पड़ता है । आपसे मेरी प्रार्थना है कि आप मेरे मरने पर किसी दूसरी बेगम के साथ निकाह न करें, मेरे लड़के को ही राजसिंहासन का अधिकारी बनावें और मेरा मकबरा ऐसा बनवावें जैसा कहीं भूमंडल पर न हो' । प्रसव के थोड़े दिन पीछे ही बेगम का शरीर छूट गया । बादशाह ने बेगम की अंतिम प्रार्थना के अनुसार जमुना के किनारे यह विशाल और अनुपम भवन निर्मित कराया जिसके जोड़ की इमारत संसार में कहीं नहीं है । यह मकबरा बिल्कुल संगमरमर का है । जिसमें नाना प्रकार के बहुमूल्य

रंगीन पत्थरों के टुकड़े जड़कर बेल बूटों का ऐसा सुंदर काम बना है कि चित्र का धोखा होता है। रंग बिरंग के फूल पत्ते पच्चीकारी के द्वारा अंकित हैं। पत्तियों की नसें तक दिखाई गई हैं। इस मकबरे को बनाने में २० वर्ष तक हजारों मजदूर और देशी विदेशी कारीगर लगे रहे। मसाला, मजदूरी आदि आजकल की अपेक्षा कई गुनी सस्ती होने पर भी इस इमारत में उस समय ३१७३८०२४ रुपए लगे। टेवर्नियर नामक फ्रेंच यात्री उस समय भारतवर्ष ही में था जब यह इमारत बन रही थी। इस अनुपम भवन को देखते ही मनुष्य मुग्ध हो जाता है। ठगों को दमन करनेवाले प्रसिद्ध कर्नल स्लीमन जब ताजमहल को देखने सस्त्रीक गए, तब उनकी स्त्री के मुँह से यही निकला कि 'यदि मेरे ऊपर भी ऐसा ही मकबरा बने, तो मैं आज मरने के लिये तैयार हूँ।

ताजा—वि० [फ़ा० ताज़ह्] [वि० स्त्री० ताजी] १. जो सूखा या कुम्हलाया न हो। हरा भरा। जैसे, ताजा फूल, ताजी पत्ती, ताजी गोभी। २. (फल आदि) जो डाल से टूटकर तुरंत आया हो। जिसे पेड़ से अलग हुए बहुत देर न हुई हो। जैसे, ताजे आम, ताजे अमरूद, ताजी फलियाँ। ३. जो श्रांत या शिथिल न हो। जो थका माँदा न हो। जिसमें फुरती और उत्साह बना हो। स्वस्थ। प्रफुल्लित। जैसे,–(क) थोड़ा जलपान कर लो ताजे हो जाओगे। (ख) शरबत पी लेने से तबीयत ताजी हो गई।

यौ०—मोटा ताजा = हृष्ट पुष्ट।

४. तुरंत का बना। सद्यःप्रस्तुत। जैसे, ताजी पूरी, ताजी जलेबी, ताजी दवा, ताजा खाना।

मुहा०—हुक्का ताजा करना = हुक्के का पानी बदलना।

५. जो व्यवहार के लिये अभी निकाला गया हो। जैसे, ताजा पानी, ताजा दूध। ६. जो बहुत दिनों का न हो। नया। जैसे—ताजा माल।

मुहा०—(किसी बात को) ताजा करना = (१) नए सिरे से उठाना। फिर छेड़ना या चलाना। फिर से उपस्थित करना। जैसे,—दबा दबाया झगड़ा क्यों ताजा करते हो? (२) स्मरण दिलाना। याद दिलाना। फिर चित्त में लाना। जैसे,—गम ताजा करना। (किसी बात का) ताजा होना = (१) नए सिरे से उठना। फिर छिड़ना या चलना। फिर उपस्थित होना। जैसे,—उनके आने से मामला फिर ताजा हो गया। (२) स्मरण आना। फिर चित्त में उपस्थित होना। जैसे, गम ताजा होना।

ताजातम—वि० [फ़ा० ताजा + सं० तम (प्रत्य०)] बिल्कुल नवीन। नवीनतम। उ०—'कढ़ी में कोयला' 'उग्र' लिखित ताजातम उपन्यास है।—कढ़ी० (प्रकाशकीय), पृ० ८।

ताजि(पु)—वि० [हिं० ताजी] दे० 'ताजी'। उ०—अनेक बाजि तेजि ताजि साजि साजि आनिया।—कीर्ति०, पृ० ८४।

ताजिणौ(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ताजन'। उ०—हूचि लगामी ताजिणो पार कइ छेवइ राजदुवार।—बी० रासो, पृ० ६९।

ताजिया—संज्ञा पुं० [अ० ताजियह्] बाँस की कमचियों पर रंग बिरंगे कागज, पन्नी आदि चिपकाकर बनाया हुआ मकबरे के आकार का मंडप जिसमें इमाम हुसेन की कब्र बनी होती है।

विशेष—मुहर्रम के दिनों में शीया मुसलमान इसकी आराधना करते और अंतिम दिन इमाम के मरने का शोक मनाते हुए इसे सड़क पर निकालते और एक निश्चित स्थान पर ले जाकर दफन करते हैं।

मुहा०—ताजिया ठंढा होना = (१) ताजिया दफन होना। (२) किसी बड़े आदमी का मर जाना।

विशेष—ताजिया निकालने की प्रथा केवल हिंदुस्तान के शीया मुसलमानों में है। ऐसा प्रसिद्ध है कि तैमूर कुछ जातियों का नाश करके जब करबला गया था, तब वहाँ से कुछ चिह्न लाया था जिसे वह अपनी सेना के आगे आगे लेकर चलता था। तभी से यह प्रथा चल पड़ी।

ताजियादारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ताजिया + फ़ा० दारी (प्रत्य०)] ताजिया के प्रति संमानप्रदर्शन। उ०—दुर्गाबाई सुन्नी मुसलमान थी। वह ताजियादारी करती थी और नाचना उनका पेशा था।—फ़ाँसी०, पृ० ३१०।

ताजियाना—संज्ञा पुं० [फ़ा० ताजियान] १. चाबुक। कोड़ा। उ०—हुर नफस थोया उसे एक ताजियाना हो गया।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ८५०।

ताजी[1]—वि० [फ़ा० ताजी] अरबी। अरब का। अरब संबंधी।

ताजी[2]—संज्ञा पुं० १. अरब का घोड़ा। उ०—सुंदर घर ताजी बँधे तुरकिन की घुरसाल।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ७३७। २. शिकारी कुत्ता।

ताजी[3]—संज्ञा स्त्री० अरब की भाषा। अरबी भाषा।

ताजी[4]—वि० ताजा का स्त्री० रूप।

ताजीम—संज्ञा स्त्री [अ० ताजीम] किसी बड़े के सामने उसके आदर के लिये उठकर खड़ा हो जाना, झुककर सलाम करना इत्यादि। संमानप्रदर्शन। उ०—सिजदा सिरजनहार कौं मुरसिद कौ ताजीम।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० २८९।

क्रि० प्र०—करना।—देना।

ताजीमी(पु)—वि० [अ० ताजीम + फ़ा० ई (प्रत्य०)] ताजीम। उ०—और रसूल पर करो यकीना। उन फकीर ताजीमी कीन्हा।—घट०, पृ० २११।

ताजीमी सरदार—संज्ञा पुं० [फ़ा० ताजीमी + अ० सरदार] वह सरदार जिसके आने पर राजा या बादशाह उठकर खड़े हो जायँ या जिसे कुछ आगे बढ़कर लें। ऐसा सरदार जिसकी दरबार में विशेष प्रतिष्ठा हो।

ताजीर—संज्ञा स्त्री० [अ० ताजीर] सजा। दंड [को०]।

ताजीरात—संज्ञा पुं० [अ० ताजीरात, अ० ताजीर का बहु व०] अपराध और दंड संबंधी व्यवस्थाओं या कानूनों का संग्रह। दंडविधि। जैसे, ताजीरात हिंद।

ताजीरी—वि० [अ० ताजीर + फ़ा० ई (प्रत्य०)] १. दंड से संबंधित। २. दंड रूप में लगाया हुआ या तैनात किया हुआ (कर या पुलिस आदि)।

ताजीस्त—अव्य० [फ़ा० ताज़ीस्त] जीवन भर। आजीवन। आजन्म। उ०—ताजीस्त सनारव्वा हो तू इस कातिल अपने।—कबीर मं०, पृ० ४६८।

ताजुबा—संज्ञा पुं० [अ० तअज्जुब] दे० 'तअज्जुब'।

ताज्जुब—संज्ञा पुं० [अ० तअज्जुब] दे० 'तअज्जुब'।

ताटंक—संज्ञा पुं० [सं० ताडङ्क] १. कान मे पहनने का एक गहना। करनफूल। तरकी। उ० चलि चलि जात निकट स्रवननि के उलटि पलटि ताटंक फँदाते।—सतवाणी०, पृ० ५५। २. छप्पय के २४वें भेद का नाम। ३. एक छंद जिसके प्रत्येक चरण मे १६ और १४ के विराम से ३० मात्राएँ होती हैं और अंत मे मगण होता है। किसी किसी के मत मे एक गुरु का ही नियम रखा है। लावनी प्रायः इसी छद में होती है।

ताटका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'ताड़का' (को०)।

ताटस्थ—संज्ञा पुं० [सं० ताटस्थ्य] १. समीपता। निकटता। २. तटस्थता। उदासीनता। निरपेक्षता (को०)।

ताड़क—संज्ञा पुं० [सं० ताडङ्क] कान का एक गहना। तरकी। करनफूल।

विशेष—पहले यह गहना ताड़ के पत्तों का ही बनता था। अब भी तरकी ताड़ के पत्ते ही की बनती है।

ताड़—संज्ञा पुं० [सं० ताल] १. शाखारहित एक बड़ा पेड़ जो खंभे के रूप में ऊपर की ओर बढ़ता चला जाता है और केवल सिरे पर पत्ते धारण करता है।

विशेष—ये पत्ते चिपटे मजबूत डंठलों में, जो चारों ओर निकले रहते हैं, फैले हुए पर की तरह लगे रहते हैं और बहुत ही बड़े होते हैं। इसकी लकड़ी की भीतरी बनावट सूत के ठोस लच्छों के रूप की होती है। ऊपर गिरे हुए पत्तों के डंठलों के मूल रह जाते हैं जिससे छाल खुरदुरी दिखाई पड़ती है। चैत के महीने में इसमें फूल लगते हैं और वैशाख में फल, जो भादों में खूब पक जाते हैं। फलों के भीतर एक प्रकार की गिरी और रेशेदार गूदा होता है जो खाने के योग्य होता है। फूलों के कच्चे अंकुरों को पाछने से बहुत सा रस निकलता है जिसे ताड़ी कहते हैं और जो धूप लगने पर नशीला हो जाता है। ताड़ी का व्यवहार नीच श्रेणी के लोग मद्य के स्थान पर करते हैं। बिना धूप लगा रस मीठा होता है जिसे नीरा कहते हैं। महात्मा गांधी ने नीरा का प्रयोग उचित बताया था। नीरा तथा ताड़ी दोनों में विटामिन बी प्रचुर मात्रा में होता है। बेरी बेरी रोग में दोनों अत्यंत लाभकारी होते हैं। ताड़ प्रायः सब गरम देशों में होता है। भारतवर्ष, अरब, बरमा, सिंहल, सुमात्रा, जावा आदि द्वीपपुंज तथा फारस की खाड़ी के तटस्थ प्रदेश मे ताड़ के पेड़ बहुत पाए जाते हैं। ताड़ की अनेक जातियाँ होती हैं। तमिल भाषा में तालविलास नामक एक ग्रंथ है जिसमें ८०१ प्रकार के ताड़ गिनाए गए हैं और प्रत्येक का अलग अलग गुण बतलाया गया है। दक्षिण में ताड़ के पेड़ बहुत अधिक होते हैं। गोदावरी आदि नदियों के किनारे कहीं कहीं तालवनों की विलक्षण शोभा है। इस वृक्ष का प्रत्येक भाग किसी न किसी काम में आता है। पत्तों से पंखे बनते हैं और छप्पर छाए जाते हैं। ताड़ की खड़ी लकड़ी मकानों में लगती है। लकड़ी खोखली करके एक प्रकार की छोटी सी नाव भी बनाते हैं। डंठल के रेशे चटाई और जाल बनाने के काम में आते हैं। कई प्रकार के ऐसे ताड़ होते हैं जिनकी लकड़ी बहुत मजबूत होती है। सिंहल के जफना नामक नगर से ताड़ की लकड़ी दूर दूर भेजी जाती थी। प्राचीन काल में दक्षिण के देशों में तालपत्र पर ग्रंथ लिखे जाते थे। ताड़ का रस औषध के काम में भी आता है। ताड़ी की पुलटिस फोड़े या घाव के लिये अत्यंत उपकारी है। ताड़ी का सिरका भी पड़ता है। वैद्यक में ताड़ का रस कफ, पित्त, दाह और शोथ को दूर करनेवाला और कफ, वात, कृमि, कुष्ट और रक्तपित्त नाशक माना जाता है। ताड़ ऊँचाई के लिये प्रसिद्ध है। कोई कोई पेड़ तीस, चालीस हाथ तक ऊँचे होते हैं, पर घेरा किसी का ६-७ बित्ते से अधिक नहीं होता।

पर्या०—तालद्रुम। पत्री। दीर्घस्कंध। ध्वजद्रुम। तृणराज। मधुरस। मदाढ्य। दीर्घपादप। चिरायु। तरुराज। दीर्घपत्र। गुच्छपत्र। आसवद्रु। लेख्यपत्र। महोन्नत।

२. ताड़न। प्रहार। ३. शब्द। ध्वनि। धमाका। ४. घास, अनाज के डंठल आदि की अँटिया जो मुट्ठी में आ जाय। जुट्टी। पूला। ५. हाथ का एक गहना। ६. मूर्ति-निर्माण-विद्या में मूर्ति के ऊपरी भाग का नाम। ७. पहाड़। पर्वत (को०)।

ताड़क[1]—वि० [सं० ताडक] ताड़ना या आघात करनेवाला (को०)।

ताड़क[2]—संज्ञा पुं० वधिक। जल्लाद (को०)।

ताड़का—संज्ञा स्त्री० [सं० ताडका] एक राक्षसी जिसे विश्वामित्र की आज्ञा से श्री रामचंद्र ने मारा था।

विशेष—इसकी उत्पत्ति के संबंध में कथा है कि यह सुकेतु नामक एक वीर यक्ष की कन्या थी। सुकेतु ने अपनी तपस्या से ब्रह्मा को प्रसन्न करके इस बलवती कन्या को पाया था जिसे हजार हाथियों का बल था। यह सुंद को ब्याही थी। जब अगस्त्य ऋषि ने किसी बात पर क्रुद्ध होकर सुंद को मार डाला, तब यह अपने पुत्र मारीच को लेकर अगस्त्य ऋषि को खाने दौड़ी। ऋषि के शाप से माता और पुत्र दोनों घोर राक्षस हो गए। उसी समय से ये अगस्त्य जी के तपोवन का नाश करने लगे और उसे इन्होंने प्राणियों से शून्य कर दिया। यह सब व्यवस्था दशरथ से कहकर विश्वामित्र रामचंद्र जी को लाए और उनके हाथ से ताड़का का वध कराया।

ताड़काफल—संज्ञा पुं० [सं० ताडकाफल] बड़ी इलायची।

ताड़कायन—संज्ञा पुं० [सं० ताडकायन] विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम।

ताड़कारि—संज्ञा पुं० [सं० ताडकारि] (ताड़का के शत्रु) श्री रामचंद्र।

ताड़केय—संज्ञा पुं० [सं० ताडकेय] (ताड़का का पुत्र) मारीच।

ताड़क—संज्ञा पुं० [सं० ताडक] १. बेत या कोड़ा मारनेवाला। २. जल्लाद।

ताड़घात—संज्ञा पुं० [सं० ताडघात] हथौड़े आदि से पीटकर काम करनेवाला। लोहार।

ताड़न—संज्ञा पुं० [सं० ताडन] १. मार। प्रहार। आघात। २. डाँट डपट। घुड़की। ३. शासन। दंड। ४. मंत्रों के वर्णों को चंदन से लिखकर प्रत्येक मंत्र को जल से वायुबीज पढ़कर मारने का विधान। ५. गुणन। ६. खंड ग्रहण (को०)।

ताड़ना[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० ताडन] १ प्रहार। मार। उ०—देह ताड़ना चित्त को हुकम सर पाड़े पास हो।—कबीर सा०, पृ० ८६।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

२. उत्पीड़न। कष्ट।

ताड़ना[2]—क्रि० स० १. मारना। पीटना। दंड देना। २. डाँटना। डपटना। शासित करना।

ताड़ना[3]—क्रि० स० [सं० तर्कण (=सोचना)] १. किसी ऐसी बात को जान लेना जो जान बूझकर प्रकट न की गई हो या छिपाई गई हो। लक्षण से समझ लेना। अंदाज से मालूम कर लेना। भाँपना। लख लेना। जैसे,—मैं पहले ही ताड़ गया कि तुम इसी लिये आए हो। उ०—लिहा जौहरी ताड़ फिरा है गाहक खाली। थैली लई समेटि दिहा गाहक को टाली।—पलटू०, भा० १, पृ० ४६।

संयो० क्रि०—जाना।—लेना।

२. मार पीटकर भगाना। हटा देना। हाँकना।

संयो० क्रि०—देना।

ताड़नी—संज्ञा स्त्री० [सं० ताडनी] चाबुक। कोड़ा [को०]।

ताड़नीय—वि० [सं० ताडनीय] दंड देने योग्य। दंडनीय।

ताड़पत्र[1]—संज्ञा पुं० [सं० ताडपत्र] ताडंक। ताटंक।

ताड़पत्र[2]—संज्ञा पुं० [सं० तालपत्र] दे० 'तालपत्र'।

ताड़बाज—वि० [हिं० ताड़ना + फ़ा० बाज़] ताड़नेवाला। भाँपनेवाला। समझ जानेवाला।

ताड़ि—संज्ञा स्त्री० [सं० ताडि] दे० 'ताड़ी' [को०]।

ताड़िका(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] तारा। तारिका। उ०—जरे जवरायं भरं राग मिल्लं। मनो नो ग्रहं ताड़िका होड खिल्लं।—पृ० रा०, १२।३११।

ताड़ित—वि० [सं० ताडित] १. मारा हुआ। जिसपर प्रहार पड़ा हो। २. जो डाँटा गया हो। जिसने घुड़की खाई हो। ३. दंडित। शासित। ४. मारकर भगाया हुआ। निकाला हुआ। हाँका हुआ।

ताड़ी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० ताडी] १. एक प्रकार का छोटा ताड़। २. एक आभूषण।

ताड़ी[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० ताड़ + ई (प्रत्य०)] ताड़ के फूलते हुए डंठलों से निकला हुआ नशीला रस जिसका व्यवहार मद्य के रूप में होता है।

विशेष—ताड़ के सिरे पर फूलते हुए डंठलों या अंकुरों को छुरी आदि से काट देते हैं और पास ही मिट्टी का बरतन बाँध देते हैं। दूसरे दिन सबेरे जब बरतन रस से भर जाता है, तब उसे खाली करके रस ले लेते हैं।

ताड़ी[3]—संज्ञा स्त्री० [सं० तार] संतों की ताली। संतों की ध्यानावस्था। ध्यान। समाधि। उ०—ध्यान रूप होय अरुण पाए। साच नाम ताड़ी चित लाए।—प्राण०, पृ० १३१।

ताडुल—वि० [सं०] मारने पीटनेवाला। आघात करनेवाला [को०]।

ताड़ू—वि० [हिं० ताड़ना] ताड़नेवाला। भाँपने या अनुमान करनेवाला।

ताड्य—वि० [सं०] १. ताड़ने के योग्य। २. डाँटने डपटने लायक। ३. दंड्य। दंड के योग्य।

ताड्यमान[1]—वि० [सं०] १. जो पीटा जाता हो। जिसपर प्रहार पड़ता हो। २. जो डाँटा जाता हो।

ताड्यमान[2]—संज्ञा पुं० ढोल। डंका।

ताढ(पु)—वि० [सं० स्तब्ध; प्रा० थड्ढ; मरा० तंडा, थंडा, हिं० ठंढा] ठंढा। शीतल। उ०—जिण दीहे पावस झरइ. वाजइ, ताढो वाय। तिण रिति मेल्हे मालविण प्री परदेस म जाय।—ढोला०, दू० २६६।

ताणना(पु)†—क्रि० स० [हिं० तानना] १. खींचना। २. ठहराना। उ०—बाजिद ताण विताण भांण तक रहे अथथा।—रघु० रू०, पृ० ४७।

तात[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ पिता। बाप। २. पूज्य व्यक्ति। गुरु। ३. प्यार का एक शब्द या संबोधन जो भाई, बंधु, इष्ट मित्र, विशेषतः अपने से छोटे के लिये व्यवहृत होता है। उ०—तात जनक तनया यह सोई। धनुष जग्य जेहि कारन होई।—तुलसी (शब्द०)। ४. वह व्यक्ति जिसके प्रति दया का उदय हो (को०)।

तात[2]—वि० [सं० तप्त, प्रा० तत्त] १. तपा हुआ। गरम। २. दुखी। चिंतित। उ०—मालवणी म्हे चालिस्यां, म करि हमारा तात।—ढोला०, दू० २७८।

तातगु[1]—संज्ञा पुं० [सं०] चाचा।

तातगु[2]—वि० १. पिता के लिये स्वीकार्य। २. पैतृक [को०]।

साततुल्य—संज्ञा पुं० [सं०] चाचा या अत्यंत पूज्य व्यक्ति [को०]।

तातन—संज्ञा पुं० [सं०] खंजन पक्षी। खिड़रिच।

तातनी(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० तांत] दे० 'तांत'। उ०—ज्ञान की काछनी ताव में तातनी, सत्त के सबद की कथा बानी।—पलटू०, भा० २, पृ० ३३।

तातरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का पेड़।

तातल[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. पितृ तुल्य संबंधी। २. रोग। ३. लोहे का काँटा। ४. पाक। पक्वता। ५. उष्णता। गर्मी (को०)।

तातल[2]—वि० १. तप्त। गरम। २. पैतृक (को०)।

ताता†—वि० [सं० तप्त, प्रा० तत्त] [वि० स्त्री० ताती] १. तपा हुआ। गरम। उष्ण। उ०—(क) जहँ लगि नाथ नेह

अब भाते । पिय बिनु तियहि तरनिहुँ ते ताते ।—मानस, २ । ६५ । (ख) मीठे अति कोमल हैं नीके । ताते तुरत चभोरे घी के ।—सूर०, १०।१६६ । २. बुरा । दुखदायी । कष्टदायक ।

ताताथेई—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. नृत्य में एक प्रकार का बोल । २. नाचने में पैर के गिरने आदि का अनुकरण शब्द । जैसे, तातायेई तातायेई नाचना ।

तातार—संज्ञा पुं० [फा०] मध्य एशिया का एक देश ।

विशेष—हिंदुस्तान और फारस के उत्तर कैस्पियन सागर से लेकर चीन के उत्तर प्रांत तक तातार देश कहलाता है । हिमालय के उत्तर लद्दाख, यारकंद, खुतन, बुखारा, तिब्बत आदि के निवासी तातारी कहलाते हैं । साधारणतः समस्त तुर्क या मोगल तातरी कहलाते हैं ।

तातारी[1]—वि० [फा०] तातार देश संबंधी । तातार देश का ।

तातारी[2]—संज्ञा पुं० तातार देश का निवासी ।

ताति[1]—संज्ञा पुं० [सं०] पुत्र । लड़का ।

ताति(पु)[2]—वि० [सं० तप्त] गरम । उ०—ताति बाव लागे नहीं, आठो पहर अनंद ।—संतबाणी०, पु० १३५ ।

ताती[1]—वि० [सं० तप्त] गरम । उष्ण । उ०—ताती श्वासन विनास्यो रूप होठन ।—शकुंतला, पृ० १०१ ।

ताती[2]—क्रि० वि० [?] जल्दी । उ०—तई मुझे यो आया ताती ।—रा० रू०, पृ० ३०३ ।

तातील—संज्ञा स्त्री० [अ०] वह दिन जिसमें काम काज बंद रहे । छुट्टी का दिन । छुट्टी ।

क्रि० प्र०—करना । होना ।

मुहा०—तातील मनाना = छुट्टी के दिन विश्राम लेना या आमोद प्रमोद करना ।

तात्कालिक—वि० [सं०] तत्काल का । तुरंत का । उसी समय का ।

तात्पर्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह भाव जो किसी वाक्य को कहकर कहनेवाला प्रकट करना चाहता हो । अर्थ । आशय । मतलब । अभिप्राय ।

विशेष—कभी कभी शब्दार्थ से तात्पर्य भिन्न होता है । जैसे, 'काशी गंगा पर है' वाक्य का शब्दार्थ यह होगा कि काशी गंगा के जल के ऊपर बसी है; पर कहनेवाले का तात्पर्य यह है कि गंगा के किनारे बसी है ।

२. तत्परता ।

तात्पर्यवृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं० तात्पर्य + वृत्ति] वाक्य के भिन्न पदों के वाच्यार्थ को एक में समन्वित करनेवाली वृत्ति । उ०—पहले उन्होंने तात्पर्यवृत्ति को लिया है और बताया है कि नैयायिकों की तात्पर्यवृत्ति बहुत समय से प्रसिद्ध थी ।—प्राचार्य, पृ० १११ ।

तात्पर्यार्थ—संज्ञा पुं० [सं०] किसी वाक्य से निकलनेवाले अर्थ से भिन्न अर्थ जो वक्ता या लेखक का होता है [को०] ।

तात्विक—वि० [सं० तात्त्विक] १. तत्व संबंधी । २. तत्वज्ञान युक्त । जैसे, तात्विक दृष्टि । ३. यथार्थ ।

तात्स्थ्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी के बीच में रहने का भाव । एक वस्तु के बीच दूसरी वस्तु की स्थिति । २. एक व्यंजनात्मक उपाधि जिसमें जिस वस्तु का कथन होता है, उस वस्तु में रहनेवाली वस्तु का ग्रहण होता है । जैसे, 'सारा घर गया है' से अभिप्राय है कि घर के सब लोग गए हैं ।

तार्थे(पु)—सर्व० [हिं० ता + थें (प्रत्य०)] इससे । इस कारण से उ०—धरे रूप जेते तिते सर्व जानों । लगे वार कहते न तातें बखानों ।—पृ० रा०, २ । १९५ ।

ताथेई—संज्ञा स्त्री० [अनु०] दे० 'तातायेई' ।

तादर्थिक—वि० [सं०] उसके अर्थ से संबद्ध [को०] ।

तादर्थ्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. उद्देश्य या लक्ष्य की एकता । २. अर्थ की समानता । ३. उद्देश्य [को०] ।

तादात्म्य—संज्ञा पुं० [सं०] एक वस्तु का मिलकर दूसरी वस्तु के रूप में हो जाना । तत्स्वरूपता । अभेद संबंध ।

यौ०—तादात्म्यानुभूति = तादात्म्य की अनुभूति । तत्स्वरूप की अनुभूति । उ०—प्रकृति से तादात्म्यानुभूति की सरल कामना की कई पंक्तियों में प्रतिबिंबित हुई है ।—सा० समीक्षा, पृ० २६० ।

तादात्विक (राजा)—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य अर्थशास्त्र के अनुसार । वह राजा जिसका खजाना खाली रहता हो । जितना धन राजकर आदि में मिले, उसको खर्च कर डालनेवाला ।

विशेष—आजकल के राज्य बहुधा इसी प्रकार के होते हैं । ये प्रबंध में व्यय करने के लिये ही धन एकत्र करते हैं ।

तादाद—संज्ञा स्त्री० [अ० तप्रदाद] संख्या । गिनती । शुमार ।

तादृक्—वि० [सं०] [वि० स्त्री० तादृक्षी] दे० 'तादृश' [को०] ।

तादृश—वि० [सं०] [वि० स्त्री० तादृशी] उसके समान । वैसा ।

तादृसो(पु)—वि० [सं० तादृशी] तादृश । वैसी ही । उ०—जो याहू गाम में एक वैष्णव तादृसी चर्चा करत और श्रीकृष्ण स्मरन करत आवत है ।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० २६५ ।

ताधा—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'ताथाथेई' । उ०—भृकुटी धनुष नैन सर साधे बदन विकास अगाधा । चंचल चपल चारु अवलोकनि काम नचावति ताधा ।—सूर (शब्द०) ।

तान—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ तानने का भाव या क्रिया । खींच । फैलाव । विस्तार । जैसे, भौंहों की तान । उ०—जल में मिलि के नभ अवनी लौं तान तनावति ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ४५५ ।

यौ०—खींचतान ।

२. गाने का एक अंग । अनुलोम विलोम गति से गमन । मूर्च्छना आदि द्वारा राग या स्वर का विस्तार । अनेक विभाग करके सुर का खींचना । लय का विस्तार । आलाप । उ०—सूने ताल चँदेवा दीन्हा । ठाढ़े भगत तहँ गावन लीन्हा ।—कबीर मं०, पृ० ४९९ ।

विशेष—संगीत दामोदर के मत से स्वरों से उत्पन्न तान ४९ हैं । इन ४९ तानों से भी ८३०० कूट तान निकले हैं । किसी किसी मत से कूट तानों की संख्या ५०४० भी मानी गई है ।

मुहा०—तान उड़ाना = गीत गाना । अलापना । तान तोड़ना = लय को खींचकर झटके के साथ समय पर विराम देना ।

किसी पर तान तोड़ना = किसी को लक्ष्य करके खेद या क्रोधसूचक बात कहना। आक्षेप करना। बौछार छोड़ना। तान भरना, मारना, लेना = गाने में लय के साथ सुरों को खींचना। अलापना। तान की जान = सारांश। खुलासा। सौ बात की एक बात।

३. ज्ञान का विषय। ऐसा पदार्थ जिसका बोध इंद्रियों आदि को हो। ४. कंबल का तान। -(पछेरिए)। ५. भाटे का हलका। लहर। तरंग। -(लश०)। ६. लोहे की छड़ जिसे पलंग या हौदे में मजबूती के लिये लगाते हैं। (७) एक प्रकार का पेड़। (८) सूत्र। सूत। धागा (को०)। (९) एकरस स्वर। एक ही प्रकार का स्वर (को०)।

तानकर्म—संज्ञा पुं० [सं० तानकर्मन्] १. गाने के पहले किया जानेवाला आलाप। २. मूल स्वर को ग्रहण करने के लिये स्वर-साधना [को०]।

तानटप्पा—संज्ञा पुं० [हिं० तान + टप्पा] संगीत। गाना बजाना। उ०—और यहाँ होता क्या है? वही समस्यापूर्ति, वही या तो खड़खड़ भड़भड़ और तानटप्पा।—कुंकुम (भू०), पृ० २।

तानतरंग—संज्ञा स्त्री० [सं० तानतरङ्ग] अलापचारी। लय की लहर।

तानना—क्रि० स० [सं० तान (= विस्तार)] १. किसी वस्तु को उसकी पूरी लंबाई या चौड़ाई तक बढ़ाकर ले जाना। फैलाने के लिये जोर से खींचना। किसी वस्तु को जहाँ की तहाँ रखकर उसके किसी छोर, कोने या अंश को जहाँ तक हो सके, बलपूर्वक आगे बढ़ाना। जैसे, रस्सी तानना। उ०—इक दिन द्रौपदि नग्न होत है, चीर दुसासन तान।—संतवाणी० पृ० ६७।

विशेष—'तानना' और 'खींचना' में यह अंतर है कि तानने में वस्तु का स्थान नहीं बदलता। जैसे, खूँटे में बँधी हुई रस्सी तानना। पर 'खींचना' किसी वस्तु को इस प्रकार बढ़ाने को भी कहते हैं जिसमें वह अपना स्थान बदलती है। जैसे, गाड़ी खींचना, पंखा खींचना।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

मुहा०—तानकर = बलपूर्वक। जोर से। जैसे, तानकर तमाचा मारना। उ०—सतगुरु मारा तानकर, सब्द सुरंगी बान।—कबीर सा०, पृ० ८।

२. किसी सिमटी या लिपटी हुई वस्तु को खींचकर फैलाना। बलपूर्वक विस्तीर्ण करना। जोर से बढ़ाकर पसारना। जैसे, पाल तानना, छाता तानना, चद्दर तानकर सोना, कपड़े को तानकर झोल मिटाना।

विशेष—'तानना' और 'फैलाना' में यह अंतर है कि 'तानना' क्रिया में कुछ बल लगाने या जोर से खींचने का भाव है।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

मुहा०—तानकर सुतना = दे० 'तानकर सोना'। उ०—भेद वह जो कि भेद खो देवे, जान पाया न तानकर सुते।—चोखे०, ४-५०

पु० ४। तानकर सोना = खूब हाथ पैर फैलाकर निश्चिंत सोना। आराम से सोना।

३. किसी परदे की सी वस्तु को ऊपर फैलाकर बाँधना या ठहराना। छाजन की तरह ऊपर किसी प्रकार का परदा लगाना। जैसे, चँदोवा तानना, चाँदनी तानना, तंबू तानना।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

४. डोरी, रस्सी आदि को एक आधार से दूसरे आधार तक इस प्रकार खींचकर बाँधना कि वह ऊपर अधर में एक सीधी लकीर के रूप में ठहरी रहे। एक ऊँचे स्थान से दूसरे ऊँचे स्थान तक ले जाकर बाँधना। जैसे,—(क) यहाँ से वहाँ तक एक डोरी तान दो तो कपड़ा फैलाने का सुबीता हो जाय। (ख) जुलाहे का सूत तानना।

संयो० क्रि०—देना।

५. मारने के लिये हाथ या कोई हथियार उठाना। प्रहार के लिये अस्त्र उठाना। जैसे, तमाचा तानना, डंडा तानना। ६. किसी को हानि पहुँचाने या दंड देने के अभिप्राय से कोई बात उपस्थित कर देना। किसी के खिलाफ कोई चिट्ठी पत्री या दरखास्त आदि भेजना। जैसे,—एक दरखास्त तान देंगे, रह जाओगे।

संयो० क्रि०—देना।

७. कैदखाने भेजना। जैसे,—हाकिम ने उसे दो बरस को तान दिया। ८. ऊपर उठाना। ऊँचे ले जाना।

संयो० क्रि०—देना।

तानपूरा—संज्ञा पुं० [सं० तान + हिं० पूरा] सितार के आकार का एक बाजा जिसे गवैए कान के पास लगाकर गाने के समय छेड़ते जाते हैं या उनके पार्श्व में बैठकर कोई छेड़ता जाता है।

विशेष—यह गवैयों को सुर बाँधने में बड़ा सहारा देता है; अर्थात् सुर में जहाँ विराम पड़ता है, वहाँ यह उसे पूरा करता है। इसमें चार तार होते हैं दो लोहे के और दो पीतल के।

तानबाज—संज्ञा पुं० [हिं० तान + बाज] संगीताचार्य। उ०—गंग ते न गुनी तानसेन ते न तानबाज, मान ते न राजा औ न दाता बीरबर ते।—अकबरी०, पृ० ३५।

तानबान (पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तानाबाना'। उ०—जोलहा तानबान नहिं जानै फाट बिनै दस ठाईं हो।—कबीर (शब्द०)

तानव—संज्ञा पुं० [सं०] १. तनुता। कृशता। २. स्वल्पता। लघुता। छोटाई [को०]।

तानसेन—संज्ञा पुं० [?] अकबर बादशाह के समय का एक प्रसिद्ध गवैया जिसके जोड़ का आजतक कोई नहीं हुआ।

विशेष—अब्बुलफजल ने लिखा है कि हजार वर्षों के बीच ऐसा गायक भारतवर्ष में नहीं हुआ। यह जाति का ब्राह्मण था। कहते हैं, पहले इसका नाम त्रिलोचन मिश्र था। इसे संगीत से बहुत प्रेम था, पर गाना इसे नहीं आता था। जब वृंदावन के प्रसिद्ध स्वामी हरिदास के यहाँ गया और उनका शिष्य हुआ, तब यह संगीत

में कुशल हुआ। धीरे धीरे इसकी ख्याति बढ़ने लगी। पहले यह भाट के राजा रामचंद्र बघेला के दरबार में नौकर हुआ। कहा जाता है, वहाँ इसे करोड़ों रुपए मिले। इब्राहीम लोदी ने इसे अपने यहाँ बहुत बुलाना चाहा पर यह नहीं गया। अंत में अकबर ने राजसिंहासन पर बैठने के दस वर्ष पीछे इसे अपने दरबार में संमानपूर्वक बुलाया। जिस दिन पहले पहल इसने अपना गाना बादशाह को सुनाया, बादशाह ने इसे दो लाख रुपए दिए। बादशाह के दरबार में आने के कुछ दिन पीछे यह ग्वालियर जाकर और मुहम्मद गौस नामक एक मुसलमान फकीर से कलमा पढ़कर मुसलमान हो गया। तब से यह मियाँ तानसेन के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसके मुसलमान होने के संबंध में एक जनश्रुति है। कहते हैं, पहले बादशाह के सामने यह गाता ही नहीं था। एक दिन बादशाह ने अपनी कन्या को इसके सामने खड़ा कर दिया। उसके सौंदर्य पर मुग्ध होने के कारण इसकी प्रतिभा विकसित हो गई और इसने ऐसा अपूर्व गाना सुनाया कि बादशाहजादी भी मोहित हो गई। अकबर ने दोनो का विवाह कर दिया।

तानसेन की मृत्यु के संबंध में भी एक अलौकिक घटना प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि इसकी अद्वितीय शक्ति को देखकर दरबार के और गवैए इससे जला करते थे और इसे मार डालने के यत्न में रहा करते थे। एक दिन सबने मिलकर यह सोचा कि यदि तानसेन दीपक राग गावे तो आपसे आप भस्म हो जायगा। इस परामर्श के अनुसार एक दिन सब गवैयों ने दरबार में दीपक राग की बात छेड़ी। बादशाह को अत्यंत उत्कंठा हुई और उसने दीपक राग गाने के लिये कहा। सब गवैयों ने एक स्वर से कहा कि तानसेन के सिवा दीपक राग और कोई नहीं गा सकता। तब बादशाह ने तानसेन को आज्ञा दी। तानसेन ने बहुत कहा कि यदि आप मुझे चाहते हों तो दीपक राग न गवावें। जब बादशाह ने न माना तब उसने अपनी लड़की को मलार राग गाने के लिये पास ही बैठा लिया जिसमें दीपक राग से प्रज्वलित अग्नि का मलार राग द्वारा शमन हो जाय। दीपक राग गाते ही दरबार के सब बुझे हुए दीपक जल उठे और तानसेन भी जलने लगा। तब उसकी लड़की ने मलार राग छेड़ा। पर अपने पिता की दुर्दशा देख उसका सुर बिगड़ गया और तानसेन जलकर भस्म हो गया। उसका शव ग्वालियर में ले जाकर दफन किया गया। उसकी कब्र के पास एक इमली का पेड़ है। आज दिन भी गवैए इस कब्र पर जाते हैं और इमली के पत्तों को चबाते हैं। उनका विश्वास है कि इससे कंठरस उत्पन्न होता है। गवैयों में तानसेन का यहाँ तक संमान है कि उसका नाम सुनते ही वे अपने कान पकड़ते हैं। तानसेन का बनाया हुआ एक ग्रंथ भी मिला है।

ताना[1]—संज्ञा पुं० [हिं० तानना] १. कपड़े की बुनावट में वह सूत जो लंबाई के बल होता है। वह तार या सूत जिसे जुलाहे कपड़े की लंबाई के अनुसार फैलाते हैं। उ०—अस जोलहा कर मरम न जाना। जिन जग आइ पसारल ताना।—कबीर (शब्द०)।

यौ०—ताना बाना।

क्रि० प्र०—तानना।—फैलाना।

२. दरी, कालीन बुनने का करघा।

ताना[2]—क्रि० स० [हिं० ताव + ना (प्रत्य०)] १. ताव देना। तपाना। गरम करना। उ०—(क) कर कपोल अंतर नहिं पावत अति उसास तन ताइए (शब्द०)। (ख) देव दिखावति कंचन सो तन औरन को मन तावै अगौनी।—देव (शब्द०)। २. पिघलाना। जैसे, घी ताना। ३. तपाकर परीक्षा करना (सोना आदि धातु)। ४. परीक्षा करना। जाँचना। आजमाना।

ताना[3]†—क्रि० स० [हिं० तावा, तवा] गीली मिट्टी, आटे आदि से ढक्कन चिपकाकर किसी बरतन का मुँह बंद करना। मूँदना। उ०—तिन श्रवनन पर दोष निरंतर सुनि भरि भरि तावौं।—तुलसी (शब्द०)।

ताना[4]—संज्ञा पुं० [अ० तग्नह] वह लगती हुई बात जिसका अर्थ कुछ छिपा हो। आक्षेप वाक्य। बोली ठोली। व्यंग्य। कटाक्ष। २. उपालंभ। गिला (को०)। ३. निंदा। बुराई (को०)।

क्रि० प्र०—देना।—मारना।

मुहा०—ताने देना = व्यंग्य करना। कटु बात कहना। उ०—मुँह खोल के दर्द दिल किसी से कह नहीं सकती कि हमजोलियाँ ताने देंगी।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १३३।

तानापाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० ताना + पाई (= ताने का सूत फैलाने का ढाँचा)] बार बार किसी स्थान पर आना जाना। उसी प्रकार लगातार फेरे लगाना जिस प्रकार जुलाहे ताने का सूत पाई पर फैलाने के लिये लगाते हैं।

तानाबाना—संज्ञा पुं० [हिं० ताना + बाना] कपड़ा बुनने में लंबाई और चौड़ाई के बल फैलाए हुए सूत।

मुहा०—ताना बाना करना = व्यर्थ इधर से उधर आना जाना। हेरा फेरी करना।

तानारीरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तान + अनु० रीरी] साधारण गाना। राग। अलाप।

तानाशाह—संज्ञा पुं० [फा०] १. अब्दुलहसन बादशाह का दूसरा नाम। यह बादशाह स्वेच्छाचारी था। २. ऐसा शासक जो मनमाने ढंग से शासन करता हो और शासितों के हित का ध्यान न रखता हो। निरंकुश शासक। ३. स्वेच्छाचारी व्यक्ति। मनमाने ढंग से और जोर जबर्दस्ती काम करनेवाला आदमी।

तानाशाही—संज्ञा स्त्री० [हिं० तानाशाह] स्वेच्छाचारिता। मनमानी। जोर जबर्दस्ती। उ०—जातीय जनतांत्रिक संयुक्त मोर्चा कांग्रेसी सरकार की तानाशाही को समाप्त करने तथा देश को विदेशी हस्तक्षेप से बचाने के निमित्त खड़ा हुआ था।—नेपाल०, पृ० १८६।

तानी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० ताना] कपड़े की बुनावट में वह सूत जो लंबाई के बल हो।

तानी[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० तानना] अँगरखे या चोली आदि की

तनी। बंद। उ०—कंचुकि चूर, चूर भइ तानी। टूटे हार मोति छहरानी।—जायसी (शब्द०)।

तानूर—संज्ञा पुं० [सं०] १. पानी का भँवर। २. वायु का भँवर।

तानो†—संज्ञा पुं० [देश०] जमीन का टुकड़ा जिसमें कई खेत हों। चक।

तान्व—संज्ञा पुं० [सं०] १. तनुज। पुत्र। २. एक ऋषि का नाम जो तनु के पुत्र थे।

ताप—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्राकृतिक शक्ति जिसका प्रभाव पदार्थों के पिघलने, भाप बनने आदि व्यापारों में देखा जाता है और जिसका अनुभव अग्नि, सूर्य की किरण आदि के रूप में इंद्रियों को होता है। यह अग्नि का सामान्य गुण है जिसकी अधिकता से पदार्थ जलते या पिघलते हैं। उष्णता। गर्मी। तेज।

विशेष—ताप एक गुण माना है, कोई द्रव्य नहीं है। किसी वस्तु को तपाने से उसकी तौल में कुछ फर्क नहीं पड़ता। विज्ञानानुसार ताप गतिशक्ति का ही एक भेद है। द्रव्य के अणुओं में जो एक प्रकार की हलचल या क्षोभ उत्पन्न होता है, उसी का अनुभव ताप के रूप में होता है। ताप सब पदार्थों में थोड़ा बहुत निहित रहता है। जब विशेष अवस्था में वह व्यक्त होता है, तब उसका प्रत्यक्ष ज्ञान होता है। जब शक्ति के संचार में रुकावट होती है, तब वह ताप का रूप धारण करती है। दो वस्तुएँ जब एक दूसरे से रगड़ खाती हैं तब जिस शक्ति का रगड़ में व्यय होता है, वह उष्णता के रूप में फिर प्रकट होती है। ताप की उत्पत्ति कई प्रकार से होती है। ताप का सबसे बड़ा आधार सूर्य है जिससे पृथ्वी पर धूप की गरमी फैलती है। सूर्य के अतिरिक्त ताप संघर्षण (रगड़), ताड़न तथा रासायनिक योग से भी उत्पन्न होता है। दो लकड़ियों को रगड़ने से और चकमक पत्थर आदि पर हथौड़ा मारने से आग निकलते बहुतों ने देखा होगा। इसी प्रकार रासायनिक योग से अर्थात् एक विशेष द्रव्य के साथ दूसरे विशेष द्रव्य के मिलने से भी आग या गरमी पैदा हो जाती है। चूने की डली में पानी डालने से, पानी में तेजाब या पोटाश डालने से गरमी या लपट उठती है।

ताप का प्रधान गुण यह है कि उससे पदार्थों का विस्तार कुछ बढ़ जाता है अर्थात् वे कुछ फैल जाते हैं। यदि लोहे की किसी ऐसी छड़ को लें जो किसी छेद में कसकर बैठ जाती हो और उसे तपावें तो वह उस छेद में नहीं घुसेगी। गरमी में किसी तेज चलती हुई गाड़ी के पहिए की हाल जब ढीली मालूम होने लगती है, तब उसपर पानी डालते हैं जिसमें उसका फैलाव घट जाय। रेल की लाइनों के जोड़ पर जो थोड़ी सी जगह छोड़ दी जाती है, वह इसीलिये जिसमें गरमी में बाहर के लोहे फैलकर उठ न जायँ। जीवों को जो ताप का अनुभव होता है वह उनके शरीर की अवस्था के अनुसार होता है, अतः स्पर्शेंद्रिय द्वारा ताप का ठीक ठीक अंदाज सदा नहीं हो सकता। इसी से ताप की मात्रा नापने के लिये थर्मामीटर नाम का एक यंत्र बनाया गया है जिसके भीतर पारा रहता है जो अधिक गरमी पाने से ऊपर चढ़ता है और गरमी कम होने से नीचे गिरता है।

२. आँच। लपट। ३. ज्वर। बुखार।

क्रि० प्र०—चढ़ना।

यौ०—तापतिल्ली।

४ कष्ट। दुःख। पीड़ा।

विशेष—ताप तीन प्रकार का माना गया है—आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक। दे० 'दुःख'। उ०—दैहिक, दैविक, भौतिक तापा। रामराज काहुहि नहिं ब्यापा।—तुलसी (शब्द०)।

५. मानसिक कष्ट। हृदय का दुःख (जैसे, शोक, पछतावा आदि)। उ०—एकही अखंड जाप ताप कूँ हरतु है।—संतबाणी०, पृ० १०७।

तापक—संज्ञा पुं० [सं०] १. ताप उत्पन्न करनेवाला। उ०—तापक जो रवि सोषत है नित कज ज्यूँ ताहि देख्यां विकसाहीं।—राम० धर्म०, पृ० ६२। २. रजोगुण।

विशेष—रजोगुण ही ताप या दुःख का प्रतिकारण माना जाता है।

३. ज्वर। बुखार।

तापक्रम—संज्ञा पुं० [सं० ताप+क्रम] १. शरीर के तापमान का चढ़ाव उतार। २. वायुमंडल की गरमी का उतार चढ़ाव [को०]।

तापड़ना(पु)—क्रि० स० [हिं० ताप] संताप देना। उ०—सेन अकब्बर तापड़े आप गयो खह मग्ग।—रा० रू०, पृ० १०२।

तापति—अव्य० [सं० तत्पश्चात्] उसके बाद। तत्पश्चात्। उ०—सुरत रस सुचेतन बालमु तापति सबे असार।—विद्यापति, पृ० २३६।

तापतिल्ली—संज्ञा स्त्री० [हिं० ताप (=ज्वर) + तिल्ली] ज्वरयुक्त प्लीहा रोग। पिलही बढ़ने का रोग।

तापती—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सूर्य की कन्या तापी। २. एक नदी का नाम जो सतपुड़ा पहाड़ से निकलकर पश्चिम की ओर को बहता हुई खंभात की खाड़ी में गिरती है।

विशेष—स्कंदपुराण के तापी खंड में तापती के विषय में यह कथा लिखी है। अगस्त्य मुनि के शाप से वरुण संवरण नामक सोमवंशी राजा हुए। उन्होंने घोर तप करके सूर्य की कन्या तापी से विवाह किया जो अत्यंत रूपवती और तापनाशिनी थी। वही तापी के नाम से प्रवाहित हुई। जो लोग उसमें स्नान करते हैं, उनके सब पातक छूट जाते हैं। आषाढ़ मास में इसमें स्नान करने का विशेष माहात्म्य है। तापीखंड में तापती के तट पर गजतीर्थ, अक्षमाला तीर्थ आदि अनेक तीर्थों का होना लिखा है। इन तीर्थों के अतिरिक्त १०८ महालिंग भी इस पुनीत नदी के तट पर भिन्न भिन्न स्थानों में स्थित बतलाए गए हैं।

तापत्रय—संज्ञा पुं० [सं०] तीन प्रकार के ताप—आध्यात्मिक, आधिदैविक, और आधिभौतिक।

तापत्य¹—संज्ञा पुं० [सं०] अर्जुन का एक नाम [को०]।

तापत्य²—वि० तापती संबंधी [को०]।

तापद—वि० [सं०] कष्टदायक [को०]।

तापदुःख—संज्ञा पुं० [सं०] पातंजल दर्शन के अनुसार दुःख का एक भेद।

विशेष—पातंजल दर्शन में तीन प्रकार के दुःख माने गए हैं, तापदुःख, संस्कारदुःख और परिणामदुःख। दे० 'दुःख'।

तापन¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. ताप देनेवाला। २. सूर्य। ३. कामदेव के पाँच बाणों में से एक। ४. सूर्यकांत मणि। ५. अर्क वृक्ष। मदार। ६. ढोल नाम का बाजा। ७. एक नरक का नाम। ८. तंत्र में एक प्रकार का प्रयोग जिससे शत्रु को पीडा होती है। ९. सुवर्ण। सोना (को०)। १०. कष्ट देनेवाला (को०)। ११. ग्रीष्म ऋतु (को०)। १२. जलानेवाला (को०)। १३. भर्त्सना करनेवाला (को०)। १४. अवसाद। कष्ट। विषाद (को०)।

तापन²—वि० १. कष्टद। कष्टकारक। २. गरमी देनेवाला। तापकारक [को०]।

तापना¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] पवित्रता। शुद्धता [को०]।

तापना²—क्रि० अ० [सं० तापन] आग की आँच से अपने को गरम करना। अपने को आग के सामने गरमाना। कहीं कहीं धूप लेने के अर्थ में भी बोलते हैं, जैसे, वह ताप रहा है।

विशेष—'आग तापना' आदि प्रयोगों को देख अधिकांश लोगों ने इस क्रिया को सकर्मक माना है। पर आग इस क्रिया का कर्म नहीं है, क्योंकि आग नहीं गरम की जाती है, गरम किया जाता है शरीर। 'शरीर तापते हैं', 'हाथ पैर तापते हैं' ऐसा नहीं बोला जाता। दूसरी बात ध्यान देने की यह है कि इस क्रिया का फल कर्ता से अन्यत्र कहीं नहीं देखा जाता, जैसे कि 'तपाना' में देखा जाता है। 'आग तापना' एक संयुक्त क्रिया है जिसमें आग तृतीयांत पद (करण) है।

तापना³—क्रि० स० १. शरीर गरम करने के लिये जलाना। फूँकना।

संयो० क्रि०—डालना।

२. उड़ाना। नष्ट करना। बरबाद करना। जैसे,—वे सारा धन फूँक तापकर किनारे हो गए।

यौ०—फूँकना तापना।

तापना(पु)⁴—क्रि० स० तपाना। गरम करना। उ०—तापी सब भूमि यों कृपान भासमान सों।—भूषण ग्रं०, पु० ४९।

तापनीय¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक उपनिषद्। २. एक प्राचीन तौल जो एक निष्क के बराबर थी [को०]।

तापनीय²—वि० सोने से युक्त। सुनहला [को०]।

तापमान—संज्ञा पुं० [सं० ताप + मान] थर्मामीटर या गरमी मापने के यंत्र द्वारा मापी गई शरीर या वायुमंडल की ऊष्मा।

तापमान यंत्र—संज्ञा पुं० [सं० तापमान + यन्त्र] उष्णता की मात्रा मापने का एक यंत्र। गरमी मापने का एक यंत्र। गरमी मापने का एक औजार।

विशेष—यह यंत्र शीशे की एक पतली नली में कुछ दूर तक पारा भरकर बनाया जाता है। अधिक गरमी पाकर यह पारा लकीर के रूप में ऊपर की ओर चढ़ता है और कम गरमी पाकर नीचे की ओर घटता है। गली हुई बरफ या बरफ के पानी में नली को रखने से पारे की लकीर जिस स्थान तक नीचे आती है, एक चिह्न वहाँ लगा देते हैं और खौलते हुए पानी में रखने से जिस स्थान तक ऊपर चढ़ती है, दूसरा चिह्न वहाँ लगा देते हैं। इन दोनों के बीच की दूरी को १०० अथवा १८० बराबर भागों में चिह्नों के द्वारा बाँट देते हैं। ये चिह्न अंश या डिग्री कहलाते हैं। यंत्र को किसी वस्तु पर रखने से पारे की लकीर जितने अंशों तक पहुँची रहती है उतने अंशों की गरमी उस वस्तु में कही जाती है।

तापयान—वि० [सं०] उष्ण। जलता हुआ [को०]।

तापल¹—संज्ञा पुं० [सं० ताप] क्रोध।—(डिं०)।

तापल²—वि० गरम। उत्तप्त। तपा हुआ। उ०—एक कहा यह जो पियारा। तापल रहइ सरीर मझारा।—इंद्रा०, पृ० ५८।

तापव्यंजन—संज्ञा पुं० [सं० तापव्यञ्जन] वे गुप्तचर या खुफिया पुलिस के आदमी जो तपस्वियों या साधुओं के वेश में रहते थे।

विशेष—कौटिल्य के समय में ये समाहर्ता के अधीन होते थे। ये किसानों, गोपों, व्यापारियों तथा भिन्न भिन्न अध्यक्षों के ऊपर दृष्टि रखते थे तथा शत्रु राजा के गुप्तचरों और चोर डाकुओं का पता भी लगाया करते थे।

तापश्चित—संज्ञा पुं० [सं०] एक यज्ञ का नाम।

तापस¹—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० तापसी] १. तप करनेवाला तपस्वी। उ०—सखी! कुमार तापस कहते हैं कि आतिथ्य स्वीकार करना होगा।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ६८४। २. तमाल। तेजपत्ता। ३. दमनक। दौना नामक पौधा। ४. एक प्रकार की ईख। ५. बक। बगला।

तापस²—वि० तपस्या या तपस्वी से संबंधित।

तापसक—संज्ञा पुं० [सं०] सामान्य या छोटा तपस्वी। वह तपस्वी जिसकी तपस्या थोड़ी हो।

तापसज—संज्ञा पुं० [सं०] तेजपत्ता। तेजपात।

तापसतरु—संज्ञा पुं० [सं०] हिंगोट वृक्ष। इंगुआ का पेड़। इंगुदी वृक्ष।

विशेष—तपस्वी लोग वन में इंगुदी का ही तेल काम में लाते थे, इसी से इसका ऐसा नाम पड़ा।

तापसद्रुम—संज्ञा पुं० [सं०] इंगुदी वृक्ष।

तापसप्रिय¹—वि० [सं०] १. जो तपस्वियों का प्रिय हो। २. जिसे तपस्वी प्रिय हों।

तापसप्रिय²—संज्ञा पुं० १. इंगुदी वृक्ष। २. चिरौंजी का पेड़।

तापसप्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] अंगूर या मुनक्का। दाख।

तापसवृक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तापसतरु'।

तापसव्यंजन—संज्ञा पुं० [सं० तापसव्यञ्जन] दे० 'तापव्यंजन'।

तापसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तपस्या करनेवाली स्त्री। २. तपस्वी की स्त्री।

तापसेक्षु—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की ईख।

तापसेष्टा—संज्ञा स्त्री० [सं०] मुनक्का। दाख [को०]।

तापस्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. तापस धर्म। तपस्या। २. वैराग्य। संन्यास [को०]।

तापस्वेद—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी प्रकार की उष्णता पहुँचाकर उत्पन्न किया हुआ या ज्वरादि की उष्णता के कारण उत्पन्न पसीना। २. गरम बालू, नमक, वस्त्र, हाथ, आग की आँच आदि से सेंककर पसीना निकालने की क्रिया।

तापस्स(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तापस-१'। उ०—जगम इक तापस्स मिल्यो बरदार सुदृध मन।—पृ० रा०, ६। १४२।

तापहर—वि० [सं० ताप + हिं० हरना] तपन या दाह को दूर करनेवाला। उ०—तापहर हृदयवेग लग्न एक ही स्मृति में; कितना अपनाव।—अनामिका, पृ० ६६।

तापहरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक व्यंजन का नाम। एक पकवान। (भावप्रकाश)।

विशेष—उरद की बरी मिले हुए धोए चावल को हलदी के साथ घी में तले या पकावे। तल जाने पर उसमें थोड़ा जल डाल दे। जब रसा तैयार हो जाय, तब उसे अदरक और हींग से बघारकर उतार ले।

तापा—संज्ञा पुं० [हिं० तोपना ?] १. मछली मारने का तख्ता (लश०)। २. मुरगी का दरबा।

तापायन—संज्ञा पुं० [सं०] बाजसनेयी शाखा का एक भेद।

तापिंछ—संज्ञापुं० [सं० तापिञ्छ] दे० 'तापिंज'।

तापिंज—संज्ञा पुं० [सं० तापिञ्ज] १. सोनामक्खी। २. श्याम तमाल।

तापिच्छ—संज्ञा पुं० [सं०] तमाल वृक्ष। उ०—बढ़ीं तापिच्छ शाखा सी भुजाएँ—अनुज की ओर दाएँ और बाएँ।—साकेत, पृ० ६३।

तापित—वि० [सं०] १. तापयुक्त। जो तपाया गया हो। २. दुःखित। पीड़ित।

तापिनी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० ताप ?] अनाहत चक्र की एक मात्रा।

तापी[1]—वि० [सं० तापिन्] १. ताप देनेवाला। २. जिसमें ताप हो।

तापी[2]—संज्ञा पुं० बुद्धदेव।

तापी[3]—संज्ञा स्त्री० १. सूर्य की एक कन्या। दे० 'तापती'। २. तापती नदी। ३. यमुना नदी।

तापीज—संज्ञा पुं० [सं०] सोनामक्खी। माक्षिक धातु।

तापुर—संज्ञा पुं० [पालि ?] महाबोधिसत्व का दूसरा नाम। उ०—नवदीक्षित भिक्षु बोधिसत्व होने की प्रतिज्ञा करते हैं और उसके बाद से उनके शिष्य उन्हें 'तापुर' या महाबोधिसत्व कहकर संबोधित करते हैं।—संपूर्णा० अभि० ग्रं०, पृ० २१४।

तापेंद्र—संज्ञा पुं० [सं० तापेन्द्र] सूर्य। उ०—नमो पातु तापेंद्र देव प्रतीचं। नमो मे रवि रक्ष रक्षेंदु दीचं।—विश्राम (शब्द०)

ताप्ती[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० तापती] दे० 'तापती'।

ताप्ती[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ताफ्ता'

ताप्य—संज्ञा पुं० [सं०] सोनामक्खी।

ताफता—संज्ञा पुं० [फ़ा० ताफ्तह्] दे० 'ताफ्ता'। उ०—छुटी न सिसुता की झलक झलक्यो जोबन अंग। दीपत देह दुहून मिलि दिपति ताफता रंग।—बिहारी (शब्द०)।

ताफ्ता—संज्ञा पुं० [फ़ा० ताफ़्तह्] एक प्रकार का चमकदार रेशमी कपड़ा। धूप छाँह रेशमी कपड़ा।

ताब—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. ताप। गरमी। २. चमक। आभा। दीप्ति। ३. शक्ति। सामर्थ्य। हिम्मत। मजाल। जैसे,—उनकी क्या ताब कि आपके सामने कुछ बोलें ? ४. सहन करने की शक्ति। मन को वश में रखने की सामर्थ्य। धैर्य। जैसे,—अब इतनी ताब नहीं है कि दो घड़ी ठहर जायँ।

ताबड़तोड़—क्रि० वि० [अनु०] एक के उपरांत तुरंत दूसरा, इस क्रम से। अखंडित क्रम से। लगातार। बराबर।

ताबनाक—वि० [फ़ा०] प्रकाशमान। ज्योतिर्मय। चमकता हुआ। उ०—बचन का अजब मय यो है ताबनाक। फहमदार के गोश का जिस्म खुश्क।—दक्खिनी०, पृ० २६७।

ताबाँ—वि० [फ़ा०] ज्योतिर्मय। प्रकाशमान। दीप्त। रोशन।

ताबा[1]—वि० [अ० ताबअ्] दे० 'ताबे'।

ताबा[2]—संज्ञा पुं० अधिकार। हक। उ०—राके वंश आया भूमि ताबा की अड़ाई।—शिखर०, पृ० २७।

ताबिश—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] गर्मी। उष्णता। तपन। उ०—तुज हुस्न के खुरशीद का तिरलोक में ताबिश पड़े।—दक्खिनी०, पृ० ३२१।

ताबी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० ताब] ताप। गरमी। उष्णता। उ०—मक्का मिस्र हुज्ज को देखा। अबरा आब और ताबी।—घट०, पृ० २११।

ताबीज—संज्ञा पुं० [अ० तावीज़] दे० 'तावीज'। उ०—हीरा भुज ताबीज मैं सोहत है यह बान।—स० सप्तक, पृ० १८६।

ताबीर—संज्ञा स्त्री० [अ०] स्वप्न आदि का शुभाशुभ वर्णन। उ०—इबादत में रहता है रोशन जमीर। बतावेगा ताबीर वह मर्द पीर।—दक्खिनी०, पृ० ३००।

ताबूत—संज्ञा पुं० [अ०] वह संदूक जिसमें मुरदे की लाश रखकर गाड़ने को ले जाते हैं। मुरदे का संदूक। उ०—कुश्तए हसरते दीदार है या रब किस्के। नख्ल ताबूत में जो फूल लगे नरगिस्के।—श्रीनिवास० ग्रं०, पृ० ८५।

ताबे[1]—वि० [अ० ताबअ] १. वशीभूत। अधीन। मातहत। जैसे,—जो तुम्हारे ताबे हो, उसे आँख दिखाओ। २. आज्ञानुवर्ती। हुक्म का पाबंद।

यौ०—ताबेदार।

ताबेगम—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० ताब + अ० ग़म] दुःख सहने की शक्ति [को०]।

ताबेजब्त—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० ताब + अ० जब्त] प्रेम की पीड़ा या दुःख सहने का शक्ति [को०]।

ताबेदार[1]—वि० [अ० ताबअ्+फ़ा० दार (प्रत्य०)।] आज्ञाकारी। हुक्म का पाबंद।

ताबेदार[2]—संज्ञा पुं० नौकर। सेवक। अनुचर।

ताबेदारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. सेवकाई। नौकरी। २. सेवा। टहल।

क्रि० प्र०—करना।—बजाना।

ताम[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. दोष। विकार। उ०—ऊब्रत रहत बिना पर आमे त्यागो कनक ले ताम।—गुलाल०, पृ० १६। २. मनोविकार। चित्त का उद्वेग। व्याकुलता। बेचैनी। उ०—(क) मिटयो काम तनु ताम तुरत ही रिझई मदन गोपाल।—सूर (शब्द०)। (ख) तरुतमाल तर तरुन कन्हाई दूरि करन युवतिन तनु ताम।—सूर (शब्द०)। ३. दुःख। क्लेश। व्यथा। कष्ट। उ०—देखत पय पीवत बलराम। ताती लगत डारि तुम दोनों दावानल पीवत नहिं ताम।—सूर (शब्द०)। ४. ग्लानि। ५. इच्छा। चाहना (को०)। ६. थकान। क्लांति (को०)।

ताम[2]—वि० १. भीषण। डरावना। भयंकर। २. दुःखी। व्याकुल। हैरान। उ०—अति सुकुमार मनोहर मूरति ताहि करति तुम ताम।—सूर (शब्द०)।

ताम[3]—संज्ञा पुं० [सं० तामस] १. क्रोध। रोष। गुस्सा। उ०—(क) सूरदास प्रभु मिलहु कृपा करि दूरि करहु मन तामहिं।—सूर (शब्द०)। (ख) सूर प्रभु जेहि सदन जात न सोइ करति तनु ताम।—सूर (शब्द०)। २. अंधकार। अँधेरा। उ०—जननि कहति उठहु श्याम, बिगत जानि रजनि ताम, सूरदास प्रभु कृपालु तुमको कछु लैवे।—सूर (शब्द०)

ताम(पु)—अव्य० [प्राकृत] १. तब तक। २. तब। उस समय। उ०—ताम हुस आयो समर्थि कह्यो अहो यातिवृत्त।—पृ० रा०, २५। २६३।

तामजान—संज्ञा पुं० [हिं० थामना+सं० यान (=सवारी)] एक प्रकार की छोटी खुली पालकी। एक हवाकी सवारी जो काठ की लंबी कुरसी के आकार की होती है और जिसे कहार उठाकर ले चलते हैं।

तामझाम—संज्ञा पुं० [हिं० तामजान] धूमधाम। शान शौकत। दिखावटी प्रदर्शन।

तामड़ा[1]—वि० [सं० ताम्र, हिं० ताँबा+ड़ा (प्रत्य०)] ताँबे के रंग का। ललाई लिए हुए भूरा। जैसे, तामड़ा रंग, तामड़ा कबूतर।

तामड़ा[2]—संज्ञा पुं० १. ऊदे रंग का एक प्रकार का पत्थर या नगीना। २. एक तरह का कागज। ३. खल्वाट मस्तक। गंजी खोपड़ी। †४. स्वच्छ आकाश। ५. बहुत पकी हुई ईंट।

तामदान(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तामजान'। उ०—श्री दर्शनेश्वरनाथ को पुष्पांजलि चढ़ाने के लिये तामदान पर सवार होकर गए।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १८१।

तामना—क्रि० स० [देश०] खेत जोतने के पूर्व खेत की घास उखाड़ना।

तामर—संज्ञा पुं० [सं०] १. पानी। २. घी।

विशेष—यह शब्द 'तामरस' शब्द को संस्कृत सिद्ध करने के लिये गढ़ा हुआ जान पड़ता है।

तामरस—संज्ञा पुं० [सं०] १. कमल। उ०—सियरे बदन सूखि गए कैसे। परसत तुहिन तामरस जैसे।—तुलसी (शब्द०)।

विशेष—यद्यपि यह शब्द वेदों में आया है तथापि आर्यभाषा का नहीं है। 'पिक' आदि के समान यह अनार्य भाषा से आया हुआ माना गया है। शबर भाष्य में इस बात का स्पष्ट उल्लेख है।

२. सोना। ३. ताँबा। ४. धतूरा। ५. सारस। ६. एक वर्णवृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में एक नगण, दो जगण और एक यगण (।।।, ।ऽ।, ।ऽ।, ।ऽऽ) होता है। जैसे,—निज जय हेतु करो रघुबीरा। तब नुति मोरी हरौ भव पीरा।

तामरसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह सरोवर जिसमें कमल हों। कमलोंवाला ताल [को०]।

तामलकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] भूम्यामलकी। भूआँवला।

तामलूक—संज्ञा पुं० [सं० ताम्रलिप्त] बंग देश के अंतर्गत एक भूभाग जो मेदिनीपुर जिले में है। वि० दे० 'ताम्रलिप्त'।

विशेष—यह परगना गंगा के मुहाने के पास पड़ता है। इस प्रदेश का प्राचीन नाम ताम्रलिप्त है। ईसा की चौथी शताब्दी से लेकर बारहवीं शताब्दी तक यह वाणिज्य का एक प्रधान स्थल था।

तामलेट—संज्ञा पुं० [अं० टाम; प्लेट या टंबलर] लोहे का गिलास या बरतन जिसपर चमकदार रोगन या लुक फेरा रहता है। एनेमल किया हुआ बरतन।

तामलोट—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तामलेट'।

तामस[1]—वि० [सं०] [वि०स्त्री० तामसी] १. जिसमें प्रकृति के उस गुण की प्रधानता हो जिसके अनुसार जीव क्रोध आदि नीच वृत्तियों के वशीभूत होकर आचरण करता है। तमोगुण युक्त। उ०—(क) होइ भजन नहिं तामस देहा।—तुलसी (शब्द०)। (ख) विप्र साप तें दूनउँ भाई। तामस असुर देह तिन पाई।—तुलसी (शब्द०)।

विशेष—पद्मपुराण में कुछ शास्त्र तामस बतलाए गए हैं। कणाद का वैशेषिक, गौतम का न्याय, कपिल का सांख्य, जैमिनि की मीमांसा, इन सब की गणना उक्त पुराण के अनुसार तामस शास्त्रों में की गई है। इसी प्रकार बृहस्पति का चार्वाक दर्शन, शाक्य मुनि का बौद्ध शास्त्र, शंकर का वेदांत इत्यादि तत्वज्ञान संबंधी ग्रंथ भी सांप्रदायिक दृष्टि से तामस माने जाते हैं। पुराणों में मत्स्य, कूर्म, लिंग, शिव, अग्नि और स्कंद ये छह तामस पुराण कहे गए हैं। सामुद्र, शंख, यम, औशनस आदि कुछ स्मृतियों तथा जैमिनि, कणाद, बृहस्पति, जमदग्नि, शुक्राचार्य आदि कुछ मुनियों को भी तामस कह डाला है। इसी प्रकार प्रकृति के तीनों गुणों के अनुसार अनेक वस्तुओं और व्यापारों के विभाग किए गए हैं। निद्रा, आलस्य, प्रमाद आदि से उत्पन्न सुख को तामस सुख; पुरोहिताई, असत्प्रति-

द्रह, पशुहिंसा, लोभ, मोह, अहंकार आदि को तामस कर्म कहा है। विष्णु सत्वगुणमय, ब्रह्मा रजोगुणमय और शिव तमोगुणमय माने जाते हैं। उ०—ब्रह्मा राजस गुण अधिकारी शिव तामस अधिकारी।—सूर (शब्द०)।

२. अंधकार युक्त। अंधकारमय (को०)। ३. तमस् से प्रभावित या संबद्ध (को०)। ४. अज्ञ (को०)। ५. दुष्ट। कुटिल (को०)।

तामस²—संज्ञा पुं० १. सर्प। साँप। २. खल। ३. उल्लू। ४. क्रोध। गुस्सा। चिढ़। उ०—कहु लोकों कैसे आवत है शिशु पै तामस एत?—सूर (शब्द०)। ५. अंधकार। अँधेरा। उ०—तू मरु कूप छलीक सुन हिय तामस वासा।—दीनदयाल (शब्द०)। ६. अज्ञान। मोह। ७. चौथे मनु का नाम। ८. एक अस्त्र का नाम। -(वाल्मीकि रामायण)। ९. तेंतीस प्रकार के केतु जो सूर्य और चंद्रमा के भीतर दृष्टिगोचर होते हैं। -(बृहत्संहिता)। वि० दे० 'तामसकीलक'। १०. तमोगुण। उ०—झूठा है संसार तो तामस परिहरी।—धरम०, पृ० ४०। ११. राहु का एक पुत्र (को०)। १२. अंधकार (को०)। १३. वह घोड़ा जिसमें तमोगुण हो (को०)।

तामसकीलक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार के केतु जो राहु के पुत्र माने जाते हैं और संख्या में ३३ हैं।

विशेष—सूर्यमंडल में इनके वर्ण, आकार और स्थान को देखकर फल का निर्णय किया जाता है। ये यदि सूर्यमंडल में दिखाई पड़ते हैं, तो इनका फल अशुभ और चंद्रमंडल में दिखाई पड़ते हैं तो शुभ माना जाता है।

तामसमद्य—संज्ञा पुं० [सं०] कई बार की खींची हुई शराब।

तामसबाण—संज्ञा पुं० [सं०] एक शस्त्र का नाम।

तामसाहंकार—संज्ञा पुं० [सं० तामसाहङ्कार] एक प्रकार का अहंकार अहंकार का एक भेद। उ०—तिहि तामसाहंकार ते दश तत्व उपजे आइ।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० ९०।

तामसिक—वि० [सं०] [वि०स्त्री० तामसिकी] १. तामसयुक्त। तमोगुणवाली। उ०—या विविध तामसिक बातें। उसको हैं अधिक रुलाती।—परिजात, पृ० ७२। २. तमस् से उत्पन्न या तमस् से लग्न (को०)।

तामसी¹—वि० स्त्री० [सं०] तमोगुणवाली। जैसे, तामसी प्रकृति।

यौ०—तामसी लोना = असंतोष के प्रकारों में से एक (सांख्य)।

तामसी²—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अँधेरी रात। २. महाकाली। ३. जटामासी। बालछड़। ४. एक प्रकार की माया विद्या जिसे शिव ने निकुंभिला यज्ञ से प्रसन्न होकर मेघनाद को दिया था।

तामा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ताँबा'।

तामि—संज्ञा स्त्री० [सं०] श्वास का नियंत्रण [को०]।

तामियाँ—वि० [हिं० तामा + इया (प्रत्य०)] दे० 'तामिया'।

तामिया—वि० [हिं० तामा + इया (प्रत्य०)] १. ताँबे के रंग का। २. ताँबे का। ताँबे से निर्मित।

तामिल—संज्ञा स्त्री० [तमिल; तमिष्] १. भारत के सुदूर दक्षिण प्रांत की एक जाति जो आधुनिक मद्रास प्रांत के अधिकांश भाग में निवास करती है। यह द्रविड़ जाति की ही एक शाखा है।

विशेष—बहुत से विद्वानों की राय है कि तामिल शब्द संस्कृत 'द्राविड' से निकला है। मनुसंहिता, महाभारत आदि प्राचीन ग्रंथों में द्रविड देश और द्रविड जाति का उल्लेख है। मागधी प्राकृत या पाली में इसी 'द्राविड' शब्द का रूप 'दामिलो' हो गया। तामिल वर्णमाला में त, थ, द आदि के एक ही उच्चारण के कारण 'दामिलो' का 'तामिलो' या 'तामिल' हो गया। शंकराचार्य के शारीरक भाष्य में 'द्रमिल' शब्द आया है। हुएनसांग नामक चीनी यात्री ने भी द्रविड देश को चि-मो-लो करके लिखा है। तामिल व्याकरण के अनुसार द्रमिल शब्द का रूप 'तिरमिड़' होता है। आजकल कुछ विद्वानों की राय हो रही है कि यह 'तिरमिड़' शब्द ही प्राचीन है जिससे संस्कृतवालों ने 'द्रविड' शब्द बना लिया। जैनों के 'शत्रुंजय माहात्म्य' नामक एक ग्रंथ में 'द्रविड' शब्द पर एक विलक्षण कल्पना की गई है। उक्त पुस्तक के मत से आदि तीर्थंकर ऋषभदेव को 'द्रविड' नामक एक पुत्र जिस भूभाग में हुआ, उसका नाम 'द्रविड' पड़ गया। पर भारत, मनुसंहिता आदि प्राचीन ग्रंथों से विदित होता है कि द्रविड जाति के निवास के ही कारण देश का नाम द्रविड पड़ा। (दे० द्राविड)।

तामिल जाति अत्यंत प्राचीन है। पुरातत्वविदों का मत है कि यह जाति अनार्य है और आर्यों के आगमन से पूर्व ही भारत के अनेक भागों में निवास करती थी। रामचंद्र ने दक्षिण में आकर जिन लोगों की सहायता से लंका पर चढ़ाई की थी और जिन्हें वाल्मीकि ने बंदर लिखा है, वे इसी जाति के थे। उनके काले वर्ण, भिन्न आकृति तथा विकट भाषा आदि के कारण ही आर्यों ने उन्हें बंदर कहा होगा। पुरातत्ववेत्ताओं का अनुमान है कि तामिल जाति आर्यों के संसर्ग के पूर्व ही बहुत कुछ सभ्यता प्राप्त कर चुकी थी। तामिल लोगों के राजा होते थे जो किले बनाकर रहते थे। वे हजार तक गिन लेते थे। वे नाव, छोटे मोटे जहाज, धनुष, बाण, तलवार इत्यादि बना लेते थे और एक प्रकार का कपड़ा बुनना भी जानते थे। राँगे, सीसे और जस्ते को छोड़ और सब धातुओं का ज्ञान भी उन्हें था। आर्यों के संसर्ग के उपरांत उन्होंने आर्यों की सभ्यता पूर्ण रूप से ग्रहण की। दक्षिण देश में ऐसी जनश्रुति है कि अगस्त्य ऋषि ने दक्षिण में जाकर वहाँ के निवासियों को बहुत सी विद्याएँ सिखाईं। बारह तेरह सौ वर्ष पहले दक्षिण में जैन धर्म का बड़ा प्रचार था। चीनी यात्री हुएनसांग जिस समय दक्षिण में गया था, उसने वहाँ दिगंबर जैनों की प्रधानता देखी थी।

२. द्रविड भाषा। तामिल लोगों की भाषा।

विशेष—तामिल भाषा का साहित्य भी अत्यंत प्राचीन है। दो हजार वर्ष पूर्व तक के काव्य तामिल भाषा में विद्यमान हैं। पर वर्णमाला नागरी लिपि की तुलना में अपूर्ण है। अनुनासिक पंचम वर्ण को छोड़ व्यंजन के एक एक वर्ग का

उच्चारण एक ही सा है। क, ख, ग, घ, चारों का उच्चारण एक ही है। व्यंजनों के इस अभाव के कारण जो संस्कृत शब्द प्रयुक्त होते हैं, वे विकृत हो जाते हैं; जैसे, 'कृष्ण' शब्द तामिल में 'किट्टिनन' हो जाता है। तामिल भाषा का प्रधान ग्रंथ कवि तिरुवल्लुवर रचित कुरल काव्य है।

तामिल लिपि—संज्ञा स्त्री० [हिं० तामिल + सं० लिपि] एक प्रकार की लिपिविशेष।

विशेष—यह लिपि मद्रास अहाते के जिन हिस्सों में प्राचीन ग्रंथ-लिपि प्रचलित थी वहाँ के, तथा उक्त अहाते के पश्चिमी तट अर्थात् मलाबार प्रदेश के तामिल भाषा के लेखों में ई० स० की सातवीं शताब्दी से बराबर मिलती चली आती है। ('तामिल' शब्द की उत्पत्ति देश और जातिसूचक 'द्रमिल' (द्रविड) शब्द से हुई है। (दे० भारतीय प्राचीन लिपि-माला, पृ० १३२।)

तामिस्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक नरक का नाम जिसमें सदा घोर अंधकार बना रहता है। २. क्रोध। ३. द्वेष। ४. एक अविद्या का नाम। भोग की इच्छापूर्ति में बाधा पड़ने से जो क्रोध उत्पन्न होता है उसे तामिस्र कहते हैं। –(भागवत)। ५. घृणा (को०)। ७ एक राक्षस (को०)।

तामी[१]—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'तामि' (को०)।

तामी[२]—संज्ञा स्त्री० [हिं० ताँबा] १. ताँबे का तसला। २. द्रव पदार्थों को नापने का एक बरतन।

तामीर—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. निर्माण। बनाना। रचना। इमारत का निर्माण। वास्तुक्रिया। ३. सुधार। इस्लाह। ४. इमारत। भवन बनावट (को०)।

यौ०—तामीरे कौम=(१) राष्ट्रनिर्माण। (२) जाति का निर्माण। कौम या जाति का सुधार। तामीरे मुल्क= राष्ट्रनिर्माण।

तामीरी—वि० [हिं० तामीर + ई (प्रत्य०)] इस्लाही। रचनात्मक (को०)।

तामील—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. (आज्ञा का) पालन। जैसे, हुक्म की तामील होना।

यौ०—तामीले हुक्म=आज्ञा का पालन।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

२. किसी परवाने, सम्मन या वारंट का विज्ञापन (को०)।

तामेसरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ताँबा] एक प्रकार का तामड़ा रंग जो गेरू के योग से बनता है।

ताम्मुल—संज्ञा पुं० [अ० तअम्मुल] सोच विचार। असमंजस। उ०—हुजूर, इन जरा जरा सी बातों पर इतना सा ताम्मुल करेंगे तो काम क्योंकर चलेगा ?—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० ३०।

ताम्र[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. ताँबा। २. एक प्रकार का कोढ़। ३. अंजना या ताँबिया लाल रंग (को०)।

ताम्र[२]—वि० १. ताँबे का बना हुआ। २. ताँबे के रंग का। ताँबे जैसा (को०)।

ताम्रक—संज्ञा पुं० [सं०] ताँबा।

ताम्रकर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पश्चिम के दिग्गज अंजन की पत्नी। अंजना।

ताम्रकार—संज्ञा पुं० [सं०] ताँबे के बरतन बनानेवाला। ठठेरा।

ताम्रकुट्ट—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'ताम्रकार' (को०)।

ताम्रकूट—संज्ञा पुं० [सं०] तमाकू का पेड़ या पौधा।

विशेष—यह शब्द गढ़ा हुआ है और कुलार्णव तंत्र में आया है।

ताम्रकृमि—संज्ञा पुं० [सं०] बीर बहूटी नाम का कीड़ा।

ताम्रगर्भ—संज्ञा पुं० [सं०] तुत्थ। तूतिया।

ताम्रचूड़—संज्ञा पुं० [सं० ताम्रचूड] १. कुकरौंधा नाम का पौधा। २. मुरगा। उ०—दूर बोला ताम्रचूड़ गभीर, कूर भी है काल निर्झर बीर।—साकेत, पृ० १९५।

ताम्रचूड़क—संज्ञा पुं० [सं० ताम्रचूडक] हाथ की एक मुद्रा (को०)।

ताम्रता—संज्ञा स्त्री० [सं०] ताँबे जैसा लाल रंग (को०)।

ताम्रतुंड—संज्ञा पुं० [सं० ताम्रतुण्ड] एक प्रकार का बंदर (को०)।

ताम्रत्रपुज—संज्ञा पुं० [सं०] पीतल (को०)।

ताम्रदुग्धा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गोरखदुद्धी। छोटी दुद्धी। अमर संजीवनी।

ताम्रद्रु—संज्ञा पुं० [सं०] लालचंदन (को०)।

ताम्रद्वीप—संज्ञा पुं० [सं०] सिंहल। लंका (को०)।

ताम्रधातु—संज्ञा पुं० [सं०] १. लाल खड़िया। २. ताँबा (को०)।

ताम्रपट्ट—संज्ञा पुं० [सं०] ताम्रपत्र।

ताम्रपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १ ताँबे की चद्दर का एक टुकड़ा जिसपर प्राचीन काल में अक्षर खुदवाकर दानपत्र आदि लिखते थे। २. ताँबे का चद्दर। ताँबे का पत्तर।

ताम्रपर्ण—संज्ञा पुं० [सं० ताम्र + पर्ण] लाल रंग का पत्ता। उ०—ताम्रपर्ण पीपल से, शतमुख झरते चंचल स्वर्णिम निर्झर।—ग्राम्या, पृ० ६३।

ताम्रपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बावली। तालाब। २. दक्षिण देश की एक छोटी नदी जो मदरास प्रांत के तिनवल्ली जिले से होकर बहती है।

विशेष—इसकी लंबाई ७० मील के लगभग है। रामायण, महाभारत तथा मुख्य मुख्य पुराणों में इस नदी का नाम आया है। अशोक के एक शिलालेख में भी इस नदी का उल्लेख है। टालमी आदि विदेशी लेखकों ने भी इसकी चर्चा की है।

ताम्रपल्लव—संज्ञा पुं० [सं०] अशोक वृक्ष।

ताम्रपाकी—संज्ञा पुं० [सं० ताम्रपाकिन्] पाकर का पेड़।

ताम्रपात्र—संज्ञा पुं० [सं०] ताँबे का बरतन (को०)।

ताम्रपादी—संज्ञा स्त्री० [सं०] हंसपदी। लाल रंग की लजालू।

ताम्रपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] लाल फूल का कचनार।

ताम्रपुष्पिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] लाल फूल की निसोत।

ताम्रपुष्पी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. धातकी। धव का पेड़। २. पाटल। पाडर का पेड़।

ताम्रफल—संज्ञा पुं० [सं०] अंकोल वृक्ष। टेरा। ढेरा।

ताम्रफलक—संज्ञा पुं० [सं०] ताम्रपत्र । ताँबे का पत्तर [को०] ।

ताम्रमुख[१]—वि० [सं० ताम्र + मुख] जिसका मुख ताँबे के रंग का हो

ताम्रमुख[२]—संज्ञा पुं० यूरोपीय व्यक्ति ।

ताम्रमला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जवासा । धमासा । २. लज्जालु । छुईमुई । ३. किवाँच । कौंच । कपिकच्छु ।

ताम्रमृग—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का लाल हिरन [को०]

ताम्रय—संज्ञा पुं० [सं०] लाली । ललाई [को०] ।

ताम्रयुग—संज्ञा पुं० [सं० ताम्र + युग] ऐतिहासिक विकासक्रम में वह युग जब मनुष्य ताँबे की बनी वस्तुओं का व्यवहार करता था ।

ताम्रयोग—संज्ञा पुं० [सं० ताम्र + योग] एक प्रकार की रासायनिक दवा [को०] ।

ताम्रलिप्त—संज्ञा पुं० [सं०] मिदिनीपुर (बंगाल) जिले के तमलुक नामक स्थान का प्राचीन नाम ।

विशेष—पूर्व काल में यह व्यापार का प्रधान स्थल था । बृहत्कथा को देखने से विदित होता है कि यहाँ से सिंहल, सुमात्रा, जावा चीन इत्यादि देशों की ओर बराबर व्यापारियों के जहाज रवाना होते रहते थे । महाभारत में ताम्रलिप्त को कलिंग से लगा हुआ समुद्र तटस्थ एक देश लिखा है । पाली ग्रंथ महावंश से पता लगता है कि ईसा से ३६० वर्ष पूर्व ताम्रलिप्त नगर भारतवर्ष के प्रसिद्ध बंदरगाहों में से था । यहीं जहाज पर चढ़कर सिंहल के राजा ने प्रसिद्ध बोधिद्रुम को लेकर स्वदेश की ओर प्रस्थान किया था और महाराज अशोक ने समुद्रतट पर खड़े होकर उसके लिये आँसू बहाए थे । ईसा की पाँचवीं शताब्दी में चीनी यात्री फाहियान बौद्ध ग्रंथों की नकल आदि लेकर ताम्रलिप्त ही से जहाज पर बैठ सिंहल गया था ।

रामायण में ताम्रलिप्त का कोई उल्लेख नहीं है, पर महाभारत में कई स्थानों पर है । वहाँ के निवासी ताम्रलिप्तक भारतयुद्ध में दुर्योधन की ओर से लड़े थे । पर उनकी गिनती म्लेच्छ जातियों के साथ हुई है । यथा—शकाः किराता दरदा बर्बरा ताम्रलिप्तकाः । अन्ये च बहवो म्लेच्छा विविधायुधपाणयः । (द्रोणपर्व) ।

ताम्रलेख—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'ताम्रपत्र' [को०] ।

ताम्रवर्ण[१]—वि० [सं०] १. ताँबे के रंग का । २. लाल ।

ताम्रवर्ण[२]—संज्ञा पुं० १. वैद्यक के अनुसार मनुष्य के शरीर पर की चौथी त्वचा का नाम । २. पुराणों के अनुसार भारतवर्ष के अंतर्गत एक द्वीप । सिंहल द्वीप । सीलोन ।

विशेष—प्राचीन काल में सिंहल द्वीप इसी नाम से प्रसिद्ध था । मेगास्थनीज ने इसी द्वीप का नाम तप्रोबेन लिखा है ।

विशेष—दे० 'सिंहल' ।

ताम्रवर्णा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गुड़हर का पेड़ । मड़हुल । ओड़पुष्प ।

ताम्रवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मजीठ । २. एक लता जो चित्रकूट प्रदेश में होती है ।

ताम्रबीज—संज्ञा पुं० [सं०] कुलथी ।

ताम्रवृंत—संज्ञा पुं० [सं० ताम्रवृन्त] कुलथी ।

ताम्रवृंता—संज्ञा स्त्री० [सं० ताम्रवृन्ता] कुलथी ।

ताम्रवृक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुलथी । २. लाल चंदन का पेड़ ।

ताम्रशासन—संज्ञा पुं० [सं० ताम्र + शासन] ताम्रपत्र । दानपत्र । उ०—राजाओं तथा सामंतों की तरफ से मंदिर, मठ, ब्राह्मण साधु आदि को दान में दिए हुए गाँव, खेत, कुएँ आदि की सनदें ताँबे पर प्राचीन काल से ही खुदवाकर दी जाती थीं और अबतक दी जाती हैं जिनको 'दानपत्र', 'ताम्रपत्र', 'ताम्रशासन' या 'शासनपत्र' कहते हैं ।—भा० प्रा० लि०, पृ० १५२ ।

ताम्रशिखी—संज्ञा पुं० [सं० ताम्रशिखिन्] कुक्कुट । मुरगा ।

ताम्रसार—संज्ञा पुं० [सं०] लाल चंदन का वृक्ष ।

ताम्रसारक—संज्ञा पुं० [सं०] १. लाल चंदन का पेड़ । २. लाल खैर ।

ताम्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सिंहली पीपल । २. दक्ष प्रजापति की कन्या जो कश्यप ऋषि की पत्नी थी । इससे ये ५ कन्याएँ उत्पन्न हुई थीं—(१) क्रौंची, (२) भासी, (३) श्येनी, (४) धृतराष्ट्री और (५) शुकी । (रामायण) ।

ताम्राक्ष[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १ कोयल । २. कौआ [को०] ।

ताम्राक्ष[२]—वि० लाल आँखोंवाला [को०] ।

ताम्राभ[१]—संज्ञा पुं० [सं०] लाल चंदन ।

ताम्राभ[२]—वि० ताँबे का आभावाला [को०] ।

ताम्रार्ध—संज्ञा पुं० [सं०] काँसा ।

ताम्राश्मा—संज्ञा पुं० [सं० ताम्राश्मन्] पद्मराग मणि [को०] ।

ताम्रिक[१]—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० ताम्रिकी] ताम्रकार [को०] ।

ताम्रिक[२]—वि० [वि० स्त्री० ताम्रिकी] ताँबे का । ताम्रनिर्मित । ताँबे से बना हुआ [को०] ।

ताम्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] गुंजा । घुँघची ।

ताम्रिमा—संज्ञा स्त्री० [सं० ताम्रिमन्] लालिमा । ललाई [को०] ।

ताम्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक प्रकार का बाजा । २. जलघड़ी का कटोरा । जलघड़ी का पात्र [को०] ।

ताम्रेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] ताम्रभस्म । ताँबे की राख ।

ताम्रोपजीवी—संज्ञा पुं० [सं० ताम्रोपजीविन्] ताम्रकार [को०] ।

ताँयँ(पु)†—अव्य० [हिं०] तक ।

ताय(पु)†[१]—संज्ञा पुं० [सं० ताप, हिं० ताव] १. ताप । गरमी । २. जलन । ३. धूप ।

ताय(पु)[२]—सर्व० [हिं०] दे० 'ताहि' । उ०—महै सूम री बँसुरिया, तैं कहु दीनो ताय ।—ब्रज० ग्रं०, पृ० ५२ ।

तायदाद†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तादाद'।

तायनⓅ[1]—संज्ञा पुं० [फ़ा० ताजियानह्] चाबुक। कोड़ा। उ०—तीख तुखार चाँड़ श्री बाँके। तरपहिं तबहिं तायन बिनु हाँके। प. वृद्धि।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १७०।

तायन[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. अग्रगंता। आगे बढ़नेवाला व्यक्ति। विकास [को०]।

तायनाⓅ†—क्रि० स० [हिं० ताव] तपाना। गरम करना। उ०—पायन बजति उतायल तायन कीन। पुनि करि कायल घायल हायल कीन।—सेवक (शब्द०)।

तायफा— संज्ञा पुं० स्त्री० [अ० तायफ़ह्] १. नाचने गानेवाली वेश्याओं और समाजियों की मंडली। २. वेश्या। रंडी। उ०—तन मन मिलयो तायफे, छाँकी हिलियो छैल।—बाँकी ग्रं०, भा० २, पृष्ठ ३।

तायबⓅ—वि० [अ० तोबह्] तोबा करनेवाला। पश्चात्ताप करनेवाला। उ०—गुनह से हों सब आदमी तायब।—कबीर ग्रं०, पृ० १३३।

तायल वि० [हिं० ताय] तेज। तावदार। उ०—तायल तुरंगम उड़त जनु बाज।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २५।

ताया[1]—संज्ञा पुं० [सं० तात] [स्त्री० ताई] बाप का बड़ा भाई। बड़ा चाचा।

ताया[2]—वि० [हिं० ताना] १. गरमाया हुआ। २. पिघलाया हुआ। जैसे, ताया घी।

तार[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. रूपा। चाँदी। २. (सोना, चाँदी ताँबा, लोहा इत्यादि), धातुओं का सूत। तपी धातु को पीट और खींचकर बनाया हुआ तागा। रस्सी या तागे के रूप में परिणत धातु। धातुतंतु।

विशेष—धातु को पहले पीटकर गोल बत्ती के रूप में करते हैं। फिर उसे तपाकर जंती के बड़े छेद में डालते और सँड़सी से दूसरी ओर पकड़कर जोर से खींचते हैं। खींचने से धातु लकीर के रूप में बढ़ जाती है। फिर उस छेद में से सूत या बत्ती को निकालकर उससे और छोटे छेद में डालकर खींचते जाते हैं जिससे वह बराबर महीन होता और बढ़ता जाता है। खींचने में धातु बहुत गरम हो जाती है। सोने, चाँदी, आदि धातुओं का तार गोटे, पट्ठे, कारचोबी आदि बनाने के काम आता है। सीसे और राँगे को छोड़ और प्रायः सब धातुओं का तार खींचा जा सकता है। जरी, कारचोबी आदि में चाँदी ही का तार काम में लाया जाता है। तार को सुनहरी बनाने के लिये उसमें रत्ती दो रत्ती सोना मिला देते हैं।

क्रि० प्र०—खींचना।

यौ०—तारकश।

मुहा०—तार बबकना=गोटे के लिये तार को पीटकर चिपटा और चौड़ा करना।

३. धातु का वह तार या डोरी जिसके द्वारा बिजली की सहायता से एक स्थान से दूसरे स्थान पर समाचार भेजा जाता है। टेलिग्राफ। जैसे,—उन दोनों गाँवों के बीच तार लगा है। उ०—तड़ित तार के द्वार मिल्यो शुभ समाचार यह।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ८००।

क्रि० प्र०—लगना।—लगाना।

यौ०—तारघर।

विशेष—तार द्वारा समाचार भेजने में बिजली और चुंबक की शक्ति काम में लाई जाती है। इसके लिये चार वस्तुएं आवश्यक होती हैं— बिजली उत्पन्न करनेवाला यंत्र या घर, बिजली के प्रवाह का संचार करनेवाला तार, संवाद को प्रवाह द्वारा भेजनेवाला यंत्र और संवाद को ग्रहण करनेवाला यंत्र। यह एक नियम है कि यदि किसी तार के घेरे में से बिजली का प्रवाह हो रहा हो और उसके भीतर एक चुंबक हो, तो उस चुंबक को हिलाने से बिजली के बल में कुछ परिवर्तन हो जाता है। चुंबक के रहने से जिस दिशा को बिजली का प्रवाह होगा, उसे निकाल लेने पर प्रवाह उलटकर दूसरी दिशा की ओर हो जायगा। प्रवाह के इस दिशापरिवर्तन का ज्ञान कंपास की तरह के एक यंत्र द्वारा होता है जिसमें एक सुई लगी रहती है। यह सुई एक ऐसे तार की कुंडली के भीतर रहती है जिसमें बाहर से भेजा हुआ विद्युत्प्रवाह संचरित होता है। सुई के इधर उधर होने से प्रवाह के दिक् परिवर्तन का पता लगता है। आजकल चुंबक की आवश्यकता नहीं पड़ती। जिस तार में से बिजली का प्रवाह जाता है, उसके बगल में दूसरा तार लगा होता है जिसे विद्युद्घट से मिला देने से थोड़ी देर के लिये प्रवाह की दिशा बदल जाती है। अब समाचार किस प्रकार एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाता है, स्थूल रूप से यह देखना चाहिए। भेजनेवाले तारघर में जो विद्युद्घटमाला होती है, उसके एक ओर का तार तो पृथ्वी के भीतर गड़ा रहता है और दूसरी ओर का पानेवाले स्थान की ओर गया रहता है। उसमें एक कुंजी ऐसी होती है जिसके द्वारा जब चाहें तब तारों को जोड़ दें और जब चाहें तब अलग कर दें। इसी के साथ उस तार का भी संबंध रहता है जिसके द्वारा बिजली के प्रवाह की दिशा बदल जाती है। इस प्रकार बिजली के प्रवाह की दिशा को कभी इधर कभी उधर फेरने की युक्ति भेजनेवाले के हाथ में रहती है जिससे संवाद ग्रहण करनेवाले स्थान की सुई को वह जब जिधर चाहे, बटन या कुंजी दबाकर कर सकता है। एक बार में सुई जिस क्रम से दाहिने या बाएँ होगी, उसी के अनुसार अक्षर का संकेत समझा जायगा। सुई के दाहिने घूमने को डाट (बिंदु) और बाएँ घूमने को डैश (रेखा) कहते हैं। इन्हीं बिंदुओं और रेखाओं के योग से मार्स नामक एक व्यक्ति ने अंगरेजी वर्णमाला के सब अक्षरों के संकेत बना लिए हैं। जैसे,—

A के लिये ·—

B के लिये —· · ·

D के लिये —· —·इत्यादि।

तार के संवाद ग्रहण करने की दो प्रणालियाँ हैं—एक दर्शन प्रणाली, दूसरी श्रवण प्रणाली। ऊपर लिखी रीति पहली

प्रणाली के अंतर्गत है। पर अब अधिकतर एक खटके (Sounder) का प्रयोग होता है जिसमें सुई लोहे के टुकड़ों पर मारती है जिससे भिन्न भिन्न प्रकार के खट खट शब्द होते हैं। अभ्यास हो जाने पर इन खट खट शब्दों से ही सब अक्षर समझ लिए जाते हैं।

४. तार से आई हुई खबर। टेलिग्राफ के द्वारा आया हुआ समाचार।

क्रि० प्र०—आना।

५. सूत। तागा। तंतु। सूत्र।

यौ०—तार तोड़।

मुहा०—तार तार करना = किसी बुनी या बटी हुई वस्तु की धज्जियाँ अलग अलग करना। नोचकर सूत सूत अलग करना। उ०—तार तार कीन्हीं फारि सारी जरतारी की।—दिनेश (शब्द०)। तार तार होना = ऐसा फटना कि धज्जियाँ अलग अलग हो जायँ। बहुत ही फट जाना। ६. सुतड़ी (लश०)। ७. बराबर चलता हुआ क्रम। अखंड परंपरा। सिलसिला। जैसे,—दोपहर तक लोगों के आने जाने का तार लगा रहा।

मुहा०—तार टूटना = चलता हुआ क्रम बंद हो जाना। परंपरा खंडित हो जाना। लगातार होते हुए काम का बंद हो जाना। तार बँधना = किसी काम का बराबर चला चलना। किसी बात का बराबर होते जाना। सिलसिला जारी होना। जैसे,—सबेरे से जो उनके रोने का तार बँधा, वह अब तक न टूटा। तार बाँधना = (किसी बात को) बराबर करते जाना। सिलसिला जारी करना। तार लगाना = दे० 'तार बाँधना'। तार ब तार = छिन्न भिन्न। अस्त व्यस्त। बेसिलसिले।

७. व्योंत। सुबीता। व्यवस्था। जैसे,—जहाँ चार पैसे का तार होगा वहाँ जायँगे, यहाँ क्यों आवेंगे।

मुहा०—तार बैठना या बँधना = व्योंत होना। कार्यसिद्धि का सुबीता होना। तार लगना = दे० 'तार बैठना'। तार जमना = दे० 'तार बैठना'।

८. ठीक माप। जैसे,—(क) अपने तार का एक जूता ले लेना। (ख) यह कुरता तुम्हारे तार का नहीं है। ९. कार्यसिद्धि का योग। युक्ति। ढब। जैसे,—कोई ऐसा तार लगाओ कि हम भी तुम्हारे साथ आ जायँ।

यौ०—तारघाट।

१०. प्रणव। ओंकार। ११. राम की सेना का एक बंदर जो तारा का पिता था और बृहस्पति के अंश से उत्पन्न था। १२. शुद्ध मोती। १३. नक्षत्र। तारा। उ०—रवि के उदय तार भौ छीना। चर बीहर दूनों महँ लीना।—कबीर बी०, पृ० १३०। १४. सांख्य के अनुसार गौण सिद्धि का एक भेद। गुरु से विधिपूर्वक वेदाध्ययन द्वारा प्राप्त सिद्धि। १५. शिव। १६. विष्णु। १७. संगीत में एक सप्तक (सात स्वरों का समूह) जिसके स्वरों का उच्चारण कंठ से उठकर कपाल के आभ्यंतर स्थानों तक होता है। इसे उच्च भी कहते हैं। १८. आँख की पुतली। १९. अठारह अक्षरों का एक वर्णवृत्त। जैसे,—तह प्रान के नाथ प्रसन्न बिलोकी। २०. तौल। उ०—तुलसी नृपहि ऐसो कहि न बुझावै कोउ पन और कुँअर दोऊ प्रेम की तुला धौं तारु।—तुलसी (शब्द०)। २१. नदी का तट। तीर।

विशेष—दिशावाचक शब्दों के साथ संयोग होने पर 'तीर' शब्द 'तार' बन जाता है। जैसे दक्षिणतार।

२२. मोती की शुभ्रता या स्वच्छता (को०)। २३. सुंदर या बड़ा मोती (को०)। २४. रक्षा (को०)। २५. पारगमन। पार जाना (को०)। २६. चाँदी (को०)। २७. बीज का माँड़ (विशेषतः कमल का)।

तार(पु)²—संज्ञा पुं० [सं० ताल] १. ताल। मजीरा। उ०—काहू के हाथ अघोरी, काहू के बीन, काहू के मृदंग, कोऊ गहे तार।—हरिदास (शब्द०)। २. करताल नामक बाजा।

तार(पु)³—संज्ञा पुं० [सं० तल] तल। सतह। जैसे, करतार। उ०—सोकर माँगन को बलि पै करतारहु ने करतार पसारयो।—केशव (शब्द०)।

यौ०—करतार = हथेली।

तार(पु)⁴—संज्ञा पुं० [हिं० ताड़] १ कान का एक गहना। ताटंक। तरौना। उ०—श्रवनन पहिरे उलटे तार।—सूर (शब्द०)।

तार(पु)⁵—संज्ञा पुं० [सं० ताल, ताड] ताड़ नामक वृक्ष। उ०—कीन्हेसि बनखंड औ जरि मूरी। कीन्हेसि तरिवर तार खजूरी।—जायसी (शब्द०)।

तार⁶—वि० [सं०] १. जिसमें से किरनें फूटी हों। प्रकाशयुक्त। प्रकाशित। स्पष्ट। २. निर्मल। स्वच्छ। ३. उच्च। उदात्त। जैसे, स्वर (को०)। ४. अति ऊँचा। उ०—जिम जिम मन अमले कियइ तार चढंती जाइ।—ढोला०, दू० १२। ५. तेज। उ०—माह वदि पंचमि दिवस चढ़ि चलिए तुर तार।—पृ० रा० २५।२२५। ६. अच्छा। उत्तम। प्रिय (को०)। ७. शुद्ध। स्वच्छ (को०)।

तार(पु)⁷—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तारा'। उ०—अव्वल औ मारफत हासिल न पावे। दोयम तार के दिल गुमराह होवे।—दक्खिनी०, पृ० ११४।

तार(पु)⁸—अव्य० [सं० तार (= तीव्र, पतला)] किंचिन्मात्र। जरा भी। उ०—माँगउ खारा खून कर तू भाग न उर तार।—बाँकी० ग्रं०, भा० १, पृ० ७५।

तार⁹—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ताल'। उ०—बाजत चट सों पटरी तारन ग्वारन गावत संग।—नंद० ग्रं०, पृ० ३८८।

तारक—संज्ञा पुं० [सं०] १. नक्षत्र। तारा। २. आँख। ३. आँख की पुतली। ४. इंद्र का शत्रु एक असुर। इसने जब इंद्र को बहुत सताया, तब नारायण ने नपुंसक रूप धारण करके इसका नाश किया। (गरुड़पुराण)। ५. एक असुर जिसे कार्तिकेय ने मारा था। दे० 'तारकासुर'।

यौ०—तारकजित्, तारकरिपु, तारकवैरी, तारकसूदन = कार्तिकेय।

६. राम का षडक्षर मंत्र जिसे गुरु शिष्य के कान में कहता है और

जिससे मनुष्य तर जाता है। 'ओं रामाय नमः' का मंत्र। ७. मिलावी। मेलक। ८. वह जो पार उतारे। ९. कर्णधार। मल्लाह। १०. भवसागर से पार करनेवाला। तारनेवाला। उ०—नृप तारक हरि पद भजि साँच बड़ाई पाइय।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ६२७। ११. एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में चार सगण और एक गुरु होता है (।।ऽ ।।ऽ ।।ऽ ।।ऽ ऽ)। १२. एक वर्ग का नाम, जो अंत्येष्टि कराता है—'महाब्राह्मण'। उ०—वह फतहपुर का महाब्राह्मण (तारक का आचारज) था।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० ८५। १३. गरुड़। उ०—ग्रंथा जातियाँ लखमण गीता मुनि विहंगा तारक ससि माथ।—रघु०, रू०, पृ० २५५। १४. कान (को०)। १५. महादेव (को०)। १६. हठयोग में तरने का उपाय (को०)। १७. एक उपनिषद् (को०)। १८. मुद्रण में तारे का चिह्न-*।

तारकजित्—संज्ञा पुं० [सं०] कार्तिकेय।

तारक टोड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० तारक + हिं० टोड़ी] एक राग जिसमें ऋषभ और कोमल स्वर लगते हैं और पंचम वर्जित होता है। (संगीत रत्नाकर)।

तारक तीर्थ—संज्ञा पुं० [सं०] गया तीर्थ, जहाँ पिंडदान करने से पुरखे तर जाते हैं।

तारक ब्रह्म—संज्ञा पुं० [सं०] राम का षडक्षर मंत्र। रामतारक मंत्र। 'ओं रामाय नमः' यह मंत्र।

तार कमानी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० तार + कमानी] धनुष के आकार का एक औजार।

विशेष—इसमें डोरी के स्थान पर लोहे का तार लगा रहता है। इससे नगीने काटे जाते हैं।

तारकश—संज्ञा पुं० [फ़ा० तार + कश = (खींचनेवाला)] धातु का तार खींचनेवाला।

तारकशी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० तारकश + हिं० ई (प्रत्य०)] तार खींचने का काम।

तारका[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नक्षत्र। तारा। उ०—तुम्हारे उर हैं अमर मर, दिवाकर, शशि, तारकागण।—अर्चना, पृ० ८। २. कनीनिका। आँख की पुतली। ३. इंद्रवारुणी। ४. नाराच नामक छंद का नाम। ५. बालि की स्त्री तारा। उ०—सुग्रीव को तारका मिलाई बध्यो बालि भयमंत।—सूर (शब्द०)। ६. उल्का (को०)। ७. बृहस्पति की पत्नी का नाम (को०)।

तारका(पु)[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ताड़का'।

तारकाक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] तारकासुर का बड़ा लड़का।

विशेष—यह उन तीन भाइयों में से एक था जो ब्रह्मा के वर से तीन पुर (त्रिपुर) बसाकर रहते थे।

विशेष—दे० 'त्रिपुर'।

तारकामय—संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।

तारकायण—संज्ञा पुं० [सं०] विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम।

तारकारि—संज्ञा पुं० [सं०] कार्तिकेय [को०]।

तारकासुर—संज्ञा पुं० [सं०] एक असुर का नाम जिसका पूरा वृत्तांत शिवपुराण में दिया हुआ है।

विशेष—यह असुर तार का पुत्र था। इसने जब एक हजार व[र्ष] तक घोर तप किया और कुछ फल न हुआ, तब इसके मस्त[क] से एक बहुत प्रचंड तेज निकला जिससे देवता लोग व्याकु[ल] होने लगे, यहाँ तक कि इंद्र सिंहासन पर से खिंचने लगे। देवताओं की प्रार्थना पर ब्रह्मा तारक के समीप वर देने [के] लिये उपस्थित हुए। तारकासुर ने ब्रह्मा से दो वर माँगे—पहला तो यह कि 'मेरे समान संसार में कोई बलवान् न हो', दूसरा यह कि 'यदि मैं मारा जाऊँ, तो उसी के हाथ से जो शिव से उत्पन्न हो'। ये दोनों वर पाकर तारकासुर घो[र] अन्याय करने लगा। इसपर सब देवता मिलकर ब्रह्मा [के] पास गए। ब्रह्मा ने कहा—'शिव के पुत्र के अतिरिक्त तार[क] को और कोई नहीं मार सकता। इस समय हिमालय प[र] पार्वती शिव के लिये तप कर रही हैं। जाकर ऐसा उपा[य] रचो कि शिव के साथ उनका संयोग हो जाय'। देवताओं [की] प्रेरणा से कामदेव ने जाकर शिव के चित्त को चंचल किया। अंत में शिव के साथ पार्वती का विवाह हो गया। जब बहु[त] दिनों तक शिव को पार्वती से कोई पुत्र नहीं हुआ, त[ब] देवताओं ने घबराकर अग्नि को शिव के पास भेजा। कपो[त] के वेश में अग्नि को देख शिव ने कहा—'तुम्हीं हमारे वी[र्य] को धारण करो' और वीर्य को अग्नि के ऊपर डाल दिया। उसी वीर्य से कार्तिकेय उत्पन्न हुए जिन्हें देवताओं ने अपना सेनापति बनाया। घोर युद्ध के उपरांत कार्तिकेय के बाण [से] तारकासुर मारा गया।

तारकिणी[1]—वि० स्त्री० [सं०] तारों से भरी। तारकापूर्ण।

तारकिणी[2]—संज्ञा स्त्री० रात्रि। रात।

तारकित—वि० [सं०] तारायुक्त। तारों से भरा हुआ। जैसे, तारकि[त] गगन।

तारकी—वि० [सं० तारकिन्] [स्त्री० तारकिणी] तारकित।

तारकूट—संज्ञा पुं० [सं० तार (= चाँदी) + कूट (= नकली)] चाँदी और पीतल के योग से बनी एक धातु।

तारकेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] शिव। २. एक शिवलिंग जो कलकत्ते के पास है। ३. एक रसौषध।

विशेष—पारा, गंधक, लोहा, वंग, अभ्रक, जवासा, जवाखार, गोखरू के बीज और हड़ इन सबको बराबर लेकर घिसते हैं और फिर पेठे के पानी, पंचमूल के काढ़े और गोखरू के रस की भावना देकर प्रस्तुत औषध की दो दो रत्ती की गोलियाँ बना लेते हैं। इन गोलियों को शहद में मिलाकर खाते हैं। इस औषध के सेवन से बहुमूत्र रोग दूर होता है।

तारकोल—संज्ञा पुं० [अं० टार + कोल] अलकतरा। कोलतार।

तारक्षिति—संज्ञा पुं० [सं०] पश्चिम दिशा का एक देश जहाँ म्लेच्छों का निवास है। (बृहत्संहिता)।

तारख(पु)—संज्ञा पुं० [सं० तार्क्ष्य] गरुड़। (डिं०)।

तारखो(पु)—संज्ञा पुं० [सं० तार्क्ष्य] घोड़ा। (डिं०)।

तारग(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तारक'-१०'। उ०—मुक्ति पंथ का पाया मारग। दादू राम मिल्या गुरु तारग।—राम० धर्म०, पृ० २०८।

तारघर—संज्ञा पुं० [हिं० तार + घर] वह स्थान जहाँ से तार की खबर भेजी जाय।

तारघाट—संज्ञा पुं० [हिं० तार + घात] कार्यसिद्धि का योग। मतलब निकलने का सुबीता। व्यवस्था। आयोजन। जैसे,—वहाँ कुछ मिलने का तारघाट होगा, तभी वह गया है।

तारचरबी—संज्ञा पुं० [देश०] मोमचीना का पेड़।

विशेष—यह पेड़ छोटा होता है और चीन, जापान आदि देशों में बहुत लगाया जाता है। इसके फल में तीन बीजकोश होते हैं जो एक प्रकार के चिकने पदार्थ से भरे रहते हैं जिसे चरबी कहते हैं। चीन और जापान में इसी पेड़ की चरबी से मोमबत्तियाँ बनती हैं। चरबी के अतिरिक्त बीजों से भी एक प्रकार का पीला तेल निकलता है जो दवा और रोगन (वारनिश) के काम में आता है।

तारचो(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० तार(= ऊँचा) + (च = गति करनेवाला)] तारक। तारा। उ०—तारचो सट्ठलं, बाई सुतलं।—पृ० रा०, २६। ७०।

तारछ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० तार्क्ष्य] गरुड़। उ०—गरुत्मान, तारछ, गरुड़, वैनतेय, शकुनीश।—नंद० ग्रं०, पृ० १११।

तारट(पु)—संज्ञा पुं० [सं० तारक] तारा। तरैया। उ०—सित दुकूल बिम्भुत नीलकंठी नव तारठ।—पृ० रा०, २। ४२४।

तारण[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. (दूसरे को) पार करने का काम। पार उतारने की क्रिया। २. उद्धार। निस्तार। ३. उद्धार करने या तारनेवाला व्यक्ति। ४. विष्णु। ५. साठ संवत्सरों में से एक। ६. शिव (को०)। ७. नाव। नौका (को०)। ८. विजय (को०)।

तारण[2]—वि० १. उद्धार करनेवाला। पार करनेवाला। २. पार करानेवाला।

यौ०—तारण तिरण = पार उतारनेवाला। उ०—तारण तिरण जबै लग कहिए।—कबीर ग्रं०, पृ० १०५।

तारणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कश्यप की एक पत्नी जो याज और उपयाज की माता कही जाती हैं। २. नौका। नाव (को०)।

तारतंदुल—संज्ञा पुं० [सं० तारतण्डुल] सफेद ज्वार।

तारतखाँना(पु)—संज्ञा पुं० [अ० तहारत + फ़ा० खानह्] शुद्ध स्थान। पवित्र स्थल। वह स्थान जहाँ पर शुद्ध होकर नमाज आदि पढ़ने के लिये जाया जाता है। उ०—अति सोचै पतसाह अखाँवे। खिण सज्या खिण तारतखाने।—रा० रू०, पृ० ६६।

तारतम(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तारतम्य'। उ०—चौथा अकिल भेद को लेखा। जो तारतम लै करै विवेखा।—कबीर सा०, पृ० ६११।

तारतमिक—वि० [सं० तारतम्यिक] परस्पर न्यूनाधिक्य क्रम का या कमी बेशीवाला। क्रमबद्ध।

तारतम्य—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० तारतम्यिक] १. न्यूनाधिक्य। परस्पर न्यूनाधिक्य का संबंध। एक दूसरे से कमी बेशी का हिसाब। २. उत्तरोत्तर न्यूनाधिक्य के अनुसार व्यवस्था। कमी बेशी के हिसाब से तरतीब। ३. दो या कई वस्तुओं में परस्पर न्यूनाधिक्य आदि संबंध का विचार। गुण, परिमाण आदि का परस्पर मिलान।

तारतम्यबोध—संज्ञा पुं० [सं०] कई वस्तुओं में से एक का दूसरे से बढ़कर होने का विचार। कई वस्तुओं में से भले बुरे आदि की पहचान। सापेक्ष संबंध ज्ञान।

तार तार[1]—वि० [हिं० तार] जिसकी धज्जियाँ अलग अलग हो गई हों। टुकड़ा टुकड़ा। फटा कटा। उधड़ा हुआ।

क्रि० प्र०—करना।

तर तार[2]—संज्ञा पुं० [सं०] सांख्य के अनुसार एक गौण सिद्धि। पठित आगम आदि की तर्क द्वारा युक्तियुक्त परीक्षा से प्राप्त सिद्धि।

तारतोड़—संज्ञा पुं० [हिं० तार + तोड़ना] एक प्रकार का सुई का काम जो कपड़े पर होता है। कारचोबी। उ०—दिखावै कोई गोखरू मोड़ मोड़। कहीं सूत बूटे कहीं तारतोड़।—मीर हसन (शब्द०)।

तारद्रु—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का काँटेदार पेड़। तरदी वृक्ष।

पर्या०—खबुंरा। तीव्रा। रक्तबीजका।

तारन[1]—संज्ञा पुं० [सं० तारण] दे० 'तारण'। उ०—(क) हम तुम्ह तारन तेज घन सुंदर, नीके सौं निरबहिये।—दादू०, पृ० ५५१। (ख) जग कारन, तारन भव, भंजन धरनी भार।—तुलसी (शब्द०)।

तारन[2]—संज्ञा पुं० [हिं० तर(= नीचे ?)] १. छत की ढाल। छाजन की ढाल। २. छप्पर का वह बाँस जो कड़ियों के नीचे रहता है।

तारना[1]—क्रि० स० [सं० तारण] १. पार लगाना। पार करना। २. संसार के क्लेश आदि से छुड़ाना। भवबाधा दूर करना। उद्धार करना। निस्तार करना। सद्गति देना। मुक्त करना। उ०—काहू के न तारे तिन्हैं गंगा तुम तारे और जेते तुम तारे तेते नभ में न तारे हैं।—पद्माकर (शब्द०)। ३. पानी की धारा देना। तरेरा देना। उ०—मनहुँ बिरह के सद्य घाव हिए लखि तकि तकि धरि धीरज तारति।—तुलसी (शब्द०)। ४. तैराना।

तारना†[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० ताडना] दे० 'ताड़ना'।

तारनौ(पु)†[3]—क्रि० स० [हिं०] १. ताड़ना करना। दंड देना। पीड़ित करना। २. देखना। निरीक्षण करना।

तारपट्टक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की तलवार (को०)।

तारपतन—संज्ञा पुं० [सं०] उल्कापात (को०)।

तारपीन—संज्ञा पुं० [अं० टरपेंटाइन] चीड़ के पेड़ से निकाला हुआ तेल।

विशेष—चीड़ के पेड़ में जमीन से कोई दो हाथ ऊपर एक खोखला गड्ढा काटकर बना देते हैं और उसे नीचे की ओर कुछ गहरा कर देते हैं। इसी गहरे किए हुए स्थान में चीड़ का पसेव निकलकर गोंद के रूप में इकट्ठा होता है जिसे गंदा-बिरोजा कहते हैं। इस गोंद से भबके द्वारा जो तेल निकाल लिया जाता है, उसे तारपीन का तेल कहते हैं। यह ओषध के काम में आता है और दर्द के लिये उपकारी है।

तारपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] कुंद का पेड़।

तारबर्की—संज्ञा पुं० [हिं० तार + अ० बर्क + फ़ा० ई० (प्रत्य०)] बिजली की शक्ति द्वारा समाचार पहुँचानेवाला तार।

तारमाक्षिक—संज्ञा पुं० [सं०] रूपामक्खी नाम की उपधातु।

तारयिता—संज्ञा पुं० [सं० तारयितृ] [स्त्री० तारयित्री] तारनेवाला। उद्धार करनेवाला।

तारल¹—वि० [सं०] १. चपल। चंचल। अस्थिर। २. लंपट। विलासी [को०]।

तारल²—संज्ञा पुं० विट [को०]।

तारल्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. जल, तेल आदि के समान प्रवाहशील होने का धर्म। द्रवत्व। २ चंचलता। चपलता। ३. लंपटता। कामुकता (को०)।

तारवायु—संज्ञा स्त्री० [सं०] तेज या जोर की आवाजवाली हवा [को०]।

तारविमला—संज्ञा स्त्री० [सं०] रूपामक्खी नाम की उपधातु।

तारशुद्धिकर—संज्ञा पुं० [सं०] सीसा [को०]।

तारसार—संज्ञा पुं० [सं०] एक उपनिषद् का नाम।

तारस्वर—संज्ञा पुं० [सं०] ऊँचा स्वर। ऊँची आवाज [को०]।

तारहार—संज्ञा पुं० [सं०] १. सुंदर या बड़े मोतियों का हार। उ०—डोरों के चल करतल पसार, भर भर मुक्ताफल फेन स्फार, बिखराती जल में तार हार। -गुंजन, पृ० ६५। २. चमकीला हार। तेजोमय हार (को०)।

तारहेमाभ—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की धातु [को०]।

तारा¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. नक्षत्र। सितारा।

यौ०—तारामंडल।

मुहा०—तारे खिलना = तारों का चमकते हुए निकलना। तारों का दिखाई देना। तारे गिनना = चिंता या आसरे में बेचैनी से रात काटना। दुःख से किसी प्रकार रात बिताना। तारे छिटकना = तारों का दिखाई पड़ना। आकाश स्वच्छ होना और तारों का दिखाई पड़ना। तारा टूटना = चमकते हुए पिंड का आकाश में वेग से एक ओर से दूसरी ओर को जाते हुए या पृथ्वी पर गिरते हुए दिखाई पड़ना। उल्कापात होना। तारा डूबना = (१) किसी नक्षत्र का अस्त होना। (२) शुक्र का अस्त होना।

विशेष—शुक्रास्त में हिंदुओं के यहाँ मंगल कार्य नहीं किए जाते।

तारे तोड़ लाना = (१) कोई बहुत ही कठिन काम कर दिखाना। (२) बड़ी चालाकी का काम करना। तारे दिखाना = प्रसूता स्त्री को छठी के दिन बाहर लाकर आकाश की ओर इसलिये तकाना जिसमें जिन, भूत आदि का डर न रह जाय।

विशेष—मुसलमान स्त्रियों में यह रीति है।

तारे दिखाई दे जाना = कमजोरी या दुर्बलता के कारण आँखों के सामने तिरमिराहट दिखाई पड़ना। तारा सी आँखें हो जाना = ललाई, सूजन, कीचड़ आदि दूर होने के कारण आँख का स्वच्छ हो जाना। तारों की छाँह = बड़े सवेरे। तड़के, जब कि तारों का धुँधला प्रकाश रहे। जैसे,—तारों की छाँह यहाँ से चल देंगे। तारा हो जाना = (१) बहुत ऊँचे पर हो जाना। इतनी ऊँचाई पर पहुँच जाना कि तारे की तरह छोटा दिखाई दे। (२) इतनी दूर हो जाना कि छोटा दिखाई पड़े। बहुत फासले पर हो जाना।

२. आँख की पुतली। उ०—देखि लोग सब भए सुखारे। एकटक लोचन चलत न तारे।—मानस, १।२४४।

मुहा०—नयनों का तारा = दे० 'आँख का तारा'। मेरे नैनों का तारा है मेरा गोविंद प्यारा है।—हरिश्चंद्र (शब्द०)।

३. सितारा। भाग्य। किसमत। उ०—ग्रीखम के भानु सो खुमान को प्रताप देखि तारे सम तारे भए मूँदि तुरकन के।—भूषण (शब्द०)। ४. मोती। मुक्ता (को०)। ५. छह स्वरोंवाले एक राग का नाम (को०)।

तारा²—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तंत्र के अनुसार दस महाविद्याओं में से एक। २. बृहस्पति की स्त्री का नाम जिसे चंद्रमा ने उसके इच्छानुसार रख लिया था।

विशेष—बृहस्पति ने जब अपनी स्त्री को चंद्रमा से माँगा, तब चंद्रमा ने देना अस्वीकार किया। इसपर बृहस्पति अत्यंत क्रुद्ध हुए और घोर युद्ध आरंभ हुआ। अंत में ब्रह्मा ने उपस्थित होकर युद्ध शांत किया और तारा को लेकर बृहस्पति को दे दिया। तारा को गर्भवती देख बृहस्पति ने गर्भस्थ शिशु पर अपना अधिकार प्रकट किया। तारा ने तुरंत शिशु का प्रसव किया। देवताओं ने तारा से पूछा—'ठीक ठीक बताओ, यह किसका पुत्र है?' तारा ने बड़ी देर के पीछे बताया—'यह दस्युहंतम नामक पुत्र चंद्रमा का है।' चंद्रमा ने अपने पुत्र को ग्रहण किया और उसका नाम बुध रखा।

३. जैनों की एक शक्ति। ४. बालि नामक बंदर की स्त्री और सुषेन की कन्या।

विशेष—इसने बालि के मारे जाने पर उसके भाई सुग्रीव के साथ रामचंद्र के आदेशानुसार विवाह कर लिया था। तारा पंचकन्याओं में मानी जाती है और प्रातःकाल उसका नाम लेने का बड़ा माहात्म्य समझा जाता है। यथा—

अहल्या द्रौपदी तारा कुंती मंदोदरी तथा।
पंच कन्या स्मरेन्नित्यं महापातकनाशनम्॥

५. सिर में बाँधने का चीरा। ५. राजा हरिश्चंद्र की पत्नी का नाम। तारामती (को०)। ६. बौद्धों की एक देवी (को०)।

तारा(पु)³—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ताला'। उ०—हिय भँडार नग आहि जो पूँजी। खोलि जीभ तारा कै कूँजी।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १३५।

मुहा०—तारा मारना = ताला बंद करना। उ०—ता पाछे वह ब्राह्मन ने अपने बेटा कों घर में मूँदि घर को तारयो मारयो। —दो सौ बावन०, भा० १, पृ० २७९।

तारा⁴—संज्ञा पुं० [सं० ताल (= सर)] तालाब।

ताराकुमार—संज्ञा पुं० [सं० तारा + कुमार] १. तारा का पुत्र, अंगद। २. चंद्रमा का पुत्र बुध जो तारा के गर्भ से उत्पन्न हुआ है।

ताराकूट—संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में वर कन्या के शुभाशुभ फल को सूचित करनेवाला एक कूट जिसका विचार विवाह स्थिर करने के पहले किया जाता है।

ताराक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] तारकाक्ष दैत्य।

तारागण—संज्ञा पुं० [सं०] नक्षत्रसमूह। तारों का समूह।

ताराग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] मंगल, बुध, गुरु, शुक्र और शनि इन पाँच ग्रहों का समूह। (बृहत्संहिता)।

ताराचक्र—संज्ञा पुं० [सं० तारा + चक्र] दीक्षा मंत्र के शुभाशुभ फल का निर्णायक एक तांत्रिक चक्र (को०)।

ताराज—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. लूटपाट। लूटमार। -(लश०)। २. नाश। ध्वंस। विनाश। बरबादी।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

तारात्मक नक्षत्र—संज्ञा पुं० [सं०] आकाश में क्रांतिवृत्त के उत्तर और दक्षिण ओर के तारों का समूह जिनमें अश्विनी, भरणी आदि हैं।

ताराधिप—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा। २. शिव। ३. बृहस्पति। ४. बालि। ५. सुग्रीव।

ताराधीश—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ताराधिप'।

तारानाथ—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा। २. बृहस्पति। ३. बालि। ४. सुग्रीव।

तारापति—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तारानाथ'।

तारापथ—संज्ञा पुं० [सं०] आकाश।

तारापीड़—संज्ञा पुं० [सं० तारापीड] १. चंद्रमा। २. मत्स्य पुराण के अनुसार अयोध्या के एक राजा का नाम। ३. काश्मीर के एक प्राचीन राजा का नाम।

ताराभ—संज्ञा पुं० [सं०] पारद। पारा।

ताराभूषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] रात्रि। रात।

ताराभ्र—संज्ञा पुं० [सं०] कपूर।

तारामंडल—संज्ञा पुं० [सं० तारामण्डल] १. नक्षत्रों का समूह या घेरा। उ०—नाचते ग्रह, तारामंडल, पलक में उठ गिरते प्रतिपल।—अनामिका, पृ० ६३। २. एक प्रकार की आतशबाजी। ३. एक प्रकार का कपड़ा (को०)। ४. एक प्रकार का शिव का मंदिर (को०)।

तारामंडूर—संज्ञा पुं० [सं० तारामण्डूर] वैद्यक में एक विशेष प्रकार का मंडूर जो अनेक द्रव्यों के योग से बनता है।

तारामँडल(पु)—संज्ञा पुं० [सं० तारा + हिं० मंडल] तारा बूटी की छपाईवाला एक वस्त्र। उ०—तारामँडल पहिरि भल चोला। भरे सीस सब नखत अमोला।—जायसी ग्रं०, पृ० ८०।

तारामती—संज्ञा स्त्री० [सं०] राजा हरिश्चंद्र की पत्नी जिसका तारा नाम भी है (को०)।

तारामृग—संज्ञा पुं० [सं०] मृगशिरा नक्षत्र।

तारामैत्रक—संज्ञा पुं० [सं०] दर्शन मात्र से होनेवाला प्रेम (को०)।

तारायण¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. आकाश। २. वट का पेड़ (को०)।

तारायण(पु)²—संज्ञा पुं० [सं० तारा + गण] तारकसमूह। तारे। उ०—जू तारायण मीलो सो चंद, गोवल माँहि मिलइ ज्युँ गोव्यंद।—बी० रासो०, पृ० ११६।

तारारि—संज्ञा पुं० [सं०] विटमाक्षिक नाम की उपधातु।

तारालि—संज्ञा स्त्री० [सं०] तारों की श्रेणी। तारकपंक्ति। उ०—तृण, तरु से तारालि सत्य है एक अखंडित।—ग्राम्या, पृ० ७०।

तारावर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] उल्कापात (को०)।

तारावती—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक दुर्गा (को०)।

तारावली—संज्ञा स्त्री० [सं०] तारकपंक्ति। तारों का समूह (को०)।

तारि—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ताली'। उ०—ग्वाल नाचैं तारि दै दै देत बहुत बनाय।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ५१०।

तारिक¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. नदी आदि पार उतारने का भाड़ा या महसूल। उतराई। २. नदी से माल को पार करवाने और कर वसूल करनेवाला कर्मचारी। उ०—घाट पर तारिक नामक कर्मचारी नियुक्त किया जाता था जो माल को पार उतारने में सहायता करता तथा उचित टैक्स वसूल करता था।—पू० म० भा०, पृ० १३०। ३. मल्लाह (को०)।

तारिक(पु)²—वि० [अ०] १. तर्क करनेवाला। त्यागी। त्याग करनेवाला। छोड़नेवाला। उ०—अहंकारी। घमंडी (को०)।

यौ०—तारिके दुनिया = संसार से विरक्त। तारिके लज्जात = सांसारिक आनंद का त्याग करनेवाला। निस्पृह।

तारिका¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] ताड़ी नामक मद्य।

तारिका²—संज्ञा स्त्री० [सं० तारका] १. दे० 'तारका'। उ०—तारिका दुरानी, तमचुर बोले, श्रवन भनक परी ललिता के तान की।—सूर (शब्द०)। २. सिनेमा में काम करनेवाली अभिनेत्री। अभिनेत्री। ३. तारीख।

तारिका(पु)³—संज्ञा स्त्री० [सं० ताडका] दे० 'ताड़का'। उ०—तरुनि नाम तारिका ध्यान हरि परसी रामं।—पृ० रा०, २।२६७।

तारिणी¹—वि० स्त्री० [सं०] १. तारनेवाली। उद्धार करनेवाली। २. ४८ हाथ लंबी, ५ हाथ चौड़ी और ४½ हाथ ऊँची नाव।

तारिणी²—संज्ञा स्त्री० तारा देवी। वि० दे० 'तारा'।

तारित—वि० [सं०] १. तारा हुआ। पार किया हुआ। २. जिसका उद्धार हुआ हो [को०]।

तारी[1]—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. एक प्रकार की चिड़िया। २. निद्रा। ३. समाधि। ध्यान। उ०—(क) बिकल अचेत तारी तुम ही त्यों लगी रहै।—घनानंद, पृ० २००। (ख) मुनि समाधि लागि गइ तारी।—जायसी ग्रं०, पृ० १००।

तारी[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ताली'। उ०—छूटकी तारी थाप दे गळ जिनाई बेग।—कबीर ग्रं०, पृ० ११४।

तारीⓟ†[3]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ताड़ी'।

तारी—वि० [सं० तारिन्] १. उद्धार के योग्य बनानेवाला। २. उद्धार करनेवाला। उद्धारक [को०]।

तारीक—वि० [फ़ा०] १. स्याह। काला। २. धुँधला। अँधेरा। उ०—बस के तारीक अपनी आँखों में जमाना हो गया।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ८४६।

तारीकी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. स्याही। २. अंधकार। उ०—इस्लाम के आफताब के आगे कुफ्र की तारीकी कभी ठहर सकती है ?—भारतेंदु, भा० १, पृ० ५२१।

तारीख—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. महीने का हर एक दिन (२४ घंटों का)। तिथि।

मुहा०—तारीख डालना = तिथि वार आदि लिखना।

२. वह तिथि जिसमें पूर्व काल के किसी वर्ष में कोई विशेष घटना हुई हो, विशेषत: ऐसी जिसका उत्सव या शोक मनाया जाता हो अथवा जिसके लिये कुछ रीति व्यवहार प्रति वर्ष करना पड़ता हो। ३. नियत तिथि। किसी काम के लिये ठहराया हुआ दिन। जैसे,—कल मुकदमे की तारीख है।

मुहा०—तारीख डालना = तारीख मुकर्रर करना। दिन नियत करना। तारीख टलना = किसी काम के लिये पहले से नियत दिन के और आगे कोई दिन नियत होना। जैसे,—उनके मुकदमे की तारीख टल गई। तारीख पड़ना = किसी काम के लिये दिन मुकर्रर होना। तिथि नियत होना।

४. इतिहास। उ०—मैंने सुना है कि तारीख अकबरी में कबीर साहब और नानक साहब के विषय में अनेक बातें लिखी हैं।—कबीर मं०, पृ० ५२४।

तारीफ—संज्ञा स्त्री० [अ० तारीफ़] १. लक्षण। परिभाषा। २. वर्णन। विवरण। ३. बखान। प्रशंसा। श्लाघा।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

४. प्रशंसा की बात। विशेषता। गुण। सिफत। जैसे,—यही तो इस दवा में तारीफ है कि जरा भी नहीं लगती।

मुहा०—तारीफ के पुल बाँधना = बहुत अधिक प्रशंसा करना। अतिरंजित प्रशंसा करना। उ०—मुबारक कदम ने तो तारीफ के पुल ही बाँध दिए।—किसाना०, भा० ३, पृ० ३५।

तारु[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० तारी] दे० 'तारी'[1]। उ०—दसवँ दुवार तारु का लेखा। उलटि दिस्टि जो लाव सो देखा।—जायसी ग्रं०, (गुप्त), पृ० २६५।

तारु[2]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तालु'।

तारुण—वि० [सं०] युवा। जवान [को०]।

तारुण्य—संज्ञा पुं० [सं०] यौवन। जवानी। उ०—झलकता आता अभी तारुण्य है। आ गुराई से मिला आरुण्य है।—साकेत, पृ० ११।

तारुनⓟ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तरुणी'। उ०—तरु अंब पौध तारुन त्रिविध उविय पौध उम्भिय सरस। प्रतिबिंब मुच्च राका दरस मुह गावत चहुआन जस।—पृ० रा०, १।६७१।

तारूⓟ†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तालू'।

तारूणीⓟ—वि० [हिं० तारना] तारनेवाला। उद्धार करनेवाला। उ०—तारूणी तट देखिहौं, ताहीं अस्थाना।—दादू०, पृ० १६२।

तारेय—संज्ञा पुं० [सं०] १. तारा या बालि का पुत्र अंगद। २. बृहस्पति की स्त्री तारा का पुत्र बुध। ३. मंगल ग्रह (को०)।

तार्कव—वि० [सं०] बुना हुआ [को०]।

तार्किक—संज्ञा पुं० [सं०] १. तर्कशास्त्र का जाननेवाला। २. तत्ववेत्ता। दार्शनिक।

तार्क्ष[1]—संज्ञा पुं० [सं०] कश्यप।

तार्क्षⓟ[2]—संज्ञा पुं० [सं० तार्क्ष्य] कश्यप के पुत्र गरुड़।

तार्क्षज—संज्ञा पुं० [सं०] रसांजन।

तार्क्षी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पातालगरुड़ी लता। छिरेंटी। छिरिहटा।

तार्क्ष्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. तृक्ष मुनि के गोत्रज। २. गरुड़। ३. गरुड़ के बड़े भाई अरुण। ४. घोड़ा। ५. रसांजन। ६. सर्प। ७. अश्वकर्ण वृक्ष। एक प्रकार का शालवृक्ष। ८. एक पर्वत का नाम। ९. महादेव। १०. सोना। स्वर्ण। ११. रथ। १२. पक्षी (को०)।

तार्क्ष्यज—संज्ञा पुं० [सं०] रसौत। रसांजन।

तार्क्ष्यध्वज—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु [को०]।

तार्क्ष्यनायक—संज्ञा पुं० [सं०] गरुड़ [को०]।

तार्क्ष्यनाशक—संज्ञा पुं० [सं०] बाज पक्षी [को०]।

तार्क्ष्यपुत्र, तार्क्ष्यसुत—संज्ञा पुं० [सं०] गरुड़ [को०]।

तार्क्ष्यप्रसव—संज्ञा पुं० [सं०] अश्वकर्ण वृक्ष।

तार्क्ष्यशैल—संज्ञा पुं० [सं०] रसांजन। रसौत।

तार्क्ष्यसाम—संज्ञा पुं० [सं० तार्क्ष्यसामन्] सामवेद [को०]।

तार्क्ष्यी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वनलता का नाम।

तार्ण[1]—वि० [सं०] [वि०स्त्री० तार्णी] तृण से निर्मित [को०]।

तार्ण[2]—संज्ञा पुं० १. घास का कर। २. अग्नि [को०]।

तार्णस—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का चंदन जिसका रंग सुआपंखी होता है और गंध बढ़ी होती है [को०]।

तार्तीय[1]—वि० [सं०] १. तृतीय। तीसरा। २. तृतीय संबंध रखनेवाला [को०]।

तार्तीय[2]—संज्ञा पुं० तृतीय अंश या भाग [को०]।

तार्तीयीक—वि० [सं०] तृतीय [को०]।

तार्प्य—संज्ञा पुं० [सं०] तृपा नामक लता से बनाया हुआ वस्त्र जिसका व्यवहार वैदिक काल में होता था।

तार्य[1]—वि० [सं०] १. तारने योग्य। उद्धार करने योग्य। २. पार करने योग्य। ३. जीतने योग्य [को०]।

तार्य[2]—संज्ञा पुं० नाव आदि का भाड़ा [को०]।

तालंक—संज्ञा पुं० [सं० तालङ्क] दे० 'तडंक' [को०]।

ताल[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. हाथ का तल। करतल। हथेली। २. वह शब्द जो दोनों हथेलियों को एक दूसरी पर मारने से उत्पन्न होता है। करतलध्वनि। ताली। उ०—हुलुक, हुडुकुक, प्रतिगीत, वाद्य, ताल, नृत्य, होइते अछ।—वर्ण-रत्नाकर, पृ०२। ३. नाचने या गाने में उसके काल और क्रिया का परिमाण, जिसे बीच बीच में हाथ पर हाथ मारकर सूचित करते जाते हैं। उ०—मंगणहारी सीख दी ढोलइ तिणहि ज ताल।—ढोला०, दू० २०६।

विशेष—संगीत के संस्कृत ग्रंथों में ताल दो प्रकार के माने गए हैं—मार्ग और देशी। भरत मुनि के मत से मार्ग ६० हैं—चंचत्पुट, चाचपुट, षट्पितापुत्रक, उद्घट्टक, संनिपात, कंकण, कोकिलारव, राजकोलाहल, रंगविद्याधर, शचीप्रिय, पार्वतीलोचन, राजचूड़ामणि, जयश्री, वादकाकुल, कदर्प, नलकूबर, दर्पण, रतिलीन, मोक्षपति, श्रीरंग, सिंहविक्रम, दीपक, मल्लिकामोद, गजलील, चर्चरी, कुहक्क, विजयानंद, वीरविक्रम, टैंगिक, रंगाभरण, श्रीकीर्ति, वनमाली, चतुर्मुख, सिंहनंदन, नदीश, चंद्रबिंब, द्वितीयक, जयमंगल, गधर्व, मकरंद, त्रिभंगी, रतिताल, बसंत, जगझंप, गारुडि, कविशेखर, घोष, हरवल्लभ, भैरव, गतप्रत्यागत, मल्लताली, भैरव-मस्तक, सरस्वतीकंठाभरण, क्रीड़ा, निःसारु, मुक्तावली, रंग-राज, भरतानंद, आदितालक, संपर्केष्टक। इसी प्रकार १२० देशी ताल गिनाए गए हैं। इन तालों के नामों में भिन्न भिन्न ग्रंथों में विभिन्नता देखी जाती है। इन नामों में से आजकल बहुत प्रचलित हैं। संगीत में ताल देने के लिये तबले, मृदंग ढोल और मँजीरे आदि का व्यवहार किया जाता है।

क्रि० प्र०—देना।—बजाना।

यौ०—तालमेल।

मुहा०—ताल बेताल = (१) जिसका ताल ठिकाने से न हो। (२) अवसर या बिना अवसर के। मौके। बेमौके। ताल से बेताल होना = ताल के नियम से बाहर हो जाना। उखड़ जाना। (गाने बजाने में)।

४. अपने जंघे या बाहु पर जोर से हथेली मारकर उत्पन्न किया हुआ शब्द। कुश्ती आदि लड़ने के लिये जब किसी को ललकारते हैं, तब इस प्रकार हाथ मारते हैं।

मुहा०—ताल ठोंकना = लड़ने के लिये ललकारना।

५. मँजीरा या झाँझ नाम का बाजा। उ०—ताल भेरि मृदंग बाजत सिंधु गरजन जान।—चरण० बानी, पृ० १२२। ६. चश्मे के पत्थर या काँच का एक पल्ला। ७. हरताल। ८. तालीश पत्र। ९. ताड़ का पेड़ या फल। १०. बेल। बिल्वफल (अनेकार्थ०) ११. हाथियों के कान फटफटाने का शब्द। १२. लंबाई की एक माप। बित्ता। १३. ताला। १४. तलवार की मूठ। १५. एक नरक। १६. महादेव। १७. दुर्गा के सिंहासन का नाम। १८. पिंगल में डगण के दूसरे भेद का नाम जो एक गुरु और एक लघु का होता है— ऽ। १९. ताड़ की ध्वजा (को०)। २०. ऊँचाई का एक परिमाण (को०)। २१. एक नृत्य (को०)।

ताल[2]—संज्ञा पुं० [सं० तल्ल] वह नीची भूमि या लंबा चौड़ा गड्ढा जिसमें बरसात का पानी जमा रहता है। जलाशय। पोखरा। तालाब। उ०—कौन ताल और कौन द्वारा। कहँ होइ हंसा करै बिहारा।—कबीर मं०, पृ० ५५५।

ताल(पु)[3]—संज्ञा पुं० [हिं० तार] उपाय। दाँव। उ०—दास बिकल निबला बसै सबल न लागै ताल।—बाँकी० ग्रं०, भा० १, पृ० ६६।

ताल(पु)[4]—संज्ञा पुं० [सं० ताल] क्षण। समय। उ०—ढाढी गुणी बोलाविया, राजा तिणही ताल।—ढोला०, दू० १०५।

ताल[5]—वि० स्त्री० [सं० उत्ताल] ऊँची। उ०—व्याकुल थीं निस्सीम सिंधु की ताल तरंगें।—अनामिका, पृ० ५६।

तालकंद—संज्ञा पुं० [सं० तालकन्द] ताल मूली। मुसली।

तालक(पु)†—संज्ञा पुं० [अ० तम्ल्लुक़] दे० 'तअल्लुक'। उ०—हौं तो एक बालक न मोहिं कछू तालक पै देखो तात तुमहूँ को कैसी लघुताई है।—हनुमान (शब्द०)।

तालक[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. हरताल। २. ताला। ३. गोपीचंदन। ४. ताड़ का पेड़ या फल (को०)। ५. अरहर (को०)।

तालक(पु)[3]—अव्य० [हिं०] दे० 'तलक'। उ०—त्रिकुटी संधि नासिका तालक, सुषमनि जाय समाई।—प्राण०, पृ० ६४।

तालकट—संज्ञा पुं० [सं०] बृहत्संहिता के अनुसार दक्षिण का एक देश जो कदाचित् बीजापुर के पास का तालीकोट हो।

तालकाभ[1]—संज्ञा पुं० [सं०] हरा रंग [को०]।

तालकाभ[2]—वि० हरा [को०]।

तालकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] ताड़ी। तालरस।

तालकूटा—संज्ञा पुं० [हिं० ताल + कूटना] झाँझ बजाकर भजन आदि गानेवाला।

तालकेतु—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जिसकी पताका पर ताड़ के पेड़ का चिह्न हो। २. भीष्म। ३. बलराम।

तालकेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] एक औषध जो कुष्ट, फोड़ा फुंसी आदि में दी जाती है।

विशेष—दो माशे हरताल में पेठे के रस, घीकुआर के रस और तिल के तेल की भावना देते हैं। फिर दो माशे गंधक और एक माशे पारे को मिलाकर कज्जली करते और उसमें भावना दी हुई हरताल मिलाकर फिर सब में क्रम से बकरी के दूध, नीबू के रस और घीकुआर के रस की तीन दिन भावना देते हैं। अंत में सब का गोल कतरा बनाकर उसे हाँड़ी में क्षार

के भीतर रख बारह पहर तक पकाते हैं और फिर ठंढा होने पर उतार लेते हैं।

तालकोशा—संज्ञा पुं० [सं०] एक पेड़ का नाम।

तालक्षीर—संज्ञा पुं० [सं०] १. खजूर या ताड़ की चीनी। २. तालरस। ताड़ी (को०)।

तालक्षीरक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तालक्षीर' (को०)।

तालखजूरी—संज्ञा स्त्री० [सं० ताल + हिं० खजूर] केतकी। उ०—तालखजूरी, तृनद्रुमा, केतकि पकरति पाइ। नंद० ग्रं०, पृ० १०५।

तालगर्भ—संज्ञा पुं० [सं०] ताड़ी (को०)।

तालचर—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक देश का नाम। २. उक्त देश का निवासी। ३. उक्त देश का राजा (को०)।

तालजंघ—संज्ञा पुं० [सं० तालजङ्घ] १. एक देश का नाम। २. उस देश का निवासी। ३. एक यदुवंशी राजा जिसके पुत्रों ने राजा सगर के पिता असित को राजच्युत किया था। ४. एक प्रकार का ग्रह (को०)। ५. महाभारत का एक पात्र या नायक (को०)।

तालजटा—संज्ञा पुं० [सं०] ताड़ की जटा (को०)।

तालज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] संगीत की तालों का जानकार (को०)।

तालधारक—संज्ञा पुं० [सं०] नर्तक (को०)।

तालध्वज—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जिसकी ध्वजा पर ताड़ के पेड़ का चिह्न हो। २. भीष्म। ३. बलराम। ४. एक पर्वत का नाम।

तालनवमी—संज्ञा स्त्री० [सं०] भाद्र शुक्ला नवमी।

विशेष—इस दिन स्त्रियाँ व्रत रखती और तालपत्र आदि से गौरी का पूजन करती हैं।

तालपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. ताड़ का पत्ता।

विशेष—प्राचीन समय में, जब कागज का आविष्कार नहीं हुआ था, ताड़ के पत्ते पर ही लिखा जाता था।

२. एक प्रकार का कान का गहना। तार्टक (को०)।

तालपत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] तालमूली। मूसली।

तालपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मूसाकर्णी। मूषकपर्णी। मूसाकानी। २. विधवा (को०)।

तालपर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] कपूरकचरी।

तालपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सौफ। २. कपूरकचरी। ३. तालमूली। मुसली। ४. सोआ। सोया नाम का साग।

तालपुष्पक—संज्ञा पुं० [सं०] पुंडरिया। प्रपौंडरीक।

तालप्रलंब—संज्ञा पुं० [सं० तालप्रलम्ब] ताड़ की जटा (को०)।

तालबंद—संज्ञा पुं० [सं० ताल, तालिका + फ़ा० बंद] वह लेखा जिसमे आमदनी की हर एक मद दिखलाई गई हो।

तालबद्ध—वि० [सं०] तालयुक्त (को०)।

तालवृंत(पु)—संज्ञा पुं० [सं० ताल + वृन्त (=डंठल)] ताड़। उ०—तालवृंत फल खाय के दैत हत्यो नंदलाल।—अनेकार्थ०, पृ० १३३।

तालवेन—संज्ञा स्त्री० [सं० तालवेणु] एक प्रकार का बाजा।

ताल वैताल—संज्ञा पुं० [सं० ताल+वैताल] दो देवता या यक्ष।

विशेष—ऐसा प्रसिद्ध है कि राजा विक्रमादित्य ने इन्हें सिद्ध किया था और ये बराबर उनकी सेवा में रहते थे।

तालभंग—संज्ञा पुं० [सं० ताल+भङ्ग] गाने और बजाने में ताल स्वर की विषमता।

तालमखाना—संज्ञा पुं० [हिं० ताल + मखाना] १. एक पौधा जो गीली या सीड़ जमीन में होता है; विशेषतः पानी या दलदलों के निकट।

विशेष—इसकी पत्तियाँ ५ या ६ अंगुल लंबी और अंगुल सवा अंगुल चौड़ी होती हैं। इसकी जड़ से चारों ओर बहुत सी टहनियाँ निकलती हैं जिनमे थोड़ी थोड़ी दूर पर गूमे के पौधे की गाँठों के ऐसी गाँठें होती है। इन गाँठों पर काँटे होते हैं। इन्ही गाँठों पर फूल या बीजो के कोशों के अंकुर होते हैं। फूलो के झड़ जाने पर गाँठ के कोशों में जीरे के ऐसे बीज पड़ते हैं, जो दवा के काम में आते हैं। वैद्यक में ये बीज मधुर, शीतल, बलकारक, वीर्यवर्द्धक तथा पथरी, वातरक्त, प्रमेह आदि को दूर करनेवाले माने जाते है। वात और गठिया में भी तालमखाने के बीज उपकारी होते हैं। डाक्टरो ने भी परीक्षा करके इन्हे मूत्रकारक, बलकारक और जननेंद्रिय संबंधी रोगों के लिये उपकारक बताया है। तालमखाने का पौधा दो प्रकार का होता है—एक लाल फूल का, दूसरा सफेद फूल का। सफेद फूल का अधिक मिलता है। कहीं कहीं इसकी पत्तियों का साग भी खाया जाता है।

पर्या०—कोकिलाक्ष। काकेक्षु। इक्षुर। क्षुरक। भिक्षु। कांडेक्षु। इक्षुगंधा। शृगाली। शृखलि। शूरक। शृगालघंटी। वज्रास्थि। शृंखला। वनकंटक। वज्र। त्रिक्षुर। शुक्लपुष्प (सफेद तालमखाना)। छत्रक और अतिच्छत्र (तालमखाना)।

२. दे० 'मखाना'।

तालमर्दल—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बाजा (को०)।

तालमूल—संज्ञा पुं० [सं०] लकड़ी की ढाल।

तालमूलिका—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तालमूली'।

तालमूली—संज्ञा स्त्री० [सं०] मुसली।

तालमेल—संज्ञा पुं० [हिं० ताल+मेल] १. ताल सुर का मिलान। २. मिलान। मेलजोल। उपयुक्त योजना। ठीक ठीक संयोग।

मुहा०—तालमेल खाना = ठीक ठीक संयोग होना। प्रकृति आदि का मेल होना। विधि मिलना। मेल पटना। तालमेल बैठना = दे० 'तालमेल खाना'।

३. उपयुक्त अवसर। अनुकूल संयोग। जैसे,–तालमेल देखकर काम करना चाहिए।

तालयंत्र—संज्ञा पुं० [सं० तालयन्त्र] १. चीर फाड़ करने का एक प्राचीन औजार। २. ताला। ३. ताला और चाबी (को०)।

तालरंग—संज्ञा पुं० [सं० तालरङ्ग] एक प्रकार का बाजा जिससे ताल दिया जाता है।

ालरस—संज्ञा पुं० [सं०] ताड़ के पेड़ का मद्य। ताड़ी। उ०—तालरस बलराम चाख्यो मन भयो आनंद। गोपसुत सब टेरि लीन्हें सुधि भई नँदनंद।—सूर (शब्द०)।

ालरेचनक—संज्ञा पुं० [सं०] १. नर्तक। २. अभिनेता (को०)।

ाललक्ष्मा—संज्ञा पुं० [सं०] तालध्वजी, बलराम।

ालवन—संज्ञा पुं० [सं०] १. ताड़ के पेड़ों का जंगल। २. व्रज मंडल के अंतर्गत एक वन जो गोवर्धन के उत्तर जमुना के किनारे पर है। कहते हैं, यहीं पर बलराम ने धेनुकवध किया था। उ०—सखा कहन लागे हरि सों तब। चलौ तालवन कौं जैये अब।—सूर (शब्द०)।

ालवाही—संज्ञा पुं० [सं०] वह बाजा जिससे ताल दिया जाय। जैसे, मँजीरा, झाँझ आदि।

ालवृंत—संज्ञा पुं० [सं० तालवृन्त] १. ताड़ के पत्ते का पंखा। उ०—ठहर अरी, इस हृदय में लगी विरह की आग। तालवृंत से और भी धधक उठेगी जाग।—साकेत, पृ० २६१। २. एक प्रकार का सोम।—(सुश्रुत)।

ालवृंतक—संज्ञा पुं० [सं० तालवृन्तक] दे० 'तालवृंत' (को०)।

ालव्य—वि० [सं०] १. तालु संबंधी। २. तालु से उच्चारण किया जानेवाला वर्ण।

विशेष—इ, ई, च, छ, ज, झ, ञ, य, श—ये वर्ण तालव्य कहलाते हैं।

ालसंपुटक—संज्ञा पुं० [सं० ताल + सम्पुटक] ताड़ के पत्ते की बनी हुई झाँपी जो फल आदि रखने के काम आती है। उ०—हे तात, तालसंपुटक तनिक ले लेना। बहनों को वन उपहार मुझे है देना।—साकेत, पृ० २४६।

ालसाँस—संज्ञा पुं० [सं० ताल + बं० साँस (= गूदा)] ताड़ के फल के भीतर का गूदा जो खाने के काम आता है।

ालस्कंध—संज्ञा पुं० [सं० तालस्कन्ध] एक अस्त्र जिसका नाम वाल्मीकि रामायण में आया है।

ालांक—संज्ञा पुं० [सं० तालाङ्क] १. वह जिसका चिह्न ताड़ हो। २. बलराम। ३. एक प्रकार का साग। ४. आरा। ५. शुभलक्षणवान् मनुष्य। ६. पुस्तक। ७. महादेव। ८. ताड़पत्र जो लिखने के काम आता था (को०)।

ालांकुर—संज्ञा पुं० [सं० तालाङ्कुर] मैनसिल।

ाला¹—संज्ञा पुं० [सं० तलक] लोहे, पीतल आदि की वह कल जिसे बंद किवाड़, संदूक आदि की कुंडी में फँसा देने से किवाड़ या संदूक बिना कुंजी के नहीं खुल सकता। कपाट अवरुद्ध रखने का यंत्र। जंदरा। कुल्फ।

क्रि० प्र०—खुलना।—खोलना।—बंद होना।—करना।—लगना।—लगाना।

यौ०—ताला कुंजी।

मुहा०—ताला जकड़ना = ताला लगाकर बंद करना। ताला तोड़ना = किसी दूसरे की वस्तु को चुराने या लूटने के लिये उसके घर, संदूक आदि में लगे हुए ताले को तोड़ना। ताला भिड़ना। ताला बंद होना। ताला भेड़ना = ताला लगाना।

ताला⁽प⁾²—संज्ञा स्त्री० [हिं०] ताल। उ०—बिनहीं ताला ताल बजावै।—कबीर ग्रं०, पृ० १४०।

ताला³—संज्ञा पुं० [अ० तालेअ] भाग्य। उ०—मेरे ताले केरा आया सो एक भार। यकायक झाँककर देखे मुँज नार।—दक्खिनी०, पृ० २८२।

ताला⁴—संज्ञा पुं० [देश०] उरस्त्राण। छाती का कवच। उ०—तोरत रिपु ताले भाले भाले रुधिर पनाले चालत हैं।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २७।

ताला⁽प⁾⁵—संज्ञा स्त्री० [?] देरी। उ०—चाहे दुरग तकूँ तजि ताला।—रा० रू०, पृ० ३४४।

तालाकुंजी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ताला + कुंजी] १. किवाड़, संदूक, आदि बंद करने का यंत्र।

क्रि० प्र०—लगाना।

२. लड़कों का एक खेल।

तालाख्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] कपूरकचरी।

तालापचर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तालावचर' (को०)।

तालाब—संज्ञा पुं० [हिं० ताल + फा० आब, अथवा सं० तड़ाग, प्रा० तलाअ, तलाव, हिं० तालाव] जलाशय। सरोवर। पोखरा।

तालाबेलि⁽प⁾—संज्ञा स्त्री० [हिं०] व्याकुलता। तड़पन। पीड़ा। उ०—तालाबेलि होत घट भीतर, जैसे जल बिन मीन।—कबीर श०, भा० २ पृ० ६२।

तालाबेलिया—संज्ञा पुं० [हिं० तालाबेलि] तड़पने या छटपटानेवाला व्यक्ति। विरही पुरुष। उ०—जा घट तालाबेलिया, ताको लावो सोधि।—कबीर सा० सं०, पृ० ४०।

तालाबेली⁽प⁾—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तालाबेलि'। उ०—दादू साहिब कारणें, तालाबेली मोहि।—दादू०, पृ० ३७८।

तालावचर—संज्ञा पुं० [सं०] १. नर्तक। २. अभिनेता (को०)।

तालिक—संज्ञा पुं० [सं०] १ फैली हुई हथेली। २. चपत। तमाचा। ३. नत्थी या तागा जिससे भिन्न भिन्न विषयों के तालपत्र या कागज बंधे हों। ४. तालपत्र या कागज का पुलिंदा। ५. ताली। करतल की ध्वनि (को०)।

तालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. ताली। कुंजी। २. नत्थी या तागा जिससे भिन्न भिन्न विषयों के तालपत्र या कागज अलग अलग बंधे हों। तालपत्र या कागज का पुलिंदा। ३. नीचे ऊपर लिखी हुई वस्तुओं का क्रम। नीचे ऊपर लिखे हुए नाम जिनमें अलग अलग चीजें गिनाई गई हों। सूची। फेहरिस्त। ४. चपत। तमाचा। ५. ताल मूली। मुसली। ६. मजीठ।

तालित—संज्ञा पुं० [सं०] १. रंगीन कपड़ा। २. वाद्य। बाजा। ३. रस्सी। डोरी (को०)।

तालिब¹—संज्ञा पुं० [अ०] १. ढूँढ़नेवाला। तलाश करनेवाला। चाहनेवाला। २. शिष्य। चेला। उ०—तालिब मतलूब को पहुँचै तोक करे दिल अंदर।—कबीर सा०, पृ० ८८८।

तालिबइल्म—संज्ञा पुं० [अ०] विद्यार्थी।

तालिबा⁽प⁾—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तालिब'। उ०—कबीरा

तालिबा तेरा। किया दिल बीच में डेरा।—कबीर श०, भा० १, पृ० ६४।

तालिम(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० तल्प] शय्या। बिस्तर। (डिं०)।

तालिमागार—संज्ञा पुं० [हिं० ताली+मारना] जहाज या नाव का अगला भाग जो पानी काटता है। गलही। —(लश०)।

तालिश—संज्ञा पुं० [सं०] पहाड़ [को०]।

ताली[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. लोहे की वह कील जिससे ताला खोला और बंद किया जाता है। कुंजी। चाबी। उ०—तरक ताली खुलै ताला।—घट०, पृ० ३७०। २. ताड़ी। ताड़ का मद्य। ३. तालमूली। मुसली। ४. भूम्यांवला। भूम्यामलकी। ५. अरहर। ६. ताम्रवल्ली लता। ७. एक प्रकार का छोटा ताड़ जो बंगाल और बरमा में होता है। बजरबट्टू। बट्टू। उ०—ताली तृनद्रुम केतकी खजूँरी यह आहि।—अनेकार्थ०, पृ० २२। ८. एक वर्णवृत्त। ९. मेहराब के बीचोबीच का पत्थर या ईंट। १०. दोनों फैली हुई हथेलियों को एक दूसरी पर मारने की क्रिया। करतलों का परस्पर आघात। थपेड़ी। उ०—रानी नीलदेवी ताली बजाती है। तंबू फाड़कर शस्त्र खींचे हुए कुमार सोमदेव राजपूतों के साथ आते हैं।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ५४६।

क्रि० प्र०—पीटना।—बजाना।

मुहा०—ताली पीटना या बजाना = हँसी उड़ाना। उपहास करना। ताली बज जाना = उपहास होना। निरादर होना। एक हाथ से ताली नहीं बजती = बैर या प्रीति एक ओर से नहीं होती। दोनों के करने से लड़ाई झगड़ा या प्रेम का व्यवहार होता है।

११. दोनों हथेलियों को फैलाकर एक दूसरे पर मारने से उत्पन्न शब्द। करतलध्वनि। १२ नृत्य का एक भेद।

विशेष—मृदंगी दंडिका तानी कहली श्रुत धुधंरी। नृत्य गीत प्रबंध च अर्धांगो नृत्य उच्यते।—पृ० रा०, २५। १२।

ताली[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० ताल (= जलाशय)] छोटा ताल। तलैया। गड़ही। उ०—फरइ कि कोदव बालि सुसाली। मुकता प्रसव कि संबुक ताली।—तुलसी (शब्द०)।

ताली[3]—संज्ञा स्त्री० [देश०] पैर की बिचली उँगली का पोर या ऊपरी भाग।

ताली[4]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] समाधि तारी। उ०—(क) सूले सुधि बुधि ज्ञान ध्यान सो लागी ताली।—ब्रज० ग्रं०, पृ० १५। (ख) जुग पानि नाभि ताली लगाय। रवि द्रिष्टि द्रष्टि गिरि बंध राय।—पृ० रा०, १। ४८६।

ताली[5]—संज्ञा पुं० [सं० तालिन्] शिव [को०]।

तालीका—संज्ञा पुं० [अ० तअ्लीका] १. माल असबाब की जब्ती। मकान की कुर्की। २. कुर्क किए हुए असबाब की फिहरिस्त। ३. परिशिष्ट (को०)।

तालीपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] तालीश पत्र।

तालीम—संज्ञा स्त्री० [अ०] शिक्षा। अभ्यासार्थ उपदेश। जैसे,—उसकी तालीम अच्छी नहीं हुई है।

क्रि० प्र०—देना।—पाना।—लेना।

तालीशपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. तमाल या तेजपत्ते की जाति का एक पेड़।

विशेष—यह हिमालय पर सिंध से सतलज तक थोड़ा बहुत और उससे पूर्व सिक्किम तक बहुत अधिक होता है। आसाम में खसिया की पहाड़ियों से लेकर बरमा तक इसके पेड़ पाए जाते हैं। इसके पत्ते एक लंबे डंठल के दोनों ओर लगते हैं और तेजपत्ते से लंबे होते हैं। डंठल में खजूर की तरह चौकोर खाने से होते हैं। इसकी लकड़ी बहुत खरी होती है। पत्ते बाजारों में तालीशपत्र के नाम से बिकते हैं और दवा के काम में आते हैं। वैद्यक में तालीशपत्र मधुर, गरम, कफवातनाशक तथा गुल्म, क्षय रोग और खाँसी को दूर करनेवाला माना जाता है।

पर्या०—धात्रीपत्र। शुकोदर। ग्रंथिकापत्र। तुलसीछद। अर्कबंध। पत्राढ्य। करिपत्र। करिच्छद। नील। नीलांबर। तालीपत्र। तमाह्वय।

२. दो ढाई हाथ ऊँचा एक पौधा जो उत्तरी भारत, बंगाल तथा समुद्र के किनारे के देशों में होता है।

विशेष—यह भूम्यांवला की जाति का है। इसकी सूखी पत्तियाँ भी दवा के काम में आती हैं। इसे पनिया आमला भी कहते हैं। इसका पौधा भूम्यांवले से बड़ा और चिलबिल से मिलता जुलता होता है।

तालीशपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] तालीशपत्र।

तालु—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० तालव्य] तालू।

तालुकंटक—संज्ञा पुं० [सं० तालुकण्टक] एक रोग जो बच्चों के तालू में होता है।

विशेष—इसमें तालु में काँटे से पड़ जाते हैं और तालु धँस जाता है। इसके कारण बच्चा स्तन बड़ी कठिनाई से पीता है। जब यह रोग होता है, तब बच्चे को पतले दस्त भी आते हैं।

तालुक—संज्ञा पुं० [सं०] १. तालू। २. तालू का एक रोग [को०]।

तालुका[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] तालू की नाड़ी।

तालुका[2]—संज्ञा पुं० [अ० तअल्लुकह्] दे० 'तअल्लुका'।

तालुज—वि० [सं०] तालु से उत्पन्न [को०]।

तालुजिह्व—संज्ञा पुं० [सं०] घड़ियाल।

तालुपाक—संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग जिसमें गरमी से तालु पक जाता है और उसमें घाव सा हो जाता है।

तालुपुप्पुट—संज्ञा पुं० [सं०] तालुपाक रोग।

तालुशोष—संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग जिसमें तालू सूख जाता है और उसमें फटकर घाव से हो जाते हैं।

तालू—संज्ञा पुं० [सं० तालु] १. मुँह के भीतर की ऊपरी छत जो ऊपरवाले दाँतों की पंक्ति से लेकर छोटी जीभ या कौवे तक होती है।

विशेष—इसका ढाँचा कुछ दूर तक तो कड़ी हड्डियों का होता है उसके पीछे फिर मुलायम मांस की तहों के कारण कोमल होता है, जो नाक के पीछेवाले कोश और मुखविवर के बीच एक परदा सा जान पड़ता है।

मुहा०—तालू उठाना = तुरंत के जनमें हुए बच्चे के तालु को दबाकर ठीक करना। (दाइयाँ या चमारिनें यह काम करती हैं)। तालू में दाँत जमना = अदृष्ट आना। बुरे दिन आना।

विशेष—प्राय: क्रोध में दूसरे के प्रति लोग इस वाक्य का व्यवहार करते हैं। बच्चों को तालू में काँटा या अंकुर सा निकल आता है जिसे तालू में दाँत निकलना कहते हैं। इसमें बच्चों को बड़ा कष्ट होता है।

तालू लटकना = रोग के कारण तालू का नीचे लटक आना। तालू से जीभ न लगाना = चुपचाप न रहा जाना। बके जाना।

२. खोपड़ी के नीचे का भाग। दिमाग।

मुहा०—तालू चटकना = (१) सिर में बहुत अधिक गरमी जान पड़ना। (२) प्यास से मुँह सूखना। जैसे,—प्यास से तालु चटकना।

३. घोड़े का एक ऐब।

तालूफाड़—संज्ञा पुं० [हिं० तालू + फाड़ना] हाथियों का एक रोग जिसमें हाथी के तालू में घाव हो जाता है।

तालूर—संज्ञा पुं० [सं०] पानी का भँवर [को०]।

तालूषक—संज्ञा पुं०[सं०]दे० 'तालु' [को०]।

तालेवर—वि० [अ० ताला (= भाग्य) + फ़ा० वर(प्रत्य०)] धनाढ्य। धनी।

ताल्लुक—संज्ञा पुं० [त० तअल्लुक] संबंध। लगाव। उ०—हमारे ताल्लुक भलेमानुस शरीफों से हैं। हमने ऐसे एक एक दफे के दस दस रुपए लिए हैं।—ज्ञानदान, पृ० १२६।

ताल्लुका—संज्ञा पुं० [अ० तअल्लुक़ह्] दे० 'तअल्लुक'।

ताल्लुकात—संज्ञा पुं० [अ० तअल्लुक़ का बहु व०] संबंध। मेल जोल [को०]।

ताल्लुकेदार—संज्ञा पुं० [अ० तअल्लुकह्+फ़ा० दार (प्रत्य०)] दे० 'तअल्लुकेदार'।

ताल्वर्बुद—संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग जिसमें तालू में कमल के आकार का एक बड़ा सा अंकुर या काँटा सा निकल आता है जिसमें बहुत पीड़ा होती है।

ताव[1]—संज्ञा पुं० [सं० ताप, प्रा० ताव] १. वह गरमी जो किसी वस्तु को तपाने या पकाने के लिये पहुँचाई जाय।

क्रि० प्र०—लगना।

यौ०—तावबंद। ताव भाव।

मुहा०—(किसी वस्तु में) ताव आना = (किसी वस्तु का) जितना चाहिए, उतना गरम हो जाना। जैसे,—अभी ताव नहीं आया है, पूरियाँ कड़ाही में मत डालो। ताव खाना = (१) आँच में गरम होना। (२) आवेश में आना। क्रुद्ध हो जाना। ताव खा जाना = (१) आँच पर चढ़े हुए कड़ाहे के घी, चाशनी, पाग इत्यादि का आवश्यकता से अधिक गरम हो जाना। किसी पाग या पकवान आदि का कड़ाह में जल जाना। जैसे, चाशनी का ताव खा जाना, पाग का ताव खा जाना २. किसी खौलाई, तपाई या पिघलाई हुई वस्तु का आवश्यकता से अधिक ठंढा होना। दे० 'ताव खाना'। ताव देखना = आँच का अंदाज देखना। ताव देना = (१) आँच पर रखना। गरम रखना। (२) आग मे लाल करना। तपाना। —(धातु आदि का) ताव बिगड़ना = पकाने में आँच का कम या अधिक हो जाना (जिससे कोई वस्तु बिगड़ जाय)। मूछों पर ताव देना = सफलता आदि के अभिमान में मूछें ऐंठना। पराक्रम, बल आदि के घमंड में मूछों पर हाथ फेरना।

२. अधिकार मिले हुए क्रोध का आवेश। घमंड लिए हुए गुस्से की झोंक।

मुहा०—ताव दिखाना = अभिमान मिला हुआ क्रोध प्रकट करना। बड़प्पन दिखाते हुए बिगड़ना। आँख दिखाना। ताव में आना = अभिमान मिले हुए क्रोध के आवेग में होना। अहंकार मिश्रित क्रोध के वश में होना। जैसे,—ताव में आकर कहीं मेरी चीजें भी न फेंक देना।

३. अहंकार का वह आवेश जो किसी के बढ़ावा देने, ललकारने आदि से उत्पन्न होता है। शेखी की झोंक। जैसे,—ताव में आकर इतना चंदा लिख तो दिया, पर दोगे कहाँ से? ४. किसी वस्तु के तत्काल होने की घोर इच्छा या उत्कंठा। ऐसी इच्छा जिसमें उतावलापन हो। चटपट होने की चाह या आवश्यकता। उ०—वीछुड़ियाँ साजण मिलइ, वलि किउ ताढउ ताव।—ढोला०, दू० ५५६।

मुहा०—ताव चढ़ना=(१) प्रबल इच्छा होना। ऐसी इच्छा होना कि कोई बात चटपट हो जाय। (२) कामोद्दीपन होना। ताव पर = जब इच्छा या आवश्यकता हो, उसी समय। जरूरत के मौके पर। जैसे,—तुम्हारे ताव पर तो रुपया नहीं मिल सकता।

ताव[2]—संज्ञा पुं० [फ़ा० ता (= संख्या)] कागज का एक तख्ता। जैसे, चार ताव कागज।

तावड़ियाँ(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० ताप, प्रा० ताव+ड़ी (प्रत्य०)] घाम। धूप। उ०—सूखे जेठ मँझार सर तीखा तावड़ियाँह। बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० १६।

तावण—वि० [सं० तावान्] तितना। उतना। उ०—तिल ज्यों घाणी पीड़िए तावण तत्ते तेल।—प्राण०, पृ० २५५।

तावत्—क्रि० वि० [सं०] १. उतने काल तक। उतनी देर तक। तब तक। २. उतनी दूर तक। वहाँ तक। ३. उतने परिमाण तक। उतने तक।

विशेष—यह 'यावत्' का संबंधपूरक शब्द है।

तावतोंम(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० ताव + अनु० तोम] आवेश। क्रोध। गुस्सा। उ०—दागी सु तोप लाग ताव तोंम।—हु० रासो, पृ० १०८।

तावदार—वि० [हिं० ताव + फ़ा० दार] १. वह (व्यक्ति)

जिसमें ताव हो। जो आवेश में आकर या साहसपूर्वक काम करता हो। २. (वस्तु) जो कड़ी और सुंदरता लिए हुए हो।

तावना†—क्रि० स० [सं० तापन] १. तपाना। गरम करना। उ०—प्रतन तनक ही मैं तापन तें तावैगो।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ३७६। २ जलाना। ३. संताप पहुँचाना। दुःख पहुँचाना। डाहना।

तावबंद—संज्ञा पुं० [हिं० ताव+फा० बंद] वह औषध जिसके प्रयोग से चाँदी का खोटापन तपाने पर भी प्रकट न हो।

तावभाव—वि० थोड़ा सा। जरा सा। हलका सा।

तावर†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तावरी'।

तावरी—संज्ञा स्त्री० [सं० ताप, हिं० ताव+री (प्रत्य०)] १. ताप। दाह। जलन। उ०—फिरत हो उतावरी लगत नही तावरी।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ४८०। २. धूप। घाम। आतप ३. बुखार। ज्वर। हरारत। ४. गरमी से आया हुआ चक्कर। मूर्छा।

क्रि० प्र०—आना।

तावरो†—संज्ञा पुं० [हिं० ताव+रा (प्रत्य०)] १. ताप। दाह। जलन। २ सूर्य की गरमी। धूप। घाम। आतप। उ०—मैं जमुना जल भरि घर आवति मो को लागो तावरो।—सूर (शब्द०) ३. गरमी से आया हुआ चक्कर। घमेर। मूर्छा।

क्रि० प्र०—आना।

तावल†—संज्ञा स्त्री० [हिं० ताव] जल्दी। उतावलापन। हड़बड़ी।

तावा—संज्ञा पुं० [हिं० ताव] १. दे० 'तवा'। २. वह कच्चा खपड़ा या थपुआ जिसके किनारे अभी मोड़े न गए हों। ३. तवा।

तावर—संज्ञा पुं० [सं०] धनुष की डोरी। प्रत्यंचा (को०)।

तावान—संज्ञा पुं० [फा०] १ वह चीज जो नुकसान भरने के लिये दी या ली जाय। क्षतिपूर्ति। नुकसान का मुआवजा। २. अर्थदंड। डाँड़।

क्रि० प्र०—देना।—लेना।

३. वह धन या सामान आदि जो हारा हुआ राष्ट्र विजेता को देता है (को०)।

यौ०—तावाने जंग = युद्ध की क्षतिपूर्ति जो पराजित राष्ट्र को करनी पड़ती है।

तावाना—क्रि० स० [सं० ताप, हिं० तावना] आँच में ताप देना। अग्नि में तपाना। दे० 'तावना'। उ०—ठुक ठुक करिके गढ़े ठठेरा बार बार तावाई। वा मूरत के रही भरोसे, पछिला धरम नसाई।—कबीर श०, भा० ३, पृ० ५४।

ताविष—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तावीष'।

ताविषी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. देवकन्या। २ नदी। ३. पृथिवी। ४. समुद्र (को०)। ५. स्वर्ग (को०)। ६. सोना। सुवर्ण (को०)।

तावीज—संज्ञा पुं० [अ० तअवीज] १. यंत्र, मंत्र या कवच जो किसी संपुट के भीतर रखकर गले में या बाँह पर पहना जाय। रक्षाकवच। कवच। उ०—यंत्र मंत्र जती करि लागे, करि तावीज गले पहिराए।—कबीर सा०, पृ० ५४०। २. सोने, चाँदी, ताँबे आदि का चौकोर या अठपहला, गोल या चिपटा संपुट जिसे तागे में लगाकर गले या बाँह पर पहनते हैं। जंतर।

विशेष—ये संपुट यों ही गहने की तरह भी पहने जाते हैं और इनके भीतर यंत्र भी रहता है।

मुहा०—तावीज बाँधना = रक्षा के लिये देवता का मंत्र आदि लिखकर बाँधना। कवच बाँधना।

३. कब्र पर बना हुआ ईंटों या पत्थर का निशान (को०)। ४. गले का एक आभूषण (को०)।

तावील—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. स्पष्टीकरण। २. किसी बात का असली अर्थ से हटकर दूसरा अर्थ। ३. किसी बात का ऐसा अर्थ बताना जो लगभग ठीक जान पड़े। ४. स्वप्नफल कहना (को०)।

तावीष—संज्ञा पुं० [सं०] १. सोना। स्वर्ण। २. स्वर्ग। ३. समुद्र।

तावीषी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'ताविषी' (को०)।

तावुरि—संज्ञा पुं० [यूनी टारस] वृष राशि।

ताश—संज्ञा पुं० [अ० तास (= तश्त या चौड़ा बरतन)] १. एक प्रकार का जरदोजी कपड़ा जिसका ताना रेशम का और बाना बादले का होता है। जरबफ्त। २. खेलने के लिये मोटे कागज का चौखूँटा टुकड़ा जिसपर रंगों की बूटियाँ या तसवीरें बनी रहती हैं। खेलने का पत्ता।

विशेष—खेलने के ताश में चार रंग होते हैं—हुक्म, चिड़ी, पान और ईंट। एक एक रंग के तेरह तेरह पत्ते होते हैं। एक से दस तक तो बूटियाँ होती हैं जिन्हें क्रमशः एक्का, दुक्की (या दुड़ी), तिक्की, चौकी, पंजी, छक्का, सत्ता, अट्ठा, नहला और दहला कहते हैं। इनके अतिरिक्त तीन पत्तों में क्रमशः गुलाम, बीबी और बादशाह की तसवीरें होती हैं। इस प्रकार प्रत्येक रंग के तेरह पत्ते और सब मिलाकर बावन पत्ते होते हैं। खेलने के समय खेलनेवालों में ये पत्ते उलटकर बराबर बाँट दिए जाते हैं। साधारण खेल (रंगमार) में किसी रंग की अधिक बूटियोंवाला पत्ता उसी रंग की कम बूटियोंवाले पत्ते को मार सकता है। इसी प्रकार दहले को गुलाम मार सकता है और गुलाम को बीबी, बीबी को बादशाह और बादशाह को एक्का। एक्का सब पत्तों को मार सकता है। ताश के खेल कई प्रकार के होते हैं जैसे, ट्रंप, गन, गुलामचोर इत्यादि।

ताश का खेल पहले किस देश में निकला, इसका ठीक पता नहीं है। कोई मिस्र देश को, कोई काबुल को, कोई अरब को और कोई भारतवर्ष को इसका आदि स्थान बतलाता है। फारस और अरब में गंजीफे का खेल बहुत दिनों से प्रचलित है जिसके पत्ते रुपए के आकार के गोल गोल होते हैं। इसी से उन्हें ताश कहते हैं। अकबर के समय हिंदुस्तान में जो ताश प्रचलित थे, उनके रंगों के नाम और थे। जैसे, अश्वपति गजपति, नरपति, गढ़पति, दलपति इत्यादि। इनमें घोड़े, हाथी आदि पर सवार तसवीरें बनी होती थीं। पर आजकल जो ताश खेले जाते हैं वे यूरप से ही आते हैं।

क्रि० प्र०—खेलना।

३. ताश का खेल। ४. कड़े कागज या दफ्ती की चकती जिसपर सीने का तागा लपेटा रहता है।

ताशा—संज्ञा पुं० [अ० तास] चमड़ा मढ़ा हुआ एक बाजा जो गले में लटकाकर दो पतली लकड़ियों से बजाया जाता है।

विशेष—यह धूमधाम सूचित करने के लिये ही बजाया जाता है।

तास[1]—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. एक सुनहरे तारों का जड़ाऊ कपड़ा। उ०—ये तास का सब वस्त्र पहने थी और मुँह पर भी तास का नकाब पड़ा हुआ था।—भारतेंदु ग्रं०, भा० ३, पृ० १८८। २. बड़ा तश्त। पराती (को०)। ३. वह कटोरा जो जलघड़ी की नाँद में पड़ता था (को०)।

तास[2]—सर्व० [हिं०] दे० 'तासु'। उ०—अनल पंखि उड़ि चढ़ि आकाश, थकित भई हूँ छोर न तास।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ८४८।

तासना†—क्रि० अ० [हिं०] १. प्यासना। २. प्यास के कारण कंठ सूख जाने से ताव खा जाना।

तासला—संज्ञा पुं० [देश०] वह रस्सी जिसे भालुओं को नचाने के के समय कलंदर उनके गले में डाले रहते हैं।

तासा[1]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ताशा'।

तासा[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रि + कर्ष, अथवा देश०] तीन बार की जोती हुई भूमि।

तासा†[3]—वि० [हिं०] तृषित। प्यासा। जैसे, पियासा तासा।

तासीर—संज्ञा स्त्री० [अ०] असर। प्रभाव। गुण। जैसे,—दवा की तासीर, सोहबत की तासीर। उ०—जिसके दर्द दिल में कुछ तासीर है। गर जवाँ भी है तो मेरा पीर है।—कविता० कौ०, भा० ४, पृ० २८।

तासु(पु)†—सर्व० [सं० तस्य अथवा हिं० ता + सु (प्रत्य०)] उसका।

तासूँ†—सर्व० [हिं०] दे० 'तासों'।

तासों(पु)†—सर्व० [हिं० ता + सों (प्रत्य०)] उससे।

तासौं(पु)†—सर्व० [हिं०] दे० 'तासों'।

तास्कर्य—संज्ञा पुं० [सं०] चोरी [को०]।

ताहम—अव्य० [फ़ा०] तो भी। तिस पर भी। उ०—ताहम मेरा यह दावा जरूर है कि मेरे छंद ढीले ढीले नहीं होते।—कुंकुम (भू०), पृ० १६।

ताहरा(पु)—सर्व० [हिं० तुम्हारा] तेरा। तुम्हारा। उ०—मीत हमारा अब पियारा, ताहरा रंगनी राती।—दादू०, पृ० ५२२

ताहरी(पु)—सर्व० स्त्री० [हिं०] दे० 'ताहरा'। उ०—करणी ताहरी सोचसी, होसी रे सिर हेलि।—दादू०, पृ० ५३६।

ताहरूँ(पु)—सर्व० [हिं० ताहरा] तेरा। तुम्हारा। त्वदीय। उ०—माहरूँ सूँ आपूँ ताहरूँ छै तू नै थापूँ।—दादू०, पृ० ६७२

ताहरौ(पु)—सर्व० [हिं० ताहरा] तिसका। उसका। उ०—दुहो पवाड सुजस ताहरो के मरसी के मारे।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ८८४।

ताहाँ(पु)—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'तहाँ'। उ०—जेहाँ तोहे ताहाँ असलान, पढ़य पेहिलम तुउभु फरमान।—कीर्ति०, पृ० ५८।

ताहि(पु)†—सर्व० [हिं० ता + हि (प्रत्य०)] उसको। उसे। उ०—काहिक सुंदरि के ताहि जान। आकुल कए गेलि हमर परान।—विद्यापति, पृ० १७६।

ताहीं†—अव्य० [हिं०] दे० 'ताईं', 'तईं'।

ताही(पु)—सर्व [हिं०] दे० 'ताहि'। उ०—परम प्रेम पद्धति इक आही। 'नंद' जथामति बरनत ताही।—नंद० ग्रं०, पृ० ११७।

ताहू(पु)—सर्व० [हिं० ताहि] तिसे भी। उसको भी। उ०—जहाँ वर्न्य सों और को उपमा बचन न होय। ताहू कहत प्रतीप हैं कबि कोबिद सब कोय।—मति० ग्रं०, पृ० ३७३।

तिंडुक(पु)—संज्ञा पुं० [? अथवा कोल (परि०)] तमाल। उ०—कालबंध, तापिच्छ पुनि, तिंडुक सहज तमाल।—नंद० ग्रं०, पृ० १०३।

तितिड़—संज्ञा पुं० [सं० तिन्तिड] १. इमली का पेड़ या फल। २. इमली की चटनी (को०)। ३. एक राक्षस (को०)।

तिंतिड़िका—संज्ञा स्त्री० [सं० तिन्तिडिका] १. इमली। २. इमली की चटनी (को०)।

तिंतिड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० तिन्तिडीक] १. इमली। २. इमली की चटनी (को०)।

तिंतिड़ीक—संज्ञा पुं० [सं० तिन्तिडीक] १. इमली। २. इमली की चटनी (को०)।

तिंतिड़ीका—संज्ञा स्त्री० [सं० तिन्तिडीका] १. इमली। २. इमली की चटनी (को०)।

तिंतिड़ीद्यूत—संज्ञा पुं० [सं० तिन्तिडी + द्यूत] एक प्रकार का जुआ जो हाथ मे इमली के बीज लेकर खेला जाता है [को०]।

तिंतिरांग—संज्ञा पुं० [सं० तिन्तिराङ्ग] इसपात। वज्रलोह।

तिंतिलिका—संज्ञा स्त्री० [सं० तिन्तिलिका] दे० 'तिंतिड़िका'।

तिंतिली—संज्ञा स्त्री० [सं० तिन्तिली] दे० 'तिंतिड़ी'।

तिंतिलीका—संज्ञा स्त्री [सं० तिन्तिलीका] इमली [को०]।

तिंदिश—संज्ञा पुं० [सं० तिन्दिश] टिंडसी नाम की तरकारी। डेंडसी।

तिंदु[1]—संज्ञा पुं० [सं०] तेंदू का पेड़।

तिंदु(पु)[2]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तेंदुआ'। उ०—व्याघ्र तिंदु रिछ बाल मँगावहु। अवर ढोर ईहामृग ल्यावहु।—प० रासो० पृ० १७।

तिंदुक—संज्ञा पुं० [सं० तिन्दुक] १. तेंदू का पेड़। २ कर्षप्रमाण। दो तोला।

तिंदुकतीर्थ—संज्ञा पुं० [सं० तिन्दुक तीर्थ] ब्रजमंडल के अंतर्गत एक तीर्थ।

तिंदुकी—संज्ञा स्त्री० [सं० तिन्दुकी] तेंदू का पेड़।

तिंदुकिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० तिन्दुकिनी] आवर्तकी। भगवत बल्ली।

तिंदुल—संज्ञा पुं० [सं० तिन्दुल] तेंदू का पेड़।

तिंस(पु)—वि० [सं० त्रिंश] दे० 'तीस'। उ०—तिस सहस हिंदुव चमू, विस सहस पट्ठान।—प० रासो०, पृ० १३४।

तिंवाल(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० तमाला, तमारा] चक्कर। उ०—ग्रावै मोही ईंखियाँ, तन ज्यों मड़ा तिवाल।—बाँकी० ग्रं०, भा० ३, पृ० २१।

ति(पु)—वि० [स० तद् या त] वह। उ०—ति न नगरि ना नागरी, प्रति पद हंसक हीन।—केशव (शब्द०)।

तिग्र(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तिय'। उ०—रामचरित चिंतामनि चारू। संत सुमति तिग्र सुभग सिंगारू।—मानस १। ३२।

तिग्रा(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तिया'।

तिग्रागी†—वि० [हिं०] दे० 'त्यागी'। उ०—बलि ग्रो बिक्रम दानि बड़ा ग्रहे। हेतिम करन तिग्रागी कहे।—जायसी ग्रं०, (गुप्त), पृ० १३१।

तिग्रास(पु)—सर्व० [हिं० ता] वा। उसे। उ०—ज्यों ग्राया त्यों जायसी जम सहहि तिग्रास सहाम।—प्राण०, पृ० २५२।

तिग्राह†¹—संज्ञा पुं० [सं० त्रिविवाह] १. तीसरा विवाह। २. वह पुरुष जिसका तीसरा व्याह हो रहा हो।

तिग्राह²—संज्ञा पुं० [सं० त्रि + पक्ष] वह श्राद्ध जो किसी की मृत्यु के पतालीसवें दिन किया जाता है।

तिउरा¹—संज्ञा पुं० [देश०] खेसारी नाम का कदन्न। केसारी।

तिउरा²—संज्ञा पुं० [देश०] एक पौधा जिसके बीजों से तेल निकाला जाता है जो जलाने के काम ग्राता है।

तिउरी†—संज्ञा स्त्री० [देश०] केसारी। खेसारी।

तिउरी(पु)—संज्ञा [हिं०] दे० 'त्योरी'। उ०—तिरछी तिउरी देख तुम्हारी। प्रेमघन०, भा० १, पृ० १६१।

तिउहार†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'त्योहार'। उ०—सखि माने तिउहार सबु, गाइ देवारी खेलि। हौं का गावौं कंत बिनु, रही छार सिर मेलि।—जायसी (शब्द०)।

तिए(पु)—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'तितना'। उ०—बियो ग्रल्हनं ग्रंग इत्तो प्रकारं। तिए तात के नग्ग किन्नं सुधारं।—पृ० रा०, २१। ११९।

तिकट(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'टिकठी'। उ०—जाय तन तिकट पर डारा। वदन बन बीच ले मारा।—संत तुरसी०, पृ० ४८।

तिकड़म—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रि + क्रम] १. चाल। षड्यंत्र। उ०—मानों श्री लल्लूलाल जी को इसी तिकड़म के हेतु फोर्ट विलियम कालेज में चाकरी मिली थी।—पोद्दार ग्रभि० ग्रं०, पृ० ८५। २. तरकीब। उपाय।

तिकड़मबाज—वि० [हिं० तिकड़म+फ़ा० बाज] दे० 'तिकड़मी'।

तिकड़मी—वि० [हिं० तिकड़म] १. तिकड़मबाज। चालाक। होशियार। २. धोखेबाज। धूर्त।

तिकड़ी¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० तीन + कड़ी] १. जिसमें तीन कड़ियाँ हों। २. चारपाई ग्रादि की वह बुनावट जिसमें तीन रस्सियाँ एक साथ हों।

तिकड़ी²—वि० तीन कड़ी या लड़ीवाली।

तिकतिक—संज्ञा स्त्री० [ग्रनु०] सवारी में पशुग्रों को हाँकने के लिये किया जानेवाला शब्द।

विशेष—बच्चे जाँघों के बीच में एक लकड़ी ले जाते हुए पकड़ लेते हैं ग्रौर उसे घोड़ा मानकर तथा ग्रपने को सवार मानकर 'तिक तिक घोड़ा' कहते हुए खेलते हैं।

तिकानी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तीन + कान] वह तिकोनी लकड़ी जो पहिए के बाहर धुरी के पास पहिए की रोक के लिये लगी रहती है।

तिकार†—संज्ञा पुं० [सं० त्रि + कार] खेत की तीसरी जोताई।

तिकुरा—संज्ञा पुं० [हिं० तीन + कूरा] फसल की उपज की तीन बराबर बराबर राशियाँ जिनमें से एक जमींदार लेता है।

तिके(पु)—सर्व० [हिं० ति] वे। उ०—केइ जिकण वार्तां मैं कोई, तिके सदाई तीखा।—रघु० रू०, पृ० २४।

तिकोन(पु)¹—वि० [सं० त्रिकोण] दे० 'तिकोना'। उ०—बाँस पुराना साज सब ग्रटपट सरल तिकोन खटोला रे।—तुलसी (शब्द०)।

तिकोन²—संज्ञा पुं० दे० 'त्रिकोण'।

तिकोना¹—वि० [सं० त्रिकोण] [वि० स्त्री० तिकोनी] जिसमें तीन कोने हों। तीन कोनोंवाला। जैसे, तिकोना टुकड़ा।

तिकोना²—संज्ञा पुं० १. एक प्रकार का नमकीन पकवान। समोसा। २. तिकोनी नक्काशी बनाने की छेनी।

तिकोना³—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'त्योरी'।

तिकोनिया¹—वि० [हिं० तिकोन+इया (प्रत्य०)] दे० तिकोना'।

तिकोनिया²—संज्ञा स्त्री० तीन कोनोंवाला स्थान।

विशेष—यह स्थान प्रायः दो दीवालों के बीच कोने में तिकोना पत्थर या लकड़ी गड़कर बनाया जाता है जिसपर छोटे मोटे सामान रखे जाते हैं।

तिक्का†—संज्ञा पुं० [फ़ा० तिक्कह्] मांस की बोटी। लोथ।

मुहा०—तिक्का बोटी करना = टुकड़े टुकड़े करना। धज्जी धज्जी ग्रलग करना।

तिक्की—संज्ञा स्त्री० [सं० तृ] १. ताश का वह पत्ता जिसपर तीन बूटियाँ बनी हों। २. गंजीफे का वह पत्ता जिसपर तीन बूटियाँ हो।

तिक्ख(पु)—वि० [सं० तीक्ष्ण, प्रा० तिक्ख] १. तीखा। चोखा। तेज। २. तीव्रबुद्धि। तेज। चालाक।

तिक्खा(पु)†—वि० [हिं०] तिरछा। टेढ़ा।

तिक्खे†—क्रि० वि० [हिं०] तिरछे।

तिक्त¹—वि० [सं०] तीता। कड़ुग्रा। जिसका स्वाद नीम, गुरुच, चिरायते ग्रादि के समान हो।

तिक्त²—संज्ञा पुं० १. पित्तपापड़ा। २. सुगंध। ३. कुटज। ४. वरुण वृक्ष। ५. छह रसों में से एक।

विशेष—तिक्त छह रसों में से एक है। तिक्त ग्रौर कटु में भेद यह कि तिक्त स्वाद ग्ररुचिकर होता है; जैसे, नीम, चिरायते ग्रादि का; पर कटु स्वाद चरपरा ग्रौर रुचिकर होता है।

जैसे, सोंठ, मिर्च आदि का। वैद्यक के अनुसार तिक्त रस छेदक, रुचिकारक, दीपक, शोधक तथा मूत्र, मेद, रक्त, वसा आदि का शोषण करनेवाला है। ज्वर, खुजली, कोढ़, मूर्च्छा आदि में यह विशेष उपकारी है। अमिलतास, गुरच, मजीठ, कनेर, हल्दी, इंद्रजव, भटकटैया, अशोक, कुटकी, बरियारा, ब्राह्मी, गदहपुरना (पुनर्नवा) इत्यादि तिक्त वर्ग के अंतर्गत हैं।

तिक्तकंदिका—संज्ञा स्त्री० [सं० तिक्तकन्दिका] बनशट। गंधपत्रा। बनकचूर।

तिक्तक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. पटोल। परवल। २. चिरति। चिरायता। ३. काला खैर। ४. इंगुदी। ५. नीम। ६. कुडच। कुरैया। ७. तिक्त रस (को०)।

तिक्तक[2]—वि० तीता [को०]।

तिक्तकांड—संज्ञा स्त्री० [सं० तिक्तकाण्ड] चिरायता।

तिक्तका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कटुतुंबी। कड़ुआ कद्दू।

तिक्तगंधा—संज्ञा स्त्री० [सं० तिक्तगन्धा] १. वराहक्रांता। वराही कंद। २. सरसों (को०)।

तिक्तगंधिका—संज्ञा स्त्री० [सं० तिक्तगन्धिका] १. वराहक्रांता। वराही कंद। २. सर्षप। सरसों (को०)।

तिक्तगुंजा—संज्ञा स्त्री० [सं० तिक्तगुञ्जा] कंजा। करंज। करंजुआ।

तिक्तघृत—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार कई तिक्त ओषधियों के योग से बना हुआ एक घृत जो कुष्ट; विषम ज्वर, गुल्म, अर्श, ग्रहणी आदि में दिया जाता है।

तिक्ततंडुला—संज्ञा स्त्री० [सं० तिक्ततण्डुला] पिप्पली। पीपल।

तिक्तता—संज्ञा स्त्री० [सं०] तिताई। कड़ुआपन। तीतापन।

तिक्ततुंडी—संज्ञा स्त्री [सं० तिक्ततुण्डी] कड़ुई तुरई।

तिक्ततुंबी—संज्ञा स्त्री० [सं० तिक्ततुम्बी] कड़ुआ कद्दू। तितलौकी।

तिक्तदुग्धा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. खिरनी। २. मेढ़ासिंगी।

तिक्तधातु—संज्ञा स्त्री० [सं०] (शरीर के भीतर की कड़ई धातु, अर्थात्) पित्त।

तिक्तपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] ककोड़ा। खेखसा।

तिक्तपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कचरी। पेहँटा।

तिक्तपर्वा—संज्ञा पुं० [सं०] १. दूब। २. हुलहुल। हुरहुर। ३. गिलोय। गुर्च। ४. मुलेठी। जेठी मधु।

तिक्तपुष्पा[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] पाठा।

तिक्तपुष्पा[2]—वि० जिसके फूल का स्वाद तीखा हो [को०]।

तिक्तफल—संज्ञा पुं० [सं०] १. रीठा। विमंब फल। २. यवतिक्ता लता (को०)। ३. निर्मली। कतक वृक्ष (को०)।

तिक्तफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. भटकटैया। २. कचरी। ३. खरबूजा। ४. यवतिक्ता लता (को०)। ५. वार्ता की (को०)।

तिक्तबीजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] तितलौकी [को०]।

तिक्तभद्रक—संज्ञा पुं० [सं०] परवल। पटोल।

तिक्तयवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] शंखिनी।

तिक्तरोहिणिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'तिक्तरोहिणी'।

तिक्तरोहिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुटकी।

तिक्तवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] मूर्वा लता। मुर्रा। मरोड़फली। चुरनहार।

तिक्तवीजा—संज्ञा स्त्री [सं०] कडुआ कद्दू। तितलौकी।

तिक्तशाक—संज्ञा पुं० [सं०] १. खैर का पेड़। २. वरुण वृक्ष। ३. पत्रसुंदर शाक।

तिक्तसार—संज्ञा पुं० [सं०] १. रोहिष नाम की घास। २. खैर का पेड़।

तिक्तांगा—संज्ञा स्त्री० [सं० तिक्ताङ्गा] पातालगारुड़ी लता। छिरेटा।

तिक्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कुटकी। कटुका। २. पाठा। ३. यवतिक्ता लता। ४. खरबूजा। ५. छिकनी नाम का पौधा। नकछिकनी।

तिक्ताख्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] कडुआ कद्दू। तितलौकी।

तिक्तिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तितलौकी। २. काकमाची। ३. कुटकी।

तिक्तिरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] तुमड़ी या महुग्रर नाम का बाजा जिसे प्रायः सँपेरे बजाते हैं।

तिख(पु)†—वि० [सं० तीक्ष्ण] १. तीक्ष्ण। तेज। २. चोखा। पैना। उ०—धनु बान तिक्ष कुठार केशव मेखला मृगचर्म सों। रघुबीर को यह देखिए रस वीर सात्विक धर्म सों।—केशव (शब्द०)।

तिखता(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० तीक्ष्णता] तेजी। उ०—शूर बाजिन की खुरी अति तिक्षता तिनकी हुई।—केशव (शब्द०)।

तिखि(पु)—वि० [हिं०] दे० 'तीक्ष्ण'। उ०—गणन्नाथ हथ्थं लिए तिक्षि फर्सी। पिनाकी पिनाकं किए चाप दर्सी।—हु० रासो, पृ० ८४।

तिख—वि० [सं० त्रि+कर्ष] तीन बार का जोता हुआ। तिखहा (खेत)।

तिखटी(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'टिकठी'।

तिखरा—वि० [हिं०] दे० 'तिख'।

तिखराना†—क्रि० स० [हिं० तिखारना का प्रे० रूप] निखारने का काम दूसरे से कराना।

तिखाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० तीखा] तीखापन। तीक्ष्णता। तेजी।

तिखारना†—क्रि० स० [सं० त्रि + हिं० आखर] किसी बात को दृढ़ या निश्चित करने के लिये तीन बार पूछना। पक्का करने के लिये कई बार कहलाना।

विशेष—तीन बार कहकर जो प्रतिज्ञा की जाती है, वह बहुत पक्की समझी जाती है।

तिखूँट(पु)—वि० [हिं०] दे० 'तिखूँटा'। उ०—बेलदार लहरा छबि छूटे। चौतमवाले चौर तिखूँटे।—चित्त प०, पृ० १७५।

तिखूँटा—वि० [हिं० तीन+खूँट] तीन कोने का। जिसमें तीन कोने हों। तिकोना।

तिगना¹—क्रि० स० [देश०] देखना। नजर डालना। भाँपना। (दलाली)।

तिगना²—वि० [हिं०] दे० 'तिगुना'।

तिगुना—वि० [सं० त्रिगुण] [वि० स्त्री० तिगुनी] तीन बार अधिक। तीन गुना।

तिगुचना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'तिगना'।

तिगून—संज्ञा पुं० [हिं० तिगुना] १. तिगुना होने का भाव। २. आरंभ में जितना समय किसी चीज के गाने या बजाने में लगाया जाय, आगे चलकर वह चीज उसके तिहाई समय में गाना। साधारण से तिगुना। जल्दी गाना या बजाना। वि० दे० 'चौगून'।

तिग्मंस(पु)—संज्ञा सं० [हिं०] दे० 'तिग्मांशु'। उ०—मिहिर तिमिरहर प्रभाकर उस्नरश्मि तिग्मंस।—अनेकार्थ०, पृ० १०२।

तिग्म¹—वि० [सं०] १. तीक्ष्ण। खरा। तेज। प्रखर। उ०—खोल गए मसार नया तुम मेरे मन में क्षण भर। जन संस्कृति का तिग्म स्फीत सौंदर्य स्वप्न दिखलाकर।—ग्राम्या, पृ० ४७। २. तप्त। तप्त करनेवाला (को०)।

यौ०—तिग्मकर। तिग्मदीधिति। तिग्ममन्यु। तिग्मरश्मि। तिग्मांशु।

३. प्रचंड। उग्र (को०)।

तिग्म²—संज्ञा पुं० १. वज्र। २. पिप्पली।—(अनेकार्थ)। ३ पुरुवंशीय एक क्षत्रिय।—(मत्स्य)। ४. ताप (को०)। ५. तीक्ष्णता। तीखापन (को०)।

तिग्मकर—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य।

तिग्मकेतु—संज्ञा पुं० [सं०] ध्रुववंशीय एक राजा जो वत्सर और सुवीथी के पुत्र थे। (भागवत)।

तिग्मगर्भ—संज्ञा पुं० [सं० तिग्मगर्भ] अग्नि (को०)।

तिग्मता—संज्ञा स्त्री० [सं०] तीक्ष्णता। तेज। उग्रता। प्रचंडता। उ०—परतंत्रता ने साधारणों को निर्बल और दरिद्र बना दिया है उनमें वह तिग्मता, जो विजयी जाति में होती है, कभी आ ही नहीं सकती।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २८१।

तिग्मतेज¹—वि० [सं० तिग्मतेजस्] १. तीक्ष्ण। तीखा। २. बैठनेवाला। प्रविष्ट होनेवाला। ३. उग्र। प्रखर। ४. तेजस्क। तेजस्वी (को०)।

तिग्मतेज²—संज्ञा पुं० सूर्य (को०)

तिग्मदीधिति—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य।

तिग्मद्युति, तिग्मभास—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य (को०)।

तिग्ममन्यु—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव। शिव।

तिग्ममयूखमाली—संज्ञा पुं० [सं० तिग्ममयूखमालिन्] सूर्य (को०)।

तिग्मयातना—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रचंड या असह्य पीड़ा (को०)।

तिग्मरश्मि—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य।

तिग्मांशु—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य।

तिघरा†—संज्ञा पुं० [सं० त्रिघट] मिट्टी का चौड़े मुँह का बरतन जिसमें दूध दही रखा जाता है। मटकी।

तिचिया—संज्ञा पुं० [देश०] जहाज पर के वे आदमी जो आकाश में नक्षत्रों को देखते हैं (लश०)।

तिच्छ(पु)—वि० [सं० तीक्ष्ण] दे० 'तीक्ष्ण'।

तिच्छन(पु)—वि० [सं० तीक्ष्ण] दे० 'तीक्ष्ण'।

तिच्छना(पु)—वि० [हिं०] दे० 'तीक्ष्ण'। उ०—कनक काँच का भेद ज्ञान में तिच्छना। अरे हाँ रे पलटू ऊधो से हरि कहँ संत के लच्छना।—पलटू०, भा० २, पृ० ७७।

तिजरा—संज्ञा पुं० [सं० त्रि + ज्वर] तीसरे दिन आनेवाला ज्वर। तिजारी।

तिजमाँसा—संज्ञा पुं० [हिं० तीजा (= तीसरा) + मास (= महीना)] वह उत्सव जो किसी स्त्री को तीन महीने का गर्भ होने पर उसके कुटुंब के लोग करते हैं।

तिजहर†—संज्ञा पुं० [हिं०] तीसरा पहर।

तिजहरिया—संज्ञा पुं० [हिं० तीजा (= तीसरा) + पहर] तीसरा पहर। अपराह्न।

तिजहरी†—संज्ञा पुं० [हिं० तीजा (= तीसरा) + मास (= महीना)] तीसरा पहर। अपराह्न।

तिजार†—संज्ञा पुं० [सं० त्रि + ज्वर] तीसरे दिन आनेवाला ज्वर।

तिजारत—संज्ञा स्त्री० [अ०] वाणिज्य। बनिज। व्यापार। रोजगार। सौदागरी।

तिजारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तिजार] तीसरे दिन जाड़ा देकर आनेवाला ज्वर।

तिजिया†—संज्ञा पुं० [हिं० तीजा (= तीसरा)] वह मनुष्य जिसका तीसरा विवाह हो।

तिजिल—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा। २. राक्षस (को०)।

तिजहना(पु)—क्रि० स० [सं० त्यजन] तजना। छोड़ना। उ०—कह म्हारइ हीरा अपहइ, नहीं तो गोरी ! तिजहूँ पराण।—बी० रासो, पृ० ३१।

तिजोरी—संज्ञा स्त्री० [अं० ट्रेजरी] लोहे की मजबूत छोटी आलमारी, जिसमें रुपए, गहने आदि सुरक्षित रखे जाते हैं।

तिड़ो—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रि (= तीन)] ताश का वह पत्ता जिसमें तीन बूटियाँ हों।

मुहा०—तिड़ो करना = गायब करना। उड़ा ले जाना। तिड़ो होना—(१) चुपके से चले जाना। गायब होना। (२) भाग जाना।

तिड़ीबिड़ी†—वि० [देश०] तितर बितर। छितराया हुआ। अस्त-व्यस्त।

तिड्ड(पु)—संज्ञा वि० [हिं०] दे० 'टिड्डी'। उ०—ऊ चालउ क अवर-सणउ कइ फाकउ कइ तिड्ड।—ढोला०, दू० ६६०।

तिण(पु)†¹—सर्व० [हिं०] दे० 'तिन'। उ०—चहुँ दिसि दामिनि सघन घन, पीउ तजो तिण वार।—ढोला०, दू० ३७।

तिण(पु)²—संज्ञा पुं० [सं० तृण] तृण। तिनका।

तिरणा(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तिनका'। उ०—दंत तिरणा लीयै कहै रे पिय आप बिचार।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ६८२।

तित(पु)¹—क्रि० वि० [सं० तत्र] १. तहाँ। वहाँ। उ०—श्रीनिवास कों निज निवास छबि का कहियै तित।—नंद० ग्रं०, पृ० २०२। २. उधर। उस ओर। उ०—जित देखौं तित श्याममयी है।—सूर (शब्द०)।

तित²—वि० [हिं० तीत का समासगत रूप] तिक्त। तीता। जैसे, तितलौकी।

तितउ—संज्ञा पुं० [सं०] १. चलनी। २. छत्र। छाता [को०]।

तितना†—क्रि० वि० [सं० तति, ततीनि] उतना। उसके बराबर। उ०—तब वाकी सास एक ही बेर वाकी पातरि में परोसे। तितनो ही वह चरिकिनी चरनामृत मिलाय के खाहि।—दो सौ बावन०, भा० २, पृ० १८।

विशेष—'जितना' के साथ आए हुए वाक्य का संबंध पूरा करने के लिये इस शब्द का प्रयोग होता है। पर अब गद्य में इसका प्रचार नहीं है।

तितर(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तीतर'। उ०—हुकुम स्वामि छुट्टत सु इम, मनों तितर पर बाज।—पृ० रा०, ३।४।

तितर बितर—वि० [हिं० तिथर + अनु० बितर] १. जो इधर उधर हो गया हो। छितराया हुआ। बिखरा हुआ। जो एकत्र न हो। जैसे,—तोप की आवाज सुनते ही सब सिपाही तितर बितर हो गए। २. जो क्रम से लगा न हो। अव्यवस्थित। अस्त व्यस्त। जैसे,—तुमने सब पुस्तकें तितर बितर कर दीं।

तितरात—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पौधा जिसकी जड़ ओषध के काम में आती है।

तितरोखी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तीतर] एक प्रकार की छोटी चिड़िया।

तितली—संज्ञा स्त्री० [हिं० तीतर, पुं०हिं० तितिल (चित्रित डैनों के कारण)] १. एक उड़नेवाला सुंदर कीड़ा या फतिंगा जो प्रायः बगीचों में फूलों के पराग और रस आदि पर निर्वाह करता है।

विशेष—तितली के छह पैर होते हैं और मुँह से बाल के ऐसी दो सूँड़ियाँ निकली होती हैं जिनसे यह फूलों का रस चूसती है। दोनों ओर दो दो के हिसाब से चार बड़े पंख होते हैं। भिन्न भिन्न तितलियों के पंख भिन्न भिन्न रंग के होते हैं और किसी किसी में बहुत सुंदर बूटियाँ रहती हैं। पंख के अतिरिक्त इसका और शरीर इतना सूक्ष्म या पतला होता है कि दूर से दिखाई नहीं देता। गुबरैले, रेशम के कीड़े आदि फतिंगों के समान तितली के शरीर का भी रूपांतर होता है। अंडे से निकलने के उपरांत यह कुछ दिनों तक गाँठदार ढोले या सूँड़े के रूप में रहती है। ऐसे ढोले प्रायः पौधों की पत्तियों पर चिपके हुए मिलते हैं। इन ढोलों का मुँह कुतरने योग्य होता है और ये पौधों को कभी कभी बड़ी हानि पहुँचाते हैं। छह असली पैरों के अतिरिक्त इन्हें कई और पैर होते हैं। ये ही ढोले रूपांतरित होते होते तितली के रूप में हो जाते हैं और उड़ने लगते हैं।

२. एक घास जो गेहूँ आदि के खेतों में उगती है।

विशेष—इसका पौधा हाथ सवा हाथ तक का होता है। पत्तियाँ पतली पतली होती हैं। इसकी पत्तियाँ और बीज दवा के काम में आते हैं।

तितलौआ—संज्ञा पुं० [हिं० तीत + लौआ] कड़ुवा कद्दू।

तितलौकी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० तीता+लौआ] कटु तुंबी। कड़ुवा कद्दू।

तितारा¹—संज्ञा पुं० [सं० त्रि+हिं० तार] वह सितार की तरह का एक बाजा जिसमें तीन तार लगे रहते हैं। उ०—बाजैं डफ, नगारा, बीन, बाँसुरी सितारा चारितारा त्यों तितारा मुख लावतो निसंक हैं।—रघुराज (शब्द०)। २. फसल की तीसरी बार की सिंचाई।

तितारा—वि० तीन तारवाला। जिसमें तीन तार हों।

तितिंबा—संज्ञा पुं० [अ० ततिम्मह्] १. ढकोसला। २. क्षेप। ३. लेख का वह भाग जो अंत में उसी पुस्तक के संबंध में लगा देते हैं। परिशिष्ट। उपसंहार।

तितिक्ष—वि० [सं०] सहनशील। क्षमाशील।

तितिक्ष²—संज्ञा पुं० एक ऋषि का नाम।

तितिक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सरदी गरमी आदि सहने की सामर्थ्य। सहिष्णुता। २. क्षमा। शांति। उ०—पावें तुमसे आज शत्रु भी ऐसी शिक्षा, जिसका अथ हो दंड और इति दया तितिक्षा।—साकेत, पृ० ४२२।

तितिक्षु—वि० [सं०] क्षमाशील। शांत। सहिष्णु। २. त्यागने की इच्छावाला (को०)।

तितिक्षु²—संज्ञा पुं० पुरुवंशीय एक राजा जो महामना का पुत्र था।

तितिभ—संज्ञा पुं० [सं०] १. जुगनू। २. बीरबहूटी [को०]।

तितिम्मा—संज्ञा पुं० [अ० ततिम्मह्] १. बचा हुआ भाग। अवशिष्ट अंश। २. किसी ग्रंथ के अंत में लगाया हुआ प्रकरण। परिशिष्ट।

तितिर, तितिरि—संज्ञा पुं० [सं०] तीतर पक्षी [को०]।

तितिल—संज्ञा पुं० [सं०] १. ज्योतिष में सात करणों में से एक। दे० 'तैतिल'। २. नाँद नाम का मिट्टी का बरतन। ३. तिल की खली (को०)।

तिती(पु)—क्रि० वि० [सं० तति, ततीनि] उतनी। उ०—तब श्री हरि वह माया जिती। अंतरध्यान करी तहँ तिती।—नंद० ग्रं०, पृ० २६७।

तितीर्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तैरने या पार करने की इच्छा। २. तर जाने की इच्छा।

तितीर्षु—वि० [सं०] १. तैरने की इच्छा करनेवाला। उ०—कवि अल्प, उडुप मति, भव तितीर्षु दुस्तर अपार। कल्पनापुत्र मैं भावी द्रष्टा, निराधार। — ग्राम्या, पृ० ५८। २. तरने का अभिलाषी।

तितुआ†—संज्ञा पुं० [देश०] गाड़ी के पहिए का आरा।

तिते(पु)†—वि० [सं० तति] उतने (संख्यावाचक)। उ०—अंबर

मौफ भमरगन जिते । देखत हैं घट भोटनि तिते ।—नंद० ग्रं०, पृ० २६८ ।

तितेक(पु)†—वि० [हिं० तितो + एक] उतना । उ०—गोकुल गोपी गोप जितेक । कृष्ण चरित रस मगन तितेक ।—नंद० ग्रं०, पृ० २५६ ।

तितै(पु)†—क्रि० वि० [हिं० तित + ई (प्रत्य०)] १. वहाँ ही । वहीं । २. वहाँ । ३. उधर ।

तितो(पु)†—वि० [सं० तावत्] उस मात्रा या परिमाण का ।

तितो²—क्रि० वि० उतना ।

तितौ(पु)—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'तितो' । उ०—(क) जब सब लोक चराचर जितौ । प्रलय उदधि मधि मज्जत तितौ ।—नंद० ग्रं०, पृ० २७१ । (ख) जदपि सुंदर सुघर पुनि सगुनौ दीपक देह । तऊ प्रकासु करै तितौ भरियै जितै सनेह ।—बिहारी र०, दो० ६५८ ।

तित्तिर—संज्ञा पुं० [सं० तित्तिरि] १. तीतर नाम का पक्षी । २. तितली नाम की घास ।

तित्तिरि—संज्ञा पुं० [सं०] १. तीतर पक्षी । २. यजुर्वेद की एक शाखा का नाम । दे० 'तैत्तिरीय' । ३. यास्क मुनि के एक शिष्य जिन्होंने तैत्तिरीय शाखा चलाई थी ।—(आत्रेय अनुक्रमणिका) ।

विशेष—भागवत आदि पुराणों के अनुसार वैशंपायन के शिष्य मुनियों ने तितर पक्षी बनकर याज्ञवल्क्य के उगले हुए यजुर्वेद को चुगा था ।

तित्थूँ—अव्य० [पं०] वहाँ । उ०—यहो यहो घनआनँद जानी तित्थूँ औंदा है ।—घनानंद० पृ० १८१ ।

तिथि—संज्ञा पुं० [सं०] १. चद्रमा की कला के घटने या बढ़ने के अनुसार गिने जानेवाले महीने का दिन । चांद्रमास के अलग अलग दिन जिनके नाम संख्या के अनुसार होते हैं । मिति । तारीख ।

यौ०—तिथिपत्र । तिथिवृद्धि ।

विशेष—पक्षों के अनुसार तिथियाँ भी दो प्रकार की होती हैं । कृष्ण और शुक्ल । प्रत्येक पक्ष में १५ तिथियाँ होती हैं । जिनके नाम ये हैं—प्रतिपदा (परिवा), द्वितीया (दूज), तृतीया (तीज), चतुर्थी (चौथ), पंचमी, षष्ठी (छठ), सप्तमी, अष्टमी, नवमी, दशमी, एकादशी (ग्यारस), द्वादशी (दुआस), त्रयोदशी (तेरस), चतुर्दशी (चौदस), पूर्णिमा या अमावस्या । कृष्णपक्ष की अंतिम तिथि अमावस्या और शुक्लपक्ष की पूर्णिमा कहलाती है । इन तिथियों के पाँच वर्ग किए गए हैं—प्रतिपदा, षष्ठी और एकादशी का नाम नंदा, द्वितीया, सप्तमी और द्वादशी का नाम भद्रा, तृतीया अष्टमी और त्रयोदशी का नाम जया, चतुर्थी, नवमी और चतुर्दशी का नाम रिक्ता; और पंचमी, दशमी और पूर्णिमा या अमावस्या का नाम पूर्णा है । तिथियों का मान नियत होता है अर्थात् सब तिथियाँ बराबर दंडों की नहीं होती ।
२. पंद्रह की संख्या ।

तिथिकृत्य—संज्ञा पुं० [सं०] विशेष तिथि पर किया जानेवाला धार्मिक कृत्य [को०] ।

तिथिक्षय—संज्ञा पुं० [सं०] तिथि की हानि । किसी तिथि का गिनती में न आना ।

विशेष—ऐसा तब होता है जब एक ही दिन में अर्थात् दो सूर्योदयों के बीच तीन तिथियाँ पड़ जाती हैं । ऐसी अवस्था में जो तिथि सूर्य के उदयकाल में नहीं पड़ती है, उसका क्षय माना जाता है ।

तिथिदेवता—संज्ञा पुं० [सं०] वह देवता जो तिथि का अधिष्ठाता होता है [को०] ।

तिथिपति—संज्ञा पुं० [सं०] तिथियों के स्वामी देवता ।

विशेष—भिन्न भिन्न ग्रंथों के अनुसार ये अधिपति भिन्न भिन्न हैं । जिस तिथि का जो देवता है, उसका उक्त तिथि को पूजन होता है ।

तिथि	देवता	
	बृहत्संहिता	वसिष्ठ
१	ब्रह्मा	अग्नि
२	विधाता	विधाता
३	हरि	गौरी
४	यम	गणेश
५	चंद्रमा	सर्प
६	षडानन	षडानन
७	शक्र	सूर्य
८	वसु	महेश
९	सर्प	दुर्गा
१०	धर्म	यम
११	ईश	विश्वेदेवा
१२	सविता	हरि
१३	काम	काम
१४	कलि	शर्व
पूर्णिमा	विश्वेदेवा	चंद्रमा
अमावस्या	पितर	पितर

तिथिपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] पत्रा । पंचांग । जंत्री ।

तिथिप्रणी—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा ।

तिथियुग्म—संज्ञा पुं० [सं०] दो तिथियों का योग [को०] ।

तिथिवृद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह तिथि जो दो सूर्योदयों तक चले [को०] ।

तिथ्यर्ध—संज्ञा पुं० [सं०] करण ।

तिदरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तीन + फ़ा० दर] वह कोठरी जिसमें तीन दरवाजे या खिड़कियाँ हों ।

तिदारी—संज्ञा पुं० [देश०] जल के किनारे रहनेवाली बत्तख की तरह की एक चिड़िया ।

विशेष—यह बहुत तेज उड़ती है और जमीन पर सूखी घास का घोंसला बनाती है । इसका लोग शिकार करते हैं ।

तिद्वारी—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ त्रिद्वार] वह कोठरी जिसमें तीन दरवाजे या खिड़कियाँ हों।

तिधर†—क्रि॰ वि॰ [सं॰ तत्र] उधर। उस ओर।

तिधरि Ⓟ—क्रि॰ वि॰ [हिं॰] दे॰ 'तिधर'। उ॰—जिधरि देखौं नैन भरि तिधरि सिरजनहारा।—दादू॰, ६८।

तिधारा—संज्ञा पुं॰ [सं॰ त्रिधार] एक प्रकार का थूहर (सेंहुड़) जिसमें पत्ते नहीं होते।

विशेष—इसमें उँगलियों की तरह शाखाएँ ऊपर को निकलती हैं। इसे बगीचों आदि की बाढ़ या टट्टी के लिये लगाते हैं। इसे वज्री या नरसेज भी कहते हैं।

तिधारीकांडबेल—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ तिधारी + सं॰ काण्डवेल] हड़जोड़।

तिनंगा—पुं॰ [हिं॰] दे॰ 'तिलंगा'। उ॰—मार तिनंगा तारयो।—पृ॰ रा॰, १०।३२।

तिन¹—सर्व॰ [सं॰ तेन (= उनसे)] 'तिस' शब्द का बहुवचन। जैसे, तिनने, तिनको, तिनसे इत्यादि। उ॰—तिन कवि केशवदास सों कीनों धर्म सनेहु।—केशव (शब्द॰)।

विशेष—अब गद्य में इस शब्द का व्यवहार नहीं होता।

तिन²—संज्ञा पुं॰ [सं॰ तृण] तिनका। तृण। घासफूस। उ॰—ह्वै कपूर मनिमय रही मिलति न दुति मुकुतालि। छिन छिन खरो बिचच्छनो लखति छाय तिन आलि।—बिहारी (शब्द॰)

तिनउर—संज्ञा पुं॰ [सं॰ तृण + उर या और (प्रत्य॰) अथवा सं॰ तृण+आकर] तिनकों का ढेर। तृणसमूह। उ॰—तन तिनउर भा, झूरौं खरी। भइ बरखा, दुख आगरि जरी।—जायसी (शब्द॰)।

तिनक—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] दे॰ 'तिनका'। उ॰—लाज तिनक जिमि तोरि ही दीनी।—नंद॰ ग्रं॰ पृ॰ १५२।

तिनकना—क्रि॰ अ॰ [अ॰ चिनगारी, चिनकी, या अनु॰] चिड़चिड़ाना। चिढ़ना। झल्लाना। बिगड़ना। नाराज होना।

तिनका—संज्ञा पुं॰ [सं॰ तृणक] तृण का टुकड़ा। सूखी घास या डाँठी का टुकड़ा। उ॰—तिनका सों अपने जन को गुन मानत मेरु समान।—सूर॰, १।८।

मुहा॰—तिनका दाँतों में पकड़ना या लेना = विनती करना। क्षमा या कृपा के लिये दीनतापूर्वक विनय करना। गिड़गिड़ाना हा हा खाना। तिनका तोड़ना = (१) संबंध तोड़ना। (२) बलाय लेना। बलैया लेना।

विशेष—बच्चे को नजर न लगे, इसलिये माता कभी कभी तिनका तोड़ती है।

तिनके चुनना = बेसुध हो जाना। अचेत होना। पागल या बावला हो जाना। (पागल प्रायः व्यर्थ के काम किया करते हैं)। उ॰—रंजे फिराक में तिनके चुनने की नौबत आई।—फिसाना॰, भा॰ ३, पृ॰ २६८। तिनके चुनवाना = (१) पागल बना देना। (२) मोहित करना। तिनके का सहारा = (१) थोड़ा सा सहारा। (२) ऐसी बात जिससे कुछ थोड़ा बहुत ढारस बँधे। तिनके को पहाड़ करना = छोटी बात को बड़ी कर डालना। तिनके को पहाड़ कर दिखाना = थोड़ी सी बात को बहुत बढ़ाकर कहना। तिनके की ओट पहाड़ = छोटी सी बात में किसी बड़ी बात का छिपा रहना। सिर से तिनका उतारना = (१) थोड़ा सा एहसान करना। २. किसी प्रकार का थोड़ा बहुत काम करके उपकार का नाम करना।

तिनगना—क्रि॰ अ॰ [हिं॰] दे॰ 'तिनकना'।

तिनगरी—संज्ञा स्त्री॰ [देश॰] एक प्रकार का पकवान। उ॰—पेठा पाक जलेबी पेरा। गोंदपाग तिनगरी गिदौरा।—सूर (शब्द॰)।

तिनताग Ⓟ—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ तीन + ताग] तीन तागे (जनेऊ)। उ॰—ब्राह्मन कहिए ब्रह्मरत है ताका बड़ भाग। नाहिंत पसु अज्ञानता गर डारे तिन ताग।—भीखा॰ श॰, पृ॰ १०१।

तिनतिरिया—संज्ञा पुं॰ [देश॰] मनुआ कपास।

तिनधरा—संज्ञा स्त्री॰ [देश॰] तीन धार की रेती जिससे आरी के दाँत चोखे किए जाते हैं।

तिनपतिया—वि॰ [हिं॰ तीन + पात] तीन पत्तेवाले (बेलपत्र आदि)।

तिनपहल—वि॰ [हिं॰ तीन + पहल] दे॰ 'तिनपहला'।

तिनपहला—वि॰ [हिं॰ तीन + पहल] [वि॰ स्त्री॰ तिनपहली] जिसमें तीन पहल हों। जिसके तीन पार्श्व हों।

तिनमिना—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ तिन + मनिया] माला जिसके बीच में सोने का जड़ाऊ जुगनू हो।

तिनवा—संज्ञा पुं॰ [देश॰] एक प्रकार का बाँस।

विशेष—यह बरमा में बहुत होता है। आसाम और छोटा नागपुर में भी यह पाया जाता है। यह इमारतों में लगता है और चटाइयाँ बनाने के काम में आता है। इसके चोंगों में बरमा, मनीपुर आदि के लोग भात भी पकाते हैं।

तिनष्वना Ⓟ—क्रि॰ अ॰ [हिं॰] दे॰ 'तिनकना'। उ॰—मुरघो साहि गोरी महाबीर धीरं। तसब्बी तिनष्षी लिए धिधिभिन्न तीरं।—पृ॰ रा॰ १३।६५।

तिनस—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] दे॰ 'तिनिश'।

तिनसुना—संज्ञा पुं॰ [सं॰] तिनिश का पेड़।

तिनाशक—संज्ञा पुं॰ [सं॰] तिनिश वृक्ष।

तिनास—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] दे॰ 'तिनिश'।

तिनि Ⓟ—वि॰ [हिं॰] दे॰ 'तीन'। उ॰—तिहि नारी के पुत तिनि थाऊ। ब्रह्मा बिष्णु महेश्वर नाऊँ।—कबीर बी॰, पृ॰ ५।

तिनिश—संज्ञा पुं॰ [सं॰] सीसम की जाति का एक पेड़ जिसकी पत्तियाँ शमी या खैर की सी होती हैं।

विशेष—इसकी लकड़ी मजबूत होती है और किवाड़, गाड़ी आदि बनाने के काम में आती है। इसे तिनास या तिनसुना भी कहते हैं। वैद्यक में यह कसैला और गरम माना जाता है। रक्तातिसार, कोढ़, दाह, रक्तविकार आदि में इसकी छाल, पत्तियाँ आदि दी जाती हैं।

पर्या॰—स्यंदन। नेमी। रथद्रु। अतिमुक्तक। चित्रकृत। चक्री। शतांग। शकट। रथिक। भस्मगर्भ। मेषी। जलधर। अक्षक। तिनाशक।

तिनुकⓅ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तिनुका'। उ०—हम स्वामि काज सामंत मरन तन तिनुक विचारौ।—पृ० रा०, १२।१६८।

तिनुका—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तिनका'। उ०—टूट जाय स्रोट तिनुका की रखक रहै टहुराई।—कबीर श०, भा० २, पृ० २।

तिनुवरⓅ—संज्ञा पुं० [सं० तृणवर] तिनका।

तिनूकाⓅ†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तिनका'। उ०—होय तिनूका वज्र वज्र तिनका ह्वै टूटै।—गिरिधर (शब्द०)।

तिन्नक—संज्ञा पुं० [हिं० तनिक] १. तुच्छ चीज। २. छोटा लड़का।

तिन्ना—संज्ञा पुं० [सं०] १. सती नामक वर्णवृत्त। २. रोटी के साथ खाने की रसेदार वस्तु। ३. तिन्नी के धान का पौधा।

तिन्नी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० तृण, हिं० तिन, अथवा सं० तृणान्न] एक प्रकार का जंगली धान जो तालों में आपसे आप होता है।

विशेष—इसकी पत्तियाँ जड़हन का सी ही होती हैं। पौधा तीन चार हाथ ऊँचा होता है। कातिक मे इसकी बाल फूटती है जिसमें बहुत लंबे लंबे टूँड होते है। बाल के दाने तैयार होने पर गिरने लगते हैं, इससे इकट्ठा करनेवाले या तो हटके भ दानों को झाड़ लेते हैं अथवा बहुत से पौधों के सिरों को एक में बाँध देते हैं। तिन्नी का धान लंबा और पतला होता है। चावल खाने मे नीरस और रूखा लगता है और व्रत आदि में खाया जाता है।

तिन्नी[2]—संज्ञा स्त्री० [देश०] नीवी। फुफुँदी।

तिन्हीं—सर्व० [हिं०] दे० 'तिन'।

तिपड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० तीन + पट] कमखाब बुननेवालों के करघे की वह लकड़ी जिसमें तागा लपेटा रहता है और जो दोनों बेसरों के बीच में होती है।

तिपतासⓅ†—संज्ञा पुं० [सं० तृप्ति + आशय]। तृप्ति प्रदान करनेवाली वस्तु। उ०—काजी सो जो का जल विगास। ज्ञान संपूरण है तिपतास।—प्राण०, पृ० १०।

तिपतिⓅ†—संज्ञा स्त्री० [सं० तृप्ति] दे० 'तृप्ति'। उ०—सहस एक रथ साजि दासि विय तिपति इक साथ।—पृ० रा०, १४।११६।

तिप् तिप्—संज्ञा पुं० [अनु०] तिप् तिप् की ध्वनिपूर्वक टपकने का भाव। उ०—घोर बेला, सिर्फ छत से ओस की तिप् तिप् पहाड़ी काक।—हरी घास०, पृ० १४।

तिपल्ला—वि० [हिं० तीन+पल्ला] १. तीन पल्लों का। जिसमे तीन पर्त या पार्श्व हों। २. तीन तागे का। जिसमें तीन तागे हों।

तिपाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० तीन + पाया] १. तीन पायों की बैठने की ऊँची चौकी। स्टूल। २. पानी के घड़े रखने की ऊँची चौकी। टिकठी। तिगोड़िया। ३. लकड़ी का एक चौखटा जिसे रँगरेज काम में लाते हैं।

तिपाड़—संज्ञा पुं० [हिं० तीन+पाट] १. जो तीन पाट जोड़कर बना हो। उ०—दक्षिण चीर तिपाड़ को लहँगा। पहिरि विविध पट मोलन महँगा।—सूर (शब्द०)। २. जिसमें तीन पल्ले हों। ३. जिसमे तीन किनारे हों।

तिपारी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का छोटा झाड़ या पौधा जो बरसात मे आपसे आप इधर उधर जमता है। मकोय। परपोटा। छोटी रसभरी।

विशेष—इसकी पत्तियाँ छोटी और सिर पर नुकीली होती हैं। इसमें सफेद फूल गुच्छों मे लगते हैं। फल संपुट के आकार के एक झिल्लीदार कोश मे रहते हैं जिसमें नसों के द्वारा कई पहल बने रहते हैं।

तिपुरⓅ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'त्रिपुर'[1]। उ०—काली सुर महिवास तिपुर जित्ताय महिषासुर।—पृ० रा०, ६।६२।

तिपैरा—संज्ञा पुं० [हिं० तीन + पुर] वह बड़ा कुआँ जिसमें तीन चरसे एक साथ चल सकें।

तिप्तⓅ—वि० [हिं०] दे० 'तृप्त'[1]। उ०—सी मुक्त तिप्त हरि दर्शन पावै। साध संगति मांह हरि लिव लावै।—प्राण०, पृ० २२४।

तिप्तिⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तृप्ति'। उ०—तिप्ति संतोषि रहे लिउ लाई। नानक जोती जोति मिलाई।—प्राण० पृ० १७७।

तिफलीⓅ—संज्ञा पुं० [अ० तिफ्ल + फ़ा० ई (प्रत्य०)] बचपन। उ०—पायद हुआ तिफली जवानी व बुढ़ापा।—कबीर ग्रं०, पृ० १५०।

तिफ्ल—संज्ञा पुं० [अ० तिफ्ल्] बच्चा। उ०— कहे आए तिफल मेरे नूर ऐनी। जो यक सोजन कूँ लाओ डोर तागा।—दक्खिनी०, पृ० ११५।

यौ०—तिफ्ल मिजाज = बाल्य प्रकृतिवाला। तिफ्ले अश्क = अश्रुबिंदु। तिफ्ले आतश = चिनगारी। तिफ्ले मकतब = निरक्षर। मूर्ख। अनभिज्ञ। अनाड़ी। तिफ्ले शीरख्वार = दुधमुँहा बच्चा। तिफ्लेहिंदू = आँख की पुतली। कनीनिका।

तिब—संज्ञा स्त्री० [अ०] यूनानी चिकित्सा। हकीमी [को०]।

तिबद्धी—वि० स्त्री० [हिं० तीन + बाध] (चारपाई की बुनावट) जिसमे तीन बाध या रस्सियाँ एक साथ एक एक बार खींची जायँ।

तिबाई—संज्ञा स्त्री० [देश०] आटा माड़ने का छिछला बड़ा बरतन।

तिबारा[1]—वि० [हिं० तीन + बार] तीसरी बार।

तिबारा[2]—संज्ञा पुं० तीन बार उतारा हुआ मद्य।

तिबारा[3]—संज्ञा पुं० [हिं० तीन + बार (= दरवाजा)] [स्त्री० तिबारी] वह घर या कोठरी जिसमें तीन द्वार हों।

तिबारी—संज्ञा स्त्री० [हिं] तीन द्वारवाला घर या कोठरी। उ०—वह मचलती हुई बिसात के बाहर तिबारी में चली आई। पाँसे हाथ मे लिए अकबर उसकी ओर देखने लगे।—इंद्र०, पृ० ३६।

तिबासी—वि० [हिं० तीन + बासी] तीन दिन का बासी (खाद्य पदार्थ)।

तिविक्रम(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'त्रिविक्रम'। उ०—तरेई तीर तिविक्रम, ताकि दया करि है विदिसा अनिमेखी। —घनानंद, पृ० १४८।

तिवी—संज्ञा स्त्री० [देश०] खेसारी।

तिब्ब—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. यूनानी चिकित्सा शास्त्र। हकीमी। २. चिकित्सा शास्त्र [को०]।

यौ०—तिब्बे कदीम = प्राचीन चिकित्सापद्धति। तिब्बे जदीद = नवीन चिकित्सापद्धति या पाश्चात्य चिकित्सापद्धति।

तिब्बत—संज्ञा पुं० [सं० त्रि + भोट] एक देश जो हिमालय पर्वत के उत्तर पड़ता है।

विशेष—इस देश को हिंदुस्तान में भोट कहते हैं। इसके तीन विभाग माने जाते हैं। छोटा तिब्बत, बड़ा तिब्बत और खास तिब्बत। तिब्बत बहुत ठंढा देश है, इससे वहाँ पेड़ पौधे बहुत कम उगते हैं। यहाँ के निवासी तातारियों से मिलते जुलते होते हैं और अधिकतर ऊन के कंबल, कपड़े आदि बुनकर अपना निर्वाह करते हैं। देश कस्तूरी और चँवर के लिये प्रसिद्ध है। सुरा गाय और कस्तूरी मृग यहाँ बहुत पाए जाते हैं। तिब्बत के रहनेवाले सब महायान शाखा के बौद्ध हैं। बौद्धों के अनेक मठ और महंत हैं। कैलास पर्वत और मानसरोवर झील तिब्बत ही में हैं। ये हिंदू और बौद्ध दोनों के तीर्थ-स्थान हैं। कुछ लोग 'तिब्बत' को त्रिविष्टप् का अपभ्रंश बतलाते हैं। स्वतंत्र भारत ने इसे चीन को दे दिया और यह देश अब पूर्णतः चीनी शासन में है और वहाँ के प्रमुख दलाई लामा भारत में निवास करते हैं।

तिब्बती[1]—वि० [हिं० तिब्बत] तिब्बत संबंधी। तिब्बत का। तिब्बत में उत्पन्न। जैसे, तिब्बती आदमी, तिब्बती भाषा।

तिब्बती[2]—संज्ञा स्त्री० तिब्बत की भाषा।

तिब्बती[3]—संज्ञा पुं० तिब्बत देश का रहनेवाला।

तिब्बिया—वि० [अ० तिब्बियह] तिब्ब संबंधी। हकीमी [को०]।

तिभुवन(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'त्रिभुवन'। उ०—तुम तिभुवन तिहुँ काल बिचार बिसारद।—तुलसी ग्रं०, पृ० ३०।

तिमंगल(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तिमिंगिल'। उ०—पाठ दिसा वित हुरे उताला। लीता चौगु तिमंगल वाला।—रा० रू०, पृ० २११।

तिमंजिला—वि० [हिं० तीन + अ० मंजिल][वि० स्त्री० तिमंजिली] तीन खंडों का। तीन मरातिब का। जैसे, तिमंजिला मकान।

तिम[1]—संज्ञा पुं० [हिं० डिम] नगाड़ा। डंका। दुंदुभी (डि०)।

तिम(पु)[2]—अव्य० [हिं०] दे० 'तिमि'। उ०—ता उप्पर चालुक्क बीर बंधी तिम सीमह।—पृ० रा०, १२। ३०।

तिमर—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तिमिर'। उ०—बूझ बिन सूझ पर तिमर लागी।—तुलसी० श०, पृ० १८।

तिमाना†—क्रि० स० [देश०] भिगोना। तर करना।

तिमाशी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तीन+माशा] १. तीन माशे की एक तौल। २. ४ जौ की एक तौल जो पहाड़ी देशों में प्रचलित है।

तिमिंगल—संज्ञा पुं० [सं० तिमिङ्गल] १. समुद्र में रहनेवाला मत्स्य के आकार का एक बड़ा भारी जंतु जो तिमि नामक बड़े मत्स्य को भी निगल सकता है। बड़ा भारी ह्वेल। उ०—रत्न सौध के वातायन, जिनमें आता मधु मदिर समीर। टकराती होगी अब उनमें तिमिंगलों की भीड़ अधीर।—कामायनी, पृ० १२।

तिमिंगलाशन—संज्ञा पुं० [सं०] १. दक्षिण का एक देशविभाग जिसके अंतर्गत लंका आदि हैं और जहाँ के निवासी तिमिंगल मत्स्य का मांस खाते हैं (बृहत्संहिता)। २. उक्त देश का निवासी।

तिमिंगिल—संज्ञा पुं० [सं० तिमिङ्गिल] दे० 'तिमिंगल' [को०]।

तिमि[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. समुद्र में रहनेवाला मछली के आकार का एक बड़ा भारी जंतु।

विशेष—लोगों का अनुमान है कि यह जंतु ह्वेल है।

२. समुद्र। ३. आँख का एक रोग जिसमें रात को सुझाई नहीं पड़ता। रतौंधी। ४. मछली (को०)।

तिमि(पु)[2]—अव्य० [सं० तद् + इव = इमि] उस प्रकार। वैसे। उ०—तिमि तिमि मारवणीतणइ तन तरुण पउ थाइ।—ढोला०, दू० १२।

विशेष—इसका व्यवहार 'जिमि' के साथ होता है।

तिमिकोश—संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र।

तिमिघाती—संज्ञा पुं० [सं० तिमिघातिन्] मछेरा। मछुआ [को०]।

तिमिज—संज्ञा पुं० [सं०] मोती [को०]।

तिमित[1]—वि० [सं०] १. निश्चल। अचल। स्थिर। २. क्लिन्न। भीगा। आर्द्र। ३. शांत। धीर (को०)।

तिमित(पु)[2]—वि० [सं० तम] काला। उ०—नयन सरोज दुहु बह नीर। काजर पखरि पखरि पर चीर। बेहि तिमित भेल उरज सुबेस।—विद्यापति, पृ० ३७३।

तिमिधार—संज्ञा पुं० [सं० तम + धार] अंधकार। अँधेरा। उ०—मनो कमल मुकुलित ललित छयो सघन तिमिधार।—सं० सप्तक, पृ० ३४५।

तिमिध्वज—संज्ञा पुं० [सं०] शंबर नामक दैत्य जिसे मारकर रामचंद्र ने ब्रह्मा से दिव्यास्त्र प्राप्त किया था।

तिमिमाली—संज्ञा पुं० [सं० तिमिमालिन्] समुद्र [को०]।

तिमिर—संज्ञा पुं० [सं०] १. अंधकार। अँधेरा। उ०—काल गरल है तिमिर अपारा।—कबीर सा०, पृ० २। २. आँख का एक रोग।

विशेष—इसके अनेक भेद सुश्रुत ने बतलाए हैं। आँखों से धुंधला दिखाई पड़ना, चीजें रंग बिरंग की दिखाई पड़ना, रात को न दिखाई पड़ना आदि सब दोष इसी के अंतर्गत माने गए हैं।

३. एक पेड़। (वाल्मीकि०)।

तिमिरजा—वि० स्त्री० [सं० तिमिर + जा] अंधकार से उत्पन्न। उ०—लहुराई विभ्रांति तिमिरजा स्रोतस्विनी कराली।—अपलक, पृ० ५१।

तिमिरजाल—संज्ञा पुं० [सं० तिमिर+जाल] अंधकारसमूह। घना अंधकार। उ०—यह स्वप्न निशा का तिमिरजाल नव किरणों से धो लो।—अपरा, पृ० ११।

तिमिरनुद्[1]—वि० [सं०] अंधकार का नाश करनेवाला।

तिमिरनुद्[2]—संज्ञा पुं० सूर्य।

तिमिरभिद्[1]—वि० [सं०] अंधकार को भेदने या नाश करनेवाला।

तिमिरभिद्[2]—संज्ञा पुं० सूर्य।

तिमिरमय[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. राहु। २. ग्रहण [को०]।

तिमिरमय[2]—वि० अंधकारयुक्त [को०]।

तिमिररिपु—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य। भास्कर।

तिमिरारⓤ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तिमिरारि'। उ०—होइ मधुकर जोती रस बेई। होइ तिमिरार जोत तोहि देई।—इंद्रा०, पृ० ७६

तिमिरारि—संज्ञा पुं० [सं०] १. अंधकार का शत्रु। २. सूर्य।

तिमिरारीⓤ—संज्ञा स्त्री० [सं० तिमिराली] अंधकार का समूह। अँधेरा। उ०—मधुप से नैन घर बंधुकल ऐस होठ श्री फल से कुच कच देखि तिमिरारी सी।—देव (शब्द०)।

तिमिरावलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] अंधकार का समूह। उ०—तिमिरावलि छाँवरे दंतन के छिन मैन धरे मनो दीपक ह्वै।—सुंदरीसर्वस्व (शब्द०)।

तिमिरⓤ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तिमिर'। उ०—जय गुरु तेज प्रचंड तिमिरि पाखंड विहंडन।—नट०, पृ० ६।

तिमिरी—संज्ञा पुं० [सं० तिमिरिन्] एक कीड़ा [को०]।

तिमिला—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक बाद्य यंत्र [को०]।

तिमिष—संज्ञा पुं० [सं०] १. ककड़ी। फूट। २. पेठा। सफेद कुम्हड़ा। ३. तरबूज।

तिमी—संज्ञा पुं० [सं०] १. तिमि मत्स्य। २. दक्ष की एक कन्या जो कश्यप की स्त्री और तिमिगलों की माता थी।

तिमीर—संज्ञा पुं० [सं०] एक पेड़ का नाम।

तिमुहानी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तीन + फ़ा० मुहाना] १. वह स्थान जहाँ तीन ओर जाने को तीन फाटक या मार्ग हों। तिर-मुहानी। उ०—त्रिविध ताप त्रासक तिमुहानी। राम सरूप सिंधु समुहानी।—मानस, १।४०। २. वह स्थान जहाँ तीन ओर से तीन नदियाँ आकर मिली हों।

तिम्मगतⓤ—वि० [?] १. अस्तमित। २. प्रखर गतिवाला। उ०—चर विम्मर सग मन हुय गइय। रहिय तिम्मगत जुद्ध इछ।—पृ० रा०, ७।१८१।

तियⓤ—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री] १. स्त्री। औरत। उ०—कै सब तिय गन बदनकमल की झलकत झाई।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ४५५। २. पत्नी। भार्या। जोरू।

तियतरा†—वि० [सं० त्रि + अन्तर] [स्त्री० तियतरी] वह बेटा जो तीन बेटियों के बाद पैदा हो। तेतर।

तियरासि—वि० [हिं० तिय + राशि] कन्या राशि। उ०—ससि मीन तीस कटि एक अंस। तियरासि कह्यो सुरभानुतंस।—ह० रासो, पृ० २२।

तियला—संज्ञा पुं० [हिं० तिय + ला (प्रत्य०)] स्त्रियों का एक पहनावा। उ०—ब्राह्मणियों को इच्छा भोजन करवाय सुथरे तियले पहराय··· दक्षिणा दी।—लल्लू० (शब्द०)।

तियलिंगⓤ—संज्ञा पुं० [हिं० तिय + लिंग] दे० 'स्त्रीलिंग'। उ०—धारादिक तियलिंग ए, कवि भाषा के माँहि।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ५३२।

तिया[1]—संज्ञा पुं० [सं० त्रि] १. गंजीफे या ताश का वह पत्ता जिस-पर तीन बूटियाँ होती हैं। तिक्की। तिड़ी। २. नक्कीपूर के खेल में वह दाँव जो पूरे पूरे पंजों के गिनने के बाद तीन कौड़ियाँ बचने पर होता है।

तियाⓤ[2]—संज्ञा स्त्री [हिं०] दे० 'तिय'। उ०—पुनि चौपर खेलौं कै हिया। जो तिर हेल रहै सो तिया।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३१२।

तियागⓤ†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'त्याग'। उ०—तीखो खाग तियाग, जेहड़ बेहो जनमियो।—बाँकी०, भा० ३, पृ० १२।

तियागनाⓤ—क्रि० स० [सं० त्याग + ना (प्रत्य०)] त्याग करना। छोड़ना। उ०—मात पिता सब कुटुंब तियागे, सुरत पिया पर लावे।—कबीर श०, भा० १, पृ० १०३।

तियागीⓤ†—वि० [सं० त्यागी] त्याग करनेवाला। छोड़नेवाला। उ०—बलि विक्रम दानी बड़ कहे। हातिम करन तियागी अहे।—जायसी (शब्द०)।

तिरंग—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तिरंगा'। उ०—फहर तिरंग चक्रदल प्रतिपल। हरता जन मन भय संशय, जय जय हे!—युगपथ, पृ० ८६।

तिरंगा[1]—संज्ञा पुं० [हिं० तीन + रंग] तीन रंगोंवाला राष्ट्रीय ध्वज। उ०—आज तिरंगे से रे अंबर रंग तरंगित।—युगपथ, पृ० ६१।

तिरंगा[2]—वि० तीन रंगवाला। तीन रंगों का।

तिरकट—संज्ञा पुं० [?] आगे का पाल। अगला पाल (लश०)।

तिरकट गावा सवाई—संज्ञा पुं० [?] आगे का और सबसे ऊपरी सिरे पर का पाल (लश०)।

तिरकट गावी—संज्ञा पुं० [?] सिरे पर का पाल। (लश०)।

तिरकट डोल—संज्ञा पुं० [?] आगे का मस्तूल (लश०)।

तिरकट तबर—संज्ञा पुं० [?] वह छोटा चौकोर आगे का पाल जो सबसे बड़े मस्तूल के ऊपर आगे की ओर लगाया जाता है। इसका व्यवहार बहुत धीमी हवा चलने के समय होता है (लश०)।

तिरकट सवर—संज्ञा पुं० [?] सबसे ऊपर का पाल (लश०)।

तिरकट सवाई—संज्ञा पुं० [?] आगे का वह पाल जो उस रस्से में बँधा रहता है जो मस्तूल के सहारे के लिये लगाया जाता है (लश०)।

तिरकना†—क्रि० अ० [अनु०] तड़कना। चटखना। फट जाना।

तिरकस†—वि० [सं० तिरस्] टेढ़ा।

तिरकाना—क्रि० स० [अनुध्व०] १. ढीला छोड़ना। -(लश०)। २. रस्सी ढीली करना। लहासी छोड़ना (लश०)।

तिरकुटा—संज्ञा पुं० [सं० त्रिकटु] सोंठ, मिर्च, पीपल इन तीन कड़ुई ओषधियों का समूह।

तिरकुटी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'त्रिकुटी'। उ०—झिलिमिलि झलकै नूर तिरकुटी महल में।—पलटू०, पु० ६४।

तिरकोन(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'त्रिकोण'। उ०—त्रिगुन रूप तिरकोन यंत्र बनि मध्य बिंदु शिवदानी।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १४६।

तिरखा(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० तृषा] दे० 'तृषा'।

तिरखित(पु)—वि० [सं० तृषित] दे० 'तृषित'।

तिरखूँटा—वि० [सं० त्रि + हिं० खूँट] [वि० स्त्री० तिरखूँटी] जिसमें तीन खूँट या कोने हों। तिकोना।

तिरगुण(पु)—वि० [हिं०] दे० 'त्रिगुण'। उ०—नौ गुण सुत संयोग बखानूं तिरगुण गाँठ दवानी।—कबीर ग्रं०, पृ० १७५।

तिरच्छ—संज्ञा पुं० [सं०] तिनिस वृक्ष।

तिरछई†—संज्ञा स्त्री० [हिं० तिरछा] तिरछापन।

तिरछ उड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तिरछा + उड़ना] मालखंभ की एक कसरत जिसमें खेलाड़ी के शरीर का कोई भाग जमीन पर नहीं लगता, एक कंधा झुकाकर और एक पाँव उठाकर वह शरीर को चक्कर देता है। इसे छलाँग भी कहते हैं।

तिरछन(पु)—वि० [हिं०] दे० 'तिरछा'। उ०—हंस उबारं औ भ्रम टारं तरनी तिरछन सो बारिए।—सं० दरिया०, पृ० १०।

तिरछा—वि० [सं० तिर्यक् या तिरस्] [स्त्री० तिरछी] १. जो अपने आधार पर समकोण बनाता हुआ न गया हो। जो न बिलकुल खड़ा हो और न बिलकुल आड़ा हो। जो न ठीक ऊपर की ओर गया हो और न ठीक बगल की ओर। जो ठीक सामने की ओर न जाकर इधर उधर हटकर गया हो। जैसे, तिरछी लकीर।

विशेष—'टेढ़ा' और 'तिरछा' में अंतर है। टेढ़ा वह है जो अपने लक्ष्य पर सीधा न गया हो, इधर उधर मुड़ता या घूमता हुआ गया हो। पर तिरछा वह है जो सीधा तो गया हो, पर जिसका लक्ष्य ठीक सामने, ठीक ऊपर या ठीक बगल में न हो। (टेढ़ी रेखा ~; तिरछी रेखा /)।

यौ०—बाँका तिरछा = छबीला। जैसे, बाँका तिरछा जवान।

मुहा०—तिरछी टोपी = बगल में कुछ झुकाकर सिर पर रखी टोपी। तिरछी चितवन = बिना सिर फेरे हुए बगल की ओर दृष्टि।

विशेष—जब लोगों की दृष्टि बचाकर किसी ओर ताकना होता है, तब लोग, विशेषत. प्रेमी लोग, इस प्रकार की दृष्टि से देखते हैं।

तिरछी नजर = दे० 'तिरछी चितवन'। उ०—हुए एक आन में जख्मी हजारों। जिधर उस यार ने तिरछी नजर की।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० २६। तिरछी बात या तिरछा वचन = कटु वाक्य। अप्रिय शब्द। उ०—हरि उदास सुनि तिरीछे।—सबल (शब्द०)।

२. एक प्रकार का रेशमी कपड़ा जो प्रायः अस्तर के काम में आता है।

तिरछाई†—संज्ञा स्त्री० [हिं० तिरछा + ई (प्रत्य०)] तिरछापन।

तिरछाना—क्रि० अ० [हिं० तिरछा] तिरछा होना।

तिरछापन—संज्ञा पुं० [हिं० तिरछा + पन (प्रत्य०)] तिरछा होने का भाव।

तिरछी[1]—वि० स्त्री० [हिं० तिरछा] दे० 'तिरछा'।

तिरछी[2]—संज्ञा स्त्री० [देश०] अरहर के वे अपरिपक्व दाने जिनकी दाल नहीं बन सकती। इनको अलगाने के बाद चूनी बनाकर रोटी बनाते हैं या जानवरों को खिला देते हैं।

तिरछी बैठक—संज्ञा स्त्री० [हिं० तिरछी + बैठक] मालखंभ की एक कसरत जिसमें दोनों पैर रस्सी की ऐंठन की तरह परस्पर गुथकर ऊपर उठते हैं।

तिरछे—क्रि० वि० [हिं० तिरछा] तिरछेपन के साथ। तिरछापन लिए हुए।

तिरछौहाँ—वि० [हिं० तिरछा + औहाँ (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० तिरछौहीं] कुछ तिरछा। जो कुछ तिरछापन लिए हो। जैसे, तिरछौहीं डीठ।

तिरछौहैं(पु)—क्रि० वि० [हिं० तिरछौहाँ] तिरछापन लिए हुए। तिरछेपन के साथ। वक्रता से। जैसे, तिरछौहैं ताकना।

तिरणिका(पु)—संज्ञा पुं० [सं० तृण] दे० 'तिनका'। उ०—तिरणिका ओट सिष्ठ का करता जुग देषि लुकाना।—रामानंद०, पृ० १६।

तिरतालीस†—वि० [हिं०] दे० 'तैंतालीस'।

तिरतिराना†—क्रि० अ० [अनु०] बूँद बूँद करके टपकना।

तिरथ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० तीर्थ] दे० 'तीर्थ'। उ०—पहुनी भँवरिया बेद पढ़ै मुनि ज्ञानी हो। दुसरि भँवरिया तिरथ, जाको निरमल पानी हो।—कबीर श०, भा० ४, पृ० ४।

तिरदंडी(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'त्रिदंडी-१'। उ०—नेम अचार करै कोउ कितनो, कवि कोबिद सब लुक्ख। तिरदंडी सरबंगी नागा, मरै पियास औ भुक्ख।—पलटू०, भा०३, पृ०११।

तिरदश(पु)—संज्ञा पुं० [सं० त्रिदश] दे० 'त्रिदश'-१। उ०—ताकी कन्या रुकिमनी मोहे तिरदशे।—अकबरी०, पृ० ३३४।

तिरदेव(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'त्रिदेव'। उ०—निराकार यम तहाँ न जाई। तिरदेवन की कौन चलाई।—कबीर सा०, पृ०४१२।

तिरन(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० तिरना] तैरने की क्रिया या भाव। उ०—बूड़ते कै डर तें तिरन की उपाइ करै।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ०६५५।

तिरना—क्रि० अ० [सं० तरण] १. पानी के ऊपर आना या ठहरना। पानी में न डूबकर सतह के ऊपर रहना। उतराना। उ०—जल तिरिया पाहण सुजड़, पतसिय नाम प्रताप।—रघु० रू०, पृ०२। २. तैरना। पैरना। ३. पार होना। ४. तरना। मुक्त होना।

संयो० क्रि०—जाना।

तिरनी—संज्ञा स्त्री० [देश० या हिं० तिन्नी] १. वह डोरी जिससे घाघरा या धोती नाभि के पास बँधी रहती है। नीवी। तिन्नी। फुबती। २. स्त्रियों के घाघरे या धोती का वह भाग जो नाभि के नीचे पड़ता है। उ०—बेनी सुभग नितंबनि डोलत मंदगामिनी नारी। सूथन जघन बाँधि नाराबँद तिरनी पर छबि भारी।—सूर (शब्द०)।

तिरप—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रि] नृत्य में एक प्रकार का ताल जिसे तिसम या तिहाई कहते हैं। उ०—तिरप लेति चपला सी चमकति झमकति भूषण अंग। या छबि पर उपमा कहुँ नाहीं निरखत बिवस अनंग।—सूर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—लेना।

तिरपटा†—वि० [देश०] १. तिरछा। टेढ़ा। टेढ़बिड़ंगा। २. मुश्किल। कठिन। विकट।

तिरपटा—वि० [देश०] तिरछा ताकनेवाला। भेंगा। ऐंचाताना।

तिरपत(पु)—वि० [हिं०] दे० 'तृप्त'। उ०—दरिया पीवै मोल कर, सो तिरपत हो जाय।—दरिया० बानी, पृ०११।

तिरपति(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तृप्ति'-१। उ०—पायो पानी बूंद चोंच है तिरपति प्यास न जाई।—कबीर० श०, पृ० ६१।

तिरपन[1] वि० [सं० त्रिपञ्चाशत्, प्रा० तिपण्ण] जो गिनती में पचास से तीन और अधिक हो। पचास से तीन ऊपर।

तिरपन[2]—संज्ञा पुं० १. पचास से तीन अधिक की संख्या का सूचक अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है. —५३।

तिरपाई—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रिपाद या त्रि + पदी] तीन पायों की ऊँची चौकी। स्टूल।

तिरपाल—संज्ञा पुं० [सं० तृण + हिं० पालना (= बिछाना)] फूस या सरकंडों के बंधे पूले जो छाजन में खपड़ों के नीचे दिए जाते हैं। मुट्ठा।

तिरपाल[2]—संज्ञा पुं० [अं० टारपालिन] रोगन चढ़ा हुआ कनवस। राल चढ़ाया हुआ टाट।

तिरपित(पु)‡—वि० [सं० तृप्त] दे० 'तृप्त'।

तिरपुटी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रिपुटी] दे० 'त्रिकुटी'। उ०—तिरपुटिय भाल जिल कमच मूर। इह भाँति ताव तप तपनि पूर।—पृ० रा०, १। ४८६।

तिरपौलिया—संज्ञा पुं० [सं० त्रि + हिं० पोल(= फाटक)] वह स्थान जहाँ बराबर से ऐसे तीन बड़े फाटक हों जिनसे होकर हाथी, घोड़े, ऊँट इत्यादि सवारियाँ अच्छी तरह निकल सकें।

विशेष—ऐसे फाटक किलों या महलों के सामने या बड़े बाजारों के बीच होते हैं।

तिरफला—संज्ञा पुं० [सं० त्रिफला] दे० 'त्रिफला'।

तिरबेनी—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रिवेणी] दे० 'त्रिवेणी'।

तिरबो[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० तिरना] सिंध देश की एक प्रकार की नाव का नाम।

तिरबो(पु)†[2]—संज्ञा पुं० [हिं० तरना] तिरने की क्रिया। मुक्तिप्राप्ति। मोक्ष। उ०—जपैं समुझ नित जाय, सागरभव तिरबो सहल।—रघु० रू०, पृ० २।

तिरभंगी(पु)—वि० [हिं०] दे० 'त्रिभंगी'।—उ०—का चहुआना किलि कंत धीरज तिरभंगी।—पृ० रा०, १। ७६७।

तिरमिरा—संज्ञा पुं० [सं० तिमिर] १. दुर्बलता के कारण दृष्टि का एक दोष जिसमें आँखें प्रकाश के सामने नहीं ठहरतीं और ताकने में कभी अँधेरा, कभी अनेक प्रकार के रंग, और कभी छिटकती हुई चिनगारियाँ या तारे से दिखाई पड़ते हैं। २. कमजोरी से ताकने में जो तारे से छिटकते दिखाई पड़ते हैं, उन्हें भी तिरमिरे कहते हैं। ३. तीक्ष्ण प्रकाश या बहुरी चमक के सामने दृष्टि की अस्थिरता। तेज रोशनी में नजर का न ठहरना। चकाचौंध।

क्रि० प्र०—लगना।

तिरमिरा[2]—संज्ञा पुं० [हिं० तेल + मिलना] घी, तेल या चिकनाई के छींटे जो पानी, दूध या और किसी द्रव पदार्थ (जैसे, दाल, रसा आदि) के ऊपर तैरते दिखाई देते हैं।

तिरमिराना—क्रि० अ० [हिं० तिरमिरा] (दृष्टि का) प्रकाश के सामने न ठहरना। तेज रोशनी या चमक के सामने (आँखों का) झपना। चौंधना। चौंधियाना।

तिरमुहानी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तिमुहानी'।

तिरलोक—संज्ञा पुं० [सं० त्रिलोक] दे० 'त्रिलोक'। उ०—सकल तिरलोक लौं गावैं।—घट०, पृ० ३६६।

तिरलोकी‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० तिरलोक] दे० 'त्रिलोकी'।

तिरवट—संज्ञा [देश०] एक प्रकार का राग जो तराने या तिल्लाने का एक भेद है।

तिरवर(पु)—वि० [हिं० तिरवराना] झिलमिल। चकाचौंध उत्पन्न करनेवाला। उ०—दादू जोति चमकै तिरवरै।—दादू०, पृ० २४०।

तिरवराना†—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'तिरमिराना'।

तिरवा—संज्ञा पुं० [फ़ा०] उतनी दूरी जहाँ तक एक तीर जा सके।

तिरवाह†—संज्ञा पुं० [सं० तीर + वाह] नदी के तीर की भूमि।

तिरवाह[2]—क्रि० वि० किनारे किनारे। तट से

तिरश्चीन—वि० [सं०] १. तिरछा। २. टेढ़ा। कुटिल।

तिरश्चीन गति—संज्ञा पुं० [सं०] मल्लयुद्ध की एक गति। कुश्ती का एक पैतरा।

तिरसंकुⓟ—संज्ञा पुं० [सं० त्रिशङ्कु] दे० 'त्रिशंकु'। उ०—तिरसंकु येहूँ यहू, वाऊ सम ए जान।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पु० ५१४।

तिरस्—अ० [सं०] अंतर्धान, तिरस्कार, आच्छादन, तिरछापन आदि अर्थों का बोधक शब्द [को०]।

तिरसठ[1]—वि० [सं० त्रिषष्ठि, प्रा० तिसट्ठि] जो गिनती में साठ से तीन अधिक हो। साठ से तीन ऊपर। उ०—तिरसठ प्रकार की राग रागिनी लेखी।—कबीर सं०, पु० ४१।

तिरसठ[2]—संज्ञा पुं० १. वह संख्या जो साठ से तीन अधिक हो। २. उक्त संख्या को सूचित करनेवाला अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—६३।

तिरसना†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तृष्णा'। उ०—तिरसना के वश में पड़कर आदमी इसी तरह अपनी जिंदगी चौपट करता है।—गोदान, पु० २८५।

तिरसा—संज्ञा पुं० [सं० त्रि + हिं० रस ?] वह पाल जिसका एक सिरा चौड़ा और एक सँकरा होता है (लश०)।

तिरसूतⓟ—संज्ञा पुं० [सं० त्रिसूत्र] तीन तागों का यज्ञोपवीत। यज्ञोपवीत। उ०—ताके परछों पाँच ब्रह्म अपने को पावै। भर्म जनेऊ तोरि प्रेम तिरसूत बनावै।—पलटू०, भा० १, पु० ११३।

तिरसूल‡—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'त्रिशूल'। उ०—जो तोको काँटा बुवै, ताहि बोव तू फूल। तोहि फूल को फूल है, वाको है तिरसूल।—संतवाणी०, पु० ४४।

तिरसूलीⓟ—संज्ञा पुं० [हिं० तिरसूल] दे० 'त्रिशूली'। उ०—महा मोहनी मय माया मोहे तिरसूली।—नंद०, ग्रं०, पु० ३८।

तिरस्कर—संज्ञा पुं० [सं०] आच्छादक। परदा करनेवाला। ढाँकनेवाला।

तिरस्करिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. ओट। आड़। परदा। कनात। चिक। २. वह विद्या जिसके द्वारा मनुष्य अदृश्य हो सकता है।

तिरस्करी—संज्ञा पुं० [सं० तिरस्करिन्] [स्त्री० तिरस्करिणी] आच्छादन। परदा।

तिरस्कार—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० तिरस्कृत] १. अनादर। अपमान। २. भर्त्सना। फटकार। ३. अनादरपूर्वक त्याग। ४. साहित्य के अंतर्गत एक अर्थालंकार जिसमें गुणान्वित वस्तु में दुर्गुण दिखाकर उसका तिरस्कार किया जाता है।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

तिरस्कार्य—वि० [सं०] तिरस्कार योग्य। तिरस्कृत होने लायक।

तिरस्कृत—वि० [सं०] १. जिसका तिरस्कार किया गया हो। अनादृत। २. अनादरपूर्वक त्याग किया हुआ। ३. आच्छादित। परदे में छिपा हुआ। ४. तंत्र के अनुसार (वह मंत्र) जिसके मध्य में वकार हो और मस्तक पर दो कवच और अस्त्र हों।

तिरस्क्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तिरस्कार। अनादर। २. आच्छादन। ३. वस्त्र। पहरावा।

तिरह्या†—संज्ञा पुं० [देश०] एक फतिंगा जो धान के फूल को नष्ट कर देता है।

तिरहुत—संज्ञा पुं० [सं० तीरभुक्ति] [वि० तिरहुतिया] मिथिला प्रदेश जिसके अंतर्गत आजकल बिहार के दो जिले हैं—मुजफ्फरपुर और दरभंगा। उ०—तिरहुत देस बनौती गाई।—घट० पु० ३५१।

तिरहुति—संज्ञा स्त्री० [सं० तीरभुक्ति] १. एक प्रकार का गीत जो तिरहुत में गाया जाता है। २. दे० 'तिरहुत'।

यौ०—तिरहुतिनाथ = राजा जनक। उ० देखे सुने भूपति अनेक झूठें झूठें नाम, साँचे तिरहुतिनाथ साखि देति मही है।—तुलसी ग्रं०, पु० ३१४।

तिरहुतिया[1]—वि० [हिं० तिरहुत] तिरहुत का। तिरहुत संबंधी।

तिरहुतिया[2]—संज्ञा पुं० तिरहुत का रहनेवाला।

तिरहुतिया[3]—संज्ञा स्त्री० तिरहुत की बोली।

तिरहुती—वि०, संज्ञा पुं०, स्त्री० [हिं०] दे० 'तिरहुतिया'।

तिरहेल—वि० [सं० त्रि] क्रम में तीसरा। जो तीसरे स्थान पर हो।

तिरा—संज्ञा पुं० [देश०] एक पौधा जिसके बीजों से तेल निकलता है। एक तेलहन। तिउरा।

तिराटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] निसोत।

तिरानबे[1]—वि० [सं० त्रिनवति, प्रा० तिन्नवइ] जो गिनती में नब्बे से तीन अधिक हो। तीन ऊपर नब्बे।

तिरानबे[2]—संज्ञा पुं० १. नब्बे से तीन अधिक की संख्या। २. उक्त संख्यासूचक अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—९३।

तिराना[1]—क्रि० स० [हिं० तिरना] १. पानी के ऊपर ठहराना। २. पानी के ऊपर चलाना। तैराना। ३. पार करना। ४. उबारना। तारना। निस्तार करना।

तिरानाⓟ[2]—क्रि० अ० [हिं० तिरना] पानी के ऊपर रहना। उतराना।—उ०—पानी पत्थर आज तिराना।—घट०, पु० २१३।

तिराना[3]—क्रि० अ० [सं० तीर से नामिक धातु] तीर पर या किनारे आ जाना।

तिरावणⓟ—संज्ञा पुं० [हिं० तिरना] तिरने की क्रिया या भाव। उ०—सो धीदाता पलक में तिरै, तिरावण जोग।—दादू०, पु० ६।

तिरास—संज्ञा पुं० [सं० त्रास] दे० 'त्रास'। उ०—कई बार आगे गए छप्पन जहाँ तिरास।—सहजो० बानी ०,पु० ३३।

तिरासना‡[1]—क्रि० स० [सं० त्रासन] त्रास दिखाना। डराना। भयभीत करना।

तिरासना†[2]—क्रि० अ० [सं० तृषित] प्यासा होना। प्यास लगना।

तिरासी[1]—वि० [सं० त्र्यशीति, प्रा० तियासीति] जो गिनती में अस्सी से तीन अधिक हो। तीन ऊपर अस्सी।

तिरासी[2]—संज्ञा पुं० १. अस्सी से तीन अधिक की संख्या। २. उक्त संख्यासूचक अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—८३।

तिराहा—संज्ञा पुं० [हिं० ती < सं० त्रि + फ़ा० राह] वह स्थान जहाँ से तीन रास्ते तीन ओर को गए हों। तिरमुहानी।

तिराही—संज्ञा स्त्री० [हिं० तिराह] तिराह नामक स्थान की बनी कटारी या तलवार।

तिरि(पु) - वि० [सं० त्रि] तीन। उ०—पुनि तिहि ठाउँ परी तिरि रेखा।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १६४।

तिरिआ(पु)† - संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तिरिया'।

तिरिगत्त(पु) - संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'त्रिगर्त'। उ०—तिरिगत्त राज तामस बुझ्यो दिषिय पंग संजोगि मुष।—पृ० रा०, ११।२४५८।

तिरिजिह्वक - संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पेड़।

तिरिन‡ - संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तृण'।

तिरिम - संज्ञा पुं० [सं०] शालिभेद। एक प्रकार का धान।

तिरिय(पु)[1] - वि० [सं० तिर्यक्] वक्र। कुटिल। उ०—तिरिय वक्र अवक्र न ऊरध वक्र प्रमान।—पृ० रा०, ७।१७०।

तिरिय†[2] - संज्ञा पुं० [सं०] शालिभेद। एक प्रकार का धान।

तिरिया[1] - संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री] स्त्री। औरत। उ०—तुम तिरिया मति हीन तुम्हारी।—जायसी (शब्द०)।

यौ० - तिरिया चरित्तर = स्त्रियों का रहस्य या कौशल।

तिरिया[2] - संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बाँस जो नेपाल में होता है। इसे भोला भी कहते हैं।

तिरिविष्टप(पु) - संज्ञा पुं० [सं० त्रिविष्टप] दे० 'त्रिविष्टप'। उ०—स्वर्ग, नाक, स्वर, द्यौ, त्रिदिवि, दिव, तिरिवष्टप होइ।—नंद० ग्रं०, पृ० १०८।

तिरिसना(पु) - संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तृष्णा'। उ०—लोभ मोह हंकार तिरिसना, संग लीन्हे कोर।—कबीर श०, भा० ३, पृ० ३१।

तिरीछन(पु)† - वि० [सं० तीक्ष्ण] दे० तीक्ष्ण। उ०—रैषी ध्यान छोरि के ताका। नैन तिरीछन भई अति बाँका।—सं० दरिया, पृ० ३।

तिरीछा(पु)† - वि० [हिं०] 'तिरछा'।

तिरीछो(पु) - वि० [हिं०] दे० 'तिरछा'। उ०—फागुन इनके अंतर बरत्यो। ऊखन तनक तिरीछो करत्यो।—नंद० ग्रं०, पृ० २५४

तिरीट - संज्ञा पुं० [सं०] १ लोध्र। लोध। २. किरीट।

तिरीफल - संज्ञा पुं० [सं० स्त्रीफल] दंती वृक्ष।

तिरीबिरी - वि० [हिं०] दे० 'तिड़ीबिड़ी'।

तिरेंदा - संज्ञा पुं० [सं० तरण्ड] १ समुद्र में तैरता हुआ पीपा जो संकेत के लिये किसी ऐसे स्थान पर रखा जाता है जहाँ पानी छिछला होता है, चट्टानें होती हैं, या इसी प्रकार की और कोई बाधा होती है।

विशेष - ये पीपे कई आकार प्रकार के होते हैं। किसी किसी के ऊपर घंटा या सीटी लगी रहती है।

२. मछली मारने की बंसी में कँटिया से हाथ डेढ़ हाथ ऊपर बँधी हुई पाँच छह अंगुल की लकड़ी जो पानी पर तैरती रहती है और जिसके डूबने से मछली के फँसने का पता लगता है। तरेंदा।

तिरै - संज्ञा पुं० [अनु०] फीलवानों का एक शब्द जिसे वे नहाते हुए हुए हाथियों को लेटाने के लिये बोलते हैं।

तिरोजनपद - संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य अर्थशास्त्र के अनुसार अन्य राष्ट्र का मनुष्य। विदेशी।

तिरोधान - संज्ञा पुं० [सं०] १. अंतर्धान। अदर्शन। गोपन। २. आच्छादन। पर्दा। आवरण। परिधान (को०)।

तिरोधायक - संज्ञा पुं० [सं०] आड़ करनेवाला। छिपानेवाला। गुप्त करनेवाला।

तिरोभाव - संज्ञा पुं० [सं०] १. अंतर्धान। अदर्शन। २. गोपन। छिपाव।

तिरोभूत - वि० [सं०] गुप्त। छिपा हुआ। अदृष्ट। अंतर्हित। गायब।

तिरोहित - वि० [सं०] १. छिपा हुआ। अंतर्हित। अदृष्ट। उ०—आज तिरोहित हुआ कहाँ वह मधु से पूर्ण अनंत वसंत?—कामायनी, पृ० १०। २. आच्छादित। ढका हुआ।

तिरौंछा† - वि० [हिं०] दे० 'तिरछा'। उ०—कठिन बचन सुनि श्रवन जानकी सकी न बचन सहार। तृण अंतर दै दृष्टि तिरौछी दई नैन जलधार।—सूर (शब्द०)।

तिरौंदा - संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तिरेंदा'।

तिर्यंच[1] - वि० [सं० तिर्यञ्च] १. तिरछा। टेढ़ा। वक्र। आड़ा [को०]

तिर्यंच[2] - संज्ञा पुं० [स्त्री० तिर्यंची] १. पक्षी। २. पशु। ३. जीवजगत् या वनस्पति (जैन)।

तिर्यंचानुपूर्वी - संज्ञा स्त्री० [सं० तिर्यञ्चानुपूर्वी] जैन शास्त्रानुसार जीव की वह गति जिसमें उसे तिर्यग्योनि में जाते हुए कुछ काल तक रहना पड़ता है।

तिर्यंची - संज्ञा स्त्री० [सं० तिर्यञ्ची] पशु पक्षियों की मादा।

तिर्गुन - संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'त्रिगुण'। उ०—इ कहे ठगा न कोइ, लिए है तिर्गुन गाँसी।—पलटू०, भा० १, पृ० ८३।

तिर्देव(पु) - संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'त्रिदेव'। उ०—कहैं कबीर यह ज्ञान तिर्देव का।—कबीर रे०, पृ० ३४।

तिर्पित(पु) - वि० [हिं०] दे० 'तृप्त'। उ०—बिन मुंड के बहु करे अरि तिर्पित कियो त्रिपुरारि है।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २१।

तिर्यक्[1] - वि० [सं०] तिरछा। आड़ा। टेढ़ा।

विशेष - मनुष्य को छोड़ पशु पक्षी आदि जीव तिर्यक् कहलाते हैं क्योंकि खड़े होने में उनके शरीर का विस्तार ऊपर की ओर नहीं रहता, आड़ा होता है। इनका खाया हुआ अन्न सीधे ऊपर से नीचे की ओर नहीं जाता, बल्कि आड़ा होकर पेट में जाता है।

तिर्यक्[2] - क्रि० वि० वक्रतापूर्वक। टेढ़ेपन के साथ [को०]।

तिर्यक्[3] - संज्ञा पुं० १. पशु। २. पक्षी [को०]।

तिर्यक्ता - संज्ञा स्त्री० [सं०] तिरछापन। आड़ापन।

तिर्यक्त्व - संज्ञा पुं० [सं०] तिरछापन। आड़ापन।

तिर्यक्पाती - वि० [सं० तिर्यक्पातिन्] [वि०स्त्री० तिर्यक्पातिनी] आड़ा फैलाया या रखा हुआ। बेड़ा रखा हुआ।

तिर्यक्प्रमाण - संज्ञा पुं० [सं०] चौड़ाई [को०]।

तिर्यक्प्रेक्षण - संज्ञा पुं० [सं०] तिरछी चितवन [को०]।

तिर्यक्भेद—संज्ञा पुं० [सं०] दो सहारों पर टिकी हुई वस्तु का बीच में दबाव पड़ने से टूटना।

तिर्यक्स्रोतस्—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जिसका फैलाव आड़ा हो। २. जीव जिसके पेट में खाया हुआ आहार आड़ा होकर जाता हो। वह जीव जिसका आहार निगलने का नल खड़ा न हो, आड़ा हो। पशु पक्षी।

विशेष—पुराणों में जीव सृष्टि के ऊर्ध्वस्रोतस्, तिर्यक्स्रोतस् आदि कई वर्ग किए गए हैं। भागवत में तिर्यक्स्रोतस् २८ प्रकार के माने गए हैं—(१) द्विखुर (दो खुरवाले)—गाय, बकरी, भैंस, कृष्णसार मृग, सूअर, नीलगाय, रुरु नामक मृग। (२) एकखुर—गदहा, घोड़ा, खच्चर, गौरमृग, शरभ, सुरागाय। (३) पंचनख—कुत्ता, गीदड़, भेड़िया, बाघ, बिल्ली, खरहा, सिंह, बंदर, हाथी, कछुआ, मेढक इत्यादि। (४) जलचर—मछली। (५) खेचर—गीध, बगला, मोर, हंस, कौवा आदि पक्षी। ये सब जीव ज्ञानशून्य और तमोगुणविशिष्ट कहे गए हैं। इनके अंतःकरण में किसी प्रकार का ज्ञान नहीं बतलाया गया है।

तिर्यगयन—संज्ञा पुं० [सं० तिर्यक्+अयन] सूर्य की वार्षिक परिक्रमा [को०]।

तिर्यगीक्ष—वि० [सं०] तिरछा देखनेवाला [को०]।

तिर्यगीश—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण [को०]।

तिर्यग्गति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तिरछी या टेढ़ी चाल। २. कर्मवश पशु योनि की प्राप्ति।

तिर्यग्गामी[1]—संज्ञा पुं० [सं० तिर्यग्गामिन्] केकड़ा [को०]।

तिर्यग्गामी[2]—वि० तिरछी या टेढ़ी चाल चलनेवाला [को०]।

तिर्यग्दिक्—संज्ञा स्त्री० [सं०] उत्तर दिशा [को०]।

तिर्यग्दिश—संज्ञा स्त्री० [सं०] उत्तर दिशा।

तिर्यग्यान—संज्ञा पुं० [सं०] केकड़ा।

तिर्यग्योनि—संज्ञा स्त्री [सं०] पशुपक्षी आदि जीव। दे० 'तिर्यक्स्रोतस्'।

तिर्यच—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तिर्यक्'।

तिलंगनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तिल+अंगिनी] एक प्रकार की मिठाई जो चीनी में तिल पागकर बनती है।

तिलंगसा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बबूल जो हिमालय पर नैपाल से होकर पंजाब तक होता है। अफगानिस्तान में भी यह पेड़ पाया जाता है।

विशेष—इसकी लकड़ी मजबूत होती है, इमारतों में लगती है तथा हल, झप्पान का डंडा आदि बनाने के काम में आती है। शिमले के आसपास के जंगलों में इसकी लकड़ी का कोयला फूँका जाता है।

तिलंगा[1]—संज्ञा पुं० [हिं० तिलंगाना, सं० तैलङ्ग] १. अंगरेजी फौज का देशी सिपाही।

विशेष—पहले पहल ईस्ट इंडिया कंपनी ने मदरास में किला बनाकर वहाँ के तिलंगियों को अपनी सेना में भरती किया था। इससे अंगरेजी फौज के देशी सिपाही मात्र तिलंगे कहे जाने लगे।

२. सिपाही। सैनिक।

तिलंगा[2]—संज्ञा पुं० [हिं० तीन+लंग] एक प्रकार का कनकौवा।

तिलंगा[3]—संज्ञा पुं० [देश०] [स्त्री० तिलंगी] आग का बड़ा कण। बड़ी चिनगारी।

तिलंगाना—संज्ञा पुं० [सं० तैलंग] तैलंग देश।

तिलंगी[1]—संज्ञा पुं० [सं० तैलंग] तिलंगाने का निवासी। तैलंग। उ०—नहिं जालंधर बार बंग बंगी न तिलंगी।—पृ० रा०, १२।१३०।

तिलंगी[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० तीन+लंग] एक प्रकार की पतंग।

तिलंगी[3]—संज्ञा स्त्री० [हिं० तिलंगा] आग का छोटा कण। चिनगारी

तिलंजुलि—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तिलांजलि'। उ०—लोक लाज की गैल को देहु तिलंजुलि दान।—श्यामा०, पृ० ६०।

तिलंतुद—संज्ञा पुं० [सं० तिलन्तुद] तेली [को०]।

तिल—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रति वर्ष बोया जानेवाला हाथ डेढ़ हाथ ऊँचा एक पौधा जिसकी खेती संसार के प्रायः सभी गरम देशों में तेल के लिये होती है।

विशेष—इसकी पत्तियाँ आठ दस अंगुल तक लंबी और तीन चार अंगुल चौड़ी होती हैं। ये नीचे की ओर तो ठीक आमने सामने मिली हुई लगती हैं, पर थोड़ा ऊपर चलकर कुछ अंतर पर होती हैं। पत्तियों के किनारे सीधे नहीं होते, टेढ़े मेढ़े होते हैं। फूल गिलास के आकार के ऊपर चार दलों में विभक्त होते हैं। ये फूल सफेद रंग के होते है, केवल मुँह पर भीतर की ओर बैगनी धब्बे दिखाई देते हैं। बीजकोश लंबोतरे होते हैं जिनमें तिल के बीज भरे रहते हैं। ये बीज चिपटे और लंबोतरे होते हैं। हिंदुस्तान में तिल दो प्रकार का होता है—सफेद और काला। तिल की दो फसलें होती हैं—कुवारी और चैती। कुवारी फसल बरसात में ज्वार, बाजरे, धान आदि के साथ अधिकतर बोई जाती है। चैती फसल यदि कातिक में बोई जाय तो पूस माघ तक तैयार हो जाती है।

उद्भिद् शास्त्रवेत्ताओं का अनुमान है कि तिल का आदिस्थान अफ्रिका महाद्वीप है। वहाँ आठ नौ जाति के जंगली तिल पाए जाते हैं। पर तिल शब्द का व्यवहार संस्कृत में प्राचीन है, यहाँ तक कि जब और किसी बीज से तेल नहीं निकाला गया था, तब तिल से निकाला गया। इसी कारण उसका नाम ही तैल (तिल से निकला हुआ) पड़ गया। अथर्ववेद तक में तिल और धान द्वारा तर्पण का उल्लेख है। आजकल भी पितरों के तर्पण में तिल का व्यवहार होता है। वैद्यक में तिल भारी, स्निग्ध, गरम, कफ-पित्त-कारक, बलवर्धक, केशों को हितकारी, स्तनों में दूध उत्पन्न करनेवाला, मलरोधक और वातनाशक माना जाता है। तिल का तेल यदि कुछ अधिक पिया जाय, तो रेचक होता है।

पर्या०—होमधान्य। पवित्र। पितृतर्पण। पापघ्न। पूतधान्य। जटिल। वनोद्भव। स्नेहफल। तैलफल।

यौ०—तिलकुट । तिलपट्टा । तिलमुग्गा । तिलशकरी ।

२. छोटा अंश या भाग जो तिल के परिमाण का हो ।

मुहा०—तिल की ओझल पहाड़ = किसी छोटी बात के भीतर बड़ी भारी बात । तिल का ताड़ करना = किसी छोटी बात को बहुत बढ़ा देना । छोटे से मामले को बहुत बड़ा करना या दिखाना । तिल का ताड़ बनना = अतिरंजित होना । उ०—श्रद्धा के उत्साह वचन, फिर काम प्रेरणा मिल के । भ्रांत अर्थ बन आगे आए बने ताड़ थे तिल के ।—कामायनी, पृ० ११० । तिलचावले बाल = कुछ सफेद और कुछ काले बाल । खिचड़ी बाल । तिल चाटना = मुसलमानों के यहाँ विवाह में विदाई के समय दूल्हे का दुलहिन के हाथ पर रखे हुए काले तिलों का चाटना ।

विशेष—यह टोटका इसलिये होता है जिसमें दूल्हा सदा अपनी स्त्री के वश में रहे ।

तिल तिल = थोड़ा थोड़ा । उ०—धरि स्वामि धर्म सुरंग । कढ़ि रहै तिल तिल अंग ।—ह० रासो, पृ० १२३ । तिल धरने की जगह न होना = जरा सी भी जगह खाली न रहना । पूरा स्थान छिका रहना । तिल बाँधना = सूर्यकांत शीशे से होकर आए हुए सूर्य के प्रकाश का केंद्रीभूत होकर बिंदु के रूप में पड़ना । तिल भर = (१) जरा सा । थोड़ा सा । उ०—रहा चढ़ाउब तोरब भाई । तिल भर भूमि न सकेउ छुड़ाई ।—तुलसी (शब्द०) ।† (२) क्षण भर । थोड़ी देर । (किसी के) तिलों से तेल निकालना = किसी से किसी प्रकार रुपया लेकर वही उसके काम में लगाना ।

३. काले रंग का छोटा दाग जो शरीर पर होता है । उ०—चिबुक कूप रसरी अलक तिल सु चरस दृग बैल । बारी बयस गुलाब की सींचत मन्मथ छैल ।—रसलीन (शब्द०) ।

विशेष—सामुद्रिक में तिलों के स्थान भेद से अनेक प्रकार के शुभाशुभ फल बतलाए जाते हैं । पुरुष के शरीर में दाहिनी ओर और स्त्री के शरीर में बाईं ओर का तिल अच्छा माना जाता है । हथेली का तिल सौभाग्यसूचक समझा जाता है ।

४. काली बिंदी के आकार का गोदना जिसे स्त्रियाँ शोभा के लिये गाल, ठुड्डी आदि पर गोदाती हैं ।

क्रि० प्र०—बनाना ।—जगाना ।

५. आँख की पुतली के बीचो बीच की गोल बिंदी जिसमें सामने पड़ी हुई वस्तु का छोटा सा प्रतिबिंब दिखाई पड़ता है ।

तिलकंठी—संज्ञा स्त्री० [सं० तिलकण्ठी] विष्णुकांची । काली कौआठोंठी ।

तिलक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह चिह्न जिसे गीले चंदन, केसर आदि से मस्तक, बाहु आदि अंगों पर सांप्रदायिक संकेत या शोभा के लिये लगाते हैं । टीका । उ०—छापा तिलक बनाइ करि दगध्या लोक अनेक ।—कबीर ग्रं०, पृ० ४६ ।

विशेष—भिन्न भिन्न संप्रदायों के तिलक भिन्न भिन्न आकार के होते हैं । वैष्णव खड़ा तिलक या ऊर्ध्व पुंड्र लगाते हैं जिसके संप्रदायानुसार अनेक आकृति भेद होते हैं । शैव आड़ा तिलक या त्रिपुंड्र लगाते हैं । शाक्त लोग रक्त चंदन का आड़ा टीका लगाते हैं । वैष्णवों में तिलक का माहात्म्य बहुत अधिक है । ब्रह्मपुराण में ऊर्ध्व पुंड्र तिलक की बड़ी महिमा गाई गई है । वैष्णव लोग तिलक लगाने के लिये द्वादश अंग मानते हैं—मस्तक, पेट, छाती, कंठ, (दोनों पार्श्व) दोनों काँख, दोनों बाँह, कंधा, पीठ और कटि । तिलक प्राचीन काल में शृंगार के लिये लगाया जाता था, पीछे से उपासना का चिह्न समझा जाने लगा ।

क्रि० प्र०—धारण करना ।—धारना ।—लगाना ।—सारना ।

२. राजसिंहासन पर प्रतिष्ठा । राज्याभिषेक । गद्दी ।

यौ०—राजतिलक ।

क्रि० प्र०—सारना = राज्य पर अभिषिक्त करना । गद्दी या राजसिंहासन की प्रतिष्ठा देना । उ०—मिला जाइ जब अनुज तुम्हारा । जातहि राम तिलक तेहि सारा ।—मानस, ५।५४ । ३. विवाह संबंध स्थिर करने की एक रीति जिसमें कन्या पक्ष के लोग वर के माथे में दही अक्षत आदि का टीका लगाते और कुछ द्रव्य उसके साथ देते हैं । टीका ।

क्रि० प्र०—चढ़ना ।—चढ़ाना ।

मुहा०—तिलक देना = तिलक के साथ (धन) देना । जैसे,—उसने कितना तिलक दिया । तिलक भेजना = तिलक की सामग्री के साथ वर के घर तिलक चढ़ाने लोगों को भेजना ।

४. माथे पर पहनने का स्त्रियों का एक गहना । टीका । ५. शिरोमणि । श्रेष्ठ व्यक्ति । किसी समुदाय के बीच श्रेष्ठ या उत्तम पुरुष ।

विशेष—इसका समास के अंत में प्रयोग बहुधा मिलता है । जैसे, रघुकुलतिलक ।

६. पुन्नाग की जाति का एक पेड़ जिसमें छत्ते के आकार के फूल वसंत ऋतु में लगते हैं ।

विशेष—यह पेड़ शोभा के लिये बगीचों में लगाया जाता है । इसकी लकड़ी और छाल दवा के काम आती है ।

७ मूँज का फूल या घूआ । ८. लोध्र वृक्ष । लोध का पेड़ । ९. मरुवक । मरुवा । १०. एक प्रकार का अश्वत्थ । ११. एक जाति का घोड़ा । घोड़े का एक भेद । १२. तिल्ली जो पेट के भीतर होती है । क्लोम । १३. सौवर्चल लवण । सोंचर नमक । १४. संगीत में ध्रुवक का एक भेद जिसमें एक एक चरण पचीस पचीस अक्षरों के होते हैं । १५. किसी ग्रंथ की अर्थसूचक व्याख्या । टीका । १६. एक रोग (को०) । १७. पीपल का एक प्रकार या भेद (को०) । १८. तिल का पौधा या फूल (को०) ।

तिलक[2]—संज्ञा पुं० [तु० तिरलीक का संक्षिप्त रूप] १. एक प्रकार का ढीला ढाला जनाना कुरता जिसे प्राय: मुसलमान स्त्रियाँ सूथन के ऊपर पहनती हैं । उ०—तनिया न तिलक, सुथनिया पगनिया न घामैं घुमराती छोड़ि सेजिया सुखन की ।—भूषण (शब्द०) । २. खिलअत ।

तिलक कामोद—संज्ञा पुं० [सं०] एक रागिनी जो कामोद और

विचित्र प्रथवा कान्हड़ा कामोद और षड्योग से मिलकर बनी है।

तिलकुट—संज्ञा पुं० [सं०] १. तिल का चूर्ण। २. एक मिठाई जो तिल के चूर्ण के योग से बनती है।

तिलकधारी—संज्ञा पुं० [हिं० तिलक + धारी] तिलक लगानेवाला। उ०—दास पलटू कहै तिलकधारी सोई, उदित तिहु लोक रजपूत सोई।—पलटू०, भा० २, पृ० १६।

तिलकना¹—क्रि० प्र० [हिं० तड़कना] गीली मिट्टी का सूखकर स्थान स्थान पर दरकना या फटना। ताल आदि की मिट्टी का सूखकर दरार के साथ फटना।

तिलकना(पु)²—क्रि० प्र० [हिं०] फिसलना। फिसलना। उ०—करहउ कादिम तिलकस्यइ पंथी पूगल दूर।—ढोला०, दू० २५६।

तिलक मुद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] चंदन आदि का टीका और शंख चक्र आदि का छापा जिसे भक्त लोग लगाते हैं।

तिलकल्क—संज्ञा पुं० [सं०] तिल का चूर्ण। तिलकुट।

तिलकहरू—संज्ञा पुं० [सं० तिलक + हिं० हरू (प्रत्य०)] दे० 'तिलकहार'।

तिलकहार—संज्ञा पुं० [हिं० तिलक + हार (प्रत्य०)] वह मनुष्य जो कन्या के पिता के यहाँ से वर को तिलक चढ़ाने के लिये भेजा जाता है।

तिलका—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में दो सगण (।।ऽ) होते हैं। इसे 'तिल्ला', 'तिल्लाना' और 'डिल्ला' भी कहते हैं। २. कंठ में पहनने का एक आभूषण।

तिलकार्षिक—संज्ञा पुं० [सं०] तिल की खेती करनेवाला व्यक्ति [को०]।

तिलकालक—संज्ञा पुं० [सं०] १. देह पर का तिल के आकार का काला चिह्न। तिल। २. सुश्रुत के अनुसार एक व्याधि जिसमें पुरुष की इंद्रिय पक जाती है और उसपर काले काले दाग से पड़ जाते हैं।

तिलकावल—वि० [सं०] चिह्नों से युक्त। चिह्नोंवाला [को०]।

तिलकाश्रय—संज्ञा पुं० [सं०] माथा। ललाट [को०]।

तिलकिट्ट—संज्ञा पुं० [सं०] तिल की खली। पीना।

तिलकित—वि० [सं०] १. तिलक लगाए हुए। २. जिसको तिलक लगाया गया हो। जैसे, सिंदूर तिलकित भाल। ३. चित्ती-दार। बिंदीवाला [को०]।

तिलकुट—संज्ञा स्त्री० [सं० तिलकल्क] कूटे हुए तिल जो खाँड़ की चाशनी में पगे हों।

तिलखली—संज्ञा स्त्री० [सं० तिल + खली] तिल की खली [को०]।

तिलखा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की चिड़िया।

तिलचटा—संज्ञा पुं० [हिं० तिल + चाटना] एक प्रकार का झींगुर। चपड़ा।

तिलचतुर्थी—संज्ञा स्त्री० [सं०] माघ मास के कृष्ण पक्ष की चतुर्थी [को०]।

तिलचाँवरी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० तिल + हिं० चाँवरी] दे० 'तिलचावली'।

तिलचावली¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० तिल + चावल] तिल और चावल की खिचड़ी।

तिलचावली²—वि० स्त्री० जिसका कुछ अंश सफेद और कुछ काला हो। जैसे, तिलचावली दाढ़ी।

तिलचित्रपत्रक—संज्ञा पुं० [सं०] तैलकंद।

तिलचूर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] तिलकल्क। तिलकुट।

तिलछना—क्रि० प्र० [अनु०] विकल रहना। छटपटाना। बेचैन रहना।

तिलड़ा¹—वि० [हिं० ती < सं० त्रि + हिं० लड़] [वि०स्त्री० तिलड़ी] जिसमें तीन लड़ें हों। तीन लड़ों का।

तिलड़ा²—संज्ञा पुं० [देश०] पत्थर गढ़नेवालों की एक छेनी जिससे टेढ़ी लकीर या लहरदार नक्काशी बनाई जाती है।

तिलड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तीन + लड़] तीन लड़ों की माला जिसके बीच में एक जुगनी लटकती है।

तिलतंडुल—संज्ञा पुं० [सं० तिल+तण्डुल] १. तिल और चावल। २. ऐसा मेल जिसमें मिलनेवालों का अस्तित्व स्पष्ट दिखाई दे।

यौ०—तिलतंडुल न्याय = दे० 'न्याय'।

तिलतंडुलक—संज्ञा पुं० [सं० तिलतण्डुलक] १. भेंट। मिलन। २. आलिंगन। गले से लगाना [को०]।

तिलतैल—संज्ञा पुं० [सं०] तिल का तेल [को०]।

तिलदानी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तिल्ला+सं० आधान] कपड़े की वह थैली जिसमें दरजी सुई, तागा, अंगुश्ताना आदि औजार रखते हैं।

तिलद्वादशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी विशेष मास की द्वादशी तिथि (जो उत्सव के लिये निश्चित हो)।

तिलधेनु—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का दान जिसमें तिलों की गाय बनाकर दान करते हैं।

तिलपट्टी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तिल + पट्टी] खाँड़ या गुड़ में पगे हुए तिलों का जमाया हुआ कतरा।

तिलपपड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तिल + पपड़ी] तिलपट्टी।

तिलपर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंदन। २. सरल का गोंद। ३. तिल का पत्ता [को०]।

तिलपर्णिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'तिलपर्णी'।

तिलपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. रक्त चंदन। २. एक नदी [को०]।

तिलपिंज—संज्ञा पुं० [सं० तिलपिञ्ज] तिल का वह पौधा जिसमें फल नहीं लगते। बंध्या तिल वृक्ष।

तिलपिष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] तिलों की पीठी। तिलकुटा।

तिलपीड़—संज्ञा पुं० [सं० तिलपीड] तिल पेरनेवाला, तेली।

तिलपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] १. तिल का फूल। २. व्याघ्रनख। बघनखी। ३. नाक [को०]।

तिलपुष्पक—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बहेड़ा । २. तिल का फूल (को०) । ३. नाक (क्योंकि इसकी उपमा तिल के फूल से दी जाती है) ।

तिलपेज—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तिलपिंज' ।

तिलफरा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का छोटा सुंदर सदाबहार वृक्ष ।

विशेष—यह वृक्ष हिमालय में ५-६ हजार फुट की ऊँचाई तक पाया जाता है । इसकी पत्तियाँ गहरे हरे रंग की और चमकीली होती हैं ।

तिलबद्दा—संज्ञा पुं० [देश०] चौपायों का एक रोग जिसमें गले के भीतर के मांस के बढ़ जाने से वे कुछ खा पी नहीं सकते ।

तिलबर—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पक्षी ।

तिलभार—संज्ञा पुं० [सं०] एक देश का नाम ।—(महाभारत) ।

तिलभाविनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] मल्लिका (को०) ।

तिलभुग्गा—संज्ञा पुं० [हिं० तिल + सं० भुक्त] खाँड़ मिले हुए भुने तिल जो खाए जाते हैं । तिलकुट ।

तिलभृष्ट—वि० [सं०] तिल के साथ भूना या पकाया हुआ ।

विशेष—महाभारत में तिल के साथ भुनी हुई वस्तु के खाने का निषेध है । स्मृतियों में तिल मिला हुआ पदार्थ बिना देवार्पित किए खाना वर्जित है ।

तिलभेद—संज्ञा पुं० [सं०] पोस्ते का दाना ।

तिलमनिया(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० तिल + हिं० मनिया] गले में पहना जानेवाला एक आभूषण । उ०—गले तिलमनिया पहुँचि बिराजित बाजूबन फुदन सुपारी री ।—सं० दरिया, पृ० १७० ।

तिलमयूर—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पक्षी जिसकी देह पर तिल के समान काले चिह्न होते हैं ।

• **तिलमापट्टी**—संज्ञा स्त्री० [देश०] दक्षिण में बिलारी और करनूल में होनेवाली एक कपास ।

तिलमिल—संज्ञा स्त्री० [हिं० झिरमिर] चकाचौंध । झिरमिराहट ।

तिलमिलाना—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'तिरमिराना' ।

तिलमिलाहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० तिलमिलाना + आहट (प्रत्य०)] तिलमिलाने की क्रिया या भाव । व्याकुलता । बेचैनी ।

तिलमिली—संज्ञा स्त्री० [हिं० तिलमिलाना] तिलमिलाहट ।

तिलरस—संज्ञा पुं० [सं०] तिल का तेल (को०) ।

तिलरा¹—संज्ञा पुं० [देश०] टेढ़ी लकीर बनाने की छेनी जिसे कसेरे काम में लाते हैं ।

तिलरा²—वि०, संज्ञा पुं० [हिं०] [स्त्री० तिलरी] दे० 'तिलड़ा' ।

तिलरी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तिलड़ी' ।

तिलवट—संज्ञा पुं० [हिं० तिल] तिलपट्टी । तिलपपड़ी ।

तिलवन—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक पौधा जो जंगलों और बगीचों में होता है ।

विशेष—यह दो प्रकार का होता है—एक सफेद फूल का, दूसरा नीलापन लिए पीले फूल का । इसमें लंबी फलियाँ लगती हैं । इसके बीज, फूल आदि दवा के काम में आते हैं । वैद्यक में तिलवन गरम और वात गुल्म आदि को दूर करनेवाली मानी जाती है । पीली तिलवन आँख के अंजनों में पड़ती है ।

पर्या०—अजगंधा । खरपुष्पा । सुगंधिका । कावरी । हुंगी ।

तिलवा—संज्ञा पुं० [हिं० तिल + वा (प्रत्य०)] तिलों का लड्डू ।

तिलशकरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तिल + शकर] तिल और चीनी की बनाई हुई मिठाई । तिलपपड़ी ।

तिलशिखी—संज्ञा पुं० [सं० तिलशिखिन्] तिलमयूर (को०) ।

तिलशैल—संज्ञा पुं० [सं०] तिल का पर्वताकार ढेर जो दान में दिया जाता है ।

तिलषिवक—संज्ञा पुं० [?] तेली । उ०—तेली को तिलषिवक कहा जाता था ।—प्राचीन भा०, पृ० २६२ ।

तिलसुषमा—संज्ञा पुं० [सं० तिल + सुषमा] सृष्टि के सभी उत्तम पदार्थों से थोड़ा थोड़ा करके एकत्र किया गया सौंदर्यसमूह । उ०—निर्मित सबकी तिलसुषमा से, तुम निखिल सृष्टि में चिर निरुपम ।—युगांत, पृ० ४६ ।

विशेष—तिलोत्तमा नामक अप्सरा की सृष्टि ब्रह्मा ने इसी प्रकार की थी । सुंद और उपसुंद नाम के दो असुर भाई इसी तिलोत्तमा के लिये आपस में ही लड़कर मर गए ।

तिलस्नेह—संज्ञा पुं० [सं०] तिल का तेल (को०) ।

तिलस्म—संज्ञा पुं० [अ० तिलिस्म] १. जादू । इंद्रजाल । २. अद्भुत या अलौकिक व्यापार । करामात । चमत्कार । ३. दृष्टिबंध (को०) ४. वह मायारचित विचित्र स्थान जहाँ अजीबो गरीब व्यक्ति और चीजें दिखलाई पड़ें और जहाँ जाकर आदमी खो जाय और उसे घर पहुँचने का रास्ता न मिले ।

मुहा०—तिलस्म तोड़ना = किसी ऐसे स्थान के रहस्य का पता लगा देना जहाँ जादू के कारण किसी की गति न हो ।

यौ०—तिलस्म बंद = तिलस्म और जादू के असर में आया हुआ मायाग्रस्त । तिलस्म-बंदी = जादू के असर में आ जाना ।

तिलस्मात—संज्ञा पुं० [अ० तिलिस्म का बहु व०] मायारचित स्थान । मायाजाल (को०) ।

तिलस्माती—वि० [अ० तिलिस्मात + फ़ा० ई (प्रत्य०)] १. मायापूर्ण । तिलस्मी । २. मायावी । जादूगर (को०) ।

तिलस्मी—वि० [अ० तिलिस्म + फा० ई० (प्रत्य०)] १. तिलस्म संबंधी । जादू का । २. मायानिर्मित । माया संबंधी (को०) ।

तिलहन—संज्ञा पुं० [हिं० तेल+धान्य] फसल के रूप में बोए जानेवाले पौधे जिनके बीजों से तेल निकलता है । जैसे, तिल, सरसों, तीसी इत्यादि ।

तिलांकित दल—संज्ञा पुं० [सं०] तैलकंद ।

तिलांजलि—संज्ञा स्त्री० [सं० तिलाञ्जलि] दे० 'तिलांजली' (को०) ।

तिलांजली—संज्ञा स्त्री० [सं० तिलाञ्जली] मृतक संस्कार का एक अंग ।

विशेष—हिंदुओं में मृतक संस्कार की एक क्रिया जो मुरदे के जल चुकने पर स्नान करके की जाती है। इसमें हाथ की अंजुली में जल भरकर और उसमें तिल डालकर उसे मृतक के नाम से छोड़ते हैं।

मुहा०—तिलांजली देना = बिलकुल त्याग देना। जरा भी संबंध न रखना।

लांबु—संज्ञा पुं० [सं० तिलाम्बु] तिलांजली।

ला[1]—संज्ञा पुं० [अ०] सुवर्ण। सोना [को०]।

ला[2]—संज्ञा पुं० [अ० तिलाअ] वह तेल जो लिंगेंद्रिय पर उसकी शिथिलता दूर करने के लिये लगाया जाय। लिंगलेप। २. दे० 'तिल्ला'।

लाक—संज्ञा पुं० [अ० तलाक़] १. पति-पत्नी-संबंध का भंग। स्त्री पुरुष के नाते का टूटना।

क्रि० प्र०—देना।—लेना।

विशेष—ईसाइयों, मुसलमानों आदि में यह नियम है कि वे आवश्यकता पड़ने पर अपनी विवाहिता स्त्री से एक विशेष नियम के अनुसार संबंध तोड़ देते हैं। उस दशा में स्त्री और पुरुष दोनों को अलग अलग विवाह करने का अधिकार हो जाता है।

यौ०—तिलाकनामा।

२. परित्याग। त्याग देना। छोड़ देना। उ०—वाहि तिलाक याहि जो खोवै।—चरण० बानी, पृ० २१०।

लाकार—वि० [अ० तिला + फ़ा० कार (प्रत्य०)] सोने की चित्रकारीवाला। उ०—बाद मुद्दत के हैं देहली के फिरे दिन या रब। तख्त ताऊस तिलाकार मुबारक होवे।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ७४७।

लादानी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तिलदानी'।

लान्न—संज्ञा पुं० [सं०] तिल की खिचड़ी।

लापत्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] काला जीरा।

लावा[1]—संज्ञा पुं० [हिं० तीन + लावना, लाना ?] वह बड़ा कूआँ जिसपर एक साथ तीन पुरवट चल सकें।

लावा[2]—संज्ञा पुं० [अ० तलायह्] रात के समय कोतवाल आदि का शहर में गश्त लगाना। रौंद।

लिंग—संज्ञा पुं० [सं० तिलिङ्ग] एक देश का नाम [को०]।

लिंगा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तिलंगा'।

लित्स—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का साँप जिसे गोनस भी कहते हैं। २. अजगर (को०)।

लिया—संज्ञा पुं० [देश०] १. सरपत। २. दे० 'तेलिया' (विष)।

लिस्म—संज्ञा पुं० [अ०] दे० 'तिलस्म' [को०]।

लिस्मात—संज्ञा पुं० [अ० तिलिस्म का बहु व०] दे० 'तिलस्मात' [को०]।

लिस्माती—वि० [अ० तिलिस्मात + फ़ा० ई (प्रत्य०)] दे० 'तिलस्माती' [को०]।

तिलिस्मी—वि० [अ० तिलिस्म + फ़ा० ई (प्रत्य०)] दे० 'तिलस्मी' [को०]।

तिली[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] १. दे० 'तिल'। २. दे० 'तिल्ली'।

तिली(पु)[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० तितली का संक्षिप्त रूप] दे० 'तितली'।

तिलेती—संज्ञा स्त्री० [हिं० तेलहन + एती (प्रत्य०)] तेलहन की खूँटी जो फसल काटने पर खेत में बच जाती है।

तिलेदानी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तिलदानी'।

तिलेगू—संज्ञा स्त्री० [तेलु० तेलुगु] दे० 'तेलगू'।

तिलोक—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'त्रिलोक'।

तिलोकपति—संज्ञा पुं० [सं० त्रिलोकपति] विष्णु। उ०—तुलसी बिसोक ह्वै तिलोकपति लोक नाम को प्रताप बात विदित है जग में।—तुलसी (शब्द०)।

तिलोकी—संज्ञा पुं० [सं० त्रिलोकी] इक्कीस मात्राओं का एक उपजाति छंद जो प्लवंगम और चांद्रायण के मेल से बनता है। इसके प्रत्येक चरण के अंत में लघु गुरु होता है।

तिलोचन—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'त्रिलोचन'।

तिलोत्तमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार एक परम रूपवती अप्सरा जिसके विषय में यह कहा जाता है कि ब्रह्मा ने संसार भर के सब उत्तम पदार्थों में से एक एक तिल अंश लेकर इसे बनाया था।

विशेष—इसकी उत्पत्ति हिरण्याक्ष के सुंद और उपसुंद नामक दोनों पुत्रों के नाश के लिये हुई थी जिन्होंने बहुत तपस्या करके यह वर प्राप्त कर लिया था कि हम लोग किसी दूसरे के मारने से न मरें; और यदि मरें भी तो आपस में ही लड़कर मरें। इन दोनों भाइयों में बहुत स्नेह था और इन्होंने देवताओं तथा इंद्र को बहुत तंग कर रखा था। इन्हीं दोनों में विरोध कराने के लिये ब्रह्मा ने तिलोत्तमा की सृष्टि की और उसे सुंद तथा उपसुंद के निवासस्थान विंध्याचल पर भेज दिया। इसी को पाने के लिये दोनों भाई आपस में लड़ मरे थे।

तिलोदक—संज्ञा पुं० [सं०] वह तिल मिला अंजुली भर जल जो मृतक के उद्देश्य से दिया जाता है। तिलांजली। उ०—पुत्र न रहता, तो क्या होता कौन फिर देता पिंड तिलोदक।—करुणा०, पृ० १६।

तिलोरि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तिलोरी'। उ०—पियरि तिलोरि आव जलहंसा। बिरहा पैठि हिए कत नंसा।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३६३।

तिलोरी[1]—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मैना जिसे तेलिया मैना भी कहते हैं। उ०—पेडु तिलोरी औ जल हँसा। हिरदय पैठ बिरह लग निसा।—जायसी (शब्द०)।

तिलोरी[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० तिल + हिं० औरी (प्रत्य०)] दे० 'तिलौरी'।

तिलोहरा†—संज्ञा पुं० [देश०] पटसन का रेशा।

तिलौंछना—क्रि० स० [हिं० तेल + औछना (प्रत्य०)] थोड़ा

तेल लगाकर चिकना करना। उ०—पुनि पोंछि गुलाब तिलौंछि फुलेल अँगौछे में आछे अँगोछनि कै।—केशव ग्रं०, पृ० २०।

तिलौंछा—वि० [हिं० तेल+औंछा (प्रत्य०)] जिसमें तेल का सा स्वाद या रंग हो। जैसे, तिलौंछा फल।

तिलौनी—वि० [हिं० तेल] सुगंधित। उ०—आछी तिलौनी लसै अँगिया गसि चोवा की बेलि विराजति लोइन।—घनानंद, पृ०२११।

तिलौरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तिल+बरी] उर्द या मूँग की वह बरी जिसमें कुछ तिल भी मिला हो।

विशेष—इसमें नमक भी पड़ा रहता है और यह घी में तलकर खाई जाती है।

तिल्य[1]—संज्ञा पुं० [सं० तिल] तिल का खेत। उ०—तिल, उड़द, अलसी सनई और चीना के खेतों को क्रमशः तिल्य तैवीन... कहते थे।—संपूर्णा० अभि० ग्रं०, पृ० २४८।

तिल्य[2]—वि० तिल की खेती के योग्य (को०)।

तिल्लना—संज्ञा पुं० [?] तिलका नाम का वर्णवृत्त।

तिल्लर—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की छोटी चिड़िया जिसे होबर भी कहते हैं।

तिल्ला[1]—संज्ञा पुं० [अ० तिला] १. कलाबत्तू या बादले आदि का काम।

यौ०—तिल्लेदार।

२. पगड़ी दुपट्टे या साड़ी आदि का वह अंचल जिसमें कलाबत्तू या बादले आदि का काम किया हो। ३ वह सुंदर पदार्थ जो किसी वस्तु की शोभा बढ़ाने के लिये उसमें जोड़ दिया जाय। (क्व०)।

यौ०—सुनहरा तिल्ला।

तिल्ला[2]—संज्ञा पुं० दे० 'तिलका' (वर्णवृत्त)।

तिल्लाना—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तराना'-१।

तिल्ली[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० तिलक, तुलनीय फा० तिहाल (= तिल्ली)] पेट के भीतर का अवयव जो मांस की पोली गुठली के आकार का होता है और पसलियों के नीचे पेट की बाईं ओर होता है।

विशेष—इसका संबंध पाकाशय से होता है। इसमें खाए हुए पदार्थ का विशेष रस कुछ काल तक रहता है। जबतक यह रस रहता है, तबतक तिल्ली फैलकर कुछ बढ़ी हुई रहती है, फिर जब इस रस को रक्त सोख लेता है, तब वह फिर ज्यों की त्यों हो जाती है। तिल्ली में पहुँचकर रक्तकणिकाओं का रंग बैंगनी हो जाता है।

ज्वर के कुछ काल तक रहने से तिल्ली बढ़ जाती है, उसमें रक्त अधिक आ जाता है और कभी कभी छूने से पीड़ा भी होती है। ऐसी अवस्था में उसे छेदने से उसमें से लाल रक्त निकलता है। ज्वर आदि के कारण बार बार अधिक रक्त आते रहने से ही तिल्ली बढ़ती है। इस रोग में मनुष्य दिन दिन दुबला होता जाता है, उसका मुँह सूखा रहता है और पेट निकल आता है। वैद्यक के अनुसार जब दाहकारक तथा कफकारक पदार्थों के विशेष सेवन से रुधिर कुपित होकर कफ द्वारा प्लीहा को बढ़ाता है, तब तिल्ली बढ़ जाती है और मंदाग्नि, जीर्ण ज्वर आदि रोग साथ लग जाते हैं। जवाखार, पलाश का क्षार, शंख की भस्म आदि प्लीहा की आयुर्वेदोक्त औषध हैं। डाक्टरी में तिल्ली बढ़ने पर कुनैन तथा आर्सेनिक (संखिया) और लोहा मिली हुई दवाएँ दी जाती हैं।

पर्या०—प्लीहा। पिलही।

तिल्ली[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० तिल] तिल नाम का अन्न या तेलहन। वि० दे० 'तिल'।

तिल्ली[3]—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का बाँस जो आसाम और बरमा में ऊँची पहाड़ियों पर होता है।

विशेष—ये बाँस पचास साठ फुट तक ऊँचे होते हैं और इनमें गाँठें दूर दूर पर होती हैं, इससे ये चोंगे बनाने के काम में अधिक आते हैं।

तिल्ली[4]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तीली'।

तिल्लोतमा—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तिलोत्तमा'। उ०—तिल ऊपर तिल्लोतमा वार दई सो बार।—बाँकी० ग्रं०, भा० १, पृ० ३१।

तिल्व—संज्ञा पुं० [सं०] लोध्र। लोध।

तिल्वक—संज्ञा पुं० [सं०] १. लोध। २. तिविश।

तिल्हारी†—संज्ञा स्त्री० [?] झालर की तरह का वह परदा जो घोड़ों के माथे पर उनकी आँखों को मक्खियों से बचाने के लिये बाँधा जाता है। नुकता।

तिवहार—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'त्योहार'। उ०—होली तिवहार की बसंत पञ्चमी है।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १९८।

तिवाड़ी‡—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तिवारी'।

तिव—अव्य० [हिं०] दे० 'तिमि'। उ०—उछह पाणी ज्युं माछली तिव लागु तिव उठुछुं भंबि।—बी० रासो०, पृ० ४८।

तिवइ†—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री] स्त्री।

तिवई†—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री] स्त्री।

तिवाना—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'तेवाना'। उ०—तब जुलहा मन किछु तिवाना।—कबीर सा०, पृ० ७४।

तिवार—अव्य० [?] तदा। तब। उस बार। उस समय। उ०—सम राव अधिक सबी तिवार। नृपराज एह अद्भुत विचार।—पृ० रा०, २४। १११।

तिवारी[1]—संज्ञा पुं० [सं० त्रिपाठी] [स्त्री० तिवराइन] त्रिपाठी। वि० दे० 'त्रिपाठी'।

तिवारी[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० तिवारा] वह घर या कोठरी जिसमें तीन द्वार हों। उ०—फूलनि के खंभ फूलनि की तिवारी।—छीत०, पृ० २७।

तिवास†—संज्ञा पुं० [सं० त्रिवासर] तीन दिन। उ०—मन फाटे बायक बरे मिटै सगाई साक। जैसे दूध तिवास को उलटि हुआ जो आक।—कबीर (शब्द०)।

तिवासी—वि० [हिं०] दे० 'तिवासी'।

तिविक्रम—संज्ञा पुं० [सं० त्रिविक्रम] दे० 'त्रिविक्रम'। उ०—दुज कनौज कुल कस्यपी, रतनाकर सुत धीर। बसत तिविक्रम पुर सदा, तरनि तनूजा तीर।—भूषण ग्रं०, पृ० १८।

तिवी—संज्ञा स्त्री० [देश०] केसारी।

तिशना[१]—संज्ञा पुं० [अ० तशनीम् (=बुरा भला कहना)] ताना। मेहना।

क्रि० प्र० —देना।—मारना।

यौ०—ताना तिशना।

तिशना[२]—वि० [फ़ा० तिश्नह्] १. प्यासा। तृषित। २. अतृप्त। असंतुष्ट।

यौ०—तिशना काम=(१) तृषित। (२) असफलमनोरथ। तिशना जिगर=(१) असफलकाम। (२) अभिलाषी। तिशना खूं=खून का प्यासा। जान का गाहक। तिश्नह दीदार=दर्शन की तृषा।

तिशनालब —वि० [फ़ा० तिश्नह् लब] १. बहुत प्यासा। तृषित। २. इच्छुक। उ०—मारज़ू ए चश्मए कौसर नहीं। तिशनालब हूं शरबते दीदार का।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ६।

तिश्नाह—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तृष्णा'। उ०—वह तरंग तिश्नाह राग बहु ग्रेह कुरंती।—पृ० रा०, ११७६७।

तिष—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तृषा'। उ०—जब सूखे तब ही तिष लागै।—प्राण०, पृ० १५।

तिष्टी—क्रि० स० [सं० तिष्ठित] स्थापित। निर्मित। उ०—कोउ कहै यह काल उपावत कोउ कहै यह ईश्वर तिष्टी।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ६१६।

तिष्ठद्गु—संज्ञा पुं० [सं०] वह काल जिसमें गौएँ चरकर अपने खूँटे पर आ जाती हैं। संध्या। सायंकाल। गोधूली।

तिष्ठद्धोम—संज्ञा पुं० [सं०] एक होम या यज्ञ जिसमें पुरोहित खड़ा रहकर आहुति प्रदान करता है [को०]।

तिष्ठना—क्रि० अ० [सं० तिष्ठ] ठहरना। उ०—चौदह भुवन एक पति होई। भूत द्रोह तिष्ठइ नहिं कोई।—तुलसी (शब्द०)।

तिष्ठा—संज्ञा स्त्री० [सं०] तिस्ता नाम की नदी जो हिमालय के पास से निकलकर नवाबगंज के पास गंगा से मिलती है।

तिष्य[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. पुष्य नक्षत्र। २. पौष मास। ३. कलियुग। ४. अशोक के एक भाई का नाम (को०)।

तिष्य[२]—वि० १. मांगल्य। कल्याणकारी। २. भाग्यवान (को०)। ३. तिष्य नक्षत्र में उत्पन्न (को०)।

तिष्यक—संज्ञा पुं० [सं०] पौष मास।

तिष्यकेतु—संज्ञा पुं० [सं०] शिव [को०]।

तिष्यपुष्पा—संज्ञा स्त्री० [सं०] आमलकी।

तिष्यफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] आमलकी [को०]।

तिष्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. आमलकी। २. दीप्ति। चमक [को०]।

तिष्षन—वि० [सं० तीक्ष्ण] दे० 'तीक्ष्ण'। उ०—लच्छ में पच्छर तिष्षन तेज जे सूर समाज में गाज गने हैं।—तुलसी (शब्द०)।

तिष्षिय—वि० [हिं०] दे० 'तीक्ष्ण'। उ०—असिय मुष्य दंतसिय तरुन तिष्षिय आधारिय।—पृ० रा० २।१५३।

तिस[१]—सर्व [सं० तस्य, पा० तिस्सं, प्रा० तस्स, तिस्स] 'ता' का एक रूप जो उसे विभक्ति लगने के पूर्व प्राप्त होता है। जैसे, तिसने, तिसको, तिसपै इत्यादि।

विशेष—अब इस शब्दप्रकार का व्यवहार गद्य में नहीं होता, केवल 'तिसपर' का प्रयोग होता है।

मुहा०—तिस पर=(१) उसके पीछे। उसके उपरांत। (२) इतना होने पर। ऐसी अवस्था में। जैसे,–(क) हमारी चीज भी ले गए, तिसपर हमीं को बातें भी सुनाते हो। (ख) इतना मना किया, तिसपर भी वह चला गया।

तिस[२]—संज्ञा स्त्री० [सं० तृष] दे० 'तृषा'। उ०—मित हितमय उदार आनंदघन रस बरसत चातक तिस तें रे।—घनानंद, पृ० १६४।

तिसखुट†—संज्ञा स्त्री० [हिं० तीसी+खूँटी] तीसी के पौधों के छोटे छोटे डंठल जो फसल कटने पर जमीन में गड़े रह जाते हैं। तीसी की खूंटी।

तिसखुर —संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तिसखुट'।

तिसटना—क्रि० अ० [सं० तिष्ठ] स्थित रहना। उ०—ज्यौरे थोड़ा सेण जग, वैरी घणा वसंत। तिसटै दिन थोड़ा तिके, आवै अंत असंत।—बाँकी० ग्रं०, भा० १, पृ० ६६।

तिसड़ो†—वि० [हिं० तिस+ड़ो(प्रत्य०)] वैसी। उस तरह की। उ०—नारी इक वीर उमैं नर में, तिसड़ो न लखी सुपनंतर में।—रघु० रू०, पृ० १३३।

तिसना—संज्ञा स्त्री० [सं० तृष्णा] दे० 'तृष्णा'।

तिसरा†—वि० [हिं० तीसरा] [वि० स्त्री० तिसरी] दे० 'तीसरा'। उ०—सो प्रगटित निज रूप करि इहि तिसरे अध्याइ।—नंद० ग्रं०, पृ० २३१।

तिसराना—क्रि० स० [हिं० तिसरा से नामिक धातु] तीसरी बार करना।

तिसरायत†—क्रि० वि० [हिं० तिसरा] तीसरी बार।

तिसरायत—संज्ञा स्त्री० [हिं० तीसरा+आयत (प्रत्य०)] १. तीसरा होने का भाव। गैर होने का भाव। २. मध्यस्थ। बिचला।

तिसरैत—संज्ञा पुं० [हिं० तीसरा+एत (प्रत्य०)] १. दो आदमियों के झगड़े से अलग एक तीसरा मनुष्य। तटस्थ। मध्यस्थ। २. तीसरे हिस्से का मालिक।

तिसा—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तृषा'। उ०—तातें तिसा घनी न बिचारे। विषयन दीन देह प्रतिपारै।—नंद० ग्रं०, पृ० २११।

तिसाना—क्रि० अ० [सं० तृषा] प्यासा होना। तृषित होना। उ०—देखि कै बिभूति सुख उपज्यो अभूत कोऊ चल्यो मुख माधुरी के लोचन तिसाये हैं।—प्रिया (शब्द०)।

तिसाया†—वि० [हिं० तिसाना] तृषित। प्यासा। उ०—बेगम मै दहिल्लेवी सल्ला में कहाया। सारा कामणोंनी खूंन मेटा का तिसाया।—शिखर०, पृ०५७।

तिसिया (पु) संज्ञा स्त्री० [सं० तृषित, प्रा० तिसिय] तृषित। प्यासा। उ०—या रहनी ते पैकंबर निपजै, तिसियाँ मरै संसारा। —गोरख०, पृ० २१३।

तिसो (पु)—वि० [हिं० तिस + ई (प्रत्य०)] उसी। उ०—लाहो लेता जनम गो तुय करै तिसो तोयो होई। —बी० रासो, पृ० ४४।

तिसु (पु)—सर्व० [सं० तस्य, हिं० तिस] उसको। उसे। उ०—खिवि चाखिया तिसु आया स्वादु। नानक बोले इहु बिसमादु।—प्राण०, पृ० १३४।

तिसो (पु)—सर्व० [हिं०] दे० 'तिस'। उ०—तक बीजो सोना तिसो पातर वालो प्रेम।—बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० ५।

तिसूत—संज्ञा पुं० [?] एक दवा का नाम।

तिसूती[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० तीन + सूत] तीन तीन सूत के ताने बाने से बुना हुआ कपड़ा।

तिसूती[2]—वि० तीन तीन सूत के ताने बाने से बुना हुआ।

तिस्टा (पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तृष्णा'। उ०—नहिं भोजन नहिं ग्राम नहीं इंद्री की तिस्टा।—पलटू०, भा० १, पृ० ५६।

तिस्ना (पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तृष्णा'। उ०—काम क्रोध तिस्ना मद माया। पाँचो चोर न छाड़हिं काया।—जायसी ग्रं० (गुप्त०), पृ० २०४।

तिस्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] शंखपुष्पी।

तिस्स—संज्ञा पुं० [सं० तिष्य] राजा अशोक के सगे भाई का नाम।

तिहु (पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] तिय। स्त्री। उ०—चंदनह बास ज्यों पाय खिल्ल। तिहु नाह पिष्ष ज्यों सुभग सिल्ल।—पृ० रा०, ३।४६।

तिहत्तर[1]—वि० [सं० त्रिसप्तति, पा० तिसत्तति, प्रा० तिहत्तरि] जो गिनती में सत्तर से तीन अधिक हो। तीन ऊपर सत्तर।

तिहत्तर[2]—संज्ञा पुं० १. सत्तर से तीन अधिक की संख्या। २. उक्त संख्यासूचक अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—७३।

तिहद्दा—संज्ञा पुं० [हिं० तीन + अ० हद्द] वह स्थान जहाँ तीन हदें मिलती हों।

तिहरा[1]—वि० [हिं०] दे० 'तेहरा'।

तिहरा[2]—संज्ञा स्त्री० [देश०] [स्त्री० अल्पा० तिहरी] दही जमाने या दूध दुहने का मिट्टी का बरतन।

तिहराना—क्रि० [हिं० तेहरा] (किसी बात या काम को) तीसरी बार करना। दो बार करके एक बार फिर और करना।

तिहरी[1]—वि० स्त्री० [हिं०] दे० 'तेहरी'।

तिहरी[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० तीन + हार] तीन लड़ों की माला।

तिहरी[3]—संज्ञा स्त्री० [हिं० ती ? + हंडी] दूध दुहने या दही जमाने का मिट्टी का छोटा बरतन।

तिहवार—संज्ञा पुं० [सं० तिथिवार] पर्व या उत्सव का दिन। त्योहार वि० दे० 'त्योहार'।

तिहवारी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'त्योहारी'।

तिहा—संज्ञा पुं० [सं० तिहन्] १. रोग। २. चावल। ३. धनुष। ४. अच्छाई। सद्भाव [को०]।

तिहाई[1]—संज्ञा पुं० [सं० त्रि + भाग] १. तृतीयांश। तीसरा भाग। तीसरा हिस्सा।

तिहाई[2]—संज्ञा स्त्री० खेत की उपज। फसल। (पहले खेत की उपज का तृतीयांश काश्तकार लेता था, इसी से यह नाम पड़ा)। उ०—नई तिहाई के अँखुआ खेतन ज्यों ऊगत।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ४४।

मुहा०—तिहाई काटना = फसल काटना। तिहाई मारी जाना = फसल का न उपजना।

तिहाउ[1]—संज्ञा पुं० [हिं०] १. क्रोध। तेह। २. वैर। बिगाड़। उ०—हित सों हित रति राम सों रिपु सों बैर तिहाउ। उदासीन सब सों सरल तुलसी सहज सुभाउ।—तुलसी (शब्द०)।

तिहानी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक बालिश्त लंबी और तीन अंगुल चौड़ी लकड़ी जिसका काम चूड़ियाँ बनाने में पड़ता है।

तिहायत[1]—संज्ञा पुं० [हिं० तिहाई (=तीसरा)] दो आदमियों के झगड़े से अलग एक तीसरा आदमी। तिसरैत। तटस्थ। मध्यस्थ।

तिहायत (पु)[2]—वि० [हिं०] तीन गुना। उ०—जन रज्जब सुरता बधी लगी तिहाइत तेज।—रज्जब० बानी, पृ० ५।

तिहाना (पु)—वि० [सं० तृषित] १. प्यासा होना। २. अतृप्त होना। उ०—तबहूँ तूँ किछु पीता कि रहता तिहाय।—प्राण०, पृ० ६८।

तिहारा[1]—सर्व० [हिं०] दे० 'तुम्हारा'।

तिहारो (पु)—सर्व० [हिं०] दे० 'तुम्हारा'। उ०—और तुम तो काहू के घर जात आवत नाहीं। और आज तिहारो आवनो कैसे भयो।—दो सौ बावन०, भा० २, पृ० ६३।

तिहारौ (पु)—सर्व० [हिं०] दे० 'तुम्हारा'। उ०—हो पिय, यह कल गीत तिहारौ। महा अनिल के बान अनिवारौ।—नंद० ग्रं०, पृ० ३२०।

तिहाली—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की कपास की बोंड़ी।

तिहाव[1]—संज्ञा पुं० [हिं० तेह (=गुस्सा, ताव)] १. क्रोध। कोप। २. बिगाड़। अनबन।

तिहि—सर्व० [हिं०] दे० 'तेहि'। उ०—कालीदह सों पकरि ल्याय नाच्यो तिहि सिर पर।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ६३।

तिहीं (पु)—वि० सर्व० [हिं०] दे० 'तेहि'। उ०—अंतरजामी साँवरो, तिही बेर गयो आइ।—नंद० ग्रं०, पृ० १।

तिही (पु)—सर्व० [हिं०] दे० 'तेहि'। उ०—पटुली कनक की तिही बानक की बनी मनमोहनी।—नंद० ग्रं०, पृ० ३७५।

तिहुँलोक—संज्ञा पुं० [हिं० तीन + हुँ (प्रत्य०) + लोक] तीन लोक स्वर्ग, मर्त्य, पाताल। उ०—राम रहा तिहुँलोक समाई। कर्म भोग भो खानि रहाई।—घट०, पृ० २२२।

तिहूँ[1]—वि० [हिं० तीन + हूँ(प्रत्य०)] तीन। तीनों जैसे, तिहूँ लोक।

तिहुयन (पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'त्रिभुवन'। उ०—करिअ बिनति सों एं आयब जन्हि बिनु तिहुयन तीत।—विद्यापति, पृ० १६६।

तिहैया—संज्ञा पुं० [हिं० तिहाई] १. तीसरा भाग। तृतीयांश। २. तबले मृदंग आदि की वे तीन थापें जिनमें से प्रत्येक थाप

अंतिम या समवाले ताल को तीन भागों में बाँटकर प्रत्येक भाग पर दी जाती है और जिसकी अंतिम थाप ठीक समय पर पड़ती है।

तिह्न(पु)—सर्व [हिं०] दे० 'तिन'। उ०—तिह्न के मरत नहिं मुएउ लाज गहि बनन सिधाएउ।—अकबरी०, पृ० ६६।

ती(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री] १. स्त्री। औरत। उ०—हौं कब आवत ती इती सखी लियाई घेरि।—स० सप्तक, पृ० ३७६। २. जोरू। पत्नी। ३. मनोहरण छंद का एक नाम। भ्रमरावली। नलिनी।

तीअन—संज्ञा स्त्री० [सं० तृणान्न] शाक। भाजी। तरकारी।

तीकरा—संज्ञा पुं० [देश०] बीज से फूटकर निकला हुआ अंकुर। अंखुआ।

तीकुर—संज्ञा पुं० [हिं० तीन+कूरा(=अंश)] फसल की वह बँटाई जिसमें एक तिहाई अंश जमींदार और दो तिहाई काश्तकार लेता है। तिहाई।

तीच्छन(पु)—वि० [सं० तीक्ष्ण] दे० 'तीक्ष्ण'।

तीछन(पु)—वि० [सं० तीक्ष्ण] दे० 'तीक्ष्ण'। उ०—आयस किय तीछन अनिय सेस सत्य अगभीन।—प० रासो, पृ० ३।

तीक्ष्ण¹—वि० [सं०] १. तेज नोक या धारवाला। जिसकी धार या नोक इतनी चोखी हो जिससे कोई चीज कट सके। जैसे, तीक्ष्ण बाण। २. तेज। प्रखर। तीव्र। जैसे, तीक्ष्ण औषध, तीक्ष्ण बुद्धि। ३. उग्र। प्रचंड। तीखा। जैसे, तीक्ष्ण स्वभाव। ४. जिसका स्वाद बहुत चटपटा हो। तेज या तीखे स्वादवाला। ५. जो (वाक्य या बात) सुनने में अप्रिय हो। कर्णकटु। जैसे, तीक्ष्ण वाक्य, तीक्ष्ण स्वर। ६. आत्मत्यागी। ७. निरालस्य। जिसे आलस्य न हो। ८. जो सहन न हो। असह्य।

तीक्ष्ण²—संज्ञा पुं० [सं०] १. उत्ताप। गरमी। २. विष। जहर। ३. इस्पात। लोहा। ४. युद्ध। लड़ाई। ५. मरण। मृत्यु। ६. शास्त्र। ७. समुद्री नमक। करकच। ८. मुष्कक। मोखा। ९. वत्सनाभ। बछनाग। १० चव्य। चाब। ११. महामारी। मरी। १२. यवक्षार। जवाखार। १३. सफेद कुशा। १४. कुंदुर गोंद। १५. योगी। १६. ज्योतिष में मूल, आर्द्रा, ज्येष्ठा, अश्विनी और रेवती नक्षत्रों में बुध की गति।

तीक्ष्णकंटक—संज्ञा पुं० [सं० तीक्ष्णकण्टक] १. धतूरे का पेड़। २. बबूल का पेड़। ३. इंगुदी का पेड़। ४. करील का पेड़।

तीक्ष्णकंटका—संज्ञा स्त्री० [सं० तीक्ष्णकण्टका] एक प्रकार का वृक्ष जिसे कंकारी कहते हैं।

तीक्ष्णकंद—संज्ञा पुं० [सं० तीक्ष्णकन्द] पलांडु। प्याज।

तीक्ष्णक—संज्ञा पुं० [सं०] १. मोखा वृक्ष। २. सफेद सरसों।

तीक्ष्णकर्मा¹—संज्ञा पुं० [सं० तीक्ष्णकर्मन्] उत्साही व्यक्ति [को०]।

तीक्ष्णकर्मा²—वि० उत्साही [को०]।

तीक्ष्णकल्क—संज्ञा पुं० [सं०] तुंबरु वृक्ष।

तीक्ष्णकांता—संज्ञा स्त्री० [सं० तीक्ष्णकान्ता] कालिकापुराण के अनुसार तारा देवी का नाम।

विशेष—इनका ध्यान कृष्णवर्णा, लंबोदरी और एक जटाधारिणी है। इनके पूजन से अभीष्ट का सिद्ध होना माना जाता है।

तीक्ष्णक्षीरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] बंसलोचन।

तीक्ष्णगंध—संज्ञा पुं० [सं० तीक्ष्णगन्ध] १. सहिजन का पेड़। २. लाल तुलसी। ३. लोबान। ४. छोटी इलायची। ५. सफेद तुलसी। ६. कुंदुरु नामक गंधद्रव्य।

तीक्ष्णगंधक—संज्ञा पुं० [सं० तीक्ष्णगन्धक] सहिजन।

तीक्ष्णगंधा—संज्ञा स्त्री० [सं० तीक्ष्णगन्धा] १. श्वेत वच। सफेद वच। २. कंथारी का वृक्ष। ३. राई। ४. जीवंती। ५. छोटी इलायची।

तीक्ष्णतंडुला—संज्ञा स्त्री० [सं० तीक्ष्णतण्डुला] पिप्पली। पीपल।

तीक्ष्णता—संज्ञा स्त्री० [सं०] तीक्ष्ण होने का भाव। तीव्रता। तेजी।

तीक्ष्णताप—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव। शिव।

तीक्ष्णतेल—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तीक्ष्णतैल'।

तीक्ष्णतैल—संज्ञा पुं० [सं०] १. राल। २. सेहुँड़ का दूध। ३. मदिरा। शराब। ४. सरसों का तेल।

तीक्ष्णत्व—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तीक्ष्णता'। उ०—इन दोनों के साधारण धर्म कपिलत्व या तीक्ष्णत्व के होने पर यह उपचार होता है कि अग्नि माणवक है।—संपूर्णा०, अभि० ग्रं०, पृ० ३३६।

तीक्ष्णदंत—संज्ञा पुं० [सं० तीक्ष्णदन्त] वह जानवर जिसके दाँत बहुत तेज या नुकीले हों।

तीक्ष्णदंष्ट्र¹—संज्ञा पुं० [सं०] बाघ।

तीक्ष्णदंष्ट्र²—वि० तेज दाँतोंवाला। जिसके दाँत तेज हों।

तीक्ष्णदृष्टि—वि० [सं०] जिसकी दृष्टि सूक्ष्म से सूक्ष्म बात पर पड़ती हो। सूक्ष्मदृष्टि।

तीक्ष्णधार¹—संज्ञा पुं० [सं०] खड्ग।

तीक्ष्णधार²—वि० जिसकी धार बहुत तेज हो।

तीक्ष्णपत्र¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. तुंबुरु। धनिया। २. एक प्रकार का गन्ना।

तीक्ष्णपत्र²—वि० जिसके पत्तों में तेज धार हो।

तीक्ष्णपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] लवंग। लौंग।

तीक्ष्णपुष्पा—संज्ञा स्त्री० [सं०] केतकी।

तीक्ष्णप्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] जौ।

तीक्ष्णफल¹—संज्ञा [सं०] तुंबुरु। धनिया।

तीक्ष्णफल²—वि० जिसका फल कड़ुआ हो [को०]।

तीक्ष्णफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] राई।

तीक्ष्णबुद्धि—वि० [सं०] जिसकी बुद्धि बहुत तेज हो। कुशाग्रबुद्धिवाला। बुद्धिमान्।

तीक्ष्णमंजरी—संज्ञा स्त्री० [सं० तीक्ष्णमञ्जरी] पान का पौधा।

तीक्ष्णमार्ग—संज्ञा पुं० [सं०] तलवार [को०]।

तीक्ष्णमूल¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुलंजन। २. सहिजन।

तीक्ष्णमूल²—वि० जिसकी जड़ में बहुत तेज गंध हो।

तीक्ष्णरश्मि¹—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य ।

तीक्ष्णरश्मि²—वि० जिसकी किरणें बहुत उग्र हों ।

तीक्ष्णरस¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. यवक्षार । जवाखार । २. शोरा ।

तीक्ष्णरस²—वि० चरपरे रसवाला [को०] ।

तीक्ष्णलौह—संज्ञा पुं० [सं०] इस्पात ।

तीक्ष्णशूक¹—संज्ञा पुं० [सं०] यव । जौ ।

तीक्ष्णशूक²—वि० जिसके टूँड पैने हों [को०] ।

तीक्ष्णशृंग—वि० [सं० तीक्ष्णशृङ्ग] जिसके सींग पैने या नुकीले हों [को०] ।

तीक्ष्णसार—संज्ञा पुं० [सं०] लोहा [को०] ।

तीक्ष्णसारा—संज्ञा स्त्री० [सं०] शीशम का पेड़ ।

तीक्ष्णांशु—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य ।

तीक्ष्णा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वच । २. केवाँच । ३. सर्पकंकाली वृक्ष । ४. बड़ी मालकँगनी । ५. अत्यम्लपर्णी लता । ६. मिर्च । ७. जोंक । ८. तारा देवी का एक नाम ।

तीक्ष्णाग्नि—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रबल जठराग्नि । २. अजीर्ण रोग ।

तीक्ष्णाग्र—वि० [सं०] जिसका अगला भाग तेज या नुकीला हो । पैनी नोकवाला ।

तीक्ष्णायस—संज्ञा पुं० [सं०] इस्पात लोहा ।

तीख(पु)†—वि० [हिं] दे० 'तीखा' । उ०—अनिल अनल वन मलयज बीख । जोन्ह धवल सीतल भेल तीख ।—विद्यापति, पृ० १९९

तीखन(पु)†—वि० [सं० तीक्ष्ण] दे० 'तीक्ष्ण' ।

तीखर—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तीखुर' ।

तीखल—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तीखुर' ।

तीखा¹—वि० [सं० तीक्ष्ण] [वि० स्त्री० तीखी] १. जिसकी धार या नोक बहुत तेज हो । तीक्ष्ण । २. तेज । तीव्र । प्रखर । ३. उग्र । प्रचंड । जैसे, तीखा स्वभाव । ४. जिसका स्वभाव बहुत उग्र हो । जैसे,—(क) तुम तो बड़े तीखे दिखाई पड़ते हो । (ख) यह लड़का बहुत तीखा होगा । ५. जिसका स्वाद बहुत तेज या चरपरा हो । ६. जो वाक्य या बात सुनने में अप्रिय हो । ७. चोखा । बढ़िया । अच्छा । जैसे,—यह कपड़ा उससे तीखा पड़ता है ।

तीखा²—संज्ञा पुं० [हिं०] एक प्रकार की चिड़िया ।

तीखापन—संज्ञा पुं० [हिं० तीखा + पन] पैनापन । तीक्ष्णता [को०] ।

तीखी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तीखा] रेशम फेरनेवालों का काठ का एक औजार जिसके बीच में गज डालकर उसपर रेशम फेरते हैं ।

तीखुर—संज्ञा पुं० [सं० तवक्षीर] हलदी की जाति का एक प्रकार का पौधा जो पूर्व, मध्य तथा दक्षिण भारत में अधिकता से होता है ।

विशेष—अच्छी तरह जोती हुई जमीन में जाड़े के प्रारंभ में इसके कंद गाड़े जाते हैं और बीच बीच में बराबर सिंचाई की जाती है । पूस माघ में इसके पत्ते झड़ने लगते हैं और तब यह पक्का समझा जाता है । उस समय इसकी जड़ खोदकर पानी में खूब धोकर कूटते हैं और इसका सत्त निकालते हैं जो बढ़िया मैदे की तरह होता है । यही सत्त बाजारों में तीखुर के नाम से बिकता है और इसका व्यवहार कई तरह की मिठाइयाँ, लड्डू, सेव, जलेबी आदि बनाने में होता है । हिंदू लोग इसकी गणना 'फलाहार' में करते हैं । इसे पानी में घोलकर दूध में छोड़ने से दूध बहुत गाढ़ा हो जाता है, इसलिये लोग इसकी खीर भी बनाते हैं । अब एक प्रकार का तीखुर विलायत से भी आता है जिसे अराख्ट कहते हैं । वि० दे० 'अराख्ट' ।

तीखुल—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तीखुर' ।

तीच्छन(पु)—वि० [हिं०] दे० 'तीक्ष्ण' । उ०—उत्तमांग नहिं सिधु-बिय करत न तीच्छन दंत ।—प० रासो, पृ०२ ।

तीछन(पु)†—वि० [हिं०] दे० 'तीक्ष्ण' । उ०—कनक कामिनी बड़ी दाऊ है तीछन धारा । तब बचिहै तरबूज रहै छूरी से न्यारा ।—पलटू०, भा०१, पृ०५३ ।

तीछनता(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० तीक्ष्णता] दे० 'तीक्ष्णता' ।

तीछे(पु)—वि० [हिं०] दे० 'तिरछा' । उ०—दूरि तें दूर नजीक तें नीरे हि आवे ते आगे है तीछे तें तीछो ।—सुंदर० ग्रं०, भा०२, पृ०५७७ ।

तीज—संज्ञा स्त्री० [सं० तृतीया] १. प्रत्येक पक्ष की तीसरी तिथि । २. हरतालिका तृतीया । भादों सुदी तीज । वि० दे० 'हरतालिका' । उ०—इंद्रावति मन प्रेम पियारा । पहुँचा आइ तीज तेवहारा ।—इंद्रा०, पृ० ६० ।

तीजना(पु)—क्रि० स० [हिं०] दे० 'तजना' । उ०—मुरिख राजा अपढ़ अयाण हूँ किम चालूँ एकलो ? आ गइ गोरी तीजइ पराँण ।—बी० रासो, पृ०८६ ।

तीजा¹—संज्ञा पुं० [हिं० तीज] मुसलमानों में किसी के मरने के दिन से तीसरा दिन ।

विशेष—इस दिन मृतक के संबंधी गरीबों को रोटियाँ बाँटते और कुछ पाठ करते हैं ।

तीजा²—वि० [वि० स्त्री० तीजी] तीसरा । तृतीय । उ०—के दिन सिरजे गो राही, तीजा कोई नाँहि ।—रज्जब०, पृ०३ ।

तीजापन(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० तीजा + पन (प्रत्य०)] तीसरी अवस्था । उ०—तीजापन में कुटुंब भयो तब अति अभिमान बढ़ायो रे ।—सुंदर० ग्रं०, भा०२, पृ०९९ ।

तीजो(पु)—वि० स्त्री० [हिं०] दे० 'तीजा²' । उ०—ताजी रानी है मनपोई । लज्या कारण न भावै कोई ।—कबीर सा०, पृ० ५५० ।

तीड़ा(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'टिड्डी' । उ०—तीड़ा करसण सूँ रियो, बानरड़ा नूँ बाग ।—बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० ६३ ।

तीड़ी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'टिड्डी' । उ०—मंत्र सकती मंच सूँ, ज्यों तीड़ी ले जाय ।—रा० रू०, पृ० १७६ ।

तीत(पु)†—वि० [सं० तिक्त] दे० 'तीता'। उ०—करिअ विनति सौं एँ आयल जन्हि बिनु विहुसन तीत।—विद्यापति, पृ० १९९।

तीतना(पु)†—क्रि० अ० [हिं०] भीगना। गीला होना। उ०—अलकहि तीतल तेंहि अति सोभा। अलिकुल कमल वेढल मुख लोभा।—विद्यापति, पृ० ३१९।

तीतर—संज्ञा पुं० [सं० तित्तिर] एक प्रसिद्ध पक्षी जो समस्त एशिया और यूरोप में पाया जाता है और जिसकी एक जाति अमेरिका में भी होती है।

विशेष—यह दो प्रकार का होता है और केवल सोने के समय को छोड़कर बराबर इधर उधर चलता रहता है। यह बहुत तेज दौड़ता है और भारत में प्रायः कपास, गेहूँ या चावल के खेतों में जाल में फँसाकर पकड़ा जाता है। इसका घोसला जमीन पर ही होता है और इसके अंडे चिकने और धब्बेदार होते हैं। लोग इसे लड़ाने के लिये पालते, इसका शिकार करते और मांस खाते हैं। वैद्यक में इसके मांस को रुचिकारक, लघु, वीर्य-बल-वर्धक, कषाय, मधुर, ठंढा और श्वास, कास, ज्वर तथा त्रिदोषनाशक माना है। भावप्रकाश के अनुसार काले तीतर के मांस की अपेक्षा चितकबरे तीतर का मांस अधिक उत्तम होता है।

तीता[1]—वि० [सं० तिक्त] १. जिसका स्वाद तीखा और चरपरा हो। तिक्त। जैसे, मिर्च।

विशेष—यद्यपि प्राचीनों ने तिक्त और कटु में भेद माना है, पर आजकल साधारण बोलचाल में 'तीता' और 'कडुआ' दोनों 'शब्दों' का एक ही अर्थ में व्यवहार होता है। कुछ प्रांतों में केवल 'कड़ुआ' शब्द का व्यवहार होता है और उससे तात्पर्य भी बहुधा एक ही रस का होता है। जिन प्रांतों में 'तीता' और 'कड़ुआ' दोनों शब्दों का व्यवहार होता है, वहाँ भी इन दोनों में कोई विशेष भेद नहीं माना जाता।

२. कड़ुआ। कटु।

तीता[2]—संज्ञा पुं० [देश०] १. जोतने बोने की जमीन का गीलापन। २. ऊसर भूमि। ३. ढेकी या रहट का अगला भाग। ४. ममीरे के झाड़ का एक नाम।

तीता[3]—वि० [हिं०] भीगा हुआ। गीला। नम।

तीति(पु)†—वि० स्त्री० [हिं० तीत] तिक्त। उ०—आजु रसलि काजि जबे बेबसलि तीति होइति मधु यामिनि रे।—विद्यापति, पृ० ६८।

तीतिर(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तीतर'। उ०—······तीतिर को शौक के वास्ते घुमाया करते हैं।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ४१।

तीती(पु)—वि० [हिं०] दे० 'तीता'। उ०—उद्धव और सुनी है कथा पथ, पाए हैं स्याम वहाँ कोऊ तीती।—नट०, पृ० ३५।

तीतुरो(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० तीतर] दे० 'तीतर'।

तीतुरी(पु)†[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तल्ली'।

तीतुरी(पु)[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० तीतर] मादा तीतर। तीतरी। उ०—हंसा हुरेई बाजि। तीतुरिय तांबी साजि।—ह० रासो, पृ० १२५।

तीतुल(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] [स्त्री० तीतुली] दे० 'तीतर'।

तीन[1]—वि० [सं० त्रीणि] जो दो और एक हो। जो गिनती में चार से एक कम हो।

तीन[2]—संज्ञा पुं० १. दो और चार के बीच की संख्या। दो और एक का जोड़। २. उक्त संख्यासूचक अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है - ३।

यौ०—तीन ताग = जनेऊ। यज्ञोपवीत। उ०—ना में तीन ताग गलि नाऊँ। ना मै सुनत करि बोराऊँ।—सुंदर० ग्रं०, भा० १ (भू०), पृ० ४८।

मुहा०—तीन पाँच करना = इधर उधर करना। घुमाव फिराव या हुज्जत की बात करना।

तीन[3]—संज्ञा पुं० सरयूपारी ब्राह्मणों में तीन गोत्रों का एक वर्ग।

विशेष—सरजूपारी ब्राह्मणों में सोलह गोत्र होते हैं जिनमें से तीन गोत्रवालों का उत्तम वर्ग है और तेरह गोत्रवालों का दूसरा वर्ग है।

मुहा०—तीन तेरह करना = तितर बितर करना। इधर उधर छितराना या अलग अलग करना। उ०—कियो तीन तेरह सबै चौका चौका लाय।—हरिश्चंद्र (शब्द०)। न तीन में, न तेरह में = जो किसी गिनती में न हो। जिसे कोई पूछता न हो। उ०—कुंभ कान राम कहाँ पैये मोतें बानराय छद्र तुम मारे हैं न तेरह न तीन में।—हनुमान (शब्द०)।

तीन[4]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] तिन्नी का चावल।

तीनपान—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बहुत मोटा रस्सा जिसकी मोटाई कम से कम एक फुट होती है (लश०)।

तीनपाम—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तीनपान'।

तीनलड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तीन + लड़ी] गले में पहनने की एक प्रकार की माला जिसमें तीन लड़ियाँ होती हैं। तिलड़ी।

तीनि(पु)†[1]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तीन'

तीनि(पु)[2]—वि० [हिं०] दे० 'तीन'। उ०—बर बरनी, तरुनी रंग भीनी। दासी तीनि तीनि सत दीनी।—नंद० ग्रं०, पृ० २२१।

तीनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तिन्नी] तिन्नी का चावल।

तीपड़ा—संज्ञा पुं० [देश०] रेशमी कपड़ा बुननेवालों का एक औजार जिसके नीचे ऊपर दो लकड़ियाँ लगी रहती हैं जिन्हें बेसर कहते हैं।

तीमार—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] रोगी की देखभाल। सेवा शुश्रूषा [को०]।

तीमारदार—वि० [फ़ा०] परिचर्या करनेवाला। उ०—पड़िए गर बीमार तो कोई न हो तीमारदार। और अगर मर जाइए तो नौहाख्वाँ कोई न हो।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ४७१।

तीमारदारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] रोगियों की सेवा शुश्रूषा का काम।

तीय(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] स्त्री। औरत। नारी। उ०—पति देवता तीय जगधन धन गावत बेद पुरान।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ६७९।

तीय(पु)—वि० [सं० तृतीय] तीसरा।

तीया[1]Ⓟ—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दे० 'तीय'।

तीया[2]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तिक्की' या 'तिड़ी'।

तीरंदाज—संज्ञा पुं० [फ़ा० तीरंदाज] वह जो तीर चलाता हो। तीर चलानेवाला।

तीरंदाजी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० तीरंदाजी] तीर चलाने की विद्या या क्रिया।

तीर[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. नदी का किनारा। कूल। तट। उ०—बिच बिच कथा बिचित्र बिभागा। जनु सरि तीर तीर बन बागा।—मानस, १।४०।

२. पास। समीप। निकट।

विशेष—इस अर्थ में इसका उपयोग विभक्ति का लोप करके क्रियाविशेषण की तरह होता है।

३. सीसा नामक धातु। ४. राँगा। ५. गंगा का तट (को०)। ६. एक प्रकार का बाण (को०)।

तीर[2]—संज्ञा पुं० [फ़ा०] बाण। शर। उ०—तीरों उपर तीर सहि, सेलाँ उपर सेज।—हम्मीर०, पृ० ४८।

विशेष—यद्यपि पंचदशी आदि कुछ आधुनिक ग्रंथों में तीर शब्द बाण के अर्थ में आया है, तथापि यह शब्द वास्तव में है फारसी का।

क्रि० प्र०—चलाना।—छोड़ना।—फेंकना।—लगना।

मुहा०—तीर चलाना = युक्ति भिड़ाना। रंग ढंग लगाना। जैसे,—तीर तो गहरा चलाया था, पर खाली गया। तीर फेंकना = दे० = 'तीर चलाना'। लगे तो तीर नहीं तो तुक्का = कार्यसिद्धि पर ही साधन की उपयोगिता है।

तीर[3]—संज्ञा पुं० [?] जहाज का मस्तूल।

तीर[4]—वि० [हिं० तिरना (= पार करना)] पारंगत। जानकार। उ०—बादशाह करे जिकीर सच्च हिंदू फकीर। ब्रह्मज्ञान मे तीर रणधीर आए हैं।—दक्खिनी०, पृ० ५०।

तीरकसⓅ—संज्ञा पुं० [फा० तीरकश] तरकश। उ०—लिए लगाइ तीरकस भारे।—हम्मीर०, पृ० ३०।

तीरकारीⓅ—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० तीर + कारी] बाणों की वर्षा। उ०—भई तीरकारी छुटे नाल बानं। परी सोर की धुंध सुभझै न आनं।—पृ० रा०, १।४५१।

तीरगर—संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह जो तीर बनाता हो। तीर बनानेवाला कारीगर। उ०—गुरु कीन्हों इक्कीसवों ताहि तीरगर जान।—मनविरक्त०, पृ० २६७।

तीरज—संज्ञा पुं० [सं०] किनारे पर का वृक्ष (को०)।

तीरण—संज्ञा पुं० [सं०] करंज।

तीरथ—संज्ञा पुं० [सं० तीर्थ] दे० 'तीर्थ'। उ०—तीरथ अनादि पंचगंगा मणीकर्निकादि सात आवरण मध्य पुन्य रूपी धसी है।—भारतेंदु ग्रं० भा० १, पृ० २८१।

विशेष—तीरथ के यौगिक शब्दों के लिये दे० 'तीर्थ' के यौगिक शब्द।

तीरथपतिⓅ—संज्ञा पुं० [हिं० तीरथ + पति] तीर्थराज। प्रयाग। उ०—माघ मकर गत रबि जब होई। तीरथपतिहि आव सब कोई।—मानस, १।४४।

तीरभुक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा, गंडकी और कौशिकी इन तीन नदियों से घिरा हुआ तिरहुत देश।

तीरवर्ती—वि० [सं० तीरवर्तिन्] १. तट पर रहनेवाला। किनारे पर रहनेवाला। २ समीप रहनेवाला। पास रहनेवाला। पड़ोसी। ३. तीरस्थ। तीर पर स्थित।

तीरस्थ—संज्ञा पुं० [सं०] १ नदी के तीर पहुँचाया हुआ मरणासन्न व्यक्ति।

विशेष—अनेक जातियों में यह प्रथा है कि रोगी जब मरने को होता है, तब उसके संबंधी पहले ही उसे नदी के तीर पर ले जाते हैं; क्योंकि धार्मिक दृष्टि से नदी के तीर पर मरना अधिक उत्तम समझा जाता है।

२. तीर पर स्थित। तीर पर बसा हुआ।

तीराⓅ†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तीर'।

तीराट—संज्ञा पुं० [सं०] लोध।

तीरित—वि० [सं०] निर्णय किया हुआ। तै किया हुआ (को०)।

तीरित[2]—संज्ञा पुं० १. कार्य की पूर्णता या समाप्ति। २. रिश्वत या अन्य साधनों से दंडित होने से बचना (को०)।

तीरु—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिव। महादेव। २. शिव की स्तुति।

तीर्ण—वि० [सं०] १. जो पार हो गया हो। उत्तीर्ण। २. जो सीमा का उल्लंघन कर चुका हो। ३. जो भीगा हुआ हो। तरबतर।

तीर्णपदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] तालमूल। मुसली।

तीर्णपदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'तीर्णपदा'।

तीर्णप्रतिज्ञ—वि० [सं०] जो अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर चुका हो (को०)।

तीर्णा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में एक नगण और एक गुरु (।।।ऽ) होता है। इसको 'सती', 'तिन्न' और 'तरणिजा' भी कहते हैं। जैसे, नगपती। बनसती। शिव कहो। सुख लहो।

तीर्थंकर—संज्ञा पुं० [सं० तीर्थङ्कर] १. जैनियों के उपास्य देव जो देवताओं से भी श्रेष्ठ और सब प्रकार के दोषों से रहित, मुक्त और मुक्तिदाता माने जाते हैं। इनकी मूर्तियाँ दिगंबर बनाई जाती हैं और इनकी आकृति प्रायः बिलकुल एक ही होती है। केवल उनका वर्ण और उनके सिंहासन का आकार ही एक दूसरे से भिन्न होता है।

विशेष—गत उत्सर्पिणी में चौबीस तीर्थंकर हुए थे जिनके नाम ये हैं—१. केवलज्ञानी। २. निर्वाणी। ३. सागर। ४. महाशय। ५. विमलनाथ। ६. सर्वानुभूति। ७. श्रीधर। ८. दत्त। ९. दामोदर। १०. सुतेज। ११. स्वामी। १२. मुनिसुव्रत। १३. सुमति। १४. शिवगति। १५. अस्ताग। १६. नेमीश्वर। १७ अनल। १८. यशोधर। १९. कृतार्थ। २०. जिनेश्वर। २१. शुद्धमति। २२. शिवकर। २३. स्यंदन और। २४. संप्रति। वर्तमान अवसर्पिणी के आरंभ में जो चौबीस तीर्थंकर हो गए हैं उनके नाम ये हैं—

१. ऋषभदेव । २. अजितनाथ । ३. संभवनाथ । ४. अभिनंदन । ५. सुमतिनाथ । ६. पद्मप्रभ । ७. सुपार्श्वनाथ । ८. चंद्रप्रभ । ९. सुबुधिनाथ । १०. शीतलनाथ । ११. श्रेयांसनाथ । १२. वासुपूज्य स्वामी । १३. विमलनाथ । १४. अनंतनाथ । १५. धर्मनाथ । १६. शांतिनाथ । १७. कुंथुनाथ । १८. अमरनाथ । १९. मल्लिनाथ । २०. मुनि सुव्रत । २१. नमिनाथ । २२. नेमिनाथ । २३. पार्श्वनाथ । २४. महावीर स्वामी । इनमें से ऋषभ, वासुपूज्य और नेमिनाथ की मूर्तियाँ योगाभ्यास में बैठी हुई और बाकी सब की मूर्तियाँ खड़ी बनाई जाती हैं ।

२. विष्णु (को०) । ३. शास्त्रकर्ता (को०) ।

तीर्थंकृत्—संज्ञा पुं० [सं० तीर्थङ्कृत्] १. जैनियों के देवता । जिन । २. शास्त्रकार ।

तीर्थ[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह पवित्र वा पुण्य स्थान जहाँ धर्मभाव से लोग यात्रा, पूजा या स्नान आदि के लिये जाते हों । जैसे, हिंदुओं के लिये काशी, प्रयाग, जगन्नाथ, गया, द्वारका आदि; अथवा मुसलमानों के लिये मक्का और मदीना ।

विशेष—हिंदुओं के शास्त्रों मे तीर्थ तीन प्रकार के माने गए हैं,—(१) जंगम; जैसे, ब्राह्मण और साधु आदि; (२) मानस; जैसे, सत्य, क्षमा, दया, दान, संतोष, ब्रह्मचर्य, ज्ञान, धैर्य, मधुर भाषण आदि; और (३) स्थावर; जैसे, काशी, प्रयाग, गया आदि । इस शब्द के अंत में 'राज', 'पति' अथवा इसी प्रकार का और शब्द लगाने से 'प्रयाग' अर्थ निकलता है,—तीर्थराज या तीर्थपति = प्रयाग । तीर्थ जाने अथवा वहाँ से लौट आने के समय हिंदुओं के शास्त्रों में सिर मुँड़ाकर श्राद्ध करने और ब्राह्मणों को भोजन कराने का भी विधान है ।

२. कोई पवित्र स्थान । ३. हाथ में के कुछ विशिष्ट स्थान ।

विशेष—दाहिने हाथ के अँगूठे का ऊपरी भाग ब्रह्मतीर्थ, अँगूठे और तर्जनी का मध्य भाग पितृतीर्थ, कनिष्ठा उँगली के नीचे का भाग प्राजापत्य तीर्थ और उँगलियों का अगला भाग देवतीर्थ माना जाता है'। इन तीर्थों से क्रमशः आचमन, पिंडदान, पितृकार्य और देवकार्य किया जाता है ।

४. शास्त्र । ५. यज्ञ । ६. स्थान । स्थल । ७. उपाय । ८. अवसर । ९. नारीरज । रजस्वला का रक्त । १०. अवतार । ११. चरणामृत । देव-स्नान-जल । १२. उपाध्याय । गुरु । १३. मंत्री । अमात्य । १४ योनि । १५. दर्शन । १६. घाट । १७. ब्राह्मण । विप्र । १८. निदान । कारण । १९. अग्नि । २०. पुण्यकाल । २१. संन्यासियों की एक उपाधि । २२. वह जो तार दे । तारनेवाला । २३. वैरभाव को त्यागकर परस्पर उचित व्यवहार । २४. ईश्वर । ५. माता पिता । २६. अतिथि । मेहमान । २७. राष्ट्र की अठारह संपत्तियाँ ।

विशेष—राष्ट्र की इन अठारह संपत्तियों के नाम हैं,—(१) मंत्री, (२) पुरोहित, (३) युवराज, (४) भूपति, (५) द्वारपाल, (६) अंतर्वंसिक, (७) कारागाराध्यक्ष, (८) द्रव्यसंचयकारक, (९) कृत्याकृत्य अर्थ का विनियोजक, (१०) प्रदेष्टा, (११) नगराध्यक्ष, (१२) कार्य निर्माणकारक, (१३) धर्माध्यक्ष, (१४) सभाध्यक्ष, (१५) दंडपाल, (१६) दुर्गपाल, (१७) राष्ट्रांतपाल और (१८) अटवीपाल ।

२८. मार्ग । पथ (को०) । २९. जलाशय (को०) । ३०. साधना । माध्यम (को०) । ३१. स्रोत । मूल (को०) । ३२. मंत्रणा । परामर्श । जैसे कृततीर्थ = जो मंत्रणा कर चुका हो । ३३. चात्वाल और उत्कर के बीच का वेदी का पथ (को०) ।

तीर्थ[2]—वि० १. पवित्र । पावन । पूत । २. मुक्त करनेवाला । रक्षक [को०] ।

तीर्थक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. ब्राह्मण । उ०—युवांगचांग कहते हैं कि मिथ्यादृष्टि के तीर्थक भी ऐसा ही कहते हैं ।—संपूर्णा० अभि० ग्रं०, पृ० ३५४ । २. तीर्थंकर । ३. वह जो तीर्थों की यात्रा करता हो ।

तीर्थक[2]—वि० १. पवित्र । २. पूज्य [को०] ।

तीर्थकमंडलु—संज्ञा पुं० [सं० तीर्थकमण्डलु] वह कमंडल जिसमें तीर्थजल हो [को०] ।

तीर्थकर—संज्ञा पुं० [सं०] १. विष्णु । २. जिन । ३. शास्त्रकार (को०) ।

तीर्थकाक—संज्ञा पुं० [सं०] १. तीर्थ का कौवा । २. अत्यंत लोभी व्यक्ति [को०] ।

तीर्थकृत्—संज्ञा पुं० [सं०] १. जिन । २. शास्त्रकार [को०] ।

तीर्थचर्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] तीर्थयात्रा [को०] ।

तीर्थदेव—संज्ञा पुं० [सं०] शिव । महादेव ।

तीर्थपति—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तीर्थराज' ।

तीर्थपाद्—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु ।

तीर्थपादीय—संज्ञा पुं० [सं०] वैष्णव ।

तीर्थपुरोहित—संज्ञा पुं० [सं०] तीर्थ का पंडा [को०] ।

तीर्थयात्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पवित्र स्थानों में दर्शन स्नानादि के लिये जाना । तीर्थाटन ।

तीर्थराज—संज्ञा पुं० [सं०] प्रयाग ।

तीर्थराजि—संज्ञा स्त्री० [सं०] काशी [को०] ।

तीर्थराजी—संज्ञा स्त्री० [सं०] काशी ।

विशेष—काशी में सब तीर्थ है, इसी से यह नाम पड़ा है ।

तीर्थवाक—संज्ञा पुं० [सं०] सिर के बाल [को०] ।

तीर्थवायस—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तीर्थकाक' [को०] ।

तीर्थविधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] तीर्थ में करणीय कार्य । जैसे, क्षौरकर्म [को०] ।

तीर्थशिला—संज्ञा स्त्री० [सं०] घाट तक जानेवाली पत्थर की सीढ़ियाँ [को०] ।

तीर्थशौच—संज्ञा पुं० [सं०] तीर्थस्थल पर घाट आदि का परिष्कार करने या कराने की क्रिया [को०] ।

तीर्थसेनि—संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्तिकेय की एक मातृका का नाम ।

तीर्थसेवी[1]—वि० [सं० तीर्थसेविन्] धार्मिक भाव से तीर्थ में रहनेवाला [को०] ।

तीर्थसेवी[2]—संज्ञा पुं० बगुला [को०] ।

तीर्थाटन—संज्ञा पुं० [सं०] तीर्थयात्रा ।

तीर्थिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. तीर्थ का ब्राह्मण । पंडा । २. बौद्धों के अनुसार बौद्धधर्म का विद्वेषी ब्राह्मण । ३. तीर्थंकर ।

तीर्थिया—संज्ञा पुं० [सं० तीर्थ + हिं० इया (प्रत्य०)] तीर्थंकरों को माननेवाला, जैनी ।

तीर्थीभूत—वि० [सं०] १. पवित्र । शुद्ध । २. पूज्य [को०] ।

तीर्थोदक—संज्ञा पुं० [सं०] तीर्थ का पवित्र जल [को०] ।

तीर्थ्य[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक रुद्र का नाम । २. सहपाठी ।

तीर्थ्य[2]—वि० तीर्थ से संबंधित [को०] ।

तीर्न—संज्ञा पुं० [सं० तीर्ण] दे० 'तीर्ण' ।

तील⑤—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तिल' । उ०—उलटि तील तेल धरंगे नीर धरंगे बाई । नाद बिंद पाँठी पड़िगा मनवा कहीं न जाई । —रामानंद०, पृ० १५ ।

तीलखा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की चिड़िया ।

तीला—संज्ञा पुं० [फ़ा० तीर] तिनका । विशेषत: बड़ा तिनका ।

तीली—संज्ञा स्त्री० [फा० ती(= बाण)] १. बड़ा तिनका । सीक । २. धातु आदि का पतला, पर कड़ा तार । ३. करघे में ढरकी की वह सींक जिसमें नरी पहनाई जाती है । ४. तीलियों की वह कूँची जिससे जुलाहे सूत साफ करते हैं । ५. पटवों का वह औजार जिससे वे रेशम लपेटते हैं । इसमें लोहे का एक तार होता है जिसके एक सिरे पर लकड़ी का एक गोल टुकड़ा लगा रहता है ।

तीव⑤‡—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री] स्त्री । औरत ।

तीवइ⑤—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तीव' । उ०—तीवइ कँवल सुगंध सरीर । समुद लहरि सोहि तन चीर ।—जायसी (शब्द०) ।

तीवन†—संज्ञा पुं० [सं० तेमन (= व्यंजन)] १. पकवान । २. रसेदार तरकारी ।

तीवर—संज्ञा पुं० [सं०] १. समुद्र । २. व्याध । शिकारी । ३. धीवर । मछुआ । ४. एक वर्णसंकर अंत्यज जाति ।

विशेष—यह ब्रह्मवैवर्त पुराण के अनुसार राजपूत माता और क्षत्रिय पिता के गर्भ से तथा पराशर के मत से राजपूत माता और चूर्णक पिता के गर्भ से उत्पन्न है । कुछ लोग तीवर और धीवर को एक ही मानते हैं । स्मृति के अनुसार तीवर को स्पर्श करने पर स्नान करने की आवश्यकता होती है ।

तीव्र[1]—वि० [सं०] १. अतिशय । अत्यंत । २ तीक्ष्ण । तेज । ३. बहुत गरम । ४ नितांत । बेहद । ५ कटु । कड़ुवा । ६. दु:सह । असह्य । न सहने योग्य । ७ प्रचंड । ८. तीखा । ६. वेगयुक्त । तेज । १० कुछ ऊँचा और अपने स्थान से बढ़ा हुआ (स्वर) ।

विशेष—संगीत में ५ स्वरों—ऋषभ, गांधार, मध्यम, धैवत और निषाद के तीव्र रूप होते हैं । वि० दे० 'कोमल' ।

तीव्र[2]—संज्ञा पुं० १. लोहा । २. इस्पात । ३. नदी का किनारा । ४. शिव । महादेव ।

तीव्रकंठ—संज्ञा पुं० [सं० तीव्रकण्ठ] सूरन । जमीकंद । ओल ।

तीव्रकंद—संज्ञा पुं० [सं० तीव्रकन्द] सूरन [को०] ।

तीव्रगंधा—संज्ञा स्त्री० [सं० तीव्रगन्धा] अजवायन । यवानी ।

तीव्रगंधिका—संज्ञा स्त्री० [सं० तीव्रगन्धिका] दे० 'तीव्रगंधा' ।

तीव्रगति[1]—संज्ञा स्त्री०, पुं० [सं०] वायु । हवा ।

तीव्रगति[2]—वि० तेज चालवाला [को०] ।

तीव्रगामी—वि० [सं० तीव्रगामिन्] [वि० स्त्री० तीव्रगामिनी] तेज गतिवाला । तेज चाल का ।

तीव्रज्वाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] धव का फूल जिसके छूने से जोप कहते हैं, शरीर में घाव हो जाता है ।

तीव्रता—संज्ञा स्त्री० [सं०] तीव्र का भाव । तीक्ष्णता । तेजी । तीखापन । प्रखरता ।

तीव्रद्युति—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य [को०] ।

तीव्रबंध—संज्ञा पुं० [सं० तीव्रबन्ध] तमोगुण [को०] ।

तीव्रवेदना—संज्ञा पुं० [सं०] अत्यधिक पीड़ा । भयंकर दु:ख [को०] ।

तीव्रसंवेग—वि० [सं०] दृढ़ निश्चयवाला । अटल [को०] ।

तीव्रसव—संज्ञा पुं० [सं०] एक दिन में होनेवाला एक प्रकार का यज्ञ ।

तीव्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. षड्ज स्वर की चार श्रुतियों में से पहली श्रुति । २. मदकारिणी । खुरासानी अजवायन । ३. राई । ४ जौहर वृक्ष । ५ तुलसी । ६. बड़ी मालकँगनी । ७. कुटकी । ८. तरवी वृक्ष ।

तीव्रानंद—संज्ञा पुं० [सं० तीव्रानन्द] महादेव । शिव [को०] ।

तीव्रानुराग—संज्ञा पुं० [सं०] १. जैनियों के अनुसार एक प्रकार का अतिचार । परस्त्री या पर पुरुष से अत्यंत अनुराग करना अथवा काम की वृद्धि के लिये अफीम, कस्तूरी आदि खाना । २. अत्यधिक प्रेम (को०) ।

तीस[1]—वि० [सं० त्रिंशति, पा० तीसा] जो गिनती में उनतीस के बाद और इकतीस के पहले हो । जो दस का तिगुना हो । बीस और दस ।

यौ०—तीसों दिन या तीस दिन = सदा । हमेशा । तीसमार खाँ = बहुत वीर । बड़ा बहादुर (व्यंग्य) ।

तीस[2]—संज्ञा पुं० दस की तिगुनी संख्या जो अंकों में इस प्रकार लिखी जाती है —३० ।

तीस[3]—संज्ञा पुं० [?] आमलकी । उ०—रंजि बिपन बाटिका तीस द्रुम छाँह रखति तह ।—पृ० रा०, २५ । ३ ।

तीसना⑤† —क्रि० अ० [हिं०] दे० 'टीसना' ।

तीसर[1]—वि० [हिं०] दे० 'तीसरा' । उ०—तब शिव तीसर नयन उघारा । चितवत काम भयउ जरि छारा ।—मानस, १।८७ ।

तीसर[२]—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ तीसरा] खेत की तीसरी जुताई।

तीसरा—वि॰ [हिं॰ तीन+सरा (प्रत्य॰)] १. क्रम में तीन के स्थान पर पड़नेवाला। जो दो के उपरांत हो। जिसके पहले दो और हों। उ॰—दूसरे तीसरे पाँचमें सातमें आठमें तो भला आइबो कीजिए।—ठाकुर॰, पृ॰ २। २. जिसका प्रस्तुत विषय से कोई संबंध न हो। संबंध रखनेवालों से भिन्न, कोई और। जैसे,—न हमारी बात, न तुम्हारी बात, तीसरा जो कहे, वही हो।

यौ॰—तीसरा पहर=दोपहर के बाद का समय। दिन का तीसरा पहर। अपराह्न।

तीसवाँ—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ तीस+वाँ (प्रत्य॰)] क्रम में तीस के स्थान पर पड़नेवाला। जो उनतीस के उपरांत हो। जिसके पहले उनतीस और हों।

तीसी[१]—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ अतसी] अतसी नामक तेलहन। वि॰ दे॰ 'अलसी'।

तीसी[२]—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ तीस+ई (प्रत्य॰)] १. फल आदि गिनने का एक मान जो तीस गाहियों अर्थात् एक सौ पचास का होता है। २. एक प्रकार की छेनी जिससे लोहे की थालियों आदि पर नकाशी करते हैं।

तीहा†[१]—संज्ञा पुं॰ [सं॰ तुष्टि ?] १. तसल्ली। आश्वासन। २. धैर्य। धीरता। ३. संतोष।

तीहा[२]—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ तिहाई] तिहाई। जैसे, आधा तीहा।

विशेष—इसका प्रयोग समास ही में होता है।

तुंⓅ—सर्व॰ [हिं॰] दे॰ 'तुम'। उ॰—तुं धाता करतार तुं भरता हुरता देव।—पृ॰ रा॰, ६।२१।

तुंग[१]—वि॰ [सं॰ तुङ्ग] १. उन्नत। ऊँचा। उ॰—सारा पर्वत ग्राम तुंग सरल सदाहरित देवदारुओं से ढँका था।—किन्नर॰, पृ॰ ४२। २. उग्र। प्रचंड। उ॰—तुंग फकीर बादशाह सुल्तानै सिर सिर हुकुम चलावै।—प्राण॰, पृ॰ २६३। ३. प्रधान। मुख्य।

तुंग[२]—संज्ञा पुं॰ १. पुन्नाग वृक्ष। २. पर्वत। पहाड़। ३. नारियल। ४. किंजल्क। कमल का केसर। ५. शिव। ६. बुध ग्रह। ७. ग्रहों की उच्च राशि। दे॰ 'उच्च'। ८. एक वर्णवृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में दो नगण और दो गुरु होते हैं। जैसे,—न नग गहु बिहारी। कहत अहि पियारी। ६. एक छोटा झाड़ या पेड़ जो सुलेमान पहाड़ तथा पश्चिमी हिमालय पर कुमाऊँ तक होता है।

विशेष—इसकी लकड़ी, छाल और पत्ती रँगने और चमड़ा सिझाने के काम में आती है। इसकी लकड़ी से यूरोप में तसवीरों के नक्काशीदार चौखटे आदि भी बनते हैं। हिमालय पर पहाड़ी लोग इसकी टहनियों के टोकरे भी बनाते हैं। यह पेड़ समक या समाक जाति का है। इसे आमी, दरँगड़ी और परंडो भी कहते हैं।

१०. सिंहासन (को॰)। ११. चतुर या निपुण व्यक्ति (को॰)। १२. वृष। झुंड। समूह (को॰)।

तुंगक—संज्ञा पुं॰ [सं॰ तुङ्गक] १. पुन्नाग वृक्ष। नागकेसर। २. महाभारत के अनुसार एक तीर्थ।

विशेष—पहले यहीं सारस्वत मुनि ऋषियों को वेद पढ़ाया करते थे। एक बार जब वेद नष्ट हो गए, तब अंगिरा के पुत्र ने एक 'ओ३म्' शब्द का उच्चारण किया। इस शब्द के उच्चारण के साथ ही भूला हुआ सब वेद उपस्थित हो गया। इस घटना के उपलक्ष्य में इस स्थान पर ऋषियों और देवताओं ने बड़ा भारी यज्ञ किया था।

तुंगता—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ तुङ्गता] ऊँचाई।

तुंगत्व—संज्ञा पुं॰ [सं॰ तुङ्गत्व] उच्चता। ऊँचाई।

तुंगनाथ—संज्ञा पुं॰ [सं॰ तुङ्गनाथ] हिमालय पर एक शिवलिंग और तीर्थस्थान।

तुंगनाभ—संज्ञा पुं॰ [सं॰ तुङ्गनाभ] सुश्रुत के अनुसार एक कीड़ा जो विषैले जंतुओं में गिनाया गया है। इसके काटने से जलन और पीड़ा होती है।

तुंगनास—वि॰ [सं॰ तुङ्गनास] लंबी नाकवाला (को॰)।

तुंगबाहु—संज्ञा पुं॰ [सं॰ तुङ्गबाहु] तलवार के ३२ हाथों में से एक।

तुंगबीज—संज्ञा पुं॰ [सं॰ तुङ्गबीज] पारा (को॰)।

तुंगभद्र—संज्ञा पुं॰ [सं॰ तुङ्गभद्र] मतवाला हाथी।

तुंगभद्रा—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ तुङ्गभद्रा] दक्षिण की एक नदी जो सह्याद्रि पर्वत से निकलकर कृष्णा नदी में जा मिली है।

तुंगमुख—संज्ञा पुं॰ [सं॰ तुङ्गमुख] गैंडा (को॰)।

तुंगरस—संज्ञा पुं॰ [सं॰ तुङ्गरस] एक प्रकार का गंधद्रव्य (को॰)।

तुंगला—संज्ञा पुं॰ [देश॰] एक प्रकार की छोटी झाड़ी जो पश्चिमी हिमालय में ५००० फुट की ऊँचाई तक पाई जाती है।

विशेष—गढ़वाल में लोग इसकी पत्तियों का तमाकू या सुरती के स्थान पर व्यवहार करते हैं। इसके फल खट्टे होते हैं और इमली की तरह काम में लाए जाते हैं।

तुंगवेणा—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ तुङ्गवेणा] महाभारत के अनुसार एक नदी जिसका नाम महानदी, (वेण गंगा) आदि के साथ आया है। कदाचित् यह तुंगभद्रा का दूसरा नाम हो।

तुंगा—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ तुङ्गा] १. वंशलोचन। २. शमी वृक्ष। ३. तुंग नामक वर्णवृत्त। ४. मैसूर की एक नदी (को॰)।

तुंगारण्य—संज्ञा पुं॰ [सं॰ तुङ्गारण्य] झाँसी से ६ कोस ओड़छा के पास का एक जंगल। इस स्थान पर एक मंदिर है और मेला लगता है। यह बेतवा नदी के तट पर है। उ॰—नदी बेतवै तीर जहँ तीरथ तुंगारन्य। नगर ओड़छो तहँ बसै धरनी तल में धन्य।—केशव (शब्द॰)।

तुंगारन्यⓅ†—संज्ञा पुं॰ [सं॰ तुङ्गारण्य] दे॰ 'तुंगारण्य'।

तुंगारि—संज्ञा पुं॰ [सं॰ तुङ्गारि] सफेद कनेर का पेड़।

तुंगिनी—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ तुङ्गिनी] महा शतावरी। बड़ी सतावर।

तुंगिमा—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ तुङ्गिमन्] तुंगता। ऊँचाई (को॰)।

तुंगी[१]—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ तुङ्गी] १. हलदी। २. रात्रि। ३. वनतुलसी। बबई। ममरी।

तुंगी[२]—वि० [सं० तुङ्गिन्] ऊँचा [को०]।

तुंगी[३]—संज्ञा पुं० ऊँचाई पर स्थित ग्रह [को०]।

तुंगीनास—संज्ञा पुं० [सं० तुङ्गीनास] दे० 'तुंगनाभ'।

तुंगीपति—संज्ञा पुं० [सं० तुङ्गीपति] चंद्रमा।

तुंगीश—संज्ञा पुं० [सं० तुङ्गीश] १. शिव। २. कृष्ण। ३. सूर्य।

तुंज[१]—संज्ञा पुं० [सं० तुञ्ज] १. वज्र। २. आघात। धक्का (को०)। ३. आक्रमण (को०)। ४. राक्षस (को०)। ५. दान देना (को०)। ६. दबाव। दाब (को०)।

तुंज[२]—वि० दुष्ट। फितरती। हानिकर [को०]।

तुंजाल—संज्ञा पुं० [सं० तुरङ्ग + जाल] एक प्रकार का जाल जो घोड़ों के ऊपर उन्हें मक्खियों आदि से बचाने के लिये डाला जाता है। इसके नीचे फुंदने भी लगते हैं।

तुंजीन—संज्ञा पुं० [सं० तुञ्जीन] काश्मीर देश के कई प्राचीन राजाओं का नाम जिनका वर्णन राजतरंगिणी में है।

तुंड—संज्ञा पुं० [सं० तुण्ड] १. मुख। मुँह। उ०—दो दो दृढ़ रद दंड दबाकर निज तुंडों में।—साकेत, पृ० ४१३। २. चंचु। चोंच। ३. निकला हुआ मुँह। थूथन। ४. तलवार का अगला हिस्सा। खांग का अग्र भाग। उ०—फुट्टंत कपाल कहूँ गज मुंड। तुट्टंत कहूँ तरवारिन तुंड।—सूदन (शब्द०)। ५ शिव। महादेव। ६. एक राक्षस का नाम। ७. हाथी की सूँड़ (को०)। ८. हथियार की नोक (को०)।

तुंडकेरिका—संज्ञा स्त्री० [सं० तुण्डकेरिका] कपास वृक्ष।

तुंडकेरी—संज्ञा स्त्री० [सं० तुण्डकेरी] १. कपास। २. कुंदरू। बिंबाफल।

तुंडकेशरी—संज्ञा पुं० [सं० तुण्डकेशरी] मुख का एक रोग जिसमें तालु की जड़ में सूजन होती और दाह पीड़ा आदि उत्पन्न होती है।

तुंडनाय(पु)—संज्ञा पुं० [सं० तुण्ड + नाद] तुंडनाद। शुंडाध्वनि। चिंघाड़। उ०—तुंडनाय सुनि गरजत गुंजरत भौंर।—शिखर०, पृ० ३३१।

तुंडला(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० तुण्डिल ?] पीपर। उ०—कोला, कृष्णा, मागधी, तिम्म, तुंडला होइ।—नंद० ग्रं०, पृ० १०४।

तुंडि—संज्ञा स्त्री० [सं० तुण्डि] १. मुँह। २. चोंच। ३. बिंबाफल। ४. नाभि।

तुंडिक—वि० [सं० तुण्डिक] तुंडवाला। थूथनवाला [को०]।

तुंडिका—संज्ञा स्त्री० [सं० तुण्डिका] १ टोंटी। २. चोंच। ३. बिंबाफल। कुंदरू। ४. नाभि (को०)।

तुंडिकेरी—संज्ञा स्त्री० [सं० तुण्डिकेर] १. कपास वृक्ष। २. तालु में अत्यधिक सूजन का होना [को०]।

तुंडिकेशी—संज्ञा स्त्री० [सं० तुण्डिकेशी] कुंदरू।

तुंडिभ—वि० [सं० तुण्डिभ] १. तोंदल। जिसका पेट बड़ा हो। २. तुंदिल। जिसकी नाभि उभरी हुई हो (को०)।

तुंडिल—वि० [सं० तुण्डिल] १. तोंदवाला। निकले हुए पेटवाला। २. जिसकी नाभि निकली हुई हो। निकली हुई ढोंढ़वाला। ढोंढू। ३. बकवादी। मुँहजोर।

तुंडी[१]—वि० [सं० तुण्डिन्] १. मुँहवाला। चोंचवाला। ३ थूथनवाला। ४. सूँड़वाला।

तुंडी[२]—संज्ञा पुं० १. गणेश। उ०—हरिहर विधि रवि शक्ति समेता। तुंडी ते उपजत सब तेता।—निश्चल (शब्द०)। २. शिव के वृषभ का नाम। नंदी (को०)।

तुंडी[३]—संज्ञा स्त्री० १. नाभि। ढोंढ़ी। २. एक प्रकार का कुम्हड़ा [को०]।

तुंडीगुदपाक—संज्ञा पुं० [सं० तुण्डीगुदपाक] एक रोग जिसमें बच्चों की गुदा पक जाती है और नाभि में पीड़ा होती है।

तुंडीरमंडल—संज्ञा पुं० [सं० तुण्डीरमण्डल] दक्षिण के एक देश का नाम। उ०—पुनि तुंडीर मंडल इक देसा। तहँ बिलमंगल ग्राम सुवेसा।—रघुराज (शब्द०)।

तुंद[१]—संज्ञा पुं० [सं० तुन्द] पेट। उदर।

तुंद—वि० [फ़ा०] १. तेज। प्रचंड। घोर। २. आवेगपूर्ण। पुरजोश (को०)। ३. क्रुद्ध। कुपित (को०)।

यौ०—तुंदमिजाज=दे० 'तुंदखू'।

४. शीघ्र। त्वरित। तेज। जैसे,—हवा का तुंद झोंका।

यौ०—तुंदरफ्तार, तुंदरौ=द्रुतगामी। बहुत तेज चलनेवाला।

तुंदकूपिका—संज्ञा स्त्री० [सं० तुन्दकूपिका] नाभि का गड्ढा [को०]।

तुंदकूपी—संज्ञा स्त्री० [सं० तुन्दकूपी] नाभि का गड्ढा [को०]।

तुंदखू—वि० [फ़ा० तुंदखू] कड़े मिजाज का। गुस्सैल। क्रोधी। उ०—उस तुंदखू सनम से जब से लगा हूँ मिलने। हर कोई मानता है मेरी दिलावरी को।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ४८।

तुंदबाद—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] आँधी। झक्कड़। झंझावात [को०]।

तुंदर—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. बादल की गरज। मेघगर्जन। २. मधुर स्वरवाली एक प्रसिद्ध चिड़िया। बुलबुल [को०]।

तुंदि—संज्ञा पुं० [सं० तुन्दि] १. नाभि। २. एक गंधर्व का नाम। ३. उदर। पेट (को०)।

तुंदिक—वि० [सं० तुन्दिक] १. तोंदवाला। बड़े पेटवाला। तुंदिल। २ बड़ा। विशाल (को०)।

तुंदिकफला—संज्ञा स्त्री [सं० तुन्दिकफला] खीरे की बेल।

तुंदिकर—संज्ञा पुं० [सं० तुन्दिकर] नाभि। ढोंढ़ी [को०]।

तुंदिका—संज्ञा स्त्री० [सं० तुन्दिका] नाभि।

तुंदित—वि० [सं० तुन्दित] दे० 'तुंदिक' [को०]।

तुंदिभ—वि० [सं० तुन्दिभ] दे० 'तुंदिक' [को०]।

तुंदिल[१]—वि० [सं० तुन्दिल] तोंदवाला। बड़े पेटवाला।

तुंदिल[२]—संज्ञा पुं० गणेश जी [को०]।

तुंदिलफला—संज्ञा स्त्री० [सं० तुन्दिलफला] १. खीरा। २. ककड़ी [को०]।

तुंदिलित—वि० [सं० तुन्दिलित] तोंदवाला। तोंदियल [को०]।

तुंदिलीकरण—संज्ञा पुं० [सं० तुन्दिलीकरण] फुलाना । बड़ा करना [को०] ।

तुंदी¹—संज्ञा स्त्री० [सं० तुन्दी] नाभि ।

तुंदी²—वि० [सं० तुन्दिन्] दे० 'तुंदिक' [को०] ।

तुंदी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. तीव्रता । तेजी । २. आवेग । जोश । ३. स्वभाव की तीव्रता । बदमिजाजी । ४. लिंग का उत्थान । ५. कोप । गुस्सा [को०] ।

तुंदैल—वि० [हिं० तुंद + ऐल (प्रत्य०)] दे० 'तुंदैला' ।

तुंदैला—वि० [सं० तुन्द + हिं० ऐला (प्रत्य०)] तोंदवाला । बड़े पेटवाला । लंबोदर ।

तुंब—संज्ञा पुं० [सं० तुम्ब] १. लौकी । लौवा । घीया । २. लौवे का सूखा फल । तूंबा । ३. आँवला (को०) ।

तुंबर—संज्ञा पुं० [सं० तुम्बर] १. दे० 'तुंबरु' । २. एक वाद्ययंत्र । तानपूरा । उ०—विसद जंत सुर सुद्ध तंत्र तुंबर जुत सो है । ह० रासो, पृ० १ ।

तुंबरु—संज्ञा पुं० [सं० तुम्बरु] एक गधर्व ।

तुंबरी¹—संज्ञा स्त्री० [सं० तुम्बरी] एक प्रकार का अन्न [को०] ।

तुंबरी²—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तूंबी' ।

तुंबवन—संज्ञा पुं० [सं०] बृहत्संहिता के अनुसार एक देश जो दक्षिण दिशा में है ।

तुंबा—संज्ञा पुं० [सं० तुम्बा] [स्त्री० अल्पा० तुंबी] १. कड़ुआ कद्दू । गोल कड़ुआ घीया । २. कड़ुए कद्दू की खोपड़ी का पात्र । ३. एक प्रकार का जंगली धान जो नदियों या तालों के किनारे आपसे आप होता है । ४. दुधार गाय (को०) । ५. दूध का बर्तन (को०) ।

तुंबार—संज्ञा पुं० [सं० तुम्बार] तूंबी [को०] ।

तुंबि—संज्ञा स्त्री०[सं० तुम्बि] लौकी [को०] ।

तुंबिका—संज्ञा स्त्री० [सं० तुम्बिका] दे० 'तुंबी' । उ०—पानी माहि तुंबिका बूड़ी पाहन तिरत न लागी बेर ।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ५१३ ।

तुंबी—संज्ञा स्त्री० [सं० तुम्बी] १. छोटा कड़वा कद्दू । छोटा कड़वा घीया । तितलौकी । २. गोल कद्दू का खोपड़ा । गोल घीए का बना हुआ पात्र ।

तुंबुक—संज्ञा पुं० [सं० तुम्बुक] कद्दू का फल । घीया ।

तुंबुरी—संज्ञा स्त्री० [सं० तुम्बुरी] १. धनिया । २. कुतिया ।

तुंबुरु—संज्ञा पुं० [सं० तुम्बुरु] १. धनिया । २. एक प्रकार के पौधे का बीज जो धनिया के आकार का पर कुछ कुछ फटा हुआ होता है ।

विशेष—इसमें बड़ी झाल होती है । मुँह में रखने से एक प्रकार की चुनचुनाहट होती है और लार गिरती है । दाँत के दर्द में इस बीज को लोग दाँत के नीचे दबाते हैं । वैद्यक में यह गरम, कड़ुवा, चरपरा, अग्निदीपक तथा कफ, वात, शूल आदि को दूर करनेवाला माना जाता है । इसे बंगाल में नैपाली धनिया कहते हैं ।

एक गंधर्व जो चैत के महीने में सूर्य के रथ पर रहते हैं ।

विशेष—ये विष्णु के एक प्रिय पार्श्वचर और संगीत विद्या में अति निपुण हैं ।

४. एक जिन उपासक का नाम । ५. तानपूरा (को०) ।

तुंदियाना—क्रि० अ० [हिं० तोंद से नामिक धातु] तोंद का बढ़ना ।

तुँदैला—वि० [हिं० तोंदे + ऐला (प्रत्य०)] बड़े पेटवाला । तोंदियल ।

तुँबड़ी¹—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तूंबड़ी' ।

तुँबड़ी²—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक छोटा पेड़ जिसकी लकड़ी अंदर से सफेद, नर्म और चिकनी निकलती है ।

विशेष—इस पेड़ की लकड़ी मकानों में लगती है । इसकी पत्तियाँ चारे के काम में आती हैं ।

तुँबर(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] एक गंधर्व तुंबुरु । उ०—जोगनी जोगमाया जगी नारद तुंबर निहस्सिया । दस एक रुद्र दारिद्र गत दानव तामर हस्सिया ।—पृ० रा०, २ । १३० ।

तुँबरी(पु)†—संज्ञा [सं० तुम्ब + हिं० री० (प्रत्य०)] दे० 'तूंबरी' ।

तुअ(पु)‡—सर्व० [हिं०] दे० 'तुव' । उ—संज्ञा आवै गोत्र पुनि, छेम धाम तुअ नाम ।—नंद० ग्रं०, पृ० ८६ ।

तुअना(पु)†—क्रि० अ० [हिं० चूना, चुवना] १. चूना । टपकना । २. गिर पड़ना । खड़ा न रह सकना । ठहरा न रहना । उ०—निकरे सी निकाई निहारे नई रति रूप लुभाई तुई सी परे । —सुंदरीसर्वस्व (शब्द०) । ३. गर्भपात होना । बच्चा गिर पड़ना ।

संयो क्रि०—पड़ना ।

तुअर†—संज्ञा पुं० [सं० तुवरी] अरहर । आढ़की । उ०—और चाँवर, सीधो, नए बासन में बूरा तुअर आदि सर्व सामान घर में हतो सो हरिवंस जी को सर्व वस्तू दिरगई ।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० ७५ ।

तुआर(पु)—सर्व [हिं०] दे० 'तुम्हारे' । उ०—नाथ तुआरे कुशल कुशल अब लेखहि ।—अकबरी०, पृ० ३३७ ।

तुइँ(पु)—सर्व [हिं०] दे० 'तू' । उ०—अबहि बारि तुइँ पेम न खेला । का जानसि कस होइ दुहेला,—जायसी ग्रं०, पृ० ७४ ।

तुइ¹—सर्व० [हिं०] दे० 'तू' ।

तुइ(पु)²—सर्व० [हिं० तू] तुझे । तुझको । उ०—भूलि कुरंगिनी कसि भई मनहुँ सिंघ तुइ डीठ ।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २३४ ।

तुई¹—संज्ञा स्त्री०[?] कपड़े पर बुनी हुई एक प्रकार की बेल जिसे दुष्ट स्त्रियाँ दुपट्टों पर लगाती हैं ।

तुई²—सर्व०[हिं०] दे० 'तू' ।

तुक¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० टूक(= टुकड़ा)] १. किसी पद्य या गीत का कोई खंड । कड़ी । २. पद्य के चरण का अंतिम अक्षरों का परस्पर मेल । अक्षरमैत्री । अंत्यानुप्रास । काफिया ।

यौ०—तुकबंदी ।

मुहा०—तुक जोड़ना = (१) वाक्यों को जोड़कर और चरणों के अंतिम अक्षरों का मेल मिलाकर पद्य खड़ा करना । (२)

भद्दा पद्य बनाना। भद्दी कविता करना। तुक बैठाना = दे० 'तुक जोड़ना'।

तुक²—संज्ञा पुं० [सं० तर्क] मेल। सामंजस्य। जैसे,—आपकी बात का कोई तुक नहीं है।

तुकना—क्रि० स० [अनु०] एक अनुकरण शब्द जो 'तकना' शब्द के साथ बोलचाल में आता है। उ०—तकि कै तुकि कै उर पावनि को लखि कै द्विज देवन आपनि को।—रघुराज (शब्द०)।

तुकतुकाना—क्रि० अ० [हिं०] तुक जोड़ते हुए कविता का अभ्यास करना। भद्दी तुकें जोड़ना।

तुकबंद—संज्ञा पुं० [हिं० तुक + बंद (= बाँधना)] तुक बाँधनेवाला। तुक्कड़। उ०—बहुत से तुकबंद प्रत्येक युग में रहते हैं और जीवन पर्यंत इसी भ्रम में बने रहते हैं कि वे कवि हैं।—काव्यशास्त्र, पृ० ७।

तुकबंदी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तुक + फा० बंदी] १. तुक जोड़ने का काम। भद्दी कविता करने की क्रिया। २. भद्दा पद्य। भद्दी कविता। ऐसा पद्य जिसमें काव्य के गुण न हों। उ०—बहुत दिनों के बाद आज मेरी यह पुरानी तुकबंदियाँ संग्रह के रूप में सामने आ रही हैं।

तुकमा—संज्ञा पुं० [फ़ा० तुक्मह्] घुंडी फँसाने का फंदा। मुद्धी।

तुकांत—संज्ञा पुं० [हिं० तुक + सं० अन्त] पद्य के दो चरणों के अंतिम अक्षरों का मेल। अंत्यानुप्रास। काफिया।

तुका—संज्ञा पुं० [फ़ा० तुक्कह्] वह तीर जिसमें गाँसी न हो। वह तीर जिसमें गाँसी के स्थान पर घुंडी सी बनी हो। उ०—काम के तुका से फूल डोलि डोलि डारैं मन औरे किये डारे ये कदंबन की डारें री।—कविंद (शब्द०)।

तुकार—संज्ञा पुं० [हिं० तू + सं० कार] अशिष्ट संबोधन। मध्यम पुरुष वाचक अशिष्ट सर्व० का प्रयोग। 'तू' का प्रयोग जो अपमानजनक समझा जाता है।

मुहा०—तू तुकार करना = अशिष्ट शब्द से संबोधन करना। 'तू' आदि अपमानजनक शब्दों का प्रयोग करना।

तुकारना—क्रि० स० [हिं० तुकार] तू तू करके संबोधन करना। अशिष्ट संबोधन करना। उ०—वारो हौ कर जिन हरि को बदन, छुवारी। वारों वह रसना जिन बोल्यो तुकारी।—सूर (शब्द०)।

तुक्कड़—संज्ञा पुं० [हिं० तुक + अक्कड़ (प्रत्य०)] तुक जोड़नेवाला। तुकबंदी करनेवाला। भद्दी कविता बनानेवाला।

तुक्कल—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० तुक्कह्] एक प्रकार की बड़ी पतंग जो मोटी डोर पर उड़ाई जाती है।

तुक्का—संज्ञा पुं० [फ़ा० तुक्कह्] १. वह तीर जिसमें गाँसी के स्थान पर घुंडी सी बनी होती है। २. टीला। छोटी पहाड़ी। टेकरी। ३. सीधी खड़ी वस्तु।

मुहा०—तुक्का सा = सीधा उठा हुआ। ऊपर उठा हुआ। जैसे,—जब देखो तब रास्ते में तुक्का सी बैठी रहती है।

तुक्ख(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तुच्छ'। उ०—ज्ञान कथै बहुभेष बनावै इहो बात सब तुक्ख।—पलटू०, भा० ३, पृ० ११।

तुक्खार—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तुखार' [को०]।

तुख—संज्ञा पुं० [सं० तुष] १. भूसी। छिलका। उ०—भटकत पट अद्वैतता अटकत ज्ञान गुमान। सटकत वितरन तें बिहरि फटकत तुख अभिमान।—तुलसी (शब्द०)। २. अंडे के ऊपर का छिलका। उ०—अंड फोरि किय चेंटुआ तुख पर नीर निहारि। गहि चंगुल चातक चतुर डारेउ बाहर बारि।—तुलसी (शब्द०)।

तुखार¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक देश का प्राचीन नाम जिसका उल्लेख अथर्ववेद परिशिष्ट, रामायण, महाभारत इत्यादि में है।

विशेष—अधिकांश ग्रंथों के मत से इसकी स्थिति हिमालय के उत्तरपश्चिम में होनी चाहिए। यहाँ के घोड़े प्राचीन काल में बहुत अच्छे माने जाते थे।

२. तुखार देश का निवासी।

विशेष—हरिवंश के अनुसार जब महर्षियों ने वेणु का मंथन किया था, तब इस अधर्मरत असभ्य जाति की उत्पत्ति हुई थी; पर उक्त ग्रंथ में इस जाति का निवासस्थान विंध्य पर्वत लिखा है जो और ग्रंथों के विरुद्ध पड़ता है।

३. तुखार देश का घोड़ा। ४. घोड़ा। उ०—(क) तीख तुखार चाँड़ औ बाँके। तरपहि तबहि तायन बिनु हाँके।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १५०। (ख) आना काटर एक तुखारू। कहा सो फेरौ भा असवारू।—जायसी (शब्द०)।

तुखार²—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तुषार'।

तुख्म—संज्ञा पुं० [फ़ा० तुख़्म] १. बीज। दाना। २. गुठली (को०)। ३. अंडा (को०)। ४. संतान। औलाद (को०)। ५. वीर्य (को०)।

यौ०—तुख्मपाशी = बीजारोपण। खेत में बीज बोना। तुख्म-रेजी = बीज बोना।

तुख्मी—वि० [फ़ा० तुख़्मी] १. जो बीज बोकर उत्पन्न किया गया हो। २. देशी आम जो कलमी न हो [को०]।

तुगा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वंशलोचन।

तुगाक्षीरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वंशलोचन।

तुग्र—संज्ञा पुं० [सं०] वैदिक काल के एक राजर्षि का नाम जो अश्विनी कुमारों के उपासक थे।

विशेष—इन्होंने द्वीपांतरों के शत्रुओं को परास्त करने के लिये अपने पुत्र भुज्यु को जहाज पर चढ़ाकर समुद्रपथ से भेजा था। मार्ग में जब एक बड़ा तूफान आया और वायु नौका को उलटने लगी, तब भुज्यु ने अश्विनीकुमारों की स्तुति की। अश्विनीकुमारों ने संतुष्ट होकर भुज्यु को सेना सहित अपनी नौका पर लेकर तीन दिनों में उसके पिता के पास पहुँचा दिया।

तुग्र्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. तुग्र के वंश का पुरुष। तुग्र वंशज। २. तुग्र के पुत्र भुज्यु।

तुग्र्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] पानी। जल [को०]।

तुच(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० त्वच्] चमड़ा। छाल। उ०—बहु चील नोचि लै जात तुच मोद मढ़्यो सबको हियो।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० २९५।

तुचा†—संज्ञा स्त्री० [सं० त्वचा] दे० 'त्वचा'। उ०—मावे तन बाँबी चढ़ि भाई। सर्प तुचा छाती लपटाई।—शकुंतला, पृ० १३६।

तुचु(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० त्वच] दे० 'त्वचा'। उ०—आँखि नाक जिभ्या तुचु काना। पाँचो इंद्री ज्ञान प्रधाना।—सं० दरिया, पृ० २६।

तुच्छ¹—वि० [सं०] १. भीतर से खाली। खोखला। निःसार। शून्य। २. क्षुद्र। नाचीज। उ०—जिन्हें तुच्छ कहते हैं, उनसे माना क्यों, तस्कर ऐसा ?—साकेत, पृ० ३८८। ३. ओछा। छोटा। नीच। ४. अल्प। थोड़ा। ५. शीघ्र। उ०—छिप्र सु सत्वर तुच्छ लघु राजा रंभा सोइ।—अनेकार्थ०, पृ० ६८। ६. छोड़ा हुआ। त्यक्त (को०)। ७ गरीब। दरिद्र (को०)। ७. दयनीय। दुखी (को०)।

तुच्छ²—संज्ञा पुं० १. सारहीन छिलका। भूसी। २. तूतिया। ३. नील का पौधा।

तुच्छक¹—संज्ञा पुं० [सं०] काले और हरे रंग का मरकत या पन्ना जो शूद्र या निम्न कोटि का माना जाता है।

तुच्छक²—वि० शून्य। खाली। रिक्त [को०]।

तुच्छता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ हीनता। नीचता। २. ओछापन। क्षुद्रता। ३. अल्पता।

तुच्छदय—वि० [सं०] दयाशून्य। निर्दय [को०]।

तुच्छना(पु)—वि० [सं० तक्षण] छीलना। काटना। तराशना। उ०—चहुआन तुच्छ ठक्कुर बहिय।—पृ० रा०, १०।२७।

तुच्छत्व—संज्ञा पुं० [सं०] १. हीनता। क्षुद्रता। २. ओछापन।

तुच्छद्रु—संज्ञा पुं० [सं०] रेंड़ का पेड़।।

तुच्छधान्य—संज्ञा पुं० [सं०] भूसी। तुष [को०]।

तुच्छधान्यक—संज्ञा पुं० [सं०] भूसी। तुस।

तुच्छप्राय—वि० [सं०] महत्वहीन [को०]।

तुच्छवित(पु)—वि० [सं० तुच्छ+वित्त] तुच्छ। नगण्य। उ०—इकसों इक अधिके भए तुमहूँ तिनमैं तुच्छवित।—ब्रज० ग्रं०, पृ० ११०।

तुच्छा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नील का पौधा। २. तूतिया। ३. गुजराती इलायची। छोटी इलायची। ४. कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी तिथि (को०)।

तुच्छातितुच्छ—वि० [सं०] छोटे से छोटा। अत्यंत हीन। अत्यंत क्षुद्र।

तुच्छीकरण—संज्ञा पुं० [सं० तुच्छ] तुच्छ होने या करने की क्रिया या भाव।

तुच्छीकृत—वि० [सं० तुच्छ] तुच्छ किया हुआ। उ०—समस्त भावों को तुच्छीकृत करना।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १०६।

तुच्छय—वि० [सं०] रिक्त। शून्य। व्यर्थ [को०]।

तुछ(पु)—वि० [सं० तुच्छ] दे० 'तुच्छ'। उ०—तुछ बुद्धि भट्ट देखत भुल्यो कवि सुमंति कहै का बरन।—पृ० रा०, ६।६५।

तुज¹—वि० [सं०] दुष्ट। कष्टप्रद [को०]।

तुज²—संज्ञा पुं० दे० 'तुंज' [को०]।

तुज(पु)³—सर्व० [हिं०] दे० 'तुझ'। उ०—जिन्ने जख्म डारा है तुज कूँ, बिसर गया उनका ध्यान जू।—दक्खिनी०, पृ० १४।

तुजनूँ(पु)—सर्व० [पं०] तुझे। तुझको। उ०—मैं तैडी सटकन फैंया क्या तुजनूँ कीया।—घनानंद, पृ० १७८।

तुजीह—संज्ञा स्त्री० [हिं०] धनुष। कमान।

तुजुक—संज्ञा पुं० [तु० तुजुक] १. सज्जा। सजावट। २. प्रबंध। व्यवस्था। इंतिजाम। ३. सैन्य-सज्जा। फौज की तरतीब। ४. राजसभा की सजावट। उ०—भूषन भनत तहाँ सरजा सिवाजी गाजी, तिनको तुजुक देखि नेकहू न लरजा।—भूषण ग्रं०, पृ० ४४। ५. आत्मचरित्। जैसे, तुजुक जहाँगीरी।

तुझ—सर्व० [प्रा० तुज्झं] 'तू' शब्द का वह रूप जो उसे प्रथमा और षष्ठी के अतिरिक्त और विभक्तियाँ लगने के पहले प्राप्त होता है। जैसे, तुझको, तुझसे, तुझपर, तुझमें।

तुझे—सर्व० [हिं० तुझ] 'तू' का कर्म और संप्रदान रूप। तुझको।

तुभ्भ—सर्व० [हिं०] तुम्हारा। तेरा। साल्ह कुँवर सुहिणइ मिलइ, सुंदरि सउ वर तुभ्भ।—ढोला०, दू० ४४।

तुट(पु)—वि० [सं० त्रुट (=टूटना)] टुकड़ा। लेशमात्र। जरा सा।

तुटना(पु)—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'टूटना'। उ०—तुटै दंत जारी। करैं गे बिहारी। परे भूमि थानं। कथं कूट जानं।—पृ० रा०, १।६४१।

तुटि—संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटी इलायची [को०]।

तुटितुट—संज्ञा पुं० [सं०] शिव।

तुटुम—संज्ञा पुं० [सं०] मूषक। मूस। चूहा [को०]।

तुट्टना(पु)—क्रि० अ० [हिं० टूटना] दे० 'टूटना'। उ०—दरिया दधि किय मथन मोम फट्टिय पहु तुट्टिय।—पृ० रा०, १।६३१।

तुट्ठना(पु)¹—क्रि० स० [सं० तुष्ट, प्रा० तुट्ठ+स (प्रत्य०)] तुष्ट करना। प्रसन्न करना। राजी करना।

तुट्ठना(पु)²—क्रि० अ० तुष्ट होना। प्रसन्न होना। राजी होना।

तुठना(पु)—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'तूटना'। उ०—स्नेह तुठी राजा प्रोलगी मेलही।—बी० रासो, पृ० ४८।

तुड़तांण(पु)—क्रि० वि० [सं० त्वरित?] शीघ्र। उ०—अखई माधोदास री, तिण वेला तुड़तांण।—रा० रू०, पृ० ३३३।

तुड़वाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० तुड़वाना] दे० 'तुड़ाई'।

तुड़वाना—क्रि० स० [हिं० तोड़ना का प्रे० रूप] तोड़ने का काम कराना। तोड़ने में प्रवृत्त करना। तोड़ने देना।

तुड़ाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० तुड़ाना] १. तुड़ाने की क्रिया या भाव। २. तोड़ने की क्रिया या भाव। ३. तोड़ने की मजदूरी।

तुड़ाना—क्रि० स० [हिं० तोड़ने का प्रे० रूप] १. तोड़ने का काम कराना। तुड़वाना। २. बँधी हुई रस्सी आदि को तोड़ना। बंधन छुड़ाना। जैसे,—घोड़ा रस्सी तुड़ाकर भागा। ३. अलग करना। संबंध तोड़ना। जैसे, बच्चे को माँ से तुड़ाना। ४. एक बड़े सिक्के को बराबर मूल्य के कई छोटे छोटे सिक्कों से

बदलना। भुनाना। जैसे, रुपया तुड़ाना। ५. दाम कम कराना। मूल्य घटवाना।

तुतुम—संज्ञा पुं० [सं० तुरम्] तुरही। बिगुल।

तुत्थि—संज्ञा पुं० [सं०] तुन का पेड़।

तुतराⓅ†—वि० [हिं० तोतला] [वि०स्त्री० तुतरी] दे० 'तोतला'। उ०—मन मोहन की तुतरी बोलन मुनिमन हरत सुहँसि मुसकनियाँ।—सूर (शब्द०)।

तुतरानाⓅ—क्रिया अ० [हिं० तुतरा + ना (प्रत्य०)] दे० 'तुतलाना'। उ०—श्रवणन नहिं उपकंठ रहत है अरु बोलत तुतरात री।—सूर (शब्द०)।

तुतरानिⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] तुतलाने की क्रिया या भाव।

तुतरानीⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं० तुतरा + ई (प्रत्य०)] तोतली। तुतलाती हुई। उ०—जननि वचन सुनि तुरत उठे हरि कहत बात तुतरानी।—नंद० ग्रं०, पृ० १३७।

तुतरीⓅ—वि० स्त्री० [हिं०] दे० 'तुतली'। उ०—काब ह्वै प्राव सुधा सींचति आरस भरि बोलनि तुतरी।—घनानंद, पृ० ४३।

तुतरौहाँ†Ⓟ—वि० [हिं० तुतरा + औहाँ (प्रत्य०)] दे० 'तोतला'।

तुतला—वि० [हिं०] दे० 'तोतला'। उ०—मा के तन्मय उर से मेरे जीवन का तुतला उपक्रम।—पल्लव, पृ० १०६।

तुतलान—संज्ञा स्त्री० [हिं० तुतलाना] तुतलाने की क्रिया या भाव।

तुतलाना—क्रि० अ० [सं० त्रुट (= टूटना) या अनु०] शब्दों और वर्णों का अस्पष्ट उच्चारण करना। रुक रुककर टूटे फूटे शब्द बोलना। साफ न बोलना। शब्द बोलने में वर्ण ठीक ठीक मुँह से न निकालना। जैसे,—बच्चों का तुतलाना बहुत प्यारा लगता है। उ०—लागति अनूठी मीठी बानी तुतलान की।—शकुंतला०, पृ० १४०।

तुतली—वि० स्त्री० [हिं०] दे० 'तोतली'। उ० -कर पद से चलते देख उन्हें सुनकर तुतली वाणी रसाल।—सागरिका, पृ० ११३।

तुतुई†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तुतुही'।

तुतु तूम तूलⓅ—संज्ञा पुं० [अनु०] बच्चों का एक खेल। उ०—मचत कबहुँ झाबरि कबहुँ तुतु तूम तूल मल।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ४७८।

तुतुही‡—संज्ञा स्त्री० [सं० तुण्ड] १. टोंटीदार छोटी घंटी। छोटी सी झारी जिसमें टोंटी लगी हो। २. एक बाद्य। तुरही।

तुत्त—सर्व० [सं० त्वत्] तुम। उ०—तिहि वंस भीम अरु धम्म सुत्त। तिहि बंस बली अनगेस तुत्त।—पृ० रा०, ३.३२।

तुत्थ—संज्ञा पुं० [सं०] १. तूतिया। नीला थोथा। २. अग्नि (को०)। ३. पत्थर (को०)।

तुत्थक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तुत्थ'।

तुत्थांजन—संज्ञा पुं० [सं० तुत्थाञ्जन] तूतिया। नीला थोथा।

तुत्था—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ नील का पौधा। २. छोटी इलायची।

तुद[1]—वि० [सं०] आघातकारी। पीड़ादायी। कष्टकर जैसे,—मर्मंतुद। अरुंतुद।

तुद[2]Ⓟ—संज्ञा पुं० [?] दुःख। उ०—कदन, बिथुर, अक, दुन, तुद, गहन, व्रजिन पुनि आहि।—नंद० ग्रं०, पृ० १००।

तुदन—संज्ञा पुं० [सं०] १. व्यथा देने की क्रिया। पीड़न। २. व्यथा। पीड़ा। उ०—कृपादृष्टि करि तुदन मिटावा। सुमन माल पहिराय पठावा।—विश्राम० (शब्द०)। ३. चुभाने या गड़ाने की क्रिया।

तुन—संज्ञा पुं० [सं० तुन्न] एक बहुत बड़ा पेड़ जो साधारणतः सारे उत्तरीय भारत में सिंध नदी से लेकर सिक्किम और भूटान तक होता है।

विशेष—इसकी ऊँचाई चालीस से लेकर पचास साठ हाथ तक और लपेट दस बारह हाथ तक होती है। पत्तियाँ इसकी नीम की तरह लंबी लंबी पर बिना कटाव की होती हैं। शिशिर में यह पेड़ पत्तियाँ झाड़ता है। बसंत के आरंभ में ही इसमें नीम के फूल की तरह के छोटे छोटे फूल गुच्छों में लगते हैं जिनकी पँखुड़ियाँ सफेद पर बीच की घुंडियाँ कुछ बड़ी और पीले रंग की होती हैं। इन फूलों से एक प्रकार का पीला बसंती रंग निकलता है। झड़े हुए फूलों को लोग इकट्ठा करके सुखा लेते हैं। सूखने पर केवल कड़ी कड़ी घुंडियाँ सरसों के दाने के आकार की रह जाती हैं जिन्हें साफ करके कूट डालते या उबाल डालते हैं। तुन की लकड़ी लाल रंग की और बहुत मजबूत होती है। इसमें दीमक और घुन नहीं लगते। मेज कुरसी आदि सजावट के सामान बनाने के लिये इस लकड़ी की बड़ी माँग रहती है। आसाम में चाय के बकस भी इसके बनते हैं।

तुनक—वि [फ़ा० तुनुक] दे० 'तुनुक'।

यौ०—तुनक मिजाज = दे० 'तुनुकमिजाज'। तुनकमिजाजी = दे० 'तुनुकमिजाजी'। तुनकहवास = दे० 'तुनुकहवास'।

तुनकना—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'तिनकना'। उ०—स्त्रियाँ प्रायः तुनक जाने का कारण सब बातों में निकाल लेती हैं।—कंकाल, पृ० १६५।

तुनकामौज—संज्ञा पुं० [?] छोटा समुद्र। (लश०)।

तुनकी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० तुनुक + ई (प्रत्य०)] एक तरह की खस्ता रोटी।

तुनतुनी—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. वह बाजा जिसमें तुनतुन शब्द निकले। २. सारंगी।

तुनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तुन] तुन का पेड़।

तुनीर—संज्ञा पुं० [सं० तूणीर] दे० 'तूणीर'। उ०—हिम कों हरष मरुधरनि कों नीर भो री, जियरो मदन तीरगन कों तुनीर भो।—भिखारी० ग्रं०, पृ० १०१।

तुनुक—वि० [फ़ा०] १. सूक्ष्म। बारीक। २. अल्प। थोड़ा। ३ मृदुल। नाजुक। ४. क्षीण। दुबला पतला [को०]।

यौ०—तुनुकजर्फ = (१) छिछोरा। लोफर। (२) अकुलीन। कमीना। (३) पेट का हलका। जो भेद खोल दे। (४) जो थोड़ी सी शराब पीकर बहक जाय। (५) जो किसी

बड़े आदमी को निकटता या ऊँचा पद पाकर घमंड के कारण आदमी न रहे। तुनुकदिल = बहुत छोटे दिल का। अनुदार।

तुनुकना—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'तिनकना'। उ०—अंकुर ने तुनुककर कहा।—इत्यलम्, पृ० १६५।

तुनुकमिज़ाज—वि० [फ़ा० तुनुकमिज़ाज] चिड़चिड़ा। शीघ्र क्रोध में आनेवाला। छोटी छोटी बातों पर अप्रसन्न होनेवाला। उ०—पिछलगुओं की खुशामद ने हमें इतना अभिमानी और तुनुकमिज़ाज बना दिया है।—गोदान, पृ० १५।

तुनुकमिजाजी—संज्ञा स्त्री० [फा० तुनुकमिज़ाजी] छोटी बातों पर शीघ्र अप्रसन्न होने का भाव। चिड़चिड़ापन।

तुनुकसब्र—वि० [फ़ा० तुनुक + अ० सब्र] आतुर। त्वरावान्। बेसब्र। जल्दबाज [को०]।

तुनुकहवास—वि० [फ़ा० तुनुक + अ० हवास] तीक्ष्णबुद्धि [को०]।

तुन्न[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. तुन का पेड़। २. फटे हुए कपड़े का टुकड़ा।

तुन्न[2]—वि० १. कटा या फटा हुआ। छिन्न। २. पीड़ित (को०)। ३. चुभा हुआ (को०)। ४. आहत। घायल (को०)।

तुन्नवाय—संज्ञा पुं० [सं०] कपड़ा सीनेवाला। दरजी।

तुन्नसेवनी—संज्ञा पुं० [सं०] जर्राह। वह जो घाव को सीने का काम करता हो [को०]।

तुपक—संज्ञा स्त्री० [तु० तोप का अल्पा० रूप] १. छोटी तोप। उ०—तुपक तोप जरजाल कगारे। भरि भरि मारू गंज गुजारे।—हम्मीर०, पृ० ३०। २. बंदूक। कड़ाबीन।

क्रि० प्र०—चलना। छूटना।

तुफंग—संज्ञा स्त्री० [तु० तोप, हिं० तुपक; अथवा फ़ा० तुफ़ंग] १. बंदूक। तुपक। हवाई बंदूक। उ०—कोतक चंड करकटि निषंग। इक चंड भुसुंडी लै तुफंग।—सुजान०, पृ० ३८। २. वह लंबी नली जिसमें मिट्टी या आटे की गोलियाँ, छोटे तीर आदि डालकर फूँक के जोर से चलाए जाते हैं।

यौ०—तुफंग अंदाज = बंदूकची। निशानेबाज। तुफंगची = (१) बंदूक चलानेवाला। (२) बंदूक रखनेवाला। (३) निशानची। तुफंगेतहपुर = कारतूसी बंदूक। तुफंगे दहनपुर = टोपीदार बंदूक। तुफंगे सीजनी = कारतूसी बंदूक जिसमें घोड़ा नहीं होता।

तुफ—अव्य० [फ़ा० तुफ़] धिक्कार। धिक [को०]।

तुफक—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० तुफक] बंदूक। तुफंग। तुपक।

तुफान‡—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तूफान'।

तुफानी(पु)—वि० [हिं०] दे० 'तूफानी'। उ०—सासु बुरी घर ननद तुफानी देखि सुहाग हमार जरै।—पलटू०, भा० ३, पृ० ७६।

तुफैल—संज्ञा पुं० [अ० तुफ़ैल] द्वारा। कारण। जरिया।

यौ०—तुफैल से = के द्वारा।—की कृपा से।

तुफैली—संज्ञा पुं० [अ० तुफ़ैली] १. वह व्यक्ति जो बिना निमंत्रण के अथवा किसी निमंत्रित व्यक्ति के साथ किसी के यहाँ जाय। २. आश्रित व्यक्ति। वह जो किसी के सहारे हो [को०]।

तुबक(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तुपक'। उ०—दल समूह तजि चल्लियं तुबक नही तुर तंच—पृ० रा०, २५।६१।

तुभना—क्रि० अ० [सं० स्तुभ, स्तोभन (= स्तब्ध रहना, ठक रहना)] स्तब्ध रहना। ठक रह जाना। अचल रह जाना। उ०—टरति न टारे यह छबि मन में चुभी। स्याम सघन पीतांबर दामिनि, अँखियाँ चातक ह्वै जाय तुभी।—सूर (शब्द०)।

तुम—सर्व० [सं० त्वम्] 'तू' शब्द का बहुवचन। वह सर्वनाम जिसका व्यवहार उस पुरुष के लिये होता है जिससे कुछ कहा जाता है। जैसे,—तुम यहाँ से चले जाओ।

विशेष—संबंध कारक को छोड़ शेष सब कारकों की विभक्तियों के साथ शब्द का यही रूप बना रहता है; जैसे, तुमने, तुमको, तुमसे, तुममें, तुमपर। संबंध कारक में 'तुम्हारा' होता है। शिष्टता के विचार से एकवचन के लिये भी बहुवचन 'तुम' का ही व्यवहार होता है। 'तू' का प्रयोग बहुत छोटों या बच्चों के लिये ही होता है।

मुहा०—तुम जानो तुम्हारा काम जाने = अब जिम्मेदारी तुम्हारी है। मन में जो आए सो करो। उ०—और तरफ इस वक्त ध्यान न बटाओ। आगे तुम जानो तुम्हारा काम जाने।—सैर०, पृ० २८।

तुमड़िया(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तुमड़ी'। उ०—हरी बेल की कोरी तुमड़िया सब तीरथ कर आई। जगन्नाथ के दरसन करके, अजहुँ न गई कड़ुवाई।—कबीर श०, भा० १, पृ० ४१।

तुमड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० तुम्बर + हिं० ई (प्रत्य०)] १. कडुए गोल कद्दू का सूखा फल। गोल घीए का सूखा फल। २. सूखे गोल कद्दू को खोखला करके बनाया हुआ पात्र जिसमें प्रायः साधु पानी पीते हैं। ३. सूखे कद्दू का बना हुआ एक बाजा जो मुँह से फूँककर बजाया जाता है। महुवर।

विशेष—यह बाजा कद्दू के खोखले पेट में नरकट की दो नलियाँ घुसाकर बनाया जाता है। सँपेरे इसे प्रायः बजाते हैं।

तुमकना—क्रि० अ० [अनु०] दिखाई देना। प्रकट होना। उ०—एक झोंका वायु से ले, सिर हिलाकर तुमक जाना।—हिमकि०, पृ० ६४।

तुमतड़ाक—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तुमतड़ाक'।

तुमतराक—संज्ञा पुं० [फ़ा० तुमतराक़] १. वैभव। शानशौकत। २. धूमधाम। तड़कभड़क। अहंकार। घमंड [को०]।

तुमरा—सर्व० [हिं०] [स्त्री० तुमरी] दे० 'तुम्हारा'।

तुमरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० तुमड़ी] दे० 'तुमड़ी'।

तुमरू—संज्ञा पुं० [सं० तुम्बुरु] दे० 'तुंबुरु'।

तुमल(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तुमुल'।

तुमहियै(पु)—सर्व० [हिं० तुम] तुम ही। तुम्हीं। उ०—रीझि

हँसि हाथी हुमैं सब कोऊ देत, कहा रीझि हँसि हाथी एक तुमहिये देत हौ।—भूषण ग्रं०, पृ० ३९।

तुमही—सर्व० [तुम+ही (प्रत्य०)] तुमको।

तुमाना—क्रि० स० [हिं० तूमना का प्रे० रूप] तूमने का काम कराना। दबी या जमकर बैठी हुई रूई को पुलपुली करके फैलाने के लिये नोचवाना।

तुमार(पु)[१]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तूमार'। उ०—ये झूलहि सब हथियार हय गय लोग बाग तुमार।—भीखा श०, पृ० ४४।

तुमारा(पु)—सर्व० [हिं०] दे० 'तुम्हारा'। उ०—ताते चलिहै पहार तुमारा। इतना बचन धर्म कहं हारा।—कबीर सा०, पृ० ४५५।

तुमुची—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की चिड़िया।

तुमुर—संज्ञा पुं० [सं०] १. दे० 'तुमुल'। २. क्षत्रियों की एक जाति जिसका उल्लेख मत्स्य पुराण में है।

तुमुल[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. सेना का कोलाहल। सेना की धूम। लड़ाई की हलचल। २. सेना की भिड़ंत। गहरी मुठभेड़। ३. बहेड़े का पेड़।

तुमुल[२]—वि० [सं०] १. हलचल उत्पन्न करनेवाला। २. शोरगुल से युक्त। ३. भयंकर। तीव्र। उ०—संग दादुर झींगुर रुदन धुनि मिलि स्वर तुमुल मचावही।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० २९८। ४. अनेक ध्वनियों के मेल से ध्वनित (को०)। ५. क्षुब्ध (को०)। ६. घबराया हुआ। व्यग्र (को०)।

तुम्ह‡[१]—सर्व० [हिं०] दे० 'तुम'। उ०—जब तुम्ह सुवा कीन्ह है फेरा। गाढ़ न जाइ पिरीतम केरा।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २७२।

तुम्ह(पु)[२]—सर्व० [हिं० तुम] तुम्हारा। उ०—आवहु सामि सुलच्छना जीउ बसै तुम्ह नांव।—जायसी ग्रं०, पृ० १०१।

तुम्हरा(पु)—सर्व० [हिं०] दे० 'तुम्हारा'। उ०—दुष्ट दमन तुम्हरो अवतार। हे अद्भुत ब्रजराज कुमार।—नंद० ग्रं०, पृ० ३१२।

तुम्हारा—सर्व० [हिं० तुम] [स्त्री० तुम्हारी] 'तुम' का संबंध कारक का रूप। उसका जिससे बोलनेवाला बोलता है। जैसे, तुम्हारी पुस्तक कहाँ है ?।

मुहा०—तुम्हारा सिर = दे० 'सिर'।

तुम्हें—सर्व० [हिं० तुम] 'तुम' का वह विभक्तियुक्त रूप जो उसे कर्म और संप्रदान मे प्राप्त होता है। तुमको।

तुयाँ—सर्व० [हिं०] दे० 'तू'। उ०—माहो बेला जनम गो तुय करे तिची बोची होई।—बी० रासो, पृ० ४४।

तुया(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तोय'। उ०—खेष उतपत ते तुया।—गोरख०, पृ० १५६।

तुरंग[१]—वि० [सं० तुरङ्ग] जल्दी चलनेवाला।

तुरंग[२]—संज्ञा पुं० १. घोड़ा। उ०—गरुड तुरंग तुरंग मन, बहुरि तुरंग तुरंग।—अनेकार्थ०, पृ० १३३। २. चित्र। ३. सात की संख्या।

तुरंगक—संज्ञा पुं० [सं० तुरङ्गक] १. बड़ी तोरई। २. घोड़ा (को०)।

तुरंगकांता—संज्ञा स्त्री० [सं० तुरङ्गकान्ता] घोड़ी [को०]।

यौ०—तुरंगकांतामुख = वाडवानल।

तुरंगगंधा—संज्ञा स्त्री० [सं० तुरङ्गगन्धा] अश्वगंधा। असगंध [को०]।

तुरंग गौड़—संज्ञा पुं० [सं० तुरङ्ग + गौड] गौड़ राग का एक भेद। यह वीर या रौद्र रस का राग है।

तुरंगद्विषणी—संज्ञा स्त्री० [सं० तुरङ्गद्विषणी] भैंस। महिषी [को०]।

तुरंगद्वेषिणी—संज्ञा स्त्री० [सं० तुरङ्गद्वेषिणी] भैंस। महिषी।

तुरंगप्रिय—संज्ञा पुं० [सं० तुरङ्गप्रिय] जौ। यव।

तुरंगब्रह्मचर्य—संज्ञा पुं० [सं० तुरङ्गब्रह्मचर्य] वह ब्रह्मचर्य जो स्त्री के न मिलने तक हो [को०]।

तुरंगम[१]—वि० [सं० तुरङ्गम] जल्दी चलनेवाला।

तुरंगम[२]—संज्ञा पुं० १. घोड़ा। २. चित्त। ३. एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में दो नगण और दो गुरु होते हैं। इसे तुग और तुंगा भी कहते हैं। उ०—न नग गहु बिहारी। कहत अहि पियारी। - (शब्द०)।

तुरंगमी[१]—संज्ञा स्त्री० [सं० तुरङ्गमी] १. असगंध। २. घोड़ी [को०]।

तुरंगमी[२]—संज्ञा पुं० [सं० तुरङ्गमिन्] घुड़सवार। अश्वारोही [को०]।

तुरंगमुख—संज्ञा पुं० [सं० तुरङ्गमुख] [स्त्री० तुरंगमुखी] (घोड़े का सा मुँहवाला) किन्नर। उ०—गावै गीत तुरंगमुख, जलरख जब बटियाहु।—बाँकी० ग्रं०, भा० ३, पृ० ६।

तुरंगमेध—संज्ञा पुं० [सं० तुरङ्गमेध] अश्वमेध [को०]।

तुरंगयम—संज्ञा पुं० [सं० तुरङ्गयम] जौ। यव [को०]।

तुरंगयायी—संज्ञा पुं० [सं० तुरङ्गयायिन्] घुड़सवार [को०]।

तुरंगरक्ष—संज्ञा पुं० [सं० तुरङ्गरक्ष] साईस [को०]।

तुरंगलीलक—संज्ञा पुं० [सं० तुरङ्गलीलक] संगीत एक ताल में [को०]।

तुरंगवक्त्र—संज्ञा पुं० [सं० तुरङ्गवक्त्र] (घोड़े का सा मुँहवाला) किन्नर।

तुरंगवदन—संज्ञा पुं० [सं० तुरङ्गवदन] (घोड़े का सा मुँहवाला) किन्नर।

तुरंगशाला—संज्ञा स्त्री० [सं० तुरङ्गशाला] घोड़सार। अस्तबल।

तुरंगसादी—संज्ञा पुं० [सं० तुरङ्गसादिन्] घुड़सवार [को०]।

तुरंगस्कंध—संज्ञा पुं० [सं० तुरङ्गस्कन्ध] १. घोड़ों की सेना। २. घोड़ों का समूह [को०]।

तुरंगस्थान—संज्ञा पुं० [सं० तुरङ्गस्थान] घुड़साल। अस्तबल [को०]।

तुरंगारि—संज्ञा पुं० [सं० तुरङ्गारि] १. कनेर। करवीर। २. भैंसा (को०)।

तुरंगिका—संज्ञा स्त्री० [सं० तुरङ्गिका] देवदाली। घघरबेल। बंदाल।

तुरंगारूढ—संज्ञा पुं० [सं० तुरङ्गारूढ] घुड़सवार। अश्वारोही [को०]।

तुरंगी[१]—संज्ञा स्त्री० [सं० तुरङ्गी] १. अश्वगंधा। असगंध। २. घोड़ी (को०)।

तुरंगी[२]—संज्ञा पुं० [सं० तुरङ्गिन्] घुड़सवार [को०]।

तुरंज—संज्ञा पुं० [फ़ा० । प० तुर्ज] १. चकोतरा नींबू । २. बिजौरा नीबू । खट्टी । ३. सूई से काढ़कर बनाया हुआ पान या कलगी के आकार का वह बूटा जो अँगरखों के मोढ़ों और पीठ पर तथा दुशाले के कोनों पर बनाया जाता है । कुंज ।

तुरंजबीन—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. एक प्रकार की चीनी जो प्रायः ऊँटकटारे के पौधों पर ओस के साथ खुरासान देश में जमती है । २. नींबू के रस का शर्बत ।

तुरंत—क्रि० वि० [सं० तुर (=वेग, जल्दी)] जल्दी से । अत्यंत शीघ्र । तत्क्षण । झटपट । फौरन । बिना विलंब के । उ०—रघुपति चरन नाइ सिरु चलेउ तुरंत अनंत । अंगद नील मयंद नल संग सुभट हनुमंत ।—मानस, ६।७४ ।

तुरंता—संज्ञा पुं० [हिं० तुरंत] १. गाँजा (जिसका नशा तुरंत पीते ही चढ़ता है) । २. सत्तू । (जिसे तत्काल खाया जा सकता है) ।

तुरँगⓅ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तुरग' । उ०—तुरँग चपल चंद्रमंडल बिकल बेला, कुंद है बिफल जहाँ नीच गति वारिए ।—मति० ग्रं०, पृ० ४१७ ।

तुरँजⓅ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तुरंज–२ । उ०—गलगल तुरँज सदाफर फरे । नारँग अति राते रस भरे ।—जायसी ग्रं० पृ० १३।

तुर¹—क्रि० वि० [सं०] शीघ्र । जल्द । उ०—बहु दाबि डारे समर में तुर में तुरंगहि दपटि कै ।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २० ।

तुर²—वि० १. वेगवान् । शीघ्रगामी । २. दृढ़ । सबल (को०) । ३. घायल । आहत (को०) । ४. धनी (को०) । ५. अधिक । प्रचुर [को०] ।

तुर³—संज्ञा पुं० वेग । क्षिप्रता [को०] ।

तुर⁴—संज्ञा पुं० [सं० तर्कु] १. वह लकड़ी जिसपर जुलाहे कपड़ा बुनकर लपेटते जाते हैं । २. वह बेलन जिसपर गोटा बुनकर लपेटते जाते हैं ।

तुरⓅ⁵—संज्ञा पुं० [? सं० तुरग > तुरय, तुर] घोड़ा । अश्व । तुरग । उ०—माघ वद्दि पंचमि दिवस चढ़ि चलिए तुर छार । —पृ० रा०, २५। २२५ ।

तुरई¹—संज्ञा स्त्री [सं० तूर (= तुरही बाजा)] एक बेल जिसके लंबे फलों की तरकारी बनाई जाती है ।

विशेष—इसकी पत्तियाँ गोल कटावदार कद्दू की पत्तियों से मिलती जुलती होती हैं । यह पौधा बहुत दिनों तक नहीं रहता । इसे पानी की विशेष आवश्यकता होती है, इससे यह बरसात ही में विशेषकर बोया जाता है और बरसात ही तक रहता है । बरसाती तुरई छप्परों या टट्टियों पर फैलाई जाती है, क्योंकि भूमि मे फैलाने से पत्तियों और फलों के सड़ जाने का डर रहता है । गरमी में भी लोग क्यारियों में इसे बोते हैं और पानी से तर रखते हैं । गरमी से बचाने पर यह बेल जमीन ही में फैलती और फलती है । तुरई के फूल पीले रंग के होते हैं और संध्या के समय खिलते हैं । फल लंबे लंबे होते हैं जिनपर लंबाई के बल उभरी हुई नसों की सीधी लकीर समान अंतर पर होती हैं ।

मुहा०—तुरई का फूल सा = हलकी या छोटी मोटी चीज की तरह जल्दी खतम या खर्च हो जानेवाला । इस प्रकार चटपट चुक जाने या खर्च हो जानेवाला कि मालूम न हो । जैसे,—तुरई के फूल से ये सो रुपए देखते देखते उठ गए ।

२. उक्त बेल का फल ।

तुरई²—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तुरही' ।

तुरक—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तुर्क' ।

तुरकटा—संज्ञा पुं० [तु० तुर्क + हिं० टा (प्रत्य०)] मुसलमान । (घृणासूचक शब्द) ।

तुरकान†—संज्ञा पुं० [तु० तुर्क] १. तुर्कों या मुसलमानों की बस्ती । २. दे० 'तुर्क' । उ०—पाथर पूजत हिंदु भुलाना । मुरदा पूज भूले तुरकाना ।—कबीर सा०, पृ० ८२० ।

तुरकाना—संज्ञा पुं० [तु० तुर्क] [स्त्री० तुरकानी] १. तुर्कों का सा । तुर्कों के ऐसा । २. तुर्कों का देश या बस्ती ।

तुरकानी¹—वि० स्त्री० [तु० तुर्क + हिं० आनी (प्रत्य०)] तुर्कों की सी ।

तुरकानी²—संज्ञा स्त्री० तुर्क की स्त्री ।

तुरकिन—संज्ञा स्त्री० [तु० तुर्क + हिं० इन (प्रत्य०)] १. तुर्क की स्त्री। २. तुर्क जाति की स्त्री ।† ३. मुसलमानिन । मुसलमान स्त्री ।

तुरकिस्तान—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तुर्किस्तान' ।

तुरकी¹—वि० [तु० तुर्की] १. तुर्क देश का । जैसे, तुरकी घोड़ा, तुरकी सिपाही । २. तुर्क देश संबंधी ।

तुरकी²—संज्ञा स्त्री० तुर्कों की भाषा । तुर्किस्तान की भाषा ।

तुरक्कⓅ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तुर्क' । उ०—राए बखिअउँ संत हुअ रोस, लज्जाइअ निअ मनहि मन, अस तुरक्क असलान गुणाइ । कीर्ति०, पृ० १८ ।

तुरग¹—वि० [सं०] तेज चलनेवाला ।

तुरग²—संज्ञा पुं० [स्त्री० तुरगी] १. घोड़ा । २. चित्त ।

तुरगगंधा—संज्ञा स्त्री० [सं० तरगगन्धा] अश्वगंधा । असगंध ।

तुरगदानव—संज्ञा पुं० [सं०] केशी नामक दैत्य जो कंस की आज्ञा से कृष्ण को मारने के लिये घोड़े का रूप धारण करके गया था ।

तुरगब्रह्मचर्य—संज्ञा पुं० [सं०] वह ब्रह्मचर्य जो केवल स्त्री के न मिलने के कारण ही हो ।

तुरगलीलक—संज्ञा पुं० [सं०] संगीत दामोदर के अनुसार एक ताल का नाम ।

तुरगारोह†—संज्ञा पुं० [सं०] घुड़सवार [को०] ।

तुरगारोही—संज्ञा पुं० [सं० तुरगारोहिन्] घुड़सवार [को०] ।

तुरगी¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. घोड़ी । २. अश्वगंधा ।

तुरगी²—संज्ञा पुं० [सं० तुरगिन्] अश्वारोही । घुड़सवार ।

तुरगुला—संज्ञा पुं० [देश०] लटकन जो कान के कर्णफूल नामक गहने में लटकाया जाता है । झुमका । लोलक ।

तुरगोपचारक—संज्ञा पुं० [सं०] साईस [को०] ।

तुरण¹—वि० [सं०] वेगवान् । शीघ्रगामी [को०] ।

तुरण²—संज्ञा पुं० शीघ्रता । वेग [को०] ।

तुरत—अव्य० [सं० तुर] शीघ्र। चटपट। तत्क्षण। उ०—दूनी रिस-वल तुरत पचावै।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ६६२।

यौ०—तुरत फुरत = चटपट।

तुरतुरा—वि० [सं० त्वरा] [स्त्री० तुरतुरी] १. तेज। जल्दबाज। २. बहुत जल्दी जल्दी बोलनेवाला। जल्दी जल्दी बात करनेवाला।

तुरतुरिया—वि० [हिं०] दे० 'तुरतुरा'।

तुरता(पु)—अव्य० [हिं०] दे० 'तुरत'। उ०—कढ़िये सुबीर बढ़िये तुरता।—पृ० रासो, पृ० ८३।

तुरन(पु)—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'तूर्ण'। उ०—सहसा, सत्वर, रभ, तुरा, तुरन वये के साथ।—नंद० ग्रं०, पृ० १०७।

तुरना(पु)—संज्ञा पुं० [सं० तरुण] तरुणावस्था। जवानी। उ०—बाला काला तुरना काला, बिरधे काल न खाय।—कबीर श०, पृ० ४८।

तुरनापन(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० तुरना+पन (प्रत्य०)] तरुणावस्था। जवानी। उ०—तुरनापन गइ बीत बुढ़ापा आन तुलाने। काँपन लागे सीस चलत दोउ चरन पिराने।—कबीर श०, पृ० १।

तुरपई—संज्ञा स्त्री० [हिं० तुरपना] एक प्रकार की सिलाई। तुरपन।

तुरपन—संज्ञा स्त्री० [हिं० तुरपना] एक प्रकार की सिलाई जिसमें जोड़ों को पहले लंबाई के बल टाँके डालकर मिला लेते हैं; फिर निकले हुए छोर को मोड़कर तिरछे टाँकों से जमा देते हैं। लुढ़ियावन। बखिया का उलटा।

तुरपना—क्रि० स० [हिं० तर (= नीचे) + पर (= ऊपर) + ना (प्रत्य०)] तुरपन की सिलाई करना। लुढ़ियाना।

तुरपवाना—क्रि० स० [हिं० तुरपना का प्रे० रूप] दे० 'तुरपाना'।

तुरपाना—क्रि० स० [हिं० तुरपना का प्रे० रूप] तुरपने का काम दूसरे से कराना।

तुरबत—संज्ञा स्त्री० [अ० तुर्बत] कब्र। उ०—आसमाँ तुरबत प मेरे आसियाना हो गया।—भारतेंदु ग्रं०, भा०२, पृ०८५०।

तुरम—संज्ञा पुं० [सं० तूरम] तुरही।

तुरमती—संज्ञा स्त्री० [तु० तुरमता] एक चिड़िया जो बाज की तरह शिकार करती है। यह बाज से छोटी होती है।

तुरमनी—संज्ञा स्त्री० [देश०] नारियल रेतने की रेती।

तुरय(पु)—संज्ञा पुं० [सं० तुरग] [स्त्री० तुरी] घोड़ा। उ०—सायक चाप तुरय बनि जनि ह्वौ लिए सबै तुम जाहू।—सूर (शब्द०)।

तुररा(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तुर्रा'। उ०—तापर तुररा सुभत अति कहुत सोभ रवि नाथ।—पृ० रा०, १।७५२।

तुरल—संज्ञा पुं० [सं० तुरग] घोड़ा। उ०—वणिया गजा तणी सिर वाँनी। मिलिया तुरल रवी असमानी।—रा० रू०, पृ०२२५।

तुरस(पु)—संज्ञा स्त्री० [देश० ?] ढाल। उ०—तुरस फट्टि कढ़ि गुरज मुक्क करि रेव रिपेसर।—पृ० रा०, ५।५१।

तुरसी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तुलसी'। उ०—हरि बरन तुरसिय माल। घन पति सुक्क बिसाल।—पृ० रा०, २।३११।

तुरही—संज्ञा स्त्री० [सं० तूर] फूँककर बजाने का एक बाजा जो मुँह की ओर पतला और पीछे की ओर चौड़ा होता है। उ०—बाजत ताल मृदंग झाँझ डफ, तुरही तान नफीरी।—कबीर श०, भा०२, पृ०१०८।

विशेष—यह बाजा पीतल आदि का बनता है और टेढ़ा सीधा कई प्रकार का होता है। पहले यह लड़ाई में नगाड़े आदि के साथ बजता था। अब इसका व्यवहार विवाह आदि में होता है।

तुरा(पु)[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० त्वरा] दे० 'त्वरा'। उ०—तीखी तुरा तुलसी कहतो पै हिए उपमा को समाउ न आयो। मानो प्रतच्छ परव्वत की नभ लीक लसी कपि यों धुकि धायो।—तुलसी ग्रं०, पृ० १६६।

तुरा[2]—संज्ञा पुं० [सं० तुरग] घोड़ा।

तुराई(पु)[†]—संज्ञा स्त्री० [सं० तूल (= रूई) + तूलिका (= गद्दा)] रुई भरा हुआ गुदगुदा बिछावन। गद्दा। तोशक। उ०—(क) नींद बहुत प्रिय सेज तुराई। लखहु न भूप कपट चतुराई।—तुलसी (शब्द०)। (ख) विविध वसन, उपधान, तुराई। छीरफेन मृदु बिसद सुहाई।—तुलसी (शब्द०)। (ग) कुस किसलय साथरी सुहाई। प्रभु सँग मंजु मनोज तुराई।—तुलसी (शब्द०)।

तुराट(पु)—संज्ञा पुं० [सं० तुरग] घोड़ा। (डिं०)।

तुराना(पु)[1]—क्रि० अ० [सं० तुर] घबराना। आतुर होना।

तुराना(पु)[2]—क्रि० स० [हिं०] दे० 'तुड़ाना'।

तुराना(पु)[3]—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'टूटना'। उ०—फिरत फिरत सब चरन तुराने।—कबीर ग्रं०, पृ० २३०।

तुरायण—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का यज्ञ जो चैत्र शुक्ला ५ और वैशाख शुक्ला ५ को होता है। २. असंग। विरति। अनासक्ति (को०)।

तुराव(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० तुरा] जल्दी। शीघ्रता। उ०—गवना चाला तुराव लगो है। जो कोउ रोवै वाको न हँसु रे।—कबीर श०, भा० २, पृ० ६८।

तुरावत्—वि० [सं० त्वरावत्] [स्त्री० तुरावती] वेगवाला। वेगयुक्त।

तुरावती—वि० स्त्री० [सं० त्वरावती] वेगवाली। झोंक के साथ बहनेवाली। उ०—(क) विषम विषाद तुरावति धारा। भय भ्रम भँवर अवर्त अपारा।—तुलसी (शब्द०)। (ख) अमृत सरोवर सरित अपारा। ढाहैं कूल तुरावति धारा।—शं० दि० (शब्द०)।

तुरावध(पु)—वि० [हिं० तुरा] त्वरावान्। शीघ्रतायुक्त। उ०—सामंत सितंग तुरग तुरावध रावध धावध अग्गि झरे।—पृ० रा०, १३।१३०।

तुरावान्—वि० [सं० त्वरावान्] दे० 'तुरावत्'।

तुराषाट्—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र।

तुरासाह—संज्ञा पुं० [सं०] १. इंद्र । २. विष्णु (को०) ।

तुरि[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'तुरी' (को०) ।

तुरि[2]—सर्व० [हिं०] दे० 'तुम्हारा' । उ०—सात जनम तुरि घर वसौं एक वसत अकलंक ।—पृ० रा०, २३।३० ।

तुरित—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'तुरत' । उ०—गंगाजल कर कलस सो तुरित मँगाइय हो ।—तुलसी० ग्रं०, पृ० ३ ।

तुरिय(पु)[1]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तुरग' । उ०—पषरैत तुरिय पषरैत गज्ज । नर कस्से बगतर सिलह सज्ज ।—पृ० रा०, १।४४१।

तुरिय[2](पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तुरीय' । उ०—सुखित भई तिहि छिन सब ऐसैं । तुरिय अवस्थ पाइ मुनि जैसे ।—नंद० ग्रं०, पृ० ३०२ ।

तुरिया(पु)[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तुरीय' । उ०—व्योम अनसूत घर वो बरे औहुरे माँहि । सुंदर साक्षी स्वरूप तुरिया विशेषिये ।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ५६८ ।

तुरिया[2](पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तोरिया' ।

तुरियातीत(पु)—वि० [सं० तुरीय + अतीत] जो तुरीयावस्था से आगे हो । चतुर्थ अवस्था से आगेवाला । उ०—तुरियातीत ह्वै चित्त जब इक भयो रैन दिन मगन है प्रेम पावो ।—पलटू०, भा० ३, पृ० २६ ।

तुरी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जुलाहों का तोरिया या तोड़िया नाम का औजार । २. जुलाहों की कूची । हत्थी । ३. चित्रकार की तूलिका (को०) । ४. वसुदेव की एक पत्नी का नाम (को०) ।

तुरी[2]—वि० वेगवाली ।

तुरी[3]—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० तुरय (= घोड़ा)] १. घोड़ी । उ०—तुरी अठारह लाख अमीरी बलख की । दिया मर्द ने छोड़ आस सब खलक की ।—पलटू०, भा० २, पृ० ७६ । २. लगाम । बाग ।

तुरी[4]—संज्ञा पुं० [हिं०] १. घोड़ा । २. सवार । अश्वारोही ।

तुरी[5]—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० तुर्रा] १. फूलों का गुच्छा । २. मोती की लड़ों का झब्बा जो पगड़ी से कान के पास लटकाया जाता है ।

तुरी[6]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तुरही' ।

तुरी(पु)[7]—संज्ञा पुं० [सं० तुरीय] चौथी अवस्था । उ०—प्रेम तेल तुरी बरी, भयो ब्रह्म उँजियार ।—दरिया० बानी, पृ० ६७ ।

तुरीयंत्र—संज्ञा पुं० [सं० तुरीयन्त्र] वह यंत्र जिससे सूर्य की गति जानी जाती है ।

तुरीय—वि० [सं०] चतुर्थ । चौथा ।

विशेष—वेद में वाणी या वाक् के चार भेद किए गए हैं—परा, पश्यंती, मध्यमा और बैखरी । इसी बैखरी वाणी को तुरीय भी कहते हैं । सायण के अनुसार जो नादात्मक वाणी मूलाधार से उठती है और जिसका निरूपण नहीं हो सकता है, उसका नाम परा है । जिसे केवल योगी लोग ही जान सकते हैं, वह पश्यंती है । फिर जब वाणी बुद्धिगत होकर बोलने की इच्छा उत्पन्न करती है, तब उसे मध्यमा कहते हैं । अंत में जब वाणी मुँह में आकर उच्चरित होती है, तब उसे बैखरी या तुरीय कहते हैं ।

वेदांतियों ने प्राणियों की चार अवस्थाएँ मानी हैं—जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय । यह चौथी या तुरीयावस्था मोक्ष है जिसमें समस्त भेदज्ञान का नाश हो जाता है और आत्मा अनुपहित चैतन्य या ब्रह्मचैतन्य होती है ।

तुरीयवर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] चौथे वर्ण का पुरुष । शूद्र ।

तुरीयावस्था—संज्ञा पुं० [सं० तुरीय + अवस्था] वेदांतियों के अनुसार चार अवस्थाओं में से अंतिम । वि० दे० 'तुरीय' । उ०—इसी प्रकार तुरीयावस्था (द ट्रांस) नाम की कविता में उन्होंने ब्रह्मानुभूति का वर्णन इस प्रकार किया है ।—चिंतामणि, भा० २, पृ० ७२ ।

तुरुक(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तुर्क' ।

तुरुकिनी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० तुरुक] तुर्क जाति की स्त्री । तुरकिन । उ०—वरप नाष तुरुकिनी आन किछु काहु न आवइ ।—कीर्ति०, पृ० ४२ ।

तुरुप[1]—संज्ञा पुं० [अं० ट्रंप] ताश का खेल जिसमें कोई एक रंग प्रधान मान लिया जाता है । इस रंग का छोटे से छोटा पत्ता दूसरे रंग के बड़े से बड़े पत्ते को मार सकता है ।

तुरुप[2]—पुं० [अं० ट्रूप (= सेना)] १. सवारों का रिसाला । २. सेना का एक खंड । रिसाला ।

तुरुप[3]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तुरपन' । उ०—कसमसे कसे उकसेऊ से उरोजन पै उपटति कंचुकी की तुरुप तिरीछी वेस ।—पद्मनेस०, पृ० ४ ।

तुरुपना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'तरपना' ।

तुरुष्क—संज्ञा पुं० [सं०] १ तुर्क जाति । तुर्किस्तान का रहनेवाला मनुष्य ।

विशेष—भागवत, विष्णुपुराण आदि में तुरुष्क जाति का नाम आया है जिससे अभिप्राय हिमालय के उत्तर पश्चिम के निवासियों ही से जान पड़ता है । उक्त पुराणों में तुरुष्क राजगण के पृथ्वी भोग करने का उल्लेख है । कथासरित्सागर और राजतरंगिणी में भी इस बात का उल्लेख है ।

२. वह देश जहाँ तुरुष्क जाति रहती हो । तुर्किस्तान । ३. एक गंधद्रव्य । लोबान । ४. तुर्किस्तान का घोड़ा ।

तुरुष्कगौड़—संज्ञा पुं० [सं० तुरुष्क + गौड़] दे० 'तुरंगगौड़' ।

तुरुही—संज्ञा स्त्री० [सं० तूर अथवा तूर्य] दे० 'तुरही' ।

तुरै(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तुरय' । उ०—जोबन तुरै हाथ गहि लीजै । जहाँ जाइ तहँ जाइ न दीजै ।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २३४ ।

तुरैया(पु)[†]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तुरई' । उ०—सदा तुरैया फूले नहीं, सदा न सावन होय ।—शुक्ल अभि० ग्रं०, पृ० १५६ ।

तुर्क—संज्ञा पुं० [तु०] १. तुर्किस्तान का निवासी । २. रूम का निवासी । टर्की का रहनेवाला ।

तुर्कचीन—संज्ञा पुं० [तु० तुर्क + फ़ा० चीन] सूर्य [को०]।

तुर्कमान—संज्ञा पुं० [फ़ा० तुर्क] १. तुर्क जाति का मनुष्य। २. तुर्की घोड़ा जो बहुत बलिष्ठ और साहसी होता है।

तुर्करोज—संज्ञा पुं० [तु० तुर्क + फ़ा० रोज] सूर्य [को०]।

तुर्कसवार—संज्ञा पुं० [तु० तुर्क + फ़ा० सवार] एक विशेष प्रकार का सवार।

विशेष—ऐसे सवारों को सिर से पैर तक तुर्की पहनावा पहनाया जाता था।

तुर्कानी—संज्ञा पुं० [हिं० तुरुक] दे० 'तुर्किन'। उ०—सुनत करा मुसलमानहि कीन्हा। तुर्कानी को का कर दीन्हा।—कबीर सा०, पृ० ८२२।

तुर्किन—संज्ञा स्त्री० [तु० तुर्क + हिं० इन (प्रत्य०)] १. तुर्क जाति की स्त्री। उ०—गू भोसी थी तो तुर्किन, बन गई अहीरिन। खुदाराम, पृ० १४। तुर्क की स्त्री।

तुर्किनी—संज्ञा स्त्री० [तु० तुर्क + हिं० इनी (प्रत्य०)] दे० 'तुर्किन'।

तुर्किस्तान—संज्ञा पुं० [तु० फ़ा०] तुर्कों का देश। तुर्की। टर्की [को०]।

तुर्की—वि० [फ़ा० तुर्क] तुर्किस्तान का। तुर्किस्तान में होनेवाला। जैसे,—तुर्की घोड़ा।

तुर्की—संज्ञा स्त्री० १. तुर्किस्तान की भाषा। २. तुर्कों की सी ऐंठ। अकड़। गर्व।

मुहा०—तुर्की तमाम होना = घमंड जाता रहना। शेखी निकल जाना।

तुर्की—संज्ञा पुं० १. तुर्किस्तान का आदमी। २. तुर्किस्तान का घोड़ा।

तुर्की टोपी—संज्ञा स्त्री० [तु० तुर्की + हिं० टोपी] एक प्रकार की टोपी जो लाल, गोल, ऊँची और झब्बेदार होती है।

विशेष—इस टोपी को तुर्क लोग पहनते थे। इसी से इसका नाम तुर्की टोपी पड़ा।

तुर्त(पु)—अव्य० [हिं०] दे० 'तुरत'। उ०—जो मनइच्छा होय मम तुर्त होत है नाश। कबीर सा०, पृ० ९५८।

यौ०—तुर्त फुर्त = जल्दी में। शीघ्रतापूर्वक।

तुर्फरी—संज्ञा पुं० [सं०] अंकुश का मारनेवाला भाग जो सामने सीधी नोक की ओर होता है। हूला।

यौ०—जर्फरी तुर्फरी = बात का बतबढ़ाव। प्रलाप।

तुर्य—वि० [सं०] चौथा। चतुर्थ।

यौ०—तुर्य गोल = एक कालसूचक यंत्र। तुर्यवाट् = चार साल का बछड़ा।

तुर्य—संज्ञा पुं० तुरीयावस्था [को०]।

तुर्यवाह—संज्ञा पुं० [सं०] चार वर्ष की बछिया या बछड़ा [को०]।

तुर्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह ज्ञान जिसमें मुक्ति हो जाती है। तुरीय ज्ञान।

तुर्याश्रम—संज्ञा पुं० [सं०] चतुर्थाश्रम। सन्यासाश्रम।

तुर्रा—संज्ञा पुं० [अ०] १. घुंघराले बालों की लट जो माथे पर हो। काकुल।

यौ०—तुर्रा तरार = सुंदर बालों की लट।

२. पर या फुँदना जो पगड़ी में लगाया या खोंसा जाता है। कलगी। गोशवारा। ३. बादले का गुच्छा जो पगड़ी के ऊपर लगाया जाता है।

मुहा०—तुर्रा यह कि = उसपर भी इतना और। इसके उपरांत इतना यह भी। जैसे,—वे घोड़ा तो ले ही गए; तुर्रा यह कि खर्च भी हम दें। किसी बात पर तुर्रा होना = (१) किसी बात में कोई और दूसरी बात मिलाई जाना। (२) यथार्थ बात के अतिरिक्त और दूसरी बात भी मिलाई जाना। हाशिया चढ़ाना।

४. फूलों की लड़ियों का गुच्छा जो दूल्हे के कान के पास लटकता रहता है। ५. टोपी आदि में लगा हुआ फुँदना। ६. पक्षियों के सिर पेर निकले हुए परों का गुच्छा। चोटी। शिखा। ७. हाशिया। किनारा। ८. मकान का छज्जा। ९. मुँहासे का वह पल्ला जो उसके ऊपर निकला होता है। १०. गुलतुर्रा। मुर्गकेश नाम का फूल। जटाधारी। ११. कोड़ा। चाबुक।

मुहा०—तुर्रा करना = (१) कोड़ा मारना। (२) कोड़ा मारकर घोड़े को बढ़ाना।

१२. एक प्रकार की बुलबुल जो ८ या ९ अंगुल लंबी होती है।

विशेष—यह जाड़े भर भारतवर्ष के पूर्वीय भागों में रहती है, पर गरमी में चीन और साइबेरिया की ओर चली जाती है।

१३. एक प्रकार का बटेर। डुबकी।

तुर्रा—संज्ञा पुं० [अनु० तुल तुल (= पानी डालने का शब्द)] भाँग आदि का घूँट। चुसकी।

क्रि० प्र०—देना।—लेना।

मुहा०—तुर्रा चढ़ाना या जमाना = भाँग पीना।

तुर्रा—वि० [फ़ा० तुर्रह्] अनोखा। अद्भुत।

तुर्वणि—वि० [सं०] १. फुर्तीला। क्षिप्र। २. विजेता। शत्रुओं को नष्ट या क्षतिग्रस्त करनेवाला [को०]।

तुर्वसु—संज्ञा पुं० [सं०] राजा ययाति के एक पुत्र का नाम जो देवयानी के गर्भ से उत्पन्न हुआ था।

विशेष—राजा ययाति ने विषय भोग से तृप्त न होकर जब इससे इसका यौवन माँगा था, तब इसने देने से साफ इनकार कर दिया था। इसपर राजा ययाति ने इसे शाप दिया था कि तू अधर्मियों प्रतिलोमाचारियों आदि का राजा होकर अनेक प्रकार के कष्ट भोगेगा। विष्णुपुराण के अनुसार तुर्वसु का पुत्र हुआ वह्नि, वह्नि का गोभानु, गोभानु का त्रैशांब, त्रैशांब का करंधम और करंधम का मरुत्त। मरुत्त को कोई संतति न थी, इससे उसने पुरुवंशीय दुष्यंत को पुत्र रूप से ग्रहण किया।

तुर्श—वि० [फ़ा०] १. खट्टा। २. रूखा (को०)। ३. कड़ा (को०)। ४ अप्रसन्न (को०)। ५. क्रुद्ध। कुपित (को०)।

तुर्शरू—वि० [फ़ा०] तीखे मिजाजवाला। बदमिजाज। उ०—तुर्शरूई छोड़ दे औ तल्खगोई तर्क कर।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० १०।

तुर्शाई‡—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० तुर्श + हिं० आई (प्रत्य०)] दे० 'तुर्शी'।

तुर्शाना—क्रि० अ० [फ़ा० तुर्श से नामिक धातु] खट्टा हो जाना।

तुर्शी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. खटाई। अम्लता। २. रुष्टता। अप्रसन्नता (को०)।

तुर्शीदंदाँ—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] घोड़े के दाँतों में कीट या मैल जमने का रोग।

तुलⓅ—वि० [सं०] दे० 'तुल्य' उ०—'हरीचंद' स्वामिनि अभिरामिनि तुल न जगत मैं जाकी।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ८०।

तुलक—संज्ञा पुं० [सं०] राजा का सलाहकार। राजमंत्री (को०)।

तुलकनाⓅ—क्रि० अ० [सं० तुल] बराबरी करना। समता करना। उ०—बंदलवा पहि मैं न मनाकवि कोने धौ काम कला तुलकी।—अकबरी०, पृ० ३५१।

तुलछीⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तुलसी'। उ०—घरि घरि तुलछी वेद पुराण।—बी० रासो, पृ० ८१।

तुलन—संज्ञा पुं० [सं०] १. वजन। तौल। २. तोलना। ३. तुलना करना। समानता दिखाना (को०)।

तुलना¹—क्रि० अ० [सं० तुल] १. तौला जाना। तराजू पर अंदाजा जाना। मान का कूता जाना।

संयो० क्रि०—जाना।

२. तौल या मान में बराबर उतरना। तुल्य होना। उ०—तात स्वर्ग अपवर्ग सुख धरिय तुला इक अंग। तुलै न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग।—तुलसी (शब्द०)। ३. किसी आधार पर इस प्रकार ठहरना कि आधार के बाहर निकला हुआ कोई भाग अधिक बोझ के कारण किसी ओर को झुका न हो। ठीक अंदाज के साथ टिकना। जैसे, किसी कील पर छड़ी आदि का तुलकर टिकना। बाइसिकिल पर तुलकर बैठना। ४. किसी अस्त्र आदि का इस प्रकार हिसाब से चलाया जाना कि वह ठीक लक्ष्य पर पहुँचे और उतना ही आघात पहुँचावे जितना इष्ट हो। सधना। जैसे, तुलकर तलवार का मारना। ५. नियमित होना। बँधना। अंदाज होना। बँधे हुए मान का अभ्यास होना। उ०—जैसे, दूकानदारों के हाथ तुले हुए होते हैं; जितना उठाकर दे देते हैं, वह प्रायः ठीक होता है। ६. भरना। पूरित होना। ७. गाड़ी के पहिए का औंगा जाना। ८. उद्यत होना। उतारू होना। किसी काम या बात के लिये बिलकुल तैयार होना। जैसे,—वे इस बात पर तुले हुए हैं, कभी न मानेंगे।

मुहा०—किसी काम या बात पर तुलना = (१) कोई काम करने के लिये उद्यत होना। (२) जिद पकड़ लेना। हठ करना। उ०—तोलने के लिये भला किसको, तुल गए कह तुली हुई बातें।—चोखे०, पृ० ३२। तुली हुई बातें कहना = ठिकाने की बातें कहना। पक्की बातें कहना। उ०—तोलने के लिये भला किसको। तुल गए कह तुली हुई बातें।—चोखे०, पृ० ३२।

तुलना²—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दो या अधिक वस्तुओं के गुण, मान आदि के एक दूसरे से घट बढ़ होने का विचार। मिलान। तारतम्य।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

२. सादृश्य। समता। बराबरी। जैसे,—इसकी तुलना उसके साथ नहीं हो सकती। ३. उपमा। ४ तौल। वजन। †५. गणना। गिनती। ६. उठाना। साधना (को०)। ७. आँकना। कूतना। अंदाज लगाना या करना (को०)। ८. परीक्षण करना (को०)।

तुलनात्मक—वि० [सं०] तुलना विषयक। जिसमें दो वस्तुओं की समानता दिखाई जाय। उ०—मानस, मानुषी, विकासशास्त्र हैं तुलनात्मक, सापेक्ष ज्ञान।—युगांत, पृ० ६०।

तुलनी—संज्ञा स्त्री० [सं० तुला] तराजू या काँटे की डाँडी में सुई के दोनों तरफ का लोहा।

तुलबुली—संज्ञा स्त्री० [देश०] जल्दीबाजी।

तुलवाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० तोलना, तुलना] १. तौलने की मजदूरी। २. पहिए को औंगने की मजदूरी।

तुलवाना—क्रि० स० [हिं० तोलना] [संज्ञा तुलवाई] १. तौल कराना। वजन कराना। २. गाड़ी के पहिए की धुरी में घी, तेल आदि दिलाना। औंगवाना।

तुलसारिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] तरकस। तूणीर। (को०)।

तुलसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक छोटा झाड़ या पौधा जिसकी पत्तियों से एक प्रकार की तीक्ष्ण गंध निकलती है।

विशेष—इसकी पत्तियाँ एक अंगुल से दो अंगुल तक लंबी और लंबाई लिए हुए गोल काट की होती हैं। फूल मंजरी के रूप में पतली सींकों में लगते हैं। अंकुर के रूप में बीज से पहले दो दल फूटते हैं। उद्भिद् शास्त्रवेत्ता तुलसी को पुदीने की जाति में गिनते हैं। तुलसी अनेक प्रकार की होती है। गरम देशों में यह बहुत अधिक पाई जाती है। अफ्रिका और दक्षिण अमेरिका में इसके अनेक भेद मिलते हैं। अमेरिका में एक प्रकार की तुलसी होती है जिसे ज्वर बूटी कहते हैं। फसली बुखार में इसकी पत्ती का काढ़ा पिलाया जाता है। भारत वर्ष में भी तुलसी कई प्रकार की पाई जाती है; जैसे, गंधतुलसी, श्वेत तुलसी या रामा, कृष्ण तुलसी या कृष्णा, बर्बरी तुलसी या ममरी। तुलसी की पत्ती मिर्च आदि के साथ ज्वर में दी जाती है। वैद्यक में यह गरम, कडुई, दाहकारक, दीपन तथा कफ, वात और कुष्ट आदि को दूर करनेवाली मानी जाती है।

तुलसी को वैष्णव अत्यंत पवित्र मानते हैं। शालग्राम ठाकुर की पूजा बिना तुलसीपत्र के नहीं होती। चरणामृत आदि में भी तुलसीदल डाला जाता है। तुलसी की उत्पत्ति के संबंध में ब्रह्मवैवर्त पुराण में यह कथा है - तुलसी नाम की एक गोपिका गोलोक में राधा की सखी थी। एक दिन राधा ने उसे कृष्ण के साथ विहार करते देख शाप दिया कि तू मनुष्य शरीर धारण कर। शाप के अनुसार तुलसी धर्मध्वज राजा की कन्या हुई। उसके रूप की तुलना किसी से नहीं

हो सकती थी, इससे उसका नाम 'तुलसी' पड़ा। तुलसी ने वन में आकर घोर तप किया और ब्रह्मा से इस प्रकार वर माँगा—'मैं कृष्ण की रति से कभी तृप्त नहीं हुई हूँ। मैं उन्हीं को पति रूप में पाना चाहती हूँ'। ब्रह्मा के कथनानुसार तुलसी ने शंखचूड़ नामक राक्षस से विवाह किया। शंखचूड़ को वर मिला था कि बिना उसकी स्त्री का सतीत्व भंग हुए उसकी मृत्यु न होगी। जब शंखचूड़ ने संपूर्ण देवताओं को परास्त कर दिया, तब सब लोग विष्णु के पास गए। विष्णु ने शंखचूड़ का रूप धारण करके तुलसी का सतीत्व नष्ट किया। इसपर तुलसी ने नारायण को शाप दिया कि 'तुम पत्थर हो जाओ'। जब तुलसी नारायण के पैर पर गिरकर बहुत रोने लगी, तब विष्णु ने कहा, 'तुम यह शरीर छोड़कर लक्ष्मी के समान मेरी प्रिया होगी। तुम्हारे शरीर से गंडकी नदी और केश से तुलसी वृक्ष होगा।' तब से बराबर शालग्राम ठाकुर की पूजा होने लगी और तुलसी-दल उनके मस्तक पर चढ़ने लगा। वैष्णव तुलसी की लकड़ी की माला और कंठी धारण करते हैं। बहुत से लोग तुलसी शालग्राम का विवाह बड़ी धूमधाम से करते हैं। कार्तिक मास में तुलसी की पूजा घर घर होती है, क्योंकि कार्तिक की अमावस्या तुलसी के उत्पन्न होने की तिथि मानी जाती है।

२. तुलसीदल।

तुलसीचौरा—संज्ञा पुं० [सं०] वह वर्गाकार उठा हुआ स्थान जिसमें तुलसी लगाई जाती है। तुलसी वृंदावन।

तुलसीदल—संज्ञा पुं० [सं०] तुलसीपत्र। तुलसी के पौधे का पत्ता।

विशेष—वैष्णव इसे अत्यंत पवित्र मानते हैं और ठाकुर पर चढ़ाकर प्रसाद के रूप में भक्तों में बाँटते हैं। कहीं कहीं कथा वार्ता आदि में आने के लिये और प्रसाद रूप से तुलसीदल बाँटा जाता है। कहीं कहीं मंदिरों और साधुओं वैरागियों की ओर से भी तुलसीदल निमंत्रण रूप में समारोहों के अवसर पर भेजा जाता है।

तुलसीदाना—संज्ञा पुं० [हिं० तुलसी + फा० दाना] एक गहना।

तुलसीदास—संज्ञा पुं० [सं० तुलसी + दास] उत्तरीय भारत के सर्वप्रधान भक्त कवि जिनके 'रामचरितमानस' का प्रचार हिंदुस्तान में घर घर है।

विशेष—ये जाति के सरयूपारीण ब्राह्मण थे। ऐसा अनुमान किया जाता है कि ये पतिऔजा के दुबे थे। पर तुलसीचरित नामक एक ग्रंथ में, जो गोस्वामी जी के किसी शिष्य का लिखा हुआ माना जाता है और अबतक छपा नहीं है, इन्हें गाना का मिश्र लिखा है। (यह ग्रंथ अब प्रकाशित हो गया है)। वेणीमाधवदास कृत गोसाईंचरित्र नामक एक ग्रंथ भी है जो अब नहीं मिलता। उसका उल्लेख शिवसिंह ने अपने शिवसिंह सरोज में किया है। कहते हैं, वेणीमाधवदास कवि गोसाईं जी के साथ प्रायः रहा करते थे।

नाभा जी के भक्तमाल में तुलसीदास जी की प्रशंसा आई है; जैसे—कलि कुटिल जीव निस्तार हित बालमीकि तुलसी भयो।·········रामचरित-रस-मत्त रहत अहनिशि व्रतधारी। भक्तमाल की टीका में प्रियादास ने गोस्वामी जी का कुछ वृत्तांत लिखा है और वही लोक में प्रसिद्ध है। तुलसीदास जी के जन्मसंवत् का ठीक पता नहीं लगता। पं० रामगुलाम द्विवेदी मिरजापुर में एक प्रसिद्ध रामभक्त हुए हैं। उन्होंने जन्मकाल संवत् १५८९ बतलाया है। शिवसिंह ने १५८३ लिखा है। इनके जन्मस्थान के संबंध में भी मतभेद है, पर अधिकांश प्रमाणों से इनका जन्मस्थान चित्रकूट के पास राजा-पुर नामक ग्राम ही ठहरता है, जहाँ अबतक इनके हाथ की लिखी रामायण का कुछ अंश रक्षित है। तुलसीदास के माता पिता के संबंध में भी कहीं कुछ लेख नहीं मिलता। ऐसा प्रसिद्ध है कि इनके पिता का नाम आत्माराम दुबे और माता का हुलसी था। प्रियादास ने अपनी टीका में इनके संबंध में कई बातें लिखी हैं जो अधिकतर इनके माहात्म्य और चमत्कार को प्रकट करती हैं। उन्होंने लिखा है कि गोस्वामी जी युवावस्था में अपनी स्त्री पर अत्यंत आसक्त थे। एक दिन स्त्री बिना पूछे बाप के घर चली गई। ये स्नेह से व्याकुल होकर रात को उसके पास पहुँचे। उसने इन्हें धिक्कारा—'यदि तुम इतना प्रेम राम से करते, तो न जाने क्या हो जाते'। स्त्री की बात इन्हें लग गई और ये चट विरक्त होकर काशी चले आए। यहाँ एक प्रेत मिला। उसने हनुमान जी का पता बताया जो नित्य एक स्थान पर ब्राह्मण के वेश में कथा सुनने जाया करते थे। हनुमान् जी से साक्षात्कार होने पर गोस्वामी जी ने रामचंद्र के दर्शन की अभिलाषा प्रकट की। हनुमान् जी ने इन्हें चित्रकूट जाने की आज्ञा दी, जहाँ इन्हें दो राजकुमारों के रूप में राम और लक्ष्मण जाते हुए दिखाई पड़े। इसी प्रकार की और कई कथाएँ प्रियादास ने लिखी हैं; जैसे, दिल्ली के बादशाह का इन्हें बुलाना और कैद करना, बंदरों का उत्पात करना और बादशाह का तंग आकर छोड़ना, इत्यादि।

तुलसीदास जी ने चैत्र शुक्ल ९ (रामनवमी), संवत् १६३१ को रामचरित मानस लिखना प्रारंभ किया। संवत् १६८० में काशी में असीघाट पर इनका शरीरांत हुआ, जैसा इस दोहे से प्रकट है—संवत सोलह सौ असी असी गंग के तीर। श्रावण शुक्ला सप्तमी तुलसी तज्यो शरीर। कुछ लोगों के मत से 'शुक्ला सप्तमी' के स्थान पर 'श्यामा तीज शनि' पाठ चाहिए क्योंकि इसी तिथि के अनुसार गोस्वामी जी के मंदिर के वर्तमान अधिकारी बराबर सीधा दिया करते हैं, और यही तिथि प्रामाणिक मानी जाती है। रामचरितमानस के अति-रिक्त गोस्वामी जी की लिखी और पुस्तकें ये हैं—दोहावली, गीतावली, कवितावली या कवित्त रामायण, विनयपत्रिका, रामाज्ञा, रामलला नहछू, बरवै रामायण, जानकीमंगल, पार्वतीमंगल, वैराग्य संदीपनी, कृष्णगीतावली। इनके अति-रिक्त हनुमानबाहुक आदि कुछ स्तोत्र भी गोस्वामी जी के नाम से प्रसिद्ध हैं।

तुलसोद्भवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बनतुलसी। बबई। बबरी। ममरी।

तुलसीपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] तुलसी की पत्ती ।

तुलसीबास—संज्ञा पुं० [हिं० तुलसी + बास (= महक)] एक प्रकार का महीन धान जो अगहन में तैयार होता है ।

विशेष—इसका चावल बहुत सुगंधित होता है और कई साल तक रह सकता है ।

तुलसीवन—संज्ञा पुं० [सं०] १. तुलसी के वृक्षों का समूह । तुलसी का जंगल । २. वृंदावन ।

तुलसी विवाह—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु की मूर्ति के साथ तुलसी के विवाह करने का एक उत्सव ।

विशेष—हिंदू परिवारों की धार्मिक महिलाएँ कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष में भीष्मपंचक एकादशी से पूर्णिमा तक यह उत्सव मनाती हैं ।

तुलसी वृंदावन—संज्ञा पुं० [सं०] तुलसीचौरा [को०] ।

तुलहⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० तुला + हिं० ह (स्वा० प्रत्य०)] तुला । तराजू । उ०—तुलह न तोली गजह न मापी, पहुज न सेर अढ़ाई ।—कबीर ग्रं०, पृ० १५३ ।

तुला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सादृश्य । तुलना । मिलान । २. गुरुत्व नापने का यंत्र । तराजू । काँटा ।

यौ०—तुलादंड ।

३. मान । तौल । ४. अनाज आदि नापने का बरतन । भांड । ५. प्राचीन काल की एक तौल जो १०० पल या पाँच सेर के लगभग होती थी । ६. ज्योतिष की बारह राशियों में से सातवीं राशि ।

विशेष—मोटे हिसाब से दो नक्षत्रों और एक नक्षत्र के चतुर्थांश अर्थात् सवा दो नक्षत्रों की एक राशि होती है । तुला राशि में चित्रा नक्षत्र के शेष ३० दंड तथा स्वाती और विशाखा के आद्य ४५-४५ दंड होते हैं । इस राशि का आकार तराजू लिए हुए मनुष्य का सा माना जाता है ।

७. सत्यासत्यनिर्णय की एक परीक्षा जो प्राचीन काल में प्रचलित थी । वादी प्रतिवादी आदि की एक दिव्य परीक्षा । वि० दे० 'तुलापरीक्षा' । ८. वास्तु विद्या में स्तंभ (खंभे) के विभागों में से चौथा विभाग ।

तुलाई[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० तुला = रूई] वह दोहरा कपड़ा जिसके भीतर रूई भरी हो । रूई से भरा दोहरा कपड़ा जो ओढ़ने के काम में आता है । दुलाई । उ०—तपन तेज तपता तपन तूल तुलाई माह । सिसिर सीत क्योंहुँ न घटै बिन लपटे तियनाह ।—बिहारी (शब्द०) ।

तुलाई[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० तुलना] १. तौलने का काम या भाव । २. तौलने की मजदूरी ।

तुलाई[3]—संज्ञा स्त्री० [हिं० तुलाना] गाड़ी के पहियों को औंगाने या धुरी में चिकना दिलवाने की क्रिया ।

तुलाकूट—संज्ञा पुं० [सं०] १ तौल में कसर । २. तौल में कसर करनेवाला । डाँड़ी मारनेवाला मनुष्य ।

तुलाकोटि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तराजू की डंडी के दोनों छोर जिनमें पलड़े की रस्सी बँधी रहती है । २. एक तौल का नाम । ३. अर्बुद संख्या । ४. नूपुर । ५. स्तंभ का सिरा या छोर (को०) ।

तुलाकोटी—संज्ञा स्त्री० । [सं०] दे० तुलाकोटि' [को०] ।

तुलाकोश—संज्ञा पुं० [सं०] १. तुलापरीक्षा । २. तराजू रखने का स्थान (को०) ।

तुलाकोष—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तुलाकोश' ।

तुलादंड—संज्ञा पुं० [सं० तुलादण्ड] तराजू की डाँड़ी या डंडी [को०]

तुलादान—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का दान जिसमें किसी मनुष्य की तौल के बराबर द्रव्य या पदार्थ का दान होता है । यह सोलह महादानों में से है । तीर्थों में इस प्रकार का दान प्रायः राजा महाराजा करते हैं ।

तुलाधट—संज्ञा पुं० [सं०] १. तराजू की डंडी । २. तराजू का पलड़ा [को०] ।

तुलाधर—संज्ञा पुं० [सं०] १. व्यापारी । सौदागर । २. तुला राशि । ३. सूर्य [को०] ।

तुलाधार[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. तुला राशि । २. तराजू की रस्सी जिसमें पलड़े बँधे रहते हैं । ३. बनियाँ । बणिक् । ४. काशी का रहनेवाला एक वणिक् जिसने महर्षि जाजलि को उपदेश दिया था । –(महाभारत) । ५. काशीनिवासी एक व्याध जो सदा माता पिता की सेवा में तत्पर रहता था ।

विशेष—कुलबोध नामक एक व्यक्ति जब इसके सामने आया, तब इसने उसका समस्त पूर्ववृत्तांत कह सुनाया । इसपर उस व्यक्ति ने भी माता पिता की सेवा का व्रत ले लिया । –(बृहद्धर्मपुराण) ।

तुलाधार[2]—वि० तुला को धारण करनेवाला ।

तुलनाⓅ[1]—क्रि० अ० [हिं० तुलना (= तौल में बराबर आना)] आ पहुँचना । समीप आना । निकट आना । उ०—(क) समुद लोक घन चढ़ी बिवाना । जो दिन डरे सो आइ तुलाना ।—जायसी (शब्द०) । (ख) अपनो काल आपु ही बोल्यो इनको मीचु तुलानो ।—सूर (शब्द०) ।

तुलना[2]—क्रि० स० [हिं० तुलना] १. तुलवाना । तौलाना । २. बराबर होना । पूरा उतरना । ३. गाड़ी के पहियों को औंगाना । गाड़ी के पहियों की धुरी में चिकना दिलाना ।

तुलापरीक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] अभियुक्तों की एक परीक्षा जो प्राचीन काल में अग्निपरीक्षा, विषपरीक्षा आदि के समान प्रचलित थी । दोषी या निर्दोष होने की दिव्य परीक्षा ।

विशेष—स्मृतियों में तुलापरीक्षा का बहुत ही विस्तृत विधान किया हुआ है । एक खुले स्थान में यज्ञकाष्ठ की एक बड़ी सी तुला (तराजू) खड़ी की जाती थी और चारों ओर

तोरण आदि बाँधे जाते थे। फिर मंत्रपाठपूर्वक देवताओं का पूजन होता था और अभियुक्त को एक बार तराजू के पलड़े पर बैठाकर मिट्टी आदि से तौल लेते थे। फिर उसे उतारकर दूसरी बार तौलते थे। यदि पलड़ा कुछ झुक जाता था तो अभियुक्त को दोषी समझते थे।

तुलापुरुषकृच्छ्र—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का व्रत।

विशेष—इसमें पिण्याक (तिल की खली), मात, मट्ठा, जल और सत्तू इनमें से प्रत्येक को क्रमशः तीन तीन दिन तक खाकर पंद्रह दिनों तक रहना पड़ता है। यम ने इसे २१ दिनों का व्रत लिखा है। इसका पूरा विधान याज्ञवल्क्य, हारीत आदि स्मृतियों में मिलता है।

तुलापुरुष—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तुलाभार' [को०]।

तुलापुरुषदान—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तुलादान'।

तुलाप्रग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] तराजू के पलड़ों की रस्सी [को०]।

तुलाप्रग्राह—संज्ञा पुं० [सं०] तुलाप्रग्रह।

तुलाबीज—संज्ञा पुं० [सं०] घुँघची के बीज जो तौल के काम में आते हैं। गुंजाबीज।

तुलाभवानी—संज्ञा स्त्री० [पुं०] शंकर दिग्विजय के अनुसार एक नदी और नगरी का नाम।

तुलाभार—संज्ञा पुं० [सं०] सोने जवाहरात का एक पुरुष के तोल का मान जो दान किया जाता था [को०]।

तुलामान—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह अंदाज या मान जो तौलकर किया जाय। २. बाट। बटखरा।

तुलामानांतर—संज्ञा पुं० [सं० तुलामानान्तर] तौल में अंतर डालना। कम तौल के बटखरे रखना। हलके बाट रखना।

विशेष—कौटिल्य ने इस अपराध के लिये २०० पण दंड लिखा है।

तुलायंत्र—संज्ञा पुं० [सं० तुलायन्त्र] तराजू।

तुलायष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] तराजू की डंडी [को०]।

तुलावा—संज्ञा पुं० [हिं० तुलना] १. वह लकड़ी जिसके बल गाड़ी खड़ी करके धुरी में तेल दिया जाता है और पहिया निकाला जाता है। २. वह लकड़ी जिसके सहारे ओंगते समय गाड़ी खड़ी की जाती है।

तुलासूत्र—संज्ञा पुं० [सं०] तराजू के पलड़ों को रस्सी [को०]।

तुलाहीन—संज्ञा पुं० [सं०] कम तौलना। डाँड़ी मारना।

विशेष—चाणक्य ने तौल की कमी में कमी का चार गुना जुरमाना लिखा है।

तुलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जुलाहों की कूँची। २. चित्र बनाने की कूँची।

तुलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] खंजन की तरह की एक छोटी चिड़िया।

तुलित—वि० [सं०] १. तुला हुआ। २. बराबर। समान।

तुलिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] शाल्मली वृक्ष। सेमर का पेड़।

तुलिफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] सेमर का वृक्ष।

तुली[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'तुलि'।

तुली[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० तुला] छोटा तराजू। काँटा।

तुली†[3]—संज्ञा स्त्री० [?] तंबाकू। सुरती।

तुलुव—संज्ञा पुं० [सं०] दक्षिण के एक प्रदेश का प्राचीन नाम जो सह्याद्रि और समुद्र के बीच में माना जाता था। आजकल इस प्रदेश को उत्तर कनाडा कहते हैं।

तुलू—संज्ञा स्त्री० [कन्नड़] कर्नाटक में प्रचलित एक उपभाषा।

तुलू—संज्ञा पुं० [अ० तुलूअ] सूर्य या किसी नक्षत्र का उदय होना।

तुलूली—संज्ञा स्त्री० [अनु० तुलतुल] बँधी हुई धार जो कुछ दूर पर जाकर पड़े (जैसे, पेशाब की)।

क्रि० प्र०—बँधना।

तुल्य—वि० [सं०] १. समान। बराबर। २. सदृश। समरूप। उसी प्रकार का। ३. उपयुक्त। युक्त (को०)। ४. अभिन्न (को०)।

तुल्यकक्ष—वि० [सं०] समान। बराबरी का। उ०—राजशेखर ने अपनी काव्यमीमांसा में इस सहभाव को तुल्यकक्ष कहकर काव्य को दूसरे प्रकार के लेखों से अलग किया है।—पा० सा० सि०, पृ० १।

तुल्यकर्मक—संज्ञा पुं० [सं०] (व्यक्ति) जिनका उद्देश्य समान हो [को०]।

तुल्यकाल—वि० [सं०] समकालिक। एक ही समय का [को०]।

तुल्यकालीय—वि० [सं०] समकालिक। एक ही समय का [को०]।

तुल्यकुल्य[1]—वि० [सं०] समान कुल का [को०]।

तुल्यकुल्य[2]—संज्ञा पुं० रिश्तेदार। संबंधी [को०]।

तुल्यगुण—वि० [सं०] १. समान गुणवाला। २. समान रूप से अच्छा [को०]।

तुल्यजातीय—वि० [सं०] एक ही जाति का। समान [को०]।

तुल्यजोगिताⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तुल्ययोगिता'। उ०—तुल्यजोगिता तहँ धरम जहँ बरन्यन को एक।—भूषण ग्रं०, पृ० २७।

तुल्यतर्क—संज्ञा पुं० [सं०] ऐसा अनुमान जो सत्य के निकट हो [को०]।

तुल्यता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बराबरी। समता। २. सादृश्य।

तुल्यदर्शन—वि० [सं०] समान दृष्टि से देखनेवाला। सबके प्रति एक दृष्टि रखनेवाला [को०]।

तुल्यनामा—वि० [सं० तुल्यनामन्] एक ही नाम का। समान नाम का [को०]।

तुल्यपान—संज्ञा पुं० [सं०] स्वजाति के लोगों के साथ मिल जुलकर खाना पीना।

तुल्यप्रधानव्यंग्य—संज्ञा पुं० [सं० तुल्यप्रधानव्यङ्ग्य] वह व्यंग्य जिसमें वाच्यार्थ और व्यंग्यार्थ बराबर हो।

तुल्ययोगिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक अलंकार जिसमें कई प्रस्तुतों या अप्रस्तुतों का अर्थात् बहुत से उपमानों का एक ही धर्म बतलाया जाय। जैसे,—(क) अपने अंग के जानि के जोबन नृपति प्रबीन। स्तन, मन, नैन, नितंब को बड़ो इजाफा

कीन।—बिहारी (शब्द०)। यहाँ स्तन, मन, नयन, नितंब इन प्रसिद्ध उपमेयों का 'इजाफा होना' एक ही धर्म कहा गया है। (ख) लखि तेरी सुकुमारता परी या जग माँहि। कमल, गुलाब कठोर से किहि को भासत नाहिं (शब्द०)। यहाँ कमल और गुलाब इन दोनों उपमानों का एक ही धर्म कठोरता कहा गया है।

तुल्ययोगी—वि० [सं० तुल्ययोगिन्] समान संबंध रखनेवाला।

तुल्यरूप—वि० [सं०] समरूप। सदृश। एक जैसा [को०]।

तुल्यलक्षण—वि० [सं०] समान लक्षण युक्त [को०]।

तुल्यवृत्ति—वि० [सं०] समान पेशेवाला [को०]।

तुल्यशः—क्रि० वि० [सं०] तुल्यतापूर्वक। तुलतापूर्वक [को०]।

तुल्ल—वि० [सं० तुल्य] दे० 'तुल्य'।

तुल्वल—संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम।

तुव[1]—सर्व० [हिं०] दे० 'तव'।

तुव(पु)[2]—सर्व० [हिं०] दे० 'तुम'। उ०—थिर रहहु राव हम उच्चरे, न डरि न डरि अब सेल तुव।—हू० रासो, पृ० ५३।

तुवर[1]—वि० [सं०] १. कसैला। २. बिना दाढ़ी मोछ का। श्मश्रुहीन।

तुवर[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. कसैला रस। कषाय रस। २. अरहर। ३. एक पौधा जो नदियों और समुद्र के तट पर होता है।

विशेष—इसके फल इमली के समान होते हैं जिनके खाने से पशुओं का दूध बढ़ता है।

तुवरयावनाल—संज्ञा पुं० [सं०] लाल ज्वार। लाल जुन्हरी।

तुवरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गोपीचंदन। २. आढ़की। अरहर।

तुवरी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तुवरिका'।

तुवरीशिंब—संज्ञा पुं० [सं० तुवरीशिम्ब] चकवँड़ का पेड़। पँवार।

तुवि—संज्ञा स्त्री० [सं०] तूँबी।

तुशियार—संज्ञा पुं० [देश०] एक झाड़ जो पश्चिम हिमालय में होता है। इसकी छाल से रस्सियाँ बनाई जाती हैं। पुरली।

तुष—संज्ञा पुं० [सं०] १. अन्न के ऊपर का छिलका। भूसी। उ०—आनंदघन, इनकों सिख ऐसें जैसें तुष लै फटके।—घनानंद, पृ० ५४३। २. अंडे के ऊपर का छिलका। ३. बहेड़े का पेड़।

तुषग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि।

तुषधान्य—संज्ञा पुं० [सं०] छिलकायुक्त अनाज [को०]।

तुषसार—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि [को०]।

तुषांबु—संज्ञा पुं० [सं० तुषाम्बु] एक प्रकार की काँजी जो भूसी सहित कूटे हुए जौ को सड़ाकर बनती है।

विशेष—वैद्यक में यह अग्निदीपक, पाचक, हृदयग्राही और तीक्ष्ण मानी गई है।

तुषाग्नि—संज्ञा पुं० [हिं०] तुषानल [को०]।

तुषानल—संज्ञा पुं० [सं०] १. भूसी की आग। घासफूस की आग। करसी की आँच। २. भूसी या घास फूस की आग में भस्म होने की क्रिया जो प्रायश्चित्त के लिये की जाती है।

विशेष—कुमारिल भट्ट तुषाग्नि में ही भस्म होकर मरे थे।

तुषार[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. हवा में मिली भाप जो सरदी से जमकर और सूक्ष्म जलकण के रूप में हवा से अलग होकर गिरती और पदार्थों पर जमती दिखलाई देती है। पाला। २. हिम। बरफ। ३. एक प्रकार का कपूर। चीनिया कपूर। ४. हिमालय के उत्तर का एक देश जहाँ के घोड़े प्रसिद्ध थे। ५. तुषार देश में बसनेवाली जाति जो शक जाति की एक शाखा थी। ६. ओस (को०)। ७. हलकी वर्षा। फुही (को०)। ८. तुषार देश का घोड़ा (को०)।

तुषार[2]—वि० छूने में बरफ की तरह ठंढा।

तुषारकण—संज्ञा पुं० [सं०] ओस की बूँदें। हिमकण [को०]।

तुषारकर—संज्ञा पुं० [सं०] १. हिमकर। चंद्रमा। २. कपूर (को०)।

तुषारकाल—संज्ञा पुं० [सं०] शीत ऋतु। जाड़ा [को०]।

तुषारकिरण—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा [को०]।

तुषारगिरि—संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय पर्वत [को०]।

तुषारगौर[1]—संज्ञा पुं० [सं०] कपूर।

तुषारगौर[2]—वि० १. तुषार जैसा श्वेत। हिम सा धवल। २. तुषार पड़ने से श्वेत [को०]।

तुषारद्युति—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा [को०]।

तुषारपर्वत—संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय पर्वत [को०]।

तुषारपाषाण—संज्ञा पुं० [सं०] १. ओला। २. बरफ।

तुषारमूर्ति—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

तुषारर्तु—संज्ञा स्त्री० [सं०] ठंढक का मौसम। शीतकाल [को०]।

तुषाररश्मि—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

तुषारशिखरी—संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय पर्वत [को०]।

तुषारशैल—संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय पर्वत [को०]।

तुषारांशु—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

तुषाराद्रि—संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय पर्वत।

तुषारावृत—वि० [सं० तुषार + आवृत] हिम से घिरा हुआ। हिम से ढँका हुआ। उ०—तुषारावृत अँधेरा पथ था। हिम गिर रहा था। तारों का पता नहीं; भयानक शीत और निर्जन निशीथ।—आकाश०, पृ० ३५।

तुषित—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार के गणदेवता जो संख्या में १२ हैं। मन्वंतरों के अनुसार इनके नाम बदला करते हैं। २. विष्णु। ३. एक स्वर्ग का नाम। (बौद्ध)।

तुषिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] उपदेवियों का एक वर्ग, जिनकी संख्या बारह या छत्तीस मानी जाती है [को०]।

तुषोत्थ—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तुषोदक'।

तुषोदक—संज्ञा पुं० [सं०] १. छिलके समेत कूटे हुए जौ को पानी में सड़ाकर बनाई हुई काँजी। तषांबु। २. भूसी को सड़ाकर खट्टा किया हुआ जल।

तुष्ट—वि० [सं०] १. तोषप्राप्त। तृप्त। संतुष्ट। उ०—तुष्ट तुम्हीं में उन्हें देखकर रही, रहूँगी।—साकेत, पृ० ४०५। २. राजी। प्रसन्न। खुश।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

तुष्टता—संज्ञा स्त्री० [सं०] संतोष । प्रसन्नता ।

तुष्टनाⓅ—क्रि० अ० [सं० तुष्ट] प्रसन्न होना । उ०—(क) अपर कर्म तुष्टत चिरकाला । प्रेम ते प्रगट होत ततकाला ।—विश्राम (शब्द०) (ख) नाम लेइ जेहि युवति को नहि सुहाइ सुनि तासु । राम जानकी के कहे तुष्टत तेहि पर धासु ।—विश्राम (शब्द०) ।

तुष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. संतोष । तृप्ति । २. प्रसन्नता ।

विशेष—सांख्य में नौ प्रकार की तुष्टियाँ मानी गई हैं, चार आध्यात्मिक और पाँच बाह्य । आध्यात्मिक तुष्टियाँ ये हैं—(१) प्रकृति—आत्मा को प्रकृति से भिन्न मानकर सब कार्यों का प्रकृति द्वारा होना मानने से जो तुष्टि होती है, उसे प्रकृति या अंबतुष्टि कहते हैं । (२) उपादान—संन्यास से विवेक होता है, ऐसा समझ संन्यास से जो तुष्टि होती है, उसे उपादान या सलिलतुष्टि कहते हैं । (३) काल—काल पाकर आप ही विवेक या मोक्ष प्राप्त हो जायगा, इस प्रकार तुष्टि को कालतुष्टि या ओघतुष्टि कहते है । (४) भाग्य—भाग्य में होगा तो मोक्ष हो जायगा, ऐसी तुष्टि को भाग्यतुष्टि या वृष्टितुष्टि कहते हैं ।

इसी प्रकार इंद्रियों के विषयो से विरक्ति द्वारा जो तुष्टि होती है, वह पाँच प्रकार से होती है; जैसे, यह समझने से कि, (१) अर्जन करने मे बहुत कष्ट होता है, (२) रक्षा करना और कठिन है, (३) विषयों का नाश हो ही जाता है, (४) ज्यो ज्यो भोग करते है, त्यों त्यो इच्छा बढ़ती ही जाती हैं और (५) बिना दूसरे को कष्ट दिए सुख नहीं मिल सकता । इन पाँचो के नाम क्रमशः पार, सुपार, पारापार, अनुत्तमांभ और उत्तमाभ हैं ।

इन नौ प्रकार की तुष्टियो के विपर्यय से बुद्धि की अशक्ति उत्पन्न होती है । वि० दे० 'अशक्ति' ।

३. कंस के आठ भाइयों मे से एक ।

तुष्टु—संज्ञा पुं० [सं०] कान में पहनने का एक गहना । कर्णमणि [को०] ।

तुष्य—संज्ञा पुं० [सं०] शिव [को०] ।

तुस—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तुष' ।

तुसाँदेⓅ—सर्व० [हिं०] दे० 'तुम्हारा' । उ०—रहै वा तुसादे लाल कछु ना कहैवा है ।—नट०, पृ० ६३ ।

तुसाडीⓅ†—सर्व० [पं०] आपकी । उ०—की की खूबी कहै तुसाडी हो हो हो हो होरी है ।—घनानंद, पृ० १७६ ।

तुसार—संज्ञा पुं० [सं० तुषार] 'तुषार' । उ०—पूस मास तुसार पायो कपि जाड़ जनाइया ।—गुलाल०, पृ० ८४ ।

तुसी—संज्ञा स्त्री० [सं० तुस] अन्न के ऊपर का छिलका । भूसी । उ०—ऐसी को ठाली बैठी है तोसो मूँड़ पिरावै । झूठी बात तुसी सी बिनु कन फटकत हाथ न आवै ।—सूर (शब्द०) ।

तुस्त—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. धूल । गर्द । २. भूसी [को०] ।

तुस्सⓅ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तुष' । उ०—सत्य असत्य कहो कद एकै कुंदन तुस्स निकारो ।—राम० धर्म०, पृ० १७५ ।

तुहुⓅ—सर्व० [हिं०] दे० 'तुम' । उ०—जौ तुहु मिलहु मुनीसा । सुनतिउँ सिख तुम्हारि धरि सीसा ।—म १ । ८१ ।

तुहफा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तोहफा' । उ०—तुहफे, घूस चंदे के ऐसे बम के गोले चलाए ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० पृ० ४७६ ।

तुहमत—संज्ञा स्त्री० [अ०] दे० 'तोहमत' ।

तुहार†—सर्व० [हिं०] दे० 'तुम्हारा' ।

तुहालेⓅ—सर्व० [हिं०] दे० 'तुम्हार' । उ०—जग में तुहाले जोड़, हुवो न कोई फेर हुवै ।—रघु० रू०, पृ० १

तुहिंⓅ†—सर्व० [हिं० तु + हिं (प्रत्य०)] तुझको ।

तुहिन—संज्ञा पुं० [सं०] १. पाला । कुहरा । तुषार । २. हि बरफ । ३. चंद्रतेज । चाँदनी । ४. शीतलता । ठंढक । कपूर (को०) । ६. ओस (को०) ।

तुहिनकण—संज्ञा पुं० [सं०] ओसकण । तुषार [को०] ।

तुहिनकर—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा । २. कपूर [को०] ।

तुहिनकिरण—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा । २. कपूर [को०] ।

तुहिनगिरि—संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय पर्वत । उ०—समा सुनि तुहिनगिरि गवनें तुरत निकेत ।—मानस, १ ।९७ ।

तुहिनगु—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा । २. कपूर [को०] ।

तुहिनद्युति—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा । २. कपूर [को०] ।

तुहिनरश्मि—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा । २. कपूर [को०] ।

तुहिनरुचि—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा । २. कपूर [को०] ।

तुहिनशैल—संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय पर्वत [को०] ।

तुहिनशर्करा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बरफ का टुकड़ा । बरफ ।

तुहिनांशु—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा । २. कपूर ।

तुहिनाचल—संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय पर्वत । उ०—गए स तुहिनाचल गेहा । गावहिं मंगल सहित सनेहा ।—मान १ । ९४ ।

तुहिनाद्रि—संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय पर्वत [को०] ।

तुहीⓅ—सर्व० [हिं०] दे० 'तुहिं' । उ०—आप को साफ कर त सांई ।—केशव० अमी०, पृ० ६ ।

तुम्हें†—सर्व० [हिं०] दे० 'तुम्हें' ।

तूँ—सर्व० [सं० त्वम्] दे० 'तू' ।

तूँअरⓅ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तोमर' । उ०—अनंगपाल तूँ तहाँ दिली बसाई आनि ।—पृ० रा०, १।५७० ।

तूँगाⓅ—संज्ञा पुं० [सं० तुङ्ग] फौज का समूह । उ०—तूँगा बरवा लगे, पुगा पुरा प्रवेस ।—रा० रू०, पृ० २६७ ।

तूँगी—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. पृथ्वी । भूमि । २. नाव । नौका ।

तूँबⓅ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तूँबा' । उ०—जुग तूँबन की परम सोभित मन भाई ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ४१

तूँबड़ा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तूँबा' ।

तूँबना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'तूमना'।

तूँबा—संज्ञा पुं० [सं० तुम्बक] १. कड़ुआ गोल कद्दू। कड़ुआ गोल घीया। तितलौकी। उ०—मन पवन दुइ तूँबा करिहो जुग जुग सारद साजो।—कबीर ग्रं०, पृ० ३२६।

विशेष—इस कद्दू को खोखला करके कई कामों में लाते हैं; बरतन बनाते हैं; सितार आदि बाजों में ध्वनिकोश बनाने के लिये लगाते हैं आदि।

२. कद्दू को खोखला करके बनाया हुआ बरतन जिसे प्रायः साधु अपने साथ रखते हैं। कमंडल।

तूँबी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तूँबा] १. कड़ुआ गोल कद्दू। २. कद्दू को खोखला करके बनाया हुआ बरतन।

मुहा०—तूँबी लगाना = वात से पीड़ित या सूजे हुए स्थान पर रक्त या वायु को खींचने के लिये तूँबी का व्यवहार करना।

विशेष—तूँबी के भीतर एक बत्ती जलाकर रख दी जाती है जिससे भीतर की वायु हलकी पड़ जाती है। फिर जिस अंग पर उसे लगाना होता है, उसपर आटे की एक पतली लोई रख कर उसके ऊपर तूँबी उलटकर रख देते हैं जिससे उस अंग के भीतर की वायु तूँबी में खिंच आती है। यदि कुछ रक्त भी निकालना होता है, तो उस स्थान को जिसपर तूँबी लगानी होती है, नश्तर से पाछ देते हैं।

तू¹—सर्व० [सं० त्वम्] एक सर्वनाम जो उस पुरुष के लिये आता है जिसे संबोधन करके कुछ कहा जाता है। मध्यमपुरुष एक वचन सर्वनाम। जैसे,—तू यहाँ से चला जा।

विशेष—यह शब्द अशिष्ट समझा जाता है, अतः इसका व्यवहार बड़ों और बराबरवालों के लिये नहीं होता, छोटों या नीचों के लिये होता है। परमात्मा के लिये भी 'तू' का प्रयोग होता है।

मुहा०—तू तड़ाक, तू तुकार, तू तू मैं मैं करना = कहा सुनी करना। अशिष्ट शब्दों में विवाद करना। गाली गलौज करना। कुवाक्य कहना।

यौ०—तू तुकार = अशिष्ट विवाद। कहा सुनी। कुवाक्य। उ०—प्रत्यक्ष धिक्कार और तू तुकार की मूसलाधार वृष्टि होती।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २९८।

तू²—संज्ञा स्त्री० [अनु०] कुत्तों को बुलाने का शब्द। जैसे—'आव तू···तू···'। उ०—दुर दुर करै तो बाहिरे, तू तू करै तो जाय।—कबीर सा० सं०, पृ० २१।

तूख—संज्ञा पुं० [सं० तुष = तिनका] का वह टुकड़ा जिसे गोदकर दोना बनाते हैं। सींक। खरका। उ०—छुवावति न छाँह, छुए नाहक ही 'नाहीं' कहि, नाइ गल माहँ बाहँ मेलै सुखरूख सी।··· तीखी दीठि तूख सी, पतूख सी, मरुरि अंग, ऊख सी मरूरि मुख लागति महूख सी।—देव (शब्द०)।

तूछा Ⓟ—वि० [हिं०] दे० 'तुच्छ'। उ०—बलषी बादसाही सील बाही तेग तूछा।—शिखर०, पृ०२०।

तूझ Ⓟ—सर्व० [हिं०] दे० 'तुझ'। उ०—दीनानाथ तूझ बिन दुख री किणनै जाय पुकार कहाँ।—रघु० रू०, पृ०१९८।

तूटना—क्रि० अ० [सं० त्रुट] 'टूटना'। उ०—सुठँ तूट बाहैं। घतै दंत मौहैं।—पृ० रा०, ७। १२०।

तूठना Ⓟ¹—क्रि० अ० [सं० तुष्ट, प्रा० तुट्ठ] तुष्ट होना। संतुष्ट होना। तृप्त होना। अघाना। उ०—राधे ब्रजनिधि मीत पै हित के हाथन तूठि।—ब्रज० ग्रं०, पृ० १७। २. प्रसन्न होना। राजी होना।

तूठना Ⓟ²—क्रि० स० प्रसन्न करना। संतुष्ट करना।

तूण—संज्ञा पुं० [सं०] १. तीर रखने का चोंगा। तरकश।

यौ०—तूणधर, तूणधार = धनुर्धर।

२. श्यामक नामक वृक्ष का नाम।

तूणक्ष्वेड—संज्ञा पुं० [सं०] बाण। तीर।

तूणि—संज्ञा स्त्री० [सं०] तूणीर। तरकश (को०)।

तूणी¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तरकश। निषंग। २. नील का पौधा। ३. एक वातरोग जिसमें मूत्राशय के पास से दर्द उठता है और गुदा और पेड़ू तक फैलता है।

तूणी²—वि० [सं० तूणिन्] तूणधारी। जो तरकश लिए हो।

तूणी³—संज्ञा पुं० [सं० तूणीक ?] तुन का पेड़।

तूणीक—संज्ञा पुं० [सं०] तुन का पेड़।

तूणीर—संज्ञा पुं० [सं०] तूण। निषंग। तरकश।

तूत—संज्ञा पुं० [फ़ा०] एक पेड़ जिसके फल खाए जाते हैं।

विशेष—यह पेड़ मझोले आकार का होता है। इसके पत्ते फालसे के पत्तों से मिलते जुलते, पर कुछ लंबोतरे और मोटे दल के होते हैं। किसी किसी के सिरे पर फाँकें भी कटी होती हैं। फूल मंजरी के रूप में लगते हैं जिनसे आगे चलकर कीड़ों की तरह लंबे लंबे फल होते हैं। इन फलों के ऊपर महीन दाने होते हैं जिनपर रोइयाँ सी होती हैं। इनके कारण फलों की आकृति और भी कीड़ों की सी जान पड़ती है। फलों के भेद से तूत कई प्रकार के होते हैं; किसी के फल छोटे और गोल, किसी के लंबे किसी के हरे, किसी के लाल या काले होते हैं। मीठी जाति के बड़े तूत को शहतूत कहते हैं। तूत योरप और एशिया के अनेक भागों मे होता है। भारतवर्ष में भी तूत के पेड़ प्रायः सर्वत्र—काश्मीर से सिक्किम तक—पाए जाते हैं। अनेक स्थानों में, विशेषतः पंजाब और काश्मीर में, तूत के पेड़ों की पत्तियों पर रेशम के कीड़े पाले जाते हैं। रेशम के कीड़े उनकी पत्तियाँ खाते हैं। तूत की लकड़ी भी वजनी और मजबूत होती है और खेती तथा सजावट के सामान, नाव आदि बनाने के काम आती है। तूत शिशिर ऋतु में पत्ते झाड़ता है और चैत तक फूलता है। इसके फल असाढ़ में पक जाते हैं।

तूतही—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तुतुही'।

मुहा०—तूतही का सा मुँह निकल आना = (१) चेहरे पर दुर्बलता की प्रतीति होना। (२) लज्जित होना। उ०—एक-तूतही का सा मुँह निकल आया।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ३०९।

तूतिया—संज्ञा पुं० [सं० तुत्थ] नीला थोथा।

तूती—[फ़ा०] १. छोटी जाति का शुक या तोता जिसकी चोंच

पीली, गरदन बैंगनी और पर हरे होते हैं। उ०—के वाँ ते बजाँ आई तूती के पास।—दक्खिनी०, पृ० ८५। २. कनेरी नाम की छोटी सुंदर चिड़िया जो कनारी द्वीप से आती है और बहुत अच्छा बोलती है। इसे लोग पिंजरों में पालते हैं। ३. मटमैले रंग की एक छोटी चिड़िया जो बहुत सुंदर बोलती है।

विशेष—(१) इसे लोग पिंजरों में पालते हैं। जाड़े में यह सारे भारत में पाई जाती है, पर गरमी में उत्तर काश्मीर, तुर्किस्तान आदि की ओर चली जाती है। यह घास फूस से कटोरे के आकार का घोंसला बनाकर रहती है।

विशेष—(२) उर्दू में तूती शब्द का प्रयोग पुंलिगवत् होता है।

मुहा०—तूती का पढ़ना = तूती का मीठे सुर में बोलना। किसी की तूती बोलना = किसी की खूब चलती होना। किसी का खूब प्रभाव जमना। नक्कारखाने में तूती की आवाज कौन सुनता है = (१) बहुत भीड़ भाड़ या शोरगुल में कही हुई बात नहीं सुनाई पड़ती। (२) बड़े बड़े लोगों के सामने छोटों की बात कोई नहीं सुनता।

४. मुँह से बजाने का एक प्रकार का बाजा। ५. मिट्टी की छोटी टोंटीदार घरिया जिससे लड़के खेलते हैं।

तूद[1]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तूत'।

तूद[2]—संज्ञा पुं० [सं०] सेमल का पेड़ (को०)।

तूद[3]—संज्ञा पुं० [फ़ा०] दे० 'तूदा' (को०)।

तूदा—संज्ञा पुं० [फ़ा० तूदह्] १. ढेर। ढेरी। राशि। २. सीमा का चिह्न। हदबंदी। ३. मिट्टी का वह टीला जिसपर तीर, बंदूक आदि से निशाना लगाना सीखा जाता है। ४. पुश्ता। टीला (को०)। ५. वह दीवार जिसपर बैठकर तीरंदाज निशाना लगाते हैं (को०)। ६. वह टीला जिसपर चाँदमारी का अभ्यास किया जाता है (को०)।

तून[1]—संज्ञा पुं० [सं० तुन्नक] १. तुन का पेड़। वि० दे० 'तुन'। २. तूल नाम का लाल कपड़ा।

तून(पु)[2]—संज्ञा पुं० [सं० तूण] दे० 'तूण'।

तून(पु)[3]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तूण'। उ०—तू न लखति कसि तून कटि सजि प्रसुन धनु बान।—स० सप्तक, पृ० ३८४।

तूना—क्रि० अ० [हिं० चूना] १. चूना। टपकना। २. खड़ा न रह सकना। गिरना। ३. गर्भपात होना। गर्भ गिरना।

विशेष—दे० 'तुग्रना'।

तूनी—संज्ञा स्त्री० [देश०] मूत्राशय और पक्वाशय में उठनेवाली पीड़ा। उ०—स्त्री पुरुषों के गुह्य स्थल में पीड़ा करे उस रोग को तूनी कहते हैं।—माधव०, पृ० १४४।

तूनीर(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तूणीर'। उ०—उपासंग तूनीर पुनि इषुधी तून निषंग।—अनेकार्थ०, पृ० ३६।

तूफान—संज्ञा पुं० [अ० तूफ़ान] १. डुबानेवाली बाढ़। २. वायु के वेग का उपद्रव। ऐसा अंधड़ जिसमें खूब धूल उठे, पानी बरसे, बादल गरजें तथा इसी प्रकार के और उत्पात हों। आँधी।

क्रि० प्र०—आना।—उठना।

३. आपत्ति। ईति। प्रलय। आफत। ४. हल्लागुल्ला। वावैला। ५. झगड़ा। बखेड़ा। उपद्रव। दंगा. फसाद। हलचल। जैसे, थोड़ी सी बात के लिये इतना तूफान खड़ा करने की क्या जरूरत ?।

क्रि० प्र०—उठना।—खड़ा करना।

६. ऐसा कलंक या दोषारोपण जिससे कोई भारी उपद्रव खड़ा हो। झूठा दोषारोपण। तोहमत।

क्रि० प्र०—उठना।—उठाना।

मुहा०—तूफान जोड़ना या बाँधना = झूठा कलंक लगाना। झूठा दोषारोपण करना। तूफान बनाना = दे० 'तूफान जोड़ना'।

तूफानी—वि० [फ़ा० तूफ़ानी] १. तूफान खड़ा करनेवाला। ऊधमी। उपद्रवी। बखेड़ा करनेवाला। फसादी। २. झूठा कलंक लगानेवाला। तोहमत जोड़नेवाला। ३. उग्र। प्रचंड। प्रबल।

तूबा(पु)—संज्ञा पुं० [देश०] स्वर्ग का एक वृक्ष जिसके फल परम स्वादिष्ट माने जाते हैं। उ०—और तूबा वृक्ष तथा कल्पवृक्षों की बड़ी सुगंधि आती थी।—कबीर मं०, पृ० २१२।

तूम[1]—सर्व० [हिं०] दे० 'तुम'। उ०—तब वह लरिकिनी व्रजवासी के ढिग आयकै पूछयो, जो तूम कौन हो ?—दो सौ बावन, भा० २, पृ० ३८।

तूमड़ी—संज्ञा स्त्री० [दे० तूंबा + ड़ी (प्रत्य०)] १. तूँबी। २. तूँबी का बना हुआ एक प्रकार का बाजा जिसे सँपेरे बजाया करते हैं।

विशेष—तूँबी का पतला सिरा थोड़ी दूर से काट देते हैं और नीचे की ओर एक छेद करके उसमें दो जीभियाँ पतली नलियों में लगाकर डाल देते हैं और छेद को मोम से बंद कर देते हैं। नलियों का कुछ भाग बाहर निकला रहता है। एक नली में स्वर निकालने के सात छेद बनाते हैं जिन पर बजाते वक्त उँगलियाँ रखते जाते हैं।

तमतड़ाक—संज्ञा स्त्री [फा० तुमतराक़] १. तड़क भड़क। शान शौकत। आन बान। २. ठसक। बनावट।

तूम तनाना—संज्ञा पुं० [अनु०] अधिक आलाप। स्वर को अत्यधिक खींचने की क्रिया। उ०—सब्र करो, होली के दिन तुम्हारा नजर दिला दूँगा, मगर भाई, इतना याद रक्खो कि वह पक्का गाना गाया और निकाले गए। तूम तनाना की ऐसी मत बाँध देना।—काया०, पृ० २९५।

तूमना—क्रि० स० [सं० स्तोम (= ढेर) + ना (प्रत्य०)] १. रुई आदि के जमे हुए लच्छों को नोच नोचकर छुड़ाना। उँगली से रुई को इस प्रकार खींचना कि उसके रेशे अलग अलग हो जायँ। रुई आदि के गाले के सटे हुए रेशों को कुछ अलग अलग करना। उधेड़ना। बिथुरना। २ धज्जी धज्जी करना। उ०—सदियों का दैन्य तमिस्र तूम, धुन तुमने काते प्रकाश सूत।—युगांत, पृ० ५४। ३. मलना। दलना। ४. बात का उधेड़ना। रहस्य खोलना। सब भेद प्रकट करना।

तूमर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० तुम्बा] दे० 'तूँबा'। उ०—ताखी और तिब माल सेल्ही और तूमर माल।—मीरा० श०, पृ० ५६।

तूमरी†(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तूमड़ी'। उ०—सीस जय कर तूमरी, लिये बुल्लि बर बोय।—पृ० रासो, पृ० ७०।

तूमा(पु)—संज्ञा पुं० [सं० तुम्बक] दे० 'तूँबा'। उ०—तूमा तीन भारती बनायो चौथे और धरि हाथ लगायो।—गुलाल०, पृ० ५७।

तूमार—संज्ञा पुं० [अ०] बात का व्यर्थ विस्तार। बात का बतंगड़।

क्रि० प्र०—बाँधना।

तूमरिया सूत—संज्ञा पुं० [हिं० तूमना + सूत] खूब महीन कता हुआ सूत। ऐसा सूत जो तूमी हुई रूई से काता गया हो।

तूया—संज्ञा स्त्री० [देश०] काली सरसों।

तूर¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का बाजा। नगाड़ा। उ०—तोरन तोरन तूर बजै बर भावत भाँतिन गावति ठाढ़ी।—केशव (शब्द०)। २. तुरही नाम का बाजा। सिंघा।

तूर²—वि० शीघ्रता करनेवाला। जल्दबाज [को०]।

तूर³—संज्ञा पुं० हरकारा [को०]।

तूर⁴—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० तूल(= लंबाई)] १. गज डेढ़ गज लंबी एक लकड़ी जो जुलाहों के करघे में लगी रहती है और जिसमें तानी लपेटी जाती है। इसके दोनों सिरों पर दो चूर और चार छेद होते हैं। २. वह रस्सी जिसे जनानी पालकी के चारों ओर इसलिये बाँधते हैं जिसमें परदा हवा से उड़ने न पावे। चौबंदी।

तूर⁵—संज्ञा स्त्री० [सं० तुबरी] अरहर।

तूर⁶—संज्ञा पुं० [अ०] शाम या सीरिया का एक पहाड़ जिसपर हजरत मूसा ने ईश्वर का जलवा देखा था।

यौ०—कोह तूर = तूर नामक पहाड़।

तूरज(पु)—संज्ञा पुं० [सं० तूर्य] दे० 'तूर्य'।

तूरण(पु)—क्रि० वि० [सं० तूर्ण] दे० 'तूर्ण'।

तूरंत—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पक्षी।

तूरन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० तूर्ण] दे० 'तूर्ण'। उ०—नंददास की कृति संपूरन। भक्ति मुक्ति पावै सोइ तूरन।—नंद० ग्रं०, पृ० २१५।

तूरना¹—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की चिड़िया।

तूरना²—क्रि० स० [हिं०] दे० 'तोड़ना'। उ०—शंभु सतावन हैं जग को है कठोर महा सबको मद तूरत।—शंभु (शब्द)।

तूरना³—संज्ञा पुं० [सं० तूर] तुरही। उ०—साकत सराव के विवाह के उछाह कछू डोलि लोल बूझत सबद ढोल तूरना।—तुलसी (शब्द०)।

तूरा¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] वेग। गति [को०]।

तूरा²—संज्ञा पुं० [सं० तूर] तुरही नाम का बाजा। उ०—निसि दिन बाजहिं मादर तूरा। रहस कूद सब भरे सेंदूरा।—जायसी (शब्द०)।

तूरान—संज्ञा पुं० [फ़ा०] फारस के उत्तरपूर्व पड़नेवाला मध्य एशिया का सारा भूभाग जो तुर्क, तातारी, मुगल आदि जातियों का निवासस्थान है। हिमालय के उत्तर अल्टाई पर्वत का प्रदेश।

विशेष—फारस या ईरानवालों का तूरानियों के साथ बहुत प्राचीन काल से झगड़ा चला आता था। यह तूरानी जाति वही थी जिसे भारतवासी शक कहते थे। अफरासियाब नामक तूरानी बादशाह से ईरानियों का युद्ध होना प्रसिद्ध है। प्राचीन तूरानी अग्नि की उपासना करते थे और पशुओं की बलि चढ़ाते थे। ये आर्यों की अपेक्षा असभ्य थे। इनके उत्पातों से एक बार सारा युरोप और एशिया तंग था। चंगेज खाँ, तैमूर, उसमान आदि इसी तूरानी जाति के अंतर्गत थे।

तूरानी¹—वि० [फ़ा०] तूरान देश का। तूरान संबंधी।

तूरानी²—संज्ञा पुं० तूरान देश का निवासी।

तूरि—संज्ञा पुं० [सं० तूर] दे० 'तूरि'। उ०—सुनो प्रयाण के बिषाण तूरि भेरि बज उठे।—युगपथ, पृ० ८८।

तूरी¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] धतूरे का पेड़।

तूरी²—संज्ञा स्त्री० [सं० तूर] तूर्य। तुरही।

तूरु(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तूर'। उ०—जस मारइ कहुँ बाजा तूरू। सुरी देखि हँसा मंसूरू।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १६५।

तूर्ण¹—क्रि० वि० [सं०] शीघ्र। जल्दी। तुरंत। उ०—तू तूर्ण और हो पूर्ण सफल, नव नवोर्मियों के पार उतर।—गीतिका, पृ० ७।

तूर्ण²—वि० फुर्तीला। वेगवान् [को०]।

तूर्ण³—संज्ञा पुं० त्वरण। वेग। फुर्ती [को०]।

तूर्णक—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का चावल जिसे स्वरितक भी कहते हैं।

तूर्णि¹—वि० [सं०] फुर्तीला। तेज [को०]।

तूर्णि²—संज्ञा स्त्री० वेग। गति [को०]।

तूर्त¹—क्रि० वि० [सं०] तुरत। तत्काल। शीघ्र।

तूर्त²—वि० फुर्तीला। तेज [को०]।

तूर्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. तुरही। सिंघा। २. मृदंग (को०)।

तूर्यौघ—संज्ञा पुं० [सं०] वाद्यवृंद [को०]।

तूर्यखंड, तूर्यगंठ—संज्ञा [सं० तूर्यखण्ड, तूर्यगण्ड] एक प्रकार का मृदंग [को०]।

तूर्यमय—वि० [सं०] संगीतात्मक [को०]।

तूर्व—क्रि० वि० [सं०] तुरत। शीघ्र।

तूर्वयाण—वि० [सं०] १. फुर्तीला। वेग। २. विजेता। ३. सर्वोच्च। श्रेष्ठ [को०]।

तूर्वि—वि० [सं०] तूर्वयाण [को०]।

तूल¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. आकाश। २. तूत का पेड़। शहतूत। ३. कपास, मदार, सेमर आदि के डोडे के भीतर का घूआ। रूई। उ०। उ०—(क) जेहि मारुतगिरि मेरु उड़ाहीं। कहहु तूल केहि लेखे माहीं।—तुलसी (शब्द०)। (ख) व्याकुल फिरत भवन बन जहँ तहँ तूल आक उधराई।—सूर (शब्द०)। ४. घास या तृण का सिरा (को०)। ५. फूल या पौधों का गुल्म (को०)। ६. धतूरा (को०)।

तूल²—संज्ञा पुं०[हिं० तून = एक पेड़ जिसके फूलों से कपड़े रँगते हैं।]

हैं। १. सूती कपड़ा जो, चटकीले लाल रंग का होता है। २. गहुरा लाल रंग।

तूलⓅ[3]—वि० [स० तुल्य] तुल्य। समान। उ०—तदपि संकोच समेत कवि कहहिं सीय सम तूल।—तुलसी (शब्द०)।

तूल[4]—संज्ञा पुं० [अ०] १. लंबेपन का विस्तार। लंबाई। दीर्घता। यौ०—तूल अर्ज=लंबाई और चौड़ाई। तूल तवील=लंबा चौड़ा। विस्तृत।

मुहा०—तूल खींचना=किसी बात या कार्य का आवश्यकता से बहुत बढ़ना। जैसे—(क) ब्याह का काम बहुत तूल खींच रहा है। (ख) उन लोगों का झगड़ा बहुत तूल खींच रहा है। तूल देना=किसी बात को आवश्यकता से बहुत बढ़ाना। जैसे,—हर एक बात को तूल देने की तुम्हारी आदत है। उ०—अफसरों ने कहा खुदा के लिये बातों को तूल न दो। —फिसाना, भा० ३, पृ० १७६। तूल पकड़ना=दे० 'तूल-खींचना'।

२. विलंब। देर। तवालत (को०)। ३. ढेर (को०)।

तूलक—संज्ञा पुं० [सं०] रूई (को०)।

तूलकार्मुक, तूलचाप, तूलधनुष—संज्ञा पुं० [सं०] धुनकी (को०)।

तूलत—संज्ञा स्त्री० [हिं० तुलना] जहाज की रेलिंग या कटहरे की छड़ में लगी हुई एक खूँटी जिसमें किसी उतारे जानेवाले भारी बोझ में बँधी रस्सी इसलिये अटका दी जाती है जिसमें बोझ धीरे धीरे नीचे जाय, एक दम से न गिर पड़े।—(लश०)।

तूलतवील—वि० [अ०] बहुत लंबा। उ०—बेगम—बड़ा तूल तवील किस्सा है कोई कहाँ तक बयान करें।—फिसाना०, भा०३, पृ०७२।

तूलता—संज्ञा स्त्री० [सं० तुल्यता] समता। बराबरी।

तूलना[1]—क्रि० स० [हिं० तुलना] १. धुरी में तेल देने के लिये पहिए को निकालकर गाड़ी को किसी लकड़ी के सहारे पर ठहराना। २. पहिए की धुरी में तेल या चिकना देना।

तूलनाⓅ[2]—क्रि० अ० [हिं० तुलना] तुल्य होना। तुलित होना। उ०—सु मध्य सीस फूलयं, दिनेस तेज तूलयं।—हृ० रासो, पृ० २४।

तूलनालिका, तूलनाली—संज्ञा स्त्री० [सं०] पूनी (को०)।

तूलपटिका, तूलपटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] रजाई (को०)।

तूलपिचु—संज्ञा पुं० [सं०] रुई (को०)।

तूलफजूल—संज्ञा पुं० [अ० तूल + फ़ुजूल] व्यर्थ विवाद। अनावश्यक झंझट। उ०—यदि बिना तूलफजूल किए ही जमीन मकदी हो रही है तो सोशलिस्ट पार्टी में जाने की क्या जरूरत है। —मैला०, पृ० १५३।

तूलमतूल—क्रि० वि० [सं० तुल्य या अ० तूल (=लंबाई)] आमने सामने। बराबरी पर। उ०—कंत पियारे भेट देखौ तूलम तूल होइ। भर बयस दुइ हेंउ मुहमद निति सरवरि करैं।—जायसी (शब्द०)।

तूलवती—संज्ञा स्त्री० [सं०] नील।

तूलवृक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] शाल्मली वृक्ष। सेमर का पेड़।

तूलशर्करा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कपास का बीज। बिनौला।

तूलसेचन—संज्ञा पुं० [सं०] रुई से सूत कातने का काम।

तूला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कपास। २. दिए की बत्ती (को०)।

तूलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] तूलिका (को०)।

तूलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चित्रकारों की कूँची जिससे वे रंग भरते हैं। तसवीर बनानेवालों की कलम। २. रूई की बत्ती (को०)। ३. रूई का गद्दा (को०)। ४. बरमा (को०)। ५. धातु का साँचा (को०)।

तूलिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. लक्ष्मणकंद। २. सेमर का पेड़।

तूलिफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] सेमर का पेड़।

तूली—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नील का वृक्ष या पौधा। २. रंग भरने की कूँची। ३. लकड़ी का एक औजार जिसमें कूँची के रूप में खड़े खड़े रेशे जमाए रहते हैं और जिससे जुलाहे फैलाया हुआ सूत बैठाते हैं। जुलाहों की कूँची। ४. दिए की बत्ती या बाती (को०)।

तूवⓅ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तूँबा'। उ०—कटि केस वेस म उई दूब। कट मुंड परे ज्यों वेलि तूव।—सुजान०, पृ० २२

तूवर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तुवरक'।

तूवरक—संज्ञा पुं० [सं०] १. ठूँठा बैल। बिना सींग का बैल। २. बिना दाढ़ी मोंछ का मनुष्य। हिजड़ा। ३. कषाय रस। कसैला रस। ४. अरहर।

तूवरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अरहर। २. गोपीचंदन।

तूवरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'तुवरिका'।

तूष—संज्ञा पुं० [सं०] कपड़े का किनारा (को०)।

तूष्णीं[1]—वि० [सं० तूष्णीम् (अव्य०)] मौन। चुप।

तूष्णीं[2]—संज्ञा स्त्री० मौन। खामोशी। चुप्पी। उ०—वंचकता, अपमान, अमान, अलाभ भुजंग भयानक तूष्णीं।—केशव (शब्द०)।

तूष्णीं[3]—क्रि० वि० चुपचाप। बिना बोले हुए (को०)।

तूष्णीक—वि० [सं०] मौनावलंबी। मौन साधनेवाला।

तूष्णीदंड—संज्ञा पुं० [सं० तूष्णीदण्ड] ऐसा दंड जो गुप्त रूप से दिया जाय (को०)।

तूष्णीभाव—संज्ञा पुं० [सं०] मौनभाव। चुप्पी (को०)।

तूष्णी युद्ध—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य कथित वह युद्ध जिसमें षड्यंत्र के द्वारा शत्रु के मुख्य व्यक्तियों को अपने पक्ष में कर लिया जाय।

तूष्णीशील—संज्ञा पुं० [सं०] चुप रहनेवाला। चुप्पा। बहुत कम बोलनेवाला (को०)।

तूस[1]—संज्ञा पुं० [सं० तुष] भूसी। भूसा। उ०—जे बिन चीन रे तिहूँ ते बढ़ित ते सब सुध्वत नम न तूस।—अकबरी०, पृ० ३१८।

तूस[2]—संज्ञा पुं० [तिब्बती थोस] [वि० तूसी] १. एक प्रकार का बहुत उत्तम ऊन जो हिमालय पर काश्मीर से लेकर नेपाल तक पाई जानेवाली एक पहाड़ी बकरी के शरीर पर होता है। पशम। पशमीना। उ०—तूस तुराई में दुरे दुरो जाय न त्यागि।—शाम० धर्म०, पृ० २३४।

विशेष—यह पहाड़ी बकरी हिमालय पर बहुत ऊँचाई तक, बर्फ के निकट तक, पाई जाती है। यह ठंढे से ठंढे स्थानों में रह सकती है और काश्मीर से लेकर मध्य एशिया में अलटाई पर्वत तक मिलती है। इसके शरीर पर घने मुलायम रोयों की बड़ी मोटी तह होती है जिसके भीतरी ऊन को काश्मीर मे असली तूस या पशम कहते हैं। यह दुशालों में दिया जाता है। खालिस तूस का भी शाल बनता है जिसे तूसी कहते हैं। ऊपर के ऊन या रोएँ से या तो रस्सियाँ बटी जाती हैं या पट्टू नाम का कपड़ा बुना जाता है। तूसवाली बकरियाँ लद्दाख में जाड़े के दिनों में बहुत उतरती हैं और मारी जाती हैं।

२. तूस के ऊन का जमाया हुआ कंबल या नमदा।

तूस(पु)[2]—संज्ञा पुं० [हिं०] भय। त्रास। उ०—अधम गीत मुसे अडर, त्रिविध कुकवि विण तूस।—बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० ७८।

तूसदान—संज्ञा पुं० [पुर्त० कारटूश + दान (प्रत्य०)] कारतूस।

तूसना(पु)[1]—क्रि० स० [सं० तुष्ट] १. संतुष्ट करना। तृप्त करना। २. प्रसन्न करना।

तूसना[2]—क्रि० अ० संतुष्ट होना।

तूसा—संज्ञा पुं० [सं० तुष] चोकर। भूसी।

तूसी[1]—वि० [हिं० तूस] तूस के रंग का। स्लेट या करंज के रंग का करंजई।

तूसी[2]—संज्ञा पुं० एक रंग जो करंज या स्लेट के रंग की तरह का होता है।

विशेष—यह रंग हड़, माजूफल और कसीस से बनता है।

तूस्त—संज्ञा पुं० [सं०] १. धूल। रेणु। रज। २. अणु। कणिका। ३. जटा। ४. चाप। धनुष। ५. पाप (को०)।

तृंढ—वि० [सं० तृण्ढ] १. आहत। २. दुःखी। ३. मारा हुआ। निहत [को०]।

तृंहण—संज्ञा पुं० [सं०] १. आघात, कष्ट या दुःख देना। २. वध [को०]।

तृक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] कश्यप ऋषि।

तृक्षाक—संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम।

तृख—संज्ञा पुं० [सं०] जातीफल। जायफल।

तृखा(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० तृषा] दे० 'तृषा'।

तृखावंत—वि० [सं० तृषा, हिं० तृखा + वंत] दे० 'तृषावंत'। उ०—जैसे भूखे प्रीत अनाज, तृखावंत जल सेती काज।—दक्खिनी०, पृ० ४४।

तृगुनता(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रिगुण + ता (प्रत्य०)] दे० 'त्रिगुणता'। उ०—तन परिहरि मन दै तुव पद हूँ लोक तृगुनता छीनी।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ५८१।

तृच—संज्ञा पुं० [सं०] तीन छंदोंवाला पद्य [को०]।

तृजग—वि० [सं० तिर्यक्] दे० 'तिर्यक्'। उ०—तृजग जोनि गत गीध जनम भरि खरि खाइ कुजंतु जियो हौं।—तुलसी (शब्द०)।

यौ०—तृजग जोनि = तिर्यक् योनि।

तृण—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह उद्भिद् जिसकी पेड़ी या कांड में छिलके और हीर का भेद नहीं होता और जिसकी पत्तियों के भीतर केवल समानांतर (प्रायः लंबाई के बल) नसें होती हैं, जाल की तरह बुनी हुई नहीं। जैसे, दूब, कुश, सरपत, मूँज, बाँस, ताड़ इत्यादि। घास। उ०—ऊसर बरसे तृण नहि जामा।—तुलसी (शब्द०)।

विशेष—तृण की पेड़ी या कांडों के तंतु इस प्रकार सीधे क्रम से नहीं बैठे रहते कि उनके द्वारा मंडलांतर्गत मंडल बनते जायँ, बल्कि वे बिना किसी क्रम के इधर उधर तिरछे होकर ऊपर की ओर गए रहते हैं। अधिकांश तृणों के कांडों में प्रायः गाँठें थोड़ी थोड़ी दूर पर होती हैं और इन गाँठों के बीच का स्थान कुछ पोला होता है। पत्तियाँ अपने मूल के पास डंठल को खोली की तरह लपेटे रहती हैं। पृथ्वी का अधिकांश तल छोटे तृणों द्वारा आच्छादित रहता है। अर्क-प्रकाश नामक वैद्यक ग्रंथ में तृणगण के अंतर्गत तीन प्रकार के बाँस, कुश, काँस, तीन प्रकार की दूब, गाँडर, नरकट, गूंदी, मूँज, डाभ, मोथा इत्यादि माने गए हैं।

मुहा०—तृण गहना या पकड़ना = हीनता प्रकट करना। गिड़-गिड़ाना। तृण गहाना या पकड़ाना = नम्र करना। विनीत करना। वशीभूत करना। उ०—कहो तो ताको तृण गहाय कै जीवत पायन पारो।—सूर (शब्द०)। (किसी वस्तु पर) तृण टूटना = किसी वस्तु का इतना सुंदर होना कि उसे नजर से बचाने के लिये उपाय करना पड़े। उ०—आजु को बानिक पै तृण टूटत है कहीं न जाय कछु स्याम तोहि रत।—स्वा० हरिदास (शब्द०)।

विशेष—स्त्रियाँ बच्चे पर से नजर का प्रभाव दूर करने के लिये टोटके की तरह पर तिनका तोड़ती हैं।

तृणवत् = तिनके बराबर। अत्यंत तुच्छ। कुछ भी नहीं। तृण बराबर या समान = दे० 'तृणवत्'। उ०—अस कहि चला महा अभिमानी। तृण समान सुग्रीवहिं जानी।—तुलसी (शब्द०)। तृण तोड़ना = किसी सुंदर वस्तु को देख उसे नजर से बचाने के लिये उपाय करना। उ०—(क) गाँथे महामनि मौर मंजुल अंग सब तृण तोरहीं।—तुलसी (शब्द०) (ख) स्याम गौर सुंदर दोउ जोरी। निरखत छबि जननी तृण तोरी।—तुलसी (शब्द०)। (किसी से) तृण तोड़ना = संबंध तोड़ना। नाता मिटाना। उ०—भुजा छुड़ाइ तोरि तृण ज्यों हित करि प्रभु निठुर हियो।—सूर (शब्द०)।

२. तिनका (को०) । ३. खर पात (को०) ।

तृणाक—संज्ञा पुं० [सं०] घास को खराब पत्ती [को०] ।

तृणाकर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि ।

तृणकांड—संज्ञा पुं० [सं० तृणकाण्ड] घास का ढेर [को०] ।

तृणकोया—संज्ञा स्त्री० [सं०] घासवाली जमीन [को०] ।

तृणकुंकुम—संज्ञा पुं० [सं० तृणकुङ्कुम] एक सुगंधित घास। रोहित घास ।

तृणकुटी, तृणकुटीर, तृणकुटीरक—संज्ञा पुं० [सं०] घास फूस की बनी मड़ैया या झोपड़ी [को०] ।

तृणकूट—संज्ञा पुं० [सं०] घास का ढेर [को०] ।

तृणकूर्चिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कूँची या छोटी झाड़ू [को०] ।

तृणकूर्म—संज्ञा पुं० [सं०] गोल कद्दू ।

तृणकेतकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का तीखुर ।

तृणकेतु—संज्ञा पुं० दे० [सं०] 'तृणकेतुक' ।

तृणकेतुक—संज्ञा पुं० [सं०] १. बाँस । २. ताड़ का पेड़ ।

तृणगोधा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का गिरगिट [को०] ।

तृणगौर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तृणकुंकुम' [को०] ।

तृणग्रंथी—संज्ञा स्त्री० [सं० तृणग्रन्थी] स्वर्णजीवंती ।

तृणग्राही—संज्ञा पुं० [सं० तृणग्राहिन्] एक रत्न का नाम । नीलमणि ।

तृणचर[1]—वि० [सं०] तृण चरनेवाला (पशु) ।

तृणचर[2]—संज्ञा पुं० [सं०] गोमेदक मणि ।

तृणजंभा—वि० [सं० तृणजम्भन] घास चरने योग्य । घास चरनेवाला । —संपूर्णा० अभि० ग्रं०, पृ० २४८ ।

तृणजलायुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'तृणजलोका' ।

तृणजलौका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की जोंक ।

तृणजलौका न्याय—संज्ञा पुं० [सं०] तृणजलौका के समान ।

विशेष—इस वाक्य का प्रयोग नैयायिक लोग उस समय करते हैं उन्हें जब आत्मा के एक शरीर छोड़कर दूसरे शरीर में जाने का दृष्टांत देना होता है । तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार जोंक जल में बहते हुए तिनके के अंत तक पहुँच जब दूसरा तिनका थाम लेती है, तब पहले को छोड़ देती है । इसी प्रकार आत्मा जब दूसरे शरीर में जाती है, तब पहले को छोड़ देती है ।

तृणजाति—संज्ञा स्त्री० [सं०] वनस्पति जिसमें घास और शाक आदि गृहीत हैं [को०] ।

तृणज्योतिस्—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष्मती लता ।

तृणता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तृणवत्ता । निरर्थकता । २. धनुष [को०] ।

तृणद्रुम—संज्ञा पुं० [सं०] १. ताड़ का पेड़ । २. सुपारी का पेड़ । ३. खजूर का पेड़ । ४. केतकी का पेड़ । ५. नारियल का पेड़ । ६. हिंताल ।

तृणधान्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. तिन्नी का चावल । मुन्यन्न । तिन्नी का धान । २. सावाँ ।

तृणध्वज—संज्ञा पुं० [सं०] १. बाँस । २. ताड़ का पेड़ ।

तृणनिंब—संज्ञा पुं० [सं० तृणनिम्ब] चिरायता ।

तृणप—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक गंधर्व का नाम ।

तृणपत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] इक्षुदर्भ नामक तृण ।

तृणपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] इक्षुदर्भ नामक तृण [को०] ।

तृणपीड़—संज्ञा पुं० [सं० तृणपीड] एक प्रकार की लड़ाई । हाथों के द्वारा लड़ाई ।

तृणपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] १. तृणकेशर । २. ग्रंथिपर्णी । गठिवन ।

तृणपुष्पी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सिंदूरपुष्पी नामक घास ।

तृणपूलिक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का गर्भपात [को०] ।

तृणपूली—संज्ञा स्त्री० [सं०] नरकट की चटाई [को०] ।

तृणप्राय—वि० [सं०] तृणवत् । तिनके जैसा । तुच्छ [को०] ।

तृणबिंदु—संज्ञा पुं० [सं० तृणबिन्दु] दे० 'तृणविंदु' [को०] ।

तृणमत्कुण—संज्ञा पुं० [सं०] जमानत देनेवाला । जामिन [को०] ।

तृणमणि—संज्ञा पुं० [सं०] तृण को आकर्षित करनेवाला मणि । कहरुवा ।

तृणमय—वि० [सं०] [वि० स्त्री० तृणमयी] घास का बना हुआ ।

तृणराज—संज्ञा पुं० [सं०] १. खजूर । २. ताड़ । ३. नारियल ।

तृणवत्—वि० [सं०] तिनके के समान । अत्यंत तुच्छ [को०] ।

तृणविंदु—संज्ञा पुं० [सं० तृणविन्दु] एक ऋषि जो महाभारत के काल में थे और जिनसे पांडवों से वनवास की अवस्था में भेंट हुई थी ।

तृणवृक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तृणद्रुम' [को०] ।

तृणशय्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] घास का बिछौना । चटाई । साथरी ।

तृणशाल—संज्ञा पुं० [सं०] १. ताड़ । २. बाँस का पेड़ [को०] ।

तृणशीत—संज्ञा पुं० [सं०] १. रोहिस घास जिसमें से नीबू की सी सुगंध आती है । २. जलपिप्पली ।

तृणशीता—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक सुगंधित घास [को०] ।

तृणशून्य[1]—वि० [सं०] बिना तृण का । तृण से रहित ।

तृणशून्य[2]—संज्ञा पुं० १. मल्लिका । २. केतकी ।

तृणशूली—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक लता का नाम ।

तृणशोषक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साँप ।

तृणषट्पद—संज्ञा पुं० [सं०] बर्रे । ततैया [को०] ।

तृणसंवाह—संज्ञा पुं० [सं०] पवन [को०] ।

तृणसारा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कदली । केला ।

तृणसिंह—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का सिंह । २. कुल्हाड़ी [को०] ।

तृणस्पर्श परीषह—संज्ञा पुं० [सं०] दर्भादि कठोर तृणों को बिछाकर लेटने और उनके गड़ने की पीड़ा को सहने की क्रिया । (जैन) ।

तृणहर्म्य—संज्ञा पुं० [सं०] घास फूस की झोपड़ी [को०] ।

तृणांजन—संज्ञा पुं० [सं० तृणाञ्जन] एक प्रकार का गिरगिट (को०)।

तृणाग्नि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. घास फूस की ऐसी आग जो जल्दी बुझ जाय। २. जल्दी बुझनेवाली आग। ३. घास फूस की आग से अपराधी को जलाकर दिया जानेवाला दंड (को०)।

तृणाढ्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का तृण जो औषध के काम में आता है। पर्व तृण। २. जगल जो तृणबहुल हो (को०)।

तृणान्न—संज्ञा पुं० [सं०] तृणधान्य। तिन्नी (को०)।

तृणाम्ल—संज्ञा पुं० [सं०] लवण तृण। नोनिया। अमलोनी।

तृणारणि न्याय—संज्ञा पुं० [सं०] तृण और अरणी रूप स्वतंत्र कारणों के समान व्यवस्था।

विशेष—अग्नि के उत्पन्न होने में तृण और अरणी दोनों कारण तो हैं पर परस्पर निरपेक्ष अर्थात् अलग अलग कारण हैं। हैं। अरणी से आग उत्पन्न होने का कारण दूसरा है और तृण में आग लगने का कारण दूसरा।

तृणावर्त—संज्ञा पुं० [सं०] १. चक्रवात। बवंडर। २. एक दैत्य का नाम।

विशेष—इसे कंस ने मथुरा से श्रीकृष्ण को मारने के लिये गोकुल भेजा था। यह चक्रवात (बवंडर) का रूप धारण करके आया था और बालक कृष्ण को ऊपर उड़ा ले गया था। कृष्ण ने ऊपर जाकर जब इसका गला दबाया तब यह गिरकर चूर चूर हो गया।

तृणेंद्र—संज्ञा पुं० [सं० तृणेन्द्र] ताड़ का पेड़।

तृणेक्षु—संज्ञा पुं० [सं०] बलवजा। सागे बागे।

तृणोत्तम—संज्ञा पुं० [सं०] उलवंल। ऊखल तृण।

तृणोद्भव—संज्ञा पुं० [सं०] मुन्यन्न। तिन्नी धान। पसही।

तृणोल्का—संज्ञा स्त्री० [सं०] घास फूस की मशाल।

तृणौक—संज्ञा पुं० [सं० तृणौकस्] घास फूस की झोपड़ी (को०)।

तृणौषध—संज्ञा पुं० [सं०] एलुवा। एलुवालुक नामक गंधद्रव्य।

तृण्ण—वि० [सं०] १. काटा हुआ। २. कटा हुआ (को०)।

तृण्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] घास या तिनकों का ढेर (को०)।

तृतियⓅ—वि० [हिं०] दे० 'तृतीय'। उ०—तृतिय प्रतीप बखानहीं, तहँ कविकुल सिरमौर।—भूषण ग्रं०, पृ० ८।

तृतियाⓅ—वि० [हिं०] दे० 'तृतीया'। उ०—तृतिया अनुमपना कही, हौं न गई पछिताय।—मति० ग्रं०, पृ० २६०।

तृतीय[1]—वि० [सं०] तीसरा।

तृतीय[2]—संज्ञा पुं० १. किसी वर्ग का तीसरा व्यंजन वर्ण। २. संगीत का एक मान।

तृतीयक—संज्ञा पुं० [सं०] १. तीसरे दिन आनेवाला ज्वर। तिजार।

यौ०—तृतीयक ज्वर = तिजरा।

२. तीसरी बार होनेवाली स्थिति (को०)। ३. तीसरा क्रम (को०)।

तृतीयप्रकृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुरुष और स्त्री के अतिरिक्त एक तीसरी प्रकृतिवाला। नपुंसक। क्लीव। हिजड़ा।

तृतीय सवन—संज्ञा पुं० [सं०] अग्निष्टोम आदि यज्ञों का तीसरा सवन जिसे साय सवन भी कहते हैं। दे० 'सवन'।

तृतीयांश—संज्ञा पुं० [सं०] तीसरा भाग।

तृतीया—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. प्रत्येक पक्ष का तीसरा दिन। तीज। २. व्याकरण में करण कारक।

तृतीया तत्पुरुष—संज्ञा पुं० [सं०] तत्पुरुष समास का एक भेद।

तृतीया नायिका—संज्ञा स्त्री० [सं० तृतीया + नायिका] नायिकाभेद के अनुसार अधमा या सामान्या नायिका। दे० 'नायिका'। उ०—वास्तव में पश्चिमीय सभ्यता अभी बाला और तृतीया नायिका वा वेश्या-वृत्ति-धारणी है। —प्रेमघन०, भा० २, पृ० २५६।

तृतीयाश्रम—संज्ञा पुं० [सं०] तीसरा आश्रम। वानप्रस्थ।

तृतीयी—वि० [सं० तृतीयिन्] १. तीसरे का हकदार। जिसे किसी सपत्ति का तृतीयांश पाने का स्वत्व हो (स्मृति)। २. तीसरी श्रेणी प्राप्त करनेवाला (को०)।

तृन[1]Ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० तृण] दे० 'तृण'।

मुहा०—तृन सा गिनना = कुछ न समझना। तृन ओट पहार छपाना = (१) असंभव कार्य के लिये प्रयत्न करना। (२) निष्फल चेष्टा करना। उ०—मैं तृन सो गन्यो तीनहू लोकनि, तू तृन ओट पहार छपावै।—मति० ग्रं०, पृ० ४३४। तृन तोड़ना = दे० 'तृण तोड़ना'। उ०—झूलत में लोट पोट होत दोऊ रंग भरे निरखि छबि नददास बलि बलि तृन तोरे।—नंद० ग्रं०, पृ० ३७७।

तृन[2]Ⓟ—वि० [हिं०] दे० 'तीन'। उ०—तृन अंश बृश्चिक के इलानद। ससि बीस नंद अज अंम मंद।—ह० रासो, पृ० १४।

तृन जोकⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं० तृन + जोक] तृणजलौका। दे० 'तृणजलौकान्याय'। उ०—ज्यों तृन जोक तृनन अनुसरै। आगे गहि पाछे परिहरै।—नंद० ग्रं०, पृ० २२२।

तृनद्रुमाⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तृणद्रुम'। उ०—ताल खजूरी, तृनद्रुमा, केतकि पकरति पाइ।—नद० ग्रं०, पृ० १०५।

तृनावर्तⓅ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तृणावर्त'। उ०—पुनि जब एक बरष को भयो, तृनावर्त उड़ि लै नभ गयो।—नद० ग्रं०, पृ० ३१०।

तृपत्—संज्ञा पुं० [सं०] १. चद्रमा। २. छाता (को०)।

तृपतनाⓅ—क्रि० अ० [सं० तृप्ति] तृप्त होना। संतुष्ट होना। अघाना। उ०—निरवधि मधु की धारा आहि। सु को जु तृपतै पीवत ताहि।—नद० ग्रं०, पृ० २७६।

तृपताⓅ—वि० [हिं०] दे० 'तृप्त'। उ०—दादू जब मुख माहीं मेलिये, सबही तृपता होइ।—दादू०, पृ० १८७।

तृपतिⓅ†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तृप्ति'। उ०—भोजन करै तृपति सो होई। गुरु शिष्य भावै किन कोई।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० ३६।

तृपल[1]—वि० [सं०] १. प्रसन्न। खुश। २. संतुष्ट। ३. बेचैन। व्याकुल (को०)।

तृपल²—संज्ञा पुं० उपल। पत्थर (को०)।

तृपला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. लता। २. त्रिफला।

तृपित(पु)‡—वि० [हिं०] दे० 'तृप्त'।

तृप्त—वि० [सं०] १. तुष्ट। अघाया हुआ। जिसकी इच्छा पूरी हो गई हो। २. प्रसन्न। खुश।

तृप्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. इच्छा पूरी होने से प्राप्त शांति और आनंद। संतोष। उ०—फिरत वृथा भाजन अवलोकत सूने सदन अजान। तिहि लालच कबहूँ कैसेहुँ तृप्ति न पावत प्रान।—सूर (शब्द०)। २. प्रसन्नता। खुशी।

तृप्पना(पु)—क्रि० स० [सं० तृप्ति] तृप्त करना। संतुष्ट करना। उ०—ज्वालनिय माल तृप्पय नृपति, अति सुदेव नइवेद जुत।—पृ० रा०, २४। २७६।

तृप्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. घृत। घी। २. पुरोडाश। ३. तृप्त करनेवाला। तर्पक।

तृफू—संज्ञा स्त्री० [सं०] सर्प जाति (को०)।

तृबेनी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'त्रिवेणी'। उ०—पावन परम देखि, मसम मन तृबेनी।—नंद० ग्रं०, पृ० ३४८।

तृभंगी—वि० [हिं०] दे० 'त्रिभंगी'। उ०—धरैं टेढ़ी पाग, चंद्रिका टेढ़ी टेढ़े लसै तृभंगी लाल।—नंद० ग्रं०, पृ० ३५०।

तृश्ना(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० तृष्णा] दे० 'तृष्णा'। उ०—जोगी दुखिया जंगम दुखिया तपसी को दुख दूना हो। आसा तृश्ना सबको ब्यापै कोई महल न सूना हो।—कबीर श०, भा० १, पृ० १६।

तृषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० तृषित, तृष्य] १. प्यास। २. इच्छा। अभिलाषा। ३ लोभ। लालच। ४. कलिहारी। करियारी।

तृषाभू—संज्ञा स्त्री० [सं०] पेट मे जल रहने का स्थान। क्लोम।

तृषाया(पु)—वि० [सं० तृषित] तृषित। प्यासा। उ०—सग रहै सोई पिये, नहिं फिरे तृषाया बहर।—दरिया० बानी, पृ० ३१।

तृषालु—वि० [सं०] प्यासा। पिपासित। तृषित। तृषार्त।

तृषावंत—वि० [सं० तृषावान् का बहुव०] प्यासा। उ०—तृषावंत जिमि पाय पियूषा।—तुलसी (शब्द०)।

तृषार्त—वि० [सं०] प्यास से व्याकुल। प्यासा (को०)।

तृषावान्—वि० [सं०] [वि० स्त्री० तृषावती] प्यासा।

तृषास्थान—संज्ञा पुं० [सं०] क्लोम।

तृषाह—संज्ञा पुं० [सं०] पानी (को०)।

तृषाहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सौंफ।

तृषित—वि० [सं०] १. प्यासा। उ०—तृषित वारि बिनु जो तनु त्यागा। मुए करै का सुधा तड़ागा।—तुलसी (शब्द०)। २. अभिलाषी। इच्छुक।

तृषितोत्तरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रसनपर्णी। पटसन।

तृपु—वि० [सं०] १ लोभी इच्छुक। २. वेगवान्। क्षिप्र (को०)।

तृष्णा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. प्राप्ति के लिये आकुल करनेवाली इच्छा। लोभ। लालच। २. प्यास।

तृष्णाकुल—वि० [सं० तृष्णा + आकुल] प्यास से विकल। तृषित। उ०—तृष्णाकुल होंगे प्रिय आओ। सलिल स्नेह मिल मधुर पिलाओ।—गीतिका, पृ० ४४।

तृष्णाक्षय—संज्ञा पुं० [सं०] १. इच्छा का समाप्त होना। २. मानसिक शांति। चित्त की स्थिरता। ३. संतोष।

तृष्णारि—संज्ञा पुं० [सं०] पित्तपापड़ा।

तृष्णार्त—वि० [सं० तृष्णा + आर्त] प्यास से कातर। तृष्णा से आर्त। उ०—दूर हो दुरित जो जग जागा तृष्णार्त ज्ञान।—गीतिका, पृ० ७०।

तृष्णालु—वि० [सं०] १. प्यासा। २. लालची। लोभी।

तृष्य¹—वि० [सं०] इच्छा करने योग्य। चाहने लायक (को०)।

तृष्य²—संज्ञा पुं० १. लोभ। लालच। २. प्यास (को०)।

तृसंधि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रि + सन्धि] तीन काल। तीन पहर। उ०—सर्मी साँझे सोइबा मझे जागिबा तृसंधि देणा पहरा।—गोरख०, पृ० ८६।

तृसालवाँ(पु)—वि० [सं० तृषा] तृषालु। प्यासा। उ०—परहर बहै तृसालवाँ, सूलै काँटा मागा।—गोरख०, पृ० ११२।

तेंदुस—संज्ञा पुं० [सं० टिण्डश] डेंड़सी नाम की तरकारी।

तें(पु)†—प्रत्य० [सं० तस् (प्रत्य०)] १. से। द्वारा। उ०—रज तें रजनी दिन भयो पूरि गयो असमान।—गोपाल (शब्द०)। २. से (अधिक)। उ०—(क) को जग मंद मलिन मति मो तें।—तुलसी (शब्द०)। (ख) नैना तेरे जलज ते है खंजन ते अति नाचे।—सूर (शब्द०)। (ग) चपला तें चमकत अति प्यारी कहा करौगी श्यामहिं —सूर (शब्द०)।

विशेष—कहीं कहीं 'अधिक' 'बढ़कर' आदि शब्दों का लोप करके भी 'तें' से अपेक्षाकृत आधिक्य का अर्थ निकालते हैं। वि० दे० 'से'।

३ (किसी काल या स्थान) से। उ०—द्यौतक तें पिय चित चढ़ी कहै चढ़ीहैं त्यौर।—बिहारी (शब्द०)।

विशेष—दे० 'से'।

तैंतरा—संज्ञा पुं० [देश०] बैलगाड़ी में फड़ के नीचे लगी हुई लकड़ी।

तैंतालिस—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तैंतालीस'।

तैंतालिसवाँ—वि० [हिं०] दे० 'तैंतालीसवाँ'।

तैंतालीस¹—वि० [सं० त्रिचत्वारिंशत्, पा० तिचत्तालीसा] जो गिनती में बयालिस से एक अधिक और चौवालीस से एक कम हो। चालीस और तीन।

तैंतालीस²—संज्ञा पुं० चालीस से तीन अधिक की संख्या जो अंकों में इस प्रकार लिखी जाती है—४३।

तैंतालीसवाँ—वि० [हिं० तैंतालीस+वाँ] क्रम में तेतालीस के स्थान पर पड़नेवाला। जिसके पहले बयालिस और हों।

तैंतिस—वि०, संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तैंतीस'।

तैंतिसवाँ—वि० [हिं०] दे० 'तैंतीसवाँ'।

तैंतीस¹—वि० [सं० त्रयस्त्रिंशत्, पा० तित्तिंसति, प्रा० तित्तीसा] जो गिनती में तीस से तीन अधिक हो। तीस और तीन।

उ०—नौ खेलैं तेंतीस तीन। तेज बेद विष संग लीन।—कबीर श०, भा० २, पृ० ११५।

तँतीस²—संज्ञा पुं० तीस से तीन अधिक की संख्या जो अंकों में इस प्रकार लिखी जाती है—३३।

तँतीसवाँ—वि० [हिं० तेंतीस+वाँ (प्रत्य०)] जो क्रम में तेंतीस के स्थान पर पड़े। जिसके पहले बत्तीस और हों।

तँदुआ¹—संज्ञा पुं० [देश०] बिल्ली या चीते की जाति का एक बड़ा हिंसक पशु जो अफ्रीका तथा एशिया के घने जंगलों में पाया जाता है।

विशेष—बल और भयंकरता आदि में शेर और चीते के उपरात इसी का स्थान है। यह चीते से छोटा होता है और चीते की तरह इसकी गरदन पर भी अयाल नहीं होता। इसकी लंबाई प्रायः चार पाँच फुट होती है और इसके शरीर का रंग कुछ पीलापन लिए भूरा होता है। इसके शरीर पर काले काले गोल धब्बे या चित्तियाँ होती हैं। इस जाति का कोई कोई जानवर काले रंग का भी होता है।

तँदुआ²—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तेंदू'।

तँदू—संज्ञा पुं० [सं० तिन्दुक] १. मझोले आकार का एक वृक्ष जो भारतवर्ष, लंका, बरमा और पूर्वी बंगाल के पहाड़ी जगलों में पाया जाता है।

विशेष—यह पेड़ जब बहुत पुराना हो जाता है तब इसके हीर की लकड़ी बिलकुल काली हो जाती है। वही लकड़ी आबनूस के नाम से बिकती है। इसके पत्ते लंबोतरे, नोकदार, खुरदुरे और महुवे के पत्तो की तरह पर उससे नुकीले होते हैं। इसकी छाल काली होती है जो जलाने से चिड़चिड़ाती है।

पर्या०—कालस्कंध। शितिशारथ। केंदु। तिंदु। तिंदुल। तिंदुकी। नीलसार। अतिमुक्तक। कालसार।

२. इस पेड़ का फल जो नींबू की तरह का हरे रंग का होता है और पकने पर पीला हो जाता और खाया जाता है।

विशेष—वैद्यक में इसके कच्चे फल को स्निग्ध, कसैला, हलका, मलरोधक, शीतल, अरुचि और वात उत्पन्न करनेवाला और पक्के फल को भारी, मधुर, स्वादु, कफकारी और पित्त, रक्तरोग और वात का नाशक माना है।

३. सिंध और पंजाब मे होनेवाला एक प्रकार का तरबूज जिसे 'दिलपसंद' भी कहते हैं।

ते(पु)†¹—अव्य० [हिं०] दे० 'तें'। उ०—के कुदरत ते पैदा किया यक रतन।—दक्खिनी०, पृ० ११७।

ते†²—सर्व० [सं० ते] वे। वे लोग। उ०—(क) पलक नयन फनिमनि जेहि भाँती। जोगवहिं जननि सकल दिन राती। ते अब फिरत विपिन पदचारी। कंद मूल फल फूल अहारी।—तुलसी (शब्द०)। (ख) राम कथा के ते अधिकारी। जिनको सतसंगति अति प्यारी।—तुलसी (शब्द०)।

तेइ(पु)—सर्व० [हिं० ते] उसे। उ०—कवि तो तेइ पाहन सम मानै। नहिन पखान पखान बखानै।—नंद० ग्रं० पृ० ११८।

तेइस†¹—वि० [हिं०] दे० 'तेईस'।

तेइस†²—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तेईस'।

तेइसवाँ†—वि० [हिं०] दे० 'तेईसवाँ'।

तेईस—[सं० त्रिविंशति, पा० तेवीसति, प्रा० तेवीस] जो गिनती में बीस से तीन अधिक हो। बीस और तीन।

तेईस²—संज्ञा पुं० बीस से तीन अधिक की संख्या जो अंकों में इस प्रकार लिखी जाती है—२३।

तेईसवाँ—वि० [हिं० तेईस+वाँ (प्रत्य०)] क्रम में तेईस के स्थान पर पड़नेवाला। जिसके पहले बाईस और हों।

तेउँ—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'त्यों'। उ०—मुहमद बारि परेम की, जेउँ भावे तेउँ खेलु।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १६१।

तेक(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तेग'। उ०—तेक तोकि तक्यो तुरी।—पृ० रा०, ७।१००५।

तेखना¹(पु)—क्रि० अ० [सं० तीक्ष्ण, हिं० तेहा] बिगड़ना। क्रुद्ध होना। नाराज होना। उ०—उ० (क) सुंभ बोल्यो तबै भेम सों तेखि कै। लाल नैना धरे बक्रता देखि कै।—गोपाल (शब्द०)। (ख) हनुमान या कौन बलाय बसी कछु पूछे ते ना तुम तेखियो री। हित मानि हमारो हमारे कहे भला मो मुख की छबि देखियो री।—हनुमान (शब्द०)। (ग) मोही को झूठी कहो झगरो करि सौह करो तब और ऊ तेखो। बैठे हैं दोऊ बगीचे मे जायकै पाइँ परों अब आइकै देखो।—रघुराज (शब्द०)।

तेखना²(पु)—क्रि० अ० [हिं०] प्रसन्न होना। उमंग में आना। उ०—डारत अतर लगाइ अरगजा रँगिली समधिन तेखि।—पृ० ३८०।

तेखी(पु)—वि० [हिं० तीखा] क्रोधयुक्त। क्रुद्ध। उ०—दिस लंक अंगद आद द्वादस, तहकिया तेखी।—रघु० रु०, पृ० १६१।

तेग—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० तेग] तलवार। खग। उ०—(क) जो रनसूर तेग तजि देवै। तो हमहूँ तुम्हरो मत लेवै।—विश्राम (शब्द०)। (ख) बरनै दीनदयाल हरषि जो तेग चलैहो। हूँहो जीते जसी, मरे सुरलोकहि पैहो।—दीनदयालु (शब्द०)।

तेगा—संज्ञा पुं० [फ़ा० तेग] १. खाँड़ा। खंग (अस्त्र)। उ०—तेगा ये दग मौत के पानि पवार सुघाट। अंजन बाढ़ दिए बिना करत चौगुनी काट।—रसनिधि (शब्द०)। २. किसी मेहराब के नीचे के भाग या दरवाजे को ईंट पत्थर मिट्टी इत्यादि से बंद करने की क्रिया। ३. कुश्ती का एक दाँव या पेंच जिसे कमरतेगा भी कहते हैं।

तेज¹—संज्ञा पुं० [सं० तेजस्] दीप्ति। कांति। चमक। दमक। आभा। उ०—जिमि बिनु तेज न रूप गोसाईं।—तुलसी (शब्द०)। २. पराक्रम। जोर। बल। ३. वीर्य। उ०—पतित तेज जो भयो हमारो कहो देव को धारी।—रघुराज (शब्द०)। ४. किसी वस्तु का सार भाग। तत्व। ५. ताप। गर्मी। ६. पित्त। ७ सोना। ८. तेजी। प्रचंडता। उ०—(क) तेज कृशानु रोष महि शेषा। अघ अवगुन धन धनी धनेसा।—तुलसी (शब्द०)। (ख) पन सो अचल शील, अनिल से चलचित्त, जल सो अमल तेज कैसो गायो है।—

केशव (शब्द०) । ९. प्रताप । रोब दाब । १०. मक्खन । नैनू । ११. सत्वगुण से उत्पन्न लिंगशरीर । १२. मज्जा । १३. पाँच महाभूतों में से तीसरा भूत जिसमें ताप और प्रकाश होता है । अग्नि ।

विशेष—सांख्य में इसका गुण शब्द, स्पर्श और रूप माना गया है । न्याय या वैशेषिक के अनुसार यह दो प्रकार का होता है—नित्य और अनित्य । परमाणु रूप में यह नित्य और कार्य रूप में अनित्य होता है । शरीर, इंद्रिय और विषय के भेद से अनित्य तेज तीन प्रकार का होता है । शरीर तेज वह तेज है जो सारे शरीर में व्याप्त हो । जैसा, आदित्यलोक में । इंद्रिय तेज वह है जिससे रूप आदि का ग्रहण हो । जैसा, नेत्र में । विषय तेज चार प्रकार का है—भौम, दिव्य, औदर्य और आकरज । भौम वह है जो लकड़ी आदि जलाने से हो; दिव्य वह है जो किसी दैवी शक्ति अथवा आकाश में दिखाई दे; जैसे, बिजली; औदर्य वह है जो उदर में रहता है और जिससे भोजन आदि पचता है; और आकरज वह है जो खनिज पदार्थों में रहता है, जैसा सोने में । शरीर में तेज रहने से साहस और बल होता है, खाद्य पदार्थ पचते हैं और शरीर सुंदर बना रहता ।

१४. घोड़े का वेग या चलने की तेजी ।

विशेष—यह तेज दो प्रकार का है- सततोत्थित और भयोत्थित । सततोत्थित तो स्वाभाविक है और भयोत्थित वह है जो चाबुक आदि मारने से उत्पन्न होता है ।

१५. तीक्ष्णता (को०) । १६. तीक्ष्ण धार (को०) । १७. दिव्य ज्योति (को०) । १८. उग्रता (को०) । १९. अधीरता (को०) । २०. प्रभाव (को०) । २१. प्राणभय की भी स्थिति में अपमान आदि न सहने की प्रकृति (को०) । २२. उष्ण प्रकाश (को०) । २३. भेजा (को०) । २४. दूसरों को अभिभूत करने की शक्ति (को०) । २५. सत्वगुण से उत्पन्न लिंग शरीर (को०) । २६. रजोगुण (को०) । २७. तेजोमय व्यक्ति (को०) । २८. आँख की स्वच्छता (को०) ।

तेज²—वि० [फ़ा० तेज] १. तीक्ष्ण धार का । जिसकी धार पैनी हो । उ०—यह चाकू बड़ा तेज है । २. चलने में शीघ्रगामी । उ०—यदपि तेज रौहाल वर लगी न पल को बार । तउ ग्वैंड़ो घर को भयो पैंडो कोस हजार ।—बिहारी (शब्द०) । ३. चटपट काम करनेवाला । फुरतीला । जैसे,—यह नौकर बड़ा तेज है । ४. तीक्ष्ण । तीखा । झालदार । जैसे, तेज सिरका । ५. महँगा । गराँ । बहुमूल्य । उ०—आजकल कपड़ा बहुत तेज है । ६. उग्र । प्रचंड ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।

७. चटपट अधिक प्रभाव करनेवाला । जिसमें भारी असर हो । जैसे, तेज जहर । ८. जिसकी बुद्धि बहुत तीक्ष्ण हो । जैसे, यह लड़का बहुत तेज है । ९. बहुत अधिक चंचल या चपल । १०. उग्र । प्रचंड । जैसे, तेज मिजाज ।

तेज(पु)³—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ताजो'-१' । उ०—काबिल्ली उर तेज रोम रोमी पंजाबी ।—पृ० रा०, ११।५ ।

तेजधारी—वि० [सं० तेजोधारिन्] तेजस्वी । जिसके चेहरे पर ते हो । प्रतापी । उ०—तेज न रहेगा तेजधारियों का न को भी मंगल मयंक मंद मंद पड़ जायँगे ।—इतिहा पृ० ६२७ ।

तेजन—संज्ञा पुं० [सं०] १. बाँस । २. मूँज । ३. रामशर । सरपत ४. दीप्त करने या तेज उत्पन्न करने की क्रिया या भाव ।

तेजनक—संज्ञा पुं० [सं०] शर । सरपत ।

तेजना(पु)—क्रि० स० [सं० त्याज्य] दे० 'तजना' । उ०—तेजि कुम बेकार, सुमति गहि लीजिए ।—धरम०, पृ० ४१ ।

तेजनाख्य—संज्ञा पुं० [सं०] मूँज ।

तेजनी—संज्ञा पुं० [सं०] १. मूर्वा २. मालकँगनी । ३. चव्य । चाव ४. तेजबल । ५. चटाई (को०) । ६. गुच्छा (को०) । ७. घ की अयाल (को०) ।

तेजपत्ता—संज्ञा पुं० [सं० तेजपत्र] दारचीनी की जाति का एक पेड़ लंका, दारजिलिंग, काँगड़ा, जयंतिया और खासी की पहाड़ि में होता है और जिसकी पत्तियाँ दाल तरकारी आदि मसाले की तरह डाली जाती हैं । जिस स्थान पर कुछ सा तक अच्छी वर्षा होती हो और पीछे कड़ी धूप पड़ती हो व यह पेड़ अच्छी तरह बढ़ता है ।

विशेष—जयंतिया और खासी में इसकी खेती होती है । पह सात सात फुट की दूरी पर इसके बीज बोए जाते और जब पौधा पाँच वर्ष का हो जाता है तब उसे दू स्थान पर रोप देते हैं । उस समय तक छोटे पौधों की र की बहुत आवश्यकता होती है । उन्हें धूप आदि से बच के लिये झाड़ियों की छाया में रखते हैं । रोपने के पाँच व बाद इसमें काम आने योग्य पत्तियाँ निकलने लगती हैं । प्र वर्ष कुआर से अगहन तक और कहीं कहीं फागुन तक इस पत्तियाँ तोड़ी जाती हैं । साधारण वृक्षों से प्रति वर्ष औ पुराने तथा दुर्बल वृक्षों से प्रति दूसरे वर्ष पत्तियाँ ली जा हैं । प्रत्येक वृक्ष से प्रति वर्ष १० से २५ सेर तक पत्ति निकलती हैं । वृक्ष से प्रायः छोटी छोटी डालियाँ काट जाती हैं और धूप में सुखाई जाती हैं । इसके बाद पत्ति अलग कर ली जाती हैं और उसी रूप में बाजार में बिक हैं । ये पत्तियाँ शरीफे की पत्तियों की तरह पर उनसे क होती हैं और सुगंधित होने के कारण दाल तरकारी आ मे मसाले की तरह डाली जाती हैं । इन पत्तियों से ए प्रकार का सिरका तैयार होता है । इसे हर्रे के साथ मिल कर इनसे रंग भी बनाया जाता है । तेजपत्ते के फूल औ फल लौंग के फूलों और फलों की तरह होते हैं, लकड़ी लाल लिए हुए सफेद होती है और उससे मेज कुरसी आदि बनत हैं । कुछ लोग दारचीनी और तेजपत्ते के पेड़ को एक समझते हैं पर वास्तव में ये दोनों एक ही जाति के पर अल अलग पेड़ हैं । तेजपत्ते के किसी किसी पेड़ से भी पतल छाल निकलती है जो दारचीनी के साथ ही मिला दी जात है । इसकी छाल से एक प्रकार का तेल भी निकलता है ।

जिससे साबुन बनाया जाता है। पत्तियों और छाल का व्यवहार औषध में भी होता है। वैद्यक में इसे लघु, उष्ण, रूखा और कफ,वात, कंडू, आम तथा अरुचि का नाशक माना है।

पर्या०—गंधजात। पत्र। पत्रक। त्वक्‌पत्र। वरांग। भृंग। चोच। उत्कट। तमालपत्र।

तेजपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] तेजपत्ता। एक जंगली वृक्ष का पत्ता जो सुगंधित होता है और इसी लिये मसाले में पड़ता है। इसके वृक्ष सिलहट की पहाड़ियों पर बहुत होते हैं। इसे तेजपत्ता और तेजपात भी कहते हैं।

तेजपात—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तेजपत्ता'।

तेजबल—संज्ञा पुं० [सं० तेजोवती] एक काँटेदार जंगली वृक्ष जो प्रायः हरिद्वार और उसके पास के प्रांतों में अधिकता से होता है।

विशेष—इसकी छाल लाल मिर्च की तरह बहुत चरपरी होती है और कहीं कहीं पहाड़ी लोग दाल मसाले आदि में इसकी जड़ का मिर्च की तरह व्यवहार भी करते हैं। इसकी छाल या जड़ चबाने से दाँत का दर्द मिट जाता है। वैद्यक में इसे गरम, चरपरा, पाचक, कफ और वातनाशक, तथा श्वास, खाँसी, हिचकी और बवासीर आदि को दूर करनेवाला माना है।

पर्या०—तेजवती। तेजस्विनी। तेजन्या। लघुवल्कला। परिजाता। शीता। तिक्ता। तेजनी। विडालघ्नी। सुतेजसी।

तेजमान—वि० [हिं०] दे० 'तेजवान्'। उ०—पै सिंहासन पै सूरज के समान तेजमान, चंद समान सीतल सुभाव।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ४८६।

तेजय(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तेज'। उ०—तेजय जल सब सिघुमद एऊ।—कबीर सा०, पृ०२६।

तेजल—संज्ञा पुं० [सं०] चातक। पपीहा।

तेजवंत—वि० [हिं० तेज+वंत] दे० 'तेजवान'। उ०—तेजवंत लघु गनिय न रानी।—तुलसी (शब्द०)।

तेजवरण(पु)—वि० [सं० तेज+हिं० वरण] ज्योतिर्मय। उ०—तेजवरण चंदा अधिकारी।—कबीर सा०, पृ० १००।

तेजवान—वि० [सं० तेजोवान्] [वि० स्त्री० तेजवती] १. जिसमें तेज हो। तेजस्वी। उ०—मघवा मही में तेजवान सिवराज वीर, कोटि करि सकल सपच्छ किए सैल है।—भूषण ग्रं०, पृ०४६। २. वीर्यवान। ३. बली। ताकतवाला। ४. कांतिमान्। चमकीला।

तेजस्—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तेज'।

यौ०—तेजस्कर। तेजस्काम = शक्ति प्रताप आदि की इच्छावाला।

तेजस(पु)—संज्ञा पुं० [सं० तेजस्] तेज। उ०—बिस्व तेजस पराग आतमा, इनमें सार न जाना।—कबीर श०, भा०२, पृ०६६।

तेजसा(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० तेजस्] अनाहत चक्र की दूसरी मात्रा। उ०—द्वादश दल १२ द्वादश माला १२ क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ ट ठ—बहिर्मात्रा २१ रुद्राणी १—तेजसा २—।—कबीर मं०, पृ० ११३।

तेजसि(पु)—वि० [हिं०] दे० 'तेजसी'। उ०—तेजसि हुते महाबली, ते अम तेज अपार।—रा० रू०, पृ०१३०।

तेजसी(पु)—वि० [हिं० तेजस्वी] तेजयुक्त। उ०—रिपु तेजसी अकेल अपि लघु करि गनिय न ताहु। अजहुँ देत दुःख रबि ससिहि सिर अवशेषित राहु।—तुलसी (शब्द०)।

तेजस्कर—संज्ञा पुं० [सं०] तेज बढ़ानेवाला। जिससे तेज की वृद्धि हो।

तेजस्थ—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव। शिव।

तेजस्वत्—वि० [सं०] तेजस्वी। तेजयुक्त।

तेजस्वान्—वि० [सं० तेजस्वत्] दे० 'तेजस्वत्' [को०]।

तेजस्विता—संज्ञा स्त्री० [सं०] तेजस्वी होने का भाव।

तेजस्विनी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] मालकँगनी।

तेजस्विनी[2]—वि० स्त्री० [सं०] तेजयुक्त [को०]।

तेजस्वी[1]—वि० [सं० तेजस्विन्] [स्त्री० तेजस्विनी] १. कांतिमान्। तेजयुक्त। जिसमें तेज हो। २. प्रतापी। प्रतापवाला। प्रभावशाली।

तेजस्वी[2]—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र के एक पुत्र का नाम।

तेजहत—वि० [सं० तेजो+हत] तेजहीन। जिसमें तेज न हो। उ०—निशाचर तेजहत रहे जो अन्य जन।—गीतिका, पृ०१७०।

तेजा—संज्ञा पुं० [फ़ा० तेज] १. चूने आदि से बना हुआ एक प्रकार का काला रंग जिससे रंगरेज लोग मोरपंखी रंग बनाते हैं। †२. महँगी। तेजी।

तेजाब—संज्ञा पुं० [फा० तेजाब] [वि० तेजाबी] किसी क्षार पदार्थ का अम्ल सार जो द्रावक होता है। जैसे, गंधक का तेजाब, शोरे का तेजाब नमक का तेजाब, नीबू का तेजाब आदि।

विशेष—किसी चीज का तेजाब तरल रूप में होता है और किसी का रवे के रूप में, पर सब प्रकार के तेजाब पानी में घुल जाते हैं, स्वाद में थोड़े या बहुत खट्टे होते हैं और क्षारों का गुण नष्ट कर देते हैं। किसी धातु पर पड़ने से तेजाब उसे काटने लगता है। कोई कोई तेजाब बहुत तेज होता है और शरीर में जिस स्थान पर लग जाता है उसे बिलकुल जला देता है। तेजाब का व्यवहार बहुधा औषधों में होता है।

तेजाबी—वि० [फ़ा० तेजाबी] तेजाब संबंधी।

यौ०—तेजाबी सोना = दे० 'सोना'।

तेजारत†—संज्ञा स्त्री० [अ० तिजारत] दे० 'तिजारत'।

तेजारती†—वि० [हिं०] दे० 'तिजारती'।

तेजालो(पु)—संज्ञा पुं० [फ़ा० ताजी] तेज घोड़ा। उ०—स्यार किया तेजाली चढ़ियो करस खंभ।—नट०, पृ० १६६।

तेजिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] मालकँगनी।

तेजित—वि० [सं०] १. पैना किया हुआ। तेज किया हुआ। २. उत्तेजित किया हुआ [को०]।

तेजिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] तेजबल।

तेजिष्ठ—वि० [सं०] तेजस्वी ।

तेजी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० तेज़ी] १. तेज होने का भाव । तीक्ष्णता २. तीव्रता । प्रबलता । ३. उग्रता । प्रचंडता । ४. शीघ्रता । जल्दी । ५. महँगी । गरानी । मंदी का उलटा । ६. सफर का महीना या मास (को०) ।

यौ०—तेजी का चाँद = सफर महीने का चाँद ।

तेजेयु—संज्ञा पुं० [सं०] रौद्राश्व राजा के एक पुत्र का नाम जिसका उल्लेख महाभारत में आया है ।

तेजो—संज्ञा पुं० [सं०] तेजस् का समासगत रूप, जैसे तेजोबल, तेजोमय ।

तेजोबीज—संज्ञा पुं० [सं०] मज्जा (को०) ।

तेजोभंग—संज्ञा पुं० [सं० तेजोभङ्ग] अपमान । तिरस्कार (को०) ।

तेजोभीरु—संज्ञा स्त्री० [सं०] छाया । परछाईं (को०) ।

तेजोमंडल—संज्ञा पुं० [सं० तेजोमण्डल] सूर्य, चंद्रमा आदि आकाशीय पिंडों के चारों ओर का मंडल । छटामंडल ।

तेजोमंथ—संज्ञा पुं० [सं० तेजोमन्थ] गनियारी का पेड़ ।

तेजोमय—वि० [सं०] १ तेज से पूर्ण । जिसमें खूब तेज हो । जिसमें बहुत आभा, कांति या ज्योति हो । उ०—तेजोमय स्वामी तहँ सेवक है तेजोमय ।—सुंदर० ग्रं० भा० १, पृ० ३० ।

तेजोमूर्ति[1]—वि० [सं०] तेजयुक्त । तेज से परिपूर्ण (को०) ।

तेजोमूर्ति[2]—संज्ञा पुं० सूर्य (को०) ।

तेजोरूप—संज्ञा पुं० [सं०] १. ब्रह्म । २. जो अग्नि या तेज रूप हो ।

तेजोवत्—वि० [सं०] दे० 'तेजस्वत्' (को०) ।

तेजोवती—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गजपिप्पली । २. चव्य । ३. मालकँगनी । तेजबल ।

तेजोवान्—वि० [सं० तेजोवत्] [स्त्री० तेजोवती] १. तेजवाला । २. उत्साही (को०) ।

तेजोबिंदु—संज्ञा पुं० [सं० तेजोबिन्दु] मज्जा ।

तेजोवृक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] छोटी अरणी का वृक्ष ।

तेजोहत—वि० [सं०] जिसका तेज समाप्त हो गया हो (को०) ।

तेजोह्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तेजबल । २. चव्य ।

तेटकोⓅ—क्रि० वि० [हिं० तेता] दे० 'तेतिक' । उ०—जाको जितनी रच्यो विधाता ताको आवै तेटको ।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ८३३ ।

तेडंडिक—वि० [सं० त्रिदण्ड] त्रिदंड धारण करनेवाला ।—हिंदु० सभ्यता, पृ० २१५ ।

तेड़नाⓅ—क्रि० स० [राज०] दे० 'टेरना' । उ०—पिंगल राजा पाठवइ, ढोला तेड़न काज ।—ढोला०, दू० ८१ ।

तेढ़ौⓅ—वि० [हिं०] दे० 'टेढ़ा' । उ०—भाजेवाँ तेढ़ाँ भड़ाँ, बेढाँ तणो बिसम्र ।—रा० रू०, पृ० १३७ ।

तेणⓅ—सर्व० [हिं० ते] उस । उ०—हुए कुंभरोसा जोधहूर श्रीहवाँ, करै कुंण तेण परमाण काया ।—रघु० रू०, पृ० २९ ।

तेणिⓅ—सर्व० [सं० तेन; प्रा० तेण, तेणं] १. तिससे । उस कारण से । इसलिये । इससे । उ०—तेणि न राखी सासर भजे स माकू बाल ।—ढोला०, दू० ११ ।

तेतना†—वि० [हिं०] दे० 'तितना' । उ०—मास षट बिहार तेत निमिष हूँ न जाने रस नंददास प्रभु संग रैन रंग जागरी ।—नंद० ग्रं०, पृ० ३.६५ ।

तेता†—वि० पुं० [सं० तावत्] [स्त्री० तेती] उतना । उसी कदर उसी प्रमाण का । उ०—(क) हरि हर विधि रवि ससि समेता । तुंडी ते उपजत सब तेता ।—निश्चल (शब्द०) (ख) जेती संपति कृपन के तेती तू मत जोर । बढ़त जा ज्यों ज्यों उरज त्यों त्यों होत कठोर ।—बिहारी (शब्द०)

तेतालीस[1]—वि० [हिं०] दे० 'तैंतालीस' ।

तेतालीस[2]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तैंतालीस' ।

तेतिकⓅ†—वि० [हिं० तेता] उतना ।

तेतीⓅ—वि० स्त्री० [हिं०] दे० 'तेता' । उ०—किउहि बुझावै का कं तिहि घर तेती आगि ।—नंद० ग्रं०, पृ० १३७ ।

तेतीस—वि० संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तैंतीस' ।

तेतोⓅ†—वि०.[हिं०] दे० 'तेता' ।

तेथⓅ—अव्य० [सं० तत्र] तहाँ । उ०—जेथ तेथ प्राणी जलै लालर दवी लाय ।—बाँकी ग्रं०, भा० ३, पृ० ६० ।

तेन—संज्ञा पुं० [सं०] गीत का आरंभिक स्वर (को०) ।

तेनु—सर्व० [सं० तत्] उसने । उ०—धरमीन नाम कायथ सुघर तेनु चरित लिष्यो सबै ।—पृ० रा०, १६।२३ ।

तेम[1]—संज्ञा पुं० [सं०] गीला होना । आर्द्र होना । आर्द्रता (को०) ।

तेम[2]Ⓟ—अव्य० [हिं०] दे० 'तिमि' । उ०—योग ग्रंथ माँहे लिरं मैं समुझाये तेम ।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० ४१ ।

तेमन—संज्ञा पुं० [सं०] १. व्यंजन । पका हुआ भोजन । २. गीला करने की क्रिया (को०) । ३. आर्द्रता । गीलापन (को०) ।

तेमनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] चूल्हा (को०) ।

तेमरू—संज्ञा पुं० [देश०] तेंदू का वृक्ष । आबनूस का पेड़ ।

तेयागना†—क्रि० स० [हिं०] दे० 'त्यागना' । उ०—हमारे कहं का मतलब यह है कि सब कोई भेदभाव तेयाग के, एव होकर के परमारथ कारज मैं सहजोग दीजिए ।—मैला० पृ० २९ ।

तेरⓅ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तेरह' । उ०—सय तेर परे हिं सयन कोस तीन रन मद्दव परि ।—पृ० रा०, ६।२०६।

तेरज—संज्ञा पुं० [देश०] खतियौनी का गोशवारा ।

तेरनाⓅ—क्रि० स० [हिं०] दे० 'टेरना' । उ०—पूनम तिथि मंगल दिनह, गृह तेरिय आजान । आसन छंडि सु अप्प दिय, बहु आदर सनमान । —पृ० रा०, ४।६।

तेरपनⓅ—वि० [हिं०] दे० 'तिरपन' । उ०—सत्तासै तेरपन सैर सीकरि नैं बसायो ।—शिखर०, पृ० ४८ ।

तेरवाँ†—वि० [हिं०] दे० 'तेरहवाँ' ।

तेरस—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रयोदश] किसी पक्ष की तेरहवीं तिथि। त्रयोदशी।

तेरसि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रयोदशी] दे० 'तेरस'। उ०—तेरसि तिथि ससि सम्भर पथ निसि दसमि दसा मोरि भेलि।—विद्यापति, पृ० १७८।

तेरह[1]—वि० [सं० त्रयोदश, प्रा० तेदृह, अर्धमा० तेरस] जो गिनती में दस से तीन अधिक हो। दस और तीन। उ०—कासी नगर भरा सब भारी। तेरह उतरे भोजन पारी।—घट०, पृ० २९३।

तेरह[2]—संज्ञा पुं० दस से तीन अधिक की संख्या और उस संख्या का सूचक अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—१३।

तेरहवाँ—वि० [हिं० तेरह + वाँ (प्रत्य०)] दस और तीन के स्थानवाला। क्रम में तेरह के स्थान पर पड़नेवाला। जिसके पहले बारह और हों।

तेरही—संज्ञा स्त्री० [हिं० तेरह + ई (प्रत्य०)] किसी के मरने के दिन से अथवा प्रेतकर्म की तेरहवीं तिथि, जिसमें पिंडदान और ब्राह्मणभोजन करके दाह करनेवाला और मृतक के घर के लोग शुद्ध होते हैं।

तेरा[1]—सर्व० [सं० ते (= तव) + हिं० रा (प्रत्य०)] [स्त्री० तेरी] मध्यम पुरुष एकवचन की षष्ठी का सूचक सर्वनाम शब्द। मध्यम पुरुष एकवचन संबंध कारक सर्वनाम। तू का संबंध कारक रूप। उ०—तू नहिं मानन देति आली री मन तेरों मानबे कों करत।—नंद० ग्रं०, पृ० ३६८।

मुहा०—तेरी सी = तेरे लाभ या मतलब की बात। तेरे अनुकूल बात। उ०—बकसीस ईस जी की खीस होत देखियत, रिस काहे लागति कहत तो हौं तेरी सी।—तुलसी (शब्द०)।

विशेष—शिष्ट समाज में इसका प्रयोग बड़े या बराबरवाले के साथ नहीं होता बल्कि अपने से छोटे के लिये होता है।

तेरा(पु)[2]—वि० [हिं०] दे० 'तेरह'। उ०—चंद्रमा मिथुन को तेरा १३ अस, मनि लग्न मैं देहु होगी।—ह० रासो०, पृ० ३०।

तेरिज—संज्ञा पुं० [अ० खिराज ?] १. खुलासा। स्पष्ट। २. सार। संक्षेप। उ०—तत्त को तेरिज बेरिज बुधि की।—धरनी०, पृ० ४।

तेरुस(पु)†[1]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'त्योरुस'।

तेरुस[3]—संज्ञा स्त्री० दे० [हिं०] 'तेरस'।

तेरू(पु)—वि० [हिं० तैरना] तैरनेवाला। उ०—इसो तेरू कवण फाड आवे उदध, लछीवर कवण नरपाल लाभे।—रघु० रू०, पृ० २६७।

तेरे†—अव्य० [हिं० ते] से। उ०—(क) तब प्रभु कह्यो पवनसुत तेरे। जनकसुतहिं लावहु ढिग मेरे।—विश्राम (शब्द०)। (ख) यहि प्रकार सब बूझन तेरे। भेटि भेंटि पूँछै प्रभु हेरे।—विश्राम (शब्द०)।

तेरो(पु)—सर्व० [हिं०] दे० 'तेरा'। उ०—तेरो मुख चंदा चकोर मेरे नैना।—(शब्द०)।

तेलंग—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तैलंग'। उ०—तेलंगा बंगा चोल कलिगा राजापुत्ते मंडीमा।—कीर्ति०, पृ० ४८।

तेल—संज्ञा पुं० [सं० तैल] १. वह चिकना तरल पदार्थ जो बीजों वनस्पतियों आदि से किसी विशेष क्रिया द्वारा निकाला जाता है अथवा आपसे आप निकलता है। यह सदा पानी से हलका होता है, उसमें घुल नहीं सकता, अलकोहल में घुल जाता है। अधिक सरदी पाकर प्रायः जम जाता है और अग्नि के संयोग से धूआँ देकर जल जाता है। इसमें कुछ न कुछ गंध भी होती है। चिकना। रोगन।

विशेष—तेल तीन प्रकार का होता है—मसृण, उड़ जानेवाला और खनिज। मसृण तेल वनस्पति और जंतु दोनों से निकलता है। वानस्पत्य मसृण वह है जो बाजों या दानों आदि को कोल्हू में पेरकर या दबाकर निकाला जाता है, जैसे, तिल, सरसों, नीम, गरी, रेंड़ी, कुसुम आदि का तेल। इस प्रकार का तेल दीया जलाने, साबुन और वार्निश बनाने, सुगंधित करके सिर या शरीर में लगाने, खाने की चीजें तलने, फलों आदि का अचार डालने और इसी प्रकार के और दूसरे कामों में आता है। मशीनों के पुरजों में उन्हें घिसने से बचाने के लिये भी यह डाला जाता है। सिर में लगाने के चमेली, बेले आदि के जो सुगंधित तेल होते हैं वे बहुधा तिल के तेल की जमीन देकर ही बनाए जाते हैं। भिन्न भिन्न तेलों के गुण आदि भी एक दूसरे से भिन्न होते हैं। इसके अतिरिक्त अनेक प्रकार के वृक्षों से भी आपसे आप तेल निकलता है जो पीछे से साफ कर लिया जाता है, जैसे,—तारपीन आदि। जतुज तेल जानवरों की चरबी का तरल अंश है और इसका व्यवहार प्रायः औषध के रूप में ही होता है। जैसे, साँप का तेल, धनेस का तेल, मगर का तेल आदि। उड़ जानेवाला तेल वह है जो वनस्पति के भिन्न भिन्न अंशों से भभके द्वारा उतारा जाता है। जैसे अजवायन का तेल, तारपीन का तेल, मोम का तेल, हींग का तेल आदि। ऐसे तेल हवा लगने से सूख या उड़ जाते हैं और इन्हें खौलाने के लिये बहुत अधिक गरमी की आवश्यकता होती है। इस प्रकार के तेल के शरीर में लगने से कभी कभी कुछ जलन भी होती है। ऐसे तेलों का व्यवहार विलायती औषधों और सुगंधों आदि में बहुत अधिकता से होता है। कभी कभी वारनिश या रंग आदि बनाने में भी यह काम आता है। खनिज तेल वह है जो केवल खानों या जमीन में खोदे हुए बड़े बड़े गड्ढों में से ही निकलता है। जैसे, मिट्टी का तेल (देखो 'मिट्टी का तेल' और 'पेट्रोलियम') आदि। आजकल सारे संसार में बहुधा रोशनी करने और मोटर (इंजिन) चलाने में इसी का व्यवहार होता है।

आयुर्वेद में सब प्रकार के तेलों को वायुनाशक माना है। वैद्यक के अनुसार शरीर में तेल मलने से कफ और वायु का नाश होता है, धातु पुष्ट होती है, तेज बढ़ता है, चमड़ा मुलायम रहता है, रंग खिलता है और चित्त प्रसन्न रहता है। पैर के तलवों में तेल मलने से अच्छी तरह नींद आती है और मस्तिष्क

तथा नेत्र ठंढे रहते हैं। सिर में तेल लगाने से सिर का दर्द दूर होता है, मस्तिष्क ठंढा रहता है, और बाल काले तथा घने रहते हैं। इन सब कामों के लिये वैद्यक में सरसों या तिल के तेल को अधिक उत्तम और गुणकारी बतलाया है। वैद्यक के अनुसार तेल में तली हुई खाने की चीजें विदाही, गुरुपाक, गरम, पित्तकर, त्वचादोष उत्पन्न करनेवाली और वायु तथा दृष्टि के लिये अहितकर मानी गई हैं। साधारण सरसों आदि के तेल में अनेक प्रकार के रोग दूर करने के लिये तरह तरह की ओषधियाँ पकाई जाती हैं।

क्रि० प्र०—जलना।—जलाना।—निकलना।—निकालना।—पेरना।—मलना।—लगाना।

मुहा०—तेल में हाथ डालना = (१) अपनी सत्यता प्रमाणित करने के लिये खौलते हुए तेल में हाथ डालना। (प्राचीन काल में सत्यता प्रमाणित करने के लिये खौलते हुए तेल में हाथ डलवाने की प्रथा थी)। (२) विकट शपथ खाना। आँख का तेल निकालना = दे० 'आँख' के मुहावरे।

२. विवाह की एक रस्म जो साधारणतः विवाह से दो दिन और कहीं कहीं चार पाँच दिन पहले होती है। इसमें वर को वधू का नाम लेकर और वधू को वर का नाम लेकर हल्दी मिला हुआ तेल लगाया जाता है। इस रस्म के उपरांत प्रायः विवाह संबंध नहीं छूट सकता। उ०—अभ्युदयिक करवाय श्राद्ध विधि सब विवाह के चार। कृति तेल मायन करवैहैं ब्याह विधान अपारा।—रघुराज (शब्द०)।

मुहा०—तेल उठाना या चढ़ाना = तेल की रस्म पूरी होना। उ०—तिरिया तेल हमीर हठ चढ़ै न दूजी बार।—कोई कवि (शब्द०)। तेल चढ़ाना = तेल की रस्म पूरी करना। उ०—प्रथम हरहिं बदन करि मंगल गावहिं। करि कुलरीति कलस थपि तेल चढ़ावहिं।—तुलसी (शब्द०)।

तेलगू—संज्ञा स्त्री० [तेलुगु] आंध्र राज्य की भाषा।

तेल चलाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० तेल + चलाना] देशी छींट की छपाई में मिड़ाई नाम की क्रिया। वि० दे० 'मिड़ाई'।

तेलबाई—संज्ञा पुं० [हिं० तेल + वाई (प्रत्य०)] १. तेल लगाना। तेल मलना। २. विवाह का एक रस्म जिसमें वधू पक्षवाले जनवासे में वर पक्षवालों के लगाने के लिये तेल भेजते हैं।

तेलसुर—संज्ञा पुं० [देश०] एक जंगली वृक्ष जो बहुत ऊँचा होता है।

विशेष—इसके हीर की लकड़ी कड़ी और सफेदी लिए पीली होती है। यह वृक्ष चटगाँव और सिलहट के जिलों में बहुत होता है। इसकी लकड़ी से प्रायः नावें बनाई जाती हैं।

तेलहँड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० तेल + हंडा] [स्त्री० अल्पा० तेलहँड़ी] तेल रखने का मिट्टी का बड़ा बरतन।

तेलहँड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तेल + हँड़ी] तेल रखने का मिट्टी का छोटा बरतन।

तेलहन—संज्ञा पुं० [हिं० तेल + हिं० हन (प्रत्य०)] वे बीज जिनसे तेल निकलता है। जैसे, सरसों, तिल, अलसी, इत्यादि। उ०—तिरगुन तेल चुआवै हो तेलहन संसार। कोइ न बचे जोगी जती फेरे बारंबार।—कबीर० श०, भा० ३, पृ० ३६।

तेलहा—वि० [हिं० तेल + हा (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० तेलही] १. तेलयुक्त। जिसमें तेल हो। जिसमें से तेल निकल सकता हो। २. तेलवाला। तेल संबंधी। ३. जिसमें चिकनाई हो। ४. तैल निर्मित। तेल से बना हुआ।

तेला—संज्ञा पुं० [देश०] तीन दिन रात का उपवास। उ०—जिसे कतल का हुक्म हो तेला अर्थात् तीन उपवास करे जिसमें परलोक सुधरे।—शिवप्रसाद (शब्द०)।

तेलिन—संज्ञा स्त्री० [हिं० तेली का स्त्री०] १. तेली की स्त्री। तेली जाति की स्त्री। २. एक बरसाती कीड़ा।

विशेष—यह कीड़ा जहाँ शरीर से छू जाता है वहाँ छाले पड़ जाते हैं।

तेलियर—संज्ञा पुं० [देश०] काले रंग का एक पक्षी जिसके सारे शरीर पर सफेद बुँदकियाँ या चित्तियाँ होती हैं।

तेलिया[1]—वि० [हिं० तेल] तेल की तरह चिकना और चमकीला। चिकने और चमकीले रंगवाला। तेल के से रंगवाला। जैसे,—तेलिया अमौवा।

तेलिया[2]—संज्ञा पुं० [हिं० तेल + इया (प्रत्य०)] १. काला, चिकना और चमकीला रंग। २. इस रंग का घोड़ा। ३. एक प्रकार का बबूल। ४. एक प्रकार की छोटी मछली। ५. कोई पदार्थ, पशु या पक्षी जिसका रंग तेलिया हो। ६. सींगिया नामक विष।

तेलियाकंद—संज्ञा पुं० [सं० तैलकन्द] एक प्रकार का कंद।

विशेष—यह कंद जिस भूमि में होता है वह भूमि तेल से सींची हुई जान पड़ती है। वैद्यक में इसे लोहे को पतला करनेवाला चरपरा, गरम तथा वात, अपस्मार, विष और सूजन आदि को दूर करनेवाला, पारे को बाँधनेवाला और तत्काल देह को सिद्ध करनेवाला माना है।

तेलियाकत्था—संज्ञा पुं० [हिं० तेलिया + कत्था] एक प्रकार का कत्था जो भीतर से काले रंग का होता है।

तेलियाकाकरेजी—संज्ञा पुं० [हिं० तेलिया + काकरेजी] कालापन लिए गहरा ऊदा रंग।

तेलियाकुमैत—संज्ञा पुं० [हिं० तेलिया + कुमैत] १. घोड़े का एक रंग जो अधिक कालापन लिए लाल या कुमैत होता है। २. वह घोड़ा जिसका रंग ऐसा हो।

तेलियागर्जन—संज्ञा पुं० [हिं० तेलिया + सं० गर्जन] दे० 'गर्जन'।

तेलियापखान—संज्ञा पुं० [हिं० तेलिया + सं० पाषाण] एक प्रकार का काला और चिकना पत्थर। उ०—नहीं चंद्रमणि जो द्रवै यह तेलिया पखान।—दीनदयाल (शब्द०)।

तेलियापानी—संज्ञा पुं० [हिं० तेलिया + पानी] बहुत खारा और स्वाद में बुरा मालूम होनेवाला पानी, जैसे प्रायः पुराने कुओं से निकलता रहता है।

तेलियासुरंग—संज्ञा पुं० [हिं० तेलिया + सुरंग] दे० 'तेलिया कुमैत'।

तेलियासुहागा—संज्ञा पुं० [हिं० तेलिया + सुहागा] एक प्रकार का सुहागा जो देखने में बहुत चिकना होता है।

तेली—संज्ञा पुं० [हिं० तेल + ई (प्रत्य०)] [स्त्री० तेलिन] हिंदुओं की एक जाति जिसकी गणना शूद्रों में होती है ।

विशेष—ब्रह्मवैवर्त पुराण के अनुसार इस जाति की उत्पत्ति कोटक स्त्री और कुम्हार पुरुष से है । इस जाति के लोग प्रायः सारे भारत में फैले हुए हैं और सरसों, तिल आदि पेरकर तेल निकालने का व्यवसाय करते हैं । साधारणतः द्विज लोग इस जाति के लोगों का छूआ हुआ जल नहीं ग्रहण करते ।

मुहा०—तेली का बैल = हर समय काम में लगा रहनेवाला व्यक्ति ।

तेलौंची—संज्ञा स्त्री० [हिं० तेल + औंची (प्रत्य०)] पत्थर, काँच या लकड़ी आदि की वह छोटी प्याली, जिसमें शरीर में लगाने के लिये तेल रखते हैं । मालिया ।

तेवर—संज्ञा स्त्री० [देश०] सात दीर्घ अथवा १४ लघु मात्राओं का एक ताल जिसमें तीन आघात और एक खाली रहता है । इसके

                    +   ३   ०

तबले के बोल ये हैं—धिन् धिन् धाकेटे, धिन् धिन् धा, तिन्

      १   +

तिन् ताकेटे धिन् धिन् धा । धा ।

तेवड़(पु)[1]—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'त्यों' । उ०—जेवड साहिब तेवड दाती दे दे करे रजाई ।—प्राण०, पृ० १२३ ।

तेवड़(पु)[2]—वि० [हिं०] दे० 'तेहरा' । उ०—क्यूँ लीजे गढ़ा बंका माई, दोवर कोट अरु तेवड़ खाई ।—कबीर ग्रं०, पृ० २०८ ।

तेवन[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. क्रीड़ा । २. वह स्थान, विशेषतः वन आदि जहाँ आमोदप्रमोद और क्रीड़ा हो । विहार । उपवन । ३. नजरबाग । पाईं बाग ।

तेवन(पु)[2]—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'त्यों'[1] । उ०—जैसे श्वान अपावन राजित तेवन लागी संसारी ।—कबीर ग्रं०, पृ० ३६१ ।

तेवर—संज्ञा पुं० [हिं० तेह (= क्रोध)] १. कुपित दृष्टि । क्रोध भरी चितवन ।

मुहा०—तेवर आना = मूर्छा आना । चक्कर आना । उ०—यह कहकर बड़ी बेगम को तेवर आया और धड़ से गिर पड़ीं ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ६०६ । तेवर चढ़ना = दृष्टि का ऐसा हो जाना जिससे क्रोध प्रकट हो । तेवर चढ़ा लेना या तेवर चढ़ाना = क्रुद्ध होना । दृष्टि को ऐसा बना लेना जिससे क्रोध प्रकट हो । उ०—क्यों न हम भी आज तेवर लें चढ़ा । हैं बुरे तेवर दिखाई दे रहे ।—चोखे०, पृ० ५२ । तेवर तनना = दे० 'तेवर चढ़ना' । उ०—भाल भाग्य पर तने हुए वे तेवर उसके ।—साकेत, पृ० ४२३ । तेवर बदलना या बिगड़ना = (१) बेमुरौवत हो जाना । (२) खफा हो जाना । उ०—अगर स्त्रियों की हँसी की आवाज कभी मरदानों में जाती तो वह तेवर बदले घर में आता ।—सेवासदन, पृ० २०८ । (३) मृत्युचिह्न प्रकट होना । तेवर बुरे नजर आना या दिखाई देना = अनुराग में अंतर पड़ना । प्रेम भाव में अंतर आ जाना । तेवर पर बल पड़ना = दे० 'तेवर बुरे नजर आना या दिखाई देना' । उ०—डर हमें तिरछी निगाहों का नहीं । देखिए अब बल न तेवर पर पड़े ।—चोखे०, पृ० ५२ । तेवर मैले होना = दृष्टि से खेद, क्रोध या उदासीनता प्रकट होना । तेवर सहना = क्रोध या क्षोभ सहना । क्रोध का विरोध न करना । उ०—जो पड़े सिर पर रहें सहते उसे, पर न औरों के बुरे तेवर सहें ।—चुभते० पृ० १६ ।

२. भौंह । भृकुटी ।

तेवरसी—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. ककड़ी । २. खीरा । ३. फूट ।

तेवरा—संज्ञा पुं० [देश०] दून में बजाया हुआ रूपक ताल । (संगीत) ।

तेवराना[1]—क्रि० अ० [हिं० तेवर + आना (प्रत्य०)] १. भ्रम में पड़ना । संदेह में पड़ना । सोच में पड़ना । २. विस्मित होना । आश्चर्य करना । दे० 'तिवराना' । ३. मूर्च्छित हो जाना । बेहोश हो जाना ।

तेवराना[2]—संज्ञा पुं० [हिं० तेवारी] तिवारियों की बस्ती ।

तेवरी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'त्योरी' ।

तेवहार—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'त्योहार' । उ०—सखि मानहि तेवहार सब, गाइ देवारी खेलि ।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३५७ ।

तेवान(पु)†—संज्ञा पुं० [देश०] सोच । चिंता । फिकर । उ०—मन तेवान कै राघव झूरा । नाहिं उबार जीउ डर पूरा ।—जायसी (शब्द०) ।

तेवान—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तावान' । उ०—गयो अजपा भूलि भूले, गयो बिसरि तेवान ।—जग० श०, पृ० १४ ।

तेवाना(पु)†—क्रि० अ० [देश०] सोचना । चिंता करना । उ०—(क) सँवरि सेज धन मन भइ संका । ठाढ़ि तेवानि टेककर लंका ।—जायसी (शब्द०) । (ख) रहौं लजाय तो पिय चलै कहौं तो कहैं मोहि ढीठ । ठाढ़ि तेवानी का करौं भारी दोउ बसीठ ।—जायसी (शब्द०) ।

तेवारी†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तिवारी' ।

तेह(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० तक्षण, हिं० तेवना] १ क्रोध । गुस्सा । उ०—हम हारी कै कै हहा पायन पारचो प्यौरु । लेहु कहा अजहूँ किए तेह तरेरे त्यौरु ।—बिहारी (शब्द०) । २. अहंकार । घमंड । ताव । उ०—आवै तेह वश भूप करहिं हठ पुनि पाछे पछितैहैं । अवधकिशोर समान और बर जन्म प्रयंत न पैहैं ।—रघुराज (शब्द०) । ३. तेजी । प्रचंडता । उ०—शेष भार खाइकै उतारै फन द्वै ते भूमि कमठ बराह छोड़ि भागैं क्षिति जेह को । भानु सितभानु तारा मंडल प्रतीचि उवैं सोखै सिंधु बाडव तरणि तजै तेह को ।—रघुराज (शब्द०) ।

तेहज(पु)—सर्व० [हिं० ते] उसी को । उ०—दादू तेहज लीजिए रे, साचो सिरजनहार ।—दादू० बानी, पृ० ५८ ।

तेहनो—सर्व० [हिं० ते] उसका । उ०—ते पुर प्राणी तेहनो अविचल सदा रहंत ।—दादू०, पृ० ५८४ ।

तेहवार—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'त्योहार' । उ०—'हरीचंद' दुख मेटि काम को चर तेहवार मनाओ ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ४३२ ।

तेहर†—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रि+हार] तीन लड़ की सिकड़ी, करधनी या जंजीर जिसे स्त्रियाँ कमर में पहनती हैं। उ०—जेहर, तेहर, पाँय, त्रिभुवन छबि उपजायल।—नंद० ग्रं०, पृ० ३८६।

तेहरा—वि० पुं० [हिं० तीन + हरा (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० तेहरी] १. तीन परत किया हुआ। तीन लपेट का। २. जिसकी एक साथ तीन प्रतियाँ हों। जो एक साथ तीन हों। उ०—दोहरे तेहरे चौहरे भूषण जाने जात।—बिहारी (शब्द०)। ३. जो दो बार होकर फिर तीसरी बार किया गया हो। जैसे, तेहरी मेहनत।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का व्यवहार ऐसे ही कामों के लिये होता है जो पहले दो बार करने पर भी उत्तम रीति से या पूर्ण न हुए हों।

४ तिगुना। (क्व०)।

तेहराना—क्रि० स० [हिं० तेहरा] १. तीन लपेट या परत का करना। २. किसी काम को उसकी त्रुटि आदि दूर करने अथवा उसे बिलकुल ठीक करने के लिये तीसरी बार करना।

तेहराव†—संज्ञा पुं० [हिं० तेहरा + आव (प्रत्य०)] तीसरी बार को क्रिया या भाव।

तेहवार—संज्ञा पुं० [सं० तिथि + वार] दे० 'त्योहार'।

तेहा—संज्ञा पुं० [हिं० तेह] १. क्रोध। गुस्सा। २. अहंकार। शेखी। अभिमान। घमंड।

यौ०—तेहेदार। तेहेबाज।

तेहातेह—क्रि० वि० [हिं० तह] तह पर तह। खूब गहरे में। उ०—चोजी प्रहरे रैण कै मिलिया तेहातेह। धन नहिं धरती हुइ रही, कंत सुहावो मेह।—ढोला०, दू० ५८४।

तेहिⓅ†—सर्व० [सं० ते] उसको। उसे। उ०—छबि सो छबीले छैल भेंटि तेहि छिनहिं उड़ावत।—नंद० ग्रं०, पृ० ३६।

तेही†—संज्ञा पुं० [हिं० तेह + ई (प्रत्य०)] १. गुस्सा करनेवाला। जिसमें क्रोध हो। क्रोधी। २ अभिमानी। घमंडी।

तेहीⓅ[२]—सर्व० [हिं० ते + हीं] उसे। उसी को।

तेहीजⓅ—सर्व० [हिं० तेही + ज] उसी को। उ०—प्रथम दाव गाड़यो रहई, जोग मीरज्यो होई तेहीज खाय।—बी० रासो, पृ० ४६।

तेहेदार†—संज्ञा पुं० [हिं० तेहा + फा० दार (प्रत्य०)] दे० 'तेही'।

तेहेबाज†—संज्ञा पुं० [हिं० तेहा + फा० बाज (प्रत्य०)] दे० 'तेही'।

तैंतिडीक—वि० [सं० तैन्तिडीक] तिंतिड़ी या इमली की काँजी से बनाया हुआ या तैयार किया हुआ [को०]।

तैंⓅ†—क्रि० वि० [हिं० तैं] से। दे० 'तें' उ०—कुंज तें कढ़े मुनि कंत को गमन लखि आगमन तैसो मनहरन गोपाल को।—पद्माकर (शब्द०)।

तैंⓅ—सर्व० [सं० त्वम्] तू। उ०—त्रिय संग लरहिं न भट रिपु भगनी। बक मम भ्राता तैं मम भगनी।—गोपाल (शब्द०)।

तैंतालीस—वि० दे० [हिं०] तैंतालीस।

तैंतीस—वि० [हिं०] दे० 'तैंतीस'। उ०—खुसी तैंतीस जब कटे भुज बीस। धरि माह दससीस मन राउ रानी।—पलटू० भा० २, पृ० १०८।

तै†[१]—क्रि० वि० [सं० तत्] उतना। उस कदर। उस मात्रा का। जैसे,—अब जै नंबर के बाद कहिये तै नंबर के बाद आपका ताश निकले।—रामकृष्ण वर्मा (शब्द०)।

तै[२]—संज्ञा पुं० [अ०] १. समाप्ति। खात्मा।

यौ०—तै तमाम = अंत। समाप्ति।

२. चुकता। बेबाकी (को०)। ३ निर्णय। फैसला। निबटारा। (को०)। ४. रास्ता चलना। जैसे, मंजिल तै कर ली। उ०—बहुतों ने राह तै की सँभले न पाँव फिर भी।—बेला, पृ० ६०।

तै[३]—वि० १. जिसका निबटेरा या फैसला हो चुका हो। निर्णीत। २. जो पूरा हो चुका हो। समाप्त। जैसे, झगड़ा तै करना। रास्ता तै करना।

तै†[४]—संज्ञा पुं० [फ़ा० तह] दे० 'तह'।

तैकायन—संज्ञा पुं० [सं०] तिक ऋषि के वंशज या शिष्य।

तैक्त—संज्ञा पुं० [सं०] तिक्त का भाव। तीतापन। चरपराहट। तिताई। तिक्तत्व।

तैक्ष्ण्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. तीक्ष्णता। तीक्ष्ण का भाव। २. भयंकरता (को०)। ३. पैनापन (को०)। ४. निर्दयता (को०)।

तैखानाⓅ†—संज्ञा पुं० [फ़ा० तहखानह्] दे० 'तहखाना'।

तैजस[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. धातु, मणि अथवा इसी प्रकार का और कोई चमकीला पदार्थ। २. घी। ३. पराक्रम। ४. बहुत तेज चलनेवाला घोड़ा। ५. सुमति के एक पुत्र का नाम। ६. जो स्वयप्रकाश और सूर्य आदि का प्रकाशक हो, भगवान्। ७. वह शारीरिक शक्ति जो आहार को रस तथा रस को धातु में परिणत करती है। ८. एक तीर्थ का नाम जिसका उल्लेख महाभारत मे है। ९ राजस अवस्था मे प्राप्त अहंकार जो एकादश इंद्रियों और पंच तन्मात्राओं की उत्पत्ति में सहायक होता है और जिसकी सहायता के बिना अहंकार कभी सात्विक या तामसी अवस्था प्राप्त नही करता।

विशेष—दे० 'अहंकार'।

१०. जंगम (को०)।

तैजस[२]—वि० [सं०] १. तेज से उत्पन्न। तेज संबंधी। जैसे, तैजस पदार्थ। २. चमकीला। द्युतिमान (को०)। ३. प्रकाश से परिपूर्ण (को०)। ४. उत्तेजित। उत्साही (को०)। ५. शक्तिशाली। साहसी (को०)। ६. राजसी वृत्तिवाला। रजोगुणी (को०)।

तैजसावर्तनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] चाँदी सोना गलाने की घरिया। मूषा।

तैजसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] गजपिप्पली।

तैतिक्ष—वि० [सं०] धैर्यवान्। सहनशील [को०]।

तैड़ेⓅ—सर्व० [राज०] तेरा। उ०—नागर तट तैड़े देखे बिन बेकलियाँ दिल नू।—नट०, पृ० १२६।

तैचिर—संज्ञा पुं० [सं० तीतर] तीतर।

तैतिल—संज्ञा पुं० [सं०] १. ग्यारह करणों में से चौथा करण।

विशेष—फलित ज्योतिष के अनुसार इस करण में जन्म लेनेवाला कलाकुशल, रूपवान्, वक्ता, गुणी, सुशील और कामी होता है।

२. देवता। ३. गैंडा।

तैत्तिर—संज्ञा पुं० [सं०] १. तीतरों का समूह। २. तीतर। ३. गैंडा।

तैत्तिरि—संज्ञा पुं० [सं०] कृष्ण यजुर्वेद के प्रवर्तक एक ऋषि का नाम जो वैशंपायन के बड़े भाई थे।

तैत्तिरिक—संज्ञा पुं० [सं०] तीतर पकड़नेवाला [को०]।

तैत्तिरीय—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ कृष्ण यजुर्वेद की छियासी शाखाओं में से एक।

विशेष—यह आत्रेय अनुक्रमणिका और पाणिनि के अनुसार तित्तिरि नामक ऋषि प्रोक्त है। पुराणों में इसके संबंध में लिखा है कि एक बार वैशंपायन ने ब्रह्महत्या की थी। उसके प्रायश्चित्त के लिये उन्होंने अपने शिष्यों को यज्ञ करने की आज्ञा दी। और सब शिष्य तो यज्ञ करने के लिये तैयार हो गए, पर याज्ञवल्क्य तैयार न हुए। इसपर वैशंपायन ने उनसे कहा कि तुम हमारी शिष्यता छोड़ दो। याज्ञवल्क्य ने जो कुछ उनसे पढ़ा था वह सब उगल दिया; और उस वमन को उनके दूसरे सहपाठियों ने तीतर बनकर चुग लिया।

२. इस शाखा का उपनिषद्।

विशेष—यह तीन भागों मे विभक्त है। पहला भाग संहितोपनिषद् या शिक्षावल्ली कहलाता है; इसमे व्याकरण और अद्वैतवाद संबंधी बातें हैं। दूसरा भाग आनंदवल्ली और तीसरा भाग भृगुवल्ली कहलाता है। इन दोनों संमिलित भागों को वारुणी उपनिषद् भी कहते हैं। तैत्तिरीय उपनिषद् में ब्रह्मविद्या पर उत्तम विचारों के अतिरिक्त श्रुति, स्मृति और इतिहास संबंधी भी बहुत सी बातें हैं। इस उपनिषद् पर शंकराचार्य का बहुत अच्छा भाष्य है।

तैत्तिरीयक—संज्ञा पुं० [सं०] तैत्तिरीय शाखा का अनुयायी या पढ़नेवाला।

तैत्तिरीयारण्यक—संज्ञा पुं० [सं०] तैत्तिरीय शाखा का आरण्यक अंश जिसमें वानप्रस्थों के लिये उपदेश है।

तैत्तिल—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तैतिल'।

तैनात—वि० [अ० तअय्युन] किसी काम पर लगाया या नियत किया हुआ। मुकर्रर। नियत। नियुक्त जैसे,—भीड़ भाड़ का इंतजाम करने के लिये दस सिपाही वहाँ तैनात किए गए थे।

तैनाती—संज्ञा स्त्री० [हिं० तैनात + ई (प्रत्य०)] किसी काम पर लगने की क्रिया या भाव। नियुक्ति। मुकर्ररी।

तैमित्य—संज्ञा पुं० [सं०] जड़ता [को०]।

तैमिर—संज्ञा पुं० [सं०] आँख का एक रोग [को०]।

विशेष—इस रोग में आँखों में धुँधलापन आ जाता है।

तैया—संज्ञा पुं० [देश०] मिट्टी का वह छोटा बरतन जिसमें छीपी कपड़ा छापने के लिये रंग रखते हैं। अहर।

तैयार—वि० [अ०] १. जो काम में आने के लिये बिलकुल उपयुक्त हो गया हो। सब तरह से दुरुस्त या ठीक। लैस। जैसे, कपड़ा (सिलकर) तैयार होना, मकान (बनकर) तैयार होना, फल (पककर) तैयार होना, गाड़ी (जुतकर) तैयार होना, आदि।

मुहा०—गला तैयार होना = गले का बहुत सुरीला और रसयुक्त होना। ऐसा गला होना जिससे बहुत अच्छा गाना गाया जा सके। हाथ तैयार होना = कला आदि में हाथ का बहुत अभ्यस्त और कुशल होना। हाथ का बहुत मंज जाना।

२. उद्यत। तत्पर। मुस्तैद। जैसे,—(क) हम तो सबेरे से चलने के लिये तैयार थे, आप ही नहीं आए। (ख) जब देखिए तब आप लड़ने के लिये तैयार रहते हैं। ३ प्रस्तुत। उपस्थित। मौजूद। जैसे,—इस समय पचास रुपए तैयार हैं, बाकी कल ले लीजिएगा। ४. हृष्ट पुष्ट। मोटा ताजा। जिसका शरीर बहुत अच्छा और सुडौल हो। जैसे, यह घोड़ा बहुत तैयार है। ५. संपूर्ण। मुकम्मल (को०)। ६. समाप्त। खत्म (को०)। ७. पक्व। पुख्ता (को०)। ८. कटिबद्ध। आमादा (को०)। ९. सुसज्जित। आरास्ता (को०)।

तैयारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० तैयार + ई (प्रत्य०)] १. तैयार होने की क्रिया या भाव। दुरुस्ती। संपूर्णता। २. तत्परता। मुस्तैदी। ३ शरीर की पुष्टता। मोटाई। ४. धूमधाम। विशेषत: प्रबंध आदि के संबंध की धूमधाम। जैसे,—उनकी बरात में बड़ी तैयारी थी। ५. सजावट। जैसे,—आज तो आप बड़ी तैयारी से निकले हैं। ६ समाप्ति। खात्मा (को०)। ७. प्रयोग के काबिल होना (को०)। ८. रचना। निर्माण। सृष्टि (को०)।

तैयों⑤—सर्व० [सं० त्वम् हिं० तैं] तुमसे। उ०—तूं आप करण कारण है तेरा ही कीना होया सभ कुछ है। तैयो कुछ छपिया नहीं।—प्राण०, पृ० २०२।

तैयो†—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'तऊ'। उ०—सहस अठासी मुनि जो जेवैं तैयो न घंटा बाजै। कहहिं कबीर सुपच के जेए घंट मगन ह्वै गाजै।—कबीर (शब्द०)।

तैरणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का क्षुप जिसकी पत्तियों आदि को वैद्यक में तिक्त और व्रणनाशक माना है।

पर्या०—तैर। तैरणी। कुनीली। रागव।

तैरना—क्रि० अ० [सं० तरण] १. पानी के ऊपर ठहरना। उतराना। जैसे, लकड़ी या काग आदि का पानी पर तैरना। २. किसी जीव का अपने अंग संचालित करके पानी पर चलना। हाथ पैर या और कोई अंग हिलाकर पानी पर चलना। पैरना। तरना।

विशेष—मछलियाँ आदि जलजंतु तो सदा जल में रहते और विचरते ही हैं; पर इनके अतिरिक्त मनुष्य को छोड़कर बाकी अधिकांश जीव जल मे स्वभावत: बिना किसी दूसरे की सहायता या शिक्षा के आपसे आप तैर सकते हैं। तैरना कई तरह से होता है और उसमें केवल हाथ, पैर, शरीर का कोई अंग

अथवा शरीर के सब अंगों को हिलाना पड़ता है। मनुष्य को तैरना सीखना पड़ता है और तैरने में उसे हाथों और पैरों अथवा केवल पैरों को गति देनी पड़ती है। मनुष्य का साधारण तैरना प्राय: मेंढक के तैरने की तरह का होता है। बहुत से लोग पानी पर चुपचाप चित भी पड़ जाते हैं और बराबर तैरते रहते हैं। कुछ लोग तरह तरह के दूसरे आसनों से भी तैरते हैं। साधारण चौपायों को तैरने में अपने पैरों को प्राय: वैसी ही गति देनी पड़ती है जैसी स्थल पर चलने में, जैसे, घोड़ा, गाय, हाथी, कुत्ता आदि। कुछ चौपाए ऐसे भी होते हैं जिन्हें तैरने में अपनी पूँछ भी हिलानी पड़ती है, जैसे, ऊद-बिलाव, गंधबिलाव आदि। कुछ जानवर केवल अपनी पूँछ और शरीर के पिछले भाग को हिलाकर ही बिलकुल मछलियों की तरह तैरते हैं, जैसे, ह्वेल। ऐसे जानवर पानी के ऊपर भी तैरते हैं और अंदर भी। जिन पक्षियों के पैरों में जालियाँ होती हैं, वे जल में अपने पैरों की सहायता से चलने की भाँति ही तैरते हैं, जैसे, बत्तक, राजहंस आदि। पर दूसरे पक्षी तैरने के लिये जल में उसी प्रकार अपने पर फटफटाते हैं जिस प्रकार उड़ने के लिये हवा में। साँप, अजगर आदि रेंगनेवाले जानवर जल में अपने शरीर को उसी प्रकार हिलाते हुए तैरते हैं जिस प्रकार वे स्थल में चलते हैं। कछुए आदि अपने चारों पैरों की सहायता से तैरते हैं। बहुत से छोटे छोटे कीड़े पानी की सतह पर दौड़ते अथवा चित पड़कर तैरते हैं।

तैरय(पु)—सर्व० [सं० तव] तेरा। उ०—पंच सखी मिलो बइठी छइ आइ। तैरय लिखी सखी मोहि सुणाई।—बी० रासो, पृ० ७४।

तैराई—संज्ञा स्त्री० [हिं० तैरना + ई (प्रत्य०)] १. तैरने की क्रिया या भाव। २. वह धन जो तैरने के बदले में मिले।

तैराक[1]—वि० [हिं० तैरना+आक (प्रत्य०)] तैरनेवाला। जो अच्छी तरह तैरना जानता हो।

तैराक[2]—संज्ञा पुं० तैरने में कुशल व्यक्ति।

तैराना—क्रि० स० [हिं० तैरना का प्रे० रूप] १. दूसरे को तैरने में प्रवृत्त करना। तैरने का काम दूसरे से कराना। २. धुसाना। धँसाना। गोदना। जैसे,—चोर ने उसके पेट में छुरी तैरा दी।

तैरू(पु)—वि० [हिं० तैरना] तैराक। तैरनेवाला। उ०—दरिया गुरू तैरू मिलाकर दिया पैले पार।—संतवाणी०, पृ० १२।

तैर्थ[1]—संज्ञा पुं० [सं०] वह कृत्य जो तीर्थ में किया जाय।

तैर्थ[2]—वि० तीर्थ संबंधी।

तैर्थिक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. शास्त्रकार। जैसे, कपिल, कणाद आदि। २. साधु। संत (को०)। ३. तीर्थस्थान का पवित्र जल (को०)।

तैर्थिक[2]—वि० १. पवित्र। २. तीर्थ से आनेवाला। तीर्थ से संबद्ध। ३. तीर्थों अथवा मंदिरों में जानेवाला (को०)।

तैर्यगयनिक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का यज्ञ।

तैर्यग्योन—वि० [सं०] तिर्यक् योनि संबंधी (को०)।

तैलंग—संज्ञा पुं० [सं० त्रिकलिङ्ग] १. दक्षिण भारत का एक प्राचीन देश जिसका विस्तार श्रीशैल से चोल राज्य से मध्य तक था। इसी देश की भाषा तेलुगु कहलाती है।

विशेष—इस देश में कालेश्वर, श्रीशैल और भीमेश्वर नामक तीन पहाड़ हैं जिनपर तीन शिवलिंग हैं। कुछ लोगों का मत है कि इन्हीं तीनों शिवलिंगों के कारण इस देश का नाम त्रिलिंग पड़ा है; इसका नाम पहले त्रिकलिंग था। महाभारत में केवल कलिंग शब्द आया है। पीछे से कलिंग देश के तीन विभाग हो गए थे जिसके कारण इसका नाम त्रिकलिंग पड़ा। उड़ीसा के दक्षिण से लेकर मदरास के और आगे तक का समुद्रतटस्थ प्रदेश तैलंग या तिलंगाना कहलाता है।

२. तैलंग देश का निवासी।

यौ०—तैलंग ब्राह्मण।

तैलंगा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तिलंगा'।

तैलंगी[1]—संज्ञा पुं० [हिं० तैलंग + ई (प्रत्य०)] तैलंग देशवासी।

तैलंगी[2]—संज्ञा स्त्री० तैलंग देश की भाषा।

तैलंगी[3]—वि० तैलंग देश संबधी। तैलंग देश का।

तैलंपाता—संज्ञा स्त्री० [सं० तैलम्पाता] स्वधा जिसमें मुख्यत: तिल की आहुति दी जाती है (को०)।

तैल—संज्ञा पुं० [सं०] १. तिल, सरसों आदि को पेरकर निकाला हुआ तेल। २. किसी प्रकार का तेल। ३. धूप। गुग्गुल (को०)।

तैलकंद—संज्ञा पुं० [सं० तैलकन्द] तेलियाकंद।

तैलकल्कज—संज्ञा पुं० [सं०] खली (को०)।

तैलकार—संज्ञा पुं० [सं०] तेली (जाति)।

विशेष—ब्रह्मवैवर्त पुराण के अनुसार इस जाति की उत्पत्ति कोटक जाति की स्त्री और कुम्हार पुरुष से बतलाई गई है। दे० 'तेली'।

तैलकिट्ट—संज्ञा पुं० [सं०] खली।

तैलकीट—संज्ञा पुं० [सं०] तेलिन नाम का कीड़ा।

तैलक्षौम—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वस्त्र जिसकी राख का प्रयोग घाव पर होता है (को०)।

तैलचित्र—संज्ञा पुं० [सं० तैल + चित्र] तैल रंगों से बना हुआ चित्र।

तैलचौरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] तेलचट्टा (को०)।

तैलत्व—संज्ञा पुं० [सं०] तेल का भाव या गुण।

तैलद्रोणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] काठ का एक प्रकार का बड़ा पात्र जो प्राचीन काल में बनाया जाता था और जिसकी लंबाई आदमी की लंबाई के बराबर हुआ करती थी।

विशेष—इसमें तेल भरकर चिकित्सा के लिये रोगी लिटाए जाते थे और सड़ने से बचाने के लिये मृत शरीर रखे जाते थे। राजा दशरथ का शरीर कुछ समय तक तैलद्रोणी में ही रखा गया था।

तैलधान्य—संज्ञा पुं० [सं०] धान्य का एक वर्ग जिसके अंतर्गत तीनों प्रकार की सरसों, दोनों प्रकार की राई, खस और कुसुम के बीज हैं।

तैलपर्णक—संज्ञा पुं० [सं०] गठिवन।

तैलपर्णिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का चंदन । २. लाल चंदन । ३. एक प्रकार का वृक्ष ।

तैलपर्णिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] तैलपर्णी [को०] ।

तैलपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सलई का गोंद । २. चंदन । ३. शिलारस या तुरुष्क नाम का गंधद्रव्य ।

तैलपा, तैलपायिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] तेलचट्टा । चपड़ा [को०] ।

तैलपायी—संज्ञा पुं० [सं० तैलपायिन्] १. झींगुर । चपड़ा (कीड़ा) । २. तलवार (को०) ।

तैलपिंज—संज्ञा पुं० [सं० तैलपिञ्ज] सफेद तिल [को०] ।

तैलपिपीलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की चींटी ।

तैलपिष्टक—संज्ञा पुं० [सं०] खली ।

तैलपीत—वि० [सं०] जिसने तेल पिया हो [को०] ।

तैलपूर—वि० [सं०] (दीपक) जिसमें तेल भरने की आवश्यकता न हो [को०] ।

तैलप्रदीप—संज्ञा पुं० [सं०] तेल का दीपक [को०] ।

तैलफल—संज्ञा पुं० [सं०] १. इंगुदी । २. बहेड़ा । ३. तिलका ।

तैलबिंदु—संज्ञा पुं० [सं० तैल + बिन्दु] किसी संक्षिप्त उक्ति को बढ़ा चढ़ाकर कहना । उ०—किसी संक्षिप्त उक्ति को खूब बढ़ाकर ग्रहण करना तैलबिंदु कहा गया है ।—संपूर्णा० अभि० ग्रं०, पृ० २६३ ।

तैलभाविनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] चमेली का पेड़ ।

तैलमाली—संज्ञा स्त्री० [सं०] तेल की बत्ती । पलीता ।

तैलयंत्र—संज्ञा पुं० [सं० तैलयन्त्र] कोल्हू ।

तैलरंग—संज्ञा पुं० [सं० तैल + रङ्ग] एक प्रकार का रंग जो तेल में मिलाकर बनाया जाता है और जिस रंग से तैलचित्र बनते हैं ।

तैलवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] शतावरी । शतमूली ।

तैलसाधन—संज्ञा पुं० [सं०] शीतल चीनी । कबाब चीनी ।

तैलस्फटिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. अंबर नामक गंधद्रव्य । २. तृणमणि । कहरुबा ।

तैलस्यंदा—संज्ञा स्त्री० [सं० तैलस्यन्दा] १. गोकर्णी नाम की लता । मुरहटी । २. काकोली नाम की ओषधि ।

तैलांबुका—संज्ञा स्त्री० [सं० तैलाम्बुका] तेलचट्टा । चपड़ा [को०] ।

तैलाक्त—वि० [सं०] जिसमें तेल लगा हो । तैलयुक्त । उ०—उड़ती भीनी तैलाक्त गंध, फूली सरसों पीली पीली ।—ग्राम्या, पृ० ३५ ।

तैलाढ्य—संज्ञा पुं० [सं०] शिलारस या तुरुष्क नाम का गंधद्रव्य ।

तैलागुरु—संज्ञा पुं० [सं०] अगर की लकड़ी ।

तैलाटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] बर्रे । भिड़ ।

तैलाभ्यंग—संज्ञा पुं० [सं० तैलाभ्यङ्ग] शरीर में तेल मलने की क्रिया । तेल की मालिश ।

तैलिक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] तिलों से तेल निकालनेवाला । तेली ।

तैलिक[2]—वि० तेल संबंधी ।

तैलिक यंत्र—संज्ञा पुं० [सं० तैलिक यन्त्र] कोल्हू । उ०—समर तैलिक यंत्र तिल तमीचर निकर पेरि डारे सुभट घालि घानी ।—तुलसी (शब्द०) ।

तैलिन—संज्ञा पुं० [सं० तैलिनम्] तिल का खेत [को०] ।

तैलिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] बत्ती ।

तैलिशाला—संज्ञा स्त्री [सं०] वह स्थान जहाँ तेल पेरने का कोल्हू चलता हो ।

तैली—संज्ञा पुं० [सं० तैलिन्] तेली ।

तैलीन—संज्ञा पुं० [सं० तैलिनम्] तिल का खेत [को०] ।

तैलीशाला—संज्ञा स्त्री० [सं० तैलिन्शाला] तेल पेरने का स्थान [को०] ।

तैल्वक[1]—वि० [सं०] लोध की लकड़ी से बना हुआ ।

तैल्वक[2]—संज्ञा पुं० [सं०] लोध ।

तैश—संज्ञा पुं० [अ०] आवेशयुक्त क्रोध । गुस्सा ।

मुहा०—तैश दिखाना = ऐसा कार्य करना जिससे कोई क्रुद्ध हो । क्रोध चढ़ाना । तैश में आना = क्रुद्ध होना । बहुत कुपित होना ।

तैष—संज्ञा पुं० [सं०] चांद्र पौष मास । पौष मास की पूर्णिमा के दिन तिष्य (पुष्य) नक्षत्र होता है, इसी से उसका नाम तैष पड़ा है ।

तैषी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुष्य नक्षत्रयुक्ता पौर्णमासी । पूस की पूर्णिमा ।

तैस†—वि० [सं० तादृश, प्रा० तइस] दे० 'तैसा' । उ०—पवन जाइ तहँ पहुँचै चहा । मारा तैस टूटि भुइँ बहा ।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २२६ ।

तैसई⑤—वि० [हिं० तैस + ई (प्रत्य०)] तैसे ही । वैसे ही । उसी प्रकार के । उ०—तैसई मंत्री अरु सब पुरुष प्रधान ।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ७० ।

तैसहो⑤—वि० [हिं० तैस + हो (प्रत्य०)] दे० 'तैसई' । उ०—बरिहै बिजैश्री आप हूँ कहूँ श्यामसुंदर तैसहो ।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ११६ ।

तैसा—वि० [सं० तादृश, प्रा० तइस] उस प्रकार का । 'वैसा' का पुराना रूप ।

तैसील⑤†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तहसील' । उ०—मिलिके बादिसाहूँ का अमल को उठाया । ऊ तीन बरस होगा तैसील कूँ न आया ।—शिखर०, पृ० २३ ।

तैसे—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'वैसे' ।

तैसों⑤—वि० [हिं०] दे० 'वैसा' । उ०—रँग रँगीले सँग सखा गन रँगीली नव बधु तैसोंई जम्यो रँगीलो बसंत रागु ।—नंद० ग्रं०, पृ० ३६७ ।

तैसो⑤†—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'तैसे' । उ०—अंगनि मैं कीनो मृगमद अंगराग तैसो आनन ओढ़ाय लीनो स्याम रंग सारी मैं ।—मति० ग्रं०, पृ० ३१३ ।

तौँ⑤†—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'त्यों' ।

तोँअर(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] १. दे० 'तोमर'। उ०—सब मंत्री परधान थान पर। गए जहाँ पावासर तोँअर।—पृ० रा०, १।४६४। २. तोमर नामक अस्त्र।

तोँद—संज्ञा स्त्री० [सं० तुन्द-तुन्दिल] पेट के आगे का बढ़ा हुआ भाग। पेट का फुलाव। मर्यादा से अधिक फूला या आगे की ओर बढ़ा हुआ पेट।

क्रि० प्र०—निकलना।

मुहा०—तोँद पचकना = (१) मोटाई दूर होना। (२) शेखी निकल जाना।

तोँदल—वि० [हिं० तोंद + ल (प्रत्य०)] तोंदवाला। जिसका पेट आगे की ओर बढ़ा और खूब फूला हुआ हो।

तोँदा¹—संज्ञा पुं० [देश०] तालाब से पानी निकलने का मार्ग।

तोँदा²—संज्ञा पुं० [फ़ा० तोदा] १. वह टीला या मिट्टी की दीवार, जिसपर तीर या बंदूक चलाने का अभ्यास करने के लिये निशाना लगाते हैं। २. ढेर। राशि। (क्व०)।

तोँदियल—वि० [हिं०] दे० 'तोंदल'।

तोँदी—संज्ञा स्त्री० [सं० तुण्डी] नाभि। ढोंढी।

तोँदीला—वि० [हिं०] दे० [वि० स्त्री० तोंदीली] दे० 'तोंदल'।

तोँदूमल—वि० [हिं० तोंदू + मल्ल] दे० तोंदल'। उ०—तोंद बना लो, नहीं उल्लू बनाकर निकाल दिए जाओगे या किसी तोंदूमल को पकड़ो।—काया०, पृ० २५१।

तोँदैल—वि० [हिं० तोंद + ऐल] दे० 'तोंदल'।

तोँन(पु)—सर्व० [हिं०] दे० 'तौन'। उ०—होत दीर्घ (जो) अंत है हरि सम सब थल तोन।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ५३३।

तोँबा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तूँबा'।

तोँबी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तूँबी'।

तोँर(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तोमर'। उ० तहँ तोर तीछन ताकिये, रन बिरद जिनके बाँकिये।—पद्माकर ग्रं०, पृ० ७।

तो(पु)¹—सर्व० [सं० तव] तेरा।

तो(पु)²—अव्य० [सं० तद्] तब। उस दशा में। जैसे,—(क) यदि तुम कहो तो मैं भी पत्र लिख दूँ। (ख) अगर वे मिलें तो उनसे भी कह देना। उ०—जो प्रभु अवसि पार गा चहहू। तो पद पदुम पखारन कहहू।—तुलसी (शब्द०)।

विशेष—पुरानी हिंदी में इस शब्द का, इस अर्थ में प्रयोग प्रायः 'जो' के साथ होता था।

तो³—अव्य० [सं० तु] एक अव्यय जिसका व्यवहार किसी शब्द पर जोर देने के लिये अथवा कभी कभी यों ही किया जाता है। जैसे,—(क) आप चलें तो सही, मैं सब प्रबंध कर लूँगा। (ख) जरा बैठो तो। (ग) हम गए तो थे, पर वे ही नहीं मिले। (घ) देखो तो कैसी बहार है?

तो⁴—सर्व० [सं० तव] तुझ। तू का वह रूप जो उसे विभक्ति लगने के समय प्राप्त होता है, जैसे, तोको।

तो⁵—क्रि० अ० [हिं० हतो (= था)] था। (क्व०)। उ०—काल करम दिगपाल सकल जग जाल जासु करतल तो।—तुलसी (शब्द०)।

तोइ(पु)†¹—संज्ञा पुं० [सं० तोय] पानी। जल। उ०—बीठ डोरने मोर दिय छिरक रूप रस तोइ। मथि मो घट प्रीतम लिए मन नवनीत बिलोइ।—रसनिधि (शब्द०)।

तोइ(पु)²—अव्य० [सं० ततः + अपि] फिर भी। उ०—मारु तोइण कसमसइ साल्ह कुमर बहु साठ।—ढोला०, दू० ६०५।

तोई¹—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. अंगे या कुरते आदि में कमर पर लगी हुई पट्टी या गोट। २. चादर या दोहर आदि की गोट। ३. लहँगे का नेफा।

तोई(पु)²—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तोय'। उ०—जौं लगि तोई डोलै बोलै, तौ लगि माया माहीं।—पलटू०, भा०३, पृ० ७६।

तोऊ(पु)—अव्य० [हिं०] दे० 'तऊ'। उ०—तोऊ दुसंग पाइ बहिर्मुख ह्वै रह्यो है।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० १५३।

तोक—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिशु। अपत्य। लड़का या लड़की। २. श्रीकृष्णचंद्र की एक सखा का नाम।

तोकक—संज्ञा पुं० [सं०] चातक [को०]।

तोकना(पु)—क्रि० स० [?] उठाना। उ०—तेक तोकि तक्यौ तुरी।—पृ० रा०, ७। १०५।

तोकरा—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की लता जो अफीम के पौधों पर लिपटकर उन्हें सुखा देती है।

तोकवत्—वि० [सं०] [वि० स्त्री० तोकवती] पुत्रवान [को०]।

तोकाँ(पु)†—सर्व० [हिं० तो + कों] तुमको। तुझे। उ०—औ बिधि रूप दीन्ह है तोकाँ।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २६१।

तोका(पु)—सर्व० [हिं० तो + को] तुझको। तुझे। उ०—करसि बियाह धरम है तोका।—जायसी ग्रं०, पृ० ११५।

तोक्म—संज्ञा पुं० [सं०] १. अंकुर। २. जौ का नया अंकुर। हरा और कच्चा जौ। ४. हरा रंग। ५. बादल। मेघ। ६. कान का मैल।

तोख(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तोष' या 'संतोष'। उ०—बिरिरा होइ कंत कर तोखू। किरिरा किहें पाव धनि मोखू।—जायसी ग्रं०, पृ० ३३४।

तोखना(पु)—क्रि० स० [हिं० तोख] प्रसन्न करना। संतुष्ट करना। उ०—तिय ताकी पतिबरता अहै। पति ही पोख्यो तोख्यो चहै।—नंद० ग्रं०, पृ० २१२।

तोखार—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तुखार'। उ०—पाँवरि तजहु देहु पग पैरी आवा बाँक तोखार।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३०८।

तोगा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तोक'। उ०—ज्ञातिपुत्र सिंह ने एथेंस का बना एक महामूल्यवान तोगा पहना था।—वैशाली०, पृ० १२४।

तोछ(पु)—वि० [हिं०] दे० 'तुच्छ'। उ०—सेना तोछ तपस्या सब्बल।—रा० रू०, पृ० ९५।

तोटक—संज्ञा पुं० [सं०] १. वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में चार

सगण (।।ऽ ।।ऽ ।।ऽ ।।ऽ) होते हैं। जैसे,—ससि सों सखियाँ बिनती करतीं। टुक मंद न हो पग तो धरतीं। हरि के पद अंकनि ढूँढन दे। छिन तो टक लाय निहारन दे। २. शंकराचार्य के चार प्रधान शिष्यों में से एक। इनका एक नाम नंदीश्वर भी था।

तोटका—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'टोटका'। उ०—औषध अनेक जंत्र मंत्र तोटकादि किये बादि भए देवता मनाए अधिकाति है।—तुलसी (शब्द०)।

तोटा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'टोटा'। उ०—सौदा सतगुरु सूँ किया राम नाम धन काज। लाभ न कोई छेहड़ो तोटा सबही भाज।—राम० धर्म०, पृ० ५२।

तोठौँ(पु)—सर्व० [हिं० तो + ठा (प्रत्य०)] तुम्हारा। उ०—हुवमूँ सूर तोठौं गाँव सोला की लिखावटि।—शिखर०, पृ० १०६।

तोड़—संज्ञा पुं० [हिं० तोड़ना] १. तोड़ने की क्रिया या भाव (क्व०)। २. किले की दीवारों आदि का वह अंश जो गोले की मार से टूट फूट गया हो। ३. नदी आदि के जल का तेज बहाव। ऐसा बहाव जो सामने पड़नेवाली चीजों को तोड़ फोड़ दे। ४. कुश्ती का वह पेंच जिससे कोई दूसरा पेंच रद्द हो। किसी दाँव से बचने के लिये किया हुआ दाँव। ५. किसी प्रभाव आदि को नष्ट करनेवाला पदार्थ या कार्य। प्रतिकार। मारक। जैसे,—अगर वह तुम्हारे साथ कोई पाजीपन करे तो उसका तोड़ हमसे पूछना।

यौ०—तोड़ जोड़। तोड़ फोड़।

६. दही का पानी। ७. बार। दफा। झोंक। जैसे,—पहुँचते ही वे उनके साथ एक तोड़ लड़ गए।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग ऐसे ही कार्यों के लिये होता है जो बहुत आवेशपूर्वक या तत्परता के साथ किए जाते हैं।

तोड़क—वि० [हिं० तोड़ + क (प्रत्य०)] तोड़नेवाला। जैसे, जाति पाँत तोड़क मंडल।

तोड़ जोड़—संज्ञा पुं० [हिं० तोड़ + जोड़] १. दाँव पेंच। चाल। युक्ति। २. अपना मतलब साधने के लिये किसी को मिलाने और किसी को अलग करने का कार्य। चट्टे बट्टे लड़ाकर काम निकालना।

क्रि० प्र०—भिड़ाना।—लगाना।

तोड़न—संज्ञा पुं० [सं० तोडनम्] १. फाड़ना। विभाजित करना। २. चिथड़े चिथड़े करना। ३. आघात या चोट पहुँचाना।

तोड़ना—क्रि० स० [हिं० टूटना] १. आघात या झटके से किसी पदार्थ के दो या अधिक खंड करना। भग्न, विभक्त या खंडित करना। टुकड़े करना। जैसे, गन्ना तोड़ना, लकड़ी तोड़ना, रस्सी तोड़ना, दीवार तोड़ना, दावात तोड़ना, बरतन तोड़ना, बंधन तोड़ना।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का व्यवहार प्रायः कड़े पदार्थों के लिये अथवा ऐसे मुलायम पदार्थों के लिये होता है जो सूत के रूप में लंबाई में कुछ दूर तक चले गए हों।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।

यौ०—तोड़ा मरोड़ी।

२. किसी वस्तु के अंग को अथवा उसमें लगी हुई किसी दूसरी वस्तु को नोच या काटकर, अथवा और किसी प्रकार से अलग करना। जैसे, पत्ती फूल या फल तोड़ना, (कोट में लगा हुआ) बटन तोड़ना, जिल्द तोड़ना, दाँत तोड़ना।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।—लेना।

मुहा०—तोड़ना = मार डालना। समाप्त कर देना। उ०—उस बाज ने कबूतर को पकड़कर तोड़ डाला।—कबीर मं०, पृ० ४८५।

३. किसी वस्तु का कोई अंग किसी प्रकार खंडित, भग्न या बेकाम करना। जैसे, मशीन का पुरजा तोड़ना, किसी का हाथ या पैर तोड़ना। ४. खेत में हल जोतना (क्व०)। ५. सेंध लगाना। ६. किसी स्त्री के साथ प्रथम समागम करना। किसी का कुमारीत्व भंग करना। ७. बल, प्रभाव, महत्व, विस्तार आदि घटाना या नष्ट करना। क्षीण, दुर्बल या अशक्त करना। जैसे,—(क) बीमारी ने उन्हें बिलकुल तोड़ दिया। (ख) युद्ध ने उन दोनों देशों को तोड़ दिया। (ग) इस कुएँ का पानी तोड़ दो। ८. खरीदने के लिये किसी चीज का दाम घटाकर निश्चित करना। जैसे, वह तो १५०) माँगता था पर मैंने तोड़कर १००) पर ही ठीक कर लिया। ९. किसी संगठन, व्यवस्था या कार्यक्षेत्र आदि को न रहने देना अथवा नष्ट कर देना। किसी चलते काम, कार्यालय आदि को सब दिन के लिये बंद करना। जैसे, महकमा तोड़ना, कंपनी तोड़ना, पद तोड़ना, स्कूल तोड़ना। १०. किसी निश्चय या नियम आदि को स्थिर या प्रचलित न रखना। निश्चय के विरुद्ध आचरण करना अथवा नियम का उल्लंघन करना। बात पर स्थिर न रहना। जैसे, ठेका तोड़ना, प्रतिज्ञा तोड़ना। ११. दूर करना। अलग करना। मिटा देना। बना न रहने देना। जैसे, संबंध तोड़ना, गर्व तोड़ना, दोस्ती तोड़ना, सगाई तोड़ना। १२. स्थिर या दृढ़ न रहने देना। कायम न रहने देना। जैसे, गवाह तोड़ना।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।

मुहा०—कलम तोड़ना = दे० 'कलम' के मुहा०। कमर तोड़ना = दे० 'कमर' के मुहा०। किला या गढ़ तोड़ना = दे० 'गढ़' के मुहा०। तिनका तोड़ना = दे० 'तिनका' के मुहा०। पैर तोड़ना = दे० 'पैर' के मुहा०। मुँह तोड़ना = दे० 'मुँह' के मुहा०। रोटियाँ तोड़ना = दे० 'रोटी' के मुहा०। सिर तोड़ना = दे० 'सिर' के मुहा०। हिम्मत तोड़ना = दे० 'हिम्मत' के मुहा०।

तोड़फोड़—संज्ञा स्त्री० [हिं० तोड़ना + फोड़ना] नष्ट करने की क्रिया। नष्ट करना। खराब करना।

तोड़मरोड़—संज्ञा स्त्री० [हिं० तोड़ना + मरोड़ना] १. तोड़ने मरोड़ने का कार्य। २. गलत अर्थ लगाना। कुतर्क से भिन्न अर्थ सिद्ध करना।

तोडरⓅ—संज्ञा पुं० [हिं० तोड़ा] एक आभूषण का नाम । उ०—मुद्रिक तोडर वए उतारी ।—०, हिंदी प्रेमगाथा०, पृ० १६५ ।

तोड़वाना—क्रि० स० [हिं० तोड़ना प्रे० रूप] दे० 'तुड़वाना' ।

तोड़ा[1]—संज्ञा पुं० [हिं० तोड़ना] १. सोने चाँदी आदि की लच्छेदार और चौड़ी जंजीर या सिकड़ी जिसका व्यवहार आभूषण की तरह पहनने में होता है ।

विशेष—आभूषण के रूप में बना हुआ तोड़ा कई आकार और प्रकार का होता है, और पैरों, हाथों या गले में पहना जाता है । कभी कभी सिपाही लोग अपनी पगड़ी के ऊपर चारों ओर भी तोड़ा लपेट लेते हैं ।

२. रुपए रखने की टाट आदि की थैली जिसमें १०००) रु० आते हैं ।

विशेष—बड़ी थैली भी जिसमें २०००) रु० आते हैं, 'तोड़ा' ही कहलाती है ।

मुहा०—(किसी के आगे) तोड़े उलटना या गिनना=(किसी को) सैकड़ों, हजारों रुपए देना । बहुत सा द्रव्य देना ।

३. नदी का किनारा । तट । ४. वह मैदान जो नदी के संगम आदि पर बालू, मिट्टी जमा होने के कारण बन जाता है ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।

५. घाटा । घटी । कमी । टोटा । उ०—तो लाला के लिये दूध का तोड़ा थोड़ा ही है ।—मान०, भा० ५, पृ० १०२ ।

क्रि० प्र०—आना ।—पड़ना ।

६. रस्सी आदि का टुकड़ा । ७. उतना नाच जितना एक बार में नाचा जाय । नाच का एक टुकड़ा । ८. हल की वह लंबी लकड़ी जिसके आगे जूआ लगा होता है । हरिस ।

तोड़ा[2]—संज्ञा पुं० [सं० तुण्ड या टोंटा] नारियल की जटा की वह रस्सी जिसके ऊपर सूम बुना रहता था और जिसकी सहायता से पुरानी चाल की तोड़दार बंदूक छोड़ी जाती थी । फलीता । पलीता । उ०—तोड़ा सुलगत चढ़े रहैं घोड़ा बंदूकन ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ५२४ ।

यौ०—तोड़ेदार बंदूक—वह बंदूक जो तोड़ा या फलीता दागकर छोड़ी जाय । आजकल इस प्रकार की बंदूक का व्यवहार उठ गया है । दे० 'बंदूक' ।

तोड़ा[3]—संज्ञा पुं० [देश०] १. मिसरी की तरह की बहुत साफ की हुई चीनी जिससे ओला बनाते हैं । कंद । २. वह लोहा जिसे चकमक पर मारने से आग निकलती है । ३. वह भैंस जिसने अभी तक तीन से अधिक बार बच्चा न दिया हो । तीन बार तक ब्याई हुई भैंस ।

तोड़ाई—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तुड़ाई' ।

तोड़ाना—क्रि स० [हिं०] दे० 'तुड़ाना' ।

तोड़िया†—संज्ञा स्त्री [हिं०] दे० 'तोड़ा' ।

तोड़ी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की सरसों ।

तोणⓅ†—संज्ञा पुं० [सं० तूण] निषंग । तरकस ।

तोत†[1]—संज्ञा पुं० [फा० तोवह् या तूदह् (=ढेर)] १. ढेर । समूह । उ०—घर घर उनही के जुरे बदनामी के तोत । माजत जे हित खेत तैं नेकनाम कब होत ।—(शब्द०) । २. खेत (ब्रज०) ।

तोतⓅ[2]—संज्ञा पुं० [?] कपट । उ०—पातसाह सुणतां दुख पायो एक हजूर तोत उपजायो ।—रा० रू०, पृ० ३०८ ।

तोतई[1]—वि० [हिं० तोता+ई (प्रत्य०)] सुग्गे जैसा । तोते के रंग का सा । धानी ।

तोतई[2]—संज्ञा पुं० वह रंग जो तोते के रंग का सा हो । धानी रंग ।

तोतरंगी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की चिड़िया जो पितपित्ता की सी होती है ।

तोतर†—वि० [हिं०] दे० 'तोतला' ।

तोतरा—वि० [हिं०] दे० 'तोतला' ।

तोतराना—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'तुतलाना' । उ०—पूछत तोतरात बात मातहि जदुराई । अतिसै सुख जाते तोहि मोहि कछु समुझाई ।—तुलसी (शब्द०) ।

तोतरिⓅ—वि० स्त्री० [हिं० तोतराना] दे० 'तोतला' । उ०—लरिकाई लटपट खग खेला । तोतरि बात मात संग बोला ।—घट०, पृ० ३७ ।

तोतला—वि० [हिं० तुतलाना] १. वह जो तुतलाकर बोलता हो अस्पष्ट बोलनेवाला । जैसे, तोतला बालक । २. जिसमें उच्चारण स्पष्ट न हो । जैसे, तोतली जबान ।

तोतलाना—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'तुतलाना' ।

तोतली—वि० [हिं० तोतलाना] दे० 'तोतला' । उ०—खिला हुआ मुख कंज, मंजु दशनावली, अरुण अधर, कलकंठ तोतली काकली ।—शकुं० पृ० ४८ ।

तोता—संज्ञा पुं० [फा०] १. एक प्रसिद्ध पक्षी जिसके शरीर का रंग हरा और चोंच का लाल होता है । कीर । सुआ ।

विशेष—इसकी दुम छोटी होती है और पैरों में दो आगे और दो पीछे इस प्रकार चार उँगलियाँ होती हैं । ये आदमियों की बोली की बहुत अच्छी तरह नकल करते हैं, इसलिये लोग इन्हें घर में पालते हैं और 'राम राम' या छोटे मोटे पद सिखलाते हैं । ये फल या मुलायम अनाज खाते हैं । तोते की छोटी, बड़ी सैकड़ों जातियाँ होती हैं जिनमें से अधिकांश फलाहारी और कुछ मांसाहारी भी होती हैं । तोते साधारण छोटी चिड़ियों से लेकर तीन फुट तक की लंबाई के होते हैं । कुछ जातियों के तोतों का स्वर तो बहुत मधुर और प्रिय होता है और कुछ का बहुत कटु तथा अप्रिय । इनमें नर और मादा का रंग प्रायः एक सा ही होता है । अमेरिका में बहुत अधिक प्रकार के तोते पाए जाते है । हीरामन, कातिक, नूरी, काकातूआ आदि तोते की जाति के ही हैं । तीतर, मुरगे, मोर, कबूतर आदि पक्षी जिस स्थान पर बहुत दिनों तक पाले जाते हैं यदि कभी लड़कर इधर उधर चले जाँय तो प्रायः फिर लौटकर उसी स्थान पर आ जाते हैं पर साधारण तोते छूट जाने पर फिर

अपने पालनेवाले के पास प्रायः नहीं आते। इसलिये तोतों की बेमुरौवती मशहूर है।

मुहा०—हाथों के तोते उड़ जाना = बहुत घबरा जाना। सिर पीटा जाना। तोते की तरह आँखें फेरना या बदलना = बहुत बेमुरौवत होना। तोते की तरह पढ़ना = बिना समझे बूझे रटना। तोता पालना = किसी दोष, दुर्व्यसन या रोग को जान बूझकर बढ़ाना। किसी बुराई या बीमारी से बचने का कोई प्रयत्न न करना।

यौ०—तोताचश्म। तोताचश्मी।

२. बंदूक का घोड़ा।

तोताचश्म—संज्ञा पुं० [फ़ा०] तोते की तरह आँख फेर लेनेवाला। वह जो बहुत बेमुरौवत हो।

तोताचश्मी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० तोताचश्म + ई० (प्रत्य०)] बेमुरौवती। बेवफाई।

मुहा० तोताचश्मी करना = बेमुरौवत होना। बेवफाई करना। उ०—यकीन नहीं आता कि आजाद न आएँ और ऐसी तोताचश्मी करें।—फिसाना०, भा० ३, पृ० २८।

तोतापंखी—वि० [हिं० तोता + पंख + ई (प्रत्य०)] तोते के पंखों जैसे पीत वर्ण का। पीताभ। उ०—तोतापंखी किरनों में हिलती बाँसों की टहनी। यहीं बैठ कहती थी तुमसे सब कहनी अनकहनी।—ठंडा०, पृ० २०।

तोती—संज्ञा स्त्री० [फा० तोता] १. तोते की मादा। उ०—बोलहिं सुक सारिक पिक तोती। हरिहर चातक पोत कपोती।—नंद० ग्रं०, पृ० ११६। २. रखी हुई स्त्री। उपपत्नी। रखनी। सुरैतिन। (क्व०)।

तोत्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह छड़ी या चाबुक आदि जिसकी सहायता से जानवर हाँके जाते हैं।

तोत्रवेत्र—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु के हाथ का दंड।

तोथीⓅ—अव्य० [हिं०] वही। उ०—जाहो लेता जनम गो तुम करै तिसी तोथी होई।—बी० रासो, पृ० ४४।

तोद[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. पीड़ा। व्यथा। उ०—आनँदघन रस बरसि बहायौ जनम जनम को तोद।—घनानंद, पृ० ४८६। २. सूर्य (को०)। ३. चलाना। हाँकना (को०)।

तोद[2]—वि० पीड़ा पहुँचानेवाला। कष्टदायक।

तोदन—संज्ञा पुं० [सं०] १. तोत्र। चाबुक, कोड़ा, चमोटी आदि। २. व्यथा। पीड़ा। ३. एक प्रकार का फलदार पेड़ जिसके फल को वैद्यक में कसैला, मीठा, रूखा तथा कफ और वायुनाशक माना है।

तोदरी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] फारस में होनेवाला एक प्रकार का बड़ा कँटीला पेड़ जिसमें पतले छिलकेवाले फूल लगते हैं।

विशेष—इसके बीज भटकटैया के बीजों की तरह चपटे पर उससे कुछ बड़े होते हैं और औषध के काम में आने के कारण भारत के बाजारों में आकर बिकते हैं। ये बीज तीन प्रकार के होते हैं—लाल, सफेद और पीले। तीनों प्रकार के बीज बहुत रक्तशोधक, पौष्टिक और बलवर्धक समझे जाते हैं। कहते हैं, इनके सेवन से शरीर का रंग खूब निखरता है और चेहरे का रंग लाल हो जाता है।

तोदी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का ख्याल (संगीत)।

तोनⓅ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तूण'। उ०—हनुमान हृथ्यं सँदेसं सु कथ्यं। धरै पिट्ठ तोनं लछी बीर सथ्यं।—पृ० रा०, २।२६७।

तोनिⓅ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तूण'। उ०—कर खग्ग धनुष कटि लसै तोनि।—ह० रासो०, पृ० १२।

तोप—संज्ञा स्त्री० [तु०] एक प्रकार का बहुत बड़ा अस्त्र जो प्रायः दो या चार पहियों की गाड़ी पर रखा रहता है और जिसमें ऊपर की ओर बंदूक की नली की तरह एक बहुत बड़ा नल लगा रहता है। इस नल में छोटी गोलियों या मेखों आदि से भरे हुए गोल या लंबे गोले रखकर युद्ध के समय शत्रुओं पर चलाए जाते हैं। गोले चलाने के लिये नल के पिछले भाग में बारूद रखकर पलीते आदि से उसमें आग लगा देते हैं। उ०—छुटहिं तोप घनघोर सबै बंदूक चलावै।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ५४०।

विशेष—तोपें छोटी, बड़ी, मैदानी, पहाड़ी और जहाजी आदि अनेक प्रकार की होती हैं। प्राचीन काल में तोपें केवल मैदानी और छोटी हुआ करती थीं और उनको खींचने के लिये बैल या घोड़े जोते जाते थे। इसके अतिरिक्त घोड़ों, ऊँटों या हाथियों आदि पर रखकर चलाने योग्य तोपें अलग हुआ करती थीं जिनके नीचे पहिए नहीं होते थे। आजकल पाश्चात्य देशों में बहुत बड़ी बड़ी जहाजी, मैदानी और किले तोड़नेवाली तोपें बनती हैं जिनमें से किसी किसी तोप का गोला ७५-७५ मील तक जाता है। इसके अतिरिक्त बाइसिकिलों, मोटरों और हवाई जहाजों आदि पर से चलाने के लिये अलग प्रकार की तोपें होती हैं। जिनका मुँह ऊपर की ओर होता है, उनसे हवाई जहाजों पर गोले छोड़े जाते हैं। तोपों का प्रयोग शत्रु की सेना नष्ट करने और किले या मोरचेबंदी तोड़ने के लिये होता है। राजकुल में किसी के जन्म के समय अथवा इसी प्रकार की और किसी महत्वपूर्ण घटना के समय तोपों में खाली बारूद भरकर केवल शब्द करते हैं।

क्रि० प्र०—चलना।—चलाना।—छूटना।—छोड़ना।—दगना।—दागना।—भरना।—मारना।—सर करना।

यौ०—तोपची। तोपखाना।

मुहा०—तोप कीलना = तोप की नाली में लकड़ी का कुंदा खूब कसकर ठोंक देना जिससे उसमें से गोला न चलाया जा सके। [प्राचीन काल में मौका पाकर शत्रु की तोपें अथवा भागने के समय स्वयं अपनी ही तोपें इस प्रकार कील दी जाती थीं।] तोप की सलामी उतारना = किसी प्रसिद्ध पुरुष के आगमन पर अथवा किसी महत्वपूर्ण घटना के समय बिना गोले के केवल बारूद भरकर शब्द करना। तोप के मुँह पर छोड़ना = बिलकुल निराश्रित छोड़ देना। खतरे के स्थान पर छोड़ना। उ०—फिर तुम उस बेचारी को अकेली तोप के मुँह पर छोड़ आए हो।—रति०, पृ० ४४। तोप के मुँह पर रखकर

उड़ाना = बहुत कठिन दंड या प्राणदंड देना। तोप के मुहरे पर उड़ा देना = दे० 'तोप के मुँह पर रखकर उड़ाना'। उ०—ऐसी बद औरतों को तोप के मुहरे पर उड़ा दे बस।—सैर कु० पृ० १८। तोप दम करना = दे० 'तोप के मुँह पर रखकर उड़ाना'। किसी पर या किसी के सामने तोप लगाना = किसी वस्तु को उड़ाने के लिये तोप का मुँह उसकी ओर करना।

तोपखाना—संज्ञा पुं० [फ़ा० तोप + खानह्] १. वह स्थान जहाँ तोपें और उनका कुल सामान रहता हो। २. गोलों और सामान की गाड़ियों आदि के सहित युद्ध के लिये सुसज्जित चार से आठ तोपों तक का समूह।

तोपची—संज्ञा पुं० [फ़ा० तोप + ची (प्रत्य०)] तोप चलानेवाला। वह जो तोप में गोला भरकर चलाता हो। गोलंदाज।

तोपचीनी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'चोबचीनी'।

तोपड़ा—संज्ञा पुं० [देश०] १. एक प्रकार का कबूतर। २. एक प्रकार की मक्खी।

तोपना† क्रि० स० [देश०] नीचे दबाना। ढाँकना। छिपाना।

तोपवाना†—क्रि० स० [हिं० तोपना प्रे० रूप] तोपने का काम दूसरे से कराना। ढंकवाना। छिपवाना।

तोपा—संज्ञा पुं० [हिं० तुरपना] एक टाँके में की हुई सिलाई।

मुहा०—तोपा भरना = टाँके लगाना। सीना। सीधी सिलाई करना।

तोपाई†—संज्ञा स्त्री० [हिं० तोपना] १. तोपने की क्रिया या भाव। २. तोपने की मजदूरी।

तोपाना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'तोपवाना'।

तोपास—संज्ञा पुं० [देश०] झाड़ू देनेवाला। झाड़ूबरदार।

तोपी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'टोपी'।

तोफⓅ—संज्ञा पुं० [फ़ा० तुफ़ (अव्य०)] दुःख। पश्चात्ताप। अफसोस। उ०—तालिब मतलूब को पहुँचे तोफ करै दिल अंदर।—कबीर सा०, पृ० ८८८।

तोफगी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० तोहफ़ा] तोफा या उम्दा होने का भाव। खूबी। अच्छापन।

तोफाँ†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तोप'। उ०—दगै तोफाँ वहै गोला रोहला मोरछा दोला।—बाँकी० ग्रं०, भा० ३, पृ० १२७।

तोफा¹†—वि० [अ० तोहफ़ा] बढ़िया।

तोफा²—संज्ञा पुं० दे० 'तोहफा'।

तोफानⓅ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तूफान'। उ०—साहिब वह कहाँ है कहीं फिर नहीं है, हिंदू और तुरुक तोफान करता।—सं० दरिया, पृ० २७।

तोबड़ा—संज्ञा पुं० [फ़ा० तोबरा या तुबरा] चमड़े या टाट आदि का वह थैला जिसमें दाना भरकर घोड़े के खाने के लिये उसके मुँह पर बाँध देते हैं।

क्रि० प्र०—चढ़ाना।

मुहा०—तोबड़ा चढ़ाना = बोलने से रोकना। मुँह बंद करना।

तोबा—संज्ञा स्त्री० [अ० तौबह्] अपने किए पापों या दुष्कृत्यों आदि का स्मरण करके पश्चात्ताप करने और भविष्य में वैसा पाप या दुष्कृत्य न करने की दृढ़ प्रतिज्ञा। किसी कार्य को विशेषतः अनुचित कार्य को भविष्य में न करने की शपथपूर्वक दृढ़ प्रतिज्ञा। उ०—लखे जग लोक दुखदाई। नम्र तोबा हाय हाई।—संत तुरसी०, पृ० ४४।

विशेष—इस शब्द का व्यवहार कभी कभी किसी व्यक्ति या पदार्थ के प्रति घृणा प्रकट करने के समय भी होता है।

मुहा०—तोबा तिल्ला करना या मचाना = रोते, चिल्लाते या दीनता दिखलाते हुए तोबा करना। तोबा तोड़ना = प्रतिज्ञा भंग करना। जिस काम से तोबा कर चुके हों, उसे फिर करना। तोबा करके (कोई बात) कहना = अभिमान छोड़कर अथवा ईश्वर से डरकर (कोई बात) कहना। तोबा बुलवाना = किसी को इतना तंग या विवश करना कि उसे तोबा करनी पड़े। पूर्ण रूप से परास्त करना। ची बुलवाना।

तोम—संज्ञा पुं० [सं० स्तोम] समूह। ढेर। उ०—(क) जातुधान दावन परावन को दुर्ग भयो महामीन वास तिमि तोमनि को थल भो।—तुलसी (शब्द०)। (ख) दिनकर के उदय तोम तिमिर फटत।—तुलसी (शब्द०)। (ग) चहुँ घाँ तें महा तरपै बिजुरी तम तोम में आजु तमासे करै।—किशोर (शब्द०)।

तोमड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तूमड़ी'।

तोमर—संज्ञा पुं० [सं०] १. भाले की तरह एक प्रकार का अस्त्र जिसका व्यवहार प्राचीन काल में होता था। इसमें लकड़ी के डंडे में आगे की ओर लोहे का बड़ा फल लगा रहता था। सर्पला। शापल। २. बारह मात्राओं का एक छंद जिसके अंत में एक गुरु और एक लघु होता है। जैसे, तब चले बान कराल। फुंकरत जनु बहु ब्याल। कोप्यो समर श्रीराम। चले बिशिख निसित निकाम।—तुलसी (शब्द०)। ३. एक देश का नाम जिसका उल्लेख कई पुराणों मे है। ४. इस देश का निवासी। ५. राजपूत क्षत्रियों का एक प्राचीन राजवंश जिसका राज्य दिल्ली मे आठवीं से बारहवीं शताब्दी तक था।

विशेष—प्रसिद्ध राजा अनंगपाल (पृथ्वीराज के नाना) इसी वंश के थे। पीछे से तोमरों ने कन्नौज को अपना राजनगर बनाया था। कन्नौज में इस वंश के प्रसिद्ध राजा जयपाल हुए थे। आजकल इस वंश के बहुत ही कम क्षत्रिय पाए जाते हैं।

तोमरग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] तोमरधारी सैनिक [को०]।

तोमरधर—संज्ञा पुं० [सं०] १. 'तोमरग्रह'। २. अग्नि [को०]।

तोमरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'तुवरिका'।

तोमरीⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] १. दे० 'तूमड़ी'। २. कड़ुआ कद्दू।

तोमाⓅ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तूँबा'। उ०—मेहर का जामा और तोमा भी मेहर का। मेहर का आपा इस दिल को पिलाइए।—मलूक०, पृ० ३१।

तोय¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. जल। पानी। पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र।

तोय[(पु)2]—अव्य [हिं० तो] तो भी। फिर भी। उ०—चहुआँणी कुल वल्लणी, विधी न चल्ले कोय। चाड न घट्टै बूँद की सीस पलट्टै तोय।—रा० रू०, पृ० ११६।

तोय[3]—सर्व० [हिं० तो] दे० 'तुझे'। उ०— मैं पठई वृषभानु कै, करनि सगाई तोय।—नंद० ग्रं० पृ० १६५।

तोयकर्म—संज्ञा पुं० [सं० तोयकर्मन्] तर्पण।

तोयकाम[1]—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बेंत जो जल के समीप उत्पन्न होता है। वानीर।

तोयकाम[2]—वि० १. जल चाहनेवाला। २. प्यासा (को०)।

तोयकुंभ—संज्ञा पुं० [सं० तोयकुम्भ] सेवार।

तोयकृच्छ्र—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का व्रत।

विशेष—इसमें जल के सिवा और कुछ आहार ग्रहण नहीं किया जाता। यह व्रत एक महीने तक करना होता है।

तोयक्रीड़ा—संज्ञा पुं० [सं० तोयक्रीडा] जल में खेल करना। जलक्रीड़ा (को०)।

तोयगर्भ—संज्ञा पुं० [सं०] नारियल (को०)

तोयचर—संज्ञा पुं० [सं०] जलचर (को०)।

तोयडिंब—संज्ञा पुं० [सं० तोयडिम्ब] ओला। पत्थर। करका।

तोयडिंभ—संज्ञा पुं० [सं० तोयडिम्भ] दे० 'तोयडिंब' (को०)।

तोयद[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. मेघ। बादल। २. नागरमोथा। ३. घी। ४. वह जो जल दान करता हो (जलदान का माहात्म्य बहुत अधिक माना जाता है।)

तोयद[2]—वि० जल देनेवाला।

तोयदागम—संज्ञा पुं० [सं०] वर्षा ऋतु। बरसात।

तोयदात्यय—संज्ञा पुं० [सं०] शरद ऋतु (को०)।

तोयधर—संज्ञा पुं० [सं०] मेघ। बादल।

तोयधार—संज्ञा पुं० [सं०] १. मेघ। २. मोथा। ३. वर्षा (को०)।

तोयधि—संज्ञा पुं० [सं०] १. समुद्र। सागर। २. चार की संख्या (को०)।

तोयधिप्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] लौंग।

तोयनिधि—संज्ञा पुं० [सं०] १. समुद्र। सागर। २. चार की संख्या (को०)।

तोयनीवी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथ्वी।

तोयपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] करेला।

तोयपिप्पली—संज्ञा स्त्री० [सं०] जलपिप्पली।

तोयपुष्पी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पाटला वृक्ष। पाढर।

तोयप्रष्ठा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पाटला वृक्ष। पाढर (को०)।

तोयप्रसादन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तोयप्रसादनफल'।

तोयप्रसादनफल—संज्ञा पुं० [सं०] निर्मली।

तोयफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] तरबूज या ककड़ी आदि की बेल।

तोयमल—संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र का फेन (को०)।

तोयमुच्—संज्ञा पुं० [सं०] १. बादल। २. मोथा।

तोययंत्र—संज्ञा पुं० [सं० तोययन्त्र] १. जलघड़ी। २. फौवारा (को०)।

तोयरस—संज्ञा पुं० [सं०] आर्द्रता। नमी (को०)।

तोयराज—संज्ञा पुं० [सं०] १. समुद्र। २. वरुण (को०)।

तोयराशि—संज्ञा पुं० [सं०] १. समुद्र। २. तालाब या झील (को०)।

तोयवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] करेले की बेल।

तोयवृक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] सेवार।

तोयवेला—संज्ञा स्त्री० [सं०] जल का किनारा। तीर। तट (को०)।

तोयव्यतिकर—संज्ञा पुं० [सं०] संगम। जैसे, नदियों का (को०)।

तोयशुक्तिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] सीपी (को०)।

तोयशूक—संज्ञा पुं० [सं०] सेवार (को०)।

तोयसर्पिका—संज्ञा पुं० [सं०] मेंढक (को०)।

तोयसूचक—संज्ञा पुं० [सं०] १. ज्योतिष में वह योग जिसमें वर्षा होने की सूचना मिले। २ मेंढक (को०)।

तोयांजलि—संज्ञा स्त्री० [सं० तोयाञ्जलि] दे० 'तोयकर्म' (को०)।

तोयाग्नि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वाडव अग्नि (को०)।

तोयात्मा—संज्ञा पुं० [सं० तोयात्मन्] ब्रह्म (को०)।

तोयाधार—संज्ञा पुं० [सं०] पुष्करिणी। तालाब।

तोयाधिवासिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पाटला वृक्ष।

तोयालय—संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र। सागर (को०)।

तोयाशय—संज्ञा पुं० [सं०] १. झील। २. कुआँ कूप। ३. जलसंग्रह (को०)।

तोयेश—संज्ञा पुं० [सं०] १. वरुण। २. शतभिषा नक्षत्र। ३. पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र।

तोयोत्सर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] वर्षा (को०)।

तोर[1]—संज्ञा पुं० [सं० तुवर] अरहर।

तोर[(पु)†2]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तोड़'। उ०—आदि चहुआण रजपूती का तोर। पाछै मुसलमान बादसाही का जोर।—शिखर०, पृ० ५५।

तोर[(पु)†3]—वि० [हिं०] दे० 'तेरा'।

तोर[(पु)4]—संज्ञा स्त्री० [अ० तौर] तौर। तरीका। ढंग। उ०—तो राखे सिर पर तिको, तज जबरी रा तोर।—बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० ११५।

तोरई—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तुरई'।

तोरकी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की वनस्पति जो भारत के गरम प्रदेशों और लंका में प्रायः घास के साथ होती है।

विशेष—पश्चिमी भारत में अकाल के दिनों में गरीब लोग इसके दानों आदि की रोटियाँ बनाकर खाते थे।

तोरण—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी घर या नगर का बाहरी फाटक। बहिर्द्वार। विशेषतः वह द्वार जिसका ऊपरी भाग मंडपाकार तथा मालाओं और पताकाओं आदि से सजाया गया हो। उ०—स्वच्छ सुंदर और विस्तृत घर बने; इंद्रधनुषाकार तोरण हैं तने।—साकेत, पृ० ३। २. वे मालाएँ आदि जो

सजावट के लिये खंभों और दीवारों आदि में बाँधकर लटकाई जाती है। बंदनवार। ३. ग्रीवा। गला। ४. महादेव।

तोरणमाल—संज्ञा पुं० [सं०] प्रवर्तिका पुरी।

तोरणस्फटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्योधन की उस सभा का नाम जो उसने पांडवों की मय दानववाली सभा देखकर ईर्ष्यावश बनवाई थी।

तोरन(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तोरण'।

तोरन तेगा(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० तोड़ना + तेगा] एक प्रकार का तेगा। उ०—तुरकन के तेगा तोरन तेगा सकल सुबेगा रुधिर भरे।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २८।

तोरना†—क्रि० स० [हिं०] दे० 'तोड़ना'। उ०—काहे को लगायो सनेहिया रे अब तोरलो न जाय।—पलटू०, पृ० ८२।

तोरय(पु)—सर्व० [हिं०] दे० 'तुम्हारा'। उ०—खुले सुमाग्य मोरयं, लह्यौ वरस्स तोरयं।—ह० रासो, पृ० १३।

तोरश्रवा—संज्ञा पुं० [सं० तोरश्रवस्] अंगिरा ऋषि का एक नाम।

तोराँ(पु)—सर्व० [हिं०] दे० 'तोरा'। उ०—नानक बगोयद जी तोरी तिरा चाकरा पारवाक।—कबीर म०, पृ० ४११।

तोरा(पु)[1]—संज्ञा पुं० [फा० तुर्रह्] तुर्रा। कलगी।

तोरा(पु)†[2]—सर्व० [हिं०] दे० 'तेरा'। उ०—अलकाउर मुरि मुरि गा तोरा।—जायसी ग्रं०, पृ० १४३।

तोराई(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० त्वरा + हिं० ई (प्रत्य०)] वेग। शीघ्रता। तजी।

तोरादार(पु)—वि० [हिं० तोड़ा (= आभूषण) + फा० दार] तोड़ेदार। मध्ययुग के वे ताजीमी सरदार या मनसबदार, जिन्हें बादशाह सम्मानार्थ पैरों में पहनने के लिये सोने के तोड़े या कड़े प्रदान करता था। श्रेष्ठ। प्रतिष्ठित। उ०—तोरादार सकल तिहारे मनसबदार।—भूषण ग्रं०, पृ० २७७।

तोराना(पु)†—क्रि० स० [हिं०] दे० 'तुड़ाना'।

तोरावती(पु)—वि० [हिं०] वेगवाली। उ०—विषम विषाद तोरावति धारा। भय भ्रम भँवर अवर्त अपारा।—तुलसी (शब्द०)।

तोरावान्(पु)†—वि० [सं० त्वरावत्] [वि०स्त्री० तोरावती] वेगवान्। तेज।

तोरिया[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० तुरी] गोटा किनारी आदि बुननेवालों का लकड़ी का वह छोटा बेलन जिसपर वे बुना हुआ गोटा पट्टा और किनारी आदि बराबर लपेटते जाते हैं।

तोरिया[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० तोरना (= तोड़ना) + इया (प्रत्य०)] १. वह गाय या भैंस जिसका बच्चा मर गया हो और जिसका दूध दुहने के लिये कोई युक्ति करनी पड़ती हो।

तोरिया†—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की सरसों। तोरी।

तोरी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तुरई'।

तोरी[2]—संज्ञा स्त्री० [देश०] काली सरसों।

तोरी[3]—सर्व० [हिं०] दे० 'तेरा'। उ०—कहै धर्मदास कर जोरी। चलो जहँ देस है तोरी।—धरम० श०, पृ० ६।

तोल[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. तोला (तौल) जो ८० रत्ती के बराबर होता है। २. तौल। वजन।

तोल[2]—संज्ञा पुं० [देश०] नाव का डाँड़ा। (लश०)।

तोल(पु)[3]—वि० [हिं०] दे० 'तुल्य'। उ०—साने कोने आवे बुझए बोल मदने पाओल आपन तोल।—विद्यापति, पृ० १२०।

तोलक—संज्ञा पुं० [सं०] तोला (तौल)। बारह माशे का वजन।

तोलन[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. तौलने की क्रिया। २. उठाने की क्रिया।

तोलन[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० उत्तोलन] वह लकड़ी जो छत के नीचे सहारे के लिये लगाई जाती है। चाँड़।

तोलना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'तौलना'। उ०—लोचन मृग सुभग जोर राग रूप भए भोर भौंह धनुष सर कटाक्ष सुरति व्याध तोले री।—सूर (शब्द०)।

मुहा०—तोल तोलकर बोलना = दे० 'तौल तौलकर बोलना'। उ०—अत: वक्ता अपनी बातों को तोल तोलकर नहीं बोलता।—शैली, पृ० ४६।

तोलवाना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'तौलवाना'।

तोला—संज्ञा पुं० [सं० तोलक] १. एक तौल जो बारह माशे या छानबे रत्ती की होती है। २. इस तौल का बाट।

तोलाना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'तौलाना'।

तोलि(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तोला'। उ०—पंच तोलि पच मुहरे सु मानि।—ह० रासो, पृ० ६०।

तोलिया—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तौलिया'।

तोली—वि० [हिं० तुलना] तुली हुई। उ०—यह आँख कहीं कुछ बोली। यह हुई श्याम की तोली।—अर्चना, पृ० ३४।

तोल्य[1]—वि० [सं०] जिसे तौला जाय [को०]।

तोल्य[2]—संज्ञा पुं० तौलना। तौलने की क्रिया [को०]।

तोवालाँ(पु)—सर्व० [हिं०] दे० 'तुम्हारा'। उ०—अवध भूप दरसै तोवालाँ अपनी मोहे रूप उद्योत।—रघु० रू० पृ० २४६।

तोश—संज्ञा पुं० [सं०] १. हिंसा। २. हिंसा करनेवाला। हिंसक।

तोशक—संज्ञा स्त्री० [तु०] दोहरी चादर या खोल में रूई, नारियल की जटा आदि भरकर बनाया हुआ गुदगुदा बिछौना। हलका गद्दा।

यौ०—तोशकखाना।

तोशकखाना—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तोशाखाना'।

तोशदान—संज्ञा पुं० [फा० तोशदान] १. वह थैली आदि जिसमें मार्ग के लिये यात्री, विशेषत: सैनिक अपना जलपान आदि या दूसरी आवश्यक चीजें रखते हैं। २. चमड़े का वह छोटा बक्स या थैली जो सिपाहियों की पेटी में लगी रहती है और जिसमें कारतूस रहता है।

तोशल—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तोषल'। उ०—विदित है बल वज्र शरीरता विकटता शल तोशल कूट की।—प्रिय०, पृ० ३१।

तोशा¹—संज्ञा पुं० [फ़ा० तोशह्] १. वह खाद्य पदार्थ जो यात्री मार्ग के लिये अपने साथ रख लेता है।

यौ०—तोशे आकबत = पुण्य। धर्माचरण (जिसमें परलोक बने)। २. साधारण खाने पीने की चीज। जैसे, तोशा से भरोसा।

तोशा²—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का गहना जिसे गाँव की स्त्रियाँ बाँह पर पहनती हैं।

तोशाखाना—संज्ञा पुं० [तु० तोषक + फ़ा० खानह्] वह बड़ा कमरा या स्थान जहाँ राजाओं और अमीरों के पहनने के बढ़िया कपड़े और गहने आदि रहते हों। वस्त्रों और आभूषणों आदि का भंडार। उ०—जो राजा अपने दफ्तर या खजाने, तोशेखाने को कभी नहीं सम्हालते, जो राजा अपने बड़ों की धरोहर शस्त्रविद्या को जड़ मूल से भूल गए, उनके जीवन पर धिक्कार है।—श्रीनिवास० ग्रं०, पु० ८५।

तोष¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. अघाने या मन भरने का भाव। तुष्टि। संतोष। तृप्ति। २. प्रसन्नता। आनंद। ३. भागवत के अनुसार स्वायंभुव मन्वंतर के एक देवता का नाम। ४. श्रीकृष्णचंद्र के एक सखा नाम।

तोप²—वि० [सं० तष] अल्प। थोड़ा। –(अनेकार्थ०)।

तोषक—वि० [सं०] संतुष्ट करनेवाला। तोष देने या तृप्त करनेवाला।

तोषण—संज्ञा पुं० [सं०] १. तृप्ति। संतोष। २. संतुष्ट करने की क्रिया या भाव।

तोषणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा [को०]।

तोषना(पु)—क्रि० अ० [सं० तोष] १. संतुष्ट करना। तृप्त करना। उ०—प्रभु तोषेउ सुनि संकर बचना। भक्ति बिबेक धर्म जुत रचना।—मानस, १।७७। २. संतुष्ट होना। तृप्त होना।

तोषपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह पत्र जिसमें राज्य की ओर से जागीर मिलने का उल्लेख रहता है। बख्शिशनामा।

तोषल—संज्ञा पुं० [सं०] १. कंस के एक असुर मल्ल का नाम जिसे धनुर्यज्ञ में श्रीकृष्ण ने मार डाला था। २. मूसल।

तोषार—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तुखार'। उ०—तुरुक तोषारहि चलल हाट भमि हेडा मंगइ।—कीर्ति०, पु० ४८।

तोषित—वि० [सं०] जिसका तोष हो गया हो, अथवा जिसे तृप्त किया गया हो। तुष्ट। तृप्त।

तोषी—वि० [सं० तोषिन्] १. जिससे संतुष्ट हुआ जाय। २. संतुष्ट करनेवाला। प्रसन्न करनेवाला। (विशेषतः समासांत में प्रयुक्त)।

तोस(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तोष'। उ०—सूर धपाए खुज्जहीं तो डरपावै तोस।—रा० रू०, पृ० ७६।

तोसक†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तोशक'। उ०—गुन कर पलँग ज्ञाम कर तोसक सुरत तकिया लगावो। जो सुख चाहो सोई सतमहल बहुर दुक्ख नहिं पावो।—कबीर श०, भा० १, पृ० १०।

तोसदान—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तोशदान'। उ०—तोसदान चकमक पचहा गोलीन भरावी।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० १३।

तोसय(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तोषक'। उ०—गरम्म कम तोसयं ढके पलंग पोसयं।—पृ० रा०, १७। ५४।

तोसल(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० तोषल] दे० 'तोषल'।

तोसा(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तोशा'। उ०—कुछ गाँठि खरची मिहर तोसा खैर खुबीहा धीर वे।—रै० बानी, पृ० ३३।

तोसाखाना—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तोशाखाना'। उ०—तेरे काज गजी गज चारिक, भरा रहै तोसाखाना।—संतवाणी०, पु० ७।

तोसागार(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० तोस + सं० आगार] दे० 'तोशाखाना'।

तोसौं(पु)—सर्व [हिं० तो + सौ] तुझसे। उ०—अहो तोसौं नंद लाडिले झगरौंगी। मेरे संग की दूरि जाति हैं मटुकी पटकि कै डगरौंगी।—नंद० ग्रं०, पु० ३६१।

तोहफगी—संज्ञा स्त्री० [अ० तोहफह् + फ़ा० गी (प्रत्य०)] भलाई। अच्छापन। उम्दगी।

तोहफा¹—संज्ञा पुं० [अ० तोहफ़ह्] सौगात। उपायन। भेंट। उपहार।

तोहफा²—वि० अच्छा। उत्तम। बढ़िया।

तोहमत—संज्ञा स्त्री० [अ०] मिथ्या अभियोग। वृथा लगाया हुआ दोष। झूठा कलंक।

क्रि० प्र०—जोड़ना।—देना।—धरना।—लगाना।—लेना।

मुहा०—तोहमत का घर या टट्टी = वह कार्य या स्थान जिसमें वृथा कलंक लगने की संभावना हो।

तोहमती—वि० [अ० तोहमत + फ़ा० ई (प्रत्य०)] झूठा अभियोग लगानेवाला।

तोहरा†—सर्व० [हिं०] दे० 'तुम्हारा'। उ०—हमहु संग सब तोहरे आयब।—कबीर सा०, पु० ५३१।

तोहार‡—सर्व० [हिं०] दे० 'तुम्हारा'।

तोहि†—सर्व० [हिं० तू या तै] १. तुझको। तुझे। २. तुम्हारा। उ०—हिव मालवणी वीनवइ, हूँ प्रिय दासी तोहि।—ढोला०, दू० ३४१।

तोहे(पु)—सर्व० [हिं०] दे० 'तोहि'। उ०—चरण भलि नहि तुअ रीति एहि मति तोहे कलंक लागल।—विद्यापति, पृ० २३०।

तौं(पु)¹—अव्य० [हिं०] दे० 'तउ'। उ०—तौं लौं रहि प्यारी जौं लौं लाल ही ले आऊँ।—नंद ग्रं०, पु० ३७१।

तौं(पु)²—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'त्यों'। उ०—ऐसे प्रभु पै कौन हुँकारे। तौं तौं बढ़ें गुपाल पियारे।—नंद० ग्रं०, पु० १६२।

तौंकना—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'तौंसना'।

तौंबर(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तोमर'। उ०—लोहाया तौंबर अभंग मुहुर सब्ब सामंत।—पृ० रा०, ४। ११।

तौंस†—संज्ञा स्त्री० [सं० ताप, हिं० ताव + ऊष्म, हिं० ऊमस, औस] वह प्यास जो धूप खा जाने के कारण लगे और किसी भाँति न बुझे।

तौंसना—क्रि० अ० [हिं० तौंस] १. गरमी से झुलस जाना। गरमी के कारण संतप्त होना। २. प्यासा होना। पिपासित होना।

तौंसा¹—सं० पु० [सं० ताप, हिं० ताव+सं० ऊष्म, हिं० ऊमस, औंस] अधिक ताप। कड़ी गरमी।

तौ(पु)¹—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'तो'।

तौ²—क्रि० अ० [हिं० हुतो] था। उ०—वेऊ आए द्वारे हैं हुती अगवारे और द्वारे अगवारे कोऊ तौ न तिहि काल मैं।—पद्माकर (शब्द०)।

तौक—संज्ञा पुं० [अ० तौक] १. हँसुली के आकार का गले में पहनने का एक प्रकार का गहना। यह पटरी की तरह कुछ चौड़ा होता है और इसके नीचे घुंघरू आदि लगे होते हैं।

विशेष—प्राय: मुसलमान लोग अपने बच्चों को इसी प्रकार का चाँदी का घेरा या गंडा भी पहनाते हैं जिसमें तावीज आदि बँधी होती है। कभी कभी यह केवल मन्नत पूरी करने के लिये भी पहनाया जाता है।

२. इसी आकार की पर तौल में बहुत भारी वृत्ताकार पटरी या मेंडरा जिसे अपराधी या पागल के गले में इसलिये पहना देते हैं जिसमें वह अपने स्थान से हिल न सके।

३. इसी प्रकार का वह प्राकृतिक चिह्न जो पक्षियों आदि के गले में होता है। हँसुली। ४. पट्टा। चपरास। ५. कोई गोल घेरा या पदार्थ।

तौकीर—संज्ञा स्त्री० [अ० तौकीर] संमान। प्रतिष्ठा। इज्जत। उ०—इस सत्यगुरु की खादिम तौकीर मे देखो।—कबीर मं०, पृ० ४६७।

तौके गुलामी—संज्ञा पुं० [अ० तौकेगुलामी] गुलाम होने की धिक्कार (को०)।

तौक्षिक—संज्ञा पुं० [सं०] धनुराशि।

तौखा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का गहना जिसे कहीं कहीं देहाती स्त्रियाँ सिर पर पहनती हैं।

तौजा¹—संज्ञा पुं० [अ० तौजी] वह द्रव्य जो खेतिहरों को विवाहादि में खर्च करने के लिये पेशगी दिया जाता है। बियाही।

तौजा²—वि० हाथ उधार। दस्तगर्दा।

तौजी—संज्ञा स्त्री० [देश०] ताजियादारी। मुहर्रम मनाना। उ०—तौजी और निमाज न जानूँ ना जानूँ धरि रोजा।—मलूक०, पृ० ७।

तौतातिक—वि० [सं०] कुमारिल भट्ट से संबद्ध या संबंध रखनेवाला।

विशेष—कुमारिल भट्ट का विशेषण तुतात या तुतातित था।

तौतातित—संज्ञा पुं० [सं०] १. जैनियों का भेद। २. कुमारिल भट्ट का एक नाम।

तौतिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. मुक्ता। मोती। २. मोती का सीप। शुक्ति।

तौन¹—संज्ञा स्त्री० [देश०] वह रस्सी जिससे गैया दुहने के समय उसका बछड़ा उसके अगले पैर से बाँध दिया जाता है।

तौन†²—सर्व० [सं० ते] वह। सो। उ०—उनकी छाया सबको भाई। तौन छाँह सब घटहि समाई।—कबीर सा०, पृ० ९१०।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग दो वाक्यों का संबंध पूरा करने के लिये 'जौन' के साथ होता है।

तौन(पु)³—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तूण'। उ०—चढ़ि नरिंद कमधज्ज तौन तन सज्जन वारो।—पृ० रा०, २६।१६।

तौना†—वि० [हिं० ताना] जिससे कोई चीज ताई या मूँदी जाय।

तौनी¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० तवा का स्त्री० अल्पा० रूप] रोटी सेंकने का छोटा तवा। तई। तवी।

तौनी²—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तौन'।

तौनी³—सर्व० [हिं०] दे० 'तौन'।

तौफ(पु)—संज्ञा पुं० [अ० तौफ़] चक्कर। परिक्रमा। उ०—बहुतै तौफ जाय तब वायक ना देव जाय पहाड़ समुंदर।—कबीर सा०, पृ० ८८८।

तौफीक—संज्ञा स्त्री० [अ० तौफ़ीक़] १. संयोगात् किसी वस्तु का सुगमतापूर्वक प्राप्त हो जाना। २. दैवकृपा। ईश्वरानुग्रह। ३. शक्ति। सामर्थ्य। ३. हौसला। उमंग। ५. योग्यता। पात्रता (को०)।

तौफीर(पु)—संज्ञा स्त्री० [अ० तौफ़ीर] अधिकता। प्रचुरता। उ०—रख अपने पनह गुनह ब तौफीर।—कबीर मं०, पृ० ४२२।

तौबा—संज्ञा स्त्री० [अ०] दे० 'तोबा'।

तौरंगिक—संज्ञा पुं० [सं० तौरङ्गिक] साईस (को०)।

तौर¹—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का यज्ञ।

तौर²—संज्ञा पुं० [अ०] १. चालढाल। चालचलन।

यौ०—तौर तरीक या तौर तरीका = चाल चलन।

मुहा०—तौर बेतौर होना = रंग ढंग खराब होना। लक्षण बिगड़ना।

२. अवस्था। दशा। हालत।

मुहा०—तौर बेतौर होना = अवस्था बिगड़ना। दशा खराब होना।

विशेष—उक्त दोनों अर्थों में इस शब्द का व्यवहार प्राय: बहुवचन में होता है।

३. तरीका। तर्ज। ढंग। ४. प्रकार। भाँति। तरह।

तौर³—संज्ञा पुं० [देश०] मथानी मथने की रस्सी। नेत्री।

तौरश्रवस—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साम (गान)।

तौरात—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तौरेत'।

तौरायणिक—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो तुरायण यज्ञ करता हो।

तौरि(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० तौंवरि] घुमेर। घुमरी। चक्कर।

तौरीत—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तौरेत'। उ०—उसका समाचार तौरीत में उत्पत्ति की पुस्तक में है।—कबीर मं०, पृ० ४२।

तौरुष्किक—वि० [सं०] तुरुष्क देश या जाति संबंधी (को०)।

तौरूप—संज्ञा पुं० [सं०] कामरूप में प्राप्त एक प्रकार का चंदन (को०)।

तौरेत—संज्ञा पुं० [इब०] यहूदियों का प्रधान धर्मग्रंथ जो हजरत मूसा पर प्रकट हुआ था। इसमें सृष्टि और आदम की उत्पत्ति आदि विषय हैं। उ०—जिसमें बनी इसराईल इस नियम पर चले और इस नियमावली का नाम तौरेत पुस्तक ठहरा।—कबीर० मं०, पृ० १९७।

तौर्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. ढोल मँजीरा आदि बाजे। २. ढोल मँजीरा आदि बजाना।

तौर्यत्रिक—संज्ञा पुं० [सं०] नाचना, गाना और बाजे बजाना आदि काम।

विशेष—मनु ने इसे कामज व्यसन कहा है और त्याज्य बतलाया है।

तौल¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. तराजू। २. तुला राशि।

तौल²—संज्ञा स्त्री० १. किसी पदार्थ के गुरुत्व का परिमाण। भार का मान। वजन। दे० 'गुरुत्व'।

विशेष—भारत की प्रधान तौल ये हैं—

४ छटाँक = १ पाव
१६ छटाँक = १ सेर
५ सेर = १ पंसेरी
८ पंसेरी या ४० सेर = १ मन

इनसे अन्न, तरकारी आदि भारी और अधिक मान में होनेवाली चीजें तौली जाती हैं। हलकी और थोड़ी चीजें तौलने के लिये इससे छोटी तौल यह है—

८ चावल = १ रत्ती
८ रत्ती = १ माशा
१२ माशा = १ तोला
५ तोला = १ छटाँक

उपर्युक्त तौलों का प्रचलन अब बंद हो गया है। अब तौल दाशमिक प्रणाली पर चल रही है, जिसमें वजन क्विंटल, किलो अथवा ग्रामों में किया जाता है। इसमें सबसे अधिक वजन की तौल क्विंटल है और सबसे कम वजन की तौल मिलीग्राम।

२. तौलने की क्रिया या भाव।

तौलना—क्रि० स० [सं० तोलन] १. किसी पदार्थ के गुरुत्व का परिमाण जानने के लिये उसे तराजू या काँटे आदि पर रखना। वजन करना। जोखना।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।

मुहा०—तौल तौलकर कदम धरना = सावधानी के साथ चलना। इस प्रकार धीरे चलना कि चलने में एक विशेषता आ जाय। उ०—कुछ नाज व अदा से तौल तौलकर कदम धरती हैं।—फिसाना०, भा० ३, पृ० २११। किसी का तौलना = किसी की खुशामद करना।

२. समझ बूझकर व्यवहार करना। ऐसा व्यवहार करना कि किसी प्रकार की गलती न हो।

मुहा०—तौल तौलकर बोलना = अत्यंत सावधानी के साथ बोलना। ऐसे बोलना कि किसी प्रकार की गलती न हो जाय।

३. किसी अस्त्र आदि को चलाने के लिये हाथ को इस प्रकार ठीक न करना कि वह अस्त्र अपने लक्ष्य पर पहुँच जाय। साधना। उ०—लोचन मृग सुभग जोर राग रूप मद भोर भौंह धनुष शर कटाक्ष सुरति व्याध तौले री।—सूर (शब्द०)।

४. दो या अधिक वस्तुओं के गुण, मान आदि का परस्पर तुलना करके विचार करना। तारतम्य जानना। मिलान करना। उ०—गए सब राज केते जग माँह जो बाहु बली बल बोलत है।—सं० दरिया, पृ० ६३। ५. गाड़ी का पहिया औंगना। गाड़ी के पहिए में तेल देना।

तौलवाई—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तौलाई'।

तौलवाना†—क्रि० स० [हिं० तौलना का प्रे० रूप] तौलने का काम दूसरे से कराना। दूसरे को तौलने में प्रवृत्त करना। तौलाना।

तौला—संज्ञा पुं० [हिं० तौलना] १. दूध नापने का मिट्टी का बरतन। २. अनाज तौलनेवाला मनुष्य। बया। ३. तँबिया। ४. मिट्टी का कमोरा। ५. महुए की शराब।

तौलाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० तौल + आई (प्रत्य०)] १. तौलने की क्रिया या भाव। २. वह धन जो तौलने के बदले में दिया जाय। तौलने की मजदूरी।

तौलाना—क्रि० स० [हिं० तौलना का प्रे० रूप] तौलने काम दूसरे से कराना। दूसरे को तौलने में प्रवृत्त करना।

तौलिक—संज्ञा पुं० [सं०] चित्रकार।

तौलिकिक—संज्ञा पुं० [सं०] चित्रकार।

तौलिया—संज्ञा स्त्री० [अं० टावेल]एक विशेष प्रकार का मोटा अँगोछा जिससे स्नान आदि करने के उपरांत शरीर पोंछते हैं।

तौली¹—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. एक प्रकार का मिट्टी की छोटी प्याली। २. मिट्टी का चौड़े मुँह का बड़ा बरतन जिसमें अनाज आदि, विशेषतः गुड़, रखते हैं।

तौली²—संज्ञा पुं० [सं० तौलिन्] १. तौलनेवाला। २. तुलाराशि [को०]।

तौलैया†¹—संज्ञा पुं० [हिं० तौलना + ऐया (प्रत्य०)] अनाज तौलनेवाला मनुष्य। बया।

तौलैया†²—संज्ञा स्त्री० [हिं० तौलाई] तौलने का काम।

तौल्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. वजन। भार। २. समता। सादृश्य।

तौषार¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. तुषार का जल। पाले का पानी। २. हिम। पाला (को०)।

तौषार²—वि० [वि० स्त्री० तौषारी] बर्फीला। हिमयुक्त [को०]।

तौसन—संज्ञा पुं० [फ़ा०] घोड़ा। अश्व। तुरंग। उ०—तौसने उमरे रवाँ दम भर नहीं रुकता 'रसा'।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ८५०।

तौसना†¹—क्रि० अ० [हिं० तौस] गरमी से बहुत व्याकुल होना। उ०—नाम लै बिलात बिललात अकुलात अति तात तात तौसियत झौंसियत झारहीं।—तुलसी (शब्द०)।

तौसना²—क्रि० स० गरमी पहुँचाकर व्याकुल करना।

तौहीद—संज्ञा स्त्री० [अ०] एकेश्वरवाद। उ०—कहे तौहीद क्या हैं मुँज कहो अब। - दक्खिनी०, पृ० ११६।

यौ०—तौहीदपरस्त = एकेश्वरवादी।

तौहीन—संज्ञा स्त्री॰ [अ॰] अपमान । अप्रतिष्ठा । बेइज्जती ।

यौ॰—तौहीने अदालत = न्यायालय का अपमान ।

तौहीनीⓅ—संज्ञा स्त्री॰ [अ॰ तौहीन] दे॰ 'तौहीन' ।

तौहूⓅ—अव्य॰ [हिं॰ तऊ] तब भी । तो भी । तिसपर भी । उ॰—पानी माहीं घर करै, तौहू मरै पियास ।—कबीर सा॰, पृ॰ ५ ।

त्यक्त—वि॰ [सं॰] छोड़ा हुआ । त्यागा हुआ । जिसका त्याग कर दिया गया हो । उ॰—निकल गए सारे कंटक से व्यथा आप ही त्यक्त हुई ।—साकेत, पृ॰ ०७१ ।

त्यक्तजीवित—वि॰ [सं॰] १. जो प्राण छोड़ने को तत्पर हो । मरने को तैयार । २. बड़े से बड़ा खतरा उठाने को तैयार [को॰] ।

त्यक्तप्राण—वि॰ [सं॰] दे॰ 'त्यक्तजीवित' [को॰] ।

त्यक्तलज्ज—वि॰ [सं॰] जिसने लज्जा त्याग दी हो । निर्लज्ज । बेहया [को॰] ।

त्यक्तविधि—वि॰ [सं॰] नियमों का अतिक्रमण करनेवाला । नियम न माननेवाला [को॰] ।

त्यक्तव्य—वि॰ [सं॰] जो छोड़ने योग्य हो । त्यागने योग्य ।

त्यक्तश्री—वि॰ [सं॰] भाग्यहीन । अभागा [को॰] ।

त्यक्ता—वि॰ [सं॰ त्यक्तृ] त्यागनेवाला । जिसने त्याग किया हो ।

त्यक्ताग्नि—वि॰ [सं॰] गृहाग्नि का परित्याग करनेवाला (ब्राह्मण) ।

त्यक्तात्मा—वि॰ [सं॰ त्यक्तात्मन्] निराश । हताश [को॰] ।

त्यग्नाग्नि—संज्ञा पुं॰ [सं॰ त्यग्नाग्निम्] एक प्रकार का साम ।

त्यजणⓅ—संज्ञा पुं॰ [सं॰ त्यजनीय] त्याग । उ॰—शब्द स्पर्श रूपं त्यजणं । त्यौ रसगंधं नांही भजणं ।—सुंदर॰ ग्रं॰, भा॰ १, पृ॰ ३७ ।

त्यजन—संज्ञा पुं॰ [सं॰] छोड़ने का काम । त्याग ।

त्यजनीय—वि॰ [सं॰] जो त्यागने योग्य हो । त्याज्य ।

त्यज्यमान—वि॰ [सं॰] जिसका त्याग कर दिया गया हो । जो छोड़ दिया गया हो ।

त्यौंतिकⓅ—अव्य॰ [?] तब तब (टीका॰) । उ॰—पग्गो न दिल प्रभुरै पद पकज, भिसत न त्यौतिक भेरै ।—रघु॰ रू॰, पृ॰ १८ ।

त्यौंⓅ—सर्व॰ [सं॰ तत्] दे॰ 'तिस' । उ॰—ज्या की जोड़ी बीछड़ी त्यौं निसि नींद न आई ।—ढोला॰, दू॰ ५८ ।

त्यौंहाⓅ—सर्व॰ [सं॰ तत्] 'तू' सर्वनाम के कर्मकारक का रूप । उ॰—चकवीकह हर पलडी, रयणि न मेलउ त्यौंह ।—ढोला॰, दू॰ ७१ ।

त्याⓅ—प्रत्य॰ [सं॰ तत्] से । उ॰—किसे दिवाने कहता मेरा जावे तन तूं सब त्या न्यारा ।—दक्खिनी॰, पृ॰ ६६ ।

त्याग—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. किसी पदार्थ पर से अपना स्वत्व हटा लेने अथवा उसे अपने पास से अलग करने की क्रिया । उत्सर्ग ।

क्रि॰ प्र॰—करना ।

यौ॰—त्यागपत्र ।

२. किसी बात को छोड़ने की क्रिया । जैसे असत्य का त्याग । ३. संबंध या लगाव न रखने की क्रिया । ४. विरक्ति आदि के कारण सांसारिक विषयों और पदार्थों आदि को छोड़ने की क्रिया ।

विशेष—हिंदुओं के धर्मग्रंथों में इस प्रकार के त्याग का बहुत कुछ माहात्म्य बतलाया गया है । त्याग करनेवाला मनुष्य निष्काम होकर परोपकार के तथा अन्यान्य शुभ कर्म करता रहता है और विषय वासना या सुखोपभोग आदि से किसी प्रकार का संबंध नहीं रहता । ऐसा मनुष्य मुक्ति का अधिकारी समझा जाता है । गीता में त्याग को संन्यास की ही एक विशेष अवस्था माना है । उसके अनुसार काम्य धर्म का परित्याग तो संन्यास है और कर्मों के फल की आशा न रखना त्याग है । मनु के अनुसार संसार की और सब चीजें तो त्याज्य हो सकती हैं, पर माता, पिता, स्त्री और पुत्र त्याज्य नहीं हैं ।

५. दान । ४. कन्यादान (डिं॰) ।

त्यागना—क्रि॰ स॰ [सं॰ त्याग] छोड़ना । तजना । पृथक् करना । त्याग करना । उ॰—नौं त्यागलो काम नौं त्यागलो क्रोध ।—प्राण॰, पृ॰ ११६ ।

संयो॰ क्रि॰—देना ।

त्यागपत्र—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. वह पत्र जिसमें किसी प्रकार के त्याग का उल्लेख हो । २. इस्तीफा । ३. तिलाकनामा ।

त्यागवान्—वि॰ [सं॰ त्यागवत्] [वि॰ स्त्री॰ त्यागवती] जिसने त्याग किया हो अथवा जिसमें त्याग करने की शक्ति हो । त्यागी ।

त्यागी—वि॰ [सं॰ त्यागिन्] जिसने सब कुछ त्याग दिया हो । स्वार्थ या सांसारिक सुख को छोड़नेवाला । विरक्त ।

त्याजक—वि॰ [सं॰] तजनेवाला । त्यागी [को॰] ।

त्याजन—संज्ञा पुं॰ [सं॰] त्याग । त्याग करना [को॰] ।

त्याजनाⓅ—क्रि॰ स॰ [सं॰ त्यजन] त्यागना । उ॰—अति उमंग अंग अंग भरे रंग, मुकर मुकर निरखत नहिं त्याजे ।—पोद्दार अभि॰ ग्रं॰, पृ॰ १८० ।

त्याजित—वि॰ [सं॰] १. जिससे त्याग कराया गया हो या छुड़वाया गया हो । २. जिसका अपमान कराया गया हो । ३. छोड़ा हुआ । त्यक्त [को॰] ।

त्याज्य—वि॰ [सं॰] त्यागने योग्य । जो छोड़ देने योग्य हो ।

त्यार—वि॰ [हिं॰] दे॰ 'तैयार' । उ॰—एक कटे एकै पड़े एक कढने को त्यार । पड़े रहैं केते सुमन मीता तेरे द्वार ।—रसनिधि (शब्द॰) ।

त्यारी—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰] दे॰ 'तैयारी' । उ॰—बाजराज बारण रथां, प्रवर, समाज अमाम । हाजर तिणवारी हुआ, त्यारी करे तमाम ।—रघु॰ रू॰, पृ॰ ६३ ।

त्यारेⓅ—सर्व॰ [हिं॰] दे॰ 'तुम्हारे' । उ॰—तितीया के बोलत बोलने रे, त्यारे बिरंत दस मास ।—पोद्दार अभि॰ ग्रं॰, पृ॰ ६३३ ।

त्युँहिज—वि० [हिं०] दे० 'त्यों'। उ०—करनहरो खेमकरन, बोध गढ बात न बोलै। बले जगै केहरी, त्युँहिज बोलै सब तोलै।—रा० रू०, पृ० १५७।

त्युँ—क्रि वि० [हिं०] दे० 'त्यों'।

त्युँरसा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'त्योरुस'।

त्यों[1]—क्रि० वि० [सं० तत्+एवम् या हिं०] १. उस प्रकार। उस तरह। उस भाँति। उ०—ये अलि या बलि के अधरानि में आनि चढ़ी कछु माधुरई सी। ज्यों पद्माकर माधुरी त्यों कुच दोउन की चढ़ती उनई सी। ज्यों कुच त्यों ही नितंब चढ़े कछु ज्यों ही नितंब त्यों चातुरई सी। जानी न ऐसी चढ़ाचढ़ि में किहिधौं कटि बीच ही लूटि लई सी।—पद्माकर (शब्द०)। २. उसी समय। तत्काल। जैसे,—ज्यों मैं वहाँ पहुँचा त्यों वह उठकर चल दिया।

विशेष—इसका व्यवहार 'ज्यों' के साथ संबंध पूरा करने के लिये होता है।

त्यों(पु)[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० तन] ओर। तरफ। उ०—सादर बारहि बार सुभाय चितै तुम त्यों हमरो मन मोहैं। पूछति ग्रामबधू सिय सों कहौ साँवरे से सखि रावरे को हैं।—तुलसी (शब्द०)।

त्योरुस†—संज्ञा पुं० [हिं० (ति)+बरस] १. पिछला तीसरा वर्ष। वह वर्ष जिसे बीते दो बरस हो चुके हों। जैसे,—हम त्योरुस वहाँ गए थे। २. आगामी तीसरा वर्ष। वह वर्ष जो दो वर्षों के बाद आनेवाला हो।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग कभी कभी विशेषण के रूप में भी होता है। जैसे, त्योरुस साल।

त्योरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० त्रिकुटी, सं० त्रिकूट (=चक्र)] अवलोकन। चितवन। दृष्टि। निगाह।

मुहा०—त्योरी चढ़ना या बदलना=दृष्टि का ऐसी अवस्था में हो जाना जिससे कुछ क्रोध झलके। आँखें चढ़ना। त्योरी में बल पड़ना=त्योरी चढ़ना। त्योरी चढ़ाना या बदलना=भौंहें चढ़ाना। आँखें चढ़ाना। दृष्टि या आकृति से क्रोध के चिह्न प्रकट करना। त्योरी में बल डालना=त्योरी चढ़ाना।

त्योहार—संज्ञा पुं० [सं० तिथि+वार] वह दिन जिसमें कोई बड़ा धार्मिक या जातीय उत्सव मनाया जाय। पर्व दिन। जैसे, हिंदुओं के त्योहार—दसहरा, दीवाली, होली आदि, मुसलमानों के त्योहार—ईद, शब बरात आदि; ईसाइयों के त्योहार, बड़ा दिन, गुडफ्राइडे आदि।

मुहा०—त्योहार मनाना=पर्व या उत्सव के दिन आमोद प्रमोद करना।

त्योहारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० त्योहार+ई० (प्रत्य०)] वह धन जो किसी त्योहार के उपलक्ष में छोटों, लड़कों या नौकरों आदि को दिया जाता है।

त्यौं—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'त्यों'।

त्यौनार—संज्ञा पुं० [हिं०, (देश०)] १. ढंग। तर्ज। उ०—(क) आप हैं मनुहारि हित धारि अपूर बहार। लखि जीके नीके सुबच दे पीके त्यौनार।—शृं० सत० (शब्द०)। (ख) रही गुही बेनी लखैं गुहिबे के त्यौनार। लागे नीर चुचावने नीठि सुखाए बार।—बिहारी (शब्द०)। किसी कार्य को विशेष कुशलता के साथ करने की योग्यता।

त्यौर—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'त्योरी'। उ०—(क) चौसक ते पिय चित चढ़ी कहैं चढ़ी है त्यौर।—बिहारी (शब्द०)। (ख) नेहु तरेरो त्यौर करि कत करियत दृग लोल। लीक नहीं यह पीक की स्रुति मणि झलक कपोल।—बिहारी (शब्द०)।

त्यौराना—क्रि० अ० [हिं० ताँवर] माथा घूमना। सिर में चक्कर आना।

त्यौरी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'त्योरी'।

त्यौरुस—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'त्योरुस'।

त्यौहार—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'त्योहार'।

त्यौहारी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'त्योहारी'।

त्रंग—संज्ञा पुं० [सं० त्रङ्ग] एक प्राचीन नगर का नाम जो पहले राजा हरिश्चंद्र का राजनगर था।

त्रंबक(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'त्र्यंबक'। उ०—नयो सिर नाग सुमंडिय अंग, धुरे सुर जोरय त्रंबक संग।—पृ० रा०, २४।२२८।

त्रंबकसखा(पु)—संज्ञा पुं० [सं० त्र्यम्बक+सखा] शिव के मित्र। कुबेर। उ०—गुह्यक पति त्रंबक सखा राजराज पुनि सोइ।—अनेकार्थ०, पृ० २१।

त्रंबकी(पु)—संज्ञा स्त्री० [राज० त्रंबाल] छोटा नगाड़ा। उ०—उभय सहस बाजित्त। ढोल त्रंबकी सुमत गुर।—पृ० रा०, २५।३२०।

त्रंबक(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'त्र्यंबक'। उ०—कलस बंक त्रंबक्क लोह संकर बर बंध्यो।—पृ० रा०, २४।४५।

त्रंबागल(पु)—संज्ञा पुं० [राज० त्रंबाल] नगाड़ा। उ०—त्रंबागल रिणतूर बिहद्दाँ बाजिया।—रघु० रू०, पृ० ६३।

त्र[1]—वि० [सं०] १. तीन। २. रक्षा करनेवाला। रक्षक (समासांत में प्रयुक्त)।

त्र[2]—प्रत्य० एक प्रत्यय जो सप्तमी विभक्ति के रूप में प्रयुक्त होता है।

त्रइय(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'त्रयी'[1]। उ०—चंद्र ब्रह्म नख मंडि त्रइय सुनि श्रवननि धारहि।—प० रासो, पृ० ३६।

त्रई(पु)—वि० [हिं०] दे० 'त्रय'। उ०—मरन काल त्रई लोक में, अमर न दीसै कोय।—कबीर सा०, पृ० ६६२।

त्रकाल(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'त्रिकाल'। उ०—साहाँ उर असुहावतो, राजावाँ रखवाल। जाँ जसराज प्रतप्पियो, ताँ सुर पूज त्रकाल।—रा० रू०, पृ० १६।

त्रकुटाचल—संज्ञा पुं० [सं० त्रिकूट+अचल] लंकास्थित त्रिकूट पर्वत। उ०—घिर जोगणी घेरियो फिर त्रकुटाचल फीस।—रा० रू०, पृ० ५७।

त्रण(पु)—संज्ञा पुं० [सं० त्रि] दे० 'तीन'। उ०—तरुणी री पोसाक त्रण, जीवन मूली जाँण।—बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० २२।

त्रदस(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'त्रिदश'। उ०—खत्रियाँ रा छत्तीस कुल, त्रदस कोड़ तेतीस।—बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० १०५।

त्रन(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तृन'।

मुहा०—त्रन तोरना = दे० 'तृण तोड़ना' ('तृण' में)। उ०—तोरि त्रन तरुनिय कहत। बरनि सही तुम मार।—पृ० रा०, १८।१६४।

त्रपित(पु)—वि० [हिं०] दे० 'तृप्ति'। उ०—उमा त्रपति रुधिरं भई धनि सूरन भुज दंड।—पृ० रा०, २५।७४४।

त्रपत्त(पु)—वि० [हिं०] दे० 'तृप्त'। उ०—तन ग्रीध महासद मन त्रपत्त। पूरिया रहै नित सगतपत्र।—रा० रू०, पृ० ७४।

त्रपनाना(पु)—वि० [सं० तर्पण] तर्पण। संध्या करनेवाले। उ०—ते पंडित आये वेद भुलाये षटक रमाये त्रपनाये।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० २३७।

त्रप्पवर(पु)—वि० [सं० त्रपा] लज्जालु। लज्जाशील। उ०—कि करे न तसकर त्रप्पवर अबुध इष्ट सराहु सुमन।—पृ० रा०, १०।१३३।

त्रपा[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० त्रपमान्] १. लज्जा। लाज। शर्म। हया। उ०—ह्री लज्जा व्रीडा त्रपा सकुच न कर बिनु काज। पिय प्यारे पै चलिय चलि प्रोषध लात कि लाज।—नंददास (शब्द०)। २. छिनाल स्त्री। पुंश्चली।

यौ०—त्रपारंडा = १. छिनाल स्त्री। २ वेश्या। रंडी। ३. कीर्ति। यश।

त्रपा[2]—वि० लज्जित। शरमिंदा। उ०—भवधनु दलि जानकी बिवाही भये बिहाल नृपाल त्रपा हैं।—तुलसी (शब्द०)।

त्रपानिरस्त—वि० [सं०] निर्लज्ज। धृष्ट (को०)।

त्रपाहीन—वि० [सं०] निर्लज्ज। धृष्ट (को०)।

त्रपारंडा—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रपारण्डा] वेश्या। रंडी (को०)।

त्रपित—वि० [सं०] १. लज्जित। शरमिंदा। २. लज्जालु। लज्जाशील (को०)। ३ विनीत। विनम्र (को०)।

त्रपिष्ठ—वि० [सं०] अत्यंत तृप्त। परितृप्त (को०)।

त्रपु—संज्ञा पुं० [सं०] १. सीसा। २. राँगा।

त्रपुकर्कटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. खीरा। २. ककरी।

त्रपुटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटी इलायची।

त्रपुल—संज्ञा पुं० [सं०] राँगा।

त्रपुष—संज्ञा पुं० [सं०] १. राँगा। २. खीरा।

त्रपुषी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. ककड़ी। २. खीरा।

त्रपुस—संज्ञा पुं० [सं०] १. राँगा। २. ककड़ी।

त्रपुसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. ककड़ी। २. खीरा। ३. बड़ा इंद्रायन।

त्रप्सा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जमी हुई श्लेष्मा या कफ।

त्रप्स्य—संज्ञा पुं० [सं०] मट्ठा (को०)।

त्रबाट(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] नगारा। उ०—दलबल सज दुगम चढ़िय सुत दसरथ तहक तबल घत रहत त्रबाट।—रघु० रू०, पृ० ११६।

त्रभंगी(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'त्रिभंगी[3]'। उ०—त्रभंगी छंदं प वु चंदं गुन कहि छंदं गुन सोई।—पृ० रा०, २४।२४८।

त्रभवण(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'त्रिभुवन'। उ०—भुवण त रहियो विखै, त्रभवण हंदो राव।—रा० रू०, पृ० ३६१।

त्रभुयण(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'त्रिभुवन'। उ०—आलस त निज गरज अब, भज त्रभुयण भूपाल।—बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० ४०।

त्रमाला(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० त्रंबागल] नगाड़ा। उ०—रिण बलवंत रूप परमसंता प्रतिपाला। तूझ भुजाँ हरितणाँ तहक बाजै त्रमाला।—रघु० रू०, पृ० ४।

त्रय[1]—वि० [सं०] १. तीन। उ०—महाघोर त्रय ताप न जरई।—तुलसी (शब्द०)। २. तीसरा।

त्रय(पु)[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'त्रिया'। उ०—त्रय जोरै कर हृ को चील संभरि वै राइ।—पृ० रा० २५।७३०।

त्रयदेव(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'त्रिदेव'। उ०—अब मैं तुम कहों चिताई। त्रयदेवन की उत्पति भाई।—कबीर सा० पृ० ८१७।

त्रयबिसत—वि० [सं० त्रयोविंशति] तेईस। तेईसवाँ। उ०—अ सुनि त्रयबिसत अध्याइ। द्विज अरु द्विजपतिनिन के भाइ —नंद० ग्रं०, पृ०३००।

त्रयलोकी(पु)—वि० [हिं० त्रिलोकी] त्रिलोकपति। तीनों लोकों के स्वामी। उ०—रामचंद्र वर्णन करूँ, त्रयलोकी हैं नाथ।—कबीर सा०, पृ०८१३।

त्रयी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तीन वस्तुओं का समूह। तिगुड़ तीखट। जैसे, ब्रह्मा, विष्णु और महेश। उ०—(क) वेद त्रयी अरु राजसिरी परिपूरनता शुभ योगमई है।—केशव (शब्द०)। (ख) किधौं सिंगार सुखमा सुप्रेम मिले चले जग चित बित लेन। अद्भुत त्रयी किधौं पठई है विधि मग लोगन सुख देन।—तुलसी (शब्द०) २. सोमराजी लता। ३. दुर्गा। ४. वह स्त्री जिसका पति और बच्चे जीवित हों (को०)। ५. बुद्धि। समझ (को०)।

त्रयीतनु—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य। २. शिव (को०)।

त्रयीधर्म—संज्ञा पुं० [सं०] वैदिक धर्म, जैसे, ज्योतिष्टोम यज्ञ आदि।

त्रयीमय—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य। २. परमेश्वर।

त्रयीमुख—संज्ञा पुं० [सं०] ब्राह्मण।

त्रयीविद्या—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रयी + विद्या] ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद ये तीन वेद। उ०—ऊपर की पंक्तियों मे त्रयीविद्या अथवा प्रथम तीन वेदों के दर्शन एवं कर्मकांड के सिद्धांतों की संक्षिप्त विवेचना की गई।—सं० दरिया, (भू०)पृ० ५५।

त्रयोदश—वि० [सं०] १. तेरह। २. तेरहवाँ (को०)।

त्रयोदशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी पक्ष की तेरहवीं तिथि। तेरस।

विशेष—पुराणानुसार यह तिथि धार्मिक कार्य करने के लिये बहुत उपयुक्त है।

त्र्यारुण—संज्ञा पुं० [सं०] पंद्रहवें द्वापर के एक व्यास का नाम।

त्रयारुणि—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम जो भागवत के अनुसार लोमहर्षण ऋषि के शिष्य थे।

त्रषेव—वि० [सं० तृषि] तृषायुक्त। प्यासा।

त्रष्टा—संज्ञा पुं० [?] दे० 'तष्टा' (तश्तरी)। उ०—त्रष्टा अरु आधार भर्त के बहुत खिलौना। परिया टमरी अतरदान रूपे के सोना।—सूदन (शब्द०)।

त्रस[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. जैन मत के अनुसार एक प्रकार के जीव। इन जीवों के चार प्रकार हैं—(क) द्वींद्रिय अर्थात् दो इंद्रियोंवाले जीव। (ख) त्रींद्रिय अर्थात् तीन इंद्रियोंवाले जीव। (ग) चतुरिंद्रिय अर्थात् चार इंद्रियोंवाले जीव और (घ) पंचेंद्रिय अर्थात् पाँच इंद्रियोंवाले जीव। २. जंगल। वन। ३. जंगम। ४. त्रसरेणु।

त्रस[2]—वि० सचल। जंगम [को०]।

त्रसन—संज्ञा पुं० [सं०] १. भय। डर। २. उद्वेग।

त्रसना(पु)†—क्रि० अ० [सं० त्रसन] भय से काँप उठना। डरना। खौफ खाना। उ०—(क) कछु राजत सूरज अरुन खरे। जनु लक्ष्मण के अनुराग भरे। चितवत चित्त कुमुदिनी त्रसै। चोर चकोर चिता सो लसै।—केशव (शब्द०)। (ख) नवल अनंगा होय सो मुग्धा केशवदास। खेलै बोलै बाल विधि हँसै त्रसै सविलास।—केशव (शब्द०)।

त्रसर—संज्ञा पुं० [सं०] जोलाहों की ढरकी। तसर।

त्रसरेणु[1]—संज्ञा पुं० [सं०] वह चमकता हुआ कण जो छेद में से आती हुई धूप में नाचता या घूमता दिखाई देता है। सूक्ष्म कण।

विशेष—मनु के अनुसार एक त्रसरेणु तीन परमाणुओं से मिलकर और वैद्यक के अनुसार तीस परमाणुओं से मिलकर बना होता है।

त्रसरेणु[2]—संज्ञा स्त्री० पुराणानुसार सूर्य की एक स्त्री का नाम।

त्रसरैनि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'त्रसरेणु'। उ०—चंद चकोर की चाह करै, घनआनंद स्वाति पपीहा को धावै। त्यौं त्रसरैनि के ऐन बसै रबि, मीन पै दीन ह्वै सागर आवै।—घनानंद, पृ० ६५।

त्रसाना(पु)†—क्रि० स० [हिं० त्रसना] डरवाना। धमकाना। भय दिखाना। उ०—(क) सुर श्याम आवे ऊखल गहि माता डरत न अति हि त्रसायो।—सूर (शब्द०)। (ख) जाको शिव ध्यावत निसि बासर सहसासन जेहि गावै हो। सो हरि राधा बदन चंद को नैन चकोर त्रसावै हो।—सूर (शब्द०)।

त्रसित(पु)—वि० [सं० त्रस्त] १. भयभीत। डरा हुआ। उ०—सब प्रसंग महिसुरन सुनाई। त्रसित पर्‌यो अवनी अकुलाई।—(शब्द०)। २. पीड़ित। सताया हुआ। उ०—सीत त्रसित कहँ अग्नि समाना। रोग त्रसित कहँ औषधि जाना।—गोपाल (शब्द०)।

त्रसिबो(पु)—क्रि० अ० [हिं० त्रसना] भय खाना। डरना। उ०—त्रसिबो सदाई नटनागर गुरु जन ते।—नट०, पृ० ५८।

त्रसींग(पु)—वि० [सं० त्रासक ?] जबरदस्त। उ०—राजा सिंहल दीपरे तोनूँ बीच त्रसींग।—बाँकी० ग्रं०, भा० ३, पृ० ७२।

त्रसुर—वि० [सं०] भीरु। डरपोक।

त्रस्त—वि० [सं०] १. भयभीत। डरा हुआ। उ०—एक बार मुनिवर कौशिक के तप से सुरपति त्रस्त हुआ।—शकुं०, पृ० २। २. पीड़ित। दुःखित। जिसे कष्ट पहुँचा हो। ३. चकित। जिसे आश्चर्य हुआ हो।

त्रस्नु—वि० [सं०] दे० 'त्रसुर' [को०]।

त्रहक्कना(पु)—क्रि० अ० [सं० त्राहि] त्राहि त्राहि करना। त्रस्त होना। उ०—लरै यों लुहानं अभंगं जुवानं। असब्बंत जोरं त्रहक्केति घोरं।—पृ० रा०, ४।३०।

त्राटंक(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ताटंक'। उ०—त्राटंकन की उपमा इतनी। जु कही कवि चंद सुरंग घनी।—पृ० रा०, २१।७६।

त्राटक—संज्ञा पुं० [सं०] योग के षट्कर्मों में से छठा कर्म या साधन। इसमें अनिमेष रूप से किसी बिंदु पर दृष्टि रखते हैं।

त्राटिका(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० त्राटक] योगियों की एक क्रिया। उ०—दृढ़ अगनि का त्राटिका नाम।—गोरख०, पृ० २४६।

त्राण[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. रक्षा। बचाव। हिफाजत। २. रक्षा का साधन। कवच।

विशेष—इस अर्थ में इसका व्यवहार यौगिक शब्दों के अंत में होता है। जैसे, पादत्राण, अंगत्राण।

३. त्रायमाण लता।

त्राण[2]—वि० जिसकी रक्षा की गई हो। रक्षित [को०]।

त्राणक—संज्ञा पुं० [सं०] रक्षक।

त्राणकर्ता—वि० पुं० [सं० त्राणकर्तृ] रक्षा करनेवाला। रक्षक [को०]।

त्राणकारी—वि० [सं० त्राणकारिन्] रक्षा करनेवाला। रक्षक [को०]।

त्राणदाता—संज्ञा पुं० [सं० त्राण + दातृ] त्राण देनेवाला। रक्षा करनेवाला। त्राणक। त्राता। उ०—दयाशील त्राणदाता के मिलने से।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३६७।

त्राणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] त्रायमाण लता।

त्रात—वि० [सं०] बचाया हुआ। रक्षित [को०]।

त्रातव्य—वि० [सं०] रक्षा करने के योग्य। बचाने के लायक।

त्राता—संज्ञा पुं० [सं० त्रातृ] रक्षक। बचानेवाला। उ०—तप बल रचै प्रपंच बिधाता। तप बल विष्णु सकल जगत्राता।—तुलसी (शब्द०)।

त्रातार—संज्ञा पुं० [सं०] रक्षक। उ०—मोक्षप्रदा अरु धर्ममय मथुरा मम त्रातार।—गोपाल (शब्द०)।

विशेष—संस्कृत में यह त्रातृ (त्राता) शब्द का बहुवचन रूप है।

त्रापुष[1]—संज्ञा पुं० [सं०] राँगे का बना हुआ बरतन या और कोई पदार्थ।

त्रापुष²—वि० राँगे का बना हुआ [को०]।

त्रायंती—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रायन्ती] त्रायमाण लता

त्रायनⓅ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'त्राण'। उ०—ताड़न छेदन त्रायन खेदन बहु बिधि कर ले उपाई।—रै० बानी, पृ० १६।

त्रायमाण¹—संज्ञा पुं० [सं०] बनफशे की तरह की एक प्रकार की लता जो जमीन पर फैलती है।

विशेष—इसमें बीच बीच में छोटी छोटी डंडियाँ निकलती हैं जिनमें कसैले बीज होते हैं। इन बीजों का व्यवहार औषध मे होता है। वैद्यक में इन बीजों को शीतल, दस्तावर और त्रिदोषनाशक माना है।

पर्या०—अनुजा। प्रवनी। गिरिजा। देवबाला। बलभद्रा। पालिनी। भयनाशिनी। रक्षिणी।

त्रायमाण²—वि० रक्षक। रक्षा करनेवाला।

त्रायमाणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] त्रायमाण लता।

त्रायमाणिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'त्रायमाण'।

त्रायवृंत—संज्ञा पुं० [सं० त्रायवृन्त] गंडीर या गुंडिरी नामक साग।

त्रास—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. डर। भय। उ०—जम की सब त्रास बिनास करी मुख ते निज नाम उचारन में।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० २८२। २. तकलीफ। ३. मणि का एक दोष।

त्रासक—संज्ञा पुं० १. डरानेवाला। भयभीत करनेवाला। २. निवारक। दूर करनेवाला। उ०—त्रिविध ताप त्रासक तिमुहानी। राम सरूप सिंधु समुहानी।—तुलसी (शब्द०)।

त्रासकर—संज्ञा पुं० [सं०] भयोत्पादक। त्रासक [को०]।

त्रासद—वि० [सं०] त्रासकर। दुःखद। उ०—नाटकों में त्रासद (दुःखांत = ट्रेजेडी) और ह्रासद (सुखांत) का भेद किया जाता है।—स० शास्त्र, पृ० १२६।

त्रासदायी—वि० [सं० त्रासदायिन्] भयोत्पादक। डरानेवाला [को०]।

त्रासदी—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रासद+हिं० ई (प्रत्य०)] दुःख से पूर्ण रचना विशेषतः नाटक जो दुःखांत हो।

त्रासन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० त्रासनीय] १. डराने का कार्य। २. डरानेवाला। भय दिखानेवाला।

त्रासना—क्रि० स० [सं० त्रासन] डराना। भय दिखाना। त्रास देना। उ०—काहे को कलह नाध्यो दारुण दाँवरि बाँध्यो कठिन लकुट लै त्रास्यो मेरो भैया?—सूर (शब्द०)।

त्रासमान—वि० [सं० त्रास + मान्] त्रस्त। भीत। उ०—जोगी जती आव जो कोई। सुनतहि त्रासमान भा सोई।—जायसी ग्रं०, पृ० ११५।

त्रासाⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तृषा'। उ०—करहा पाणी खंच पिउ त्रासा घणा सहेसि।—ढोला०, दू० ४२६।

त्रासिकाⓅ—वि० [सं० त्रासक] त्रास देनेवाली। दुःखद। उ०—दिर्पत जोति नासिका। सु गत्ति कीर त्रासिका।—पृ० रा०, २५। १४४।

त्रासित—वि० [सं०] १. भयभीत। डराया हुआ। २. जिसे कष्ट पहुँचाया गया हो। त्रस्त।

त्रासिनीⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रासिन्] डरानेवाली। भयदायिनी। उ०—दुर्मद दुरंत घर्म दस्युओं की त्रासिनी निकल, चली आ तू प्रतारण के कर से।—लहर, पृ० ५८।

त्रासी—वि० [सं० त्रासिन्] डरानेवाला। त्रासक [को०]।

त्राहि—अव्य० [सं०] बचाओ। रक्षा करो। त्राण दो। उ०—दारुण तप जब कियो राजसुत तब कंप्यो सुरलोक। त्राहि त्राहि हरि सों सब भाष्यो दूर करो सब शोक।—सूर (शब्द०)।

मुहा०—त्राहि त्राहि करना = दया या अभयदान के लिये गिड़गिड़ाना। दया या रक्षा के लिये प्रार्थना करना। त्राहि मचना = रक्षा के लिये चीख पुकार होना। विपत्ति में पड़े हुए लोगों के मुँह से त्राहि त्राहि की पुकार मचना। त्राहि त्राहि होना = दे० 'त्राहि त्राहि मचना'।

त्रिंबकⓅ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'त्र्यंबक'। उ०—त्रिनयन, त्रिंबक, त्रिपुर अरि ईस, उमारति होई।—नंद० ग्रं०, पृ० ९२।

त्रिंश—वि० [सं०] तीसवाँ।

त्रिंशत्—वि० [सं०] तीस।

त्रिंशत्पत्र—संज्ञा पुं० [सं०] कोईं का फूल। कुमुदिनी।

त्रिंशांश—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी पदार्थ का तीसवाँ भाग। किसी चीज के तीस भागों में से एक भाग। २. एक राशि का तीसवाँ भाग (या डिग्री) जिसका विचार फलित ज्योतिष में किसी बालक का जन्मफल निकालने के लिये होता है।

विशेष—फलित ज्योतिष मे मेष, मिथुन, सिंह, तुला, धन और कुंभ ये छह राशियाँ विषम और वृष, कर्क, कन्या, वृश्चिक, मकर और मीन ये छह राशियाँ सम मानी जाती हैं। त्रिंशांश का विचार करने में प्रत्येक विषम राशि के ५, ५, ८, ७ और ५ त्रिंशांशों के क्रमशः मंगल, शनि, बृहस्पति, बुध और शुक्र अधिपति या स्वामी माने जाते हैं और सम ५, ७, ८, ५, और ५ त्रिंशांशों के स्वामी ये ही पाँचों ग्रह विपरीत क्रम से—अर्थात् शुक्र, बुध, बृहस्पति, शनि और मंगल माने जाते हैं। अर्थात्—प्रत्येक विषम राशि के

१ से	५	त्रिंशांश	तक के	अधिपति	—मंगल
६ ,,	१० ,,		,,	,,	—शनि
११ ,,	१८ ,,		,,	,,	—बृहस्पति
१९ ,,	२५ ,,		,,	,,	—बुध
२६ ,,	३० ,,		,,	,,	—शुक्र

माने जाते है। पर सम राशियों में त्रिंशांशों और ग्रहों के क्रम उलट जाते हैं और प्रत्येक राशि के

१ ,,	५	त्रिंशांश	तक के	अधिपति	—शुक्र
६ ,,	१२ ,,		,,	,,	—बुध
१३ ,,	२० ,,		,,	,,	—बृहस्पति
२१ ,,	२५ ,,		,,	,,	—शनि
२६ ,,	३० ,,		,,	,,	—मंगल

माने जाते हैं। प्रत्येक ग्रह के त्रिंशांश में जन्म का अलग अलग फल माना जाता है। जैसे—मंगल के त्रिंशांश में जन्म

होने का फल स्त्रीविजयी, धनहीन, क्रोधी और अभिमानी आदि होना और बुध के त्रिशांश में जन्म होने का फल बहुत धनवान् और सुखी होना माना जाता है।

–वि० [सं०] तीन।

विशेष—इसका व्यवहार यौगिक शब्दों में, प्रारंभ में, होता है। जैसे, त्रिकाल, त्रिकुट, त्रिफला आदि।

)[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'त्रिय'। उ०—राजमती तु मोकुमार तो सम त्रि नहीं इणोई संसार।—बी० रासो, पृ० ४६।

षिरी(ए)—संज्ञा स्त्री० [त्रिप्रक्षर] प्रोम्। गोरख संप्रदाय का मंत्र विशेष। उ०—त्रिप्रषिरी त्रिकोटी जपीला ब्रह्मकुंड निजथानं। गोरख०, पृ० १०२।

ट—संज्ञा पुं० [सं० त्रिकण्ट] दे० 'त्रिकंटक'।

टक[1]—संज्ञा पुं० [सं० त्रिकण्टक] १. गोखरू। २. त्रिशूल। ३ तिधारा थूहर। ४. जवासा। ५. टेंगरा मछली।

टक[2]—वि० जिसमें तीन काँटे या नोकें हों।

[1]—संज्ञा पु० [सं०] १. तीन का समूह। जैसे, त्रिकमय, त्रिफला, त्रिकुटा और त्रिमेद। २. रीढ़ के नीचे का भाग जहाँ कूल्हे की हड्डियाँ मिलती हैं। ३. कमर। ४. त्रिफला। ५. त्रिमद। ६. तिरमुहानी। ७. तीन रुपए सैकड़े का सूद या लाभ आदि (मनु)।

[2]— वि० १. तेहरा। तिगुना। त्रिविध। २. तीन का रूप लेनेवाला। तीन के समूह में आनेवाला। ३. तीन प्रतिशत। ४. तीसरी बार होनेवाला [को०]।

कुद्[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. त्रिकूट पर्वत। २. विष्णु। (विष्णु ने एक बार वाराह का अवतार धारण किया था, इसी से उनका यह नाम पड़ा)। ३. दस दिनों मे होनेवाला एक प्रकार का यज्ञ।

कुद्[2]—वि० जिसे तीन शृंग हों।

कुभ—संज्ञा पुं० [सं०] १. उदान वायु जिससे डकार और छींक आती है। २. नौ दिनों में होनेवाला एक प्रकार का यज्ञ।

ट—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'त्रिकंट'।

टु—संज्ञा पुं० [सं०] सोंठ, मिर्च और पीपल ये तीन कटु वस्तुएँ।

विशेष—वैद्यक में इन तीनों के समूह को दीपन तथा खाँसी, साँस, कफ, मेह, मेद, श्लीपद और पीनस आदि का नाशक माना है।

टुक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'त्रिकटु'।

त्रप—संज्ञा पुं० [सं०] त्रिफला, त्रिकुटा और त्रिमेद। अर्थात् हड़, बहेड़ा और आँवला; सोंठ, मिर्च और पीपल तथा मोथा, चीता और वायबिडंग इन सब का समूह।

र्मा—वि० [सं० त्रिकर्मन्] वह जो पढ़े, पढ़ाए, यज्ञ करे और दान दे। द्विज।

ल[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. तीन मात्राओं का शब्द। प्लुत। २. दोहे का एक भेद जिसमें ६ गुरु और ३० लघु अक्षर होते हैं। जैसे,—अति अपार जो सरितवर, जो नृप सेतु कराहिं। चढ़ि पिपीलिका परम लघु, बिन श्रम पारहि जाहिं।—तुलसी (शब्द०)।

त्रिकल[2]—वि० जिसमें तीन कलाएँ हों।

त्रिकलिंग—संज्ञा पुं० [सं० त्रिकलिङ्ग] दे० 'तैलंग'।

त्रिकशूल—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वातरोग जिसमें कमर की तीनों हड्डियों, पीठ की तीनों हड्डियों और रीढ़ में पीड़ा उत्पन्न हो जाती है।

त्रिकस्थान—पुं० [सं० त्रिक + स्थान] दे० 'त्रिक[2]'। उ०—वायु गुदा में स्थित होने से त्रिकस्थान, हृदय, पीठ इनमें पीड़ा होती है।—माधव०, पृ० १३४।

त्रिकांड[1]—संज्ञा पुं० [सं० त्रिकाण्ड] १. अमरकोष का दूसरा नाम। (अमरकोष में तीन कांड हैं, इसी से उसका यह नाम पड़ा)। २. निरुक्त का दूसरा नाम। (निरुक्त में भी तीन कांड हैं, इसी से उसका यह नाम पड़ा)।

त्रिकांड[2]—वि० जिसमें तीन कांड हों।

त्रिकांडी[1]—वि० [सं० त्रिकाण्डीय] जिसमें तीन कांड हों। तीन कांडोंवाला।

त्रिकांडी[2]—संज्ञा स्त्री० जिस ग्रंथ में कर्म, उपासना और ज्ञान तीनों का वर्णन हो अर्थात् वेद।

त्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कुएँ पर का वह चौखटा जिसमें गराड़ी लगी होती है। २. कुएँ का ढक्कन (को०)।

त्रिकाय—संज्ञा पुं० [सं०] बुद्धदेव।

त्रिकार्षिक—संज्ञा पुं० [सं०] सोंठ, अतीस और मोथा इन तीनों का समूह।

त्रिकाल—संज्ञा पुं० [सं०] १. तीनों समय—भूत, वर्तमान और भविष्य। २. तीनों समय—प्रातः, मध्याह्न और सायं।

त्रिकालज्ञ[1]—संज्ञा पुं० [सं०] भूत, वर्तमान और भविष्य का जाननेवाला व्यक्ति। सर्वज्ञ।

त्रिकालज्ञ[2]—वि० तीनों कालों की बातों को जाननेवाला। उ०—त्रिकालज्ञ सर्वज्ञ तुम्ह गति सर्वत्र तुम्हारि।—मानस, १।६६।

त्रिकालज्ञता—संज्ञा स्त्री० [सं०] तीनों कालो की बातें जानने की शक्ति या भाव।

त्रिकालदरसी(ए)—वि० [हिं०] दे० 'त्रिकालदर्शी'। उ०—तुम्ह त्रिकालदरसी मुनिनाथा। विस्व बदर जिमि तुम्हरे हाथा।—मानस, २।१२५।

त्रिकालदर्शक[1]—वि० [सं०] तीनों कालों को जाननेवाला। त्रिकालज्ञ।

त्रिकालदर्शक[2]—संज्ञा पुं० ऋषि।

त्रिकालदर्शिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] तीनों कालों की बातों को जानने की शक्ति या भाव। त्रिकालज्ञता।

त्रिकालदर्शी[1]—संज्ञा पुं० [सं० त्रिकालदर्शिन्] तीनों कालों की बातों को देखनेवाला या जाननेवाला व्यक्ति। त्रिकालज्ञ।

त्रिकालदर्शी[२]—वि० तीनों कालों की बातों को जाननेवाला। त्रिकालज्ञ (को०)।

त्रिकुट—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'त्रिकूट'।

त्रिकुटा[१]—संज्ञा पुं० [सं० त्रिकटु] सोंठ, मिर्च और पीपल इन तीनों वस्तुओं का समूह।

त्रिकुटा(पु)[२]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'त्रिकुटी'। उ०—त्रिकुटा ध्यान तीन गुन त्यागै।—प्राण०, पृ० २।

त्रिकुटाअचल(पु)—संज्ञा पुं० [सं० त्रिकूट + अचल] त्रिकूट पर्वत। उ०—संपातरा सुण वयण सारा गहर नद गाजे। चित चाव त्रिकुटा अचल चढ़िया, कुदवा काजे।—रघु० रू०, पृ० १६२।

त्रिकूटिनी—वि० स्त्री० [सं० त्रिकूट] तीन कूट या चोटीवाली। उ०—यंत्रों मंत्रों तंत्रों की थी वह त्रिकूटिनी माया सी।—साकेत, पृ० ३८८।

त्रिकुटी—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रिकूट] त्रिकूट चक्र का स्थान। दोनों भौंहों के बीच के कुछ ऊपर का स्थान। उ०—पूरन कुंभक रेचक करहू। उलट ध्यान त्रिकुटी को धरहू।—विश्राम- (शब्द०)।

त्रिकुल—संज्ञा पुं० [सं०] पितृकुल, मातृकुल और श्वसुरकुल।

त्रिकूट—संज्ञा पुं० [सं०] १. तीन शृंगोंवाला पर्वत। वह पर्वत जिसकी तीन चोटियाँ हों। २. वह पर्वत जिसपर लंका बसी हुई मानी जाती है। देवीभागवत के अनुसार यह एक पीठस्थान है और यहाँ रूपसुंदरी के रूप में भगवती निवास करती हैं। उ०—गिरि त्रिकूट एक सिंधु मँझारी। विधि निर्मित दुर्गम अति भारी।—तुलसी (शब्द०)। ३. सेंधा नमक। ४. एक कल्पित पर्वत जो सुमेरु पर्वत का पुत्र माना जाता है।

विशेष—वामन पुराण के अनुसार यह क्षीरोद समुद्र में है। यहाँ देवर्षि रहते हैं और विद्याधर, किन्नर तथा गंधर्व आदि क्रीड़ा करने आते हैं। इसकी तीन चोटियाँ हैं। एक चोटी सोने की है जहाँ सूर्य आश्रय लेते हैं और दूसरी चोटी चाँदी की जिसपर चंद्रमा आश्रय लेते हैं। तीसरी चोटी बरफ से ढकी रहती है और वैदूर्य, इंद्रनील आदि मणियों की प्रभा से चमकती रहती है। यही उसकी सबसे ऊँची चोटी है। नास्तिकों और पापियों को यह नहीं दिखलाई देता।

त्रिकूटलवण—संज्ञा पुं० [सं०] समुद्री नमक (को०)।

त्रिकूटा—संज्ञा स्त्री० [सं०] तांत्रिकों की एक भैरवी।

त्रिकूर्चक—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार फोड़े आदि चीरने का एक शस्त्र जिसका व्यवहार बालक, वृद्ध, भीरु, राजा आदि की शस्त्रचिकित्सा के लिये होना चाहिए।

त्रिकोटी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'त्रिकुटी'। उ०—त्रिधाषिरी त्रिकोटी अपीला ब्रह्मकुंड निज थांनं।—गोरख०, पृ० १०२।

त्रिकोण—संज्ञा पुं० [सं०] १. तीन कोने का क्षेत्र। त्रिभुज का क्षेत्र। जैसे, △ ▷। २. तीन कोनेवाली कोई वस्तु। ३. तीन कोटियोंवाली कोई वस्तु। ४. योनि। भग। ५. कामरूप के अंतर्गत एक तीर्थ जो सिद्धपीठ माना जाता है। ६. जन्मकुंडली में लग्नस्थान से पाँचवाँ और नवाँ स्थान।

त्रिकोणक—संज्ञा पुं० [सं०] तीन कोण का पिंड। तिकोना पिंड।

त्रिकोणघंटा—संज्ञा पुं० [सं० त्रिकोण घण्टा] लोहे की मोटी सलाख का बना हुआ एक प्रकार का तिकोना बाजा जिसपर लोहे के एक दूसरे टुकड़े से आघात करके ताल देते हैं। इसका आकार ऐसा है—)

त्रिकोणफल—संज्ञा पुं० [सं०] सिंघाड़ा। पानीफल।

त्रिकोणभवन—संज्ञा पुं० [सं०] जन्मकुंडली में लग्न से पाँचवाँ और नवाँ स्थान। दे० 'त्रिकोण'।

त्रिकोणमिति—संज्ञा स्त्री० [सं०] गणित शास्त्र का वह विभाग जिसमें त्रिभुज के कोण, बाहु, वर्ग, विस्तार आदि की नाप निकालने की रीति तथा उनसे संबंध रखनेवाले अन्य अनेक सिद्धांत स्थिर किए जाते हैं।

विशेष—आजकल इसके अंतर्गत त्रिभुज के अतिरिक्त चतुर्भुज और बहुभुज के कोण नापने की रीतियाँ तथा बीजगणित संबंधी बहुत सी बातें भी आ गई हैं।

त्रिक्षार—संज्ञा पुं० [सं०] जवाखार, सज्जी और सुहागा इन तीनों खारों का समूह।

त्रिक्षुर—संज्ञा पुं० [सं०] ताल मखाना।

त्रिख—संज्ञा पुं० [सं०] खीरा।

त्रिखा(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तृषा'।

त्रिखित(पु)—वि० [हिं०] दे० 'तृषित'। उ०—त्रिखित लोचन जुगल पान हित अमृतवपु विमल वृंदाविपिन भूमिचारी।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ५४।

त्रिगंग—संज्ञा पुं० [सं० त्रिगङ्ग] महाभारत के अनुसार एक तीर्थ का नाम।

त्रिगंधक—संज्ञा पुं० [सं० त्रिगन्धक] दे० 'त्रिजातक'।

त्रिगंभीर—संज्ञा पुं० [सं० त्रिगम्भीर] वह जिसका सत्व [आचरण], स्वर और नाभि गंभीर हो। लोगों का विश्वास है कि ऐसा पुरुष सदा सुखी रहता है।

त्रिगढ़(पु)—संज्ञा पुं० [सं० त्रि + गढ़] ब्रह्मांड। सहस्रार। उ०—कूड़ अरु कपट की झपट कूं छाड़ि दे त्रिगढ़ सिर बाय अनहद तूरा।—राम० धर्म०, पृ० १३७।

त्रिगण—संज्ञा पुं० [सं०] 'त्रिवर्ग'।

त्रिगर्त—संज्ञा पुं० [सं०] उत्तर भारत के उस प्रांत का प्राचीन नाम जिसमें आजकल पंजाब के जालंधर और कांगड़ा आदि नगर हैं। २. इस देश का निवासी।

त्रिगर्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] छिनाल स्त्री। पुंश्चली। वह स्त्री जिसे पुरुषप्रसंग की इच्छा हो।

त्रिगर्तिक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'त्रिगर्त'।

त्रिगामी(पु)—वि० [सं० त्रि + गामिन्] तीन लोकों में बहनेवाली। त्रिपथगा। उ०—त्रिपत्थी त्रिगामी विराजंत गंगा। महा अग्ग लोकं नरं नारि अंगा।—पृ० रा०, १। १६२।

त्रिगुण[१]—संज्ञा पुं० [सं०] सत्व, रज, और तम इन तीनों गुणों

का समूह। तीन मुख्य प्रकृतियों का समूह। दे० 'गुण'। उ०—त्रिगुण प्रतीत जैसे, प्रतिबिंब मिटि जात।—संत-बाणी०, पृ० ११५।

त्रिगुण²—वि० [सं०] १. तीन गुना। तिगुना। २. तीन धागोंवाला। जिसमें तीन धागे हों (को०)। ३. सत, रज, तम इन तीन गुणोंवाला (को०)।

त्रिगुणा³—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दुर्गा। २. माया। तंत्र में एक प्रसिद्ध बीज।

त्रिगुणात्परा—वि० [सं० त्रिगुणात् + परा] त्रिगुणों से परा। उ०—इस अग्निदेवता का निवास है त्रिगुणमयी यह निखिल सृष्टि। पर प्रथम चरम आलोकधाम त्रिनयन की त्रिगुणात्परा दृष्टि।—अग्नि०, पृ० ४०।

त्रिगुणात्मक—वि० पुं० [सं०] [स्त्री० त्रिगुणात्मिका] तीनों गुणयुक्त। जिसमें तीनों गुण हों। उ०—नारी के नयन! त्रिगुणात्मक ये सन्निपात किसको प्रमत्त नहीं करते।—लहर, पृ० ७१।

त्रिगुणित—वि० [सं०] तीन गुना किया हुआ। तिगुना किया हुआ [को०]।

त्रिगुणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] बेल का पेड़।

विशेष—बेल के पत्ते तीन तीन एक साथ होते हैं इसी से इसका यह नाम पड़ा।

त्रिगुन(पु)—वि० [सं० त्रिगुण] सत, रज तम इन तीन गुणोंवाला। उ०—कह्यौ पूरन ब्रह्म ध्यावौ त्रिगुन मिथ्या भेष।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ११८।

त्रिगूढ़—संज्ञा पुं० [सं० त्रिगूढ] स्त्रियों के वेष में पुरुषों का नृत्य।

त्रिगूढ़क—संज्ञा पुं० [सं० त्रिगूढक] दे० 'त्रिगूढ़'।

त्रिग्गन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० त्रि + गण] तीन का समुदाय। उ०—बहु विवेक कल मान ताल मंडे त्रिग्गन सुर।—पृ० रा०, २५। १५७।

त्रिघंटा—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रिघण्टा] एक कल्पित नगर जो हिमालय की चोटी पर अवस्थित माना जाता है। कहते हैं, यहाँ विद्याधर आदि रहते हैं।

त्रिघट—संज्ञा पुं० [सं० त्रि + घट] स्थूल, सूक्ष्म और कारण रूप तीन शरीर। उ०—धुंगनि धुंगनि धुंगनि धुंगा त्रिघट उघटित तुरिय उतंगा।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० ८३४।

त्रिघाई(पु)—क्रि० वि० [देश०] त्रिरावृत्ति। बार बार। उ०—नचे नद नंदो त्रिघाई त्रिधावैं।—पृ० रा०, २५। २२४।

त्रिघाना(पु)—क्रि० अ० [सं० तृप्त] तृप्त होना। संतुष्ट होना। उ०—नचैं कर बेताल त्रिघाई। नारद नद करै किलकाइ।—पृ० रा०, १६। २१४।

त्रिचक्र—संज्ञा पुं० [सं०] अश्विनीकुमारों का रथ।

त्रिचक्षु—संज्ञा पुं० [सं० त्रिचक्षुस्] महादेव।

त्रिचित—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की गार्हपत्याग्नि।

त्रिजग(पु)†¹—संज्ञा पुं० [सं० तिर्यक्] आड़ा चलनेवाले जंतु। पशु तथा कीड़े मकोड़े। तिर्यक्। उ०—(क) त्रिजग देव नर जो तनु धरऊँ। तहँ तहँ राम भजन अनुसरऊँ।—तुलसी (शब्द०)। (ख) यहि विधि जीव चराचर जेते। त्रिजग देव नर असुर समेते। अखिल विश्व यह मम उपजाया। सब पर मोरि बराबर दाया।—तुलसी (शब्द०)।

त्रिजग²—संज्ञा पुं० [सं० त्रिजगत्] तीनों लोक—स्वर्ग, पृथ्वी और पाताल। उ०—किहि विधि त्रिपथगामिनि त्रिजग पावनि प्रसिद्ध भई भले।—पद्माकर (शब्द०)।

त्रिजगत—संज्ञा पुं० [सं० त्रिजगत्] आकाश, पाताल और पृथ्वी ये तीनों लोक [को०]।

त्रिजगती—संज्ञा स्त्री० [सं०] आकाश, पाताल और पृथ्वी ये तीनों लोक [को०]।

त्रिजट—संज्ञा पुं० [सं०] १. महादेव। शिव। २. एक ब्राह्मण का नाम जिसको वनयात्रा के समय रामचंद्र जी ने बहुत सी गायें दान दी थीं।

त्रिजटा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. विभीषण की बहन जो अशोक-वाटिका में जानकी जी के पास रहा करती थी। २. बेल का पेड़।

त्रिजटी¹—संज्ञा पुं० [सं० त्रिजटिन् या त्रिजट] महादेव। शिव।

त्रिजटी²—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'त्रिजटा'।

त्रिजड़—संज्ञा पुं० [हिं०] १. कटारी। २. तलवार।

त्रिजमा(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'त्रियामा'। उ०—ऐही त्रिजमा राय सरेखा। पहिली रात कि सूरत देखा।—इंद्रा०, पृ० १०।

त्रिजात—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'त्रिजातक'।

त्रिजातक—संज्ञा पुं० [सं०] इलायची (फल), दारचीनी (छाल) और तेजपत्ता (पत्ता) इन तीन प्रकार के पदार्थों का समूह जिसे त्रिसुगंधि भी कहते हैं। यदि इसमें नागकेसर भी मिला दिया जाय तो इसे चतुर्जातक कहेंगे।

विशेष—वैद्यक में इसे रेचक, रूखा, तीक्ष्ण, उष्णवीर्य, मुँह की दुर्गंध दूर करनेवाला, हलका, पित्तवर्धक, दीपक तथा वायु और विषनाशक माना है।

त्रिजामा(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रियामा] रात्रि। रजनी। उ०—(क) जुग चारि भए सब रैनि याम। अति दुसह बिथा तनु करी काम। यहि ते दयाइ मानो विरंचि। सब रैनि त्रिजामा कीन्ह संचि।—गुमान (शब्द०)। (ख) क्षनदा छपा तमस्विनी तमी तमिस्रा होय। निशिथी सदा विभावरी रात्रि त्रिजामा सोय।—नंददास (शब्द०)।

त्रिजीवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] तीन राशियों अर्थात् ९० अंशों तक फैले हुए चाप की ज्या।

त्रिज्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी वृत्त के केंद्र से परिधि तक खिंची हुई रेखा। व्यास की आधी रेखा।

त्रिड़ना(पु)—क्रि० अ० [अनु० तड़तड़; राज० तिड़कणो; हिं० तड़कना] दे० 'तड़कना'। उ०—जिणि दीहे तिल्ली त्रिड़ह,

हिरणी झालइ गाम । तीह विहूँरी गोरड़ी, पड़तउ झालइ घाम ।—ढोला०, दू० २८२ ।

त्रिण⑤—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तृण' । उ०—मीढ सहस्सी मत्थरी नवक गिणे त्रिणमत्त ।—रा० रू०, पृ० ११५ ।

त्रिणता—संज्ञा स्त्री० [सं०] धनुष ।

त्रिणव—पुं० [सं०] साम गान की एक प्रणाली जिसमें एक विशेष प्रकार से उसकी (३×६) सत्ताईस आवृत्तियाँ करते हैं ।

त्रिणाचिकेत—संज्ञा पुं० [सं०] १. यजुर्वेद के एक विशेष भाग का नाम । २. उस भाग के अनुयायी । ३. नारायण । ४. अग्नि (को०) ।

त्रिणीता—संज्ञा स्त्री० [सं०] पत्नी ।

विशेष—यह माना जाता है कि पुरुष पति प्राप्त करने के पूर्व कन्या का संबंध सोम, गंधर्व और अग्नि से होता है ।

त्रितंत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रितन्त्रिका] दे० 'त्रितंत्री' (को०) ।

त्रितंत्री—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रितन्त्रिका] कच्छपी वीणा की तरह की प्राचीन काल की एक प्रकार की वीणा जिसमें तीन तार लगे होते थे ।

त्रित—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक ऋषि का नाम जो ब्रह्मा के मानस-पुत्र माने जाते हैं । २. गौतम मुनि के तीन पुत्रों में से एक जो अपने दोनों भाइयों से अधिक तेजस्वी और विद्वान् थे ।

विशेष—एक बार ये अपने भाइयों के साथ पशुसंग्रह करने के लिये जंगल में गए थे । वहाँ दोनों भाइयों ने इनके संग्रह किए हुए पशु छीनकर और इन्हें अकेला छोड़कर घर का रास्ता लिया । वहाँ एक भेड़िए को देखकर ये डर के मारे दौड़ते हुए एक गहरे अंधे कुएँ में जा गिरे । वहीं इन्होंने सोमयाग आरंभ किया जिसमें देवता लोग भी आ पहुँचे । उन्हीं देवताओं ने उस कुएँ से इन्हें निकाला । महाभारत में लिखा है कि सरस्वती नदी इसी कुएँ से निकली थी ।

त्रितय¹—संज्ञा पुं० [सं०] धर्म, अर्थ और काम इन तीनों का समूह ।

त्रितय²—वि० जिसके तीन भाग हों । तेहरा (को०) ।

त्रिताप—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'ताप' ।

त्रितिया⑤—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तृतीया' । उ०—त्रितिया सों, सप्तमी को एक बचन कबिराइ ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ५३० ।

त्रितीया⑤—वि० [हिं०] दे० 'तृतीय' । उ०—त्रितीया कीया आय बंधेज ।—प्राण०, पृ० ३६ ।

त्रिदंड—संज्ञा पुं० [सं० त्रिदण्ड] १. संन्यास आश्रम का चिह्न, बाँस का एक डंडा जिसके सिरे पर दो छोटी छोटी लकड़ियाँ बँधी होती हैं । २ मन, वचन और कर्म का संयम (को०) । ३. दे० 'त्रिदंडी' (को०) ।

त्रिदंडी—संज्ञा पुं० [सं० त्रिदण्डिन्] १. मन, वचन और कर्म तीनों को दमन करने या वश में रखनेवाला व्यक्ति । २. संन्यासी । परिव्राजक । ३. यज्ञोपवीत । जनेऊ ।

त्रिदल—संज्ञा पुं० [सं०] बेल का वृक्ष ।

त्रिदला—संज्ञा स्त्री० [सं०] गोधापदी । हंसपदी ।

त्रिदलिका—संज्ञा स्त्री [सं०] एक प्रकार का थूहर जिसे चर्मक या सातला कहते हैं ।

त्रिदश—संज्ञा पुं० [सं०] १. देवता । उ०—(क) कंदर्प दर्प दुर्गम द उमारवन गुन भवन हर । तुलसीस त्रिलोचन त्रिगुन पर त्रि मथन जय त्रिदशवर ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) निर बरखत कुसुम त्रिदश जन सुर सुमति मन फूल ।— (शब्द०) । २. जीव ।

त्रिदशगुरु—संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं के गुरु, बृहस्पति ।

त्रिदशगोप—संज्ञा पुं० [सं०] बीरबहूटी नाम का कीड़ा ।

त्रिदशदीर्घिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वर्गंगा । आकाशगंगा ।

त्रिदशपति—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र ।

त्रिदशपुंगव—संज्ञा पुं० [सं० त्रिदशपुङ्गव] विष्णु (को०) ।

त्रिदशपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] लौंग ।

त्रिदशमंजरी—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रिदशमञ्जरी] तुलसी ।

त्रिदशवधू, त्रिदशवनिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] अप्सरा ।

त्रिदशवर्त्म—संज्ञा पुं० [सं० त्रिदशवर्त्मन्] आकाश (को०) ।

त्रिदशश्रेष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] १. अग्नि । २. ब्रह्मा (को०) ।

त्रिदशसर्षप—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की सरसों । देवसर्षप ।

त्रिदशांकुश—संज्ञा पुं० [सं० त्रिदशाङ्कुश] वज्र ।

त्रिदशाचार्य—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र ।

त्रिदशाध्यक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'त्रिदशायन' ।

त्रिदशायन—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु ।

त्रिदशायुध—संज्ञा पुं० [सं०] वज्र ।

त्रिदशारि—संज्ञा पुं० [सं०] असुर ।

त्रिदशालय—संज्ञा पुं० [सं०] १. स्वर्ग । २. सुमेरु पर्वत ।

त्रिदशाहार—संज्ञा पुं० [सं०] अमृत ।

त्रिदशेश्वरी—संज्ञा पुं० [सं०] दुर्गा ।

त्रिदालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] चामरकषा । सातला ।

त्रिदिनस्पृश्—संज्ञा पुं० [सं०] वह तिथि जो तीन दिनों को स्प करती हो । अर्थात् जिसका थोड़ा बहुत अंश तीन दिनों पड़ता हो ।

विशेष—ऐसे दिन में स्नान और दानादि के अतिरिक्त और क शुभ कार्य नहीं करना चाहिए ।

त्रिदिव—संज्ञा पुं० [सं०] १. स्वर्ग । उ०—अनुज ! रहना उ तुमको यहीं है, यहाँ जो है त्रिदिव में भी नहीं है ।—साके पृ० ६५ । २. आकाश । ३. सुख ।

त्रिदिवाधीश—संज्ञा पुं० [सं०] १. इंद्र । २. देवता (को०) ।

त्रिदिवि⑤—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'त्रिदिव' । उ०—स्वर्ग, ना स्वर, द्यौ, त्रिदिवि, दिव, तिरिविष्टप होइ ।—नंद० ग्र पृ० १०८ ।

त्रिदिवेश—संज्ञा पुं० [सं०] १. देवता । २. इंद्र (को०) ।

त्रिदिवोद्भवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बड़ी इलायची । २. गंगा ।

त्रिदिवौका—संज्ञा पुं० [सं० त्रिदिवौकस्] देवता (को०) ।

त्रिदृश—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव । शिव ।

त्रिदेव—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा, विष्णु और महेश ये तीनों देवता ।

त्रिदोष—संज्ञा पुं० [सं०] १. वात, पित्त और कफ ये तीनों दोष । दे० 'दोष' । उ०—गवशत्रु त्रिदोष ज्यों दूरि करै वर । त्रिशिरा सिर त्यों रघुनंदन के शर ।—केशव (शब्द०) । २. वात, पित्त और कफ जनित रोग, सन्निपात । उ०—यौवन ज्वर जुवती कुपथ्य करि भयो त्रिदोष भरि मदन बाय ।—तुलसी (शब्द०) ।

त्रिदोषज[1]—वि० [सं०] तीनों दोषों अर्थात् वात, पित्त और कफ से उत्पन्न ।

त्रिदोषज[2]—संज्ञा पुं० [सं०] सन्निपात रोग ।

त्रिदोषजा—वि० स्त्री० [सं०] दे० 'त्रिदोषज' । उ०—पूर्वोक्त त्रिदोषजा अश्मरी विशेष करके बालकों के होती है ।—माधव०, पृ० १८० ।

त्रिदोषनाⓅ†—क्रि० अ० [सं० त्रिदोष] १. तीनों दोषों के कोप में पड़ना । उ०—कुलहि लजावै बाल बालिस बजावैं गाल कैधौ कर काल वश तमकि त्रिदोषे है ।—तुलसी (शब्द०) । २. काम क्रोध और लोभ के फंदों में पड़ना । उ०—(क) कालि की बात बालि को सुधि करी समुझि हिताहित खोलि झरोखे । कह्यो कुरोधित को न मानिए बड़ी हानि जिय जानि त्रिदोषे ।—तुलसी (शब्द०) ।

त्रिधनी—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की रागिनी ।

त्रिधन्वा—संज्ञा पुं० [सं०] हरिवंश के अनुसार सुधन्वा राजा के एक पुत्र का नाम ।

त्रिधर्मा—संज्ञा पुं० [सं० त्रिधर्मन्] महादेव । शिव ।

त्रिधा[1]—क्रि० वि० [सं०] तीन तरह से । तीन प्रकार से ।

त्रिधा[2]—वि० [सं०] तीन तरह का ।

यौ०—त्रिधात्व = तीन प्रकारकता । तीन प्रकार का होना ।

त्रिधातु—संज्ञा पुं० [सं०] १. गणेश । २. सोना, चाँदी और ताँबा ।

त्रिधाम—संज्ञा पुं० [सं० त्रिधामन्] १. विष्णु । २. शिव । ३. अग्नि । ४. मृत्यु । ५. स्वर्ग । ६. व्यास मुनि (को०) ।

त्रिधामूर्ति—संज्ञा पुं० [सं०] परमेश्वर जिसके अंतर्गत ब्रह्मा, विष्णु, और महेश तीनों हैं ।

त्रिधारक—संज्ञा पुं० [सं०] १. बड़ा नागरमोथा । गुंदला । २. कसेरू का पेड़ ।

त्रिधारा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तीन धारावाला सेहुड़ । २. स्वर्ग, मर्त्य और पाताल तीनों लोकों में बहनेवाली, गंगा ।

त्रिधाविशेष—संज्ञा पुं० [सं०] सांख्य के अनुसार सूक्ष्म, मातापितृज और महाभूत तीनों प्रकार के रूप धारण करनेवाला, शरीर ।

त्रिधासर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] दैव, तिर्यग् और मानुष ये तीनों सर्ग जिसके अंतर्गत सारी सृष्टि आ जाती है ।

विशेष—दे० 'सर्ग' ।

त्रिनⓅ†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तृण' । उ०—पदतल इन कहुँ दलहु कीट त्रिन सरिस जवनचय ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ५४० ।

त्रिनयन[1]—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव । शिव ।

त्रिनयन[2]—वि० जिसकी तीन आँखें हों । तीन नेत्रोंवाला ।

त्रिनयना—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा ।

त्रिनवत—वि० [सं०] तिरानबेवाँ [को०] ।

त्रिनवति—वि०, स्त्री० [सं०] तिरानबे । नब्बे और तीन [को०] ।

त्रिनाभ—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु ।

त्रिनेत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. महादेव । शिव । २. सोना । स्वर्ण ।

त्रिनेत्रचूड़ामणि—संज्ञा पुं० [सं० त्रिनेत्रचूडामणि] चंद्रमा [को०] ।

त्रिनेत्ररस—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार का रस ।

विशेष—यह शोधे हुए पारे, गंधक और फूँके हुए ताँबे को बराबर बराबर भागों में लेकर एक विशेष क्रिया से तैयार किया जाता है और जो सन्निपात रोग में दिया जाता है ।

त्रिनेत्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बाराहीकंद ।

त्रिनैतⓅ—वि० [सं० तिर्यक् + नेत्र] तिर्यक् नेत्रवाला । उ०—चढ्यो भोजराज पहारं त्रिनैतं ।—पृ० रा०, २५ । २१८ ।

त्रिनैनⓅ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'त्रिनयन' । उ०—भरि भरि नैन त्रिनैन मनावै । प्रौढ़ा विप्रलब्ध सु कहावै ।—नंद० ग्रं०, पृ० १५४ ।

त्रिन्नⓅ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तृण' । उ०—पेट काज तरु, तुंग । त्रिन्न परि घर पर ढारैं ।—पृ० रा०, १ । ७६४ ।

त्रिपंखोⓅ—संज्ञा पुं० [डिं०] एक प्रकार का डिंगल गीत । उ०—मंद सुकवि हुए भेल, गीत त्रिपंखो गुण हणो ।—रघु० रू०, पृ० १६० ।

त्रिपंच—वि० [सं० त्रिपञ्च] तिगुना पाँच अर्थात् पंद्रह [को०] ।

त्रिपंचाश—वि० [सं० त्रिपञ्चाश] तिरपनवाँ [को०] ।

त्रिपट—संज्ञा पुं० [सं०] १. काँच । शीशा । २. ललाट की तीन आड़ी रेखाएँ या बल [को०] ।

त्रिपत—वि० [हिं०] दे० 'तृप्त' । उ०—बरंगी राल बरमाल सुरा वरैं । त्रिपत पंखाल पिल खुल ताला ।—रघु० रू०, पृ० २० ।

त्रिपताक—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह माथा या ललाट जिसमें तीन बल पड़े हों । २. हाथ की एक मुद्रा जिसमें तीन उँगलियाँ फैली हों (को०) ।

त्रिपतिⓅ[1]—वि० [सं० तृप्त > त्रिपित त्रिपति] दे० 'तृप्त' । उ०—त्रिय त्रिघाइ पूरन भए त्रिपति उमापति मुंड ।—पृ० रा०, २५।७४४ ।

त्रिपतिⓅ[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० तृप्ति] दे० 'तृप्ति' । उ०—न हिय राज कहु छिन त्रिपति ।—पृ० रा०, १ । ४८४ ।

त्रिपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. बेल का पेड़ जिसके पत्ते एक साथ तीन तीन लगे होते हैं । २. पलाश का पेड़ (को०) ।

त्रिपत्रक—संज्ञा पुं० [सं०] १. पलाश का वृक्ष । ढाक का पेड़ । २. तुलसी, कुंद और बेल के पत्तों का समूह ।

त्रिपत्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बरहर का पेड़। २. तिपतिया घास।

त्रिपथ—संज्ञा पुं० [सं०] १. कर्म, ज्ञान और उपासना इन तीनों मार्गों का समूह। उ०—कमठ कठमलिया कहै ज्ञानी ज्ञान विहीन। तुलसी त्रिपथ बिहायगो रामदुआरे दीन।—तुलसी (शब्द०)। २. तीनों लोकों (आकाश, पाताल और मर्त्य लोक) के मार्ग (को०)। ३. वह स्थान जहाँ तीन पथ मिलते हैं। तिराहा (को०)।

त्रिपथगा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा। उ०—मानो मूल माया त्रिपथगा की तीन धारा हो बहीं।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३७०।

विशेष—हिंदुओं का विश्वास है कि स्वर्ग, मर्त्य और पाताल इन तीनों लोकों में गंगा बहती है, इसीलिये इसे त्रिपथगा कहते हैं।

त्रिपथगामिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा। दे० 'त्रिपथगा'।

त्रिपथा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दे० 'त्रिपथगा'। उ०—पथ देख रही तरंगिणी, त्रिपथा सी वह संग रंगिणी।—साकेत, पृ० ३६३। २. मथुरा (को०)।

त्रिपद[1]—संज्ञा पुं० [सं० त्रिपद] १ तिपाई। २. त्रिभुज। ३. वह जिसके तीन पद या चरण हों। ४. यज्ञों की वेदी नापने की प्राचीन काल की एक नाप जो प्रायः तीन हाथ से कुछ कम होती थी। ५. विष्णु (को०)। ६ ज्वर (को०)।

त्रिपद[2]—वि० [सं० त्रिपद] १. तीन पैरोंवाला। २. तीन पाएवाला। ३. तीन चरणवाला। ४. तीन पदों का (शब्दसमूह) [को०]।

त्रिपदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गायत्री।

विशेष—गायत्री मे केवल तीन ही पद होते हैं इसलिये इसका यह नाम पड़ा।

२. हंसपदी। लाल रंग का लज्जू।

त्रिपदिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तिपाई की तरह का पीतल आदि का वह चौखटा जिसपर देवपूजन के समय शंख रखते हैं। २. तिपाई। ३. संकीर्ण राग का एक भेद। (संगीत)।

त्रिपदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. हंसपदी। २. तिपाई। ३. हाथी की पलान बाँधने का रस्सा। ४. गायत्री। ५. तिपाई के आकार का शंख रखने का धातु का चौखटा। ६. गोधापदी लता (को०)।

त्रिपन्न—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा के दस घोड़ों मे से एक।

त्रिपरिक्रांत[1]—संज्ञा पुं० [सं० त्रिपरिक्रान्त] १. वह ब्राह्मण जो यज्ञ करे, पढ़े पढ़ावे और दान दे। २. वह व्यक्ति जिसने काम, क्रोध और लोभ को जीत लिया हो [को०]।

त्रिपरिक्रांत[2]—वि० जो हवन की परिक्रमा करे [को०]।

त्रिपर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] पलास का पेड़। किंशुक वृक्ष।

त्रिपर्णा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पलास का पेड़।

त्रिपर्णिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. शालपर्णी। २. बनकपास। ३. एक प्रकार की पिठवन लता।

त्रिपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक प्रकार का क्षुप जिसका कंद औषध में काम आता है। २. शालपर्णी। ३. बनकपास।

त्रिपल(पु)—संज्ञा पुं० [?] त्रिविध प्राणायाम रेचक, पूरक, कुंभक। उ०—ताड़ी लागी त्रिपल पलटिये छूटै होई पसारी।—कबीर ग्रं०, पृ० २२८।

त्रिपाटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] चोंच [को०]।

त्रिपाठी—संज्ञा पुं० [सं० त्रिपाठिन्] १. तीन वेदों का जाननेवाला पुरुष। त्रिवेदी। २. ब्राह्मणों की एक जाति। त्रिवेदी। तिवारी।

त्रिपाण—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह सूत जो तीन बार भिगोया गया हो (कर्मकांड)। वल्कल। छाल।

त्रिपात्, त्रिपात—वि०, संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'त्रिपाद' [को०]।

त्रिपाद—संज्ञा पुं० [सं०] १. ज्वर। बुखार। २. परमेश्वर।

त्रिपादिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तिपाई। २. हंसपदी लता। लाल रंग का लज्जालू।

त्रिपाप—संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में एक प्रकार का चक्र जिसके अनुसार किसी मनुष्य के किसी वर्ष का शुभाशुभ फल जाना जाता है।

त्रिपिंड—संज्ञा पुं० [सं० त्रिपिण्ड] पार्वण श्राद्ध में पिता, पितामह और प्रपितामह के उद्देश्य से दिए हुए तीनों पिंड (कर्मकांड)।

त्रिपिटक—संज्ञा पुं० [सं०] भगवान् बुद्ध के उपदेशों का बड़ा संग्रह जो उनकी मृत्यु के उपरांत उनके शिष्यों और अनुयायियों ने समय समय पर किया और जिसे बौद्ध लोग अपना प्रधान धर्मग्रंथ मानते हैं।

विशेष—यह तीन भागों में, जिन्हें पिटक कहते हैं, विभक्त है। इनके नाम ये हैं—सुत्रपिटक, विनयपिटक, अभिधर्मपिटक। सुत्रपिटक में बुद्ध के साधारण छोटे और बड़े ऐसे उपदेशों का संग्रह है जो उन्होंने भिन्न भिन्न घटनाओं और अवसरों पर किए थे। विनयपिटक मे भिक्षुओं और श्रावकों आदि के आचार के संबंध की बातें हैं। अभिधर्मपिटक में चित्त, चैतिक धर्म और निर्वाण का वर्णन है। यही अभिधर्म बौद्ध दर्शन का मूल है। यद्यपि बौद्ध धर्म के महायान, हीनयान और मध्यमयान नाम के तीन यानों का पता चलता है और इन्हीं के अनुसार त्रिपिटक के भी तीन संस्करण होने चाहिए, तथापि आजकल मध्ययमान का संस्करण नहीं मिलता। हीनयान का त्रिपिटक पाली भाषा में है और बरमा, स्याम तथा लंका के बौद्धों का यह प्रधान और माननीय ग्रंथ है। इस यान के संबंध का अभिधर्म से पृथक् कोई दर्शन ग्रंथ नहीं है। महायान के त्रिपिटक का संस्करण संस्कृत में है और इसका प्रचार नेपाल, तिब्बत, भूटान, आसाम, चीन, जापान और साइबेरिया के बौद्धों में है। इस यान के संबंध के चार दार्शनिक संप्रदाय हैं जिन्हें सौत्रांतिक, माध्यमिक, योगाचार और वैभाषिक कहते हैं। इस यान के संबंध के मूल ग्रंथों के कुछ अंश नेपाल, चीन, तिब्बत और जापान में अबतक मिलते हैं। पहले पहल महात्मा बुद्ध के निर्वाण के उपरांत उनके शिष्यों ने उनके उपदेशों का संग्रह राजगृह के समीप एक गुहा में किया था। फिर महाराज अशोक ने अपने समय में उसका दूसरा संस्करण बौद्धों के एक बड़े संघ में कराया था। हीनयान-

वाले अपना संस्करण इसी को बतलाते हैं। तीसरा संस्करण कनिष्क के समय में हुआ था जिसे महायानवाले अपना कहते हैं। हीनयान और महायान के संस्करण के कुछ वाक्यों के मिलान से अनुमान होता है कि ये दोनों किसी ग्रंथ की छाया हैं जो अब लुप्तप्राय है। त्रिपिटक में नारायण, जनार्दन शिव, ब्रह्मा, वरुण और शंकर आदि देवताओं का भी उल्लेख है।

त्रिपिताना[1]—क्रि० अ० [सं० तृप्ति + आना (प्रत्य०)] तृप्ति पाना। तृप्त होना। अघा जाना। उ०—(क) कैसे तृषावंत जल अंचवत वह तो पुनि ठहरात। यह आतुर छबि लै उर धारति नेकु नहीं त्रिपितात।—सूर (शब्द०)। (ख) जे षटरस मुख भोग करत हैं ते कैसे खरि खात। सूर सुनो लोचन हरि रस तजि हम सों क्यों त्रिपितात।—सूर (शब्द०)।

त्रिपिताना[2]—क्रि० स० तृप्त करना। संतुष्ट करना।

त्रिपिब—संज्ञा पुं० [सं०] वह बकरा, पानी पीने के समय जिसके दोनों कान पानी से छू जाते हों। ऐसा बकरा मनु के अनुसार पितृकर्म के लिये बहुत उपयुक्त होता है।

त्रिपिष्टप—संज्ञा पुं० [सं० त्रिपुंड] भस्म की तीन आड़ी रेखाओं का तिलक जो शैव या शाक्त लोग ललाट पर लगाते हैं। उ०—गौर शरीर भूति भलि भ्राजा। भाल विशाल त्रिपुंड विराजा।—तुलसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—देना।—रमाना।—लगाना।

त्रिपुंड्र—संज्ञा पुं० [सं० त्रिपुण्ड्र] त्रिपुंड।

त्रिपुट—संज्ञा पुं० [सं०] १. गोखरू का पेड़। २. मटर। ३. खेसारी। ४. तीर। ५. ताला। ६. एक हाथ की लंबाई (को०)। ७. किनारा। तट (को०)। ८. बाण (को०)। ९. छोटी या बड़ी एला या इलायची (को०)। १०. मल्लिका (को०)। ११. एक प्रकार का फोड़ा (को०)। १२. ताल। तलैया (को०)।

त्रिपुट[2]—वि० [सं०] त्रिभुजाकार (को०)।

त्रिपुटक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. खेसारी। २. फोड़े का एक आकार।

त्रिपुटक[2]—वि० तिकोना या त्रिभुजाकार (फोड़ा)।

त्रिपुटा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बेल का पेड़।। २. छोटी इलायची। ३. बड़ी इलायची। ४. निसोथ। ५. कनफोड़ा बेल। ६ मोतिया। ७. तांत्रिकों की एक देवी जो अभीष्टदात्री मानी गई है।

त्रिपुटी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. निसोथ। २. छोटी इलायची। २. ३. तीन वस्तुओं का समूह। जैसे, ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान; ध्याता, ध्येय और ध्यान; द्रष्टा, दृश्य और दर्शन आदि। उ०—ज्ञाता, ज्ञेय अरु ज्ञान जो ध्याता, ध्येय अरु ध्यान। द्रष्टा, दृश्य अरु दरश जो त्रिपुटी शब्दमान।—कबीर (शब्द०)।

त्रिपुटी[2]—संज्ञा पुं० [सं० त्रिपुटिन्] १. रेंड़ का पेड़। २. खेसारी।

त्रिपुर—संज्ञा पुं० [सं०] १. बाणासुर का एक नाम। २. तीनों लोक। ३. चंदेरी नगर। -(डिं०)। ४ महाभारत के अनुसार वे तीनों नगर जो तारकासुर के तारकाक्ष, कमलाक्ष और विद्युन्माली नाम के तीनों दैत्यों ने मय दानव से अपने लिये बनवाए थे।

विशेष—इनमें से एक नगर सोने का और स्वर्ग में था, दूसरा अंतरिक्ष में चाँदी का था और तीसरा मर्त्यलोक में लोहे का था। जब उक्त तीनों असुरों का अत्याचार और उपद्रव बहुत बढ़ गया तब देवताओं के प्रार्थना करने पर शिव जी ने एक ही बाण से उन तीनों नगरों को नष्ट कर दिया और पीछे से उन तीनों राक्षसों को मार डाला।

त्रिपुरआराति—संज्ञा पुं० [सं० त्रिपुर + आराति] कामारि। महादेव।

त्रिपुरआराती(पु)—संज्ञा पुं० [सं० त्रिपुर + आराति] दे० 'त्रिपुर आराति'। उ०—जदपि सती पूछा बहु भाँती। तदपि न कहेउ त्रिपुर आराती।—मानस, १।५७।

त्रिपुरघ्न—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव।

त्रिपुरदहन—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव।

त्रिपुरदाहक—संज्ञा पुं० [सं० त्रिपुर + दाहक] दे० 'त्रिपुरदहन'। उ०—त्रिपुरदाहक शिव अक्षवट पर था।—प्रा० भा० सं०, पृ० १०८।

त्रिपुरभैरव—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक का एक रस जो सन्निपात रोग में दिया जाता है।

विशेष—इसके बनाने की विधि यह है—काली मिर्च ४ भर, सोंठ ४ भर, शुद्ध तेलिया सोहागा ३ भर, और शुद्ध सींगी मोहरा १ भर लेते हैं और इन सब चीजों को पीसकर पहले तीन दिन तक नीबू के रस में फिर पाँच दिन तक अदरक के रस में और तब तीन दिन तक पान के रस में अच्छी तरह खरल करके एक एक रत्ती की गोलियाँ बना लेते हैं। यह गोली अदरक के रस के साथ दी जाती है।

त्रिपुरभैरवी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक देवी का नाम।

त्रिपुरमल्लिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की मल्लिका।

त्रिपुरहर—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव (को०)।

त्रिपुरसुंदरी—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रिपुरसुन्दरी] दुर्गा (को०)

त्रिपुरांतक—संज्ञा पुं० [सं० त्रिपुरान्तक] शिव। महादेव।

त्रिपुरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कामाख्या देवी की एक मूर्ति।

त्रिपुरारि—संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।

त्रिपुरारि रस—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार का रस जो पारे, ताँबे, गंधक, लोहे, अभ्रक आदि के योग से बनाया जाता है। इसका व्यवहार पेट के रोगों को नष्ट करने के लिये होता है।

त्रिपुरारी(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'त्रिपुरारि'। उ०—मुनि सन बिदा माँगि त्रिपुरारी। चले भवन संग दक्षकुमारी।—मानस, १। ४८।

त्रिपुरासुर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'त्रिपुर'।

त्रिपुरुष[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. पिता, पितामह और प्रपितामह। २. संपत्ति का वह भोग जो तीन पीढ़ियाँ अलग अलग करें। एक एक करके तीन पीढ़ियों का भोग।

त्रिपुरुष[2]—वि० जिसकी लंबाई उतनी हो जितनी तीन पुरुषों के मिलने पर होती है (को०)।

त्रिपुष—संज्ञा पुं० [सं०] १. ककड़ी । २. खीरा । ३. गेहूँ ।

त्रिपुषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] काला निसोथ ।

त्रिपुष्कर—संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में एक योग जो पुनर्वसु, उत्तराषाढ़ा, कृत्तिका, उत्तराफाल्गुनी, पूर्वभाद्रपद और विशाखा इन नक्षत्रों, रवि, मंगल और शनि इन तिथियों में से किसी एक नक्षत्र एक बार और एक तिथि के एक साथ पड़ने से होता है ।

विशेष—इस योग में यदि कोई मरे तो उसके परिवार में दो आदमी और मरते हैं और उसके संबंधियों को अनेक प्रकार के कष्ट होते हैं । इसमें यदि कोई हानि हो तो वैसी ही हानि और दो बार होती है और यदि लाभ हो तो वैसा ही लाभ और दो बार होता है । बालक के जन्म के लिये यह योग अारब योग समझा जाता है ।

त्रिपूरुष—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'त्रिपुरुष' [को०] ।

त्रिपृष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] जैनियों के मत से पहले वासुदेव ।

त्रिपौरुष—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'त्रिपुरुष' ।

त्रिपौलिया—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तिरपौलिया' ।

त्रिप्त(पु)—वि० [हिं०] दे० 'तृप्त' । उ०—सुनत सुनत तन त्रिप्त भई ।—केशव० अमी०, पृ० १० ।

त्रिप्तासना(पु)—क्रि० स० [सं० तृप्ति] तृप्त करना । संतुष्ट करना । उ०—अम्रित नामु भोजन त्रिप्तासै । गुर कै शब्दि कवल पर गासै ।—प्राण०, पृ० १८२ ।

त्रिप्रश्न—संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में दिशा, देश और काल संबंधी प्रश्न ।

त्रिप्रस्नुत—संज्ञा पुं० [सं०] वह हाथी जिसके मस्तक, कपोल और नेत्र इन तीनों स्थानों से मद झड़ता हो ।

त्रिप्लक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] एक बहुत प्राचीन देश का नाम जिसका उल्लेख वैदिक ग्रंथों में आया है ।

त्रिफला—संज्ञा पुं० [सं०] १. आँवले, हड़ और बहेड़े का समूह ।

विशेष—यह आँखों के लिये हितकारक, अग्निदीपक, रुचिकारक, सारक तथा कफ, पित्त, मेह, कुष्ट और विषमज्वर का नाशक माना जाता है । इससे वैद्यक में अनेक प्रकार के घृत आदि बनाए जाते हैं ।

पर्या०—त्रिफली । फलत्रय । फलत्रिक ।

२. वह चूर्ण जो इन तीनों फलों से बनाया जाता है ।

विशेष—यह चूर्ण बनाते समय एक भाग हड़, दो भाग बहेड़ा और तीन भाग आँवला लिया जाता है ।

त्रिबंक¹(पु)—वि० [सं० त्रि + हिं० बंक] तीन जगह से टेढ़ा । उ०—बंक दासी सँग बैठि चितहु त्रिबंक भो ।—नट०, पृ०३१ ।

त्रिबंक²(पु)—संज्ञा स्त्री० तीन जगह से टेढ़ी, कुब्जा । उ०—हम सुधी को टेढ़ी गनी गनिका वा त्रिबंक को अंक धरी सो धरी ।—नट०, पृ० ३१ ।

त्रिबलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'त्रिबली' ।

त्रिबली—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वे तीन बल जो पेट पर पड़ते हैं । इन बलों की गणना सौंदर्य में होती है । उ०—त्रिबली पा पहूँ ललित, रोम राजी मन मोहै ।—हृ० रासो, पृ०२५ । २. भिक्षुणी (को०) ।

त्रिबलीक—संज्ञा पुं० [सं०] १. वायु । २. मलद्वार । गुदा ।

त्रिबाहु—संज्ञा पुं० [सं०] १. रुद्र के एक अनुचर का नाम । २. तलवार का एक हाथ ।

त्रिबिद्धि(पु)—वि० [हिं०] दे० 'त्रिविध' । उ०—बहैं बहुभाँति त्रिबिद्धि समीर ।—हृ० रासो, पृ०२३ ।

त्रिबिध(पु)—वि० [हिं०] दे० 'त्रिविध' । उ०—दरसन मज्जन पान त्रिबिध भय दूर मिटावत ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १. पृ० २८२ ।

त्रिबीज—संज्ञा पुं० [सं०] साँवाँ [को०] ।

त्रिबीणी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'त्रिवेणी' । उ०—तसु त्रिबीणी खुले दुआरू ।—प्राण०, पृ० १११ ।

त्रिबेनी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'त्रिवेणी' ।

त्रिभंग¹—वि० [सं० त्रिभङ्ग] तीन जगह से टेढ़ा । जिसमें तीन जगह बल पड़ते हों । उ०—जैसे को तैसो मिले तब ही जुरत सनेह । ज्यों त्रिभंग तनु स्याम को कुटिल कूबरी देह ।—पद्माकर (शब्द०) ।

त्रिभंग²—संज्ञा पुं० खड़े होने की एक मुद्रा जिसमें पेट कमर और गरदन में कुछ टेढ़ापन रहता है ।

विशेष—प्रायः श्रीकृष्ण के ध्यान में इस प्रकार खड़े होकर बंसी बजाने की भावना की जाती है ।

त्रिभंगी¹—वि० [सं० त्रिभङ्गिन्] तीन जगह से टेढ़ा । तीन मोड़ का । त्रिभंग । उ०—करौ कुबत जग कुटिलता, तजौं न दीन दयाल । दुखी होहुगे सरल हिय बसत त्रिभंगी लाल ।—बिहारी (शब्द०) ।

त्रिभंगी²—संज्ञा पुं० १. ताल के साठ मुख्य भेदों में से एक भेद जिसमें एक गुरु, एक लघु और एक प्लुत मात्रा होती है । २. शुद्ध राग का एक भेद । ३. एक मात्रिक छंद जिसके प्रत्येक चरण में ३२ मात्राएँ होती हैं और १०, ८, ८,६, मात्राओं पर यति होती है । जैसे,—परसत पद पावन, शोक नसावन, प्रगट भई तप पुंज सही । ४. गणात्मक दंडक का भेद जिसके प्रत्येक चरण में ६ नगण, २ सगण, भगण, मगण, सगण और अंत में एक गुरु होता है अर्थात् प्रत्येक चरण में ३४ अक्षर होते हैं । जैसे,—सजल जलद तनु लसत बिमल तनु श्रम कण त्यों झलकों हैं उमगो है बुंद मनो है । भ्रुव युग मटकनि फिरि लटकनि अनिमिष नैनन जो है हरषो है ह्वै मन मोहै । ५. दे० 'त्रिभंग' ।

त्रिभंडी—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रिभण्डी] निसोथ ।

त्रिभ¹—वि० [सं०] तीन नक्षत्रों से युक्त । जिसमें तीन नक्षत्र हों ।

त्रिभ²—संज्ञा पुं० चंद्रमा के हिसाब से रेवती, अश्विनी और भरणी नक्षत्रयुक्त आश्विन; शतभिषा, पूर्वभाद्रपद और उत्तरभाद्रपद

नक्षत्रयुक्त भाद्रमास; और पूर्वफाल्गुनी, उत्तरफाल्गुनी और हस्त नक्षत्रयुक्त फाल्गुन मास।

त्रिभग(पु)—वि० [हिं०] दे० 'त्रिभंग'। उ०—मुरली सुर नट बाद त्रिभग उर आयत लंबी।—पृ० रा०, २। ४२६।

त्रिभजीया—संज्ञा स्त्री० [सं०] व्यास की आधी रेखा। त्रिज्या।

त्रिभज्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] त्रिभजीया। त्रिज्या।

त्रिभद्र—संज्ञा स्त्री० [सं०] सहवास। स्त्रीप्रसंग [को०]।

त्रिभुअन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० त्रिभुवन] दे० 'त्रिभुवन'। उ०—कर्म सूत तें बली नाहिं त्रिभुअन में कोई।—नंद० ग्रं०, पृ० १७६।

त्रिभुक्ति—संज्ञा पुं० [सं०] तिरहुत या मिथिला देश।

त्रिभुज—संज्ञा पुं० [सं०] तीन भुजाओं का क्षेत्र। वह धरातल जो तीन भुजाओं या रेखाओं से घिरा हो। जैसे, △ ▷।

त्रिभुवन—संज्ञा पुं० [सं०] तीन लोक अर्थात् स्वर्ग, पृथ्वी और पाताल।

त्रिभुवनगुरु—संज्ञा पुं० [सं०] शिव। उ०—तुम्ह त्रिभुवनगुरु बेद बखाना। आन जीवन पाँवर का जाना।—मानस, १।

त्रिभुवननाथ—संज्ञा पुं० [सं० त्रिभुवन + नाथ] जगदीश। परमेश्वर। उ०—त्यों अब त्रिभुवननाथ ताड़का मारो सहसुत।—केशव (शब्द०)।

त्रिभुवनराइ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० त्रिभुवन + राज] तीन लोकों का स्वामी।

त्रिभुवनराई(पु)—संज्ञा पुं० [सं० त्रिभुवनराज] तीन लोकों का स्वामी उ०—हम तीनों हैं त्रिभुवन राई।—कबीर सा०, पृ० ५८३।

त्रिभुवनसुंदरी—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रिभुवनसुन्दरी] १. दुर्गा। २. पार्वती।

त्रिभूम—संज्ञा पुं० [सं०] तीन खंडोंवाला मकान। तिमहला घर।

त्रिभोलग्न—संज्ञा पुं० [सं०] क्षितिज वृत्त पर पड़नेवाले क्रांतिवृत्त का ऊपरी मध्य भाग।

त्रिमंडला—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रिमण्डला] एक प्रकार की जहरीली मकड़ी।

त्रिमद—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मोथा, चीता और वायविडंग इन तीनों चीजों का समूह। २. परिवार, विद्या और धन इन तीनों कारणों से होनेवाला अभिमान।

त्रिमधु—संज्ञा पुं० [सं०] १. ऋग्वेद के एक अंश का नाम. २. वह व्यक्ति जो विधिपूर्वक उक्त अंश पढ़े। ३. ऋग्वेद का एक यज्ञ। ४. घी, शहद और चीनी इन तीनों का समूह।

त्रिमधुर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'त्रिमधु'।

त्रिमात—वि० [सं०] दे० 'त्रिमात्रिक'।

त्रिमात्र—वि० [सं०] त्रिमात्रिक [को०]।

त्रिमात्रिक—वि० [सं०] तीन मात्राओं का। तीन मात्राओंवाला। जिसमें तीन मात्राएँ हों। प्लुत।

त्रिमार्गगा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा।

त्रिमार्गगामिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा।

त्रिमार्गी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गंगा। २. तिरमुहानी।

त्रिमुंड—संज्ञा पुं० [सं० त्रिमुण्ड] १. त्रिशिरा राक्षस। २. ज्वर। बुखार।

त्रिमुकुट—संज्ञा पुं० [सं०] वह पहाड़ जिसकी तीन चोटियाँ हों। त्रिकूट।

त्रिमुख—संज्ञा पुं० [सं०] १. शाक्यमुनि। २. गायत्री जपने की चौबीस मुद्राओं में से एक मुद्रा।

त्रिमुखा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'त्रिमुखी'।

त्रिमुखी—संज्ञा स्त्री० [सं०] बुद्ध की माता, मायादेवी।

विशेष—महायान शाखा के बौद्ध देवीरूप से इनकी उपासना करते हैं।

त्रिमुनि—संज्ञा पुं० [सं०] पाणिनि, कात्यायन और पतंजलि ये तीनों मुनि।

त्रिमुहानी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तिमुहानी'।

त्रिमूर्ति—संज्ञा पुं० [सं०] १. ब्रह्मा, विष्णु और शिव ये तीनों देवता। २. सूर्य।

त्रिमूर्ति[२]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ ब्रह्म की एक शक्ति। २. बौद्धों की एक देवी।

त्रिमृत—संज्ञा पुं० [सं०] निसोथ।

त्रिमृता—संज्ञा स्त्री० सं० दे० 'त्रिमृत'।

त्रियंग(पु)—वि० [सं० त्रि + अङ्ग] तीन रूप का। तीन तरह का। उ०—तहाँ त्रिट्टियं दंति ऊमत्त मत्तं। तहाँ छत्र रंगं त्रियंगे ढरंतं।—पृ० रा०, १६।१४६।

त्रिय(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'त्रिया'। उ०—एहि कर नामु सुमिरि संसारा। त्रिय चढ़िहहिं पतिब्रत असिधारा।—मानस, १।६७।

त्रियडंडी(पु)—वि० [हिं०] दे० 'त्रिदंडी'। उ०—एक डंडी दुडंडी त्रियडंडी भगवान हुवा।—गोरख०, पृ० १३२।

त्रियलोक(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'त्रिलोक'। उ०—एकै सतगुरु सूर सम तिमिर हरै त्रियलोक।—रज्जब०, पृ० १६।

त्रियव—संज्ञा पुं० [सं०] एक परिमाण जो तीन जौ के बराबर या एक रत्ती के लगभग होता है।

त्रियष्टि—संज्ञा पुं० [सं०] पितपापड़ा। शाहतरा।

त्रियन(पु)—वि० [हिं०] दे० 'तीन'। उ०—त्रियन बरस त्रिय मास दिन त्रीय घटी पल उन्न।—पृ० रा०, २३।१३

त्रिया(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] औरत। स्त्री।

यौ०—त्रियाचरित्र = स्त्रियों का छल कपट जिसे पुरुष सहज में नहीं समझ सकते।

त्रियाइ(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'त्रिया'। उ०—जलधर बिन यों मेदिनी। ज्यों पतिहीन त्रियाइ।—पृ० रा०, २५।४४।

त्रियाजीत(पु)—वि० [हिं० त्रिया + जीत] स्त्री के वश में न आनेवाला उ०—त्रियाजीत ते पुरिषागता मिलि अनंत ते पुरिषागता। गोरख०, पृ० ७६।

त्रियातीत(पु)—वि० [सं० त्रि + अतीत] तीन अर्थात् त्रिगुण से परे। उ०—त्रियातीत की श्रेणी जिनको वेद सबसे बढ़कर बतलाता है।—कबीर मं०, पृ० १२६।

त्रियान—संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धों के तीन प्रधान भेद या ज्ञान—महायान, हीनयान और मध्यमयान।

त्रियामक—संज्ञा पुं० [सं०] पाप।

त्रियामा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. रात्रि।

विशेष—रात के पहले चार दंडों और अंतिम चार दंडों की गिनती दिन में की जाती है, जिससे रात में केवल तीन ही पहर बच रहते हैं। इसी से उसे त्रियामा कहते हैं।

२. यमुना नदी। ३. हलदी। ४. नील का पेड़। ५. काला निसोथ।

त्रियासंग—संज्ञा पुं० [हिं० त्रिया + संग] स्त्रीप्रसंग। सहवास। उ०-राजयोग के चिह्न ये जानै बिरला कोय। त्रियासंग मति कीजियहु जो ऐसा नहिं होय।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० ६०४।

त्रियुग—संज्ञा पुं० [सं०] १. विष्णु। २. वसंत, वर्षा और शरद ये तीनों ऋतुएँ। ३. सत्ययुग, द्वापर और त्रेता ये तीनों युग।

त्रियूह—संज्ञा पुं० [सं०] सफेद रंग का घोड़ा।

त्रियोदशⓅ—वि० [हिं०] दे० 'त्रयोदश'। उ०—रवि अयन अंस अठ बीस मानि। ससि जन्म त्रियोदस अंस ज्यानि।—ह० रासो, पृ० २६।

त्रियोनि—संज्ञा पुं० [सं०] एक मुकदमा जो क्रोध, लोभ और मोह के कारण होता है [को०]।

त्रिरत्न—संज्ञा पुं० [सं०] बुद्ध, धर्म और संघ का समूह। (बौद्ध)।

त्रिरश्मि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'त्रिकोण'।

त्रिरसक—संज्ञा पुं० [सं०] वह मदिरा जिसमें तीन प्रकार के रस या स्वाद हों।

त्रिरात्रि—संज्ञा पुं० [सं०] १. तीन रात्रियों (और दिनों) का समय। २. एक प्रकार का व्रत जिसमें तीन दिनों तक उपवास करना पड़ता है। ३. गर्ग त्रिरात्र नामक योग।

त्रिराव—संज्ञा पुं० [सं०] गरुड़ के एक पुत्र का नाम [को०]।

त्रिरूप[1]—संज्ञा पुं० [सं०] अश्वमेध यज्ञ के लिये एक विशेष प्रकार का घोड़ा।

त्रिरूप[2]—वि० तीन रंगों या आकृतियोंवाला [को०]।

त्रिरेख[1]—संज्ञा पुं० [सं०] शंख।

त्रिरेख[2]—वि० तीन रेखाओंवाला। जिसमें तीन रेखाएँ हों।

त्रिल—संज्ञा पुं० [सं०] नगण, जिसमें तीनों वर्ण लघु होते हैं।

त्रिलघु—संज्ञा पुं० [सं०] १. नगण, जिसमें तीनों वर्ण लघु होते हैं। २. वह पुरुष जिसकी गर्दन, जाँघ और मूत्रेंद्रिय छोटी हो। पुरुष के लिये ये लक्षण शुभ माने जाते हैं।

त्रिलवण—संज्ञा पुं० [सं०] सेंधा, साँभर और सोंचर (काला) नमक।

त्रिलिंग—संज्ञा पुं० [हिं० तैलंग] तैलंग शब्द का बनावटी संस्कृत रूप।

त्रिलोक—संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ग, मर्त्य और पाताल ये तीनों लोक।

यौ०—त्रिलोकनाथ। त्रिलोकपति।

त्रिलोकनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] १. तीनों लोकों का मालिक या रक्षक, ईश्वर। २. राम। ३. कृष्ण। ४. विष्णु का कोई अवतार। ५. सूर्य।

त्रिलोकपति—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'त्रिलोकनाथ'।

त्रिलोकमणि—संज्ञा पुं० [?] सूर्य। उ०—निरबीज करउँ राकस निकर, मेटूँ फिकर त्रिलोकमणि।—रघु० रू०, पृ० ४८।

त्रिलोकी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'त्रिलोक'।

त्रिलोकीनाथ—संज्ञा पुं० [हिं० त्रिलोकी + नाथ] दे० 'त्रिलोकनाथ'।

त्रिलोकेश—संज्ञा पुं० [सं०] १. ईश्वर। २. सूर्य।

त्रिलोचन—संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।

त्रिलोचना—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'त्रिलोचनी'।

त्रिलोचनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दुर्गा। २. व्यभिचारिणी (को०)।

त्रिलोह—संज्ञा पुं० [सं०] सोना, चाँदी और ताँबा।

त्रिलोहक—संज्ञा पुं० [सं०] त्रिलोह [को०]।

त्रिलौह—संज्ञा पुं० [सं०] त्रिलोह [को०]।

त्रिलौही—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राचीन काल की एक प्रकार की मुद्रा जो सोने, चाँदी और ताँबे को मिलाकर बनाई जाती थी।

त्रिवट—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'त्रिवण'।

त्रिवण—संज्ञा पुं० [सं०] संपूर्ण जाति का एक राग जो दोपहर के समय गाया जाता है।

विशेष—इसे कुछ लोग हिंडोल राग का पुत्र मानते हैं।

त्रिवणी—संज्ञा स्त्री० [?] एक संकर रागिनी जो संकराभरण, जयश्री और नरनारायण के मेल से बनती है।

त्रिवर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] १. अर्थ, धर्म और काम। २. त्रिफला। ३. त्रिकुटा। ४. वृद्धि, स्थिति और क्षय। ५. सत्व, रज और तम ये तीनों गुण। ६. ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ये तीनों प्रधान जातियाँ। ७. सुगति। ८. गायत्री।

त्रिवर्ण[1]—संज्ञा पुं० [सं०] गिरगिट (को०)।

त्रिवर्ण[2]—वि० तीन रंगवाला [को०]।

त्रिवर्णक—संज्ञा पुं० [सं०] १. गोखरू। २. त्रिफला। ३. त्रिकुटा। ४. काला, लाल और पीला रंग। ५. ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ये तीनों प्रधान जातियाँ।

त्रिवर्णा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बनकपास।

त्रिवर्त—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का मोती।

विशेष—कहते हैं, जिसके पास यह मोती होता है उसको दरिद्र कर देता है।

त्रिवर्त्मा[1]—वि० [सं० त्रिवर्त्मन्] तीन मार्गों से जानेवाला। [को०]।

त्रिवर्त्मा[2]—संज्ञा पुं० जीव [को०]।

त्रिवलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'त्रिबली'।

त्रिवलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'त्रिबली'।

त्रिवली—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'त्रिवली'।

त्रिवल्य—संज्ञा पुं० [सं०] बहुत प्राचीन काल का एक प्रकार का बाजा जिसपर चमड़ा मढ़ा होता था।

त्रिवार—संज्ञा पुं० [सं०] गरुड़ के एक पुत्र का नाम।

त्रिबाहु—संज्ञा पुं० [सं०] तलवार के ३२ हाथों में से एक हाथ।

त्रिविक्रम—संज्ञा पुं० [सं०] १. वामन का अवतार। २. विष्णु।

त्रिविद्—संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसने तीनों वेद पढ़े हों।

त्रिविद्य—संज्ञा पुं० [सं०] वह ब्राह्मण जो तीनों वेदों का ज्ञाता हो [को०]।

त्रिविध[1]—वि० [सं०] तीन प्रकार का। उ०—त्रिविध ताप त्रासक त्रिमुहानी। राम स्वरूप सिंधु समुहानी।—तुलसी (शब्द०)

त्रिविध[2]—क्रि० वि० [सं०] तीन प्रकार से।

त्रिविनत—संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसमें देवता, ब्राह्मण और गुरु के प्रति बहुत श्रद्धा और भक्ति हो।

त्रिविष्टप—संज्ञा पुं० [सं०] १. स्वर्ग। २. तिब्बत देश।

त्रिविस्तीर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] वह पुरुष जिसका ललाट, कमर और छाती ये तीनों अंग चौड़े हों।

विशेष—ऐसा मनुष्य भाग्यवान् समझा जाता है।

त्रिवृत[1]—संज्ञा पुं० [सं० त्रिवृत्] १. एक प्रकार का यज्ञ। २. निसोथ।

त्रिवृत[2]—संज्ञा स्त्री० तीन लड़ों की करधनी [को०]।

त्रिवृता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'त्रिवृत'।

त्रिवृत्करण—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि, जल और पृथ्वी इन तीनों तत्वों में से प्रत्येक में शेष दोनों तत्वों का समावेश करके प्रत्येक को अलग अलग तीन भागों में विभक्त करने की क्रिया।

विशेष—इस विचारपद्धति के अनुसार प्रत्येक तत्व में शेष तत्वों भी समावेश माना जाता है। उदाहरण के लिये अग्नि को लीजिए। अग्नि में अग्नि, जल और पृथ्वी का समावेश माना जाता है; और इन तीनों तत्वों के अस्तित्व के प्रमाणस्वरूप अग्नि की ललाई, सफेदी और कालिमा उपस्थित की जाती है। अग्नि की ललाई उसमें अग्नितेज के होने का, उसकी सफेदी उसमें जल के होने का और उसमें की कालिमा उसमें पृथ्वी तत्व होने का प्रमाण माना जाता है। छांदोग्योपनिषद् के छठे प्रपाठक के चौथे खंड में इसका पूरा विवरण दिया हुआ है। जान पड़ता है, उस समय तक लोगों को केवल तीन ही तत्वों का ज्ञान हुआ था और पीछे से जब और दो तत्वों का ज्ञान हुआ तब तत्वों के पंचीकरणवाली पद्धति निकली।

त्रिवृत्त—वि० [सं०] तिगुना।

त्रिवृत्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'त्रिवृत्ति'।

त्रिवृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] निसोथ।

त्रिवृत्पर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] हुरहुर। हिलमोचिका।

त्रिवृद्वेद—संज्ञा पुं० [सं०] १. ऋक्, यजु और साम ये तीनों वेद। २. प्रणव।

त्रिवृष—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार ग्यारहवें द्वापर के व्यास का नाम।

त्रिवेणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तीन नदियों का संगम। २. तीन नदियों की मिली हुई धारा। ३. गंगा, यमुना और सरस्वती का संगमस्थान जो प्रयाग में है।

विशेष—यह तीर्थस्थान माना जाता है और वारुणी तथा मकर संक्रांति आदि के अवसरों पर यहाँ स्नान करनेवालों की बहुत भीड़ होती है।

४. हठयोग के अनुसार इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना इन तीनों नाड़ियों का संगम स्थान।

त्रिवेणु—संज्ञा पुं० [सं०] रथ के अगले भाग के एक अंग का नाम।

त्रिवेद—संज्ञा पुं० [सं०] १. ऋक, यजु और साम ये तीनों वेद। २. इन तीनों वेदों में बतलाए हुए कर्म। ३. वह जो इन तीनों का ज्ञाता हो।

त्रिवेदी—संज्ञा पुं० [सं० त्रिवेदिन्] १ ऋक्, यजु और साम इन तीन वेदों का जाननेवाला। २. ब्राह्मणों का एक भेद।

त्रिवेनी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'त्रिवेणी'।

त्रिवेला—संज्ञा स्त्री० [सं०] निसोथ।

त्रिशंकु—संज्ञा पुं० [सं० त्रिशङ्कु] १. बिल्ली। २. जुगनू। ३. एक पहाड़ का नाम। ४. पपीहा। ५ एक प्रसिद्ध सूर्यवंशी राजा का नाम जिन्होंने सशरीर स्वर्ग जाने की कामना से यज्ञ किया था पर जो इंद्र तथा दूसरे देवताओं के विरोध करने के कारण स्वर्ग न पहुँच सके।

विशेष—रामायण में लिखा है कि सशरीर स्वर्ग पहुँचने की कामना से त्रिशंकु ने अपने गुरु वशिष्ठ से यज्ञ कराने की प्रार्थना की पर वशिष्ठ ने उनकी प्रार्थना स्वीकार न की। इसपर वह वशिष्ठ के पुत्रों के पास गए; पर उन लोगों ने भी उनकी बात न मानी, उलटे उन्हें शाप दिया कि तुम चांडाल हो जाओ। तदनुसार राजा चांडाल होकर विश्वामित्र की शरण में पहुँचे और हाथ जोड़कर उनसे अपनी अभिलाषा प्रकट की। इसपर विश्वामित्र ने बहुत से ऋषियों को बुलाकर उनसे यज्ञ करने के लिये कहा। ऋषियों ने विश्वामित्र के कोप से डरकर यज्ञ आरंभ किया जिसमें स्वयं विश्वामित्र अध्वर्यु बने। जब विश्वामित्र ने देवताओं को उनका हविर्भाग देना चाहा तब कोई देवता न आए। इसपर विश्वामित्र बहुत बिगड़े और केवल अपनी तपस्या के बल से ही त्रिशंकु को सशरीर स्वर्ग भेजने लगे। जब इंद्र ने त्रिशंकु को सशरीर स्वर्ग की ओर आते हुए देखा तब उन्होंने वहीं से उन्हें मर्त्यलोक की ओर लौटाया। त्रिशंकु जब उलटे होकर नीचे गिरने लगे तब बड़े जोर से चिल्लाए। विश्वामित्र ने उन्हें आकाश में ही रोक दिया और क्रुद्ध होकर दक्षिण की

और दूसरे सप्तर्षियों और नक्षत्रों की रचना प्रारंभ की। सब देवता भयभीत होकर विश्वामित्र के पास पहुँचे। तब विश्वामित्र ने उनसे कहा कि मैंने त्रिशंकु को सशरीर स्वर्ग पहुँचाने की प्रतिज्ञा की है। अतः अब वह जहाँ के तहाँ रहेंगे और हमारे बनाए हुए सप्तर्षि और नक्षत्र उनके चारों ओर रहेंगे। देवताओं ने उनकी यह बात स्वीकार कर ली। तब से त्रिशंकु वहीं आकाश में नीचे सिर किए हुए लटके हैं और नक्षत्र उनकी परिक्रमा करते हैं। लेकिन हरिवंश में लिखा है कि महाराज त्रयारुण का सत्यव्रत नामक एक पुत्र बहुत ही पराक्रमी राजा था। सत्यव्रत ने एक पराई स्त्री को घर में रख लिया था। इससे पिता ने उन्हें शाप दे दिया कि तुम चांडाल हो जाओ। तदनुसार सत्यव्रत चांडाल होकर चांडालों के साथ रहने लगे। जिस स्थान पर सत्यव्रत रहते थे उसके पास ही विश्वामित्र ऋषि भी वन में तपस्या करते थे। एक बार उस प्रांत में बारह वर्षों तक वृष्टि ही न हुई, इससे विश्वामित्र की स्त्री अपने बिचले लड़के को गले में बाँधकर सौ गायों को बेचने निकली। सत्यव्रत ने उस लड़के को ऋषिपत्नी से लेकर उसे पालना प्रारंभ किया, तभी से उस लड़के का नाम गालव पड़ा। एक बार मांस के अभाव के कारण सत्यव्रत ने वशिष्ठ की कामधेनु गौ को मारकर उसका मांस विश्वामित्र के लड़कों को खिलाया था और स्वयं भी खाया था। इसपर वशिष्ठ ने उनसे कहा कि एक तो तुमने अपने पिता को असंतुष्ट किया, दूसरे अपने गुरु की गौ मार डाली और तीसरे उसका मांस स्वयं खाया और ऋषिपुत्रों को खिलाया। अब किसी प्रकार तुम्हारी रक्षा नहीं हो सकती। सत्यव्रत ने ये तीन महापातक किए थे, इसी से वह त्रिशंकु कहलाए। उन्होंने विश्वामित्र की स्त्री और पुत्रों की रक्षा की थी इसलिये ऋषि ने उनसे वर माँगने के लिये कहा। सत्यव्रत ने सशरीर स्वर्ग जाना चाहा। विश्वामित्र ने पहले तो उनकी यह बात मान ली, पर पीछे से उन्होंने सत्यव्रत को उनके पैतृक राज्य पर अभिषिक्त किया और स्वयं उनके पुरोहित बने। सत्यव्रत ने केकय वंश की सत्यरथा नामक कन्या से विवाह किया था जिसके गर्भ से प्रसिद्ध सत्यव्रती महाराज हरिश्चंद्र ने जन्म लिया था। तैत्तिरीय उपनिषद् के अनुसार त्रिशंकु अनेक वैदिक मंत्रों के ऋषि थे।

६. एक तारा जिसके विषय में प्रसिद्ध है कि यह वही त्रिशंकु हैं जो इंद्र के ढकेलने पर आकाश से गिर रहे थे और जिन्हें मार्ग में ही विश्वामित्र ने रोक दिया था।

त्रिशंकुज—संज्ञा पुं० [सं० त्रिशङ्कुज] त्रिशंकु के पुत्र, राजा हरिश्चंद्र।

त्रिशंकुयाजी—संज्ञा पुं० [सं० त्रिशङ्कुयाजिन्] त्रिशंकु को यज्ञ करानेवाले, विश्वामित्र ऋषि।

त्रिशक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. इच्छा, ज्ञान, और क्रिया रूपी तीनों ईश्वर शक्तियाँ। २. महत्तत्व जो त्रिगुणात्मक है। बुद्धितत्व। ३. तांत्रिकों की काली, तारा और त्रिपुरा ये तीनों देवियाँ। ४. गायत्री।

यौ०—त्रिशक्तिधृत्।

त्रिशक्तिधृत्—संज्ञा पुं० [सं०] परमेश्वर। २. विजिगीषु राजा का एक नाम।

त्रिशत—वि० [सं०] तीन सौ [को०]।

त्रिशरण—संज्ञा पुं० [सं०] १. बुद्ध। २. जैनियों के एक आचार्य का नाम।

त्रिशर्करा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गुड़, चीनी और मिस्री इन तीनों का समूह।

त्रिशला—संज्ञा स्त्री० [सं०] वर्तमान अवसर्पिणी के चौबीस तीर्थंकरों में से अंतिम तीर्थंकर वर्धमान या महावीर स्वामी की माता का नाम।

त्रिशाख—वि० [सं०] जिसमें आगे की ओर तीन शाखाएँ निकली हों।

त्रिशाखपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] बेल का पेड़।

त्रिशाल—संज्ञा पुं० [सं०] तीन कमरोंवाला मकान [को०]।

त्रिशालक—संज्ञा पुं० [सं०] बृहत्संहिता के अनुसार वह इमारत जिसके उत्तर और और कोई इमारत न हो।

विशेष—ऐसी इमारत अच्छी समझी जाती है।

त्रिशिख[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. त्रिशूल। २. किरीट। ३. रावण के एक पुत्र का नाम। ४. बेल का पेड़। ५. तामस नामक मन्वंतर के इंद्र के नाम।

त्रिशिख[2]—वि० जिसकी तीन शिखाएँ हों। तीन चोटियोंवाला।

त्रिशिखर—संज्ञा पुं० [सं०] वह पहाड़ जिसकी तीन चोटियाँ हों। त्रिकूट पर्वत।

त्रिशिखदला—संज्ञा स्त्री० [सं०] मालाकंद नाम की लता अथवा उसका कंद (मूल)।

त्रिशिखी—वि० [सं०] दे० 'त्रिशिख'।

त्रिशिर—संज्ञा पुं० [सं० त्रिशिरस्] १. रावण का एक भाई जो खर-दूषण के साथ दंडक वन में रहा करता था। २. कुबेर। ३. एक राक्षस जिसका उल्लेख महाभारत में है। ४ त्वष्टा प्रजापति के पुत्र का नाम। हरिवंश के अनुसार ज्वरपुरुष।

विशेष—इसे दानवों के राजा बाण की सहायता के लिये महादेव जी ने उत्पन्न किया था और जिसके तीन सिर, तीन पैर, छह हाथ और नौ आँखें थीं।

त्रिशिरा—संज्ञा पुं० [त्रिशिरस्] दे० 'त्रिशिर'।

त्रिशीर्ष[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. तीन चोटियोंवाला पहाड़। त्रिकूट। त्वष्टा प्रजापति के पुत्र का नाम।

त्रिशीर्षक—संज्ञा पुं० [सं०] त्रिशूल।

त्रिशुच—संज्ञा पुं० [सं०] १. धर्म, जिसका प्रकाश स्वर्ग, अंतरिक्ष और पृथिवी तीनों स्थानों में है। २. वह जिसे दैहिक, दैविक और भौतिक तीनों प्रकार के दुःख हों।

त्रिशूल—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का अस्त्र जिसके सिरे पर तीन फल होते हैं। यह महादेव जी का अस्त्र माना जाता है।

यौ०—त्रिशूलधर = महादेव ।
२ दैहिक, दैविक और भौतिक दुःख । ३. तंत्र के अनुसार एक प्रकार की मुद्रा जिसमें अंगूठे को कनिष्ठा उँगली के साथ मिलाकर बाकी तीनों उँगलियों को फैला देते हैं ।

त्रिशूलघात—संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक तीर्थ जहाँ स्नान और तर्पण करने से गाणपत्य देह प्राप्त होती है ।

त्रिशूलधारी—संज्ञा पुं० [सं० त्रिशूलधारिन्] शिव (को०) ।

त्रिशूली—संज्ञा पुं० [सं० त्रिशूलिन्] त्रिशूल को धारण करनेवाला, महादेव ।

त्रिशूली—संज्ञा स्त्री० दुर्गा ।

त्रिशृंग—संज्ञा पुं० [सं० त्रिशृङ्ग] १. त्रिकूट पर्वत जिसपर लंका बसी थी । २. त्रिकोण ।

त्रिशृंगी—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रिसङ्गी] टेंगना नचली जिसके सिर पर तीन काँटे होते हैं ।

त्रिशोक—संज्ञा पुं० [सं०] १. जीव, जिसे आधिदैविक, आधिभौतिक, आध्यात्मिक ये तीन प्रकार के शोक होते हैं । २. कण्व ऋषि के एक पुत्र का नाम ।

त्रिश्रुतिमध्यम—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का विकृत स्वर ।
विशेष—यह संदीपनी नाम की श्रुति से आरंभ होता है । इसमें चार श्रुतियाँ होती हैं ।

त्रिषवण—संज्ञा पुं० [सं०] प्रातः, मध्याह्न और सायं ये तीनों काल । त्रिकाल ।

त्रिषष्ठ—वि० [सं०] तिरसठवाँ । क्रम में तिरसठ के स्थान पर पड़नेवाला ।

त्रिषष्टि—संज्ञा स्त्री [सं०] साठ और तीन की सूचक संख्या जो इस प्रकार लिखी जाती है—६३ ।

त्रिषष्टि[२]—वि० साठ और तीन । तिरसठ (को०) ।

त्रिषा—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तृषा' । उ०—अमर भेद साहिब कहि दीजे । त्रिषा बुझाय अमीरस पीजे ।—कबीर सा०, पृ० ६६२ ।

त्रिषालौⓅ†—वि० [हिं० त्रिषा] तृषातुर । प्यासा । उ०—पिछलया रहे त्रिषाली अगलयाँ आव मिल ।—नट०, पृ० १६८ ।

त्रिषितⓅ—वि० [हिं०] दे० 'तृषित' । उ०—आतुर गति मनो चंद उदै भए धावत त्रिषित चकोरी ।—नंद० ग्रं०, ३३२ ।

त्रिषु—संज्ञा पुं० [सं०] तीन बाणों तक की दूरी का स्थान ।

त्रिषुक—संज्ञा पुं० [सं०] तीन बाणोंवाला धनुष ।

त्रिषुपर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'त्रिसुपर्ण' ।

त्रिष्टक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की वैदिक अग्नि ।

त्रिष्टुप—संज्ञा पुं० [सं० त्रिष्टुप्] दे० 'त्रिष्टुभ्' ।

त्रिष्टुभ्—संज्ञा पुं० [सं०] एक वैदिक छंद जिसके प्रत्येक चरण में ग्यारह अक्षर होते हैं ।
विशेष—इसका गोत्र कौशिक, वर्ण लोहित, स्वर धैवत, देवता इंद्र और उत्पत्ति प्रजापति के मांस से मानी जाती है । इसके सुमुखी, इंद्रवज्रा, उपेंद्रवज्रा, कीर्ति, वाणी, माला, शाला, हंसी, माया, जाया, बाला, आर्द्रा, भद्रा, प्रेमा, रामा, रथोद्धता, दोधक, ऋद्धि और सिद्धि या बुद्धि आदि प्रधान भेद हैं ।

त्रिष्टोम—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का यज्ञ जो अग्नधृति यज्ञ के पहले और पीछे किया जाता है ।

त्रिष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] तीन पहियोंवाला रथ या गाड़ी ।

त्रिसंक—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'त्रिशंकु' । उ०—कमल अवाज त्रिसंक वह बष षम आदि सदैव । होंहि हलंत कदापि नहि, आइ करे जो वेव ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ५३४ ।

त्रिसंगम—संज्ञा पुं० [सं० त्रिसङ्गम] १. तीन नदियों के मिलने का स्थान । त्रिवेणी । २. किसी प्रकार की तीन चीजों का मेल ।

त्रिसंधि—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रिसन्धि] एक प्रकार का फूल जो लाल, सफेद और काला तीन रंगों का होता है । इसे फगुनियाँ भी कहते हैं । वैद्यक में इसे रुचिकारक और कफ, खाँसी तथा त्रिदोष का नाशक माना है ।
पर्या०—सांध्यकुसुमा । संधिवल्ली । सदाफला । त्रिसंध्यकुसुमा । कांडा । सुकुमारा । संधिजा ।

त्रिसंध्य—संज्ञा पुं० [सं० त्रिसन्ध्य] प्रातः, मध्याह्न और सायं ये तीनों काल ।
विशेष—जो तिथि त्रिसंध्यव्यापिनी, अर्थात् सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त तक रहती है वह सब कार्यों के लिये ठीक मानी जाती है ।

त्रिसंध्यकुसुम—संज्ञा पुं० [सं० त्रिसन्ध्यकुसुम] दे० 'त्रिसंधि' ।

त्रिसंध्यव्यापिनी—वि० स्त्री० [सं० त्रिसन्ध्यव्यापिनी] (वह तिथि) जो बराबर सूर्योदय से सूर्यास्त तक हो ।
विशेष—ऐसी तिथि शुद्ध और सब कामों के लिये ठीक मानी जाती है ।

त्रिसंध्या—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रिसन्ध्या] प्रातः, मध्याह्न और सायं ये तीनों संध्याएँ ।

त्रिसप्तति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सत्तर और तीन का जोड़ । तिहत्तर । २. तिहत्तर की संख्या जो इस प्रकार लिखी जाती है—७३ ।

त्रिसप्ततितम—वि० [सं०] तिहत्तरवाँ । जो क्रम में तिहत्तर के स्थान पर हो ।

त्रिसम[१]—संज्ञा पुं० [सं०] सोंठ, गुड़ और हड़ इन तीनों का समूह ।

त्रिसम[२]—वि० जिसकी तीनों भुजाएँ बराबर हों (ज्या०) ।

त्रिसर—संज्ञा पुं० [सं०] १. खेसारी । २. तीन लड़ियों का मोतियों का हार (को०) । ३. दूध में मिलाकर पका हुआ तिल और चावल (को०) ।

त्रिसरैनुⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रसरेणु] दे० 'त्रसरेणु' । उ०—उपजत भ्रमत फिरत नहिं चैनु । जैसें जालरंध्र त्रिसरैनु ।—नंद० ग्रं०, पृ० २७० ।

त्रिसर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] सत्व, रज और तम तीनों गुणों का सर्ग । सृष्टि ।

त्रिसल(पु)†—संज्ञा स्त्री० [?] त्रिरेखा । त्रिपुंड । उ०—मन माया बालच लियां, त्रिसलो लियां लिलाट । —बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० १६ ।

त्रिसामा¹—संज्ञा पुं० [सं० त्रिसामन्] परमेश्वर ।

त्रिसामा²—संज्ञा स्त्री० [सं०] भागवत के अनुसार एक नदी जो महेंद्र पर्वत से निकलती है ।

त्रिसिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'त्रिशर्करा' ।

त्रिसुगंधि—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रिसुगन्धि] दालचीनी, इलायची और तेजपात इन तीनों सुगंधित मसालों का समूह ।

त्रिसुद्ध(पु)—वि० [सं० त्रि + शुद्ध] तीनों तरह से शुद्ध । उ०—जुमैं सु सुद्ध त्रिसुद्ध तो स्वर्गापवर्गहि पावही ।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १५ ।

त्रिसुपर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] १. ऋग्वेद के तीन विशिष्ट मंत्रों का नाम । २. यजुर्वेद के तीन विशिष्ट मंत्रों का नाम ।

त्रिसुपर्णिक—संज्ञा पुं० [सं०] वह पुरुष जो त्रिसुपर्ण का ज्ञाता हो ।

त्रिसूल(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० त्रिशूल] चिता या क्रोधावेश में ललाट पर उभड़ आनेवाली त्रिशूल की आकृति की रेखा । उ०—माथि त्रिसूलउ नाक सल, कोइ विणट्ठा कज्ज ।—ढोला०, दू० २१६ ।

त्रिसौपर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] १. त्रिसुपर्णिक । २. परमेश्वर । परमात्मा ।

त्रिस्कंध—संज्ञा पुं० [सं० त्रिस्कन्ध] ज्योतिष शास्त्र जिसके संहिता, तंत्र और होरा ये तीन स्कंध हैं ।

त्रिस्तनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गायत्री । २. महाभारत के अनुसार एक राक्षसी जिसके तीन स्तन थे ।

त्रिस्तवन—संज्ञा पुं० [सं०] तीन दिनों में होनेवाला एक प्रकार का यज्ञ ।

त्रिस्तावा—संज्ञा स्त्री० [सं०] अश्वमेध यज्ञ की वेदी जो साधारण वेदी से तिगुनी बड़ी होती थी ।

त्रिस्थली—संज्ञा स्त्री० [सं०] काशी, गया और प्रयाग ये तीन पुण्य स्थान ।

त्रिस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ग, मर्त्य और पाताल तीनों स्थानों में रहनेवाला, परमेश्वर ।

त्रिस्पृशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की एकादशी ।

विशेष—यह उस समय होती है जब एक ही सावन दिन में अरुणोदय के समय थोड़ी सी एकादशी और रात के अंत में त्रयोदशी होती है । ऐसी एकादशी बहुत उत्तम और पुण्य कार्यों के लिये उपयुक्त मानी जाती है ।

त्रिस्नान—संज्ञा पुं० [सं०] सबेरे, दोपहर और संध्या तीनों समय का स्नान ।

विशेष—यह वानप्रस्थ आश्रम में रहनेवाले के लिये आवश्यक है । कई मायाश्चित्तों में भी त्रिस्नान करना पड़ता है ।

त्रिस्रोता—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रिस्रोतस्] १. गंगा । उ०—भस्म त्रिपुंड्रक सोभिजै वरणंत बुद्धि उदार । मनो त्रिस्रोता सोतद्युति वंदत लगी लिलार ।—केशव (शब्द०) । २. उत्तर बंगाल की एक बड़ी नदी जिसे तिस्ता कहते हैं ।

त्रिहायण—वि० [सं०] जिसकी अवस्था तीन वर्ष की हो [को०] ।

त्रिहायणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] द्रौपदी ।

त्रिहुत(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तिरहुत' ।

त्री(पु)¹—संज्ञा स्त्री०[हिं०] दे० 'त्रिया' । उ०—गुण गजबंध तणा कब गावे । दुरस परायण त्री दरसावे ।—रा० रू०, पृ० १६ ।

त्री(पु)²—वि०[हिं०]दे० 'त्रि' । उ०—त्री अस्थान निरंतरि निरधार । तहँ प्रभु बैठे सम्रथ सार ।—दादू०, पृ० ६७५ ।

त्रीकुटा(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'त्रिकुटा' । उ०—मोथा और पटोल दल आनी । त्रिफला औ त्रीकुटा समानी ।—इंद्रा०, पृ० १५१ ।

त्रीगुन(पु)—वि० [सं० त्रिगुण] तिगुना । उ०—इंद्र बीराद बल इंद्र जोर । त्रीगुन विलास तन हुरत रोर ।—पृ० रा०, ६।८० ।

त्रीघटना(पु)—क्रि० अ० [हिं० घटना] घटित होना । होना । उ०—पाथरी घड़ी यों कै त्रीघट लोह ।—बी० रासो, पृ० ६४ ।

त्रीछन(पु)—वि० [हिं०] दे० 'तीक्ष्ण' । उ०—अगिनि तत्त सुर ऊपर बहई । त्रीछन चाल पवन कर अहई ।—सं० दरिया, पृ० २५ ।

त्रीजइ(पु)—वि० [सं० तृतीय] दे० 'तीसरा' । उ०—त्रीजइ पुहरि उलींघियउ, आउ वलारउ घट्ट ।—ढोला०, दू० ४२४ ।

त्रीस(पु)¹—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'तृषा' । उ०—भूख नहीं त्रीस ऊछली ।—बी० रासो, पृ० ६७ ।

त्रीयाँ(पु)—वि० [सं० त्रि] तीनो । उ०—मारू मारइ पहिपड़ा, जउ पहिरइ सोवन्न । दंती चूड़इ मोतियाँ, त्रीयाँ हेक वरन्न ।—ढोला०, दू० ४७५ ।

त्रुगटी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'त्रिकुटी' । उ०—त्रुगुणी त्रुगटी मनकर अरघा संपट ध्यान धरीजै ।—रामानंद०, पृ० २७ ।

त्रुगुणी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'त्रिगुणी' । उ०—त्रुगुणी त्रुगटी मनकर अरघा संपट ध्यान धरीजै ।—रामानंद०, पृ० २७ ।

त्रुटि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कमी । कसर । न्यूनता । २. अभाव । ३. भूल । चूक । ४. वचनभंग । ५. छोटी इलायची । एला । ६. संशय । सदेह । ७. कार्तिकेय की एक मातृका का नाम । ८. समय का एक अत्यंत सूक्ष्म विभाग जो दो क्षण के बराबर और किसी के मत से प्रायः चार क्षण के बराबर होता है ।

त्रुटित—वि० [सं०] १. कटा या टूटा हुआ । २. जिसपर आघात लगा हो । ३. आहत ।

त्रुटिबीज—संज्ञा पुं० [सं०] अरुई । कच्चू । घुइयाँ ।

त्रुटी¹—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'त्रुटि' ।

त्रुटी(पु)²—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'त्रुटि' । उ०—त्रुटी परे है या मेरा मैया जीवरो बहु दुख पावै ।—संत० ग्रं०, पृ० ३५१ ।

त्रुटना(५)—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'टूटना'। उ०—संदेसउ जिन पाठवइ, मरिस्यउँ हीया फूटि। पारेवा का भूल जिउँ, पड़िनई आंगणि त्रूटि।—ढोला०, दू० १४३।

त्रेटकु(५)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'त्राटक'। उ०—त्रेटकु भेष न चेटकु कोई।—प्राण०, पृ० ११०।

त्रेटना(५)†—क्रि० अ० [सं० त्रुटि] तोड़ना। चोट मारना। उ०—कंटक काल फिरि कदे न त्रेटे।—प्राण०, पृ० १०६।

त्रेता—संज्ञा पुं० [सं०] १. चार युगों में से दूसरा युग जो १२६६००० वर्ष का होता है।

विशेष—पुराणानुसार इस युग का जन्म अथवा प्रारंभ कार्तिक शुक्ला नवमी को होता है। इस युग में पुण्य के तीन पाद और पाप का एक पाद होता है, और सब लोग धर्मपरायण होते हैं। पुराणानुसार इस युग में मनुष्यों की आयु दस हजार वर्ष तथा मनु के अनुसार तीन सौ वर्ष होती है। परशुराम और रघुवंशी राम के अवतार का इसी युग में होना माना जाता है।

मुहा०—त्रेता के बीजों में मिलना = सत्यानाश होना। नष्ट होना। (एक शाप)।

२. दक्षिण, गार्हपत्य और आहवनीय, ये तीनों प्रकार की अग्नियाँ। ३. जुए में तीन कौड़ियों का अथवा पासे के उस भाग का चित पड़ना जिसपर तीन बिंदियाँ हों।

त्रेताग्नि—संज्ञा पुं० [सं०] दक्षिण, गार्हपत्य और आहवनीय ये तीनों प्रकार की अग्नियाँ।

त्रेतायुग—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'त्रेता'।

त्रेतायुगाद्य—संज्ञा पुं० [सं०] कार्तिक शुक्ला नवमी, जिस दिन त्रेता का जन्म या प्रारंभ होना माना जाता है।

विशेष—इसकी गणना पुण्य तिथियों में है।

त्रेतिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह क्रिया जो दक्षिण, गार्हपत्य और आहवनीय तीनों प्रकार की अग्नियों से हो।

त्रेधा—क्रि० वि० [सं०] तीन प्रकार से अथवा तीन भागों में [को०]।

त्रेन(५)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'तृण'। उ०—नैहर नेह नहि त्रेन सन तोरो। पुष्प पलंग पर प्रेम प्रिति जोरो।—सं० दरिया, पृ० १७२।

त्रै—वि० [सं० त्रय] तीन। उ०—ज्यों अति प्यासो पावै मग में गंगाजल। प्यास न एक बुझाय बुझै त्रै ताप बल।—केशव (शब्द०)।

यौ०—त्रैकालिक।

त्रैकंटक—संज्ञा पुं० [सं० त्रैकण्टक] दे० 'त्रिकंटक'।

त्रैककुद—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'त्रिककुद'।

त्रैककुभ—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'त्रिककुभ'।

त्रैकालज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'त्रिकालज्ञ'।

त्रैकालिक—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० त्रैकालिकी] वह जो त्रिकाल में होता हो। तीनों कालों में या सदा होनेवाला।

त्रैकाल्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. तीन काल—भूत, वर्तमान और भविष्यत्। २. सूर्योदय, अपराह्न और सूर्यास्त। ३. तीन का समूह। ४. तीन दशाएँ—उत्पत्ति, रक्षण और विनाश [को०]।

त्रैकूटक—संज्ञा पुं० [सं०] कलचुरि राजवंश के समय का एक प्राचीन राजवंश।

त्रैकोणिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जिसके तीन पार्श्व हों। तिपहला २. वह जिसके तीन कोण हों।

त्रैकोन(५)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'त्रिकोण'। उ०—मध्यचरन त्रैकोन है अमृत कलश कहूँ देख।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ३३।

त्रैगर्त—संज्ञा पुं० [सं०] १. त्रिगर्त देश का रहनेवाला। २. त्रिगर्त देश का राजा।

त्रैगुणिक—वि० [सं०] १. तेहरा। तीनगुना। २. तीन गुणों से संबंधित [को०]।

त्रैगुण्य—संज्ञा पुं० [सं०] त्रिगुण का धर्म या भाव। सत्व, रज और तम इन तीनों गुणों का धर्म या भाव।

त्रैता(५)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'त्रेता'। उ०—त्रैता राम रूप दशरथ गृह रावन कुलहि सँवारयो।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० १६२।

त्रैदशिक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] उँगली का अगला भाग, जो तीर्थ कहलाता है।

त्रैदशिक[2]—वि० १. ईश्वरीय। २. देवताओं से संबंधित [को०]।

त्रैध—वि० [सं०] तेहरा। तिगुना [को०]।

त्रैधातवी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का यज्ञ।

त्रैपन(५)—वि० [हिं०] दे० 'तिरपन'। उ०—हयसीह संग त्रैपन हजार। कर धरै कहर कर्त्ता बजार।—पृ० रा०, १३। १७।

त्रैपुर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'त्रिपुर'।

त्रैपुरुष—वि० [सं०] [वि० स्त्री० त्रैपुरुषी] पुरुषों की तीन पीढ़ी तक चलनेवाला [को०]।

त्रैफल—संज्ञा पुं० [सं०] चक्रदत्त के अनुसार वैद्यक में एक प्रकार का घृत जो त्रिफला आदि के संयोग से बनाया जाता है और जिसका व्यवहार प्रदर आदि रोगों में होता है।

त्रैबलि—संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम जिनका उल्लेख महाभारत में है।

त्रैमातुर—संज्ञा पुं० [सं०] लक्ष्मण।

विशेष—लक्ष्मण जी सुमित्रा के गर्भ से उत्पन्न हुए थे पर सुमित्रा ने चरु का जो अंश खाया था वह पहले कौशल्या और केकयी को दिया गया था और उन्हीं दोनों से सुमित्रा को मिला था, इसीलिये लक्ष्मण का नाम त्रैमातुर पड़ा।

त्रैमासिक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० त्रैमासिकी] हर तीसरे महीने होनेवाला। जो हर तीसरे महीने हो। जैसे, त्रैमासिक पत्र।

त्रैमास्य—संज्ञा पुं० [सं०] तीन महीने का समय [को०]।

त्रैयंबक[1]—संज्ञा पुं० [सं० त्रैयम्बक] एक प्रकार का होम।

त्रैयंबक[2]—वि० [सं०] त्र्यंबक संबंधी। जैसे, त्रैयंबक बलि।

त्रैयंबिका—संज्ञा स्त्री० [सं० त्रयम्बिका] गायत्री।

त्रैराशिक—संज्ञा पुं० [सं०] गणित की एक क्रिया जिसमें तीन ज्ञात राशियों की सहायता से चौथी अज्ञात राशि का पता लगाया जाता है।

त्रैलोक¹—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र [को०]।

त्रैलोक²—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'त्रैलोक्य'।

त्रैलोक्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. स्वर्ग मर्त्य और पाताल ये तीनों लोक। २. २१ मात्राओं का कोई छंद।

त्रैलोक्यकर्ता—संज्ञा पुं० [सं० त्रैलोक्यकर्तृ] शिव [को०]।

त्रैलोक्यचिंतामणि—संज्ञा पुं० [सं० त्रैलोक्यचिन्तामणि] १. वैद्यक में एक प्रकार का रस जो सोने, चाँदी और अभ्रक के मेल से बनाया जाता है।

विशेष—इसका व्यवहार क्षय, खाँसी, प्रमेह, जीर्णज्वर और उन्माद आदि रोगों में किया जाता है।

२. वैद्यक में एक प्रकार का रस जो हीरे, सोने और मोती के संयोग से बनाया जाता है।

त्रैलोक्यनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] राम [को०]।

त्रैलोक्यबंधु—संज्ञा पुं० [सं० त्रैलोक्यबन्धु] सूर्य [को०]।

त्रैलोक्यविजया—संज्ञा स्त्री० [सं०] भंग।

त्रैलोक्यसुंदर—संज्ञा पुं० [सं० त्रैलोक्यसुन्दर] वैद्यक में एक प्रकार रस जो पारे, अभ्रक, लोहे आदि के संयोग से बनाया जाता है।

विशेष—इसका व्यवहार शोथ, पांडु और ज्वरातिसार आदि रोगों में होता है।

त्रैवर्गिक—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० त्रैवर्गिकी] वह कर्म जिससे धर्म, अर्थ और काम इन तीनों की साधना हो।

त्रैवर्ण—वि० [सं०] ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन तीन वर्णों से संबंधित [को०]।

त्रैवर्णिक¹—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० त्रैवर्णिका] ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन तीनों जातियों का धर्म।

त्रैवर्णिक²—वि० [सं०] तीन वर्ण संबंधी।

त्रैवर्षिक—वि० [सं०] तीन वर्ष का [को०]।

त्रैवार्षिक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० त्रैवार्षिकी] जो तीन वर्षों में अथवा हर तीसरे वर्ष हो। तीन वर्ष संबंधी।

त्रैविक्रम—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० त्रैविक्रमी] विष्णु।

त्रैविद्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. तीनों वेदों को जाननेवाला मनुष्य। २. तीनों वेद (को०)। ३. तीन वेदों का अध्ययन (को०)। ४. तीन वेदों को जाननेवाले ब्राह्मणों की मंडली (को०)।

त्रैविष्टप—संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ग में रहनेवाले देवता।

त्रैविष्टपेय—संज्ञा पुं० [सं०] देवता [को०]।

त्रैवेदिक—वि० [सं०] तीन वेदों संबंधी [को०]।

त्रैशंकव—संज्ञा पुं० [सं० त्रैशङ्कव] त्रिशंकु के पुत्र हरिश्चंद्र [को०]।

त्रैसत(पु)—वि० [सं० त्रि + हिं० सात] तीन और सात का योग। दस। उ०—त्रैसत अंगुल अंबरि तैसानु।—प्राण, पृ० ८८।

त्रैसानु—संज्ञा पुं० [सं०] हरिवंश के अनुसार तुर्वसु वंश के राजा गोभानु के पुत्र का नाम।

त्रैस्वर्य—संज्ञा पुं० [सं०] उदात्त अनुदात्त, और स्वरित तीनों प्रकार के स्वर।

त्रैहायण—संज्ञा पुं० [सं०] तीन वर्ष का समय [को०]।

त्रोटक—संज्ञा पुं० [सं०] १. नाटक का एक भेद जिसमें ५, ७, ८ या ९ अंक होते हैं और प्रत्येक अंक में विदूषक रहता है। यह नाटक शृंगाररसप्रधान होता है और इसका नायक कोई दिव्य मनुष्य होता है। २. एक राग का नाम (संगीत)।

त्रोटकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की रागिनी (संगीत)।

त्रोटि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कायफल। २. चोंच। ३. एक प्रकार की चिड़िया। ४. एक प्रकार की मछली।

त्रोटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. टोंटी। टूँटी। २. दे० 'त्रोटि'।

त्रोण—संज्ञा पुं० [सं०] तरकश।

त्रोतल—वि० [सं०] तोतला। जो बोलने में तुतलाता हो।

त्रोत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. अस्त्र। २. चाबुक। ३. एक प्रकार का रोग।

त्रोदश(पु)—वि० [हिं०] दे० 'त्रयोदश'। उ०—त्रोदश रानिन सो मत कियऊ।—कबीर सा०, पृ० २६५।

त्र्यंगट—संज्ञा पुं० [सं० त्र्यङ्गट] १. ईश्वर। २. चंद्रमा। ३. छीका। सिकहर।

त्र्यंगुल—वि० [सं० त्र्यङ्गुल] जिसकी लंबाई तीन अंगुल हो [को०]।

त्र्यंजन—संज्ञा पुं० [सं० त्र्यञ्जन] कालांजन, रसांजन और पुष्पांजन ये तीनों अंजन। काला सुरमा, रसौत और वे फूल जो अंजनों में मिलाए जाते हैं, जैसे, चमेली, तिल, नीम लौंग, अगस्त्य इत्यादि।

त्र्यंबक—संज्ञा पुं० [सं० त्र्यम्बक] १. शिव। महादेव। २ ग्यारह रुद्रों में से एक रुद्र।

त्र्यंबकसख—संज्ञा पुं० [सं० त्र्यम्बकसख] कुबेर।

त्र्यंबका—संज्ञा स्त्री० [सं० त्र्यम्बका] दुर्गा, जिसके सोम, सूर्य और अनल ये तीनों नेत्र माने जाते हैं।

त्र्यंबुक—संज्ञा पुं० [सं० त्र्यम्बुक] एक प्रकार की मक्षिका [को०]।

त्र्यक्ष¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिव। महादेव। २. एक दैत्य जिसका उल्लेख भागवत में है।

त्र्यक्ष²—वि० [सं०] जिसकी तीन आँखें हों। तीन नेत्रोंवाला।

त्र्यक्षक—संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव [को०]।

त्र्यक्षर—वि० [सं०] दे० 'त्र्यक्षरक'।

त्र्यक्षरक¹—वि० [सं०] तीन अक्षरों का। जिसमें तीन अक्षर हों।

त्र्यक्षरक²—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रणव। २. तंत्र में वह यंत्र जिसमें तीन अक्षर हों। ३. एक प्रकार का वैदिक छंद।

त्र्यक्षी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक राक्षसी का नाम।

त्र्यधिपति—संज्ञा पुं० [सं०] तीनों लोकों के स्वामी, विष्णु।

त्र्यध्वगा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा।

त्र्यमृतयोग—संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में एक प्रकार का योग

जो कुछ विशिष्ट तिथियों, नक्षत्रों और वारों के संयोग से होता है।

विशेष—यदि रवि या मंगलवार को प्रतिपदा, षष्ठी या एकादशी तिथि और स्वाती, शतभिषा, आर्द्रा, रेवती, चित्रा, अश्लेषा या मूल नक्षत्र हो, शुक्र अथवा सोमवार को द्वितीया, सप्तमी या द्वादशी तिथि और भद्रा, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वभाद्रपद या उत्तर भाद्रपद नक्षत्र हो, बुधवार को तृतीया, अष्टमी या त्रयोदशी तिथि और मृगशिरा, श्रवण, पुष्य, ज्येष्ठा, भरणी, अभिजित् या अश्विनी नक्षत्र हो, बृहस्पतिवार को चतुर्थी, नवमी या चतुर्दशी तिथि और उत्तराषाढ़ा, विशाखा, अनुराधा, मघा या पुनर्वसु नक्षत्र हो अथवा शनिवार को पंचमी, दशमी, अमावस्या या पूर्णिमा तिथि और रोहिणी, हस्त या धनिष्ठा नक्षत्र हो तो त्र्यमृत योग होता है। यह योग यात्रा के लिये बहुत उत्तम समझा जाता है और इससे व्यतीपात आदि का दोष भी नष्ट हो जाता है।

[त्र्य]वरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] तीन सदस्यों की शासक सभा। वि० दे० 'दशावरा'।

विशेष—मनुस्मृति के टीकाकार कुल्लूक ने तीन सभ्यों से ऋग्वेदी, यजुर्वेदी और सामवेदी का तात्पर्य लिया है।

[त्र्य]शीत—वि० [सं०] क्रम में तिरासी के स्थान पर पड़नेवाला। तिरासीवाँ।

[त्र्य]शीति[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अस्सी और तीन का जोड़। तिरासी। २. तिरासी की सूचक संख्या जो इस प्रकार लिखी जाती है—८३।

[त्र्य]शीति[2]—वि० अस्सी और तीन। तिरासी [को०]।

[त्र्य]श्र[1]—संज्ञा पुं० [सं०] त्रिकोण। त्रिभुज [को०]।

[त्र्य]श्र[2]—वि० तीन कोणवाला [को०]।

[त्र्य]स्र—संज्ञा पुं० [सं०] त्रिकोण।

[त्र्य]ह—संज्ञा पुं० [सं०] तीन दिन। तीन दिनों का समूह [को०]।

[त्र्य]हस्पर्श—संज्ञा पुं० [सं०] वह सावन दिन जिसे तीन तिथियाँ स्पर्श करती हों।

[त्र्य]हस्पृश्—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह तिथि जो तीन सावन दिनों को स्पर्श करती हो।

विशेष—ऐसी तिथि विवाह या यात्रा आदि के लिये निषिद्ध है पर स्नान दान आदि के लिये अच्छी मानी जाती है।

[त्र्य]हिकारिरस—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार का रस जिसमें प्रधानतः पारा, गंधक, तूतिया और शंख पड़ता है।

विशेष—इसका व्यवहार तिजारी ज्वर में होता है।

[त्र्य]हीन—संज्ञा पुं० [सं०] तीन दिनों में होनेवाला एक प्रकार का यज्ञ।

[त्र्या]र्षेयिक—संज्ञा पुं० [सं०] वह गृहस्थ जिसके यहाँ तीन प्रवर हों। त्रिप्रवर हों गोत्र। २. अंधा, बहरा और गूँगा।

विशेष—इन तीनों को यज्ञ में आने का अधिकार नहीं है।

[त्र्या]हण—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार के पक्षी।

[त्र्या]हिक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] हर तीसरे दिन आनेवाला ज्वर। तिजारी।

त्र्याहिक[2]—वि० तीन दिनों में होनेवाला।

त्र्युषण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'त्र्यूषण' [को०]।

त्र्यूषण—संज्ञा पुं० [सं०] १. सोंठ, पीपल और मिर्च। त्रिकुटा। २. चरक के अनुसार एक प्रकार का घृत जो इन ओषधियों के मेल से बनाया जाता है।

त्र्योदशी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'त्रयोदशी'। उ०—कृष्ण पच्छ तिथि त्र्योदशी, भौमवार जुत जानि।—ब्रज०, पृ० १२।

त्वं(पु)—सर्व० [सं० त्वम्] तू। तुम। उ०—तत पद त्वं पद और असी पद, बाच लच्छ पहिचाने।—कबीर श०, पृ० ६६।

त्वंमय—वि० [सं०] चमड़े या छाल का बना हुआ [को०]।

त्वक्—संज्ञा पुं० [सं०] १. छिलका। छाल। २. त्वचा। चमड़ा। खाल। उ०—कोमलता त्वक् आनत है पुनि, बोलत है मुख सबद उचारो।—संतवाणी०, पृ० १११। ३. पाँच ज्ञानेंद्रियों में से एक जो सारे शरीर के ऊपरी भाग में व्याप्त है।

विशेष—इसके द्वारा स्पर्श होता है तथा कड़े और नरम, ठंढे और गरम आदि का ज्ञान प्राप्त किया जाता है। हमारे यहाँ प्राचीन ऋषियों ने इसे वायु के सत्वांश से उत्पन्न माना है और इसका देवता वायु बतलाया है।

४. दारचीनी।

त्वक्कंडुर—संज्ञा पुं० [सं० त्वक्कण्डुर] घाव [को०]।

त्वक्क्षीरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'त्वक्क्षीरी'।

त्वक्क्षीरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] बंसलोचन।

त्वक्छेद—संज्ञा पुं० [सं०] क्षीरीश वृक्ष। क्षीर कंचुकी।

त्वक्छेदन—संज्ञा पुं० [सं०] चमड़े को काटना [को०]।

त्वक्तरंगक—संज्ञा पुं० [सं० त्वक्तरङ्गक] झुर्री [को०]।

त्वक्पंचक—संज्ञा पुं० [सं० त्वक्पञ्चक] बड़, गूलर, अश्वत्थ, सीरिस और पाकर ये पाँचों वृक्ष।

विशेष—वैद्यक में इन पाँचो की छाल का समूह शीतल, लघु, तिक्त तथा व्रण और शोथ आदि का नाशक माना जाता है।

त्वक्पत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. तेजपत्ता। २. दारचीनी [को०]।

त्वक्पत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. हिंगुपत्री। २. कदलीस्तंभ। केले का पेड़।

त्वक्पर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'त्वक्पत्री' [को०]।

त्वक्पाक—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का रोग जिसमें पित्त और रक्त के कुपित होने से शरीर में फुंसियाँ निकल आती हैं।

त्वक्पारुष्य—संज्ञा पुं० [सं०] चमड़े का रूखापन [को०]।

त्वक्पुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] १. सेहुआँ रोग। २. रोमांच। रोएँ खड़े हो जाना।

त्वक्पुष्पिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'त्वक्पुष्प'।

त्वक्पुष्पी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'त्वक्पुष्प'।

त्वक्सार—संज्ञा पुं० [सं०] १. बाँस। २. दारचीनी। ३. सन का वृक्ष।

त्वक्सारभेदिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटा पेंच।

त्वक्सारा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बंसलोचन।

त्वक्सुगंध—संज्ञा पुं० [सं० त्वक्सुगन्ध] नारंगी [को०]।

त्वक्सुगंधा—संज्ञा पुं० [सं० त्वक्सुगन्धा] १. एलुवा। २. छोटी इलायची।

त्वगंकुर—संज्ञा पुं० [सं० त्वगङ्कुर] रोमांच।

त्वग्—संज्ञा पुं० [सं०] 'त्वक्' का समासगत रूप [को०]।

त्वगाक्षीरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] बंसलोचन।

त्वगिंद्रिय—संज्ञा स्त्री० [सं० त्वगिन्द्रिय] स्पर्शेंद्रिय [को०]।

त्वग्गंध—संज्ञा पुं० [सं० त्वग्गन्ध] नारंगी का पेड़।

त्वग्ज—संज्ञा पुं० [सं०] १. रोम। रोआँ। २. रक्त। लहू।

त्वग्जल—संज्ञा पुं० [सं०] पसीना [को०]।

त्वग्दोष—संज्ञा पुं० [सं०] कोढ़। कुष्ठ।

त्वग्दोषापहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बकुची। बावची।

त्वग्दोषारि—संज्ञा पुं० [सं०] हस्तिकंद।

त्वग्दोषी—संज्ञा पुं० [सं० त्वग्दोषिन्] कोढ़ी। जिसे कुष्ठ रोग हो।

त्वग्भेद—संज्ञा पुं० [सं०] चमड़ा काटना। चमड़े को छीलकर निकालना [को०]।

त्वच्—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चमड़ा। २. छाल। वल्कल। ३. दारचीनी। ४. साँप की केंचुली। ५. त्वक् इंद्रिय। दे० 'त्वक्'।

त्वच—संज्ञा पुं० [सं०] १. दारचीनी। २. तेजपत्ता। ३. छाल [को०]।

त्वचन—संज्ञा पुं० [सं०] १ खाल से ढाकना। २. खाल उतारना [को०]।

त्वचा—संज्ञा स्त्री० [सं०] त्वक्। चर्म। चमड़ा।

त्वचापत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. तेजपत्ता। २. दारचीनी। ३. छाल (को०)।

त्वचिसार—संज्ञा पुं० [सं०] बाँस।

त्वचिसुगंधा—संज्ञा स्त्री० [सं० त्वचिसुगन्धा] छोटी इलायची।

त्वदीय—सर्व० [सं०] [स्त्री० त्वदीया] तुम्हारा।

त्वन्निःसृत—वि० [सं० त्वत् + निःसृत] तुम से निकला हुआ। उ०—सुख चला है संचित त्वन्निःसृत नेह अमिय।—क्वासि, पृ० ३४।

त्वम्—सर्व० [सं०] तुम [को०]।

त्वर—क्रि० वि० [सं०] शीघ्रतापूर्वक। वेग से [को०]।

त्वरण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'त्वरा' [को०]।

त्वरणीय—वि० [सं०] जिसे शीघ्रता से किया जाय। जिसके करने के लिये शीघ्रता की अपेक्षा हो [को०]।

त्वरता—संज्ञा स्त्री० [सं०] वेग। शीघ्रता [को०]।

त्वरा—संज्ञा स्त्री [सं०] शीघ्रता। जल्दी।

त्वरारोह—संज्ञा पुं० [सं०] कबूतर [को०]।

त्वरावान्—वि० [सं० त्वरावत् [वि० स्त्री० त्वरावती] १. शीघ्रगामी। २. शीघ्रता करनेवाला। काम को जल्दी करनेवाला। ३. फुर्तीला। तेज [को०]।

त्वरि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'त्वरा'।

त्वरित[1]—वि० [सं०] वि० स्त्री० त्वरिता। तेज।

त्वरित[2]—क्रि० वि० शीघ्रता से। उ०—त्वरित आरती ला, उतार लूँ। पद दृगंबु से मैं पखार लूँ।—साकेत, पृ० ३१०।

त्वरितक—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का चावल जिसे तूर्णक भी कहते हैं।

त्वरितगति—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक वर्णवृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में नगण, जगण, नगण और एक गुरु होता है। इसका दूसरा नाम 'अमृतगति' भी है। जैसे,—निज नग खोजत हर छू। पयसित लक्ष्मि वरछू। (शब्द) २. तेज चाल।

त्वरिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] तंत्र के अनुसार एक देवी जिसकी पूजा युद्ध में विजय प्राप्त करने के लिये की जाती है।

त्वसग—संज्ञा पुं० [सं०] पानी का साँप।

त्वष्टा—संज्ञा पुं० [सं० त्वष्टृ] १. विश्वकर्मा। विष्णुपुराण के अनुसार ये सूर्य के सात सारथियों में से एक हैं। २. महादेव। शिव। ३. एक प्रजापति का नाम। ४. बढ़ई। ५. वृत्रासुर के पिता का नाम। ६. बारह आदित्यों में से ग्यारहवें आदित्य जो आँख के अधिष्ठाता देवता माने जाते हैं। ७. एक वैदिक देवता जो पशुओं और मनुष्यों के गर्भ में वीर्य का विभाग करनेवाले माने जाते हैं। ८. सूत्रधर नाम की वर्णसंकर जाति। ९ चित्रा नक्षत्र के अधिष्ठाता देवता का नाम।

त्वष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मनु के अनुसार एक संकर जाति। २. बढ़ई का धंधा (को०)।

त्वष्टर—संज्ञा स्त्री० [सं० त्वष्टृ] दे० 'त्वष्टा'। उ०—हे त्वष्टर। इसको संतान दो।—हिंदु० सभ्यता, पृ० ८१।

त्वाच—वि० [सं०] [वि० स्त्री० त्वाची] त्वचा से संबंधित [को०]।

त्वाष्टी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा।

त्वाष्ट्रा—संज्ञा पुं० [सं०] १. त्वष्टा (विश्वकर्मा) का बनाया हुआ हथियार, वज्र। २. वृत्रासुर का एक नाम। ३. चित्रा नक्षत्र।

त्वाष्ट्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] विश्वकर्मा की कन्या संज्ञा का एक नाम। जो सूर्य को ब्याही थी और जिसके गर्भ से अश्विनीकुमार का जन्म हुआ था। २. चित्रा नक्षत्र।

त्विट्पति—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य [को०]।

त्विष्—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तीव्र आंदोलन। २. प्रचंडता। ३. घबड़ाहट। परेशानी। ४. वाणी। ५. सौंदर्य। ६. प्रभा। चमक [को०]।

त्विषांपति—संज्ञा पुं० [सं० त्विषाम्पति] सूर्य [को०]।

त्विषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रभा। दीप्ति। तेज।

त्विषामीश—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य। २. आक का पेड़।

त्विषि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. किरण । २. शक्ति (को०) ३. चमक । प्रभा (को०) । ४. ओज । तेज । प्रताप (को०) ।

त्वेष—वि० [सं०] तेजस्वी । चमकता हुआ । आभामय [को०] ।

त्वेष्य—वि० [सं०] डरावना । भयावना [को०] ।

त्सरु—संज्ञा पुं० [सं०] १. तलवार का मूठ । २. सर्प ।

त्सरुमार्ग—संज्ञा पुं० [सं०] तलवार की लड़ाई [को०] ।

त्सारुक—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो तलवार चलाने में निपुण हो ।

थ

थ—हिंदी वर्णमाला का सत्रहवाँ व्यंजन वर्ण और तवर्ग का दूसरा अक्षर । इसका उच्चारण स्थान दंत है ।

थंका—संज्ञा पुं० [?] बिलमुकता ।

थंड—संज्ञा पुं० [देश०; सं० स्थण्डिल, प्रा० थंडिल] भूमि । स्थान । प्रदेश । उ०—गुन गंठि कन्हि आए सु थंड । दिय प्रवंत द्रव्य चौजीव थंड ।—पृ० रा०, ६१ । २४९७ ।

थंडा†—वि० [हिं० ठंडा] शीतल । ठंडा । उ०—चित सूँ चित जब मिले तब तनु थंडा होय । 'तुका' मिलना जिन्हासूँ ऐसा बिरला कोय ।—दक्खिनी०, पृ० १०६ ।

थंडिल(पु)—संज्ञा पुं० [सं० स्थण्डिल, प्रा० थंडिल] यज्ञ की वेदी ।

थंथा†—संज्ञा पुं० [देश० ?] नृत्य (ताता थेई इत्यादि) । उ०—मंथन करि चाखे नहीं पढ़ि पढ़ि राखे ग्रंथ । थंथ करत पग परत नहिं कठिन प्रेम को पंथ ।—ब्रज० ग्रं०, पृ० १४० ।

थंब—संज्ञा पुं० [सं० स्तम्भ, प्रा० थंभ, थंब] १. खंभा । स्तंभ । उ०—राजकुल कीर्ति थंब थिर ।—कानन०, पृ० २ । २. सहारा टेक । ३. राजपूतों का भेद ।

थंबन—संज्ञा पुं० [सं० स्तम्भन, प्रा० थंबण] सहारा । टेक । उ०—धरती थंबन उदित अकाशा । ता पर सूर करै परकासा । —धरम०, पृ० १७ ।

थंबा—संज्ञा पुं० [सं० स्तम्भ, प्रा० थंब] खंभा । थंब । थंभ । उ०—माटी की भीत पवन का थंबा, गुन औगुन से जाया ।—दरिया० बानी, पृ० ६५ ।

थंबी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्तम्भी] १. खड़ी लकड़ी । २. चाँड़ । सहारे की बल्ली । थूनी ।

थंभ—संज्ञा पुं० [सं० स्तम्भ, प्रा० थंभ] खंभा । उ०—जंघन को कदली सम जानै । अथवा कनक थंभ सम मानै ।—सूर (शब्द०) ।

थंभन—संज्ञा पुं० [सं० स्तम्भन] १. रुकावट । ठहराव । २. तंत्र के छह प्रयोगों में से एक । दे० 'स्तंभन' । ३. वह ओषध जो शरीर से निकलनेवाली वस्तु (जैसे, मल, मूत्र, शुक्र इत्यादि) को रोके रहे ।

यौ०—जलथंभन = वह मंत्रप्रयोग जिसके द्वारा जल का प्रवाह या बरसना आदि रोक दिया जाय । महिथंभन = धरती को स्थिर रखना । पृथ्वी को रोकना । पृथ्वी को थँमाना या थहाना । उ०—अमरित पय नित स्रवहिं बच्छ महिथंभन जावहिं । हिंदुहिं मधुर न देहिं कटुक तुरकहि न पियावहिं । —अकबरी०, पृ० ३३३ ।

थंभनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्तम्भनी] योग में एक तत्व या धारणा । योग की धारणाओं में से प्रथम धारणा । उ०—पहिली । धारणा थंभनी, दूजी द्रावण होय । तीजी दहिनी जानिए चौथि भ्रामिनी सोय ।—अष्टांग०, पृ० ८६ ।

थंभा†—संज्ञा पुं० [सं० स्तम्भ] दे० 'थंबा' उ०—जल की भीत भीत जल भीतर, पवन भवन का थंभा री ।—संत तुरसी०, पृ० २३४ ।

थंभित(पु)—वि० [सं० स्तम्भित] १. रुका हुआ । ठहरा हुआ । खड़ा हुआ । २. अचल । स्थिर । ३. भय या आश्चर्य से निश्चल । ठक ।

थंभिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्तम्भिनी] योग की एक धारणा । उ०—यह येक थंभिनी एक द्राविणी एक सु दहिनी कहिए । पुनि येक भ्रामिणी येक शोषणी सद्गुरु बिना न लहिए ।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० ५२ ।

थंभी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्तम्भी, प्रा० थंभ, थंब + ई (प्रत्य०)] चाँड़ । सहारे का खंभा । दे० 'थंबी' । उ०—निकसि गइ थंभी ढहि परा मंदिर, रलि गया चिक्कड़ गारा ।—संतवाणी०, भा० २, पृ० ८ ।

थँभना‡—क्रि० अ० [सं० स्तम्भन] दे० 'थमना' ।

थँभवाना—क्रि० स० [हिं० थँभना] दे० 'थमवाना' ।

थँभाना†—क्रि० स० [सं० स्तम्भन] दे० 'थमाना' ।

थ—संज्ञा पुं० [सं०] १. रक्षण । २. मंगल । ३. भय । ४. पर्वत । ५. भयरक्षक । ६. एक व्याधि । ७. भक्षण । आहार ।

थइँ‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० ठाँव, ठाँई] १. ठावँ । जगह । २. ढेर । अटाला ।

थइली†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'थैली' ।

थक—संज्ञा पुं० [सं० स्था] दे० 'थाक' ।

थकन—संज्ञा स्त्री० [हिं० थकना] दे० 'थकान' ।

थकना—क्रि० अ० [सं० √ स्तम् वा √ स्था + करण < √ कृ, प्रा० थक्कन अथवा देश०] १. परिश्रम करते करते और परिश्रम के योग्य न रहना । मिहनत करते करते हार जाना । जैसे, चलते चलते या काम करते करते थक जाना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

२. ऊब जाना । हैरान हो जाना । जैसे,—कहते कहते थक गए पर वह नहीं मानता ।

संयो० क्रि०—जाना ।

३. बुढ़ापे से अशक्त होना। बुढ़ापे के कारण काम करने के योग्य न रहना। जैसे,—अब वे बहुत थक गए, घर ही पर रहते हैं।

संयो० क्रि०—जाना।

४. मंदा पड़ जाना। चलता न रहना। धीमा पड़ जाना। ढीला होना या रुक जाना। जैसे, कारबार का थक जाना, रोजगार का थक जाना। ५. मोहित होकर अचल हो जाना। मुग्ध होना। लुभाना। उ०—(क) थके नयन रघुपति छबि देखी।—तुलसी (शब्द०)। (ख) थके नारि नर प्रेम पियासे।—तुलसी (शब्द०)।

थकर†—संज्ञा स्त्री० [हिं० थकना] थकावट। थकान।

थकरी†—संज्ञा स्त्री० [देश०] स्त्रियों के बाल झाड़ने की खस की कूँची।

थकान—संज्ञा स्त्री० [हिं० थकना] थकने का भाव। थकावट। शिथिलता।

थकाना—क्रि० स० [हिं० थकना] १. श्रांत करना। शिथिल करना। परिश्रम कराते कराते अशक्त कराना। २. हराना।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।

थका माँदा—वि० [हिं० थकना] परिश्रम करते करते अशक्त। श्रांत। श्रमित।

थकार—संज्ञा पुं० [सं०] 'थ' अक्षर या वर्ण।

थकाव—संज्ञा पुं० [हिं० थकना] थकावट। शिथिलता।

थकावट†—संज्ञा स्त्री० [हिं० थकना] थकने का भाव। शिथिलता।

क्रि० प्र०—आना।

थकाहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० थकना + आहट (प्रत्य०)] दे० 'थकावट'। उ०—रोने से उसके चेहरे पर जो थकाहट छा गई थी, उसने उसकी शोभा और भी निर्मल कर रखी थी।—शराबी, पृ० ३२।

थकित—वि० [हिं० थकना अथवा सं० स्था (= स्थिर) + कृत] १. थका हुआ। श्रांत। शिथिल। २. मोहित। मुग्ध। उ०—थकित भई गोपी लखि स्यामहिं।—सूर (शब्द०)।

थकिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० थक्का] १. किसी गाढ़ी चीज को जमी हुई मोटी तह। २. गली हुई धातु का जमा हुआ लोंदा।

यौ०—थकिया की चाँदी = गलाकर साफ की हुई चाँदी।

थकैनी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० थकना] दे० 'थकावट'।

थकौहाँ—वि० [हिं० थकना] [वि० स्त्री० थकौहीं] कुछ थका हुआ। थकामाँदा। शिथिल। उ०—दृग थिरकौहैं अधखुले देह थकौहें ढार। सुरत सुखित सी देखियत दुखित गरभ के भार।—बिहारी (शब्द०)।

थक्कनाⓅ—क्रि० अ० [प्रा० थक्क] दे० 'थकना'। उ०—सबै सेल फिरि थकिक कहूँ काहू न रखायव।—ह० रासो, पृ० ५५।

थक्का—संज्ञा सं० [सं० स्था + कृ, बँग० थाकना (= ठहरना)] [स्त्री० थक्की, थकिया] १. किसी गाढ़ी चीज की जमी हुई मोटी तह। जमा हुआ कतरा। थंठी। जैसे, दही का थक्का, खून का थक्का। २. गली हुई धातु का जमा हुआ कतरा। जैसे, चाँदी का थक्का।

थगित—वि० [प्रा० थक्क, हिं० थकित] १. ठहरा हुआ। रुका हुआ। २. शिथिल। ढीला। मंद।

थट, थट्ट—संज्ञा पुं० [देशी० थट्ट] यूथ। समूह। ठट्ठ। झुंड। उ०—(क) इक्क समय आखेट, राव खेलन बन आए। सकल सुभट थट संग, बीर बाने जु बनाए।—ह० रासो, पृ० १३। (ख) रहैं सुभट थट्ट प्रथिराज संग।—पृ० रा०, ६। ३।

थेड़—संज्ञा पुं० [देशी०] समूह। यूथ। झुंड।

थड़ा—संज्ञा पुं० [सं० स्थल] १. बैठने की जगह। बैठक। २. दुकान की गद्दी।

थणुसुतⓅ—संज्ञा पुं० [सं० स्थाणु (= शिव), प्रा. थाणु, थाणु हिं० थणु + सं० सुत] शिव के पुत्र। १. गणेश। २. कार्तिकेय। स्कंद।

थती†—संज्ञा स्त्री० [हिं० थाती] दे० 'थाती'।

थतिहार†—संज्ञा पुं० [हिं० थाती + हार (प्रत्य०)] वह जिसके पास थाती रखी हो।

थत्ती—संज्ञा स्त्री० [हिं० थाती] ढेर। राशि। अटाला। जैसे, रुपयों की थत्ती।

थथोलना†—क्रि० स० [हिं० टटोलना] ढूँढना। खोजना।

थन—संज्ञा पुं० [सं० स्तन, प्रा० थण] १. गाय, भैंस, बकरी इत्यादि चौपायों का स्तन। चौपायों की चूची। उ०—अंडा पाले काछुई, बिन थन राखै पोख।—संतवाणी०, पृ० २२। २. स्त्रियों का स्तन। उ२—उठे थन थोर बिराजत बाम। धरें मनु हाटक सालिगराम।—पृ० रा०, २१।२०।

थनइला†—संज्ञा पुं० [हिं० थन] दे० 'थनेला'।

थनकुदी—संज्ञा पुं० [देश०] एक छोटी नीले रंग की चमकीली चिड़िया जो कीड़े मकोड़े खाती है। इसका रंग बहुत सुंदर होता है।

थनगन—संज्ञा पुं० [बरमी] एक बड़ा पेड़ जो बरमा, बरार और मलाबार मे बहुत होता है। इसकी लकड़ी बहुत मजबूत होती है और इमारत में लगती है।

थनटुट्ट—संज्ञा स्त्री० [हिं० थन + टूटना] वह स्त्री जिसके स्तन में दूध आना बंद हो गया हो।

थनथाई—वि० [सं० स्तनस्थानीय] एक ही स्तन जिसका स्थान हो। एक स्तन का दूध पीनेवाला। धायभाई। सगोत्रीय। कोका। उ०—करि सलाम हुस्सेन अना बंधी दिसि थाईं। सजरा बंधे कंठ सह सज्जे थनथाईं।—पृ० रा०, ७।३४।

थनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्तन] १. स्तन के आकार की थैलियाँ जो बकरियों के गले के नीचे लटकती हैं। गलथना। २. हाथियों के कान के पास थन के आकार का निकला हुआ मांस का अंकुर जो एक ऐब समझा जाता है। ३. घोड़े की लिंगेंद्रिय में थन के आकार का लटकता हुआ मांस जो एक ऐब समझा जाता है।

थनु†—संज्ञा पुं० [हिं] दे० 'थन'।

थनेला—संज्ञा पुं० [हिं० थन + एला (प्रत्य०)] [स्त्री० थनेली] १. एक प्रकार का फोड़ा जो स्त्रियों के स्तन पर होता है। इसमें सूजन और पीड़ा होती है और घाव हो जाता है। २. गुबरैले की जाति का कीड़ा जिसके विषय में प्रसिद्ध है कि वह गाय, भैंस आदि के थन में डंक मार देता है जिससे दूध सूख जाता है।

थनैत—संज्ञा पुं० [हिं० थान] १. गाँव का मुखिया। २. वह आदमी जो जमींदार की ओर से गाँव का लगान वसूल करे।

थनैल—संज्ञा स्त्री० [हिं० थन + ऐल (प्रत्य०)] वह जिसका थन भारी हो (गाय आदि)।

थनैला—संज्ञा पुं० [हिं० थन + ऐला (प्रत्य०)] दे० 'थनेला'।

थनैली—संज्ञा स्त्री० [हिं० थन + ऐली (प्रत्य०)] दे० 'थनेला'।

थप्र(पु)—संज्ञा पुं० [सं० स्थान] दे० 'थान'। उ०—दैव काल संजोग तपै ढिल्ली घर थप्रो।—पृ० रा०, १। ७०२।

थपकना—क्रि० स० [अनु० थप थप] १. प्यार से या आराम पहुँचाने के लिये किसी के शरीर पर धीरे धीरे हाथ मारना। हाथ से धीरे धीरे ठोंकना। जैसे, सुलाने के लिये बच्चे को थपकना। २. धीरे धीरे ठोंकना। जैसे, थापी से गच थपकना। ३. पुचकारना या दम दिलासा देना। ४. किसी का क्रोध ठंढा करना। शांत करना।

थपका—संज्ञा पुं० [हिं० थपकना] दे० 'थपकी'।

थपकी—संज्ञा स्त्री० [हिं० थपकना] १. किसी के शरीर पर (प्यार से या आराम पहुँचाने के लिये) हथेली से धीरे धीरे पहुँचाया हुआ आघात। २. हाथ से धीरे धीरे ठोंकने की क्रिया।

क्रि० प्र०—देना। उ०—थपकी देने लगीं तरंगें मार थपेड़े।—साकेत, पृ० ४१३। —लगाना।

२. हाथ के झटके से पहुँचाया हुआ कड़ा आघात। ३. जमीन को पीटकर चौरस करने की मुँगरी। ४. थापी। ५. धोबियों का मुँगरा या डंडा जिससे वे धोते समय भारी कपड़ों को पीटते हैं।

थपड़ी—संज्ञा स्त्री० [अनु० थप थप] १. दोनों हथेलियों को एक दूसरे से जोर से टकराकर ध्वनि उत्पन्न करने की क्रिया। ताली।

क्रि० प्र०—पीटना।—बजाना।

मुहा०—थपड़ी पीटना या बजाना = जोर जोर से हँसी करना। उपहास करना। दिल्लगी उड़ाना।

२. ताली बजने का शब्द। ३. बेसन की पूरी जिसमें हींग, जीरा और नमक पड़ा रहता है।

थपथपी—संज्ञा स्त्री० [अनु० थप थप] दे० 'थपकी'।

थपन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० स्थापन] स्थापन। ठहराने या जमाने का काम। उ०—उथपे थपन थिर थपेउ थपनहार केसरीकुमार बल आपनो सँभारिये।—तुलसी (शब्द०)।

यौ०—थपनहार = स्थापित या प्रतिष्ठित करनेवाला।

थपना(पु)[१]—क्रि० स० [सं० स्थापन] १. स्थापित करना। बैठाना। ठहराना। जमाना। २. प्रतिष्ठित करना।

थपना[२]—क्रि० अ० १. स्थापित होना। जमना। ठहरना। २. प्रतिष्ठित होना।

थपना[३]—क्रि० स० [अनु० थप थप] धीरे धीरे पीटना या ठोंकना।

थपना[४]—संज्ञा पुं० १. पत्थर, लकड़ी आदि का औजार या टुकड़ा जिससे किसी वस्तु को पीटें। पिटना। २. थापी।

थपरा†—संज्ञा पुं० [अनु०] दे० 'थप्पड़'।

थपाना(पु)†—क्रि० स० [थपना] स्थापित कराना। स्थित कराना। उ०—जगन्नाथ कहँ दीन्ह थपाई। तब हम चल बँदवारे आई।—कबीर सा०, पृ० १६२।

थपुआ—संज्ञा पुं० [हिं० थपना (=पीटना)] छाजन का वह खपड़ा जो चौड़ा, चौरस और चिपटा हो। अर्थात् नाली के आकार का न हो जैसी कि नरिया होती है।

विशेष—खपरैल में प्रायः थपुआ और नरिया दोनों का मेल होता है। दो थपुओं के जोड़ के ऊपर नरिया औंधी करके रखी जाती है।

थपेटा—संज्ञा पुं० [अनु०] दे० 'थपेड़ा'।

थपेड़ना—क्रि० स० [हिं०] थपेड़ा देना। थपेड़ा लगाना।

थपेड़ा—संज्ञा पुं० [अनु० थप थप] १. हथेली से पहुँचाया हुआ आघात। थप्पड़। २. एक वस्तु पर दूसरी वस्तु के बार बार वेग से पड़ने का आघात। धक्का। टक्कर। जैसे, नदी के पानी का थपेड़ा। उ०—थपकी देने लगीं तरंगें मार थपेड़े।—साकेत, पृ० ४१३।

क्रि० प्र०—लगना।—मारना।

थपोड़ी†—संज्ञा स्त्री० [अनु०] दे० 'थपड़ी'।

थप्प†—संज्ञा पुं० [अनु०] थप् का सा शब्द। उ०—थप्प थप्प थनवार कइ सुनि रोमांचित्र अंग।—कीर्ति०, पृ० ८४।

थप्पड़—संज्ञा पुं० [अनु० थप थप] १. हथेली से किया हुआ आघात। तमाचा। झापड़। चपेट।

क्रि० प्र०—मारना।—लगाना।

मुहा०—थप्पड़ कसना, देना, लगाना = तमाचा मारना। झापड़ मारना।

२. एक वस्तु पर दूसरी वस्तु के बार बार वेग से पड़ने का आघात। धक्का। जैसे, पानी के हिलोर का थप्पड़, हवा के झोंके का थप्पड़। ३. दाद या फुंसियों का छत्ता। चकत्ता।

थप्पण—वि० [सं० स्थापन, प्रा० थप्पण] स्थापित करनेवाला। बसानेवाला। रक्षा करनेवाला। उ०—साहा ऊथप थप्पणो, पहु तरनाहाँ पत्र।—रा०, रू०, पृ० १०।

थप्पन—संज्ञा पुं० [सं० स्थापन, प्रा० थप्पण] स्थापन। स्थापित करना। उ०—नृपति को थप्पन उथप्पन समर्थ सत्रुसाल सुत करै करतूति चित्त चाह की।—मति० ग्रं०, पृ० ३७२।

थप्परि—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थापन, प्रा० थप्पण] न्यास। धरोहर। उ०—राज सुनो चालुक कहै है थप्परि इह कंथ। राति परी जुध नहिं करै प्रात करै फिर जुद्ध।—पृ० रा०, १।४६१।

थप्पा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का जहाज।

थविर—वि०, संज्ञा पुं० [सं० स्थविर, प्रा० थविर] दे० 'स्थविर'।—सावयधम्म दोहा, पृ० १२८।

थम—संज्ञा पुं० [सं० स्तम्भ, प्रा० थंभ] १. खंभा। लाट। स्तंभ। थूनी। उ०—धरती पैठि गगन थम रोपी इस बिधि बन थंड पेलो।—रामानंद०, पृ० १५। २. केलों की पेड़ी। ३. छोटी छोटी पूरियाँ और हलुआ जिसे देवी को चढ़ाने के लिये स्त्रियाँ ले जाती हैं।

थमकाना†—क्रि० स० [हिं० थमकना या ठमकना का प्रे० रूप] स्तंभित करना। रोकना। उ०—साँस को थमका कर सारे बदन को कड़ा किया और जंभाई ली।—नई०, पृ० ६६।

थमकारीⓊ—वि० [सं० स्तम्भकारिन्] स्तंभन करनेवाला। रोकनेवाला। उ०—मन बुधि चित अहंकार दसें इंद्रिय प्रेरक थमकारी।—सूर (शब्द०)।

थमना—क्रि० अ० [सं० स्तम्भन (= रुकना)] १. रुकना। ठहरना। चलता न रहना। जैसे, गाड़ी का थमना, कोल्हू का थमना। २. जारी न रहना। बंद हो जाना। जैसे, मेह का थमना, आँसुओं का थमना। ३. धीरज धरना। सब्र करना। ठहरा रहना। उतावला न होना। जैसे,—थोड़ा थम जाओ, चलते हैं।

संयो० क्रि०—जाना।

थमुआ†—संज्ञा पुं० [हिं० थामना] नाव के डाँड़े का हत्था।

थम्मा†—संज्ञा पुं० [सं० स्तम्भ] [स्त्री० थंमी] दे० 'थंभ'। उ०—(क) थम्मों के पलि लागई अहि सिर पर अगनि मँगाक।—प्राण०, पृ० २४४। (ख) काम बिरह की आठी बाधा। बिरह अगिन की थम्मी बाधा'—प्राण०, पृ० १५२।

थर[१]—संज्ञा स्त्री० [सं० स्तर] तह। परत।

थर[२]—संज्ञा पुं० [सं० स्थल] १. दे० 'थल'। उ०—एहि थर बनी क्रीड़ा गजमोचन और अनंत कथा स्तुति गाई।—सूर०, १।६। २. बाघ की माँद।

थरक—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'थिरक'।

थरकनाⓊ†—क्रि० अ० [अनु० थर थर + करना] थर्राना। डर से काँपना। उ०—बंक दृग बदन मयंक वारे अंक भरि अग मे ससंक परयंक थरकत है।—देव (शब्द०)।

थरकाना—क्रि० स० [हिं० थरकना] डर से कँपाना।

थरकुलिया‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० थाली] दे० 'थरुलिया'।

थर थर[१]—संज्ञा स्त्री० [अनु०] डर से काँपने की मुद्रा।

मुहा०—थर थर करना = डर से काँपना।

थर थर[२]—क्रि० वि० काँपने की पूरी मुद्रा के साथ। जैसे,—वह डर के मारे थर थर काँपने लगा। उ०—थर थर काँपहिं पुर नर नारी।—तुलसी (शब्द०)।

थरथर कँपनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० थरथर + काँपना] एक छोटी चिड़िया जो बैठने पर काँपती हुई मालूम होती है।

थरथराटⓊ—संज्ञा स्त्री० [हिं० थरथराना] थरथराहट। कँपकपी। उ०—थरथराट उप्पनो तज्यो मक्कोट कामकृत।—पृ० रा०, ६१।१८०।

थरथराना—क्रि० अ० [अनु० थर थर] १. डर के मारे काँपना। २. काँपना। उ०—सारी जल बीच प्यारी पीतम के अंक लागी चंद्रमा के चारु प्रतिबिंब ऐसी थरथरात।—श्रृंगारसुधाकर (शब्द०)।

थरथराहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० थरथराना] कँपकँपी जो डर के कारण हो।

थरथरी—संज्ञा स्त्री० [अनु० थर थर] कँपकँपी जो डर के कारण हो।

क्रि० प्र०—छूटना।—लगना।

थरथ्थरⓊ—संज्ञा स्त्री० [अनु०] दे० 'थर थर'। उ०—थरथ्थर कायर आइ रमंकि।—प० रासो, पृ० ४२।

थरना[१]—क्रि० स० [सं० थुर्व, हिं० थुरना] हथौड़ी आदि से धातु पर चोट लगाना।

थरना[२]—संज्ञा पुं० सुनारों का एक औजार जिससे वे पत्ती की नक्काशी बनाते हैं।

थरना[३]—संज्ञा स्त्री० [सं० स्तर, प्रा० त्थर, थर] फैलना। उ०—कारी घटा डरावनी आई। पापिनि साँपिनि सी थरि छाई।—नंद० ग्रं०, पृ० १६१।

थरपनाⓊ†—क्रि० स० [सं० स्थापन] स्थापित करना। प्रतिष्ठित करना। स्थापना। उ०—दरिया साँचा सूरमा, अरि दल घाले चूर। राज थरपिया राम का, नगर बसा भरपूर।—दरिया० बानी, पृ० १३। (ख) बंधन जाल जुक्त जम दीनी, कीनी काल थरपना।—तुरसी० श०, पृ० २२६।

थरमस—संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार का पात्र जिसमें वस्तुओं का तापमान देर तक सुरक्षित रहता है।

थरसना—क्रि० अ० [सं० त्रसन] थर्राना। काँपना। त्रास पाना। उ०—घनआनंद कौन अनोखी दसा मति आवरी बावरी ह्वै थरसै।—रसखान०, पृ० ५३।

थरहरना—क्रि० अ० [देशी थरहर] हिलना डुलना। थरथराना। काँपना। उ०—ताजन पर कलँगी थरहुरई। तुपगन दलदल सोभा करई।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ७०५।

थरहराना—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'थरथराना'।

थरहरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० थरहरना] कँपकँपी जो डर के कारण हो। उ०—खरी निदाघी दुपहरी तपनि भरी बन गेह। डहा परी यह कहि कहा परी थरहरी देह।—स० सप्तक, पृ० २७६

थरहाई†—संज्ञा स्त्री० [देश०] एहसान। निहोरा।

थरि—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थली] १. बाघ आदि की माँद। चुर। उ०—सिंह थरि जाने बिन जावली जंगल भठी, हठी गज एदिल पठाय करि भटक्यो।—भूषण ग्रं०, पृ० १२। २. स्थली। आवास स्थान। रहने की जगह। उ०—जौ लगि फेरि मुकुति है परों न पिंजर माहँ। जाउँ बेगि थरि आपनि है जहाँ बिंझ बनाँह।—पद्मावत, पृ० ३७३।

थरिया—संज्ञा स्त्री [सं० स्थालिका] दे० 'थाली'।

थरुⓊ†—संज्ञा पुं० [सं० स्थल] दे० 'थल'।

थरुलिया†—संज्ञा स्त्री० [हिं० थारी] छोटी थाली।

थरुहट—संज्ञा पुं० [देश० थारु] थरुओं की बस्ती।

थरहटी—संज्ञा स्त्री० [देश० थारू] थारू जाति की बोली। उ०—भीतरी मधेस की निचली तलहटी में 'थरहटी' बोली है, जिसे थारू लोग बोलते हैं।—नेपाल, पृ० ६८।

थर्ड—वि० [अं०] तृतीय। तीसरा।

थर्मामीटर—संज्ञा पुं० [अं०] सरदी गरमी नापने का यंत्र। दे० 'तापमान'।

थर्राना—क्रि० अ० [अनु० थरथर] डर के मारे काँपना। दहलना। जैसे,—वह शेर को देखते ही थर्रा उठा।

संयो० क्रि०—उठना।—जाना।

थल—संज्ञा पुं० [सं० स्थल] १. स्थान। जगह। ठिकाना। उ०—सुमति भूमि थल हृदय अगाधू। वेद पुरान उदधि घन साधू।—मानस, १। ३६।

मुहा०—थल बैठना या थल से बैठना = (१) आराम से बैठना। (२) स्थिर होकर बैठना। शांत भाव से बैठना। जमकर बैठना। आसन जमाकर बैठना।

२. सूखी धरती। वह जमीन जिसपर पानी न हो। जल का उलटा। जैसे,—(क) नाव पर से उतर कर थल पर आना। (ख) दुर्योधन को जल का थल और थल का जल दिखाई पड़ा। ३. थल का मार्ग।

यौ०—थलचर। थलबेड़ा। जलथल।

४. ऊँची धरती या टीला जिसपर बाढ़ का पानी न पहुँच सके। ५. वह स्थान जहाँ बहुत सी रेत पड़ गई हो। थूह। थली। रेगिस्तान। जैसे, थर परकर। ६. बाघ की माँद। चुर। ७. बादले का एक प्रकार का गोल (चवन्नी के बराबर का) साज जिसे बच्चों की टोपी आदि पर जब चाहें तब टाँक सकते हैं। ८. फोड़े का लाल और सूजा हुआ घेरा। व्रणमंडल। जैसे, फोड़े का थल बाँधना।

क्रि० प्र०—बाँधना।

थलकना—क्रि० अ० [सं० स्थूल, हिं० थुला, थुलथुला] १. कसा या तना न रहने के कारण झोल खाकर हिलना या फूलना पचकना। झोल पड़ने के कारण ऊपर नीचे हिलना। उ०—थोंद थलकि बर चाल, मनौं मृदंग मिलावनो।—नंद० ग्रं०, पृ० ३३४। २. मोटाई के कारण शरीर के माँस का हिलने डोलने में हिलना। थलथल करना।

थलचर—संज्ञा पुं० [सं० स्थलचर] पृथ्वी पर रहनेवाले जीव। उ०—जलचर थलचर नभचर नाना। जे जड़ चेतन जीव जहाना।—मानस, १।३।

थलचारी—वि० [सं० स्थलचारिन्] भूमि पर चलनेवाले।

थलज—वि० [सं० स्थल + ज] स्थल पर उत्पन्न। उ०—थलज जलज झलमलत ललित बहु भँवर उड़ावै। उड़ि उड़ि परत पराग कछू छबि कहत न आवै।—नंद० ग्रं०, पृ० २६।

थलथल—वि० [सं० स्थूल, हिं० थूला] मोटाई के कारण झूलता या हिलता हुआ।

मुहा०—थलथल करना = मोटाई के कारण किसी अंग का झूल झूलकर हिलना। जैसे,—चलने में उसका पेट थलथल करता है।

थलथलाना—क्रि० [हिं० थूला] मोटाई के कारण शरीर के माँस का झूलकर हिलना।

थलपति—संज्ञा पुं० [सं० स्थल + पति] राजा। उ०—नवन नमन मन लगे सब थलपति तायो।—तुलसी (शब्द०)।

थलबेड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० थल + बेड़ा] नाव या जहाज ठहरने की जगह। नाव लगने का घाट।

मुहा०—थलबेड़ा लगना = ठिकाना लगना। आश्रय मिलना। थल बेड़ा लगाना = ठिकाना लगाना। आश्रय ढूँढ़ना। सहारा देना।

थलभारी—संज्ञा पुं० [हिं० थल + भारी] पालकी के कहारों की एक बोली जिससे वे पिछले कहारों को आगे रेतीले मैदान का होना सूचित करते हैं।

थलराना—क्रि० स०[हिं० दुलराना]प्रसन्न करना। अनुकूल बनाना। उ०—नेह नवोढ़ा नारि कों बारि बारु का न्याय। थलराए पै पाइए, नीपीड़े न रसाय।—नंद० ग्रं०, पृ० १४१।

थलरुह⑤—वि० [सं० स्थलरुह] धरती पर उत्पन्न होनेवाले जंतु वृक्ष आदि। उ०—जल थलरुह फल फूल सलिल सब करत पेम पहुनाई।—तुलसी (शब्द०)।

थलिया—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थालिका] थाली। टाठी।

थली—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थली] १. स्थान। जगह। जैसे, पर्वतथली, बनथली। २. जल के नीचे का तल। ३. ठहरने या बैठने की जगह। बैठक। उ०—थली में कोई सरदार था, उसके पास एक वैष्णव साधु आ गया।—कबीर सा०, पृ० ६७२। ४. परती जमीन। ५. बालू का मैदान। रेतीली जमीन। ६. ऊँची जमीन या टीला।

थवई—संज्ञा पुं० [सं० स्थपति, प्रा० थवइ] मकान बनानेवाला कारीगर। ईंट पत्थर की जोड़ाई करनेवाला शिल्पी। राज। मेमार।

थवन—संज्ञा पुं० [देश०, या सं० स्थापन] दुलहिन की तीसरी बार अपने पति के घर की यात्रा।

थसकना†—क्रि० अ० [देश०] नीचे की ओर दबना। धसकना।

थवना—संज्ञा पुं० [सं० स्थापन, हिं० थपना] जुलाहों के उपयोग में आनेवाला कच्ची मिट्टी का एक गोला जिसमें लगी हुई लकड़ी के छेद में चरखी की लकड़ी पड़ी रहती है। इस चरखी के घूमने से नारी भरी जाती है (जुलाहे)।

थह—संज्ञा पुं० [देशी] निवास। निलय। स्थान। गुफा। माँद। उ०—(क) कानन सद्दन संभरत कुहु कलह आवेट। थह सुतो वर जगयो सिसु दंपति घटि पेट।—पृ० रा०, १७।४। (ख) जागै नह थह मै जितै सभ्भ हायल साद्दूल।—बाँकी० ग्रं०, भा० १, पृ० १३।

थहरा⑤†—संज्ञा पुं० [सं० स्थल, प्रा० थल, अथवा देशी थह] स्थान। उ०—कमठ पीठ कलमलिय थहरा डलमलिय सुथर थिर।—रघु० रू०, पृ० ४२।

थहना(पु)—क्रि० स० [हिं० थाह] थाह लेना। पता लगाना। उ०—थथा थाह थहो नहिं जाई। यह थीरे वह थीर रहाई। —कबीर (शब्द०)।

थहरना—क्रि० अ० [अनु०] काँपना। थहराना। उ०—उन गोल कपोलन पै अति लोल अमोल लसी मुक्ता थहरैं।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० १३२।

थहराना—क्रि० अ० [अनु० थर थर] १. दुर्बलता या भय से अंगों का काँपना। कमजोरी या डर से बदन का काँपना। २. काँपना।

थहाना—क्रि० स० [हिं० थाह] १. गहराई का पता लगाना। थाह लेना। उ०—(क) सूर कहौ ऐसो को त्रिभुवन आवै सिंधु थहाई।—सूर (शब्द०)। (ख) तुलसी तीरहि के चले समय पाइबी थाह। धाइ न जाइ थहाइबी सर सरिता अवगाह।—तुलसी (शब्द०)।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।—लेना।

२. किसी की विद्या बुद्धि या भीतरी अभिप्राय आदि का पता लगाना।

थहारना—क्रि० स० [हिं० ठहराना] जहाज को ठहराना।

थाँग—संज्ञा स्त्री० [हिं० थान] चोरों या डाकुओं का गुप्त स्थान। चोरों के रहने की जगह। २. खोज। पता। सुराग (विशेषत: चोर या खोई हुई वस्तु आदि का)।

क्रि० प्र०—लगाना।

३. भेद। गुप्त रूप से लगा हुआ किसी बात का पता। जैसे,—बिना थाँग के चोरी नहीं होती। ४. सहारा। आश्रय स्थान। उ०—अति उमगी री आन प्रीति नदी सु अगाध जल। धार मौझ ये प्रान, बरस थाँग बिन नाहिं कल।—ब्रज० ग्रं०, पृ० ४।

थाँगी—संज्ञा पुं० [हिं० थाँग] १. चोरी का माल मोल लेने या अपने पास रखनेवाला आदमी। २. चोरों का भेदिया। चोरों को चोरी के लिये ठिकाने आदि का पता देनेवाला मनुष्य। ३. चोरी के माल का पता लगानेवाला आदमी। जासूस। ४. चोरों का अड्डा रखनेवाला आदमी। चोरों के गोल का सरदार।

थाँगीदारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० थाँग + फ़ा० दार] थाँग का काम।

थाँटा—वि० [देश०] शीतल। प्रसन्न। ठंढा। उ०—पैड पैड ज्यारा विसरा त्यारी कड़वा वैरा। जग जाँतू देखी जले नहिं थाँटा ह्वै नैरा।—बाँकी० ग्रं०, भा० ३, पृ० ७६।

थाँणा†—संज्ञा पुं० [सं० स्थान, प्रा० थाण] स्थान। ठिकाना। उ०—थाँणो आयो राव आपणो।—बी० रासो, पृ० १०७।

थाँभ[1]—संज्ञा पुं० [सं० स्तम्भ] १. खंभा। २. थूनी। चाँड़। उ०—थाँभ नाहिं उठि सकै न थूनी।—जायसी ग्रं०, पृ० १५७।

थाँभना†—क्रि० स० [हिं० थाँभ] दे० 'थामना'।

थाँभा—संज्ञा पुं० [सं० स्तम्भ] खंभा। स्तंभ। उ०—कोई सज्जण आविया, थाँहि की ओली बाट। थाँभा नाचइ घर हँसइ खेलण लागी खाट।—ढोला०, दू० ५४१।

थाँवला—संज्ञा पुं० [सं० स्थल, हिं० थल] वह घेरा या गड्ढा जि कोई पौधा लगा हो। थाला। आलवाल। उ०—संतानों ओझा के घर तुलसी का थाँवला होता है।—प्रा० भा० प पृ० २०।

था—क्रि० अ० [सं० स्था] है शब्द का भूतकाल। एक शब्द जिस भूतकाल में होना सूचित होता है। रहा। जैसे,—वह उ समय वहाँ नहीं था।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग भूतकाल के भेदों के रूप बनाने भी संयुक्त रूप से होता है। जैसे, आता था, आया था, रहा था, इत्यादि।

थाइल—वि० [सं० स्थायी ?] थाई। स्थायी। उ०—हावनि भावनि करति मनसिज मन उपजाइ। दाइल वह थाइल क पाइल पाइ बजाइ।—स० सप्तक, पृ० ३६५।

थाई[1]—वि० [सं० स्थायिन्, स्थायी] बना रहनेवाला। स्थि रहनेवाला। न मिटने या जानेवाला। बहुत दिनों त चलनेवाला।

थाई[2]—संज्ञा पुं० १. बैठने की जगह। बैठक। अथाई। २. गीत प्रथम पद जो गाने में बार बार कहा जाता है। ध्रुवपद स्थायी।

थाईभाव—संज्ञा पुं०[सं० स्थायी भाव] दे० 'स्थायी भाव'। उ०—र हाँसी अरु सोक पुनि क्रोध उछाह सुजान। भय निंदा बिस्म सदा, थाईभाव प्रमान।—केशव ग्रं०, भा० १, पृ० ३१।

थाउ†—संज्ञा पुं० [सं० स्थान, हिं० ठाँउ, ठाँव] उ०—ऊँचो अपरंपर थाउ। अमर अजोनी सचि सखत पाउ।—प्रा पृ० २५२।

थाक[1]—संज्ञा पुं० [सं० स्था] १. गाँव की सरहद। ग्रामसीमा। थोक। ढेर। समूह। अटाला। राशि। उ०—मधु, मेव पकवान, मिठाई, घर घर तें लै निकसी थाक।—नंद० ग्रं० पृ० ३६०। ३. सीमा। हद। उ०—मेरे कहाँ थाकु गोर को नवनिधि मंदिर यामहिं।—तुलसी (शब्द०)।

थाक†[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० थकना] थकावट।

क्रि० प्र०—लगना।

थाकना†—क्रि० अ० [सं० स्था, बंग० थाका] १. शक्ति न रहना थक जाना। शिथिल होना। रुकना। उ०—थाकी गति अंग की, मति परि गई मंद सूखि झाँझरी सी ह्वैके देह ला पियरान।—हरिश्चंद्र—(शब्द०)। २. रुकना। ठहरना उ०—जग जलबूड़ तहाँ लगि ताकी। मोरि नाव खेवक बि थाकी।—जायसी (शब्द०)। ३. स्तंभित होना। ठगा स होना। आश्चर्यचकित होना। उ०—रतन अमोलक पर कर रहा जौहरी थाक।—दरिया० बानी, पृ० १८।

थाका†—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'थकका'। उ०—थाका होय सचि के ताहा।—कबीर सा०, पृ० १५७८।

थाकि†Ⓟ—संज्ञा स्त्री० [हिं० थकना] थकावट । शैथिल्य ।

थाकु†—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'थाक' ।

थागना†—क्रि० अ० [देश०] रुकना । थाकना । उ०—अपणे घर की गम नहीं पर घर थागे काय । हंस हंस की गम चले कागा काग की पाय ।—राम० धर्म०, पृ० ७२ ।

थाट¹—संज्ञा पुं० [हिं०] संगीत में रागों का आधार । दे० 'ठाट' ।

थाट²—संज्ञा पुं० [देश०] कामना । मनोरथ । उ०—रिख्या बाट करें जो राघव थाट संपूरण थावै ।—रघु० रू० पृ० ६५ ।

थाटनहार—वि० [हिं० ठाटना (=बनाना)] ठाठने (बनाने सँवारने) वाला । उ०—थाटनहारा एको सोई एक ही रीति एक ते आई ।—प्राण०, पृ० ४६ ।

थात Ⓟ—वि० [सं० स्थातृ, स्थाता] जो बैठा या ठहरा हो । स्थित । उ०—द्वै पिक बिंब बतीस वज्रकन एक जलज पर थात ।—सूर (शब्द०) ।

थाति—संज्ञा स्त्री० [हिं० थात] १. स्थिरता । ठहराव । टिकाव । रहन । उ०—सगुन ज्ञान बिराग भक्ति सुसाधनन की पाँति । भाजि विकल बिलोकि कलि अघ ऐगुनन की थाति ।—तुलसी (शब्द०) । २. दे० 'थाती' ।

थाती—संज्ञा स्त्री० [हिं० थात] १. समय पर काम आने के लिये रखी हुई वस्तु । २. वह वस्तु जो किसी के पास इस विश्वास पर छोड़ दी गई हो कि वह माँगने पर दे देगा । धरोहर । उ०—दुइ बरदान भूप सन थाती । माँगहु आज जुड़ावहु छाती ।— तुलसी (शब्द०) । ३. संचित धन । इकट्ठा किया हुआ धन । रक्षित द्रव्य । जमा । पूँजी । गथ । ४. दूसरे का धन जो किसी के पास इस विचार से रखा हो कि वह माँगने पर दे देगा । धरोहर । अमानत । उ०—बारहि बार चलावत हाथ सो का मेरी छाती में थाती धरी है ।—(शब्द०) ।

थाथी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'थाती' । उ०—कहैं कबीर जतन करो साधो, सतगुरु की थाथी ।—कबीर श०, भा० १, पृ० ४८ ।

थान—संज्ञा पुं० [सं० स्थान] १. जगह । ठौर । ठिकाना । २. रहने या ठहरने की जगह । डेरा । निवासस्थान । ३. किसी देवी देवता का स्थान । देवल । जैसे, माई का थान । उ०—इह गोपेसुर थान अपूरब । नित प्रति निसा ऊतरै सौरभ ।—पृ० रा०, १ । ३९८ । ४. वह स्थान जहाँ घोड़े या चौपाए बाँधे जायँ ।

मुहा०—थान का टर्रा=(१) वह घोड़ा जो खूँटे से बँधा बँधा नटखटी करे । घुड़साल में उपद्रव करनेवाला । (२) वह जो घर पर ही या पड़ोस में ही अपना जोर दिखाया करे, बाहर कुछ न बोले । अपनी गली में ही शेर बननेवाला । थान का सच्चा = सीधा घोड़ा । वह घोड़ा जो कहीं से छूटकर फिर अपने खूँटे पर आ जाय । थान में आना = (घोड़े का) धूल में लोटना । अच्छे थान का घोड़ा = अच्छी जाति का घोड़ा । प्रसिद्ध स्थान का घोड़ा ।

५. वह घास जो घोड़े के नीचे बिछाई जाती है । ६. कपड़े गोटे आदि का पूरा टुकड़ा जिसकी लंबाई बँधी हुई होती है । जैसे, मारकीन का थान, गोटे का थान । ७. संख्या । अदद । जैसे, एक थान अशरफी, चार थान गहने, एक थान कलेजी । ८. लिंगेंद्रिय (बाजारू) ।

थानक—संज्ञा पुं० [सं० स्थानक] १. स्थान । जगह । २. नगर । ३. थावँला । थाला । आल बाल । ४. फेन । बबूला । झाग । ५. देवस्थान । देवल । उ०—राजन मन चक्रित भयौ सुनि थानक की बिद्धि ।—पृ० रा०, १।४०१ ।

थानपती Ⓟ†—संज्ञा पुं० [सं० स्थानपति] स्थान का अधिकारी । स्वामी । उ०—तहँ मिले प्रीतम फिर नहीं बिछोहा । तहँ थानपती निज महली सोहा ।—प्राण०, पृ० ११० ।

थाना—संज्ञा पुं० [सं० स्थानक, प्रा० थाण, हिं० थान] १. अड्डा । टिकने या बैठने का स्थान । उ०—पुण्यभूमि पर रहे पापियों का थाना क्यों ? —साकेत, पृ० ४१६ । २. वह स्थान जहाँ अपराधों की सूचना दी जाती है और कुछ सरकारी सिपाही रहते हैं । पुलिस की बड़ी चौकी ।

मुहा०—थाने चढ़ना = थाने में किसी के विरुद्ध सूचना देना । थाने में इत्तला करना । थाना बिठाना = पहरा बिठाना । चौकी बिठाना ।

३. बाँसों का समूह । बाँस की कोठी ।

थानापति—संज्ञा पुं० [सं० स्थानपति] ग्रामदेवता । स्थानरक्षक । देवता ।

थानी¹—संज्ञा पुं० [सं० स्थानिन्] १. स्थान का स्वामी । वह जिसका स्थान हो । २. दिक्पाल । लोकपाल । ३. घरवाला । स्वामी । पति । उ०—तेरा थानी क्यों मुआ गह क्यों न राखा बाहि । सहजो बहुतक मिल छुटे चौरासी के माहि । —सहजो०, पृ० २३ ।

थानी²—वि० संपन्न । पूर्ण ।

थानु Ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० स्थाणु] शिव ।

थानुसुत—संज्ञा पुं० [सं० स्थाणु + सुत, प्रा० थाणु + सं० सुत] शिव जी के पुत्र गणेश । गजानन । उ०—थोरे थोरे मदनि कपोल फूले फूले फूले, डोलें जल थल बल थानुसुत नाखे हैं ।—केशव ग्रं०, भा० १, पृ० १३१ ।

थानैत—संज्ञा पुं० [हिं० थान] दे० 'थानैत' ।

थानेदार—संज्ञा पुं० [हिं० थाना + फ़ा० दार] थाने का वह अफसर या प्रधान जो किसी स्थान में शांति बनाए रखने और अपराधों की छानबीन करने के लिये नियुक्त रहता है ।

थानेदारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० थाना + फ़ा० दारी] थानेदार का पद या कार्य ।

थानैत—संज्ञा पुं० [हिं० थान + ऐत (प्रत्य०)] १. किसी स्थान का अधिपति । किसी चौकी या अड्डे का मालिक । २. किसी स्थान का देवता । ग्रामदेवता ।

थाप—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थापन] १. तबले, मृदंग आदि पर पूरे पंजे का आघात । थपकी । ठोंक । उ०—सुदृढ़ मार्ग पर भी द्रुत लय में यथा मुरज की थापें हैं ।—साकेत, पृ० ३७२ ।

क्रि० प्र०—देना।—लगाना।

२. थप्पड़। तमाचा। पूरे पंजे का आघात। जैसे, शेर की थाप, पहलवानों की थाप।

क्रि० प्र०—मारना।—लगाना।

३. वह चिह्न जो किसी वस्तु के भरपूर बैठने से पड़े। एक वस्तु पर दूसरी वस्तु के दाब के साथ पड़ने से बना हुआ निशान। छाप। जैसे, दीवार पर गीले पंजे का थाप, बालू पर पैर की थाप।

क्रि० प्र०—देना।—पड़ना।—लगना।

४. स्थिति। जमाव। ५. किसी की ऐसी स्थिति जिसमें लोग उसका कहना मानें, भय करें तथा उसपर श्रद्धा विश्वास रखें। महत्वस्थापन। प्रतिष्ठा। मर्यादा। धाक। साख। उ०—कहै पदमाकर सुमहिमा मही में भई महादेव देवन में बाढ़ी थिर थाप है।—पद्माकर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—जमना।—होना।

६. मान। कदर। प्रमाण। जैसे,—उनकी बात की कोई थाप नहीं। ७. पंचायत। ८. शपथ। सौगंध। कसम।

मुहा०—किसी की थाप देना = किसी की कसम खाना। शपथ देना।

थापणि—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थापना, प्रा० थावणा] स्थिरता। स्थापना। स्थैर्य। शांति। उ०—थापणि पाई थिति भई, सतगुर दीन्हीं धीर। कबीर हीरा बणजिया, मानसरोवर तीर।—कबीर ग्रं०, पृ० २८।

थापन—संज्ञा पुं० [सं० स्थापन] १. स्थापित करने की क्रिया। जमाने या बैठाने की क्रिया। २. किसी स्थान पर प्रतिष्ठित करने का कार्य। रखने का कार्य। उ०—कहेउ जनक कर जोरि कीन मोहि आपन। रघुकुल तिलक भुआल सदा तुम उथपन थापन।—तुलसी (शब्द०)।

थापनहार—वि० [सं० स्थापन, हिं० थापन + हार] स्थापन या थापन करनेवाला। प्रतिष्ठित करनेवाला। उ०—उथपन थापनहारा।—धरनी०, पृ० ४२।

थापना[1]—क्रि० स० [सं० स्थापन] १. स्थापित करना। जमाना। बैठाना। जमाकर रखना। उ०—लिंग थापि बिधिवत करि पूजा। सिव समान प्रिय मोहि न दूजा।—मानस, ६।२। २. किसी गीली सामग्री (मिट्टी, गोबर आदि) को हाथ या साँचे से पीट अथवा दबाकर कुछ बनाना। जैसे, उपले थापना, खपड़े थापना, ईंट थापना।

थापना[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थापना] १. स्थापन। प्रतिष्ठा। रखने या बैठाने का कार्य। उ०—जहँ लगि तीरथ देखहु जाई। इनहीं सब थापना थपाई।—कबीर मं०, पृ० ४७०। २. मूर्ति की स्थापना या प्रतिष्ठा। जैसे, दुर्गा की थापना। उ०—करिहौं इहाँ संभु थापना। मोरे हृदय परम कलपना।—मानस, ६।२। ३. नवरात्र में दुर्गापूजा के लिये घटस्थापना।

थापर†—संज्ञा पुं० [हिं० थाप + र (प्रत्य०)] दे० 'थप्पड़'।

थापरा—संज्ञा पुं० [देश०] छोटी नाव। डोंगी (लश०)।

थापा[1]—संज्ञा पुं० [हिं० थाप] १. हाथ के पंजे का वह चिह्न जो किसी गीली वस्तु (हलदी, मेहदी, रंग आदि) से पुती हुई हथेली को जोर से दबाने या मारने से बन जाता है। पंजे का छापा।

क्रि० प्र०—देना।—मारना।—लगाना।

विशेष—पूजा या मंगल के अवसर पर स्त्रियाँ इस प्रकार के चिह्न दीवार आदि पर बनाती हैं।

२. गाँव में देवी देवता की पूजा के लिये किया हुआ चंदा। पुजौरा। ३. खलियान में अनाज की राशि पर गीली मिट्टी या गोबर से डाला हुआ चिह्न जो इसलिये डाला जाता है जिसमें यदि कोई चुरावे तो पता लग जाय। चाँकी। ४. वह साँचा जिसमें रंग आदि पोतकर कोई चिह्न अंकित किया जाय। छापा। ५. वह साँचा जिसमें कोई गीली सामग्री दबाकर या डालकर कोई वस्तु बनाई जाय। जैसे, ईंट का थापा, सुनारों का थापा। ६. ढेर। राशि। उ०—सिखहिं दरब आगि कै थापा। कोई जरा, जार, कोइ तापा।—जायसी (शब्द०)। ७. नैपालियों की एक जाति।

थापा—संज्ञा [सं० स्थापना, हिं० थाप] आघात। थपकी। थाप। थप्पड़। उ०—जहाँ जहाँ दुख पाइया गुरु को थापा सोय। जबही सिर टक्कर लगे तब हरि सुमिरन होय।—मलूक०, पृ० ४०।

थपिया संज्ञा स्त्री० [हिं० थापना] दे० 'थापी'।

थापी—संज्ञा स्त्री० [हिं० थापना] १. काठ का चिपटे और चौड़े सिरे का डंडा जिससे कुम्हार कच्चा घड़ा पीटते हैं। २. वह चिपटी मुँगरी जिससे राज या कारीगर छत पीटते हैं। ३. थपकी। हथेली से किया हुआ आघात। थाप। उ०—कबीर साहब ने उस गाय को थापी दिया।—कबीर मं०, पृ० ११४।

थाम[1]—संज्ञा पुं० [सं० स्तम्भ, प्रा० थंभ] १. खंभा। स्तंभ। २. मस्तूल (लश०)।

थाम[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० थामना] थामने की क्रिया या ढंग। पकड़।

थामना—क्रि० स० [सं० स्तम्भन या स्तभन, प्रा० थंभन (= रोकना)] १. किसी चलती हुई वस्तु को रोकना। गति या वेग अवरुद्ध करना। जैसे, चलती गाड़ी को थामना, बरसते मेह को थामना।

संयो० क्रि०—देना।

२. गिरने, पड़ने, लुढ़कने आदि न देना। गिरने पड़ने से बचाना। जैसे, गिरते हुए को थामना, डूबते हुए को थामना।

संयो० क्रि०—लेना।

३. पकड़ना। ग्रहण करना। हाथ में लेना। जैसे, छड़ी थामना उ०—इस किताब को थामो तो मैं दूसरी निकाल दूँ।—

संयो० क्रि०—लेना।

४. सहारा देना। सहायता देना। मदद देना। संभालना। जैसे,—पंजाब के गेहूँ ने थाम लिया, नहीं तो अन्न के बिना बड़ा कष्ट होता।

संयो० क्रि०—लेना।

५. किसी कार्य का भार ग्रहण करना। अपने ऊपर कार्य का भार लेना। जैसे,—जिस काम को तुम ने थामा है उसे पूरा करो। ६. पहरे में करना। चौकसी में रखना। हिरासत में करना।

थाम्ह†—संज्ञा पुं० [सं० स्तम्भ] १. आधार। खंभा। टेक। उ०—चाँद सूरज कियो तारा गगन लियो बनाय। थाम्ह थूनी बिना देखी, रचि लियो ठहराय।—जग० श०, भा० २, पृ० १०६।

थाम्हना†—क्रि० स० [देश०] दे० 'थामना'।

थाय—संज्ञा पुं० [सं० स्थान, प्रा० ठाय] दे० 'स्थान'। उ०—धमकंत धरनि अहि सिर निहाय। हलहलिय द्रिग्ग उद्दिग्ग थाय। धुर धूरि पूरि जुट्टिन अमित्ति। दिसि व दिसि राज पसरंत कित्ति।—पृ० रा०, १। ६२५।

थायीⓅ—वि० [सं० स्थायी] दे० 'स्थायी'।

थार†[1]—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'थाल'। उ०—भावना थार हुलास के हाथनि यों हित मूरति हेरि उतारति।—घनानंद, पृ० १४८।

थार†Ⓟ[2]—संज्ञा पुं० [देश०] ठोकर। आघात। उ०—हयखुर थारन, छार फुट्टि गिरि समुद पंक हुव।—प० रासो, ७४।

थारा†—सर्व० [हिं० तिहारा] तुम्हारा। उ०—मनमेल्हूं पाणी तिजुं कहिज (े) गोरी थारा जनम की बात।—बी० रासो, पृ० ३४।

थारी†—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थाली] दे० 'थाली'।

थारू—संज्ञा पुं० [देश०] एक जंगली जाति जो नैपाल की तराई में पाई जाती है।

विशेष—यह पूर्व से पश्चिम तक बसी हुई है और अपने रीति-रिवाज, जादू टोना आदि कल्पित विश्वास से बँधी हुई है। इसे लोग पुरानी जनजाति मानते हैं और वर्णव्यवस्था में इनका स्थाननाम शूद्र का रखते हैं।

थाल—संज्ञा पुं० [हिं० थाली] बड़ी थाली। काँसे या पीतल का बड़ा छिछला बरतन।

थाला—संज्ञा पुं० [सं० स्थल, हिं० थल] १. वह घेरा या गड्ढा जिसके भीतर पौधा लगाया जाता है। थावँला। आलवाल। २. कुंडी जिसमें ताला लगाया जाता है (लश०)। ३. फोड़े का घेरा। फोड़े की सूजन। व्रण का शोथ।

थालिका[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थालिका] दे० 'थाली'। उ०—सोरह सिंगार किए पीतम को ध्यान हिए, हाथ किए मंगलमय कनक थालिका।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० २९८।

थालिका[2]—संज्ञा [हिं० थाला] वृक्ष का थाला। आलवाल। उ०—पुरजन पूजोपहार सोभित ससि धवल धार भंजन भवभार भक्ति कल्प थालिका।—तुलसी (शब्द०)

थाली—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थाली (=बटलोई)] १. काँसे या पीतल का गोल छिछला बरतन जिसमें खाने के लिये भोजन रखा जाता है। बड़ी तश्तरी।

मुहा०—थाली का बैंगन = लाभ और हानि देख कभी इस पक्ष, कभी उस पक्ष में होनेवाला। अस्थिर सिद्धांत का। बिना पेंदी का लोटा। उ०—जबरखां होंगे उनकी न कहिए। यह थाली के बैंगन हैं।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १६। थाली जोड़ = कटोरे के सहित थाली। थाली और कटोरे का जोड़ा। थाली फिरना = इतनी भीड़ होना कि यदि उसके बीच थाली फेंकी जाय तो वह ऊपर ही ऊपर फिरती रहे नीचे न गिरे। भारी भीड़ होना। थाली बजना = साँप का विष उतारने का मंत्र पढ़ा जाना जिसमें थाली बजाई जाती है। थाली बजाना = (१) साँप का विष उतारने के लिये थाली बजाकर मंत्र पढ़ना। (२) बच्चा होने पर उसका डर दूर करने के लिये थाली बजाने की रीति करना।

२. नाच की एक गत जिसमें थोड़े से घेरे के बीच नाचना पड़ता है।

यौ०—थाली कटोरा = नाच की एक गत जिसमें थाली और परबंद का मेल होता है।

थाव—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'थाह'।

थावर—संज्ञा पुं० [सं० स्थावर] दे० 'स्थावर'। उ०—नर पसु कीट पतंग मैं थावर जंगम मेल।—स० सप्तक, पृ० १७८।

थाह—संज्ञा स्त्री० [सं० स्था] १. नदी, ताल, समुद्र इत्यादि के नीचे की जमीन। जलाशय का तलभाग। धरती का वह तल जिसपर पानी हो। गहराई का अंत। गहराई की हद। जैसे,—जब थाह मिले तब तो लोटे का पता लगे।

क्रि० प्र०—पाना।—मिलना।

मुहा०—थाह मिलना = जल के नीचे की जमीन तक पहुँच हो जाना। पानी में पैर टिकने के लिये जमीन मिल जाना। डूबते को थाह मिलना = निराश्रय को आश्रय मिलना। संकट में पड़े हुए मनुष्य को सहारा मिलना।

२. कम गहरा पानी। जैसे,—जहाँ थाह है वहाँ तो हलकर पार कर सकते हैं। उ०—चरण छूते ही जमुना थाह हुई।—लल्लू (शब्द०)। ३. गहराई का पता। गहराई का अंदाज।

क्रि० प्र०—पाना।—मिलना।

मुहा०—थाह लगना = गहराई का पता चलना। थाह लेना = गहराई का पता लगाना।

४. अंत। पार। सीमा। हद। परिमिति। जैसे,—उनके धन की थाह नहीं है। ५. संख्या, परिमाण आदि का अनुमान। कोई वस्तु कितनी या कहाँ तक है इसका पता। जैसे,—उनकी बुद्धि की थाह इसी बात से मिल गई।

क्रि प्र०—पाना।—मिलना।—लगना।

मुहा०—थाह लेना = कोई वस्तु कितनी या कहाँ तक है इसकी जाँच करना।

६. किसी बात का पता जो प्रायः गुप्त रीति से लगाया जाय। अप्रत्यक्ष प्रयत्न से प्राप्त अनुसंधान। भेद। जैसे,—इस बात की थाह लो कि वह कहाँ तक देने को तैयार हैं।

क्रि० प्र०—पाना।—लेना।

मुहा०—मन की थाह = अंतःकरण के गुप्त अभिप्राय की जानकारी। चित्त की बात का पता। संकल्प या विचार का पता। उ० कुटिल जनन के मनन की मिलति न कबहूँ थाह।—(शब्द०)।

थाहना—क्रि० स० [हिं० थाह] १. थाह लेना। गहराई का पता चलना। २. अंदाज लेना। पता लगाना।

थाहरा†—वि० [हिं० थाह] १. छिछला। जो गहरा न हो। जिसमें जल गहरा न हो। उ०—खरखराइ जमुना गह्यो अति थाहरो सुभाय। मानहु हरि निज पाँव ते दीन्ही ताहि दबाय।—सुकवि (शब्द०)।

थिएटर—संज्ञा पुं० [अं०] १. रंगभूमि। रंगशाला। २. नाटक का अभिनय। नाटक का तमाशा। उ०—क्लब, कमेटी, थिएटर और होटलों में।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ७५।

थिगली—संज्ञा स्त्री० [हिं० टिकली] वह टुकड़ा जो किसी फटे हुए कपड़े या और किसी वस्तु का छेद बंद करने के लिये टाँका या लगाया जाय। चकती। पैबंद।

क्रि० प्र०—लगाना।

मुहा०—थिगली लगाना = ऐसी जगह पहुँचकर काम करना जहाँ पहुँचना बहुत कठिन हो। जोड़ तोड़ भिड़ाना। युक्ति लगाना। बादल में थिगली लगाना = (१) अत्यंत कठिन काम करना। (२) ऐसी बात कहना जिसका होना असंभव हो।

थितⓅ—वि० [सं० स्थित] १. ठहरा हुआ। २. स्थापित। रखा हुआ। उ०—भए धरम में थित सब द्विजजन प्रजा काज निज लागे।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० २७२।

थितिⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थिति] १. ठहराव। स्थायित्व। २. विश्राम करने या ठहरने का स्थान। ३. रहाइस। रहन। ४. बने रहने का भाव। रक्षा। उ०—ईस रजाइ सीस सब ही के। उतपति थिति, लय विषहु अमी के।—तुलसी (शब्द०)। ५. अवस्था। दशा।

थितिभावⓅ—संज्ञा पुं० [सं० स्थिति भाव] दे० 'स्थायी भाव'।

थिथाऊ—संज्ञा पुं० [देश०] दाहिने अंग का फड़कना आदि जिसे ठग लोग अशुभ समझते हैं (ठग)।

थियेटर—संज्ञा पुं० [अं०] १. वह मकान जहाँ नाटक का अभिनय दिखाया जाता है। नाट्यशाला। नाटकघर। २. अभिनय। नाटक।

थियोसोफिस्ट—संज्ञा पुं०[अं०]थियोसोफी के सिद्धांत को माननेवाला।

थियोसोफी—संज्ञा स्त्री० [अं०] ईश्वरीय ज्ञान जो किसी दैवी शक्ति अथवा आत्मा के प्रकाश से हुआ हो।

थिर[1]—वि० [सं० स्थिर] १. जो चलता या हिलता डोलता न हो। ठहरा हुआ। अचल। २. जो चंचल न हो। शांत। धीर। जो एक ही अवस्था में रहे। स्थायी। दृढ़। टिकाऊ।

थिरⓅ†[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थिरा] स्थिरा। पृथ्वी। उ०—[illegible] चूर हुआ कर सूर थके। छल पेख वृंदारक व्योम छके। रा० रू०, पृ० ३६।

थिरक—संज्ञा पुं० [हिं० थरकना] नृत्य में चरणों की चं[चल] गति। नाचने में पैरों का हिलना डोलना या उठ[ना] और गिराना।

थिरकना—क्रि० अ० [सं० अस्थिर + करण] १. नाचने में पैरों [को] क्षण क्षण पर उठाना और गिराना। नृत्य में अंगसंचा[लन] करना। जैसे, थिरक थिरककर नाचना। २. अंग मट[का]कर नाचना। ठमक ठमककर नाचना।

थिरकौहाँ[1]—वि० [हिं० थिरकना + औहाँ (प्रत्य०)] थिरकनेवाला। थिरकता हुआ।

थिरकौहाँ[2]—वि० [सं० स्थिर] ठहरा हुआ। रुका हुआ। उ०—थिरकौहैं अधखुले देह थकौहैं ढार। सुरत सुखित सी देखिय दुखित गरभ के भार।—बिहारी (शब्द०)।

थिरचर—संज्ञा पुं० [सं० स्थिर + चल] स्थावर और जंगम। उ०—तान लेत चित की चोपन सों मोहे वृंदावन के थिर च[र]।—ब्रज० ग्रं०, पृ० १५६।

थिरजीहⓅ—संज्ञा पुं० [सं० स्थिरजिह्व] मछली।

थिरताⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थिरता] १. ठहराव। अचलत्व। स्थायित्व। अचंचलता। ३. शांति। धीरता।

थिरताईⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थिर + ताति (वै० प्रत्य०) दे० 'थिरता'।

थिरथानीⓅ—संज्ञा पुं० [सं० स्थिर + स्थान] थिर स्थानवा[ले] लोकपाल आदि। उ०—सुकृत सुमन तिल मोद बासि बि[धि] जतन जंत्र भरि कानी। सुख सनेह सब दियो दसरथहिं [ख]रेलेल थिरथानी।—तुलसी (शब्द०)।

थिरथिरा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बुलबुल जो जाड़े के दि[नों] में सारे भारतवर्ष में दिखाई पड़ता है।

थिरना—क्रि० अ० [सं० स्थिर, हिं० थिर + ना(प्रत्य०)] १. पा[नी] या और किसी द्रव पदार्थ का हिलना डोलना बंद होन[ा]। हिलते डोलते या लहराते हुए जल का ठहर जाना। जल क्षुब्ध न रहना। २. जल के स्थिर होने के कारण उ[समें] घुली हुई वस्तु का तल में बैठना। पानी का हिलना, घूम[ना] आदि बंद होने के कारण उसमें मिली हुई चीज का पेंदे [में] जाकर जमना। ३. मैल आदि नीचे बैठ जाने के कारण [जल] का स्वच्छ हो जाना। ४. मैल, धूल, रेत आदि के नी[चे] बैठ जाने के कारण साफ चीज का जल के ऊपर [रह] जाना। निथरना।

थिराⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थिरा] पृथ्वी।

थिराना[1]—क्रि० स० [हिं० थिरना] १. पानी आदि का हिल[ना] डोलना बंद करना। क्षुब्ध जल को स्थिर होने देना।

धुली हुई मैल आदि को नीचे बैठने देकर पानी को साफ करना। ४. किसी वस्तु को जल में घोलकर और उसमें मिली हुई मैल, धूल, रेत आदि को नीचे बैठाकर साफ करना। निथारना।

थिराना†[2]—क्रि० अ० दे० 'थिरना'। उ०—दोउन को रूप गुन दोउ बरनत फिरैं, पल न थिरात रीति नेह की नई नई।—देव०।

थी[1]—क्रि० अ० [हिं०] 'है' के भूतकाल 'था' का स्त्री०।

थी†[2]—प्रत्य [देश०] से। उ०—इंद्रसिंघ दक्खण थी आयो।—रा० रू०, पृ० २५।

थीकरा—संज्ञा पुं० [सं० स्थित+कर] किसी आपत्ति के समय रक्षा या सहायता का भार जिसे गाँव का प्रत्येक समर्थ मनुष्य बारी बारी से अपने ऊपर लेता है।

थीजना—क्रि० अ० [सं० स्था] टिक जाना। अचल होना। स्थिर रहना। उ०—मन तुम तन मँडरात है नहिं थीजै हा हा।—घनानंद, पृ० ३६७।

थीत†—संज्ञा पुं० [सं० स्थिति] सत्य। वस्तुस्थिति। उ०—थीत चीन्हें नहीं पथल पूजता फिरे करम अनेक करि नरक लीन्हा।—सं० दरिया, पृ० ८३।

थीता—संज्ञा पुं० [सं० स्थित, हिं० थित] १. स्थिरता। शांति। २. कल। चैन। उ०—थीतो परे नहिं चीतो चबैयन देखत पीठि दै ओठि कै पैनी।—देव (शब्द०)।

थीती—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थिति, प्रा० थिइ] संतोष। ढाढ़स। स्थिरता। उ०—टेकु पियास, बाँधु जिय थीती।—जायसी ग्रं०, पृ० १५२।

थीथी(पु)**†**—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थिति] स्थिरता। २. धैर्य। धीरज। इतमीनान।

थीन—वि० [प्रा० थीण, थिरण] घन। स्त्यान। कठिन। जमा हुआ। उ०—सुभट्टं सुरं कुघट्टं सु कीन उलथ्थे सभेजी घृतं जान थीनं।—पृ० रा०, २५। ५५५।

थीर(पु)—वि० [सं० स्थिर] स्थिर। ठहरा हुआ। अडोल। उ०—(क) उलथहि मानिक मोती हीरा। दरब देखि मन होइ न थीरा।—जायसी (शब्द०)। (ख) पियरे मुख श्याम शरीरा। कहुँ रहत नहीं पल थीरा—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० १२६।

थुँदला†—वि० [अनु०] थुलथुल। फूला हुआ। भद्दा। उ०—मोटा तन व थुँदला थुँदला मूँ व कुच्ची आँख व मोटे ओंठ मुछंदर की आमद आमद है।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ७८९।

यौ०—थुँदला थुँदला = थुलथुल।

थुकवाना—क्रि० स० [हिं० थूकना] दे० 'थुकाना'।

थुकहाई—वि० स्त्री० [हिं० थूक+हाई (प्रत्य०)] ऐसी (स्त्री) जिसे सब लोग थूकें। जिसकी सब निंदा करते हों।

थुकाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० थूकना] थूकने का काम।

थुकाना—क्रि० स० [हिं० थूकना का प्रे० रूप] १. थूकने की क्रिया दूसरे से कराना। दूसरे को थूकने की प्रेरणा करना।

संयो० क्रि०—देना।

२. मुँह में ली हुई वस्तु को गिरवाना। उगलवाना। जैसे,—बच्चा मुँह में मिट्टी लिए है, जल्दी थुकाओ। ३. थुड़ी थुड़ी कराना। निंदा कराना। तिरस्कार कराना। जैसे,—क्यों ऐसी चाल चलकर गली गली थुकाते फिरते हो।

थुकायल†—वि० [हिं० थूक + आयल (प्रत्य०)] जिसे सब लोग थूकें। जिसे सब लोग धिक्कारें। तिरस्कृत। निंद्य।

थुकेल†—वि० [हिं० थूक] दे० 'थुकायल'।

थुक्का†—संज्ञा स्त्री० [हिं० थूक] निंदा। घृणा। धिक्कार।

यौ०—थुक्का थुक्की = परस्पर निंदा, धिक्कार या घृणा।

थुक्का फजीहत—संज्ञा स्त्री० [हिं० थूक + अ० फजीहत] निंदा और तिरस्कार। थुड़ी थुड़ी। धिक्कार।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

थुक्की—संज्ञा स्त्री० [हिं० थूक] रेशम के तागे को थूक लगाकर सुलझाने की क्रिया (जुलाहे)।

थुड़ी—संज्ञा स्त्री० [अनु० थू थू (= थूकने का शब्द)] घृणा और तिरस्कारसूचक शब्द। धिक्कार। लानत। फिट्। जैसे,—थुड़ी है तुझको।

मुहा०—थुड़ी थुड़ी करना = धिक्कारना। निंदा और तिरस्कार करना।

थुत—वि० [सं० स्तुत, स्तुत्य, प्रा० थुअ, थुत] प्रशंस्य। स्तुत्य। प्रशंसनीय। उ०—कनवज जैचंद मात भयो संभरि बहिनी सुत। तिन पवंत दुज पठिय थार अर चीर थपिय थुत।—पृ० रा०, १।६९०।

थुति—संज्ञा स्त्री० [सं० स्तुति] स्तवन। प्रार्थना। स्तुति। उ०—जोरि हत्थ थुति मंत्र फिरघो परदक्खि लग्गि पय। रुधिर नयन आरक्त कंठ लग्यो सु मुक्कि भय।—पृ० रा०, १।१०८।

थुत्कार—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'थूत्कार'।

थुथना—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'थूथन'।

थुथराई(पु)—संज्ञा स्त्री० [देश०] मुँह लटकना। तुलना में न्यूनता आना। उ०—जान महा गरुवे गुन में घन आनँद हेरि रह्यो थुथराई। पैनै कटाच्छनि ओज मनोज के बानन बीच बिधी मुथराई।—रसखान; पृ० १०४।

थुथराना—क्रि० अ० [हिं० थोड़ा] थोड़ा पड़ना।

थुथाना—क्रि० अ० [हिं० थूथन] थूथन फुलाना। मुँह फुलाना। नाराज होना।

थुथुलाना—क्रि० अ० [अनु०] थलथलाना। कंपित होना। झल्लाना। भभक पड़ना। उ०—रामनाथ क्रोध में थुथुला गया।—भस्मावृत०, पृ० ८१।

थुनी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० थूनी] टेक। सहारा। थूनी। उ०—अति पूरब पूरे पुण्य रुपी कुल अटल थुनी।—सूर (शब्द०)।

थुनेर—संज्ञा पुं० [सं० स्थूण, हिं० थून] गठिवन का एक भेद।

थुन्नी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थूण] थूनी। खंभा। चाँड़।

थुपरना—क्रि० [सं० स्तूप, हिं० थूप] मड़ुवे की बालों का ढेर लगाकर दबाना जिसमें उनमें कुछ गरमी आ जाय। दंदवाना। औसाना।

थुपरा—संज्ञा पुं० [सं० स्तूप] मड़ुवे की बालों का ढेर जो औसने के लिये दबाकर रखा जाय।

थुरना—क्रि० स० [सं० थुर्वण (=मारना)] १. कूटना। २. मारना। पीटना।

थुरहथा—वि० [हिं० थोड़ा+हाथ] [वि० स्त्री० थुरहथी] १. जिसके हाथ छोटे हों। जिसकी हथेली में कम चीज आवे। २. किसी को कुछ देते समय जिसके हाथ में थोड़ी वस्तु आवे। किफायत करनेवाला। उ०—कन देबो सौंप्यो ससुर बहू थुरहथी जानि। रूप रहचटे लगि लग्यो माँगन सब जग आनि।—बिहारी (शब्द०)।

थुलना—संज्ञा पुं०[देश०]एक प्रकार का पहाड़ी ऊनी कपड़ा या कंबल।

थुलमा—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'थुलना'।

थुली—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थूल, हिं० थूला] किसी अन्न के मोटे कण जो दलने से होते हैं। दलिया।

थुवा—संज्ञा पुं० [सं० स्तूप] दे० 'थूवा'।

थूँक—संज्ञा पुं० [हिं० थूक] दे० 'थूक'।

थूँकना—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'थूकना'।

थूँथी†—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'थूथनी'। उ०—नतमस्तक हो थूँथी को धरती में देकर, सूँघ सूँघकर कूड़े के ढेरों के अंदर किया न अर्जन।—दीप ज०, पृ० १६१।

थू—अव्य० [अनु०] १. थूकने का शब्द। वह ध्वनि जो जोर से थूकने में मुँह से निकलती है। २. घृणा और तिरस्कार सूचक शब्द। धिक्। छिः। जैसे,—थू थू! कोई ऐसा काम करता है? उ०—बकरी भेड़ा, मछली खायो, काहे गाय चराई। रुधिर मास सब एकै पाँड़े थू तोरी बम्हनाई।—पलटू०, भा०३, पृ० ९२।

मुहा०—थू थू करना=घृणा प्रकट करना। छिः छिः करना। धिक्कारना। थू थू होना=चारों ओर से छिः छिः होना। निंदा होना। थू थू थुद्दा=लड़कों का एक वाक्य जिसे वे खेल में उस समय बोलते हैं जब समझते हैं कि वे बेईमानी होने के कारण हार रहे हों।

थूक—संज्ञा पुं० [अनु० थू थू] वह गाढ़ा और कुछ कुछ लसीला रस जो मुँह के भीतर जीभ तथा मांस की झिल्लियों से छूटता है। ष्ठीवन। खखार। लार।

विशेष—मनुष्य तथा और उन्नत स्तन्य जीवों में जीभों के अगले भाग तथा मुँह के भीतर की मांसल झिल्लियों में दाने की तरह उभरे हुए (अत्यंत) सूक्ष्म छेद होते हैं जिसमें एक प्रकार का गाढ़ा सा रस भरा रहता है। यह रस भिन्न जंतुओं में भिन्न भिन्न प्रकार का होता है। मनुष्य आदि प्राणियों के थूक के भाग में ऐसे रासायनिक द्रव्यों का अंश होता है जो भोजन के साथ मिलकर पाचन में सहायता देते हैं।

मुहा०—थूक उछालना=व्यर्थ की बकवात करना। थूक बिलोना=व्यर्थ बकना। अनुचित प्रलाप करना। थूक लगाना हराना। नीचा दिखाना। चूना लगाना। हैरान और करना। थूक लगाकर छोड़ना=नीचा दिखाकर छोड़ना (विरोधी को) तंग और लज्जित करके छोड़ना। दंड दे छोड़ना। थूक लगाकर रखना=बहुत सैतकर रखना जोड़ जोड़कर इकट्ठा करना। कंजूसी से जमा करना। कृपणता से संचित करना। थूकों सत्तू सानना=कंजूसी किफायत के मारे थोड़े से सामान से बहुत बड़ा काम चलना। बहुत थोड़ी सामग्री लगाकर बड़ा कार्य पूरा चलना। थूक है=धिक् है! लानत है!

थूकना[1]—क्रि० अ० [हिं० थूक+ना (प्रत्य०)] १. मुँह से निकालना या फेकना।

संयो० क्रि०—देना।

मुहा०—किसी (व्यक्ति या वस्तु) पर न थूकना=अत्यंत घृ करना। जरा भी पसंद न करना। अत्यंत तुच्छ समझ ध्यान तक न देना। जैसे,—हम तो ऐसी चीज पर थूकें नहीं। थूककर चाटना=(१) कहकर मुकर जाना। व करके न करना। प्रतिज्ञा करके पूरा न करना। (२) वि दी हुई वस्तु को लौटा लेना। एक बार देकर फिर ले लेना

थूकना[2]—क्रि० स० १. मुँह में ली हुई वस्तु को गिराना। उगलन जैसे,—पान थूक दो।

संयो० क्रि०—देना।

मुहा०—थूक देना=तिरस्कार कर देना। घृणापूर्वक त्य देना।

२. बुरा कहना। धिक्कारना। निंदा करना। तिरस्कृत करन जैसे,—इसी चाल पर लोग तुम्हें थूकते हैं।

थूणी†—संज्ञा स्त्री० [वि० स्तूप] दे० 'थूनी'। उ०—तिहि स अटल थूणी सुथप्प। गणनाथ पूजि सुभ मंत्र जप्प।— रासो, पृ० १५।

थूत्कार—संज्ञा पुं० [सं०] थूकने का शब्द। थू थू करना [को०]।

थूत्कृत—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'थूत्कार'।

थूथन—संज्ञा पुं० [देश०] लंबा निकला हुआ मुँह। जैसे, सु घोड़े, ऊँट, बैल आदि का।

थूथनी—संज्ञा स्त्री [हिं० थूथन] १. लंबा निकला हुआ मुहँ। सूअर, घोड़े, बैल आदि का।

मुहा०—थूथनी फैलाना=नाक भौं चढ़ाना। मुँह फुलान नाराज होना।

२. हाथी के मुँह का एक रोग जिसमें उसके तालू में घाव जाता है।

थूथरा—वि० [देश०] थूथन के ऐसा निकला हुआ मुँह। बुरा चेहर भद्दा चेहरा।

थूथुना—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'थूथन'।

थून[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थूणा] थूनी। चाँड़। खंभा। उ०— प्रमोद परस्पर प्रगटत गोपहि। जनु हिरदय गुनग्राम थून रोपहि।—तुलसी (शब्द०)।

थून²—संज्ञा पुं० एक प्रकार का मोटा पौंडा या गन्ना जो मदरास में होता है। मदरासी पौंडा।

थूला—संज्ञा पुं० [देश०] मिट्टी का लोंदा जिसमें परेता खोंसकर सूत या रेशम फेरते हैं।

थूनि†—संज्ञा स्त्री० [हिं० थून] दे० 'थूनी'।

थूनिया†—संज्ञा स्त्री० [हिं० थून + इया (प्रत्य०)] दे० 'थूनी'। उ०—चौदह पंद्रह सालवाले लड़के अखाड़ा गोड़ चुके थे, छप्पर की थूनिया पकड़े हुए बैठक कर रहे थे।—काले०, पृ० ३।

थूनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थूण] १. लकड़ी आदि का गड़ा हुआ खड़ा बल्ला। खंभा। स्तंभ। थम। २. वह खंभा जो किसी बोझ को रोकने के लिये नीचे से लगाया जाय। चाँड़। सहारे का खंभा। उ०—चाँद सूरज कियो तारा, गगन लियो बनाय। थाम्ह थूनी बिना देखो, राख लियो ठहराय।—जग० श०, भा० २, पृ० १०६।

क्रि० प्र०—लगाना।

३. वह गड़ी हुई लकड़ी जिसमें रस्सी का फंदा लगाकर मथानी का डंडा अटकाते हैं।

थून्ही†—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थूण] दे० 'थूनी'।

थूनी—संज्ञा स्त्री० [देश०] साँप का विष दूर करने के लिये गरम लोहे से काटे हुए स्थान को दागने की युक्ति।

थूर¹—संज्ञा पुं० [देश०] समूह। कोठी (बाँस की)। उ०—प्रथिराज प्रबोधिय बार धर हुंकि साहु उप्परि परिय। जानै कि अग्गि उद्यान वन बंस थूर दव प्रज्जरिय।—पृ० रा०, १३। १४०।

थूर²—संज्ञा पुं० [सं० तुवर] अरहर। तूर। तोर।

थूरना†¹—क्रि० स० [सं० थुर्वण (=मारना)] १. कूटना। दलित करना। २. मारना। पीटना। उ०—घूरत करि रिस जबहिं होति सतहर सम सूरत। थूरत पर बल थूरि हृदय महँ पूरि गरूरत।—गोपाल (शब्द०)। ३. ठूँसना। कस कर भरना। ४. खूब कस कर खाना। ठूस ठूस कर खाना।

थूरना†²—क्रि० स० [सं० त्रुट्] दे० 'तोड़ना'।

थूलⓅ—वि० [सं० स्थूल] १. मोटा। भारी। २. भद्दा। उ०—श्रवणादि वचनादि देवता मन न आदि, सूछम न थूल पुनि एक ही न दोइ हैं।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० ७६।

थूला—वि० [सं० स्थूल] [वि० स्त्री० थूलि, थूली] मोटा ताजा। उ०—करतार करे यहि कामिनि के कर कोमलता कलता सुनि कै। लघु नीरज पातरि थूलि तहीं सुसमाधि टरै सुनि कै मुनि कै।—तोष (शब्द०)।

थूली—संज्ञा स्त्री० [हिं० थूला (=मोटा)] १. किसी अनाज का दला हुआ मोटा कण। दलिया। २. सूजी। ३. पकाया हुआ दलिया जो गाय को बच्चा जनने पर दिया जाता है।

थूहा¹—संज्ञा पुं० [सं० स्तूप, प्रा० थूप, थूव] १. मिट्टी आदि के ढेर का बना हुआ टीला। ढूह। २. गीली मिट्टी का पिंडा या लोंदा। ढीमा। भेली। भोंधा। ३. मिट्टी का ढूहा जो सरहद के निशान के लिये उठाया जाता है। सीमासूचक स्तूप। ४. ढूह के आकार का काला रँगा हुआ पिंडा जिसे पीने का तंबाकू बेचनेवाले अपनी दूकानों पर चिह्न के लिये रखते हैं। ५. वह बोझ जो कपड़े में बँधी हुई राब के ऊपर जूसी निकालकर बहाने के लिये रखा जाता है। ६. मिट्टी का लोंदा जो बोझ के लिये ढेंकली की आड़ी लकड़ी के छोर पर थोपा जाता है।

थूहा†²—संज्ञा स्त्री० [अनु० थू थू] थुड़ी। धिक्कार का शब्द।

थूह—संज्ञा पुं० [देशी] भवन का शिखर। मकान की ऊँची छत।—देशी०, पृ० १६५।

थूहड़—संज्ञा पुं० [सं० स्थूण] दे० 'थूहर'।

थूहर—संज्ञा पुं० [सं० स्थूण (=थूनी)] एक छोटा पेड़ जिसमें लचीली टहनियाँ नहीं होतीं, गाँठों पर से गुल्ली या डंडे के आकार के डंठल निकलते हैं। उ०—थूहरों से सटे हुए पेड़ और झाड़ हरे, गौरज से धूम ले जो खड़े हैं किनारे पर।—आचार्य०, पृ० १६८।

विशेष—किसी जाति के थूहर में बहुत मोटे दल के लंबे पत्ते होते हैं और किसी जाति में पत्ते बिलकुल नहीं होते। काँटे भी किसी में होते हैं किसी में नहीं। थूहर के डंठलों और पत्तों में एक प्रकार का कड़ुआ दूध भरा रहता है। निकले हुए डंठलों के सिरे पर पीले रंग के फूल लगते हैं, जिनपर आवरणपत्र या विउली नहीं होती। पुं० और स्त्री० पुष्प अलग अलग होते हैं। थूहर कई प्रकार के होते हैं—जैसे, काँटेवाला थूहर, तिधारा थूहर, चौधारा थूहर, नागफनी, खुरासानी थूहर, बिलायती थूहर, इत्यादि। खुरासानी थूहर का दूध विषैला होता है। थूहर का दूध औषध के काम में आता है। थूहर के दूध में सानी हुई बाजरे के आटे की गोली देने से पेट का दर्द दूर होता है और पेट साफ हो जाता है। थूहर के दूध में भिगोई हुई चने की दाल (आठ या दस दाने) खाने से अच्छा जुलाब होता है और गरमी का रोग दूर होता है। थूहर की राख से निकाला हुआ खार भी दवा के काम में में आता है। काँटेवाले थूहर के पत्तों का लोग अचार भी डालते हैं। थूहर का कोयला बारूद बनाने के काम में आता है। वैद्यक में थूहर रेचक, तीक्ष्ण, अग्निदीपक, कटु तथा शूल, गुल्म, अष्ठी, वायु, उन्माद, सूजन इत्यादि को दूर करनेवाला माना जाता है। थूहर को सेहुँड़ भी कहते हैं।

पर्या०—स्नुही। समंतदुग्धा। नागद्रु। महावृक्षा। सुधा। वज्रा। सीहुँडा। सिहुँड़। दंडवृक्षक। स्नुक्। स्नुषा। गुड। गुडा। कृष्णसार निस्त्रिंशपत्रिका। नेत्रारि। कांडशाख। सिंहतुंड। कांडरोहक।

थूहा—संज्ञा पुं० [सं० स्तूप, थूव] १. ढूह। अटाला। २. टीला।

थूही—संज्ञा स्त्री० [हिं० थूहा] १. मिट्टी की ढेरी। ढूह। २. मिट्टी के खंभे जिनपर गराड़ी या घिरनी की लकड़ी ठहराई जाती है।

थेंथर—वि० [देश०] थका हुआ। श्रांत। सुस्त। हैरान।

थे—सर्व० बहु० [सं० त्वम्] तुम या आप। उ०—ज्यूँ थे आखउ त्यूँ करउ, राजा आइस दीध।—ढोला०, दू० ६।

थेइ थेइⓅ—वि० [अनु०] दे० 'थेई थेई'। उ०—लाग मान थेइ थेइ करि उघटत अटत ताल मृदंग गँभीर।—सूर० (शब्द०)।

थेई थेई—वि० [अनु०] तालसूचक नृत्य का शब्द और मुद्रा। थिरक थिरककर नाचने की मुद्रा और ताल।
  क्रि० प्र०—करना।

थेक‡—संज्ञा पुं० [हिं० टेक, ठेघ, थेघ (=स्तंभ, खंभा)] (ला०) शरीररूपी स्तंभ। शरीर। उ०—सत कोटि तीरथ भूमि परिकरमा करि नवावै थेक हो।—कबीर सा०, पृ० ४११।

थेगली—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'थिगली'। उ०—पाँच तत्त के गुदड़ी बनाई। चाँद सुरज दुइ थेगली लगाई।—कबीर० श०, भा० २, १४०।

थेघ†—संज्ञा पुं० [देश०] सहारा। अवलंबन। उ०—गगन गरज मेघा, उठए धरनि थेघा। पँचसर हिय डोल सालि।—विद्यापति, पृ० १३५।

थेट†—वि० [देश०] आरंभ का। असली। मुख्य। उ०—मैं मल मड़ है बाजरा थाहर जासी थेट।—बाँकी० ग्रं०, भा० १, पृ० ३४।

थेवा—संज्ञा पुं० [देश०] १. अँगूठी का नगीना। २. किसी धातु का वह पत्र जिसपर मुहर खोदी जाती है। ३. अँगूठी का वह घर जिसमें नगीना जड़ा जाता है।

थैथा—संज्ञा संज्ञा पुं० [देश०] खेत में मचान के ऊपर का छप्पर।

थै थै—वि० [सं०] वाद्य का अनुकरणात्मक एक शब्द। दे० 'थेई थेई'।

थैरज(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० स्थैर्य] कठोरता। स्थिरता। दृढ़ता। उ०—ए हरि तोहर थैरज जत से सब कहत धनि गेलि सून संकेता रे।—विद्यापति, पृ० २६०।

थैला—संज्ञा पुं० [सं० स्थल (=कपड़े का घर)] [स्त्री० अल्पा० थैली] १. कपड़े टाट आदि को सीकर बनाया हुआ पात्र जिसमें कोई वस्तु भरकर बंद कर सकें। बड़ा कोश। बड़ा बटुआ। बड़ा कीसा।
  मुहा०—थैला करना = मारकर ढेर कर देना। मारते मारते ढीला कर देना।
  २. रुपयों से भरा हुआ थैला। तोड़ा। उ०—बोल्यो बनजारो दम खोलि थैला दीजिए जू लीजिए जू आय ग्राम चरन पठाए हैं।—प्रियादास (शब्द०)। ३. पायजामे का वह भाग जो जघे से घुटने तक होता है।

थैली—संज्ञा स्त्री० [हिं० थैला] १. छोटा थैला। कोश। कीसा। बटुआ। २. रुपयों से भरी हुई थैली। तोड़ा।
  मुहा०—थैली खोलना = थैली मे से निकालकर रुपया देना। उ०—तब आनिय व्योहरिया बोली। तुरत देउँ मैं थैली खोली।—तुलसी (शब्द०)।

थैलीदार—संज्ञा पुं० [हिं० थैली + फ़ा० दार] १. वह आदमी जो खजाने में रुपए उठाता है। २. तहवीलदार। रोकड़िया।

थैलीपति—संज्ञा पुं० [हिं० थैली + सं० पति] पूँजीपति। रुपएवाला। मालदार। उ०—पार्लामेंट में शुद्ध थैलीपतियों का बहुमत था।—भा० इ० रू०, पृ० २६४।

थैलीबरदारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० थैली+फ़ा बरदार] थैली उठाकर पहुँचाने का काम। थैलियों की ढोआई।

थैलीशाही—संज्ञा स्त्री० [हिं० थैली + फ़ा० शाही] पूँजीवाद।

थोंद—संज्ञा स्त्री० [सं० तुन्द] दे० 'तोंद'। उ०—थोंद चलकि बर चाल, मनों मृदंग मिलावनो।—नंद० ग्रं०, पृ० ३३४।

थोंदिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० तोंद का स्त्री० अल्पा०] दे० 'तोंद'। उ०—उज्ज्वल तन, थोरी सी थोंदिया, राते अंबर सोहै।—नंद० ग्रं०, पृ० ३४१।

थो†—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'था'। उ०—का जानैं तुम कहा लिख्यो थो जाको फल मैं पायो।—नट०, पृ० २१।

थोक—संज्ञा पुं० [सं० स्तोमक, प्रा० थोवंक, हिं० थोक] १. ढेर। राशि। अटाला। २. समूह। झुंड। जत्था।
  मुहा०—थोक करना = इकट्ठा करना। जमा करना। उ०—द्रुम चढ़ि काहे न टेरो कान्हा गैयाँ दूरि गईं।.. बिड़रत फिरत सकल बन महियाँ एकइ एक भई। छाँड़ि खेल सब दूरि जात हैं बोले जो सकै थोक कई।—सूर (शब्द०)। थोक की थोक = ढेर की ढेर। बहुत सी। उ०—वह यह भी जानते थे कि मेरी थोक की थोक डाक बिनी डाकखाने में जमा हो रही है।—किन्नर०, पृ० ५४।
  ३. बिक्री का इकट्ठा माल। इकट्ठा बेचने की चीज। खुदरा का उलटा। जैसे,—हम थोक के खरीदार हैं। ४. जमीन का टुकड़ा जो किसी एक आदमी का हिस्सा हो। चक। ५. इकट्ठी वस्तु। कुल। ६. वह स्थान जहाँ कई गाँवों की सीमाएँ मिलती हों। वह जगह जहाँ कई सरहदें मिलें।

थोकदार—संज्ञा पुं० [हिं० थोक + फ़ा० दार] इकट्ठा माल बेचनेवाला व्यापारी।

थोड़(पु)†—वि० [सं० स्तोक] दे० 'थोड़ा'। उ०—बहुल कोहि कनिक थोड़, बीवक पैचौं दीअ घोड़।—कीर्ति०, पृ० ६८।

थोड़ा[1]—वि० [सं० स्तोक, पा० थोअ + ड़ा (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० थोड़ी] जो मात्रा या परिमाण में अधिक न हो। न्यून। अल्प। कम। तनिक। जरा सा। जैसे,—(क) थोड़े दिनों से वह बीमार है। (ख) मेरे पास अब बहुत थोड़े रुपए रह गए हैं।
  यौ०—थोड़ा थोड़ा = कम कम। कुछ कुछ। थोड़ा बहुत = कुछ। कुछ कुछ। किसी कदर। जैसे,—थोड़ा बहुत रुपया उनके पास जरूर है।
  मुहा०—थोड़ा थोड़ा होना = लज्जित होना। संकुचित होना। हेठ पड़ना।

थोड़ा[2]—क्रि० वि० अल्प परिमाण या मात्रा में। जरा। तनिक। जैसे,—थोड़ा चलकर देख लो।
  मुहा०—थोड़ा ही = नहीं। बिलकुल नहीं। जैसे,—हम थोड़ा ही जायँगे, जो जाय उससे कहो।
  विशेष—बोलचाल में इस मुहा० का प्रयोग ऐसी जगह होता है जहाँ उस बात का खंडन करना होता है जिसे समझकर दूसरा कोई बात कहता है।

थोता‡—वि० [हिं०] दे० 'थोथा'। उ०—'तुका' सज्जन तिन सूँ कहिये जिसनी प्रेम दुनाय। दुर्जन तेरा मुख काला थोता प्रेम घटाय।—दक्खिनी०, पृ० १०८।

थोती—संज्ञा स्त्री० [देश०] चौपायों के मुँह का अगला भाग। थूथन।

थोथ—संज्ञा स्त्री० [हिं० थोथा] १. खोखलापन। निःसारता। २. तोंद। पेटी।

थोथर‡—वि० [हिं० थोथ+र (प्रत्य०)] खोखला। थोथरा। उ०—बंते भरी मुख थोथर भए गेल जनिक मागोल सीप ठाम बैसलें भुवन भमिम। झरी गेल सबे दाप।—विद्यापति, पृ० ४०२।

थोथरा—वि० [हिं० थोथ+रा (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० थोथरी] १. घुन या कीड़ों का खाया हुआ। खोखला। खाली। २. निःसार। जिसमें कुछ तत्व न हो। ३. निकम्मा। व्यर्थ का। जो किसी काम का न हो। उ०—(क) मत थोछी घट थोथरा ता घर बैठो फूलि।—चरण० बानी, भा० २, पृ० २०४। (ख) अनुभी झूठी थोथरी निरगुन सच्चा नाम।—दरिया० बानी, पृ० २२।

थोथा¹—वि० [देश०] [वि० स्त्री० थोथी] १. जिसके भीतर कुछ सार न हो। खोखला। खाली। पोला। जैसे, थोथा चना बाजे घना। उ०—बहुत मिले मोहिं नेमी धर्मी प्रात करें असनाना। आतम छोड़ पषाने पूजें तिन का थोथा ज्ञाना।—कबीर श०, भा० १, पृ० २७। २. जिसकी धार तेज न हो। कुंठित। गुठला। जैसे, थोथा तीर। ३. (साँप) जिसकी पूँछ कट गई हो। बाँड़ा। बे दुम का। ४. भद्दा। बेढंगा। व्यर्थ का। निकम्मा।

मुहा०—थोथी कथनी = व्यर्थ की बात। निःसार बात। उ०—करनी रहनी दृढ़ गहो थोथी कथनी डारो।—चरण० बानी, भा० २, पृ० १७०। थोथी बात = (१) भद्दी बात। (२) व्यर्थ की बात। व्यर्थ का प्रलाप।

थोथा²—संज्ञा पुं० बरतन ढालने का मिट्टी का साँचा।

थोथी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की घास।

थोपड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० थोपना] चपत। धौल।

यौ०—गनेस थोपड़ी = लड़कों का एक खेल जिसमें जो चोर होता है उसकी आँखें बंद करके उसके सिर पर सब लड़के बारी बारी चपत लगाते हैं। यदि चपत खानेवाला लड़का ठीक ठीक बतला देता है कि किसने पहले चपत लगाई तो वह पहले चपत लगानेवाला लड़का चोर हो जाता है।

थोपना—क्रि० स० [सं० स्थापन, हिं० थापन] १. किसी गीली चीज (जैसे, मिट्टी, आटा आदि) की मोटी तह ऊपर से जमाना या रखना। किसी गीली वस्तु का लोंदा यों ही ऊपर डाल देना या जमा देना। पानी में सनी हुई वस्तु के लोंदे को किसी दूसरी वस्तु पर इस प्रकार फैलाकर डालना कि वह उसपर चिपक जाय। छोपना। जैसे,—घड़े के मुँह पर मिट्टी थोप दो।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

२. तवे पर रोटी बनाने के लिये यों ही बिना गढ़े हुए गीला आटा फैला देना। ३. मोटा लेप चढ़ाना। लेव चढ़ाना। ४. आरोपित करना। मत्थे मढ़ना। लगाना। जैसे, किसी पर दोष थोपना। ५. आक्रमण आदि से रक्षा करना। बचाना। दे० 'छोपना'।

थोपी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० थोपना] चपत। धौल। चपेट। थोपड़ी।

थोबड़ा—संज्ञा पुं० [देश०] थूथन। जानवरों का निकला हुआ लंबा मुँह।

थोब रखना—क्रि० स० [लश०] जहाज को धार पर चढ़ाना।

थोभड़ी†—संज्ञा स्त्री० [देश०] थूही। दीवार। भित्ति। उ०—देखो जोगी करामातड़ी मनसा महल बणाया। बिन थाँभा बिन थोभड़ी आसमान ठहराया।—राम० धर्म०, पृ० ४६।

थोर¹†—संज्ञा पुं० [देश०] १. केले की पेड़ी के बीच का गाभा। २. थूहर का पेड़।

थोर²—वि० [हिं० थोड़ा] थोड़ा। स्वल्प। छोटा। उ०—उठे थन थोर विराजत बाम। धरे मनु हाटक सालिगराम।—पृ० रा०, २१।२०।

यौ०—थोरथनी = छोटे छोटे स्तनोंवाली। उ०—रोम राज राजी भ्रमहि थोरथनी कुंडि बाल। उतकंठा उतकंठ की ते पुज्जी प्रतिपाल।—पृ० रा०, २५।७६५।

थोरा(पु)†—वि० [हिं०] दे० 'थोड़ा'।

थोरिक(पु)†—वि० [हिं० थोरा+एक] थोड़ा सा। तनिक सा।

थोरी¹—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक हीन अनार्य जाति।

थोरी²—वि० स्त्री० [थोरा का स्त्री० अल्पा०] दे० 'थोड़ा'।

थोरो, थोरौ—वि० [हिं०] दे० 'थोड़ा'। उ०—पाछे उन बंदीवान न के तें थोरो द्रव्य आवन लाग्यो।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० १२८। (ख) अहो महरि अब बंधन छोरौ। सुंदर सुत पर भयो न थोरौ।—नंद० ग्रं०, पृ० २५१।

थोल‡—वि० [हिं०] दे० 'थोड़ा'। उ०—काहु कापल काहु थोल, काहु संबल काहु थोल।—कीर्ति०, पृ० २४।

थोहर(पु)†—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'थूहर'। उ०—सुभा हरड़ थोहर सुभा, सुभा कहत कल्याण। सुभा जु सोभावान हरि, और न दूजो जान।—नंद० ग्रं०, पृ० ७०।

थौंदि(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० तुन्द या तुण्ड] तोंद। पेट। उ०—किहूपै कटारीन सो थौंदि फारी। तहीं दूसरें आनिकै सीस झारी।—सुजान०, पृ० २१।

थ्यौं†—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'था'। उ०—सवाब सात सुरतां खुदाए ताला के जात में क्यों थ्यां?—दक्खिनी०, पृ० १८८।

थ्यावस†—संज्ञा पुं० [सं० स्थेयस] १. स्थिरता। ठहराव। २. धीरता। धैर्य। उ०—(क) बिन पावस तो इन्हें थ्यावस है न सु क्यों करिये अब सो परसैं। बदरा बरसैं ऋतु मे घिरि के नित ही अँखियाँ उघरी बरसैं।—आनंदघन (शब्द०)। (ख) ज्यों कहुलाय मसूसनि ऊमस क्यों हूँ कहूँ सो धरे नहिं थ्यावस।—आनंदघन (शब्द०)।

द

द—संस्कृत या हिंदी वर्णमाला में अठारहवाँ व्यंजन जो तवर्ग का तीसरा वर्ण है। इसका उच्चारण स्थान दंतमूल है; दंतमूल में जिह्वा के अगले भाग के स्पर्श से इसका उच्चारण होता है। यह अल्पप्राण है और इसमें संवार, नाद और घोष नामक बाह्य प्रयत्न हैं।

दंग¹—वि० [फ़ा०] विस्मित। चकित। आश्चर्यान्वित। स्तब्ध। हक्का बक्का।

क्रि० प्र०—रह जाना।—होना।

दंग²—संज्ञा पुं० १. घबराहट। भय। डर। उ०—जब रथ साजि चढ़ौ रण सम्मुख जीय न आनो दंग। राघव सेन समेत सँघारौं करौं रुधिरमय अंग।—सूर (शब्द०)। २. दे० 'दंगा'।

दंग†³—संज्ञा पुं० [देश०] अग्निकण। उ०—इक राहु चाहु लग्गो असुर मिरसहाय आकार नव। अवरंग अवनी पर उलटियो, दंग प्रगटयो जाण दव।—रा० रू०, पृ० २०।

दंगई—वि० [हिं० दंगा + ई (प्रत्य०)] १. दंगा करनेवाला। उपद्रवी लड़ाका। झगड़ालू। २. प्रचंड। उग्र। ३. दंगली। बहुत लंबा। लंबा चौड़ा। भारी।

दंगल—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. मल्लों का युद्ध। पहलवानों की वह कुश्ती जो जोड़ बदकर हो और जिसमें जीतनेवाले को इनाम आदि मिले। २. अखाड़ा। मल्लयुद्ध का स्थान।

मुहा०—दंगल में उतरना = कुश्ती लड़ने के लिये अखाड़े में आना।

३. जमावड़ा। समूह। समाज। दल। उ०—सावन नित संतन के घर में, रति मति सियवर में। नित वसंत नित होरी मंगल, जैसी बस्ती तैसोइ जंगल, दल बादल से जिनके दंगल पगे रटे की झर में।—देवस्वामी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—जमाना।—बाँधना।

४. बहुत मोटा गद्दा या तोशक। उ०—(क) अहलकार हाथ धोकर सामने बैठ जाते थे, वह दंगल पर रहता था, खाना एक बड़ी सी कुरसी पर चुना जाता था।—शिवप्रसाद (शब्द०)। (ख) बावर्ची जब छुट्टी पाता हो···किसी बड़े दंगल पर पाँव फैला कर लंबा पड़ जाता।—शिवप्रसाद (शब्द०)।

दंगली—वि० [फ़ा० दंगल] १. युद्ध करनेवाला। लड़ाका। प्रचयंकर। उ०—भूषन भनत तेरी खरगऊ दंगली।—भूषण ग्रं०, पृ० ४५। २. दंगल में कुश्ती लड़नेवाला। दंगल जीतनेवाला।

दंगवारा—संज्ञा पुं० [हिं० दंगल + वारा] वह सहायता जो किसी गाँव के किसान एक दूसरे को हल बैल आदि देकर देते हैं। जिता। हरसीत।

दंगा—संज्ञा पुं० [फ़ा० दंगल] १. झगड़ा। बखेड़ा। उपद्रव। उ०—खेलन लाग बालकन संगा। जब तब करिय सखन ते दंगा।—विश्राम। (शब्द०)।

क्रि०प्र०—करना।—होना।

यौ०—दंगा फसाद।

२. गुल गपाड़ा। हुल्लड़। शोर। गुल। उ०—सीस पर गंगा हँसे भुजन भुजंगा हँसें हाँस ही को दंगा भयो नंगा के विवाह में।—पद्माकर (शब्द०)।

दंगाई—वि० [हिं० दंगा] दे० 'दंगई'।

दंगैत—वि० [हिं० दंगा + एत या ऐत (प्रत्य०)] १. दंगा करनेवाला। उपद्रवी। २. बागी। बलवाई।

दंड—संज्ञा पुं० [सं० दण्ड] १. डंडा। सोंटा। लाठी।

विशेष—स्मृतियों में आश्रम और वर्ण के अनुसार दंड धारण करने की व्यवस्था है। उपनयन संस्कार के समय मेखला आदि के साथ ब्रह्मचारी को दंड भी धारण कराया जाता है। प्रत्येक वर्ण के ब्रह्मचारी के लिये भिन्न भिन्न प्रकार के दंडों की व्यवस्था है। ब्राह्मण को बेल या पलाश का दंड केशांत तक ऊँचा, क्षत्रिय को बरगद या खैर का दंड ललाट तक और वैश्य को गूलर या पलाश का दंड नाक तक ऊँचा धारण करना चाहिए। गृहस्थों के लिये मनु ने बाँस का डंडा या छड़ी रखने का आदेश दिया है। संन्यासियों में कुटीचक और बहूदक को त्रिदंड (तीन दंड), हंस को एक वेणुदंड और परमहंस को भी एक दंड धारण करना चाहिए। ऐसा निर्णयसिंधु में उल्लेख है। पर किसी किसी ग्रंथ में यह भी लिखा है कि परमहंस परम ज्ञान को पहुँचा हुआ होता है अतः उसे दंड आदि धारण करने की कोई आवश्यकता नहीं। राजा लोग शासन और प्रतापसूचक एक प्रकार का राजदंड धारण करते थे।

मुहा०—दंड ग्रहण करना = संन्यास लेना। विरक्त या संन्यासी हो जाना।

२. डंडे के आकार की कोई वस्तु। जैसे, भुजदंड, शुंडादंड, वेतसदंड, इक्षुदंड इत्यादि। ३. एक प्रकार की कसरत जो हाथ पैर के पंजों के बल औंधे होकर की जाती है।

क्रि० प्र०—करना।—पेलना।—मारना।—लगाना।

यौ०—दंडपेल। चक्रदंड।

४. भूमि पर औंधे लेटकर किया हुआ प्रणाम। दंडवत्।

यौ०—दंड प्रणाम।

५. एक प्रकार व्यूह। दे० 'दंडव्यूह'। ६. किसी अपराध के प्रतिकार में अपराधी को पहुँचाई हुई पीड़ा या हानि। कोई भूल चूक या बुरा काम करनेवाले के प्रति वह कठोर व्यवहार जो उसे ठीक करने या उसके द्वारा पहुँची हुई हानि को पूरा कराने के लिये किया जाय। शासन और परिशोध की व्यवस्था। सजा। तदारुक।

विशेष—राज्य चलाने के लिये साम, दान, भेद और दंड ये चार नीतियाँ शास्त्र में कही गई हैं। अपने देश में प्रजा के शासन के लिये जिस दंडनीति का राजा आश्रय लेता है उसका विस्तृत

वर्णन स्मृति ग्रंथों में है। ऐसे दंड की तीन श्रेणियाँ मानी गई हैं—उत्तम साहस (भारी दंड, जैसे, वध, सर्वस्वहरण, देश-निकाला, अंगच्छेद इत्यादि); मध्यम साहस और प्रथम साहस। अग्निपुराण तथा अर्थशास्त्र में अन्य देशों के प्रति काम में लाई जानेवाली दंडविधि का भी उल्लेख है; जैसे, लूटना, आग लगाना, आघात पहुँचाना, बस्ती उजाड़ना इत्यादि।

७. अर्थदंड। वह धन जो अपराधी से किसी अपराध के कारण लिया जाय। जुरमाना। डाँड़।

क्रि० प्र०—लगाना।—देना।—लेना।

मुहा०—दंड डालना = (१) जुरमाना करना। अर्थदंड लगाना। (२) कर लगाना। महसूल लगाना। दंड पड़ना = हानि होना। नुकसान होना। घाटा होना। जैसे,—घड़ी किसी काम की न निकली, उसका रुपया दंड पड़ा। दंड भरना = (१) जुरमाना देना। (२) दूसरे के नुकसान को पूरा करना। दंड भोगना या भुगताना = (१) सजा अपने ऊपर लेना। दंड सहना। (२) जान बूझकर व्यर्थ कष्ट उठाना। दंड सहना = नुकसान उठाना। घाटा सहना।

विशेष—स्मृतियों में अर्थदंड की भी तीन श्रेणियाँ हैं,—प्रथम साहस ढाई सौ पण तक; मध्यम साहस पाँच सौ पण तक और उत्तम साहस एक हजार पण तक।

८. दमन। शासन। वश। शमन।

विशेष—संन्यासियों के लिये तीन प्रकार के दंड रखे गए हैं,—(१) वाग्दंड—वाणी को वश में रखना; (२) मनोदंड—मन को चंचल न होने देना, अधिकार में रखना और (३) कायदंड—शरीर को कष्ट का अभ्यास कराना। संन्यासियों का त्रिदंड इन्हीं तीन दंडों का सूचक चिह्न है।

९. ध्वजा या पताका का बाँस। १०. तराजू की डंडी। डाँड़ी। ११. मथानी। १२. किसी वस्तु (जैसे, करछी, चम्मच आदि) की डंडी। १३. हल की लंबी लकड़ी। हल में लगनेवाली लंबी लकड़ी। हरिस। १४. जहाज या नाव का मस्तूल। १५. एक योग का नाम। १६. लंबाई की एक माप जो चार हाथ की होती थी। १७. हरिवंश पुराण के अनुसार इक्ष्वाकु राजा के सौ पुत्रों में से एक जिनके नाम के कारण दंडकारण्य नाम पड़ा। वि० दे० 'दंडक'—४। १८. कुबेर के एक पुत्र का नाम। १९. (दंड देनेवाला) यम। २०. विष्णु। २१. शिव। २२. सेना। फौज। २३. अश्व। घोड़ा। २४. साठ पल का काल। चौबीस मिनट का समय। २५. वह आँगन जिसके पूर्व और उत्तर कोठरियाँ हों। २६. सूर्य का एक पार्श्वचर। सूर्य का एक अनुचर (को०)। २७. गर्व। घमंड। अभिमान (को०)। २८. वाद्य बजाने की एक प्रकार की लकड़ी (को०)। २९. कमल की नाल। जैसे, कमलदंड। ३१. राजा के हाथ का दंड जो शासन का प्रतीक होता है (को०)। ३२. डाँड़। पतवार (को०)।

दंडऋण—संज्ञा पुं० [सं० दण्डऋण] वह ऋण जो सरकारी जुरमाना देने के लिये लिया गया हो।

दंडकंदक—संज्ञा [सं० दण्डकन्दक] धरणी कंद। सेमर का मुसला।

दंडक—संज्ञा पुं० [सं० दण्डक] १. डंडा। २. दंड देनेवाला पुरुष। शासक। ३. छंदों का एक वर्ग। वह छंद जिसमें वर्णों की संख्या २६ से अधिक हो।

विशेष—दंडक दो प्रकार का होता है, एक गणात्मक, दूसरा मुक्तक। गणात्मक वह है जिसमें गणों का बंधन होता है अर्थात् किस गण के उपरांत फिर कौन सा गण आना चाहिए, इसका नियम होता है। जैसे, कुसुमस्तक, त्रिभंगी, नीलचक्र इत्यादि। उ०—(नीलचक्र)। जानि कै समै भुवाल, रामराज साज साजि ता समै अकाज काज कैकई जु कीन। भूप तें दुराय दैन राम सीय बंधु युक्त बोलिकै पठाय बेगि कानने सुदीन।—(छन्द०)। मुक्तक वह है जिसमें केवल अक्षरों की गिनती होती है अर्थात् जो गणों के बंधन से मुक्त होता है। किसी किसी में कहीं कहीं लघु गुरु का नियम होता है। हिंदी काव्य में जो कवित्त (मनहर) और घनाक्षरी छंद अधिक व्यवहृत हुए हैं वे इसी मुक्तक के अंतर्गत हैं। उ०—(मनहर कवित्त)। आनँद के कंद जग ज्यावन जगतबंद दशरथनंद के निबाहेई निबहिए। कहै पद्माकर पवित्र पन पालिबे कौं चौरे, चक्रपाणि के चरित्रन कौं चहिए।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २३८।

४. इक्ष्वाकु राजा के पुत्र का नाम।

विशेष—ये शुक्राचार्य के शिष्य थे। इन्होंने एक बार गुरु की कन्या का कौमार्य भंग किया। इसपर शुक्राचार्य ने शाप देकर इन्हें इनके पुर के सहित भस्म कर दिया। इनका देश जंगल हो गया और दंडकारण्य कहलाने लगा।

५. दंडकारण्य। ६. एक प्रकार का वातरोग जिसमें हाथ, पैर, पीठ, कमर आदि अंग स्तब्ध होकर ऐंठ से जाते हैं। ७. शुद्ध राग का एक भेद। ८. हल में लगनेवाली एक लंबी लकड़ी। हरिस (को०)।

दंडकर्म—संज्ञा पुं० [सं० दण्डकर्मन्] दंड देने का काम। दंड। सजा [को०]।

दंडकल—संज्ञा पुं० [सं० दण्डकल] एक छंद का नाम जिसमें तीस मात्राएँ होती हैं [को०]।

दंडकला—संज्ञा स्त्री० [सं० दण्डकला] एक छंद जिसमें १०, ८ और १४ के विराम से ३२ मात्राएँ होती हैं। इसमें जगण न आना चाहिए। जैसे—फल फूलनि ल्यावै, हरिहिं सुनावै, है या लायक भोजन की। अरु सब गुन पूरी, स्वादन रूरी, हरनि अनेकन रोगन की।

दंडका—संज्ञा स्त्री० [सं० दण्डका] दंडक वन। दंडकारण्य [को०]।

दंडकाक—संज्ञा पुं० [सं० दण्डकाक] काला और बड़े आकारवाला कौआ। डोम कौआ [को०]।

दंडकारण्य—संज्ञा पुं० [सं० दण्डकारण्य] वह प्राचीन वन जो

विंध्य पर्वत से लेकर गोदावरी के किनारे तक फैला था। इस वन में श्रीरामचंद्र वनवास के काल में बहुत दिनों तक रहे थे। यहीं शूर्पणखा के नाक कान कटे थे और सीताहरण हुआ था।

दंडकी—संज्ञा स्त्री० [सं० दण्डकी] ढोलक।

दंडखेदी—संज्ञा पुं० [सं० दण्डखेदिन्] वह मनुष्य जो राज्य से दंड पाने के कारण कष्ट में हो। दंड से दुःखी व्यक्ति।

विशेष—प्राचीन काल में भिन्न भिन्न अपराधों के लिये हाथ पैर काटने, अंग जलाने आदि का दंड दिया जाता था जिसके कारण दंडित व्यक्ति बहुत दिनों तक कष्ट में रहते थे। कौटिल्य ने ऐसे व्यक्तियों के कष्ट का उपाय करने की भी व्यवस्था की थी।

दंडगौरी—संज्ञा स्त्री० [सं० दण्डगौरी] एक अप्सरा का नाम।

दंडग्रहण—संज्ञा पुं० [सं० दण्डग्रहण] संन्यास आश्रम जिसमें दंड ग्रहण करने का विधान है।

दंडघ्न—संज्ञा पुं० [सं० दण्डघ्न] १. डंडे से मारनेवाला। दूसरे के शरीर पर आघात पहुँचानेवाला। २. दंड को न माननेवाला। राजा या शासन जिस दंड की व्यवस्था करे उसका भंग करनेवाला।

विशेष—मनुस्मृति में लिखा है कि चोर, परस्त्रीगामी, दुष्ट वचन बोलनेवाले, साहसिक, दंडघ्न इत्यादि जिस राजा के पुर में न हों वह इंद्रलोक को पाता है।

दंडचारी—संज्ञा पुं० [सं०] १. सेनापति (कौटि०)। २. सेना का एक विभाग (कौ०)।

दंडछदन—संज्ञा पुं० [सं०] वह कमरा जिसमें विभिन्न प्रकार के बर्तन रखे जाते हैं (कौ०)।

दंडढक्का—संज्ञा पुं० [सं० दण्डढक्का] दमामा। नगाड़ा। धौंसा।

दंडताम्री—संज्ञा स्त्री० [सं० दण्डताम्री] वह जलतरंग बाजा जिसमें ताँबे की कटोरियाँ काम में लाई जाती हैं।

दंडदास—संज्ञा पुं० [सं० दण्डदास] वह जो दंड का रुपया न दे सकने के कारण दास हुआ हो। वह जो जुरमाने का रुपया नौकरी करके चुकाता हो।

दंडदेवकुल—संज्ञा पुं० [सं० दण्डदेवकुल] न्यायालय। अदालत (कौ०)।

दंडदेवार—वि० [सं० दण्ड + हिं० देवार = देनेवाला] दंड देनेवाला। क्षमताशाली। उ०—समर सिंघ मेवार दंडदेवार अजर जर। दोली पत्ति अनंग लरन अड्डौ सुलोह लरि।—पृ० रा०, ७।२४।

दंडधर—वि० [सं० दण्डधर] डंडा रखनेवाला।

दंडधर[२]—संज्ञा पुं० १ यमराज। २ शासनकर्ता। ३. संन्यासी। ४. छड़ी बरदार। द्वाररक्षक। उ०—जहाँ बूढ़े करणिक, दंडधर, कंचुकी और वाहक तत्परता से इधर उधर घूमते।—वै० न० पृ० ६४।

दंडधार[१]—वि० [सं० दण्डधार] डंडा रखनेवाला।

दंडधार[२]—संज्ञा पुं० १. यमराज। २. राजा। ३. एक राजा का नाम जो महाभारत में दुर्योधन की ओर था और अर्जुन से लड़कर मारा गया था। ४. पांचालवंशीय एक योद्धा जो पांडवों की ओर से लड़ा था और कर्ण के हाथ से मारा गया था।

दंडधारण—संज्ञा स्त्री० [सं० दण्डधारण] कौटिल्य के अनुसार वह भूमि या प्रदेश जहाँ प्रबंध और शासन के लिये सेना रखनी पड़े।

दंडधारी—वि० संज्ञा पुं० [सं० दण्डधारिन्] दे० दंडधर (कौ०)।

दंडन—संज्ञा पुं० [सं० दण्डन] [वि० दंडनीय, दंडित, दंड्य] दंड देने की क्रिया। शासन।

दंडना(पु)—क्रि० स० [सं० दण्डन] दंड देना। शासित करना। सजा देना। उ०—मुशल मुग्दर हनत, त्रिविध कर्मनि गनत, मोहि दंडत धर्मदूत हारे।—सूर (शब्द०)।

दंडनायक—संज्ञा पुं० [सं० दण्डनायक] १. सेनापति। २. दंड-विधान करनेवाला राजा या हाकिम। ३. सूर्य के एक अनुचर का नाम।

दंडनीति—संज्ञा स्त्री० [सं० दण्डनीति] १. दंड देकर अर्थात् पीड़ित करके शासन में रखने की राजाओं की नीति। सेना आदि के द्वारा बलप्रयोग करने की विधि। २. दुर्गा का एक रूप (कौ०)

दंडनीय—वि० [सं० दण्डनीय] दंड देने योग्य।

दंडनेता—संज्ञा पुं० [सं० दण्डनेतृ] १. नृप। राजा। २. यमराज। ३. हाकिम (कौ०)।

दंडप—संज्ञा पुं० [सं० दण्डप] नरेश। राजा (कौ०)।

दंडपांशुल—संज्ञा पुं० [सं० दण्डपांशुल] दंडधर। छड़ी बरदार। द्वारपाल (कौ०)।

दंडपांसुल—संज्ञा पुं० [सं० दण्डपांसुल] दे० 'दंडपांशुल'।

दंडपाणि—संज्ञा पुं० [सं० दण्डपाणि] १. यमराज। २. काशी में भैरव की एक मूर्ति।

विशेष—काशीखंड में लिखा है कि पूर्णभद्र नामक एक यक्ष को हरिकेश नाम का एक पुत्र था जो महादेव का बड़ा भक्त था। एक बार जब इसने घोर तप किया तब महादेव पार्वती सहित इसके पास आए और बोले तुम काशी के दंडधर हो। वहाँ के दुष्टों का शासन और साधुओं का पालन करो। संभ्रम और उदभ्रम नाम के मेरे दो गण तुम्हारा सहायता के लिये सदा तुम्हारे पास रहेंगे। बिना तुम्हारी पूजा किए कोई काशी में मुक्ति नहीं पा सकेगा।

३. पुलिस। नगररक्षक कर्मचारी (कौ०)।

दंडपात—संज्ञा पुं० [सं० दण्डपात] एक प्रकार का सन्निपात जिसमें रोगी को नींद नहीं आती और वह इधर उधर पागल की तरह घूमता है।

दंडपारुष्य—संज्ञा पुं० [सं० दण्डपारुष्य] १. मनुस्मृति के टीकाकार कुल्लूक भट्ट के मतानुसार दूसरे के शरीर पर हाथ, डंडे आदि से आघात करने, धूल मैला आदि फेंकने का दुष्ट कार्य। मार पीट। २. राजाओं के सात व्यसनों में से एक।

दंडपाल—संज्ञा पुं० [सं० दण्डपाल] दे० 'दंडपालक'।

दंडपालक—संज्ञा पुं० [सं० दण्डपालक] १. ड्योढ़ीदार। दरबान। द्वारपाल। २. एक प्रकार की मछली। दंडिका मछली।

दंडपाशक—संज्ञा पुं० [सं० दण्डपाशक] १. दंड देनेवाला प्रधान कर्मचारी। २. घातक। जल्लाद।

दंडपाशिक—संज्ञा पुं० [सं० दण्डपाशिक] पुलिस का अधिकारी। उ०—पाल, परमार, गहड़वाल तथा प्रतिहार लेखों में पुलिस अधिकारी के लिये दांडिक, दंडपाशिक या दंडशक्ति का प्रयोग किया गया है।—पू० म० भा०, पृ० ११०।

दंडप्रणाम—संज्ञा पुं० [सं० दण्डप्रणाम] भूमि में डंडे के समान पड़कर प्रणाम करने की मुद्रा। दंडवत्। सादर अभिवादन।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

दंडप्रनामⓅ—संज्ञा पुं० [सं० दण्डप्रणाम] दे० 'दंडप्रणाम'। उ०—दंडप्रनाम करत मुनि देखे। मुरतिमंत भाग्य निज लेखे।—मानस, २। २०५।

दंडबालधि—संज्ञा पुं० [सं० दण्डबालधि] हाथी।

दंडभंग—संज्ञा पुं० [सं० दण्डभङ्ग] शासन या आदेश का उल्लंघन। दंडाज्ञा का व्यवहार न होना [को०]।

दंडभय—संज्ञा पुं० [सं० दण्ड + भय] दंड या सजा का डर।

दंडभृत्[1]—वि० [सं० दण्डभृत्] डंडा रखनेवाला। डंडा चलाने या घुमानेवाला।

दंडभृत्[2]—संज्ञा पुं० १. कुम्हार। कुंभकार। २. यमराज (को०)।

दंडमत्स्य—संज्ञा पुं० [सं० दण्डमत्स्य] एक प्रकार की मछली जो देखने में डंडे या साँप के आकार की होती हैं। बाम मछली।

दंडमाणव—संज्ञा पुं० [सं० दण्डमाणव] दे० 'दंडमानव'।

दंडमाथ—संज्ञा पुं० [सं० दण्डमाथ] सीधा रास्ता। प्रधान पथ।

दंडमानⓅ—वि० [सं० दण्ड + हिं० मान (प्रत्य०)] दंड पाने योग्य। सजा के लायक। दंडनीय। उ०—अदंडमान दीन गर्व दंडमान भेदवै।—केशव (शब्द०)।

दंडमानव—संज्ञा पुं० [सं० दण्डमानव] वह जिसे दंड देने की अधिक आवश्यकता पड़ती हो। बालक। लड़का।

दंडमुख—संज्ञा पुं० [सं० दण्डमुख] सेनानायक। सेनापति [को०]।

दंडमुद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं० दण्डमुद्रा] १. तंत्र की एक मुद्रा जिसमें मुट्ठी बाँधकर बीच की उँगली ऊपर को खड़ी करते हैं। २. साधुओं के दो चिह्न दंड और मुद्रा।

दंडयात्रा—संज्ञा स्त्री० [सं० दण्डयात्रा] सेना की चढ़ाई। २. दिग्विजय के लिये प्रस्थान। ३. बरयात्रा। बारात।

दंडयाम—संज्ञा पुं० [सं० दण्डयाम] १. यम। २. दिन। ३. अगस्त्य मुनि।

दंडरी—संज्ञा स्त्री० [सं० दण्डरी] एक प्रकार की ककड़ी। डंगरी फल।

दंडवत्—संज्ञा पुं०। स्त्री० [सं० दण्डवत्] साष्टांग प्रणाम। पृथ्वी पर लेटकर किया हुआ नमस्कार।

दंडवतⓅ—संज्ञा पुं०, स्त्री० [सं० दण्डवत्] दे० 'दंडवत्'। उ०—मुनि कहँ राम दंडवत कीन्हा। आशिरबाद विप्र बर दीन्हा।—तुलसी (शब्द०)।

विशेष—पूरब में इस शब्द को पुल्लिंग बोलते हैं पर दिल्ली की ओर यह शब्द स्त्रीलिंग बोला जाता है।

दंडवध—संज्ञा पुं० [सं० दण्डवध] प्राणदंड। फाँसी की सजा।

दंडवासी—संज्ञा पुं० [सं० दण्डवासिन्] १. द्वारपाल। दरबान। २. गाँव का हाकिम या मुखिया।

दंडवाही—संज्ञा पुं० [सं० दण्डवाहिन्] राजा की ओर से नगररक्षा विभाग का व्यक्ति। पुलिस का कर्मचारी [को०]।

दंडविकल्प—संज्ञा पुं० [सं० दण्डविकल्प] निर्धारित दो प्रकार के दंड (जुरमाना या सजा) में से किसी एक को चुन लेने की छूट [को०]।

दंडविधान—संज्ञा पुं० [सं० दण्डविधान] दे० 'दंडविधि'।

दंडविधि—संज्ञा स्त्री० [सं० दण्डविधि] अपराधों के दंड से संबंध रखनेवाला नियम या व्यवस्था। जुर्म और सजा का कानून।

दंडविष्कंभ—संज्ञा पुं० [सं० दण्डविष्कम्भ] वह खंभा जिसमें दही दूध मथने की रस्सी बाँधी जाय [को०]।

दंडवृक्ष—संज्ञा पुं० [सं० दण्डवृक्ष] थूहर। सेंहुड़।

दंडव्यूह—संज्ञा पुं० [सं० दण्डव्यूह] १. सेना की डंडे के आकार की स्थिति।

विशेष—इस व्यूह में आगे बलाध्यक्ष, बीच में राजा, पीछे सेनापति, दोनों ओर से हाथी, हाथियों की बगल में घोड़े और घोड़ों की बगल में पैदल सिपाही रहते थे। मनुस्मृति में इस व्यूह का उल्लेख है। अग्निपुराण में इसके सर्वतोवृत्ति, तिर्यग्वृत्ति आदि अनेक भेद बतलाए गए हैं।

२. कौटिल्य के अनुसार पक्ष, कक्ष तथा उरस्य में सेना की समान स्थिति।

दंडशास्त्र—संज्ञा पुं० [सं० दण्ड + शास्त्र] दंड देने का विधान या कानून [को०]।

दंडसंधि—संज्ञा स्त्री० [सं० दण्डसन्धि] कौटिल्य के अनुसार वह संधि जो सेना या लड़ाई का सामान लेकर की जाय। अपने से कम शक्ति या बलवाले राजा से धन लेकर की जानेवाली संधि।

दंडस्थान—संज्ञा पुं० [सं० दण्डस्थान] १. वह स्थान जहाँ दंड पहुँचाया जा सकता है।

विशेष—मनु ने दंड के लिये दस स्थान बतलाए हैं—(१) उपस्थ, (२) उदर, (३) जिह्वा, (४) दोनों हाथ, (५) दोनों पैर, (६) आँख, (७) नाक, (८) कान, (९) धन और (१०) देह। अपराध के अनुसार राजा नाक, कान आदि काट सकता है या धन हरण कर सकता है।

२. कौटिल्य के मत से वह जनपद या राष्ट्र जिसका शासन केंद्र द्वारा होता हो।

दंडहस्त—संज्ञा पुं० [सं० दण्डहस्त] १. तगर का फूल। २. द्वाररक्षक। द्वारपाल (को०)। ३. यमराज (को०)।

दंडा—संज्ञा पुं० [सं० दण्डक] दे० 'डंडा'।

दंडाकरनⓅ—संज्ञा पुं० [सं० दण्डकारण्य] दे० 'दंडकारण्य'।

उ०—परे आइ बन परबत माहीं। दंडाकरन बीझ बन जाहीं। —जायसी (शब्द०)।

दंडाक्ष—संज्ञा पुं० [सं० दण्डाक्ष] महाभारत के अनुसार चंपा नदी के किनारे का एक तीर्थ।

दंडाख्य—संज्ञा पुं० [सं० दण्डाख्य] बृहत्संहिता के अनुसार वह भवन जिसके दो पार्श्व में से एक उत्तर और दूसरा पूर्व की ओर हो।

दंडाजिन—संज्ञा पुं० [सं० दण्डाजिन] १. साधु संन्यासियों के धारण करने का दंड और मृगचर्म। २. झूठमूठ का आडंबर। धोखेबाजी का ढकोसला। कपटवेश।

दंडादंडि—संज्ञा स्त्री० [सं० दण्डादण्डि] डंडों की मारपीट। लट्ठबाजी। लाठी की लड़ाई।

दंडाधिप—संज्ञा पुं० [सं० दण्ड + अधिप] दंड देने का प्रमुख अधिकारी [को०]।

दंडाध्यक्ष—संज्ञा पुं० [सं० दण्ड+अध्यक्ष] दंडाधिकारी। न्यायाधीश। उ०—दंडाध्यक्ष या प्राचीन न्यायकरणिक का उल्लेख नहीं मिलता।—पू० म० भा०, पृ० १०८।

दंडानीक—संज्ञा पुं० [सं० दण्ड + अनीक] सेना की टुकड़ी या विभाग [को०]।

दंडापतानक—संज्ञा पुं० [सं० दण्ड + अपतानक] एक प्रकार की वातव्याधि जिसमें कफ और वात के बिगड़ने से मनुष्य का शरीर सूखे काठ की तरह जड़ हो जाता है। उ०—देह को दंड के समान तिरछा कर दे यह दंडापतानक कष्ट साध्य है। माधव०, पृ० १३८।

दंडापूपन्याय —संज्ञा पुं० [सं० दण्ड + अपूपन्याय] एक प्रकार का न्याय या दृष्टांत कथन जिसके द्वारा यह सूचित किया जाता है कि जब किसी के द्वारा कोई बहुत कठिन कार्य हो गया तब उसके साथ ही लगा हुआ सहज और सुखकर कार्य अवश्य ही हुआ होगा। जैसे, यदि डंडे में बँधा हुआ अपूप अर्थात् मालपुआ कहीं रखा हो और पीछे मालूम हो कि डंडे को चूहे खा गए तो यह अवश्य ही समझ लेना चाहिए कि चूहे मालपूए को पहले ही खा गए होंगे।

दंडायमान—वि० [सं० दण्डायमान] डंडे की तरह सीधा खड़ा। खड़ा। उ०—यह कौतुक देखने के उपरांत विष्णु महाराज देवी की स्तुति करने को दंडायमान हुए। हे महामाया! सच्चिदानंदरूपिणी। मैं तुमको नमस्कार करता हूँ।—कबीर मं० पृ० २१४।

क्रि० प्र०—होना।

दंडार—संज्ञा पुं० [सं० दण्डार] १. धनुष। २. मदगल हाथी। ३. नाव। ४. स्यंदन। रथ। ५. कुम्हार का चाक [को०]।

दंडार्ह—संज्ञा पुं० [सं० दण्डार्ह] दंड देने योग्य। दंडभागी। दंड पाने योग्य [को०]।

दंडालय—संज्ञा पुं० [सं० दण्डालय] १. न्यायालय जहाँ से दंड का विधान हो। २. वह स्थान जहाँ दंड दिया जाय। जैसे, जेलखाना। ३. एक छंद जिसे दंडकला भी कहते हैं। दे० 'दंडकला'।

दंडालसिका—संज्ञा पुं० [सं० दण्ड + अलसिका] हैजा। कालरा [को०]।

दंडावतानक—संज्ञा पुं० [सं० दण्ड + अवतानक] दे० 'दंडापतानक' [को०]।

दंडाहत[1]—वि० [सं० दण्डाहत] डंडे से मारा हुआ।

दंडाहत[2]—संज्ञा पुं० छाछ। मट्ठा।

दंडिक—संज्ञा पुं० [सं० दण्डिक] १. नगररक्षक कर्मचारी। २. दंडधर। छड़ी बरदार। ३. एक प्रकार का मत्स्य [को०]।

दंडिका—संज्ञा स्त्री० [सं० दण्डिका] १. बीस अक्षरों की एक वर्णवृत्ति जिसके प्रत्येक चरण में एक रगण के उपरांत एक जगण, इस प्रकार गणों का जोड़ा तीन बार आता है और अंत में गुरु लघु होता है। इसे वृत्त और गंडका भी कहते हैं। जैसे,—रोज रोज राजगैल तें लिए गुपाल ग्वाल तीन सात। वायु सेवनार्थ प्रात बाग जात आव ले सुफूल पात। २. यष्टिका। छड़ी (को०)। ३. कतार। पंक्ति (को०)। ४. रज्जु। डोरी (को०)। ५. मोती की लर, हार आदि (को०)।

दंडित—वि० पुं० [सं० दण्डित] दंड पाया हुआ। जिसे दंड मिला हो। सजायाफ्ता। २. जिसका शासन किया गया हो। शासित। उ०—पंडित गण मंडित गुण दंडित मति देखिए। —केशव (शब्द०)।

दंडिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० दण्डिनी] दंडोत्पला। एक प्रकार का साग।

दंडिमुंड—संज्ञा पुं० [सं० दण्डिमुण्ड] शिव का एक नाम [को०]।

दंडी—संज्ञा पुं० [सं० दण्डिन्] १. दंड धारण करनेवाला व्यक्ति। २. यमराज। ३. राजा। ४. द्वारपाल। ५. वह संन्यासी जो दंड और कमंडलु धारण करे।

विशेष—ब्राह्मण के अतिरिक्त और किसी को दंडी होने का अधिकार नहीं है। यद्यपि पिता, माता, स्त्री, पुत्र आदि के रहते भी दंड लेने का निषेध है, तथापि लोग ऐसा करते हैं। मंत्र देने के पहले गुरु शिष्य होनेवाले के सब संस्कार (अन्नप्राशन आदि) फिर से करते हैं। उसकी शिखा मुँड़ दी जाती है और जनेऊ उतारकर भस्म कर दिया जाता है। पहला नाम भी बदल दिया जाता है। इसके उपरांत दशाक्षर मंत्र देकर गुरु गेरुवा वस्त्र और दंड कमंडलु देते हैं। इन सबको गुरु से प्राप्त कर शिष्य दंडी हो जाता है और जीवनपर्यंत कुछ नियमों का पालन करता है। दंडी लोग गेरुआ वस्त्र पहनते हैं, सिर मुड़ाए रहते हैं और कभी कभी भस्म और रुद्राक्ष भी धारण करते हैं। दंडी लोग अग्नि और धातु का स्पर्श नहीं करते, इससे अपने हाथ से रसोई नहीं बना सकते। किसी ब्राह्मण के घर से पका भोजन माँगकर खा सकते हैं। दंडियों के लिये दो बार भोजन करने का निषेध है। इन सब नियमों का बारह वर्ष तक पालन करके अंत में दंड को जल में फेंककर दंडी परमहंस आश्रम को प्राप्त करता है। दंडियों के लिये निर्गुण ब्रह्म की उपासना की व्यवस्था है। जिनसे यह उपासना न हो सके वे शिव आदि की उपासना

कर सकते हैं। मरने पर दंडियों के शव का दाह नहीं होता, या तो शव मिट्टी में गाड़ दिया जाता है या नदी में फेंक दिया जाता है। काशी में बहुत से दंडी दिखाई पड़ते हैं।

६. सूर्य के एक पार्श्वचर का नाम। ७. जिन देव। ८. धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम। ९. दमनक वृक्ष। दौने का पौधा। १०. मंजुश्री। ११. शिव। महादेव। १२. नाविक। केवट (को०)। १३. संस्कृत के प्रसिद्ध कवि जिनके बनाए हुए दो ग्रंथ मिलते हैं 'दशकुमारचरित' और 'काव्यादर्श'। ऐसा प्रसिद्ध है कि दंडी ने तीन ग्रंथ लिखे थे दशकुमारचरित (गद्यकाव्य), काव्यादर्श (लक्षण ग्रंथ) और अवंतिसुंदरी कथा, पर तीसरे का पता बहुत दिनों तक नहीं लगा था। इधर उक्त ग्रंथ प्राप्त हो गया है और प्रकाशित भी है। अनेक लोगों का मत है कि ईसा की छठी शताब्दी में दंडी हुए थे। 'शंकर-दिग्विजय में 'बाणमयूरदंडि मुख्यान्' से ज्ञात होता है कि ये बाण और मयूर के समकालीन थे। इतना तो निश्चय है कि ये कालिदास और शूद्रक आदि के पीछे के हैं। इनकी वाक्य-रचना आडंबरपूर्ण है।

दंडोत(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० दण्डवत्] दे० 'दंडवत'। उ०—बंदन सबही सुरन को बिधि हू को दंडोत। कर्मन को फल देतु हैं इनको कहा उदोत।—ब्रज० ग्रं०, पृ० ७२।

दंडोत्पल—संज्ञा पुं० [सं० दण्डोत्पल] एक पौधे का नाम जिसे कुछ लोग गूमा, कुछ लोग कुकरौंधा और कुछ लोग बड़ी सहदेया समझते हैं।

दंडोत्पला—संज्ञा स्त्री० [सं० दण्डोत्पला] दे० 'दंडोत्पल'।

दंडोपनत—वि० [सं० दण्ड + उपनत] कौटिल्य के अनुसार पराजित और अधीन (राजा)।

दंडौत(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० दण्डवत्] दे० 'दंडवत्'। उ०—सनमुख अंजुलि जाइ करी दंडोत सबन कहुं। कुसुमंजलि सिर मंडि धूप नैवेद समुह सहुं।—पृ० रा०, ६।५८।

दंड्य—वि० [सं० दण्ड्य] दंड पाने योग्य। जिसे दंड देना उचित हो।

दंत—संज्ञा पुं० [सं० दन्त] १. दाँत। उ०—दंत कवाड्या नहु रँग्या। चाचउ सखी होली खेलबा जाई।—बी० रासो, पृ० ६८।

यौ०—दंतकथा। दंत चिकित्सक = दाँत की चिकित्सा करनेवाला। दंतचिकित्सा = दाँत का इलाज।

२. ३२ की संख्या। ३. गाँव के हिस्सों में बहुत ही छोटा हिस्सा जो पाई से भी बहुत कम होता है। (कौड़ियों में दाँत के चिह्न होते हैं इसी से यह संख्या बनी है)। ४. कुंज। ५. पहाड़ की चोटी। ६. बाण का सिरा या नोक (को०)। ७. हाथी का दाँत (को०)।

यौ०—दंतकार।

दंतक—संज्ञा पुं० [सं० दन्तक] १. दाँत। २. पहाड़ की चोटी। ३. पहाड़ से निकलनेवाला एक प्रकार का पत्थर। ४. दीवाल में लगी हुई खूँटी (को०)।

दंतकथा—संज्ञा स्त्री० [सं० दन्तकथा] ऐसी बात जिसे बहुत दिनों से लोग एक दूसरे से सुनते चले आए हों; तथा जिसका कोई और पुष्ट प्रमाण न हो। सुनी सुनाई बात। अनुश्रुति। उ०—इति बेद बदंति न दंतकथा। रवि आतप भिन्न न भिन्न यथा।—तुलसी (शब्द०)।

दंतकर्षण—संज्ञा पुं० [सं० दन्तकर्षण] जंभीरी नीबू।

दंतकार—संज्ञा पुं० [सं० दन्तकार] १. वह व्यक्ति जो हाथीदाँत का काम करता हो। २. दाँत बनानेवाला शिल्पी। दंत चिकित्सक डाक्टर।

दंतकाष्ठ—संज्ञा पुं० [सं० दन्तकाष्ठ] दतुवन। दतून। मुखारी।

दंतकाष्ठक—संज्ञा पुं० [सं० दन्तकाष्ठक] आहुल्य वृक्ष। तरवट का पेड़।

दंतकुली†—संज्ञा स्त्री० [सं० दन्त + कुल (= समुदाय)] दाँतों की पंक्ति। उ०—दंतकुली अंगुली करी कोपरी कपालाँ। बीच खेत बिथरी, फरी बिहुरी किरमालाँ।—रा० रू०, पृ० २५१।

दंतकूर—संज्ञा पुं० [सं० दन्तकूर] युद्ध। संग्राम।

दंतक्षत—संज्ञा पुं० [सं० दन्तक्षत] कामशास्त्र के अनुसार कामकेलि में नायक नायिका द्वारा प्रेमोन्माद में एक दूसरे के अधर और कपोल में लगा हुआ दाँत काटने का चिह्न। दाँत काटने का निशान [को०]।

दंतघर्ष—संज्ञा पुं० [सं० दन्तघर्ष] दाँत पर दाँत दबाकर घिसने की क्रिया। दाँत किरकिराना।

विशेष—निद्रा की अवस्था में बच्चे कभी कभी दाँत किरकिराते हैं जिसे लोग अशुभ समझते हैं। रोगी के पक्ष में यह और भी बुरा समझा जाता है।

दंतघात—संज्ञा पुं० [सं० दन्तघात] दे० 'दंताघात'।

दंतच्छद—संज्ञा पुं० [सं० दन्तच्छद] ओष्ठ। ओंठ।

दंतच्छदोपमा—संज्ञा स्त्री० [सं० दन्तच्छदोपमा] बिंबाफल। कुंदरू।

दंतछत(पु)—संज्ञा पुं० [सं० दन्तक्षत] दे० 'दंतक्षत'।

दंतछद[1](पु)—संज्ञा पुं० [सं० दन्तच्छद] दंतच्छद।

दंतछद[2]—संज्ञा पुं० [सं० दन्तक्षत] दे० 'दंतक्षत'।

दंतजात—वि० [सं० दन्तजात] १. (बच्चा) जिसे दाँत निकल आए हों। २. दाँत निकलने योग्य (काल)।

विशेष—गर्भोपनिषद् में लिखा है कि बच्चे को सातवें महीने में दाँत निकलना चाहिए। यदि उस समय दाँत न निकलें तो अमोघ लगता है।

दंतजाह—संज्ञा पुं० [सं० दन्तजाह] दाँतों की जड़ [को०]।

दंतताल—संज्ञा पुं० [सं० दन्तताल] एक प्रकार का प्राचीन बाजा जिससे ताल दिया जाता है।

दंतदर्शन—संज्ञा पुं० [सं० दन्तदर्शन] क्रोध या चिड़चिड़ाहट में दाँत निकालने की क्रिया।

विशेष—महाभारत (वन पर्व) में लिखा है कि युद्ध में पहले दाँत दिखाए जाते हैं फिर शब्द करके वार किया जाता है।

दंतधाव—संज्ञा पुं० [सं० दन्तधाव] दे० 'दंतधावन' [को०]।

दंतधावन—संज्ञा पुं० [सं० दन्तधावन] १. दाँत धोने या साफ करने

का काम । दातुन करने की क्रिया । २. बतौन । दातुन । ३. खैर का पेड़ । खदिर वृक्ष । ४. करंज का पेड़ । ५. मौलसिरी ।

दंतपत्र—संज्ञा पुं० [सं० दन्तपत्र] कान का एक गहना ।

विशेष—संभवतः जो हाथी दाँत का बनता रहा हो ।

दंतपत्रक—संज्ञा पुं० [सं० दन्तपत्रक] १. कुंद पुष्प । २. कान का एक आभूषण । दंतपत्र (को०) ।

दंतपत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं० दन्तपत्रिका] १. कान का एक आभूषण । २. कुंद का पुष्प । ३. कंघी [को०] ।

दंतपवन—संज्ञा पुं० [सं० दन्तपवन] दाँत शुद्ध करने की क्रिया । दंतधावन । २. दतुवन । दातन ।

दंतपांचालिका—संज्ञा स्त्री० [सं० दन्तपाञ्चालिका] हाथीदाँत की बनी पुतली [को०] ।

दंतपात—संज्ञा पुं० [सं० दन्तपात] दाँतों का गिरना [को०] ।

दंतपार—संज्ञा स्त्री० [हिं० दंत + उपारना] दाँत की पीड़ा । दाँत का दर्द ।

दंतपालि—संज्ञा स्त्री० [सं० दन्तपालि] तलवार की मूठ । तलवार का कब्जा या दस्ता [को०] ।

दंतपाली—संज्ञा स्त्री० [सं० दन्तपाली] दाँत की जड़ । मसूड़ा [को०] ।

दंतपुप्पुट—संज्ञा पुं० [सं० दन्तपुप्पुट] मसूड़ों का एक रोग, जिसमें वे सूज जाते हैं और दर्द करते हैं ।

दंतपुर—संज्ञा पुं० [सं० दन्तपुर] प्राचीन कलिंग राज्य का एक नगर जहाँ पर राजा ब्रह्मदत्त ने बुद्धदेव का एक दंत स्थापित करके उसके ऊपर एक बड़ा मंदिर बनवाया था ।

विशेष—यह दंतपुर कहाँ था, इसके संबंध में मतभेद है । डाक्टर राजेंद्रलाल का मत है कि मेदिनीपुर जिले में जलेश्वर से छह कोस दक्खिन जो दाँतन नामक स्थान है वही बौद्धों का प्राचीन दंतपुर है । सिंहली बौद्धों के 'दाठावंश' नामक ग्रंथ में दंतपुर के संबंध में बहुत सा वृत्तांत दिया हुआ है ।

दंतपुष्प—संज्ञा पुं० [सं० दन्तपुष्प] १. कतक । निर्मली । २. कुंद का फूल ।

दंतप्रक्षालन—संज्ञा पुं० [सं० दन्तप्रक्षालन] दे० 'दंतपवन' [को०] ।

दंतप्रवेष्ट—संज्ञा पुं० [सं० दन्तप्रवेष्ट] हाथी के दाँत का आवरण [को०] ।

दंतफल—संज्ञा पुं० [सं० दन्तफल] १. कतक फल । निर्मली । २. कपित्थ । कैथ ।

दंतफला—संज्ञा स्त्री० [सं० दन्तफला] पिप्पली ।

दंतबीज—संज्ञा पुं० [सं० दन्तबीज] वह जिसके बीज दाँत के सदृश हों । दाड़िम । अनार [को०] ।

दंतबीजक—संज्ञा पुं० [सं० दन्तबीजक] दे० 'दंतबीज' [को०] ।

दंतभाग—संज्ञा पुं० [सं० दन्तभाग] १. हाथी के सिर का वह अग्र भाग जहाँ से उसके दाँत निकलते हैं । २. दाँतों का हिस्सा [को०] ।

दंतमध्य—संज्ञा पुं० [सं० दन्तमध्य] दे० 'दंतांतर' [को०] ।

दंतमांस—संज्ञा पुं० [सं० दन्तमांस] मसूड़ा ।

दंतमूल—संज्ञा पुं० [सं० दन्तमूल] १. दाँत की जड़ । २. दाँत का एक रोग ।

दंतमूलिका—संज्ञा स्त्री० [सं० दन्तमूलिका] दंती वृक्ष । जमालगोटे का पेड़ ।

दंतमूलीय—वि० [सं० दन्तमूलीय] दंतमूल से उच्चारण किया जानेवाला (वर्ण) । जैसे, तवर्ग ।

विशेष—व्याकरण के अनुसार स्वर वर्ण लृ और त, थ, द, ध, न तथा ल और स व्यंजन दंतमूलीय कहे जाते हैं ।

दंतलेखक—संज्ञा पुं० [सं० दन्तलेखक] दाँतों को रँगने का व्यवसाय करके अपनी जीविका अर्जित करनेवाला व्यक्ति [को०] ।

दंतलेखन—संज्ञा पुं० [सं० दन्तलेखन] एक शस्त्र जिससे दाँत की जड़ के पास मसूड़ों को चीरकर मवाद आदि निकालते हैं जिससे दाँत की पीड़ा दूर होती है । दंतशर्करा नामक रोग में इस शस्त्र का प्रयोजन होता है ।

दंतवक्र—संज्ञा पुं० [सं० दन्तवक्र] करुष देश का राजा, जो वृद्धशर्मा का पुत्र था । यह शिशुपाल का भाई लगता था और श्रीकृष्ण के हाथ से मारा गया था ।

दंतवर्ण—वि० [सं० दन्तवर्ण] चमकदार । ओपदार ।

दंतवल्क—संज्ञा पुं० [सं० दन्तवल्क] दाँत की जड़ के ऊपर का मांस । मसूड़ा ।

दंतवस्त्र—संज्ञा पुं० [सं० दन्तवस्त्र] ओष्ठ । ओंठ ।

दंतवीज—संज्ञा पुं० [सं० दन्तवीज] अनार ।

दंतवीणा—संज्ञा स्त्री० [सं० दन्तवीणा] १. वाद्यविशेष । एक प्रकार का बाजा । २. (शीतादि के कारण) दाँतों का बजना [को०] ।

यौ०—दंतवीणोपदेशाचार्य = शीत या ठंढक जिसके कारण दाँत बजने लगते हैं ।

दंतवेष्ट—संज्ञा पुं० [सं० दन्तवेष्ट] १. हाथी के दाँत के ऊपर का मढ़ा हुआ छल्ला । २. मसूड़ा । ३. दाँतों में होनेवाला एक रोग [को०] ।

दंतवैदर्भ—संज्ञा पुं० [सं० दन्तवैदर्भ] दाँत का एक रोग । किसी बाहरी आघात से दाँत का हिलना या टूटना ।

दंतशंकु—संज्ञा पुं० [सं० दन्तशङ्कु] चीर फाड़ का एक औजार जो जौ के पत्तों के आकार का होता था (सुश्रुत) । दाँत को उखाड़ने का यंत्र ।

दंतशठ—संज्ञा पुं० [सं० दन्तशठ] १. वे वृक्ष जिनके फल खाने से खटाई के कारण दाँत गुठले हो जायँ । जैसे, कैथ, कमरख, छोटी नारंगी, जंभीरी नीबू, इत्यादि । २. खट्टापन । खटाई ।

दंतशठा—संज्ञा स्त्री० [सं० दन्तशठा] खट्टी नोनिया । अमलोनी । २. चुक । चूक ।

दंतशर्करा—संज्ञा स्त्री० [सं० दन्तशर्करा] दाँतों का एक रोग जो मैल जमकर बैठ जाने के कारण होता है ।

दंतशाण—संज्ञा पुं० [सं० दन्तशाण] मिस्सी । स्त्रियों के दाँत पर लगाने का रंगीन मंजन ।

दंतशूल—संज्ञा पुं० [सं० दन्तशूल] दाँत की पीड़ा ।

दंतशोफ—संज्ञा पुं० [सं० दन्तशोफ] दाँत के मसूड़ों में होनेवाला एक प्रकार का फोड़ा। दंतार्बुद।

दंतश्लिष्ट—वि० [सं० दन्तश्लिष्ट] दाँतों में उलझा या चिपका हुआ [को०]।

दंतहर्ष—संज्ञा पुं० [सं० दन्तहर्ष] दाँतों की वह टीस जो अधिक ठंढी या खट्टी वस्तु लगने से होती है। दाँतों का खट्टा होना।

दंतहर्षक—संज्ञा पुं० [सं० दन्तहर्षक] जंभीरी नीबू।

दंतहीन—वि० [सं० दन्तहीन] बिना दाँत का। जिसके मुँह में दाँत न हो [को०]।

दंतांतर—संज्ञा पुं० [सं० दन्त + अन्तर] दाँतों के बीच का अंतर या स्थान [को०]।

दंताघात—संज्ञा पुं० [सं० दन्ताघात] १. दाँत का आघात। २. वह जिससे दाँत को आघात पहुँचे—नीबू।

दंताज—संज्ञा पुं० [सं० दन्ताज] १. दाँत की जड़ या संधि में पड़नेवाले कीड़े। २. दाँत का रोग जो इन कीड़ों के कारण होता है।

दंतादंति—संज्ञा स्त्री० [सं० दन्तादन्ति] एक दूसरे को दाँत से काटने की क्रिया या लड़ाई।

दंतायुध—संज्ञा पुं० [सं० दन्तायुध] वह जिसका अस्त्र दाँत हो। सूअर। जंगली सूअर।

दंतार[1]—वि० [हिं० दाँत + आर (प्रत्य०)] बड़े दाँतोंवाला।

दंतार[2]—संज्ञा पुं० हाथी।

दंतारा—वि०, संज्ञा पुं० [हिं० दंतार] दे० 'दंतार'।

दंतार्बुद—संज्ञा पुं० [सं० दन्तार्बुद] मसूड़ों में होनेवाला एक प्रकार का फोड़ा।

दंताल—संज्ञा पुं० [हिं० दन्तार] हाथी।

दंतालय—संज्ञा पुं० [सं० दन्त + आलय] मुख। मुँह [को०]।

दंतालि—संज्ञा स्त्री० [सं० दन्तालि] दाँतों की पंक्ति। दाँतों की पाँत [को०]।

दंतालिका—संज्ञा स्त्री० [सं० दन्तालिका] लगाम।

दंताली—संज्ञा स्त्री० [सं० दन्ताली] लगाम।

दंतावल—संज्ञा पुं० [सं० दन्तावल] हाथी।

दंतावली—संज्ञा स्त्री० [सं० दन्त + अवली] दाँतों की पंक्ति। 'दंतालि' [को०]।

दंताहल(पु)—संज्ञा पुं० [सं० दन्तावल] हाथी।—(डिं०)।

दंति—संज्ञा पुं० [सं० दन्तिन्] हाथी। उ०—सदा दंति के कुंभ को जो बिदारै।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० १४२।

दंतिका—संज्ञा स्त्री० [सं० दन्तिका] दंती। जमालगोटा।

दंतिजा—संज्ञा स्त्री० [सं० दन्तिजा] दंती वृक्ष। दंती [को०]।

दंतिदंत—संज्ञा पुं० [सं० दन्तिदन्त] हाथीदाँत।

दंतिबीज—संज्ञा पुं० [सं० दन्तिबीज] जमालगोटा।

दंतिमद—संज्ञा पुं० [सं० दन्तिमद] हाथी का मद। हाथी के गंडस्थल का स्राव [को०]।

दंतियाँ—संज्ञा स्त्री० [हिं० दाँत + इया (प्रत्य०)] छोटे छोटे दाँत।

दंतिवक्त्र—संज्ञा पुं० [सं० दन्तिवक्त्र] हाथी की तरह मुखवाले-गजानन। गणेश [को०]।

दंती—संज्ञा स्त्री० [सं० दन्ती] अंडी की जाति का एक पेड़।

विशेष—दंती दो प्रकार की होती है—एक लघुदंती और दूसरी बृहद्दंती। लघुदंती के पत्ते गूलर के पत्तों के ऐसे होते हैं और बृहद्दंती के एरंड या अंडी के से। इसके बीज दस्तावर होते हैं और जमालगोटे के स्थान पर औषध में काम आते हैं। वैद्यक में दंती, कटु, उष्ण और तृषा, शूल, बवासीर, फोड़े आदि को दूर करनेवाली मानी जाती है। दंती के बीज अधिक मात्रा में देने से विष का काम करते हैं।

पर्या०—शीघ्रा। निकुंभी। नागस्फोटा। दंतिनी। उपचित्रा। भद्रा। रुक्षा। रेचनी। अनुकूला। निःशल्या। विशल्या। मधुपुष्पा। एरंडफला। तरणी। एरंडपत्रिका। विशोधनी। कुंभी। उदुंबरदला। प्रत्यक्पर्णी।

दंती[2]—संज्ञा पुं० [सं० दन्तिन्] १. हस्ती। हाथी। गज। उ०—झलते थे श्रुति तालवृंत दंती रह रहकर।—साकेत, पृ० ४१४। २. गणेश। गजानन। ३. पर्वत। ४. सोम। चंद्रमा (को०)। ५. व्याघ्र। मृगाधिप (को०)। ६. क्रोड़। अंकोर। गोद (को०)। ७. श्वान। कुत्ता (को०)।

दंती[3]—वि० दाँतवाला। जिसके दाँत हों [को०]।

दंतुर[1]—वि० [सं० दन्तुर] जिसके दाँत आगे निकले हों। दँतुला। दाँतू। २. ऊबड़ खाबड़। नीचा ऊँचा (को०)। ३. खुला हुआ। आवरणरहित (को०)।

दंतुर[2]—संज्ञा पुं० १. हाथी। २. सूअर।

दंतुरच्छद—संज्ञा पुं० [दन्तुरच्छद] जँभीरी नीबू। बिजौरा नीबू।

दंतुरित—वि० [सं० दन्तुरित] १. आवेष्टित। ढका हुआ। दे० 'दंतुर' [को०]।

दंतुल—वि० [सं० दन्तुल] दे० 'दंतुर' [को०]।

दंतोलूखलिक—संज्ञा पुं० [सं० दन्त + उलूखलिक] एक प्रकार के संन्यासी जो ओखली आदि में कूटा हुआ अन्न नहीं खाते। ये या तो फल खाते हैं या छिलके सहित अनाज के दानों को दाँत के नीचे कुचलकर खाते हैं।

दंतोलूखली—संज्ञा पुं० [सं० दन्त + उलूखलिन्] दे० 'दंतोलूखलिक'।

दंतोष्ठ्य—वि० [सं०] (वर्ण) जिसका उच्चारण दाँत और ओठ से हो।

विशेष—ऐसा वर्ण 'व' है।

दंत्य—वि० [सं० दन्त्य] १. दंत संबंधी। २. (वर्ण) जिसका उच्चारण दाँत की सहायता से हो। जैसे, तवर्ग। ३. दाँतों का हितकारी (औषध)।

दंद[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० दहन, दन्दह्यमान्] किसी पदार्थ से निकलती हुई गरमी, जैसी तपी हुई भूमि पर मेघ का पानी पड़ने से निकलती है या खानों के भीतर पाई जाती है।

क्रि० प्र०—आना।—निकलना।

दंद[1]—संज्ञा पुं० [सं० द्वन्द्व प्रा० दंद] १. लड़ाई झगड़ा। उपद्रव। हलचल। २. युद्ध। संघर्ष। संग्राम। उ०—आज हुनो जैचंद दंद क्यों मिटै ततच्छिन।—पृ० रा० ६१।१४६। ३. हल्ला गुल्ला। शोरगुल। ४. दुःख। मानसिक उथल पुथल। उ०—(क) रोहिणि माता उदर प्रगट भए हरन भक्त के दंद।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ५१३। (ख) त्यागहु संसय भ्रम कर दंदा। सूझि परहि तब भवजल फंदा।—दरिया० बानी, पृ० ३।

क्रि० प्र०—मचाना।

दंदना[1]—संज्ञा पुं० [सं० द्वन्द्व] दे० 'द्वंद्व'। उ०—फूले पशु पंछी सब, देखि ताप कटे तब, फूले सब ग्वाल बाल कटे दुख दंदना—नंद० ग्रं०, पृ० ३७६।

दंदन—वि० [सं० दमन] नाश करनेवाला। दूर करनेवाला। दमन करनेवाला।

दंदश—संज्ञा पुं० [सं० दन्दश] दाँत। दंत (को०)।

दंदशूक[1]—संज्ञा पुं० [सं० दन्दशूक] १. सर्प। २. राक्षस विशेष। ३. कीट। कीड़ा (को०)। ४. एक प्रकार का नरक।

दंदशूक[2]—वि० हिंसक। काटनेवाला (को०)।

दंदहर—वि० [सं० द्वन्द्वहर] द्वंद्व को दूर करनेवाला। मानसिक शांति पहुँचानेवाला। उ०—परसति मंद सुगंध दंदहर विपिन विपिन मैं।—रत्नाकर, भा० १, पृ० ६।

दंदह्यमान—वि० [सं० दन्दह्यमान] दहकता हुआ।

दंदा—संज्ञा पुं० [देश०] ताल देने का एक प्रकार का पुराना बाजा।

दंदान—संज्ञा पुं० [फ़ा०] दाँत (को०)।

यौ०—दंदानसाज = दंतचिकित्सक। दाँत बनानेवाला।

दंदाना[1]—क्रि० अ० [हिं० दंद] १. गरम लगना। गरमी पहुँचाता हुआ मालूम होना। जैसे, रूई का दंदाना, बंद कोठरी का दंदाना। २ किसी गरम चीज के आसपास होने से गरम होना। जैसे, रजाई या कंबल के नीचे दंदाना।

दंदाना[2]—संज्ञा पुं० [फ़ा० दंदानह] [वि० दंदानेदार] दाँत के आकार की उभरी हुई वस्तुओं की पंक्ति। शंकु या कँगूरे के रूप में निकली हुई चीजों की कतार, जैसी कंघी या आरे आदि में होती है।

दंदानेदार—वि० [फ़ा०] जिसमें दंदाने हों। जिसमें दाँत की तरह निकले हुए कंगूरों की पंक्ति हो।

दंदारू—संज्ञा पुं० [हिं० दंद + आरू (प्रत्य०)] छाला। फफोला।

दंदी—वि० [सं० द्वन्द्वी, हिं० दंद] झगड़ालू। उपद्रवी। बखेड़ा करनेवाला। हुज्जती। उ०—कलिजुग मधे जुग चारि रचीला चूकिला चार बिचार। घरि घरि दंदी घरि घरि बादी घरि घरि कथणहार।—गोरख०, पृ० १२३।

दंदु—संज्ञा पुं० [सं० द्वन्द्व] दे० 'द्वंद्व'। उ०—अब हो कंठ फाँद गिव कीन्हा। दंदु के फाँद चाहु का कीन्हा।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १७०।

दंदुल—वि० [सं० तुन्दिल] दे० 'तुंदिल'। उ०—विद्याधरी दंदुल पेट उसपर साँप की चपेट। बिघन करत है चपेट पकड़ फेंट काम की।—दक्खिनी०, पृ० ४५।

दंपत(पु)—संज्ञा पुं० [सं० दम्पती] दे० 'दंपति'। उ०—छाँड़त ना पल एको अकेले, न पौढ़त हैं परजंक पै दंपत।—मट०, पृ० ३४।

दंपति(पु)—संज्ञा पुं० [सं० दम्पती] दे० 'दंपती'।

दंपती—संज्ञा पुं० [सं० दम्पती] स्त्री पुरुष का जोड़ा। पति पत्नी का जोड़ा।

दंपा—संज्ञा स्त्री० [हिं० दमकना] बिजली। उ०—चोपते चकोर चहूँ ओर जानि चंदमुखी जो न होती दरनि दसन दुति दंपा की।—पूरबी (शब्द०)।

दंभ—संज्ञा पुं० [सं० दम्भ] [वि० दंभी] १. महत्व दिखाने या प्रयोजन सिद्ध करने के लिये झूठा आडंबर। धोखे में डालने के लिये ऊपरी दिखावट। पाखंड। उ०—आसन मार दंभ धर बैठे मन में बहुत गुमाना।—कबीर ग्रं०, पृ० ११८। २. झूठी ठसक। अभिमान। घमंड। ३. शठता। शाठ्य (को०)। ४. शिव का एक नाम (को०)। ५. इंद्र का वज्र (को०)।

दंभक—संज्ञा पुं० [सं० दम्भक] पाखंडी। ढकोसलेबाज। प्रतारक।

दंभन—संज्ञा पुं० [सं० दम्भन] पाखंड करना। ढोंग करना (को०)।

दंभान(पु)—संज्ञा पुं० [सं० दम्भ का बहुव०] दे० 'दंभ'।

दंभी—वि० [सं० दम्भिन्] १. पाखंडी। आडंबर रचनेवाला। ढकोसलेबाज। २. झूठी ठसकवाला। अभिमानी। घमंडी।

दंभोलि—संज्ञा पुं० [सं० दम्भोलि] इंद्रास्त्र। वज्र। उ०—मत्त मातंग बल अंग दंभोलि दल काछिनी लाल गजमाल सोहै।—सूर (शब्द०)।

दंश—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह घाव जो दाँत काटने से हुआ हो। दंतक्षत। २. दाँत काटने की क्रिया। दंशन। ३. साँप या और किसी विषैले जंतु के काटने का घाव। जैसे, सर्पदंश। ४. आक्षेपवचन। बौछार। व्यंग्य। कटूक्ति। ५. द्वेष। बैर।

क्रि० प्र०—रखना।

६. दाँत। ७. विषैले जंतुओं का डंक। ८. जोड़। संधि। ग्रंथि (को०)। ९. एक प्रकार की मक्खी जिसके डंक विषैले होते हैं। डाँस। बगदर। उ०—मसक दंश बीते हिम त्रासा।—तुलसी (शब्द०)।

पर्या०—वनमक्षिका। गोमक्षिका। भ्रमरालिका। पांशुर। दुष्टमुख। क्रूर।

१०. वर्म। बकतर। ११. एक असुर।

विशेष—इसकी कथा महाभारत में इस प्रकार लिखी है—सत्ययुग में दंश नामक एक बड़ा प्रतापी असुर रहता था। एक दिन वह भृगु मुनि की पत्नी को हर ले गया। इसपर भृगु ने उसे शाप दिया कि 'तू मल मूत्र का कीड़ा हो जा'। शाप से डरकर जब असुर बहुत गिड़गिड़ाने लगा तब भृगु ने कहा—'मेरे वंश में जो राम (परशुराम) होंगे वे शाप से तुझे मुक्त करेंगे'। वह असुर शाप के अनुसार कीट हुआ।

कर्ण जब परशुराम से अस्त्रशिक्षा प्राप्त कर रहे थे तब एक दिन कर्ण के जंघे पर सिर रखकर परशुराम सो गए। ठीक उसी समय वह कीड़ा आकर कर्ण की जाँघ में काटने लगा। कर्ण ने गुरु का निद्रा भंग होने के डर से जाँघ नहीं हटाई। जब जाँघ में से रक्त की धारा निकली तब परशुराम की नींद टूटी और उन्होंने उस कीड़े की ओर ताका। उनके ताकते ही उस कीड़े ने उसी रक्त के बीच अपना कीट शरीर छोड़ा और अपने पूर्व रूप में आ गया।

दंशक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो काट खाय। दाँत से काटनेवाला। २. डाँस नाम की मक्खी जो बड़े जोर से काटती है। ३. श्वान। कुत्ता (को०)। ४. मशक। मच्छड़ (को०)।

दंशक[2]—वि० दंशन करनेवाला।

दंशन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० दंशित, दंशी] १. दाँत से काटना। डसना। जैसे, सर्पदंशन। उ०—और पीठ पर हो तुरंत दंशनों का त्रास।—लहर, पृ० ५६।

क्रि० प्र०—करना।

२. वर्म। बकतर।

दंशना(प)—क्रि० स० [सं० दंश + हिं० ना (प्रत्य०)] काटना। डसना।

दंशनाशिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का कीट [को०]।

दंशभीरु—संज्ञा पुं० [सं०] महिष। भैंसा।

विशेष—भैंसों को मच्छड़ और डाँस बहुत लगते हैं।

दंशभीरुक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दंशभीरु' [को०]।

दंशमूल—संज्ञा पुं० [सं०] सहिंजन का पेड़। शोभांजन।

दंशवदन—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बगुला। बक [को०]।

दंशित—वि० [सं०] १. दाँत से काटा हुआ। २. वर्म से आच्छादित। बकतर से ढका हुआ।

दंशी[1]—वि० [सं० दंशिन्] [वि० स्त्री० दंशिनी] १. दाँत से काटनेवाला। डसनेवाला। २. आक्षेप वचन कहनेवाला। कटूक्ति कहनेवाला। ३. द्वेषी। वैर या कसर रखनेवाला।

दंशी[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटा दंश। छोटा डाँस।

दंशूक—वि० [सं०] डँसनेवाला। डंक मारनेवाला। दंदशूक।

दंशेर—वि० [सं०] १. दे० 'दंशूक'। २. हानिकारक [को०]।

दंष्ट्र—संज्ञा पुं० [सं०] दाँत।

दंष्ट्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मोटे दाँत। स्थूल दाँत। दाढ़। चौभड़। २. बिछुआ नाम का पौधा जिसमें रोईंदार फल लगते हैं। वृश्चिकाली।

यौ०—दंष्ट्राकराल = भयंकर दाँतोंवाला। दंष्ट्रादंड = वाराह या शूकर का दाँत। दंष्ट्रानखविष। दंष्ट्रा विष। दंष्ट्राविषा।

दंष्ट्रानखविष—संज्ञा पुं० [सं०] वह जंतु जिसके नख और दाँत में विष हो। जैसे, बिल्ली, कुत्ता, बंदर, मेढक, छिपकली इत्यादि।

दंष्ट्रायुध—संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसका अस्त्र दाँत हो। शूकर। सूअर।

दंष्ट्राल[1]—वि० [सं०] बड़े बड़े दाँतोंवाला।

दंष्ट्राल[2]—संज्ञा पुं० १. एक राक्षस का नाम। २. शूकर। वाराह।

दंष्ट्राविष—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का सर्प। साँप [को०]।

दंष्ट्राविषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक तरह की मकड़ी [को०]।

दंष्ट्रास्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दंष्ट्रायुध' [को०]।

दंष्ट्रिक—वि० [सं०] दंष्ट्रावाला। दंष्ट्राल [को०]।

दंष्ट्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'दंष्ट्रा' [को०]।

दंष्ट्री[1]—वि० [सं० दंष्ट्रिन्] १. बड़े बड़े दाँतोंवाला। २. दाँतों से काटनेवाला (को०)। ३. मांसभक्षक। मांसाहारी। (को०)।

दंष्ट्री[2]—संज्ञा पुं० १. सूअर। २. साँप। ३. लकड़बग्घा (को०)। ४. वह जंतु जिसके दाँत बड़े हों। बड़े दाँतोंवाला जंतु (को०)।

दंस(प)—संज्ञा पुं० [सं० दंश] दे० 'दंश'।

दँडवत(प)—संज्ञा स्त्री० [सं० दण्डवत] दे० 'दंडवत्'। उ०—पदुमावती के दरसन आसा। दँडवत कीन्ह मँडप चहुँ पासा।—जायसी ग्रं०, पृ० २१२।

दँतना‡—क्रि० अ० [हिं० डटना] डटना। समीप होना। सटना।

दँतिया—संज्ञा स्त्री० [सं० दन्त, हिं० दाँत + इया (प्रत्य०)] छोटे छोटे दाँत। दूध के दाँत। उ०—अधर अधर दँतियन की जोती। जपाकुसुम मधि जनु बिधि मोती।—नंद० ग्रं०, पृ० २४१।

दँती(प)—संज्ञा पुं० [सं० दन्ती] हाथी। दंती। उ०—तुट्टि तंतं अती, गज्जनीयं दँती।—पृ० रा०, १। ६५१।

दँतुरच्छद—संज्ञा पुं० [सं० दन्तुरच्छद] बिजौरा नीबू।

दँतुरियाँ†, **दँतुरी**†—संज्ञा स्त्री० [हिं० दाँत] बच्चों के छोटे छोटे दाँत।

दँतुला—वि० [सं० दन्तुर] [वि० स्त्री० दँतुली] जिसके दाँत आगे निकले हों। बड़े बड़े दाँतोंवाला।

दँतुली—संज्ञा स्त्री० [सं० दन्त] बच्चे का छोटा दाँत। उ०—बालकृष्ण के छोटे छोटे नए दूध के दाँतों के लिये दूध की दँतुली का प्रयोग कितना सुंदर है।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० १७२।

दँव—संज्ञा पुं० [सं० दव] दव। अग्नि। आग। उ०—दँव दाधी मालति पुनत, अति दाध्यो तिहि ठाईं।—हिंदी प्रेमगाथा० पृ० २१६।

दँवरी—संज्ञा स्त्री० [सं० दमन, हिं दावना] अनाज के सूखे डंठलों में से दाना झाड़ने के लिये उसे बैलों से रौंदवाने का काम।

क्रि० प्र०—नाधना।

दँवारि(प)†—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'दावाग्नि'।

दँहगल—संज्ञा पुं० [देश०] एक छोटे आकार की गानेवाली चिड़ियाँ उ०—सबेरे सबेरे नहीं आती बुल-बुल, न श्यामा सुरीली, न फुदकी, न दँहगल।—हरी घास०, पृ० १६।

द[1]—वि० [सं०] १. उत्पन्न करनेवाला। २. देनेवाला। दाता।

विशेष—इस अर्थ में इसका व्यवहार स्वतंत्र रूप से नहीं होता;

बल्कि किसी शब्द के अंत में जोड़ने से होता है। जैसे, सुखद (सुख देनेवाला), जलद (जल देनेवाला, बादल) आदि।

द²—संज्ञा पुं० [सं०] १. पर्वत। पहाड़। २. दान। ३. दाता।

द³—संज्ञा स्त्री० १. भार्या। कलत्र। स्त्री। २. रक्षा। ३. खंडन।

दइⓅ†—संज्ञा पुं० [सं० दैव] दे० 'दैव'। उ०—बहुए बुलिए बुलि ममरि कवनाकर आहा दइ आइ की मेल।—विद्यापति, पृ० ११८।

दइअ†—संज्ञा पुं० [सं० दैव] दे० 'दैव'। उ०—आहु दइअ मैं काह नसावा। करत नीक फलु अनइस पावा।—मानस, २।१६३।

दइउ†—संज्ञा पुं० [सं० दैव] दे० 'दैव'। उ०—धीरज धरति सगुन बल रहत सो नाहिन। बर किसोर धनु घोर दइउ नहिं दाहिन।—तुलसी ग्रं० पृ० ५४।

दइजारी—वि० [हिं०] दे० 'दईजारी'।

दइजा†—संज्ञा पुं० [सं० दाय] दे० 'दायजा'।

दइतⓅ—संज्ञा पुं० [सं० दैत्य] दिति का पुत्र। दे० 'दैत्य'। उ०—नगर अजुध्या रामहिं राजा। लैहैं दइत बाँध सब साजा।—कबीर सा०, पृ० ८०४।

दइमारा—वि० [हिं०] [वि० स्त्री० दइमारी] दे० 'दईमारा'। उ०—(क) दूध दही नहिं लेव री कहि कहि पचिहारी। कहति सूर कोऊ घर नाहीं कहाँ गई दइमारी।—सूर (शब्द०)। (ख) आलु धरब हित दुहु मंजारी। मो परि उचरि चरी दइमारी।—नंद० ग्रं०, पृ० १४८।

दइया†—संज्ञा पुं० [सं० दैव] दे० 'दैव'। (स्त्रियों की बोलचाल में आश्चर्य एवं खेद आदि का व्यंजक)। उ०—भोर के आए दोऊ भइया। कीनों नहिन कलेऊ दइया।—नंद० ग्रं०, पृ० २५५।

दइव†—संज्ञा पुं० [सं० दैव, प्रा० दइव] दे० 'दैव'। उ०—बेरि एक दइव दहिन जओ होए, निरधन धन जके धरब मोजे गोए।—विद्यापति, पृ० ३५४।

दई—संज्ञा पुं० [सं० दैव] १. ईश्वर। विधाता। उ०—गई करि बाहु दई के निहोरे।—दास (शब्द०)।

यौ०—दईमारा।

मुहा०—दई का घाला = ईश्वर का मारा हुआ। अभागा। कमबख्त। उ०—जननी कहति, दई की घाली ! काहे को इतराती।—सूर (शब्द०)। दई का मारा = दे० 'दईमारा'। दई दई = हे दैव ! हे दैव। रक्षा के लिये ईश्वर की पुकार। उ०—(क) दई दई आलसी पुकारा।—तुलसी (शब्द०)। (ख) दीरघ साँस न लेहि दुख, सुख साँईहिं न भूल। दई दई क्यों करत है, दई दई सो कबूल।—बिहारी (शब्द०)।

२. दैव संयोग। अदृष्ट। प्रारब्ध।

दईजार, दईजारा—वि० [हिं०] [वि० स्त्री० दईजारी] अभागा। दईमारा। (स्त्रियाँ)।

दईतⓅ—संज्ञा पुं० [सं० दैत्य] दे० 'दैत्य'। उ०—कीन्हेसि राकस भूत परीता। कीन्हेसि भोकस देव दईता।—जायसी (शब्द०)।

दईमारा—वि० [हिं० दई + मारना] [वि० स्त्री० दईमारी] दई का मारा हुआ। जिसपर ईश्वर का कोप हो। अ मंदभाग्य। कमबख्त। उ०—फीहा फीहा करी या दईमारे को।—श्रीपति (शब्द०)।

दईमारोⓅ†—वि० [हिं०] दे० 'दईमारा'।

दउढ†—वि० [सं० अधि + अर्ध] दे० 'डेढ़'। उ०—दउढ व मारुवी, त्रिहुँ वरसाँरिउ कंत। उणरउ जोबन बहि तूँ किउँ जोबनवंत।—ढोला०, दू० ४५०।

दउरना†—क्रि० अ० [हिं० दौड़ना] दे० 'दौड़ना'।

दउराई†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'दौरा'।

दक—संज्ञा पुं० [सं०] जल। पानी।

दकन—संज्ञा पुं० [सं० दक्षिण, फ़ा० दकन] दक्षिण भारत। दक्षिणी भाग। २. दक्षिण दिक्। दक्खिन।

दकार—संज्ञा पुं० [सं०] तवर्ग का तीसरा अक्षर 'द'।

दकार्गल—संज्ञा पुं० [सं०] बृहत्संहिता के अनुसार भूमि के नी का ज्ञान करानेवाली एक विद्या। वि० दे० 'दगार्गल' [की

दकियानूस—संज्ञा पुं० [यू० से अ० दक्यानूस] रोम देश अत्याचारी सम्राट् जो सन् ३४९ ई० में सिंहासन पर बै

दकियानूसी—वि० [अ० दक्यानूसी] १. दकियानूस के समय पुराना। २. बहुत ही पुराना। रूढ़िग्रस्त। जर्जर। नि उ०—हम आप क्या पुरातन दकियानूसी वृत्ति का देकर या अति प्रगतिवाद का बहाना करके इस जागर स्वागत न करेंगे?—कुंकुम (भू०), पृ० ११।

दकीक—वि० [अ० दक़ीक़] मुश्किल। कठिन। गूढ़। उ०—सख्त मुश्किल मश्क दकीक। या पानी का वाँ इक अमीक।—दक्खिनी०, पृ० ३४५।

दकीका—संज्ञा पुं० [अ० दक़ीक़ह्] १. कोई बारीक बात। २. उपाय।

मुहा०—कोई दकीका बाकी न रहना = कोई उपाय ब रखना। सब उपाय कर चुकना। जैसे,—मुझे नुकसान में तुमने कोई दकीका बाकी नहीं रखा।

३. क्षण। लहजा।

दक्काक—वि० [अ० दक्काक़] १. कूटनेवाला। पीसनेवाला। करनेवाला। १. गूढ़ या सूक्ष्म बातों को कहनेवाला।

दक्खणा†—वि० [सं० दक्षिण, प्रा० दक्खिण] दक्षिण दिशा में दक्षिणी। उ०—औढी औरंग साह नूँ उर निस दिवस। मन लग्गो बक्खण मुलक, सरक न सकै सरीर।—रा पृ० १९९।

दक्खिन¹—संज्ञा पुं० [सं० दक्षिण, प्रा० दक्खिण] [वि० द १. वह दिशा जो सूर्य की ओर मुँह करके खड़े होने से हाथ की ओर पड़ती है। उत्तर के सामने की दिशा। जिधर तुम्हारा पैर है वह दक्खिन है।

विशेष—यद्यपि संस्कृत 'दक्षिण' शब्द विशेषण है पर

शब्द दक्खिन विशेषण के रूप में नहीं आता। दक्खिन ओर, दक्खिन दिशा आदि वाक्यों में भी दक्खिन विशेषण नहीं है।
२. दक्षिण दिशा में पड़नेवाला प्रदेश। ३. भारतवर्ष का वह भाग जो दक्षिण की ओर है। विंध्य और नर्मदा के आगे का देश।

दक्खिन²—क्रि० वि० दक्खिन की ओर। दक्षिण दिशा में। जैसे,—उनका गाँव यहाँ से दक्खिन पड़ता है।

दक्खिनी¹—वि० [हिं० दक्खिन] १. दक्खिन का। जो दक्षिण दिशा में हो। जैसे, नदी का दक्खिनी किनारा। २. जो दक्षिण के देश का हो। दक्षिण देश में उत्पन्न। दक्षिण देश संबंधी। जैसे, दक्खिनी आदमी, दक्खिनी बोली, दक्खिनी सुपारी, दक्खिनी मिर्च।

दक्खिनी²—संज्ञा पुं० दक्षिण देश का निवासी।

दक्खिनी³—संज्ञा स्त्री० दक्षिण देश की भाषा।

दक्ष¹—वि० [सं०] १. जिसमें किसी काम को चटपट सुगमतापूर्वक करने की शक्ति हो। निपुण। कुशल। चतुर। होशियार। जैसे,—वह सितार बजाने में बड़ा दक्ष है। २. दक्षिण। दाहना। उ०—(क) दक्ष दिसि रुचिर वारीश कन्या।—तुलसी (शब्द०)। (ख) दक्ष भाग अनुराग सहित इंदिरा अधिक ललिताई।—तुलसी (शब्द०)। ३. साधु। सच्चा। ईमानदार। सत्यवक्ता (को०)।

दक्ष²—संज्ञा पुं० १. एक प्रजापति का नाम जिनसे देवता उत्पन्न हुए।

विशेष—ऋग्वेद मे दक्ष प्रजापति का नाम आया है और कहीं कहीं ज्योतिष्कगण के पिता कहकर उनकी स्तुति की गई है। दक्ष अदिति के पिता थे, इससे वे देवताओं के आदिपुरुष कहे जाते हैं। जहाँ ऋग्वेद में सृष्टि की उत्पत्ति का यह क्रम बतलाया गया है कि सब से पहले ब्रह्मणस्पति ने कर्मकार की तरह कार्य किया, असत् से सत् उत्पन्न हुआ, उत्तानपद से भू और भू से दिशाएँ हुईं, वहीं यह भी लिखा है कि 'अदिति से दक्ष जन्मे और दक्ष से अदिति जन्मीं'। इस विलक्षण वाक्य के संबंध में निरुक्त में लिखा है कि 'या तो दोनों ने समान जन्मलाभ किया, अथवा देवधर्मानुसार दोनों की एक दूसरे से उत्पत्ति और प्रकृति हुई।' शतपथ ब्राह्मण में दक्ष को सृष्टि का पालक और पोषक कहा गया है। हरिवंश में दक्ष को विष्णुस्वरूप कहा गया है। महाभारत और पुराणों में जो दक्ष के यज्ञ की कथा है उसका वर्णन वैदिक ग्रंथों में नहीं मिलता, हाँ, रुद्र के प्रभाव के प्रसंग में कुछ उसका आभास सा मिलता है। मत्स्यपुराण में लिखा है कि पहले मानस सृष्टि हुआ करती थी। दक्ष ने जब देखा कि मानस द्वारा प्रजावृद्धि नहीं होती है तब उन्होंने मैथुन द्वारा सृष्टि का विधान चलाया।

गरुड़पुराण में दक्ष की कथा इस प्रकार है—ब्रह्मा ने सृष्टि की कामना से धर्म, रुद्र, मनु, भृगु तथा सनकादि को मानसपुत्र के रूप में उत्पन्न किया। फिर दाहिने अँगूठे से दक्ष को और बाएँ अँगूठे से दक्षपत्नी को उत्पन्न किया। इस पत्नी से दक्ष को सोलह कन्याएँ उत्पन्न हुईं—श्रद्धा, मैत्री, दया, शांति, तुष्टि, पुष्टि, क्रिया, उन्नति, बुद्धि, मेधा, मूर्ति, तितिक्षा, ह्री, स्वाहा, स्वधा और सती। दक्ष ने इन्हें ब्रह्मा के मानसपुत्रों में बाँट दिया। रुद्र को दक्ष की सती नाम की कन्या प्राप्त हुई। एक बार दक्ष ने अश्वमेध यज्ञ किया जिसमें उन्होंने अपने सारे जामाताओं को बुलाया पर रुद्र को नहीं बुलाया। सती बिना बुलाए ही अपने पिता का यज्ञ देखने गईं। वहाँ पिता से अपमानित होने पर उन्होंने अपना शरीर त्याग दिया। इसपर महादेव ने क्रुद्ध होकर दक्ष का यज्ञ विध्वंस कर दिया और दक्ष को शाप दिया कि तुम मनुष्य होकर ध्रुव के वंश में जन्म लोगे। ध्रुव के वंशज प्रचेतागण ने जब घोर तपस्या की तब उन्हें प्रजासृष्टि करने का वर मिला और उन्होंने कंडुकन्या मारिषा के गर्भ से दक्ष को उत्पन्न किया। दक्ष ने चतुर्विध मानस सृष्टि की। पर जब मानस सृष्टि से प्रजावृद्धि न हुई तब उन्होंने वीरण प्रजापति की कन्या असिक्नी को ग्रहण किया और उससे सहस्र पुत्र और बहुत सी कन्याएँ उत्पन्न कीं। उन्हीं कन्याओं से कश्यप आदि ने सृष्टि चलाई। और पुराणों में भी इसी प्रकार की कथा कुछ हेर फेर के साथ है।

२. अत्रि ऋषि। ३. महेश्वर। ४. शिव का बैल। ५. ताम्रचूड़। मुरगा। ६. एक राजा जो उशीनर के पुत्र थे। ७. विष्णु। ८. बल। ९. वीर्य। १० अग्नि (को०)। ११. नायक का एक भेद जो सभी प्रेयसियों में समान भाव रखता हो (को०)। १२. शक्ति। योग्यता। उपयुक्तता (को०)। १३. खोटा या बुरा स्वभाव (को०)।

दक्षकन्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सती। वि० दे० 'दक्ष'। २. अश्विनी आदि तारा।

दक्षक्रतुध्वंसी—संज्ञा पुं० [सं० दक्षक्रतुध्वंसिन्] १. महादेव। २. महादेव के अंश से उत्पन्न वीरभद्र जिन्होंने दक्ष का यज्ञ विध्वंस किया था।

दक्षजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'दक्षकन्या'।

यौ०—दक्षजापति = (१) शिव। महेश्वर। (२) चंद्रमा (को०)।

दक्षण†—वि० [सं० दक्षिण] दे० 'दक्षिण'। उ०—दक्षण अयन सु सुरत ऋतु, उपजे गए न नरक।—ह० रासो, पृ० ३०।

दक्षतनया—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'दक्षकन्या' (को०)।

दक्षता—संज्ञा स्त्री० [सं०] निपुणता। योग्यता। कमाल।

दक्षदिशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दक्षिण दिशा।

दक्षन(पु)†—वि० [सं० दक्षिण] दाहिना। दाहिनी ओर का। उ०—मेढ़ू हू कै ऊपर दक्षन पाव आनिए।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० ४२।

दक्षनायन(पु)—वि० [सं० दक्षिणायन] दे० 'दक्षिणायन'। उ०—भावै दक्षनायन हू, भावै उत्तरायन हूँ, भावै देह सर्प सिंह बिज्जुली हनंत जू।—सुंदर०, ग्रं०, भा० २, पृ० ६४२।

दक्षविहिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का गीत।

दक्षसावर्णि—संज्ञा पुं० [सं०] नवें मनु का नाम।

दक्षसुत—संज्ञा पुं० [सं०] देवता । सुर ।

दक्षसुता—संज्ञा स्त्री० [सं० दक्ष + सुता] दे० 'दक्षकन्या' (को०) ।

दक्षांड—संज्ञा पुं० [सं० दक्षाण्ड] मुरगी का अंडा (को०) ।

दक्षा[1]—वि० स्त्री० [सं०] कुशला । निपुणा ।

दक्षा[2]—संज्ञा स्त्री० १. पृथ्वी । २. गंगा का एक नाम (को०) ।

दक्षाय्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. वैनतेय । गरुड़ । २. गीध । गृद्ध (को०) ।

दक्षिण[1]—वि० [सं०] १. दहना । दाहिना । बायाँ का उलटा । अपसव्य । २. इस प्रकार प्रवृत्त जिससे किसी का कार्य सिद्ध हो । अनुकूल । ३. साधु । ईमानदार । सच्चा (को०) । ४. उस ओर का जिधर सूर्य की ओर मुँह करके खड़े होने से दहिना हाथ पड़े । उत्तर का उलटा ।

यौ०—दक्षिणापथ । दक्षिणायन ।

५. निपुण । दक्ष । चतुर ।

दक्षिण[2]—संज्ञा पुं० १. दक्खिन की दिशा । उत्तर के सामने की दिशा । २. काव्य या साहित्य में वह नायक जिसका अनुराग अपनी सब नायिकाओं पर समान हो । ३. प्रदक्षिण । ४. तंत्रोक्त एक आचार या मार्ग ।

विशेष—कुलार्णव तंत्र में लिखा है कि सबसे उत्तम तो वेदमार्ग है, वेद से अच्छा वैष्णव मार्ग है, वैष्णव से अच्छा शैव मार्ग है, शैव से अच्छा दक्षिण मार्ग है, दक्षिण से अच्छा वाम मार्ग है और वाम मार्ग से भी अच्छा सिद्धांत मार्ग है ।

५. विष्णु । ६. शिव का एक नाम (को०) । ७. दाहिना हाथ या पार्श्व (को०) । ८. दे० 'दक्षिणाग्नि' । ९. रथ के दाहिनी ओर का अश्व (को०) । १०. दक्षिण का प्रदेश (को०) ।

दक्षिणकालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तंत्रसार के अनुसार तांत्रिकों की एक देवी । २. दुर्गा (को०) ।

दक्षिणगोल—संज्ञा पुं० [सं०] विषुवत् रेखा से दक्षिण पड़नेवाली राशियाँ, जो छह हैं—तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुंभ और मीन ।

दक्षिणपवन—संज्ञा पुं० [सं०] मलयपवन । मलयानिल ।

दक्षिण मार्ग—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार की तांत्रिक साधना । २. पितृयान (को०) ।

दक्षिणस्थ—संज्ञा पुं० [सं०] रथवाह । रथ हाँकनेवाला (को०) ।

दक्षिणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दक्षिण दिशा । २. वह धन जो ब्राह्मणों या पुरोहितों को यज्ञादि कर्म कराने के पीछे दिया जाता है । वह दान जो किसी शुभ कार्य आदि के समय ब्राह्मणों को दिया जाय ।

क्रि० प्र०—देना ।—लेना ।

विशेष—पुराणों में दक्षिणा को यज्ञ की पत्नी बतलाया है । ब्रह्मवैवर्त पुराण में लिखा है कि कार्तिकी पूर्णिमा की रात को जो एक बार रास महोत्सव हुआ उसी में श्रीकृष्ण के दक्षिणांश से दक्षिणा की उत्पत्ति हुई थी ।

३. पुरस्कार । भेंट । ४. वह नायिका जो नायक के अन्य स्त्रियों से संबंध करने पर भी उससे बराबर वैसी ही प्रीति रखती हो ।

दक्षिणाग्नि—संज्ञा स्त्री० [सं० दक्षिण+अग्नि] यज्ञ में गार्हपत्याग्नि से दक्षिण ओर स्थापित अग्नि ।

दक्षिणाग्र—वि० [सं०] जिसका अगला अंश दक्षिण की ओर हो । दक्षिणाभिमुख (को०) ।

दक्षिणाचल—संज्ञा पुं० [सं०] मलयगिरि पर्वत । मलयाचल ।

दक्षिणाचार—संज्ञा पुं० [सं०] १. सदाचार । शुद्ध और उत्तम आचरण । २. तांत्रिकों में एक प्रकार का आचार जिसमें अपने आपको शिव मानकर पंचतत्व से शिव की पूजा की जाती है । यह आचार वामाचार से श्रेष्ठ और प्रायः वैदिक माना जाता है ।

दक्षिणाचारी—संज्ञा पुं० [सं०] दक्षिणाचारिन्] १. विशुद्धाचारी । धर्मशील । सदाचारी । २. वह तांत्रिक जो दक्षिणाचार में दीक्षित हो ।

दक्षिणापथ—संज्ञा पुं० [सं०] विंध्यपर्वत के दक्षिण ओर का वह प्रदेश जहाँ से दक्षिण भारत के लिये रास्ते जाते हैं ।

दक्षिणापरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] नैऋर्त कोण ।

दक्षिणाप्रवण—संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जो उत्तर की अपेक्षा दक्षिण की ओर अधिक नीचा या ढालुआँ हो ।

विशेष—मनु के अनुसार श्राद्ध आदि के लिये ऐसा ही स्थान उपयुक्त होता है ।

दक्षिणामूर्ति—संज्ञा पुं० [सं०] तंत्र के अनुसार शिव की एक मूर्ति ।

दक्षिणाभिमुख—वि० [सं०] दक्षिण की ओर मुँह किए हुए । जिसका मुख दक्षिण दिशा की ओर हो ।

दक्षिणायन[1]—वि० [सं०] दक्षिण की ओर । भूमध्यरेखा से दक्षिण की ओर । जैसे, दक्षिणायन सूर्य ।

दक्षिणायन[2]—संज्ञा पुं० १. सूर्य की कर्क रेखा से दक्षिण मकर रेखा की ओर गति । २. वह छह महीने का समय जिसमें सूर्य कर्क रेखा से चलकर बराबर दक्षिण की ओर बढ़ता रहता है ।

विशेष—सूर्य २१ जून को कर्क रेखा अर्थात् उत्तरीय अयनसीमा पर पहुँचता है और फिर वहाँ से दक्षिण की ओर बढ़ने लगता है और प्रायः २२ दिसंबर तक दक्षिणी अयन सीमा मकर रेखा तक पहुँच जाता है । पुराणानुसार जिस समय सूर्य दक्षिणायन हों उस समय कुआँ, तालाब, मंदिर आदि न बनवाना चाहिए और न देवताओं की प्राणप्रतिष्ठा करनी चाहिए । तो भी भैरव, वराह, नृसिंह आदि की प्रतिष्ठा की जा सकती है ।

दक्षिणावर्त[1]—वि० [सं०] जिसका घुमाव दाहिनी ओर को हो । जो दाहिनी ओर घूमा हुआ हो ।

दक्षिणावर्त[2]—संज्ञा पुं० एक प्रकार का शंख जिसका घुमाव दाहिनी ओर को होता है ।

दक्षिणावर्तकी—संज्ञा स्त्री० [सं० दक्षिणावर्तकी] दे० 'दक्षिणावर्तवती' ।

दक्षिणावर्तवती—संज्ञा स्त्री० [सं०] वृश्चिकाली नाम का पौधा ।

दक्षिणावह—संज्ञा पुं० [सं०] दक्षिण से आनेवाली हवा ।

दक्षिणाशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दक्षिण दिशा ।

दक्षिणाशापति—संज्ञा पुं० [सं०] १. यम । २. मंगलग्रह ।

दक्षिणी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० दक्षिण + ई (प्रत्य०)] दक्षिण देश की भाषा ।

दक्षिणी[2]—संज्ञा पुं० दक्षिण देश का निवासी ।

दक्षिणी[3]—वि० दक्षिण देश का । दक्षिण देश संबंधी ।

दक्षिणीय—वि० [सं०] १. दक्षिण का । दक्षिण संबंधी । दक्षिण देश का । २. जो दक्षिणा का पात्र हो ।

दक्षिण्य—वि० [सं०] दे० 'दक्षिणीय' [को०] ।

दक्षिन—संज्ञा पुं० [सं० दक्षिण] दे० 'दक्षिण' ।

दक्षिना—संज्ञा स्त्री० [सं० दक्षिणा] दे० 'दक्षिणा' । उ०—ब्राह्मनन को दान दक्षिना दैं श्री गोकुल प्राए ।—दो सौ बावन, भा० १, पृ० १३६ ।

दक्षिनी—वि०, संज्ञा पुं० [सं० दक्षिणी] दे० 'दक्षिणी' ।

दखन—संज्ञा पुं० [सं० दक्षिण; फ़ा० दकन] दे० 'दक्षिण' ।

दखमा—संज्ञा पुं० [फ़ा० दख्मह्] वह स्थान जहाँ पारसी अपने मुरदे रखते हैं ।

विशेष—पारसियों में यह प्रथा है कि वे शव को जलाते या गाड़ते नहीं हैं बल्कि उसे किसी विशिष्ट एकांत स्थान में रख देते हैं जहाँ चील कौए आदि उसका मांस खा जाते हैं । इस काम के लिये वे थोड़ा सा स्थान पचीस तीस फुट ऊँची दीवार से चारों ओर से घेर देते हैं, जिसके ऊपरी भाग में जँगला सा लगा रहता है । इसी जँगले पर शव रख दिया जाता है । जब उसका मांस चील कौए आदि खा लेते हैं तब हड्डियाँ जँगले में से नीचे गिर पड़ती हैं । नीचे एक मार्ग होता है जिससे ये हड्डियाँ निकाल ली जाती हैं । भारत में निवास करनेवाले पारसियों के लिये इस प्रकार की व्यवस्था बंबई, सुरत आदि कुछ नगरों में है ।

दखल—संज्ञा पुं० [अ० दखल] १. अधिकार । कब्जा ।

क्रि० प्र०—करना ।—में आना ।—में लाना ।—होना ।

यौ०—दखलदिहानी । दखलनामा । दखलकार ।

२. हस्तक्षेप । हाथ डालना । उ०—मूरख दखल देइं बिन जाने । नहिं चपलता गुरु अस्थाने ।—विश्राम (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—देना ।

३. पहुँच । प्रवेश । जैसे,—आप अँगरेजी में भी कुछ दखल रखते हैं ।

क्रि० प्र०—रखना ।

दखलदिहानी—संज्ञा स्त्री० [अ० दखल + फ़ा० दिहानी] किसी वस्तु पर किसी को अधिकार दिला देना । कब्जा दिलवाना ।

दखलनामा—संज्ञा पुं० [अ० दखल + फ़ा० नामह्] वह पत्र विशेषत: सरकारी आज्ञापत्र जिसमें किसी व्यक्ति के लिये किसी पदार्थ पर अधिकार कर लेने की आज्ञा हो ।

दखिणाथ[1]†—संज्ञा पुं० [सं० दक्षिणापथ, प्रा० दक्खिणावथ, दक्खिणावह] दक्षिण देश । उ०—उत्तर आज न जाइयइ, जिहाँ स सीत प्रमाव । ता भइ सूरिज डरपतउ, ताकि चलइ दखिणाव ।—ढोला०, दू० ३०१ ।

दखिन[1]—संज्ञा पुं० [सं० दक्षिण, प्रा० दक्खिण] दे० 'दक्षिण' । उ०—देखि दखिन दिसि हय हिहिनाहीं ।—तुलसी (शब्द०) ।

दखिनहरा†—संज्ञा पुं० [हिं० दखिन + हारा] दक्षिण से आनेवाली हवा । दक्षिण की ओर से आती हुई हवा ।

दखिनहा†—वि० [हिं० दखिन + हा (प्रत्य०)] दक्षिण का । दक्षिणी ।

दखिना‡—संज्ञा पुं० [हिं० दखिन + आ (प्रत्य०)] दक्षिण से आनेवाली हवा ।

दखील—वि० [अ० दखील] अधिकार रखनेवाला । जिसका दखल या कब्जा हो ।

दखीलकार—संज्ञा पुं० [अ० दखील + फ़ा० कार] वह असामी जिसने किसी जमींदार के खेत या जमीन पर कम से कम बारह वर्ष तक अपना दखल रखा हो ।

दखीलकारी—संज्ञा स्त्री० [अ० दखील + फ़ा० कार] १. दखीलकार का पद या अवस्था । २. वह जमीन जिसपर दखीलकार का अधिकार हो ।

दख्ख†—संज्ञा पुं० [सं० द्राक्षा, प्रा० दक्खा, दक्ख] दे० 'दाख'[1] । उ०—अहर पयोहर, दुइ नयण मीठा जेहा मख्ख । ढोला एही मारुई, जाणे मीठी दख्ख ।—ढोला०, दू० ४७० ।

दगंबरु†—संज्ञा पुं० [हिं० दिगंबर] दे० 'दिगंबर' । उ०—दया दगंबरु नामु एकु मनि एको आदि अनूप ।—प्राण०, पृ० २१२ ।

दगइल‡—वि० [हिं० दगैल] दे० 'दगैल' ।

दगड़—संज्ञा पुं० [? या सं० ढक्का + हिं० ड़ (प्रत्य०)] लड़ाई में बजाया जानेवाला बड़ा ढोल । जंगी ढोल ।

दगड़ना—क्रि० अ० [?] सच्ची बात का विश्वास न करना ।

दगड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० दगड़] दे० 'दगड़' ।

दगदगा—संज्ञा पुं० [अ० दग़दग़ह्] १. डर । भय । २. संदेह । शक । ३. एक प्रकार की कंडील ।

दगदगाना[1]—क्रि० अ० [हिं० दगना] दमदमाना । चमकना । उ०—ज्यों ज्यों अति कृशता बढ़ति त्यों त्यों दुति सरसात । दगदगात त्यों ही कनक ज्यों ही दाहत जात ।—गुमान (शब्द०) ।

दगदगाना[2]—क्रि० स० चमकाना । चमक उत्पन्न करना ।

दगदगाहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० दगदगाना + हट (प्रत्य०)] चमक । दमक ।

दगदगी—संज्ञा स्त्री० [हिं० दगदगा] दे० 'दगदगा' ।

दगध[1]—संज्ञा पुं० [सं० दग्ध] दे० 'दाह' । उ०—पेम का लुबुध दगध पै साधा ।—जायसी ग्रं०, पृ० ६४ ।

दगध[2]—वि० दे० 'दग्ध' । उ०—ध्यान दगध जोगिंद कुकट कैरव भगि पानं ।—पृ० रा०, ५४।१२१ ।

दगधना[1]†—क्रि० अ० [सं० दग्ध, हिं० दगध + ना (प्रत्य०)] जलना । उ०—बज्र अगनि बिरहिन हिय जारा । सुलग सुलग दगधि भइ छारा ।—जायसी (शब्द०) ।

दगधना²—क्रि॰ स॰ १. जलाना। २. बहुत दुःख देना। कष्ट पहुँचाना।

दगना¹—क्रि॰ अ॰ [सं॰ दग्ध, हिं॰ दगध + ना(प्रत्य॰)] १. (बंदूक या तोप आदि का) छूटना। चलना। जैसे,—बंदूक आप ही आप दग गई। २. जलना। दग्ध होना। झुलस जाना। उ॰—श्री हरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी की कटाक्ष कोटि काम दगे।—स्वामी हरिदास (शब्द॰)। ३. दागा जाना। दागना का अकर्मक रूप।

दगना²—क्रि॰ स॰ दे॰ 'दागना'। उ॰—(क) बिषधर स्वास सरिस लगै तन सीतल बन बात। अनलहु सों सरसै दगै हिमकर कर धन गात।—शृं॰ सत (शब्द॰)। (ख) जे तब होत दिखा-दिखी भई अमी इक आँक। दगै तिराछी दीठ अब ह्वै बीछी को डाँक।—बिहारी (शब्द॰)।

दगना³—क्रि॰ अ॰ [अ॰ दाग़] १. दागा जाना। अंकित होना। चिह्नित होना। २. प्रसिद्ध होना। मशहूर होना। उ॰—लोक बेद हूँ लौं दगो नाम भले को पोच। धर्मराज जम गाज पवि कहत सकोच न सोच।—तुलसी (शब्द॰)।

दगर†—संज्ञा पुं॰ ['देर' से देश॰] दे॰ 'दगरा'।

दगरा†—संज्ञा पुं॰ [?] १. देर। विलंब। उ॰—भोरहि ते कान्ह करत तोसों झगरो।·····सब कोउ जात मधुपुरी बेचन कौने दियो दिखावहु कगरो। अंचल ऐंचि ऐंचि राखत हो जान देहु अब होत है दगरो।—सूर (शब्द॰)। २. डगर। रास्ता। उ॰—वह जो खंडित मेंड बनी दगरे के माहीं।—श्रीधर पाठक (शब्द॰)।

दगरी—संज्ञा स्त्री॰ [देश॰] वह दही जिसपर मलाई या साढ़ी न हो।

दगल¹—संज्ञा पुं॰ [देश॰] दे॰ 'दगला'। उ॰—सौंर सुपेती मंदिर राती। दगल चीर पहिरहिं बहु भाँती।—जायसी (शब्द॰)।

दगल²—संज्ञा पुं॰ [अ॰ दग़ल] १. धोखा। फरेब। मक्कर। २. खोटा सोना या चाँदी (को॰)।

दगलफसल—संज्ञा पुं॰ [अ॰ दग़ल + अनु॰ फसल या हिं॰ फँसाना] धोखा। फरेब।

दगला—संज्ञा पुं॰ [देश॰] मोटे वस्त्र का बना हुआ या रुईदार अँगरखा। भारी लबादा।

दगली—संज्ञा स्त्री॰ [देश] दे॰ 'दगला'। उ॰—मुई मेरी माई हौ खरा सुखाला। पहिरौ नहीं दगली लगै न पाला।—कबीर ग्रं॰, पृ॰ ३०९।

दगवाना—क्रि॰ स॰ [हिं॰ दागना का प्रे॰ रूप] दागने का काम दूसरे से कराना। दूसरे को दागने में प्रवृत्त कराना। उ॰—उठि भोरहि तोपन दगवायो। दीनन को बहु द्रव्य लुटायो।—रघुराज (शब्द॰)।

दगहा¹—वि॰ [हिं॰ दाग+हा (प्रत्य॰)] १. जिसके दाग लगा हो। दागवाला। २. जिसके सफेद दाग हों।

दगहा²—वि॰ [हिं॰ दाग (=प्रेतकर्म) + हा (प्रत्य॰)] जिसने प्रेत-क्रिया की हो। प्रेतकर्मकर्ता।

दगहा³—वि॰ [हिं॰ दगना + हा (प्रत्य॰)] जो दागा हुआ हो। जो दग्ध किया गया हो।

दगा—संज्ञा स्त्री॰ [अ॰ दग़ा] छल। कपट। धोखा।

क्रि॰ प्र॰—करना।—देना।—खाना।

यौ॰—दगाबाज। दगादार।

दगाती—वि॰ [फ़ा॰ दग़ा] दगाबाज। धोखेबाज। उ॰—छल बल करि नहिं काहू पकरत दौरि दगाती।—घनानंद॰, पृ॰ ५६६।

दगादगी—संज्ञा स्त्री॰ [फ़ा॰ दग़ा] धोखेबाजी। उ॰—सजनी निपट अचेत है दगादगी समुझै न। चित बित परकर लेत है लगालगी करि नैन।—स॰ सप्तक, पृ॰ २३४।

दगादार—वि॰ [फ़ा॰ दग़ा + दार] धोखेबाज। छली। उ॰—(क) एरे दगादार मेरे पातक अपार तोहिं गंगा के कछार में पछार छार करिहौ।—पद्माकर (शब्द॰)। (ख) छबीले तेरे नैन बड़े हैं दगादार।—गीत (शब्द॰)।

दगादारी—संज्ञा स्त्री॰ [फा॰ दग़ादार + ई] दे॰ 'दगादगी'।

दगाबाज¹—वि॰ [फ़ा॰ दग़ाबाज] छली। कपटी। धोखा देनेवाला। उ॰—(क) कोऊ कहै करत कुसाज दगाबाज बड़ो कोऊ कहै राम को गुलाम खरो खूब है।—तुलसी (शब्द॰)। (ख) नाम तुलसी पै भोंडे भाग तें भयो है दास, किए अंगीकार एते बड़े दगाबाज को।—तुलसी (शब्द॰)।

दगाबाज²—संज्ञा पुं॰ छली मनुष्य। धोखा देनेवाला आदमी।

दगाबाजी—संज्ञा स्त्री॰ [फ़ा॰ दग़ाबाज़ी] छल। कपट। धोखा। उ॰—सुहृद समाज दगाबाजी ही को सौदा सूत जब जाको काज तब मिलै पाय परि सो।—तुलसी (शब्द॰)।

दगार्गल—संज्ञा पुं॰ [सं॰] बृहत्संहिता के अनुसार एक प्रकार की विद्या, जिसके अनुसार किसी निर्जल स्थान के ऊपरी लक्षण आदि देखकर, भूमि के नीचे पानी होने अथवा न होने का ज्ञान होता है।

विशेष—बृहत्संहिता में लिखा है कि जिस प्रकार मनुष्य के शरीर में रक्तवाहिनी शिराएँ होती हैं उसी प्रकार पृथ्वी में जलवाहिनी शिराएँ होती हैं और इन शिराओं के किसी स्थान पर होने अथवा न होने का ज्ञान वृक्षों आदि को देखकर हो सकता है। जैसे, यदि किसी निर्जल स्थान में जामुन का पेड़ हो तो समझना चाहिए कि उससे तीन हाथ की दूरी पर उत्तर की ओर दो पुरसे नीचे पूर्ववाहिनी शिरा है; यदि किसी निर्जन स्थान में गूलर का पेड़ हो तो उससे पश्चिम तीन हाथ की दूरी पर डेढ़ दो पुरसे नीचे अच्छे जल की शिरा होगी, इत्यादि।

दगैल¹—वि॰ [अ॰ दाग़ + एल (प्रत्य॰)] १. दागदार। जिसमें दाग हो। २. जिसमें कुछ खोट या दोष हो।

दगैल²—संज्ञा पुं॰ [अ॰ दग़ा] दगाबाज। छली। उ॰—सात कोस चौलों चलि आए। भए दगैलन के मन भाए।—लाल (शब्द॰)।

दग्गना(पु)—क्रि॰ अ॰ [हिं॰ दगना] दे॰ 'दगना'। उ॰—तोप तुपक चहुर सब दग्गिय।—पृ॰ रासो, पृ॰ १४८।

दग्ध¹—वि० [सं०] १. जला या जलाया हुआ। २. दुःखित। जिसे कष्ट पहुँचा हो। जैसे, दग्धहृदय। ३. कुम्हलाया हुआ। म्लान। जैसे, दग्ध आनन। ४. अशुभ। जैसे, दग्ध योग। ५. क्षुद्र। तुच्छ। विकृष्ट। जैसे, दग्धदेह, दग्धउदर, दग्धजठर। ६. शुष्क। नीरस। बेस्वाद (को०)। ७ बुभुक्षित। क्षुधाग्रस्त (को०)। ८. चतुर। चालाक। विदग्ध (को०)।

दग्ध²—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की घास जिसे कतृण भी कहते हैं।

दग्धकाक—संज्ञा पुं० [सं०] डोम कौवा।

दग्धमंत्र—संज्ञा पुं० [सं० दग्धमन्त्र] तंत्र के अनुसार वह मंत्र जिसके मूर्धा प्रदेश में वह्नि और वायुयुक्त वर्ण हों।

दग्धरथ—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र के सारथी चित्ररथ गंधर्व का एक नाम।
विशेष—दे० 'चित्ररथ'।

दग्धरुह—संज्ञा पुं० [सं०] तिलक वृक्ष।

दग्धरुहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुरुह नामक वृक्ष।

दग्धवर्णक—संज्ञा पुं० [सं०] रोहिष नाम की घास।

दग्धव्रण—संज्ञा पुं० [सं०] जलने का घाव (को०)।

दग्धव्य—वि० [सं०] जलाने लायक। कष्ट देने योग्य [को०]।

दग्धा¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सूर्य के अस्त होने की दिशा। पश्चिम। २. एक प्रकार का वृक्ष जिसे कुरु कहते हैं। ३. कुछ विशिष्ट राशियों से युक्त कुछ विशिष्ट तिथियाँ। जैसे—मीन और धन की अष्टमी। वृष और कुंभ की चौथ। मेष और कर्क की छठ। कन्या और मिथुन की नौमी। वृश्चिक और सिंह की दशमी। मकर और तुला की द्वादशी।
विशेष—दग्धा तिथियों में वेदारंभ, विवाह, स्त्रीप्रसंग, यात्रा या वाणिज्य आदि करना बहुत हानिकारक माना जाता है।

दग्धा²—वि० [सं० दग्धृ] १. जलानेवाला। २. दुःख देनेवाला। [को०]।

दग्धाक्षर—संज्ञा पुं० [सं०] पिंगल के अनुसार झ, ह, र, भ और ष ये पाँचों अक्षर, जिनका छंद के आरंभ में रखना वर्जित है। उ०—दीजो भूल न छंद के आदि झ ह र भ ष कोइ। दग्धाक्षर के दोष तें छंद दोषयुत होइ।—(शब्द०)।

दग्धाह्व—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वृक्ष।

दग्धिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दे० 'दग्धा' २. जला हुआ अन्न या भात (को०)।

दग्धित(पु)—वि० [सं० दग्ध + हिं० इत (प्रत्य०)] दे० 'दग्ध'। उ०—बोले गिरा मधुर शांति करी विचारी। होवे प्रबोध जिससे दुख दग्धितों का।—प्रिय०, पृ० ११६।

दग्धेष्टका—संज्ञा स्त्री० [सं० दग्ध + इष्टका] जली और झुलसी हुई ईंट। झावाँ [को०]।

दघ्न—वि० [सं०] [वि० स्त्री० दघ्नी] ···तक पहुँचने या जाननेवाला ···तक गहरा या ऊँचा। (समासांत में प्रयुक्त)। जैसे, उरुदघ्न, जानुदघ्न, गुल्फदघ्न आदि।

दचक—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. झटके या दबाव से लगी हुई चोट। २. धक्का। ठोकर। ३. दबाव।

दचकना¹—क्रि० अ० [अनु०] १. ठोकर या धक्का खाना। २. दब जाना। लचकना। ३. झटका खाना।

दचकना²—क्रि० स० १. ठोकर या धक्का लगाना। २. दबाना। लचकाना। ३. झटका देना।

दचका—संज्ञा पुं० [हिं० दचकना] धक्का। ठोकर। उ०—हलका सा दचका लगा तो गाड़ीवान की नींद खुल गई।—रति०, पृ० ६२।

दचना—क्रि० अ० [देश०] गिरना। पड़ना। उ०—गगन उड़ाइ गयो ले स्यामहि आइ धरनि पर आप दच्यो री।—सूर (शब्द०)।

दच्चा—संज्ञा पुं० [देश०] ठोकर। धक्का। दचका। उ०—सबै बाल-बच्चे फिरैं खात दच्चे।—पद्माकर ग्रं०, पृ० ११।

दच्छ(पु)—वि० [सं० दक्ष] चतुर। निपुण। कुशल। उ०—तापबस मुनिबधू मुक्तकृत विप्रहित यज्ञरच्छन दच्छ पच्छकर्ता।—तुलसी ग्रं०, पृ०।

दच्छ—संज्ञा पुं० [सं० दक्ष, प्रा० दच्छ] दे० 'दक्ष'। उ०—जगमी प्रथम दच्छगृह जाई।—मानस, १।
यौ०—दच्छकुमारी। दच्छसुत = दक्ष प्रजापति के पुत्र। उ०—दच्छसुतन्हि उपदेसेन्हि जाई।—मानस, १। दच्छसुता।

दच्छकुमारी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० दक्ष + कुमारी] दक्ष प्रजापति की कन्या, सती। उ०—मुनि सन बिदा माँगि त्रिपुरारी। चले भवन सँग दच्छकुमारी।—तुलसी (शब्द०)।

दच्छना—संज्ञा स्त्री० [सं० दक्षिणा] दे० 'दक्षिणा'।

दच्छसुता(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० दक्षसुता] दक्ष की कन्या, सती।

दच्छिन(पु)—संज्ञा पुं०, क्रि० वि०, वि० [सं० दक्षिण] दे० 'दक्षिण'। उ०—दच्छिन पिय ह्वै वाम बस बिसराई तिय आन। एकै बासर के बिरह लागे बरष बितान।—बिहारी (शब्द०)।

दच्छिननायक(पु)—संज्ञा पुं० [सं० दक्षिण + नायक] दे० 'दक्षिणनायक'।

दच्छिना—संज्ञा स्त्री० [सं० दक्षिणा] दे० 'दक्षिणा'। उ०—दच्छिना देत नंद पग लागत, आसिस देत गरग सब द्विजबर।—नंद० ग्रं०, पृ० ३७१।

दछना, दछिना(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० दक्षिणा] दे० 'दक्षिणा'। उ०—(क) भोजन कर जिजमान जिमाये। दछना कारन आय अड़े।—संत तुरसी०, पृ० १८६। (ख) तुमहि मिलैगो बीरा दछिना भरि भरि झोरी जू।—नंद० ग्रं०, पृ० ३३६।

दज्जाल—संज्ञा पुं० [अ० दज्जाल] झूठा। बेईमान। अत्याचारी।

दझकना(पु)—क्रि० अ० [सं० दग्ध, प्रा० दझझ] दे० 'दहना'। उ०—दुज्जर काय सु कहत राज मन माँहि समझझौं। कामज्वाल मों बढ़िय तुमहि तिन कै दुख दझकौं।—पृ० रा०, १। ४१६।

दट¹—क्रि० अ० [सं० दष्ट, प्रा० दट्ठ (= कटा हुआ)] दब जाना। हेठ पड़ना। उ०—तरह मदन रत तरुणी, देख दिल दरप जाय दट।—रघु० रू०, पृ० ३६।

दटना(पु)²—क्रि० अ० [हिं० डटना] दे० 'डटना'।

दड़ंघल—संज्ञा पुं० [सं० दण्डोत्पल] सहदेई नाम का पौधा।

दड़क्का(पु)—संज्ञा पुं० [अनु०] दरेरा। उ० इक इक्क हुटक्कैं, देत दबक्कैं, सेल सटक्कैं श्रोन बहैं।—सुजान०, पृ० ११।

दड़ी—संज्ञा स्त्री० [देश०] कंदुक। गेंद। तड़ी। उ०—पोथ पौण दड़ी जेम पाणियो गिरंद एम। उठे महीराव जोण, नीच सूं उलास।—रघु० रू०, पृ० १६६।

दड़ूक—संज्ञा स्त्री० [अनु०] दहाड़। गरज।

दड़ूकना—क्रि० अ० [अनु०] दहाड़ना। गरजना।

दड़ोकना—क्रि० अ० [अनु०] दहाड़ना। गरजना। बाघ, साँड़, आदि का बोलना।

दढ़ूढ(पु)—वि० [सं० दृढ, प्रा० दढ्ढ] पक्का। मजबूत। दृढ़। उ०—अरे राव के रावतं जोर दढ्ढं।—हृ० रासो, पृ० ६६।

दढ़(पु)—वि० [सं० दृढ़, प्रा० दढ्ढ] दे० 'दृढ़'। उ०—सर्प व्यूह आकार सज्जे सभारं। दढं फन्न पुंछं रचे भिन्न सारं।—पृ० रा०, ११६३३।

दढ़ियल—वि० [हिं० दाढ़ी + इयल (प्रत्य०)] दाढ़ीवाला। जो दाढ़ी रखे हो।

दणयर, दणियर(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० दिनकर, प्रा० दिणयर] सूर्य। दिनकर। उ०—माऊ सी देखी नहीं, अणमुख दोय नयणांह। थोड़ो सो भोले पड़इ, दणयर उगहंतांह।—ढोला०, दू० ४७८।

दत—संज्ञा पुं० [सं० दत्त (= दान)] दे० 'दान' उ०—देतो मड्ड पसाव दत, बीर गोड़ वछराज।—बाँकी० ग्रं०, भा० १, पृ० ७६।

दतना†—क्रि० अ० [हिं० डटना] दे० 'डटना'। उ०—केसव कैसहुं देखन कौं तिन्हैं भोरहीं भोरी ह्वै आनि दती हो। पान खवावत ही तिनसों तुम राति कहा सतराति हुती हो।—केशव ग्रं०, भा० १, पृ० ७१।

दतवन—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'दतुवन'।

दतारा—वि० [हिं० दाँत + आर (प्रत्य०)] १. दाँतवाला। जिसमें दाँत हों। दाँतदार। २. बड़े बड़े या दृढ़ दाँतोंवाला (हाथी, शूकर आदि)।

दतिया[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० दाँत + इया (प्रत्य०)] दाँत का स्त्रीलिंग और अल्पार्थक रूप। छोटा दाँत।

दतिया[2]—संज्ञा पुं० [देश०] १. एक प्रकार का पहाड़ी तीतर जो बहुत सुंदर होता है। इसकी खाल अच्छे दामों पर बिकती है। नीलमोर। २. एक पुराना राज्य।

दतिसुत—संज्ञा पुं० [सं० दितिसुत] दैत्य। राक्षस (डिं०)।

दतुअन—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'दतुवन'।

दतुइन†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'दतुवन'। उ०—दतुइन करी न जाय नहीं अब जाय नहाई।—पलटू०, भा० १, पृ० ३२।

दतुवन—संज्ञा स्त्री० [हिं० दाँत + अवन (प्रत्य०) अथवा धावन] १. नीम या बबूल आदि की काटी हुई छोटी टहनी जिसके एक सिरे को दाँतों से कुचलकर कूँची की तरह बनाते और उससे दाँत साफ करते हैं। दातुन।

क्रि० प्र०—करना।

२. दाँत साफ करने और मुँह धोने की क्रिया।

क्रि० प्र०—करना।

यौ०—दतुवन कुल्ला = दाँत साफ करने और मुँह धोने की क्रिया।

दतून—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'दतुवन'।

दतौन—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'दतुवन'।

दत्त[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. दत्तात्रेय। २. जैनियों के नौ वासुदेवों में से एक। ३. एक प्रकार के बंगाली कायस्थों की उपाधि। ४. दान। ५. दत्तक।

दत्त[2]—वि० १. दिया हुआ। प्रदत्त। २. दान किया हुआ। ३. सुरक्षित। रक्षित (को०)।

दत्तक—संज्ञा पुं० [सं०] शास्त्रविधि से बनाया हुआ पुत्र। वह जो वास्तव में पुत्र न हो, पर पुत्र मान लिया गया हो। गोद लिया हुआ लड़का। मुतबन्ना।

विशेष—स्मृतियों में जो औरस और क्षेत्रज के अतिरिक्त दस प्रकार के पुत्र गिनाए गए हैं, उनमें दत्तक पुत्र भी है। इसमें से कलियुग में केवल दत्तक ही को ग्रहण करने की व्यवस्था है, पर मिथिला और उसके आसपास कृत्रिम पुत्र का भी ग्रहण प्रचलित होता है। पुत्र के बिना पितृऋण से उद्धार नहीं होता इससे शास्त्र पुत्र ग्रहण करने की आज्ञा देता है। पुत्र आदि होकर मर गया हो तो पितृऋण से तो उद्धार हो जाता है पर पिंडा पानी नहीं मिल सकता इससे उस अवस्था में भी पिंडा पानी देने और नाम चलाने के लिये पुत्र ग्रहण करना आवश्यक है। किंतु यदि मृत पुत्र का कोई पुत्र या पौत्र हो तो दत्तक नहीं लिया जा सकता। दत्तक के लिये आवश्यक यह है कि दत्तक लेनेवाले को पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र आदि न हो। दूसरी बात यह है कि आदान प्रदान की विधि पूरी हो, अर्थात् लड़के का पिता यह कहकर अपने पुत्र को समर्पित करे कि मैं इसे देता हूँ और दत्तक लेनेवाला यह कहकर उसे ग्रहण करे 'धर्माय त्वां परिगृह्णामि, सन्तत्यै त्वां परिगृह्णामि। द्विजों के लिये हवन आदि भी आवश्यक है। वह पुत्र जिसपर उसका असली पिता भी अधिकार रखे और दत्तक लेनेवाला भी 'द्वामुष्यायण' कहलाता है। ऐसा लड़का दोनों की संपत्ति का उत्तराधिकारी होता है और दोनों के कुल में विवाह नहीं कर सकता है।

दत्तक लेने का अधिकार पुरुष ही को है, अतः स्त्री यदि गोद ले सकती है तो पति की अनुमति से ही। विधवा यदि गोद लेना चाहे तो उसे पति की आज्ञा का प्रमाण देना होगा। वशिष्ठ का वचन है कि 'स्त्री पति की आज्ञा के बिना न पुत्र दे और न ले। नंद पंडित ने तो दत्तक मीमांसा में कहा है कि स्त्री को गोद लेने का कोई अधिकार नहीं है क्योंकि वह जाप होम आदि नहीं कर सकती। पर दत्तकचंद्रिका के अनुसार विधवा को यदि पति आज्ञा दे गया हो तो वह गोद ले सकती है। बंगदेश और काशी प्रदेश में स्त्री के लिये पति की अनुमति अनिवार्य है, और वह इस अनुमति के अनुसार पति के जीते जी या मरने पर गोद ले सकती है। महाराष्ट्र देश के पंडित वशिष्ठ के वचन का यह अभिप्राय निकालते हैं कि पति की अनुमति की आवश्यकता उस अवस्था

में हैं जब दत्तक पति के सामने लिया जाय; पति के मरने पर विधवा पति के कुटुंबियों से अनुमति लेकर दत्तक ले सकती है।

कैसा लड़का दत्तक लिया जा सकता है, स्मृतियों में इस संबंध में कई नियम मिलते हैं—

(१) शौनक, वशिष्ठ आदि ने एकलौते या जेठे लड़के को गोद लेने का निषेध किया है। पर कलकत्ते को छोड़ और दूसरे हाइकोर्टों ने ऐसे लड़के का गोद लिया जाना स्वीकार किया है।

(२) लड़का सजातीय हो, दूसरी जाति का न हो। यदि दूसरी जाति का होगा तो उसे केवल खाना कपड़ा मिलेगा।

(३) सबसे पहले तो भतीजे या किसी एक ही गोत्र के सपिंड को लेना चाहिए, उसके अभाव में भिन्न गोत्र सपिंड, उसके अभाव में एक ही गोत्र का कोई दूरस्थ संबंधी जो समानोदकों के अंतर्गत हो, उसके अभाव में कोई सगोत्र।

(४) द्विजातियों में लड़की का लड़का, बहिन का लड़का, भाई, चाचा, मामा, मामी का लड़का गोद नहीं लिया जा सकता। नियम यह है कि गोद लेने के लिये जो लड़का हो वह 'पुत्रच्छायावह' हो अर्थात् ऐसा हो जिसकी माता के साथ दत्तक लेनेवाले का नियोग या समागम हो सके।

दत्तक विषय पर अनेक ग्रंथ संस्कृत में हैं जिनमें नंद पंडित की 'दत्तक मीमांसा' और देवानंद भट्ट तथा कुबेर कृत 'दत्तकचंद्रिका' सबसे अधिक मान्य हैं।

मुहा०—दत्तक लेना = किसी दूसरे के पुत्र को गोद लेकर अपना पुत्र बनाना।

दत्तचित्त—वि० [सं०] जिसने किसी काम में खूब जी लगाया हो। जिसने खूब चित्त लगाया हो।

दत्ततीर्थकृत्—संज्ञा पुं० [सं०] गत उत्सर्पिणी के आठवें अर्हत (जैन)।

दत्तदृष्टि—वि० [सं०] जिसकी आँखें किसी वस्तु पर टिकी हों [को०]।

दत्तशुल्का—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह लड़की जिसे प्राप्त करने के लिये शुल्क के रूप में कोई द्रव्य दिया गया हो [को०]।

दत्तस्यानपाकर्म—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार कोई चीज किसी को देकर फिर लौटाना। एक बार दान करके फिर वापस माँगना या लेना।

दत्तहस्त—वि० [सं०] जिसे हाथ का सहारा दिया गया हो [को०]।

दत्ता—संज्ञा पुं० [सं० दत्त] दे० 'दत्तात्रेय'।

दत्तात्रेय—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रसिद्ध प्राचीन ऋषि जो पुराणानुसार विष्णु के चौबीस अवतारों में से एक माने जाते हैं।

विशेष—मार्कंडेय पुराण में इनकी उत्पत्ति के संबंध में जो कथा लिखी है वह इस प्रकार है—एक कोढ़ी ब्राह्मण की स्त्री बड़ी पतिव्रता और स्वामिभक्त थी। एक बार वह ब्राह्मण एक वेश्या पर आसक्त हो गया। उसके आज्ञानुसार उसकी पतिव्रता स्त्री उसे अपने कंधे पर बैठा कर अँधेरी रात में उस वेश्या के घर चली। रास्ते में मांडव्य ऋषि तपस्या कर रहे थे; अँधेरे में कोढ़ी ब्राह्मण का पैर उन्हें लग गया। उन्होंने शाप दिया कि जिसका पैर मुझे लगा है सूर्य निकलते निकलते वह मर जायगा। सती स्त्री ने अपने पति की रक्षा करने और वैधव्य से बचने के लिये कहा कि जाओ सूर्य उदय ही न होगा। जब सूर्य का उदय न हुआ और पृथ्वी के नाश की संभावना हुई तब सब देवता मिलकर ब्रह्मा के पास गए। ब्रह्मा ने उन्हें अत्रि मुनि की स्त्री अनसूया के पास जाने की संमति दी। देवताओं के प्रार्थना करने पर अनसूया ने जाकर ब्राह्मण पत्नी को समझाया और कहा कि तुम सूर्योदय होने दो तुम्हारे पति के मरते ही मैं उन्हें फिर सजीव कर दूँगी और उनका शरीर भी नीरोग हो जायगा। इसपर वह मान गई, तब सूर्य उदय हुआ और मृत ब्राह्मण को अनसूया ने फिर जीवित कर दिया। देवताओं ने प्रसन्न होकर अनसूया से वर माँगने के लिये कहा। अनसूया ने कहा—ब्रह्मा, विष्णु और महेश तीनों मेरे गर्भ से जन्म ग्रहण करें। ब्रह्मा ने इसे स्वीकार किया; और तदनुसार ब्रह्मा ने सोम बनकर, विष्णु ने दत्तात्रेय बनकर, और महेश्वर ने दुर्वासा बनकर अनसूया के घर जन्म लिया। हैहयराज ने जब अत्रि को बहुत कष्ट पहुँचाया था तब दत्तात्रेय क्रुद्ध होकर सातवें ही दिन गर्भ से निकल आए थे। ये बड़े भारी योगी थे और सदा ऋषिकुमारों के साथ योगसाधन किया करते थे। एक बार ये अपने साथियों और संसार से छुटकारा पाने के लिये बहुत समय तक एक सरोवर में ही डूबे रहे फिर भी ऋषिकुमारों ने उनका संग न छोड़ा, वे सरोवर के किनारे उनके आसरे बैठे रहे। अंत में दत्तात्रेय उन्हें छलने के लिये एक सुंदरी को साथ लेकर सरोवर से निकले और मद्यपान करने लगे। पर ऋषिकुमारों ने यह समझकर तब भी उनका संग न छोड़ा कि ये पूर्ण योगीश्वर हैं, इनकी आसक्ति किसी विषय में नहीं है। भागवत के अनुसार इन्होंने चौबीस पदार्थों से अनेक शिक्षाएँ ग्रहण की थीं और उन्हीं चौबीस पदार्थों को ये अपना गुरु मानते थे। वे चौबीस पदार्थ ये हैं—पृथ्वी, वायु, आकाश, जल, अग्नि, चंद्रमा, सूर्य, कबूतर, अजगर, सागर, पतंग, मधुकर (भौंरा और मधुमक्खी), हाथी, मधुहारी (मधुसंग्रह करनेवाली), हरिन, मछली, पिंगला वेश्या, गिद्ध, बालक, कुमारी कन्या, बाण बनानेवाला, साँप, मकड़ी और तितली।

दत्तापदानिक—संज्ञा पुं० [सं०] व्यवहार में अट्ठारह प्रकार के विवाद पदों में से पाँचवाँ विवाद पद। किसी दान किए हुए पदार्थ को अन्यायपूर्वक फिर से प्राप्त करने का प्रयत्न।

दत्तावधान—वि० [सं० दत्त + अवधान] दत्तचित्त। सावधान। उ०—भारत साम्राज्य को भी दत्तावधान होना पड़ा है···। प्रेमघन०, भा० २. पृ० २२२।

दत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] दान [को०]।

दत्ती—संज्ञा स्त्री० [सं०] सगाई का पक्का होना।

दत्तेय—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र।

दत्तोपनिषद्—संज्ञा पुं० [सं०] एक उपनिषद् का नाम ।

दत्तोलि—संज्ञा पुं० [सं०] पुलस्त्य मुनि का एक नाम ।

दत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. धन । २. सोना ।

दत्त्रिम[1]—वि० [सं०] दान में प्राप्त । दानस्वरूप मिला हुआ [को०] ।

दत्त्रिम[2]—संज्ञा पुं० [सं०] दत्तक पुत्र ।

दत्रेय(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० दत्तात्रेय] दे० 'दत्तात्रेय' । उ०—व्यास जग्य दत्रेय बुद्ध नारद सुमुनीवर ।—सुजान०, पृ० ३ ।

ददन—संज्ञा पुं० [सं०] दान । देने की क्रिया ।

ददनी†—संज्ञा स्त्री० [सं० ददन + हिं० ई (प्रत्य०)] दान । उ०—हरिजन हरि चरचा नित बाँटहिं ज्ञान ध्यान की ददनी ।—भीखा० श०, पृ० ६ ।

ददमर—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पेड़ ।

ददरा—संज्ञा पुं० [देश०] छानने का कपड़ा । छन्ना । साफी ।

ददरी—संज्ञा पुं० [देश०] १. पके हुए तमाखू के पत्तों पर का दाग । २. दे० 'दरदन' । ३. उत्तर प्रदेश का एक स्थान जहाँ पशुओं का मेला लगता है ।

ददा—संज्ञा पुं० [हिं० दादा] दे० 'दादा' । उ०—यह विनोद देखत धरनीधर मात पिता बलभद्र ददा रे ।—सूर (शब्द०) ।

ददिऔर, ददिऔरा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ददिहाल' ।

ददिता—वि०, संज्ञा पुं० [सं० ददितृ] देनेवाला । दान देनेवाला । दाता [को०] ।

ददियाल—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ददिहाल' ।

ददिया ससुर—संज्ञा पुं० [हिं० दादा + ससुर] श्वसुर का पिता । ससुर का बाप ।

ददिया सास—संज्ञा स्त्री० [हिं० दादी + सास] सास की सास । ददिया ससुर की स्त्री ।

ददिहाल—संज्ञा पुं० [हिं० दादा + आलय] १. दादा का कुल । २. दादा का घर ।

ददोड़ा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ददोरा' ।

ददोरा—संज्ञा पुं० [हिं० दाद] मच्छर, बर्रे आदि के काटने या खुजलाने आदि के कारण चमड़े के ऊपर थोड़े से घेरे के बीच में पड़ी हुई थोड़ी सी सूजन जो चकती की तरह दिखाई देती है । चकत्ता । चटखर । उ०—बसन फटे उपटे सुचुक चिबुक ददोरे हाथ । चिहुँटत सुमन गुलाब को अब मम जाय बलाय ।—स० सप्तक, पृ० २६१ ।

दद्दुर—संज्ञा पुं० [सं० दर्दुर] दे० 'दादुर' । उ०—करैं सोर झिल्ली घनं दद्दुरं गे । तहाँ बाल लीला करैं कौम संगे ।—ह० रासो, पृ० २० ।

दद्रु—संज्ञा पुं० [सं०] १. दाद का रोग । २. कछुआ ।

यौ०—दद्रु विनाश ।

दद्रुक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दद्रु' [को०] ।

दद्रुघ्न—संज्ञा पुं० [सं०] चक्रमर्द । चकवँड़ ।

दद्रुण—वि० [सं०] दद्रु रोग से पीड़ित [को०] ।

दद्रू—संज्ञा पुं० [सं०] दाद रोग ।

दद्रूण—वि० [सं०] दे० 'दद्रुण' [को०] ।

दध(पु)†[1]—संज्ञा पुं० [सं० दधि] दे० 'दधि' ।

दध[2]—वि० [सं०] धारण करनेवाला । ग्रहण करनेवाला [को०] ।

दध[3]—संज्ञा पुं० भाग । हिस्सा । अंश [को०] ।

दध(पु)[4]—संज्ञा पुं० [सं० उदधि, हिं० दधि] सागर । समुद्र । उ०—प्रभु थिरत सुण हुम परी प्रफुलत, भखे मणसंका । दध बीच बाग असोक देखो, लखी गढ़ लंका ।—रघु० रू०, पृ० १६२ ।

दध(पु)[5]—वि० [सं० दग्ध] अशुभ । वर्जित । उ०—आदि चरण में दध अक्खर गण अणशुभ गुणगाथ ।—रघु० रू०, पृ० १२ ।

दधना(पु)—क्रि० अ० [सं० दहन] जलना । दहना ।

दधसार(पु)—संज्ञा पुं० [सं० दधिसार] दे० 'दधिसार' ।

दधि[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. दही । जमाया हुआ दूध । २. वस्त्र । कपड़ा ।

दधि[2]—पुं० [सं० उदधि] समुद्र । सागर ।

विशेष—इस अर्थ में दधि शब्द का प्रयोग सूरदास ने बहुत किया है ।

दधिकादो—संज्ञा पुं० [सं० दधि + कर्दम > हिं० कादो (= कीचड़)] जन्माष्टमी के समय होनेवाला एक प्रकार का उत्सव, जिसमें लोग हलदी मिला हुआ दही एक दूसरे पर फेंकते हैं । उ०—यशुमति भाग सुहागिनी जिन जायो हरि सो पूत । करहु ललन की आरती री अरु दधिकादो सूत ।—सूर (शब्द०) ।

विशेष—कहते हैं, श्रीकृष्णजन्म के समय गोपों और गोपिकाओं ने आनंद में मग्न होकर हल्दी मिला दही एक दूसरे पर इतना अधिक फेंका था कि गोकुल की गलियों में दही का कीचड़ सा हो गया था ।

दधिक्रा, दधिक्राव्ण—संज्ञा पुं० [सं०] एक वैदिक देवता जो घोड़े के आकार के माने जाते हैं । २. घोड़ा । अश्व ।

दधिकूर्चिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] फटे हुए दूध का वह अंश जो पानी निकलने पर बच जाता है । छेना ।

दधिचार—संज्ञा पुं० [सं०] मथानी ।

दधिज—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दधिजात' ।

दधिजात[1]—संज्ञा पुं० [सं०] मक्खन । नवनीत ।

दधिजात[2]—संज्ञा पुं० [सं० उदधि+जात (= उत्पन्न)] चंद्रमा । उ०—देखो मैं दधिजात ।—सूर (शब्द०) ।

दधित्थ—संज्ञा पुं० [सं०] कपित्थ । कैथ ।

दधित्थाख्य—संज्ञा पुं० [सं०] लोबान ।

दधिदान—संज्ञा पुं० [सं० दधि + दान] दही का कर । दही पर लगनेवाला कर । उ०—कृष्ण के दधिदान माँगने पर गोपियों को कृष्ण से उलझने, वाग्युद्ध करने, धमकी देने और बदले में धमकी पाने का अवसर मिलता है ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ११३ ।

दधिदानी—वि० [सं० दधिदानिन्] दही का दान या कर लेनेवाला ।

उ०—कब को भयो रे ढोटा दधिदानी ।—अकबरी०, पृ० ४१ ।

ोनु—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार दान के लिये कल्पित गौ जिसकी कल्पना दही के मटके में की जाती है ।

ानी —संज्ञा पुं० [सं०] वह पात्र जिसमें दही रखा हो । दही रखने का बर्तन [को०] ।

ामा—संज्ञा पुं० [सं० दधिनामन्] कैथ का पेड़ ।

ुिपका—संज्ञा स्त्री० [सं०] सफेद अपराजिता ।

ुपी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सेम ।

ूप—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पकवान जो दही में फेंटे हुए शालि धान के चूर्ण को घी में तलने से बनता है ।

ल—संज्ञा पुं० [सं०] कैथ । कपित्थ ।

ड—संज्ञा पुं० [सं० दधिमण्ड] दही का पानी ।

डोद—संज्ञा पुं० [सं० दधिमण्डोद] पुराणानुसार दही का समुद्र ।

ंथन—संज्ञा पुं० [सं० दधिमन्थन] दही को मथने की क्रिया [को०] ।

थानी—संज्ञा पुं० [सं० दधिमन्थन] दही बिलोने या मथने का काम । उ०—सो ता दिन में वह ब्रजबासिनी जब दधिमथान को बैठती तब ही श्री गोबर्धननाथ जी वा पास आइ बिराजते ।—दो सौ बावन०, भा० २, पृ० ६ ।

ुख—संज्ञा पुं० [सं०] १. रामचंद्र जी की सेना का एक बंदर जो सुग्रीव का मामा और मधुवन का रक्षक था । रामायण के अनुसार यह सुग्रीव का ससुर था । २. फनवाले साँपों में श्रेष्ठ एक नाग का नाम (को०) ।

ार—संज्ञा पुं० [देश०] जीवंतिका की जाति की एक लता अर्कपुष्पी । अंधाहुली ।

विशेष—इस लता के पत्ते लंबे और पान के आकार के होते हैं । इसकी डंठियों आदि में से दूध निकलता है और इसमें सूर्यमुखी की तरह के फूल लगते हैं । इसका व्यवहार औषध में होता है ।

वक्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दधिमुख' [को०] ।

ार—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दधिमंड' [को०] ।

ोण—संज्ञा पुं० [सं०] बंदर । बानर [को०] ।

ाज्य—संज्ञा पुं० [सं०] घृत । घी (को०) ।

ंभव—संज्ञा पुं० [सं० दधि + सम्भव] मक्खन । नवनीत । नैनू ।

ागर—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार दही का समुद्र ।

ार—संज्ञा पुं० [सं०] नवनीत । मक्खन ।

ुत[1]—संज्ञा पुं० [सं० उदधि + सुत] १. कमल । उ०—देखो में दधिसुत में दधिजात । एक अचंभो देखि सखी री रिपु में रिपु जु समात ।—सूर०, १०।१७२ २. मुक्ता । मोती । उ०—दधिसुत जामे नंद दुवार । निरखि नैन अरुझ्यो मनमोहन रटत देहु कर बारंबार ।—सूर०, १०।१७३ । ३. उडुपति । चंद्रमा । उ०—(क) राधे दधिसुत क्यों न दुरावति । हौं जु कहति वृषभानु नंदिनी काहैं जीव सतावति ।—सूर०, १०।१७१४ । (ख) दधिसुत जात हौं उहि देस । द्वारिका हैं स्याम सुंदर सकल भुवन नरेस ।—सूर०, १०।४२६४ ।

यौ०—दधिसुत सुत = चंद्रमा का पुत्र, बुध, अर्थात् विद्वान् । पंडित । उ०—जिनके हरि वाहन नहीं दधिसुत सुत जेहि नाहिं । तुलसी ते नर तुच्छ हैं बिना समीर उड़ाहिं ।—स० सप्तक, पृ० २१ ।

४. जालंधर दैत्य । उ०—विष्णु वचन चपला प्रतिहारा । तेहि ते आपुन दधिसुत मारा ।—विश्राम (शब्द०) । ५. विष । जहर उ०—नहिं विभूति दधिसुत न कंठ यह मृगमद चंदन चरचित तन ।—सूर (शब्द०) ।

दधिसुत[2]—संज्ञा पुं० [सं०] मक्खन । नवनीत ।

दधिसुता—संज्ञा स्त्री० [सं० उदधिसुता] सीप । उ०—दधिसुता सुत अवलि ऊपर इंद्र आयुध जानि—सूर (शब्द०) ।

यौ०—दधिसुता सुत = सीप का पुत्र—मोती । मुक्ता ।

दधिस्नेह—संज्ञा पुं० [सं०] दही की मलाई ।

दधिस्वेद—संज्ञा पुं० [सं०] तक्र । छाछ । मट्ठा ।

दधी(पु)—संज्ञा पुं० [सं० उदधि] दे० 'उदधि' । उ०—रिछं बानरायं, भए सो सहायं । हनुम्मान तायं, दधी सीस आयं ।—पृ० रा०, २।२४ ।

दधीच(पु)—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दधीचि' । उ०—जीत महीपति हाड़नहीं महँ जोत दधीच के हाड़न ही मैं ।—मति० ग्रं०, पृ० ३९२ ।

यौ०—दधीचास्थि = दे० 'दधीच्यस्थि' ।

दधीचि—संज्ञा पुं० [सं०] एक वैदिक ऋषि जो यास्क के मत से अथर्व के पुत्र थे और इसी लिये दधीचि कहलाते थे । किसी पुराण के मत से ये कर्दम ऋषि की कन्या और अथर्व की पत्नी शांति के गर्भ से उत्पन्न हुए थे और किसी पुराण के मत से ये शुक्राचार्य के पुत्र थे ।

विशेष—वेदों और पुराणों में इनके संबंध में अनेक कथाएँ हैं, जिनमें से विशेष प्रसिद्ध यह है कि इंद्र ने इन्हें मधुविद्या सिखाई थी और कहा था कि यदि तुम यह विद्या बतलाओगे तो हम तुम्हें मार डालेंगे । इसपर अश्विद्वयुगल ने दधीचि का सिर काटकर अलग रख दिया और उनके धड़ पर घोड़े का सिर लगा दिया और तब उनसे मधुविद्या सीखी । जब इंद्र को यह बात मालूम हुई तो उन्होंने आकर उनका घोड़ेवाला सिर काट डाला । इसपर अश्विद्वयुगल ने उनके धड़ पर फिर वही मनुष्यवाला पहला सिर लगा दिया । एक बार वृत्रासुर के उपद्रव से बहुत दुःखित होकर सब देवता इंद्र के पास गए । उस समय निश्चित हुआ कि दधीचि की हड्डियों के बने हुए अस्त्र के अतिरिक्त और किसी अस्त्र से वृत्रासुर मारा न जा सकेगा । इसलिये इंद्र ने दधीचि से उनकी हड्डियाँ माँगी । दधिचि ने अपने पुराने शत्रु और हत्याकारी इंद्र को भी विमुख लौटाना उचित न समझा और उनके लिये अपने प्राण त्याग दिए । तब उनकी हड्डियों से अस्त्र बनाकर वृत्रासुर मारा गया । तभी से दधीचि का बड़ा भारी दानी होना प्रसिद्ध है । महाभारत में यह भी लिखा है कि जब दक्ष

ने हरिद्वार में बिना शिव जी के यज्ञ किया था, तब इन्होंने दक्ष को शिव जी के निमंत्रित करने के लिये बहुत समझाया था, पर उन्होंने नहीं माना, इसलिये ये यज्ञ छोड़कर चले गए थे। एक बार दधीचि बड़ी कठिन तपस्या करने लगे। उस समय इंद्र ने डरकर इन्हें तप से भ्रष्ट करने के लिये अलंबुषा नामक अप्सरा भेजी। एक बार जब ये सरस्वती तीर्थ में तपस्या कर रहे थे तब अलंबुषा उनके सामने पहुँची। उसे देखकर इनका वीर्य स्खलित हो गया जिससे एक पुत्र हुआ। इसी से उस पुत्र का नाम सारस्वत हुआ।

दधीच्यस्थि—संज्ञा पुं० [सं० दधीचि + अस्थि] १. इंद्रास्त्र। वज्र। २. हीरा। हीरक।

दध्न—संज्ञा पुं० [सं०] चौदह यमों में से एक यम।

दध्यानी—संज्ञा पुं० [सं०] सुदर्शन वृक्ष। मदनमस्त।

दध्युत्तर—संज्ञा पुं० [सं०] दही की मलाई।

दध्युत्तरक, दध्युत्तरग—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दध्युत्तर' (को०)।

दन—संज्ञा पुं० [सं० दिन] दिवस। दिन (डिं०)।

दनकर—संज्ञा पुं० [सं० दिनकर, प्रा० दिणयर, दणयर] दिनकर। सूर्य (डिं०)।

दनगा—संज्ञा पुं० [देश०] खेत का छोटा टुकड़ा।

दनदनाना—क्रि० अ० [अनु०] १. दनदन शब्द करना। २. आनंद करना। खुशी मनाना।

दनमणि—संज्ञा पुं० [सं० दिनमणि] द्युमणि। सूर्य (डिं०)।

दनादन—क्रि० वि० [अनु०] दनदन शब्द के साथ। जैसे,—दनादन तोपें छूटने लगीं।

दनु[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] दक्ष की एक कन्या जो कश्यप को ब्याही थी।

विशेष—इसके चालीस पुत्र हुए थे जो सब दानव कहलाते हैं। उनके नाम ये हैं—विप्रचित्ति, शंबर, नमुचि, पुलोमा, असिलोमा, केशी, दुर्जय, अयःशिरी, अश्वशिरा, अश्वशंकु, गगनमूर्धा, स्वर्भानु, अश्व, अश्वपति, वृषपर्वा, अजक, अश्वग्रीव, सूक्ष्म, तुहुंड, एकपद, एकचक्र, विरूपाक्ष, महोदर, निचंद्र, निकुंभ, कुजट, कपट, शरभ, शलभ, सूर्य, चंद्र, एकाक्ष, अमृतप, प्रलंब, नरक, वातापी, शठ, गविष्ठ, वनायु और दीर्घजिह्व। इनमें जो चंद्र और सूर्य नाम आए हैं, वे देवता चंद्र और सूर्य से भिन्न हैं।

दनु[2]—संज्ञा पुं० एक दानव का नाम जो श्री दानव का लड़का था।

विशेष—इंद्र द्वारा त्रस्त एवं पीड़ित इस राक्षस को राम और लक्ष्मण ने मारा था। शिरविहीन कबंध की आकृति का होने से इसका एक नाम दनुकबंध भी है।

दनुज—संज्ञा पुं० [सं०] दनु से उत्पन्न, असुर। राक्षस।

दनुजदलनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा।

दनुजद्विट—संज्ञा पुं० [दनुजद्विष्] सुर। देवता (को०)।

दनुजपुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दनुज' (को०)।

दनुजराय—संज्ञा पुं० [सं० दनुज + हिं० राय] दानवों का राजा हिरण्यकशिपु।

दनुजारि—संज्ञा पुं० [सं०] दानवों के शत्रु।

दनुजारी—संज्ञा पुं० [सं० दनुजारि] दनुजों के शत्रु। विष्णु। उ०—चोरहि पंथ मिले दनुजारी।—मानस, १।१३६।

दनुजेंद्र—संज्ञा पुं० [सं० दनुजेन्द्र] दानवों का राजा,—रावण।

दनुजेश—संज्ञा पुं० [सं०] १. हिरण्यकशिपु। २. रावण।

दनुजसंभव—संज्ञा पुं० [सं० दनु-सम्भव] दनु से उत्पन्न, दानव।

दनुजसूत—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दनुजसंभव'।

दनू—संज्ञा स्त्री० [सं० दनु] दे० 'दनु'।

दन्न—संज्ञा पुं० [अनु०] 'दन्न' शब्द जो तोप आदि के छूटने अथवा इसी प्रकार के और किसी कारण से होता है।

दपट—संज्ञा स्त्री० [हिं० डाँट के साथ अनु०] घुड़की। डपट। डाँटने या डपटने की क्रिया।

दपटना—क्रि० स० [हिं० डाँटना के साथ अनु०] किसी को डराने के लिये बिगड़कर जोर से कोई बात कहना। डाँटना। घुड़कना।

दपु(पु)—संज्ञा पुं० [सं० दर्प] दर्प। अहंकार। अभिमान। शेखी। घमंड। उ०—सात दिवस गोवर्धन राख्यो इंद्र गयो दपु छोंडि।—सूर (शब्द०)।

दपेट—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'दपट'।

दपेटना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'दपटना'।

दप्प(पु)—संज्ञा पुं० [सं० दर्प, प्रा० दप्प] दे० 'दर्प'।

दफतर—संज्ञा पुं० [फ़ा० दफ़्तर] दे० 'दफ्तर'।

दफतरी—संज्ञा पुं० [फ़ा० दफ़्तरी] दे० 'दफ्तरी'।

दफतरीखाना—संज्ञा पुं० [फ़ा० दफ़्तरीखानह्] दे० 'दफ्तरीखाना'।

दफती—संज्ञा स्त्री० [अ० दफ़्तीन] कागज के कई तख्तों को एक में साट कर बनाया हुआ गत्ता जो प्रायः जिल्द बाँधने आदि के काम में आता है। गत्ता। कुट। वसली।

दफदर‡—संज्ञा पुं० [हिं० दफतर] दे० 'दफ्तर'। उ०—तबलक तत्त दया को दफदर, संत कचहरी भारी।—धरनी० बानी, पृ० ३।

दफन—संज्ञा पुं० [अ० दफ़न] १. किसी चीज को जमीन में गाड़ने की क्रिया। २. मुरदे को जमीन में गाड़ने की क्रिया।

दफनाना—क्रि० स० [अ० दफ़न + आना] १. जमीन में दबाना। गाड़ना। २. (लाक्ष०) किसी दुर्व्यवहार, कटुता आदि को पूरी तरह भुला देना।

दफरा—संज्ञा पुं० [देश०] काठ का वह टुकड़ा या इसी प्रकार का और कोई पदार्थ जो किसी नाव के दोनों ओर इसलिये लगा दिया जाता है कि जिसमें किसी दूसरी नाव की टक्कर से उसका कोई अंग टूट न जाए। हौंस (लश०)।

दफराना—क्रि० स० [देश०] १. किसी नाव को किसी दूसरी नाव के साथ टक्कर लड़ने से बचाना। २. (पाल) खड़ा करना।—(लश०) ३. बचाना। रक्षा कराना।

दफला—संज्ञा पुं० [फा० दफ़ या दफ़्फ़] दे० 'डफ'। उ०—बैंड से लेकर दफले और तुरिहे तक सभी प्रकार के बाजे थे। —काया०, पृ० २७५।

दफा¹—संज्ञा स्त्री० [अ० दफ़अह्] १. बार। बेर। जैसे,—(क) हम तुम्हारे यहाँ कल दो दफा गए थे। (ख) उसे कई दफा समझाया मगर उसने नहीं माना। २. किसी कानूनी किताब का वह एक अंश जिसमें किसी एक अपराध के संबंध में व्यवस्था हो। धारा।

मुहा०—दफा लगाना = अभियुक्त पर किसी दफा के नियमों को घटाना। अपराध का लक्षण आरोपित करना। जैसे—फौजदारी में आज उसपर चोरी की दफा लग गई।

३. दर्जा। क्लास। श्रेणी। कक्षा। उ०—किस दफे में पढ़ते हो भैया ?—रंगभूमि, भा० २, पृ० ४६६।

दफा²—वि०[अ० दफ़अह्]दूर किया हुआ। हटाया हुआ। तिरस्कृत। जैसे,—किसी तरह इसे यहाँ से दफा करो।

मुहा०—दफा दफान करना = तिरस्कृत करके दूर कराना या हटाना।

दफादार—संज्ञा पुं० [अ० दफ़अह् (= समूह) + फ़ा० दार] फौज का वह कर्मचारी जिसकी अधीनता में कुछ सिपाही हों।

विशेष—सेना में दफादार का पद प्रायः पुलिस के जमादार के पद के बराबर होता है।

दफादारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० दफादार + ई (प्रत्य०)] १. दफादार का पद। २. दफादार का काम।

दफीना—संज्ञा पुं० [अ० दफ़ीना] गड़ा हुआ धन या खजाना।

दफ्तर—संज्ञा पुं० [फ़ा० दफ़्तर] १. स्थान जहाँ किसी कारखाने आदि के संबंध की कुल लिखा पढ़ी और लेन देन आदि हो। आफिस। कार्यालय। २. बड़ा भारी पत्र। लंबी चौड़ी चिट्ठी। ३. सविस्तर वृत्तांत। चिट्ठा।

दफ्तरी—संज्ञा पुं० [फ़ा० दफ़्तर] १. किसी दफ्तर का वह कर्मचारी जो वहाँ के कागज आदि दुरुस्त करता और रजिस्टरों आदि पर रूल खींचता अथवा इसी प्रकार के और काम करता हो। २. किताबों की जिल्द बाँधनेवाला। जिल्दसाज। जिल्दबंद।

यौ०—दफ्तरीखाना।

दफ्तरीखाना—संज्ञा पुं० [फ़ा० दफ़्तरीखानह्] वह स्थान जहाँ किताबों की जिल्द बँधती हो अथवा दफ्तरी बैठकर अपना काम करते हों।

दफ्ती—संज्ञा स्त्री० [अ० दफ्तीन] दे० 'दफती'।

दफ्तीन—संज्ञा स्त्री० [अ०] दफ्ती [को०]।

दबंग—वि० [हिं० दबाब या दबाना] प्रभावशाली। दबाववाला। जिसका लोगों पर रोबदाब हो। जैसे,—वे बड़े दबंग आदमी हैं, किसी से नहीं डरते।

दबंगपन—संज्ञा पुं० [हिं० दबंग + पन] दबदबा। रोबदाब। उ०—चाहिए कुछ दबंगपन रखना। दब बहुत दाब में न आएँ हम। —चुभते०, पृ० १६।

दब—संज्ञा स्त्री० [हिं० दबना] बड़ों के प्रति संकोच या भय। दे० 'दाब'। उ०—कहा करौं कछु बनि नहिं आवै अति गुरजन की दब री।—घनानंद, पृ० ५३३।

यौ०—दबगर।

दबक—संज्ञा स्त्री० [हिं० दबकना] दबने या छिपने की क्रिया या भाव। २. सिकुड़न। शिकन। ३. धातु आदि को लंबा करने के लिये पीटने की क्रिया।

यौ०—दबकगर।

दबकगर—संज्ञा पुं० [हिं० दबक + गर (प्रत्य०)] दबका (तार) बनानेवाला।

दबकना¹—क्रि० अ० [हिं० दबना] १. भय के कारण किसी तंग स्थान में छिपना। डर के मारे छिपना। जैसे,—(क) कुत्ते को देखकर बिल्ली का बच्चा आलमारी के नीचे दबक रहा। (ख) सिपाही को देखकर चोर कोने में दबक रहा। २. लुकना। छिपना। जैसे,—शेर पहले से ही झाड़ी में दबका बैठा था, हिरन के आते ही उसपर झपट पड़ा।

क्रि० प्र०—जाना।—रहना।

दबकना²—क्रि० स० किसी धातु को हथौड़ी से चोट लगाकर बढ़ाना या चौड़ा करना। पीटना।

दबकना³—क्रि० स० [सं० दर्प ?] डाँटना। डपटना। घुड़कना। उ०—दबकि दबोरे एक, बारिधि में बोरे एक, मगन मही में एक, गगन उड़ात हैं।—तुलसी (शब्द०)।

दबकनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० दबना] भाथी का वह हिस्सा जिसके द्वारा उसमें हवा घुसती है।

दबकवाना—क्रि० स० [हिं० दबकना का प्रे० रूप] दबकाने का काम किसी दूसरे से कराना। दूसरे को दबकाने में प्रवृत्त करना।

दबका—संज्ञा पुं० [हिं० दबकना (= तार आदि पीटना)] कामदानी का सुनहला या रुपहला चिपटा तार।

दबकाना—क्रि० स० [हिं० दबकना का सक० रूप] १. छिपाना। ढाँकना। आड़ में करना। २. डाँटना।—(क्व०)।

दबकी¹—संज्ञा स्त्री० [देश०] सुराही की तरह का मिट्टी का एक बर्तन जिसमें पानी रखकर चरवाहे और खेतिहर खेत पर ले जाया करते हैं।

दबकी²—संज्ञा स्त्री० [हिं० दबकना] दबकने या छिपने की क्रिया या भाव।

मुहा०—दबकी मारना = छिप जाना। अदृश्य हो जाना।

दबके का सलमा—संज्ञा पुं० [?] चमकीला सलमा। दबके का बना हुआ सलमा जो बहुत चमकीला होता है।

दबकैया—संज्ञा पुं० [हिं० दबकना + ऐया (प्रत्य०)] सोने चाँदी के तारों को पीटकर बढ़ाने, चपटा और चौड़ा करनेवाला। दबकगर।

दबगर¹—संज्ञा पुं० [देश०] १. ढाल बनानेवाला। २. चमड़े के कुप्पे बनानेवाला।

दबगर²—संज्ञा पुं०, वि० [हिं० दब (=दाब)+गर] दाब या शासन में पड़ा हुआ। अधिकार माननेवाला।

दबटना†—क्रि० अ० [हिं० दबाना] दबाना। अधिकार में करना। उ०—इत तुलसी छबि हुलसी छोड़ति परिमल लपटे। इत कमोद आमोद गोद भरि भरि सुख दबटै।—नंद० ग्रं०, पृ० १२।

दबड़ घुसड़—वि० [हिं० दबाना+घुसना] डरपोक। सब से दबने और डरनेवाला।

दबदबा—संज्ञा पुं० [अ०] रोबदाब। आतंक। प्रताप।

दबना—क्रि० अ० [सं० दमन] १. भार के नीचे आना। बोझ के नीचे पड़ना। जैसे, आदमियों का मकान के नीचे दबना। २. ऐसी अवस्था में होना जिसमें किसी ओर से बहुत जोर पड़े। दाब में आना। ३. (किसी भारी शक्ति का सामना होने अथवा दुर्बलता आदि के कारण) अपने स्थान पर न ठहर सकना। पीछे हटना। ४. किसी के प्रभाव या आतंक में आकर कुछ कह न सकना अथवा अपने इच्छानुसार आचरण न कर सकना। दबाव में पड़कर किसी के इच्छानुसार काम करने के लिये विवश होना। जैसे,—(क) कई कारणों से वे हमसे बहुत दबते हैं। (ख) आप तो उनसे कमजोर नहीं हैं, फिर क्यों दबते हैं। ५ अपने गुणों आदि की कमी के कारण किसी के मुकाबले में ठीक या अच्छा न जँचना। जैसे,—यह माला इस कंठे के सामने दब जाती है। ६. किसी बात का अधिक बढ़ या फैल न सकना। किसी बात का जहाँ का तहाँ रह जाना। जैसे, खबर दबना, मामला दबना। उ०—नाम सुनत ही ह्वै गयो तब औरे मन और। दबै नहीं चित चढ़ि रह्यो अबहुँ चढ़ाए त्यौर।—बिहारी (शब्द०)। ७. उमड़ न सकना। शांत रहना। जैसे, बलवा दबना, क्रोध दबना। ८. अपनी चीज का अनुचित रूप से किसी दूसरे के अधिकार में चला जाना। जैसे,—हमारे सौ रुपए उनके यहाँ दबे हुए हैं। ९. ऐसी अवस्था में आ जाना जिसमें कुछ बस न चल सके। जैसे,—वे आजकल रुपए की तंगी से दबे हुए हैं।

संयो० क्रि०—जाना।

१०. धीमा पड़ना। मंद पड़ना।

मुहा०—दबी आवाज=धीमी आवाज=वह आवाज जिसमें कुछ जोर न हो। दबी जबान से कहना=अस्पष्ट रूप से कहना। किसी प्रकार के भय आदि के कारण साफ साफ न कहना बल्कि इस प्रकार कहना जिससे केवल कुछ ध्वनि व्यक्त हो। दबे दबाए रहना=शांतिपूर्वक या चुपचाप रहना। उपद्रव या कार्रवाई न करना। दबे पाँव या पैर (चलना)=इस प्रकार (चलना) जिसमें किसी को कुछ आहट न लगे।

११. संकोच करना। झेंपना।

दबमो†—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बकरा जो हिमालय में होता है।

दबवाना—क्रि० स० [हिं० दबना का प्रे० रूप] दबाने का काम दूसरे से कराना। दूसरे को दबाने में प्रवृत्त कराना।

दबस—संज्ञा पुं० [?] जहाज पर की रसद तथा दूसरा सामान। जहाजी गोदाम में का माल।

दबा—वि० [हिं० दबना] दबाव में पड़ा हुआ। भार से दबा हुआ। विवश।

दबाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० दबाना] अनाज निकालने के लिये बालों या डंठलों को बैलों के पैरों से रौंदवाने का काम।

दबाऊ—वि० [हिं० दबाना] १. दबानेवाला। २. जिस (गाड़ी आदि) का अगला हिस्सा पिछले हिस्से की अपेक्षा अधिक बोझल हो। बम्मू।

दबाना—क्रि० स० [सं० दमन] [संज्ञा, दाब, दबाव] १. ऊपर से भार रखना। बोझ के नीचे लाना (जिसमें कोई चीज नीचे की ओर धँस जाय अथवा इधर उधर हट न सके)। जैसे, पत्थर के नीचे किताब या कपड़ा दबाना। २. किसी पदार्थ पर किसी ओर से बहुत जोर पहुँचाना। जैसे, उँगली से कागज दबाना, रस निकालने के लिये नीबू के टुकड़े को दबाना, हाथ या पैर दबाना। ३. पीछे हटाना। जैसे,—राज्य की सेना शत्रुओं को बहुत दूर तक दबाती चली गई। ४. जमीन के नीचे गाड़ना। दफन करना।

संयो० क्रि०—देना।

५. किसी मनुष्य पर इतना प्रभाव डालना या आतंक जमाना कि जिसमें वह कुछ कह न सके अथवा विपरीत आचरण न कर सके। अपनी इच्छा के अनुसार काम कराने के लिये दबाव डालना। जोर डालकर विवश करना। जैसे,—(क) कल बातों बातों में उन्होंने तुम्हें इतना दबाया कि तुम कुछ बोल ही न सके। (ख) उन्होंने दोनों आदमियों को दबाकर आपस में मेल करा दिया। ६. अपने गुण या महत्व की अधिकता के कारण दूसरे को मंद या मात कर देना। दूसरे के गुणों या महत्व का प्रकाश न होने देना। जैसे,—इस नई इमारत ने आपके मकान को दबा दिया।

संयो० क्रि०—देना।—रखना।

७. किसी बात को उठने या फैलने न देना। जहाँ का तहाँ रहने देना। ८. उमड़ने से रोकना। दमन करना। शांत करना। जैसे, बलवा दबाना, क्रोध दबाना।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

९. किसी दूसरे की चीज पर अनुचित अधिकार करना। कोई काम निकालने के लिये अथवा बेईमानी से किसी की चीज अपने पास रखना। जैसे,—(क) उन्होंने हमारे सौ रुपए दबा लिए। (ख) आपने उनकी किताब दबा ली।

संयो० क्रि०—बैठना।—रखना।—लेना।

१०. झोंक के साथ बढ़कर किसी चीज को पकड़ लेना।

संयो० क्रि०—लेना।

११.—ऐसी अवस्था में ले आना जिसमें मनुष्य असहाय, दीन या विवश हो जाय। जैसे,—आजकल रुपए की तंगी ने उन्हें दबा दिया।

दबाबा—संज्ञा पुं० [देश०] युद्ध की सामग्री में लकड़ी का एक प्रकार

का बहुत बड़ा संदूक जिसमें कुछ आदमियों को बैठाकर गुप्त रूप से सुरंग खोदने अथवा इसी प्रकार का और कोई उपद्रव करने के लिये शत्रु के किले में उतार देते हैं।

दबाव—संज्ञा पुं० [हिं० दबाना] १. दबाने की क्रिया। चाँप।

क्रि० प्र०—डालना।—में आना या पड़ना।

२. दबाने का भाव। चाँप। ३. रोब।

क्रि० प्र०—डालना।—मानना।—में आना या पड़ना।

दबिला—संज्ञा पुं० [देश०] खुरपी या खुचनी के आकार का लकड़ी का बना हुआ हलवाइयों का एक औजार जिससे वे बेसन आदि भूनते, खोवा बनाते या चीनी की चाशनी आदि फेंटते हैं।

दबीज—वि० [फ़ा दबीज] जिसका दल मोटा हो। गाढ़ा। संगीन।

दबीर—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. लिखनेवाला। मुंशी। २. एक प्रकार के महाराष्ट्र ब्राह्मणों की उपाधि।

दबूचना†—क्रि० स० [हिं० दबोचना] दे० 'दबोचना'। उ०—पंजे से दबूच चोंच से चमड़ी नोचकर—।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २०।

दबूसा—संज्ञा पुं० [देश०] १. जहाज का पिछला भाग। पिच्छल। २. बड़ी नाव का पिछला भाग जहाँ पतवार लगी रहती है। ३. जहाज का कमरा।—(लश०)।

दबेरना—क्रि० स० [हिं० दबाना] दे० 'दबोरना'।

दबेला—वि० [हिं० दबना + एला (प्रत्य०)] १. दबा हुआ। जिसपर दबाव पड़ा हो। २. जल्दी जल्दी होनेवाला (काम)। (लश०)।

दबैल—वि० [हिं० दबना + ऐल (प्रत्य०)] दबनेवाला। दब्बू। दबैला। उ०—सुख सों लाज सिधारो सुरग कों काहू की हौं न दबैल।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ४०१।

दबैला—वि० [हिं० दबना + एला (प्रत्य०)] १. जिसपर किसी का प्रभाव या दबाव हो। दबाव में पड़ा हुआ। किसी से दबनेवाला। दब्बू।

दबोचना—क्रि० स० [हिं० दबाना] १. किसी को सहसा पकड़कर दबा लेना। धर दबाना। जैसे—बिल्ली ने तोते को जा दबोचा। २. छिपाना।

संयो० क्रि०—लेना।

दबोरना(पु)†—क्रि० स० [हिं० दबाना] अपने सामने ठहरने न देना। दबाना। उ०—दर्पक दबोरे एक बारिधि में बोरे एक मगन मही में एक गगन उड़ात हैं।—तुलसी (शब्द०)।

दबोस—संज्ञा स्त्री० [देश०] चकमक पत्थर।

दबोसना†—क्रि० स० [देश०] शराब पीना।

दबौला—संज्ञा पुं० [हिं० दबाना + औत (प्रत्य०)] लकड़ी का वह कुंदा जिसे पानी में भिगाए हुए नील के डंठलों आदि को दबाने के लिये ऊपर से रख देते हैं।

दबौनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० दबाना + औनी (प्रत्य०)] १. कसेरों का लोहे का औजार जिसे वे बरतनों पर फूल पत्ते आदि उभारते हैं। २. मेंजनी के ऊपर की ओर लगी हुई लकड़ी (लोशाहे)।

दब्ब(पु)[1]—संज्ञा पुं० [सं० द्रव्य, प्रा० दब्ब] द्रव्य। धन। संपत्ति। सामान। उ०—जो मिलंत मुहि आइ। देउँ धन अंबर दब्बू।—पृ० रा०, १२। ११७।

दब्बू†[2]—वि० [हिं० दबना + ऊ (प्रत्य०)] दबनेवाला। दबैला।

दभ्र[1]—वि० [सं०] १ अल्प। थोड़ा। कम। २. कुंद। अतीक्ष्ण।

दभ्र[2]—संज्ञा पुं० सागर। समुद्र। उदधि (को०)।

दमंगल—संज्ञा पुं० [फ़ा० दंगल ? या डिं० दमगल] बखेड़ा। उपद्रव। युद्ध। उ०—विधि हुते वीर महाबलं गह बाल हूंत दमंगलं। बिल अभय किकंधा दबारे, गजे सुर गहरं।—रघु० रू०, पृ० १५२।

दमंकना(पु)—क्रि० अ० [हिं० दमकना] चमकना। उ०—बहु कृपान तरवारि चमंकहि। जनु बहु दिसि दामिनीं दमंकहि।—मानस, ६। ८६।

दमंस†—संज्ञा पुं० [हिं० दाम + अंस] मोल ली हुई जायदाद।

दम[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. दंड जो दमन करने के लिये दिया जाता है। सजा। २. बाह्येंद्रियों का दमन। इंद्रियों को वश में रखना और चित्त को बुरे कामों में प्रवृत्त न होने देना। ३. कीचड़। ४. घर। ५. एक प्राचीन महर्षि जिनका उल्लेख महाभारत में है। ६. पुराणानुसार मरुत राजा के पौत्र जो बभ्रु की कन्या इंद्रसेना के गर्भ से उत्पन्न हुए थे।

विशेष—कहते हैं कि ये नौ वर्ष तक माता के गर्भ में रहे थे। इनके पुरोहित ने समझा था कि जिसकी जननी को नौ वर्ष तक इस प्रकार इंद्रियदमन करना पड़ा है वह बालक स्वयं भी बहुत ही दमनशील होगा। इसी लिये उसने इनका नाम दम रखा था। ये वेद वेदांगों के बहुत अच्छे ज्ञाता और धनुर्विद्या में बड़े प्रवीण थे।

७. बुद्ध का एक नाम। ८. भीम राजा के एक पुत्र और दमयंती के एक भाई का नाम। ९. विष्णु। १० दबाव।

दम[2]—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. साँस। श्वास।

क्रि० प्र०—आना।—चलना।—जाना।—लेना।

मुहा०—दम अटकना = साँस रुकना, विशेषत: मरने के समय साँस रुकना। दम उखड़ना = दे० 'दम अटकना'। दम उलटना = (१) व्याकुलता होना। घबराहट होना। जी घबराना। (२) दे० 'दम घुटना'। दम खाना = दे० 'दम लेना'। दम खिंचना = दे० 'दम अटकना'। दम खींचना = (१) चुप रह जाना। न बोलना। (२) साँस खींचना। साँस ऊपर चढ़ाना। दम घुटना = हवा की कमी के कारण साँस रुकना। साँस न लिया जा सकना। दम घोंटना = (१) साँस न लेने देना। किसी को साँस लेने से रोकना। (२) बहुत कष्ट देना। दम घोंटकर मारना = (१) गला दबाकर मारना। (२) बहुत कष्ट देना। दम चढ़ना = दे० 'दम फूलना'। दम चुराना = जान बूझकर साँस रोकना।

विशेष—यह क्रिया विशेषत: मक्कार जानवर करते हैं। बंदर मार खाने के समय इसलिये दम चुराता है कि जिसमें मारने

जाता उसे मुरदा समझ ले। लोमड़ी कभी कभी अपने आप को मरी हुई जतलाने के लिये दम चुराती है। साज चढ़ाने के समय अक्कार घोड़े भी साँस रोककर पेट फुला लेते हैं जिसमें पेटी या बंद अच्छी तरह न कसा जा सके।

दम टूटना = (१) साँस बंद हो जाना। प्राण निकलना। (२) दौड़ने या तैरने आदि के समय इतना अधिक हाँफने लगना कि जिसमें आगे दौड़ा या तैरा न जा सके। दम तोड़ना = मरते समय झटके से साँस लेना। अंतिम साँस लेना। दम पचना = निरंतर परिश्रम के कारण ऐसा अभ्यास होना जिसमें साँस न फूले।—(कुश्तीबाज)। दम फूलना = (१) अधिक परिश्रम के कारण साँस का जल्दी जल्दी चलना। हाँफना। (२) दमे के रोग का दौरा होना। दम बंद करना = बलपूर्वक किसी को बोलने आदि से रोकना। दम बंद होना = भय या आतंक आदि के कारण बिलकुल चुप रह जाना। दम भरना = (१) किसी के प्रेम अथवा मित्रता आदि का पक्का भरोसा रखना और समय समय पर अभिमानपूर्वक उसका वर्णन करना। जैसे,—(क) वे उनकी मुहब्बत का दम भरते हैं। (ख) हम आपकी दोस्ती का दम भरते हैं। (२) परिश्रम या दौड़ने आदि के कारण साँस फूलने लगना और थकावट आ जाना। परिश्रम के कारण थक जाना। जैसे,— इतनी सीढ़ियाँ चढ़ने में हमारा दम भर गया। (३) भालू का हाथ या लकड़ी मुँह पर रखकर साँस खींचना। इस क्रिया से उसका क्रोध शांत होता अथवा भोजन पचता है (कलंदर)। (४) किसी को कुश्ती लड़ाकर थकाना (पहलवानों की परीक्षा)। दम मारना = (१) विश्राम करना। सुस्ताना। (२) बोलना। कुछ कहना। चूँ करना। जैसे,— आपकी क्या मजाल जो इस बात में दम भी मार सकें। (३) हस्तक्षेप करना। दखल देना। जैसे,—इस जगह कोई दम मारनेवाला भी नहीं है। दम लेना = विश्राम करना। ठहरना। सुस्ताना। दम साधना = (१) श्वास की गति को रोकना। साँस रोकने का अभ्यास करना। जैसे, प्राणायाम करनेवालों का दम साधना, गोता लगानेवालों का दम साधना। (२) चुप होना। मौन रहना। जैसे,—(क) इस मामले में अब हम भी दम साधेंगे। (ख) रुपयों का नाम सुनते ही आप दम साध गए।

२. नशे आदि के लिये साँस के साथ धुआँ खींचने की क्रिया।

क्रि० प्र०—खींचना।

मुहा०—दम मारना = गाँजे या चरस आदि को चिलम पर रखकर उसका धुआँ खींचना। दम लगाना = गाँजे या चरस का धूँआँ खींचना। दम लगाना = दे० 'दम मारना'।

३. साँस खींचकर जोर से बाहर फेंकने या फूँकने की क्रिया।

मुहा०—दम मारना = मंत्र आदि की सहायता से झाड़ फूँक करना। दम फूँकना = किसी चीज में मुँह से हवा भरना। दम भरना = कबूतर के पोटे में हवा भरना।

४. उतना समय जितना एक बार साँस लेने में लगता है। लमहा। पल।

मुहा०—दम के दम = क्षण भर। थोड़ी देर। जैसे,—वे यहाँ दम के दम बैठे, फिर चले गए। दम पर दम = बहुत थोड़ी थोड़ी देर पर। हर दम। बराबर। जैसे,—दम पर दम उन्हें कै आ रही है। दम बदम = दे० 'दम पर दम'।

५. प्राण। जान। जी।

मुहा०—दम उलझना = जी घबराना। व्याकुल होना। दम खाना = दिक करना। तंग करना। दम खुश्क होना = दे० 'दम सूखना'। दम चुराना = जी चुराना। जान बचाना। किसी बहाने से काम करने से अपने आपको बचाना। दम नाक में या नाक में दम आना = बहुत अधिक दुखी होना। बहुत तंग या परेशान होना। दम नाक में या नाक में दम करना अथवा लाना = बहुत कष्ट या दुःख देना। बहुत तंग या परेशान करना। दम निकलना = मृत्यु होना। मरना। (किसी पर) दम निकलना = किसी पर इतना अधिक प्रेम होना कि उसके वियोग में प्राण निकलने का सा कष्ट हो। बहुत अधिक आसक्ति होना। जैसे,—उसी को देखकर जीते हैं जिसपर दम निकलता है। दम पर आ बनना = (१) जान पर आ बनना। प्राणभय होना। (२) आपत्ति आना। आफत आना। (३) हैरानी होना। व्यग्रता होना। दम फड़क उठना या जाना = किसी चीज की सुंदरता या गुण आदि देखकर चित्त का बहुत प्रसन्न होना। जैसे,—उसकी कसरत देखकर दम फड़क गया। दम फड़कना = चित्त का व्याकुल होना। बेचैनी होना। दम फना होना = दे० 'दम सूखना'। जैसे,—(क) देने के नाम तो उनका दम फना हो जाता है। दम में दम आना = घबराहट या भय का दूर होना। चित्त स्थिर होना। दम में दम रहना या होना = प्राण रहना। जिंदगी रहना। दम सूखना = बहुत अधिक भय के कारण बिलकुल चुप हो जाना। बहुत डर के कारण साँस तक न लेना। प्राण सूखना। भय के मारे स्तब्ध होना। जैसे,—उन्हें देखते ही लड़के का दम सूख गया।

६. वह शक्ति जिससे कोई पदार्थ अपना अस्तित्व बनाए रखता और काम देता है। जीवनी शक्ति। जैसे,—(क) इस छाते में अब बिलकुल दम नहीं है। (ख) इस मकान में कुछ दम तो है ही नहीं, तुम इसे लेकर क्या करोगे।

यौ०—दमदार = (१) जिसमें जीवनी शक्ति यथेष्ट हो। (२) मजबूत। दृढ़।

७. व्यक्तित्व। जैसे, आपके ही दम से ये सब बातें हैं।

मुहा०—(किसी का) दम गनीमत होना = (किसी के) जीवित रहने के कारण कुछ न कुछ अच्छी बातों का होता रहना। गई बीती दशा में भी किसी के कार्यों का ऐसा होना जिसमें उसका आदर हो सके। जैसे,—इस शहर में अब तो और कोई पंडित नहीं रहा, पर फिर भी आपका दम गनीमत है।

८. संगीत में किसी स्वर का देर तक उच्चारण।

मुहा०—दम भरना=किसी स्वर का देर तक उच्चारण करते रहना।

यौ०—दमसाज=वह आदमी जो किसी गवैए के गाने के समय उसकी सहायता के लिये स्वर भरता रहे।

९. पकाने की वह क्रिया जिसमें किसी खाद्य पदार्थ को बरतन में चढ़ाकर और उसका मुँह बंद करके आग पर चढ़ा देते हैं। इस प्रकार बरतन के अंदर की भाफ बाहर नहीं निकलने पाती और उस पदार्थ के पकने में भाफ से बहुत सहायता मिलती है।

क्रि० प्र०—करना।—देना।

यौ०—दम चूल्हा। दम आलू। दम पुख्त।

मुहा०—दम करना=किसी चीज को बरतन में रखकर और भाप रोकने के लिये उसका मुँह बंद करके आग पर चढ़ा देना। दम खाना=किसी पदार्थ का बंद मुँह के बरतन में भीतरी भाफ की सहायता से पकाया जाना। दम देना=किसी अधपकी चीज को पूरी तरह से पकाने के लिये उसे हलकी आँच पर रखकर उसका मुँह बंद कर देना जिसमें वह अच्छी तरह से पक जाय। दम पर आना=किसी पदार्थ के पकने में केवल इतनी कसर रह जाना कि थोड़ा दम देने से वह अच्छी तरह पक जाय। पक कर तैयारी पर आना। थोड़ी देर भाप बंद करके छोड़ देने की कसर रहना। दम होना=भाप से पकना।

१०. धोखा। छल। फरेब। जैसे,—आप तो इसी तरह लोगों को दम देते हैं।

यौ०—दम झाँसा=छल कपट। दम दिलासा=वह बात जो केवल फुसलाने के लिये कही जाय। झूठी आशा। दम पट्टी=(१) धोखा। फरेब। (२) दे० 'दम दिलासा'। दमबाज=(१) धोखा देनेवाला। (२) फुसलाने या बहकानेवाला।

मुहा०—दम देना=बहकाना। धोखा देना। फुसलाना। दम में आना=धोखे में पड़ना। फरेब में आना। जाल में फँसना। दम खाना=फरेब में आना। धोखे में पड़ना। दम में लाना=(१) बहकाना। फुसलाना। (२) धोखा देना। झाँसा देना।

११. तलवार या छुरी आदि की बाढ़। धार।

यौ०—दमदार=चोखा। तेज। पैना। धारदार।

दम³—संज्ञा पुं० [देश०] दरी बुननेवालों की एक प्रकार की तिकोनी कमाची जिसमें सवा सवा गज की तीन लकड़ियाँ एक साथ बँधी रहती हैं। ये करघे में पड़ी रहती हैं और उसमें डोरी बँधी रहती है जो पैर के अँगूठे में बाँध दी जाती है। बुनने के समय इसे पैर से नीचे दबाते हैं।

दम⁴—संज्ञा पुं० [देश०] झोपड़ा। छप्पर। उ०—वे अपनी बस्ती को विश् कहते थे और उनके भीतर इनके झोपड़े दम और पूः कहलाते थे।—प्रा० भा० प०, पृ० ९६।

दमक¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० चमक का अनु०] चमक। चमचमाहट। द्युति। आभा।

दमक²—संज्ञा पुं० [सं०] दमनकर्ता। दबाने, रोकने या शांत करनेवाला।

दमकना—क्रि० अ० [हिं० चमकना का अनु०] १. चमकना। चमचमाना। उ०—गजमोतिन से पूरे माँगा। लाल हिरा पुनि दमके आँगा।—कबीर सा०, पृ० ४५८। २. ज्वलित होना। सुलगना।

दमकर्ता—संज्ञा पुं० [सं० दमकर्तृ] दमन करनेवाला। स्वामी। शासक [को०]।

दमकल—संज्ञा स्त्री० [हिं० दम+कल] १. वह यंत्र जिसमें एक या अधिक ऐसे नल लगे हों, जिनके द्वारा कोई तरल पदार्थ हवा के दबाव से, ऊपर अथवा और किसी ओर झोंक से फेंका जा सके। पंप

विशेष—ऐसे यंत्रों में एक खजाना होता है जिसमें जल अथवा और कोई तरल पदार्थ भरा रहता है, और इसमें एक ओर पिचकारी और दूसरी ओर साधारण नल लगा रहता है। जब पिचकारी चलाते हैं तब खजाने में का पदार्थ जोर से दूसरे नल के द्वारा बाहर निकलता है।

२. उक्त सिद्धांत पर बना हुआ वह यंत्र जिसकी सहायता से मकानों में लगी हुई आग बुझाई जाती है। पंप। ३. उक्त सिद्धांत पर बना हुआ वह यंत्र जिसकी सहायता से कुएँ से पानी निकालते हैं। पंप। दे० 'दमकला'।

दमकला¹—संज्ञा पुं० [हिं०+कल] १. दमकल के सिद्धांत पर बना हुआ वह बड़ा पात्र जिसमें लगी हुई पिचकारी के द्वारा बड़ी बड़ी महफिलों में लोगों पर गुलाबजल अथवा रंग आदि छिड़का जाता है। २. जहाज में वह यंत्र जिसकी सहायता से पाल खड़ा करते हैं। ३. दे० 'दमकल'।

दमकला²—संज्ञा पुं० [हिं० दम] दे० 'दमचूल्हा'।

दमखम—संज्ञा पुं० [फ़ा० दमखम] १. दृढ़ता। मजबूती। उ०—कवि दूसरे के सामने दमखम से उपस्थित होते थे।—आचार्य०, पृ० २०३। २. जीवनी शक्ति। प्राण। ३. तलवार की धार और उसका झुकाव।

दमगजा‡—संज्ञा पुं० [डिं०] लड़ाई। दमगजा। हलचल। युद्ध। उ०—सुर असुर दमगल लख सकल, थक प्रबल ऊथल पथल चल।—रघु० रू०, पृ० २२१।

दमघोष—संज्ञा पुं० [सं०] चेदि देश के प्रसिद्ध राजा शिशुपाल के पिता का नाम जो दमयंती के भाई थे। इनका दूसरा नाम श्रुतश्रुवा भी है।

दमचा—संज्ञा पुं० [देश०] खेत के कोने पर बनी हुई वह मचान जिसपर बैठकर खेतिहर अपने खेत की रखवाली करता है।

दमचूल्हा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का लोहे का बना हुआ गोल चूल्हा जिसके बीच में एक जाली या झरना होता है।

विशेष—इस जाली के नीचे एक और बड़ा छिद्र होता है। इसकी जाली पर कुछ कोयले रखकर उसकी दीवार पर पकाने का बरतन रखते हैं और नीचे के छिद्र से उसमें हवा

की जाती है जिससे आग सुलगती रहती है और जाली में से उसकी राख नीचे गिरती रहती है।

दमजोड़ा—संज्ञा पुं० [?] तलवार।—(डिं०)।

दमड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० दाम + ड़ा (प्रत्य०)] रुपया। धन। दाम।—(बाजारू)।

क्रि० प्र०—खर्चना।

मुहा०—दमड़े करना = बेचकर दाम खड़ा करना।

दमड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० द्रविण (= धन) या दाम + ड़ी (प्रत्य०)] १. पैसे का आठवाँ भाग।

विशेष—कहीं कहीं पैसे के चौथे भाग को भी दमड़ी कहते हैं।

मुहा०—दमड़ी के तीन होना = बहुत सस्ता होना। कौड़ियों के मोल होना। दमड़ी की बुलबुल टका हुसकाई = कम दाम की चीज पर अन्य खर्च अधिक पड़ जाना। उ०—तिनक-कर कहा ऊह। दमड़ी की बुलबुल टका हुसकाई हम अपने आप पी लेंगे।—फिसाना०, भा० ३, पृ० २२६।

२. चिलचिल पक्षी।

दमथ—संज्ञा पुं० [सं०] १. आत्मनियंत्रण या दमन। दम। २. दंड। सजा [को०]।

दमथु—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दमथ'।

दमदमा[1]—संज्ञा पुं० [फ़ा० दमदमह्] १. वह किलेबंदी जो लड़ाई के समय थैलों या बोरों में धूल या बालू भरकर की जाती है। मोरचा। धुस।

क्रि० प्र०—बाँधना।

२. धोखा। जाल। फरेब। दिखावा (को०)।

दमदमा[2]—संज्ञा पुं० [फ़ा० दमामह्] नगाड़ा। धौंसा। उ०—उसके बहने दमदमा, बाएँ उसी के बंब है।—संत तुरसी०, पृ० ४०।

दमदार—वि० [फ़ा०] १. जिसमें जीवनी शक्ति यथेष्ट हो। जानदार। २. दृढ़। मजबूत। ३. जिसमें दम या साँस अधिक समय तक रह सके। जैसे,—इस हारमोनियम की भाथी बहुत दमदार है। ४. जिसकी धार बहुत तेज हो। चोखा।

दमन[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. दबाने या रोकने की क्रिया। २. दंड जो किसी को दबाने के लिये दिया जाता है। ३. इंद्रियों की चंचलता को रोकना। निग्रह। दम। ४. विष्णु। ५. महादेव। शिव। ६. एक ऋषि का नाम। दमयंती इन्हीं के यहाँ उत्पन्न हुई थी। उ०—पटरानी सों कै मता, लै परिजन कछु साथ। आश्रम गयो नरेश तब जहाँ दमन मुनिनाथ।—गुमान (शब्द०)। ७. एक राक्षस का नाम। उ०—दमन नाम निशचर अति घोरा। गर्जत भाषत बचन कठोरा।—रामाश्वमेध (शब्द०)। ८. दौना। ९. कुंद। १०. वध। हनन (को०)। ११. रथ का चालक। सारथी (को०)। १२. योद्धा। युद्धकर्ता। सैनिक (को०)। १३. हरिभक्तिविलास में वर्णित एक पूजनोत्सव जिसमें चैत्र शुक्ल द्वादशी को विष्णु को दौना समर्पित किया जाता है।

दमन[2]—वि० १. दमन करनेवाला। दमनकर्ता। २. शांत [को०]।

दमन(पु)[3]—संज्ञा स्त्री० [सं० दमयन्ती] दे० 'दमयंती'। उ०—दमनहि नलहि जो हंस मेरावा। तुम्ह हिरामन नावँ कहावा।—जायसी (शब्द०)।

दमनक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक छंद का नाम जिसमें तीन नगण, एक लघु और एक गुरु होता है। २. दौना।

दमनक[2]—वि० दमन करनेवाला। दमनशील।

दमनशील—वि० [सं०] जिसकी प्रकृति दमन करने की हो। दमन करनेवाला।

दमना(पु)[1]—क्रि० अ० [फ़ा० दम] थकना। दम लेना। उ०—फिरता फिरता जी दमता है बाबा, कौन रखे तेरे तन कू धू।—दक्खिनी०, पृ० १५।

दमना[2]—क्रि० स० [सं० दमन] दमन करना। वश में लाना।

दमना†[3]—संज्ञा पुं० [सं० दमनक] द्रोणलता। दौना। उ०—दमना क मञ्जरी शालिक परिमल।—वर्ण०, पृ० २०।

दमनी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का क्षुप, जिसे अग्निदमनी कहते हैं।

दमनी[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० दमन] संकोच। लज्जा। उ०—सील सनी सजनीन समीप गुलाब कछू दमनी दरसावै।—गुलाब (शब्द०)।

दमनीय—वि० [सं०] १. दमन होने के योग्य। जो दमन किया जा सके। २. जो दबाया जा सके। जो खंडित किया जा सके। जो दबाकर चढ़ाया जा सके। उ०—कुँवरि मनोहर विजय बड़ि कीरति अति कमनीय। पावनहार बिरंचि जनु रचेउ न धनु दमनीय।—तुलसी (शब्द०)।

दमपुख्त—वि० [फ़ा० दमपुख्त] (वह खाद्य पदार्थ) जो दम देकर पकाया गया हो।

दमबाज—वि० [फ़ा० दम + बाज़] दम देनेवाला। फुसलानेवाला। बहाना करनेवाला।

दमबाजी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० दम + बाजी] बहानेबाजी। दम देने या फुसलाने का काम। धोखेबाजी।

दमयंतिका—संज्ञा स्त्री [सं० दमयन्तिका] मदनवान वृक्ष।

दमयंती—संज्ञा स्त्री० [सं० दमयन्ती] १. राजा नल की स्त्री जो विदर्भ देश के राजा भीमसेन की कन्या थी। वि० दे० 'नल'। २. एक प्रकार का बेला। मदनवान।

दमयिता—संज्ञा पुं० [सं० दमयितृ] १. दमन करनेवाला। दमकर्ता। २. विष्णु। ३. शिव [को०]।

दमरक—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'चमरक'।

दमरख—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'चमरख'। उ०—कहिं बान अटेरन टाट गजी, कहिं दमरख चमरख तकला है।—राम० धर्म०, पृ० ६२।

दमरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० दमड़ी] दे० 'दमड़ी'। उ०—पैसा दमरी नाहिं हमारे। केहि कारण मोंहि राय हँकारे।—कबीर सा०, पृ० ४८५।

दमवंती(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० दमयंती] दे० 'दमयंती'। उ०—सो

उपकार करी विधं भाई। दमयंती क्यों नलहिं मिलाई।—हिंदी प्रेम गाथा०, पृ० २२०।

दमसाज—संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह आदमी जो किसी गवैए के गाने के समय उसकी सहायता के लिये केवल स्वर भरता है।

दमा—संज्ञा पुं० [फ़ा० दमह्] एक प्रसिद्ध रोग। श्वास। साँस।

विशेष—इस रोग में श्वासवाहिनी नाली के अंतिम भाग में, जो फेफड़ों के पास होता है, आकुंचन और ऐंठन के कारण साँस लेने में बहुत कष्ट होता है, खाँसी आती है और कफ रुककर बड़ी कठिनता से धीरे धीरे निकलता है। इस रोग के रोगी को प्रायः अत्यंत कष्ट होता है, और लोगों का विश्वास है कि यह रोग कभी अच्छा नहीं होता। इसी लिये इसके संबंध में एक कहावत बन गई है कि दमा दम के साथ जाता है।

दमाग—संज्ञा पुं० [अ० दमाग़] दे० 'दिमाग' [को०]।

दमाद—संज्ञा पुं० [सं० जामातृ] कन्या का पति। जवाई। जामाता। उ०—ठाकुर कहत हम बैरी बेवकूफन के जालिम दमाद हैं अदानियाँ ससुर के।—ठाकुर०, पृ० २६।

दमादम—क्रि० वि० [अनु०] १. दम दम शब्द के साथ। २. लगातार। बराबर।

दमान—संज्ञा पुं० [देश०] दामन। पाल की चादर (लश०)।

दमानक—संज्ञा स्त्री० [देश०] तोपों की बाढ़। उ०—देव सूत पितर करम खल काल ग्रह मोहि पर दौरि दमानक सी दई है।—तुलसी। (शब्द०)। (ख) निज सुभट वीरन संग लै सु दमानकै चालीं भली।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २३।

दमाम—संज्ञा पुं० [हिं० दमामा] दे० 'दमामा'। उ०—जीव जँजाले पड़ि रहा, जमहिं दमाम बजाय।—कबीर सा०, सं०, पृ० ७४।

दमामा—संज्ञा पुं०[फ़ा० दमामह्]नगाड़ा। नक्कारा। डंका। धौंसा।

दमारिⓅ†—संज्ञा पुं० [सं० दावानल] १. जंगल की आग। बन की आग। २. दमड़ी। उ०—अधरम आठों गाँठि न्याव बिनु बीगम सूबा। टकनि दमारि गुलाम आप को भयो असूदा।—पलटू० बानी, पृ० ११२२।

दमावतिⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० दमयन्ती] दे० 'दमयंती'। उ०—राजा नल कँह जैसे दमावति।—जायसी (शब्द०)।

दमावतीⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'दमावति'।

दमाह—संज्ञा पुं० [हिं० दमा] बैलों का एक रोग जिसमें वे हाँफने लगते हैं।

दमित—वि० [सं०] १. जिसका दमन किया गया हो। उ०—कवि सामाजिक प्रतिबंधों के विरुद्ध अपनी दमित वृत्तियों का प्रकाशन करता है।—नया०, पृ० ३। २. पराजित। पराभूत। विजित (को०)।

दमी[1]—वि० [सं० दमिन्] दमनशील।

दमी[2]—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] एक प्रकार का जेबी या सफरी नैचा। दम लगाने का नैचा।

दमी[3]—वि० [फ़ा० दम] १. दम लगानेवाला। कश खींचनेवाला। २. गाँजा पीनेवाला। गँजेड़ी। जैसे,—दमी यार किसके। दम लगाके खिसके। (कहा०)।

दमी[4]—वि० [हिं० दमा] जिसे दमे का रोग हो। दमे के रोगवाला।

दमुना—संज्ञा पुं० [सं० दमुनस्] १. अग्नि। आग। २. शुक्र का एक नाम (को०)।

दमैयाⓅ†—वि० [हिं० दमन + ऐया (प्रत्य०)] दमन करनेवाला। उ०—तुलसी तेहि काल कृपाल बिना दूजो कौन है दारुन दुःख दमैया।—तुलसी (शब्द०)।

दमोड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० दाम + ओड़ा (प्रत्य०)] दाम। मूल्य। कीमत। (दलाली)।

दमोदर—संज्ञा पुं० [सं० दामोदर] दे० 'दामोदर'।

दम्य[1]—वि० [सं०] १. दमन करने योग्य। जो दमन किया जा सके। २. बैल जो बधिया करने योग्य हो।

दम्य[2]—संज्ञा पुं० बैल जो धुरा धारण कर सके। पुष्ट बैल [को०]।

दयंत‡—संज्ञा पुं० [सं० दैत्य] दे० 'दैत्य'। उ०—(क) देव दयंतहि भूतहि प्रेतहि कालहु सो कबहूँ न डरै जू।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० ३५। (ख) कीन्हेसि राकस भूत परेता। कीन्हेसि भोकस देव दयंता।—जायसी ग्रं० (गुप्त०), पृ० १२३।

दय—संज्ञा पुं० [सं०] दया। कृपा। करुणा।

दयतⓅ[1]—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दैत्य'। उ०—मो नाम ढुंढ बीसल नृपति साप देहु लंभिय दयत।—पृ० रा०, १।५६१।

दयत[2]—संज्ञा पुं० [सं० दयित] दे० 'दयित'। उ०—सुहृद दयत, बल्लभ, सखा प्रीतम परम सुजान।—नंद० ग्रं०, पृ० ८६।

दयनीय—वि० [सं०] दया करने योग्य। कृपा करने योग्य।

दयनीयता—संज्ञा स्त्री० [सं०] ऐसी दशा जिसे देखकर देखनेवाले के मन में दया उत्पन्न हो। उ०—ऐसी दयनीयता हुई है क्या। फूली है, भीतरी रुई है क्या।—आराधना, पृ० १६।

दया—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मन का वह दुःखपूर्ण वेग जो दूसरे के कष्ट को दूर करने की प्रेरणा करता है। सहानुभूति का भाव। करुणा। रहम।

क्रि० प्र०—आना।—करना।

यौ०—दया दृष्टि।

विशेष—जिसके प्रति दया की जाती है उसके वाचक शब्द के साथ 'पर' विभक्ति लगती है। जैसे, किसी पर दया आना, किसी पर (या किसी के ऊपर) दया करना। शिष्टाचार के रूप में भी इस शब्द का व्यवहार बहुत होता है। जैसे, किसी ने पूछा 'आप अच्छी तरह' ? उत्तर मिलता है—'आपकी दया से'।

२. दक्ष प्रजापति की एक कन्या जो धर्म को ब्याही गई थी।

दयाकर[1]—वि० [सं०] दया करनेवाला। दयालु। कृपालु। उ०—सुनु सर्वज्ञ कृपा सुख सिंधो। दीन दयाकर आरत बंधो।—मानस, ७।१८।

दयाकर[2]—संज्ञा पुं० शिव [को०]।

दयाकूट—संज्ञा पुं० [सं०] बुद्धदेव।

दयाकूर्च—संज्ञा पुं० [सं०] बुद्धदेव ।

दयादृष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी के प्रति करुणा या अनुग्रह का भाव । रहम या मेहरबानी की नजर ।

दयानंद सरस्वती—संज्ञा पुं० [सं० दयानन्द सरस्वती] आर्यसमाज के संस्थापक जिनका समय सन् १८२४ से १८८३ तक है । वि० दे० 'आर्यसमाज' ।

दयानत—संज्ञा स्त्री० [अ०] सत्यनिष्ठा । ईमान ।

दयानतदार—वि० [अ० दयानत + फ़ा० दार] ईमानदार । सच्चा ।

दयानतदारी—संज्ञा स्त्री० [अ० दयानत + फ़ा० दारी] ईमानदारी । सच्चाई ।

दयाना(पु)—क्रि० अ० [हिं० दया + ना (प्रत्य०)] दयालु होना । कृपालु होना । उ०—आगम कारण भूप तब मुनिसों कह्यो सुनाई । मुनिवर दई उपासना परम दयालु दयाई ।—गुमान (शब्द०) ।

दयानिधान—संज्ञा पुं० [सं०] दया का खजाना । वह जिसमें बहुत अधिक दया हो । बहुत दयालु पुरुष ।

दयानिधि—संज्ञा पुं० [सं०] दया का खजाना । वह जिसके चित्त में बहुत दया हो । बहुत दयालु पुरुष । २. ईश्वर का एक नाम । उ०—दयानिधि तेरी गति लखि न परै ।—सूर (शब्द०) ।

दयापात्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो दया के योग्य हो । वह जिसपर दया करना उचित हो ।

दयामणउ(पु)—वि० [सं० दयावत्, बहु व० दयावन्त, देशी दयावण, दयावन्न, हिं० दयावना] दया के योग्य । दयनीय । उ०—पहिली होय दयामणउ रवि आथमणउ जाइ ।—ढोला०, दू० ५४६ ।

दयामय[1]—वि० [सं०] १. दया से पूर्ण । दयालु ।

दयामय[2]—संज्ञा पुं० ईश्वर का एक नाम ।

दयार[1]—संज्ञा पुं० [सं० देवदार] देवदार का पेड़ ।

दयार[2]—संज्ञा पुं० [अ०] प्रांत । प्रदेश ।

दयार[3]—वि० [सं० दयालु, हिं० दयाल] दे० 'दयालु' । उ०—आवागवन नसावै हो, गुरु होवैं दयार ।—पलटू०, भा० ३, पृ० ८० ।

दयार्द्र—वि० [सं०] दया से भीगा हुआ । दयापूर्ण । दयालु ।

दयाल[1]—वि० [सं० दयालु] दे० 'दयालु' ।

दयाल[2]—संज्ञा पुं० [देश०] एक चिड़िया जो बहुत अच्छा बोलती है ।

दयाली—संज्ञा स्त्री० [सं० दया] दे० 'दयालुता' । उ०—जिनपर संत दयाली कीन्हा । अगम बूझ कोइ बिरले चीन्हा ।—घट०, पृ० २१८ ।

दयालु—वि० [सं०] जिसमें दया का भाव अधिक हो । बहुत दया करनेवाला । दयावान् ।

दयालुता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दयालु होने का भाव । दया करने की प्रवृत्ति ।

दयावंत—वि० [सं० दयावन् का बहुव०] दयायुक्त । दयालु ।

दयावती[1]—वि० स्त्री० [सं०] दया करनेवाली ।

दयावती[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] ऋषभ स्वर की तीन श्रुतियों में से पहली श्रुति ।

दयावना(पु)—वि० पुं० [हिं० दया + आवना] [वि० स्त्री० दयावनी] दया के योग्य । दया का पात्र । दीन । उ०—देवी देव दानव दयावने ह्वै जोरैं हाथ, बापुरे बराक और राजा राना राँक को ।—तुलसी (शब्द०) ।

दयावान्—वि० [सं० दयावत्] [वि० स्त्री० दयावती] जिसके चित्त में दया हो । दयालु ।

दयावीर—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो दया करने में वीर हो । वह जो दूसरे का दुःख दूर करने के लिये प्राण तक दे सकता हो ।

विशेष—साहित्य या काव्य में वीर रस के अंतर्गत युद्धवीर, दानवीर आदि जो चार वीर गिनाए गए हैं उनमें दयावीर भी है ।

दयाशील—वि० [सं०] दयालु । कृपालु ।

दयासागर—संज्ञा पुं० [सं०] जिसके चित्त में अगाध दया हो । अत्यंत दयालु मनुष्य ।

दयित[1]—वि० [सं०] १. प्यारा । प्रिय । उ०—दयित, देखते देव भक्ति को, निरखते नहीं नाथ व्यक्ति को ।—साकेत, पृ० ३११ ।

दयित[2]—संज्ञा पुं० [सं०] पति । वल्लभ ।

दयिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रियतमा । पत्नी । स्त्री । उ०—इष्टा दयिता बल्लभा प्रिया प्रेयसी होइ ।—अनेक०, पृ० ५६ ।

दर[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. शंख । २. गड्ढा । दरार । ३. गुफा । कंदरा । ४. फाड़ने की क्रिया । विदारण । जैसे, पुरंदर । ५. डर । भय । खौफ । उ०—(क) भववारिधि मंदर; परमं दर । वारय, तारय संसृति दुस्तर ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) दर जु कहत कवि शख को दर ईषत को नाम । दर डरते राखौ कुंवर मोहन गिरधर श्याम ।—नंददास (शब्द०) । (ग) साध्वस दर आतंक भय भीत भीर भी त्रास । डरत सहचरी सकुच तें गई कुँवरि के पास ।—नंददास (शब्द०) ।

दर[2]—संज्ञा पुं० [सं० दल] सेना । समूह । दल । उ०—(क) पलटा जनु वर्षा ऋतुराजा । जनु असाढ़ आवै दर साजा ।—जायसी (शब्द०) । (ख) दूतन कहा आय जहँ राजा । चढ़ा तुर्क आवै दर साजा ।—जायसी (शब्द०) ।

दर[3]—संज्ञा पुं० [फ़ा०] द्वार । दरवाजा । उ०—माया नटिन लकुटि कर लीने कोटिक नाच नचावै । दर दर लोभ लागि लै डोलति नाना स्वाँग करावै ।—सूर (शब्द०) ।

मुहा०—दर दर मारा मारा फिरना = कार्यसिद्धि या पेट पालने के लिये एक घर से दूसरे घर फिरना । दुर्दशाग्रस्त होकर घूमना ।

दर[4]—संज्ञा पुं० [सं० स्थल, हिं० थल, थर अथवा फा० दर] १. जगह । स्थान । २. वह स्थान जहाँ जुलाहे ताने की डंडियाँ गाड़ते हैं ।

दर[5]—संज्ञा स्त्री० १. भाव । निर्ख । जैसे,—कागज की दर आजकल

बहुत बढ़ गई है। २. प्रमाण। ठीक ठिकाना। जैसे,—उसकी बात की कोई दर नहीं। ३. कदर। प्रतिष्ठा। महत्व। महिमा। उ०—सिर केतु सुहावन फरहरे जेहि लखि पर दल थरहरे। सुरराज केतु की दर हरे आदव ओधा कर हुरे।—गोपाल (शब्द०)।

दर[4]—वि० [सं०] किंचित्। थोड़ा। जरा सा।

दर[5]—संज्ञा स्त्री० [सं० दारु (= लकड़ी)] ईख। इक्षु। ऊख। उ०—कारन ते कारज है नीका। जथा कंद ते दर रस फीका।—विश्राम (शब्द०)।

दरकंटिका—संज्ञा स्त्री० [दरकण्टिका] शतावरी। सतावर नामक ओषधि।

दरक[1]—वि० [सं०] डरनेवाला। डरपोक। भीरु।

दरक[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० दरकना] १. जोर या दाब पड़ने से पड़ा हुआ दरार। चीर। २ दरकने की क्रिया।

दरकच—संज्ञा स्त्री० [हिं० दोरा + अनु० कच] १. वह चोट जो जोर से रगड़ या ठोकर खाने से लगे। २. वह चोट जो कुचल जाने से लगे।

क्रि० प्र०—लगना।

दरकचाना†—क्रि० स० [हिं० दर + कचरना] थोड़ा कुचलना। इतना कुचलना जितने में कोई वस्तु कई खंड हो जाय पर चूर्ण न हो।

दरकटी—संज्ञा स्त्री० [हिं० दर (= भाव) + कटना] पहले से किसी वस्तु की दर या निर्ख काट देने की क्रिया। दर की मुकर्ररी। भाव का ठहराव।

दरकना—क्रि० अ० [सं० दर (= फाड़ना)] दाब या जोर पड़ने से फटना। चिरना। विदीर्ण होना। जैसे, कपड़ा दरकना, छाती दरकना। उ०—क्यों धौं दार्यों लौं हियो दरकत नहिं नँदलाल।—बिहारी (शब्द०)।

दरका—संज्ञा पुं० [हिं० दरकना] १. शिगाफ। दरार फटने का चिह्न। २. वह चोट जिससे कोई वस्तु दरक या फट जाय। उ०—लखी वियोगिनि दाड़िमन, कंटक अंग निदान। फूलत नविन दरको लग्यो मुकमुख किंशुकवान।—गुमान (शब्द०)।

दरकाना[1]—क्रि० स० [हिं० दरकना] फाड़ना। उ०—ढीठ लँगर कन्हाई मोरी आँगी दरकाई रे।—(गीत)।

दरकाना[2]—क्रि० अ० फटना। उ०—पुलकित अंग अँगिया दरकानी उर आनंद अंचल फहरात।—सूर (शब्द०)।

दरकार—वि० [फ़ा०] आवश्यक। अपेक्षित। जरूरी।

दरकिनार—क्रि० वि० [फ़ा०] अलग। अलहदा। एक ओर। दूर।

मुहा०—...तो दर किनार = ...कुछ चर्चा नहीं। दूर की बात है। बहुत बड़ी बात है। जैसे,—उसे कुछ देना तो दरकिनार मैं उससे बात भी नहीं करना चाहता।

दरकूच—क्रि० वि० [फ़ा०] बराबर यात्रा करता हुआ। मंजिल दरमंजिल। उ०—(क) रामचंद्र जी की चमू राज्यश्री विभीषण की, रावण की मीचु दरकूच चलि आई है।—केशव। (शब्द०)। (ख) दस सहस बाजे दराज साजे अब अराबो संग लै। दरकूच आवत है चलो मन माँहि जंग उमंग लै।—सूदन (शब्द०)।

दरक्क(पु)—संज्ञा पुं० [देश० ?] ऊँट। उ०—दिन लाख घटे हुँवर दरक्क। जवनान पड़ें निस दिवस जक्क।—रा० रू०, पृ० ७३।

दरख्त(पु)‡—संज्ञा पुं० [फ़ा० दरख्त] दे० 'दरख्त'।

दरख्वास्त—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० दरख्वास्त] १. निवेदन। किसी बात के लिये प्रार्थना।

क्रि० प्र०—करना।

२. प्रार्थनापत्र। निवेदनपत्र। वह लेख जिसमें किसी बात के लिये विनती की गई हो।

मुहा०—दरख्वास्त गुजरना = दे० 'दरख्वास्त पड़ना'। दरख्वास्त देना = प्रार्थनापत्र उपस्थित करना। कोई ऐसा लेख भेजना या सामने रखना जिसमें किसी बात के लिये प्रार्थना की गई हो। दरख्वास्त पड़ना = प्रार्थनापत्र उपस्थित किया जाना। किसी के ऊपर दरख्वास्त पड़ना = किसी के विरुद्ध राजा या हाकिम के यहाँ आवेदनपत्र देना।

दरख्त—संज्ञा पुं० [फ़ा० दरख्त] पेड़। वृक्ष।

दरगह(पु)—संज्ञा स्त्री० [फा० दरगाह] दरबार। सभा। उ०—चाँदरा तणों वणियो बदन धर वीणा दरगह बसे।—रघु० रू०, पृ० ४९।

दरगाह—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. चौखट। देहरी। २. दरबार। कचहरी। उ०—चढ़ी मदन दरगाह में तेरे नाम कमान।—रसनिधि (शब्द०)। ३. किसी सिद्ध पुरुष का समाधि-स्थान। मकबरा। मजार। जैसे, पीर की दरगाह। ४. मठ। मंदिर। तीर्थस्थान।

दरगुजर—वि० [फ़ा० दरगुजर] १. अलग। बाज। वंचित।

क्रि० प्र०—होना।

मुहा०—दरगुजर करना = टालना। हटाना।

२. मुआफ। क्षमाप्राप्त।

मुहा०—दरगुजर करना = जाने देना। छोड़ देना। दंड आदि न देना। मुआफ करना।

दरगुजरना—क्रि० अ० [फा० दरगुजर + हिं० ना (प्रत्य०)] १. छोड़ना। त्यागना। बाज आना। २. जाने देना। दंड आदि न देना। क्षमा करना। मुआफ करना।

दरग्गह(पु)—संज्ञा पुं० [फ़ा० दरगाह] दरबार। दरगाह। उ०—सहजादे निज अंग सनाहे मगि लाग दरग्गह माहे।—रा० रू०, पृ० ६५।

दरज—संज्ञा स्त्री० [सं० दर (= दरार)] दरार। शिगाफ। दराज। वह खाली जगह जो फटने या दरकने से पड़ जाय। उ०—घटहि में दया के दरजी, तो दरज मिलावहि हो।—धरम०, पृ० ४८।

यौ०—दरजबंदी = दीवार की दरारों को चूना गारा भरकर बंद करने का काम।

दरजन—संज्ञा पुं० [अं० डजन, हिं० दर्जन] दे० 'दर्जन'।

दरजा[1]—संज्ञा पुं० [अ० दर्जह्, हिं० दरजा] दे० 'दर्जा'।

दरजा[2]—संज्ञा पुं० [हिं० दरजा] लोहा ढालने का एक औजार।

दरजिन—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'दर्जिन'।

दरजी—संज्ञा पुं० [फ़ा० दर्जी] दे० 'दर्जी'। उ०—दग दरजी बरुनी सुई रेसम डोरे लाल।—स० सप्तक, पृ० १९२।

दरण—संज्ञा पुं० [सं०] १. दलने या पीसने की क्रिया। २. ध्वंस। विनाश।

दरणि—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रवाह। धारा। २. भौंर। आवर्त। ३. तरंग। लहर। ४. तोड़ना। खंडन [को०]।

दरणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'दरणि'।

दरत्, दरद्—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पर्वत। पहाड़। २. बंधा। बंध। बाँध। ३. प्रपात। झरना। ४. डर। भय। ५. हृदय। ६. म्लेच्छ जाति [को०]।

दरथ—संज्ञा पुं० [सं०] १. कंदरा। गुफा। २. गर्त। गड्ढा। ३. चारे की तलाश करना। ४. पलायन [को०]।

दरद[1]—संज्ञा पुं० [फ़ा० दर्द] १. पीड़ा। व्यथा। कष्ट। उ०—दरद दवा दोनों रहै पीतम पास तयार।—रसनिधि (शब्द०)। २. दया। करुणा। तर्स। सहानुभूति। उ०—माई नेकहु न दरद करति हिलकिन हरि रोवै।—सूर (शब्द०)।

विशेष—दे० 'दर्द'।

दरद[2]—वि० [सं०] भयदायक। भयंकर।

दरद[3]—संज्ञा पुं० १. काश्मीर और हिंदूकुश पर्वत के बीच के प्रदेश का प्राचीन नाम।

विशेष—बृहत्संहिता में इस देश की स्थिति ईशान कोण में बतलाई गई है। पर आजकल जो 'दरद' नाम की पहाड़ी जाति है वह लद्दाख, गिलगित, चित्राल, नागर हुंजा आदि स्थानों में ही पाई जाती है। प्राचीन यूनानी और रोमन लेखकों के अनुसार भी इस जाति का निवासस्थान हिंदूकुश पर्वत के आसपास ही निश्चित होता है।

२. एक म्लेच्छ जाति, जिसका उल्लेख मनुस्मृति, हरिवंश आदि में है।

विशेष—मनुस्मृति में लिखा है कि पौंड्रक, ओड्र, द्राविड, कांबोज, यवन, शक, पारद, पह्लव, चीन, किरात, दरद और खस पहले क्षत्रिय थे, पीछे संस्कारविहीन हो जाने और ब्राह्मणों का दर्शन न पाने से शूद्रत्व को प्राप्त हो गए। आजकल जो दारद नाम की जाति है वह काश्मीर के आसपास लद्दाख से लेकर नागरहुंजा और चित्राल तक पाई जाती है। इस जाति के लोग अधिकांश मुसलमान हो गए हैं। पर इनकी भाषा और रीति नीति की ओर ध्यान देने से प्रकट होता है कि ये आर्यकुलोत्पन्न हैं। यद्यपि ये लिखने पढ़ने में मुसलमान हो जाने के कारण फारसी अक्षरों का व्यवहार करते हैं, तथापि इनकी भाषा काश्मीरी से बहुत मिलती जुलती है।

३. ईंगुर। सिंगरफ। हिंगुल।

दरदमंद—वि० [फ़ा० दर्दमंद] १. दुःखी। दर्दवाला। २. दयालु। जो दूसरे को दुःखी देखकर स्वयं दुःख का अनुभव करे। उ०—करन कुबेर कलि कीरति कमाल करि ताले बंद मरद दरदमंद दाना था।—अकबरी०, पृ० १४४।

दरदर[1]—क्रि० वि० [फा० दर दर] १. द्वार द्वार। दरवाजे दरवाजे। उ०—माया नटिन लकुटि कर लीन्हे कोटिक नाच नचावै। दर दर लोभ लागि लै डोलै नाना स्वाँग करावै।—सूर (शब्द०)। २. स्थान स्थान पर। जगह जगह। उ०—दर दर देखो दरीखानन में दौरि दौरि दुरि दुरि दामिनी सी दमकि दमकि उठै।—पद्माकर (शब्द०)।

दरदर†[2]—वि० [हिं०] दे० 'दरदरा'।

दरदरा—वि० [सं० दरण (= दलना)] [वि० स्त्री० दरदरी] जिसके कण स्थूल हों। जिसके रवे महीन न हों, मोटे हों। जिसके कण टटोलने से मालूम हों। जो खूब बारीक न पिसा हो। जैसे, दरदरा आटा, दरदरा चूर्ण।

दरदराना—क्रि० स० [सं० दरण] १. किसी वस्तु को इस प्रकार हलके हाथ से पीसना या रगड़ना कि उसके मोटे मोटे रवे या टुकड़े हो जायँ। बहुत महीन न पीसना, थोड़ा पीसना। जैसे,—मिर्च थोड़ा दरदरा कर ले आओ, बहुत महीन पीसने का काम नहीं। † २. जोर से दाँत काटना।

दरदरी[1]—वि० स्त्री० [हिं० दरदरा] मोटे रवे की। जिसके रवे मोटे हों।

दरदरीⓊ[2]—संज्ञा [सं० धरित्री] पृथ्वी। जमीन। धरती (डिं०)।

दरदवंतⓊ—वि० [फा० दर्द + हिं० वंत (प्रत्य०)] १. कृपालु। दयालु। सहानुभूति रखनेवाला। उ०—सज्जन हो या बात को करि देखो जिय गौर। बोलनि चितवनि चलनि वह दरदवंत की और।—रसनिधि (शब्द०)। २. दुखी। जिसके पीड़ा हो। पीड़ित। उ०—लेउ न मजनू गोर ढिग कोऊ लैलै नाम। दरदवंत को नेक तो लेन देहु विश्राम।—रसनिधि (शब्द०)।

दरदवंदⓊ—वि० [फ़ा० दर्दमंद] १. व्यथित। पीड़ित। जिसके दर्द हो। २. दुःखी। खिन्न।

दरदाईⓊ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दर्द से युक्त होने का भाव। वेदना। दरद। उ०—पीकी मोंहि लहर उठत छुटत रैन नाहीं। कहा कहूँ करमन की रेख हिय की दरदाई।—तुलसी० श०, पृ० ६।

दरदालान—संज्ञा पुं० [फ़ा०] दालान के बाहर का दालान।

दरदी—वि० [फ़ा० दर्द, हिं० दरद + ई (प्रत्य०)] जिसे दुःख मिला हो। दुःखी। पीड़ित। उ०—मीरा कहती है मतवाली, दरदी को दरदी पहचाने। दरद और दरदी के रिश्तों को, पगली मीरा क्या जाने।—हिमत०, पृ० ७६।

दरद्द—संज्ञा पुं० [फ़ा० दर्द] दे० 'दरद' या 'दर्द'।

दरद्री—वि० [सं० दरिद्र] निर्धन। कंगाल। उ० बेहथ्य दरद्री द्रव्य ज्यों अचल सचल सिर दिष्षद्दय। चंगार चेम चेमहकरनं। जिति किति अभिनष्षई।—पृ० रा०, १२। ६६।

दरनⓊ—संज्ञा पुं० [सं० दरण] दे० 'दरण'।

दरना†—क्रि० स० [सं० दरण] १. दलना । चूर्ण करना । पीसना । २. ध्वस्त करना । नष्ट करना ।

दरपⓅ‡—संज्ञा पुं० [सं० दर्प] दे० 'दर्प' । उ०—तरह मदन रत तरुनी देखि दिल दरप जाय दट ।—रघु० क०, पृ०

दरपकⓅ—संज्ञा पुं० [सं० दर्पक] दे० 'दर्पक' । उ०—तोहि पाइ कान्ह प्यारी ह्वैयो विराजमान ऐसे जैसे लीने संग दरपक रति है ।—कविता०, पृ० ५३ ।

दरपन—संज्ञा पुं० [सं० दर्पण] [स्त्री० अल्पा० दरपनी] मुँह देखने का शीशा । आईना । मुकुर । आरसी ।

दरपनाⓅ—क्रि० अ० [सं० दर्पण] १. ताव में आना । क्रोध करना । २. गर्व या अहंकार करना । घमंड करना ।

दरपनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० दरपन] मुँह देखने का छोटा शीशा । छोटा आईना ।

दरपर्दा—क्रि० वि० [फ़ा० दरपर्दह्] चुपके चुपके । आड़ में । छिपाकर ।

दरपित—वि० [सं० दर्पित] दे० 'दर्पित' ।

दरपेश—क्रि० वि० [फ़ा०] आगे । सामने ।

मुहा०—दरपेश होना = उपस्थित होना । सामने आना । जैसे, मामला दरपेश होना ।

दरबंद—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. दरवाजा । बड़ा दरवाजा । २. परकोटा । चारदीवारी । ३. दो राष्ट्रों के मध्य का अंतर [को०] ।

दरबंदी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. किसी चीज की दर या भाव निश्चित करने की क्रिया । २. लगान आदि की निश्चित की हुई दर । ३. अलग अलग दर या विभाग आदि निश्चित करने की क्रिया ।

दरब—संज्ञा पुं० [सं० द्रव्य] १. धन । दौलत । २. धातु । ३. मोटी किनारदार चादर ।

दरबदर—क्रि० वि० [फ़ा०] द्वार द्वार । दर दर । उ०—उनकी असल जानै नहीं । दिल दर बदर ढूँढै कुफर ।—तुरसी० श०, पृ० २७ ।

दरबर¹—वि० [सं० दरण] १. दरदरा । २. ऐसा रास्ता जिसमें ठीकरे पड़े हों (कहारों की बोली) ।

दरबर²—संज्ञा स्त्री० [देशी दवदव (= शीघ्र)] उतावली । हड़बड़ी । जल्दबाजी । शीघ्रता । उ०—अहो हरि आए महा हरबर में, कहा बनि आवै टहल दरबर में । साधु सिरोमनि घर मैं साधन धोखे धसि परघर में ।—घनानंद, पृ० ४४० ।

दरबराना¹—क्रि० स० [हिं० दरबर] १. दरदरा करना । थोड़ा पीसना । २. किसी को इस प्रकार डरा देना कि वह किसी बात का खंडन न कर सके । घबरा देना । ३. दबाना । दबाव डालना ।

दरबरानाⓅ²—क्रि० अ० [देशी दवदव, हिं० दरबर] १. शीघ्रता करना । हड़बड़ी करना । २. छटपटाना । आकुल होना (लाक्ष०) । उ०—देखन को दृग दरबरात, प्रान मिलन अरबरात सिथिल होति अंगनि गतिमति तिलहीं करति गवन ।—घनानंद, पृ० ४२० ।

दरबहरा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का मद्य जो कुछ वनस्पतियों को सड़ाकर बनाया जाता है ।

दरबाँ—संज्ञा पुं० [फ़ा० दरबान] दे० 'दरबान' ।

दरबा—संज्ञा पुं० [फ़ा० दर] १. कबूतरों, मुरगियों आदि के रखने के लिये काठ का खानेदार संदूक, जिसके एक एक खाने में एक एक पक्षी रखा जाता है । २. दीवार, पेड़ आदि में वह खोंडरा या कोटर जिसमें कोई पक्षी या जीव रहता है ।

दरबान—संज्ञा पुं० [फ़ा०, मि० सं० द्वारवान्] ड्योढ़ीदार । द्वारपाल ।

दरबानी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] दरबान का काम । द्वारपाल का कार्य ।

दरबार—संज्ञा पुं० [फ़ा०] [वि० दरबारी] १. वह स्थान जहाँ राजा या सरदार मुसाहबों के साथ बैठते हैं । २. राजसभा । कचहरी । उ०—करि मज्जन सरयू जल गए भूप दरबार ।—तुलसी (शब्द०) ।

यौ०—दरबारदार (१) दे० 'दरबारी' । (२) खुशामदी । चापलूस । दरबारदारी । दरबार आम । दरबार खास । दरबार वृत्ति ।

मुहा०—दरबार करना = राजसभा में बैठना । दरबार खुला = दरबार में जाने की आज्ञा मिलना । दरबार बंद होना = दरबार में जाने की रोक होना । दरबार बाँधना = घूस बाँधना । रिश्वत मुकर्रर करना । मुँह भरना । दरबार लगना = राजसभा के सभासदों का इकट्ठा होना ।

३. महाराज । राजा (रजवाड़ों में प्रयुक्त) । ४. अमृतसर में सिक्खों का मंदिर जिसमें 'ग्रंथ साहब' रखा हुआ है । ५. दरवाजा । द्वार । उ०—तब बोलि उठ्यो दरबार बिलासी । द्विजद्वार लसै जमुनातटवासी ।—केशव (शब्द०) ।

दरबारदारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. दरबार में हाजरी । राजसभा में उपस्थिति । २. किसी के यहाँ बार बार जाकर बैठने और खुशामद करने का काम ।

क्रि० प्र०—करना ।

दरबारविलासीⓅ—संज्ञा पुं० [फ़ा० दरबार + सं० विलासी] द्वारपाल । दरबान । उ०—तब बोलि उठ्यो दरबारविलासी । द्विजद्वार लसै जमुनातटवासी ।—केशव (शब्द०) ।

दरबारवृत्ति—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० दरबार + सं० वृत्ति] राजा द्वारा प्राप्त होनेवाली वृत्ति । राज्य द्वारा दी हुई जीविका । उ०—नित्य दरबारवृत्ति पानेवाले हिंदी कवियों के अतिरिक्त कुछ अन्य कवि भी अकबरी दरबार द्वारा संमानित तथा पुरस्कृत हुए थे ।—अकबरी०, पृ० ३२ ।

दरबार साहब—संज्ञा पुं० [फ़ा० दरबार + अ० साहब] अमृतसर स्थित सिक्खों का प्रसिद्ध तीर्थस्थल गुरुद्वारा जहाँ उनका धर्मग्रंथ 'गुरुग्रंथ साहब' रखा हुआ है ।

दरबारी¹—संज्ञा पुं० [फ़ा०] राजसभा का सभासद । दरबार में बैठनेवाला आदमी ।

दरबारी²—वि० दरबार का । दरबार के योग्य । दरबार से संबंध रखनेवाला । जैसे, दरबारी पोशाक ।

दरबारी कान्हड़ा—संज्ञा पुं० [फ़ा० दरबारी + हिं० कान्हड़ा] एक

राग जिसमें शुद्ध ऋषभ के अतिरिक्त बाकी सब कोमल स्वर लगते हैं ।

दरबी—संज्ञा स्त्री० [सं० दर्वी] करछी । कलछी । करछुल ।

दरभ[1]—संज्ञा पुं० [सं० दर्भ] दे० 'दर्भ' ।

दरभ[2]—संज्ञा पुं० [?] बंदर । उ०—कपि शाखामृग बलीमुख कीश दरभ लंगूर । बानर मर्कट प्लवँग हरि तिन कहँ मंजु मनकूर ।—नंददास (शब्द०) ।

दरमंद—वि० [फ़ा० दरमांदह] आजिज । दुखी । निःसहाय । बेकस । उ०—खालिक तो दरमंद जगाया बहुत उमेद जवाब न पाया । —रै० बानी, पृ० ५५ ।

दरमन—संज्ञा पुं० [फ़ा०] इलाज । औषध ।

यौ०—दवादरमन = उपचार ।

दरमांदा—वि० [फ़ा० दरमान्दह] लाचार । असहाय । संकटग्रस्त । उ०—दरमांदा ठाढो तुम दरबार । तुम बिन सुरत करे को मेरी दरसन दीजै खोल किवार ।—कबीर श०, भा० २, पृ० ६० ।

दरमा[1]—संज्ञा स्त्री० [देश०] बाँस की वह चटाई जो बंगाल में झोपड़ियों की दीवार बनाने में काम आती है ।

दरमा†[2]—संज्ञा पुं० [सं० दाडिम] अनार ।

दरमाहा—संज्ञा पुं० [फ़ा० दरमाह्] मासिक वेतन ।

दरमियान[1]—संज्ञा पुं० [फ़ा०] मध्य । बीच ।

दरमियान[2]—क्रि० वि० बीच में । मध्य में ।

दरमियानी[1]—वि० [फ़ा०] बीच का । मध्य का ।

दरमियानी[2]—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. मध्यस्थ । बीच में पड़नेवाला व्यक्ति । दो आदमियों के बीच के झगड़े का निबटेरा करनेवाला मनुष्य । २. दलाल ।

दरम्यानⓅ—संज्ञा पुं० [फ़ा० दरमियान] दे० 'दरमियान' । उ०—अव्वल देखो ये कथा, उसे नाम न था, नाम दरम्याने पैदा हुआ चल, चल, चल ।—दक्खिनी०, पृ० ५७ ।

दरया—संज्ञा पुं० [फ़ा० दर्या] दे० 'दरिया' ।

दरयाव—संज्ञा पुं० [फ़ा० दरयाब] दे० 'दरियाव' । उ०—ऐसे सब बलक तें सकल सकिलि रही, राव में सम्म जैसें सलिल दरयाव में ।—मति० ग्रं०, पृ० ३६८ ।

दररना[1]—क्रि० स० [देश०] दे० 'दरना' ।

दररना[2]—क्रि० स० [हिं० दरेर] दे० 'दरेरना' ।

दररानाⓅ[1]—क्रि० स० [अनु०] हड़बड़ी या तेजी से आना ।

दरराना[2]—क्रि० स० [हिं०] दे० 'दरदराना' ।

दरवाजा—संज्ञा पुं० [फ़ा० दरवाज़ह] १. द्वार । मुहाना ।

मुहा०—दरवाजे की मिट्टी खोद डालना या ले डालना = बार बार दरवाजे पर आना । दरवाजे पर इतनी बार आना जाना कि उसकी मिट्टी खुद जाय ।

२. किवाड़ । कपाट ।

क्रि० प्र०—खटखटाना ।—खोलना ।—बंद करना ।—भेड़ना ।

दरवी—संज्ञा स्त्री० [सं० दर्वी] १. साँप का फन ।

यौ०—दरवीकर = साँप । फनवाला साँप ।

२. करछुल । पौना । ३. सँड़सी । दस्तपनाह् । दस्पना ।

दरवेश—संज्ञा पुं० [फ़ा०] [स्त्री० दरवेशी] फकीर । साधु ।

दरवेशी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] फकीरी । साधुता (को०) ।

दरश—संज्ञा पुं० [सं० दर्श] दे० 'दर्श' ।

दरशन—संज्ञा पुं० [सं० दर्शन] दे० 'दर्शन' ।

दरशना—क्रि० अ०, क्रि० स० [सं० दर्शन] दे० 'दरसना' ।

दरशानाⓅ—क्रि० अ०, क्रि० स० [सं० दर्शन] दे० 'दरसाना' ।

दरस—संज्ञा पुं० [सं० दर्श] १. देखादेखी । दर्शन । दीदार । उ०—दरस परस मज्जन अरु पाना ।—तुलसी । (शब्द०) ।

यौ०—दरस परस ।

२. भेंट । मुलाकात । ३. रूप । छवि । सुंदरता ।

दरसन—संज्ञा पुं० [सं० दर्शन] दे० 'दर्शन' ।

दरसनाⓅ[1]—क्रि० अ० [सं० दर्शन] दिखाई पड़ना । देख पड़ना । देखने में आना । दृष्टिगोचर होना । उ०—श्री नारद की दरसै मति सी । लोपै तमता अपकीरति सी ।—केशव (शब्द०) ।

दरसना[2]—क्रि० स० [सं० दर्शन] देखना । लखना । उ०—(क) बन राम शिला दरसी जबहीं ।—केशव । (शब्द०) । (ख) नर अंध भए दरसे तरु मोरे ।—केशव । (शब्द०) ।

दरसनियाⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० दर्शन] विस्फोटक, महामारी आदि बीमारियों की शांति के लिये पूजा आदि करनेवाला । झाड़ फूँक आदि करनेवाला ।

दरसनीⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० दर्शन] दर्पण । शीशा । आईना । उ०—नकुल सुदरसन दरसनी छेमकरी चकचाष । दस दिसि देखत सगुन सुभ पूजहि मन अभिलाष ।—तुलसी (शब्द०) ।

दरसनीयⓅ—वि० [सं० दर्शनीय] दे० 'दर्शनीय' ।

दरसनी हुंडी—संज्ञा स्त्री० [सं० दर्शन] १. वह हुंडी जिसके भुगतान की मिति को दस दिन या उससे कम दिन बाकी हों । (इस प्रकार की हुंडी बाजार में दरसनी हुंडी के नाम से बिकती थी । २. कोई ऐसी वस्तु जिसे दिखाते ही कोई वस्तु प्राप्त हो जाय ।

दरसाना—क्रि० स० [सं० दर्शन] १. दिखलाना । दृष्टिगोचर करना । उ०—चकित जानि जननी जिय रघुपति वपु बिराट दरसायो । —रघुराज (शब्द०) । २. प्रकट करना । स्पष्ट करना । समझाना । उ०—रामायन भागवत सुनाई । दीन्ही भक्ति राह दरसाई ।—रघुराज (शब्द०) ।

दरसाना[2]—क्रि० अ० दिखाई पड़ना । देखने में आना । दृष्टिगोचर होना । उ०—(क) डाढ़ी में अरु बदन में सेत बार दरसाहिं । रघुराज (शब्द०) । (ख) प्रमुदित करहिं परस्पर बाता । सखि तव अधर स्याम दरसाता ।—रघुराज (शब्द०) ।

दरसावना—क्रि० स० [हिं० दरसाना] दे० 'दरसाना' ।

दरहाल—क्रि० वि० [फ़ा० दर + अ० हाल] अभी । इसी समय ।

उ०—दादू कारणि कंत के खरा दुखी बेहाल। मीराँ मेरा मिहार करि, दे दरसन दरहाल।—दादू०, पृ० ६२।

दराँती—संज्ञा स्त्री० [सं० दात्री] १. हँसिया। घास या फसल काटने का औजार।

मुहा०—दराँती पड़ना=कटौनी पड़ना। कटाई प्रारंभ होना।

२. दे० 'दरेंती'।

दरा—संज्ञा पुं० [फ़ा० दरह्; तुल० सं० दरा (= गुफा)] दे० 'दर्रा'। उ०—खैबरा का दरा सों बार औंधी का इरादा।—शिखर०, पृ० ५१।

दराई—संज्ञा स्त्री० [हिं०] १. दलने की मजदूरी। २. दलने का काम।

दराज[1]—वि० [फ़ा० दराज] बड़ा। भारी। लंबा। दीर्घ।

दराज[2]—क्रि० वि० [फ़ा०] बहुत। अधिक।

दराज[3]—संज्ञा स्त्री० [हिं० दरार] दरज। शिगाफ। दरार।

दराज[4]—संज्ञा स्त्री० [अं० ड्रावर] मेज में लगा हुआ संदूकनुमा खाना जिसमें कुछ वस्तु रखकर ताला लगा सकते हैं।

दरार—संज्ञा स्त्री० [सं० दर] वह खाली जगह जो किसी चीज के फटने पर लकीर के रूप में पड़ जाती है। शिगाफ। उ०—(क) अजहुँ अवनि बिहरत दरार मिस को अवसर सुधि कीन्हें।—तुलसी (शब्द०)। (ख) सुमिरि सनेह सुमित्रा सुत को दरकि दरार न आई।—तुलसी (शब्द०)।

दरारना(पु)—क्रि० अ० [हिं० दरार + ना (प्रत्य०)] फटना। विदीर्ण होना। उ०—बाजहिं भेरि नफीर अपारा। सुनि कादर उर जाहिं दरारा।—तुलसी (शब्द०)।

दरारा—संज्ञा पुं० [हिं० दरना] दरेरा। धक्का। रगड़ा। उ०—दल के दरारे हुते कमठ करारे फूटे केरा कैसे पात बिहराने फन सेस के।—भूषण (शब्द०)।

दरिंदा—संज्ञा पुं० [फ़ा० दरिन्दह्] फाड़ खानेवाला जंतु। मांसभक्षक वनजंतु। जैसे, शेर, कुत्ता, आदि।

दरि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'दरी' [को०]।

दरित—वि० [सं०] १. भयालु। डरपोक। भीत। २. विदीर्ण। फटा हुआ [को०]।

दरिद‡—संज्ञा पुं० [सं० दारिद्र] १. कंगाली। निर्धनता। गरीबी। २. कंगाल। निर्धन।

दरिदर‡—वि०, संज्ञा पुं० [सं० दरिद्र] दे० 'दरिद्र'।

दरिद्र[1]—वि० [सं०] [वि० स्त्री० दरिद्रा] जिसके पास निर्वाह के लिये यथेष्ट धन न हो। निर्धन। कंगाल।

यौ०—दरिद्र नारायण = कंगाल। भिक्षुक।

दरिद्र[2]—संज्ञा पुं० १. निर्धन मनुष्य। कंगाल आदमी। †२. दारिद्रय। कंगाली।

दरिद्रता—संज्ञा स्त्री० [सं०] कंगाली। निर्धनता।

दरिद्राण—संज्ञा पुं० [सं०] गरीबी। धनहीनता [को०]।

दरिद्रायक—वि० [सं०] धनहीन। कंगाल [को०]।

दरिद्रित—वि० [सं०] दे० 'दरिद्रायक'।

दरिद्री‡—वि० [सं० दरिद्रित, अथवा सं० दरिद्र + हिं० ई (प्रत्य०)] दे० 'दरिद्र'।

दरिया[1]—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. नदी। २. समुद्र। सिंधु। उ०—उ०—(क) तजि आस भो दास रघुपति को दसरथ्थ के दानि दया दरिया।—तुलसी (शब्द०)। (ख) दरिया दधि किय मथन भोम फट्टिय खह तुट्टिय।—पृ० रा०, १।६१६।

यौ०—दरियादिल = उदार।

दरिया[2]—संज्ञा पुं० [हिं० दरना] दलिया।

दरिया[3]—संज्ञा पुं० [देश०] निर्गुण पंथी एक संत।

यौ०—दरियादासी।

दरियाई[1]—वि० [फ़ा०] १. नदी संबंधी। २ नदी में रहनेवाला। जैसे, दरियाई घोड़ा। ३. नदी के निकट का। ४. समुद्र संबंधी।

दरियाई[2]—संज्ञा स्त्री० पतंग को दूर ले जाकर हवा में छोड़ने की क्रिया। झोली। छुड़ैया।

क्रि० प्र०—देना।

दरियाई[3]—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० दाराई] एक प्रकार की रेशमी पतली साटन। उ०—सच है, और तुम्हारी कविता ऐसी है जैसे सफेद फर्श पर गोबर का चोथ, सोने की सिकड़ी में लोहे की घंटी और दरियाई की अँगिया में मूँज की बखिया।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ३७७।

दरियाई[4]—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० दरिया] एक तरह की तलवार। उ०—दिपती दरियाई दोनो धाई झटनि चलाई अति उमही।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २८।

दरियाई घोड़ा—संज्ञा पुं० [फ़ा० दरियाई + हिं० घोड़ा] गैंडे की तरह का मोटी खाल का एक जानवर जो अफ्रिका में नदियों के किनारे की दलदलों और झाड़ियों में रहता है।

विशेष—इसके पैरों में खुर के आकार की चार चार उँगलियाँ होती हैं। मुँह के भीतर डाढ़ें और कँटीले दाँत होते हैं। शरीर नाटा, मोटा, भारी और बेढंगा होता है। चमड़े पर बाल नहीं होते। नाक फूली और उभरी हुई तथा पूँछ और आँखें छोटी होती हैं। यह जानवर पौधों की जड़ों और कल्लों को खाकर रहता है। दिन भर तो यह झाड़ियों और दलदलों में छिपा रहता है, रात को खाने पीने की खोज में निकलता है और खेती आदि को हानि पहुँचाता है। पर यह नदी से बहुत दूर नहीं जाता और जरा सा खटका या भय होते ही नदी में जाकर गोता मार लेता है। यह देर तक पानी में नहीं रह सकता, साँस लेने के लिये सिर निकालता है और फिर डूबता है। यह निर्जन स्थानों में गोल बाँधकर रहता है।

कभी कभी लोग इसका शिकार गड्ढे खोदकर करते हैं। रात को जब यह जंतु गड्ढों में गिरकर फँस जाता है तब लोग इसे मार डालते हैं। इसके चमड़े से एक प्रकार का लचीला और मजबूत चाबुक बनता है जिसे 'करबस' कहते हैं। मिस्र देश में इस चाबुक का प्रचार है। वहाँ की प्रजा इसकी मार से बहुत डरती है। पहले नील नदी के किनारे दरियाई घोड़े बहुत मिलते थे, पर अब शिकार होने के कारण बहुत कम हो चले हैं।

दरियाई नारियल—संज्ञा पुं॰ [फ़ा॰ दरियाई + हिं॰ नारियल] एक प्रकार का नारियल जो अफ्रीका, अमेरिका आदि में समुद्र के किनारे किनारे होता है।

विशेष—इसकी गिरी और छिलका सूखने पर पत्थर की तरह कड़ा हो जाता है। इसकी गिरी दवा के काम में आती है। खोपड़े का पात्र बनता है जिसे संन्यासी या फकीर अपने पास रखते हैं।

दरियाउⓅ—संज्ञा पुं॰ [फ़ा॰ दरियाब] दे॰ 'दरियाव'।

दरियादासी—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ दरियादास + ई] निर्गुण उपासक साधुओं का एक संप्रदाय जिसे दरिया साहब नामक एक व्यक्ति ने चलाया था। कहते हैं, इस संप्रदाय के लोग आधे हिंदू आधे मुसलमान होते हैं। संत दरिया के संप्रदाय का अनुगामी।

दरियादिल—वि॰ [फ़ा॰] [स्त्री॰ दरियादिली] उदार। दानी। फैयाज।

दरियादिली—संज्ञा स्त्री॰ [फ़ा॰] उदारता।

दरियाफ्त—वि॰ [फ़ा॰ दरियाफ्त] दे॰ 'दरियाफ्त'। उ॰—आपुको खूब दरियाफ कीजै।—पलटू॰, पृ॰ ५९।

• **दरियाफ्त**—वि॰ [फ़ा॰ दरियाफ्त] ज्ञात। मालूम। जिसका पता लगा हो।

क्रि॰ प्र॰—करना।—होना।

दरियायⓅ—संज्ञा पुं॰ [फ़ा॰ दरियाब] दे॰ 'दरियाव'। उ॰—हिंद ते धेदि पठान षग्ग वर दल दलमलि दरियाय बहाऊं।—अकबरी॰, पृ॰ ६७।

दरियाबरामद—संज्ञा पुं॰ [फ़ा॰] दे॰ 'दरियाबरार'।

दरियाबरार—संज्ञा पुं॰ [फ़ा॰] वह भूमि जो किसी नदी की धारा हट जाने से निकल आती है और जिसमें खेती होती है।

दरियाबार—वि॰ [फ़ा॰] अत्यंत बरसनेवाला। उदार। बरसालू [को॰]।

दरियाबुर्द—संज्ञा पुं॰ [फ़ा॰] वह भूमि जिसे कोई नदी काटकर खराब कर दे जिससे वह खेती के योग्य न रहे।

दरियाव—संज्ञा पुं॰ [फ़ा॰ दरियाब] १. दे॰ 'दरिया'। उ॰—तन समुद मन लहर है नैन कहर दरियाव। बेसर भुजा सिकंदरी कहत न आव, न भाव।—(प्रचलित)। २. समुद्र। सिंधु। उ॰—पक्का मतो करिकै मलिच्छ मनसब छोड़ि मक्का ही मिस उतरत दरियाव हैं।—भूषण (शब्द॰)।

दरी[1]—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] १. गुफा। खोह। २. पहाड़ के बीच वह नीचा स्थान जहाँ कोई नदी बहती या गिरती हो।

यौ॰—दरीभृत्। दरीमुख।

दरी[2]—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ स्तर, स्तरी (= फैलाने की वस्तु)] मोटे सूतों का बुना हुआ मोटे दल का बिछौना। शतरंजी।

दरी[3]—वि॰ [सं॰ दरिन्] १. फाड़नेवाला। विदीर्ण करनेवाला। २. डरनेवाला। डरपोक। कादर।

दरी[4]—संज्ञा स्त्री॰ [फ़ा॰] फारसी भाषा की एक शाखा का नाम [को॰]।

दरीखाना—संज्ञा पुं॰ [फ़ा॰ दर + खाना] वह घर जिसमें बहुत से द्वार हों। बारहदरी। उ॰—दर दर देखो दरीखानन में दौरि दौरि दुरि दुरि दामिनी सी दमकि दमकि उठै।—पद्माकर (शब्द॰)।

दरीगृह—संज्ञा पुं॰ [सं॰] दे॰ 'दरी'। उ॰—...ये मंदिर पाषाणखंडों को काट काटकर दरीगृहों के रूप में बने थे।—प्रा॰ भा॰, पृ॰ ५९३।

दरीचा—संज्ञा पुं॰ [फ़ा॰ दरीचह्] [स्त्री॰ दरीची] १. खिड़की। झरोखा। २. छोटा द्वार। चोर दरवाजा। उ॰—दरीचा तूँ इस बाब का मुज को खोल। मिल उस यार सूँ क्यूँ गहूँ मुज कूँ बोल।—दक्खिनी, पृ॰ ८४। ३. खिड़की के पास बैठने की जगह।

दरीची—संज्ञा स्त्री॰ [फ़ा॰ दरीचह्] १. झरोखा। खिड़की। २. खिड़की के पास बैठने की जगह। उ॰—(क) मूँदि दरीचिन दै परदा सिदरीन झरोखन रोंकि छपायो।—गुमान (शब्द॰)। (ख) तैसेई मरीचिका दरीचिन के देखे ही में छपा की छबीली छबि छहरति ततकाल।—द्विजदेव (शब्द॰)।

दरीबा—संज्ञा पुं॰ [?] १. पान दरीबा। पान की सट्टी। वह जगह जहाँ बहुत से तँबोली बेचने के लिये पान लेकर बैठते हैं। २. बाजार। उ॰—आशिक अमली साध सब, अलख दरीबे जाइ। साहेब दर दीदार मैं, सब मिलि बैठे आइ।—दादू॰, पृ॰ १३१।

दरीभृत—संज्ञा पुं॰ [सं॰ दरीभृत्] पर्वत। पहाड़।

दरीमुख—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. गुफा का मुँह। २. राम की सेना का एक बंदर। ३. गुफा के समान मुखवाला (को॰)।

दरूदा—संज्ञा स्त्री॰ [फ़ा॰ दरूद] दुआ। शुभकामना। कृपा। उ॰—बे बंदे को पैदा किया दम का दिया दरूदा।—कबीर सा॰, पृ॰ ८८७।

दरून—संज्ञा पुं॰ [फ़ा॰] आत्मा। हृदय। चित्त। कल्ब [को॰]।

दरूना—संज्ञा पुं॰ [फ़ा॰ दरूना] वह फोड़ा या घाव जिसका मुँह भीतर हो। उ॰—दादू हरदम माँहि दिवान कहूँ दरूने दरद सौं। दरद दरूनैं जाइ, जब देखो दीदार को।—दादू॰, पृ॰ ५९।

दरूनी—वि॰ [फ़ा॰] भीतरी। आंतरिक। उ॰—बेरोनी सब तमाशा यह जो देखो। न जाने यह दरूनी खेल घट का।—कबीर मं॰, पृ॰ ३७६।

दरेंती—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ दर + यन्त्र] अनाज दलने का छोटा यंत्र। चक्की।

दरेंद्र—संज्ञा पुं० [सं० दरेन्द्र] विष्णु का शंख । पांचजन्य [को०] ।

दरेक—संज्ञा पुं० [सं० द्रेक] बकाइन का वृक्ष ।

दरेग—संज्ञा पुं० [अ० दरेग़] कमी । कसर । कोर कसर । जैसे—हाँ मैं इस काम के करने में दरेग न करूँगा ।

दरेर—संज्ञा पुं० [सं० दरण] दे० 'दरेरा' । उ०—दरिया जो कहे दरियाव दरेर में तोरि जंजीर के तानतु है ।—सं० दरिया, पृ० ६५ ।

दरेरना—क्रि० स० [सं० दरण] १. रगड़ना । पीसना । २. रगड़ते हुए धक्का देना ।

दरेरा—संज्ञा पुं० [सं० दरण] १. रगड़ा । धक्का । उ०—तापर सहि न जाय करुणानिधि मन को दुसह दरेरो ।—तुलसी (शब्द०) । २. मेंह का झाला । ३. बहाव का जोर । तोड़ ।

दरेस¹—संज्ञा स्त्री० [अं० ड्रेस] एक प्रकार की छींट । फूलदार छपा हुआ एक महीन कपड़ा ।

दरेस²—वि० [अं० ड्रेस] तैयार । बना बनाया । सजा सजाया ।

दरेस³—संज्ञा, पुं० [सं० दर्शन] दे० 'दरस' । उ०—हंसा देस तहाँ जा पहुँचे देखो पुरुष दरेस ।—कबीर० श०, भा० ३, पृ० ४६ ।

दरेसी—संज्ञा स्त्री० [अं० ड्रेस] दुरुस्ती । तैयारी । मरम्मत ।

दरैया†—संज्ञा पुं० [सं० दरण] १. दलनेवाला । वह जो दले । २. घातक । विनाशक । उ०—दशरथ को नंदन दुःख दरैया ।—(शब्द०) ।

दरोग—संज्ञा पुं० [अ० दरोग़] झूठ । असत्य । गलत । मिथ्या । उ०—(क) हौं दरोग जो कहौं सुर उग्गै पच्छिम दिसि । हौं दरोग जो कहौं ईद उग्गमै कुहू निसि ।—पृ० रा०, ६४ । १३६ । (ख) मेरी बात जो कोई जाने दरोग । कभी फेर उसको न होवे फरोग ।—कबीर मं०, पृ० १३४ ।

यौ०—दरोग हलफी ।

दरोगहलफी—संज्ञा स्त्री० [अ० दरोग़हलफ़ी] १. सच बोलने की कसम खाकर भी झूठ बोलना । २. झूठी गवाही देने का जुर्म ।

दरोगा‡—संज्ञा पुं० [फ़ा० दारोगह्] दे० 'दारोगा' । उ०—सो वा परगने में एक म्लेच्छ दरोगा रहे ।—दो सौ बावन० भा० १, पृ० २४२ ।

दरोदर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दुरोदर' [को०] ।

दर्कार—क्रि० वि० [फ़ा० दरकार] दे० 'दरकार' ।

दर्गाह—संज्ञा पुं० [फ़ा० दरगाह] दे० 'दरगाह' ।

दर्ज¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० दरज; तुल० फ़ा० दर्ज] दे० 'दरज' ।

दर्ज²—वि० [फ़ा०] लिखा हुआ । कागज पर चढ़ा हुआ । अंकित ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

दर्जन—संज्ञा पुं० [अं० डजन] बारह का समूह । इकट्ठी बारह वस्तुएँ ।

दर्जा¹—संज्ञा पुं० [अ० दर्जह्] १. ऊँचाई निचाई के क्रम के विचार से निश्चित स्थान । श्रेणी । कोटि । वर्ग । जैसे,—वह अव्वल दर्जे का पाजी है । २. पढ़ाई के क्रम में ऊँचा नीचा स्थान । जैसे,—तुम किस दर्जे में पढ़ते हो ।

मुहा०—दर्जा उतारना = ऊँचे दर्जे से नीचे दर्जे में कर देना । दर्जा चढ़ना = नीचे दर्जे से ऊँचे दर्जे में जाना । दर्जा चढ़ाना = नीचे दर्जे से ऊँचे दर्जे में करना ।

क्रि० प्र०—घटाना ।—बढ़ाना ।

४. किसी वस्तु का विभाग जो ऊपर नीचे के क्रम से हो । खंड । जैसे, आलमारी के दर्जे । मकान के दर्जे ।

दर्जा²—क्रि० वि० गुणित । गुना । जैसे,—वह चीज उससे हजार दर्जे अच्छी है ।

दर्जिन—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० दर्जी+हिं० इन (प्रत्य०)] १. दर्जी जाति की स्त्री । २. दर्जी की स्त्री । ३. सीने का व्यवसाय करनेवाली स्त्री ।

दर्जी—संज्ञा पुं० [फ़ा० दर्ज़ी] १. कपड़ा सीनेवाला । वह जो कपड़े सीने का व्यवसाय करे । २. कपड़े सीनेवाली जाति का पुरुष ।

मुहा०—दर्जी की सुई = हर काम का आदमी । ऐसा आदमी जो कई प्रकार के काम कर सके, या कई बातों में योग दे सके ।

दर्द—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. पीड़ा । व्यथा ।

क्रि० प्र०—होना ।

मुहा०—दर्द उठना = दर्द उत्पन्न होना । (किसी अंग का) दर्द करना = (किसी अंग का) पीड़ित या व्यथित होना । दर्द खाना = कष्ट सहना । पीड़ा सहना । जैसे,—उसने दर्द खाकर नहीं जना ? दर्द लगना = पीड़ा आरंभ होना ।

२. दुःख । तकलीफ । जैसे, दूसरे का दर्द समझना ।

मुहा०—दर्द आना = तकलीफ मालूम होना । जैसे,—रुपया निकालते दर्द आता है ।

३, सहानुभूति । करुणा । दया । तर्स । रहम ।

क्रि० प्र०—आना ।—लगना ।

मुहा०—दर्द खाना = तरस खाना । दया करना ।

४. हानि का दुःख । खो जाने या हाथ से निकल जाने का कष्ट । जैसे,—उसे पैसे का दर्द नहीं ।

यौ०—दर्दनाक । दर्दमंद । दर्देजिगर = दर्देदिल । दर्देदिल = मनस्ताप । मनोव्यथा । दर्देसर = (१) सिर.पीड़ा । (२) झंझट का काम । दर्दोगम = पीड़ा और दुःख । कष्टसमूह । उ०—मुझको शायर न कहो मीर कि साहब मैंने । दर्दोगम कितने किए जमा तो दीवान किया ।—कविता को०, भा० ४, पृ० १२२ ।

दर्दनाक—वि० [फ़ा०] कष्टजनक । दर्द पैदा करनेवाला [को०] ।

दर्दमंद—वि० [फ़ा०] [संज्ञा दर्दमंदी] १. जिसे दर्द हो । पीड़ित । दुःखी । २. जो दूसरे का दर्द समझे । जिसे सहानुभूति हो । दयावान् ।

दर्दर¹—वि० [सं०] टूटा हुआ । फटा हुआ ।

दर्दर²—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुछ कुछ खंडित कलश । २. एक बाजा । दर्दुर । ३. दर्दुर नामक पर्वत [को०] ।

दर्दराज—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक पेड़ का नाम। २. एक प्रकार का व्यंजन [को०]।

दर्दरीक—संज्ञा पुं० [सं०] १. मेढक। दादुर। २. मेघ। बादल। ३. बाद्य। बाजा। ४. एक प्रकार का विशेष वाद्य। जैसे, बंसी [को०]।

दर्दवंदⓅ—वि० [फ़ा० दर्दमंद] दे० 'दर्दमंद'। उ०—खड़े दर्दवंद दरवेस दरगाह में खेर औ मेहर मौजूद मक्का।—कबीर० रे०, पृ० ४०।

दर्दी—वि० [फ़ा० दर्द + हिं० ई (प्रत्य०)] १. दुःखी। पीड़ित। २. जो दूसरे का दर्द समझे। दयावान्। जैसे, बेदर्दी।

दर्दु—संज्ञा पुं० [सं०] दाद। दद्रु [को०]।

दर्दुर—संज्ञा पुं० [सं०] १. मेढक।

यौ०—दर्दुरोदना = यमुना नदी।

२. बादल। ३. अभ्रक। अबरक। ४. पश्चिमी घाट पर्वत का एक भाग। मलय पर्वत से लगा हुआ एक पर्वत। ५. उक्त पर्वत के निकट का देश। ६ प्राचीन काल का एक बाजा (को०)। ८. एक प्रकार का चावल (को०)। ९. झींगे की ध्वनि। नगाड़े की आवाज (को०)। १०. राक्षस (को०)। ११. ग्राम, जिला या प्रांतसमूह (को०)।

दर्दुरक—संज्ञा पुं० [सं०] १. मेढक। दादुर। २. एक बाद्य। दर्दुर।

दर्दुरच्छदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] ब्राह्मी बूटी।

दर्दुरपुट—संज्ञा पुं० [सं०] वंशी आदि वाद्यों का मुख [को०]।

दर्दुरा, दर्दुरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा का एक नाम [को०]।

दर्द्रु, दद्रु—संज्ञा पुं० [सं०] दाद नामक रोग।

दर्द्रुण, दद्रुण—वि० [सं०] दाद का रोगी। जिसे दद्रु रोग हुआ हो [को०]।

दर्प—संज्ञा पुं० [सं०] १. घमंड। अहंकार। अभिमान। गर्व। ताव। उ०—कंदर्प दुर्गम दर्प दवन उमारवन गुन भवन हर।—तुलसी (शब्द०)। २. मन। अहंकार के लिये किसी के प्रति कोप। ३. उद्दंडता। अक्खड़पन। ४. दबाव। आतंक। रोब। ५. कस्तूरी। ६ ऊष्मा। ताप। गर्मी (को०)। ७. उमंग। उत्साह (को०)।

यौ०—दर्पकल = गर्व के कारण मुखर। गर्वभरी बात कहनेवाला। दर्पच्छिद = गर्व को नष्ट करनेवाला। दर्पद = विष्णु का एक नाम। दर्पहर = दे० 'दर्पच्छिद'। दर्पहा = विष्णु।

दर्पक—संज्ञा पुं० [सं०] १ दर्प करनेवाला व्यक्ति। २. कामदेव। मनोज। ३. दर्प। अहंकार (को०)।

दर्पण—संज्ञा पुं० [सं०] १. आईना। आरसी। मुँह देखने का शीशा। वह काँच जो प्रतिबिंब के द्वारा मुँह देखने के लिये सामने रखा जाता है। २. ताल के साठ मुख्य भेदों में से एक भेद। ३. चक्षु। आँख। ४. संदीपन। उद्दीपन। उभारने का कार्य। उत्तेजना। ५. एक पर्वत का नाम जो कुबेर का निवासस्थान माना जाता है (को०)।

दर्पन—संज्ञा पुं० [सं० दर्पण] दे० 'दर्पण'।

दर्पनाⓅ—क्रि० अ० [सं० दर्पण] ताव में आना। दरपना। गर्वयुक्त होना। उ०—रन मद मत्त निसाचर दर्पा। बिस्व ग्रसिहि जनु एहि बिधि अर्पा।—मानस, ६। ६६।

दर्पमय क्रीड़ा—संज्ञा स्त्री० [सं०] रसिकता या रँगीलेपन के खेल। नाच रंग आदि।

दर्पहा—संज्ञा पुं० [सं० दर्पहन्] विष्णु का एक नाम [को०]।

दर्पित—वि० [सं०] गर्वित। अहंकार से भरा हुआ। उ०—रघुबीर बल दर्पित बिभीषनु घालि नहिं ताकहु गने।—मानस, ६।९३।

दर्पी—वि० [सं० दर्पिन्] [वि० स्त्री० दर्पिणी] घमंडी। अहंकारी।

दर्बⓅ[1]—संज्ञा पुं० [सं० द्रव्य] १. द्रव्य। धन। उ०—कछुक दर्ब दै संधि कै, फेरि देहु हिंदुवान।—प० रासो, पृ० १०५। २. धातु (सोना, चाँदी इत्यादि)।

दर्बा†—संज्ञा पुं० [सं० द्रव्य] द्रव्य। धन। उ०—आसा बासा मनसा खाय। पर दर्बा न हुरै न पर घरि जाय।—प्राण०, पृ० १०१।

दर्बान—संज्ञा पुं० [फ़ा० दरबान] दे० 'दरबान'।

दर्बार—संज्ञा पुं० [फ़ा० दरबार] दे० 'दरबार'।

दर्बारी—संज्ञा पुं० [फ़ा० दरबारी] दे० 'दरबारी'।

दर्बिⓅ†—संज्ञा स्त्री० [सं० द्रव्य] दे० 'द्रव्य'। उ०—हय गय मानिन दर्बि दिय, आदर बहु नृप किन्न।—प० रासो, पृ० १३१।

दर्भ—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का कुश। डाभ। डाभुस। २. कुश। ३. कुश निर्मित आसन। कुशासन। उ०—अस कहि लवणसिंधु तट जाई। बैठे कपि सब दर्भ डसाई।—तुलसी (शब्द०)।

यौ०—दर्भकुसुम = दर्भपुष्प। एक कीट। दर्भचीर = कुश का परिधान। दर्भपत्र। दर्भपुष्प। दर्भलवण। दर्भसंस्तर। दर्भसूची = दर्भांकुर।

दर्भकेतु—संज्ञा पुं० [सं०] कुशध्वज। राजा जनक के भाई का नाम।

दर्भट—संज्ञा [सं०] गुप्त गृह। भीतरी कोठरी।

दर्भपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] काँस।

दर्भपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साँप।

दर्भलवण—संज्ञा पुं०[सं०]कुश या घास काटने का एक औजार [को०]।

दर्भसंस्तर—संज्ञा पुं०[सं०]कुश का आसन या कुश का बिछौना [को०]।

दर्भांकुर—संज्ञा पुं० [सं० दर्भाङ्कुर] डाभ का गोफा जो सुई की तरह नुकीला होता है [को०]।

दर्भासन—संज्ञा पुं० [सं०] कुशासन। कुश का बना हुआ बिछावन।

दर्भाह्वय—संज्ञा पुं० [सं०] मूँज।

दर्भि—संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम।

विशेष—महाभारत के अनुसार इन्होंने ऋषि ब्राह्मणों के उपहार के लिये अर्धकील नामक एक तीर्थ स्थापित किया था। इनका एक नाम दर्भी भी है।

दर्भी—संज्ञा पुं० [सं० दर्भिन्] दे० 'दर्भि'।

दर्भेषिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुश का निचला भाग या डंठल [को०]।

मियाँ—क्रि० वि० [फ़ा० दरमियान] दे० 'दरमियान'। उ०—बहुत पर हैं उनके गुर्गे कैसे कैसे। कलाम आते हैं दर्मियाँ कैसे कैसे।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ४०७।

मियान—संज्ञा पुं० [फ़ा० दरमियान] दे० 'दरमियान'।

मियानी—वि०, संज्ञा पुं० [फ़ा० दरयामिनी] दे० 'दरमियानी'।

या—संज्ञा पुं० [फ़ा० दरिया] दे० 'दरिया'। उ०—एक मछली सारे दर्या को गंदा कर डालती है।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० ११७।

याउ—संज्ञा पुं० [हिं० दरियाव] दे० 'दरिया'।—कूदहिं जहर कहर दर्याउ में।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १४।

यादिली—संज्ञा स्त्री०[फ़ा० दरियादिली] उदारता। हृदय की विशालता। उ०—और दर्यादिली खुदा के घर से इसी को मिली है।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ८६।

याफ्त—वि० [फ़ा० दरियाफ्त] ज्ञात। मालूम। दरियाफ्त। उ०—इस वक्त मुझसे यहाँ आने का सबब दर्याफ्त करेगा तो मैं इससे क्या जवाब दूँगा।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० ३२।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

याव—संज्ञा पुं० [फ़ा० दरिया] दे० 'दरिया'।

र[1]—संज्ञा पुं०[फा०] १. पहाड़ी रास्ता। वह सँकरा मार्ग जो पहाड़ों के बीच से होकर जाता हो। घाटी। २. दरार। दरज।

र[2]—संज्ञा पुं० [सं० दरना] १. मोटा आटा। २. कँकरीली मिट्टी जो सड़कों या बगीचों की रविशों पर डाली जाती है। ३. दरार। शिगाफ। दरज।

राज—संज्ञा स्त्री० [फा० दराज (=लंबा)] लकड़ी का एक औजार जिससे लकड़ी सीधी की जाती है।

राना—क्रि० अ० [अनु० दड़ दड़, धड़ धड़] धड़धड़ाना। बेधड़क चला जाना। बिना रुकावट या डर के चला जाना।

विशेष—इस क्रिया के उन्हीं रूपों का प्रयोग होता है जिनसे क्रि० वि० का भाव प्रकट होता है, जैसे, दर्राकर=धड़धड़ाकर। बेधड़क। दर्राता हुआ=धड़धड़ाता हुआ। बेधड़क। उ०—वह दर्राता हुआ दरबार में जा पहुँचा। †दर्राना=धड़धड़ाता हुआ। बेधड़क। उ०—द्वारपालों की बात सुनी अनसुनी कर हरि सब समेत दर्राने वहाँ चले गए, जहाँ तीन ताड़ लंबा अति मोटा महादेव का धनुष धरा था।—लल्लू (शब्द०)।

र्व[1]—संज्ञा पुं० [सं० द्रव्य] द्रव्य। धन। संपत्ति। उ०—सहस धेनु कंचन बहु हीरा। अगनित दर्व दियो नृप बीरा।—रसरतन, पृ० १६।

र्व—संज्ञा पुं० [सं०] १. हिंसा करनेवाला मनुष्य। २. राक्षस। ३. एक जाति जिसका नाम दरद, किरात आदि के साथ महाभारत में आया है। इस जाति का निवासस्थान पंजाब के उत्तर का प्रदेश था। ४. वह देश जहाँ उक्त जाति बसती थी। ५. सर्प का फण (को०)। ६. आघात। चोट। क्षति (को०)। ७. करछुल। दर्वी (को०)।

दर्वट—संज्ञा पुं० [सं०] १. गाँव का चौकीदार। गोड़इत। २. द्वाररक्षक। द्वारपाल (को०)।

दर्वरीक—संज्ञा पुं० [सं०] १. इंद्र। २. वायु। ३. एक प्रकार का बाजा।

दर्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] उशीनर की पत्नी का नाम।

दर्वि[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'दर्वी' (को०)।

दर्वि(पु)[2]—वि० [सं० दर्प] दर्पयुक्त। गरबीला। गर्वयुक्त। उ०—बहु दर्वि लरिव गुमान। सावंत लखि परिवान।—प० रासो, पृ० ५२।

दर्विक—संज्ञा पुं० [सं०] डोया। चमचा। कलछुल। दर्वी (को०)।

दर्विका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. आँख में लगाने का वह काजल जो घी से भरे दीये में बत्ती जलाकर जमाया या पारा जाता है। २. बनगोभी। गोजिया। ३. चमचा। डोया (को०)।

दर्वी—संज्ञा स्त्री० [सं०] करछी। चमचा। डोया। २. साँप का फन।

यौ०—दर्वीकर।

दर्वीकर—संज्ञा पुं० [सं०] फनवाला साँप।

दर्वेस†—संज्ञा पुं०[फ़ा० दरवेश] दे० 'दरवेश'। उ०—जोगी जंगम और संन्यासी, डीगंबर दर्वेस।—कबीर० श०, भा० १, पृ० ६।

दर्श—संज्ञा पुं० [सं०] १. दर्शन। अवलोकन। २. सूर्य और चंद्रमा का संगम काल। अमावस्या तिथि। ३. द्वितीया तिथि।

यौ०—दर्शपति।

३. वह यज्ञ या कृत्य जो अमावस्या के दिन किया जाय।

यौ०—दर्शपौर्णमास।

४. प्रत्यक्ष प्रमाण। चाक्षुष प्रमाण (को०)। ५. दृश्य (को०)।

दर्शक—वि०, संज्ञा पुं० [सं०] १. जो देखे। दर्शन करनेवाला। देखनेवाला। २. दिखानेवाला। लखानेवाला। बतानेवाला। जैसे, मार्गदर्शक। ३. द्वाररक्षक। द्वारपाल (जो लोगों को राजा के पास ले जाकर उसके दर्शन कराता है)। ४. निरीक्षक। निगरानी रखनेवाला। प्रधान।

दर्शन—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह बोध जो दृष्टि के द्वारा हो। चाक्षुष ज्ञान। देखादेखी। साक्षात्कार। अवलोकन।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—दर्शन देना=देखने में आना। अपने को दिखाना। प्रत्यक्ष होना। दर्शन पाना=(किसी का) साक्षात्कार होना।

विशेष—हिंदी काव्य में नायक नायिका का परस्पर दर्शन चार प्रकार का माना गया है—प्रत्यक्ष, चित्र, स्वप्न और श्रवण।

२. भेंट। मुलाकात। जैसे,—चार महीने पीछे फिर आपके दर्शन करूँगा।

विशेष—प्रायः बड़ों के ही प्रति इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग होता है।

३. वह शास्त्र जिससे तत्वज्ञान हो। वह विद्या जिससे तत्वज्ञान हो। वह विद्या जिससे पदार्थों के धर्म, कार्य-कारण-संबंध आदि का बोध हो।

विशेष—प्रकृति, आत्मा, परमात्मा, जगत् के नियामक धर्म, जीवन के अंतिम लक्ष्य इत्यादि का जिस शास्त्र में निरूपण हो उसे दर्शन कहते हैं। विशेष से सामान्य की ओर आंतरिक दृष्टि को बराबर बढ़ाते हुए सृष्टि के अनेकानेक व्यापारों का कुछ तत्वों या नियमों में अंतर्भाव करना ही दर्शन है। आरंभ में अनेक प्रकार के देवताओं आदि को सृष्टि के विविध व्यापारों का कारण मानकर मनुष्य जाति बहुत काल तक संतुष्ट रही। पीछे अधिक व्यापक दृष्टि प्राप्त हो जाने पर युक्ति और तर्क की सहायता से जब लोग संसार की उत्पत्ति, स्थिति आदि का विचार करने लगे तब दर्शन शास्त्र की उत्पत्ति हुई। संसार की प्रत्येक सभ्य जाति के बीच इसी क्रम से इस शास्त्र का प्रादुर्भाव हुआ। पहले प्राचीन आर्य अनेक प्रकार के यज्ञ और कर्मकांड द्वारा इंद्र, वरुण, सविता इत्यादि देवताओं को प्रसन्न करके स्वर्गप्राप्ति आदि के प्रयत्न में लगे रहे, फिर सृष्टि की उत्पत्ति आदि के संबंध में उनके मन में प्रश्न उठने लगे। इस प्रकार के संशयपूर्ण प्रश्न कई वेदमंत्रों में पाए जाते हैं। उपनिषदों के समय में ब्रह्म, सृष्टि, मोक्ष, आत्मा, इंद्रिय, आदि विषयों की चर्चा बहुत बढ़ी। गाथा और प्रश्नोत्तर के रूप में इन विषयों का प्रतिपादन विस्तार से हुआ। बड़े बड़े गूढ़ दार्शनिक सिद्धांतों का आभास उपनिषदों मे पाया जाता है। 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म', 'तत्वमसि' आदि वेदांत के महावाक्य उपनिषदों के ही हैं। छांदोग्योपनिषद् के छठे प्रपाठक मे उद्दालक ने अपने पुत्र श्वेतकेतु को सृष्टि की उत्पत्ति समझाकर कहा है कि 'हे श्वेतकेतो ! तू ही ब्रह्म है'। बृहदारण्यकोपनिषद् में मूर्त और अमूर्त, मर्त्य और अमृत ब्रह्म के दोहरे रूप बतलाए गए हैं। उपनिषदों के पीछे सूत्र रूप मे इन तत्वों का ऋषियों ने स्वतंत्रतापूर्वक निरूपण किया और छह दर्शनों का प्रादुर्भाव हुआ जिनके नाम ये है—सांख्य, योग, वैशेषिक, न्याय, मीमांसा (पूर्वमीमांसा), और वेदांत (उत्तरमीमांसा)। इनमें से सांख्य में सृष्टि की उत्पत्ति के क्रम का विस्तार के साथ जितना विवेचन है उतना और किसी में नहीं है। सांख्य आत्मा को पुरुष कहता है और उसे अकर्ता, साक्षी और प्रकृति से भिन्न मानता है, पर आत्मा एक नहीं अनेक हैं, अतः सांख्य में किसी विशेष आत्मा अर्थात् परमात्मा या ईश्वर का प्रतिपादन नहीं है। जगत् के मूल में प्रकृति को मानकर उसके सत्व, रज और तम इन तीन गुणों के अनुसार ही संसार के सब व्यापार माने गए हैं। सृष्टि को प्रकृति की परिणामपरंपरा मानने के कारण यह मत परिणामवाद कहलाता है। सृष्टि संबंधी सांख्य का यह मत इतिहास, पुराण आदि में सर्वत्र गृहीत हुआ है। योग में क्लेश, कर्मविपाक और आशय से रहित एक पुरुषविशेष या ईश्वर माना गया है। सर्वसाधारण के बीच जिस प्रकार के ईश्वर की भावना है वह यही योग का ईश्वर है। योग मे किसी मत पर विशेष तर्क वितर्क या आग्रह नहीं है; मोक्षप्राप्ति के निमित्त यम, नियम, प्राणायाम, समाधि इत्यादि के अभ्यास द्वारा ध्यान की परमावस्था की प्राप्ति के साधनों का ही विस्तार के साथ वर्णन है। न्याय में युक्ति या तर्क करने की प्रणाली बड़े विस्तार के साथ स्थिर की गई है, जिसका उपयोग पंडित लोग शास्त्रार्थ में बराबर करते हैं। खंडन मंडन के नियम इसी शास्त्र में मिलते हैं, जिनका मुख्य विषय प्रमाण और प्रमेय ही है। न्याय में ईश्वर नित्य, इच्छाज्ञानादि गुणयुक्त और कर्ता माना गया है। जीव कर्ता और भोक्ता दोनों माना गया है। वैशेषिक में द्रव्यों और उनके गुणों का विशेष रूप से निरूपण है। पृथ्वी, जल आदि के अतिरिक्त दिक्, काल, आत्मा और मन भी द्रव्य माने गए हैं। न्याय के समान वैशेषिक ने भी जगत् की उत्पत्ति परमाणुओं से बतलाई है। न्याय से इसमें बहुत कम भेद है। इसी से इसका मत भी न्याय का मत कहलाता है। ये दोनों सृष्टि का कर्ता मानते हैं इसी से इनका मत आरंभवाद कहलाता है। पूर्वमीमांसा में वैदिक कर्मसंबंधी वाक्यों के अर्थ निश्चित करने तथा विरोधों का समाधान करने के नियम निरूपित हुए हैं। इसका मुख्य विषय वैदिक कर्मकांड की व्याख्या है। उत्तरमीमांसा या वेदांत अत्यंत उच्च कोटि की विचार-पद्धति द्वारा एकमात्र ब्रह्म को जगत् का अभिन्न निमित्तोपादानकारण बतलाता है अर्थात् जगत् और ब्रह्म की एकता प्रतिपादित करता है। इसी से इसका मत विवर्तवाद और अद्वैतवाद कहलाता है। भाष्यकारों ने इसी सिद्धांत को लेकर आत्मा और परमात्मा की एकता सिद्ध की है। जितना यह मत विद्वानों को ग्राह्य हुआ, जितनी इसकी चर्चा संसार में हुई, जितने अनुयायी संप्रदाय इसके खड़े हुए उतने और किसी दार्शनिक मत के नहीं हुए। अरब, फारस आदि देशों में यह सूफी मत के नाम से प्रकट हुआ। आजकल योरप और अमेरिका आदि में भी इसकी ओर विशेष प्रवृत्ति है। भारतवर्ष के इन छह प्रधान दर्शनों के अतिरिक्त 'सर्वदर्शनसंग्रह' मे चार्वाक, बौद्ध, आर्हत, नकुलीश, पाशुपत, शैव, पूर्णप्रज्ञ, रामानुज, पाणिनि और प्रत्यभिज्ञा दर्शन का भी उल्लेख है।

योरप मे यूनान या यवन देश ही इस शास्त्र के विवेचन मे सबसे पहले अग्रसर हुआ। ईसा से पाँच छह सौ वर्ष पहले से वहाँ दर्शन का पता लगता है। सुकरात, प्लेटो, अरस्तू इत्यादि बड़े बड़े दार्शनिक वहाँ हो गए हैं। आधुनिक काल मे दर्शन की योरप में बड़ी उन्नति हुई है। प्रत्यक्ष ज्ञान का विशेष आश्रय लेकर दार्शनिक विचार की अत्यंत विशद प्रणाली वहाँ निकली है।

४. नेत्र। आँख। ५. स्वप्न। ६. बुद्धि। ७ धर्म। ८. दर्पण। ९. वर्ण। रग। १०. यज्ञ। इज्या (को०)। ११. उपलब्धि (को०)। १२. शास्त्र (को०)। १३. परीक्षण। निरीक्षण (को०)। १४ प्रदर्शन। दिखावा (को०)। १५. उपस्थिति या विद्यमानता (न्यायालय मे) (को०)। १६. राय। सलाह। विचार (को०)। १७. नीयत (को०)।

दर्शनगृह—संज्ञा पुं० [सं०] १. सभाभवन। २. वह स्थान जहाँ लोग कुछ देखने या सुनने के लिये बैठें (को०)।

दर्शनपथ—संज्ञा पुं० [सं०] दृष्टि का पथ। जहाँ तक दृष्टि जाय। क्षितिज (को०)।

दर्शनप्रतिभू—संज्ञा पुं० [सं०] वह प्रतिभू या जामिन जो किसी को समय पर उपस्थित कर देने का भार अपने ऊपर ले। वह आदमी जो किसी को हाजिर कर देने का जिम्मा ले।

दर्शनप्रतिभाव्य ऋण—संज्ञा पुं० [सं०] वह ऋण जो दर्शन प्रतिभू की साख पर लिया गया हो।

दर्शनीय—वि० [सं०] १. देखने योग्य। देखने लायक। २. सुंदर। मनोहर। ३. न्यायालय में न्यायाधीश के समक्ष उपस्थिति योग्य (को०)।

दर्शनी हुंडी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'दरसनी हुंडी'।

दर्शयिता[1]—वि० [सं० दर्शयितृ] १. दिखानेवाला। प्रदर्शक। २. निर्देश करनेवाला। बतानेवाला। जैसे, पथदर्शयिता।

दर्शयिता[2]—संज्ञा पुं० १. द्वाररक्षक। द्वारपाल। २. निर्देशक [को०]।

दर्शाना—क्रि० स० [हिं०] दे० 'दरसाना'।

दर्शित—वि० [सं०] १. दिखलाया हुआ। २. प्रकाशित। प्रकटित। ३. प्रमाणित।

दर्शी—वि० [सं० दर्शिन्] १. देखनेवाला। २. विचार करनेवाला। ३. अनुभुत करनेवाला।

दर्स—संज्ञा पुं० [अ०] शिक्षा। नसीहत। उपदेश। उ०—जो पढ़ते दर्स जब वे खुर्द साल, मस्जिद के दरमियान तख्ती कर्ते ले।—दक्खिनी०, पृ०, ११५।

दर्सनीय(पु)—वि० [सं० दर्शनीय] देखने योग्य। दर्शनीय। उ०—रम्य सुपेसल भव्य पुनि दर्सनीय रमनीय।—अनेकार्थ०, पृ० ६६।

दल—संज्ञा पुं० [सं०] १ किसी वस्तु के उन दो सम खंडों में से एक, जो एक दूसरे से स्वभावतः जुड़े हुए हों पर जरा सा दबाव पड़ने से अलग हो जायँ। जैसे चने, अरहर, मूँग, उरद, मसूर, चिएँ इत्यादि के दो दल जो चक्की में दलने से अलग हो जाते हैं। २. पौधों का पत्ता। पत्र। जैसे, तुलसीदल। ३. तमालपत्र। ४. फूल की पंखड़ी। उ०—जय जय अमल कमलदल लोचन।—हरिश्चंद्र(शब्द०)। ५. समूह। झुंड। गरोह। ६. गुट। चक्र। जैसे,—वह दूसरे के दल में है। ७. सेना। फौज। जैसे, शत्रुदल। ८. मयूरपुच्छ। उ०—दल कहिए नृप को कटक, दल पत्रन को नाम, दल बरही के चंद सिर धरे स्याम अभिराम।—अनेकार्थ०, पृ० १३५। ९. पटरी के आकार की किसी वस्तु की मोटाई। परत की तरह फैली हुई किसी चीज की मोटाई। ६. अस्त्र के ऊपर का आच्छादन। कोष। म्यान। १०. धन। ११. जल में होनेवाला एक तृण। ११. अंश। टुकड़ा। खंड (को०)। १२. किसी का आधा अंश। अर्धांश (को०)। १३. वृक्षविशेष (को०)। १४. इक्ष्वाकुवंशी परीक्षित राजा के एक पुत्र जिनकी माता मंडूकराज की कन्या थी (को०)।

दलक[1]—संज्ञा स्त्री० [अ० दलक] गुदड़ी। उ०—बैठा है इस दलक बिच आपै आप छिपाय। साहब जा तन लख परे प्रगट सिफात दिखाय।—रसनिधि (शब्द०)।

दलक[2]—संज्ञा पुं० [हिं० दलकना] राजगीरों का एक औजार जिससे नक्काशी साफ की जाती है। यह छुरी के आकार का होता है परंतु सिरे पर चिपटा होता है।

दलक[3]—संज्ञा [हिं० दलकना] १. वह कंप जो किसी प्रकार के आघात से उत्पन्न हो और कुछ देर तक बना रहे। थरथराहट। धमका। जैसे, ढोलक की दलक। २. रह रहकर उठनेवाला दर्द। टीस। चमक।

दलकन—संज्ञा स्त्री० [हिं० दलकना] १. दलकने की क्रिया या भाव। दलक। २. झटका। आघात। उ०—मंद बिलंद अभेरा दलकन पाइय दुख झकझोरा रे।—तुलसी (शब्द०)।

दलकना[1]—क्रि० अ० [सं० दलन] १. फट जाना। दरार खाना। चिर जाना। उ०—तुलसी कुलिस की कठोरता तेहि दिन दलकि दली।—तुलसी (शब्द०)। २. थर्राना। काँपना। उ०—महाबली बलि को दबतु दलकत भूमि तुलसी उछरि सिंधु मेरु मसकत है। —तुलसी (शब्द०)। ३. चौंकना। उद्विग्न हो उठना। उ०—(क) दलकि उठेउ सुनि बचन कठोरू। जनु छुइ गयो पाक बरतोरू।—तुलसी (शब्द०)। (ख) कैकेई अपने करमन को सुमिरत हिय में दलकि उठी। —देवस्वामी (शब्द०)।

दलकना(पु)[2]—क्रि० स० [सं० दलन] डराना। भीत कर देना। भय से कँपा देना। उ०—सूरजदास सिंह बलि अपनी लीन्हीं दलकि शृगालहि।—सूर (शब्द०)।

दलकपाट—संज्ञा पुं० [सं०] हरी पंखड़ियों का वह कोश जिसके भीतर कली रहती है।

दलकोमल—संज्ञा पुं० [सं०] कमल। पंकज [को०]।

दलकोश—संज्ञा पुं० [सं०] कुंद का पौधा।

दलगंजन[1]—वि०[सं० दलगञ्जन] श्रेष्ठ वीर। सेना को मारनेवाला। भारी वीर।

दलगंजन[2]—संज्ञा पुं० एक प्रकार का धान।

दलगंध—संज्ञा पुं० [सं० दलगन्ध] सप्तपर्ण वृक्ष। छितवन। सतिवन।

दलगर्जन(पु)—वि० [सं० दलगञ्जन] दे० 'दलगंजन'। उ०—अंग अंग लच्छन बसहिं जे बरनो बत्तीस। दलगर्जन दुर्जन दलन दलपति पति दिल्लीस।—रसरतन, पृ० ८।

दलघुसरा†—संज्ञा पुं० [हिं० दाल+घुसड़ना] एक प्रकार की रोटी, जिसमें पिसी हुई दाल नमक मसाले के साथ भरी रहती है।

दलथंभण—वि० [सं० दल+स्तम्भन] सेना को रोकनेवाला। बढ़ती हुई सेना को रोक देनेवाला। दल का स्तंभन करनेवाला। उ०—दादू सूर सुभट दलथंभण रोपि रह्यो रन माहीं रे। जाकी साखि सकल जग बोलै टेक टली कहु नाहीं रे।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ८७९।

दलथंभन—संज्ञा पुं० [हिं० दल+थामना] कमखाब बुननेवालों का औजार जो बाँस का होता है और जिसमें अँकुड़ा और नक्शा बँधा रहता है।

दलद(पु)†—संज्ञा पुं० दे० [सं० दारिद्रय] 'दारिद्रय'। उ०—दीधो धन

कीजो दलद, कीधो गात कुढंग। गनका सूं राखे गुसट रसिया तोदूं रंग। —बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० १२।

दलदल—संज्ञा स्त्री० [सं० दलाढ्य (= नदीतट का कीचड़)] १. कीचड़। पाँक। चहला। २. वह जमीन जो गहराई तक गीली हो और जिसमें पैर नीचे को धँसता हो।

विशेष—कहीं कहीं पूरब में यह शब्द पुं० भी बोला जाता है।

मुहा०—दलदल में फँसना = (१) कीचड़ में फँसना। (२) ऐसी कठिनाई में फँस जाना जिससे निकलना दुस्तर हो। मुश्किल या दिक्कत में पड़ना। (३) जल्दी खतम या तै न होना। अनिर्णीत रहना। खटाई में पड़ना। उ०—दोनों दलों की दलादली में दलपति का चुनाव भी दलदल में फँसा रहा।—बदरीनारायण चौधरी (शब्द०)। ४. बुड्ढी स्त्री (पालकी के कहार)।

दलदला—वि० [हिं० दलदल] [वि० स्त्री० दलदली] जिसमें दलदल हो। दलदलवाला। जैसे, दलदला मैदान, दलदली धरती।

दलदार—वि० [हिं० दल + फा० दार] जिसका दल मोटा हो। जिसकी तह या परत मोटी हो। जैसे, दलदार गूदा। दलदार आम।

दलन[1]—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० दलित] १ पीसकर टुकड़े टुकड़े करने की क्रिया। चूर चूर करने का काम। २. विनाश। संहार। ३. विदारण। उ०—या विधि वियोग ब्रज बावरो भयो है सब, बाढत उदेग महा अंतर दलन को।—घनानंद०, पृ० ५०३।

दलन[2]—वि० दलनेवाला। नष्ट करनेवाला। विनाशकारी। नाशक। उ०—साहि का सलन दिली दल का दलन अफजल का मलन शिवराज आया सरजा।—भूषण ग्रं०, पृ० ११६।

दलना—क्रि० स० [सं० दलन] १. रगड़ या पीसकर टुकड़े टुकड़े करना। मलकर चूर चूर करना। चूर्ण करना। खंड खंड करना। २. रौंदना। कुचलना। मलना। खूब दबाना। मसलना। मीड़ना। उ०—पर अकाज लगि तनु परिहरहीं। जिमि हिम उपल कृषि दलि गरही।—मानस, १। ४।

संयो० क्रि०—डालना।—मारना।

३. चक्की में डालकर अनाज आदि के दानों को दलों या कई टुकड़ों में करना। जैसे, दाल दलना। ४. नष्ट करना। ध्वस्त करना। जीतना। उ०—केतिक देश दल्यो भुज के बल।—भूषण (शब्द०)।

यौ०—दलना मलना। उ०—भुजबल रिपुदल दलि मलि देखि दिवस कर अंत।—तुलसी (शब्द०)। —मलना दलना।

५. तोड़ना। झटके से खंडित करना। उ०—(क) दलि तृण प्राण निछावरि करि करि लैहैं मातु बलैया।—तुलसी (शब्द०)। (ख) सोई हौं बूझत राजसभा धनुकै दल्यो हौं दलिहौं बल ताको।—तुलसी (शब्द०)।

दलनि—संज्ञा स्त्री० [हिं० दलना] दलने की क्रिया या ढंग।

दलनिर्मोक—संज्ञा पुं० [सं०] भोजपत्र का पेड़।

दलनिहार(५)—वि० [सं० दलनि + हिं० हारा (प्रत्य०)] विध्वंस करनेवाला। नष्ट करनेवाला। मर्दित करनेवाला। उ०—कलि नाम कामतरु राम को। दलनिहार दारिद दुकाल दुख दोष घोर घन घाम को।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५३७।

दलनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कंकड़। मिट्टी का टुकड़ा। ढेला [को०]।

दलप—संज्ञा पुं० [सं०] १. दलपति। मंडली या सेना का नायक। २. सोना। स्वर्ण। ३. शस्त्र। आयुध (को०)। ४. शास्त्र (को०)।

दलपति—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी मंडली या समुदाय का प्रधान। मंडली का मुखिया। अगुवा। सरदार। २. सेनापति। उ०—दलगजंन दुर्जनदलन दलपतिपति दिल्लीस।—रसरतन, पृ० ८।

यौ०—दलपतिपति = सेनापतियों का अधीश्वर।

दलपुष्पा—संज्ञा स्त्री० [सं०] केतकी जिसके फूल पत्ते के आकार के होते हैं।

विशेष—केतकी या केवड़े की मंजरी बहुत कोमल पत्तों के कोश के भीतर रहती है। सुगंध के लिये इन्हीं पत्तों का व्यवहार होता है।

दलबंदी—संज्ञा स्त्री० [सं० दल + हिं० बाँधना] गुटबाजी। दल या गुट बनाने का काम।

दलबल—संज्ञा पुं० [सं०] लाव लश्कर। फौज। उ०—कछु मारे कछु घायल कछु गढ़ चले पराइ। गर्जहिं भालु बलीमुख रिपु दलबल बिचलाइ।—मानस, ६। ४६।

दलबा—संज्ञा पुं० [हिं० दलना] तीतरबाजों, बटेरबाजों आदि का वह निर्बल पक्षी जिसे वे दूसरे पक्षियों से लड़ाकर और मार खिलाकर उन पक्षियों का साहस बढ़ाते हैं।

दलबादल—संज्ञा पुं० [हिं० दल + बादल] १. बादलों का समूह। बादलों का झुंड। २. भारी सेना। ३. बहुत बड़ा शामियाना। बड़ा भारी खेमा।

मुहा०—दलबादल खड़ा होना = बड़ा भारी शामियाना या खेमा गड़ना।

दलमलना—क्रि० स० [हिं० दलना + मलना] १. मसल डालना। मीड़ डालना। उ०—यों दलमलियत निरदई दई कुसुम से गात। कर धर देखो धरधरा अजौं न उर ते जात।—बिहारी (शब्द०)। २. रौंदना। कुचलना। उ०—रनमत्त रावन सकल सुभट प्रचंड भुजबल दलमले।—मानस, ६। ६४। ३. विनष्ट कर देना। मार डालना।

दलमलित—वि० [हिं० दलना + मलना] सताई हुई। कुचली हुई। पीड़ित। उ०—प्रजा दुखित दलमलित गएउ फटि फुटि पठान दल।—अकबरी०, पृ० ६८।

दलराय(५)—संज्ञा पुं० [सं० दल + राज, प्रा० राय] दे० 'दलपति'। उ०—दावदार निरखि रिसानो दीह दलराय, जैसे गड़दार अड़दार गजराज को।—भूषण ग्रं०, पृ० ६।

दलवाना—क्रि० स० [हिं० दलना का प्रे० रूप] १. दलने का काम करवाना। मोटा मोटा पिसवाना। जैसे, दाल दलवाना। २. रौंदवाना। ३. नष्ट कराना। ध्वस्त करा देना।

दलवाल(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० दलपाल] सेनापति। फौज का सरदार।

दलवीटक—संज्ञा पुं० [सं०] कुट्टनीमतम् में वर्णित कान का एक आभूषण। एक कर्णभूषण [को०]।

दलवैया†—संज्ञा पुं० [हिं० दलना+वैया (प्रत्य०)] १. दलनेवाला। २. दबने मलनेवाला। जीतनेवाला।

दलसायसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] तुलसी। श्वेत तुलसी (को०)।

दलसारिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] केमुआ। केंवा। कच्चू।

दलसूचि—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह पौधा जिसके पत्तों में काँटे हों। जैसे, नागफनी। २. पत्तों का काँटा। ३. काँटा।

दलसूसा†—संज्ञा स्त्री० [सं० दलश्रसा या दलस्नसा] दल की शिरा। पत्तों की नस।

दलहन—संज्ञा पुं० [हिं० दाल+अन्न] वह अन्न जिसकी दाल बनाई जाती है जैसे, चना, अरहर, मूँग, उरद, मसूर इत्यादि।

दलहरा—संज्ञा पुं० [हिं० दाल+हारा (प्रत्य०)] दाल बेचनेवाला। वह जो दाल बेचने का रोजगार करता हो।

दलहा†—संज्ञा पुं० [सं० स्थल, हिं० थाल्हा] थाला। आलवाल।

दलाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० दलना] १. चक्की से दाल आदि दरने का काम। उ०—जब तक आँखें थीं, सिलाई करती रही। अब से आँखें गई दलाई करती हूँ।—काया०, पृ० ५३६। २. दलने की मजदूरी। दराई।

दलाई लामा—संज्ञा पुं० [ति०] तिब्बत के सबसे बड़े लामा या धर्मगुरु जो वहाँ के सर्वप्रभुतासंपन्न शासक भी होते हैं।

दलाढक—संज्ञा पुं० [सं०] १. जंगली तिल। २. गेरू। ३. नागकेसर। ४. सिरिस। ५. कुंद। ६. गजकर्णी। एक प्रकार का पत्ताशाक। ७. गाज। फेन (को०)। ८. खाई। परिखा (को०)। ९. तीव्र वायु। झंझवायु। बौंडर (को०)। १०. ग्राममुख्य। गाँव का प्रधान (को०)।

दलाढय—संज्ञा पुं० [सं०] नदी तट का कीचड़। पंक [को०]।

दलादली—संज्ञा स्त्री० [सं० दलन का द्वित्वप्रयोग (मुष्टामुष्टि की भाँति)] भिड़ंत। संघर्ष। होड़। उ०—उसे इस दोनों वर्गों की दलादली ने दल मलकर समाप्त कर डाला।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३०७।

दलान†—संज्ञा पुं० [हिं० दालान] दे० 'दालान'।

दलाना—क्रि० स० [हिं० दलना] दे० 'दलवाना'।

दलामल—संज्ञा पुं० [सं०] १. दौने का पौधा। २. मरुवे का पौधा। ३. मैनफल का पेड़।

दलाम्ल—संज्ञा पुं० [सं०] लोनिया साग। अमलोनी।

दलारा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का झूलनेवाला बिस्तरा जिसका व्यवहार जहाज पर मल्लाह लोग करते हैं।

दलाल—संज्ञा पुं० [अ०] [संज्ञा दलाली] १. वह व्यक्ति जो सौदा मोल लेने या बेचने में सहायता दे। बिचवई। मध्यस्थ। २. स्त्री पुरुष का अनुचित संयोग करानेवाला। कुटना। ३. आटों की एक जाति।

दलालत—संज्ञा स्त्री० [अ०] चिह्न। पता। लक्षण। उ०—दलालत यो सही कुरान सूँ है। कवी इस्लाम के ईमान सूँ है।—दक्खिनी०, पृ० १९३।

दलाली—संज्ञा स्त्री० [फा०] १. दलाल का काम।

क्रि० प्र०—करना।

२. वह द्रव्य जो दलाल को मिलता है। उ०—चलि हाट बैठि तू थिर ह्वै हरि नग निर्मल लेहि। काम क्रोध मद लोभ मोह तू सकल दलाली देहि।—सूर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—देना।—लेना।

दलाह्व—संज्ञा पुं० [सं०] तेजपत्ता।

दलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] मिट्टी का टुकड़ा। ढेला [को०]।

दलिक—संज्ञा पुं० [सं०] काठ। लकड़ी। [को०]।

दलित—वि० [सं०] १. मीड़ा हुआ। मसला हुआ। मर्दित। २. रौंदा हुआ। कुचला हुआ। ३. खंडित। टुकड़े टुकड़े किया हुआ। ४. विनष्ट किया हुआ। ५. जो दबा रखा गया हो। दबाया हुआ। जैसे,—भारत की दलित जातियाँ भी अब उठ रही हैं।

दलिद्दर—संज्ञा पुं० [सं० दारिद्रय दरिद्र] १. दरिद्रता। गरीबी। उ०—आप चाहें तो एक दिन में हमारा दलिद्दर दूर कर सकते हैं।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० १७। २. कूड़ा करकट। गंदगी। ३. दरिद्र। गरीब। धनहीन।

दलिद्र‡—संज्ञा पुं० [सं० दरिद्र] दे० 'दरिद्र'।

दलिया—संज्ञा पुं० [हिं० दलना। तुल० फ़ा० दलीदह्] दलकर कई टुकड़े किया हुआ अनाज। जैसे, गेहूँ का दलिया।

दली—वि० [सं० दलिन्] १. जिसमें दल या मोटाई हो। २. जिसमें पत्ता हो। पत्तेवाला।

दलीप‡—संज्ञा पुं० [सं० दिलीप] दे० 'दिलीप'।

दलील—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. तर्क। युक्ति। २. बहस। वादविवाद।

क्रि० प्र०—करना।—लाना।

दलेगंधि—संज्ञा पुं० [सं० दलेगन्धि] सप्तपर्णी वृक्ष।

दलेपंज—संज्ञा पुं० [हिं० ढलना+पंजा] १. वह घोड़ा जिसकी कमर ढल गई हो। वह घोड़ा जो जवान न रह गया हो। २. ढलती हुई उमर का आदमी।

दलेल—संज्ञा स्त्री० [अं० ड्रिल] सिपाहियों का वह दंड जिसमें हथियार और कपड़े आदि उनकी कमर में बाँधकर उन्हें टहलाते हैं। वह कवायद जो सजा की तरह पर की जाय। उ०—दिल चले दम बने रहेंगे ही, क्यों न हो दिल दलेल में मेरा।—चोखे०, पृ० १४।

मुहा०—दलेल बोलना = सजा की तरह पर कवायद देने की आज्ञा देना।

दलै—क्रि० स० [देश०] मुँह बाओ। खाओ (हाथीवानों की बोली)।

यौ०—दली सुब दली = पानी पीओ (हाथीवानों की बोली)।

दलैया†—संज्ञा पुं० [हिं० दलना] १. दलने या पीसनेवाला। २. नाश करनेवाला। मारनेवाला। उ०—मंदर बिलंद मंदगति के चलैया, एक पल मैं दलैया, पर दल बलवानि के।—मति० ग्रं०, पृ० ३११।

दल्भ—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रतारण। धोखा। २. पाप। ३. चक्र।

दल्मि—संज्ञा पुं० [सं०] १. इंद्र का वज्र। अशनि। २. शिव का एक नाम (को०)।

दल्लाल—संज्ञा पुं० [अ०] दे० 'दलाल'। उ०—जिन्हें हम व्यापारी न कहकर दल्लाल कहेंगे।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २६३।

दल्लाला—संज्ञा स्त्री० [अ० दल्लालह्] कुटनी। दूती।

दल्लाली—संज्ञा स्त्री० [अ०] दे० 'दलाली'।

दवँगरा‡—संज्ञा पुं० [सं० दव + अङ्गार] १. वर्षा ऋतु के आरंभ में होनेवाली झड़ी। उ०—बिहरत हिया करहु पिउ टेका। दीठि दवँगरा मेरवहु एका।—जायसी। (शब्द०)। २. वर्षा के आरंभ में पानी का कहीं कहीं एकत्र होकर धीरे धीरे बहना। (बुंदेल०)।

दवँरी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'दँवरी'।

दव—संज्ञा पुं० [सं०] १. वन। जंगल। २. दवाग्नि। वह आग जो वन में आपसे आप लग जाती है। दवारि। दावा। उ०—भई सहमि सुनि बचन कठोरा। मृगी देखि जनु दव चहुँ ओरा।—तुलसी (शब्द०)। ३. अग्नि। आग। उ०—(क) आजु अयोध्या जल नहिं अचवौं ना मुख देखौं माई। सूरदास राघव के बिछुरे मरौं भवन दव लाई।—सूर (शब्द०)। (ख) राकापति षोडश उगें तारागण समुदाय। सकल गिरिन दव लाइए रबि बिनु राति न जाय।—तुलसी (शब्द०)।

यौ०—दवदग्धक = एक तृण। एक घास का नाम। दवदहन = दावाग्नि। वनाग्नि।

४. दे० 'दवथु'।

दवथु—संज्ञा पुं० [सं०] १. दाह। जलन। २. संताप। परिताप। दुःख।

दवदढ़ौ—वि० [सं० दव + दग्ध, प्रा० दड्ढ] दावाग्नि में जला हुआ। उ०—तहाँ सु अंतर रिप्प इक, कस तन अंग सुरंग। दवदढ्ढो जनु द्रुम कोइ कै कोइ भूत भुअंग।—पृ० रा०, ६।१७।

दवन[१]—वि०, संज्ञा पुं० [सं० दमन, प्रा० दवण] दमन करनेवाला। नाश करनेवाला। उ०—प्राणनाथ सुंदर सुजानमनि दीनबंधु जन आरति दवन।—तुलसी (शब्द०)।

दवन[२]—संज्ञा पुं० [सं० दमनक] दौना नामक पौधा। उ०—गहब गुलाब, मंजु मोगरे, दवन फूले, बेले अलबेले खिले चंपक चमन में।—भुवनेश (शब्द०)।

दवनपापड़ा—संज्ञा पुं० [सं० दमनपर्पट] पित्तपापड़ा।

दवना[१]—संज्ञा पुं० [सं० दमनक] दे० 'दौना'।

दवना[२]—क्रि० स० [सं० दव] जलाना। उ०—ग्रीषम दवत दवरिया कुंज कुटीर। तिमि तिमि तकत तरुनिर्याहि बाढ़ी पीर।—रहीम (शब्द०)।

दवनी—संज्ञा स्त्री० [सं० दमन] फसल के सूखे डंठलों को बैलों से रौंदवाकर दाना झाड़ने का काम। दँवरी। मिसाई। मँड़ाई।

दवरिया‡—संज्ञा स्त्री० [सं० दवाग्नि] दे० 'दवारि'। उ०—ग्रीषम दवत दवरिया कुंज कुटीर। तिमि तिमि तकत तरुनिर्याहि बाढ़ी पीर।—रहीम। (शब्द०)।

दवरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० दवारि] आग। अग्नि। ज्वाला। ताप। उ०—जो मन की दवरी बुझि जावै, तब घट में परचै कुछ पावै।—दरिया सा०, पृ० ३१।

दवाँरि—संज्ञा पुं० [सं० दावाग्नि] दे० 'दावानल'। उ०—अतिथि पूज्य प्रियतम पुरारि के। कामद घन दारिद दवाँरि के।—मानस०, १।३१।

दवा[१]—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. वह वस्तु जिससे कोई रोग या व्यथा दूर हो। औषध। ओखद। उ०—दरद दवा दोनों रहैं पीतम पास तयार।—रसनिधि (शब्द०)।

यौ०—दवाखाना। दवादारू। दवादर्पन। दवादरमन।

मुहा०—दवा को न मिलना = थोड़ा सा भी न मिलना। अप्राप्य होना। दुर्लभ होना। दवा देना = दवा पिलाना।

२. रोग दूर करने का उपाय। उपचार। चिकित्सा। जैसे,—अच्छे वैद्य की दवा करो।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

३. दूर करने की युक्ति। मिटाने का उपाय। जैसे,—शक की कोई दवा नहीं। ४. अवरोध या प्रतिकार का उपाय। ठीक रखने की युक्ति। दुरुस्त करने की तदबीर। जैसे,—उसकी दवा यही है कि उसे दो चार खरी खोटी सुना दो।

दवा†[२]—संज्ञा स्त्री० [सं० दव] १. वनाग्नि। वन में लगनेवाली आग। उ०—कानन भूधर वारि बयारि महा बिष व्याधि दवा अरि घेरे।—तुलसी (शब्द०)। २. अग्नि। आग। उ०—(क) चल्यो दवा सो तप्त दवा दुति भूरिश्रवा भर।—गोपाल (शब्द०)। (ख) दवा सो तपत धरामंडल अखंडल और मारतंड मंडल दवा सो होत भोर तें।—बेनी (शब्द०)।

दवाई†—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० दवा + हिं० ई (प्रत्य०)] दे० 'दवा[१]'।

दवाईखाना—संज्ञा पुं० [हिं० दवाई + फ़ा० खाना] दे० 'दवाखाना'।

दवाखाना—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. वह जगह जहाँ दवा बिकती हो। २. औषधालय। चिकित्सालय।

दवागनि—संज्ञा स्त्री० [सं० दवाग्नि] दे० 'दावाग्नि'। उ०—कहा दवागनि के पिएँ, कहा धरें गिरि धीर।—मति० ग्रं०, पृ० ३४७।

दवागि—संज्ञा स्त्री० [सं० दवाग्नि] वनाग्नि। दावानल।

दवागिन—संज्ञा स्त्री० [सं० दवाग्नि] दे० 'दावाग्नि'।

दवाग्नि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वन में लगनेवाली आग। दावानल।

दवात[1]—संज्ञा स्त्री० [अ० दावात] लिखने की स्याही रखने का बरतन। मसिपात्र। मसिदानी।

दवात(पु)†[2]—संज्ञा पुं० [फ़ा० दवा] औषध। उ०—रंचिक ताहि न भावै, कहीं कहानी जेत। परम दवात कहै जेत, दुखद होइ तेहि तेत।—इंद्रा०, पृ० १३।

दवादर्पन—संज्ञा पुं० [फा० दवा+सं० दर्पण] औषध। चिकित्सा। उ०—बिना दवा दर्पन के गृहणी स्वरग चली आँखें आती भर।—ग्राम्या, पृ० २५।

दवादस(पु)—वि० [सं० द्वादश] दे० 'द्वादश'। उ०—मेघमादन आद दवादस साजिय फौज, समाजिय फीतरा।—रघु० रू०, पृ० ११८।

दवान(पु)—संज्ञा पुं० [देश० ? या डिं०] एक प्रकार का अस्त्र। एक प्रकार की उत्तम कोटि की तलवार। उ०—(क) सज्जे हुयंद जे भरे साल, गज्जे सुभट्ट लै लै दवाल।—सुजान०, पृ० १७। (ख) चले कबान बान आसमान भू गरज्जियो। भवान वै दवान की कृपान हीय सज्जियो।—सुजान०, पृ० १०।

दवानल—संज्ञा पुं० [सं०] दवाग्नि।

दवाम[1]—क्रि० वि० [अ०] नित्य। हमेशा। सदा। उ०—एक शर्त उस संधि में यह भी थी कि झाँसी का राज्य रामचंद्र राव के कुटुंब में दवाम के लिये रहेगा, चाहे वारिस और संतान हों, चाहे गोत्रज हों अथवा गोद लिए हुए हों।—झाँसी०, पृ० १०।

दवाम[2]—संज्ञा पुं० [अ०] नित्यता। स्थायित्व। हमेशगी।

दवामी—वि० [अ०] जो चिरकाल तक के लिये हो। स्थायी। जो सदा बना रहे। जैसे, दवामी बंदोबस्त।

दवामी बंदोबस्त—संज्ञा पुं० [फ़ा०] जमीन का वह बंदोबस्त जिसमें सरकारी मालगुजारी सब दिन के लिये मुकर्रर कर दी जाय। भूमिकर का वह प्रबंध जिसमें कर सब दिन के लिये इस प्रकार नियत कर दिया जाय कि उसमें पीछे घटती बढ़ती न हो सके।

दवार†[1]—संज्ञा पुं० [सं० द्वार] दे० 'द्वार'। उ०—पधराविया सुभ प्रात। छल हूँत मुरधर छात। दल कमंध साहू दवार। मन रहे सांम उबार।—रा० रू०, पृ० ३०।

दवार[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'दवारि'।

दवारि—संज्ञा स्त्री० [सं० दवाग्नि, हिं० दवागि] वनाग्नि। दावानल। उ०—हाय न कोऊ तलास करै ये पलासन कौने दवारि लगाई।—नरेश (शब्द०)।

दवाला(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० द्विदल, राज० द्वाला (=दो चरणों-वाला)] छंद। उ०—विषम सम विषम सम दवालै वेद तुक, ठीक गुर अंत तुक बहुस ठाला।—रघु० रू०, पृ० ५०।

दव्वार†—संज्ञा पुं० [सं० दावाग्नि, हिं० दवारि] (आग की लपट) आग का पुंज। उ०—आगी अगिन का दव्वार। तपती भाय ताता सार।—राम० धर्म०, पृ० १६८।

दश—वि० [सं०] दे० 'दस'।

दशकंठ—संज्ञा पुं० [सं० दशकण्ठ] रावण (जिसके दस कंठ या सिर थे)।

दशकंठजहा—संज्ञा पुं० [सं० दशकण्ठजहा] रावण के संहारक, श्री रामचंद्र। उ०—आजु विराजत राज है दसकंठजहा को।—तुलसी (शब्द०)।

दशकंठजित्—संज्ञा पुं० [सं० दशकण्ठजित्] रावण को जीतनेवाले, श्रीराम।

दशकंठारि—संज्ञा पुं० [सं० दशकण्ठारि] (रावण के शत्रु) श्री रामचंद्र।

दशकंध—संज्ञा पुं० [सं० दश+स्कन्ध, हिं० कंध] रावण।

दशकंधर—संज्ञा पुं० [सं० दशकन्धर] रावण।

दशक—संज्ञा पुं० [सं०] १. दस का समूह। दस की ढेरी। २. दस वर्षों का समूह। दस साल का निर्धारित काल।

दशकर्म—संज्ञा पुं० [सं० दशकर्मन्] गर्भाधान से लेकर विवाह तक के दस संस्कार, जिनके नाम ये हैं—गर्भाधान, पुंसवन, सीमंतोन्नयन, जातकरण, निष्क्रामण, नामकरण, अन्नप्राशन, चूड़ाकरन, उपनयन और विवाह।

दशकुमारचरित—संज्ञा पुं० [सं०] संस्कृत कवि दंडी का लिखा एक गद्यात्मक काव्य।

दशकुलवृक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] तंत्र के अनुसार कुछ विशेष वृक्ष, जिनके नाम ये हैं—लिसोड़ा, करंज, बेल, पीपल, कदंब, नीम, बरगद, गूलर, आँवला और इमली।

दशकोषी—संज्ञा स्त्री० [सं०] छपताल के ग्यारह भेदों में से एक (संगीत)।

दशक्षीर—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार इन दस जंतुओं का दूध—गाय, बकरी, ऊँटनी, भेड़, भैंस, घोड़ी, स्त्री, हथनी, हिरनी और गदही।

दशगात—संज्ञा [सं० दशगात्र] दे० 'दशगात्र'।

दशगात्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. शरीर के दस प्रधान अंग। २. मृतक संबंधी एक कर्म जो उसके मरने के पीछे दस दिनों तक होता रहता है।

विशेष—इसमें प्रतिदिन पिंडदान किया जाता है। पुराणों में लिखा है कि इसी पिंड के द्वारा क्रम क्रम से प्रेत का शरीर बनता है और दसवें दिन पूरा हो जाता है। जैसे, पहले पिंड से सिर, दूसरे से आँख, कान, नाक इत्यादि।

दशग्रामपति—संज्ञा पुं० [सं०] जो राजा की ओर से दस ग्रामों का अधिपति या शासक बनाया गया हो।

विशेष—मनुस्मृति में लिखा है कि राजा पहले प्रत्येक ग्राम का एक मुखिया या शासक नियुक्त करे, फिर उससे अधिक प्रतिष्ठा और योग्यता के किसी मनुष्य को दस ग्रामों का अधिपति नियत करे, इसी प्रकार बीस, शत, सहस्र आदि तक के ग्रामों के हाकिम नियुक्त करने का विधान लिखा है।

दशग्रामिक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दशग्रामपति' [को०]।

दशग्रामी—संज्ञा पुं० [सं० दशग्रामिन्] दे० 'दशग्रामपति' [को०]।

दशग्रीव—संज्ञा पुं० [सं०] रावण।

दशति—संज्ञा स्त्री० [सं०] सौ। शत।

दशद्वार—संज्ञा पुं० [सं०] शरीर के दस छिद्र—२ कान, २ आँख, २ नाक, १ मुख, १ गुदा, १ लिंग और १ ब्रह्मांड।

दशधर्म—संज्ञा पुं० [सं०] मनुस्मृति में निर्दिष्ट धर्म के दस लक्षण जो मानव मात्र के लिये करणीय हैं।

दशधा[1]—वि० [सं०] १. दस प्रकार का। २. दस के स्थान का। दशम। दसवाँ। उ०—विश्वमंगल आधार सर्वानंद दशधा के आगार।—भक्तमाल (श्री०), पृ० ४११।

दशधा[2]—क्रि० वि० दस प्रकार।

दशन—संज्ञा पुं० [सं०] १. दाँत। २. दाँत से काटना। दाँतों से काटने की क्रिया। ३. कवच। वर्म। ४. शिखर। चोटी।

यौ०—दशनच्छद। दशनवासस् = होंठ। दशनपद = दंत क्षत का स्थान अथवा चिह्न। दशनबीज।

दशनच्छद—संज्ञा पुं० [सं०] होंठ। ओष्ठ।

दशनबीज—संज्ञा पुं० [सं०] अनार।

दशनांशु—संज्ञा पुं० [सं०] दाँतों की चमक। दाँतों की दमक [को०]।

दशनाढ्य—संज्ञा स्त्री० [सं०] लोनिया शाक।

दशनाम—संज्ञा पुं० [सं०] संन्यासियों के दस भेद जो ये हैं—१. तीर्थ, २. आश्रम, ३. वन, ४. अरण्य, ५. गिरि, ६. पर्वत, ७. सागर, ८. सरस्वती, ९. भारती और १०. पुरी।

दशनामी—संज्ञा पुं० [हिं० दस+नाम] संन्यासियों का एक वर्ग जो अद्वैतवादी शंकराचार्य के शिष्यों से चला है।

विशेष—शंकराचार्य के चार प्रधान शिष्य थे—पद्मपाद, हस्तामलक, मंडन और तोटक। इनमें से पद्मपाद के दो शिष्य थे—तीर्थ और आश्रम; हस्तामलक के दो शिष्य—वन और अरण्य, मंडन के तीन शिष्य—गिरि, पर्वत और सागर। इसी प्रकार तोटक के तीन शिष्य—सरस्वती, भारती और पुरी। इन्हीं दस शिष्यों के नाम से संन्यासियों के दस भेद चले। शंकराचार्य ने चार मठ स्थापित किए थे, जिनमें इन दस प्रशिष्यों की शिष्यपरंपरा चली आती है। पुरी, भारती और सरस्वती की शिष्य परंपरा शृंगेरी मठ के अंतर्गत है; तीर्थ और आश्रम शारदा मठ के अंतर्गत, वन और अरण्य गोवर्धन मठ के अंतर्गत तथा गिरि, पर्वत और सागर जोशी मठ के अंतर्गत हैं। प्रत्येक दशनामी संन्यासी इन्हीं चार मठों में से किसी न किसी के अंतर्गत होता है। यद्यपि दशनामी ब्रह्म या निर्गुण उपासक प्रसिद्ध हैं, तथापि इनमें से बहुतेरे शैवमंत्र की दीक्षा लेते हैं।

दशनोच्छिष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] १. अधर। ओष्ठ। २. अधरचुंबन। ३. निश्वास। श्वास। ४. दाँतों द्वारा स्पृष्ट कोई पदार्थ [को०]।

दशपंचतपा—संज्ञा पुं० [सं० दशपञ्चतपस्] इंद्रियों का निग्रह करते हुए पंचाग्नि तपस्या करनेवाला तपस्वी [को०]।

दशप—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दशग्रामपति'।

दशपारमिताधर—संज्ञा पुं० [सं०] बुद्धदेव।

दशपुर—संज्ञा पुं० [सं०] १. केवटी मोथा। २. मालवे का एक प्राचीन विभाग जिसके अंतर्गत दस नगर थे। इसका नाम मेघदूत में आया है।

दशपेय—संज्ञा पुं० [सं०] आश्वलायन श्रौतसूत्र के अनुसार एक प्रकार का यज्ञ।

दशबल—संज्ञा पुं० [सं०] बुद्धदेव।

विशेष—बुद्ध को दस बल प्राप्त थे, जिनके नाम ये हैं—दान, शील, क्षमा, वीर्य, ध्यान, प्रज्ञा, बल, उपाय, प्रणिधि और ज्ञान।

दशबाहु—संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव। पंचमुख [को०]।

दशभुजा—संज्ञा स्त्री [सं०] दुर्गा का एक नाम।

दशभूमिग—संज्ञा पुं० [सं०] (दान आदि दस भूमियों या बलों को प्राप्त करनेवाले) बुद्धदेव।

दशभूमीश—संज्ञा पुं० [सं०] बुद्धदेव।

दशम—वि० [सं०] दसवाँ।

यौ०—दशमदशा। दशमद्वार। दशमभाव। दशमलव।

दशमदशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] साहित्य के रसनिरूपण में वियोगी की वह दशा जिसमें वह प्राण त्याग देता है।

दशमद्वार—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मरंध्र। उ०—दशमद्वार से प्राण को त्याग श्री रामधाम को प्राप्त हुए।—भक्तमाल (श्री०), पृ० ४५५।

दशमभाव—संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में एक जन्मलग्नांश। कुंडली में लग्न से दसवाँ घर।

विशेष—इस घर से पिता, कर्म, ऐश्वर्य आदि का विचार किया जाता है।

दशमलव—संज्ञा पुं० [सं०] वह भिन्न जिसके हर में दस या उसका कोई घात हो (गणित)।

दशमहाविद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'महाविद्या' [को०]।

दशमांश—संज्ञा पुं० [सं०] दसवाँ हिस्सा। दसवाँ भाग।

दशमाल—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन जनपद। एक प्रदेश का प्राचीन नाम।

दशमालिक—संज्ञा पुं० [सं०] दशमाल देश।

दशमास्य—वि० [सं०] माता के गर्भ में दस महीने तक रहनेवाला [को०]।

दशमिकभग्नांश—संज्ञा पुं० [सं०] अंकगणित की एक क्रिया जिसके द्वारा प्रत्येक भिन्न या भग्नांश इस रूप में लाया जाता है कि उसका हर दस का कोई गुणित अंक हो जाता है। दशमलव।

दशमी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चांद्रमास के किसी पक्ष की दसवीं तिथि। २. विमुक्तावस्था। उ०—दशमी रानी है दिल दायक। सब रानी की सो है नायक।—कबीर सा०, पृ० ५५०। ३. मरणावस्था।

दशमी[2]—वि० [सं० दशमिन्] [वि० स्त्री० दशमिनी] बहुत वृद्ध। बहुत पुराना। शतायु की अवस्थावाला।

दशमुख[1]—संज्ञा पुं० [सं०] रावण।

यौ०—दशमुखांतक = राम ।

दशमुख²—संज्ञा पुं० [सं० दस + मुख] १. दसों दिशाएँ । २. त्रिदेव (ब्रह्मा के ४ मुख; विष्णु का १ और महेश के ५ मुख) । उ०—दशमुख मुख जोवैं गजमुख मुख को ।—राम चं०, पृ० १ ।

दशमूत्र—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दशमूत्रक' ।

दशमूत्रक—संज्ञा पुं० [सं०] इन दस जीवों का मूत्र जो वैद्यक में काम आता है—१. हाथी, २. भैंस, ३. ऊँट, ४. गाय, ५. बकरा, ६. भेड़ा, ७. घोड़ा, ८. गदहा, ९. पुरुष, और १० स्त्री ।

दशमूल—संज्ञा पुं० [सं०] दस पेड़ों की छाल या जड़ जो दवा के काम आती है ।

विशेष—सरिवन (शालपर्णी), पिठवन (पृश्निपर्णी), छोटी कटाई, बड़ी कटाई, और गोखरू ये लघुमूल और बेल, सोनापाठा (श्योनाक), गंभारी, गनियारी और पाठा बृहन्मूल कहलाते हैं । इन दोनों के योग को दशमूल कहते हैं । दशमूल काढ़, श्वास और सन्निपात ज्वर में उपकारी माना जाता है ।

दशमूलीसंग्रह—संज्ञा पुं० [सं० दशमूलीयसङ्ग्रह] वे दस चीजें जो आग से बचने के लिये प्रत्येक व्यक्ति को घर में रखनी चाहिए ।

विशेष—चंद्रगुप्त मौर्य के समय में निम्नलिखित दस चीजों को घर में रखने के लिये प्रत्येक व्यक्ति राजनियम के द्वारा वाध्य था,—पानी से भरे हुए पाँच घड़े, (२) पानी से भरा हुआ एक मटका, (३) सीढ़ी, (४) पानी से भरा हुआ बाँस का बरतन, (५) फरसा या कुल्हाड़ी, (६) सूप, (७) अंकुश, (८) खूँटा आदि उखाड़ने का औजार, (९) मशक और (१०) हलादि । इन दसों चीजों का नाम दशमूलीसंग्रह था । जो लोग इसके रखने में प्रमाद करते थे उनको १४ पण जुरमाना देना पड़ता था ।

दशमेश—संज्ञा पुं० [सं०] १. जन्मकुंडली में दशम भाव का अधिपति (ज्योतिष) । २. सिख संप्रदाय के दसवें गुरु गोविंदसिंह ।

दशमौलि—संज्ञा पुं० [सं०] रावण ।

दशयोगभंग—संज्ञा पुं० [सं० दशयोगभङ्ग] फलित ज्योतिष में एक नक्षत्रवेध जिसमें विवाह आदि शुभकर्म नहीं किए जाते ।

विशेष—जिस नक्षत्र में सूर्य हो और जिस नक्षत्र में कर्म होनेवाला हो, दोनों नक्षत्रों के जो स्थान गणनाक्रम में हों उन्हें जोड़ डाले । यदि जोड़ पंद्रह, चार, ग्यारह, उन्नीस, सत्ताइस, अठारह या बीस आवे तो दशयोगभंग होगा ।

दशरथ—संज्ञा पुं० [सं०] अयोध्या के इक्ष्वाकुवंशीय एक प्राचीन राजा जिनके पुत्र श्रीरामचंद्र थे । ये देवताओं की ओर से कई बार असुरों से लड़े थे और उन्हें परास्त किया था ।

विशेष—इस शब्द के आगे पुत्र वाचक शब्द लगने से 'राम' अर्थ होता है ।

दशरथसुत—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीरामचंद्र ।

दशरश्मिशत—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य । अंशुमाली [को०] ।

दशरात्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. दस रातें । २. एक यज्ञ जो दस रात्रियों में समाप्त होता था ।

दशरूपक—संज्ञा पुं० [सं०] संस्कृत में नाट्यशास्त्र पर आचार्य धनंजय का लिखा हुआ लक्षणग्रंथ ।

दशरूपभृत्—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु जिन्होंने दस अवतार धारण किया था [को०] ।

दशवक्त्र—संज्ञा पुं० [सं० दशवक्त्र] दे० 'दशमुख' ।

दशवदन—संज्ञा पुं० [सं०] दशमुख ।

दशवाजी—संज्ञा पुं० [सं० दशवाजिन्] चंद्रमा ।

दशबाहु—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव ।

दशवीर—संज्ञा पुं० [सं०] एक सत्र या यज्ञ का नाम ।

दशशिर—संज्ञा पुं० [सं० दश + शिरस्] रावण ।

दशशीर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १. रावण । २. चलाए हुए अस्त्रों को निष्फल करने का एक अस्त्र ।

दशशीश(पु)—संज्ञा पुं० [सं० दशशीर्ष] दे० 'दशशीर्ष' ।

दशसीस(पु)—संज्ञा पुं० [सं० दशशीर्ष] रावण । दशमुख ।

दशस्यंदन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० दशस्यन्दन] दशरथ नामक राजा ।

दशहरा¹—संज्ञा पुं० [सं०] ज्येष्ठ शुक्ला दशमी तिथि जिसे गंगा दशहरा भी कहते हैं ।

विशेष—इस तिथि को गंगा का जन्म हुआ था अर्थात् गंगा स्वर्ग से मर्त्यलोक में आई थीं । इसी से यह अत्यंत पुण्य तिथि मानी जाती है । कहते हैं, इस तिथि को गंगास्नान करने से दसों प्रकार के और जन्म जन्मांतर के पाप दूर होते हैं । यदि इस तिथि में हस्तनक्षत्र का योग हो या यह तिथि मंगलवार को पड़े तो यह और भी अधिक पुण्यजनक मानी जाती है । दशहरे को लोग गंगा की प्रतिमा का पूजन करते हैं और सोने चाँदी के जलजंतु बनाकर भी गंगा में डालते हैं ।

२. विजयादशमी ।

दशहरा²—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा, जो दस प्रकार के पापों का हरण करती है [को०] ।

दशांग—संज्ञा पुं० [सं० दशाङ्ग] पूजन में सुगंध के निमित्त जलाने का एक धूप जो दस सुगंध द्रव्यों के मेल से बनता है ।

विशेष—यह धूप कई प्रकार से भिन्न भिन्न द्रव्यों के मेल से बनता है । एक रीति के अनुसार दस द्रव्य ये हैं—शिलारस, गुग्गुल, चंदन, जटामासी, लोबान, राल, खस, नख, भीमसेनी कपूर और कस्तूरी । दूसरी रीति के अनुसार मधु, नागरमोथा, घी, चंदन, गुग्गुल, अगर, शिलाजतु, सलई का धूप, गुड़ और पीली सरसों । तीसरी रीति गुग्गुल, गंधक, चंदन, जटामासी, सतावरि, सज्जी, खस, घी, कपूर और कस्तूरी ।

दशांग क्वाथ—संज्ञा पुं० [सं० दशाङ्गक्वाथ] दस ओषधियों का काढ़ा ।

विशेष—इस काढ़े में निम्नांकित १० ओषधियाँ प्रयुक्त होती हैं—(१) अडूसा, (२) गुर्च, (३) पित्तपापड़ा, (४) चिरायता, (५) नीम की छाल, (६) जलभंग, (७) हड़, (८) बहेड़ा, (९) आँवला, और (१०) कुलथी । इनके क्वाथ में मधु डालकर पिलाने से अम्लपित्त नष्ट होता है ।

दशांगुल¹—संज्ञा पुं० [सं० दशाङ्गुल] खरबूजा । डंगरा ।

दशांगुल[२]—वि० जो लंबाई में दस अंगुल का हो। दस अंगुल के परिमाणवाला [को०]।

दशांत—संज्ञा पुं० [सं० दशान्त] बुढ़ापा।

दशांतर—संज्ञा पुं० [सं० दशान्तर] शरीर अथवा जीव की विभिन्न दशा [को०]।

दशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अवस्था। स्थिति या प्रकार। हालत। जैसे,—(क) रोगी की दशा अच्छी नहीं है। (ख) पहले मैंने इस मकान को अच्छी दशा में देखा था। २. मनुष्य के जीवन की अवस्था।

विशेष—मानव जीवन की दस दशाएँ मानी गई हैं—(१) गर्भवास, (२) जन्म, (३) बाल्य, (४) कौमार, (५) पौगंड, (६) यौवन, (७) स्थाविर्य, (८) जरा, (९) प्राणरोध और (१०) नाश।

३. साहित्य में रस के अंतर्गत विरही की अवस्था।

विशेष—ये अवस्थाएँ दस हैं—(१) अभिलाष, (२) चिंता, (३) स्मरण, (४) गुणकथन, (५) उद्वेग, (६) प्रलाप, (७) उन्माद, (८) व्याधि, (९) जड़ता और (१०) मरण।

४. फलित ज्योतिष के अनुसार मनुष्य के जीवन में प्रत्येक ग्रह का नियत भोगकाल।

विशेष—दशा निकालने में कोई मनुष्य की पूरी आयु १२० वर्ष की मानकर चलते हैं और कोई १०८ वर्ष की। पहली रीति के अनुसार निर्धारित दशा विंशोत्तरी और दूसरी के अनुसार निर्धारित अष्टोत्तरी कहलाती है। आयु के पूरे काल में प्रत्येक ग्रह के भोग के लिये वर्षों की अलग अलग संख्या नियत है—जैसे, अष्टोत्तरी रीति के अनुसार सूर्य की दशा ६ वर्ष, चंद्रमा की १५ वर्ष, मंगल की ८ वर्ष, बुध की १७ वर्ष, शनि की १० वर्ष, बृहस्पति की १९ वर्ष, राहु की १२ वर्ष और शुक्र की २१ वर्ष मानी गई है। दशा जन्मकाल के नक्षत्र के अनुसार मानी जाती है। जैसे, यदि जन्म कृत्तिका, रोहिणी या मृगशिरा नक्षत्र में होगा तो सूर्य की दशा होगी; आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य या अश्लेषा नक्षत्र में होगा तो चंद्रमा की दशा; मघा, पूर्वाफाल्गुनी या उत्तराफाल्गुनी में होगा तो मंगल की दशा; हस्त, चित्रा, स्वाती या विशाखा में होगा तो बुध की दशा; अनुराधा, ज्येष्ठा या मूल नक्षत्र में होगा तो शनि की दशा; पूर्वाषाढ़, उत्तराषाढ़, अभिजित् या श्रवण नक्षत्र में होगा तो बृहस्पति की दशा; धनिष्ठा, शतभिषा या पूर्व भाद्रपद में होगा तो राहु की दशा और उत्तर भाद्रपद, रेवती, अश्विनी या भरणी नक्षत्र होगा तो शुक्र की दशा होगी। प्रत्येक ग्रह की दशा का फल अलग अलग निश्चित है—जैसे, सूर्य की दशा में चित्त को उद्वेग, धनहानि, क्लेश, विदेशगमन, बंधन, राजपीड़ा इत्यादि। चंद्रमा की दशा में ऐश्वर्य, राजसम्मान, रत्नवाहन की प्राप्ति इत्यादि।

प्रत्येक ग्रह के नियत भोगकाल या दशा के अंतर्गत भी एक एक ग्रह का भोगकाल नियत है जिसे अंतर्दशा कहते हैं। रवि की दशा को लीजिए जो ६ वर्ष की है। अब इन ६ वर्षों के बीच सूर्य की अपनी दशा ४ महीने की, चंद्रमा की १० महीने की, मंगल की ५ महीने की, बुध की ११ महीने २० दिन की, शनि की ६ महीने २० दिन की, बृहस्पति की १ वर्ष २० दिन की, राहु की ८ महीने की, शुक्र की १ वर्ष २ महीने की है। इन अंतर्दशाओं के फल भी अलग अलग निरूपित हैं—जैसे, सूर्य की दशा में सूर्य की अंतर्दशा का फल राजदंड, मनस्ताप, विदेशगमन इत्यादि; सूर्य की दशा में चंद्र की अंतर्दशा का फल शत्रुनाश, रोगशांति, चित्तनाश इत्यादि।

ऊपर जो हिसाब बतलाया गया है वह नाक्षत्रिकी दशा का है। इसके अतिरिक्त योगिनी, वार्षिकी, लाग्निकी, मुकुंदा, पताकी, हरगौरी इत्यादि और भी दशाएँ हैं पर ऐसा लिखा है कि कलियुग में नाक्षत्रिकी दशा ही प्रधान है।

५. दीए की बत्ती। ६. चित्त। ७. कपड़े का छोर। वस्त्रांत।

दशाकर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १. कपड़े का छोर या अंचल। २. दीपक। चिराग।

दशाकर्षी—संज्ञा पुं० [सं० दशाकर्षिन्] दे० 'दशाकर्ष' [को०]।

दशाक्षर—संज्ञा पुं० [सं०] एक वर्णिक वृत्त [को०]।

दशाधिपति—संज्ञा पुं० [सं०] १. फलित ज्योतिष में दशाओं के अधिपति ग्रह। २. दस सैनिकों या सिपाहियों का अफसर। जमादार। (महाभारत)।

दशानन—संज्ञा पुं० [सं०] रावण।

दशानिक—संज्ञा पुं० [सं०] जमालगोटा।

दशापवित्र—संज्ञा पुं० [सं०] श्राद्ध आदि में दान किए जानेवाले वस्त्रखंड।

दशापाक—संज्ञा पुं० [सं०] भाग्य का परिपाक। भाग्यफल का पूर्ण होना [को०]।

दशामय—संज्ञा पुं० [सं०] रुद्र।

दशारुहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कैवर्तिका नाम की लता जो मालवा में होती है और जिससे कपड़े रँगे जाते हैं।

दशार्ण—संज्ञा पुं०[सं०]१. विंध्य पर्वत के पूर्व दक्षिण की ओर स्थित उस प्रदेश का प्राचीन नाम जिससे होकर धसान नदी बहती है।

विशेष—मेघदूत से पता चलता है कि विदिशा (आधुनिक भिलसा) इसी प्रदेश की राजधानी थी। टालमी ने इस प्रदेश का नाम दोसारन (Dosaron) लिखा है।

२. उक्त देश का निवासी या राजा। ३. तंत्र का एक दशाक्षर मंत्र। ३. जैन पुराण के अनुसार एक राजा।

विशेष—इस राजा ने तीर्थंकर के दर्शन के निमित्त जाकर अभिमान किया था। तीर्थंकर के प्रताप से उसे वहाँ १६,७७,७२,१६,००० इंद्र और १३,३७,०५,७२,८०,००,००,००० इंद्राणियाँ दिखाई पड़ीं और उसका गर्व चूर्ण हो गया।

दशार्णा—संज्ञा स्त्री० [सं०] धसान नदी जो विंध्याचल से निकलकर बुंदेलखंड के कुछ भाग में बहती हुई कालपी के पास जमुना में मिल जाती है।

दशार्द्ध, दशार्ध—संज्ञा पुं० [सं०] १. दस का आधा पाँच। २. बुद्धदेव। जो दशबलों से युक्त हैं।

दशार्ह—संज्ञा पुं० [सं०] १. क्रोष्टुवंशीय धृष्ट राजा का पुत्र। २. राजा वृष्णि का पौत्र। ३. वृष्णिवंशीय पुरुष। ४. वृष्णिवंशियों का अधिकृत देश।

दशावतार—संज्ञा पुं० [सं०] भगवान् विष्णु के दस अवतार जो इस प्रकार हैं,—(१) मत्स्य, (२) कच्छप, (३) वाराह, (४) नृसिंह, (५) वामन, (६) परशुराम, (७) राम, (८) कृष्ण (९) बुद्ध और (१०) कल्कि।

दशावरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दस सभ्यों की शासक सभा। दस पंचों की राजसभा।

विशेष—ऐसी सभा जो व्यवस्था दे, उसका पालन मनु ने आवश्यक लिखा है। गौतम ने दशावरा के दस सभ्यों का विभाग इस प्रकार बताया है कि चार तो भिन्न भिन्न वेदों के, तीन भिन्न भिन्न आश्रमों के और तीन भिन्न भिन्न धर्मों के प्रतिनिधि हों। बौधायन ने धर्मों के तीन ज्ञाताओं के स्थान पर मीमांसक, धर्मपाठक और ज्योतिषी रखे हैं।

दशाविपाक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दशापाक'।

दशाश्व—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा जिसके रथ में दस घोड़े लगते हैं।

दशाश्वमेध—संज्ञा पुं० [सं०] १. काशी के अंतर्गत एक तीर्थ।

विशेष—काशीखंड में लिखा है कि राजर्षि दिवोदास की सहायता से ब्रह्मा ने इस स्थान पर दस अश्वमेध यज्ञ किए थे। पहले यह तीर्थ रुद्रसरोवर के नाम से प्रसिद्ध था। ब्रह्मा के यज्ञ के पीछे दशाश्वमेध कहा जाने लगा। ब्रह्मा ने इस स्थान पर दशाश्वमेधेश्वर नामक शिवलिंग भी स्थापित किया था। जो लोग इस तीर्थ में स्नान करके उक्त शिवलिंग का दर्शन करते हैं उनके सब पाप छूट जाते हैं।

२. प्रयाग के अंतर्गत त्रिवेणी के पास वह घाट या तीर्थस्थान जहाँ यात्री जल भरते हैं। लोगों का विश्वास है कि इस स्थान का जल बिगड़ता नहीं।

दशास्य—संज्ञा पुं० [सं०] दशमुख। रावण।

दशाह—संज्ञा पुं० [सं०] १. दस दिन। २. मृतक के कृत्य का दसवाँ दिन।

विशेष—गृह्यसूत्रों में मृतक कर्म तीन ही दिनों का माना गया है। पहले दिन श्मशान कृत्य और अस्थिसंचय, दूसरे दिन रुद्रयाग, क्षौर आदि और तीसरे दिन सपिंडीकरण। स्मृतियों ने पहले दिन के कृत्य का दस दिनों तक विस्तार किया है जिसमें प्रत्येक दिन एक एक पिंड एक एक अंग की पूर्ति के लिये दिया जाता है। पर ग्यारहवें दिन के कृत्य में अब भी द्वितीयाह्न संकल्प का पाठ होता है।

दशी—संज्ञा पुं० [सं० दशिन्] दस गाँवों का शासक। उ०—दश ग्रामों के शासक को 'दशी' कहा जाता था।—आदि०, पृ० १११।

दशेंधन—संज्ञा पुं० [सं० दशा (= दीप की बत्ती) + इन्धन] प्रदीप। दीपक। दीया [को०]।

दशेर—संज्ञा पुं० [सं०] हिंसक जीव। हिंस्र प्राणी [को०]।

दशेरक—संज्ञा पुं० [सं०] १. मरु प्रदेश। मरु देश। २. मरु देश का निवासी। ३. उष्ट्र। ऊँट। युवा ऊँट। ४. गर्दभ। गदहा [को०]।

दशोरक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दशेरक [को०]।

दशेश—संज्ञा पुं० [सं०] दस गावों का अधिपति। दशी [को०]।

दश्त—संज्ञा पुं० [फा०] जंगल। बियाबान। वन। उ०—फिरते ही फिरते दश्त दिवाने किधर गए। वे आशिकी के हाय जमाने किधर गए।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० १५।

दषिनⓅ—संज्ञा पुं० [सं० दक्षिण] दे० 'दक्षिण'।

दषिनाⓅ—संज्ञा, स्त्री० [सं० दक्षिणा] दे० 'दक्षिणा'। उ०—पुनु बिप्रहि दषिना करि दीन्हा। देषत ताहि नैन हरि लीन्हा—हिंदी प्रेमगाथा०, पृ० २१२।

दष्ट—वि० [सं०] जिसे किसे ने डसा हो या काट लिया हो। काटा हुआ। उ०—चेतनाहीन मन मामता स्वार्थ धन। दष्ट ज्यों हो सुमन छिद्र शत तनु प्राण।—गीतिका, पृ० ५८।

दसँनⓅ†—संज्ञा पुं० [सं० दशन] दे० 'दशन'। उ०—परमानंद ठगी नँदनंदन, दसँन, कुंद मुसकावत।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० २३५।

दस[1]—वि० [सं० दश] १. पाँच का दूना। जो गिनती में नौ से एक अधिक हो। २. कई। बहुत से। जैसे,—(क) दस आदमी जो कहें उसे मानना चाहिए। (ख) वहाँ दस तरह की चीजें देखने को मिलेंगी।

दस[2]—संज्ञा पुं० १. पाँच की दूनी संख्या। २. उक्त संख्या का सूचक अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—१०।

दसा[3]—संज्ञा स्त्री० [सं० दिश्, प्रा० दिस्, राज० दस] ओर। तरफ। दिशा। उ०—प्राच धरा दस ऊनम्यउ, काली घड़ सखराँह। उवा धण देसी ओलँबा, कर कर लाँबी बाँह।—ढोला०, दू० २७१।

दसईं†—वि० [सं० दशम] दशम। दसवाँ। दस की संख्यावाला। उ०—दसईं द्वार न खोलत कोई। तब खोले जब मरमी होई।—इंद्रा०, पृ० ४६।

दसकंधⓅ—संज्ञा पुं० [सं० दशस्कन्ध, हिं० दसकंध] रावण। उ०—मसकरूप दसकंधपुर निसि कपि घर घर देखि।—तुलसी०, ग्रं० पृ० ८६।

यौ०—दसकंधपुर = लंका।

दसखत‡—संज्ञा पुं० [फा० दस्तखत] दे० 'दस्तखत'।

दसगुना—वि० [सं० दशगुणित] किसी संख्या या परिमाण का दस प्रतिशत अधिक। उ०—होत दसगुनो अंकु है दिएँ एक ज्यों बिंदु। दिएँ डिठोना यों बढ़ी आनन आभा इंदु।—मति० ग्रं०, पृ० ४५१।

दसगूनⓅ—वि० [हिं० दसगुना] दे० 'दसगुना'। उ०—राम नाम को अंक है, सब साधन हैं सून। अंक गए कछु हाथ नहिं अंक रहे दसगून।—संतवाणी०, पृ० ७१।

दसठौन—संज्ञा पुं० [सं० दश + स्थान] बच्चा जनने के समय की एक रीति, जिसके अनुसार प्रसूता स्त्री दसवें दिन नहाकर सौरी के घर से दूसरे घर में जाती है।

दसताना†—संज्ञा पुं० [फा० दस्तानह्] हाथ के पंजों की रक्षा के लिये बना हुआ लोह कवच। उ०—माथे टोप सनाह तन, कर

दसता रिन काच। मावड़िया सोभै नहीं, सूरा हंदी साथ।—बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० २०।

दसनⓅ²—संज्ञा पुं० [सं० दशन] दे० 'दशन'। उ०—जौ चित चढै नाममहिमा निज गुनगन पावन पन के। तौ तुलसिहि तारिहौ विप्र ज्यों दसन तोरि जमगन के।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५०७।

यौ०—दसनबसन = दाँतों का वस्त्र अर्थात् ओठ और अधर। उ०—नैननि के तारनि में राखौ प्यारे पूतरी के, मुरली ज्यों लाइ राखौ दसनबसन में।—केशव० ग्रं०, भा० १, पृ० २८।

दसन²—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की छोटी झाड़ी जो पंजाब, सिंध, राजपूताने और मैसूर में पाई जाती है। इसकी छाल चमड़ा सिझाने के काम में आती है। दसरनी।

दसन³—संज्ञा पुं० [सं०] १. विनाश। क्षय। नाश। २. हटा देना। बहिष्करण। निष्कासन। ३. क्षेपण। फेंकना [को०]।

दसना¹—क्रि० अ० [हिं० डासना] बिछना। बिछाया जाना। फैलाया जाना।

दसना²—क्रि० स० बिछाना। बिस्तर फैलाना। उ०—विवेक सों अनेकधा वखे अनूप आसने। अनर्घ अर्घ आदि दै विनय किए घने घने।—केशव (शब्द०)।

दसना³—संज्ञा पुं० [हिं०] बिछौना। बिस्तर।

दसना⁴—क्रि० स० [सं० दंशन या दशन] दे० 'डसना'।

दसनामी—संज्ञा पुं० [हिं० दशनाम] दे० 'दशनामी'। उ०—लेकिन दंडी पाखंडी नहीं निर्द्वंद्व स्वच्छंद अवधूत सर्व वर्णसंगम गिरि, पुरी, भारती और दसनामी और उदासीन भी।—किन्नर०, पृ० १०१।

दसनावलि—संज्ञा स्त्री० [सं० दशनावलि] दाँतों की पंक्ति। उ०—खिल उठी चल दसनावलि आज, कुंद कलियों में कोमल आभ।—गुंजन, पृ० ४८।

दसमरिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० दस + मढ़ना] एक प्रकार की बरसाती बड़ी नाव जिसमें दस तख्ते लंबाई के बल लगे होते हैं।

दसमाथⓅ—संज्ञा पुं० [हिं० दस + माथ] रावण। उ०—सुनु दसमाथ ! नाथ साथ के हमारे कपि हाथ लंका लाइहैं तौ रहैगी हथेरी सी।—तुलसी (शब्द०)।

दसमी—संज्ञा स्त्री० [सं० दशमी] दे० 'दशमी'।

दसरंग—संज्ञा पुं० [हिं० दस + रंग] मलखंभ की एक कसरत।

विशेष—इस कसरत में कमरपेटा करके जिधर का पैर मलखंभ को लपेटे रहता है उधर के हाथ को सीधी पकड़ से मलखंभ में लपेटकर और दूसरे हाथ को भी पीछे से फँसाकर सवारी बाँधते हैं तथा और अनेक प्रकार की मुद्राएँ करते हुए नीचे ऊपर खसकते हैं।

दसरत्थⓅ—संज्ञा पुं० [सं० दशरथ] दे० 'दशरथ'। उ०—क्यों न सँभारहि मोहि, दयासिंधु दसरत्थ के।—तुलसी ग्रं०,पृ० ६०।

दसरथⓅ—संज्ञा पुं० [सं० दशरथ] दे० 'दशरथ'।

यौ०—दसरथसुत = रामचंद्र। उ०—सोइ दसरथसुत भगत हित कोसल पति भगवान।—मानस, १।११८।

दसरनी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की झाड़ी। वि० दे० 'दसन'।

दसरान—संज्ञा पुं० [हिं० दस + रान ?] कुश्ती का एक पेच।

दसराहा—संज्ञा पुं० [सं० दशहरा] विजया दशमी उ०—ढोला रहिसि निवारियउ मिळिसि दई कइ मेळि। पूगल हुरस न आहुणउ, दसराहा नम देखि।—ढोला०, दू० २७१।

दसवाँ¹—वि० [सं० दशम] जिसका स्थान नौ और वस्तुओं के उपरांत पड़ता हो। जो क्रम में नौ और वस्तुओं के पीछे हो। गिनती के क्रम में जिसका स्थान दस पर हो। जैसे, दसवाँ लड़का।

दसवाँ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'दशगात्र'।

दसस्यंदनⓅ—संज्ञा पुं० [सं० दश + स्यन्दन] दशरथ। उ०—जनमे राम जगत के जीवन, धनि कौसिल्या धनि दसस्यंदन।—घनानंद०, पृ० ५५१।

दसांग—संज्ञा पुं० [सं० दशाङ्ग] दे० 'दशांग'।

दसा¹—संज्ञा स्त्री० [सं० दशा] दे० 'दशा'।

दसा²—संज्ञा पुं० [हिं० दस] अगरवाल वैश्यों के दो प्रधान भेदों में से एक।

दसारन—संज्ञा पुं० [सं० दशार्ण] एक देश। दे० 'दशार्ण'।

दसारी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक चिड़िया जो पानी के किनारे रहती है।

दसी—संज्ञा स्त्री० [सं० दशा] १. कपड़े के छोर पर का सूत। छोर। २. कपड़े का पल्ला। थान का आँचल। उ०—जाता है जिस जान दे, तेरी दसी न जाय।—कबीर (शब्द०)। ३. बैलगाड़ी की पटरी। ४. चमड़ा छीलने का औजार। रापी। ५. पता। निशान। चिह्न।

दसेंदू—संज्ञा पुं० [देश०] केंदू। तेंदू का पेड़।

दसेरक, दसेरुक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दशेरक'।

दसैं—संज्ञा स्त्री० [सं० दशमी, हिं० दसई] दशमी तिथि।

दसोतरा¹—वि० [सं० दशोत्तर] दस ऊपर। दस अधिक। जैसे, दसोतरा सौ अर्थात् एक सौ दस।

दसोतरा²—संज्ञा पुं० सौ में दस। सैकड़ा पीछे दस का भाग।

दसौंधी—संज्ञा पुं० [सं० दास (=दानपत्र) + वन्धुक (= स्तुतिगायक, भाट)] बंदियों या चारणों की एक जाति जो अपने को ब्राह्मण कहती है। ब्रह्मभट्ट। भाट। राजाओं की वंशावली और प्रशंसा करनेवाला पुरुष। उ०—(क) राजा रहा दृष्टि करि औंधी। रहि न सका तब भाट दसौंधी।—जायसी (शब्द०)। (ख) देस देस तें ढाढ़ी आए मनवांछित फल पायो। को कहि सकै दसौंधी उनको भयो सबन मन भायो।—सूर (शब्द०)।

दस्तंदाज—वि० [फ़ा० दस्तंदाज] हस्तक्षेप करनेवाला। बाधा देनेवाला। छेड़छाड़ करनेवाला [को०]।

दस्तंदाजी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० दस्तंदाजी] किसी काम में हाथ डालने की क्रिया। किसी होते हुए काम में छेड़छाड़। हस्तक्षेप। दखल।

क्रि० प्र०—करना।—होना।